प्रकाशक—

पंडित लालारामजी जैन

जैनग्रंथप्रकाशककार्यालय

मल्हारगंज, इंदौर

—:o:—

मुद्रक—

श्रीलाल जैन,

जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस

८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार

कलकत्ता।

स्याद्वादग्रंथमाला ।

८

श्रीमद्गुणभद्राचार्यविरचित

महापुराणांतर्गत

उत्तरपुराण



अनुवादक और प्रकाशक

ावली (आगरा) निवासी पंडित लालाराम जैन,

मालिक जैनग्रंथप्रकाशक कार्यालय इंदौर ।



प्रथमावृत्ति ७५०]   वीर निर्वाण संवत् २४४५ विक्रमाब्द १९७५   [न्योछावर १० रुपये

उत्तरपुराणकी विषयसूची ।

इति संक्षिप्तविषय सूची ॥

प्रेसका निवेदन ।

महाशय !

आपसे यह बात छिपी नहीं है कि नवीन आविष्कार कर सफल प्रयत्न होनेमें कितना परिश्रम और व्यय उठाना पडता है। इसलिये कलकत्ते की भारतीय जैनसिद्धातप्रकाशिनी संस्थाने भी इस बीसवीं शताब्दीमें भी जब कि अपवित्रताका प्रवाह घटनेकी जगह दिनपर दिन दूना बढ़ताही जारहा है तब एक पवित्र आविष्कार कर कितना परिश्रम और व्यय किया होगा इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। पुस्तक मुद्रणमें आज तक जो जो अपवित्र पदार्थ काम में लाये जाते थे और जिसके कारण समाज में एक छापे और दूसरी वेछापेको स्वीकार करनेवाली दलबंदी बंध गई थी वे सब अस्पर्श्य हिंसाजनक पदार्थ उनकी जगह पवित्र पदार्थोंको खोज कर दूर कर दिये गये। प्रथमही प्रथम ऐसा करने से और कई एक पदार्थों की परीक्षा करनेसे संस्था के कई एक ग्रंथ असुंदर भी छपगये जिससे कि बहुत से भाइयोंने हमसे शिकायतें भी कीं पर हमने उनको पत्र द्वारा समाधान कर संतुष्ट कर दिया। यह महापुराण का उत्तर भाग (उत्तर पुराण) भी उन्हीं ग्रंथों में से एक है जो मुद्रण कलाके प्रगट होनेसे आज तक न आविष्कृत हुये पवित्र पदार्थों से इस संस्थाद्वारा मुद्रित हुये हैं। यद्यपि प्रारंभ में जब कि संस्था अपने आविष्कार में पूर्णसफल न हुई थी तब तक का छपने वाला इस [पुराण] का कुछ भाग उतनी सुंदरता से नहीं छपा है जितना कि चाहिये परंतु अंतिम भागमें वह त्रुटि बहुत कुछ दूर करदी गई हैं। आशा है हमारे पाठक इस प्रेस संबंधी त्रुटिको [जो कि अनिवार्य थी] क्षमा करेंगे।



स्याद्वादग्रंथमाला ।

८

श्रीमहापुराण ।

तदंतर्गत श्रीमद्-गुणभद्रविरचित

श्रीउत्तरपुराण ।

श्रीमान् जिनोऽजितो जीयाद् यद्वचांस्यमलान्यलं ।
क्षालयंति जलानीव विनेयानां मनोमलं ॥ १ ॥

पुराणं तस्य वक्ष्येहं मोक्षलक्ष्मीसमागमः । श्रुतेन येन भव्यानामव्याहतमहोदयः ॥२॥ इह जंबूमति द्वीपे विदेहे प्राचि विश्रुते । सीतासरि-

अर्थ—जिसप्रकार निर्मल जल मलको धोडालता है उसीप्रकार जिनके निर्मल-निर्दोष वचन भव्योंके मनस्थित राग द्वेष आदिरूपी मलको धोडालते हैं वे अजितनाथ जिनेंद्र सर्वदा जयवंते रहो ॥ १ ॥

मैं उन्हीं अजितनाथ भगवानके पवित्र चरितको कहूंगा । जिसके सुननेसे भव्योंको विना किसी विघ्न बाधावाली मोक्ष लक्ष्मीका समागम हो जाता है ॥ २ ॥

दपाग्भागे वत्साख्यो विषयो महान् ॥३॥ सुसीमा नगरं तस्मिन् विभूत्या विस्मयावहं । नाम्नास्य नृपतिः प्राभूत्प्रभुर्विमलवाहनः ॥ ४ ॥ गुणा गुणार्थिभिः प्रार्थ्या न्यायोय चित्रमत्र तत् । गुणा. प्रणायिन सर्वे स्वय तं वृण्वते स्म यत् ॥५॥ शक्तिसिद्धित्रयोपेतो यथान्यायमतन्द्रितः । प्रजा. स पालयामास विधाय स्वप्रजासमा ॥ ६ ॥ धर्मादयस्ततोर्थोर्थात्कामोऽप्येऽनिच्छिने न तौ । इति स्मरन् बभूवासौ जैनधर्मेण धार्मिकः ॥ ७ ॥ स कदाचित्समुत्पन्नबोधि संज्वलनोदयी । स्वगत जातसंवेदो रहस्येवमचिंतयत् ॥ ८ ॥ आयुषो वसति काये कायस्य ममाप्यलं । आयुर्जलं गलत्याशु मितकालघटीधृतं ॥ ९ ॥ ततो गलति नि:शेषं न यावत्तावदेव हि । वर्त्स्याम्युत्सब सन्मार्गे जैने स्वर्गापवर्गयो. ॥ १० ॥ इत्याशापाशमाच्छिद्य बहुभि, सह निस्पृह. । राज्यलक्ष्म्यां स्वतंत्रोपि दीक्षालक्ष्म्या वशीकृत ॥ ११ ॥ तपस्यन्सुचिरं तीव्र विस्पष्टैकादशागक । नाम्नोऽत्यमेव पुण्यात्मा स्वकार्षीद्भावनापरः ॥ १२ ॥ आयुषोंते समाधान विधाय परमेष्ठिषु ।

इस जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तटपर वत्सनामका विशाल देश है ॥ ३ ॥ उसमें धन धान्य आदिसे समृद्ध सुसीमा नामका नगर है और उसका किसीसमय विमलवाहन नामका राजा पालन करता था ॥ ४ ॥ संसारमें लोग गुणोंकी चाहसे उनका उपार्जन किया करते हैं यह नियम है परंतु उस राजामें यह विलक्षण बात थी कि उसके विना चाहे ही गुण उसमें आ आकर स्वयं वास करने लगगये थे ॥ ५ ॥ वह राजा शक्ति और सिद्धिसे युक्त हो अपनी संतानके समान प्रजाका न्यायपूर्वक प्रेमसे निरालस हो पालन करता था ॥ ६ ॥ धर्मसे पुण्यकी प्राप्ति होती है, पुण्यसे धन मिलता है और धनसे यथेष्ट पदार्थोंका संग्रह कीया जासक्ता है। यही सोचकर वह राजा निर्दोष जिनधर्मका पालक हो गया था ॥ ७ ॥ एक समय संज्वलन कषायवाले ज्ञानवान उस राजाके कारण वश वैराग्य हो गया और वह इस तरह अपने मनमें विचारने लगा ॥ ८ ॥

"इस शरीरमें जीवका निवास आयुकर्मकी परिमित अवधितक होता है और वह मेरा जलयंत्रकी घडीके समान एक एक समय करके वीतता जारहा है । इसलिये जबतक वह आयुजल मेरा समस्त संपूर्ण नहीं हो पाता तबतक मैं स्वर्ग मोक्षके सच्चे मार्गभूत जिनधर्ममें प्रवृत्ति करूंगा ॥ ९–१० ॥

बस इसप्रकार सोचकर वह राजा आशारूपी पाशको छेदकर समस्त पदार्थोंमें निस्पृह हो बहुतसे राजाओंके साथ जिन दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ ११ ॥ बहुत दिनोंतक तीव्र तपको तपते हुए ग्यारह अंगके पाठी उस विमलवाहनने अपनी शुभ भावनाके बलसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध बांधा ॥ १२ ॥ और आयुके अंतमें समाधिमरणपूर्वक प्राण

श्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुरयात्स विजयं जयी॥ १३ ॥तत्रादायाद्यसंस्थानं शुक्ललेश्याद्वयान्वितः। हस्तोच्छ्रायं शुभं देहं सद्वर्णादिचतुष्टयं॥१४॥ मासै. षोडशभि. पंचदशभिश्चोच्छ्वसन् दिनैः। त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दैर्मानसाहारमाहरन् ॥ १५ ॥ निजतेजोवधिव्याप्तलोकनालिर्निजावधिः। क्षेत्रोत्थापिबलस्तत्पूरककायजविक्रियः॥१६॥ सातपचशुभैः सौख्यमप्रवीचारमन्वभूत्। सप्रवीचारसत्सौख्यात्सदनंतगुणाधिकं॥१७॥ तस्मान्महीं महाभागे स्वर्गाद्वोरागमिष्यति। प्रागेव भावनोपात्ततीर्थकृन्नामपुण्यत. ॥ १८ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते वर्षे साकेतनगराधिप। इक्ष्वाकुर्जितशत्र्वाख्यः ख्यातो गोत्रेण काश्यपः ॥ १९ ॥ तस्य शक्राज्ञया गेहे षण्मासान्प्रत्यहं मुहुः। रत्नान्यैलविलस्तिस्रः कोटी. सार्द्धं न्यपीपतत् ॥ २० ॥ ज्येष्ठे मासि कलाशेषशशिरोहण्युपागमे। मुहूर्ताद्ब्राह्मणः पूर्वं दरनिद्राविलेक्षणा ॥ २१ ॥ देवीं विजयसेनाख्या षोडशस्वप्नपूर्वकं। प्रविशतं विलोक्यात्मवक्त्राब्जं गंधसिंधुरं ॥ २२ ॥ प्रातः पृष्टवतीं स्वप्नान् देशावधिविलोचन.। जितशत्रुर्महाराज· फलान्येषामबूबुधत् ॥ २३ ॥ विजयादागतं देवं तद्गर्भे स्फटिकामल। विमलानुगसंज्ञाननेत्रत्रितयभास्वर ॥ २४ ॥ दशम्या मा-

छोडनेसे तेतीस सागरकी आयुका धारक विजयनामक विमानमें जा अहमिंद्र हुआ ॥ १३ ॥ वहां उसके द्रव्य और भावदोनों शुक्ललेश्या हुई, एक हाथका ऊंचा शुभ वर्ण गंधरस और स्पर्शवाला मनोहारी शरीर प्राप्त हुआ। सोलह महीने और पंद्रह दिनबाद उच्छ्वास लेता था, तेतीस हजार वर्षमें एकबार मानसिक आहार करता था और लोक नाडी पर्यंतके रूपी पदार्थ अपने अवधिज्ञान द्वारा देख सक्ता था। उसमें लोकनाडीको उखाडकर दूसरी जगह रख देनेकी सामर्थ्य थी। वह उतनी ही अपने शरीरकी विक्रिया भी करसक्ता था और प्रवीचारजन्य सुखसे अनंत गुणा अधिक अप्रवीचार सुखका भोगी था ॥१४–१७॥ उस महाभागके इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके पूर्व ही छहमास तक प्रति दिन तीर्थंकर पुण्य प्रकृतिके प्रभावसे जंबूद्वीपके भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरीके अधिपति इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्री राजा जितशत्रुके घरमें इंद्रकी आज्ञासे साढे तीनकरोड रत्नोंकी कुवेरने वृष्टि की ॥ १८–२० ॥ इसके बाद जेठ महीनेकी अमावस्याके दिन रात्रिके अंतभागमें जब कि रोहिणी नक्षत्रका उदय था उससमय ब्राह्म मूहूर्तसे कुछ पहिले विजयसेना महारानीने सोलह शुभस्वप्न देखे और उनके बाद अपने मुखकमलमें गंधगंजको प्रवेश करता देखा। जब प्रातःकाल हुआ तो महारानीने उनका फल महाराज जितशत्रुसे पूछा और उन्होंने भी अपने देशावधिसे तीर्थंकर पुत्रका होना फल बतलाया ॥ २१–२३ ॥ स्फटिकके समान निर्मल अपने गर्भमें विजय विमानसे आये हुए मति श्रुति और अनुगामी अवधिज्ञानरूप तीन नेत्रोंसे भूपित, समस्त संसारके भावी पति जिनेंद्रको उस विजयसेनाने माघ मासके शुक्लपक्षकी

ममामन्य शुक्लपक्षे प्रजेश्वरं । प्रजेशयोगे नीतिर्वा महोदयमसूत सा ॥ २५ ॥ सागरोपमकोटीनां लक्षाः पंचाशदुत्तरे । मुक्तिमाप्ते जिने
याते तदभ्यतरजीविनः ॥ २६ ॥ तदा विधाय देवेंद्रा मदरे सुंदराकृतेः । जन्माभिषेककल्याणमजिताख्यामकुर्वत ॥ २७ ॥ द्वासप्तति-
गुणा लक्षाः पूर्वाणामस्य जीवित । चतुःशतानि पचाशदुत्सेधो धनुषा मतः ॥ २८ ॥ भर्तुः सुवर्णवर्णस्य पादे स्वस्यायुषो गते । अ-
जितस्य जिताशेषबाह्याभ्यतरविद्विष' ॥ २९ ॥ पूर्वाणा लक्षया हीन भागत्रितयमायुषः । पूर्वांगमपि नार्पत्यं निर्जितादित्यतेजसः ॥३०॥
त्वया संभोगसौख्यस्य पर्यंतोय ममेति वा । राज्यलक्ष्म्या परिष्वक्त ऋध्यान् भोगानभुक्त स' ॥ ३१ ॥ स कदाचित्सुखासीनः सौध-
पृष्ठ विशापति । उल्कामलोकतानष्टां जल्पतीवाध्रुवा श्रियं ॥ ३२ ॥ विषयेषु तदैवासौ विदां निर्विविदे वर. । लक्ष्मीमभ्यर्णमो-
क्ष.णा क्षेप्तुं किं वा न कारण ॥ ३३ ॥ ब्रह्मलोकात्तदाभ्येत्य सुरा' सारस्वतादय' । मुनीश्वराः प्रशस्योच्चैस्तत्तदेवान्ववादिषुः ॥ ३४ ॥
तेषा तदुदित तस्य लोकस्येवाशुमालिन. । सचक्षुषो यथा र्थावलोकेऽगात्सहकारिता ॥ ३५ ॥ सुतायाजितसेनाय राज्याभिषेकपूर्वकं ।

दशमीको जन्मदान दिया ॥२४–२५॥ आदिनाथको मुक्त हुये पचासलाख करोड सागरोपमकालके वीत जानेपर उत्पन्न हुये
सुदराकार इन भगवानका देवोंने सुमेरुपर लेजाकर जन्माभिषेक किया और शुभ अजितनाथ नाम रक्खा ॥ २६–२७ ॥
अजितनाथका जीवनकाल बाहत्तर लाख पूर्वका था और शरीरकी ऊँचाई चारसौ पचास धनुषकी थी ॥ २८ ॥ सुव-
र्णके समान रंगवाले शरीरके धारक, बाह्य अभ्यंतर शत्रुओंके जीतनेवाले इन भगवानका अठारह लाख पूर्वकाल तो
कुमारावस्थामें वीता, और त्रेपन लाख पूर्वतक राजलक्ष्मीका भोगकर नाना इंद्रियसुख भोगे ॥ २९–३१ ॥

एकदिन ये अजितनाथ अपने महलकी छतपर सुखसे विराजमान थे कि अचानक ही अपने समान लक्ष्मीको अ-
नित्य बतलाती हुई बडी भारी विजलीको इन्होंने नष्ट होने देखा और उसको देख एकदम इन्हें विषयोंसे विरक्ति हो
गई सो ठीक ही है जिनकी संमारसे शीघ्र ही मुक्ति होनेवाली होती है उन्हें लक्ष्मी छोडनेमें क्या निमित्त नहीं हो
जाता अर्थात् अल्प कारणसे भी उनके परिग्रह छोडनेके भाव हो जाते हैं ॥ ३२–३३ ॥ ज्योंहीं भगवानको संसारसे
वैराग्य हुआ सारस्वत आदि लौकांतिक देव शीघ्र ही आये और उनके विचारोंकी प्रशंसा करते हुये पुष्टि करने लगे
॥ ३४ ॥ जिसप्रकार लोग देखते तो अपने नेत्रोंसे हैं परंतु सूर्य उसमें निमित्त कारण हो जाता है उसीप्रकार भगवान
यद्यपि स्वयंबुद्ध थे तौभी लौकांतिकोंका साधुवाद उनके वैराग्यमें सहकारी कारण हो गया ॥ ३५ ॥ अभिषेकपूर्वक
अजितसेन नामके अपने पुत्रको विवेकियों द्वारा त्यागे जाने योग्य समस्त राज्य प्रदानकर उन्होंने उसे जूंठनके समान

दत्त्वा विवेकिनां त्याज्यं राज्यं भोज्यमिवोज्झितं ॥ ३६ ॥ लब्धनिष्क्रांतिकल्याणमहाभिषवसंगदः । सुप्रभाशिविकारूढो व्यूढो नरखगामरैः ॥ ३७ ॥ माघे मासि सिते पक्षे रोहिण्या नवमीदिने । सहेतुके वने सप्तपर्णद्रुमसमीपगः ॥ ३८ ॥ अपराह्ने सहस्रेण राज्ञामाज्ञाविधायिना । सार्द्धं षष्ठोपवारेन समास्थित स संयमं ॥ ३९ ॥ चतुर्थज्ञानसंपन्नो द्वितीयेह्नि प्रविष्टवान् । साकेत दानिनां तोषमपूर्वमुपपादयन् ॥ ४० ॥ तत्र ब्रह्मा महीपालस्तस्मै दान यथाक्रमात् । दत्त्वा सातादिभिः पुण्यैः सटापाश्चर्यपंचकं ॥ ४१॥ छाद्मस्थ्येन नयत्वद्दान्यपि द्वादश शुद्धधीः । पुष्यैकादश्यहःप्राते रोहिण्यामाप्ततामगात् ॥ ४२ ॥ सिंहसेनादयस्तस्य नवतिः स्युर्गणाधिपाः । खपञ्चसप्तवन्हुक्तप्रमाणाः पूर्वधारिणः ॥ ४३ ॥ शिक्षकाः खद्वयत्र्येकद्विप्रमागणनाः क्रमात् । शून्यद्वयचतुःश्रानितार्कज्ञानलोचनाः ॥ ४४ ॥ केवलावगमास्तत्र ते सहस्राणि विंशतिः । चतुःशतैः सहस्राणां विंशतिर्विक्रतर्द्धयः ॥ ४५ ॥ शून्यपञ्चचतुर्द्व्येकमनःपर्ययवीक्षणाः । शून्यद्वयचतुर्द्व्येकैस्तरयानुत्तरवादिनः॥४६॥सर्वे ते पिंडिताः सतो लक्षमेक तपोधनाः । प्रकुब्जाद्यार्यिकाः शून्यचतुष्कध्यग्निसम्मिताः ॥ ४७ ॥ श्रावकास्त्रीणि लक्षाणि श्राविकाः पञ्च लक्षिका. । देवा देव्यस्त्वसंख्याताः संख्यातो द्वादशो गणः

निर्मोह हो छोड़ दिया और स्वयं मनुष्य देव और विद्याधरों द्वारा खेई गई सुप्रभा नामवती पालकीमें सवार हो सहेतुक वनमें जा माघ मासके शुक्ल पक्षकी नवमीके दिन सामके समय रोहिणी नक्षत्रमें सप्तपर्ण वृक्षके नीचे एक हजार राजाओंके साथ षष्ठोपवास धारण करके दीक्षित हो गये ॥ ३६–३९ ॥ दूसरे दिन, जब कि भगवानका योग समाप्त होगया तो मति श्रुत अवधि और मनःपर्यय नामक चारज्ञानके धारक वे दानियोंको परमानंद उपजाते हुए अयोध्या नगरीमे आहारके लिये पधारे ॥४०॥ और वहां ब्रह्मा नामक महीपालने उन्हें नवधा भक्तिसे योग्य आहार दे असीम पुण्य उपार्जन किया तथा पंचाश्चर्योंकी वृष्टि हुई ॥ ४१ ॥ बारह वर्षतक तो प्रभु छद्मस्थ रहे और उसके बाद पौषमासके शुक्ल पक्षकी एकादशीके दिन सायं कालमे रोहिणी नक्षत्रके समय घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञानी सर्वज्ञ होगये ॥४२॥ भगवानके सिंहसेन आदि नव्वे तो गणधर थे, तीन हजार सातसौ पचास पूर्वधारी, इक्कीस हजार छहसौ शिक्षक, नौ हजार चारसौ अवधिज्ञानी, बीसहजार केवल ज्ञानी वीसहजार चारसौ विक्रिया ऋद्धिवाले, बारह हजार चारसौ पचास मनः पर्यय ज्ञानी और बारह हजार चारसौ अनुत्तरवादी थे । एवं सब मिलाकर एकलाख तपस्वी थे, तीनलाख वीसहजार प्रकुब्जा आदि आर्यिकाएं थी, तीनलाख श्रावक, पांचलाख श्राविकाएँ, और देव देवियां असंख्यात थीं ॥४३–४८॥

इसप्रकार गणधर आदि बारह गणोंसे वेष्टित हो भगवान अजितनाथ संसार तथा मोक्षका स्वरूप और उनके हेतु

॥ ४८ ॥ एव द्वदशभिर्देवो गणैरेभिः परिष्कृतः। संसारमोक्षतद्धेतुफलभेदान्प्रपंचयन् ॥ ४९ ॥ समवसरणलक्ष्म्या वीक्ष्यमाणः कटाक्षैः सुकृतविकृताचिन्हैरष्टभिः प्रातिहार्यैः। अविहितविहितारिः प्राज्यवैराग्यभावः स्वपरगुरुकृतार्थप्रार्थ्यसम्यक्प्रसिद्धः ॥ ५० ॥ पापैः क्वापि न जीयतेयमिति वा दुर्वादिभिश्चाखिलैर्नामान्वर्थमवाप्तवानिति विदा स्तोत्रस्य पात्र भवन्। आर्यक्षेत्रमशेषमेष विहरन् सप्राप्य सम्मेदकं स्थित्वा दिव्यनिनादयोगरहितस्तत्रैव पक्षद्वयं ॥ ५१ ॥ कुर्वाणः समयं प्रति प्रकृतिषु स्राव गुणासख्यया स्थित्यादिं च विघातयन् स्वमितिक दंडादिक वर्तयन्। सूक्ष्मध्याननिरुद्धयोगविभवो विश्लिष्टदेहत्रयस्तुर्यध्यानसमाश्रयात्समुपयश्चाष्टौ गुणान् शुद्धिमाक् ॥५२॥ चैत्रज्योत्स्नापक्षे पंचम्या रोहिणीगते चंद्रे। प्रातिमायोग बिभ्रत्पूर्वाह्णेऽवाप मुक्तिपद ॥५३॥ विमलवाहनमाहवदुर्द्धर दुरितदूरतपश्चरणोद्यत। सुखनिधिं विजये सुरसत्तम नमत भक्तिभरादजितं जिन ॥ ५४ ॥ इत्थ षोडशभावनाहितमहापुण्योदयापादकः सद्ध्या-

आदि तत्त्वोंका विशद रीतिसे वर्णन करने लगे ॥ ४९ ॥ समवशरण लक्ष्मीसे भूपित वे भगवान असीम पुण्यसे उत्पन्न हुए आठ प्रातिहार्योंसे युक्त थे, शत्रु मित्रको समान जानते थे, और तीव्र वैराग्य भावसे भूपित स्वपरके गुरु प्रार्थनीय सर्वत्र प्रसिद्ध थे ॥ ५० ॥ यह महात्मा न तो पापोंसे कभी जीते जाते हैं और न इन्हें कोई वादी ही जीत सक्ता है इसलिये इनका अजित नाम उचित ही है इसप्रकार विद्वानोंकी स्तुतिके पात्रभूत ये भगवान समस्त भरतक्षेत्रमें विहार करते हुए सम्मेदाचलपर पहुंचे और वहां एक मासका योग धारणकर मौनसे स्थित होगये ॥ ५१ ॥ उससमय प्रभुने प्रतिसमय कर्म प्रकृतियोंकी असंख्यात गुणी निर्जराकी-उनके स्थिति आदिका सर्वथा नाश किया। दंडप्रतर आदि समुद्धात किये सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातीनामक तृतीय शुक्लध्यानके बलसे मन वचन कायकी प्रवृत्तिका सर्वथा निरोध किया और चतुर्थ व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक शुक्लध्यानका आश्रयले प्रतिमा योगसे विनश्वर देहका नाशकर अविनाशी सिद्धोंके आठो गुणोंको प्राप्त किया। जिस दिन अजित भगवानने मुक्तिपद पाया उसदिन चैत्र मासके शुक्लपक्षकी पंचमी थी। रोहिणी नक्षत्रका उदय था और प्रातःकालका समय था ॥ ५२–५३ ॥

जो विमलवाहनके भवमें पहिले तो शत्रुओंकेलिये दुर्धर राजा हुआ और फिर पापनाशक तपका आराधक हुआ उसके बाद विजय विमानमें उत्तम सुखका भोगी श्रेष्ठ देव हुआ उस अजितनाथकेलिये भक्तिभावसे नमस्कार है ॥५४॥

इसप्रकार जो दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंसे महापुण्य-तीर्थंकर प्रकृतिको उत्पन्न करता है, श्रेष्ठध्यानके बलसे समस्त कर्मोंका नाश करदेता है, अनेक कल्याणकी परंपराओंका प्रदान करनेवाला है और नित्य मोक्षसुख देता

नात्सलकर्मजालमखिलं निर्मूलयन्निर्मलः । धर्मः शर्मण्परां प्रविदधद्धत्ते शिवे शाश्वते तस्माद्धर्ममुपादध्वमुज्झितमदाः शुद्धाप्तबुद्धं बुधाः ॥ ५५ ॥ तर्थिकृत्सु द्वितीयोपि योऽद्वितीयपथस्तुतः । स विधेयात्पुराणोरुमार्गनिर्वहणं कवेः ॥ ५६ ॥
तत्तीर्थे सगराभिख्यो द्वितीयश्चक्रवर्तिना । अमूत्पुराणमेतस्य शृणु श्रेणिक धीधन ॥ ५७ ॥ द्वीपेत्र प्राग्विदेहस्य सीतापाग्भागभूषणे । विषये वत्सकावत्या पृथिवीनगराधिपः ॥ ५८ ॥ जयसेनो जनैः सेव्यो जयसेनास्य वल्लभा । रतिषेणस्तयोः सूनुर्धृतिषेणश्च तावुभौ ॥५९॥ सूर्याचंद्रमसौ जित्वा सदा भातः कृतोदयौ । पितरौ च मरुन्मार्गपृथिव्यौ वा ततः पृथक् ॥ ६० ॥ कदाचिद्रतिषेणोभूत्कृतान्तमुखगह्वरे । केनापि हेतुना किं वा न मृत्योर्हेतुतां व्रजेत् ॥६१॥ सजानि जयसेनाख्य सलत चामरद्रुम । शोकाशनिरवाधिष्ट तन्मृत्युघननिर्गतः॥६२॥ प्रलयः प्राप्तकालस्तावालिलिंग यमाग्रगः । लब्धरन्ध्रा न तिष्ठेयुरकृत्वापकृतिं द्विषः ॥ ६३ ॥ भिषक्प्रायोर्जितोपायैः शनैः संलब्धचेतनौ । गुरुणा गुरुणेवैष तेन दुःखेन बोधितः ॥ ६४ ॥ विग्रहं तद्गृहं मत्वा निगृहीतुं कृताग्रहः । हंतु यम समुद्युक्तस्ताद्धि युक्त मनस्विना

है उस निर्दोष आप्तसे निर्दिष्ट धर्मका हे भव्यो ! निर्मद हो पालन करो ॥ ५५ ॥ जो भगवान तीर्थंकरोंमें द्वितीय तीर्थंकर होनेपर भी अद्वितीय अनुपम है वह इस पुराण वर्णनके कठिन विस्तृत मार्गका निर्वहण करें ॥ ५६ ॥
द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथके तीर्थमें जो दूसरा चक्रवर्ती सगर हुआ उसका अब चरित वर्णन किया जाता है सो हे बुद्धिमान् श्रेणिक ! तू सावधान हो सुन ॥ ५७ ॥
इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीतानदीके दक्षिण तटपर वत्सकावती नामका देश है उसमें पृथ्वीनगरका अधिपति जनोंसे सेवनीय जयसेन नामका राजा था और उसकी पटरानीका नाम जयसेना था उन दोनोंके रतिषेण और धृतिषेण नामके दो पुत्र थे ॥ ५८–५९ ॥ भाग्यशाली ये दोनों पुत्र अपने तेजसे सूर्य और चंद्रमाको भी जीतते थे। एक दिन किसी कारण वश रतिषेणकी मृत्यु हो गई। सो ठीक ही है जब मरण होना होता है तब क्या नहीं उसका कारण हो जाता अर्थात् अवधि समाप्त होनेपर अल्प कारण से भी मृत्यु हो जाती है ॥५०–६१॥ जिसप्रकार वज्रके टूटनेसे कल्पवृक्ष और लता दोनों जल जाते हैं उसीप्रकार रतिषेणकी मृत्युसे जयसन और जयसेना दोनोंको शोकने महादुःख दिया उन्हें मृत्युसे पहिले होनेवाली मूर्छाने घर दवाया सो ठीक ही है क्योंकि शत्रु अपना समय पाकर अपकार किये विना कभी नहीं रहते हैं ॥ ६२- ६३ ॥ वैद्योंने अनेक उपायोंसे धीरे धीरे सावधान किया तब कहीं आचार्योंके समान बडे बडे गुरुजनोंने उस महाराज जयसेनको बडी कठिनतासे समझाया ॥ ६४ ॥

॥-६५॥ जीर्णपर्णवदागण्य प्राणप्रांतान् परिग्रहान् । राज्यभोज्ये नियुज्यार्यं धृतिषेण धृतायतिं ॥ ६६ ॥ यशोधरगुरूद्दिष्ट शुद्धमध्वानमाप सः । नृपैर्महारुताख्येन बहुभिर्मिथुनेन च ॥ ६७ ॥ कालान्ते कृतसन्यासविधिः कल्पेंतिमेऽच्युते । देवो महाबलो नाम जयसेनोजनिष्ट सः ६८ ॥ महारुतोपि तत्रैव मणिकेतुः सुरोजनि । आवयोर्योऽवतीर्णे प्राक् तम्यान्यो बोधको भवेत् ॥६९॥ इति तत्र तयोरासीदन्योन्यं सप्रधारण । तत्र द्वाविंशतिसागरोपमाण्यामरं सुखं ॥ ७० ॥ अनुभूयात्र साकेतनगरे कोशले नृप । समुद्रविजयस्तस्य सुबाला रमणी तयोः ॥ ७१ ॥ महाबलोऽभवत्सूनुरिक्ष्वाकुः सगराह्वयः । पूर्वाणा सप्ततिर्लक्षाः तस्यायुः परमावधिः ॥ ७२ ॥ चतुःशतानि पचाशदुत्सेधेन धनूंषि सः । सर्वलक्षणसपूर्णः श्रीमाश्चामीकरच्छविः ॥ ७३ ॥ कुमारत्वे दशाष्टौ च लक्षाः पूर्वाण्ययुस्ततः । महामडलि-

तदनतर वह इस शरीरको दुःखोंका घर मानने लगा, उसका निग्रह करनेकेलिये आग्रह करने लगा और यमराजको मारनेके लिये तैयार हुआ सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंको ऐसा करना ही योग्य है ॥ ६५ ॥ प्राणोंको नाश करनेवाले परिग्रहोंको वह पुरानेपत्तोंके समान झारने लगा और अपने राज्यपर अपने छठे पुत्र आर्य धृतिषेणको स्थापन किया ॥ ६६ ॥ यशोधर गुरुके समीप जाकर उसने कहे हुये शुद्ध मोक्षमार्गको (दीक्षा) ग्रहण किया और माले महारुत आदि अनेक राजाओंने भी उसके साथ साथ दीक्षा धारणकी ॥ ६७ ॥ आयुके अंतमें वह जयसेन मुनि समाधि मरण धारण कर अंतके सोलहवें अच्युत स्वर्गमें महाबल नामका देव उत्पन्न हुआ ॥ ६८ ॥ महारुत नामका राजा भी तपश्चरणकर समाधि मरण धारणकर उसी अच्युत स्वर्गमें मणिकेतु नामका देव हुआ, इन दोनोंमें बडा प्रेम था इसलिये इन दोनोंने परस्पर प्रतिज्ञाकी कि " यहासे हम दोनोंमेंसे जो कोई पहिले च्युत होगा उसको यहां रहा हुआ दूसरा देव अवश्य समझावेगा । भावार्थ—उसे समझाकर विरक्त करेगा " अनुक्रमसे काल बीतजानेपर महाबल नामका देव बाईस सागर तक स्वर्गोंके सुखोंका अनुभवकर कोशल देशके अयोध्या नगरमें इक्ष्वाकुवशमें उत्पन्न हुये राजा समुद्रविजय रानी सुबालाके सगर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, उसकी आयु सत्तरि लाख पूर्वकी थी ॥६९–७२॥ उसका शरीर चारसौ पचास धनुष ऊंचा था, उसमें सबतरहके पूर्ण लक्षण थे, सुवर्णकीसी उसकी कांति थी और वह बडा ही लक्ष्मीवान था ॥ ७३ ॥ कुमार कालके अठारह लाख पूर्व बीत जानेपर उसे महामंडलेश्वरका पद मिला था और फिर अठारह लाख पूर्व बीत जानेपर छहो खड पृथ्वीके समूहपर आक्रमण करनेवाले चक्रकी प्राप्ति हुई थी, तथा उसीसमय पराक्रमको धारण करनेवाली और दिशाओंके समूहपर आक्रमण करती हुई अर्थात् सब दिशाओंमें फैलती

॥ ७५ ॥ आध-
फत्व च तस्य तावत्प्रमामितं ॥ ७४ ॥ तदोदपादि षट्खंडभूचक्राक्रमणक्षमं । चक्र कीर्तिश्च दिक्चक्रमाक्रमंत्याचविक्रमा
चक्रीवद्वेषोऽपि कृत्वा दिग्विजय चिर । गृह्णन् तत्सारवस्तूनि सर्वान् स्वाज्ञामजिग्रहत् ॥७६ ॥ ततो निवृत्य साकेत साम्राज्यश्रीनिके-
तन । भोगान् दशागान् निर्भंग निर्विशन्नावसत्सुखं ॥ ७७ ॥ तस्य षष्ठिसहस्राणि पुत्राणां कृतिनोऽभवन् । तदाकारेण वा तस्य वेधसा व्य-
जिता गुणाः ॥ ७८ ॥ तस्मिन् सिद्धिवने श्रीनाम्नश्चतुर्मुखयोगिनः । अन्यदाखिलभास्यासीत्केवलाधिगमस्तदा ॥ ७९ ॥ तत्कल्या-
णस्य देवेंद्रैर्मणिकेतुः सहागतः । महाबलोऽजनि क्वेति सोपयोगोवधित्विषा ॥ ८० ॥ सगरश्चक्रवर्त्येष शेषैः पुण्यैरभूदसौ । इति बुद्ध्वा
विशानाथमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ८१ ॥ स्मरस्यावा वदिप्यावस्तत्त्व कल्पेच्युताह्वये । प्रागमहीगतमत्रस्थो बोधयित्वावयोगिति ॥ ८२ ॥ म-
नुष्यजन्मनः सार साम्राज्य चिरमन्वभूत् । किं भोगैर्भोगिभोगाभैर्भो भव्यैभिर्भयावहैः ॥ ८३ ॥ उत्तिष्ठ स्वविभो मुक्तावित्यस्य विमुखो-

प्रथम चक्रवर्ती भरतके समान इसने भी बहुत दिनतक दिग्विजय किया, सब
हुई कीर्ति प्रकट हुई थी ॥ ७४–७५ ॥ दिग्विजयसे लौटकर वह साम्राज्य
जगहकी उत्तम उत्तम वस्तुयें ग्रहणकीं और सबको अपनी आज्ञामें रक्खा ॥ ७६ ॥ दशतरहके भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे
और शोभाके स्थान ऐसे अयोध्या नगरमें आया और पूर्ण रीतिसे मानों ब्रह्माने गुण
रहने लगा ॥ ७७ ॥ उस पुण्यवानके साठ हजार पुत्र थे, गुणवान होनेसे वे ऐसे जान पडते थे मुनिराज पधारे थे
ही उन पुत्रोंके आकारमें प्रगट किये हों ॥ ७८ ॥ किसी एक दिन सिद्धवनमें श्रीचतुर्मुख नामके उनके कल्याणोत्सवमें सब
और उन्हें वहींपर लोकालोकको प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ७९ ॥ देव कहां उत्पन्न
देव आये थे उनमें मणिकेतु भी आया था उसने वहांपर यह जानना चाहा कि महाबल नामका वह अपने बाकी
हुआ है तब उसने अपना अवधिज्ञानरूपी प्रकाश प्रगट किया और उससे उसे मालूम होगया कि सगरके पास आया
बचे हुये पुण्यके उदयसे सगर चक्रवर्ती हुआ है। जब उसे यह बात मालूम हो गई तब वह राजा हम दोनोंने प्रतिज्ञाकी
और कहने लगा कि ॥ ८०–८१ ॥ "क्या याद है ? जब हम तुम दोनों अच्युत स्वर्गमें थे तब दिखलावेगा ॥८२॥
थी कि जो कोई पहिले आकर जन्म लेगा उसे वहां रहा हुआ देव समझाकर तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप समान अत्यत
मनुष्य जन्मका सारभूत यह साम्राज्य तूने बहुत दिनतक अनुभव किया है, हे भव्य ! सर्पकी फणाके मणिकेतुके इतना
भय देनेवाले इन भोगोंसे क्या लाभ है ॥ ८३ ॥ इसलिये हे राजन् अब मोक्ष जानेकी तैयारी करो।" कहांसे मिल सकता
कहनेपर भी वह चक्रवर्ती इससे विमुख रहा सो ठीक ही है क्योंकि काललब्धिके विना मोक्षमार्ग

भवत् । चक्रवर्ती स सिद्ध्यध्वा काललब्ध्या विना कुतः ॥ ८४ ॥ ज्ञात्वा तत्तस्य वै मुख्यमन्यालापैर्न्यवर्तयत् । हितेनापि न कुर्वंति विप्रिय क्रमवेदिनः ॥ ८५ ॥ धिग्भोगानीदृशान्स्वोक्तैरेव च्यावयतोऽघदान् । दुस्त्यजानिति निर्विण्णो मणिकेतुरगाद्दिवं ॥८६॥ उपायमेकमालोच्य तपो ग्राहयितुं पुनः । मणिकेतुर्महीपालमवतीर्य महीतल ॥ ८७ ॥ आलंब्य लक्षणैर्लक्ष्य कात्यैंदु भानुमाभया । वामेन वपुषा काम निर्जित्य विजितेंद्रिय. ॥ ८८ ॥ चारणत्व समासाद्य भावयन् सयम परं । तस्थौ जिनेंद्रान् वंदित्वा सगरस्य जिनालये ॥८९॥ दृष्ट्वा त विसयापन्नो वयस्यस्मिन्निद कुतः । तपस्तवेति पप्रच्छ नृपः सोप्यन्यथाब्रवीत् ॥ ९० ॥ यौवन जरसा ग्रास्य गलत्यायुः प्रतिक्षण । हेयः कायो ऽशुचिः पापी दुर्द्धरो दु खभाजनं ॥ ९१ ॥ सर्वदानिष्टसंयोगो वियोगश्चेष्टवस्तुभिः । गतोनादिर्भवावर्तः पुनश्चानत

है ॥ ८४ ॥ "सगर चक्रवर्ती मोक्षमार्गसे विमुख हो रहा है" यह बात जानकर भी मणिकेतु दूसरी कुछ बात चीतकर लौट गया, सो ठीक ही है क्योंकि जो अनुक्रमको जाननेवाले हैं ये किसी हित वा प्रेमसे भी कोई विपरीत काम नहीं करते हैं ॥ ८५ ॥ "जो ये भोग अपने कहे हुये वचनोंसे भी इसतरह च्युत करा देते हैं, जो अनेक तरहके पाप उत्पन्न करनेवाले हैं और बडी कठिनतासे छोडे जाते हैं ऐसे इन भोगोपभोगोंको धिक्कार हो" इस तरह विरक्त होकर वह मणिकेतु देव स्वर्गको चला गया ॥ ८६ ॥ फिर कुछ दिन बाद मणिकेतुने राजाको दीक्षा ग्रहण करानेकेलिये एक और उपाय सोचा और वह उसीसमय पृथ्वीपर आया ॥ ८७ ॥ उसने अपना बहुत सुंदर शरीर बनाया, उस शरीरमें सब लक्षण प्रगट दिखाई दे रहे थे, चंद्रमाके समान उसकी कांति थी और सूर्यके समान उसकी प्रभा थी, उसके सुंदर शरीरसे कामदेव भी जीता गया था, ऐसा शरीर बनाकर और जितेंद्रिय होकर उसने चारण मुनिका रूप धारण कीया, उससमय वह उत्तम संयमका चिंतवनकर रहा था और जिनेंद्र देवकी वंदनाकर वह सगरके चैत्यालयमें जा विराजमान हुआ ॥ ८८-८९ ॥ उस चारण मुनिको देखकर राजाको बडा आश्चर्य हुआ और वह पूछनेलगा कि आपने इस सुंदर यौवन अवस्थामें यह तपश्चरण क्यों धारण किया ? तब उस चारण मुनिने भी बात बनाकर कहा कि "इस यौवनको तो बुढापा खा ही डालेगा, आयु प्रत्येक क्षणमें नष्ट होती ही जाती है, यह शरीर छोडने ही योग्य है क्योंकि यह अपवित्र है, अनेक तरहके पाप करनेवाला है, दुर्द्धर है अर्थात् बडी कठिनतासे संभाला जाता है और अनेक दुःखोंका पात्र है ॥ ९०-९१ ॥ इस जीवको सदा अनिष्ट वस्तुओंका संयोग और इष्ट वस्तुओंका वियोग बना ही रहता है यह जीव अनादिकालसे संसाररूपी (जन्ममरणरूपी) भंवरोंमें पडा हुआ है

एव सः ॥ ९२ ॥ कर्मारिभिरिदं सर्वं दग्ध्वा तानि तपोग्निना । यास्याम्यनश्वरीं शुद्धिं यथाऽहं कनकोपलः ॥ ९३ ॥ इत्युक्तः संसृते भूपो वेपमानोपि नापतत् । पंथानं निर्वृतेर्बद्धः पुत्रशृंखलया दृढं ॥ ९४ ॥ नाति ह्रस्वोस्य संसार इत्ययात्स विषादवान् । उपायो निष्फलः कस्य न विषादाय धीमतः ॥ ९५ ॥ वशीकृतेन साम्राज्यतुच्छलक्ष्म्या निधीशिना । विस्मृतोच्युतलक्ष्मीश्च कामिनां क्वात-रज्ञता ॥ ९६ ॥ लाभो लाभेषु पुत्राणा लाभः स्वर्गापवर्गयोः । लक्ष्म्योर्नासाविति स्मृत्वा मन्येस्यां सोनुषक्तवान् ॥ ९७ ॥ कदा-चित्ते सुता दृप्ताः सिंहपोता इवोद्धताः । इति विज्ञापयामासुः सभास्थं चक्रवर्तिनं ॥ ९८ ॥ यदि क्षत्रियपुत्राणा शौर्यसाहसशा-

और अनत कालतक पड़ा रहेगा ॥ ९२ ॥ इस सब दुखको देनेवाले कर्मरूप शत्रु हैं इसलिये जिसतरह सुवर्ण पाषाण को जलाजलाकर शुद्ध सुवर्ण निकाल लेते हैं उसीतरह मैं तपश्चरणरूपी अग्निसे इन कर्मोंको जलाकर कभी नाश न होनेवाली विशुद्धताको धारण करूंगा " ॥ ९३ ॥

मणिकेतुके इसप्रकार कहनेपर वह सगर चक्रवर्ती संसारके दुखोंसे डरा तो सही परंतु मोक्षमार्गमें प्रवृत्त नहीं हुआ क्योंकि वह पुत्ररूपी सांकलोंसे खूब जकड़ा हुआ था ॥ ९४ ॥ यह देखकर मणिकेतु बड़ा ही खेदखिन्न हुआ, वह सोचने लगा कि इसका संसार अभी बहुत बड़ा है छोटा नहीं है अर्थात् शीघ्र समाप्त होनेवाला नहीं है, सो ठीक ही है क्योंकि यदि किया हुआ उपाय निष्फल चला जाय तो किस बुद्धिमानको खेद नहीं होता है ? ॥ ९५ ॥ वह देव यह भी सोचने लगा कि " साम्राज्यकी तुच्छ लक्ष्मीके वशीभूत हुआ यह चक्रवर्ती अच्युत स्वर्गकी लक्ष्मी-को अथवा मोक्षलक्ष्मीको भी भूल गया है सो ठीक ही है क्योंकि कामी लोगोंके विचार करनेकी शक्ति कहां होती है ? ॥ ९६ ॥ मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि पुत्र होनेको ही यह अपना लाभ समझता है स्वर्ग मोक्षकी लक्ष्मी प्राप्त होनेको यह अपना लाभ नहीं समझता यही समझकर यह भोगोंमें लीन हो उठा है " इत्यादि विचार करता हुआ वह देव चला गया ॥ ९७ ॥

इस बातके कितने ही दिन पीछे सिंहके बच्चोंके समान उद्धत हुये राजपुत्रोंको कुछ कुछ अहंकर हुआ और वे सभामें बैठे हुये चक्रवर्तीसे जाकर निवेदन करनेलगे कि शूरवीरता और साहसको धारण करनेवाले क्षत्रियपुत्रोंका यौवन तबतक नहीं जान पड़ता जब तक कि किसी दुःसाध्य वस्तुको इच्छानुसार सिद्ध करनेकेलिये पिता न भेजे। यदि पिता ऐसे कठिन कामकेलिये न भेजे तो संसारी जीवोंके जन्म लेने और जीवित रहनेसे क्या लाभ है ?

लिनां । यौवनं न खिुः प्रेये दुःमार्गे मातिनेष्मिनं ॥ ९९ ॥ किं तेन जन्मनो तेन जन्मिनो जीवितेन वा । ननु तत्सर्वमानान्यं जन्मजीवितयोर्द्वय ॥ १०० ॥ तत्यदिन विधानीय मर्त नः साहसावहं । यत्रैवनिष्फलदैन्यं दैनेनो वा निरस्यते ॥ १०१ ॥ तदाकर्ण्य सुत पुत्राः सर्वे सतोण माथित । यो किं नयन्न मे सिद्धं मध्ये हिमसमुद्रयेः ॥ १०२ ॥ एष एव मन येषां राज्यलक्ष्मीभिर्मा मम । संभूय भूयसीं यवमनुर्ध्व यथोचितं ॥ १०३ ॥ इति भूयो नोर्द्धेन तेन ते सुविचारिनाः । जोषमास्युर्विधेया हि पितृणा सुद्धवंसजाः ॥ १०४ ॥ नन्येद्युः पुनरागाय नृपं व्यजारयन्निदं । न भुज्महे न चेत्मेन इत्यन्याईत्मगृहवः ॥ १०५ ॥ तच्छ्रुत्वेदा स कृ. मेष इति चिन्तयता मनाक् । नन्वस्ति सार्वसेतोर्न धर्म इत्याचाराङ्ग्यना ॥ १०६ ॥ राजाप्नजातिना पूर्वं कैलासे चक्रवर्तिना । गृहा कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिर्अर्हतां ॥ १०७ ॥ तेषां गंगां प्रकुर्वीध्वं परिखा परितो गिरिं । इति तेपि तथा कुर्वन् क्योंकि जन्म लेना और जीवित रहना ये दोनोंही सर्वसाधारण हैं सब जीवोंके होते हैं ॥ ९८-१०० ॥ इसलिये हे राजन् ! कोई साहसका काम करनेकेलिये हमें अवश्य आज्ञा दीजिये जिससे कि हमारी यह कोरा पेट भरकर पडे रहनेसे उत्पन्न हुई दीनता और अधर्म दोनों ही नष्ट हो जांय ॥ १०१ ॥ यह सुनकर चक्रवर्तीने प्रसन्न होकर कहा कि—"हे पुत्रो ! चक्रसे सब कुछ सिद्ध हो चुका है हिमवान पर्वत और समुद्रके भीतर ऐसी कौनसी वस्तु है जो मुझे सिद्ध न हो चुकी हो ॥ १०२ ॥ इसलिये तुम लोगोंको मैं यही काम देता हूं कि तुम लोग सब मिलकर यथायोग्य रीतिसे मेरी इस राज्यलक्ष्मीका उपभोग करो" ॥ १०३ ॥ इसतरह राजा सगरने बार बार उन्हें निवारण किया तब वे चुप हो गये सो ठीक ही है क्योंकि जो शुद्धवंशमें उत्पन्न हुये हैं वे पीताकी आज्ञा मानते ही हैं ॥ १०४ ॥ वे राजपुत्र फिर किसी एक दिन राजाके पास पहुंचे और निवेदन करने लगे कि यदि आप कोई काम नहीं बतलाते हैं तो हम आपके राज्यका उपभोग भी नहीं करते ॥ १०५ ॥ तब राजाको कुछ चिन्ता हुई वह सोचने लगा कि ऐसा कौनसा काम है जो इनको बताया जाय, अकस्मात् उसे याद आ गई उसने अपने मनमें बडे हर्षके साथ कहा कि एक धर्मकार्य करना बाकी है ॥ १०६ ॥ इसके बाद राजाने उन सब राजपुत्रोंको आज्ञा दी कि "महाराज भरतने कैलास पर्वतपर महारत्नोंके अरहंत देवके चौबीस जिनालय बनवाये हैं उस पर्वतके चारोंओर खाईके रूपमें गंगाका प्रवाह करदो ।" यह सुनकर उन राजपुत्रोंने भी दंडरत्न लेकर शीघ्र ही यह काम कर दिया ॥१०७-१०८॥

मणिकेतु देवको फिर भी प्रेम और सज्जनताने प्रेरणा की और वह सगरको समझानेके उपायके साथ साथ इसत-

दग्धरत्नेन सत्वर ॥ १०८ ॥ मणिकेतुः पुनश्चास्य स्नेहसौजन्यचोदितः । सचिवैर्बोधनोपायं स सहैव व्यचिंतयत् ॥ १०९ ॥ किंचिद्धित प्रियं चोक्त किंचिच्च हितमप्रियं । किंचित्प्रिय सदहित परं चाहितमप्रिय ॥ ११० ॥ अंत्यद्वयं परित्यज्य शेषाभ्यां भाषता हित । इति निश्चित्य कैलाश तदैवागम्य दर्पिणः ॥ १११ ॥ कुमारान् भस्मराशिं वा व्यधात्क्रूरोरगाकृतिः । कुर्वंति सुहृदोऽगत्या हित चेदप्रिय च तत् ॥ ११२ ॥ ज्ञात्वापि तन्मृतिं भूपमाकर्णयितुमक्षमाः । तत्स्नेह तेषु जानानाः संवृत्य सचिवाः स्थिताः ॥ ११३ ॥ तदा ब्राह्मणरूपेण मणिकेतुरुपेत्य त । महाशोकसमाक्रांतो वावेदयादिदं वच ॥ ११४ ॥ देव देवे धराचक्र रक्षति क्षेममत्र नः । किंत्वंतकेन मत्पुत्रो ह्यहार्यो जीवितावधेः ॥ ११५ ॥ प्रेयान् ममैष एवासौ नायुषा तेन जीवित । नानीतश्चेत्त्वया सोद्य तेन मामपि पश्यत ॥ ११६ ॥ तव विद्धयग्रतो नीत किं कुर्वंति न गर्विताः । शलाटुभक्षणे लोलः किं पक्व तत्त्यजेदिति ॥ ११७ ॥ तदाकर्ण्याह स-

रह चिंतवन करने लगा कि ॥ १०९ ॥ कोई बात चार तरहसे कही जाती है एक तो जो हितरूप होकर भी प्रिय हो, दूसरी हितरूप होकर भी जो अप्रिय हो, तीसरी जो हितरूप तो न हो परंतु प्रिय हो और चौथी जो हितरूप भी न हो और प्रिय भी न हो ॥ ११० ॥ इन चारोंमेंसे अंतके दो उपायोंको छोडकर बाकीके हितरूप दो उपाय कहने चाहिये ऐसा कह निश्चयकर वह कैलास पर्वतपर आया और अपना क्रूर सर्पका आकार बनाकर अहंकार करनेवाले उन कुमारोंको मूर्छित कर भस्मकी राशिके समान कर दिया। सो ठीक ही है क्योंकि जो मित्रकेलिये अप्रिय होकर भी यदि किसी दूसरी तरहसे हितरूप हो तो भी मित्रलोग करते ही हैं ॥१११–११२॥ यद्यपि उन राजपुत्रोंके मरनेकी बात मंत्रियोंको मालम हो गई थी तथापि उन पुत्रोंमें राजाका अत्यंत स्नेह जानकर मंत्री लोग इस बातको सुना नहीं सके और वे इस बातको छिपाकर चुपचाप बने रहे ॥ ११३ ॥ तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप धारणकर सगरके पास आया और अत्यंत शोक करता हुआ नीचे लिखे अनुसार वचन निवेदन करने लगा ॥ ११४ ॥ कि–हे राजन् ! जब आप इस पृथ्वीके समूहका पालन कर रहे हैं तब इस क्षेत्रमें सब जगह क्षेम कुशल है किंतु यमराजने जीवनकी अवधि (आयु) रहतें हुये भी मेरा पुत्र लेलिया है ॥ ११५ ॥ यह पुत्र बहुत ही प्यारा था, अपनी पूरी आयुतक भी जीवित नहीं रह सका विना उसकी इच्छासे यमराज आज उसे उठाकर लेगया, यदि आप आजही उसे यमराजसे वापिस नहीं लावेंगे तो समझिये कि आपके देखते देखते रक्षा करते करते आपके सामने ही वह मुझे भी ले जायगा, क्योंकि अभिमानी लोग क्या क्या नहीं करते हैं ? जो कच्चे फलोंके खानेमें ही लोलुपी है क्या वह पके फलोंको छोड़ सकता है ? कभी

द्राजा द्विज ! किं वेत्सि नातकः । सिद्धैरेव स वार्योऽन्यैर्नेत्यागोपालविश्रुतं ॥ ११८ ॥ अपवर्त्यायुषः केचिद्दद्घायुर्जीविनः चरे । तान् सर्वान् मंहन्त्येष यमो मृत्योरगोचरः ॥ ११९ ॥ तस्मिन् वहसि चेद्वैरं जीर्णो माभूर्गृहे वृथा । मोक्षदीक्षां गृहाणाशु शोकं हित्वेत्युवाच त ॥ १२० ॥ इत्युक्ते देव किं सत्यमेतद्यच्चांतकात्परः । बलीति तन्न भेतव्यं मया किंचिदुदिप्यता ॥ १२१ ॥ तेनातकेन ते नीताः सर्वेऽपि स्वातिक सुताः । तस्मात्तदुक्तमार्गेण बहुवैरं खलेऽन्तके ॥ १२२ ॥ इत्याह सोपि तद्वाक्यवज्रनिर्भिन्नमानसः । गतासुरिव निःस्पंदो बभूव नृपतिः क्षणं ॥ १२३ ॥ चंदनोशीरसंमिश्रसलिलैः सुहृदुक्तिभिः । उत्क्षेपैश्च मृदूत्क्षेपै पुनरागत्य चेतना । मा मायामा वृथायामा भीम. कामो यमोऽधमः । भंगुरः संगम. प्रेम्लः कायोऽश्रेयोऽशुचिः क्षयी ॥ १२५ ॥ वार्मुकार्मुकनिर्भासि बौ-

नहीं ॥ ११६–११७ ॥ ब्राह्मणकी इस बातको सुनकर राजा हँसा और कहने लगा कि ! हे ब्राह्मण क्या तू नहीं जानता है कि इस यमराजको सिद्ध भगवान ही दूर भगा देते हैं सिद्धोंके सिवाय अन्य किसीसे यह निवारण नहीं हो सकता इस बातको बाल गोपाल सभी जानते हैं ॥ ११८ ॥ इस संसारमें कितने ही ऐसे जीव हैं जिनकी आयु बीचमें ही छिद् सकती है और कितने ही ऐसे हैं जिनकी आयु कभी बीचमें छिदती नहीं जो पूरी आयुको भोगकर ही मरते हैं परंतु जिसकी कभी मृत्यु नहीं हो सकती ऐसा यह यमराज उन सबका संहार कर डालता है परंतु वह स्वयं कभी मृत्युके गोचर नहीं होता-सदा अमर ही बना रहता है ॥ ११९ ॥ यदि तू उस यमराजके साथ वैर करना चाहता है तो तू घरमें रहकर व्यर्थ ही जीर्ण मत हो शीघ्र ही शोकको छोड़कर मोक्ष जानेकेलिये दीक्षा ग्रहण कर ॥ १२० ॥ राजाके इसप्रकार कहनेपर ब्राह्मण बोला कि–"हे देव ! क्या यह सच है कि यमराजके सिवाय और कोई बलवान नहीं है तब तो मुझे भय नहीं करना चाहिये परंतु आप जो यह बात कह रहे हैं सो वही यमराज आपके सब पुत्रोंको अपने पास लेगया है इसलिये आपने जो मार्ग मुझे बतलाया है उसी दीक्षाग्रहण करनेरूप मार्गसे आपको भी उस दुष्ट यमराजके साथ बड़ा भारी वैर करना चाहिये ।" ब्राह्मणके इसतरह कह चुकनेपर उसके वचनरूपी वज्रसे राजाके हृदयके भी टुकड़े टुकड़े हो गये और वह क्षणभरकेलिये प्राणरहितके समान चेष्टारहित (मूर्छित) होगया ॥१२१–१२३॥ चंदन और उशीर मिले हुये जलसे, मित्रोंके वचनोंसे, छिड़काव और मिट्टीके लेप आदिसे फिर वह सचेत हुआ तथा सोचने लगा-यह मायास्वरूप लक्ष्मी व्यर्थ ही इतनी लंबी है अर्थात् यह असार है, काम भयानक है, यम नीच है, समागम सब क्षणभंगुर है यह शरीर अकल्याण करनेवाला, अपवित्र, क्षय होनेवाला और घिनावना है ॥ १२४–१२५ ॥ यह

वनं तथयौ वन । जानन् जिनोहमद्यापि मूढोत्रैवेति चिंतयन् ॥ १२६ ॥ भव्ये भगलिदेशेशसिंहविक्रमराड्भुवः । विदर्भायाः सुते राज्य नियोज्यासौ भगीरथे ॥ १२७ ॥ राजते स्म तपोराज्ये दृढधर्मजिनांतिके । तावदेव गृहे सतो न हेतुर्यावदीक्ष्यते ॥ १२८ ॥ सोपि गत्वा भवद्वार्तां महीपतिमबूबुधत् । अनाकर्ण्यामसौ श्रुत्वा गाढं शोकाग्निदीपितः ॥ १२९ ॥ कृत्वा भगीरथे राज्यं तपोऽयादहमप्यतः । इहान्वेष्टुं समायातः शोकाद्युष्मत्कुलद्विजः ॥ ३० ॥ इति देवः समभ्येत्य मायाभस्मावगुंठितान् । कुमारान् बोधयामास मायापि सुहृदा हिता ॥ १३१ ॥ तेपि तद्वचनात्प्रापन्तपस्तज्जिनसंश्रयात् । चरमागधरा युक्त तदेवौचित्यवेदिना ॥ १३२ ॥ भगीरथोऽपि तान् गत्वा कृत्वा भक्त्या नमस्क्रिया । धर्ममाकर्ण्य जैनेंद्रमादत्त श्रावकव्रत ॥ १३३ ॥ प्रकटीकृततन्मायो मणिकेतुश्च तान् मुनीन् । क्षंतव्यमित्युवाचैतान्सगरादीन् सुहृद्वरः १३४ ॥ कोपराधस्तवेद नस्त्वया प्रियमनुष्ठित । हित चेति प्रसन्नोक्त्या ते

यौवन इंद्रधनुषके समान है इसलिये ही लोग संसारकी इस सब दशाको जानते हुये वनमें जाकर तपश्चरण करते हैं, मैं मूर्ख हूं जो आज भी इसीमें लुभा रहा हूं।'' यही सब सोच विचार करते हुये उसने भगलिदेशके स्वामी राजा सिंहविक्रमकी पुत्री विदर्भाके पुत्र भव्य भागीरथको राज्यगद्दीपर बिठाया ॥ १२६–१२७ ॥ तथा आप दृढधर्मा नामके केवली भगवानके समीप दीक्षा धारणकर तपश्चरणरूपी राज्यमें सुशोभित होने लगा सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष घरमें तबतक ही रहते हैं जबतक कि वे विरक्त होनेके किसी हेतुको नहीं देखते। तदनंतर वह मणिकेतु देव उन पुत्रोंके पास आया और मायासे मूर्छित हुये उन्हें सचेतकर कहने लगा कि मैंने आपके समाचार महाराजसे कहे। महाराज इस कभी न सुनने योग्य बातको सुनकर शोकरूपी अग्निसे खूब ही जलने लगे। तदनंतर उन्होंने भगीरथको राज्यदेकर तपश्चरण धारण करलिया। मैं आपके कुलका ब्राह्मण हूं इसलिये शोक करता हुआ आपको ढूंढनेकेलिये यहां आया हूं ॥१२८–१३०॥ इसप्रकार वह मणिकेतु देव वहांसे आकर उन राजपुत्रोंके पास आया और मायासे मूर्छितहुये उन सबको सचेत किया। इसलिये देखो छल कपट करना भी कभी कभी मित्रोंकेलिये हितकारी हो जाता है ॥१३१॥ पिताकी दीक्षाके समाचार सुनकर चरमशरीरी उन राजकुमारोंने भी उन्हीं दृढधर्म केवलीके समीप जाकर नमस्कार किया और दीक्षा धारण की, सो ठीक ही है क्योंकि उचित बातको जाननेवालोंकेलिये ऐसा ही करना योग्य है ॥ १३२ ॥ भगीरथ भी उन सब मुनियोंके समीप गया, भक्तिपूर्वक नमस्कार किया, धर्मका स्वरूप सुना और जिनेंद्रदेवका कहा हुआ श्रावकोंका व्रत स्वीकार किया ॥ १३३ ॥ तदनंतर मित्रवर मणिकेतु देवने उन सगर आदि सब मुनियोंके समीप जाकर अपनी की

हैवो समतांस्वयन् ॥ १३५ ॥ सोपि संतुष्य सिद्धार्थो देवो दिवमुपागमत । परार्थसाधनं प्रायो ज्यायसां परितुष्टये ॥ १३६ ॥ सर्वे ते सुचिरं कृत्वा सतपो विधिवद् बुधाः । शुक्लध्यानेन संमेदे समापन्परमं पदं ॥१३७॥ निर्वाणगमनं श्रुत्वा तेषां निर्विण्णमानसः । वरदत्ताय दत्त्वास्वराज्यलक्ष्मीं भगीरथः ॥ १३८ ॥ कैलासपर्वते दीक्षां शिवगुप्तमहामुनेः । आदाय प्रतिमायोगधार्यभूत्स्वर्धुनीतटे ॥ १३९ ॥ सुरेन्द्रेणास्य दुग्धाब्धिपयोभिरभिषेचनात् । क्रमयोस्तत्प्रवाहस्य गंगायाः संगमे सति ॥ १४० ॥ तदाप्रभृति तीर्थत्वं गंगाप्यस्मिन्नुपागता । कृत्वोत्कृष्टं तपो गंगातटेऽसौ निर्वृतिं गतः ॥१४१॥ अत्रामुत्र च मित्रस्य हितकृत्कोऽपरोस्ति बंधुः परो गुह्याद् गुह्यतरं गुरोरपि न रक्षाप्यं यदस्योच्यते । दुःसाध्यान्यपि साधयत्यगणयन्प्राणांश्च तत्र स्फुटो दृष्टांतो मणिकेतुरेव कुरुतां तन्मित्रमीहग्बुधाः ॥ १४२ ॥

हुई माया प्रगट करदी और सबसे क्षमा मांगी ॥ १३४ ॥ तब सबने उससे कहा कि भाई इसमें तुम्हारा क्या अपराध है तुमने तो यह हमारेलिये प्रिय और हितरूप कार्य किया है" इसतरह प्रसन्न वचनोंसे उन मुनियोंने उस देवको उसमसय धीरज दिलाया ॥ १३५ ॥ अपना कार्य सिद्ध हुआ जानकर वह देव भी संतुष्ट होकर अपने स्वर्गको चला गया सो ठीक ही है क्योंकि परोपकार करदेनेसे ही प्रायः बडे आदमी संतुष्ट हुआ करते हैं ॥ १३६ ॥ उन बुद्धिमान सब मुनियोंने बहुत दिनतक विधिपूर्वक उत्तम तपश्चरण किया और फिर सम्मेदशिखरपर पहुंचकर शुक्लध्यानके द्वारा वे वहींसे मोक्ष पधारे ॥१३७॥ उन सबके मोक्ष जानेके समाचार सुनकर भगीरथके चित्तमें भी बडा वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने अपनी सब राज्य लक्ष्मी वरदत्तको दे डाली कैलास पर्वतपर आकर शिवगुप्त महामुनिके समीप दीक्षा धारणकी और गंगाके किनारे ही प्रतिमायोग धारणकर विराजमान हुआ ॥ १३८–१३९ ॥ इंद्रने आकर क्षीरसागरके जलसे इस भगीरथके दोनों चरणकमलोंका अभिषेक किया, उस अभिषेकके जलका प्रवाह गंगामें जा मिला तभीसे लेकर यह गंगा भी इस संसारमें तीर्थरूप मानी जाती है । भगीरथने गंगाके किनारे ही उत्कृष्ट तपश्चरण किया और वह वहींसे मुक्त हुआ ॥ १४०–१४१ ॥ गौतमस्वामी कहने लगे कि श्रेणिक ! मित्रके समान इस लोक और परलोक दोनों जगह हितकरनेवाला और कोई नहीं है, न कोई मित्रके समान भाई है, जो बात गुप्तसे गुप्त होती है जिसे माता पिताके सामने भी नहीं कह सकते वह बात भी मित्रसे कही जाती है, मित्र अपने प्राणोंको न गिनकर भी कठिनसे कठिन वस्तुको भी सिद्ध करलाता है मणिकेतु देव ही इसका प्रगट उदाहरण है इसलिये संसारमें ऐसा ही सज्जन मित्र बनाना चाहिये ॥ १४२ ॥ जो शत्रुओंकी अजेय सेनाको जीतनेवाले जयसेन हुए थे जो अच्युत स्वर्गमें जाकर महाबल नामके

ग्विधं ॥ १४२ ॥ स जयति जयसेनो यो जितारातिसेनः श्रुत इति महदादिर्यो बलः प्रातकल्पे । सगरसकलचक्री योजितो यश्च यश्च प्रहतचरमदेहो देहमात्रात्मदेहः ॥ १४३ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अजिततीर्थंकरसगरचक्रधरपुराण परिसमाप्तमित्यष्टचत्वारिंशत्तम पर्व ॥ ४८ ॥

देव हुये थे तथा वहांसे आकर जो सगर नामके चक्रवर्ती हुये थे जो चरम शरीरी थे और अंतमें जो शरीररहित होकर केवल आत्मस्वरूप रह गये थे ऐसे वे (सगर) भगवान सदा जयशील हों ॥ १४३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अजितनाथ तीर्थंकर और सगर चक्रवर्तीका पुराण पूर्ण करनेवाला यह अडतालीसवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपंचाशत्तमं पर्व ॥ ४९ ॥

श्रियं क्रियात्स मे निघ्नन् सभवो दंभजृभणं । संमुखीनायते यस्य सद्बोधः सन्मुखेऽखिले ॥ १ ॥ द्वीपेस्मिन्नादिमे पूर्वविदेहे नद्युदक्तटे । कच्छाख्ये विषये क्षेमपुरे विमलवाहनः ॥२॥ नाम्ना नरपतिस्तस्य सद्यः केनापि हेतुना । सति त्रिभेदे निर्वेदे स समासन्ननिर्वृतिः ॥ ३ ॥ जंतुरतकदंतस्थो हंत जीवितमीहते । मोहाचन्निर्गमोपायं न चिंतयति धिक् तमः ॥ ४ ॥ आयुः परमस

अथ उनचासवां पर्व ।

अथानंतर-जिनका सम्यग्ज्ञान (केवल ज्ञान) साम्हनेकी समस्त वस्तुओंको साफ प्रगट करदेता है अर्थात् जिनके ज्ञानमें संसारके समस्त पदार्थ दिखलाई पडते हैं तथा जो सब तरहके पाखंडोंका नाश करनेवाले हैं ऐसे भगवान संभवनाथ मेरा कल्याण करें ॥ १ ॥ इसी पहिले जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीतानदीके उत्तर किनारेपर कच्छा नामका देश है, उसके क्षेमपुर नामके नगरमें राजा विमलवाहन राज्य करता था। किसी कारणसे वह शीघ्र ही विरक्त हुआ और विचार करने लगा कि इस संसारमें वैराग्यके तीन कारण उपस्थित हैं एक तो यह जीव यमराजके दांतोंके बीचमें रहकर भी मोहकर्मके उदयसे जीवित रहनेकी ही इच्छा करता है उससे निकलनेके उपाय नहीं सोचता इसलिये इस अंधकारको भी धिक्कार हो ॥ २–४ ॥ दूसरे इस जीवकी आयु बहुत ही इने गिने समयोंकी है

स्याताः क्षणात्ते शरणीकृताः । प्रणिभिर्हानये चेमानर्पयत्यंतकप्रभो: ॥ ५ ॥ अभिलाषातया तसाच्छायां भोगस्य सश्रिताः । जीर्णकूलस्य वासोऽमून्नहि क्षेमेण पालयेत् ॥ ६ ॥ इत्यादि चिंतयन् राज्यं दत्वा विमलकीर्तये । स्वयंप्रभजिनस्यातेवासित्व प्रतिपन्नवान् ॥ ७ ॥ एकादशागधारी सन् त्रैलोक्यक्षोभकारण । भावनाभिर्निबध्यात्यनामतीर्थकराह्वय ॥ ८ ॥ सन्यासविधिना त्यक्तदेहो ग्रैवेयकादिमे । सुदर्शने विमानेऽभूदहमिंद्रो महर्द्धिक ॥ ९ ॥ त्रयोविंशतिवार्ध्यायु स षष्ठ्यगुलमानभाक् । शरीरो लेश्यया शुक्लः श्वसन्पक्षोनवत्सरे ॥ १० ॥ सत्रया भिद्विवर्षांते भोजनं मनसा स्मरन् । निःप्रवीचारभोगोत्यनरकातगतावधिः ॥ ११ ॥ स्वावधिक्षेत्रसंचारसमर्थस्तत्समप्रभ. । प्राग्देहोत्थ तनुव्याप्त्या स्वावधिक्षेत्रपूरकः ॥ १२ ॥ अणिमादिगुणोपेत पचपुण्योदयार्पितं । अहमिंद्रसुख श्रीमानन्वभूदमरोत्तमः ॥ १३ ॥ द्वीपेऽस्मिन्भारते वर्षे श्रावस्तिनगरेशिनः । राज्ञः काश्यपगोत्रस्य दृढराजस्य सद्युतेः ॥ १४ ॥ वल्लभेक्ष्वा-

यह जीव उतने ही समयोंको अपना शरण मानता है परंतु वेही समय श्वासोच्छ्वास आदि प्राणोंके द्वारा इसकी हानि करते रहते हैं और अंतमें इस जीवको यमराजके समीप पहुचा देते हैं ॥ ५ ॥ तीसरे आशारूपी धूपसे दुखी हुये ये जीव किसी विषयभोग रूपी नदीके टूटे पुराने किनारेपर खडे हुये कल्पवृक्षकी छायाका आश्रय लेते हैं परंतु यह उनका निवास क्षेम कुशलपूर्वक उनकी रक्षा नहीं कर सकता ॥६॥ इत्यादि विचारकर विमलकीर्तिको अपना राज्य दिया और स्वयंप्रभजिनेंद्रसे दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया ॥ ७ ॥ ग्यारह अंगोंका जानकार होकर उसने सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया और अंतमे तीनों लोकोंको क्षोभ उत्पन्न करनेवाले तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया ॥ ८ ॥ अंतमें समाधिमरणपूर्वक अपने शरीरका त्याग किया और पहिले ग्रैवेयकके सुदर्शन नामके विमानमें बडी ऋद्धिका धारी अहमिंद्र हुआ ॥ ९ ॥ तेईस सागरकी उसकी आयु थी, साठ अंगुल उसका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, साढे ग्यारह महीने बाद श्वास आता था ॥ १० ॥ तेईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था, प्रवीचाररहित भोग थे, सातवें नरकतक अवधिज्ञान था ॥ ११ ॥ जितना अवधिज्ञानका क्षेत्र था उतनेही क्षेत्रमें गमन करनेकी शक्ति थी, उतनी ही शरीरकी कांति थी और उतने ही क्षेत्रमें फैलनेवाली पहिले कहे हुये शरीरकी विक्रिया थी ॥ १२ ॥ इसतरह वह श्रीमान उत्तम अहमिंद्र जो अणिमा महिमा आदि गुणोंसे सुशोभित थे और पुण्योदयसे प्राप्त हुये थे ऐसे अहमिंद्रके सुखोंका अनुभव करता था ॥ १३ ॥

अथानंतर—इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें श्रावस्ती नगरका राजा दृढराज्य था उसकी कांति बडी ही उत्तम थी और

कुवंशस्य सुषेणा तत्सुरागमे । षण्मासान् वसुधाराधिमाहात्म्यपदवीं गता ॥ १५ ॥ शुक्लफाल्गुनजाष्टम्या स्वप्नान् षोडश पंचमे । प्रभातसमयेऽपश्यन्नक्षत्रे सुकृतोदयात् ॥१६॥ ततोनु वदनस्यातःस्वप्ने प्राविशदभिभे । गिरींद्रशिखराकारो वारणश्चारुलक्षणः ॥ १७ ॥ सा तेषा फलमाकर्ण्य स्वपतेर्मुदमागता । नवमे मासि नक्षत्रे पंचमे सौम्ययोगगे ॥ १८ ॥ पौर्णमास्यामवापाच्यमहमिंद्र त्रिविद्युतं । सजन्मोत्सवकल्याण प्राते संभव इत्यभूत् ॥ १९ ॥ संभवे तव लोकाना श भवत्यद्य शंभव । विनापि परिपाकेन तीर्थकृन्नामकर्मण ॥ २० ॥ तवागभूजे प्रीणंति लक्षणव्यंजनोद्गमे । प्रलंबबाहुविटपे सुरदृग्भ्रमराश्चिर ॥ २१ ॥ परतेजासि ते तेजो भाति देव तिरोदधत् । मतानि कपिलादीना स्याद्वादस्येव निर्मल ॥ २२ ॥ समस्ताह्लादकेनासीदामोदेनेव चंदनः । बोधेन सहजातेन त्रिविधेन जगद्धितः ॥ २३ ॥ त्वा लोकः स्नेहसंवृद्धो निर्हेतुहितकारण । प्रदीपवन्नमत्येप निधानमिव भास्वरः ॥ २४ ॥ इति स्तुत्वादिकल्पेशो

वह इक्ष्वाकुवंश तथा काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ था उसकी रानीका नाम सुषेणा था। जब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई थी तभीसे उस राजाके घरमें रत्नोंकी वर्षा होने लगी थी और उसका माहात्म्य सब जगह फैल गया था ॥ १४-१५ ॥ फागुन सुदी अष्टमीके दिन मृगसिर नक्षत्रमे सवेरेके समय पुण्यकर्मके उदयसे रानी सुषेणाने सोलह स्वप्न देखे ॥ १६ ॥ पहिले कहे हुये सोलह स्वप्न देखनेके बाद उसने अपने मुहमें सुंदर लक्षणोंसे सुशोभित और मेरु पर्वतके शिखरके समान एक हाथी अपने मुहमें प्रवेश करते देखा ॥ १७ ॥ अपने पतिसे उन स्वप्नोंका फल सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई उसी दिन वह अहमिंद्र अपनी आयु पूर्णकर उसके गर्भमें आया। नवमे महीनेमें कार्तिक शुक्ला पौर्णमासीके दिन चंद्रमाके योगमें मृगसिर नक्षत्र रहनपर भगवानका जन्म हुआ और जन्म कल्याणके अंतमें इंद्रोंने स्तुतिकी कि हे संभवनाथ ! तीर्थंकर नाम कर्मके उदयके बिना ही केवल आपके जन्म लेनेसे ही जीवोंको सुख मिला है ॥ २० ॥ हे देव ! लक्षण और व्यंजनोंसे (छोटे २ चिन्होंसे) प्रगट हुआ और लंबीलंबी भुजारूपी शाखाओंसे सुशोभित ऐसे आपके शरीररूपी कल्पवृक्षपर देवताओंकी दृष्टिरूपी भ्रमर बहुत देरतक ठहर रहते हैं ॥ २१ ॥ हे देव ! जिसप्रकार निर्मल स्याद्वाद वाणीका तेज कपिल आदिके मतोंका तिरस्कारकर सुशोभित होता है उसीप्रकार आपका तेज भी सबके तेजको तिरस्कार करता हुआ सुशोभित हो रहा है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार चंदन सबको प्रसन्न करनेवाली सुगंधसे सुशोभित होता है उसीप्रकार साथ साथ उत्पन्न हुये मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानसे आप भी जगतका हित कर रहे हैं ॥ २३ ॥ हे नाथ ! आपके प्रेमसे बढ़ा हुआ यह लोक दीपकके समान

विहितानंदनाटकः । पित्रोस्तमर्पयित्वामा स्वर्लोकमगमत्सुरैः ॥ २५ ॥ द्वितीयतीर्थसंताने समये सागरोपमैः । त्रिंशच्छतसहस्रैकोटिभिः प्रातमीयुषि ॥ २६ ॥ शंभवाख्योऽभवत्स्वामी तदभ्यंतरजीवितः । स पूर्वषष्टिलक्षायुः चतुःशतधनुःप्रमः ॥ २७ ॥ आयुर्षाते चतुर्भागे प्राप्तराज्यमहोदयः । सुखान्यन्वभवद्देवरुपनीतान्यनुक्षण ॥ २८ ॥ चत्वारिंशच्चतुर्लक्षा पूर्वाणा समतिक्रमे । चतुःपूर्वांगयुक्तानामभ्रविभ्रमदर्शनात् ॥२९॥ लब्धबोधिः समुत्पन्नवैराग्यो जीवितादिक । स्वगत स्मरति संति शंभवः संभवातकः ॥ ३० ॥ आयुरेवांतकोंतस्य भ्रात्याकोऽन्योंतक. परं. । जतवस्तदजानतो म्रियते ऽनतशोंतकात् ॥ ३१ ॥ अध्यास्य कायमेवायमतकेनाभिभूयते । २.यो जतुरिद जाडचमंत्रेव वसतीति यत् ॥ ३२ ॥ विरसान्सरसान्मत्वा विषयान् विषसनिभान् । भुक्ते रागरसाविद्धो धिग् धियोनादिविप्लव ॥ ३३ ॥ आत्मेंद्रियायुरिष्टार्थसान्निधि रसृतौ सुख । स्वसान्निधिरिह स्थेयान् किं न वेत्ति न तर्क्यते ॥ ३४ ॥

विना ही कारण हित करनेवाले और कांतिके खजाने ऐसे आपको नमस्कार करता है इसप्रकार प्रथम स्वर्गके इंद्रने भगवानकी स्तुतिकी, आनंद नाटक किया और भगवानको माता पिताके समीप सौंपकर सब देवोंके साथ स्वर्गको चला गया ॥ २५ ॥ दूसरे तीर्थंकरकी संतानके समयमें जब तीसलाख करोड सागर वीत चुके थे तब संभवनाथ भगवान उत्पन्न हुये थे, इनकी आयु साठ लाख पूर्वकी थी और शरीरकी उचाई चारसौ धनुष थी ॥२६-२७॥ जब आयुका चौथाई भाग अथात् पद्रहलाख पूर्व वीत गये थे तब उन्हें राज्यकी विभूति प्राप्त हुई थी चवालीस लाख पूर्व और चार पूर्वांग तक प्रत्येक क्षणमें देवोंके द्वारा प्राप्त हुये सुखोंका अनुभव किया था । तदनंतर बादलके नष्ट होनेको देखकर उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ था उसीसमय वे विरक्त हुये थे और मृत्युको नाश करनेवाले वे संभवनाथ अपने जीवन आदिको इसतरह स्मरण करने लगे थे ॥२८-३०॥ कि इस संसारी जीवके भीतर रहता हुआ आयु कर्म ही यमराज है अन्य मतवाले लोग भूलकर किसी दूसरेको यमराज बतलाते हैं, ये संसारी जीव इस बातको नही जानते हुये ही अनंत ही बार उस यमराजसे मारे जाते हैं। यमराज इस शरीरमें रहकर इसी शरीरका तिरस्कार करता है परंतु यह जीव इस संसारमें फिर भी इसी शरीरमें ही निवास करता है ॥३२॥ रागरूपी रसमें तल्लीन होकर यह जीव विषके समान नीरस विषयोंको भी सरस मानकर सेवन करता है इसलिये अनादिकालसे चले आये इसकी बुद्धिके इस उपद्रवको भी वार वार धिक्कार हो ॥ ३३ ॥ आत्मा इंद्रिय आयु और इष्ट पदार्थोंका समागम ही संसारमें सुख माना जाता है परंतु सदा रहनेवाला जो अपने

१-उनकी यह आयु तीस लाख करोडमें ही शामिल है अर्थात् अजितनाथके तीस लाख करोड वर्षबाद संभवनाथ मोक्ष गये थे ।

विद्युदुद्युतिवल्लक्ष्मीर्नेयं स्थेमानमृच्छति । व्युच्छिन्नेच्छः श्रियं स्यातु स्वच्छसद्बोधदीधितिं ॥ ३५ ॥ इत्यासततत्त्वसार त स्तुत्वा लौकांतिका गताः । दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय प्राप्तनिष्क्रमणोत्सवः ॥ ३६ ॥ सिद्धार्थशिबिकामूढा देवैरारुह्य निर्गतः । सहेतुकवने राज्ञा सहस्रेणाप संयम ॥ ३७ ॥ मनःपर्ययसंज्ञानः स्रावास्तिनगरं प्रति । भिक्षाहेतोर्द्वितीयेह्नि प्राविशत्कनकप्रभः ॥ ३८ ॥ नृपः सुरेंद्रदत्तास्य्यः सुवर्णाभ. प्रतीक्ष्य त । दत्त्वा दान स्फुरद्रत्नमापदाश्चर्यपंचक ॥३९॥ अथ मौनव्रतेनायं छद्मस्थोऽब्देषु शुद्धधीः । द्विसप्तसु गते दीक्षावने शालतरोरधः ॥४०॥ जन्मर्क्षे कार्तिके कृष्णचतुर्थ्यामपराह्णगः । षष्ठोपवासो हत्वाघान्पापानतचतुष्टय ॥४१॥ कल्पामरैः सम सर्वैस्त्रिविधैर्ज्योतिषादिभिः । व्यधात्कैवल्यकल्याण तदैवत्यामराधिपाः ॥४२॥ पचोत्तरशतोद्दिष्टैर्गणेशैः परिवारितः । चारुषेणा-

आत्माका समागम है उसे जीव क्यों नहीं जानता है क्यों नहीं तर्क वितर्क करता है । भावार्थ—आत्माका समागम ही नित्य है और वही सुख है बाकी तो सब अनित्य और दुख देनेवाला है यह लक्ष्मी विजलीकी कांतिके समान चंचल है, यह कभी स्थिर नहीं रहती है जो जीव इसकी इच्छा छोडदेता है वही सदा रहनेवाली स्वच्छ सम्यग्ज्ञानरूपी कांतिको माप्त होता है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वे भगवान तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपका विचारकर ही रहे थे कि इतनेमें ही लौकांतिकदेव आये और भगवानकी स्तुति कर चले गये । भगवान संभवनाथने अपने पुत्रको राज्य दिया, इद्रादि देवोंने आकर उनका दीक्षाकल्याणका उत्सव किया, तदनंतर वे सिद्धार्थ नामकी पालकीमें विराजमान हुये उस पालकीको देव लोग ले चले और इसतरह निकलकर भगवान संभवनाथने हजार राजाओंके साथ साथ सहेतुक नामके वनमें संयम धारण किया ॥ ३६–३७ ॥ दूसरे ही दिन उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ और सुवर्णके समान कांतिवाले उन्होंने पारणाके दिन भिक्षा लेनेकेलिये श्रावस्तिनगरीमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ सुवर्णके समान कांतिको धारण करनेवाले राजा सुरेंद्रदत्तने देखते ही उन्हें पड़गाहन किया और विधिपूर्वक दान दिया । उसीसमय उसके घर जिसमें रत्न दैदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ३९ ॥ तदनंतर शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवानने छद्मावस्थामें ही मौन व्रत धारणकर तपश्चरण किया, इसतरह चौदह वर्ष वीत जानेपर कार्तिक वदि चतुर्थीके दिन मृगसिर नक्षत्रमें शामकेसमय उसी सहेतुक वनमें शालमलि वृक्षके नीचे वेलाकी प्रतिज्ञाकर भगवान विराजमान हुये; और उसी दिन उन्होंने ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय चारों घातिया कर्मोंका नाश किया ॥४०-४१॥ सब देवोंके इंद्र कल्पवासी भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क सब देवोंके साथ साथ उसीसमय आये और आकर ज्ञानकल्या-

-भिः सोमाद्रिरिद्रो गिरिभिर्यथा ॥ ४३ ॥ शून्यपंचैकपक्षोक्तचारुपूर्वधरावृतः । अन्यद्वयत्रिरंध्रव्येकोक्तशिक्षकलक्षितः ॥ ४४ ॥ शून्यद्वितयषड्रंध्रमितावधिविलोचनः । शून्यत्रयेंद्रियैकोक्तकेवलावगमान्वितः ॥ ४५ ॥ शून्यद्वयाष्टरंध्रैकज्ञातवैक्रियकानुग । शून्यपंचैकपक्षैकज्ञानतुर्यावबोधकः ॥ ४६ ॥ शून्यत्रितयपक्षैकमख्यावादिविभूषितः । पिंडिताशेषदिग्वासो लक्षद्वयपरिष्कृतः ॥ ४७ ॥ खचतुष्कद्विवह्नियुक्त धर्मार्याद्यार्यिकागणः । त्रिलक्षोपासकोपेतः श्राविकापचलक्षगः ॥४८॥ असख्यदेवदेवीड्य स्तिर्यक्सख्यातसस्तुतः । एव द्वादशभेदोक्तधर्मभृद्गणनायक ॥ ४९ ॥ चतुस्त्रिंशदतीशेषप्रातिहार्याष्टकप्रभुः । दिव्यवाग्ज्योत्स्न याकृत्स्नमाल्हाद्यानमिताशुमान् ॥५०॥ शुद्ध एव चरन्पक्षे मोक्षलक्ष्म्या सहोद्गतः । निष्कलको निरातको निर्द्धूतारिः कुपक्षहृन् ॥ ५१ ॥ मुनितारागणाकीर्णः कामद्वेषी महोष्मधृत् । सद्वृत्तः सर्वदापूर्णः सदाभ्यर्णध्रुवोदयः ॥ ५२ ॥ सदा त्रिभुवनासेव्यो भव्यपद्मावबोधनः । नित्यध्वस्तोभयध्वातो लो-

णका उत्सव किया ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार छोटे छोटे पर्वतोंसे मेरु पर्वत सुशोभित होता है उसीप्रकार वे भगवान भी चारों ओर बैठे हुये चारुषेण आदि एकसौ पांच गणधरोंसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ४३ ॥ उनके दो हजार एकसौ पचास ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जाननेवाले थे, एकलाख उन्तीस हजार तीनसौ शिक्षक वा उपाध्याय थे ॥ ४४ ॥ नौ हजार छहसौ अवधिज्ञानी थे, पंद्रह हजार केवली थे ॥ ४५ ॥ उन्नीस हजार आठसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, बारह हजार एकसौ पचास मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ४६ ॥ तथा सब प्रतिवादियोंको जीतनेवाले बारह हजार वादी थे इसतरह सब दो लाख मुनि थे उनसे वे भगवान बडे ही सुशोभित हो रहे थे ॥ ४७ ॥ तीनलाख बीस हजार धर्मार्या आदि अर्जिकायें थी, तीन लाख श्रावक थे और पांच लाख श्राविकायें थीं ॥ ४८ ॥ इनके सिवाय देव देवी और तिर्यंचोंकी संख्या असंख्यात थी। इसतरह वे भगवान ऊपर कहे हुये धर्मात्मा लोगोंसे भरी हुई बारह सभाओंके स्वामी थे ॥ ४९ ॥ चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्योंके वे प्रभु थे तथा दिव्यध्वनिरूपी चांदनीसे सबको प्रसन्न करते थे और नमस्कार करनेवालोंको सूर्यके समान प्रफुल्लित करनेवाले थे ॥ ५० ॥ मोक्षलक्ष्मीके साथ उदय होकर वे सदा शुद्ध पक्षमें ही (शुक्लपक्षमें अथवा अपने शुद्ध आत्मामें) विहार करते थे, वे कलंकरहित थे, रोगादि दोषोंसे रहित थे, सब शत्रु उन्होंने नाश करदिये थे और कुपक्ष (अँधेरी रात अथवा मिथ्यामत) को दूर करनेवाले थे ॥ ५१ ॥ मुनिरूपी तारागणोंसे वे घिरे हुये थे, कामदेवके शत्रु थे, ज्ञानरूपी बडे भारी प्रकाशको धारण करनेवाले थे, सद्वृत्त अर्थात् गोल वा सम्यक्चारित्रको धारण करनेवाले थे ध्रुवतारेके समीप ही सदा उदय होते थे. अथवा उनका

कालाकौ प्रकाशमन् ॥ ५३ ॥ विधुं सोऽधो विधायैवं विहरन् धर्मवृष्टये । पर्जन्यवत्मतां चेष्टा विश्वलोकसुखप्रदा ॥ ५४ ॥ सम्मेदं पर्वतं प्राप्य त्यक्तमासविहारकः । सहस्रमुनिसिमिः सार्द्धं प्रतिमायोगमागतः ॥५५॥ चैत्रे मासि सिते पक्षे षष्ठयामर्केस्तसम्मुखे । स्वकीयजन्मनक्षत्रे मोक्षलक्ष्मीं समागमत् ॥ ५६ ॥ पंचमावगमेशं त पचमीं गतिमाश्रित । पंचमेऽभ्यर्च्य कल्याणे संचिताये ययुः सुराः ॥ ५७ ॥ अष्टौ शिष्टतमानि संयमगुणस्थानान्यतीत्य क्रमादष्टौ दुष्टतमानुपायनिपुणो निर्मथ्य कर्मद्विषः । अष्टाविष्टतमान् गुणानविकलान् कृत्वा तनु शाश्वतीमष्टम्यामवनौ स सभवविधु शुभसुखः शोभते ॥ ५८ ॥ विपुलविमललक्ष्मीर्वीक्षितानंगलक्ष्मीरिह भुवि विमलादिर्वाहनो देहदीप्त्या । हतरविरहमिंद्रोरुद्रकल्याणलक्ष्मीप्रकटितपरिरंभः संभवः श क्रियाद्वः ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे संभवतीर्थंकरपुराणं परिसमाप्तमेकोनपचाशत्तमं पर्व ॥ ४९ ॥

उदय सदा बना रहता था, तीनों ही लोक उनकी सेवा किया करता था, भव्य रूपी कमलोंको वे प्रफुल्लित करते थे, और लोकालोक सबको प्रकाश करते हुये अंतरंग वाह्य दोनों तरहके अंधकारको सदा नष्ट करते रहते थे ॥ ५२-५३ ॥ इसतरह चंद्रमाको भी नीचा दिखाकर धर्मकी वर्षा करनेकेलिये वे विहार करने लगे सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोगोंकी क्रियायें बादलोंके समान सब लोगोंको सुख देनेवाली होती हैं ॥ ५४ ॥ अंतमें जब आयुका एक महीना रह गया तब अपना विहार बंदकर सम्मेदशिखरपर जा विराजमान हुये और हजार मुनियोंके साथ साथ उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया ॥५५॥ चैत्र शुक्ला षष्ठीके दिन अपने जन्मके मृगसिर नक्षत्रमें सूर्य अस्त होनेके समय मोक्षलक्ष्मीके साथ उनका समागम हुआ ॥ ५६ ॥ पांचवें केवलज्ञानके स्वामी और पांचवीं सिद्धगतिमें विराजमान ऐसे भगवान संभवनाथके पांचवें पूज्य मोक्ष कल्याणमें सब देव मिलकर आये और पूजाकर चले गये ॥ ५७ ॥ उपायोंके जाननेमें चतुर ऐसे भगवान संभवनाथने छठेसे लेकर चौदहवें तक संयमके आठों उत्तम गुणस्थानोंको उल्लंघन किया तथा अनुक्रमसे आठों अत्यंत दुष्ट कर्मरूपी शत्रुओंको नाश किया, तदनंतर अत्यंत इष्ट ऐसे सम्यक्त्व आदि आठों पूर्ण गुणोंको शरीर बनाया, सदा रहनेवाली आठवीं पृथ्वीकी रक्षा करते हुये और सदा अनंत सुखोंका अनुभव करते हुये वे वहीं सुशोभित होने लगे ॥ ५८ ॥ जो निर्मल अनंत लक्ष्मीके द्वारा देखे गये थे, जिन्हें शरीररहित सिद्धलक्ष्मी प्राप्त हुई, जो अपने शरीरकी कांतिसे सूर्यकी कांतिको भी जीतते थे, जो इस संसारमें पहिले विमलवाहन हुये थे फिर अहमिंद्र हुये थे और फिर जिन्हें बड़े भारी पांचों कल्याणोंकी लक्ष्मीकी भूति प्रगट हुई थी ऐसे वे संभवनाथ भगवान तुम लोगोंका सदा कल्याण करें ॥ ५९ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीनहिंदीभाषानुवादमें संभवनाथका पुराण पूर्णकरनेवाला उनचासवां पर्व पूर्ण हुआ ४९.

अथ पंचाशत्तमं पर्व ।

अथ सत्ये वचः सत्य सद्वक्तुर्वक्ति सत्यता । यस्यासौ पातु वंदारूजंतव्यमभिनंदनः ॥ १ ॥ जंबूपलक्षिते द्वीपे विदेहे प्राचि दक्षिणे । सीताया विषयो भागे व्यभासीन्मंगलावती ॥ २ ॥ राजा महाबलस्तत्र नगरे रत्नसंचये । स्वामिमपत्तसमेतोभूच्चतुर्वर्णाश्रमाश्रय· ॥ ३ ॥ पाति तस्मिन् मही नासीद् ध्वनिरन्याय इत्यय । प्रवर्तते प्रजा. स्वेषु स्वेषु मार्गेष्वनर्गला. ॥ ४ ॥ षाड्गुण्य तत्र नैर्गुण्यमगाद्विगतविद्विषि । निर्गुणोपि गुणैस्त्यागसत्यादिभिरसौ गुणी ॥ ५ ॥ नि.सपत्नः श्रिय. सोऽभूत्पतिस्तस्या· सरस्वती । कीर्ति वीरश्रियोभूवन् सपत्न्यः प्रीतचेतस· ॥६॥ अन्यवाक्श्रोत्रयो. कीर्तिस्तस्य वाचि सरस्वती । वीरलक्ष्मीरसौ वक्षस्यहमित्यतुषद्रमा ॥ ७ ॥ कान्ताकल्पलतारम्यो निजकायामरद्रुम. । फलति स्म सुखै तस्य यथधेनाभिवाञ्छितं ॥ ८ ॥ रम्यरामामुखाभोजसेवालोलाक्षिषट्पद· ।

अथ पचासवां पर्व ।

अथानंतर पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप ज्ञात होनेसे ही जिनके वचनोंकी सत्यता प्रगट होती है और वे सत्य वचन ही जिनके यथार्थ वक्तापनेकी सत्यताको प्रगट करते हैं ऐसे वे अभिनंदनस्वामी वंदना करनेवाले लोगोंको आनंद देते हुये हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १ ॥ जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक मंगलावती नामका देश शोभायमान है ॥ २ ॥ वहांके रत्नसंचयनगरमें राजा महाबल राज्य करता था वह बहुतसी विभूतिका स्वामी था और चारों वर्णाश्रमोंका आश्रय था ॥३॥ उसके शासनकालमें अन्याय यह शब्द ही सुनाई नहीं पडता था, सब प्रजा विना किसी रुकावटके अपने अपने मार्गोंमें चल रही थी ॥ ४ ॥ शत्रुओंको नाश करनेवाले उस राजामें छह गुणोंका समूह भी निर्गुणताको प्राप्त होगया था और इसतरह निर्गुणी होकर भी वह दान सत्य आदि गुणोंसे गुणवान था ॥५॥ वह समस्त लक्ष्मीका एक ही पति था यद्यपि सरस्वती कीर्ति और वीरलक्ष्मी ये सब उस लक्ष्मीकी सौत थीं राजा उन सबपर प्रेम रखता था तो भी कीर्ति तो दूसरे लोगोंके वचन और कानोंमें रहती है, सरस्वती राजाके वचनोंमें रहती वीरलक्ष्मी उसके वक्षःस्थलपर रहती है और मैं इसके सर्वांगमें रहती हूं यह सोचकर ही लक्ष्मी उसमें संतुष्ट हो रहती थी। ॥६-७॥ उस राजाका शरीररूपी कल्पवृक्ष स्त्रीरूपी कल्पलतासे शोभायमान था और वह जिन जिनकी इच्छा की जाती है ऐसे समस्त सुखरूप फलोंको फलता था ॥ ८ ॥ सुंदर २ अनेक स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंकी सेवा करनेमें जिसके नेत्ररूपी भ्रमर बडे

सुखेन सोऽनयद्दीर्घं कालं कालकलामिव ॥ ९ ॥ कदाचिज्जातवैराग्यः कामभोगेष्वतर्पणात् । सूनवे धनपालाय दत्वा राज्यं महामनाः ॥१०॥ अथात्मंयममासाद्य गुरुं विमलवाहनं । एकादशांगधार्येष भावितद्व्यष्टकारणः ॥११॥ तीर्थकृन्नाम संप्रापत्फलकल्याणपंचक । येन तीर्थकरोयं स्यात्किं नाप्स्यति मनस्विनः ॥ १२ ॥ आयुषोंते स संन्यस्य विजयेऽनुत्तरादिमे । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुरहमिंद्रत्वमाययौ ॥ १३ ॥ तत्रोक्तदेहलेश्याविद्गुण्योच्छ्वासादिसंयुतः । पचशातसुखास्वादी भवाते शांतमानसः ॥ १४ ॥ ध्यायन्वैराग्यसंपत्त्या तत्रास्थाद्भक्तितोऽर्हत । कृत्स्नकर्मक्षय कर्तुं तस्मिन्नत्रागमिष्यति ॥ १५ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते वर्षे साकेतनगराधिपः । इक्ष्वाकुः काश्यपो वशगात्राभ्यामद्भुतोदय ॥ १६ ॥ राजा स्वयंवरो नाम्ना सिद्धार्थास्याग्रवल्लभा । षण्मासान वसुधारादिपूजामाप्नुवती सती ॥ १७ ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे षष्ठ्या भे सप्तमे शुभे । स्वप्नेक्षानतर वक्त्र विशंत वीक्ष्य सा गज ॥ १८ ॥ नृपात्स्वप्नफलैस्तुष्टा दिष्ट्यासूत त-

ही चंचल है ऐसे उस राजाका लंबा समय भी कालके एक क्षणके समान सुखसे व्यतीत हो गया ॥९॥ किसी एक समय इच्छानुसार भोगोपभोग मिलनेपर भी संतोष न होनेसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और उस उदार राजाने अपने पुत्र धनपालकेलिये सब राज्य दे दिया ॥ १० ॥ विमलवाहन गुरुके समीप जाकर उसने दीक्षा धारण की वह ग्यारह अंगका पाठी हुआ और उसने सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया ॥ ११ ॥ भावनाओंके चिंतवन करनेसे उसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हुआ जिसपर पांचों कल्याणरूप फल लगेंगे और जिसके उदयसे यह तीर्थंकर होगा सो ठीक ही है क्योंकि विद्वान लोगोंको क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ॥ १२ ॥ आयुके अंतमें उसने संन्यास धारण किया और शरीर छोडकर विजय नामके पहिले अनुत्तरमें तेतीस सागरकी आयु पाकर अहमिंद्र हुआ ॥ १३ ॥ विजय नामके विमानमें जो शरीरकी ऊंचाई है जो लेश्या है जो अवधिज्ञानका क्षेत्र है जितने दिन पीछे श्वास लेना पडता है वह सब इसके था और वह शुद्ध सुवर्णके समान आत्मसुखका अनुभव करता था आयुके अंतसमयमें उसका चित्त शांत था, वैराग्यरूप संपत्तिका ध्यान करता था अरहंतदेवकी भक्ति करता हुआ वहीं विराजमान था और समस्त कर्मोंका नाश करनेकेलिये इस भरतक्षेत्रमें अवतार लेगा ॥ १४–१५ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अयोध्यानगरका स्वामी इक्ष्वाकुवंश और कश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ अद्भुत विभूतिको धारण करनेवाला राजा स्वयंवर राज्य करता था और उसकी पट्टरानीका नाम सिद्धार्था था । जब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई थी तभीसे उस रानीके घरमें रत्नोंकी वर्षा होने लगी थी और इसतरह वह सती रानी बडी ही पूज्य मानी गई थी ॥ १६–१७ ॥ वैसाख शुक्ल षष्ठीके दिन

मुत्तमं । माघमास्यदितौ योगे धवल्द्वादशीदिने ॥ १९ ॥ तत्प्रभावविशेषेण प्रकंपितनिजासनः । त्रैलोक्येशसमुद्भूतिमवबुध्यावधेः सुधीः ॥ २० ॥ तं तदावाप्य देवेंद्र, स्वदेव्या दिव्यमानव । देवावृतो द्रुतद्रावी देवाद्रौ दिव्यविष्टरे ॥ २१ ॥ बालार्कसन्निभ बालं जलैः क्षीरगणापते । स्नापयित्वा विभूष्याख्यां प्रख्याप्याख्याभिनंदनं ॥ २२ ॥ बहुबाहु. सहस्राक्षो बहुभावरसान्वित । विचित्र-करणाख्यैरंगहारैर्नभोंगणे ॥ २३ ॥ उद्यताभिनयप्रायं भक्त्यानृत्यत्सतांडवं । गतो रागः परा कोटिं धीरोदात्तांश्च नाटयन् ॥ २४ ॥ निवृत्यागत्य साकेतं निष्कृष्य कृतकार्भकं । पित्रो॰ पुरो निधायैनं सुरेडारामरं पदं ॥ २५ ॥ संभवस्यातरे जाते दशलक्षाब्धि-कोटिभिः । तदभ्यतरवर्त्यायुराबभासे विदा त्रिभि ॥ २६ ॥ पंचाशल्लक्षपूर्वायु. सार्द्धत्रिशतचापम । बालेंदुरिव सज्ज्योत्स्न पुण्यौघो

पुनर्वसु नामके शुभ नक्षत्रमें रातके पिछिले पहरमें रानीने सोलह स्वप्न देखे और अंतमें एक हाथीको अपने मुखमें प्रवेश करते हुये देखा ॥१८॥ सवेरे ही महाराजसे उन स्वप्नोंका फल पूछा। फल सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई। अपने पुण्यकर्मके उदयसे उसने माघशुक्ल द्वादशीके दिन आदित्य योग और पुनर्वसु नक्षत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ उस पुत्रके विशेष प्रभावसे इंद्रका आसन कंपायमान हुआ तब उस बुद्धिमानने अपने अवधिज्ञानसे तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकरका जन्म होना जाना ॥ २० ॥ अपनी देवी और अनेक देवोंके साथ साथ वह इद्र उसीसमय बहुत ही शीघ्र आया और उदय होते हुये सूर्यके समान दिव्य मनुष्यरूप उन बालक भगवानको मेरुपर्वतपर लेजाकर दिव्य सिंहासनपर विराजमान किया। वहांपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया, सवतरहके आभूषण पहनाये और अभिनंदन नाम रक्खा ॥२१-२२॥ बडी भक्तिसे अनेक तरहके भाव और रस दिखलाते हुये तथा प्रायः अनेक उत्तम अभिनय (खेल) दिखलाते हुये हजार नेत्र और अनेक भुजाओंको धारण करनेवाले इद्रने अनेक आश्चर्योंको उत्पन्न करनेवाली अपने शरीरकी बनाई हुई मनोहरतासे आकाशरूपी आंगनमें तांडव नृत्य किया। तथा धीर और उदात्त रसोंका नृत्य करते हुये उसका प्रेम बडी ही ऊंची कोटिको पहुंच गया था ॥ २३-२४ ॥ तदनंतर वे सब देव लौटकर अयोध्या आये, मायामयी पुत्रको हटाकर माता पिताके सामने भगवानको विराजमान किया और इंद्रादि देव सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २५ ॥ संभवनाथके बाद दशलाख करोड सागर वीत जानेपर अभिनदनस्वामी हुये थे, इनकी आयु इसी समयमें शामिल है ॥ २६ ॥ पचास लाख पूर्वकी उनकी आयु थी और तीनसौ पचास धनुष ऊंचा शरीर था, उदय होते हुये चंद्रमाके समान उनकी कांति थी, वे पुण्यके समूह थे और सूर्यके समान देदीप्यमान थे ॥ २७ ॥ अ-

कौमारे कामसारथौ ॥ २८ ॥ पूर्वद्वाद-
वा स्फुटद्रविः ॥ २७ ॥ स श्रीवृद्धिं च संप्रापत्सर्वानाह्लादयन् गुणैः । चामीकरच्छवियाते
शलक्षेषु सार्द्धेषु प्रासवान् स तत् । राज्यं नियोज्य मुक्ष्वेति पितर्याप्ते तपोवन ॥ २९ ॥ इंदुः कामयते कांतिं दीप्तिमिच्छत्यहर्पतिः ।
वाच्छत्यैश्वर्यमस्येंद्रः शममाशासते स्पृहा ॥ ३० ॥ निजोत्कृष्टानुभागानामनंतगुणवृद्धितः । तस्य पुण्याणवः सर्वे फलंति स्म प्रतिक्षणं
॥ ३१ ॥ अभिभूयान्यतेजांसि सर्वप्रकृतिरंजनात् । तारेशमशुमतं च जित्वाराजत्स तेजसा ॥ ३२ ॥ नमिताखिलभूपालमौलिरित्यत्र
का स्तुतिः । पुण्यात्मा जन्मतोयं चेदामरेंद्रार्चितक्रमः ॥ ३३ ॥ नेया श्रीरागिणी सास्यामूद्रक्ता कोत्र विस्मयः । मोक्षलक्ष्म्या च चे-
देष कटाक्षैर्गोचरीकृतः ॥ ३४ ॥ शुद्धश्रद्धानमक्षय्यमयस्तीर्थकराह्वयः । आत्मसंपदित कान्या जगत्त्रितयजयैषिणः ॥३५॥ स धीरल-
लित. पूर्वं राज्ये धीरोद्धतो यमी । धीर प्रशांत पर्यंते धीरोदात्तत्वमीयिवान् ॥ ३६ ॥ अफलन् शक्तयस्तिस्र सिद्धिं धर्मानुबंधिनीं ।

पने गुणोंसे सबको प्रसन्न करते हुये वे भगवान शोभा वा लक्ष्मीकी बडी वृद्धिको प्राप्त होगये थे । सुवर्णके समान इ-
नकी कांति थी, कामदेवके सारथिके समान कुमार अवस्थाके साढ़े बारह लाख पूर्व बीत जानेपर 'तुम इस उत्तम रा-
ज्यका उपभोग करो' इसतरह कहकर इन्हें राज्य सौंपकर इनके पिताने दीक्षा धारणकी थी ॥ २९ ॥ उससमय चंद्रमा
इनकी कांतिको चाहता था, सूर्य इनकी दीप्तिको चाहता था, इद्र इनके ऐश्वर्यको चाहता था और स्पृहा इनकी शां-
तताको चाहती थी ॥ ३० ॥ अपने उत्कृष्ट अनुभागबंधकी अनंतगुणी वृद्धि होनेसे उनके सब ही पुण्यके परमाणु प्र-
त्येक क्षणमें अपना फल देते थे ॥ ३१ ॥ उन्होंने अन्य सबके तेजको जीतकर तथा सब प्रकृतिको प्रसन्नकर सूर्य और
चंद्रमाको भी जीत लिया था और इसतरह वे अपने ही तेजसे सुशोभित होते थे ॥३२॥ सब राजा लोग उनकेलिये अ-
पना मस्तक नवाते थे इसमें तो उनकी कुछ स्तुति ही नहीं है क्योंकि जन्मसे ही ये ऐसे पुण्यवान थे कि इंद्र भी आ-
कर उनके चरणकमलोंकी पूजा करता था ॥ ३३ ॥ जब मोक्ष लक्ष्मी ही इन्हें सदा कटाक्षपूर्वक देखती थी तब प्राप्त
होने योग्य राजलक्ष्मी अनुरागिणी होकर इनमें आसक्त हुई इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है ॥ ३४ ॥ उनके
कभी न नाश होनेवाला शुद्ध सम्यग्दर्शन था, तीर्थंकर नामका पुण्य था और आत्मस्वरूप संपत्ति प्राप्त हुई थी, तीनों
जगतको जीतनेकी इच्छा करनेवाले उनके इनके सिवाय और कौनसी संपत्ति रह गई थी ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ३५ ॥
वे भगवान कुमार अवस्थामें धीर और मनोहर थे, राज्य अवस्थामें धीर और उद्धत थे, तपश्चरण अवस्थामें धीर और
शांत थे तथा अंतिम अवस्थामें धीर होकर उदात्तताको प्राप्त हुये थे ॥ ३६ ॥ उनकी तीन शक्तियां थीं और उनपर ध-

ता एव शक्तयो या हि लोकद्वयहितावहाः ॥ ३७ ॥ कीर्तौ श्रुति स्तुतौ तस्य गीतिर्वर्णाक्षरांकिता । प्रीतिर्दृष्टौ जनस्यासीत्स्मृतिश्च गुणगोचरा ॥ ३८ ॥ गुणैः प्रागेव संपूर्णः स सर्वैराभिगामिकैः । न चेत् किं सेवितुं गर्भे निर्लिंपा कंपितासनाः ॥ ३९ ॥ पुष्कलप्राग्भवायात बोधित्रितयमुत्तमं । तस्य प्रज्ञागुणाः केऽन्ये वर्णनीयाः मनीषिभिः ॥ ४० ॥ न वाच्यः पृथगुत्साहो यद्ययं हंतुमीहते । मोहशत्रुमशेषाघ खल त्रैलोक्यकटकं ॥ ४१ ॥ उद्गमेपि प्रतापोऽस्य माध्यादिनदिनाधिपं । नि प्रतापं करोत्यद्य तमन्यः सहते नु कः ॥ ४२ ॥ लिलङ्घयिषवोऽन्योन्य वर्द्धंतेऽस्याखिला गुणाः । समान वर्द्धमानाना स्पर्द्धा केन निषिध्यते ॥४३॥ एव ससारसारोरुविमरद्भोगभागिनः । प्राते बोधदिनाधीशपोद्गमोदयभूभृतः ॥ ४४ ॥ खचतुष्कोंद्रियर्त्वग्निमितपूर्वेषु निष्ठितं । राज्यकाले जगद्भर्तुरष्टपूर्वाङ्गशेषतः ॥ ४५ ॥ प्रादुर्भूतक्षणप्रातविनश्यत्सौधविभ्रमे । गन्धर्वनगरे साक्षाद्याते संजातबोधिकः ॥ ४६ ॥ अवश्य भगुरा भोगा भ-

र्मको बढानेवालीं तीनों सिद्धियां रूप फल लगे थे सो ठीक ही है क्योंकि शक्ति उन्हींको कहते हैं जो दोनों लोकोंमें हित करनेवालीं हों ॥३७॥ उनकी कीर्तिमें शास्त्र भरे पडे थे, स्तुतिमे वर्ण और अक्षरोंसे लिखे हुए अनेक गीत थे, लोगोंकी दृष्टिमें प्रेम भरा था और उनका स्मरण सदा गुणोंकी विवेचनाके समय होता था ॥ ३८ ॥ बडी उम्रमें आनेपर विचार आदि जो गुण होते हैं वे सब पूर्ण रीतिसे पहिलेसे ही उनमें आचुके थे, यदि वे गुण पहिलेहीसे न आते तो इंद्रोंके आसन ही क्यों कंपायमान होते और वे क्यों गर्भमें ही उनकी सेवा करनेकेलिये आते ? ॥ ३९ ॥ पहिले भवोंसे साथ साथ आये हुये उत्तम रत्नत्रय उनमें बहुतायतसे थे तथा उनके अन्य गुणोंकी तो बात ही क्या है उनकी बुद्धिका वर्णन भी बडे बडे विद्वान लोग करते थे ॥ ४० ॥ उनके उत्साहका वर्णन तो अलग करना ही नहीं चाहिये क्योंकि वे तीनों लोकोंको कांटेके समान दुखदेनेवाले दुष्ट मोहरूपी शत्रुको शेष पापोंके साथ साथ मारना ही चाहते थे ॥ ४१ ॥ उनका प्रताप तो जन्म लेनेपर ही ऐसा था कि दोपहरके सूर्यके प्रतापको भी मंद करदेता था फिर भला अन्य कौन उनके प्रतापको सह सकता था ॥ ४२ ॥ उनके सब गुण परस्पर एक दूसरेको उल्लंघन करनेकी इच्छासे ही बढ रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि जिनकी एकसी वृद्धि हो रही है उनकी स्पर्द्धाको भला कौन रोक सकता है ॥ ४३ ॥ इसतरह समीप ही ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेकेलिये उदयाचल पर्वतके समान उन भगवानने संसारके सारभूत और बडे बडे भोगोंका उपभोग किया ॥ ४४ ॥ तथा साडे छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांगतक राज्य किया ॥ ४५ ॥ इतना समय वीतजानेपर एक दिन वे राज महलकी छतपर विराजमान थे और आकाशकी शोभा देख रहे थे उसीसमय उन्होंने

जयंत्यत्र मा स्थितं । न पातयति किं स्वस्थं भंगुरो विटपः स्फुटं ॥ ४७ ॥ तनुर्मेयेप्सितैः सर्वैः स्वीकृतापि त्यजेद् ध्रुवं । प्रायः पण्यागनेवेति विरक्तः स तनावभूत् ॥ ४८ ॥ सत्यायुषि मृतिस्तस्मिन्नसत्यत्रास्ति सापि न । बिभेति चेन्मृतेस्तेन भेतव्यं पूर्वमायुषः ॥ ४९ ॥ गंधर्वनगरेणैव संवादः सर्वसंपदा । विधाय्यप्रविलायित्वविधेरपधियामपि ॥ ५० ॥ इत्यपश्यत्तदैवैनमानर्चुरमराद्विजाः । सुरैः संप्राप्तनिष्क्रातिकल्याणः शमितेंद्रियः ॥ ५१ ॥ हस्तचित्राख्ययानाधिरूढोग्रोद्यानमागतः । माघे सिते स्वगर्भर्क्षे द्वादश्यामपराह्णगः ॥ ५२ ॥ दीक्षां षष्ठोपवासेन जैनीं जग्राह राजभिः । सहस्रसंख्यैर्विख्यातैस्तदाप्तज्ञानतुर्यकः ॥ ५३ ॥ द्वितीयेऽहनि साकेतं बुभुक्षुः प्राविशन् नृपः । त प्रवीक्ष्येंद्रदत्तोऽन्नं दत्त्वापाश्चर्यपंचकं ॥ ५४ ॥ अथ मौनव्रतेनेते छाद्मस्थ्येऽष्टादशाऽब्दके । दीक्षावनेसनक्ष्माजमूले षष्ठोप-

एक बादलोंका बना हुआ नगर देखा परंतु वह नगर उनके देखते ही देखते नष्ट हो गया उसीसमय उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ और वे विचार करने लगे कि ये भोग अवश्य ही नष्ट होनेवाले हैं इस संसारमें रहते हुये मुझे अवश्य ही ये नष्ट कर देंगे जो वृक्ष उखडकर गिरनेवाला है वह अपनी शाखा आदिपर बैठे हुये मनुष्यको अथवा उसपर रक्खी हुई किसी चीजको अवश्य ही गिरा देगा ॥ ४६–४७ ॥ यद्यपि यह शरीर सब तरहके इष्ट पदार्थोंसे बढ़ाया गया है तथापि वेश्याके समान यह मुझे अवश्य ही छोड देगा यही समझकर वे इस शरीरसे विरक्त हुये थे ॥ ४८ ॥ उस समय वे यह भी विचार करने लगे कि इस शरीरमें आयुके रहने से ही मरण हो सकता है यदि आयु न हो तो मरण भी नहीं हो सकता, इसलिये जो मरनेसे डरते हैं उन्हें सबसे पहिले आयुसे डरना चाहिये ॥ ४९ ॥ इस संसारकी संपदाएं इस बादलोंके बने हुए नगरके ही समान हैं जिसतरह यह बादलोंका नगर देखते देखते नष्ट हो गया है उसीतरह सब नाशमान् हैं मूर्ख लोग भी इस बातको बहुत अच्छीतरह समझ सकते हैं ॥ ५० ॥ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी पूजाकी और सब देवोंने मिलकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया । इसप्रकार जिनकी सब इंद्रियां शांत हो गई हैं ऐसे वे अभिनंदन स्वामी हस्तचित्रा नामकी पालकीपर सवार होकर माघ शुक्ला द्वादशीके दिन गर्भके नक्षत्रमें अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्रमें शामके समय उग्रोद्यान नामके वनमें आये ॥५१–५२॥ वहांपर प्रसिद्ध प्रसिद्ध हजार राजाओंके साथ साथ श्रीजैनेश्वरी दीक्षा धारणकी और बेला करनेका नियम लिया उसी समय उनके चौथा मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥ पारणाके दिन भिक्षाकी इच्छासे उन्होंने अयोध्या नगरमें प्रवेश किया उन्हें देखकर महाराज इंद्रदत्तने उनका पडगाहन किया, निरंतराय पारणा समाप्त हुई इसलिये राजा

वासिनः ॥ ५५ ॥ सिते पौषे चतुर्दश्यां सायाह्ने भेऽस्य सप्तमे । केवलावगमो जज्ञे विश्वामरसमर्चितः ॥ ५६ ॥ त्रिसैकोक्तगणाधीशैर्वज्रनाभ्यादिनामभिः । खद्वयेंद्रियपक्षोक्तैस्त्यक्तांगैः पूर्वधारिभिः ॥ ५७ ॥ खाक्षखद्वयवह्निद्विप्रमालक्षितशिक्षकैः । खद्वयाष्टनवज्ञेयैः प्राज्ञैस्त्रिज्ञानलोचनैः ॥५८॥ खत्रयर्त्वेकसंख्यानैः केवलज्ञानमानिभिः । शून्यात्रितयरंध्रैकमितवैक्रियकर्षभिः ॥५९॥ शून्यपंचर्तुरुद्रोक्तमनःपर्ययबोधनैः । एकादशसहस्रोद्यद्वादिभिर्वदितक्रमः ॥ ६० ॥ लक्षत्रितयसंपिंडिताशेषयतिनायकः । खद्वयर्तुखवन्ह्याग्निसख्याभिरमितो युतः ॥ ६१ ॥ मेरुषेणार्यिकाद्यार्यिकाभिजगदधीश्वरः । लक्षत्रयोदितोपासकाभ्यर्चितपदद्वयः ॥६२॥ लक्षपंचप्रमाप्रोक्तश्राविकालोकसंयुतः । असंख्यदेवदेवीड्य स्तिर्यक्संख्यातसेवितः ॥ ६३ ॥ इति द्वादशनिर्दिष्टशिष्टभव्यगणाग्रणीः । धर्मवृष्टिं किरन् दूरं विहृत्यार्यावनीतले ॥ ६४ ॥ यदृच्छयाप्य सम्मेदं स्थित्वा मासं विना ध्वनेः । तात्कालिकक्रियायुक्तो ध्यानद्वयमयोऽमलः ॥ ६५ ॥ मु-

इंद्रदत्तके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥५४॥ तदनंतर मौनव्रत धारणकर अठारह वर्षतक उन्होंने तपश्चरण किया। अठारह वर्ष बीतजानेपर वेला धारण कर वेशालिवृक्षके नीचे विराजमान थे उसी दिन अर्थात् पौष शुक्ला चतुर्दशीके दिन शामके समय सातवें पुनर्वसु नक्षत्रमें उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उसीसमय सब इंद्रोंने आकर उनकी पूजाकी ॥ ५५–५६ ॥ उनके समोसरणमें वज्रनाभिको आदि लेकर एकसौ तीन गणधर थे, अपने शरीरसे ममत्व छोडनेवाले और ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जाननेवाले दो हजार पांचसौ मुनिराज थे ॥ ५७ ॥ दोलाख तीस हजार पचास शिक्षक मुनि थे तथा नौ हजार आठसौ अवधिज्ञानी विद्वान् मुनि थे ॥ ५८ ॥ सोलह हजार केवलज्ञानी थे और उनईस हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे ॥५९॥ ग्यारहहजार छःसौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे और ग्यारहहजार वाद प्रतिवाद करनेवाले उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे ॥ ६० ॥ इसतरह सब मुनियोंकी संख्या तीन लाख थी इनके सिवाय मेरुषणाको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार छहसौ आर्जिकायें थीं और तीन लाख श्रावक उन तीनों-लोकोंके स्वामी अभिनंदनके चरण कमलोंकी पूजा करते थे ॥ ६१–६२ ॥ इसीतरह पांच लाख श्राविकायें थीं तथा असंख्यात देवी देवी और संख्यात तिर्यंच (पशु पक्षी) उनकी सेवा करते थे ॥ ६३ ॥ इसतरह ऊपर कहे हुये शिष्ट और भव्य जीवोंकी बारह सभाओंके नायक ऐसे उन भगवानने धर्मकी वर्षा करते हुये इस आर्यावर्तकी पृथ्वीपर दूर दूर तक विहार किया ॥ ६४ ॥ विहार करते हुये अनायास ही सम्मेद शिखरपर आ विराजमान हुये, वहांपर उन्होंने एक महीनेका प्रतिमायोग धारण किया, उससमय उनकी दिव्यध्वनि बंद होगई थी, वे उससमयकी क्रियाओंमें

निभिर्बहुभिः प्राह्णे प्रतिमायोगवानगात् । मे सिते सप्तमे षष्ठ्यां वैशाखेऽयात्परं पद ॥ ६६ ॥ तदा भक्त्या नताष्टांगाः सुरेंद्राः कृतपूजनाः । नुत्वा तमगमन्नाक त्रैलोक्येशं यथायथ ॥ ६७ ॥ येनाप्तानिमिषेश्वररयमयी श्रीः पचकल्याणजा यस्यानतचतुष्टयोज्ज्वलतरा श्रीरक्षया क्षायिकी । यो रूपेण विनापि निर्मलगुण. सिद्धिश्रियालिंगितः स त्रिश्रीरभिनदनो जिनपतिर्जीयादनस्तोदयः ॥ ६८ ॥ यो रत्नसचयपुरेशमहाबलारुयो योऽनुत्तरेषु विजयी विजयेहमिंद्रः । यश्चाभिनदननृपो वृषभेशवशे साकेतपत्तनपतिः स जिनोऽवताद्वः ॥६९॥ उभयनयभेदाभ्यां विश्व विभज्य विभावयन्, स्वभवविभवभ्रष्ट्यै भक्त्या द्युभूमिरभिष्टुतः । त्रिभुवनविभुर्भूयो भव्या भवाद्भवतां भवद् भयमभिभवन् भूत्यै भूयादभीरभिनंदनः ॥ ७० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पुराणमिदं समासमभिनंदनस्वामिन पंचाशत्तम पर्व ॥ ५० ॥

लिप्त थे और अंतके दोनों निर्मल ध्यान उनके थे ॥ ६५ ॥ वैशाख शुक्ला षष्ठीके दिन सातवें पुनर्वसु नक्षत्रमें सवेरेके समय प्रतिमा योगसे ही वे अनेक मुनियोंके साथ साथ मोक्ष स्थान जा विराजमान हुये थे ॥ ६६ ॥ उसी समय भक्तिपूर्वक आठों अंगोंसे नमस्कार करते हुये इंद्रोंने आकर तीनों लोकोंके स्वामी ऐसे उन भगवानकी पूजन की नमस्कार किया और फिर वे यथायोग्य अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ६७ ॥ जिन्हें इंद्रोंके द्वारा पांचों कल्याणोंमें प्राप्त हुई रत्नोंकी धारारूपी लक्ष्मी प्राप्त हुई थी तथा जिन्हें कभी नाश न होनेवाली और कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुई अनंत चतुष्टयरूप अत्यंत निर्मल लक्ष्मी प्राप्त हुई थी और रूपके विना भी निर्मल गुणोंको धारण करनेवाले जिन्हें मोक्षरूपी लक्ष्मीने आलिंगन किया था ऐसे कभी अस्त न होकर उदय होनेवाले और ऊपर कही हुई तीनों तरहकी लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान अभिनंदन जिनेंद्रदेव सदा जयशील रहें ॥ ६८ ॥ जो पहिले भवमें रत्नसंचयपुर नगरमें महाबल नामके राजा थे, तदनतर जो अनुत्तरोंमें विजय नामक विमानमें विजयी अहमिंद्र हुये थे और फिर जो श्री वृषभदेवके इक्ष्वाकुवंशमें अयोध्या नगरके स्वामी राजा अभिनंदन हुये ऐसे ये अभिनंदन जिनेंद्रदेव तुम लोगोंकी सदा रक्षा करते रहें ॥६९॥ जिन्होंने निश्चय और व्यवहार दोनों नयोंसे समस्त संसारका विभागकर विचार किया था, इंद्र लोग अपने भवकी विभूतिको (भवपरंपराको) नाश करनेकेलिये भक्तिपूर्वक जिनकी स्तुति करते हैं, जो तीनों लोकोंके स्वामी हैं भव्योंकी जन्ममरणरूप संसार परंपराको नाश करनेवाले हैं और जो भयका तिरस्कारकर सर्वथा निर्भय हो गये हैं ऐसे श्रीअभिनंदनस्वामी हम लोगोंको विभूति देनेवाले हों ॥ ७० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीनहिंदीभाषानुवादमें संभवनाथका पुराण पूर्णकरनेवाला उनचासवा पर्व पूर्ण हुआ ५०

अथ एकपंचाशत्तमं पर्व ।

लक्ष्मीरनश्वरी तेषा येषा तस्य मते मतिः । देयादादेयवाक् सद्भिः सोऽस्मभ्यं सुमतिर्मतिं ॥ १ ॥ अखंडे धातकीखंडे मंदरे प्राचि पूर्वगे । विदेहे नद्युदक्कूले सुराष्ट्र पुष्कलावती ॥ २ ॥ पुरेऽसिन्पुंडरीकिण्या रतिषेणो महीपतिः । प्राग्जन्मोपार्जितोदीर्णपुण्यपण्यात्मसात्कृतं ॥ ३ ॥ राज्य विनिर्जितारातिनिःकोप नित्यवृद्धिक । स्वामिसपत्तसमेतः सन्नीत्या निर्व्यसनन्वभूत् ॥ ४ ॥ यो स्वस्यैवाम्य सा विद्या चतुर्थी न प्रयोगिणी । यदेकस्यापि दंडेपु वर्तंते न पथि प्रजाः ॥ ५ ॥ रक्तस्य मनसा तृप्तिः काम करणगोचरे । स्वेष्टाशेषार्थसंपत्तेः कामस्तस्य न दुर्लभः ॥ ६ ॥ अर्थे चतुष्टयी वृत्तिरर्जनादि यथागम । देवोऽर्हनर्थधर्मौ च तदनीपलभौ मतौ ॥ ७ ॥

अथ इक्यावनवां पर्व ।

अथानंतर जो लोग एक सुमतिनाथकी बुद्धिको ही बुद्धि मानते हैं अर्थात् उन्हींके ज्ञान वा वचनोंको प्रमाण मानते हैं उनके कभी न नाश होनेवाली लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती हैं । इसके सिवाय सज्जन लोग जिनके वचनोंको सदा ग्राह्य समझते हैं ऐसे सुमतिनाथ भगवान हम लोगोंको सबुद्धि दें ॥१॥ अखंड धातकी खंड नामके द्वीपमें मंदाचल पर्वतकी पूर्व दिशाकी ओरके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारेपर पुष्कलावती नामक देश है, इसके पुंडरीकिणी नगरमें रतिषेण नामका राजा राज्य करता था, उसने पूर्व जन्ममें जो बडा भारी पुण्य उपार्जन किया था उससे उसे बहुत बडा राज्य मिला था । वह राज्य सदा बढता जाता था और उस राज्यके करते समय सब शत्रुओंके जीत लेनेसे उसे कभी क्रोध नहीं हुआ था । इसतरह ऐश्वर्य और संपत्ति करके सहित और सब तरहके व्यसनोंसे रहित वह राजा उत्तम नीतिपूर्वक उस राज्यका अनुभव करता था ॥ २–४ ॥ जो राजा रतिषेणकी राजविद्या थी वह उसी में थी ऐसी विद्या किसी दूसरेमें नहीं थी उन आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता और दंड चारों विद्याओंमेंसे चौथी दंड विद्याका कभी प्रयोग नहीं किया जाता था क्योंकि प्रजा वध आदि अनेक दंडोंमेंसे किसी एक दंडके मार्गमें भी नहीं जाती थी ॥ ५ ॥ इंद्रियोंके सब विषय उपस्थित रहनेपर अनुरक्त पुरुषका मन तृप्त हो जाना ही काम कहलाता है । वह काम अपने समस्त इष्ट पदार्थोंकी संपत्ति रहनेसे राजा रतिषेणको कुछ भी दुर्लभ नहीं था ॥ ६ ॥ वह राजा अर्जन (कमाना) रक्षण (रक्षा करना) वर्द्धन (बढ़ाना) और व्यय (खर्च करना) इन चारों उपायोंसे धन संचय

गच्छत्येवं चिरं काले हेलया पालितक्षितेः । परस्परानुकूल्येन वर्गत्रितयवर्द्धिनः ॥ ८ ॥ जंतोः किं कुशलं कस्मात्सुखमेषोधितिष्ठति ।
पर्यायावर्तदुर्जन्मदुर्मृत्यूरगदूरगः ॥९॥ न तावदर्थकामाभ्यां सुखं संसारवर्द्धनात् । नामुष्मादपि मे धर्मात् यस्मात्सावद्यसंभवः ॥ १० ॥
नि.सावद्योऽस्ति धर्मोन्यस्ततः सुखमनुत्तमं । इत्युदर्कों वितर्कोस्य विरक्तस्याभवत्ततः ॥ ११ ॥ राज्यस्य दुर्भर भारं निवेश्यातिरथे तुजि ।
सुभरं तपसो भारं बभार स भवांतकृत् ॥ १२ ॥ जिनार्हन्नंदनाभ्यासे विदितैकादशांगकः । उदासीनः स्वदेहेपि मोहारातिजयेच्छया
॥ १३ ॥ यतोभीष्टार्थसंसिद्धिस्तच्चरति सुमेधसः । श्रद्धानविनयाद्युक्तकारणोपात्ततीर्थकृत् ॥ १४ ॥ प्रांते सन्यस्य बद्धायुरुत्कृष्टम

इसप्रकार श्रद्धानकर धर्मका सेवन करता था इसतरह अर्थ और धर्म-
करता था तथा शास्त्रानुसार अरहंत ही देव हैं इसप्रकार श्रद्धानकर धर्मका सेवन करता था इसतरह अर्थ और धर्म-
से भी वह कामसे अधिक सेवन करता था ॥ ७ ॥ इसतरह लीलापूर्वक पृथ्वीका पालन करनेवाले और परस्पर एक
दूसरेकी अनुकूलताके साथ धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करनेवाले उस राजाका बहुतसा समय व्यतीत
हो गया था ॥ ८ ॥ किसी एक दिन अकस्मात् वह विचारकरने लगा कि इस संसारमें जीवको कल्याण करनेवाला
क्या है ? और जो पर्यायरूपी भंवरोंमें पडे हुये दुर्मरण तथा दुर्जन्म अर्थात् दुर्गति देनेवाले जन्म मरणरूपी सर्पोंसे ब-
हुत दूर रहनेवाला सुख इस संसारमें किससे मिल सकता है ॥ ९ ॥ अर्थ और काम अर्थात् धन और इच्छाओंकी
पूर्तिसे तो कुछ सुख मिल ही नहीं सकता क्योंकि इन दोनोंसे संसारका परिभ्रमण बढता है तथा मैं जो यह गृहस्थ-
पनेमें रहकर धर्म सेवन करता हूं इससे भी वास्तविक सुख नहीं मिल सकता क्योंकि इससे भी कुछ न कुछ पापरूप
क्रियायें होती ही हैं ॥ १० ॥ इसलिये जिसमें पापोंका अंश विल्कुल नहीं है ऐसा धर्म कोई दूसरा ही है और उसीसे
सबसे उत्तम सुख मिल सकता है । इसतरह विरक्त होनेवाले उसराजाके आगेके समयमें उत्तम फल देनेवाला विचार
उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ संसारको नाश करनेवाले उस राजाने कठिनतासे धारण करनेयोग्य राज्यका भार तो अपने
पुत्र अतिरथको सौंप दिया और सुलभतासे धारण करने योग्य ऐसा तपश्चरणका भार स्वयं धारण किया ॥ १२ ॥
भगवान अर्हन्नंदनके समीप उसने दीक्षा धारणकी, ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और मोहरूपी शत्रुको जीतनेकी
इच्छासे अपने शरीरसेभी ममत्व छोड दिया ॥ १३ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे बुद्धिमान् पुरुष उसी कामको
करते हैं जिससे उन्हें अभीष्ट पदार्थकी सिद्धि होती है । उसने दर्शनविशुद्धि विनयसंपन्नता आदि तीर्थंकर प्रकृति-
की सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया अंतमें सन्न्यास धारणकर उत्कृष्ट अहमिंद्रकी आयुका बंध किया और

हमिंद्रतां । वैजयंते तु संप्रापदेकारत्निशरीरकः ॥१५॥ मासैः षोडशभिः पंचदशभिश्च दिनैः श्वसन् । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दैरंघो मानसमाहरत् ॥ १६ ॥ शुक्लेश्यः स्वतेजोवधीतविश्वनालिकः । तत्क्षेत्रविक्रियद्धाशस्तद्धारिबलान्वितः ॥ १७ ॥ आहमिंद्रं सुखं मुख्यमगिनामाजवंजवे । निर्द्वंद्वं निःप्रवीचारं चिरं नीरागमागमत् ॥१८॥ आयुरते समाधानान्नास्मिन्नत्रागमिष्यति । द्वीपेस्मिन्भारते वर्षे साकेते वृषभान्वये ॥ १९ ॥ तद्गोत्रे क्षत्रियोऽस्तारिः श्लाघ्यो मेघरथोऽभवत् । मंगलास्य महादेवी वसुधारादिपूजिता ॥ २० ॥ मघायां श्रावणे मासि दृष्ट्वा स्वप्नान् गजादिकान् । आस्य सितद्वितीयायामक्षिप्टागामुकं द्विपं ॥ २१ ॥ तत्फलान्यवबुध्यात्मपतेः संप्राप्य संमदं । नवमे मासि चित्राया सज्ज्योत्स्नैकादशीदिने ॥२२॥ त्रिज्ञानधारिणं दिव्यं पितृयोगे सतां पतिं । जगत्त्रयस्य भर्तारमहमिंद्रमलब्ध सा ॥२३॥

वैजयंत विमानमें एक अरत्निका शरीर पाकर अहमिंद्र हुआ ॥ १५ ॥ वहांपर वह सोलह महीने और पंद्रह दिनकेबाद श्वास लेता था और तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करता था ॥ १६ ॥ उसके शुक्ल लेश्या थी अपने तेजसे सब लोकनाडीको प्रकाशित करता था और अवधिज्ञानसे सबको जानता था उतने ही क्षेत्रतक उसकी विक्रिया ऋद्धि थी और उतने ही क्षेत्रको वह उठा सकता था ॥ १७ ॥ इस संसारमें अहमिंद्रोंका सुख ही मुख्य सुख है जीवोंकेलिये वही उपद्रवरहित प्रवीचाररहित और चिरकालतक वीतरागता उत्पन्न करनेवाला है ॥ १८ ॥ वह अहमिंद्र आयुके अंतमें बडी सावधानतासे इसी मध्यलोकमें आवेगा ।

अथानंतर–इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अयोध्या नगर है उसी नगरमें श्रीवृषभदेवके वंशमें उसीगोत्रमें उत्पन्न हुआ, सब शत्रुओंको जीतनेवाला और प्रशंसनीय ऐसा मेघरथ नामका राजा राज्य करता था और उसकी महादेवीका नाम मंगला था । जब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई थी, तभीसे देवोंने रत्नोंकी धारा वर्षाकर उस महादेवीकी पूजाकी थी ॥ १९ २० ॥ श्रावण शुक्ला द्वितीयाके दिन मघा नक्षत्रमें उस रानीने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे थे और फिर अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा था । भावार्थ–उसी दिन भगवान सुमतिनाथ उसके गर्भमें आये थे ॥ २१ ॥ सबेरे ही उठकर उसने अपने पतिसे उन स्वप्नोंका फल पूछा, उनका फल सुनकर वह बहुतही प्रसन्न हुई । नौवें महीनेमें चैत्र शुक्ला एकादशीके दिन मघा नक्षत्र और पितृ योगमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले, दिव्यस्वरूप, सज्जनोंके पति और तीनों जगतके स्वामी ऐसे उस अहमिंद्रके जीवको उसने उत्पन्न किया ॥ २२–२३ ॥ इंद्र लोग उसीसमय आकर उन भगवानको

नव लक्षाब्धिकोटीषु प्रयातेनंतरेऽन्तरे । तदभ्यंतर-
देवेंद्रास्तं तदा नीत्वा मेरौ जन्ममहोत्सवं । कृत्वा सुमतिसंज्ञां च पुनस्तद्गेहमानयन् ॥ २४ ॥ सतप्ततपनीयाभः स्वभावसुभगाकृतिः ॥ २६ ॥
वर्त्यायुरुदपाद्युदितोदयः ॥ २५ ॥ शून्यषड्वार्धिपूर्वायुः शरासत्रिशतोच्छ्रितिः । तनवः कुंचिताः स्निग्धा मूर्धजा-
शैशवोचितसर्वार्थैर्देवानीतैः सदैधितुः । अंशवो वा शिशोरिंदोर्व्यक्त्यास्यावयवा बभुः ॥ २७ ॥ पट्टोऽलमीति
जांववत्त्विषः । मुखपंकजमाशक्य मिलिता वास्य षट्पदाः ॥ २८ ॥ मया त्रैलोक्यराज्यस्य स्नपनांते सुरोत्तमैः ।
वास्याधाल्ललाटतटमुन्नतिं ॥ २९ ॥ कर्णौ लक्षणसंपूर्णौ नास्य त्रिज्ञानधारिणः । पचवर्षोर्ध्वशिष्यत्वपरिभूतिं प्रेतनतुः ॥ ३० ॥
सुभ्रुवो न भ्रुवोर्वाच्यो विभ्रमोस्य पृथग्विदा । भ्रूक्षेपमात्रदत्तार्थसार्थसंतर्पितार्थिनः ॥ ३१ ॥ नेत्रे विलासिनी स्निग्धे त्रिवर्णे तस्य
रेजतुः । इष्टाखिलार्थसंप्रेक्षासुखपर्यंतगामिनी ॥ ३२ ॥ मया विनास्य शोभा स्यान्नेत्यमौ नासिका स्मयं । उन्नता दधतीवाभाद्-

... और फिर उनका सुमतिनाथ नाम रखकर मेरु पर्वतपर ले गये वहांपर उन्होंने बडे ठाट वाटसे जन्मोत्सव मनाया पिताके घर वापिस ले आये ॥ २४ ॥ अभिनंदनके वाद नौ लाख करोड सागर वीतजानेपर अद्भुत पुण्यको धारण करनेवाले भगवान सुमतिनाथ उत्पन्न हुये थे, इनकी आयु भी इसीसमयमें शामिल है ॥ २५ ॥ इनकी आयु चालीस लाख पूर्व थी और शरीरकी ऊंचाई तीन सौ धनुष थी, उनके शरीरकी कांति तपाये हुये सुवर्णके समान थी और आकार स्वभावसे ही सुंदर था ॥ २६ ॥ उनके बालकपनके योग्य सब सामग्री देव लोग लाते थे और उनके अवयव (अंग वा उपांग) ऐसे सुशोभित होते थे मानों सूर्य वा चंद्रमाकी किरणें ही हों ॥ २७ ॥ उनके मस्तक परके वाल छोटे, घूंघरवाले, चिकने और जामुनके समान काले थे तथा उनके मुखको कमल समझकर बहुतसे भौंरे आकर इकट्ठे होते थे ॥ २८ ॥ उनका ललाट तट ऐसा ऊंचा और ऐसा अच्छा जान पडता था मानों वह यही समझ रहा हो कि मैंने अपने जन्माभिषेकके अंतमें सब देव और इंद्रोंसे तीनों लोकोंके राज्यका पट्टा ही प्राप्त किया हो ॥ २९ ॥ उनके दोनों कान पूर्ण लक्षणवाले थे और उन्होंने तीनों ज्ञानको धारण करनेवाले भगवानके पांच वर्षके बाद भी किसीके शिष्य बननेका तिरस्कार नहीं सुना था ॥३०॥ अच्छी भौंहेंवाले उन भगवानकी दोनों भौंहें निंद्य नहीं थी परंतु ज्ञानियोंके लिये उनका विलास अलग ही था। क्योंकि उन भौंहोंके चलाने मात्रसे दिये हुये धन समूहसे सब याचक लोग संतुष्ट हो जाते थे ॥३१॥ उनके नेत्र अनेक तरहके विलास करनेवाले स्निग्ध और स्वेत श्याम रक्त इन वर्णोंके थे तथा समस्त इष्ट पदार्थोंको देखने से ही सुखकी हद तक पहुंचनेवाले थे इसलिये वे नेत्र बहुत ही अच्छे जान पडते थे ॥३२॥ मेरे बिना तो इनके शरीरकी

क्त्राब्जामोदपायिनी ॥ ३३ ॥ लक्ष्म्यौ कपोलयोर्लक्ष्म्या वक्षःस्थलसमाश्रितः । उत्तमागाश्रयाद् द्वित्वात् जित्वर्यौ वास्य रेजतुः ॥ जित्वास्य कुंदसौंदर्यं द्विजराजिर्व्यराजत । वक्त्राब्जवाससंतुष्टा सहासेव सरस्वती ॥ ३५ ॥ नाधरम्याधराख्या स्यात्सप्तमास्वादशालिनः । अधरीकृतविश्वामराधरस्याद्रिशोभिनः ॥ ३६ ॥ नालप्यते लपस्यास्य शोभा वाग्वल्लभोज्वला । यदि दिव्यो ध्वनिर्विश्वयाचकोस्माद्विनिःसृतः ॥ ३७ ॥ हावो वक्त्राबुजस्यास्य किं पुनर्वर्ण्यतेतरा । यदि लोलालिता जग्मुर्निर्लिंपेशाः सवल्लभा ॥ ३८ ॥ कंठस्य कः स्तवोस्य स्याद्यदि त्रैलोक्यकंठिका । बद्धामरेशैः स्याद्वादकुंठिताखिलवादिनः ॥ ३९ ॥ तद्बाहुशिखरे मन्ये शिरसोप्यतिलंघिनी । वक्षःस्थलनिवासिन्या लक्ष्म्याः क्रीडाचलायते ॥ ४० ॥ धरालक्ष्मीं समाहर्तुं वीरलक्ष्मीप्रसारितौ । आजेते जयिनस्तस्य भुजावाजानुलम्बिनौ ॥ ४१ ॥ पृथक्पृथक्त्वं नारुयेयं रम्यत्व वास्य वक्षसः । मोक्षाभ्युदयलक्ष्म्यौ चेचद्वेवावसत

शोभा ही नहीं होगी यही समझकर मानो घमंडसे ही ऊची उठी हुई और उनके मुखरूपी कमलकी सुगंधको सूंघती हुई नाक बहुत ही अच्छी शोभा धारण करती थी ॥ ३३ ॥ उनके दोनों कपोलोंकी शोभा उत्तम अगका आश्रय लेनेके कारण तथा दो होनेके कारण वक्षःस्थलपर रहनेवाली लक्ष्मीको भी जीत रही थी और इसीलिये वह बहुत ही सुशोभित हो रही थी ॥३४॥ उनके दांतोंकी पंक्ति कुंदके फूलोंकी शोभाको जीतकर ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों उनके मुखरूपी कमलकीसुगंधसे संतुष्ट होकर हंसती हुई सरस्वती ही हो ॥ ३५ ॥ जिन्होंने समस्त देवोंके अधर तुच्छकर दिये हैं सुमेरु पर्वतकी शोभा बढाई है और जो छह रसोंके सिवाय सातवें अलौकिक रसका आस्वाद लेनेवाले हैं ऐसे सुमतिनाथके अधरोंकी (ओठोंकी) अधर (तुच्छ) संज्ञा नहीं थी । भावार्थ—उनके ओठ सबसे उत्तम थे ॥ ३६ ॥ उनकी जिस प्रिय और उज्वल भाषासे संसारकी समस्त भाषाओंको प्रगट करनेवाली दिव्यध्वनि प्रगट हुई उसका तो यहां कथन ही नहीं किया जा सक्ता है ॥३७॥ जिसे देखकर अपनी इंद्राणीके साथ इंद्र भी चंचल हो जाता था ऐसे उनके मुखकमलके हावका क्या वर्णन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ अपनी स्याद्वादवाणीसे समस्त वादियोंको जीतनेवाले ऐसेसुमतिनाथके जिस कंठमें इंद्रोंने तीनों लोकोंकी कंठी बांधी थी फिर भला ऐसे उनके कठकी क्या स्तुति करनी चाहिये ॥३९ ॥ मस्तकको भी उल्लंघन करनेवाले उनके दोनों भुजाओंके शिखर अर्थात् कंधोंको तो ऐसा मानना पड़ता था मानों वक्षःस्थलपर निवास करनेवाली लक्ष्मीके खेलनेके दो पर्वत ही हों ॥ ४० ॥ सबको जीतनेवाले उन सुमतिनाथकी घुटनोंतक लंबी भुजायें ऐसी अच्छी जान पडती थीं मानों पृथ्वीकी लक्ष्मीको हरण कर-

समं ॥ ४२ ॥ कृशमप्यकृशं मध्यं लक्ष्मीद्वयसमाश्रितं । ऊर्ध्वदेहमहाभारं बहदेतस्य हेलया ॥ ४३ ॥ नाभिः प्रदक्षिणावर्ता गभीरेति न कथ्यते । सा चेन्न तादृशी तस्मिन्न स्यादेवं सुलक्षणा ॥ ४४ ॥ रूपशोभां विना नेमः स्वाश्रयादिति वाणव. । सतः सर्वेपि तत्रासन् रम्यस्तत्र कटीतटः ॥ ४५ ॥ रंभास्तंभादयोन्येषामूर्वोर्यांतूपमानतां । उपमेयास्तदूरूभ्या ते वृत्तत्वादिभिर्गुणैः ॥ ४६ ॥ कुतो जानुक्रियेत्येतत् वेद्मि नान्येषु वेधसः । चेदस्मिन्नूरुजघाना शोभास्पर्द्धानिषिद्धये ॥ ४७ ॥ वज्रेण घटिते जंघे वेधसाऽस्यान्यथा कथं । जगत्त्रयगुरोर्भारं विभ्राते ते तनोस्तनू ॥ ४८ ॥ धरेयं सर्वभावेन लग्नासत्तलयोरिति । तत्क्रमौ प्रमदेनेव

नेकेलिये वीरलक्ष्मीने ही अपनी भुजायें फैलाई हों ॥ ४१ ॥ उनके वक्षःस्थलपर जब मोक्ष और स्वर्गादि अभ्युदयकी लक्ष्मियां साथ साथ निवास करती थीं तब फिर उस वक्षःस्थलकी शोभा और बड़प्पन अलग अलग वर्णन नहीं करना चाहिये ॥ ४२ ॥ यद्यपि उनका मध्यभाग (कमर) कृश (पतला) था तथापि वह मोक्ष और अभ्युदय दोनों लक्ष्मियोंसे सुशोभित ऐसे उनके ऊपरके शरीरके भारी बोझेको लीलामात्रसे ही धारण करता था ॥ ४३ ॥ यह कहना ही नहीं चाहिये कि उनकी गोल नाभि गहरी थी क्योंकि यदि वह गहरी न होती तो वह उनके शरीरमें अच्छी ही नहीं जान पड़ती ॥ ४४ ॥ संसारके अच्छे परमाणुओंने विचार किया कि इनका आश्रय किये विना हम लोगोंको न तो रूप मिल सकता है और न हमारी कुछ शोभा हो सकती है यही सोचकर वे सब परमाणु एक जगह आकर उनके कमरपर इकट्ठे हो गये थे और इसलिये ही उनकी कमर बहुत सुंदर होगई थी ॥ ४५ ॥ अन्य लोगोंकी जंघाओंके सामने केलेके थंभ उपमान माने जाते थे परंतु उनके जंघाओंमें गुलाई आदि ऐसे गुण थे जिनसे वे उपमेय ही बने रहते थे। भावार्थ–जंघाओंके लिये केलेके थंभोंकी उपमा देते हैं परंतु सुमतिनाथकी जंघाएं ऐसी अच्छी थीं कि कवि लोग उनकी उपमा केलेके थंभोंकेलिये देते थे ॥ ४६ ॥ नाम कर्मरूपी विधाताने अन्य लोगोंमें ऐसी जघायें क्यों नहीं बनाई ? इस बातको केवल मैं ही जानता हूं और वह बात यह है कि ऊरु (जंघाके ऊपरी भाग) और जंघाए इन दोनोंकी शोभामें परस्पर ईर्षा न हो। भावार्थ–इन दोनोंकी उत्तमता इन्हींमें रहे दूसरी जगह न रहे इसलिये ही विधाताने ऐसा किया है ॥ ४७ ॥ विधाताने उनकी जंघायें वज्रकी बनाई थीं यदि वह वज्रकी न बनाता तो वे पतली जघायें तीनों जगतमें गुरु (भारी) ऐसे उनके शरीरका बोझा कैसे धारण करतीं ? ॥ ४८ ॥ यह पृथ्वी अपने पूर्ण भावोंसे हमारे तलवोंके नीचे आकर लग गई है यही समझकर उनके पैरोंने प्रसन्न होकर अच्छी कांतिको धारण करनेवाली

कूर्मपृष्ठौ शुभच्छवी ॥ ४९ ॥ इयंतोस्मिन् भविष्यंति धर्माः कर्मनिबर्हणाः । इत्याख्यातुमिवाभांति विधिनांगुलयः कृताः ॥ ५० ॥ विधाय दशधात्मानं विधुरद्य निषेवते । कांतिमाभ्यां परं प्राप्तुमित्याशंकावहा नखाः ॥ ५१ ॥ एवं सर्वांगशोभास्य लक्षणैर्व्यंजनैः शुभा । स्वीकरिष्यति मुक्तचगनां वेत्यत्र न संशयः ॥ ५२ ॥ कौमारमिति रूपेण संधत्ते रामणीयकं । अनाप्तयौवनस्यास्य तद्विनापि मनोभवात् ॥ ५३ ॥ ततो यौवनमालम्ब्य कामोप्यस्मिन् कृतास्पदः । समाप्य साधवः स्थानं नावितिष्ठति के स्वयं ॥ ५४ ॥ कुमारकाले पूर्वाणां दशलक्षेषु निष्ठिते । भुजन्स्वर्लोकसाम्राज्यं नृराज्यं चाप स क्रमात् ॥ ५५ ॥ न हिंसा न मृषा तस्य स्तेयसंरक्षणे न च । स्वप्नेपि तद्गतानंदः शुक्ललेश्यस्य केन स. ॥ ५६ ॥ तथा नानिष्टसंयोगो वियोगो नेष्टवस्तुभिः । नासातं न निदानं च तत्संक्लेशो न तद्गतः ॥ ५७ ॥ गुणानां वृद्धिमातन्वन् संचयं पुण्यकर्मणा । विपाकं विश्वपुण्यानां गुणपुण्यसुखात्मकं ॥ ५८ ॥ से-

कछुएकी पीठका रूप धारण कर लिया था ॥ ४९ ॥ इस संसारमें कर्मोंको नाश करनेवाले उत्तम क्षमा आदि धर्म इतने ही (दश) होंगे यही प्रगट करनेके लिये मानों नाम कर्म रूपी विधाताके द्वारा बनी हुई उनके पैरोंकी उंगलियां सुशोभित हो रही थीं ॥ ५० ॥ उनके पैरोंके नखोंको देखकर यही शंका होती थी कि चंद्रमा मोक्ष स्थान पानेके लिये अपने दशरूप बनाकर अपनी कांति और लक्ष्मीसे उनके चरणोंकी सेवा कर रहा है ॥ ५१ ॥ इसतरह लक्षण और चिन्होंसे सुशोभित हुई उनके सब शरीरकी शोभा मुक्तिरूपी स्त्रीको स्वीकार करेगी इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता था ॥ ५२ ॥ उनकी वह कुमार अवस्था स्वभावसे ही मनोहर थी यद्यपि उनको यौवन अवस्था प्राप्त नहीं हुई थी तथापि (मधुरिमा प्राप्त करनेवाले) यौवनके विना भी कामदेवसे भी अधिक मनोहरता उनमें आगई थी ॥ ५३ ॥ तदनंतर यौवन अवस्थाको पाकर कामदेव भी उनके शरीरमें घुस गया था सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे कौन सज्जन हैं जो जगह पाकर स्वयं न ठहर जाते हों ॥ ५४ ॥ इसप्रकार जब उनके कुमार कालके दश लाख पूर्व निकल गये तब उन्होंने अनुक्रमसे स्वर्ग लोकको तिरस्कार करनेवाला मनुष्योंका साम्राज्य पाया था ॥ ५५ ॥ शुक्लेश्याको धारण करनेवाले वे भगवान न कभी हिंसा करते थे और न कभी झूठ बोलते थे तथा किसी भी चोरी वा परिग्रहसे उत्पन्न होनेवाला आनंद स्वप्नमें भी उन्हें नहीं आता था ॥ ५६ ॥ उन्हें न कभी अनिष्ट वस्तुओंका संयोग होता था न इष्ट वस्तुओंका वियोग होता था, न कभी रोग होता था और न वे कभी निदान ही करते थे तथा इन चारोंसे होनेवाले संक्लेश परिणाम भी उनके कभी नहीं होते थे ॥ ५७ ॥ सुख पुण्य और गुणोंको धारण करनेवाले वे भग-

व्यमानः सदा रक्तैः सुरखेचरभूनरैः । निराकृतैहिकारंभः संभृतः सर्वसंपदां ॥ ५९ ॥ निश्चितं कामभोगेषु नित्यं नृसुरभाविषु । न्याय्यार्थपथ्यधर्मेषु शर्मसारं समाप सः ॥ ६० ॥ कांताभिः कमनीयाभिः सवयोभिः समीप्सुभिः । दिव्यांगरागस्रग्वस्त्रभूषाभी रमते स सः ॥ ६१ ॥ दिव्यश्रीर्मानुषी च श्रीः समप्रेमप्रतोषिते । सुख विदधातुस्तस्य मध्यस्थः कस्य न प्रियः ॥ ६२ ॥ सुखं नाम तदेवात्र यदस्येंद्रियगोचरं । स्वर्वंधसारभोग्यं चेत्सुरेशास्यैव रक्षितं ॥ ६३ ॥ एव सगमयन्कालं दिव्यराज्याश्रियोर्द्वये । व्यरंसीत्ससृतेः सा हि प्रत्यासन्नविनेयता ॥६४॥ सुधीः कथ सुखाशेप्सुर्विषयामिषगृद्धिमान् । न पापबडिशं पश्येन्न चेदनिमिषायते ॥ ६५ ॥ मूढः प्राणी परा प्रौढिमप्राप्तो स्वाहिताहितः । अहितेनाहितोऽहं च कथ बोधत्रयाहितः ॥६६॥ निरंकुशं न वैराग्य यावद् ज्ञानं च तादृश ।

वान गुणोंकी वृद्धि करते रहते थे, पुण्य कर्मोंका संचय करते रहते थे और उनके सबतरहके पुण्य कर्मोंका उदय होता रहता था ॥ ५८ ॥ जिन्होंने सांसारिक आरंभ सब नष्ट कर दिये हैं और सब तरहकी संपदाओंसे भरपूर हैं ऐसे उन भगवानकी सेवा भक्तिमें सदा तल्लीन रहनेवाले देव विद्याधर और मनुष्य सब सेवा करते रहते थे ॥ ५९ ॥ सदा मनुष्य और देवोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले काम भोगोंमेंसे तथा न्यायसे प्राप्त हुए अर्थ और परलोकके हित करनेवाले धर्ममेंसे वे भगवान निश्चित सारभूत धर्मको प्राप्त हुए थे अर्थात् वे धर्मको सबसे अधिक सेवन करते थे ॥ ६० ॥ दिव्य उवटन माला वस्त्र आदिकोंसे सुशोभित, समान अवस्थाकी सुंदर और अपनी इच्छानुसार प्राप्त हुई स्त्रियोंके साथ वे क्रीडा किया करते थे ॥ ६१ ॥ दिव्य लक्ष्मी और मनुष्य लोककी लक्ष्मी इन दोनोंको उन्होंने समान प्रेमसे संतुष्ट किया था इसलिये वे दोनों ही उन्हें सदा सुखी रखती थीं सो ठीक ही है क्योंकि (समान प्रेम करनेवाला) मध्यस्थ भला किसको प्यारा नहीं होता ॥ ६२ ॥ संसारमें वही सुख कहलता था जो इनके इंद्रिय गोचर था क्योंकि स्वर्गमें भी जो सारभूत वस्तु थी उसे इंद्र इन्हींकेलिये सुरक्षित रखता था ॥ ६३ ॥ इसप्रकार दिव्य लक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी इन दोनोंमें समय व्यतीत करते हुये वे संसारसे विरक्त हुये सो ठीक ही है क्योंकि निकट भव्यपना इसीका नाम है ॥ ६४ ॥ बुद्धिमान् लोग सुखकी इच्छा करते हुए विषयरूपी मांसके लिये क्यों लोभ करते हैं यदि वे इसप्रकार मछलीके समान आचरण न करें तो पापरूपी मछलीके जालमें भी न पड़ें ॥ ६५ ॥ जो प्राणी मूर्ख हैं वे अधिक ज्ञानी नहीं हैं, आत्मासे भिन्न विषयसुखोंमें लीन हैं और अपना अहित कर रहे हैं, परंतु मैं ऐसा क्यों हो रहा हूं मुझमें तो तीन ज्ञान विद्यमान हैं ॥ ६६ ॥ जबतक यथेष्ट वैराग्य नहीं होता और यथेष्ट ज्ञान नहीं होता तबतक आत्मा

कुतः स्यादात्मनः स्वास्थ्यमस्वस्थस्य कुतः सुखं ॥६७॥ खपंचकनवद्व्युक्तैः पूर्वैराज्येऽवसाधिते । सह द्वादश पूर्वांगैः खासिन्नेवेत्यचिंतयत् ॥ ६८ स्तुतस्तदैव संस्तोत्रैः सर्वैः सारस्वतादिभि । अभिषेक सुरैराप्य देवोढाभययानकः ॥ ६९ ॥ दीक्षां पष्ठोपवासेन सहेतुकवनेऽगृहीत् । सिते राज्ञा सहस्रेण सुमतिर्नवमीदिने ॥ ७० ॥ मघाशशिनि वैसाखे पूर्वाह्णे सयमाश्रयं । तदैवाविरभूदस्य मनःपर्ययसंज्ञकं ॥ ७१ ॥ पुरं सौमनसं नाम भिक्षायै पश्चिमे दिने । प्राप्त प्रतीक्ष्य पद्मोगात्पूजां द्युम्नद्युतिर्नृपः ॥ ७२ ॥ सामायिकं समादाय समौनः शातकल्मषः । तपस्तेपे समाधानात्सहिष्णुर्दुःस्सहं परैः ॥ ७३ ॥ विंशतिर्वत्सरान्नीत्वा छद्मस्थो प्राक्तने वने । प्रियंगुभूरुहो ऽधस्तादुपवासद्वयं श्रितः ॥७४॥ मघाया चैत्रमासस्य धवलैकादशीदिने । पश्चिमाभिमुखे भानौ कैवल्यमुपपादिवान् ७५ सुरैः संप्राप्ततत्पूजो गणेशैश्चामरादिभिः । स सप्तर्द्धिभिरभ्यर्च्यः सषोडशशतोन्मितैः ॥ ७६ ॥ शून्यद्वयचतुःपक्षमितपूर्वधरानुगः ।

स्वस्थ कैसे हो सकता है और आत्माके स्वस्थ हुए विना सुख कैसे मिल सकता है ॥ ६७ ॥ राज्य करते हुये जब उनके उन्तीस लाख पूर्व और बारह पूर्वांग बीत चुके थे तब उन्हें यह ऊपर लिखा हुआ वैराग्य उत्पन्न हुआ था ॥ ॥ ६८ ॥ उसीसमय सारस्वत आदि सब लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की थी और इंद्रोंने आकर उनका अभिषेक किया था तदनंतर अभया नामकी पालकी पर सवार होकर वे सुमतिनाथ भगवान सहेतुक नामके वनमें गये थे और वैसाख शुक्ला नौमीके दिन दो पहरके पहिले पहिले मघा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ साथ तेलाके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर दीक्षा धारण की थी और उसीसमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया था ॥६९-७१॥ पारणाके दिन वे भिक्षाकेलिये सौमनस नामके नगरमें गये थे वहांपर पद्मद्युति नामके राजाने उनका प्रतिग्रहण किया था निर्विघ्न आहार दिया था इसलिये देवोंने पंचाश्चर्यकी वर्षा की थी और उसकी पूजा की थी ॥ ७२ ॥ इसके बाद वे भगवान वनमें जाकर मौनसहित सामायिक धारणकर पापोंको नाश करते हुये बडी सावधानतासे कठिन तपश्चरण करने लगे ॥ ७३ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुये उनके बीस वर्ष बीत चुके तब एकदिन उसी सहेतुक वनमें प्रियंगु वृक्षके नीचे तेलाके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हुये ॥ ७४ ॥ चेत सुदी एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें जब सूर्य पश्चिमकी ओर जा रहा था उससमय उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ७५ ॥ उसीसमय इंद्रोंने आकर उनकी पूजा की और समवसरणकी रचना की । उनकी सभामें सातों ऋद्धिओंको धारण करनेवाले एकसौ सोलह अमर आदि गणधरथे ॥ ७६ ॥ दो हजार चारसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे, और दो लाख चौअन हजार तीनसौ पचास शिक्षक थे ।७७।

खपंचत्रिचतुःपंचपक्षोत्तरैः शिक्षकैर्युतः ॥७७॥ एकादशसहस्रावधीद्धबोधविदीडितः । त्रयोदशसहस्रात्मसमानज्ञानसंस्तुतः ॥७८॥ शून्यद्वययुगाष्टैकमितवैक्रियकस्तुतः । शून्यद्वयचतु:खैकप्रमितोपातविद्धृतः ॥ ७९ ॥ शून्यपचचतुःखैकमितवाद्यभिवंदितः । पिंडितैः खचतुष्कद्वित्रिमितैस्तैर्विभूषितः ॥ ८० ॥ खचतुष्कत्रिवह्न्युक्तानंतार्याद्यार्यिकानुग । त्रिलक्षश्रावकाभ्यर्चः श्राविकापंचलक्षवान् ॥ ८१ ॥ स देवदेव्यसंख्याततिर्यक्संख्यातवेष्टितः । विहृत्याष्टदशक्षेत्रविशेषेष्वमरार्चितः ॥ ८२ ॥ प्रशस्तांशस्तभाषासु भव्यानां दिव्यमक्षिपत् । ध्वनिं वीजविशेषं वा सुभूमिषु महाफलं ॥८३॥ विमुक्तविक्रातिर्मासं सहस्रमुनिभिः सह । प्रतिमायोगमास्थाय सम्मेदे निर्वृतिं ययौ ॥ ८४ ॥ एकादश्यां सिते चैत्रे मघायामपराह्णगः । अमरैरत्यकल्याणमवाप सुमतीश्वरः ॥ ८५ ॥ रिपुनृपयमदंडः पुडरीकिण्यधीशो हरिरिव रतिषेणो वैजयतेऽहमिंद्रः । सुमतिरमितलक्ष्मीस्तीर्थकृद्यः कृतार्थः सकलगुणसमृद्धो वः स

ग्यारह हजार अवधिज्ञानी उनकी पूजा करते थे और तेरह हजार केवलज्ञानी थे ॥ ७८ ॥ अठारह हजार चारसौ विक्रिया ऋद्धिके धारण करनेवाले उनकी स्तुति करते थे और दश हजार चारसौ मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ७९ ॥ दश हजार चारसौ पचास वादी उनको सेवा करते थे। इस तरह सब मिलकर तीन लाख वीसहजार मुनियोंसे वे भगवान सुशोभित हो रहे थे ॥ ८० ॥ अनंतमतीको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार अर्जिकायें थीं, तीन लाख श्रावक उनकी सेवा करते थे और पांच लाख श्राविकायें थीं ॥ ८१ ॥ इनके सिवाय असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात ही तिर्यंच थे। इसतरह इंद्रोंके द्वारा पूजित हुये उन भगवानने अठारह क्षेत्रोंमें विहारकर सदुपदेश दिया था ॥ ८२ ॥ जिसप्रकार अच्छी भूमिमें महाफल देनेवाले अच्छे वीज वोये जाते हैं उसीतरह भगवानने भव्य जीवोंको प्रशस्त अप्रशस्त सब भाषाओंमें मोक्षरूपी महाफल देनेवाली दिव्यध्वनिका वीज वोया था ॥ ८३ ॥ जब उनकी आयुका एक महीना वाकी रह गया था तब उन्होंने सब विकारोंको छोडकर सम्मेदशिखरपर जाकर प्रतिमायोग धारण किया था और आयुके अंतमें वे वहींसे मुक्त हुये थे ॥ ८४ ॥ चैत सुदी एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें शामके समय वे सुमतिनाथ भगवान मुक्त हुये थे और उसीसमय इंद्रोंने आकर उनके मोक्षकल्याणकी पूजा की थी ॥ ८५ ॥ जो शत्रुरूप राजाओंको यमराजके दंडके समान अथवा इंद्रके समान पुंडरीकिणी नगरीका स्वामी राजा रतिषेण हुआ था फिर वैजयंत विमानमें अहमिंद्र हुआ और फिर समस्त गुणोंके समुद्र, अनंत लक्ष्मीको धारण करनेवाले कृतकृत्य तीर्थंकर भगवान सुमतिनाथ हुये वे भगवान तुम लोगोंको सवतरहकी सिद्धि प्रदान करें ॥ ८६ ॥ जो भगवान स्वर्गावतरणके समय गर्भ

सिद्धिं विदध्यात् ॥ ८६ ॥ सद्यो जातं जिनेंद्रं स्वरवतरणसंप्राप्तकल्याणकार्ये वामं जन्माभिषेके सुरपविरचितैर्भूषणैरिद्धशोभं । स निष्क्रातावघोरं सुमतिमतिमतिं केवलज्ञानसिद्धावीशानं निर्वृतौ तत्पुरुषमपरुषं शांतये संश्रयध्वं ॥ ८७ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुमतितीर्थंकरपुराणं नाम समाप्तमेकपंचाशत्तमं पर्व ।

द्विपंचाशत्तमं पर्व ।

पद्मेऽस्यास्तुर्न भातीव प्रमासिन्निति वाश्रिता । त्यक्त्वा तं यं स पद्मासान्पातु पद्मप्रभः प्रभुः ॥ १ ॥ द्वितीये धातकीखंडे द्वीपे प्राग्भागपूर्वजे । विदेहे दक्षिणे कूले सीताया वत्सदेशजं ॥ २ ॥ सुसीमानगरं तस्मिन्महाराजोऽपराजितः । न परैर्जीयते जेता स बाह्याभ्यतरद्विषा ॥ ३ ॥ विक्रमेणैव वक्राणा जेतुर्बाह्यपरिच्छदः । सप्तांगपूरणं तस्य बलं दोर्बलशालिनः ॥ ४ ॥ तस्य सत्येन

कल्याणके उत्सवमें 'सद्योजात' कहलाये थे जन्माभिषेकके समय इंद्रोंके द्वारा बनेहुये आभूषणोंसे सुशोभित होकर 'वाम' (सुंदर) कहलाये थे, दीक्षाकल्याणके समय 'अघोर' कहलाये थे, केवलज्ञानकी प्राप्ति होते समय 'ईशान' कहलाये थे और मुक्त होते समय सत्पुरुष वा तत्पुरुष कहाये थे ऐसे रागद्वेषरहित अतिशय पूज्य भगवान सुमतिनाथ जिनेंद्रदेवका शांतिकेलिये आश्रय लो, भावार्थ—शांतिकेलिये उनकी सेवा करो ॥ ८७ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें सुमतिनाथ तीर्थंकरका पुराण कहनेवाला यह इक्यावनवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवां पर्व ॥ ५२ ॥

जो लक्ष्मी इस कमलमें स्थिर न रहनेके कारण सुशोभित नहीं रहती इसलिये ही जिसने कमलको छोडकर जिनका आश्रय लिया है ऐसे वे पद्मप्रभस्वामी हम लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ १ ॥ दूसरे धातकी खंडनामके द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर वत्स नामके देशमें एक सुसीमा नामका नगर है । उसमें अपराजित नामका राजा राज्य करता था वह बाह्य अभ्यंतर सब शत्रुओंको जीतनेवाला था परंतु उसे कोई नहीं जीत सकता था ॥ ॥ २–३ ॥ वह अपने पराक्रमसे ही कुटिल मनुष्योंको जीतता था, उसकी भुजाओंमें बडा ही बल था सब तरहका बाह्य परिग्रह था और सात तरहकी पूरी सेना थी ॥ ४ ॥ उसके सत्यसे बादल किसानोंकी इच्छानुसार बरसते थे तथा

वर्षंति जीमूताः कर्षकेच्छया ।; आदिमध्यांतवापाश्च धान्यभेदाः फलप्रदाः ॥ ५ ॥ त्यागेन तस्य दारिद्र्यशब्दः खकुसुमायते । भुवि प्राप्येषु द्रारिद्र्यं तैरथ घनदायितं ॥ ६ ॥ राज्ञां महागुणास्तस्मिन्सुक्षेत्रोप्तसुवीजवत् । त्रयोप्येते फलंति स्म सजातीयान्परान् गुणान् ॥ ७ ॥ परेषां वास्य रूपादिसंपन्नोन्मार्गवृत्तये । तरूत्पाटी मरुन्मेरुक्ष्मं कंपयितुं च किं ॥ ८ ॥ स षट्प्रकृतिभिर्भूष्यस्ताश्च तेन ततोऽभवत् । तद्राज्यं न परैर्धृष्यं परेषा घर्षकं स्वय ॥ ९ ॥ एवं भवातरावर्जितोर्जितायोदयार्पितं । नार्पत्यं सुचिरं भुक्त्वा संविभक्तं सुहृद्वरैः ॥ १० ॥ क्षणिकाः सर्वपर्यायाः पर्यायैश्चानुभूयते । सुखं कारणविध्वंसे कार्ये कौतस्कुती स्थितिः ॥ ११ ॥ इत्यर्जुसूत्रभावेन स सर्वं भंगुरं स्मरन् । दत्त्वा राज्यं सुमित्राय सुताय विजितात्मने ॥ १२ ॥ गत्वा तपोगुरुं कृत्वा जिनेंद्रं पिहितास्रवं । एकादशांगविद्बद्ध्वा नाम तीर्थकराह्वयं ॥ १३ ॥ संन्यस्यांतपरित्यक्तदेहोयादहमिंद्रतां । ऊर्ध्वग्रैवेयके रम्ये प्रीतिंकर-

आदि मध्य अतमें बोये हुए और फल देनेवाले अनेक तरहके धान पैदा होते थे ॥ ५ ॥ उसके त्याग वा दानसे दरिद्रता आकाशका फूल बन गई थी, पृथ्वीपर जो पहिले दरिद्री था वह आज उस राजाके दानसे कुवेर बन गया था ॥६॥ जिसप्रकार अच्छे खेतमें बीज बोया हुआ अच्छा बीज फलता है उसीप्रकार राजाओंके सब गुण उसमें थे। इसलिये ऊपर कहे हुए सत्य, दान और गुण अन्य सजतीय उत्तम गुणोंको उत्पन्न करते थे। दूसरोंके समान रूप आदि संपत्तियां उस अपराजितको कुमार्गमें नहीं ले जासकती थीं सो ठीक ही है क्योंकि वृक्षोंको उखाडनेवाला वायु क्या सुमेरु पर्वतको कंपा सकता है ? कभी नहीं ॥ ८ ॥ वह राजाओंके छह गुणोंसे सुशोभित था और वे छह गुण उससे सुशोभित थे। इसतरह वह राज्य दूसरोंसे धारण नहीं किया जा सकता था। हां वह दूसरोंको धारण कर सकता था ॥ ९ ॥ इसप्रकार अनेकभवोंमें उपार्जन किये हुए उत्तम पुण्यके उदयसे प्राप्त हुए तथा अपने भाई बंधु और मित्रोंमें बटे हुए राज्यका उसने बहुतदिनतक उपभोग किया ॥ १० ॥ तदनंतर वह विचार करने लगा कि इस संसारमें पर्याय सब क्षणिक हैं और सुख सब पर्यायोंसे ही अनुभव किया जाता है इसलिये कारणके नाश होनेपर कार्यकी स्थिति किसतरह रह सकती है। भावार्थ—पर्यायोंके क्षणिक होनेसे सुख भी क्षणिक ही है ॥ ११ ॥ इसप्रकार ऋजुसूत्रनयसे सब पदार्थोंको क्षणभंगुर मानते हुए उसने अपने आत्माको वश करनेवाले पुत्र सुमित्रकेलिये राज्य दे दिया ॥ १२ ॥ वनमें जाकर पिहितास्रव नामके जिनेंद्रदेवको अपना दीक्षागुरु बनाया और ग्यारह अंगोंको पढकर तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया ॥ १३ ॥ अंतमें समाधिमरणसे शरीरको छोडकर सुंदर ऊर्ध्व ग्रैवेयकके प्रीतिंकर नामके विमानमें अहमिंद्र

विमानजः ॥ १४ ॥ एकत्रिंशत्समुद्रायुर्हस्तद्वयशरीरकः । शुक्ललेश्यो दिनैः पचषट्चतुःसम्मितैः श्वसन् ॥ १५ ॥ एकत्रिंशत्सहस्राब्दैर्मानसाहारतर्पितः । तेजोबलावधिज्ञानव्याप्तासप्तमभूतलः ॥ १६ ॥ तत्क्षेत्रविक्रियर्द्धीशः सुखपायाहमिंद्रजं । स्वायुरते ततस्तस्मिन्नवनीमागामिष्यति ॥ १७ ॥ जबूद्वीपे च कौशाव्या' पतिरिक्ष्वाकुवशजः । गोत्रेण काश्यपो राजा धरणाख्यो महानभूत् ॥ तस्य देवी सुसीमाख्या रत्नवृष्ट्यादिमानिता । प्रभाते माघकृष्णाया षष्ठ्या चित्रेंदुसंगमे ॥ १९ ॥ गजादिषोडश स्वप्नवीक्षणानतरास्यग । निरीक्ष्य वारण ज्ञातैस्तत्फलैः प्रमदान्विता ॥ २० ॥ कृष्णपक्षे त्रयोदश्या त्वष्टृयोगेऽपराजित । कार्तिके मास्यसूतैषा रक्तांभोजदलच्छविं ॥ २१ ॥ अस्योत्पत्तौ समुत्पत्तिर्गुणाना दोषसंततेः । ध्वंसो जातः शम' शोक. प्रमोदात्सर्वदेहिना ॥ २२ ॥ मोहशत्रुर्हतच्छायो नष्टोहं वेति कपते । स्वर्गापवर्गयोर्मार्गे वाहकेऽस्मिन्दभविष्यति ॥ २३ ॥ मोहनिद्रा विहास्यति बहवोऽस्मिन्प्रबोधके ।

उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ वहांपर उसकी इकतीस सागरकी आयु थी दो हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी और ४६५ दिन अर्थात् इकतीस पक्ष वा साडे पद्रह महीने पीछे श्वास लेता था ॥ १५ ॥ इकतीस हजार वर्ष पीछे मानसिक आहार लेकर सतुष्ट होता था तथा सातवीं पृथ्वीतक उसका तेज बल और अवधिज्ञान था ॥ १६ ॥ सातवीं पृथ्वीतक ही वह अपनी विक्रिया ऋद्धिको काममें लासकता था। इसतरह वह अहमिंद्रोंके सुखोंका उपभोग करता था जब उसकी वहाकी आयु पूर्ण होने आई और पृथ्वीपर जन्म लेनेके दिन आए तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रकी कौशांबी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ और काश्यप गोत्रका धरण नामका बडा राजा राज्य करता था ॥ १७—१८ ॥ उसकी सुसीमा नामकी रानी थी वह छह महीने पहिलेसे ही रत्नवृष्टि आदिसे पूज्य मानी गई थी । माघकृष्णा षष्ठीके दिन सवेरेके समय चंद्रमाके साथ चित्रा नक्षत्रका समागम होते हुए उसने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे और फिर अपने मुहमें घुसता हुआ हाथी देखा । सवेरे ही उठकर अपने पतिसे उनके फल पूछे और उनका फल जानकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १९–२० ॥ कार्तिक महीनेकी कृष्णपक्षकी त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें लालकमलके दलकी कांतिके समान भगवान् अपराजित उस सुसीमा देवीसे उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ उन भगवानमें उत्पन्न होते ही सब गुण उत्पन्न हुए थे और दोषोंका समूह सब नष्ट होगया था आनंदसे सब जीवोंका शोक भी नष्ट हो गया था ॥ २२ ॥ स्वर्ग और मोक्षके मार्गको चलानेवाले उन भगवानके उत्पन्न होते ही मोहरूपी शत्रुकी कांति नष्ट होगई थी और मैं अब नष्ट हुआ यही समझकर वह कंप रहा था ॥ २३ ॥ उससमय विद्वान् लोग परस्पर इसप्रकार बात चीत करते थे कि सबको प्रबुद्ध

जन्मिनां जातसंबधविरोधश्च विनंक्ष्यति ॥ २४ ॥ लक्ष्मीर्विकाशमस्यायात्प्रायात्कीर्तिर्जगत्त्रयं । अभूदित्यादिसंलापो विदुषामि-
तरेतरं ॥ २५ ॥ तदानीमेव देवेंद्रास्तं मेरौ क्षीरवारिभिः । स्नापयित्वा विधायानुमुदा पद्मप्रभाभिधां ॥ २६ ॥ अभिष्टुत्य पुनर्नीत्वा
मातुरंके महाद्युतिं । निधाय मुदिता नृत्यं विधाय प्रययुर्दिवं ॥ २७ ॥ समस्तैः शैशवं तस्य मुदेंदोरिव वर्धते । कः स यः सर्वमा-
थाथ वर्द्धमाने परान्मुखः ॥ २८ ॥ न कामनीयकं कामेऽतिकाये ऽन्यत्र चेद्दृशं । तत्कामनीयकं तस्य न केनाप्युपमीयते ॥ २९ ॥
तथैव रूपमप्यस्य कथ्यते किं पृथक् पृथक् । यद्यत्तस्मिन्न तत्त्वज्ञैरन्यस्मैरुपमीयते ॥ ३० ॥ कामयंते स्त्रियः पुंसः पुमांसस्ता इमं
पुनः । ताश्च ते चास्य सौभाग्य नाल्पभाग्यैरवाप्यते ॥ ३१ ॥ तन्नावेव सर्वेषां दृष्टिस्तृप्तिं परामिता । संततं चूतमंजर्यां मधा-
लीनामिवावलौ ॥ ३२ ॥ सर्वेंद्रियसमाह्लादस्तस्मिन् चेक्ष भृशायते । परत्रापूर्णपुण्येषु न क्वापीति वयं स्थिताः ॥ ३३ ॥ सबचतु-
करनेवाले इन भगवानके उत्पन्न होनेसे बहुतसे लोग मोहरूपी नींदको छोडेंगे' जीवोंका जन्मसे संबंध रखनेवाला वैर
विरोध भी नष्ट हो जायगा, लक्ष्मी प्रफुल्लित होगी और कीर्ति तीनों लोकमें फैल जायगी ॥ २४—२५ ॥ उसीसमय
देव और इंद्रोंने आकर मेरु पवतपर क्षीर सागरके जलसे उनका अभिषेक किया और प्रसन्न होकर पद्मप्रभ नाम रक्खा
॥ २६ ॥ तदनंतर उनकी स्तुति की फिर अत्यंत कांतिको धारण करनेवाले उनको लेजाकर माताके गोदमें जा विरा-
जमान किया, प्रसन्न होकर नृत्य किया और फिर सब स्वर्गको चले गये ॥ २७ ॥ सब लोग जिनको नमस्कार करते
ऐसे उन भगवानका बालकपन चंद्रमाके समान सबको प्रसन्न करता हुआ बढ रहा था इसलिये ऐसा कौन मनुष्य था
जो उनकी वृद्धिसे विमुख हो ? भावार्थ—ऐसा कोई नहीं था ॥ २८ ॥ जैसी सुंदरता उन पद्मप्रभमें थी वैसी सुंदरता
दूसरी किसी जगह नहीं थी शरीररहित कामदेवमें भी नहीं थी इसलिये उनकी सुंदरताकी उपमा संसारमें किसीके
साथ नहीं दी जासकती थी ॥ २९ ॥ इसीतरह उनके रूपका वर्णन भी अलग अलग नहीं करना चाहिये क्योंकि जो
जो गुण उनमें थे विद्वान् लोग उनकी उपमा भी दूसरी जगह नहीं देते थे ॥ ३० ॥ स्त्रियां पुरुषकी इच्छा क-
रती हैं और पुरुष स्त्रियोंकी इच्छा करते हैं परंतु उन पद्मप्रभकी स्त्री पुरुष दोनों ही इच्छा करते थे सो ठीक ही है
क्योंकि जिनका भाग्य थोडा है ऐसे पुरुष उनके सौभाग्यको कभी नहीं पासकते हैं ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार मत्त हुए भ्र-
मरोंकी पंक्ति सदा आमकी मंजरीमेंही तृप्त रहती है उसीप्रकार सब लोगोंकी दृष्टि उनके शरीरमें ही उत्तम तृप्तिको प्राप्त
होती थी ॥ ३२ ॥ हम लोग दूसरी जगह थोडेसे पुण्यवदनोंमें कहीं नहीं ठहरते हैं यही समझकर मानो सब इंद्रियोंके

कोण कोटीनां नवभिश्चोक्तवार्द्धिभिः । मिते सुमतिसंताने पद्मप्रभजिनस्थितिः ॥ ३४ ॥ षट्शून्यवन्हिपूर्वायुः शून्यपंचद्विचापभाक् ।
जीवितस्य चतुर्भागकुमारत्वेन निष्ठिते ॥ ३५ ॥ अलब्ध राज्यं प्राप्तामरेज्यो द्वेगज्यवार्जितं । क्रमायातं न दीच्छति संततश्चान्यथा-
गतं ॥ ३६ ॥ पट्टबंधस्य सर्वस्य स्वस्य स्वस्येव संमदः । महामयानि तद्देशे नष्टान्यष्टौ निरन्वयं ॥ ३७ ॥ दारिद्र्यं विद्रुतं दूरं स्वैर स्व
सम्प्रवर्तते । सर्वाणि मंगलान्यासन् सगम. सर्वसंपदां ॥ ३८ ॥ कस्य कस्मिन्समीप्सेति वदान्येष्वभवद्वचः । कस्यचिन्नैव कस्मिंश्चिद-
र्थितत्यवदज्जनः ॥ ३९ ॥ इत्यन्य राज्यसंप्राप्तौ जगत्सुप्तमिवोत्थितं । तदेव राज्य राज्येषु प्रजानां यत्सुखावह ॥ ४० ॥ हीने षोड-
शपूर्वांगै. पूर्व लक्षायुषि स्थिते । कदाचिद् द्वारिबद्धस्थगजप्रकृतिसंश्रुतेः ॥ ४१ ॥ ज्ञातात्मान्यभवो धिक् धिक् संसारमिति तत्त्ववित् ।
विरक्तः कामभोगेषु पापदु खप्रदायिषु ॥ ४२ ॥ अदृष्ट किं किमस्पृष्टमनाघ्रातं किमश्रुतं । किं किमस्वादितं येन पुनर्नवमिवेष्यते ॥
आल्हाद वार वार उन्हींमें आकर क्या नहीं रहते थे अर्थात् अवश्य रहते थे ॥३३॥ सुमतिनाथके बद नव्वे हजार करोड
सागर वीत जानेपर उन्हींकी संतानमें पद्मप्रभ हुये थे ॥ ३४ ॥ तीस लाख पूर्वकी उनकी आयु थी, ढाईसौ धनुषका
शरीर था, और देव लोग सदा उनकी पूजा किया करते थे जब आयुका चौथाई भाग कुमारकालमें व्यतीत हो गया
था तब उन्हें जिसका कोई शत्रु नहीं है और जो तत्त्वज्ञानपूर्वक है अथवा संतान दरसंतानसे चला आया है ऐसे रा-
ज्यकी प्राप्ति हुई थी । सो ठीक ही है क्योंकि जो तत्त्वज्ञानपूर्वक नहीं होता वा विपरीत होता है उसकी सज्जन लोग
कभी इच्छा नहीं करते ॥ ॥ ३५–३६ ॥ उनके राज्याभिषेकके समय सबको ऐसा आनंद हुआ था मानों हमारा ही
राज्याभिषेक हो रहा हो । उस देशमेंसे आठों तरहके महाभय सदाकेलिये नष्ट हो गये थे ॥ ३७ ॥ दरिद्रता दूर भाग
गई थी, धन अपनी इच्छानुसार फैलरहा था सब तरहके मंगल और सबतरहकी संपदाओंका समागम सदा बना रहता
था ॥ ३८ ॥ जब कोई किसीसे कुछ नहीं मांगता था तब लोग परस्पर इसप्रकार बात चीत करते थे दानी लोग सदा
यही पूछा करते हैं कि किस पुरुषको किस वस्तुकी इच्छा है भावार्थ—दानी बहुत थे और याचक नहीं थे ॥ ३९ ॥
इसप्रकार उनके राज्य संभालनेपर मानों यह संसार सोतेसे उठ पडा था सो ठीक ही है क्योंकि राज्योंमें राज्य वही है
जो प्रजाको सुख देनेवाला हो ॥ ४० ॥ जब उनकी आयु सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्वकी रह गई थी तब किसी-
समय अपने दरवाजेपर बंधेहुए हाथीकी दशा सुनकर उन्हें अपने पहिले भवोंका ज्ञान हुआ था और उसीसमय त-
त्त्वोंको जाननेवाले वे भगवान् संसारको धिक्कार देनेलगे थे तथा पाप और दुःख देनेवाले काम भागोंसे वे विरक्त हो

४३ ॥ भुक्तमेवं पुनर्भुक्तं जंतुनानंतशो भवे। मध्यमप्यभिलाषाब्धेरितं वदत किं ततः ॥ ४४ ॥ नेंद्रियैरात्मनस्तृप्तिर्मिथ्यात्वादिविदूषितैः। वीतघात्युपयोगेस्य विश्वं यावन्नगोचरं ॥ ४५ ॥ रोगोरगाणां तु ज्ञेयं शरीरं वामलूरकं। दष्टान् दृष्ट्वा तैरेव किमिष्टान्नष्टजीवितान् ॥ ४६ ॥ अहितो देहिनो देहे मोहोनेनाविनश्वरः। सहवासकृत क्वापि केनाप्यस्यायुषा किमु ॥ ४७ ॥ हिंसादिपंचकं धर्मः सुखं यस्येंद्रियार्थजं। संसृती रोचते तस्मै विपरीतार्थदर्शिने ॥ ४८ ॥ पापापापोपलेपापक्षेपो येनोपपद्यते ॥ तद्ध्येयं तदनुष्ठेयं तदध्येयं सदा बुधैः ॥ ४९ ॥ इति त्रिविधनिर्वेदभूतबोधिः सुरोत्तमैः। प्रोत्साहितः सुरैः प्राप्तानिष्क्रांतिस्नानसंमदः ॥ ५० ॥ निवृत्याख्यं समारुह्य शिविकां स मनोहरे। वने षष्ठोपवासेन दीक्षां शिक्षामिवाग्रहीत् ॥५१॥ कार्तिके कालपक्षस्य त्रयोदश्यपराह्णगः।

गये थे ॥ ४१–४२ वे विचार रहे थे कि इससंसारमें विना देखा हुआ क्या विना स्पर्श किया हुआ क्या है, विना सूंघा हुआ, विना सुना हुआ और विना खाया हुआ क्या है अर्थात् कुछ भी नहीं है तथापि यह जीव नयेके समान सबकी इच्छा करता है ॥ ४३ ॥ यह जंतु इस संसारमें भोगी हुई चीजोंको ही फिर फिर अनंतवार भोगता है क्या यह अभिलाषारूपी सागरका मध्यभाग परिमित है ? इसलिये कहो इससे क्या लाभ है ॥ ४४ ॥ मिथ्यात्व आदिसे दूषित हुई इंद्रियोंसे आत्माकी तृप्ति नहीं होती, घातिया कर्मोंके नाश होनेपर जबतक यह जीव समस्त संसारको नहीं जान लेता तबतक इसे कभी तृप्ति नहीं हो सकती ॥ ४५ ॥ इस शरीरको रोगरूपी सर्पोंकी वामी समझना चाहिये। वे रोगरूपी सर्प इष्ट वस्तुओंको काटकर वार वार नष्ट करते हैं और यह जीव उन्हें देखता है तथापि न जाने क्यों उन्होंकी इच्छा करता है ॥ ४६ ॥ जीवोंके इस शरीरसे सदा अहित ही होता है, इस शरीरने ही मोहको स्थायी बना रक्खा है क्या किसीने आजतक कहीं भी इसके साथ समागम किया है। फिर भला इसके जीवित रहनेसे क्या लाभ है ॥ ४७ जो हिंसादि पांचों पापोंको धर्म मानता है इंद्रिय और पदार्थोंके संयोगको सुख मानता है वही संसार पदार्थोंको विपरीत रीतिसे श्रद्धान करनेवाले संसारी लोगोंको पसंद आता है ॥ ४८ ॥ इसलिये जिससे पाप और पुण्य दोनोंका नाश हो जाता है विद्वान् लोगोंको सदा उसीका ध्यान करना चाहिये उसीका अनुष्ठान करना चाहिये और उसीका अध्ययन (पठन पाठन) करना चाहिये ॥ ४९ ॥ इसप्रकार भोग शरीर और संसार इन तीनोंसे वैराग्य उत्पन्न होकर आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उत्साहित किया और देवोंने आकर दीक्षाकल्याणका अभिषेककर उन्हें प्रसन्न किया ॥५०॥ निवृत्ति नामकी पालकीपर सवार होकर वे मनोहर नामके वनमें गये और शि-

चित्रायां भूभुजा सार्द्धं सहस्रेणाहितादरः ॥ ५२ ॥ चतुर्थज्ञानसंपन्नश्चर्यायै पश्चिमे दिने । नगरं वर्द्धमानाख्यं प्राविशद्विदुषां वरः ॥ ५३ ॥ सोमदत्तो नृपस्तस्मै दानादापार्जुनच्छविः । आश्चर्यपंचकं किंवा पात्रदानान्न जायते ॥ ५४ ॥ चिन्वन्शुभास्रवैः पुण्य संवरः कर्मसंहतेः । कुर्वन्गुप्त्यादिषट्केन तपसा निर्जरां च सः ॥ ५५ ॥ षण्मासैर्मौनमास्थाय छाद्मस्थ्यमपनीतवान् । क्षपकश्रेणिमारुह्य नष्टघातिचतुष्टयः ॥ ५६ ॥ पौर्णमास्यां सिते चैत्रे मन्यादह्वा रवौ गते । चित्रायां केवलज्ञान प्रतिपेदे परार्थकृत् ॥ ५७ ॥ समर्चितो महादेवैः शतेनेतो गणेशिनां । स वज्रचामरादीनां दशभिश्च जगद्धित ॥ ५८ ॥ शून्यद्वयाग्निपक्षोक्तसर्वपूर्वधरान्वितः । शून्यत्रिकनवर्तुद्विप्रोक्तशिक्षकलक्षितः ॥ ५९ ॥ शून्यत्रिदशज्ञेयविविधावधिवीक्षणः । खत्रयद्वादशालक्ष्यकेवलावगमाश्रितः ॥ ६० ॥ खद्वयाष्टषडेकांकविक्रियर्द्धिसमृद्धिमान् । शून्यद्वयत्रिशून्यैकप्रोक्तस्तुर्याववोधनः ॥ ६१ ॥ शून्यद्वयर्तुरध्रोक्तख्यातानुत्तरवादिक । खचतुष्काग्निवन्ह्युक्तसपिंडितयतीश्वरः ॥ ६२ ॥ खचतुष्कद्विवाराशिप्रमिताभिरभिष्टुतः । रतिषेणाख्यमुख्याभिरार्यकाभिः समंततः ६३

श्रावके समान वेला धारणकर दीक्षा स्वीकार की ॥ ५१ ॥ उन्होंने कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन शामके समय चित्रा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ आदरपूर्वक दीक्षा धारण की थी ॥ ५२ ॥ उसीदिन उन्हें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था, पारणाके दिन बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उन मुनिराजने वर्द्धमान नामके नगरमें प्रवेश किया था ॥ ५३ ॥ चांदीके समान सफेद कांतिको धारण करनेवाले महाराज सोमदत्तने उन्हें आहारदान दिया जिससे उनके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई सो ठीक ही है क्योंकि पात्रदानसे क्या क्या नहीं प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ उन्होंने शुभास्रवोंके द्वारा पुण्य संपादन किया कर्मोंके समूहका संवर किया, गुप्ति आदिका पालन किया और छह प्रकारके तपश्चरणसे कर्मोंकी निर्जरा की ॥ ५५ ॥ इसतरह छह महीनेतक मौन धारणकर उन्होंने छद्मस्थपना व्यतीत किया और फिर क्षपकश्रेणी चढकर चारों घातिया कर्मोंका नाश किया ॥ ५६ ॥ चैत्र शुक्ला पौर्णमासीके दिन दोपहरके समय चित्रा नक्षत्रमें दूसरेका उपकार करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ५७ ॥ उसीसमय इंद्रोंने आकर उनकी पूजाकी तथा संसारका हित करनेवाले वे भगवान वज्रचामर आदि एकसौ दश गणधरोंसे पूजित हुए ॥ ५८ ॥ उनके समवसरणमें दोहजार तीनसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जाननेवाले थे, दो लाख उनहत्तर हजार शिक्षक थे ॥ ५९ ॥ दशहजार अवधिज्ञानको धारण करनेवाले थे और बारह हजार केवलज्ञानी थे ॥ ६० ॥ सोलह हजार आठसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे और दश हजार तीनसौ मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ६१ ॥ नौहजार छहसौ उत्तरवादी (उत्तर देनेवाले वादी) थे इसतरह सब मिलाकर

त्रिलक्षश्रावकोपेतः श्राविकापंचलक्षवान् । सदेवदेव्यसंख्याताः तिर्यक्संख्यातसंयुतः ॥ ६४ ॥ कुर्वन्धर्मोपदेशेन मोक्षमार्गे तनूभृतः । भव्यान् पुण्योदयेनैव धर्मसत्त्वान्सुखोदये ॥ ६५ ॥ सम्मेदपर्वते मासं स्थित्वा योगान्निरुद्धवान् । सार्द्धं यतिसहस्रेण प्रतिमायोगमास्थितः ॥ ६६ ॥ फाल्गुने मासि चित्रायां चतुर्थ्यामपराह्णगः । कृष्णपक्षे चतुर्थेन समुच्छिन्नक्रियात्मना ॥ ६७ ॥ शुक्लध्यानेन कर्माणि हत्वा निर्वाणमापिवान् । तदैत्य चक्रुः शक्राद्याः परिनिर्वाणपूजनं ॥ ६८ ॥ किं सेव्यं क्रमयुग्ममब्जविजयादस्यैव लक्ष्म्यास्पदं किं श्रव्यं सकलप्रतीतिजननादस्यैव सत्यं वचः । किं ध्येयं गुणसंततिश्च्युतमलस्यास्यैव काष्ठाश्रयादित्युक्तस्तुतिगोचरः स भगवान् पद्मप्रभः पातु वः ॥ ६९ ॥ राजा प्रागपराजितो जितरिपुः श्रीमान् सुसीमेश्वरः, पश्चादाप्य तपोंत्यनामसहितो ग्रैवेयकेंत्येऽमरः । कौशांब्या कृतो गुणैरगणितैरिक्ष्वाकुवंशाग्रणीः षष्ठस्तीर्थकरः परात्महितकृत् पद्मप्रभः शं क्रियात् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पद्मप्रभार्हत्पुराणवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमं पर्व ॥ ५२ ॥

तीन लाख तीस हजार मुनिराज रहते थे ॥ ६२ ॥ रतिषेणाको आदि लेकर चार लाख वीस हजार आर्जिकायें सब ओरसे उनकी पूजा करती थीं ॥ ६३ ॥ तीन लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकायें थीं इनके सिवाय असंख्यात देव देवी थे और संख्यात तिर्यंच थे ॥ ६४ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे वे भगवान उपदेश देकर भव्य जीवोंको मोक्ष मार्गमें लगाते थे और धर्मात्मा जीवोंको सुखके स्थानमें पहुंचाते थे ॥ ६५ ॥ अंतमें सम्मेद शिखरपर जाकर एक महीने तक योगनिरोध किया, एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमायोग धारण किया, तथा फागुन महीनेकी कृष्ण पक्षकी चतुर्थीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय व्युपरतक्रियानिवृति नामके चौथे शुक्लध्यानसे कर्मोंका नाश कर मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया उसीसमय इद्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकी पूजनकी ॥ ६६–६८ ॥ सेवा किसकी करनी चाहिये ? कमलको जीत लेनेसे लक्ष्मीने भी जिन्हें अपना स्थान बनाया है ऐसे भगवान पद्मप्रभके दोनों चरणकमलों की सेवा करनी चाहिये । सुनना क्या चाहिये ? सबको विश्वास वा श्रद्धान उत्पन्न करनेसे इन्हीं भगवानके सत्य वचनों को सुनना चाहिये । ध्यान किसका करना चाहिये ? अठारह दोषोंका नाश करनेवाले उन्हीं पद्मप्रभ भगवानके गुणोंके समूहका ध्यान करना चाहिये । क्योंकि उनके गुण अंतकी सीमाको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सबसे अधिक हैं । इसप्रकार जिनकी स्तुति की जाती है ऐसे वे पद्मप्रभ भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥६९॥ जो पहिले सुसीमा नगरीके राजा शत्रुओंको जीतनेवाले श्रीमान् अपराजित हुए थे । पीछे जो तपश्चरण धारणकर तीर्थंकर नामकर्मका बंधकर अंतिम ग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुए । तदनंतर जो कौशांबी नगरीमें अनंत गुणोंसे सुशोभित, इक्ष्वाकुवंशके शिरोमणि अपना और दूसरोंका हित करनेवाले छठवें तीर्थंकर हुए थे ऐसे श्रीपद्मप्रभ सब लोगोंका कल्याण करें ॥ ७० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीनहिंदीभाषानुवादमें पद्मप्रभका पुराण पूर्णकरनेवाला बावनवां पर्व पूर्ण हुआ॥५२॥

अथ त्रिपंचाशत्तमं पर्व।

तत्त्वं सत्त्वादिना येन नैकेनाप्यवधारितं। तद्वित्तथाप्यसावेव स सुपार्श्वोऽस्तु मे गुरुः ॥ १ ॥ विदेहे धातकीखंडे प्राच्या सीतोत्तरे तटे। सुकच्छविषये नंदिषेणः क्षेमपुराधिपः ॥ २ ॥ प्रज्ञाविक्रमयुक्तस्य स्वानुरक्तानुजीविन। तस्यानुगुणदैवस्य राज्यश्रीः सुखदायिनी ॥ ३ ॥ शरीर न भिषग्रक्ष्य न राज्यमपि मंत्रिभि। तथापि तद्द्वयं तस्य क्षेमवत्सुकृतोदयात् ॥ ४ ॥ पुरुषार्थत्रय तस्मिन्नेकस्मिन्नेव सुस्थित। परस्परोपकारेण तस्मात्तस्योपकारिता ॥ ५ ॥ जितारिभूभुजस्यास्य विजिगीषैहलौकिकी। माभून्नन्वस्ति सन्मार्गं रक्षत पारलौकिकी ॥ ६ ॥ एवं राज्यसुखं श्रीमान् बंधुमित्रानुजीविभिः। सहसानुभवज्जातवैराग्यातिशयः सुधीः ॥ ७ ॥ मोहोभयोदयाविद्धकायवाक्चित्तवृत्तिभिः। बद्ध्वा कर्माणि तैर्नीतो जातो गतिचतुष्टये ॥८॥ संसारे चक्रकभ्रांत्या दुस्तरे दु खदूषितः।

अथ तिरेपनवां पर्व।

जिन्होंने जीवादि तत्त्वोंको सत्त्व असत्त्व आदि किसी एकसे निश्चित नहीं किया है तथापि वे उन तत्त्वोंके जानकार कहलाते हैं ऐसे श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान मेरे गुरु हों ॥ १ ॥ धातकी खंडके पूर्वविदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारेपर सुकच्छा देशके क्षेमपुर नगरमें नंदिषेण नामका राजा राज्य करता था ॥ २ ॥ वह राजा बुद्धिमान और पराक्रमी था, अपने अनुचर वा प्रेम करनेवालोंको योग्य जीविका देकर संतुष्ट करता था इसलिये दैव भी उसके गुणोंके अनुसार ही चलता था इन सब गुणोंके होनेसे उसकी राज्यलक्ष्मी बडी ही सुख देनेवाली थी ॥ ३ ॥ न तो वैद्य लोग उसके शरीरकी रक्षा करते थे और न मंत्री लोग राज्यकी ही रक्षा करते थे तथापि उसके पुण्यकर्मके उदयसे शरीर और राज्य दोनों ही सुखी थे ॥ ४ ॥ धर्म अर्थ काम ये तीनों ही पुरुषार्थ परस्पर एक दूसरेका उपकार करते हुए उस एकमें ही अच्छीतरह ठहर गये थे इसलिये यह एकतरहसे उस राजाका उपकारपना ही था ॥ ५ ॥ शत्रु राजाओंको जीतनेवाले उसकी जीतनेकी इच्छा केवल इस लोकसंबंधी ही नहीं थी किंतु श्रेष्ठ मोक्षमार्गकी रक्षा करनेवाले उसके परलोकके जीतनेकी भी इच्छा थी ॥ ६ ॥ इसप्रकार वह श्रीमान् बंधु मित्र और अनुचरोंके साथ साथ राज्यसुखका अनुभव कर रहा था इतनेमें ही उस बुद्धिमानको वैराग्यका अतिशय उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ वह विचार करने लगा कि रागद्वेष रूप दोनों प्रकारके मोहकर्मके उदयसे मिली हुई मन वचन कायकी प्रवृत्तिसे कर्मोंको बांधकर फिर उन्हीं कर्मोंके उदयसे यह जीव चारों गतियोंमें प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ अत्यं-

वीताद्वौ सुचिरं भ्राम्यन्नय भव्यो यदृच्छया ॥९॥ लब्धकालादिरासोपि मुक्तिमार्गं सुदुर्गमं। रमे रामादिभिर्मुग्धो धिग्धिग्मां कामुकाग्रिमं ॥ १० ॥ निर्मूल्याखिलकर्माणि निर्मलो लोकमूर्ध्वगः। किल नाप्नोमि निर्वाणं सार्वं सर्वज्ञभाषितं ॥ ११ ॥ इत्याविष्कृतसंचिंतः सुस्वांतः स्वस्य संततौ। सुखाप्यात्मजमात्मीयं पतिं धनपतिं सतां ॥ १२ ॥ नरेंद्रैर्बहुभिः सार्धं निर्धूतानो रजो मुदा। अर्हन्नंदनपूज्यांतेवासित्वं प्रत्यपद्यत ॥ १३ ॥ एकादशांगधारी सन्नुक्ततद्योग्यकारणैः। स्वीकृत्य तीर्थकृन्नाम सन्यस्यांते समाधिमान् ॥ १४ ॥ शुक्ललेश्यो द्विहस्तांमको ग्रैवेयकमध्यमे। अहमिंद्र सुभद्राख्ये विमाने मध्यमेऽजनि ॥ १५ ॥ चतुःशतेषु पंचोत्तरेष्वह स्वेष निश्वसन्। सप्तविंशतिवार्ध्यायुरथ भुक्त्वाखिलं सुखं ॥ १७ ॥ शून्यत्रितयसप्तद्विप्रमितान्देषु विश्वणन् ॥ १६ ॥ विक्रियावधिवीर्यैत्विद्व्याप्तासप्तमभूमिकः। आयुरंते ततस्तस्मिन्नागमिष्यति भूतलं।

त कठिनतासे तरने योग्य इससंसारमें अरहटकी घडीके समान भ्रमण करता हुआ यह जीव दुःखसे दूषित हो रहा है। अनादि कालसे बहुत दिनतक भ्रमण करता हुआ आज यह भव्य अपनी इच्छानुसार काल आदि लब्धिको पाकर अत्यंत कठिन ऐसे इस मोक्षमार्गको प्राप्त हुआ है तथापि यह मूर्ख स्त्री आदिकोंके साथ ही क्रीडा करता है इसलिये कामियोंमें भी मुख्य ऐसे मुझे बारबार धिक्कार हो ॥ ९–१० ॥ इसलिये समस्त कर्मोंका नाशकर निर्मल होकर तथा लोकके ऊपर विराजमान होकर सर्वज्ञदेवके कहे हुए और सबका हित करनेवाले निर्वाणको अवश्य ही प्राप्त होऊगा ॥ ११ ॥ इसप्रकार विचारकर और मनमें शांत होकर अपनी प्रजाकेलिये सज्जनोंके स्वामी धनपति नामके अपने पुत्रको स्थापन किया और आप अनेक राजाओंके साथ वनमें जाकर प्रसन्न होकर मोहनीय कर्मका नाश करता हुआ पूज्य अर्हनंदन मुनिका शिष्य बन गया॥१२–१३॥ग्यारह अंगोंको पढकर सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया तीर्थकर नाम कर्मका बंध किया और अंतमें समाधि मरणकर मध्यम ग्रैवेयकके सुभद्र नामके मध्यम विमानमें अहमिंद्र उत्पन्न हुआ, वहांपर उसकी शुक्ल लेश्या थी दो हाथका शरीर था ॥१४–१५॥ चारसौ पांच दिन वा साडे तेरह महीने बाद वह श्वास लेता था, सत्ताईस हजार वर्षबाद मानसिक आहार करताथा ॥१६॥ उसकी विक्रिया ऋद्धि अवधि ज्ञान बल कांति आदि सातवीं पृथ्वी तक थे और सत्ताईस सागरकी उसकी आयु थी। वहांके पूर्ण सुखोंका उपभोगकर आयुके अंतमें जब उसके पृथ्वीपर अवतार लेनेके दिन आए तब इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें श्रीऋषभदेवके वंशमें उत्पन्न हुए सुप्रतिष्ठ नामके महाराज राज्य करते थे, उनकी रानीका नाम पृथ्वीषेणा था, उनके घरके आगनमें छह महीने पहिलेसे ही देवरूपी बादल उत्तम रत्नोंकी वर्षा करने लगे थे। भादों सुदी छठके दिन विशाला नक्षत्रमें उसने

द्वीपेस्मिन् भारते काशिविषये वृषभान्वये ॥ १८ ॥ सुप्रतिष्ठमहाराजो वाराणस्या महीपतिः । तस्यासीत्पृथिवीषेणा देवी तस्या गृहांगणे ॥ १९ ॥ षण्मा-
सात् सारत्नानि ववृषु सुरवारिदाः । सितषष्ठ्यां विशाखायां मासि भाद्रपदे शुभान् ॥ २० ॥ स्वप्नान् षोडश संवीक्ष्य वारणं चाननागतं । ज्ञात्वा पत्यु
फलं तेषां परितुष्टाग्निमित्रके ॥ २१ ॥ शुभयोगे सितज्येष्ठद्वादश्यां तं सुरोत्तमं । सोदपीपदहुत्तुंगमैरावतमिवोर्जितं ॥ २२ ॥ सुरेंद्रैर्मंदरस्याते कृतजन्मम-
होत्सवे । तस्याकारि सुपार्श्वाख्या तत्पादानतमौलिभिः ॥२३ ॥ कोटीनवसहस्रेषु पद्मप्रभजिनांतरे । सागरोपमसंख्येषु गते तद्गतजीवितः ॥ २४ ॥ शू-
न्यषट्युतपक्षोक्तपूर्वजीवी धनुःशतद्वयोत्सेधो विधुं कांत्या ह्रेपयन्नाप यौवनं ॥२५॥ लक्षा पंच सुपूर्वाणां कौमार्ये गतवत्यतः । धनं त्यक्तुं वदान्यो वा साम्राज्यं
स्वीचकार सः ॥ २६ ॥ शुश्रूषाद्यष्टधीयुक्तान् सर्वशास्त्रविशारदान् । नटान्सपेटकान् प्रेक्ष्यान्नर्तकान्नृत्यकोविदान् ॥ २७ ॥ सुकंठान् गायकान् श्रव्यानष्टा-
र्धातोद्यवादकान् । सनर्मरुचिवानन्यान्नानाविद्याकलागुणान् ॥ २८ ॥ स्त्रीश्च तादृग्गुणोपेता गंधर्वानीकसत्तमा । आनीय तस्य देवेंद्रो विनोदैरकरोत्सुखं २९

शुभ सोलह स्वप्न देखे तथा अंतमें मुहमें घुसता हुआ हाथी देखा अर्थात् उस दिन भगवान सुपार्श्वनाथ पृथ्वीषेणाके गर्भमें आए। पृथिवीषेणा पतिसे उन स्वप्नोंका फल सुनकर बहुत संतुष्ट हुई। जेठ सुदी द्वादशीके दिन अग्निमित्र योगमें ऐरावतके समान ऊंचे और पुण्यवान उस अहमिंद्रके जीवको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया ॥ १७-२२ ॥ इंद्रादि देवोंने आकर मेरु पर्वतपर उनका अभिषेककर जन्मोत्सव मनाया सुपार्श्वनाथ उनका नाम रक्खा और वारवार उनके चरण कमलोंमें अपना मस्तक नवाया ॥ २३ ॥ पद्मप्रभके मोक्ष जानेके वाद नौ हजार करोड सागर वीत जानेपर श्रीसुपार्श्वनाथ हुए थे, उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है ॥ २४ ॥ उनकी आयु वीस लाख पूर्वकी थी और शरीरकी ऊंचाई दो सौ धनुष थी, अपनी कांतिसे वे चंद्रमाको लज्जित करते थे, इस तरह उन्होंने यौवन अवस्था प्राप्तकी ॥ २५ ॥ जब पांच लाख पूर्व उनके कुमार कालके व्यतीत हो गये तब केवल त्याग करनेकेलिये दूसरे कुवेरके वा दानीके समान उन्होंने राज्यपद स्वीकार किया ॥ २६ ॥ उन दिनोंमें इंद्र सुश्रूषा आदि आठ प्रकारकी बुद्धिको अच्छी तरह धारण करनेवाले, सव शास्त्रोंमें निपुण, नृत्य करनेमें पंडित, देखने योग्य सुंदर और झुंडके झुंड ऐसे नृत्य करनेवालोंको बुलाकर, सुनने योग्य साडे सात तरहके वाजोंको वजाने वाले तथा जिनके अच्छे कंठ हैं ऐसे गानेवालोंको बुलाकर, विनय करनेवाले मंत्री तथा अन्य अनेक विद्या कला आदि गुणोंको जाननेवाली अनेक स्त्रियोंको बुलाकर, गंधर्व आदिकोंकी उत्तम सेना बुलाकर तथा सबसे अनेक तरहके विनोद कराकर भगवानको प्रसन्न करता था ॥ २७-२९ ॥ बाकी स्पर्शन रसना घ्राण इन तीनों इंद्रियोंके उत्कृष्ट पदार्थोंसे वे निरंतर सुखोंका

शेषेंद्रियत्रयार्थैश्च तत्रोत्कृष्टैर्निरंतरं । सुखं तदेव संसारे यदनेनानुभूयते ॥ ३० ॥ निःस्वेदत्वादिसमामसंभूतातिशयाष्टकः । सर्वप्रियहितालापी निर्व्यापारोरुवीर्यक ॥ ३१ ॥ प्रसन्नोऽनपवर्त्यायुर्गुणपुण्यसुखात्मक । कल्याणकाय त्रिज्ञान प्रियंगुप्रसवच्छवि ॥ ३२ ॥ मंदाशुभानुभागोयं शुभोत्कृष्टशुभावभाक् । निर्वाणाभ्युदयैश्वर्यकंठिकाकातकंठक ॥ ३३ ॥ स्वपादनखसंक्रातनिखिलेंद्रमुखांबुज । एषते श्रीवरोगाधतृप्त्यंभोधौ प्रवृद्धवान् ॥ ३४ ॥ स्वायुराद्यष्टवर्षेभ्यः सर्वेषां परतो भवेत् । उदिताष्टकषायाणा तीर्थेशा देशसंयमः ॥ ३५ ॥ ततोस्य भोगवस्तूना साकल्येपि जितात्मन । वृत्तिर्नियमितैकाभूदसंख्यगुणनिर्जरा ॥ ३६ ॥ पूर्वांगविंशतिन्यूनलक्षपूर्वायुषि स्थिते । विलोक्यर्तुपरावर्त सर्वं भावयतोऽध्रुवं ॥ ३७ ॥ कदाचित्काललब्ध्यास्य विशुद्धोऽभवद्दर्पणे । छायाक्रीडेव सा सर्वा साम्राज्यश्रीरभासत ॥ ३८ ॥ ईदृशी नश्वरी ज्ञाता नेय मायामयी मया । विगिधर्मा के न मुह्यति भोगरागाधचेतस. ॥३९॥

अनुभव करते थे, संसारमें सुख ही वही है जिसे सुपार्श्वनाथ अनुभव करते थे ॥ ३० ॥ शुभनाम कर्मके उदयसे निःस्वेदत्व (पसीनाका न होना) आदि आठ गुणोंसे वे विभूषित थे, सबको प्रिय थे, हितरूप वचन कहते थे। उनका व्यापाररहित अनंत वीर्य था, वे सदा प्रसन्न रहते थे, उनकी आयुका घात नहीं हो सकता था, गुण, पुण्य और सुखरूप थे, उनका शरीर कल्याणस्वरूप था, मति श्रुत अवधि तीनोंको वे धारण करनेवाले थे, प्रियंगुके फूलके समान उनकी कांति थी ॥ ३१–३२ ॥ उनके अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग मंद था और शुभप्रकृतियोंका अनुभाग उत्कृष्ट था तथा मोक्षका अभ्युदय और ऐश्वर्यकी कंठीसे कंठ बहुत ही सुंदर था ॥ ३३ ॥ उनके चरणकमलोंके नखोंकी कांति सब इंद्रोंके मुखकमलोंका तिरस्कार करती थी और लक्ष्मीको धारण करनेवाले वे सुखरूपी अगाध समुद्रमें जगते हुए बढ़ रहे थे ॥ ३४ ॥ सब तीर्थंकरोंके अपनी आयुके प्रारंभके आठ वर्ष बाद ही प्रत्याख्यान और संज्वलनकषायका उदय रहता है अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कषायका उपशम होजाता है इसलिये आठ वर्षके बाद ही सब तीर्थंकरोंके देशसंयम हो जाता है ॥ ३५ ॥ यद्यपि इनके भोगोपभोगकी वस्तुएं सब थीं तथापि आत्माको वश करनेवाले उनके देश संयम होनेसे सब प्रवृत्ति नियमितरूप थी इसलिये उनके असंख्यातगुणी निर्जरा होती थी ॥ ३६ ॥ जब उनकी आयु बीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्वकी रह गई थी तब ऋतुकी पलटनको देखकर संसारके सब पदार्थोंको अनित्य समझने लगे थे ॥ ३७ ॥ उसी किसी एक समय काललब्धिके निमित्तसे उनके निर्मल ज्ञानरूपी दर्पणमें समस्त राज्यलक्ष्मी छायाकी क्रीडाके समान अस्थिर जान पड़ी थी ॥ ३८ ॥ वे विचारने लगे थे कि मैं इस अनित्य राजलक्ष्मीको इसतरहकी नहीं समझ रहा था वास्तवमें यह नित्य नहीं है यह तो मायारूप है इसतरह मिथ्यारूप समझनेवाले इसे बार बार विकार हो अथवा जिनकेचित्त भोगोंके प्रेमसे अंधे हो जाते हैं वे सब मोहित हो ही जाते हैं ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उनके उदार मनरूपी समुद्रमें चंद्रमाके समान ज्ञानका उदय हुआ और उसीसमय

इत्युदात्तो मनोंभोधौ वोधिर्विधुरिवोद्गत । देवर्षयस्तदैत्येनं प्रस्तुतार्थं समस्तुवन् ॥ ४० ॥ सुरैरूढां समारुह्य शिबिका स- मनोंगतिं । सहेतुकवने शुक्ले
ज्येष्ठे षष्ठोपवासभृत् ॥ ४१ ॥ गर्भागमर्क्षे द्वादश्यां सायाह्ने संयम श्रित· । नृपैः सह सहस्रेण तदापोपात्तबोधनं ॥ ४२ ॥ पश्चिमे दिवसे सोमखेटे त
कनकद्युति । नृपो महेंद्रदत्ताख्य प्रतीक्ष्यापामरार्चन ॥ ४३ ॥ सुपार्श्वो मौनमास्थाय छाद्मस्थ्ये नववर्षक । सहेतुकवने मूले शिरीषस्य द्व्युपोषित ४४
गर्भावतारनक्षत्रे कृष्णषष्ठ्यपराह्नग । समुत्पन्नातद्दज्ञान संप्राप्तामरपूजनः ॥ ४५ ॥ बलाख्यमुख्यपंचाग्रनवत्युक्तगणभृद्वृत । शून्यत्रिशून्यपक्षोक्तसर्वपूर्वध-
राधिप ॥ ४६ ॥ शून्यद्विरंध्रवार्ध्यग्निपक्षमानोक्तशिक्षक । शून्यत्रयनवज्ञाततृतीयावगमश्रिन ॥ ४७ ॥ खत्रयैकैकनिर्दिष्टकेवलावगमान्वित । शून्यद्वयत्रि-
पञ्चकसंख्यावैक्रियकार्चित ॥ ४८ ॥ शून्यपञ्चैकरंध्रोक्तमनःपर्ययबोधन । षट्शताष्टसहस्रोक्तवादिवंदितवाक्पति ॥ ४९ ॥ पिंडीकृतत्रिलक्षोक्तमुनिवृंदारका-
धिपः । मीनार्याद्यार्यिकात्रिंशत्सहस्रांतत्रिलक्षक ॥ ५० ॥ त्रिलक्षश्रावक पंचलक्षमतश्राविकार्चितः । असंख्यदेवदेवीड्यस्तिर्यक्संख्यातसंयत ॥ ५१ ॥

लौकांतिक देवोंने आकर समयानुसार पदार्थोंका स्वरूप बतलाकर उनकी स्तुतिकी ॥ ४० ॥ देवोंके द्वारा उठाई गई समनोगति नामकी पालकी पर सवार होकर सहेतुक नामके वनमें गये और ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन गर्भके विशाखा नक्षत्रमें शामके समय वेलाका नियम लेकर एक हजार राजाओंके साथ साथ संयम धारण किया। दीक्षा लेनेके बाद ही उनके मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ४१-४२ ॥ पारणाके दिन सोमखेट नामके नगरमें सुवर्ण-कीसी कांतिवाले राजा महेंद्रदत्तने पडगाहनकर उन्हें आहार दिया था और देवोंके द्वारा पंचाश्चर्योंकी वर्षासे वह पूजित हुआ था ॥ ४३ ॥ तदनंतर नौ वर्ष तक वे सुपार्श्वनाथ भगवान मौन धारणकर छद्मस्थ अवस्थामें रहे थे और फिर सहेतुक वनमें शिरीषके वृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुए थे ॥ ४४ ॥ वहींपर उन्हें फाल्गुन कृष्णा षष्ठीके दिन शामके समय गर्भके विशाखा नक्षत्रमें केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ था और उसी-समय इंद्रादि देवोंने आकर समवसरणकी रचनाकर उनकी पूजा की ॥ ४५ ॥ उनके समवसरणमें बलको आदि लेकर पिचानवे गणधर थे, दो हजार तीस ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार थे ॥ ४६ ॥ दो लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस शिक्षक थे, नौ हजार अवधिज्ञानी थे ॥ ४७ ॥ ग्यारह हजार केवलज्ञानी थे, पंद्रह हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे ॥ ४८ ॥ नौ हजार एक सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे और दिव्यध्वनिके स्वामी उन भगवानकी आठ हजार छह सौ वादी वंदना करते थे ॥ ४९ ॥ इसतरह सब मिलकर तीन लाख मुनियोंके वे नायक थे। इनके सिवाय मीनार्याको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार अर्जिकायें थीं, तीन लाख श्रावक और पांच लाख

धर्मामृतमयीं वाणीं श्राहयन् विहरन्महीं । पश्चात्संहृत्य सम्मेदे विहारं मासमुद्वहन् ॥ ५२ ॥ प्रतिमायोगम ... सहस्रमुनिभि- समं । फाल्गुने कृष्णस-
सम्या राधाया दिनपोदये ॥ ५३ ॥ कृतपंचमकल्याणा कल्पपुण्या सुरोत्तमा । निर्वाणक्षेत्रमत्रेति परिकल्प्यागमन् दिवं ॥ ५४ ॥ दुर्वारा दुरितोरुशत्रुस-
मितिं निष्पक्रधी निष्क्रियन् तूर्णीं युद्धमधिष्ठित कतिपया काष्ठा प्रतिष्ठा गतः। निष्ठां दुष्टतमां निनाय निपुणो निर्वाणकाष्ठामित श्रेष्ठो द्राक्कुरुताचिरं परि-
चितान् पार्श्वे सुपार्श्वं स न ॥ ५५ ॥ क्षेमाख्यपत्तनपतिर्नुतनंदिषेण कृत्वा तपो नवसुमध्यगतेहमिंद्र । वाराणसीपुरि सुपार्श्वनृपो जितारिरिक्ष्वाकुवंश-
तिलकोऽवतु तीर्थकृद्वः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुपार्श्वस्वामिन पुराणं परिसमाप्तं त्रिपंचाशत्तमं पर्व ॥ ५३ ॥

श्राविकायें उनकी पूजा करती थीं, तथा असंख्यात देव देवी और संख्यात तिर्यंच उनकी सेवा करते थे ॥५०–५१॥ इसतरह धर्मामृतरूपी वाणीका उपदेश देते हुये उन्होंने आर्य क्षेत्रकी सब पृथ्वीपर विहार किया। अंतमें विहार करनेका संकोचकर सम्मेद शिखरपर जा विराजमान हुए एक महीनेतक योग निरोधकर प्रतिमायोग धारण किया और फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन राधा अर्थात् विशाखा नक्षत्रमें सूर्योदयके समय एक हजार मुनियोंके साथ साथ मोक्ष पधारे ॥ ५२–५३ ॥ तदनंतर पुण्यवान कल्पवासी उत्तम देवोंने (इंद्रादिकोंने) उसीसमय निर्वाण कल्याणकी पूजा की, सम्मेद शिखरको निर्वाण क्षेत्र ठहराया और फिर सब अपने अपने स्वर्गको चले गये ॥ ५४ ॥ अत्यंत बुद्धिमान और निपुण ऐसे जिन सुपार्श्वनाथ भगवानने अत्यंत कठिनतासे निवारण करनेयोग्य ऐसे पापरूपी बड़े भारी शत्रुओंके समूहको क्रियारहित कर दिया, जिन्होंने मौन धारणकर उनके साथ युद्ध किया, जो कितने ही प्रतिष्ठाओंकी परम सीमातक जा पहुंचे जिन्होंने दुष्ट वासनाओंको दूर किया, जो मोक्षके समीप जा हुंचे और जो सबमें श्रेष्ठ हैं ऐसे श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामी बहुत दिनसे परिचय रखनेवाले हम लोगोंको शीघ्र ही अपने समीप करें। ॥ ५५ ॥ जो पहिले भवमें क्षेमपुर नगरके स्वामी तथा सबके द्वारा वंदना करने योग्य ऐसे नंदिषेण राजा थे, फिर जो तपश्चरणकर मध्यके नवग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुए और फिर जो बनारस नगरमें समस्त शत्रुओंको जीतनेवाले और इक्ष्वाकु वंशके तिलक ऐसे महाराज सुपार्श्वनाथ हुए ऐसे वे सातवें तीर्थंकर भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें सुपार्श्वनाथ स्वामीके
पुराणको समाप्त करनेवाला तिरेपनवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

अथ चतुःपंचाशत्तमं पर्व ।

नीतैकवर्णतां सर्वा सभा य प्रभया स्वया । शुद्धितामनयच्छुद्ध शुद्ध्यै चंद्रप्रभोऽस्तु न ॥१॥ देहप्रभैव वागस्याह्लादिन्यपि च बोधिनी । तन्नमामि नभोभागे सुरतारापरिष्कृत ॥ २ ॥ नामग्रहोपि यस्याघं निहत्यखिलमंगिनां । न हन्यात्किं नु तस्यार्च्यं चरितं श्रुतिगोचर ॥३॥ तत्पुराण ततो वक्ष्ये भवादासप्तमादहं । श्रोतव्य भव्य ते श्रद्धा निधाय मगधाधिप ॥ ४ ॥ दान पूजा तथान्यच्च मुक्त्यै ज्ञानेन सस्कृतं । तत्पुराणश्रुते श्रव्यं तत्तदेव हितार्थिभि ॥५॥ अर्हद्भिर्भाषित सूक्तमनुयोगैश्चतुष्टय । तेषु पूर्वं पुराणानि तस्मात्प्रोक्तः श्रुतिक्रम ॥ ६ ॥ सा जिह्वा तौ मन कर्णौ यैर्वक्तिश्रुतिचिंतना । पूर्वादीनां पुराणाना पुरुषार्थोपदेशिना ॥ ७ ॥ अस्त्यत्र पुष्करद्वीप तन्मध्ये मानुपोत्तर । नृसंसारस्य सीमासौ सर्वतो वलयाकृति ॥ ८ ॥ तदभ्यतरभागे स्तो मदरौ पू-

अथ चौवनवां पर्व ।

जिन्होंने अपनी कांतिसे सब सभाको एक रंगकी बनाकर अत्यंत शुद्ध कर दी ऐसे वे शुद्ध चंद्रप्रभ भगवान हम लोगोंकी शुद्धिके लिये हों अर्थात् हम लोगोंको शुद्ध करें ॥ १ ॥ जो आकाशमें देवोंके समूहरूपी तारा मंडलसे घिरे रहते हैं और शरीरकी कांतिके समान जिनकी वाणी प्रसन्न करनेवाली भी है ऐसे उन चंद्रप्रभ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ जिनका नाम लेना ही जीवोंके समस्त पापोंको नाश कर देता है फिर भला उनका सुना हुआ पुण्य चरित्र क्यों न सब पापोंको दूर कर देगा ? ॥ ३ ॥ इसलिये मैं पहिलेके सात भवोंसे लेकर उनका पुराण कहता हूं । गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कह रहे हैं कि हे भव्य श्रेणिक तू श्रद्धा रखकर सुन ॥ ४ ॥ दान पूजा तथा और भी चारित्र आदि यदि ज्ञानसे मिले हों ज्ञान सहित हों तो मोक्षके कारण होते हैं तथा वह ज्ञान इस पुराणके सुननेसे होता है इसलिये अपना हित चाहनेवालोंको यह पुराण अवश्य सुनना चाहिये ॥ ५ ॥ अरहंत देवने जो, अनुयोगोंके द्वारा चारप्रकारके सूक्त बतलाये हैं उनमें सबसे पहिले पुराण हैं । भगवानने इन पुराणोंसे ही सुनने का क्रम बतलाया है ॥ ६ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको कहनेवाले श्रीवृषभदेव आदि तीर्थंकरोंके पुराणोंको जो जीभ कहती है जो कान सुनते हैं और जो मन इनका विचार करता है संसारमें वही जीभ वही मन और वही कान समझना चाहिये शेष नहीं ॥ ७ ॥ इस मध्यलोकमें एक पुष्कर द्वीप है उसके बीचमें मानुषोत्तर पर्वत है यह मानुषोत्तर पर्वत उस द्वीपमें चारो ओर कंकणके आकारका पडा हुवा है और यही पर्वत संसारकी वा मनुष्य लोककी सीमा है ॥ ८ ॥ उसके भीतर दो मंदराचल हैं एक पूर्व मंदर और दूसरा

वंपश्चिमौ । पूर्वस्मिन्मंदरे देशो विदेहे पश्चिमे महान् ॥ ९ ॥ सीतोदोदक्तटे दुर्गवनखन्याकरोन्विते । अकृष्टपच्यसस्याद्यै सुंगधिर्भूगुणैरभात् ॥१०॥ तस्मिन्देशे जना सर्वे वर्णत्रयविकल्पिता । स्निग्धा सूक्ष्मेक्षणा प्रेक्ष्या विलोचनविशेषवत् ॥ ११ ॥ ऋजवो धार्मिका वीतदोषा क्लेशसहिष्णव । कर्षका सफलारंभा तप स्थाश्च तिशेरते ॥ १२ ॥ जलाशयाश्च सुस्वच्छा सुखभोग्याः सपद्मका । संतापच्छेदिनोगाधा मनोनयनहारिणः ॥ १३ ॥ क्षेत्राणि सर्वधान्यानि सर्वतर्पणि सर्वदा । संपन्नानि महीभर्तु कोष्ठागाराणि वा बभु ॥ १४ ॥ ग्रामा कुक्कुटसपात्या सारा बहुकृपीवला । पशुधान्यधनापूर्णा नित्यारंभा निराकुला १५ ॥ वीतदण्डादिबाधत्वान्निगमा सर्वसंपद । वर्णाश्रमसमाकीर्णास्ते स्थानीयानुकारिण ॥ १६ ॥ असवारिपथोपेत सफलाकंटकद्रुम । अदृष्टाष्टभय प्रातवीयितन्वीवनाश्रयः ॥ १७ ॥ यद्यज्जनपदस्योक्त नीतिशास्त्रविशारदै । लक्षण तस्य तस्याय देशो लक्ष्यत्वमीयिवान् १८-

पश्चिम मदर । पूर्व मंदराचलके पश्चिमकी ओर एक बडा भारी विदेह क्षेत्र है उसकी सीता नदीके उत्तर किनारेपर एक सुगंधि देश है वह देश योग्य किला वन खाई खानें और विना बोये हुए धान्य आदि गुणोंसे बहुत ही सुशोभित था ॥ ९-१० ॥ उस देशमें सब लोग तीन वर्णोंमें विभक्त थे, और विशेष नेत्रोंके समान कोई स्निग्ध (कुछ चिकने) थे, कोई सूक्ष्म देखने योग्य अर्थात् बुद्धिमान थे और कोई देखने योग्य थे ॥ ११ ॥ वहांके धर्मात्मा दोषरहित सरल परिणामी थे तथा सब तरहके क्लेशोंको सहन करनेवाले थे, किसान लोग जो कुछ करते थे वह सब सफल होता था और तपस्वियोंको जो तपश्चरणका फल मिलता है उससे भी अधिक फल उन्हें मिलता था ॥ १२ ॥ वहांके जलाशय अत्यंत स्वच्छ थे, सब कोई सुखसे उनका उपभोग करसकता था, उनमें कमल फूल रहे थे, वे संताप को दूर करनेवाले थे, अगाध थे और मन तथा नेत्रोंको हरण करनेवाले थे ॥ १३ ॥ वहांके खेत सवतरहके धान्योंसे भरे रहते थे वे सदा सबको तृप्त करनेवाले थे और राजाके भरे हुए धानके कोठोंके समान सुशोभित होते थे ॥ १४ ॥ गांव सब इतने समीप थे कि मुर्गा भी उडकर एकसे दूसरे पर जा सकता था, वे सब उत्तम थे, उनमें बहुतसे किसान रहते थे, पशु धन धान्य आदिसे भरपूर थे और सदा कामकाज करनेवाले तथा निराकुल थे ॥ १५ ॥ वे गांव दंड आदिकी बाधासे रहित थे इसलिये वे सब तरहकी संपदाओंसे भरे हुए थे, वर्णाश्रमसे भरपूर थे और वहींके लोगोंका तथा शहरोंका अनुकरण करते थे ॥ १६ ॥ मार्गमें जगह जगहपर कंधेतक जलभरा हुआ था, फल सहित विना कांटोंके वृक्ष थे, वहांपर आठप्रकारके भयमेंसे कोई भी भय दिखाई नहीं पडता था और समीपवर्ती सब गलियां रूपी स्त्रियां वनोंके आश्रय थीं ॥ १७ ॥ नीतिशास्त्रके पंडित लोगोंने देशके जो जो लक्षण कहे हैं वे सब इस देशमें

हानिर्धनस्य सत्पात्रे सत्क्रियायाः फलावधौ। उन्नतेर्विनयस्थाने प्राणस्य परमायुषि ॥१९॥ तुंगेषु कुचयोरेव काठिन्यमति वर्तते। गजेष्वेव प्रपातोऽपि तरुष्वेव दरीषु च (दरीरिपु) ॥२०॥ दण्डश्छत्रे तुलाया च नागरादिपु तीक्ष्णता। रोधनं सेतुबंधेषु शब्दशास्त्रेऽपवादवाक् ॥२१॥ निस्त्रिंशशब्दः खड्गेषु विश्वाशित्वं हुताशने। तापकत्वं खगभीषौ मारकत्वं यमाह्वये ॥२२॥ धर्मो जैनेंद्र एवास्मिन् दिवसे वा दिवाकरः। ततो नैकांतवादानामुलूकानामिवोद्गमः ॥ २३ ॥ दुर्गाण्यष्ट यथास्थानं मातत्येनाशुभस्थितैः। भृतानि यन्त्रशस्त्राम्बुयवसैंधवरक्षकैः ॥२४॥ तस्य मध्ये शुभस्थाने ललाटे वा विशेषकं। विशेषैः सर्वरम्याणां श्रीपुरं वामरंपुरं ॥२५॥ विकसन्नीलनीरेजसरोजालिविलोचनैः। स्वच्छवारिसरोवक्त्रैर्हसत्परपुरश्रियं ॥ २६ ॥ नानाप्रसूनसुस्वादकेसरासवपायिनः। तत्रालिनो

आकर मिलते थे ॥ १८ ॥ उस देशमें धनकी हानि केवल सत्पात्रोंको देते समय होती थी, क्रियाकी हानि उसका फल प्राप्त होनेपर होती थी, उन्नतिकी हानि विनयकी जगहपर होती थी और प्राणोंकी हानि उत्कृष्ट आयुके बीत जानेपर होती थी ॥ १९ ॥ यदि ऊंची चीजोंमें कठिनता थी तो कुचोंमें ही थी दूसरी जगह नहीं इसीतरह प्रपात अर्थात् पडना भी केवल हाथियोंमें था अर्थात् हाथियोंसे मद वहता था, अथवा तराईके नीचे उत्पन्न होनेवाले वृक्षों का भी पतन होता था ॥ २० ॥ दंड छत्रोंमें अथवा तराजूमें था, तीक्ष्णता सोंठ मिरच आदिमें ही थी, रोकना केवल पुलोंमें ही था और अपवाद केवल व्याकरणशास्त्रमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २१ ॥ निस्त्रिंश अर्थात् निर्दयता यह शब्द केवल तलवारमें था विश्वाशित्व अर्थात् सब चीजें खा जाना यह शब्द केवल अग्निमें ही था दूसरी जगह नहीं तापकत्व अर्थात् संताप देनेवाला यह शब्द केवल सूर्यमें था और मारकत्व अर्थात् मारनेवाला यह शब्द केवल यमराजमें था दूसरी जगह नहीं ॥ २२ ॥ जिसप्रकार सूर्य दिनमेंही रहता है उसीप्रकार उसदेशमें धर्म शब्द केवल जिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्ममें ही था दूसरी जगह नहीं इसलिये ही वहां उल्लुओंके समान एकांतवादियोंका उदय नहीं था ॥ २३ ॥ उस देशमें सदा अपने अपने स्थानपर रक्खे हुए यंत्र शस्त्र जल जौ नमक और रक्षक इनसे भरे हुए किले थे ॥ २४ ॥ उस देशके मध्यभागमें ललाटके समान शुभस्थानमें सबतरहकी मनोहर वस्तुओंसे भरा हुआ स्वर्गके नगरके समान श्रीपुर नगर था ॥ २५ ॥ उस नगरमें जो खिले हुए नील कमलोंके दलोंपर जो भ्रमर बैठे थे वे उसके नेत्रके समान थे और स्वच्छ जलसे भरे हुए सरोवर ही मुंहके समान थे, अतः उन नेत्र और मुहसे वह नगर ऐसा जान पडता था मानों दूसरे नगरोंकी शोभाकी ओर हस रहा ही हो ॥ २६ ॥ वहांपर अनेक तरहके फूलोंके स्वादिष्ट केसरके रसको पीनेवाले भ्रमर भ्रमरियोंके समूहके साथ इसप्रकार जा रहे थे मानो पानक (जिसमें कुछ स्वादिष्ट और पौष्टिक

लिनीवृंदै प्रयांत्यापानकोत्सव ॥ २७ ॥ तदुत्तुंगमहासौधगेहै समुरजारवैः । विश्राम्यंतु भवतोत्रेत्याह्वयद्वा घनाघनान् ॥२८॥ तदेव सर्ववस्तूनामाकरीभूत-
मन्यथा । तानि निष्ठा न किं यांति तथा भोगैर्निरंतरं ॥२९॥ यद्यदालोक्यते तत्तत् स्वत्रभोगेषु सत्तम । भ्रातिः स्वर्गोयमेवेति करोति मरुतामपि ॥ ३०॥
सत्कुलेषु समुद्भूता तत्र सर्वेपि सव्रता । उत्पद्यते यत प्रेत्य स्वर्गजा शुद्धदृष्टय ॥ ३१ ॥ स्वर्ग किमीदृशो वेति तत्रस्थाश्चारुदर्शना । मुक्त्यर्थमेव
कुर्वंति धर्मं न स्वर्गमेधया ॥ ३२ ॥ तत्रोत्सवे जना पूजा मंगलार्थं प्रकुर्वते । शोके तदपनोदार्थमेते जैनीं विवेकिन ॥ ३३ ॥ साध्यार्थी इव साध्यते
जैनवादे सहेतुमि । धर्मार्थकामास्तज्जातैरमेयसुखदायिन ॥ ३४ ॥ द्वीपार्द्धचक्रवालो वा प्राकारो यत्परीतवान् । भियेव रविसंतापाल्लीनोऽभून्मणिरश्मि-
षु ॥ ३५ ॥ श्रीषेणो नाम तस्यासीत् पतिः सुरपतिद्युति- । नतारिमौलिरत्नांशुवार्विकासिक्रमाबुज ॥ ३६ ॥ पाति यस्मिन भुव जिष्णौ दुष्टा विगतवि-

रस पीया जाय) उत्सवमें ही जा रहे हों ॥२७॥ वहांके ऊंचे ऊंचे राजभवनोंपर जो नगाडे बज रहे थे वे ऐसे जान पडते थे मानों "आप यहां ठहरिये विश्राम कीजिये" इसप्रकार गर्जते हुए बादलोंको ही बुला रहे हों ॥ २८ ॥ ऐसा जान पडता था मानों वह नगर सब वस्तुओंका खजाना था । यदि वह खजाना न होता तो इसतरह सब वस्तुओंका उपभोग करते हुए भी वे समाप्त क्यों नहीं होतीं ॥ २९ ॥ वहांपर जो जो चीज दिखाई पडती थी वह सब स्वर्गसे भी अच्छी जान पडती थी इसलिये यही नगर स्वर्ग है ऐसा देवोंको भी भ्रम हो जाता था ॥ ३० ॥ वहांके लोग सब अच्छे कुलोंमें उत्पन्न हुए थे और सभी व्रती थे क्योंकि प्रायः स्वर्गके रहनेवाले शुद्ध सम्यग्दृष्टि ही आकर वहां उत्पन्न होते थे ॥३१॥ उस नगरको और वहांके लोगोंको देखकर लोग यही कहते थे कि क्या स्वर्ग ऐसा ही है अथवा स्वर्गके रहनेवाले क्या ऐसे ही सुंदर हैं ? इसलिये वहांके लोग जो धर्म करते थे वह मोक्षकेलिये ही करते थे स्वर्ग मिलनेकी इच्छासे नहीं ॥ ३२ ॥ वहांके बुद्धिमान् लोग किसी उत्सवमें मगल कामनाकेलिये श्रीजिनेंद्र देवकी पूजा करते थे और किसी शोकमें उसे दूर करनेकेलिये भी जिनराजकी ही पूजा करते थे ॥ ३३ ॥ वहांके जैन वादी लोग अनेक तरहके सुख देनेवाले धर्म अर्थ कामोंको साध्य (सिद्ध करने योग्य) पदार्थोंके समान उन्हींसे उत्पन्न हुए हेतुओंसे सिद्ध करते थे ॥ ३४ ॥ उस नगरके चारों ओर जो कोट था वह ऐसा जान पडता था मानों आधे पुष्कर द्वीपमें मानुषोत्तर पर्वत ही आ पडा हो । वहांपर लगे हुए मणियोंमें जो प्रतिबिंब पडता था उससे ऐसा जान पडता था मानो वह सूर्यके संतापसे डरकर मणियोंकी किरणोंमें ही लीन हो गया हो ॥ ३५ ॥ उस नगरमें इंद्रकीसी कांति धारण करनेवाला श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था, जो शत्रु आकर उसे नमस्कार करते थे उनके मस्तकमें लगे हुए रत्नोंकी कांतिरूपी जलमें प्रफुल्लित हुए उसके दोनों चरण कमल बहुत ही अच्छे जान पडते थे ॥ ३६ ॥ जिस-

क्रिया॰ । अभूवन्शक्तिवन्मंत्रसन्निधौ वा भुजगमा ॥ ३७ ॥ उपाया येन सचिंत्य यथास्थानप्रयोजिता । ददु फलमतिस्फीतं समाहर्तृवदर्थितं ॥ ३८ ॥ श्रीकांता नाम तस्यासीद्वनिता विनयान्विता । सती मृदुपदन्यासा सत्कवेरिव भारती ॥ ३९ ॥ रूपाद्या स्त्रीगुणास्तस्या समुत्पन्ना॰ सुखावहाः । सुता इव सदा पाल्या वद्याश्च गुरुवत्सतां ॥ ४० ॥ अरीरमन्मन पत्युस्तस्या रूपादयो गुणा॰ । स्यादेवकारसयुक्ता नया इव मनीषिण ॥ ४१ ॥ प्रतिच्छंद परस्त्रीणा वेधसैषा विनिर्मिता । गुणानामिव मंजूषा स्वमतिप्रतिपत्तये ॥ ४२ ॥ अपारं सुखमच्छिन्न सस्नेह समतृप्तिद । मिथुन सतसमापोर्भिर्मिथुन नामरं परं ॥ ४३ ॥ स कदाचिन्महीनाथो निष्पुत्रत्वाच्छुचाहित । इति स्वगतमेकाकी सततार्थमचिंतयत् ॥ ४४ ॥ स्त्रिय ससारवल्लर्य सत्पुत्रास्तत्फलायिता॰ । न चेत्ते तस्य रामाभिः पापाभि किं नृपापिन॰ ॥ ४५ ॥ य पुत्रवदनाभोज नापश्यद्दैवयोगत । पङ्कजश्रीमुखाब्जेन दृष्टेनाप्यस्य तेन किं

प्रकार शक्तिवाले मंत्रके समीप सर्प सब क्रियारहित हो जाते हैं उसीप्रकार जब सबको जीतनेवाला वह पृथ्वीका पालन करने लगा था तब दुष्ट लोग सब क्रियारहित हो गये थे ॥ ३७ ॥ उसने अच्छे उपाय सोच सोचकर यथायोग्य स्थानोंमें लगाये थे और उनसे बहुत ही अच्छे फल उत्पन्न हुए थे मानो सब मांगकर ही इकट्टे किये हों ॥ ३८ ॥ उसके बडी विनय करने वाली श्रीकांता नामकी रानी थी जोकि ठीक किसी अच्छे कविकी वाणीके समान थी क्योंकि वाणी जिसप्रकार सती अर्थात् अच्छी और मृदुपदन्यासा अर्थात् सरल पदोंवाली होती है उसीप्रकार वह रानी भी सती थी और मृदुपदन्यासा अर्थात् कोमल चरण रखनेवाली अच्छी चाल चलनेवाली थी ॥३९॥ रूप आदि स्त्रियोंके जो जो गुण हैं वे सब उसमें सुख देनेवाले उत्पन्न हुए थे वे पुत्रके समान सदा पालन करने योग्य थे और गुरुके समान सज्जनोंके द्वारा नमस्कार करने योग्य थे ॥ ४० ॥ जिसप्रकार स्यात् और एव इन शब्दोंसे मिले हुए नय बुद्धिमानोंके मनको प्रसन्न करते हैं उसीप्रकार उसके रूप आदि गुण पतिके मनको प्रसन्न करते थे ॥ ४१ ॥ नाम कर्म रूपी विधाताने मानों अपनी बुद्धि प्रगट करनेके लिये गुणोंकी पेटीके समान अन्य सब स्त्रियोंके नमूनाके समान ही वह बनाई थी ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार देव देवांगनाओंका जोडा होता है उसीप्रकार एक साथ तृप्त करनेवाले, स्नेह सहित, और कभी न नाश होनेवाले अपार सुखको अनुभव करनेवाले वे दोनों ही स्त्री पुरुष आ मिले थे ॥ ४३ ॥ किसी एक दिन वह राजा पुत्र न होनेका कुछ शोक करने लगा और एकांतमें बैठकर पुत्रकेलिये अपने मनमें ही इसप्रकार सोचने लगा कि ॥ ४४ ॥ स्त्रियां संसारकी बेल हैं और अच्छे पुत्र उनके फल हैं । यदि पुत्र न हुए तो उस पापी मनुष्यकेलिये उन पापिनी स्त्रियोंसे क्या लाभ है ॥ ४५ ॥ जिस मनुष्यने अपने भाग्यके उदयसे पुत्रके

॥ ४६ ॥ तत पुरोधस प्राप्तुं सुतं सदुपदेशत । अनर्घ्यैर्मणिमि पंचवर्णैरंचितकांचनै ॥४७॥ विधाय जिनबिंबानि प्रातिहार्यै सहाष्टभि । भृंगारादिविनि-
र्दिष्टै सगतान्यष्टमगलै ॥ ४८ ॥ प्रतिष्ठाकल्पसंप्रोक्तै प्रतिष्ठाप्य क्रियाक्रमै । कृत्वा महाभिषेकं च जिनसंगममंगलै ॥४९॥ गंधोदकै स्वयं देव्या सहैवा-
स्नात्स्तुवन् जिनान् । व्यधादाष्टाह्निकीं पूजां ऐहिकामुत्रिकोदर्यां ॥५०॥ याते कतिपयैर्देवी दिनै स्वप्नान् व्यलोकत । गजसिंहेंदुपद्माभिषेकानीपद्विनिद्रिता
॥ ५१ ॥ तदैव गर्भसंक्रातिरभूत्तस्यास्तत क्रमात् । आलस्यमरुचिस्तद्रा जुगुप्सा वा निमित्तिका ॥ ५२ ॥ अशक्तयोरिवान्योन्यं विजेतुं सुचिरान्मुखं ।
कुचयोरादधौ तस्या कालिमानं दिने दिने ॥ ५३ ॥ योषिता भूषणं लज्जा श्लाघ्यं नान्यद्विभूषणं । इति स्पष्टयितुं वेषा सर्वचेष्टा स्थिता ह्रिया ॥ ५४ ॥
तस्या भाराक्षमत्वेन भूषणान्युचितान्यपि । दिवस्ताराकुलानीव निशाते स्वल्पता ययु ॥ ५५ ॥ वाच परिमिता स्वल्पवित्तस्येव विभूतय । चिरं वि-

मुखरूपी कमलको नहीं देखा उसे छह खंडकी लक्ष्मीके मुखकमलको देखनेसे भी क्या लाभ है ॥ ४६ ॥ तदनंतर पुत्र प्राप्त होनेकेलिये उसने पुरोहितके उपदेशसे बहुमूल्य पांचों रंगोंके मणियोंसे मिले हुए सुवर्णकी जिनप्रतिमाएं वनवाई, उनके साथ साथ आठ प्रातिहार्य और भृंगार आदि आठों तरहके मंगल द्रव्य बनवाये प्रतिष्ठाकल्पमें कही हुई विधिके अनुसार प्रतिष्ठा कराई और फिर उनका महाभिषेक किया। भगवानकी स्तुति करते हुए उसने भगवानके समागमसे मंगल रूप हुए गंधोदकसे स्वयं स्नान किया अर्थात् वह गंधोदक सब शरीरसे लगाया और रानी श्रीकांताके सब शरीरसे भी लगाया, उसके बाद उसने इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें सुख देनेवाली अष्टाह्निककी पूजाकी ॥ ४७ ५० ॥ इसतरह थोडेसे दिन बीत जानेपर किसी एक दिन कुछ कुछ जगती हुई उस रानीने हाथी सिंह चंद्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ये चार स्वप्न देखे ॥ ५१ ॥ उसीसमय उसके गर्भ रहा तथा अनुक्रमसे आलस्य और अरुचि होने लगी तंद्रा आने लगी और विना ही कारणके ग्लानि होने लगी ॥ ५२ ॥ उसके दोनों कुच मानों एक दूसरेको जीतनेमें अशक्त थे इसलिये ही मानों बहुत दिनवाद दिनपर दिन उन दोनोंके मुख काले पडते जाते थे ॥ ५३ ॥ स्त्रियोंके लिये एक लज्जा ही प्रशंसनीय आभूषण है इसके सिवाय और कोई अच्छा आभूषण नहीं है इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये मानो उसकी सब चेष्टायें लज्जासहित हो गई थीं ॥ ५४ ॥ जिसप्रकार सवेरेके समय ताराओंका समूह नहीं रहता उसीप्रकार उससमय मानों भार धारण करनेकी शक्ति न होनेसे ही उसके उचित आभूषण भी निकल पडे थे वे उसके शरीरपर बहुत ही थोडे रहगये थे ॥५५॥ तुच्छ हृदयवाले मनुष्यकी विभूतिके समान उसके वचन भी परिमित ही निकलते थे और बहुत देर पीछे विश्राम लेलेकर सुनाई पड-

धर्म यथोचितं ॥ ७५ ॥ भोगतृष्णामपास्याशु धर्मतृष्णात्तमानस । दत्वा श्रीवर्मणे राज्यं प्राव्राजीत्तज्जिनांतिके ॥ ७६ ॥ श्रीवर्मापि जिनेंद्रोक्तया धूत-मिथ्यामहातमा । आस्थात्तुर्यगुणस्थानमारुह्य सोपानमुच्यते ॥ ७७ ॥ सन्निधाने च तस्याय सन्निधापयति स्वय । यथाकाममशेषार्थास्तै स प्रापेप्सित सुख ॥ ७८ ॥ असौ कदाचिदासाढपौर्णमासीदिने जिनान् । उपोष्याभ्यर्च्य सत्स्वाप्तैरात्रा हर्म्यतले स्थित ॥ ७९ ॥ विलोक्योपातमुल्काया भोगसारे विरक्तवान् । प्राग्विश्राणितसाम्राज्य श्रीकांताग्रसूनवे ॥ ८० ॥ अभ्याशे श्रीप्रभेशस्य दीक्षित्वा सुचिर तप । विधाय विधिवत्प्रांते सन्यस्य श्रीप्रभे गिरौ ॥ ८१ ॥ श्रीप्रभे प्रथमे कल्पे विमाने सागरोपम–द्वित्वायु श्रीधरो नाम्ना देव समुदपद्यत ॥ ८२ ॥ अणिमादिगुण सप्तहस्तो वैक्रियकागभाक् । चतुर्थलेश्यो मासेन नि श्वसन् मनसाहरत् ॥ ८३ ॥ वर्षद्वयसहस्रेण पुद्गलानमृतात्मकान् । तृप्त कायप्रवीचाराद्व्याप्ताद्यक्ष्मानलावधि ॥ ८४ ॥ बलतेजो महाविक्रियाभि स्वावधिसमित । सुस्थितोनुभवन्सौख्यं स्वपुण्यपरिपाकजं ॥ ८५ ॥ दक्षिणे धातकीखंडे प्राचीष्वाकारपर्वतात् । भारते विषये श्रीमदल

किये और यथायोग्य धर्मका स्वरूप सुना ॥ ७५ ॥ उसने शीघ्र ही भोगोंकी तृष्णा छोडदी और धर्मकी तृष्णामें चित्त लगाया, राजकुमार श्रीवर्माको राज्य दिया और उन्हीं जिनराजके समीप दीक्षा धारण करली ॥ ७६ ॥ श्रीवर्माने भी श्रीजिनेंद्रदेवकी आज्ञानुसार मिथ्यात्वरूपी महा अंधकारको दूर किया और मोक्षमार्गकी प्रथम सीढीरूप चौथा गुणस्थान ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ उस चौथेगुणस्थान वा सम्यग्दर्शनके होते हुए ऐसे पुण्य कर्मोंका बंध वा उदय होता है कि जो इच्छानुसार सब पदार्थोंको अपने समीप करलेते हैं और उन पदार्थोंसे फिर इच्छानुसार सुख प्राप्त होता है ॥७८॥ किसी एक समय असाढ शुक्ला पौर्णमासीके दिन भगवान जिनेंद्रदेवकी उपासनाकर पूजा की और रातको अपने बडे लोगोंके साथ मकानकी ऊपरकी गच्चीपर जा बैठा ॥ ७९ ॥ वहांपर उसने उल्कापात देखा, देखते ही वह साररूप भोगोंसे भी विरक्त हुआ और श्रीकांत नामके बडे पुत्रको राज्य देकर श्रीप्रभ नामके मुनिराजके समीप दीक्षा धारणकर तपश्चरण करने लगा, बहुतदिन तक तपश्चरण किया और अंतमें श्रीप्रभ नामके पर्वतपर विधिपूर्वक संन्यास धारणकर शरीर छोडकर पहिले स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें दो सागरकी आयु पाकर श्रीधर नामका देव हुआ ॥ ८०–८२ ॥ उसके अणिमा महिमा आदि सब गुण थे, सात हाथका वैक्रियक शरीर था पीत लेश्या थी, एक महीने बाद श्वास लेता था, दो हजार वर्ष बाद अमृतरूप पुद्गलोंका मानसिक आहार लेता था, कायप्रवीचारसे तृप्त होता था और पहिली पृथ्वीतक उसका अवधिज्ञान व्याप्त था ॥ ८३–८४ ॥ अवधिज्ञानके क्षेत्रके समान ही उसका बल तेज और विक्रिया ऋद्धि थी तथा वह स्वस्थ होकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए सुखोंका अनुभव करता था ॥८५॥ तदनंतर धातकी

काल्ये पुरोत्तमं ॥ ८६ ॥ अयोध्यत्रं नृपस्तस्मिन्नाभवदजितंजय । आसीदजितसेनास्य देवी सुतसुखप्रदा ॥ ८७ ॥ सा कदाचित्तनूजाप्त्यै परिपूज्य जिनेश्वरान् । सुप्ता तच्चिंतया स्वप्नान्विलोक्याष्टौ शुभान्निमान् ॥ ८८ ॥ गजेंद्रवृषसिंहेंदुरवीन् पद्मसरोवरं । शंखं पूर्णघट चैतत् फलान्यप्यजितजयात् ॥ ८९ ॥ गजात्पुत्रं गभीरं गो सिंहेनानंतवीर्यकं । चंद्रेण तर्पकं तेज प्रतापाढ्यं दिवाकरात् ॥ ९० ॥ सरसा शंखचक्रादि द्वात्रिंशल्लक्षणान्वितं । शखेन चक्रिणं पूर्णकुंभाद् ज्ञात्वा निधीशिनं ॥ ९१ ॥ तुष्टा कतिपयैर्मासैस्त श्रीधरमजीजनत् । व्यधादजितसेनाख्यां राजास्य जितविद्विषः ॥ ९२ ॥ तेन तेजस्विना राजा सद्भास्करेण वा । दिवसो निरजास्ताद्दक् तनूज- कुलभूषणं ॥ ९३ ॥ स्वयंप्रभाख्यतीर्थेशमशोकवनमागतं । परेत्य सपरीवार- संप्राप्याभ्यर्च्य संनतं ॥ ९४ ॥ श्रुत्वा धर्मं सतां त्याज्यं राज्यं निर्जितशत्रवे । प्रदायाजितसेनाय स्वयम्यासीत्स केवली ॥९५॥ राजलक्ष्म्या कुमारोपि स्वयं स वशीकृतः ।

जंबूद्वीपमें दक्षिणकी ओर इष्वाकार पर्वतके पूर्व भरतक्षेत्रके अलका नामके देशमें अयोध्या नामका उत्तम नगर है उसमें अजितंजय नामका राजा राज्य करता हुआ सुशोभित था उसके पुत्र और सुखदेनेवाली अजितसेना नामकी रानी थी ॥ ८६–८७ ॥ किसी एक दिन पुत्र प्राप्तिकेलिये उसने श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की, रातको पुत्रकी चिंता करती हुई सोगई और प्रभातके समय नीचे लिखे हुए आठ स्वप्न देखे ॥ ८८ ॥ हाथी, बैल, सिंह, चंद्रमा, सूर्य, पद्मसरोवर, शंख और पूर्ण घट ये स्वप्न देखे और महाराज अजितंजयसे उनके फल भी सुने ॥ ८९ ॥ महाराजने कहा कि हाथीके देखनेसे पुत्र गंभीर होगा बैल और सिंहके देखनेसे अनंत वीर्यवाला होगा, चंद्रमाके देखनेसे सबको प्रसन्न करनेवाला होगा, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी और प्रतापी होगा सरोवर देखनेसे शंख चक्र आदि उसके बत्तीस लक्षण होंगे, शंख देखनेसे चक्रवर्ती और पूर्ण घट देखनेसे निधियोंका स्वामी होगा ॥ ९०–९१ ॥ स्वप्नोंके इन फलोंको सुनकर रानी बहुत ही संतुष्ट हुई और थोडे महीने पीछे उसने श्रीधर देवके जीवको उत्पन्न किया और राजाने शत्रुओंको जीतनेवाले इसका नाम अजितसेन रक्खा ॥ ९२ ॥ जिसप्रकार सूर्यसे दिवस सुशोभित होता है उसीप्रकार वह राजा उस तेजस्वी पुत्रसे सुशोभित होता था, सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा निर्दोष पुत्र होना कुलका भूषण होता है ॥ ९३ ॥ किसी दूसरे दिन अशोक नामके वनमें स्वयंप्रभ नामके तीर्थंकर पधारे थे राजा अजितंजयने परिवारसहित जाकर उनकी पूजाकी, नमस्कार किया, धर्मका स्वरूप सुना तथा सज्जनोंको त्याग करनेयोग्य ऐसे राज्यको शत्रुओंको जीतनेवाले अपने पुत्रको देकर संयम धारण किया और अंतमें केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ९४–९५ ॥ इधर उस कुमारको अपने आप आसक्त हुई राज्यलक्ष्मीने आकर अपने वश कर लिया और वह युवावस्थामें ही प्रौढके समान

प्रोढ एव युवा रा ां मुख्य सोऽन्वभुवेविवान् ॥ ९६ ॥ तत्पुण्यपरिपाकेन चक्ररत्नादिचक्रिणः । यद्यत्तत्तत्समुत्पन्न चेतनेतरभेदक ॥ ९७ ॥ चक्रमाक्रांत दे-
क्चक्रमस्य तस्योद्भवे भवत् । पुनर्दिग्विजयो जेतु पुरवाह्यविहारवत् ॥ ९८ ॥ नासु गोऽनेन कोप्यासीन्न परिग्रहमूर्च्छना । षट्खण्डाधीशिनोप्यस्य पुण्य
पुण्यानुवधि यत् ॥ ९९ ॥ दु ग स्वकर्मपाकेन सुख नदनुपालनात् । प्रजाना तस्य साम्राज्ये तत्तामि सोऽभिनयते ॥ १०० ॥ देवविद्याधराधीशमुकुटा-
ग्रेषु सद्युतीन् । विच्छायीकृत्य रत्नांशूंस्तदाज्ञैवोच्छिखावभौ ॥१०१॥ नित्योदयस्य चेन स्यात्पद्मानंदकृतो वल । चण्डद्युते कथ पाति शक्रोऽध्यक्ष स्वय
दिशं ॥ १०२ ॥ निधिर्वेधा नयेदग्नि स्थापनेद्राक्षिणु दिश । स्वयोनिदाहिना कोपि क्वचित्केनापि रक्षित ॥ १०३ ॥ पालको मारको वेति नातक सर्व
भक्षिण । किं वेत्ति वेधास्त पातुं पाविन परिकल्पयन् ॥ १०४ ॥ शुन स्थाने स्थितो दीनो नित्य यमसमीपग । स्वजीविते सदेहयो नैऋत कस्य

इच्छानुसार मुख्य सुखोंका अनुभव करने लगा ॥ ९६ ॥ उसके पुण्य कर्मके उदयसे चक्रवर्तीके चक्ररत्न आदि चेतन अचेतनके भेदसे जो सामग्री होती है वह सब आ उत्पन्न हुई थी ॥ ९७ ॥ उसके सब दिशाओंके समूहको जीतनेवाला चक्र उत्पन्न हुआ था और फिर नगरके बाहर विहार करनेके समान उस विजयी राजाके दिग्विजय हुआ था ॥ ९८ ॥ न तो उसके किसीप्रकारका दुख था और न परिग्रहोंमें मूर्च्छा वा ममत्व परिणाम ही था । यद्यपि वह छहों खंडोंका स्वामी था तथापि उसके पुण्य कर्मोंका बंध करनेवाला ही पुण्यकर्मोंका उदय था ॥ ९९ ॥ उसके राज्यमें प्रजाको जो दुःख होता था वह अपने अपने कर्मके उदयसे होता था (राजाकी ओरसे नहीं) और सुख उसके पालन करनेसे होता था इसलिये वह प्रजा भी उसे बहुत कुछ मानती थी ॥ १०० ॥ देव और विद्याधरोंके मुकुटोंके ऊपर जो बडी कांतिवाले रत्न लगे थे उनकी किरणोंको तो वह कांतिरहित कर देता था और अपनी आज्ञारूपी ऊंची शिखाको कायमकर वह बहुत ही सुशोभित होता था ॥ १०१ ॥ यदि कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले और नित्य उदय होनेवाले ऐसे सूर्यका बल न होता तो इद्र स्वामी होकर भी स्वयं पूर्वदिशाका पालन कैसे करता ॥ १०२ ॥ विधाता अवश्य ही बुद्धिहीन है क्योंकि यदि वह बुद्धिहीन न होता तो भला अग्नेय दिशाकी रक्षा करनेकेलिये अग्निको क्यों स्थापना करता ? इसका कारण यह है कि अग्नि लकडीसे उत्पन्न होती है और वह फिर उसी लकडीको जला देती है जो अपने उत्पन्न करनेवालेको ही जला देता है वह भला किसीतरह भी क्या दूसरेकी रक्षा करसकता है ? कभी नहीं ॥ १०३ ॥ क्या कभी मारनेवाला भी रक्षा करनेवाला होता है क्या विधाताको यह बात मालूम नहीं है कि यमराज सबको भक्षण करता है फिर भी उसने दक्षिण दिशाकी रक्षा करनेकेलिये उसी पापीको नियत किया

पालक ॥ १०५ ॥ कालुलीलां विलम्यालं पाशहस्तो जलप्रिय । स नदीनाश्रय: पाशी प्रजाना केन पालक ॥ १०६ ॥ धूमध्वजसखोऽस्थास्नु स्वयं मर्त्यांश्च चालयन् । पालक स्थापितस्तादृक् स किमेकत्र तिष्ठति ॥ १०७ ॥ लुब्धो न लभते पुण्यं विपुण्य केन पालक । धनेन चेददाता तत् गुह्यकोपि न पालक ॥ १०८ ॥ ईशानोंत्या दशा यातो गणने सर्वपश्चिम । पिशाचावेष्टितो दुष्ट कथमेष दिश. पतिः ॥ १०९ ॥ कल्पतान् बुद्धिवैकल्यात्तत्प्रमार्ष्टुं प्रजापतिः । व्यधादेकमिमं मन्ये विश्वदिक्पालनक्षम ॥ ११० ॥ इत्युदात्तवचोमाला विरचय्याभिसंस्तुत । विक्रमाक्रांतदिक्चक्र शक्रादीन् सोतिलंघते ॥ १११ ॥ धन दाने मतिर्धर्मे शौर्यं भूताभिरक्षणे । आयु सुखे तनुर्भोगे तस्य वृद्धिमयाच्चिरं ॥ ११२ ॥ अपरायसमच्छिन्नमवाधमयवर्द्धन । गुणाद् पुण्यान् दितृप्ण सन् सुखेन सुखमीयिवान् ॥ ११३ ॥ ऋतं वाचि दया चित्ते धर्मकर्मणि निर्मल । स्वान्गुणान् वा प्रजा पाति राजर्षि केन नास्तु स ॥

हैं ॥ १०४ ॥ जो कुत्तेके स्थानपर अर्थात् नीची जगह वा वाहर रहता है, जो दीन है सदा यमराजके समीप रहता है और अपने जीवनमें भी जिसे संदेह है ऐसा नैऋत भला किसकी रक्षा कर सकता है ॥ १०५ ॥ जिसे जल ही प्रिय है और जो नदीनाश्रय अर्थात् दीन दुखियोंको कभी आश्रय नहीं देता अथवा नदीनाश्रय अर्थात् समुद्रोंके आश्रय रहता है ऐसा वरुण प्रजाकी रक्षा किसतरह कर सकता है ॥ १०६ ॥ जो अग्निका तो मित्र है खुद चंचल है कभी एक जगह नहीं रहता, दूसरोंको चलाता रहता है ऐसा वायु रक्षा करनेकेलिये नियत किया है सो क्या वह कभी एक जगह ठहर सकता है ? कभी नहीं ॥ १०७ ॥ जो लोभी है वह कभी पुण्य संचय नहीं कर सकता और जो पुण्य हीन है वह किस धनसे रक्षा करसकता है इसलिये कभी दान न देनेवाला कुवेर भी रक्षक नहीं हो सकता ॥१०८॥ ईशान भी अंतिम दशाको प्राप्त हुआ है अर्थात् सब दिशाओंके अंतमें उसका निवास है गिनतीमें भी वह सबके पीछे है पिशाचोंसे घिरा हुआ है और दुष्ट है इसलिये वह दिशाओंका स्वामी किसतरह हो सकता है ॥ १०९ ॥ इसतरह मुझे मानना पडता है कि इन दिक्पालोंकेलिये इसप्रकार बुद्धिकी कल्पनाकर और अपने उस दोषको दूर करनेकेलिये ही विधाताने मानों इस अजितसेनको सब दिशाओंको पालन करनेमें समर्थ बनाया था ॥ ११० ॥ इसप्रकार जो उदार वचनोंके समूहोंको उत्पन्नकर सबके द्वारा स्तवन किया जाता अर्थात् ऐसेवचनोंके द्वारा सब जिसकी प्रशंसा करते हैं और जिसने अपने पराक्रमसे सब दिशाओंके समूहको आक्रमण किया है ऐसा वह अजितसेन इंद्रादिकोंको भी उलंघन करता था ॥ १११ ॥ उसका धन दानमें खर्च होता था, बुद्धि धर्ममें लगती थी, पराक्रम जीवोंकी रक्षा करनेमें, आयु सुखमें और शरीर भोगमें काम आता था तथा उसकी वृद्धि सदा होती रहती थी ॥ ११२ ॥ उसके पुण्यकी

११४ ॥ मन्ये नैसर्गिकं तस्य सौजन्यं कथमन्यथा । प्राणहारिणि पापेपि रिपौ नोपैति विक्रियां ॥ ११५ ॥ नहि मूलहर कोपि नापि कोपि कदर्यक । तादात्विकोपि तद्राज्ये सर्वे सद्व्ययकारिणः ॥ ११६ ॥ इति तस्मिन् महीं पाति सौराज्ये सति भूपतौ । प्रजाः प्रजापतिं मत्वा तमैधंत सुमेधसं ॥ ११७ ॥ रत्नानि निधयश्चास्य चतुर्दश नवाभवन् । नवयौवनसप्राप्तौ प्राप्तपुण्योदयात् प्रभो ॥ ११८ ॥ भाजन भोजन शय्या चमूर्वाहनमासन । निधीरत्न पुरं नाट्यमिति भोगान्दशान्वभूत् ॥ ११९ ॥ श्रद्धादिगुणसपन्न स कदाचिन्महीपति । अरिंदमाय दत्त्वान्न सते मासोपवासिने ॥ १२० ॥ गृहीतनवपुण्यात्मा वसुधारादिपंचक । प्राप धर्मनाप्य किं सदनुष्ठानतत्परैः ॥ १२१ ॥ असौ मनोहरोद्याने गुणप्रभजिनेशिन । परेद्युः प्राप्य तत्प्रोक्त धर्मसारं रसायन ॥

वृद्धि दूसरेके आधीन नहीं थी, कभी नष्ट नहीं होती थी और न कभी उसमें किसी तरहकी बाधा आती थी, वह तृष्णारहित होकर गुणोंका पालन करता हुआ बडे सुखसे सुखको प्राप्त होता था ॥ ११३ ॥ वचनोंमें सत्यता थी, हृदयमें दया थी धर्म कर्ममें वह निर्मल था तथा अपने गुण और प्रजाकी वह रक्षा करता था इसलिये उसे कौन राजर्षि नहीं कहता था ॥ ११४ ॥ मुझे तो ऐसा विश्वास है कि सुजनता उसका स्वाभाविक गुण था यदि वह स्वाभाविक न होता तो प्राण हरण करनेवाले पापी शत्रुपर भी वह क्यों विकृत नहीं होता था ॥ ११५ ॥ उसके राज्यमें न तो कोई मूलहर—पूर्वजोंके कमाये हुए धनको अन्यायमार्गसे केवल खाने पीनेमें उडादेनेवाला था, न कोई कदर्यक वा कृपण-कुटंब सेवक आदिको दुखदेकर धन बचानेवाला था और न तादात्विक-आगेका विचार न कर मिले हुए धनको केवल अयोग्य कार्योंमें खर्च करनेवाला था, उसके राज्यमें सब लोग अच्छे कामोंमें ही खर्च करनेवाले थे ॥ ११६ ॥ इसप्रकार जब उसका सुराज्य हो रहा था वह पृथ्वीका पालन कर रहा था उससमय सब प्रजा उस बुद्धिमानको ब्रह्मा मानकर बढाती थी ॥ ११७ उस प्रभुके पहिलेके पुण्यकर्मोंके उदयसे नव यौवनकी प्राप्ति होते ही नौ निधि और चौदह रत्न उत्पन्न हुए थे ॥ ११८ ॥ भाजन (वर्तन) भोजन, शय्या, सेना, सवारी, वैठनेके आसन, निधि, रत्न, नगर और नाट्य (गाना बजाना) इन दशोंप्रकारके भोगोंका वह अनुभव करता था ॥ ११९ ॥ किसी एक समय उस अजितसेन महाराजने एक महीनेके उपासे और सज्जन ऐसे अरिंदम नामके मुनिराजको श्रद्धा आदि गुणोंसे विभूषित होकर आहारदान दिया ॥ १२० ॥ उस आहारदानसे उसने नये पुण्यकर्मोंका बंध किया और उसके घर रत्नोंकी वर्षा आदि पांचों आश्चर्य हुए सो ठीक ही है क्योंकि जो श्रेष्ठ अनुष्ठान करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें क्या प्राप्त नही होता है ? अर्थात् उन्हें सब कुछ प्राप्त हो सकता है ॥ १२१ ॥ वह अजितसेन राजा किसी दूसरे दिन मनोहर

पीत्वा स्वभवसंबंधश्रुतिबुप्रचोदितः । सद्यो निर्विद्य साम्राज्य वितीर्य जितशत्रवे ॥ १२३ ॥ त्रैलोक्यजयिनं जेतुं मोहराजं कृतोद्यम । रामाभिर्बहुभि सार्द्धं गृहीत्वा साधनं तप ॥ १२४ ॥ चरित्वा निरतीचार तनुं त्यक्त्वायुपोवधं । नभस्तिलकगिर्यग्रे शांतकारविमानग ॥ १२५ ॥ अच्युतेंद्रोजनिष्टास्तवार्द्धिद्वा विंशतिस्थिति । हस्तत्रयप्रमाणात्तनिर्धातुतनुभास्कर ॥ १२६ ॥ शुक्लेश्य श्वसन्मासैरेकादशभिराहरन् । द्वाविंशतिसहस्राब्दैर्मनसाहारमामरं ॥ १२७ ॥ तम प्रभावधिव्यासदेशावधिविलोचन । तत्क्षेत्रव्यापिसत्तेजोवलोत्तरशरीरभाक् ॥ १२८ ॥ दिव्यभोगांश्चिर भुक्त्वा स्वायुरंते विशुद्धदृक् । प्राग्भागे धातकीखंडे सीतादक्षिणकूलगे ॥ १२९ ॥ विषये मंगलावत्यां रत्नसंचयपू.पतिः । देव्यां कनकमालाया वल्लभ कनकप्रभ ॥ ३० ॥ पद्मनाभ सुतो आ तस्तयो सुस्वप्नपूर्वकं । बालानुकूलपर्युष्टिविशेषै सोभ्यवर्द्धत ॥ १३१ ॥ उपयोगक्षमाशेषपर्याप्तिपरिनिष्ठित । आरोप्य त व्रतं राजा विद्यागृहमवीविशत् ॥ १३२ ॥ अभिजातपरीवारो दासहस्तिपकादिकान् । दूरीकृत्य स नि शेषा विद्या शिक्षितुमुद्ययौ ॥ १३३ ॥ तथेंद्रियततिस्तेन पराजीयत सा यथा ।

नामके उद्यानमें गुणप्रभ नामके तीर्थंकरकी वंदना करनेकेलिये गया । वहांपर उनके कहेहुए उत्तम धर्मरूपी रसायनका पान किया, अपने पहिले भवके संबंध सुने और उन्हींसे प्रेरित होकर वह शीघ्र ही विरक्त हुआ तथा उसने अपना राज्य जितशत्रुकेलिये समर्पण करदिया ॥ १२२–१२३ ॥ वह राजा तीनों लोकोंको जीतनेवाले मोहराजको जीतनेका प्रयत्न करने लगा और अनेक राजाओंके साथ मोहको जीतनेका साधन तपश्चरण धारण किया ॥ १२४ ॥

उसने अतिचार रहित तपश्चरण किया और आयुके अंतमें नभस्तिलक नामके पर्वतपर शरीरको छोडकर सोलहवें अच्युत स्वर्गमें शांतिकार नामके विमानमें इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांपर उसकी बाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था और धातु उपधातुरहित सूर्यके समान उसका शरीर था ॥१२५–१२६॥ उसके शुक्ल लेश्या थी, वह ग्यारह महीने पीछे श्वास लेता था और बाइस हजार वर्ष बाद देवोंका मानसिक आहार लेता था ॥१२७॥ तमप्रभा नाम की छट्ठी पृथ्वीतक उसका अवधिज्ञानरूपी नेत्र पहुंचता था, और वहीं तक उसका तेज बल और शरीरकी विक्रिया पहुच सकती थी ॥१२८॥ उसने बहुत दिनतक दिव्य भोगोंका अनुभव किया और फिर आयुके अंतमें शुद्ध सम्यग्दृष्टी वह पूर्व धातकीखंडमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर मंगलावती देशके रत्नसंचयपुरमें राजा कनकप्रभ और रानी कनकमालाके शुभ स्वप्नोंके द्वारा सूचना देकर पद्मनाभ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ तथा बालकोंके योग्य विशेष विशेष आदरसत्कारोंके द्वारा वह बढने लगा ॥ १२९–१३१ ॥ उपयोग क्षमा आदि सब पर्याप्तियोंके (योग्य गुणोंके) पूर्ण हो जानेपर राजाने उसे व्रत देकर विद्यागृहमें प्रवेश कराया ॥१३२॥ कुलीन विद्वानोंके साथ रहनेवाला वह

निजार्थै सर्वभावेन तनोति प्रीतिमात्मन ॥ १३४ ॥ स धीमान् वृद्धसंयोगं व्यधाद् विनयवृद्धये । विनय शास्त्रनिर्णीत कृत्रिम सहजोऽपर ॥१३५॥ त सपूर्णकलं प्राप्य कातं सहजकृत्रिमौ । राजानं गुरुशुक्रा वा रेजतुर्विनयौ भृशं ॥ १३६ ॥ स धीमान् षोडशे वर्षे निरेजे प्राप्य यौवन । वनं मुण्डु विनीतात्मा सयतो वा जितेन्द्रिय ॥ १३७ ॥ रूपान्वयवय शिक्षासम्पन्न तमविक्रिय' । भद्र गज विनीतात्मा समालोक्य सुत पिता ॥ १३८ ॥ विद्या-पूजा विधायास्य जिनपूजापुर:सरं । सस्कृतस्येव रत्नस्य व्यधाद् बुद्धि क्रियातरे ॥ १३९ ॥ कलाभिरिव बालेंदुं शुक्लपक्षसमाश्रयात् । रम्यं राजा तमूर्जो वा प्रमदाभिरपूरयत् ॥ १४० ॥ तस्य सोमप्रभादीना देवीनामभवन् सुता । शुभा सुवर्णनाभाद्या भास्करस्येव भानव ॥ १४१ ॥ पुत्रपौत्रादिभि: श्रीमान् परीत कनकप्रभ । स्वराज्य पालयनेव सुखेनान्येद्युरुद्घभी ॥ १४२ ॥ मनोहरवने धर्मं श्रीधराज्जिनपुगवात् । श्रुत्वा नियोज्य साम्राज्य सूनौ संयम्य

राजकुमार दास महाव्रत आदि सबको दूरकर सब विद्याओंको सीखनेकेलिये उद्यम करने लगा ॥ १३३ ॥ उसने इंद्रियोंके समूहको इसतरह जीत रक्खा था कि वे इद्रियां सबरूपसे अपने विषयोंके द्वारा केवल आत्माके साथ ही प्रेम करती थीं ॥१३४॥ वह बुद्धिमान् केवल विनयको बढानेके लिये वृद्ध लोगोंकी संगति करता था। शास्त्रोंसे निर्णयकर विनय करना कृत्रिम विनय है और स्वभावसे ही विनयकरना अकृत्रिम है ॥ १३५ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाके समीप गुरु और शुक्र सुशोभित होते हैं उसीप्रकार सब कलाओंको जाननेवाले और मनोहर ऐसे, उस राजकुमारके समीप कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों प्रकारके विनय बहुत ही अच्छे सुशोभित होते थे ॥ १३६ ॥ जिसप्रकार विनयी और जितेंद्रिय संयमी वनको पाकर सुशोभित होता है उसीप्रकार वह बुद्धिमान् राजकुमार भी सोलहवें वर्षमें यौवनको पाकर सुशोभित हुआ था ॥ १३७ ॥ उसके विनयी पिताने रूपके समान ही अवस्था और शिक्षामें सुशोभित, तथा विकार रहित भद्र जातिके हाथीके समान उसे देखकर बडी प्रसन्नतासे उसकी विद्याकी पूजाकी अर्थात् विद्या समाप्तकी और श्रीजिनेंद्र देवकी पूजाकर संस्कार किये हुये रत्नके समान उसकी बुद्धि दूसरी क्रियामें लगाई ॥१३८–१३९॥ जिसप्रकार शुक्लपक्षके संयोगसे कलाओंके द्वारा बाल चंद्रमाकी पूर्ति की जाती है उसीप्रकार उस तेजस्वी राजाने अनेक स्त्रियोंके द्वारा उस मनोहर राजकुमारकी पूर्तिकी भावार्थ–अनेक कन्याओंके साथ उसका विवाह किया ॥ १४० ॥ जिसप्रकार सूर्यसे किरणें उत्पन्न होती हैं उसीप्रकार उसके सोमप्रभा आदि देवियोंसे सुवर्णनाभि आदि अच्छे अच्छे पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १४१ ॥ इसप्रकार पुत्र पौत्र आदिसे सुशोभित वह श्रीमान राजा कनकप्रभ सुखसे अपना राज्य पालन करता था। किसी दूसरे दिन जिसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे उस राजाने मनोहर नामके वनमें श्रीधर नामके जिनेंद्र देवसे

निर्वृतः ॥ १४३ ॥ पद्मनाभश्च तत्रैव गृहीतोपासकव्रतः । तत्रावापगतव्यासिममात्यैः सप्रवर्तयन् ॥ १४४ ॥ विभ्रमहाससंस्पर्शविनोदैरतिपेशलैः । कामिनीनां कलालापैः सविलोलैर्विलोकनैः ॥ १४५ ॥ अनंगपूर्वरंगस्य पुष्पाजलिनिभैः शुभैः । समप्रेमसमुत्पन्नैः प्रसादं प्राप चेतसः ॥ १४६ ॥ कामकल्पद्रुमोद्भूत परिपक्वं फलोत्तमं । रामाप्रेमोपनीतं सा सीमासीत्तस्य निर्वृतेः ॥ ४७ ॥ प्राक्तनोपात्तपुण्यस्य फलमेतदिति स्फुटं । प्रबोधयन्नसौ मूढानूदवीसि रभूत्सुखी ॥ १४८ ॥ सोपि श्रीधरसान्निध्ये बुद्ध्वा धर्मं बुधोत्तमः । संसारमोक्षयाथात्म्यमात्मन्येवमचिंतयत् ॥ १४९ ॥ यावदौदयिको भावस्तावत्संसृतिरात्मनः । स च कर्माणि तत्कर्म तावद्यावत्सकारण ॥ १५० ॥ कारणान्यपि पंचैव मिथ्यात्वादीनि कर्मणः । मिथ्यात्वे सत्यवश्यं स्यात्तत्र शेष चतुष्टयं ॥ १५१ ॥ असंयमे त्रयं द्वे स्तः प्रमादे योगसंज्ञके । कषाये नि:कषायस्य योग एव हि बंधकृत् ॥ १५२ ॥ स्वस्मिन् स्वस्मिन् गुणस्थाने मिथ्यात्वादेर्विनाश-

धर्मका स्वरूप सुना और अपना राज्य पुत्रको देकर संयम धारणकर मुक्त हुआ ॥ १४२–१४३ ॥ राजा पद्मनाभने भी उन्हीं जिनराजसे श्रावकके व्रत स्वीकार किये तथा अपने मंत्रियोंके साथ स्वराज्य और परराज्य की नीतियोंका विचार करता हुआ निवास करने लगा ॥ १४४ ॥ परस्परके समान प्रेमसे उत्पन्न हुए और कामदेवके पूर्वरंगकी शुभ पुष्पांजलिके समान अत्यंत कोमल स्त्रियोंकी विनय, हंसी, स्पर्श विनोद मनोहर बात चीत और चचल चितवनोंके द्वारा वह अपने चित्तको प्रसन्न करता था ॥ १४५-१४६ ॥ कामदेवरूपी कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुए स्त्रियोंके प्रेमसे प्राप्त हुए तथा पके हुए भोगोपभोगरूपी उत्तम फल ही उसके वैराग्यकी सीमाको प्राप्त हुए थे अर्थात् उन्हीं भोगोंसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ था ॥ १४७ ॥ ये सब भोगोपभोग पहिले किये पुण्यकर्मके फल हैं इसी बातको मानों मूर्ख लोगों को स्पष्ट रीतिसे बतलाता हुआ वह तेजस्वी सुखी हुआ था ॥ ४८ ॥ उस उत्तम बुद्धिमानने श्रीधरमुनिके समीप ही धर्मका स्वरूप सुना तथा संसार और मोक्षके यथार्थ स्वरूपको अपने ही आत्मामें इसप्रकार चिंतवन करने लगा ॥ १४९॥ कि जबतक आत्माके औदयिक भाव हैं तबतक इसको संसारमें परिभ्रमण करना पडता है तथा वे भाव तब तक रहते हैं जबतक कि कर्म रहते हैं और कर्म तबतक रहते हैं जबतक कि उनके कारण रहते हैं ॥ १५० ॥ कर्मोंके कारण मिथ्यात्वादिक पांच हैं तथा जहां मिथ्यात्व रहता है वहां बाकीके चार कारण अवश्य रहते हैं ॥ १५१ ॥ असंयममें असंयम रहता है और बाकीके प्रमाद कषाय योग ये तीन रहते हैं। प्रमादमें-प्रमत्तगुणस्थान में प्रमाद रहता है और बाकीके कषाय योग ये दो रहते हैं। कषाय अर्थात् सात आठ नौ दश गुणस्थानोंमें कषाय रहता है और बाकी एक योग रहता है और कषायरहित ग्यारह बारह तेरहवे गुणस्थानमें एक योगसे ही

नात्। स्वहेतोस्तत्कृतो बंधस्तत्र तत्र विनश्यति ॥ १५३ ॥ सदादित्रितयं नश्यत्पश्चात्तच स्वकालतः। आपर्यंतगुणस्थानात्तत्क्षयात्संसृतेः क्षयः ॥ १५४ ॥ संसारे प्रलयं याते पापे जन्मादिलक्षणे। क्षायिकैरात्मना भावैरात्मन्यात्मा समेधते ॥ १५५॥ इति तत्त्वं जिनोद्दिष्टमजानानोऽधवाचिरं। भ्रांतः संसारकांतारे दुर्गे दुःखी दुरंतके ॥ १५६ ॥ असंयमादिकं सर्वमुज्झित्वा कर्मकारणं। शुद्धश्रद्धादिमोक्षांगपंचकं समुपैम्यहं ॥ १५७ ॥ इत्यतस्तत्त्वतो ज्ञात्वा पद्मनामा हिताहिते। दत्त्वा सुवर्णनाभाय प्राभवं वाह्यसंपदः ॥ १५८ ॥ राजभिर्बहुभिः सार्द्धं संयमं प्रतिपद्य सः। समाचरच्चतुर्भेदं प्रसिद्धं मुक्तिसाधने ॥ १५९ ॥ द्व्यष्टकारणसंप्राप्तभावनो नामतीर्थकृत्। स्वीकृत्यैकादशांगाब्धिपारगः परमं तपः ॥ १६० ॥ सिंहनिःक्रीडिताद्युग्रं विधायायुष्यदुस्तरे। कलांते सम्यगाराध्य समुत्सृष्टशरीरकः ॥ १६१ ॥ वैजयंते त्रयस्त्रिंशत्सागरायुरजायत। पूर्वोक्तदेहलेश्यादिविशेषो दिव्यसौख्यभाक् ॥ १६२ ॥ तस्मिन्

बंध होता है ॥ १५२ ॥ अपने अपने गुणस्थानमें कारणरूप मिथ्यात्वादिके नाश होनेसे वहांपर उनसे होनेवाला बंध भी नष्ट हो जाता है। भावार्थ–असंयममें मिथ्यात्वका नाश होनेसे मिथ्यात्वसे होनेवाला बंध भी नहीं होता है। इसीतरह प्रमादमें असंयम नष्ट होनेसें असंयमसे होनेवाला बंध नहीं होता है इसीप्रकार आगे समझलेना चाहिये ॥ १५३ ॥ पहिले सत्ता बंध और उदय नष्ट होते हैं उनके नाश होनेसे चौदहवें गुणस्थानतक अपने अपने कालके अनुसार कर्म नष्ट होते हैं तथा कर्मोंके नाश होनेसे संसारका नाश हो जाता है ॥ १५४ ॥ जो पापस्वरूप है और जन्ममरण ही जिसका लक्षण है ऐसे संसारके नाश होनेपर आत्माके क्षायिक भाव रह जाते हैं और फिर यह आत्मा उन्हीं क्षायिक भावोंसे अपने ही आत्मामें सदा बढता रहता है ॥ १५५ ॥ इसप्रकार जिनेंद्रदेवके कहे हुए तत्त्वोंको नहीं जानता हुआ यह जीव जिसका अंत मिलना अत्यंत कठिन है ऐसे किलेके समान संसाररूपी वनमें दुखी होकर अंधेके समान बहुत दिनतक परिभ्रमण किया करता है ॥ १५६ ॥ इसलिये मैं कर्मोंके कारण ऐसे असंयम आदि सबको छोडकर शुद्ध श्रद्धा आदि जो मोक्षके पांचों अंग हैं उन्हें धारण करूंगा ॥ १५७ ॥ इसप्रकार पद्मनाभने अंतःकरणमें हिताहितका यथार्थ स्वरूप जाना और राज्य आदि बाह्य संपदाओंकी प्रभुता सब सुवर्णनाभिके लिये समर्पण कर दी ॥ १५८ ॥ तदनंतर उसने अनेक राजाओंके साथ साथ दीक्षा धारणकी और मोक्षके कारण जो चारों आराधनायें हैं उनका पालन करने लगा ॥ १५९ ॥ ग्यारह अंगरूपी महासागरके पार होकर उसने परम तपश्चरण धारण किया और तीर्थंकर नामकर्मका बंध करनेवालीं सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया ॥ १६० ॥ जो अज्ञानियोंकेलिये बहुत कठिन है ऐसे सिंहनिष्क्रीडित आदि कठिन तपश्चरणोंको करके आयुके अंतमें अच्छीतरह

षण्मासशेषायुष्यागमिष्यति भूतले । द्वीपेस्मिन् भारते वर्षे नृपश्चंद्रपुराधिपः ॥ १६३ ॥ इक्ष्वाकु काश्यपो वंशगोत्राभ्यामद्भुतोदय । महासेनो महादेवी लक्ष्मणा स्वगृहांगणे ॥ १६४ ॥ वसुधारा सुरै प्राप्ता देवीभि प्रविरिता । दिव्यवस्त्रगालेपशयनादिसुशोभिता ॥ १६५ ॥ चैत्रस्य कृष्णपचम्या स्वमान् याममनोहरे । दृष्ट्वा पोडश संतुष्य समुच्छायोदिते रवौ ॥ १६६ ॥ पुण्यप्रसाधनोपेतो स्ववक्त्रार्पितसमदा । स्वप्नान् सिंहासनासीनं स्वानवाजीगमत्पति ॥ १६७॥ सोपि स्वावधिवोधेन तत्फलानि पृथक् पृथक् । राज्ञे निवेदयामास सापि सतोषसम्भृता ॥ १६८ ॥ कांति लज्जां धृतिं कीर्ति बुद्धि सौभाग्यसंपदं । श्रीह्रीधृत्यादिदेवीषु वर्धयंतीषु संतत ॥ १६९ ॥ पापारितिकादर्शां सा शक्रयोगे सुरार्चितं । अहमिंद्रमतर्क्याभ त्रिबोधमुदपादयत् ॥ १७० ॥ तदैवाभ्येत्य नाकीशो महामंदरमस्तके । सिंहासन समारोप्य सुनाप्य क्षीरवारिभि ॥ १७१ ॥ विभूष्य भूषणै सर्वैर्बुध्वा त्रैलोक्यकंठिका । मुदा वीक्ष्य

समाधिमरण धारण किया और शरीर छोडकर जयंत विमानमें अहमिंद्र उत्पन्न हुआ । वहांपर उसकी तेतीस सागरकी आयु थी वैजयंत विमानमें देह लेश्या आदि जो पहिले कह आये हैं वह सब उसके थीं इसतरह वह दिव्य सुखोंका अनुभव करता था ॥ १६१–१६२ ॥

जब उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और पृथ्वीपर आनेके उसके दिन समीप आगये तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें चंद्रपुर नगरमें राजा महासेन राज्य करता था वह इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ था काश्यप उसका गोत्र था और उसकी विभूति बहुत बडी थी । उसकी महादेवीका नाम लक्ष्मणा था उसके घरके आंगनमें देवोंने रत्नोंकी वर्षा की, अनेक देवियां उसकी सेवा करनेको आईं और दिव्य वस्त्र माला लेप शयन आदि सुखकी सामग्रीसे उनकी सेवा करने लगीं ॥ १६३–१६५ ॥ चैत्र कृष्णा पंचमीके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें उसने संतुष्ट होकर सोलह स्वप्न देखे, सूर्य उदय होते ही वह उठी स्नानकर वस्त्रालंकार पहिनकर अपने मुखसे ही अनंदित करती हुई राजाके समीप पहुंची और सिंहासनपर विराजमान महाराजको अपने देखे हुए सोलह स्वप्न कह सुनाये ॥ १६६–१६७ ॥ महाराजने अवधिज्ञानसे जानकर रानीसे उन सबके फल अलग अलग कहे सुनकर वह बहुत संतुष्ट हुई । श्री, ह्री, धृति, आदि देवियां उसकी कांति लज्जा धैर्य, कीर्ति, बुद्धि और सौभाग्य संपदाको वढा रही थीं । इसतरह कितने ही दिन बीत जानेपर पौष कृष्णा एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें जिसकी कांतिको कोई तर्क वितर्क भी नहीं करसकता, अनेक देव जिसकी पूजा करते हैं और जो मति श्रुति अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाला है ऐसे उस अहमिंद्रके जीवको उस देवीने उत्पन्न किया ॥ १६८–१७० ॥ उसीसमय इंद्र आया और मेरुपर्वतके मस्तकपर सिंहासनपर विरा-

सहस्राक्षो व्यवहारप्रसिद्धये ॥ १७२ ॥ कुरु कुवलयस्यास्य यस्माद्वे व्यक्रमत्तरा । यतस्ततश्चकाराख्या साथं चंद्रप्रभ प्रभो ॥ १७३ ॥ आनदनाटक चास्य निर्वर्त्याग्रे शचीपति । पुनरानीय तत्पित्रोरर्पयित्वा जगत्पतिं ॥ १७४ ॥ भोगोपभोगयोग्योरुवस्तुभि परिचर्यता । भगवानिति सदिश्य यक्षेश स्वाश्रय ययौ ॥ १७५ ॥ प्रबोधमहता स्त्रीत्वमपि निंद्य जगत्पते । लोकोपकारिण प्राप्ते सपुण्या लक्ष्मणामिमां ॥ १७६ ॥ पावनीं स्तुत्यता नीत्वा देवाश्चापन् मह्याफलं । स्त्रीतेदृशी वरिष्ठेति मेनिरेऽनिमिषागना ॥ १७७ ॥ गतेनतरसताने सागरोपमकोटिभि । शतैर्नवभिरेषोभूत्तदभ्यंतरजीवित ॥ १७८ ॥ शून्यपर्कैकपूर्वायु सार्द्धचापशतोच्छ्रिति । अवर्द्धतेव शीतांशु कलाशेषो जगन्नुत ॥ १७९ ॥ इत स्वामिंस्त्वमेहीति कुतूहलविलासिनी । प्रसारितकरन्यस्ततलाभोजसमाश्रय ॥ १८० ॥ अकारणसमुद्भूतस्मितकांतमुखाबुज । कदाचित्प्रस्खलत्पादविन्यासो मणिकुट्टिमे ॥ १८१ ॥ इत्यादि तद्वयोयोग्यमुग्ध-

जमानकर क्षीरसागरके जलसे उस बालकका अभिषेक किया ॥ १७१ ॥ उन्हें सबतरहके आभूषणों से विभूषित किया, तीनों लोकोंकी कंठी उनके गलमें बांधी और फिर प्रसन्न होकर हजार नेत्र बनाकर उन्हें देखा। उनके उत्पन्न होते ही यह कु-वलय अर्थात् पृथ्वी मंडलका समूह अथवा कुवलय अर्थात् कमोदिनियोंका समूह प्रफुल्लित होगया था इसलिये इंद्रने व्यवहारमें प्रसिद्ध होनेकेलिये उन प्रभूका चंद्रप्रभ ऐसा यथार्थ नाम रक्खा ॥ १७२–१७३ ॥ तदनंतर इंद्रने उन भगवानके सामने आनंद नाटक किया और फिर तीनों लोकोंके स्वामी उन भगवानको वापिस लाकर माता पिताको समर्पण किया ॥१७४॥ फिर "भगवानको उपभोग करनेकेलिये भोगोपभोगके योग्य ऐसी उत्तम वस्तुओंका संयोग कराते रहो" इसतरह यक्षको आज्ञा देकर वह इंद्र अपने स्थानपर चला गया ॥ १७५ ॥ विद्वान लोग स्त्रीपर्यायको निंद्य बतलाते हैं तथापि संसारभरका उपकार करनेवाले और तीनों लोकोंके स्वामी ऐसे भगवानको धारण करनेसे यह लक्ष्मणा देवी बडीही पुण्यवती है बडी ही पवित्र है इसप्रकार स्तुतिकर देव लोग बडेभारी पुण्य फलको प्राप्त होते थे तथा "इसप्रकारकी स्त्रीपर्याय भी सबसे उत्तम है" इस बातको सब देवांगनायें मानने लगी थीं ॥१७६–१७७॥ श्रीसुपार्श्वनाथके मोक्ष जानेके बाद नौसौ करोड सागर वीत जानेपर उन्हींकी संतानमें चंद्रप्रभ स्वामी हुए थे उनकी आयु भी इसीसमयमें शामिल है ॥ १७८ ॥ दश लाख पूर्वकी उनकी आयु थी और डेढसौ धनुष ऊंचा उनका शरीर था। संसारमें जिसतरह द्वितीयाका चंद्रमा बढता है उसतरह बढने लगे ॥ १७९ ॥ कौतूहल करनेवालीं देवियां उन्हें खिलाती थीं कभी कहती थीं 'हे स्वामी आप इधर पधारिये'। कभी वे हाथकी हथेलीरूप कमलोंको फैलाकर बैठते थे, कभी विना ही कारणके उत्पन्न हुई थोडीसी हंसीसे उनका मुखकमल बहुत ही सुंदर दिखता था और कभी

शुद्धविचेष्टितैः ।. नीत्वा बाल्यं स कौमारमाप प्राथ्यं सुखार्थिभि. ॥ १८२ ॥ अमृतैस्तनुमेतस्य कृता मन्यामहे वयं । वेधसेति जनालापा प्रवर्तंते स कौतुकात् ॥ १८३ ॥ आधिक्याद्भावलेश्यैव निर्गतेवेक्षणप्रिया । द्रव्यलेश्या व्यभासिष्ट जित्वा पूर्णेंदुजद्युतिं ॥ १८४ ॥ यशसा लेश्यया चास्य ज्योतिषां छादिता द्युति । भोगभूमिनिवृत्तेति प्रतोषमकरोज्जन. ॥ १८५ ॥ द्युतिस्तस्य द्युतीवांभान्मिश्रिता रविचंद्रगोः । ततसदा व्यकसन्मन्ये पद्मानि कुमुदान्यपि ॥ १८६ ॥ कुंदहासा गुणास्तस्य चंद्रस्येवांशवोऽमला । विकाशयति भव्यानां मन.कुवलयावलिं ॥ १८७ ॥ सहोत्पत्तेः श्रियोनेन सोदर्यंदोरिति श्रुति । अजानद्भिर्जनैरेतदन्यथा परिकल्पितं ॥ १८८ ॥ चंद्रस्येवोदयस्यापि सर्वसंतापहारिण. । ह्लादते भासते वर्द्धते स लोको निराकुल ॥ १८९ ॥ एतस्यैव गुणैर्लक्ष्मी मान्या कीर्तिश्च निर्मला । कारणानुगुणं कार्यमिति सत्यं भवेद्यदि ॥ १९० ॥ महाविभूतिसंपन्न सज्जमज्जनमंगल । सालंकारक्रियो वेलां

वे मणियोंके बने हुए आंगनमें गिरते पडते पैरोंसे चलते थे ॥ १८०–१८१ इसप्रकार उस बालक अवस्थाके योग्य कुछ कुछ अज्ञानतासे भरी हुई शुद्ध चेष्टाओंसे सुख चाहनेवाले लोग जिसकेलिये प्रार्थना करते हैं ऐसी बालक अवस्था व्यतीत की और कुमार अवस्थामें पैर रक्खा ॥ १८२ ॥ उससमय वहांके लोग परस्पर कौतूहलसे इसप्रकार बात चीत करते थे कि हम लोगोंको विश्वास है कि इनका शरीर नामकर्मरूपी ब्रह्माने अमृतसे ही बनाया है ॥ १८३ ॥ उनकी द्रव्यलेश्या अर्थात् शरीरकी कांति पूर्ण चंद्रमाकी कांतिको जीतती हुई ऐसी थी मानों बाहरी वस्तुओंके देखनेको पसंद करनेवाली भावलेश्या ही (शुद्धपरिणाम ही) अधिक होनेसे बाहर निकल आई हो ॥ १८४ ॥ उनके यश और शरीरकी कांतिसे ज्योतिषियोंकी कांति मंद पडगई थी इसलिये अब भोगभूमि आगई यही समझकर लोग संतुष्ट होनेलगे थे १८५ यह मानना ही पडता है कि उनकी कांति सूर्य और चंद्रमा दोनोंकी मिली हुई कांतिके समान सुशोभित होती थी क्योंकि उनके समीप कमल और कमोदनी दोनों ही एक साथ प्रफुल्लित होते थे ॥१८६॥ कुंदके फूलोंकी और हंसनेवाले उनके गुण चंद्रमाकी किरणोंके समान निर्मल थे और वे भव्य जीवोंके मनरूपी कमोदिनियोंके समूहको सदा प्रफुल्लित करते थे ॥ १८७ ॥ वास्तवमें लक्ष्मी इन्हींके साथ उत्पन्न हुई थी, लक्ष्मी चंद्रमाकी बहिन है अर्थात् चंद्रमा और लक्ष्मी दोनों ही समुद्रमेंसे उत्पन्न होनेके कारण भाई बहिन हैं यह जो कहावत है सो अज्ञानी लोगोंने झूठ मूठ ही बनाकर कल्पना करली है सत्य नहीं है ॥ १८८ ॥ क्योंकि चंद्रमाके समान सबतरहके संतापोंको दूर करनेवाले इन भगवानके उदय वा प्रगट होनेपर भी यह समस्तलोक निराकुल होकर प्रसन्न होता था दैदीप्यमान होता था और बढता था ॥ १८९ ॥ "कारण जैसा होता है कार्य भी वैसा ही हुआ करता है" यदि यह बात सत्य है तो कहना चा-

कदाचिदनयत्कृती ॥ १९१ ॥ वीणावाद्येन हृद्येन गीतैर्मुरजवादिभिः । कदाचिद्धनदानीतभूषावस्त्रावलोकनैः ॥ १९२ ॥ वादिप्रवाद्युपन्यस्तपक्षादिसु-परीक्षणैः । कुतूहलेक्षणायातभव्यलोकात्मदर्शनैः ॥ १९३ ॥ धर्मादयो व्यवर्द्धंत गुणाः पापाद्ययाक्षय । कौमारेस्मिन् स्थितेप्येव किं वाच्य संयमे मति ॥ १९४ ॥ इति द्विलक्षपंचाशत्सहस्रप्रमितेर्गतैः । पूर्वै राज्याभिषेकाप्त्या परमानंदसुंदर ॥ १९५ ॥ न वतो मंडलं राहो स्वहस्ततलसम्मितं । किं तेजोर्कस्य तेजोस्य तेजस्त्रैलोक्यरक्षिणः ॥ १९६ ॥ शक्रादयोपि कैंकर्य जन्मन प्रागवहति चेत् । ऐश्वर्यादिरेपोन्यैर्वृत कैरुपमीयता ॥ १९७ ॥ तले कपोलयो स्त्रीणां छेदे वा दंतिदंतयो । स विलोक्य स्मरस्मेरं स्वमुखं सुखमेयिवान् ॥ १९८ ॥ विलोकिनीनां कांतानामुत्सुकानां विलासवत् । त्यागीव स सुखी जातः स्ववक्त्ररसतर्पणात् ॥ १९९ ॥ नातराय पर तस्य कांतावक्त्राब्जवीक्षणे । जातपंकेरुहाशंकैर्भ्रमद्भिर्भ्रमरैर्विना ॥ २०० ॥ मधुपैश्चपले

हिये कि लक्ष्मी इन्हींके गुणोंसे संसारमें मान्य हुई है, और कीर्ति भी इन्हींके गुणोंसे निर्मल हुई है ॥१९०॥ जिनकी विभूति सबसे बडी है जो स्नान वस्त्र आदिसे सजे रहते हैं और अलंकारसे सुशोभित रहते हैं, ऐसे वे भगवान् कभी तो मनोहर वीणा बजाना, कभी गीत गाना, कभी मृदंग आदि बाजे बजाना कभी कुबेरके लाये हुए वस्त्रालंकार देखना, कभी वादी प्रतिवादी दोनोंके प्रतिपादन कियेहुए पक्षोंकी परीक्षा करना और कभी कौतूहलसे आये हुए भव्यजीवोंको अपने दर्शन देना आदि कार्योंसे अपना समय व्यतीत करते थे ॥ १९१-१९३ ॥ इनके कुमार अवस्थामें रहते हुए भी धर्म आदि गुण बढते रहते थे और पाप आदि दोष नष्ट होते रहते थे तब फिर संयम धारण करनेपर तो कहना ही क्या है ॥ १९४ ॥ इसप्रकार दोलाख पचास हजार पूर्व बीत जानेपर उन्हें राज्याभिषेककी प्राप्ति हुई थी और उससे वे बहुत ही आनंदित और सुंदर जान पडते थे ॥१९५॥ सूर्य अपने हस्ततलके समान मंडलकी रक्षा राहुसे भी नहीं कर सकता इसलिये तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले भगवानके तेजके सामने उस सूर्यका तेज किस गिनतीमें है ॥१९६॥ जिनके जन्मके पहिले ही इंद्रादि देव सेवक बन जाते हैं फिर भला चारो ओरसे घिरे हुए उनके इस ऐश्वर्यकी उपमा किसके साथ दी जासकती है ? अर्थात् किसीके साथ नहीं ॥ १९७ ॥ वे भगवान स्त्रियोंके कपोलतलमें अथवा हाथीदांतके टुकडेमें कामदेवसे विकसित हुए अपने मुखको देखकर बहुत ही सुखी होते थे ॥ १९८ ॥ जिसप्रकार वे उत्कंठित हुई ऐसी सुंदर नेत्रोंवालीं स्त्रियोंके विलासोंसे सुखी होते थे अथवा जिसप्रकार कोई दाता दानदेकर सुखी होता है उसीप्रकार वे अपने मुखका रस समर्पणकर स्त्रियोंको तृप्त करनेसे सुखी होते थे ॥ १९९ ॥ जिन्हें कमलकी शंका उत्पन्न हुई है और जो चारो ओर फिर रहे हैं ऐसे भ्रमरोंको छोडकर स्त्रियोंके मुखकमल देखने

लौल्यैर्युक्तायुक्ताविचारकैः । मलिनैः किमकर्तव्यं प्रवेशो यदि लभ्यते ॥ २०१ ॥ स्वचतुर्व्केद्रियर्तूर्फ पूर्वं साम्राज्यसंपद । चतुर्विंशतिपूर्वांगै संमितौ क्षणवत्सुखं ॥ २०२ ॥ मत्यां प्रयाति कालेऽसावलंकारगृहेऽन्यदा । प्रपश्यन्वदनांभोजं दर्पणागतमात्मनः ॥ २०३ ॥ तदावधार्यनिर्वेदहेतुं कंचिन्मुखे स्थितं । पातुक पश्य कायोयमीतय प्रीतयोप्यभूः ॥ २०४ ॥ किं सुखं यदि न स्वस्मात्का लक्ष्मीश्चेदियं चला । किं यौवनं यदि ध्वंसि किमायुर्यदि सावधि ॥ २०५ ॥ सवंधो बधुभिः कोसौ चेद्वियोगपुरस्सरः । स एवाहं त एवार्थास्तान्येव करणान्यपि ॥ २०६ ॥ प्रीतिः सैवानुभूतिश्च वृत्तिश्चास्या भवावलौ । परिवृत्तमिदं सर्वं पुन पुनरनंतरं ॥ २०७ ॥ तत्र किं जातमप्येष्यत्काले किं वा भविष्यति । इति जानन्नह चास्मिन्मोमुहीमि मुहुर्मुहु ॥ २०८ ॥ अनित्ये नित्यबुद्धिर्मे दु खे सुखमिति स्मृति । अशुचौ शुचिरित्यास्था परत्रात्ममतिर्वृथा ॥ २०९ ॥ अविद्ययैवमाक्रांतो दुरंते भववारिधौ । चतुर्विधोरुदु खो-

में उन्हें और कोई किसी तरहका विघ्न नहीं होता था । भावार्थ—यदि थे तो भ्रमर ही विघ्नरूप थे ॥ २०० ॥ चपल, चंचल, योग्य अयोग्यके विचारसे रहित और मलिन ऐसे भ्रमर भी जब वहां तक पहुंच जाते हैं तब फिर कहना पडता है कि संसारमें न कर सकने योग्य कुछ भी नहीं है । भावार्थ—प्रयत्न करनेपर यह जीव सब कुछ कर सकता है ॥ २०१ ॥ इसतरह पचास हजार पूर्व और चौवीस पूर्वांग राज्य संपदाका सुख अनुभव करते हुए उनका छह लाख पचास हजार पूर्व और चौवीस पूर्वांगका लंबा समय क्षण भरके समान व्यतीत हो गया । तब किसी एक दिन वस्त्राभूषण पहिननेके घरमें वे दर्पणमें पडे हुए अपने मुख कमलको देखने लगे ॥ २०२–२०३ ॥ वहांपर उन्होंने मुखपरकी किसी वस्तुको वैराग्यका कारण निश्चय किया और उसीसमय वे विचार करने लगे कि यह शरीर अवश्य नाश होनेवाला है और यह प्रेम सब भय उत्पन्न करनेवाला है ॥ २०४ ॥ वह सुख ही क्या? जो अपने आत्मासे उत्पन्न न हो । वह लक्ष्मी भी कैसी जो सदा चंचल रहती है । जो नाश होनेवाला है वह यौवन भी किस कामका ? और जिसकी सीमा है मर्यादा है वह आयु भी किस कामकी ? ॥ २०५ ॥ जिसके सामने ही वियोग होनेवाला है ऐसा भाई बंधुओंका संबंध भी किस कामका ? मैं वही हूं, ये पदार्थ भी वे ही हैं इंद्रियां भी वे ही हैं प्रेम और अनुभव भी वही है तथा प्रवृत्ति भी वही है किंतु संसारचक्रमें परिभ्रमण करते हुए इस जीवको वे सब वार वार एक दूसरेके वाद बदलते रहते हैं ॥ २०६–२०७ ॥ इस संसारमें अबतक क्या हुआ और आगामी कालमें क्या होने-वाला है इस सब बातको जानता हुआ भी मैं फिर इस संसारमें बार बार मोहित होता हूं ॥ २०८ ॥ मैंने आजतक अनित्य पदार्थोंको नित्य समझा, दुखमें सुखका स्मरण किया, अपवित्र वस्तुको पवित्र माना और शरीर आदि दूसरी

प्रदुर्गदैराहितश्चिरं ॥ २१० ॥ इत्ययेनायतेनैवमायासित इवाकुल । काललब्धिं परिप्राप्य क्षुण्णमार्गजिहासया ॥ २११ ॥ गुणाढ्यं भावुको भाविकेवलावगमादिभिः । स्मरन्नित्याप सन्मत्या सकल्पेव समागमे ॥ २१२ ॥ दीक्षालक्ष्म्या स्वयं प्राप्ता सद्बुद्धिः सिद्धिदायिनी । इति प्रबुद्धतत्त्वं तं प्रपद्य सुरसंयताः ॥ २१३ ॥ यथोचितमभिष्टुत्य ब्रह्मलोकं पुनर्ययुः । नृपोपि वरचंद्रस्य कृत्वा राज्याभिषेचनं ॥ २१४ ॥ त्रिनि क्रमणकल्याणपूजां प्राप्य सुरेश्वरैः । आरुह्य सुरसधार्यां शिविकां विमलाह्वयां ॥ २१५ ॥ दिनद्वयोपवासित्वा वने सर्वर्तुकाह्वये । पौषमास्यनुराधायामेकादश्यां महीभुजा ॥ २१६ ॥ सहस्रेणाप्य नैर्ग्रंथ्यं मनःपर्ययमाप्तवान् । द्वितीयदिवसे तस्मै पुरे नलिननामनि ॥ २१७ ॥ सोमदत्तो नृपो गौरः प्रदायाहारमुत्तमं । पुण्यानि नव संप्राप्य वसुधारादि पंचकं ॥ २१८ ॥ सुरस्तद्दानसंतुष्टैरर्पितं स्वीचकार सः । धृत्वा व्रतानि संपाल्य समितीस्त्यक्तदंडकः ॥ २१९ ॥ निगृहीतकषायारिर्वर्द्धमानवि

चीजोंको व्यर्थ ही अपना समझा ॥ २०९ ॥ इसप्रकार अज्ञानसे घिरा हुआ यह जीव जिसका अंत अत्यंत कठिन है ऐसे संसाररूपी समुद्रमें न जाने कितने दिनसे चारों गतियोंके अनेक दुख और बडे बडे रोगोंसे पीडित हो रहा है ॥ २१० ॥ इसप्रकार काललब्धिको पाकर संसार मार्गको पार करनेकी इच्छासे बडे लंबे अर्थात् बडे भारी पुण्य कर्मसे खेद खिन्न होकर मानो वे घबडा गये थे ॥ २११ ॥ होनहार केवलज्ञान आदि गुणोंके द्वारा मुझे गुणोंसे समृद्धशाली होना चाहिये यही स्मरण करते हुए वे दूतीके समान सद्बुद्धिके समागमको प्राप्त हुए थे ॥ ११२ ॥ मोक्ष प्राप्त करानेवाली उनकी सद्बुद्धि अपने आप दीक्षा लक्ष्मीको प्राप्त हो गई थी, इसप्रकार जिन्हें आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है ऐसे उन चंद्रप्रभके समीप लौकांतिक देव आए और यथायोग्य स्तुति करके अपने ब्रह्मलोकमें चले गये । तदनंतर महाराज चंद्रप्रभने अपने पुत्र वरचंद्रका राज्याभिषेक किया ॥ २१३–२१४ ॥ उसीसमय इंद्र आदि देवोंने आकर तप कल्याणकी पूजाकी, भगवान देवोंके द्वारा उठाई हुई विमला नामकी पालकीपर सवार हुए और सर्वर्तुक नामके वनमें जाकर पौष कृष्णा एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें दो दिनका उपवास धारणकर एक हजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने निर्ग्रंथ दीक्षा धारणकी । उसीसमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे पारणाके दिन नलिनपुर नामके नगरमें गौर वर्ण महाराज सोमदत्तने उन्हें पडगाहन किया और नौ प्रकारकी भक्तिपूर्वक उत्तम आहार दिया । उसके दानसे संतुष्ट हुए देवोंने उसीसमय सोमदत्तके घर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये । आहार लेकर उन भगवानने व्रतोंको धारणकर अतिचाररहित पालन किया । और पांचों समितियोंका पालन किया ॥२१५–२१९॥ गुणोंको धारण करनेवाले उन्होंने कषायरूपी शत्रुका दमन किया, आत्माके परिणामोंको खूब विशुद्ध किया,

शुद्धिभाक् । त्रिगुप्त शीलसंपन्नो गुणी प्रोक्ततपोद्वय ॥ २२० ॥ वस्तुवृत्तिवचोभेदाभैरतयेण भावयन् । दशप्रकारधर्मस्थ षोढाशेषपरीषह ॥ २२१ ॥ अनित्याशुचिदु खत्वं स्मरन्कायादिकं मुहु । गत्वा सर्वत्र माध्यस्थ परमं योगमाश्रित ॥ २२२ ॥ त्रीन्मासान् जिनकल्पेन नीत्वा दीक्षावनांतरे । अधस्तान्नागवृक्षस्य स्थित्वा षष्ठोपवासभृत् ॥ २२३ ॥ फाल्गुने कृष्णसप्तम्यामनुराधापराह्णके । प्रागेव निहिताशेषश्रद्धानप्रतिपक्षक ॥ २२४ ॥ करणत्रयसंयोगात्क्षपकश्रेणिमाश्रित । स्फुरत्तुरीयचारित्रो द्रव्यभावविकल्पत ॥२२५॥ धर्मध्यानेद्धसद्ध्यात्या मोहारातिं निहत्य स । सावगाढदृगत्येयों विचतुष्कादिभास्कर ॥ २२६ ॥ द्वितीयशुक्लध्यानेन घातित्रितयघातक । जीवस्यैवोपयोगाख्यो गुण शेषेष्वसंभवात् ॥ २२७ ॥ घातीति नाम तद्घातादभूद्घचतुष्टये । अघातिष्वपि केषाचिदेव तत्र विलोपनात् ॥ २२८ ॥ परावगाढं सम्यक्त्व चर्यास्या ज्ञानदर्शने । दानादिपंचक प्राप्य सयोग सकलो जिन

मन वचन काय तीनों गुप्तियोंका पालन किया बाह्य अंतरंग दोनों तपश्चरणोंका पालन किया, वस्तु वृत्ति और वचनके भेदसे अर्थात् द्रव्य पर्याय और स्याद्वादसे सदा भावनाओंका चिंतवन किया, दशप्रकारके धर्म धारण किये, सब परिषहोंको सहन किया, शरीर और संसारको अनित्य अपवित्र और दुखस्वरूप समझा तथा ऐसा ही वार वार स्मरण किया, इसीतरह सब जगह मध्यस्थ परिणाम रक्खे और उत्तम ध्यान धारण किया ॥ २२०–२२२ ॥ इसप्रकार उन्होंने जिनकल्प अवस्थामें तीन महीने व्यतीत किये फिर उसी सर्वर्तुक नामके दीक्षा वनमें नाग वृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुए। सम्यग्दर्शनको घात करनेवाली प्रकृतियोंको उन्होंने पहिले ही नाश करदिया था। तदनंतर अधःकरण आदि तीनों करणोंके द्वारा क्षपकश्रेणीका आश्रय लिया, और उससमय उनके द्रव्य भाव दोनों तरहका सूक्ष्मसांपराय नामका चौथा चारित्र दैदीप्यमान हुआ ॥ २२३–२२५ ॥ उसके बाद धर्मध्यानके उत्तम ध्यानसे मोहरूपी शत्रुका नाश किया और अवगाढ सम्यग्दर्शनको पाकर चारो ज्ञानोंसे वे बहुत ही दैदीप्यमान होनेलगे २२८ तदनंतर दूसरे शुक्लध्यानसे बाकीके तीनों घातिया कर्मोंका नाश किया। जीवका उपयोग नामका गुणही सबसे मुख्य है क्योंकि वह जीवके सिवाय किसी दूसरेमें नहीं पाया जाता। ज्ञानावरण दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चारों ही कर्म उस उपयोगका घात करते हैं इसलिये इन चारोंको घातिया कर्म कहते हैं। उन भगवान चंद्रप्रभके चारों घातिया कर्मोंका नाश हुआ और अघातिया कर्मोंमेंसे भी कितनी ही प्रकृतियोंका नाश हुआ इसलिये उनके परमावगाढ सम्यक्त्व हुआ, यथाख्यात चारित्र हुआ, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट हुए तथा दानादिक पांचों क्षायिक लब्धियां प्राप्त हुईं। इसतरह वे शरीरसहित सयोगी जिनराज हुए ॥ २२७–२२९ ॥ उससमय वे सर्वज्ञ, समस्त लो-

॥ २२९ ॥ सर्वज्ञ सर्वलोकेश सार्व सर्वकरक्षक । सर्वदृक् संदिवेंद्रवद्य सर्वार्थदेशक ॥ २३० ॥ चतुस्त्रिंशदतीशेषविशेषविभवोदय । प्रातिहार्याष्टकव्यक्तीकृततीर्थकरोदय ॥ २३१ ॥ देवदेव समस्तेंद्रमुकुटोढाङ्घ्रिपंकज । स्वप्रभाछादिताशेषविश्वलोकविभूषण ॥ २३२ ॥ गतिजीवगुणस्थाननयमानादिविस्तृते । प्रबोधक स्थितो व्योम्नि श्रीमान् चंद्रप्रभो जिन ॥ २३३ ॥ क्रौर्यधुर्येण शौर्येण यदह सञ्चित पर । सिंहैर्हर्तुं स्वजातेर्वा व्यूढ तस्यासनं व्यभात् ॥ २३४ ॥ केवलद्युतिरेवैव मूर्तिजातेव भास्वरा । देहप्रभा दिशो विश्वा भासयन्त्यस्य शोभते ॥ २३५ ॥ चमरैरामरैरेपप्रभाप्रकटितायति । हंसासधवलैर्गंगातरंगैरिव सेव्यते ॥ २३६ ॥ ध्वनिरेकोपि दिव्योस्य प्रकाशो वाशुमालिन । नराणा सर्वभावानां सश्रोतॄणा प्रकाशक ॥२३७॥ त्रिभि शिव पदं प्राप्यमस्माभिरिति चावदत् । मोक्षमार्गं पृथग्भूतो भाति छत्रत्रय विभो ॥ २३८ ॥ भाति पिंडीद्रुमो भर्तुरशोक सश्रयादह । इत्या-

कके स्वामी, सबका हित करनेवाले, सबके एक रक्षक, और सर्वदर्शी थे, सब देवोंके इंद्र उनकी वंदना करते थे और वे सब पदार्थोंका उपदेश देनेवाले थे ॥ २३० ॥ चौंतीस अतिशयोंसे उनकी विशेष विभूतिका उदय प्रगट हो रहा था और आठ प्रातिहार्योंसे उनके तीर्थंकर नामकर्मका उदय स्पष्ट दिखाई दे रहा था ॥ २३१ ॥ वे सब देवोंके देव थे, सब इंद्र उनके चरणकमलोंको अपने मुकुटपर धारण करते थे, वे अपनी कांतिसे ही सब संसारको प्रसन्न करते थे और तीनों लोकोंके आभूषणरूप थे ॥ २३२ ॥ गति जीव गुणस्थान और नय प्रमाण आदिके विस्तारका ज्ञान उत्पन्न कराते हुए वे श्रीमान् चंद्रप्रभ जिनराज आकाशमें विराजमान थे ॥ २३३ ॥ सिंहोंके द्वारा धारण किया हुआ उनका आसन (सिंहासन) ऐसा अच्छा जान पडता था मानों क्रूरता ही जिसमें मुख्य है ऐसी शूर वीरतासे बहुतसा पाप इकट्ठा किया है उसे दूर करनेकेलिये ही वे सिंह उनके चरणकमलोंके नीचे आलगे हों ॥ २३४ ॥ सब दिशाओंको प्रकाशित करती हुई उनके शरीरकी कांति (प्रभामंडल) ऐसी अच्छी जान पडती थी मानों केवलज्ञानकी ही कांति हो अथवा मानों ऐसी देदीप्यमान उनकी मूर्ति ही हो ॥ २३५ ॥ देवोंके द्वारा ढुराये हुए और हंसोंके परोंके समान सफेद ऐसे चमरोंसे जिनकी कांति दूरतक फैल रही है ऐसे वे भगवान ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों गंगाकी लहरें ही आकर उनकी सेवा कर रही हों ॥ २३६ ॥ जिसप्रकार सूर्यका एक प्रकाश मनुष्योंको सर्व पदर्थोंका प्रकाश करता है उसीप्रकार यद्यपि उनकी दिव्यध्वनि एक थी तथापि वह सुननेवाले सब जीवोंको सब पदार्थोंका प्रकाश करती थी ॥ २३७ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनोंसे ही मोक्षपद प्राप्त करेंगे इसी वातको मानों कहते हुए और एक अलग मोक्षमार्गके समान उन भगवानके तीनों छत्र वहुत सुशोभित हो रहे थे ॥ २३८ ॥ भगवानके आश्र-

विष्कृतरागो वा पल्लवैः प्रसवैरपि ॥ २३९ ॥ अभात्सुमनसा वृष्टिः पतती नभसो विभुं । तारावलिरिवायाती सेवितु भक्तिनिर्भरा ॥ २४० ॥ देवदुंदुभयो वाढं दध्वनुस्तर्जिताब्धय । दिश श्रावयितु वास्य मोहारातिजयं विभोः ॥ २४१ ॥ अभादस्य प्रभामध्ये प्रसन्न वक्त्रमडल । नाकनद्यामिवांभोजमिव वा बिंबमैंदवं ॥ २४२ ॥ श्रीमद्गंधकुटीमध्ये चतुर्भिस्त्रिगुणैर्गणै । तारागणै शरच्चंद्र इव सेव्यो व्यराजत ॥ २४३ ॥ दत्तादित्रिनवत्युक्तगणेश स्त्रत्रय द्वि सप्रोक्तपूर्वधर शून्यत्रिकाष्टावधिलोचनः ॥ २४४ ॥ शून्यद्वयचतु शून्यद्विकपक्षोक्तशिक्षकः । खचतुष्कैकनिर्दिष्टकेवलावगमाग्रणीः ॥ २४५ ॥ चतुर्दश-महस्रोक्तविक्रियर्द्धिविभूषितः । खत्रयाष्टचतुर्ज्ञानपरिषत्परिवारितः ॥ २४६ ॥ खद्वयत्वर्द्धिवादीश सर्वसार्द्धद्विलक्षकः । खचतुष्काष्टकत्र्युक्तवरुणाद्या-र्यिकानुत ॥ २४७ ॥ त्रिलक्षश्रावकाभ्यर्च्य श्राविकापचलक्षकः । अमर्त्यदेवदेवीड्यस्तिर्यक्संख्यातसंनतः ॥ २४८ ॥ प्रादक्षिण्येन भव्येशं परीत्यते

यसे ही मुखमें इतनी लालिमा वा राग उत्पन्न हुआ है इसीसे मानों फूल और पत्तोंसे सुशोभित हुआ उनके समीपका अशोकवृक्ष बहुत ही अच्छा जान पडत था ॥२३९॥ आकाशसे जो फूलोंकी वर्षा पड रही थी वह ऐसी जानपडती थी मानों भक्तिसे भरीहुई ताराओंकी पंक्ति ही भगवानकी सेवा करनेकेलिये आरही हो ॥ २४० ॥ समुद्रकी गर्जनाको भी तर्जित करनेवाले जो देवोंके दुंदुभी बजरहे थे वे ऐसे जान पडते थे मानों भगवानने जो मोहरूपी शत्रुका नाश-कर विजय पाया है इसी बातको सब दिशाओंमें सुना रहे हों ॥ २४१ ॥ उनकी प्रभाके मध्यमें प्रफुल्लित हुआ मुखमं-डल ऐसा सुशोभित होता था मानों स्वर्गकी नदीमें कमल ही खिला हो अथवा चंद्रमाका बिंब ही हो ॥२४२॥ जिस-प्रकार तारागणोंसे सुशोभित शरद ऋतुका चंद्रमा सुशोभित होता है उसीप्रकार बारह सभाओंके द्वारा सेवा किये हुए वे भगवान बहुत ही सुंदर गंधकुटीके मध्यभागमें सुशोभित हो रहे थे ॥ २४३ ॥ उनके दत्त आदि तिरानवे गणधर थे, दो हजार ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे और आठ हजार अवधिज्ञानी थे ॥ २४४ ॥ दो लाख चारसौ शिक्षक थे और दश हजार केवलज्ञानी थे ॥ २४५ ॥ चौदह हजार मुनिराज विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले उनकी शोभा बढा रहे थे और आठ हजार मनःपर्यय ज्ञानको धारण करनेवाले उनकी सेवा करते थे ॥ २४६ ॥ तथा सात हजार छह सौ वादियोंके स्वामी थे इस तरह सब मुनिराजोंकी संख्या दो लाख पचास हजार थी । वरुणाको आदि लेकर तीन लाख अस्सी हजार अर्जिकाएं उनको नमस्कार करती थीं ॥ २४७ ॥ तीन लाख श्रावक उनकी पूजा करते थे और पांच लाख श्राविकाएं उनकी आज्ञामें थीं ॥ २४८ ॥ इनके सिवाय असं-ख्यात देव देवी उनकी पूजा करते थे और संख्यात तिर्यंच उन्हें नमस्कार करते थे ॥ २४९ ॥ ये सब जीव प्रदक्षिणा

गणा पृथक्। स्वयोष्टिम्ववतिष्ठते विहिताञ्जलिकुड्मला ॥ ४९ ॥ तत्राकृतिमसंभूतभक्तिभारानत स्फुरत् । मुकुटाग्रमणिः स्तोत्र द्वितीयेंद्रोऽभ्यधा-
दिदं ॥ २५० ॥रत्नत्रयेन येनाप्तं रत्नत्रयमनुत्तर । त्वं देहसम्यमस्तुचैः स रत्नत्रयसंपदं ॥ २५१ ॥ स्वार्थं सागरमेरूणां परार्थं कल्पभूरुहा।
देव स्वार्थं परार्थश्च महिमा महतस्तव ॥ २५२ ॥ ददासि परमं सौख्यमित्यस्तु भवत स्तवं । नद नदेति देवस्य साधितात्मार्थसंपद ॥ २५३ ॥
त्वद्वचो व चि धर्मस्ते हृदि वृत्तिस्तनौ भवेत् । यस्य स त्वादृशो भूत्वा परमानन्दमश्नुते ॥ २५४ ॥ त्वयैवकेन कर्मारीन् भुवनत्रयविद्विष । शुक्लध्या-
नासिना हत्वा मुक्तिसाम्राज्यमर्जित ॥ २५५ ॥ त्वत्पादपादपोद्भूतसान्द्रच्छाया समाश्रिताः । पापार्करोगघर्मोत्थदुःखसंतापदूरगाः ॥ २५६ ॥ सागरोऽ
नतकातार संसारः सर्वदेहिना । त्वन्मताश्रितभव्याना गोष्पद नदन मन ॥ २५७ ॥ फल त्रैलोक्यसाम्राज्य क्लेशकृच्चरणस्मृतिः। लोकस्तत्रापि मदेच्छो

रूपसे भव्योंके स्वामी भगवान चंद्रप्रभको घेरे हुए अपने अपने अलग अलग कोठोंमें बैठे हुए थे और सवही हाथकी अंजलि रूपी कमलकी कलीको वंद किए हुए थे अर्थात् सब ही हाथ जोडे थे । इसीसमय जो उत्पन्न हुई अकृत्रिम भक्तिके भारसे नम्रीभूत हो रहा है और जिसके मुकुटमें लगे हुए मणि चमक रहे हैं ऐसे दूसरे ऐशान इंद्रने स्तुति करना प्रारंभ किया २५० ॥ वह कहने लगा कि हे प्रभो ! जिस रत्नत्रयसे आपको उत्तम रत्नत्रय प्राप्त हुआ है वही रत्नत्रयरूपी संपत्ति आप मुझे दीजिये ॥ २५१ ॥ हे देव ! समुद्र और मेरुपर्वतकी महिमा केवल अपने प्रयोजनके लिये है और कल्प वृक्षोंकी महिमा केवल दूसरोंके लिये है परंतु सबसे बडे ऐसे आपकी महिमा अपने और दूसरे दोनोंके प्रयोजनके लिये है ॥ २५२ ॥ हे देव ! आप मोक्षरूप परम सुखके देनेवाले हैं ऐसी आपकी स्तुति तो दूर ही रहो, अपने आत्मतत्त्वरूपी संपदाको सिद्ध करनेवाले आप सदा वढते रहो वढते रहो यही मैं स्तुति करता हूं ॥ २५३ ॥ जो जीव अपने वचनोंमें आपके वचनोंको धारण करता है हृदयमें आपके धर्मको धारण करता है और शरीरसे आपकी प्रवृत्तिका पालन करता है वह आप सरीखा होकर मोक्षरूप परमानंदको प्राप्त होता है ॥२५४॥ हे प्रभो आप अकेलेने ही शुक्लध्यान रूपी तलवारसे तीनों लोकोंसे द्वेष करनेवाले कर्मरूप शत्रुओंको नाश कर मोक्षरूपी साम्राज्य प्राप्त किया है ॥ २५५ ॥ हे देव ! जो आपके चरणरूपी वृक्षसे उत्पन्न हुई घनी छायाका आश्रय लेता है वह पापरूपी सूर्यसे जो रोगरूपी पसीना उत्पन्न होता है उससे बडे हुए बडे दुःख और संतापोंसे बहुत दूर रहता है ॥२५६॥ यह संसार सब जीवोंके लिये तो महासागर है अथवा अनंत वन है परंतु जो आपका आश्रय लेनेवाले भव्य हैं उनके लिये या तो कीचडमें बने हुए गायके खुरके समान दिखता है या नंदन वनके समान जान पडता है ॥ २५७ ॥

न वेत्सि हितमात्मने ॥ ॥ २५८ ॥ आधाराधेयभावोयमनन्यसदृशस्तव । अधस्थं जगदाधेयमाधारस्त्वं तदग्रतः ॥ २५९ ॥ वेदकोसि न वेद्योसि न पा-
ल्योस्यसि पालकः । कर्तासि नासि कार्यस्त्वं न पोष्योस्यसि पोषकः ॥ २६० ॥ त्वां नमन्नुत्तम स्तोता गुरुश्च गुणगौरवात् । अनमन् तप्यते पापैरस्तु-
वन् नाप्यते सदा ॥ २६१ ॥ नास्तिकाः पापिन केचिद् द्वैष्टिकाश्च हतोद्यमा । त्वदीयास्त्वास्तिका धर्म्याः परत्र विहितोद्यमाः ॥ २६२ ॥ सर्वत्र सर्वदा
सर्वं सर्वस्त्व सार्वसर्ववित् । प्रकाशयति नैवेंदुर्भानुर्वान्येषु का कथा ॥ २६३ ॥ न स्थिर क्षणिकं ज्ञानमात्रं शून्यमनीक्षणात् । वस्तु प्रतिक्षणं तत्त्वान्यत्व-
रूपं तवेक्षणात् ॥ २६४ ॥ अस्त्यात्मा बोधसद्भावात्परजन्मास्ति तत्स्मृते । सर्वविच्चास्ति धीवृद्धेस्तवदुपज्ञमिदं त्रयं ॥ २६५ ॥ द्रव्याद् द्रव्यस्य वा भेदं
गुणस्याप्यवदद्विधीः ॥ गुणैः परिणति द्रव्यस्यावादीस्त्व यथार्थदृक् ॥ २६६ ॥ अप्रतीपा प्रभा भाति देव देहस्य तेऽनिशं । चंद्रप्रमेति नामेदमपरीक्ष्य दर्शि-

आपके चरणोंका स्मरण करना कुछ क्लेशजनक है परंतु उसका फल तीनों लोकोंका साम्राज्य है तथापि इन दोनोंमें मी अत्यंत मंद इच्छा करनेवाला यह लोक अपने आत्माके हितको नहीं जानता है ॥ २५८ ॥ जिसके समान संसारमें कोई नहीं है ऐसे आपका और इस संसारका आधाराधेयभाव है । नीचे रहनेवाला यह जगत तो आधेय है और उस जगतके ऊपर रहनेवाले आप आधार हैं ॥ २५९ ॥ आप सबको जाननेवाले हैं परंतु आप किसीके द्वारा नहीं जाने जाते, आप सबका पालन करते हैं परंतु किसीके द्वारा पालन नहीं किये जाते, आप कर्ता हैं परंतु कार्य नहीं और सबका पोषण करनेवाले हैं परंतु आप किसीके द्वारा पोषण नहीं किये जाते ॥ २६० ॥ जो आपको नमस्कार करता है वह सबसे उत्तम हो जाता है तथा जो आपकी स्तुति करता है वह गुणोंसे भरपूर होकर गुरु वा सबसे बडा हो जाता है । इसीतरह जो आपको नमस्कार नहीं करता वह सदा पापोंसे पीडित रहता है और जो स्तुति नहीं करता वह भी सदा दुःखी रहा करता है ॥ २६१ ॥ संसारमें जो आपके वचनोंको नहीं मानते वे नास्तिक, पापी, और धर्महीन गिने जाते हैं तथा जो आपके वचनोंमें श्रद्धा रखते हैं वे आस्तिक, धर्ममें तल्लीन और परलोकके लिये उद्यम करनेवाले होते हैं ॥ २६२ ॥ सबका हित करनेवाले और सबको जाननेवाले आप सदा सब जगह सब-को प्रकाशित करते हैं ऐसा प्रकाश न चद्रमा कर सकता है और न सूर्य, तब और की तो बात ही क्या है ॥ २६३ ॥ वस्तु न नित्य है न क्षणिक है न ज्ञानमात्र है और अदृश्य होनेसे शून्य भी नहीं है किंतु जीवादिक वस्तु प्रतिक्षण अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व आदि रूप हैं क्योंकि इसी तरह आपने देखी है ॥ २६४ ॥ इस संसारमें आत्मा कोई अलग द्रव्य है क्योंकि उससे अभिन्नरूप ज्ञान दिखाई पडता है, तथा परलोक भी है क्योंकि उसका स्मरण

र्व्यघात् ॥ २६७ ॥ इति शब्दार्थगंभीरस्तवनेन सुराधिप । चिरं सपुण्यमात्मान बहुमेने स हृष्टधी- ॥ २६८ ॥ अथ चद्रप्रभ स्वामी धर्मतीर्थं प्रवर्तयन्। सर्वान् देशान् विहृत्यार्यान् सम्मेदतलमासवान् ॥ २६९ ॥ विहारमुपसहृत्य मासं सिद्धशिलातले । प्रतिमायोगमास्थाय सहस्रमुनिमि सह ॥ २७० ॥ फाल्गुने शुक्लसप्तम्या ज्येष्ठाचंद्रेऽपराह्णके । तृतीयशुक्लध्यानेन कृतयोगनिरोधकः ॥ २७१ ॥ अयोगपदमासाद्य तुर्यशुक्लेन निर्हरन् । शेषकर्माणि निर्लेपशरीरो परमोऽभवत् ॥ २७२ ॥ सुरा निर्वाणकल्याणपूजाविधिविधायिन । पुण्यपण्यं समादाय तदेयुः स्वस्वमास्पद ॥ २७३ ॥ सपूर्ण किमय शरच्छशधर कि वार्पितो दर्पण मर्वार्थावगते किमेष विलसत्पीयूषपिंडः पृथु । किं पुण्याणुमयश्चयोयमिति यद्वक्त्राबुज शक्यते सोय चंद्रजिनस्तमोव्यपहरत्रहोमयाद्रक्षतात् ॥ २७४ ॥ लेश्या यस्य मृणालनालधवला श्लाघ्योभया शोभते यस्यास्येंदुरहर्दिव कुवलयाह्लादं विधत्ते ध्रुव । यद्बोधोज्ज्वलदर्पणे त्रिसमय

होता है । इसीतरह कोई सर्वज्ञ भी है क्योंकि ज्ञानकी सदा वृद्धि होती रहती है । हे देव ! ये तीनों ही आपके कहे हुए हैं ॥२६५॥ बुद्धिहीन पुरुष द्रव्यसे द्रव्य और गुण को भिन्न मानते हैं परंतु आपने गुणोंके परिणामको ही द्रव्य कहा है इसलिये तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप देखनेवाले आप ही हैं ॥ २६६ ॥ हे देव ! चंद्रमाकी प्रभा तो राहुसे ढकी जा सकती है तथा घटती वढती भी रहती है परंतु आपके शरीरकी प्रभा न तो किसीसे ढकी जाती है और न घटती वढती है संसारमें उसका कोई रोकनेवाला नही है वह सदा सुशोभित रहती है इसलिये कहना पडता है कि इंद्रने जो आपका चद्रप्रभ नाम रक्खा है वह विना परीक्षा किये ही रक्खा है ॥ २६७ ॥ इसप्रकार जिसमें शब्द और अर्थ दोनों ही गंभीर हैं ऐसे स्तोत्रसे स्तुतिकर प्रसन्न बुद्धिवाले इंद्रने अपने आत्माको बहुत ही पुण्यवान् माना ॥ २६८ ॥ तदनंतर चद्रप्रभ स्वामीने सब आर्य देशोंमें विहार कर धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की और अंतमें सम्मेदशिखरपर आ विराजमान हुए ॥ २६९ ॥ वहांपर एक हजार मुनियोंके साथ साथ प्रतिमा योग धारणकर एक महीने तक योग निरोध किया तथा फाल्गुन शुक्ल सप्तमीके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें शामके समय तीसरे शुक्लध्यानसे योग निरोध किया, अयोग केवली नामके चौदहवें गुणस्थानका पद प्राप्तकर चौथे शुक्लध्यानसे बाकीके सब कर्मोंका नाश किया और उसीसमय शरीररहित परम सिद्ध भगवान हुए ॥ २७० -२७२ ॥ देवोंने उसीसमय आकर निर्वाण कल्याणकी पूजाकी सब विधिकी और फिर पुण्यका ढेर ले लेकर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७३ ॥ क्या यह शरद् ऋतुका पूर्ण चंद्रमा है, अथवा सब पदार्थोंको जाननेकेलिये दर्पण रक्खा गया है अथवा क्या बडा भारी देदीप्यमान अमृतका पिंड है अथवा पुण्यके परमाणुओंका बना हुआ एक पिंड है इसप्रकार जिनके मुखरूपी कमलको

जीवादिक लक्ष्यते स श्रीमान् दिशताच्छ्रियं जिनपतिर्नष्टाष्टकर्माष्टक ॥ २७५ ॥ श्रीवर्मा श्रीधरो देवोऽजितसेनोऽच्युताधिपः । पद्मनाभोऽहमिंद्रोस्तान् पातु चंद्रप्रभः प्रभुः ॥ २७६ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे चंद्रप्रभपुराणं परिसमाप्तं चतुःपंचाशत्तमं पर्व ।

देखकर लोगोंको शंका होती है ऐसे वे श्रीचंद्रप्रभ स्वामी अज्ञानांधकारका नाश करते हुए पापरूपी भयसे हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ २७४ ॥ जिनकी द्रव्य और भाव दोनों ही लेश्यायें कमलके तंतुके समान सफेद तथा प्रशंसनीय सुशोभित हैं, जिनका मुखरूपी चंद्रमा रातदिन कुवलय (-कमोदिनी) अर्थात् पृथ्वी मंडलको सदा एकसा प्रफुल्लित करता रहता है, जिनके ज्ञानरूपी निर्मल दर्पणमें भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों समयके जीवादिक पदार्थ देखे जाते हैं और जिन्होंने आठों कर्मोंका समूह नष्ट कर दिया है ऐसे वे बाह्य अभ्यंतर दोनों तरहकी लक्ष्मीको धारण करनेवाले श्रीचंद्रप्रभ जिनेंद्रदेव हम लोगोंका सदा कल्याण करनेवाले हों ॥ २७५ ॥ जो पहिले श्रीवर्मा थे फिर श्रीधर देव हुए, तदनंतर अजितसेन, फिर सोलहवें अच्युत स्वर्गके इंद्र, पद्मनाभ और फिर अहमिंद्र होकर तीर्थंकर हुए ऐसे श्रीचंद्रप्रभ भगवान हम लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ २७६ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें चंद्रप्रभके पुराणको समाप्त करनेवाला यह चौपनवां पर्व पूर्ण हुआ ॥ ५४ ॥

अथ पंचपंचाशत्तमं पर्व ।

विधाय विपुले मार्गे विनेयाश्चामले स्वयं । स्वयं च सुविधिर्योऽभूद् विधेयात्र स तं विधिं ॥ १ ॥ पुष्करार्द्धेंद्रदिग्भागे मंदरप्राग्विदेहभाक् ।

अथ पचपनवां पर्व ।

जिन्होंने बडे भारी निर्मल मोक्षमार्गमें अनेक शिष्योंको लगाया तथा स्वयं लगे और जो स्वयं सुविधि अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेवाली विधिको करनेवाले हैं ऐसे श्री सुविधिनाथ वा पुष्पदंत उस मोक्ष प्राप्त करनेवाली विधि हमलोगोंको भी दें ॥ १ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व मंदराचल पर्वतकी ओर पूर्वविदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारेपर एक

सीतासरिदुदक्कूले विषय पुष्कलावती ॥ २ ॥ तत्राभूत्पुंडरीकिण्या महापद्मो महापतिः । दोर्दंडखडितारातिमंडलश्चंडविक्रम ॥ ३ ॥ पुराणमपि स-
न्मार्गं स स्ववृत्याऽकरोन्नवं । पाश्चात्याना तु तद्वृत्या पुराणः सोभवत्पुनः ॥ ४ ॥ संपोष्य पालयामास गा स्वा साच स्वयं मुदा । प्रस्नुता निजसारेण
तं सदा समतर्पयत् ॥५॥ स्वानुरक्तान् जनान् सर्वान् स्वगुणैः स व्यधात् सुधीः । ते च त प्रीणयति स्म प्रत्यह सर्वभावत ॥६॥ शेषा प्रकृतयस्तेन वि-
हिता वर्द्धिताश्च या । स्वेन स्वेनोपकारेण त श्चनं वृद्धिमानयन् ॥ ७ ॥ अवर्द्धंत गुणास्तस्मिन् सद्वृत्ते शास्त्रशालिनि । मुनिवल्लब्धसंस्कारा बभुश्च मणयो
यथा ॥ ८ ॥ विभज्य राज्यलक्ष्मीं स्वां यथा स्वं स्वसमाश्रित । सोन्वभूच्चिरमच्छिन्न सतः साधारणश्रिय ॥ ९ ॥ वदंतींद्रयमस्थान राजान नीतिवेदिनः ।
कृतींद्रस्थान एवाय दंड्याभावात्प्रजागुणद्ध ॥ १० ॥ रतिरच्छिन्नसताना तस्य भोग्याश्च तादृशः । तस्मात्स्वसुखविच्छेद नावेदत्क्षुण्णपुण्यक ॥ ११ ॥

महापद्म नामका राजा राज्य करता था वह राजा अपनी भुजाओंसे
पुष्कलावती देश है उसकी पुंडरीकिणी नगरीमें
शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला था, उसका पराक्रम बहुत ही बडा था, वह किसी पुराने श्रेष्ठमार्गको अपने आचरणोंसे
नया कर दिखाता था और फिर वही मार्ग आगेके समयमें होनेवाले लोगोंकेलिये उनकी प्रवृत्तिके अनुसार पुराना
गिना जाता था ॥ २–४ ॥ वह राजा अपनी पृथ्वीको अच्छी तरह पालन पोषणकर रक्षा करता था तथा वह पृथ्वी
भी स्वयं प्रसन्न होकर अपनेमें उत्पन्न हुई सार वस्तुएं भेट देकर सदा उसे संतुष्ट किया करती थी ॥ ५ ॥ वह अपने
गुणोंसे अपनेमें अनुरक्त हुए भक्ति सेवा आदि करनेवाले सब लोगोंको बुद्धिमान बनाता था तथा वे लोग भी प्रति-
दिन सबतरहसे उसे प्रसन्न रखते थे ॥ ६ ॥ उसने अपने अपने उपकारसे पृथ्वीकी और सब शोभा भी फैलाई तथा
बढाई थी एवं वह फैली और बढी हुई शोभा उस राजाकी भी वृद्धि कर रही थी ॥ ७ ॥ जिसप्रकार संस्कार पाकर
मणि सब सुशोभित हो जाते हैं उसीप्रकार सदाचारको धारण करनेवाले और अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले उस राजामें
मुनियोंके समान सब गुण बढते जाते थे ॥८॥ उसने अपनी राज्यलक्ष्मीका यथायोग्य रीतिसे विभागकर अपने आश्रित
रहनेवाले अनेक लोगोंके साथ साथ बहुत दिनतक व्यवधानरहित सुखोंका अनुभव किया सो ठीक ही है क्योंकि स-
ज्जन लोगोंकी लक्ष्मी साधारण होती है उसका सब कोई उपभोग कर सकता है नीतिको जाननेवाले लोग राजाको
इंद्र और यमके समान बतलाते हैं परंतु वह पुण्यवान् इंद्रके ही समान था क्योंकि प्रजा सब गुणवती थी इसलिये दंड
देनेका कभी काम ही नहीं पडता था ॥ ९–१० ॥ उसके सुखकी परंपरा सदा बनी रहती थी और उसके भोगोपभो-
गके पदार्थ भी सदा उपस्थित रहते थे इसलिये वह पुण्यवान् अपने सुखके विरहको कभी नहीं जानता था ॥ ११ ॥

इति स्वपुण्यमाहात्म्यसंपादितमहोदयः । स कदाचिन्महैश्वर्यं श्रुत्वा स्ववनपालकात् ॥ १२ ॥ जिनं मनोहरोद्याने स्थितं भूतहिताह्वयं । गत्वा विभूत्या भूतेशं त्रिः परीत्य कृतार्चनः ॥ १३ ॥ वंदित्वा स्वोचितस्थाने स्थित्वा मुकुलितांजलिः । आकर्ण्य धर्ममुत्पन्नबोधिरेवमचिंतयत् ॥ १४ ॥ आत्मायमात्मनात्मायमात्मन्याविष्कृतासुख । विधायानादिकालीनमिथ्यात्वोदयदूषित ॥१५॥उन्मादीव मदीवांधो वावेशी वाविचारकः । यद्यदात्माहितं मोहात्तत्तदेवाचरं-श्चिरं ॥ १६ ॥ भ्रमित्वा भवकांतारे प्रभ्रष्टो निर्वृतेः पथः । इत्यतोनुभवाद्भीत्वा मुक्तिमार्गप्रपित्सया ॥ १७ ॥ सूनवे धनदाख्याय वितीर्यैश्वर्यमात्मनः प्राव्राजीद्बहुभिः सार्द्धं राजभिर्भवभीरुभिः ॥ १८ ॥ क्रमादेकादशांगाब्धिपारगो भावनापरः । बद्ध्वा तीर्थकरं नाम प्रांते स्वाराधनाविधि ॥१९॥ विंशलब्ध्युपमात्तायुः सार्द्धहस्तत्रयोच्छ्रितिः । शुक्ललेश्यः श्वसन्मासैर्दशभिर्दशभिर्वली ॥ २० ॥ स्मरन् सहस्रविंशत्या वत्सराणां तनुस्थितिं । मानसोर्ध्व

इसप्रकार उसके पुण्यके माहात्म्यसे उसका महोदय खूब ही बढ रहा था। किसी एकदिन उसके मनोहर नामके उद्यानमें भूतहित नामके तीर्थंकर आए, वनपालने आकर राजाको वहांका ऐश्वर्य सुनाया सुनते ही वह अपनी विभूतिके साथ वहां गया भगवानकी तीन प्रदक्षिणायें दीं और उनका पूजन किया ॥ १२–१३ ॥ वंदनाकर हाथ जोडकर अपने योग्य स्थानपर जा बैठा तथा धर्मका स्वरूप सुनकर आत्मज्ञान उत्पन्न होनेसे वह इसप्रकार चिंतवन करने लगा कि ॥ १४ ॥ मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दूषित हुआ यह आत्मा अपने ही आत्मामें अपने ही आत्माके द्वारा अपने ही आत्माको अनेक प्रगट दुखोंको उत्पन्नकर उन्मत्त अथवा मतवालेके समान अंधा हो रहा है तथा किसी आवेशवाले पुरुषके समान अविचारी हो रहा है। जो जो आत्माका अहित है मोहकर्मके उदयसे बहुत दिनसे उसीका आचरण करता हुआ संसाररूपी वनमें परिभ्रमण कररहा है तथा मोक्षके मार्गसे भ्रष्ट हो रहा है। इसप्रकार चिंतवनकर तथा संसारसे डरकर मोक्षमार्ग प्राप्त होनेकी इच्छासे ही उसने अपने पुत्र धनदकेलिये अपना राज्य समर्पण किया और स्वयं संसारके दुखोंसे डरे हुए अनेक राजाओंके साथ साथ दीक्षा धारण की ॥ १५—१८ ॥ अनुक्रमसे ग्यारह अंगरूपी समुद्रके पार होकर सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया और तीर्थंकर नामकर्मका बंधकर अंतमें समाधिमरण धारण किया ॥ १९ ॥ शरीर छोडकर चौदहवें प्राणत स्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ वहां उसकी वीस सागरकी आयु थी, साडे तीन हाथका शरीर था, शुक्ललेश्या थी, दश महीने वाद श्वास लेता था, वीस हजार वर्ष वाद मानसिक आहार लेता था, उसके मानसिक प्रवीचार था, पांचवीं पृथ्वीतक अवधिज्ञान था और विक्रिय बल तेज आदि भी अवधिज्ञानके क्षेत्रके समान था बहुत बलवान था तथा अणिमा महिमा आदि उत्कृष्ट आठों गुणों और ऐश्वर्यसे भरपूर था

प्रवीचारः प्रासवृमप्रमावधि ॥ २१ ॥ निश्यिावलतेजोभि स्वावधिक्षेत्रसम्मित । उत्थाष्टगुणैश्वर्यः प्राणतेंद्रोजनिष्ट मः ॥ २२ ॥ वीर्यं तत्र सुख मुक्त्वा तस्मिन्नत्रागमिष्यति । द्वीपेस्मिन्भारते क्षेत्रे फाकंदीनगराधिप ॥ २३ ॥ इक्ष्वाकु काश्यपो वंशगोत्राभ्या क्षत्रियाग्रिम । सुग्रीवोस्य महादेवी जयरामेति रम्यमा ॥ २४ ॥ सा देवैर्वसुधारादिपूजां प्राप्य परार्द्धिकां। फाल्गुने मूलनक्षत्रे तामसे नवमी दिने॥२५॥प्रभाते षोडश स्वप्नान् दरनिद्राविलेक्षणा। विलोक्य तत्फलान्यात्मपतेर्ज्ञात्वा प्रमोदिनी ॥ २६ ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे जैत्रयोगे तमुत्तम । प्रासूत प्रतिपद्यासु तदेत्येंद्रा सहामरै ॥ २७ ॥ क्षीराभिषेकं भूषांते पुष्पदंताख्यमब्रुवन् । कुंदपुष्पप्रभाभासिदेहदीप्त्या विराजित ॥ २८ ॥ सागरोपमकोटीनां नवत्यामंतरे गते । एष चद्रप्रभस्याभूत्तदभ्यंतरजीवितः ॥ २९ ॥ पूर्वलक्षद्वयात्मायु धातचापसमुच्छ्रिति । लक्षार्द्धपूर्वकालेऽस्य कौमारमगमत्सुख ॥ ३० ॥ अथाप्य पूज्य साम्राज्यमच्युतेंद्रादिभिर्विभु । अन्वभूत्सुखमरिलष्टमिष्टैः शिष्टैरपीष्टुत ॥ ३१ ॥ कान्ताभि करणे सर्वरमुष्मादपि यत्सुखं । ताभ्योनेन तयो कस्य बहुत्व कथ्यता बुधैः ॥ ३२ ॥

॥ २०–२२ ॥ वहांपर उसने बहुत दिनतक सुखका अनुभव किया । जब उसकी आयु थोडी रह गई और उस मध्यलोकमें जन्मलेनेके दिन समीप आगये तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काकंधी नगरमें राजा सुग्रीव राज्य करता था वह क्षत्रियोंमें मुख्य था तथा इक्ष्वाकुवंश और काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ था उसकी महादेवीका नाम जयरामा था, और उसकी कांति बहुत ही अच्छी थी ॥ २३-२४ ॥ उसके घर देवोंने रत्नोंकी वर्षाकर उसकी वडी भारी पूजाकी थी । फाल्गुनकृष्णा नौमीके दिन मूल नक्षत्रमें सवेरेके समय कुछ कुछ जगते हुए उसने सोलह स्वप्न देखे और अपने पतिसे उनके फल सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई ॥२५–२६॥ मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन जैत्र योगमें इस महादेवीने वह उत्तम पुत्र उत्पन्न किया, उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर मेरुपर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया आभूषण पहिनाये तथा कुंदके फूलकी कांतिके समान शरीरकी कांतिसे सुशोभित ऐसे उन भगवानका नाम पुष्पदंत रक्खा ॥ २७-२८ ॥ श्रीचंद्रप्रभके मोक्ष जानेके वाद नव्वे करोड सागर वीत जानेपर पुष्पदंत हुए थे इनकी आयु भी इसीसमयमें सामिल है ॥ २९ ॥ उनकी दो लाख पूर्वकी आयु थी और सौ धनुषका शरीर था । इसतरह उनके कुमार अवस्थाके पचास हजार पूर्व सुखसे व्यतीत हो गये थे ॥ ३० ॥ तदनंतर सोलहवें स्वर्गके इंद्रादि देव भी जिसे पूज्य समझते हैं ऐसे राज्यको पाकर वे भगवान् इष्ट पदार्थोंसे सुखका अनुभव करने लगे । उससमय बडे बडे पूज्य पुरुष भी उनकी स्तुति करते थे ॥ ३१ ॥ सब स्त्रियोंसे इंद्रियोंसे और इस राज्यसे जो सुविधिनाथको सुख मिलता था तथा सुविधिनाथसे जो उन स्त्रियोंको सुख मिलता था उन दोनोंमें बुद्धिमान् लोग किसको बडा वा बहुत कहें ॥३२॥

पुण्यवानस्त्वयं किंतु मन्ये ता बहुपुण्यका । या समभ्यर्णनिर्वाण सुखेमेनमरीरमन् ॥ ३३ ॥ य स्वर्गसारसौख्याब्धिमग्नः सन् भुवमागत । तान्येव भोग्यवस्तूनि यानि त चाभ्यलाषयन् ॥ ३४ ॥ अनतशोऽहमिंद्रत्व प्राप्य तेनाप्यतृप्तवान् । सुखेनानेन चेदेष तृप्त सौख्येष्विदं सुखं ॥ ३५ ॥ अष्टाविंशतिपूर्वांगयुतलक्षार्द्धपूर्वके । राज्यकाले गते प्रीत्या कुर्वतो दिग्विलोकन ॥ ३६ ॥ आपतती विलोक्योल्कामस्यासीदीदृशी मति । दीपिकेयं ममानादिमहामोहतमोपहा ॥ ३७ ॥ इति तद्धेतुसभूतविमलावगमात्मक । स्व / बुद्धो विबुद्ध सन् तत्त्वमेव विभावयन् ॥ ३८ ॥ स्पष्टमद्य मया दृष्ट विश्वमेतद्विडबन । कर्मेंद्रजालिकेनैव विपर्यस्य प्रदर्शित ॥ ३९ ॥ कामशोकभयोन्मादस्वप्नचौर्याद्युपद्रुता । असत्सदिति पश्यति पुरतो घा व्यवस्थित ॥ ४० ॥ न स्थास्नु न शुभ किंचिन्न सुख मे न किंचन । ममाहमेव मत्तोन्यदन्यदेवाखिल जगत् ॥ ४१ ॥ अहमन्यदिति द्वाभ्यां शब्दाभ्या सत्यमर्पित । तथापि को-

क्योंकि भगवान तो पुण्यवान थे ही किंतु मैं तो उन स्त्रियोंको अधिक पुण्यवाली मानता हूं क्योंकि मोक्षका सुख जिनके समीप है ऐसे भगवानको भी वे प्रसन्न करती थीं ॥ ३३ ॥ जो स्वर्गोके मुख्य मुख्य सुखरूपी समुद्रमें मग्न होकर पृथ्वीपर आए थे उनकेलिये भोगोपभोग करने योग्य उन्हीं वस्तुओंको समझना चाहिये कि जिनकेलिये उनकी इच्छा उत्पन्न हो ॥ ३४ ॥ जो अनंतवार अहमिंद्र पद पाकर उन सुखोंसे तृप्त नहीं हुए वे भगवान इन सुखोंसे तृप्त हुए इसलिये कहना चाहिये कि सब सुखोंमें सबसे उत्तम यही सुख है ॥ ३५ ॥ इसतरह प्रेमपूर्वक राज्य करते हुए उनके पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वांग बीत गये। तब किसी एक दिन वे दिशाएं देख रहे थे कि इतनेमें ही एक उल्कापात देखकर ही उनके ऐसे विचार हो गये। वे सोचने लगे कि यह बहुत छोटासा दीपक (उल्कापात) ही मेरे अनादि कालसे लगे हुए महामोहरूपी अंधकारको नाश करनेवाला है ॥ ३६–३७ ॥ इसप्रकार उस उल्कापातसे ही उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ, स्वयंबुद्ध हुए और स्वयंबुद्ध होकर तत्त्वोंको इसप्रकार विचारने लगे कि आज मैंने स्पष्ट रीतिसे देख लिया कि यह संसार विडंबनारूप है कर्मरूपी इंद्र जालिया ही इसे विपरीतकर दिखला रहा है ॥ ३८–३९ ॥ काम, शोक, भय, उन्माद, स्वप्न और चोरी आदि विकारोंसे विकृत हुए जीव सामने रक्खे हुए असत् पदार्थको भी सत् (सच्चा) मान लेते हैं ॥ ४० ॥ इस जंगलमें न तो कोई वस्तु स्थिर रहनेवाली है न शुभ है न कुछ सुख देनेवाली है और न कुछ मेरी है मेरा यह आत्मा ही है मेरे आत्मासे (मुझसे) भिन्न यह सब जगत् भिन्न ही है, तथा मैं उस जगतसे भिन्न हूं इन दो ही शब्दोंसे जो कुछ कहा जाता है वही सत्य है। यद्यपि वास्तविक स्वरूप ऐसा ही है तथापि मोहकर्मके उदयसे शरीरादिको यह अपना मान रहा है ॥ ४१–४२ ॥

पर्यं मोहाशम्रो निग्रहादिषु ॥ ४२ ॥ अ मन शुभ नि अ पुनमे यथान्मसु । असादेव निपर्यासाद् भ्रातोऽहं भववारिधौ ॥ ४३ ॥ जन्मदु खजग-मृत्युमहाग्राहमीकरे । इति साम्र उपलक्ष्मीं स तितिक्षुरभवत्तदा ॥ ४४ ॥ क्षिप्त्वा लौकांतिकावाप्तपूज्यो राज्यभरं सुते । सुमतौ प्राप्तकल्याण सुरेंद्र परिवारित ॥ ४५ ॥ आरुह्य शिविका सूर्यप्रभाख्या पुष्पके वने । मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपद्यपराह्णके ॥ ४६ ॥ दीक्षा षष्ठोपवासेन ससहस्रनृपोऽग्रहीत् । मन पर्ययसज्ज्ञानो द्वितीयेऽह्नि प्रविष्टवान् ॥ ४७ ॥ चर्यां शैलपुरे पुष्पमित्रश्चामीकरच्छविः । तत्र त भोजयित्वाप पञ्चाश्चर्याणि पार्थिव ॥ ४८ ॥ एव तपस्यतो याता छाद्मस्थ्येन चतु समा । मूलर्क्षे कार्तिके शुद्धद्वितीयाया दिनक्षये ॥ ४९ ॥ दिनद्वयोपवास सन्नधस्तान्नागभूरुह । दीक्षावने विधूताघ प्राप्तानतचतुष्टय- ॥ ५० ॥ चतुर्विधामराधीशविहितातर्क्यवैभवः । मुनिरूपितविश्वार्थदिव्यध्वनिविराजित ॥ ५१ ॥ विदर्भनाममुख्या-

आत्मासे भिन्न जो शरीरादिक हैं वही मैं हू मेरे सुख सब शुभ हैं और नित्य हैं ऐसा जो विपरीत ज्ञान हो रहा है इसी विपरीत ज्ञानसे जन्म मरण बुढापा और दु खरूपी महामगर मच्छोंसे भयानक ऐसे संसाररूपी समुद्रमें मै परिभ्रमण कर रहा हूं । इसप्रकार विचार कर उन्होंने राज्य लक्ष्मीके त्याग करनेकी इच्छाकी और सुमति नामके पुत्र को राज्यका सब भार समर्पण किया । उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर दीक्षा कल्याणकी पूजाकी और वे उनके चारों ओर आकर खडे हो गये ॥ ४३–४५ ॥ सूर्यप्रभा-नामकी पालकीपर सवार होकर वे भगवान 'पुष्पक वनमें गये और मार्ग शीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन शामके समय हजार राजाओंके साथ साथ वेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की । उसीसमय उनके मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे पारणाके दिन वे चर्याके लिये निकले और शैलपुर नगर में गये । सुवर्णकी कांतिको धारण करनेवाले वहांके राजा पुष्पमित्रने उन्हें आहार दिया और वह देवोंके द्वारा किये हुए पंचाश्चर्यों को प्राप्त हुआ ॥ ४६–४८ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए उनके छद्मस्थ अवस्थामें चार वर्ष व्यतीत हो गये तब वे दो दिनका उपवास कर पुष्पक नामके दीक्षावनमें ही नागवृक्षके नीचे विराजमान हुए उन्हें वहीं कार्तिक शुक्ला द्वितीयाके दिन मूल नक्षत्रमें शामके समय घातिया कर्मोंका नाश होकर अनंत चतुष्टय प्राप्त हुए ॥४९-५० ॥ चारों प्रकारके देवोंके इंद्रोंने आकर जिसे कोई विचारमें भी नहीं ला सकता ऐसी समोसरण आदि विभूतिकी रचनाकी और दिव्यध्वनिके द्वारा सब पदार्थोंका निरूपण करते हुए वे भगवान उस समोसरणमें विराजमान हुए ॥ ५१ ॥ उनके समोसरणमें विदर्भको आदि लेकर सात ऋद्धियोंको धारण करनेवाले अठासी गणधर थे और पन्द्रहसौ श्रुतकेवली थे ॥ ५२ ॥ एक लाख पचपन हजार पांचसौ शिक्षक उनके रक्षक थे और आठ हजार चारसौ अवधिज्ञानी

षाशीतिसप्तार्द्धसंयुत । शून्यद्वयेंद्रियैकोकश्रुतकेवलिनायक ॥ ५२ ॥ खद्वयेंद्रियपचेंद्रियैकशिक्षकरक्षक ! शून्यद्वयाब्धिकर्मोंकत्रिज्ञानवरसेवित ॥ ५३ ॥
शून्यत्रयमुनिप्रोक्तकेवलज्ञानलोचन । खत्रयत्र्यैकनिर्णीतविक्रियर्द्धिविचेष्टित ॥ ५४ ॥ शून्यद्वयेंद्रियद्वर्युक्तमन पर्ययबोधन । शून्यद्वयर्तुषट्
प्रोक्तवादिवद्याप्रिमगल ॥ ५५ ॥ पिंडितपिंद्विलक्षेश खचतुष्काष्टवन्हिमान् । घोषार्याद्यार्यिकोपेतो द्विलक्षश्रावकान्वित ॥ ५६ ॥ श्राविकापचलक्षाच्र्य
सख्यातीतमरुद्गण । तिर्यक्सख्यातसपत्नो गणैरीत्येभिरार्चित ॥ ५७ ॥ निहृत्य विषयान् प्राप्य सम्मेदं रुद्धयोगक । मासे भाद्रपदेऽष्टम्या शुक्ले मूले
पर ह्नके ॥ ५८ ॥ सहस्रमुनिभि सार्द्धं मुक्ति सुविधिरासवान् । निर्लिपा परिनिर्वाणकल्याणाते दिवं ययु ॥ ५९ ॥ दुर्गं मार्ग परेषा सुगमभिगमा-
त्वस्य शुद्ध व्यधाय , प्राप्तु स्वर्गापवर्गौ सुविधिरुपशमं चेतसा विभ्रतां त । भक्ताना मोक्षलक्ष्मीपतिमतिविकसत्पुष्पदत भदत, भास्वंत दतकांत्या
प्रहसितवदन पुष्पदंत नमाम ॥ ६० ॥ शात वपु श्रवणहारि वचश्चरित्र सर्वोपकारि तव देव ततो भवतं । समारमारुमहास्थलरुद्रसाद्रछायामहीरुहमिमे

मुनि उनकी सेवा करते थे ॥ ५३ ॥ सात हजार पांचसौ केवलज्ञानी और तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करने-वाले मुनि उनके चारों ओर विराजमान थे ॥ ५४ ॥ सातहजार पांचसौ मनःपर्ययज्ञानी और छह हजार छहसौ वादी उनके चरणकमलोंकी वंदना करते हुए मंगलस्वरूप हो रहे थे ॥५५ ॥ इसतरह सब मुनिराजोंकी संख्या दो लाख थी। घोषार्याको आदि लेकर तीन लाख अस्सीहजार आर्जिकायें उनके साथ थीं, दो लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं उनकी पूजा करती थीं। इनके सिवाय असंख्यात देव देवी और संख्याततिर्यंच उनके साथ थे। इसतरह इन बारह सभाओंसे वे भगवान पूज्य हो रहे थे ॥ ५६ ५७ ॥ सब देशोंमें विहारकर अंतमें वे सम्मेदशिखरपर जा विराजमान हुए, वहांपर उन्होंने योग निरोध किया और एकहजार मुनियोंके साथ भाद्रपद (भादों) शुक्ला अष्टमीके दिन मूलनक्षत्रमें शामके समय वे पुष्पदंत भगवान मोक्ष पधारे। इंद्रादि देवोंने आकर उसीसमय निर्वाण कल्याणकी पूजाकी और फिर वे अपने २ स्वर्गको चले गये ॥ ५८–५९ ॥ जिन्होंने अपने ज्ञानसे दूसरोंके कठिनसे कठिन मार्ग-को भी सुगम और शुद्ध कर दिया, जो पुरुष अपने चित्तमें शांतता वा उपशम धारण करते हैं ऐसे भव्योंकेलिये जिन्होंने स्वर्ग मोक्ष प्राप्त होनेकी विधि बतलाई, जो मोक्षलक्ष्मीके स्वामी हैं अत्यंत खिले हुए फूलके समान जिनके दांत हैं जो अत्यंत दैदीप्यमान हैं दांतोंकी कांतिसे सुशोभित हैं और जिनका मुखकमल सदा प्रफुल्लित रहता है ऐसे पुष्पदंतको मैं नमस्कार करता हू ॥ ६० ॥ हे सुविधिनाथ देव! आपका शरीर शांत है, वचन कानोंको हरण कर-नेवाले (सुख देनेवाले) हैं और चारित्र सबका उपकार करनेवाला है संसाररूपी मरुस्थलमें आप बड़ी भारी घनी

मुनिविधिं श्रयाम ॥ ६१ ॥ योऽजायत क्षितिभृदत्र महादिपद्म पश्चादभूद्दिवि चतुर्दशकल्पनाथ । प्रान्ते बभूव भरते सुविधिर्नृपेंद्र—स्तीर्थेश्वर स नवम: कुरुताच्छ्रियं व ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पुष्पदंतपुराणावसति' पंचपंचाशत्तमं पर्व ।

अथ षट्पंचाशत्तमं पर्व ।

शीतलो यस्य सद्धर्मः कर्मघर्मांशुभीरुभिः ॥ सततानां शशीवासौ शीतलः शीतलोऽस्तु नः ॥ १ ॥ पुष्करद्वीपपूर्वार्द्धमंदरप्राग्विदेहभाक् । सीतावाक्तटवत्सस्थसुसीमानगराधिप ॥ २ ॥ भूपति पद्मगुल्माख्यो दृष्टोपायचतुष्टय । पंचागमंत्रनिर्णीतसंधिविग्रहतत्त्ववित् ॥ ३ ॥ प्रज्ञावारिपरीषेक

छायावाले वृक्षके समान हैं इसलिये ही ये हम सब लोग आपका आश्रय लेते हैं ॥ ६१ ॥ जो पहिले इसी मध्यलोकमें महापद्म राजा हुए थे, फिर जो चौदहवें प्राणत स्वर्गके इंद्र हुए और अंतमें वहांसे आकर जो इसी भरतक्षेत्रमें सुविधिनाथ राजाधिराज होकर नौवें तीर्थंकर हुए ऐसे पुष्पदंत वा सुविधिनाथ तुम लोगोंका कल्याण करो ॥ ६२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान पुष्पदंतका पुराण समाप्त करनेवाला यह पचपनवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

अथ छप्पनवां पर्व ।

जिनका कहा हुआ धर्म भी सबके लिये शीतल है और कर्मरूपी धूपकी किरणोंके डरसे संतप्त हुए लोगोंको जो चंद्रमाके समान शीतल हैं ऐसे श्री शीतलनाथ भगवान् हम लोगोंको शीतल हों ॥ १ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व मंदराचलकी ओर पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके पश्चिम किनारे वत्स नामका देश है उसके सुसीमा नगरमें पद्मगुल्म नामका राजा राज्य करता था वह साम दाम दंड भेद इन चारों उपायोंको जाननेवाला था, पंचांग मंत्रसे निर्णय किये हुए संधि विग्रह आदि तत्त्वोंका जानकार था, बुद्धिरूपी जलके सींचनेसे उसका राज्यरूपी वृक्ष बहुत ही बढ गया था तथा स्वामी मंत्री किला खजाना मित्र देश और सेना ये सात प्रकृतिरूपी शाखाओंके द्वारा धर्म अर्थ काम तीनों फल खूब फलते थे ॥ २-४ ॥ वह प्रतापरूपी बडवानलकी चंचल ज्वालाओंकी पंक्तियोंसे खूब ही देदीप्यमान था तथा उसके तलवार

वृद्धिमद्राज्यभूरुह । सप्तप्रकृतिशाखाभि फलत्यस्य फलत्रयं ॥ ४ ॥ प्रतापवाडवालोलज्वालामालापरिस्फुरत् । चंद्रासिवारावार्वाद्धिमग्नारातिमहीधर ॥ ५ ॥ स्वयमुत्पाद्य दैवेन लक्ष्मीं बुद्ध्योद्यमेन च । विधाय सर्वसंभोग्या भोक्तापि गुणवानसौ ॥ ६ ॥ न्यायार्जितार्थसंतर्पितार्थिसार्थो निराकुलं । पाति तस्मिन् धराचक्र सर्वर्तुसुखशालिनि ॥ ७ ॥ कोकिलालिकलालापा विलसत्पल्लवाधरा सौगंध्यान्वितमत्तालिकलितोद्गमलोचना ॥ ८ ॥ भामिनीहार-सज्योत्स्नाहासा स्वच्छांवरावरा । संपूर्णचन्द्रबिंबास्या वकुलामोदवासिता ॥ ९ ॥ मलयानिलनिश्वासा कर्णिकारतनुच्छवि । वसतश्रीरिवायाता तत्संगम-समुत्सुका ॥ १० ॥ अनगस्तद्बलेनैन पञ्चबाणोपि निष्ठुरं । अविध्यद्बहुबाणो वा को न कालबले बली ॥ ११ ॥ मुसुखेप्सुर्वसंतश्रीविवशीकृतमानसः । तया विवृद्धसंप्रीतिराक्रीडति निरतर ॥ १२ ॥ सापि कालानिलोद्धूता घनाली वा व्यलीयत । तदपायसमुद्भूतशोकव्याकुलिताशय

रूपी चंद्रमाकी धारारूपी समुद्रके जलमें सब शत्रुरूप राजा मग्न हो रहे थे डूब रहे थे ॥५॥ उसने दैव बुद्धि और उद्यम तीनों तरहसे स्वयं लक्ष्मीका उपार्जन किया था और उसे सबके उपभोग करने योग्य बना दी थी। यद्यपि वह स्वयं भी उसका उपभोग करता था तथापि वह गुणवान गिना जाता था ॥६॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे सब याचकोंको संतुष्ट करनेवाला और सब ऋतुओंके सुख भोगनेवाला ऐसा वह राजा जिससमय निराकुल हो पृथ्वीका पालन कररहा था उससमय जो कोयल और भ्रमरोंके द्वारा मनोहर वचन कह रही है, सुदर नवीन पत्ते ही जिसके अधर हैं, सुगंधिसे आए हुए उन्मत्त भ्रमरोंसे सुशोभित नई कलियां ही जिसके नेत्र हैं, स्त्रियोंके हार, मनोहर चांदनी और हंसीरूपी स्वच्छ वस्त्रोंसे जो विभूषित है चंद्रमाका पूर्णबिंब ही जिसका मुख है, वकुलकी सुगंधसे जो सुगंधित हो रही है, मलयाचलकी सुगंधित वायु ही जिसका निश्वास है और कर्णकार वृक्षके समान जिसके शरीरकी शोभा है ऐसी वसंत ऋतुकी शोभा उस राजा-के साथ समागम करनेकी इच्छासे ही क्या मानो आई ॥ ७–१० ॥ उससमय जिसके पास पांच ही बाण हैं ऐसा शरीर रहित कामदेव उस वसंतकी सहायतासे निर्दय होकर सताने लगा सो ठीक ही है क्योंकि समयके बल-वान होनेपर बहुतसे बाणवाला कौन वलवान नहीं होता है ॥ ११ ॥ जिसका मन वसंतकी शोभाके वश होगया है और जो अच्छे सुख भोगना चाहता है ऐसा वह राजा भी उस वसंतकी शोभाके साथ प्रेम बढाता हुआ निरंतर क्रीडा करने लगा ॥ १२ ॥ परंतु जिसप्रकार वायुसे मेघ सब नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार समयरूपी वायुसे वह वसंत-की शोभा भी नष्ट होगई। उस वसंतकी शोभाके नाश होनेसे उसे बहुत ही शोक हुआ और उस शोकसे उसका चित्त बहुत ही व्याकुल हुआ ॥ १३ ॥ वह विचार करने लगा कि यह काम बड़ा ही दुष्ट है यह पापी समस्त सं-

॥ १३ ॥ कामो नाम खल कोपि तापयत्यखिलं जगत् । पापी सकलचित्तस्थो विग्रही विग्रहाद्विना ॥ १४ ॥ तं ध्यानानलनिर्दग्धमद्यैव विदधाम्यहं । इत्याविर्भूतवैराग्यश्चंदने निजनंदने ॥ १५ ॥ राज्यभारं समारोप्य मुनिमानंदनामकं । संप्राप्य सर्वसंभोगवैमुख्यं स समीयिवान् ॥ १६ ॥ विपाकसूत्रपर्यंतमकलांगधरः शमी । स्वीकृत्य तीर्थकृन्नाम विधाय सुचिरं तपः ॥ १७ ॥ सम्प्राप्य जीवितस्यांते त्रिधाराधनसाधनं । आरणाख्येऽभवत्कल्पे सुरेंद्रो रुद्रवभव ॥ १८ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानायुर्हस्तत्रितयविग्रहः । शुक्ललेश्याद्वयो मासैः सदैकादशभिः श्वसन् ॥ १९ ॥ द्वाविंशतिसहस्राब्दैर्मानसाहारतर्पित । श्रीमान्मनः प्रवीचारः प्राकाम्याद्यष्टधीगुण ॥ २० ॥ प्राक्षष्ठनरकाद् व्याप्ततृतीयज्ञानभास्वर । तत्प्रमाणबलस्तावत्प्रकाशतनुविक्रियः ॥ २१ ॥ वीतबाह्यविकारोरुवरसौख्याब्धिपारग । कलामिव कलासंख्यामयमायुरजीगमत् ॥ २२ ॥ तस्मिन्भुवं समायाति षण्मासस्थितिजीविते । द्वीपेऽस्मिन्

सारको दुःख देता है और सबके चित्तमें रहता है यह विग्रह अर्थात् शरीरके विना ही विग्रह अर्थात् उपद्रव करनेवाला है ॥ १४ ॥ इसलिये ध्यानरूपी अग्निमें इसे आज ही जलाऊंगा, इसप्रकार उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने चंदन नामके अपने पुत्रको राज्यका भार समर्पण किया और आनंद नामके मुनिके समीप जाकर वह सब भोगोपभोगोंसे उदास हुआ अर्थात् सबका त्यागकर उसने दीक्षा धारणकी ॥ १५–१६ ॥ शांत मुद्राको धारण करनेवाले उसने विपाकसूत्रतक सब अंगोंका अध्ययन किया, और बहुत दिन तपश्चरणकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया ॥ १७ ॥ आयुके अंतमें मन वचन कायसे समाधिमरण धारण किया और शरीर छोड़कर पंद्रहवें आरण स्वर्गमें भारी विभूतिको धारण करनेवाला इंद्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ वहांपर उसकी बाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था, द्रव्य और भाव दोनों ही शुक्ल लेश्यायें थीं, वह ग्यारह महीने बाद श्वास लेता था, बाईसहजार वर्ष बाद मानसिक आहारसे संतुष्ट होता था, उस श्रीमान्के मानसिक प्रवीचार था, प्राकाम्य आदि आठ ऋद्धियां थीं, छठवीं पृथ्वीसे पहिले पहिले उसका अवधिज्ञानरूपी प्रकाश पहुंचता था, वहीं तक बल था, वहीं तक प्रकाश था और वहीं तक शरीरकी विक्रिया थी ॥१९–२१॥ उसके कोई बाह्य विकार नहीं था बड़े भारी सुखरूपी समुद्रका पारगामी था और कलाओंके समान कलाओंकी संख्याओंसे भरी हुई आयुको व्यतीत करता था ॥ २२ ॥ जब उसकी आयुके छह महीने रह गये और वह इस पृथ्वीपर जन्म लेनेके सन्मुख हुआ तब इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मलयदेशके भद्रपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ दृढरथ नामका राजा राज्य करता था । उसकी महादेवीका नाम सुनंदा था उसके घर कुबेरकीआज्ञासे गुह्यक नामके देवोंने छह महीने पहिलेसे ही रत्नोंकी वर्षा करना प्रारंभ किया था । उस मानिनीने भी सवेरेके समय सोलह स्वप्न

मारते वर्षे विषये मलयाह्वये ॥ २३ ॥ राजा ::रथ वश पुरोर्दृढरथोऽभवत् । महादेवी सुनदास्य तद्गृहं धनदाज्ञया ॥ २४ ॥ रत्नैरपूरयन्देवा षण्मासं-
गुह्यकाह्वया । सापि स्वप्नान्निशाप्राते षोडशालोक्य मानिनी ॥ २५ ॥ प्रविशंतं गजं चास्ये भूपतेस्तत्फलान्यवैत् । नदाषाढनक्षत्रे कृष्णाष्टम्या दिव-
श्च्युत ॥ २६ ॥ चैत्रे स देवं स्वर्गाग्रात् शुणे सद्वृत्ततादिभि । भावी शुक्तिपुटे तस्या वार्बिंदुर्वोदरेऽभवत् ॥ २७ ॥ आदिकल्याणसत्पूजा प्रीत्यैत्य
विदधु सुरा । द्वादश्यामसिते माघे विश्वयोगेजनि क्रमात् ॥ २८ ॥ तदैवागत्य त नीत्वा महामेरुमहोत्सवा । देवा महाभिषेकांते व्याहरंति स्म
शीतल ॥ २९ ॥ नव कोटयब्धिनानोक्तपुष्पदतातरांतिमे । पल्योपमचतुर्भागे व्युच्छिन्ने धर्मकर्मणि ॥ ३० ॥ तदभ्यंतरवर्त्यायुरुत्पन्न· कनकच्छवि ।
खपचकैकपूर्वायुर्धनुर्नवतिविग्रहः ॥ ३१ ॥ गते स्वायुश्चतुर्भागे कौमारे स्वपितु पदं । प्राप्य प्रधानसिद्धिं च पालयामास स प्रजा ॥ ३२ ॥ गत्यादिशु-
भनामानि सद्वेद्य गोत्रमुत्तम । आयुस्तीर्थंकरोपेतमपवर्त्तविवर्जित ॥ ३३ ॥ सर्वाण्येतानि संभूय स्वोत्कृष्टानुभवोदयात् । सुखदानि ततस्तस्य सुख केनोप-
मीयते ॥ ३४ ॥ स्वायुश्चतुर्थभागावशेषे हासितसस्रुतिः । प्रत्याख्यानकषायोदयावसाने प्रतिष्ठितं ॥ ३५ ॥ त कदाचिद्विहारार्थं वन यातं महौजस । हि-

देखे तथा अंतमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा राजासे उनका फल सुना और चैत्रकृष्णा अष्टमीके दिन पूर्वाषाढ नक्षत्रमें वह इंद्र स्वर्गसे च्युत हुआ तथा जिसप्रकार जलकी बूंद गुलाई आदि गुणोंसे सीपमें रहती है उसी-प्रकार वह माताके उदरमें आ विराजमान हुए ॥ २३–२७ ॥ देवोंने आकर बड़े प्रेमसे गर्भकल्याणकी पूजा की। माघकृष्णा द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ नक्षत्रमें उनका जन्म हुआ, उससमय इंद्रादि देव आए, उन्हें मेरुपर्वतपर ले गये वहांपर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया उत्सव मनाया और शीतलनाथ नाम रक्खा ॥ २८–२९ ॥ पुष्पदं-तस्वामीके मोक्ष जानेके बाद नौ करोड सागर बीत जानेपर शीतलनाथ हुए थे, इनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है, इनके जन्म लेनेके पहिले पल्यके चौथाई भाग तक धर्म कर्मका विच्छेद रहा था। इनकी आयु एक लाख पूर्वकी थी और नव्वे धनुष ऊंचा शरीर था ॥ ३०–३१ ॥ उनकी आयुका चौथाई भाग कुमार अवस्थामें व्यतीत हुआ था फिर पिताका राज्य और प्रधान सिद्धि पाकर उन्होंने प्रजाका पालन किया था ॥ ३२ ॥ गत्यादि शुभ नाम, साता वेदनीय, ऊंच गोत्र तथा अपवर्तरहित और तीर्थंकरनामकर्मसहित उत्तम आयु ये सब कर्म मिलकर उत्कृष्ट अनुभवके उदय होनेसे सुख देनेवाले थे, इसलिये उनके सुखकी उपमा भला किसके साथ दी जा सकती है ॥३३–३४॥ इसतरह जब उनकी आयुका चौथाई भाग वाकी रह गया और संसारका अंत नजदीक आगया तब उनके प्रत्याख्यान कषायके उदयका अंत हुआ। इसीसमय वे महातेजस्वी भगवान विहार करनेकेलिये किसी वनमें गये थे वहांपर

मानीपटलं मय प्रच्छाद्य प्रलय गत ॥ ३६ ॥ स तद्धेतुसमुद्भूतबोधिरित्यमन्वितयत् । क्षण प्रत्यर्थपर्यायैरिदं विश्वं विनश्वर ॥ ३७ ॥ दु खसु खिनिमित्तान्यत्रितय निश्चित मया । सुखादित्रयविज्ञानमेतन्मोहानुबन्धजात् ॥ ३८ ॥ अहं किल सुखी सौख्यमेतत्किल पुन सुख । पुण्यात्किलमहामोहः काललब्ध्या विनाऽभवत् ॥ ३९ ॥ कर्म स्यात्किं न वा पुण्य कर्म चेत् कर्मणा कुत । सुख रतिविकाराभिलापदोषववेगिनः ॥ ४० ॥ विषयैरेव चेत्सौख्य तेषा पर्यंतगोस्म्यहं । तत कुतो न मे तृप्तिः मिथ्या वैषयिक सुख ॥ ४१ ॥ औदासीन्य सुखं तच्च सति मोहे कुतस्तत. । मोहारिमेव निर्मूल विलय प्रापये द्रुतं ॥ ४२ ॥ इत्याकलय्य याथात्म्यहेयपक्षे निवेशित । दत्त्वा पुत्राय साम्राज्य मोहिनामादरावह ॥ ४३ ॥ लब्धलौकांतिकस्तोत्र प्राप्ततत्कालपूजन । शुक्रप्रभा समारुह्य सहेतुकवनांतरे ॥ ४४ ॥ पूर्वाषाढे माघमासे कृष्णद्वादश्यह क्षये । उपवासद्वयो राजसहस्रेणैत्य सयम ॥ ४५ ॥ चतुर्ज्ञानो द्वितीयेऽह्नि स चर्यार्थं

पालेका समूह सबको ढक रहा था और देखते देखते ही वह नष्ट होगया था ॥ ३५–३६ ॥ इसी हेतुसे उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और वे इसप्रकार विचार करने लगे कि प्रत्येक पदार्थके पर्याय क्षणक्षणमें बदलते रहते हैं उन्हींसे यह संसार विनश्वर है ॥ ३७ ॥ आज मुझे दु ख दुःखी और इनका निमित्त इन तीनोंका निश्चय होगया । मोह कर्मके उदयसे दुखादि तीनोंमें ही यह सुख सुखी आदिका ज्ञान होता है ॥ ३८ ॥ मैं सुखी हूं ये सब सुख हैं पुण्यकर्मके उदयसे आगे भी सुख मिलेगा यह सब महामोह है जो कि काललब्धिके विना हो रहा है ॥ ३९ ॥ कर्म पुण्यरूप हों अथवा न हों जो कर्म विद्यमान हैं तो फिर उन कर्मोंसे सुख कैसे मिल सकता है क्योंकि संसारी जीवोंके अनेक तरहके विकार होते हैं वे सदा अभिलाषा करते रहते हैं और सभी सदोषी हैं ॥ ४० ॥ यदि संसारमें विषयोंसे ही सुख मिलता हो तो मुझे सबसे अधिक विषय प्राप्त हैं फिर मुझे तृप्ति क्यों नहीं होती इसलिये यह निश्चय है कि यह विषयोंसे उत्पन्न हुआ सुख सर्वथा मिथ्या है ॥ ४१ ॥ सच्चा सुख उदासीनतामें है और वह मोहनीय कर्मके रहते हो नहीं सकता इसलिये मुझे शीघ्र ही यह मोहनीय कर्मरूपशत्रु समूल नाश करना चाहिये ॥ ४२ ॥ इसप्रकार वस्तुका यथार्थ स्वरूप समझकर जिसे मोही लोग ही आदर दे सकते हैं और जो त्याग करने योग्य है ऐसा राज्य पुत्रके लिये समर्पण किया ॥ ४३ ॥ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की, इंद्रादि देवोंने आकर दीक्षाकल्याणकी पूजाकी, शुक्रप्रभा नामकी पालकीपर सवार होकर वे भगवान सहेतुक वनमें पहुंचे और माघ कृष्णा द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर दीक्षा धारण की ॥ ४४–४५ ॥ उसीसमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ, दूसरे पारणाके दिन चर्याकेलिये वे अरिष्ट नगरमें गये,

प्रविष्टवान् । अरिष्टनगरं तस्मै नवपुण्य- ... ॥ ४६ ॥ नाम्ना नरपतिर्दत्वा परमान्न प्रमोदवान् । वितीर्णममरैस्तुष्टै, प्रापदाश्चर्यपंचकं ॥ ४७ ॥
छाद्मस्थ्येन समास्तिस्रो नीत्वा विल्वद्रुमाश्रय । पौषकृष्णचतुर्दश्यां पूर्वाषाढेऽपराह्णगे ॥ ४८ ॥ दिनद्वयोपवासेन कैवल्यं कनकद्युति । प्रापदाप्य तदा देवाः
तस्य पूजामकुर्वत ॥ ४९ ॥ अनगाराह्वयमुख्यैकाशीतिसप्तर्द्धिसत्तमः । शून्यद्वययुगैकोक्तपूज्यपूर्वधरान्वितः ॥ ५० ॥ शून्यद्वयद्विरंध्रेंद्रियोक्त
शिक्षकलक्षितः । शून्यद्वयद्विरुसाग्रज्ञानत्रयविलोचन ॥ ५१ ॥ शून्यत्रितयसप्तोक्तपंचमावगमान्वित । शून्यत्रितयपक्षैकविक्रियर्द्धियतीडित ॥ ५२ ॥
रुद्विकेंद्रियसप्तोक्तमनःपर्ययसंयत । शून्यद्वयाद्रिपंचोक्तवादिमुख्यार्चितक्रमः ॥ ५३ ॥ एकीकृतयतिव्रातलक्षसमुपलक्षितः । सचतुष्काष्टव-
ह्नुक्तधारणाद्यार्यिकान्वित ॥ ५४ ॥ उपासकद्विलक्षार्च्यो द्विगुणश्राविकानुत । असंख्यदेवदेवीड्यस्तिर्यक्संख्यातसेवित ॥ ५५ ॥ विहृत्य विवि-
धान् देशान् भव्यमिथ्यादृशो बहून् । सम्यक्त्वादिगुणस्थानान्यारोपयन् धर्मदेशनात् ॥ ५६ ॥ सम्मेदशैलमासाद्य मासमात्रोज्झितक्रिय । प्रतिमायोग-

वहांपर पुनर्वसु नामके राजाने बडी प्रसन्नतासे नवधा भक्तिपूर्वक उन्हें आहार दिया और देवोंने संतुष्ट होकर उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा की ॥ ४६-४७ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थामें तीन वर्ष विताये तब पौष कृष्णा चतुर्दशीके दिन शामके समय पूर्वाषाढ नक्षत्रमें बिल्वके वृक्षके नीचे दो दिनका उपवासकर आ विराजमान हुए। सुवर्णकीसी कांतिवाले उन भगवानके उसीसमय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और इंद्रादिदेवोंने आकर समवसरण आदिकी रचनाकर उसीसमय उनकी पूजाकी ॥ ४८-४९ ॥ उनकी सभामें मुनियोंमें मुख्य और सात ऋद्धियोंको धारण करनेवाले इक्यासी गणधर थे, चौदहसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार थे ॥ ५० ॥ उनसठहजार दोसौ शिक्षक और सातहजार दो सौ अवधिज्ञानी थे ॥ ५१ ॥ सातहजार केवलज्ञानी और बारहहजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि उनकी पूजा करते थे ॥ ५२ ॥ सातहजार पांचसौ मनःपर्ययज्ञानी और पांचहजार सातसौ वादी मुनि उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे ॥ ५३ ॥ इसतरह सब मुनियोंकी संख्या एक लाख थी। धारणा आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्जिकाएं थीं, दो लाख श्रावक उनकी पूजा, चार लाख श्राविकाएं उनको नमस्कार करते थे, असंख्यात देवदेवी उनकी पूजा करते थे और संख्यात तिर्यंच सेवा करते थे ॥ ५४-५५ ॥ इसतरह उन्होंने अनेक देशोंमें विहार किया, अनेक भव्य मिथ्यादृष्टियोंको सम्यक्त्व आदि देकर तथा धर्मोपदेश देकर ऊंचेके गुणस्थानोंमें चढाया ॥ ५६ ॥ अंतमें सम्मेद शिखरपर आ विराजमान हुए, एक महीनेका योग निरोध किया, और प्रतिमायोग धारणकर एक हजार मुनियोंके साथ साथ आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन पूर्वाषाढ नक्षत्रमें शामके समय समस्त

घदलश्वयुजाष्टम्यां पूर्वाह्णे ऽपराह्णग । नाशिताशेषकर्मारिः संप्रापत्परमं पदं ॥ ५८ ॥ कृत्वा पंचमकल्याणं देवेंद्रा
मासाद्य सहस्रमुनिसंवृतः ॥ ५७ ॥ स्वदेहद्युतिभिः स्तुत्वा शीतलं रस्तुता दिवं ॥ ५९ ॥ यस्योत्पदमनुप्रसादमगमचंद्रोदयाद्वा जगत् मधूना व्यकसन्मुखानि निखिलान्य-
द्योतिताखिलाः । स्वदेहद्युतिभिः स्तुत्वा शीतलं रस्तुता दिवं ॥ ५९ ॥ यस्योत्पदमनुप्रसादमगमचंद्रोदयाद्वा जगत् मधूना व्यकसन्मुखानि निखिलान्य-
ब्जानि वोष्णद्युते । अर्थान्प्राप्य समीप्सितान् बहुदा सन्नर्थवंतोऽर्थितः तं वंदे त्रिदशार्चितं रतितृषानिःशेषिणं शीतलं ॥ ६० ॥ दिग्मातंगकपोलमूल
गलितैर्दानैस्तताामोदनैर्दत्त्वार्द्धेंदुनिभोज्वलोत्तिलकिकास्तदंत्ति पर्यंकके । दिक्कन्याः कलकंठिकाश्च रचितैर्गायंति वर्णाक्षरैर्यस्यात्युद्धत मोहवीरविजयं तं
शीतलं संस्तुवे ॥ ६१ ॥ पद्मगुल्ममखिलैः स्तुतं गुणैरारणेंद्रममरार्चितं ततः । तीर्थकृत्सुदशमं दयामयं शीतलं नमत सर्वशीतलं ॥ ६२ ॥ शीतलेशस्य
तीर्थांते सद्धर्मो नाशमेयिवान् । वक्तृश्रोतृचरिष्णूनामभावात्कालदोषतः ॥ ६३ ॥ तदा मलयदेशेशो निवसन् भद्रिले पुरे । राजा मेघरथस्तस्य सचिव

कर्म रूप शत्रुओंको नाशकर परम मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ५७-५८ ॥ अपने शरीरकी कांतिसे सब दिशाओंको प्रका-
शित करते हुए इंद्रादिदेव आए, निर्वाणकल्याणकी पूजाकी और स्तुतिकर अपने अपने स्वर्गको चले गये ॥ ५९ ॥
जिनका जन्म चंद्रमाके उदयके समान सब संसारको प्रसन्न करनेवाला था, जिसप्रकार सूर्य कमलोंको प्रफुल्लित करता
है उसीप्रकार जिन्होंने अपने भाई बंधुओंके मुखकमल सब प्रफुल्लित कर दिये थे, जिनसे प्रार्थना करनेवाले वा याचक
लोग इष्ट पदार्थोंको पाकर बहुत प्रसन्न होते हुए अर्थवाले हो जाते हैं, देव लोग भी जिनकी पूजा करते हैं और जो
संसारकी बढी हुई तृष्णाको नाश करनेवाले हैं ऐसे शीतल नाथको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६० ॥ दिग्गजोंके कपो-
लमूलसे गलते हुए तथा सबको सुगंधित और आनंदित करनेवाले दानसे जिन्होंने आधे चंद्रमाके समान
निर्मल और ऊंचा तिलक दिया है और जिनके कंठ मधुर हैं ऐसी दिकन्याए अपने बनाये हुए पद्योंसे जिनके उद्धत
हुए मोहरूपी शूरवीरके विजयका गान करती हैं ऐसे शीतलनाथ भगवानकी मैं स्तुति करता हूं ॥ ६१ ॥ जो पहिले
सब तरहके गुणोंसे पूज्य पद्मगुल्म राजा हुए थे, फिर देवोंके द्वारा पूज्य पद्रहवें आरणस्वर्गमें इंद्र हुए और फिर जो
दशवें तीर्थंकर दयामय और सबको शीतल करनेवाले शीतलनाथ हुए उनके लिये तुम सब लोग नमस्कार करो ॥६२॥

अथानंतर—शीतलनाथ तीर्थंकरके अंतिम समयमें काल दोषसे वक्ता श्रोता और धर्मात्मा लोगोंके अभाव होनेसे
इस उत्तम जैनधर्मका नाश होगया था ॥ ६३ ॥ उससमय भद्रिलपुरमें मलयदेशका स्वामी राजा मेघरथ राज्य करता
था उसके मंत्रीका नाम सत्यकीर्ति था ॥ ६४ ॥ किसी एक समय सभामें सिंहासनपर बैठे हुए उस राजाने धर्ममें द्रव्य
लगानेकी इच्छासे सब सभासदोंसे पूछा कि दानोंमें ऐसा कौनसा दान है जिसके देनेसे बहुतसा फल हो ? इसके उत्त-

सत्यकीर्तिवाक् ॥ ६४ ॥ स कदाचित्सभागेहे सिंहासनमधिष्ठित । आपृच्छत सभासीनान् धर्मार्थं द्रव्यवित्सया ॥ ६५ ॥ दानेषु कतमद्दान दत्तं बहुफल भवेत् । इत्यतो मतिवाक्सार' सचिवो दानतत्त्ववित् ॥ ६६ ॥ शास्त्राभयान्नदानानि प्रोक्तानि मुनिसत्तमैः । पूर्वपूर्वबहूपात्तफलानीमानि धीमतां ॥६७॥ पूर्वापरविरोधादिदूरं हिंसाद्यपासन । प्रमाणद्वयसंवादि शास्त्रं सर्वज्ञभाषित ॥ ६८ ॥ भूय ससारभीरूणां सतामनुजिघृक्षया । व्याख्यान तस्य शास्त्रस्य शास्त्रदानं तदुच्यते ॥ ६९ ॥ मुमुक्षोर्दृष्टतत्त्वस्य बधहेतुजिहासया । प्राणिपीडापरित्यागस्तद्दानमभयाह्वयं ॥ ७० ॥ हिंसादिदोषदूरेभ्यो ज्ञानिभ्यो बाह्यसाधनं । प्राहुराहारदान तच्छुद्धाहारातिसर्जन ॥ ७१ ॥ आभ्यामाद्यंतदानाभ्या उभयो कर्मनिर्जरा । पुण्यास्रवश्च शेषेण दातुस्तदुभयं भवेत् ॥७२॥ न ज्ञानात्सति दानानि विना ज्ञान च शास्त्रत । हेयोपेयादितत्त्वावभासन परमं हि तत् ॥ ७३ ॥ तद्व्याख्यात श्रुत सम्यक् भावित शुद्धबुद्धये । तयो- र्हेय परित्यज्य हितमादाय सव्रता ॥ ७४ ॥ मुक्तिमार्गं समाश्रित्य क्रमाच्छातेंद्रियाशया । शुक्लध्यानमभिष्टाय प्राप्नुवत्यमृत पद ॥ ७५ ॥ तस्माद्दानेषु

रगें दानतत्त्वको जाननेवाला मंत्री कहने लगा कि ॥ ६५–६६ ॥ उत्तम मुनियोंने शास्त्र अभय और अन्न ये तीन तरहके दान कहे हैं और बुद्धिमानोंको ये दान पहिले पहिले बहुत फल देनेवाले हैं। भावार्थ--अन्नदानसे अभयदानमें अधिक फल है और अभयदानसे शास्त्रदानमें अधिक फल है ॥ ६७ ॥ सर्वज्ञदेवका कहा हुआ हो, जिसमें पूर्वापर कोई विरोध न हो जो हिंसादि दोषोंको दूर करनेवाला हो और प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों प्रमाणोंसे सिद्ध हो उसे शास्त्र कहते हैं ॥ ६८ ॥ तथा संसारके दुखोंसे डरे हुए सज्जनोंका उपकार करनेकेलिये जो उन शास्त्रोंका व्याख्यान करना है उसे शास्त्रदान कहते हैं ॥ ६९ ॥ जो मोक्षकी इच्छा करनेवाला और तत्त्वोंका जानकार पुरुष कर्मबंधके हेतुओंको दूर करनेकी इच्छासे प्राणियोंकी पीडाका त्याग करता-किसीकी हिंसा नहीं करता वह उसका अभयदान गिना जाता है ॥ ७० ॥ इसीतरह हिंसादि दोषोंसे दूर रहनेवाले ज्ञानियोंकेलिये जो शुद्ध आहार देना है वह आहारदान कहलाता है ॥ ७१ ॥ इन दानोंमेंसे शास्त्रदान तथा आहारदानसे देने और लेनेवाले दोनोंके कर्मोंकी निर्जरा होती है और अभयदानसे देनेवालेके कर्मोंकी निर्जरा भी होती है और पुण्यास्रव भी होता है दोनों ही होते हैं ॥ ७२ ॥ ज्ञानके विना दान नहीं दिया जासकता और ज्ञान शास्त्रसे होता है क्योंकि अच्छीतरह त्याग और ग्रहण करनेयोग्य पदार्थोंका प्रकाश शास्त्रसे ही हो सकता है ॥ ७३ ॥ शास्त्रोंके व्याख्यान करने सुनने और अच्छीतरह चिंतवन करनेसे बुद्धि शुद्ध हो जाती है और बुद्धि शुद्ध हो जानेसे त्याग करनेयोग्य वस्तुओंका त्यागकर जीव ग्रहण करने योग्य वस्तुओंको ग्रहणकर व्रती हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ तथा मोक्षमार्गका आश्रय पाकर अनुक्रमसे इंद्रिय और हृदयको शांतकर तथा शुक्लध्यानका ध्यानकर

तच्छ्रेष्ठ प्रदातुर्गृह्णतामपि । निरवद्य निजानंदनिर्वाणपदसाधन ॥७६॥ अत्यादप्यल्पसावद्यादभयाख्यमभिष्टुत । त्रिभिरेभिर्महादानैः प्राप्नोति परमपद ॥७७॥ इति प्राहैवमुक्तोपि राज्ञा तन्नादमन्यत । कपोतलेश्यामाहात्म्यादन्यदानप्रदित्सया ॥७८॥ तत्रैव नगरे भूतिशर्माख्यो ब्राह्मणोऽभवत् । प्रणीय दुःश्रुती राज्ञो रंजयत्स्वमनीषया ॥७९॥ तस्मिन्नुपरते तस्य तनयः सर्वशास्त्रवित् । मुंडशालायनो जातस्तत्रासीनोऽब्रवीदसौ ॥८०॥ मुनीनां दुर्विधाना च दानत्रयमिदं मतं । महेच्छाना महीशाना दानमस्त्यन्यदुत्तमं ॥८१॥ भूसुवर्णादिभूयिष्ठमाचन्द्रार्कयशस्करं । शापानुग्रहशालिभ्यो ब्राह्मणेभ्य प्रयच्छत ॥८२॥ आर्षमत्र श्रुत चास्ति दानस्यास्योपदेशक । इत्यानीय गृहात्स्वोक्त तत्पुस्तकमवाचयत् ॥८३॥ इत्थ तेनेंगितज्ञेन लब्ध्वावसरमुत्पथ । मुंडशालायनेनोक्त राजा तद्बहुमन्यत ॥८४॥ पापाभीरो रभद्रस्य विषयांधस्य दुर्मते । रंजित. स महीपाल परलोकमहाशया ॥ ८५ ॥ कदाचित्कार्तिके मासि पौर्णमास्या शुचीभवन् । मुंडशालायनं

मोक्षपद पाते हैं ॥ ७५ ॥ इसलिये सब दानोंमें शास्त्रदान ही श्रेष्ठ है क्योंकि वही देने और लेनेवाले दोनोंकेलिये पा परहित और आत्मानंद स्वरूप मोक्षपदका कारण है ॥ ७६ ॥ अंतिमे आहारदानमें थोड़ा पाप करना पडता है इसलिये अभयदान उससे अच्छा माना गया है इन तीनोंही महादानोंसे मोक्षपद प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ मंत्रीके इसप्रकार कहनेपर भी कपोत लेश्याके माहात्म्यसे और किसी दूसरे दानके देनेकी इच्छासे राजाने उसकी बात नहीं मानी ॥ ७८ ॥ उसी नगरमें एक भूतिशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था वह अपनी बुद्धिके अनुसार मिथ्याशास्त्रोंकी रचनाकर राजाको प्रसन्न करता रहता था ॥ ७९ ॥ उसके मरनेपर सब शास्त्रोंका जानकार मुंडशालायन नामक उसका पुत्र हुआ था वह उसी सभामें बैठता था इसलिये वह मंत्रीके चुप रहनेपर कहने लगा कि ये तीनों तरहके दान या तो मुनियोंकेलिये हैं या दरिद्रोंकेलिये हैं बडी बडी इच्छा रखनेवाले राजा महाराजाओंकेलिये और उत्तम दान हैं ॥ ८०-८१ ॥ बुरा भला आदि करनेकी शक्ति रखनेवाले ब्राह्मणोंकेलिये चंद्र सूर्यके स्थिर रहनेतक यश उत्पन्न करनेवाला पृथ्वी सुवर्ण आदिका बहुतसा दान देना चाहिये ॥ ८२ ॥ इसी दानके उपदेश देनेवाले ऋषियोंके कहे हुए शास्त्र हैं यह कहकर वह घरसे अपनी बनाई हुई पुस्तक ले आया और बांचकर राजाको सुना दी ॥ ८३ ॥ इसतरह इसारोंको जाननेवाले मुंडशालायनने समय पाकर राजाको उन्मार्ग (बुरा मार्ग) बतलाया और राजा भी उसे बहुत अच्छा मानने लगा ॥ ८४ ॥ देखो! पापोंसे न डरनेवाले, अभद्र, विषयोंमें अंधे और खोटी बुद्धिवाले मुंडशालायनसे परलोकके होनेकी इच्छासे वह राजा प्रसन्न हुआ ॥ ८५ ॥ किसीसमय कार्तिक शुक्ला पौर्णमासीके दिन दुर्मति राजाने पवित्र होकर बडी भक्तिसे मुंडशालायनको अक्षतादिसे पूजाकर उसके कहे अनुसार पृथ्वी सुवर्ण आदिका दान उसे दिया

भक्त्या पूजयित्वाक्षतादिभि ॥ ८६ ॥ भूसुवर्णादितत्प्रोक्तदानान्यदित दुर्मतिः । त दृष्ट्वा भक्तिमान् भूपममात्यः प्रत्युवाचत ॥ ८७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं जिनैर्मतं । स्वपरोपकृतिं प्राहुरत्र तज्ज्ञैरनुग्रहं ॥८८॥ स्वोपकारोयसंवृद्धि परस्य गुणवर्द्धनं। स्वशब्दो धनपर्यायवाची पात्रेतिसर्जनं ८९ स्वस्य दानं प्रशसति तज्जानन्नपि किं वृथा । कुपात्रेर्थं विसृष्टैवं त्रयाणा विहृति कृता ॥ ९० ॥ सुवीजं सुप्रभूतं च प्रक्षिप्त किं तदूषरे । फलं भवति स-क्लेशं वीजनाशं फलाद्विना ॥ ९१ ॥ सुवीजमल्पमप्युप्तं सुक्षेत्रे कालवेदिना । तत्सहस्रगुणीभूतं वापकस्य फलं भवेत् ॥ ९२ ॥ इति भक्तेन तेनोक्तमुदाहर-णकोटिभिः । धीमता तन्महीभर्तुरुपकाराय नाभवत् ॥ ९३ ॥ कालदष्टस्य वा मंत्रो भैषज्यं वा गतायुषः । आजन्मांधस्य वादर्शो विपरीतस्य सद्वचः ॥ ९४ ॥ विहायादिक्रमायातं दानमार्गं कुमार्गगः । मूर्खप्रलपितं दानमारातीयमवीवृतत् ॥ ९५ ॥ कन्याहस्तिसुवर्णवाजिकपिलादासीतिलस्यदनक्ष्मा—

यह देखकर भक्तिमान मंत्री राजासे कहने लगा कि ॥ ८६–८७ ॥ अनुग्रहकेलिये अपना धन वा और कोई वस्तु देना श्रीजिनेंद्रदेवने दान वतलाया है तथा शास्त्रज्ञानियोंने इसप्रकरणमें अनुग्रहका अर्थ अपना और दूसरेका उपकार करना ही वतलाया है ॥ ८८ ॥ पुण्यकी वृद्धि होना अपना उपकार है और गुणोंकी वृद्धि होना दूसरेका उपकार है । स्व श-ब्दका अर्थ धन है जो धन पात्रको दिया जाता है वही दान प्रशंसनीय गिना जाता है । हे राजन् ! इस वातको जानते हुए भी आपने क्यों व्यर्थ ही कुपात्रोंको दान दिया और इसतरह तीनों दानोंका नाश किया ॥ ८९–९० ॥ अच्छा। वीज चाहे कितना भी अधिक हो यदि वह ऊसरमें वोया जायगा तो उसका फल केवल क्लेश ही होगा और विना फलके वह वीज नष्ट हो जायगा ॥ ९१ ॥ इसीतरह यदि अच्छा वीज थोडा भी अच्छे खेतमें समयपर वोया जायगा तो वह हजारगुणा होकर वोनेवालेकेलिये फल देगा ॥ ९२ ॥ इसप्रकार उस वुद्धिमान और भक्तिमान् मंत्रीने करोडों उदाहरण देकर समझाया परतु राजाको वह कुछ भी उपकारी नहीं हुआ ॥ ९३ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि कालके का-टेको मंत्र कुछ काम नहीं देता, आयु पूरी होनेपर औषध कुछ काम नहीं देती, जन्मके अंधेको दर्पण कुछ काम नहीं आता और विपरीत वुद्धिवालेको अच्छे वचन कुछ नहीं कर सकते ॥ ९४ ॥ कुमार्गमें जानेवाले उस राजाने प्रारंभसे चली आरही दानकी परिपाटीको छोडकर एक मूर्खके कहे हुए दानको ही ऋषियोंका कहा हुआ वतला दिया ९५ शीतलनाथ भगवानके अंतिम समयमें वस्तुओंके लोभी और भूतिशर्माके पुत्र मुंडशालायनने दरिद्रियोंको अच्छा लगने-

गेहप्रतिवद्धमत्र दशधा दान दरिद्रेप्सिन। तीर्थांते जिनशीतलस्य सुतरामाविश्चकार स्वय लुब्धो वस्तुपु भूतिशर्मतनयोऽसौ मुंडशालायन: ॥ ९६ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे शीतलपुराण नाम परिसमाप्त षट्पञ्चाशत्तम पर्व ।

अथ सप्तपंचाशत्तमं पर्व।

श्रेय श्रेयेषु नास्त्यन्य: श्रेयम श्रेयसे बुधै । इति श्रेयोर्थिमि श्रेय श्रेयास: श्रेयसेस्तु न: ॥ १ ॥ पुष्करार्द्धेन्द्रदिग्मेरुप्राग्विदेहे सुकच्छके । सीतानद्युत्तरे देशे नृप: क्षेमपुराधिप ॥ २ ॥ नलिनप्रभनामाभून्नमिताशेपविद्विष । प्रजानुरागसपादिताचिंत्यमहिमाश्रय ॥ ३ ॥ पृथ ग्त्रिभेदनिर्णीतशक्तिसिध्युदयोदित: । शमव्यायामसप्राप्तक्षेमयोगोयमधत ॥ ४ ॥ भूभृत्त्वमर्थवत्तस्मिन्यस्मान्न्यायेन पालनात् । स्थितो सुस्थाप्य सुस्निग्धा धरामधित सप्रजा:

वाला कन्याका दान, हाथीका दान, सोनेका दान, घोडोंका दान, गायका दान, दासीका दान, तिल, पृथ्वी, रथ, और घरका दान, इन दसप्रकारके दानोंका अपने आप बडी सरलतासे आविष्कार किया अर्थात् ये दश दान चलाये९६.

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत **महापुराणके** नवीन हिंदी भाषानुवादमें शीतलनाथ के पुराणको समाप्त करनेवाला यह छप्पनवा पर्व पूर्ण हुआ ॥ ५६ ॥

अथ सत्तावनवां पर्व।

जो आश्रय लेने योग्य हैं उन सबमें श्रेयांस नाथ तीर्थंकरको छोडकर कल्याण करनेके लिये और कोई कल्याणकारी नाहीं है। इसलिये मोक्ष प्राप्त करनेवाले बुद्धिमानोंको श्रेयांसनाथका ही आश्रय लेना चाहिये ऐसे श्रेयांसनाथ हम लोगोंके भी कल्याणकर्ता हों ॥ १ ॥ पुष्करद्वीपके पूर्व मंदराचलकी ओर पूर्वविदेहके सुकच्छ देशमें सीतानदीके उत्तर किनारेपर एक क्षेमपुर नगर है उसमें प्रजाके अनुरागसे उत्पन्न हुई अचिंत्य महिमाओंका आश्रय और समस्त शत्रुओंको नवानेवाला नलिनप्रभ नामका राजा राज्य करता था ॥ २-३ ॥ अलग २ तीन तरहसे उसकी शक्ति सिद्धि और उदयकी प्राप्तिका निश्चय होता था तथा शांतता और परिश्रमसे वह क्षेम और योगको प्राप्त होता था इसतरह वह सदा बढता ही रहता था ॥ ४ ॥ जो पृथ्वीका पालन करे वह भूभृत् वा राजा कहलाता है वह न्यायपूर्वक पृथ्वीका पालन करता था इसलिये वह सार्थक राजा था । अपने रहते हुए उसने पृथ्वी बहुत अच्छी बना दी थी

॥ ५ ॥ धर्म एवापरे धर्मस्तस्मिन्सन्मार्गवर्तिनि । अर्थकामो च धर्म्यौ यत्तत्सधर्ममयोऽभवत् ॥ ६ ॥ एवं स्वकृतपुण्यानुभावोदितसुखाकर । लोकपालोपमो दीर्घं पालयन्निखिलामिला ॥ ७ ॥ सहस्राम्रवनेनंतजिन तद्वनपालकात् । अवतीर्णं विदित्वात्मपरिवारपरिष्कृत ॥ ८ ॥ गत्वाभ्यर्च्य चिरं स्तुत्वा नत्वा स्वोचितदेशभाक् । श्रुत्वा धर्मं समुत्पन्नतत्त्ववुद्धिरिति स्मरन् ॥ ९ ॥ कस्मिन् केन कथं कस्मात् कस्य किं श्रेयमित्यद । अजानता मया भ्रांतं श्रातेनानंतजन्मसु ॥ १० ॥ आहितो बहुधा मोहान्मयैवैष परिग्रहः । तत्त्यागाद्यदि निर्वाण कस्मात्कालविलंबनं ॥ ११ ॥ इति नाम्ना सुपुत्राय सुपुत्रगुणशालिने । दत्त्वा राज्य सम भूपैर्बहुभि संयम ययुः ॥ १२ ॥ शिक्षितैकादशागोसौ तीर्थकृन्नामधाम मन् । सन्यस्याजनि कल्पेऽते सुराधीशोऽच्युताह्वयः ॥ १३ ॥ पुष्पोत्तरविमानेसौ द्वाविंशत्यब्धिजीवित । हस्तत्रयप्रमाणाग प्रोक्तलेश्यादिभिर्युत ॥ १४ ॥ देवीभिर्दिव्यभावाभि कमनीयाभिरन्वहं ।

और वह बहुत अच्छी तरह प्रजाका पालन करता था ॥ ५ ॥ श्रेष्ठ मार्गमें चलनेवाला वह उत्तम धर्मकार्योंमें भी धर्म करता था और अर्थ काम भी उसके धर्मरूप थे इसतरह वह पूर्णरूपसे धर्ममय था ॥ ६ ॥ इसप्रकार अपने पुण्यकर्मके उदयसे सुखके खजाने उसने लोकपालके समान बहुत दिनतक इस समस्त पृथ्वीका पालन किया था ॥ ७ ॥ किसी एक दिन सहस्राम्रवनमें अनंत नामके जिनेंद्र देव आए, मालीने आकर राजाको खबर दी, सुनते ही कुटुंब सहित वह गया, पूजाकी, बहुत देरतक स्तुतिकी नमस्कार किया और फिर अपनी योग्य जगहपर जाकर बैठ गया। धर्मका स्वरूप सुनकर उसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और वह इसप्रकार विचार करने लगा कि किमको किम जगह किससे किसतरह किसके द्वारा कल्याण हो सकता है इस बातको नहीं जानकर अनंत जन्मोंमें दुखी हुए मैंने बहुत परिभ्रमण किया ॥ ८–१० ॥ मोह कर्मके उदयसे मैंने ही इस अनेक तरहके परिग्रहको इकठ्ठा किया है, यदि इसके त्याग करनेसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है तो फिर इसके छोडनेमें देर क्यों करनी चाहिये ॥ ११ ॥ इस तरह सोच विचारकर सुपुत्रके गुणोंसे सुशोभित ऐसे सुपुत्र नामके पुत्रको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ उसने संयम धारण किया ॥ १२ ॥ ग्यारह अंगोंका अभ्यासकर तथा सोलह कारण भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया और अंतमें समाधिमरण धारणकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें अच्युत नामका इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांपर उसकी बाईस सागर की आयु थी, तीन हाथका शरीर था और लेश्या अवधि आदि ऊपर लिखे अनुसार थी ॥ १३–१४ ॥ दिव्य भावोंको धारण करनेवाली सुंदर देवियोंके साथ उसने बडे प्रेमसे बहुत दिनतक उत्तमसे उत्तम सुखोंका अनुभव किया ॥ १५ ॥ कल्पातीतके अहमिंद्र निरागी हैं और दूसरे देवोंके सुखकी मात्रा कम है इसलिये संसारके

समारसौख्यपर्यंतसतोपात्समतीयिवान् ॥ १६ ॥
भावसाराणि संख्यानि तत्र श्रीखान्नभूचिरं ॥ १५ ॥ कल्पातीता विरागास्ते परे चात्र गुनासत । नदा षण्मासर्स-
अनुभूय सुरं तस्मिन् तस्मिन्नवागमिष्यति । द्वीपेस्मिन्भारते सिंहपुराधी ते नरेश्वर: ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुवंशविख्यातो विष्णुनामास्य वल्लभा । नदा षण्मासर्स-
प्राप्तवसुधारादिपूजना ॥ १८ ॥ ज्येष्ठे मास्यसिते षष्ठ्या श्रवणे रात्रिनिर्गमे । स्ववक्त्रं वेशिनागेंद्रात्स्वप्नानैक्षिष्ट षोडश ॥ १९ ॥ तत्फलान्यवबुध्यासौ पत्यु:
सप्राप्य समद । तदैवायातदेवेंद्रविहितोरुमहोत्सवा ॥ २० ॥ नव मासान्ययोक्तेन नीत्वा सतोष्य सुप्रजा: । फाल्गुने मासि कृष्णैकादश्या त्रिज्ञानधारिण
॥ २१ ॥ विष्णुयोगे महाभागमसूताच्युतनायकं । मेघावलीव सद्वृष्टिविशेष विश्वतुष्टये ॥ २२ ॥ तदुद्भवे प्रसन्नानि मनासि सकलागिनां । जल-
स्थलानि वा सद्य सर्वत्र शरदागमे ॥ २३ ॥ अर्थिनो धनसंतृप्त्या धनिनो दीनतर्पणं । ते च ते चेष्टसभोगात्मोद्भवा: स्युस्तदुद्भवे ॥ २४ ॥ तदा
सर्वर्तवस्तत्र स्वै स्वैर्भावैर्मनोहरै । प्रादुर्बभूवु: सभूय सरोगिमु वहेनव: ॥ २५ ॥ सरोगा प्रापुरारोग्यं शोकिनो वीतशोकता । धर्मिष्ठता च पापिष्ठाश्चित्र-

सबसे अधिक सुखोंसे संतुष्ट होकर वह अपनी आयु व्यतीत करता था ॥ १६ ॥ जब वह सुखोंका अनुभवकर इस लोकमें जन्म लेनेके सन्मुख हुआ तब इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सिंहपुर नगरका स्वामी इक्ष्वाकु वंशमें प्रसिद्ध ऐसा विष्णु नामका राजा राज्य करता था उसकी महाराणीका नाम नदा था वह छह महीनेसे रत्नोंकी वर्षा होना आदि कई तरहसे पूजी गई थी ॥ १७–१८ ॥ ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठीके दिन श्रवण नक्षत्रमें सवेरेके समय उसने सोलह स्वप्न देखे और अंतमें अपने मुंहमें घुसता हुआ हाथी देखा ॥ १९ ॥ पतिसे उनके फल सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर गर्भ कल्याणका उत्सव मनाया ॥ २० ॥ इसीतरह प्रजाको संतुष्ट करते हुए नौ महीने व्यतीत हुए, फाल्गुणकृष्ण एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें महाभाग्यशाली, और तीन ज्ञानको धारण करनेवाले अच्युतेंद्रको उस महादेवीने उत्पन्न किया ॥ जिसप्रकार मेघमाला अच्छी वर्षाकर संसार भरको संतुष्ट करती है उसीप्रकार उससमय सब लोग संतुष्ट हुए ॥ २१–२२ ॥ जिसप्रकार शरद ऋतुके आते ही सब जलाशय निर्मल हो जाते हैं उसीप्रकार उनके जन्म लेते ही सब लोगोंके मन प्रसन्न होगये थे ॥ २३ ॥ उनके जन्म लेते ही याचक लोग धनसे संतुष्ट होगये थे धनी लोग दीन गरीबोंको संतुष्टकर प्रसन्न हुए थे और दीन गरीब लोग अपने २ इष्ट भोगोंकी प्राप्तिहोनेसे संतुष्ट होगये थे ॥ २४ ॥ उससमय सब जीवोंको सुख देनेवालीं सब ऋतुएं मिलकर अपने अपने मनोहर भावोंसे प्रगट हुई थीं ॥ २५ ॥ आश्चर्य है कि उन भगवानके उत्पन्न होते ही रोगी सब नीरोग होगये थे शोकवालोंके सब शोक दूर होगये थे और पापी सब धर्मात्मा बन गये थे ॥ २६ ॥ उससमय जब साधारण लोगोंको इतना

मीशसमुद्भवे ॥ २६ ॥ जनस्य चेदयं तोषस्तदानीमतिमात्रया । पित्रोस्तस्य प्रमोदस्य प्रमा केन विधीयते ॥ २७ ॥ सपश्चतुर्विधा देवाः कृत्वा तेजोमयं जगत् । स्वांगाभरणभाभारैरापेततिस्म सर्वत ॥ २८ ॥ नेदुर्दुंदुभयो हृद्या पेतु कुसुमवृष्टय । नेद्रामरनर्तक्यो जगु स्वादु द्युगायनो ॥ २९ ॥ लोकोय देवलोको वा ततश्चात्यद्भुतोदयः । अपूर्वं कोप्यभूद्वेति तदा मन् द्युसदां गिर ॥ ३० ॥ पितरौ तस्य सौधर्म स्वयं सद्भूषणादिभि । शची देवीं च संतोष्य माययादाय बालकं ॥ ३१ ॥ ऐरावतगजस्कंधमारोप्यामरसेनया । सहलील स संप्राप्य महामेरुं महौजस ॥ ३२ ॥ पचमावारपारा सक्षीरवारिघटोत्करैः । अभिषिच्य विभूष्येश श्रेयानित्यवदन्मुदा ॥ ३३ ॥ तत पुरं समानीय मातुरंके निधाय तं । सुराधीश द्युरै सार्द्ध प्रमुयार सुरालये ॥ ३४ ॥ गुणैः सार्द्धमवर्द्धत तदास्यावयवा शुभाः । क्रमात्कांति प्रपुष्यतो बालचंद्रस्य वांशुभि ॥ ३५ ॥ स सत्र्यर्युपक्षर्तुपद्वत्सरशताब्धिभि ।

बड़ा भारी संतोष हुआ था तब फिर माता पिताके संतोषका प्रमाण तो कौन कह सकता है ॥ २७ ॥ उसीसमय अपने शरीरके आभूषणोंकी कांतिसे सब संसारको प्रकाशरूप करते हुए चारो प्रकारके देव सब ओरसे आ कूदे ॥ २८ ॥ मनोहर दुंदुभी बजने लगी, फूलोंकी वर्षा होने लगी नृत्य करनेवालीं देवांगनाएं नृत्य करने लगीं और स्वर्गके गानेवाले देव मनोहर गान करने लगे ॥ २९ ॥ यह लोक देवलोक है अथवा उससे भी अधिक विभूतिको धारण करनेवाला कोई और अपूर्व लोक है इसप्रकार उससमय देवोंके वचन निकल रहे थे ॥ ३० ॥ स्वयं सौधर्म इंद्रने उत्तम आभूषणादिकोंके द्वारा माता पिताको संतुष्ट किया अर्थात् उनकी पूजाकी और इंद्रानीने मायासे माताको मोहितकर बालक उठा लिया ॥ ३१ ॥ सौधर्म इंद्रने उस बालकको लेकर ऐरावत हाथीके कंधेपर विराजमान किया और देवोंकी सेनाके साथ लीलापूर्वक महातेजस्वी महामेरु पर्वतपर जा पहुंचा ॥ ३२ ॥ वहांपर विराजमानकर पांचवें क्षीरसागरके जलसे अनेक घड़े भरकर उनका अभिषेक किया आभूषण पहिनाए और बड़ी प्रसन्नतासे श्रेयान् नाम रक्खा ॥ ३३ ॥ तदनंतर नगरमें फिर वापिस लाए, माताकी गोदमें विराजमान किया और फिर सब इंद्र देवोंके साथ २ उत्सव मनाकर अपने २ स्वर्गमें चले गये ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार किरणोंसे बालचंद्रमाकी कांति बढती जाती है उसीप्रकार उन भगवानके शुभ अवयव भी गुणोंके साथ २ बढ रहे थे तथा अनुक्रमसे उनमें कांति बढ रही थी ॥ ३५ ॥ श्रीशीतलनाथके मोक्ष जानेके बाद जब सौ सागर छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर बीत गये थे और आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद रहा था तब श्रीश्रेयांसनाथ उत्पन्न हुए थे इनकी आयु इसी समयमें शामिल है । भावार्थ—इतने समय बाद वे मोक्ष गये थे । उनकी आयु चौरासी लाख वर्षकी थी और

कनसागरकोटयंने पल्यार्द्धं धर्मिसन्तते ॥ ३६ ॥ व्युच्छित्तायां तदभ्यंतरात् श्रेयःसमुद्भव । पंचशून्ययुगाब्दजीवित कनकप्रभः ॥ ३७ ॥ चापा-शीतिसमुत्सेधो बलोजस्तेजसां निधिः । एकविंशतिलक्षाब्दं कौमारे सुखसागरे ॥ ३८ ॥ प्राप्य राज्यं सुरैः पूज्य सर्वलोकनमस्कृतं । तर्पयश्चंद्रवत्सर्वान् दर्पितान् भानुवत्तपन् ॥ ३९ ॥ तेजोमहामणिर्गंभीरोब्धिर्मलयोद्भव । शैत्य धर्म इव श्रेयः सुखं स्वराष्ट्राकरोच्चिर ॥ ४० ॥ प्राग्जन्मसुकृता येन कृ-तायां सर्वसंपदि । बुद्धिपौरुषयोर्व्याप्तिस्तस्याभूद्धर्मकामयो ॥ ४१ ॥ तत्र शुभविनोदेषु देवैः पुण्यानुवर्धिषु । संपादितेषु कांताभिर्दिनान्यारमतोऽगमन् ॥ ४२ ॥ एव पंचखपक्षाब्धिमितसंवत्सरावधौ । राज्यकाले ऽयमन्येद्युर्वसंतपरिवर्तनं ॥ ४३ ॥ विलोक्य किल कालेन सर्वं ग्रासीकृत जगत् । सोपि कालो व्ययं याति क्षणादिपरिवर्तनैः ॥ ४४ ॥ कस्यान्यस्य स्थिरीभावो विश्वमेतद्विनश्वरं । शाश्वतं न पदं यावत् प्राप्यते सुस्थिति कुतः ॥ ४५ ॥ इति

उनके शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी ॥ ३६–३७ ॥ उनका शरीर अस्सी धनुष ऊंचा था और वे बल पराक्रम तथा तेजके भंडार थे। उनके इकईस लाख वर्ष कुमार अवस्थाके सुखसागरमें व्यतीत हुए थे ॥ ३८ तदनंतर उन्हें देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे राज्यकी प्राप्ति हुई थी और सब लोग उन्हें नमस्कार करते थे। वे भगवान चंद्रमाके समान सबको संतुष्ट करते थे और अभिमानी लोगोंको सूर्यके समान संतप्त करते थे ॥ ३९ ॥ वे भगवान् महामणिके समान तेजस्वी थे, समुद्रके समान गंभीर थे मलयाचलकी वायुके सामन शीतल थे और धर्मके समान कल्याण करनेवाले थे इसतरह वे बहुत दिनतक सबको सुख देते रहे थे ॥ ४० ॥ धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंमेंसे पहिले जन्ममें किये हुए पुण्यकर्मके उदयसे उनके संपदा तो सब तरहकी अपने आप आमई थी इसलिये उनकी बुद्धि और पौरुष-की व्याप्ति केवल धर्म और काममें लगती थी ॥ ४१ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे देवोंके द्वारा किये हुए अनेक विनोदोंमें क्रीडा करते हुए उनके दिन व्यतीत हो रहे थे ॥ ४२ ॥ इसतरह उन्होंने ब्यालीसलाख वर्षतक राज्य किया। दूसरे किसी दिन वसंत ऋतुका परिवर्तन देखकर वे विचार करने लगे कि जिस कालने इस समस्त जगतको अपना ग्रास बना रक्खा है वह काल भी क्षण घडी घंटा आदिके परिवर्तनसे नष्ट होता जा रहा है ॥ ४३–४४ ॥ जब कालका ही यह हाल है तब और कौन स्थिर रह सकता है इससे सिद्ध है कि यह सब जगत विनश्वर है, जबतक इस जीवको शास्वत मोक्ष पद प्राप्त नहीं होता तबतक यह जीव कहीं एक जगह स्थिर भी कैसे रह सकता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार चिंतवन करते ही सारस्वत आदि लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकी, भगवानने श्रेयस्कर नामके पुत्रको अपना राज्य समर्पण किया, इंद्रादि देवोंने उसीसमय आकर निर्वाण कल्याणका अभिषेक किया और वे भगवान देवोंके द्वारा उ-

स चिंतयन् लब्धस्तुति सारस्वतादिभि । श्रेयस्करे समारोप्य सुते राज्य सुराधिपै ॥ ४६ ॥ प्राप्य निष्क्रमणस्नानमारुह्य विमलप्रभा । शिविका देवसवाह्या त्यक्ताहारो दिनद्वय ॥ ४७ ॥ मनोहरमहोद्याने फाल्गुनैकादशीदिने । कृष्णपक्षे सहस्रेण पूर्वाह्णे भूभुजा सम ॥ ४८ ॥ श्रवणे सयमं प्राप्य चतुर्थीवगमेन स । दिने द्वितीये सिद्धार्थनगरं भुक्तयेऽविशत् ॥ ४९ ॥ तस्मै हेमद्युतिर्नंदभूपतिर्भक्तिपूर्वक । दत्त्वान्न प्राप्य सत्पुण्य पचाश्चर्याण्यजर्यवी ॥ ५० ॥ द्विसवत्सरमानेन छाद्मस्थ्ये गतवत्यसौ । मुनिर्मनोहरोद्याने तुंबुरद्रुमसश्रय ॥ ५१ ॥ दिनद्वयोपवासेन माघे मास्यपराह्णग । श्रवणे कृष्णपक्षाते कैवल्यमुदपादयत् ॥५२॥ तदा चतुर्थकल्याणपूजा देवाश्चतुर्विधा । तस्य निर्वर्तयामासुर्विविधर्द्धिसमन्विताः ॥५३॥ सप्तसप्ततिकुथ्वादिगणभृद्वृदवेष्टित । शून्यद्वयानलैकोक्तसर्वपूर्वधरान्वित ॥५४॥ खद्वयन्यष्टवार्धुक्तशिक्षकोत्तमपूजित । शून्यत्रितयपट्प्रोक्ततृतीयज्ञानमानित ॥ ५५ ॥ शून्यद्वयेंद्रियर्तूक्तपचमज्ञानभास्कर । शून्यत्रिकैकैकाख्येयविक्रियर्द्धिविभूषित ॥५६॥ षट्सहस्रप्रमाप्रोक्तमनःपर्ययवीक्षण । शून्यत्रितयपचोक्तवादिमुख्यसमाश्रित ॥५७॥ शून्यत्रययुगा-

ठाई जानेवाली विमलप्रभा नामकी पालकीपर सवार होकर मनोहर नामके महोद्यानमें पहुंचे। दो दिनके उपवासका नियम लेकर फाल्गुण कृष्णा एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें सवेरेके समय एकहजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने दीक्षा कारण की। उसीदिन उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। दूसरे पारणके दिन चर्याकेलिये वे सिद्धार्थ नगरमें गये। वहांपर सुवर्णकी कांतिवाले राजा नंदने बडी भक्तिसे उन्हें आहार दिया और अटल बुद्धिवाले उसे उत्तम पुण्य तथा पंचाश्चर्योंकी प्राप्ति हुई ॥ ४६–५० ॥ जब उनके तपश्चरण करते हुए छद्मस्थ अवस्थामें दो वर्ष बीत गये तब वे दो दिनका उपवास लेकर मनोहर नामके उद्यानमें तुंबुर नामके वृक्षके नीचे आ विराजमान हुए और वहींपर उन्हें माघकृष्ण अमावास्याके दिन श्रवण नक्षत्रमें शामके समय केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ५१–५२ ॥ उसीसमय चारों प्रकारके देवोंने आकर केवलज्ञान कल्याणकी पूजाकी उनके समवसरणमें अनेक ऋद्धिओंको धारण करनेवाले कुंथु आदि सतहत्तरि गणधरोंका समूह था और तेरहसौ ग्यारह चौदह पूर्वोंके जानकर श्रुतकेवली वहां विराजमान थे ॥ ५३– ५४ ॥ अडतालीस हजार दौसौ उत्तम शिक्षक मुनि उनकी पूजा करते थे और छह हजार अवधिज्ञानी सेवा करते थे ॥ ५५ ॥ छहहजार पांचसौ केवलज्ञानीरूपी सूर्य और ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले उनकी शोभा वढा रहे थे ॥ ५६ ॥ छह हजार मनःपर्ययज्ञानी और पांच हजार मुख्यवादी उनके आश्रयमें थे ॥ इसतरह सब मिलकर चौरासी हजार मुनि उनकी सेवा करते थे। इनके सिवाय एक लाख वीस हजार धरणा आदि आर्जिकाएं उनकी सेवा करती थीं ॥५७–५८॥ दो लाख श्रावक उन्हें पूजते थे चार लाख श्राविकाएं उनकी पूजा करती

छोक्तपिंडिताखिललक्षितः। स्वचतुष्टयपक्षैकधारणाथार्यिकार्चित. ॥ ५८ ॥ द्विलक्षोपासकोपेतो द्विगुणश्राविकार्चित । पूर्वोक्तदेवतिर्यक्को विहरन् धर्ममादिशन् ॥ ५९ ॥ सम्मेदगिरिमाश्रित्य निष्क्रियो मासमास्थित । सहस्रमुनिभि सार्द्धं प्रतिमायोगधारक ॥ ६० ॥ पौर्णमास्या धनिष्ठाया दिनाते श्रावणे सतां । असख्यातगुणश्रेण्या निर्जरां व्यदधन्मुहु ॥६१॥ विध्वस्य विश्वकर्माणि ध्यानाभ्यां स्थानपचके । पंचमीगतिमध्यास्य सिद्ध श्रेयान् सुनिर्वृत ॥६२॥ विफलानिमिषत्वा स्मो विनास्मादिति वा सुरा । कृतनिर्वाणकल्याणास्तदेव त्रिदिव ययु ॥६३॥

निर्द्धूय यस्य निजजन्मनि सतसमस्तमाध्य चराचरमशेषमवेक्षमाण । ज्ञान प्रतीपविरहाभिजरूपमस्थ श्रेयान् जिन. स दिशतादशिवच्युतिं व ॥ ६४ ॥ सत्य सार्वदयामय तव वच सर्वं सुहृद्भ्यो हित चारित्र च विभोस्तदे तदुभयं ब्रूते विशुद्धिं परां तस्मादेव समाश्रयति विबुधास्त्वामेव शक्रादयो भक्त्येति स्तुतिगोचरो स विदुषां श्रेयान् स व श्रेयसे ॥ ६५ ॥ राजाभून्नलिनप्रभ प्रभुतम प्रध्वस्तपापप्रभ कल्पाते सकलामराधिपपति

र्थी तथा पहिले कहे हुए असंख्यात देव देवी और संख्यात तिर्यंच उनकी सेवा करते थे। इसतरह धर्मका उपदेश देते हुए उन्होंने सब देशोंमें विहार किया ॥ ५९ ॥ अंतमें वे सम्मेदशिखरपर आ विराजमान हुए, एक महीने तक योग निरोध किया और एक हजार मुनियोंके साथ २ प्रतिमा योग धारण किया ॥ ६० ॥ श्रावण शुक्ला पौर्णमासी-के दिन धनिष्ठा नक्षत्रमें शामके समय बार २ असख्यात गुण श्रणी निर्जरा करने लगे और अ इ उ ऋ ऌ इन पांचों स्थानोंमें अर्थात् जितनी देरमें इनका उच्चारण होता है उतने समयमें अंतके दोनों शुक्लध्यानोंसे समस्त कर्मोंको नाशकर तथा पांचवीं गतिको पाकर वे श्रेयांसनाथ भगवान मुक्त होकर सिद्ध हुए ॥ ६१–६२ ॥ मोक्षकल्याण किये विना हम लोगोंका टिमिकाररहितपना व्यर्थ है यही समझकर मानो सब देव निर्वाणकल्याणका उत्सव मनाकर अ-पने अपने स्वर्गको चले गये ॥ ६३ ॥

जिनके ज्ञानने उत्पन्न होते ही समस्त अंधकारको नष्टकर चराचर सब जगत देख लिया था और कोई प्रतिपक्षी न होनेसे जो अपने ही स्वरूपमें तल्लीन था ऐसे श्रीश्रेयांसनाथ भगवान तुम लोगोंको सदा कल्याण करते रहें ॥६४॥ हे प्रभो ! आपके वचन सत्य सबका भला करनेवाले और दयामय हैं तथा आपका चारित्र सब जीवोंका हित करने-वाला है ये दोनों ही आपकी परम विशुद्धिको सूचित करनेवाले हैं। हे देव ! इसीलिये इंद्रादि देव बडी भक्तिसे आ-कर आपका ही आश्रय लेते हैं इसके सिवाय बडे बडे विद्वान् लोग आपकी सदा स्तुति करते हैं ऐसे आप श्रीश्रेयांस-नाथ भगवान तुम लोगोंका सदा कल्याण करते रहें ॥ ६५ ॥ जो पहिले पापकी सब प्रभाको नाश करनेवाले सबके स्वामी राजा नलिनप्रभ हुए थे, फिर सब देवोंके स्वामी और संकल्पमात्रसे ही उत्पन्न हुए सब सुखोंके भंडार सोलहवें

संकल्पसंख्याकरं । यस्तीर्थाधिपतिस्त्रिलोकमहित श्रीमान् श्रियं श्रायसं स्याद्वादं प्रतिपाद्य सिद्धिमगमत् श्रेयान् जिनः सोऽस्तु व ॥ जिनसेनानुगायास्मै पुराणकवये नमः । गुणभद्रभदंताय लोकसेनार्चितांघ्रये ॥ ६७ ॥ तीर्थेस्मिन् केशवः श्रीमानभूदाद्यः समुद्यमी । भरतश्चक्रिणां वासौ त्रिखंडपरिपालिनां ६८ आतृतीयभवात्तस्य चरितं प्रणिगद्यते । उदितास्तगभूपानामुदाहरणमित्यद ॥ ६९ ॥ द्वीपेस्मिन्भारते क्षेत्रे विषयो मगधाह्वयः । पुरं राजगृहं तस्मिन्पुरंदर-पुरोपमं ॥ ७० ॥ स्वर्गादेत्यात्र भूष्णूनां राज्ञां यद्गृहमेव तत् । भोगोपभोगसंपत्त्या नाम तस्यार्थवत्तत ॥ ७१ ॥ विश्वभूति पतिस्तस्य जैनी देव्यनयो सुतः । विश्वनंदनशीलत्वाद्विश्वनंदीति विश्रुतः ॥ ७२ ॥ विश्वभूतेर्विशाखादिभूतिर्जातोऽनुजः प्रिया । लक्ष्मणाख्यास्य नंदनंतविशाखस्तनयोऽनयो ॥७३॥ विश्वभूतिस्तप प्राय त्यक्त्वा राज्ये निजानुजं । प्रजाः प्रपालयत्यस्मिन्प्रणताखिलभूपतौ ॥ ७४ ॥ नाना वीरुल्लतावृक्षैर्विराजन्नंदन वनं । यद्विश्वनंदिनस्तत्र प्राणेभ्योपि प्रियं परं ॥ ७५ ॥ विशाखभूतिपुत्रेण निर्भर्त्स्य वनपालकान् । स्वीकृतं तद्बलासेन तेनासीत्संयुगस्तयोः ॥ ७६ ॥ संग्रामासहनात्तत्र दृष्ट्वा

स्वर्गके इंद्र हुए और फिर जो तीनों लोकोंमें पूज्य तीर्थंकर होकर तथा भवका कल्याण करनेवाली स्याद्वाद विद्याका प्रचारकर सिद्ध हुए ऐसे श्रीमान् श्रीश्रेयांसनाथ जिनेंद्रदेव तुम लोगोंके कल्याणकर्ता हों ॥ ६६ ॥

अथानंतर—जो श्रीजिनसेनके अनुयायी हैं जिनके चरणकमल लोकसेनके द्वारा पूज्य हैं और पुराणकवि हैं ऐसे पूज्य श्रीगुणभद्रकेलिये नमस्कार हो ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार चक्रवर्तियोंमें भरत हुआ था उसीप्रकार श्रीश्रेयांसनाथके समयमें तीन खंडको पालन करनेवाले अर्द्धचक्रियोंमें उद्यमी और श्रीमान् ऐसा पहिला नारायण हुआ था ॥ ६८ ॥ उसीका चारित्र तीसरे भवसे लेकर कहता हूं उदय और अस्त होनेवाले राजाओंका यह एक अच्छा उदाहरण है॥६९॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगधदेशमें इंद्रके नगरके समान एक राजगृह नामका नगर था ॥ ७० ॥ स्वर्गसे आकर उत्पन्न होनेवाले राजाओंका वह घर था इसीलिये भोगोपभोग संपत्तिसे वह 'राजगृह' इस यथार्थ नामको धारण करता था ॥ ७१ ॥ उस नगरमें राजा विश्वभूति राज्य करता था उसकी रानीका नाम जैनी था, इन दोनोंके विश्वनंदी नामका प्रसिद्ध पुत्र था जो कि समस्त संसारको आनंद देनेवाला था और इसीलिये उसका विश्वनंदी नाम पडा था ॥ ७२ ॥ विश्वभूतिके छोटे भाईका नाम विशाखभूति था, उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मणा था और उन दोनोंके विशाखनंदी नामका पुत्र था ॥ ७३ ॥ विश्वभूतिने अपने छोटे भाई विशाखभूतिको राज्य देकर दीक्षा धारण करली इसलिये सवराजाओंको नमस्कार कराता हुआ विशाखभूति प्रजाका पालन कर रहा था ॥ ७४ ॥ विश्वनंदीने छोटे छोटे पौधे लता और वृक्षोंसे सुशोभित एक नंदन नामका बाग बनवाया था और वह उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था ॥ ७५ ॥ किसी एक दिन विशाखभूतिके पुत्र विशाखनंदीने उस बागके मालियोंको ललकार कर जबर्दस्ती वह बाग अपने स्वाधीन

तस्य पलायनं । विश्वनंदी विरक्त सन् धिग्मोहमिति चिंतयन् ॥७७॥ त्यक्त्वा सर्वं समागत्य संभूतगुरुसंनिधौ । पितृव्यमग्रणीकृत्य संयम प्रत्यपद्यत ७८ स शीलगुणसंपन्न कुर्वन्ननशनं तप । विहरन्नेकदा भोक्तुं प्राविशन्मथुरापुरं ॥ ७९ ॥ स बालवत्सया धेन्वा क्रुधा प्रतिहतोऽपतत् । दौष्ठ्यान्निर्वासितो देशान् भ्राम्यंस्तत्रागतो विधी ॥ ८० ॥ विशाखनंदी त दृष्ट्वा वेश्यासौधतले स्थित । व्यहसद्विक्रमस्तेय क्व यात स इति क्रुधा ॥ ८१ ॥ सशल्य सोपि तच्छ्रुत्वा सनिदानोऽसुसंक्षये । महाशुक्रेऽभवद्देवो यत्रासीदनुज पितु ॥ ८२ ॥ षोडशाब्धिसमायुर्दिव्यभोगानप्सरोगणै । ईप्सितानन्नुभूयासौ तत प्रच्युत्य भूतले ॥ ८३ ॥ द्वीपेस्मिन् भारतेवर्षे सुरम्यविषये पुरे । प्रजापतिर्महाराज पोदनाख्येऽभवत्पति ॥ ८४ ॥ प्राणप्रिया महादेवी तस्याजनि मृगावती । तस्यां सुस्वप्नवीक्षांते त्रिपृष्ठाख्यः सुतोऽभवत् ॥ ८५ ॥ पितृव्योपि च्युतस्तस्मात्तोकोऽभूत्तन्महीपतेः । जयावत्यां परैर्वैत्य विक्रमी विजया-

कर लिया, इसलिये विश्वनंदी और विशाखनंदी दोनों ही आपसमें लड पडे ॥७६॥ युद्ध न कर सकनेके कारण विशाखनंदी भाग गया उसे भागा हुआ देखकर विश्वनंदीको वैराग्य हुआ और वह सोचने लगा कि इस मोहको भी धिक्कार है ॥ ७७ ॥ सबको छोडकर वह संभूत गुरुके समीप आया और विशाखभूति काकाके साथ संयम धारण किया ७८ शील और गुणोंको धारण करता हुआ वह उपवास आदि अनेक तरहके तपश्चरण करने लगा । सब देशोंमें विहार करता हुआ वह किसी एक दिन आहारकेलिये मथुरापुरीमें गया ॥ ७९ ॥ वहांपर एक छोटे बच्चेवाली गायने क्रोधमें आकर उसके धक्का दिया जिससे वह वहीं पडगया । इधर दुष्टताके कारण विशाखनंदीको लोगोंने निकाल दिया था इसलिये वह बुद्धिहीन घूमता हुआ वहीं आ निकला विश्वनंदी मुनिके गिरनेके समय वह एक वेश्याके मकानकी गच्चीपर खडा था, मुनिको पडते हुए देखकर वह क्रोधसे हसकर कहने लगा कि क्यों आज तेरा पराक्रम (बल) कहां चला गया ॥ ८०–८१ ॥ उसे सुनकर उसके निदान नामकी शल्य बनी रही और उस निदानके साथ ही उसने प्राण छोडे । मरकर वह महाशुक्र नामके स्वर्गमें देव हुआ, वहींपर उसका काका विशाखभूति पहिले उत्पन्न हो चुका था ॥ ८२ ॥ वहांपर सोलह सागरकी आयु पाकर अनेक अप्सराओंके साथ साथ अपनी इच्छानुसार अनेक दिव्य भोगोंका अनुभव किया और आयुके अंतमें वहांसे च्युत हुआ, इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्यदेशके पोदनपुर नगरमें महाराज प्रजापति राज्य करते थे उनकी प्राणप्रिय महादेवीका नाम मृगावती था उसीके वह अच्छे स्वप्न देखनेके बाद त्रिपृष्ट नामका पुत्र हुआ ॥ ८३–८५ ॥ इसके काका विशाखभूतिका जीव वहांसे च्युत होकर इन्हीं महाराज प्रजापतिके जयवती नामकी रानीसे विजय नामका पराक्रमी पुत्र पहिलेहीसे आकर उत्पन्न हो चुका था ॥ ८६ ॥ विशाख-

हय ॥ ८६ ॥ भ्रमन् विशाखनदी च चिरं संसारचक्रके । विजयार्द्धोत्तरश्रेण्या मलकाख्यपुरेशिन ॥ ८७ ॥ मयूरग्रीवसंज्ञस्य स्वपुण्यपरिपाकत । हयग्रीवाह्वय सूनुरजायत जितारिराट् ॥ ८८ ॥ अशीतिचापदेहौ तावादिमौ रामकेशवौ । पंचशून्ययुगाष्टाब्दनिर्भंगपरमायुषौ ॥ ८९ ॥ शंखेंद्रनीलसंकाशौ हत्वाश्वग्रीवमुद्धतं । त्रिखंडमंडितायास्ताविहाभूता पती क्षितेः ॥ ९० ॥ द्विगुणाष्टसहस्राणां मुकुटांकमहीभुजां । खगव्यंतरदेवानामाधिपत्यं समीयितु ॥ ९१ ॥ त्रिपृष्टस्य धनुः शखचक्रदंडासिशक्तयः । गदा च सप्त रत्नानि रक्षितान्यभवत्सुरै ॥ ९२ ॥ रामस्यापि गदा रत्नमाला मुसुशलं हलं । श्रद्धानज्ञानचारित्रतपांसीवाभवच्छ्रिये ॥ ९३ ॥ देव्यः स्वयंप्रभामुख्या मुकुटेशप्रमा बभु । केशवस्य तदर्द्धास्ता रामस्यापि मन प्रियाः ॥ ९४ ॥ स सरम्य चिरं तामिर्बह्वारंभपरिग्रह । सप्तमीं पृथिवीं प्राप केशवश्चाश्वकंधर ॥ ९५ ॥ सीरपाणिश्च तद्दुःखात्तदैवादाय सयमं । सुवर्णकुंभभोगींद्रादभूदगृहकेवली

नंदीने बहुत दिनतक संसारचक्रमें परिभ्रमण किया और फिर वह अपने पुण्यकर्मके उदयसे विजयार्द्धपर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अलका नामकी नगरीके राजा मयूरग्रीवके अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ। उसने सब बडे २ शत्रु राजा जीतलिये थे ॥ ८७-८८ ॥ इधर विजय और त्रिपृष्ट ये दोनों ही भाई पहिले बलभद्र नारायण थे उनका अस्सी धनुप ऊंचा शरीर था और चौरासी लाख वर्षकी आयु थी ॥ ८९ ॥ शख और इद्रनील मणिके समान उनका शरीर था और उद्धत अश्वग्रीवको मारकर वे दोनों ही तीनों खंडोंसे सुशोभित इस पृथ्वीके स्वामी हुए थे ॥ ९० ॥ वे दोनों ही भाई सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा तथा अनेक विद्याधर और व्यतर देवोंके स्वामी हुए थे ॥ ९१ ॥ त्रिपृष्ट नारायणके धनुप शंख, चक्र, दंड, तलवार, शक्ति, और गदा ये सात रत्न थे, तथा अनेक देव इन रत्नोंकी रक्षा करते थे ॥ ९२॥ इसीप्रकार विजय नामके बलभद्रके कल्याण करनेकेलिये श्रद्धान ज्ञान चारित्र और तपके समान गदा, रत्नमाला, हल मूशल ये चार रत्न थे ॥ ९३ ॥ नारायणके स्वयंप्रभाको आदिलेकर सोलह हजार रानियां थीं और बलभद्रके मनको हरण करनेवालीं उनसे आधी आठ हजार थीं ॥ ९४ ॥ त्रिपृष्ट उन स्त्रियोंके साथ बहुत दिनतक क्रीडाकर बहुत आरंभी और बहुत परिग्रही होनेसे मरकर सातवें नरक गया तथा अश्वग्रीव भी मरकर उसी सातवें नरकमें गया ॥९५॥ बलभद्रको त्रिपृष्टके मरनेसे विजयको बहुत दुख हुआ, उसने उसीसमय सुवर्णकुंभ मुनिके समीप जाकर संयम धारण किया और वह अगृह केवली हुआ अर्थात् अनगार केवली हुआ ॥ ९६ ॥ देखो त्रिपृष्ट और विजय दोनोंने साथ ही साथ राज्य किया और बहुत दिनतक साथ ही साथ सबसे अधिक सुखोंका अनुभव किया परंतु त्रिपृष्ट सब तरहके बडे २ दुखोंसे भरे हुए सातवें नरकमें पहुंचा और विजय बलभद्र सुखके सबसे उत्तम स्थान ऐसे जगतके म-

॥ ९६ ॥ कृत्वा राज्यममू सहैव सुचिरं भुक्त्वा सुखं तादृशं पृथ्वीमूलमगारिनखिलमहद्दुःखालयं केशवं । रामो वाम परं सुखस्य जगतां मूर्द्धानमध्यास्त धिक् दुष्टं कं सुखभाग्विलोमगविधिं यावन्न हन्यादमुं ॥ ९७ ॥ प्राग्विश्वनंदीतिविशामधीशस्ततो महाशुक्रमधिष्ठितोऽमरः । पुनस्त्रिपृष्टो भरतार्द्धचक्री चिताघकः सप्तमभूमिमाश्रयत् ॥ ९८ ॥ विशाखभूतिर्धरणीपतिर्यमी मरुन्महाशुक्रगतस्ततश्च्युतः । हलायुधोऽसौ विजयाह्वयं क्षयं भवं स नीत्वापरमात्मतामितः ९९ ॥ विशाखनंदी विहतप्रतापो व्यमुं परिभ्रम्य भवे चिरं ततः । खगाधिनाथो हयकंधराह्वयो रिपुस्त्रिपृष्टस्य ययावधोगतिं ॥ १०० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे श्रेयस्तीर्थंकरत्रिपृष्टविजयाश्वग्रीवपुराणं परिसमाप्तं सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ।

स्तकपर अर्थात् मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ। इसलिये प्रतिकूल हुए इस दुष्ट कर्मको भी धिक्कार है जबतक इसका नाश न किया जायगा तबतक भला इस संसारमें कौन जीव सुखी रह सकता है ॥ ९७ ॥ त्रिपृष्टका जीव पहिले विश्वनंदी राजा हुआ था फिर महाशुक्र विमानमें देव हुआ, तदनंतर भरतक्षेत्रमें त्रिपृष्ट नामका अर्धचक्रवर्ती पहिला नारायण हुआ और फिर मरकर पाप संचय करनेके कारण सातवें नरक गया ॥ ९८ ॥ विजयका जीव पहिले विशाखभूति राजा था, फिर मुनि होकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ, वहांसे आकर विजय नामका बलभद्र हुआ और फिर संसारको नाशकर परमात्मपदको (सिद्धपदको) प्राप्त हुआ ॥ ९९ ॥ अश्वग्रीवका जीव पहिले विशाखनंदी नामका बड़ा प्रतापी राजा था फिर मरकर उसने बहुत दिन तक संसारमें परिभ्रमण किया तदनंतर विद्याधरोंका स्वामी अश्वग्रीव नामका प्रतिनारायण हुआ वहांपर उसने त्रिपृष्ट नारायणसे शत्रुताकी और मरकर सातवें नरकमें पहुचा ॥ १०० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान पुष्पदंतका पुराण समाप्त-
करनेवाला यह सत्तावनवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अथ अष्टपंचाशत्तमं पर्व ।

वासोरिंद्रस्य पूज्योय वसुपूज्यस्य वा सुत । वासुपूज्यः सता पूज्य स ज्ञानेन पुनातु न. ॥१॥ पुष्कराद्धेंद्रदिग्मेरुसीताप्राग्वत्सकावती । विषये स्यात-रत्नादिपुरे पद्मोत्तरः पतिः ॥ २ ॥ कीर्तिर्गुणमयी वाचि मूर्ति पुण्यमयीक्षणे । वृत्तिर्धर्ममयी चित्ते सर्वेषामस्य भूभुजः ॥ ३ ॥ साम वाचि दया चित्ते धाम देहे नयो मतौ । धन दाने जिने भक्ति प्रतापस्तस्य शत्रुषु ॥ ४ ॥ पाति तस्मिन् भुव भूपे न्यायमार्गानुवर्तिनि । वृद्धिमेव प्रजा प्रापुर्मुनौ समितयो यथा ॥ ५ ॥ गुणस्तस्य धन लक्ष्मीस्तद्दायापि गुणप्रिया । तया सह ततो दीर्घं निर्द्वंद्वं सुखमाप्नुवत् ॥ ६ ॥ स कदाचित् समासीनं मनोहरगिरौ जिनं । युगंधराह्वयं स्तोत्रैरुपास्य खलु भक्तिमान् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा सप्रश्रयो धर्ममनुप्रेक्षानुचिंतनात् । जातत्रिभेदनिर्वेदः पुनश्चेत्यप्यचिंतयत् ॥ ८ ॥ श्रियो माया-

अथ अट्ठावनवां पर्व ।

सब इंद्र जिनकी पूजा करते हैं जो महाराज वसुपूज्यके पुत्र हैं और सज्जनलोग सदा जिनकी पूजा किया करते हैं ऐसे वासुपूज्य भगवान अपने ज्ञानके द्वारा हम लोगोंको पवित्र करें ॥१॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीके पश्चिम किनारेपर एक वत्सकावती नामका देश है उसके रत्नपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पद्मोत्तर नामका राजा राज्य करता था ॥२॥ उसकी कीर्ति गुणरूप थी और वह सबके वचनोंमें रहती थी, उसकी मूर्ति पुण्यरूप थी और वह सबके नेत्रोंमें रहती थी तथा उसकी आजीविका धर्मरूप थी और वह सबके चित्तमें रहती थी, उसके वचनोंमें मेल मिलाप भरा था, चित्तमें दया थी, शरीरमें तेज भरा था, बुद्धिमें नय भरे हुए थे, उसका धन दानमें खर्च होता था, भक्ति जिनेंद्र देवमें थी और प्रताप शत्रुओंमें था ॥३४॥ जिसप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेसे मुनियोंमें समितियां वढती रहती हैं उसीप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेवाले उस राजाके पृथ्वीका पालन करते समय प्रजा खूब वढ रही थी ॥ ५ ॥ उसके गुण ही धन था और गुणोंसे प्रेम करनेवाली लक्ष्मी व रानी थी उसके साथ वह बहुत दिनतक विना किसी विघ्न और रुकावटके सुखोंका अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर युगंधर जिनराज पधारे, राजा पद्मोत्तरने वहां जाकर भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे उनकी उपासनाकी ॥ ७ ॥ विनयपूर्वक उसने धर्मका स्वरूप सुना और बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन किया, अनुप्रेक्षाओंके चिंतवन करनेसे उसे तीनोंतरहका वैराग्य उत्पन्न हुआ और फिर वह इसप्रकार चिंतवन करने लगा कि ॥ ८ ॥ लक्ष्मी मायारूप है सुख दुखसे मिला हुआ है,

॥ ९६ ॥ कृत्वा राज्यममू सहैव सुचिरं भुक्त्वा सुखं तादृशं पृथ्वीमूलमगारिनलाखिलमहादु खालय केशव । रागो वाम परं गुरुस्य जगता मूर्द्धानमध्यास्त धिक् दुष्ट क सुखभाग्विलोमगविधिं यावन्न हन्यादमुं ॥ ९७ ॥ प्राग्विश्वनंदीतिविशामधीशस्ततो महाशुक्रमधिष्ठितोऽमरः । पुनस्त्रिपृष्ठो भरतार्द्धचक्री चिताघक सप्तमभूमिमाश्रयत् ॥ ९८ ॥ विशाखभूतिर्धरणीपतिर्यमी मरुन्महाशुक्रगतस्ततश्च्युत । हलायुधोऽसौ विजयाह्वय क्षय भव स नीत्वापरमात्मतामितः ९९ ॥ विशाखनंदी विहतप्रतापो व्यमु परिभ्रम्य भवे चिरं तत । खगाधिनाथो हय कधराह्वयो रिपुस्त्रिपृष्टस्य ययावधोगतिं ॥ १०० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे श्रेयस्तीर्थंकरत्रिपृष्ठविजयाश्वग्रीवपुराणं परिसमाप्तं सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ।

स्तकपर अर्थात् मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ। इसलिये प्रतिकूल हुए इस दुष्ट कर्मको भी धिक्कार है जबतक इसका नाश न किया जायगा तबतक भला इस संसारमें कौन जीव सुखी रह सकता है ॥ ९७ ॥ त्रिपृष्टका जीव पहिले विश्वनंदी राजा हुआ था फिर महाशुक्र विमानमें देव हुआ, तदनंतर भरतक्षेत्रमें त्रिपृष्ट नामका अर्धचक्रवर्ती पहिला नारायण हुआ और फिर मरकर पाप संचय करनेके कारण सातवें नरक गया ॥ ९८ ॥ विजयका जीव पहिले विशाखभूति राजा था, फिर मुनि होकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ, वहांसे आकर विजय नामका बलभद्र हुआ और फिर संसारको नाशकर परमात्मपदको (सिद्धपदको) प्राप्त हुआ ॥ ९९ ॥ अश्वग्रीवका जीव पहिले विशाखनंदी नामका बड़ा प्रतापी राजा था फिर मरकर उसने बहुत दिन तक संसारमें परिभ्रमण किया तदनंतर विद्याधरोंका स्वामी अश्वग्रीव नामका प्रतिनारायण हुआ वहांपर उसने त्रिपृष्ट नारायणसे शत्रुताकी और मरकर सातवें नरकमें पहुचा ॥ १०० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान पुष्पदंतका पुराण समाप्त-

करनेवाला यह सत्तावनवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

सम्यगपालयत् ॥ २९ ॥ अष्टादशसमा लक्षा कौमारे प्राप्य संसृतेः । निर्विद्यात्मगत धीमान् याथात्म्य समचिंतयत् ॥ ३० ॥ विषीविषयसशक्तो बध्नात्मानमात्मना । बंधैश्चतुर्विधैर्दुःख भुजानश्च चतुर्विध ॥ ३१ ॥ अनादौ जन्मकातारे भ्रांत्वा कालादिलब्धित । सन्मार्ग प्राप्तवारतेन प्रगुणं यामि सद्गति ॥ ३२ ॥ अस्तु काय शुचि स्थास्नुः प्रेक्षणीयो निरामयः । आयुश्चिरमनाबाध सुख संततसाधनं ॥ ३३ ॥ किंतु ध्रुवो वियोगोत्र रागात्मकमिदं सुख । रागी बध्नाति कर्माणि बंध ससारकारण ॥ ३४ ॥ चतुर्गतिमयः सोपि ताश्च दुःखसुखावहा । तत किमसुनेत्येतत्त्याज्यमेव विचक्षणै ॥ ३५ ॥ इति चिंतयतस्तस्य स्तवो लौकातिकैः कृतः । सुरा निष्क्रमणस्नानभूषणाद्युत्सव व्यधु ॥ ३६ ॥ शिविका देवसरूढामारुह्य पृथिवीपतिः । वने मनोहरोद्याने चतुर्थोपोषित वहन् ॥ ३७ ॥ विशाखर्क्षे चतुर्दश्या सायाह्ने कृष्णफाल्गुने । सामायिक समादाय तुर्यज्ञानोप्यभूदनु- ॥ ३८ ॥ सह तेन महीपाला

किया था ॥ २९ ॥ जब उनके कुमार कालके अठारह लाख वर्ष वीत चुके थे तभी उन बुद्धिमानको अपने आप इस संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ था और वे इसप्रकार आत्माका यथार्थ स्वरूप चिंतवन करने लगे थे ॥ ३० ॥ कि यह अज्ञानी जीव विषयोंमें आसक्त होकर आत्माके ही द्वारा अपने आत्माको बांध लेता है और फिर चार प्रकारके बंधसे चारोंतरहके दुख भोगता है ॥३१॥ अनादिकालसे चले आये जन्म मरणरूप वनमें यह जीव परिभ्रमण कर रहा हैं। अब काल आदि लब्धियोंके संयोगसे उत्तम गुण प्रगट कर देनेवाला श्रेष्ठमार्ग मिला है इसलिये अब मुझे श्रेष्ठ मोक्षगतिको ही जाना चाहिये ॥ ३२ ॥ चाहे यह शरीर किसीतरह पवित्र हो, टिकाऊ हो, देखनेमें सुंदर हो, नीरोग हो, आयु बहुत हो, सुखके साधन सदा मिलते रहें तथापि यह निश्चय है कि एक दिन इसका वियोग अवश्य होगा, यह सब सुख रागरूप है इससे रागी जीव कर्मोंका बंध करता है और बंध संसारका कारण है ॥ ३३–३४ ॥ वह चारों गतियोंरूप हैं और वे गतियां सदा सुख दुख देनेवाली हैं इसलिये इस संसारमें रहनेसे कोई लाभ नहीं है बुद्धिमान पुरुषोंको इसका त्याग कर देना ही चाहिये ॥ ३५ ॥ इसप्रकार इनके चिंतवन करते ही लौकांतिक देवोंने आकर इनकी स्तुतिकी और देवोंने आकर अभिषेक किया आभूषण पहिनाये और बडा उत्सव मनाया तदनंतर वे वासुपूज्य महाराज पालकीपर सवार हुये उस पालकीको देव और इंद्र कंधेपर रखकर मनोहर नामके वनमें लेगये वहांपर फागुन कृष्णा चतुर्दशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय वेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की दीक्षाके थोडीदेर वादही उन्हें मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न होगया ॥ ३६–३८ ॥ उनके साथ साथ परमार्थको जाननेवाले छहसौ छिहत्तरि राजाओंने प्रसन्न होकर दीक्षा धारण की थी ॥ ३९ ॥

र्वलक्षिते ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा स्वप्नान् फल तेषा पत्युर्ज्ञात्वातितोषिणी । अष्टौ मासान् क्रमान्नीत्वा प्राप्तफाल्गुनमासिका ॥ १९ ॥ कृष्णायां वरुणे योगे चतुर्दश्यां सुरोत्तम । सर्वप्राणिहित पुत्र सुखेनेयमजीजनत् ॥ २० ॥ सुरा सौधर्ममुख्यास्ते सुराद्रौ क्षीरसागरात् । घटैरानीय पानीय स्नापयित्वा प्रसाधन ॥ २१ ॥ विधाय वासुपूज्य च नामादाय पुनर्गृहं । नीत्वा वासान् स्वकीयास्ते जग्मुर्जातमहोत्सवाः ॥ २२ ॥ श्रेयस्तीर्थांतरे पचाशच्चतुःसागरोपमे । प्रातपल्यत्रिपादेस्मिन् व्युच्छित्तौ धर्मसतते. ॥ २३ ॥ तदभ्यंतरवर्त्यायु सोऽभवच्चापसप्तति. । पचशून्यद्विसप्ताब्दजीवित कुकुमच्छवि ॥ २४ ॥ दृष्टाष्टादशधान्यानां बीजाना वृद्धिकारण । भेकलेह्यमिव क्षेत्र गुणानामेष भूपति ॥ २५ ॥ धियमस्य गुणा. प्राप्य सर्वे सत्फलदायिन । समा वृष्टिमिवाभीष्टा शस्यभेदा जगद्धिता ॥ २६ ॥ त्र्यय साप्ताहिका मेघा अशीति कणशीकरा । षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टि. समा मता ॥ २७ ॥ अगुर्गुणा गुणीभावमन्येष्वस्मिंस्तु मुख्यता । आश्रय कस्य वैशिष्ट्य विशिष्टो न प्रकल्पते ॥२८॥ गुणी गुणमयस्तस्य नाशस्तन्नाश इष्यते । इति बुद्ध्वा सुधी सर्वान् गुणान्

वरुण योगमें सब प्राणियोंका हित करनेवाले उस इंद्रके जीव पुत्रको उमने सुखपूर्वक उत्पन्न किया ॥ १७–२० ॥ उसीसमय सौधर्म आदि इंद्र और सब देवोंने आकर सुमेरु पर्वतपर लेजाकर और घडोंसे क्षीर सागरका जल लाकर उनका अभिषेक किया था, सब तरहके आभूषण पहिनाये थे, वासुपूज्य नाम रक्खा था और फिर घर लाकर बडा भारी उत्सव मनाकर वे सब देव अपने अपने स्थानको चले गये थे ॥ २१–२२ ॥ श्रीश्रेयांसनाथ तीर्थंकरके चौअन सागर व्यतीत होनेपर और अंतके तीन पल्यतक धर्मकी विछित्ति होनेपर वासुपूज्य हुए थे । इनकी आयु इसीसमयमें शामिल है उनके शरीरकी ऊंचाई सत्तरि धनुष थी आयु बहत्तरि लाख वर्षकी थी और शरीरकी कांति कुंकुमके समान लाल थी २३–२४ ॥ जिसप्रकार जलसहित प्रदेश इष्ट अठारह प्रकारके वीजोंको वढानेवाला होता है उसीप्रकार वे राजा वासुपूज्य सब गुणोंको वढानेवाले थे ॥ २५ ॥ जिसप्रकार संसारका हित करनेवाले मब धान्य अभीष्टसमा नामकी वर्षाको पकर अच्छे फल देते हैं उसीप्रकार गुण सब वासुपूज्यकी बुद्धिको पाकर श्रेष्ठ फल देनेवाले हो गये थे ॥ २६ ॥ सात दिनतक मेघोंका वरसना त्र्यय कहलाता है, अस्सी दिन वरसना कणशीकर और संतप्तमेघोंका साठ दिन तक वरसना समा कहलाता है ॥ २७ ॥ गुण अन्य हरि हरादिकोंमें जाकर गौण हो गये थे और इन वासुपूज्यमें आकर मुख्य होगये थे सो ठीक ही है क्योंकि विशेष आश्रय किसको विशिष्ट (विशेष सहित वा मुख्य) नहीं बना देता है अर्थात् सबको मुख्य बना देता है ॥ २८ ॥ पदार्थ सब गुणस्वरूप हैं अर्थात् गुण समुदायरूप हैं इसलिये गुणोंके नाश होनेसे पदार्थका नाश अवश्य हो जाता है यही समझकर उन बुद्धिमानने सब गुणोंका पालन अच्छीतरहसे

सुखं दु ख विश्रसावधि जीवित । सयोगो विप्रयोगांत. कायोऽय सामय खल ॥ ९ ॥ कात्र प्रीतिरह जन्मपंचावर्तान्महाभयात् । निर्गच्छाम्यवलब्ध्यैता कालवब्धिमुपस्थिता ॥ १० ॥ ततो राज्यभरं पुत्रे धनमित्रे नियोज्य सः । महीशैर्बहुभि सार्द्धमदीक्षिष्टात्मशुद्धये ॥ ११ ॥ अधीत्यैकादशागानि श्रद्धा-नायाप्तसपदा । वद्ध्वा तीर्थंकर नाम प्राते सन्यस्य शुद्धधी ॥ १२ ॥ महाशुक्रविमानेऽभून्महाशुक्रोऽमराधिपः । षोडशाब्धिप्रमाणायुश्चतुर्हस्तशरीरभाक् ॥ १३ ॥ पद्मलेश्यः श्वमन्मासैरष्टभिस्तुष्टमानस । षोडशाब्दसहस्रांते मानसाहारमाहरन् ॥ १४ ॥ सदा शब्दप्रवीचारश्चतुर्थक्ष्मागतावधिः । प्रमावधि-रिवैतस्य विक्रियावलतेजसा ॥ १५ ॥ तत्रास्सरीकलालापगीतवाद्यादिमोदिते । चोदिते कालपर्यायैस्तस्मिन्नत्रागमिष्यति ॥ १६ ॥ द्वीपेऽस्मिन्भारते चपान-गरेऽगनराधिपः । इक्ष्वाकु काश्यपः ख्यातो वसुपूज्योऽस्य भामिनी ॥ १७ ॥ प्रिया जयावती प्राप्तवसुधारादिमानना । आषाढकृष्णषष्ठ्यते चतुर्विंश-

जीवन मृत्युतक है, संयोग वियोग होनेतक है और यह दुष्ट शरीर रोगोंसे भरा हुआ है ॥ ९ ॥ ऐसी इन संसारकी चीजोंमें कैसे प्रेम करना चाहिये इसलिये अब मुझे प्राप्त हुई इस काललब्धिका सहारा लेकर अत्यंत भयानक ऐसे इन जन्ममरणरूप पंचपरावर्तनोंसे निकलजाना चाहिये ॥ १० ॥ तदनतर उसने अपने पुत्र धनमित्रको राज्यका भार सौंप दिया और आत्माको शुद्ध करनेकेलिये अनेक राजाओंकेसाथ दीक्षा धारण करली ॥११॥ ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया और आयुके अंतमें संन्यास धारण कर शुद्धबुद्धिको धारण करनेवाला वह महाशुक्र नामके विमानमें महाशुक्र नामका इंद्र हुआ, वहांपर सोलह सागरकी उसकी आयु थी और चार हाथका शरीर था ॥ १२–१३ ॥ वहांपर उसके पद्म लेश्या थी आठ महीने वाद श्वासो-च्छ्वास लेता था और शुद्ध हृदयवाला वह सोलह हजार वर्ष वाद मानसिक आहार लेता था ॥ १४ ॥ वहांपर संभोग केवल शब्द मात्रसे था, नरककी चौथी भूमितक अवधिज्ञान था और चौथी भूमितक ही बल और तेजकी विक्रिया थी ॥ १५ ॥ वहांपर देवियोंके मधुर वचन, गीत, वाजे आदिसे मोहित हुआ वह काल व्यतीत करता था उस पर्याय-केपूरी होनेपर वह इसी जगह आकर जन्म लेगा तब ॥ १६ ॥

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक चपानगर है वहांपर इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ काश्यपगोत्री वसुपूज्य नामका राजा राज्य करता था, उसकी प्यारी रानीका नाम जयावती थी, इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने छह महीने पहिलेसे ही रत्नोंकी वर्षाकर उसका आदर सत्कार किया था। असाढ कृष्णा छठकेदिन शतभिषा नक्षत्रमें उसने सोलह स्वप्न देखे थे और पतिसे उनका फल सुनकर वह बडी ही संतुष्ट हुई थी। अनुक्रमसे आठ महीने विताकर फागुन कृष्णा चतुर्दशीकेदिन

अथ अष्टपंचाशत्तमं पर्व ।

वासोरिंद्रस्य पूज्योय वसुपूज्यस्य वा सुत । वासुपूज्य. सतां पूज्य स ज्ञानेन पुनातु न ॥१॥ पुष्करार्द्धेन्द्रदिग्मेरुसीताप्राग्वत्सकावती । विषये स्यात-रत्नादिपुरे पद्मोत्तर: पति. ॥ २ ॥ कीर्तिर्गुणमयी वाचि मूर्ति पुण्यमयीक्षणे । वृत्तिर्धर्ममयी चित्ते सर्वेपामस्य भूभुज. ॥ ३ ॥ साम वाचि दया चित्ते धाम देहे नयो मतौ । धन दाने जिने भक्ति प्रतापस्तस्य शत्रुषु ॥ ४ ॥ पाति तस्मिन् भुव भूपे न्यायमार्गानुवर्तिनि । वृद्धिमेव प्रजा प्रापुर्मुनौ समितयो यथा ॥ ५ ॥ गुणस्तस्य धन लक्ष्मीस्तद्गुणाद्यापि गुणप्रिया । तया सह ततो दीर्घं निर्द्वंद्व सुखमाप्नुवत् ॥ ६ ॥ स कदाचित् समासीन मनोहरगिरौ जिन । युगंधराख्य स्तोत्रैरुपास्य स्वलु भक्तिमान् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा सप्रश्रयो धर्ममनुप्रेक्षानुचिंतनात् । जातत्रिभेदनिर्वेदः पुनश्चैत्यप्यचिंतमत् ॥ ८ ॥ श्रियो माया

अथ अट्ठावनवां पर्व ।

सब इंद्र जिनकी पूजा करते हैं जो महाराज वसुपूज्यके पुत्र हैं और सज्जनलोग सदा जिनकी पूजा किया करते हैं ऐसे वासुपूज्य भगवान अपने ज्ञानके द्वारा हम लोगोंको पवित्र करें ॥१॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीके पश्चिम किनारेपर एक वत्सकावती नामका देश है उसके रत्नपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पद्मोत्तर नामका राजा राज्य करता था ॥२॥ उसकी कीर्ति गुणरूप थी और वह सबके वचनोंमें रहती थी, उसकी मूर्ति पुण्यरूप थी और वह सबके नेत्रोंमें रहती थी तथा उसकी आजीविका धर्मरूप थी और वह सबके चित्तमें रहती थी, उसके वचनोंमें मेल मिलाप भरा था, चित्तमें दया थी, शरीरमें तेज भरा था, बुद्धिमें नय भरे हुए थे, उसका धन दानमें खर्च होता था, भक्ति जिनेंद्र देवमें थी और प्रताप शत्रुओंमें था ॥३४॥ जिसप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेसे मुनियोंमें समितियां वढती रहती हैं उसीप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेवाले उस राजाके पृथ्वीका पालन करते समय प्रजा खूब वढ रही थी ॥ ५ ॥ उसके गुण ही धन था और गुणोंसे प्रेम करनेवाली लक्ष्मी वा रानी थी उसके साथ वह बहुत दिनतक विना किसी विघ्न और रुकावटके सुखोंका अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर युगंधर जिनराज पधारे, राजा पद्मोत्तरने वहां जाकर भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे उनकी उपासनाकी ॥ ७ ॥ विनयपूर्वक उसने धर्मका स्वरूप सुना और बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन किया, अनुप्रेक्षाओंके चिंतवन करनेसे उसे तीनोंतरहका वैराग्य उत्पन्न हुआ और फिर वह इसप्रकार चिंतवन करने लगा कि ॥ ८ ॥ लक्ष्मी मायारूप है सुख दुखसे मिला हुआ है,

षट्सप्ततिमि...हता: । प्रव्रज्या प्रत्यपद्यंत परमार्थविदो मुदा ॥ ३९ ॥ द्वितीये ऽवस ऽविक्षन्महानगरमधसे । सुंदराख्यो नृपस्तस्मै सुवर्णाभोऽदिताशनं ॥ ४० ॥ आश्चर्यपंचकं चापि तेन छाद्मस्थ्यवत्सरे । गते श्रीवासुपूज्येश स्वदीक्षावनमागतः ॥ ४१ ॥ कदंबवृक्षमूलस्थ सोपवासोऽपराह्नके । माघज्योत्स्नाद्वितीयायां विशाखर्क्षेऽभवज्जिनः ॥ ४२ ॥ सौधर्ममुख्यदेवेंद्रास्तदैनमपूजयन् । तत्कल्याण न विस्तार्यं नाम्नोंत्यस्योदये यत ॥ ४३ ॥ षट्षष्टिमितधर्मादिगणभृद्वृंदवंदित । खद्वयद्व्येकविशातपूर्वपूर्वधरावृत ॥ ४४ ॥ खद्वयद्विनवाग्न्युक्तशिक्षकाभिष्टुतक्रम । शून्यद्वयचतुःपंचप्रोक्तावधिबुधस्तुत ॥ ४५ ॥ शून्यत्रिकर्तुविख्यातश्रुतकेवलवीक्षण ॥ खचतुष्कैकनिर्णीतविक्रियर्द्धिविभूषित ॥ ४६ ॥ षट्सहस्रचतुर्ज्ञानमानितक्रमपंकज । खद्वयद्विचतुःप्रोक्तवादिसाधितसच्छ्रुति ॥ ४७ ॥ शून्यत्रयद्विसप्तोक्तपिंडिताखिलमंडित । शून्यत्रयतुःशून्यैकसेनार्यार्यिकादिवृत ॥४८॥ द्विलक्षश्रावकोपेत श्राविकाद्विलक्षकः । पूर्वोक्तदेवदेवीड्यस्तिर्यक्संख्यातसंस्तुतः ॥ ४९ ॥ स तं सह विहृत्याखिलार्यक्षेत्राणि तर्पयन् । धर्मवृष्ट्या क्रमात्प्राप्य चपामब्दसहस्रकं

पारणाके दिन आहारके लिये उन्होंने महानगरमें प्रवेश किया वहांपर सुंदर नामके महाराजने आहारदान दिया जिससे उसके घर सुवर्ण आदि पांचों आश्चर्योंकी वर्षा हुई । इस तरह तपश्चरण करते हुए जब उनके छद्मस्थ अवस्थाके दिन वीत गये तब भगवान वासुपूज्य मनोहर नामके दीक्षावनमें आ विराजमान हुए, वे उपवास धारण कर कदंब वृक्षके नीचे माघ शुक्ला द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय केवलज्ञानको पाकर जिन हुए ॥ ४०–४२ ॥ सौधर्मादि इंद्रोंने आकर पूजाकी और केवलज्ञानोत्सव मनाया उस उत्सवके विस्तारको यहांपर लिखनेकी आवश्यकता नहिं है क्योंकि नाम कर्मकी अंतिम तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे ही वह सब उत्सव मनाया जाता है ॥ ४३ ॥ धर्मादि छयासठ गणधरोंका समूह उनकी वंदना करता था और बारहसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जाननेवाले मुनि उनकी सेवा करते थे ॥ ४४ उन्तालीस हजार दोसौ शिक्षक उनके चरणकमलोंकी स्तुति करते थे और पांच हजार चारसौ अवधिज्ञानी मुनि उनका स्मरण करते थे ॥४५॥ उनकी सभामें छह हजार केवलज्ञानी थे और दशहजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि उनकी शोभा बढा रहे थे ॥ ४६ ॥ छहहजार मनःपर्ययज्ञानी उनके चरणकमलोंकी पूजा करते थे और चारहजार दोसौ वादी उनकी उत्तम कीर्तिको बढाते थे ॥४७॥ इसतरह वहत्तरि हजार मुनि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे, इसके सिवाय एक लाख छह हजार सेना आदि अर्जिकायें थीं ॥ ४८ ॥ दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकायें थीं इनके सिवाय संख्यात तिर्यंच और अनेक देव देवियां उनकी स्तुति करते थे ॥ ४९ ॥ उन वासुपूज्य भगवानने धीरे धीरे सब आर्यक्षेत्रमें विहार किया धर्मकी वर्षाकर संतुष्ट किया और अंतमें एक हजार वर्षतक आकर

अथ अष्टपंचाशत्तमं पर्व ।

वासोरिंद्रस्य पूज्योय वसुपूज्यस्य वा सुत । वासुपूज्यः सता पूज्य स ज्ञानेन पुनातु न ॥१॥ पुष्करार्द्धेद्रदिग्मेरुसीताप्राग्वत्सकावती । विषये स्यात-रत्नादिपुरे पद्मोत्तरः पति. ॥ २ ॥ कीर्तिर्गुणमयी वाचि मूर्ति पुण्यमयीक्षणे । वृत्तिर्धर्ममयी चित्ते सर्वेषामस्य भूभुजः ॥ ३ ॥ साम वाचि दया चित्ते धाम देहे नयो मतौ । धन दाने जिने भक्ति प्रतापस्तस्य शत्रुषु ॥ ४ ॥ पाति तस्मिन् भुव भूपे न्यायमार्गानुवर्तिनि । वृद्धिमेव प्रजा प्रापुर्मुनौ समितयो यथा ॥ ५ ॥ गुणस्तस्य धन लक्ष्मीस्तद्वदायापि गुणप्रिया । तया सह ततो दीर्घ निर्द्वंद्व सुखमाप्नुवत् ॥ ६ ॥ स कदाचित् समासीन मनोहरगिरौ जिन । युगंधराह्वय स्तोत्रैरुपास्य खलु भक्तिमान् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा सप्रश्रयो धर्ममनुप्रेक्षानुचिंतनात् । जातत्रिभेदनिर्वेदः पुनश्चेत्यप्यचिंतयत् ॥ ८ ॥ श्रियो माया

अथ अट्ठावनवां पर्व ।

सब इद्र जिनकी पूजा करते हैं जो महाराज वसुपूज्यके पुत्र हैं और मज्जनलोग सदा जिनकी पूजा किया करते हैं ऐसे वासुपूज्य भगवान अपने ज्ञानके द्वारा हम लोगोंको पवित्र करें ॥१॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीके पश्चिम किनारेपर एक वत्सकावती नामका देश है उसके रत्नपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पद्मोत्तर नामका राजा राज्य करता था ॥२॥ उसकी कीर्ति गुणरूप थी और वह सबके वचनोंमें रहती थी, उसकी मूर्ति पुण्यरूप थी और वह सबके नेत्रोंमें रहती थी तथा उसकी आजीविका धर्मरूप थी और वह सबके चित्तमें रहती थी, उसके वचनोंमें मेल मिलाप भरा था, चित्तमें दया थी, शरीरमें तेज भरा था, बुद्धिमें नय भरे हुए थे, उसका धन दानमें खर्च होता था, भक्ति जिनेंद्र देवमें थी और प्रताप शत्रुओंमें था ॥३४॥ जिसप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेसे मुनियोंमें समितियां बढती रहती हैं उसीप्रकार न्यायमार्गके अनुसार चलनेवाले उस राजाके पृथ्वीका पालन करते समय प्रजा खूब बढ रही थी ॥ ५ ॥ उसके गुण ही धन था और गुणोंसे प्रेम करनेवाली लक्ष्मी वा रानी थी उसके साथ वह बहुत दिनतक विना किसी विघ्न और रुकावटके सुखोंका अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर युगंधर जिनराज पधारे, राजा पद्मोत्तरने वहां जाकर भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे उनकी उपासनाकी ॥ ७ ॥ विनयपूर्वक उसने धर्मका स्वरूप सुना और बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन किया, अनुप्रेक्षाओंके चिंतवन करनेसे उसे तीनोंतरहका वैराग्य उत्पन्न हुआ और फिर वह इसप्रकार चिंतवन करने लगा कि ॥ ८ ॥ लक्ष्मी मायारूप है सुख दुखसे मिला हुआ है,

षट्ससतिमिताहिताः। प्रव्रज्यां प्रत्यपद्यत परमार्थविदो मुदा ॥ ३९ ॥ द्वितीये दिवसे ऽविक्षन्महानगरमघसे । सुंदराख्यो नृपस्तस्मै सुवर्णाभोऽदिताशन ॥ ४० ॥ आश्चर्यपचकं चापि तेन छाद्मस्थ्यवत्सरे । गते श्रीवासुपूज्येश. स्वदीक्षावनमागतः ॥ ४१ ॥ कदंबवृक्षमूलस्थ सोपवासोऽपराह्णके । माघज्योत्स्नाद्वितीयायां विशाखर्क्षेऽभवज्जिन ॥ ४२ ॥ सौधर्ममुख्यदेवेंद्रास्तदैवैनमपूजयन् । तत्कल्याण न विस्तार्यं नाम्नोंत्यस्योदये यत. ॥ ४३ ॥ षट्षष्टिमितधर्मादिगणभृद्वृदवंदित । खद्वयद्व्येकविज्ञातपूर्वपूर्वधरावृत ॥ ४४ ॥ खद्वयद्विनवाग्न्युक्तशिक्षकाभिष्टुतक्रम । शून्यद्वयचतु.पंचप्रोक्तावधिबुधस्मृत ॥ ४५ ॥ शून्यत्रिकर्तुविख्यातश्रुतकेवलवीक्षण ॥ खचतुष्कैकनिर्णीतविक्रियर्द्धिविभूषित ॥ ४६ ॥ षट्सहस्रचतुर्ज्ञानमानितक्रमपंकज । खद्वयद्विचतुर्थलक्षकः । पूर्वोक्तदेवदेवीड्यस्तिर्यक्संख्यातसस्तुतः ॥ ४९ ॥ शून्यत्रयर्तुशून्यैकसेनाद्यार्यिकादिवृत ॥४८॥ द्विलक्षश्रावकोपेत श्राविकाप्रोक्तवादिसाधितसच्छ्रुति ॥ ४७ ॥ शून्यत्रयद्विसप्तोक्तपिंडिताखिलमडित । स तं सह विहृत्याखिलार्यक्षेत्राणि तर्पयन् । धर्मवृष्ट्या क्रमात्प्राप्य चपामब्दसहस्रकं

पारणाके दिन आहारके लिये उन्होंने महानगरमें प्रवेश किया वहांपर सुंदर नामके महाराजने आहारदान दिया जिससे उसके घर सुवर्ण आदि पांचों आश्चर्योंकी वर्षा हुई। इस तरह तपश्चरण करते हुए जब उनके छद्मस्थ अवस्थाके दिन वीत गये तब भगवान वासुपूज्य मनोहर नामके दीक्षावनमें आ विराजमान हुए, वे उपवास धारण कर कदंब वृक्षके नीचे माघ शुक्ला द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय केवलज्ञानको पाकर जिन हुए ॥ ४०—४२ ॥ सौधर्मादि इंद्रोंने आकर पूजाकी और केवलज्ञानोत्सव मनाया उस उत्सवके विस्तारको यहांपर लिखनेकी आवश्यकता नहिं है क्योंकि नाम कर्मकी अंतिम तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे ही वह सब उत्सव मनाया जाता है ॥ ४३ ॥ धर्मादि छयासठ गणधरोंका समूह उनकी वंदना करता था और बारहसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जाननेवाले मुनि उनकी सेवा करते थे ॥ ४४ उन्तालीस हजार दोसौ शिक्षक उनके चरणकमलोंकी स्तुति करते थे और पांच हजार चारसौ अवधिज्ञानी मुनि उनका स्मरण करते थे ॥४५॥ उनकी सभामें छह हजार केवलज्ञानी थे और दशहजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि उनकी शोभा बढा रहे थे ॥ ४६ ॥ छहहजार मन.पर्ययज्ञानी उनके चरणकमलोंकी पूजा करते थे और चारहजार दोसौ वादी उनकी उत्तम कीर्तिको बढाते थे ॥४७॥ इसतरह बहत्तरि हजार मुनि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे, इसके सिवाय एक लाख छह हजार सेना आदि अर्जिकायें थीं ॥ ४८ ॥ दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकायें थीं इनके सिवाय संख्यात तिर्यंच और अनेक देव देवियां उनकी स्तुति करते थे ॥ ४९ ॥ उन वासुपूज्य भगवानने धीरे धीरे सब आर्यक्षेत्रमें विहार किया धर्मकी वर्षाकर संतुष्ट किया और अंतमें एक हजार वर्षतक आकर

॥ ५० ॥ स्थित्वात्र निष्क्रियो मास नद्या राजतमौलिका—संज्ञायाश्चितहारिण्या पर्यंतावनिवर्तिनि ॥ ५१ ॥ अग्रमंदरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे । वने मनोहरोद्याने पल्यकासनमाश्रित ॥ ५२ ॥ मासे भाद्रपदे ज्योत्स्ने चतुर्दश्यापराह्णके । विशाखाया ययौ मुक्तिं चतुर्नवतिसंयतै ॥ ५३ ॥ परिनिर्वाणकल्याणपूजाप्राते महोत्सवैः । अवदिषत ते देव देवा सेवाविचक्षणा ॥ ५४ ॥ विजिगीषोर्गुणैः षड्भि सिद्धिस्त्वत्सुप्रयोजितै । मुमुक्षोः किं न सामीभि लक्षाचतुरशीतिगैः ॥ ५५ ॥ सदसदुभयमेतेनैकशब्देन वाच्ये त्रितयमपिपृथक्तुर्यभंगेन युज्यात् । इति सकलपदार्थसप्तभगी त्वयोक्ता कथमवितथवाक्त्व वासुपूज्यो न पूज्यः ॥ ५६ ॥ धर्मो दया कथममी सपरिग्रहस्य वृष्टिर्धरातलहिता किमवग्रहेस्ति । तस्मात्त्वया द्वयपरिग्रहमुक्तिरुक्ता तद्वासनासुमहितो जिन वासुपूज्य ॥ ५७ ॥ पद्मोत्तरः प्रथमजन्मनि पार्थिवेश शुक्रे महत्यमरषट्पदपद्मपादः । यो वासुपूज्ययुवराट् त्रिजगत्प्रपूज्यः राज्ये जिन स दिश-

चंपा नगरमें रहे ॥ ५० ॥ जब आयुमें एक महीना रह गया तब उन्होंने योग निरोध किया, राजतमौली नामकी नदीके किनारेकी भूमिपर जो मदारगिरि पर्वत है उसके शिखरपर सुंदर मनोहर नामके वनमें पर्यकासनसे विराजमान हुए और भादों सुदी चौदसके दिन शामके समय विशखा नक्षत्रमें चौरानवे मुनियोंके साथ साथ मोक्ष पधारे ॥ ५१–५३ ॥ सेवा करनेमें अत्यंत चतुर ऐसे देवोंने आकर उसीसमय उन भगवानकी वंदनाकी, पूजाकी और वडे ठाठ बाटसे मोक्षकल्याणका महोत्सव मनाया ॥ ५४ ॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले और कर्मोंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले उन भगवानके जब अच्छी तरह धारण किये हुये छह ही गुणोंसे सिद्धि हो गई थी तब भला भगवानके धारण किये हुए चौरासी लाख गुणोंसे क्यों न होगी ॥ ५५ ॥ कथंचित् है, कथंचित् नहीं है, कथंचित् दोनों रूप है कथंचित् अवक्तव्य है कथंचित् होकर भी अवक्तव्य है कथंचित् नहीं होकर भी अवक्तव्य है और कथंचित् दोनोंरूप होकर भी अवक्तव्य है । इसप्रकार सब पदार्थोंको जिन्होंने सप्तभंगीरूप कथन किया है जो कि वास्तवमें सत्यस्वरूप है ऐसे वे भगवान वासुपूज्य भला किसतरह पूज्य नहीं हो सकते ? भावार्थ–वे सबके पूज्य हैं ॥ ५६ ॥ धर्म दयारूप है परंतु वह दयारूप धर्म परिग्रहवालेके कैसे हो सकता है पृथ्वीका हित पानी वरसनेसे होता है परंतु वर्षाके रुकावटके कारण होते हुये भला वह वर्षा कैसे हो सकती है ? इसलिये ही आपने अतरंग वहिरंग दोनों तरहके परिग्रहोंके त्याग का उपदेश दिया है और हे प्रभो ! उसी त्यागकी वासनासे आप पूज्य हैं ॥ ५७ ॥ जो पहिले जन्ममें पद्मोत्तर नामके राजाधिराज थे फिर अनेक देवतारूपी भ्रमर जिनके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं ऐसे महाशुक्र विमानमें इंद्र हुये और फिर जो संसार जिनकी पूजा करता है ऐसे युवराज (वालब्रह्मचारी) जिनराज भगवान वासुपूज्य हुए ऐसे वे भगवान तुम लोगोंको अतुल सुख दें ॥ ५८ ॥

तादतुल सुखं व ॥ ५८ ॥ तीर्थे श्रीवासुपूज्यस्य द्विपृष्टो न म भूपति । त्रिखंडाधिपतिर्जातो द्वितीयः मोर्द्धचक्रिगा ॥ ५९ ॥ वृत्तकं तस्य वक्ष्यामो जन्मत्रयसमाश्रित । श्रुतेन येन भव्यानां भवेद्भूयो भवाद्भय ॥ ६० ॥ द्वीपेस्मिन् भारतेवर्षे कनकादिपुराधिप । सुषेणो नाम तस्यासीन्नर्तकी गुणमंजरी ॥ ६१ ॥ रूपिणी सुभगागीतनृत्यवाद्यादिविश्रुता । सरस्वती द्वितीयेव सर्वभूपाभिवाञ्छिता ॥ ६२ ॥ अस्ति तत्रैव देशोन्यो मलयाख्यो मनोहर । विंध्यशक्तिपतिस्तस्य नृपो विंध्यपुरे वसन ॥ ६३ ॥ स रक्तो गुणमजर्या प्रेक्षायामिव षट्पद । चूतप्रसवमजर्या माधुर्यैरसरंजित ॥ ६४ ॥ रत्नाद्युपायनोपेतमितार्थ चित्तहारिण । सुषेण प्रतिसन्मान्य प्राहिणोन्नर्तकीप्सया ॥ ६५ ॥ दूतोपि मत्वरं गत्त्वा स सुषेणमहीपतिं । दृष्ट्वा यथोचित तस्मै दत्वोपायनमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ सुषमद्गृहे महारत्न नर्तकी किल विश्रुता । विंध्यशक्तिर्भवद्बंधुस्तां दृष्टुमभिलषुक ॥ ६७ ॥ तत्प्रयोजनमुद्दिश्य प्रहितोहं महीपते । त्वयापि सा प्रहेत-

अथानंतर–श्रीवासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें ही तीन खंडका स्वामी और दूसरा अर्धचक्री (दूसरा नारायण) ऐसा द्विपृष्ट नामका राजा हुआ है उसीका तीन जन्मसे मिला हुआ अर्थात् तीन जन्मका जीवनचरित्र कहता हूं। इस जीवनचरित्रके सुननेसे भव्य जीवोंको फिर भी संसारसे भय या वैराग्य उत्पन्न होगा ॥५९-६०॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कनकपुर नगर है वहां सुषेण नामका राजा राज्य करता था उसके एक गुणमंजरी नामकी नृत्य करनेवाली थी ॥६१॥ वह नृत्यकारिणी रूपवती थी, सुंदरथी गाने बजाने और नृत्य करने आदि कलाओंमें प्रसिद्ध थी तथा दूसरी सरस्वतीके समान जान पडती थी इसीलिये ही सब राजा लोग उसकी इच्छा किया करते थे ॥ ६२ ॥ उसी भरतक्षेत्रमें एक मनोहर मलय देश है उसके विंध्यपुर नगरमें राजा विंध्यशक्ति राज्य करता था ॥ ६३ ॥ जिसप्रकार भ्रमर मधुरताके रससे उन्मत्त होकर आमकी खिली हुई मंजरीमें आसक्त होजाता है उसीप्रकार वह राजा विंध्यशक्ति उस गुणमंजरीके देखनेकेलिये आसक्त हो रहा था ॥ ६४ ॥ उसने राजा सुषेणका आदर सत्कारकर उससे नृत्यकारिणीको बुलानेकी इच्छासे उसके समीप बहुतसे रत्नोंकी भेंट लेकर चित्तको हरण करनेवाला एक दूत भेजा ॥ ६५ ॥ उस दूतने भी बहुत शीघ्र जाकर महाराज सुषेणके दर्शन किये और यथायोग्य रीतिसे भेंट देकर कहने लगा कि आपके घरमें एक प्रसिद्ध नृत्यकारिणीरूपी महारत्न सुना है, राजा विंध्यशक्ति आपके भाई हैं वह उस नृत्यकारिणीको देखना चाहते हैं ॥ ६६-६७ ॥ हे महाराज! इसी अभिप्रायसे उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है आपको भी उसे भेज देना चाहिये, मै वापिस लाकर आपको सौंप जाऊंगा ॥ ६८ ॥ दूतके इन वचनोंको सुनकर राजा सुषेण क्रोधसे कांपने लगा और कहने लगा कि जा, जा! न सुनने योग्य ऐसे इन घमंडी वचनोंसे कुछ लाभ

व्या प्रस्थानीय मर्मपये ॥ ६८ ॥ इत्यतस्तद्वच: श्रुत्वा सुतरां कोपवेपिना । याहि याहि किमन्यैर्वचोभिर्दुर्गालिभिः ॥ ६९ ॥ इति निर्भर्त्सितो भृग सुषेणेन दुरुक्तिभिः । दूत प्रत्येत्य तत्सर्वं विंध्यशक्ति प्रजिज्ञपत् ॥ ७० ॥ सोपि कोपग्रहाविष्टस्तद्वच श्रवणाद् भृग । अस्तु को दोष इत्यात्मगतमालोच्य मन्त्रिभि ॥ ७१ ॥ शूरो लघु समुत्थान कूटयुद्धविशारद. । अनस्कंदेन सम्प्राप्य सःरमाग्रामिकामगीं ॥ ७२ ॥ विधाय सगरे भग तत्कीर्तिमिव नर्तकीं । ततोहरद् गते पुण्ये कस्य किं कोत्र नाहरत् ॥ ७३ ॥ दतभगो गजेंद्रस्य दंष्ट्रभगो गजद्विप: । मानभगो महीभृतां महिमानमपह्नुते ॥ ७४ ॥ स तेन मान भगेन स्वगृहाद्भग्नमानस । पृष्ठभगेन नागो वा न प्रतस्थे पदात्पद ॥ ७५ ॥ स कदाचित्संनिर्वेद. सुव्रताख्यजिनाधिपात् । अनगारात्परिज्ञातधर्मानिर्मलचेतसा ॥ ७६ ॥ स कोपि पापपाको मे येन तेनाप्यहं जित । इति संचित्य पापारिं निहंतुं मतिमातनोत् ॥ ७७ ॥ तपस्तनूनपात्तापतनूकृततनुश्चिरं ।

नहीं है ॥ ६९ ॥ इसके बाद राजा सुषेणने बुरे वचनकह फिर भी दूतका तिरष्कार किया, जिससे दूत लौटकर अपने नगरमें आया और राजा विंध्यशक्तिसे सब समाचार कह सुनाये ॥ ७० ॥ दूतके वचनोंको सुनकर राजा विंध्यशक्ति क्रोधसे बावला होगया और कहने लगा—कि अच्छा क्या डर है, ? तदनतर उसने मंत्रियोंके साथ कुछ विचार किया ७१ कूटयुद्ध करनेमें चतुर युद्धकी सार बातोंमें निपुण और शूरवीर वह राजा अपनी सेना लेकर बहुत शीघ्र चला ॥७२॥ वहां पहुंचकर उसने युद्ध किया, राजा सुषेणको हराया और उसकी कीर्तिके समान नृत्यकारिणी भी हरण करली, सो ठीक ही है क्योंकि पुण्य नष्ट होजानेपर इससंसारमें फिर कौन किसकी क्या चीज नहीं ले सकता है ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार हाथीके दांत टूटनेसे उसकी महिमा नष्ट हो जाती है सिंहकी दाढ टूट जानेसे उसकी महिमा नष्ट हो जाती है इसीप्रकार राजाओंका मान भंग होनेसे उनकी सब महिमा नष्ट हो जाती है ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार पीठ टूट जानेसे सर्प एक पैर नहीं चल सकता उसीप्रकार जिसका चित्त खिन्न हो रहा है ऐसे उस राजा सुषेणने उस मान भंग होनेसे अपने घरसे बाहर एक पैर भी नहीं दिया ॥ ७५ ॥ किसी एक दिन उसने विरक्त होकर निर्मल चित्तसे सुव्रत नामके निर्ग्रंथ जिनेंद्रदेवसे धर्मका स्वरूप सुना और सोचने लगा कि—मेरे किसी पापका उदय है इसलिये ही मैं विंध्यशक्तिसे हार गया हू ऐसा विचारकर उसने पापरूप शत्रुको नाश करनेके लिये अपना दृढ निश्चय किया ॥ ७६—७७ ॥ उन्हीं मुनिराजसे दीक्षाली बहुत दिन तक तपश्चरणरूपी अग्निके संतापसे शरीरको कृश किया अंतमें शत्रुपर क्रोध रखता हुआ संन्यास धारणकर और निदान बांधकर चौदहवें प्राणत स्वर्गके अनुपम विमानमें देव हुआ । वहांपर उसे बीस सागरकी आयु मिली और आठ ऋद्धियोंके मिलनेसे वह बहुत ही अभिमानी होकर रहने लगा ॥७८—७९॥

सारिकोप स संन्यस्य सनिदानं सुरोऽभवत् ॥ ७८ ॥ विमानेऽनुपमे नाम्ना कल्पे प्राणतनामनि । विंशत्यब्ध्युपमायुः सन् स्वष्टर्द्धिकृतसमदः ॥ ७९ ॥ अत्रैव भरते श्रीमान्महापुरमधिष्ठितः । नृपो वायुरथो नाम भुक्त्वा राज्यश्रियं चिरं ॥ ८० ॥ श्रुत्वा सुव्रतनामार्हत्पार्श्वे धर्मं स तत्त्ववित् । सुतं घनरथं राज्ये स्थापयित्वागमत्तपः ॥ ८१ ॥ अधीत्य सर्वशास्त्राणि विधाय परमं तपः । तत्रैवेंद्रोऽभवत्कल्पे विमानेऽनुत्तराह्वये ॥ ८२ ॥ ततोऽवतीर्य वंशेऽस्मिन् पुरोद्वारावतीपतेः । ब्रह्माह्वयस्याचलस्तोकः सुभद्रायामभूद्विभुः ॥ ८३ ॥ तस्यैवासौ सुषेणाख्योऽप्युषायामात्मजोऽजनि । द्विपृष्ठाख्यस्तनुस्तस्य चापसप्ततिसम्मिता ॥ ८४ ॥ द्वासप्ततिसमालक्षा परमायुर्निरंतरं । राजभोगानभुक्तोऽवरिक्ष्वाकूणां कुलाग्रणी ॥ ८५ ॥ कुंदेंद्रनीलसंकाशावभातां बलकेशवौ । संगमेन प्रवाहो वा गंगायमुनयोरमू ॥ ८६ ॥ अविभक्ता महीमेतावभुक्ता पुण्यनायकौ । सरस्वतीं गुरूद्दिष्टां समानश्रावकाविव ॥ ८७ ॥ अविवेकस्तयोरासीद्धीताशेषशास्त्रयोः । अपि श्रीकामिनीयोगे स एव किल शस्यते ॥ ८८ ॥ स्थिरावत्युन्नतौ शुक्लनीलौ भातः स्म भूभृतौ । कैलासांजनसंज्ञौ वा संगतौ तौ मनोः

अथानंतर— इसी भरतक्षेत्रके महापुर नगरमें श्रीमान् राजा वायुरथ राज्य करता था उसने बहुतदिन राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया। तत्त्वोंके जानने वाले उस राजाने एकदिन सुव्रत जिनेंद्रदेवके समीप जाकर धर्मोपदेश सुना और विरक्त होकर अपने पुत्र घनरथको राज्य सोंपकर उसने दीक्षा धारण करली ॥ ८०–८१ ॥ समस्त शास्त्रोंका अभ्यास किया उत्तम तपश्चरण किया और आयुके अंतमें उसी प्राणत स्वर्गके अनुत्तर विमानमें इंद्र हुआ ॥ ८२ ॥ वहांसे चयकर वह द्वारावती नगरके राजा ब्रह्मके उनकी सुभद्रा रानीके अचलस्तोक नामका पुत्र हुआ ॥ ८३ ॥ तथा राजा सुषेणका जीव वहांसे चयकर उसी राजा ब्रह्मके उनकी दूसरी उषा रानीसे द्विपृष्ट नामका पुत्र हुआ। उस द्विपृष्टका शरीर सत्तरि धनुष ऊंचा था और आयु बहत्तर लाख वर्षकी थी इसतरह इक्ष्वाकुवंशमें अग्रेसर वह राजा द्विपृष्ट अच्छीतरह राज्यके भोगोपभोगोंका अनुभव करता था ॥ ८४–८५ ॥ कुंद और इंद्रनीलके समान वे दोनों ही भाई बलभद्र और नारायणका पदपाकर बडे ही सुशोभित होते थे अथवा जहां गंगा यमुनाका प्रवाह मिलता है उस सफेद और श्याम जगहके समान अच्छे जान पडते थे ॥ ८६ ॥ जिसप्रकार समान दो श्रावक गुरुकी दी हुई सरस्वतीको विभागरहित उपभोग करते हैं उसीप्रकार पुण्यके स्वामी वे दोनों ही भाई विभागरहित इस पृथ्वीका उपभोग करते थे ॥ ८७ ॥ समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले उन दोनोंके किसी तरहका भी जुदापन नहीं था सो ठीक है क्योंकि वही मेल मिलाप प्रशंसा करनेयोग्य है जो लक्ष्मी और स्त्रीके संयोग होनेपर भी बराबर बना रहे ॥ ८८ ॥ सफेद और नीलवर्णके स्थिर और बहुत ऊंचे वे भाई ऐसे अच्छे जान पडते थे मानो कैलास और अंजन दोनों पर्वत ही एक जगह इकट्ठे हो गये हों ॥ ८९ ॥

हरौ ॥ ८९ ॥ इत स विंध्यशक्त्याख्यो घटीयंत्रममभ्चिरं । भ्रात्वा संसारवाराशावगीय पुण्यसाधनं ॥९०॥ इहैव श्रीधराख्यस्य भोगवर्द्धनभूपते । अभूदखिलविख्यातस्तनूजस्तारकाख्यया ॥ ९१ ॥ बभार भास्वरां लक्ष्मीं भरतार्द्धे निवासिनीं । स्वचक्राक्रांतिसत्रासदासीभूतभूचर ॥ ९२ ॥ आस्तामन्यत्र तद्भीत्या मंदमंदप्रभे रवौ । मन्ये विकस्वरा पद्मा पद्मेष्वपि न जातुचित् ॥ ९३ ॥ पुराणभूतमार्गस्य सोभवत्पारिपथिकः । सिंहिकानंदनो वोग्रः पूर्णमास्यमृतद्युते ॥ ९४ ॥ गलति गर्भास्तन्नाम्ना गर्भिणीनां भयोद्भवात् । घनाघनावलीनां वा क्रूरग्रहविकारतः ॥ ९५ ॥ अन्विष्य प्रतियोद्धारमलब्ध्वा क्रुद्धमानसः । स्वप्रतापाग्निधूमेन दूषितो वा मषीनिभः ॥ ९६ ॥ संतपत्सर्वमूर्धन्यः घर्मघर्मांशुदुस्सहः । सपाताभिमुखः किं स्युः स्थावरास्तादृशो श्रियः ॥ ९७ ॥ अखंडस्य त्रिखंडस्याधिपत्यं समुद्वहन् । जन्मांतरागतात्युग्रविरोधाराध्यचोदितः ॥ ९८ ॥ द्विपृष्ठाचलयोर्वृद्धिं प्रसोढुं सोक्षमक्षमः । करषी-

अथानंतर–इधर राजा विंध्यशक्तिने संसाररूपी समुद्रमें घटीयंत्रके समान बहुत दिनतक परिभ्रमण किया और फिर थोडेसे पुण्य प्राप्त होनेके कारण इसी भरतक्षेत्रके भोगवर्द्धन नगरके राजा श्रीधरके सब लोगोंमें प्रसिद्ध ऐसा तारक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९०–९१ ॥ युवा होनेपर उसने आधे भरतक्षेत्रमें अर्थात् तीन खंडमें रहनेवाली देदीप्यमान लक्ष्मी धारण की थी और अपने चक्रके आक्रमणसे दुखी हुये सब विद्याधर और भूमिगोचरी राजा अपने दास बना लिये थे ॥ ९२ ॥ औरोंकी बात तो जाने दीजिये मुझे तो ऐसा जान पडता है कि उसके डरसे सूर्यकी प्रभा भी मंद पड गई थी और इसलिये ही लक्ष्मी कमलोंमें भी कभी प्रफुल्लित नहीं होती थी ॥ ९३ ॥ जिसप्रकार उग्र राहु पूर्णमासीके चंद्रमाका शत्रु है उसीप्रकार वह तारक भी पुराने मार्गका अथवा पुराणोंमें कहे हुये मार्गका शत्रु था ॥ ९४ ॥ जिसप्रकार किसी क्रूर ग्रहके विकारसे घने बादलोंकी पंक्तियां नष्ट हो जाती हैं उसीप्रकार उस तारकका नाम लेनेसे ही स्त्रियोंको ऐसा भय उत्पन्न होता था जो उस भयसे उनके गर्भ तक गिर जाते थे ॥ ९५ ॥ लिखनेकी स्याहीके समान श्याम वर्ण वह तारक सदा शत्रुओंको ढूंढता रहता था, जब वह शत्रुओंको नहीं पाता था तब क्रोधित हुआ वह ऐसा जान पडता था मानों अपने प्रतापरूपी अग्निके धूमसे ही काला पड गया हो ॥ ९६ ॥ संतप्त सूर्यके समान वह सबके मस्तकपर था ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान असह्य था और नीचेकी ओर गिरनेवाला ही था सो ठीक ही है क्योंकि क्या ऐसे मनुष्योंकी लक्ष्मी स्थिर रह सकती है ? ॥९७॥ वह राजा तारक पूर्ण तीनों खंडोंके स्वामीपनेको धारण करता था, किसी एक समय पूर्व जन्मके तीव्र विरोधके कारण उसके चित्तमें कुछ व्याकुलता हुई ॥ ९८ ॥ ऊपर कही हुई राजा द्विपृष्ठ और अचलकी वृद्धिको वह सह नहीं सका और सोचने लगा कि मैं सब राजारूपी किसानोंसे कर वसूल कर

कृतनि शेषमहीपालकृषीबल ॥ ९९ ॥ अप्रमवत्करदौ नैतौ दुर्मदेनापि दर्पितौ । दुष्टावाशीविष गेहे वर्द्धमान सहेत क ॥ १०० ॥ उच्छेद्यकोटिमारूढा म-
मेमौ येन केनचित् । सदृप्याह हनिष्यामि निजप्रकृतिदूषितौ ॥ १०१ ॥ इत्युपाय विचिन्त्यैक दुर्वाक्यं कलहप्रिय । प्राहिणोत्सोपि तौ प्राप्य सहसैवाह दु-
र्मुख ॥ १०२ ॥ इत्यादिशति वा देवस्तारको मारको द्विषा । युष्मद्गृहे किलैकोस्ति ख्यातो गंधगजो महान् ॥ १०३ ॥ आश्वसौ मे प्रहेतव्यो नो चेद्यु-
ष्मच्छिरोद्वयं । खडीकृत्याहरिष्यामि गज मज्जयसेनया ॥ १०४ ॥ इत्यसभ्यमसोढव्य तेनोक्त कलहार्थिना । श्रुत्वाचलोऽचलो वोर्वीधरोदात्तोब्रवीदिद ॥
१०५ ॥ गजो नाम कियान् शीघ्रमेत्वसावेव सेनया । तस्मै ददामहेन्यच्च येनासौ स्वास्थ्यमाप्नुयात् ॥ १०६ ॥ इत्यादि तेन गम्भीरमभ्युद्य स विसर्जित ।
पवमान इव प्राप्य तत्कोपाग्निमदीपयत् ॥ १०७ ॥ तच्छ्रुत्वा सोपि कोपाग्निप्रदीप्त पावकप्रभ । तौ पतंगायिताविद्य मत्क्रोधाग्नेरवोचता ॥ १०८ ॥

इत्यनालोच्य कार्यांग सगत सन्विवै सम। स्वयमभ्युत्थित मत्वा प्रस्थित- प्राप्तुमंतकं ॥ १०९ ॥ दुर्णयामिमुखो मूर्खश्चालयित्वाखिलामिला। षड-
गेन बलेनासौ प्राप्य तावुदयोन्मुखौ ॥ ११० ॥ समुल्लंघितमर्याद- कालांतजलधिं जयन्। अरुणद्दारुणस्तूर्णं पुरं स्वबलवेलया ॥ १११ ॥ कालबद्देलया
वेला तत्सेना निजसेनया। न्यरौत्सीज्जलनि सारामचलोप्यचलस्थिति ॥ ११२ ॥ द्विपृष्ठो मत्तमातंग सिंहपोत इवोद्धत। पराक्रमैकसाम्राज्यादाक्रमद्द-
लिनं द्विप ॥ ११३ ॥ तारकोपि चिरं युद्ध्वा त निराकर्तुमक्षम। भ्रामयित्वाऽक्षिपच्चक्र यमचक्रमिवात्मनः ॥ ११४ ॥ तत्परीत्य स्थित बाहौ दक्षिणे द-
यितश्रिय। तस्यासौ तेन चक्रेण नरक तमजीगमत् ॥ ११५ ॥ द्विपृष्ट ससरत्नस्त्रिखडेशस्तदाभवत्। अचलो बलदेवोऽभूत्प्रासरत्नचतुष्टयः ॥ ११६ ॥
कृत्वा दिग्विजय जित्वा प्रतीपाख्यातभूभृत। नत्वा श्रीवासुपूज्येश प्रविश्य पुरमात्मन ॥ ११७ ॥ चिरं त्रिखडसाम्राज्य विधाय विविधं सुखं। द्विपृ-

किया और आपको सबसे बडा मानकर यमराजके समीप जानेकेलिये ही मानों वह वहांसे चल पडा ॥ १०९ ॥ दु-
र्णय नामके मूर्ख सेनापतिके द्वारा छहो तरहकी सेना लेकर और समस्त पृथ्वीको उलंघनकर वह राजा तारक उदय
होनेके सन्मुख हुये उन दोनों भाइयोंके समीप जा पहुचा ॥ ११० ॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले तथा प्रलय का-
लके समुद्रको जीतनेवाले अत्यंत भयानक महाराज तारकने अपनी सेनारूपी समुद्रकी ज्वारकी लहरके द्वारा बहुत
शीघ्र ही महाराज द्विपृष्ठका नगर घेर लिया ॥१११॥ निश्चल स्थितिको धारण करनेवाले महाराज अचलसेनने भी प्र-
लयकालके लहरकी समान अपनी सेनाके द्वारा जलसे रहित ऐसी उनकी सेनारूपी लहर वहीं रोक दी ॥ ११२ ॥
सिंहके बच्चेके समान उद्धत हुये महाराज द्विपृष्ठने मदोन्मत्त हाथीके समान अपने बलवान शत्रुपर अप-
नेपराक्रमकी पूर्ण विभूतिके साथ आक्रमण किया ॥ ११३ ॥ महाराज तारक भी बहुत देर तक द्विपृष्टके साथ
लड़ा, जब उसे नहीं हटा सका तब अपने यमके चक्रके समान चक्ररत्नको फिराकर फेंका ॥ ११४ ॥ राज्यलक्ष्मीको
दासी बनानेवाला वह चक्र भी महाराज द्विपृष्टकी परिक्रमा देकर उसके दाहिने हाथपर आ गया, द्विपृष्टने फिराकर
वही चक्र चलाया और तारकको मारकर नरक पहुचाया ॥ ११५ ॥ उसीसमय महाराज द्विपृष्टको सात रत्नोंकी प्राप्ति
हुई और वे तीन खंडके स्वामी हुए, बडे अचल बलदेव हुए और उन्हें चार रत्नोंकी प्राप्ति हुई ॥ ११६ ॥ उन दोनों
भाइयोंने दिग्विजयकर तीनों खंड जीते, विजयकर प्रतीप नामके पर्वतपर श्रीवासुपूज्य स्वामीको नमस्कार किया,
तदनंतर अपने नगरमें प्रवेश किया, बहुत दिनतक तीनों खडोंका साम्राज्य किया और देवताओंकेसे सुख भोगे। द्वि-
पृष्ट आयु पूर्ण होनेपर मरकर सातवें नरक गया, अचलको द्विपृष्टके मरनेका बहुत शोक हुआ, अंतमें श्रीवासुपूज्य

च्छ्रः कालनिष्ठायामवधिस्थानमाश्रित ॥ ११८ ॥ अचलोपि तदुद्वेगाद्वासुपूज्यजिनाश्रयात् । संप्राप्य संयमं मोक्षलक्ष्म्या संगममीयिवान् ॥ ११९ ॥ पुण्यैकबीजमवलंब्य महीमिहाप्य लब्धोदयौ सममुपार्जितसत्स्वरूपौ । एकोगमत्फलितुमकुरवत्किलोर्ध्व पापी परो विफलमूलसमस्त्वधस्तात् ॥ १२० ॥ इदमिति विधिपाकाद् वृत्तमस्मिन् द्विपृष्टे परिणतमचले च प्रत्यह चिंतयित्वा । विपुलमतितिमिरार्यै कार्यमुत्सृज्य पापं सकलसुखनिधान पुण्यमेव प्रतीप ॥ १२१ ॥ पुरेत्र कनकादिके प्रथितवान्सुषेणो नृप ततोनु तपसि स्थितोजनि चतुर्दशस्वर्गभाक् । त्रिखंडपरिपालकोभवदतो द्विपृष्टाख्यया परिग्रहमहाभरादुपगत: क्षितिं सप्तमीं ॥ १२२ ॥ महापुरे वायुरथो महीपतिः प्रपद्य चारित्रमनुत्तरं ययौ । ततो बलो द्वारवतीपुरेचलस्त्रिलोकपूज्यत्वमवाप्य निर्वृत । ॥१२३॥ विख्यातविंध्यनगरे ऽजनि विंध्यशक्तिर्भ्रांत्वा चिरं भववने चितपुण्यलेश । श्रीभोगवर्द्धनपुराधिपतारकाख्य प्राप द्विपृष्टरिपुरंत्यमहीं महाहाः ॥१२४॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे वासुपूज्यजिनपतिद्विपृष्टाचलतारकपुराण परिसमाप्त अष्टपंचाशत्तमं पर्व ॥५८॥

स्वामीके पास जाकर उनसे दीक्षा धारण की और संयम पालनकर मोक्षलक्ष्मीका समागम प्राप्त किया भावार्थ—सिद्ध हुआ ॥ ११७–११९ ॥ उन दोनों भाइयोंने कोई पुण्यका एक वीज पाकर इस लोकमें बहुतसी पृथ्वी पाई, बहुतसी विभूति पाई, और बहुत ही ऊंचा पद प्राप्त किया, परंतु उनमेंसे एक तो अंकुरके समान फलीभूत होनेकेलिये ऊपरको गया और दूसरा पापी फल और जडरहित वृक्षके समान नीचे नरकमें गया ॥ १२० ॥ इसप्रकार कर्मके उदयसे जो कुछ द्विपृष्ट और अचलकी कथा संघटित हुई थी वह इस अध्यायमें निरूपण की है। बडी बुद्धिको धारण करनेवाले आर्य लोगोंको उचित है कि वे प्रतिदिन इसको चिंतवनकर पापकार्योंको छोडकर पापसे विपरीत जो सब तरहके सुखोंका खजाना पुण्य है उसे संपादन करें ॥ १२१ ॥ राजा द्विपृष्ट पहिले इसी भरतक्षेत्रके कनकपुर नगरमें प्रसिद्ध राजा सुषेण हुआ था, तपश्चरणकर चौदहवें स्वर्गमें देव हुआ फिर वहांसे आकर तीन खडको पालन करनेवाला द्विपृष्ट नामका अर्द्धचक्री हुआ और फिर परिग्रहके बडे भारी बोझसे दबकर अर्थात् अधिक ममत्व रखनेके कारण सातवें नरकमें पहुंचा था ॥ १२२ ॥ राजा अचल पहिले जन्ममें महापुर नगरका वायुरथ राजा था, तपश्चरणकर उसी प्राणत स्वर्गके अनुत्तर विमानमें इंद्र हुआ, फिर द्वारावती नगरमें अचल नामका बलदेव हुआ और फिर तीनों लोकोंमें पूज्य मुक्त हुआ था ॥ १२३ ॥ राजा तारक पहिले प्रसिद्ध विंध्यनगरमें विंध्यशक्ति नामका राजा था, बहुत दिनतक संसाररूपी वनमें परिभ्रमणकर किसी थोडेसे पुण्यके उदयसे श्रीभोगवर्द्धन नगरका राजा तारक (प्रतिनारायण) हुआ, और राजा द्विपृष्टके हाथसे मरकर बडे भारी पापके उदयसे सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ था ॥ १२४ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें वासुपूज्य तीर्थंकर द्विपृष्ट अचल और तारकका पुराण समाप्त हुआ ॥५८॥

अथैकोनषष्ठितमं पर्व ।

विमलेऽब्दसमे बोधे दृश्यते विमलं जगत् । विमल यस्य मे सोऽय विमल विमल' क्रियात् ॥ १ ॥ प्रतीचीघातकीखण्डे देवाद्यपरभागभाक् । नदी-दक्षिणकूलस्थो विषयो रम्यकावती ॥ २ ॥ पद्मसेनो महीशोऽत्र महानगरमास्थित । प्रजाभ्य इव कल्पाग समीप्सितफलप्रद ॥ ३ ॥ तत्रावाप विभागोक्त नीतिशास्त्रसमुच्चये । उदाहरणमित्याहुस्तद्वृत्त शास्त्रवेदिन ॥ ४ ॥ अर्जनानुभवावर्ते प्रजानामात्मवृत्तिभि । व्यापारो रक्षके तस्मिन्महीशे मर्दितद्विषि ॥ ५ ॥ नाक्रामति प्रजा न्याय तानाक्रमति भूपति । त त्रिवर्गं त्रिवर्गस्य नान्योन्यातिक्रम क्वचित् ॥ ६ ॥ प्रीतिंकरवने सर्वतसकेवलिसंनिधौ । धर्मतत्त्व परिज्ञाय स्वैष्यज्जन्मद्वय च स• ॥ ७ ॥ तदेव तीर्थकृज्जात इव जातमहोत्सव । पद्मनाभाय दत्त्वैश्य प्रारब्ध परम तप ॥ ८ ॥ प्रतीतैकादशांगार्थो

उनसठवां पर्व ।

अथानंतर–जिनके निर्मल केवलज्ञानमें यह समस्त संसार साफ दिखाई देता है वे श्रीविमलनाथ स्वामी आज मेरे सब कर्ममलोंको दूरकर निर्मल ज्ञानके देनेवाले हों ॥ १ ॥ धातकीखंडके मेरुपर्वतके पश्चिमकी ओर सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक रम्यकावती नामका देश है ॥ २ ॥ किसी एक समय महाराज पद्मसेन इस महानगरका शासन करते थे, वे महाराज प्रजाकेलिये कल्पवृक्षके समान इच्छानुसार सामग्री देनेवाले थे ॥ ३ ॥ शास्त्रके जानकार लोग उनके चारित्रको इसतरह कहते हैं कि–विभागकेलिये कही हुई नीतिशास्त्रके निश्चय करनेमें सब जगह उनका ही उदाहरण दिया जाता था ॥ ४ ॥ शत्रुओंको नाश करनेवाले उन महाराजके राज्य करते समय सब प्रजा अपनी अपनी जीविकाके अनुसार धनका संचय करती थी और उसका उपभोग करती थी ॥ ५ ॥ प्रजा कभी न्यायका उल्लंघन नहीं करती थी जो न्यायका उल्लंघन करता था उसीपर राजाका आक्रमण होता था वहांके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों ही वर्ण धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंको परस्पर विरुद्ध रीतिसे कभी सेवन नहीं करते थे ॥ ६ ॥ किसी एक दिन महाराज पद्मसेनने प्रीतिंकर वनमें सर्वगुप्त केवलीके समीप धर्म तत्त्वोंका स्वरूप समझा और मेरे दो ही भव बाकी रहे हैं यह बात भी जानी ॥ ७ ॥ उसीसमय उन्होंने तीर्थंकर होनेके समान ही महोत्सव मनाया और अपने पुत्र पद्मनाभके लिये राज्य देकर परम तपश्चरण करना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ ग्यारह अंगोंका अर्थ पढकर उनपर विश्वास किया, दर्शनविशुद्धि आदि तीर्थंकर प्राकृतिकी कारण सोलह भावनाओंका चिंतवन किया और बाकीके पु-

भावनाहिततीर्थकृत् । शेषपुण्यसमग्रो ऽयमाराध्याते चतुष्टयं ॥९॥ सहस्रारविमानेशस्तन्नामेंद्रोज निष्ट स । अष्टादशाब्धिमानायुरेकचापतनूच्छ्रिति ॥१०॥
जघन्यशुक्लद्वयभाग् नवमासेषु नि श्वसन् । अष्टादशसहस्राब्दैराहारं मनसाहरन् ॥ ११ ॥ तृप्तो रूपप्रवीचारात् प्राक्चतुर्थधरावधि । तावन्मात्रप्रका-
शादिरणमादिगुणोन्नत ॥ १२ ॥ सस्नेहामृतसपृक्तमुखाब्जुरुहदर्शनात् । मंतर्पितामरीचेताः सुचिरं सुखमन्वभूत् ॥ १३ ॥ सुरलोकादिम लोकमिंद्रेस्मिन्नाग-
मिष्यति । क्षेत्रेत्र पुरि कापिल्ये पुरुदेवान्वयो नृपः ॥ १४ ॥ कृतवर्मा महादेवी जयश्यामास्य विश्रुता । देवेंद्रकृतपूजार्हा वसुधारादिवस्तुभिः ॥ १५ ॥
शुचौ कृष्णदशम्यतरजन्यामुत्तरादिमे । ऋक्षे भाद्रपदे दृष्ट्वा स्वप्नान् षोडश सत्फलान् ॥१६॥ तदानीमेव हस्तींद्रं विशत वक्त्रवारिजे । व्यलोकिष्ट फला-
न्येषामवबुध्य महीपते ॥ १७ ॥ तत स्वविष्टराकंपान्निवेदिततदुत्सवः । सुरै स्वर्गात्समायातैराप कल्याणमादिमं ॥ १८ ॥ वर्द्धमानेन गर्भेण तेनाव-
र्द्धत संम्मद । हृदये बंधुवर्गस्य दुर्गतस्य धनेन वा ॥ १९ ॥ प्रमोदाय सुतस्येह सामान्यस्यापि सभव । किमुच्यते पुनः सूते प्रागानम्रसुरेशिन ॥२०॥

णको पूराकर तथा आयुके अंतमें चारों आराधनाओंको आराधनकर बारहवें सहस्रारस्वर्गमें वहांका स्वामी सहस्रार नामका इंद्र उत्पन्न हुआ । वहांपर उसकी अठारह सागरकी आयु थी और एक धनुष ऊंचा शरीर था ॥ ९–१० ॥ द्रव्य और भाव दोनों ही जघन्य शुक्ल लेश्यायें थी नौ महीने वाद श्वासोच्छ्वासलेता था और अठारह हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था ॥ ११ ॥ केवल रूप देखनेरूप प्रवीचार (मैथुन) से ही संतुष्ट रहता था, चौथी भूमि अवधिज्ञान था, चौथी भूमि तकही अणिमा आदि ऋद्धियोंसे बढ़ा हुआ प्रकाश आदि पड़ता था ॥ १२ ॥ स्नेहरूपी अमृतसे सींचे हुये मुख कमलोंको देखकर देवांगनाओंके चित्तको संतुष्ट करनेवाले उस इंद्रने वहुत दिनतक सुखका अनुभव किया था ॥ १३ ॥ जब यही इंद्र स्वर्गलोकसे च्युत होकर इस मनुष्य लोकमें आनेवाला था तभी इंद्रादि देवोंने इसी भरतक्षेत्रके कंपिला नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए राजा कृतवर्माकी जगत्प्रसिद्ध महादेवी जयश्यामाकी रत्नोंकी वर्षाकर तथा और अनेक तरहसे पूजा की थी ॥ १४–१५ ॥ उस महादेवीने ज्येष्ठ कृष्ण दशमीके दिन रात्रिके अंत समयमें उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें उत्तम सोलह स्वप्न देखे थे ॥ १६ ॥ उसीसमय उसने अपने मुखरूपी कमलमें घुसता हुआ एक उत्तम हाथी देखा था । सवेरे ही महाराज कृतवर्मासे उन स्वप्नोंके फल सुने थे ॥ १७ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंके आसन कंपायमान हुए थे उन्होंने तुरंत ही स्वर्गसे आकर बडे ठाठ बाटसे गर्भकल्याणका उत्सव मनाया था ॥ १८ ॥ तदनंतर ज्यों ज्यों वह गर्भ बढता जाता था त्यों त्यों कुटुंबी लोगोंके हृदयमें उस गर्भसे ही आनंद बढता जाता था तथा दरिद्री लोगोंको धनकी प्राप्तिसे आनंद बढता जाता था ॥ १९ ॥ साधारण पुत्रका

१२९

माघशुक्लचतुर्थ्यां सा तमहिर्बुध्न्ययोगतः । त्रिबोधं त्रिजगन्नाथं प्रासूत विमलप्रभं ॥ २१ ॥ जन्माभिषेककल्याणप्रान्ते विमलवाहनं । तमाहुरमराः सर्वे सर्वसस्तुतिगोचरं ॥ २२ ॥ वासुपूज्येशसंताने त्रिंशत्सागरसम्मिते । पल्यान्त्योपमे धर्मध्वंसे तदभ्यन्तरजीविनः ॥ २३ ॥ षष्टिलक्षाब्दजीवितस्तु षष्टिचापतनु प्रभ । अष्टापदप्रभः सोऽभूत्सर्वपुण्यसमुच्चय ॥ २४ ॥ पंचकैर्द्विकाब्दकौमारनिरतो कुमारी । राज्याभिषेकपूतात्मा पावनीकृतविष्टपः ॥ २५ ॥ लक्ष्मीं महचरी तस्य कीर्तिर्जन्मांतरागता । सरस्वती सहोत्पन्ना वीरलक्ष्म्या स्वयं वृत ॥ २६ ॥ गुणा सत्यादयस्तस्मिन् वर्द्धन्ते यथा तथा । मुनीन्द्रैरपि संप्रार्थ्या वर्णना तेषु का परा ॥ २७ ॥ सुखस्य तस्य को वेत्ति प्रमां मुक्तिसुखस्य नेतृ । अनंतगतितांतत्वादानत्यादतिशुद्धितः ॥ २८ ॥ देवदेवस्तदैवासा-

उत्पन्न होता ही आनंद देनेवाला है फिर भला जिसने पहिलेसे ही इंद्रको नवा दिया है ऐसे पुत्रके उत्पन्न होनेसे होनेवाले आनंदका क्या पूछना है ॥ २० ॥

माघ शुक्ला चतुर्दशीके दिन उत्तराभाद्र नक्षत्रमें उस जयश्यामा देवीने तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले और तीनों जगतके स्वामी ऐसे विमलप्रभको उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ इंद्रादि सब देवोंने आकर उनके जन्मकल्याणका उत्सव किया और सबतरहकी स्तुतिके योग्य ऐसे उन भगवानका विमलवाहन नाम रक्खा ॥ २२ ॥ श्रीवासुपूज्यके मोक्ष जानेके तीस सागर बाद श्रीविमलवाहन हुये थे, अंतके एक पल्यतक धर्मका विच्छेद रहा था जो कि उनके उत्पन्न होते ही फिर प्रचलित हो गया था ॥ २३ ॥ श्रीविमलवाहनकी आयु साठ लाख वर्षकी थी, शरीरकी उंचाई साठ धनुष थी सुवर्णके समान उनका वर्ण था और वे सबतरहके पुण्यके समूहके समान जान पडते थे ॥ २४ ॥ समस्त संसारको पवित्र करनेवाले भगवान विमलवाहनके कुमार कालके पंद्रह लाख वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्याभिषेकका ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था ॥ २५ ॥ लक्ष्मी सदा उनके साथ रहती थी, कीर्ति जन्म जन्मसे साथ थी, सरस्वती जन्मके साथ ही प्रगट हुई थी और वीर-लक्ष्मीने उन्हें स्वयं स्वीकार किया था ॥ २६ ॥ बडे बडे मुनिराज भी जिनकेलिये प्रार्थना करते हैं ऐसे सत्य आदि गुण जिसतिस तरह बढ रहे थे फिर इनसे बढकर और क्या वर्णन करना चाहिये ॥ २७ ॥ उनके सुखका प्रमाण तो भला कौन जान सकता है क्योंकि थोडेदिन बाद अनंत चतुष्टय प्राप्त होनेसे अत्यंत विशुद्धि होनेसे और ऊंचा पद प्राप्त होनेसे उन्हें मोक्षका सुख प्राप्त होनेवाला था ॥ २८ ॥ सब इंद्रोंने उससमय आकर भी देवाधिदेवके चरणोंकी पूजा की थी, इसका कारण यह था कि उन्हें आगे केवल आत्माके द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न होनेवाला था ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके स्वामी वे भगवान कुंदके फूल अथवा चंद्रमाके समान निर्मल यश फैला रहे

वासीद्विश्वपुरेश्वरे । अभ्यर्चिताङ्घ्रिरागत्रीं केवलं केवलात्मता ॥ २९ ॥ यश प्रकाशयत्याशा श्रीश: कुदेंदुनिर्मल । कासप्रसवनीकाशमाकाश चाकरोदद ॥ ३० ॥ त्रिंशच्छतसहस्राब्दराज्यकालावसानग । भोगान् विभज्य भुजानो भूय :षड्ऋतुसभवान् ॥ ३१ ॥ हिमानीपटलच्छन्नदिग्भूरुहभूधरे । हेमते हैमनीं लक्ष्मीं विलीनां वीक्ष्य तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ विरक्तः ससृतेः पूर्वनिजजन्मोपयोगवान् । रोगीव नितरां खिन्नो मानभगविमर्शनात् ॥ ३३ ॥ सज्ज्ञानैस्त्रिभिरप्येभि किं कृत्यमवधौ स्थिते । वीर्येण च किमेतेन यद्युत्कर्षमनाप्तवान् ॥ ३४ ॥ चारित्रस्य न वंधोपि प्रत्याख्यानोदयो यत । बधश्चतुर्विधोप्यस्ति बहुमोहपरिग्रह ॥ ३५ ॥ प्रमादा सति सर्वेपि निर्जराप्यरिपकेव सा । अहो मोहस्य माहात्म्य मायाम्यहमिहैव हि ॥ ३६ ॥ साहस परिभुजेऽमून् भोगान्भोगानिवोरगान् । पुण्यस्य कर्मण: पाकादेतन्मे संप्रवर्तते ॥ ३७ ॥ तस्य यावन्न याम्यतमनंतं तत्सुख कुत । इतीवचित्तो विमलो विमलावगमोद्गमात् ॥ ३८ ॥ तदैवायातसारस्वतादिभि कृतमस्तव । सुरैस्तृतीयकल्याणे विहिताभिषवोत्सव ॥ ३९ ॥ देवदत्ता समारुह्य शिविकाममरैर्वृतः ।

थे अथवा इस आकाशको कासके फूलोंके समान बना रहे थे ॥ ३० ॥ इसप्रकार छहों ऋतुओंसे उत्पन्न हुये भोगोंका अनुभव करते हुये उनके तीस लाख वर्ष बीत गये थे ॥ ३१ ॥ किसी एक दिन बरफके पटलोंसे ढके हुये और सब तरहके वृक्षोंसे सुशोभित ऐसे किसी पर्वतपर हेमंतऋतुमें उन्होंने ओसकी शोभाको क्षणभरमें ही नष्ट होते हुये देखा ॥ ३२ ॥ वे उसीसमय संसारसे विरक्त हुये, उन्हें पहिले जन्मकी सब बातें याद आईं और अपना मानभंगका विचारकर वे एक रोगीके समान खेद खिन्न हुये ॥ ३३ ॥ वे सोचने लगे कि जबतक संसारकी अवधि है तबतक इन उत्तम तीनों ज्ञानोंसे भी क्या काम निकलता है और इस वीर्यसे (शक्तिसे) भी क्या लाभ है क्योंकि जो सबसे उत्तम मोक्ष है वह मुझे अबतक प्राप्त नहीं हुई है ॥ ३४ ॥ प्रत्याख्यानावरण कर्मके उदयसे मेरें चारित्रकी गंधतक नहीं है और बहुतसे मोह तथा परिग्रहको बढानेवाला चारों प्रकारका बंध अबतक विद्यमान है ॥ ३५ ॥ प्रमाद भी सब विद्यमान हैं और निर्जरा भी बहुत ही थोडी है ओह ! मोहकी भी कितनी बडी महिमा है कि जिससे अब तक मैं इस ससारमें बैठा हुआ हूं ॥ ३६ ॥ मेरा साहस भी तो देखो सर्पके फणाके समान इन भोगोंको मैं अबतक भोग रहा हूं । मुझे पुण्य कर्मके उदयसे ही यह सब सामिग्री प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ इसलिये जबतक मै इन कर्मोंको नष्ट न करुंगा तब तक मुझे वह अनंत सुख कहां मिल सकता है । इस प्रकार निर्मल ज्ञानके प्रगट होनेसे भगवान विमलवाहन चिंतवन करने लगे ॥ ३८ ॥ उसीसमय सारस्वत आदि लौकांकित देवोंने आकर उनकी स्तुति की और इंद्रादि देवोंने आकर तीसरे दीक्षाकल्याणका अभिषेक किया और उत्सव मनाया ॥ ३९ ॥ सब देवोंसे घिरे

विभु सहेतुकोद्याने प्राव्राजीद् द्व्युपवासभाक् ॥ ४० ॥ माघशुक्लचतुर्थ्याहःप्राते षड्विंशकर्क्षके । सहस्रनरपैः सार्द्धं प्राप्य तुर्यावबोधनं ॥ ४१ ॥ द्वितीयेह्नि पुरे नंदनाभिध भुक्तये ऽविशत् । जयो नाम नृपस्तस्मै दत्त्वान्न कनकप्रभः ॥ ४२ ॥ पचाश्चर्यं समापाप्य किन्नवा पात्रदानत. । सामायिकं समादाय संयम शुद्धचेतसा ॥ ४३ ॥ त्रिवत्सरमिते याते तपस्येष महामुनिः । निजदीक्षावने जवूद्रुममूले द्व्युपोषित ॥ ४४ ॥ माघे मासि सिते पक्षे षष्ठ्या प्रष्ठोपराह्णके । स्वदीक्षादाननक्षत्रे घातिकर्मविनाशनात् ॥ ४५ ॥ केवलावगम प्रापत्सद्यो व्याप्तचराचरः । तदैवापश्च देवेंद्रा स्वानमन्मुकुटानना ॥ ४६ ॥ देवदुंदुभिमुख्याष्टप्रातिहार्यादिवैभवं । प्राप्य तैर्गंधकुट्यं तर्गतसिंहासने स्थितः ॥ ४७ ॥ मदरादिगणाधीशपचपचाशदावृत । शतोत्तरसहस्रोक्तपूज्यपूर्वधरैर्वृत ॥ ४८ ॥ स्वत्रिपंचर्तुवन्द्युक्तशिक्षकैरुपलक्षित । स्वद्वयाष्टचतुर्मेयत्रिविधावधिविदित ॥ ४९ ॥ स्वद्वयेंद्रियपचाभिधेयकेवललोचन ।

हुये वे भगवान देवोंके द्वारा बनाई हुई पालकीपर सवार हुए और सहेतुक नामके उद्यानमें जाकर वेलाका नियम ले-दीक्षित हुये ॥४०॥ माघ शुक्ला चतुर्थीके दिन उत्तरा भाद्र नक्षत्रमें शामके समय हजार राजाओंके साथ २ वे दीक्षित हुए थे और उसीसमय उन्हें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ४१ ॥ पारणाके दिन उन्होंने पारणा करनेकेलिये नंदनपुरमें प्रवेश किया और सुवर्णके समान कांतिको धारण करनेवाले महाराज जयकुमारने उन्हें आहारदान दिया ॥ ४२ ॥ महाराज जयकुमारके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई सो ठीक ही है क्योंकि पात्रदानसे भला क्या २ नहीं होता है । इधर भगवान विमलवाहन सामायिकको स्वीकारकर शुद्धचित्तसे संयम पालन करने लगे ॥ ४३ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए इन महामुनिराजको जब तीन वर्ष बीतगये तब एक दिन उसी दीक्षावाले सहेतुक वनमें जंबूवृक्षके (जामुनके) नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुये ॥ ४४ ॥ माघ शुक्ला षष्ठीके दिन शामके समय अपनी दीक्षावाले उत्तरा भाद्र नक्षत्रमें घातिया कर्मोंके नाश होनेसे चर अचर सब पदार्थोंको एक साथ जाननेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । उसीसमय अपने मुकुट और मस्तकको नवाते हुए सब इंद्रादि देव आ उपस्थित हुये ॥ ४५–४६ ॥ देव दुंदुभियोंको मुख्य लेकर आठ प्रातिहार्योंकी विभूति उन्हें प्राप्त हुई और समवसरणमें गधकुटीके भीतर वे सिंहासनपर विराजमान हुये ॥ ४७ ॥ वे भगवान मंदरको आदि लेकर पचपन गणधरोंसे सुशोभित थे और ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जाननेवाले ग्यारह सौ मुनि उनके समवसरणमें थे ॥ ४८ ॥ उनके समवसरणमें छत्तीस हजार पांचसौ तीस शिक्षक थे और चार हजार आठसौ तीनों प्रकारके अवधिज्ञानको धारण करनेवाले उन्हें नमस्कार करते थे ॥ ४९ ॥ इसीतरह पांच हजार पांचसौ केवलज्ञानी थे और नौ हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे ॥ ५० ॥ पांच हजार पांच-

शून्यत्रयनवज्ञातविक्रियद्र्युपवृंहितः ॥ ५० ॥ खद्वयेंद्रियपंचाधिगम्यतुर्यावबोधन । खद्वयत्र्यंग्निनिर्णीतवादिसंयतसयुतः ॥ ५१ ॥ अष्टषष्टिसहस्रोक्त-सर्वसंयमिसंस्तुत । त्रिसहस्रैकलक्षोक्तपद्मार्याद्यार्यिकार्चित ॥ ५२ ॥ द्विलक्षश्रावकोपेतो द्विगुणश्राविकार्चितः । पूर्वोक्तद्विगणोपेतो धर्मक्षेत्रेष्वनारत ॥ ५३ ॥ भवातपपरिम्लानभव्यसस्याभितर्पक । सम्मेदपर्वतं प्राप्य मासमेकं गतक्रियः ॥ ५४ ॥ खद्वयत्र्यष्टनप्रोक्तयतिभि प्रतिमा गतः । आषाढस्यो-त्तराषाढे कृष्णाष्टम्या निशामुखे ॥ ५५ ॥ सद्यः कृत्वा समुद्घात सूक्ष्मं शुक्लं समाश्रितः । सम्यग्योगाद् ोग सन् स्वास्थ्य रोगीव सोऽगमत् ॥ ५६ ॥ तदाप्रभृति लोकेस्मिन् पूज्या कालाष्टमी बुधैः । तदेवालवन कृत्वा मिथ्यादृग्भिश्च पूज्यते ॥ ५७ ॥ कृत्वान्त्येष्टिं तदाभ्येत्य सौधर्मप्रमुखाः सुराः । सि-द्धस्तुतिभिरर्थ्याभिरवंदिषत निर्वृत ॥ ५८ ॥ सततयामलसंचय परिणतो हिंसादिभि सतत संसारे सुकृतात्ततो निजगुणा नेयुर्विशुद्धिं क्वचित् । तानथा-

सौ मनःपर्ययज्ञानी थे और तीन हजार छहसौ सबसे वाद करनेवाले मुनिराज थे॥ ५१ ॥ इसतरह अडसठ हजार मुनियों सहित वे भगवान विराजमान थे, तथा एक लाख तीन हजार पद्मा आदि अर्जिकायें उनकी पूजा करती थीं ॥ ५२ ॥ दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकायें भी उनकी सेवा पूजा करती थीं, इनके सिवाय पहिले कहे हुए दो गण अर्थात् असंख्यात देव और संख्यात तिर्यंच भी उनकी सेवा करते थे, इसतरह उन्होंने निरंतर धर्म क्षेत्रमें (आर्यक्षेत्रमें) विहार किया और संसाररूपी आतापसे मलिन हुए भव्यरूपी धान्योंको संतुष्ट किया अंतमें वे सम्मे-दशिखरपर जा विराजमान हुए, और वहांपर उन्होंने एक महीनेतक योगनिरोध किया ॥ ५३–५४ ॥ आठ हजार छहसौ मुनियोंके साथ उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया, आसाढ कृष्णा अष्टमीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें सवेरेके समय उन्होंने वहुत शीघ्र समुद्घात किया सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति दोनों शुक्ल ध्यानोंका ध्यान किया, और जिसप्रकार कोई रोगी रोगसे छूटकर स्वस्थ हो जाता है उसीप्रकार वे भगवान योगादिकोंका त्यागकर मोक्ष पधारे ॥ ५५–५६ ॥ उसीदिनसे लेकर अषाढ कृष्ण अष्टमीको विद्वान लोग कालाष्टमीके नामसे पूजते हैं और इसीको मानकर मिथ्यत्वी लोग भी इसे पूजते हैं ॥ ५७ ॥ उसीसमय सौधर्म इंद्रको आदि लेकर सब देवोंने आकर उ-नकी अंतिम पूजाकी और मुक्त हुए उन भगवानकी अर्थसे भरी हुई सिद्धस्तुतियोंसे वंदनाकी ॥ ५८ ॥ यह जीव इस संसारमें निरंतर हिंसादि पापोंसे परिणत होकर सदा पापोंका संचय करता रहता है इसलिये अपने आत्माके गु-णोंको विशुद्धकर आज ही उन्हें प्राप्त करना चाहिये और अपनी बुद्धिको निर्मल तथा शुद्ध करना चाहिये यही समझ-कर जिन्होंने शुक्लध्यानका आश्रय लिया था ऐसे वे विमलवाहन स्वामी विमल अर्थात् निर्मल कर्म मलसे रहित ऐसे

इसवाप्य बुद्धिममलां शुद्धिं नयामीत्यय शुक्लध्यानमुपाश्रितोतिविमलस्तस्मायथार्थाह्वयः ॥ ५९ ॥ श्रद्धानबोधरदन गुणपुण्यमूर्तिमाराधनां चरणमायतधर्महस्तं । सन्मार्गवारणमघारिमभिप्रचोद्य विध्वंसनाद्विमलवाहनमाहुरेन ॥ ६० ॥ विनिहतपरसेनः पद्मसेनो महीश सुरसमितिसमर्च्यः स्पष्टसौख्योष्टमेंद्रः । विपुलविमलकीर्तिर्विश्वविश्वभरेशो विमलजिनपतिस्तात्सुष्ठुतस्तुष्टये व ॥ ६१ ॥ स्तिमिततमसमाधिध्वस्तनि शेषदोषं क्रमगमकरणातद्वांनहीनावबोध । विमलममलमूर्तिं कीर्तिभाज शुभाजा नमत त्रिमलताप्त्यै भक्तिभारेण भव्या ॥ ६२ ॥ तीर्थे विमलनाथस्य सजातौ रामकेशवौ । धर्मस्वयम्भूनामानौ तयोश्चरितमुच्यते ॥ ६३ ॥ विदेहेऽस्मिन् प्रतीच्यासीन्मित्रनदीति भूभुज । स्ववशीकृतनि शेषनिजभोग्यमहीतल ॥ ६४ ॥ प्रजानामेष रक्तत्वात्प्रजाश्चास्य प्रपालनात् । सर्वदा वृद्धयेऽभूवन् भवेत्स्वार्थो परार्थता ॥ ६५ ॥ स्वचक्रमिव तस्यासीत्परचक्रं च धीमत । चक्रबुद्धेः

अपने यथार्थ नामको धारण करते थे ॥ ५९ ॥ वे भगवान श्रेष्ठ मोक्षमार्गके लिये एक हाथी थे, श्रद्धान और ज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ही दो दांत थे, गुण ही उनकी पुण्यमूर्ति थी, चारों आराधना ही चार पैर थे, धर्म ही लंबी सूंड थी और पापरूपी शत्रुको ललकारकर नाश करनेवाले थे,इसलिये ही लोग उन्हें विमलवाहन कहते थे ॥ ६० ॥ जो पहिले शत्रुओंकी सेनाको नाश करनेवाले पद्मसेन राजा हुए थे, तदनंतर जो देवताओंके समूहोंसे पूज्य ऐसे बारहवें स्वर्गके इंद्र हुए थे जिनकी बहुतसी निर्मल कीर्ति फैली हुई है और जो समस्त संसारी जीवोंके स्वामी हैं ऐसे श्रीविमलनाथ जिनेंद्र अच्छी तरह हम लोगोंको संतुष्ट करनेवाले हों ॥ ६१ ॥ भो भव्यो ! जिन्होंने अपनी अत्यंत शांत समाधिसे समस्त दोषोंको नाश लिया है, जिनका ज्ञान अनुक्रमरहित और इंद्रिय तथा मनसे रहित है जिनकी मूर्ति अत्यत निर्मल है और इंद्रादि देव भी जिनकी कीर्ति गाया करते हैं ऐसे विमलनाथको अपने आत्माकी निर्मलता प्राप्त होनेके लिये बडीभारी भक्तिसे नमस्कार करो ॥ ६२ ॥

अथानंतर–श्रीविमलनाथ तीर्थंकरके समयमें ही धर्म और स्वयंभू नामके बलभद्र और नारायण हुये इसलिये अब उनकी कथा कहते हैं ॥ ६३ ॥ इसी भरतक्षेत्रके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें एक मित्रनंदी नामका राजा था उसने उपभोग करने योग्य समस्त पृथ्वी अपने वश करली थी ॥ ६४ ॥ वह राजाको बहुत ही प्रिय था तथा बहुत अच्छी तरह प्रजाका पालन करता था इसलिये वह सदा वृद्धिके लिये ही माना जाता था सो ठीक ही है क्योंकि अपना हित करनेसे दूसरेका हित होता ही है ॥ ६५ ॥ उस बुद्धिमानके शत्रुकी सेना भी अपनी सेनाके समान हो जाती थी तथा जिनकी बुद्धि चक्रके समान फिरा करती है स्थिर नहीं रहती उनके अनुक्रमका उल्लंघन होनेसे अपनी सेना भी

स्वचक्रं च परचक्रमपक्रमात् ॥ ६६ ॥ अतृप्यदेष भूपालस्तर्पयित्वाखिलाः प्रजा । परोपकारवृत्तीनां परतृप्तिः स्वतृप्तये ॥ ६७ ॥ स कदाचित्समासाद्य सुव्रतं जिनपुंगवं । श्रुत्वा धर्मं सुधीर्मत्वा स्वाङ्गभोगादिभंगुरं ॥ ६८ ॥ अगिनो वत सीदंति सगमादाहिताहस । नि सगता न गच्छति किं गत न विद्‌त्मी ॥ ६९ ॥ इति निर्विंद्य संसाराद् गृहीत्वा सयम परं । संन्यस्तागात्त्रयस्त्रिंशद्वार्धिस्थितिरनुत्तरं ॥ ७० ॥ ततो द्वारवतीपुर्यां सुतो भद्रमदीपते । सुभद्रायाश्च धर्माख्य सोभूत्सुस्वप्नपूर्वक ॥ ७१ ॥ अमुस्मिन्भारते वर्षे कुणालविषये पुरं । श्रावस्ती तत्र राजाभूत्सुकेतुर्भोगतत्पर ॥ ७२ ॥ कामजे व्यसने द्यूते ससक्तः कर्मचोदितः । निषिद्धो मंत्रिभिर्बंधुवर्गैश्च बहुशो हितं ॥ ७३ ॥ चोदितो वासतैर्भूयो दीव्यद्दैवविलोमतः । राष्ट्रं वित्त वल देवीं सर्वमस्यापहारितं ॥ ७४ ॥ क्रोधजेषु त्रिषूक्तेषु कामजेषु चतुर्षु न । नापरं व्यसन द्यूतान्निकृष्टं प्राहुरागमा ॥ ७५ ॥ महागुणेषु यत्सत्यमुक्त प्राहार्यते

शत्रुकी सेना वन जाती है ॥ ६६ ॥ वह राजा समस्त प्रजाको संतुष्ट कर स्वयं संतुष्ट होता था सो ठीक ही है क्योंकि परोपकार करनेवालोंके दूसरोंको संतुष्ट करनेसे ही अपना संतोष होता है ॥ ६७ ॥ किसी एक दिन वह बुद्धिमान सुव्रतनाथ जिनेंद्रदेवके दर्शन करनेके लिये गया वहांपर उसने धर्मका स्वरूप सुना और शरीर तथा भोग उपभोग आदि सबको क्षणभंगुर समझा ॥ ६८ ॥ वह विचार करने लगा कि ये संसारी प्राणी अहित करनेवाले पापके संबंधसे व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं सब परिग्रह छोडकर दिगंबर नहीं होते हैं न जाने क्यों वे लोग इस बातको नहीं समझते ॥ ६९ ॥ इसप्रकार संसारसे विरक्त होकर उसने उत्कृष्ट संयम धारण किया और अंतमें संन्यास धारण कर तेतीस सागरकी आयु पाकर अनुत्तर विमानमें (सर्वार्थसिद्धिमें) अहमिंद्र हुआ ॥ ७० ॥ वहांकी आयु पूर्णकर द्वारावती नगरीमें राजा रुद्रकी रानी सुभद्राके शुभस्वप्न देखनेके वाद धर्म नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७१ ॥

अथानंतर—इसी भरतक्षेत्रके कुणालदेशमें एक श्रावस्ती नगर है वहांपर भोगोंमें तल्लीन हुआ राजा सुकेतु राज्य करता था ॥ ७२ ॥ अशुभ कर्मके उदयसे वह बहुत कामी था और जूआ खेलनेमें बहुत ही आसक्त था, हितैपी कुटुंबियोंने तथा मंत्रियोंने इसे बहुत ही रोका परंतु प्रबल कर्मोंके विपरीत होनेसे वह अपना राज्य, धन, बल, और रानी सबको हार गया ॥ ७३--७४ ॥ क्रोधसे मद्य मांस और शिकार तीन व्यसन उत्पन्न होते हैं और कामसे जूआ, चोरी, वेश्या और परस्त्री ये चार होते हे परंतु इन सबमें जूआ खेलनेके समान कोई नीच व्यसन नहीं है ऐसा सब शास्त्रकारोंका मत है ॥ ७५ ॥ पांच महागुणोंमें जो सबसे पहिले सत्य कहा है वह जूआ खेलनेवाले के सबसे पहिले नष्ट हो जाता है इसके बाद लज्जा अभिमान कुल सुख आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥ जूआके संबंधसे सज्जनता, भाई

हि तत् । द्यूतासक्तेन लज्जाभिमानं पश्चात्कुलं सुखं ॥ ७६ ॥ सौजन्यं बधवो धर्मो द्रव्यं क्षेत्र गृहं यश । पितरौ दारका दारा: स्वयं चातिप्रसगत: ७७ न स्नान भोजन स्वापो निरोधाद्रोगमृच्छति । नत्वर्थान्मृथा क्लेशी बहुदोष विनोत्यघं ॥ ७८ ॥ करोति कुत्सित कर्म जायते पारिपंथिकः । याचतेन्येषु वार्थार्थमकार्येषु प्रवर्तते ॥ ७९ ॥ बधुभि स परित्यक्तो राजभिर्याति यातना । इति द्यूतस्य को दोषानुद्देष्टुमपि शक्नुयात् ॥ ८० ॥ सुकेतुरेव दृष्टांतो येन राज्य च हारित । तस्माल्लोकद्वय वाञ्छन् दूरतो द्यूतमुत्सृजेत् ॥ ८१ ॥ सुकेतुरिति सर्वस्वहानिशोकाकुलीकृत: । गत्वा सुदर्शनाचार्यं पादमूल श्रुतागमः ॥ ८२ ॥ सद्यो निर्विद्य ससारात्प्रव्रज्याप्यशुभाशय । शोकादन्न समुत्सृज्य तपोभिरतिदुष्करैः ॥ ८३ ॥ दीर्घकालमल तप्त्वा कलागुणविदग्धता । बल चैतेन मे भूयात्तपसेत्यायुष क्षये ॥ ८४ ॥ कृत्वा निदान सन्यस्य लातवकल्पमास्थित । तत्र दिव्यसुख प्रापत्म चतुर्दशसागरं ॥ ८५ ॥ तत सोप्यवतीर्यात्र भद्रस्यैव महीभुज । बभूव पृथिवीदेव्यां स्वयभू सूनुषु प्रिय ॥ ८६ ॥ धर्मो बल स्वयभूश्च केशवस्तौ परस्परं । अमूता प्रीतिसंपन्नाव-

बंधु, धर्म, धन, भूमि, यश, माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि सब अलग हो जाते हैं ॥७७॥ जूआ खेलनेवाला न स्नान कर सकता है न भोजन कर सकता है और न सो सकता है ऐसा करनेसे वह रोगी हो जाता है कुछ धन मिलता नहीं व्यर्थ ही दु:ख सहा करता है, अनेक तरहके दोष किया करता है जिससे वह बहुतसे पाप इकट्ठे किया करता है ॥७८॥ वह नीच कर्म करता है सबका शत्रु बन जाता है धनके लिये याचना करता है और सबतरहके बुरे काम करने लग जाता है ॥७९॥ कुटुंबी लोग उसे छोड देते हैं और राजाकी ओरसे उसे अनेक तरहके कष्ट पहुचाये जाते हैं । इसतरह जूआके दोषोंको कहनेकेलिये भी कोई समर्थ नहीं है ॥ ८० ॥ इसका सबसे अच्छा उदाहरण राजा सुकेतु ही है क्योंकि यह अपना सब ही राज्य हार गया था इसलिये जो लोग अपने दोनों लोक सुधारना चाहते हैं उन्हें जूआ खेलना दूरसे ही छोड देना चाहिये ॥ ८१ ॥ इसतरह राजा सुकेतुने सब कुछ खो दिया तब वह शोकसे व्याकुल हुआ और श्रीसुदर्शनाचार्यके चरणकमलोंके समीप जाकर उसने धर्मोपदेश सुना ॥ ८२ ॥ वह संसारसे विरक्त हुआ, दीक्षा धारणकर मुनि हुआ तथापि उसका अंतरग निर्मल नहीं हुआ । उसने शोकसे अन्न छोड दिया और बहुत दिन तक कठिन तपश्चरण किया । "इस तपश्चरणके प्रभावसे मेरे कला गुण चतुरता और बल हो" ऐसा निदान किया और आयुके अंतमें संन्यास धारणकर लांतव स्वर्गमें देव हुआ । वहां उसने चौदह सागरतक देवोंके सुखोंका अनुभव किया ॥ ८३–८४–८५ ॥ वहांसे चयकर इसी भरतक्षेत्रकी द्वारावती नगरीके राजा रुद्रके उनकी पृथ्वी रानीसे स्वयभू नामका पुत्र हुआ, राजाके वह सब पुत्रोंमें प्रिय था ॥ ८६ ॥ धर्म बलदेव था और स्वयंभू नारायण था, दोनोंमें

न्वभूता श्रिय चिरं ॥ ८७ ॥ सुकेतुजातौ द्यूतेन निर्जित्य बलिना हठात् । स्वीकृतं येन तद्राज्य सोऽभूद्रत्नपुरे मधु ॥ ८८ ॥ तज्जन्मवैरसंस्कारसमेतेनाधुनामुना । तन्नामश्रुतिमात्रेण स्वकोपेन स्वयंभुवा ॥ ८९ ॥ मधो केनापि भूपेन प्रहित प्राभृतं स्वय । घातयित्वोभयोर्दूतौ साधिक्षेपमगृह्यत ॥ ९० ॥ प्रीत्यप्रीतिसमुत्पन्नः संस्कारो जायते स्थिर । तस्मादप्रीतिमात्मज्ञो न कुर्यात्क्वापि कस्यचित् ॥ ९१ ॥ आकर्ण्य नारदाद् दूतमृत्युमावेशितः क्रुधा । ययामभिमुख योद्धु रामकेशवयोर्मधुः ॥ ९२ ॥ तौ च संग्रामसंनद्धौ क्रुद्धौ युद्धविशारदौ । प्रापतु सहसा हंतुं त यमानलसन्निभौ ॥ ९३ ॥ सैन्ययोरुभयोरासीत्संग्राम सहरन्निव । परस्पर चिर घोरः शूरयो भीरुभीप्रद ॥ ९४ ॥ स्वयंभुवं समुद्दिश्य तदा सोढा मधु क्रुधा । ज्वलच्चक्र विवर्त्याशु न्यक्षिपत्तज्जिघांसया ॥ ९५ ॥ तद्गत्वाशु परीत्यैन भुजाग्रे दक्षिणे स्थित । अवतीर्य मरुन्मार्गाद्भास्करस्येव मंडल ॥ ९६ ॥ तदेवादाय सक्रोध स्वयंभूर्विद्विप-

परस्पर बहुत ही प्रेम था और दोनों ही बहुत दिनतक राज्य लक्ष्मीका सुख अनुभव करते रहे थे ॥ ८७ ॥ राजा सुकेतुके समय जिस बलवान राजाने जूआमें राजा सुकेतुका सब राज्य जीतकर जबर्दस्ती ले लिया था वह इस जन्ममें रत्नपुरका राजा मधु हुआ था ॥ ८८ ॥ पूर्व जन्मके वैरका संबंध होनेसे मधुका नाम सुननेसे ही राजा स्वयंभूको क्रोध हो आता था । किसी एक दिन किसी राजाने राजा मधुके पास कुछ भेट भेजी थी, राजा स्वयंभूने भेट ले जानेवाले दोनो दूतोंको मारकर वह भेट जबर्दस्ती छीन ली ॥ ८९-९० ॥ प्रेम और द्वेपसे उत्पन्न हुआ संस्कार स्थिर हो जाता है इसलिये आत्माके स्वरूपको जाननेवालोंको कभी किसीके साथ द्वेप नहीं करना चाहिये ॥ ९१ ॥ राजा मधुने नारदके द्वारा उन दोनों दूतोंके मरनेके समाचार सुने इसलिये वह क्रोधके आवेशमें आकर युद्ध करनेकेलिये नारायण और बलभद्रके सामने चला ॥ ९२ ॥ यम और अग्निके समान तथा युद्ध करनेमें चतुर ऐसे वे दोनों भाई भी क्रोधित होकर मधुको मारनेकेलिये बहुत शीघ्र युद्ध करनेकेलिये तैयार हुये ॥ ९३ ॥ परस्पर एक दूसरेका नाश करनेवाली उन दोनों सेनाओंका बहुत दिनतक शूरवीरोंको भी भय उत्पन्न करनेवाला भारी युद्ध हुआ ॥ ९४ ॥ अंतमें राजा मधुने क्रोधमें आकर स्वयंभूको मारनेके लिये उसपर जलता हुआ चक्र फिराकर फेंका ॥९५॥ वह चक्र शीघ्रताके साथ जाकर और स्वयंभूकी प्रदक्षिणा देकर उसके दाहिने हाथपर ठहर गया, उससमय वह चक्र ऐसा जान पडता था मानों सूर्यका मंडल ही आकाशसे उतरकर आगया हो ॥ ९६ ॥ उसीसमय स्वयंभूने भी क्रोधित होकर वह चक्र अपने शत्रु मधुपर चलाया । उस चक्रने जाकर तुरंत ही मधुके प्राण अलग कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि जब पुण्यका उदय होता है तब क्या नहीं हो सकता ॥ ९७ ॥ उससमय नारायण स्वयंभूने आधे भ-

प्रति । प्रहित्यादादमूस्तस्य किं न स्याद्गुरुतोदयात् ॥ ९७ ॥ आधिपत्य तदावाप्य भरतार्द्धस्य केशव । वासवो वोन्वभूद्भोगान्निर्विघ्न स्वाग्रजान्वित ॥ ९८ ॥ मधु सत्त्व सद्गुसृज्य भूय ससृतिवीजज । वद्ध्वायुर्नारक प्रापनिरय ग, तमस्तम ॥ ९९ ॥ केशवोपि तमन्वेष्टुमिव वैरानुवधनात् । तदेव नरकं पश्चात्प्राविक्षत्पापपाक्त ॥ १०० ॥ वलोपि तद्वियोगोत्थशोकसनप्तमानस । निर्विद्य संसृते प्राप्य जिन विमलवाहन ॥१०१॥ सामायिक समादाय संयमं सयताग्रणी । विग्रहे विग्रही वोग्र निर्व्यग्रमकरोत्तपः ॥ १०२ ॥ सद्वृत्तस्तेजसो मूर्तिरन्वगभ्युदितस्तम । असवाधमगादूर्ध्वं भास्वानिव वलोमल ॥१०३॥ द्यूतेन मोहविहितेन विधी; स्वयंभू यातो मधुश्च नरक दुरितो दुरंत । धर्मादिक त्रितयमेव कुमार्गवृत्त्या हेतु श्रित भवति दु खपरंपराया. ॥१०४॥ क्रोधादिभि सुतपसोपिभवेन्निदान तस्माद् दुरंतदुरितोर्जितदु खहेतु । तेनाप मुक्तिपथगोप्यपथं सुकेतुस्त्याज्यं तत खलसमागमवन्निदान ॥ १०५ ॥ द्युति

रतक्षेत्रका साम्राज्य पाया था और अपने बड़े भाई धर्मके साथ बहुत दिन तक इंद्रके समान निर्विघ्न भोगोंका अनुभव किया था ॥ ९८ ॥ राजा मधु प्राणोंको त्यागकर फिर भी संसारमें परिभ्रमण करनेके कारण नरककी आयु बांधकर सातवें नरकमें गया था ॥ ९९ ॥ तथा नारायण स्वयभू भी उसीका पीछा करनेके लिये ही क्या मानों परस्पर वैरके संस्कारसे और पाप कर्मके उदयसे आयुके अंतमें मरकर उसी सातवें नरकमें पहुंचा था ॥ १०० ॥ स्वयंभूके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकसे बलदेव धर्मका हृदय बहुत ही संतप्त हुआ था और संसारसे विरक्त होकर उसने विमलवाहन जिनेंद्रदेवके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली थी, सब मुनियों में मुख्य होकर संयम धारण किया था और जिसप्रकार युद्धमें कोई युद्ध करनेवाला धीरताके साथ लडता है उसीप्रकार उसने निराकुल होकर उग्र तपश्चरण किया था ॥ सच्चारित्रको धारण करनेवाले और तेजकी मूर्ति भगवान धर्म अतरगका मोहांधकार दूरकर तथा कर्मोंको नष्टकर निर्मल होकर सूर्यके समान ऊपर बाधारहित मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुए ॥१०३॥ मोहके उदयसे उत्पन्न होनेवाले जूआसे बुद्धिहीन और पापी ऐसे राजा स्वयंभू तथा राजा मधु दोनों ही घोर नरकमें जा पहुंचे सो ठीक ही है क्योंकि धर्म अर्थ काम ये तीनों यदि कुमार्ग रीतिसे सेवन किये जायं तो फिर ये ही दु.ख परपराके (अनेक दुखोंके) कारण हो जाते हैं ॥१०४॥ क्रोधादिके कारण यदि श्रेष्ठ तपश्चरण करके भी यदि क्रोधादिके कारण कुछ निदान किया जाय तो वह अत्यंत पापसे उत्पन्न हुये दु:खका कारण बन जाता है । इसी निदानके कारण तपश्चरण रूप मोक्षमार्गमें प्रवृत्त हुआ राजा सुकेतु कुमार्गमें जा पड़ा इसलिये दुष्ट पुरुषके समागमके समान इस निदानका अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए ॥ १०५ ॥ धर्म पहिले अपनी कांतिसे सूर्यको भी जीतनेवाला मित्रनंदी राजा हुआ था। फिर पूर्ण महाव्रत समिति आदिको धारणकर अनु-

विनितहितमित्रो मित्रनंदी क्षितीशो यमसमितिसमग्रोनुत्तराधीश्वरोभूत् । अनुधरणिमित सन् द्वारवत्यां सुवर्मे परमपदमवापत्सोधितात्मस्वरूप ॥ १०६ ॥ कुणालविषये सुकेतुरधिराडभूद् दुर्मतिस्तत: कृततपा सुरोऽजनि सुखालये लांतवे । कृतांतसदृशो मधोरनुबभूव चक्रेश्वरस्ततश्च दुरितोदयात्क्षितिमगात्स्वयंभूरध ॥ १०७ ॥ जिनस्यास्यैव तीर्थेऽग्र्यौ गणेशौ मेरुमंदरौ । तुंगौ स्थिरौ सुरैः सेव्यौ वक्ष्यामश्चरितं तयोः ॥ १०८ ॥ द्वीपेऽपरविदेहेऽस्मिन्सीतोदानद्युदक्तटे । विषये गंधमालिन्यां वीतशोकपुराधिप ॥ १०९ ॥ वैजयंतो नृपस्तस्य देव्या सर्वश्रिय सुतौ । संजयंतजयंताख्यौ राजपुत्रगुणान्वितौ ॥ ११० ॥ तावन्येद्युरशोकाख्यवने तीर्थकृतोंतिके । धर्मं स्वयंभुव श्रुत्वा भोगनिर्वेदचोदितौ ॥ १११ ॥ संजयंततनूजाय वैजयंताय धीमते । दत्वा राज्यं समं पित्रा संयमं समवापतु ॥ ११२ ॥ सप्तमे संयमस्थाने क्षीणाशेषकषायक । सामरस्यं समाप्याप वैजयंतो जिनेशिता ॥ ११३ ॥ पितु कैवल्यसंप्राप्तिकल्याणे

त्तर विमानमें अहमिंद्र हुआ, वहांसे पृथ्वीपर आकर द्वारावती नगरीमें बलभद्र हुआ और फिर अपने आत्माके स्वरूपको सिद्धकर परमपद मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ था ॥१०६॥ इसीतरह राजा स्वयंभू पहिले कुणाल देशमें मूर्ख राजा सुकेतु हुआ था, तदनंतर तपश्चरणकर सुखके स्थान लांतव स्वर्गमें देव हुआ, उसके बाद यमराजके समान राजा मधुके पीछे अर्धचक्री नारायण हुआ फिर पापकर्मके उदयसे सबसे नीचे सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ था ॥ १०७ ॥

अथानंतर-इन्हीं विमलवाहन तीर्थंकरके समयमें मेरु और मंदर नामके दो मुख्य गणधर हुये हैं जोकि बडे ऊंचे थे, स्थिर थे और देव भी उनकी सेवा करते थे इसलिये अब उन दोनोंके चरित्र कहते हैं-॥ १०८ ॥ इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर गंधमालिनी देशके वीतशोकपुर नगरमें राजा वैजयंत राज्य करता था, उसकी सर्वश्री देवीसे संजयंत और जयंत नामके दो पुत्र थे, वे दोनों ही पुत्र राजपुत्रोंके सब गुणोंसे विभूषित थे ॥ १०९-११० ॥ किसी दूसरे दिन अशोक नामके वनमें स्वयंभू तीर्थंकर पधारे उनके समीप जाकर दोनों भाइयोंने धर्मका स्वरूप सुना और दोनों ही भोगोपभोगोंसे विरक्त हुये ॥ १११ ॥ संजयंतके पुत्र बुद्धिमान वैजयंत को राज्य दिया और स्वयं दोनों भाइयोंने पिताके साथ दीक्षा धारण की ॥ ११२ ॥ संयमके सातवें स्थानमें अर्थात् बारहवें गुणस्थानमें सब कषायोंको नष्टकर और पूर्ण समता रसको पाकर राजा वैजयंत अरहंत केवली हुआ ॥११३॥ उनके केवल ज्ञानका उत्सव मनानेकेलिये सब लोग आये धरणेंद्र आया और वैजयंतका पुत्र जयंत मुनि भी आया, उन मुनिराज जयंतने धरणेंद्रकी सुंदरता और ऐश्वर्य देखकर धरणेंद्र होनेका निदान किया और वह मूर्ख उस निदानके कारण मरकर धरणेंद्र हुआ, सो ठीक ही है क्योंकि बहुतसे मूल्यसे छोटीसी वस्तु लेना कुछ कठिन नहीं है ॥११४-

धरणेशिन. । जयंतो वीक्ष्य सौंदर्यमैश्वर्यं च महन्मुनि ॥११४॥ धरणेंद्रोभवन्मृत्वा दुर्मतिः स निदानतः । अल्पल्प बहुमौल्येन गृह्णतो न हि दुर्लभ ॥११५॥ अन्येद्यु संजयंताख्यं प्रतिमायोगधारिण । मनोहरपुराभ्यर्णभीमारण्यातरे यतिं ॥ ११६ ॥ विद्युद्दंष्ट्राह्वयो विद्याधरो वीक्ष्याक्षमो रुषा । पूर्ववैरानुबंधानुस्मृत्युद्भूतातिवेगया ॥ ११७ ॥ उद्धृत्येत्वास्ययाप्यद्रेर्भरतेऽपाग्दिगाश्रिना । नदी कुसुमवत्याख्या हरवत्यभिधा परा ॥ ११८ ॥ सुवर्णगजवत्यौ च चंडवेगा च पंचमी । न्यक्षिपत्सगमे तासामगाधे सलिले खलः ॥ ११९ ॥ अय पापी महाकायो दानवो मानवाशन । सर्वानस्मान्पृथग्दृष्ट्वा खादितुं निभृत स्थित ॥ १२० ॥ शरकुंतादिशस्त्रौघैर्निर्घृणं सर्वभक्षिण । वय सर्वेपि संभूय हनामोऽखिलविद्विष ॥१२१॥ उपेक्षितोयमद्यैव भुग्नकुक्षिर्बुभुक्षित । भक्षयेल्लक्षितोवश्यं निशाया स्त्री शिशून्पशून् ॥ १२२ ॥ तस्मान्मद्वचन यूय प्रतीत किमह मृषा । मृषा भाषे किमेतेन वैरमस्त्यत्र मे पृथक् ॥१२३॥ इति तेन खगा मुग्धा पुन सर्वेपि नोदिता । तथेति मृत्युसंत्रस्ता समस्ता शस्त्रसंहती ॥ १२४ ॥ आदाय साधुमूर्द्धन्यं समाहितमहाधियं । समताद्धतुमारब्धा विश्रब्ध लुब्ध

११५ ॥ किसी दूसरे दिन संजयंत मुनि मनोहरपुरके समीप भीम नामके वनमें प्रतिमायोग धारणकर विराजमान थे, वहींसे विद्युद्दंष्ट्र नामका विद्याधर निकला उन्हें देखकर पूर्व भवके वैरका स्मरण हो आनेके कारण उसे बहुत शीघ्र क्रोध हो आया उस क्रोधको वह संभाल न सका, उस दुष्टने उन मुनिराजको उठाया तथा भरतक्षेत्रके ल्यय पर्वतके पूर्व दिशाकी ओर जहां कुसुमवती, हरिवती, सुवर्णवती, गजवती और चंडवेगा ये पांचो नदियां मिलती हैं वहांके अगाध पानीमें डाल दिया ॥११६-११९॥ उन्हें पानीमें डालकर वह दुष्ट और लोगोंसे कहने लगा कि यह कोई पापी है, बडे शरीरका राक्षस है, यह मनुष्योंको खा जाता है, हम सबको अलग अलग देखकर खानेके लिये ही निश्चल होकर ठहरा है ॥ १२० ॥ इसलिये हमसब लोगोंको मिलकर घृणारहित वाण, भाले आदि शस्त्रोंके समूहसे सबको खानेवाले इस शत्रुको अवश्य मारना चाहिये ॥ १२१ ॥ यदि हमलोग इसकी उपेक्षा करेंगे तो पीठमें घुसे हुये पेटका यह भूखा राक्षस आज ही रातको देखते ही स्त्री बच्चे पशु आदि सबको अवश्य खा जायगा ॥ १२२ ॥ इसलिये मेरे वचनोंपर तुमलोगोंको विश्वास करना चाहिये, क्या मैं झूठ कहता हूं क्या इसके साथ मेरा कुछ अलग वैर है? ॥ १२३ ॥ इसतरह कहकर उसने सब विद्याधर लुभालिये, प्रेरणा करनेपर सबने उसकी बात मान ली सभी मृत्युसे डर गये और जिस-प्रकार किसी विश्वास पात्रको ठगलोग मिलकर मारते हैं उसी प्रकार उन सब लोगोंने शस्त्रोंका समूह लेकर अतिशय बुद्धिमान और शांतचित्त महामुनिराजको मारना प्रारंभ किया ॥१२४-१२५॥ वज्रवृषभनाराच संहननवाले उन मुनिराजने भी निश्चल होकर सब उपद्रव सहन किये और शुद्ध केवल ज्ञानको पाकर शुक्लध्यानके द्वारा निश्चल होकर मोक्ष

कोपमा ॥ १२५ ॥ सोपि सर्वसहिष्णु सन् वज्रकायोऽचलाकृति । निश्चलो निर्वृतिं यातः शुक्लध्यानेन शुद्धधी ॥ १२६ ॥ सर्वे निर्वाणकल्याणपूजा कर्तुं सुराधिपा । चतुर्विधाः सम प्रापस्तदा तद्भक्तिचोदिताः ॥ १२७ ॥ स्वग्रजागेक्षणोद्भूततृतीयावगम क्रुधा । नागेंद्रो नागपाशेन तान्बबधाखिलान् खगान् ॥ १२८ ॥ नास्माक देव दोषोस्ति विद्युद्दंष्ट्रेण पापिना । विदेहादमुमानीय भय चास्मात्खचारिणां ॥ १२९ ॥ प्रतिपाद्य जनैरेभिरकारि विविधो मुधा । महोपसर्ग इत्याहुस्तेषु केचिद्विचक्षणा ॥ १३० ॥ श्रुत्वा तन्नागराजोपि तेपु कालुष्यमुत्सृजन् । विद्युद्दंष्ट्रं पयोराशौ सबंधुं क्षेप्तुमुद्यत ॥ १३१ ॥ आदित्याभस्तदा देवो गुणहेतुस्तयोरभूत् । मध्ये ज्ञातानुबधो वा धातुप्रत्यययो पर ॥ १३२ ॥ कृतदोषोस्त्ययं नागनाथ किंत्वनुरोधत । ममास्य क्षम्यता क्षुद्रे कोपस्त्वादृशा पशौ ॥ १३३ ॥ पुरादितीर्थकृत्काले भवद्वंशसमुद्भवै । वशोस्य निर्मितो दत्वा विद्या विद्याधरेशिना ॥ १३४ ॥ सवर्ध्य विषवृक्ष च छेत्तुं स्वयमर्वतु क । इत्याबालप्रसिद्ध किं न वेत्सि विषभृत्यते ॥१३५॥ इत्युक्तस्तेन नागेंद्रः प्रत्युवाच तपोधनं । मदग्रजममुं दुष्टो निर्हेतुकममीमरत् ॥१३६॥ त-

पधारे ॥१२६॥ उसी समय भक्तिके द्वारा प्रेरणा किये हुए चारों प्रकारके सब देव और इंद्र उनकी निर्वाणकल्याणकी पूजा करनेके लिये आए ॥१२७॥ उनमें वह धरणींद्र भी आया था, अपने बडे भाईके शरीरको देखकर ही उसे अवधिज्ञान स्फुरायमान हो आया था और क्रोधमें आकर उसने उन सब विद्याधरोंको नागपाशसे बांध लिया था ॥१२८॥ उन विद्याधरोंमें जो थोडेसे चतुर थे वे धरणींद्रसे कहने लगे कि हे देव! इसमें हमारा कुछ दोष नहीं है यह पापी विद्युद्दंष्ट्र ही विदेहक्षेत्रसे इन मुनिराजको लाया है और हम विद्याधरोंको इनसे भय दिलाया है इसलिये ही हम लोगोंने यह व्यर्थ ही अनेक तरहका उपद्रव किया है ॥१२९–१३०॥ यह सब सुनकर उस धरणींद्रने भी उन लोगोंसे अपना द्वेष छोड दिया और अकेले विद्युद्दंष्ट्रको समुद्रमें डालनेके लिये तैयार हुआ ॥ १३१ ॥ परंतु इतनेमें ही आदित्य नामका कोई देव आकर विद्युद्दंष्ट्रका इसप्रकार सहायक हुआ मानों धातु और प्रत्ययको जाननेवाला कोई अनुबंध ही हो ॥१३२॥ वह कहने लगा कि हे धरणींद्र! यद्यपि इसने अपराध किया है तथापि मेरे अनुरोधसे इस गरीबको क्षमा कर दीजिये भला आप जैसे आदमियोंको पशुओंपर क्या क्रोध करना चाहिये ॥१३३॥ पहिले श्रीवृषभदेव तीर्थंकरके समय तेरे वंशमें उत्पन्न हुये धरणींद्रने ही इनका वंश निर्माणकर इन्हें विद्याधरोंकी विद्यायें दी थीं ॥१३४॥ विषवृक्षको भी बढाकर फिर भला उसे स्वयं कौन काटना चाहता है हे धरणींद्र! क्या आप इस बाल गोपाल प्रसिद्ध कहावतको नहीं जानते? ॥१३५॥ देवके इस प्रकार कह चुकनेपर वह धरणींद्र फिर कहने लगा कि मेरे बडे भाई मुनिराजको इस दुष्टने विना किसी कारणके मारा है–॥ १३६ ॥ इसलिये इसे मारना ही चाहिये मैं प्रार्थना करता हूं आप इसमें कुछ निषेध न करें, यह

द्ध्रुव मम हतव्यो न निषेध्यं त्वयार्थितं। मयेति सहसा देवस्तमाह मतिमान् वृथा ॥१३७॥ वैरं वहसि ते भ्राता जातौ जातोयमेव किं। विद्युद्दंष्ट्रो न किं भ्राता संजात संसृतौ भ्रमन् ॥ १३८ ॥ बंधु क को न वा बंधु बंधुताबंधुताद्वय। ससारे परिवर्तेत विदामताग्रह कुत ॥ १३९ ॥ कृतापराधे भ्राता ते विद्युद्दंष्ट्रमदंडयत्। ततोय स्मृततज्जन्मा मुनेरस्यापकारकः ॥१४०॥ अग्रज तव पापोय प्राक्जन्मचतुष्टये। महावैरानुबंधेन लोकोत्तरमजीगमत् १४१ अस्मिन् जन्मन्यमुं मन्ये मुनेरस्योपकारकं। खगमेतत्कृतं सोढायन्मुक्तिमयमेयिवान् ॥ १४२ ॥ आस्ता तावदिद भद्र भद्र निर्वृतिकारण। प्राक्तनस्यापकारस्य वद केन प्रतिक्रिया ॥१४३॥ इत्याकर्ण्य फणींद्रस्तत्कथ्यता सा कथा मम। कथमित्यन्वयुक्तासावादित्याभ सउत्सुक ॥१४४॥ शृणु वैरं विसृज्यास्मिन् बुद्धिमन् शुद्धचेतसा। तत्प्रपचं वदामीति देवो विस्पष्टमभ्यधात्॥१४५॥द्वीपेस्मिन् भारते सिंहपुराधीशो महीपति। सिंहसेनः प्रिया तस्य रामदत्ताभवत्सती ॥ १४६ ॥ श्रीभूति सत्यघोषांको मंत्री तस्य महीपते। श्रुतिस्मृतिपुराणादिशास्त्रविद् ब्राह्मणोत्तम ॥ १४७ ॥ पद्मखडपुरे श्रेष्ठिसुदत्ताख्यसुमित्रयोः।

सुनकर वह बुद्धिमान देव शीघ्रताके साथ फिर बोल उठा कि आप व्यर्थ ही क्यों वैर विसाते हैं क्या इस संसारमें आपका यही भाई है क्या संसारमें परिभ्रमण करते समय यह विद्युद्दंष्ट्र आपका कभी भाई नहीं हुआ है ॥१३७–१३८॥ इस संसारमें कौन भाई है और कौन भाई नहीं है। भाई होना और भाई नहीं होना ये दोनों संसारमें बदलते रहते हैं इसलिये विद्वान लोगोंको इसमें कुछ आग्रह नहीं करना चाहिये ॥ १३९ ॥ पहिले इस आपके भाईने भी इस अपराध करनेवाले विद्युद्दंष्ट्रको दंड दिया था इसलिये ही पहिले जन्मका स्मरणकर इसने इस मुनिराजका अपकार किया है ॥ १४० ॥ इस पापीने महा वैरके संबंधसे ही आपके भाईको चार जन्म तक मारकर परलोक पठाया था ॥१४१॥ तथा इस जन्ममें तो मैं इस विद्याधरको इन मुनिराजका उपकारी मानता हूं क्योंकि इसका किया हुआ उपसर्ग सहकर ही ये मोक्ष पधारे हैं ॥ १४२ ॥ हे भद्र ! इस कल्याण करनेवाले मोक्षके कारणको जाने दीजिये, आप यही कहिये कि पहिले जन्ममें किये हुये अपराधोंका भला क्या उपाय है ॥ १४३ ॥ यह सुनकर वह धरणींद्र भी उत्कंठित होकर आदित्यप्रभ देवसे कहने लगा कि वह कथा किसतरह है सब मुझसे कहिये ॥ १४४ ॥ तब वह देव कहने लगा कि हे बुद्धिमन् ! इस विद्याधरके साथ अपना वैर छोड दो और मैं सब कथा विस्तारसे कहता हूं उसे शुद्ध चित्तसे सुनो यह कहकर वह पहिलेकी कथा कहने लगा—॥ १४५ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें सिंहपुर नगरमें राजा सिंहसेन राज्य करता था उसकी सती रानीका नाम रामदत्ता था ॥ १४६ ॥ उस राजाके श्रीभूति नामका मंत्री था वह वेद पुराण स्मृति आदि सब शास्त्रोंका जानकार उत्तम ब्राह्मण था तथा उसने अपना दूसरा नाम सत्यघोष [illegible]

भद्रमित्र सुतो रत्नद्वीपे पुण्योदयात्स्वय ॥१४८॥ उपार्जितपराद्र्योरुरत्न सिंहपुरे स्थिरं । तिष्ठासुर्मंत्रिणं दृष्ट्वा सर्वमापवेय तन्मतात् ॥ १४९ ॥ तस्य हस्ते स्वरत्नानि स्थापयित्वा स बाधवान् । आनेतुं पद्मखडाख्य गत्वा तस्मान्निवर्त्य स ॥ १५० ॥ पुनरभ्येत्य रत्नानि सत्यघोषमयाचत । सोपि तद्रत्नमोहेन न जानामीत्यपाकुत ॥ १५१ ॥ भद्रमित्रोपि पूत्कारं सर्वतो नगरेऽकरोत् । सत्यघोषोपि पापिष्ठैरेप चौरैरभिद्रुत ॥ १५२ ॥ सर्वस्वस्वहरजोद्भूतशोकव्याकुलिताशय । प्रलापीति जनानेतत्स्वप्रमाण्यादजिग्रहत् ॥ १५३ ॥ समक्ष भूपतेरात्मशुध्यर्थं शपथं च स । धर्माधिकृतनिर्दिष्ट चकागचारदूरग ॥ १५४ ॥ भद्रमित्रोपि पापेन वंचितोहं विजातिना । द्विजाति नेत्यनाथोपि नामुंचत्पूत्कृतिं मुहु ॥ १५५ ॥ चतुर्विधोपधा शुद्धं युक्तं जात्यादिभिर्गुणै । त्वां सत्य सत्यघोषाक मत्वा मन्त्रिगुणोत्तम ॥ १५६ ॥ यथान्यासीकृतं हस्ते तव रत्नकरडकं । किमेवमपलापेन हेतुं तद्ब्रूहि युज्यते ॥ १५७ ॥

वाला) रत्न छोडा था ॥ १४७ ॥ उसी देशके पद्मखंड नगरमें एक सुदत्त नामका शेठ रहता था, उसकी सुमित्रा स्त्रीसे भद्रमित्र नामका एक पुत्र था, वह पुण्यकर्मके उदयसे स्वयं रत्नद्वीपमें गया था, वहांपर उसने बहुतसे बहुमूल्य रत्न कमाये, वापिस घर आते समय उसने सिंहपुर नगर देखा, और सदा वहीं रहनेका विचार किया। उसने अपने रत्न रखनेके लिये बहुतसे लोगोंसे सलाह पूछी, सबकी सलाहसे मंत्रीको ही इस योग्य समझा, उसने उस मंत्रीके ही हाथमें सब रत्न सोंप दिये और आप अपने भाई बधुओंको लेनेके लिये पद्मखंड नगरमें गया वहांसे आकर वह फिर सिंहपुरमें आया और सत्यघोषसे अपने रत्न मागने लगा, परंतु रत्नोंसे मोहित होकर वह मंत्री बदल गया और कहने लगा कि मै कुछ नहीं जानता ॥ १४८–१५१ ॥ तब भद्रमित्रने नगरमें सब जगह रोना चिल्लाना प्रारंभ किया तथा सत्यघोषने भी अपनी प्रमाणता बनाये रखनेके लिये सब लोगोंपर यही प्रगट किया कि पापी चोरोंने इसका धन लूट लिया है, अपना सब धन चले जानेसे इसे भारी शोक हुआ है इसीसे इसका हृदय व्याकुल हो रहा है और इसीलिये ही यह वकता फिरता है" ॥१५२–१५३॥ इसके सिवाय उस मंत्रीने अपनी शुद्धता दिखलानेकेलिये राजाके सामने भी सौगंध खाई, इसतरह यद्यपि वह सत्याचरणोंसे दूर था तथापि सबने उसे धर्माधिकारी ही मान लिया था ॥ १५४ ॥ भद्रमित्र यद्यपि अनाथ रह गया था अर्थात् राजा प्रजामेंसे कोई उसका सहायक नहीं था तथापि उसने अपना बारबारका रोना चिल्लाना वंद नहीं किया था और वह यही कहता फिरता था कि मुझे इस पापी विजाति ब्राह्मणने ठग लिया है ॥ १५५ ॥ "हे सत्यघोष! मैंने तुझे चारों तरहसे शुद्ध, जाति आदि गुणोंसे तथा उत्तम मंत्रियोंके गुणोंसे विभूषित और सचमुच ही सत्यघोष समझा था इसलिये ही मैंने तेरे हाथमें रत्नोंका पिटारा सोंप दिया था अब तु बदलता है इसका

सिंहसेनमहाराजप्रसादेन न तेस्ति किं। छत्रसिंहासने मुक्त्वा ननु राज्यमिदं तव ॥ १५८ ॥ धर्मं यशो महत्त्वं च किं धृथैव विघातये। न्यासापह्नवदोष किं न वेत्सि स्मृतिदूषित ॥ १५९ ॥ एतदेवार्थशास्त्रस्य नित्यमध्ययने फलं। यत्परानतिसंधत्ते नातिसंधीयते परैः ॥ १६० ॥ इत्यत्र परशब्दार्थे विपर्ययेपि परो मत। तत्र शत्रुरहं किं भो सत्यघोषपरिपुस्तव ॥ १६१ ॥ सद्भावप्रतिपन्नाना वंचने का विदग्धता। अकमारुह्य सुप्तानां हेतु किं नाप पौरुषं ॥१६२॥ महामोहग्रहग्रस्त श्रीभूते भाविजन्मना। त्वं तन्मानीनशो देहि मम रत्नकरंडकं ॥ १६३ ॥ ईदृश्येतत्प्रमाणानि जातिस्तेषामियं स्वयं। जानन्न मम रत्नानि किमित्येवमपह्नुषे ॥१६४॥ एवं नित्ये निशाप्राते रोरौत्यारुह्य भूरुह। कृत्ये कृच्छ्रेपि सत्त्वाढ्या न त्यजंति समुद्यम ॥१६५॥ मुहुर्मुहुस्तदाकर्ण्य महादेव्या मनस्यभूत्। जानेहं नायमुन्मत्त : सर्वदानुगतं वदन् ॥ १६६ ॥ इति सावेद्य भूपालं द्यूतोपायेन मन्त्रिणं। जित्वा यज्ञोपवीतेन सार्द्धं तन्नाममुद्रिका ॥ १६७ ॥ दत्त्वा निपुणमत्याख्यधात्रीकरतले मिथ। प्रहितं मन्त्रिणा देहि भद्रमित्रकरंडकं ॥ १६८ ॥ अभिज्ञानं च तस्यैतदित्युक्त्वा

क्या कारण है क्या तुझे यह ऐसा करना शोभा देता है? ॥१५६–१५७॥ महाराज सिंहसेनके प्रसादसे तेरे क्या नहीं है, छत्र और सिंहासनको छोडकर 'यह सब राज्य ही तेरा है ॥ १५८ ॥ क्या यह तेरा धर्म यश और बडप्पन व्यर्थ है? दूसरोंका नाश करनेके लिये ही है क्या तू जिसकी स्मृतिशास्त्रमें भी निंदाकी है ऐसे इस धरोहरके मारनेके दोषको नहीं समझता है ॥ १५९ ॥ क्या प्रतिदिन अर्थशास्त्रके पढनेका यही फल है कि दूसरोंको खूब दुःख देना और स्वयं दूसरोंके द्वारा कभी दुखी नहीं होना ॥ १६० ॥ अथवा इस देशमें विपर्ययरूप पर शब्दका अर्थ कुछ दूसरा ही माना जाता है? हे शत्रु सत्यघोष! क्या मैं तेरा शत्रु हू ॥१६१॥ जिनके विचार सरल हैं अर्थात् जो छल कपट नहीं जानते उनके ठगनेमें क्या बुद्धिमानी है जो अपनी गोदमें आकर सोया है उसके मारनेमें भला क्या शूरवीरता है ॥ १६२॥ हे श्रीभूति! महामोहरूपी पिशाचने तुझे पकड रक्खा है, आगामी समयमें तेरा नाश होनेवाला है, देख तू मेरा रत्नोंका पिटारा मुझे दे दे ॥१६३॥ देख! मेरे रत्न इतने २ बडे हैं इस २ जातिके हैं तू उन सबको जानता है तथापि इसतरह उन्हें क्यों छिपाता है" ॥ १६४ ॥ इसतरह वह प्रतिदिन किसी पेडपर चढकर सवेरे समय खूब रोया करता था सो ठीक ही है क्योंकि कठिन कार्य होनेपर भी शक्तिशाली पुरुष अपना उद्यम करना नहीं छोडते ॥ १६५ ॥ उसके इसतरहका बारबारका रोना सुनकर एकदिन महादेवी रामदत्ताके मनमें आया कि यह सदा एक ही बात कहा करता है इसलिये मैं जानती हू यह उन्मत्त तो नहीं है ॥ १६६ ॥ उसने राजासे निवेदन किया तथा मन्त्रीसे जूआ खेलाकर उसका जनेऊ तथा उसके नाम की खुदी हुई अंगूठी जीतकर ले ली ॥ १६७ ॥ वे दोनों

सानिधानृत । तदानयेति संदिश्य धात्रीमानीधात्तदा ॥ १६९ ॥ तत्रान्यानि च रत्नानि क्षिप्त्वा क्षितिभुजा स्वयं । भद्रमित्रं समाहूय रहस्येतद्भवेत्तव ॥ १७० ॥ इत्युक्त सभवेद्देव ममैव तत्करंडकं । किंतु रत्नान्यनर्घ्याणि मिश्रितान्यत्र कानिचित् ॥ १७१ ॥ एतानि सति मे नैव ममैतानीति शुद्धधी । स्वरत्नान्येव सत्योक्तिर्जग्राहोत्काप्रणीः सता ॥ १७२ ॥ संतुष्य भूपतिस्तस्मै सत्यघोषाकसंगतं । ज्येष्ठ श्रेष्ठिपदं भद्रमित्रायादित वेदिता ॥ १७३ ॥ सत्याघोषो मृषावादी पापी पाप समाचरन् । धर्माधिकरणोक्तेन दण्ड्यतामिति भूभुजा ॥ १७४ ॥ प्रेषितास्तेन मार्गेण सर्वस्वहरण तथा । चपेटा वज्रमुष्ट्याख्यमल्लस्य त्रिंशद्धूर्जिता ॥ १७५ ॥ कास्यपात्रत्रयापूर्णनवगोमयभक्षणं । इति त्रिविधदण्डेन निगृह्णन्पुररक्षका ॥ १७६ ॥ नृपेद्धवैरः सन् मृत्वार्तध्यानदूषित । द्विजिह्वो गधनो नाम भाण्डागारेऽजनिष्ट सः ॥ १७७ ॥ अन्यायेनान्यवित्तस्य स्वीकारश्चौर्यमुच्यते । नैसर्गिक निमित्तोत्थ तदेव द्विविधं स्मृत ॥ १७८ ॥

चीजें लेकर निपुणमती धायको सौंपी और कहा कि तू मंत्रीके घर जा, वहां जाकर ब्राह्मणीसे कहना कि मुझे मंत्रीने भेजा है मुझे भद्रमित्रका रत्नोंका पिटारा दे दो विश्वासके लिये ही ये दो निशानी लाई हूं इसतरह कहकर उस धायको भेजा और समझा दिया कि जिस तिसतरह पिटारा ले आना, धाय गई और उस पिटारेको ले आई ॥१६८–१६९ ॥ राजाने उनमें और अनेक रत्न मिलाकर तथा भद्रमित्रको बुलाकर पूछा कि क्या यह पिटारा तेरा है ? भद्रमित्रने उत्तरमें कहा कि हे देव यह पिटारा तो मेरा ही हैं किंतु इसमें थोडेसे बहुमूल्य रत्न और मिला दिये गये हैं इनमें ये रत्न मेरे हैं और ये मेरे नहीं हैं इसतरह कहकर उस सच बोलनेवाले शुद्ध बुद्धिवाले और सज्जनोंमें श्रेष्ठ भद्रमित्रने अपने रत्न ले लिये ॥ १७०–७२ ॥ यह देखकर राजा भद्रमित्रसे बहुत संतुष्ट हुआ और सत्यघोषके पास जो उत्तम शेठका पद था वह भद्रमित्रको दे दिया ॥१७३॥ तथा पापी सत्यघोष बहुत झूठ बोलनेवाला है, इसने बहुत पाप किये हैं धर्माधिकारीके कहे अनुसार राजाने उसे दड देनेकी आज्ञा दी ॥ १७४ ॥ चोरी करनेवालोंको जो दंड मिलता है वही दंड उसे दिया गया उसका सब धन लूट लिया गया, वज्रमुष्टि नामके मल्लके हाथसे तीस मुक्के दिलाये और कांसेकी तीन थाली भरकर ताजा गोबर खिलाया गया इसतरह कोतवालने तीन तरहके दंडसे उसे दंडित किया ॥१७५–१७६॥ वह मंत्री राजाके साथ वैर बांधकर और आर्तध्यानसे कलुषित होकर मरा और राजाके खजानेमें अगंधन नामका सर्प उत्पन्न हुआ ॥१७७॥ अन्यायसे दूसरेका धन ले लेना चोरी है, वह चोरी दो तरहसे की जाती है एक चोरी करनेका स्वभाव होनेसे और दूसरी किसी कारणसे ॥ १७८॥ जिसका चोरी करनेका स्वभाव है उसके जन्मसे लेकर लोभके निकृष्ट स्पर्द्धकोंका उदय होनेसे घरमें बहुतसा धन होनेपर करोडों की संपत्ति होनेपर तथा बहुत

आयमजन्मनो लोभनिकृष्टस्पद्धतोदयात् । सत्यप्यर्थे गृहे स्वस्य कोटी गोव्याप्तिमत्यया ॥ १७९ ॥ न चौर्येण विना तोषः सत्याये सति च व्यये । तद्गतस्तादृशो भाव सर्वेषां वा क्षुधादिक ॥ १८०॥ स्त्रीपुत्रादिव्ययागर्जोर्विनायोदितरद्रवेत् । तच्च लोभोदयेनैव दुर्विपाकेन केनचित् ॥ १८१ ॥ द्वयेन तेन बध्नाति दुरायुर्दुष्टचेष्टया । दुर्गतौ तच्चिरं दु ख दुरंतं ह्यनुभावयेत् ॥ १८२ ॥ सौजन्य हन्यते भ्रशो विश्रंभस्य धनादिषु । विपत्ति प्राणपर्यंता मित्रबन्ध्वादिभि सह ॥ १८३ ॥ गुणप्रसवसदृब्धा कीर्तिरम्लानमालिका । लतेव दावसंश्लिष्टा सद्यश्चौर्येण हन्यते ॥ १८४ ॥ इतीदं जानता सर्वं सत्यघोषेण दुर्धिया । आद्यशक्तेन चौर्येण साहसं तदनुष्ठित ॥१८५॥ सद्यो मन्त्रिपदाद्भ्रष्टो निग्रहं तादृश गत । दुर्गतिं च पुन प्राप्तो महापापानुबंधिनीं ॥१८६॥ इत्यमात्यस्य दुर्वृत्तं राजात्मनि विचिंतयन् । धर्मिलाख्याय विप्राय तत्साचिव्यपद ददौ ॥ १८७ ॥ कालेगच्छति सत्येव मन्येशुरसनाटवी । पर्यंत विमलाशुक्तिकातारक्ष्माभृति स्थित ॥ वर धर्मयतिं प्राप्य भद्रमित्रवणिग्वरः । श्रुत्वा धर्मं धन दाने त्यजंतमतिमात्रया ॥१८९॥ तस्य माता सुमित्राख्यासहमानाति

सा आय और व्यय होनेपर भी विना चोरी करनेके संतोष नहीं होता है, जैसे भूख सबको लगती ही है उसीप्रकार ऐसी चोरी करना उसका स्वभावसा पड़ जाता है ॥१७९–१८०॥ जब घरमें स्त्री पुत्र आदिका खर्च अधिक होता है और घरमें धन नहीं होता तब दूसरी तरहकी चोरी करनी पडती है यह चोरी भी किसी लोभ और अशुभ कर्मके उदयसे होती है ॥ १८१ ॥ यह जीव दोनों तरहकी चोरीसे अशुभ आयुका बंध करता है और दुष्ट चेष्टाओंसे बहुत दिनतक दुर्गतियोंमें भारी दु ख सहन करता रहता है ॥ १८२ ॥ जो इस धनका विश्वास करता है उसकी सज्जनता सब नष्ट हो जाती है और जबतक वह जीता है तबतक मित्र भाई बंधुओंके साथ साथ उसपर अनेक आपत्तियां आती रहती हैं ॥१८३॥ जिसप्रकार दावानल अग्निके छूनेसे लतायें नष्ट हो जाती हैं उसीप्रकार चोरी करनेसे गुणोंको उत्पन्न करनेवाली और बढानेवाली कीर्तिरूपी निर्मल लता भी नष्ट हो जाती है ॥ १८४ ॥ यह सब जानते हुये भी मूर्ख सत्यघोषने पहिले प्रकारकी (धन रहते हुये भी चोरी करनेका स्वभाव हो जाना) चोरीकर यह इतना बडा साहस कर डाला ॥१८५॥ शीघ्र ही यह मंत्रीके पदसे भ्रष्ट कर दिया गया, इतना दंड दिया गया और फिर मरकर महापाप बांधनेवाली दुर्गतिमें जा पहुंचा ॥ १८६ ॥ इस प्रकार राजाने अपने मनमें ही मंत्रीके दुराचरणोंका चिंतवन किया और धार्मिल नामके ब्राह्मणको मंत्रीका पद दिया ॥१८७॥ इसतरह कितना ही काल व्यतीत हो जानेपर किसी एक दिन असना नामके वनमें विमलकांतार नामके पर्वतपर वरधर्म नामके मुनिराज पधारे, शेठ भद्रमित्र यह वात सुनकर वहां गया, उसने धर्मका स्वरूप सुना और अपना बहुतसा धन दान कर दिया ॥१८८-१८९॥ उसकी माता

कोपिनी । काले मृत्वासनाटव्यां सा व्यालीभूयमागता ॥ १९० ॥ यदृच्छया वनं यातमवलोक्य दुराशया । साऽखादत्स्वसुत कोपाच्चित्र किं नाश्यमग्निनां ॥१९१॥ स स्नेहाद्रामदत्ताया सिंहचंद्र सुतोऽभवत् । पूर्णचंद्रोनुजस्तस्य भूपतेस्तावतिप्रियौ ॥१९२॥ भांडागारावलोकार्थं कदाचिन्नृपतिं गतं । दशतिस्म निजक्रोधाचक्षुश्रुतिरगंधन ॥ १९३ ॥ तदा गरुडदंडेन सर्पानाहूय मंत्रत । निर्दोषोमुं प्रविश्याग्निं निर्गत शुद्धिमाप्नुयात् ॥ १९४ ॥ अन्यथा निग्रहीष्या-मीत्युक्त्वा विषधरा परे । जलाशयादिव क्लेशान्निर्यातिस्म हुताशनात् ॥ १९५ ॥ अगंधनस्तु तद्वन्हौ भस्मित कोपमानवान् । कालकाख्ये वने जज्ञे स-लोभश्चमरो मृग ॥ १९६ ॥ सिंहसेनोपि कालांते सामज सल्लकीवने । संभूयाशनिघोषाख्या समवाप मदोद्धुर ॥१९७॥ सिंहचंद्रो ऽभवद्राजा यौवराज्येऽ जनीतर । भुंजानयोस्तयोर्लक्ष्मीं काले क्षण इवायति ॥ १९८ ॥ कदाचित्सिंहसेनोपरतवार्ताश्रुतेरिते । दृष्टु दांतहिरण्यादिमती सयमसंयुते ॥१९९॥ समीपे

उसके इतने दान देनेको सहन न कर सकी इसलिये वह बहुत क्रोधित हुई और समयपर मरकर उसी आसना वनमें वाघिन उत्पन्न हुई ॥ १९० ॥ किसी एक दीन वह भद्रमित्र अपनी इच्छानुसार उस वनमें गया था, उसे देखकर दुष्ट हृदयवाली उस वाघिनने अपने पहिले जन्मके पुत्र भद्रमित्रको खा डाला, देखो! क्रोधसे जीवोंका क्या भक्ष्य नहीं हो जाता है ? ॥ १९१ ॥ रानी रामदत्ताके साथ उसका पूज्य प्रेम था इसलिये वह उसीके सिंहचंद्र नामका पुत्र हुआ तथा पूर्णचद्र नामका उसका एक छोटा भाई भी हुआ, राजा सिंहसेनको वे दोनों ही पुत्र बहुत ही प्यारे थे ॥१९२॥ किसी एक दिन राजा अपना खजाना देखने गया था वहांपर मंत्रीके जीव अगधन नामके सर्पने क्रोधमें आ-कर उसे काट लिया ॥ १९३ ॥ तब गरुडदंड नामके गारुडीने आकर मंत्रके बलसे सब सर्पोंको बुलाया और एक अ-ग्निकुंड बनाकर सब सर्पोंसे कहा कि 'जो जो सर्प निर्दोष हैं वे सब इस अग्निकुंडमेंसे निकलकर अपनी शुद्धता दिखला-ओ, नहीं तो मैं सबको दड दूंगा' यह सुनकर और सब सर्प विना किसी क्लेशके तालावके समान उस अग्निमेंसे निक-लगये ॥ १९४ ॥ परंतु क्रोध और मान करनेवाला अगंधन नामका सर्प उसी अग्निमें जाकर जल गया तथा लोभके वशीभूत होकर काल नामके वनमें चमर जातिका हिरण हुआ ॥१९५–१९६॥ राजा सिंहसेन भी मरकर सल्लकी नामके वनमें अशनिघोष नामका मदोन्मत्त हाथी हुआ ॥ १९७ ॥ इधर सिंहचंद्रको राज्य मिला और पूर्णचंद्रको युवराजपद । राज्यलक्ष्मीका उपभोग करते हुए उन दोनोंका लंबा समय क्षणभरके समान वीत गया था ॥ १९८ ॥ किसी एक दिन दांतमती और हिरण्यमती नामकी संयम धारण करनेवाली अर्जिकायें सिंहसेन के परलोककी बात सुनकर रानी रा-मदत्ताके घर आईं ॥ १९९ ॥ रानी रामदत्ताने भी उन दोनोंके समीप संयम धारण कर लिया । इधर माता पिताके

रामदत्तापि तयो संयममाददौ । तच्छोकात्सिंहचंद्रोपि पूर्णचंद्रयति श्रित ॥२००॥ श्रुत्वा धर्ममिदं जन्म यदि याति वृथा नृणा । कुत- पुनरिहोत्पत्तिर्भ्रांतिरेवेति चिंतयन् ॥ २०१ ॥ कृत्वा राज्येनुजन्मान द्वितीयं प्राप्य संयमे । गुणस्थान विशुद्धयन् स प्रमादपरिवर्जनात् ॥ २०२ ॥ खचारणत्वं तुर्यावगमोत्कर्षं च लब्धवान् । रामदत्ता कदाचित्त दृष्ट्वा सजातसमदा ॥ २०३ ॥ मनोहरवनोद्याने वंदित्वा विधिपूर्वक । तत्तपोविघ्नसंप्रश्नपर्यंते पुत्रवत्सला ॥ २०४ ॥ पूर्णचंद्रः परित्यज्य धर्मं भोगे कृतादर । प्रत्येतु त नवा धर्ममसावित्यन्वयुक्त सा ॥२०५॥ प्रत्याह सिंहचंद्रोपि युष्मद्धर्मं ग्रहीष्यति । माभूत्खेद कथा चास्य शृणुतान्यभवाश्रितां ॥ २०६ ॥ कौशले विषये वृद्धग्रामे नाम्ना मृगायणः । विप्रस्तस्याभवद्धर्मपत्नी च मधुराह्वया ॥२०७॥ तत्सुता वारुणी सज्ञा जीवितांते मृगायण । साकेताधीशिनोत्पादि बलस्य सुमतेश्च स ॥२०८॥ सुता हिरण्यवत्यासीत्सुरम्यविषये पुरे । पोदनेऽधीशिने पूर्णचंद्रायादायि सा सती ॥२०९॥

शोकसे राजा सिंहचंद्र भी दुखी हुआ और पूर्णचंद्र मुनिराजके समीप जाकर धर्मका स्वरूप सुना, धर्मका स्वरूप सुनकर वह विचार करने लगा कि मनुष्योंका यह जन्म यदि व्यर्थ चला जाय तो फिर भी मनुष्य जन्म मिलेगा; यह केवल भ्रम है। भावार्थ–दुवारा मनुष्य जन्म मिलना अत्यंत कठिन है ॥ २००-२०१ ॥ यही समझकर उसने अपने छोटे भाईको राज्य दे दिया; और स्वय दीक्षा धारण करली। संयमको धारणकर, सब प्रमादोंका त्यागकर गुणस्थानोंमें चढकर विशुद्धता प्राप्त की ॥ २०२ ॥ इस तपके प्रभावसे उसे आकाशचारण ऋद्धि और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। किसी एकदिन रामदत्ता अर्जिकाने मनोहर नामके वनमें अपने पुत्र सिंहचंद्र मुनिको देखा, देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई, उसने विधिपूर्वक वंदना की। तपके निर्विघ्न होनेका समाचार पूछा और पुत्रके प्रेमसे पूछने लगी कि राजा पूर्णचंद्र धर्मको छोडकर भोगोंमें आसक्त हो रहा है सो वह फिर धर्मको ग्रहण करेगा वा नहीं? ॥ २०३--२०५ ॥ इसके उत्तरमें मुनिराज सिंहचंद्र कहने लगे कि तुम किसी तरहका खेद मत करो, वह अवश्य ही तुम्हारे धर्मको स्वीकार करेगा, मैं उसके पूर्वभव कहता हूं उससे सब बातें मालूम हो जायगी तुम ध्यान देकर सुनो–॥२०६॥ कौशल देशके वृद्ध नामके गांव में एक मृगायण ब्राह्मण रहता था उसकी धर्मपत्नीका नाम मधुरा था ॥२०७॥ उसकी एक वारुणी नामकी पुत्री थी, मृगायण ब्राह्मण मरकर साकेत नगरके राजा आदित्यबल; रानी सुमतिसे हिरण्यवती नामकी पुत्री हुई, वह हिरण्यवती सुरम्य देशके पोदनपुर नगरके राजा पूर्णचंद्रको व्याही गई ॥ २०८–२०९ ॥ मृगायणकी स्त्री मधुरा मरकर हिरण्यवतीके तू रामदत्ता नामकी पुत्री हुई थी, शेठ भद्रमित्र तेरे प्रेमसे सिंहचंद्र नामका तेरा पुत्र हुआ था और वारुणी का जीव यह पूर्णचद्र हुआ है, तेरे पिताने भद्रबाहुसे दीक्षा धारण की थी और फिर उनसे (तेरे पितासे) हमने दीक्षा

मधुराऽपि तयोर्जाता रामदत्ता त्वमुत्तमा। भद्रमित्रवणिक् सिंहचन्द्रस्ते स्नेहतोऽभवत् ॥२१०॥ वारुणी पूर्णचन्द्रोयं त्वत्पिता भद्रबाहुत । गृहीतसंयमोयात्र संभृतो गुरुरावयो ॥२११॥ माता ते दांतमत्यंते दीक्षिता क्षांतिरत्र ते। सिंहसेनोहिना दष्ट करींद्रोशनिघोषकः ॥२१२॥ भूत्वा वने भ्रमन्मत्तो मामालोक्य जिघांसया। धावतिस्म मयाकाशे स्थित्वा स प्रतिबोधितः ॥ २१३ ॥ पूर्वसंबंधमाख्याय सर्वं सम्यक् प्रबुद्धवान् । संयमासंयम भव्य स्वयं सद्य समग्रहीत् ॥ २१४ ॥ शांतचित्त स निर्वेदो ध्यायन् कायाद्यसारतां । कृत्वा मासोपवासादीन् शुष्कपत्राणि पारयन् ॥ २१५ ॥ कुर्वन्नेवं महासत्वश्चिरं घोरतरं तपः। यूपकेसरिणी नाम सरित्तीर्थे कृशोबल ॥ २१६ ॥ पातुं प्रविष्टस्तं वीक्ष्य स सर्पश्चमरः पुर । जात कुक्कुटसर्पोत्र तदास्यारुह्य मस्तक ॥ २१७ ॥ दशतिस्म गजोप्येतद्विषेण विगतासुकः। समाधिमरणाज्जज्ञे सहस्रारे रविप्रभे ॥ २१८ ॥ विमाने श्रीधरो देवो धर्मिलश्चायुष क्षये । तत्रैव वानरः सोभू-

धारण की है ॥ २१०–२११ ॥ तेरी माताने दांतमतीके समीप दीक्षा धारण की थी; और फिर हिरण्यवती मातासे तूने दीक्षा धारणकी है, राजा सिंहसेनको सर्पने काटा था वह मरकर अशनिघोष हाथी हुआ था। एक दिन वह वनमें फिर रहा था, मुझे देखते ही वह मारनेके लिये दौडा परंतु मैंने आकाशमें ठहरकर उसे समझाया, अपना उसका सब संबंध कहा जिससे वह बहुत अच्छीतरह समझगया और उस भव्यने शीघ्र ही संयमासंयम स्वीकार करलिया ॥२१२–२१४ ॥ उसका चित्त शांत होगया था, उसे अच्छा वैराग्य उत्पन्न हुआ था, वह शरीर आदि सबकी असारताका चिंतवन करता था, महीनोंका उपवास करता था और सूके पत्तोंको खाता था ॥ २१५ ॥ इसतरह उस बडे प्राणीने बहुत दिन तक कठिन तपश्चरण किया था जिससे उसका शरीर बहुत ही थक गया था। किसी एक दिन वह यूपकेसरिणी नदीके किनारे पानी पीनेके लिये उतरा था; परंतु कीचड होनेसे वह उसमें फँसगया। इधर सत्यघोषका जीव जो सर्प हुआ था तथा वहांसे मरकर चमर हिरण हुआ था, वह मरकर इसी नदीके किनारे कुक्कुटसर्प (उडनेवाला सर्प) हुआ था, उसने हाथीको कीचडमें फसा देखा और पहिले भवका बैर यादकर उसने मस्तकपर चढकर उसे काट खाया। हाथी उसके विषसे मरगया और समाधिमरण धारणकर सहस्रार स्वर्गके रविप्रभ विमानमें श्रीधर नामका देव हुआ। सत्यघोषके बाद जो धर्मिल ब्राह्मण मंत्री बना था वह मरकर उसी नदीके किनारे बंदर हुआ था, उस हाथीके साथ उसकी मित्रता थी, उस बंदरने उस कुक्कुटसर्पको मारा जिससे वह मरकर तीसरे नरकमें जाकर नारकी हुआ। इधर शृगालवत नामके व्याधने उस हाथीके दांत तोडे और मस्तकसे बडे प्रकाशमान मोती निकाले तथा वे सब चीजें धनमित्र नामके राजश्रेष्ठीको दीं, धनमित्रने वे सब चीजें महाराज पूर्णचंद्रको दे दीं, पूर्णचंद्रने उन

तस्या तेन गजेशिन ॥ २१९ ॥ हत कुक्कुटसर्पोपि, तृतीयनरकेऽभवत्। गजस्य रदनौ मुक्ताश्चादायाधिकतेजसः ॥ २२० ॥ व्याधः शृगालवन्नाम धनमित्राय दत्तवान्। राजश्रेष्ठी च तौ ताश्च पूर्णचन्द्रमहीभुजे ॥ २२१ ॥ दन्तौ दतद्वयेनासौ व्यधात्पादचतुष्टय। पल्यंकस्यात्मनो मुक्ताभिश्च हारमधात्त त ॥ २२२ ॥ ईदृश ससृतेर्भावं भावयन् को विधिर्न चेत्। रतिं तनोति भोगेषु भवाभावमभावयन् ॥ २२३ ॥ इत्यसौ सिंहचद्रोक्त रामदत्तावबुध्य तत्। पुत्रस्नेहात्स्वय गत्वा पूर्णचद्रमजिज्ञपत् ॥ २२४ ॥ गृहीतधर्मतत्त्वोसौ चिरं राज्यमपालयत्। रामदत्तापि तत्स्नेहात्सनिदानायुषोऽवधौ। महाशुक्रे विमानेऽभूद्भास्करे भास्कराह्वय। पूर्णचद्रोपि तत्रैव वैडूर्ये तत्कृताह्वय ॥२२६॥ सिंहचद्रो मुनींद्रोपि सम्यगाराध्य शुद्धधीः। प्रीतिंकरविमानेऽभूदुपुर्वग्रैवेयकोर्ध्वके ॥ २२७ ॥ रामदत्ता ततश्च्युत्वा धरणीतिलके पुरे। अत्रैव दक्षिणश्रेण्यामतिवेगखगेशिनः ॥ २२८ ॥ श्रीधराख्या सुता जाता मातास्या स्यात्सुलक्षणा। दत्तेयमलकाधीशे दर्शकाय खगेशिने ॥ २२९ ॥ वैडूर्याधिपतिश्चास्य दुहिताभूद्यशोधरा। पुष्कराख्यपुरे सूर्यावर्तायादाय्यसावपि ॥

दांतोंके तो अपनी चारपाईके चार पाये बनाये और उन मोतियोंकी माला बनाकर पहिनी ॥२१६-२२२॥ इस संसारका ऐसा ही स्वभाव है इसका चिंतवन करनेसे मालूम होता है कि इसमें क्या नहीं हो सकता? जो इस संसारको नाश करना चाहता है, ऐसा कौन बुद्धिमान इन भोगोंमें प्रेम करता है? ॥२२३॥ इसतरह सिंहचंद्रके समझानेपर रामदत्ताको बोध हुआ, वह पुत्रके स्नेहसे पूर्णचंद्रके पास गई और उसे सब बातें कहकर समझाया ॥ २२४ ॥ पूर्णचन्द्रने धर्मतत्त्वको ग्रहण किया और बहुत दिन तक राज्यका पालन किया। रामदत्ताने पुत्रके स्नेहसे निदान किया और देवायुका बंधकर महाशुक्र विमानमें भास्कर नामका देदीप्यमान देव हुआ पूर्णचंद्र भी उसी स्वर्गमें वैडूर्य नामका देव हुआ ॥ २२५-२२६॥ मुनिराज सिंहचंद्रने शुद्धचित्तसे चारों आराधनाओंका आराधन किया और उपरिमके उत्तम ग्रैवेयकके प्रीतिंकरविमानमें अहमिंद्र हुआ ॥ २२७ ॥ रामदत्ताका जीव वहांसे च्युत होकर इसी विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें धरणीतिलक नगरके राजा मतिवेग विद्याधरके श्रीधरा नामकी पुत्री हुई, उसकी माताका नाम सुलक्षणा था, वह श्रीधरा कन्या अलका नगरीके राजा दर्शक नामके विद्याधरको दी गई ॥ २२८-२२९ ॥ पूर्णचंद्रका जीव जो वैडूर्य देव हुआ था वह वहांसे चयकर इसी श्रीधराके यशोधरा नामकी कन्या हुई और वह पुष्कर नगरके सूर्यावर्तको दी गई ॥ २३० ॥ हाथीका जीव जो श्रीधर देव हुआ था वह वहांसे चयकर सूर्यावर्त और यशोधराके रश्मिवेग नामका पुत्र हुआ। किसी समय सूर्यावर्तने मुनिचंद्र नामके मुनिराजसे मुनियोंके धर्मका स्वरूप सुनकर दीक्षा धारण की, उसके बाद ही श्रीधरा और यशोधराने गुणवती नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली ॥ २३१-२३२ ॥ इसके

२३० ॥ राजा श्रीधरदेवोपि रश्मिवेगस्तयोरभूत् । कदाचिन्मुनिचंद्राख्यमुनिधर्मानुशासनात् ॥ २३१ ॥ सूर्यावर्ते तपोयाते श्रीधरा च यशोधरा-दीक्षां समप्रहीषातां गुणवत्यार्यिकांतिके ॥ २३२ ॥ कदाचिद्रश्मिवेगोगात्सिद्धकूटजिनालयं । हरिचंद्राह्वय तत्र दृष्ट्वा चारणसंयत ॥ २३३ ॥ श्रुत्वा धर्मं स सम्यक्त्वं संयमं प्रतिपद्य सः । चारणत्व च संप्राप्तः सद्योगमनगोचरं ॥ २३४ ॥ कांचनाख्यगुहायां तं कदाचिदवलोक्य ते । वंदित्वा तिष्ठता तत्र श्रीधरा च यशोधरा ॥ २३५ ॥ प्राक्तनो नारकस्तस्मात्प्रच्युत्याधविपाकत । चिरं भ्रमित्वा ससारे महानजगरोभवत् ॥ २३६ ॥ ते च त च निरीक्ष्यैष स सूर्यप्रतिमं क्रुधा । सहागिलत्समाराध्य ते कापिष्ठे बभूवतु ॥ २३७ ॥ रुचकाख्ये विमानेयं मुनिश्चार्कप्रभाह्वये । देव पंकप्रभा प्रापत्पापाद-जगरोपि सः ॥ २३८ ॥ सिंहचंद्रो दिवोभ्येत्य द्वीपेस्मिन् चक्रपुर पते । अपराजितराजस्य सुंदर्याश्च सुतोऽभवत् ॥ २३९ ॥ चक्रायुधस्ततोस्यैव रश्मिवेग-श्च्युतो दिव । सजातश्चित्रमालायां सुतो वज्रायुधाह्वय ॥ २४० ॥ श्रीधरा चागता नाकात्पृथिवीतिलके पुरे । सुताभूतिप्रयकारिण्यामतिवेगमहीपतेः

बाद किसी एक दिन रश्मिवेग विद्याधर सिद्धकूट जिनालयके दर्शन करनेकेलिये गया, वहांपर उसने हरिचंद्र नामके चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनिराजके दर्शन किये, उनसे धर्मका स्वरूप सुना और सम्यग्दर्शन सहित संयम धारण किया तथा शीघ्रताके साथ ले जानेवाली चारणऋद्धि प्राप्त की ॥ २३३–२३४ ॥ किसी दूसरे दिन श्रीधरा और यशोधरा दोनों आर्जिकाओंने रश्मिवेग मुनिराजको कांचन नामकी गुफामें विराजमान देखा, उन्हें देखकर बंदनाकर वे दोनों ही आर्जिकायें वहां बैठ गईं ॥ २३५ ॥ इधर सत्यघोषका जीव जो तीसरे नरक गया था वह वहांसे निकलकर कर्मके उदयसे बहुत दिन तक संसारमें फिरा और फिर उसी बनमें बडा भारी अजगर हुआ ॥ २३६ ॥ वह उन दोनों आर्जिकाओंको तथा सूर्यके समान तेजस्वी मुनिराजको देखकर क्रोधसे तीनोंको निगल गया। वे दोनों आर्जिकायें तो आराधनाओंका आराधनकर आठवें कापिष्ठ स्वर्गमें देवी हुईं; तथा मुनिराज रुचक नामके विमानमें अर्कप्रभ नामका देव हुआ और वह अजगर अपने पापकर्मके उदयसे चौथी पंकप्रभा भूमिमें नारकी हुआ ॥ २३७-२३८ ॥ सिंहचंद्रका जीव जो ग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुआ था वह वहांसे चयकर इसी द्वीपके चक्रपुर नगरके राजा अपराजितके उसकी रानी सुंदरीसे चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। हाथी का जीव जो रश्मिवेग होकर अर्कप्रभ देव हुआ था वह वहांसे चयकर इसी चक्रायुधके उसकी चित्रमाला स्त्रीसे वज्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥ २३९ ॥ श्रीधराका जीव जो स्वर्गमें गया था वह वहांसे चयकर पृथ्वीतिलक नगरके राजा मतिवेगके उसकी रानी प्रियकारिणीसे रत्नमाला नामकी पुत्री हुई थी, उस पुत्रीमें सब लक्षण पूर्ण थे, वह वज्रायुधको व्याही गई थी इसलिये वह सदा उसे प्रसन्न रखती थी ॥ २४०-

॥ २४१ ॥ सर्वलक्षणसपूर्ण ग्नमालातिविश्रुता । वज्रायुधस्य सा देवी ममजायत ममुदे ॥ २४२ ॥ यशोधरा तयो रत्नायुध सूनुरजायत । एवमेते स्वपूर्वाय फलमत्रापुरन्वहं ॥ २४३ ॥ श्रुत्वापराजितो धर्ममन्येद्युः पिहिताश्रवात् । चक्रायुधाय साम्राज्य दत्वादीक्षिष्ट धीरधी ॥ २४४ ॥ वज्रायुधे समारोप्य राज्य चक्रायुधो नृपः । प्राव्राजीत्स्वपितु पार्श्वे स तज्जन्मनि मुक्तिभाक् ॥ २४५ ॥ अधिरत्नायुध राज्य कृत्वा चक्रायुधातिके । वज्रायुधोप्यगाद्दीक्षां किं न कुर्वंति सात्विकाः ॥ २४६ ॥ सक्तो रत्नायुधो भोगे, त्यक्त्वा धर्मकथामपि । सोन्वभूदति गृध्नत्वात्सुखानिचिरमन्यदा ॥ २४७ ॥ मनोरममहोद्याने वज्रदतमहामुनि· । व्यावर्ण्यमानलोकानुयोगश्रवणवृद्धधी ॥ २४८ ॥ पूर्वजन्मस्मृतेर्मेघविजयो योगधारण: । मासादिकवल नादाद् ध्यायन्सस्थतिदु स्थितिं ॥ २४९ ॥ राजा तु व्याकुलीभूय मन्त्रिवैद्यवरान् स्वय । पप्रच्छ को विकारोस्य गजस्येत्याहितादरः ॥ २५० ॥ विचार्य ते त्रिदो-

॥२४२॥ यशोधराका जीव भी स्वर्गसे चयकर इन वज्रायुध और रत्नमालाके रत्नायुध नामका पुत्र हुआ। इसप्रकार ये सब जीव अपने पूर्व कर्मोंका फल प्रतिदिन भोगने लगे ॥ २४३ ॥ किसी एक दिन राजा अपराजितने पिहितास्त्र मुनिसे धर्मका स्वरूप सुना और निश्चित बुद्धिवाले उसने चक्रायुधको राज्य देकर दीक्षा धारण करली ॥ २४४ ॥ राजा चक्रायुधने भी वज्रायुधको राज्य देकर अपने पिताके समीप ही दीक्षा धारण कर ली और वह उसी जन्ममें मुक्त होगया ॥ २४५ ॥ वज्रायुध भी रत्नायुधको राज्य देकर चक्रायुधके समीप दीक्षित हो गया, सो ठीक ही है क्योंकि जिनमें शक्ति हैं ऐसे पुरुष क्या नहीं करते ? ॥ २४६ ॥ राजा रत्नायुध धर्मकथाको छोडकर भोगोंमें आसक्त गया और बडी लालसाके साथ प्रतिदिन सुखोंका अनुभव करने लगा ॥ २४७ ॥ किसी एक दिन महामुनिराज वज्रदंत मनोरम नामके उद्यानमें लोकानुयोगका (लोकके स्वरूपका) वर्णन कर रहे थे उसे सुनकर बडी बुद्धिवाले मेघविजय नामके राजाके मुख्य हाथीको पहिले जन्मका स्मरण हो आया इसलिये वह संसारके दुखोंका चिंतवन करने लगा और मांस आदिका खाना भी उसने छोड दिया ॥ २४८–२४९ ॥ हाथीका यह हाल देखकर राजा रत्नायुध भी बहुत व्याकुल हुआ उसने अच्छे २ मंत्री और वैद्योंको बुलाकर बडे आदरके साथ स्वयं पूछा कि इस हाथीको क्या विकार हुआ है ॥ २५० ॥ उन्होंने वात पित्त कफ इनसे उत्पन्न हुए कोई विकार उस हाथीमें न देखे तब विचारके साथ कहा कि अनुमानसे ऐसा मालूम होता है कि धर्मका स्वरूप सुननेसे इसे पहिले जन्मका स्मरण हो आया है ॥ इस प्रकारका अनुमानकर उन लोगोंने घी आदिसे मिला हुआ और किसी अच्छे वर्तनमें बना हुआ शुद्ध आहार उसके सामने रक्खा, उसे रखते ही वह उत्तम हाथी उसे खा गया ॥२५१-२५२॥ यह देख कर राजाको भी बडा आ-

पोतर्थविकारानवलोकनात् ।अनुमानादयंधर्मश्रुतेजातिस्मरोऽभवत् ॥ २५१ ॥ इति सत्पात्रनिष्पन्नशुद्धाहारं घृतादिभिः । मिश्रितं न्यक्षिपत्क्षिप्तं तमभुक्त द्विपोत्तम ॥ २५२ ॥ तदा सविस्मयो राज्ञा गत्वावधिविलोचन । वज्रदत तदाख्याय तद्धेतुं पृच्छतिस्म स ॥ २५३ ॥ मुनिर्बभाषे भो भूप शृणु तत्सविधानकं । भरतेस्मिन्नृप: प्रीतिभद्र: छत्रपुराधिप ॥ २५४ ॥ सुंदर्यामभवत्तस्य सुत प्रीतिंकराह्वय । मंत्री चित्रमतिस्तस्य कमला कमलोपमा ॥ ॥ २५५ ॥ गृहिणीतुग्बभूवास्या विचित्रमतिराख्यया । नृपमंत्रिसुतौ श्रुत्वा धर्मं धर्मरुचेर्यतेः ॥ २५६ ॥ तदैव भोगनिर्विण्णौ द्वावप्याददतुस्तपः । क्षीरास्रवर्द्धिरुत्पन्ना प्रीतिंकरमहामुने ॥ २५७ ॥ साकेतपुरमन्येद्युर्जग्मतुस्तौ यथाक्रमं । विहरंतावुपोष्यास्त तत्र मंत्रिसुतो यतिः ॥ २५८ ॥ प्रीतिंकर पुरे चर्यां यात स्वगृहसन्निधौ । गणिका बुद्धिषेणाख्या प्रणम्य विनयान्विता ॥ २५९ ॥ दानयोग्यकुलान्नाहमस्मीत्यात्मानमुच्छुचा । निंदती वाढमप्राक्षी न्मुने कथय जन्मिना ॥ २६० ॥ कुलरूपादय केन जायते संस्तुता इति । मधमासादिकत्यागादित्युदीर्य मुनिश्च स ॥ २६१ ॥ तत प्रत्यागत कस्मा-

श्चर्य हुआ, वह अवधिज्ञानी मुनिराज वज्रदतके समीप गया और हाथीके सब समाचार कहकर उसका कारण पूछा ॥ २५३ ॥ उत्तरमें मुनिराज कहने लगे कि हे राजन् मैं इसका सब कारण कहता हू तू सुन—इसी भरतक्षेत्रके छत्रपुर नगरमें राजा प्रीतिभद्र राज्य करता था उसके सुन्दरी नामकी रानीसे प्रीतिंकर नामका पुत्र हुआ था। उस राजाके मंत्रीका नाम चित्रमति था और लक्ष्मीके समान उसकी स्त्रीका नाम कमला था उसके विचित्रमति नामका पुत्र हुआ था। किसी एक दिन मत्री और राजा दोनोंके पुत्रोंने धर्मरुचि मुनिसे धर्मका स्वरूप सुना ॥ २५४–२५६ ॥ उसी समय वे भोगोंसे विरक्त हुये और दोनोंने दीक्षा धारण कर ली, उन दोनोंमेंसे महामुनि प्रीतिंकरको (राजाके पुत्र को) क्षीरास्रव नामकी ऋद्धि उत्पन्न हुई ॥ २५७ ॥ किसी एकदिन विहार करते हुए वे दोनों ही मुनि अयोध्या नगरके वनमें जा विराजमान हुए। उनमेंसे मुनि मंत्रीका पुत्र तो उपवास कर वहीं रहा और प्रीतिंकर मुनि आहार लेने के लिये नगरमें गये, वे जा रहे थे इतनेमें बुद्धिषेणा वेश्या अपने घरके समीपसे निकलते देख आई, उसने बडी विनयसे प्रणाम किया और कहा कि हे प्रभो मेरा कुल दान देने योग्य नहीं है, यह कहकर उसने अपनी बडी निंदा की और पूछा कि हे मुनिराज ! इस संसारमें जीवोंको उत्तमकुल और अच्छा रूप किस कारणसे होता है ? मुनिराजने कहा कि 'मद्य मांसका त्याग कर देनेसे ही उत्तम कुल और अच्छा रूप मिलता है' ॥२५८–२६१॥ यह कहकर मुनिराज वनमें लौट गये, वे कुछ देरसे पहुंचे थे इसलिये मुनि विचित्रमतिने बडे आदरसे पूछा कि आज आपको शहरमें इतनी देर क्यों लगी? ॥२६२॥ इसके उत्तरमें प्रीतिंकरने उस वेश्याकी सब कथा ज्यों की त्यों सुना दी। दूसरे दिन मंत्रीका

रित्यतो हेतोश्चिर पुरे । भवानिति तमप्राक्षीद्विचित्रमतिरादात् ॥ २६२ ॥ मोऽपि तद्गणिकावार्ता यथावृत्तं न्यवेदयत् । परेद्युर्मंत्रिसुर्भिक्षावेलाया गणिका गृहं ॥ २६३ ॥ प्राविश साऽपि तं दृष्ट्वा समुत्थाय ससम्भ्रमं । वंदित्वा पूर्ववद्धर्ममन्वयुंक्त कृतादरा ॥ २६४ ॥ कामरागकथामेव व्याजहार स दुर्मति । तदिंगितज्ञयावज्ञा तया तस्मिन्न्यधीयत ॥ २६५ ॥ प्राप्तापमानेन रुषा सूपशास्त्रोक्तिसंस्कृतात् । मासात्तन्नगराधीश गंधमित्रमहीपतिं ॥ २६६ ॥ वशी-कृत्य ततो बुद्धिषेणा चात्मकृतामुना । स विचित्रमतिं मत्वा तवायमभवद्गज- ॥ २६७ ॥ अस्मिन् त्रिलोकप्रज्ञप्तिश्रवणाज्जातिसंस्मृतेः । निर्विण्णोयं समासन्नविनेयो नाग्रहीद्विधा ॥ २६८ ॥ त्यागो भोगाय धर्मस्य काचायैव महामणे । जनन्या इव दास्यर्थं तस्मात्तादृक् त्यजेद् बुधः ॥ २६९ ॥ इति तद्भूभुगाकर्ण्य धिक्कामं धर्मदूषक । धर्म एव परं मित्रमिति धर्मरतोऽभवत् ॥ २७० ॥ तदैव दत्त्वा स्वं राज्य स्वपुत्रायैत्य संयमं । मात्रा सहायुषः प्रान्ते

पुत्र विचित्रमति भोजनके समय उसी वेश्याके घर गया, वेश्या मुनिको देखकर एकदम उठी, नमस्कार किया, और पहिलेके समान बडे आदरके साथ धर्मका स्वरूप पूछने लगी॥२६३-२६४॥परंतु वह मूर्ख विचित्रमति काम और राग की कथायें कहने लगा, इसलिये इशारोंसे ही समझनेवाली उस वेश्याने उस मुनिका बडा तिरस्कार किया ॥ २६५ ॥ उस अपमानसे उसे बडा क्रोध आया, वह रसोई बनाना बहुत अच्छी तरह जानता था सब रसोई शास्त्रमें लिखे अनुसार ही बनाता था, इसलिये वह मुनिपना छोडकर वहां के राजाका रसोइया होगया वहांके राजाका नाम गंध-मित्र था उसे उसने विधिके अनुसार बनाया हुआ मांस खिलाकर अपने वश कर लिया और इस तरह राजाको वश कर उस बुद्धिषेणा वेश्याको अपनी बनायी । इसतरह इतने पाप करनेवाला वह विचित्रमति मरकर यह तेरा हाथी हुआ है ॥ २६६-२६७ ॥ मैं यहां त्रिलोक प्रज्ञप्तिका पाठ कर रहा था उसे सुनकर इसे पूर्व भवका स्मरण हो आया है, यह निकटभव्य है और अब संसारसे विरक्त हुआ है इसलिये ही इसने भोजन नहीं किया है॥२६८॥ भोगोंके लिये धर्मका त्याग करना, काचके लिये महामणिके त्याग करनेके समान है अथवा किसी दासीके लिये माताका त्याग करने के सामान है इसलिये बुद्धिमानोंको ऐसे करनेका त्याग कर देना चाहिये ॥ २६९ ॥ यह सब कथा सुनकर राजा रत्नायुध कहने लगा कि इस धर्मको दूषित करनेवाले कामको धिक्कार हो, इस संसारमें धर्म ही मित्र है, इसतरह वह धर्म में तल्लीन हुआ ॥ २७० ॥ उसने उसी समय अपना राज्य अपने पुत्रके लिये दिया, मुनिके समीप आकर माताके साथ संयम धारण किया और आयु पूरी होनेपर स्वर्गमें देव हुआ ॥ २७१ ॥ सत्यघोषका जीव जो चौथे नरकमें गया था उसने नरकसे निकलकर अनेक तरहके दुख भोगते हुए अनेक योनियोंमें परिभ्रमण

कल्पेंतेऽनिमिषोभवत् ॥ २७१ ॥ प्राक्तनो नारक' पंकप्रभाया निर्गतश्चिर । नानायोनिषु संभ्रम्य नानादुःखानि निर्विशन् ॥ २७२ ॥ इह छत्रपुरे दारुणाख्य-स्य तनयोऽभवत् । मंग्यां व्याधस्य पापेन प्राक्तनेनातिदारुण ॥२७३॥ वने प्रियंगुखण्डाख्ये प्रतिमायोगधारिणं । वज्रायुधं खलस्तस्मिन्लोकांतरमजीगमत् ॥ २७४ ॥ सोढ्वा व्याधकृत तीव्रमुपसर्गमसौ मुनि । धर्मध्यानेन सर्वार्थसिद्धिं प्रापदिद्धधी. ॥ २७५ ॥ सप्तमीं पृथिवीं पापादध्युवासातिदारुणः । प्राग्भागे धातकीखण्डे विदेहे पश्चिमे महान् ॥२७६॥ देशोस्ति गंधिलस्तस्मिन्नयोध्यानगरे नृप' । अर्हद्दासोभवत्तस्य सुव्रता सुखदायिनी ॥२७७॥ रत्नमाला तयोरासीत्सू-नुर्वीतभयाह्वयः । तस्यैव जिनदत्तायामभूद्रत्नायुध सुत ॥ २७८ ॥ नाम्ना विभीषणो जातो तावुभौ रामकेशवौ । अविभज्य श्रिय दीर्घकाल भुक्त्वा यथो-चितं ॥ २७९ ॥ कालांते केशवोऽयासीद्बद्धायु शर्कराप्रभा । स हल्यपि निवृत्यंतेवासित्वा लातवं ययौ ॥२८०॥ आदित्याभ स एवाहं द्वितीयपृथिवीस्थित। प्रविश्य नरक स्नेहाद्विभीषणमबोधयम् ॥ २८१ ॥ बुद्ध्वा तत स निर्यातो द्वीपेस्मिन् विजयेपुरे । ऐरावते महत्यासीदयोध्या तदधीश्वर ॥ २८२ ॥ श्रीव-

किया ॥ २७२ ॥ परिभ्रमण कर वह इसी देशके छत्रपुर नगरमें दारुण नामके भीलके उसकी मंगी स्त्रीसे अतिदारुण नामका पुत्र हुआ ॥ २७३ ॥ किसी एक दिन प्रियंगुखड नामके वनमें वज्रायुध मुनि प्रतिमायोग धारण किये विराजमान थे, वहींपर उस दुष्ट भीलके लडकेने उन्हें दुःख देकर मारडाला ॥ २७४ ॥ भीलके किये हुए कठिन उपसर्गको सहनकर वे विशाल बुद्धिवाले मुनिराज धर्मध्यानके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धिमें जा पहुंचे ॥ २७५ ॥ वह भीलका लडका अपने पापके उदयसे सातवें नरकमें गया । पूर्वधातकी खंडके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें एक गंधिल नामका बडा देश है उसके अयोध्या नगरमें राजा अर्हद्दास राज्यकरता था उसकी सुख देनेवाली रानीका नाम सुव्रता था, रत्नमाला का जीव इन्हीं दोनोंके वीतभय नामका पुत्र हुआ । उसी राजाके जिनदत्ता रानीसे रत्नायुधका जीव भी विभीषण नाम का पुत्र हुआ । येदोनों ही बलभद्र और नारायण थे दोनोंने ही वहुत दिनतक विना बांटे ही राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया था ॥ २७६-२७९ ॥ आयुके अंतमें नारायण तो मरकर नरक आयुका बंधकर दूसरे नरकमें गया और बलभद्रका जीव दीक्षा धारण कर लांतवस्वर्गमें देव हुआ ॥२८०॥ मैं वही आदित्याभ नामका देव हूं । मैंने भाईके प्रेमसे दूसरे नरकमें जाकर विभीषणके जीवको समझाया था, वहांपर उसने धर्मका स्वरूप समझ लिया था इसलिये वह वहांसे निकलकर इसी जंबूद्वीपके उत्तर ऐरावत क्षेत्रके अयोध्या नगरमें राजा श्रीवर्माके सुसीमा रानीसे श्रीधाम नामका पुत्र हुआ, वह अनंत मुनिसे दीक्षा लेकर पांचवें ब्रह्म स्वर्गमें दिव्य आठ गुणोंसे विभूपित देव हुआ । वज्रायुधका जीव जो सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र हुआ था वह इहां आकर संजयंत हुआ है ॥२८१-२८४॥ श्रीधामका जीव ब्रह्म स्वर्गसे आकर तू जयंत हुआ

मीस्य सुषीमाख्या देवी तस्या सुतोऽभवत् । श्रीधामासावनंताख्यमुनेरादाय संयम ॥ २८३ ॥ ब्रह्मकल्पेऽभवद्देवो दिव्याष्टगुणभूषितः । सर्वार्थसिद्धिज् स-जयंतो वज्रायुधोऽभवत् ॥ २८४ ॥ ब्रह्मकल्पादिहागत्य त्व जयंतो निदानत । मोहाद्विध्वस्तसम्यक्त्वोऽजनिष्ट नागनायक ॥ २८५ ॥ प्राक्तनो नारकः प्रात-पृथिवीतो विनिर्गतः । जघन्यायुरहिर्भूत्वा तृतीयां पृथिवीं गत ॥२८६॥ ततो निर्गत्य तिर्यक्षु त्रसेषु स्थावरेषु च । भ्रात्वास्मिन् भरते भूतरमनाख्यवना-तरे ॥ २८७ ॥ ऐरावती नदीतीरे मृगशृंगसुतोऽभवत् । गोशृंगस्तापसाधीश शखिकाया विरक्तधीः ॥२८८॥ स पचाग्नितपः कुर्वन् दिव्यादितिलकाधिप । खगं वीक्ष्यांशुमालाख्यं निदानमकारोत्कुधी ॥ २८९ ॥ मृत्वात्र खगशैलोदक्श्रेण्या गगनवल्लभे । वज्रदंष्ट्रखगेशस्य प्रिया विद्युत्प्रभा तयो ॥२९०॥ वि-द्युद्दंष्ट्र सुतो जात सोय बैरानुबधत । बद्ध्वा कर्म चिर दु खमापदाप्स्यति चापर ॥२९१॥ एव कर्मवशाज्जतु ससारे परिवर्तते । पिता पुत्र सुतो माता माता भ्राता स च स्वसा ॥ २९२ ॥ स्वसा नप्ता भ वेत्कावा बंधुसंबधसस्थितिः । कस्य को नापकर्तात्र नोपकर्ता च कस्य क ॥ २९३ ॥ तस्माद्वैरानुबधेन

था वहां निदान बांधकर मोह कर्मके उदयसे सम्यक्त्वका नाशकर धरणींद्र हुआ है ॥ २८५ ॥ पहिला नारकी सत्य-घोषका जीव दूसरे नरकसे निकलकर थोडीसी आयु पाकर सर्प हुआ था, वहांसे फिर तीसरे नरक गया, वहांसे निक-लकर त्रस स्थावर आदि अनेकतरहकी तिर्यंच योनियोंमें घूमा । फिर इसी भरतक्षेत्रके भूतरमन नामके वनमें ऐरावती नदीके तपसियोंके स्वामी गोशृंगके उसकी संखिया नामकी स्त्रीसे मृगशृंग नामका पुत्र हुआ । उसने विरक्त होकर पं-चाग्नि तपश्चरण किया और उस मूर्खने दिव्यतिलक नगरके राजा अंशुमाल विद्याधरको देखकर निदान किया॥२८६-२८९ ॥ वहांसे मरकर उसी विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभ नगरमें राजा वज्रदंष्ट्र विद्याधरकी विद्युत्प्रभा रानीसे यह विद्युद्दंष्ट्र नामका पुत्र हुआ है । पहिले भवके वैर होनेके कारण बहुत दिनतक इसने पापकर्मोका बंध किया है और अनेकतरहके दुःख और आपत्तियां पाई है ॥२९०–२९१॥ इसतरह कर्मके वश होकर यह जीव संसारमें परिभ्रमण करता है पिता पुत्र होता है पुत्र माता होता है, माताका जीव भाई हो जाता है, भाई बहिन हो जाता है और बहिनका जीव नाती हो जाता है, इसतरह इस संसारमें भाई बंधु आदि संबंधकी स्थिति किसतरह रह सकती है इस संसारमें कौन किसका बुरा करनेवाला नहीं है और कौन किसका भला करनेवाला नहीं है ॥ २९२–२९३ ॥ इ-सलिये हे धरणींद्र वैर बांधकर तू व्यर्थ ही पापका बंध मत कर तू अपना वैर छोड और इस विद्युद्दंष्ट्रको भी छोड ॥ २९४ ॥ इसप्रकार उस देवके वचनरूपी अमृतकी वर्षासे उस धरणींद्रका हृदय बहुत ही संतुष्ट हुआ, वह कहने लगा कि हे देव मैं आपके प्रसादसे सद्धर्मका श्रद्धान करता हूं, एक बात है इस विद्युद्दंष्ट्रने विद्याके बलसे पाप किया है इ-

मा कृथा- पापबंधन । मुंच वैरं महानाग ! विद्युद्दंष्ट्रश्च मुच्यता ॥२९४॥ इति तद्देववाक्सौधवृष्ट्या संतापितोहिराट् । देवाहं त्वत्प्रसादेन सद्धर्मं श्रद्धेस्म- भो ॥२९५॥ किंतु विद्याबलादेष विद्युद्दंष्ट्रोषमाचरत् । तस्मादस्यान्वयस्यैव महाविद्यां छिनद्म्यहं ॥ २९६ ॥ इत्याहैतद्वच श्रुत्वा देवो मदनुरोधत । त्वया नैतद्विधातव्यमित्यास्यत्फणिना पतिं ॥ २९७ ॥ सोपि यद्येवमेतस्य वशानां मासिधन् महाविद्या- पुसा स्त्रिय- संजयंतभट्टारकांतिके ॥ २९८ ॥ साधयंत्वन्यथा दर्पादिमे दुष्टा कुचेष्टिता । भविष्यतां च साधूनां पापा कुर्वंत्युपद्रवं ॥ २९९ ॥ एखोपि पर्वतो विद्याधरह्रीक्रीडित पर । ह्रीमन्नामेत्यु- वीर्यास्मिन् भ्रातृप्रतिनिधिं व्यधात् ॥ ३०० ॥ विद्युद्दंष्ट्रं च सामोक्तैर्धर्मन्यायानुयायिभि । कृत्वा प्रशांतकालुष्य देवं चाभ्यर्च्य जातवान् ॥ ३०१ ॥ देवोपि स्वायुरंतेस्मिन्नुत्तरे मथुरापुरे । अनंतवीर्यराड्मेरुमालिन्यां मेरुनामभाक् ॥३०२॥ तस्यैवामितवत्या स धरणींद्रोपि मंदर । समभूतां सुतावेताविव शुक्रबृहस्पती ॥ ३०३ ॥ तावसन्नविनेयत्वात् श्रित्वा विमलवाहनं । श्रुत्वा स्वभवसंबंधमजायेता गणेशिनौ ॥ ३७४ ॥ इह प्रत्येकमेतेषां नामग्रहणपू-

लिये मैं इसकी वंशपरंपरातकके लिये महाविद्याओंका उच्छेद कर देता हूं ॥ २९५–२९६ ॥ धरणींद्रकी यह बात सुन- कर देव कहने लगा कि हे धरणींद्र ! मेरे अनुरोधसे तुझे ऐसा नहीं करना चाहिये ॥ २९७॥ वह सुनकर धरणींद्र क- हने लगा कि यद्यपि इसके वशमें पुरुषोंको महा विद्या सिद्ध नहीं होगी तथापि संजयंत भट्टारकके समीप सिद्ध करनेसे स्त्रियोंको सिद्ध हो जायगीं । यदि ऐसा न किया जायगा तो ये दुष्ट पापी कुचेष्टा करने लगेंगे और साधुओंको अनेक- तरहके उपद्रव करेंगे २९८–२९९ ॥ उस पर्वतके विद्याधर लज्जित हुए थे इसलिये ही उस धरणींद्रने उस पर्वतका नाम ह्रीमान रख दिया था तथा अपने भाई संजयंतकी प्रतिमा स्थापन की थी ॥ ३०० ॥ धर्म और न्यायके अनु- सार कहे हुए शांत वचनोंसे विद्युद्दंष्ट्रको शांत किया और उस देवकी पूजाकर अपने स्थानपर चला गया ॥ ३०१ ॥ वह देव आयुके अंतमें उत्तरमथुरा नगरके राजा अनंतवीर्यके उसकी रानी मेरुमालिनीसे मेरु नामका पुत्र हुआ और वह धरणींद्रका जीव उसी राजाके अमितमती रानीसे मंदर नामका पुत्र हुआ । ये दोनों ही भाई शुक्र और बृहस्पतिके समान हुए थे ॥ ३०२–३०३ ॥ वे दोनों ही भाई निकट भव्य थे इसलिये उन्होंने विमलवाहनके समीप जाकर अ- पने पहिले भव सुने और दीक्षा लेकर वे दोनों ही गणधर हो गये ॥ ३०४ ॥ इनमेंसे एक एकका अलग अलग नाम लेकर गति और भवावली कही अब इनके शृंखलाबद्ध भव कहते हैं ॥ ३०५ ॥ सिंहसेनका जीव अशनिघोष हाथी हुआ फिर श्रीधर देव, रश्मिवेग, अर्कप्रभदेव महाराज वज्रायुध और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुआ वहांसे चयकर स- जयंत होकर मुक्त हुआ । इसतरह सिंहसेनने आठ भवमें मोक्षपद पाया ॥ ३०६–३०७ ॥ मधुराका जीव रामदत्ता

यैक। गतिमेवावली व्याख्या संकलय्याभिधीयते ॥ ३०५ ॥ सिंहसेनोऽशनिघोषप्रांतः श्रीधरसंज्ञकं । रश्मिवेग प्रभातार्को वज्रायुधमहानृप ॥ ३०६ ॥ सर्वार्थसिद्धौ देवेंद्र संजयतस्ततश्च्युत । इत्यष्टजन्मभि प्रापत्सिंहसेन श्रियः पद ॥ ३०७ ॥ मधुरा रामदत्तानु भास्कर श्रीधरा सुरः । रत्नमालाऽच्युते देवस्ततो वीतभयाह्वय ॥ ३०८ ॥ आदित्याभस्ततो मेरुर्गणेशो विमलेशिनः । सप्तर्द्धिसमवेत सन् प्रायासीत्परम पदं ॥ ३०९ ॥ वारुणी पूर्णचन्द्राख्यो वैडूर्योस्मायशोधरा । कापिष्ठकल्पेनल्पर्द्धिर्देवोभूद्रुचकप्रभ ॥ ३१० ॥ रत्नायुधोत्यकल्पोत्यस्ततश्च्युत्वा विभीषणः । द्वितीये नरके पापी श्रीधामा ब्रह्मकल्पज ॥ ३११ ॥ जयतो धरणाधीशो मंदरो गणनायकः । चतुर्ज्ञानधर पारमवापज्जन्मवारिधे ॥ ३१२ ॥ श्रीभूतिसचिवो नागश्चमर कुक्कुटाहिक । तृतीयनरके दुःखी शयु पंकप्रभोद्भवः ॥ ३१३ ॥ त्रसस्थावरसंभ्रात पश्चाज्जातोतिदारुण- । ततस्तमस्तमस्यासीत्सर्पस्तस्माच्च नारक ॥ ३१४ ॥ बहुयोनि परिभ्रांतो मृगशृंगो मृतस्तत । विद्युद्दंष्ट्र खगाधीशः पापी पश्चात्प्रसन्नवान् ॥३१५॥ भद्रमित्रवणिक् सिंहचद्र प्रीतिंकरः सुर । चक्रायुधो विधूताष्टकर्मा निर्वाणमापिवान् ॥३१६॥ एव चतुर्गतिषु ते चिरमुच्चनीचस्थानानि कर्मपरिपाकवशात्प्रपद्य । सौख्य क्वचित्क्वचिदयाचितमुग्रदु खमापन्नयोत्र परमात्मपद

भास्कर देव श्रीधरा, देव, रत्नमाला, अच्युतदेव, वीतभय, और आदित्यप्रभदेव होकर मेरु हुआ वह मेरु विमलवाहनका गणधर हुआ था, सातऋद्धियां उसे प्राप्त हुई थीं और वह उसी भवसे मोक्ष गया था ॥ ३०८–३०९ ॥ वारुणीका जीव पूर्णचंद्र, वैडूर्य देव, यशोधरा, कापिष्ठ स्वर्गमें थोडीसी ऋद्धिको धारण करनेवाला रुचकप्रभ देव, रत्नायुध, देव. विभीषण, पापके कारण दूसरे नरकमें नारकी, श्रीधाम, ब्रह्म स्वर्गमें देव, जयंत धरणींद्र और विमलनाथका मंदर नामका गणधर हुआ था, वह गणधर चार ज्ञानको धारण करनेवाला था और उसी भवसे संसाररूपी समुद्रसे पार हो गया था ॥ ३१०–३१२ ॥ श्रीभूति मंत्रीका जीव सर्प. चमर, कुक्कुटसर्प तीसरे नरकमें दुखी नारकी, अजगर, चौथे नरकमें नारकी, त्रस और स्थावरोंमें बहुतसे भव, अतिदारुण, सातवें नरकमें नारकी, सर्प, नारकी, अनेक योनियोंमें परिभ्रमणकर मृगशृंग और फिर मरकर पापी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर हुआ था तथा पीछेसे वह पापरहित भी हो गया था ॥३१३–३१५॥ भद्रमित्र शेठका जीव सिंहचंद्र, प्रीतिंकर देव और चक्रायुधका भव धारणकर आठों कर्मोंको नष्टकर मुक्त हो गया था ॥ ३२६ ॥ इसतरह ऊपर कहे हुये तीनों ही जीव अपने अपने कर्मके उदयसे बहुत दिनतक चारों गतियोंके ऊंच नीच अनेक स्थानोंको पाकर कहीं तो सुखका अनुभव करते रहे और कहीं विना मांगे हुये घोर दुःखका अनुभव करते रहे परंतु अंतमें वे तीनों ही मुक्त हो गये थे ॥ ३१७ ॥ जिन्होंने समता रसके कारण दुष्ट विद्याधरके किये हुये घोर उपद्रवोंको बहुत अच्छा मानकर सहन किया और अत्यंत निर्मल शुक्लध्यानका ध्यान कर

प्रपन्ना:॥३१७॥बलखगमकृतोप्रोपद्रवं कस्यचिद्वा मनसि शमरसत्वान्मन्यमानो महेच्छ । शुचितरवरशुक्लध्यानमध्यास्य शुद्धिं समगमदमले यः संजयंतः स वोऽव्यात् ॥ ३१८ ॥ मेरुमंदरमहाभिधानकौ स्वामिनेंदुविजयावृहतोजसौ । पूजितौ मुनिगणाधिनायकौ नायकौ नयनयागमस्य च ॥ ३१९ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे विमलतीर्थंकर-धर्म-स्वयंभू-मधु-संजयंत-मेरुमदरपुराणं परिसमाप्तं एकोनषष्ठितम पर्व ॥ ५९ ॥

अथ षष्ठितमं पर्व ।

अनतोनतदोषाणां हतानंतगुणाकर । हत्वतर्ध्वांतसंतानमंतातीत जिन स न ॥ १ ॥ धातकीखंडप्राग्भागमेरूदग्विषये महत् । रम्यं पुरमरिष्टाख्यमैकध्यमिवसंपदा ॥ २ ॥ पति पद्मरथस्तस्य पद्मासद्म स्वय गुणैं । यस्मिन् महीं चिरं पाति प्रापन्प्रीतिं परां प्रजाः ॥ ३ ॥ पुण्योदयात्सुरूपादिसामग्री

परम शुद्धता (मोक्ष) पाई वे अत्यंत निर्मल आत्माको धारण करनेवाले संजयंत मुनिराज तुम लोगोंकी रक्षा करें ३१८ सूर्य चंद्रमाके समान तेजको धारण करनेवाले, सबको पूज्य मुनि और गणधरोंमें श्रेष्ठ और नयोंसे भरे हुये आगमके स्वामी ऐसे श्रीमेरु और मंदर नामके पूज्य गणधरकी आप लोग सदा सेवा करते रहें ॥ ३१९ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य विरचित महापुराणके नवीन हिंदीभाषानुवादमें विमलनाथ तीर्थंकर, धर्म स्वयंभू बलभद्रनारायण और मेरुमंदर गणधर तथा संजयतका चारित्र कहनेवाला यह उनसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

अथ साठवां पर्व ।

अथानंतर—अनंतानंत दोषोंका नाश करनेवाले और अनंत गुणोंको धारण करनेवाले श्री अनंतनाथ भगवान हम लोगोंके हृदयमें रहनेवाले मोहरूपी अनंत अंधकारकी संतानको नष्ट करें ॥ १ ॥ धातकी द्वीपके पूर्वमेरुकी ओर उत्तरदेशमें एक अरिष्ट नामका बहुत सुंदर नगर है वह ऐसा जान पडता है मानों सब संपदायें एक जगह ही आकर इकट्ठी होगई हों ॥ २ ॥ उस नगरमें राजा पद्मरथ राज्य करता था वह पद्मरथ अपने गुणोंसे लक्ष्मीका स्थान था, जब तक वह पृथ्वीका पालन करता रहा तबतक प्रजा उससे बहुत ही संतुष्ट रही ॥ ३ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे उसे

सुखसाधिनी । जतोखलुदयस्तस्मिन्पुष्कलोस्ति निर्गलः ॥ ४ ॥ तदिंद्रियार्थसान्निध्यसमुद्भूतसुखेन स । शक्रवत्सुष्ठु संतृप्यत्संसारसुखमन्वभूत् ॥ ५ ॥ अथान्यदा समासाद्य स्वयंप्रभजिनाधिपं । सप्रश्रयमभिष्टुत्य श्रुत्वा धर्मं सुनिर्मलं ॥ ६ ॥ संयोगो देहिना देहैरक्षाणां च स्वगोचरं । अनित्योऽन्यतराभावे सर्वेषामाजवजवे ॥ ७ ॥ आहिताप्यमता मतु देहिनो मोहिताशया । अह निहतमोहारिमाहात्म्यार्हत्क्रमाश्रय. ॥ ८ ॥ करवाणि कथकारं मतिमेतेषु निश्चला । इति मोहमहाग्रंथिमुद्भियास्योद्यमे मति ॥ ९ ॥ तत परीतदावाग्निशिखासत्रासितैणवत् । विरोषिता च संसारस्थलीं हातु कृतोद्यमः ॥ १० ॥ सूनौ घनरथे राज्य नियोज्यादाय संयमं । एकादशागवाराशिपारगो बद्धतीर्थकृत् ॥ ११ ॥ प्रांते स्वाराधना प्राप्य परित्यक्तशरीरक. । अभूत्पर्यंतकल्पेंद्र. पुष्पोत्तरविमानज ॥ १२ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानायुर्हस्तार्द्धोनचतुस्तनु । शुक्लेश्यः श्वसन्नेकादशमासैस्तु सद्यया ॥ १३ ॥ खनयायन·

सुख देनेवाली रूपादि सब सामग्री प्राप्त थी सो ठीक ही है क्योंकि जीवोंको पुण्य कर्मके उदयसे निर्विघ्न बहुतसी सामग्री प्राप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ इंद्रियोंके विषयोंकी प्राप्ति होनेसे उत्पन्न हुए सुखोंसे वह बहुत ही संतुष्ट था और इद्रके समान संसारका फल अनुभव कर रहा था ॥ ५ ॥ किसी एकदिन वह स्वयंप्रभ जिनेंद्रदेवके दर्शन करनेके लिये गया, वहांपर उसने विनयसहित स्तुति की और धर्मका निर्मल स्वरूप सुना ॥६॥ तदनंतर वह चिंतवन करने लगा कि जीवोंका शरीरके साथ संयोग होना और इंद्रियका अपने अपने विषयोंके साथ संयोग होना दोनों ही अनित्य हैं क्योंकि इस संसारमें शरीरका नाश होता ही है अथवा इंद्रिय और विषयोंमें से किसी एकका अभाव होता ही है ॥७॥ मोहकर्मके उदयसे जिनका आशय कलुषित होरहा है ऐसे अन्यमती लोग यदि इसमें मोहित हो तो हो सकते हैं परंतु मैंने तो मोहरूपी शत्रु नष्टकर दिया है और इसी माहात्म्यसे अरहंतदेवके चरणकमलोंका आश्रय पाया है इसलिये मैं अपनी बुद्धि इनमें निश्चल क्यों करूं । इसतरह उसकी बुद्धि मोहरूपी महा गांठ को तोडकर उद्यम करनेकेलिये तैयार हुई थी ॥ ८–९ ॥ तदनंतर जिसप्रकार हिरण चारों ओर लगी हुई दवानल अग्निकी शिखासे घबडाकर अपनी जगह छोडता है उसी प्रकार वह राजा भी चिरकाल काममें लाई हुई संसार स्थलीको छोडनेकेलिये उद्यम करने लगा ॥१०॥ उसने अपने पुत्र घनरथको राज्य देकर संयम धारण किया और ग्यारह अंगरूपी महासागरके पार जाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया ॥ ११ ॥ अंत में आराधनाओंका आराधनकर शरीर छोडकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें देव हुआ ॥१२॥ वहांपर उसकी बाईस सागरकी आयु थी साढे तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वह ग्यारह महीने पीछे श्वासोच्छ्वास लेता था, बाईस हजार वर्ष पीछे मानसिक आहार लेता था मनके प्रवीचारसे ही सुखी था,

पक्षोकवर्षैराहारमाहरत् । सुखी मन प्रवीचारात्तमप्र प्रागगतावधिः ॥ १४ ॥ तत्प्रमाणबलस्तेजोविक्रियाभ्यां च तत्प्रम । चिरं तत्र सुखं भुक्त्वा तस्मिन्नत्रागमिष्यति ॥ १५ ॥ द्वीपेस्मिन् दक्षिणे भागे साकेतनगरेश्वरः । इक्ष्वाकु काश्यप सिंहसेनो नाम महानृप ॥ १६ ॥ जयश्यामा महादेवी तस्यास्या वेश्मन पुर । वसुधारा सुराः सारां मासषट्कीमपीपतन् ॥ १७ ॥ कार्तिके मासि रेवत्या प्रभातेह्नि तदादिमे । निरीक्ष्य षोडश स्वप्नान् विशत वाननं गज ॥ १८ ॥ अवगम्य फलं तेषा भूभुजोवधिलोचनात् । गर्भस्थिताच्युतेंद्रासौ परितोषमगात्परं ॥ १९ ॥ ततः स्वर्गावतरणकल्याणामिपव सुरा । सपाद्य वस्त्रमाल्योरुभूषणैस्तावपूजयन् ॥ २० ॥ सुखगर्भा जयश्यामा ज्येष्ठमास्यसिते सुतं । द्वादश्या पुण्ययोगेसौ सपुण्यमुदपादयत् ॥ २१ ॥ तदागत्य मरुन्मुख्या मुख्यशैलेभिषिच्य तं । अनंतजिनमन्वर्थनामानं विदधुर्मुदा ॥ २२ ॥ नवाब्ध्युपमसंताने पल्यपादत्रये स्थिते । धर्मेतीतार्हतो ध्वस्ते तदभ्यंतरजीवित ॥ २३ ॥ त्रिंशलक्षसमात्मायु पंचाशच्चापसम्मितः । कनत्कनकसंकाश सर्वलक्षणलक्षित ॥ २४ ॥ स्वचतुर्थेंद्रियध्वंसेष्वतीतेष्वभिषेचनं ।

उसका अवधिज्ञान सातवें नरक तक था बल, तेज और विक्रिया भी वहीं तक थी इसतरह उसने बहुत दिनतक सुखों का अनुभव किया जब उसकी आयु छह महीनेकी रह गई इस क्षेत्रमें आनेके दिन निकट आगये तब इसी जबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें अयोध्या नगरके स्वामी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए कश्यप गोत्रीय महाराज सिंहसेन राज्य करते थे॥ १३–१६ ॥ उनकी महादेवीका नाम जयश्यामा था उसके राजभवनके सामने देवोंने छह महीने तक रत्नोंकी वर्षाकी थी ॥ १७ ॥ कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा (पडिवा) के दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर माता जयश्यामाने सोलह स्वप्न देखे और अंतमें मुहमें घुसता हुआ हाथी देखा ॥ १३-१८ ॥ अवधिज्ञानको जाननेवाले राजासे उन स्वप्नोंके फल सुने तथा उसी दिन सोलहवें स्वर्गका इंद्र अपनी आयु पूरीकर माताके गर्भमें आ विराजमान हुआ जिससे माताको बहुत ही संतोष हुआ ॥ १९ ॥ तदनंतर देवोंने आकर गर्भकल्याणका उत्सव मनाया माता पिताका अभिषेक किया और वस्त्र माला आभूषण आदिसे उनकी पूजा की ॥ २० ॥ सुखपूर्वक गर्भधारण करती हुई माता जयश्यामाने ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशीके दिन पुष्ययोगमें पुण्यवान भगवान अनंतको उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ उसी समय इंद्रादिदेव आये उन्होंने मेरु पर्वतपर लेजाकर उनका अभिषेक किया और प्रसन्न होकर सार्थक अनंतनाथ नाम रक्खा ॥ २२ ॥ विमलनाथ अरहंतके बाद नौसागर और पौनपल्य बीत जानेपर अनंतनाथ हुए थे इनकी आयु भी इसी समयके भीतर समझनी चाहिये ॥ २३ ॥ इनकी आयु तीस लाख वर्षकी थी, पचास धनुष ऊंचा शरीर था, देदीप्यमान सुवर्णके समान शरीरकी कांति थी और उनके शरीरमें सर्व शुभ लक्षण थे ॥ २४ ॥ सात लाख पचास हजार वर्ष बीत जानेपर

राज्यश्च यमनाम्यर्च्य स दृष्टैयनृपैः ॥ २५ ॥ वर्षलक्षैस्त्रिपंचैकैर्वर्षे राज्ये गते जिने । कदाचिदुल्कापतनहेतूत्पन्नबोधिकः ॥ २६ ॥ अज्ञानबीज- संजाताम संयमनहीरुहा । प्रमादवारिसंसिक्तां कषायस्कंधशाखिकां ॥ २७ ॥ योगालंबनसंवृद्धां तिर्यग्गतिपृथक्कृतां । जराकुसुमसंछन्नां बहुरोगपलाशिकां ॥ २८ ॥ दुःखदुःफलसंनम्रां दुष्कर्मविषवल्लरीं । शुक्लध्यानासिना मूलं चिच्छिन्दु स्वात्मसिद्धये ॥ २९ ॥ लौकांतिकैः समभ्येत्य प्रस्तुवद्भिः प्रपूजितः । अनंतविजये राज्यं नियोज्य विजयी सुजि ॥ ३० ॥ सुरस्तृतीयकल्याणपूजां प्राप्याधिरूढवान् । यानं सागरदत्ताख्यं सहेतुकवनांतरे ॥ ३१ ॥ ज्येष्ठे कृष्णे पक्षेन रेवत्यां द्वादशीदिने । सहस्रेणाविशे राज्ञामदीक्षिष्ट पराह्णके ॥ ३२ ॥ सप्राप्तोपांत्यसज्ज्ञानः ससामायिकसंयमः । द्वितीयेह्नि स चर्यायै साकेतं समु- पेयिवान् ॥ ३३ ॥ विशाखभूपतिस्तस्मै दत्त्वान्नं कनकच्छवि । आश्चर्यपंचकं प्राप ज्ञापकं स्वर्गमोक्षयोः ॥ ३४ ॥ संवत्सरद्वये याते छाद्मस्थ्ये प्राक्तने वने ।

उनका राज्याभिषेक हुआ था और अनेक राजाओंने आकर बडी नम्रताके साथ उनकी पूजा की थी ॥ २५ ॥ जब राज्य करते हुए उन्हें पंद्रह लाख वर्ष बीत गये थे तब किसी एक दिन उल्कापात देखकर आत्माका यथार्थज्ञान हुआ ॥ २६ ॥ वे विचार करनेलगे कि यह कर्मरूपी विषकी बेल अज्ञानरूपी बीजसे उत्पन्न हुई है, असंयमरूपी पृ- थ्वीमें उगी है, प्रमादरूपी जलसे सींची गई है कषायें ही इसकी बडी बडी शाखाऐं हैं, योगोंके सहारे ही से यह बढी हुई है, तिर्यंचगतिमें लाकर ही यह बहुत फैली है बुढापारूपी फूलोंसे ही यह ढक रही है अनेक रोग ही इसके नये पत्ते हैं और दुःखरूपी बुरे फलोंसे ही यह नव रही है इसलिये आत्माका यथार्थ स्वरूप सिद्ध करनेकेलिये मैं शुक्लध्या- नरूपी तलवारसे इसकी जड काटना चाहता हू ॥ २७-२९ ॥ ऐसा विचार करते ही लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति और पूजा की। विजयी भगवानने अपने पुत्र अनंतविजयको राज्य दिया, उसी समय देवोंने आकर दीक्षा कल्या- णकी पूजा अभिषेक आदि किया। वे भगवान सागरदत्ता नामकी पालकीपर सवार होकर सहेतुक बनमें पहुंचे, वहां पर ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय हजार राजाओंके साथ साथ तेलाका नियम लेकर दीक्षित हुए ॥ ३०-३२ ॥ उसी समय उनके मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ तथा उन्होंने सामायिक चरित्र धारण किया। पार- णाके दिन वे चर्याकेलिये निकले उन्होंने अयोध्या नगरमें ही प्रवेश किया, सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा विशाखने उन्हें आहारदान दिया और देवोंने उसके घर स्वर्गमोक्षको सूचित करनेवाली पंचाश्चर्योंकी वर्षा की ॥ ३३-३४ ॥ छ- द्मस्थ अवस्थामें तपश्चरण करते हुये उनके दो वर्ष बीत जानेपर चैत्रकृष्णा अमावसके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके स- मय पीपलके पेडके नीचे उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ उसीसमय देवोंने आकर उनके केवलज्ञान कल्याणका उत्सव

अभयपादपो पांसे कैवल्यमुदरीपदत् ॥ ३५ ॥ चैत्रेमावास्यह प्राते रेवत्यां सुरसत्तमा । तदैव तुर्यकल्याणपूजां च निरवर्तयन् ॥ ३६ ॥ अयास्य-मुख्यपचाशद्गणभृद्बृंहितात्मवाक् । सहस्रपूर्वभृद्वंद्य- स्त्रद्वयभ्यग्निवाद्यधीट् ॥ ३७ ॥ खद्वयेंद्रियरंध्राग्निसंख्यालक्षितशिक्षक । शून्यद्वयत्रिवार्ध्युक्त-तीवज्ञानपूजित ॥ ३८ ॥ शून्यत्रयेंद्रियप्रोक्तकेवलावगमान्वित । शून्यत्रयवसुद्दिष्टविक्रियर्द्धिविभूषित- ॥ ३९ ॥ शून्यत्रयेंद्रियप्रोक्तमन पर्ययबोधन । पिंडीकृतोक्तषट्षष्ठिसहस्रमुनिमानित ॥ ४० ॥ सलक्षाष्टसहस्रोक्तसर्वश्रयाद्यार्यिकागण । द्विलक्षश्रावकाभ्यर्च्यो द्विगुणश्राविकास्तुत- ॥ ४१ ॥ असंख्यदेवदेवीभ्यस्तिर्यक्संख्य तसेवित । इति द्वादशविख्यातभव्यवृंदारकाग्रणी- ॥ ४२ ॥ सदसद्वादसद्भावमाविष्कुर्वन्ननतजित् । विहृत्य विश्रुतान् देशान् विनेमान्योजयन् पथि ॥ ४३ ॥ सम्मेदगिरिमासाद्य विहाय विहृतिं स्थितः । मासं शताधिकैः षड्भिः सहस्रैर्मुनिभि सह ॥ ४४ ॥ प्रतिमायोगधारी सन्नमावस्याप्ररात्रिभाक् । तुरीयध्यानयोगेन सप्रापत्परमं पद ॥ ४५ ॥ सद्यो घुसतसमूहोपि सप्राप्यांत्येष्टिमादरात् । विधाय विधिव-

मनाया और पूजा की ॥ ३५–३६ ॥ उनके समवसरणमें अपनी वाणीको वढानेवाले अर्थात् खूब उपदेश देनेवाले पचास गणधर थे, ग्यारह अंग चौदह पूर्वोको जाननेवाले हजार मुनि उनकी वंदना करते थे, तीन हजार दोसौ मुनि वादियोंके स्वामी थे, उन्तालीस हजार पांचसौ शिक्षक थे, चार हजार तीनसौ अवधिज्ञानी मुनि उनकी पूजा करते थे, पांचहजार केवलज्ञानी उन्हें मानते थे, आठहजार मुनि विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे और पांचहजार मुनि मनःपर्यय ज्ञानी थे। इसतरह सब मिलाकर छयासठ हजार मुनि उनकी पूजा करते थे ॥ ३७–४० ॥ सर्वश्रीको आदि लेकर एक लाख आठ हजार आर्जिकाओंका समूह था, दो लाख श्रावक थे और चार लाख श्राविकायें थीं। इनके सिवा असंख्यात देव और देवियां तथा संख्यात तिर्यंच उनकी सेवा करते थे। इसतरह बारह प्रकारकी प्रसिद्ध सभाओंमें वे भगवान बैठे हुए भव्य जीवोंमें मुख्य थे ॥ ४१–४२ ॥ शुभ अशुभ भावोंको प्रगट करनेवाले उन अनंत भगवानने प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशोंमें विहारकर अनेक भव्योंको मोक्षमार्गमें लगाया था ॥ ४३ ॥ अंतमें विहार करना बंदकर सम्मेदशिखरपर आ विराजमान हुए थे और छह हजार एकसौ मुनियोंके साथ साथ एक महीनेतक प्रतिमायोग धारणकर चैतकृष्णा अमावस्याके दिन सवेरेके समय चौथे शुक्लध्यानके प्रभावसे परममोक्ष पदमें जा विराजमान हुए ॥४४–४५॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बडे आदरसे अंतिम क्रियाकी और विधिके अनुसार मोक्षकल्याणका उत्सव मनाकर सब देव अपने अपने स्वर्गके विमानोंमें चले गये ॥ ४६ ॥ जिसमें कुनयरूपी अंधकार भरा हुआ है और मिथ्याशास्त्र रूपी उल्लू बोल रहे हैं ऐसे संसारको उत्तम नयरूपी किरणोंसे प्रकाशकर जिनकी उत्तम कांति प-

रस्तोक स्वर्लोक सर्वतो ययौ ॥ ४६ ॥ कुनयघनतमोघं कुश्रुतोद्यद्विद्विट्रू नयमयमयूखै विश्वमाशु प्रकाश्य । प्रकटपरमधीशिबोधयन् भव्यपद्मान् प्रदहतु स जिनेनोनंतजिद् दुष्कृत व ॥ ४७ ॥ प्राक्पालक प्रथितपद्मरथ पृथिव्यां पश्चाद्विनिश्चितमतिस्तपसाच्युतेंद्र । तस्माच्च्युतोऽभवदनतजिदतकातोऽय सोऽवताद् द्रुतमनतभवातकाद्व ॥ ४८ ॥ तत्रैव वसुप्रभो राम केशव पुरुषोत्तम । व्यावर्ण्यते भवैपूर्वः त्रिषु वृत्तकमेतयो ॥ ४९ ॥ एतस्मिन्भारते वर्षे पोदनाधिपति नृप । वसुषेणो महादेवी तस्य नदेत्यनिंदिता ॥ ५० ॥ देवीपंचशतेप्यस्या स राजा प्रेमनिर्भरः । रेमे वसंतमजर्यां चंचरीकमिवोत्सुक ॥ ५१ ॥ मलयाधीश्वरो नाम्ना कदाचिच्चडशासनः । आजगाम नृप दृष्टुं तत्पुरं मित्रता गत ॥ ५२ ॥ नदासदर्शनेनासौ मोहित पापपाकवान् । आहृत्य तामुपायेन स्वदेशमगमत्कुधी ॥ ५३ ॥ वसुषेणोप्यशक्तत्वात्तत्पराभवदुःखित । चिंतातकसमाकृष्यमाणप्राण स्मृतेर्बलात् ॥ ५४ ॥ श्रेयो गण-

काशमान हो रही हैं और जो भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करते रहते हैं ऐसे श्री अनंतनाथ जिनेंद्रदेव तुम लोगोंके पापोंका नाश करो ॥ ४७ ॥ जो पहिले इस पृथ्वीपर पद्मरथ नामके प्रसिद्ध राजा थे फिर निश्चल बुद्धिवाले वे ही अच्युत स्वर्गमें इंद्र हुए फिर वहांसे आकर जो मृत्युका भी अंत करनेवाले अनंतनाथ हुए ऐसे अनंतनाथ भगवान अनंत भवोंमें होनेवाले मरणसे तुमलोगोंकी रक्षा करें ॥ ४८ ॥

अथानंतर-इन्हीं अनंतनाथ भगवानके समयमें सुप्रभ और पुरुषोत्तम नामके बलभद्र और नारायण हुए हैं इसलिये इन दोनोंके तीन भवके चरित्र कहते हैं ॥ ४९ ॥ इसी भरतक्षेत्रके पोदनपुर नगमें राजा वसुसेन राज्य करता था उस की महादेवीका नाम नंदा था, वह रानी बडी ही पवित्र थी, पाचसौ रानियां होते हुए भी वह उसीपर सबसे अधिक प्रेम करता था और जिसप्रकार मत्त हुआ भौंरा वसंत मंजरीमें (आमकी मंजरीमें) क्रीडा करता है उसीप्रकार वह राजा उसके साथ क्रीडा करता था ॥ ५०-५१ ॥ चंडशासन नामका मलय देशका राजा वसुसेनका मित्र था इसलिये वह किसी एक समय उससे मिलनेके लिये उसके नगरमें आया ॥ ५२ ॥ महाराणी नंदाको देखकर वह पापी मूर्ख मोहित हो गया और किसी उपायसे हरणकर अपने देशमें ले गया ॥ ५३ ॥ राजा वसुसेन असमर्थ था इसलिये इस तिरस्कारसे वह बहुत दुखी हुआ तथा चिंतारूपी मृत्यु उसका प्राण खींचने लगी। किसी एकदिन स्मरण हो आनेसे उसने श्रेय नामके गणधरके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली, उस राजाने सिंहनिःक्रीडित आदि अनेकतरहके कठिन तपश्चरण किये और निदान किया कि यदि दूसरे जन्ममें तपश्चरणका फल मिलता हो तो मैं इस तपके प्रभावसे सुंदर और अलंघ्य शासन करनेवाला होऊं ॥ ५३-५६ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारणकर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ और अठारह सागरकी आयु पाई ॥ ५७ ॥

धरं प्राप्य प्रव्रज्यां प्रतिपद्य सः । सिंहनि क्रीडितायुग्रं तपस्तप्त्वा महीबलः ॥ ५५ ॥ यदि विद्यत चर्यायाः फलमन्यत्र जन्मनि । अलंघ्यशासनः कांतो भवामीत्यकरोन्मतिं ॥ ५६ ॥ ततो विहितसन्यासः सहस्रारं जगाम सः । अष्टादशसमद्रायुर्द्वादश कल्पमुत्तमं ॥ ५७ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे प्राग्विदेहे महर्द्धिके । नंदनाह्वये पुरे प्राभूत्नराधीशो महाबलः ॥ ५८ ॥ प्रजानां पालको भोक्ता सुखानामतिधार्मिकः । श्रीमान् दिक्प्रांतविश्रांतकीर्तिरार्तिहरोऽर्थिनां ॥ ५९ ॥ स कदाचिच्छरीरादियाथात्म्यावगमोदयात् । विरक्तस्तेषु निर्वाणपदवीप्रापणोत्सुकः ॥ ६० ॥ दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय प्रजापालार्हदंतिके । गृहीतसंयमः सिंहनिःक्रीडिततपः श्रितः ॥ ६१ ॥ सन्यस्यांते सहस्रारं प्राप्याष्टादशसागरां । स्थितिं भोगाश्चिरं भुंक्त्वा तदंते शांतमानसः ॥ ६२ ॥ अथेह भारते द्वारवत्यां सोमप्रभप्रभोः । जयवत्यामभूत्सूनुः सुरूपः सुप्रभाह्वयः ॥ ६३ ॥ महायतिः समुत्तुंगः सुरविद्याधराश्रयः । श्रेतिमान दधत्सोभाद्विजयार्द्ध इवापरः ॥ ६४ ॥ कलंकविकलः कांतः सततं सर्वचित्तहृत् । पद्मानंदविधायीत्यमतिशेते विधुं च सः ॥ ६५ ॥ तस्यैव च सुषेणाख्यसीतायां

अथानंनर—इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें बडी ऋद्धिवाला एक नंदनपुर नगर है उसमें राजा महाबल राज्य करता था ॥ ५८ ॥ वह राजा प्रजाका पालन करनेवाला, सुखोंका अनुभव करनेवाला और बडा ही धार्मिक था, वह श्रीमान् था दिशाओंके अंततक उसकी कीर्ति फैल रही थी तथा वह याचकोंके सब दुःख दूर करनेवाला था ॥५९॥ किसी एक समय उसे शरीर संसार आदिका यथार्थज्ञान हुआ और इसलिये ही मोक्षपदके प्राप्त होनेकी इच्छा करता हुआ उन शरीर और संसारसे विरक्त हुआ ॥ ६० ॥ अपने पुत्रको राज्य देकर प्रजापाल तीर्थंकरके समीप वह दीक्षित होगया और सिंहनिःक्रीडित आदि कठिन तपश्चरण करने लगा ॥ ६१ ॥ अंतमें सन्यास धारणकर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ वहांपर उसकी अठारह सागरकी आयु थी, वहांपर उसने बहुत दिनतक भोगोंका अनुभव किया अंतमें शांत चित्तसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रकी द्वारावती नगरीमें राजा सोमप्रभके उसकी जयावती रानीसे सुप्रभ नामका बहुत सुंदर पुत्र हुआ ॥ ६३ ॥ वह सुप्रभ दूसरे विजयार्द्ध पर्वतके समान जान पडता था क्योंकि जिस प्रकार विजयार्द्ध पर्वत बहुत लंबा है बहुत ऊंचा है देव तथा विद्याधर उसके आश्रय रहते हैं और आकाशमें वह अपनी बहुत ऊंचाई धारण करता है उसीप्रकार वह सुप्रभभी लंबा था, गुणोंमें सबसे ऊंचा था, देव और विद्याधर उसके आश्रय रहते थे और आकाशतक अपना अभिमान धारण करता था॥६४॥वह सुप्रभ चंद्रमाको तिरस्कार करता था क्योंकि चंद्रमा कलंक सहित होता है वह कलंकरहित था, चंद्रमा सदा मनोहर नहीं रहता परंतु वह सदा मनोहर रहता था चंद्रमा सबके चित्तको हरण नहीं कर सकता परंतु वह सबके चित्तको हरण करता था, और चंद्रमा पद्मानंदविधायी अर्थात कमलोंको प्रफु-

पुरुषोत्तमः । तोकोजनि जनानंदविधायी विविधैर्गुणैः ॥ ६६ ॥ सेव्यस्तेजस्विभिः सर्वैरविलंघ्यमहोन्नतिः । महारत्नसमुद्भासी सुमेरुरिव सुंदरः ॥ ६७ ॥ शुक्लकृष्णत्विषौ लोकव्यवहारप्रवर्तकौ । पक्षाविव विभात स युक्तौ तौ रामकेशवौ ॥ ६८ ॥ पंचाशद्धनुरुच्छ्रायौ त्रिंशल्लक्षसमायुषौ । सम समसुखौ कालं समजीगमतां चिरं ॥ ६९ ॥ अथ भ्रान्त्वा भवे दीर्घं प्राक्तनश्चंडशासनः । चंडांशुरिव चंडोभूद्दंडितारातिमंडलः ॥ ७० ॥ काशिदेशे नृपो वाराणसी-नगरनायकः । मधुसूदनशब्दाख्यो विख्यातबलविक्रम- ॥ ७१ ॥ तौ तदोदयिनौ श्रुत्वा नारदादसहिष्णुक । तव मे प्रेषयत्प्रार्थ्यगजरत्नादिक करं ॥७२॥ तदाकर्णनकालातवातोद्धूतमनोंबुधिः । युगांतातवद्दु प्रेक्ष्यस्तुकोध पुरुषोत्तम ॥ ७३ ॥ सुप्रभोपि प्रभाजाल विकरन् दिक्षु चक्षुषोः । ज्वालावलिमिव क्रोधपावकार्चिस्तताशय ॥ ७४ ॥ न ज्ञात कः करो नाम किं करो येन भुज्यते । त दास्यामः स्फुरत्खड्गं शिरसासौ प्रतीच्छतु ॥ ७५ ॥ एतु गृह्णातु को

हित करनेवाला नहीं है परंतु वह पद्मानंदविधायी अर्थात् लक्ष्मीको आनंददेनेवाला था, ॥ ६५ ॥ उसी राजा सोमप्रभ के सीता रानीसे वसुसेनका जीव पुरुषोत्तम नामका पुत्र हुआ वह अपने अनेक गुणोंसे लोगोंको खूब आनंद देनेवाला था ॥ ६६ ॥ सब तेजस्वी पुरुष उसकी सेवा करते थे, उसकी भारी उन्नतिको कोई रोक नहीं सकता था वह महारत्नोंके समान दैदीप्यमान था और सुमेरु पर्वतके समान सुंदर था ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार शुक्ल और कृष्णपक्ष लोकमें व्यवहारकी प्रवृत्ति करते हैं उसीप्रकार शुक्ल और कृष्ण कांतिवाले वे दोनों ही राम और केशव लोकमें व्यवहारकी प्रवृत्ति करनेवाले थे ॥६८॥ उनके शरीरकी ऊंचाई पचास धनुष थी, आयु तीस लाख वर्षकी थी। वे दोनों ही बहुत दिनतक समान सुख भोगते हुए काल व्यतीत करते थे ॥ ६९ ॥

अथानंतर–पहिलेका राजा चंडशासन बहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमणकर काशी देशकी वाराणसी नगरीमें मधुसूदन नामका राजा हुआ था, वह सूर्यके समान तेजस्वी था, सब शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला था और उसका बल पराक्रम बहुत ही प्रसिद्ध था ॥ ७०-७१ ॥ उसने नारदके द्वारा सुना कि सुप्रभ और पुरुषोत्तमका उदय बहुत बढा जा रहा है यह बात उसे सहन नहीं हुई इसलिये उसने हाथी रत्न आदि कर वसूल करनेकेलिये नारदको ही उनके पास भेजा ॥ ७२ ॥ नारदने उनसे जाकर कहा सुनते ही पुरुषोत्तम बहुत क्रोधित हुआ, जिसप्रकार कल्पांत कालका समुद्र देखा नहीं जाता उसी प्रकार वह भी देखा नहीं जाता था और जिस प्रकार वायुसे समुद्र उछलता है उसी प्रकार उसका मनरूपी समुद्र उछलने लगा था ॥ ७३ ॥ जिसका हृदय क्रोधरूपी अग्निसे जल रहा है ऐसा सुप्रभ भी अग्निकी ज्वालाके समान सब दिशाओंमें दोनो नेत्रोंसे प्रभाका समूह फेंकने लगा ॥ ७४ ॥ तथा कहने लगा कि कर

दोष इत्याभिष्क्रतते बसौ । उभावबोचतामुच्चैर्नारदं परुषोक्तिभि ॥ ७६ ॥ ततस्तदवगम्यायात् संक्रुधो मधुसूदन । हंतुं तौ तौ च हंतुं तं रोषादगमतां प्रति ॥ ७७ ॥ सेनयोरुभयोरासीत्संग्राम संहरन्निव । सर्वानहस्तदारिस्तं चक्रेण पुरुषोत्तमः ॥ ७८ ॥ त्रिखंडाधिपतित्व तौ चतुर्थौ रामकेशवौ । ज्योतिर्लोकाधिनाथत्वमन्वभूतामिवेंद्विनौ ॥ ७९ ॥ केशवो जीवितांतेगादवधिस्थानमागुषा । सुप्रभस्तद्वियोगोत्थशोकानलसमन्वित. ॥ ८० ॥ प्रबोधितः प्रसन्नात्मा सोमप्रभजिनेशिना । दीक्षित्वा श्रेणिमारुह्य स मोक्षमगमत्सुधी ॥ ८१ ॥ संभूय पोदनपुरे वसुषेणनामा कृत्वा तपो सुरवरोजनि शुक्ललेश्य । तस्माच्च्युतोऽभरताधिगतिर्हतारिः प्रापांतिमा क्षितिमथ पुरुषोत्तमाख्यः ॥ ८२ ॥ मलयाधिपचंडशासनो नृपतिं पापमतिर्भ्रमंश्चिरं । भववारिनिधावभूदथ खलु गंता

क्या चीज है हम जानते नहीं क्या कर हाथको कहते हैं ? जिससे खाया जाता है अच्छा तो जिसमें तलवार चमचमा रही है ऐसा हाथ हम देंगे वह शिरपर आकर रोके ॥ ७५ ॥ वह आवे और लेवे इसमें दोष ही क्या है इसप्रकार वे दोनों अपना तेज प्रगट करते हुए नारदके लिये कठोर वचनोंसे कहने लगे ॥ ७६ ॥ नारदने जाकर मधुसूदनको खबर दी वह सुनकर क्रोधित हुआ और दोनों भाइयोंके मारनेके लिये निकला तथा वे दोनो भाई भी मधुसूदनको मारनेकेलिये निकले ॥ ७७ ॥ दोनों सेनाओंका भारी युद्ध हुआ मानों सबका नाश ही करना चाहता हो अंतमें मधुसूदनने चक्र चलाया वह चक्र पुरुषोत्तमके पास आगया और उसने उसी चक्रसे अपने शत्रु मधुसूदनको मारडाला ॥ ७८ ॥ वे दोनों ही भाई तीन खंडके स्वामी हुए चौथे बलभद्र नारायण हुए और बहुत दिनतक सूर्य चंद्रमाकेसे सुखोंका अनुभव किया ॥ ७९ ॥ आयुके अंतमें पुरुषोत्तम मरकर सातवें नरक गया, तथा सुप्रभको उसको वियोगका बडा भारी दुःख हुआ ॥ ८० ॥ अंतमें लोगोंने उसे समझाया तब उस बुद्धिमानने अपनी आत्माको निर्मलकर सोमप्रभ जिनेंद्रके समीप दीक्षा धारणकी और श्रेणी चढकर मुक्त हुआ ॥ ८१ ॥ पुरुषोत्तम नामका चौथा नारायण पहिले पोदनपुरमें वसुसेन नामका राजा था, फिर तपश्चरणकर शुक्ल लेश्यावाला उत्तम देव हुआ, वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके तीन खंडोंका स्वामी हुआ था और वहां की आयु पूरीकर सातवें नरकमें नारकी हुआ था, ॥ ८२ ॥ मधुसूदन नामका प्रतिनारायण पहिले मलय देशमें चंडशासन नामका राजा था, फिर उसने बहुत दिनतक पापोंका उपार्जनकर संसाररूपी समुद्रमें परिभ्रमण किया फिर मधुसूदन प्रतिनारायण हुआ और नारायणके हाथसे मरकर नरक गया ॥८३॥ इसीतरह सुप्रभ पहिले नंदनपुर नगरमें महाबल राजा था फिर तपश्चरणकर बारहवें स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर सुप्रभ नामका बलभद्र हुआ और अंतमें समस्त कर्मोंका नाशकर मुक्त हुआ ॥ ८४ ॥ इस संसारमें परिणामोंकी गति

मधुसूदनाभिध ॥ ८३ ॥ महाबलाख्यः पुरि नदने नृपः महातपा द्वादशकल्पज सुर । पुनर्बल सुप्रभमंक्षयागमत्परं पदं प्राप्तसमस्तमंगक ॥ ८४ ॥ साम्राज्यसारसौख्य सुप्रभपुरुषोत्तमैा सम भुक्त्वा । प्रथमो निर्वाणमगादपरोधो वृत्तिवैचित्र्य ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसग्रहे अनततीर्थकर—सुप्रभ पुरुषोत्तममधुसूदनपुराणं समाप्तं षष्ठितम पर्व ॥ ६० ॥

अथैकषष्ठितमं पर्व ।

धर्मे यस्मिन् समुद्भूता धर्मा दश सुनिर्मला । स धर्मः शर्म मे दयादधर्ममपहृत्य न ॥ १ ॥ धातकीखडप्राग्भागे प्राग्विदेहे सरित्तटे । दक्षिणे वत्सविषये सुसीमा नगरं महत् ॥ २ ॥ पतिर्दशरथस्तस्य प्रज्ञाविक्रमदैववान् । स्ववशीकृतसर्वारि निर्व्यायाम समे स्थितः ॥ ३ ॥ सुखानि धर्मसाराणि प्रजापालनलालस । बंधुभिश्च सुहृद्भिश्च सह विश्रब्धमन्वभूत् ॥ ४ ॥ माधवे शुक्लपक्षाते संप्रवृत्तजनोत्सवे । चंद्रोपरागमालोक्य सद्यो निर्विण्णमानसः

बडीही विचित्र है देखो सुप्रभ और पुरुषोत्तम दोनों भाइयोंने समान रीतिसे राज्यके उत्तम सुखोंका अनुभव किया था तथापि सुप्रभ तो मुक्त हुआ पुरुषोत्तमको नरक जाना पडा ॥ ८५ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य विरचित महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अनंतनाथ तीर्थंकर सुप्रभ पुरुषोत्तम और मधुसूदनका चरित्र कहनेवाला यह साठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

अथ इकसठवां पर्व ।

जिन धर्मनाथके उत्पन्न होनेसे निर्मल दश धर्म उत्पन्न हुए थे ऐसे श्रीधर्मनाथ स्वामी हम लोगोंके अधर्मका नाशकर कल्याणके देनेवाले हों ॥ १ ॥ धातकी खंडके पूर्व मेरुकी ओर पूर्व विदेह क्षेत्रमें नदीके दाहिनी ओर वत्स देशमें एक बडा भारी सुसीमा नगर है उसमें राजा दशरथ राज्य करता था, उसकी बुद्धि पराक्रम और भाग्य बडा ही बलवान था, उसने सब शत्रु विना किसी परिश्रमके वशकर लिये थे, प्रजाके पालन करनेमें उसकी बडी ही इच्छा थी वह सबका मध्यस्थ था और भाई बंधु मित्र आदिकोंके साथ निश्चल रीतिसे धर्म और सुखोंका अनुभव करता था ॥ २–४ ॥ चैत्र शुक्ल पूर्णिमाके दिन सब लोग उत्सव मना रहे थे परंतु चंद्रग्रहणको देखकर उसका चित्त विरक्त

॥ ५ ॥ कांत कुवलयाह्लादी कलाभिः परिपूर्णवान् । ईदृशस्यापि चेदीदृगवस्थान्यस्य का गति ॥ ६ ॥ इति मत्वा सुते राज्यभारं कृत्वा महारथे । नैःसंग्यालाघवोपेतमंगीकृत्य स संयम ॥ ७ ॥ एकादशांगधारी सन् भावितव्यष्टकारणः । निबद्धतीर्थकृत्पुण्य स्ताराध्यांते विशुद्धधी ॥ ८ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायु- एकहस्ततनूच्छ्रिति । पंचरंध्रचतुर्मानदिनैरुच्छ्वासवान् मनाक् ॥ ९ ॥ लोकनाल्यंतरव्यापिविमलावधिबोधनः । तत्क्षेत्रविक्रियातेजोबलसंपत्समन्वित ॥ १० ॥ त्रिसहस्राधिकत्रिंशत्सहस्राब्दै समाहरन् । मुहूर्ते मानसाहारं शुक्ललेश्याद्वयस्थिरं ॥ ११ ॥ सर्वार्थसिद्धौ सत्सौख्यं नि प्रवीचारमन्वभूत् । ततो नृलोकमेतस्मिन् पुण्यभाज्यागमिष्यति ॥ १२ ॥ द्वीपेस्मिन्भारते रत्नपुराधीशो महीपते । कुरुवंशस्य गोत्रेण काश्यपस्य महौजस ॥ १३ ॥ देव्या भानुमहाराजसंज्ञस्य विपुलश्रिय । सुप्रभाया सुरानीतवसुधारादिसंपद ॥ १४ ॥ सितपक्षत्रयोदश्यां वैशाखे रेवतीविधौ । निशांते षोडशस्वप्ना सम-

हुआ, वह विचार करने लगा कि देखो यह चंद्रमा मनोहर है कमोदिनियोंको प्रफुल्लित करनेवाला है और कलाओंसे पूर्ण है जब ऐसे चंद्रमाकी भी यह दशा है तब फिर भला और लोगोंका क्या कहना है ॥ ५–६ ॥ यही समझकर उसने अपने पुत्र महीरथको राज्य दिया, तथा परिग्रहरहित होकर लघुतापूर्वक संयम धारण किया ॥ ७ ॥ ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया, सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया, पुण्यस्वरूप तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया और आयुके अंतमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रसे शुद्ध होकर आराधानाओंका आराधनकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुआ, वहांपर उसकी तेतीस सागरकी आयु थी, एक हाथका शरीर था, चारसौ निन्यानवे दिन अथवा साढे सोलह महीने बीत जानेपर श्वासोच्छ्वास लेता था, लोकनाडी तक निर्मल अवधिज्ञान था और उतने ही क्षेत्रतक उसकी विक्रिया बल और तेज रूपी संपदाएं फैली हुई थीं ॥ ८–१० ॥ तेतीस हजार वर्षबाद मानसिक आहार लेता था और उसके शुक्ल लेश्या थी, इसतरह बहुत दिन तक उसने सर्वार्थसिद्धिके प्रविचाररहित सुखोंका अनुभव किया, और वहां की आयु पूरी होनेपर उस पुण्यवानके मनुष्य लोकमें आनेके दिन समीप आये ॥ ११–१२ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्र में एक रत्नपुर नगर था उसमें उत्पन्न हुए बडी भारी विभूतिको धारण करनेवाले कश्यप गोत्रीय महाराज भानु राज्य करते थे उनके सुप्रभा नामकी रानी थी। जब उस अहमिंद्रकी आयुके छह महीने रह गये थे तभीसे देवोंने रत्नोंकी वर्षाकर उस रानी सुप्रभाकी पूजाकी थी ॥ १३–१४ ॥ वैशाख शुक्ल त्रयोदशीके दिन रेवती नक्षत्रमें रातके पिछिले पहर रानी सुप्रभाने सोलह स्वप्न देखे सवेरे ही उठकर उसने अवधिज्ञानी अपने पतिसे निवेदन किया उनका फल सुना और पुत्र उत्पन्न होनेके समान प्रसन्न हुई ॥ १५–१६ ॥ उसी दिन वह अहमिंद्र अपनी आयु पूरीकर सर्वार्थ-

भूवन् दशोः स्फुटा ॥ १५ ॥ सा प्रबुद्ध्वा फलान्यात्मपतेऽवधिलोचनात् । तेषा विज्ञाय, संभूनमुतेवासीत्ससम्मदा ॥१६॥ तदैत्यानुत्तरगदंत्यादस्या गर्भे भवद्विभु । सुरेंद्राश्चादिकल्याणमकुर्वंत समागता: ॥ १७ ॥ धवले नवमासांते गुरुयोगे त्रयोदशी । दिने माघे सुत मासे सासूनावधिलोचन ॥ १८ ॥ तदैवानिमिषाधीशास्त नीत्वामरभूधरे । क्षीराब्धिवारिभिर्भूरिकार्तस्वरघटोद्धृतैः ॥ १९ ॥ अभिषिच्य विभूष्योचैर्धर्माख्यामगदन्मुदा । सर्वभूतहितश्रीमत्सद्धर्मपथदेशनात् ॥ २० ॥ अनतजिनमताने चतु सागरसम्मिते । काले पर्यंतपल्योपमार्द्धे धर्मेस्तमेयुषि ॥ २१ ॥ तदभ्यंतरवर्त्यायुर्धर्मनामोदपादि सः । दश लक्षा समाजीवी तप्तकाचनसच्छविः ॥ २२ ॥ खट्टैकहस्तसद्देशे स्वयं कौमारमुद्वहन् । सार्द्धलक्षद्वयादते लब्धराज्यमहोदय ॥ २३ ॥ तुंगत्वादतिशुद्धत्वात्प्रेक्षत्वात्स्वाश्रवत्त्वत । अशेषपोषकत्वाच्च मेघांतजलदोपम ॥ २४ ॥ भद्रत्वाद् बहुदानत्वात्सौलक्षण्यान्महत्त्वत । सुकरत्वात्पुरैभत्वादपरो वा

सिद्धिसे आकर उसके गर्भमें आ विराजमान हुआ और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर गर्भकल्याणका उत्सव मनाया ॥ १७ ॥ नौ महीने बीत जानेपर माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन पुष्य नक्षत्रमें उस महारानीने अवधिज्ञानको धारण करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया उसीसमय इंद्रादि देव आये उस बालकको मेरु पर्वतपर ले गये वहांपर सुवर्णके घड़ोंमें भरे हुए क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया, आभूषण पहिनाये और यह बालक आगे सब जीवोंका हित करनेवाले तथा अनुपम विभूति देनेवाले सद्धर्मके मार्गका (मोक्षमार्गका) उपदेश देगा इसलिये ही प्रसन्न होकर बड़े ऊंचे शब्दोंसे उसका धर्मनाथ नाम रक्खा था ॥ १८-२० ॥ श्री अनंतनाथ तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद जब चार सागर बीत गये थे तथा उसके बाद भी आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद रह चुका था तब धर्मनाथ उत्पन्न हुए थे इनकी आयु भी इसीमें शामिल है । इनकी आयु दश लाख वर्षकी थी, तपाये हुए सुवर्णके समान कांति थी और एक सौ अस्सी हाथ ऊंचा शरीर था । तथा कुमारकालके ढाई लाख वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्यकी विभूति मिली थी ॥२१-२३॥ वे भगवान बडे ऊंचे थे, दर्शनीय थे, सब जगह वर्षा करनेवाले थे और सबके पालन पोषण करनेवाले थे इसलिये वे शरद ऋतुके बादलोंके समान जान पड़ते थे ॥ २४ ॥ अथवा ये दूसरे हाथीके समान जान पड़ते थे क्योंकि हाथी जिसप्रकार भद्र जातिका होता है उसीप्रकार वे भी भद्र थे । हाथीसे जिसप्रकार बहुतसा दान (मद) बहता रहता है उसीप्रकार वे भी बहुतसा दान करते रहते थे, जिसप्रकार हाथीमें बहुतसे अच्छे लक्षण रहते हैं बड़ा होता है उसी प्रकार उनमें भी अच्छे लक्षण थे और वे सबमें बडे थे तथा जिसप्रकार हाथीका कर अर्थात् सूंड अच्छी होती है उसी प्रकार उनका कर अर्थात् हाथ अच्छा था अथवा कर अर्थात् प्रजासे कर वसूल करना अच्छा सुलभ था और हाथी

गजोत्तम ॥ २५ ॥ निग्रहानुग्रहौ तस्य न द्वेषेच्छाप्रवर्तितौ । गुणदोषकृतौ तस्मान्निगृह्णन्नपि पूज्यते ॥ २६ ॥ कीर्तिस्तस्य लता सत्यं नो चेद्विश्वविसर्पिणी । कथं कविवचोवारिसेकादद्यापि वर्द्धते ॥ २७ ॥ धरित्री सुखसंभोग्या तस्य स्वगुणरंजिता । नायिकेवोत्तमा काममभीष्टफलदायिनी ॥ २८ ॥ धर्मादस्मादवाप्स्यंति कर्मारातिनिवर्हणात् । शर्म चेन्निर्मलं भव्या शर्मास्य किमुवर्ण्यते ॥ २९ ॥ पंचलक्षासमा राज्यकालेवीते कदाप्यसौ । उल्कापातसमुद्भूतवैराग्यादित्यचिंतयत् ॥ ३० ॥ कथ क्व कस्माज्जातो मे किमय कस्य भाजनं । किं भविष्यति कायोयमिति चिंतामकुर्वता ॥ ३१ ॥ दुर्विदग्धेन सांगत्यमनेन सुचिरं कृतं । अश्नतादु खमावर्ज्य पापं पापविपाकतः ॥ ३२ ॥ दु खमेव सुखं मत्वा दुर्मति कर्मचोदित । शर्म शाश्वतमप्राप्य श्रांतोहं जन्मसंततौ ॥ ३३ ॥ बोधादयो गुणाः स्वेमी ममैतदविकल्पयन् । रागादिकान् गुणान्मत्वा धिग्मां मतिविपर्ययात् ॥३४॥ स्नेहमोहग्रहग्रस्तो मुहुर्बंधुधनादिकं ।

जैसे देवोंको भी प्रिय होता है उसीप्रकार वे भी देवोंको प्रिय थे ॥ २५ ॥ प्रजाका निग्रह करना अथवा अनुग्रह करना उनके द्वेष और इच्छापर निर्भर नहीं था किंतु गुण और दोषसे किया जाता था इसलिये निग्रह करते हुए भी लोग उनकी पूजा करते थे ॥ २६ ॥ यह सच है कि उनकी कीर्ति एक लताके समान थी यदि वह लताके समान नहीं होती तो वह समस्त संसारमें कैसे फैल जाती और कवियोंके वचनरूपी जलके सींचनेसे आजतक कैसे बढती रहती ॥ २७ ॥ उससमय वह पृथ्वी एक उत्तम नायिकाके समान जान पडती थी क्योंकि नायिका जिसप्रकार गुणोंसे मोहित होजाती है उसीप्रकार वह पृथ्वीधर्मनाथके गुणोंसे मोहित हो गई थी अर्थात् उनके वश हो गई थी तथा जिसप्रकार नायिकाका सुखपूर्वक उपभोग किया जाता है उसीप्रकार उस पृथ्वीका भी सुखपूर्वक उपभोग किया जाता था और नायिका जिसप्रकार अभीष्ट फल देनेवाली है उसीप्रकार वह पृथ्वी भी अभीष्ट फल देनेवाली थी ॥२८॥ कर्म रूपी शत्रुओंको नाश करनेवाले उन धर्मनाथसे ही भव्य जीवोंको निर्मल कल्याणकी प्राप्ति होगी फिर भला उनके कल्याणका क्या वर्णन करना चाहिये ॥२९॥ इसतरह राज्य करते हुए जब उनके पांच लाख वर्ष [illegible] ते थे गये तब किसी एक दिन उल्कापात देखकर वे विरक्त हुए और विचार करने लगे कि यह शरीर कहां किसतर [illegible] त्पन्न हुआ है, इसका स्वरूप क्या है यह किसका पात्र है और आगे इसकी क्या दशा होगी यह सब विचा[illegible] जो सब ही इस मूर्ख जीवने अनादिकालसे इसका संग किया है इसके संगसे अनेक पापोंका उपार्जन किया है उन पा[illegible] लोगोंको थसे अनेक दुख भोगे हैं और कर्मोंकी प्रेरणासे इस मूर्ख जीवने उन दुखोंको ही सुख मान लिया है। सदा र[illegible] स्वरूप सुखके न मिलनेसे अब मैं इस जन्म मरणरूपी संसारमें दुखी होगया हूं ॥ ३०-३३ ॥ अबतक

त्यादस्या गर्भे

पोषयमर्जयन्पापसंचयाद् दुर्गतीः गत- ॥ ३५ ॥ एवमेन स्वयंबुद्ध मत्वा लौकांतिकाः सुराः । तुष्टुवुर्निष्ठितार्थस्त्व देवायेत्यातिभक्तिक ॥ ३६ ॥ तदै-
म्नि स ज्येष्ठे पुत्रे निहितराज्यकः । प्राप्तः निष्क्रमणारंभकल्याणाभिषवोत्सव ॥ ३७ ॥ शिविकां नागदत्ताख्यामारुह्य सुरसत्तमैः । सह हितश्रीमत्स-
षष्ठोपवासवान् ॥ ३८ ॥ माघज्योत्स्नात्रयोदश्यामपराह्णे नृपैः सम । सहस्रेण स पुष्यर्क्षे दीक्षां मोक्षीं समग्रहीत् ॥ ३९ ॥ चतुर्थज्ञानसपन्न ग्पादि सः ।
त्पुरीं । मोक्तु पाटलिपुत्राख्या समुमद्ध्वपताकिकां ॥ ४० ॥ धन्यषेणमहीपालो दत्त्वास्मै कनकद्युतिः । दानमुत्तमपात्राय प्रापदाश्चर्यपंचकं गत्वादति-
कवर्षेछद्मस्थकालेतीते पुरातने । वने सप्तच्छदस्याधः कृतषष्ठोपवासक ॥ ४२ ॥ पूर्णमास्या स पुष्यर्क्षे सायाह्ने प्राप केवलं । आससाद च स गे वा
ल्याणसूचिनीं ॥ ४३ ॥ अरिष्टसेनाद्यनलयुगमानगणाधिपः । शून्यद्वयनवप्रोक्तसर्वपूर्वधरावृत ॥ ४४ ॥ शून्यद्वयाब्धिशून्याब्धिमितशिक्षकलक्षित.

पर्याय हो रही थी इसलिये मैं आत्माके ज्ञानादि गुणोंको भूल गया था और कर्मसे उत्पन्न हुए रागादि भावोंको अपना मानने लगा था इसतरह विपरीत माननेवाले मुझको धिक्कार हो ॥ ३४ ॥ स्नेह और मोह रूपी पिशाचके जालमें फंसकर मैंने बार बार कुटंबी धन आदिका पालन पोषण किया. जिससे अनेकतरहके पाप संचय किये और उन पापकर्मोंके उदयसे अनेक दुर्गतियोंमें घूमा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार अपने आप जाग्रत हुए (आत्मज्ञानी हुए) भगवानको देखकर उसीसमय बहुतसी भक्ति करनेवाले लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकी और कहा कि हे भगवन् ! आप आज ही कृतकृत्य हुए हों ॥ ३६ ॥ धर्मनाथने सुधर्म नामके अपने बडे पुत्रको राज्य दिया उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया, और भगवानका अभिषेक किया। भगवान नागदत्ता नामकी पालकीपर सवार होकर शालवन नामके वनमें गये । वहांपर उन्होंने माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन पुष्यनक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ साथ तेला धारणकर मोक्ष देनेवाली दीक्षा धारण की ॥ ३७–३९ ॥ उसीसमय उन्हें मनपर्ययज्ञान हुआ, पारणाके दिन उन्होंने ऊंची फहराती हुई ध्वजाओंसे सुशोभित पाटलीपुत्र वा पटना नागरीमें प्रवेश किया, वहांपर सुवर्णकी कांतिवाले महाराज धन्यसेनने उन उत्तम पात्रको आहारदान दिया तथा देवोंने उसीसमय पंचाश्चर्योंकी वर्षा की ॥ ४०–४१ ॥ तदनंतर एक वर्षतक वे तपश्चरण करते रहे बाद उसी शालवनमें सप्तच्छद वृक्षके नीचे तेला धारणकर विराजमान हुए ॥ ४२ ॥ पौष शुक्ला पौर्णिमासीके दिन पुष्य नक्षत्रमें शामके समय वहीं पर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर केवलज्ञान कल्याणको सूचित करनेवाली उनकी पूजाकी ॥४३॥ उनके समवसरणमें अरिष्टसेनको आदि लेकर तेतालीस गणधर थे नोसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जाननेवाले थे चालीस

शतत्रिसहस्रोक्तत्रिविधावधिलोचनः ॥ ४५ ॥ शून्यद्वयेंद्रियांभोधिप्रोक्तकेवलवीक्षणः । शून्यत्रिकमुनिज्ञातविक्रियर्द्धिविभूषित ॥ ४६ ॥ केवलज्ञानिमानो-
क्तमनःपर्ययविश्रुतः । खद्वयाष्टद्विविज्ञातवादिवृंदाभिवंदितः ॥ ४७ ॥ पिंडीकृतचतुःषष्टिसहस्रमुनिसाधनः । खखाब्धिपक्षषट्प्रोक्तसुव्रतार्यिकार्चितः ॥
४८ ॥ द्विलक्षश्रावकोपेतो द्विगुणश्राविकावृतः । पूर्वोक्तदेवसंदोहस्तिर्यक्संख्यातसंश्रितः ॥ ४९ ॥ इति द्वादशभेदोक्तगणसंपत्समन्वित । धर्मोधर्ममुपा-
दिशद्धर्मध्वजविराजितः ॥ ५० ॥ विहारमतें सहृत्य सम्मेदे गिरिसत्तमे । मासमेकमयोगः सन्नवाष्टशतसंयतैः ॥५१॥ शुचिशुक्लचतुर्थ्यंते रात्रौ ध्याति पृथ-
ग्द्वयी । आपूर्य पुष्यनक्षत्रे मोक्षलक्ष्मीमुपागमत् ॥ ५२ ॥ तदामृताशनाधीशाः सहसागत्य सर्वतः । कृत्वा निर्वाणकल्याणमवदिषत तं जिन ॥ ५३ ॥ नि-
र्जित्य दशरथ· स रिपून्नृपोऽत्याहमिंद्रतां गत्वा । धर्म· स पातु पापैर्धर्मोयुधि यस्य दशरथायते ॥ ५४ ॥ निहतसकलघाती निश्चलाम्रावबोधो गदितपरमधर्मो

हजार सातसौ शिक्षक थे, तीन हजार छह सौ देशावधि परमावधि सर्वावधिको धारण करनेवाले तीनों तरहके अवधिज्ञानी थे ॥४४–४५॥ चार हजार पांचसौ केवलज्ञानी थे, सात हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले शोभा वढा रहे थे, चार हजार पांच सौ मन·पर्ययज्ञानी थे और दो हजार आठसौ वादियोंके समूह उनकी वंदना करते थे ॥४६–४७॥ इसतरह सब चौसठ हजार मुनि उनकी सेवा करते थे। सुव्रता आदि वासठहजार चारसौ अर्जिकाएं थीं दो लाख श्रावक थे, चारलाख श्राविकाएं थीं पहिले कहा हुआ सब देवोंका समूह था और संख्यात तिर्यंच थे, ॥४८--४९॥ इसतरह वारह सभाओंकी संपदा-के साथ वे भगवान विराजमान थे धर्मकी ध्वजासे सुशोभित उन धर्मनाथ भगवानने बहुत जगह धर्मका उपदेश दिया और अंतमें विहार करना वंदकर सम्मेदशिखरपर जा विराजमान हुए, आठसौ नौ मुनियोंके साथ एक महीनेतक योगोंका निरोध किया और जेष्ठ शुक्ला चतुर्थीके दिन पुष्य नक्षत्रमें रात्रिके समय अंतिम दोनों शुक्लध्यानोंका ध्यानकर मोक्ष लक्ष्मीमें जा विराजमान हुए ॥५०--५२॥ उसीसमय वडी शीघ्रतासे सब जगहके इंद्रादि देव आये और निर्वाण कल्याणका उत्सव मनाकर उन जिनेंद्रदेवकी वंदनाकी ॥ ५३ ॥ जो पहिले भवमें सब शत्रुओंको जीतनेवाले राजा दशरथ हुए थे, फिर अहमिंद्र हुए और फिर वहांसे आकर धर्मनाथ तीर्थंकर हुए जिनके युद्धमें दश धर्म ही रथका काम देते थे ऐसे श्रीधर्मनाथ स्वामी मुझे पापोंसे बचावें ॥ ५४ ॥ जिसने समस्त घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं जिनके मुख्य और निश्चल केवलज्ञान है, जिन्होंने धर्मका स्वरूप निरूपण किया है, तीनों शरीर नष्ट होनेसे जो निर्मल हुए हैं जो सब-की आत्माको शांति देनेवाले हैं और जिन्हें वास्तविक सुख प्राप्त हुआ है ऐसे श्रीधर्मनाथ जिनेंद्र देव तुम लोगोंको अनंत सुख दें ॥ ५५ ॥

धर्मनामा जिनेंद्रः। त्रितयतनुविनाशान्निर्मलः शर्मसारो दिशतु सुखमनंतं शांतसर्वात्मको वः ॥ ५५ ॥ अस्मिन्नेवाभवत्तीर्थे बलः श्रीमान् सुदर्शनः। केशवः सिंहशब्दांतपुरुषः परिषद्बल ॥ ५६ ॥ तयोराख्यानक वक्ष्ये भवत्रयसमाश्रय। इह राजगृहे राजा सुमित्रो नाम गर्वितः ॥ ५७ ॥ महामल्लो बहून् जित्वा लब्धपूजः परीक्षकैः। तृणाय मन्यमानोन्यानमाद्यद्दुष्टदंतिवत् ॥ ५८ ॥ कदाचिद्राजसिंहाख्यः महीनाथो मदोद्धत। तद्दर्पशातनायागात्ता पुरीं मल्लयुद्धवित् ॥ ५९ ॥ सुमित्रस्तेन रंगस्थो निर्जितः सुचिराद्यथा। उत्खातदंतदंतीव तदास्थाद्दतिदुःखितः ॥ ६० ॥ मानभंगेन भग्नः सन्नसौ राज्यभराक्षमः। निर्दुःखवान् सुत राज्ये मानप्राणा हि मानिनः ॥ ६१ ॥ कृष्णाचार्यं समासाद्य श्रुत्वा धर्मं यथोचित। प्रवव्राजातिनिर्विण्णस्तद्धि योग्य मनस्विना ॥ ६२ ॥ क्रमेणोग्रं तप कुर्वन् सिंहनिःक्रीडितादिकं। स्वपराजयसंक्लेशाविति प्रांते व्यचिंतयत् ॥ ६३ ॥ फलं चेदस्ति चर्यायास्तपसोन्यत्र ज-

अथानंतर—इन्हीं धर्मनाथ तीर्थंकरके समयमें श्रीमान् सुदर्शन बलभद्र और सब सभामें बलवान् पुरुषसिंह नामका नारायण हुआ है, इसलिये तीन भव दिखलाकर इन दोनोंका जीवन चरित्र कहते हैं। इसी राजगृह नगरमें राजा सुमित्र राज्य करता था वह बडा ही अभिमानी था, सबसे बडा मल्ल था उसने बहुतसे मल्ल जीत लिये थे इसलिये मल्लोंकी परीक्षा करनेवाले सब लोग उसे पूज्य मानते थे, वह अन्य सबको तृणके समान मानता था और दुष्ट हाथीके समान उन्मत्त हो रहा था ॥ ५६–५८ ॥ किसी एक समय मल्लयुद्धको जाननेवाला और उन्मत्त ऐसा राजसिंह नामका राजा सुमित्रका अभिमान दूर करनेके लिये राजगृही नगरीमें आया ॥ ५९ ॥ दोनोंका बहुत देरतक युद्ध हुआ परतु अंतमें सुमित्र हार गया और जिसप्रकार दांत उखाड लेनेपर हाथी दुखी होता है उसीप्रकार वह बहुत दुखी हुआ ॥ ६० ॥ मान भंगसे दुखी होकर वह राजा सुमित्र राज्य संभालने में भी असमर्थ हो गया इसलिये उसने अपने पुत्रको राज्यसिंहासनपर विठाया सो ठीक ही है क्योंकि अभिमानी पुरुषोंके अभिमान ही प्राण होते हैं ॥ ६१ ॥ कृष्णाचार्यके समीप जाकर उसने यथायोग्य धर्मका स्वरूप सुना और अत्यंत विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोगोंको ऐसा ही करना चाहिये ॥ ६२ ॥ उसने सिंहनिःक्रीडित आदि उग्र तपश्चरण किये परंतु अपना तिरस्कार होनेसे जो संक्लेश हुआ था इसलिये वह अंतमें चिंतवन करने लगा कि यदि दूसरे जन्ममें चर्या और तपश्चरणका फल मिलता है तो मैं अगिले जन्ममें समस्त शत्रुओंको जीतनेवाला महाबलवान् और पराक्रमशाली होऊं ॥ ६३–६४ ॥ इसतरह निदान कर संन्यास धारणकर प्राण छोडे और चौथे स्वर्गमें सात सागरकी आयु पाकर देव हुआ तथा बहुत दिन तक भोगोंका अनुभव करता हुआ सुखसे रहने लगा ॥ ६५ ॥

न्मनि। समस्तान् विद्विषो जेतुं महाबलपराक्रमे ॥ ६४ ॥ तथैव संन्यस्याभूत्र माहेंद्रे सप्तसागर-स्थितिर्देवश्चिरं भोगान् भुंजान सुखमास्थितः ॥ ६५ ॥ द्वीपेस्मिन्मन्दरप्राचि वीतशोकापुरीपतिः। नरादिवृषभो राजाजनि जातमहोदयः ॥ ६६ ॥ भुक्त्वा कोषद्वयापेतं राज्यमूर्जितमैश्वर्यभाक्। सद्यः संजात-निर्वेदोऽत्यजद्दमवरांतिके ॥ ६७ ॥ स घोरतपसा दीर्घं गमयित्वायुरात्मन। सहस्रारं अगामाष्टादशसागरसंस्थिति ॥ ६८ ॥ फल खनिमिषत्वस्य प्राप्या-नारतलोकनात्। प्राणप्रियाणां पर्यंते शांतचेता निजायुषः ॥ ६९ ॥ अस्मिन् खगपुराधीशसिंहसेनमहीपते। इक्ष्वाकोर्विजयायाश्च तनूजोभूत्सुद-र्शनः ॥ ७० ॥ अंबिकायां सुतोस्यैव सुमित्रः केशवोऽभवत्। पंचाग्निधनुरुत्सेधौ दशलक्षासमायुषौ ॥ ७१ ॥ परस्परानुकूल्येन मतिरूपबलान्वितौ। परानाक्रम्य सर्वान्स्वान् रंजयामासतुर्गुणै ॥ ७२ ॥ अविभक्तापि दोषाय भुज्यमाना तयोरभूत्। न लक्ष्मी शुद्धचित्ताना शुद्ध्यै निखिलमप्यलं ॥ ७३ ॥ अथाभून्द्भारते क्षेत्रे विजये कुरुजांगले। हास्तिनाख्यपुराधीशो मधुक्रीडो महीपति ॥ ७४ ॥ राजसिंहचरो लंघिताखिलारातिसंहति। असहंतौ समु-

अथानंतर-इसी द्वीपमें मेरु पर्वतके पूर्वकी ओर वीतशोकापुरी नगरमें राजा नरवृषभ राज्य करता था वह राजा बड़ा ही ऐश्वर्यशाली था उसने बहुत दिन तक राज्य किया बडे भारी सुख भोगे और अंतमें विरक्त होकर दमवर मुनिके समीप दीक्षा धारणकी ॥ ६६-६७ ॥ उसने बहुत दिन तक घोर तपश्चरणकर आयु पूर्णकी और सहस्रार स्व-र्गमें अठारह सागरकी आयु पाकर देव हुआ ॥ ६८ ॥ टिमिकार रहित नेत्रोंका फल निरंतर प्राणप्रिय देवांगनाओंका देखना आदिका अनुभवकर अंतमें शांतचित्तसे आयु पूर्णकी और इसी खगपुर नगरके स्वामी इक्ष्वाकुवंशीय राजा सिंहसेनके उनकी विजया रानीसे सुदर्शन नामका पुत्र हुआ ॥ ६९-७० ॥ उन्हीं राजाके अंबिका रानीसे राजा सु-मित्रका जीव नरायण हुआ। उन दोनों भाइयोंका पैंतालीस धनुषका शरीर था और दश लाख वर्षकी आयु थी ॥ ७१ ॥ उनकी बुद्धि रूप बल आदि सब परस्पर एक दूसरेके अनुकूल थे, वे दोनों ही सबपर आक्रमणकर अपने गुणों से सबको प्रसन्न करते थे ॥ ७२ ॥ वे दोनों भाई विना बांटे ही लक्ष्मीका उपभोग करते थे तथापि वह लक्ष्मी उनके लिये कोई दोष उत्पन्न नहीं करती थी सो ठीक ही है क्योंकि शुद्धचित्तवालोंका सब कुछ शुद्धताकेलिये ही होता है ॥ ७३ ॥ अथानंतर-इसी भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनापुर नगर है उसमें राजा मधुक्रीड राज्य करता था, वह सुमित्रको जीतनेवाले राजसिंहका जीव था उसने सब शत्रुओंके समूह जीत लिये थे, इसलिये बलभद्र और नारायण जो अपने तेजसे बढ रहे थे वे उसे सहन नहीं हुए ॥ ७४-७५ ॥ उस बलवानने करमें बहुमूल्य रत्न मांगने केलिये दंडगर्भ नामके बलवान और मुख्य मंत्रीको भेजा ॥७६॥ जिसप्रकार हाथीकी चिंघार सुनकर सिंह क्रोधित होता है

बंतौ तेजसा बलकेसवौ ॥ ७५ ॥ करं पराद्र्ध्यरत्नानि याचित्वा प्राहिणोद्बली । दंडगर्भामिधानामिशालिनं सचिवाग्रिमं ॥ ७६ ॥ तद्वच श्रवणात्तौ च गवकंठीरवश्रुते । कठीरवौ वा संक्रुद्धौ रुष्याहर्गतितेजसौ ॥७७॥ क्रीडितुं याचते मूढो गर्भव्यालं जड करं । समीपवर्ती चेत्तस्य समवर्ते तु दीयते ॥७८॥ इत्युक्तवती तत्कोपकठोरोक्त्या स सत्वरं । गत्वा तत्कार्यपर्यायमधुक्रीडमजिज्ञपत् ॥ ७९ ॥ सोपि तद्दुर्वच श्रुत्वा कोपारुणितविग्रहः । विग्रहाय सहैताभ्यां प्रतस्थे बहुसाधन ॥ ८० ॥ अभिगम्य तमाक्रम्य युयुधा युद्धविशारद । अछिनत्तस्य चक्रेण शिर सद्य स केशव ॥ ८१ ॥ तौ त्रिखंडाधिपत्येन लक्ष्मीमनुबभूवतु । अवधिस्थानमापन्न· केशवो जीवितावधौ ॥ ८२ ॥ हलायुधोपि तच्छोकाद्धर्मतीर्थकरं श्रित । प्रव्रज्य प्रोद्धुताशेष प्राप्नोति स्म परं पदं ॥ ८३ ॥ प्रतिहतपरसैन्यौ मानशौंडौ प्रचंडौ फलितसुकृतसारौ तावखंडत्रिखंडौ । किल खलविधिनैवं पश्य विश्लेषिनो धिग् दुरितपरवशत्व केशवस्यैव मोहात् ॥८४॥ प्राग्भूभुज प्रथितराजगृहे सुमित्रो माहेंद्रकल्पजसुरश्च्युतवांस्ततोस्मिन् । भूपोऽभवत्खगपुरे पुरुषादिसिंह पश्चात्स सप्तममहीं च जगाम भीमां

उसीप्रकार उस मंत्रीकी बात सुनकर वे प्रताप शाली दोनों ही भाई बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि वह मूर्ख खेलनेके लिये सापोंसे भरा हुआ कर मागता है सो ठीक है यदि वह समीप आवेगा तो ऐसा कर उसे दिया जायगा ॥ ७७–७८ ॥ इसप्रकार क्रोधसे कठोर वाक्य कहे । वह दूत शीघ्र ही लौटकर घर पहुंचा और सब बातें मधुक्रीडसे जाकर कहीं ॥ ७९ ॥ जिसका शरीर क्रोधसे लाल हो रहा है ऐसा वह मधुक्रीड भी उन कठोर वचनोंको सुनकर बहुतसी सेना लेकर उन दोनोंमे युद्ध करनेके लिये निकला ॥ ८० ॥ युद्ध करनेमें चतुर ऐसा नारायण भी उसके सामने आया उसपर आक्रमण किया बहुत देरतक युद्ध किया और अंतमें उसीके आये हुए चक्रसे उसका सिर काट डाला ॥ १ ॥ वे दोनों भाई तीन खडके स्वामी होकर लक्ष्मीका अनुभव करने लगे नारायण आयु पूरीकर मरकर सातवें नरक गया तथा बलभद्रने नारायणके मरनेका शोक किया, अंतमें धर्मनाथ तीर्थंकरके समीप जाकर दीक्षा धारणकी और समस्त कर्मोंको नाशकर मोक्षपद पाया ॥ ८३ ॥ देखो दोनों ही भाई शत्रुओंको नाश करनेवाले थे, बडे अभिमानी थे, बडे प्रतापी थे, दोनोंको ही पुण्यकर्म खूब फला था और दोनों ही तीन खंडके स्वामी थे परंतु दुष्ट कर्मोंके उदयसे दोनों ही अलग अलग हुए और मोहकर्मके उदयसे पापोंका फल केवल नारायणको ही मिला इसलिये पापकर्मोंको भी बार बार धिक्कार हो ॥ ८४ ॥ पुरुषसिंह नारायण पहिले राजगृह नगरमें सुमित्र राजा था, फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे चयकर खगपुरमें पुरुषसिंह राजा हुआ और फिर मरकर भयानक सातवें नरकमें नारकी हुआ ॥ ८५ ॥ मधुक्रीड प्रतिनारायण पहिले मदोन्मत्त हाथीको भी वश करनेवाला सिंह नामक राजा हुआ

॥ ८५ ॥ प्रोद्यद्दंतिदमनोजनि राजसिंहो भ्रांत्वा चिरं भववनेषु विनष्टमार्गः । दृष्टानुमार्गमजनिष्ट स हास्तिनाख्ये क्रीडाक्षरांतमधुराप गतिं दुरंता ॥ ८६ ॥ नराद्यृषभ पुरे विदितवीतशोके महीट् तपश्चिरमुपास्य घोरमभवत्सहस्रारके । तत खगपुरे बल क्षयितशत्रुपक्षोगमत् क्षमैकनिलयो विलीनविलय सुखं क्षायिकं ॥ ८७ ॥ तत्तीर्थस्यांतरे चक्री तृतीयो मघवानभूत् । आतृतीयभवात्तस्य पुराणं प्रणिगद्यते ॥ ८८ ॥ वासुपूज्यजिनेशस्य तीर्थेभून्नृपतिर्महान् । नाम्ना नरपतिर्भुक्त्वा भोगान् भोग्यसमर्पितान् ॥ ८९ ॥ वैराग्यकाष्ठामारुह्य कृतोत्कृष्टतपा व्यसु । ग्रैवेयकेऽभवत्पुण्यादहमिंद्रेषु मध्यमे ॥ ९० ॥ सप्तविंशतिवार्ध्यायुर्दिव्यभोगान्मनोहरान् । अनुभूय ततश्च्युत्वा धर्मतीर्थकरांतरे ॥ ९१ ॥ कोशले विषये रम्ये साकेतनगरीपते । इक्ष्वाको स सुमित्रस्य भद्रायाश्च सुतोऽभवत् ॥ ९२ ॥ मघवान्नाम पुण्यात्मा भविष्यन् भरताधिप । पञ्चलक्षासमाजीवी कल्याणपरमायुषा ॥ ९३ ॥ सार्द्धद्विचत्वारिंशच्चापोच्छ्रिति कनकद्युति । षट्खंडमडिता पृथ्वीं प्रतिपाल्य प्रतापवान् ॥ ९४ ॥ चतुर्दशमहारत्नभूषणो निधिनायक । नृखेचरसुराधीशान्नमयन् क्रमयोर्युग

था फिर धर्ममार्गको छोडकर बहुत दिनतक संसाररूपी वनमें परिभ्रमण किया, तदनंतर धर्ममार्गको ग्रहण कर हस्तिनापुरमें मधुक्रीड नामका प्रतिनारायण राजा हुआ और अंतमें नरकदुर्गति में पहुंचा ॥ ८६ ॥ सुदर्शन बलभद्र पहिले प्रसिद्ध वीतशोक नगरमें नरवृषभ राजा था, बहुत दिनतक घोर तपश्चरणकर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ वहांसे आकर खगपुर नगरमें समस्त शत्रुओंको जीतनेवाला बलभद्र हुआ और फिर उत्तम क्षमा धारणकर और समस्त कर्मोंको नष्टकर क्षायिक सुख अर्थात् मोक्षसुख जा प्राप्त किया ॥ ८७ ॥

अथानंतर—इन्हीं तीर्थंकरके समयमें तीसरा मघवान् चक्रवर्ती हुआ है इसलिये तीन भव दिखलाकर उसका भी पुराण कहते हैं । ॥ ८८ ॥ वासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें एक नरपति नामका बडा भारी राजा हुआ था उसने भाग्यके उदयसे प्राप्त हुए अनेक तरहके भोग भोगे थे ॥ ८९ ॥ किसी एकदिन अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ इसलिये दीक्षा लेकर उसने उत्कृष्ट तपश्चरण किया और आयु पूरीकर पुण्य कर्मके उदयसे मध्यम ग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुआ ॥ ९० ॥ वहांपर उसने सत्ताईस सागरकी आयु पाकर मनोहर दिव्य भोगोंका उपभोग किया और वहांसे चयकर धर्मनाथ तीर्थंकरके समय मनोहर कौशल देशके अयोध्या नगरके इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुमित्रके उनकी भद्रा रानीसे मघवान नामका पुत्र हुआ, वह बडा ही पुण्यवान् था, समस्त भरतक्षेत्रका होनहार स्वामी था, सदा कल्याण देनेवाली पांच लाख वर्षकी उसकी आयु थी साढे व्यालीस धनुष ऊंचा शरीर था और सुवर्णके समान शरीरका वर्ण था । उस प्रतापी मघवानने राज्य पाकर छह खंडोंसे सुशोभित ऐसी भरतकी पृथ्वीका पालन किया ॥ ९१–९४ ॥ चौदह महा-

॥ ९५॥ स्वोक्तप्रमाणदेवीभिरनुभूय यथेप्सितं । दशागभोगान् भूयिष्ठान् सुनिष्ठितमनोरथ ॥ ९६ ॥ सुधीर्मनोहरोद्याने स कदाचिद्यदृच्छया । विलोक्याभयघोषाख्यं केवलावगमद्युतिं ॥ ९७ ॥ त्रि परीत्याभिवन्द्यैनं श्रुत्वा धर्मं तदन्तिके । विदित्वा तत्त्वसद्भाव विरज्य विषयेष्वलं ॥ ९८ ॥ प्रियमित्राय पुत्राय दत्वा साम्राज्यसंपद । स बाह्याभ्यन्तरमथास्त्यक्त्वा संयममाददे ॥ ९९ ॥ शुद्धश्रद्धानचारित्रः श्रुतसंपत्समन्वितः । द्वितीयशुक्लध्यानेन घातित्रयविघातकृत ॥ १०० ॥ नवकेवललब्धीशो धर्मवद्धर्मदेशनात् । विनेयनायकान्नीत्वा निर्वाणपदवीं परा ॥ १०१ ॥ ध्यानद्वयसमुन्मूलिताघातिकचतुष्कः । पुण्यापुण्यविनिर्मोक्षादक्षयं मोक्षमाश्रित ॥ १०२ ॥ नरपतिरिह नाम्ना वासुपूज्यस्य तीर्थे सशमगुरुचरित्रेणाहमिंद्रो महर्द्धि । अभवदखिलपुण्यश्चक्रवर्तीतृतीयस्तदनु च मघवाख्यो मुख्यसौख्यं समापत ॥ १०३ ॥ समनंतरमेतस्य विनीतानगरेशिनः । नृपस्यानंतवीर्यस्य सूर्यवंशशिखामणे

रत्न ही उसके आभूषण थे वह निधियोंका स्वामी था, मनुष्य विद्याधर और देव सबके राजाओंको उसने अपने दोनों चरणोंमें नवाया था ।' ९५ ॥ ऊपर कहे हुए प्रमाणके समान अर्थात् छयानवे हजार रानियोंके साथ इच्छानुसार दश तरहके अनेक भोगोपभोगोंका अनुभव करता था और सबतरह अपने मनोरथोंको पूर्ण करता था ॥ ९६ ॥ किसी एक दिन वह बुद्धिमान् अपनी इच्छानुसार मनोहर नामके उद्यानमें गया, वहांपर उसने केवलज्ञान रूपी कांतिसे सुशोभित अभयघोष नामके जिनेंद्रके दर्शन किये ॥ ९७ ॥ तीन प्रदक्षिणा दीं, वंदनाकी, समीप बैठकर धर्मका स्वरूप सुना और तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जानकर विषयोंसे विरक्त हुआ ॥ ९८ ॥ उसने अपने पुत्र प्रियमित्रके लिये राज्यकी विभूति दी और बाह्य अभ्यंतर परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारण किया ॥ ९९ ॥ शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध चारित्र धारण किया सम्यग्ज्ञानरूपी संपदा धारणकी और दूसरे शुक्लध्यानसे घातिया बाकीके तीन घातिया कर्मोंका नाश किया ॥ १०० ॥ तदनंतर नौ क्षायिक लब्धियोंका स्वामी हुआ, धर्मनाथके समान धर्मका उपदेश दिया और अनेक अच्छेअच्छे शिष्योंको उत्तम मोक्षस्थानमें पहुंचाया ॥ १०१ ॥ अंतके दोनो शुक्लध्यानोंसे चारों अघातिया कर्म नष्ट किये और पुण्य पापरूप सब कर्मोंको नष्टकर अविनाशीक मोक्षपद प्राप्त किया ॥ १०२ ॥ तीसरा चक्रवर्ती मघवान् पहिले वासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें नरपति राजा था फिर शांतता और उत्तम चारित्र धारणकर ऋद्धिको धारण करनेवाला अहमिंद्र हुआ, वहांसे आकर बड़ाभारी पुण्यवान मघवान नामका तीसरा चक्रवर्ती हुआ और फिर सदाके लिये मोक्षरूप सुखका अनुभव करने लगा ॥ १०३ ॥

अथानंतर—मघवान चक्रवर्तीके बाद ही सनत्कुमार चक्रवर्ती हुए हैं वे अयोध्यानगरके राजा सूर्यवंशके शिरो-

॥ १०४ ॥ सहदेव्याश्च संभूत कल्पादागत्य षोडशात् । सुनु सनत्कुमाराख्य प्रियश्चक्रांकितश्रियः ॥ १०५ ॥ लक्षत्रयायु पूर्वोक्तचक्रवर्तिसमुच्छ्रितिः । चामीकरछविः स्वेच्छावशीकृतवसुधर ॥ १०६ ॥ दशांगभोगसंभोगयोगसतर्पितेंद्रियः । समर्थितार्थिसंकल्पानल्पकल्पमहीरुह ॥ १०७ ॥ हिमवत्सागराघातमहीमध्यमहीभुजां । आधिपत्यं समातन्वन्नन्वभूदधिकां श्रिय ॥ १०८ ॥ प्रयात्येवं सुखेनास्य काले सौधर्मसंसदि । सनत्कुमारदेवेंद्ररूपस्यास्त्यत्र जित्वर ॥ १०९ ॥ कोपीति देवैः संपृष्ट सौधर्मेंद्रोऽब्रवीदिद । सनत्कुमारश्चक्रेशो वाढ सर्वांगसुंदरः ॥ ११० ॥ स्वप्नेपि केनचित्तादृग्दृष्टपूर्वं कदाचन । मास्तीति तद्वच श्रुत्वा सद्यः संजातकौतुकौ ॥ १११ ॥ द्वौ देवौ भुवमागत्य तद्रूपालोकनेच्छया । दृष्ट्वा त शक्रसंप्रोक्त सत्यमित्याप्तसमदौ ॥ ११२ ॥ सनत्कुमारचक्रेशं निजागमनकारण । बोधयित्वा सुधीश्चक्रिन् श्रृणु चित्तं समादधन् ॥ ११३ ॥ यदि रोगजरादुःखमृत्यवो न स्युरत्र ते । सौंदर्येण त्वमत्र-

मणि महाराज अनंतवीर्य और रानी सहदेवीके पुत्र थे, सोलहवें स्वर्गमे आकर यहां उत्पन्न हुए थे, वे सबको प्रिय थे और उनकी लक्ष्मीके चक्रका चिन्ह था अर्थात् चक्रवर्ती थे ॥१०४–१०५॥ इनकी आयु तीन लाख वर्षकी थी और शरीरकी ऊंचाई साढे व्यालीस धनुष थी, शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी और सब पृथ्वी अपने आप ही उनके वश होगई थी ॥ १०६ ॥ दशप्रकार भोगोंका उपभोगकर वे इंद्रियोंको तृप्त करते थे और मांगनेवालोंको संकल्पसे भी बहुत अधिक धन देनेसे कल्पवृक्षसे भी वढकर जान पडते थे ॥ १०७ ॥ हिमवान् पर्वतसे लेकर समुद्रपर्यंतकी सब पृथ्वीके राजाओंपर अपना स्वामीपना नियत करते हुए वे बडी भारी लक्ष्मीका उपभोग करते थे ॥ १०८ ॥ इसतरह सुखपूर्वक उनका समय व्यतीत हो रहा था । किसी एक दिन सौधर्म इंद्रकी सभामें देवोंने पूछा कि क्या कोई सनत्कुमार इंद्रके रूपको जीतनेवाला किसीका रूप है ? तब सौधर्म इंद्रने कहा कि सनत्कुमार चक्रवर्ती सबसे अधिक रूपवान है उसका प्रत्येक अंग सुंदर है ॥ १०९--११० ॥ ऐसा रूप पहिले स्वप्नमें भी कभी किसीने नहीं देखा है । सौधर्म इंद्रकी यह बात सुनकर दो देवोंको वडा ही कौतुक हुआ और चक्रवर्तीका रूप देखनेकी इच्छाकर वे दोनों ही देव पृथ्वी पर आये, सनत्कुमारको देखकर सौधर्म इंद्रके कहेको उन्होंने सच समझा और वे बडे ही प्रसन्न हुए ॥ १११–११२ ॥ चक्रवर्तीसे अपने आनेका कारण कहा और समझाकर कहने लगे कि हे बुद्धिमान चक्रवर्ती ! चित्त देकर सुनो ! ॥ ११३ ॥ इस संसारमें यदि रोग, बुढापा, दुःख और मृत्यु न हों तो आप अपनी सुंदरतासे इस संसारमें जिनेंद्र देवको भी उल्लंघन करदेते ॥ ११४ ॥ इसतरह सुंदर वचन कहकर वे दोनों ही देव अकस्मात् अपने स्थानको चले गये और काललब्धिके समान ही मानो उन वचनोंसे उन महाराजाधिराजको आत्मज्ञान हुआ ॥

वमतिशेषे जिनानपि ॥ ११४ ॥ इत्युक्त्वा तौ सुरौ सूक्तं स्वधाम सहसा गतौ । काललब्ध्येव तद्वाचा प्रबुद्धो भूभुजा पति ॥ ११५ ॥ रूपयौवनसौंदर्यसंपत्सौख्यादयो नृणां । विद्युल्लतावितानाच्च मन्ये प्रागेव नश्वराः ॥ ११६ ॥ इत्वरी संपदस्त्यक्त्वा जित्वरोहमिहैनसा । सत्वरं ननुमुज्झित्वा गत्वरोस्मीत्यकायता ॥ ११७ ॥ स्मरन् देवकुमाराख्ये सुते राज्यं नियोज्य सः । शिवगुप्तजिनोपान्ते दीक्षां बहुभिराददे ॥ ११८ ॥ पचमि सद्व्रतं पूज्य पा क्षितेर्याक्षिपंचक । षडावश्यकवश्यात्मानिरुद्धेंद्रियसंतति ॥ ११९ ॥ निश्चेल कृतभूवासो दंतधावनवर्जित । उत्थायैवैकदाभोजी स्फुरन्मूलगुणैरलं । त्रिकालयोगवीरासनैकपार्श्वादिभाषितैः । उत्तरैश्च गुणैर्नित्य यथायोग्य समाचरन् ॥ १२१ ॥ क्षमावान् क्ष्माविभागो वा वारि वा श्रितताफ्नुत् । गिरीश इव नि कंपो नि सगः परमाणुवत् ॥ १२२ ॥ निर्लेपोंबुदमार्गो वा गंभीरो वापगापति । शशीव सर्वसह्लादी भानुमानिव भास्कर ॥ १२३ ॥ वाह्याभ्यंतरसशुद्धः सुधौतकलधौतवत् । आदर्शवत्समादर्शी सकोची कूर्मसन्निभ ॥ १२४ ॥ अहिर्वास्वकृतावास करीवाशब्दयानक । शृगालवत्पुरालोकी म-

११५॥ वे सोचने लगे कि मनुष्योंका रूप, यौवन, सुंदरता, संपदा आदि सब विजलीकी लताके समूहके समान विनश्वर हैं ऐसा मैं पहले ही से मानता हूं इसलिये मैं इस सब संपदाको छोडकर इस संसारके पापोंको जीतूंगा और शीघ्र ही शरीरको छोडकर शरीररहित मुक्त हो जाऊंगा । ऐसा विचार करते हुये उन्होंने अपने पुत्र देवकुमारको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ शिवगुप्त जिनराजके समीप दीक्षा धारणकी ॥ ११६–११८ ॥ वे पांचो महाव्रतोंसे पूज्य हुए, ईर्यासमिति आदि पांचों समितियोंका पालन करने लगे, छह आवश्यकोंसे अपना आत्मा वश किया, इंद्रियोंका समूह मन वश किया और, सब तरहके परिग्रहोंका त्याग कर दिया। वे पृथ्वीपर शयनआसन करते थे दतौन करनेके त्यागी थे, खडे होकर एकवार भोजन करते थे इसतरह वे सब मूलगुणोंसे अच्छीतरह सुशोभित थे ॥ ११९–१२० ॥ वे तीनों समय योग धारण करते थे, वीरासन, एक करवटसे सोना आदि शास्त्रोंमें कहे हुए अनेक तरहके तपश्चरण करते थे और यथायोग्य रीतिसे उत्तरगुणोंको भी सदा पालन करते थे ॥ १२१ ॥ वे इसप्रकार क्षमाको धारण करते थे मानों पृथ्वीका एक टुकडा ही हो, जल अथवा अमृतके समान संतापको दूर करनेवाले थे, सुमेरु पर्वतके समान अचल थे और परमाणुके समान परिग्रहरहित थे ॥ १२२ ॥ वे आकाशके समान निर्लेप थे, समुद्रके समान गंभीर थे, चद्रमाके समान सबको प्रसन्न करनेवाले थे और सूर्यके समान तेजस्वी, वा दैदीप्यमान थे ॥ ११३ ॥ शुद्ध किये हुए सुवर्णके समान वे वाह्य अभ्यंतर सब तरहसे शुद्ध थे, दर्पणके समान सबको समान देखनेवाले थे और कछवाके समान संकोची वा इंद्रियोंको संकुचित करनेवाले थे ॥ १२४ ॥ वे सर्पके समान चाहे जहां निवास करते थे, हाथी

शूरो राजसिंहवत् ॥ १२५ ॥ सदा- विनिद्रो मृगवत्सोढाशेषपरीषह । उपसर्गसहो विक्रियाद्युक्तविविधर्द्धिक । १२६ ॥ क्षपकश्रेणिमारुह्य ध्यानद्वयससाधन । घातिकर्माणि निर्धूय कैवल्यमुदपादयन् ॥ १२७ ॥ पुनर्विहृत्य सद्धर्मदेशनाद्विषयान् बहून् । विनेयान् मुक्तिसन्मार्गदुर्गं दुर्मार्गवर्तिन ॥ १२८ ॥ पश्चादन्तर्मुहूर्तायुर्योगं रुद्ध्वा त्रिभेदक । सर्वकर्मक्षयात्प्राप्यमावाप्मोक्षमक्षय ॥ १२९ ॥ जित्वा विचित्रवपुषेंद्रंसनत्कुमारमाक्रम्यविक्रमबलेन दिशां स चक्रं । चक्रेण धर्मविहितेन हताघचक्रो दिश्यात्स व श्रियमिहाशु सनत्कुमारः ॥ १३० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे धर्मतीर्थंकर–सुदर्शन-पुरुषसिंहमधुक्रीडमघवत्-

सनत्कुमारपुराणं-परिसमाप्तं एकषष्टितम पर्व ॥ ६१ ॥

के समान शब्दरहित गमन करते थे मृगालके समान आगेके मार्गको देखनेवाले थे और राजसिंहके समान शूरवीर थे ॥ १२५ ॥ वे हिरणोंके समान सदा जगते रहते थे, समस्त परिषहोंको सहन करनेवाले थे अनेक तरहके उपसर्ग सहते थे और विक्रिया आदि शास्त्रोंमें कही हुई अनेक ऋद्धियोंसे सुशोभित थे ॥ २२६ ॥ उन्होंने क्षपक श्रेणी चढकर शुक्लध्यानके पहिले दो ध्यानोंसे घातिया कर्मोंको नष्ट किया और केवलज्ञान उत्पन्न किया ॥ १२७ ॥ तदनतर बहुत देशोंमें विहारकर धर्मोपदेश दिया और खोटे मार्गमें चलनेवाले लोगोंकी रक्षा करनेके लिये किलेके समान मोक्षके उत्तम मार्गको अनेक शिष्योंके लिये बतलाया ॥ १२८ ॥ अंतमें जब आयु अंतर्मुहूर्तकी रह गई तब तीनोंप्रकारके योगोंका निरोधकर तथा समस्त कर्मोंको नष्टकर अविनाशीक मोक्ष प्राप्तकी ॥ १२९ ॥ जिन्होंने अपने विचित्र शरीरसे सनत्कुमार इंद्रको भी जीता, अपने पराक्रम और बलसे सब दिशाओंपर आक्रमण किया और धर्मचक्रसे समस्त कर्म समूहोंको नाश किया ऐसे सनत्कुमार इस संसारमें तुम लोगोंको शीघ्र ही लक्ष्मीके देनेवाले हों ॥ १३० ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें धर्मनाथ तीर्थंकर सुदर्शन बलभद्र पुरुषसिंह नारायण मधुक्रीड प्रतिनारायण और मघवा सनत्कुमार चक्रवर्तीके पुराणको कहनेवाला यह इकसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥

अथद्विषाष्टितमं पर्व ।

बुध्वा सपर्ययं सर्वं बोध्याभावाद्भवच्छिदः । यस्यावबोधो विश्रांत स शांतिः शांतयेऽस्तु वः ॥ १ ॥ वक्तृश्रोतृकथाभेदान् वर्णयित्वा पुरा बुध' । पश्चाद्धर्मकथा ब्रूयाद् गभीरार्थं यथार्थदृक् ॥ २ ॥ विद्वत्त्व सच्चरित्रत्व दयालुत्व प्रगल्भता । वाक्सौभाग्येंगितज्ञत्वे प्रश्नक्षोदसहिष्णुता ॥ ३ ॥ सामुख्यं लोकविज्ञान ख्यातिपूजाश्रमीक्षण । मिताभिधानमित्यादि गुणा धर्मोपदेष्टरि ॥ ४ ॥ तत्त्वज्ञेप्यपचारित्रे वक्तर्येतत्कथ स्वय । न चरेदिति तत्प्रोक्तं न गृह्णति पृथग्जनाः ॥ ५ ॥ सच्चारित्रेप्यशास्त्रज्ञे वक्तर्यल्पश्रुतोद्धता । सहासयुर्क्त सन्मार्गे विदधत्यवधीरणा ॥ ६ ॥ विद्वत्त्वसच्चरित्रत्वे मुख्य वक्तरि लक्षण । अबाधितस्वरूपं वा जीवस्य ज्ञानदर्शने ॥ ७ ॥ युक्तमेतदयुक्त चेत्युक्त सम्यग्विचारयन् । स्थाने कुर्वन्नुपालंभ भक्तासूक्त समाददत् ॥८॥ असारप्राग्प्रहीता-

अथ वासठवां पर्व ।

अथानंतर—संसारको नाश करनेवाले जिन शांतिनाथ भगवानने पर्यायसहित सब पदार्थोंको जान लिया और जाननेयोग्य पदार्थोंके अभाव होनेसे जिनका ज्ञान विश्रांतरूप है ऐसे शांतिनाथ तुम लोगोंको शांति दें ॥ १ ॥ वस्तुओंको यथार्थरीतिसे देखनेवाले बुद्धिमानको पहिले वक्ता श्रोता और कथाके भेदोंको कहकर पीछे गमीर अर्थसे भरीहुई धर्मकथा कहना चाहिये ॥ २ ॥ विद्वान होना, श्रेष्ठ चारित्र धारण करना, दयालु होना, बुद्धिमान होना, बोलनेमें चतुर होना, दूसरोंके इशारोंको समझलेना अनेक तरहके प्रश्नोंके उपद्रवको सहन करना, मुह सुंदर होना, व्यवहार चतुर होना, प्रसिद्ध तथा पूज्य होना, और परिमित वचन कहना इत्यादि धर्मोपदेश देनेवालेके गुण हैं ॥ ३–४ ॥ यदि वक्ता तत्त्वोंका जानकार होकर भी दुराचारी होगा तो भी वह अपना काम नहीं कर सकेगा क्योंकि जब वह स्वयं सदाचरण पालन नहीं करेगा तो अन्य लोग भी उसके कहे हुएको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ यदि वक्ता सदाचारी होकर भी शास्त्रोंका जानकार न होगा तो वह थोडेसे शास्त्रज्ञानसे उद्धत हुए लोगोंसे ऊपर कहे हुए मोक्षमार्गमें हंसीके साथ तिरस्कार करावेगा ॥६॥ इसलिये जिसप्रकार जीवके ज्ञान और दर्शन ये दो अबाधित लक्षण हैं उसीप्रकार विद्वान होना और सदाचारी वा सम्यक्चारित्रवान होना ये दो वक्ताके मुख्य लक्षण हैं ॥ ७ ॥ शिष्य ऐसा होना चाहिये जो यह योग्य है अथवा अयोग्य है ऐसा विचार करे, योग्यको ग्रहण करे, असारका त्याग करे, विशेष बातको आदरके साथ ग्रहण करे, यदि कदाचित् वक्ता भूलजाय तो तो हसे नहीं, गुरुका भक्त हो, क्षमावान हो, जिसे संसारसे डर लगता

र्थविशेषाविहितादरः । अहसन्स्खलितस्थाने गुरुभक्त क्षमापर ॥ ८ ॥ ससारभीरुराप्रोक्तवाग्धारणपरायण । शुकमृद्धंसप्रोक्तगुण श्रोता निगद्यते ॥१०॥ जीवाजीवादितत्वार्थो यत्र सम्यग्निरूप्यते । तनुसंसृतिभोगेषु निर्वेदश्च हितैषिणां ॥ ११ ॥ दानपूजातप:शीलविशेषाश्च विशेषत । बधमोक्षौ तयोर्हेतुफले चासुभृता पृथक् ॥ १२ ॥ घटामटति युक्त्यैव सदसत्त्वादिकल्पना । ख्याता प्राणिदया यत्र मातेव हितकारिणी ॥ १३ ॥ सर्वसगपरित्यागाद्यत्र यात्यमिनः शिव । तत्त्वधर्मकथा सा स्यान्नाम्ना धर्मकथापरा ॥ १४ ॥ एव पृथग्विनिर्दिश्य वक्त्रादित्रयलक्षण । अत परं प्रवक्ष्यामि शांतीशचरित महत् ॥ १५ ॥ अथास्य द्वीपनाथस्य जबूद्वीपमहीपतेः । लवणांभोधिनीलाभो लसद्विपुलवासस ॥१६ ॥ वक्त्रलीलां दधद्राष्ट्रममीष्ट भरताह्वय । षट्खडमडित वार्द्धिहिमवन्मध्यसंश्रित ॥ १७ ॥ भोगभूभूतभोगादिदशागश्चक्रिणामपि । तत्र तीर्थकृता वैश्य सिद्धिश्चाघातिसंक्षयात् ॥ १८ ॥ तस्मात्तन्नाकलोकाच्च वरिष्ट वर्ण्यते बुधै । ऐरावतसम वृद्धिहानिभ्यां परिवर्तनात् ॥ १९ ॥ मध्ये तस्य गिरिर्भाति भरतार्द्धविभागकृत् । पूर्वापरायतस्तुंगो यशोराशिरिवोज्वल: ॥ २० ॥

हो, और जो वचनोंको धारण करनेमें तत्पर हो अर्थात् जिसकी स्मरणशक्ति अच्छी हो तथा तोता मिट्टी और हंसके गुण जिसमें हों वह श्रोता गिना जाता है ॥ ८–१ ॥ इसी तरह जिसमें जीव अजीव आदि तत्त्वोंका निरूपण अच्छी तरह किया गया हो, हित चाहनेवालोंकेलिये शरीर संसार और भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करानेवाला हो, जिसमें दान पूजा तप और शील आदिके विशेष सब विशेष रीतिसे वर्णन किये गये हों, जीवोंके बंध मोक्ष तथा बंध मोक्षके कारण और फल अलग अलग निरूपण किये गये हों जिसमें अच्छे और बुरे वादियोंकी कल्पना युक्तिसे ही संघटित होती हो, जिसमें माताके समान हित करनेवाली जीवोंकी दयाका निरूपण किया गया हो, और जिसमें जीव सब तरहका परिग्रह छोडकर ही मोक्ष जा सकते हैं ऐसा निरूपण किया गया हो वह तत्त्वधर्मकथा कहलाती है इसका दूसरा नाम धर्मकथा भी है ॥ ११–१४ ॥ इसतरह वक्ता श्रोता और कथाका अलग अलग लक्षण कहकर आगे श्रीशांतिनाथका विस्तृत चरित्र कहते हैं ॥ १५ ॥

अथानंतर–लवणमहासागरका नीला जल ही जिसके बडे वस्त्रोंकी शोभा बढा रहा है और जो सब द्वीपोंका स्वामी है ऐसे इस जंबूद्वीपमहाराजके मुखकी शोभाको धारण करता हुआ, सब तरहके अभीष्ट देनेवाला, छह खंडोंसे सुशोभित और हिमवान् पर्वत तथा समुद्रके बीचमें भरत नामका एक क्षेत्र है ॥ १६–१७ ॥ उसमें भोगभूमि, राजाओंके भोग, दश तरहके चक्रवर्तीके भोग तीर्थकरोंका ऐश्वर्य और अघातिया कर्मोंका नाशकर मोक्षकी प्राप्ति भी होती है ॥ १८ ॥ इसलिये ही विद्वान् लोग उसे स्वर्ग लोकसे भी अच्छा बतलाते हैं, उसमें ऐरावत क्षेत्रके समान हानि और वृद्धि होती रहती है ॥ १९ ॥ उस भरतक्षेत्रके बीचमें एक पर्वत है जो कि भरतक्षेत्रके दो बराबर भाग करता है, जो

स्वर्गलोकजयाज्जाततोषाया वसुधाश्रियः । पुंजीभूत प्रहासो वा राजते राजताचल ॥ २१ ॥ सफला सर्वदा वृष्टिर्ममोपरि न जातुचित् । युष्माकमिति शैलेंद्रान् हसतीव स्वतेजसा ॥ २२ ॥ चलस्वभावे कुटिले जलाद्ये जलधिप्रिये । प्रहास्यादिति नद्यौ योऽवमीदिति जुगुप्सया ॥२३॥ देवविद्याधरैः सेव्यः सदा स्वाश्रयवर्तिभिः । सर्वेंद्रियसुखस्थानमेष चक्रिणमन्वगात् ॥ २४ ॥ अपाच्यां चक्रवालात् पूः श्रेण्यां रथनूपुरं । स्वर्गलोकमिव व्योम कुर्वती तत्र केतुभिः ॥ २५ ॥ वेष्टिता रत्नशालेन या पयोधरचुंबिता । रत्नवेदिकयेवेय जंबूद्वीपवसुंधरा ॥ २६ ॥ वर्द्धते यत्र धर्मार्थकामा संहर्षणादिव । यस्या दरिद्रशब्दस्य बहिरंगार्थनिह्नुतिः ॥ २७ ॥ प्रमाणनयनिक्षेपानुयोगैरन्यदुर्गमै । पदार्थानां परीक्षेव गोपुरैर्यावभासते ॥ २८ ॥ अशीलभूषणा यत्र न सति कुलयोषितः । वाचो जिनेंद्रविद्यायामिव चारित्रदेशिकाः ॥ २९ ॥ ज्वलनादिजटी तस्या पति खगपतिः कृती । मणीनामिव वाराशिगुणिनामाकरोभवत्

पूर्व पश्चिम बहुत लंबा है बहुत ऊंचा है और यशके समूहके समान उज्वल है ॥२०॥ वह पर्वत रजतमय है और ऐसा अच्छा जान पडता है मानों स्वर्गलोकको जीत लेनेसे पृथ्वीरूपी स्त्रीको जो संतोष हुआ है और उससे जो उसकी हंसी निकली है वही एक जगह इकट्ठी हो गई हो ॥२१॥ अथवा वह पर्वत ऐसा जान पडता था मानों 'मुझपर जो वर्षा होती है वह सदा सफल होजाती है परंतु तुम्हारे ऊपरकी वर्षा कभी सफल नहीं होती है' यही कहकर अपने तेजसे सुमेरु पर्वतकी ओर हंस रहा हो ॥ २२॥ उसकी गुफाओंमेंसे जो दो (गंगासिंधु) नदियां निकली थीं उनसे वह ऐसा जान पडता था मानो इन दोनों नदियोंका स्वभाव चंचल है, दोनों कुटिल हैं जलरूप हैं अथवा जड हैं और समुद्रकी प्रिया हैं इसलिये ही ग्लानि करके अपने गुफारूपी मुखसे उसने वमन कर दीं हों ॥ २३ ॥ उसके आश्रय रहनेवाले देव विद्याधर सदा उसकी सेवा किया करते थे तथा वह सब इंद्रियोंको सुख देनेका स्थान था इसलिये वह चक्रवर्तीका भी अनुकरण करता था ॥२४॥ उसके पश्चिमकी ओर चक्रवालांत रथनूपुर नामका मुख्य नगर था वह नगर अपनी ध्वजाओंसे आकाशको भी स्वर्गलोक बना रहा था ॥ २५ ॥ बादलोंको चुंबन करनेवाले रत्नोंके शालसे घिरी हुई यह जंबूद्वीपकी पृथ्वी ऐसी जान पडती थी मानों रत्नोंकी बनी हुई वेदीसे ही घिरी हो ॥ २६ ॥ वहांपर धर्म, अर्थ, काम ये तीनों ही पुरुषार्थ एक दूसरेको धक्का देकर बढ रहे थे, और दरिद्र शब्द बाहरसे भी कहीं नहीं दिखाई पडता था ॥ २७ ॥ जिसप्रकार अन्यमतोंमें अत्यंत कठिन ऐसे प्रमाण, नय निक्षेप और अनुयोगोंके द्वारा पदार्थोंकी परीक्षा अच्छी लगती है उसीप्रकार यह नगर भी बडे २ चार दरवाजोंसे बहुत ही अच्छा जान पडता था ॥ २८ ॥ जिसप्रकार जिनेंद्र देवकी विद्यामें चारित्रका उपदेश देनेवाले ही वचन होते हैं उसीप्रकार उस नगरमें वे ही कुलीन स्त्रियां थीं जो शीलरूप आभूषणों-

॥ ३० ॥ प्रतापाद्विद्विषो यस्य मम्लुर्वार्कस्य पल्लवाः । वृष्ट्याऽवर्द्धत वल्लर्यो वा नीत्या सफला प्रजा ॥ ३१ ॥ तेन स्थाने यथाकालं शालयो वा सुयोजिता । सामादय सदोपायाः प्राफलन् बहुभोगदाः ॥ ३२ ॥ अतीतान् विश्वभूपेशान् संख्याभेदानिवोत्तर । गुणस्थानकवृद्धिभ्यां विजित्य स महानभूत् ॥ ३३ ॥ उभयायत्तसिद्धित्वाद् दैवपौरुषयोगतं । कोपोदयव्यपेतत्वात्तत्रावापविमर्शनात् ॥ ३४ ॥ शक्तिसिद्ध्यनुगामित्वाद्योगक्षेमसमागमात् । षड्गुणानुगुणत्वाच्च तद्राज्यमुदितोदित ॥ ३५ ॥ तिलकांतदिवीत्यासीत्पुरं तत्र महीपतिः । चंद्राभस्तत्प्रिया नाम्ना सुभद्रेति तयो सुता ॥ ३६ ॥ वायुवेगाजिताशेषवेगिविद्याधराधिपा । स्ववेगविजया प्रोद्यद्विद्युद्द्योतजिद्द्युतिः ॥ ३७ ॥ तस्य त्रिवर्गनिष्पत्त्यै सा विश्वगुणभूषणा । भूता पुरुषकारस्य सदैव-

से सुशोभित थीं ॥ २९ ॥ उस नगरका राजा ज्वलनजटी विद्याधर था, जिसप्रकार मणियोंका खजाना समुद्र है, उसी प्रकार वह विद्याधर भी गुणी लोगोंका खजाना था ॥ ३० ॥ जिसप्रकार सूर्यसे पत्ते मुरझा जाते हैं उसीप्रकार उस के प्रतापसे सब शत्रु मुरझा गये थे तथा जिसप्रकार वर्षासे लतायें बढती हैं उसीप्रकार उसकी नीतिसे सब प्रजा फली भूत हो रही थी ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार योग्य स्थानमें यथासमयपर बोये हुए चांवल बहुत फलते हैं उसीप्रकार उस विद्याधरने जो साम दाम दंड भेद आदि अच्छे उपाय योजना किये थे वे बहुत ही भोगोपभोग देनेवाले फलीभूत हुए थे ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार संख्यामें ऊपरकी संख्या अच्छी होती है उसीप्रकार वह पहिले समयमें हुए सब राजाओंमें श्रेष्ठ था तथा गुण और स्थान दोनोंकी वृद्धिसे सबको जीतकर सबसे बडा हुआ था ॥३३॥ उस राजाकी सब सिद्धियां दैव और पौरुषके आधीन थीं वह क्रोधसे बहुत दूर था, किसी कामके आ जानेपर वह विचार करता था, शक्ति तथा सिद्धिके अनुसार चलता था, योग और क्षेमकी प्राप्ति करता रहता था और राजाओंके माने हुए छह गुणोंके अनुसार ही वह चलता था इसलिये उसका राज्य बहुत ही बढ गया था ॥ ३४–३५ ॥ अथानंतर–इसी विजयार्द्ध पर्वतपर तिलकांतदिवि नामका एक नगर है उसमें चंद्राभ नामका राजा राज्य करता था, उसकी रानीका नाम सुभद्रा था, उन दोनोंके वायुवेगा नामकी पुत्री थी। उसने अपने वेगसे सब वेग वाले (जल्दी दौडनेवाले) विद्याधरोंके राजा जीत लिये थे तथा उसकी कांति चमकती हुई विजलीकी कांतिको भी जीतती थी ॥ ३६–३७ ॥ जिसप्रकार भाग्य-शाली पुरुषके बुद्धि होती है उसीप्रकार सब गुणोंसे विभूषित वह वायुवेगा उस ज्वलनजटीके धर्म अर्थ काम इन तीनोंके उत्पन्न करनेवाली हुई थी। भावार्थ–वह ज्वलनजटीको व्याही गई थी ॥ ३८ ॥ सब लोग पडिवाके चंद्रमाकी रेखाके समान उसकी स्तुति करते थे और वह ज्वलनजटी अपने पौरुषसे (वेगमें उसे जीतलेनेसे) दूसरी पृथ्वीके

स्येव शेमुषी ॥ ३८ ॥ प्रतिपच्चंद्ररेखेव मा सर्वजनसंस्तुता । द्वितीयेव धरारक्षा भोग्या तेन स्वपौरुषात् ॥ ३९ ॥ लक्ष्मी परिकरस्तस्या व्यधायि विविधर्द्धिका । तत्प्रेमप्रेरणात्तेन वा लभ्य न करोति किं ॥ ४० ॥ कौलीन्यादनुरक्तत्वादभूत्सैकपति सती । भूपतेश्चैकभार्यत्व प्रेमाधिक्याज्जगुर्जना ॥ ४१ ॥ रूपादिगुणसंपत्तिस्तस्या किं कथ्यते पृथक् । तस्य चेच्छक्रवच्छच्या तस्या प्रीतिरमानुषी ॥ ४२ ॥ दयाववोधयोर्मोक्ष इव सूनुस्तयोरभूत् । अर्ककीर्ति स्वकीर्त्याभाप्रभासितदिगंतरः ॥ ४३ ॥ नीतिविक्रमयोर्लक्ष्मीरिव सर्वमनोहरा । स्वयंप्रभाभिधानासीत्प्रभेव विधुना सह ॥ ४४ ॥ मुखेनाभोजमक्षिभ्यामुत्पलं मणिदर्पणं । त्विषा कात्या विधुं जित्वा वभौ साभ्रूपताकया ॥ ४५ ॥ उत्पन्नं यौवन तस्यां लतिकाया प्रसूनवत् । खगकामिषु पुष्पेषु ज्वरश्चोत्यापितस्तया ॥ ४६ ॥ आपाडुगंडभाभासिवक्त्रलोलविलोचना । मध्यागकार्श्यसंभूतसंभ्रात्येव स्वयंप्रभा ॥ ४७ ॥ तन्व्या रोमावली तन्वी हरिनीलरुचिर्न्य-

समान तल्लीन होकर उसका उपभोग करता था ॥ ३९ ॥ अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाली लक्ष्मी ही उसकी संबंधिनी थी, उसके प्रेमकी प्रेरणासे ज्वलनजटीको भी उससे बहुत प्रेम था ॥ ४० ॥ बडे कुलमें उत्पन्न होनेसे और पतिसे प्रेम करनेसे उस पतिव्रताके एक पतिका व्रत था और अधिक प्रेम होनेसे राजाके भी एक पत्नीका व्रत था यह बात सब लोग कहते थे ॥ ४१ ॥ उसकी रूप आदि गुणोंकी संपदाओंका वर्णन अलग क्या करना चाहिये, जिसप्रकार शचीमें इंद्रका प्रेम होता है उसीप्रकार उस ज्वलनजटीका उस वायुवेगामें अमानुषिक प्रेम था ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार दया और ज्ञानसे मोक्ष होता है उसीप्रकार उन दोनोंके अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ था, उसने अपनी कीर्तिकी कांतिसे सब दिशाओंके समूह प्रकाशित कर दिये थे ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार नीति और पराक्रमके लक्ष्मी होती है उसीप्रकार उन दोनोंके स्वयंप्रभा नामकी बडी सुंदर पुत्री थी, जिसप्रकार चंद्रमाके साथ प्रभा होती है उसीप्रकार अर्ककीर्तिके साथ वह स्वयंप्रभा भी सुशोभित होती थी ॥ ४४ ॥ वह स्वयंप्रभा मुखसे कमलको जीतती थी, नेत्रोंसे कमलके दलको जीतती थी, प्रभासे मणियोंके दर्पणको जीतती थी और कांतिसे चंद्रमाको जीतती थी इस तरह वह भौंहरूपी पताकाओंसे बहुत ही सुशोभित होती थी ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार लतामें फूल होते हैं उसीप्रकार उसमें यौवन उत्पन्न हुआ था और उसने विद्याधररूपी कामी पुष्पोंमें ज्वर उत्पन्न कर दिया था ॥ ४६ ॥ उसका मुख कुछ पीले सफेद कपोलोंसे सुशोभित था, नेत्र उसके चचल थे और कमर इतनी पतली थी कि लोगोंको भ्रम हो जाता था ॥ ४७ ॥ उस सुदरीकी रोमराजी पतली थी और काली नीली (इंद्रनीलमणिके समान) ऐसी अच्छी जान पडती थी मानों निकलकर ऊंचे कठिन और घने ऐसे दोनों कुचोंपर ही चढना चाहती हो ॥ ४८ ॥ यद्यपि कामदेवने उसे स्पर्श

मात् । आरुरुक्षुरिवोद्भूत्या तुंगपीनघनस्तनौ ॥ ४८ ॥ अनालीढमनोजापि व्यक्ततद्विक्रियेव सा । संपन्नयौवनेनैव जनानामगमद्दृश ॥ ४९ ॥ अथा-न्येद्युर्जगनंदनाभिनंदनचारणौ । स्थितौ मनोहरोद्याने ज्ञात्वा यतिनिवेदकात् ॥ ५० ॥ चतुरंगबलोपेत सपुत्रांत पुरावृत । गत्वाभिवंद्य सद्धर्मश्रवणानंतरं परं ॥ ५१ ॥ सम्यग्दर्शनमादाय दानशीलादि चादरात् । प्रणम्य चारणौ भक्त्या प्रत्येत्य प्राविशत्पुरं ॥ ५२ ॥ स्वयंप्रभापि सद्धर्मं तत्रादायैकदा मुदा । पर्वोपवासप्रम्लानतनुरभ्यर्च्य वार्हत ॥ ५३ ॥ तत्पादपंकजश्लेषपवित्रां पापहां स्रजं । चित्रां पित्रेऽदित द्वाभ्यां हस्ताभ्यां विनयानता ॥ ५४ ॥ तामा-दाय महीनाथो भक्त्यापरयत्स्वयंप्रभा । उपवासपरिश्रांता पारयेति विसर्ज्य तां ॥ ५५ ॥ यौवनापूर्णसर्वांगरमणीया प्रियात्मजा । कस्मै देयेयमित्येवमात्म-न्येव वितर्कयन् ॥ ५६ ॥ मन्त्रिवर्गं समाहूय प्रस्तुतार्थं न्यवेदयत् । श्रुत्वा तत्सुश्रुत प्राह परीक्ष्यात्मनि निश्चित ॥ ५७ ॥ अमुष्मिन्नुत्तरश्रेण्यामलका-

नहीं किया था तथापि वह कामदेवकी विक्रियाके समान ही जान पडती थी और प्राप्त हुये यौवनसे ही लोगोंको कामकी दशा बतलाती थी ॥ ४९ ॥

अथानंतर—किसी एक दिन मनोहर नामके उद्यानमें जगनंदन और अभिनंदन नामके दो चारण मुनि पधारे, मालीने आकर राजाको सूचना दी, खबर पाकर राजा ज्वलनजटी चारों तरहकी सेना लेकर पुत्र और अंतःपुरके साथ मुनिराजके समीप गया मुनिराजकी वंदनाकी, धर्मका स्वरूप सुना, तदनंतर आदरपूर्वक सम्यग्दर्शन स्वीकार किया दान देना तथा शील पालन करना स्वीकार किया और भक्तिपूर्वक मुनिराजके चरण कमलोंको नमस्कार कर लौटकर अपने नगरमें आया ॥ ५०–५२ ॥ वहांपर स्वयंप्रभाने भी सद्धर्म पालन करना स्वीकार किया । किसी एक दिन उसने बड़ी प्रसन्नतासे उपवास किया था जिससे उसका शरीर कुछ शिथिल हो गया था, ऐसी ही अवस्थामें उसने अरहंतदेवकी पूजाकी थी तथा भगवानके चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र हुई तथा पापोंको नाश करनेवाली विचित्र माला लेकर विनयसे कुछ झुककर दोनों हाथोंसे पिताके लिये समर्पणकी ॥ ५३--५४ ॥ राजाने भक्तिपूर्वक वह माला ली और उपवाससे शिथिल हुई उस स्वयंप्रभाको देखकर पारणा करनेके लिये उसे विदा किया ॥ ५५ ॥ तद-नंतर वह अपने मनमें ही सोचने लगा कि यह सब शरीरसे सुंदरी मेरी प्यारी पुत्री अब पूर्ण यौवनवती होगई है अब यह किसे देनी चाहिये ॥ ५६ ॥ यही सोच समझकर उसने सब मंत्रियोंको बुलाया और अपने मनकी बात कही । यह सुनकर सुश्रुत नामका मत्री परीक्षाकर और अपने मनमें निश्चयकर कहने लगा कि इसी विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके अलकापुर नगरमें राजा मयूरग्रीव राज्य करता है उसकी रानीका नाम नीलांजना है उन दोनोंके अश्वग्रीव

ख्यापुरेश्वितु. । मयूरग्रीवसंज्ञस्य प्रिया नीलांजना तयो ॥ ५८ ॥ अश्वग्रीवोग्रिमो नीलरथ कठातनीलस्तु—वज्राख्यातात्र्चय सर्वेप्यभूवन्पंच सूनव ॥५९॥
अश्वग्रीवस्य कनकचित्रादेवी सुतास्तयो । ते ग्रीवागदचूडातरत्ना रत्नरथादिमि ॥ ६० ॥ शतानि पंच मन्त्र्यस्य हरिस्मश्रु श्रुतांबुधि । शतविंदुश्च नैमि-
त्तिकोष्ठांगनिपुणो महान् ॥ ६१ ॥ इति सपूर्णराज्याय खगश्रेणीद्वयेशिने । अश्वग्रीवाय दातव्या कन्येत्येतद्विचारयन् ॥ ६२ ॥ अस्त्येव सुश्रुताख्यात सर्व-
मित्यवनीपतिं । इदं बहुश्रुतोवोचदुत्तरं स्वमनोगत ॥ ६३ ॥ स्वाभिजात्यमरोगत्व वय शील श्रुतं वपु: । लक्ष्मी पक्ष परीवारो वरे नव गुणा: स्मृता
॥ ६४ ॥ अश्वग्रीवे त एतेपि संति किंतु वयोधिक । तस्मात्कोपि वरोन्योस्तु सवयास्तद्गुणान्वितः ॥ ६५ ॥ राजा सिंहरथ ख्यात पुरे गगनवल्लभे ।
परः पद्मरथो मेघपुरे मित्रपुराधिराट् ॥ ६६ ॥ अरिंजयाख्यस्त्रिपुरे खगेशो ललितागद । कनकादिरथो विद्याकुशलोऽश्वपुरेश्वरः ॥ ६७ ॥ महारत्नपुरे
विश्वखगाधीशो धनजय । कन्यैष्वेकतमायेय दातव्येति विनिश्चित ॥ ६८ ॥ अवधार्य वचस्तस्य विचार्य श्रुतसागर । स्मृतिचक्षुरिमा वाच व्याजहार

नीलरथ, नीलकंठ सुवज्र आदि पांच पुत्र हैं ॥५७–५९॥ उनमें अश्वग्रीव सबसे बडा है उसके कनकचित्रा देवीसे ग्रीवांगद, रत्नचूर, रत्नरथ आदि पांचसौ पुत्र हैं तथा नैमित्तिक कोष्ठांग आदि विद्याओंमें सबसे चतुर ऐसे हरिस्मश्रु श्रुतांबुधि और शतविंदु आदि मंत्री हैं ॥ ६०--६१ ॥ इसतरह अश्वग्रीवका राज्य पूर्ण है और वह दोनों श्रेणियोंका स्वामी है इसलिये विचारकर कन्या उसीको देनी चाहिये ॥ ६२ ॥ इसतरह सुश्रुतके बाद बहुश्रुत मंत्री अपने मनमें निश्चय किया हुआ उत्तर देने लगा कि सुश्रुतने कहा है वह सब ठीक है ॥ ६३ ॥ अपनी जातिका होना, नीरोग होना, वय, (उम्र) शील, शास्त्रोंका जानना, शरीर, लक्ष्मी, पक्ष और परिवार ये वरके नौ गुण माने गये हैं ॥६४॥ अश्वग्रीवमें ये सब हैं परंतु वह आयुमें बहुत बडा है, इसलिये जिसमें वरके गुण हों और बराबरकी आयुका हो ऐसा कोई दूसरा वर ढूंढना चाहिये ॥ ६५ ॥ गगनवल्लभ नगरका राजा सिंहरथ प्रसिद्ध है, मेघपुरका राजा पद्मरथ है, चित्रपुरका स्वामी अरिंजय है, त्रिपुरमें विद्याधरोंका स्वामी ललितांगद है, अनेक विद्याओंमें निपुण और अश्वपुर नगरका स्वामी राजा कनकरथ है और महारत्नपुरमें सब विद्याधरोंका स्वामी राजा धनंजय है इनमेंसे निश्चयकर किसी एकको यह कन्या देनी चाहिये ॥ ६६–६८ ॥ बहुश्रुतकी कहीं हुई इन सब बातोंका निश्चयकर और विचारकर जिसके स्मरण ही आंख है अर्थात् स्मरण शक्तिसे काम लेनेवाला श्रुतसागर नामका मंत्री नीचे लिखे हुए मनोहर वचन कहने लगा ॥ ६९ ॥ कि यदि जो कुल, आरोग्यता, वय, और रूप आदि गुणोंसे सुशोभित है उसीके लिये वह कन्या देना चाहते हो तो मैं भी कुछ कहता हू उसे भी थोडा सुनिये ॥ ७० ॥ इसी विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें एक सुरेंद्र-

मनोहरा ॥ ६९ ॥ कुलारोग्यवयोरूपाद्युपेताय यदीष्यते । दातुं कन्या मया किंचिदुच्यते श्रूयता मनाक् ॥ ७० ॥ पुरे सुरेंद्रकांतारमुदक्श्रेण्यां तदीश्वर । मेघवाहननामास्य प्रियाभून्मेघमालिनी ॥ ७१ ॥ तयोर्विद्युत्प्रभ सूनुर्ज्योतिर्मालामला सुता । स्वगाधीशो ननदाभ्यामिवायेन धिया च सः ॥ ७२ ॥ सिद्धकूटमगात्स्तोतुं कदाचिन्मेघवाहनः । तत्र दृष्ट्वावधिज्ञान वरधर्माख्यचारण ॥ ७३ ॥ वदित्वा धर्ममाकर्ण्य स्वसूनो प्राक्तन भव । पप्रच्छ शृणु विद्याभृत्प्रणिधायेति सोब्रवीत् ॥ ७४ ॥ द्वीपेस्मिन् प्राग्विदेहेस्ति विषयो वत्सकावती । पुरी प्रभाकरी राजा नदन सुंदराकृति ॥ ७५ ॥ सूनुर्विजयभद्रोस्य जयसेनोदरोदितः । सोन्यदा फलित चूत वने वीक्ष्य मनोहरे ॥ ७६ ॥ विफल तत्समुद्भूतवैराग्य पिहिताश्रवात् । गुरो सहस्रैर्भूपालैश्चतुर्भि संयमं ययौ ॥ ७७ ॥ प्राते माहेद्रकल्पेभूद्विमाने चक्रकाह्वये । सप्ताब्धिजीवितो दिव्यभोगास्तत्रान्वभूच्चिरं ॥ ७८ ॥ तत्र प्रच्युत्य सूनुस्तेऽजायतायं प्रयाति च निर्वाणमिति सस्तोतुं मयायातेन तच्छ्रुत ॥ ७९ ॥ तस्मै वरगुणं सर्वैः पूर्णायेयं प्रदीयता । ज्योतिर्मालां च गृह्णीमं सपुण्यामर्ककीर्तये ॥ ८० ॥ इति

कांतार नामका नगर है उसमें मेघवाहन नामका राजा राज्य करता है, उसकी रानीका नाम मेघमालिनी है, उन दोनोंके विद्युत्प्रभ नामका पुत्र है और ज्योतिर्माला नामकी निर्मल कन्या है, आय (आमदनी) और बुद्धिके समान उन दोनोंसे वह विद्याधरोंका स्वामी बहुत ही प्रसन्न रहता है ॥ ७१–७२ ॥ किसी एक दिन वह मेघवाहन सिद्धकूट चैत्यालयमें दर्शन करनेके लिये गया, वहांपर उसने वरधर्म नामके अवधिज्ञानी चारण मुनिके दर्शन किये ॥७३॥ उनकी वंदनाकी, धर्मका स्वरूप सुना और अपने पुत्रके पहिले भव पूछे, उत्तरमें मुनिराजने कहा कि विद्याधर! चित्त लगाकर सुन ॥ ७४ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें वत्सकावती नामका देश है उसमें प्रभाकरी नामकी नगरी है उसमें अत्यंत मनोहर नंदन नामका राजा राज्य करता था, उसके जयसेना नामकी रानी थी, उसके उदरसे उत्पन्न हुआ विजयभद्र नामका पुत्र था। उस विजयभद्रने किसी एक दिन मनोहर वनमें एक फला हुआ आमका वृक्ष देखा था, थोडे दिन बाद उसी वृक्षको फल रहित देखा जिससे उसे बहुत वैराग्य हुआ और उसीसमय उसने चार हजार राजाओंके साथ साथ पिहितास्रव गुरुसे दीक्षा धारण कर ली ॥ ७५–७७ ॥ अंतमें चौथे माहेंद्र स्वर्गके चक्रक नामके विमानमें देव हुआ, वहांपर उसने सातसागरकी आयु पाई और बहुत दिन तक दिव्य भोगोंका अनुभव किया ॥ ७८ ॥ वहांसे चयकर यह तेरा पुत्र हुआ है और इसी भवसे मुक्त होगा। मैं भी वहीं दर्शन करनेके लिये गया था इसलिये वहीं मैंने ये सब बातें सुनीं हैं ॥ ७९ ॥ इसलिये वरके सब गुणोंसे सुशोभित ऐसे उस विद्युत्प्रभको यह कन्या देनी चाहिये और पुण्यवती ज्योतिर्माला नामकी उसीकी बहिन अपने राजपुत्र अर्ककीर्तिकेलिये ले

तद्वचन श्रुत्वा सुमतिर्मतिसत्तमः। कन्यां संप्रार्थयंतेमी खगाधीशा पृथक् पृथक् ॥ ८१ ॥ तस्मान्नास्मै प्रदातव्या बहुवैरं भवेत्तत । स्वयवरविधि श्रेयानित्युक्त्वा विरराम स ॥ ८२ ॥ तदेवानुमतं सर्वैस्तत सपूज्य मत्रिण । विसर्ज्य खेचराधीश संभिन्नश्रोतृसज्ञक ॥ ८३ ॥ स्वयंप्रभाया कश्चेतोव-ल्लभो भवतेति त । अपृच्छत्स पुराणार्थवेदीत्थ प्रत्युवाच त ॥ ८४ ॥ गुरु प्रथमचक्रेश प्राक्पुराणनिरूपणे । आदिकेशवसबद्धमित्यवोचत्कथांतरं ॥ ८५ ॥ द्वीपेस्मिन् पुष्कलावत्यां विषये प्राग्विदेहजे । समीपे पुंडरीकिण्या नगर्या मधुके वने ॥ ८६ ॥ पुरूरवा वनाधीशो मार्गभ्रष्टस्य दर्शनात् । मुने सागर-सेनस्य पथ सचितपुण्यक ॥ ८७ ॥ मद्यमांसनिवृत्तेश्च कृतसौधर्मसंभव । ततः प्रच्युत्य तेऽनतसेनायाश्च सुतोऽभवत् ॥ ८८ ॥ मरीचिरेषदुर्मार्गदेशना-निरतश्चिरं । भ्रात्वा ससारचक्रेस्मिन् सुरम्यविषये पुरं ॥ ८९ ॥ पोदनाह्व्य पतिस्तस्य प्रजापतिमहानृपः । सतनूजो मृगावत्यां त्रिपृष्ठोस्य भविष्यति

लेनी चाहिये ॥ ८० ॥ इसतरह श्रुतसागरकी बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाला सुमति नामका मंत्री कहने लगा कि ये सब विद्याधर अलग अलग इस कन्याको मांग रहे हैं इसलिये इसे मी देना ठीक नहीं है क्योंकि इसे देनेसे अनेकोंके साथ वैर बांधना पडेगा इसकी अपेक्षा स्वयवर कर देना सबसे अच्छा है इतनी बात कहकर वह चुप हो गया ॥ ८१--८२ ॥ सुमतिकी यह सलाह सबको पसंद आई, उस विद्याधरोंके स्वामीने उन मंत्रियोंको आदर सत्कारकर विदा किया तथा संभिन्नश्रोतृ नामके निमित्तज्ञानीसे पूछा कि इस स्वयंप्रभाका पति कौन होनेवाला है ? यह सुनकर पुराणोंके अर्थको जाननेवाला वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि भगवान वृषभदेवने प्रथम चक्रवर्ती भरतसे जब पहिले पुराणोंका निरूपण किया था तब पहिले नारायणके संबंधकी एक कथा इस तरह कही थी ॥८३--८५॥ कि इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके पुंडरीकिणी नगरीके समीपवाले मधु नामके वनमें उस वनका स्वामी पुरूरवा नामका भील रहता था, किसी एक दिन उसे मार्ग भूलनेसे, घूमते हुए सागरसेन मुनिके दर्शन हुए, मुनिराजसे उसने मद्यमांसका त्यागकर पुण्य उपार्जन किया, मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ और वहांसे च्युत होकर तेरे (भरतके) अनंतसेना रानीसे मरीचि नामका पुत्र हुआ है ॥८६-८८॥ यह मरीचि निरंतर खोटे मार्गके उपदेश देनेमें तल्लीन रहता है इसलिये यह संसारमें परिभ्रमणकर सुरम्य देशके पोदनपुर नगरके महाराजा प्रजापतिके उनकी मृगावती नामकी रानीसे त्रिपृष्ट नामका पुत्र होगा ॥ ८९--९० ॥ उन्हीं महाराज प्रजापतिके उनकी भद्रा रानीसे विजय नामका बडा पुत्र होगा, ये दोनों ही भाई श्रेयांसनाथ तीर्थंकरके समयमें होंगे तथा अश्वग्रीव प्रतिनारायणको मारकर पहिले बलभद्र नारायण होंगे और तीन खंडके राज्यके सुख भोगेंगे । इनमेंसे त्रिपृष्ट संसारमें परिभ्रमणकर अंतिम तीर्थंकर होगा ॥९१--९२॥

॥ ९० ॥ अग्रजोस्यैव भद्राया विजयो भविता सुतः । तावेतौ श्रेयसस्तीर्थे हत्वाश्वग्रीवविद्विषं ॥ ९१ ॥ त्रिखंडराज्यभोगेशौ प्रथमौ बलकेशवौ । त्रिपृष्ठ संसृतौ भ्रांत्वा भावी तीर्थकरोंतिमः ॥ ९२ ॥ भवतोपि नमे कच्छसुतस्यान्वयसंभवात् । वशजेनास्ति संबंधस्तेन बाहुबलीशितुः ॥ ९३ ॥ त्रिपृष्ठाय प्रदातव्या त्रिखंडश्रीसुखेषिणे । अस्तु तस्य मनोहर्त्री कन्या कल्याणभागिनी ॥ ९४ ॥ तेनैव भवतो भाविविश्वविद्याधरेशिता । निश्चित्यैतदनुष्ठेयमादितीर्थकरोदित ॥ ९५ ॥ इति तद्वचनं चित्ते विधाय तमसौ मुदा । नैमित्तिक समापूज्य रथनूपुरभूपति ॥ ९६ ॥ सुदूतमिंदुनामानं सुलेखोपायनान्वितं । प्रजापतिमहाराजं प्रति संप्राहिणोत्तदा ॥ ९७ ॥ स्वयंप्रभापतिर्भावी त्रिपृष्ठ इति भूपतिः । नैमित्तिकाद्विदित्वैतज्जयगुप्तात्पुरैव स ॥ ९८ ॥ खचराधिपदूतं खादवतीर्णं महोत्सवः । प्रतिगृह्य ससन्मान वने पुष्पकरंडके ॥ ९९ ॥ स दूतो राजगेहं स्व सप्रविश्य सभागृहे । निजासने समासीन प्राभृतं सन्निवार्पितं ॥ १०० ॥ विलोक्य रागाद् भूपेन स्वानुराग समर्पित । प्राभृतेनैव तुष्टास्म इति दूत प्रतोषयन् ॥ १०१ ॥ श्रीत्रिपृष्ठः कुमाराणां वरिष्ठः कन्यया-

आप भी कच्छके पुत्र नमिके वंशमें उत्पन्न हुए हैं इसलिये उस वंशमें उत्पन्न हुए लोगोंसे भुजाओंसे बलवानोंमें श्रेष्ठ ऐसे आपका संबंध है ही ॥९३॥ इसलिये तीन खंडकी लक्ष्मी और सुखके स्वामी त्रिपृष्टकेलिये यह कन्या देनी चाहिये, यह कल्याण करनेवाली कन्या उसीके मनको हरण करनेवाली हो ॥९४॥ त्रिपृष्ठको कन्या देनेसे आगे आप भी सब विद्याधरोंके स्वामी हो जायगे. इसलिये इसका निश्चयकर इसकामको इसीप्रकार करना चाहिये क्योंकि वह सब श्रीवृषभदेवका कहा हुआ है ॥९५॥ उस निमित्त ज्ञानीके वचन सुनकर वह रथनूपुरका राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और उस निमित्तज्ञानीको आदर सत्कारकर विदा किया ॥ ९६ ॥ तदनंतर उसने उसीसमय इंदु नामके एक अच्छे दूतको बुलाया उसे लिखा पत्र और भेट देकर महाराज प्रजापतिके समीप भेजा ॥ ९७ ॥ महाराज प्रजापति जयगुप्त नामके निमित्तज्ञानीसे पहिले ही जान चुके थे कि यह त्रिपृष्ट स्वयंप्रभाका पति होनेवाला है ॥ ९८ ॥ महाराज उस समय कुछ उत्सव करते हुये पुष्पकरंडक नामके वनमें थे वहीं वह दूत आकाशसे उतरा और महाराजने उसे बडे आदर सत्कारसे विठाया ॥ ९९ ॥ जब महाराज अपने राजभवन जाकर राजसभामें सिंहासनपर जा विराजमान हुये तब दूतने लाई हुई भैंट समर्पण की, वह भेट मंत्रीके द्वारा महाराजको दी गई महाराजने उसे देखकर और प्रसन्न होकर अपने रूपसे ही (आकृतिसे) अपना अनुराग समर्पण किया तथा दूतको संतुष्ट करते हुए बोले कि हम इस भेटसे संतुष्ट नहीं हुए हैं यह त्रिपृष्ट सब राजकुमारोंमें श्रेष्ठ है इसलिये इसे लक्ष्मीके समान अपनी यह स्वयंप्रभा कन्या देकर सुशोभित कीजिये ॥ १००–१०२ ॥ महाराजकी यह बात सुनकर दूतको दूनी प्रसन्नता हुई और बात सुनते ही उसने हाथ जोडकर मस्तक

नया । स्वयप्रभाख्यया लक्ष्म्येवायालंक्रियतामिति ॥ १०२ ॥ श्रुत्वा यथार्थमप्याविर्भूताद्विगुणप्रमदः । वाचिकं च समाकर्ण्य भुजाप्राक्रातमस्तकः ॥१०३॥ स्वयमेव खगाधीशः स्वजामातुर्महोदय । इम विधातुमन्य च सचिंतस्तत्र के वय ॥ १०४ ॥ इति दूत तदायातकार्यसिद्ध्या प्रसाधयन् । प्रपूज्य प्रतिदूत च प्रदायाशु व्यसर्जयत् ॥ १०५ ॥ स दूत सत्वरं गत्वा रथनूपुरनायकं । प्राप्य प्रणम्य कल्याणकार्यसिद्धिं व्यजिज्ञपत् ॥ १०६ ॥ तच्छ्रुत्वा खेचराधीश प्रप्रमोदप्रचोदित । न कालहरण कार्यमिति कन्यासमन्वित ॥ १०७ ॥ महाविभूत्या संप्राप्य नगरं पोदनाह्वयं । उद्बद्धतोरण दत्तचदनच्छदमुत्सुकं ॥ १०८ ॥ केतुमालाचलद्दोर्भिराह्वयद्वातिसम्भ्रमात् । प्रतियात स्वमगत्या महीश प्राविशन्मुदा ॥ १०९ ॥ प्रविश्य स्वोचितस्थाने तेनैव विनिवेशितः । प्राप्तप्राघूर्णकाचारप्रसन्नहृदयाननः ॥ ११० ॥ विवाहोचितविन्यासैस्तर्पिताशेषभूतल: । स्वयप्रभा प्रभां वान्या त्रिपृष्ठाय प्रदाय ता ॥ १११ ॥ सिंहाहिविद्विड्वाहिन्यौ विद्ये साधयितु ददौ । ते तत्र सर्वे सभूय व्यगाहंत सुखाम्बुधिं ॥११२॥ इतोऽश्वग्रीवचक्रेशो विनाशपिशुन पुरे । उत्पातस्त्रिविधः प्रोक्तः सद्य

नवाया और कहा कि हम तो कौन चीज हैं विद्याधरोंका स्वामी स्वयं जमाईके इम उत्सव करनेकेलिये चिंता कर रहा है ॥ १०३–१०४ ॥ इस तरह महाराजने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये आये हुये दूतको प्रसन्न किया, उसका आदर सत्कार किया और साथमें अपना एक दूत देकर उसे शीघ्र ही विदा किया ॥१०५॥ वह दूत भी शीघ्र ही जाकर रथनूपुर पहुंचा अपने स्वामीके पास पहुंचकर नमस्कार किया और कल्याण करनेवाले कार्यके सिद्ध होनेकी सूचना दी ॥ १०६ ॥ वह विद्याधरोंका स्वामी यह बात सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि अब इसमें देर करना ठीक नहीं है, बस वह कन्यासहित बडी विभूतिके साथ पोदनपुर नगरमें जा पहुंचा, उस नगरमें सब जगह तोरण बंधे हुये थे और फहराती हुई ध्वजाओंसे ऐसा जान पडता था मानों बडे संभ्रमके साथ अपने हाथोंसे बुला रहा ही हो । महाराज प्रजापति अपनी विभूतिके साथ उसे लेनेकेलिये सामने आये और बडी प्रसन्नतासे नगरमें प्रवेश कराया ॥ १०७–१०९ ॥ नगरमें जाकर योग्य स्थानपर डेरे दिये, महाराज प्रजापतिने ही ठहरने आदिका प्रबंध किया था । वह ज्वलनजटी सबसे मिला भेटा और अपना मुंह तथा हृदय बहुत ही प्रसन्न किया ॥ ११० ॥ विवाहके योग्य सब मामग्री इकट्ठी की, दान देकर सब पृथ्वीको संतुष्ट किया, त्रिपृष्टके लिये दूसरी प्रभाके समान स्वयंप्रभा कन्या दी और सिंहवाहिनी गरुडवाहिनी दो विद्यायें सिद्ध करनेके लिये दीं । इसतरह वे सब मिलकर वहींपर सुखरूपी समुद्रमें क्रीडा करते थे ॥ १११–११२ ॥ इधर अश्वग्रीव प्रतिनारायणके नगरमें विनाशको सूचित करनेवाला तीन तरहका उपद्रव हुआ ॥ ११३ ॥ जिसप्रकार भोगभूमिमें पल्यका आठवां भाग बाकी रहजानेपर सूर्य चंद्रमा आदि नई चीजें

समभुवुथयौ ॥ ११३ ॥ अभूत्पूर्वं तं दृष्ट्वा सहसा भीतिवान् जनः । पल्योपमाष्टभागावशेषे वा भोगभूभुवः ॥११४॥ अश्वग्रीवश्च संभ्रांतः समंत्र पृष्टवान् पृथक् । शतविंदुं निमित्तज्ञं किमेतदिति तत्फलं ॥ ११५ ॥ येन सिंहो हतः सिंधुदेशे रूढपराक्रमः । अहारि प्राभृतं येन स्वां प्रति प्रहितं हठात् ॥ ११६ ॥ रथनूपुरनाथेन भवद्योग्य प्रदायि च । यस्मै स्त्रीरत्नमेतस्मात्संक्षोभस्ते भविष्यति ॥ ११७ ॥ तत्सूचकमिदं सर्वं कुर्वेतस्य प्रतिक्रियां । इति नैमित्तिकेनोक्तं कृत्वा हृदि खगाधिप ॥ ११८ ॥ अरेर्गदस्य चात्मज्ञः प्रादुर्भावनिषेधनं । विदधाति तदस्माभिर्विस्मृतं सस्मयैर्वृथा ॥ ११९ ॥ इदानीमप्यसौ दुष्टो बुध्यामिरविलंबितं । विषांकुरवदुच्छेद्य इत्यवादीत्स्वमंत्रिण ॥ १२० ॥ तेपि तत्सर्वमन्विष्य स्वगूढप्रहितैश्चरैः । नैमित्तिकोक्तं निश्चित्य तस्य सिंहवधादिकं ॥ १२१ ॥ त्रिपृष्ठो नाम दर्पिष्ठः प्रजापतिसुतः क्षितौ । विश्वक्षितीशानाक्रम्य विक्रमाद्विजिगीषते ॥ १२२ ॥ परीक्षितव्यः सोस्मासु कीदृग इति दक्षिणे । दूतैरिति खगाधीशमवोचन्मंत्रिणः पृथक् ॥ १२३ ॥ तदाकर्ण्य तदेवासौ चिंतागतिमनोगती । दूतौ संप्रेषयामास त्रिपृष्ठं प्रति विद्वरौ ॥ २४ ॥ गत्वा तौ

देखकर भोगभूमियोंको डर लगा था उसीप्रकार अपूर्व तरहके उन उपद्रवोंको देखकर एक माथ सब लोगोंको डर लगा ॥ ११३–११४ ॥ अश्वग्रीवको भी आश्चर्य हुआ और उसने मंत्रियोंको साथ लेकर किसी एकांत जगहमें शतविंदु नामके निमित्तज्ञानीको उन उपद्रवोंका फल पूछा ॥ ११५ ॥ शतविंदुने कहा कि जिसने सिंधुदेशमें बडा पराक्रमशाली सिंह मारा है, जिसने आपके लिये भेजी हुई भेंट जवर्दस्ती छीन ली है और जिसे रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीने आपको देने योग्य स्त्रीरत्न दे दिया है उससे आपका कुछ क्षोभ (बुरा) होनेवाला है ॥ ११६–११७ ॥ ये सब उसीके सूचक हैं आपको इसका उपाय करना चाहिये । इसप्रकार निमित्त ज्ञानीके कहे हुए वचनोंको हृदयमें रखकर मंत्रियोंसे कहने लगा कि आत्माको जाननेवाले बुद्धिमानको रोग और शत्रुका उत्पन्न होते ही उपाय करलेना चाहिये अहंकारके मारे हम लोग तो विलकुल ही भूल गये तुम लोगोंने वह दुष्ट अब तक रख छोडा है उसका तो विषके अंकूरेके समान शीघ्र ही नाश कर देना चाहिये ॥ ११८–१२० ॥ यह सुनकर मंत्रियोंने अपने गुप्त दूत भेजे तथा निमित्तज्ञानी सिंहका मारना आदि जो चिन्ह बतलाये थे वे सब ढूढ निकाले और निश्चय किया कि इस पृथ्वीपर प्रजापतिका पुत्र त्रिपृष्ट ही बडा अहंकारी है वही अपने पराक्रमसे सब राजाओंपर आक्रमणकर विजयी हो रहा है ॥ १२१–१२२ ॥ यही निश्चयकर उन मंत्रियोंने एकांतमें अश्वग्रीवसे कहा और सलाह दी कि चतुर दूत भेजकर उसकी परीक्षा करनी चाहिये कि वह कैसा है ॥ १२३ ॥ यह सब सुनकर उस अश्वग्रीव विद्याधरने उसीसमय चिंतागति और मनोगति नामके दो विद्वान दूत त्रिपृष्टके समीप भेजे ॥ १२४ ॥ उन दूतोंने जाकर पहिले अपने पहुंचनेके

स्वागतिं पूर्वं निवेद्यानुमतो नृपं । दृष्ट्वा यथोचितं दूतौ प्राभृतं विनयान्वितौ ॥ २५ ॥ अश्वग्रीवेण देवेन समयात्रापितोऽस्त्यतः । रथावर्ताद्रिमेष्यन्ति तमायातु भवानिति ॥ १२६ ॥ आवां त्वामागतौ नेतुमाज्ञामारोप्य मस्तके । आगताश्च तत्रेत्युक्त्वा तूष्णीं स्थितवन्तौ कोपवान् ॥१२७॥ अश्वग्रीवाः खरग्रीवाः क्रौंचग्रीवास्तथापरे । दृष्टाः क्रमेलकग्रीवा नापूर्वोऽस्ति स पश्यता ॥ १२८ ॥ इत्याह तौ न किं युक्तमयं तु खगेश्वरं । विश्वम्पमसम्भाव्यं तं भवत्पक्षपातिनं ॥ १२९ ॥ इत्याहतु खगेशोऽस्तु पक्षपाती न वान्येन । नाहमेष्यामि तं द्रष्टुमिति प्रत्यब्रवीत्स तौ ॥ १३० ॥ दर्पादिदं न वक्तव्यमदृष्ट्वा चक्रवर्तिनं । देहेऽपि न स्थितिर्भूमौ क पुनः स्थातुमर्हति ॥ १३१ ॥ इति श्रुत्वा वचो राजा तयोश्चक्रेण वर्तितुं । शीलोऽयं किं घटादीनां कारकः कारकाग्रणी ॥ १३२ ॥ तस्य किं प्रेष्यमित्युक्तौ तौ सकोपाववोचताम् । कन्यारत्नमिदं चक्रिभोग्यं किं तेऽत्र जीर्यति ॥ १३३ ॥ रथनूपुरराजोऽसौ ज्वलनादिजटी कथं । प्रजापतिश्च

समाचार कहला भेजे, आज्ञा पाकर राजाके दर्शन किये, बडी विनयसे जो यथायोग्य भेट लाये थे वह समर्पण की और कहने लगे कि महाराज अश्वग्रीवने आपके लिये आज्ञा दी है कि "मैं रथावर्त नामके पर्वतपर आता हूं आप भी वहां आना" अर्थात् वे उस पर्वतपर पहुंचे होंगे आपको भी चलना चाहिये, हम दोनों आपको लेनेके लिये ही आए हैं इसलिये उनकी आज्ञाको मस्तकपर रखकर आपको चलना चाहिये, यह कहकर वे दोनों ही चुप होगये तब क्रोधित होकर त्रिपृष्ठने कहा कि अश्वग्रीव (घोडेकी गर्दन) खरग्रीव, (गधेकी गर्दन) क्रौंचग्रीव (क्रौंच पक्षीकी गर्दन) तथा क्रमेलकग्रीव (ऊंटकी गर्दन) ये सब देखी हैं उसमें कोई अपूर्व बात नहीं है जो देखी जाय ॥ १२१-१२८ ॥ त्रिपृष्ठके इसप्रकार कह चुकनेपर फिर वे दूत कहने लगे कि वह अश्वग्रीव विद्याधर सब संसारमें मान्य है और आपका पक्षपाती है इसलिये इसप्रकार उसका अपमान करना आपको उचित नहीं है। यह सुनकर त्रिपृष्ठने फिर कहा कि वह विद्याधर हमारा पक्षपाती हो वा न हो उसके आनेपर भी मैं उससे मिलनेके लिये नहीं जाऊंगा ॥ १२९-१३० ॥ त्रिपृष्ठकी यह बात सुनकर दूतोंने फिर कहा कि अहंकारमें आकर ऐसा नहीं कहना चाहिये उस चक्रवर्तीके देखे विना शरीरमें भी स्थिति नहीं हो सकती फिर भला पृथ्वीपर तो रह ही कौन सकता है ॥ ३१ ॥ उन दूतोंकी यह बात सुनकर त्रिपृष्ठने कहा कि वह चक्रवर्ती है चक्र फिराता है वा फिरा सकता है सो क्या घडे आदि मिट्टीके वर्तन बनानेवाला कुंभार है" और जब वह कुंभार है तब उसे क्या भेजना चाहिये इसके उत्तरमें दूतोंने बडे क्रोधसे कहा कि "यह कन्यारत्न चक्रवर्तीके उपभोग करने योग्य है सो आज तेरे यहां जीर्ण हो रही है ॥ १३२-१३३ ॥ चक्रवर्तीसे शत्रुता करनेपर यह रथनूपुरका राजा ज्वलनजटी और तेरा बाप प्रजापति ये दोनों ही अपना नाम

नामापि संधत्ते चक्रिणि द्विषि ॥ १३४ ॥ इति सद्यस्ततो दूतौ निर्यत्य द्रुतगामिनौ । प्राप्याश्वग्रीवमानम्य प्रोचतुस्तद्विजृंभणं ॥ १३५ ॥ खगेश्वरोपि तत्क्षं-तुमक्षमो रूक्षवीक्षण । भेरीमास्फालयामास रणप्रारंभसूचिनीं ॥ १३६ ॥ तद्ध्वनि व्यापि दिक्प्रांतान् हत्वा दिग्दतिनां मद । चक्रिवर्तिनि संक्रुद्धे महा-तः के न बिभ्यति ॥ १३७ ॥ चतुरंगबलेनासौ रथावर्तमगाद्गिरिं । पेतुरुल्काश्च वालैला दिक्षु दाहा जजृंभिरे ॥१३८॥ प्रजापतिसुतौ चैतद्विदित्वा वितता जसौ । प्रतीयतुः प्रतापाग्निभस्मितारींधनोच्चयौ ॥ १३९ ॥ उभयोः सेनयोस्तत्र संग्राम समभून्महान् । समक्षयात्तयोः प्रापदतकः समवर्तितां ॥१४०॥ युद्ध्वा चिरं पदातीनां वृथा किं क्रियते क्षयः । इति त्रिपृष्ठो युद्धार्थमभ्यश्वग्रीवमेयिवान् ॥ १४१ ॥ हयग्रीवोपि जन्मातरानुबद्धोरुवैरत । आच्छादय-दतिक्रुद्ध शरवर्षैर्विरोधिन ॥ १४२ ॥ द्वंद्वयुद्धेन तौ जेतुमक्षमावितरेतर । मायायुद्ध समारब्धौ महाविद्याबलोद्धतौ ॥ १४३ ॥ युद्ध्वा चिरं हयग्रीवश्चक्र

भी कैसे धारण कर सकते हैं भावार्थ—अब संसारमें इनका नाम रहना भी कठिन है यह कहकर वे दूत बडी जल्दी वहांसे निकल गये, शीघ्र चलकर अश्वग्रीवके पास पहुंचे और त्रिपृष्ठके सब समाचार कह सुनाये ॥१३४–१३५॥ उन्हें सुनकर अश्वग्रीव भी त्रिपृष्ठको क्षमा करनेकेलिये असमर्थ हो गया, उसके नेत्र रूखे होगये, और उसने युद्धके प्रारंभकी सूचना करनेवाली भेरी बजवाई ॥१३६॥ उन भेरियोंकी आवाज दिग्गजोंके मदको नष्ट करती हुई दिशाओंके अंत-तक फैल गई, सो ठीक ही है क्योंकि चक्रवर्तीके क्रोधित होनेपर भला बडे आदमी भी कितने नहीं डर जाते हैं ॥ १३७ ॥ वह अश्वग्रीव चारों तरहकी सेना लेकर रथावर्त नामके पर्वतपर जा पहुंचा, वहांपर चंचल उल्कापात होने लगे और सब ओर अग्नि लग गई ॥ १३८ ॥ प्रतापरूपी अग्निसे शत्रुरूपी ईंधनके समूहको भस्म करनेवाले और बडे तेजस्वी ऐसे प्रजापतिके दोनों पुत्र यह बात सुनकर उसके सामने गये ॥ १३९ ॥ वहांपर दोनों सेनाओंका बडा भारी युद्ध हुआ और दोनों सेनाओंका बराबर नाश होनेसे यमराज दोनोंके मध्यस्थ रहा ॥१४०॥ तब त्रिपृष्ठ युद्ध-केलिये अश्वग्रीवके सामने गया और कहने लगा कि बहुत दिनतक युद्ध चलाकर व्यर्थ ही पैदल सेनाका नाश करा-या जाता है तू ही मेरे सामने आ ॥ १४१ ॥ अश्वग्रीवका त्रिपृष्ठके साथ पहिले जन्मोंका बडा भारी वैर बंधा हुआ था इसलिये वह भी क्रोधित होकर सामने आया और वाणोंकी वर्षाकर शत्रुको (त्रिपृष्ठको) ढक दिया ॥ १४२ ॥ जब वे दोनों ही द्वंदयुद्धमें परस्पर एक दूसरेको जीत न सके तब महाविद्या और बलसे उद्धत हुए वे दोनों माया युद्ध करने लगे ॥ १४३ ॥ अश्वग्रीवने बहुत देरतक युद्धकर अंतमें शत्रुपर चक्र चलाया परंतु वह नारायण त्रिपृष्ठके हाथपर आ गया और उसने क्रोधित होकर उसी चक्रसे अश्वग्रीवका शिर काट डाला ॥१४४॥ शत्रुओंको नाश करने-

न्यक्षिपदभ्यरिं। तदैवादाय तद्भीवामच्छिदत्केशव क्रुधा ॥ १४४ ॥ तावर्कविधुसकाशौ त्रिपृष्ठविजयौ विभू। भरतार्द्धाधिपत्येन भात स्म ध्वस्तविद्विषौ ॥ १४५ ॥ नृपेंद्रैः खेचराधीशै व्यंतरैर्मागधादिभिः। कृताभिषेक सप्राप त्रिपृष्ठ पृष्ठता क्षितेः ॥ १४६ ॥ आधिपत्य द्वयो श्रेण्योर्विततारादिकेशव। दृष्ट स्वयप्रभापित्रे न स्यात्किं श्रीमदाश्रयात् ॥ १४७ ॥ असिः शखो धनुश्चक्र शक्तिर्दंडो गदाभवन्। रत्नानि सप्त चक्रेशो रक्षितानि मरुद्गणै ॥१४८॥ रत्नमाला हल भास्वद्रामस्य मुशल गदा। महारत्नानि चत्वारि बभूवुर्भाविनिर्वृते: ॥ १४९ ॥ देव्यः स्वयप्रभामुख्याः सहस्राण्यस्य षोडश। बलस्याष्टसहस्राणि कुलरूपगुणान्विताः ॥ १५० ॥ अर्ककीर्तेः कुमारस्य ज्योतिर्माला खगाधिपः। प्राजापत्यविवाहेन महत्या सपदाग्रहीत् ॥ १५१ ॥ तयोरमिततेजाश्च सुतारा चाभवत्सुता। प्रतिपच्चद्रयो शुक्लपक्षरेखेव चैंदवी ॥ १५२ ॥ विष्णो स्वयप्रभाया च सुत श्रीविजयोजनि। ततो विजयभद्राख्यः सुता ज्योति प्रभाह्वया ॥ १५३ ॥ प्रजापतिमहाराज भूरिप्राप्तमहोदय। कदाचिज्जातनिर्वेग सप्राप्य पिहिताश्रव ॥ १५४ ॥ आदाज्जैनेश्वरं रूपं त्यक्त्वाशेष-

वाले और सूर्य तथा चंद्रमाके समान वे त्रिपृष्ट और विजय दोनो ही भाई आधे भरतके स्वामी होकर बहुत ही सुशोभित होते थे ॥ १४५ ॥ सब राजाओंने विद्याधरोंके स्वामियोंने और मगध आदि व्यंतर देवोंने त्रिपृष्ठ का राज्याभिषेक किया और इसतरह वह त्रिपृष्ठ सब पृथ्वीमें मुख्य हुआ ॥ १४६ ॥ त्रिपृष्टने प्रसन्न होकर स्वयंप्रभाके पिता ज्वलनजटीको दोनों श्रेणियोंका स्वामी बनाया सो ठीक ही है क्योंकि बड़े आदमियोंके आश्रयसे क्या क्या नहीं होता है ॥ १४७ ॥ नारायणके तलवार, शंख, धनुष, शक्ति, दंड, गदा और चक्र ये सात रत्न थे तथा अनेक देव उनकी रक्षा करते थे ॥ १४८ ॥ उसी भवसे मुक्त होनेवाले बलभद्रके रत्नमाल, देदीप्यमान हल, मुशल और गदा ये चार महारत्न थे ॥ १४९ ॥ त्रिपृष्टके स्वयंप्रभाको आदि लेकर सोलह हजार रानियां थीं और बलभद्रके कुल रूप और गुणोंसे सुशोभित आठ हजार रानियां थीं ॥ १५० ॥ ज्वलनजटी विद्याधरने कुमार अर्ककीर्तिकेलिये ज्योतिर्माला नामकी कन्या बडी विभूतिके साथ विवाहकर स्वीकार की ॥ १५१ ॥ अर्ककीर्ति और ज्योतिर्मालाके अमिततेज नामका पुत्र हुआ और सुतारा नामकी पुत्री हुई, वे दोनों ही भाई बहिन ऐसे सुंदर थे मानों शुक्लपक्षकी पडिवाके चंद्रमाकी रेखायें ही हों ॥ १५२ ॥ इधर त्रिपृष्टके स्वयंप्रभासे श्रीविजय नामका पुत्र हुआ दूसरा विजयभद्र हुआ और फिर ज्योतिप्रभा नामकी पुत्री हुई ॥१५३॥ महाराज प्रजापतिको बहुत भारी विभूति प्राप्त हुई। किसी एक दिन उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ पिहितास्रव मुनिके पास जाकर उन्होंने श्रीजिनेश्वरका रूप धारण किया सब परिग्रहका त्याग किया तथा जिससे शुद्धात्मा और परमात्माका भाव प्राप्त होता है ऐसा छह तरहका बाह्य तप और छह तरहका अंतरंग तप धारणकर

परिग्रह। येन सप्राप्यते भाव सुखात्मपरमात्मनः ॥ १५५ ॥ वालेतरद्विषद्भेदतपस्यविरतोयमः। चिरं तपस्यन् संचित्तमायुरंते समादधत् ॥ १५६ ॥ मिथ्यात्व सयमाभाव प्रमाद सकषायता। कैवल्यं स सयोगत्व त्यक्त्वाभूत्परम क्रमात् ॥ १५७ ॥ खेचरेशोपि तच्छ्रुत्वा राज्य दत्त्वार्ककीर्तये। निर्ग्रंथ रूपमापन्नो जगन्नंदनसन्निधौ ॥ १५८ ॥ अयाचितमनादानमार्जव त्यागमस्पृहा। क्रोधादिहापन ज्ञानाभ्यासं ध्यानं च सोन्वयात् ॥ १५९ ॥ ततोनि शेष-महासि निहत्य निरुपोपधिः। निराकारोपि साकारो निर्वाणमगमत्परं ॥ १६० ॥ त्रिपृष्ठो निष्ठुराराातिविजयो विजयानुगः। त्रिखंडा खंड गोमिन्याः काम का-मान्समन्वभूत् ॥ १६१ ॥ स कदाचित्स्वजामातुः सुतयामिततेजसः। स्वयवरविधानेन मालामार्पजयद्गले ॥ १६२ ॥ अनेनैव विधानेन सुतारा चानु-रागिणी। स्वय श्रीविजयस्यासीद्वक्ष स्थल निवासिनी ॥ १६३ ॥ इत्यन्योन्याान्वितापत्यसंवधा सर्वबांधवाः। स्वच्छाभ पूर्णसंफुलसरस श्रियमभ्ययु ॥ १६४ ॥ आयुरंतेवधिस्थानप्रापेर्द्धभरतेशिनि। विजयो राज्यमा ज्य सुते श्रीविजये स्वय ॥ १६५ ॥ दत्त्वा विजयभद्राय यौवराज्यपद च स। चक्रि-

पूर्ण संयम पालन करनेके लिये उद्यमी हुआ। बहुत दिन तक तपश्चरण कर समता धारणकी, मिथ्यात्व असंयम प्रमाद कषाय आदिका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा योगोंका भी नाशकर अनुक्रमसे परम सिद्ध हुए ॥१५४–१५७॥ विद्याधर ज्वलनजटीने भी यह बात सुनकर अर्ककीर्तिको राज्य दिया और मुनिराज जगन्नंदनके समीप दीक्षा धारण की ॥१५८॥ कभी मांगना नहीं, विना दिया हुआ ग्रहण करना नहीं, आर्जव, त्याग, ईर्ष्याका त्याग, क्रोधादि कषायोंका त्याग, ज्ञानका अभ्यास और ध्यान आदि धारण किया ॥१५९॥ तदनंतर समस्त पापोंका नाशकर सब जंजालोंसे अलग हुआ, साकार होकर भी निराकार हुआ और उत्तम मोक्षस्थानको जा प्राप्त हुआ ॥१६०॥ इधर त्रिपृष्टने अपने सब शत्रु नाश किये, और विजय सदा विजयी ही होता रहा, इसतरह वे दोनों भाई इच्छानुसार तीनों खंडकी अखड पृथ्वीके भोगोपभोग भोगने लगे ॥१६१॥ किसी एक दिन त्रिपृष्टने स्वयंवरकी विधिसे अपनी कन्या ज्योतिप्रभाके द्वारा अपने जमाई अमिततेजके गलेमें वरमाला डलवाई ॥१६२॥ इसीतरह स्वयंवरकी विधिसे वक्षःस्थलपर निवास करनेवाली सुतारा श्रीविजयपर अपने आप अनुरागिणी हुई ॥१६३॥ इसतरह परस्पर एक दूसरेकी संतानके साथ संबंध करते हुए भाई बंधु निर्मल जलसे भरे हुए और प्रफुल्लित सरोवरकी शोभाको प्राप्त हुए ॥ १६४ ॥ आयु पूर्णकर त्रिपृष्ट मरकर सातवें नरकमें पहुंचा, विजयने अपने पुत्र श्रीविजयके लिये राज्य दिया और विजयभद्रके लिये युवराज पद दिया। त्रिपृष्टके मरनेका उसे बहुत शोक हुआ और वह पापरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये तैयार हुआ ॥ १६५–१६६ ॥ जिसे बहुत शीघ्र मोक्षपद मिलनेवाला है ऐसे उस विजयने सुवर्णकुंभ मुनिके समीप जाकर सात हजार राजाओंके साथ

शोकसमाक्रातस्वातो हंतुमघद्विप ॥ १६६ ॥ सहस्रैः सप्तभिः सार्द्धं राजभि सयम ययौ । सुवर्णकुंभमभ्येत्य मुनिमभ्यर्णनिर्वृतिः ॥ १६७ ॥ घातिकर्माणि निर्मूल्य कैवल्यं चोदपादयत् । अभूमिलिंपसपूज्यो व्यपेतागारकेवली ॥ १६८ ॥ तदाकर्ण्यार्ककीर्तिश्च निधायामिततेजस । राज्ये विपुलमत्याख्याचारणादगमत्तपः ॥ १६९ ॥ नष्टकर्माष्टकोऽभीष्टामसाव पाष्टमीं महीं । अनाप्यं नाम किं त्यक्त व्यक्तमाशावधीशितां ॥ १७० ॥ तयोरविकलप्रीत्या याति काले निराकुल । सुखेनामितशब्दादितेज श्रीविजयाख्ययो ॥ १७१ ॥ कश्चिच्छ्रीविजयाधीश साशीर्वादः कदाचन । उपेत्य राजश्चित्त त्व प्रणिधेहि ममोदिते ॥ १७२ ॥ पोदनाधिपतेर्मूर्ध्नि पतितेतोह्नि सप्तमे । महाशनिस्ततश्चिंत्य प्रतीकारोस्य सत्वर ॥ १७३ ॥ इत्यब्रवीत्तदाकर्ण्य युवराजोरुणेक्षण । वद किं पतिता सर्वविदस्ते मस्तके तदा ॥ १७४ ॥ इति नैमित्तिक रुष्ट्वा प्राक्षीत्सोप्याह मूर्ध्नि मे । रत्नवृष्टि पतेत्साकमभिषेकेण हीत्यदः ॥ १७५ ॥ सावष्टभं वच श्रुत्वा तस्य राजा सविस्मय । भद्र त्वयास्यतामस्मिन्नासने किंचिदुच्यते ॥ १७६ ॥ किंगोत्र किंगुरुर्ब्रूहि किंशास्त्र किंनिमित्तक । किं

दीक्षा धारण की ॥१६७॥ घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान उत्पन्न किया तथा इद्रादि देवताओंसे पूज्य होकर अनगार केवली हुआ ॥ १६८ ॥ अर्ककीर्तिने यह बात सुनकर अपने पुत्र अमिततेजके लिये राज्य दिया, विपुलमति चारण मुनिसे तपश्चरण ग्रहण किया और आठों कर्मोंको नाशकर सबकी प्यारी आठवीं पृथ्वी अर्थात् मोक्ष प्राप्त की । सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने आशा छोड दी है ऐसे महापुरुषोंको इस संसार में न मिलने योग्य कुछ भी वस्तु नहीं है ॥ १६९–१७० ॥ इधर अमिततेज और श्रीविजयमें बडा प्रेम रहा दोनोंका ही समय बडे सुखसे विना किसी उपद्रवके व्यतीत हुआ ॥ १७१ ॥ किसी एक दिन किसी पुरुषने आकर महाराज श्रीविजयको आशीर्वाद दिया और कहा कि हे प्रभो ! आप चित्त देकर मेरी बात सुनिये ॥ १७२ ॥ आजसे सातवें दिन पोदनपुरके राजाके मस्तकपर महावज्र पडेगा, इसलिये आपको इसका उपाय शीघ्र ही सोचना चाहिये ॥ १७३ ॥ उसकी इस बातको सुनकर युवराजने क्रोधित होकर उस निमित्तज्ञानीसे पूछा कि अच्छा तू सब बातोंका जानकार है बता उससमय तेरे मस्तकपर क्या पडेगा युवराजकी यह बात सुनकर निमित्तज्ञानीने भी कहा, कि मेरे मस्तकपर अभिषेकके साथ साथ रत्नोंकी वर्षा होगी ॥१७५॥ निमित्तज्ञानीके अभिमानसहित ऐसे वचन सुनकर राजाको बडा आश्चर्य हुआ और कहने लगा कि हे भद्र ! तुम इस आसनपर बैठो और मैं जो कुछ कहता हू उसे सुनो ॥ १७६ ॥ कहो तो सही तुम्हारा गोत्र क्या है, गुरु कौन है, क्या क्या शास्त्र पढा है, क्या क्या निमित्त जानते हो, क्या नाम है और तुम यह ऐसी आज्ञा क्यों करते हो ? यह सब राजाने पूछा ॥ १७७ ॥ तब वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि कुडलपुरमें सिंहरथ नामका एक बडा राजा

नाम किंनिमित्तोयमादेश इति पृष्टवान् ॥ १७७ ॥ कुडलाख्यपुरे राजा नामा भिंहरथो महान्। पुरोहित सुरगुरुस्तस्य शिष्यों विशारदः ॥ १७८ ॥ तच्छिष्येण निमित्तानि प्रव्रज्य हलिना सह। मयाष्टागान्यधीतानि सोपदेशश्रुतानि च ॥ १७९ ॥ अष्टांगानि निमित्तानि कानि किंलक्षणानि चेत्। शृणु श्रीविजयायुष्मन् यथाप्रश्नं ब्रवीमि ते ॥ १८० ॥ अंतरिक्षसभौमागस्वरव्यंजनलक्षण। छिन्नस्वप्नविभेदेन प्रोक्तान्यागमवेदिभिः ॥ १८१ ॥ तात्स्थ्यात्स्याद्‌वर्याद्वा ज्योतिषामतरिक्षवाक्। चन्द्रादिपंचभेदानामुदयास्तमयादिभिः ॥ १८२ ॥ जय पराजयो हानिर्वृद्धिर्मृत्यु सजीवित। लाभालाभौ निरूप्यंते यत्रान्यानि च तत्त्वत ॥ १८३ ॥ भूमिस्थानादिभेदेन हानिवृद्‌ध्यादिबोधनं। भूम्यत स्थितरत्नादिकथन भौममिष्यते ॥ १८४ ॥ अगप्रत्यंगसंस्पर्शदर्शनादिभिरंगिना। अंगकालत्रयोत्पन्नशुभाशुभनिरूपण ॥ १८५ ॥ मृदंगादिगजेंद्रादिचेतनेतरसुस्वरै:। दुःस्वरैश्च स्व भीष्टानिष्टप्रापणसूचनः ॥ १८६ ॥ शि-

राज्य करता है उसके पुरोहितका नाम सुरगुरु है और उसका एक शिष्य बहुत ही विद्वान है। किसी एक दिन बलभद्रके साथ दीक्षा लेकर उस शिष्यके साथ मैंने अष्टांग निमित्तज्ञान सीखा है और उपदेशके साथ बडी सावधानीसे सुना है ॥ १७८—१७९ ॥ वे अष्टांग निमित्त कौन कौन हैं उनके क्या लक्षण हैं यह सब सुननेकी इच्छा हो तो हे चिरंजीव श्रीविजय सुनो मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार ही सब कहता हूं ॥ १८० ॥ शास्त्रोंके जानकार आचार्योंने अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न इनके भेदसे आठ तरहका निमित्त कहा है ॥ १८१ ॥ सूर्य चद्रमा आदि ज्योतिषी देव आकाशमें रहते हैं आकाशके साथ उनका संबंध है, इसलिये ज्योतिषियोंको अंतरिक्ष (आकाश) कहते हैं सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र तारे इनके उदय अस्त आदि होनेसे जय, पराजय, हानि, वृद्धि, जीना, मरना, लाभ, अलाभ आदि निरूपण किया जाता है तथा और भी बहुतसी वास्तविक बातें कही जाती हैं उसे अंतरिक्ष निमित्त कहते हैं ॥१८२--१८३॥ जुदी जुदी जगह पृथ्वी भी जुदी जुदी तरहकी है उसके भेदसे जो हानि वृद्धि आदिका ज्ञान होता है तथा पृथ्वीके भीतर रक्खे हुए जो रत्न आदि बताये जाते हैं उसे भौम निमित्त कहते हैं ॥१८४॥ अंग प्रत्यंगको स्पर्श करने अथवा देखनेसे जो प्राणियोंके शरीरसंबंधी तीनों कालोंमें होनेवाले शुभ अशुभका निरूपण किया जाता है उसे अंगनिमित्त कहते हैं ॥ १८५ ॥ मृदंग आदि अचेतन तथा हाथी आदि चेतन पदार्थोंके सुस्वर अथवा दुःस्वरसे जो इष्ट अनिष्टके प्राप्त होनेकी सूचना होती है उसे स्वरनिमित्त कहते हैं ॥ १८६ ॥ शिर मुख आदिमें उत्पन्न हुए तिल आदि चिन्ह अथवा घाव आदिसे जो किसी स्थानको उद्देशकर लाभ अलाभ आदिका जानना है उसे व्यंजन निमित्त कहते हैं ॥१८७॥ श्रीवृक्ष स्वस्तिक

गेमुखादिसजाततिललक्ष्मव्रणादिभिः । व्यंजनं स्थानमानेश्य लाभालाभादिवेदन ॥ १८७ ॥ श्रीवृक्षस्वस्तिकाद्यष्टशतागगतलक्षणे । भोगैश्वर्यादिसंप्राप्तिकथन लक्षण मतं ॥ १८८ ॥ देवमानुषरक्षोविभागैर्वस्त्रायुधादिषु । मूषकादिकृतच्छेदे छिन्न तत्फलभाषण ॥ १८९ ॥ शुभाशुभविभागोक्तस्वप्नसदर्शनान्नृणां । स्वप्नो वृद्धिविनाशादियाथात्म्यकथन मत ॥ १९० ॥ इत्युक्त्वा क्षुत्पिपासादिद्वाविंशतिपरीषहैः । पीडितोसहमानोह पद्मिनीखेटमाययो ॥ १९१ ॥ तत्र मन्मातुलः सोमशर्मा चंद्राननां शुभा । हिरण्यलोमासभूता प्रीत्या मह्यं प्रदत्तवान् ॥ १९२ ॥ द्रव्यार्जन परित्यज्य निमित्ताभ्यासतत्परं । सा मां निरीक्ष्य निर्विण्णा पितृदत्तधनक्षयात् ॥ १९३ ॥ भोजनावसरेन्येद्युर्धनमेतत्त्वदार्जितं । इति पात्रे क्षिपद्रोषान्मद्वराटकसचयं ॥ १९४ ॥ रंजितस्फटिके तत्र तपनन्नामीपुसन्निधिं । कांकाक्षिस कष्क्षालनाबुधारा च पश्यता ॥ १९५ ॥ मयार्थलाभं निश्चित्य तोषाभिषवपूर्वकं । अमोघजिह्वन म्राय-

(साथिया) आदि जो शरीरमें एकसौ आठ लक्षण होते है उन्हें देखकर जो भोग ऐश्वर्य आदिकी प्राप्तिका कहना है उसे लक्षणनिमित्त कहते हैं ॥१८८॥ वस्त्र आयुध आदिमें जो चूहे आदि छेद कर देते हैं वे देव मनुष्य और राक्षसके भेदसे तीन तरहके होते हैं उन्हें देखकर जो अच्छा बुरा फल कहना वह छिन्ननिमित्त कहलाता है ॥ १८९ ॥ शुभ अशुभके भेदसे स्वप्न दो तरहके बतलाये हैं उन्हें देखकर जो मनुष्योंकी वृद्धि तथा विनाश आदि यथार्थ वस्तुका कहना है वह स्वप्ननिमित्त कहलाता है ॥ १९० ॥ यह कहकर वह निमित्तज्ञानी फिर कहने लगा कि तप करते समय भूख प्यास बाईस परिषहोंसे मैं बहुत ही दुखी होगया था उन्हें सह नहीं सका था इसलिये तपश्चरण छोडकर मैं पद्मिनीखेटनामके नगरमें आया ॥ १९१ ॥ वहां सोमशर्मा नामका मेरा एक मामा रहता था उसकी एक चद्रमाकेसे मुखवाली चंद्रानना नामकी कन्या था जोकि शुभ थी और हिरण्यलोमानामकी उसकी स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी, वह मेरे सामने बडे प्रेमसे मुझे दी ॥ १९२ ॥ उससमय मैं धन कमाना छोडकर केवल निमित्तके अभ्यास करनेमें तत्पर था इसलिये थोडे ही दिनमें ससुरका दिया हुआ सब धन पूरा होगया फिर भी जब मैंने कुछ नहीं कमाया तब मेरी पत्नी मुझसे बहुत ही विरक्त होगई ॥ १९३ ॥ किसी एक दिन भोजन करनेके समय क्रोधमें आकर उसने मेरी इकट्ठी की हुई कौडियोंका समूह डाल दिया और कहा कि तेरा कमाया हुआ यही द्रव्य है ॥ १९४ ॥ उन कौडियोंमें एक अच्छी कौडी थी वह सुंदर स्फटिक मणिके बने हुए थालमें जापडी थी उसपर जलाई हुई अग्निके फुलिंगे पड रहे थे तथा उसीसमय मेरी स्त्री अपने हाथसे मुझपर पानीकी छींटे डाल रही थी, यह सब देखकर मैंने निश्चय कर लिया है कि संतोषसे अभिषेक होकर मुझे धनकी प्राप्ति अवश्य होगी। आपके लिये यह सब समाचार अमोघजिह्व मुनिराजने कह-

मादेशस्तेऽधुना कृतः ॥ १९६ ॥ इत्यन्वाख्यत् स तच्छ्रुत्वा सयुक्तिकमसौ नृप । चिंताकुलो विसर्ज्यैनमुक्तवानिति मंत्रिण ॥ १९७ ॥ इदं प्रत्येयमस्योक्त किंचित्येतत्प्रतिक्रिया । अभ्यर्णे मूलनाशे क कुर्यात्कालविलंबन ॥ १९८ ॥ तच्छ्रुत्वा सुमतिः प्राह त्वममोघिजलांतरे । लोहमंजूषिकातस्थ स्थापयामेति रक्षितु ॥ १९९ ॥ मकरादिभय तत्र विजयार्द्धगुहांतरे । निदधाम इति श्रुत्वा स सुबुद्धिरभाषत ॥२००॥ तद्वचोवसितौ प्राज्ञ पुरावृत्तकवित्तदा । अथास्त्यानकमित्याख्यप्रसिद्धं बुद्धिसागरः ॥ २०१ ॥ दुःशास्त्रश्रुतिदर्पिष्ठ सोमः सिंहपुरे वसन् । परिव्राट् स विवादार्थे जिनदासेन निर्जित ॥ २०२ ॥ मृत्वा तत्रैव कालाते सभूय महिषो महान् । वणिग्लवणदुर्भारनिरवाहवशीकृत ॥ २०३ ॥ प्राक् पोषयद्भिर्निं शक्तिरिति पश्चादुपेक्षित । जातिस्मरः पुरे बद्धवैरोप्युपगतासुक ॥ २०४ ॥ स्मशाने राक्षस. पापी तस्मिन्नेवोपपद्यत । तत्पुराधीशिनौ कुंभभीमौ कुंभस्य पाचक ॥ २०५ ॥ रसायनादिपाकाख्यस्त-

ला मेजा है ॥ १९५–१९६ ॥ इसप्रकार युक्तिपूर्वक उसने सब हाल कहा उससे सुनकर राजाको बडी चिंता हुई, उस निमित्तज्ञानीको तो विदा किया और मंत्रियोंको बुलाकर उनसे कहने लगा कि ये इस निमित्तज्ञानीके कहे हुए वचन हैं इनपर विश्वास करो और विचारकर शीघ्र ही इसका उपाय करो क्योंकि जडका नाश समीप आ जानेपर भला कौन देर करता है ॥ १९७–१९८ ॥ महाराजकी यह बात सुनकर सुमति नामका मंत्री कहने लगा कि आपकी रक्षा करनेकेलिये आपको लोहेके संदूकमें विठाकर समुद्रके जलके भीतर समुद्रमें विठा देंगे ॥ १९९ ॥ यह सुनकर सुबुद्धि नामका मंत्री कहने लगा कि समुद्रमें मगर मच्छोंका डर है इसलिये महाराजको विजयार्द्ध पर्वतकी गुफामें रखना चहिये ॥ २०० ॥ सुबुद्धिकी बात पूरी होते ही बुद्धिमान और पहिले समयकी सब बातें जाननेवाला बुद्धिसागर मंत्री नीचे लिखे अनुसार पहिलेकी एक प्रसिद्ध कथा कहने लगा ॥ २०१ ॥

इसी भरतक्षेत्रके सिंहपुर नगरमें मिथ्या शास्त्रोंके सुननेसे अत्यंत घमंडी हुआ सोम नामका एक सन्यासी रहता था, उसने जिनदासके साथ शास्त्रार्थ किया परंतु वह हार गया ॥ २०२ ॥ समयानुसार मरकर वह उसी शहरमें एक बडा भैंसा हुआ, वहांपर एक वैश्यके यहां पला, वह वैश्य उसपर नमकका बहुतसा बोझ लादा करता था जब वह बोझ लादने योग्य न रहा तब उस वैश्यने उसे खाना पीना देना भी बंद कर दिया। कारणवश उसे जातिस्मरण होगया और वह नगर भरके साथ वैर करने लगा। आयु पूरीकर वह पापी मरा और उसी नगरके श्मशानमें राक्षस हुआ। उस नगरके कुंभ और भीम नामके दो अधिपति वा राजा थे। राजा कुंभके रसोइयाका नाम रसायनपाक था। राजा कुंभ मांसभोजी था, कारणवश किसी दिन रसोइयाको मांस नहीं मिला इसलिये उसने किसी मरे हुए

द्रोग्यपिशितेऽमति। शिशोर्व्यमोस्तदा मास स कुंभस्य न्ययोजयत् ॥ २०६ ॥ तत्स्वादलोलुपः पापी तदाप्रभृति स्वादितुं । मनुष्यमागमारभ्य संप्रेप्सुर्नारकीं गतिं ॥ २०७ ॥ प्रजाना पालको राजा त वत्तिष्ठतु पालने । खादत्ययमिति त्यक्तः स त्याज्यः सचिवादिभि ॥ २०८ ॥ तन्मासजीवितः क्रूर कदाचिन्निजपाचकं । हत्वा साधिततद्विद्य सक्रांतप्रोक्तराक्षस ॥२०९॥ प्रजा स भक्षयामास प्रत्यह परितो भ्रमन् । तत सर्वेपि मंत्रस्ताः पौराः संत्यज्य तत्पुरं ॥ २१० ॥ नगरं प्राविशन् कारकट नाम मद्भिया । तत्राप्यागत्य पापिष्ठः कुभाह्वयोऽभक्षयत्तरा ॥ २११ ॥ तत्प्रभृति तदाप्राहु कुंभकारकट पुरं। यथादृष्टनृभक्षित्वाद्भीत्यैकशकटौदन ॥ २१२ ॥ खादैकमानुष चेति प्रजास्तस्य स्थितिं व्यधुः। तत्रैव नगरे चडकौशिको नाम विप्रक ॥ २१३ ॥ सोमश्रीस्तत्प्रिया भूतसमुपासनतश्चिरं। मौंडकौशिकनामान तनय तावथापतुः ॥ २१४ ॥ कुंभाहाराय यातं त कदाचिन्मुंडकौशिकं। शकटस्योपरि क्षिप्त

बच्चेका मांस ही बनाकर राजा कुंभको परोस दिया ॥ २०३–२०६ ॥ उस पापीको वह मांस अच्छा लगा और नरक गतिमें पहुंचनेकी इच्छा करनेवाले उसने उसी दिनसे मनुष्योंका मांस खाना प्रारंभ कर दिया ॥ २०७ ॥ राजा प्रजाकी रक्षा करनेवाला होता है जबतक वह प्रजाका पालन करे तब तक राजा कहा जा सकता है जब यह मनुष्योंको ही खाने लगा तब इसे छोड देना ही चाहिये यही सोचकर मंत्री आदि प्रजाके लोगोंने उसे निकाल दिया ॥२०८॥ उसका रसोइया उसे मांस खिलाकर जीवित रखता था किसी एक दिन उस क्रूरने अपने रसोइयाको ही मार डाला और विद्या सिद्धकर ऊपर लिखे हुए राक्षसको वश कर लिया ॥ २०९ ॥ इसतरह वह नगरके चारों ओर फिरता हुआ प्रतिदिन प्रजाका भक्षण करने लगा इसलिये नगरके सब लोग डर गये आर उस नगरको छोडकर डरके मारे कारकट नामके नगरमें जा रहे। परंतु वह पापी कुंभ वहां भी आगया और लोगोंको भक्षण करने लगा ॥ २१०–२११ ॥ उससमयसे लेकर उस नगरका नाम कुंभकारकट पड गया है। जब प्रजाने उसे मनुष्यभक्षी देखा तब सबने मिलकर एक गाडी भात और एक मनुष्य देनेका प्रबंध कर दिया ॥ २१२–२१३ ॥ उसी नगरमें एक चंडकौशिक नामका ब्राह्मण रहता था, उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। बहुत दिनतक भूतोंकी सेवा करनेसे उन दोनोंके मौंडकौशिक नामका पुत्र हुआ था। किसी एक दिन कुंभको देनेके लिये उस लडकेकी भी बारी आई, लोग उसे गाडीमें डालकर लेजा रहे थे, परंतु भूत उसे गाडीसे उठाकर ले भागे, कुंभ उनके पीछे पडा और हाथके दंडेसे आक्रमणकर ललकार उन्हें भगा दिया ॥ २१४–२१६ ॥ डरके मारे उन्होंने उस ब्राह्मणको किसी विलमें पटक दिया परंतु उस विलमें एक अजगर रहता था जो कि पडते ही उस ब्राह्मणको खा गया। इसलिये मैं कहता हूं महाराजको गुफामें रखना

नीत्वा भूतैः प्रयामिमि ॥२१५॥ कुमेनानुयता दण्डहस्तेनाक्रम्य तर्जितैः । भयाद्विले विनिक्षिप्त अगाराजगरो द्विजं ॥ २१६ ॥ विजयार्द्धगुहायां तन्निक्षेपण-मधुकर्क । पथ्यं तद्वचनं श्रुत्वा सूक्ष्मधीर्मतिसागरः ॥ २१७ ॥ भूपतेरशने पातो नोक्तो नैमित्तिकेन तत् । पोदनाधिपति कश्चिदन्योऽवस्थाप्यतामिति ॥ ॥ २१८ ॥ जगाद भवता प्रोक्तं युक्तमित्यभ्युपेत्य ते । सभूय मन्त्रिणो यक्षप्रतिबिंबं नृपासने ॥ २१९ ॥ निवेश्य पोदनाधीशस्त्वमित्येनमपूजयत् । महीशोपि परित्यक्तराज्यभोगोपभोगकः ॥ २२० ॥ प्रारब्धपूजादानादि निजप्रकृतिमण्डलः । जिनचैत्यालये शांतिकर्म कुर्वन्नुपाविशत् ॥ २२१ ॥ सप्तमेऽहनि यक्षस्य प्रतिमायां महाध्वनि । न्यपतन्निष्ठुरं मूर्ध्नि सहसा भीषणोऽशनिः ॥२२२॥ तस्मिन्नुपद्रवे शांते प्रमोदात्पुरवासिनः । वर्द्धमानानकध्वानैरकुर्वन्नुत्सवं परं। ॥२२३॥ नैमित्तिकं समाहूय राजा सपूज्य दत्तवान् तस्मै ग्रामशतं पद्मिनीखेटेन ससम्मद ॥२२४॥ विधाय विधिवद्भक्त्या शांतिपूजापुरस्सरं महाभिषेकं लोकेशामर्हतां सचिवोत्तमाः ॥२२५॥ अष्टापदमयैः कुंभैरभिषिच्य महीपतिं । सिंहासनं समारोप्य स्वराज्ये प्रत्यतिष्ठपत् ॥२२६॥ एवं सुखसुखेनैव काले गच्छ-

ठीक नहीं है ॥ २१७ ॥ बुद्धिसागरके ये योग्य वचन सुनकर सूक्ष्मबुद्धिको धारण करनेवाला मतिसागर मंत्री कहने लगा कि वज्र महाराजपर पडेगा ऐसा तो निमित्तज्ञानीने कहा ही नहीं है जो पोदनपुरका स्वामी होगा उसपर ही वज्र पडना बतलाया है इसलिये पोदनपुरके स्वामीकी जगह किसी दूसरेको स्थापन कर देना चाहिये। उसकी इस बातको सुनकर सबने मानलिया और कहा कि तुमने बहुत योग्य कहा है ॥ २१८–२१९ ॥ सब मंत्रियोंने मिलकर राजाके सिंहासनपर एक यक्षका प्रतिबिंब बिठाया और 'तू ही पोदनपुरका राजा है' ऐसा मानकर उसे पूजने लगे ॥ २२० ॥ इधर राजाने राज्य भोग उपभोग आदि सब छोड दिये और अपनी स्वभाववाली मंडलीके साथ साथ जिनचैत्यालयमें बैठकर पूजा दान आदि शांतिकर्म करने प्रारंभ किये। सातवें दिन उस यक्षकी प्रतिमाके ऊपर बडा भारी शब्द करता हुआ भयंकर वज्र अकस्मात् वडी कठोरताके साथ आपडा। जब वह उपद्रव शांत होगया तब नगरके लोग बडे आनंदसे बढती हुई नगाडोंकी आवाजोंसे बडाभारी उत्सव करने लगे। राजाने निमित्तज्ञानीको बुलाकर उसका खूब आदर सत्कार किया और प्रसन्न होकर पद्मिनीखेटके साथ उसे सौ गांव दिये। तीनों लोकोंके स्वामी भगवान अरहंतदेवकी विधिपूर्वक बडी भक्तिसे शांतिपूजा की और उनका महाभिषेक किया। सब मंत्रियोंने मिलकर सुवर्णके बने हुए घडोंसे महाराजका अभिषेक किया उन्हें सिंहासनपर विराजकर उस राज्यका अधिपति बनाया। ॥ २२१–२२६ ॥ इसके बाद उनका समय बडे सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक दिन राजा श्रीविजयने अपनी माताकी आकाशगामिनी विद्या लेकर सिद्ध की और क्रीडा करनेकी इच्छासे रानी सुताराके साथ ज्योतिर्वनमें गया

नि सोन्यदा। विद्या स्वमातुरादाय ससाध्याकाशगामिनीं ॥२२७॥ सुतारया सह ज्योतिर्वनं गत्वा रिरसया। यथेष्ट विहरस्तत्र सलीलं कातया स्थितः ॥२२८॥ इतश्चमरचंचाख्यपुरेशोऽशनिघोषक । आसुर्याश्च सुतो लक्ष्म्या महानिंद्राशनेः खग ॥ २२९ ॥ विद्यां स भ्रामरीं नाम्ना प्रसाध्यायान्पुरं स्वकं। सुतारा वीक्ष्य जातेच्छस्तामादातु कृतोद्यमः ॥ २३० ॥ कृत्रिमैणछलात्तस्मादपनीय महीपतिं । तद्रूपेण निवृत्यैत्य सुतारा दुरिताशय ॥ २३१ ॥ मृगोगाद् वायुवेगेन तं गृहीतुमपारयन् । आगतोह प्रयात्यास्तमर्को यावः पुरं प्रति ॥ २३२ ॥ इत्युक्त्वारोप्य ता खेटो विमानमगमत्तत । गत्वातरे स्वसौरूपशालिना दर्शित निज ॥ २३३ ॥ रूपमालोक्य तत्कोयमिति सा विह्वलाभवत् । इतस्तत्प्रोक्तवैताली सुतारारूपधारिणीं ॥ २३४ ॥ स्थिता कुक्कुटसर्पेण दष्टाहमिति सभ्रमात् । म्रियमाणामिवालोक्य विनिवृत्यागत स्वय ॥ २३५ ॥ अहार्यं तद्विष ज्ञात्वा मणिमंत्रौषधादिभि । सुस्निग्धः पोदनाधीशो मर्तुं सह

वह वहांपर अपनी इच्छानुसार विहार करता हुआ रानी सुताराके साथ ठहरा हुआ था। ॥ २२७–२२८ ॥ इतनेमेंही चमरचंचपुरका राजा इंद्राशनि रानी आसुरीका लक्ष्मीसे पूज्य ऐसा अशनिघोष नामका विद्याधर पुत्र भ्रामरी विद्याको सिद्धकर अपने नगरको लौट रहा था ॥ २२९–२३० ॥ मार्गमें उसने सुतारा देखी। देखते ही उसपर उसकी इच्छा हुई और वह उसके हरण करनेका उद्यम करने लगा। उसने एक कृत्रिम हरिण बनाया राजा उसे देखकर पकडनेके लिये उसके पीछे पडा इसतरह राजा श्रीविजयको तो सुतारासे अलग कर दिया और वह दुष्ट श्रीविजयका रूप बनाकर सुताराके पास आकर कहने लगा कि हे प्रिये! वायुके समान अपने वेगसे हरिण तो भाग गया, मैं उसे पकड न सका इसलिये लौट आया अब सूर्य अस्त होना चाहता है इसलिये चलो हम तुम दोनों अब अपने नगरको चलें" इसतरह कहकर उस विद्याधरने उसे विमानमें विठाया और वहांसे चल दिया ॥ २३१–२३३ ॥ थोडी ही दूर जाकर उस कपटी विद्याधरने अपना रूप दिखाया उसे देखकर "यह कौन है" इसतरह कहती हुई सुतारा बहुत ही व्याकुल हुई ॥ २३४ ॥ उसी अशनिघोष विद्याधरने एक वैताली नामकी विद्या भेजी थी जो कि सुताराका रूप धारणकर वहां बैठी थी, जब श्रीविजय वापिस लौटकर आया तब उस बनावटी सुताराने कहा मैं सर्पने काट खाई हूं इसतरह कहकर वह बडी शीघ्रतासे मरी हुईके समान होगई। पोदनपुरके राजा श्रीविजयने उसे मरी हुई देखकर मणि मंत्र औषधसे अनेक उपाय किये परंतु जब विष उतरते नहीं देखा तब उस रानीमें अत्यंत प्रेम होनेके कारण उसने रानीके साथ वहीं मरनेका विचार किया। लकडी इकट्ठीकर सूर्यकांतमणिसे उसने अग्नि जलाई और इसतरह चिता बनाकर शोकसे व्याकुल हो उस चितापर जा चढा। उसीसमय कोई दो विद्याधर उनके समीप आये, उनमेंसे महा प्रतापी

तयोत्सुकः ॥ २३६ ॥ सूर्यकांतसमुद्भूतदहनज्वलितेंधन । चितिका कांतया सार्द्धमारुरोह शुचाकुलः ॥ २३७ ॥ तदैव खेचरौ कौचित् तत्र सन्निहितौ तयोः । विद्याविच्छेदिनीं विद्यां स्मृत्वैकेन महौजसा ॥ २३८ ॥ हतासौ भीतवेताली वामपादेन दर्शित-स्वरूपास्य पुर स्थातुमशक्ताऽगाददृश्यतां ॥२३९॥ तद्विलोक्य महीपालो नितरां विस्मयं गतः । किमेतदित्यवोचत्त खचरश्चाह तत्कथा ॥ २४० ॥ द्वीपेस्मिन् दक्षिणश्रेण्यां भरते खचराचले । ज्योतिःप्रभपुराधीशः संभिन्नोह मम प्रिया ॥ २४१ ॥ संज्ञया सर्वकल्याणी सूनुर्द्वीपशिखाह्वयः । एष मे स्वामिना गत्वा रथनूपुरभूभुजा ॥ २४२ ॥ विहर्तुं विपुलोद्याने नलांतशिखरश्रुते । ततो निवर्तमान सन् स्वयानकविमानगा ॥ २४३ ॥ क्व मे श्रीविजयः स्वामी रथनूपुरभूपते । क्व मां पाहीति साक्रोशस्वनितां करुणस्वन ॥ २४४ ॥ श्रुत्वाहं तत्र गत्वाख्यं कस्त्वं कां वाहरस्यमूं । इत्यसौ चाह सक्रोधं चंचाचमराधिप ॥ २४५ ॥ खगेशोशनिघोषाख्यो हठादेना नयाम्यहं । भवतो यदि सामर्थ्यमस्त्येह्येहीति मोचय ॥ २४६ ॥ तच्छ्रुत्वा मत्प्रभोरेषा नीयते तेन सानुजा । सामान्यव

एक विद्याधरने विद्याविच्छेदिनी नामकी विद्याका स्मरणकर अपने बाँयें पैरसे वैतालीको मारा जिमसे वह अपने असली रूपमें आगई और उस विद्याधरके मामने वह अपने रूपमें ठहर नहीं सकी इसलिये वह अदृश्य होगई। इस बातको देखकर राजा श्रीविजयको भी बडा भारी आश्चर्य हुआ ॥ २३४-२४० ॥ उसने उस विद्याधरसे पूछा कि यह क्या बात है? तब फिर वह विद्याधर कहने लगा कि इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें ज्योतिःप्रभ नामका नगर है मैं संभिन्न नामका वहांका राजा हूं सर्वकल्याणी नामकी यह मेरी स्त्री है और द्वीपशिख नामका यह मेरे पुत्र है ॥ २४१-२४२ ॥ मैं अपने स्वामी रथनूपुरके राजा अमिततेजके साथ साथ विपुल नामके वनमें नलांतशिखरनामके प्रसिद्ध पर्वतपर विहार करनेके लिये गया था ॥ २४३ ॥ वहांसे हम सब लौट रहे थे, मार्गमें आकाशमें विमानपर बैठी हुई कोई स्त्री रो रही थी और कह रही थी कि "मेरे स्वामी श्रीविजय कहां है? मेरे भाई रथनूपुरके राजा अमिततेज कहां हैं मेरी रक्षा करो" इस प्रकारकी रोनेकी आवाजको सुनकर हम लोग वहां गये और उस विद्याधरसे पूछा कि तू कौन है और यह कौन है तथा तू इसे क्यों लिये जा रहा है ॥ २४४-२४५ ॥ तब उसने बडे क्रोधमें आकर कहा कि "मैं चंचाचमरका राजा विद्याधरोंका स्वामी अशनिघोष हूं, इसे मैं जबर्दस्ती लिये जाता हूं यदि तुममें सामर्थ्य है तो आओ आओ इसे छुडाओ। विद्याधरकी यह बात सुनकर मैंने सोचा कि "यह मेरे स्वामी अमिततेजकी बहिनको लिये जा रहा है ॥ २४६-२४७ ॥ इसलिये हमे साधारण रीतिसे चला जाना ठीक नहीं है इसे मारना चाहिये" ऐसा निश्चयकर मैंने युद्ध करना

त्कथ यामि त्वन्मेनमिति तिष्ठवान् ॥ २४७ ॥ योद्धुं प्रक्रममाण मा निवार्यानेन माकृथा । वृथेति युद्ध निर्बंधात्पोदनाख्यपुराधिप: ॥ २४८ ॥ ज्योतिर्वने वियोगेन मम शोकानलाहत: । वर्तते तत्र गत्वा त मदवस्था निवेदय ॥ २४९ ॥ इति त्वत्कांतया राजन् प्रेषितोहमिहागत । इयं त्वद्वैरिनिर्दिष्टदेवतेत्यादरादिति: ॥ २५० ॥ श्रुत्वा तत्पोदनाधीशो सत्कृत कथ्यतामिदं । वृत्तात सत्वरं गत्वा सन्मित्रेण स्वयाधुना ॥ २५१ ॥ मज्जनन्यनुजादीनामित्युक्तोसौ नभश्चर । सुत द्वीपशिख सद्य प्राहिणोत्पोदन प्रति ॥ २५२ ॥ अभवत्पोदनाख्येपि बहूत्पातविजृंभण । तदृष्ट्वामोघजिह्वाख्यो जयगुप्तश्च संभ्रमात् ॥ २५३ ॥ उत्पन्नं स्वामिन किंचिद् भयं तदपि निर्गतं । आगमिष्यति चाद्यैव कश्चित्कुशलवार्तया ॥ २५४ ॥ स्वस्था: तिष्ठतु तत्तत्र भवंतो मागमद्भय । इति स्वयप्रभादींस्तानाश्वास नयतः स्म तान् ॥ २५५॥ तथैव गगनाद्द्वीपशिखोप्यागम्य भूतल । स्वयंप्रभा सुतं चास्या प्रणम्य विधिवत्सुधी ॥ २५६ ॥ क्षेम श्रीविजयाधीशो भवद्भिस्त्यज्यतां भयं । इति तनूवृत्तक सर्वं यथावस्थ न्यवेदयत् ॥ २५७ ॥ तद्वार्ताकर्णनाद्दावपरिम्लानलतो-

प्रारंभ किया परंतु आपकी स्त्रीने मुझे रोका और कहा कि "विना कारणके व्यर्थ ही युद्ध करना ठीक नहीं है, पोदनपुरके राजा श्रीविजय ज्योतिर्वनमें मेरे वियोगसे शोकरूपी अग्निसे जल रहे होंगे इसलिये तुम वहां जाकर उनसे मेरी यह अवस्था कह दो" हे राजन् इसतरह आपकी स्त्रीका भेजा हुआ मैं यहां आया हूं ॥२४८-२५०॥ यह आपके शत्रुकी भेजी हुई देवता है इसप्रकार आदरपूर्वक हितकी बात कही उसे सुनकर पोदनपुरका राजा श्रीविजय कहने लगा कि हे मित्र! आपने बहुत अच्छा किया कृपाकर यह सब समाचार मेरी माता और छोटे भाईसे शीघ्रही जाकर कह दीजिये, ऐसा कहनेपर उस संभिन्न विद्याधरने भी अपने पुत्र द्वीपशिखको शीघ्र ही पोदनपुर भेज दिया। इधर पोदनपुरमें भी बहुतसे उपद्रव हुए थे ॥ २५१-२५३ ॥ उन्हें देखकर अमोघजिह्व और जयगुप्त नामके निमित्तज्ञानी बड़ी शीघ्रतासे कह रहे थे कि "महाराजको कुछ भय हुआ है और वह दूर भी हो गया है ॥ २५४ ॥ उनका कुशल मंगल लेकर आज ही कोई मनुष्य आवेगा तुम लोग निराकुल होकर रहो और किसी भयकी शंका मत करो" ॥२५५॥ इसप्रकार वे दोनों ही निमित्तज्ञानी स्वप्रभा आदिको धीरज बंधा रहे थे इतनेमें ही द्वीपशिख आकाशसे उतरकर पृथ्वीपर आया ॥ २५६ ॥ उस बुद्धिमानने विधिपूर्वक स्वयंप्रभा और उसके छोटे पुत्रको प्रणाम किया और कहा कि महाराज श्रीविजय कुशलपूर्वक हैं आप सब तरहका भय छोड दीजिये ॥ २५७ ॥ इसतरह उसने वहांके सब यथार्थ समाचार कह दिये। उस बातको सुनकर जिसप्रकार दावानल अग्निसे लता (बेल) मलिन हो जाती है, अथवा जिसप्रकार बुझनेके समय दीपककी शिखा प्रभारहित हो जाती है, अथवा वर्षाऋतुके बादलोंकी गर्जना सुनकर सुंदर हं-

स्याद्वादवादिविध्वस्तदु श्रुतिवाकुलाकुला ॥ २५९ ॥
पमा । निर्वाणाभ्यर्णदीपस्य शिखेव विगतप्रभा ॥ २५८ ॥ श्रुतप्राव्रड्घनध्वानकलहसीव शोकिनी । स्याद्वादवादिविध्वस्तदु श्रुतिवाकुलाकुला ॥ २५९ ॥
तदानीमेव निर्गत्य चतुरंगबलान्विता । स्वयप्रभागात्सखगा ससुता तद्वनांतरं ॥ २६० ॥ आयांतीं दूरतो दृष्ट्वा मातरं स्वानुजानुगा । प्रतिगत्यानमत्पादयोः पोदनाधिप ॥ ॥२६१ ॥ स्वयप्रभा च त दृष्ट्वा बाष्पाविलविलोचना । उत्तिष्ठ पुत्र दृष्टोसि मत्पुण्याच्चिरजीवित ॥ २६२॥ इति श्रीविजय दोर्भ्यां ते मुत्थाप्यास्पृश्य तोषिणी । सुखासीनमथापृच्छत्सुताराहरणादिकं ॥ २६३ ॥ खग संभिन्ननामायं सेवकोऽमिततेजस । अनेनोपकृतिर्याद्य कृता साप्येत्वयापि न ॥ २६४ ॥ ममेति शेषमप्याह ततोसावप्यभूभूजन् । तनूज पुररक्षायै निर्वर्त्याग्रजान्विता ॥ २६५ ॥ रथनूपुरमुद्दिश्य गता गगनवर्त्मना । स्वदेशचरचारोक्त्या विदितामिततेजसा ॥ २६६ ॥ महाविभूत्या प्रत्येत्य मामिका परितुष्यता । प्रवेशिता सकेतूर्ध्वं पुरमाबद्धतोरणं ॥ २६७ ॥ प्राघूर्णकविधिं विश्व विधाय विधिवत्तयो । तदागमनकार्यं च ज्ञात्वा विद्याधराधिप ॥ २६८ ॥ दूत मरीचिनामानमिंद्राशनिसुत प्रति । प्रहित्य तन्मुखात्तस्य

सिनी शोक करने लग जाती है, अथवा जिसप्रकार स्याद्वादको जाननेवाले वादियोंके द्वारा दलित होकर दुःश्रुति (मिथ्याशास्त्र) व्याकुल हो जाती है, उसीप्रकार व्याकुल हुई स्वयंप्रभा उसी समय चारोंतरहकी सेना लेकर निकली और उस विद्याधर तथा अपने छोटे पुत्रके साथ उसी वनमें जा पहुंची। अपने छोटे भाईके साथ माताको दूरसे ही आती देखकर पोदनपुरका राजा श्रीविजय सामने आया और उसके चरणोंको नमस्कार किया। श्रीविजयको देखकर स्वयंप्रभाके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी और कहने लगी कि हे बेटा! उठो मैंने अपने पुण्योदयसे ही तुम्हें चिरजीवित देखा है, इसतरह कहकर उसने अपने दोनों हाथोंसे श्रीविजयको उठाया, उसका स्पर्श किया और संतुष्ट हुई ॥ २५८–६३ ॥ जब वह सुखसे बैठगया तब स्वयंप्रभाने सुताराके हरण होने आदिके समाचार पूछे श्रीविजय कहने लगा कि यह संभिन्न विद्याधर अमिततेजका सेवक है, हे माता! इसने मेरे जो जो उपकार किये हैं वे आपसे भी नहीं हो सकते। इसतरह उसने जो जो समाचार हुए थे वे सब कह सुनाये ॥२६४–६५॥ स्वयंप्रभाने अपने छोटे पुत्रको तो नगरकी रक्षाके करनेके लिये वापिस भेजा और आप बडे पुत्र श्रीविजयके साथ आकाशमार्गसे रथनूपुरको चली ॥ २६६ ॥ रथनूपुरके राजा अमिततेजने अपने देशके दूतोंसे स्वयंप्रभाका आना सुना और बडी विभूतिके साथ सामने आकर अपनी मामीको संतुष्ट किया ॥ २६७ ॥ जिसमें तोरण बांधे गये हैं और ध्वजायें फहरा रही हैं ऐसे अपने नगरमें प्रवेश कराया और उन दोनोंका सबतरहका आदर सत्कार किया ॥ २६८ ॥ उस विद्याधरोंके स्वामी अमिततेजने उनके आनेका कारण समझा और फिर अशनिघोषके समीप मरीच नामका दूत भेजा, दूतकी बात सुनकर

वि दित्वा दुस्सहं वच ॥ २६९ ॥ आलोच्य मंत्रिभि सार्द्धमुच्छेत्तुं त मदोद्धतं । मैथुनाय महेच्छाय निजाग्रायसमागतं ॥ २७० ॥ युद्धवीर्यं प्रहरणावरणं बंधमोचनं । इति विद्यात्रय शत्रुध्वंसार्थमदितादरात् ॥ २७१ ॥ रश्मिवेगसुवेगादिसहस्रार्द्धात्मज सह । पोदनेश व्रजेत्युक्त्वा शत्रोरुपरि दर्पिणः ॥२७२॥ सहस्ररश्मिना सार्द्धं ज्यायसा स्वात्मजेन सः । महाज्वालाह्वयां सर्वविद्याच्छेदनसंयुतं ॥ २७३॥ सजयतमहाचैत्यमूले साधयितुं गत । ह्रीमतं पर्वतं विद्यां विद्यानां साधनास्पद ॥ २७४ ॥ रश्मिवेगादिभि सार्द्धं श्रुत्वा श्रीविजयागम । युद्धायाशनिघोषेण प्रेषित स्वसुता क्रुधा ॥ २७५ ॥ सुघोष शतघोषाख्याः ससहस्रादिघोषक । युद्ध्वान्येपि च मासार्द्धं सर्वे भगमुपागमन् ॥ २७६ ॥ तद् बुध्वा क्रोधसतप्तो योद्धुं स्वयमुपेयिवान् । स्वनाशपिशुनाशेषघोषणोऽशनिघोषकः ॥ २७७ ॥ युद्धे श्रीविजयोप्येतं विद्यातु प्राहरद्द्विधा । भ्रामरीविद्यया सोपि द्विरूप समजायत ॥ २७८ ॥ चतुर्गुणत्वमायातौ पुनस्तौ तेन खण्डितौ । संग्रामोऽशनिघोषकमायाभूदिति खंडनात् ॥ २७९ ॥ तदा साधितविद्यः सन् रथनूपुरनायक । एत्यादिगन्महाज्वालविद्यां तां सोढुमक्षमः ॥

अशनिघोष बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने अयोग्य वचन कहे। दूतने लौटकर वे सब अमिततेजसे कह सुनाये, असह्य वचनोंको सुनकर उसने मंत्रियोंके साथ विचार किया और मदोन्मत्त अशनिघोषको नाश करनेके लिये पक्का विचार कर लिया ॥ २६९–२७० ॥ बड़ी इच्छा करनेवाले अपने बहनोई श्रीविजयकेलिये शत्रुको नाश करनेके लिये बड़े आदरसे अपने कुल परंपरासे चली आई युद्धवीर्य प्रहरणावरण और बंधमोचन ये तीन विद्यायें दीं और रश्मिवेग सुवेग आदि पांचसौ पुत्रोंके साथ साथ पोदनपुरके राजा श्रीविजयसे घपंडी शत्रुपर जानेकेलिये कहा तथा वह अमिततेज अपने बड़े पुत्रके साथ साथ सब विद्याओंके छेदन करनेके लिये सब विद्याओंको सिद्ध करनेकी जगह ऐसे ह्रीमंत पर्वतपर संजयंतकी महाप्रतिमाके समीप गया। इधर अशनिघोषने रश्मिवेगके साथ साथ युद्ध करनेके लिये श्रीविजयका आना सुना तब उसने क्रोधित होकर सुघोष शतघोष सहस्रघोष आदि अपने पुत्रोंको भेजा ॥ २७१–२७६ ॥ तथा और भी अनेक शूरवीरोंको भेजा वे सब पंद्रह दिनतक लड़ते रहे परंतु अंतमें हारकर भागगये, यह जानकर क्रोधसे संतप्त हुआ अशनिघोष स्वयं लड़नेके लिये आया ॥ २७७ ॥ इधर तो अपने नाशको सूचित करनेवाली पूर्ण घोषणा करता हुआ अशनिघोष आया और इधर उससे युद्ध करनेकेलिये श्रीविजय आया, श्रीविजयने उसके दो टुकड़े करनेकेलिये शस्त्रका प्रहार किया ॥ २७८ ॥ शस्त्रका प्रहार पड़ते ही भ्रामरी विद्यासे अशनिघोषने दो रूप धारणकर लिये। श्रीविजयने जब उन दोनोंके भी दो दो टुकड़े किये तब उसके चार रूप होगये ॥ २७९ ॥ इसतरह टुकड़े करते करते वह युद्धका सब मैदान अशनिघोषकी मायासे भर गया इतनेमेंही रथनूपुरका राजा ...

॥ २८० ॥ मासार्द्धकृतसग्रामो- विजयाख्यजिनेशिन । नामेयसीमनामाद्रिगजध्वजसमीपगां ॥ २८१ ॥ सभां भीत्वा खगेशोऽगात्कोपात्तेप्यनुयायिन । मानस्तंभं निरीक्ष्यासन् प्रसीदच्चित्तवृत्तयः ॥ २८२ ॥ जिनं प्रदक्षिणीकृत्य त्रि प्रणम्य जगत्पतिं । वांतवैरविषाः सर्वे तत्रासिषत ते समं ॥२८३॥ तदागत्यासुरीदेवी सती शीलवती स्वय । सुतारां द्रुतमानीय परिम्लानलतोपमां ॥ २८४ ॥ मत्पुत्रस्य युवां क्षंतुमपराधनमर्हत । इत्युदीर्यार्पयत्स्मा श्रीविजयामिततेजसोः ॥ २८५ ॥ तिरश्चामपि चेद्वैरमहार्यं आतिहेतुकं । विनश्यति जिनाभ्यासे मनुष्याणां किमुच्यते ॥ २८६ ॥ कर्माण्यनादिबद्धानि मुच्यंते यदि संस्मृते । जिनानां सन्निधौ तेषां नाश्चर्यं वैरमोचनं ॥ २८७ ॥ अतको दुर्निवारोत्र वार्यते सोपि हेलया । जिनस्मरणमात्रेण न वार्योन्य स को रिपुः ॥ २८८ ॥ तदंतकप्रतीकारे स्मरणीयो मनीषिभि । जगत्त्रयैकनाथोर्हन् पुरेह च हितावह ॥ २८९ ॥ अथ विद्याधरा-

को सिद्धकर आया और आते ही महाजाल विद्याको आज्ञा दी। अशनिघोष उस विद्याको मह नहीं सका इसलिये पद्रह दिनतक युद्ध कर भागा और डरसे नामेयसीम नामके पर्वतपर गजध्वजके समीप विजय तीर्थंकरके समवसरणमें जा घुसा अमिततेज श्रीविजय आदि भी क्रोधित होकर उसके पीछे पीछे भागे थे ॥ २८२ ॥ परंतु मानस्तंभको देखते ही सबके चित्तकी वृत्तियां शांत होगई सबने जगत्पति भगवानकी तीन प्रदक्षिणायें दीं और प्रणाम किया॥२८३॥ वहां जाकर सबने अपना अपना वैर छोड दिया और सब साथ साथ बैठे। उसीसमय शीलवती सती आसुरी देवी स्वयं आई, मलिन हुई लताके समान सुताराको शीघ्र ही लाई तथा श्रीविजय और अमिततेजको समर्पणकर कहने लगी कि तुम दोनोंको मेरे पुत्रका अपराध क्षमा कर देना चाहिये ॥२८४–८५॥ तिर्यंचोंका जो वैर जन्मसे उत्पन्न होता है और छूट नहीं सकता वह भी श्रीजिनेंद्रदेवके समीप आकर नष्ट हो जाता है फिर भला मनुष्योंकी तो बात ही क्या है २८६ ॥ जिन जिनेंद्रदेवके स्मरण करने मात्रसे अनादिकालके बंधे हुए कर्म छूट जाते हैं फिर भला उन्हीं जिनेंद्रदेवके समीप वैरका छूट जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २८७ ॥ भगवानके स्मरण करने मात्रसे जो किसीसे निवारण न किया जा सके ऐसा यमराज भी लीलामात्रमें निवारण किया जाता है फिर भला अन्य ऐसा कौन शत्रु है जो न रोका जा सके ॥ २८८ ॥ इसलिये बुद्धिमानों को उन शत्रुओंको नाश करनेकेलिये तीनों लोकोंके नाथ और सबका हित करनेवाले भगवान अरहंतदेवका ही स्मरण करना चाहिये ॥ २८९ ॥

अथानंतर–विद्याधरोंके स्वामी अमिततेजने उन भगवानको नमस्कार किया, हाथ जोडे और तत्त्वार्थोंके जाननेकी इच्छासे बडी भक्तिसे सद्धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २९० ॥ वह पूछने लगा कि जिन ! जिसमें कषायरूपी मगरमच्छ

धीश प्रणम्य प्राजलिर्जिन । भक्त्या सद्धर्ममप्राक्षीत्स तत्त्वार्थशुश्रुत्सया ॥ २३० ॥ महादु खोर्मिसंकीर्णदु ससारपयोनिधे । स्फुरत्कषायन-
क्रस्य पार: केनाप्यते जिन ॥ २९१ ॥ पृष्टव्यो नापर कोपि तीर्णमसारसागर । त्वमेवैको जगद्बंधो विनेयाननुसाधि न: ॥ २९२ ॥ भवद्भाषात्रहमावा
रत्नत्रयमहाधना । सस्थान जन्मवारशेरावापत्सुखसाधन ॥ २९३ ॥ इति त च ततो देवो वाचा प्रोवाच दिव्यया । संतर्प्यते यथा भव्या: प्राच्या वृष्टये
चातका ॥२९४॥ शृणु भव्य भवस्यास्य कारण कर्म कर्मण: । हेतवो हे खगाधीश मिथ्यात्वासयमादय: ॥२९५॥ मिथ्यात्वोदयसभूतपरिणामो विपर्ययं ।
ज्ञानस्य जनयन् विद्धि मिथ्यात्व बधकारण ॥ २९६ ॥ अज्ञानसशयैकातविपरीतविकल्पन । विनयकृतज चेति तज्ज्ञैस्तत्पचधामत ॥ २९७ ॥ पापधर्माभि-
धानावबोधदूरेषु जतुषु । मिथ्यात्वोदयपर्यायो मिथ्यात्व स्यात्तदादिम ॥ २९८ ॥ आत्मागमादिनानात्वासत्त्वे दोलायमानता । येन संशय-
मिथ्यात्व तद्विद्धि बुधसत्तम ॥ २९९ ॥ द्रव्यपर्यायरूपेर्थे त्र्यंगे चाक्षयसाधने । तस्यैकांतमिथ्यात्व येनैकातावधारणं ॥ ३०० ॥ योज्ञानज्ञा-

भरे हुए हैं और जो अनेक दुःख रूपी लहरोंसे भर रहा है ऐसे विकराल संसाररूपी समुद्रके पार कौन जा सकता है ॥ २९१ ॥ हे नाथ! यह विषय आपके सिवाय अन्य किसीसे नहीं पूछा जा सकता क्योंकि आप ही संसार सागरके पार पहुंचे हुए हैं और आप ही जगतके बंधु हैं इसलिये हम शिष्योंपर आप ही कृपा कीजिये ॥ २९२ ॥ रत्नत्रयरूपी उत्तम धनको धारण करनेवाले लोग इस जन्म मरणरूपी महासागरसे आपकी दिव्यध्वनिरूपी बड़ी नावके द्वारा ही सुखपूर्वक अपने स्थानपर पहुंच सकते हैं ॥ २९३ ॥ इसप्रकार पूछनेपर वे भगवान जिसप्रकार पहिली वर्षासे चातक पक्षी संतुष्ट होते हैं उसीप्रकार भव्यजीवोंको संतुष्ट करते हुए अपनी दिव्यध्वनिसे कहने लगे ॥ २९४ ॥ कि हे विद्याधर भव्य! सुन! इस संसारके कारण कर्म हैं और कर्मके कारण मिथ्यात्व असंयम आदि हैं ॥ २९५ ॥ मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले जो परिणाम ज्ञानको भी विपरीत वा मिथ्या कर देते हैं और जो बंधके कारण हैं उन्हें मिथ्यात्व कहते हैं ॥ २९६ ॥ अज्ञान संशय एकांत विपरीत और विनय इनके भेदसे वह मिथ्यात्व पांच प्रकारका माना गया है ॥ २९७ ॥ जो जीव पाप और धर्मके नामसे बहुत दूर हैं अर्थात् जो पाप और धर्मका स्वरूप बिलकुल नहीं जानते उनके जो मिथ्यात्व कर्मके उदयसे परिणाम होते हैं वह पहिला अज्ञानमिथ्यात्व कहलाता है ॥ २९८ ॥ जिस कर्मके उदयसे अनेक तरहके आप्त आगमोंके द्वारा कहे हुए तत्त्वोंमें चित्त झूलता रहता है किसीमें विश्वास नहीं होता उसको हे उत्तम बुद्धिमान! संशय मिथ्यात्व कहते हैं ॥ २९९ ॥ जो समस्त पदार्थ द्रव्य पर्याय रूप हैं अथवा जो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप है उसमेंसे किसी एक रूप ही मानना एकांत मिथ्यात्व है ॥ ३०० ॥ जिसके उदयसे ज्ञान ज्ञायक और जानने योग्य यथार्थ पदार्थोंमें विपरीत निश्चय करना वि-

स येनात्मनि तद्विद्धि मिथ्यात्वं विपरीतज ॥ ३०१ ॥ मनोवाकायवृत्तेन प्रणतौ सर्ववस्तुषु । मुक्त्युपायमतिर्येन मिथ्या-
त्वकल्पयमायात्म्ये निर्णयोऽन्यथा । अप्रत्याख्यानमोहानामुदयो
त्वं स्यात् तदतिम ॥ ३०२ ॥ अव्रतस्य मनःकायवचोवृत्तिरसयमः । तज्ज्ञैः सोपि द्विधा प्रोक्तः प्राणींद्रियसमाश्रयात् ॥३०३॥ यावदमिनां । आचतुर्थगुणस्थानात्तावत्स बंधकारणं ॥३०४॥ कायवाक्चेतसां वृत्तिर्व्रतानां मलकारिणी । या सा षष्ठगुणस्थाने प्रमादो बंधवृत्तये ॥ ३०५ ॥ प्रोक्ता पंचदशतस्य भेदाः सज्वलनोदयात् । चारित्रत्रययुक्तस्य प्रायश्चित्तस्य हेतवः ॥ ३०६ ॥ य संज्वलनसंज्ञस्य चतुष्कस्योदयाद्भवेत् । गुणस्थान-
चतुष्के स कषायो बंधहेतुकः ॥ ३०७ ॥ स यः षोडशभेदेन कषाय कथितो जिनै । उपशातादितो हेतुर्बंधे स्थित्यनुभागयो. ॥ ३०८ ॥ आत्मप्रदे-
शसंचारो योगो बंधविधायक । गुणस्थानत्रये ज्ञेयः बद्धवेद्यस्य स एकक: ॥ ३०९ ॥ मानस स चतुर्भेदस्तावानेव वच स्थित । काये सप्तविध'

परीत मिथ्यात्व है ॥ ३०१ ॥ जिसके उदयसे सब पदार्थोंमें मुक्तिका उपाय माना जाता है और सभी पदार्थोंको मन वचन कायसे प्रमाण किया जाता है वह विनयमिथ्यात्व कहलाता है ॥ ३०२ ॥ अव्रती पुरुषकी जो मन वचन कायकी क्रिया है उसे तत्त्वोंको जाननेवाले असंयम कहते हैं वहअसंयम दो प्रकारका है एक प्राणी असंयम (प्राणियोंकी रक्षा नहीं करना) और दूसरा इंद्रिय असंयम अर्थात् इंद्रियोंको वश नहीं करना ॥ २०३ ॥ जबतक जीवोंके अप्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहनीय कर्मका उदय रहता है तब-तक अर्थात् चौथे गुणस्थानतक इन जीवोंके असंयम रहता है ॥ ३०४ ॥ जो छठे गुणस्थानमें व्रतोंमें (महाव्रतोंमें) दोष उत्पन्न करनेवाली मन वचन कायकी प्रवृत्ति है उसे प्रमाद कहते हैं । छठे गुणस्थानमें प्रमाद और कषायसे ही बंध होता है ॥ ३०५ ॥ प्रमादके पंद्रह भेद हैं जो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि इन तीनों चारित्रोंको धारण करनेवालेके संज्वलन कषायके उदयसे प्रायश्चित्तके कारणरूप होते हैं ॥ ३०६ ॥ सात आठ नौ दश इन चार गुणस्थानोंमें संज्वलन क्रोध मान माया लोभके उदयसे जो परिणाम होते हैं उन्हें कषाय कहते हैं इन चारों गुणस्था-नोंमें इन्हींसे बंध होताहै ॥ ३०७ ॥ श्रीजिनेंद्रदेवने कषायोंके सोलह भेद कहे हैं । उपशांत गुणस्थानके पहिले पहिले ये ऊपर कहे हुए मिथ्यात्व असंयम प्रमाद और कषाय ही स्थितिबंध और अनुभागबंधके कारण होते हैं ॥ ३०८ ॥ उपशांतसे आगे तीन गुणस्थानोंमें अर्थात् ग्यारहवें बारहवें तेरहवें इन तीन गुणस्थानोंमें एक सातावेदनीय कर्मका ही बंध होता है और वह आत्माके प्रदेशोंका हलन चलन रूप जो योग है उसीसे होता है ॥३०९॥ चार मनोयोग चार वचनयोग और सात काययोग इसतरह योगके पंद्रह भेद हैं और वे सब यथायोग्य रीतिसे प्रकृतिबंध और प्रदेशबंधके

सर्वो यथास्व द्वयबंधकृत् ॥ ३१० ॥ पचमिर्बध्यते मिथ्यात्वादिभिर्वर्णितै सदा । स निंशतिशतेनार्य कर्मणा स्तोचिते पदे ॥ ३११ ॥ जंतुस्तैर्भ्रम्यते भूयो भूयो गत्यादिपर्यय । आश्रितादिगुणस्थानसर्वजीवसमासक ॥ ३१२ ॥ त्र्यज्ञानदर्शनोपेतत्रिभावो वीतसयमः । भव्योभव्यश्च ससारचक्रकावर्तगर्तग ॥ ३१३ ॥ जन्ममृत्युजरारोगसुखदु खादिभेदभाक् । अतीतानादिकालेत्र कश्चित्कालादिलब्धित. ॥ ३१४ ॥ करणत्रयसशाततसप्तप्रकृतिसचयः । प्राप्त-विच्छिन्नसंसारः शमसभूतदर्शनः ॥ ३१५ ॥ अप्रत्याख्यानमिश्राख्यभावाप्तद्वादशव्रतः । प्रत्याख्यानाख्यमिश्राख्यभावावाप्तमहाव्रतः ॥ ३१६ ॥ सप्तप्रकृतिनिर्नाशलब्धक्षायिकदर्शनः । मोहारातिविघातोत्थक्षायिकाचारभूषित' ॥ ३१७ ॥ द्वितीयशुक्लसद्ध्यानो घातित्रयघातकः । नवकेवलभावाप्त्या स्नातक सर्वपूजितः ॥ ३१८ ॥ तृतीयशुक्लसंद्ध्याननिरुद्धाशेषयोगक । समुच्छिन्नक्रियायोगाद्विच्छिन्नाशेषबधकः ॥ ३१९ ॥ एव त्रिरूपसन्मार्गात्क्रमात्सद्भववा-

कारण होते हैं ॥ ३१० ॥ हे आर्य ! ऊपर जो मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय और योग ये पांच वर्णन किये हैं इन्हीं-के द्वारा यह जीव अपने अपने योग्य गुणस्थानोंमें योग्यतानुसार एकसौ वीस प्रकृतियोंका बंध करता रहता है ॥ ३११ ॥ उसी बंधके कारण यह जतु फिर फिर उन्हीं गतियोंमें पर्याय धारणकर परिभ्रमण किया करता है । पहिले गुणस्थानमें रहनेवाले सब जीवोंके संक्षेपसे तीन अज्ञान, तीन दर्शन और क्षायोपशमिक औदयिक पारिणामिक ये तीन भाव होते हैं संयमरहित होते हैं और उसमें भव्य अभव्य दोनों तरहके जीव रहते हैं । इसतरह संसाररूपी चक्रके भंवर-रूपी गढे में पड़ा हुआ यह जीव, जन्म, मरण, बुढापा, रोग, सुख दुख आदि अनेक क्लेशोंको सहन करता हुआ, बीते हुए अनादिकालसे परिभ्रमण करता है । इनमेंसे कोई एक जीव काललब्धि आदिके निमित्त मिलनेपर अधःप्र-वृत्तिकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इन तीनों करणोंको करता है तथा अनतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंके समूहका उपशम करता है । इसतरह संसारकी परि-पाटीको नष्टकर वह औपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है ॥ ३१२–३१५ ॥ अप्रत्याख्यानावरण कषायके क्षयोपशम होनेपर प्राप्त हुए परिणामोंसे गृहस्थोंके बारह व्रत प्राप्त करता है और प्रत्याख्यानावरण कषायके क्षयोपशमसे प्राप्त परि-णामोंसे महाव्रत स्वीकार करता है ॥ ३१६ ॥ सम्यग्दर्शनको घात करनेवालीं ऊपर लिखी हुई सात प्रकृतियोंके अ-त्यंत क्षय होनेसे क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है और मोहनीयरूप शत्रुके अत्यंत क्षय होनेसे यह जीव क्षायिक सम्यक्चारित्रसे विभूषित होता है ॥ ३१७ ॥ दूसरे एकत्ववितर्क शुक्लध्यानसे ज्ञानावरण दर्शनावरण और अतराय इन तीनों घातिया कर्मोंको नष्ट करता है और नौ केवल लब्धियोंके प्राप्त होनेसे सबके द्वारा पूज्य ऐसा स्नातक सर्वज्ञ

रिधिं । भव्यो भवादृशो भव्य समुत्तीर्यैधते सदा । ॥३२०॥ इति तां जन्मनिर्वाणप्रक्रियां जिनभाषितां । श्रुत्वा पीत्वामृतो वासौ विश्वविद्याधरेश्वर ॥३२१॥ कालाद्युक्तचतुर्भेदप्रायोग्यप्रापणात्तदा । सम्यक्श्रद्धानसंशुद्ध श्रावकव्रतभूषितः ॥ ३२२ ॥ भगवन् किंचिदिच्छामि प्रष्टुमन्यच्च चेतसि । स्थित मेशनिघोषोऽयं प्रभाव तन्वतोवचन् ॥ ३२३ ॥ सुतारां मेनुजामेव हृतवान् केन हेतुना । इत्यप्राक्षीज्जिनेंद्रोपि हेतुं तस्यैवमब्रवीत् ॥३२४॥ जंबूपलक्षिते द्वीपे विषये मगधाह्वये । अचलग्रामवास्तव्यो ब्राह्मणो धरणीजड ॥ ३२५ ॥ अग्निलागृहिणी तोको भूत्यर्वेंद्रोग्निसह्वकौ । कपिलस्तस्य दासेरस्तद्वेदाध्ययने स्वयं ॥ ३२६ ॥ वेदान्स सूक्ष्मबुद्धित्वाद्ज्ञासीद् प्रथतोर्थतः । त ज्ञात्वा ब्राह्मण क्रुद्ध्वा त्वयायोग्यमिदं कृतं ॥३२७॥ इति दासीसुतं गेहात्सदैव निरजीगमत् । कपिलोपि विषण्णत्वात्तस्माद्रत्नपुरं ययौ ॥ ३२८ ॥ श्रुत्वाध्ययनसंपन्नं योग्यं त वीक्ष्य सत्वक । विप्रः स्वतनुजा जंबूसमुत्पन्ना समर्पयत् ॥ ३२९ ॥

हो जाता है ॥ ३१८ ॥ तीसरे शुक्लध्यानसे योगोंका निरोध करता है और समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानसे समस्त कर्मोंका नाश करता है ॥३१९॥ इसतरह हे भव्य ! तेरे समान भव्य पुरुष अनुक्रमसे प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों मोक्षके कारणोंसे संसाररूपी समुद्रको पारकर सदा अनंत सुखी रहता है ॥ ३२० ॥ इसप्रकार सब विद्याधरोंके स्वामी अमिततेजने जिनेंद्रदेवका कहा हुआ जन्म मरणसे लेकर निर्वाणपर्यंतका सब हाल सुना और उस धर्मामृतका पान किया ॥ ३२१ ॥ काल आदि ऊपर कही हुई चारों तरहकी लब्धियोंके प्राप्त होनेसे वह सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हुआ और श्रावकोंके व्रतोंसे विभूषित हुआ ॥ ३२२ ॥ तथा फिर पूछने लगा कि हे भगवन् मै अपने चित्तकी बात कुछ और पूछना चाहता हूं । इस अशनिघोषने जानबूझकर भी अपना प्रभाव दिखलाते हुए मेरी छोटी बहिन सुतारा किस कारणसे हरण की । अमिततेजके इतना पूछनेपर श्रीजिनेंद्रदेव कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके मगधदेशमें अचल नामके गांवका रहनेवाला धरणीजड नामका एक ब्राह्मण था ॥ ३२३–३२५ ॥ उसकी स्त्रीका नाम अग्निला था और इंद्रभूति अग्निभूति नामके दो पुत्र थे। उसी ब्राह्मणके कपिल नामका एक दासीपुत्र था । वह ब्राह्मण अपने दोनों पुत्रोंको वेद पढाया करता था और दासीपुत्रको वेद पढनेका अधिकार न होनेसे कपिलको अलग रखता था परंतु कपिलकी बुद्धि बडी सूक्ष्म थी इसलिये उसने सुन सुनाकर ही कंठ और और दोनों तरहसे वेदको अच्छी तरह जान लिया । जब धरणीजडको यह बात मालूम हुई तब वह क्रोधित होकर कहने लगा कि तूने यह बडा ही अयोग्य कार्य किया है इतना कहकर उसने उसीसमय उस दासीपुत्रको अपने घरसे निकाल दिया । ब्राह्मणके इस कार्यसे कपिलको बहुत दुःख हुआ और वह वहांसे निकालकर रत्नपुरनगरमें जा पहुंचा ॥३२६–३२८॥

स राजपूजितस्तत्र सर्वशास्त्रार्थसारवित् । व्याख्यामखंडितां कुर्वन्नयत्कतिचित्समाः ॥ ३३० ॥ तस्य विप्रकुलायोग्यदुश्चरित्रविदर्शनात् । तद्भार्या सत्यभामाय कस्येत्यायत्तसंशय- ॥ ३३१ ॥ वार्तापरंपरोज्ञातात्मकीयग्रामत द्विज । स्वदारिद्र्यापनोदार्थं स्वांतिकं समुपागत ॥ ३३२ ॥ दूरात्कपिलको दृष्ट्वा दुष्टात्मा धरिणीजडं । कुपितोपि मनस्यस्मै प्रत्युत्थायाभिवाद्य न ॥ ३३३ ॥ समुच्चासनमारोप्य मातृ भ्रात्रोश्च किं मम । कुशलं ब्रूत मद्भाग्यात्पूज्यमत्रैवमागता- ॥ ३३४ ॥ इति पृष्ट्वा प्रतोष्यैनं स्नानवस्त्रासनादिभिः । स्वजात्युद्भेदभीतत्वात् सम्यक् तस्य मनोऽग्रहीत् ॥ ३३५ ॥ सोपि विप्रोतिदारिद्र्याभिद्रुत पुत्रमेव तं । प्रतिपद्याचरत्पापो नार्थिनां स्थितिपालन ॥ ३३६ ॥ दिनानि कानिचिद्यातान्येवं गूढतयानयो- । सर्वोः कदाचित्त विप्र सत्यभामा धनार्चित ॥ ३३७ ॥ अप्राक्षीत्तत्परोक्षेयं किं सत्यं ब्रूत न सुतः । एतत्कुरिमनचारित्राम प्रत्येमीति पुत्रता ॥ ३३८ ॥ स संपूर्णवसुर्गेहं यियासुर्व्रततसा द्विर्य ।

वहांके सत्यक नामक किसी ब्राह्मणने उसे विद्यासंपन्न और सब तरहसे योग्य देखकर उसे जंबू नामकी स्त्रीसे उत्पन्न हुई अपनी पुत्री ब्याह दी ॥३२९॥ इसतरह सब शास्त्रोंके अर्थ भावार्थको जाननेवाले और राज्यपूज्य ऐसे उस कपिलने जिसका कोई खंडन न कर सके ऐसी व्याख्या करते हुए थोडेसे वर्ष व्यतीत किये परंतु उसकी स्त्री सत्यभामाको उसके ब्राह्मण कुलके अयोग्य आचरण देखकर " यह किसका पुत्र है " ऐसा संशय बनाही रहा ॥३३०-३३१॥ इधर कपिलका पिता धरणीजड दरिद्र हो गया था और उसने परंपरासे कपिलके राज्याधिकारकी सब बातें सुन ली थीं इसलिये वह अपनी दरिद्रता दूर करने और कुछ धन मिलनेके लोभसे कपिलके पास आया। दुष्ट कपिल भी दूरसे ही उसे देखकर मनमें क्रोधित हुआ परंतु उसे अपनी जातिके भेद प्रगट होनेका भय था इसलिये वह पिताको देखते ही उठा, नमस्कार किया, ऊंचे आसनपर बिठाया और कहा कि " कहिये पिता जी मेरी माता भाई आदि सब कुशलपूर्वक हैं ? अच्छा हुआ जो आप मेरे भाग्यसे यहां ही आगये " इसतरह पूछपाछकर स्नान आसन वस्त्र आदिसे उसे खूब संतुष्ट किया और सब तरहसे उसका मन अपने हाथमें ले लिया ॥ ३३२-३३५ ॥ दरिद्रताके संगुलमें फंसा हुआ वह पापी ब्राह्मण भी कपिलको अपना ही पुत्र कहकर उसके साथ उसीतरह व्यवहार करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि स्वार्थी लोग अपनी मर्यादाका कभी पालन नहीं कर सकते ॥ ३३६ ॥ इसतरह अपने अपने समाचारोंको छिपाते हुए उन बाप बेटोंके कितने ही दिन निकल गये तब किसी एक दिन सत्यभामाने कपिलकी अनुपस्थितिमें उस धरिणीजड ब्राह्मणको बहुतसा धन देकर पूछा कि आप सत्य कहिये यह आपका ही पुत्र है ? इसका चरित्र ठीक नहीं निंद्य है इसलिये मुझे आपके पुत्र होनेका विश्वास नहीं होता है ॥ ३३७-३३८ ॥ धरि-

गदित्वागायथावृत्त दुष्टानां नास्ति दुष्करे ॥ ३३९ ॥ अथ तन्नगराधीशः श्रीषेणः सिंहनंदिता । निंदिता च प्रिये तस्य तयोरिंद्रोपेंद्रसन्निभौ ॥ ३४० ॥ इंद्रोपेंद्रादिसेनांतौ तनूजौ मनुजोत्तमौ । ताभ्यामतिविनीताभ्यां पितरं प्रीतिमागमन् ॥ ३४१ ॥ पापस्वपतिना सत्यभामा स्वाभ्ययमानिनी । सहवासमनिच्छंती भूपतिं शरणं गता ॥ ३४२ ॥ तत कापिलकं शोकान्मस्तकन्यस्तहस्तकं । स्वोपातोपेतमन्यायघोषणं कूटकद्विजं ॥ ३४३ ॥ वीक्ष्य विज्ञानवृत्तांतं स श्रीषेणमहीपतिः । पापिष्ठानां विजातीनां नाकार्यं नाम किंचन ॥ ३४४ ॥ एतदर्थं कुलीनानां नृपा कुर्वंति संग्रहं । आदिमध्यावसानेषु न ते यास्यंति विक्रिया ॥ ३४५ ॥ स्वयं रक्तो विरक्तायां योनुरागं प्रयच्छति । हरिन्नीलमणौ बासौ तेजः कांक्षति लोहितं ॥ ३४६ ॥ इत्यादि चिंतयन् सपस्त दुराचारमात्मनः । देशान्निराकारोद्धर्म्यां न सहंते स्थितिक्षतिं ॥ ३४७ ॥ कदाचिच्च महीपाल चारणद्वद्वमागतं । प्रतीक्ष्यादित्यगत्याख्यमरिंजयमपि स्वयं ॥

नीजह चित्तमें तो कपिलसे द्वेष रखता ही था और इधर उसे सत्यभामाके दिये हुए सब धनको घर ले जानेकी इच्छा हुई इसलिये वह जो कुछ सच्चा समाचार था उसे कहकर धन लेकर अपने घर चला गया सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंके लिये कोई काम कठिन नहीं है ॥ ३३९ ॥

अथानंतर—उस रत्नपुर नगरमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था उसके सिंहनंदिता और अनिंदिता नामकी दो रानी थीं उन दोनोंके सूर्य और चंद्रमाके समान इंद्रसेन और उपेंद्रसेन नामके मनुष्योंमें श्रेष्ठ ऐसे दो पुत्र थे दोनों ही पुत्र बडे विनयवाले थे इसलिये माता पिता दोनों ही उनसे बहुत प्रसन्न थे ॥ ३४०—३४१ ॥ अपने कुलका अभिमान करनेवाली सत्यभामा अपने पापी पतिके साथ नहीं रहना चाहती थी इसलिये वह राजाकी शरण गई ॥३४२॥ उससमय अन्यायकी घोषणा करनेवाला वह बनावटी ब्राह्मण कपिल शोकसे अपने दोनों हाथ मस्तकपर रखकर महाराजके पास ही बैठा था उसे देखकर और सब हाल जानकर वह चित्तमें विचार करने लगा कि विजातीय पापियोंको संसारमें न करने योग्य कार्य कुछ भी नहीं है इसलिये ही राजा लोग अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको ही अपने पास रखते हैं वे कुलीन मनुष्य आदि मध्य अंत कहीं भी विकृत नहीं होते हैं ॥ ३४३—३४५ ॥ जो स्वयं अनुरक्त हुआ मनुष्य विरक्त हुई स्त्रीमें अनुराग करना चाहता है वह इंद्रनील मणिमें लाल तेज चाहता है ॥ ३४६ ॥ यही सोच विचारकर राजाने उस दुराचारी कपिलको अपने देशसे निकाल दिया सो ठीक ही है क्योंकि धर्मात्मा लोग मर्यादाकी हानिको सहन नहीं कर सकते ॥ ३४७ ॥ किसी एक दिन उस राजाके यहां आदित्यगती और अरिंजय नामके दो चारण मुनि पधारे थे, राजाने उनन्हें पडगाहनकर आहारदान दिया था जिससे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई

३४८ ॥ दत्त्वा सदानमेताभ्यामवाप्यायुर्यथेप्सितं । उत्तरकुरुषीयुग्ममस्मात् दयागतकमोदर ॥ ३४९ ॥ देव्यो दानानुमोदेन सत्यभामा च मदिरका । तदैताः पुरखापुत्ताः किं न स्यात्साधुसंगमात् ॥ ३५० ॥ अथ कौशाम्ब्यधीशस्य महाबलमहीपतेः । श्रीमत्याश्च सुता नाम्ना श्रीकांता कांततनविः ॥३५१॥ राजा तामिंद्रसेनस्य विवाहविधिना ददौ । तया सहागतानंतमति सामान्यधर्मिनी ॥ ३५२ ॥ एतयोपेंद्रसेनस्य संगतं स्नेहनिर्भरे । अभूदमूत्र तद्देतोरन्योऽन्यं योद्धानवर्तिनो ॥ ३५३ ॥ युद्धोद्यमस्तदाकर्ण्य तौ निवारयितुं नृप । गत्वा कामातुरौ क्रुद्धावसमर्थः प्रियात्मज ॥ ३५४ ॥ मोदुं ननु यतोऽदुंसमसद्धाशयतया स्वयं । अशक्नुवन् समाघ्राय विषपुष्पं मृतिं ययौ ॥ ३५५ ॥ तदेव पुष्पमाघ्राय मनोगुर्विंगतायुषो । तद्देव्यौ सत्यभामा च मिश्रिता निमित्तोदना ॥३५६॥ धातकीखण्डपूर्वार्द्धकुरुषूत्तरनामसु । दंपती नृपतिः सिंहनंदिता च बभूवतु ॥ ३५७ ॥ अनिंदितार्यो सत्यभामा च बभूवतु । तत्र सौख्यं तौ तत्र भो-

थी तथा उसने दश तरहके कल्पवृक्षोंसे भोगपभोग प्राप्त कर देनेवाली उत्तरकुरुकी उत्तम आयुका बंध किया था ॥ ३४८–३४९ ॥ राजाकी दोनों रानियोंने तथा सत्यभामाने भी उस दानकी अनुमोदना की थी इसलिये उन तीनोंने भी उसी उत्तरकुरुकी आयुका बंध किया था सो ठीक ही है क्योंकि साधुओंके समागमसे क्या क्या नहीं होता है ॥३५०॥

अथानंतर—कौशांबी नगरके राजा महाबल रानी श्रीमतीके श्रीकांता नामकी पुत्री थी जो कि बहुत ही सुंदरी थी वह राजा महाबलने विवाहकी विधिसे श्रीषेणके पुत्र इंद्रसेनको दी थी। श्रीकांताके साथ अनंतमति नामकी एक साधारण स्त्री आई थी। इस अनंतमतिके साथ उपेंद्रसेनका स्नेहसे भरा हुआ समागम होगया और इसलिये ही किसी उद्यानमें इंद्रसेन और उपेंद्रसेन दोनों भाइयोंमें युद्ध होना प्रारंभ होगया। राजा उस युद्धको बंद करनेके लिये गया, परंतु वे दोनों ही कुमार कामी और क्रोधी थे इसलिये वे युद्धसे बंद नहीं हुए। जब राजा उनका युद्ध बंद न कर सका तब उसके हृदयमें बहुत दुःख हुआ और वह विषपुष्प (विषका फूल) सूंघकर वहीं मर गया ॥ ३५१–३५५ ॥ रानी सिंहनंदिता अनिंदिता और कपिलकी स्त्री सत्यभामा भी वही विषपुष्प सूंघकर मरगई देखो कर्मकी गति बडी ही विचित्र होती है ॥ ३५६ ॥ धातकीखंडके पूर्व मेरुकी ओर उत्तरकुरुमें राजा श्रीषेण तो आर्य हुआ और सिंहनंदिता उसकी स्त्री हुई ॥ ३५७ ॥ इसीतरह अनिंदिताका जीव वहींपर आर्य हुआ और सत्यभामाका जीव उसकी स्त्री हुई। इस तरह वे सब भोगभूमिके भोगोंका अनुभव करते हुए वहीं रहने लगे ॥ ३५८ ॥

अथानंतर—इंद्रसेन और उपेंद्रसेनके युद्धके बीचमें एक विद्याधरने आकर कहा कि तुम दोनों व्यर्थ ही क्यों लडते हो यह अमिततमति तो तुम्हारी बहिन है इस बातको सुनकर वे दोनों ही भाई आश्चर्यके साथ पूछने लगे कि

गभूभोगभागिनः ॥३५८॥ अथ कश्चित्खगो मध्ये प्रविश्य नृपपुत्रयो । वृथा किमिति युद्ध्येतामनुजा युवयोरियं ॥३५९॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा कुमाराभ्यां सविस्मयं। कथं तदिति संपृष्ट प्रत्याह गगनेचर ॥३६०॥ धातकीखंडप्राग्भागमदरप्राच्यपुष्कला-वती खगदूक्षपाक्श्रेणीगतादित्याभपूर्भुज ॥३६१॥ तनूजोमितसेनायां सुकुंडलिखगेशिन । मणिकुंडलनामाह कदाचित्पुंडरीकिणीं ॥३६२॥ गतोमितप्रभार्हद्भ्यः श्रुत्वा धर्म सनातनं। मत्पूर्व भवसबधमप्राक्षमवदच ते ॥३६३॥ तृतीये पुष्कराख्यातद्वीपे परसुराचलात् । प्रतीच्यां वीतशोकाख्य सरिद्विषयमध्यगं ॥३६४॥ पुरं चक्रध्वजस्तस्य पति' कनकमालिका। देवी कनकपद्माविलते जाते तयो सुते ॥३६५॥ विद्युन्मत्याश्च तस्यैव देव्या पद्मावती सुता । याति काले सुख तेषा कदाचित्काललब्धित ॥३६६॥ प्रपीतामितसेनाख्यागणिनीवाग्रसायना । सुते कनकमाला च कल्पेजनियतादिमे ॥३६७॥ सुराः पद्मावती वीक्ष्य गणिका कामुकद्वयं। प्रसाध्यमाना तच्चित्ताभूतत्र सुरल-

"यह कैसे" तब वह विद्याधर कहने लगा कि ॥ ३५९–३६० ॥ धातकीखंडके पूर्व मेरुके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके आदित्य नगरमें सुकुंडलि नामका विद्याधर राज्य करता है उसकी अमितसेना रानीसे मैं मणिकुडल नामका पुत्र हुआ हूं । किसी एक दिन मैं पुंडरीकिणी नगरी गया था वहां मैंने अमितप्रभ जिनेंद्रदेवसे अनादिकालसे चले आये धर्मका स्वरूप सुना था और फिर अपने पहिले भवका संबंध पूछा था। इसके उत्तरमें भगवानने कहा था कि ॥ ३६१–३६३ ॥ तीसरे पुष्करद्वीपके पश्चिम मेरुपर्वतके पूर्वमें सरित नामके देशमें वीतशोक नामका नगर है वहांपर चक्रध्वज नामका राजा राज्य करता था । उसकी कनकमाला देवीसे कनकलता और पद्मलता नामकी दो कन्यायें थीं। उसी राजाके विद्युन्मती नामकी दूसरी रानी थी उसके पद्मावती नामकी कन्या थी। इसप्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था। किसी समय काललब्धिके निमित्तसे अमितसेना नामकी अर्जिकासे रानी कनकमाला और कनकलता पद्मलता दोनों कन्याओंने धर्मरूपी अमृतका पान किया था इसलिये वे तीनों ही आयु पूरीकर पहिले स्वर्गमें देव हुए। इधर एक वेश्या दो कामी लोगोंको प्रसन्न कर रही थी उसे देखकर पद्मावतीने भी वैसे ही होनेकी इच्छा की। मरकर वह स्वर्गमें अप्सरा हुई और वहांसे आकर यह अनंतमति हुई है । कनकमालाका जीव मैं मणिकुंडल हुआ हूं और कनकलता पद्मलताके जीव तुम दोनों भाई हुये हो तथा अपनी पहिले जन्मकी बहिनके लिये लड़ रहे हो ॥ ३६४–३७० ॥ इसतरह जिनेंद्रदेवकी कही हुई वाणीको सुनकर अन्याय करनेवाले और धर्मको न जाननेवाले तुम दोनोंको रोकनेके लिये मैं यहां आया हूं ॥ ३७१ ॥ विद्याधरकी यह बात सुनकर दोनोंने कलह करना छोड दिया, दोनों संसारसे विरक्त हुये दोनोंको

जिता ॥ ३६८ ॥ ततः स्तनकमलेन लसमर्णनिकुंजलौ । मनादन न गदगुरुभृता हृतमर्ता ॥ ३६९ ॥ स्वरूपुत्रांगमल्पमा मुनीशान्तप्राप्य ।
तद्वेवोवंततौ युद्धमथ तदाजपुत्रयोः ॥ ३७० ॥ इति जातोमिमां पालीमात्यांन्यायकारिणौ । नृपाजरामर्तीनां निवेदुमनागणः ॥ ३७१ ॥
इति नद्धनपीतकलहो जातनविदे । मगः गनूनितिगा पुत्र तुलगलिंगा ॥ ३७२ ॥ श्रीमामराव निरिनमार्गपर्यंतगामिना । क्षायिकज्ञानबोधादिगुणा
निर्वृतिमापतु ॥ ३७३ ॥ तदानंतमतिश्चानःसंपूर्णश्रावकव्रता । नाकलोकागताप्य न किं वा सत्समगत् ॥३७४॥ सौधर्मकल्पे श्रीषेणो विमाने श्रीप्रभे
भवत् । देवी श्रीनिलयेविद्युत्प्रभाभूत्सिंहनंदिता ॥ ३७५ ॥ प्राग्व्यनिंदिते चान्त्र विमाने विमलप्रभे । देवी शुक्लप्रभा नाम्ना देवोऽत्र विमलप्रभः ॥ ३७६ ॥
पंचपल्योपमप्रांते श्रीषेण प्रच्युतस्ततः । अर्ककीर्तेः सुत श्रीमानजनिष्टरमीदृशः ॥ ३७७ ॥ सा ज्योतिःप्रभा कांतास्ते या सिंहनंदिता । साभीद
निंदिता चाय देवी श्रीविजयाख्य ॥ ३७८ ॥ सत्यभामा सुताराभूत्पापिनः कपिलः सतः । मुनिर्दुर्गतिं चान्त्वा भूतरमणे वने ॥३७९॥ ऐरावतीनदी-

वैराग्य हुआ, सुधर्म गुरुके समीप जाकर दोनोंने दीक्षा धारण की, दोनों ही मोक्षमार्गके अंततक पहुंचे, क्षायिक अनंतज्ञान आदि गुणोंको प्राप्त हुये और अंतमें दोनों ही मुक्त हुये ॥ ३७२–३७३ ॥ तदनंतर अनंतमतिने बहुत अच्छी तरह श्रावकके पूर्णव्रत धारण किये और मरकर स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके अनुग्रहसे क्या २ प्राप्त नहीं होता है ॥ ३७४ ॥ श्रीषेणका जीव जो भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ था वह सौधर्म स्वर्गमें श्रीप्रभदेव हुआ और सिंहनंदिताका जीव श्रीनिलय नामके विमानमें विद्युत्प्रभा नामकी देवी हुई ॥३७५॥ इसी तरह अनंदिता-का जीव विमलप्रभ विमानमें विमलप्रभ नामका देव हुआ और ब्राह्मणी सत्यभामाका जीव उसी विमानमें शुक्लप्रभा नामकी देवी हुई ॥ ३७६ ॥ श्रीषेणका जीव अपनी पांच पल्यकी आयु पूरीकर वहांसे च्युत हुआ और इस तरहकी लक्ष्मीसे सुशोभित तू अर्ककीर्तिका पुत्र हुआ है ॥ ३७७ ॥ सिंहनंदिताका जीव ज्योतिप्रभा नामकी तेरी स्त्री हुई है । देवी अनिंदिताका जीव यह श्रीविजय हुआ है और सत्यभामाका जीव यह सुतारा हुई है । दुष्ट कपिलके जीवने बहुत दिनतक अनेक दुर्गतियोंमें परिभ्रमण किया और फिर संभूतरमण नामके वनमें ऐरावती नदीके किनारे किसी तापसियोंके आश्रममें कौशिक नामके तपसीकी चपलवेगा स्त्रीसे मृगशृंग नामका पुत्र हुआ । वहांपर उस दुष्टने बहुत दिनतक खोटे तापसियोंके व्रत पालन किये । किसी एक दिन चपलवेग विद्याधरकी लक्ष्मीको देखकर उस मूर्खने मनमें विद्वान् जिसकी सदा निंदा करते रहते हैं ऐसा निदान किया तथा उसीके फलसे यह अशनिघोष विद्याधर हुआ है । पहिले भवके स्नेहसे ही इसने सुताराका हरण किया है ॥ ३७८–३८१ ॥ आगे होनेवाले भवोंमेंसे नौवें भवमें

तीरे संभूतापसाश्रमे । ततश्चपलवेगायां कौशिकान्मृगशृंगवाक् ॥३८०॥ कुतापसव्रतं दीर्घमनुष्ठाय दुराशय । श्रियं चपलवेगस्य विलोक्य खचरेशिनः॥३८१॥ निदान मनसा मूढो विधाय शुभनिंदित । अनित्वाशनिघोषोयं सुतारां मेहतोऽग्रहीत् ॥३८२॥ भवे भाव्यत्र नवमे पंचमश्चक्रिवर्तिना । तीर्थेशां षोडशः शांतिभवान् शांतिप्रद सतां ॥ ३८३ ॥ इति तज्जिनशीतांशुवाग्ज्योत्स्नाप्रसरप्रभा–प्रसंगाद् व्यकसत्खेचरेंद्रहृत्कुमुदाकरः ॥ ३८४ ॥ तदैवाशनिघोषाख्यो माता चास्य स्वयंप्रभा । सुतारा च परे वापन्निर्विण्णाः संयम पुरं ॥३८५॥ अभिनद्य जिन सर्वे त्रि-परीत्य यथोचित । अगमुश्चक्रितनूजास्ते ग्रहाँ मततेजसा ॥ ३८६ ॥ अर्ककीतसुतः कुर्वन्नभुक्तिं सर्वपर्वसु । स्थितिभेदे च तद्योग्यं प्रायश्चित्तं समाचरन् ॥ ३८७ ॥ महापूजा सदा कुर्वन् पात्रदानादि वरात् । सद्धर्मकथां शृण्वन् भव्यान् धर्मं प्रबोधयन् ॥ ३८८ ॥ नि शकादिगुणांस्तन्वन्दृष्टिमोहानपोहयन् । इनो वाऽमिततेजा· सन् गुंब्रप्रक्षोभूताशु ॥२८९॥ सयमीव शमं यात· पालक पितृवत्प्रजाः । लोकद्वयहितं धर्म्यं कर्म प्रावर्तयत्सदा ॥३९०॥ प्रज्ञप्तिकामरूपिण्यावथाग्निस्तंभिनी परा । उदकस्तंभिवी विद्या विश्वप्रवेशिनी ॥ ३९१ ॥ अप्रतीघातगामिन्या सहान्याकाशगामिनी । उत्पादिनी परा विद्या सा वशीकरणीस्तुता ॥ ३९२ ॥ आवेशिनी दशम्यन्या मा-

तेरा जीव सज्जनोंको शांति देनेवाला पांचवां चक्रवर्ती और सोलहवां तीर्थंकर शांतिनाथ होगा ॥ ८२ ॥ इसप्रकार भगवानरूपी चंद्रमाकी फैली हुई वचनरूपी चांदनीकी प्रभाके संबंधसे विद्याधरोंके इंद्र अमिततेजका हृदयरूपी कमोदिनियोंसे भरा हुआ सरोवर खिल गया ॥ ३८३ ॥ उसीसमय अशनिघोष, उसकी माता, स्वयंप्रभा, सुतारा तथा और भी कई जीवोंने विरक्त होकर संयम धारण किया ॥ ३८४ ॥ बाकीके लोगोंने भगवानकी वंदनाकी यथायोग्य रीतिसे प्रदक्षिणा दी और अमिततेजके साथ २ चक्रवर्तीके सब पुत्र और २ भी सब लोग अपने २ घर चले गये ॥ ३८५ ॥ इधर अर्ककीर्तिका पुत्र अमिततेज सब पर्वोंमें उपवास करने लगा यदि किसी मर्यादामें अंतर पडता था तो वह यथायोग्य प्रायश्चित्त करता था, सदा महापूजा करता था, आदरपूर्वक पात्रोंको दान देता था, धर्म कथा सुनता था, भव्योंको धर्मका उपदेश देता था, दर्शनमोहनीयको नष्टकर निःशंकित आदि गुणोंको बढाता था, अत्यंत तेजस्वी होनेसे सूर्यके समान था और चंद्रमाके समान सब लोग उसे आनंदसे देख सकते थे ॥ ३८६–३८८ ॥ संयमीके समान वह शांत था, पिताके समान प्रजाकी रक्षा करता था और दोनों लोकोंके हित करनेवाले धर्म कर्मकी प्रवृत्ति सदा करता रहता था ॥ ३८९ ॥ प्रज्ञप्ति, कामरूपिणी, अग्निस्तंभिनी, उदकस्तंभिनी, विश्वप्रवेशिनी, अप्रतिघातगामिनी, आकाशगामिनी, उत्पादिनी, वशीकरणी, दशमी आवेशिनी, प्रस्थापनी, प्रमोहनी, प्रहरणी, संक्रामणी, आवर्तनी, संग्रहणी, भंजनी, विपाटनी, प्रावर्तनी, प्रमोदिनी, प्रहायणी, प्रभावती, प्रलापिनी, निक्षेपणी, शर्वरी, चांडाली,

न्या प्रस्थापनीति च । प्रमोहनी प्रहरणी मंक्रामण्याख्ययोदिता ॥३९३॥ आवर्तनी संग्रहणी भंजनी च विपाटनी । प्रावर्तनी प्रमोदिन्या सहान्यापि प्रहायणी ॥ ३९४ ॥ प्रभावती प्रलापिन्या निक्षेपिण्या च या स्मृता । शर्वरी या च चाढाली मातगीति च कीर्तिता ॥ ३९५ ॥ गौरी षडगिका श्रीमत्कन्या च शतसकुला । कुभांडीति च विख्याता तथा विरलवेगिका ॥ ३९६ ॥ रोहिण्यतो मनोवेगा महावेगाह्वयापि च । चडवेगा सचपलवेगा लघुकरीति च ॥ ३९७ ॥ पर्णलघ्वाख्यका वेगावतीति प्रतिपादिता । शीतोष्णदे च वेताल्यौ महाज्वालाभिधानिका ॥ ३९८ ॥ छेदनी सर्वविद्यानां युद्धवीर्येति चोदिता । बधाना मोचनी चोक्ता प्रहाराचरणी तथा ॥ ३९९ ॥ भ्रामर्या भोगिनीत्यादि कुलजातिप्रसाधिता । विद्यास्तासामय पारं गत्वा योगीव निर्वभौ ॥ ४०० ॥ श्रेणीद्वयाधिपत्येन विद्याधरवराधिप । प्राप्य तच्चक्रवर्तित्व चिरं भोगानभुक्त स ॥ ४०१ ॥ कदाचित्खचराधीशश्चारणाय यथाविधि । दान दमवराख्याय दत्वापाश्चर्यपचक ॥४०२॥ अन्यदामिततेजःश्रीविजयौ विनताननौ । नत्वामरगुरु देवगुरु च मुनिपुगव ॥४०३॥ दृष्ट्वा धर्मस्य माहात्म्य पीत्वा तद्वचनामृत । अजरामरता प्रासाविव तोषमुपेयतुः॥ ४०४॥पुन श्रीविजयोप्राक्षीद्भवसवधमात्मनः । पितु स भगवान् प्राह प्रथम प्रास्तकल्मष ॥४०५॥ साकल्येन-

मातंगी गौरी, पडंगिका, श्रीमत्कन्या, शतसंकुला, कुंभांडी, विरलवेगिका, रोहिणी, मनोवेगा, महावेगा चंडवेगा, चपलवेगा, लघुकरी, पर्णलघु, वेगावती, शीतदा, उष्णदा, वेताली, महाज्वाला, सर्वविद्याछेदिनी, युद्धवीर्या, बंधमोचनी, प्रहाराचरणी, भ्रामरी, आभोगिनी इत्यादि कुल और जातिमें उत्पन्न हुई अनेक विद्यायें सिद्ध कीं उन सब विद्याओंका पारगामी होकर वह योगीके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ३९०–३९९ ॥ दोनों श्रेणियोंका अधिपति होनेसे वह सब विद्याधरोंकी पृथ्वीका स्वामी था और इसलिये ही वह विद्याधरोंका चक्रवर्ती कहलाता था। इसतरह उसने बहुत दिनतक भोगोंका अनुभव किया था ॥ ४०० ॥ किसी एक दिन उस अमिततेज विद्याधरने चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दमवर नामके मुनिको विधिपूर्वक आहारदान दिया जिससे उसके यहां पचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ४०१ ॥ किसी दूसरे दिन अमिततेज और श्रीविजय दोनोंने अपना मस्तक नवाकर अमरगुरु और देवगुरु दोनों मुनिराजोंको नमस्कार किया, दोनोंने धर्मका माहात्म्य पूछा, उनके वचनरूपी अमृतका पान किया और अजर अमर हो जानेके समान संतुष्ट हुए ॥ ४०२–४०३ ॥ तदनंतर श्रीविजयने अपने और पिताके पहिले भवोंका संबंध पूछा तब सब पापोंको नाश करनेवाले पहिले अमरगुरु भगवान कहने लगे ॥ ४०४ ॥ उन्होंने विश्वनंदिके भवसे लेकर सब कह सुनाया उसे सुनकर उसने भोगोंमें निदान किया ॥ ४०५ ॥ इसके बाद थोडे दिनतक विद्याधर और भूमिगोचरियोंके सुखामृतका पान किया और फिर विपुलमति तथा विमलमतिके समीप दोनों राजाओंने

तदाख्यात विश्वनंदिमवादित । समाकर्ण्य तदाख्यान भोगे कृतनिदानकः॥४०६॥किंचित्कालं समासाद्य खभूचरसुखामृत । विपुलादिमते पार्श्वे विमलादिमतेश्च तौ ॥४०७॥ महीभुजौ निशम्यैकमाससमात्मजीवितं । दत्त्वार्कतेजसे राज्यं श्रीदत्ताय च सादरं ॥४०८॥ कृताष्टाह्निकसत्पूजौ मुनीशश्चंदने वने । समीपे नंदनाख्यस्य त्यक्त्वा संग तयोः खगेट्॥४०९॥प्रायोपगमसंन्यासविधिनाराध्य शुद्धधी । नंद्यावर्तेऽभवत्कल्पे रविचूलस्त्रयोदशे ॥४१०॥ अभूच्छ्रीविजयोप्यत्र स्वस्तिके मणिचूलकः । विंशत्यब्ध्युपमायुष्यौ जावितावसितौ तत ॥ ४११ ॥ द्वीपेस्मिन् प्राग्विदेहस्थविलसद्वत्सकावती । देशे प्रभाकरी पुर्यां पतिस्तिमितसागर ॥४१२॥ देवी वसुंधरा जातस्तयोरादित्यचूलवाक् । देवोपराजितः सुनुर्नंद्यावर्ताद् दिवश्च्युतः ॥४१३॥ तस्यैवानुमतौ देव्या मणिचूलोप्यभूत्सुत. । श्रीमाननंतवीर्याख्यो दिविजः स्वस्तिकाच्च्युतः ॥ ४१४ ॥ कांत्या कुवलयाह्लादात्तृष्णातापापनोदनात् । कलाधरत्वाद्भात स्म जंबूद्वीपविधूपमौ ॥ ४१५ ॥

अपनी आयु एक महीनेकी रही सुनी इसलिये उन दोनोंने अर्कतेज और श्रीदत्तके लिये राज्य दिया, आदरपूर्वक अष्टान्हिकाकी पूजा की और चंदनवनमें नंदनमुनिराजके समीप सब परिग्रहका त्यागकर दीक्षा धारण की । उन दोनोंमेंसे शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला अमिततेज विद्याधर विधिपूर्वक प्रायोपगमन संन्यास धारणकर आराधनाओंका आराधनकर तेरहवें आनत स्वर्गके नंद्यावर्त विमानमें रविचूल नामका देव हुआ और श्रीविजय भी इसी स्वर्गके स्वस्तिक विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ । इन दोनोंकी वीस सागरकी आयु थी ॥ ४०६–४११ ॥ वहांकी आयु पूरीकर रविचूल नामका देव नंद्यावर्त विमानसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें अत्यंत शोभायमान वत्सकावती देशकी प्रभाकरी नगरीमें राजा स्तिमितसागर रानी वसुंधराके अपराजित नामका पुत्र हुआ ॥ ४१२–४१३ ॥ मणिचूलनामका देव भी स्वस्तिक विमानसे च्युत होकर उसी राजा स्तिमितसागरके अनुमति नामकी रानीसे श्रीमान् अनंतवीर्य नामका पुत्र हुआ ॥ ४१४ ॥ वे दोनों ही भाई अपनी कांतिसे कुवलय (कमोदिनी वा पृथ्वी मंडल) को प्रफुल्लित करते थे, तृष्णासे उत्पन्न हुए संतापको दूर करते थे और अनेक कलाओंको धारण करते थे इसलिये वे दोनों ही जंबूद्वीपके दो चंद्रमाके समान सुशोभित होते थे ॥ ४१५ ॥ अथवा वे दोनों ही प्रथम के दो सूर्योंके समान जान पडते थे क्योंकि सूर्य कमलोंको खिलाता है उसीप्रकार वे दोनों कमलके समान लोगोंको आनंदित करते थे, उनका शरीर कमलके समान गुलाबी रंगका था, सूर्यके समान अंधकारको नाश करनेवाले थे उनका सदा उदय रहता था और पदार्थोंको प्रकाशित करनेसे संसारके नेत्र थे ॥ ४१६ ॥ अथवा वे पृथ्वीपर नवीन चंद्रमाके समान थे क्योंकि उनका कर (किरणें वा कर) प्रतापी था परंतु दाह उत्पन्न करने वाला नहीं था ।

पद्मानदकौ ताम्यद्रुपौ च्वस्ततामसौ । नित्योदयौ जगन्नेत्रे तावावूयौ वा दिवाकरौ ॥ ४१६ ॥ नव च कै कलावंतौ सप्रतापौ न दाहकौ । करद्वयव्यपेतौ तौ सत्करौ रेजतुस्तरा ॥ ४१७ ॥ नोपमानस्तयो कामो रूपेणानंगतां गत । नीत्या नान्योन्यजेतारौ गुरुशुक्रौ च तत्समौ ॥ ४१८ ॥ हीयते वर्द्धते चापि भास्करेण विनिर्मिता । वर्द्धते तत्कृता छाया वर्द्धमानस्य वा तरो ॥ ४१९ ॥ न तयोर्विग्रहो यान तथाप्यरिमहीभुजः । तत्प्रतापभयात्ताभ्यां स्वयं संधातु-मुत्सुका ॥ ४२० ॥ अवर्द्धिषाता तावेवं राज्यलक्ष्मीकटाक्षगौ । नव वय समासाद्य शुक्लाष्टम्यमृतांशुवत् ॥४२१॥ पर्यायो राज्यभोग्यस्य योग्ययोर्मेतनू-जयोः । इतीव रतिमच्छेत्सीद्भोगेष्वेतत्पितान्यदा॥४२२॥तदैव तौ समाहूय कुमारावमरोपमौ । अभिषिच्यार्पयद्राज्य च यौवराज्यं सोऽस्पृह ॥४२३॥ स्वय-स्वयप्रभाख्यानजिनपादोपसेवनं । संयमेन समासाद्य धरणेंद्रर्द्धिदर्शनात् ॥ ४२४ ॥ निदानदूषितो बालतपा लोलुतया सुखे । स्वकालांते विशुद्धात्मा जगाम

यद्यपि वे दोनों तरहके करोंसे रहित थे तथापि उनके कर अर्थात् हाथ बडे ही सुंदर थे. इसतरह वे दोनों ही भाई बडे सुंदर जान पडते थे ॥ ४१७ ॥ उनके रूपकी संसारमें कोई उपमा ही नहीं है क्योंकि कामदेव भी उनके रूपसे लज्जित होकर ही शरीररहित हो गया है । नीतिमें वे एक दूसरेको जीत नहीं सकते थे और बृहस्पति तथा शुक्रके समान सुशोभित होते थे ॥ ४१८ ॥ सूर्यसे उत्पन्न हुई छाया कभी घटती है और कभी बढती है परंतु जिसप्रकार बढते हुए वृक्षकी छाया सदा बढती रहती है उसीप्रकार उन दोनों की छाया (कृपा) सदा बढती रहती थी ॥ ४१९ ॥ वे दोनों न तो किसीके साथ विग्रह वा युद्ध करते थे न यान (सवारी चढकर जाना) ही करते थे तथापि उनके प्रतापके भयसे ही सब शत्रु राजा स्वयं उनके साथ संधि करनेको उत्सुक रहते थे ॥ ४२० ॥ इसतरह नई जवानी पाकर शुक्ल पक्षकी अष्टमीके चंद्रमाके समान वे दोनों ही भाई वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे और राज्य लक्ष्मीके कटाक्षोंके पात्र हो रहे थे ॥ ४२१ ॥ किसी एक दिन इनके पिता स्तिमितसागरने सोचा कि मेरे योग्य दोनों पुत्रों-की अवस्था अब राज्य भोगनेके योग्य है इसलिये उसने भोगोंसे प्रेम छोड दिया ॥ ४२२ ॥ उसीसमय उसने देवोंके समान दोनों कुमारोंको बुलाया और बडी उत्कंठाके साथ दोनोंका अभिषेककर दोनोंको राज्य और यौवराज्य पद दिया ॥ ४२३ ॥ तथा स्वयंप्रभ तीर्थंकरके चरणकमलोंके समीप जाकर संयम धारण किया । किसी एक दिन धरणींद्रकी विभूति देखकर निदान किया और उस निदानसे दूषित हुए बालतपके करनेमें तल्लीन हुआ, और विशुद्ध आत्माको धारण करनेवाला वह आयुके अंतमें मरकर धरणींद्र हुआ ॥ ४२४--४२५ ॥

इधर पिताका राज्य पाकर वीजसे उत्पन्न हुए अंकुरके समान वे दोनों ही भाई नीतिरूपी जलके सींचनेसे उस

धरणीशता ॥ ४२५ ॥ तत्पदे तौ समासाद्य बीजमूलांकुराविव । नीतिवारिपरीषेकात्सुभूमौ वृद्धिमीयतु ॥ ४२६ ॥ अभ्युद्यतास्तयोः पूर्वं सप्रतापा नयांशव । आक्रम्य मस्तके चक्रुरास्पदं सर्वभूभृतां ॥४२७॥ लक्ष्म्यौ नवे सुधानौ तौ तत्प्रीतिः समसंगमात् । भोगाशक्ति व्यधाद्गाढ तयोरुद्गतपुण्ययो ॥ ४२८ ॥ नर्तकी वर्वरीत्येका ख्यातान्या च चिलातिका । नृत्यविद्येव सामर्थ्याद् रूपद्वयमुपागता ॥ ४२९ ॥ भूपती तौ तयोर्नृत्य कदाचिज्जातसंमदौ । विलोकमानावसीनावागमन्नारदस्तदा ॥ ४३० ॥ सूर्याचन्द्रमसो संहिकेयो वा जनिताशुभः । नृत्तासंगात्कुमाराभ्यां क्रूरः सो विहितादर ॥ ४३१ ॥ जाज्वल्यमानकोपाग्निशिखा संतप्तमानसः । चंडांशुरिव मध्याह्ने जज्वाल शुचिमगमात् ॥ ४३२ ॥ स तदैव सभामध्यान्निर्गत्य कलहप्रिय । प्राकृप्राप्तकोपवेगेन नगरे शिवमंदिरे ॥ ४३३ ॥ दमितारिं सभामध्ये सन्निविष्ट स्वविष्टरे । अस्तमस्तकभास्वंतमिव प्रपतनोन्मुखं ॥ ४३४ ॥ सद्यो विलोक्य सोप्याशु प्रत्युत्था-

अच्छी भूमिमें बहुत ही वृद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४२६ ॥ जिसप्रकार सूर्य उदय होकर अपना प्रताप और किरणें सब पर्वतोंपर फैलाता है उसीप्रकार पहिले तो उनकी प्रतापसहित नयोंकी किरणें प्रगट हुई थीं और फिर उन्होंने आक्रमण कर सब राजाओंके मस्तकपर अपना स्थान बनाया था । भावार्थ—उन्होंने सब राजा वश कर लिये थे ॥ ४२७ ॥ युवावस्थाको प्राप्त हुये वे दोनों ही भाई प्राप्त हुये पुण्यकर्मके उदयसे नई राज्यलक्ष्मीको पाकर और समान रीतिसे प्रेम करते हुए भोगोंसे तल्लीन होगये थे ॥ ४२८ ॥ उनके वर्वरी और चिलातिका नामकी दो नृत्य करनेवाली थीं वे नृत्य करनेमें इतनी चतुर थीं मानों अपनी सामर्थ्यसे नृत्य विद्या ही दो रूप धारण कर आई हो ॥ ४२९ ॥ किसी एक दिन वे दोनों ही भाई आनंदित होकर नृत्य देख रहे थे इतनेमें ही सूर्य चंद्रमापर राहुके समान अशुभ करनेवाला नारद आया । वे दोनों भाई नृत्य देखनेमें तल्लीन हो रहे थे इसलिये उन्होंने न तो नारदको देख पाया और न वे उसका आदर सत्कार कर सके । क्रूर नारदको भला इतनी बात कब सहन हो सकती थी ॥ ४३० ४३१ ॥ जलती हुई क्रोधरूपी अग्निकी शिखासे उसका चित्त संतप्त होगया और जिसप्रकार जेठके महीनेमें दोपहरके समय सूर्य जलता है उसीप्रकार वह क्रोधसे जलने लगा ॥ ४३२ ॥ कलहको प्रिय माननेवाला वह उसी समय उस सभासे निकल गया और क्रोधके आवेशमें आकर शीघ्र ही शिवमंदिर नामके नगरमें जा पहुंचा ॥ ४३३ ॥ जिसप्रकार सूर्य गिरनेके सन्मुख होकर अस्ताचल पर्वतके मस्तकपर विराजमान होता है उसीप्रकार राजा दमितारि अपनी सभामें सिंहासनपर विराजमान था राजा नारदको देखकर शीघ्र ही उठकर उसके सामने गया, पडगाहनकर प्रणाम किया और फिर उसे ऊंचे आसनपर विराजमान किया ॥ ४३४-४३५ ॥ नारदने आशीर्वाद दिया, तब फिर

नपुरस्सरं । प्रतिगृह्य प्रणम्योच्चैर्विष्टरे सन्निवेश्य त ॥ ४३५ ॥ दत्ताशिष किमुद्दिश्य भवतो मामुपागताः । सपद किं ममावेष्टु प्राप्ता किं वा महापद ॥ ४३६ ॥ इत्यप्राक्षीदसौ वास्य विकाशिवदनाबुंज । समद जनयन् वाचमवोचत्प्रीतिवर्द्धिनीं ॥ ४३७ ॥ सारभूतानि वस्तूनि सर्वान्वेष्टु परिभ्रमन् । नर्तकी-द्वयमद्राक्ष प्रेक्षायोग्य तवैव तत् ॥ ४३८ ॥ अस्थानस्थ समीक्ष्येवमनिष्ट सोढुमक्षम । आगतोह कथ सह्या पादे चूडामणिस्थिति ॥ ४३९ ॥ सप्रत्यप्रतिमल्लो वा नूतनश्रीमदोद्धतौ । प्रभाकरीपुराधीशो व्यलीकविजिगीपुको ॥ ४४० ॥ ससव्यंसनसंसक्तो सुखोच्छेद्यौ प्रमादिनौ । तयोर्गृहे सुखग्राह्यं जगत्सारमवस्थित ॥ ४४१ ॥ तद्दूतप्रेषणादेव तवायाति हेलया । कालहानिर्न कर्तव्या हस्तासन्नेऽतिदुर्लभे ॥४४२॥ इत्येव प्रेरितस्तेन सपापेन यमेन वा । दमितारि समासन्नमरणः श्रवण ददौ ॥ ४४३ ॥ तदेव नर्तकीवार्ताश्रुतिव्यामुग्धचेतन । दूत सोपायन प्रस्तुतार्थसबधवेदिन ॥ ४४४ ॥ प्राहिणोद्वत्सका-

राजाने पूछा कि आप किस उद्देश्यसे यहां पधारे हैं क्या कोई संपदा बतलानेकेलिये या कोई आपत्तिका समाचार देनेके लिये? इसके उत्तरमें जिसका मुखरूपी कमल खिल रहा है ऐसा नारद आनंद उत्पन्न करता हुआ प्रेम बढानेवाले वचन कहने लगा कि—॥४३६-४३७॥ मै तेरेलिये सारभूत पदार्थोंको ढूंढनेके लिये भ्रमण करता रहता हूं। फिरते २ मैंने दो नृत्य करनेवालीं देखी हैं जो कि तेरे ही देखने योग्य हैं ॥ ३३८ ॥ मैंने उन्हें अयोग्य स्थानमें देखा और इस बातको अनिष्ट समझकर मैं उसे सहन नहीं कर सका, इसलिये ही यहां आया हूं सो ठीक ही है क्योंकि यदि पैरोंमें चूडामणि रत्न पडा हो तो उसे कौन सहन कर सकता है ॥ ४३९ ॥ इससमय जिनके साथ लडनेवाला कोई नहीं है जो मिली हुई नवीन संपदाके मदसे उद्धत हो रहे हैं जो झूठमूठ ही आपको सबका जीतनेवाला समझते हैं, जो सातों व्यसनोंमें आसक्त हैं, सुखसे ही (थोडेसे में ही) नष्ट किये जा सकते हैं और जो प्रमादी हैं ऐसे प्रभाकरी नगरीके राजा अपराजित और अनंतवीर्यके घर सुखसे ही ग्रहण करनेमें आ सके ऐसा वह संसारका सारभूत पदार्थ (दो नृत्य करनेवालीं) मौजूद है ॥ ४४०-४४१ ॥ एक दूत भेज देनेसे ही आज लीलामात्रमें तेरे घर आजायगीं इसलिये अत्यंत दुर्लभ वस्तु हाथके समीप आ जानेपर कभी विलंब नहीं करना चाहिये ॥ ४४२ ॥ इसप्रकार पापसहित यमराजके समान नारदने उससे प्रेरणा की और जिसका मरण समीप है ऐसे राजा दमतारिने भी उसे सुना ॥ ४४३ ॥ नर्तकीकी बात सुनकर दमतारिका आत्मा उसीसमय मुग्ध होगया और उसने इस बातके संबंधको जाननेवाले एक दूतको भेट देकर शूरवीर दोनों भाइयोंके समीप वत्सकावतीको भेजा । वह दूत भी राजाकी आज्ञासे चला, रास्ते में एक दिन भी व्यर्थ नहीं जाने दिया और शीघ्र ही प्रभाकरी नगरीमें जा पहुंचा । उससमय वे दोनों ही भाई प्रोषधो-

वत्याः महीशे शौर्यशालिनी । प्रति सोपि नृपादेशादतरेऽह्यन्यहापयन् ॥ ४४५ ॥ गत्वा जिनगृहे प्रोषधोपवाससमन्वित । अपराजितराज च युवराज च सुस्थित ॥ ४४६ ॥ दृष्ट्वामात्यमुखाद् दूतो निवेदितनिजागम । यथोचितं प्रदायाभ्या स्वानीतोपायन सुधी ॥४४७॥ ज्वलत्यस्य प्रतापाग्निर्दिव्यायपिंड-भास्वरः । कृतदोषान् व्यलीकाभिमानिनो दहति द्रुत ॥ ४४८ ॥ यस्य नाम्नैव निर्भिन्नहृदयाः प्राकृतद्विष । नमति वैरमस्त्र वा विनम्रा भयविह्वलाः ॥४४९॥ न सति सहजास्तस्य शत्रव शुद्धचेतसः । विभज्यान्वयजैर्विश्वैस्तद्राज्य भुज्यते यतः ॥ ४५० ॥ कृत्रिमा केन जायते रिपवस्तस्य भूभुज । मालेवाज्ञा ह-तावज्ञरुह्यते यदि मूर्द्धभि ॥४५१॥ विनम्रविश्वविद्येशमुकुटाग्रमणित्विषा । स पादपीठपर्यंते विधत्ते धनुरामरं ॥ ४५२॥ यशः कुंदेंदुनिर्भासि तस्याराति-जार्जित । कन्या गायंति दिग्दतिदतपर्यंकके कलं ॥ ४५३ ॥ दुर्दमा विद्विषस्तेन दातायतेव दतिनः । दमितारिरिति ख्यातिं सधत्तेऽन्वर्थपेशलं ॥४५४॥ तस्य शौर्यानलो, भस्मिताखिलारातिरिंधन । जाज्वलीति तथाप्यग्निकुमाराभरभीषणः ॥ ४५५॥ प्रेषित श्रीमता तेन देवेनाह युवां प्रति । प्रीतये यान्वि

पवासकर जिनालयमें विराजमान थे ॥ ४४४–४४६ ॥ उन्हें देखकर मंत्रीके द्वारा उसने अपने आनेकी सूचना दी और वह बुद्धिमान् यथा योग्य भेट लाया था वह समर्पण की ॥ ४४७ ॥ तथा वह कहने लगा कि, दिव्य लोहेके पिंडके समान चमकती हुई राजा दमितारि की प्रतापरूपी अग्नि अपराधी और झूठमूठके अभिमानी लोगोंको बहुत शीघ्र जला डालती है ॥ ४४८ ॥ उसके नामलेनेसे ही स्वाभाविक वैरियोंका हृदय भी फट जाता है तथा डरसे घब-डाकर और नम्र होकर वे अपने शस्त्र और अपना वैर छोड देते हैं ॥ ४४९ ॥ शुद्धचित्तवाले उसके स्वाभाविक वा भाई बधुओंमेंसे तो कोई शत्रु है ही नहीं क्योंकि अपने कुटुंबमें उत्पन्न हुए सब लोगोंको बांटकर राज्यका उपभोग करता है ॥ ४५० ॥ जब तिरस्कारको न चाहनेवाले लोग मालाके समान उसकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करते हैं तब फिर भला उस राजाके कृत्रिम शत्रु तो हो ही किस तरह सकते हैं ॥ ४५१ ॥ जिस समय सब विद्याधर आकर उसे नमस्कार करते हैं उससमय वह राजा दमितारि उनके मुकुटोंमें लगे हुये मणियोंकी कांतिसे अपने सिंहासन तक इंद्र धनुष बना देता है ॥ ४५२ ॥ शत्रुओंके जीतनेसे उत्पन्न हुये तथा कुंदके फूल और चद्रमाके समान सुशोभित हुए उसके मनोहर यशको कन्यायें दिग्गजोंके दांत तक गाती रहती हैं ॥ ४५३ ॥ जिसप्रकार हाथी अंकुशसे वश र-हते हैं उसीप्रकार बडे २ शत्रु भी उससे वश कर लिये गये हैं और इसीलिये ही वह दमितारि (दमित अरि–शत्रुओंको नाश करनेवाला) इस सार्थक नामको धारण करता है ॥ ४५४ ॥ यद्यपि समस्त शत्रुरूप ईंधनको जलानेवाली उस की शूरवीरता रूप अग्नि सदा जलती रहती है तथापि वह अग्निकुमार देवके समान भयकर जान पडता है ॥४५५॥

तस्मादातव्यं नर्तकीद्वय ॥ ५४६ ॥ युस्मदीय भुवि ख्यात योग्य तस्यैव तद्यत: । युवयो स' हि तद्दानात्सुप्रसन्न फलिष्यति ॥५५७॥ इत्यब्रवीदद श्रुत्वा तमावास प्रहित्य तौ । किं कार्यमिति पृच्छन्तो स्थितावद्भूय मन्त्रिण: ॥ ५५८ ॥ ततो- पुण्योदयात्सद्यस्तृतीयभवदेवता: । सुनिरूप्य स्वरूपाणि तौ स्वय स-मुपाश्रयन् ॥ ४५९ ॥ वय युवाभ्या सयोज्य निजाभिप्रेयकर्मणि । अस्थाने माकुलीभूतामित्याहुश्चाहितादरा: ॥ ४६० ॥ श्रुत्वैतद्राज्यभारं स्व निधाय निजमन्त्रिषु । नर्तकीवेषमादाय राज्ञा वां प्रेषिते तत ॥ ४६१ ॥ यामेति दूतमालप्य सम्प्राप्य शिवमंदिरं । समालोचितगूढ तौ प्रविश्य नृपमंदिरं ॥ ४६२ ॥ दृष्टवंतौ खगाधीश यथोचित प्रतुष्य स: । संभाष्य सामवान्सार पूजयित्वा दिनेपरे ॥४६३॥ अगहारै: सकरणै रसैर्भावैर्मनोहरै: । नृत्यं तयोर्विलोक्याप्त-समद: परितोषत ॥ ४६६ ॥ भवन्नृत्यकला कल्पा वा सुशिक्षयितु सुता । मदीयामित्यदात्कन्यामेताभ्यां कनकश्रियं ॥ ४६५ ॥ आदीय ता यथायोग्य

उस श्रीमान् महाराज दमितारिने मुझे तुम दोनोंके पास भेजा है और प्रेम बढानेके लिये दो नृत्य करनेवालीं मांगी हैं। वे तुम्हारे यहांकी नृत्य करनेवालीं संसारमें प्रसिद्ध हैं और उसीके योग्य हैं इसलिये अवश्य दे देनी चाहिये उनके देनेसे वह तुम दोनोंपर प्रसन्न होगा और तुम दोनोंको उमसे बहुत कुछ लाभ होगा ॥ ५५६-४५७ ॥ दूतकी कही हुई इन बातोंको सुनकर उन दोनोंने दूतको तो मकानपर भेज दिया और मंत्रीको बुलाकर पूछा कि इस विषयमें क्या करना चाहिये ॥ ४५८ ॥ उनके पुण्य कर्मके उदयसे तीसरे भवकी विद्या देवता शीघ्र ही आ पहुंची और उमने वडे आदरसे अपना परिचय देकर कहा कि तुम्हारे इस इष्ट काममें मैं तुम दोनोंके साथ रहकर काम करूंगी तुम इस योग्य स्थानमें व्याकुल मत हो ॥ ४५९-४६० ॥ विद्या देवताकी इन बातोंको सुनकर उन दोनोंने राज्यका भार तो मंत्रियोंके ऊपर पटका और स्वयं नृत्य करनेवालीका वेष बनाकर कहा कि महाराजने हम दोनोंको भेजा है चलो चलें। इसतरह दूतसे कहकर उसके साथ शिवमंदिर नगरमें पहुंचे और किसी गूढ अभिप्रायकी आलोचना करते हुये राजसभामें जा उपस्थित हुये ॥ ४६१-४६२ ॥ जाकर विद्याधरोंके स्वमी दमितारिको देखा और यथायोग्य रीतिसे उसे प्रसन्न किया। राजा दमितारिने भी बडी शांततासे उनके साथ बात चीत की और खूब ही उनका आदर सत्कार किया। किसी दूसरे दिन उन दोनोंने शरीरकी सुंदरता करण तथा मनोहर भाव और रसोंसे भरा हुआ नृत्य किया जिसे देखकर राजा दमितारि बहुत ही आनंदित और संतुष्ट हुआ ॥ ४६३-४६४ ॥ उसने अपनी पुत्री कनकश्रीको बुलाकर उन दोनोंके सुपुर्द किया और कहा कि इसे भी अपनी सब नृत्यकलाकी शिक्षा दो ॥ ४६५ ॥ उस राजपुत्रीको लेकर वे दोनों ही यथायोग्य रीतिसे उसे नृत्य सिखाने लगे। किसी एक दिन उन्होंने होनहार चक्र

नृत्यंतौ नृपात्मजा । पेठतुर्गुणसंदोहमिति ते भाविचक्रिणः ॥ ४६६ ॥ गुणै कुलबलादिभिर्भुवि विजित्य विश्वान् नृपान् । मनोभ्रमपिलज्जयन् भववरो वपु संपदा । विदग्धवनिताविलासललितावलोकालय क्षिते पतिरनतवीर्य इति विश्रुत पातु वः ॥४६७॥ तदा तच्छ्रुतिमात्रेण मदनाविष्टविग्रहा । स्तूयते य स को ब्रूतमित्यप्राक्षीःनृपात्मजा ॥ ४६८ ॥ प्रभाकरीपुराधीशोऽजनिस्तमितसागरात् । महामणिरिव क्ष्माभृन्मौलिचूडामणीयितः ॥ ४६९ ॥ कांता-कल्पलतारोहरम्यकल्पमहीरुहः । कामिनीभ्रमरीभोग्यमुखांभोजविराजितः ॥ ४७० ॥ इति तद्वयतद्रूपलावण्याद्यनुवर्णनात् । द्विगुणीभूतमप्रीतिरित्युवाच खगात्मजा ॥ ४७१ ॥ किमसौ लभ्यते द्रष्टुं कन्यके सुष्ठु लभ्यते । त्वयेत्यंनतवीर्यस्य रूपं साक्षात्प्रदर्शित ॥ ४७२ ॥ तद्दर्शनसमुद्भूतमदनज्वरविह्वला । नर्तक्यौ ता समादाय जग्मतुर्मरुत पथा ॥ ४७३ ॥ तद्वार्ता खेचराधीश श्रुत्वातर्वंशिकोदितात् । खभटान्प्रेषयामास तद्द्वयानयन प्रति ॥ ५७४ ॥ त-दागमनमालोक्य स निवर्त्य हली बली । न्ययुध्यतानुज दूरेस्थापयित्वा सकन्यकं ॥४७५॥ ते तेन सुचिरं युद्ध्वा कृतांतोपातमाश्रिता । दमितारि पुन

वर्तीके गुणसमूहोंको इसप्रकार पढा कि जिसने अपने कुल बल आदि गुणोंसे संसारके सब राजाओंको जीत लिया है जो युवाओंमें भी श्रेष्ठ है जिसने शरीरकी कांतिसे कामदेवको भी लज्जित कर रक्खा है जो सुंदर स्त्रियोंके विलास और मनोहर चितवनोंका घर है ऐसा जगत्प्रसिद्ध पृथ्वीका स्वामी अनतवीर्य तुम लोगोंकी रक्षा करो ॥ ४६६–४६७ ॥ उससमय उसे सुनकर कनकश्रीको कुछ कामका विकार हुआ और वह पूछने लगी कि जिसकी तुम स्तुति करते हो वह कौन है ॥ ४६८ ॥ इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि यह स्तिमितसागरसे उत्पन्न हुआ प्रभाकरी नगरीका स्वामी है वह महामणिके समान है स्त्रीरूपी कल्पलताओंको चढनेके लिये मनोहर कल्पवृक्षके समान है और उसका मुख स्त्रीरूपी भ्रमरियोंके उपभोग करनेकेलिये कमलके समान सुशोभित है ॥४६९–४७०॥ इसप्रकार उसकी अवस्था रूप लावण्य आदिके वर्णन करनेसे उस विद्याधरकी पुत्रीका प्रेम दूना हो गया और वह कहने लगी कि क्या उसे मैं देख सकती हूं इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि हां तू उसे अच्छीतरह देख सकती है इसतरह कहकर उन्होंने अनंतवीर्यका रूप साक्षात् प्रगट कर दिखा दिया ॥ ४७१–४७२ ॥ उस अनंतवीर्यके रूपको देखकर वह कनकश्री कामज्वरसे व्याकुल होगई और वे दोनो ही नृत्य करनेवालीं (बलभद्र और केशव) उसको लेकर आकाश मार्गसे चली गई ॥ ४७३ ॥ विद्याधरोंके स्वामी दमितारिने कंचुकियोंके मुखसे यह बात सुनी और सुनते ही उन दोनोंको पकडनेके लिये योद्धा लोग भेजे ॥ ४७४ ॥ बलवान बलभद्रने योद्धाओंको आते हुये देखकर कनकश्री और अनंतवीर्यको तो अलग दूर रक्खा और वे स्वयं लौटकर उनसे युद्ध करने लगे ॥ ४७५ ॥ उन योद्धाओंने बहुत देर तक

[illegible]

[illegible] ॥ ७७६ ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ ७८० ॥ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ ७८३ ॥ [illegible]

[illegible]

प्रकार युद्धका अवसर है दोनों ही भाई [illegible]

[illegible] विवाह [illegible] ॥ ७८५ ॥ [illegible] विवाहको [illegible]

विमाने सहसा स्थिते ॥ ४८५ ॥ केनचित् कीलिते वेतो न यात. केन हेतुना । इति तौ परितो वीक्ष्य सदो दिव्य मलोकयत ॥ ४८६ ॥ मानस्तभाः सरांस्येतान्येतद्वनचतुष्टय । मध्येगधकुटी नून जिनेद्र कोपि तिष्ठति ॥ ४८७ ॥ इति तत्रावतीर्यैष शिवमदिरनायक । सुत कनकपुखस्य जयदेव्याश्च निश्चितः ॥ ४८८ ॥ दमितारे पिता कीर्तिधरो नाम्ना विरक्तवान् । प्राप्य शातिकराभ्यासे प्रव्रज्या पारमेश्वरी ॥ ४८९ ॥ सवत्सरं समादाय प्रतिमायोगमागमत् । केवलावगम भक्त्या सुनासीरादिपूजित ॥ ४९० ॥ इत्युक्त्वैत्य परीत्य त्रि प्रप्रणम्य जिनेश्वरं । श्रुतधर्मकथौ तत्र तस्थतुर्ध्वस्तकल्मषौ ॥ ४९१ ॥ कनकश्री सहाभ्येत्य ताभ्यां भक्त्या पितामह । वदित्वा घातिहतारमप्राक्षीत्स्वभवातरं ॥ ४९२ ॥ इति पृष्टो जिनाधीशो निजवागमृतांबुभि । तां तर्पयितुमित्याह परार्थैकफलेहित ॥ ४९३ ॥ अत्र जबूद्रुमालक्ष्यद्वीपेस्या भरतावनौ । शखाह्वयनगरे वैश्यो देविलस्तत्सुताभव ॥ ४९४॥

दिया) अथवा किस कारणसे यह आगे नहीं चलता है इसी बातको वे दोनों भाई देखने लगे देखते ही नीचे उन्हें एक दिव्य सभा दिखाई दी वे कहने लगे कि अरे ये मानस्तंभ हैं ये बावडी हैं ये चारो वन हैं और यह मध्यमें गंधकुटी है अवश्य ही यहां कोई जिनराज विराजमान हैं ॥ ४८६–४८७ ॥ यही कहते हुए वे नीचे उतरे और कहने लगे कि शिवमंदिर नगरके स्वामी राजा कनकपुख रानी जयदेवीके पुत्र तथा दमितारिके पिता राजा कीर्तिधरने विरक्त होकर शांतिकर मुनिराजके समीप पारमेश्वरी दीक्षा धारण की थी, एक वर्ष तक प्रतिमा योग धारणकर केवलज्ञान प्राप्त किया था उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर बडी भक्तिसे पूजा की थी वे ही भगवान यहां विराजमान हैं यही कहते हुए उन दोनों भाइयोंने भगवानकी तीन प्रदक्षिणायें दीं उन्हें नमस्कार किया धर्मकथायें सुनीं और पापोंको नाश करनेवाले वे दोनों ही भाई वहां बैठ गये ॥ ४८८–४९१ ॥ कनकश्री भी उन दोनोंके साथ आई थी उसने बडी भक्तिसे अपने बाबाकी बंदना की और घातिया कर्मोंको नाश करनेवाले उन भगवानसे अपने पहिले भव पूछे ॥ ४९२ ॥ इस तरह पूछनेपर परोपकाररूप फलमें ही हित माननेवाले भगवान कीर्तिधर अपने बचनामृतरूपी जलसे उसे तृप्त करनेकेलिये कहने लगे ॥ ४९३ ॥ कि इसी जंबूद्वीपकी भरत क्षेत्रकी भूमिपर शख नामके नगरमें एक देविल नामका वैश्य रहता था, उसकी बधुश्री नामकी स्त्रीसे तू श्रीदत्ता नामकी बडी और सती पुत्री हुई थी तथा कोढी, लंगडी, टोंटी, बहरी कुब्जी, कानी और खंजी ये तेरी छोटी बहिन थीं तू इन सबका पालन करती थी किसी दूसरे दिन उसने सर्वशैल नामके पर्वतपर सर्वयश नामके मुनिराजकी बंदना की, उसके परिणाम शांत हुए तथा शुद्ध बुद्धिवाली उसने अहिंसाव्रत और धर्म चक्र व्रतका उपवास करना स्वीकार किया ॥ ४९३–४९७ ॥ किसी

संद्धिता तथैवथा श्रीदत्ता त्वादमी सती । सुता: पर: कर्मीतस्य: कुष्ठी पंगू कुणी तथा ॥ ४९५ ॥ बधिर कुब्जका काना मंजा मोक्षि- सर्वे । तं कलाभिपूर्ति पर्ययासं गर्भशयां ॥ ४९६ ॥ अभिगंत धामं याता दिसातिरमययनं । पर्ळन्ता यमनकम्यसुनवास न सुदर्शी ॥ ४९७ ॥ अन्यदा सुत्र- मान्याते गतिल्य विधिपूर्वक । आयातदानगंताया यमने मयुतोविपात् ॥४९८॥ सम्यक्त्वाभावतस्तत्र विचिकित्सानगानत: । मोयने जीवितस्यांते मूला- गामासिताभर्ग ॥ ४९९ ॥ नतो मंदरमालिन्या दमितारे: सुताभव: । पुण्याद्व्रतोपवासतात्रिविचिकित्साफल त्विदं ॥५००॥ सबल पितर हत्वा युवा नौ- तासि दुःखिर्मा । विचिकित्सा न कर्त्तव्या तस्मात्साधो सुधीजना ॥ ५०१ ॥ श्रुत्वान्त्वदतिशोकार्ता नत्वा जिनपुंगवं । प्रभाकरीनगानाभ्यां सह मा खेच- रागता ॥ ५०२ ॥ सुघोषविद्युदंष्ट्राख्यौ भ्रातरौ कनकश्रिय: । तनुस्नेनसेनेन युध्यमानौ बलोद्धतो ॥ ५०३ ॥ विलोक्य विहितकोपा जम्नतुर्नरकेशवौ । नानयाम्य प्रामाविमागतजा गोढ्मसया ॥ ५०४ ॥ भ्रातृदंडगता सुता भानुना ह्याशुनि । सुतारादिदुरेमेत क्षीणा पलकन्यादिना ॥ ५०५ ॥ शोक

दूसरे दिन उसने सुव्रता नामकी मुख्य आर्जिकाको विधिपूर्वक आहारदान दिया था परंतु उस आर्जिकाने पहिले उप- वास किया था इसलिये ठीक न पचनेके कारण उसे वमन होगया और सम्यग्दर्शन न होनेसे उस श्रीदत्ताने उस अ- र्जिकामें कुछ ग्लानि की। आयुके अंतमें वह श्रीदत्ता मरकर सौधर्म स्वर्गमें सामानिक जातिकी देवी हुई और वहांसे आकर राजा दमितारिके रानी मंदरमालिनीसे व्रत और उपवासके पुण्यसे तू पुत्री हुई है पहिले जो तूने आर्जिकाको वमन करते देखकर ग्लानिकी थी उसका यह फल मिला है कि तेरे बलवान् पिताको मारकर तथा तुझे दुख उत्पन्नकर ये दोनों ही भाई तुझे ले चले हैं इसलिये बुद्धिमान लोग साधुओंमें कभी ग्लानि नहीं करते हैं ॥ ४९८–५०१ ॥ यह सब कथा सुनकर शोकसे वह कनकश्री कुछ दुखी हुई और फिर जिनराजकी वंदनाकर प्रभाकरी नगरीको चली गई ॥ ५०२ ॥ इधर सुघोष और विद्युदंष्ट्र ये दोनों कनकश्रीके भाई थे, वे बडे ही बलवान थे तथा शिवमंदि- रमें ही बलभद्र केशवके ही भेजे हुए अनंतसेनके साथ युद्ध करने लगे थे ॥ ५०३ ॥ यह देखकर बलभद्र नारायण भी क्रोधित हुए और जाकर उन दोनों भाईयोंको पकड लिया । यह सुनकर कनकश्री उनके दुखको सह नहीं सकी जिसप्रकार अपने शुक्लपक्षके बलके विना बढे हुए तेजवाले दोपहरके सूर्यसे चंद्रमाकी रेखा कांतिरहित हो जाती है उसीप्रकार वह भाईयोंके पकडे जानेसे कांतिरहित होगई ॥ ५०४-५०५ ॥ शोकरूपी दावानल अग्निसे मलिन हुई वनकी लताके समान वह दुबली हो गई उसने सब काम और भोगोंकी इच्छा छोड दी और केवल उनके दुखसमू- होंके बुझानेकी इच्छा करने लगी ॥ ५०६ ॥ बलभद्र नारायणसे प्रार्थना कर उसने दोनों भाईयोंको छुडाया उन्हें सम-

दावानलम्लाना वृतेव वनवल्लरी । व्युच्छिन्नकामभोगेच्छा चिच्छिदुःसंतति ॥ ५०६ ॥ मोचयित्वानुबुध्यंतौ संप्रार्थ्य बलकेशवौ । स्वयंप्रभाख्यतीर्थेशात्पीतधर्मरसायना ॥ ५०७ ॥ सुप्रभागणिनीपार्श्वे दीक्षित्वा जीवितावधौ । सौधर्मकल्पे देवोभूच्चित्र विलसितं विधेः ॥ ५०८ ॥ सुविहितमहोपायौ विद्याबलाद्वहुपुण्यकौ, बुधजननुतौ सुप्रारंभौ परस्परसंगतौ । हतपृथुरिपुशांतात्मानौ यथानयविक्रमौ, सममविशता सिद्धार्थौ तौ पुरीं परमोत्सवां ॥५०९॥ जित्वा प्रसिद्धखचरान् खचराधिभर्तुरध्यास्य तद्बलधरत्वमलंध्यशक्तिः । व्यक्तीचकार सुचिरादपराजितत्व भावेन चैतदिति नैव निजेन नाम्ना ॥ ५१० ॥ चक्रेण तस्य युधि त दमितारिशक्तिं हत्वा त्रिखंडपतिता समवाप्य तस्मात् । वीर्येण सूर्यविजयीत्थमनंतवीर्यो धुर्योभवद् भुवि स शौर्यपरेषु शूर ॥ ५११ ॥ नित्यालोचितमंत्रशक्त्यनुगतः स्फूर्जत्प्रतापानलज्वालाभस्मितवैरिवंशगहनस्त्वं चक्रिणामग्रणीः । यस्त्वां कोपयति क्षणादरिरसौ कालज्वलज्ज्वालिना लीढो लिह्यत

झाया और फिर स्वयंप्रभनामके तीर्थंकरसे धर्मरसायनका पान किया ॥ ५०७ ॥ तदनंतर सुप्रभा नामकी आर्जिकाके समीप उसने दीक्षा धारण की और आयुके अंतमें शरीर छोडकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुई । इससे कहना पडता है कि कर्मोंकी लीला भी बडी ही विचित्र है ॥ ५०८ ॥ जिन्होंने अपनी विद्या और बलसे अनेक बडे बडे उपायोंकी योजनाकी है, जो बडे पुण्यवान हैं विद्वान् लोग भी जिनको नमस्कार करते हैं जो सदा अच्छे कामोंका ही प्रारंभ करते हैं परस्पर मिलकर रहते हैं बडे बडे शत्रुओंको मारकर जिनकी आत्माएं शांत हैं, जो यथायोग्य नय तथा पराक्रमको धारण करनेवाले हैं और जिनके सब काम सदा सिद्ध ही होते हैं ऐसे उन बलभद्र नारायण दोनों ही भाइयोंने परमोत्सवसे सजाई हुई उस प्रभाकरी नगरीमें प्रवेश किया ॥ ५०९ ॥ अलंघ्य शक्तिको धारण करनेवाले अपराजितने प्रसिद्ध प्रसिद्ध सब विद्याधरोंको जीता सब विद्याधरोंके स्वामीका पद तथा बलभद्रका पद सुशोभित किया और इसतरह केवल नामसे ही नहीं किंतु यथार्थ रीतिसे अपराजित (जो किसीसे न जीता जा सके) पनेको प्रगट किया ॥ ५१० ॥ जिसने युद्धमें उसीके चक्रसे दमितारिकी शक्तिका नाश किया जो अपने पराक्रमसे सूर्यको भी जीतता है और जो संसारके उत्तमोत्तम शूरवीरोंमें भी शूरवीर है ऐसा वह अनंतवीर्य संसारमें सबसे प्रसिद्ध हुआ था ॥ ५११ ॥ बंदीजन सदा उस अनंतवीर्य नारायणकी इसतरह स्तुति किया करते थे कि तू सदा आलोचनाकी हुई मंत्र शक्तिके अनुसार चलता है देदीप्यमान प्रतापरूप अग्निकी ज्वालासे तूने शत्रुओंके वंशरूपी वनोंको जला डाला है, तू चक्रवर्तियोंमें मुख्य है और जो शत्रु तुझे क्रोधित करता है वह क्षणभरमें ही कालरूपी जलती हुई अग्निका स्पर्शकर उसका स्वाद लेता है ॥ ५१२ ॥ जिसे शत्रुरूप बादल कभी ढक नहीं सकते, जो अपने बडे भाईकी आज्ञानुसार

एव लक्ष्यत इति स्तुत्यः सदा बंदिभिः ॥ ५१२ ॥ गतघनरिपुरोघ स्वाम्रजोद्दिष्टमार्गे संमुपगतविशुद्धि काललब्ध्या स चक्री । रविरिव निजदीप्त्या व्याप्तदिक्चक्रवालः शरदमिव पुरीं स्वामध्युवासोग्रतेजा ॥ ५१३ ॥

इत्यार्षे भवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अपराजितानंतवीर्याभ्युदयवर्णनं नाम द्विषष्टितम पर्व ॥ ६२ ॥

अथ त्रिषष्टितमं पर्व ।

सिंहासने समासीनो वीज्यमानप्रकीर्णकः । अर्द्धचक्री व्यराजिष्ट यथा षट्खंडमंडित ॥ १ ॥ अथापराजितोप्यात्मयोग्यरत्नाद्यधीश्वरः । बलदेवपदं प्राप्य प्रत्यहं वृद्धिमातनोत् ॥ २ ॥ एवं भवांतरावद्धविवृद्धस्नेहयोस्तयो । काले गच्छत्यविच्छिन्नस्वच्छंदसुखसारयो ॥ ३ ॥ विजयाया हलेशस्य बभूव सुम-

चलता है काललब्धिसे जिसकी विशुद्धि खूब बढगई है और सूर्यके समान जो अपनी कांतिसे सब दिशाओंके समूहोंमें व्याप्त हो रहा है ऐसा वह महा प्रतापी, राजा अनंतवीर्य शरद् ऋतुके समान अपनी प्रभाकरी नगरीमें निवास करता था ॥ ५१३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अपराजित और अनंतवीर्यके अभ्युदयका वर्णन करनेवाला यह बासठवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

तिरेसठवां पर्व ।

अर्द्धचक्रवर्ती महाराज अनंतवीर्य सिंहासनपर विराजमान हुआ, सदा उसपर चमर ढुरते थे और वह ऐसा जान पडता था मानों छहों खंडोंका स्वामी चक्रवर्ती हो ॥ १ ॥ इसीतरह अपराजित भी अपने योग्य रत्नादिकोंका स्वामी हुआ था और बलदेव पदको पाकर प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता रहता था ॥ २ ॥ जिनका परस्परका प्रेम पहिलेके जन्मोंसे चला आ रहा है और जो निरंतर स्वच्छंद रीतिसे उत्तम सुखोंका अनुभव करते हैं ऐसे उन दोनोंका समय आनंदसे कट रहा था ॥ ३ ॥ बलभद्र अपराजितके विजया रानीसे सुमति नामकी कन्या हुई थी वह शुक्लपक्षके चंद्रमाकी रेखासे उत्पन्न हुई चांदनीके समान सबको प्रसन्न करती थी ॥ ४ ॥ रातदिन बढती हुई वह कन्या सब-

ति सुता। ज्योत्स्नेव प्रीणिताशेषा शुक्लपक्षेंदुरेखयोः ॥ ४ ॥ सान्वहं कुर्वती वृद्धिं स्वस्याः पित्रोरपि स्वयं। गुणैराह्लादनैः प्रीतिं व्यधात्कुवलयेप्सितां ॥५॥ दानाद्दमवराख्याय चारणाय यथोचितं। साश्चर्यपंचकं प्राप तत्र दृष्ट्वा निजात्मजां ॥६॥ रूपेण केवलेनेयं भूषिता यौवनेन च। वरं प्रार्थयते बाला संश्रिता कालदेवतां ॥ ७ ॥ इति संचिंत्य तौ श्रावितस्वयंवरघोषणौ। कृत्वा स्वयंवरे शालां प्रवेश्यात्र वरोत्तमान् ॥ ८ ॥ सुतां च स्यंदनारूढां सुप्रीतौ तस्थतुस्तदा। काचिद्विमानमारुह्यागता सुरसुंदरी ॥ ९ ॥ अभिजानासि किं देवलोकेऽहं त्वं च कन्यके। वसावस्तत्र सज्ञानात्समभूत् स्थितिरावयोः॥ १० ॥ या प्रागवतरद्धात्रीं तामन्याबोधयत्विति। ब्रुवे नौ भवसंबंधं संनिधाय मनः शृणु ॥११॥ पुष्करद्वीपपूर्वार्द्धभरते नंदने पुरे। नयविक्रमसंपन्नो महीशोऽमितविक्रमः ॥ १२ ॥ एतस्यानंतमत्याश्च धनानंतश्रियौ सुते। भूत्वा वां सिद्धकूटस्थनंदनाख्ययतीश्वरात् ॥ १३ ॥ श्रुत्वा धर्मं व्रतैः सार्द्धमुपवासांश्च संविदा। स

को प्रसन्न करनेवाले गुणोंसे अपने माता पिताको कुवलयेप्सित अर्थात् पृथ्वीमंडलमें इष्ट अथवा कुमोदिनियोंको इष्ट ऐसा प्रेम उत्पन्न करती थी ॥ ५ ॥ किसी एक दिन उसने दमवर नामके चारण मुनिको यथायोग्य रीतिसे आहार दान दिया जिससे उसके घर पंचाश्चर्यों वर्षा हुई वहीं पर अपराजित और अनंतवीर्य दोनों भाईयोंने देखा कि यह कन्या केवल रूपसे ही सुशोभित नहीं है किंतु यौवनसे भी सुशोभित है अब यह कन्या कालदेवताका (समयका) आश्रय पाकर वरकी प्रार्थना करती है अर्थात् अब इसके विवाहका समय आपहुंचा है ॥ ६–७ ॥ यही विचारकर उन दोनों भाइयों ने स्वयंवरकी घोषणा दी, आए हुए अच्छे अच्छे राजकुमारों को स्वयंवरकी शालामें प्रवेश कराया, वहांपर रथपर सवार कराकर अपनी पुत्रीको भेजा और आप प्रसन्न होकर एक जगह खडे होगये। उसीसमय विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे एक देवी आई और उस कन्यासे कहने लगी कि क्यों याद है हम तुम दोनों ही स्वर्गलोकमें रहते थे वहांपर जब हम तुम दोनोंको कुछ आत्मज्ञान हुआ था तब प्रतिज्ञाकी थी कि जो पहिले पृथ्वीपर अवतार लेगी उसे दूसरी देवी आकर समझावेगी देख! अब मैं दोनोंके पहिले भवके संबंध कहती हूं तू चित्त लगाकर सुन ॥ ८–११ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीपके भरतक्षेत्रमें नंदनपुर नगरमें नय और पराक्रमसे सुशोभित ऐसा अमितविक्रम नामका राजा राज्य करता था ॥ १२ ॥ उसकी अनंतमती रानीसे हम दोनों ही धनश्री और अनंतश्री नामकी दो कन्यायें हुई थीं। वे दोनों ही कन्यायें किसी एक दिन सिद्धकूट चैत्यालयमें गई थीं वहांपर नंदन नामके मुनिराजसे धर्म श्रवण किया था और ज्ञानपूर्वक व्रतोंके साथ साथ बडे बडे उपवास ग्रहण किये थे। किसी एक दिन त्रिपुरा नगरका राजा वज्रांगद विद्याधर अपनी रानी वज्रमालिनीके साथ साथ मनोहर नामके वनमें जा रहा था मार्गमें उन

मम्रहीष्टा नौ दृष्ट्वा कदाचित्त्रिपुराधिप ॥ १४ ॥ मनोहरवनेऽगच्छत्महद्वज्रांगद खग । कातया वज्रमालिन्या समासक्तमनिस्तदा ॥ १५ ॥ पुरीं प्रापय्य कांता स्वा सहसा पुनरागत । गृहीत्वा वा व्रजन्नाशु निजाभिप्रायवेदनी ॥ १६ ॥ आगतामतरे दृष्ट्वा दूरात्ता वज्रमालिनीं । त्यक्त्वा वेणुवने भीत्या तस्यां स्वपुरमीयिवान् ॥ १७ ॥ आवा सन्यस्य तत्रैव सौधर्मेंद्रस्य शुद्धधी । व्रतोपवासपुण्येन देवी नवमिकाभव ॥ १८ ॥ त्व च देवी कुबेरस्य रत्याख्या समजायथा । अन्योन्यमगवत्यैत्य नंदीश्वरमहामह ॥ १९ ॥ अथ मदरपर्यतवने निर्जंतुके स्थित । चारण धृतिषेणाख्य समाश्रित्य प्रणम्य ता ॥ २० ॥ आवामप्रक्ष्यावेद कदा स्यान्मुक्तिरावयो । इत्यथो मुनिरप्याह जन्मनीतश्चतुर्थके ॥ २१ ॥ अवश्य युवयोर्मुक्तिरिति तस्मान्महामते । सुमते नाकिना लोकात्त्वा बोधयितुमागता ॥२२॥ इत्यवोचत्तदाकर्ण्य सुमतिर्नाम सार्थक । कुर्वती पितृनिर्मुक्ता प्रव्राजीत्सुव्रतांतिके ॥२३॥ कन्यकालिशतै सार्द्धं सप्तभि सा महातपा: । त्यक्तप्राणानते कल्पे देवोऽभवदनूदिशे ॥ २४ ॥ आधिपत्य त्रिखंडस्य विधाय विविधं सुखं । प्राविशत्केशव पापात्प्रांते रत्नप्रभा क्षितिं ॥

दोनों कन्याओंको देखकर मोहित हुआ। उसने उसीसमय अपनी रानीको घर पहुंचा दिया और वह तुरंत ही लौटकर आया तब उन दोनों कन्याओंको विमानमें रखकर जाने लगा। इधर रानी वज्रमालिनी अपने घर रखने और राजाके तुरंत ही लौटनेका कारण अभिप्राय समझ गई। वह तुरंत ही आई, उसे दूरसे ही आता देखकर उसके डरसे वज्रांगदने उन दोनों कन्याओंको तो वेणुवनमें छोड दिया और स्वयं उस रानीके साथ अपने नगरको लौट गया॥११–१७॥ हम दोनों ही ने (उन दोनों कन्याओंने) वहांपर समाधिमरणधारण किया। मरकर शुद्ध बुद्धिवाली मैं तो व्रत और उपवासके पुण्यसे सौधर्म इंद्रकी नवमिका नामकी देवी हुई और तू कुबेरकी रति नामकी देवी हुई। किसी एक दिन हम दोनों ही मिलकर नंदीश्वर द्वीपमें महामह यज्ञ देखनेके लिये गई थीं, वहींपर मदर पर्यत नामके वनमें किसी निर्जीव स्थानमें धृतिषेण नामके चारण मुनि विराजमान थे उनके समीप जाकर हम दोनोंने नमस्कार किया और उनसे पूछा कि हम दोनोंकी मोक्ष कब होगी। इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था इस जन्मसे चौथे भवमें अवश्य ही तुम दोनोंकी मोक्ष होगी। वहांकी आयु पूरीकर तू यहां उत्पन्न हुई है हे बुद्धिमती सुमते मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तुझे समझानेके लिये स्वर्ग लोकसे आई हूं॥ १८–२२ ॥ देवीकी कही हुई इन बातोंको सुनकर सुमतिने अपना सुमति (अच्छी बुद्धिवाली) नाम सार्थक किया, उसने माता पिताको छोडकर सात सौ सखी कन्याओंके साथ साथ सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण की, कठिन तपश्चरण किया और शरीर छोडकर तेरहवें आनत स्वर्गके अनूदिश विमानमें देवकी पर्याय पाई ॥ २३-२४ ॥ इधर अनतवीर्य नारायणने तीन खंडका राज्य पाकर अ-

२५ ॥ तच्छोकात्सीरपाणश्च राज्यलक्ष्मा प्रबुद्धधी । प्रदायानंतसेनाय [illegible] ॥ २६ ॥ [illegible]
संन्यासादच्युताधीश्वरोभवत् ॥ २७ ॥ धरणेंद्रात्पितुर्लब्ध्वा प्राप्तसम्यक्त्वरत्नक । सख्यातवर्षे प्रच्युत्य नरकाद्दुरितच्युते: ॥२८॥ द्वीपेस्मिन्भारते खेच-
राद्रुपदकृश्रेणिविश्रुते । मेघवाहनविद्याधरेशो गगनवल्लभे ॥ २९ ॥ देव्यां तु मेघमालिन्यां मेघनाद खगाधिप । श्रेणीद्वयाधिपत्येन भोगांश्चिरमभुक्त स. ॥
३० ॥ कदाचिन्मंदरे विद्यां प्रज्ञप्तिं नंदने वने । साधयन्मेघनादोयमच्युतेशेन बोधित ॥ ३१ ॥ लब्धबोधि:समाश्रित्य सुरामरगुरु यम । सुगुप्ति समितिं
सम्यगादाय चिरमाचरत् ॥ ३२ ॥ अन्येद्युर्नंदनाख्येद्रा प्रतिमायोगमागमत् । अश्वग्रीवानुजो भ्राता सुकंठाख्यो भवार्णवे ॥३३॥असुरत्वं समासाद्य दृष्ट्वैनं

नेक तरहके सुखोंका अनुभव किया और अंतमें पाप कर्मके उदयसे पहिली रत्नप्रभा पृथ्वीमें नारकी उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ जिसकी बुद्धि आत्मज्ञानमें लगी हुई है ऐसे अपराजित बलभद्रने नारायणके शोकसे राज्यलक्ष्मी तो अनंतसेनको दे दी और स्वयं यशोधर नामके मुनिराजसे संयम धारण किया । शांतपरिणामवाले उसको अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ और अंतमें तीस दिन तक संन्यास धारणकर अच्युत स्वर्गका इंद्र उत्पन्न हुआ ॥ २६–२७ ॥ पहीले अनंतवीर्य और अपराजितका पिता मरकर धरणेंद्र हुआ था उसने नरकमें जाकर अनंतवीर्यके जीवको समझाया जिससे उसने सम्यग्दर्शनरूपी रत्न धारण किया, वह संख्यात वर्षोंकी आयु पूरीकर उस घोर नरकसे निकला और इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें प्रसिद्ध गगनवल्लभ नगरके विद्याधरोंके स्वामी राजा मेघवाहनके रानी मेघमालिनीसे मेघनाद नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । वह सब विद्याधरोंका स्वामी हुआ और दोनों श्रेणियोंका महाराजा होकर बहुत दिन तक भोगोंका अनुभव करने लगा ॥ २८-३० ॥ किसी एक समय वह मेघनाद विद्याधर सुमेरु पर्वतके नंदन वनमें प्रज्ञप्ति नामकी विद्या सिद्ध कर रहा था उसे देखकर अच्युत स्वर्गके इंद्रने (अपराजितके जीवने) आकर समझाया जिससे उसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ, उसने सुरामरगुरु नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण की, गुप्ति समिति आदि धारण कीं और बहुत दिन तक अच्छी तरह उनका पालन किया ॥ ३१-३२ ॥ किसी दूसरे दिन वे मुनिराज नंदन नामके पर्वतपर प्रतिमा योग धारणकर विराजमान थे इतने में ही अश्वग्रीवका सुकंठ नाम का छोटा भाई संसारसागरमें परिभ्रमणकर असुर हुआ था उसने आकर उन उत्तम मुनिराजको देखा, देखते ही उसे क्रोध हुआ उसने अनेक तरहके उपसर्ग किये परंतु वह दुष्ट प्रतिज्ञा किये हुए महायोगसे (ध्यानसे) स्थिर हुए उन मुनिराजको चलायमान न कर सका इसलिये वह लज्जासे तिरस्कृत (अपमानित) होकर अंतर्द्धान होगया अर्थात्

लज्जातिरस्करिण्येव सोंतर्धानमुपागत ॥ ३५॥
मुनिसत्तम । विधाय बहुधा क्रोधादुपसर्गानपारयन् ॥ ३४ ॥ महायोगात्प्रतिज्ञातात्स्थिरं चालयितुं खलः ।
मुनि संन्यस्य कालांते सोच्युतेगात्प्रतींद्रता । इंद्रेण सह सप्रीत्या सप्रवीचारभोगभाक् ॥ ३६ ॥ प्राक्प्रच्युत्याच्युताधीशो द्वीपेस्मिन् प्राग्विदेहके । विषये
मंगलावत्या स्थानीये रत्नसंचये ॥३७॥ राज्ञः क्षेमकराख्यस्य कृतपुण्योभवत्सुत. । श्रीमान्कनकचित्रायां भासो वा मेघविद्युतेः ॥३८॥ आधानप्रीतिसुप्रीति
धृतिमोदप्रियोद्भव- प्रभृत्युक्तक्रियोपेतो धीमान् वज्रायुधाह्वय ॥ ३९ ॥ तन्मातरीव तज्जन्मतोषः सर्वेष्वभूद्बहुः । भवेच्छचीशदिश्येव किं प्रकाशोंशुमालि-
नः ॥४०॥ अवर्धिष्ठ वपुस्तस्य सार्धं रूपादिसंपदा । भूषितोऽनिमिषोवासौ भूषणैः सहर्गुणैः ॥४१॥ जनानुरागः प्रागेव तस्मिंस्तस्योदयादभूत् । संध्याराग
इवार्कस्य महाभ्युदयसूचनः ॥ ४२ ॥ विश्वाशा व्यानशे तस्य यशो विशदयद्भृशं । काशप्रसवसंकाशमाश्वासितजनश्रुति ॥ ४३ ॥ राज्यलक्ष्म्या व्यभा-

प्रतींद्र भाग गया ॥ ३३-३५ ॥ मुनिराजने आयुके अंतमें संन्यास धारण किया और शरीर छोडकर अच्युत स्वर्गमें प्रतींद्र हुआ तथा बडे प्रेमसे इंद्रके साथ प्रवीचारसहित भोगोंका उपभोग किया ॥ ३६ ॥ अपराजितका जीव जो इंद्र हुआ था वह पहिले च्युत हुआ और इसी द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरमें राजा क्षेमंकरके रानी कनकचित्रासे मेघकी विजलीसे प्रकाशके समान पुण्यवान् बुद्धिमान और श्रीमान् वज्रायुध नामका पुत्र हुआ, उसके उत्पन्न होते समय आधान प्रीति सुप्रीति धृति मोद प्रियोद्भव आदि सब क्रियायेंकी गई थीं ॥ ३७-३९ ॥ उसके जन्मसे माताके समान ही सब लोगोंको वडा भारी संतोष हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्य पूर्व दिशासे उत्पन्न होता है उसका प्रकाश पूर्व दिशामें ही नहीं रहता किंतु सब दिशाओंमें फैल जाता है ॥ ४० ॥ रूप आदि संपदाके साथ साथ उसका शरीर बढने लगा और जिसप्रकार स्वाभाविक आभूषणोंसे देव विभूषित होता है उसीप्रकार स्वाभाविक गुणोंसे वह सुशोभित होने लगा ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेके पहिले ही उसका अनुराग अर्थात् लालिमा सब जगह फैल जाती है उसीप्रकार महाभ्युदयको सूचित करनेवाला लोगोंका प्रेम उसके उत्पन्न होनेसे पहिले ही प्रगट हो चुका था ॥ ४२ ॥ सब लोगोंको आश्वासन देनेवाला और कासके फूलके समान फैला हुआ उसका निर्मल यश सब दिशाओंमें व्याप्त हो गया था ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार शुक्लपक्षको पाकर चंद्रमा कांति और चांदनीसे सुशोभित होता है उसीप्रकार वह नई उम्र (युवावस्था) पाकर राज्यलक्ष्मी और लक्ष्मीवतीसे बहुत ही सुशोभित होता था ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार सवेरेके समय पूर्व दिशासे सुवर्णकीसी कांतिवाला सूर्य उदय होता है उसीप्रकार अनंतवीर्य था ॥ ४५ ॥ उस सहस्रा- प्रतींद्रका जीव भी उन दोनोंके (वज्रायुध और लक्ष्मीवतीके) सहस्रायुध नामका पुत्र हुआ था

ल्लक्ष्मीवत्या चाप्य नव वयः । असौ पक्षांतरं कात्या ज्योत्स्नयावाप्य वा विधुः ॥ ४४ ॥ सूनुस्तयोः प्रतीद्रोभूतसहस्रायुधनामभाक् । वासरादे प्रतीच्यां वा धर्मदीप्ति कनद्द्युति ॥ ४५ ॥ श्रीषेणाया सुतस्तस्य शातातंकनकोऽजनि । एवं क्षेमकरः पुत्रपौत्रादिपरिवारित ॥ ४५ ॥ अप्रतीपप्रतापोय नतभूपकदंबकः । कदाचिद्वीज्यमानोस्थाच्चामरैः सिंहविष्टरे ॥ ४७ ॥ तदामरसदस्यासीदीशानस्तुतिगोचर । वज्रायुधो महासम्यग्दर्शनाधिक्यतः कृती ॥ ४८ ॥ देवो विचित्रचूलाख्यस्तत्स्तव सोढुमक्षम । अभिवज्रायुधं प्राप्तखलो ह्यन्यस्तवासह ॥४९॥ दृष्ट्वा रूपपरावृत्या महीनाथ यथोचित । वादकहृयमाबोचत्सौगांतिकमते स्थितः ॥ ५० ॥ त्वं जीवादिपदार्थाना विद्वान् किल विचारणे । वद पर्यायिणो भिन्नः पर्यायः किं विपर्ययं ॥ ५१ ॥ भिन्नश्चेच्छून्यताप्राप्तिस्तयोराधारहानित । तथा चाव्यपदेशत्वान्नाय पक्षो घटामटेत् ॥ ५२॥ ऐकत्वसगरेप्येतत्र युक्तिपदवीं व्रजेत् । अन्योन्यगोचरैकत्वनानात्वाद्यंतसंकरात् ॥

युधके श्रीषेणा स्त्रीसे कनकशांत नामका पुत्र हुआ था । इस तरह राजा क्षेमंकर पुत्र पौत्र आदि परिवारके साथ राज्य करता था ॥ ४६ ॥ संसारमें उसके प्रतापको कोई ढकनेवाला नहीं था और अनेक राजाओंका समूह आकर उन्हें नमस्कार करता था । किसी एक दिन वह सिंहासनपर विराजमान था चमर उसपर ढुंगये जा रहे थे ॥ ४७ ॥ ठीक इसी समय देवोंकी सभामें ईशान इंद्र वज्रायुधकी स्तुति कर रहा था और कह रहा था कि वज्रायुध महा सम्यग्दर्शनकी अधिकता अर्थात् सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिसे अत्यंत पुण्यवान् हो रहा है ॥ ४८ ॥ उसी सभाका विचित्रचूल नामका एक देव वज्रायुधकी इस स्तुतिको सह नहीं सका इसलिये वह शीघ्र ही वज्रायुधके समीप आया सो ठीक ही है क्योंकि दुष्ट लोगोंको दूसरोंकी प्रशंसा वा स्तुति कभी सहन नहीं होती है ॥ ४९ ॥ राजाको देखकर उसने अपना रूप बदला और बौद्धका रूप धारणकर वाद करनेकी इच्छासे महाराजको यथायोग्य रीतिसे इसप्रकार कहने लगा ॥५०॥ कि आप जीवादि पदार्थोंके विचार करनेमें विद्वान हैं इसलिये बतलाइये कि पर्यायीसे पर्याय अभिन्न है अथवा भिन्न है ॥ ५१ ॥ यदि पर्यायीसे पर्याय भिन्न मानेंगे तो पर्याय पर्यायी दोनोंको शून्य मानना पडेगा क्योंकि अलग अलग दोनोंका कोई आधार नहीं है । तथा अलग अलग दोनोंकी कोई संज्ञा वा नाम भी नहीं हो सकता इसलिये यह पक्ष ठीक नहीं बैठता ॥५२॥ यदि पर्याय पर्यायी दोनोंको अभिन्न वा एक मानेंगे तो भी युक्तिसंगत नहीं होगा क्योंकि जब पर्याय पर्यायी दो पदार्थ हैं और दोनों एक हैं अभिन्न हैं तो एकपना और अनेकपना दोनोंके मिलनेसे संकर दोष उत्पन्न होजायगा॥५३॥यदि द्रव्य एक है और पर्यायें बहुत हैं ऐसा मानेंगे तो फिर 'दोनों एक स्वरूप भी हैं' इस प्रतिज्ञाका भंग हो जायगा ॥ ५४ ॥ यदि द्रव्य पर्याय दोनोंको नित्य मानेंगे तो फिर नित्य होनेसे पुण्य पाप रूप कर्मोंका उदय नहीं

५३ ॥ अस्ति चेद्द्रव्यमेकं ते पर्याया बहवो मताः । एकात्मकमपीत्येव भंगरो भगमाप्नुयात् ॥५४॥ नित्यत्वेपि तयोः पुण्यपापपाकात्मताच्युतेः । तद्धेतुबंधनाभावान्मोक्षाभावो न वार्यते ॥ ५५ ॥ अगत्यां क्षणिकत्वं चेतयोरभ्युपगम्यते । तवाभ्युपगमत्याग पक्षसिद्धिश्च मे भवेत् ॥ ५६ ॥ ततो भवन्मतं भद्र बौद्धकैः परिकल्पित । कल्पनामात्रमत्रस्यं माकृथास्त्व वृथाश्रमं ॥५७॥ इत्याकर्ण्य तदोक्त तद् बुधो वज्रायुधोऽभणत् । श्रृणु चित्त निधायोर्च्चैर्माध्यस्थ्यं प्राप्य सौगत ॥ ५८ ॥ जिनेंद्रवदनेंदूत्थस्याद्वादामृतपायिना । स्वकर्मफलभोगादिव्यवहारविरोधिन ॥ ५९ ॥ क्षणिकैकांतदुर्वादमवलंब्य प्ररूपितः । त्वया दोषो न बाधायै कल्पते धर्मधर्मिणो ॥ ६० ॥ संज्ञाप्रज्ञास्वचिन्हादिभेदैर्भिन्नत्वमेतयोः । एकत्व चापृथक्त्वार्पणनयैकावलम्बनात् ॥ ६१ ॥ कार्यकारणभावेन कालत्रितयवर्तिनां । स्कधानामव्यवच्छेदमतानोभ्युपगम्यते ॥ ६२ ॥ स्कधाना क्षणिकत्वेपि तद्भावकृतकर्मण शुक फलोपभोगादिरस्माकमिति ते

हो सकेगा, कर्मोंके उदयके विना बंधके कारण रागद्वेष आदि परिणाम नहीं हो सकेंगे, रागद्वेष रूप परिणामोंके विना बंध नहीं हो सकेगा और बंधके विना मोक्षका अभाव भी निवारण नहीं किया जा सकेगा भावार्थ—मोक्षका अभाव भी हो ही जायगा ॥ ५५ ॥ इसलिये द्रव्य पर्याय दोनों ही नित्य न बन सकनेके कारण दोनोंको ही यदि लाचार होकर क्षणिक मानेंगे तो आपका मत छूट जायगा और मेरे पक्षकी सिद्धि हो जायगी ॥५६॥ इसलिये हे भद्र! आपका मत केवल नीच बौद्धोंका कल्पना किया हुआ है, इसके कहे हुए सब पदार्थ केवल कल्पनामात्र हैं वास्तविक नहीं हैं इसलिये आप इसमें व्यर्थ परिश्रम मत कीजिये ॥ ५७ ॥ इन सब बातोंको सुनकर बुद्धिमान वज्रायुध कहने लगा कि हे बौद्ध! चित्तको खूब मध्यस्थ रखकर सुन ॥५८॥ अपने कर्म, कर्मोंका फल, भोग आदि व्यवहारका विरोधी जो क्षणिक (संसारके सब पदार्थोंको क्षणिक मानना) एकांत (इसी एक पक्षको मानना) मिथ्यावाद है उसका सहारा लेकर जो दोष निरूपण किया है वह जिनराजके मुखरूपी चंद्रमासे निकले हुए स्याद्वादरूपी अमृतको पीनेवाले लोगोंको अर्थात् अनेकातको माननेवाले जैनियोंको कभी बाधा नहीं पहुंचा सकता क्योंकि धर्म धर्मी वा पर्याय पर्यायी इन दोनोंमें संज्ञा (नाम) बुद्धि तथा अपने अपने लक्षण आदिकी भिन्नता होनेसे भेद वा भिन्नता मानी जाती है और पर्याय पर्यायी कभी अलग नहीं हो सकते' इस नयके सहारेसे अभेद वा अभिन्नता मानी जाती है। भावार्थ—द्रव्य पर्याय वा पर्याय पर्यायी कभी किसी तरह अलग नहीं हो सकते इसलिये निश्चय नयसे दोनों ही एकस्वरूप हैं तथा व्यवहार नयसे द्रव्योंका नाम संख्या लक्षण प्रयोजन आदि भिन्न है और पर्यायोंका नाम संख्या लक्षण आदि भिन्न है इसलिये दोनों ही भिन्न हैं ॥ ५९–६१ ॥ कार्य कारणरूपसे तीनों कालोंमें

मति ॥ ६३ ॥ ...रक्षण । वातारितरुबंधेन गोधो वा मत्तदंतिन ॥ ६४ ॥ सतानिभ्यः स संतान पृथक् किं वाऽपृथग्मतः । पृथक्त्वे किं न पश्य... पृथक् न त ... ॥ ६५ ॥ अथेष्टो व्यतिरेकेण सतानिभ्यः स्वकल्पितः । संतान शून्यता तस्य सुगतोऽपि न वारयेत् ॥ ६६ ॥ प्रध्वसात्यात्स्यतिक्रांत क्षणोभाव्यप्यनुद्भवात् । भवत्क्षणस्वरूपाप्तिव्याप्तो नाप्नोति संतति ॥ ६७ ॥ यदि कश्चिच्चतुर्थोस्ति सतानस्य तवास्तु स । ततः संतानवादोयं भवव्यसनसंतति ॥ ६८ ॥ इति देवोप्यसौ तस्य वाग्वज्रेण विघूर्णितं । वचो विचिंत्य स्वं भग्नमानः कालादिलब्धितः ॥ ६९ ॥ सद्यः सम्यक्त्वमादाय संपूज्य धरणीश्वरं । निजागमनवृत्तातमभिधाय दिव गतः ॥ ७० ॥ अथ क्षेमंकर पृथ्व्याः क्षेम योग च संदधत् । लब्धबोधिर्मतिज्ञान

रहनेवाले स्कंधोंकी विना किसी व्यवच्छेदके निरंतर संतान उत्पन्न होती रहती है यदि ऐसा स्वीकार करते हो तथा स्कंधोंको क्षणिक मानकर भी उनकी निरंतर संतान उत्पन्न होती रहती है ऐसा मानकर भी किये हुए कर्मोंका उपभोग आदि फल जो हम लोगोंको मिलता है वह ठीक है ऐसा मानते हो और इसी परिहारसे अपने पक्षकी रक्षा करना चाहते हो परंतु इससे अपने पक्षकी रक्षा करना एरंडके वृक्षसे हाथीको बांधकर रोकना है भावार्थ–जैसे एरंडके वृक्षसे हाथी रुक नहीं सकता उसीप्रकार ऊपर लिखे परिहारसे आपके पक्षकी रक्षा हो नहीं सकती ॥ ६२–६४ ॥ स्कधोंसे उत्पन्न हुई वह संतान संतानीसे भिन्न है अथवा अभिन्न है यदि संतानको भिन्न मानेंगे तो वह संतान उस संतानीसे अलग क्यों नहीं दिखाई देती ? ॥ ६५ ॥ यदि आप अपनी कल्पित संतान संतानीसे अभिन्न मानते हैं तो फिर उसकी शून्यताको बुद्ध भी निवारण नहीं कर सकता अर्थात् फिर वह शून्य ही माननी पडेगी कोई वस्तु नहीं । आपका माना हुआ क्षण वस्तुके नाश स्वरूप है नाशसे भिन्न नहीं है क्योंकि नाशके समय होनहार संतान उत्पन्न नहीं होती इसलिये आपने जो क्षणका स्वरूप माना है उसकी प्राप्तिसे व्याप्त हुआ वर्तमान क्षण किसी भी तरह संतानको उत्पन्न नहीं कर सकता। भावार्थ–पहिले क्षणमें वस्तुकी उत्पत्ति दूसरेमें सत्ता और तीसरेमें नाश होगा फिर कहीं चौथे क्षणमें जाकर संतान उत्पन्न होगी इसलिये आगे लिखते हैं कि यदि आप संतानकी उत्पत्तिका चौथा क्षण मानते हैं तो किसी तरह ठीक हो सकता है भावार्थ–चौथे क्षणमें संतानकी उत्पत्ति होनेसे स्कंधकी सत्ता तीन क्षणतक माननी पडेगी और इसतरह क्षणिकवाद बन नहीं सकेगा इसलिये यह संतानवाद संसारके व्यसनोंकी संतान है, अर्थात् दुःखदायी है ॥ ६६–६८ ॥ इसप्रकार अपमानित हुए उस देवने वज्रायुधके कहे हुए वचनरूपी वज्रसे खंड खंड हुए अपने वचनोंका विचार किया, काललब्धिके प्राप्त हो जानेसे शीघ्र ही सम्यग्दर्शन स्वीकार किया,

क्षयोपशमनाप्रत. ॥ ७१ ॥ वज्रायुधकुमारस्य कृत्वा राज्याभिषेचनं । प्राप्तलौकांतिकस्तोत्र परिनिष्क्रम्य गेहतः ॥७२॥ अनावरणमस्थानमप्रमादमनुत्क्रमं। असंगमकृताहारमनाद्यर्थमनेकधा ॥ ७३ ॥ अकषायमनारंभमनवद्यमखंडितं । अनारतश्रुताभ्यास प्रकुर्वन्स तपश्चिर ॥ ७४ ॥ निर्ममं निरहंकारं निःशाठ्यं निर्जितेंद्रिय । निःक्रोधं निश्चल चित्त निर्वृत्यै निर्मल व्यधात् ॥ ७५ ॥ क्रमात्कैवलमप्याप्य व्याहूतपुरुहूतकं । गणान् द्वादश चात्मीयान् वाग्विसर्गादतीतृपत् ॥ ७६ ॥ वज्रायुधेथ भुनाये सुपुण्यफलिता मही । पात्यागमन्मधुर्मासो मदनोन्मादद्दीपन ॥७७॥ कोकिलानां कलालापो ध्वनिश्च मधुगोऽलिना । अहरत्काममंत्रो वा प्राणान् प्रोषितयोषिता ॥ ७८ ॥ वनान्यपि मनोजाय त्रिजगद्विजिगीषवे । यस्मिन्पुष्पकरैं स्वैरं ददुः सर्वस्वमात्मन ॥ ७९ ॥ तस्मिन्काले वने रंतु खदेवरमणे मतिं । ज्ञात्वा सुदर्शनावक्त्राद्धारिण्याद्यात्मयोषिता ॥ ८० ॥ औत्सुक्यात्तद्वन गत्वा सुदर्शनसरोवरे । जलक्रीडा स्वदेवीभि प्रवर्तयति भूभुजे ॥ ८१ ॥ अपिधाय सर सद्य कश्चिद्विद्याधर खल । शिलया नागपाशेन तमवभ्रान्तृपोप्यसौ ॥ ८२ ॥ शिलां हस्ततलेनाहत्सा गता शतखंडतां ।

राजाकी पूजाकी, अपने आनेके समाचार कहे और स्वर्गको चला गया ॥ ६९–७० ॥ अथानंतर राजा क्षेमकर पृथ्वीके क्षेम और योगका पालन करने लगे । किसी एक दिन मतिज्ञानावरण कर्मके अत्यंत क्षयोपशम होनेसे उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ उन्होंने वज्रायुध कुमारका राज्याभिषेक किया उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उन्होंने घरसे निकलकर दीक्षा धारण की ॥ ७१–७२ ॥ तदनंतर उन्होंने आवरण स्थान और प्रमाद अनुक्रमसे परिग्रह आहार आदिका त्यागकर अनेक तरहसे तपश्चरण किया, कषाय और आरंभोंका त्याग किया, बहुत दिनतक निर्दोष और अखंडित तपश्चरण किया तथा निरंतर श्रुतज्ञानका अभ्यास किया ॥ ७३–७४ ॥ ममता अहंकार मूर्खता आदि सबका त्यागकर इंद्रियोंको दमन किया, क्रोधका त्याग किया तथा मोक्षके लिये चित्तको शांत और निश्चल बनाकर निर्मल बनाया ॥ ७५ ॥ अनुक्रमसे केवलज्ञान प्राप्त किया, उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर समवसरण आदिकी रचनाकी और वे भगवान् अपनी दिव्यध्वनिसे अपनी बारह सभाओंको तृप्त करने लगे ॥ ७६ ॥ इधर महापुण्यसे फली हुई पृथ्वीका उपभोग करता हुआ राजा वज्रायुध राज्य करने लगा । धीरे धीरे कामदेवकी उन्मत्तताको और बढानेवाली वसंत ऋतु आई कोयलोंका मनोहर आलाप और भ्रमरोंकी मधुर ध्वनि होने लगी और वे दोनों ही काममंत्रके समान वियोगिनी स्त्रियोंके प्राण हरण करने लगीं ॥ ७७–७८ ॥ उससमय वनोंमें भी सब तरहके फूल आगये थे और वे ऐसे जान पडते थे मानों तीनों जगतको जीतनेवाले कामदेवके लिये इच्छानुसार अपना सब कुछ दे रहे हों उसीसमय सुदर्शना रानीके मुखसे और धारिणी आदि

विद्याधरोपि दुष्टात्मा तदानीं प्रपलायित ॥ ८३ ॥ एष पूर्वभवे शत्रुर्विद्युद्दंष्ट्राभिधानकः । वज्रायुधोपि देवीभिः सह स्वपुरमागमत् ॥ ८४ ॥ एवं सुखेन भूभर्तुः काले गच्छत्यथोदयात् । निधयो नव रत्नानि चतुर्दश तदाभवन् ॥ ८५ ॥ चक्रवर्तिश्रियं प्राप्य निविष्टं सिंहविष्टरे । कश्चिद्विद्याधरो भीत शरणं तमुपागतः ॥ ८६ ॥ तस्यैवानुपदं काचिदुत्खातासिलता खगी । क्रोधानलशिखेवागात् द्योतयती सभापतिं ॥ ८७ ॥ तस्याश्चानुपदं कश्चित्स्थविरः स गदाधरः । समागत्य महाराज दुरात्मैष खगाधमः ॥ ॥ ८८ ॥ त्वं दुष्टनिग्रहे शिष्टपालने न निरंतरं । जागर्ति निग्रहः कार्यस्त्वयास्यान्यायकारिणः ॥ ८९ ॥ कोसावन्याय इत्येतत् ज्ञातुमिच्छा तवास्ति चेत् । वदामि देव सम्यक् त्वं प्रणिधाय मनः शृणु ॥९०॥ जम्बूद्वीपसुकच्छाख्यविषये खेचरालये । श्रेण्यामुत-

अन्य रानियोंकी उत्सुकतासे राजा वज्रायुधने जान लिया कि अपने देवरमण नामके वनमें जाकर क्रीडा करनेकी इनकी इच्छा है, तदनुसार वह उसी वनमें गया और सुदर्शन नामके सरोवरमें अपनी रानियोंके साथ साथ जल क्रीडा करने लगा ॥ ७९–८१ ॥ उसीसमय कोई दुष्ट एक विद्याधर आया उसने एक पत्थरकी शिलासे उस सरोवरको ढक दिया और नागपाशसे उस राजा वज्रायुधको बांध लिया । उसीसमय वज्रायुधने उस शिलापर एक हाथकी हथेली मारी-जिससे उसके सौ टुकडे होगये और उसीसमय वह दुष्ट विद्याधर भाग गया ॥ ८२–८३ ॥ वह विद्याधर और कोई नहीं था पहिले जन्मका शत्रु विद्युद्दंष्ट्रका जीव था । इधर राजा वज्रायुध अपनी रानियोंके साथ २ अपने नगरको लौट आया ॥ ८४ ॥ इसप्रकार राजा वज्रायुधका समय सुखसे व्यतीत होने लगा और पुण्यकर्मके उदयसे उसके नौ निधि चौदह रत्न प्रगट हुये ॥ ८५ ॥ इसतरह चक्रवर्तीकी विभूति पाकर वह किसी एक दिन सिंहासनपर विराजमान था कि इतनेमें ही कोई एक डरा हुआ विद्याधर उसके शरण आया ॥ ८६ ॥ उसके पीछे ही हाथमें तलवार उठाये क्रोधरूप अग्निकी शिखाके समान सभापति राजा वज्रायुधको भी प्रकाशित करती हुई एक विद्याधरी आई ॥ ८७ ॥ उस विद्याधरीके भी पीछे हाथमें गदा लिये एक वूढा विद्याधर आया और महाराजसे कहने लगा कि हे महाराज ! यह विद्याधर दुष्ट और नीच है आप दुष्ट लोगोंके निग्रह करनेमें (दंड देनेमें) और सज्जन लोगोंके पालन करनेमें सदा सावधान रहते हैं इसलिये आपको इस अन्याय करनेवालेका निग्रह अवश्य करना चाहिये अर्थात् इसे अवश्य दंड देना चाहिये ॥ ८८–८९ ॥ यदि इसने कौनसा अन्याय किया है, सुननेकी आपकी इच्छा हो तो मैं उसे कहता हूं आप अच्छी तरह चित्त लगाकर सुनिये ॥ ९० ॥ इसी जंबूद्वीपके विदेह क्षेत्रके कच्छा देशमें विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें चक्रप्रभा नामका नगर है उसके स्वामी विद्याधरोंके राजा इंद्रदत्त रानी यशोधरा-

रतिप्रभाया शुक्रप्रभपुराधिप ॥९१॥ खगाधीडिंद्रदत्ताख्य प्रिया तस्य यशोधरा । तयोरहं सुतो वायुवेगो विद्याधैर्मतः॥९२॥ तत्र किन्नरगीताख्यनगराधिपति खगः । चित्रसेन सुता तस्य सुकांता मे प्रियाऽभवत् ॥ ९३ ॥ सुता मम सुकांतायाश्चैषा शांतिमतिः सती । विद्यां साधयितुं याता मुनिसागरपर्वतं ॥ ९४ ॥ विद्यासाधनविघ्नार्थं पापोयं समुपस्थितः । पुण्योदयात्तदैवास्या विद्या सिद्धिमुपागता ॥ ९५ ॥ तद्भयात्त्वामयं पापकर्मैकः समुपाश्रयत् । विद्यापूजां समादाय तदैवाहं समागमं ॥ ९६ ॥ अदृष्ट्वा मत्सुतां तत्र तन्मार्गं क्षिप्रमन्वितः । इत्यवादीत्स तत्सर्वं श्रुत्वावधिविलोचनः ॥ ९७ ॥ जानाम्यहं महच्चास्य विद्याया विघ्नकारणं । इति वज्रायुधो व्यक्तमेव प्रोवाच तां कथां ॥ ९८ ॥ अस्मिन्नैरावते ख्याते गांधारविषये नृपः । विंध्यसेनः पतिर्विंध्यपुरस्य विलसन्गुणैः ॥ ९९ ॥ सुलक्षणायां तस्याभूत्सूनुर्नलिनकेतुकः । तत्रैव धनमित्रस्य श्रीदत्तायां सुतो वणिक् ॥ १०० ॥ सुदत्तो नाम तस्यासीद्भार्या प्रीतिंकराह्वया । दृष्ट्वा नलिनकेतुस्तां क्वचिद्वनविहारिणीं ॥ १०१ ॥ मदनानलसंतप्तस्तं दाहं सोढुमक्षमः । न्यायवृत्तिं समुल्लंघ्य बलादहृत दुर्मतिः ॥

का मैं पुत्र हूं वायुवेग मेरा नाम है और सब विद्याधर मुझे मानते हैं ॥ ९१-९२ ॥ उसी देशमें किन्नरगीत नगरके राजा चित्रसेन विद्याधरकी सुकांता नामकी पुत्री मेरी स्त्री है ॥ ९३ ॥ उसी सुकांता स्त्रीसे मेरी यह सती शांतिमती पुत्री हुई है। यह विद्यासिद्ध करनेके लिये मुनिसागर नामके पर्वतपर गई थी, वहींपर यह पापी भी इसकी विद्या सिद्ध होनेमें विघ्न करनेके लिये उपस्थित हुआ था, परंतु पुण्य कर्मके उदयसे उसीसमय इस शांतिमतीको विद्या सिद्ध हो गई ॥९४-९५॥ उस विद्याके डरसे ही यह पापी आपके शरण आया है। जिससमय यह भागा था और इसके पीछे यह शांतिमती भागी थी उसीसमय मैं विद्याकी पूजाकी सामग्री लेकर वहां पहुंचा था परंतु अपनी पुत्रीको वहां न देखकर उसी मार्गसे शीघ्र ही इनके पीछे आया हूं" यह सब उस बूढे विद्याधरने कहा। यह सब सुनकर अवधिज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाला राजा वज्रायुध कहने लगा कि इसको विद्यामें विघ्न होनेका जो बडाभारी कारण है उसको मैं जानता हूं, इसतरह कहकर वह उस कथाको इसतरह स्पष्ट कहने लगा ॥ ९६-९८ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें गांधार देशके विंध्यपुर नगरमें गुणोंसे सुशोभित राजा विंध्यसेन राज्य करता था उसकी सुलक्षणा रानीसे नलिनकेतु नामका पुत्र हुआ था। उसी नगरमें एक धनमित्र शेठ रहता था, उसकी श्रीदत्ता स्त्रीसे सुदत्त नामका पुत्र हुआ था, उस सुदत्तकी स्त्रीका नाम प्रीतिंकरा था। वह प्रीतिंकरा एक दिन किसी वनमें विहारकर रही थी उसी समय राजपुत्र नलिनकेतुने उसे देखा ॥ ९९-१०१ ॥ देखते ही वह दुर्बुद्धि कामदेवकी अग्निसे जल उठा और उस जलनको सह नहीं सका इसलिये न्यायमार्गका उल्लंघनकर जबर्दस्ती उसे हर लाया ॥ १०२ ॥ स्त्रीके हरे

१०२ ॥ सुदत्तस्तेन निर्विण्णः सुव्रताख्यजिनान्तिके । प्रव्रज्य सुचिरं घोरं तपः कृत्वायुषोवधौ ॥ १०३ ॥ सम्यस्यैशानकल्पेभूदेकसागरजीवितः । तत्र भोगांश्चिरं भुक्त्वा ततः प्रच्युत्य पुण्यभाक् ॥ १०४ ॥ जंबूद्वीपसुकच्छाख्यविजयार्द्धाचलोत्तर-श्रेण्यां पुरेभवत्कांचनाख्यंततिलकाह्वये ॥ १०५ ॥ महेंद्रविक्रमस्येष्टतनूजोऽजितसेनवाक् । अभूदनिलवेगायां विद्याविक्रमदुर्गतः ॥१०६॥ इतो नलिनकेतुश्च वीक्ष्योल्कापातमात्मवान् । निर्विद्य प्राक्तनात्मीयं दुश्चरित्रं विनिंदयन् ॥ १०७ ॥ सीमंकरमुनिं श्रित्वा दीक्षामादाय शुद्धधीः । क्रमात्कैवल्यमुत्पाद्य सप्रापत्क्षितिमष्टमीं ॥ १०८ ॥ प्रीतिंकरापि संवेगात्सश्रिता सुव्रतांतिकं । गृहसंगपरित्यागात्कृत्वा चाद्रायणं परं ॥ १०९ ॥ प्रांते संन्यस्य सा प्रायात्कल्पमीशाननामकं । तत्र स्वायुःस्थितिं नीत्वा दिव्यैर्भोगैस्ततश्च्युता ॥ ११०॥ तवाजनि तनूजेयमग विद्याविघातकृत् । तत्संबंधादिति प्रोक्तं सर्वमाकर्ण्य भूभुजा ॥ १११ ॥ निर्विद्य संसृतेः शांतिमती क्षेमंकराह्वयात् । तीर्थेशा-

जानेसे सुदत्त विरक्त हुआ उसने सुव्रत नामके जिनराजके समीप दीक्षा धारण कर ली, बहुत दिनतक कठिन तपश्चरण किया और आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर दूसरे ईशान स्वर्गमें देव हुआ । वहांपर एक सागरकी आयु पाई बहुत दिनतक भोगोंका उपभोग किया और आयुके अंतमें वहांसे आकर वह पुण्यवान् इसी जंबूद्वीपके सुकच्छा देशके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें कांचनतिलक नामक नगरके राजा महेंद्रविक्रम रानी अनलवेगाके यह अजितसेन नामका प्रिय पुत्र हुआ है विद्या और पराक्रमसे यह अजेय है कोई इसे पा नहीं सकता ॥ १०३-१०६ ॥ इधर नलिनकेतुको उल्कापात देखकर अपना ज्ञान हुआ अपने पहिले दुश्चरित्रोंकी निंदा करता हुआ वह विरक्त हुआ, सीमंकर मुनिराजके समीप जाकर शुद्ध बुद्धिवाले उसने दीक्षा धारणकी, अनुक्रमसे केवलज्ञान उत्पन्न किया और अंतमें आठवीं पृथ्वी अर्थात् मोक्षस्थानमें जा विराजमान हुआ । भावार्थ-वह मुक्त हुआ ॥ १०७-१०८ ॥ प्रीतिंकराने भी विरक्त होकर सुव्रता आर्जिकाके समीप घर और परिग्रहका त्याग किया तथा चंद्रायण तप किया अंतमें संन्यास धारणकर दूसरे ईशान स्वर्गमें देवी हुई दिव्य भोगोंका अनुभवकर वहांकी आयु पूरी की और वहांसे आकर तुम्हारे यह पुत्री हुई है । पहिलेके संबंधसे ही इसने विद्यासिद्धिमें यह विघ्न किया है । राजाकी कही हुई इस बातको सुनकर शांतिमती संसारसे विरक्त हुई, उसने क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप जाकर धर्मश्रवण किया और तुरंत ही सुलक्षणा आर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण की । अंतमें समाधि मरण धारणकर ईशान स्वर्गमें देव हुई । इधर पवनवेग और अजितसेन दोनों को उसीसमय केवलज्ञान प्राप्त हुआ था इसलिये उनकी पूजा करनेकेलिये वह शांतिमती का जीव देव आकर चला गया था ॥१०९-११४॥ इधर वज्रायुध चक्रवर्ती राज्यलक्ष्मी पाकर दशतरहके भोगोंका अनुभव

द्रुमीमासाद्य सद्यः प्राप्य सुलक्षणां ॥ ११२ ॥ गणिनीं संयमं गित्वा सन्यस्येशानसञ्ज्ञके । नाके निलिंपो भूत्वा स्वकायपूजार्थमागमत् ॥ ११३ ॥ तदानीं-मेव कैवल्यं प्रापत्पवनवेगवाक् । सहैवाजितसेनेन कृत्वा पूजा तयोरयात् ॥ ११४ ॥ तथा चक्रधरे राज्यलक्ष्म्यालिंगितविग्रहे । दशांगभोगसाद्भूते गाति षट्खंडमंडलं ॥ ११५ ॥ विद्याधराद्र्यपागभागे शिवमंदिरभूपति । मेघवाहननामास्य विमलाख्या प्रिया तयो ॥ ११६ ॥ सुता कनकमालेति कल्याण विधिपूर्वकं । जाता कनकशांतेः सा झषकेतुसुखावहा ॥ ११७ ॥ तथावस्त्वोकसाराख्यपुराधीशखगेशिनः । सुतां समुद्रसेनस्य जयसेनोदरोदिता ॥११८॥ प्रिया वसंतसेनापि बभूवास्य कनीयसी । ताभ्यां निर्वृतिमापासौ दृष्टिचर्याद्वयेन वा ॥ ११९ ॥ कोकिलाप्रथमालापैराहूत इव कौतुकात् । अथाद्रनविहाराय कदाचित्स सहप्रिय ॥ १२० ॥ कंदमूलफलान्वेषी निधिं वा सुकृतोदयात् । कुमारो मुनिमद्राक्षीद्विपिने विमलप्रभं ॥ १२१ ॥ त त्रि परीत्य वंदित्वा तत-स्तत्त्व प्रबुद्धवान् । मनोरजं समुद्धूय शुद्धिं बुद्धेरुपासदत् ॥ १२२ ॥ तदानीमेन तं दीक्षालक्ष्मीश्च स्ववश व्यधात् । शफलीव वसंतश्रीरजायत तपश्रिय ॥

करता हुआ छहों खंड पृथ्वीका पालन करता था ॥ ११५ ॥ इसीसमय विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें शिवमंदिर नगरके राजा मेघवाहन रानी विमलाके कनकमाला नामकी पुत्री हुई थी उसके जन्मके समय अनेकतरहके उत्सव मनाये गये थे । वह कनकमाला कनकशांतिके साथ काम क्रीडा करनेवाली हुई थी अर्थात् उसके साथ व्याही गई थी ॥ ११६--११७ ॥ इसीतरह वस्त्वोकसार नाम नगरके स्वामी राजा समुद्रसेन विद्याधरकी रानी जयसेनाके उदरसे उत्पन्न हुई वसंतसेना पुत्री कनकशांतिकी छोटी स्त्री हुई थी । जिसप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रसे मोक्ष प्राप्त होती है उसीप्रकार उन दोनों स्त्रियोंसे वह कुमार बहुत ही सुखी था ॥ ११८–११९ ॥ किसी एकदिन वसंत ऋतुके समय कोयलोंकी प्रथम कूजनोंके द्वारा बुलाया हुआ ही क्या मानों वह कुमार अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वनमें विहार करनेकेलिये निकला ॥ १२० ॥ जिसप्रकार कंदमूल फल ढूंढनेवालेको कोई खजाना मिलजाय उसी-प्रकार उस वनमें उस कुमारको विमलप्रभ नामके मुनिराजके दर्शन हुए ॥ १२१ ॥ उसने मुनिराजकी तीन प्रदक्षि-णायें दीं, वंदनाकी, उनसे तत्त्वोंका स्वरूप समझा और मनकी सब मलिनता दूरकर बुद्धिको शुद्ध किया ॥ १२२ ॥ जिसप्रकार वसंतऋतु शोभा वा लक्ष्मीको अपने वश कर लेती है उसीप्रकार तपश्चरणकी दूतीके समान दीक्षा लक्ष्मीने उसीसमय उसे अपने वश कर लिया अर्थात् उसने दीक्षा धारण की ॥ १२३ ॥ उसकी दोनों स्त्रियोंने भी विमलमती नामकी अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण की सो ठीक ही है क्योंकि कुलस्त्रियोंको ऐसा करना योग्य ही है भावार्थ—कुलस्त्रियोंको पतिके पीछे दीक्षा लेनी ही चाहिये ॥ १२४॥ किसी एक समय वह कनकशांति मुनिराज सिद्धा

१२३ ॥ देव्यौ विमलमत्याख्यगणिनीं ते समाश्रिते । अदीक्षेता सहैतेन युक्त तत्कुलयोषिता ॥ १२४ ॥ सिद्धाचले कदाचित्तं प्रतिमायोगधारिणं । खगो वसंतसेनाया वद्धवैरेण मैथुन ॥ १२५ ॥ विलोक्य चित्रचूलाख्यः कोपारुणितवीक्षण । प्रारिप्सुरुपसर्गाय तर्जित खचरेश्वरैः ॥ १२६ ॥ अन्यदा रत्नसेनाख्यो नृपो रत्नपुराधिप । दत्त्वाप पचकाश्चर्यं भिक्षां कनकशातये ॥ १२७ ॥ चित्रचूलः पुनश्चास्य प्रतिमायोगधारिणः । वने सुरनिपाताख्ये विघात कर्तुमुद्यत ॥ १२८ ॥ तस्मिन् कोप परित्यज्य घातिघातायतीश्वर । केवलावगम प्रापत्क्वापि कोपो न धीमता ॥ १२९ ॥ देवागमनमालोक्य भीत्वा स खगपापकः । तमेव शरण यातो नीचानां वृत्तिरीदृशी ॥ १३० ॥ अथ वज्रायुधाधीशो नप्तृकेवलदर्शनात् । लब्धबोधिः सहस्रायुधाय राज्य प्रदाय तत् ॥ १३१ ॥ दीक्षा क्षेमंकराख्यानतीर्थकृत्तुरुपातगः । प्राप्य सिद्धिगिरौ वर्षप्रतिमायोगमास्थित ॥ १३२ ॥ तस्य पादौ समालब्य वाल्मीकं बहुवर्तत । व-

चल पर्वतपर प्रतिमायोग धारणकर विराजमान थे, वहींपर उनकी स्त्री वसंतसेनाका भाई विचित्रचूल नामका विद्याधर आया पहिले जन्मके बंधे हुए वैरके कारण मुनिराजको देखते ही क्रोधसे उसकी लाल आंखें होगईं, उसने उपसर्ग करना प्रारंभ किया परंतु चक्रवर्तीने उसे ललकारकर भगा दिया ॥ १२५–१२६ ॥ किसी दूसरे दिन रत्नपुरके राजा रत्नसेनने कनकशांति मुनिराजको आहारदान दिया जिससे उसके घर पचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ १२७ ॥ किसी दूसरे दिन वे कनकशांति मुनिराज सुरनिपात नामके वनमें प्रतिमायोग धारणकर विराजमान थे वहांपर वह चित्रचूल आ पहुंचा और उसने उनके तपश्चरणमें विघ्न करना प्रारंभ किया ॥ १२८ ॥ मुनिराजने क्रोधादिका सर्वथा त्याग कर दिया और घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया इसलिये कहना पडता है कि बुद्धिमानों को क्रोध कमी नहीं करना चाहिये ॥ १२९ ॥ उसीसमय उनकी पूजा करनेकेलिये इद्रादि देव आए उन्हें देखकर वह पापी डरकर उन्हींके शरण आया सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः नीचोंके ऐसे ही आचरण हुआ करते हैं ॥१३०॥ इधर वज्रायुधने सुना कि उसके पोते कनकशांतिको केवलज्ञान हुआ है सुनते ही उसे आत्मज्ञान हुआ उसने अपने पुत्र सहस्रायुधको राज्य दिया और क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप जाकर दीक्षा धारण की । वे वज्रायुध मुनिराज सिद्धगिरि पर्वतपर एक वर्षतक प्रतिमायोग धारणकर विराजमान रहे, और उनके चरणोंके सहारे सांपोंने बहुतसी वामियां बना लीं । सो ठीक ही है क्योंकि महात्मा लोग अपने चरणोंके सहारे आए हुए शत्रुओंको भी बढाते ही हैं ॥१३१–१३३ ॥ मिट्टीके ढेरपर चढनेवाली अनेक लताएं चारों ओरसे आकर उन व्रती मुनिराजके कंठतक सब शरीरसे आ लिपटीं ॥ १३४ ॥ अश्वग्रीवके रत्नकंठ और रत्नायुध नामके जो दो पुत्र थे वे संसारमें परिभ्रमणकर अतिबल और

र्द्वयति महात्मानः पादलग्नानपि द्विष ॥ १३३ ॥ प्रतिनं त व्रतस्योपि मार्दवं वा समीप्सवः । गाढ रूढा समासेंदुराकठममितस्तनु ॥ १३४ ॥ अश्वग्रीव-सुतो रत्नकठरत्नायुधाभिधौ । भ्रांत्वा जन्मान्यतिबलमहाबलसमाख्यया ॥ १३५ ॥ भूत्वासुरौ तमभ्येत्य तद्विघात चिकीर्षकौ । रंभातिलोत्तमे दृष्ट्वा तर्जयित्वातिभक्तित ॥ १३६ ॥ गधादिभिर्यतिं दिव्यैरभ्यर्च्य दिवमीयतु । क्व वा ते क्व सुरौ पुण्ये सति किं न घटामटेत् ॥ १३७ ॥ किंचित्कारणमुद्दिश्य वज्रायुधसुतोपि तत् । राज्य शतवलिन्युर्चैर्निधाय निहतस्पृह ॥ १३८ ॥ सयम सम्यगादाय मुनींद्रात्पिहितास्रवात् । योगावमाने स प्रापद्वज्रायुधमुनीश्वरं ॥ १३९ ॥ तावुभौ सुचिरं कृत्वा प्रव्रज्या सह दुःसहा । वैभारपर्वतस्याग्रे विग्रहेप्यकृताग्रहौ ॥ १४० ॥ ऊर्ध्वग्रैवेयकस्य धोभूता सौमनसाह्वये । एकान्नत्रिंशदब्ध्यायुषौ विमाने महर्द्धिकौ ॥ १४१ ॥ ततो वज्रायुधश्च्युत्वा द्वीपेस्मिन्प्राग्विदेहगे । विषये पुष्कलावत्या नगरी पुंडरीकिणी ॥ १४२ ॥ पतिर्घनरथस्तस्य देवी काता मनोहरा । तयोर्मेघरथाख्योऽभूदाधानाद्यासत्क्रियः ॥ १४३ ॥ तस्यैवान्योहमिंद्रोपि सुतो दृढरथाह्वय । जातो मनोरमाया नाविव

महवल नामके देव हुए थे उन्होंने उसीसमय आकर उन मुनिराजके तपश्चरणमें विघ्न करना प्रारंभ किया । रंभा तिलोत्तमाने देखकर उन दोनों व्यंतर देवोंको ललकारा और बडी भक्तिसे दिव्य गंध आदि सामग्रीसे उनकी पूजाकर स्वर्गको चली गई । देखो कहां तो दो स्त्रियां (देवियां) और कहां वे दो व्यंतर देव, परंतु पुण्य होनेपर क्या क्या नहीं हो सकता है अर्थात् सब कुछ हो सकता है ॥ १३५–१३७ ॥ इधर वज्रायुधका पुत्र सहस्रायुध भी कोई कारण पाकर विरक्त हुआ उसने अपना राज्य शतबलीको दिया, निरीह होकर पिहितास्रव मुनिराजसे संयम स्वीकार किया और योगके अंतमें वज्रायुध मुनिराजके समीप आ पहुंचा ॥१३८-१३९॥ उन दोनोंने बहुत दिनतक कठिन तपश्चरण किया और वैभार पर्वतपर संन्यास धारणकर शरीरका त्याग किया ॥१४०॥ वे दोनों ही उर्ध्व ग्रैवेयकके अधोभागमें (नीचले पटलमें) सौमनस नामके विमानमें उन्तीस सागरकी आयु पाकर बडी ऋद्धिवाले अहमिंद्र हुए ॥ ४११॥ वज्रायुधका जीव वहांसे आकर इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीमें राजा घनरथ रानी मनोहरा देवीके मेघरथ नामका पुत्र हुआ, उसके जन्मसे पहिले ही गर्भाधान आदि सब क्रियायेंकी गई थीं ॥१४२–१४३॥ सहस्रायुधका जीव वह दूसरा अहमिंद्र भी इसी राजा घनरथके मनोरमा देवीसे दृढरथ नामका पुत्र हुआ । ये दोनों ही भाई सूर्य चंद्रमाके समान सुशोभित होते थे ॥ १४४ ॥ उन दोनोंके पराक्रम, बुद्धि, विनय, प्रताप, क्षमा, सत्य, त्याग तथा और भी अनेक गुण स्थिर रूपसे आकर प्रगट हुए थे ॥१४५॥ वे दोनों ही भाई पूर्ण यौवन अवस्थाको पाकर बडे ही ऐश्वर्य शाली हुए और दो हाथीके समान जान पडने लगे, उन्हें देखकर राजा घन-

चंद्रदिवाकरौ ॥ १४४ ॥ तयो पराक्रमप्रज्ञाप्रश्रयप्राभवक्षमा । सत्यत्यागादयोऽन्ये च प्रादुरासन् गुणाः स्थिराः ॥ १४५ ॥ सुतौ तौ यौवनापूर्णौ प्राप्तैश्वर्याविव द्विपौ । विलोक्य तद्विवाहार्थं महीशो विहितस्मृतिः ॥ १४६ ॥ ज्येष्ठसूनोर्विवाहेन प्रियमित्रामनोरमे । कनीयसोपि सुमतिं विदधे चित्तवल्लभां ॥ १४७ ॥ अभवत्प्रियमित्रायां तनूजो नंदिवर्द्धन । सुमत्या वरसेनाख्य सूनो दृढरथस्य च ॥ १४८ ॥ इति स्वपुत्रपौत्रादिसुखसाधनसंयुत । सिंहविष्टरमध्यास्य शक्रलीला समावहन् ॥ १४९ ॥ तदात्र प्रियमित्रायाः सुषेणा नाम चेटिका । कुकवाकुं समानीय घनतुंडाभिधानक ॥ १५० ॥ दर्शयित्वाह यन्नृपेन जयेयु कुकवाकुकाः । परेषां प्रददे तेभ्यो दीनाराणा सहस्रकं ॥ १५१ ॥ इति वेश्या कनीयस्याः श्रुत्वा तद्गणिकानयत् । काचना वज्रतुडाख्यं कुक्कुट योधने तयो ॥ १५२ ॥ अन्योन्यद्यु खहेतुत्वादेतयोः पश्यतामपि । हिंसानंदादिकं दष्टुमयोग्यं धर्मवेदिना ॥ १५३ ॥ इति स्मरंश्च भव्याना बहूनामुपशांतये । स्वकीयपुत्रमाहात्म्यप्रकाशनधिया च तत् ॥ १५४ ॥ युद्धं घनरथाधीशो लोकमानो दृढक्रुधो । स मेघरथमप्राक्षीद् बलमेतत्कुतोनयोः ॥

रथको उनके विवाहकी चिंता हुई ॥ १४६ ॥ उन्होंने बडे पुत्र मेघरथका विवाह तो प्रियमित्रा और मनोरमाके साथ किया और दृढरथकी चित्तवल्लभा सुमति बनाई अर्थात् सुमतिके साथ दृढरथका विवाह किया ॥ १४७ ॥ राजकुमार मेघरथके प्रियमित्रासे नंदिवर्द्धन नामका पुत्र हुआ और दृढरथके सुमतिदेवीसे वरसेन नामका पुत्र हुआ ॥ १४८ ॥ इसतरह पुत्र पौत्र आदि सब सुखकी सामग्रीसहित सिंहासनपर विराजमान हुआ वह राजा घनरथ इंद्रकीसी लीला धारण करता था ॥ १४९ ॥ किसी एक दिन प्रियमित्राकी सुषेणा नामकी दासी एक घनतुंड नामके मुर्गेको लाई और राजाको दिखलाकर कहने लगी कि इसको जो किसी दूसरेका मुर्गा जीत लेगा तो मैं उसे एक हजार दीनार दूंगी। यह सुनकर छोटी सुमतिकी कांचना नामकी दासी उसके साथ लडानेके लिये वज्रतुंड नामके मुर्गेको लाई। वे दोनों ही मुर्गे आपसमें एक दूसरेको दुख पहुंचाते हुये खूब लडे, उनके देखनेसे ही हिंसानंद (हिंसामें आनंद मानना आदि) रौद्रध्यान हो जाता था इसलिये धर्मात्माओंको ऐसा युद्ध देखना सर्वथा अयोग्य है इसीतरहके विचार करने वाले अनेक भव्य जीवोंके परिणाम उस युद्धसे ही शांत हो गये थे । अपने पुत्रकी महिमा प्रगट करनेकेलिये उस युद्धको देखनेवाले राजा घनरथने पुत्र मेघरथसे पूछा कि अत्यंत क्रोध करनेवाले इन दोनों मुर्गोंका यह ऐसा बल क्यों हुआ ॥१५०–१५५॥ इसप्रकार घनरथके पूछनेपर विशुद्ध अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाला मेघरथ उन दोनों मुर्गोंके उस युद्धका कारण कहने लगा ॥ १५६ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें रत्नपुर नामके नगरमें भद्र और धन्य नामके दो सगे भाई थे उनके गाडी चलानेका व्यापार था किसी एक दिन वे दोनों ही पापी श्रीनदीके कि-

तगुरुमन्निधिं । लब्धबोधिः समादत्त दुरसद्द ग मरावन ॥ १७७ ॥ कारग तीर्थकृन्नाम्नो भावयित्व युगोवथौ । सम्यगाराध्य पुत्राभ्यामच्युत कल्पमात्मवान् ॥ १७८ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमाना युभुक्त्वा भोगाश्च ता तत । जीविताते भवनौ ता जाता नृपकुमारकौ ॥ १७१ ॥ इति तत्सम्यगाकर्ण्य भगवन्नावयो पिता । क्वेति पृष्टो मुनिस्ताभ्यामब्रवीदिति तत्कथा ॥ १८० ॥ तत प्रच्युत्य कल्पाते हेमागदमहीपतेः । सुनोभून्मेघमालिन्या देव्या घनरथाद्धयः ॥ १८१ ॥ इदानीं पुडरीकिण्या युद्ध कुक्कुटयोरमु । प्रेक्ष्यमाण स्थित श्रीमान् देवीसुतसमन्वित ॥ १८२ ॥ तदाकर्ण्य भवत्प्रीत्या खगौ तावागताविमौ । इति मेघरथात्सर्वमाकर्ण्यात्मीयविग्रह ॥ १८३ ॥ प्रकटीकृत्य तौ भूप कुमारं चाभिपूज्य त । गत्वा गोवर्द्धनोपांते दीक्षासिद्धिमवापतां ॥ १८४ ॥ स्वपूर्वभवसबध विदित्वा कुक्कुटौ च तौ । मुक्त्वा परस्परावद्धवैरं सन्यस्य साहसात् ॥ १८५ ॥ अभूतां भूतदेवादिरमणातवनद्वये । ताम्र दिचूलचूलातकनकौ भूतजातिजौ ॥ १८६ ॥ तदैवागत्य तौ देवौ प्रीत्या मेघरथाह्वय । सपूज्याख्याय सबध स्वजन्मातरन स्फुट ॥ १८७ ॥ मानुषोत्तरभूभ्रातवर्ति विश्व विलो-

(अभयघोषका जीव) कहां है तब मुनिराज उन दोनोंसे फिर उसी कथाको कहने लगे कि वह अच्युत स्वर्गसे च्युत होकर पुंडरीकिणी नगरीमें राजा हेमांगद रानी मेघमालिनीके घनरथ नामका पुत्र हुआ है और इसलिये वह श्रीमान् रानी और पुत्रोंके साथ साथ सिंहासनपर बैठा हुआ मुर्गोका युद्ध देख रहा है ॥ १८०--१८२ ॥ उन मुनिराजसे ये सब बातें सुनकर ये दोनों ही विद्याधर आपके प्रेमसे यहां आए हैं । इसतरह मेघरथसे पिछिले सब समाचार सुनकर उन विद्याधरोंने अपना स्वरूप प्रगट किया और राजा घनरथ तथा कुमार मेघरथकी पूजा की । तदनंतर उन्होंने गोवर्द्धन मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण की और वे दोनों ही विद्याधर मुक्त हुए ॥ १८३--१८४ ॥ उन दोनों मुर्गोने भी अपने पहिलेके जन्म सुनकर आपसका बहुत दिनसे बधा हुआ वैर विरोध छोड़ दिया अंतमें बडे साहससे संन्यास धारण किया । उनसे एक तो भूतरमण नामके वनमें ताम्रचूल नामका भूत जातिका व्यंतरदेव हुआ और दूसरा देवरमण नामके वनमें कनकचूल नामका भूत जातिका व्यंतर देव हुआ ॥ १८५-१८६ ॥ जन्म धरनेके साथ ही वे दोनों व्यंतर देव पुडरीकिणी नगरीमें आए और बडे प्रेमसे मेघरथकी पूजाकी और अपने पहिले जन्म के सब संबंध कह सुनाये ॥ १८७ ॥ तदनंतर वे देव उस कुमारसे फिर कहने लगे कि हे राजन् हम दोनों आपका यही उपकार करना चाहते हैं कि आप हमारे साथ चलकर मानुषोत्तर पर्वततक सब पृथ्वी मंडल देख लीजिये॥१८८॥ कुमारने देवोंकी यह बात स्वीकार कर ली, देवोंने बडे वृढे सब परिवारके साथ उस कुमारको बडी २ ऋद्धियोंसे सुशोभित विमानमें चढाया और मेघमालाओंसे (बादलके टुकडोंसे) सुशोभित आकाशमार्गमें जाकर अनुक्रमसे सब

कय । एष एव तवाभ्यामुपकारो विधीयते ॥ १८८ ॥ इत्युदीर्ये कुमारं तं स्वात्तथेति प्रतिश्रुत । सार्द्धं स्वाते समारोप्य विमान विविधार्द्धिक ॥ १८९ ॥ सप्राप्य गगनाभोग मेघमालाविभूषित । दर्शयामासतुर्यौतौ कातान् देशान्यथाक्रमं ॥ १९० ॥ भरतः प्रथमो देशस्ततो हैमवत पर । हरिवर्षो विदेहश्च रम्यकः पंचमो मत ॥ १९१ ॥ हैरण्यवतसज्ञश्च परश्चैरावताह्वय । षडेते सप्त भूभृद्भिर्विभुक्ता सप्तभिर्विभो ॥ १९२ ॥ हिमवान् महाहिमवान् निषधो मदरो महान् । नील्ये रुक्मी शिखर्याख्यो विख्याताः कुलपर्वता ॥ १९३ ॥ इमा रम्या महानद्यश्चतुर्दश समुद्रगा । पद्मादिह्रदसभूता नाना श्रोतस्विनीयुता ॥ १९४ ॥ गंगा सिंधुश्च रोहिच रोहितास्या हरित्परा । हरिकाता परा सीता सीतोदा चाष्टमी नदी ॥ १९५ ॥ नारी च नरकांता च कूलांता सुवर्णसञ्ज्ञिका । ततोन्या रूप्यकूलाख्या रक्ता रक्तोदया सह ॥ १९६ ॥ ह्रदा षोडश सख्याः स्यु कुशेशयविभूषिता । पद्य पद्मो महापद्मस्तिगच्छः केसरी महा ॥ १९७ ॥ पुडरीकस्तथा पुडरीको निषधनामक । परो देवकुरुः सूर्य सुलभो दशम स्मृतः ॥ १९८ ॥ विद्युत्प्रभाह्वय ख्यातो नीलवान कुरूत्तरः । चंद्रश्चैरावतो माल्यवाश्च विख्यातसज्ञकः ॥ १९९ ॥ तेषामाद्येषु षट्सु स्युस्ता श्रीह्रीधृतिकीर्तय. । बुद्धिर्लक्ष्मीश्च

सुंदर देशोंको दिखलाने लगे ॥ १८९-१९० ॥ वे देव चलते जाते थे और बतलाते जाते थे कि यह पहिला भरतक्षेत्र है यह दूसरा हैमवत क्षेत्र है यह हरिवर्ष है यह विदेह है और यह पाचवां रम्यक है ॥ १९१ ॥ यह हैरण्यवत् और यह ऐरावत क्षेत्र है इसतरह हे प्रभो! छह कुलाचलोंसे अलग किये हुये जंबूद्वीपमें ये सात क्षेत्र हैं॥१९२॥ हिमवान् महाहिमवान् निषध नील रुक्मि शिखरी ये प्रसिद्ध कुल पर्वत हैं तथा इनके मध्यमें सबसे बड़ा यह सुमेरु पर्वत पडा हुआ है ॥ १९३ ॥ देखो पद्म आदि द्रहोंसे निकलने वालीं समुद्रकी ओर जानेवालीं और अनेक नदियोंसे सुशोभित ऐसी ये बडी मनोहर चोदह नदियां हैं । गंगा, सिंधु, रोहित्, रोहितास्या, हरित हरिकांता, सीता आठवीं सीतोदा नारी नरकांता सुवर्णकूला रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये अनुक्रमसे इन नदियोंके नाम हैं ॥ १९४-१९६ ॥ देखो! कमलोंसे सुशोभित ये सोलह द्रह वा हृद हैं पद्म, महापद्म, तिगंच्छ, केसरी, महापुडरीक, पुडरीक, निषध, देवकुरु, सूर्य, दशवां सुलभ, विद्युत्प्रभ, नीलवान्, उत्तरकुरु, चंद्र ऐरावत और माल्यवान ये इन सोलह हृदोंके नाम हैं ॥१९७-१९९॥ इन हृदोंमेंसे पहिले छह हृदोंमें अनुक्रमसे श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये इंद्रकी वल्लभा व्यंतरी देवियां रहती हैं॥२००॥बाकीके जो दश हृद हैं उनमें उसी नामके नागकुमार देव सदा निवास करते हैं। हे महाभाग! इधर देखो ये वक्षार पर्वत देखने योग्य हैं चित्रकूट, पद्मकूट नलिनकूट यह शैल त्रिकूट वैश्रवणकूट अंजनात्म, अंजन श्रद्धावान् विजयवान आशीविष सुखावह चद्रमाल सूर्यमाल नागमाल और देवमाल ये सोलह इनके नाम हैं इनके

शकस्य व्यंतरो वल्लभांगना ॥ २०० ॥ नाना शैषेषु तन्नामधेयाः संततवासिनः । पद्मामी च महाभाग प्रेक्ष्या वक्षारपर्वताः ॥ २०१ ॥ चित्रपद्मादिकूटाख्यौ कूटातनलिनः पर । एकशैलत्रिकूटश्च कूटो वैश्रवणादिम ॥ २०२ ॥ अंजनात्माजनौ श्रद्धावांश्च विजयावता । आशीविषाभिधानश्च सुखावहसमाह्वय ॥ २०३ ॥ चंद्रमालस्तथा सूर्यमालो नागादिमालवाक् । देवमाल परो गंधमादनो माल्यवानपि ॥ २०४ ॥ विद्युत्प्रभ सौमनस प्रलयोत्पत्तिदूरगाः । विभंगनद्यो ह्येताश्च स्वच्छाम्बुपरिपूरिताः ॥ २०५ ॥ ह्रदा ह्रदवती संज्ञे परा पंकवतीति च । तप्तमत्तजलाभ्यां च महोन्मत्तजलाह्वया ॥ २०६ ॥ क्षीरोदा च सशीतोदा श्रोतोंतर्वाहिनी परा । गंभीरमालिनी फेनमालिन्यूर्म्यादिमालिनी ॥ २०७ ॥ अमी च विषया कच्छसुकच्छपरिभाषितौ । महाकच्छा तथा कच्छकावत्यावर्तलांगलाः ॥ २०८ ॥ पुष्कला पुष्कलावत्यो वत्सा नाम्ना च कीर्तिता । सुवत्सा च महावत्सा विख्याता वत्सकावती ॥ २०९ ॥ रम्या च रम्यकाख्या रमणीया मंगलावती । पद्मा सुपद्मा महापद्मा पद्मावत्यमित्यया ॥ २१० ॥ शंखा च नलिनाख्या च कुमुदा सरिता परा । वप्रा सुवप्रा च महावप्रया वप्रकावती ॥ २११ ॥ गंधा सुगंधा गंधवती शब्दा गंधमालिनी । एताश्च राजधान्योत्र कुमारालोकय स्फुटं ॥ २१२ ॥ क्षेमा क्षेमपुरी चान्यारिष्टारिष्टपुरी परा । खड्गाख्यया च मंजूषा चौषधी पुंडरीकिणी ॥ २१३ ॥ सुसीमा कुंडला सार्द्धमपराजितसंज्ञया । प्रभंकराकवत्याख्या पद्मावत्यभिधोदिता ॥ २१४ ॥ शुभा शब्दाभिधाना च नगरी रत्नसंचया । अश्वसिंहमहापुर्यो विजयादिपुरी परा ॥ २१५ ॥ अरजा विरजाश्चैवमशोका

सिवाय गंधमादन माल्यवान् विद्युत्प्रभ और सौमनस ये चार गजदंत हैं ये सब ह्रद पर्वत आदि न तो उत्पन्न हुए हैं और न नष्ट होंगे अनादि अनिधन हैं। इधर देखिये! निर्मल जलसे भरी हुई ये विभंगा नदी हैं ॥ २०१–२०५ ॥ ह्रदा ह्रदवती पंकवती तप्तजला मत्तजला उन्मत्तजला क्षीरोदा शीतोदा श्रोतवाहिनी गंभीरमालिनी, फेनमालिनी और उर्मिमालिनी ये बारह विभंगा नदी हैं ॥ २०६–२०७ ॥ हे कुमार देखिये! कच्छा सुकच्छा महाकच्छा कच्छकावती आवर्ता लांगला पुष्कला पुष्कलावती वत्सा सुवत्सा महावत्सा वत्सकावती रम्या रम्यका रमणी मंगलावती पद्मा सुपद्मा महापद्मा पद्मावती शंखा नलिना कुमुदा सरिता वप्रा सुवप्रा महावप्रा वप्रकावती गंधा सुगंधा गंधवती और गंधमालिनी ये बत्तीस विदेह क्षेत्रके देश हैं और क्षेमा क्षेमपुरी अरिष्टा अरिष्टपुरी खड्गा मंजूषा औषधी पुंडरीकिणी सुसीमा कुंडला अपराजिता प्रभंकरा अंकवती पद्मावती शुभा रत्नसंचया अश्वपुरी सिंहपुरी महापुरी विजयपुरी अरजा विरजा अशोका वीतशोका विजया वैजयंती जयंती अपराजिता चक्रपुरी खड्गपुरी अयोध्या और अवध्या ये बत्तीस नगरी उन बत्तीस देशोंकी राजधानी हैं। हे कुमार! आप अच्छी तरह देखिये ये वक्षार पर्वत विभंगा नदी और देश आदि सब सीता नदीके उत्तरकी ओर मेरु पर्वतके समीपसे प्रदक्षिणारूपसे वर्णन किये हैं। इनके सिवाय उन व्यंतर

वीतशोकवाक् । विजया वैजयंती च जयंती चापराजिता ॥ २१६ ॥ अथ चक्रपुरी स्वर्गपुर्ययोध्या च वर्णिता । अवग्येत्यथ सीतोत्तराक्रागान्मेरुसन्निधे ॥ २१७ ॥ आदक्षिण्येन वक्षारावृक्षादींश्च प्रतिपादितान् । समुद्रादिवनादीनि भूतोदिष्टानि भूभुजा ॥ २१८ ॥ पश्यतान्यानि च स्वैरं मानुषोत्तरभूभृत । मध्यवर्तीनि सर्वाणि प्रीत्य विश्रुततेजसा ॥ २१९ ॥ अकृत्रिमजिनागाराण्यभ्यर्च्य स्तुतिभिश्चिरं । स्तुत्वार्घ्यामिर्निर्वृत्याविशत्पुरं परमोत्सव ॥ २२० ॥ दिव्याभरणदानेन परिपूज्य महीपतिं । सायोक्तिमिश्च तौ व्यंतरेशौ स्वावासमीयतुः ॥ २२१ ॥ य कर्मव्यतिहारेण नोपकारार्णव तरेत् । स जीवन्नपि निर्जीवो निर्गंधकुसुमोपमः ॥ २२२ ॥ कुक्कवाकू च चेदेवमुपकारविदौ कथ । मनुष्यो जरयत्यगे न चेदुपकृतं खल ॥ २२३ ॥ कदाचित्काललाभेन नृपो घनरथाह्वय । चोदित स्वगतं धीमानिति देहाद्यचिंतयत् ॥ २२४ ॥ धिक्कष्टमिष्टमित्येतत् शरीरं जतुरावसेत् । अवास्करगृहाचैतमा-

देवोंने समुद्र वन आदि जो जो दिखलाये थे वे सब राजकुमारने देखे, इच्छानुसार मानुषोत्तर पर्वत देखा और मध्यके सब नदी देश पर्वत आदि देखे। तदनंतर प्रतापशाली उस राजकुमारने सब अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा की, पूज्य अर्थोंसे भरे हुए स्तोत्रोंसे बहुत देर तक स्तुतिकी और फिर महा उत्सवसे सुशोभित अपने नगरमें लौट आया ॥ २०८-२२० ॥ वहां आकर उन दोनों व्यंतर देवोंने दिव्य आभरण देकर तथा विनयके वचन कहकर राजाकी पूजाकी और फिर वे अपने स्थानपर चले गये ॥ २२१ ॥ जो जीव किसी भी कामसे बदला देकर उपकाररूपी सागरको नहीं तिरता अर्थात् उपकारके बदले प्रत्युपकार नहीं करता वह गंधरहित फूलके समान जीता हुआ भी मरेके समान है ॥ २२२ ॥ जब दो मुर्गोंके जीवोंने राजकुमारके उपकारको इसप्रकार माना तब फिर मनुष्य अपने शरीरमें व्यर्थ ही क्यों क्षीण होता जाता है यदि वह उपकार नहीं मानता तो फिर उसे दुष्ट ही कहना चाहिये ॥२२३॥ किसी एक समय काललब्धिके द्वारा प्रेरणा किये हुए बुद्धिमान् महाराज घनरथ अपने मनमें ही शरीरादिका इसप्रकार चिंतवन करने लगे कि इस जीवको धिक्कार है और बडा ही दुख है कि यह जीव इस शरीरमें आकर निवास करता है यह शरीर विष्ठाका घर होनेसे अत्यंत घृणित है इस बातकी इसे कुछ खबर नहीं है ॥ २२४-२२५ ॥ सुख संतुष्ट करनेवाले कहे जाते हैं परंतु वे सुख इन प्राणियोंको कहां मिलते हैं ? यह कोई मोहनीय कर्मसे पापके कारण ऐसे बडे बडे दुःखोंमें ही सुख कल्पना करलेता है ॥ २२६ ॥ जन्मसे लेकर अंतर्मुहूर्त तक भी यदि जीवित रहनेका निश्चय हो तब भी किसी तरह ठीक माना जा सकता है परंतु जब एक क्षणभर भी इस जीवके जीवित रहनेका निश्चय नहीं है तब भी यह जीव अपने आत्माका हित क्यों नहीं करता है ? ॥ २२७ ॥

वैस्वतिकुसुमितं ॥ २२५ ॥ तर्पकाणि सुखान्याहुः कानि तान्यत्र देहिना । मोह कोप्यतिदु येषु सुखास्था पापहेतुषु ॥ २२६ ॥ जन्मायतर्मुहूर्ते चेज्जीवित निश्चित ततः । न क्षणे च कुतो जन्मी आयेत न हिते रतः ॥ २२७ ॥ बंधवो बंधनान्येते संपदो विपदागिनां । न चेदेवं कृत संतो वनांतं प्राप्ता मताः ॥ २२८ ॥ वितर्कयतमित्येन प्राप्य लौकांतिकामरा । विज्ञायावधिविज्ञानादनुवक्तुं तदीप्सित ॥ २२९ ॥ देव देवस्य को वक्ता देव एवावगच्छति । साधु हेयमुपादेय चार्थमित्यादिसत्स्तवै ॥ २३० ॥ स्तुत्वा सतामभिष्टुत्यमभ्यर्च्य प्रसवैर्निजैः । नियोगमनुपाल्यं स्व स्व धामेतु नभोगमम् ॥ २३१ ॥ ततो मेघरथे राज्यमभिषेकपुरस्सरं । निरोज्याभिषव देवैः स्वय चाप्याप सयम ॥ २३२ ॥ मनोवाक्कायसशुद्धिं विदधद्विजितेंद्रिय । कषायविषमस्वतमवमीद्वमं सुधी ॥ २३३ ॥ आयश्रेणीं समारुह्य कमात्कर्माणि निर्मम । निर्मूल्य निर्मल भावमवापावगमस्य सः ॥२३४॥ तदा कैवल्य-

ये सब भाई बंधु आदि इस जीवके बंधन हैं और ये सपदाएं विपत्तियां हैं यदि बंधुजन बंधन न होते और संपदाएं विपत्तिया न होतीं तो पहिलेके सज्जन लोग इन सबको छोडकर वनमें क्यों गये ॥ २२८ ॥ वे महाराज इस प्रकार विचार करही रहे थे कि इतनेमें ही अवधिज्ञानसे जानकर लौकांतिक देव आए और उनकी इच्छानुसार स्तुति करने लगे कि हे देव इस संसारमें आपको समझानेवाला कोई नहीं है इस जगतमें कौनसा पदार्थ छोडने योग्य है और कौनसा ग्रहण करने योग्य है इस बातको भी आप ही अच्छी तरह जानते हैं इत्यादि स्तोत्रोंसे उन सज्जनोंके द्वारा स्तुति करने योग्य भगवान् घनरथकी स्तुतिकी अपने फूलोंसे उनकी पूजा की और इसतरह अपने नियोगका पालनकर अपने स्थानपर जानेकेलिये आकाशकी ओर चले गये ॥ २२९–२३१ ॥ तदनंतर घनरथ ने मेघरथका राज्याभिषेक किया, इंद्रादि देवोंने उसी समय आकर उन भगवानका दीक्षाकल्याणका अभिषेक किया और इसतरह भगवानने अपने आप दीक्षा धारण की ॥ २३२ ॥ बुद्धिमान और इंद्रियोंको जीतनेवाले उन्होंने मन वचन कायको विशुद्ध किया और प्राणोंका नाश करनेवाले तथा नीच ऐसे कषायरूप विषका वमन अर्थात् त्याग किया ॥ २३३ ॥ उन्होंने क्षपकश्रेणी चढ कर तथा निर्ममत्व होकर कर्मोंका नाश किया और शुद्ध भाव प्राप्त किये ॥२३३–२३४॥ केवल ज्ञान होनेके समय सब देवोंके आसन कंपित हुए और उन्होंने सब विभूतिके साथ आकर भगवान की पूजा की ॥ २३५ ॥ इधर राजा मेघरथ किसी एक दिन अपनी रानियोंके साथ साथ देवरमण नामके वनमें विहार करता हुआ चंद्रकांत शिलापर बैठा था जहां वह बैठा था ठीक उसी जगहके ऊपर होकर एक विद्याधर जा रहा था परंतु उसके ऊपर आते ही पत्थरके बडे टुकडेसे अटक जानेके समान उसका विमान वहीं रुक गया ॥ २३६–२३७ ॥ उस विद्याधरने वि-

सप्राप्तिप्रभावात्कोंपितासना । निर्लिपा सर्वसंपत्या पत्युः पूजामकुर्वत ॥ २३५ ॥ स देवरमणोद्याने समं मेघरथोन्यदा । स्वदेवीमिर्विहृत्यास्थाचंद्रकांतशिलातले ॥ २३६ ॥ निविष्टं तं समाक्रम्य गच्छन्कश्चिमभश्चर । गडोपल इव व्योम्नि सरुद्धुविमानकः ॥ २३७ ॥ शिलां दृष्ट्वा नृपारूढामुत्थापयितुमुद्यत । नृपांगुष्ठाग्रनिर्भुग्नशिलाभारप्रपीडित. ॥ २३८ ॥ ततसोढुमक्षमो गाढमाक्रन्दत्करुणस्वरं । तदा तत्खचरी प्राप्य नाथानाथास्मि नार्थ्यसे ॥ २३९ ॥ पतिभिक्षां प्रदस्वेति प्राहाथोत्थापितक्रम । किमेतदिति भूनाथ सपृष्ट प्रियमित्रया ॥ २४० ॥ विजयार्द्धालकाध्येशो विद्युद्दंष्ट्रखगाधिपः । प्राणेशानिलवेगास्य सुतः सिंहरथस्तयोः ॥ २४१ ॥ अभिवंद्य जिनाधीशमायममितवाहनं । ममोपरि विमाने स्वे रुद्धे वा याति केनचित् ॥ २४२ ॥ दिशा विलोक्य मां दृष्ट्वा स्वदर्पात्कोपवेपितः । अस्मान् शिलातलेनामा प्रोत्थापयितुमुद्यमी ॥ २४३ ॥ पीडितोयं मदंगुष्ठेनैषोप्यस्य मनोरमा । इत्यब्रवीत्तदाकर्ण्य किं कोपस्यास्य कारणं ॥ २४४ ॥ इदमेव किमस्त्यन्यत्रान्यत्रापि चेत्यमो । तयोक्तो नान्यदित्यस्य प्राग्जन्मेत्युपदिष्टवान् ॥२४५॥ द्वीपे द्वितीये पूर्वैरावतस-

मानसे ही देखा कि एक शिलापर राजा मेघरथ बैठा हुआ है उसे देखते ही वह उस शिलाको उठानेका प्रयत्न करने लगा परंतु राजा मेघरथ ने अपना पैरका अंगूठा दबा दिया जिससे वह विद्याधर उस शिलाके बोझसे बहुत ही दुखी हुआ ॥ २३८ ॥ जब वह उस बोझको सह नहीं सका तब वह बडी करुणाके स्वरसे बहुत जोरसे रोने लगा उसकी रोनेकी आवाज सुनकर विमानसे उसकी विद्याधरी आई और कहने लगी कि हे नाथ! मैं अनाथ हूं मुझे पतिकी भिक्षा दीजिये अर्थात् कृपाकर मेरे पतिको छोड दीजिये। यह सुनकर मेघरथने भी अपना अंगूठा उठा लिया यह सब देखकर प्रियामित्राने अपने पति मेघरथसे पूछा कि हे महाराज यह क्या बात है ॥ २३९–२४० ॥ तब मेघरथ कहने लगा कि विजयार्द्ध पर्वतपर अलका नगरके राजा विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर और रानी अनिलवेगाका यह सिंहरथ नामका पुत्र है। अमितवाहन तीर्थंकर की वंदनाकर आया है। मेरे ऊपरसे इसका विमान जा रहा था वह किसी कारणसे रुक गया, उससमय सब ओर देखते हुए इसे मैं ही दिखाई पडा, अपने अहंकारके कारण क्रोधसे यह कांपने लगा और इस शिलाके साथ साथ हमलोगोंको उठानेके लिये तैयार होगया परंतु मैंने पैरका अंगूठा दबा दिया जिससे यह दबकर रोने लगा इसकी आवाज सुनकर यह इसकी रानी आई है मेघरथका कहा यह सुनकर प्रियमित्रा फिर पूछने लगी कि इसके क्रोधका कारण यही है अथवा और कुछ है तथा वह इस जन्मका है अथवा पहिलेके जन्मका है तब फिर मेघरथ कहने लगा कि, इसके वैरका कारण और कुछ नहीं है इसतरह कहकर वह उस विद्याधरके पहिलेके जन्म नीचे लिखे अनुसार कहने लगा ॥ २४१–२४५ ॥ कि दूसरे धातकी द्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें शंखपुर नगरमें राजा राजगुप्त

माहृवये। देशे शंखपुरे राजा राजगुप्तोस्य शंखिका ॥ २४६ ॥ भार्यां तौ शंखशैलस्थात्सर्वगुप्तमुनीश्वरात् । आसौ जिनगुणख्यातिमुपोषितविधिं समं ॥ २४७ ॥ भिक्षाचरमथान्येद्युर्धृतिषेणयतीश्वरं । निरीक्ष्य भिक्षां दत्वास्मै वसुधारायवापता ॥ २४८ ॥ समाधिगुप्तमासाद्य संन्यस्याभूत्स भूपति । ब्रह्मेन्द्र स्यायुषोत्कृष्ट तस्मात्सिंहरथोजनि ॥ २४९ ॥ शंखिका च परिभ्रम्य संसारे तपसागमत् । देवलोक तपश्च्युत्वा खगभूभृदपाकृतटे ॥ २५० ॥ वस्वालय-पुरे सेन्द्रकेतोराज्ञीदिर्यं सुता । सती मदनवेगाख्या सुप्रभार्या स तच्छ्रुतेः ॥ २५१ ॥ परितुष्य नृपं श्रित्वा पूजयित्वा यथोचित । सुवर्णतिलके राज्य नियोज्य बहुभि सह ॥ २५२ ॥ दीक्षा घनरथाभ्यर्णे जैनीं सिंहरथोग्रहीत् । प्रियमित्राभिधा प्राप्य गणिनीं गुणसन्निधिं ॥ २५३ ॥ सुधीर्मदनवेगा च कृच्छ्रमुग्राचरत्तप । कोपोपि क्वापि कोपोपलेपनापनुदे मतः ॥ २५४ ॥ अथ स्वपुण्यकर्मोत्तप्राज्यराज्यमहोदयात् । त्रिवर्गफलपर्यंतपरिपूर्णमनोरथ ॥

राज्य करता था उसकी रानीका नाम शंखिका था। किसी एकदिन वे दोनों ही राजा रानी शंखशैल नामके पर्वतपर विराजमान सर्वगुप्त मुनिराजके समीप गये और दोनोंने साथ साथ जिनगुणख्याति नामक व्रतके उपवास करनेकी विधि स्वीकार की ॥ २४६–२४७ ॥ किसी दूसरे दिन धृतिषेण नामके मुनिराज भिक्षा लेनेके लिये आए थे उनका पडगाहनकर राजाने आहार दिया जिससे उसके घर रत्नोंकी वर्षा आदि पंचाश्चर्य हुए ॥ २४८ ॥ अंतमें उस राजाने समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण की और सन्यास धारणकर ब्रह्मस्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ, वहांकी उत्कृष्ट आयुका उपभोगकर यह सिंहरथ उत्पन्न हुआ है ॥ २४९ ॥ शंखिका भी संसारमें परिभ्रमणकर तथा तपश्चरणकर स्वर्गको गई और वहांसे आकर विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें वस्वालय नगरके राजा इद्रकेतु रानी सुप्रभाके यह मदनवेगा नामकी पुत्री हुई है यह सब बात सुनकर राजा सिंहरथ बहुत ही संतुष्ट हुआ समीप जाकर उसने यथायोग्य रीतिसे राजा मेघरथकी पूजा की और फिर अपने पुत्र सुवर्णतिलकको राज्य देकर अनेक लोगोंके साथ साथ श्रीघनरथ तीर्थंकरके समीप श्रीजैनेश्वरी दीक्षा धारण की ॥ इधर बुद्धिमती मदनवेगा भी गुणोंकी भंडार ऐसी प्रियमित्रा नामकी आर्जिकाके समीप दीक्षा धारणकर कठिन तपश्चरण करने लगी। सो ठीक ही है क्योंकि कहीं कहीं क्रोध भी क्रोध वा पापके उपलेपको दूर करनेवाला माना गया है ॥ २५०–२५४ ॥

अथानंतर—इधर राजा मेघरथ राज्य करने लगा अपने पुण्यकर्मके उदयसे जो बडी भारी राज्यकी विभूति प्राप्त हुई थी उससे धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंके अंततक उसके सब मनोरथ पूर्ण होगये थे। उसके शुद्ध सम्यग्दर्शन था यह व्रत शील आदि गुणोंसे सुशोभित था, विनयवान, शास्त्रोंका जानकार, प्रगल्भ, सत्यवक्ता, सातों परमस्था-

२५५ ॥ शुद्धश्रद्धानसंपन्न व्रतशीलगुणान्विते । सप्रश्रयं श्रुताभिज्ञ प्रगल्भं बल्मभाषिण ॥ २५६ ॥ सुमस्तपरमस्थान भागिनंभव्यभास्करं । नृप मेघरथ दारदारकादिनिषेवितं ॥ २५७ ॥ कृत्वा नादीश्वरी पूजां जैनधर्मोपदेशिनी । सोपवासमवाप्येक कपोतः त सवेपथुः ॥ २५८ ॥ तस्यानुपदमेवान्यो गृद्ध्रो वद्धगत्रः पुरः । स्थित्वा नृपस्य देवाह महाक्षुद्वेदनातुरः ॥ २५९ ॥ तत कपोतमेतं मे भक्ष्यं त्वच्छरणागतं । ददस्व दानशूर त्वं न चेद्विद्ध्यत्र मां मृतं ॥ २६० ॥ इत्यवादीत्तदाकर्ण्य युवा दृढरथोऽब्रवीत् । पूज्य ब्रूहि वदत्येष गृध्र केनास्मि विस्मितः ॥ २६१ ॥ इति स्वानुजसप्रश्नादित्यवोचन्महीपति । इह जबूद्रुमद्वीपे क्षेत्रे मेरोरुदग्गते ॥ २६२ ॥ नगरे पद्मिनीखेटे वणिक् सागरसेनवाक् । तस्यामितमति प्रीता तयोर्लघुतरौ सुतौ ॥ २६३ ॥ धनमित्रो भवन्नदिषेणः स्वधनहेतुना । हत्वा परस्परं मृत्वा खगावेतौ बभूवतु ॥ २६४ ॥ देवः सन्निहित कश्चिद् गृध्रस्योपरिकः स चेत् । त्वया हेमरथो नाम्ना दमितारिरणे हतः ॥ २६५ ॥ परिभ्रम्य भवे भूय कैलाशाद्रितटेऽभवत् । पर्णकाशनदीतीरे धीमांश्चन्द्राभिधानकः ॥ २६६ ॥ श्रीदत्तायां

नोंको प्राप्त करनेवाला, और भव्योंमें सूर्य था, किसी एक दिन उसने जैनधर्मका उपदेश देनेवाली नंदीश्वरकी (अष्टान्हिकाकी) पूजा की थी और वह उपवासकर स्त्री पुत्रोंके साथ साथ विराजमान था कि इतनेमें ही उसके पास कांपता हुआ एक कबूतर आया ॥ २५५–२५८ ॥ उसके पीछे पीछे ही बडे वेगसे भागता हुआ एक गीध आया और राजाके सामने खडा होकर कहने लगा कि हे देव ! मैं भूखसे व्याकुल हो रहा हूं, आप दानवीर हैं इसलिये आपकी शरणमें आए हुए मेरे खाने योग्य ऐसे इस कबूतरको मुझे दे दीजिये यदि आप न देंगे तो फिर मुझे मरा समझिये अर्थात् भूखसे मैं अवश्य मर जाऊंगा । गीधकी यह बात सुनकर छोटा दृढरथ पूछने लगा कि हे पूज्य ! कहिये यह गीध इस प्रकारकी बात चीत किसतरह कर रहा है, इसका बोलना सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है ॥ २५९–२६१ ॥ अपने छोटे भाईके इस प्रश्नके उत्तरमें राजा मेघरथ कहने लगा कि इस जबूद्वीपके मेरु पर्वतके उत्तरकी ओर ऐरावत क्षेत्रके पद्मिनीखेट नामके नगरमें एक सागरसेन नामका वैश्य रहता था उसकी अमितमती स्त्रीसे धनमित्र और नंदिषेण नामके दो सबसे छोटे पुत्र थे धनकेलिये वे दोनों ही भाई परस्पर लडे और एक दूसरेको मारकर दोनों ही ये कबूतर और गीध हुए हैं ॥२६२–२६४॥ यह गीधके ऊपर जो देव है वह कौन है इसके सुननेकी जो इच्छा हो तो वह भी मैं बतला देता हूं। जब हमारे तुम्हारे साथ दमितारिका युद्ध हुआ था तब हेमरथ तुम्हारे हाथसे मारा गया था ॥२६५॥ वह संसारमें परिभ्रमणकर कैलाश पर्वतके किनारे पर्णकाश नामकी नदीके समीप सोम नामके तपस्वीसे उसकी श्रीदत्ता नामकी स्त्रीके अनेक कुशास्त्रोंको जाननेवाला बुद्धिमान् चंद्रनामका तपस्वी हुआ था, वहांपर पंचाग्नि कर यह ज्योतिष जातिका देव हुआ है ॥

कुशाग्रजस्तनूज सोमतापसात् । तप पंचानि सतप्य ज्योतिर्लोकेमरोजनि ॥ २६७ ॥ स कदाचिद्दिवं गत्वा द्वितीयेंद्रसभासदैः । दाता मेघरथान्नान्य क्षितावस्तीति संस्तुत ॥ २६८ ॥ श्रुत्वा प्रायदमर्षेण मा परीक्षितुमागत । श्रृणु चेत समाधाय भ्रातर्दानादिलक्षण ॥ २६९ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दान विदो वदन् । अनुग्रहोपि स्वान्योपकारित्वमभिधीयते ॥ २७० ॥ दाता च शक्तिविज्ञानश्रद्धादिगुणलक्षितः । देयं वस्त्वप्यपीडाभाक् तद्द्वयोर्गुण-वर्द्धन ॥ २७१ ॥ साधन क्रमशो मुक्तेराहारभेषज श्रुत । सर्वप्राणिदयाशुद्ध देय सर्वज्ञभाषितं ॥ २७२ ॥ मोक्षमार्गे स्थितः पाता स्वस्यान्येषां च संसृ-ते । पात्र दानस्य सोभीष्टोनिष्ठितार्थैर्निरंजनैः ॥२७३॥ कृतार्थः स जगत्त्रार्णं निरवद्यं वचोवदत् । भव्येभ्य स हि दाता तद्देयं तत्पात्रमुत्तमं ॥ २७४ ॥ न तु मांसादिक देय पात्रं नास्य प्रतीच्छकः । तद्दातापि न दातेमौ ज्ञेयौ नरकनायकौ ॥ २७५ ॥ ततो गृध्रो न तत्पात्र नाय देवं कपोतकः । तथा मेघ-

२६६-२६७॥ किसी एक समय स्वर्गमें ईशान इंद्रकी सभामें गया था वहांपर सभासदोंने कुछ मेरी स्तुति की थी और कहा था कि इस पृथ्वीपर मेघरथके समान और कोई दाता नहीं है उसे सुनकर इसे कुछ ईर्षा हुई और अब यहां यह मेरी परीक्षा करनेके लिये आया है। अपने छोटे भाई दृढरथसे इतनी बात कहकर फिर वह राजा मेघरथ उस देवसे कहने लगा कि हे भाई मैं दान आदि सबका लक्षण कहता हूं तू चित्त लगाकर सुन ॥२६८-२६९॥ अनुग्रह करनेकेलिये जो कुछ अपना धन वा और कोई वस्तु दी जाती है उसे दानको जाननेवाले दान कहते हैं तथा अनुग्रह शब्दका अर्थ अपना और दूसरेका उपकार करना बतलाया जाता है ॥ २७० ॥ शक्ति विज्ञान और श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित दाता कहलाता है तथा जो वस्तु पीडा करनेवाली न हो और लेने देनेवाले दोनोंके गुण बढानेवाली हो वह देने योग्य समझी जाती है ॥ २७१ ॥ सर्वज्ञ देवने उस दानके चार भेद बतलाए हैं, आहार, औषध शास्त्र और सब प्रा-णियोंपर शुद्ध दयाका पालन करना। ये चारों ही दान अनुक्रमसे मोक्षके साधन गिने जाते हैं ॥ २७२ ॥ जो जीव मोक्षमार्गमें स्थित है तथा अपने आत्माको और अन्य जीवोंको संसारके परिभ्रमणसे बचाता है अर्थात् जो सबका तरण तारण है वही दान देनेका पात्र है कृतकृत्य और कर्म रहित अरहंत देव उसीको पात्र कहते हैं॥२७३॥ अथवा जो कृतार्थ (अरहंत) होकर जन्ममरणरूप संसारसे रक्षा करनेकेलिये भव्य जीवोंको अनिंद्य वचन कहता है (मोक्षमार्गका उपदेश देता है) वह भी दाता है। इसतरह ऊपर कहे अनुसार ही उत्तम पात्र हैं और ऊपर कहे अनुसार ही देने योग्य वस्तु है मांस आदि निंद्य वस्तु देने योग्य नहीं हैं तथा उसके लेनेकी इच्छा करनेवाले कभी देनेके पात्र नहीं हैं और ऐसे दानको देनेवाले कभी दाता नहीं हो सकते ऐसी वस्तुओंके देनेवाले और लेनेवाले दोनों ही नरकके स्वामी गिने जाते हैं॥

धी वा[illegible]माकर्ण्य ज्योतिषोमरः ॥ २७६ ॥ असि दानविभागज्ञो दानशूरश्च पार्थिवः । इति स्तुत्वा प्रदर्श्य स्वं तं प्रपूज्य जगाम सः ॥ २७७ ॥ द्विजद्वयमपि ज्ञात्वा तदुक्तं त्यक्तदेहकं । अरण्ये देवरमणेऽस्तां सुरूपातिरूपकौ ॥ २७८ ॥ देवौ मेघरथं पश्चात्त्वत्प्रसादात्कुयोनितः । निरगाव नृपेत्युक्त्वा पूज्यं संपूज्य जग्मतुः ॥ २७९ ॥ कदाचित्स नृपो दानं दत्वा दमवरेशिने । चारणाय परिप्राप्तपंचाश्चर्यविधिं सुधीः ॥ २८० ॥ नंदीश्वरमहापूजां विधायोपोषित श्रितः । निशायां प्रतिमायोगे ध्यायन्नस्थादिवाद्रिराट् ॥ २८१ ॥ ईशानेंद्रो विदित्वतन्मरुत्सदसि शुद्धदृक् । धैर्यसारस्त्वमेवाद्य चित्रमित्यब्रवीन्मुदा ॥ २८२ ॥ स्वगत तं स्तव श्रुत्वा देवैः कस्य स्तुतिः मतः । त्वयाकारीत्यसौ पृष्ट प्रत्याहेति सुरान् प्रति ॥२८३॥ धीरो मेघरथो नाम शुद्धदृक् पार्थिवाग्रणी । प्रतिमायोगधार्यद्य तस्य भक्त्या स्तुतिः कृता ॥ २८४ ॥ तदुदीरितमाकर्ण्य तत्परीक्षातिदक्षिणे । अतिरूपासुरूपाख्ये देव्यावागत्य भूपतिं ॥ २८५ ॥ वि-

२७५॥ इसलिये न तो यह गीध दान देनेका पात्र है और न यह कबूतर देने योग्य वस्तु है । मेघरथकी इस बातको सुनकर उस ज्योतिषी देवने राजा मेघरथकी स्तुतिकी कि वास्तवमें आप दानके विभागको जाननेवाले हैं और दानवीर राजा हैं । इसतरह स्तुतिकर उसने अपना रूप प्रगट किया और राजाकी पूजाकर अपने स्थानपर चला गया ॥ २७६–२७७ उन गीध और कबूतर दोनों पक्षियोंने भी मेघरथकी कही हुई सब बातें समझीं और शरीर छोड कर वे दोनों ही देवरमण नामके वनमें सुरूप और अतिरूप नामके व्यंतर देव हुये ॥ २७८ ॥ उत्पन्न होते ही वे मेघरथके पास आए और कहने लगे कि "हे राजन् आपके प्रसादसे ही हम दोनों कुयोनिसे निकले हैं" इसतरह कहकर उस पूज्य राजाकी पूजाकी और फिर वे दोनों ही अपने स्थानको चले गये ॥ २७९ ॥ किसी एक दिन उस बुद्धिमान् राजा मेघरथने चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दमवर नामके मुनिराजको आहारदान दिया था जिससे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई थी ॥ २८० ॥ किसी दूसरे दिन वह राजा मेघरथ नंदीश्वर पर्वमें महापूजाकर और उपवास धारणकर रात्रिमें सुमेरुपर्वतके समान ध्यानकरता हुआ प्रतिमायोग धारणकर निश्चल विराजमान था इसीसमय देवोंकी सभामें ईशानस्वर्गके इंद्रने मेघरथकी ये सब बातें जानकर बडी प्रसन्नतासे कहा कि अहा ! आश्चर्य है आज संसारमें तू ही शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और तू ही धीर वीर है । इसतरह अपने आपही की हुई स्तुतिको सुनकर देवों ने पूछा कि आपने किस सज्जनकी यह स्तुति की है इसके उत्तरमें वह इंद्र उन देवोंसे इसतरह कहने लगा कि राजाओंमें भी मुख्य राजा मेघरथ बहुत ही धीरवीर है और शुद्ध सम्यग्दृष्टि है आज वह प्रतिमायोग धारणकर बैठा है उसीकी भक्तिसे आज मैंने स्तुति की है ॥ २८१–२८४ ॥ ईशान इंद्रकी इस बातको सुनकर उसकी परीक्षा करनेमें अत्यंत

सासैविभ्रमैर्हावैर्भावैर्गीतैः प्रजल्पितैः । अन्यैश्च मदनोन्मादहेतुभिस्तन्मनोवचः ॥ २८६ ॥ विद्युल्लतेव देवाद्रिं तं चालयितुमक्षमे । सत्यमीशानसंप्रोक्तमिति स्तुत्वा स्वरीयतुः ॥ २८७ ॥ अन्यदैशानकल्पेशो मरुन्मध्ये यदृच्छया । समस्तौत्प्रियमित्राया रूपमाकर्ण्य तत्स्तवं ॥ २८८ ॥ रतिषेणारतिश्चैत्यदेव्यौ तद्रूपमीक्षितुं । एतां मज्जनवेलायां गंधतैलाक्तदेहिका ॥ २८९ ॥ निरूप्यैंद्रवचः सम्यक् श्रद्धायाप्यभिभाषितुं । तया सहैत्यकन्याकृती धृत्वा तां समूचतुः ॥ २९० ॥ त्वापि कन्यके द्रष्टुमेतामिति सखीमुखात् । ताभ्यामुक्तं समाकर्ण्य प्रमदादस्तु तिष्ठता ॥ २९१ ॥ तावदित्यात्मसंस्कारं कृत्वाहूयाभ्यदर्शयत् । तां निशम्याहतुस्ते च प्राग्वत्कांतिर्न चाधुना ॥२९२॥ इति सा तद्वचः श्रुत्वा प्रियमित्रा महीपतेः । वक्त्रं व्यलोकयत्प्राह सोपि कांते तथेति तां ॥२९३॥ देव्यौ स्वरूपमादाय निजागमनवृत्तकं । निवेद्य रूपमस्याश्च धिग्विलक्षणभंगुरं ॥ २९४ ॥ अत्र ना भंगुरे किंचिदिति निर्विद्य चेतसा । तां संपूज्य ययतु

चतुर ऐसी अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियां राजा मेघरथके समीप आईं और विलास, विभ्रम, हाव, भाव गीत बातचीत तथा और भी कामदेवको बढानेवाले कारणोंसे उसके मनको चलायमान करने लगीं परंतु जिसप्रकार बिजलीकी लता मेरु पर्वतको नहीं डिगा सकती उसीप्रकार वे दोनों ही देवियां उसके मनको चलायमान नहीं कर सकीं तब उन्होंने ईशान इंद्रके कहे हुएको सत्य माना और फिर उस मेघरथकी स्तुतिकर अपने स्थानको चली गईं ॥ ॥ २८५-२८५ ॥ किसी दूसरे दिन ईशान स्वर्गके इंद्रने देवोंकी सभामें अपनी इच्छानुसार मेघरथकी रानी प्रियमित्रा के रूपकी प्रशंसाकी, उसकी प्रशंसाको सुनकर रतिषेणा और रति नामकी दो देवियां उसका रूप देखनेके लिये आईं। जिससमय वे देवियां आईं थीं उससमय वह प्रियमित्रा स्नान करनेकेलिये शरीरसे उबटन तेल आदि लगा रही थी उसे देखकर उन देवियोंने इंद्रकी कही हुई बातोंको सच माना और उसके साथ बात चीत करनेकी इच्छासे कन्या-का रूप धारणकर सखीके द्वारा कहला भेजा कि आपके दर्शन करनेकेलिये दो कन्यायें आई हैं। उन दोनोंकी बात सुनकर वह प्रियमित्रा प्रसन्न हुई और प्रत्युत्तरमें कहा कि अच्छा जबतक मैं स्नानकर आती हूं तबतक ठहरो तदनंतर नहा धोकर आभूषण पहिन प्रियमित्राने उन दोनों देवियोंसे भेंट की । उससमय उन देवियोंने कहा कि जैसी कांति पहिले थी वैसी अब नहीं है देवियोंकी इस बातको सुनकर प्रियमित्रा राजा मेघरथका मुह देखने लगी उसे अपनी ओर देखते हुये देखकर मेघरथने कहा कि हे कांते! बात तो ऐसी ही है अर्थात् रूपमें अवश्य कुछ कमी हुई है । इसके बाद देवियोंने अपना रूप प्रगट किया अपने आनेका सब कारण कहा और "इसके विलक्षण नाशमान् रूपको धिक्कार है इस संसारमें कोई भी वस्तु नित्य नहीं है" इसप्रकार अपने ही चित्तमें विरक्त होकर तथा प्रियमित्रा

स्वर्गं स्वकीसिन्यासविकृतदे ॥ २९५ ॥ देवी तद्वेतुना किंचा नित्यानित्यात्मकं जगत् । सर्वमंत. शुचं मागा इत्यत्याश्वास्य महीपतिः ॥ २९६ ॥ राज्यभोगैः स्वकांतामिर्नितांत निर्वृतिं व्रजन् । गत्वा मनोहरोद्यानमन्येद्युः स्वगुरुं जिन ॥ २९७ ॥ सिंहासने समासीनं सुरासुरपरिष्कृत । समस्तपरिवारेण त्रि परी- त्यामिवंद्य च ॥ २९८ ॥ सर्वभव्यहितं वांच्छन् पप्रच्छोपासककियाः । प्राप्य कल्पद्रुमस्येव परार्थं चेष्टितं सता ॥ २९९ ॥ प्रागुक्तैकादशोपासकस्था- नानि विभागतः । उपासकक्रियावद्धोपासकाध्ययनाह्वय ॥ ३०० ॥ अगदत्सप्तममाख्येयं श्रावकाणां हितैषिणां । इति व्यावर्णयामास तीर्थकृत्प्रार्थितार्थ- कृत् ॥ ३०१ ॥ गर्भान्वयक्रिया पूर्वं ततो दीक्षान्वयक्रिया । कर्त्रन्वयक्रियाश्चान्या तत्संख्यास्य तु तत्त्वत ॥ ३०२ ॥ गर्भाधानादिनिर्वाणपर्यंता प्रथमक्रिया । प्रोक्ताः सत्यस्त्रिपचाशतसम्यग्दर्शनशुद्धिषु ॥ ३०३ ॥ दीक्षान्वयक्रियाश्चाष्टचत्वारिंशत्प्रकीर्तिता । अवतारादिकनिर्वृत्यंता निर्वाणसाधिकाः ॥

की पूजाकर अपनी कांतिसे दिशाओंके किनारेको व्याप्त करती हुई वे दोनों ही देवियां अपने स्वर्गको चली गई ॥ २८८-२९५ ॥ इस बातसे देवी प्रियमित्रा कुछ खिन्न हुई परंतु राजा मेघरथने उसे समझाकर आश्वासन दिया कि यह सब संसार नित्यानित्यात्मक है इसलिये अपने मनमें किसी तरहका शोक नहीं करना चाहिये ॥ २९६ ॥ इसतरह अपनी स्त्रियों और राज्य भोगोंसे सबसे अधिक सुख भोगते हुए उसका समय व्यतीत हो रहा था। किसी दूसरे दिन मेघरथके पिता घनरथ जिनराज मनोहर नामके उद्यानमें सिंहासनपर विराजमान थे देव व्यंतर आदि सब उनके चारों ओर समवसरणमें बैठे थे वहींपर राजा मेघरथ भी उनकी वंदना करनेकेलिये अपने सब परिवार सहित गया, जाकर सब भव्योंके हित करनेवाले उन भगवानकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं नमस्कार किया और अपनी जगहपर बैठकर श्रावकों की क्रियाएं पूछने लगा। वह प्रार्थनापूर्वक कहने लगा कि सज्जनोंकी चेष्टायें प्रायः कल्पवृक्षके समान दूसरोंके प्रयोजन के लिये ही होती हैं इसलिये हे देव ! पहिले जो अपना हित चाहनेवाले श्रावकोंके ग्यारह भेदकर ग्यारह ही स्थान बतलाये हैं उन श्रावकोंकी क्रियाओंको कहनेवाला जो सातवां उपासकाध्ययन है उसको कहिये। इसतरहकी प्रार्थना को पूर्ण करनेवाले भगवान तीर्थंकर कहने लगे कि श्रावकोंकी गर्भान्वय दीक्षान्वय और कर्त्रन्वय ये तीन प्रकारकी क्रियाएं हैं॥ २९७-३०२॥ सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेवाली पहिली गर्भान्वय आदि क्रियाएं गर्भाधानसे लेकर निर्वाणपर्यंत तिरेपन क्रियाएं कही गई हैं ॥ ३०३ ॥ अवतारसे लेकर निर्वृत्त वा मोक्ष होनेतक मोक्षकी साधन ऐसी अडतालीस दीक्षान्वय क्रियाएं कही गई हैं ॥ ३०४ ॥ सद्गृहित्वसे लेकर सिद्ध होनेतक सात कर्त्रन्वय क्रियाएं हैं। इन सब क्रियाओंका अलग अलग यह स्वरूप है यह विधि है और यह फल है ॥ ३०५ ॥ इसतरह घनरथके कहे हुए उपासक धर्मको सु-

३०४ ॥ सद्गृहित्वादिसिध्यंता, सस कर्मन्वयक्रिया । सम्यक् स्वरूपमेतासा विधान फलमप्यद ॥ ३०५ ॥ तमुपासकसद्धर्मं श्रुत्वा घनरथोदितं । नत्वा मेघरथो भक्त्या मुक्त्यै शांतातरंगकः ॥ ३०६ ॥ शरीरभोगसंसारदौःस्थित्यं चिंतयन्मुहुः । संयमाभिमुखो राज्ये तिष्ठत्वनुजमादिशत् ॥ ३०७ ॥ त्वया राज्यस्य यो दोषो दृष्टोदर्शि मयाप्यसौ, । त्याज्यं तच्चेद् गृहीत्वापि प्रागेवाग्रहण वरं ॥ ३०८ ॥ प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं यथा । इति तास्मिंस्तदादानविमुखत्वमुपागते ॥ ३०९ ॥ सुताय मेघसेनाय दत्वा राज्यं यथाविधि । सहस्रैः सप्तमिः सार्द्ध सानुजो जगतीपति ॥ ३१० ॥ नृपैः दीक्षा समादाय क्रमादेकादशांगवित् । प्रत्ययास्तीर्थकृन्नाम्नः षोडशैतानभावयत् ॥ ३११ ॥ जिनोपदिष्टनिर्ग्रंथमोक्षमार्गे रुचिर्मता । निःशंकतादिकाष्टागा विशुद्धिर्दर्शनस्य सा ॥ ३१२ ॥ मार्गेस्मिन्वर्तमानस्य यदुक्त तद्भवेन्न वा । इति शकापरित्यागः शकारहितता विदु ॥ ३१३ ॥ द्विलोकभोग

नकर राजा मेघरथने बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया और मोक्ष जानेकेलिये उसका अंतरंग शात हो गया ॥ ३०६ ॥ वह शरीर भोग और ससारकी बुरी दशाका वार २ चिंतवनकर संयम धारण करनेके लिये तैयार हुआ और छोटे भाई दृढरथको राज्यपर बैठनेके लिये आज्ञा दी ॥ ३०७ ॥ परंतु दृढरथ कहने लगा कि इस राज्यमें जो दोष आपको दिखाई दे रहे है वे मुझे भी दिख रहे है जब यह राज्य ग्रहण करके भी छोडना ही पडेगा तब पहिलेसे ही उसका ग्रहण न करना सबसे अच्छा है ॥ ३०८ ॥ कीचडमें पैर देकर धोनेसे उसका स्पर्श न करना ही सबसे अच्छा है इस तरह कह कर जब वह राज्य लेनेसे विमुख होगया तब मेघरथ ने अपने पुत्र मेघसेनको विधिपूर्वक राज्य दिया और अपने छोटे भाई तथा सात हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की । अनुक्रमसे ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और नीचे लिखे अनुमार तीर्थंकर नामकी कारण ऐसी सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन किया ॥ ३०९-३११ ॥ जो निशंकित आदि आठों अंगों सहित भगवान् अरहंतदेवके कहे हुए मोक्षमार्गमें रुचि विश्वास वा श्रद्धा है वह पहिली दर्शनविशुद्धि भावना है ॥ ३१२ ॥ इस मोक्षमार्गमें अथवा इस अरहंतदेवके कहे हुए मतमें जो कुछ कहा गया है अर्थात् जो जो तत्त्व अथवा उन तत्त्वोंका जो जो स्वरूप माना गया है वह ठीक है अथवा नहीं इस प्रकारकी शंका नहीं करना पहिला निःशंकित अंग है ॥ ३१४ ॥ इसलोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें होनेवाले भोगोंमें मिथ्यादर्शनसे उत्पन्न होनीवाली आकांक्षाका त्याग करना शास्त्रकारोंने दूसरा निःकांक्षित अंग कहा है यह अंग भी दर्शनको विशुद्ध करनेवाला है ॥ ३१५ ॥ इस शरीर आदिको अत्यंत अपवित्र जानकर भी 'यह पवित्र है' ऐसे संकल्पका त्याग करना तीसरा निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है ॥ ३१५ ॥ अथवा अरहंतके मतमें जो यह ऐसा मानागया है वह न होता

मिथ्यादृक्कांक्षाव्यावृत्तिरागमे । द्वितीयमंगमाख्यात विशुद्धिर्दर्शनाश्रिता ॥ ३१४ ॥ देहाद्यशुचिसद्भावमवगम्य शुचीति यः । संकल्पस्तस्य सत्यागः सा स्यान्निर्विचिकित्सता ॥ ३१५ ॥ अथवार्हन्मते नेद चेत्सर्व युक्तमित्यमत् । आग्रहः क्वापि तत्त्याग सास्यान्निर्विचिकित्सता ॥ ३१६ ॥ तत्त्वं चाभासमानेषु बहुदुर्नयवर्त्मसु । युक्तिभवे द्विमोहत्वमाहुर्दृष्टेरमूढता ॥ ३१७ ॥ वृद्धि क्रियात्मधर्मस्य भावनाभि' क्षमादिभि' । अभीष्ट दर्शनस्यागं सुदृग्भिरुपबृंहण ॥ ३१८ ॥ धर्मध्वंसनिमित्तेषु या कषायोपपादिषु । धर्मच्यवनसरक्षा स्वान्ययोः सा स्थितिक्रिया ॥ ३१९ ॥ जिनप्रणीतसद्धर्मामृतनित्यानुरागता । वात्सल्य मार्गमहात्म्यभावना स्यात्प्रभावना ॥ ३२० ॥ ज्ञानादिषु च तद्वत्सु चादरो नि.कषायता । तद्द्वय विनयस्याहु सत सपन्नतां स्फुट ॥ ३२१ ॥ व्रतशीलनिवद्धेषु मेदेषु निरवद्यता । शीलव्रतानतीचार प्राहु सूक्तविदावरें ॥ ३२२ ॥ ज्ञानोपयोगोऽभीक्ष्णोसौ या नित्यश्रुतभावना । सं-

तो सब ठीक होता ऐसा किसी भी वस्तुमें होनेवाले आग्रहका त्याग करना निर्विचिकित्सा कहलाता है ॥ ३१६ ॥ जिनके माने हुए तत्त्व तत्त्व तो नहीं है परंतु तत्त्वोंके समान जान पडते हैं तथा जिनमें अनेक दुर्नय भरें हुए हैं ऐसे मतोंमें युक्ति होते हुए भी मोहित नहीं होना अमूढदृष्टि अंग कहलाता है ॥ ३१७ ॥ क्षमा मार्दव आदि भावनाओं के द्वारा क्रिया रूप धर्मकी वृद्धि करना सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा सम्यग्दर्शनका अभीष्ट उपबृंहण अंग कहा जाता है॥३१९॥ धर्मके नाश होनेके कारण अथवा कषायोंके उत्पन्न होनेके कारण आ मिलनेपर धर्मसे डिगते समय अपनी अथवा दूसरेकी रक्षा करना अर्थात् न तो स्वयं धर्मसे चलायमान होना और न दूसरेको होने देना स्थितिकरण कहलाता है ॥ ३१९ ॥ अरहंतदेवके कहे हुए सद्धर्मरूपी अमृतसे सदा अनुराग रखना वात्सल्य कहा जाता है और मोक्षमार्ग अथवा जिनमार्गकी महिमा प्रगट होनेकी भावना रखना प्रभावना अंग कहलाता है ॥ ३२० ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका विनय करना अर्थात् इनको अच्छी तरह पालन करना तथा इनके पालन करनेवालोंका विनय करना और कषायरहित परिणाम रखना इन दोनोंको ही सज्जन लोग विनयसंपन्नता कहते हैं ॥ ३२१ ॥ व्रत और शीलके सब मेदोंमें अर्थात् पांच व्रत और सातो शीलोंमें अतिचार नहीं लगाना शास्त्रोंके अच्छे जानकारोंके द्वारा शीलव्रतानतीचार कहलाता है ॥ ३२२ ॥ सदा शास्त्रोंमें भावना रखनेको अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहते हैं और असह्य संसारके दु·खोंसे सदा डरते रहना संवेग कहलाता है॥३२३॥ पात्रोंकेलिये आहार अभय और शास्त्र वा ज्ञान आदिका देना त्याग है तथा शास्त्रोंके अनुकूल अपनी शक्तिके अनुसार कायक्लेश करना तप कहलाता है ॥३२४॥ किसी समय बाह्य अभ्यंतर कारण आमिलनेपर मुनिसमुदायके (मुनि यति ऋषि तपस्वियोंके) तपश्चरणमें किसी विघ्नके आनेपर उसे दूर करना साधुसमा-

नेग· संसृतेर्दुःखाद्दुस्सहाभिरूयभीरुता ॥ ३२३ ॥ अद्दारादित्रयोत्सर्गे पात्रेभ्यस्त्याग इष्यते । यथागमं यथावीर्यं कायक्लेश तपो भवेत् ॥ ३२४ ॥ कदाचिन्मुनिसंघस्य वाह्याभ्यंतरहेतुनि । सवारणं समाधिः स्यात्प्रत्यूहे तपसः सति ॥ ३२५ ॥ गुणिता निरवद्येन विधिना दुःखनिर्वृतिं । वैयावृत्यक्रिया प्रायः साधनं तपसः परं ॥ ३२७ ॥ जिनेषु गणनाथेषु बहुशास्त्रेषु चागमे । भावशुध्यानुराग· स्याद्भक्ति कायादिगोचरा ॥ ३२७ ॥ सामायिकादिषट्कस्य यथाकाल प्रवर्तन । भवेदावश्यकाहानिर्यथोक्तविधिना मुने ॥ ३२८ ॥ ज्ञानेन तपसा जैनपूजयान्येन चापि वा । धर्मप्रकाशन प्राज्ञा प्राहुर्मार्गप्रभावना ॥ ३२९ ॥ वत्से धेनोरिव स्नेहो यः सधर्मण्यकृत्रिम । तद्वात्सल्यं प्रशसति प्रशसापारमाश्रिता ॥ ३३० ॥ इत्येतानि समस्तानि व्यस्तानि च जिनेश्वराः । कारणान्याम्नतर्यत्यनाम्न, षोडश बंधने ॥ ३३१ ॥ एतद्भावनया बद्ध्वा तीर्थकृन्नाम निर्मल । येन त्रैलोक्यसंक्षोभस्ततम मेघरथो मुनिः ॥

धि कहलाती है ॥ ३२५ ॥ निर्दोष विधिसे गुणियोंके दुःख दूर करना तपश्चरणका उत्कृष्ट साधन वैयावृत्य कहलाता है ॥ ३२६ ॥ अरहतदेव आचार्य उपाध्याय और शास्त्रोंमें मन वचन कायसे परिणामोंकी शुद्धतापूर्वक अनुराग रखना भक्ति कही जाती है ॥ ३२७ ॥ मुनियोंके जो सामयिक आदि छह आवश्यक हैं उन्हें यथायोग्य समयपर शास्त्रोंके अनुसार विधिपूर्वक करना आवश्यकतापरिहाणि है ॥ ३२९ ॥ ज्ञान तपश्चरण जिनपूजा अथवा और किसी तरह धर्मकी महिमा प्रगट करनेको विद्वान् लोग मार्गप्रभावना कहते हैं ॥ ३२९ ॥ बछडे गायके प्रेमके समान जो साधर्मी लोगोंमें अकृत्रिम (स्वाभाविक) प्रेम है उसे प्रशंसाके पारगामी पुरुष वात्सल्य कहते हैं ॥ ३३० ॥ श्री जिनेंद्रदेव इन सोलह भावनाओंको सब मिलकर अथवा अलग अलग तीर्थंकर नामकर्मके बंधके कारण बतलाते हैं ॥ ३३१ ॥ मेघरथ मुनिराजने इन ऊपर लिखी भावनाओंसे उस निर्मल तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया कि जिससे तीनों लोकोंमें क्षोभ उत्पन्न हो जाता है ॥ ३३२ ॥ अनुक्रमसे सब देशोंमें विहार करते हुए वे श्रीपुर नगरमें आए और वहांके राजा श्रीषेणने उन्हें यथायोग्य रीतिसे आहार दिया ॥ ३३३ ॥ तदनंतर दशपुर नगरमें भक्तिमान् राजा नंदने और पुंडरीकिणी नगरीमें सम्यग्दृष्टी राजा सिंहसेन ने आहार दिया जिससे वे मुनिराज ज्ञानदर्शन चारित्र और तपकी अनेक पर्यायोंको अच्छीतरह बढाने लगे और उन दान देनेवाले राजाओंके यहां पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥३३४–३३५॥ मुनिराज मेघरथ और दृढ प्रतिज्ञावाले दृढरथ इन दोनोंने ही उत्तम संयम धारण किया, नभस्तिलक पर्वतपर एक महीने तक शांत परिणामोंसे प्रायोपगमन सन्यास धारण किया और आयुके अंतमें शरीर छोडकर दोनों ही अहमिंद्र हुए ॥ ३३६–३३७ ॥ वहांपर उन दोनोंकी तेतीस सागरकी आयु थी, चंद्रमाके समान अत्यंत निर्मल एक हाथका शरीर

३३२॥ क्रमेण विहरन्देशान् प्राप्तवान् श्रीपुरं स्वयं । श्रीषेणस्तत्पतिस्तस्मै दत्वा भिक्षां यथोचितां॥३३३॥ पश्चात्तत्पुरे नंदनाभिधानश्च भक्तिमान् । तथैव पुंडरीकिण्यां सिंहसेनश्च शुद्धदृक्॥३३४॥ज्ञानदर्शनचारित्रतपसां पर्ययान् बहून् । सम्यग्वर्द्धयते प्रापु पंचाश्चर्याणि पार्थिवाः॥३३५॥सयमस्य परां कोटिमारुह्य स मुनीश्वरः । दक्षो दशरथो नाम नभस्तिलकपर्वते ॥३३६॥ मासमात्रं परित्यज्य शरीरं शांतकल्मषः । प्रायोपगमनेनाप्तः प्राणांतेनाहमिंद्रता ॥ ३३७ ॥ तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमजीवितौ । विधूज्ज्वलतरारत्निशरीरौ शुक्लेश्यकौ ॥३३८॥ मासैः षोडशभिः सार्द्धमासनिःश्वासमीयुषौ । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दैराहृताऽमृतभोजनौ॥३३९॥निःप्रवीचारसौख्याढ्यौ लोकानाड्यंतराश्रित-स्वगोचरपरिच्छेदप्रमाणावधिलोचनौ॥३४०॥तत्क्षेत्रमितवीर्याभाक्रियौ सुचिरं स्थितौ । समनंतरजन्माप्य मोक्षलक्ष्मीसमागमौ ॥ ३४१ ॥ अथास्मिन् भारते वर्षे विषयः कुरुजांगलः। आर्यक्षेत्रस्य मध्यस्थः सर्वधान्याकरो महान् ॥३४२॥ तत्र तांबू

था, शुक्ल लेश्या थी, वे दोनों ही साढे सोलह महीने वाद श्वास लेते थे और तेतीसहजार वर्ष वाद अमृतका मानसिक आहार करते थे ॥ ३३९-३४० ॥ उन दोनोंके प्रवीचाररहित सुख था, लोकनाडीके अंततक अवधिज्ञानरूपी नेत्र सब पदार्थोंको देख सकते थे उतने ही क्षेत्रतक शक्ति कांति और विक्रिया ऋद्धि थी और आगेके जन्ममें ही वे मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होनेवाले थे, इस तरह वे बहुत दिनतक वहां रहे थे ॥ ३४०-३४१ ॥

अथानंतर—इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कुरुजांगल देश है जो कि आर्यक्षेत्रके मध्यमें हैं सबसे बडा है और सबतरहके धान्य जिसमें उत्पन्न होते हैं ॥ ३४२ ॥ वहांपर उत्पन्न हुई पानकी वेलें और फलसहित सुपारीके वृक्ष स्त्री पुरुषोंके आलिंगन सुखको प्रगट करते रहते हैं ॥ ३४३ वहांके चोच जातिके वृक्ष किसी अच्छे राजाके समान सुशोभित होते हैं क्योंकि जिसप्रकार अच्छा राजा अनेक तरहके फल देनेवाला, मनोहर ऊचा (बडा) होता है उसी प्रकार वे वृक्ष भी अनेक फल देते थे ऊंचे और मनोहर थे, जिसप्रकार अच्छा राजा सत्पत्र अर्थात् अच्छी अच्छी सवारियोंवाला और वद्धमूल अर्थात् राज्यकी जड वाला होता है उसी प्रकार वे वृक्ष भी सत्पत्र अर्थात् अच्छे पत्रे वाले और बद्धमूल अर्थात् मजबूत मजबूत जडवाले थे ॥ ३४४ ॥ वहांके केलेके वृक्ष स्त्रियोंके समान प्रेम उत्पन्न करते थे क्योंकि स्त्रियां जिसप्रकार मनोहर दृष्टि सुकुमारता छाया अर्थात् कांति और रसीली होनेसे सब तरहसे सुंदर दिखती हैं इसी तरह वे वृक्ष भी, देखनेमें मनोहर सुकुमार छायावाले और रसीले होनेसे सब तरहसे सुंदर थे ॥ ३४५ ॥ वहांके आमोंके वृक्ष मनोहर थे फलोंसे नम्र रहे थे, फूल और पत्तोंसे उज्वल थे, कोयलोंकी कुहूकनसे वाचाल हो रहे थे और चचल भ्रमरोंके समूहोंसे भर रहे थे ॥ ३४६ ॥ इसीतरह जिनपर बड़े २ पके फल लग रहे हैं,

तलताः सफला फलद्रुमा । पुदारदारकाश्लेषसुख प्रत्यापयति वा॥३४३॥महाफलमहातुंगा बद्धमूला मनोहरा । सुराजवद्विराजते मत्तत्राश्रोचभूरुहा ॥ ३४४॥मदहृष्टया सौरुसर्पेण छायया रसवत्तया । कदल्य सर्वसौंदर्याः सप्रीत्यै रमणीसमा ॥३४५॥आम्र कम्राः फलैर्नम्राः पलनप्रमवोज्वला । कोकिलालापवाचाला लोलालिकलखकुला ॥ ३४६ ॥ स्थूलपक्वफला. प्रोद्यद्गधावीकृतषट्पदा । पनसा प्रचुरा रेजुरामूलात्फलदायिन ॥ ३४७ ॥ गुल्मवल्लीद्रुमा सर्वे प्रसूनभरभगुरा. । क्रीडागारनिभा भाति कामनामहीभुज. ॥ ३४८ ॥ निर्भूमिच्छिद्रमच्छिद्र नि पाषाण निरूषण । निर्नष्ट छभय भूरिभूतल सफलं सदा ॥ ३४९ ॥ अप्रमादोरुचारित्रा प्रायश्चित्तमेव द्विजाः । न दडभयमृच्छति प्रजा स्वस्थितिपालनात् ॥ ३५० ॥ महाजलशया नित्यमच्छाः स्वच्छावुसम्भृता; । नानाप्रसवसछन्ना जद्युर्ज्योतिर्जगच्छ्रिय ॥ ३५१ ॥ पुष्पनेत्राः समुतुगा विटपायतवाहव । भूरुहा भूमिपायते सदाचारफलावहा ॥

उडती हुई सुगंधसे जिन्होंने भ्रमरोंको भी अंधा कर रक्खा है और जो जडसे ही फल देनेवाले हैं ऐसे बहुतसे पनस (कटहर) सुशोभित थे ॥ ३४७ ॥ फूलोंके समूहोंसे भरे हुए छोटे २ पौधे और लतायें सब ऐसे अच्छे जान पडते थे मानों कामदेवरूपी राजाके क्रीडा करनेके घर ही हों ॥ ३४८ ॥ वहांकी पृथ्वीमें गढे नहीं थे पत्थर नहीं थे ऊसर भूमि नहीं थीं आठ तरहके भयोंमेंसे कोई भय नहीं था और पृथ्वीके भीतर भी गढे वगैरह नहीं थे वह बहुत बडा पृथ्वीका टुकडा सदा फल देता रहता था ॥ ३४९ ॥ प्रमादरहित बडे २ चारित्रोंको धारण करनेवाले वहांके ब्राह्मण कभी प्रायश्चित्त नहीं लेते थे और अपनी २ स्थितिको पालन करती हुई वहांकी प्रजा कभी दंड पानेका भय नहीं करती थी ॥ ३५० ॥ अनेक तरहके फूलोंसे ढके हुए स्वच्छ जल और मगर मच्छियोंसे सदा भरे हुए वहांके बडे २ जलाशय (सरोवर आदि) ज्योतिर्लोककी (ज्योतिषियोंके विमानों भरे हुए आकाश की) शोभाको भी जीतते थे ॥३५२॥ वहांके वृक्ष राजाओंके समान जान पडते थे क्योंकि पुष्पही उनके नेत्र थे वे ऊचे थे बडी २ शाखाएं ही उनकी लंबी भुजायें थीं और सदाचार (सदा सुदर) फलको वे धारण करते थे ॥३५३॥ नये पत्ते ही जिनके ओठ हैं, पुष्प जिनपर लग रहे हैं जिनका शरीर कृश है भ्रमरोंके समूह ही जिनके बाल हैं और अच्छे पत्ते ही जिनकी पत्र रचना है ऐसी तरह तरहकी वेलें स्त्रियोंके समान सुशोभित होती थीं ॥ ३५४ ॥ जो मूलसे लेकर मध्य तक रसीले हैं परतु अंतमें नीरस हैं ऐसे दुष्टोंको भी जीतनेवाले ईख अपने आप यंत्रोंके द्वारा पीडे जाते थे ॥ ३५३-३५४ ॥ वहांपर लोप तो शब्द बनानेमें विभक्ति आदिका करना पडता था दूसरेका नहीं, नाश पापरूप प्रवृत्तियोंका होता था, दाह विरही लोगोंमें था और वेध अर्थात् छेदना केवल दोनों कानोंमें था दूसरी जगह नहीं ॥ ३५५ ॥ दंड केवल लकडियोंमें था, तेजी केवल

पल्लवोष्ठा प्रसूनाढ्यास्तन्वंग्योलिकुलालका । सत्पत्राश्चित्रवल्लर्यो रमग्य इव रेजिरे ॥ ३५३ ॥ आमध्यं रसिकामूलत्पर्यंते विरसास्तत । पीड्यते सुतरां यंत्रैरिक्षवो जितदुर्जना ॥ ३५४ ॥ शब्दनिष्पादने लोप प्रध्वंस पापवृत्तिषु । दाहो विरहिवर्गेषु वेधः श्रवणयोर्द्वये ॥ ३५५ ॥ दंडो दारुषु शस्त्रेषु निस्त्रिंशोक्तिस्तपस्विषु । निर्धनत्व विदानत्व मदापाये न दंतिषु ॥३५६॥ सुरतेषु विलज्जत्व कातकन्यासु याचन । तापोऽनलोपजीवेषु मारणं रसवादिषु ॥ ३५७ ॥ नाकांडमृत्यवः सति नापि दुर्मार्गगामिनः । मुक्त्वा विग्रहिणो मुक्तमारणातिकविग्रहात् ॥ ३५८ ॥ प्राच्यवृत्तिविपर्यास' सयमग्राहिणो भवेत् । न षट्कर्मसु कस्यापि वर्णानां दुर्णयद्विषा ॥ ३५९ ॥ शालयो लीलया वृद्धिमुपेता सर्वतर्पिण । निनम्रा फलसप्राप्तौ मेजु सद्भूमिपोपमा' ॥ ३६० ॥ क्षरंति वारिदा काले दुहते धेनव सदा । फलंति भूरुहा सर्वे पुष्पंति च लतास्तता ॥ ३६१ ॥ नित्योत्सवाः निरातका निर्बंधा धनिकाः प्रजा । निर्मला नित्यकर्माणो नियुक्ताः स्वासु वृत्तिषु ॥३६२॥ हास्तिनाख्या पुरी तत्र शुभा नाभिरिवाबभौ । भृशं देशस्य देहस्य महती मध्यवर्तिनी ॥३६३॥ भूरिनीरभवानेकप्रसूनोदितभूतिभि । तिसृभि परिखाभिस्तन्नगरं परिवेष्टित ॥ ३६४ ॥ विभाति गोपुरोपेतद्वाराट्टालकपंक्तिभिः । वप्रप्राकारदुर्लंघ्य सुरजैः कपिशीर्षकैः ॥

तपस्वियोंमें थी और दानरहितपना केवल मदके नाश होनेमें था हाथियोंमें नहीं ॥ ३५६ ॥ निर्लज्जपना केवल काम क्रीडामें ही था, याचना केवल सुंदर कन्याओंकी की जाती थी, सताप केवल अग्निमें था और मारण केवल रस आदिकोंमें था दूसरी जगह नहीं ॥ ३५७ ॥ वहांपर न तो किसीकी अकाल मृत्यु होती थी और न कोई दुर्मार्गमें चलनेवाला मनुष्य था, मारणांतिक समुद्घातके विना सबकी गति सीधी थी अर्थात् कोई भी कुटिलगामी नहीं था ॥ ३५८ ॥ दुर्नयसे द्वेष रखनेवाले चारों ही वर्णवाले जीवोंके देवपूजा आदि छह कर्मोंमें कहीं विपरीतपना न था यदि उनका विपरीतपना था तो यही था कि वे पहिली गृहस्था अवस्था छोडकर संयम धारण करते थे ॥ ३५९ ॥ लीलापूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए और सबको संतुष्ट करनेवाले शालि चांवल फल लगनेपर नव गये थे और किसी अच्छे राजाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३६० ॥ वहांपर बादल सदा समयपर बरसते थे, गायें सदा दूध देती थीं, वृक्ष सब फलते थे और लताएं सब फूलती थीं ॥ ३६१ ॥ वहाकी प्रजा सदा उत्सव मनाया करती थी, धनिक निर्मल नीरोगी और बधनरहित थी, सदा काम करनेमें लगी रहती थी और अपनी २ जीविकाओंमें नियुक्त थी ॥ ३६२ ॥ जिसप्रकार शरीरके मध्यभागमें नाभि सुशोभित होती है उसीप्रकार उस देशके मध्यभागमें हस्तिनापुर नामकी बडी प्यारी शुभ नगरी शोभायमान थी ॥ ३६३ ॥ अगाध जलसे उत्पन्न हुए अनेक फूलोंसे प्रगट हुई विभूतिसे शोभायमान ऐसी तीन खाइयोंसे वह नगर घिरा हुआ था ॥ ३६४ ॥ बाहरी भीतरी बडे २ दरवाजे, अटारियोंकी पंक्तियां

३६५ ॥ इद्रकोर्शैर्दृढ्यत्रैर्दुंक देवपथादिमि । महाक्षुद्राभिमद्वारैर्वीथिमिर्बहुरिश्र तत् ॥ ३६६ ॥ राजमार्गा विराजते सारवस्तुसमन्विताः । स्वर्गापवर्ग-मार्गाभाः सच्चरचारुवृत्तयः ॥ ३६७ ॥ न नेपथ्यादिमिर्भेदस्तद्भुवां सारवस्तुने । कुलजातिवयोवर्णवचोबोधादिमिर्भिदा ॥ ३६८ ॥ तत्पुर्यां सौधकूटाग्रव द्धध्वजनिरोधनात् । नातपस्य प्रवेशोऽस्ति विनार्कं दिनेष्वपि ॥ ३६९ ॥ पुष्पागरागधूपादिसौगंध्याधीकृतालिभिः । भ्रमद्भिस्तत्र खे प्रावृट्शंका गृहशिखंडि-ना ॥ ३७० ॥ रूपलावण्यकांत्यादिगुणैर्युवतिमिर्युता । युवानस्तैश्च तास्तत्र तदन्योन्यसुखावहा ॥ ३७१ ॥ मदनोद्दीपनद्रव्यैर्निर्मर्गप्रेमतो गुणैः । कान्यादिमिश्च दंपत्योः प्रीतिस्तत्र निरंतरं ॥ ३७२ ॥ अहिंसालक्षणो धर्मो यतयो विगतस्पृहाः । देवोऽर्हन्नेव निर्दोषस्ततः सर्वेऽप्यत्र धार्मिकाः ॥ ३७३ ॥ यत्किंचित्संचितं पापं पंचसूनादिवृत्तिभिः । पात्रदानादिभिः सद्यस्तद्धिंसंत्युपासकाः ॥३७४॥ न्याय्यो नृपः प्रजा धर्म्या निर्जंतु क्षेत्रमन्वहं । स्वाध्यायस्तत्पुरं त-

और बंदरके मुहवाले बुरज इन सबसे कोट और दीवालोंसे अलंघ्य वह नगर बहुत ही सुशोभित हो रहा था ॥ ३६५ ॥ उस नगरमें राजमार्गमें ही मिलनेवाले डरानेके लिये बनाये हुये अनेक हाथी घोडे आदि जानवरोंके चित्र थे और बहुत छोटे दरवाजेवालीं बहुतसी गलियां थी ॥ ३६६ ॥ सार वस्तुओंसे भरे हुए राजमार्ग सुशोभित हो रहे थे. वे स्वर्ग मोक्षके मार्गके समान जान पडते थे और उनपर सदाचारी लोग इधरसे उधर टहला करते थे ॥ ३६७ ॥ वहांके लोगोंमें सार वस्तुओंमें उत्पन्न हुए वस्त्र आभूषण आदिसे कोई भेद नहीं था परंतु कुल, जाति, वय, वर्ण, वचन और ज्ञान आदिसे भेद था ॥ ३६८ ॥ उस नगरमें बडे २ राजभवनोंकी शिखरोंपर जो ध्वजाएं फहरा रही थी उनमें रुकजानेके कारण बादलोंके द्वारा सूर्यके विना ढके हुए दिनमें भी धूपका प्रवेश नहीं होने पाता था॥३६९॥पुष्प उबटन धूप इत्यादि वस्तुओंकी सुगंधिसे अंधे हुए भ्रमर जो चारों ओर फिर रहे थे उनसे घरके मयूरोंको आकाशमें वर्षा ऋतुकी शंका हो रही थी ॥ ३७०॥ रूप लावण्य और कांति आदि गुणोंसे सुशोभित युवतियां और युवा पुरुष दोनों ही वहां फिरते थे और एक दूसरेको सुख पहुंचाते थे ॥ ३७१ ॥ कामदेवको उद्दीपित करनेवाले द्रव्य, स्वाभाविक प्रेम और कांति आदि गुणोंसे स्त्री पुरुषोंमें सदा प्रेम बना रहता था ॥ ३७२ ॥ वहांपर धर्म अहिंसारूप माना जाता था, यती सब इच्छारहित थे, देव अरहंत ही माने जाते थे और वहांके लोग सब धर्मात्मा थे ॥ ३७३ ॥ श्रावक लोग जो चक्की उखली चूल बुहारी पानी आदि पांचों कार्योंसे पापका संचय करते थे वे उसे पात्रदान देकर उसीसमय नाश कर डालते थे ॥ ३७४ ॥ वहांका राजा न्यायी था, प्रजा धर्मात्मा थी, क्षेत्र जीवरहित प्रासुक था और वहांपर सदा स्वाध्याय होता रहता था, इसीलिये मुनिलोग उस नगरको नहीं छोडते थे ॥ ३७५ ॥ उस नगरके समीपमें ही

स्मान्न त्यजंति यतीश्वरा ॥ ३७५ ॥ नानापुष्पलतानम्रमहीजैर्नंदनैर्वनैः । नंदनं च विजीयेत तत्पुरोपांतवर्तिभिः ॥ ३७६ ॥ निष्पन्नसारवस्तूनां निःशेषाणां निजोद्भव-स्थानेष्वनुपभोग्यत्वात्तदेवायांति सर्वतः ॥ ३७७ ॥ तत्रस्थैरेव भुज्यंते तानि दानेन चेद्बहिः । निर्यांति यातु तत्तादृक् त्यागिभोगिजनैश्चित ॥ ३७८ ॥ तत्र तादात्विका सर्वे तन्न दोषाय कल्पते । तत्पुण्यात्सर्ववस्तूनि वर्द्धंते प्रत्यहं यत ॥३७९॥ ब्रह्मस्थानोत्तरे भागे भुवोऽभूद्राजमंदिरं । महामेरुनिभं भास्वद्भद्रशालादिभूषित ॥ ३८० ॥ यथास्थाननिवेशेन परितो राजमंदिरं । उडूनि योज्वलद्रम्यहर्म्याण्यन्यानि वा बभुः ॥ ३८१ ॥ तद्राजधानिनाथस्य काश्यपान्वयभास्वत । भूपस्याजितसेनस्य चित्तनेत्रप्रियप्रदा ॥३८२॥ बाला चंद्रादिसुस्वप्नदर्शिनी प्रियदर्शना । ब्रह्मकल्पच्युतं सूनु विश्वसेनमजीजनत् ॥ ३८३॥ गंधारविषयख्यातगंधारनगरेशिन । अजितं जयभूभर्तुरजितार्यां सुता गता ॥३८४॥ सनत्कुमारादैराख्या विश्वसेनप्रिया भवत् । श्रीह्रीधृत्यादिससेव्या

जो अनेक फूल फलोंसे नवे हुये वृक्षोंसे सुशोभित नंदन वन था उससे नंदनका वन भी जीता जाता था ॥३७६॥ जो वस्तु जहां उत्पन्न होती है उसका वहीं उपभोग करना अनुचित है इसी न्यायके अनुसार संसारमें जो जो सार वस्तु जहां २ उत्पन्न होती थीं वहींसे उस नगरमें आ जाती थीं और फिर वहांके लोग उसका उपभोग करते थे, यदि उनमेंसे कोई वस्तु बाहर दिखाई पड़ती थी तो समझना चाहिये कि दानमें दी गई होगी इसतरह त्यागी और भोगी लोगोंके द्वारा इकट्ठी की हुई वे सब चीजें चारों ओर फैल रही थीं ॥ ३७७-३७९ ॥ वहांके सब लोग तादात्विक अर्थात् भोगोपभोगमें सब धन खर्च करनेवाले थे तथापि वे दोषी नहीं थे, क्योंकि उनके पुण्य कर्मके उदयसे सब वस्तुएं प्रतिदिन बढती रहती थीं ॥ ३८० ॥ उस नगरकी पृथ्वीके ब्रह्मस्थानके उत्तरकी ओर राजमंदिर था जो कि भद्रशाल आदि वनोंसे सुशोभित महामेरु पर्वतके समान सुशोभित होता था ॥ ३८१ ॥ उस राजभवनके चारों ओर जो यथायोग्य स्थानपर बने हुये सुंदर और देदीप्यमान राजभवन थे वे ऐसे अच्छे जान पडते थे मानो मेरुके चारों ओर तारागण ही हों ॥ ३८१ ॥ उस हस्तिनापुर राजधानीमें काश्यपगोत्री देदीप्यमान राजा अजितसेन राज्य करता था और उसकी रानी चित्त और नेत्र दोनोंको प्रिय तथा आनंद देनेवाली प्रियदर्शना थी। उसने किसी एक दिन स्वप्नमें चंद्रमा आदि देखे थे और ब्रह्मस्वर्गसे च्युत हुए ऐसे विश्वसेन पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ ३८२-३८३ ॥ गंधार देशके गंधार नगरके राजा अजितंजयके उनकी अजिता रानीसे सनत्कुमार स्वर्गसे आकर ऐरा नामकी पुत्री हुई थी और वही ऐरा राजा विश्वसेनकी प्यारी रानी हुई थी श्री ह्री धृति आदि देवियां उसकी सेवा करती थीं भादों वदि सप्तमीके दिन भरणी नक्षत्रमें रात्रिके चौथे पहर उसने साक्षात् सत्य फलोंको देनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ ३८४-३८६ ॥

नभस्ये कृष्णसप्तमे॥३८५॥दिने भरणिनक्षत्रे यामिनीतुर्यभागगा। स्वप्नान् षोडश साद्राक्षीत्साक्षात्सत्यफलप्रदान् ॥३८६॥दरनिद्रासमुद्भूतबोधा शुद्धसुवासना । तदन्तरमैक्षिष्ट प्रविष्ट वदने गजं॥३८७॥ तदैवासौ दिवो देवस्ततो मेघरथाभिध । तस्यामवतरद् गर्भे स्वातौ मुक्तोदबिंदुवत् ॥३८८॥ तदैव याममेरीच तत्स्वप्नशुभसूचिनी,। जजृमे मधुरं सुप्तां बोधयतीव सुंदरीं ॥६८९॥ पद्मिनीव तदाकर्ण्य विकसन्मुखपंकजा । शय्यागृहात्समुत्थाय कृतमंगलमज्जना ॥३९०॥ तत्कालोचितनेपथ्या कल्पवल्लीव जंगमा । सितातपत्रविभ्रासितार्कबालांशुमालिका ॥३११॥ प्रकीर्णकपरिक्षेपप्रपंचितमहोदया । जनैः कतिपयैरेव प्रत्यासन्नैः परिष्कृता ॥ ३९२ ॥ साविशच्चंद्ररेखाभा सभामिव विभावरीं । कृतोपचारविनया वामार्द्धासनमापयत् ॥ ३९३ ॥ नृपं साभिनिवेद्यात्मदृष्टां स्वप्नावलीं क्रमात् । तत्फलान्यप्यबोधिष्ट राज्ञः सावधिलोचनात् ॥ ३९४ ॥ स्वर्गात्तदैव देवेंद्रा सह देवैश्चतुर्विधैः । स्वर्गावतारकल्याण सप्राप्य समुपाद-

कुछ २ नीदके टूटनेसे जिसे कुछ ज्ञान भी प्रगट होरहा है और जिसके मुखसे शुद्ध सुगंध आरही है ऐसी उस ऐराने स्वप्न देखनेके बाद ही अपने मुंहमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा ॥ ३८७ ॥ उसी समय मेघरथका जीव जो अहमिंद्र हुआ था वहांसे चयकर स्वाति नक्षत्र में सीपमें मोतीकी बूंदके समान उस ऐराके गर्भमें आ विराजमान हुआ ॥ ३८८ ॥ उसीसमय सोती हुई सुंदरीको जगानेके लिये ही क्या मानों शुभ स्वप्नोंको सूचित करनेवाले सवेरेके मधुर नगाडे बजने लगे ॥ ३८९ ॥ उन्हें सुनते ही कमलिनीके समान उसका मुखकमल खिल गया और सोनेके घरसे उठकर उसने मंगलस्नान किया ॥ ३९० ॥ उससमयके योग्य वस्त्र आभूषण पहिने चलती हुई कल्पलताके समान अथवा उदय होते हुए सूर्यकी छोटी छोटी किरण समूहोंके समान सफेद छत्र लगाये, चमरोंके ढुराये जानेसे अपनी विभूतिको प्रगट करती हुई तथा अपने समीप रहनेवाले कितने ही लोगोंको साथ लेकर जिसप्रकार रात्रिमें चंद्रमाकी रेखा प्रवेश करती है उसी प्रकार उस ऐरा देवीने राजसभामें प्रवेश किया। वह उपचार विनयके साथ राजसभामें पहुंची और महाराजाने उसे बाईओरका अपना आधा आसन बैठनेके लिये दिया ॥ ३९१–३९३ ॥ ऐरा देवीने महाराजासे अनुक्रमसे अपने देखे हुए स्वप्न कह सुनाए और अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले उन महाराजसे उनके फल भी सुने ॥ ३९४ ॥ उसी समय चारों प्रकारके देवोंके साथ स्वर्गसे सब इंद्र आए और उन्होंने स्वर्गावतरण कल्याणका महोत्सव मनाया ॥ ३९५ ॥ इधर आनंद और बडी बडी विभूतियोंके साथ गर्भ बढने लगा, धीरे धीरे नौवां महीना आ पहुंचा अबतक इंद्रादि देवोंने पद्रह महीनेतक रत्नोंकी वर्षा कर तथा और भी अनेक तरहसे भगवानकी माताकी पूजा की थी। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन भरणी नक्षत्र

सार्द्ध मदरादेस्य मदिरं । जनन्याः सर्वमावेद्य जगदीशं समर्पयत् ॥ ४०७ ॥ अनृत्यच्चोद्भूतानंदो बहुभावरसोदय । सम्मदश्चेदमर्यादः सरागं क न नर्तयेत् ॥ ४०८ ॥ लोकपालांस्त्रिलोकानां पालकस्य महात्मनः । बालकस्यास्य कल्पेशः पालकान्पर्यकल्पयत् ॥ ४०९ ॥ इति द्वितीयकल्याणसाकल्य- समनतरं । सशकाः सर्वगीर्वाणाः स्व स्वमोक समं ययुः ॥ ४१० ॥ चतुर्विभक्तपल्योपमत्र्यंशोनत्रिसागरे । धर्मतीर्थस्य सताने पल्यतुर्यांशशेषिते ॥ ४११ ॥ व्युच्छिन्ने मुक्तिसन्मार्गे तदभ्यंतरजीवितः । शांति समुदपादानमभरामरनायक ॥ ४१२ ॥ लक्षा समायुश्चत्वारिंशच्चापांगः सुवर्णरुक् । ध्वज- तोरणसूर्येंदुशखचक्रादिलक्षण ॥ ४१३ ॥ पुण्याद्दृढरथो दीर्घमनुभूयाहमिंद्रतां । विश्वसेनाद्यशस्वत्या सुतश्चक्रायुधोऽभवत् ॥ ४१४ ॥ महामणिरिवाम्भोधौ गुणाना वा गणो मुनौ । तत्र शातिरगाद् वृद्धिं प्रमोदो वोदितोदिते ॥ ४१५ ॥ वर्द्धते स्म गुणास्तस्मिन् स्पर्द्धनावयवैः क्रमात् । तथा विधाय सौंदर्यं कीर्ति- लक्ष्मी सरस्वती ॥ ४१६ ॥ अभात्तस्यात्तसौंदर्यं रूपमापूर्णयौवने । विधोर्विधुततंकल्यमिव पर्वणि मडल ॥ ४१७ ॥ मृदवस्तनवः स्निग्धाः कृष्णा

द्रके भाव और रसोंसे भरा हुआ नृत्य किया सो ठीक ही है क्योंकि मर्यादारहित आनंद भला किस सरागीसे नृत्य नहीं कर लेता है ? ॥ ४०८ ॥ तदनंतर इंद्रने तीनों लोकोंको पालन करनेवाले उन महात्मा बालकको पालन करनेके लिये लोकपालोंको नियुक्त किया ॥ ४०९ ॥ इसप्रकार दूसरे जन्मकल्याणको पूर्णकर सब इंद्र और सब देव अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ४१० ॥ धर्मनाथ तीर्थंकरके बाद पौनपल्य कम तीन सागर बीत जानेपर तथा पाव पल्य- तक मोक्षमार्गका विच्छेद होने पर मनुष्य और इंद्रोंसे भी नमस्कार करानेवाले शांतिनाथ उत्पन्न हुये थे उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है ॥ ४११-४१२ ॥ इनकी आयु एक लाख वर्षकी थी, शरीरकी उंचाई चालीस धनुष थी सुवर्ण सरीखी शरीरकी कांति थी और ध्वजा तोरण चंद्रमा शख चक्र आदि सब शुभ लक्षण थे ॥ ४१३ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे दृढरथभी बहुत दिनतक अहमिंद्रोंका सुख भोगकर इन्हीं राजा विश्वसेनके यशस्वती रानीसे चक्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥ ४१४ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें महामणि होता है अथवा मुनियोंमें गुणोंके भंडार गणधर होते हैं उसी प्रकार पुण्यकर्मके उदयसे आनंदके साथ साथ वे शांतिनाथ भगवान भी वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे ॥ ४१५ ॥ उनमें अनुक्रमसे अवयवोंके साथ स्पर्द्धा करते हुए ही क्या मानों गुण बढ रहे थे और कीर्ति लक्ष्मी सरस्वती सगी बहिनके समान प्रेमपूर्वक रहती थीं ॥ ४१६ ॥ जिसप्रकार पौर्णमासीके दिन राहुके हटजानेपर चंद्रमंडल सुशोभित होता है उसी प्रकार पूर्ण यौवन अवस्था आनेपर उनका सुंदर रूप सुशोभित होता था ॥ ४१७ ॥ उनके मस्तकपर इकट्ठे हुए भ्रमरोंके समान कोमल पतले चिकने काले और घूंघरवाले शुभ बाल बडेही अच्छे जान पडते थे ॥४१८॥ मेरुपर्वतके शिखर-

...पमा। प्राचिताश्चचरीकाभा शुभारत्नमस्तकस्थिताः ॥ ४१८ ॥ शिरो विराजते तस्य शिखरं वा मरुन्मरोः । ललाटास्पदमाजोसादहमेवा-
परीति वा ॥ ४१९ ॥ लक्ष्मीर्ललाटपट्टेस्मिंस्तस्य पट्टद्वयार्चिता । राजतामिति वा तुंगं विस्तीर्णं च व्यधाद्विधिः ॥ ४२० ॥ सुरूपे कुटिले चास्य भ्रुवौ वेश्येव
रेजतुः । कुटिलेति न रेखा किं पीयूषाशोर्विराजते ॥ ४२१ ॥ आधिक्यं चक्षुषोः प्राहुः शुभावयवचिंतकाः । वीक्ष्य तच्चक्षुषी व्यक्तमितीयमनयोः स्तुतिः ॥
४२२ ॥ कर्णौ तस्य न वर्ण्येते निःशेषश्रुतपात्रतां । याती चेद् दुर्लभं तत्तु शोभान्यत्रापि विद्यते ॥ ४२३ ॥ अयं विनिर्जिताशेषं मोहमल्लं विजेष्यते ।
भात्वत्रैवेति वा तुंगा सगता नासिका कृता ॥ ४२४ ॥ कपोलफलकौ श्लक्ष्णौ धात्रा वा विपुलौ कृतौ । कृतौ तद्वक्त्रजसरस्वत्या विनोदेन विलेखितुं ॥४२५॥
स्मितभेदाः सरस्वत्याः किं किं शुद्धाक्षरावलिः । शकामिति सिताः स्निग्धाः घनास्तेनुर्द्विजाः समाः ॥ ४२६ ॥ वटबिंबप्रवालादि परेषां भवतूपमा ।

समान उनका शिर ऐसा अच्छा जान पडता था मानों पट्टको धारण करनेवाले इस ललाटसे एक हमी ऊंचे हैं यही लोगोंको बतला रहा हो ॥ ४१९ ॥ धर्मचक्र और राजचक्र दोनों पदोंसे पूजित हुई लक्ष्मी इसी ललाटपर सुशोभित रहे यही समझकर मानों नाम कर्मरूपी विधाताने उनका ललाट ऊंचा और विस्तृत बनाया था ॥ ४२० ॥ उनकी सुंदर और कुटिल (टेडी) भोएं वेश्याके समान सुशोभित होती थीं अथवा चंद्रमाकी कुटिल रेखा भी क्या सुशोभित नहीं होती है ? ॥४२१॥ शुभ अवयवोंको चिंतवन करनेवाले लोग उनके नेत्रोंको देखकर प्रगट रीतिसे यही उनकी स्तुति करते थे कि ये नेत्र कुछ बड़े हैं अर्थात् उनके नेत्र सबसे बडे थे॥४२२॥ उनके कानोंका वर्णन तो करना ही नहीं चाहिये, क्योंकि वे सब श्रुतज्ञानके पात्र थे और संसारमें यही दुर्लभ है शोभा तो दूसरी जगह भी हो सकती है॥४२३॥ये भगवान् सबको जीतने वाले मोहमल्लको भी जीतेंगे इसलिये ये इस लोकमें भी सुशोभित हों यही समझकर मानों उनकी नाक सबसे ऊंची बनाई गई थी ॥ ४२४ ॥ उनके मुखसे उत्पन्न हुई सरस्वती क्रीडापूर्वक कुछ लिखेगी इसीलिये मानों विधाताने उनके कपोल फलक चिकने और बडे बनाये थे ॥ ४२५ ॥ उनके समान सफेद चिकने और घने दांत यही शंका उत्पन्न करते थे कि क्या यह अनेक तरहका सरस्वतीका मंद हास्य है अथवा यह शुद्ध अक्षरोंकी पंक्ति है ॥ ४२६ ॥ वरगदका नया पत्ता, बिंबाफल अथवा प्रवाल आदि दूसरेके ओठोंके उपमा हो सकते हैं परंतु उनके ओठोंके उपमा नहीं थे इसीलिये उनका अधर (ओठ) अधर (नीचा) नहीं गिना जाता था अर्थात् ओठ सबसे उत्तम था ॥ ४२७ ॥ अन्य लोगोंका चिवुक तो आगामी कालमें डाढीसे ढक जाता है परंतु भगवानका वह चिवुक स्वभावसे ही सदा दिखलाई देता था इससे जानपड़ता है कि वह केवल शोभाके लिये ही था ॥

नास्याधरस्य तेनात्र स्पर्धते नाधरोधर ॥ ४२७ ॥ भवेच्चिबुकमन्येषा माविसतु किमप्यद । सदा दृश्यमिदं भावादिलककारीव शोभन ॥ ४२८ ॥ क्षयी कलंकी पंकोत्थ रजसा दूषित तत । नैतद्वक्त्रस्य साधर्म्यं धत्त स्मेंदुसरोरुहे ॥ ४२९ ॥ ध्वनिश्चेन्निर्गतस्तस्मादिव्यो विश्वार्थदर्पण । पृथक् सुकंठता तस्य कंठस्य किमु वर्ण्यते ॥ ४३० ॥ स्पर्द्धमानभुजाग्राभ्या तौंग्येन शिरसा सम । त्रिकूटहाटकाद्रिर्वा सोऽभात्त्रिभुवनप्रभुः ॥ ४३१ ॥ बाहू बाहुतरं तस्य भातस्माजानुलंबिता । धात्रीं सधर्तुकामा वा केयूरादिविभूषणो ॥ ४३२ ॥ व्यधायि वेधसा तस्य विस्तीर्णं वक्षस स्थल । असबाध वसत्वस्मिन्निति वा बहुश्रिय ॥ ४३३ ॥ व्याप्तमध्यमणिच्छायाहार वक्षो व्यभात्तत । मध्यीकृतार्कसध्याभ्रहेमाद्रितटसन्निभ ॥ ४३४ ॥ तन्मध्यं मुष्टिसम्मायि विभर्त्यूर्द्ध्वतनोर्भरं । गुरु निराकुल तस्य तानव तेन शोभते ॥ ४३५ ॥ गभीरा दक्षिणावर्ता तस्याभ्युदयसूचिनी । नाभिः सपद्मा मध्यस्था स्यात्पदं न स्तुते कुतः ॥ ४३६ ॥ कटी तटी कटीसूत्रधारिणी हारिणी भृश । सवेदिकास्थली वास्य जंबूद्वीपस्य भासते ॥ ४३७ ॥ वृते श्लक्ष्णे सुखस्पर्शे स्ता रंभास्तंभसन्निभे

४२८ ॥ चंद्रमा क्षय होनेवाला है और कलंकी है तथा कमल कीचडसे उत्पन्न होता है और धूलसे दूषित रहता है इसीलिये वे दोनों ही उनके मुखकी समानता नहीं कर सकते थे ॥ ४२९ ॥ जब उनके कंठसे दर्पणके समान सब पदार्थोंको प्रगट करनेवाली दिव्यध्वनि प्रगट होगी तब फिर भला उस कंठकी सुकंठताका अलग वर्णन क्या करना चाहिये ॥ ४३० ॥ तीनों लोकोंके प्रभु वे भगवान् ऊंचाईसे मस्तकके साथ स्पर्द्धा करते हुये दोनों कंधोंसे ऐसे अच्छे जान पडते थे मानों सुवर्णका बना हुआ त्रिकूटाचल पर्वत ही हो ॥ ४३१ ॥ घुटनोंतक लंबी और केयूर आदि आभूषणोंसे सुशोभित ऐसी बहुत सुंदर उनकी भुजाएं ऐसी अच्छी जान पडती थीं मानो पृथ्वीको उठाना ही चाहती हैं ॥ ४३२ ॥ अनेक लक्ष्मियां आकर इसमें विना किसी दूसरेको बाधा देती हुई एक साथ रहें इसीलिये मानों विधाताने उनका वक्ष स्थल बहुत ही बडा बनाया था ॥ ४३३ ॥ जिसके मध्यमें मणियांकी कांति पड रही है ऐसे हारसे सुशोभित उनका वक्षस्थल ऐसा अच्छा जान पडता था मानों जिसके मध्यमें सूर्यकी संध्याके बादल सुशोभित हो रहे हैं ऐसा हिमाचल पर्वतका तट ही हो ॥ ४३४ ॥ उस शरीरके मध्य भागमें मुष्टिमें माने योग्य और शरीरके ऊपरके बोझेको निराकुल रीतिसे धारण करता हुआ उसका मध्य भाग बहुत ही अच्छा था और उससे वे बहुत ही सुंदर दिखते थे ॥ ४३५ ॥ उनके अभ्युदयको सूचित करनेवाली गंभीर दक्षिणावर्त पद्मसहित और मध्यमें विराजमान उनकी नाभि भला स्तुतिकी पात्र क्यों नहीं थी अर्थात् वह बहुत ही प्रशंसा करने योग्य थी ॥ ४३६ ॥ करधनीके सूत्रको धारण करनेवाली और अत्यंत मनोहर ऐसी उनकी कमर जंबूद्वीपकी वेदीके समान सुशोभित होती थी ॥ ४३७ ॥

किंत्वस्योरू सदादत्तफले गुरुभरक्षमे ॥ ४३८ ॥ मर्यादाकारि यत्तस्मात्सदैतस्योरुजंघयोः । शस्यं जानुद्वयं सद्भिः सत्क्रियं किं न शस्यते ॥ ४३९ ॥ नाशेषदेवेंद्रौ पादपद्मौ श्रिया श्रितौ । तयोरुपरि चेज्जंघे तस्य का वर्णना परा ॥४४०॥ गुल्फयोरिव मंत्रस्य गूढतेव गुणोऽभवत् । फलदा सा ततः सर्वं फलकृत्वाद् गुणि स्मृतं ॥ ४४१ ॥ कूर्मपृष्ठौ क्रमौ तस्य श्रित्वा ता सुस्थिता धरा । धृता कूर्मेण धात्रीति ध्रुवं रूढिस्ततोऽभवत् ॥ ४४२ ॥ नावमोन्नतौ सुस्थौ तस्यांगुष्ठौ सुखाकरौ । रेजतुर्दर्शयंतौ वा मार्गं स्वर्गापवर्गयोः ॥ ४४३ ॥ अष्टावंगुलयस्तस्य बभु श्लिष्टाः परस्परं । कर्माण्यष्टावपन्होतुं निर्गता एव शक्तयः ॥ ४४४ ॥ दश धर्माः पुरैवैनं तद्व्याजेनेव सेवितुं । क्रमौ समाश्रितास्तस्य व्यराजंत नखा शुभा ॥ ४४५ ॥ अस्यावयवमावासे वासवाश्च नमंति नौ । इतीव रागिणौ तस्य पादौ पल्लवसन्निभा ॥ ४४६ ॥ नामृताशोर्निशासगाद्गुणत्वाद्भास्करस्य च । तेजस्तस्योपमानं स्याद् भूषण-

उनके ऊरू गोल, चिकने, केलेके थंभेके समान और स्पर्श करते समय सुख देनेवाले थे किंतु अंतर इतना था कि केलेपर एक ही बार फल लगता है और वे सदा फल देनेवाले थे तथा केला बोझ नहीं सह सकता और वे बहुत भारी बोझ सह सकते थे ॥ ४३८ ॥ उनके दोनों घुटनोंने ऊरु और जंघा दोनोंकी ही मर्यादा बांध दी थी इसलिये वे प्रशंसनीय थे सो ठीक ही है क्योंकि अच्छी क्रियायें करनेवालोंकी प्रशंसा क्यों न की जाय ॥ ४३९ ॥ उसके चरणकमल ही सब देवोंको तथा इंद्रोंको नमस्कार कराते थे और लक्ष्मी भी आकर उनकी सेवा करती थी जब उनके चरणोंका यह हाल था तब जंघाएं तो उनके ऊपर थीं इसलिये उनका और वर्णन करना व्यर्थ ही है ॥ ४४० ॥ जिसप्रकार मंत्रमें गूढता गुण रहता है उसीप्रकार उनके गुल्फोंमें (एडीके ऊपरकी गांठोंमें) भी गूढता गुण था अर्थात् उनके गुल्फ वेमालूम थे । परंतु उनकी वह गूढता भी फलदायक थी क्योंकि गुणवान सब फलदायक होनेसे ही गुणी माने जाते हैं ॥ ४४१ ॥ उनके दोनों चरण कछुएकी पीठके समान थे उनका आश्रय पाकर ही पृथ्वी निराकुल थी तथा उसीसमयसे ' पृथ्वी कछुएके आश्रय है ' यह रूढि प्रसिद्ध हुई है ॥ ४४२ ॥ मोटे, आगेसे कुछ ऊंचे स्थिर और सुख देनेवाले उनके दोनों पैरके अंगूठे ऐसे अच्छे जान पडते थे मानों स्वर्ग और मोक्षका मार्ग ही दिखला रहे हों ॥ ४४३ ॥ परस्पर सटी हुई बाकीकी पैरकी आठ उंगलियां ऐसी अच्छी जान पडती थीं मानों आठों कर्मोंका नाश करनेके लिये आठ शक्तियां हीं निकली हों ॥ ४४४ ॥ उनके पैरोंका आश्रय लेनेवाले और सुख देनेवाले दश नख ऐसे अच्छे जान पडते थे मानों उन नखोंके वहानेसे पहिलेसे ही दश धर्म उनकी सेवा करनेकेलिये आए हों ॥ ४४५ ॥ हम भगवानके शरीरके एक अवयव हैं इसीलिये इंद्रादि देव आकर हमको नमस्कार करते हैं

क्ष्मामतेजसः ॥ ४४७ ॥ कान्तेः [illegible] ॥ ४४८ ॥ [illegible]
मंडमात् । महामणिनिबद्धेद्धसुवर्णकर्णावतंस ॥ ४४९ ॥ [illegible] ॥ ४५० ॥
कीर्तिवल्ली जगदन्तं प्राप्य प्रागेव जन्मनः । [illegible] ॥ ४५१ ॥ [illegible]
न्विता तेनाभोगवत्प्रविदाधिनीः ॥ ४५२ ॥ [illegible] ॥ ४५३ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ ४५४ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ ४५५ ॥ [illegible] ॥ ४५६ ॥ [illegible]

यही समझकर मानों नवीन पत्तोंके समान उनके दोनों चरण रागी (राग सहित अथवा लाल रंगके) हो रहे थे ॥ ४४६ ॥ उनके तेजकी उपमा न तो चंद्रमाके तेजके दी जा सकती है और न सूर्यके तेजके साथ, क्योंकि चंद्रमाके साथ रात्रिका समागम रहता है और सूर्य अत्यंत उष्ण है इसलिये उनकी उपमा केवल आभूषण आदिके प्रकाशके साथ दी जासकती थी ॥ ४४७ ॥ उनकी कांतिका वर्णन तो करना ही नहीं चाहिये क्योंकि हजार नेत्रवाला इंद्र भी इंद्राणीके मुखकमलको छोडकर उनको देखता था ॥ ४४८ ॥ जिसप्रकार महामणियोंमें जिया हुआ सुवर्ण और उसमें सुवर्ण सुशोभित होता है उसीप्रकार उनके शरीरके साथ साथ आभूषणोंका समूह भी सुशोभित होता था ॥ ४४९ ॥ जिसप्रकार सिंहके शब्दसे ही हाथियोंका समूह नष्ट हो जाता है उसीप्रकार जिनका नाम सुनने मात्रसे मदोन्मत्त शत्रुरूप हाथियोंका समूह नष्ट हो जाता था ऐसे अनेक राजाओंके स्वामी उन भगवानका शब्द ठीक सिंहके समान सुशोभित होता था ॥ ४५० ॥ उनकी कीर्तिरूपी लता जन्मसे पहिले ही जगतके अंत तक पहुंच चुकी थी परंतु आगे उसे कुछ सहारा न मिलनेसे वह वहीं तक फैली रही ॥ ४५१ ॥ उनके पिताने कुल रूप वय शील कला और कांति आदिसे सुशोभित तथा सुख देनेवालीं अनेक कन्याओंके साथ उनका विवाह किया था ॥ ४५२ ॥ प्रेमामृतरूपी जलसे सींचे हुए स्त्रियोंके नीलकमलके दलके समान निर्मल नेत्रोंसे वे अपना हृदय बार बार प्रसन्न करते थे ॥४५३॥ अपने मनरूपी धनको लूटनेवाली स्त्रियोंकी तिरछी, चंचल, लीलापूर्वक और आलस भरी चितवनोंसे वे पूर्ण सुखको प्राप्त होते थे ॥ ४५४ ॥ इसतरह देव और मनुष्योंके सुख भोगते हुए उन भगवानके जब कुमार कालके पचीस हजार वर्ष व्यतीत होगये तब महाराज विश्वसेनने उन्हें अपना सब राज्य समर्पण कर दिया था इसतरह निरंतर मे-

दश । रत्नानि निधयोऽभूवन्नथ आविष्कृतौजसः ॥ ४५७ ॥ तेषु चक्रातपत्रासिदण्डाः शस्त्रगृहेऽभवन् । काकिणी चर्म चूलादिमणिश्च श्रीनिकेतने ॥ ४५८ ॥ पुरोधाः स्थपतिः सेनापतिर्गृहपतिश्च ते । हास्तिनाख्यपुरे कन्यागजाश्वाः खगभूधरे ॥ ४५९ ॥ नवापि निधयः पूज्या नदीसागरसंगमे । तदानीमेव देवेशैरानीताः पुण्यचोदितैः ॥ ४६० ॥ इत्याधिपत्यमासाद्य दशभोगागसंगतः । तावत्येव गते काले स्वालंकारालयान्तरे ॥ ४६१ ॥ अलंकुर्वन्निजच्छायाद्वयमालोक्य दर्पणे । साश्चर्यं चिंतयन्नेतत्किमित्यन्तर्गतं कृती ॥ ४६२ ॥ लब्धबोधिर्मतिज्ञानक्षयोपशमसंपदा । स्वजन्मांतरसंजातं स्मृत्वा निर्वेदमापवान् ॥ ४६३ ॥ घनच्छायासमाः सर्वसंपदः सशराहतिः । विद्युदुद्द्युतिवल्लक्ष्मीः कायो मायामयोपि वा ॥ ४६४ ॥ प्रातश्छायायुरात्मीयाः परकीया वियोगवत् । सयोगो हानिवद्वृद्धिर्जन्मेदं पूर्वजन्मवत् ॥ ४६५ ॥ इति चेतसि संपश्यन् सर्वमेतन्महीपतिः । निर्गंतुमुद्ययौ गेहाद्दूरीकृतदुराशयः ॥ ४६६ ॥

गोंकी अनुभव करते हुए उनका वह समय भी व्यतीत हो रहा था ॥ ४५५–४५६ ॥ जिनका पराक्रम प्रगट है ऐसे उन भगवानके राज्यके साधन चक्र आदि चौदह रत्न और नौ निधियां भी प्रगट हुई थीं ॥ ४५७ ॥ चौदह रत्नोंमें से चक्र, छत्र, तलवार और दंड ये आयुधशालामें उत्पन्न हुए थे, काकिणी चर्म और चूडामणि श्रीगृहमें प्रगट हुए थे पुरोहित, स्थपति, सेनापति और गृहपति हस्तनापुरमें ही मिले थे तथा कन्या (पट्टरानी) हाथी और घोडा विजयार्द्ध पर्वतसे प्राप्त हुए थे ॥ ४५८–४५९ ॥ इसीतरह पूज्य नौ निधियां भी पुण्यके द्वारा प्रेरणा किये हुए इंद्रने नदी और सागरके समागमपर उसीसमय लाकर दीं थीं ॥ ४६० ॥ इसतरह सबके स्वामी होकर और दश तरहके भोगोंका उपभोग करते हुए उनके राज्यकालके पच्चीस हजार वर्ष भी अपने अलंकारके घरमें ही व्यतीत होगये थे ॥४६१॥ किसी एक दिन वे भगवान अलंकार करते हुए दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे देखते देखते एक साथ दो प्रतिबिंब दिखाई दिये उन्हें देखकर वे पुण्यवान चित्तमें आश्चर्यके साथ विचार करने लगे कि यह क्या है? ॥४६२॥ उसीसमय उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमरूप संपत्तिसे पहिले जन्मकी सब बातें याद आगईं और उसीसे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ॥४६३॥ वे विचार करने लगे कि ये सब संपदाएं बादलकी छायाके समान हैं, लक्ष्मी बिजलीकी चमकके समान है और शरीर मायामयी ऐसा है ॥ ४६४ ॥ यह आयु सवेरेके समयकी छायाके समान है कुटुंब परिवारके लोग सब दूसरे हैं, संयोगके साथ वियोग है वृद्धिके साथ हानि है और यह जन्म पहिलेके जन्मोंके समान है ॥ ४६५ ॥ सब दुराशयोंको दूर फेंकनेवाले वे भगवान् शांतिनाथ इसप्रकार चित्तमें विचार करते हुए घरसे बाहर निकलनेके लिये तैयारी करने लगे ॥ ४६६ ॥ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर नि-

तदा लौकांतिका प्राप्य धर्मतीर्थस्य वर्द्धने । कालोयं तव देवस्य चिरविच्छिन्नसंततेः ॥ ४६७ ॥ इत्यवोचन्वचस्तेपामनुमत्य महामतिः । नारायणाय तद्राज्य सूनवे श्राणयन्मुदा ॥ ४६८ ॥ तत सुरगणाधीशविहितामिषवोत्सव । युक्तिमद्वचनैर्बंधून् मोचयित्वाग्रणी· सतां ॥४६९॥ सर्वार्थसिद्धिं शिवकामा रुह्य स मरुदूधृतां । सहस्राम्रवनं प्राप्य कमनीयशिलातले ॥ ४७० ॥ कुबेरदिग्मुखो बद्धपल्यंकासनसुस्थित । ज्येष्ठे मास्यसिते पक्षे चतुर्थ्यामपराह्णके ॥ ४७१ ॥ ऋक्षे षष्ठोपवासेन भरण्यां प्रणिधानवत् । कृतसिद्धनमस्कारस्त्यक्तवस्त्रादिपरिच्छद ॥ ४७२ ॥ पचमुष्टिभिरुल्लुच्य केशान् क्लेशानिवायतान् । आत्त रूपं हसद्दीप्त्या जातरूपमवाप्य सः ॥ ४७३ ॥ सद्य सामयिकीं शुद्धिं समनःपर्ययामगात् । केशास्तदैव देवेशो ज्वलत्पटलिकाश्रितान् ॥ ४७४ ॥ यथाबहुगुणीभूतानामोदमिलितालिभि । पचमाब्धितरंगाणा परभागे व्यधात्तरां ॥ ४७५ ॥ चक्रायुधादि तद्राजा सहस्र सह संयम । शांतिनाथेन सप्रापदा पदामंतकारिणा ॥ ४७६ ॥ भूयादस्माकमप्येवमित्याशासनतत्पराः । पुण्य पण्य समादाय भक्तिमौल्येन भाक्तिका ॥ ४७७ ॥ पाकशासनमुख्याश्च

वेदन किया कि हे भगवन् ! आपका यह समय चिरकालसे विछिन्न हुए इस धर्मतीर्थके बढानेका है ॥ ४६७ ॥ महा बुद्धिमान् भगवानने उन देवोंके कहे हुए वचनोंमें अनुमति दी और बडी प्रसन्नतासे अपने पुत्र नारायणको राज्य दिया ॥ ४६८ ॥ तदनंतर इंद्रादि देवोंने आकर दीक्षा कल्याणका अभिषेककर उत्सव मनाया और सज्जनोंमें मुख्य उन भगवानने बडी युक्तियोंके वचनोंसे समझाकर भाई बंधुओंको छोडा ॥ ४६९ ॥ देवोंके द्वारा उठाई हुई सर्वार्थसिद्धि नामकी पालकीपर सवार होकर वे सहस्राम्र वनमें पहुचे उत्तर दिशाकी ओर मुखकर पल्यंकासनसे एक सुदर शिलापर विराजमान हुए। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थीके दिन शामके समय भरणि नक्षत्रमें तेलाका नियम लेकर साक्षात् ध्यानके समान स्थित हुए, सिद्धोंको नमस्कार कर वस्त्रादिपरिग्रहोंका त्याग किया, लंबे क्लेशोंके समान केशोंको पांच मुट्ठियोंसे लोंच किया और अपनी कांतिसे सुवर्णकी ओर भी हंसते हुए उन्होंने दिगंबर अवस्था धारण की ॥ ४७०–४७३ ॥ सामायिककी शुद्धतासे उसीसमय उन्हें मन·पर्यय ज्ञान प्रगट हुआ। सुगंधसे आकर इकट्ठे हुये भ्रमरोंसे जिनके बहुतसे गुण प्रगट हो रहे हैं ऐसे उन केशोंको इंद्रने एक देदीप्यमान पिटारेमें रक्खा और पांचवें क्षीरसागरकी तरंगमें जा क्षेपण किया ॥ ४७४--४७५ ॥ आपत्तियोंको नाश करनेवाले भगवान शांतिनाथके साथ २ चक्रायुध आदि एक हजार राजाओंने संयम धारण किया था ४७६ ॥ हमारी भी यह अवस्था हो अर्थात् हम भी संयम धारण करें इसप्रकार आशा करते हुए तथा अपने स्वर्ग लोकको जानेकी इच्छा करते हुए इंद्र आदि सब भक्तिवाले देव अपनी भक्तिके मूल्यमें पुण्यरूपी सौदा लेकर अपने अपने स्थानको चले गये। इधर भगवानने चर्याके लिये पवित्र

नाकलोकोत्सुका ययु । रत्नाश्रमान् विश्वलोकेशो पवित्रं मंदरं पुरं ॥४७८॥ प्रविष्टाय प्रदायास्म प्रासुकं परमोत्सवात् । सुमित्राख्यमहीपालः प्रापदाश्चर्यपंचकं ॥ ४७९ ॥ क्रमादेवं तप कुर्वन्नुर्वी सर्वां पवित्रयन् । तनूकृतकषाय सन् मोहारातिजिगीषया ॥ ४८० ॥ बहुभिर्मुनिभिः सार्द्धं श्रीमान् चक्रायुधादिभिः । सहस्राम्रवनं प्राप्य नद्यावर्ततरोरध ॥ ४८१ ॥ श्रेष्ठ षष्ठोपवासेन धवले दशमीदिने । पौषे मासि दिनस्याते पल्यंकासनमास्थित ॥ ४८२ ॥ प्राग्मुखो बाह्यसामग्रीं नैर्ग्रंथ्यादिमवाप्तवान् । करणत्रयसंप्राप्तिक्षपकश्रेणिमध्यग- ॥ ४८३ ॥ आरूढतुर्यचारित्ररथो धर्म्याभिधानभाक्-ध्यानासिहतमोहारि- वीतरागोत्थसंयमः ॥ ४८४ ॥ द्वितीयशुक्लसद्ध्यानचक्रविच्छिन्नघातिक । एवं षोडशवर्षाणि छाद्मस्थ्य भावमाश्रित ॥ ४८५ ॥ निर्ग्रंथो नीरजा वीतविघ्नो विश्वकबांधवः । केवलज्ञानसाम्राज्यश्रियं शांतामशिश्रियत् ॥४८६॥ तदातीर्थकराख्योरुं पुण्यकर्ममहामरुत्- सक्षोभितचतुर्भेदसुराभोधिविजृंभित ॥४८७॥ स्वसमुद्भूतसद्भक्तितरंगानीतपूजनः । रत्नावलीभिरित्येत प्रार्थयत्प्राणभृत्पतिं॥४८८॥चक्रायुधादयश्चास्य षट्त्रिंशद्गणनायकाः । शतान्यष्टौ समाख्याताः पूर्वा-

मंदरपुरमें प्रवेश किया और वहांपर सुमित्र नामके महाराजने बडे उत्सवसे प्रासुक आहार दिया जिससे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ४७७–४७९ ॥ इसप्रकार तपश्चरण करते हुए उन्होंने अनुक्रमसे सब पृथ्वी पवित्र की, मोहरूपी शत्रुको जीतनेके लिये कषायोंको कृश किया, चक्रायुध आदि अनेक मुनियोंके साथ २ वे श्रीमान् भगवान सबसे श्रेष्ठ सहस्राम्र वनमें पहुंचकर तेलाका नियमकर नद्या वर्त नामके वृक्षके नीचे विराजमान हुए । उससमय पूर्वकी ओर उनका मुख था और निर्ग्रंथता आदि सब बाह्य सामग्री उपस्थित थीं । तीनों कारणोंको धारणकर वे क्षपक श्रेणीके मध्यमें जा विराजमान हुए, सूक्ष्मसांपराय नामके चौथे चारित्ररूपी रथमें विराजमान होकर धर्म ध्यानरूपी तलवारसे मोहरूपी शत्रुको नाशकर उन्होंने वीतराग संयम धारण किया और दूसरे शुक्लध्यानरूपी चक्रसे घातिया कर्मोंका नाश किया । इसतरह सोलह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था धारण करनेके बाद पौष शुक्ला दशमीके दिन शामके समय, मोहरूपी परिग्रहरहित ज्ञानावरण दर्शनावरणरूपी धूल रहित अंतरायरूपी विघ्न रहित और सब संसारके एक बंधु ऐसे उन भगवानके केवलज्ञानरूपी शांत साम्राज्य लक्ष्मी प्राप्त हुई ॥ ४८०–४८६ ॥ उसीसमय तीर्थंकर नामका बडाभारी पुण्यकर्म रूप महा वायु चारोंप्रकारके देवोंके समुदायरूपी महासागरको क्षुब्ध करता हुआ बडे वेगसे बहने लगा ॥ ४८७ ॥ उत्पन्न हुई अपनी उत्तम भक्तिरूपी तुरंगोंसे सब लोग पूजनकी सामग्री लाये और आकर रत्न समूहोंसे सब प्राणियोंके स्वामी उन शांतिनाथ भगवानकी पूजा करने लगे ॥ ४८८ ॥ उनके समवसरणमें चक्रायुधको आदि लेकर सब छत्तीस गणधर थे और आठ सौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार श्रुतकेवली थे ॥ ४८९ ॥ इकतालीस हजार

र्णा पारदर्शिनः॥४८९॥शून्यद्वितयवस्वेकचतुर्निर्मितशिक्षका । त्रिसहस्रावधिज्ञानसमुज्ज्वलविलोचनः॥ ४९०॥ चतु सहस्रसंख्योक्तकेवलावगमेश्वरा । षट्सहस्राणि संप्रोक्ता विक्रियर्द्धिविभूषिताः ॥ ४९१ ॥ मन पर्ययसद्बोधसहस्राणां चतुष्टय । शून्यद्वयचतु पक्षलक्षिताः पूज्यवादिनः ॥ ४९२ ॥ ते द्विषष्टिसहस्राणि सर्वेपि मुनयो मता । आर्यिका हरिषेणाद्याः खद्वयत्रिखषट्मिता ॥ ४९३ ॥ श्रावका सुरकीर्त्याद्या लक्षद्वयनिरूपिता । अर्हद्दास्यादिकाः प्रोक्ता श्राविका द्विगुणास्ततः ॥ ४९४ ॥ देवा देव्योप्यसंख्यातास्तिर्यंचः सत्ययामिताः । इति द्वादशसि सार्द्धं गणैं सद्धर्ममादिशत् ॥ ४९५ ॥ विहरन्मासमात्रायुः सम्मेदाचलमागत । व्यपेतुव्याहृतिर्योगमास्थायाचलित विभु ॥ ४९६ ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां पूर्वरात्रे कृतक्रियः । तृतीयशुक्लध्यानेन रुद्धयोगो विबंधनः ॥ ४९७ ॥ इकारपंचकोच्चारमात्रकाले वियोगक । चतुर्थशुक्लध्यानेन निराकृततनुत्रयः ॥ ४९८ ॥ अगाद्भरणिनक्षत्रे लोकाग्रं गुण

आठसौ शिक्षक मुनि थे, और तीन हजार अवधिज्ञानरूपी निर्मल नेत्रोंको धारण करनेवाले थे ॥ ४९० ॥ चार हजार केवलज्ञानी और छहहजार विक्रिया ऋद्धिसे सुशोभित मुनिराज उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ४९१ ॥ चार हजार मन पर्ययज्ञानी और दो हजार चारसौ पूज्य वादी उनकी सभामें विराजमान थे ॥ ४९२ ॥ इसतरह सब मिलकर बासठ हजार मुनिराज थे । इनके सिवाय साठ हजार तीनसौ हरिषेणा आदि आर्जिकाएं थी, सुरकीर्ति आदि दो लाख श्रावक थे, अर्हद्दासी आदि चार लाख श्राविकाएं थीं, असंख्यात देव देवी थे और संख्यात तिर्यंच थे । इसप्रकार बारह सभाओंके साथ साथ वे भगवान सद्धर्मका उपदेश देते थे ॥ ४ ३-४९५ ॥ इसतरह विहार करते हुए जब उनकी एक महीनेकी आयु रह गई तब सम्मेद शिखरपर आ विराजमान हुए उस समय उन प्रभुने विहार करना छोड दिया था और योगोंको निश्चल धारण किया था ॥ ४९६ ॥ सब क्रियाओंको पूर्ण कर चुकनेवाले और बंधनरहित उन भगवानने तीसरे शुक्लध्यानसे योगोंका निरोध किया और अ इ उ ऋ ऌ इन पांचों अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतने ही समयमें सब कर्मोंका नाशकर उसीसमय चौथे शुक्लध्यानसे तीनों शरीरोंका नाश किया । इसतरह ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन शामके समय भरणि नक्षत्रमें वे भगवान केवल सम्यक्त्व आदि आठ गुणरूप शरीरको धारण किये हुए लोकके ऊपर जा विराजमान हुए । और अतीत कालमें गये हुए अनंत सिद्ध जहां विराजमान थे उन्हींमें जाकर मिल गये उसीसमय बडी भक्तिको धारण करनेवाले आलसरहित इंद्रों सहित चारों प्रकारके देव आये और शरीरसंस्कार आदि अंतिम पूजाकर तथा मोक्षकल्याणका उत्सव मनाकर अपने २ स्थानको चले गये ॥ ४९७-५०० ॥ चक्रायुध आदि नौ हजार मुनिराज इसीतरह अंतमें तीनों शरीरोंको नाशकर मुक्त हुए थे॥५०१॥इसप्रकार

विग्रह । अतीतकालेता सिद्धा यत्रानंता निरजना: ॥ ४९९ ॥ चतुर्विधामरा सेंद्राः निस्तद्वारुंद्रभक्तय: । कृत्वात्येष्टिं तदागत्य स्व स्वमावासमाश्रयन् ॥ ५०० ॥ चक्रायुधादयोप्येवमध्यायोत्यतनुत्रयं । हित्वा नव सहस्राणि निर्वृतिं यतयोगमन् ॥ ५०१ ॥ इति परममवाप्य ज्ञानदृक्सौख्यवीर्यस्फुरिततनुनिवास-व्याहृतिस्थानमुख्यं: । सुरपतिदृढपूज्य: शांतिभट्टारको वो दिशतु परमसप्तस्थानसंप्राप्तिमास: ॥ ५०२ ॥ कर्माण्यष्ट प्रकाराणि सफलान्युन्मूल्यनैर्मल्यवान् सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं निजमजः स्वीकृत्य कृत्यांतगः । स्वाकार विगतादिभूतसमये नष्टं समाप्य स्फुटं शातीशस्त्रिजगच्छिखामणिरभूदाविर्भवत्प्राभवः ॥५०३॥ श्रीषेण: कुरुजः सुरः खगपतिर्देवो हलेशोमरो यो वज्रायुधचक्रभृत्सुरपतिर्ग्रैवेयाहमिंद्र पदं । पश्चान्मेघरथो मुनींद्रमहितः सर्वार्थसिद्धिं श्रित शांतीशो जगदेकशांतिरतुलां दिश्याच्छ्रियं वश्चिरं ॥ ५०४ ॥ आदावनिंदिताभोगभूमिजो विमलप्रभ: । ततः श्रीविजयोदेवोनंतवीर्योनु नारकः ॥ ५०५ ॥ मेघनादः प्रतींद्रोभूतत्सहस्रायुधोजनि । ततोहमिंद्रकल्पेशोनल्पर्द्धिरभवत्ततः ॥५०६॥ च्युतो दृढरथो जज्ञे प्राज्ञो मेघरथानुजः । अत्यानुत्तरजश्चक्रायुधोगणधरोक्षरः ॥५०७॥

जिन्होंने उत्तम ज्ञान, दर्शन सुख वीर्य देदीप्यमान परमौदारिक शरीरका निवास और अनेक उत्तम विहारस्थान प्राप्त किये, अरहंत पद पाया और इंद्रादि देवोंने भी आकर जिनकी दृढ पूजाकी ऐसे श्रीशांतिनाथ भट्टारक तुम लोगोंको सात परमस्थानोंकी प्राप्ति करें ॥ ५०२ ॥ जो कारण और फल सहित आठों कर्मोंका निर्मूल नाशकर अत्यंत निर्मल हुए थे, आत्माके सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंको पाकर जो करने योग्य कार्योंके अंततक पहुंच गये थे अर्थात् कृत्य कृत्य और अजर अमर हो गये थे, मुक्त होनेसे एक समय पहिले तथा उस समयमें जो सब कर्मोंका नष्ट कर अपने स्वरूपको प्राप्त हो गये थे और जिनकी समवसरण आदि बहुतसी विभूति प्रगट हुई थी ऐसे वे श्री शांतिनाथ भगवान तीनों जगतके शिखामणि हुए थे ॥ ५०३ ॥ जो पहिले श्रीषेण राजा होकर उत्तम भोग भूमिया हुए थे, फिर देव होकर विद्याधर हुए थे, तदनंतर देव होकर हलधर हुए थे तथा देवोंके स्वामी अहमिंद्रका पद पाकर राजा मेघरथ हुए थे तदनंतर उत्तम मुनिराज होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुए थे और फिर जो संसारको एक ही शांति देने वाले शांतिनाथ तीर्थंकर हुए थे ऐसे वे भगवान तुम लोगोंको चिरकालके लिये उपमारहित मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ ५०२ ॥ पहिले अनिंदिता रानी हुई थीं फिर उत्तम भोग भूमिया हुआ, तदनंतर विमलप्रभ देव होकर राजा श्रीविजय हुआ फिर देव होकर अनंतवीर्य नारायण हुआ, पश्चात् नरकमें जाकर वहांसे आ राजा मेघनाद हुआ, फिर प्रतींद्र होकर सहस्रायुध हुआ, तदनंतर बड़ी भारी ऋद्धिको धारण करनेवाला कल्पोंका स्वामी अहमिंद्र हुआ, वहांसे च्युतकर मेघरथका छोटा भाई दृढरथ हुआ, वहांसे जाकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुआ और वहांसे आकर

इति हितकृतवेदी बद्धगाहार्दभाव: सकलजगदधीशा शांतिनाथेन सार्द्धं । परमसुखपद संप्राप चक्रायुधश्चो भवति किमिह नेष्टं सत्प्रयोगान्महद्भि: ॥५०८॥ अन्ये तावदिहासतां भगवता मध्येपि तीर्थेशिना कोसौ द्वादशजन्मसु प्रतिभवं प्राप्तप्रवृद्धिं परा । मुक्त्वा शांतिजिन ततो बुधजना ध्यायंतु सर्वं सर सार्वं शांतिजिनेंद्रमेव सतत शांतिं स्वयं प्रेप्सवः ॥ ५०९ ॥ ध्वस्तो मुक्तिपथ पुरुप्रभृतिभिर्देवैः पुनर्दर्शितः कितत्र प्रथितावधेर्गमयितु कोपि प्रभुर्नाभवत् । देवेनाभिहितस्त्वनेन समगादव्याहतस्त्वावधि तच्छांतिं समुपेत तत्रभवतामाद्य गुरुं धीधना: ॥ ५१० ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे शांतिचक्रधरतीर्थंकरपुराणं परिसमाप्तं त्रिषष्टितमं पर्व ॥ ६३ ॥

जो चक्रायुध होकर उत्तम गणधर और अंतमें सिद्ध हुआ ॥ ५०५–५०७ ॥ इसप्रकार अपने हित और किये हुएको जाननेवाले चक्रायुधने अपने भाईके साथ सौहार्द धारणकर समस्त जगतके स्वामी श्रीशांतिनाथके साथ परम सुख देनेवाला मोक्षपद प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि महात्मा लोगोंकी संगतिसे इस संसारमें क्या क्या इष्ट प्राप्त नहीं होते हैं ? अर्थात् सभी इष्टोंकी प्राप्ति होती है ॥ ५०९ ॥ इस संसारमें और लोगोंकी तो बात जाने दीजिये श्रीशांतिनाथ जिनराजको छोडकर भगवान तीर्थंकरोंमें भी अन्य ऐसा कौन है जिसने बारह जन्मोंमें भी प्रत्येक भवमें बडी भारी ऋद्धि प्राप्त की हो इसलिये हे विद्वान् लोगो ! यदि तुम भी सदा शांति चाहते हो तो सबसे उत्तम और सबका भला करनेवाले ऐसे श्री शांतिनाथ जिनराजका सदा ध्यान करते रहो ॥ ५१० ॥ जो मोक्षमार्ग भोगभूमि आदि होनेके करण नष्ट हो गया था वही श्रीऋषभदेवसे धर्मनाथ तीर्थंकर तक सबने फिरसे प्रगटकर दिखाया परंतु उस मोक्षमार्गको अंततक निर्वाह करनेकेलिये इन पंद्रह तीर्थंकरोंमेंसे कोई भी समर्थ नहीं हुआ तदनतर भगवान शांतिनाथने जो मोक्षमार्ग प्रगट किया वह विना किसी बाधा वा रुकावटके आजतक चला आ रहा है अर्थात् शांतिनाथके प्रगट किये मोक्षमार्गमें कभी विच्छेद नहीं हुआ । इसलिये हे बुद्धिमान लोगों ! तुम लोग भी आद्य गुरु श्री शांतिनाथका शरण लो ॥ ५११ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें शांतिनाथ तीर्थंकर और चक्रवर्तीका पुराण वर्णन करनेवाला यह तिरेसठवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

यो ग्रन्थमिव संत्यज्य ... मोक्षमार्गोपदेशिनः। सूक्ष्मान् रक्ष्य कुन्थून् कुन्थुः पायात् स पातु वः॥१॥ द्वीपेऽस्मिन् प्राग्विदेहस्य सीतादक्षि-
णे। वत्साख्ये विषये राजा सुसीमानगराधिपः॥२॥ अभूत्सिंहरथो नाम श्रीमान्सिंहपराक्रमः। संहतानपि विद्विषान् महिम्नैव वशं नयन्॥३॥
न्यायमार्गविवर्द्धी ... तस्य ... खिलभूचक्र नालोक्यन्ते दूरतः॥४॥ भोगानुभव एवास्य शास्त्रमार्गानुसारिणः। ऐहिकामुत्रिकीं सिद्धिमहितकी
र्त्तिविधिः॥५॥ स कदाचिद् दिवोल्कायाः पातमालोक्य कल्पयन्। इयं मोहमहारातिविघातायेति चेतसा॥६॥ तदैवोपेत्य नत्वाप्य वृषभं यतिपूर्व-
कं श्रुत्वा तद्वचनं भक्त्या धर्मतत्त्वस्य विस्तरं॥७॥ स्वयं समाहितमोहोऽहं यद्युल्कासूचितापदः। ममैवेति विनिश्चित्य सुधीर्मोहजिहासया॥८॥
राज्यभारं समारोप्य सुते सह महीभुजैः। बहुभिः संयमं प्राप्य विबुद्धैकादशाङ्गकः॥९॥ बद्ध्वा तत्कारणैस्तीर्थकरनामादिकं शुभं। स्वायुरन्ते समाराध्य प्राप...

अथ चौसठवां पर्व।

जिन्होंने कथाके समान सब परिग्रहोंका त्यागकर मोक्ष मार्गको दिखलानेवाले ग्रंथोंकी रक्षा की तथा कल्याण करनेकेलिये सूक्ष्मसे सूक्ष्म जीवोंकी भी रक्षा की ऐसे कुंथुनाथ तुम लोगोंकी रक्षा करें॥ १॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व-विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर वत्सा देशके सुसीमा नगरमें राजा सिंहरथ राज्य करता था वह श्रीमान् सिंहके समान पराक्रमी था केवल अपनी महिमासे ही इकट्ठे हुये सब शत्रुओंको वश करलेता था॥ २–३॥ न्याय-मार्गकी वृद्धि करनेवाले और समस्त पृथ्वीमंडलको दंड देनेवाले उस राजाको भयसे ही क्या मानों पाप और शत्रु बहुत दूरसे भी कभी नहीं देखते थे॥ ४॥ शास्त्रमार्गके अनुसार चलनेवाले और शत्रुओंका नाश करनेवाले उस राजाको भोगोंका अनुभव ही इस लोक और परलोक दोनों लोकोंकी सिद्धि करता था॥ ५॥ वह राजा किसी एक समय आकाशमें उल्कापात देखकर चित्तमें विचार करने लगा कि यही उल्का मोहरूप महा शत्रुको नाश करनेवाली है॥६॥ उसीसमय वह यतिवृषभ नामके मुनिराजके समीप गया और वहां उसने भक्तिपूर्वक उनके कहे हुये तत्वोंके विस्तारको सुना॥ ७॥ तथा मैं मोहकर्मसे जकडा हुआ था मुझे इस उल्काने ही सचेत किया यही विचारकर उस बुद्धिमानने मोहको नाश करनेकेलिये राज्यका भार तो अपने पुत्रको दिया और अनेक राजाओंके साथ संयम धारणकर ग्यारह अंगोंका पारगामी हुआ॥ ८–९॥ दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चितवनकर शुभ तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया और आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर अंतके सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुआ॥ १०॥

विम मनुत्तरं ॥ १० ॥ अन्वभूदप्रवीचारं सुखं तत्रात्तकौतुकं । मानस माननीयं यत् मुनीना चापरागजं ॥ ११ ॥ इह जंबूमति द्वीपे भरते कुरुजायले । हास्तिनाख्यपुराधीशः कौरवः काश्यपान्वयः ॥ १२ ॥ सूरसेनो महाराजः श्रीकातास्यप्रवल्लभा । देवेभ्यो वसुधारादिपूजामाप्तवती सती ॥ १३ ॥ भोगे मनोहरे यामे दशम्या निशि पश्चिमे । श्रावणे बहुले पक्षे नक्षत्रे कृत्तिकाह्वये ॥ १४ ॥ सर्वार्थसिद्धिदेवस्य स्वर्गावतरणक्षणे । दृष्टषोडशसुस्वप्ना गजं वक्त्रप्रवेशिनं ॥ १५ ॥ निशम्य याममेर्यादिमंगलध्वनिबोधिता । कृतनित्यक्रिया स्नात्वा धृतमंगलमंडना ॥ १६ ॥ आप्तैः कतिपयैरेव वृता विद्युद्विलासिनी । द्योतयंती सदोव्योम साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥ १७ ॥ कृतानुरूपविनया भर्तुरर्द्धासने स्थिता । स्वप्नावलीं निवेद्यास्माद्विदित्वावधिवीक्षणात् ॥ १८ ॥ फलान्यनुक्रमात्तेषा विकसद्वदनांबुजा । नलिनीवांशु सस्पर्शाद्भुष्णाशोरतुषत्तरा ॥ १९ ॥ तदैवानिमिषाधीशाः कल्याणाभिषवं तयोः । विधाय बहुधाभ्यर्च्य तोषयित्वा ययुर्दिवं ॥ २० ॥ शुक्तिमुक्ताविशेषेणवाभूत्सा तेन गर्भिणी । क्रोडीकृतामृतामीशुर्मेघरेखेव चाबभौ ॥ २१ ॥ नवमे मासि वैशाखशुक्लपक्षादिमे

वहांपर उसने कौतुकपूर्वक प्रवीचाररहित मानसिक मुनियोंको मान्य और रागरहित सुखोंका अनुभव किया ॥ ११ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें कुरुवंशी काश्यपगोत्री महाराजा सूरसेन राज्य करते थे उनकी पट्टरानीका नाम सती श्रीकांता था। रत्नादिकी वर्षा तथा और भी अनेक तरहसे इंद्रादि देवोंने आकर उसकी पूजा की थी ॥ १३ ॥ श्रावण कृष्ण दशमीके दिन रात्रिके पिछिले पहर कृतिका नक्षत्रमें जब सर्वार्थसिद्धिके उस अहमिंद्रकी आयु समाप्त होनेपर थी उसीसमय उस श्रीकांता देवीने शुभ सोलह स्वप्न देखे और अंतमें अपने मुखमें एक हाथी घुसता हुआ देखा ॥ १४–१५ ॥ सवेरे ही भेरी आदिकी मंगलध्वनि सुनकर जगी नित्य क्रियाकर स्नान किया आभूषण पहिने और थोडेसे अपने गुरुजनोंके साथ साथ बिजलीके समान विलास करती हुई सभारूपी आकाशको प्रकाशित करती हुई साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान राजसभामें गई, वहांपर अपनी योग्यताके अनुसार विनय किया और महाराजके आधे आसनपर जा विराजमान हुई। अवधिज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले महाराजसे सब स्वप्न कहे अनुक्रमसे उनका फल सुना और जिसप्रकार सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे कमलिनी संतुष्ट होती है उसीप्रकार अपने मुखरूपी कमलको प्रफुल्लित करती हुई वह संतुष्ट हुई ॥ १६-१९ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उन दोनोंका कल्याणाभिषेक किया अनेक तरहसे पूजा की और उन्हें संतुष्टकर वे सब अपने अपने स्वर्गको चले गये ॥ २० ॥ जिसप्र सीप सुशोभित होती है अथवा चंद्रमाको गोदीमें लेकर बादलोंकी रेखा सुशोभित होती है उसी प्रकार वह रानी सुशोभित होने लगी ॥ २१ ॥ जिसप्रकार

[illegible] । सोऽसूत तनयं योगे व [illegible] म [illegible] ॥ २२ ॥ तत्रागत्य पुरा सर्वे समभ्येत्य सुरासुराः । सुमेरुमनुनीत्वा क्षीरसागरवारिभिः ॥ २३ ॥ अभि-
वि [illegible] विभूष्य च कुंथुमाहू [illegible] स [illegible] समर्पयन् पित्रोरावासमात्मनः ॥ २४ ॥ शांतीशतीर्थसंतानकालेऽजनि जिनेश्वरः । पल्योपमार्धके पुण्यो विप-
स्तस्यान्तरजीवितः ॥ २५ ॥ [illegible] पंचसहस्रोनलक्षैः संवत्सरस्थितिः । पंचत्रिंशद्धनुःकायो निष्टप्ताष्टापदद्युतिः ॥ २६ ॥ सपंचसप्तनिवाग्निहि प्रमाणे संव-
त्सरान्तरे । नीत्वा कौमारमेतावत्येव काले च राजता ॥ २७ ॥ निजजन्मादिने चक्रे लक्ष्मीं सम्प्राप्य सम्भवात् । दशांगभोगान्निर्विश्य निःप्रतीतं निरंतरं ॥ २८ ॥
षडंगबलसंयुक्तः कदाचित्क्रीडितुं वनं । गत्वा रत्वा चिरं स्वैरं निवृत्याययनुः पुरं ॥ २९ ॥ मुनिमातपयोगेन स्थितं कंचिन्निरूपयन् । मंत्रिणं प्रति तर्ज-
न्या पश्य पश्येति चक्रभृत् ॥ ३० ॥ स तं निरीक्ष्य तत्रैव भक्त्यावनतमस्तकः । देवैवं दुष्करं कुर्वंस्तपः किं फलमाप्स्यति ॥ ३१ ॥ इत्यप्राक्षीन्नृपोऽप्यस्य

है उसीप्रकार नौवां महीना लगनेपर वैसाख शुक्ला पड़िवाके दिन कृतिका नक्षत्रमें उस देवीने वह पुत्र उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ उसीसमय इंद्रको आदि लेकर चारोंप्रकारके देव आए उस बालकको सुमेरु पर्वतपर ले जाकर क्षीर सागरके जलसे अभिषेक किया, वस्त्राभूषण पहनाये श्रीकुंथुनाथ नाम रक्खा और मातापिताके घर वापिस लाकर उन्हें समर्पण कर सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २३—२४ ॥ श्रीशांतिनाथ तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद आधा पल्य बीत जानेपर पुण्यसागर श्रीकुंथुनाथ हुये थे उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है ॥ २५ ॥ पिच्चानवे हजार वर्षकी उन की आयु थी पेंतीस धनुष ऊंचा शरीर था और शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी ॥ २६ ॥ तेईस हजार सातसौ पचास वर्ष कुमारकालके बीत जानेपर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था । तथा जब इतना ही समय राज्य करते हुये बीत गया तब चक्ररत्न उत्पन्न हुआ इसतरह वे बड़े आनंदसे बाधारहित निरंतर दश तरहके भोगोंका अनुभव करने लगे ॥ २७—२८ ॥ किसी एक दिन वे अपनी छह तरहकी सेना लेकर वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे वहां बहुत देरतक क्रीडा कर इच्छानुसार अपने नगरको वापिस आरहे थे । मार्गमें एक मुनिराज आतापन योग धारण किये हुये विराजमान थे उन्हें देखकर श्रीकुंथुनाथने अपनी तर्जिनी उंगलीका इशाराकर मंत्रीसे कहा कि देखो! देखो!! उन्हें देखकर मंत्रीने भी भक्तिसे मस्तक नवाकर नमस्कार किया और भगवानसे पूछने लगा कि ऐसे कठिन तपश्चरण करनेसे क्या फल मिलता है? महाराज कुंथुनाथनेभी कुछ कुछ हसते हुए कहा कि ऐसे कठिन तपश्चरण करनेसे समस्त कर्मोंको नाशकर इसी भवमें मोक्ष प्राप्त होती है यदि इसी मोक्ष नहीं हुई तो फिर इंद्र चक्रवर्ती आदिकी सुख संपदाओंका अनुभवकर उसे अनुक्रम से मोक्ष प्राप्त होती है ॥ २९-३३ ॥ जो परिग्रहोंका त्याग नहीं करता वही इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है इसप्रकार मोक्ष

भूयः स्मेरमुखोऽवदत् । भवेस्मिन्नेव निर्मूल्य कर्माण्याप्नोति निर्वृतिं ॥ ३२ ॥ न चेदेवं सुरेंद्रत्वचक्रवर्तित्वगोचरं । सुखमभ्युदयं भुक्त्वा क्रमाच्छाश्वतमेष्यति ॥ ३३ ॥ अपरित्यक्तसगस्य भवे पर्यटनं भवेत् । इत्युच्चैर्मुक्तिसंसारकरणं परमार्थवित् ॥ ३४ ॥ कालो माडलिकत्वेन यावाश्रीत सुखायुषा । ताव त्तेव समानीय महेच्छश्चक्रवर्तिना ॥ ३५ ॥ विरज्य राज्यभोगेषु निर्वाणसुखलिप्सया । स्वातीतभवबोधेन लब्धबोधिर्बुधोत्तम ॥ ३६ ॥ सारस्वतादिसंस्तोत्रमपि सभाव्य सादरं । स्वजे नियोज्य राज्यस्य भारं निष्क्रमणोत्सवं ॥ ३७ ॥ स्वयं सप्राप्य देवेंद्रः शिविकां विजयाभिधां । आरुह्यामरसवाह्यां सहेतुकवनं प्रति ॥ ३८ ॥ गत्वा षष्ठोपवासेन संयमं प्रत्यपद्यत । जन्ममा पक्षदिवसे कृत्तिकायां नृपोत्तमैः ॥ ३९ ॥ सहस्रेणाप तुर्यावबोधं च दिवसात्यये । पुरं हास्तिनमन्येद्युस्तस्मै गतवतेदित ॥ ४० ॥ आहारं धर्ममित्राख्य ।पाप चाश्चर्यपंचकं । कुर्वन्नेव तपोघोरं नीत्वा षोडशवत्सरान् ॥ ४१ ॥ जिनदीक्षावने षष्ठेनोपवासेन शुद्धिभाक् । तिलकद्रुममूलस्थश्चैत्रज्योत्स्नापराह्णके ॥ ४२ ॥ कृत्तिकायां तृतीयायां कैवल्यमुपपादयत् । मुदा तत्कालसप्राप्तसर्वामरसमर्थितं ॥

और संसारके कारणोंको तथा आत्माके शुद्ध स्वरूपको जाननेवाले बडी भारी इच्छाको धारण करनेवाले उन भगवानका जितना समय सुखपूर्वक मांडलिक राज्य करते हुये व्यतीत हुआ था उतना ही समय चक्रवर्तीका सुख भोगते हुये व्यतीत होगया तब मोक्ष सुखकी इच्छाकर वे राज्य भोगोंसे विरक्त हुए और उन सबसे उत्तम बुद्धिमानको पहिले भवका स्मरण हो आनेसे आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ३४–३६ ॥ उसीसमय सारस्वत आदि लौकांतिक देवोंने आकर उनकी सादर स्तुतिकी और पुत्रको राज्य देकर निष्क्रमण कल्याणके उत्सव मनानेकी इच्छासे स्वयं आये हुये इन्द्रादि देवों में से कुछ देवोंके द्वारा उठाई हुई विजया नामकी पालकीपर सवार होकर सहेतुक वनमें पहुंचे। वहांपर तेला का नियम लेकर जन्मके ही दिन अर्थात् वैशाख शुक्ला पडिवाके दिन कृतिका नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ साथ संयम धारण किया। उसीसमय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हुआ। पारणाके दिन उन्होंने हस्तनापुरमें प्रवेश किया और धर्ममित्रने आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इसतरह घोर तपश्चरण करते हुये उनके सोलह वर्ष व्यतीत होगये ॥ ३७–४१ ॥ किसी एक दिन परम शुद्धिको धारण करनेवाले वे भगवान् तेलाका नियम लेकर अपने दीक्षा लेनेके (सहेतुक) वनमें तिलकवृक्षके नीचे विराजमान हुए वहींपर चैत्र शुक्ला तृतीयाके दिन कृतिका नक्षत्रमे शामके समय उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उसीसमय प्रसन्न होकर सब इंद्रादि देव आए और सबने प्रार्थनाकर विधिपूर्वक ज्ञान कल्याणकी पूजा की। उन भगवानके स्वयंभू आदि पेंतीस गणधर थे, सातसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोके जानकार उत्तम मुनिराज थे और तेतालीस हजार एकसौ पचास मर्मवेदी शिक्षक थे ॥४२–४५॥ दो

४३ ॥ प्राप्य चतुर्थकल्याणपूजाविधिमवाप सः । तस्य स्वयंभू नामाद्यः पंचत्रिंशद्गणेशिनः ॥४४॥ शतानि सप्त पूर्वाणां संविदो मुनिसत्तमाः । खपंचैक-
त्रिवाद्ध्युक्ताः शिक्षका लक्षिताशयाः ॥ ४५ ॥ खद्वयेंद्रियपक्षोक्तास्तृतीयावगमामलाः । शून्यद्वयद्विवन्हयुक्ता केवलज्ञानभास्कराः ॥ ४६ ॥ खद्वयकेंद्रिय-
ज्ञातविक्रियर्द्धिविभूषणाः । त्रिशतत्रिसहस्राणि चतुर्थज्ञानधारिणः ॥ ४७ ॥ पंचाशद्द्विसहस्राणि ख्यातानुत्तरवादिनः । सर्वे ते पिंडिताः षष्टिसहस्राणि यमे-
श्वराः ॥४८॥भावितार्यिका ग्रून्यपंचवन्हिखपंभिता । त्रिलक्षाः श्राविका लक्षद्वयं सर्वेप्युपासकाः ॥४९॥देवा देव्योप्यसंख्यातास्तिर्यंचः संख्यया मिता ।
दिव्येन ध्वनिनामीषां कुर्वन्धर्मोपदेशनां ॥५०॥ देशान् विहृत्य मासायुः सम्मेदाचलमास्थितः । प्रतिमायोगमादाय सहस्रमुनिभिः सह॥५१॥ वैशाखज्योत्स्न-
पक्षादिदिने रात्रेः पुरातने । भागे कर्माणि निर्मूल्य कृत्तिकाया निरंजनः ॥ ५२ ॥ आसुर्गीर्वाणनिर्वाणपूजः आपत्परं पद । सशुद्धज्ञानवैराग्यसाबाधमविन-

हजार पांचसौ निर्मल अवधिज्ञानको जाननेवाले थे और तीनहजार दोसौ केवलज्ञानरूपी सूर्यसे सुशोभित मुनिराज थे॥४६॥ पांचहजार एकसौ विक्रियाऋद्धिको धारण करनेवाले और तीन हजार तीन सौ मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ४७ ॥ दोहजार पचास उत्तर देनेवाले वादी थे । इसतरह, सब मिलकर साठहजार मुनिराज थे ॥ ४८ ॥ इसीतरह साठहजार तीनसौ पचास भाविता आदि आर्जिकाएं थीं, तीन लाख श्राविकाएं दो लाख श्रावक, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे । भगवान कुंथुनाथने सब देशोंमें विहारकर अपनी दिव्यध्वनिसे इन सबको धर्मोपदेश दिया । जब उन की आयु एक महीनेकी रहगई तब प्रतिमा योग धारणकर सम्मेद शिखरपर आ विराजमान हुए और योग निरोधकर वैशाख शुक्ला पडिवाके दिन कृतिका नक्षत्रमें रात्रिके पहिले पहरमें एक हजार मुनियोंके साथसाथ सब कर्मोंका नाश-कर मुक्त हुए ॥ ४९–५२ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनकी मोक्षकल्याणकी पूजाकी और इसतरह उन भगवानने शुद्ध ज्ञान वैराग्यसे भरा हुआ निर्बाध और अविनश्वर सर्वोत्तम मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ५३ ॥ जो पहिले भव-में राजा सिंहरथ थे, फिर घोर तपश्चरणकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुए वहांसे आकर जिन्होंने तीर्थंकर और चक्रवर्ती दो पद पाये, जो छह तरहकी सेनाके स्वामी थे तीनों लोक मुख्य मानकर जिनकी पूजा करता था, जिन्होंने सम्यक्त्व आदि आत्माके आठों गुण प्राप्त किये और चूडामणि रत्नके समान तीनों लोकोंकी शिखर सिद्ध शिलाको प्रकाशित किया ऐसे श्री कुंथुनाथ जिनेंद्रदेव तुम लोगोंको जिसकी महिमाको कोई रोक नहीं सकता ऐसी सदा रहनेवाली मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ ५४ ॥ जिनके शरीरकी कांतिमें इंद्रसहित सभी देव मग्न हैं, तथा जिनके ज्ञानके प्रकाश-में पंचतत्त्व सहित सभी आकाश (लोकालोक दोनों) मग्न हैं अर्थात् जो सबके जानकार हैं, जो लक्ष्मीके स्थान

श्वरं ॥ ५३ ॥ आसीत्सिंहरथो नृप पृथुतपः सर्वार्थसिद्धीश्वरः । कल्याणद्वयभाक् षडंगविविरत्रैलोक्यमुख्यार्चित । प्राप्तात्माद्यगुणस्त्रिविष्टपशिखाग्रो-द्गामि चूडामणि-र्दिश्याद्द्व श्रियमप्रतीपमहिमा कुंथुर्जिन शाश्वतीं ॥ ५४ ॥ नेत्रज्योतिषि यस्य शक्रमहिता सर्वेपि मग्ना सुरा ज्ञानज्योतिषि पंच तत्त्वसहित लग्न नभश्चाखिल । लक्ष्मीधाम दधद्विधूतविततध्वांतः सधामद्वयं पथानं कथयत्वनतगुणभृत्कुंथुर्भवातस्य व. ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते कुंथुचक्रधरतीर्थंकरपुराण परिसमाप्त चतुः षष्टितम पर्व ॥ ६४ ॥

अथ पंचषष्टितमं पर्व ।

सरतारं परं सारं नरनायकृतानतिं । अगाधानारसंसारसागरोत्तारकारण ॥ १ ॥ द्वीपे जंबूद्रुमख्याते सीतोत्तरतटाश्रिते । कच्छाख्यविषये क्षेमपुराधीशो महीपतिः ॥ २ ॥ नाम्ना धनपति पाता प्रजानां जनताप्रिय । यात्री धेनुः स्वग तस्य दुग्धेस्म प्रस्तुतानिश ॥ ३ ॥ विनार्थिनिरपि त्यागी

हैं फैले हुए अज्ञानांधकारको नाश करनेवाले हैं जिन्होंने निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारके मोक्षमार्गका निरूपण किया है और जो अनंत गुणोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे श्रीकुंथुनाथ स्वामी तुम लोगोंके संसारका नाश करें ॥५५॥

इसप्रकार भवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीकुंथुनाथ तीर्थंकर और चक्रवर्तीका पुराण पूर्ण करनेवाला यह चौंठमवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

अथ पैंसठवां पर्व ।

अथानंतर–जो अगाध और असार ऐसे संसाररूपी सागरसे पारकर देनेमें कारण हैं अनेक राजा लोग जिन्हें नमस्कार करते हैं और जो सबसे उत्कृष्ट हैं ऐसे अरनाथकी तुम सब लोग सेवा करो ॥ १ ॥ इसी जंबूद्वीपके सीता नदीके उत्तर किनारेपर कच्छ नामका देश है उसके क्षेमपुर नगरमें धनपति नामका राजा राज्य करता था वह प्रजाको पालनेवाला और लोगोंको अत्यंत प्रिय था, पृथ्वी रूपी कामधेनुउसके मनोरथ सदा पूर्ण किया करती थी ॥ २–३ ॥ वह विना मांगनेवालोंके भी दानी था और विना शत्रुओंके भी उद्यमी था, समस्त मांगनेवालोंको संतुष्ट करनेवाले और समस्त शत्रुओंको नाश करनेवाले उस राजामें ये स्वाभाविक गुण थे ॥ ४ ॥ उसके राज्यमें राजा प्रजा सब लोग अपनी अपनी जीविकाके अनुसार धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करते थे इसलिये धर्मका उपति-

विनाप्यरिमिरुद्यमी । तर्पितार्थिनि धूतारौ तस्मिंस्तौ सहजौ गुणौ ॥ ४ ॥ स्वन्दत्यानुगमेनैव वर्गत्रयनिषेविणः । राजाप्रजाश्च राज्येऽस्मिंस्तत्र धर्मन्यतिक्रम ॥
५ ॥ कदाचिदरणीधर्त्ता पीत्वार्हनंदतीर्थकृत । दिव्यध्वनिसमुद्भूतधर्मसाररसायनं ॥ ६ ॥ विरज्य राज्यभोगात्तरसाद्राज्यं निजात्मजे । नियोज्य मंक्षु प्रव्र-
ज्यां जैनीं जन्मातकारिणीं ॥ ७ ॥ आसाद्यैकादशांगोरुपारावारस्य पारगः । दृव्यष्टकारणसवद्धतीर्थकृन्नामपुण्यकृत ॥ ८ ॥ प्रायोपगमनादापत्सजयंतेह
मिंद्रतां । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रोपमायुर्हस्ततनुप्रभः ॥ ९ ॥ शुक्लेश्याह्वय सार्द्धैर्मासै षोडशभि श्वसन् । त्रयास्त्रिंशत्सहस्रोक्तवर्षैर्मानसमाहरन् ॥ १० ॥ अमृत
नि प्रवीचारसुखसागरपारगः । स्वावधिज्ञाननिर्णीतलोकनाड्यर्थविस्तृति ॥ ११ ॥ स्वावधिक्षेत्रनिर्णीतप्रकाशवलविक्रियः । अतिप्रशांतरागादि
रासन्नीकृतनिर्वृतिः ॥ १२ ॥ सद्वेद्योदयसंभूतमन्वभूद् भोगमुत्तम । उदितोदितपर्यासिपर्यंतोपातमास्थित ॥ १३ ॥ द्वीपेऽस्मिन् भारते क्षेत्रे देशोस्ति कुरु-
जागलः । हस्तिनाख्य पुरं तस्य पतिर्गोत्रेण काश्यप ॥ १४ ॥ सोमवशसमुद्भूतसुदर्शनसमाह्वयः । मित्रसेना महादेवी प्राणेभ्योप्यस्य वल्लभा ॥१५॥

क्रम (उल्लंघन) कभी नहीं होता था ॥ ५ ॥ किसी एक समय उस राजाने अर्हनंद नामके तीर्थंकरसे उनकी दि-
व्यध्वनिसे प्रगट हुए धर्मका सार रूप रसायनका श्रवण किया तथा राज्य भोगसे विरक्त होकर शीघ्र ही अपने पुत्र-
को राज्य दिया और जन्ममरणको नाश करनेवाली जैनी दीक्षा शीघ्र ही धारण करली ॥ ६-७ ॥ ग्यारह अंग रूपी
महासागरके पार होकर महापुण्यको प्रगट करने वालीं सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन कर तीर्थंकर प्रकृतिका
बंध किया ॥ ८ ॥ प्रायोपगमन सन्याससे शरीर छोडकर जयंत नामके विमानमें (पंचोत्तरमें) अहमिंद्र हुआ वहांपर
उसकी तेतीस सागरकी आयु थी एक हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वह साडे सोलह महीने वाद श्वास लेता
था और तेतीस हजार वर्ष पीछे मानसिक अमृत आहार करता था । प्रवीचाररहित सुखसागरका पारगामी था तथा
अपने अवधिज्ञानसे लोकनाडीमें फैले हुए सब पदार्थोंको जानता था ॥ ९-११ ॥ उसके अवधिज्ञानका जितना क्षेत्र
था उतने ही क्षेत्रतक उसका प्रकाश वल और विक्रिया ऋद्धि थी, उसके रागद्वेष आदि सब शांत होगये थे और मोक्ष
उसके समीप ही आ चुकी थी ॥ १२ ॥ साता वेदनीयके उदयसे प्रगट हुए उत्तम भोगोंका वह अनुभव करता था ।
इसतरह उदयमें आई हुई पर्यासिके अंततक पहुंच गया था और आयुका अंतिम भाग भोग रहा था ॥ १३ ॥
अथानंतर-इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरुजांगल नामका देश है उसके हस्तिनापुर नगरमें सोमवंशमें उत्पन्न
हुआ काश्यप गोत्रीय सुदर्शन नामका राजा राज्य करता था उसके मित्रसेना नामकी महादेवी थी जोकि प्राणोंसे
भी प्यारी थी ॥ १४-१५ ॥ रत्नोंकी वर्षाकर इंद्रादि देवोंने भी बडे प्रेमसे उसकी पूजा की थी और फागुन कृष्णा

वसुधारादिका पूजा प्राप्य प्रीत्यानुफाल्गुने । मासेऽसिततृतीयायां रेवत्यां निशि पश्चिमे ॥ १६ ॥ भागे जयतदेवस्य स्वर्गावतरणक्षणे । दृष्टषोडशसुस्वप्नाफलं तेषां निजाधिपं ॥ १७ ॥ अनुयुज्यावधिज्ञानं तदुक्तफलसंश्रुतेः । प्राप्तत्रैलोक्यराज्येव प्रसीदत्परमोदया ॥ १८ ॥ ततोगतामराधीशकृतकल्याणसंम्मदा । निर्वृता निर्मदा नित्यरम्या सौम्यानना शुचिः ॥ १९ ॥ सवाह्यमाना देवीभिस्तत्कालोचितवस्तुभिः । मेघमालेव सद्गर्भमुद्वहती जगद्धितं ॥ २० ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे पुष्ययोगे चतुर्दशी–तिथौ त्रिविधसद्बोधं तनूजमुदपीपदत् ॥ २१ ॥ तस्य जन्मोत्सवस्यालं वर्णनाय मरुद्वराः । यदि स्वर्गं समुद्धास्य सर्वेप्यत्र समागताः ॥ २२ ॥ अत्यल्पं तृप्तिमापन्ना दीनानाथवनीपकाः । इतीदमिह संप्राप्तं यदि तृप्तिं जगत्त्रयं ॥ २३ ॥ कुंथुतीर्थेशसंताने पल्ये तुर्यांशसम्मिते । सहस्रकोटिवर्षोनतदभ्यंतरजीवितः ॥ २४ ॥ अरोजिनो जिनश्रीमानशीतिश्चतुरुत्तरा । वत्सराणां सहस्राणि परमायुः समुद्वहन् ॥ २५ ॥

तृतीयाके दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर उसने सोलह स्वप्न देखे थे और उसीदिन धनपतिके जीव जयत विमानके अहमिंद्रने वहांसे च्युत होकर उस मित्रसेनाके गर्भमें अवतार लिया था । सवेरा होते ही रानीने अपने स्वामीके पास जाकर उन स्वप्नोंके फल पूछे, महाराज सुदर्शन अवधिज्ञानी थे इसलिये अवधिज्ञानसे जानकर उन्होंने उन स्वप्नोंके फल कहे । उन स्वप्नोंके फल सुनकर अच्छीसे अच्छी विभूतिको धारण करनेवाली वह रानी तीनों लोकोंका राज्य पानेके समान प्रसन्न हुई ॥ १६–१८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर गर्भकल्याणका उत्सव मनाया जिससे वह देवी बहुत ही प्रसन्न हुई, कृत्यकृत्य, मदरहित, सदा मनोहर शांतचित्त और पवित्र उस देवीकी उससमय के योग्य वस्तुओंके द्वारा बहुतसी देवियां आकर सेवा करती थीं । इसतरह मेघमालाके समान वह संसारको हित करनेवाले उत्तम गर्भको धारण करती थी ॥ १९–२० ॥ मगसिर शुक्ला चतुर्दशीके पुष्य नक्षत्रमें उसने मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले पुत्र रत्नको प्रगट किया ॥ २१ ॥ उसके जन्म समयमें जो उत्सव हुआ था उसके वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है केवल इसीपरसे समझ लेना चाहिये कि इंद्रादि देव भी अपना स्वर्ग छोड कर अपनी अपनी देवियोंके साथ यहां आए थे ॥ २२ ॥ दीन अनाथ और याचक लोग उससमय खूब ही संतुष्ट हो गये थे यह कहना ठीक ही है क्योंकि उनके जन्मके समय तीनों लोक भरपूर संतुष्ट हो गया था ॥ २३ ॥ श्रीकुंथुनाथ तीर्थंकरके बाद एकहजार करोड वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जानेपर अरनाथ हुए थे उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल समझनी चाहिये ॥ २४ ॥ श्रीमान् जिनराज अरनाथ भगवानकी उत्कृष्ट आयु चौरासी हजार वर्षकी थी ॥ २५ ॥ तीस धनुष ऊंचा उनका शरीर था सुवर्णके समान उनकी कांति थी । वे लावण्यकी परम हद थे सौ-

त्रिधाचापतनूत्सेध चारुचामीकरच्छविः । लावण्यस्य परा ... ...यस्याकर परः ॥ २६ ॥ सौंदर्यस्य समुद्रोयमालयो रूपसंपदः । गुणाः किमस्मिन्संभूताः किं गुणेष्वस्य संभव ॥ २७ ॥ अभूद् गुणमयः किं वेत्याशंकां जनयन् जनान् । अवर्द्धत समं लक्ष्म्या बालकल्पद्रुमोपमः ॥ २८ ॥ तस्य शून्यत्रिकैकद्विप्रमाणामितवत्सरे । गते कुमारकालेऽभूद्राज्यं मांडलिकोचितं ॥ २९ ॥ तावत्येव गते काले तस्मिन् सकलचक्रिता । भोगान्समन्वभूद्भागे तृतीये स निजायुषः ॥ ३० ॥ कदाचिच्छारदांभोदविलयप्रतिलोकनात् । समुद्भूतस्वजन्मोपयोगबोधिः सुरोत्तमैः ॥ ३१॥ प्रबोधितोनुवादेन दत्वा राज्यं स्वसूनवे । अरविंदकुमाराय सुरैरूढामधिष्ठितः ॥ ३२॥ शिविकां वैजयन्त्याख्यां सहेतुकवनं गतः । दीक्षां षष्ठोपवासेन रेवत्यां दशमीदिने ॥ ३३ ॥ शुक्लेऽगान्मार्गशीर्षस्य सायाह्ने भूभुजैः सह । सहस्रेण चतुर्ज्ञानधारी च समजायत ॥३४॥ सम्यगेवं तपः कुर्वन् कदाचित्पारणादिने । प्रायाच्चक्रपुरं तस्मै दत्वान्नमपराजित ॥३५॥

भाग्यकी उत्तम खानि थे, सुंदरताके समुद्र थे और रूपसंपदाओंके घर थे । उन्हें देखकर लोगोंको ऐसी शंकाएं होती थीं कि गुण इनमें प्रगट हुए हैं अथवा ये गुणोंमें ही उत्पन्न हुए हैं अथवा ये स्वयं ही गुणरूप हैं ? इसप्रकार लक्ष्मी के साथ साथ छोटेसे कल्पवृक्षके समान वे वढने लगे ॥ २६–२८ ॥ इसतरह कुमार अवस्थाके इकईस हजार वर्ष व्यतीत होजानेपर मांडलिकके समान राज्य प्राप्त हुआ था ॥ २९ ॥ राज्य प्राप्त होनेके बाद इकईस हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर उन्हें सकल चक्रवर्त्तीका पद प्राप्त हुआ था और अपनी आयुके तीसरे भागमें अर्थात् तिरेसठ हजार वर्षकी आयुतक उन्होंने भोगोपभोगोंका अनुभव किया था ॥३०॥ तदनंतर किसी एक दिन शरद ऋतुके वादलों का नष्ट होना देखकर उन्हें जन्मको सार्थक बनानेवाला रत्नत्रय प्राप्त हुआ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकर उन्हें प्रबोधित किया अरनाथने अरविंदकुमार नामके अपने पुत्रको राज्य दिया और आप देवोंके द्वारा उठाई हुई वैजयंत नामकी पालकीपर सवार होकर सहेतुक वनमें गये वहांपर मगसिर शुक्ला दशमीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय वेलाका नियम लेकर एक हजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने दीक्षा धारणकी और उन्हें उसी समय मनःपर्यय ज्ञान प्रगट होगया ॥ ३१, ३४ ॥ इस तरह उन्होंने बहुत अच्छी तरह तपश्चरण किया, पारणाके दिन वे चक्रपुर नगरमें गये वहांपर सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा अपराजितने उन्हें आहार दान दिया और पंचाश्चर्य प्राप्त किये । इसतरह तपश्चरण करते हुए उनके छद्मस्थ अवस्थामें सोलह वर्ष व्यतीत होगये ॥ ३५–३६ ॥ तब सहेतुक नामके दीक्षा वनमें ही कार्तिक शुक्ला द्वादशीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय आमके वृक्षके नीचे वेलाका नियम धारणकर विराजमान थे वहींपर उन्होंने घातिया कर्मोंका नाश किया और अरहंत पद प्राप्त किया । देव लोगोंने उसीसमय आकर केवल

महीपति सुवर्णाभ प्रापदाश्चर्यपंचकं । छाद्मस्थ्येनाममस्तस्य मुनेर्वर्षाणि षोडश ॥३६॥ ततो दीक्षावने मासे कार्तिके द्वादशीदिने । रेवत्या शुक्लपक्षेऽपराह्णे चूततरोरधः ॥ ३७ ॥ षष्ठोपवासेनाहत्य घातन्यार्हंत्यमासदत् । सुराश्चतुर्थकल्याणे संभूयैनमपूजयन् ॥ ३८ ॥ कुंभार्याया गणेशोस्य त्रिंशत्पूर्वांगवेदिनः । शून्यैकषट्मिताः ज्ञेयाः शिक्षकाः सूक्ष्मबुद्धय ॥ ३९ ॥ पचबन्ह्यष्टपंचाभिमिताश्त्रिज्ञानधारिणः । शून्यद्वयाष्टपक्षोक्ताः केवलज्ञानलोचनाः ॥ ४० ॥ तावंत खद्वयरन्ध्राब्धिनिर्मिता विक्रियार्द्धिकाः । करणेंद्रियखद्व्युक्ता मन पर्ययबोधनाः ॥ ४१ ॥ शतानि षट् सहस्रं च तत्रानुत्तरवादिनः । सर्वे ते संचिताः पञ्चाशत्सहस्राणि सयता ॥ ४२ ॥ ज्ञेयाः षष्टिसहस्राणि यक्षिलाप्रमुखार्यिका । लक्षा षष्टिसहस्राणि श्रावका श्राविकाश्च ता ॥ ४३ ॥ लक्षत्रय विनिर्दिष्टा देवा पूर्वोक्तमानका । तिर्यग्भेदाश्च संख्याता इतो द्वादशभिर्गणैः ॥ ४४ ॥ एमिर्धर्मोपदेशार्थं व्यहरद्विषयान् शुचीन् । मासमात्रावशेषायुः सम्मेदगिरिमस्तके ॥ ४५ ॥ सहस्रमुनिभिः सार्द्धं प्रतिमायोगमास्थित । चैत्रकृष्णांतरेवत्या पूर्वरात्रेऽगमच्छिव ॥ ४६ ॥ तदागत्य सुराधीशा

ज्ञानका उत्सव मनाया और इकट्ठे होकर उनकी पूजा की ॥ ३७–३८ ॥ आर्य कुंभको आदि लेकर तीस तो उनके गणधर थे, छह सौ दस ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस सूक्ष्म बुद्धिको धारण करनेवाले शिक्षक थे, अट्ठाइस सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही अर्थात् अट्ठाईस सौ ही केवलज्ञानी थे, तेतालीससौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे और वीससौ पचपन मन पर्यय ज्ञानी थे ॥ ३९–४१ ॥ तथा सोलह सौ उत्तर अनुत्तरवादी थे इसतरह सब मिलाकर पचास हजार मुनिराज थे ॥ ४२ ॥ यक्षिलाको आदि लेकर साठ हजार अर्जिकाएं थीं एक लाख साठ हजार श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाए थीं । इनके शिवाय पहिले कहे अनुसार असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे । इसतरह बारह सभाओंसे सुशोभित होकर उन भगवानने धर्मोपदेश देनेकेलिये पवित्र देशोंमें विहार किया । जब उनकी आयु एक महीनेकी शेष रह गई तब वे एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमायोग धारणकर सम्मेद शिखरके मस्तकपर विराजमान हुए और चैत्र कृष्ण अमावस्याके दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके प्रारंभमें मोक्ष पधारे ॥ ४३–४६ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकी पूजनकी भक्तिपूर्वक सैकड़ों स्तुतियोंसे उनकी स्तुतिकी और फिर वे अपने अपने स्थानको चले गये॥४७॥जिन्होंने धर्म चक्रकी इच्छासे कुमारके चक्रके समान चक्रका त्याग कर दिया और मोक्षरूपी परम लक्ष्मीकी इच्छासे समस्त पृथ्वीके प्राप्त होनेसे प्रगट हुई राज्य लक्ष्मीको घटदासीके (पानी भरने वालीके) समान छोड़ दिया तथा जो पापरूपी शत्रुओंको नाश करनेवाले हैं ऐसे श्री अरनाथ जिनेंद्र देव भक्तिके भारसे नम्रीभूत हुए और संसारसे डरनेवाले ऐसे तुम भव्य

कृतनिर्वाणपूजनाः । स्तुत्वा स्तुतिशतैर्भक्त्या स्वं स्वमोकः समं ययुः ॥ ४७ ॥ त्यक्तं येन कुलालचक्रमिव तच्चक्रं धराचक्रवित्, श्रीवासो षट्दासिकं परमश्रीधर्मचक्रेप्सया । युष्मान्भक्तिभरानतान्स दुरितारातेरयं ध्वंसकृत्, पायाद्भव्यजनान्नरो जिनपतिः संसारभीरून् सदा ॥ ४८ ॥ क्षुत्तृड्भयादिगुरुकर्म कृतोरुदोषानष्टादशापि सनिमित्तमपाप्य शुद्धिं । यो लब्धवांस्त्रिभुवनैकगुरुर्गरीया-न्नष्टादशो दिशतु शीघ्रमर शिवं वः ॥ ४९ ॥ प्राग्योभून्नृपतिर्महान् धनपतिः पश्चाद्व्रतानां पतिः स्वर्गाग्रे विलसज्जयंतजपतिः प्रोद्यत्सुखानां पतिः । पट्खडाधिपतिश्चतुर्दशलसद्रत्नैर्निधीनां पतिः त्रैलोक्याधिपतिःपुनात्वरपतिः स संश्रितान् वश्चिरं ॥ ५० ॥ अथास्मिन्नेव तीर्थेभूत्सुभौमो नाम, चक्रभृत् । तृतीयजन्मन्यत्रैव भारतेसौ भुव पतिः ॥ ५१ ॥ भूपालो नाम संग्रामे बलिभिर्विजिगीषुभिः । प्राप्तोभिमानभंगः सन् भृश निर्विद्य सद्गते ॥ ५२ ॥ दीक्षा जैनेश्वरीमादात्स भूतगुरुसन्निधौ । कदाचित्स तपः कुर्वन्निदानमकरोत्सुधी ॥ ५३ ॥ भूयान्मे चक्रवर्तित्वमिति भोग्यानुपजनात् । क्षीरं विषेण वा तेन मनसा दूषितं तपः ॥ ५४ ॥ स तथैवाचरन् घोरं तपः स्वस्यायुषः क्षये । समाधाय महाशुक्रे सन्यासेनोदपद्यत ॥

लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ ४८ ॥ जो भूख प्यास भय आदि बडे भारी कर्म करनेवाले बडे बडे अठारह दोषोंको उनके कारणों सहित (कर्म सहित) नाशकर परम विशुद्धिको प्राप्त हुए, जो तीनों लोकोंके गुरु और सबसे बडे हैं ऐसे अठारहवें तीर्थंकर श्रीअरनाथ भगवान तुम लोगोंको शीघ्र ही मोक्ष दें ॥ ४९ ॥ जो पहिले धनपति नामके बडे राजा हुए थे फिर व्रतोंके स्वामी मुनिराज हुए तदनंतर उदय होते हुए अनेक सुखोंके स्वामी ऐसे स्वर्गोंके ऊपर शोभायमान जयंत विमानमें अहमिंद्र हुए, फिर छहो खंड पृथ्वीके स्वामी होकर चौदह रत्न और नौ निधियोंके स्वामी हुए तदनंतर जो तीनों लोकोंके स्वामी हुए ऐसे श्री अरनाथ भगवान अपने आश्रित तुम लोगोंको चिरकाल तक पालन करो ॥ ५० ॥

अथानंतर—इन्हीं अरनाथ भगवानके समय सुभौम चक्रवर्ती हुआ है वह तीसरे भवमें इसी भरतक्षेत्रमें भूपाल नामका राजा था । वह किसी युद्धमें जीतनेकी इच्छा करनेवाले वलवान राजासे हार गया तथा मान भंग होनेसे विरक्त होकर संभूत गुरुके समीप उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली किसी एक समय तपश्चरण करते हुए उस बुद्धिमानने भोगोंमें आसक्त होकर निदान किया कि मुझे चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त हो । इसतरह जिसप्रकार विषसे दूध विगड जाता है उसीप्रकार उसने मनसे अपना तपश्चरण दूषित कर लिया ॥ ५१–५४ ॥ वह उसीतरह घोर तपश्चरण करता रहा आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर शरीर छोड और महाशुक्र नामके दशवें स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ ॥ ५५ ॥ वहांपर उसकी सोलह सागरकी आयु थी । सोलह [illegible] सुखसे व्यतीत करने लगा इधर इसी भरत

५५॥तत्र षोडशवाराशिमानांयुः सुखमास्त स । द्वीपेस्मिन् भारते कौशलाख्ये राष्ट्रे गुणान्विते ॥५६॥ सहस्रवाहुरिक्ष्वाकु साकेतनगराधिप । राज्ञी तस्याभवच्चित्रमत्याख्या हृदयप्रिया॥५७॥कान्यकुब्जमहीशस्य पारताख्यस्य सात्मजा । तस्या सुतः सुपुण्येन कृतवीराधिपोभवत् ॥५८॥ तत्र प्रवर्द्धमानेस्मिन्निदमन्यदुदीर्यते । सहस्रभुजभूभर्तुः पितृव्याच्छतविंदुतः ॥ ५९ ॥ पारताख्यमहीशस्य श्रीमत्यास्तनय स्वसुः । जमदग्नि सरामांतः कौमारे मातृमृत्युत ॥ ६० ॥ निर्वेदात्तापसो भूत्वा पंचाग्नितपसि स्थित । दृढग्राहिमहीशस्य विप्रेण हरिशर्मणा ॥ ६१ ॥ अभूदखंडित सख्यमेव काले प्रयात्यसौ । दृढग्राही तपो, जैनमग्रहीद् ब्राह्मणोपि च ॥ ६२ ॥ तापसव्रतमतेभूज्ज्योतिर्लोके द्विजोत्तमः । दृढग्राही च सौधर्मे सोवधिज्ञानचक्षुषा ॥ ६३ ॥ मिथ्यात्वाज्ज्योतिषे लोके समुत्पन्न द्विजोत्तम । विज्ञाय जैनसद्धर्मं त ग्राहयितुमागमत् ॥ ६४ ॥ दृष्ट्वा त तत्र मिथ्यात्वात्त्वमेवं कुतिमंतो भवः । उत्कृष्टशुद्धसम्यक्त्वाद्देवभूय

क्षेत्रके वहुत गुणी कौशल देशमें अयोध्यानगरके इक्ष्वाकुवंशी राजा सहस्रवाहुके चित्रमती नामकी मनको अच्छी लगनेवाली रानी थी जोकि कुब्ज देशके पारत नामके राजाकी पुत्री थी उसके अपने पुण्योदयसे कृतवीराधिप नामका पुत्र हुआ ॥ ५६-५८ ॥ वह दिनों दिन वढने लगा इसीसे संवंध रखनेवाली एक कथा और है और वह इसप्रकार है कि राजा सहस्रवाहुके काका शतविंदुकी स्त्रीका नाम श्रीमती था जोकि पारत देशके राजाकी वहिन थी उसके जमदग्नि नामका एक पुत्र हुआ था । कुमार अवस्थामें ही उसकी माता मर गई थी इसलिये विरक्त होकर वह तपस्वी हो गया था और पंचाग्नि तपश्चरण तपने लगा था । इसीसे संवध रखनेवाली एक कथा यह है कि एक दृढग्राही नामके राजाकी हरिशर्मा नामके ब्राह्मणके साथ गाढ मित्रता थी । इसतरह कुछ समय वीतजानेपर राजा दृढग्राहीने तो जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली हरिशर्मा ब्राह्मणने भी तापसीके व्रत धारण कर लिये तथा वह मरकर ज्योतिर्लोकमें ज्योतिषी जातिका देव हुआ । इधर दृढग्राही भी शरीर छोडकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ । दृढग्राहीके जीवने अवधिज्ञानसे देखा कि मिथ्यात्वके प्रभावसे ही यह ब्राह्मण ज्योतिषी जातिका देव हुआ है यह जानकर वह उस ज्योतीषी देवको उत्तम जैन धर्म स्वीकार करानेके लिये आया ॥ ५९--६४ ॥ उस ज्योतिषी देवको देखकर वह दृढग्राहीका जीव कहने लगा कि मिथ्यात्वके प्रभावसे ही तू ऐसा नीच देव हुआ है और शुद्ध सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ही मैं उत्कृष्ट देव होकर यहां उत्पन्न हुआ हूं ॥ ६५ ॥ इसलिये मोक्षके साक्षात् कारण सम्यग्दर्शनको तू भी स्वीकार कर । इसप्रकार उस दृढग्राहीके जीवने कहा तव संशयकर वह ज्योतिषी देव कहने लगा कि तपसियोंका तप अशुद्ध क्यों है ? तव दृढग्राहीके जीवने कहा कि चलो पृथ्वीपर चलकर मैं तुझे दिखला देता हूं । इसतरह परस्पर वातचीत

महं गत ॥ ६५ ॥ तस्म ... ाक्षस्य मार्गमित्यब्रवीत्ततः कस्मादशुद...त सशयात् ॥ ६६ ॥ अन्वयुंक्त स तं सोपि दर्शयाम्येहि
भूतलं । इत्यन्योन्यं समालोच्य कीचकद्वन्द्वमागतौ ॥ ६७ ॥ जमदग्निमुनेर्दीर्घश्मश्रुचाश्रयमुपाश्रितौ । कांचितकालकलां स्थित्वा सद्दृष्टि मुरकीचकः॥६८॥
सममाषत मायाज्ञो ज्योतिष्कामरकीचकौ । एतद्वनांतरं गत्वा प्रत्यायास्याम्यहं प्रिये ॥ ६९ ॥ प्रतीक्षस्वात्र मां स्थित्वेत्यसौ चाहागमं तव । न श्रद्दधामि
मे देहि शपथं यदि यास्यसि ॥ ७० ॥ इत्युत सोऽब्रवीद् ब्रूहि पातकेषु किमिच्छसि । पंचसु त्वमहं तस्मिन् दास्यामि तदिति स्फुटं ॥ ७१ ॥ साप्याह
तेषु मे वाछा कस्मिंश्चिन्नैव देहि मे । तापसस्यास्य यास्यामि गतिं नैष्याम्यहं यदि ॥ ७२ ॥ इतीमं शपथं गंतुं मुंचामि त्वां प्रियेति तं । तच्छ्रुत्वा
कीचकं प्राह मुक्त्वैनं किंचिदीप्सितं ॥ ७३ ॥ ब्रूह्यन्यमिति तद्द्वंदविसवादं स तापसः । श्रुत्वा क्रोधेन संतप्तो विघूर्णितविलोचन ॥ ७४ ॥ हस्ताभ्यां
हंतुमुत्कोपाद्गृहीत्वा निश्चलं द्विजौ । मद्दुर्धरतपः प्राप्य भाविलोकोनमीप्सितः ॥ ७५ ॥ युवाभ्यां केन तद्वाच्यमित्यहोतः खगोब्रवीत् । मागमः कोप

कर और दोनोंही चिडा तथा चिडियाका रूप बनाकर पृथ्वीपर आगये ॥ ६६--६७ ॥ यहां आकर वे दोनों ही जमदग्नि मुनिकी बडी बडी मूंछ और दाढीमें रहने लगे, थोडे समयतक तो वे वहां रहे फिर मायाको जाननेवाला दृढग्राहीका जीव चिडा ज्योतिषी देवका जीव चिडियासे कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं इस वनमें जाता हूं आकर जल्दी ही लौट आऊंगा तू यहां ही रहकर मेरी प्रतीक्षा करना । इसके उत्तरमें वह चिडिया कहने लगी कि तेरे आनेका मुझे विश्वास नहीं है यदि तू जाता ही है तो शपथ (सौगंद) दे जा ॥ ६८--७० ॥ तब वह चिडा कहने लगा कि पांचों पापोंमें से तू किसकी इच्छा करती है मैं उसीकी सौगंद तुझे दे जाऊंगा ॥ ७१ ॥ तब वह चिडिया कहने लगीकि उन पांचों पापोंमें से तो मुझे किसीकी इच्छा नहीं है यदि तू जाना ही चाहता है तो तू यह सौगंद दे कि यदि मैं न आऊं तो इस तापसीकी गतिको प्राप्त होऊं हे प्रिय ! मैं इस सौगंदपर तुझे जानेकी आज्ञा दे सकती हूं। यह सुनकर वह चिडा कहने लगा कि इसको छोडकर तू अन्य किसी इष्टकी सौगंध ले इस तरह उन दोनोंमें कुछ झगडा होता रहा। यह सुन उस जमदग्नि तपस्वीको क्रोध आया, क्रोधसे वह लाल होगया नेत्र घूमने लगे वह अपने हाथसे उन दोनों पक्षियोंको मारनेके लिये उद्यमी हुआ उसने दोनों पक्षियोंको निश्चल रीतिसे (जकडकर) पकड लिया और कहने लगा कि बताओ तुमने किस कारणसे मेरे दुर्द्धर तपश्चरणको दुर्गतिका कारण वा आगामी लोगोंके लिये अवांछनीय बतलाया है। इसके उत्तरमें वह चिडा कहने लगा—आप क्रोध न करें इससे आपका सौजन्य नष्ट हो जायगा ॥ ७१--७६ ॥ क्या थोडीसी ही अमृतरूपी छाछसे

मेतेन सौजन्यं तव नश्यति ॥ ७६ ॥ यात्पात च न तक्रेण पयोल्पेन न किं क्षतिं । शृणु ते दुर्गतेर्हेतुं चिरं घोरं तपस्यतः ॥ ७७ ॥ कौमारब्रह्मचारित्वं तव सततिविच्छिदे । सतानघातिन पुंसः का गतिर्नरकाद्विना ॥ ७८ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्तीत्यार्षं किं न त्वया श्रुतं । कुतोऽविचारयन्नेव क्लिश्नासि जडधीरिति ॥ ७९ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं मंदमिति निश्चित्य तत्तथा । वधूजनेषु सक्तानामज्ञानतपसः क्षितिं ॥ ८० ॥ ममोपकारकावेताविति मुक्त्वा द्विजद्वय । वंचितोगान्कुधीस्ताभ्यां कन्यकुब्जाधिप प्रति ॥ ८१ ॥ स्थास्तु नाज्ञानवैराग्यमित्यत्राघोषयन्निव । दृष्ट्वा पारतभूपालमात्ममातुलमत्रपः ॥ ८२ ॥ आकारेणैव कन्यार्थागमनं स निवेदयन् । आसनद्वयमालोक्य सरागासनमास्थितः ॥ ८३ ॥ निजागमनवृत्तांतं महीपतिमजीगमत् । तदाकर्ण्य नृपः खेदाद्धिग्धिगज्ञानमित्यमुं॥८४॥ कन्याशत ममास्त्यत्र या त्वामिच्छति सास्तु ते । इत्यवोचदसौ चागात्कन्यकास्त निरीक्ष्य ताः ॥८५॥ अर्द्धदग्ध

दूध नष्ट नहीं हो जाता है यद्यपि तैने घोर तपश्चरण किया है तथापि तू अपनी दुर्गतिका कारण सुन! तू कुमार कालसे ही ब्रह्मचारी है इसलिये तेरे कोई संतान नहीं है संतानका घात करनेवाले पुरुषकी नरकके विना भला और कौनसी गति हो सकती है ॥ ७७–७८ ॥ जिसके पुत्र नहीं है उसकी कोई गति नहीं होती क्या तैने यह वेदका वाक्य नहीं सुना है, हे मूर्ख! तू विना विचार किये ही क्यों इसप्रकारका दुःख भोगता है ॥ ७९ ॥ इसतरह उनके मंद वचन सुनकर जमदग्निने वैसा ही निश्चय करलिया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंमें आसक्त पुरुषोंको अज्ञानतपश्चरणकी ही पृथ्वी प्राप्त होती है ॥ ८० ॥ ये दोनों पक्षी मेरे उपकारी हैं यही समझकर जमदग्निने उन दोनोंको छोड दिया इसतरह उन दोनों पक्षियोंसे ठगा जाकर वह मूर्ख तपस्वी कन्यकुब्ज देशके राजाके पास पहुंचा मानों अज्ञानजन्य वैराग्य स्थिर नहीं रहता इसकी घोषणा ही कर रहा हो। वहां अपने मामा पारत देशके राजाको देखकर उस निर्लज्जने इशारेसे ही बतला दिया कि मैं कन्या मागनेके लिये यहां आया हूं राजाने उसके लिये एक वीतरागियोंके योग्य और दूसरा सरागियोंके योग्य ऐसे दो आसन डाल दिये उनमेंसे वह जमदग्नि सरागियोंके योग्य आसनपर बैठ गया ॥ ८१–८३ ॥ उसने राजासे अपने आनेका कारण भी कह सुनाया जिसे सुनकर खेदसे राजा कहने लगा कि इस अज्ञानको धिक्कार है ॥ ८४ ॥ फिर राजाने कहा कि मेरे सौ कन्याएं हैं उनमेंसे जो तुझे चाहेगी उसीको मैं तुझे दे दूंगा इसतरह बातचीतके बाद वह जमदग्नि उन कन्याओंके यहां गया परंतु वे कन्याएं तपश्चरणसे जिसका शरीर अत्यत कृश हो रहा है ऐसे जमदग्निको देखकर और उसे अध जला मुरदा समझकर कोई तो ग्लानि करती हुई वहांसे भाग गई और कितनी ही डरसे भाग गई ॥ ८५–८६ ॥ यह देखकर जमदग्नि भी लज्जा-

शवं मत्वा तपोदग्नशरीरकं । जुगुप्सयाऽपलायत काश्चित्काश्चिद्भयाहिताः ॥ ८६ ॥ व्रीडया पीडित सोपि तास्त्यक्त्वा बालिका सुता । तस्यैवालोक्य
मूढात्मा पांसुक्रीडापरायणां ॥ ८७ ॥ कदलीफलमादर्श्य प्राह मामिच्छतीति तां । वांछामीत्यब्रुवत्सा च मामियं वाञ्छतीति त ॥ ८८ ॥ नृपमावेद्य
सगृह्य समायासीद्वन प्रति । पदं प्रति जनैर्निंद्यमानो दीनतमो जड ॥ ८९ ॥ रेणुकाख्यमिधां तस्या विधाय स्वीचकार सः । प्रवृत्तिर्धर्म इत्येषा तदा-
प्रवृत्ति वागभूत् ॥ ९० ॥ बोधो श्रद्धाविशेषस्य भेदो वा तपसः पते । बाह्याभ्यंतरनामानौ तावभूतां सुतौ स्तुतौ ॥ ९१ ॥ इन्द्र श्वेतश्च रामासौ इन्द्रादि-
त्यसमत्विषौ । कामार्थौ वा जनाभीष्टौ युक्तौ वा नयविक्रमौ ॥९२॥ प्रत्यात्येवं तयोः काले मुनिरन्येद्युरागतः । अरिंजयोऽग्रजो गेहं रेणुक्यास्तद्दिदृक्षया ॥
९३ ॥ दृष्ट्वा यथोपचारेण मुनिं भर्तृप्रचोदिता । पूज्य ! मद्दानकाले मे दत्तं किं भवता धन ॥ ९४ ॥ वदेत्याह ततस्तेन मया दत्तं न किंचन । इदानीं

से बड़ा दुखी हुआ उसने उन कन्याओंको तो छोड दिया और उसी राजाकी एक छोटी सी कन्या धूलमें खेल रही थी उसे एक केलाका फल दिखाकर उस पापीने कहा कि क्या तू मुझे चाहती है उस अबोध बालिकाने कह दिया कि हां चाहती हू । इसके बाद ही जमदग्निने राजासे कह दिया कि यह कन्या मुझे चाहती है इस तरह निवेदन कर वह कन्या राजासे ले ली और लेकर वह फिर वनमें चला आया । उस अत्यंत दीन और मूर्खकी पदपदपर लोगों-ने निंदा की ॥ ८७–८९ ॥ उस कन्याका रेणुका नाम रखकर उसके साथ विवाह कर लिया उससमयसे लेकर ऐसी प्रवृति (स्त्रियोंके साथ रहकर तपश्चरण करना) ही धर्म है यह कहावत प्रसिद्ध हुई है ॥ ९० ॥ जिसप्रकार श्रद्धा वि-शेषके ही दो ज्ञानरूप भेद होते हैं अथवा तपश्चरणके बाह्य और आभ्यंतर दो भेद होते हैं उसीप्रकार जमदग्निके दो पुत्र हुये उनमेंसे एकका नाम इंद्रराम था और दूसरे का श्वेतराम था । वे दोनों ही कांतिसे सूर्य चंद्रमाके समान थे योग्य थे काम तथा अर्थके समान लोगोंको प्यारे थे और नय तथा पराक्रमके समान जान पडते थे ॥ ९१–९२ ॥ इस तरह उन दोनोंका समय बडे सुखसे जा रहा था किसी एक दिन रेणुकाका बड़ा भाई अरिंजय नामका मुनि रेणुकाको देखनेके लिये उसके घर आया था । जमदग्निके कहनेसे रेणुकाने बडे आदर सत्कारसे उसके दर्शन किये और पूछा कि हे भाई कहिये मुझे देते समय आपने कुछ धन दिया था । इसके उत्तरमें अरिंजयने कहा कि उससमय तो मैंने कुछ नहीं दिया था परंतु हे भद्रे अब मैं तुझे देता हूं और ऐसी चीज देता हूं जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ हो ॥ ९३–९५॥ तू व्रत सहित और शीलकी मालासे निर्मल ऐसा सम्यग्दर्शन ले इससे तू अनेक सुखोंकी परंपराको प्राप्त होगी ॥ ९६ ॥ इसतरह कहा तब काललब्धिके समान उसके वचनोंसे प्रेरित हुई वह सती रेणुका कहने लगी अच्छा यह स-

दीयते भद्रे त्रिजगत्स्वपि दुर्लभ ॥ ७५ ॥ गृहाण येन प्राप्नोषि त्वं सुगाना परंपरा । सम्यक्त्वं व्रतसंयुक्त शीलमालाममुज्वलं ॥ ९६ ॥ इत्युक्त्वा काललब्ध्येव तद्वचा चोदिता सती । सम्यग्गृहीतमित्याख्यन्मुनीशश्चातितुष्टवान् ॥ ९७ ॥ कामधेन्वभिधां विद्यामीप्सितार्थप्रदायिनीं । तस्य विश्राणयाचक्रे समंत्रं परशुं च सः ॥ ९८ ॥ अथान्यदा ययौ सार्द्धं कृतवीरेण तत्पिता । तपोवनं सनाभित्वाद्भुक्त्वा गंतव्यमित्यमुं ॥ ९९ ॥ सहस्रबाहुं संभाष्य जमदग्निरभोजयत् । महाराजकुलेप्येषा सामग्री नास्ति भोजने ॥ १०० ॥ तपोवननिविष्टानामागता भवतां कुत । इति स्वमातुरनुजामप्राक्षीद्रेणुकां मिथः ॥ २०१ ॥ कृतवीरोऽब्रवीत्सापि तद्विद्यालभनादिकं । सोपि मोहोदयाविष्टस्तां धेनुमकृतशक ॥ १०२ ॥ होमधेनुरियं तात वर्णाश्रमगुरोस्तव । याचनैषा न युक्तेति तदुक्त्या कोपवेगत ॥ १०३ ॥ परार्द्धं यद्धनं लोके तद्योग्यं पृथिवीभुजां । न धेनुरीदृशी भोग्या कंदमूलफलाशिभिः ॥ १०४ ॥ इत्युक्त्वा धेनुमादाय हठात्कारेण गच्छतः । अकस्थितं पुरस्तात्तं जमदग्निं महीपतिः ॥ १०५ ॥ हत्वा स्वमार्गमुल्लंघ्य कुमार्गोऽभूत्पुरोन्मुख । रुदंती

म्यग्दर्शन स्वीकार किया मुनिराज भी उससे बहुत संतुष्ट हुये और उसे इच्छानुसार फल देनेवाली कामधेनु नामकी विद्या दी और मंत्र सहित एक फरसा दिया ॥ ९७–९९ ॥ इसके बाद किसी एक दिन पुत्र कृतवीरके साथ उसका पिता सहस्रबाहु उसी वनमें आया। भाई होनेसे जमदग्निने सहस्रबाहुसे कहा कि आज तो भोजन करके जाना, यह कहकर उसने उसे अच्छीतरह भोजन कराया भोजनके बाद कृतवीरने अपनी माकी छोटी बहिन रेणुकासे पूछा कि भोजनमें ऐसी सामग्री महाराजाओंके घर भी नहीं होती है ऐसी सामग्री इस तपोवनमें रहनेवाले तुम्हारे यहां कहांसे आई उत्तरमें रेणुकाने भी कह दिया ये सब सामग्री कामधेनु नामकी विद्यासे प्राप्त होती है यह सुनकर और मोहनीय कर्मके उदय लोभमें आकर वह धेनु मांगी, रेणुकाने कहा कि वर्णाश्रममें रहनेवाले गुरुकी यह होम धेनु है इसे मागना योग्य नही है। उसके ये वचन सुनकर और क्रोधके आवेशमें आकर राजाने कहा कि पृथ्वीमें जो बहुमूल्य धन है वह राजाओंके ही योग्य है ऐसी गाय कंद मूल फल खानेवालोंके उपभोग करने योग्य नहीं है। यह कहकर हठसे गाय लेकर वह चलने लगा तब जमदग्निने सामने आकर गाय ले जानेसे उसे रोका। कुमार्गगामी उसे मारकर रास्ता साफकर अपने नगरकी ओर चला। पतिके वियोगसे कृशोदरी रेणुका रोने लगी ॥ ९९–१०६ ॥ इतनेमें ही उसके दोनों पुत्र जो वनमें कंद मूल फल लेने गये थे वे वापिस आगये देखकर बड़ा ही आश्चर्य करने लगे कि यह क्या है ॥ १०७ ॥ वहांका हाल देखकर और सब समाचार जानकर वे बड़े ही क्रोधित हुए स्वाभाविक पराक्रमी उन दोनों भाइयोंने पहिले तो युक्तियोंके वचनकर माताका शोक दूर किया और फिर तेज धारवाले फरसेको. ध्वजा

रेणुका भर्तृमरणात्प्रहतोदर्गा ॥ १०६ ॥ अथ पुत्रौ वनात्पुष्पकंदमूलफलादिकं । आदायालोक्य सम्प्राप्तौ किमेतदिति विस्मयात् ॥१०७॥ दृष्ट्वा विज्ञाय तत्सर्वं
सकोपौ शोकनिर्भरा । निर्वाप्य युक्तिमद्वाग्भिस्तौ नैसर्गिकविक्रमौ॥१०८॥ध्वजीकृतनिशातोग्रपरशू यमसन्निभौ । गोग्रहे मरणं पुण्यहेतुरित्यविजानत ॥१०९॥
श्रूयते तत्तथैवास्तां क सहेत पितुर्वधं । इत्युक्त्वानुगताशेषरिनत्यन्मुनिकुमारकौ ॥ ११० ॥ तद्गत मार्गमन्वेत्य साकेतनगरांतिकं । सम्प्राप्य कृतसंग्रामौ
कृतवीरेण भूपतिं ॥१११॥ सहस्रबाहुमाहत्य सायाह्नेविक्षता पुरीं । हालाहलोपमान्याशु घोराहःस्फूर्जितान्यलं ॥११२॥ फलंत्यकार्यचर्याणां दुःसहा
दुःखसततिं । सहस्रबाहुसताननिःशेषीकरणोत्सुकं ॥११३॥ ज्ञात्वा परशुरामीयमभिप्रायं महीपतिः । भूपालचरदेवेन निदानविषदूषितात् ॥११४॥ समु-
द्भूतेन तपसो महाशुक्रेत्र जन्मिना । राज्ञीं सगर्भां चित्रमतिं ता शांडिल्यतापसः ॥ ११५ ॥ तदग्रज समादाय गत्वाविज्ञातचर्यया । स सुबंध्वाख्यनि-

बनाकर यमके समान दोनों ही भाई सोचने लगे कि गायके ग्रहण करनेमें यदि मरण भी हो जाय तो भी पुण्यका ही कारण है ऐसा निश्चय है तथा शास्त्रोंसे भी सुना जाता है और फिर यह बात तो रहो पिताके मरणको कौन सह सकता है इसतरह कहकर और साथमें आनेवाले सबको लेकर वे दोनों मुनिकुमार उसी मार्गको ढूंढते हुए आ-योध्या नगरमें आ पहुंचे वहांपर जाकर कृतवीरके साथ युद्ध किया राजा सहस्रबाहुको मारा और शामके समय अयोध्या नगरमें प्रवेश किया। देखो संसारमें जो अकार्य करते हैं उनके विषके समान दैदीप्यमान घोर पाप असह्य दुःखोंकी परंपरारूप फल शीघ्र ही दे डालते हैं। इधर परशुरामने (जमदग्निके दोनों पुत्रोंने) सहस्रबाहुकी संतान को बिल्कुल नाश करनेका विचारकर लिया तथा पहिले राजा भूपालका जीव जो निदानरूपी विषसे दूषित तपश्चरण-कर महाशुक्र विमानमें देव उत्पन्न हुआ था वह सहस्रबाहुकी रानी चित्रमतीके गर्भमें आगया था। यह बात (चित्र-मती गर्भवती है) चित्रमतीके बडे भाई शांडिल्य नामके तपसीने भी सुन ली थी तथा उसने परशुरामका सहस्र-बाहुकी सब संतान नाश करनेका विचार भी सुन लिया था इसलिये वह चित्रमतीको छिपाकर बनमें लेगया। उसने सुबंधु नामके निर्ग्रंथ मुनिसे सब समाचार कहे चित्रमतीको उन्हींके समीप छोड दिया और निवेदन किया कि हे आर्य मेरे मठमें कोई नहीं है मैं वहां जाकर पीछे आऊंगा तबतक यह देवी यहां ही बनी रहेगी यह कहकर वह वहां-से चला गया। उसके चले जानेके वाद ही उसीसमय चित्रमतीके पुत्र हुआ वहांकी वन देवताने उसीसमय जान लिया कि यह बालक भरतक्षेत्रका अधिपति (चक्रवर्ती) होनेवाला है यही समझकर उस बनदेवताने उसे उठा लिया और वह उसका पालन पोषण करने लगी इसतरह वह कुमार विना किसी विघ्न और वाधाके दिन रात बढने लगा

प्रथमुनेरविश्रुतं ॥११६॥ तत्समीपे निधानार्थं मठे मे नास्ति कश्चन । तत्र गत्वा सन्ननिर्मिंडकारेण तत्र तिष्ठ ॥११७॥ देवीति गतवांस्तस्मात्दैवा-
सूत सा सुतं । तदानीमेव तं तत्र भविष्यद्भरताधिप ॥ ११८ ॥ बालकोयमिति ज्ञानात्स्वीचक्रुर्वनदेवता । ताभिः अपाल्यमानोय-नाबाधमवर्द्धत ॥१९॥
दिनानि कानिचिन्नीत्वा महीमाश्लिष्य जातवान् । बालकोयं कथंभावी भट्टारक शुभाशुभ ॥ १२० ॥ अनुगृह्यास्य वक्तव्यमिति देव्योदितो मुनिः । एष
चक्री भवेदंब वत्सरे षोडशे ध्रुव ॥ १२१ ॥ साग्निचुल्लीगतस्थूलकिलासघृतमध्यगान् । उष्णान् पूपानुपादाय भक्षयिष्यति बालकः ॥१२२॥ अभिज्ञानमिद
भावि चक्रित्वस्यास्य निश्चित । तस्मान्मास्म भयं यासीरिति तामिति दुःखिता ॥ १२३ ॥ सुबन्ध्वाख्यो मुश स्वास्थ्यमनैषीत्करणात्मकः । ततस्तदग्रजो
भ्येत्य तां नीत्वागेहमारमन ॥१२४॥ समुद्भूतोयमाश्लिष्य मेदिनीमिति तस्य स । सुभौमइति संप्रीत्या चक्रे नाम कृतोत्सव ॥१२५॥ तत्र शास्त्राणि स-
र्वाणि सप्रयोगाणि सतत । सोपदेशं समभ्यस्यन् वर्द्धतेस्म स गोपित ॥ १२६ ॥ अथ तौ रेणुकीपुत्रौ प्रवृद्धोग्रपराक्रमौ । त्रिःसप्तकृत्वो निर्मूलमापाद्य क्ष-

॥११८–११९॥ कितने ही दिन वीत जानेपर उस चित्रमती देवीने मुनिराजके पास जाकर पूछा कि हे भट्टारक! यह बालक पृथ्वीको छूकर उत्पन्न हुआ है इसलिये कृपाकर कहिये कि यह कैसा होगा और इसका शुभाशुभ कैसा है । तव मुनिराजने कहा कि हे मा! यह वालक सोलहवें ही वर्ष में अवश्य ही चक्रवर्ती होगा ॥ १२०–१२१ ॥ उसकी परीक्षाके चिन्ह ये हैं कि जलते हुए चूल्हे पर रक्खी हुई कढाईके गर्म घीमेंसे गर्मगर्म पूओंको निकालकर यह वालक खा लेगा यह इसके होनहार चक्रवर्तिपनेका चिन्ह है इसलिये तू किसी तरहका डर मतकर इसतरह इंद्रियोंको वशकरनेवाले सुबंधु मुनिने अत्यंत दुःख करनेवाली उस चित्रमतीको कुछ स्वस्थ किया । इसके वाद चित्रमतीका बडा भाई शांडिल्य नामका तपसी आकर उसे अपने घर ले गया ॥ १२२–१२४ ॥ यह बालक पृथ्वीको छूकर उत्पन्न हुआ है इसीलिये शांडिलपने बडे उत्सव और प्रेमके साथ उसका सुभौम नाम रक्खा ॥१२५॥ वहांपर वह उपदेशके अनुसार निरंतर प्रयोगसहित सब शास्त्रोंका अभ्यास करने लगा और इसतरह छिपकर वह बढने लगा ॥१२६॥ इधर जिनका उग्र पराक्रम दिन रात वढ रहा है ऐसे उन दोनों रेणुकीके पुत्रोंने इकईसवार क्षत्रियोंके वंशका नाश किया ॥ १२७ ॥ अपने पिताके मारे जानेसे वैर बांधकर मारे हुये समस्त राजाओंके मस्तकोंको एक जगह इकठे करनेकी इच्छासे उन्होंने उनके सब मस्तकोंको शिलाके एक स्तंभमें इकट्टा किया ॥ १२८ ॥ वे दोनो ही भाई मिलकर समस्त पृथ्वीमंडलकी राज्य लक्ष्मीका अनुभव करने लगे । किसी एक दिन निमित्तज्ञानीने आकर उन दोनों कुमारोंसे कहा कि आपका शत्रु उत्पन्न हो चुका है इसके लिये आप कुछ उपाय

...नाम्बहं ॥१२७॥ स्वहतानिरभूपा[illegible] इ[illegible] । [illegible] गुरोर्वधात् ॥१२८॥ सार्वभौमो श्रियं सम्यक् सभूशानुबभूव तु । [illegible] नाम्ना [illegible] ॥ १२९ ॥ भवत शत्रुरुत्पन्न प्रयत्नोत्र विधीयतां । क. प्रत्ययोस्य नेद्वच्मि त्वद्धताखिलभूभुजां ॥ १३० ॥ दता यस्याशन भूत्वा परिणस्यत्यसौ रिपुः । इतींद्ररामं राजानं परश्रीशमबूबुधत् ॥१३१॥ श्रुत्वा यथावन्नैमित्तिकोक्तं चेतसि धारयन् । कृत्वा परशुरामोपि दानशाला सुभोजनां ॥ १३२ ॥ तत्परीक्षार्थमायातु येत्र विश्रणनार्थिनः । इत्याघोषयतिस्मैतत् श्रुत्वा तेपि समागमन् ॥१३३॥ तेषां पात्र स्यतद्दंतान् सप्रदर्श्य परीक्षितुं । तान् भोजयति भूपाले प्रत्यह स्वनियोगिभिः ॥१३४॥ पितुर्मरणवृत्तांत स्वमातुरवबुद्धवान् । स्वचक्रेशित्वसंप्राप्तिकालायान च तत्त्वतः ॥ १३५ ॥ सुबन्धुमुनिनिर्दिष्टसद्वृतात्मस्वरूपकः । परिव्राजकवेषेण स्वरहस्यार्थवेदिना ॥ १३६ ॥ राजपुत्रसमूहेन सुभौमोध्यागमत्पुरं । समागत्या-श्रोदयत्येव काले कल्याणकृद्विधि ॥ १३७ ॥ तदा साकेतवास्तव्यदेवताक्रंदनं महत् । महीकपो दिवा ताराद्दष्ट्यादिरभवत्पुरे ॥१३८॥ तदागत्य कुमारो

कीजिये इस बातपर विश्वास दिलानेकेलिये मैं एक चिन्ह बतलाता हूं वह यह है कि आपके हाथसे मारे हुये राजाओं के दांत जिसके लिये भोजनरूप होकर परिणत हो जांयगे उसे ही आप अपना शत्रु समझना इसतरह फरसाके स्वामी इंद्रराम नामके राजाको उस निमित्त ज्ञानी ने समझाया॥ १२९—१३१ ॥ निमित्तज्ञानीके कहे हुये बचनोंको सुनकर और उन्हें यथार्थ रीतिसे चित्तमें धारणकर परशुरामने शत्रुकी परीक्षा करनेलिये अच्छे २ भोजनोंवाली एक दानशाला खुलवाई और सब जगह घोषणा करा दी कि जो २ भोजन करना चाहते हों वे सब यहां आवें । इस घोषणाको सुनकर बहुतसे लोग उसमें भोजन करनेके लिये आते थे उनकी परीक्षा करनेके लिये उन्हें सबसे पहिले पात्रमें (थालीमें) रक्खे हुये वे दांत दिखाये जाते थे इस तरह वह इंद्रराम राजा अपने कर्मचारियोंके द्वारा सबको भोजन कराने लगा ॥१३४॥ इधर सुभौमने अपनी मातासे पिताके मरनेके समाचार जान लिये वास्तवमें उसका चक्रवर्तीपना प्राप्त होनेका समय आ चुका था, सुबंधुमुनिके कहे अनुसार उसने अपना छिपा हुआ वृतांत भी जान लिया था इसलिये परिव्राजकका भेष बनाकर अपने गुप्त अभिप्रायको जाननेवाले राजपुत्रोंके समूहके साथ वह सुभौम नगरमें आया सो ठीक ही है क्योंकि कल्याण करने वाला भाग्य अपने समय पर भाग्यवानोंको प्रेरणा करता ही है ॥ १३५—१३७ ॥ उससमय अयोध्या नगरके रहनेवाले देवता लोग जोरसे रोने लगे, वहांपर भूकंप हुआ और दिनमें ही तारे दीखने लगे ॥ १३८ ॥ तदनंतर वह सुभौम कुमार भोजन करने के लिये उस शालामें आया, वहांके लोगोंने उसे बुलाया ऊंचे आसनपर विठाया और नियुक्त किये हुए लोगोंने उसे उन मारे हुए राजाओंके दांत दिखलाये परंतु वे दांत उसके प्रभावसे शालि चावलोंके भातरूप होगये उन्हें देखकर

सौ शाला भोक्तुमुपागतः । तमाहूय निवेश्योर्वरासने हतभुजा ॥ १३९ ॥ नियुक्ता दर्शयति स्म दत्तांस्तस्यानुभावत. । कल्माषं तदासंस्ते तवृद्धा परिवारिणः ॥ १४० ॥ व्यजिज्ञपन्नृपं सोपि स भृत्यानीयतामिति । समर्थान्प्राहिणोद्भृत्यास्तेपि तं प्राप्य निष्ठुराः ॥ १४१ ॥ आहूतोसि महीशेन त्वमेह्या-श्वित्युदाहरन् । नाहं यूयमिवास्मादाम्जीविकां तत्सदंतिकी ॥ १४२ ॥ किमिलिप्यामि यातेति तर्जितास्तत्प्रभावत. । भटा मयज्वरग्रस्ता ययुः सर्वे यथा-यथ ॥ १४३ ॥ श्रुत्वा परशुरामस्तत्क्रुद्ध्वासनद्धसाधन. । समागमं तदालोक्य सुभौमाभिमुखं ययौ ॥ १४४ ॥ बलं परशुरामस्तत्तेन योद्धुं सहादिशत् । जन्मप्रभृतितत्पाता भरतव्यंतराधिपः ॥ १४५ ॥ रक्षित्वास्यात्कुमारं तं तस्मात्तस्याग्रतो बलं । स्थातुमक्षममालोक्य स्वयं गजमचोदयत् ॥ १४६ ॥ सह-मैव सुभौमस्याप्यभवद् गंधवारणः । चक्रं च सन्निधौ दिव्यं सार्वभौमत्वसाधनं ॥ १४७ ॥ सहस्रदेवतारक्ष्यं किं न स्यात्पुण्ये विधौ । वारणेंद्र समारुह्या-

परिवारके लोगोंने राजाको खबर दी राजाने तुरंत ही सामर्थ्यवाले सेवक भेज दिये और कहला भेजा कि उसे पकड़-कर यहां ले आओ । वे कठोर सेवक लोग उसके समीप गये और कहने लगे कि तुमको महाराजने बुलाया है जल्दी चलो । उत्तरमें सुभौमने कहा कि मैं तुम्हारे समान राजासे कुछ जीविका नहीं लेना हूं इसलिये मैं क्यों चलूं यह कहकर सुभौमने उन्हें कुछ तर्जना भी की । उसके प्रभावसे उन योद्धाओंको भी भय ज्वर चढ आया और वे सब अपनी २ जगहपर भाग गये ॥१३९--१४३॥ यह सुनकर परशुराम क्रोधित होकर सेना तैयार कर आया और सुभौम-को देखकर लड़नेके लिये उसके सामने आया ॥ १४४ ॥ परशुरामने उसके साथ युद्ध करनेके लिये अपनी सेनाको आज्ञा दी । परंतु जिस भरतके अधिपति व्यंतर देवने जन्मसे लेकर उसकी रक्षा की थी उसने आकर उस कुमारकी रक्षा की इसलिये उसके सामने परशुरामकी सेना ठहर नहीं सकी । यह देखकर परशुरामने स्वयं अपना हाथी आगे बढाया ॥ १४४--१४६ ॥ उसीसमय अकस्मात् सुभौमके सामने भी एक गंधवारण हाथी आ खड़ा हुआ और समस्त भूमंडलको सिद्ध करनेवाला जीतनेवाला दिव्य चक्ररत्न भी पास ही आ सुशोभित होने लगा । एक हजार देवता उसकी रक्षा करते थे सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यके सन्मुख होनेपर क्या २ नहीं होता है । वह सुभौम कुमार अपूर्व इंद्रके समान उस हाथीपर सवार हुआ और उसने सूर्यके समान एक हजार आरे वाला वह चक्र हाथमें लिया । इस-तरह वह कुमार उस सेना को सुशोभित करने लगा । उसे देखकर जमदग्निका पुत्र इंद्रराम अथवा परसुराम भी क्रो-धित होकर उसे मारनेके लिये सामने आया परंतु कुमारने चक्रसे उसे उसीसमय परलोक भेज दिया और उसीसमय अन्य सब सेनाको अभयघोषणा कर दी ॥ १४७--१५० ॥ श्री अरनाथ तीर्थंकरके बाद दो सौ करोड़ बत्तीस वर्ष बीत

पूर्वेद्र इव भास्करे ॥ १४८ ॥ सहस्रारं करे कृत्वा कुमारश्चक्रमावभौ । त दृष्ट्वा रुष्टवान् हतु जामदग्न्योभ्युपागमत् ॥ १४९ ॥ चक्रेण तं कुमारोपि लो-
कातरमजीगमत् । अकरोच्चान्यसैन्यस्य तदैवाभयघोषणं ॥ १५० ॥ अरेशतीर्थसतानकाले द्विशतकोटिषु । स द्वात्रिंशत्सु जातेभूत्सुभौमो वत्सरैर्व्ययं
॥ १५१ ॥ अभिभूताखिलारातिरष्टमश्चक्रवर्तिषु । समा षष्टिसहस्रायुरष्टाविंशतिचापम ॥ १५२ ॥ जातरूपच्छवि श्रीमानिक्ष्वाकुकुलकेसरी । विराजमानो
विस्पष्टचक्रादिशुभलक्षणैः ॥ १५३ ॥ ततो रत्नानि शेषाणि निधयोपि नवाभवन् । षट्खडस्याधिपत्येन प्रादुरासीत्स चक्रभृत् ॥ १५४ ॥ चक्रवर्तित्वसंप्रा-
प्तान् भोगान् दशविधांश्चिरं । अन्वभूदिव देवेंद्रो दिवि दिव्याननारतं ॥ १५५ ॥ अन्येद्युः सूपकारोस्य नाम्नामृतरसायनः । रसायनाभिधामस्मै मुदाऽदाद-
म्लिका हितः ॥ १५६ ॥ तन्नामश्रुतिमात्रैण तद्गुणस्याविचारकः । तद्वैरिचोदितः कोपाद् भूपतिस्तमदण्डयत् ॥ १५७ ॥ सोपि तेनैव दंडेन म्रियमाणोति-
तीव्ररुट् । वध्यास्तं नृपमित्यात्तनिदान पुण्यलेशतः ॥ १५८ ॥ ज्योतिर्लोकेमरो भूत्वा विभंगज्ञानवीक्षण । अनुस्मृत्य रुषा वैरं जिघांसु स महीपतिं ॥

जानेपर सुभौम चक्रवर्ती हुआ था, ॥ १५१ ॥ उसने समस्त शत्रुओंको वश कर लिया था, वह आठवां चक्रवर्ती था साठ हजार वर्षकी उसकी आयु थी अट्ठाईस धनुष ऊंचा शरीर था ॥ १५२ ॥ सुवर्णके समान उसके शरीरकी कांति थी इक्ष्वाकुकुलमें वह श्रीमान सिंहके समान था और चक्र आदि स्पष्ट दिखनेवाले शुभ लक्षणोंसे वह सुशोभित था ॥ १५३ ॥ तदनतर चक्रके सिवाय वाकीके सब रत्न और नौ निधियां भी उसके प्रगट हुई थीं इसतरह छहों खंडका स्वामी होकर वह चक्रवर्ती प्रगट हुआ था ॥ १५४ ॥ जिसप्रकार स्वर्गमें इंद्र निरंतर भोगों-का अनुभव करता है उसीप्रकार चक्रवर्तीपनेके योग्य प्राप्त हुए दशतरहके भोगोंको वह बहुत दिनतक अनुभव करता रहा था ॥ १५५ ॥ किसी एक दिन अमृतरसायन नामके हितैषी रसोइयाने उसे अम्लिका नामकी रसायन खानेके लिये दी उसका नाम सुनकर ही सुभौमने उसके गुणोंका तो कुछ विचार नहीं किया किंतु उसके वैरसे प्रेरित होकर क्रोधसे उसने उस रसोइयाको दंडित किया॥१५६–१५७॥ उस रसोइयाको भी बहुत क्रोध आया उसने निदान किया कि मैं इस राजाको मारूंगा इसप्रकार निदान करता हुआ वह उसी दंडसे मर गया । उसका कुछ पुण्य कर्म वाकी बचा था जिससे वह ज्योतिर्लोकमें जाकर ज्योतिषी देव हुआ वहांपर उसके मिथ्या अवधिज्ञान था ही उससे उसने पहिलेका सब हाल जान लिया और क्रोधित होकर उस वैरी राजाको (सुभौमको) मारनेकी इच्छाकी॥१५८–१५९॥ उसने राजाको जिह्वाका लोलुपी समझकर एक वैश्यका भेष धारण किया और वह स्वादिष्ट फल देकर प्रतिदिन उस-की सेवा करने लगा ॥ १६० ॥ किसी एक दिन उस वैश्यरूप देवने आकर राजासे कहा कि महाराज वे फल तो अब

॥ १५९ ॥ जिह्वालोलुपमालक्ष्य सधूत्य वणिगाकृतिं । सुस्वादुफलदानेन प्रत्यहं तमसेवत ॥ १६० ॥ निष्ठितानि फलानीति कदाचित्तेन भाषिते । आनेतव्यानि तान्येव गत्वेत्याह्यन्नृपोपि त ॥ १६१ ॥ आनेतु तान्यशक्यानि प्राङ्मयाराध्य देवता । तद्वनस्वामिनीं दीर्घं लब्धान्येतानि कानिचित् ॥ १६२ ॥ आसक्तिस्तेषु चेदस्ति देवस्य तद्वतं मया । सह तत्रत्वमायाहि यथेष्ट नानि भक्षय ॥ १६३ ॥ इति प्रलभन तस्य विश्रस्य प्रतिपन्नवान् । राजा प्रक्षीणपुण्याना विनश्यति विचारणा ॥ १६४ ॥ एतद्राज्यं परित्यज्य रसनेंद्रियलोलुपः । मत्स्यवत्किंविनष्टेति मंत्रिभिर्वारितोप्यसौ ॥१६५॥ तदुक्तमतिलघ्याम्र पोतेनागाहतांबुधिं । तदा रत्नानि तद्गेहाद् व्यपेतान्यखिलान्यपि ॥ १६६ ॥ सहस्रयक्षरक्षाणि प्रत्येक निधिभि सम । तद्विदित्वा वणिग्वैरी नीत्वा मध्ये वुधिं द्विषः ॥ १६७ ॥ स्वप्रागजन्माकृतिं तस्य प्रकटीकृत्य दुर्वच । उक्त्वा वैरानुबंध च क्रूरथिव्रवधं व्यधात् ॥ १६८ ॥ सुभौमोपि विपर्यांते रौद्रध्यान-

निवट गये उत्तरमें राजाने कहा कि तुम फिराकर उन्हीं वनोंको जाओ ॥ १६१ ॥ तब उस वैश्यने फिर कहा कि अब उनका लाना असंभव है पहिले मैंने उस वनकी स्वामिनी देवताका बहुत दिनतक आराधन किया था इसीलिये मुझे वे थोडेसे फल मिले थे ॥ १६२ ॥ यदि आपको उनके खानेकी लालसा ही हो आप मेरे साथ उस वनमें चलिये और वहांपर इच्छानुसार खूब खाइये ॥१६३॥ इसप्रकार उस देवने जो ठगनेका उपाय किया था राजा सुभौमने भी उसपर विश्वास कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि जिनका पुण्य नष्ट हो जाता है उनके विचार भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १६४॥ उस देवके साथ जाते हुए देखकर मंत्रियोंने राजाको रोका और कहा कि जिह्वा इंद्रियके लोलुपी होकर मछलीके समान इस राज्यको छोडकर आप क्यों नष्ट होना चाहते हैं ॥ १६५ ॥ परंतु उस मूर्खने मंत्रियोंके कहे हुए वाक्य बिल्कुल न सुने और जहाजमें बैठकर वह उस वैश्यके साथ समुद्रमें चलने लगा। उसीसमय उसके घरसे जिनकी एक एक हजार यक्ष रक्षा करते थे ऐसे सब रत्न चले गये तथा उनके साथ नौ निधियां भी चली गई यह समाचार जानकर वह वैश्यका भेष बनाया हुआ देव भी अपने शत्रु राजा सुभौमको समुद्रके बीचमें ले गया॥१६६--१६७॥वहां ले जाकर उसे पहिले जन्मका अपना रसोइयाका रूप प्रगट कर दिखलाया और उस दुष्टने अनेक दुर्वचन कहकर पहिली बंधीहुई शत्रुतासे विचित्र रीतिसे उसे मार डाला ॥ १६८ ॥ सुभौम भी उस बिपत्तिके अंतसमयमें रौद्रध्यानमें लीन रहा इसलिये मरकर नरकमें पहुंचा सो ठीक ही है क्योंकि दुर्बुद्धिसे क्या क्या नहीं होता है ॥ १६९ ॥ सहस्रबाहु लोभ करनेसे अपने पुत्र सहित तिर्यंच गतिमें पहुंचा और हिंसा करनेमें तत्पर रहनेसे जमदग्निके दोनों पुत्र अधोगतिमें (नरकगति) पहुंचे ॥ १७० ॥ इसीलिये बुद्धिमान लोग इन रागद्वेष दोनोंको छोड देते हैं क्योंकि इन

परामणः। श्वाभ्री गतिं समापन्नो दौर्मत्यात्किम्न जायते ॥२६९॥ लोभात्सहस्रबाहुश्च प्राप तिर्यग्गतिं सतुक्। जमदग्निसुतौ हिंसापर... ...पातावद्य:॥१७०॥ तत एव त्यजंत्येतौ रागद्वेषौ मनीषिणः। तत्त्यागादाप्नुवंत्यापप्राप्स्यंति च परं पदं ॥ १७१ ॥ एकोपि सिंहसदृशः सकलावनीशो हत्वा पितुर्वधकृतौ जमदग्निसूनू। कीर्त्या त्वया धवलिताखिलदिक्सुभौमश्चक्री सुदुर्नयवशो नरकेष्टमोऽभूत् ॥ १७२ ॥ भूपालभूपतिरसह्यतपोविधायी शुक्रेऽभवन्महति षोडशसागरायुः। च्युत्वा ततः सकलचक्रधरः सुभौमो रामान्तकृन्नरकनायकतां जगाम ॥ १७३ ॥ नंदिषेणो वलः पुंडरीकोर्द्धभरताधिपः। राजपुत्रावभौ जातौ तृतीयेत्र भवांतरे ॥ १७४ ॥ सुकेत्वाश्रयशल्येन तपः कृत्वायुषोवधौ। आद्ये कल्पे समुत्पद्य ततः प्रच्युत्य चक्रिणः ॥ ७५ ॥ पश्चात्षट्छतकोट्यब्दातीतौ तत्रैव भारते। राजश्चक्रपुराधीशादिक्ष्वाकोर्वरसेनतः ॥ १७६ ॥ वैजयंत्यां वलो देवो लक्ष्मीमत्यामजायत। पुंडरीकस्तयोरायुः खत्रयर्त्वद्वियाब्दवत् ॥ १७७ ॥ षड्विंशतितनूत्सेधौ धनुषां नियतायुषोः। स्वतपः संचितात्पुण्यात्काले यात्यायुषो सुखं ॥ १७८ ॥ अन्यदोपेंद्रसेनाख्यमहीडिंद्रपुरा-

दोनोंका त्याग कर देनेसे कोई किसीतरहकी आपत्ति नहीं आती और उत्तम मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है ॥ १७१ ॥ देखो आठवां चक्रवर्ती सुभौम यद्यपि सिंहके समान एक था तथापि वह समस्त पृथ्वीका स्वामी हुआ अपने पिताके मारनेवाले जमदग्निके दोनों पुत्रोंको उसने मारा और अपनी कीर्तिसे सब दिशाएं सफेद करदीं परंतु वही चक्रवर्ती दुर्नयके वशमें पडकर (इंद्रिय लंपटी होकर) नरकमें पहुंचा ॥१७२॥ सुभौम चक्रवर्तीका जीव पहिले तो भूपाल राजा था फिर असह्य तपश्चरणकर शुक्र नामके वडे विमानमें सोलह सागरकी आयुवाला देव हुआ वहांसे च्युत होकर सुभौम नामका सकल चक्रवर्ती हुआ और फिर परशुरामको मारकर नरकका अधिपति हुआ अर्थात् मरकर नरकमें गया ॥ १७३ ॥

अथानंतर—इन्हींके समय नंदिषेण वलभद्र और पुंडरीक नारायण ये दोनों ही राजपुत्र हुये हैं। इनमेंसे पुंडरीकका जीव तीसरे भवमें राजा सुकेतुके आश्रयसे शल्यपूर्वक (निदान नामकी शल्य सहित) तपश्चरणकर आयुके अंतमें पहिले स्वर्गमें देव हुआ था वहांसे चयकर चक्रवर्तीके बाद छहसौ करोड वर्ष वीत जानेपर इस भरतक्षेत्रके इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए चक्रपुर नगरके राजा वरसेनके रानी लक्ष्मीमतीके पुंडरीक नामका पुत्र हुआ था तथा इन्हीं राजाके वैजयंती रानीसे वलदेव नंदिषेण हुआ था। इन दोनों भाइयोंकी आयु छप्पन्न हजार वर्षकी थी, शरीर छब्बीस धनुष ऊंचा था, इनकी आयु नियत थी अपने तपश्चरणसे इकठे हुए पुण्यसे समयानुसार उनकी आयु सुखसे व्यतीत हो रही थी ॥ १७४–१७८ ॥ किसी एकसमय इंद्रपुरके राजा उपेंद्रसेनने अपनी पद्मावती नामकी कन्या पुंड-

भिपः । पद्मावता गुता स्वस्य पुंडरीकाय दत्तवान् ॥ १७९ ॥ अथ दुर्गी दुराचारः मुकेतु प्राक्तनो रिपु । निजोपार्जितकर्मानुरूपेण भवसंततौ ॥ १८० ॥ भ्रांत्वा क्रमेण सचित्य शुभं तदनुगोचरं । भूत्वा चक्रपुराधीशो वशीकृतवसुंधर ॥ १८१ ॥ ग्रीष्मार्कमंडलाभत्वादसोढा परतेजसां । तद्विवाहश्रुते क्रुद्धः समुद्घोषसाधनः ॥ १८२ ॥ निशुंभो मारकोरीणां नारकेऽपि निर्दयः । प्रख्याताखंडविक्रांति पुंडरीक जिघांसुकः ॥ १८३ ॥ युद्ध्वा बहुविधं नाम्ना तेनोद्यततेजसा । तच्चक्राशनिघातेन घातितासुरयादरं ॥ १८४ ॥ तावुभाविव चंद्रार्कौ सयुक्तौ लोकपालकौ । स्वप्रभाक्रांतदिक्चक्रौ पालयित्वा चिरं धरां ॥ १८५ ॥ अविभक्तश्रियौ प्रीतिं परमां प्रापतु पृथक् । व्याप्तचक्षुर्विशेषौ वा रम्यैकविषयेप्सया ॥ १८६ ॥ तयोर्भवत्रयायातःपरस्परसमुद्भवात् । प्रेम्णस्तृप्तेरंशमपि तृप्तिर्नृपत्वजा ॥ १८७ ॥ पुंडरीकश्चिरं भुक्त्वा भोगांस्तत्रातिसक्तितः । बध्वायुर्नारकं घोरं बह्वारंभपरिग्रहः ॥ १८८ ॥

रीकको दी थी ॥ १७९ ॥ अथानंतर पहिले भवमें जो सुकेतु राजा था जोकि पुंडरीकके जीवका शत्रु था तथा अत्यंत दुराचारी था उसने उपार्जन किये हुए अपने कर्मोंके अनुसार बहुत दिनतक इस संसारमें परिभ्रमण किया फिर शुभ कर्मोंका संचयकर उनके उदयसे निशुंभनामका चक्रपुर नगरका राजा हुआ था, उसने सब पृथ्वीको अपने वश कर लिया था ग्रीष्म ऋतुके सूर्यमंडलके समान उसकी कांति थी इसीलिये वह दूसरेके तेजको सहन नहीं कर सकता था। पुंडरीकके साथ पद्मावतीके विवाहकी बात सुनकर वह बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने अपनी सब सेना तैयार कर ली। वह सब शत्रुओंका नाश करनेवाला था नारकियोंसे भी अत्यंत निर्दय था और उसका अखंड पराक्रम सब जगह फैल गया था। उसीने पुंडरीकको मारनेकी इच्छा प्रगट की ॥ १८०-१८३ ॥ अंतमें जिसका तेज प्रगट हो रहा है ऐसे पुंडरीकके साथ वह अनेक तरहसे लडा उसे मारनेके लिये उसपर चक्र चलाया परंतु पुंडरीकके द्वारा उसी चक्रसे मारा जाकर वह नरकमें पहुंचा ॥ १८४ ॥ सूर्य चंद्रमाके समान अथवा मिले हुए दो लोकपालोंके समान उन दोनों ही भाइयोंने अपनी कांतिसे सब दिशाओंके समूहको आक्रमण कर लिया और बहुत दिनतक इस पृथ्वीका पालन किया ॥१८५॥ वे दोनों ही भाई बिना बांटी हुई लक्ष्मीका एक साथ उपभोग करते थे उन दोनोंमें बहुत प्रेम था और वे ऐसे जान पडते थे मानो किसी मनोहर एक विषयको देखते हुए और अलग २ रहते हुए दो नेत्र ही हों ॥ १८६॥ उन दोनोंकी राज्यसे उत्पन्न हुई तृप्ति तीन भवसे चले आ रहे परस्परके प्रेमसे उत्पन्न हुई तृप्तिके एक अंशकी भी समता नहीं रखती थी ॥ १८७ ॥ पुंडरीकने बहुत दिन तक भोगोंका अनुभव किया उनमें अत्यंत आसक्त होनेसे घोर नरक आयुका बंध किया, बहुतसा आरंभ और परिग्रह धारण करनेसे तथा रौद्रध्यानके प्रभावसे फैले हुये

प्राते रौद्राभिसंधानाद्रूढमिथ्यात्वभावनः । प्राणंस्तमःप्रभा मृत्वा प्राविशत्पापपाकभाक् ॥ १८९ ॥ दुर्लभराद्विरागेण जातानंतसुखरतिः । शिवघोष-यतिं प्राप्य संयमं प्रत्यपद्यत ॥ १९० ॥ स बाह्याभ्यंतरं शुद्धं तपः कृत्वा निराकुलः । मूलोत्तराणि कर्माणि निर्मूल्याप निर्वृतिं ॥ १९१ ॥ जातौ तृतीये जनने धरणीशपुत्रौ पश्चात्सुरौ प्रथमकल्पगतावभूताम् । श्रीनंदिषेणहलभृत्सुनिशुंभशत्रु पष्ठत्रिखंडधरणीट्सु च पुंडरीकः ॥ १९२ ॥

इत्यार्षे त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीतेऽरतीर्थकरचक्रधर- सुभौमचक्रवर्ति-नंदिषेणबलदेव-पुंडरीकार्द्धचक्रवर्ति-निशुंभ-नाम प्रतिशत्रु पुराणं परिसमाप्तं पंचषष्ठ पर्व ॥ ६५ ॥

मिथ्यात्व भाव प्राप्त होनेसे वह प्राण छोड़कर मरा और पाप कर्मोंके उदयसे तमःप्रभा नामके छट्ठे नरक में पहुचा ॥ १८८-१८९ ॥ नंदिषेण बलभद्रको उसके वियोगसे वैराग्य उत्पन्न हुआ था और उसने शिवघोष मुनिके समीप जा-कर संयम धारण करलिया था ॥ ९० ॥ बाह्य और अभ्यंतर दोनों तरहसे शुद्ध तपश्चरण तथा निराकुल होकर और मूलप्रकृति तथा उत्तर प्रकृति ऐसे दोनों तरहके कर्मोंको नाशकर वह मुक्त हुआ था ॥ १९१ ॥ तीसरे भवमें तो दोनों ही राजपुत्र हुए थे और फिर पहिले स्वर्गमें देव हुए थे तदनंतर एक तो नंदिषेण बलभद्र हुआ था और दूसरा निशुंभ प्रतिनारायणका शत्रु पुंडरीक हुआ था जो कि तीनों खंडोंके राजाओंका स्वामी अर्थात् नारायण था ॥१९२॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अरनाथ तीर्थंकर, सुभौम चक्रवर्ती, नंदिषेण बलभद्र, पुंडरीक नारायण और निशुंभ प्रतिनारायणका पुराण समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

अथ षट्षष्टितमं पर्व ।

मोहमल्लममल्लं यो व्यजेष्टानिष्टकारिणं । करींद्र वा हरिः सोयं मल्लिः शल्यहरोस्तु नः ॥ १ ॥ जंबूपलक्षिते द्वीपे मेरोः प्राक् कच्छकावती-

अथ छ्यासठवां पर्व ।

अथानंतर—जिसप्रकार सिंह हाथीको जीत लेता है उसीप्रकार जिन्होंने अनिष्ट करनेवाले मोहरूपी मल्लको बे-मल्लके समान जीत लिया ऐसे मल्लिनाथ भगवान् हम लोगोंकी शल्योंका नाश करें ॥ १ ॥ इसी जंबूद्वीपमें मेरु पर्वतके पूर्वकी ओर वत्सकावती देशके वीतशोका नामके नगरमें वैश्रवण नामका राजा था ॥ २ ॥ वह बहुत बडे

विषये वीतशोकाख्यपुरे वैश्रवणाह्वय ॥ २ ॥ महावंशो मही तस्य महागुणमहीयस । कुंभकारकरालग्नमृत्स्नेव वशवर्तिनी ॥ ३ ॥ योगस्ताभ्यो महा-
स्तस्य प्रजाना क्षेमकारिणः । तां यस्मादुपयुज्यंते कोशदुर्गबलादिभिः ॥ ४ ॥ महाभयेषु सधर्तुं संचिनोति धनं प्रजा । धत्ते दंड च सन्मार्गे सप्रवर्तयितुं
स ताः ॥ ५ ॥ इति प्रवृद्धपुण्यानुभावसंपादितां श्रियं । प्रियामिव नवोढां तामुत्प्रीत्यानुभवच्चिरं ॥ ६ ॥ कदाचित्प्रावृडारंभे जृंभमाणां वनावलीं । विलो-
कितु पुरस्यासाद्बहिःशल्यमुदात्तधीः ॥ ७ ॥ तत्र शाखोपशाखाः स्वा प्रसार्येव नृपो महान् । अवगाह्य महीं तस्थौ न्यग्रोधः सेवितो द्विजैः ॥ ८ ॥ त वि-
लोक्य महीपालः पश्य पश्यास्य विस्तृतिं । तुंगत्वं बद्धमूलत्व वहन्नन्वेति मामयं ॥ ९ ॥ दर्शयन्निति चाश्चर्यं प्रियाणां पार्श्ववर्तिना । गत्वा वनांतरे भ्रा-
न्त्वा तेनैवायत्पुरं पथा ॥ १० ॥ आमूलाद्भस्मितं वीक्ष्य वज्रपातेन तं वटं । कस्यात्र बद्धमूलत्वं कस्य का वात्र विस्तृतिः ॥ ११ ॥ कस्य का तुंगता

वंशमें उत्पन्न हुआ था और बडे बडे गुणोंसे पूज्य था कुंभारके हाथमें लगी हुई मिट्टीके समान पृथ्वी उसके वशमें थी ॥ ३ ॥ प्रजाका कल्याण करनेवाले उस राजासे प्रजाका सबसे बडा योग (जो नहीं है उसकी प्राप्ति) होता था क्योंकि वह खजाना किला और सेना आदिसे उस प्रजाका उपयोग करता था ॥ ४ ॥ वह किसी भयके समय रक्षा करनेके लिये धन इकट्ठा करता था और उस प्रजाको सन्मार्गमें चलानेके लिये उसे दंडदेता था ॥ ५ ॥ इस प्रकार बढते हुए पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई लक्ष्मीको वह प्रेमपूर्वक नवोढा स्त्रीके समान बहुत दिन तक अनुभव करता रहा था ॥ ६ ॥ किसी एक दिन उदार बुद्धिवाला वह राजा वर्षाऋतुके प्रारंभमें बढती हुई वनकी शोभाको देखनेकेलिये नगरके बाहर गया ॥ ७ ॥ जिस प्रकार कोई बडा राजा अपनी शाखा उपशाखाओंको फैलाकर तथा बहुतसी पृथ्वीको घेर कर रहता है और अनेक द्विज अर्थात् ब्राह्मण उसकी सेवा करते हैं उसीप्रकार वहां पर एक वटका (बडका) वृक्ष था जिसने अपनी बहुतसी शाखा उपशाखाएं फैला रक्खी थीं, वह बहुतसी पृथ्वीको घेरकर खडा था और अनेक द्विज अर्थात् पक्षीगण उसकी सेवा करते थे ॥ ८ ॥ उसे देखकर वह राजा आश्चर्यके साथ अपने समीप रहनेवाले प्रिय लोगोंको दिखलाने लगा और कहने लगा कि देखो! देखो!! इसका विस्तार देखो यह मानो मेरा अनुकरण करके ही अपनी उंचाई और जडोंकी मजबूती धारण करता है । इसतरह कहकर वह आगे किसी दूसरे वनमें गया और वहां घूम फिरकर वह उसी मार्गसे लौटा ॥ ९–१० ॥ लौटकर उसने देखा कि विजलीके पड जानेसे वह वडका वृक्ष जडतक जलगया है उसे देखकर वह विचार करनेलगा कि इस संसार में जड किसकी मजबूत है अथवा विस्तार किसका अधिक है अथवा किसकी कितनी उंचाई है इस ऐसे मजबूत

नाम यथस्यापीदृशी गतिः । इति चिंतासमापन्न सुत्रस्त सत्स्थितिस्थिते. ॥ १२ ॥ प्रदाय राज्यं पुत्राय रसायनः ॥ १३ ॥ राजभिर्बहुभिः सार्द्धमवाप्यात्युन्नत तपः । अगान्येकादशागानि विधाय विधिना धिया ॥ १४ ॥ सपाय ताथकृत्... चोपात्तभावनः । तपस्यन्सुचिरं प्रांते प्रास्ताशेषपरिग्रहः ॥ १५ ॥ सोनुत्तरविमानेषु संबभूवापराजिते । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रोपमायुर्हस्तोच्छ्रितिः कृती ॥ १६ ॥ मासान् षोडश मासार्द्धं चातिवाह्यं मनाक् सकृत् । श्वनित्याहारमादत्ते मनसायोग्यपुद्गलान् ॥ १७ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्रोकावत्सराणां व्यतिक्रमे । भोगोस्य नि प्रवीचारो लोकनाल्यंतरावधे. ॥ १८ ॥ तत्क्षेत्रमितभाशक्तिविक्रियस्यामरेशितुः । तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यागमिष्यति भूतलं ॥ १९ ॥ अत्रैव भरते वंगविषये मिथिलाधिप । इक्ष्वाकुर्भूपति कुंभनामा काश्यपगोत्रज ॥ २० ॥ प्रजावती महादेवी तस्य लक्ष्मीरिवापरा । पीयूषाशिकृताचिंत्यवसुधारादिवैभवा ॥ २१ ॥ चैत्रमासे सिते पक्षे निशाते प्रतिपद्दिने । अश्विन्या षोडश स्वप्नान् व्यलोकिष्ट-

जडवाले ऊंचे और विस्तृत वृक्षकी भी ऐसी दशा है । वह इसीतरहके विचारोंमें मग्न हो गया और संसारकी दशासे डर गया ॥ ११–१२ ॥ उसने राज्य तो अपने पुत्रको दे दिया और श्रीनाग नामके पर्वतपर विराजमान श्रीनाग नामके मुनिराजके समीप जाकर धर्मरूपी रसायनका पान किया ॥ १३ ॥ उसने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण की उग्र तपश्चरण किया और विधिपूर्वक अपनी बुद्धिके अनुसार ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया ॥ १४ ॥ उसने सोलह कारण भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया और बहुत दिन तक तपश्चरणकर अंतमें समस्त परिग्रहका त्याग किया ॥ १५ ॥ शरीरका त्यागकर अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें अहमिंद्र हुआ । तेतीस सागरकी उसकी आयु थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था साडे सोलह महीने वीत जानेपर एकवार थोडा सा श्वास लेता था तेतीस हजार वर्ष वीत जानेपर मानसिक योग्य पुद्गलोंका आहार लेता था । वह प्रविचाररहित भोगोंका सेवन करता था, लोकनाडीके अंततक उसका अवधिज्ञान था उतनी ही कांति थी और विक्रिया ऋद्धिकी शक्ति भी उतनी ही थी । जब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतार लेनेके सन्मुख हुआ तब इसी भरतक्षेत्रके वंगाल देशमें मिथिलाधिपति इक्ष्वाकुवंशी काश्यप गोत्री राजा कुंभ राज्य करता था, दूसरी लक्ष्मीके समान प्रजावती नामकी उसकी महादेवी थी इंद्रोंके द्वारा प्राप्त हुई रत्नोंकी धारा और अमृत भोजन आदि विभूतियोंसे वह पूजित हुई थी ॥ १६–२१ ॥ चैत्रशुक्ला प्रतिपदाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर उसने इष्टको सूचित करनेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ २२ ॥ उसीसमय मंगल पढनेवाले वंदीजन

सूचिन ॥ २२ ॥ तदैव मंगलान्युच्चै पेठुर्मंगलपाठका । हता प्रभातभेरी च दरनिद्राविघातिनी ॥ २३ ॥ प्रबुध्याधिकसंतोषात्स्नात्वा मंगलवेषधृक् । पतिं प्रति गता रेखा चंद्रस्येव तदातनी ॥ २४ ॥ संमत्कुमुद्वती सा विकासयती स्वतेजसा । आनंदयद्विलोक्यैनामधीशोप्यासनादिभिः ॥ २५ ॥ सुस्थितार्द्धासने सापि स्वप्नास्तास्तमवेदयत् । फलान्यमीषां शुश्रूषु परितोषकराण्यतः ॥ २६ ॥ यथाक्रमं नृपोप्युक्त्वा फल तेषां पृथक् पृथक् । गजवक्त्रप्रवेशावलोक नादूर्भमाश्रित ॥२७॥ तवाहमिंद्र इत्येनामानयत्प्रमद परे। कुर्वतस्तद्वच सत्यं समतादमरेश्वरा ॥२८॥समागत्य तयो कृत्वा स्वर्गावतरणोत्सव । कल्याणभागिन पित्रोर्ययुस्तोषात्स्वमाश्रय ॥ २९ ॥ तमादायोदरं तस्या निर्बाध भासतेस्म तत् । सक्रातपूर्णशीतांशुर्संमुखीनतलोपमं ॥ ३० ॥ सुखेन नवमे मासि पूर्णे पूर्णेंदुभास्वरं । विभक्तसर्वावयव सर्वलक्षणलक्षितं ॥३१॥ मार्गशीर्षे सितैकादशीदिनेश्वनिसगमे । त्रिज्ञानलोचनं देवं त प्रासूत प्रजावती ॥

ऊंचे स्वरसे मंगल पढने लगे सवेरेके समय नगाड़े बजने लगे और अधखुली निद्राको छोडकर वह बडे संतोपसे उठी। पहिले उसने स्नान किया वस्त्राभूषण पहिने और पडिवाके दिन चंद्रमाकी रेखा जैसे चंद्रमाके ही समीप रहती है उसीप्रकार वह अपने पतिके समीप पहुंची ॥ २३-२४ ॥ उसने अपने तेजसे सभारूपी कमोदनीको प्रफुल्लित कर दिया महाराज उसे देखकर बहुत ही आनंदित हुए और आसन आदि देकर उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया ॥ २५ ॥ वह रानी महाराजके आधे आसनपर बैठ गई, उनसे अपने देखे हुए सब स्वप्न निवेदन कर दिये और संतोष करनेवाले उनके फल सुननेकी इच्छा करने लगी ॥ २६ ॥ महाराजने भी यथाक्रमसे अलग २ उनके फल कहे और कहा कि अंतमें जो हाथी मुंहमें प्रवेश करता हुआ देखा है उससे स्पष्ट सिद्ध है कि अहमिंद्रने आकर तेरे गर्भमें अवतार लिया है इस तरह महाराजने रानीको बहुत ही प्रसन्न किया उसीसमय महाराजकी बातको सच करते हुये ही क्या मानो इंद्रादि देव चारों ओरसे आये कल्याण करनेवाले होनहार तीर्थंकरका स्वर्गावतरणोत्सव मनाया और उनके उन माता पिताओंका अभिषेक आदि किया तथा संतुष्ट होकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७-२९ ॥ जिसप्रकार पूर्ण चंद्रमाके प्रतिबिंबसे दर्पण सुशोभित होता है उसीप्रकार उस पुत्रके आनेसे उस देवीका उदर विना किसी बाधाके बहुत ही अच्छा जान पडता था ॥ ३० ॥ सुखपूर्वक नौ महीना पूर्ण होजानेपर उस प्रजावती देवीने मार्गशीर्ष (अगहन) सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें जो पूर्ण चद्रमाके समान देदीप्यमान है जिसके सब अवयव अलग २ विभक्त हैं जिसमें सब लक्षण सुशोभित हैं और जो मति श्रुत अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करता है ऐसे तीर्थंकर देवको उत्पन्न किया ॥ ३१-३२ ॥ उसीसमय आनंदित हो-

३२ ॥ तदामृताशिन सर्वे सम्प्राप्य प्राप्तसमदा । तेज पिंड समादाय बालं बालार्कमभिभं ॥ ३३ ॥ गत्वाचलेशे संस्थाप्य पंचमाब्धिपयोजलैः । अभिषिच्य विभूष्योच्चैर्मल्लिनामानमाजगु ॥ ३४ ॥ तं पुनस्तं समानीय नामश्रावणपूर्वकं । मातुरंगे व्यवस्थाप्य स्वनिवासान् प्रपेदिरे ॥ ३५ ॥ अरेशतीर्थसंतानकालस्यांते स पुण्यभाक् । सहस्रकोटिवर्षस्य तदभ्यंतरजीव्यभूत् । समानां पचपंचाशत् सहस्राण्यस्य जीवित । पंचविंशतिवाणासनोच्छ्रित कनकद्युतिः॥ ३७ शतसंवत्सरे याते कुमारसमये पुरं । चलत्सितपताकाभिः सर्वत्रोद्धतोरणै ॥ ३८ ॥ विचित्ररंगवल्लीभिर्विकीर्णकुसुमोत्करैः । निर्जिताभोनिधिध्वानैःप्रध्वनत्पटहादिभिः ॥ ३९ ॥ मल्लिर्निजविवाहार्थं भूयो वीक्ष्य विभूषितं । स्मृत्वापराजितं रम्यं विमानं पूर्वजन्मनः ॥ ४० ॥ सा वीतरागता प्रीतिस्तज्जाता महिमा च सा । क्वत- क्वतो विवाहोयं सता लज्जाविधायकः ॥ ४० ॥ विडंबनमिदं सर्वं प्रकृत प्राकृतैर्जनैः । निंदयन्निति निर्विंय सोभूनिष्क्रमणोद्यत । ४२ ॥ तदा द्युसुनयः प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिविस्तरा । अनुमत्य मतं तस्य ययु खेन तिरोहिताः ॥ ४३ ॥ तीर्थकृत्स्वपि केषांचिदेवासीदीदृशी मतिः । कु-

कर सब इंद्रादि देव आए उदय होते हुए सूर्यके समान तेजके पिंडरूप उस बालकको उठाकर सुमेरु पर्वतपर पहुंचे और क्षीरसागरके जलसे अभिषेककर तथा वस्त्राभूषण पहिनाकर मल्लिनाथ उनका नाम रक्खा ॥ ३२–३४ ॥ वे देव फिर उनको घर लाये तथा रक्खा हुआ नाम सुनाकर उन्हें माताकी गोदमें विठाया और फिर सब देव अपने २ स्थानको चले गये ॥ ३५ ॥ अरनाथ तीर्थंकरके बाद एक हजार करोड वर्ष वीत जानेपर पुण्यवान् मल्लिनाथ हुये थे उनकी आयु भी इसी कालमें शामिल है ॥ ३६ ॥ पचपन हजार वर्षकी उनकी आयु थी पचीस धनुष ऊंचा शरीर था, और सुवर्णके समान शरीरकी कांति थी। कुमारकालके सौ वर्ष वीत जानेपर मल्लिनाथने देखा कि मेरे विवाहके लिये नगर सजाया जा रहा है, उसमें चंचल सफेद पताकाएं फहरा रही हैं सब जगह ऊंचे २ तोरण वांधे जा रहे हैं अनेक तरहकी रंगावली वनाई जा रही है जगह २ फूलोंके ढेर वरसाये जा रहे हैं और समुद्रकी गर्जनाको जीतने वाले अनेक नगाडे बज रहे हैं। उससमय वे पहिले जन्मके मनोहर अपराजित विमानका स्मरण करते हुये विचार करने लगे कि कहां तो वह वीतरागतासे उत्पन्न हुआ प्रेम और उससे प्रगट हुई महिमा और कहां यह सज्जनोंको लज्जा उत्पन्न करनेवाला विवाह ! यह विवाह आदि सब विडंवना मात्र है और पहिलेके वडे लोग सदा इसकी निंदा करते चले आये हैं। इसतरह विरक्त होकर वे दीक्षा लेनेकेलिये तैयार होगये ॥ ३७–४२ ॥ उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी बडी भारी स्तुतिकी और उनकी दीक्षामें सम्मति देकर आकाशमार्गसे अदृश्य होकर चले गये ॥ ४३ ॥ क्या तीर्थंकरोंमें किसीकी ऐसी बुद्धि हुई है क्योंकि कुमार अवस्थामें वडे आदमियोंको भी विष-

क्षरो विषयत्याग. कौमारे महतामपि ॥ ४४ ॥ इति भक्त्या कृतालापा नभोभागे परस्परं । परनि क्रांतकल्याणमहामिषव रसवं ॥ ४५ ॥ सोत्सवाः प्रापयतिस्म कुमारममरेश्वरा । कुमारोपि जयतांमिधान यानमधिष्ठितः ॥ ४६ ॥ गत्वाश्वेतवनोद्यानमुपवासद्वयान्वित । स्वजन्ममासनक्षत्रदिनपक्षसमाश्रितः ४७ ॥ कृतसिद्धनमस्कार परित्यक्तोपधिद्वय । सायाह्ने त्रिशतैर्भूपैः सह सप्राप्य संयम ॥ ४८ ॥ संयमप्रत्ययोत्पन्नचतुर्थज्ञानभास्कर । मार्गोयमिति सचिंत्य सम्यग्ज्ञाने प्रचोदितः॥४९॥मिथिला प्राविशत्तस्मै नंदिषेणनराधिप । प्रदाय प्रासुकाहारं प्राप युम्नद्युति शुभं॥५०॥दिने षट्के गते तस्य छाद्मस्थ्ये प्राक्तने वने । अधस्तरोरशोकस्य त्यक्ताहर्द्वितयाद्गते ॥५१॥पूर्वाह्ने जन्मनीवाश्राप्यस्य सत्सु दिनादिषु । घातित्रितयनिर्नाशात्केवलावगमोऽभवत् ॥ ५२ ॥ बोधिता इव देवेंद्राः सर्वे ज्ञानेन तेन ते । सभूयागत्य तत्पूजामकुर्वन् सर्ववेदिन ॥ ५३ ॥ अष्टाविंशतिरस्यासन् विशाखाद्या गणाधिपाः । खपचेंद्रियमा-

योंका त्याग करना वडा ही कठिन है ॥ ४४ ॥ इसतरह भक्तिपूर्वक आकाशमार्गमें परस्पर बात चीत करते हुये और उत्सव मनाते हुए देव लोग जिनका दीक्षा कल्याणके महा अभिषेकका उत्सव होनेवाला है ऐसे कुमार मल्लिनाथके समीप आए। कुमार मल्लिनाथ भी जयंत नामकी पालकीपर सवार होकर श्वेत बनके उद्यानमें गये तथा उन्होंने दो दिनका उपवास धारणकर अपने जन्म दिनके महीना नक्षत्र दिन और पक्षमें (अर्थात् अगहन सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें) शामके समय तीन सौ राजाओंके साथ साथ सिद्धोंको नमस्कारकर वाह्य अभ्यंतर दोनों तरहके परिग्रहका त्याग किया और इसतरह उन्होंने दीक्षा धारण की॥४५-४८॥संयमके धारण करते ही उनका मनःपर्ययज्ञानरूपी सूर्य प्रगट हुआ। सम्यग्ज्ञानसे प्रेरित होकर ही क्या मानो "यह सनातन मार्ग है" यही समझकर पारणाके दिन उन्होंने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया और सुवर्णकी कांतिवाले राजा नंदिषेणने उन्हें प्रासुक आहार देकर शुभ (पंचाश्चर्य) प्राप्त किया॥४८-५०॥छद्मस्थ अवस्थाके छह दिन बीत जानेपर पहिलेके श्वेत बनमें अशोक वृक्षके नीचे दो दिनका उपवास धारणकर विराजमान थे वहींपर जन्मके समान शुभ दिन और शुभ नक्षत्र आदिमें सवेरेके समय तीनों घातिया कर्मोंका नाश होजानेसे (मोहनीय कर्म पहिले नष्ट हो जाता है उस सहित चारों घातिया कर्मोंके नाश हो जानेसे) उन्हें केवल ज्ञान प्रगट हुआ ॥ ५२ ॥ उसी केवलज्ञानसे मानों प्रबोधित हुए इंद्रादि देव सब इकट्ठे होकर आए और सबने उन सर्वज्ञदेवकी पूजा की ॥ ५३ ॥ उनके समवसरणमें विशाखको आदि लेकर अट्ठाईस गणधर देव हुए थे, पांचसौ पचास ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे, उन्तीस हजार शिक्षक थे और दोहजार दोसौ पूज्य अवधिज्ञानी थे ॥५४-५५॥ दो हजार दोसौ ही केवलज्ञानी थे, एक हजार चारसौ वादी थे, दो हजार नौसौ विक्रिया ऋद्धिसे सुशोभित थे और

नौका मुनयः पूर्वधारिणः ॥ ५४ ॥ शून्यत्रितयरंध्रद्विप्रोक्तसंख्यानशिक्षकाः । द्विशतद्विसहस्रोक्ततृतीयावगमस्तुताः ॥ ५५ ॥ तावत पंचमज्ञानाः
खद्वयाब्ध्येकवादिनः । शून्यद्वयनवद्व्युक्तविक्रियर्द्धिविभूषिता ॥ ५६ ॥ शून्यपंचमुनींद्रोक्तमन पर्ययबोधनाः । चत्वारिंशत्सहस्राणि सर्वे संकलनां
श्रिता ॥ ५७ ॥ खत्रयेंद्रियपंचोक्ता बंधुषेणादिकार्यिकाः । श्रावका लक्षया प्रोक्ता श्राविकास्त्रिगुणास्ततः । देवा देव्यस्त्वसंख्याताः गण्या कंठीरवादयः ।
एवं द्वादशभिर्देवो गणैरेभि परिष्कृत ॥ ५९ ॥ मुक्तिमार्गं नयन् भव्यपथिकान् प्रथितध्वनिः । विजहार महादेशान् भव्यसत्वानुरोधतः ॥ ६० ॥ ततो
मासावशेषायु सम्मेदाचलमाश्रितः । प्रतिमायोगमादाय मुनिभिः सह पंचभिः ॥ ६१ ॥ सहस्रैर्ध्यानमास्थाय भरण्या पूर्वरात्रत । फाल्गुनोज्वलपचम्या
तनुवातं समाश्रयत् ॥ ६२ ॥ कल्पान्निर्वाणकल्याणमत्रेत्यामरनायकाः । गंधादिभि समभ्यर्च्य तत्क्षेत्रमपवित्रयन् ॥ ६३ ॥ जननमृतितरंगाद् दुःखदु-
र्वारिपूर्णाद्दुपनितगुणरत्नो दुस्पृहावर्तगर्तात् । स कुमतविधुवृद्धाद् ध्यातिनावा भवाब्धे-रभजत भुवनाग्रे विग्रहग्राहमुक्त ॥ ६४ ॥ येन शिष्टगुरुवर्त्म

एक हजार सातसौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे इसतरह सब मुनिराजोंकी संख्या चालीस हजार थी ॥ ५६--५७ ॥
बधुषेणाको आदि लेकर पचपन हजार आर्जिकाएं थी, एक लाख श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाएं थीं ॥ ५८ ॥
इसके सिवाय असंख्यात देव देवियां थीं और सिंह आदि संख्यात पशु थे। इसतरह वे भगवान इन बारह सभाओंसे
सुशोभित हो रहे थे ॥ ५९ ॥ जिनकी दिव्यध्वनि प्रसिद्ध है ऐसे मल्लिनाथ भगवानने भव्य रूपी पथिकोंको मोक्षमार्ग
में लगाते हुए भव्य जीवोंके अनुरोधसे अनेक देशोंमें विहार किया ॥ ६० ॥ तदनंतर जब उनकी आयु एक महीने
की रहगई तब उन्होंने सम्मेदाचल पर्वतपर आकर पांच हजार मुनियोंके साथ प्रतिमायोग धारण किया और ध्यान धारण
कर फाल्गुन शुक्ला पंचमीके दिन भरणी नक्षत्रमें शामके समय कर्मोंको नष्टकर तनुवातमें जा विराजमान हुए ॥ ६१--
६२ ॥ निर्वाण कल्याणका उत्सव मनानेके लिये इंद्रादि देव स्वर्गसे उसीसमय आए और गंध अक्षत आदिसे उस
क्षेत्रकी पूजाकर उन्होंने उसे पवित्र बनाया ॥ ६३ ॥ इस संसाररूपी समुद्रमें जन्म मरण ही तरंगें हैं यह दुःखरूपी
खारे जलसे लबालब भरा हुआ है इसमें खोटी इच्छाएं ही भंवर पढनेके गढे हैं और मिथ्यात्व रूपी चंद्रमासे ही यह
बढता रहता है जो मल्लिनाथ भगवान गुणरूपी रत्नोंको इकट्ठाकर और शरीर रूपी मगर मच्छोंको दूर हटाकर ध्यान
रूपी नावसे ऐसे संसारसमुद्रको पारकर लोकके ऊपर जा विराजमान हुए जिन्होंने इस बडे भारी मोक्षके मार्गका उप-
देश दिया जिन्हें नम्र होते हुए सब लोग नमस्कार करते हैं और जिन्हें सब गुणोंने आकर स्वयं स्वीकार किया है
ऐसे शल्यरहित श्रीमल्लिनाथ भगवान् हम तुम सब लोगोंको मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ ६४--६५ ॥ जो पहिले वैश्रवण

निमुक्ते–र्यं नमति नमिताखिललोका: । यो गुणैः स्वयमधारि समग्रैः स श्रियं दिशतु मल्लिरशल्यः ॥ ६५ ॥ अजनि वैश्रवणो धरणीश्वरः पुनरनुत्तर-नाम्न्यपराजिते । जितखलाखिलमोहरिपुर्विभु–र्दिशतु मल्लिरसावतुलं सुखं ॥ ६६ ॥ मल्लेर्जिनस्य सताने ऽभूत्पद्मो नाम चक्रभृत् । द्वीपेस्मिन्प्राच्यसौ मेरो सुकच्छविषये नृप. ॥ ६७ ॥ श्रीपुरेश प्रजापालस्तृतीये ऽजनि जन्मनि । स्वामिप्रकृतिसप्रोक्तगुणानामुत्तमाश्रय ॥ ६८ ॥ सुराज्ञस्तस्य नाभूवन्राज्येस्या-युक्तिकादिभिः । प्रजाना पचभिर्बाधास्तदवर्तत ता सुख ॥ ६९ ॥ शक्तित्रितयसपत्या शत्रून्निर्जित्य जित्वर । विश्रातविग्रहो भोगान् धर्मेणार्थेन चान्व-भूत् ॥ ७० ॥ स कदाचिद् विलोक्योल्कापात जातावबोधन । आपातरमणीयत्वमाकलय्येष्टसपदां ॥ ७१ ॥ स्थास्नुबुध्या विमुग्धत्वादन्वभूवमिमाश्चिरं । न चेदुल्काप्रपातोयं भूयोभ्रांतिर्भवार्णवे ॥ ७२ ॥ इत्यारोप्य सुते राज्यं शिवगुप्तजिनेश्वरं । प्रपद्य परमं पितृसुरयासीत्सयमद्वय ॥ ७३ ॥ समुत्कृष्टाष्टशुद्धीद्ध

राजा हुए थे फिर अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें अहमिंद्र हुए और फिर जो दुष्ट समस्त मोहरूपी शत्रुको जीतकर भगवान तीर्थंकर हुए ऐसे श्रीमल्लिनाथ भगवान् हम तुम सब लोगोंको अतुल सुख देवें ॥ ६६ ॥

अथानंतर–इन्हीं मल्लिनाथ तीर्थंकरके समयमें पद्म नामका चक्रवर्ती हुआ है । वह अपनेसे पहिलेके तीसरे जन्म में इसी जंबूद्वीपके सुमेरु पर्वतके पूर्वकी ओर सुकच्छा देशके श्रीपुर नगरमें प्रजापाल नामका राजा था, राजाओंमें जितने प्राकृतिक गुण होने चाहिये वे उसमें थे ॥ ६७-६९ ॥ उस अच्छे राजाके राज्यमें प्रजाको अनुक्ति आदि पांच तरहकी वाधाओंमेंसे किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी और इसीलिये उसकी प्रजा सुखसे निवास करती थी ॥ ॥६९॥सबका विजेता वह राजा अपनी तीनों तरहकी शक्तियोंसे सब शत्रुओंको जीतकर तथा सब युद्धोंको शांतकर धर्म और अर्थके साथ भोगोंका अनुभव करता था ॥७०॥ किसी एक दिन वह उलकापातको देखकर प्रबोधित हुआ और समस्त इष्ट संपदाको देखनेमें ही सुदर किंतु शीघ्र ही नष्ट होनेवाली मानने लगा ॥ ७१ ॥ वह विचार करने लगा कि मैंने अपनी मूर्खतासे इसे स्थिर मानकर बहुत दिनतक इसका अनुभव किया यदि यह उलकापात न होता तो मुझे फिर भी इसी संसार महासागरमें गोता खाने पडते ॥ ७२ ॥ इसतरह सोचकर उसने पुत्रको राज्य दिया और शिवगुप्त जिनराजके समीप आकर मोक्षकी इच्छा करते हुए दोनों प्रकारका संयम धारण किया उत्कृष्ट आगे शुद्धियोंसे बढते हुए तपश्चरणसे उसने अशुभास्रवको रोका और अनुक्रमसे अंत समयमें समाधि मरण धारण किया॥७४॥ इसतरह अपना राज्य देकर अपने हाथमें आया हुआ अच्युत स्वर्ग खरीदा और उस स्वर्गको देखकर बहुत ही संतुष्ट हुआ सो ठीक ही है क्योंकि खरीदनेमें जीतनेवाला संतुष्ट होता ही है ॥ ७५ ॥ वहांपर उसकी बाईस सागरकी आयु थी

[illegible] स्त्वा [illegible] साय सुसमाहितमानसः ॥ ७५ ॥ निजराज्येन संप्रीतः सहस्रप्रीतमच्युतं । तुतोष कल्पमालोऽसौ जितमेरोर्हि पुष्प-
वि[illegible] ॥ ७५ ॥ [illegible] प्रांते सोऽच्युताधिपः । द्वीपेऽत्र भरते काश्यां वाराणस्यां सुरीसृजः ॥ ७६ ॥ इक्ष्वाकोः पद्मनाभस्य रामायां शुभलक्षणः ।
पद्मासितमानः पु[illegible] णः ॥ ७७ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्रायुर्द्वाविंशतिधनुस्तनुः । सुरसंप्राप्यकीर्त्यादिकान्तस्वर्णविभास्वरः ॥ ७८ ॥ पुण्योदयात्क्रमेणाप्-
य चक्रित्वं विक[illegible] जितः [illegible] गादि संयममप्याप्नुभक्तिरः ॥ ७९ ॥ पृथिवीसुंदरीमुख्यास्तस्याष्टौ पुत्रिकाः सतीः । सुकेतुखचराधीशपुत्रेभ्योऽदा-
त्ससम्मानं ॥ ८० ॥ एवं सु[illegible]क लस्य याति सत्यसुखेऽपरे । प्रेक्ष्य प्रमोदमुत्पाद्य सभोऽसौ विकृतिं ययौ ॥ ८१ ॥ तं वीक्ष्य न विपक्षोऽस्य तथाप्येष गमत्क्षयं ।
संपत्सु सर्वविद्विट्सु का स्थेयास्था विवेकिन ॥ ८२ ॥ इति चक्री समालोच्य संयमेऽभूतत्तदा । सुकेतुः कुलवृद्धोऽस्य नाम्ना दुश्चरितोऽभवीत् ॥ ८३ ॥ राज्यस्य
प्राप्तिकालस्ते कनीयान् नवयौवनः । भोगान् भुंक्ष्व न कालोऽयं तपसः किं विधीभवः ॥ ८४ ॥ केनापि तपसा कार्यं किं वृथायासमात्रकं । नात्र किंचित्फलं

अंत समयमें उस अच्युत स्वर्गसे च्युत होकर वह इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें इक्ष्वाकु वंशी राजा पद्मनाभकी रानीसे पुत्र उत्पन्न हुआ । पद्म उसका नाम था और कमल आदि सब प्रशंसनीय लक्षण उसमें थे ॥ ७६–७७ ॥ तीस हजार वर्षकी उसकी आयु थी बाईस धनुष ऊंचा शरीर था सुवर्णके समान शरीरकी कांति थी जिसकी देव लोग भी प्रार्थना करते थे ॥ ७८ ॥ पुण्य कर्मके उदयसे अनुक्रमसे या अपने पराक्रमसे चक्रवर्तीपना प्राप्त हुआ था और विना किसी बाधा और विना किसीकी सहायतासे वह बहुत दिनतक दश तरहके भोगोंका अनुभव करता रहा था ॥ ७९ ॥ उसके पृथिवी सुंदरी आदि मुख्य आठ पुत्रियां थीं जो कि सती थीं और उस चक्रवर्तीने उन्हें प्रसन्न होकर सुकेतु नामके विद्याधरके पुत्रोंको दे दी थीं ॥ ८० ॥ इस तरह उसका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था किसी एक दिन वह आकाशमें बादल देख रहा था कि इतनेमें ही वह बादल अदृश्य हो गया ॥ ८१ ॥ उसे देखकर वह चक्रवर्ती विचार करने लगा कि इस बादलका कोई शत्रु नहीं है तथापि यह नष्ट होगया फिर जिसके सब शत्रु हैं ऐसी संपत्तिमें बुद्धिमान लोग स्थिर रहनेकी श्रद्धा किस तरह रख सकते हैं ? ॥ ८२ ॥ यही सोचकर वह चक्रवर्ती संयम धारण करनेके लिये तैयार हुआ परंतु उसी समय दुश्चरित्र किंतु कुलमें बडा ऐसा सुकेतु कहने लगा कि अभी आपका राज्य करनेका समय है आप अभी नवयौवन हैं और छोटे हैं इसलिये अभी भोगोंका अनुभव कीजिये अभी आपका तपश्चरण करनेका समय नहीं है नाहक क्यों बुद्धिहीन हुए हैं ॥ ८३–८४ ॥ किसी भी तपश्चरणसे क्या कार्य निकलता है सब परिश्रम मात्र है न तो इस भवमें कुछ फल मिलता है और न परलोक ही

नैव परलोकश्च कथन ॥ ८५ ॥ कथ न परलोकश्चेदभावात्परलोकिन । पंचभूतात्मके काये चेतना मदशक्तिवत् ॥ ८६ ॥ पिष्टकिण्वादिसंयोगे तदात्मोक्ति खपुष्पवत् । तत प्रेत्योपभोगादिकांक्षा स्वकृतकर्मणः ॥ ८७ ॥ वंध्यास्तनंधयस्येव खपुष्पापीडलिप्सनं । आग्रहोयं परित्याज्यो राज्यं कुरु निराकुल ॥८८॥ सत्यप्यात्मनि कौमारे सुकुमारः कथ तपः । सहसे निष्ठुरं देव दुष्करैरपि दुष्करं ॥ ८९ ॥ इत्युक्तं तदमात्यस्य स श्रुत्वा शून्यवादिन । रूपादिरूप एवात्र भूतसंघोमिलक्ष्यते ॥ ९० ॥ सुखदुःखादिसंवेद्य चैतन्य तद्विलक्षण । तद्वान् देहादिहान्योय स्वसंवित्यानुभूयते ॥ ९१ ॥ बुद्धिपूर्वक्रियालिंगादन्यत्राप्यनुमीयते । अस्त्यात्मा भाविलोकश्च सत्वाद्यातीतसंस्मृते ॥ ९२ ॥ इह लोकादिपर्यंतवीक्षणैर्जन्मिना सतां । बुद्धिकारणकार्यो स्ता चैतन्यान्मयधीरिव ॥ ९३ ॥

कोई चीज है ॥ ८५ ॥ कदाचित यह पूछो कि परलोक क्यों नहीं है तो इसका उत्तर यही है कि इस संसारमें परलोगोंका अभाव है यह शरीर पंचभूतात्मक है और मदिराकी शक्तिके समान उसमें चेतना है जिसप्रकार आटा और मदिराकी सामग्रीके संयोगसे मदिरा (मादक शक्ति) प्रगट हो जाती है उसीप्रकार पंच भूतोंके संयोगसे आत्माशक्ति प्रगट हो जाती है वास्तवमें आत्मा आकाश पुष्पके समान कोई चीज नहीं है, इसलिये अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे परलोकमें भोगोपभोगोंकी आकांक्षा वा इच्छा करना वंध्याके पुत्रके समान है अथवा आकाशके फूलोंको पेरनेकी इच्छा करनेके समान है इसलिये यह दीक्षा ग्रहण करनेका आग्रह आपको छोड देना चाहिये और निराकुल होकर राज्य करना चाहिये ॥ ८६-८८ ॥ अभी आपकी कुमार अवस्था है हे देव सुकुमार होकर अत्यंत कठिन और दुष्कर से दुष्कर तपश्चरण आप कैसे सहन करेंगे ॥ ८९ ॥ इसप्रकार शून्यवादी मंत्रीके ये वचन सुनकर चक्रवर्ती कहने लगा कि पंचभूतात्मक सब रूपी पदार्थ हैं और वे सबरूपी पदार्थमें ही रहते हैं परंतु जो सुख दुःख आदिसे अनुभव किया जाता है ऐसा चैतन्य उन रूपादि पदार्थोंसे विल्कुल विलक्षण है वह चैतन्य जिसमें रहता है वही आत्मा है वह शरीरसे भिन्न है और मैं सुखी मैं दुखी ऐसे स्वसंवेदनसे अनुभव किया जाता है॥९०-९१॥ दूसरे लोग भी बुद्धिपूर्वक क्रियाएं करते हैं इसी हेतुसे उनमें भी आत्माका अनुभव किया जाता है इसलिये आत्मा अलग कोई पदार्थ है और पहिले जन्मका स्मरण होनेसे तथा उसका अस्तित्व होनेसे परलोक भी मानना ही पडता है ॥ ९२ ॥ जिसप्रकार यौवनावस्थामें जो बुद्धि होती है वह उससमयसे पहिले रहनेवाली बुद्धिसे उत्पन्न होती है और वही बुद्धि आगेकी बुद्धिको उत्पन्न कराती है अर्थात् एक ही बुद्धि कार्यकारण दोनों रूप होती है इसीप्रकार इसजन्ममें जो प्रथम समयकी बुद्धि है वह अपनी कारणरूप पहिले जन्मकी बुद्धिसे ही उत्पन्न होती है और इस जन्मके अंतसमयकी बुद्धि अगिले जन्मकी बु-

इत्यादियुक्तिवादेन चक्री तं शून्यवादिनं । श्रद्धाप्यात्मास्तितां स्वस्मात्कृतमोहविसर्जनः ॥ ९४ ॥ नियोज्य स्वात्मजे राज्यं सुकेत्वादिमहीभुजैः । जिना-त्समाधिगुप्ताख्यात्समं संयममाददौ ॥९५॥ विशुद्धिपरिणामानामुत्तरोत्तरभाविनां । प्राप्य क्रमेण पर्यंतं पर्यंतं प्राप घातिनां॥९६॥नवकेवललब्धीद्धविशुद्धव्यांह तीश्वर· । काले कायत्रयं हित्वा पदेभूत्परमेश्वर ॥९७॥ उदयाभोदयादस्य धरणीधरणीमुदः । तानवं तानवं किंचित्सपद सपदं श्रित· ॥९८॥ नापद्मापद्मभोगेन मामतो मामतोदयाः । सपद्माख्यः सपद्माख्य· सुगमः संगमः सता ॥ ९९ ॥ मंदराग इवोत्तुंगोमंदरागोरिधारिणां । राजते राजतेजोभिर्नवमोऽनवमो मुदा ॥ १०० ॥ प्रथममजनि राजा यः प्रजापालनामा शमितकरणवृत्त्या प्रातकल्पेश्वरोभूत् । सकलभरतनाथः शर्मण· सप्त पद्म· परमपदमवापत्सोमलं शं क्रियान्नः ॥ १०१ ॥ तार्थेस्मिन्नेव सभूतौ ससमौ रामकेशवौ । तृतीये तौ भवेऽभूतां साकेते राजपुत्रकौ ॥ १०२ ॥ अप्रियत्वात्पिता त्यक्त्वा तौ स्नेहेन

द्धिको उत्पन्न करती ही है इसप्रकार संसारी जीवोंकी कार्यकारण· रूप बुद्धि देखनेसे अगिले जन्मोंका अस्तित्व भी मानना ही पडता है॥९३॥इत्यादि रीतिसे युक्तियोंके वचन कहकर चक्रवर्तीने उस शून्यवादीको आत्माके अस्तित्वका श्रद्धान कराया और फिर अपने आत्मासे सब तरहका मोह छोडकर अपने पुत्रको राज्य दिया तथा सुकेतु आदि अनेक राजाओंके साथ समाधि गुप्त नामक जिनराजके समीप संयम धारण किया॥९४-९५॥उत्तरोत्तर होनेवाले विशुद्ध परिणामोंको अनुक्रमसे धारणकर घातिया कर्मोंका नाश किया और फिर नव केवल लब्धियोंको धारणकर उन भगवानने विशुद्ध रीतिसे विहार किया तथा आयुके अंतमें औदारिक तैजस कार्मण तीनों शरीरोंको नष्टकर परमेश्वरका पद सुशोभित किया ॥ ९६--९७ ॥ अनेक मुकुटबद्ध राजाओंसे हर्षित होनेवाले और उत्कृष्ट प्रकर्षताको प्राप्त हुए उस पद्मको पुण्योदयसे न तो कुछ शरीर संबंधी कृशता हुई थी और न उसे किसीके लिये नवना ही पडा था ॥ ९८ ॥ जिसे अनेक भोगोपभोग प्राप्त हैं ऐसे पद्म चक्रवर्तीको अकेली लक्ष्मी ही प्राप्त नहीं हुई थी किंतु कीर्तिके साथ साथ अनेक अभ्युदय प्राप्त हुए थे इसप्रकार सम्यक् ज्ञानको धारण करनेवाले लक्ष्मी तथा कीर्ति सहित पद्म चक्रवर्ती सज्जनोंके समागमके लिये हों। जो मंदराचलके समान ऊंचा है शत्रुओंमें जिसका स्नेह मंद है जो चंद्रमाके प्रकाशके समान सुशोभित है और मुख्य नौवां चक्रवर्ती है वह सबकी प्रसन्नताके लिये हो ॥ १०० ॥ जो पहिले प्रजापाल नामका राजा हुआ था फिर इंद्रियोंको दमन कर अर्थात् तपश्चरणकर अच्युत स्वर्गका ईश्वर हुआ तदनंतर जो समस्त भरत क्षेत्रका स्वामी और अनेक कल्याणोंका घर ऐसा पद्म नामका चक्रवर्ती हुआ और फिर जो परमपद अर्थात् मोक्षस्थानको प्राप्त हुआ वह हम लोगोंको भी निर्मल कल्याण करनेवाला हो ॥ १०१ ॥

कनीयसे । आत्ते स्वस्मै ददौ यौवराज्य पदमकलित ॥ १०३ ॥ मन्त्रिणेव कृतं सर्वमिदमित्यतिकोपिनौ । अमात्ये बद्धवैरौ तौ धर्मतीर्थान्वगानुगौ ॥ १०४ ॥ शिवगुप्तमुनेरंतेवासितामेत्य संयमं । विधाय मुनिशालाग्रे सौधर्मे समभूताम् ॥ १०५ ॥ ततः प्रच्युत्य भूत्वेव वाराणस्यां बभूवतुः । इक्ष्वाकुकुल- सकस्याग्निशिखस्य तनयौ प्रियौ ॥ १०६ ॥ माता पराजिता केशवती च क्रमात्तयोः । नंदिमित्राह्वयो ज्येष्ठः कनीयो दत्तसंज्ञकः ॥ १०७ ॥ द्वात्रिंश- त्समायुर्दानी द्वाविंशतिधनुस्तनू । चन्द्रनीलसंकाशावपर्दनामन्वतां ॥ १०८ ॥ ततो मंत्री च पूर्वोक्तो भ्रान्त्वा संसारसागरे । क्रमेण विजयार्द्धे मन्दराख्य- पुराधिप । बलीन्द्राभिधया ख्यातो जातो विद्याधराधिपः । सोऽन्येद्युर्नंदिमित्रादीन् गंधसिंधुरमप्रतिम प्रसिद्धं भद्रक्षीरोदाख्यमोदिश्य विश्रुतः ॥ ११० ॥ मदन्वयं चोरयोग्यं दीयतां गंधवारणः । इति दर्पात्प्रतिष्ठभी प्राहिणोत्प्रति तौ वच ॥ १११ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं तौ च तेनायाम्यां सुते स्वयं । देये चेद्दीयते दन्ती नोचेन्नोपि न दीयते ॥ ११२ ॥

अथानंतर– इन्हीं तीर्थंकरके समयमें सातवें बलभद्र और नारायण हुए हैं वे अपनेसे तीसरे भवमें अयोध्या नगरमें राजपुत्र हुए थे ॥ १०२ ॥ पिताको वे प्यारे नहीं थे इसलिये उन्हें छोडकर उसने अपने प्रेमके कारण छोटे भाईको युवराज पद दे दिया था ॥ १०३ ॥ परंतु उन दोनों भाइयोंने समझा कि यह सब काम मंत्रीने किया है यही समझकर वे बडे क्रोधित हुए, मंत्रीके साथ उन्होने वैर बांध लिया और फिर धर्म तीर्थके अनुयायी होकर शिव- गुप्त मुनिके शिष्य हो गये, संयम धारणकर तपश्चरण किया और फिर आयुके अंतमें सौधर्म स्वर्गके सुविशाल नामके विमानमें देव हुए ॥ १०५ ॥ वहांसे च्युत होकर बनारस नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें शिरोमणि राजा अग्निशिखके अपरा- जिता और केशवती रानियोंसे दोनों राजपुत्र हुए । बडेका नाम नंदिमित्र था और छोटेका नाम दत्त था ॥ १०६– १०७ ॥ उन दोनोंकी बत्तीस हजार वर्षकी आयु थी और बाइस धनुष ऊंचा शरीर था । एकके शरीरकी कांति चं- द्रमाके समान थी और दूसरेकी इंद्र नीलमणिके समान थी इसतरह वे दोनोंही भाई अनुक्रमसे बढने लगे ॥ १०८ ॥ पहिले भवका मंत्रीका जीव संसार सागरमें परिभ्रमण कर अनुक्रमसे विजयार्द्ध पर्वतपर मंदर नामके नगरका स्वामी हुआ बलींद्र उसका नाम था और वह सब विद्याधरोंका स्वामी था । किसी एक दिन कार्योंको रोक देने वाले बलीं- द्रने अपने अभिमानसे नंदिमित्र और दत्तके कहला भेजा कि तुम्हारे यहां जो भद्र क्षीरोद नामका गंधवारण हाथी है जो कि बहुत बडा और प्रसिद्ध है तथा जो मेरे ही योग्य है उसे भेज दो ॥ १०९-१११ ॥ यह सुनकर इसके उत्तरमें उन दोनों भाइयोंने कहला भेजा कि यदि वह हम दोनों भाइयोंको दो पुत्रियां दे तो हम भी उसे वह हाथी दे सकते हैं यदि वह पुत्रियां न देगा तो हम अपना हाथी भी नहीं देंगे इसप्रकारके कडवे वचन उन दोनों भाइयोंने कहला भेजे । उसे सुनकर कालका अनुकरण करता हुआ बलींद्र भी

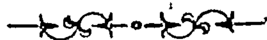
इति प्रत्याहृत्य कर्णकटु तदुदीरितं । समाकर्ण्य वलींद्राख्यो विभ्रत्कालानुकारितां ॥ ११३ ॥ योद्धुमाभ्यां समं भीमकोपः प्रसन्नद्धवास्तदा । खेगेंद्रो दक्षिणश्रे सुरकांतारपुःपतिः ॥ ११४ ॥ केशवत्या महाभ्राता सम्मेदाद्रौ प्रसाधिते । सिंहपक्षींद्रवाहिन्यौ महाविद्या यथाविधि ॥ ११५ ॥ दत्त्वा ताभ्यां कुमाराभ्यां नाम्ना केसरिविक्रमः । तदीयकायसाहाय्यं बंधुत्वेनान्वमन्यत ॥ ११६ ॥ तयोस्तुमुलयुद्धेन बलिनोबलिनोरभूत् । सम्भ्रमः क्षयकालो वा संहरन् सकला प्रजाः ॥ ११७ ॥ तत्र मायामये युद्धे वलींद्रतनय क्रुधा । मुसं शतवलिं मृत्यो सीरपाणिरनीनयत् ॥ ११८ ॥ वलींद्रेणापि तं दृष्ट्वा समुत्पन्नरुषात्मनः । प्रहितं चक्रमुद्यम्य केशवं कौशिकोपमं ॥ ११९ ॥ तत्तं प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणं बाहुमाश्रितं । तदेवादाय दत्तोपि हत्वा तं तच्छिरोग्रहीत् ॥ १२० ॥ युद्धांते तौ तदावीरौ प्रदत्ताभयघोषणौ । त्रिखंडधरणीचक्रं सचक्र चक्रतु स्वकं ॥ १२१ ॥ चिरं राज्यसुखं भुक्त्वा स्वायुरंते स चक्रभृत् । बद्ध्वायुर्नारकं घोरमनघिस्थानमेयिवान् ॥ १२२ ॥ तन्निर्वेदेन रामोपि सभूतजिनसन्निधौ । दीक्षित्वा बहुभिर्भूपैरभूद्ग्रहकेवली ॥ १२३ ॥ जातौ साकेतपुर्यां प्रथितनृप-

एक समय सम्मेदाचल पर्वतपर सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी ऐसी दो महाविद्याएं विधिपूर्वक सिद्ध की थीं। वे दोनों विद्याएं उन दोनों कुमारों को दे दीं और भाई बंधु मानकर उन दोनों भाइयोंको उसने सहायता दी ॥११२-११६ ॥ तदनंतर वलींद्र और उन दोनों भाइयोंका बहुत बडा युद्ध हुआ और प्रलयकालके समान सब प्रजाको नाश करने लगा ॥ ११७ ॥ बलभद्र और वलींद्रके पुत्र शतवलिका खूब भयामयी युद्ध हुआ और अंतमें बलभद्रने उसे मृत्युके मुखमें पहुंचा दिया ॥ ११८ ॥ यह देखकर वलींद्रको भी क्रोध आया और कौशिकके समान नारायणपर उसने चक्र चलाया ॥ ११९ ॥ वह चक्र नारायणको तीन प्रदक्षिणा देकर उसके दहिने हाथपर आ ठहरा तब दत्तने (नारायणने) भी उसी चक्रसे वलींद्रको मारकर उसका शिर काट लिया ॥ १२० ॥ तदनंतर उन दोनों वीरोंने सबको अभय घोषणा दी और चक्रसहित तीनों खंडकी पृथ्वीको वे पालन करने लगे ॥ १२१ ॥ चिरकाल तक उन्होंने सुखका अनुभव किया आयुके अंतमें चक्रवर्तीने घोर नारक आयुका बंध किया और मरकर वह सातवें नरक पहुंचा ॥ १२२ ॥ बलभद्र भी नारायणके मरनेसे विरक्त हुआ और संभूत नामके भगवानके पास दीक्षा लेकर अनेक राजाओंके साथ केवली होकर मुक्त हुआ ॥१२३॥ जो पहिले साकेत नगरमें प्रसिद्ध राजपुत्र हुए थे, फिर दीक्षा लेकर आयुके अंतमें सौधर्म स्वर्गमें देव हुए वहांसे चयकर जो बनारस नगरमें इक्ष्वाकुवंशके शिरो-

भयंकर क्रोध करता हुआ उन दोनोंके साथ युद्ध करनेको तैयार हुआ उससमय दक्षिण श्रेणीके सुरकांता नाम नगरका स्वामी दत्तकी माता रानी केशवतीका बडा भाई विद्याधरोंका राजा था केसरिविक्रम उसका नाम था उसने किसी

श्रुतौ तौ समादाय दीक्षां प्रांते सौधर्मकल्पे प्रणिहितमनसौ देवभावप्रयातौ वाराणस्यामभूतां पुरुकुलतिलकौ नंदमित्रश्च दत्तो दत्तोऽसौ सप्तमीं क्ष्मा समगमदपरोप्याप कैवल्यलक्ष्मीं ॥ १२४ ॥ मन्त्री चिरं जननवारिनिधौ भ्रमित्वा पश्चाद्वलींद्र इति नामधरः खगेशः । दत्तादवाप्तमरणो नरकं दुरंतं प्रापत्तत परिहरेत्वनुबद्धवैरं ॥ १२५ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे मल्लितीर्थंकर–पद्मचक्रि–नंदिमित्रबलदेव–दत्तनामवासुदेव–वलींद्राख्य प्रतिवासुदेव पुराण परिसमाप्तं ॥ ६६ ॥



सप्तषष्टितमं पर्व ।

निवृत्तौ व्रतशब्दार्थौ यस्याभूत्सर्ववस्तुषु । देयान्न स व्रत स्वस्य सुव्रतो मुनिसुव्रत ॥ १ ॥ तृतीये जन्मनीहासीज्जिनेंद्रो मुनिसुव्रतः । भारतेंगा-

मणि नंदिमित्र और दत्त नामके बलभद्र नारायण हुए। उनमेंसे दत्त तो मरकर सातवें नरकमें पहुंचा और नंदिमित्रने केवलज्ञानलक्ष्मी प्राप्तकी अर्थात् वह मुक्त हुआ ॥ १२४ ॥ जो पहिले राजमन्त्री होकर संसार सागरमें बहुत दिन तक घूमा, पीछे जो वलींद्र नामके विद्याधरोंका राजा हुआ और दत्तके हाथसे मरकर नरकमें पहुंचा इसलिये सज्जनोंको वैर वा शत्रुताका संस्कार रखना विल्कुल छोड़ देना चाहिये ॥ १२५ ॥

इसप्रकारभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मल्लिनाथ तीर्थंकर पद्म चक्रवर्ती नंदिमित्र बलदेव दत्त वासुदेव और वलींद्र प्रति वासुदेवका पुराण समाप्त करदेनेवाला छ्यासठवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

सडसठवां पर्व ।

जिनके नामके व्रत शब्दका अर्थ सभी पदार्थोंका त्याग था और जिनके व्रत सबसे उत्तम थे ऐसे श्री मुनिसुव्रत भगवान हम लोगोंको भी अपने व्रत दें ॥ १ ॥ भगवान मुनिसुव्रत नाथ पहिले तीसरे भवमें इसी भरतक्षेत्रके अंगदेशके चंपापुर नगरमें हरि वर्मा नामके राजा थे। किसी एक दिन उनके उद्यानमें अनंतवीर्य नामके मुनिराज पधारे थे उनकी वंदना करनेकी इच्छासे वे राजा हरिवर्मा पूजाकी सब सामग्री लेकर अपने सब परिवारके साथ उनके समीप गये। वहां जाकर तीन प्रदक्षिणा दीं तीनवार नमस्कार और पूजाकी तथा इसतरह वंदनाकर उन्होंने उनसे

ष्यावषये नृपध्वंपापुराधिपः ॥ २ ॥ हरिवर्माभिधोन्येद्युरथोद्याने जिनेश्वरं । अनंतवीर्य नाम्ना सावनगारं विवंदिषुः ॥ ३ ॥ गत्वात्मपरिवारेण ससपर्यः प- रीत्य तं । त्रिःसमभ्यर्च्य वंदित्वा प्राक्षीद्धर्मं सनातनं ॥ ४ ॥ संसारी मुक्त इत्यात्मा द्विधाकर्मभिरष्टभिः । बद्धं संसारिणं प्राहुस्तैर्मुक्तो मुक्त इष्यते ॥ ५ ॥ मूलभेदेन तान्यष्टौ ज्ञानावृत्त्यादिनामभिः ।, श्रेयान्युत्तरभेदन वस्त्वब्ध्येकसंख्यया ॥ ६ ॥ बंधश्चतुःप्रकारः स्यात्प्रकृत्यादिविकल्पितः । प्रत्ययोऽपि चतुर्भेदो मिथ्यात्वादिर्जिनोदितः ॥ ७ ॥ उदयादिविकल्पेन कर्मावस्था चतुर्विधा । संसारः पंचधा प्रोक्तो द्रव्यक्षेत्रादिलक्षणः ॥ ८ ॥ रोधो गुप्त्यादिभिस्तेषां तपसा रोधनिर्जरे । तुरीयशुक्लध्यानेन मोक्षः सिद्धस्ततो भवेत् ॥ ९ ॥ कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षो निर्जरा त्वेकदेशतः । युक्तस्यातुलमत्यंतरायमात्यंतिकं सुखं ॥ १० ॥ इत्यादि तत्त्वसर्वस्वं भगवांस्तमवूबुधत् । स्ववचोरश्मिजालेन भव्याब्जानां प्रबोधक ॥ ११ ॥ सोपि तत्तत्त्वसद्भावमवगम्य यथोदितं । निर्विघ्य सद्यतेर्ज्ये- ष्ठपुत्रे राज्यं नियोज्य तत् ॥ १२ ॥ ग्रंथद्वयपरित्यागे पटुश्चटुलमाययौ । संयमं बहुभिः सार्द्धं भूर्धन्यैरूर्ध्वगामिभिः ॥ १३ ॥ अवादीधरदेकादशांगानि गुरु-

सनातन धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २–४ ॥ मुनिराज कहने लगे कि आत्मा दो प्रकारके हैं संसारी और मुक्त। जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोसे बंधे हुए हैं उन्हें संसारी कहते हैं और जो इन कर्मोंसे छूट चुके हैं वे मुक्त कहलाते हैं ॥ ५ ॥ उन कर्मोंके मूल भेद ज्ञानावरणादिक आठ हैं और उत्तर भेद एकसौ अडतालीस हैं ॥ ६ ॥ प्रकृति स्थिति अ- नुभाग प्रदेश इनके भेदसे बंध चार तरहका है और मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय इनके भेदसे उनके कारण भी जिनराजने चार ही बतलाए हैं ॥ ७ ॥ उदय आदिके भेदसे कर्मोंकी अवस्था भी चार तरहकी है और द्रव्य क्षेत्र काल भव भावके भेदसे संसार पांच प्रकारका है ॥ ८ ॥ गुप्ति समिति आदिसे वे कर्म आनेसे रुक जाते हैं अर्थात् उनका संवर हो जाता है, तपश्चरणसे संवर भी होता है और निर्जरा भी होती है चौथे शुक्लध्यानसे मोक्ष होती है और फिर यह जीव सिद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥ समस्त कर्मोंका नाश हो जाना मोक्ष है एक देश कर्मोंका नाश होना निर्जरा है मुक्त जीवको उपमारहित वाधा रहित आत्यंतिक सुख प्राप्त होता है ॥ १० ॥ इसप्रकार अपने वचनरूपी किरणसमूहोंसे भव्यरूपी क- मलोंको प्रफुल्लित करनेवाले भगवान अनंतवीर्यने महाराज हरिवर्माको सब तत्त्वोंका स्वरूप समझाया ॥ ११ ॥ वे राजा हरिवर्मा भी भगवानके कहे हुए तत्त्वोंके स्वरूपको समझकर विरक्त हुये तथा अंतरंग बाह्य दोनों प्रकारके परिग्रहोंके त्याग करनेमें चतुर ऐसे उन्होंने अपने बडे पुत्रको राज्यका भार सौंपकर मोक्ष जानेवाले अनेक राजाओंके साथ २ सुंदर संयम धारण कीया ॥ १२–१३ ॥ गुरुके समागमसे ग्यारह अंगोंके पारगामी हुए और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिंतवनकर उन्होंने तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया ॥ १४ ॥ इसप्रकार बहुत दिन तक



सगमात् । अवद्मात्तीर्थकृद्गोत्र श्रद्धाशुध्यादिभावनः ॥ १४ ॥ निर्ग्मेत्र तपः कृत्वा प्रान्ते स्वाराधनाविधिः । भविष्णत्पंचकल्याण प्राणतेंद्रोभवद्विभु ॥१५॥ सागरोपमविंशत्यामितायुः शुक्ललेश्यक । सार्द्धरत्निग्रयोत्सेधो मार्मदशमिरुच्छ्वसन् ॥ १६ ॥ सवत्सरसहस्राणां विंशत्यामाहिताहृतिः । मनागमन प्रवीचारभोगोष्टर्द्धिसमन्वित ॥१७॥आपंचमावनेरात्मगोचरव्याप्तावधिः । तत्क्षेत्रमितशक्त्यादिश्चिरं तत्रान्वभूत्सुखं ॥१८॥ तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यागमिष्यति भूतल । जन्मगेहांगण तस्य रत्नवृष्ट्यानितं सुरैः ॥ १९ ॥ अत्रैव भरते राज्ञां पुरे राजगृहाह्वये । सुमित्रो मगधाधीशो हरिवंशशिखामणिः ॥ २० ॥ गोत्रेण काश्यपस्तस्य देवी सोमाह्वया सुरैः,। पूजिता श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे दिने ॥ २१ ॥ स्वप्नान् कृष्णद्वितीयाया स्वर्गावतरणोन्मुखे । प्राणताधीश्वरेऽपश्यत् षोडशेष्टार्थसूचकान् ॥ २२ ॥ गजराज च वक्त्र स्वं प्रविशतं प्रभाविन । तेनैव परितोषेण प्रबुद्धा शुद्धवेषभृत् ॥२३॥ नृपमावेदयत्स्वप्नांस्तत्फलश्रवणेच्छया । सावधि सोप्यभाषिष्ट सभूतिं त्रिजगत्पतेः ॥ २४ ॥ तद्वाक्श्रवणसफुल्लमनोवदनपंकजा । तदैवायातदेवेंद्रकृताभिषवणोत्सवा ॥ २५ ॥ सुरोपनीत

तपश्चरणकर आयुके अंतमें समाधि मरण धारण किया और आगे जिनके पंच कल्याण होनेवाले हैं ऐसे वे प्रभु चौदहवें प्राणत स्वर्गमें इंद्र हुये ॥ १५ ॥ वहांपर उनकी वीस सागरकी आयु थी शुक्ल लेश्या थी, साडे तीन हाथ ऊंचा शरीर था, दश महीने बाद उच्छ्वास लेते थे वीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे उनके मनसे होनेवाला थोडासा संभोग था, आठ ऋद्धियोंसे वे सुशोभित थे, पांचवे नरक तक उनका अवधिज्ञान था और उतने ही क्षेत्र-तक उनकी शक्ति थी, इस तरह बहुत दिन तक उन्होंने सुखका अनुभव किया ॥ १५–१८ ॥ जब उनकी आयुके छह महीने रह गये और वे पृथ्वीपर जन्म लेनेके सन्मुख हुये तभीसे ही देवोंने रत्नोंकी वर्षाकर उनके जन्म लेनेके घरके आंगनकी पूजा की अर्थात् उनके घर रत्नोंकी वर्षा की ॥ १९ ॥

अथानंतर–इसी भरतक्षेत्रके राजगृह नगरमें मगध देशका राजा सुमित्र राज्य करता था वह हरिवंशका शिरोमणि था और काश्यप उसका गोत्र था। उसकी पटरानीका नाम सोमा था और अनेक देव भी उसकी पूजा करते थे। जब चौदहवें स्वर्गके इंद्रकी आयु पूर्ण होने लगी तब श्रावण कृष्णा द्वितीयाके दिन श्रवण नक्षत्रमें उस पट्टरानीने अपने इष्ट प्रयोजनको सूचित करानेवाले सोलह स्वप्न देखे ॥ २०–२२ ॥ अंतमें एक प्रभावशाली हाथीको अपने मुखमें घुसते हुए देखा। उससे संतुष्ट होकर वह जग गई तथा शुद्ध वस्त्राभूषण पहिनकर उन स्वप्नोंके फल पूंछनेकी इच्छासे महाराजके समीप जाकर उनसे सब स्वप्न कहने लगी। महाराज अवधिज्ञानी थे इसलिये उन्होंने बतलाया कि तुम्हारे तीनों लोकोंके स्वामी भगवान तीर्थंकर उत्पन्न होंगे ॥ २३-२४ ॥ पतिके वचन सुनते ही उसका मन

[illegible] सूत सुप्रजाः ॥ २५ ॥ [illegible]
[illegible] दिङ्मुखे ॥ मेरौ सुरैः [illegible] मुनिसुव्रतसुश्रुतिः ॥ २८ ॥ संवत्सरचतुःपञ्चाश[illegible]
[illegible] कौमारान्तिमे [illegible] राज्याभिषेकं संप्राप्य [illegible] ॥ ३१ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ ३२ ॥ वनस्मरणत्यक्तकवलग्रहणं नृपः [illegible] निरीक्ष्यावधिनेत्रेण [illegible]
[illegible] ॥ अवोचदद्भुतमित्युच्चैः सा मनोज्ञया गिरा ॥ ३३ ॥ पुरा तालपुराधीशो नाम्ना नरपतिर्नृपः । महाकुलाभिमानादिदुर्लेश्याविष्टचित्तकः ॥
[illegible] कुज्ञानमोहितः ॥ दत्वा किमिच्छकं दानं तत्फलात्त्वमभूदिभः ॥ ३५ ॥ नाज्ञानं स्मरति [illegible] न राज्यं पूज्यसंपदं ॥

रूपी कमल खिल उठा। उसी समय इंद्र आया और उसने उसका अभिषेककर महोत्सव मनाया ॥ २५ ॥ के द्वारा लाये हुये भोगोपभोग ऐश्वर्य और सुख देनेवाली सामग्रीका उपभोग करते हुए नौवां महीना आया और तब उसने बडे सुखसे पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ श्रीमल्लिनाथ तीर्थंकरके चौअन लाख वर्ष बाद ये (मुनिसुव्रत) हुये ये इनकी आयु भी इसीमें अंतर्गत है ॥ २७ ॥ उनके जन्म लेते ही अपनी कांतिसे सब दिशाओंको व्याप्त करनेवाले इंद्र आये थे उन्होंने सुमेरु पर्वतपर लेजाकर उनका अभिषेक किया था और उसीसमय मुनिसुव्रत नाम रक्खा था ॥ २८ ॥ तीस हजार वर्षकी उनकी आयु थी, बीस धनुष उंचा शरीर था, मयूरके कंठके समान शरीरकी कांति थी और सब उत्तम लक्षण उनमें विराजमान थे ॥ २९ ॥ कुमारकालके सात हजार पांचसौ वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्याभिषेक प्राप्त हुआ था और इसतरह वे अत्यंत आनंदसे दिन बिताने लगे ॥ ३० ॥ इसप्रकार उनके पंद्रह हजार वर्ष बीत गये तब किसी एक दिन गर्जता हुआ बादल उमडकर आया उसी समय वनका स्मरणकर महाराजके मुख्य हाथीने खाना पीना छोड दिया, उसे देखकर महाराज मुनिसुव्रतने अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे उसके पहिले भवका सब संबंध जान लिया और मनोहर तथा ऊंची वाणीसे आश्चर्य करनेवाले लोगोंको इसतरह सब समाचार समझाने लगे ॥ ३१-३३ ॥ पहिले इस हाथीका जीव तालपुर नगरका स्वामी नरपति नामका राजा था, अपने बडे कुलके अभिमान और बुरी लेश्याओंसे उसका चित्त भरा हुआ था, उसे पात्र अपात्रका कुछ ज्ञान नहीं था और वह कुज्ञानसे मोहित हो रहा था। उसने वहां किमिच्छक (जिसको जो चाहिये) दान दिया था इसलिये उसके फलसे यह हाथी हुआ है ॥ ३४-३५ ॥ इस समय यह हाथी न तो अपने अज्ञानको स्मरण करता है न [illegible] भारी संपदा-

नैःफल्यं वने स्मरति दुर्मति ॥ ३६ ॥ तद्वच श्रवणोत्पन्नपूर्वभवस्मृते । सयमासयमं सद्यो जग्राह गजसत्तमः ॥ ३७ ॥ तत्प्रत्ययसमुत्पन्नबोधिस्त्यागोन्मुखो नृपः । लौकांतिकैस्तदैवेत्य प्रस्तुतोक्त्या प्रतिश्रुत ॥ ३८ ॥ स्वराज्य युवराज्याय विजयाय वितीर्य सः । सुरैं सम्प्राप्तनि क्रातिकल्याणद्रुमधीगुणः ॥ ३९ ॥ अपराजितनामोरुशिविकामधिरूढवान् । रूढकीर्तिः क्षरन्मूढिरूढोनरखगामरैः ॥ ४० ॥ प्राप्य षष्ठोपवासेन वन नीलाभिधानकं । वैशाखे बहुले पक्षे श्रवणे दशमीदिने ॥ ४१ ॥ सहस्रभूपैः सायाह्ने सम सयममग्रहीत् । कैंस्यमीश सुरेशानां सुरेशो विश्वदृश्वन. ॥ ४२ ॥ शास्वत पदमन्विच्छन्प्रापयत्पचमाम्बुधिम् । चतुर्थावगमः शुद्धमताप्सीत्सोप्यल तप ॥ ४३ ॥ ममभावनया तृप्यन् तृप्तोपि तनुसस्थिते. । कदाचित्पारणाकाले प्रायाद्राजगृह पुरं ॥ ४४ ॥ प्रदाय प्रासुकाहारं तस्मै चामीकारच्छविः । नृपो वृषभसेनाख्यः पचाश्चर्यमवापिवान् ॥ ४५ ॥ मासोनवत्सरे याते छाद्मस्थ्ये स्वतपोवने । चंपकद्रुममूल-

वाले राज्यका स्मरण करता है और न अपने कुदानकी निष्फलताका स्मरण करता है यह मूर्ख केवल बनका स्मरण कर रहा है ॥ ३६ ॥ भगवानके वचन सुनकर उस उत्तम हाथीको अपने पहिले भवका स्मरण हो आया और शीघ्र ही उसने संयमासंयम धारण करलिया ॥ ३७ ॥ उसी कारणसे भगवानको आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और वे सब परिग्रहोंके त्याग करनेके सन्मुख हुए । उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उनकी स्तुतिकी और कुछ विरक्तता दिखलाई ॥ ३८ ॥ उन्होंने अपना राज्य युवराज विजयकेलिये समर्पण किया और वे देवोंके द्वारा प्राप्त हुये दीक्षा कल्याणके महोत्सवको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ जिनकी कीर्ति प्रसिद्ध है मोहनीय कर्म जिनके हृदयसे निकल रहा है और मनुष्य विद्याधर तथा देव जिन्हें ले जा रहे हैं, ऐसे वे भगवान अपराजित नामकी बडी पालकीपर सवार होकर निकले ॥ ४० ॥ नील नामके बनमें पहुंचकर वैशाख कृष्ण दशमीके दिन श्रवण नक्षत्रमें शामके समय उन्होंने तेलाका नियम लेकर एक हजार राजाओंके साथ २ संयम धारण किया । शाश्वत मोक्ष पदकी इच्छा करते हुए इंद्रने सब इंद्रोंके स्वामी और संसारभरको देखनेवाले उन भगवानके केश (जो कि उन्होंने पंच मुष्टि लौंचकर उखाडे थे) पांचवें क्षीर सागरमें जाकर डाले । भगवानको उसीसमय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ और इसतरह वे शुद्ध तपश्चरण करने लगे ॥ ४१–४३ ॥ यद्यपि वे समता भावोंसे सदा तृप्त रहते थे तथापि अर्थात् तृप्त होकर भी केवल शरीरको स्थिर रखनेके लिये पारणाकेलिये वे किसी समय राजगृह नगरीमें पहुंचे ॥ ४४ ॥ सुवर्णकीसी कांतिवाले महाराज वृषभसेनने उन्हें प्रासुक आहार दिया और उस पुण्यसे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ४५ ॥ इस तरह ग्यारह महीने तक उन्होंने तपश्चरण किया तब वैसाख कृष्ण नवमीके दिन श्रवण नक्षत्रमें शामके समय दीक्षा ग्रहण करनेवाले नील

स्थो विहितोपोषितद्वयः ॥ ४६ ॥ स्वदीक्षापक्षनक्षत्रसहिते नवमीदिने । सायाह्ने केवलज्ञानं सद्ध्यानेनोदपादयत् ॥ ४७ ॥ तदैवागत्य देवेन्द्रास्तत्कल्याणं व्यधुर्मुदा । मानस्तंभादिविन्यासविविधर्द्धिविभूषितं ॥ ४८ ॥ मल्लिप्रभृतयोऽभूवन्नष्टादशगणेशिनः । द्वादशांगधराः पंचशतानि परमेष्ठिनः ॥ ४९ ॥ शिक्षकास्तस्य सद्दंया: सहस्राण्येकविंशतिः । भर्तुरष्टशतं प्रांतसहस्रमवधीक्षणः ॥ ५० ॥ तावंतः केवलज्ञानाः विक्रियर्द्धिसमृद्धयः । द्विशतद्विसहस्राणि चतुर्थज्ञानधारिणः ॥ ५१ ॥ सहस्रार्द्धं सहस्र तु वादिना द्विशताधिकं । पिंडिता पिंडितास्त्रिंशत्सहस्राणि मुनीश्वरा ॥ ५२ ॥ पुष्पदत्तादयः पंचाशत्सहस्राणि चार्यिकाः । एकका श्रावकाः लक्षाः त्रिगुणाः श्राविकास्ततः ॥ ५३ ॥ असंख्यातो मरुत्संघः सख्यातो द्वादशो गणः । एषा धर्मं भुवन्नार्यक्षेत्राणि व्यहरच्चिरं ॥ ५४ ॥ विहृत्य मासमात्रायु सम्मेदाचलमूर्द्धनि । प्रतिमायोगधारी सन् ससहस्रमुनीश्वरः ॥ ५५ ॥ फाल्गुने श्रवणे कृष्णद्वादश्या निशि पश्चिमे । भागे हित्वा तनुं मुक्तिमवापन्मुनिसुव्रत ॥ ५६ ॥ कृत्वा पंचमकल्याणसपर्यामूर्जितोदया । वंदित्वा सुरवदारवृंदं यात यथातथं ॥ ५७ ॥ व्याप्त त्वत्प्रभया सदो

वनमें चंपक वृक्षके नीचे तेलाका नियम लेकर विराजमान हुए और उत्तम ध्यानसे वहींपर उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ४६-४७ ॥ उसीसमय इंद्रोंने आकर बडी प्रसन्नतासे ज्ञानकल्याणका उत्सव मनाया और अनेक ऋद्धियोंसे विभूषित मानस्तंभ आदि समवसरणकी रचना की ॥ ४८ ॥ उन परमेष्ठीके मल्लिको आदि लेकर अठारह गणधर थे तथा पांचसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंको जाननेवाले मुनिराज थे ॥ ४९ ॥ उन भगवानके सज्जनोंके द्वारा बंदना करने योग्य इकईस हैजार शिक्षक थे तथा एक हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे ॥ ५० ॥ एक हजार आठ सौ ही केवलज्ञानी थे, दो हजार दोसौ विक्रिया ऋद्धियोंको धारण करनेवाले थे एक हजार पांच सौ मनःपर्ययज्ञानी थे और एक हजार दोसौ वादी थे । इसतरह सब मिलकर विद्वान् मुनिराजोंकी संख्या तीस हजार थी॥५१-५२॥पुष्पदत्ता को आदि लेकर पचास हजार आर्जिकाएं थीं एक लाख श्रावक तीन लाख श्राविकाएं संख्यात तिर्यंच और असंख्यात देव देवियोंका समुदाय था । इसतरह बारह सभाओंके स्वामी होकर उन्होंने बहुत दिनतक आर्यक्षेत्रमें विहारकर धर्मोपदेश दिया था ॥ ५३-५४ ॥ विहार करते हुये जब उनकी आयु एक महीनेकी रहगई तब एक हजार मुनियोंके साथ २ प्रतिमा योग धारणकर सम्मेदशिखरपर आ विराजमान हुए और फागुन कृष्ण द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें रात्रिके पिछिले पहर शरीरको छोडकर मुक्त हुए ॥ ५५-५६ ॥ इंद्रादि देवोंने आकर उनके मोक्षकल्याणका बडाभारी उत्सव मनाया और उनकी बंदनाकर सब देव अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५७ ॥ हे प्रभो ! आपके शरीरकी प्रभासे व्याप्त होकर सभा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों नील कमलोंका वन ही हो आपकी वाणी मनके सब अंधकारको नष्ट करती

विजयते नीलोत्पलानां बन ध्वात वाक्चमनोगत धुतवतीमा भानुजां भासुरा । बोधध्वाखिलजं तमो व्यपहरद् प्रध्नं जगद्वंदित यदे तन्मुनिसुव्रतस्य भगव न्सार्द्ध तवेंद्रादिभिः ॥ ५८ ॥ कार्यं कारणतो गुण च गुणितो भेद च सामान्यतो वक्त्येकः पृथगेव कोप्यपृथगित्येकांततो न द्वय । तत्सर्वं घटते तवैव नय-सयोगात्ततस्त्व सतामाप्तोभूर्मुनिसुव्रताय भगवस्तुभ्य नम कुर्महे ॥ ५९ ॥ प्रागासीद्धरिवर्मनाम नृपतिर्लब्ध्वा तपो बद्धवान् नामात्य बहुभावनः शुभिमृ-तिर्यः प्राणतेंद्रोऽभवत् । च्युत्वास्मान्मुनिसुव्रतो हरिकुलव्योमामलेन्दुर्जिनो भूत्वा भव्यकुमुद्वतीं व्यकचयल्लक्ष्मीं प्रदिश्यात्मनः ॥ ६० ॥ तत्तीर्थ एव चक्रेशो ह-रिषेणसमाह्वयः । तृतीयभवेनंतजिनतीर्थे नृपो महान् ॥ ६१ ॥ कृत्वा तप समुत्कृष्ट कोपि केनापि हेतुना । सनत्कुमारकल्पेभूत्सुविशालविमानकः ॥६२॥ षट्सागरोपमात्मायुर्भुक्त्वा भोगाननारतं । ततः प्रच्युत्य तीर्थेस्मिन् राज्ये भोगपुरेशितु ॥ ६३ ॥ प्रभोरिक्ष्वाकुवशस्य पद्मनाभस्य भामिनी । ऐरा तयो

थी तथा सूर्यकी देदीप्यमान कांतिका भी तिरस्कार करती थी । इसी तरह आपका ज्ञान भी संसारके समस्त पदार्थोंसे उत्पन्न हुए अज्ञानांधकारको नष्ट करता था इसलिये हे भगवन् हे मुनि सुव्रतनाथ ! जिसे इंद्रादि देवोंके साथ साथ सब संसार नमस्कार करता है ऐसे आपके अपूर्व ज्ञानरूपी सूर्य मंडलको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५८ ॥ कोई तो कारणसे कार्य गुणीसे गुण और सामन्यसे विशेषको जुदा बतलाते हैं और कोई कोई एक ही मानते हैं ये दोनों ही नहीं बन सकते परंतु हे भगवान् आपके कहे हुए नयोंके संयोगसे दोनों ही ठीक ठीक संघटित हो जाते हैं इसीलिये ही सज्जन लोग आपको आप्त वा अरहंत कहते हैं अतएव हे मुनिसुव्रत जिनेंद्र मैं भी आपके लिये नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥ जो पहिले भवमें हरिवर्म नामके राजा हुए थे फिर जिन्होंने तपश्चरणकर तथा सोलह कारण भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया था, तदनंतर समाधि मरणसे शरीर छोड़कर जो प्राणत स्वर्गके इंद्र हुए थे वहांसे आकर जिन्होंने हरिवंश रूपी आकाशके निर्मल चंद्रमाके समान तीर्थंकर होकर भव्यरूपी कमोदनियोंको प्रफुल्लित किया ऐसे श्रीमुनिसुव्रतनाथ भगवान हम लोगोंको लक्ष्मी दें ॥ ६० ॥

अथानंतर–इन्हीं मुनिसुव्रत तीर्थंकरके समयमें हरिषेण चक्रवर्ती हुआ है । वह पहिले तीसरे भवमें अनंतनाथ तीर्थंकरके समयमें बड़ा भारी राजा था; किसी कारणसे विरक्त होकर कठिन तपश्चरण किया और समाधि मरणसे शरीर छोडकर तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें सुविशाल विमानमें छह सागरकी आयुवाला देव हुआ । वहांके निरंतर भोग भोगकर तथा आयुके अंतमें चयकर मुनिसुव्रत तीर्थंकरके समयमें भोगपुर नगरके राजा इक्ष्वाकुवंशी पद्मनाभकी रानी ऐराके हरिषेण नामका उत्तम पुत्र हुआ ॥ ६१–६४ ॥ दशहजार वर्षकी उसकी आयु थी और बीस धनुष

सुतो जातो हरिषेणः सुरोत्तम ॥ ६४ ॥ समायुतमितात्मायुः कनकच्छुरसच्छविः । धनुर्विंशतिमानागः क्रमेण पूर्णयौवनः ॥ ६५ ॥ कदाचित्तेन गत्वाऽम पद्मनाभमहामतिः । जिनं मनोहरोद्यानेनंतवीर्याभिधानक ॥ ६६ ॥ अभिवंद्य ततः श्रुत्वा तत्त्वं संसारमोक्षयोः । संत्यज्य राजसीं वृत्तिं शमे स्थातुं समुत्सुकः ॥ ६७ ॥ राज्यभारं समारोप्य सुते भूपतिभिः समं । बहुभिः संयमं प्रापत्प्रेप्सु परमं पदं ॥ ६८ ॥ हरिषेणोप्युपादाय श्रावकव्रतमुत्तमं । मुक्तेर्द्वितीयसोपानमिति मत्वाविशत्पुरं ॥ ६९ ॥ तपस्यतश्चिरं घोरं पद्मनाभमहामुनेः । दीक्षावनेभूत्कैवल्यं प्रतिमायोगधारिणः ॥ ७० ॥ आसन्नक्रातपत्रासिदंडरत्नानि तद्दिने । हरिषेणमहीशस्य तदैवायुधवेश्मनि ॥ ७१ ॥ श्रीगृहे काकिणी चर्ममणिरत्नानि चाभवन् । युगपत्तुष्टचित्तोसौ नत्वा तद्द्वयशंसिने ॥ ७२ ॥ दत्त्वा तुष्टिधनं प्रायाज्जिनपूजाविधित्सया । पूजयित्वाभिवंद्यैनं जिनं प्रतिनिवर्त्य सः ॥ ७३ ॥ पुरं प्रविश्य चक्रस्य कृतपूजाविधिर्दिशः । जेतुं समुद्यतस्तस्य तदानीमभवत्पुरे ॥ ७४ ॥ पुरोहितो गृहपतिः स्थपतिश्च चमूपतिः । हस्त्यश्वकन्यारत्नानि खगाद्रेरानयन् खगाः ॥ ७५ ॥ नदीमुखेषु संभूतान्नवापि महतो

ऊंचा शरीर था । इसतरह वह क्रमसे पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ था ॥ ६५ ॥ किसी एक दिन राजा पद्मनाभ हरिषेणके साथ मनोहर नामके उद्यानमें भगवान अनंतवीर्यकी वंदना करनेकेलिये गये थे तथा संसार और मोक्षका स्वरूप सुनकर वहींपर उन्होंने राज्य छोडकर शांत होनेकी इच्छाकी थी ॥ ६६–६७ ॥ मोक्षकी इच्छा करते हुए उन्होंने पुत्र हरिषेणको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ संयम धारण किया ॥ ६८ ॥ हरिषेणने भी श्रावकके उत्तम व्रत धारण किये और उन्हें मोक्षकी दूसरी सीढी मानकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ६९ ॥ इधर घोर तपश्चरण करते हुए पद्मनाभ महामुनि... दीक्षावनमें ही योग धारण किया और वहीं पर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ७० ॥ उसी दिन और उसीसमय हरिषेण चक्रवर्तीकी आयुधशालामें चक्र छत्र तलवार और दंड रत्न प्रगट हुआ तथा श्रीगृहमें काकिणी चर्म और मणि ये तीन रत्न प्रगट हुए । समाचार देनेवालेने दोनों समाचार एक साथ आकर सुनाये, सुनकर हरिषेणका चित्त बहुत ही संतुष्ट हुआ समाचार देनेवालेकेलिये संतोषजनक धन दिया और भगवान को नमस्कार कर उनकी पूजा करनेकी इच्छासे निकला । भगवानकी पूजा और वंदनाकर अपने नगरको लौटा । नगरमें आकर चक्रकी पूजाकी तथा उसीसमय सब दिशाओंको जीतनेकेलिये तैयार हुआ । उसीसमय उसी नगरमें पुरोहित गृहपति स्थपति (शिलामटी) और सेनापति ये चार रत्न प्रगट हुए तथा विद्याधर लोग विजयार्द्ध पर्वतसे हाथी घोडा और कन्या ये तीन रत्न लाये ॥ ७१–७५ ॥ गणबद्ध नामके देव बडी भक्तिसे नदी मुखमें (जहां नदी समुद्रमें गिरती है) उत्पन्न हुई बडी भारी निधियोंको लाये ॥ ७६ ॥ उन देवोंके साथ साथ छहतरहकी सेना लेकर

निधीन् । आनिन्यिरे महाभक्त्या गणबद्धाभिधाः सुरा- ॥ ७६ ॥ स तै साध्यषडंगेन बलेन प्रस्थितो दिश । जित्वा तत्साररत्नानि स्वीकृत्य विजिताखि-ल ॥ ७७ ॥ स्वराजधान्यां ससेव्य सुरभूपखगाधिपैः । दशांगभोगान्निर्व्यग्र निर्विशन् सुचिरं स्थितः ॥ ७८ ॥ कदाचित्कार्तिके मासे नंदीश्वरदिनेष्वय । कृत्वाष्टसु महापूजां सोपवासोंतिमे दिने ॥ ७९ ॥ हर्म्यपृष्ठे सभामध्ये शारदेंदुरिवावरे । भासमान समालोक्य राहुग्रासीकृत विधुं ॥ ८० ॥ धिगस्तु ससृते भाव ज्योतिर्लोकैकनायक । ग्रस्तस्तारापति कष्ट पूर्णः स्वैर्वेष्टितोप्ययं ॥ ८१ ॥ अत्र का गतिरन्येषां प्राप्ते कालेऽविलंघिनि । विधौ विलसतीत्यात्तनिर्वेदो भरताधिपः ॥ ८२ ॥ अनुप्रेक्षा स्वरूपाख्या मुखेन स्वसभास्थितान् । धर्मसारं निरूप्याशु कृत्वा तत्त्वार्थवेदिन ॥ ८३ ॥ दत्वा राज्यं सतां पूज्यो महासे-नाय सूनवे । तत्प्रार्थितेन संतर्प्य दीनानाथवनीपकान् ॥ ८४ ॥ श्रीनागजिनमासाद्य सीमंतानलपुरिस्थत । यथोक्तविधिना त्यक्त्वा संगं द्व्यगमनगजित् ॥ ८५॥बाहुभिः सह संप्राप्य सयम शमसाधनं । क्रमेण प्राप्तवर्द्धिरायुरंते चतुर्विधा॥८६॥ आराधनां समाराध्य प्रायोपगमनं श्रित । क्षीणपापः कृपामूर्त्तिरा-

वह सब दिशाओंमें गया, सबको जीतकर उनके उत्तम उत्तम रत्न स्वीकार किये और सबको जीतकर अपनी राजधानीमें लौट आया। वहांपर अनेक देव विद्याधर और राजा उसकी सेवा करने लगे तथा स्वस्थतासे दश तरहके भोगोंका उपभोग करते हुए उसने बहुत दिनतक निवास किया ॥ ७७--७८ ॥ किसी एक समय कातिक महीनेके नंदीश्वरके दिनोंमें आठ दिनतक महापूजाकर तथा अंतके दिन उपवासकर वह राजा हरिषेण राजभवनकी छतपर सभामें बैठा था, वहींपर बैठे बैठे उसने आकाशमें शरद ऋतुका दैदीप्यमान चंद्रमा देखा, थोड़ी ही देरमें उस चंद्रमाको राहुने ढक लिया, उसे देखकर वह विचार करने लगा कि संसारकी ऐसी दशाको धिक्कार है देखो यह चंद्रमा अपने तारागणोंसे घिरा हुआ, पूर्ण था और ज्योतिर्लोकका एक स्वामी था तथापि उसे राहुने ढक लिया यह बडा ही दुःख है । जब चंद्रमाकी यह दशा है तब जिसे कोई उल्लघन नहीं कर सकता ऐसे कालके आ पहुंचनेपर दूसरे जीवोंकी क्या दशा होती होगी ? इसप्रकार प्रकाशमान चंद्रमाको देखकर ही उस चक्रवर्तीको वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ८३ ॥ सज्जनोंके द्वारा पूज्य ऐसे उस हरिषेणने अपने पुत्र महासेनको राज्य दिया तथा दीन अनाथ और याचकोंको उनकी प्रार्थनाके अनुसार खूब संतुष्ट किया ॥ ८४ ॥ कामदेवको जीतनेवाले उस हरिषेणने सीमंत नामके पर्वतपर विराजमान श्रीनाग नामके जिनराजके समीप जाकर बाह्य अभ्यंतर दोनों तरहके परिग्रहका त्याग किया ॥८५॥ कृपाकी साक्षात् मूर्ति ऐसे उस हरिषेणने अनेक लोगोंके साथ साथ समता अथवा शांत परिणामोंका कारण ऐसा संयम धारण किया, क्रमसे अनेक ऋद्धियां प्राप्त कीं, आयुके अंतमें चारों प्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया,

पांतिमनुत्तरं ॥ ८७ ॥ भूप कोपि पुरा श्रिया श्रितवपुः पापोपलेपाद्भयं बिभ्यत्प्राप्य तपो, भवस्य शरणं मत्वा तृतीयेऽभवत् । कल्पेंते भुवमेत्य चक्रिपदवं सम्प्राप्य भुक्त्वा सुखं स श्रीमान् हरिषेणराजवृषभ सर्वार्थसिद्धिं ययौ ॥ ८८ ॥ तीर्थेस्मिन्नेव संभूतावष्टमौ रामकेशवौ । रामलक्ष्मणनामानौ तत्पुराणं निगद्यते ॥ ८९ ॥ इहैव भारते क्षेत्रे राष्ट्रे मलयनामनि । प्रजापतिमहाराजोजनि रत्नपुराधिपः ॥ ९० ॥ तस्य गुणकांतायां चंद्रचूलसमाह्वयः । निजयालेन तस्यासीत्संप्रीतिर्मंत्रिसूनुना ॥ ९१ ॥ पितृसल्लालितौ बालौ कुलादिमदचोदितौ । अभूतां दुष्टचारित्रौ दंतिनौ वानिवर्तिनौ ॥ ९२ ॥ अन्येद्युस्तत्पुरे गौतमावैश्रवणसंभव-श्रीदत्ताख्याय मुख्याय कुवेरेणात्मजां सतीं ॥ ९३ ॥ दीयमाना समालोक्य पाण्यभिषेकपूर्वकं । कुवेरदत्ता केनापि महापापविधायिना ॥ ९४ ॥ तस्याः स्वानुचरेणोक्ता श्रुत्वा रूपादिसंपदं । कुमारे तां स्वसात्कर्तुं सह मित्रे समुद्यते ॥ ९५ ॥ वणिक्संघसमाक्रोशध्वनिमाकर्ण्य भूपतिः ।

प्रायोगमन संन्यास धारण किया और पापोंको नाशकर अंतिम अनुत्तर अर्थात् सर्वार्थसिद्धि प्राप्तकी ॥ ८६-८७ ॥ श्रीमान् हरिषेण चक्रवर्तीका जीव पहिले जिसका शरीर लक्ष्मीसे सुशोभित है ऐसा कोई राजा था उसने पापोंसे खूब डरकर संसारमें एक ही शरण ऐसा तपश्चरण धारण किया, आयुके अंतमें तीसरे स्वर्गमें देव हुआ वहांसे चयकर इस पृथ्वीपर जन्म लेकर चक्रवर्तीका पद पाया अनेक तरहके सुखोंका अनुभव किया राजाओंमें श्रेष्ठ हुआ और आयुके अंतमें सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिंद्र उत्पन्न हुआ ॥ ८८ ॥

अथानंतर—इन्हीं मुनिसुव्रत तीर्थंकरके समयमें राम लक्ष्मण नामके आठवें बलभद्र नारायण हुए हैं उन्हींका पुराण अब लिखा जाता है ॥ ८९ ॥ इसीभरत क्षेत्रके मलय देशमें रत्नपुर नगरके स्वामी महाराज प्रजापति राज्य करते थे, उनकी गुणकांता नामकी रानीसे चंद्रचूल नामका पुत्र हुआ था वह मंत्रीके पुत्र विजयसे बहुत ही प्रेम रखता था ॥ ९०-९१ ॥ जिसप्रकार दुष्ट हाथी किसीसे रोका नहीं जाता उसीप्रकार माता पिताओंके बहुत लाड प्यार करनेसे और कुल आदिके घमंड करनेसे वे दोनों ही दुराचारी होगयेथे॥९२॥किसी एक दिन उसी नगरके रहनेवाले कुवेर शेठने अपनी पुत्री कुवेरदत्ताका उसी नगरके रहनेवाले शेठ वैश्रवणकी स्त्री गौतमासे उत्पन्नहुए श्रीदत्त नामके मुख्य पुत्रकेलिये विधिपूर्वक विवाहकर देनेका विचार किया। उसीसमय महा पाप करनेवाले किसी सेवकने उस राजकुमारसे कुवेरदत्ताके रूप आदिकी प्रशंसाकी उसे सुनकर वह राजकुमार अपने मित्रके साथ उस कन्याको अपने स्वाधीन करनेके लिये तैयार हुआ॥९३-९५॥इस बातको जानकर वैश्योंका समुदाय चिल्लाता हुआ महाराजके पास पहुंचा उनके रोने चिल्लानेको सुनकर अपने पुत्रके दुराचाररूपी ईंधनसे उत्पन्न हुई राजाकी क्रोधरूपी अग्नि बहुत ही बढ़ गई और उसने कोतवालको बु-

स्वतनूजदुराचारदारुयत्कोपपावकः ॥ ९६ ॥ पुररक्षकमाहूय दुरात्मानं कुमारकं । लोकांतरातिथिं सद्यो विधेहीति समादिशत् ॥ ९७ ॥ तदैव सोपि राजाज्ञा चोदितस्तुमुलाहवे । जीवग्राहं गृहीत्वैनमानयन्निकटं विभो ॥ ९८ ॥ तदालोक्य किमित्येष पापीहानीयते द्रुत । निशातशूलमारोप्य श्मशाने स्थाप्यतामिति ॥ ९९ ॥ राज्ञोक्ते प्रस्थितो हंतुं कुमारं पुररक्षकः । न्यायानुवर्तिनां युक्तं न हि स्नेहानुवर्तनं ॥ १०० ॥ तदामात्योत्तमः पौरान्पुरस्कृत्य महीपतिं । व्यजिज्ञपदिति व्यक्तमुत्क्षिप्तकरकुट्मलं ॥ १०१ ॥ कृत्याकृत्यविवेकश्च न वाल्यादेव विद्यते । प्रमादोस्माकमेवाय विनेया पितृभिः सुताः ॥ १०२ ॥ न दांतोय नृभिर्दंती शैशवे चेद् यथोचितं । प्राप्तैश्वर्यो न किं कुर्यादसौ दर्पग्रहाहितः ॥ १०३ ॥ न बुद्धिमान् न दुर्बुद्धिर्न वधं दंडमर्हति । आहार्यबुद्धिरेषोतः शिक्षणीयोऽधुनाप्ययं ॥ १०४ ॥ न कोपोस्मिंस्तथास्त्येव न्यायमार्गेनिनीषया । निगृह्णास्येक एवायं राज्यसंततिसंततौ ॥ १०५ ॥ अन्यत्संधित्सतोत्रा-

लाकर आज्ञा दी कि इस दुष्ट कुमारको अभी परलोक भेज दो॥९६–९७॥कोतवालने भी उसी समय महाराजकी आज्ञाके अनुसार बडी भारी भीडमें से राजकुमारको जीता हुआ ही पकड लिया और वह उसे महाराजके समीप ले आया॥९८॥ उसे देखकर महाराजने आज्ञा दी कि इस पापीको शीघ्र ही मार दो और श्मशानमें ले जाकर पैनी शूली पर चढ़ा दो॥९९॥ महाराजकी आज्ञानुसार वह कोतवाल भी उस कुमारको मारनेके लिये लेगया सो ठीक ही है क्योंकि न्यायमार्गसे चलनेवाले राजाओंको प्रेम करना युक्त नहीं है ॥ १०० ॥ इधर यह हाल देखकर मुख्य मंत्री सब नगर निवासियोंको लेकर महाराजके समीप गया और खडे होकर हाथ जोडकर नीचे लिखे अनुसार निवेदन करने लगा ॥ १०१ ॥ कि हे देव यह काम करने योग्य है यह नहीं ऐसा वालपनसे नहीं होता है, तथा इसमें तो हम लोगोंका प्रमाद है क्योंकि लडकोंको विनीत और सदाचारी बनाना माता पिताका काम है ॥ १०२ ॥ यदि बालकपनमें हाथीको यथा योग्य रीतिसे वशमें न किया जाय तो फिर वह किसी मनुष्यसे वश नहीं हो सकता। इसीतरह अभिमानरूपी ग्रहसे ग्रसित हुआ यह मनुष्य ऐश्वर्य पाकर क्या क्या नहीं कर सकता है ? ॥१०३॥ यह कुमार न तो बुद्धिमान है और दुर्बुद्धि है इसलिये यह प्राणघातके दंड देनेके योग्य नहीं है इसकी बुद्धि अभी ग्रहण करने योग्य है इसलिए अभी इसको खूब शिक्षा देनी चाहिये ॥ १०३–१०४ ॥ कुमारपर आपका कोई कोप तो है नहीं आप तो न्याय मार्गको ऊंचा ले जानेके लिये इसे दंड देना चाहते हैं परंतु आपको यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि राज्यकी संतान चलानेके लिये यह एक ही कुमार है ॥ १०५ ॥ यदि आप इस एकही संतानको नष्ट कर देंगे तो "कुछ करना चाहते थे और कुछ होगया" यह कलंक आज ही आपके सिरपर लग जाअगा ॥ १०६ ॥ एक बात और है हम लो-

न्यतप्रच्युतं तदिति श्रुतिः। सा तवाद्य समायाति सतानोच्छेदकारिणः॥ १०६॥ एतत्पूत्कारतो ज्येष्ठं तनूजमवधीन्नृप। इत्यवाच्यभयग्रस्ताः पौराश्चैते पुरस्थिता॥ १०७॥ तत्क्षमस्वापराधं मे महीशप्रार्थितोस्म्यमुं। एतन्मंत्रिवचः श्रुत्वा विरूपकमुदीरितं॥ १०८॥ अविज्ञैरिव शास्त्रार्थं भवद्भिः श्रुतपारगैः। दुष्टानां निग्रहः शिष्टपालनं भूभुजां मतं॥ १०९॥ नीतिशास्त्रेषु तत्स्नेहमोहासक्तिभयादिभिः। अस्माभिर्लंघिते न्याये भवंतस्तस्य वर्तकाः॥ ११०॥ तस्माद्युक्तं युष्माकं मां योजयितुमुत्पथे। दुष्टो दक्षिणहस्तोपि स्वस्य छेद्यो महीभुजा॥ १११॥ कृत्याकृत्यविवेकातिदूरो मूढो महीभुजः। स सांख्यपुरुषस्तेन कृत्यं चात्रापरत्र च॥ ११२॥ तस्मान्न प्रतिषेध्योहमिति राज्ञाभिभाषिते। पौरास्तदैव जानाति देव एवेत्ययुर्भयात्॥ ११३॥ सुते निस्निग्धतां भर्तुर्ज्ञात्वा देवाहमेवतं। दंडयिष्यामि मत्वेति निर्गत्य तदनुज्ञया॥ ११४॥ प्राप्य स्वराजपुत्राभ्यां वनगिर्यद्रिमब्रवीत्। हे कुमार तवावश्यं मरणं समुपस्थितं॥

गोंके चिल्लाने और प्रार्थना करनेसे महाराजने अपने बडे पुत्रको मरवा डाला" इसी निंदाके भयसे ये नगर निवासी लोग आपके सामने आकर खडे हुए हैं॥ १०७॥ इसलिये हे महाराज हम लोग प्रार्थना करते हैं इस अपराधको क्षमाकर दीजिये। मंत्रियोंकी इस बातको सुनकर महाराज कहने लगे कि आप लोगोंका यह कहना अनुचित है॥ १०८ यद्यपि आप लोग शास्त्रोंके पारगामी हैं तथापि ऐसा जान पडता है मानों आप शास्त्रके अर्थको जानते ही नहीं। नीति शास्त्रके अनुसार दुष्टोंका निग्रह करना और सज्जन लोगोंका पालन करना राजाओंका काम है इसलिये स्नेह मोह वा असामर्थ्य आदिके भयसे यदि हम लोग न्यायमार्गका उल्लंघन करदेंगे तो फिर आप ही लोग उसकी प्रवृत्ति करने लग जायंगे॥ १०९-११०॥ इसलिये आप लोग जो मुझे उन्मार्गमें (अन्यायमार्गमें) ले जाना चाहते हैं सो आपका यह काम ठीक नहीं है। यदि अपना दाहिना हाथ भी दुष्ट हो तो राजाओंको उसे भी काट डालना चाहिये॥ १११॥ जिस राजाको करने और न करने योग्य कामोंका कुछ भी विचार नहीं है वह मूर्ख है वह सांख्य मतके माने हुये पुरुषके समान है उससे इस लोक और परलोक संबंधी कोई भी कार्य नहीं हो सकता॥ ११२॥ इसलिये इसकाममें मुझे रोकना ठीक नहीं है। महाराजके इसप्रकार कहनेपर नगर निवासी लोगोंने समझा कि महाराज सब कुछ जानते हैं और यह समझकर सब लोग डरसे अपने २ घर चले गये॥ ११३॥ पुत्रपर महाराजका प्रेम नहीं है यह जानकर मंत्रीने भी कहा कि मैं स्वयं कुमारको दंड दूंगा यह कहकर तथा महाराजकी आज्ञा लेकर वह मंत्री भी निकल गया॥ ११४॥ अपने पुत्र और राजकुमारको साथ लेकर वह वनगिरि नामके पर्वतपर गया और वहां जाकर कुमारसे कहने लगा कि अब अवश्य ही आपका मरण समीप आगया है, क्या आप निडर

११५ ॥ बिभी सक्नोषि किं मर्तुमिवावादीरस चेदश । बिभेमि चेदहं मृत्योः किमित्येतदनुष्ठितं ॥ ११६ ॥ सलिलं वा तृषार्तस्य शीतलं मरणं मम । तत्र का भीरिति व्यक्त तदुक्तमवबुध्य स ॥ ११७ ॥ नागरेभ्यो महीभर्त्रे कुमारायात्मनेपि च । लोकद्वयहितं कार्यं निश्चित्य सचिवाग्रणी ॥ ११८ ॥ तदद्रिमस्तकं गत्वा महाबलगणेशिनं । अभिवंद्य निजायातृकार्यं चास्मैन्यवेदयत् ॥ ११९ ॥ मन:पर्ययसज्ञानचक्षुः स गणनायकः । मामंपीद्वाविमौ रामकेशवाविहभाविनौ ॥ १२० ॥ तृतीयजन्मनीत्याह तच्छ्रुत्वा सचिवो मुदा । तौ तत्रानीय सश्राव्य धर्मं संयममापयत् ॥ १२१ ॥ ततो भूपतिमासाद्य मन्त्रीतीदमबोधयत् । वारणारेरिवाभीरोरेककस्य गुहाश्रित ॥ १२२ ॥ अनादृतस्वसौख्यस्य कस्यचिद्वनवासिनः । स्वकार्येष्वतितीव्रस्य जनस्यात्युग्रचेष्टितु ॥ १२३ ॥ तावर्पितौ मया सोपि तवाह कृतदोषयो । भवतो न सुखं स्मार्यं दुःखं भोग्यं सुदुष्करं ॥ १२४ ॥ स्मर्तव्या देवता चित्ते परलोकनिमित्ततः । इत्येतत्तौ च

होकर मरनेके लिये तैयार हैं ? इसके उत्तरमें कुमारने कहा कि यदि मैं मृत्युसे इसतरह डरता तो फिर यह अयोग्य काम ही क्यों करता ॥ ११५–११६ ॥ जिसप्रकार प्यासे मनुष्यको पानी ठंडा और अच्छा लगता है उसीप्रकार मेरे लिये मरण है इसमें डरनेका क्या काम है इसप्रकार कुमारकी बात सुनकर उस मुख्य मंत्रीने नगरनिवासी महाराज राजकुमार और अपने दोनों लोकोंका हित करनेवाला कोई कार्य करनेका निश्चय किया ॥ ११७–११८ ॥ तदनंतर वह मंत्री उस पर्वतकी सिखरपर चढ़ा और उसने वहां पर विराजमान श्रीमहाबल नामके गणधरकी वंदना की तथा उसने अपने आनेका कारण भी निवेदन किया ॥११९॥ वे गणधर देव मनःपर्यय ज्ञानी थे इसलिये कहने लगे कि तुम डरो मत ये दोनों ही तीसरे भवमें नारायण और बलभद्र होनेवाले हैं" यह सुनकर वह मंत्री प्रसन्न होकर उन दोनोंको ले आया और धर्म श्रवण कराकर संयम धारण करादिया ॥ १२०–२२१ ॥ तदनंतर वह मंत्री राजाके समीप आया और नीचे लिखे अनुसार राजाको समझाने लगा कि एक कोई गुफामें रहनेवाला बनवासी सिंहके समान निर्भय था, उसने अपने सब सुख छोड रक्खे थे, अपने काममें वह बडा ही तीव्र था और उसकी चेष्टाएं अत्यंत उग्र थीं उसे ही मैं उन दोनों पुत्रोंको सौंप आया हूं। जाते ही उस बनवासीने दोनों पुत्रोंसे कहा था कि तुम दोनोंने बहुत दोष किये हैं अब तुम अपने सुखका स्मरण मत करो किंतु कठिनसे कठिन दुःख भोगनेके लिये तैयार हो ॥ १२२–१२४ ॥ अब तुम्हें परलोकके लिये अपने इष्ट देवताका स्मरण कर लेना चाहिये, यह सुनकर उन दोनोंने मुझसे कहा कि हे भद्र आप हमारे कष्ट और दंडकी चिंता न करें यह काम हमने अपने ही हाथसे किया है इसतरह कहकर वे दोनों ही कठिन दुख सहकर

भद्रत्वं माकृथा कष्टदंडनं ॥ १२५ ॥ आवाभ्यामावयोः कार्यमित्यात्मकरभावितौ । वेदनां तीव्रमापाद्य परलोकोन्मुखावुभौ ॥ १२६ ॥ अभूतां तद्विलोक्याहमभिप्रेतार्थनिष्ठितौ । सुविधाययातो देव सिद्धं भवदुदीरितं ॥ १२७ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं राजा महादुःखाकुलो मनाक् । निवातस्तिमितक्ष्माजसमानो निश्चल स्थितः ॥ १२८ ॥ आत्मना मंत्रिभिर्बंधुजनैश्चालोच्य निश्चितं । कार्यं हितमनुष्ठेयं तत्प्रागनानुष्ठितं त्वया ॥ १२९ ॥ करजालमतिक्रांतमिव सर्पिमहीरुहे । प्रसूनमिव संशुष्कं कार्यं कालातिपातितं ॥ १३० ॥ तत्र शोको न कर्तव्यो वृथेति सचिवोदितं । श्रुत्वा तद्वचनं ब्रूहि तर्के तद्वृत्तकं कथं ॥ १३१ ॥ इत्यप्राक्षीत्ततोऽस्याभिप्रायवित्सचिवोऽवदत् । यतयो वनगिर्यद्रिगुहागहनवासिनः ॥ १३२ ॥ धैर्यासिधारानिर्भिन्नकषायविषयद्विषः । स्थूलसूक्ष्मासुभृद्रक्षानितातोद्यतवृत्तय ॥ १३३ ॥ भिया भियेव कोपेन कोपेनेवानिताशयाः । असंयतेषु भोगोपभोगेष्विव निरादराः ॥१३४॥ तेभ्यस्तौ धर्मसद्भावं श्रुत्वा निर्विंघ

परलोक जानेके लिये तैयार हुए । यह देखकर मैंने भी इच्छानुसार अपना काम होता हुआ देखा और फिर मैं यहां चला आया । हे देव ! इसतरह आपका कहा हुआ सब काम बन गया ॥ १२५–१२७॥ मंत्रीकी इस बातको सुनकर राजाके चित्तमें बहुत दुःख हुआ और जिसप्रकार हवा बंद हो जानेपर वृक्ष निश्चल हो जाते हैं उसीप्रकार वह थोड़ी देर तक निश्चल रहा ॥१२८॥ तदनंतर राजाने मंत्री और भाई बंधुओंके साथ विचारकर निश्चय किया कि तुमने वह काम कर डाला है जो पहिले कभी नहीं किया था । यह सुनकर मंत्री फिर कहने लगा कि यह काम सूखे हुए फूलके समान अथवा सर्प वाले वृक्षपर बहुत फैले हुए करजालके समान समयके आधीन पड गया है इसमें व्यर्थ ही शोक करना उचित नहीं हैं । यह सुनकर राजा फिर पूछने लगा कि वास्तवमें जो हुआ है उसे सच सच कहो । तब महाराजके अभिप्रायको जाननेवाला मंत्री कहने लगा कि वनगिरि नामके पर्वतकी गहन गुफामें निवास करने वाले यति थे, वे कषाय और विषयरूपी शत्रुओंको धैर्य रूपी तलवारकी धारसे नाश करनेवाले थे, उनकी प्रवृत्ति स्थूल सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा करनेमें सदा तैयार रहती थी, उनके हृदयमेंसे भय मानों भयसे ही भाग गया था और क्रोध क्रोधित होकर ही पास नहीं आता था, वे असंयमके समान भोगोपभोगोंमें भी सदा निरादर ही किया करते थे ॥ १२९–१३४ ॥ उनके समीप धर्मका स्वरूप सुनकर वे दोनों ही पुत्र दीक्षित हो गये हैं । इसप्रकारके स्पष्ट वचनोंको सुनकर महाराज बहुत ही संतुष्ट हुए ॥ १३५ ॥ उन्होंने मंत्रीकी प्रशंसाकी और कहा कि दोनों लोकोंका हित करनेवाला तू ही है ॥ तदनंतर "कुपुत्रके समान ये भोग भी पाप और निंदाके कारण हैं" यही समझकर महाराज प्रजापतिने अपने राज्यका महाभार अपने कुलके किसी योग्य पुरुषको दिया और वन पर्वतपर जाकर महाबल नामके गणधरकी पूजा

दीक्षितौ । इति विस्पष्टतद्वाक्यात्परितुष्टो महीपतिः ॥ १३५ ॥ लोकद्वयहितो नान्यस्त्वमेवेत्यभिनंद्य तं । दुष्पुत्र दंव भोगोय पापापलापकारण॥१३६॥ इति-स्वकुलयोग्याय दत्तराज्यमहाभर । गत्वा गणेशमभ्यर्च्य वनाद्रौ नवसंयतौ ॥१३७॥ मया कृतो महान् दोष त क्षमेथां युवामिति । निगदन्नावयोर्लोकद्वितीयैकगुरुर्भवान् ॥ १३८ ॥ संयमोयं त्वयैवापि ताभ्यां संप्राप्य संस्तवं । बहुभिर्भूभुजे सार्द्धं त्यक्तसंग स संयम ॥१३९॥ प्राप्य क्रमेण ध्वस्तारिर्घातिकर्मविघातकृत् । केवलावगमज्योतिर्लोकाग्रे व्यद्युतत्तरां ॥ १४० ॥ तौ समुत्कृष्टचारित्रौ द्वौ खड्गपुरबाह्यगौ । आतापयोगमादाय तस्थतुस्त्यक्तविग्रहौ ॥१४१॥ तत्पुराधिपसोमप्रभाह्वयस्य सुदर्शना । सीता च देव्यौ तत्सुतु सुप्रभः सुप्रभागधृत् ॥ १४२ ॥ पुरुषोत्तमनामा च गुणैश्च पुरुषोत्तमः । मधुसूदनमुच्छिद्य कृतदिग्जयपूर्वक ॥ १४३ ॥ नृखेचरसुराधीशप्रवर्द्धितमहोदय । प्रविशंत प्रभावंत नगरं पुरुषोत्तमं ॥ १४४ ॥ चन्द्रचूलमुनिं दृष्ट्वा निदानमकृताज्ञक । जीवि·

की । वहींपर नवदीक्षित दोनों कुमार विराजमान थे उनसे कहा कि " मैंने बडा अपराध किया है आप दोनों ही क्षमा कीजिये " इसके उत्तरमें उन दोनोंने उनकी प्रशंसा की और कहा कि " आप हमारे दोनों लोकोंके एक ही गुरू हैं आपने ही हमको यह संयम धारण कराया है " तदनंतर महाराज प्रजापतिने अनेक राजाओंके साथ परिग्रह छोडकर संयम धारण किया, पापरूप शत्रुओंका नाश किया, घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान रूपी ज्योति प्राप्तकी और अंतमें लोक शिखरपर जाकर सुशोभित होने लगे ॥ १३६–१४० ॥ इधर उत्कृष्ट चारित्र पालन करते हुए वे दोनों ही पुत्र किसी एक दिन आतापन योग धारणकर तथा शरीरसे ममत्व छोडकर खडगपुर नगरके बाहर विराजमान थे ॥ १४१ ॥ उसी खडगपुर नगरके राजाके सोमप्रभ की रानी सुदर्शना और सीतासे सुंदर कांतिवाले शरीरको धारण करनेवाला सुप्रभ और गुणोंसे भी पुरुषोत्तम ऐसा पुरुषोत्तम नामके दो पुत्र थे जोकि बलभद्र और नारायण कहलाते थे । वे मधुसूदन नामके प्रतिनारायणको मारकर और दिग्विजयकर आए थे॥१४२–१४३॥अनेक राजा विद्याधर और देवता उनके ऐश्वर्यको बढा रहे थे । इसतरह प्रभावशाली पुरुषोत्तमको । नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर अज्ञानी चन्द्रचूलमुनिने (राजाके पुत्रने) निदान किया आयुके अंतमें दोनोंने ही चारोंप्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया तथा चंद्रचूल सनत्कुमार स्वर्गके कनक प्रभ विमानमें विजय नामका देव हुआ और मंत्रीका पुत्र स्वर्णचूल उसी स्वर्गके मणिप्रभ विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ, दोनोंकी सात सागरकी आयु थी और दोनोंने ही बहुत दिन तक स्वर्गोंके सुखोंका अनुभव किया वहांसे च्युत होकर वे दोनों ही इसी भरत क्षेत्रमें उत्पन्न होंगे ॥१४४-१४७॥

अथानंतर–बनारस नगरके प्रसिद्ध राजा दशरथके सुबाला नामकी रानी थी, उसने शुभ स्वप्न देखे और उसी-

तावसितौ सम्यगाराध्योभौ चतुर्विधं ॥१४५॥ ...उत्तरकल्पस्य विमाने कनकप्रभे । विजय स्वर्णचूलेन्यो मणिचूलो मणिप्रभे॥१४६॥जातवंतौ तदुत्कृष्टसा-
गरोपमितायुषौ । सुचिरं भुक्तसंभोगौ ततश्च्युत्वेह भारते ॥ १४७ ॥ वाराणसीपुराधीशो राज्ञो दशरथप्रभुतेः । सुत सुबालासंज्ञायां शुभस्वप्नपुरस्सरं ॥
१४८ ॥ कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां फाल्गुने मास्यजायत । मघायां हलभृद्भावी चूलांतकनकामरः ॥ १४९ ॥ त्रयोदशसहस्राब्दो रामनामानताखिलः । ततएव
महीभर्तु कैकेय्यामभवत्सुर ॥ १५० ॥ सरःसूर्येंदुकलमक्षेमसिंहान् महाफलान् । स्वप्नान् संदर्श्य माघस्य शुक्लपक्षादिमे दिने ॥ १५१ ॥ विशाखर्क्षे स-
चक्रांको मणिचूलोऽमृताशन । वद्गुणद्विसहस्राब्दजीवितो लक्ष्मणाह्वयः ॥ १५२ ॥ तौ पंचदशचापोच्चौ द्वात्रिंशल्लक्षणान्वितौ । आदिसंहननौ संस्थानं चा-
भूदादिमं तयोः ॥ १५३ ॥ अमेयवीर्यौ हसासनीलोत्पलसमत्विषौ । तयोः सपंचपंचाशत् पंचाशद्वर्षसम्मिते ॥ १५४ ॥ कुमारकाले नि कांते नितांतपर-

के गर्भसे फागुन कृष्ण त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें स्वर्णचूल देवका जीव (मंत्रीका पुत्रका) होनहार बलभद्र उ-
त्पन्न हुआ ॥ १४८–१४९ ॥ राम उसका नाम था तेरह हजार वर्षकी उसकी आयु थी और उसने सब संसार अपने
आधीन करलिया था, उसी राजा दशरथके एक केकयी रानी थी उसने सरोवर सूर्य, चंद्रमा, कलमी चावलोंका
खेत और सिंह ये पांच महाफल देनेवाले स्वप्न देखे और उसके गर्भसे माघ शुक्ला पडिवाके दिन विशाखा नक्षत्रमें
मणिचूलदेवका जीव (राजपुत्रका जीव) उत्पन्न हुआ, चक्रका चिन्ह उसके शरीरपर बहुत ही अच्छा जान पडता
था, बारह हजार वर्ष उसकी आयु थी और लक्ष्मण उसका नाम था ॥ १५०–१५२ ॥ ये दोनों ही भाई पंद्रह ध-
नुष ऊंचे थे, बत्तीस लक्षणोंसे सुशोभित थे, उन दोनों ही के वज्रवृषभ नाराच नामका पहिला संहनन था पहिला
ही समचतुरस्र नाम संस्थान था, दोनों ही अमित शक्तिवाले थे, राम चंद्रके शरीरकी कांति हंसके पंखोंके समान
सफेद थी और लक्ष्मणके शरीरकी कांति नीलकमलके समान श्याम थी कुमार कालके रामके पचपन और लक्ष्मणके
पचास वर्ष व्यतीत होजानेपर उन दोनों भाइयोंका परम ऐश्वर्य प्रगट हुआ था ।

अथानंतर–इसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें इक्ष्वाकुवंशके भरत आदि असंख्यात राजा हो गये थे, उनके बाद
दशवां चक्रवर्ती हरिषेण हुआ उसके भी सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र होनेके एक हजार वर्ष बाद सगर नामका राजा हुआ था ॥
१५३–१५७॥ वह सब देशका स्वामी था और बड़ा ही प्रतापी था एक बार सुलसाके स्वयंवरमें मधुपिंगल नामका सुंदर
कुमार आया था परंतु राजा सगरने "इसके लक्षण दूषित हैं इसतरह कहकर राजाओंके बीचमें निरादरकर उसे निकाल दिया
था इस तरह सगरके साथ वैर बांधकर वह मधुपिंगल वहांसे निकल गया और लज्जित होकर उसने संयम धारण

मौदये। भारतेस्मिन्नयोध्यायां भारतादिमहीशितुः ॥ १५५ ॥ गतेष्विक्ष्वाकुमुख्येषु सख्यातीतेष्वनंतरं। हरिषेणमहाराजे दशमे चक्रवर्तिनि ॥ १५६ ॥ सर्वार्थसिद्धावुत्पन्ने संवत्सरसहस्रके। काले गतवति प्राभूत्सगराख्यो महीपति ॥ १५७ ॥ नि खंडमंडलखंडः सुलसायाः स्वयवरे। मधुपिंगलनामानं कुमारवरमागतं ॥ १५८ ॥ वृथ्यलक्ष्मायमित्युक्त्वा निरगस्थत नृपमध्यग। सगरे वद्धवैरः सन् नि क्रम्य मधुपिंगलः ॥ १५९ ॥ सलज्ज सयमी भूत्वा महाकालासुरोभवत्। सोसुर सगराधीशवशनिर्मूलनोद्यत ॥ १६० ॥ द्विजवेष समादाय संप्राप्य सगराह्वय। अपूर्ववेदविहितं प्राणहिंसापरायण ॥ १६१ कुरु याग श्रियो वृद्ध्यै शत्रुविच्छेदनेच्छया। इति त दुर्मति भूत पापासीरुर्व्यमोहयत् ॥ १६२ ॥ अनुष्ठाय तथा सोपि प्राविशत्पापिनां क्षितिं। निर्मूलं कुलमप्यस्य नष्ट दुर्मार्गवर्तनात् ॥ १६३ ॥ श्रुत्वा तत्सात्मजो रामपितास्वक क्रमागत। साकेतपुरमित्येत्य तदध्यास्यस्वपालयत् ॥ १६४ ॥ तत्रास्य देव्या कस्यांचिदभवद्भरताह्वय। शत्रुघ्नश्चान्यदप्येक दशाननवधाद्यशः ॥ १६५ ॥ कारण प्रकृत भावि रामलक्ष्मणयोरिदं। मिथिलानगराधीशो जनकस्तस्य वल्लभा ॥१६६॥

कर लिया तथा मरकर वह महाकाल नामका व्यंतर देव हुआ। वह व्यंतर देव राजा सगरके वंशको नाश करनेके लिये तैयार हुआ ॥१५८-१५९॥ ब्राह्मणका भेष धारणकर वह राजा सगरके समीप आया, पापोंसे नहीं डरनेवाले उस देवने दुर्बुद्धि राजा सगरको मोहितकर कहा कि यदि तू अपनी लक्ष्मीको बढाना चाहता है और शत्रुओंके नाश करनेकी इच्छा रखता है तो अपूर्व वेदमें कहे हुये और प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले यज्ञको कर ॥ १६१-१६२ ॥ उसके कहनेसे सगरने भी सब ज्योंका त्यों किया और अंतमें वह पापियोंकी पृथ्वी नरकमें जा उत्पन्न हुआ। और मिथ्या मार्गमें प्रवृत्त होनेसे उसका कुल समूल नाश होगया ॥ १६३ ॥ इस बातको सुनकर दशरथने विचार किया कि अयोध्यामें कुलक्रमसे हमारा राज्य चला आता है यही समझकर वे अपने पुत्रोंसहित अयोध्यामें आये और वहांका राज्य करने लगे ॥ ६४ ॥ वहींपर उनके किसी रानीसे भरत नामका पुत्र हुआ, तथा किसी दूसरी रानीसे शत्रुघ्न नामका पुत्र हुआ था। रामलक्ष्मणके प्रसिद्ध होनेका स्वाभाविक कारण रावणके मारनेसे उत्पन्न हुआ यश ही था और वह इसप्रकार प्रगट हुआ था कि उसीसमय मिथिला नगरमें राजा जनक राज्य करते थे उनकी पट्टरानीका नाम वसुधा था, वसुधा बडी ही रूपवती और विनयादि गुणोंसे सुशोभित थी उसके एक सीता नामकी पुत्री थी, जब वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई ॥ १६५-१६७ ॥ तब उसे मांगनेकेलिये अनेक राजाओंके दूत आये परंतु राजा जनकने सबको यही कहकर विदा कर दिया था कि यह मैं उसीको दूंगा जिसका दैव अनुकूल होगा ॥ १६८ ॥

अथानन्तर—राजा जनक किसी एक दिन विद्वज्जनोंसे सुशोभित अपनी सभामें बैठा था वहीं पर कार्य करते में

सुरूपा वसुधा देवी विनयादिविभूषिता । सुता सीतेत्यभूत्तस्याः सम्प्राप्तनवयौवना ॥ १६७ ॥ तां वरीतुं समायातन्नृपवृन्दान्महीपतिः । ददामि तस्मै दैवानुकूल्य यस्येति सोमुचत् ॥ १६८ ॥ नृप कदाचिदास्थानीं विद्वज्जनविराजिनीं । आस्थाय कार्यकुशलं कुशलादिमतिं हितं ॥ १६९ ॥ सेनापतिं समप्राक्षीत प्राकृप्रवृत्तं कथांतरे । पुरा किलात्र सगरः सुलसा चाहुतीकृता ॥ १७० ॥ परे चाश्वादयः प्रापत्सशरीरा' सुरालयं । इतीदं श्रूयतेथापि यागेन यदि गम्यते ॥ १७१ ॥ स्वर्लोकः क्रियतेस्माभिरपि यागो यथोचित । इति तद्वचनं श्रुत्वा स सेनापतिरब्रवीत् ॥ १७२ ॥ नागासुरैः सदा क्रुद्धैर्मात्सर्येण परस्परं । अन्योन्यारब्धकार्याणां प्रतिघातो विधीयते ॥ १७३ ॥ अयं चाद्यमहाकालेनासुरेण नवो विधिः । यागो विनिर्मितस्तस्य विघातः शंक्यतेरिभि ॥ १७४ ॥ नागराडुपकर्त्ताभून्नमेश्च विनमेरपि । ततोयागस्य हंतारः खगास्तत्पक्षपातिनः । यागः सिद्ध्यति शक्तानां तद्विकारव्यपोहने । यद्यप्येतन्नवुध्येरन् रूप्यशैल निवासिनः ॥ १७६ ॥ निश्चितो रावणः शौर्यशाली मानग्रहाहित । तस्मात्प्रागपि शंकास्ति स कदाचिद्विघातकृत् ॥ १७७ ॥ स्यात्तद्रामाय शक्ताय दास्या-

कुशल और हित करनेवाला कुशलमति सेनापति बैठा था राजाने सेनापतिसे कुछ पहिलेकी कथाएं पूछी और पछा कि पहिले राजा सगर रानी सुलसा तथा और घोडा आदि कितने ही जीव यज्ञमें होमे गये थे और वे सब शरीर सहित स्वर्गको गये थे ऐसा सुना जाता है यदि आज भी यज्ञसे स्वर्गमें चले जाते हों तो यथायोग्य रीतिसे हम लोगोंको करना चाहिये " राजाकी इस बातको सुनकर वह सेनापति कहने लगा ॥ १६९–१७२ ॥ कि सदा क्रोधित हुए नागासुर परस्परकी मत्सरतासे एक दूसरेके आरंभ किये हुए कामोंमें विघ्न किया करते हैं ॥ १७३ ॥ इसके सिवाय आज महाकाल नामके व्यंतरदेवने यह यज्ञकी नई विधि बनाई है इसलिये बहुत से शत्रुओंके द्वारा उसमें विघ्न करनेकी शका है ॥ १७४ ॥ इसके सिवाय एक बात यह भी है कि नागराज धरणींद्रने नमि और विनमिका उपकार किया था इसलिये उसके पक्षपाती विद्याधर अवश्य ही यज्ञमें विघ्न उपस्थित करेंगे ॥ १७५ ॥ यज्ञ समर्थ पुरुषों का सिद्ध होता है सो भी उसके विघ्न दूर करने पर। यद्यपि यह बात विजयार्द्ध पर्वतपर रहनेवाले विद्याधरोंको मालूम नहीं होगी तथापि यह निश्चय है कि उनमें रावण बडाही प्रतापी है और अभिमानरूपी ग्रहके वशीभूत हो रहा है इसलिये शंका तो पहिलेसे ही होसकती है कि कदाचित् कोई आकर विघ्न उपस्थित कर दे ॥ १७६–१७७ ॥ हां इसका एक उपाय है कि रामचंद्र बहुत ही शक्तिशाली है यदि उसे हम लोग इस कन्याको देदें तो वह सहायक होसकता है । सेनापतिकी इस बातको सुनकर सभी सभासद उसकी प्रशंसा करने लगे ॥७८॥ सब लोगोंने राजाके साथ मिलकर इसी कामका विचार किया और उसी समय राजा जनकने एक दूत सज्जन राजा

म कन्यकामिमा । इति तद्वचनं सर्वे तुष्टुवुस्तत्सभासिनः ॥ १७८ ॥ निरचिन्वंश्च भूपेन सार्धं तत्कार्यमेव ते । तदैव जनको दूतं प्राहिणोद्रामलक्ष्मणौ ॥ १७९ ॥ मदीययागरक्षार्थं प्रहेतव्यौ कृतत्वरं । रामाय दास्यते सीता चेति शासनहारिणं ॥ १८० ॥ सलेखोपायनं संतं नृपं दशरथं प्रति । तथान्यांश्च महीट् सूनून् दूतानानेतुमादिशत् ॥ १८१ ॥ अयोध्येशोपि लेखार्थं दूतोक्तं चावधारयन् । तत्प्रयोजननिर्णीत्यै मंत्रिणं पृच्छतिस्म सः ॥ १८२ ॥ जनकोक्तं निवेद्यात्र किं कार्यं क्रियतामिति । इदमागमसाराख्यो मन्त्र्यवोचद्वचोऽशुभं ॥ ८३ ॥ निरंतरायसंसिद्धौ यागस्योभयलोकजं । हितं कृतं भवेत्तस्माद्भूतिरस्त्वनयोरिति ॥ १८४ ॥ वचस्यवसिते तस्य तदुक्तमवधार्य सः । प्रजल्पतिस्मातिशयमत्याख्यो मंत्रिणां मतः ॥ १८५ ॥ धर्मो यागोयमित्येतत्प्रमाणपदवीं वचः । न प्राप्नोत्यतएवात्र न वर्तंते मनीषिणः ॥ १८६ ॥ प्रमाणभूयं वाक्यस्य वक्तृप्रामाण्यतो भवेत् । सर्वप्राणिवधाशंसियज्ञागमविधायिनः ॥१८७॥ कथमुन्मत्तकस्येव प्रामाण्यं विप्रवादिनः । विरुद्धालपितासिद्धानेति चेद्वेदवादिनः ॥ १८८ ॥ सिद्धे वैकत्र घातोक्तेरन्यत्रैतन्निषेधनात् । स्वयंभूत्वाद्दोषो-

दशरथके समीप भेजा साथमें भेट भेजी और एक पत्र भेजा। पत्रमें लिखा था कि "मैं एक यज्ञ करना चाहता हूं उस यज्ञकी रक्षा करनेकेलिये आप बहुत शीघ्र राम और लक्ष्मणको भेज दीजिये, मैं रामके लिये सीता समर्पण कर दूंगा" इसके सिवाय राजा जनकने और भी राजपुत्रोंको बुलानेकेलिये अपने अनेक दूतोंको आज्ञा दी थी॥ १७९–१८१ ॥ अयोध्याके राजा दशरथने पत्रमें लिखे हुए अर्थको समझा और दूतके कहे हुये वचनोंको भी सुना तथा उनका अभिप्राय निश्चय करनेके लिये उन्होंने मंत्रियोंसे पूछा ॥ १८२ ॥ उन्होंने जनकका कहा हुआ सब मंत्रियोंको सुनाया और पूछा कि इस समय क्या काम करना चाहिये। इसके उत्तरमें आगमसार नामका मंत्री नीचे लिखे अशुभ वचन कहने लगा कि यज्ञके निर्विघ्न समाप्त हो जानेपर दोनों लोकोंसे उत्पन्न हुआ हित वा कल्याण होगा और ऐसा होनेसे इन दोनों भाइयोंकी अच्छी गति होगी॥ १८३–१८४ ॥ आगमसारके ये वचन समाप्त होनेपर तथा उसके कहे हुएको समझकर अतिशयमति नामका सब मंत्रियोंमें मुख्यमंत्री कहने लगा यज्ञ करना धर्म है। ये वचन कभी प्रामाणिक नहीं हो सकते इसलिये ही बुद्धिमान मनुष्य कभी ऐसे कामोंमें नहीं पडते हैं। १८५–१८६ ॥ यह बात निश्चत है कि वक्ताकी प्रमाणतासे वाक्यकी प्रमाणता मानी जाती है जो सब प्राणियोंकी हिंसाका निरूपण करनेवाले यज्ञरूप आगमका विधान करते हैं ऐसे उन्मत्तके समान ब्राह्मणोंके वचन किसप्रकार प्रमाण हो सकते हैं। यदि वेदके कहनेवाले परस्पर विरुद्धभाषी न हों तो उसमें एक जगह हिंसाका निरूपण और दूसरी जगह उसका निषेध ऐसे दोनों तरहके वाक्य क्यों मिलते? कदाचित् इस विरोधको दूर करनेके लिये

स्य विरोधे सत्यपीत्यसत् ॥ १८९ ॥ प्रष्टव्योसि स्वयंभूत्वं कीदृशं तु तदुच्यतां । बुद्धिमत्कारणस्पदसंबधनिरपेक्षणं ॥ १९० ॥ स्वयंभूत्वं भवेन्मेघभेकादीनां च सा गति । ततः सर्वज्ञनिर्दिष्टः सर्वप्राणिहितात्मकः ॥ १९१ ॥ ज्ञेयमागमशब्दाख्यं सर्वदोषविवर्जितं । वर्तते यत्रशब्दश्च दानदेवर्षिपूजयो: ॥ १९२ ॥ यागो यज्ञ क्रतु पूजा सपर्येज्याध्वरो मखः । मह इत्यपि पर्यायवचनान्यर्चनाविधे ॥ १९३ ॥ यज्ञशब्दाभिधेयोरुदानपूजास्वरूपकात् । धर्मात्पुण्यं समावर्ज्य तत्पाकाद्दिविजेश्वराः ॥ १९४ ॥ शतक्रतुः शतमखः शताध्वर इति श्रुतिं । प्रादुर्भूता प्रसिद्धास्ते लोकेषु समयेषु च ॥ १९५ ॥ हिंसार्थो यज्ञशब्दश्चेत्तत्कर्तुर्नारकी गति: । पयाति सोपि चेत्स्वर्गं विहिंसानामधोगति ॥ १९६ ॥ तव स्यादित्यभिप्रायो हिंस्यमानांगिदानत । तद्वधेन च

यह यहो कि वेद अपने आप बना हुआ है किसीका बनाया हुआ नहीं है और इसलिये ही प्रमाण है इसमें कोई दोष नहीं है ॥ १८७–१८९ ॥ तो फिर उनसे पूछना चाहिये आपका स्वयंभूपना (अपने आप बनाना) कैसा है उसे कहिये । यदि बुद्धिपूर्वक इंद्रियोंके परिस्पदके संबंधकी अपेक्षा नहीं होना ही स्वयंभूपना है तो मेघकी गर्जना और मेंढकोंके वचन आदिकी भी वही गति होगी अर्थात् वे भी प्रमाण मानने पड़ेंगे । इसलिये जो सर्वज्ञदेवका कहा हुआ है सब जीवोंका हित करनेवाला है और पूर्वापर विरुद्ध आदि सब तरहके दोषोंसे रहित है वही आगम प्रमाण माना जा सकता है । इसके सिवाय एक बात यह है कि दान देना देव और ऋषियोंकी पूजा करना इन दो ही अर्थोंमें यज्ञ शब्दकी प्रवृत्ति होती है ॥१९०–१९२॥ याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख, महये सब पूजा विधिके पर्यायवाचक शब्द हैं॥१९३॥यज्ञ शब्दका अर्थ जो बहुतसा दान देना पूजा करना आदि है वही यज्ञका स्वरूप है और वही धर्म है उस यज्ञस्वरूपरूप धर्मसे पुण्यका संचयकर उस पुण्यके फलसे ही ये जीव सुरेश वा इंद्र होते हैं इसलिये ही लोक और शास्त्र दोनोंमें ही शतक्रतु शतमख शताध्वर आदि इंद्रके प्रसिद्ध नाम प्रगट हुए हैं और सब जगह सुनाई दे रहे हैं ॥ १९४–१९५ ॥ यदि यज्ञ शब्दका अर्थ हिंसा ही हो तो उसके करनेवालेको नरकगति होना चाहिये, यदि ऐसे हिंसारूप यज्ञको करनेवाला स्वर्गको चलाजाय तो फिर हिंसा न करनेवालोंकी अधोगति होनी चाहिये ॥१९६॥ कदाचित् आपका यह अभिप्राय हो कि यज्ञमें जो जीव मारा जाता है उसके शरीरका दान किया जाता है अर्थात् उसका शरीर सबको बांट दिया जाता है और उसको मारकर देवोंकी पूजाकी जाती है इस प्रकार यज्ञ शब्दका अर्थ जो दान देना और देव पूजा करना है उसकी प्रवृत्ति सार्थक होती है ! तो इसका उत्तर यह है कि यह आपका अर्थ केवल आपके ही घरमें माना जायगा दूसरी जगह नहीं क्योंकि इस दान पूजाके प्रकरणमें यज्ञ शब्दका यह अर्थ नहीं

देवानां पूज्यत्वाद्यज्ञ इत्ययं ॥ १९७ ॥ वर्तते देवपूजायां दाने चान्वर्थता गतः। एतत्त्वगृहमान्यं ते यद्यस्मिन्ने पठ्यते ॥ १९८ ॥ हिंसायामिति धात्व-
र्थपाठे किं न विधीयते । न हिंसा यज्ञशब्दार्थो यदि प्राणवधात्मकं ॥ १९९ ॥ यज्ञ कथ चरंत्यार्या इत्यशिक्षितलक्षण । आर्षानार्षविकल्पेन यागो द्विविध
इष्यते ॥ २०० ॥ तीर्थेशा जगदाद्येन परमब्रह्मणोदिते । वेदे जीवादिषड्द्रव्यभेदे याथात्म्यदेशने ॥ २०१ ॥ त्रयोग्नयः समुद्दिष्टा क्रोधकामोदराग्नय ।
तेषु क्षमाविरागत्वानशनाहुतिभिर्वने ॥ २०२ ॥ स्थित्वर्षियतिमुन्यस्तशरणा परमद्विजाः । इष्ट्वात्मयज्ञमिष्टार्थामष्टमीमवनीं ययुः ॥ २०३ ॥ तथा तीर्थ-
गणाधीशशेषकेवलिसद्वपुः । संस्कारमहिताग्नींद्रमुकुटोत्थाग्निषु त्रिषु ॥ २०४ ॥ परमात्मपद प्राप्तान्निजान् पितृपितामहान् । उद्दिश्य भाक्तिका पुष्पगधा-
क्षतफलादिभिः ॥ २०५ ॥ आर्षोपासकवेदोक्तमंत्रोच्चारणपूर्वकं । दानादिसत्क्रियोपेता गेहाश्रमतपस्विन ॥ २०६ ॥ नित्यमिष्ट्वेंद्रसामानिकादिमान्यपदोदि-

है ॥ १९७–१९८ ॥ यदि यज्ञ शब्दका यह अर्थ हिंसा ही होता तो जहां धातुओंका अर्थ लिखा है वहां यज्ञका अर्थ
(यजका अर्थ) हिंसा क्यों नहीं लिखा इसलिये यज्ञ शब्दका अर्थ हिंसा कभी नहीं हो सकता कदाचित् यह कहो
कि यदि यज्ञ शब्दका अर्थ प्राणियोंका वध करना न होता तो बडे बडे आर्य लोग इसे क्यों करते ? परंतु आपका
यह कहना अशिक्षित और मूर्खों सरीखा है क्योंकि आर्ष और अनार्षके भेदसे यज्ञके दो भेद कहे हैं ॥ १९९-२०० ॥
इस कर्मभूमिरूपी जगतके प्रारंभमें होनेवाले परम ब्रह्मा भगवान वृषभदेव तीर्थंकरके कहे हुए वेदमें जहां जीवादि छ-
हों द्रव्योंका यथार्थ निरूपण किया गया है वहां क्रोधाग्नि कामाग्नि और उदराग्नि ऐसी तीन अग्नियोंका निरूपण कि-
या गया है । आत्माके सिवाय अन्य किसीको भी शरण न माननेवाले परमब्राह्मण ऋषि यति मुनि वनमें रहकर उन
अग्नियोंमें अनुक्रमसे क्षमा वैराग्य और अनशन इनकी आहूति दिया करते हैं अर्थात् क्रोधाग्निमें क्षमाकी आहूति, का-
माग्निमें वैराग्यकी आहूति और उदराग्निमें अनशन (उपवास) की आहूति दिया करते हैं। इसतरह वे मुनिराज
आत्मयज्ञ करके अपनी वांच्छनीय आठवीं पृथ्वीमें (मोक्षमें) जाकर विराजमान होते हैं ॥ २०१–२०३ ॥ इसके सि-
वाय तीर्थंकर गणधर और शेष केवलियोंके उत्तम शरीरके संस्कारसे पूज्य तथा अग्निकुमार इंद्रके मुकुटसे उत्पन्न हुई
तीन अग्नियां हैं उनमें अत्यंत भक्त तथा दान आदि उत्तम उत्तम क्रियाओंको करनेवाले गृहस्थ–तपस्वी परमात्मपद
को (सिद्धपदको) प्राप्त हुए अपने पिता पितामह आदिको उद्देशकर ऋषि प्रणीत उपासकाध्ययन नामके वेदमें कहे हुए मंत्रोंको
उच्चारणकर पुष्प अक्षत गंध फल आदिके द्वारा जो सदा आहूति देते हैं वह दूसरा आर्ष यज्ञ कहलाता है इसयज्ञके करने-
वाले लोग भी इंद्र सामानिक आदि पूज्यपद पाते हैं तथा देवब्राह्मण लौकांतिक देव होते हैं। और अंतमें कर्मरूपी पापको

स्तकल्मषाः ॥ २०७ ॥ ...न सतः सदा । द्रव्यक्षेत्रादिभेदेन कर्तृणा तीर्थदेशिनां ॥२०८॥
...धानतः । चितपुण्यफल भुक्त्वा कम... ...र्ती ॥ २०९ ॥ यागोयमृषिभिः प्रोक्तो यत्यगारिद्वयाश्रय । आद्यो मोक्षाय
गमत् ॥ २२६ ॥ ...परया परः ॥ २१० ॥ एवं परंपरायातदेवयज्ञविधिष्विह । द्विलोकहितकृत्येषु वर्तमानेषु संतत ॥ २११ ॥ मुनिसुव्रततीर्थेशसताने स-
द्विभोः । ... महाकालासुरो हिंसायज्ञमज्ञोन्वशादसुं ॥ २१२ ॥ कथ तदिति चेदस्मिन् भारते चारणादिके । युगले नगरे राजाजनि नाम्ना सुयोधन ॥२१३॥
...वां तस्यातिथिख्यातिस्तनूजा सुलसानयोः । तस्या स्वयंवरार्थेन दूतोक्तया पुरमागते ॥ २१४ ॥ महीशमंडले साकेतेशिन सगराह्वयं । तत्रागतुं समु-
द्युक्तमन्यदा स्वशिरोरुहां ॥ २१५ ॥ कलापे पलित प्राच्य ज्ञात्वा तैलोपलेपिना । निर्विंद्य विमुखं याते विलोक्य कुशला तदा ॥ २१६ ॥ धात्री मदोदरी

नाशकर मुक्त होते हैं२०४–२०७॥दूसरे श्रुतज्ञान शास्त्रके सामान्य रीतिसे द्रव्य क्षेत्र आदिके भेदसे अथवा तीर्थकरोंके पंचकल्याणोंके भेदसे अनेक भेद हैं उन्हें देव लोग करते हैं और उनसे इकट्ठे हुए पुण्यफलको भोगकर अनुक्रमसे सिद्धपद पाते हैं ॥ २०८-२०९ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने मुनि और गृहस्थ इन दोनोंके आश्रयसे यज्ञके दो भेद निरूपण किये हैं। उनमें से पहिला यज्ञ सक्षात् मोक्षका कारण है और दूसरा परंपरासे मोक्षका कारण है ॥ १० ॥ हे देव! इसप्रकार यह देवयज्ञ की विधि परंपरासे चली आई है यही विधि दोनों लोकोंका हित करनेवाली है और अनादिकालसे चली आ रही है ॥ ११ ॥ श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकरके समयमें राजा सगरसे द्वेष करनेवाले मूर्ख महाकाल नामके व्यंतरदेवने इस हिंसारूप यज्ञका प्रचार किया है ॥ १२ ॥ महाकालने इस हिंसारूप यज्ञका प्रचार क्यों किया यदि इसके जानने-की इच्छा हो तो वह भी सुन लीजिये। इसी भरतक्षेत्रके चारणयुगल नामके नगरमें सुयोधन नामका राजा राज्य करता था ॥१३॥ उसकी पट्टरानीका नाम अतिथि था, उन दोनोंके सुलसा नामकी पुत्री थी। उसके स्वयंवरकेलिये दूतोंके द्वारा बुलाये हुए बहुतसे राजा महाराजा आये थे। उससमय अयोध्या नगरका राजा सगर भी आनेकेलिये तैयार हुआ था। किसी एक दिन तैल लगानेवालेके द्वारा उसने अपने मस्तकपर एक सफेद वाल देखा और यह भी मालूम हुआ कि यह बहुत दिनका है। यह जानकर वह विरक्त हुआ और स्वयवरमें जानेसे विमुख होगया। उसकी मंदो-दरी नामकी धाय बडी ही चतुर थी जब उसे यह बात मालूम हुई तो वह तुरंत ही सगरके पास आई और उसने "यह नया सफेद वाल आपको किसी पवित्र वस्तुके मिलनेकी सूचना करता है" यह कहकर उसे अच्छीतरह स-मझा दिया ॥ १४-१७ ॥ उसीसमय विश्वभू नामका मंत्री आया और सगरको समझाने लगा कि जिस तरह

सतस्तद्वाधवाधान्ये विपादमगमस्तदा। न पश्यत्यर्थिन पाप वचनासचिर महत् ॥ २३८ ॥ अथ कृत्वा महापूजा दिनाष्टौ जिनेशिना। तदतेऽभिष व चैना सुलसा कन्यकोत्तमा ॥ २३९ ॥ स्नातामलकृता शुद्धतिथ्यादिदिने विधा। पुरोधारथमारोप्य नी वा चारुभद्रगना ॥ २४० ॥ नृगान् भद्रासमारूढान् स स्वयवरमडपे। यथाक्रमं विनिर्दिश्य कुलजात्यादिभिः पृथक् ॥ २४१ ॥ व्यरमन् सा समासक्ता साकेतपुरनायकं। अकरोत्कठदेशे त मालालंकृतविग्रह ॥ २४२ ॥ अनयोरनुरूपोय सगमो वेधसा कृत ॥ इत्युक्त्वा मत्सरापेनमनुष्य क्ष्मा मडल ॥ २४३ ॥ कन्याणविधिपर्याप्ता स्थित्वा तत्र कानिचित्। दिनानि सगर श्रीमान् सुखेन सुलसान्वितः ॥ २४४ ॥ साकेननगरं गत्वा भोगाननुभवन् स्थितः। मधुपिंगलसाधोश्च वर्तमानस्य संयमे ॥ २४५ ॥ पुरमेक तनुस्थित्ये विशितो वीक्ष्य लक्षण। कैश्चिन्नैमित्तिको यून: पृथ्वीराज्यार्हदेहज ॥ २४६ ॥ लक्षणैरेष भिक्षाशी किल किं लक्षणागमैः।

और अंतमें अभिषेक किया। तदनंतर उत्तम कन्या सुलसाको स्नान कराया, आभूषण पहिनाये और शुद्ध तिथि वार आदिके दिन अनेक योद्धाओंसे घेरकर तथा रथमें विठाकर पुरोहित उसे स्वयंवर मंडपमें लाया वहांपर अनेक राजा सुंदर आसनोंपर विराजमान थे उनके कुल जाति आदिक अलग अलग नाम लेकर अनुक्रमसे वह उसे बतलाने लगा ॥ ३९-४१ ॥ परंतु अयोध्या नगरके राजा सगरपर आसक्त हुई वह सबको छोड़ गई और सगरके गलेमें माला डालकर उसका शरीर मालासे सुशोभित किया ॥ ४२ ॥ अन्य राजाओंका समूह इस संबंधसे ईर्षा छोड़कर संतुष्ट हुआ और कहने लगा कि विधाताने (पूर्व कर्मोंके उदयने) इन दोनोंका समागम इनके रूपके अनुसार ही किया है ॥ ४३ ॥ तदनंतर उन दोनोंकी विवाहविधि समाप्त होगई। वह श्रीमान् राजा सगर सुलसाके साथ कुछ दिन तक बड़े सुखसे वहीं ठहरा ॥ ४४ ॥ फिर अयोध्यानगरमें आकर भोगोंका अनुभव करता हुआ रहने लगा. इधर मधुपिंगल साधु संयम धारणकर रहने लगा किसी एक दिन भोजन करनेके लिये वह किसी नगरमें गया। उसे देखकर किसी नैमित्तिकने कहा कि इस युवाके शरीरके चिन्ह पृथ्वीका राज्य करने योग्य हैं फिर भी यह भीख माग रहा है इससे जान पड़ता है कि ये लक्षणशास्त्र किसी कामके नहीं है, इस तरह उसने लक्षणशास्त्रोंकी निंदा की। उसकी इस बातको सुनकर दूसरा नैमित्तिक कहने लगा कि पहिले यह राज्य लक्ष्मीका ही उपभोग करता था परंतु राजा सगरके मत्रीने झूठमूठ ही एक बनावटी शास्त्र बनाया और उसे सुनाकर इसे दूषित ठहराया। इस बातसे लज्जित होकर इसने तपश्चरण धारण कर लिया और इस तरह इसके चले जानेपर सुलसा सगरको मिल गई। उन दोनों नैमित्तिकोंकी बात सुनकर वह मधुपिंगल क्रोधरूपी अग्निसे लाल होगया और उस दुर्बुद्धिने निदान किया कि

इत्यनिंदत्तदाकर्ण्य परोप्येवमभाषत॥२४७॥ एष राज्यश्रियं भुंजन् मृषा सगरमंत्रिणा । कृत्रिमागममाकर्ण्य दूषितः सन् द्विया तप ॥२४८॥प्रपमवान् गते चास्मिन् सुलसां सगरोऽग्रहीत् । इति तद्वचन श्रुत्वा मुनि क्रोधाग्निदीपित ॥२४९॥जन्मांतरे फलेनास्य तपसः सगरान्वयं । सर्वं निर्मूलयामीति विधीः कृतनिदानक ॥२५०॥मृत्वासावसुरेंद्रस्य महिषानीक आदिमे । कक्षाभेदे चतुःषष्टिसहस्रासुरनायक ॥२५१॥महाकालोऽभवत्तत्र देवैरावेष्टितो निजैः । देवलोकमिमं केन प्राप्तोहमिति सस्मरन्॥२५२॥ज्ञात्वा विभगज्ञानोपयोगेन प्राक्तने भवे । प्रवृत्तमखिलं पापी कोपाविष्कृतचेतसा ॥२५३॥ तस्मिन् मंत्रिणि भूपे च रूढवैरोपि तौ तदा । अनिच्छन् हंतुमत्युग्रं सुचिकीर्षुरघं तयोः ॥ २५४ ॥ तदुपाय सहायांश्च सचिंत्य समुपस्थितः । नाचिंतयन् महत्पापमात्मनो धिग्विमूढता ॥ २५५ ॥ इद प्रकृतमत्रान्यत्तदभिप्रायसाधन । द्वीपेत्र भरते देशे धवले स्वस्तिकावती ॥ २५६ ॥ पुरं विश्वावसुस्तस्य पालको हरिवंशजः । देव्यस्य श्रीमती नाम्ना वसुरासीत्सुतोनयोः ॥ २५७ ॥ तत्रैव ब्राह्मण पूज्य सर्वशास्त्रविशारदः । अभूत्क्षीरकदंबाख्यो विख्यातोध्यापकोत्तमः ॥ २५८ ॥ समये

मैं इस तपश्चरणके फलसे दूसरे जन्ममें सगरका सब वंश नाश करूंगा ॥ ४५ ५० ॥ मरकर वह असुरेंद्रके पहिली महिष जातिकी सेनाके कक्षा भेदमें चौसठ हजार असुरोंका नायक महाकाल नामका देव हुआ, उत्पन्न होते ही अपने सेवक देवोंने उसे घेर लिया तथा उन्हें देखकर वह स्मरण करने लगा कि मैं किस कारणसे इस स्वर्ग लोकमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ५१-५२ ॥ विभंगज्ञानरूपी उपयोगसे (मिथ्या अवधि ज्ञानसे) उसे पहिले भवके सब समाचार मालूम होगये उसी समय उस पापीका हृदय क्रोधसे भरगया और मंत्री तथा राजा सगरपर उसका वैर खूब ही वढ गया । उसने उन दोनोंको मारनेकी इच्छा तो नहीं की किंतु उन दोनोंसे कोई बड़ा भारी पाप करानेकी इच्छा की ॥ ५३–५४ ॥ वह उसके उपाय और सहायोंकी चिंता करता हुआ रहने लगा । यह जीव अपने वडे बडे पापोंका भी चिंतवन नहीं करता है इसलिये उसकी इस मूर्खतापर भी धिक्कार हो ॥ ५५ ॥ उधर वह तो अपनी चिंतामें रहा इधर उसके अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली एक वात और होगई और वह इसतरह है । इसी जंबू द्वीपके भरतक्षेत्रमें धवलदेशके स्वस्तिकावती नगरमें हरिवंशमें उत्पन्न हुआ विश्वावसु नामका राजा राज्य करता था । उसकी पट्टरानीका नाम श्रीमती था और उन दोनोंके वसु नामका पुत्र हुआ था ॥५६-५७॥ उसी नगरमें एक क्षीरकदंब नामका प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था, वह पूज्य था सब शास्त्रोंमें निपुण था और बहुत ही अच्छा अध्यापक था ॥ ५८ ॥ उसके समीप उसी क्षीरकदंबका पुत्र पर्वत तथा किसी दूसरे देशसे आया हुआ नारद नामका विद्यार्थी और राजा विश्वावसुका पुत्र वसु ये तीनों ही पढकर विद्याओंके पारंगत होगये थे । उन तीनोंमें पर्वत निर्बुद्धि था तथा मोह क-

तस्य तत्सूनुः पर्वतो यश्च नारद । देशांतरागतछात्रस्तुग्वसुश्च महीपतेः ॥ २५९ ॥ एते त्रयोपि विधाना पारमापत्स पर्वतः । तेष्वधीर्विपरीतार्थग्राही मोहविपाकतः ॥ २६० ॥ शेषा यथोपदिष्टार्थग्राहिणो ते त्रयोप्यगुः । वनं दर्भादिक चेतु सोपाध्याया कदाचन ॥ २६१ ॥ गुरुः श्रुतधरोनाम तत्राचलशिलातले । स्थितो मुनित्रय तस्मादकृत्वाष्टागनिमित्तक ॥ २६२ ॥ तत्समाप्तौ स्तुतिं कृत्वा सुस्थितं तन्निरीक्ष्य सः । तत्र पुण्यपरीक्षार्थं समपृच्छन्मुनीश्वर ॥ २६३ ॥ पठच्छात्रत्रयस्यास्य नाम किं कस्य किं कुल । को भावः का गति प्राते भवद्भि कथ्यतामिति ॥ २६४ ॥ तेष्वेकोऽभाषत रमश्रृविल्वसतत्समीपग । वसुः क्षितिपतेः सूनुः तीव्ररागादिदूषित ॥ २६५ ॥ हिंसाधर्मं विनिश्चित्य नारकावामेष्यति । परोऽब्रवीदयं मध्यस्थितो ब्राह्मणपुत्रक ॥ २६६ ॥ पर्वताख्यो विधीः क्रूरो महाकालोपदेशनात् । पठित्वाथर्वणं पापशास्त्रं दुर्मागदेशक ॥२६७॥ हिंसैव धर्म इत्यज्ञो रौद्रध्यानपरायणः । बहूंस्तत्र प्रवर्त्यास्मिन नरक याम्यतीत्यतः ॥ २६८ ॥ तृतीयोपि ततोवादीदेष पश्चादवस्थित । नारदाख्यो द्विजो धीमान् धर्मध्यानपरायणः ॥ २६९ ॥

र्मके उदयसे विपरीत अर्थको ग्रहण करनेवाला था और बाकीके दोनों कहे हुए यथार्थ अर्थको ग्रहण करनेवाले थे। किसी एक दिन वे तीनों हीं डाभ आदि लेनेके लिये उपाध्यायके साथ साथ वनमें गये ॥ ५८-१६१ ॥ वहांपर अचल नामकी शिलाके ऊपर श्रुतधर नामके गुरु विराजमान थे, उनसे अन्य तीन मुनियोंने अष्टांग निमित्त सुना था उसके समाप्त हो जानेपर वे तीनों ही मुनि स्तुति कर बैठे थे। उन्हें इस तरह बैठे देखकर उनकी निपुणताकी परीक्षा करनेके लिये मुनिराज श्रुतधर पूछने लगे कि इन पढनेवाले तीनों ही विद्यार्थियोंके क्या क्या नाम हैं किसका क्या कुल है इनके परिणाम कैसे हैं और मरकर ये किस गतिमें जायगे, अनुक्रमसे तुम तीनों ही कहो ॥ ६३-६४ ॥ इसके उत्तरमें उन तीनोंमेंसे आत्माको जाननेवाला एक मुनि कहने लगा कि महाराज सुनिये यह जो मेरे समीप है वह राजाका पुत्र वसु है, तीव्र राग आदि दोषोंसे दूषित है और हिंसारूप धर्मपर विश्वास रखकर वह अंतमें नरक जायगा। दूसरा मुनि कहने लगा कि यह मध्यमें बैठा हुआ ब्राह्मणका है पर्वत इसका नाम है यह दुर्बुद्धि है क्रूर है महाकालके उपदेशसे अथर्वण नामके पापशास्त्रको पढ़कर दुर्मार्गका उपदेश देगा, तथा यह मूर्ख हिंसाको ही धर्म मानकर सदा रौद्र ध्यानमें लीन रहेगा। इस तरह अनेक लोगोंमें इस पापकर्मकी प्रवृत्ति कराकर यह स्वयं नरकमें पड़ेगा ॥ २६५-२६८ ॥ इसके वाद तीसरा मुनि कहने लगा कि यह जो सबसे पीछे बैठा है उसका नाम नारद है वह ब्राह्मण है बुद्धिमान् है धर्मध्यानमें सदा लीन रहता है, अपने आश्रय आए हुए लोगोको अहिंसारूप धर्मका ही प्रतिपादन करता है यह गिरितट नामके नगरका स्वामी होकर परिग्रहका त्याग करेगा और तपश्चरण धारणकर अंतमें अनुत्तर विमा-

अहिंसालक्षणं धर्ममाश्रितानामुदाहरन् ।,पतिर्गिरितटाख्याया: पुरोभूत्वा परिभ्रहं ॥ २७० ॥ परित्यज्य तपः प्राप्य प्रांतानुत्तरमेष्यति । इत्येव तैस्त्रिभिः प्रोक्तं श्रुत्वा सम्यग्गयोदित ॥ ७१ ॥ सोपदेश धृतं सर्वैरित्यस्तावीन्मुनिश्च तान् । सनैमेतदुपाध्यायः प्रत्यासन्नद्रुमाश्रयः ॥ ७२ ॥ प्रणिधानात्तदाकर्ण्य तदेतद्विधिचेष्टित । एतयोरशुभ धिग्धिक् किं मयात्र विधीयते ॥ ७३ ॥ विचिंत्येति यतीन् भक्त्या तत्क्षणएवाभिवद्य तान् । वैमनस्येन तैश्छात्रैर्नगरं प्राविशत्सम ॥ ७४ ॥ शास्त्रवाल्त्वयोरेकवत्सरे परिपूरणे । वसोः पिता स्वय पट्टं बध्वा प्राभूत्तपोवन ॥ ७५ ॥ वसु निष्कटक पृथ्वीं पालयन् हेलयान्यदा । वनं विहर्तुमभ्येत्य पयोवरपथाद् द्विजान् ॥ ७६ ॥ प्रस्खल्य पतितान् वीक्ष्य विस्मयादिति खाद्भुत । पतता हेतुनावश्यं भवितव्यमिति स्फुटं ॥ ७७ ॥ मत्वाकृष्यधनुर्वाणममुचत्तत्प्रदेशवित् । स्खलित्वा पतितंस्मात्त समीक्ष्य महीपति ॥ ७८ ॥ तत्प्रदेश स्वय गत्वा रथिकेन सहा-

नमें अहमिंद्र होगा । इसतरह उन तीनोंके कहे हुयेको सुनकर वे मुनिराज उन तीनोंकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे तुम सबने मेरे कहे हुये उपदेशको बहुत अच्छी तरह सुना और धारण किया है । इन सब बातोंको क्षीरकदंब उपाध्याय समीप ही वृक्षकी आड़में छिपकर बडे ध्यानसे सुन रहा था, सुनकर वह विचार करने लगा कि कर्मकी लीला भी बडी ही विचित्र है देखो इन दोनोंका बुरा होनेवाला है धिक्कार है मुझे अब क्या करना चाहिये ॥ ६९–७३ ॥ यही सोच विचारकर उसने वहींसे बडी भक्तिपूर्वक उन मुनियोंको नमस्कार किया और फिर बडी उदासीनतासे उन विद्यार्थियोंके साथ नगरमें आया ॥ ७४ ॥ एक वर्षके वाद शास्त्राभ्यास और बाल्य अवस्था दोनों ही समाप्त होजानेपर वसुका पिता राजा विश्वावसु वसुके मस्तकपर स्वयं पट्ट बांधकर दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा ॥ ७५ ॥ इधर राजा वसु निष्कंटक पृथ्वीका पालन करने लगा । किसी एक दिन वह लीलापूर्वक वनमें विहार करनेके लिये गया वहांपर देखा कि आकाशमार्गसे उडते हुए बहुतसे पक्षी टक्कर खाकर गिर पडते हैं उन्हें देखकर वह आश्चर्य करने लगा और विचार करने लगा कि इनके इस तरह पडनेका कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये, यही समझ कर उसने उस देशको लक्ष्यकर धनुष चढाकर एक बाण छोडा, वह बाण ठोकर खाकर गिर पडा यह देखकर वह राजा सारथिके साथ स्वयं उस जगह गया और उस जगहको टटोलने लगा । टटोलनेसे उसे मालूम हुआ कि जो दूसरोंको दिखाई भी नहीं पड सकता ऐसा आकाशस्फटिक स्तंभ है । वह उस खंभेको घर ले आया उसके चार बडे २ पाये बनवाये और उनका एक सिंहासन बनाकर उसपर विराजमान हुआ, उससमय अनेक राजा उसकी सेवा करते थे तथा आश्चर्य करनेवाले अनेक लोग उसकी उन्नतिकी इसप्रकार घोषणा करते थे कि राजा वसु सत्यके प्र-

स्पृशत्। आकाशस्फटिकस्तंभे विज्ञायाविदित परैः ॥ २७१ ॥ आनाय्य तेन निर्माप्य पृथुपादचतुष्टयं । तत्सिंहासनमारुह्य सेव्यमानो नृपादिभिः ॥ ८० ॥ वसुः सत्यस्य माहात्म्यात्स्थितः खे सिंहविष्टरे। इति विस्मयमानेन जनेनाघोषितोभवति ॥ ८१ ॥ तस्यावेव प्रयात्यस्य काले पर्वतनारदौ। समित्पुष्पार्थमभ्येत्य वन नद्याः प्रवाहजं ॥ ८२ ॥ जलं पीत्वा मयूराणां गतानां मार्गदर्शनात्। बभाषे नारदस्तत्र हे पर्वत शिखावलः ॥ ८३ ॥ तेष्वेकोस्ति स्त्रियः सप्तैवेति तच्छ्रवणादसौ। मृषेत्यसोढा चित्तेन व्यधात्पणितबंधन ॥ ८४ ॥ गत्वा तत्रांतरं किंचित्सद्भूतं नारदोदित । अंधवामेक्षणा हस्तिवशकात्राधुना गता ॥ ८५ ॥ तामारूढवती चांतर्वत्नी पट्टांबरोज्वला । अवापत्पुत्रमद्यैवेत्येतदाकर्ण्य पर्वतः ॥ ८६ ॥ अंधसर्पबिलायानमिव ते पूर्वभाषित। आसीद्यादृच्छिकं सत्यमिदं तु परिहास्यतां ॥ ८७ ॥ प्रयाति तव विज्ञानं मया विदितमस्ति किं। इति स्मितं स सासूयं चित्ते विस्मयमास-

तापसे आकाशमें ही (अधर) सिंहासनपर विराजमान है ॥ ७६–८१ ॥ इस तरह राज्य करते हुये राजा वसुका समय व्यतीत होने लगा इधर नारद और पर्वत किसी एक दिन समिध (यज्ञकी लकडी) और फूल लेनेके लिये वनमें गये थे उन्होंने मार्गमें देखा कि कितने ही मयूर नदीके प्रवाहका जल पीकर पीछे लौट रहे हैं। उन्हें देखकर नारदने कहा कि हे पर्वत! इन मयूरोंमें एक तो मयूर है और शेष सात मयूरिणी हैं। नारदकी यह बात सुनकर पर्वत कहने लगा कि नहीं यह बात झूठ है। पर्वतके चित्तमें यह बात सहन नहीं हुई और झट उसने कुछ शर्त बदली ॥ ८२–८४ ॥ थोडी दूर जाकर देखा तो नारदका कहा हुआ सब सच पाया। थोडी देर बाद नारदने फिर कहा कि इस मार्गसे बाई आंखसे कानी एक हथिनी गई है उसपर एक गर्भिणी स्त्री सवार थी वह सफेद साडी पहने थी और वह आज ही पुत्र उत्पन्न करेगी नारदकी वह बात सुनकर पर्वत फिर कहने लगा कि जिसप्रकार अंधा सर्प बिलमें चला जाता है उसीप्रकार तुम्हारा इच्छानुसार पहिला कहा हुआ तो किसी तरह सत्य होगया परंतु तुम्हारा यह विज्ञान तो सर्वथा हंसीके योग्य है मैं इस विषयमें क्या जान सकता हूं यह कहकर वह कुछ हंसा और ईर्षाके साथ चित्तमें कुछ आश्चर्य करने लगा ॥ ८५–८८ ॥ नारदकी बात झूठी ठहरानेकेलिये वह हथिनीके पीछे गया और देखा कि नारदने जो कुछ कहा था वह सब ज्यों का त्यों सत्य है ॥ ८९ ॥ शोक करता हुआ वह घर आया, उसने बडे आश्चर्यसे नारदकी कही हुई बात मातासे कही और माताको समझाया कि पिताजीने शास्त्रका यथार्थ स्वरूप जैसा नारदको कहा है मुझे वैसा नहीं कहा है। इससे जान पडता है कि पिताका मुझमें कुछ भी आदर नहीं था इस तरह विपरीत समझनेरूप पापसे पुत्रके वचन तीक्ष्णशस्त्रके समान हृदयको विदीर्णकर उसके भीतर घुस गये

निजाभिमुखमासीनं तनूजं चैवमब्रवीत् । विनांग त्व विवेकेन विध येन्द्रिरूपकं ॥ ३१९ ॥ कार्याकार्यविवेकस्ते न श्रुतादपि विद्यते । कथ जीवसि म- चक्षुः परोक्षे गतधीरिति ॥ ३२० ॥ एवं पित्रा सशोकेन कृतशिक्षो विचक्षणः । नारदे वद्धवैरोभूत्कुधियामीदृशी गतिः ॥ ३२१ ॥ स कदाचिदुपाध्याय सर्वसंगान् परित्यजन् । पर्वतस्तस्य माता च मंदबुद्धी तथापि तौ ॥ ३२२ ॥ पालनीयौ त्वया भद्र मत्परोक्षेपि सर्वथा । इत्यवोचत्वसु सोपि प्रीतोस्मि त्व- दनुग्रहात् ॥ ३३२॥ अनुक्तसिद्धमेतत्तु वक्तव्यं किमिदं मम । विधेये संशयो नात्र पूज्यपाद यथोचित ॥३२४॥ परलोकमनुष्ठातुमर्हसीति द्विजोत्तम । मनो हरकथाम्लानमालयाभ्यर्चयन्नृप ॥ ३२५॥ तत क्षीरकदम्ब च सम्यक् संप्राप्य सयम । प्राते सन्यस्य संप्राप्ते नाकिना लोकमुत्तम ॥३२६॥ पर्वतोपि पि- तृस्थानमध्यास्याशेषशास्त्रवित् । शिक्षाणा विश्वदिक्कानां व्याख्यातु रतिमातनोत् ॥ ३२७ ॥ तस्मिन्नेव पुरे नारदोपिविद्वज्जनान्वितः । सूक्ष्मधीर्विहितस्थानो बभार व्याख्यया यश ॥३२८॥ गच्छत्येव तयो काले कदाचित्साधुससदि । अजैर्होतव्यमित्यस्य वाक्यस्यार्थप्ररूपणे ॥ ३२९ ॥ विवादोभून्महास्तत्र वि-

होती है ॥ ३१९–३२१ ॥ किसी एक दिन क्षीरकदेव उपाध्यायने सब परिग्रहोंके त्याग करनेका विचार किया इस- लिये उसने राजा वसुको बुलाकर कहा कि यद्यपि यह पर्वत और पर्वतकी माता दोनों ही मंदबुद्धि हैं तथापि हे भद्र तू मेरे पीछे भी सवतरहसे इनका पालन करना । वसुने भी इसके उत्तरमें कहा कि मैं आपके अनुग्रहसे बहुत प्रसन्न हूं यह काम करना तो विना कहे ही मेरा कर्तव्य है इसके लिये आप मुझे क्यों कहते हैं । हे पूज्यपाद ! करने योग्य इसकाममें आप किसी तरहका संदेह मत समझिये आप तो यथायोग्य रीतिसे परलोक सुधारनेका प्रयत्न कीजिये इसतरह राजा वसुने मनोहर कथारूपी निर्मल मालाओंसे क्षीरकदेव ब्राह्मणका आदर सत्कार किया ॥ ३२२–६२५ ॥ तदनंतर क्षीरकदेव उत्तम संयम धारणकर और अंतमें समाधिमरण धारणकर उत्तम स्वर्गलोकमें जा उत्पन्न हुआ ॥ ३२६ ॥ इधर सब शास्त्रोंका जाननेवाला पर्वत पिताके स्थानपर बैठकर सब जगहके शिष्योंके पढानेमें प्रेम करने लगा॥ ३२७ ॥ उसी नगरमें अनेक विद्वानोंसे सुशोभित और सूक्ष्मबुद्धिवाला नारद मकान बनाकर रहने लगा शिक्षा देकर वा शास्त्रोंका व्याख्यानकर यशको खूब बढाने लगा ॥ ३२८ ॥ इस तरह उन दोनोंका समय व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन किसी सज्जनोंकी सभामें "अजैर्होतव्यम्" अर्थात् अजोंसे होम करना इस वाक्यका अर्थ निरूपण क- रते समय बडा भारी विवाद उपस्थित हुआ । नारद कहता था कि जिसमें अंकुर उत्पन्न होनेकी शक्ति नहीं है ऐसे तीन वर्षके पुराने जौके बीजोंको अज कहते हैं ॥ ३२९–३३० ॥ उस जौके विकारसे अग्निमें देवोंकी पूजा करना यज्ञ है ऐसा नारदने पद्धतिके अनुसार विधि पूर्वक कहा ॥३३१॥ निर्बुद्धि पर्वत कहता था कि अज शब्दका अर्थ पशु

ईर्षात्स्वप्रेषणमवूबुधत् ॥ ३०९ ॥ नारदोपि यन यातोऽदृश्यदेशेस्य कर्णयोः । कर्तव्यस्तच्छेद इत्युक्त गुरुणा चंद्रभास्करौ ॥ ३१० ॥ नक्षत्राणि ग्रहास्तार-
काश्च पश्यंति देवताः । सदा सन्निहिता सति पक्षिणो मृगजातय ॥ ३११ ॥ नैते शक्या निराकर्तुमित्येत्य गुरुसन्निधौ । भव्यात्मादृष्टदेशास्य वने के-
नाप्यसमवार्त ॥ ३१२ ॥ नामादिचतुर्येषु पापापख्यातिकारण-क्रियाणामविधेयत्वाच्चाहमानीतवानिम ॥ ३१३ ॥ इत्याह तद्वचः श्रुत्वा स्वसुतस्य
जडात्मता । विचिंत्यैकांतवाद्युक्त सर्वथा कारणानुगं ॥ ३१४ ॥ कार्यमित्येतदेकांतमत कुमतमेव तत् । कारणानुमतं कार्यं क्वचित्क्वचिदन्यथा ॥
३१५ ॥ इति स्याद्वादसद्दृष्ट सत्यमित्यमितुष्टवान् । शिष्यस्य योग्यता चित्ते निधाय सुखमत्तम ॥ ३१६ ॥ हे नारद त्वमेवात्र सूक्ष्मप्रज्ञो यथार्थवित् ।
इत प्रभृत्युपाध्यायपदे त्व स्थापितो मया ॥ ३१७ ॥ व्याख्येयानि त्वया सर्वशास्त्राणीति प्रपूज्य तं । प्रावर्धयद् गुणैरेव प्रीतिः सर्वत्र धीमता ॥३१८॥

की आज्ञा है परंतु यहां बनमें भी सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र तारे आदि देवता देखते हैं पक्षी हरिण आदि सब समीप र-
हते हैं और ये सब किसी तरह दूर नहीं किये जा सकते, यही सोचकर वह भव्य पुरुष गुरुके समीप आया और क-
हने लगा कि बनमें जिम जगह कोई न देख सके ऐसी जगह मिलना असंभव है दूसरी यह बात है कि नाम स्थाप-
ना द्रव्य भाव इन चारों पदार्थोंमें पाप और निंदा उत्पन्न करनेवालीं क्रियाएं करनेका विधान नहीं है इसी लिये मैं
इस बकरेको ऐसा ही ले आया हूं ॥ ३१०–३१३ ॥ नारदकी कही हुई इस बातको सुनकर उस पंडितने अपने पुत्र-
की जडबुद्धिका विचार किया और सोचा कि एकांतवादी जो कारणके समान कार्य मानते हैं वह निरा एकांतमत ही
है और इसीलिये वह मिथ्यामत है । कहीं कहींपर कारणके समान कार्य होता है और कहीं कहीं उससे विपरीत होता
है यह जो स्याद्वाद मत है वही सत्य है यही समझकर वह संतुष्ट हुआ और चित्तमें शिष्यकी योग्यता देखकर वह उ-
त्तम ब्राह्मण कहने लगा कि ॥ ३१४–३१७ ॥ हे नारद तू ही सूक्ष्म बुद्धिवाला और पदार्थको यथार्थ जाननेवाला है
इसलिये आजसे मैं इस उपाध्यायके पदपर तुझे स्थापन करता हूं आजसे तू ही सब शास्त्रोंका व्याख्यान करना इस
प्रकार उसका आदर सत्कारकर उसे बढाया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंका प्रेम सब जगह गुणोंसे ही हुआ करता
है ॥३१८–३१९॥ तदनंतर वह क्षीरकदंब अपने पुत्रसे कहने लगा कि हे पुत्र विवेकके विना ही तूने यह प्रतिकूल और
बुरा कार्य किया है, कार्य और अकार्यका विचार करना तुझे शास्त्र पढकर भी नहीं आया तू इसतरह निर्बुद्धि होकर मेरी
आंखके पीछे कैसे जीवेगा। इस तरह शोक करते हुए पिताने उसे शिक्षा दी परंतु उस शिक्षाका असर मूर्ख पर्वतपर उलटा
हुआ और वह उसी दिनसे नारदसे वैर करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि मूर्ख खोटी बुद्धिवालोंकी ऐसी ही गति

व्याहृत्य विमुख कृतपश्चात्पदस्थित: ॥ २९८ ॥ कलापी गतवानेकः शेषाश्च तज्जलार्दिताः । पत्रभागं विधूयागुस्त दृष्ट्वा समभाविषि ॥ २९९ ॥ पुमानेकक्षिपक्षान्या इति मत्वानुमानतः । ततो बनांतरार्त्किचिदागत्य पुरसन्निधौ ॥ ३०० ॥ तथा करिण्याः पादाभ्यां पश्चिमाभ्यां प्रयाणके । स्वमूत्रघटनाद्वागे दक्षिणे तरुवीरुधा ॥ ३०१ ॥ भंगेन मार्गात्प्रच्युत्य श्रमादारूढयोषित । शीतच्छायामिलाषेण सुप्ताया पुलिनस्थले ॥ ३०२ ॥ उदरस्पर्शमार्गेण दर्शना गुल्मसत्कया । करिणीश्रितगेहाग्रसितोयत्केतनेन च ॥ ३०३ ॥ मया तदुक्तमित्येतद्वचनाद् द्विजसत्तम । निजापराधाभावस्य भावमाविरभावयत् ॥ ३०४ ॥ तदापर्वतमातापि प्रसन्नाभूत्पुनश्च सः । तस्य स्तन्मुनिवाक्यार्थसंप्रत्ययविधित्सुकः ॥ ३०५ ॥ स्वपुत्रछात्रयोर्भावपरीक्षार्थे द्विजाग्रणीः । स्थित्वा सजानिरेकाते कृत्वा पिष्ठेन वस्तकौ ॥ ३०६ ॥ देशेऽर्चित्वा परादर्श्ये गंधमाल्यादिमंगलै । कर्णच्छेदं विधायैनावद्यैवानयत युवा ॥ ३०७ ॥ इत्यवादीत्तत पापी पर्वतोस्ति न कश्चन । वनेस्मिन्निति विच्छिद्य कर्णौ पितरमागत ॥ ३०८ ॥ त्वया पूज्य यथादिष्ट तत्तथैव मया कृत । इति वीतघृणो

ल्कुल किनारे सोई थी वहांपर जो कुछ उदरका चिन्ह था उससे वह गर्भिणी जान पडती थी, उसकी साडीका ठोक एक छोटेसे कटीले झाडसे लगकर फट गया था तथा फटा हुआ टुकडा उसी झाडपर लटकता था उसपरसे उसकी सफेद साडीका अनुमान किया था जहां हथिनी ठहरी थी उस मकान पर सफेद ध्वजा फहरा रही थी उसपरसे मैंने पुत्र होनेका अनुमान किया था। इसतरह अनुमानसे मैंने ऊपरकी सब बातें कहीं थीं। नारदकी ये बातें सुनकर उस ब्राह्मणने ब्राह्मणीको प्रगटकर दिखला दिया कि मैं सर्वथा निरपराधी हूं अर्थात् मैंने दोनोंको एकसा उपदेश दिया है ॥ ३०४ ॥ ये सब बातें सुनकर पर्वतकी माता भी बहुत प्रसन्न हुई। तदनंतर उस ब्राह्मणने पर्वतकी माताको उन मुनियोंके कहे हुए बचनोंका निश्चय करानेकी इच्छाकी तथा पर्वत और नारद दोनोंकी परीक्षा करनेकेलिये अपनी स्त्रीके साथ वह एकांतमें बैठा, वहांपर उसने आटेके दो बकरे बनाये और वे दोनों शिष्योंको देकर कहा कि जिस जगह कोई देखनेवाला न हो उस जगह लेजाकर गंधमाला आदि मांगलिक चीजोंसे इनकी पूजा करना और फिर कान छेदकर आज ही ले आना ॥ ३०५–३०७ ॥ इस तरह कहकर उन दोनों शिष्योंको विदा किया तदनंतर पापी पर्वतने सोचा कि इस बनमें देखनेवाला कौन है ? कोई नहीं है यही विचारकर और उस आटेके बकरेके कान छेदकर वह पिताके पास आया और कहने लगा कि हे पूज्य आपने जैसी आज्ञा दी थी मैंने वैसा ही किया है। इस तरह उसने विना किसी घृणाके बडे हर्षसे अपने पिताको आकर समझाया ॥ ३०८–३०९ ॥ नारद भी उस बकरेको लेकर बनमें गया और सोचने लगा कि "जिस जगह कोई देखनेवाला न हो वहां इसके कान छेदना।" ऐसी गुरु

वान् ॥ २८८ ॥ तमसत्यं पुनः कर्तुं करिणीगमनानुगः । पुरोतनैरदादिष्टमुपलभ्य तथैव तत् ॥ ८९ ॥ सशोको गृहमागत्य नारदोक्त सविस्मयः । मातरं बोधयित्वाह नारदस्येव मे पिता ॥ ९० ॥ नावोन्नच्छात्रयाथात्म्यमस्ति मय्यस्य नादरः । इति पुत्रवचस्तस्या हृदयं निशिताश्रवत् ॥ ९१ ॥ विदार्य प्राविशत्पापाद्विपरीतावमर्शनात् । ब्राह्मणी तद्वचश्चित्तेनावधार्य शुचं गता ॥ ९२ ॥ कृत्वा स्नानाग्निहोत्रादिभुक्त्वा स्वब्राह्मणे स्थिते । अब्रवीत्पर्वतप्रोक्तं तन्निशम्य विदांवरः ॥ ९३ ॥ निर्विशेषोपदेशोहं सर्वेषां पुरुषं प्रति । विभिन्ना बुद्धयस्तस्मान्नारदः कुशलोभवत् ॥ ९४ ॥ प्रकृत्या त्वत्सुतो मंदो नासूयास्मिन् विधीयते । इति तत्प्रत्ययं कर्तुं नारदं सुतसन्निधौ ॥ ९५ ॥ वद केन वने भ्राम्यन्पर्वतस्योदपादयः । विस्मय बहिति प्राह सोपि सप्रश्रयोभ्यधात् ॥ ९६ ॥ वनेहं पर्वतेनामा गच्छन्नर्मकथातरः । शिखिनां पीतवारीणां सद्यो नद्या निवर्तने ॥ ९७ ॥ स्वचंद्रककलापाभोमध्यमज्जनगौरवात् । भीत्वा

वह ब्राह्मणी अपने चित्तमें पुत्रके वचनोंका कुछ निश्चयकर शोक करने लगी और जब ब्राह्मण स्नान अग्निहोत्र आदि कर्मकर तथा भोजन कर बैठा था तब पर्वतकी कही हुई सब बात कह सुनाई। उसे सुनकर वह बुद्धिमान विद्वान् कहने लगा कि मैं सब लोगोंको एकसा उपदेश देता हूं परंतु प्रत्येक पुरुषकी बुद्धि भिन्न भिन्न होती है इसलिये ही नारद चतुर होगया है ॥ ९०–९४ ॥ तेरा पुत्र स्वभावसे ही मंद है इसलिये इसविषयमें कुछ ईर्षा नहीं करनी चाहिये । इसी बातका निश्चय करानेकेलिये क्षीरकदंबने अपने पुत्रके सामने नारदसे पूछा कि कहो आज किस वनमें घूमे थे और वहां पर्वतके साथ क्या उपद्रव किया था । गुरुजीकी यह बात सुनकर नारदको कुछ आश्चर्य हुआ और वह वडी विनयके साथ कहने लगा ॥ ९५–९६ ॥ किं मैं आज पर्वतके साथ वनमें गया था मार्गमें कुछ कथाएं कहता जाता था। मार्गमें कुछ मयूर नदीमें पानी पीकर उसीसमय लौटे थे उनमेंसे जो मयूर था वह अपनी पूंछके चंद्रमाओंको पानीमें भीगकर भारी हो जानेसे डरसे अपने पैर उलटे पीछेकी ओर रखकर फिर मुंह फिराकर लौटा था और बाकी जो मयूरिणी थीं वे अपने पंखोंको पानीमें भिगोकर तथा फटकारकर लौटी थीं यही देखकर मैंने अनुमानसे जान लिया था और पर्वतसे कहा था कि इनमें एक पुरुष (मयूर) है और बाकी सब स्त्रियां (मयूरिणी) हैं इसके बाद वनमें थोडी दूर जाकर किसी नगरके समीप देखा चलते समय किसी हथिनीके पिछले पैर (पैरके चिन्ह) उसीके मूत्रसे भीगे हुए हैं इसीपरसे मैंने जाना कि यह हथिनी है तथा उसके दाईं ओरके वृक्ष और पौधे टूटे हुए थे इससे अनुमानसे जान लिया कि वह हथिनी बांई आंखसे कानी थी। उसपर सवार होनेवाली स्त्री मार्गकी थकावटसे उतरकर शीतल छायाकी इच्छा करती हुई नदीके पानीके वि-

गर्ताकुशाक्षिक । यवबीजं त्रिवर्षस्थमजमित्यमिधीयते ॥ ३० ॥ तद्विकारेण सप्तर्चिमुखे देवार्चनं विद । वदंति यज्ञमित्यास्यदनुपद्धति नारदः ॥ ३१ ॥ पर्वतोप्यजपदेन पशुभेदः प्रकीर्त्यते । यज्ञोग्नौ तद्विकारेण होत्रमित्यवदद्विधीः ॥ ३२ ॥ तयोर्वचनमाकर्ण्य द्विजप्रमुखसाधवः । मात्सर्यान्नारदेनैष धर्मः प्राणवधादिति ॥३३ ॥ प्रतिष्ठापयितु धात्र्यां दुरात्मा पर्वतोऽब्रवीत् । पतितोयमयोग्योतः नह संभाषणादिषु ॥ ३४ ॥ इति हस्ततलास्फालनेन निर्भर्त्स्य त कृधात् । घोषयामासुरत्रैव दुर्बुद्धेरीदृशं फलं ॥ ३५ ॥ एवं बहिःकृतः सर्वैर्मानभंगादगाद्वनं । तत्र ब्राह्मणवेषेण वयसापरिणामिना ॥ ३६॥ कृतांतरोहणास-भरोपानपदवीमिव । वलीरुद्धहताभूयस्खलतेवाधचक्षुषा ॥ ३७ ॥ विरलेन शिरोजेन सितेन दधता ततं । राजतं वा शिरस्त्राणमंतिकांतकजाद्भयात् ॥३८॥ जरांगनासमासन्नसुखाद्वामीलचक्षुषा । चलच्छिन्नकरेणेन करिणा कुपिताहिना ॥ ३९ ॥ इवोर्ध्वश्वासिनाराजवल्लमेनेव नाग्रतः । प्रस्फुटं पश्यता भग्नपृष्ठे-

विशेष (बकरा) कहा जाता है उसके विकारसे अग्निमें होम करना यज्ञ कहलाता है ॥ ३३२ ॥ उन दोनोंके वचन सुनकर बडे बडे सज्जन ब्राह्मणोंने घोषणा की कि यह दुष्ट पर्वत नारदके साथ ईर्षा रखता है इसलिये ही संसारमें प्राणियोंके वधसे धर्मकी स्थापना करनेके लिये ऐसा कहता है परंतु प्राणियोंकी हिंसासे कभी धर्म नहीं हो सकता, यह पर्वत पतित है और इसलिये ही अपने साथ बात चीत करनेके भी अयोग्य है इस तरह क्रोधसे सबने हाथकी हथेली हिलाकर उसका तिरस्कार किया और लोगोंपर प्रगट किया कि दुर्बुद्धिका ऐसा फल इस लोकमें ही मिल जाता है ॥ ३३३-३३५ ॥ इस तरह सब लोगोंने उसे बाहर निकाल दिया इसलिये मान भंग होनेसे वह वनमें चला गया। वहांपर महाकाल नामका देव ब्राह्मणका वेश धारण कर फिर रहा था उस समय वह वृद्ध अवस्थाके रूपमें था, ऐसा जान पडता था मानों यमराजकी चढने योग्य सीढियों पर बहुत शीघ्र चढना चाहता हो, आंखसे अंधेके समान चलते चलते रुक जाता था, उसके सिरपर दूर दूर सफेद बाल थे, शिरपर पगडी ऐसी जान पडती थी मानों यमराजसे उत्पन्न हुए डरसे कोई चांदीका टोप ही रक्खा हो उसके नेत्र कुछ कुछ बंद थे और ऐसे जान पडते थे मानों जरारूपी (बुढापा) स्त्रीके समागमसे उत्पन्न हुए सुखसे ही वे नेत्र बंद होगये हो उसकी गति कटी सूंडवाले हाथीके समान थी, क्रोधित हुए सर्पके समान वह लंबी सांसें ले रहा था, जिसप्रकार राजप्रिय मनुष्य मदसे आगे नहीं देखता है उसीप्रकार वह भी आगे नहीं देखता था। उसकी पीठ टूटी हुई थी, मुखसे शब्द साफ नहीं निकलते थे, सगरकी स्त्रीसे जो उसने वैर बांध रक्खा था उसे प्रगट करनेकेलिये ही मानो उसने तिहरा यज्ञोपवीत धारण कर रक्खा था और वह अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेकेलिये कोई खास

नापट्टभाषिणा ॥ ५० ॥ राजेव गोमयदर्देन गमेनेत रा.भूरता । विन्नभूपरकांतासु यत्कोगमिनरमन ॥ ४१ ॥ भवतुं पारयना यज्ञोपवीतं त्रिगुणीकृतं । तेन स्वामिमतारंमतिद्रिहेतुगवेषिणा ॥ ४२ ॥ महाकालेन दृष्ट मन् पर्वतः पर्वते भ्रमन् । प्रतिगम्य तमानम्य सोऽप्यदःप्रमिवादनं ॥ ४३ ॥ महाकालः समाश्वास्य स्वस्ति तेस्त्विति सादरं । नमविज्ञातपूर्वस्त्वाकुतस्त्वत्र वनांतरे ॥४४॥ परिभ्रमणमेतत्ते त्रुटि ने केन हेतुना । इत्यनुच्छदसौ चाह निजवृत्तांतमा-दितः ॥ ४५ ॥ न निशाम्य महाकालः सगरं मम वैरिणं । निर्वंशीकर्तुमेष स्यात्समर्थो मे प्रतिष्ठयः ॥ ४६ ॥ इति निश्चित्य पापात्मा प्रविलंमनपंडितः । तत्पिता स्थंडिलो विष्णुरुपमन्युरहं च भो ॥ ४७ ॥ भीमोपाध्यायसान्निध्ये शास्त्राभ्यासमकुर्वहि । तत्पिता मे ततो विद्धि धर्मभ्राता तनोकितुं ॥ ४८ ॥

कारण ढूंढता फिरता था, ऐसे महाकालने किसी पर्वतपर फिरते हुये पर्वतको देखा ब्राह्मण उस पर्वतके सामने गया और जाकर उसे नमस्कार किया। बदलेमें पर्वतने भी नमस्कार किया ॥ ३३६–३४३ ॥ महाकालने उसे आश्वासन दिया और बडे आदरसे उसे कहा कि तेरा कल्याण हो। महाकालने अजान सरीखा बनकर पर्वतसे पूछा कि तू कहांसे आया है और इस वनमें किस कारणसे फिर रहा है तू ये सब बातें मुझसे कह। इसके उत्तरमें पर्वतने भी आदिसे अंततक अपना सब हाल कह दिया ॥ ३४४–३४५ ॥ यह सुनकर महाकालने सोचा कि मेरे वैरी सगरको निर्वंश करनेकेलिये यह समर्थ है यह मेरा साधर्मी है ॥३४६॥ यही निश्चयकर वह ठगनेमें चतुर और पापी महाकाल कहने लगा कि तेरा पिता स्थंडिल विष्णु उपमन्यु और मैंने एक साथ भीम उपाध्यायसे अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया है। इस हिसाबसे तेरा पिता मेरा धर्मका भाई है उसीके देखनेके लिये मैं यहां आया था परंतु दुख है कि यह मेरा आना निष्फल हुआ। तू किसी बातका डर मतकर शत्रुको नाश करनेके लिये मैं तेरा सहायक बनूंगा ॥ ३४७–३४९ ॥ इसप्रकार क्षीरकदंबके पुत्र पर्वतके लिये अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली अथर्वण वेदकी साठ हजार ऋचाएं बनाई तथा पर्वतको वह सब वेदका रहस्य पढाया और कहा कि ऊपर लिखे मंत्रोंसे वायुके द्वारा बढी हुई अग्निकी ज्वालामें शांति पुष्टि और अभिचारात्मक क्रियाएं की जांय तो पशुओंकी हिंसासे भी अपने इष्ट फलकी प्राप्ति होजाती है। तदनंतर दोनोंने विस्तार किया कि अयोध्यामें जाकर शांति आदिको देनेवाला हिंसा यज्ञ करेंगे और इसतरह इन वेदोंका प्रभाव दिखलावेंगे। यह कहकर अपने शत्रुको नाश करनेकेलिये उसने अपने क्रूर असुरोंको बुलाया और उन्हें आज्ञा दी कि राजा सगरके राज्यमें ज्वरादिकी तीव्र बाधा उत्पन्न करो, यह कहकर उन देवोंको भेजा। इधर पर्वत अयोध्या नगर में जाकर राजसभामें गया और मंत्रोंसे मिले हुए आशीर्वाद देकर

ममागमनमेतत्र वैकल्यं समपद्यत । मा भैषीः शत्रुविध्वंसे सहायस्ते भवाम्यहं ॥ ३४९ ॥ इति क्षीरकदम्बात्मजेष्टार्थीनुगताः स्वयं । आथर्वणगता षष्ठि-सहस्रप्रमिताः पृथक् ॥ ३५० ॥ ऋचो वेदरहस्यानीत्युत्पाद्याध्याप्य पर्वत । शांतिपुष्ट्यभिचारात्मक्रियाः पूर्वोक्तमंत्रणैः ॥ ३५१ ॥ निश्चिताः पवनोपेतव-न्हिज्वालासमा फलं । इष्टेदत्पादयिष्यंति प्रयुक्ताः पशुहिंसनात् ॥ ३५२ ॥ ततः साकेतमध्यास्य शांतिकादिफलप्रदं । हिंसायागं समारभ्य प्रभावं विदधा-महे ॥ ३५३ ॥ इत्युक्त्वा वैरिनाशार्थमात्मीयान् दितिपुत्रकान् । तीव्रान् सगरराष्ट्रस्य बाधा तीव्रज्वरादिभिः ॥ ३५४ ॥ कुरुध्वमिति सप्रेष्य स द्विजस्त-त्पुरं गतः । सगरं मंत्रगर्भाशीर्वादेनालोक्य पर्वतः ॥ ३५५ ॥ स्वप्रभावं प्रकाश्यास्य त्वद्देशविषमाशिवं । शेपयिष्यामि यज्ञेन सुमित्रेणाविलंबितं ॥ ३५६ ॥ यज्ञाय वेधसा सृष्टा पशवस्तद्विहिंसनात् । न पापं पुण्यमेव स्यात्स्वर्गोरुसुखसाधनं ॥ ३५७ ॥ इति प्रत्याय्य तं पापः पुनरप्येवमब्रवीत् । त्वं पशूनां सहस्रा-णि षष्टिं यागस्य सिद्धये ॥ ३५८ ॥ कुरु संग्रहमन्यच्च द्रव्यं तद्योग्यमित्यसौ । राज्ञापि सर्ववस्तूनि तथैवास्मै समर्पयत् ॥ ३५९ ॥ प्रारभ्य पर्वतो याग प्रा-

सगरके दर्शन किये ॥ ३५४–३५५ ॥ राजाको कुछ अपना प्रभाव दिखलाया और फिर कहा कि तेरे देशमें जो वि-षम अकल्याण हो रहा है उसे मैं सुमित्र नामके यज्ञसे बहुत शीघ्र दूर कर दूंगा ॥ ३५६ ॥ ब्रह्माने ये पशु यज्ञके लिये ही बनाये हैं इनकी हिंसा करनेसे पाप नहीं होता किंतु पुण्य ही होता है तथा बडे भारी सुखका साधन ऐसा स्वर्ग मिलता है ॥ ३५७ ॥ इसतरह विश्वास दिलाकर वह पापी पर्वत फिर कहने लगा कि यज्ञपूरा होनेके लिये तू साठ हजार पशु इकट्ठे कर तथा उसके लिये इतनी इतनी और सामग्री इकट्ठी कर । राजाने भी चुपचाप पर्वतके अनुसार सब सामग्री लाकर उसे समर्पणकी ॥ ३५८–३५९ ॥ पर्वतने यज्ञ करना प्रारंभ किया वह मंत्रपूर्वक प्राणियोंका होम करने लगा । उससमय महाकालने भी उन प्राणियोंको विमान में विठाकर शरीरसहित आकाशमें ले जाते हुए दिखलाया और लोगोंको विश्वास दिला दिया कि ये सब स्वर्गको गये हैं । उसीसमय देशमें जो अक-ल्याण और उपसर्ग हो रहा, था वह भी उसने दूर कर दिया ॥ ३६०–३६१ ॥ उसे देखकर उसके छल कपटसे मोहित हुए लोग मुग्ध हो गये और स्वर्ग में जानेकी इच्छा करते हुए सब लोग खुशी खुशी उस यज्ञमें मरनेकी आकांक्षा करने लगे ॥ ३६२ ॥ यज्ञके समाप्त होनेपर उस दुष्ट पर्वतने विधि पूर्वक एक जाति नामके घोडेका होम किया और फिर राजाकी आज्ञासे सुलसा देवीको भी होम दिया ॥ ३६३ ॥ तदनंतर प्यारी देवीके वियोगसे उत्पन्न हुई शोकरूपी दावानल अग्निसे जिसका शरीर सब जल गया है ऐसा वह राजा सगर अपनी राजधानीको लौट आया ॥३६४॥वह शय्यापर जाकर पड़गया और विचार करने लगा कि यह प्राणियोंकी हिंसा करना बड़ा भारी काम

निनोऽमंत्रयत्तदा । महाकालः शरीरेण सह स्वर्गमुपागतः ॥ ३६० ॥ इत्याकाशे विमानैस्तामीयमानानदर्शयत् । देशाशिवोपसर्गं च तद्वासी निरस्तवान्॥ ३६१ ॥ तद्दृष्ट्वा देहिनो मुग्धास्तत्प्रलम्भेन मोहिता । तां गतिं प्रेप्सवो यागमृतिमाकांक्षयमलं ॥३६२॥ तयज्ञावसितौ जात्य हयमेक विधानतः । इयाज सुलसां देवीमपि राज्ञाक्या खलु ॥ ३६३ ॥ प्रियकांतावियोगोत्थशोकदावानलार्चिषा । परिप्लुष्टतनू राजा राजधानीं प्रविष्टवान् ॥ ३६४ ॥ शय्यातले विनिक्षिप्य शरीरं प्राणिहिंसनं । वृत्तं महदिद धर्मः किमधर्मोयमित्यसौ ॥ ३६५ ॥ संशयानस्तथान्येद्युर्मुनिं यतिवरामिध । अभिवंद्य मयारब्ध भट्टारक च-चास्थित ॥ ३६६ ॥ ब्रूहि किं कर्म पुण्यं मे पाप चेद विचार्य तत् । इत्यवोचदसौ चाह धर्मशास्त्रबहिःकृत ॥ ३६७ ॥ एतदेव विधातारं सप्तमीं प्रापयेत्क्षि-तिं । तस्याभिज्ञानमप्यस्ति दिनेस्मिन् सप्तमेशनिः ॥ ३६८ ॥ पतिष्यति ततो विद्धि सप्तमी धरणीति ते । तदुक्तं भूपतिर्मत्वा ब्राह्मणं तं न्यवेदयत् ॥३६९॥ तन्मृषा किमसौ वेत्ति नग्नः क्षपणकस्ततः । शंका चेत्तेतस्याः शांतिरत्र विधीयते ॥ ३७० ॥ इत्युक्तिभिर्मनस्तस्य सधार्यं शिथिलीकृतं । यज्ञ पुनस्तमा-

है यह धर्म है अथवा अधर्म है । इसतरह संशय करता हुआ वह सवेरे ही यतिवर नामके मुनिके समीप गया और वंदनाकर प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो ! मैंने यज्ञ करना प्रारंभ किया है, आप विचारकर कहिये कि यह पुण्य-का काम है अथवा पापका ? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि यह काम धर्मशास्त्रके विरुद्ध है इसके करनेवालेको सातवां नरक मिलता है । इसके सिवाय आजसे सातवें दिन तुझपर वज्र पडेगा और तू मरकर सातवें नरक जायगा यह तू निश्चय समझ । मुनिराजकी ये सब बात सुनकर राजाने ज्यों की त्यों ब्राह्मणसे जाकर कही ॥ ३६५–३६९ ॥ राजाकी यह बात सुनकर वह पर्वत ब्राह्मण कहने लगा कि यह सब बात झूठ है, वह नंगा क्या जानता है । यदि तेरे चित्तमें फिर भी कुछ शंका हो तो इसकी भी शांति कर डालते हैं ॥ ३७० ॥ इसतरहके वचनोंसे राजाके चित्तको धीरज बधाया और जो यज्ञ शांत कर दिया था उसे फिरसे करना प्रारंभ किया । सातवें दिन उस पापी असुरने अपनी मायासे दिखलाया कि सुलसा विमानमें बैठकर देवका शरीर धारणकर आई है आकाशमें ठहरी है और राजा सगरसे कह रही है कि यज्ञमें मरनेके फलसे ही मैंने यह देवगति पाई है मेरे पहिले जो पशु होमे गये थे वे भी सब देव हुए हैं आपको यही आनंदकी बात कहनेके लिये मैं विमानमें बैठकर यहां आई हूं । यज्ञसे सब देव प्रसन्न हुए हैं और सब पितर तृप्त हुए हैं उसकी यह बात सुनकर राजाने विचार किया कि यज्ञ में मरे हुओंका यह प्रत्यक्ष फल दिखाई दे रहा है इसलिये समझना चाहिये कि मुनियोंके कहे हुए वचन झूठे हैं तीव्र हिंसामें अनुराग रखनेसे, सद्धर्मसे द्वेष करानेवाले कर्मकी मूल प्रकृति तथा उत्तरप्रकृतियोंके भेदसे उत्पन्न हुए परिणामोंसे, नरक आयुके योग्य उत्कृष्ट

रन्ध्रः स ततः सप्तमे दिने ॥ ३७१ ॥ मायया सुरपापस्य सुलसा नभसि स्थिता । देवभावं गता प्राप्यपशुमेदपुरस्कृता ॥ ३७२ ॥ यागमृत्युफलेनैव ल-
ब्धा देवगतिर्मया । सं प्रमोद तवाख्यातु विमानेहमिहागता ॥ ३७३ ॥ यज्ञेन प्रीणिता देवाः पितरश्चेत्यभाषत । तद्वचः श्रवणाद् दृष्ट्वा प्रत्यक्ष यागमृत्युज ॥
३७४ ॥ फलं जैनमुनेर्वाक्यमसत्यमिति भूपतिः । तीव्रहिंसानुरागेण सद्धर्मद्वेषिणोदयात् ॥ ३७५ ॥ सभूतपरिणामेन मूलोत्तरविकल्पितात् । तत्प्रायोग्यसमु-
त्कृष्टदुष्टसंक्लेशसाधनात् ॥३७६॥ नरकायु प्रभृत्यष्टकर्मणा स्वोचितस्थितेः । अनुभागस्य बंधस्य निकाचितनिबंधने॥३७७॥विषीषणाशनित्वेन तत्काले पतितौ
रिपौ । तत्तत्कर्मप्रसक्ताखिलांगिभि सगर सह ॥ ३७८ ॥ रौरवेजनि दुष्टात्मा महाकालोपि तत्क्षणे । स्ववैरपवनापूरणेन गत्वा रसातलं ॥ ३७९ ॥ तं द-
ण्डयितुमुत्क्रोधस्तृतीयनरकावधौ । अविष्यानवलोक्यैन विश्वभूप्रभृतिद्विषं ॥ ३८० ॥ मृतिप्रयोगसपापी ततो निर्गत्य निर्घृण । पर्वतस्य प्रसादेन सुलसास-

दुष्ट और संक्लेश परिणामोंसे आठों कर्मोंकी उचित स्थिति और अनुभाग बंधके योग्य नरकायुका बंध किया उसीसमय भयानक वज्रपात हुआ वह उन सब शत्रुओंपर पड़ा और उस काममें लगे हुए सब जीवोंके साथ साथ वह राजा सगर मरकर सातवें नरकमें जा उत्पन्न हुआ। महाकाल उसीसमय उसे दंड देनेके लिये तीव्र क्रोध करता हुआ अपने बैररूपी वायुके झकोरेसे नरकमें गया तीसरे नरकतक उसे विभंगज्ञान था इसलिये वहांतक तो उसने ढूंढा परंतु जब उसे वहां न देखा तब वह विना किसी तरहकी ग्लानिके वहांसे निकला और सगरके मंत्री विश्वभू आदिके मारने का उपाय सोचने लगा तदनंतर उस महाकालने "पर्वतकी कृपासे मैं सुलसासहित सुखोंको प्राप्त हुआ हूं यह कहकर विमान में सुलसा और सगर दोनोंको दिखलाया।" यह देखकर राजा सगरके न रहनेपर जो विश्वभू मंत्री स्वयं उस देशका राजा बन बैठा था वह फिर महामेध करनेका प्रयत्न करने लगा। उसने महाकालकी मायासे आकाश रूपी आंगनमें विमानमें बैठे हुए देव और पितर सब लोगोंको प्रगट दिखलाये। उससमय वे सब मिलकर विश्वभू मंत्रीकी स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे पुण्यवान् मंत्री! आपने यह महामेध यज्ञ बहुत अच्छा किया है। नारद और कुछ तपस्वियोंने यह बात सुनकर विचार किया कि धिक्कार है इस दुष्टने संसारमें मिथ्यामार्गका एक अधि- कार फैला दिया है पाप करनेमें पंडित ऐसे इस दुष्टको किसी भी उपायसे रोकना चाहिये ॥ ३७१–३८६ ॥ यही विचारकर वे सब अयोध्या आये। वहांपर उन्होंने यज्ञ करते हुए विश्वभू मंत्रीको देखा तथा देखा कि अनेक पापी- लोग अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये अत्यत प्राणियोंकी हिंसा कर रहे हैं। तब सब प्राणियोंके हितकी इच्छा करनेवाले तपस्वी लोग कहने लगे कि किसी भी जगह कोई भी मनुष्य धर्मके लिये प्राणियोंके हिंसक नहीं बनते

हितः सुखं ॥ ३८१ ॥ प्राप्तोहमिति शंसंतं विमानैरिमदर्शयत् । तं दृष्ट्वा तत्परोक्षेऽत्र विश्वभू सचिवः स्वयं ॥ ३८२ ॥ विषयामिषपर्तिर्भूत्वा महामेधे कृतोद्यमः । विमानांतर्गता देवा पितरश्च नभोंगणे॥३८३॥सर्वेषां दर्शिता व्यक्तं महाकालस्य मायया । महामेधस्त्वया यागो मंत्रिन् पुण्यवता कृत ॥३८४॥इति विश्वभुव नूप संभूयास्ताविदुस्तदा । नारदस्तापसाश्चैतदाकर्ण्यैवदुर्गतमनाः॥३८५॥दुर्मार्गाधिकृतोनेन धिक् लोकस्य प्रकाशित । निवार्योयमुपायेन केनचित्पापपंडित ॥३८६॥ इति सर्वेपि संगत्य साकेतपुरमागता । यथाविधिसमालोक्य सचिव पापिनो नरा ॥३८७॥नितांतमर्थकामार्थं कुर्वंति प्राणिना वध । न कोपि क्वापि धर्मार्थं प्राणिना सति घातका: ॥ ३८८ ॥ वेदविद्भिरहिंसोक्ता वेदो ब्रह्मनिरूपितः । कल्पवल्लीव मातेव सखीव जगते हिता ॥ ३८९ ॥ इति पूर्वार्षवाक्यस्य त्वया प्रामाण्यमिच्छता । त्याज्यमेतद्वधप्रायं कर्म कर्मनिबंधन ॥ ३९० ॥ तापसैरभ्यधायीति सर्वप्राणिहितैषिभिः । विश्वभूरिदमाकर्ण्य तापसा भोः कथं मया॥ ३९१ ॥ दृष्ट शक्यमपह्नोतुं साक्षात्स्वर्गस्य साधन । इति ब्रुवन् पुनर्नारदेनोक्त पापभीरुणा ॥ ३९२ ॥ अमात्योत्तम

हैं यह वेदब्रह्माका कहा हुआ है वेदके जाननेवाले सदा अहिंसाका ही व्याख्यान करते हैं और यह अहिंसा ही कल्पवेलके समान, अथवा माताके समान अथवा सखीके समान संसारका हित करनेवाली है । इसप्रकार पहिलेके ऋषियोंके कहे हुए वाक्योंको यदि तू प्रमाण माननेकी इच्छा करता है तो अनंत कर्मोंका कारण ऐसा यह घोर हिंसासे भरा हुआ कर्म तुझे छोड देना चाहिये । तपसियोंकी इस वातको सुनकर विश्वभू मंत्री कहने लगा कि भो तपस्वियो ! यह यज्ञ स्वर्गका साक्षात् साधन है यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है फिर क्या मैं इसे छिपा सकता हूं । यह सुनकर पापसे डरनेवाले नारदने कहा॥३८७–३९२॥कि हे उत्तम मंत्री तू तो विद्वान् है क्या यह सब (हिंसा) स्वर्गका साधन है? यह प्रत्यक्ष फल दिखाकर किसी शत्रुने परिवार सहित सगरको विल्कुल नाश करनेकी इच्छासे एक उपाय किया है । यह उपाय किसी मायावीका कहा हुआ है इसलिये यह केवल मूर्ख लोगोंको ही मोहित करनेवाला है ॥ ३९३–३९४ ॥ इसलिये यदि तू स्वर्ग चाहता है तो शील उपवास आदि ऋषि प्रणीत शास्त्रमें कही हुई विधिका आचरण कर। यह सुनकर विश्वभूने नारदके कहे हुए वचन पर्वतसे कहे और कहा कि क्या नारदका कहा सुना ! उत्तरमें असुरके कहे हुए शास्त्रोंसे मोहित हुआ वह दुर्मति कहने लगा कि क्या यह सब शास्त्र नारदने पहिले सुने हैं? मेरे और उसके गुरु तो एक ही हैं वह अपनी बुद्धिका बहुत अभिमान करता है और इसलिये ही कुछ ईर्षा भाव भी रखता है तथापि आज वह मुझसे क्या कहना चाहता है ॥३९५–३९७॥ आप जानते हैं स्थाविर शास्त्रोंके अच्छे जानकर मेरे गुरुके धर्म भाई और संसारमें प्रसिद्ध थे उन्होंने मुझे वेदका रहस्य बतलाया है और यज्ञमें मृत्युका फल निरूपण किया है वही मैंने

विद्वांस्त्वं किमिति स्वर्गसाधनं । सगरं सपरीवारं निर्मूलमितुमिच्छता ॥ ३९३ ॥ उपायोय विधाय्येव प्रत्यक्षफलदर्शनात् । केनचित्कुहुकहेन मुग्धानां
मोहकारण ॥ ३९४ ॥ तत शीलोपवासादिविधिमार्यागमोदित । आचरेति स तं प्राह पर्वतं नारदोदित ॥ ३९५ ॥ श्रुतं त्वयेत्यसौ शास्त्रेणासुरोकेन
दुर्मति । मोहितो नारदेनापि प्रागिदं किं नवा श्रत ॥ ३९६ ॥ ममास्य च गुरुर्नान्यो मतित्यैवातिगर्वितः । समत्सरस्तदाप्येष मय्यव किमिवोच्यते ॥
३९७ ॥ सश्रुतो मद्गुरोर्धर्मभ्राता जगति विश्रुत । स्थविरस्तेन च श्रौतरहस्य प्रतिपादितं ॥ ३९८ ॥ यागमृत्युफलं साक्षान्मयापि प्रकटीकृतं ।
न चेत्ते प्रत्ययो विश्ववेदांभोनिधिपारग ॥ ३९९ ॥ वसु प्रसिद्ध सत्येन पृच्छेरित्यन्वभाषत । तच्छ्रुत्वा नारदोवादीत्को दोष' पृच्छयतामसौ ॥ ४०० ॥
इद तावद्विचारार्हं वधश्चेद्धर्मसाधनं । अहिंसादानशीलादि भवेत्पापप्रसाधन ॥ ४०१ ॥ अस्तु चेन्मत्स्यवंधादिपापिना परमा गतिः । सत्यधर्मतपोब्रह्म

आज साक्षात् प्रगटकर दिखला दिया है। यदि आपको विश्वास न हो तो समस्त वेदरूपी महासागरके पारगामी और सच बोलनेमें प्रसिद्ध ऐसे राजा वसुको पूछ लीजिये। पर्वतकी यह बात सुनकर नारदने कहा कि अच्छा इसमें हानि ही क्या है राजा वसुसे पूछ लीजिये ॥ ९८–४०० ॥ परंतु यह बात भी तो विचार करनेकी है कि यदि हिंसा ही धर्म साधन मानी जायगी तो फिर अहिंसा दान शील आदि पापके कारण मानने पड़ेंगे ॥ ४०१ ॥ तथा ऐसा माननेसे मछली मारनेवाले धीवर आदि पापियोंको सबसे अच्छी गति मिलनी चाहिये और सत्य, धर्म, तपश्चरण आदिको पालन करनेवाले तथा ब्रह्मचारियोंको नरक आदि अधोगति मिलनी चाहिये ॥ ४०२ ॥ कदाचित् यह कहो कि यज्ञमें पशुओंका मारना धर्म है दूसरी जगह नहीं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि हिंसा सदा दुःख देनेवाली है और वह दोनों जगह एकसी है इसलिये दोनों जगह (यज्ञमें और दूसरी जगह) की हुई हिंसाका फल भी एकसा ही होना चाहिये उसका निषेध करनेवाला भला कौन होगा। कदाचित तुम ऐसा मानते हो कि ब्रह्माकी यह पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये है इसलिये उनकी हिंसा करनेमें पाप नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है परंतु यह कहना मूर्खोंकी इच्छाके समान और साधु विनिंदित है ॥ ४०३–४०५ ॥ क्योंकि यदि तुम ब्रह्माकी सृष्टिको अच्छी मानते हो तो इसमें और बहुतसे दोष आते हैं जो वस्तु जिसलिये बनाई जाती है यदि उसका उपयोग किसी दूसरे काममें किया जाय तो वह वस्तु दूसरे काममें उपकारी नहीं हो सकती। जैसे श्लेष्मा (कफ) आदिको दूर करनेवाली औषधि यदि किसी दूसरे रोगमें दी जाय तो वह उसकाममें नहीं आ सकती। इसी तरह यदि पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये की गई है तो उन पशुओंका खरीदना वेचना उनपर बोझा लादना आदि उनको दूसरे काममें लाना

चारिणो यांत्वधोगतिं ॥ ४०२ ॥ यज्ञे पशुवधाद्धर्मो नेतरत्रेति चेन्न तत् । वधस्य दुःखहेतुत्वे सादृश्यादुभयत्र वा ॥ ४०३ ॥ फलेनापि समानेन भाव्यं कस्तद्विशेषक । अथ त्वमेव मन्येथाः पशुसृष्टिं स्वयंभुवः ॥ ४०४ ॥ यज्ञार्थत्वान्न तस्यातिविनियोक्तुरघागमः । इत्ययं चातिमुग्धाभिलाष साधुविगर्हितः ॥ ४०५ ॥ तत्सर्गस्यैव साधुत्वादस्यन्यथात्र दुर्घटा ॥ यदर्थं यदि तस्यान्यथोपयोगेऽर्थकृन्न तत् ॥ ४०६ ॥ यथान्यथोपयुक्तं च श्लेष्मादिशमनौषध । यज्ञार्थपशुसर्गेण क्रयविक्रयणादिकं ॥ ४०७ ॥ तथान्यथा प्रयुक्तं तु महादोषाय कल्पते । दुर्बलं वादिनं दृष्ट्वा ब्रूम त्वामभ्युपेत्य च ॥ ४०८ ॥ यथा शस्त्रादिभिः प्राणिव्यापादी बध्यतेंऽहसा । मंत्रैरपि पशून् हता बध्यते निर्विशेषतः ॥ ४०९ ॥ पश्वादिलक्षण सर्गो व्यज्यते क्रियतेथवा । क्रियते चेत्खपुष्पादि चासन्न क्रियते कुतः ॥ ४१० ॥ अथाभिव्यज्यते तस्य बाच्य प्राक् प्रतिबंधकं । प्रदीपज्वलनात्पूर्वं घटादेरंधकारवत् ॥ ४११ ॥

महा दोष समझना चाहिये । बाद करनेवाला तू बहुत दुर्बल है इसलिये हम तेरे समीप आकर कहते हैं । कि जिसतरह शस्त्रादिकोंसे प्राणियोंका घातकरनेवाला कर्मोंसे बहुत शीघ्र बंधता है उसीतरह मंत्रोंके द्वारा पशुओंको मारनेवाला यह जीव विना किसी विशेषताके कर्मोंसे बंध जाता है ॥ ४०६–४०९ ॥ दूसरी बात यह है कि ब्रह्मा जो पशु आदिकोंकी सृष्टि उत्पन्न करता है सो वह प्रगट करता है, अथवा उत्पन्न करता है । यदि वह उत्पन्न करता है तो आकाशका फूल आदि जो वस्तुएं नहीं हैं उन्हें वह क्यों नहीं उत्पन्न कर सकता ? ॥ ११० ॥ यदि वह प्रगट करता है तो प्रगट करनेके पहिले उसे प्रगट करनेसे रोकनेवाला कौन है उसे बतलाना चाहिये जैसे दीपक जलानेसे पहिले घड़ेको प्रगट करनेसे अंधकार रोकता है॥४११॥इसतरह आपका यह सृष्टिवादका कथन आदर करने योग्य नहींहै। इसप्रकार नारदके वचन सुनकर सबलोग उसकी स्तुति करने लगे॥४१२॥तथा सब कहने लगे कि यदि तुम दोनोंका विवाद राजा वसु दूर करदे तो हमलोग वहीं चलें । इसतरह निश्चयकर उन दोनोंके साथ वह सब सभा स्वस्तिकावती नगरमें आई ॥४१३॥ वहां आते ही पर्वतकी माताने पर्वतकी कही हुई सब बातें सुनी और तुरंत ही वह पर्वतको साथ लेकर राजा वसुके पास पहुंची। वहां जाकर वह वसुसे कहने लगी कि तपोवनको जाते समय अर्थात् दीक्षा लेते समय तेरे गुरु क्षीरकदंबने यह कुटुंबरहित पर्वत तुझे समर्पण किया था । अब यहां तेरे ही सभापतित्वमें नारदके साथ इसका विवाद होगा, यदि इसमें यह पर्वत हार गया तो फिर इसके लिये आनेवाला यमराजका मुंह ही शरण समझना, अर्थात् यह अवश्य मर जायगा दूसरा कोई उपाय नहीं है । अपनी गुराणी की यह बात सुनकर गुरुकी सेवा शुश्रूषा करनेकी इच्छा रखनेवाला वह राजा वसु बड़े आदरसे कहने लगा कि "मा ! आप इसमें किसी बातकी शंका मत कीजिये मैं अवश्य ही पर्वत-

अस्तु वा नाहतव्यकिस्रष्टिवादो विधीयते । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे ते तं समस्तुवन् ॥ ४१२ ॥ वसुना चेद् द्वयोर्वादे विच्छेदः सोमिगम्यते । इति ताभ्यां समं संसदगच्छत्स्वस्तिकावतीं ॥ ४१३ ॥ तत्सर्वं पर्वतेनोक्तं ज्ञात्वा तज्जनो तदा । सह तेन वसुं दृष्ट्वा पर्वतस्त्वपरिग्रहः ॥ ४१४ ॥ तपोवनोन्मुखेनायं गुरुणापि तवार्पितः । नारदेन सहास्येह तवाध्यक्षे भविष्यति ॥ ४१५ ॥ विवादो यदि भंगोत्र भावीभावियमानन । विभूर्यस्य शरण नान्यदित्याख्यत्सोपि सादरं ॥ ४१६ ॥ विधित्सुर्गुरुशुश्रूषामंब मास्मात्र शंकथाः । जयमस्य विधास्यामीत्यस्याभयमपाकरोत् ॥ ४१७ ॥ अन्येद्युर्वसुमाकाशस्फटिकाह्युद्धृतासनं । सिंहाकितं समारुह्य स्थित समुपगम्यते ॥ ४१८ ॥ सपृच्छतिस्म सर्वेपि विश्वभूसचिवादयः । त्वत्त प्रागप्यहिंसादिधर्मरक्षणतत्पराः ॥ ४१९ ॥ चत्वारोत्र महीपाला भूतः हिममहासम–वस्वादिगिरिपर्यंतनामानो हरिवंशजाः ॥ ४२० ॥ पुरा चैषु व्यतीतेषु विश्ववसुमहामहीद् । अभूत्ततो भवांश्चासीदहिंसाधर्मरक्षक ॥ ४२१ ॥ त्वमेव सत्यवादीति प्रघोषो भुवनत्रये । विषवन्हितुलादेश्यो वस्तुसदेहसन्निधौ ॥ ४२२ ॥ त्वमेव प्रत्ययोत्पादी

को जिता दूंगा’ इसतरह कहकर उसने पर्वतकी माका भय दूर किया ॥ ४१४--४१७ ॥ दूसरे दिन राजा वसु आकाश स्फटिकके बने हुए राजसिंहासनपर बैठा, विश्वभू मंत्री आदि सब उस सभामें गये और पूछने लगे कि हे महाराज आपसे पहिले इस हरिवंशमें हिमगिरि महागिरि समगिरि और वसुगिरि ये चार राजा हुए थे उन्होंने बहुत ही अच्छी तरह अहिंसा धर्मकी रक्षा की थी ॥ ४१८–४२० ॥ इनके बाद महाराजाधिराज विश्वावसु हुये फिर अहिंसा धर्मकी रक्षाकरनेवाले आप हुए हैं ॥ ४२१ ॥ आप बडे ही सत्यवादी हैं यह बात तीनों लोकमें प्रसिद्ध है किसी वस्तुके संदेह होनेपर आप विष अग्नि अथवा तुला (तराजू) के समान हैं संसारमें विश्वास उत्पन्न करनेवाले आपही हैं। हे विभो ! आप ही हम लोगोंका संदेह दूर कीजिये । यह नारद धर्मका स्वरूप अहिंसा रूप बतलाता है और यह पर्वत उपाध्यायके उपदेशानुसार उससे विपरीत हिंसारूप बतलाता है अब वास्तवमें धर्मका स्वरूप क्या है सो आप कहिये । यद्यपि राजा वसु गुरुके कहे हुए वा अरहंत देवके कहे हुए अहिंसाधर्मको जानता था तथापि गुराणी उससे पहिले पर्वतके जितानेकी प्रार्थना कर चुकी थी, इसके सिवाय महाकालके मोहसे वह मोहित भी हो चुका था, दुखकी चरम सीमा उसके समीप आ चुकी थी वह परिग्रहरूपी रौद्रध्यानमें लवलीन था इसलिये कहने लगा कि जो पर्वत कह रहा है वह ठीक है देखी हुई वस्तुमें संदेह करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ४२२–२६॥ इसी यज्ञसे राजा सगर अपनी स्त्री सहित स्वर्ग गया है । जो दीपक जल रहा है उसे दूसरे दीपकसे प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४२७ ॥ इसलिये सब तरहका डर छोडकर तुम लोग पर्वतका कहा हुआ स्वर्गका साधन करो । इसतरह हिंसानंद और अनृतानंद नामके रौद्रध्यानसे उसने नरकायुका बंध किया और मिथ्यापाप तथा अ-

पर्वतस्तद्विपर्यासमुपाध्यायोपदेशनं । यादृक् तादृक् त्वया ग्राह्यमित्यगौ चार्यि-
छिंदि नः संशयं विभो । अहिंसालक्षणं धर्मं नारद प्रत्यपद्यत ॥ ४२३ ॥ सामीप्याद्रक्षणानंदरौद्रध्यानपरायण । प-
त पुरा ॥ ४२४ ॥ गुरुपत्न्याप्तनिर्दिष्ट बुध्यमानोपि भूपति । महाकालमहामोहेनाहितो दु खमावघे ॥ ४२५ ॥ ज्वलत्प्रदीपमन्येन को दीपेन प्रकाशयेत् ॥ ४२७॥ पर्वतोक्तं भ-
र्वतामिहित तत्त्वं दृष्टेकानुपपन्नता ॥ ४२६ ॥ स्वर्गमस्त्वेव योगेन सजानि सगरोप्यगात् । अहोमहीपतेर्वक्त्रादपूर्वं घोरमी-
य हित्वा कुरुध्व स्वर्गसाधन । इति हिंसानृतानन्दाद् वध्वायुर्नरकं प्रति ॥ ४२८ ॥ मिथ्यापापापवादाभ्याममीरुरभणीदिद । सद्यः सरासि शुष्काणि रक्तवृष्टिरनारता ।
दश ॥ ॥ ४२१ निर्यातमिति] वैपम्यादुक्ते नारदतापमाः । आक्रोशदवरं नद्यः प्रतिकूलजलस्रवा ॥ ४३० ॥ तदा महाध्वनिर्धात्री द्विन मक्षिमु पागता ॥ ४३२ ॥
तीव्रांशोरंशवो मदा विश्वाशाश्च मलीमसाः॥ ४३१ ॥ वभूवुः प्राणिनः कपमादधुर्भयविह्वलाः । अतिक्रम्यादिमं मार्गं वसुराजमहापते । धर्मविध्वंसन
वसोस्तस्मिन्महारंध्रेन्यमज्जत्सिंहविष्टरं । तद्दृष्ट्वादेवविद्याधरेशा घनपथे स्थिता ॥ ४३३ ॥ परिम्लानमुखौ दृष्ट्वा महाकालस्य किंकराः ॥ ४३५ ॥ तापसाकार-
मार्गं मामिधा इत्यघोषयन् ॥ ४३४ ॥ पर्वतं वसुराजं च सिंहासननिमज्जनात् ।

राजा वसुकी यह बात सुनकर नारद और तापसी कहने लगे कि यह बडा ही आश्चर्य है किसी विषम कारणसे महाराजके मुहसे ऐसे अपूर्व और घोर वचन निकले हैं उसीसमय आकाश गरजने लगा, नदियोंका जल प्रतिकूल बहने लगा, सरोवर बहुत शीघ्र सूख गये, बिना किसी रुकावटके रक्तकी वर्षा होने लगी, सूर्यकी किरणे मंद पड गईं, दिशायें सब मलिन होगई और भयसे घबड़ाकर सब प्राणी कंपने लगे । उसीसमय बडी भारी आवाज करती हुई पृथ्वी फट गई और उसके बडे भारी गढेमें राजा वसुका सिंहासन घुमने लगा । उस सिंहासनको पृथ्वीमें घुमते हुए देखकर आकाशमें ठहरे हुए देव और विद्याधरोंके स्वामी घोषणा करने लगे कि हे महा बुद्धिमान् राजा वसु ! इस अहिंसारूप अनादि मार्गको उल्लंघनकर तू धर्मका विध्वंस वा नाश करनेवाले इस हिंसारूप मार्गकी प्रवृत्ति मतकर ॥ ४२८–४३४ ॥ पृथ्वीमें सिंहासन घुसनेसे पर्वत और राजा वसुका मुह फीका पड गया, उनका मुह फीका देखकर महाकालके सेवक तपस्वियोंका रूप धारणकर कहने लगे कि आप लोग किसी तरहका भय मत कीजिये इस तरह कहकर उन्होंने उस सिंहासनको खुद पकड़कर तथा अपने ऊपर रक्खा हुआ लोगोंको दिखाला दिया ॥ ४३५–४३६ ॥ तदनंतर वह राजा वसु फिर कहने लगा कि मैं राजा हूं और तत्त्वोंका अच्छा जानकार हूं फिर मुझे डरनेका कुछ काम नहीं हैं मैं फिर कहता हूं कि पर्वतके ही वचन सत्य हैं इस तरह निश्चय करता हुआ वह उस फटी हुई पृथ्वीमें कंठ तक धंस गया ॥ ४३७ ॥

पुनः [illegible] रसं [illegible] च्युत [illegible] हत्यालु [illegible] पितुर्वा [illegible] परं नु [illegible] ॥ ३६ ॥ नृपोप्ययं कथं तत्त्ववित् [illegible] मन्यते पर्वतस्येव [illegible] गतवान् ॥ [illegible] ॥ अनेन [illegible] मवस्थामसि [illegible] ॥ [illegible] मपेतु ॥ त्यजेममिति संप्रार्थितोपि यत्नेन साधुभिः ॥ ३८ ॥ तथापि यज्ञमेव [illegible] ॥ भुवा कुपितयेवासौ निगीर्णोऽयामगात्क्षिति ॥ ३९ ॥ अथासुरो जगत्प्रत्ययायाय नरद्वयोः ॥ दिव्यं रूपमवाप्यावां यागश्रद्धया [illegible] ॥ ४० ॥ [illegible] कृण्वमित्युक्त्वा पदृश्यतां ॥ शोकाश्चर्यान्वितागारस्तवसुनं महीमिति ॥ ४१ ॥ सविश्वभुवमानेन जनेन महता सह ॥ प्रयागे विश्वभूपतेः राजसूय [illegible] घातं ॥ ४२ ॥ महापुराधिपाद्यास्तु निंदंतो जनमूढता ॥ परमब्रह्मनिर्दिष्टमार्गे [illegible] मनाक् स्थिता ॥ ४३ ॥ नारदेनैव धर्मस्य मर्यादेत्यासिनयं तं ॥ [illegible] पुरं गिरितटाभिधां ॥ ४४ ॥ तापसाश्च दयाधर्मविध्वंसविधुराशयाः ॥ कलयंतः कलिं काले विचेळुः स्वं स्वमाश्रमं ॥ ४५ ॥ ततोन्येद्युः

इसके [illegible]द साधुओंने बडे प्रयत्नसे फिर प्रार्थना की कि हे राजन् इस झूठ बोलनेसे ही तेरी यह अवस्था हुई है। इसलिये अ[illegible] तू इस झूठको छोड दे ॥ ४३८ ॥ इसतरह प्रार्थना करनेपर भी उस मूर्खने यज्ञको ही सन्मार्ग बतलाया उसीसमय पृथ्वीने मानों क्रोधित होकर ही उसको निगल लिया और इस तरह मरकर वह सातवीं पृथ्वीमें (सातवें नरकमें) जा उत्पन्न हुआ ॥ ४३९ ॥ तदनंतर उस महाकाल नामके असुरने संसारको विश्वास उत्पन्न करानेकेलिये राजा वसु और सगरका दिव्य रूप धारण किया और "नारदके बचनोंको न मानकर केवल यज्ञकी श्रद्धासे ही हम दोनोंको स्वर्ग प्राप्त हुआ है" यह कहकर अदृश्य होगया। इसके बाद लोगोंको बहुत शोक और आश्चर्य हुआ तथा वे परस्पर विवाद करने लगे कोई कहता था कि नहीं वसु स्वर्ग गया है और कोई कहता था नरक गया है। इसतरह विवाद करते हुए अनेक लोगोंके साथ विश्वभू अपने नगरको लौट गया तथा प्रयागमें जाकर उसने राजसूय यज्ञ करना प्रारंभ किया ॥ ४०–४२ ॥ इसपर महापुर आदि नगरके राजाओंने लोगोंकी मूर्खताकी निंदाकी और वे परमब्रह्म भगवान् ऋषभदेवके कहे हुए मार्गमें तल्लीन होते हुए थोडे दिन तक योंही ठहरे रहे ॥ ४३ ॥ नारदने इस समय धर्मकी मर्यादा रक्खी है यही समझकर उन लोगोंने नारदकी प्रशंसाकी और गिरितट नामका नगर उसे रहनेके लिये दिया ॥ ४४ ॥ नारदके साथ जो तापसी थे वे दयाधर्मके विध्वंससे अत्यंत दूर रहनेकी इच्छासे कलिकालकी महिमा गाते हुए अपने अपने आश्रमको चले गये ॥ ४५ ॥ किसी दूसरे दिन नारदकी दिनकर देव नामके विद्याधरसे भेट हुई उससमय नारदने बडे प्रेमसे उस विद्याधरसे कहाकि पर्वत समस्त प्राणियोंके विरुद्ध अपना आचरण कर रहा है आपको इसे रोकना चाहिये। उत्तरमें उसने स्वीकारता दी और उसीसमय अपनी विद्या-

सन्वे,नाम्ना देवो दिनकरादिम' । पर्वतस्याखिलप्राणिविरुद्धाचरितं त्वया ॥ ४६ ॥ निरुध्यतामिति प्रीत्या निर्दिष्टो नारदेन सः । करिष्यामि तथेत्योत्वा नागा तं मार पन्नगान् ॥ ४७ ॥ मविद्यया समाहूतास्तत्प्रपंचं यथास्थितं । अबोचत्तेपि सग्रामे भक्त्वा दैत्यमकुर्वत ॥ ४८ ॥ यज्ञविघ्न तमालोक्य किं भ्रभूपर्वताह्वयौ । शरणान्वेषणोद्युक्तो महाकालं यदृच्छया ॥ ४९ ॥ पुर सन्निहितं दृष्ट्वा यागविघ्नं तमूचतुः । नागैर्द्वेषिभिरस्माक विहितोयमुपद्रवः ॥५०॥ नागविद्याश्च विद्यानुप्रवादे परिभाषिता. । निषिद्ध जिनबिम्बानामुपर्यासा विजृम्भण ॥ ५१ ॥ ततो युवां जिनाकारान् सुरूपान् दिक्चतुष्टये । निवेश्याभ्यर्च्य यज्ञस्य प्रक्रमेथामिमं विधिं ॥ ५२ ॥ इत्युपायमसावाह तौ च तथाकुरुतस्तथा । पुनः खगाधिपोभ्येत्य यज्ञविघ्नविधित्सया ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा जैनेंद्रबिंवानि विद्याः क्रामति नात्र मे । नारदाय निवेद्येति स्वस्वधाम समाश्रयत् ॥ ५४ ॥ निर्विघ्नं यज्ञनिर्वृत्तौ विश्वभू पर्वतश्च तौ । जीवितान्ते चिरं दुःख नरकेष्वनुबभूवतु ॥ ५५ ॥ महाकालोप्यभिप्रेत साधयित्वा स्वरूपधृत् । प्राग्भवे पोदनाधीशो नृपोहं मधुपिंगलः ॥ ५६ ॥ मयैवं सुलसाहेतोर्महत्पापमनुष्ठितं ।

से पन्नग जातिके (नाग कुमार) देवोंको बुलाकर उस यज्ञमें विघ्न डालनेकी सब बातें समझा दीं । उन देवोंने जाकर दैत्योंसे संग्राम किया उन्हें भगाया और सब तरह यज्ञमें विघ्न मचा दिया । यज्ञमें होनेवाले विघ्नको देखकर विश्वभू और पर्वत दोनोंही शरण ढूंढने लगे उसीसमय सामने ही इच्छानुसार आता हुआ महाकाल दिख गया ॥ ४६--४९ ॥ उसे देखते ही उन्होंने, उससे यज्ञमें विघ्न होनेके समाचार सुनाये, उसे सुनकर महाकालने कहा कि हमसे द्वेष करनेवाले नागकुमार देवोंने ही हमारे काममें यह उपद्रव किया है । यह नागविद्या विद्यानुप्रवादमें निरूपणकी है जिनबिंबोंके ऊपर इनकी शक्तिका निषेध वतलाया जाता है अर्थात् जिन बिम्बोंके ऊपर इनका कुछ वश नहीं चलता । इसलिये इसका यही उपाय है कि सुंदर जिनप्रतिमायें चारों दिशाओंमें स्थापनकर उनकी पूजा करो और फिर इस यज्ञकी विधि करना प्रारंभ करो । महाकालकी यह वात सुनकर विश्वभू और पर्वतने भी वैसा ही किया, अर्थात् जिनप्रतिमा विराजमानकर यज्ञ करना प्रारंभ किया । वह विद्याधर उस यज्ञमें विघ्न करनेकी इच्छासे फिर आया परंतु जिनप्रतिमाओंको देखकर नारदसे निवेदन करने लगा कि इस जगह (जिनप्रतिमाओंके सामने) मेरी विद्याएं कुछ काम नहीं कर सकतीं । इस तरह कहकर वह अपने घर चला गया ॥ ४५०–४५४ ॥ इसतरह वह यज्ञ समाप्त हुआ विश्वभू और पर्वत दोनों ही आयुके अंतमें मरकर नरकमें गये और वहांपर वहुत दिन तक दुःखोंका अनुभव करने लगे ॥ ५५ ॥ इधर महाकालने अपना अभिप्राय सिद्धकर अपना स्वरूप धारण किया और लोगोंको समझाने लगा कि पहिले भवमें मैं पोदनपुरका राजा मधुपिंगल था ॥ ५६ ॥ मैंने ही सुलसाकेलिये यह महा पाप किया है

अहिंसालक्षणो धर्मो जिनेंद्ररभिभाषित ॥ ५७ ॥ अनुष्ठेय स धर्मिष्ठैरित्युक्त्वासौ तिरोदधात् । स्वयं चाद्यात्स्वदुश्चेष्टाप्रायश्चित्त दयार्द्रधीः ॥ ५८ ॥ निवृत्तिरेव सम्मोहाद्विहितात्पापकर्मण: । विश्वभूप्रमुखाः सर्वे हिंसाधर्मप्रवृत्तका: ॥ ५९ ॥ प्रययुस्ते गतिं पापाभारकीमिति केचन । दिव्यबोधैः समाकर्ण्य मुनिभि. समुदाहृत ॥ ६० ॥ पर्वतोद्दिष्टदुर्मार्गं नोपेयुः पापभीरव । केचित्तु दीर्घसंसारास्तमिमेव व्यवस्थिताः ॥ ६१ ॥ इत्यनेन स मन्त्री च राजा चागमभाहंत । समासीनाश्च सर्वेपि मन्त्रिणं तुष्टुवुस्तरा ॥ ६२ ॥ तदा सेनापतिर्नाम्ना महीशस्य महाबल । पुण्यं भवतु पाप वा यागे नस्तेन किं फलं ॥ ६३ ॥ प्रभावदर्शन श्रेयो भूभृन्मध्ये कुमारयो: । इत्युक्तवास्ततो राजा पुनश्चैतद्विचारवत् ॥ ६४ ॥ इति मत्वा विसृज्यैतान् मन्त्रिसेनापतीन् पुन । हितोपदेशिनं प्रश्न तमपृच्छत्पुरोहित ॥ ६५ ॥ गतयोर्जनकागारं स्याम वेष्ट कुमारयो· । इति सोपि पुराणेषु निमित्तेषु च लक्षित ॥ ६६ ॥ अस्मात्कुमारयोस्तत्र यागे

वास्तवमें श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ अहिंसारूप ही धर्म है धर्मात्मा लोगोंको इसीका अनुष्ठान वा सेवन करना चाहिये । यह कहकर वह अदृश्य होगया और जिसकी बुद्धि दयासे भीग रही है ऐसे उसी महाकालने अपने आप ही उस दुश्चेष्टाका प्रायश्चित्त धारण किया ॥ ४५७–४५८ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे जो पाप कर्म किये थे उनका उसने त्याग किया । उनमेंसे विश्वभू आदिक हिंसाधर्मकी प्रवृत्ति करनेवाले सब लोग पापकर्मके उदयसे नरक गतिमें पहुंचे और पापोंसे डरनेवाले कितने ही लोगोंने दिव्य ज्ञानको धारण करनेवाले मुनियोंसे पर्वतके कहे हुये मिथ्यामार्गका स्वरूप सुनकर उसे स्वीकार नहीं किया, तथा संसारमें बहुत दिन तक परिभ्रमण करनेवाले कितने ही लोग उसी मिथ्यामार्गमें लवलीन होगये ॥ ४९९–४६१ ॥ इसप्रकार उस मंत्रीने राजासे भगवानके कहे हुए मतका उपदेश दिया उसे सुनकर सब सभासद लोग उस मंत्रीकी प्रशंसाकरने लगे ॥ ४६२ ॥ उसीसमय महाराज दशरथका महाबल नामका सेनपति कहने लगा कि यज्ञमें चाहे पुण्य हो अथवा पाप हो इससे हमें कुछ प्रयोजन नहीं है हमें राजाओंके बीचमें दोनों कुमारोंका प्रभाव दिखलाना चाहिये सेनापतिकी यह बातसुनकर राजाने फिर कहा कि यह बात भी अभी विचार करने योग्य है॥४६३–४६४॥यही समझकर उसने मंत्री और सेनापतिको तो विदा किया और फिर हितरूप उपदेश करनेवाले पुरोहितको बुलाकर उससे पूछा कि राजा जनकके घर दोनों कुमारोंको भेजना ठीक है या नहीं उत्तरमें पुराण और निमित्तशास्त्रोंमें कहे अनुसार वह पुरोहित भी कहने लगा कि उस यज्ञमें हमारे दोनों कुमारोंका महोदय प्रगट होगा, इस विषयमें बिल्कुल संदेह नहीं करना चाहिये । इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इसी भरतक्षेत्रमें बडे प्रतापी मनु, तीर्थंकर तीनों तरहके (चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण) चक्रवर्ती और बलभद्र होंगे ॥ ४६५–४६८ ॥ पुराणके

भावी महोदयः । संशयोत्र न कर्तव्यस्त्वयान्यच्चेदमुच्यते ॥ ६७ ॥ अथास्मिन्भारते क्षेत्रे मनवस्तीर्थनायका । चक्रेशाश्चिविधा रामा भविष्यंति महौजसः ॥ ६८ ॥ इत्याख्याताः पुराणज्ञैर्मुनीशैः प्राग्मया श्रुताः । श्रुतेष्वष्टमाविमौ रामकेशवौ न कुमारकौ ॥ ६९ ॥ भाविनौ रावणं हत्वेत्यवादीद्भाविविदुगिर । तत्तदुक्त तदाकर्ण्य परितोषमगान्नृपः ॥ ७० ॥ कृत्वा पापमदः क्रुधा पशुवधस्योत्सूत्रमाभूतल हिंसायज्ञमवर्तयत्कपटधी क्रूरो महाकालकः । तेनागात्स वसु सपर्वतखलो घोरां धरां नारकीं दुर्मार्गान् दुरितावहान्विदधतां नैतन्महत्पापिनां ॥ ७१ ॥ व्यामोहात्सुलसाप्रियस्ससुलसा सार्द्धं स्वयं मन्त्रिणा शत्रुच्छद्मविवेकशून्यहृदयः सपाथ-हिंसाक्रिया । नष्टो गतुमधःक्षितिं दुरितिनामक्रूरनाशं मुधा दुष्कर्माभिरतस्य किं हि न भवेदन्यस्य चेदृग् विध ॥ ७२ ॥ स्वाचार्यवर्यमनुसृत्य हितानुशासी वादे समेत्य बुधसंसदि साधुवादं । श्रीनारदो विहितभूरितपाः कृतार्थः सर्वार्थसिद्धिमगमत्सुधियामधीशः ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे दुर्मार्गप्रवर्तनप्रपंचव्यावर्णनं नाम सप्तषष्ठ पर्व ॥ ६७ ॥

जाननेवाले मुनियोंने यह भी कहा है और मैंने पहिले सुना है कि उन नारायण बलभद्रोंमें हमारे कुमार बलभद्र और नारायण होनेवाले हैं और आगे प्रतिनारायण रावणको मारेंगे। इसतरह भविष्यको जाननेवाले पुरोहितने ये वचन कहे। उन्हें सुनकर महाराजा दशरथको बहुत ही संतोष हुआ॥४६९–४७०॥ जिसकी कपटरूप बुद्धि है और जो क्रूर है ऐसे महाकालने क्रोधमें आकर समस्त संसारमें शास्त्रोंके विरुद्ध और अत्यंत पापरूप ऐसे इस पशुओंकी हिंसा करनेरूप हिंसा यज्ञकी प्रवृत्तिकी उसी कारणसे वह राजा वसु और दुष्ट पर्वतके साथ घोर नरक गतिमें गया इसलिये पापोंका बोझा ढोनेवाले इन मिथ्यामार्गोंकी प्रवृत्ति कभी नहीं करनी चाहिये क्योंकि पापी लोगोंकेलिये इनके नरकादि फल बहुत ही बड़े वा अपार हैं ॥ ४७१ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे शत्रुके कपटके ज्ञानसे जिसका हृदय शून्य है अर्थात् जो शत्रुके छल कपटको समझ भी नहीं सका ऐसे राजा सागरने सुलसा और मंत्रीके साथ स्वयं हिंसा रूप क्रियाएं की थीं इसीलिये नरकमें जानेके लिये वह नष्ट हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापरूप क्रूर कर्मोंको नाश करनेके लिये जो ऐसे अन्य पुरुष भी व्यर्थ ही दुष्कर्म करनेमें लीन हो जांयगे वे क्या ऐसी ही दशाको प्राप्त नहीं होंगे? अर्थात् अवश्य होंगे ॥ ४७२ ॥ जिसने अपने उत्तम आचार्योंका अनुसरणकर हितरूप उपदेश दिया था, जिसने वाद विवादके समय विद्वानोंकी सभामें आकर भी सत्य वचन ही कहे थे, और जो अच्छेसे अच्छे बुद्धिमानोंका भी स्वामी था ऐसा नारद बहुतसा तपश्चरणकर और कृतार्थ होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र उत्पन्न हुआ था ॥ ४७३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मिथ्यामार्गकी प्रवृत्तिके विस्तारको निरूपण करनेवाला यह सड़सठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथाष्टषष्ठं पर्व।

पुरोहितः पुनश्चासौ तत्कथां श्रोतुमर्हसि। इति संबोध्य भूपालं ततो वक्तुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥ क्रमेण श्रव्यशब्दार्थमारवाणिमवावलि। दशास्ये यु दशाशास्य प्रकाशिस्वयशःश्रियः ॥ २ ॥ अथास्ति नाकलोकाभो धातकीखंडपूर्वभाक्। भारते भूगुणैर्युक्तो देशः सारसमुच्चयः ॥ ३ ॥ तस्मिन्नाकपुरे ख्यातो नरदेवो महीपतिः। सकदाचिदनंताख्यगणेशात्कृतवंदनः ॥ ४ ॥ श्रुतधर्मकथो जातनिर्वेदो ज्येष्ठसूनवे। प्रदाय भोगदेवाय राज्यमापन्नसंयमः ॥ ५ ॥ चरंस्तपः समुत्कृष्टं दृष्ट्वा विद्याधराधिपं। सचपलवेगाख्यं निदानमकरोदधीः ॥ ६ ॥ प्रांते सन्यस्य सौधर्मकल्पेऽभूदमृताशन। अथास्मिन्भारते क्षेत्रे विजयार्द्धमहाचले ॥ ७ ॥ खगेशो दक्षिणश्रेण्यां मेघकूटपुराधिपः। विनम्यन्वयसंभूतः सहस्रग्रीवखेचरः ॥ ८ ॥ कुधात्मभ्रातृपुत्रोरुबलेनो-

अथ अरसठवां पर्व।

अथानंतर—पुरोहित फिर कहने लगा कि हे महाराज! यदि आप इस कथाको सुनना चाहते हैं तो सुनिये मैं कहता हूं जिसके शब्द और अर्थ सुनने योग्य हैं और जिसकी वाणी साररूप है ऐसा वह पुरोहित दशों दिशाओंके जीतनेवाले और अपने यशकी शोभाको प्रकाशित करनेवाले रावणके पूर्वभव कहने लगा ॥ १–२ ॥ कि धातकी खंडद्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें स्वर्गलोकके समान और पृथ्वीके सब गुणोंसहित सारसमुच्चय नामका देश है, उसी देशके नाकपुर नगरमें प्रसिद्ध राजा नरदेव राज्य करता था। वह किसी एक दिन अनंत नामके गणधरके समीप गया, उनकी वंदना की, उनसे धर्मकथा सुनी और विरक्त होकर तथा अपने बडे पुत्र भोगदेवको राज्य देकर उसने संयम धारण कर लिया ॥ ३–५ ॥ उसने तपश्चरण तो उत्कृष्ट किया परंतु चपलवेग नामके विद्याधरोंके राजाको देखकर उस मूर्खने निदान कर लिया ॥ ६ ॥ तथा आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

अथानंतर—इसी (जंबूद्वीपके) भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिणश्रेणीमें मेघकूट नामका नगर है उसमें राजा विनमिके वंशमें उत्पन्न हुआ सहस्रग्रीव नामका विद्याधर राज्य करता था ॥ ७–८ ॥ उसके भाईका पुत्र बहुत बलवान था इसलिये उसने क्रोधित होकर सहस्रग्रीवको निकाल दिया, वह सहस्रग्रीव वहांसे निकलकर लंकापुरीमें गया और वहांपर उसने तीस हजार वर्षतक राज्य किया ॥ ९ ॥ उसके पुत्रका नाम शतग्रीव था सहस्रग्रीवके बाद उसने वहां पच्चीस हजार वर्षतक राज्य किया, उसके बाद उसके पुत्र पचासग्रीवने बीस हजार वर्षतक राज्य किया।

स्सारितस्ततः। गत्वा लंकापुरं त्रिंशत्सहस्राब्दान्यपालयत् ॥ ९ ॥ तस्य पुत्र शतग्रीवस्तत्पञ्चशोनवत्सरान्। पातिस्म तत्सुतः पंचाशद्ग्रीवोप्यन्वपालयत् ॥ १० ॥ वत्सराणां सहस्राणि विंशतिं तस्य चात्मजः। पुलस्त्यस्त्रिखर्वैकवर्षायुस्तस्य वल्लभा ॥ ११ ॥ मेघश्रीरनयो सूनुः स देवोभूद्दशाननः। चतुर्दश-सहस्राब्दपरमायुर्महीतल ॥ १२ ॥ पालयन्नन्यदा कांतासहायः क्रीडितुं वनं। गत्वा लंकेश्वर खेचराचलकेशितु ॥ १३ ॥ सुतामभितवेगस्य विद्यासा-धनतत्परां। लोलो मणिमतिं वीक्ष्य काममोहवशीकृतः ॥ १४ ॥ तां दुरात्मात्मसात्कर्तुं तद्विद्यासिद्धिमभ्यहरन्। सापि द्वादशवर्षोपवासक्लेशकृशी-कृता ॥ १५ ॥ तत्सिद्धिविघ्नहेतुत्वात्कुपित्वा खेचरेशिने। पुत्रिकास्यैव भूत्वेमं वध्यासमिति दुर्मतिं ॥ १६ ॥ कृत्वा भवाते मंदोदरीगर्भं समधिष्ठिता। भूकंपादिमहोत्पातैस्तज्जन्मसमयोद्भवे ॥ १७ ॥ विनाशो रावणस्येति नैमित्तिकवचःश्रुते। दशाननोतिभीत सन्यत्र क्वचन पापिनीं ॥ १८ ॥ त्य-

तदनंतर पचासग्रीवके पुलस्त्य राजा हुआ और उसने पंद्रह हजार वर्षतक राज्य किया पुलस्त्यके मेघश्री नामकी रानी थी उसके वह राजा नरदेवका जीव सौधर्म स्वर्गका देव दशानन नामका पुत्र हुआ उसकी उत्कृष्ट आयु चौदह हजार वर्षकी थी पिताके वाद वह पृथ्वीका पालन करने लगा। किसी एक दिन वह लंकाका राजा दशानन अपनी रानीके साथ वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया था, वहां पर विजयार्द्ध पर्वतके अचलक नगरके स्वामी राजा अमितवेग की पुत्री मणिमती विद्या सिद्ध कर रही थी, उसे देखकर वह काम और मोहके वश होकर आसक्त होगया ॥ १०–१४ ॥ उस कन्याको अपने वश करनेके लिये उस दुष्टने उसकी सिद्धकी हुई विद्या हरण करली। वह कन्या उस विद्याको सिद्ध करनेके लिये वारह वर्षतक उपवासकर बहुत कृश होगई थी, अब वह अपनी विद्याकी सिद्धिमें विघ्न होता हुआ देखकर रावण पर बहुत क्रोधित हुई और उसने निदान किया कि मैं इसकी पुत्री होकर इसे मारूंगी ॥ १५–१६ ॥ आयुके अंतमें प्राण छोडकर वह रावणकी रानी मंदोदरीके गर्भमें आई उसके जन्म होते ही भूकंप आदि अनेक उपद्रव होने लगे जिन्हें देखकर नैमित्तिकोंने कह दिया कि यही रावणके नाशका कारण होगी। नैमित्तिककी यह बात सुनकर निर्भय रावणको भी बहुत भारी भय हुआ और उसने मारीचको आज्ञा दी कि इस पापिनीको कहीं भी दूसरी जगह छोड आओ। रावणकी आज्ञानुसार मारीच मंदोदरीके घर गया और कहने लगा कि हे देवि! मैं बहुत ही घृणारहित हूं इसलिये रावणने मुझे ऐसे काम करनेकी आज्ञा दी है इसतरह उसने सब हाल सुना दिया यह सुनकर वह कहने लगी कि मैं महाराज रावणकी आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकती ॥ १७–२० ॥ यह कहकर उसने एक संदूकमें बहुतसा द्रव्य रक्खा एक लिखा हुआ पत्र रक्खा और उस कन्याको रखकर वह मारीचसे क—

मिनीं निजा । ज्ञापयेति स्थितः कश्चिद्विप्रो द्वारीत्यब्रुवत् ॥ ६०२ ॥ सापि स्वस्वामिनीमेतद्विप्रप्रोक्तमबोधयत् । ततः स्वानुमतायातं वृद्धावप्र यथोचित ॥ ६०३ ॥ प्रतिगृह्य कुतस्त्यस्त्वं गमिष्यसि कुतोऽथवा । इति तस्याः परिप्रश्ने पश्चादिह समागतः ॥ ६०४ ॥ पुनः पुरो गमिष्यामीत्याहासौ तच्छ्रुतेर्जनः पार्श्ववर्ती व्यधाद्धासं दारिकाया द्विजोऽपि त ॥ ६०५ ॥ न हास्यं कुरुतैवं भो वार्धक्यं विपरीतताम् । उत्पादयति युष्माकं किं न भावीति सोऽवदत् ॥६०६॥ पुनः पुरः क गन्तव्यमिति तत्प्रत्युदीरणे । कन्यातीर्थपरिप्राप्तिर्यावत्तावद्गतिर्मम ॥ ६०७ ॥ इति द्विजोदितं श्रुत्वा कायेन वयसाप्ययं । वृद्धो न चेतसे-त्येवं नर्मप्रायोक्तिपूर्वकं ॥ ६०८ ॥ अग्रासने विधायैनं स्वयमभ्यवहत्य सा । 'इदानीं भवतो यत्र वाञ्छा तत्राशु गम्यताम्' ॥ ६०९ ॥ इत्याह सोऽपि सु-क्तं त्वया भद्रे ममेति ता । प्रशंसन् प्रस्खलन् कृच्छ्रादुत्थायालम्ब्य यष्टिका ॥६१०॥ तदीयशयनारोहं व्यधादुक्त इवैतया । चेटिकास्तद्विलोक्यास्य पश्य नि-

कही हुई बात अपनी स्वामिनीको समझा दी। उस गुणमालाने अपनी इच्छानुसार आये हुए वृद्ध ब्राह्मणका यथायोग्य आदर सत्कार कर विठाया और पूछा कि आप कहांसे आये हैं और कहां जांयगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि मैं पीछेसे आया हूं और आगे जाऊंगा। ब्राह्मणकी यह बात सुन कर गुणमालाके पास बैठा हुआ मनुष्य उसकी हंसी करने लगा उस हंसीको सुनकर वह ब्राह्मण उस मनुष्यसे कहने लगा कि मैं कुछ हंसी नहीं करता किंतु यह बुढापा कुछ ऐसी ही विपरीतता उत्पन्न कर देता है। क्या यह बुढापा आपलोगोंको नहीं आवेगा? ॥ ६०३–६०६ ॥ तदनंतर उन लोगोंने फिर पूछा कि तुम आगे कहां जाओगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि जव तक मुझे कन्यारूपी तीर्थ की प्राप्ति नहीं होती है तव तक मुझे गमन करना ही पडेगा ॥ ६०७ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी कही हुई बात सुन कर सब लोग कहने लगे कि यह शरीरसे बूढा है और आयुसे बूढा है परंतु इसका मन अभी बूढा नहीं है। इसके वाद नम्रता से प्रार्थना कर उसे आगे आसन पर विठाया और फिर स्वयं गुणमालाने उससे कहा कि "अब आपकी जहां जानेकी इच्छा हो वहां शीघ्र ही चले जाइये" इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि हे भद्रे तूने वहुत अच्छा कहा' इस प्रकार उसकी प्रशंसा करता हुआ वह ब्राह्मण डगमगाता हुआ वडी कठिनतासे उठा और लकडीके सहारे चलकर उसकी शय्या पर इस प्रकार चढ गया मानों उसने शय्या पर जानेके लिये ही आज्ञा दी हो। यह देखकर गुणमालाकी दासीने कहा कि 'देखो इसकी निर्लज्जता' इस प्रकार कह कर हाथके सहारेसे वह उसे हटानेको तैयार हुई। इतनेमें ही उस ब्राह्मणने कहा कि 'हां तुम लोगोंने वहुत ठीक कहा क्योंकि ऐसी लज्जा स्त्रियोंमें ही होती है पुरुषोंमें नहीं, यदि पुरुषोंमें भी साधारण रीतिसे ऐसी लज्जा हो तो कामदेवके संस्कारसे स्त्रियोंके साथ पुरुषोंका समागम कैसे हो? ॥ ६०८–६१३ ॥ इस प्रकार

तच्छ्रुत्वा पश्य नैर्लज्ज्यमस्य वार्धक्यमीदृशं । वशीकरणचूर्णाजनादिबंधनमप्यदः ॥ ५९३ ॥ इति तद्वचनात्सर्वे कृत्वा हासं द्विजोत्तम । कन्यका गुणमालाख्या पुरेऽस्मिन्नस्ति विश्रुता ॥ ५९४ ॥ 'जीवधरेण मच्चूर्णवासस्य न कृता स्तुतिः' । इति नृद्वेषिणी जाता तां त्वच्चूर्णाजनादिभिः ॥ ५९५ ॥ वशीकुरुष्व तद्वीक्ष्य तव मन्त्रौषधादिकं । मौल्येन बहुना सर्वमाददिष्यामहे वयं ॥ ५९६ ॥ इत्युक्तस्तैः सकोपो वा युष्मज्जीवधरो विधी' । चूर्णवासादिभेदं किं स जानाति परीक्षितुं ॥ ५९७ ॥ इत्युक्तवास्तत सर्वे सकोपा विप्रमब्रुवन् । 'यथेष्टं किं ब्रवीष्येव नृसारमविवेचयन् ॥ ५९८ ॥ आत्मस्तवोऽन्यनिन्दा च मरणान्न विशिष्यते । इति लोकप्रसिद्धं किं न श्रुतं दुःश्रुतोद्धत' ॥ ५९९ ॥ इत्यसौ तैरधिक्षिप्त किं न संति प्रशंसकाः । युष्मद्विधा ममापीति सभाव्यात्मानमुद्धत- ॥ ६०० ॥ घटदासीं विधास्यामि गुणमालां मुहूर्ततः । ममेति संगरं कृत्वा प्रस्थितस्तद्गृहं प्रति ॥ ६०१ ॥ तत्र तच्चेटिकामेकामाहूय सा

हाथमें प्रत्यक्ष फल देनेवाली वशीकरण चूर्ण रूप औषधि है जिसकी इच्छा हो वही इसे ले सकता है ॥ ५९२ ॥ उसकी इस घोषणाको सुनकर सब लोग उसकी हंसी करने लगे और कहने लगे कि देखो इसकी निर्लज्जता ! इसका यह ऐसा तो बुढापा है और यह वशीकरण चूर्ण तथा अंजन आदि ऐसी चीजें रखता है। इस प्रकार कहते हुए उन सब लोगोंने हंसी करते हुए कहा कि हे ब्राह्मण इस नगरमें एक गुणमाला नामकी प्रसिद्ध कन्या है 'जीवंधरने उसके चूर्णकी सुगंधिकी प्रशंसा नहीं की थी इसलिये वह मनुष्योंसे द्वेष करने लगी है अतएव पहिले तू अपने चूर्ण अंजन आदिसे उसे अपने वशमें करले यदि वह तेरे वश हो जायगी तो फिर इसको देख कर हमलोग बहुतसा मूल्य देकर तेरी मंत्र औषधि आदि सब खरीद लेंगे ॥ ५९३–९६ ॥ इस प्रकार लोगोंने कहा। तब वह ब्राह्मण क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम्हारा मूर्ख जीवंधर क्या चूर्णकी सुगंधियोंके भेदकी परीक्षा करना जानता है? इसके उत्तरमें सब लोग क्रोधित होकर उस ब्राह्मणसे कहने लगे कि 'इस प्रकार मनुष्यत्वकी सारताका कुछ भी विचार न कर इच्छानुसार क्यों बकता है हे खोटे शास्त्रोंकी जानकारीसे उद्धत हुए ब्राह्मण ! क्या तू ने यह लोकमें प्रसिद्ध कहावत नहीं सुनी है कि अपनी प्रशंसा और दूसरेकी निंदा करना मरनेके बराबर है इसप्रकार उन लोगोंने उस ब्राह्मण पर आक्षेप किये तब वह ब्राह्मण कहने लगा कि क्या आपके समान मेरी प्रशंसा करनेवाले लोग नहीं हैं। अपने आत्माकी संभावना कर उद्धत हुआ मैं एक क्षणमात्रमें गुणमालाको अपनी घटदासी (पानी भरनेवाली दासी) बना सकता हूं। ऐसी प्रतिज्ञा कर वह उसके घरकी ओर चला ॥ ५९७–६०१ ॥ वहां पर पहुंच कर उसने एक दासी बुलाई और उसे समझाकर कहला भेजा कि एक ब्राह्मण द्वार पर खडा है ऐसा तुम अपनी स्वामिनीसे कहो ॥ ६०२ ॥ उस दासीने भी जाकर उस ब्राह्मणकी

पर्याप्तं बलं नंदाढ्यनायकं ॥ ५८१ ॥ त्वामानेतुं प्रहेष्यामि तावदत्र त्वयास्यता । दिनानि कानिचिद्वीतशोकयेति महामतिः ॥ ५८२ ॥ तद्योग्यसर्ववस्तूनि परिवारं च कंचन । तत्सनिधाववस्थाप्य गत्वा राजपुरं स्वयं ॥ ५८३ ॥ प्राप्य तन्निजभृत्यादीन् पुर. प्रस्थाप्य कस्य चित् । ममागतिर्न वाच्येति प्रतिपाद्य पृथक्पृथक् ॥ ५८४ ॥ वैश्यवेष समादाय विद्यामुद्राप्रभावतः । पुरं प्रविश्य कस्मिंश्चिदापणे समवस्थितः ॥ ५८५ ॥ तत्र तत्सनिधानेन नानारत्नादिभाण्डकं । अपूर्वलाभसवृत्त दृष्ट्वा सागरदत्तक ॥ ५८६ ॥ वणिगादेशनिर्दिष्टो देवश्चैरयमित्यसौ । दत्तवान्विमला तस्मै सुता स्वां कमलोद्भवा ॥ ५८७ ॥ दिनानि कानिचित्तत्र सवसन् सुखमन्यदा । परिव्राजकवेषेण काष्ठांगारकससद ॥ ५८८॥ प्रविश्य तं समालोक्य कृताशीर्वादसत्क्रिय । शृणु राजन्नहं भोक्तुं याचे त्वा-मतिथिर्गुणी ॥ ५८९ ॥ मा भोजयेत्युवाचैतच्छ्रुत्वा स प्रतिपन्नवाक् । 'मदुद्योगफलस्यैतन्निमित्त कुसुम परं' ॥ ५९० ॥ इत्युच्चासनमास्थाय भुक्त्वा तस्मा-स्स निर्गतः । 'वशीकरणचूर्णादिप्रत्यक्षफलमौषध ॥ ५९१ ॥ मत्करे विद्यते यस्मै रुचिर्गृह्णात्वसाविद' इति राजकमभ्येत्य पृथक्पृथगघोषयत् ॥ ५९२ ॥

बुद्धिमानने वह हृदयमें ही छिपा लिया और फिर मातासे कहा कि हे मा! इस कामको पूरा कर लेने पर मैं आपको बुलानेके लिये नंदाढ्यको नायक वना कर अपनी सेना भेजूंगा तव तक थोडे दिन तक आप शोक छोडकर आनंदसे यहां ही रहें ॥ ५७७–५८२ ॥ इस प्रकार कह कर उसने माताके योग्य सब पदार्थ तथा थोडेसे परिवारके लोग उसके समीप रख दिये और फिर वह स्वयं राजपुर नगरको चला गया ॥ ५८३ ॥ राजपुर नगरके समीप जाकर उसने साथके सब लोगोंसे अलग अलग कह दिया कि 'मेरे आनेकी खवर किसीको मत देना' इस तरह कह कर सेवक आदि सब लोगोंको नगरमें पहिले भेज दिया ॥ ५८४ ॥ तदनंतर उसने उस विद्यामयी अंगूठीके प्रभावसे वैश्यका भेप वनाया और नगरमें जाकर किसी एक दुकान पर जाकर बैठ गया ॥ ५८५ ॥ वहां पर सागरदत्त नामके एक शेठको उस जीवंधरके दुकान पर बैठ जानेसे अनेक रत्न आदिके पिटारे तथा और भी अपूर्व वस्तुओंका लाभ हुआ जिसे देखकर शेठने सोचा कि निमित्तज्ञानीने जिसके लिये कहा था वह यही पुरुष है इस लिये उसने अपनी स्त्री कमलासे उत्पन्न हुई विमला नामकी कन्या उसे व्याह दी ॥ ५८६–५८७ ॥ अथानंतर कुछ दिन तक तो वह जीवंधर कुमार वहीं सुखसे रहा फिर किसी एक दिन परिव्राजका रूप धारण कर काष्ठांगारकी सभामें गया वहां पर जाकर राजाको देखकर उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि हे राजन् सुनो मैं अतिथि और गुणी हूं तुझसे थोडा सा भोजन मांगता हूं मुझे खिला दे। राजाने यह बात सुन कर स्वीकारकी और यह फूल ही मेरे उद्योगके फलका उत्कृष्ट कारण है यही सोचकर वह ऊंचे आसन पर बैठकर भोजन कर वहांसे वाहर निकल आया। तदनंतर उसने राजाओंके समूहोंमें जाकर अलग अलग घोषणा दी कि "मेरे

द्रुवदृष्टिसभूतसुखसगमात् । कुमार भीतमीन वा मद्दुरा सहसा गतं' ॥ ५७२ ॥ एवं देव्या तुषा यावत् निगदत्या नवतरे । संप्राप्त मतवर्द् यक्षो वृक्ष-स्नेहात्कुमारजात् ॥ ५७३ ॥ स्नानस्रग्लेपनाशेषभूषावस्त्राशनादिभिः । सपूज्य जैनसद्धर्मवात्सल्यात्सकलो पृथक् ॥ ५७४ ॥ अपास्य मधुरालापैस्तत्त्वगर्भै- र्युक्तिभिः । मदनादिकथाभिश्च शोकं मातुः सुतस्य च ॥ ५७५ ॥ जगाम समुन्ने याक्षः स्वस्थेलापाय सत्क्रिया । तन्मीत्र्यं यदापत्सु सुहृद्भिरनुभूयते ॥ ५७६ ॥ राज्ञी चैव महापुण्यभागीत्यालोच्य न पृथक् । 'कुमारमभ्यधावेत प्रज्ञाविक्रमशालिनं ॥ ५७७ ॥ सत्यंधरमहाराजं तव राजपुरे गुरुं । हत्वा राज्ये स्थित शत्रुस्तत्काष्ठांगारकस्तव ॥ ५७८ ॥ पितृस्थानपरित्यागो न शोभ्यते मनस्विनः' । इत्येषा न तदाकर्ण्य प्रतिपद्यादित तदा ॥ ५७९ ॥ अकालसा-धनं शौर्यं न फलाय प्रकल्पते । धान्य वा सप्रतीक्ष्यो य. काल· कार्यस्य साधक ॥ ५८० ॥ इति संचिन्त्य संजातकोपोऽप्याच्छाद्य त हृदि । ...

चरणकमलोंको नमस्कार किया ॥ ५७० ॥ तदनंतर महादेवीने 'हे कुमार उठ तुझे सैकडों कल्याण प्राप्त हों' इसप्रकार सैकडों आशीर्वाद देकर बडे स्नेहसे उसे बढाया और फिर इसप्रकार कहने लगी कि "हे कुमार तेरे देखनेसे जो सुख उत्पन्न हुआ है उसीके समागमरूपी शत्रुसे अत्यंत डरकर ही क्या मानों मेरा दुःख अकस्मात् भाग गया है।" ५७१-५७२ इसप्रकार वह महादेवी पुत्रके साथ बात चीत कर रही थी कि इसी बीचमें कुमारके स्नेहसे वह चतुर यक्ष भी बडी शीघ्रतासे वहां आपहुंचा ॥ ५७३ ॥ उसने आकर उत्तम जैनधर्मके वात्सल्यसे स्नान, माला, लेपन, समस्त आभूषण वस्त्र और भोजन आदि देकर अलग अलग सबका आदर सत्कार किया ॥ ५७४ ॥ तदनंतर उसने युक्तियोंसे पूर्ण और तत्त्वोंके स्वरूपसे भरे हुए मधुर वचनोंसे तथा प्रद्युम्न आदिकी कथाओंसे माता और पुत्र दोनोंका शोक दूर किया ॥ ५७५ ॥ इसप्रकार आदर सत्कारकर वह यक्ष अपने स्थानकी ओर चला गया। देखो मित्रता वही है जिसका अनुभव आपत्तिमें भी मित्रोंके द्वारा किया जाता है ॥ ५७६ ॥ उसके बाद विजया महारानीने कुमार जीवंधरको बुद्धिमान् और अत्यत पराक्रमी देखकर तथा 'यह महापुण्यवान् है' यही समझकर एकांतमें लेजाकर उससे इसप्रकार कहा कि "तेरे पिता राजपुर नगरके महाराज थे और सत्यंधरके नामसे प्रसिद्ध थे। तेरा शत्रु यह काष्ठांगार उन्हें मारकर राज्यकर रहा है। तू विचार शील है इस लिये तुझे अपने पिताका स्थान छोड देना ठीक नहीं है" इस प्रकार माताके द्वारा कहे हुए वचनोंको सुनकर और अच्छी तरह समझ कर वह विचार करने लगा कि असमयमें की हुई शूरवीरतासे भी कुछ फल नहीं निकलता है जिस प्रकार धान्योंको फलनेके लिये समयकी प्रतीक्षा करनी पडती है उसी प्रकार कार्यको सिद्ध करनेवाले समयकी भी प्रतीक्षा करनी पडती है। इस प्रकार कहते हुए उसके हृदयमें यद्यपि क्रोध उत्पन्न हो आया था पर उस महा-

मार्गेऽस्थैर्यैर्गमागमन् ॥ ५६० ॥ हेमाभपुरसार्थीपहरणारंभसंभ्रमे । तत्कर्म नागरैरुर्व्यस्तहस्तैर्निवेदितं ॥ ५६१ ॥ आक्रोशद्भिः सकारुण्यो जीवंधरस-
माहयः । गत्वा व्याधबलं युद्धे निरुध्याततर्क्यविक्रमः॥ ५६२ ॥ तद्गृहीत धन सर्वं वणिग्भ्यो व्यापयत्पुन । बुद्ध्वा चिरं विमुक्तात्मनामांकशरदर्शनात् ॥
५६३ ॥ जीवंधरकुमारेण विदिता मधुरादयः । संगतास्ते कुमारस्य वार्तां राजपुरोद्भवां ॥ ५६४ ॥ सर्वां निर्णय विश्रम्य कंचित्कालं स्थिता सुखं ।
ततः कुमारमादाय गच्छंत स्वपुरं प्रति ॥ ५६५ ॥ अरण्यमप्रयाणार्थं दण्डकारण्यमुपागमन् । तत्र स्नेहात्महादेवी क्षीरापूर्णोन्नतस्तनी ॥ ५६६ ॥ वाष्पाविल-
लोलाक्षी क्षामक्षामांगयष्टिका । चिंतासहस्रसंतप्ता जटीभूतशिरोरुहा ॥ ५६७ ॥ निरंतरोष्णनिश्वासवैवर्ण्यगमिताधरा । तांबूलादिव्यपायोरुमलदिग्धद्विजाव-
लि ॥ ५६८ ॥ अशोचत्पुत्रमालोक्य रुक्मणीव मनोभवं । इष्टकालांतरालोकस्तत्क्षणे दु खकारण ॥ ५६९ ॥ तनूजस्पर्शसंभूतमस्पृशंतीं सुखामृतं । आपय-
न्वापतत्पादपद्मयो स कृताजलिः ॥ ५७० ॥ कुमारोत्तिष्ठ कल्याणशतभागी भवेत्यसा । तमाशिषां शतै स्नेहादमिनद्यान्नवीदिति ॥ ५७१ ॥ 'प्रतिपक्षा-

वे भील लोग हेमाभ नगरके अनेक वैश्योंके समूहका धन लूट चुके थे इसलिये उनलोगोंने नगरमें जाकर चिल्ला चिल्लाकर तथा ऊपरको हाथ उठाकर सब हाल कहा था। यह सब हाल सुनकर अतर्क्य पराक्रमको धारण करनेवाले दयालु जीवंधरने उसी वनमें आकर युद्धमें भीलोंकी सेना हराई और फिर उनसे सब धन वापिस लेकर उन वैश्योंको दे दिया जिससमय जीवंधर उन भीलोंसे युद्ध कर रहा था उस समय मधुर आदिकोंने उसके पास अपना नाम खुदा हुआ वाण छोडा था उसे देखकर जीवंधरने मधुर आदिकोंका सब हाल जान लिया था। कुमार उसी समय उनके समीप आया मिलनेके वाद उसने राजपुरकी सब वात सुनी कुछ देरतक वहां विश्राम किया और फिर (हेमाभनगरमें जाकर) सुखसे रहने लगे। तदनंतर कुमार जीवंधरको लेकर वे सबलोग अपने नगरको चलने लगे। मार्गमें ठहरनेके लिये उसी दंडकवनमें पहुंचे। वहांपर विजया महादेवी मिली स्नेहसे उसके कुचोंमें दूध आगया उससे वे उन्नत होरहे थे, उसके चंचलनेत्रोंमें आंसू भर रहे थे, और शरीररूपी लकडी अत्यंत कृश हो रही थी। हजारों चिंताओंसे वह संतप्त हो रही थी, उसके केश जटाके समान हो रहे थे, सदा उष्ण निश्वास लेनेसे ओठोंका रंग ही वदल गया था तांवूल आदि द्रव्योंके न खानेसे उसके दांतोंपर भी वहुतसा मैल जमगया था और जिसप्रकार प्रद्युम्नको देखकर रुक्मिणीको दुख हुआ था उसीप्रकार पुत्रको देखकर वह शोककर रही थी। सो ठीक ही है क्योंकि इष्टजनों को वहुत दिन वाद देखना भी उसीसमय दुःखका कारण हो जाता है भावार्थ—वहुत दिन वाद इष्ट जनोंको देखनेसे दुख उमड आता है ॥ ५६०—५६९ ॥ जो पुत्रके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखरूपी अमृतका स्पर्श नहीं कर रही है ऐसी उस माताको जानकर जीवंधरने भी हाथ जोडकर उसके

पृष्टा स्नेहितैर्मधुरादिभिः । बहासकं विवेत्सि त्व कुमारौ क गताविति ॥ ५५१ ॥ साप्याह सुजने देशे हेमाभनगरे सुखं । वसतस्तत्र का चिंता युष्माकमिति सादरं ॥५५२॥ ज्ञात्वा ताभ्यां स्थितं स्थान ते सर्वे तद्दिदृक्षया । आपृच्छ्य स्वजनान् सर्वान् संतोषात्तैर्विमोचिताः ॥५५३॥ गच्छंतो दण्डकारण्ये व्यश्राम्यस्तापसाश्रमे । तापसीषु समागत्य तान् पश्यतीषु कौतुकात् ॥५५४॥ महादेवी च तान् दृष्ट्वा यूयं कस्मात्समागताः । गमिष्यथ क वेत्येतदपृच्छत्स्नेहनिर्भरं ॥ ५५५ ॥ यथाश्रुतमेवैषु कथयत्सु प्रतोषिणी । मत्पुत्रपरिवारोऽयं सघो यूनामिति स्फुटं ॥ ५५६ ॥ विश्रम्यायात्र विश्रम्य भवद्भिर्गम्यतां पुन । समागमनकालेऽसाविहैवानीयतामिति ॥ ५५७ ॥ सम्यक्प्रार्थयतैतांस्तेऽप्येषा जीवंधरश्रुते । रूपेण निर्विशेषा किं तन्मातेत्यात्तसशया ॥ ५५८ ॥ कुर्मस्तथेति सतोष्य तां प्रियानुगतोक्तिभि । गत्वा तत्रोत्तरं किंचित्तत्र व्याधैः कदर्थिताः ॥ ५५९ ॥ युद्धे पुरुषकारेण क्रव्यादानभिभूय तान् । यांतो यदृच्छया व्याधैः

अब इस कथनको यहांही छोडकर इसीसे संबंध रखनेवाली दूसरी कथा कही जाती है । जिसदिन राजपुर नगरसे नंदाढ्य निकल गया उसके दूसरे ही दिन उससे स्नेह रखनेवाले मधुर आदिकोंने गंधर्वदत्तासे पूछा कि दोनों कुमार कहां गये तू सब जानती है, बतला ॥ ५५०–५५१ ॥ इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने भी बडे आदरसे कहा कि आपलोग उनकी चिंता क्यों करते हैं वे दोनों भाई सुजन देशके हेमाभ नगरमें सुखसे निवास करते हैं ॥ ५५२ ॥ इसप्रकार उन दोनों कुमारोंके रहनेका स्थान जानकर मधुर आदि सब कुमारोंको उन्हें देखनेकी इच्छा हुई उन्होंने अपने सब भाई बंधुओंसे पूछा और संतोषके साथ सबसे विदा होकर वे लोग चले । चलते चलते सबलोग दंडकवनके तापसाश्रममें पहुंचे । वहांपर वे लोग तपस्विनियोंके समीप पहुंचे सब तपस्विनियें उन्हें कौतुकसे देखने लगीं उनमेंसे विजया महादेवीने बडे प्रेमसे उनलोगोंसे पूछा कि तुमलोग कहांसे आये हो और कहां जाओगे ॥ ५५३–५५५ ॥ जब मधुर आदिकोंने अपना सब हाल कहा तब बहुतही संतुष्ट हुई और उनसे कहने लगी तुम युवकोंका समूह सब मेरे ही पुत्रका परिवार है । तदनंतर उसने कहा कि तुमलोग आज यहां ही विश्राम करो, विश्रामकर फिर चले जाना और जीवंधरसे मिलनेपर उसे, यहां अवश्य लाना ॥ ५५६–५५७॥ इसप्रकार विजयाने उन लोगोंसे अच्छीतरह प्रार्थनाकी उस महादेवीके रूपको जीवंधरके रूपके ही समान देखकर उनलोगोंको भी संदेह होगया कि शायद यह जीवंधरकी माता ही हो ॥ ५५८ ॥ तदनंतर उनलोगोंने प्रिय और यथायोग्य बचनोंसे उस देवीको संतुष्ट किया तथा कहा कि हमलोग ऐसा ही करेंगे । इसके बाद ये लोग आगे चले थोडी ही दूर जानेपर भीलोंने आकर उन्हें खेदखिन्न किया ॥ ५५९ ॥ परंतु पुरुषार्थ दिखलाकर उनलोगोंने युद्धमें भीलोंको हरा दिया और फिर वे इच्छानुसार आगे चले । आगे पहुंचते ही अन्य भीलोंने आकर उन्हें घेर लिया । उसके पहिले

श्रिमं ॥ ५३९ ॥ मात्रा सयोजयेत्याह त्वं चाज्ञानादिदं मया । कृतं कर्मेति निंदित्वा गर्हित्वात्मानमार्द्रधीः ॥ ५४० ॥ तदादानदिनाद्दशार्कं षोडशे दिने । चातकं घनकालो वा सजलांभोदमालया ॥ ५४१ ॥ प्रसव मधुमासो वा लतया चूतसंज्ञया । पद्मिन्यार्कोदयो वालिं त मात्रा समजीगम ॥५४२॥ एव विनोदैरन्यैश्च काले याते निरंतर । सुखेन केनचिद् भोगनिर्वेगे सति हेतुना ॥५४३॥ राज्यभारं परित्यज्य तपोभारं समुद्वहन् । जीविताते तनु त्यक्त्वा सहस्रारे सुरोभवः ॥ ५४४ ॥ तत्राष्टादशवार्ध्यायुर्दिव्यभोगामितर्पितः । ततश्च्युत्वेह सभूत शुभाशुभविपाकतः ॥ ५४५ ॥ चेटकेन हतो हस स काष्ठांगारकोऽभवत् । तेनैव त्वत्पिता युद्धे हत प्राक्तनजन्मनः ॥ ५४६ ॥ मंदसानशिशोः पित्रोर्विप्रयोगकृतेनसः । फलात् षोडशवर्षाणि वियोगस्तव बंधुभि ॥ ५४७ ॥ सह सजात इत्येतद्विद्याधरनिरूपित । श्रुत्वा कल्याणबधुस्त्व ममेत्येनमपूजयत् ॥ ५४८ ॥ तस्मादागत्य हेमाभनगरं प्राप्य संमदात् । कामभोगसुख स्वैरमिष्टैरनुभवस्थित ॥ ५४९ ॥ इदं प्रकृतमत्राभ्यत्सविधानमुदीर्यते । नद व्यस्य पुगत्स्वसान्निध्यैणानतरे दिने ॥ ५५० ॥ गधर्वदत्ता स-

कहा कि मुझसे यह काम अज्ञानतासे वन पडा है इस तरह कहकर उसने अपनी वडी निंदाकी अपने आपको धिकार दिया और फिर चित्तमें दया आजानेसे जिसदिन उस वच्चेको लिया था उससे सोलहवे दिन उसकी मातासे मिलाया। जिस प्रकार वर्षाका समय जलसे भरी हुई मेघपंक्तिसे चातकको मिला देता है वसंतऋतु आमकी वेलके साथ फूलोंको मिला देता है और सूर्योदय कमलिनीके साथ भ्रमरोंको मिला देता है उसी प्रकार जयद्रथने वह वच्चा उसकी मातासे मिला दिया ॥ ५३८–५४२ ॥ इस प्रकारके अन्य कितने ही विनोदोंके साथ जयद्रथका समय निरंतर सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक समय किसी कारणसे उसका चित्त भोगोंसे उदास हुआ। उसने राज्यभार छोडकर तपश्चरण का भार धारण किया और आयुके अंतमें शरीर छोड कर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ ॥ ५४३–५४४ ॥ वहां पर अठारह सागर तक दिव्य भोगोंका अनुभव कर तृप्त हुआ और वहांसे च्युत होकर अपने शुभाशुभ कर्मोंके उदयसे आप उत्पन्न हुए हैं ॥ ५४५ ॥ जो हंस सेवकके द्वारा मारा गया था वह मर कर कितने ही भवोंके वाद यह काष्ठांगार हुआ है इसी लिये ही पहिले जन्मके संवधसे काष्ठांगारने युद्धमें आपके पिताका घात किया था ॥ ५४६ ॥ जयद्रथने पहिले हंसके वच्चेको माता पितासे अलग किया था उसीके पापसे सोलह वर्षतक भाई वंधुओंसे आपका वियोग हुआ है इसप्रकार विद्याधरकी कही हुई सव कथा सुनकर जीवंधर कहने लगा कि तू मेरा कल्याण करनेवाला भाई है इस प्रकार कहकर उस विद्याधरका खूव आदर सत्कार किया ॥ ५४७–५४८ ॥ तदनंतर वह जीवंधर सवके साथ वडी प्रसन्नतासे हेमाभ नगरमें आया और इष्ट वस्तुओंके साथ इच्छानुसार काम भोगोंका सुख अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥५४९॥

तस्य नंदिम्या तनयोऽभवत् ॥५२८॥ महाभो मे सखा तस्य कदाचिद्धर्ममभ्यधात् । भवान ्च धर्मेण तेन रक्ताशयस्तदा ॥ ५२९ ॥ विधाय मद्यमांसादि- निवृत्तिं तत्फलान्मृत । इह विद्याधरो भूत्वा सिद्धकूटजिनालये ॥ ५३० ॥ विलोक्य चारणद्वन्द्वं विनयेनोपसृत्य तत् । आवयोर्भवसंबंधमाकर्ण्य त्वां निरीक्षितु ॥ ५३१ ॥ रक्षितैतत्सरोऽन्येषां प्रवेशाद्विद्यया स्थित । वक्ष्ये त्वद्भवसंबंधं दिव्यावधिनिरूपित ॥ ५३२ ॥ धातकीखण्डप्राग्भागमेरुपूर्वविदेहगे । विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुण्डरीकिणी ॥ ५३३ ॥ पतिर्जयंधरस्तस्य तनूजोऽभूज्जयद्रथ । जयवत्यां समन्येद्युर्वनं नाम्ना मनोहरं ॥ ५३४ ॥ विहर्तुं प्रस्थितस्तत्र सरस्या हंसशावक । विलोक्य चेटकैर्दक्षैस्तमानाय्य सकौतुक ॥ ५३५ ॥ स्थितस्तत्पोषणोद्योगे तन्मातापितरौ तदा । सशोकौ करुणाक्रन्द न- भस्यकुरुता मुहु ॥ ५३६ ॥ चेटकस्ते तदाकर्ण्य कर्णान्ताकृष्टचापक । शरेणापातयत्त त तस्याकार्यं न पापिना ॥ ५३७ ॥ तन्निरीक्ष्य भवन्माता कारु ण्यार्द्रीकृताशया । किमेतदिति सपृच्छय प्रबुद्धा परिचारकात् ॥ ५३८ ॥ कुपिता चेटकायैन वृथा विद्धवते सती । निर्भर्त्स्य त्वां च ते पुत्र न युक्तमिदमा-

मद्य मांसादिका त्याग किया था उसके फलसे मरकर मैं यह विद्याधर हुआ । किसी एक समय मैंने सिद्धकूट जिनालय में दो चारण मुनिराजोंके दर्शन किये थे मैं वडी विनयसे उनके समीप पहुंचा था और उनसे मैंने अपने और आपके दोनों भवोंका संवंध सुना था । अव मैं आपके दर्शन करनेके लिये ही इस सरोवरकी रक्षा करता था और अपनी विद्यासे अन्य किसीको इस सरोवरमें प्रवेश नहीं करने देता। अव मैं दिव्य अवधिज्ञानके द्वारा निरूपण किये हुए आपके भवोंका संवंध कहता हूं ॥ ५२६–५३२ ॥ धातकी खंडके पूर्व मेरुसंवंधी पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देश के पुंडरीकिणी नगरीमें राजा जयंधर राज्य करता था उसकी रानीका नाम जयावती था उसके आपका जीव जयद्रथ नामका पुत्र हुआ था । किसी एक समय वह जयद्रथ मनोहर नामके वनमें क्रीडा करनेके लिये गया था वहां पर सरोवर में एक हंसके बच्चेको देख कर चतुर सेंवकोंके द्वारा केवल चित्त प्रसन्न करनेके लिये वह वच्चा मंगा कर रख लिया था। उस वच्चेके माता पिता उसका भरण पोषण करनेके लिये वहुत ही शोक करने लगे और वारवार आकाशमें करुणा- जनक आक्रंदन करने लगे ॥ ५३३–५३६ ॥ उस आक्रंदनको सुनकर जयद्रथके एक सेवकने कानतक धनुष चढाकर बाणसे उस वच्चेके वापको मार दिया सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंके लिये संसारमें कोई अकार्य है ही नहीं ॥ ५३७ ॥ इस कामको देख कर जयद्रथकी माताका हृदय करुणासे भीग गया और उसने पूछा कि यह क्या है सेवकोंसे सव हाल जानकर वह सती उस हंसको व्यर्थ ही मारनेवाले सेवक पर वहुत ही क्रोधित हुई तथा उसने जयद्रथको भी ताडना कर कहा कि हे पुत्र यह ऐसा करना ठीक नहीं है तू इस वच्चेको शीघ्र ही इसकी मातासे मिला दे । जयद्रथने इसके उत्तरमें

५१८ ॥ पितरं वनराजस्य च नमुक्त्वान्मनं । कृत्वा विसर्जयांचक्रुर्धार्मिकत्वं हि तत्सतां ॥ ५१९ ॥ ततो राज्ञः पुरं गत्वा स्थित्वा द्वित्रिदिनानि ते । गत्वा नगरशोभाख्ये श्रीचंद्रां भद्रभागिनीं ॥ ५२० ॥ नंदाढ्याय वधूर्भूरिभूत्यायूने धनेशिने । एव विवाहनिर्वृतौ हेमाभ बन्धुभिः सम ॥ ५२१ ॥ पुरं प्रयागमे सत्यधरसूतुं निरीक्ष्य तं । कस्यचित्सरसस्तीरे तत्रानेतुं जलं गता ॥ ५२२ ॥ परिवारजना दष्टा दुष्टैर्मधुमाक्षिकैः । तद्भयाद् बोधयतिस्म जीवंधरकुमारकं ॥ ५२३ ॥ तदाकर्ण्य विचिन्त्यैतत्कुमारोऽपि सविस्मयः । हेतुरस्त्यत्र कोऽपीति तद् ज्ञातुं यक्षमस्मरत् ॥ ५२४ ॥ सोऽपि संनिहितस्तत्र विद्यां विध्वस्य खेचरीं । तं खेचरं कुमारस्य पुरस्तादकरोद् द्रुत ॥ ५२५ ॥ इदं सरस्त्वया केन रक्ष्यते हेतुनेति सः । परिपृष्टं कुमारेण खेचर सम्यगब्रवीत् ॥ ५२६ ॥ शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि मत्कथा कृतचेतनः । अभवत्पुष्पदंताख्यमालाकारधनेशिनः ॥५२७॥ सुतो राजपुरे जातिभटाह्वः कुसुमश्रियः । तत्रैव धनद-

का हरण नहीं किया है किंतु पहिले जन्मके स्नेहसे किया है इसप्रकार सोच विचार कर वे सब लोग शांत होगये ॥५१८॥ तदनंतर उन सब लोगोंने वनराज और उसके पिता हरिविक्रमके बंधन छोड दिये और उन दोनोंको विदा कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा करना ही सज्जनोंका धर्मात्मापन कहलाता है ॥ ५१९ ॥ इसके वाद वे सबलोग राजाके नगरमें (हेमाभ नगरमें) गये दो दिन वहां रहे फिर नगरशोभा नामके नगरमें आये और कल्याण रूप भाग्यको धारण करनेवाली श्रीचंद्रा वडी विभूतिके साथ धनके स्वामी युवक नंदाढ्यको व्याह दी । इस प्रकार विवाहकी सब विधि पूर्ण हो जाने पर सब भाई बंधुओंके साथ फिर हेमाभ नगरको लौटे मार्गमें किसी तालावके किनारे ठहरे । वहां पर परिवारके लोग जीवंधर कुमारको एक जगह विठला कर उस सरोवरमेंसे जल लेने गये परंतु दुष्ट मधुमक्खियोंने वे सब लोग काट खाये तव सब लोगोंने डर कर जीवंधर कुमारसे कहा । कुमारने भी सुनकर बडा आश्चर्य किया और सोचा कि इसमें अवश्य ही कोई कारण होना चाहिये इसलिये उस कारणको जाननेके लिये उसने यक्षका स्मरण किया ॥ ५२०–५२४ ॥ स्मरण करते ही वह यक्ष भी आ उपस्थित हुआ उसने आते ही वह विद्याधरकी विद्याका नाश किया और फिर शीघ्रही उस विद्याधरको कुमारके सामने ला खडा किया ॥ ५२५ ॥ कुमारने उस विद्याधरसे पूछा कि तुम किस कारणसे इस सरोवरकी रक्षा करते हो । इसके उत्तरमें विद्याधर कहने लगा कि हे भद्र ! मेरी कथा चित्त लगा कर सुनो । पहिले जन्ममें मैं राजपुर नगरमें अत्यंत धनी ऐसे पुष्पदंत मालाकारकी स्त्री कुसुमश्रीसे जातिभट नामका पुत्र था । उसी नगरमें धनदत्तकी स्त्री नंदिनीसे उत्पन्न हुआ चंद्राभ नामका पुत्र था वह मेरा मित्र था, किसी एक समय आपने उस चंद्राभको धर्मका स्वरूप सुनाया था उस समय उसको सुन कर मेरे हृदयमें भी धर्मप्रेम उत्पन्न हुआ था और मैंने उसी समय

सोपाय पापमीरवः ॥ ५०७ ॥ ते सर्वे सिद्धसाध्यत्वाद्युद्ध सहार्यं समुख । नगरस्यागमन्नेतान्नन्वसौ वनराजकः ॥ ५०८ ॥ युयुत्सया ययौ वीक्ष्य त यक्षो
दुष्टचेतसं । परिगृह्य हठात्सद्यः कुमाराय समार्पयत् ॥ ५०९ ॥ बंदीकृत्य कुमारोऽपि वनराजं निविष्टवान् । ससेनः ,सरसि श्रीमान्सेनारम्याभिधानके ॥
५१० ॥ तत्रैक चारणं वीक्ष्य सहसा महसा निधिं । भिक्षाहेतोर्यतिं प्राप्तमभ्युत्थाय यथोचित ॥ ५११ ॥ कृताभिवन्दनो योग्य भाक्तिकोऽदात्सुभोजनं ।
तद्दानार्जितायोऽयमयादाश्चर्यपचकं ॥ ५१२ ॥ तद्दानफलमालोक्य वनराज स्वजन्मनः । सबन्ध यथथावृत्त स तत्सर्वमवागमत् ॥ ५१३ ॥ बलेन म-
हता योद्धु हरिविक्रममागत । यक्षस्तं च समादाय कुमारस्य करेऽकरोत् ॥ ५१४ ॥ वनराजस्तदाशेप सर्वेषामित्यथाब्रवीत् । "जन्मनीतस्तृतीयेऽहं
बभूव वणिजा सुतः ॥ ५१५ ॥ सुवर्णतेजास्तस्माच्च मृत्वा मार्जारता गतः । कपोती प्राग्भवे कन्यामिमा हन्तु समुद्यतः ॥ ५१६ ॥ केनचिन्मुनिनाधीत-
चतुर्गतिगतश्रुते । मुक्तवैरोऽत्र भूत्वैतत्स्नेहादेनामनीनय ॥ ५१७ ॥ तदुक्त ते समाकर्ण्य नाय कन्यामनीनयत् । दर्पेण किंतु संप्रीत्येत्यवधार्य शम गताः ॥

यक्षकी सहायतासे युद्धमें करने योग्य कामको सिद्ध कर तथा युद्धको समाप्तकर वे दृढमित्र आदि सब लोग अपने नगर
को लौट गये परंतु वनराज युद्ध करनेकी इच्छासे उन सबके पीछे हो गया । वनराजका ऐसा दुष्ट अभिप्राय देखकर
यक्षने उसे जबर्दस्ती पकडलिया और शीघ्रही कुमार जीवंधर को समर्पण कर दिया ॥ ५०८–५०९ ॥ कुमार जीवंधर
ने भी उसे बंधनमें डालकर रक्खा । तदनंतर उस श्रीमान् कुमार जीवंधरने सेना सहित सेनारम्य नामके सरोवरपर
डेरा दिये । दैवयोगसे वहीपर उसने तेजके निधि ऐसे एक चारणमुनिके अकस्मात् दर्शन किये वे मुनिराज भिक्षाके लिये
आ रहे थे इसलिये दर्शन करते ही जीवंधर उठा, विधि पूर्वक उनकी वंदना की पडगाहन किया और वडी भक्तिसे उन्हें
योग्य आहार दिया । उन मुनिराजको दान देनेसे जीवंधरको बडेभारी पुण्यकी प्राप्ति हुई और उसीसे उसके यहां पंचा-
श्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ५१०–१२ ॥ उस पंचाश्चर्यरूप दानके फलको देखकर वनराजको जाति स्मरण होगया और उसने
अपने पहिले जन्मके सब समाचार जान लिये ॥ ५१३ ॥ इधर हरिविक्रम भी बडी भारी सेना लेकर युद्ध करनेके लिये
आया परंतु यक्षने उसे भी पकडकर कुमार जीवंधरको सौंप दिया ॥ ५१४ ॥ तदनंतर वनराज सब लोगोंके सामने अप-
नी पहिले जन्मकी सब कथा इसप्रकार कहने लगा कि मैं इससे तीसरे जन्ममें एक सुवर्णतेज नामका वैश्यपुत्र था वहांसे
मरकर मैं विलाव हुआ । उससमय इस श्रीचंद्राका जीव कबूतरी था इस लिये उसे भी मारनेके लिये मैंने उद्यम किया
था ॥ ५१५–५१६ ॥ किसी एकसमय कोई मुनिराज चारोंगतियोंके परिभ्रमण का पाठ कर रहे थे उसे सुनकर मैंने
सब वैर छोड दिया था और फिर मर कर यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं इसलिये पहिले जन्मके स्नेहसे ही मैंने इस कन्या
का हरण किया था ॥ ५१७ ॥ वनराजकी ये सब बातें सुनकर सब लोग कहने लगे कि इसने अभिमानसे कन्याका

न्दु हृदय शनैः। "किमेव तिष्ठसि स्नाहि परिधत्स्व विभूषणं ॥ ४९६ ॥ अलंकुरु स्रज धेहि भुङ्क्ष्वाहारं मनोहरं। ब्रूहि विस्रब्धमस्माभि श्रीचंद्रे सुखसंकथा ॥ ४९७ ॥ मनुष्यजन्म संप्राप्त दुःखेनानेकयोनिषु। दुलभ भोगमुख्यादेतन्मा नीनशो वृथा ॥ ४९८ ॥ वनराजात्परो नास्ति वरो रूपादिसिर्गुणैः। लोकेऽस्मिल्लोचने सम्यक्त्वोन्मील्य न पश्यसि ॥ ४९९ ॥ लक्ष्मीरिवादिचक्रेश भूषेवाभरणद्रुमं। सपूर्णेन्दुमिव ज्योत्स्ना वनराजमुपाश्रय ॥ ५०० ॥ प्राप्य चूडामणिं मूढ को नामात्रावमन्यते"। इत्य'थ भयप्रायैर्वचनैरकदर्थयन् ॥ ५०१ ॥ तदुपद्रवमाकर्ण्य प्रच्छन्नैर्हरिविक्रम। क्विपत्तिर्निग्रहेणासा कन्यायाः प्रतिपत्स्यते ॥ ५०२ ॥ कदाचिदिति संचिंत्य निर्भर्त्स्य वनराजक। तस्या निजतनूजामि सह वास चकार सः ॥ ५०३ ॥ दृढमित्रादय सर्वे तदा सप्राप्य बांधवा। सन्नद्धवलसपन्नास्तस्थुरावेष्ट्य तत्पुरं ॥ ५०४ ॥ युयुत्सवो विपक्षाश्च जीवंधरकुमारक। तद्दृष्ट्वा स्पष्टकारुण्यो युद्ध बहुजनातकृत् ॥५०५॥ किमनेनेति यक्षेश स सुदर्शनमस्मरत्। अनुस्मरणमात्रेण यक्षोऽप्यानीय कन्यका ॥ ५०६ ॥ कुमारायार्पयामास कस्याप्यकृतपीडन। ससाधयति कार्याणि

कर और हमारे साथ विश्वास पूर्वक सुखकी कथाएं कह ॥ ४९६–४९७ ॥ अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करते करते बडी कठिनतासे यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया है इसलिये इसे भोगोपभोगोंके विना व्यर्थ ही मत खो ॥ ४९८ ॥ इस संसारमें रूप आदि गुणोंको धारण करनेवाला वनराजके सिवाय और कोई अच्छा वर नहीं है तेरे वे दोनों नेत्र भी अच्छे हैं इसलिये इन्हें खोलकर तू क्यों नहीं देखती ॥ ४९९ ॥ जिसप्रकार भरतचक्रवर्तीके समीप लक्ष्मी रहती थी आभरण जातिके वृक्षोंके समीप शोभा रहती है और संपूर्ण चंद्रमाकेसमीप चांदनी रहती है उसीप्रकार तू वनराजके समीप रह॥५००॥ अरे चूडामणि रत्नको पाकर ऐसा कौन मूर्ख है जो उसका तिरस्कार करे" इसप्रकारके वचन तथा और भी भयदेनेवाले वचनोंसे उन दूतियोंने उस श्रीचंद्राको खेदखिन्न किया ॥ ५०१ ॥ हरिविक्रमने गुप्त रीतिसे कन्याका यह सब उपद्रव सुनकर विचार किया कि इस कन्याको खेदखिन्न करनेसे कदाचित् इन दूतियोंको कोई विपत्ति आ सकती है यही सोचसमझकर उसने वनराजको तो फटकार लगाई और उस श्रीचंद्राको अपनी पुत्रियोंमें रख दिया ॥ ५०२–५०३ ॥ इधर दृढमित्र आदि सब भाई बंधुओंने अपनी सब सेना तैयार की और उस सेनाके द्वारा उस नगरको घेरकर आ डटे ॥ ५०४ ॥ उधरसे भील लोग भी युद्धकी इच्छासे बाहर निकले यह सब देखकर जीवंधरके हृदयमें करुणा आगई और वह विचार करने लगा अनेक लोगोंका नाश करनेवाले इस युद्धसे क्या लाभ है यही सोचकर उसने सुदर्शन यक्षको स्मरण किया। स्मरण करते ही वह यक्ष आया और उसने विना किसीको पीडा दिये वह कन्या लाकर जीवंधरके सुपुर्द की सो ठीक ही है क्योंकि पापोंसे डरनेवाले लोग किसी न किसी उपायसे कार्योंको सिद्धकर ही लेते हैं॥५०५–५०७॥

वनराजस्य तत्कातारूपकात्याविसंपद । सम्यग्वर्णयत: स्मैतच्छ्रुत्वा तदभिलाषिणा ॥ ४८५ ॥ सुवर्णतेजसा प्रीतिमतास्या पूर्वजन्मनि । सा केनापि ज्ञैक्ष्य त यक्षो
वनराजस्य तत्कालात्कपकात्यादिसंपद । तत्कन्याशयनागारं ज्ञात्वा कृतसुरंगको ॥ ४८७ ॥ निष्क्रम्य कन्या श्रीषेणलोहज-
मा प्रत्यानीयतामिति ॥ ४८६ ॥ प्रेषितावनु तेनेत्वा महाभटपरिष्कृतौ । रजन्या सेंदुरेखा वा प्रस्थितौ मदभूमिजौ ॥
घौ सपौरुषौ । गतौ कन्या गृहीत्वेति तस्मिंल्लिखितपत्रक ॥ ४८८ ॥ सुरंगे समवस्थाप्य वनराजस्य संनिधिं । अनुसृत्य द्रुत ताभ्यां युध्यमानौ निरीक्ष्य सा ।
४८९ ॥ आदित्योद्गमवेलाया विदित्वा लेखवाचनात् । कन्यापहरणं तस्या भ्रातरौ नृपचोदितौ ॥ ४९० ॥ अदृष्ट्वा किंचिदप्यस्मिन्निति मौन समाददे ॥ ४९२॥ सखा-
मित्रांतकिन्नरं यक्षमित्र चाकुलिताशया ॥ ४९१ ॥ श्रीचन्द्राह न भोक्ष्येऽस्मन्नगराऽस्मज्जिनालय । मुनिरक्तां वनेशोऽसौ प्रत्यात्मान विबुध्य ता । प्रौढास्तथोजनो-
यौ वनराजस्य विनिर्जित्य नृपात्मजौ । नीत्वा ता राजपुत्राय ददतु: प्राप्तसंमदौ ॥ ४९३ ॥ ताश्च तत्प्रेषण लब्ध्वा श्रीचन्द्राभ्यासमागता । सामभेदविधानज्ञा प्रवे-
पायै: स्वा: समाहूय दूतिका. ॥ ४९४ ॥ कुर्वंतेमा मयि प्रीतामुपायैरित्यभाषत ।

किसी भी उपायसे तुम उसे मुझे लाकर दो इसप्रकार कहकर उसने वे दोनों मित्र अनेक बडे योद्धाओंके साथ भेजे । उन दोनोंने जाकर पहिले तो उस कन्याके सोनेकी जगहका पता लगाया और फिर श्रीषेण तथा लोहजंघ दोनों पुरु-पार्थी सुरंग लगाकर कन्याके यहां पहुंचे वहां जाकर कन्याको उठाया और एक पत्र लिखकर वहां डाल दिया । उस पत्रमें लिखा था कि जिसप्रकार चंद्रमाकी रेखाके साथ शनि और मंगल जाते हैं उसीप्रकार हम दोनों इस कन्याको लेकर वनराजके समीप जाते हैं ॥ ४७८–४८९ ॥ सूर्योदय होते ही उस पत्रके बाचनेसे कन्याके हरण होनेके समाचार मालूम हुए राजाने अपने दोनों पुत्रोंसे कन्या लानेकेलिये कहा इसलिये बडी शीघ्रतासे वे दोनों ही चले और लोहजंघ तथा श्रीषेणसे युद्ध करने लगे । किन्नरमित्र और यक्षमित्र ऐसे अपने दोनों भाइयोंको युद्ध करते देख कर श्रीचंद्राका भी चित्त व्याकुल हुआ और उसने यह प्रतिज्ञाकर मौन धारण करलिया कि मेरे नगरमें जो जिनालय है उसके दर्शन किये विना मैं यहां कुछ भी नहीं खाऊंगी ॥ ४९०–४९२ ॥ इधर श्रीषेण और लोहजंघने युद्धकर राजाके दोनों पुत्रोंको हरा दिया और बहुत ही प्रसन्न होकर वह कन्या राजपुत्र (वनराज) को समर्पण कर दी ॥ ४९३ ॥ जब वनराजने देखा कि श्रीचंद्रा मुझसे विरक्त है तब उसने अनेक उपाय करनेमें चतुर ऐसी अपनी दूती बुलाई और उनसे कहा कि किसीभी उपायसे 'यह मुझपर प्रेम करे' ऐसा काम करो । वनराजकी भेजी हुई वे सब दूती श्रीचंद्राके समीप आई ॥ ४९४–९५ ॥ साम भेद आदि अनेक विधानोंको जाननेवाली वे दूतियां धीरे धीरे उसके हृदयमें प्रवेश करनेके लिये कहने लगीं कि 'हे श्रीचंद्रे ! तू इस तरह क्यों बैठी है स्नान कर कपडे पहिन, आभूषणोंसे अलंकारकर, माला पहिन मनोहर भोजन

४७३॥ गत्वा तत्र मनोहारि नृत्तं चित्रमयोजयत् । नागरैः सह नदाढ्यो नृत्तमालोकितुं गतः ॥ ४७४ ॥ जन्मांतरस्मृतेर्मूर्च्छो सहसासावपप्तत । शीतक्रियाविशेषापनीतमूर्च्छस्तदग्रजः ॥ ४७५ ॥ जीवंधोऽवदन्मूर्च्छाकारणं कथयेति तं । पट्टकालिखितं सर्वममिधायाभ्यधादिदं ॥ ४७६ ॥ सोऽप्यत्र तव सोदर्योऽजनिपील्यग्रज प्रति । तुष्ट्वासौ च विवाहार्थं प्रागारब्धमहामहं ॥ ४७७ ॥ इ प्रकृतमत्रान्यच्छ्रूयतां समुपस्थितं । किराताधीश्वरो नाम्ना विश्रुतो हरिविक्रमः ॥ ४७८ ॥ स दायादभयात्कृत्वा कपित्थाख्यवनेऽकरोत् । दिशागिरौ पुरं तस्य वनादिगिरि सुंदरी ॥ ४७९ ॥ प्रिया तुग्वनराजोऽस्याप्य जगत वनेशिन । वटवृक्षाह्वयो मित्रश्चित्रसेन ससैन्धव ॥ ४८० ॥ अरिंजयादयः शत्रुमर्दनोऽतिबलोऽप्यमी । भृत्यास्तस्यात्मजस्यापि लोहजंघः सखा पर ॥ ४८१ ॥ श्रीषेणश्चान्यदा गत्वा पुरं तां तद्वनांतरे । रममाणां समालोक्य श्रीचंद्रां चन्द्रिकोपमां ॥ ४८२ ॥ प्रशस्य यातौ वीक्ष्यांबु पायुं यान्त तुरंगमं । रक्षकामिभवाश्रीत्वा दत्वास्मै तोषमापतुः ॥ ४८३ ॥ हरिविक्रगत पश्चात्तावभ्येत्य हितैषिणौ । मिथो वनचरेणात्मजस्यान्यायानुसारिणः ॥ ४८४ ॥

पचारकर उसकी मूर्छा दूर की । फिर जीवंधरने उससे पूछा कि मूर्छा आनेका कारण वतला । तब नंदाढ्यने चित्रका सब हाल कहकर जीवंधरसे कहा कि वही गुणमित्रका जीव आज मैं तेरा छोटा भाई हुआ हूं । जीवंधर इस बातसे बहुत संतुष्ट हुआ और पहिलेसे ही विवाहकेलिये भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करने लगा ॥ ४७५–४७७ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और कहता हूं उसे भी सुनो । हरिविक्रम नामका एक प्रसिद्ध भीलोंका राजा था उसने भाई.बंधुओंसे डरकर कपित्थ नामके वनमें दिशागिरि नामके पर्वतपर वनगिरि नामका एक नगर बसाया था उस वनके स्वामी भीलके सुंदरी नामकी स्त्री थी और वनराज नामका पुत्र था । वटवृक्ष, चित्रसेन, सैंधव, अरिंजय, शत्रुमर्दन, और अतिवल ये उस भीलके सेवक थे । लोहजंघ उसके पुत्र वनराजका मित्र था तथा श्रीषेण भी उसका मित्र था । किसी एक दिन लोहजंघ और श्रीषेण ये दोनों ही हेमाभ नगरमें गये वहांके वनमें चांदनीके समान श्रीचंद्रा खेल रही थी उसे देखकर दोनोंने उसकी प्रशंसा की वहींपर एक मनुष्य घोडाको पानी पिलानेकेलिये लाया था उसे देखकर उन्होंने उस घोडेके रक्षकका तिरस्कार किया और उससे घोडा छीनकर हरिविक्रम भीलको दिया और इसतरह हरिविक्रमको बहुत संतुष्ट किया । हरिविक्रमने भी वह घोडा उन्हीं दोनोंको दे दिया । इसप्रकार भीलके हितैषी उन दोनोंने अन्याय मार्गपर चलनेवाले भीलके पुत्र वनराजसे उस श्रीचंद्राकी रूप कांति आदि शोभाका वर्णन किया । उसे सुनकर इसी श्रीचंद्राके जीवमें पहिले जन्ममें सुवर्णतेजने प्रेम रखकर अभिलाषाकी थी और अब इस जन्ममें वनराजने उन दोनोंसे कहा कि,

१ पहिले वनराजका जीव ही सुवर्णतेज था जिसे श्रीचंद्राका जीव अनुपमा देनी कही थी और फिर नहीं दी थी ।

कदाचित्तत्पुरप्रत्यासन्नभूध्रविलातरे । पाशे विरचिते पापे कपोते पतिते सति ॥ ४६२ ॥ स्वय गृह समागत्य रतिवेगात्मनो मूर्ति । ... गलतुण्डेन संलिख्य तत्सर्वानप्यबोधयत् ॥ ४६३ ॥ तद्वियोगमहादु खपीडिता विगतासुका । श्रीचंद्राख्याजनिष्टेयमभीष्टा भवतो सुता ॥ ४६४ ॥ अथ पारावतद्वन्द्व वीक्ष्य जन्मांतरस्मृते । व्यमुह्यन्नियमेनैतद्यक्तं सर्वं ममाब्रवीत्" ॥ ४६५ ॥ इत्यथालकसुदर्या वचः श्रुत्वाकुलाकुलौ । सुतापतिसमन्वेषणेच्छया पितरौ तदा ४६५ ॥ तद्भवातरवृत्तान्त पट्टके लिखित स्फुट । रंगतेजोऽभिधानस्य नटवर्गे पटीयस ॥४६७॥ मदनादिलतायाश्च दानसमानपूर्वक । तत्कर्तव्य समाख्याय यत्नेन कुरुता करे॥४६८॥पुष्पकाख्ये वने तौ च कृतपट्टप्रसारणा । स्वयं नटितुमारब्धौ नानाजनसमाकुले॥४६९॥पितास्यास्तद्वने रंतु गतस्तत्र मुनीश्वर । समाधिगुप्तमालोक्य परीत्य कृतवन्दन ॥४७०॥ धर्मसद्भावमाकर्ण्य पप्रच्छ तदनतरं । पूज्य मत्पुत्रिकापूर्वभवभर्ता क्व वर्तते ॥ ४७१ ॥ कथ्यतामिति दिव्यावधीक्षणः सोऽप्यथ वदत् । स हेमाभपुरे वैश्यतनयोऽव्याप्तयौवनः॥४७२॥इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्य तदैव स महीपति । सनटः ससुहृत्सर्वपरीवारपरिष्कृत ॥

और मरकर यह श्रीचंद्रा नामकी आपकी अभीष्ट पुत्री हुई है ॥ ४६४ ॥ आज कबूतर कबूतरीके जोडेको देखकर इसे जातिस्मरण हुआ है और नियमसे इसीलिये मूर्छित हो गई है । ये सव समाचार उसने मुझसे स्पष्ट कहे हैं ॥ ४६५ ॥ इसप्रकार अलकसुंदरीके वचन सुनकर अपनी पुत्रीके पतिको ढूंढनेकी इच्छासे वे माता पिता वहुत ही व्याकुल हुए ॥४६६॥ उन्होंने उस पुत्रीके पहिले भवका वृत्तात सव एक चित्रमें अच्छीतरह लिखाया तथा नटोंमें जो रंगतेज नामका चतुर नट था और मदनलता उसकी स्त्री थी उन्हें वुलाया, दान देकर उनका आदर सत्कार किया और फिर हाथमें वह चित्र देकर कहा कि यह काम वडे यत्नसे करना चाहिये ॥ ४६७–६८ ॥ वे नट और नटी उस चित्रको लेकर पुष्पक वनमें गये वहांपर उन्होने वह चित्र तो लटका दिया और स्वयं अनेक लोगोंके वीचमें नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ४६९ ॥ इधर श्रीचंद्राका पिता वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया वहांपर उसने मुनिराज समाधिगुप्तके दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणाएं दीं, वंदना की, धर्मका स्वरूप सुना और फिर पूछा कि हे पूज्य ! कहिये आज मेरी पुत्रीके पहिले जन्मका पति कहां है इसके उत्तरमें दिव्य अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे मुनिराज कहने लगे कि वह एक वैश्यका पुत्र हुआ है और यौवन अवस्था धारणकर आज हेमाभ नगरमें उपस्थित है ॥ ४७०–४७२ ॥ मुनिराजकी यह वात सुनकर वह राजा नट मित्र, और सब परिवारके साथ वहां पहुंचा । वहांपर जाकर उस नटने वह चित्र लटका दिया और मनोहर नृत्य करने लगा उस नृत्यको देखनेकेलिये नगरके सव लोग आये और सवके साथमें नंदाढ्य भी आया ॥ ४७३–४७४ ॥ उस चित्र पटके देखनेसे नंदाढ्यको अकस्मात जातिस्मरण हो आया और मूर्छा आगई तव जीवंधरने अनेक विशेष विशेष शीतो-

जन्मनि। देशे हेमागदे राजपुरे वैश्यकुलाग्रणीः ॥४५०॥ रत्नतेजा प्रिया तस्य रत्नमाला तयो सुता। सुरूपानुपमा नाम्ना नाम्नैव न गुणैरपि ॥ ४५१ ॥ तस्मिन्नेव पुरे वंशे विशा कनकतेजस । तनूजश्चन्द्रमालायामभवद् दुर्विधो विधीः ॥ ४५२ ॥ सुवर्णतेजा नामाभूत्तस्मै प्राक्परिभाषिता। पुनस्तदवमानेन तन्मातापितरौ किल ॥ ४५३ ॥ समाश्रणयतां वैश्यपुत्राय मणिकारिणे। गुणमित्राय तत्रैय स्तोक कालमगात्सुख ॥ ४५४ ॥ कदाचिज्जलयात्रायामंभोनिधिनदीमुखात्। निर्गमे विषमावर्ते गुणमित्रे मृति गते ॥ ४५५ ॥ स्वय चेत्वा प्रदेशं त मृत्युमेपा समाश्रयत्। ततो राजपुरे गंधोत्कटवैश्यसुधालये ॥४५६॥ पति पवनवेगाख्यो रतिवेगेयमप्यभूत्। पारावतकुलद्वद्व तद्बालाक्षरशिक्षणे ॥ ४५७ ॥ स्वय नैत्याक्षराभ्याप्य-गृहिणो श्रावकव्रत। तयोर्दृष्ट्वासशांतोपयोगं जन्मांतरागतात् ॥ ४५८ ॥ स्नेहादन्योऽन्यससक्तसुख तत्रावसच्चिर। सुवर्णतेजास्तद्वद्ववैरेण पुरुदंशतां ॥ ४५९ ॥ मृ वा सप्राप्य तद् द्वन्द्र दृष्ट्वा कापि यदृच्छया। अग्रहीद्रतिवेगा ता राहुर्मूर्तिमिवैंदवीं ॥ ४६० ॥ जातकोपः कपोतोऽसु नखपक्षप्रताडनैः। तुडघातैश्च हत्व शु निजपत्नीममूमुचत् ॥ ४६१ ॥

किसी अन्य वैश्यपुत्रको देदी। वहांपर उन दोनोका थोडा समय सुखसे व्यतीत हुआ ॥ ४५२–४५४ ॥ किसी एकसमय वह गुणामित्र जहाजमें बैठकर समुद्रमें गया था परंतु समुद्रमें किसी नदीके मिलनेकी जगह बडे विषम भंवर पड रहे थे उसी मार्गसे निकलते समय वह वहीं डूबकर मर गया ॥ ४५५ ॥ वह अनुपमा उसकी स्त्री भी यह खबर सुनकर वहीं जाकर डूब मरी। इसप्रकार वे दोनों मरकर गुणामित्रका जीव उसी राजपुर नगरके गंधोत्कट वैश्यके घर पवनवेग नामका कबूतर हुआ और वह अनुपमाका जीव उसीके घर रतिवेगा नामकी कबूतरी हुई। गंधोत्कटके घर उसके लडके अक्षराभ्यास करते थे उन्हें देखकर उन दोनों कबूतर कबूतरीने भी अक्षरोंका अभ्यास करलिया कौर चित्तको अत्यंत शातकर श्रावकके व्रत धारण किये। जन्मांतरसे चले आए स्नेहके कारण परस्पर सुख भोगते हुए वे दोनों बहुत दिनतक वहीं रहे। सुवर्णतेजको अनुपमा नहीं मिलती थी इसलिये वह उन दोनोंसे वैर करने लगा था और आयुके अंतमें मरकर विलाव हुआ था। किसी एक दिन उसने उन दोनों कबूतर कबूतरीको देखा और जिसप्रकार चंद्रमाकी मूर्तिको राहु ग्रस लेता है उसीप्रकार उसने अपनी इच्छानुसार रतिवेगाको पकडलिया ॥ ४५६–४६० ॥ यह देखकर कबूतरको क्रोध आया तथा उसने पंख और पंजोंकी ताडनासे तथा चोचोंकी घातसे विलावको चोटे पहुंचाकर शीघ्र ही अपनी कबूतरी छुडा ली ॥ ४६१ ॥ किसी एक समय उसी नगरके समीपवर्ती पर्वतकी गुफाके समीप किसी पापी भीलने जाल डाला और उसमें पवनवेग कबूतरको फंसा लिया। यह देखकर रतिवेगा कबूतरी घर आई और उसने अपने पतिके मरनेके समाचार चोंचसे लिखकर सबको समझा दिये ॥ ४६२–४६३ ॥ तदनंतर उसके वियोगसे वह कबूतरी बहुत दुखी हुई

गृहांगणे । वीक्ष्य पारावतद्वद्वं स्वैरं क्रीडयदृच्छया ॥४४०॥ जातजातिस्मृतिर्मूर्च्छां सहसा समुपागमत् । तद्दृशालोकनव्याकुलीकृतास्तत्समीपगाः ॥४४१॥ कुशलाश्चदनोशीरशीतलाम्भोनिषेचितां । व्यजनापादिताह्लादिपवनाश्वासिताशया ॥ ४४२ ॥ ता संबोध्य सुस्वालापैर्विभावितविबोधना । विदधु किं न कुर्वंति कृच्छ्रेषु सुहृदो हिता ॥४४३॥ श्रुत्वैतत्पितरौ कन्याप्रियामलकसुंदरीं । पुत्रीं तिलकशब्दादिचंद्रिकाया विमूर्च्छता॥४४४॥ कन्या गवेषयेत्वेति तदा अगदतु शुचा । सापि सम्प्राप्य संलापनिपुणा कन्यका मिथः ॥ ४४५ ॥ भट्टारिके वदेतत्ते किं मूर्च्छाकारणं मम । इति पृष्टवती मूर्च्छाहेतु चेच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४४६॥ न ह्यस्त्यकथनीय मे तव प्राणाधिकप्रिये । शृणु चेत समाधायेत्यसौ सम्यगनुस्मृति ॥ ४४७ ॥ सपूर्वभवसबंधमशेषं प्रत्यपीपदत् । तत्सर्वमवधार्याशु सुधीरलकसुंदरी ॥ ४४८ ॥ तदैवागत्य तन्मूर्च्छाकारणं प्रागयथाश्रुतं । प्रस्पष्टमधुरालापस्तनोरेवममाषत ॥ ४४९ ॥ "इतस्तृतीये कन्यैषा बभूव किल

मिला हुआ शीतल जल छिडका और पंखेसे अच्छी हवा की जिससे वह सावधान हुई तब मीठे वचनोंसे वह समझाई। सो ठीक ही है क्योंकि आपत्ति पडनेपर मित्रलोग क्या क्या हित नहीं करते हैं ॥ ४४०–४४३ ॥ यह समाचार सुनकर उसके माता पिताने तिलकचंद्राकी पुत्री और श्रीचंद्राकी सखी अलकसुंदरीसे कहा कि तू जाकर कन्याके शोकका कारण तलाशकर। राजारानीकी यह वात सुनकर वातचीत करनेमें अत्यंत निपुण ऐसी वह अलकसुंदरी भी श्रीचंद्राके समीप पहुंची और परस्पर वातचीत करनेपर पूछने लगी कि हे भट्टारिके (पूज्ये) मुझे वतला–तेरी मूर्छा आनेका कारण क्या है ? इसके उत्तरमें श्रीचंद्राने कहा कि हे प्राणोंसे अधिक प्यारी सखी ! यदि तू मेरी मूर्छाका कारण सुनना चाहती है तो सुन, क्योंकि तेरे लिये न कहने योग्य मेरी कुछ वात नहीं है। तू चित्त लगाकर सुन इसप्रकार उसने जो जो स्मरण हुआ था वह पहिले भवका सब संबंध ज्योंका त्यों अच्छीतरह कह सुनाया। उस सबको सुनकर वह बुद्धिमती अलकसुंदरी उसीसमय उसके माता पिताके समीप आई और उसने उसकी मूर्छाका कारण जो कुछ पहिले सुना था वह सब स्पष्ट रीतिसे मधुर शब्दोंमें नीचे लिखे अनुसार उन दोनोंको कह सुनाया ॥ ४४४–४४९ ॥ वह कहने लगी कि यह कन्या इस भवसे पहिले तीसरे जन्ममें हेमांगददेशके राजपुर नगरमें वैश्यकुलमें श्रेष्ठ ऐसे रत्नतेजकी स्त्री रत्नमालासे अनुपमा नामकी सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या केवल नामसे ही अनुपमा नहीं थी किंतु गुणोंसे भी अनुपमा थी ॥४५०-४५१॥ उसी नगरमें वैश्यवंशमें उत्पन्न हुए कनकतेजकी स्त्री चंद्रमालासे सुवर्णतेज नामका पुत्र हुआ था जो कि वहुत ही बुद्धिहीन और भाग्यहीन था। रत्नतेजने पहिले वह अनुपमा कन्या सुवर्णतेजको देनी कही थी परंतु उसे मूर्ख और भाग्यहीन देखकर उसका अपमानकर अर्थात् उसे न दे कर उन्होंने वह कन्या जवाहरातका काम जाननेवाले गुणमित्र नामके

॥४३०॥ तत्र पूर्वकृतं पुण्य कुमारोऽनुभवन् स्थित । इतो जीवधराभ्यर्णमप्रकाशं मुहुर्मुहुः ॥ ४३१ ॥ गतागमनमालोक्य नंदाढ्येन कदाचन । भ्राता केनचियासि क यियासुरहं च तत् ॥ ४३२ ॥ वदेति पृष्टा गंधर्वदत्ता स्मितात्रवीदिद । मया प्राप्यं प्रदेशं चेत्त्वं च गंतुं यदीच्छसि ॥ ४३३ ॥ देवताधिष्ठिता नाम्ना शय्या स्मरतरंगिणी । तत्राव्रज तव स्मृत्वा सख्यास्त्वं विधिपूर्वक ॥ ४३४ ॥ तथा प्राप्नोषि संतोषात्तत्समीपमिति स्फुटं । तदुक्तमवधार्यैसौ रात्रौ तच्छयनेऽस्वपत् ॥ ४३५ ॥ त तदा भोगिनीविद्या शय्ययानयदग्रजं । तदाकुमारनंदाढ्यौ मुदा वीक्ष्य परस्परं ॥ ४३६ ॥ समाश्लिष्य सुखप्रश्नपूर्वकं तत्र तस्थतु । नाधिक प्रीतयेऽन्यत्प्रीतमोदर्यसंगमात् ॥ ४३७ ॥ राष्ट्रेऽस्मिन्नेव विख्याते सुजनेऽस्ति परं पुरं । नाम्ना नगरशोभाख्यं दृढमित्रस्य भूपतेः ॥ ४३८ ॥ भ्राता तस्य सुमित्राख्यो राज्ञी तस्य वसुंधरा । रूपविज्ञानसंपन्ना श्रीचंद्रा तनया तयो ॥ ४३९ ॥ आपन्नयौवनारंभा सा कदाचि-

कहते हैं गुणमित्र बहुमित्र, सुमित्र, और धनमित्र तथा और भी कितने ही जीवंधरके साले थे उन सबको जीवंधरने सब तरहके विज्ञानोंमें निपुण बना दिया था इसप्रकार वह जीवंधर कुमार बहुत दिनतक पहिले किये हुए पुण्यकर्मोंका अनुभव करता हुआ वहीं रहता था । इधर गंधर्वदत्ता वार वार छिपकर जीवंधरके समीप आती जाती थी उसे देखकर किसी एक दिन नंदाढ्यने पूछा कि वतला तू छिपकर कहां जाती है और किस तरह जाती है क्योंकि जहां तू जाती है वहां मैं भी जाना चाहता हूं इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने हँसकर कहा कि जहां मैं जाती हूं यदि तू वहां जाना चाहता है तो स्मरतरंगिणी नामकी एक देवाधिष्ठित शय्या है उसपर तू अपने वडे भाईको स्मरणकर विधिपूर्वक सो जाना॥४२५॥ इसतरह तू संतोष पूर्वक अपने वडे भाईके पास पहुंच जायगा । गंधर्वदत्ताकी यह वात सुनकर वह नंदाढ्यकुमार रात्रिमें शय्या पर सोगया और भोगिनी विद्याने शय्या समेत उठाकर उसे उसके वडे भाई जीवंधरके समीप पहुंचा दिया । तदनंतर जीवंधर कुमार और नंदाढ्य दोनों एक दूसरेको देखकर बडी प्रसन्नतासे मिले और परस्पर कुशलक्षेम पूछकर वहीं पर रहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें प्रेम करनेवाले दो भाइयोंके समागमसे और अधिक प्रेम करनेवाली कोई चीज नहीं है ॥४३५-४३७॥ अथानंतर-इसी प्रसिद्ध सुजन देशमें एक शोभा नामका नगर है उसमें राजा दृढमित्र राज्य करता था उसके भाईका नाम सुमित्र था और उसकी वसुंधरा नामकी रानीसे रूप और विज्ञानसे सुशोभित ऐसी श्रीचंद्रा नामकी कन्या थी॥ ४३८-४३९॥ उसकी यौवन अवस्था प्रारंभ हो रही थी । किसी एक दिन उसके घरके आंगनमें कवूतर कवूतरी अपनी इच्छानुसार स्वतंत्रतापूर्वक क्रीडा कर रहे थे उन्हें देखकर श्रीचंद्राको अकस्मात् जातिस्मरण हुआ और वह मूर्छित हो गई । उसे मूर्छित देखकर उसके समीप रहनेवाली सखियां व्याकुल हो गई और उनमें जो चतुर थीं उन्होंने चंदन और उशीरसे

दिनै प्राणिव तत्पुरात् ॥ ४१९ ॥ चापवाणधरो गत्वा विषये सुजनाह्वये । हेमाभनगरं प्राप्त कुमारः पुण्यसाधनः ॥ ४२० ॥ तत्पतिर्दृढमित्राख्यो नलिना तस्य वल्लभा । हेमाभाख्या तयोः पुत्री तज्जन्मन्येव केनचित् ॥ ४२१ ॥ कृत किलैवमादेशो मनोहरवनांतरे । खलूरिकाया धानुष्कव्यायामे येन चोदितः ॥ ४२२॥ लक्ष्याभ्यर्णान्निवृत्त सन् शरः पश्चात्समेष्यति । वल्लभा तस्य बालेय भवितेति सुलक्षणा ॥ ४२३ ॥ धनुर्विद्याविदः सर्वे तदादेशश्रुतेस्तदा । तथा गुणयितुं युक्ता समभूवस्तदाशयाः ॥ ४२४ ॥ जीवंधरकुमारोऽपि तत्प्रदेशमुपागमत् । धानुष्कास्तं विलोक्याहुरादेशोऽकधनुःश्रमः ॥ ४२५ ॥ किमगास्तीति सोऽप्याह किंचिदस्तीति तैरिदं । विध्यतां लक्ष्यमित्युक्तः सज्जीकृतधनुःशर ॥ ४२६ ॥ आदाय विद्धवांल्लक्ष्यमप्राप्यैष न्यवर्तत । तं तदालोक्य तत्रस्था महीपतिमबोधयन् ॥ ४२७ ॥ मृग्यमाणो हि मे वल्लीविशेषश्चरणेऽसजत् । इति क्षितीश्वरः प्रीतो विवाहविधिना सुता ॥ ४२८ ॥ अश्राणयद्विभूत्यास्मै तदिदं पुण्यमुच्यते । आदिमो गुणमित्रोऽन्यो बहुमित्रस्ततः परः ॥४२९॥सुमित्रो धनमित्रोऽन्यस्तथान्ये चास्य मैथुनाः । तांस्तान्सर्वान्सविज्ञानकुशलान्विदध

गंधर्वदत्ता अपनी विद्यासे जीवंधरके समीप आई और जीवंधरको सुखी देखकर छिपकर ही फिर अपने राजपुर नगरमें आगई सो ठीक ही है क्योंकि प्यारोंको देखकर उत्सव मानना ही प्रेम करनेवालोंका प्रेम कहलाता है । तदनंतर कितने ही दिनोंके बाद पहिलेके समान उसनगरसे भी वह पुण्यवान् कुमार छिपकर निकला और धनुषवाण लेकर सुजन नामके देशके हेमाभ नामके नगरमें जा पहुंचा ॥ ४१७—४२० ॥ वहांके राजाका नाम दृढमित्र था और उसकी रानी नलिनासे हेमाभा नामकी पुत्री हुई थी । उसके जन्म होते ही किसी निमित्तज्ञानीने कहा था कि मनोहर नामके वनमें जो आयुधशाला है उसमें धनुषविद्याके व्यायाममें जो कोई पुरुष ठीक निशानेपर वाण मारेगा और वह वाण निशानेको मारकर पीछे वापिस आजायगा वह पुरुष इस सुलक्षणा कन्याका पति होगा ॥ ४२१-४२३ ॥ उस आदेशको सुनकर उससमय धनुषविद्याको जाननेवाले सब लोग उस कन्याके लोभसे उसीप्रकारका अभ्यास करनेमें तत्पर होरहे थे॥४२४॥ चलता चलता जीवंधर कुमार भी वहीं पर जा पहुंचा उसे देखकर धानुष्क लोग कहने लगे कि हे भाई राजाकी ऐसी आज्ञा है क्या तुमने कभी धनुष चलानेका परिश्रम किया है? उत्तरमें जीवंधरने कहा कि हां! कुछ किया है तब उन लोगोंने कहा कि अच्छा तो इस निशानको मारो । तब जीवंधरने धनुष बाण तैयार कर वह निशाना मारा और वह छोडा हुआ वाण उस निशानेके समीप पहुंचकर लौट आया इस वातको देखकर वहां खडे हुये लोगोंने राजाको खबर दी । यह खबर सुनते ही राजा कहने लगा कि जिस खास बेलको ढूंढ रहे थे वही पैरसे आ लगी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बडी विभूतिके साथ विवाहकी विधिपूर्वक वह कन्या जीवंधर कुमारको दे दी सो ठीक ही है क्योंकि पुण्य इसीको

मरारवं । तद्गोपुरकवाटानामुद्घाटनमभूत्स्वयं ॥ ४०८ ॥ तद्विलोक्य समुत्पन्नभक्ति ज्ञानविशुद्धिभाक् । तत्सरोवरसंभूतप्रसवैर्बहुभिर्जिनं ॥ ४०९ ॥ अभ्यर्च्यार्थ्यैर्मुदा भ्रमस्तोष्टैष्टैरमिष्टुवै । सुता तत्र सुभद्राख्यश्रेष्ठिनो निर्वृतेश्च सा ॥ ४१० ॥ साक्षाल्लक्ष्मीरिवाक्षूणाभून्नाम्ना क्षेमसुंदरी । तद्भाविभर्तृसांनिध्ये चंपकप्रसवादिक ॥ ३११ ॥ समादिशत्पुरा सर्वं मुनींद्रो विनयधरः । तत्रस्थास्तत्परीक्षार्थं नियुक्तपुरुषास्तदा ॥ ३१२ ॥ जीवंधरकुमारावलोकनाज्जातसमुदा । सफलोऽस्मन्नियोगोऽभूदिति तत्क्षणमेव ते ॥ ४१३ ॥ न्यबोधयत्समस्तं तत्संप्राप्य स्वामिनः निज । सोऽपि संतुष्य नासत्यं मुनीनां जातुचिद्वचः ॥ ४१४ ॥ इति तस्मै सुता योग्यां विधिना श्रीमतेऽदित । तथा प्राग्मे मुदा राजपुरे निवसते नृप ॥ ४१५ ॥ सत्यंधरोऽदादेतद्धनुरेताछराश्च वै । योग्यास्त्वं गृहाणेति भूयस्तेनाभिभावित: ॥ ४१६ ॥ गृहीत्वा सुष्टु संतुष्टस्तत्पुरं सुखमावसत् । एवं गच्छति कालेऽस्य कदाचिन्निजविश्रया ॥ ४१७ ॥ गंधर्वदत्ता संप्राप्य जीवंधरकुमारकं । तं सुखासीनमालोक्य केनाप्यविदितं पुनः ॥ ४१८ ॥ आयाद्राजपुरं प्रीति प्रीतानां हि प्रियोत्सवः । ततः कतिपयैरेव

जल पुष्प थे सब स्पष्ट रीतिसे खिल गये थे और उन पर संभ्रमके साथ आये हुए भ्रमर शब्द करने लगे थे तथा जिनालयके बडे दरवाजेके किवाड अपने आप खुल गये थे ॥ ४०७—४०८ ॥ इन सब बातोंको देखकर उसकी गाढ भक्ति और प्रगट हुई उसने उसी सरोवरमें उत्पन्न हुए अनेक फूलोंसे भगवानकी पूजा की तथा अर्थोंसे भरे हुए अनेक इष्ट स्तोत्रोंसे निश्चल होकर भगवानकी स्तुति की उस नगरमें शेठ सुभद्रकी निर्वृति नामकी स्त्रीसे एक क्षेमसुंदरी नामकी कन्या थी जो कि साक्षात् लक्ष्मीके समान सुशोभित थी। किसी एक समय मुनिराज विनयंधरने कहा था कि इस क्षेम सुंदरीके पतिके आने पर चंपक वृक्ष फूल जायगा किवाड खुल जायंगे आदि ऊपर लिखे हुए सब चिन्ह वतलाए थे इस लिए उस शेठकी ओरसे उसकी परीक्षाके लिए वहुतसे पुरुष नियुक्त थे वे जीवंधर कुमारको देखकर वडे ही प्रसन्न हुए थे और कहने लगे थे कि आज हम लोगोंका यहां नियुक्त होना सफल हो गया। वे लोग उसी समय दौडे और अपने स्वामीके पास जाकर उन्होंने वहांका सव समाचार निवेदन किया वह शेठ भी इस समाचारसे वहुत संतुष्ट हुआ और मनमें कहने लगा कि मुनियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते हैं। इस प्रकार प्रसन्न होकर उसने उस श्रीमान् जीवंधर कुमारको विधिपूर्वक अपनी योग्य कन्या समर्पण की। तदनंतर वह शेठ जीवंधरसे निवेदन करने लगा कि पहिले जव मैं राजपुर नगरमें रहता था तव राजा सत्यंधरने मुझे यह धनुष दिया था और ये वाण दिये थे ये आपके ही योग्य हैं इसलिये इन्हें आप ही स्वीकार कीजिये इस प्रकार कह वह धनुष और वाण भी समर्पण करदिये ॥ ४०९—४१६ ॥ जीवंधर सवको लेकर संतुष्ट हुआ और उसी नगरमें सुखसे रहने लगा। इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर किसी एक समय

ऽपि तद् ज्ञायते किंचिन्मयेति प्रत्यभाषत । तद्वचःश्रुतिसंतुष्टास्ते नयंति स्म तं मुदा ॥ ३९७ ॥ सोऽपि यक्षमनुस्मृत्य मणिमंत्रविशारदः । अभिमन्त्र्याक-
रोद्वीतविषवेगां नृपात्मजां ॥ ३९८ ॥ जाततोषो नृपस्तस्य सत्त्वच्छायादिलक्षणैः । अवश्यं राजवंश्योऽयमिति निश्चित्य पुत्रिकां ॥ ३९९ ॥ अर्धराज्यं च
पूर्वोक्तं तस्मै वितरति स्म सः । ततः स लोकपालादिकन्यकाभ्रातृभिः समं ॥ ४०० ॥ द्वात्रिंशता चिरं रेमे तद्गुणैरनुरंजितः । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा
दैवप्रचोदितः ॥ ४०१ ॥ कदाचिन्निशि केनापि जनेनानुपलक्षितः । गत्वा गव्यूतिकाः काश्चित्क्षेमाख्यविषये पुरं ॥ ४०२ ॥ क्षेमाह्वयमवाप्यास्य वने बाह्ये
मनोरमे । सहस्रकूटं राजंतं जिनालयमलोकत ॥ ४०३ ॥ लोकनानंतरं नत्वा कृतांजलिपुटः पुनः । त्रिः परीत्य स्तुतिं कर्तुं विधिनारब्धवांस्तदा ॥ ४०४ ॥
सहसैवात्मनो रागं व्यक्तं बहिरिवार्पयन् । चंपकानोकहः प्रादुरासीदेको निजोद्गमैः ॥ ४०५ ॥ कोकिलाश्च पुरा मूकीभूतास्तद्यानभेषजैः । चिकित्सिता इव
श्रव्यमकूजन्मधुरस्वनं ॥ ४०६ ॥ तज्जिनभवनाभ्यर्णवर्तिन्यच्छांबुसंभृते । स्फटिकद्रवपूर्णे वा व्यकसन् सरसि स्फुटं ॥४०७॥ सर्वाणि जलपुष्पाणि सभ्रमद्भ्र-

भी कहा कि हां थोडा वहुत जानता हूं। जीवंधरकी यह बात सुनकर वे लोग बडे संतुष्ट हुए और प्रसन्न होकर जीवंधर
को राजा धनपतिके पास ले गये ॥ ३९७ ॥ मणि और मंत्रोंके जाननेमें चतुर ऐसे उस जीवंधरने भी यक्षका स्मरण
किया और फिर उस राजपुत्रीको मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर विषरहित कर दिया ॥ ३९८ ॥ इससे राजा धनपतिको वहुत
संतोष हुआ और उसने तेज तथा छाया आदि लक्षणोंसे निश्चय कर लिया कि यह अवश्य ही राजवंशमें उत्पन्न हुआ
है इसलिये उसने अपनी पुत्री और पहिले कहा हुआ आधा राज्य उसे समर्पण कर दिया। तदनंतर लोकपाल आदि
पद्मोत्तमाके वत्तीस भाइयोंके विनय आदि गुणोंसे प्रसन्न होकर कुमार जीवंधर वहुत दिन तक उन्हींके साथ क्रीडा करने
लगा। वह कुमार थोडे दिन तक वहां रह कर भाग्यके द्वारा प्रेरणा किया हुआ किसी एक दिन रात्रिमें सव लोगोंसे
छिप कर वहांसे चल दिया। थोडे ही कोस चल कर वह क्षेम नामके देशमें क्षेम नामके नगरमें पहुंचा और वहांके मनो-
हर नामके वाहरके वनमें उसने एकहजार शिखरोंसे सुशोभित एक जिनालय देखा ॥ ३९९–४०३ ॥ जिनालयको दे-
खतेही उसने नमस्कार किया हाथ जोडे तीन प्रदक्षिणाएं दीं और उसी समय उसने विधि पूर्वक स्तुति करना प्रारंभ
किया ॥ ४०४ ॥ उसी समय अकस्मात् एक चंपक वृक्ष मानों अपना प्रगट अनुराग वाहर समर्पण करता हुआ फूलोंसे
सुशोभित हो गया ॥ ४०५ ॥ जो कोयलें पहिले गूंगी सरीखी हो रही थीं वे उस कुमारके आने रूप औषधिसे इलाज
की हुईके समान अच्छी होकर सुनने योग्य मधुर शब्द बोलने लगीं ॥ ४०६ ॥ उस जिनालयके भीतर जो स्वच्छ जल
से भरा हुआ सरोवर था जो कि ऐसा जान पडता था मानों स्फटिक पत्थरसे चू चू कर ही भर गया हो उसमें जितने

कुमारस्य न भीरस्ति तस्माद् भीता स्म मात्र भोः। स मक्ष्वेतीति तान् सर्वान् प्रशान्तिं प्रापयत्सुधीः॥३८६॥जीवंधरोऽपि यक्षस्य वसतौ सुचिरं सुखं। स्थि त्वा जिगमिषां स्वस्याज्ञापयद्यक्षमिङ्गितैः ॥ ३८७ ॥ तदभिप्रायमालक्ष्य यक्षो दत्त्वा स्फुरत्प्रभां। साधनीमीप्सितार्थानां मुद्रिकां कामरूपिणीं ॥ ३८८ ॥ तदद्रेरवतीर्यैन न भीरस्य कुतश्चन। इति किंचिदनुव्रज्य तमसुंचत्कृतार्चन ॥ ३८९ ॥ कुमारोऽपि ततः किंचिद्गत्वातरमुपेयिवान्। पुरं चन्द्राभनामानं सज्योत्स्न वा सुधागृहै ॥ ३९० ॥ नृपो धनपतिस्तस्य पालको लोकपालवत्। देवी तिलोत्तमा तस्य तयोः पद्मोत्तमा सुता ॥३९१॥ सा विहर्तुं वनं याता दष्टा दुष्टाहिना तदा। य इमां निर्विषीकुर्यान्मणिमंत्रौषधादिभि ॥ ३९२ ॥ मयेयं कन्यका तस्मै सार्धराज्या प्रदास्यते। घोषणामिति भूपाल पुरे तस्मिन्नचीकरत् ॥ ३९३ ॥ फणिवैद्यस्तदाकर्ण्य आगत्यादिष्टमीदृश। मुनिनादित्यनाम्नेति कन्यालोभाच्चिकित्सितुं ॥ ३९४ ॥ सम्प्राप्य बहवो नोपसहर्तुं तद्‌वशकत्वं। राजाज्ञया पुनर्वैद्यमन्वेष्टुं परिचारका ॥३९५॥ धावतो दैवसंयोगात्कुमारमवलोक्य ते। किमस्ति विषविज्ञानमित्यपृच्छस्तमाकुला ॥ ३९६ ॥

सो- ३८६॥ कुमारजीवंधरभी यक्षके निवासस्थानमें वहुत दिनतक सुखसे रहा और फिर इशारोंसेही उसने यक्षसे अपने जानेकी इच्छा प्रगट की ॥ ३८७ ॥ यक्षने जीवंधरका अभिप्राय जानकर उसे जिसकी कांति दैदीप्यमान है जो इष्ट पदार्थोंको सिद्ध करनेवाली है और इच्छानुसार रूप वना देनेवाली है ऐसी एक काम मुद्रा (अंगूठी) दी ॥ ३८८ ॥ उसको लेकर वह जीवंधर उस पर्वतसे उतरा, उसको किसी तरहका डर नहीं था वह यक्ष कुछ दूर तक तो उसके साथ गया और फिर उसकी पूजा कर उसे विदा किया ॥ ३८९ ॥ कुमार जीवंधर वहांसे कुछ दूर चल कर चूनासे पुते हुए घरों से मानों चांदनीके समान शोभायमान ऐसे चद्राभ नामके नगरमें पहुंचा ॥ ३९० ॥ वहांके राजाका नाम धनपति था जो कि लोकपालके समान प्रजाका पालन करता था उसके तिलोत्तमा नामकी रानी थी और पद्मोत्तमा नामकी पुत्री थी ॥ ३९१ ॥ किसी एक दिन वह वनमें क्रीडा करनेके लिये गई थी परंतु वहां पर वह किसी दुष्ट सांपने काट खाई थी इसलिये उसके पिता राजा धनपतिने अपने नगरमें घोषणा करदी थी कि जो कोई मणि मंत्र औषधि आदिकसे इस कन्याका विष दूर करेगा उसे मैं यह कन्या और आधा राज्य दूंगा ॥३९२–३९३॥ आदित्य नामके मुनिराजने पहिले ही यह वात कह रक्खी थी इसलिये राजाकी यह घोषणाको सुनकर सांपके काटेका इलाज करनेवाले वहुतसे वैद्य लोग कन्याके लोभसे चिकित्सा (इलाज) करनेको आये परंतु उस विषको कोई भी दूर न कर सका। तदनंतर राजाकी आज्ञासे वहुतसे सेवक लोग वैद्यको ढूंढनेके लिये दौडे। दैवयोगसे कितने ही सेवकोंने कुमार जीवंधरको देखकर उससे भी व्याकुलताके साथ पूछा कि क्या आपको विष उतारनेका कुछ ज्ञान है ॥ ३९४–३९६ ॥ इसके उत्तरमें जीवंधरने

पादसक्नुवन्सोऽकु मर्दूभगजबाधन ॥३७४॥ कृत्वा जीवधरस्तस्य परिभूतिं व्यधादधीः । पथ्यामठकशुल्यादिदानग्रहणकर्मण ॥३७५॥ निजआत्यानुरूपाद्यो विमुख सुष्ठु गर्वितः । राजपुत्रोपिते वृत्ते विपक्षोय वरोटजः ॥ ३७६ ॥ कृतांतवदन सद्यः प्रापयेमं कुचेष्टितं । इत्याह्यचंडदंडाख्य मुख्य तत्पुररक्षिणा ॥ ३७७ ॥ स सनद्धबलोऽधावदमिजीवधरं क्रुधा । स कुमारोऽपि तदज्ञात्वा ससहायो युयुत्सया ॥ ३७८ ॥ तमभ्येत्य तदैवास्मै ददौ भगमभंगुरः । पुनः कुपितवान्काष्ठागारिक स्वबल बहु ॥ ३७९ ॥ प्राहिणोत्त निरीक्ष्याऽवित्तो जीवधरो कृपा । क्षुद्रप्राणिविघातेन किमनेन दुरात्मकं ॥ ३८० ॥ काष्ठांगारिकमेवैनमुपायै प्रशम नये । इति यक्ष निज मित्रमस्मरत्सोऽप्युपागत ॥ ३८१ ॥ ज्ञातजीवधराकूतस्तत्सर्वं शांतिमानयत् । ततो विजयगिर्याख्य समारोप्य गज धिप ॥ ३८२ ॥ कुमारं तदनुज्ञानात्स्वावासमनयत्सुहृत् । स्वगेहदर्शन नाम सद्भाव सुहृदा स हि ॥ ३८३ ॥ सहाया बांधवाश्चास्य प्रवृत्तेरनभिज्ञकाः । पवनान्दोलितालोलबालपल्लवलीलया ॥ ३८४ ॥ अकम्पिषत सर्वेऽपि स्वान्संधर्तुमशक्नुकाः । गन्धर्वदत्ता तयाननिमित्तज्ञा निराकुला ॥ ३८५ ॥

खोटी चेष्टा करनेवाले इसको मैं अभी यमराजके मुहमें पहुचाऊंगा इसप्रकार उसने नगरकी रक्षा करनेवालोंमें प्रधान ऐसे चंडदंड नामके कोतवालको उसके मारनेकी आज्ञा दी ३७३–३७७ ॥ वह कोतवाल भी क्रोधित होकर अपनी सब सेना लेकर जीवंधरके सामने गया परंतु नाश न होने वाला (चरमशरीरी) कुमार जीवंधर भी यह सब समाचार जानकर युद्ध करनेकी इच्छासे अपने सब साथियोंको लेकर उस कोतवालके सामने गया और उसीसमय उस कोतवालको जीवंधरने भारी हार दी । इससे काष्ठांगार और भी क्रोधित हुआ और उसने अपनी बहुतसी सेना उसपर भेजी उस सेनाको देखकर जीवंधरके चित्तमें दया उत्पन्न हुई और वह विचार करने लगा कि व्यर्थ ही इन क्षुद्र प्राणियोंके मारनेसे क्या लाभ है इस दुष्ट काष्ठांगारको ही अनेक उपायोंसे शांत करना चाहिये । इसप्रकार सोचविचारकर उसने अपने मित्र यक्षको स्मरण किया और स्मरण करते ही वह भी तुरंत ही आ पहुंचा ॥ ३७८–३८१ ॥ उस यक्षने जीवंधरका अभिप्राय जानकर सब उपद्रव शांत कर दिया । तदनंतर वह यक्ष कुमारकी सम्मतिके अनुसार कुमारको विजयगिरि नामके गजराजपर सवार कराकर अपने घर लेगया सो ठीक ही है क्योंकि अपना घर दिखाना मित्रोंका सद्भाव सदा ही रहता है ॥ ३८२–३८३ ॥ जीवंधरकी प्रवृत्तिको न जाननेवाले उसके साथी और भाई बंधु लोग वायुसे हिलाये हुए चंचल छोटे पत्तोंके समान कंपने लगे और वे सब अपने आपको संभाल न सके परंतु गंधर्वदत्ता जीवंधरके जानेका कारण जानती थी इसलिये वह घबडाई नहीं और निराकुल होकर उस बुद्धिमतीने सबको समझाया कि 'कुमार को किसी बातका डर नहीं है तुम लोग भय मत करो कुमार शीघ्रही आवेंगे' इसप्रकार समझाकर उसने सबको शांत किया ॥३८४–

स्वया ॥ ३६४ ॥ कुमारीति तमभ्यर्च्य स्वं धामैव जगाम सः । अकारणोपकाराणामवश्यमावि तत्फलं ॥ ३६५ ॥ चिरं वने विहृत्यैवं निवृत्तो गंधवारण ।
तन्महीशस्य नाम्नाशनिवेगोऽजनि घोषतः ॥ ३६६ ॥ समुत्क्रांतोऽनिवार्योऽन्धैर्यथावत्स्यंदन प्रति । सुहस सुरमंजर्याः स कुमारो विलोक्य त ॥ ३६७ ॥
विनयोभयनिर्णीतक्रियः प्रशाम्य हेलया । कृत्वा परिश्रमं तस्य द्वात्रिंशत्केलिभिः स्वय ॥ ३६८ ॥ वीतश्रमस्तमस्पंद्य हेलयालानमापयत् । दृष्ट्वास्य गजवि-
ज्ञान पुरं शंसन् जनोऽविशत् ॥ ३६९ ॥ तदा प्रभृत्यगात्कामम्व्यामोह सुरमंजरी । जीवंधरकुमारावलोकनाकुलिताशया ॥३७० ॥ इंगितैश्चेष्टितैस्तस्याः सक-
थामिश्र सुचित । माता पिता च जीवंधराभिलापपरायण ॥ ३७१ ॥ विज्ञाय ता निर्बंधनात्पित्रे तदनुज्ञया । विभूतिमत्कुमाराय शुभयोगे वितेरतु ॥
३७२ ॥ ततः समुचितप्रेमा स काम सुखमन्वभूत् । तत्र तच्छौर्यसद्भाग्यसकथा सतत जनैः ॥ ३७३ ॥ क्रियमाणा दुरात्मासौ काष्ठागारिकभूपतिः । को-

विजलीके समान शब्द करता हुआ अशनिवेग नामका गंधवारण हाथी दिखलाई दिया। वह हाथी मदोन्मत्त हो रहा था, अन्य साधारण मनुष्य उसे वश नहीं कर सकते थे और पागलकी तरह वह सुरमंजरीके रथकी ओर दौड रहा था। कुमार जीवंधरने उस रथमें सुरमंजरीको देखकर हाथीकी विनय और उनय क्रियाको झट पहिचान लिया वह लीलापूर्वक उसके पास पहुंचा, बत्तीस तरहकी क्रीडाओंके द्वारा उससे परिश्रम नहीं किया और थोडी ही देरमें चेष्टा रहित कर उसे खूंटेसे बांध दिया। वहां खडे हुए लोग जीवंधरकी ऐसी हाथीकी शिक्षा देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए नगरमें प्रवेश करने लगे ॥ ३६५–३६९ ॥ उस दिनसे लेकर जीवंधर कुमारको देखनेसे सुरमंजरीका हृदय भी व्याकुल होगया और वह कामसे मोहित होगई ॥ ३७० ॥ सुरमंजरीके माता पिताने उसकी चेष्टा आदिके अनेक इशारोंसे तथा उसकी कहीं कथा आदिकोंसे बडी युक्तिसे यह बात जानली कि उसकी अभिलाषा जीवंधर कुमारकी ओर है। तदनंतर उन्होंने जीवंधरके माता पितासे निवेदन किया और उनकी आज्ञानुसार किसी शुभ योगमें अत्यंत ऐश्वर्यको धारण करनेवाले जीवंधर कुमारको वह कन्या समर्पण की ॥ ३७१–३७२ ॥ इसके बाद योग्यतानुसार प्रेम करनेवाला वह कुमार अपनी इच्छानुसार सुखोंका अनुभव करने लगा। अथानंतर–नगरके लोग सदा जीवंधरकी शूरवीरता और भाग्यशीलता की कथा करने लगे परंतु उसे दुष्ट राजा काष्ठांगार सह नहीं सका इसलिये उसने क्रोधमें आकर लोगोंसे कहा कि इस मूर्ख जीवंधरने मेरे गंधवारण हाथीको बाधा पहुंचाकर उसका तिरस्कार किया है। यह वैश्य है इस लिये हरड आमले सोंठ आदि चीजोंकी खरीद बिक्री करना इसका काम है परंतु यह अपनी जातिमें होनेवाले कामोंको तो नहीं करता और छुद्र होकर भी राजपुत्रोंके योग्य कामोंमें आसक्त होता है। इसलिये

रसुवेश्वर । परीक्ष्य तत्त्वय सम्यक्श्रेष्ठश्चंद्रोदयोऽनयोः ॥ ३५५ ॥ प्रत्ययः कोऽस्य चेद्यत्र दर्शयामीति तद्द्वय । अवष्टभ्य स्वहस्ताभ्या विचिक्षेप ततो द्रुत ॥ ३५६ ॥ चन्द्रोदयमलिव्रातो गधोत्कर्षात्परीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रस्थास्तत्तमेवास्तुवन्विद ॥ ३५७ ॥ तदा प्रभृति ते, कन्ये परस्परनिबंधन । विद्या।विहितसघर्ष त्यजत-स्मात्समत्सरे ॥ ३५८ ॥ अथात्र नागरेष्वात्मवांछया क्रीडन वने । कुर्वत्स्वेक समालोक्य कुक्कुरं खलबालकाः ॥ ३५९ ॥ भ-र्त्सयतिस्म चापल्यात्सोऽपि धावन् भयाकुल । ह्रदे निपत्य तत्रैव प्राणमोक्षोन्मुखोऽभवत ॥३६०॥ मृत्यैस्ततस्तमानाय्य जीवधरकुमारक । कर्णौ तस्य न-मस्कारपदे, स पर्यपूरयत् ॥ ३६१ ॥ प्रतिगृह्य नमस्कार चन्द्रोदयगिरावभूत् । यक्ष सुदर्शनो नाम स्मृतपूर्वभवस्तदा ॥ ३६२ ॥ प्रत्यागत्य कुमारं त सं-त्प्रसादान्मयेदृशी । लब्धा विभूतिरित्युच्चैः स्तुत्वा सपाद्य विस्मय ॥ ३६३ ॥ सर्वेषा दिव्यभूषाभिः कृतवित्तमपूजयत् । इत प्रभृत्यह सर्यां व्यसनोत्सवयो-

कर उसने दोनों हाथोंमेंसे दोनों चूर्ण लिये और शीघ्रताके साथ दोनों ही फेंक दिये । उन दोनों चूर्णोंके फेंकते ही सु-गंधिकी उत्कटतासे बहुतसे भ्रमर चंद्रोदय चूर्ण पर आ जमे यह देखकर वहा पर बैठे हुए उस विद्याके जानकार सब लोग जीवंधरकी स्तुति करने लगे ॥ ३५६–३५७ ॥ उस दिनसे लेकर उन दोनों कन्याओंने विद्यासे उत्पन्न होनेवाली परस्परकी ईर्षा छोड दी और दोनोंने आगे ईर्षा न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली ॥ ३५८ ॥

अथानंतर–किसी एक समय नगर निवासी लोग अपनी इच्छानुसार वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे । वहांपर किसी एक कुत्तेको देखकर दुष्ट बालकगण मारने लगे वह कुत्ताभी चपल था इसलिये भयसे व्याकुल होकर दौडता हुआ किसी कुंडमें जाकर गिर पडा और वहीं पर मरनेके सन्मुख हो गया ॥३५९–३६०॥ जीवंधर कुमारने अपने सेवकों द्वारा वह कुत्ता वहां से उठवाकर मंगवाया और उसके कानमें पंचनमस्कार मंत्र सुनाया ॥ ३६१ ॥ ध्यानपूर्वक पंच नमस्कार मंत्रको ग्रहणकर वह कुत्ता मरा और चंद्रोदय पर्वतके ऊपर सुदर्शन नामका यक्ष हुआ । उसीसमय (अवधि ज्ञानके द्वारा) उसे पूर्व भवकी बात याद आई, वह उसीसमय कुमार जीवंधरके समीप आया और स्तुति करने लगा कि 'हे प्रभो ! आपके प्रसादसे ही मुझे यह ऐसी विभूति प्राप्त हुई है' इसप्रकार स्तुतिकर उसने सब लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया । तदनंतर किये हुए उपकारको माननेवाले उस यक्षने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे जीवंधरकी पूजा की और कहा कि 'हे कुमार आजसे लेकर किसी उत्सव अथवा आपत्तिमें मुझे स्मरण करना' इस प्रकार जीवंधरकी पूजाकर वह यक्ष अपने स्थानको चला गया सो ठीकही है क्योंकि जो विना कारणके ही परोपकार करते हैं उन्हें उसका फल अवश्य ही मिलता है ॥ ३६२–३६५ ॥ अथानंतर वनमें बहुत देर तक क्रीडा कर वह जीवंधर कुमार लौट रहा था कि उसे राजा काष्ठांगारका

गात् । निर्वृतिः परमा काष्ठा समसयोगसंभवा ॥ ३४५ ॥ अथान्यदा मधौ मासे मदनोदयसाधने । सुरादिमलयोद्याने वनक्रीडानिमित्तक ॥ ३४६ ॥ नृपेण सह सर्वेषु पौरेषु सुखलिप्सया । आविष्कृतस्वसंपत्सु यातेषु परमोत्सवात् ॥३४७॥ पुरे तस्मिन्वणिङ्मुख्योऽभूद्वैश्रवणदत्तवाक् । तनूजा चूतमंजर्या तस्यासीत्सुरमंजरी ॥ ३४८ ॥ तस्या श्यामलता चेटक्यसौ चंद्रोदयाह्वयः । चूर्णवासोऽयमस्त्यन्यो नास्मादुन्मेन मधुरः ॥ ३४९ ॥ इत्यात्मस्वामिनीदाक्ष्यप्रकाशनपरायणा । इतस्ततस्तमुद्घुष्य विचचार जनांतरे ॥ ३५० ॥ कुमारदत्तवैश्यस्य निमलायां सुताभवत् । गुणमालामला तस्याश्चेटकी पटुभाषिणी ॥ ३५१ ॥ विद्युल्लताभिधा चूर्णवासोऽय षट्पदाव्रत । वर्यः सूर्योदयो नाम नेदृक् स्वर्गेऽपि विद्यते ॥ ३५२ ॥ इति विद्वत्सभामध्ये भूयः स्वस्वामिनीगुण । विद्योतंयती बभ्राम सुभ्रूर्गर्वग्रहाहिता ॥ ३५३ ॥ एव तयो समुद्भूतमात्सर्याहितचेतसो । विवादे सति तद्विद्यावेदिनस्तत्परीक्षितुं ॥ ३५४ ॥ अभूवन्नक्षमास्तत्र जीवध-

पिताको कन्या समर्पण करनेके सिवाय और कुछ कार्य ही नहीं है । ॥ ३४४ ॥ जिनका परस्पर प्रेम और सुख बढ रहा है ऐसे उन दोनोंका (जीवंधर और गंधर्वदत्ताका) सम संयोगसे उत्पन्न होनेवाला सुख सबसे उत्तम सीमाको पहुंच गया था ॥ ३४५ ॥ अथानंतर—कामदेवको उत्तेजित करनेवाला वसंत ऋतु आया उसमें सब नगर निवासी लोग सुखकी इच्छासे अपने अपने सब ऐश्वर्यके साथ बडे उत्सवसे राजाके साथ सुमलयोद्यानमें वनक्रीडा करनेके लिये गये । उसी नगरमें एक वैश्रवणदत्त नामका अच्छा वैश्य रहता था उसकी आम्रमंजरी स्त्रीसे सुरमंजरी नामकी कन्या हुई थी ॥३४६-३४८ ॥ उस सुरमंजरीकी श्यामलता नामकी दासी थी वह भी सुरमंजरीके साथ उसी उद्यानमें आई थी उसके पास चंद्रोदय नामका एक सुगंधित चूर्ण था उसको लेकर 'इस चूर्णके सिवाय संसारमें और कोई सुगंधित चूर्ण है ही नहीं' इस प्रकार घोषणा करती हुई वह इधर उधर घूम रही थी और अपनी स्वामिनीकी चतुरता प्रगट कर रही थी ॥ ३४९-३५० ॥ उसी नगरमें कुमारदत्त वैश्यकी विमला स्त्रीसे निर्मल गुणमाला नामकी पुत्री थी और उस गुणमालाकी चतुरताके साथ भाषण करनेवाली विद्युल्लता नामकी दासी थी । अच्छी भोहोंको धारण करनेवाली अभिमानरूपी पिशाचके फंदेमें फंसी हुई वह विद्युल्लता भी विद्वानोंकी सभामें वार वार अपनी स्वामिनीके गुणोंको प्रकाशित करती हुई यह कहती हुई घूम रही थी कि 'यह सूर्योदय नामका चूर्ण है यह इतना सुगंधित है कि भ्रमर आकर इस पर पड रहे हैं ऐसा सुगंधित चूर्ण स्वर्गमें भी नहीं मिल सकता ॥ ५१–५३ ॥ इस प्रकार उन दोनोंका हृदय ईर्पा और डाहसे भर गया और परस्पर विवाद करनेकी ठहरी । परंतु विद्याको जाननेवाले लोगोंने उसकी परीक्षा की और वतला दिया कि इन दोनोंमें चंद्रोदयचूर्ण बहुत अच्छा है ॥ ३५४–३५५ ॥ इसका विश्वास कैसे हो इसको भी मैं स्पष्ट रीतिसे दिखला देता हूं इस तरह कह

वीणां स्वकरस्था कृतादरं ॥ ३३३ ॥ तमादाय कुमारेण शास्त्रमार्गानुसारिणा । गीतमिश्रितवाद्येन मंद्रतारेण हारिणा ॥ ३३४ ॥ मधुरेण मृगाणां च मनो-
विभ्रमकारिणा । तद्विद्यासाधुवादोद्धप्रसूनार्चनभासिना ॥ ३३५ ॥ हृदि गन्धर्वदत्तेन पंचबाणप्रचोदिता । मालयालंचकाराये संमुखे किं न जायते ॥ ३३६ ॥
हीनाभासोऽभवन् केचिद्दिनदीपोपमाः परे । निशाप्रदीपसंकाशा भासमानाननास्तदा ॥ ३३७ ॥ सुघोषाहेतुनाप्राप्तकुमारा परितोषिणी । गंधर्वदत्ता तां वीणा-
मात्मन्येवमभाषत ॥ ३३८ ॥ "कुलोचिता सुघोषा त्वं मधुरा चित्तहारिणी । कुमारसंगमे हेतुर्दूतीव कुशला मम" ॥ ३३९ ॥ काष्ठांगारिकपुत्रेण चोदितेन
सुदुर्जनैः । गंधर्वदत्तामादर्तुमुद्यमो विहितस्तदा ॥ ३४० ॥ कुमारोऽपि विदित्वैतद्बलाधिकपुरःसरैः । विद्याधरैः समं गंधगजं जयगिरिश्रुतिं ॥ ३४१ ॥ आ-
रुह्य शत्रुसैन्यस्य प्रतीपमगमत्कुधा । तदा गरुडवेगाख्यो विद्याधरधराधिपः ॥ ३४२ ॥ पिता गंधर्वदत्ताया गत्वा मध्यस्थतां तयोः । उपायकुशलः शत्रुबलं
प्रशममानयत् ॥ ३४३ ॥ ततस्तयोर्विवाहेन विधायासौ समागमं । कृतार्थोऽभूत्पितुर्नान्यत्कार्यं कन्यासमर्पणात् ॥ ३४४ ॥ तयोः परस्परप्रेमप्रवृद्धसुखयोर-

शास्त्र मार्गके अनुसार था, गीत और वाजेकी आवाज दोनोंसे मिला हुआ था, गंभीर ध्वनिसे भरा हुआ था, मनोहर था, मधुर था, हिरणोंके मनको भी विभ्रम उत्पन्न करनेवाला था और उस विद्या संबंधी धन्यवाद रूपी फूलोंकी पूजासे सुशोभित था। जीवंधरका ऐसा गाना देखकर कामके वाणोंके द्वारा प्रेरणाकी हुई गंधर्वदत्ताने उसका हृदय मालासे अलंकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यके सन्मुख रहने पर क्या नहीं हो सकता है ॥ ३३४–३३६ ॥ जिनके मुख पहिले रात्रिमें दीपकके समान दैदीप्यमान थे उन लोगोंमेंसे जीवंधरके गलेमें माला पड़ते ही कितने तो कांतिहीन हो गये और अन्य कितने ही दिनमें जलाए हुए दीपकके समान निस्तेज हो गये ॥ ३३७ ॥ उस सुघोषा वीणाके द्वारा जिसे जीवंधर कुमार प्राप्त हुआ है ऐसी संतुष्ट हुई वह गंधर्वदत्ता मनमें ही उस वीणासे इस प्रकार कहने लगी कि 'हे सुघोषणा तू मधुर है, चित्तको हरण करनेवाली है और श्रेष्ठ कुलके योग्य है तू इस कुमारके समागम होनेमें मेरी अत्यंत कुशल दूतीके समान कारण हुई है' ॥ ३३८–३३९ ॥ उस समय दुष्टोंके द्वारा प्रेरणा किए हुए काष्ठांगारके पुत्र कालांगारिकने गंधर्वदत्ताको हरण करनेका उद्यम किया ॥ ३४० ॥ कुमार जीवंधर भी यह सब समाचार जानकर अधिक बलशाली विद्याधरोंको साथ लेकर तथा जयगिरि नामके गंधगज पर (गंधजातिके हाथी पर) सवार हो कर क्रोधपूर्वक शत्रुकी सेनाके सामने युद्ध करनेको चला । इतनेमें ही गंधर्वदत्ताका पिता विद्याधरोंका राजा गरुडवेग उन दोनोंका मध्यस्थ बन गया और अनेक उपायोंके जाननेमें निपुण ऐसे उस गरुडवेगने शत्रुकी सेना शांत कर दी ॥ ३४१–३४३ ॥ तदनंतर उसने उन दोनोंका विवाह कर पति पत्नी संबंध करा दिया और इस तरह वह कृतार्थ हुआ सो ठीक ही है क्योंकि

ताया मत्सुताया' स्वयंवर ॥ ३२३ ॥ त्वत्पुरे कारयेत्येनमभ्यधादधिकादर । जिनदत्तोऽपि तां नीत्वा सह राजपुरं खगैः ॥ ३२४ ॥ स्वयंवरं समुद्घुष्य मनोहरवनांतरे । मनोहरं समुत्पाद्य स्वयंवरमहागृहं॥३२५॥कलाविद्याविदग्धेषु भूगोचरमहीशिषु । सकुमारेषु यातेषु जिनपूजा न्यवर्तयत्॥३२६॥ तदा गंधर्वदत्तापि स्वयंवरसभागृह । प्रविश्य वीणामादाय सुघोषाख्यां सुलक्षणां॥३२७॥स्वरग्रामादिसद्भाव शुद्धदेशजलक्षण । गीतमिश्रं विधायैतानधरीकृत्य भूभुजः ॥ ३२८ ॥ स्थितो जीवधरस्तस्या वीणाविद्याकृत मद । निराचिकीर्षुरागत्य स्वयंवरसभागृह ॥ ३२९ ॥ अपक्षपतितान् प्रज्ञान्वीणाविद्याविशारदान् । गुणदोषपरीक्षायां नियोज्योभयसमतान् ॥ ३३० ॥ निर्दोषा दीयता वीणेत्यभ्यधात्तन्नियोगिनः । वीणास्त्रिचतुरास्तस्मै तदानीय समार्पयन् ॥ ३३१ ॥ केशरोमलवादीनां दोषाणा तासु दर्शनात् । स ताः सर्वा निराकृत्य कन्यका प्रत्यपादयत् ॥ ३३२ ॥ यदि निर्मत्सरासि त्व त्वद्वीणा दीयतामिति । अदितास्मै च ता

जिनदत्त गरुडवेगके समीप आया । उसके आनेसे गरुडवेग बहुत संतुष्ट हुआ उसने खूबही उसका आदरसत्कार किया और फिर बडे आदरके साथ कहा कि हे मित्र मेरे एक गंधर्वदत्ता नामकी पुत्री है उसे तू अपने राजपुर नगरमें लेजाकर उसका स्वयंवर कर । उसकी आज्ञानुसार जिनदत्त भी अनेक विद्याधरोंके साथ उस कन्याको राजपुर नगरमें लेगया ॥ ३२२–३२४ ॥ वहां जाकर उसने मनोहर नामके वनमें स्वयंवर होनेकी घोषणा की और एक वडाही मनोहर स्वयंवर भवन वनाया ॥ ३२५ ॥ उस स्वयंवर भवनमें कितने ही विद्या और कलाओंमें निपुण ऐसे भूमिगोचरी राजा और राजकुमार आये । तदनंतर गंधर्वदत्ताने श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की और फिर अच्छे लक्षणोंवाली सुघोषा नामकी वीणा लेकर स्वयंवर सभाभवन में पहुंची ॥ ३२६–३२७ ॥ वहांपर जाकर उसने गीतोंसे मिले हुए शुद्ध और देशसे उत्पन्न हुए स्वरके समूहोंसे वीणा वजाई और वहां पर वैठे हुए सव राजाओंको नीचा दिखलाया ॥ ३२८ ॥ उस स्वयंवर सभा भवनमें जीवंधर भी विराजमान था उसने आकर उस गंधर्वदत्ताका वीणा विद्यासे होनेवाला अभिमान सव दूर कर दिया ॥३२९॥ उसने पहिले तो जो किसी ओरके पक्षपाती न थे, विद्वान् थे, वीणा विद्यामें निपुण थे, और दोनों पक्षवालोंने जिन्हें स्वीकार किया था ऐसे लोगोंको गुण और दोषोंकी परीक्षा करनेमें नियुक्त किया और फिर उस काम में नियुक्त किये हुये लोगोंसे निर्दोष वीणा मांगी । उन लोगोंने उसे तीन चार वीणा लाकर दीं परंतु जीवंधरने उनमें केश रोम लव आदि अनेक दोष दिखलाकर वे सव वापिस करदीं तदनंतर उसने गंधर्वदत्तासे कहा कि यदि तेरे हृदयमें किसी तरहकी ईर्षा नहीं है तो तू अपनी वीणा दे । जीवंधरके इस प्रकार मांगने पर उस कन्याने भी आदर के साथ अपने हाथकी वह वीणा जीवंधरको दे दी ॥ ३३०–३३३ ॥ जीवंधरने वह वीणा लेकर गाया उसका वह गाना

विष्यति'। इति मन्त्रिवच श्रुत्वा खगेश: किंचिद् कुलः ॥ ३१२ ॥ "भविता कथमस्माकं सबंधो भूमिगोचरैः; इत्यप्राक्षीत्पुनश्चैन मन्त्रिणं मतिसागरं ॥ ३१३ ॥ सोऽप्यन्यच्च मुनेर्ज्ञातं स्पष्टमेवमभाषत । "श्रेष्ठी वृषभदत्ताख्यस्तस्मिन् राजपुरे प्रिया ॥ ३१४ ॥ तस्य पद्मावती सूनुर्जिनदत्तस्तयोरभूत् । स कदाचित्पुरे तस्मिन्नुद्याने प्रीतिवर्धने ॥ ३१५ ॥ जिन सागरसेनाख्य केवलज्ञानपूजने । भक्त्या वंदितुमागातस्त्व च तद्गुणा सम ॥ ३१६ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र सेनामा प्रीतिस्ते समजायत । देहभेदाद्विनान्येन भेदो न युवयोरभूत् ॥ ३१७ ॥ एव दिनेषु गच्छत्सु केषुचिद्वणिजा वरः । जिनदत्तमवस्थाप्य स्वस्थाने निकटे मुनेः ॥ ३१८ ॥ गुणपालाभिधानस्य लब्धबोधिरदीक्षत । सुव्रता क्षांतिसांनिध्ये संप्राप्यादाय संयम ॥ ३१९ ॥ पद्मावती च कौलीन्यं सुव्रता सान्वपालयत् । जिनदत्तोऽपि वित्तेश पितु पदमधिष्ठितः ॥ ३२० ॥ मनोरमादिरामाभि काम कामान् समन्वभूत् । स रत्नद्वीपमर्थार्थं स्वयमेवागमिष्यति ॥ ३२१ ॥ तेनैवास्मदभिप्रेतकार्यसिद्धिर्भविष्यति" इत्यसौ चागमत् केषुचिद्दिनेषु तदतिक ॥ ३२२ ॥ ततस्तुष्ट खगाधीशः कृतप्राघुणकक्रियः । मित्र गन्धर्वद-

एक श्रीमान् बुद्धिमान् पुत्र है यह गंधर्वदत्ता वीणा स्वयंवरमें उसकी स्त्री होगी। उस मंत्रीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर राजा कुछ व्याकुल हुआ और 'भूमिगोचरियोंके साथ हमारा संबंध कैसे होगा' इसप्रकार उस मतिसागर मंत्रीसे पूछने लगा ॥ ३०९–३१३ ॥ इसके उत्तरमें वह मतिसागर मंत्री मुनिराजसे जाने हुए अन्य सब समाचारों को भी स्पष्ट रीतिसे इसप्रकार कहने लगा कि उसी राजपुर नगरमें एक वृषभदत्त नामका शेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था और उन दोनोंके जिनदत्त नामका पुत्र हुआ था। किसी एक समय उसी राजपुर नगरके प्रीतिवर्द्धन नामके उद्यानमें सागरसेन नामके जिनराज विराजमान थे उनके केवल ज्ञानकी पूजा वंदना करनेके लिये वह जिनदत्त अपने पिता वृषभदत्तके साथ आया था और भक्ति पूर्वक आप भी वहां गये थे जिनदत्तको देखकर उसके साथ आपका विशेष प्रेम होगया था और शरीर अलग अलग होनेके सिवाय और किसी प्रकारका जुदापन आप दोनोंमें नहीं रहा था ॥ ३१४–३१७ ॥ इसके बाद कितनेही दिन बीत जानेपर शेठ वृषभदत्तने अपनेपद पर तो जिनदत्तको स्थापन किया और गुणपाल नामके मुनिराजके समीप जाकर आत्मज्ञान प्राप्त कर दीक्षा धारण करली ॥ ३१८–३१९ ॥ इसीप्रकार उसकी स्त्री पद्मावतीने सुव्रता नामकी आर्जिकाके समीप जाकर संयम धारण करलिया और इसतरह अच्छे व्रत धारणकर अपनी कुलीनता का पालन करने लगी। जिनदत्त पिताके पदपर विराजमान होकर सब धनका स्वामी हुआ और मनोरमा आदि अनेक स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार भोगोंका अनुभव करने लगा। वही जिनदत्त धन कमानेके लिये इस रत्नद्वीपमें स्वयं आवेगा ॥ ३२०–३२१ ॥ उसीके साथ हमारे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जायगी इस बातचीतके कितने ही दिन बाद वह

भारते खचराद्रेर्दक्षिणभागगे । गगनाच्छ्रीरिवाभासीत्पुरं गगनवल्लभं ॥३०१॥ तत्पुराधिपति खेचरेंद्रो गरुडवेगकः । दायादात्तामिमानः सन् रत्नद्वीपे पर्व पुरे ॥ ३०२ ॥ रमणीयाभिध कृत्वा नाम्नाद्रौ मनुजोदये । निविष्टवान् पुरेऽस्यासीद्धारिणी प्राणवल्लभा ॥ ३०३ ॥ तत्सुतामुपवासेन परिम्लानशरीरकां । गं-र्ववदत्तामन्येद्यु पूजयित्वा जिनेश्वरान् ॥ ३०४ ॥ शेषां माला समादाय दात तस्मै समागतां । आपूर्णयौवनां वीक्ष्य कस्मै देयेयमित्यसौ ॥ ३०५ ॥ आपृच्छत्खेचराधीशो मन्त्रिणं मतिसागरं । सोऽपि प्राक्छ्रुतमित्याह सिद्धादेशमपारधी ॥ ३०६ ॥ " जिनेंद्रानहमन्येद्युर्वंदितुं मंदरं गत । नंदने पूर्वदि-ग्भागे वने जिननिकेतन ॥ ३०७ ॥ भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वा विधिपुर सरं । तत्रस्थचारण नत्वा मत्यतविपुलादिक ॥ ३०८ ॥ श्रुत्वा धर्म जगत्पूज्य सती मत्स्वामिनः सुता । कस्य गधर्वदत्ताख्या भोगभोग्या भविष्यति ॥ ३०९ ॥ इत्यप्राक्षं तदावोचत्सोऽप्येवमवधीक्षणः । 'द्वीपेऽस्मिन्भारते हेमांगददेशे मनोहरे ॥ ३१० ॥ राजा राजपुरे सत्यधर सत्यविभूषणः । विजयास्य महादेवी तयो श्रीमान्सुधी सुत ॥ ३११ ॥ वीणास्वयंवरे तस्य दत्ता भार्या भ-

नंदाढ्यको समर्पण की । सो ठीक ही है क्योंकि कार्योंकी प्रवृत्ति अनेक तरहकी होती है ॥ २९९–३०० ॥ अथानंतर— इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिण श्रेणीमें आकाशकी शोभाके समान एक गगनवल्लभ नामका नगर शोभायमान है उसमें विद्याधरोंका स्वामी गरुडवेग राज्य करता था । दैवयोगसे उसके भाई बंधुओंने उसका अभिमान चूर्ण कर दिया इसलिये वह भागकर रत्नद्वीपमें गया और मनुजोदय नामके पर्वतपर रमणीय नामका एक उत्तम नगर बसाकर उसी में वह रहने लगा । उसकी रानीका नाम धारणी था ॥ ३०१–३०३ ॥ किसी दूसरे दिन उसकी गंधर्वदत्ता कन्याने उप-वास किया था इसलिये उसका शरीर कुछ मुरझा गया था वह श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करके पूजासे बची हुई शेष पुष्प-माला पिताको देनेके लिये आई थी उसे पूर्ण यौवनवती देखकर उस विद्याधरोंके राजाने मतिसागर नामके मंत्रीसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये । इसके उत्तरमें वह अपार बुद्धिको धारण करनेवाला मंत्री पहिली सुनी हुई बातको इसप्रकार कहने लगा ॥ ३०४–३०६ ॥ कि मैं किसी एक दिन श्रीजिनेंद्रदेवकी वंदना करनेके लिये मंदराचल पर्वतपर गया था पूर्वदिशाके नंदन वनमें जो जिनमंदिर है उसमें जाकर मैंने भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दी और विधिपूर्वक स्तुति की । वहींपर एक विपुलमति नामके चारण मुनि विराजमान थे उनको भी मैंने नमस्कार किया ॥ ३०७–३०८ ॥ उन से धर्मका स्वरूप सुनकर मैंने पूछा कि हे जगत्पूज्य मेरे स्वामीके एक गंधर्वदत्ता नामकी सती कन्या है वह किसकी पत्नी होगी ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे मुनिराज कहने लगे कि जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मनोहर हेमांगद देश के राजपुर नगरमें सत्यवचनोंसे सुशोभित राजा सत्यंधर राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम विजया था उसके

मादाय विषाणोद्धोलनीषणं ॥ २८९ ॥ तमालाराममनिर्भासितो गोचरमुपागत । गोघ्नो विघ्नः स साधूना गोमण्डलजिघृक्षया ॥ २९० ॥ तां किंवदतीमाकर्ण्य कन्यां गोदावरीं सतीं । पुत्री गोपेंद्रगोपश्रीसंभूतां गोविमोक्षण ॥ २९१ ॥ विधास्यते ददामीति काष्ठांगारिकभूभुजा । घोषणा कारितां श्रुत्वा कालागारिकसंगत ॥ २९२ ॥ जीवंधर सहायैः स्वैः परीतो व्याधसनिधिं । संप्राप्याकृष्टकोदंडनिशातशरसंततिं ॥ २९३ ॥ संदधत्सततिं मुचल्लघु शिक्षाविशेषतः । धनुर्वेदसमादिष्ट स्थानकं सर्वमाभजन् ॥ २९४ ॥ बाणपात परेषां च वचयन्मक्षु सचरन् । निकृन्तन् शत्रुबाणौघ रुंधन्नस्त्राणि भीरुषु ॥२९५॥ इति युद्ध्वा चिरं व्याधान् जित्वा वा दुर्नयानयः । जयश्रिया समालीढ सर्वाशायशसा भृश ॥ २९६ ॥ पूरयंछशिहंसासकुंदप्रसवहासिना । समागमत्पुर चंचद्ध्वजयतीविराजित ॥ २९७ ॥ देहभृते कुमारस्य शौर्याद्प्रिसवाचिते । जननेत्रालय. पेतु' कीर्तिगंधावकर्षिना ॥ २९८ ॥ तदा कुमारसंदेशादेकवाक्येन विट्सुता । गोविमोक्षणमेतेन कृतं युद्ध्वेति भूपतिं ॥ २९९ ॥ विज्ञाप्यादापयन् कन्यां नंदाढ्याय पुरोदिता । गोदावरीं विवाहेन विचित्रा कार्यवृत्तय ॥ ००॥ अथात्र

जिसे कोई सहन न कर सके औषधिके समान कटुक, निर्दय, और सीगोंके शब्दोंसे भयानक ऐसी सेना लेकर सब पशुओंको हरण करनेकी इच्छासे साधुओंको विघ्नके समान चढकर आया ॥ २८७–२९० ॥ इस बातको सुनकर राजा काष्ठांगारके द्वारा यह घोषणा दिलाई गई कि जो कोई इस भीलसे इन पशुओंको छुडावेगा उसे मैं गोपेंद्र की स्त्री गोपश्रीसे उत्पन्न हुई पुत्री सती गोदावरी नामकी कन्या दूंगा । इस घोषणाको सुनकर कालागांरिकके साथ कुमार जीवंधर अपने सब साथियोंको लेकर उन भीलोंके समीप पहुंचा । वहां जाकर उसने अपना धनुष चढाया और उसपर तेज बाण रक्खे. अच्छी शिक्षा मिलनेके कारण वह बहुत जल्दी बाणोंके समूहों को छोडता था और जहां जहां धनुष धारी दिखते थे वहीं पर वह झट पहुंच जाता था । शीघ्रताके साथ पैंतरा बदलता हुआ वह दूसरेके पडते हुए बाणोंसे भी बचता था शत्रुओंके बाण समूहोंको काटता था और भयभीत लोगोंमें शस्त्रोंको रोकता भी था, जिसप्रकार नय दुर्नयोंको जीत लेता है उसीप्रकार जीवंधरने बहुत देरतक युद्ध कर भीलोंको जीत लिया विजयलक्ष्मी स्वयं उसके समीप आपहुंची और चंद्रमा, हंसोंके पंख तथा कुंदके फूलोंको भी लज्जित करने वाले अपने यशसे अच्छीतरह सबदिशाओंको व्याप्त करते हुए उसने चंचल पताकाओंसे सुशोभित नगरमें प्रवेश किया ॥ २९१–२९७ ॥ उससमय शौर्य आदि अनेक गुणरूपी फूलोंसे सुशोभित ऐसे कुमारके शरीररूपी आमके वृक्षपर कीर्तिरूपी सुगंधके द्वारा खींचे हुए लोंगोंके नेत्ररूपी भ्रमर पड रहे थे ॥ २९८ ॥ तदनंतर 'युद्धकर इस कुमार जीवंधर ने ही पशु छुडाये हैं' इस एक वाक्यके द्वारा वैश्य पुत्रोंने राजाको खबर दी और फिर कुमारके संदेशके अनुसार वह पहिले वचन द्वारा दी हुई गोदावरी कन्या विवाहकी विधिके साथ

होऽभूदवेक्ष्यास्य योग्यतां । महाशास्त्राब्धिसंघातमतिरेष करिष्यते ॥ २७८ ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा वरिष्ठः श्रावकेष्वहं । नान्यलिंगिनमस्कारं कुर्वे केनापि हेतुना ॥ २७९ ॥ स्याद्बैमनस्य तेऽवश्य तदभावेऽतिमानिन । इति श्रेष्ठ्याह तच्छ्रुत्वा स्वसद्भावमथाब्रवीत् ॥ २८० ॥ राजा सिंहपुरस्याहमार्यवर्माभिधानक । वीरनंदिमुनेः श्रुत्वा धर्मं संशुद्धदर्शन ॥ २८१ ॥ धृतिषेणाय मद्राज्यं प्रदायादाय संयमं । तीव्रोदराग्निसंभूतमहादाहासहिष्णुकः ॥ २८२ ॥ सम्यग्दृष्टिर्गृहीतेदग्वेषस्ते धर्मबांधव । इति तद्वचनं सम्यक्परीक्ष्य वणिजां वरः ॥ २८३ ॥ सुतं समर्पयामास तस्मै त सखिभि सम । क्षेत्रे बीजमिव स्थाने योग्ये किं नार्पयेत्सुधी ॥ २८४ ॥ सद्दृष्टिस्तमादाय निसर्गमतिविस्तृतिं । अचिरेणैव कालेन विश्वविद्यातमानयत् ॥ २८५ ॥ कुमारोपि रविर्वाम्भोदान्ते विद्याभिरद्युतत् । प्राप्तैश्वर्यो द्विपो वानु संप्राप्तनवयौवन ॥ २८६ ॥ उपाध्यायोऽपि कालान्तरेणायात्संयत. शिव । तत्काले कालकूटाख्यो मुख्यो वननिवासिना ॥ २८७ ॥ मर्त्याकारं प्रपन्नो वा सूर्यरश्मिभयात्स्वय । अन्धकार. सकोदण्डशरहस्तं दुरीक्षकं । केनाप्यसह्यमायाते कद्रुक वा महौषध । निर्घृण बल

लिये मैं किसी भी कारणसे अन्य मतवालेको नमस्कार नहीं करता तथा इसके अभावमें अर्थात् नमस्कार न करनेसे अत्यंत अभिमान रखनेवाले आपको अवश्य ही बुरा लगेगा। शेठकी यह बात सुन कर वह तपसी अपना परिचय इस प्रकार देने लगा ॥ २७९–२८० ॥ मैं सिंहपुर नगरका राजा हूं और आर्यवर्मा मेरा नाम है मैंने श्रीवीरनंदि नामके मुनिराजसे धर्मका स्वरूप सुनकर शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया है तथा धृतिषेणको अपना राज्य देकर संयम धारण किया था, परंतु तीव्र जठर अग्निके (भस्मव्याधिके) उत्पन्न हो जानेसे उसकी महाजलनको मैं सह नहीं सका इसलिये हे धर्मबंधु ! सम्यग्दृष्टि रह कर ही मैंने यह वेष धारण किया है। उस तपसीकी यह बात सुन कर उस श्रेष्ठ वैश्यने उसकी अच्छीतरह परीक्षा की और फिर सब साथियोंके साथ वह पुत्र उसे समर्पण करदिया सो ठीक ही है यौंकि योग्य खेतमें बीजके समान बुद्धिमान् पुरुष योग्य स्थानमें क्या उत्पन्न नहीं कर सक्ता अर्थात् सब कुछ उत्पन्न कर सकता है ॥२८१–२८४॥ सम्यग्दृष्टि पुरुषने स्वभावसे ही अत्यंत महान् ऐसे उस जीवंधर को लेकर थोडेही दिनमें उसे सब विद्याओंके पारंगत कर दिया ॥ २८५ ॥ जिसप्रकार वर्षाके बाद सूर्य दैदीप्यमान होता है अथवा ऐश्वर्य को पाकर हाथी सुशोभित होता है उसी प्रकार नव यौवन अवस्थाको पाकर वह कुमार जीवंधर सब विद्याओंके द्वारा अत्यंत सुशोभित होने लगा ॥ २८६ ॥ वह उपाध्याय भी समयानुसार संयम धारणकर मुक्त हुआ। अथानंतर उससमय एक कालकूट नामका भीलोंका राजा था जो कि ऐसा काला था मानों सूर्यकी किरणोंके डरसे स्वयं अंधकार ही मनुष्यके आकार बनगया हो, तमाखूके घनके समान उसकी कांति थी और वह पशुहिंसक था, वह भील जिसके हाथमें धनुष बाण है, जो [illegible] जा सके पडनेपर

स परीक्षितु । वाछन्नथाचतैन मे भोजन दीयतामिति ॥ २६७ ॥ कुमारोऽपि प्रतिज्ञाय नीत्वा सार्धं तमात्मना । पितु सनिधिमाहारो मयास्मै स प्रदीयते ॥२६८॥ भवान् प्रमाणमित्यास्यत्तच्छ्रुत्वा तत्पिता मुदा । विनीतोऽय सुत श्लाघ्यो ममेत्याश्लिष्य त मुहुः ॥ २६९ ॥ पुत्र स्नानावसानेऽय मयामा साधु भोक्ष्यते । त्वया व्यपगताशकं भोक्तव्यमिति सोऽभ्यधात् ॥ २७० ॥ सहायै सह संविश्य भोक्तुं प्रारब्धवानसौ । अथार्भकस्वभावेन सर्वेमुष्णमिद कथ ॥ २७१ ॥ भुंजेऽहमिति रोदित्वा जननीम कदर्थयत् । रुदन्त त समालोक्य भद्रैतत्ते न युज्यते ॥२७२॥ अपि त्व वयसाल्पीयान् धीस्थो वीर्यादिभिर्गुणैः । अधरीकृतविश्वोऽसि हेतुना केन रोदिषि ॥ २७३ ॥ इति तापसवेषेण भाषितः स कुमारकः । शृणु पूज्य न वेत्सि त्व रोदनेऽस्मिन्गुणानिमान् ॥२७४ ॥ निर्याति महतश्लेष्मा वैमल्यमपि नेत्रयो । शीतीभवति चाहारः कथमेतन्निवार्यते ॥ २७५ ॥ इत्यास्यत्तत्समाकर्ण्य मातास्य मुदिता सती । यथाविधि सहायैस्त सह सम्यगभोजयत् ॥ २७६ ॥ ततो गधोत्कटो भुक्त्वा सनिविष्टो यथासुख । तेन तापसवेषोऽपि भुक्त्वामैवमभाषत ॥ २७७ ॥ कुमारेऽस्मिन्मम स्ने-

यह वात सुनकर पिता गंधोत्कट बहुत ही प्रसन्न हुआ और यह मेरा पुत्र वडा ही विनयवान् और प्रशंसनीय है इसप्रकार सोच कर बार बार उसे आलिंगन करने लगा ॥ २६८–२६९ ॥ फिर उसने जीवंधरसे कहा कि हे पुत्र! स्नान करनेके वाद यह मेरे साथ अच्छी तरह भोजन कर लेगा तू निःशंक होकर पहिले भोजन कर ले ॥२७०॥ इसके वाद वह जीवंधर अपने सब साथियोंके साथ भोजन करनेको बैठा भोजन परोसनेके वाद ही वह वालक स्वभाव होनेसे कहने लगा कि 'यह भोजन सब गर्म है मैं इसे कैसे खाऊं' इस प्रकार कह कर वह रोने लगा और रो रो कर माताको खेद खिन्न करने लगा। उसे रोता हुआ देखकर तपसीके भेषको धारण करनेवाले आगंतुक मनुष्यने कहा कि हे कुमार हे भद्र इस प्रकार रोना तुझे शोभा नहीं देता यद्यपि तू आयुसे छोटा है वालक है तथापि बुद्धिमान है और शक्ति आदि गुणोंसे सब संसारको नीचा दिखानेवाला है फिर भला क्यों रोता है? इसके उत्तरमें जीवंधर कहने लगा हे पूज्य सुनिये! इस रोनेमें जो गुण हैं उन्हें आप नहीं जानते हैं रोनेसे इकट्ठा किया हुआ कफ निकल जाता है नेत्रोंमें निर्मलापन आता है और इधर भोजन ठंढा हो जाता है फिर भला आप मुझे रोनेसे क्यों रोकते हैं? पुत्रकी यह बात सुन कर माता भी बहुत प्रसन्न हुई और उसने विधि पूर्वक साथियोंके साथ उसे अच्छी तरह भोजन कराया ॥ २७१–२७६ ॥ तदनंतर गंधोत्कट शेठ भोजन कर सुख पूर्वक बैठा और उसके साथ वह तपस्वी भी भोजन कर इस प्रकार कहने लगा कि इस कुमारमें मेरा बहुत स्नेह है इसकी योग्यता देखकर मैं चाहता हूं कि इसकी बुद्धि महाशास्त्र रूपी सागरके जलसे धोकर निर्मल कर डालूं ॥ २७७–२७८ ॥ उस तपसीकी यह बात सुन कर वह शेठ गंधोत्कट कहने लगा कि मैं श्रावकोंमें श्रेष्ठ हूं इस

स्फटेनैव पोषितौ वृद्धिमापतुः । तत्रैव श्रावको जातो मत्यंतविजयाह्वयः ॥ २५६ ॥ सागरो धनपालाख्यश्चतुर्थो मतिसागरः । सेनापतिः पुरोधाश्च श्रेष्ठी मंत्री च भूभुजः ॥ २५७ ॥ भार्या जयावती श्रीमती श्रीदत्ता यथाक्रमं । चतुर्थ्यनुपमा तेषां देवसेन सुतोऽपर ॥ २५८ ॥ बुद्धिषेणो वरादिश्च दत्तो मधुमुखः क्रमात् । षट् ते जीवन्धराख्येन मधुरायाः सुताः समं ॥ २५९ ॥ अवर्द्धन्त कुमारेण बालकेलीपरायणाः । जीवादयः पदार्था वा लोकात्तस्मान्महाशयात् ॥ २६० ॥ नकादिवं निजप्राणसमाः क्वाप्यनपायिन । अथ नदापि नंदाढ्यं क्रमेणासवती सुतं ॥ २६१ ॥ अन्येद्युर्नगरोद्याने कोऽपि तापसरूपभृक् । कुमारं गोलकाद्युरुबालक्रीडानुषंगिण ॥ २६२ ॥ विलोक्यास्मात्कियद्दूरं पुरं ब्रूहीति पृष्टवान् । वृद्धस्यापि तवाज्ञत्वं बालो ह्यत्र न मुह्यति ॥ २६३ ॥ वाह्ये पुरवरोद्याने बालक्रीडावलोकनात् । पुरस्यासन्नवर्तित्वं केन वा नानुमीयते ॥ २६४ ॥ धूमोपलम्भनादग्निवन्यस्येति कृतस्मितः । जीवंधरोऽवदत्तस्य चेष्टाच्छायास्वरादिक ॥ २६५ ॥ दृष्ट्वा श्रुत्वा विविच्यैष सामान्यो नैव बालकः । राजवंशसमुद्भूतिश्चिह्नैरस्यानुमीयते ॥ २६६ ॥ इति केनाप्युपायेन तद्वंश...

स्त्रियां थीं और इन्हीं चारोंके अनुक्रमसे देवसेन बुद्धिषेण वरदत्त और मधुमुख नामके पुत्र थे जिस प्रकार लोकाकाशके साथ जीवादिक छहों पदार्थ रहते हैं उसी प्रकार बालक्रीडा करनेमें तत्पर ऐसे मधुर आदि छहों पुत्र कुमार जीवंधरके ही साथ बढते थे ॥ २५६–२६० ॥ ये सब बालक रात दिन जीवंधरके प्राणोंके समान रहते थे और कभी अलग नहीं होते थे । तदनंतर गंधोत्कटकी स्त्री नंदाके भी नंदाढ्य नामका पुत्र हुआ था ॥ २६१ ॥ किसी दूसरे दिन नगरके वाहर वगीचेमें गेंद आदिसे खेल कर वे वालक्रीडा कर रहे थे वहीं पर तपसीका रूप धारण किये एक मनुष्य आया और कुमार जीवंधरको देखकर उससे पूछने लगा कि वतलाओ तो यहांसे नगर कितनी दूर है तव जीवंधर कुछ हंसकर कहने लगा कि तू वृद्ध है तो भी यह वात नहीं जानता है ऐसी जगह तो एक वालक भी नहीं भूल सकता। अरे नगरके वाहर किसी वगीचेमें वालकोंको क्रीडा करते हुए देख कर भला कौन अनुमान नहीं कर सकता कि नगर अत्यंत समीप है जिसप्रकार कि धूआं देखकर अग्निका अनुमान कर लिया जाता है उसी प्रकार यह अनुमान भी सहजमें हो सकता है। जीवंधरकी यह वात सुनकर तथा उसकी चेष्टा छाया और स्वर आदि देखकर वह तपसी विचार करने लगा कि यह कोई साधारण वालक नहीं है इसके चिन्हसे अनुमान होता है कि अवश्य ही इसका जन्म किसी राजवंशमें होना चाहिये ॥ २६२–२६६ ॥ इस प्रकार किसी उपायसे उसके वंशकी परीक्षा करनेकी इच्छासे उसने जीवंधरसे याचना की कि मुझे थोडा सा भोजन तो दो ॥ २६७ ॥ कुमार जीवंधरने भी उसे भोजन देनेकी स्वीकारता दी और वह उसे अपने साथ पिताके पास ले गया । वह पितासे कहने लगा कि मैंने इसे भोजन देनेके लिये कहा है इसमें आप ही प्रमाण हैं । जीवंधरकी

गधोत्कटाह्वय ॥ २४४ ॥ अवबोध्य तमात्मान भद्र त्व नयन मम । वर्द्धयान्यैरविज्ञातमिति तस्मै समार्पयत् ॥ २४५ ॥ सोऽपि न प्रतिगृह्णैव करोमीति कृतत्वर. । गत्वा गृह स्वकान्तायै नन्दायै तत्प्रवृत्तकं ॥ २४६ ॥ किमप्यप्रतिपाद्यास्यै कुप्यन्निव गतस्मृते । सप्राणमपरीक्ष्यैव भवत्यैतदपत्यक ॥ २४७ ॥ विसर्जनाय मह्यस्ते निर्विचारं समर्पित । आयुष्मान् पुण्यवानेप गृह्याणेति वितीर्णवान् ॥ २४८ ॥ प्रत्यैच्छत्सापि सतुष्टा कराभ्या बालभास्कर । विराजित प राजित बाल लोलविलोचना ॥ २४९ ॥ तस्यान्यदा वणिग्वर्य कृतमगलसत्क्रियः । अन्नप्राशनपर्यंते व्यधाज्जीवधरामिधा ॥ २५० ॥ अथेला तेन यत्रेण तस्मात्सा विजयाह्वया । दण्डकारण्यमध्यस्थ महान्त तापसाश्रम ॥ २५१ ॥ तत्राप्रकाशमेवैपा वसति स्म समाकुला । ता यक्षी समुपागत्य तच्छोकापनुदेच्छया ॥ २५२ ॥ तदवस्थोचितश्रव्यकथाभि ससृतेः स्थिर्ति । प्ररूप्य धर्ममार्गे च प्रत्यह समरीरमत् ॥ २५३ ॥ इत. सत्यधरान्यस्य नृपेंद्रस्य कनीयसी । भामारति परानगपताका च मनोरमे ॥ २५४ ॥ मधुरं वकुल चान्यमलमेता सुतावुभौ । ज्ञात्वा सद्धर्मसद्भाव गृहीतश्रावकव्रतौ ॥ २५५ ॥ तौ च गधो

कर कहा कि तेरी स्मरण शक्ति भी सब नष्ट हो गई है तूने विना परीक्षा किये ही और विना कुछ विचार किये ही प्राणसहित इस बालकको स्मशानमें रखनेके लिये मेरे हाथमें सौंप दिया यह बालक चिरजीवी है और पुण्यवान है ले इसका पालन कर इसप्रकार कह कर शेठने वह बालक अपनी स्त्री नंदाको सोंप दिया ॥ २४६–२४८ ॥ चंचल नेत्रोंवाली उस नंदाने भी संतुष्ट होकर उदय होते हुए सूर्यको भी जीत कर सुशोभित होनेवाले उस बालकको गोदीमें ले लिया ॥ २४९ ॥ दूसरे ही दिन उस शेठने अनेक मांगलिक क्रियाएं कर अन्नप्राशन क्रियाके बाद उस बालकका जीवंधर नाम रक्खा।

अथानंतर—वह विजया महारानी उसी यंत्र पर बैठ कर वहांसे चली और दंडक वनके भीतर जो बडा भारी तापसाश्रम है उसमें छिपकर रहने लगी। जब वह विजया शोकसे व्याकुल होती थी तव वह यक्षी आकर उसका शोक दूर करनेके लिये उसकी अवस्थाके योग्य सुनने योग्य कथाओंके द्वारा संसारका स्वरूप और स्थिति निरूपण कर उसे प्रतिदिन धर्म मार्ग पर लगाती थी ॥ २५०–२५३ ॥ इधर महाराज सत्यंधरकी भामा रति और अनंगपताका नामकी दो छोटी रानियां और थीं। इन दोनोंके मधुर और वकुल नामके दो पुत्र हुए थे। इन दोनोंने ही सद्धर्मका स्वरूप जानकर श्रावकके व्रत धारण कर लिये थे ॥ २५४–२५५ ॥ ये दोनों ही भाई शेठ गंधोत्कटके यहां ही पालन पोषण होकर बढे थे। उसी नगरमें विजयमति, सागर, धनपाल और मतिसागर नामके चार श्रावक और थे जो कि अनुक्रमसे राजाके सेनापति पुरोहित शेठ और मंत्री थे इन्हीं चारों श्रावकोंके अनुक्रमसे जयावती श्रीमती श्रीदत्ता और अनुपमा नामकी

ज्ञप्तिरीक्ष्यते । नेक्षितं स्यात्तु तेनापि क्वापि किंचित्कदाचन ॥ २३५ ॥ सत्सु भाविषु च प्रीतिरस्ति चेदस्तु वस्तुषु । ह्या प्रयाति प्रीतिं विनष्टेषु सुधी: स क ॥ २३६ ॥ इति संसारसद्भावं विचिंत्य विजये प्रिये । शुच मा गा व्यतीतेषु कृथा प्रीतिं च मा वृथा ॥ २३७ ॥ श्रीमानामुक्तिपर्यन्तं सुतोऽयमुदितोदितः । निहत्यारातिदुर्वृत्तं मोदं ते जनयिष्यति ॥ २३८ ॥ स्न हि चित्तं समाधेहि योग्यमाहारमाहर । किं वृथानेन शोकेन धिग्देहक्षयकारिणा ॥ २३९ ॥ गत्यन्तरेपि ते भर्ता न हि शोकेन लभ्यते । गतयो भिन्नवर्त्मीनः कर्मभेदेन देहिना ॥ २४० ॥ इत्यादियुक्तिमद्वाग्भि: सविषाय विशोकिका । पार्श्वे तस्याः स्वयं सास्थात्सता सौहार्दमीदृश ॥ २४१ ॥ तत्र गंधोत्कटः स्वस्य स्वयं शिशुशवं तदा । गच्छन्निक्षिप्य गंभीरमाकर्ण्यार्भकसुस्वरं ॥ २४२ ॥ जीव जीवेति जीवंधराख्या वा भाविनी वदन् । सत्यं मुनिसमादिष्टमिति तुष्टोऽवगम्य तं ॥ २४३ ॥ करौ प्रसार्य सस्नेहं बालं समुदतिष्ठपत् । देवी तत्स्वरमाकर्ण्य बुद्ध्वा

जा सकता है ॥ २३६ ॥ इस प्रकार संसारका स्वभाव चिंतवन कर हे प्रिये विजये अब तू शोक मत कर और नष्ट हुए राजामें व्यर्थ ही प्रेम मत कर ॥ २३७ ॥ यह श्रीमान् तेरा पुत्र मोक्षगामी है मोक्ष जाने पर्यंत इसका अभ्युदय बराबर प्रगट होता रहेगा और शत्रुके दुराचरणको नष्ट कर यह अवश्य ही तुझे प्रसन्न करेगा ॥ २३८ ॥ इस लिये अब तू स्नान कर चित्तको शांत रख और योग्य भोजन कर अब शरीरको नष्ट करनेवाले और धिकारनेयोग्य शोकसे क्या लाभ है ॥ २३९ ॥ अब शोक करनेसे कुछ परलोकमें भी तेरा वह पति नहीं मिल सकता, क्योंकि जीवोंको कर्मोंकी भिन्नतासे अलग अलग गतियां प्राप्त होती हैं ॥ २४१ ॥ इस प्रकार युक्तियों भरे वचनोंसे उस यत्तीने विजयाका शोक दूर किया और वह उसके समीप ही रही सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी सज्जनता ऐसी ही होती है ॥ २४१ ॥ इतने में ही वहां गंधोत्कट शेठ अपने मरे हुए पुत्रको वहां रखनेकेलिये स्वयं गया उसने पुत्रको यथास्थान रख दिया और फिर एक बालकका गंभीर शब्द सुना ॥ २४२ ॥ उसी समय उसने 'जीव जीव' ऐसा आशीर्वाद दिया मानों होनहार जीवंधर नामको ही पुकारा मुनिराजके वचनको सत्य मानकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ और उस बालकके पास पहुंच कर तथा दोनों हाथ फैलाकर बडे प्रेमसे उस बालकको उठा लिया । विजया देवीने उस गंधोत्कटका शब्द सुनकर ही उसे पहिचान लिया और फिर उसे समझाया कि हे भद्र तू इस मेरे पुत्र को अपना ही समझ कर पालन पोषण करना और इस प्रकार रखना जिससे किसीको मालूम न हो इस प्रकार कह कर उसने वह पुत्र उस शेठको समर्पण कर दिया ॥ २४३–२४५ ॥ शेठ गंधोत्कटने भी 'मैं ऐसा ही करूंगा' ये शब्द कह कर वह बालक ले लिया और बडी जल्दी अपने घर पहुंचा । उसने अपनी स्त्री नंदासे ये सब समाचार तो नहीं बतलाये परंतु कुछ क्रोध सरीखा दिखला

लितापुकैः ॥ २२५ ॥ लम्बमानैरधोवक्त्र. स्तेनैर्नानाविधै रवैः । सामिदग्ध शव वहेराकृष्याच्छिद्य खण्डश ॥ २२६ ॥ कूनिकाभिर्निशातामिर्डाकिनीमि समन्ततः । खादन्तीमिव सकीर्ण पितृणामगमद्वनं ॥२२७॥ तत्र रात्री कृतारक्षा यक्ष्या विगतबाधिका । अलब्ध तनय कान्त चौरिवामृतदीधितिं ॥२२८॥ नाभूदस्यास्ततोऽल्पोऽपि पुत्रोत्पत्तिसमुत्सव: । शोक प्रत्युत सभूतो विलोमविधिवर्धित: ॥२२९॥ सद्यो यक्षी च मुत्थाप्य समतान्मणिदीपिका । शोकाकुला विलोक्यैना दावालीढलतोपमा॥२३०॥सर्वस्थानानि दु स्थानि गत्वर्यो यौवनश्रियः। विध्वसी बधुसबधो जीवित दीपचचल॥२३१॥काय. सर्वाशुचिप्रायो हेयोऽयमिह धीमतां राज्य सर्वजगत्पूज्य विद्युद्योतसन्निभं ॥२३२॥ पर्यायेष्वेव सर्वेषा प्रीति. सर्वेषु वस्तुषु । तेऽवश्य नश्वरास्तस्मात्प्रीतिः पर्यततापिनी ॥ २३३ ॥ सत्यप्यर्थे रतिर्न स्यात्स्वय वा सति चेप्सिते । सति स्वस्मिन् रतौ चासौ त्रयाणां वा स्थिते क्षति ॥ २३४ ॥ यस्य निष्क्रममासाद्य विश्वं वि-

वह महारानी पहुंची ॥ २२४–२२७ ॥ रात्रिमें उस यक्षीने उसकी खूब रक्षा की और कोई बाधा नहीं होने दी। जिस प्रकार आकाशमें चंद्रमाका उदय होता है उसीप्रकार उसीरात्रिमें उसके सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२८ ॥ उससमय विजया महारानीके पुत्र उत्पन्न होनेका उत्सव बिल्कुल नहीं हुआ था किंतु कर्मोंकी विपरीतता बढजानेसे अर्थात् पाप कर्मोंके उदय हो आनेसे शोक उत्पन्न हुआ था ॥ २२९ ॥ जिसप्रकार दावानल अग्निसे लता मुरझा जाती है उसीप्रकार यक्षीने उस रानीको शोकसे व्याकुल देखकर शीघ्रही चारों ओर मणियोंके दीपक लगा दिये ॥ २३० ॥ तदनंतर वह यक्षी उस रानीको समझाने लगी कि देखो इस संसारमें सब जगह दुःखही दुःख भरे है, यह यौवन लक्ष्मी भी अवश्य ढल जाने वाली है, भाई बंधुओंका समागम भी नाश होनेवाला है और यह जीवन भी दीपकके समान चंचल है ॥ २३१ ॥ यह शरीर सब ओरसे अशुद्ध है इस लिये बुद्धिमानोको प्रायः छोडने ही योग्य है और समस्त संसार जिसकी पूजा करता है ऐसा यह राज्य विजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है ॥ २३२ ॥ सब जीव जो सब वस्तुओंमें प्रेम करते हैं वे उनकी पर्यायोंमें ही करते हैं और पर्यायें सब अवश्य नष्ट होनेवाली हैं इस लिये प्रेम करनेसे अंतमें अवश्य ही संताप होता है ॥ २३३ ॥ अनिष्ट पदार्थोंके रहते हुए भी उनमें प्रेम नहीं होता तथा इष्ट पदार्थोंके रहते हुए उन पर अपना अधिकार नहीं होता और अपने पदार्थोंमें प्रेम होने पर पदार्थ, इष्टपना और अधिकार इन तीनोंकी ही स्थितिका नाश हो जाता है ॥ २३४ ॥ यह ज्ञान बिना किसी क्रमके (एक साथ) संसारके समस्त पदार्थोंको जानता है परंतु उसने भी किसी समय किसी जगह किसी पदार्थको किसी स्थिर रहनेवाला नहीं देखा है भावार्थ—संसारमें सब कुछ नश्वर है ॥ २३५ ॥ यदि होनहार पदार्थमें प्रेम हो तो हो परंतु जो नष्ट हुए पदार्थोंमें भी प्रेम करता है वह बुद्धिमान कैसे कहा

२१५ ॥ रुद्रदत्तोऽगमच्छ्वभ्रगति सुचिरदु:खदा । काष्ठांगारिकमंत्री च रुद्रदत्तनिरूपितात् ॥ २१६ ॥ नृपं स्वमृत्युमाशंक्य प्रजिघांसुर्दुराशय. । द्विसहस्रमहीपालैर्दानमित्रैर्भटोत्कटैः ॥ २१७ ॥ राजगेह समुद्दिश्य संनद्धगजवाजिभि । सम सममियाति स्म तद्विदित्वा महीपति ॥ २१८॥ देवीं गरुडयंत्रस्थामपयाये प्रयत्नतः । प्राग्मंत्रिस्वीकृतात्मीयमहीपालै स्व'''र्शनात् ॥ २१९ ॥ विमुक्तमन्त्रिभिः सार्धं क्रुध्वा संप्राप्य मन्त्रिण । युद्धे सद्य' स निर्जित्य भयोन्मार्गमनीनयत् ॥ २२० ॥ तुक् कालागारिकस्तस्य सगरे भगव''''' । सक्रोधो बहुसंनद्धबलेन सहसागतः ॥ २२१ ॥ काष्ठागारिकपापोऽपि पुनस्तेनैव संगत । हत्वा युद्धे महीपालं तस्मिन्राज्येऽप्यवस्थित ॥ २२२ ॥ सविषं वाशनं मित्र कृतघ्न वा सहिंसक । धर्मं वाशर्मदं राज्यमाददे सचिवाधमः ॥ २२३ ॥ अतो विजयदेवी च यंत्रमारुह्य गारुडं । शोकाग्निदह्यमानांगी रुदती यक्षिरक्षिता ॥२२४॥ व्रणवक्त्रगलद्धारालोहिताक्रान्तशूलकैः । शूलनिर्भिन्नसंभूतवेदनालु-

दोहजार बडे योद्धा राजाओंको धन देकर अपने वश कर लिया उन सबको साथ लेकर तथा अनेक तै' २०''' वा हाथी घोडोंकों लेकर राजभवनकी ओर चला और वहां पहुंच गया। राजाने सब समाचार जानकर विजयाकर पृथ्वी गरुडयंत्र पर विठाया और बडे प्रयत्नसे उसे अपने यहांसे दूर किया। जो राजा पहिले काष्ठांगार मंत्रीके वश देख कर थे उन्होंने राजाको देखतेही काष्ठांगार मंत्रीको छोड दिया और वे राजाके वश होगये। राजा उन सब राजाकत्तर एक क्रोधपूर्वक मंत्रीके पास पहुंचा और शीघ्रही उसे युद्धमें जीतकर भयके मार्गपर पहुंचा दिया ॥ २१४–२२० ॥ ऋतुके के पुत्र कालांगारिकने युद्धमें अपने पिताके हारनेकी वात सुनी जिससे उसे वहुतही क्रोध आया और वह शी वैश्योंमें सी तैयार सेना लेकर आगया ॥ २२१ ॥ पापी काष्ठांगार भी अपने पुत्रके साथ आ मिला और राजाको मा नामके उसके राज्यसिंहासनपर वैठा ॥ २२२ ॥ उस नीच काष्ठांगार मंत्रीने विष मिले हुए भोजनके समान अथवा कृ हृदयसे समान, अथवा हिंसक धर्मके समान अकल्याण करनेवाला वह राज्य स्वीकार किया ॥ २२३ ॥ इधर विजया महादेवी गरुडयंत्र पर वैठकर चली। शोकरूपी अग्निसे उसका शरीर जल रहा था और वह रो रही थी तथापि यक्षी देवता उसकी रक्षा कर रही थी। इसप्रकार वह विजया रानी श्मशान भूमिमें जा पहुंची। उस स्मशानमें कितने ही लोगोंको शूली दी जा रही थी जिससे उनके गलोंमें घाव होगये थे और उन घावोंसे निकलते हुए रक्तसे वह शूली भीग गई थी कहीं पर उस शूलसे जो मस्तक कट गया था उससे उसको जो दुःख हुआ था उससे प्राणही लटक रहे थे कहींपर चोर नीचेकी ओर मुंहकर लटकाये जा रहे थे जिससे वे अनेक तरहसे रो रहे थे, और कहींपर डाकिनियां अधजले मुरदोंको अग्निमेंसे निकालकर तथा तेज छुरीसे उसे काटकर चारोंओरसे खा रही थीं इसप्रकारके भयानक दृश्योंसे भरे हुए उस स्मशानमें

राजकुल वैनतेययन्त्रगताभवत् । प्रायः प्रकृतपुण्येन सनिधित्सति देवताः ॥ २०६ ॥ अथागते मधौ मासे सर्वसत्वसुखावहे । पुरोहितोऽहितोऽन्येद्यु' प्रातरेव समागत' ॥ २०७ ॥ महीपतिगृहं देवीं वीक्ष्य वीतविभूषणा । उपविष्टा क्व राजेति समपृच्छत्स सादरं ॥ २०८ ॥ साप्याह सुप्तवान्राजा शक्यो नैव निरीक्षितु । इति तद्वचन सोऽपि दुर्निमित्त विभावयन् ॥ २०९ ॥ ततो निवृत्त सम्प्राप्य काष्ठागारिकमंत्रिण । भास्करोदयवेलाया गेह तत्रावलोक्य त ॥ २१० ॥ पापबुद्धिर्मिथोऽवादीद्राज्य तव भविष्यति ॥ महीपतिर्निहतव्यस्त्वयेति तदुदीरित ॥ २११ ॥ श्रुत्वा कर्मकर मन्त्रिपदे मामित्ययोजयत् । राजायम कृतज्ञो वा कथ वापकरोम्यह ॥ २१२ ॥ रुद्रदत्त! त्वया प्रज्ञावताप्येतत्सुदुर्नयं । निरूपितमिति श्रोत्रपिधान सभयो व्यधात् ॥ २१३ ॥ पुरोहितस्तदाकर्ण्य भविष्यत्सूनुरस्य ते । प्राणहारी भवेत्तत्र प्रतीकार ततः कुरु ॥ २१४ ॥ इत्येतदभिधायाशु गत्वा तत्पापपाकत । तृतीयदिवसे व्याधिपीडितो विगतासुकः ॥

उसके चित्तमें माताके उपकार करनेकी इच्छा प्रगट हुई। वह उसीसमय राजकुलमें गई और एक गरुडयंत्रका रूप बनाकर वहां पहुंची। सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः पहिले किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे देवता भी समीप आते कर्मोंके ॥ २०२–२०६ ॥ अथानंतर सब जीवोंको सुख देनेवाला वसंतऋतु आया। किसी एक दिन वह अहित क्रूर यत्नीने रुद्रदत्त नामका पुरोहित सबेरेके समय राजाके घर आया। रानीको आभूषणरहित देखकर वह बैठ गया और उसी उस रानीसे पूछा कि राजा कहां है ॥ २०७–२०८ ॥ रानीने उत्तर दिया कि राजा सोये हुए हैं उनके दर्शन अभी जा नहीं सकते। रानीके इन वचनोंको ही उस पुरोहित ने अशकुन समझा और फिर वहांसे लौटकर वह काष्ठांगार मंत्री२३१ ॥ आया। उस समय सूर्य उदय हो रहा था वहांपर काष्ठांगारको देखकर उस पापी पुरोहितने काष्ठांगारसे कासकी पूजा राज्य सब तेरा हो जायगा तू शीघ्रही राजाको मार डाल। इसप्रकार पुरोहितके वचन सुनकर भयभीत होकर प्रेम करते से कानोंको ढककर कहने लगा कि मैं राजाका एक कर्मचारी हूं मुझे राजाने मंत्री पद दिया है यद्यपि यह अवश्य ही संतज्ञ है अर्थात् मेरे किये हुए कामोंको विल्कुल नहीं जानता तथापि मैं ऐसा अपकार कैसे करूं ? हे रुद्रदत्त ! तू तो बुद्धिमान है तथापि तूने ऐसी दुर्नीतिके (अन्यायके) वचन कैसे कहे ॥ २०९–२१३ ॥ काष्ठागारके ऐसे वचन सुनकर वह पुरोहित फिर कहने लगा कि अच्छा इस राजाका होनहार पुत्र तेरा प्राणघातक होगा इसलिये तू इसका कुछ भी उपाय कर इसप्रकार कह कर वह पुरोहित शीघ्रही अपने घर चला गया परंतु उस पाप कर्मके उदयसे तीसरेही दिन वह रोगसे पीडित हुआ और मर गया। मरकर वह रुद्रदत्त बहुत दिन तक दुःख देनेवाली नरक गतिमें गया। इधर दुष्ट आशयवाले काष्ठांगार मंत्रीने रुद्रदत्तके कहे हुए वाक्योंके अनुसार अपनी मृत्युकी आशंका कर राजाको मारनेकी इच्छा की। उसने

त्वमित्याह महीपाल प्रियाप्रियं । श्रुत्वा शोकप्रमोदाभ्यां तामाविर्भूतचेतसा ॥ १९५ ॥ राज्ञी राजा ममालोक्य सद्वचसा समतर्पयत् । सुखेनैवं तयोः
काले याति कश्चित्समागतः ॥ १९६ ॥ देवलोकास्थिति क्षेमे देवीगर्भगृहे सुखं । सपुण्यो राजहंसो वा शारदाब्जसरोवरे ॥ १९७ ॥ अथान्येद्युर्वणिग्वर्यो
वास्तव्यस्तत्पुरान्तरे । धनी गन्धोत्कटो नाम शीलगुप्तमहामुनिं ॥ १९८ ॥ मनोहरवनोद्याने ज्ञानत्रयविलोचनं । विलोक्य विनयाद्भत्वा प्राप्राक्षीद्भगवन्मम ॥
१९९ ॥ बहवोऽल्पायुषोऽभूवंस्तनयाः पापपाकतः । दीर्घायुषो भविष्यंति सुता मे किमतः परं ॥ २०० ॥ इति सोऽपि दयालुत्वान्मुनीशः प्रत्यभाषत ।
बाढ़ समुपलप्स्यन्ते त्वया सुचिरजीविनः ॥ २०१ ॥ अभिज्ञानमिदं तस्य सम्यक् शृणु वणिग्वर । लप्स्यमानसुत सद्यो मृत त्यक्तु वनं गत ॥ २०२ ॥
तत्र कंचित्तनूजं त्वं लप्स्यसे पुण्यभाजनं । स समस्तां महीं भुक्त्वा तृप्तो वैषयिकैः सुखैः ॥ २०३ ॥ प्रान्ते निष्ठस्य कर्माणि मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति । इति
तद्वचनं श्रुत्वा कान्तितरसंनिभा स्थिता ॥ २०४ ॥ यक्षी मनिष्यतो राजसूनोः पुण्यप्रचोदिता । तद्गोत्रस्तो स्वयं मातुरुपकारविधित्सया ॥ २०५ ॥ गत्वा

रानीको त्रिठाया और पूछने पर कहा कि मेरे नष्ट होनेके बाद तेरे पुत्र होगा जो कि आठ लाभोंको पाकर पृथ्वी का भोक्ता होगा। रानीका चित्त ऐसे अप्रिय वाक्यको सुनकर शोक और आनंदसे भर गया। ऐसी रानीको देख कर राजाने अच्छे २ वचनोंसे समझा कर संतुष्ट किया इसके बाद उन दोनोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। तदनंतर एक देवका जीव स्वर्गसे च्युत होकर विजया रानीके गर्भमें आया और सुखपूर्वक इस प्रकार रहने लगा मानों शरद ऋतुके कमलोंसे सुशोभित सरोवरमें पुण्यवान् राजहंस ही हो ॥ १९४–१९७ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें रहनेवाले वैश्योंमें श्रेष्ठ और धनी शेठ गंधोत्कटने मनोहर नामके वनमें मति श्रुत अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले शीलगुप्त नामके महा मुनिराजको देखा उसने बडी विनयके साथ नमस्कार किया और पूछा कि हे भगवन्! मेरे पापकर्मोंके उदयसे कितने ही पुत्र थोडी आयुवाले हुए हैं। हे प्रभो! क्या आगे कोई बडी आयुवाला भी पुत्र होगा या नहीं ॥१९८–२००॥ इस प्रकार पूछने पर दयालु मुनिराज कहने लगे कि हां तेरे चिरंजीवी पुत्र भी होंगे ॥ २०१ ॥ हे वैश्यवर! चिरंजीवी पुत्र होने की बात पर विश्वास रखनेका चिन्ह यह है तू अच्छी तरह सुन। थोडे ही दिनमें तेरे मृतपुत्र होगा उसे रखनेके लिये तू वनमें जायगा वहांपर तुझे एक पुत्र मिलेगा जो कि बडाही पुण्यात्मा होगा तथा वह समस्त पृथ्वी का उपभोग (राज्य) कर इंद्रियोंके विषयसंबंधी सुखोंसे तृप्त होकर बडी प्रसन्नताके साथ सब कर्मोंको नष्ट करेगा और मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगा। इस प्रकार उन मुनिराज ने कहा दैवयोगसे वहांपर एक यक्षी बैठी थी उसने भी ये सब बातें सुनी इधर होनहार राजपुत्र के पुण्यकर्मोंने भी मानों उसे प्रेरणा की और इसीलिये उस राजपुत्रके उत्पन्न होनेके समय

छ्ये ॥ १८३ ॥ स्थित पिण्डिद्रुमस्याधो जीवधरमुनीश्वरं । ध्यानारूढं विलोक्यैतद्रूपादिषु विषक्तधी ॥ १८४ ॥ सकौतुकं समभ्येत्य सुधर्मगणनायक । भाक्तिकोऽभ्यर्च्य वन्दित्वा यथास्थानं निवेश्य तम् ॥ १८५ ॥ प्राजलिर्भगवानेष यतीन्द्र सर्वकर्मभि । मुक्तो बाद्यैव को वेति पप्रच्छ प्रश्रयाश्रय ॥१८६॥ अवबोधचतुष्कात्मा सोऽप्येवं समभाषत । खेदो न हि सतां वृत्तेर्वक्तुः श्रोतुश्च चेतस ॥ १८७ ॥ शृणु श्रेणिक जम्बूभूजविभूषितभूतले । अत्र हेमाङ्गदे देशे राजन् राजपुराधिप ॥ १८८ ॥ राजेव रंजिताशेषः सत्यधरमहीपति । विजयास्य महादेवी विजयश्रीरिवापरा ॥ १८९ ॥ सर्वकर्मचणोऽमात्यः काष्ठागारिकनामभृत् । भक्ता देवोपघातानां रुद्रदत्त पुरोहित ॥ १९० ॥ कदाचिद्विजया देवी सुप्ता गर्भगृहे सुख । मुकुट भूभुजा हेमघटाष्टकविराजित ॥ १९१ ॥ दत्त स्वस्यै श्रिताशोकतरोर्मूल च केनचित् । छिन्न परशुना जात पुनर्बालमहीरुह ॥ १९२ ॥ निशाया पश्चिमे यामे स्वप्नावेता प्रमन्नधीः । विलोक्य सा तयोर्ज्ञातु फलमभ्येत्य भूपतिं ॥ १९३ ॥ सप्रश्रया समीक्ष्यैनमन्वयुक्त मदत्यये । अष्टौ लभ्यानवाप्यान्ते क्षितेर्भोक्तारमात्मज ॥१९४॥ आप्स्यस्या-

रहे थे ॥ १८३ ॥ वहीं पर एक जगह पिंडीवृक्षके नीचे ध्यानारूढ महाराज जीवंधर मुनिराज विराजमान थे। महाराज श्रेणिक उनके रूपादिकमें आसक्त चित्त होकर कौतुकके साथ भीतर गये तथा बडी भक्तिसे सुधर्म गणधरदेव की पूजा वंदना कर अपनी जगह पर बैठ गये। तदनंतर वे हाथ जोडकर बडी विनयसे गणधरदेवसे पूछने लगे कि हे भगवन्! मानों सब कर्मोंसे आज ही मुक्त हो जांयगे ऐसे ये मुनिराज कौन हैं? ॥ १८४–१८६ ॥ इसके उत्तरमें चार ज्ञानको धारण करनेवाले भगवान गणधर देव नीचे लिखे अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके चारित्रसे वक्ता और श्रोता दोनोंके चित्तको खेद नहीं होता ॥ १८७ ॥ वे कहने लगे कि हे श्रेणिक सुन! इसी जंबू वृक्षसे सुशोभित होनेवाली पृथ्वीपर हेमांगद नामका एकदेश है और उसमें राजपुर नामका नगर है ॥ १८८ ॥ उस नगरमें चंद्रमाके समान सबको प्रसन्न करनेवाला सत्यंधर नामका राजा था और दूसरी विजयलक्ष्मीके समान विजया नामकी पट्टरानी थी ॥ १८९ ॥ उसी राजाके सब कामोंमें निपुण ऐसा काष्ठांगार नामका मंत्री था और दैवजन्य उपघातोंको दूर करनेवाला रुद्रदत्त नामका पुरोहित था ॥ १९० ॥ किसी एक समय वह विजया महादेवी भीतरके राजभवनमें सुखसे सो रही थी वहां पर उसने दो स्वप्न देखे पहिला यह कि सुवर्णके आठ घंटोंसे सुशोभित अपना मुकुट राजाने रानीको दे दिया है दूसरा रानी एक अशोकवृक्षके नीचे बैठी है परंतु किसीने वह अशोक वृक्ष कुल्हाडीसे काट डाला है और उस जगहसे दूसरा छोटा अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ है ॥ १९१–१९२ ॥ रानीने प्रसन्न चित्त होकर ये स्वप्न रात्रिके पिछले पहर देखे थे। सवेरे ही उठ कर वह उनका फल पूछनेके लिये राजा सत्यंधरके पास विनयके साथ गई ॥१९३॥ राजाने

वैरमनुरभूत्वा मित्रवीराह्व- द्युधीः ॥ १७२ ॥ मृतो वृषभसेनस्य चंदनां स समार्पयत् । पिता श्रीनागदत्तस्य धनदेवो वणिग्वर ॥ १७३ ॥ स्वर्लोकं शांतचित्तेन गतोऽत्र श्रेष्ठितां गतः । श्रीमान् वृषभसेनाख्यः कौशांव्यां कलितो गुणैः ॥ १७४ ॥ सोमिलायां कृतद्वेषा चित्रसेना चतुर्गतिं । परिभ्रम्य चिरं शांता मनाक् तत्रैव विट्सुता ॥ १७५ ॥ भूत्वा वृषभसेनस्य पत्नी भद्राभिधाभवत् । निदानकृतवैरेण न्यग्रहाच्चंदनामसौ ॥ १७६ ॥ चंदनैषाच्युतात्कल्पात्प्रत्यागत्य शुभोदयात् । द्वितीयवेद संप्राप्य पारमात्म्यमवाप्स्यति ॥ १७७ ॥ एववधविधानोक्तमिथ्याभावादिपचकात् । संचितैः कर्मभिः प्राप्य द्रव्यादिपरिवर्तनं ॥ १७८॥ संसारे पंचधाप्रोक्तदु खान्यनुभाव्यनारत। प्राप्नुवंतः कृतांतास्ये हत सीदंति जंतवः ॥१७९॥ त एव लब्धकालादिसाधन मुक्तिसाधनं । सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपोरूपमनुत्तरं ॥ १८० ॥ अभ्येत्य पुण्यकर्माणः परमस्थानसप्तके । संप्राप्य परमैश्वर्यं भवंति सुखभागिन ॥ १८१ ॥ इति तद्गौतमाधीशश्रीमद्ध्वनिरसायनात् । सभा सर्वा बभूवासौ तदैवाजरामरा ॥ १८२ ॥ अन्यदासौ महाराजः श्रेणिकाख्यः परिभ्रमन् । प्रीत्या गन्धकुटीबाह्यभास्वद्वनचतु-

वृषभसेनका सेवक है और उसीने चंदना वृषभसेनको समर्पण की थी । नागदत्तका पिता शेठ धनदेव शांतचित्तसे मर कर स्वर्ग गया था और वहांसे आकर गुणोंसे भरपूर कौशांवी नगरीमें श्रीमान वृषभसेन नामका शेठ हुआ है ॥ १७२–१७४ ॥ चित्रसेनाने पहिले सोमिलासे द्वेष किया था इसलिये वह वहुत दिन तक चतुर्गतिमें परिभ्रमण कर तथा शांत परिणामोंको धारण कर उसी कौशांवी नगरीमें वैश्य पुत्री हुई थी और भद्रा नामसे प्रसिद्ध होकर वृषभसेनकी स्त्री हुई है निदानसे जो उसने पहिले बैरका विचार किया था उसीके संस्कारसे उसने चंदनाको दुःख दिया था ॥१७५–१७६॥ यह चंदना अच्युत स्वर्गसे आकर तथा शुभोदयसे पुंवेद पाकर अवश्य ही परम मोक्ष पदको प्राप्त होगी ॥१७७॥ इसप्रकार बंधके साधनोंमें जो मिथ्यात्वादिक पांच भाव कहे हैं उनसे संचित किये हुए कर्मोंके द्वारा यह जीव द्रव्य क्षेत्र आदि पंच-परावर्तनोंको प्राप्त होता है । संसारमें निरंतर होनेवाले ये ही पांच प्रकारके सबसे वडे दुख हैं इन्हींको भोगता हुआ यह जीव कालके मुखमें पडता है और फिर अनेक तरहके दुःख भोगता है ॥ १७८–१७९ ॥ इस लिये काल लब्धि प्राप्त होना आदि जो मोक्षके साधन हैं तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप जो सबसे उत्तम मोक्षके साधन हैं उनको पाकर तथा पुण्य कर्म करते हुए सातों परम स्थानोंमें परम ऐश्वर्य पाकर ये जीव अनंत सुखी होते हैं ॥ १८०–१८१ ॥ इस प्रकार वह सब सभा गौतम गणधरकी पुण्य लक्ष्मीसे भरी हुई ध्वनिरूपी रसायनसे उसी समय अजर अमरके समान हो गई थी ॥ १८२ ॥

अथानंतर—किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक गंधकुटीके बाहर दैदीप्यमान चारों वनोंमें बडे प्रेमसे घूम

एवं श्रावकसद्धर्ममवगम्य परस्परं । जातसौहार्दचित्तानां दानपूजादिकर्मभिः ॥ १६१ ॥ काले गच्छति जीवाते सन्यासविधिमाश्रित । श्रीनागदत्त. सौधर्मकल्पेऽनल्पामरोभवत् ॥ १६२ ॥ तत्र निर्विष्टदिव्योरुभोगस्च्युत्वा ततोजनि । द्वीपेस्मिन्भारते खेचराचले नगरे वरे ॥ १६३ ॥ शिवकरे तधीशस्य विद्याधरधरेशिन । सुत पनववेगस्य सुवेगाया सुखावह; ॥ १६४ ॥ मनोवेगोन्यजन्मोथत्स्नेहेन विवशीकृत । अनैषीच्चदनामेनामतिस्नेहोऽपथ नयेत् ॥ १६५ ॥ स एषोभ्यर्णभव्यत्वादमुष्मिन्नेव जन्मनि । जिनाकृतिं समादाय संप्राप्स्यत्यग्रिम पद ॥ १६६ ॥ ततः श्रीनागदत्तस्य नाकलोकात्कनीयसी । इहागत्याभवत्कान्ता मनोवेगा महाद्युति ॥ १६७ ॥ पलाशनगरे नागदत्तहस्तमृत खगः । सुरलोकादभूत्सोमवंशे त्वं चेटको नृपः ॥ १६८ ॥ माता श्रीनागदत्तस्य धनमित्रा दिव गता । ततस्च्युत्वा तवैवासीत्सुभद्रेय मन प्रिया ॥ १६९ ॥ यासौ पद्मलता सापि कृतोपवसना दिव । गत्वागत्याजनिष्टेयं चंदना नदना तव ॥ १७० ॥ नकुल ससृतिं भ्रात्वा सिंहाख्योभूद्वनेचर । प्राग्जन्मस्नेहवैराभ्यामवधीष्ट स चदना ॥१७१॥ सहदेवोऽपि सभ्रम्य ससारे रुचिरं पुन । कौशाम्व्या

बुद्धिमानने यात्राके पहिले कही हुई श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की ॥ १५९–१६० ॥ इस प्रकार सबने श्रावकोंका सद्धर्म स्वीकार किया, परस्पर सबके चित्त मित्ररूप हो गये और दान जिनपूजा आदि उत्तम कर्मोंके द्वारा सबका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । आयुके अंतमें नागदत्तने समाधि मरण धारण कर शरीर छोडा जिससे वह सौधर्मस्वर्गमें वडी ऋद्धिका धारक देव हुआ ॥ १६१–१६२ ॥ वहा पर उसने वडे वडे दिव्य भोगोंका उपभोग किया और फिर वहांसे च्युत हो कर इसी द्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतके शिवंकर नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा पवनवेगकी रानी सुवेगासे यह अत्यंत सुखी मनोवेगा हुआ है । दूसरे जन्मके उठे हुए स्नेहसे विवश होकर इसने चंदनाका हरण किया था सो ठीक ही है क्योंकि अत्यंत स्नेह कुमार्गमें ले ही जाता है ॥ १६३–१६५ ॥ यह आसन्न भव्य है और इसी जन्ममें दिगंवर मुनि होकर परम मोक्ष स्थान प्राप्त करेगा ॥ १६६ ॥ नागदत्तकी छोटी बहिन अर्थस्वामिनी स्वर्गसे यहां आकर यह महाकांतिको धारण करनेवाली मनोवेगा हुई है ॥ १६७ ॥ जो विद्याधर पलाश नगरमें नागदत्तके हाथसे मारा गया था वह स्वर्गसे आकर सोमवंशमें तू राजा चेटक हुआ है ॥ १६८ ॥ धनमित्रा नामकी जो नागदत्तकी माता थी वह स्वर्ग गई थी और वहांसे आकर यह तेरी मनको प्यारी सुभद्रा रानी हुई है ॥ १६९ ॥ जो नागदत्तकी स्त्री पद्मलता थी वह अनेक उपवास कर स्वर्ग गई थी और वहांसे आकर यह चंदना नामकी तेरी पुत्री हुई है ॥ १७० ॥ नकुल संसारमें परिभ्रमण कर सिंह नामका भील हुआ है और पहिले जन्मके स्नेह तथा वैरसे उसने चंदनाको तंग किया था ॥१७१॥ सहदेव भी संसारमें बहुत दिन तक परिभ्रमण कर कौशांबी नगरीमें मित्रवीर नामका बुद्धिमान वैश्यपुत्र हुआ है जो कि

त्सम्प्रगत । क वा गत त्वमित्येष तुष्टः पृष्टो महीभुजा ॥ १५१ ॥ भागयाचनयात्रादि सर्वमामूलतोऽब्रवीत् । तदाकर्ण्य नृपः क्रुध्वा प्रवृत्त श्रेष्ठिनिग्रहे ॥१५२॥ न युक्तमिति निर्बंधो नागदत्तेन वारितः । दत्वा श्रेष्ठिपदं तस्मै सारवित्तसमन्वितं ॥ १५३ ॥ विवाहविधिना पद्मलतामपि समार्पयत् । अथात्मससदि व्यक्तमवनींद्रोऽभ्यधादिदं ॥ १५४ ॥ पश्य पुण्यस्य माहात्म्य राक्षसाद्यन्तरायतः । अप्येत्यायं महारत्नान्यात्मीकृत्यागत सुखं ॥ १५५ ॥ पुण्याज्जलायते वन्हिर्विषमप्यमृतायते । मित्रायंते द्विषः पुण्यात्पुण्याच्छाम्यंति दूरुजः॥१५६॥दुर्विधः सधन पुण्यात् पुण्यात्स्वर्गश्च पण्यते । तस्मात्पुण्यं विचिन्वतु हतापत्सम्पदैषिण ॥ १५७ ॥ जिनोक्तधर्मशास्त्रानुयानेन विहितक्रियाः । इति सभ्याश्च तद्वाक्य वहवश्चेतसि व्यधुः ॥ १५८ ॥ अतः श्रीनागदत्तोपि सजातानुशय तदा । क्षमस्व मे कुमारेति प्रणमत स्वपुत्रक ॥ १५९ ॥ सभाया श्रेष्ठिन मैवमित्युत्थाप्य प्रियोक्तिभिः । सतोष्य जिनपूजां च प्राक् प्राक्तामकरोत्कृती ॥ १६० ॥

दिसे अंत तक सब कथा कह सुनाई और फिर उसके साथ अच्छे रत्न भेट लेकर बड़े प्रेमसे महाराजके दर्शन किये। महाराजने उसे देखकर पूछा कि नागदत्त तुम कहांसे आये और कहां चले गये थे इस प्रकार महाराजके पूछने पर संतुष्ट होकर उस नागदत्तने अपना भाग मांगने और उसके लिये यात्रा करने आदिके सब समाचार आदिसे अंततक कह सुनाए। उसे सुनकर राजाको भी क्रोध हुआ और वह शेठको दंड देनेके लिये तैयार हो गया ॥ १५०–१५२ ॥ परंतु ऐसा करना ठीक नहीं है इस तरह समझा कर नागदत्तने उसे रोक दिया। राजाने वहुतसा अच्छा धन देकर नागदत्तका शेठको पद दिया और विधिपूर्वक विवाह कर वह पद्मलता भी उसे समर्पण कर दी। तदनंतर राजाने सभामें बैठकर सब लोगोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि देखो पुण्यका माहात्म्य कैसा है यह नागदत्त राक्षस आदि अनेक विघ्नोंको दूर कर तथा अनेक महारत्नोंको लेकर सुख पूर्वक यहां आया है ॥ १५३–१५५ ॥ इसलिये कहना पड़ता है कि पुण्यकर्मके उदयसे अग्नि भी जल हो जाती है, विष भी अमृतके समान हो जाता है पुण्यसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं और वडे वडे रोग तथा आपत्तियां भी पुण्यसे शांत हो जाती हैं ॥१५६॥ पुण्यसे दरिद्री भी सधन हो जाता है और स्वर्गकी प्राप्ति भी पुण्यसे ही होती है इसलिये आपत्तियोंको दूर करने और संपदाओंकी इच्छा करनेवालोंको श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्म शास्त्रोंके अनुसार सब क्रियाओंका अनुष्ठानकर सदा पुण्यका संपादन करना चाहिये। राजाका यह उपदेश सभाके सब सभासद लोगोंने अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण किया ॥ १५७–१५८ ॥ इसके वाद शेठको भी वहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने सभामें ही पुत्रको नमस्कारकर क्षमा मांगी और कहा कि हे कुमार! मुझे क्षमाकर। परंतु नागदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और स्वयं खडे होकर वडे मीठे वचनोंसे पिताको संतुष्ट किया और फिर उस

व्यधात्सज्ञानलोचन' । इतः श्रीनागदत्तोपि विलोक्य जिनमंदिरं ॥ १४० ॥ किंचित्प्रदक्षिणीकृत्य निर्षादान्याहमित्यदः । प्रविश्य निहितस्तोत्रः साचिनस्तत्र संस्थितः ॥ १४१ ॥ तदा विद्याधर कश्चित् दृष्ट्वा ज्ञातवृत्तकः । जैनः सवित्त नीलात्माद् द्वीपमध्यान्मनोहरे ॥ १४२ ॥ वनेवतार्य सुस्थाप्य समापृच्छ्यादरान्वित । यथेष्टमगमत्मा हि धर्मवत्सलता सता ॥ १४३ ॥ तत्समीपेनुजाग्रामे वसंत्यस्यैत्य सादरं । प्रत्यग्रहीद्धन तत्र सोपि निक्षिप्य सुस्थितः ॥ १४४ ॥ अथोपगम्य तं स्नेहात्स्वानुजादिसनाभय । कुमारामिनवां कन्या नकुलस्य जिघृक्षुणा ॥ १४५ ॥ श्रेष्ठिना वयमाहूता नि स्वस्वाद्रिक्तपाणय: । कथ तत्र व्रजिष्याम इत्यत्याकुलचेतसः ॥ १४६ ॥ अथ सर्वेपि जाताः स्म इति ते न्यगदन्नसौ । तच्छ्रुत्वा साररत्नानि निजरत्नकदवकात ॥ १४७ ॥ तेभ्योधिक मुदा दत्वा ममागमन मम । ददध्व संनिवेद्यैता कन्यायै रत्नमुद्रिका ॥ १४८ ॥ इत्युक्त्वा स्वयमित्वानुशीलदत्तगुरु मिथ । वदित्वा रक्षसूनु च दृष्ट्वा सन्मित्रमात्मन' ॥ १४९ ॥ आमूलात्कार्यमाख्याय सह तेन ततो गतः । साररत्नमहीपाल सानुराग विलोक्य ता ॥१५०॥ दृष्ट्वा भवानहो नागदत्त! कस्मा-

इस प्रकार ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनिराजने उसे आश्वासन दिया। उधर श्रीनागदत्तने एक जिनमंदिर देखा, उसकी थोडीसी प्रदक्षिणा दी और उसमें भीतर जाकर बैठनेका विचार किया। भीतर जाकर उसने भगवानकी स्तुति की और फिर चितातुर होकर वह वहीं बैठ गया ॥ १४०—१४१ ॥ दैवयोगसे वहीं पर एक जैनी विद्याधर आ निकला उसने नागदत्तके सब समाचार जानकर उसे उस द्वीपसे धनसहित उठाकर मनोहर वनमें जा उतारा। वह नागदत्तको वहां उतार कर और बडे आदरसे आज्ञा लेकर अपनी इच्छानुसार चला गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी धर्मवत्सलता यही कहलाती है ॥ ४२—४२ ॥ उस मनोहर वनके समीप ही नंदीग्राम था जहां उसकी वहिन व्याही थी वहीं पर वह नागदत्त पहुंचा, वहिनने उसका आदर सत्कार किया और नागदत्त अपना सब धन एक जगह रख कर सुखसे रहने लगा ॥ १४४ ॥ तदनंतर किसी एक दिन नागदत्तको वहिनके ससुर आदि संबंधियोंने आकर कहा कि हे कुमार शेठ नई आई हुई कन्याका विवाह अपने पुत्र नकुलके साथ करना चाहता है उसने हमको भी बुलाया है परंतु हमारे पास धन नहीं है रीते हाथ हमलोग कैसे जाय इस प्रकार व्याकुल चित्त होकर सब संबंधियोने आकर कहा। उनकी यह बात सुन कर नागदत्तने अपने रत्नोंके भंडारमेंसे अच्छे २ रत्न निकाल कर बडी प्रसन्नतासे उन्हें दिये और उन्हें समझा दिया कि तुम उस कन्याके पास जाकर उसे यह रत्नोंकी अंगूठी देना और उससे मेरे आनेके सब समाचार कहना ॥ १४५—१४८ ॥ इस प्रकार संबंधियोंको समझा कर वह स्वयं भी चला सबसे पहिले शीलदत्त गुरुके समीप जाकर उनकी वंदना की और फिर अपने मित्र कोतवालके पुत्र दृढरथके समीप पहुंचा ॥ १४९ ॥ नागदत्तने दृढरथसे आ-

१२८ ॥ प्राघूर्णकोहं पृष्ट्वेमां कन्यका शोकविह्वलां । तद्भयाद्भव्य दास्यामीत्यविष्कृतपराक्रमः ॥ १२९ ॥ अबुद्ध्वा धर्मभक्तं तत्कृतवान्कार्यमीदृशं । त्यक्तं सद्धर्मवात्सल्य सारं जैनेंद्रशासने ॥ १३० ॥ जैनशासनमर्यादामतिलंघयतो मम । अपराधं क्षमस्वेति तदुक्तमवगम्य सः ॥ १३१ ॥ किं कृतं भवतापूर्वं मदुपार्जितकर्मणः । परिपाकविशेषोयमिति पंचनमस्क्रिया ॥ १३२ ॥ श्रीनागदत्तसंप्रोक्ता भावयन्नाकमापिवान् । ततः पद्मलतां कन्या धनं च पितृसंचितं ॥ १३३ ॥ समाकर्षणरज्वावतार्य भ्रातुर्निजस्य तौ । नकुलः सहदेवश्च रज्जुमाकर्षणोज्झिता ॥ १३४ ॥ अदत्त्वा पापबुद्ध्यास्मान्मक्षु स्वपुरमीयतुः । छिद्रमासाद्य तन्नास्ति दायादा यन्न कुर्वते ॥ १३५ ॥ तौ दृष्ट्वा नागदत्तोपि युवाभ्यां सह यातवान् । किं नायादिति भूपेन साशंकेन जनेन च ॥ १३६ ॥ पृष्टौ सहैव गत्वासौ पृथक्क्वापि गतस्ततः । न विद्मोतिव्यघत्तां तावनुजावप्यपह्नवं ॥ १३७ ॥ श्रीनागदत्तमातापि व्याकुलीभूतचेतसा । शीलदत्तगुरुं प्राप्य समपृच्छत् तुजः कथां ॥ १३८ ॥ सोपि तत्संभ्रमं दृष्ट्वा कारुण्याहितमानसः । निर्विघ्नं ते तनूजो द्राग्मामैषीरागमिष्यति ॥ १३९ ॥ इत्याश्वासं मुनिस्तस्था

वातको जाने विना ही मुझसे यह ऐसा कार्य वन गया है और मैंने श्रीजिनेंद्रदेवके शासनमें कहे हुए सारभूत धर्मवात्सल्यको छोड दिया है ॥ १३० ॥ हे भव्य जैनशासनकी मर्यादाका उल्लंघन होकर मुझसे यह अपराध वन गया है इसलिये आप क्षमा कर दीजिये । नागदत्तकी कही हुई इन सव वातोंको जानकर वह विद्याधर कहने लगा कि इसमें आपने क्या किया यह सव मेरे पहिले किये हुए कर्मोंके विशेष उदयका फल है । इसप्रकार कहकर तथा नागदत्तके द्वारा सुनाये हुए पंचनमस्कार मंत्रकी भावना करता हुआ वह विद्याधर शरीर छोडकर स्वर्ग पहुंचा । तदनंतर पद्मलता कन्या और पिताके कमाये हुए धनको उस रस्सीसे पारकर जहाजपर पहुंचाया तथा नकुल सहदेव दोनों भाइयोंको भी पहुंचाया । नकुल सहदेव ने जहाजपर पहुंचकर पापवुद्धिसे वह खींचनेकी रस्सी नागदत्तको नहीं दी और वे दोनों भाई जहाजको लेकर शीघ्रही अपने नगरमें जा पहुंचे । सो ठीक ही है क्योंकि छिद्र पाकर ऐसा कोई काम नहीं है जिसे दायाद न कर सकें ॥ १३१–१३५ ॥ उन दोनों भाइयोंको देखकर वहांके राजा को और सव साधारण लोगोंको कुछ शंका हुई और इसीलिये उन सवने पूछा कि नागदत्त तुमलोगोंके साथ गया था फिर वह साथ आया क्यों नहीं? इसके उत्तरमें उन दोनोंने कहा कि वह गया तो साथ था परंतु वहां जाकर कहीं अलग चला गया इसलिये हमें उसकी मालूम नहीं है इसप्रकार उन्होंने वह वात छिपा ली ॥ १३६–१३७ ॥ अपने पुत्रके न आनेकी खवर सुनकर नागदत्तकी माता चित्तमें वहुत ही व्याकुल हुई और शीलदत्तगुरुके समीप जाकर उसने अपने पुत्रकी कथा पूछी ॥ १३८ ॥ वे मुनिराज भी उस सव संभ्रमको देखकर करुणासे भरपूर मनसे कहने लगे कि तू डरे मत तेरा पुत्र निर्विघ्न रीतिसे शीघ्र ही आवेगा ॥ १३८-१३९ ॥

त्मनः । प्रमादाच्च करोति स्म करे तद्रन्ध्रवीक्षणात् ॥ ११९ ॥ राक्षसेन हतस्तस्मात्पुरं शून्यमभूदिद । मत्सुतानिर्विशेषेते मा मत्त्वाऽमारयन् गत ॥१२० ॥ आगंतासौ पुनर्नेतुमिति तद्वचनश्रुतेः । वैश्यः खड्ग तमादाय गोपुरांतहित खग ॥ १२१ ॥ आयातमवधीत्सोपि पठन् पंचनमस्कृति । न्यपतन्मेदिनीभागे समाहितमतिस्तदा ॥ १२२ ॥ श्रुत्वा श्रीनागदत्तोपि नमस्कारपदावलीं । मिथ्या मे दुष्कृत सर्वमित्यपास्यायुध निज ॥ १२३ ॥ कुतो धर्मस्तवेत्येवमप्राक्षीत्सव्रण खग । सोपि श्रावकपुत्रोह क्रोधादेतत्कृत मया ॥ १२४ ॥ क्रोधान्मित्र भवेच्छत्रुः क्रोधाद्धर्मो विनश्यति । क्रोधाद्राज्यपरिभ्रंश. क्रोधान्मोमुच्यतेसुसि. ॥ १२५ ॥ क्रोधान्मातापि सक्रोधाभवेत् क्रोधादधोगतिः । तत श्रेयोर्थिना त्याज्य स सदेति जिनोदित ॥ १२६ ॥ तज्जानन्नपि पापेन कोपेनाह वशीकृत । प्राप्तस्तत्फलमत्रैव परलोके किमुच्यते ॥ १२७ ॥ इत्यात्मान विनिंद्यैन कुतस्त्यस्त्व व्रजेः क वा । इत्यवोचत्प्रभोगस्त्व वैश्योप्येवमुदाहरत् ॥

मंत्रसे सिद्ध किये हुए खड्गको कभी अलग नहीं रखता था परंतु प्रमादसे एकवार वह अलग रख दिया और छिद्र देखकर राक्षसने उसे मारडाला इसलिये यह नगर फिरसे सूना होगया है। उसने मुझे पुत्रीके समान माना और मुझे बिना मारे ही चला गया ॥ ११९–१२० ॥ अब वह मुझे लेनेके लिये फिर आवेगा । उस कन्याकी यह बात सुनकर वह वैश्य उस खड्गको लेकर नगरके बडे दरवाजेके भीतर जा छिपा। ज्योंही वह राक्षस विद्याधर वहांसे निकला त्योंही उसने उस तलवारसे उसे मार दिया। वह विद्याधर उसी समय पंच नमस्कारमंत्रका पाठ करता हुआ चित्तमें समाधि धारणकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १२१–१२२ ॥ पंच नमस्कार मंत्रको सुनकर नागदत्त विचार करने लगा कि हा! मैंने यह सब पाप मिथ्या ही किया उसने झट अपनी तलवार रखकर उस घाव लगे हुए विद्याधरसे पूछा कि तेरा धर्म क्या है इसके उत्तरमें वह विद्याधर कहने लगा कि मैं भी श्रावकपुत्र हूं मैंने यह सब (नगरका नाश) क्रोधसे किया है ॥ १२३–१२४ ॥ क्रोधसे मित्र शत्रु हो जाता है क्रोधसे धर्म नष्ट हो जाता है क्रोधसे राज्य भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधसे प्राणतक छूट जाते हैं ॥ १२५ ॥ क्रोधसे माता भी क्रोध करने लगती है, क्रोधसे अधोगति प्राप्त होती है इसलिये आत्म-कल्याण चाहनेवालोंको वह क्रोध सदाके लिये छोड देना चाहिये ऐसा श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है ॥ १२६ ॥ यद्यपि मैं ये सब बातें जानता था तथापि पापी क्रोधने मुझे अपने वश कर लिया और उसका फल मुझे यहां ही मिल गया फिर भला परलोककी तो बात ही क्या है ॥ १२७ ॥ इसप्रकार अपनी निंदा करता हुआ वह विद्याधर नागदत्तसे पूछने लगा कि तू कहांसे आया और कहां जायगा। तब वह वैश्य कहने लगा कि मैं एक पाहुना हूं शोकसे व्याकुल हुई इस कन्याको देखकर राक्षसके भयसे इसकी रक्षा करनेके लिये यह पराक्रम कर बैठा हूं ॥ १२९ ॥ 'तू धर्मभक्त है' इस

जीव पुत्रावतिष्ठेति प्रियैः प्रीणयतिस्म सः । सोपि रत्नादितद्वस्तुभागं देहीत्ययाचत ॥ १०८ ॥ पिता तु पुत्र मद्वस्तु पलाशद्वीपमध्यगे । सि.. पुरे पलाशा-
ख्ये तत्स्वयानीय गृह्यता ॥ १०९ ॥ इत्याख्यन्नकुलेनामा भ्रात्रादायादकेन सः । सहदेवेन चासेष्टसिद्धिर्यदि भवेदह ॥ ११० ॥ प्रत्यागत्य ..गानि पूजा-
जैनेश्वरीमिति । आसास्यानुविनान्तुसो कृतात्मगुरुवंदनः ॥ १११ ॥ आरुह्य नावमंभोधिमवगाह्य व्रजन् द्रुतं । पलाशपुरमासाद्य तत्र स्थापितपोतकः ॥
११२ ॥ पुरं विगतसंचारं किमेतदिति विस्मयात् । ततः प्रसारितायामिरज्जुभिस्तटमासवान् ॥११३॥ प्रविश्य तत्पुरं तत्र कन्यामेकाकिनीं स्थितां । एकत्रा-
लोक्य तामाह क्वैवमगरं कुतः ॥ ११४ ॥ जातमीदृक् त्वय का चेत्यगदत्साब्रवीदल । प्रागेतन्नगरेशस्य दायादः कोपि कोपनः ॥ ११५ ॥ विद्याराक्षस-
विद्यासंप्राप्तो राक्षसाभिधा । पुरं पुराधिनाथं च सनिर्मूलं व्यनीनशत् ॥ ११६ ॥ तद्वंशजेन केनापि समंत्रसाधितासिना । कृतरक्षं तथैवैतत्स्थापितं न-
गरं पुनः ॥ ११७ ॥ पतिर्महाबलोऽस्य कांचनादिलता प्रिया । तस्यैतयोरहं पद्मलताभूव सुताख्यया ॥ ११८ ॥ कदाचिन्मत्पिता मंत्रसाधितं खड्गमा-

रण कमलोंको प्रणाम किया धनदेवने उसे देखकर 'हे पुत्र चिरंजीव हो यहां बैठ' इस तरहके मीठे वचनोंसे उसे प्रसन्न किया। तदनंतर नागदत्तने अपने भागकी रत्नादिक वस्तुएं मांगी ॥ १०७–१०८ ॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र! मेरी सब चीजें पलाशद्वीपके मध्यमें बसनेवाले पलाश गांवमें रक्खी हैं वहांसे जाकर तुम ले लो ॥ १०९ ॥ पिता के इस प्रकार कहने पर वह नागदत्त अपने भागीदार (दायाद) नकुल और सहदेव दो भाइयोंके साथ नावमें बैठकर समुद्रके भीतर चला। चलते समय उसने आशा प्रगटकी कि यदि मेरी इष्ट सिद्धि हो गई तो लौट कर मैं श्रीजिनदेव की पूजा करूंगा ऐसी आशा कर उसने श्रीजिनेंद्रदेवको नमस्कार किया और फिर गुरुवंदना कर वह वहांसे चला। शीघ्रही वह पलाशपुरमें जा पहुंचा और वहां पर अपना जहाज खडा किया जहाज परसे ही उसने देखा कि नगरमें किसी भी मनुष्यके आने जानेका संचार नहीं है यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ और वह अपनी लंबी रस्सी फेंककर किनारे पर पहुंचा ॥ ११०–११३ ॥ उसने नगरके भीतर जाकर एक जगह अकेली बैठी हुई एक कन्याको देखा और पूछा कि यह नगर ऐसा कैसे हो गया है और तू कौन है तब वह कन्या कहने लगी कि किसी एक समय इस नगरका अधिकारी बडा ही क्रोधी था ॥ ११४–११५ ॥ वह राक्षस नामकी विद्याको सिद्ध कर राक्षस नामसे ही प्रसिद्ध हो गया था और उसने इस नगरको तथा नगरके राजाको समूल नष्ट कर दिया था ॥ ११६ ॥ उसके वंशमें होनेवाले किसी पुरुषने मंत्रपूर्वक एक तलवार सिद्धकी थी उसने उसी तलवारसे सुरक्षित रह कर फिरसे यह नगर बसाया था ॥ १७ ॥ इसी नगरके राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे मैं पद्मलता नामकी पुत्री हुई थी ॥ १८ ॥ मेरा पिता उस

द्रोहिनी सती । धनमित्रा तयो सूनुर्नागदत्तो महाबलः ॥ ९६ ॥ तनूजा चानुजास्यासीदर्थस्वामिन्यमिरूयया । पलाशद्वीपमध्यस्यपलाशनगरेशिन- ॥ ९७ ॥ महाबलमहीशस्य कनकादिलताभवत् । काचनादिलतायाश्च ख्याता पद्मलता सुता ॥ ९८ ॥ उपयम्यापरा श्रेष्ठी श्रेष्ठिनीं विससर्ज तां । सापि देशातरं गत्वा समुता जातसंविदा ॥ ९९ ॥ शीलदत्तगुरो पार्श्वे गृहीतश्रावकव्रता । सूनुमप्यर्पयामास शास्त्र भ्यासनिमित्ततः ॥ १०० ॥ सोपि कालांतरे बुद्धिनौनिस्तीर्ण-श्रुतांबुधेः । सत्कविश्च स्वयभूत्वा शास्त्रव्याख्यातसद्यशा ॥ १०१ ॥ नानालंकाररम्योक्तिसुप्रसन्नसुभाषितै । विशिष्टजनचेत सुप्रल्हादमुदपादयत् ॥१०२॥ तत्रैवारक्षिपुत्रेण दृढरक्षेण संगतिं । कृत्वा तत्पुरशिष्टानां शास्त्रव्याख्यानकर्मणा ॥ १०३ ॥ उपाध्यायत्वमध्यास्य तत्राप्तवसुना निजा । जननीं च स्वसारं च स्वय च परितोषयत् ॥ १०४ ॥ स्वमातुलानीपुत्राय नदिग्रामनिवासिने । कुलवाणिजनाम्ने स्वामनुजामदितादरात् ॥ १०५ ॥ स कदाचिदुपश्लोकपूर्वकं क्षितिनायक । विलोक्य तत्प्रसादाप्तसम्मानधनसम्मद ॥ १०६॥ कृतमातृपरिप्रश्नः पितुरागत्य सन्निधिं । प्राणमत्तत्पदाभोज धनदेव समीक्ष्य त ॥ १०७॥

वाले पलाश नगरमें राजा महाबल राज्य करता था वह कनकलता मरकर उस राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे पद्मलता नामकी पुत्री हुई ॥ ९७–९८ ॥ किसी एक समय उज्जयनी नगरीके शेठ धनदेवने अपना दूसरा विवाह कर लिया और पहिली स्त्री धनमित्राका परित्याग कर दिया इस लिये वह धनमित्रा अपने पुत्र सहित देशांतर चली गई। किसी एक समय ज्ञान होने पर उसने श्रीशीलगुप्त नामके मुनिराजके समीप श्रावकके व्रत धारण किये और शास्त्रोंका अभ्यास करनेके लिये अपना पुत्र उन मुनिराजको सोंप दिया ॥ ९९–१०० ॥ समयानुसार वह पुत्र भी बुद्धिरूपी नावसे शास्त्ररूपी महासागरके पार हो गया वह स्वयं अच्छा कवि बन गया और शास्त्रोंकी व्याख्या कर उसने अच्छा यश उत्पन्न किया ॥ १०१ ॥ वह अनेक तरहके अलंकारोंसे मिले हुए सुंदर वचन कह कर तथा प्रसन्नताके साथ सुभाषित कहकर विशेष लोगोंका (बडे आदमियोंका) चित्त सहजमें ही प्रसन्न कर देता था ॥ १०२ ॥ वहांके कोटपालके पुत्र दृढरथके साथ उसकी मित्रता हो गई और उसीके द्वारा उसने उस नगरके शिष्ट मनुष्योंको शास्त्रोंकी व्याख्या सुनाकर उपाध्याय पद प्राप्त किया। वहां पर उसने धन भी खूब कमाया और अपनी माता तथा बहिनको खूब संतुष्ट किया और वह स्वयं भी संतुष्ट हुआ ॥ १०३–१०४ ॥ नंदी नामके गावमें रहनेवाले कुलवाणिज नामके अपनी मामीके पुत्रके साथ बडे आदरसे उसने अपनी बहिनका विवाह कर दिया ॥ १०५ ॥ किसी एक समय उसने बहुतसे नये श्लोक बनाकर राजाको सुनाये जिससे वहांका राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस नागदत्त कविको आदर सत्कार कर त[illegible] धन देकर बहुत प्रसन्न किया ॥ १०६ ॥ किसी एक समय माताकी सलाहसे वह अपने पिताके समीप गया और [illegible] के च-

८४ ॥ अभ्यर्णे यौवने यावद्विवाहसमयो भवेत् । तस्मात्पृथक्त्वसेदस्मादिति मातुलवाक्यत ॥ ८५ ॥ वहिस्थिते कुमारोसौ कन्यायाम...। तयो-र्योर्भवत्कामावस्थामसहमानयो ॥ ८६ ॥ ततः कांतपुरं लज्जाप्रेरितौ तौ गतौ तदा । दृष्ट्वा तत्र कुमारं च मात्रा पित्रा च शोकत ॥ ८७ ॥ तयोर्वि-रुद्धचारित्रादप्रियावावयोरपि । यातं देशांतरं नात्र स्थातव्यमिति जल्पितौ ॥ ८८ ॥ तदेवाकुरुतां तौ च प्रत्यंतनगरे स्थितिं । विहरंतावथान्येद्युरुद्याने मुनिपुंगवं ॥ ८९ ॥ मुनिगुप्तामिधं वीक्ष्य भक्त्या भिक्षागवेषिणं । प्रत्युत्थाय परीत्यामिवंद्याभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ९० ॥ स्वोपयोगनिमित्तानि तानि खाद्या-नि मोदत । खाद्यानि लड्डुकादीनि दत्वा तस्मै तपोभृते ॥ ९१ ॥ नवभेद जिनोद्दिष्टमदुष्टं स्वेष्टमापतुः । वनेन्यदा कुमारोसौ मधुमासे विषाहिना ॥ ९२ ॥ दष्टो नष्टासुको जातो दृष्ट्वा तं देहमात्रकं । नस्यासिधेनुना सापि विधाय स्वां गतासुकां ॥ ९३ ॥ अगात्तदानुमार्गेण तमन्वेष्टुमिव प्रिया । परां काष्ठाम-वासस्य स्नेहस्य गतिरीदृशी ॥ ९४ ॥ अस्मिन्नेवोज्जयिन्याख्यमवतिविषये पुरं । प्रजापतिमहाराज- पालकस्तस्य हेलया ॥ ९५ ॥ तत्रैव धनदेवाख्यश्रेष्ठी त-

उसी समय अपने कांतपुर नगरमें चले गये । कुमारके माता पिताने उन दोनोंको देखकर कुछ शोक किया और उनसे कहा कि तुम दोनोंका चारित्र ठीक नहीं है इसलिये हमको भी तुम दोनों प्रिय नहीं लगते अब तुम किसी दूसरे देशमें चले जाओ यहां मत रहो ॥ ८७—८८ ॥ उन दोनोने उनकी आज्ञाका पालन किया और वे दोनों जाकर प्रत्यंत नगरमें जाकर ठहर गये । वहां पर वे इच्छानुसार विहार करने लगे किसी एक दिन उन्होंने एक उद्यानमें मुनिगुप्त नामके मुनि-राजके दर्शन किये वे मुनिराज आहारके लिये आ रहे थे कुमार महावल और कनकलताने उठ कर वडी भक्तिसे उनका पडगाहन किया प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया, पूजा की और वडे आनंदसे उन तपस्वी मुनिराजको अपने लिये व-नाया हुआ लड्डू आदि निर्दोष आहार दिया ॥ ८९—९१ ॥ उस आहार दानसे उन दोनोंने भगवान जिनेंद्रदेवका कहा हुआ नौतरहका इष्टपुण्य सम्पादन किया । किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुमें वह कुमार वनमें घूम रहा था वहां पर उसे एक विषैले सर्पने काट खाया और वह तुरंत मर गया । उसको मरा हुआ शरीर मात्र देखकर उसकी स्त्री कनक-लताने उसीकी तलवारसे अपने प्राण घात कर लिये मानों वह उसे ढूंढनेके लिये उसके गये हुए मार्गसे ही चली गई हो । सो ठीक ही है क्योंकि जो स्नेह परम सीमाको पहुंच जाता है उसका ऐसा ही हाल होता है ॥ ९२—९४ ॥ इसी अंवती देशमें उज्जयनी नगरीमें महाराज प्रजापति लीलापूर्वक राज्य करते थे । उसी नगरमें एक धनदेव नामका शेठ रहता था और उसकी सती स्त्रीका नाम धनमित्रा था उन दोनोंके वह महावलका जीव नागदत्त नामका पुत्र हुआ ॥९५—९६ ॥ इन्हीं दोनोंके अर्थस्वामिनी नामकी एक पुत्री थी जोकि नागदत्तकी छोटी बहिन थी । पलाशद्वीपके मध्यमें वसने

संह सूनुमि ॥७४॥ शिवभूतेः समापन्ना दैवस्य कुटिला गतिः । सोमिला चित्रसेनायास्तत्सुतानां च पोषण॥७५॥पापिष्ठासहमानासा तर्जिता शिवभूतिना । कुर्ध्वा जीवत्यमा चित्रसेनयायं स चेत्यसत॥७६॥अकरोद् दूषण विग्धिमकार्थं नाम योषिता । चित्रसेनापि मामेषा रुपैवादूषयन्मृषा ॥७७ ॥ निगृहीष्यामि मृत्वैना निदानमकरोदिति । अन्यदामत्रणे पूर्वं शिवगुप्तमुनीश्वरं॥७८॥सोमिलाभोजयत्तस्मै शिवभूतिःस्म कुप्यति । तत्तपोधनमाहात्म्यकथनेन तया पति ॥७९॥ प्रसादितस्तत साधु तद्दान सोन्वमन्यत । स कालातरमाश्रित्य लोकांतरगत सुत; ॥ ८० ॥ आतोत्र विषये वेगे कांते कातपुरेशिनः । सुवर्णवर्मणो विद्युल्लेखायाश्च महाबलः ॥ ८१ ॥ देशेगेत्रैव चंपाया श्रीषेणाख्यमहीपतेः । सुवर्णवर्मसोदर्या धनश्री प्रेमदायिनी ॥ ८२ ॥ सोमिलाभूत्तयो पुत्री कनकादिलतामिधा । महाबलकुमाराय दातव्येयमिति,स्वय ॥ ८३ ॥ जन्मन्येवाभ्युपेतैषा मात्रा पित्रा च समदात् । वर्द्धमान पुरे तस्मिन्नेव वालिकया समं ॥•

पतिसे अनुरक्त रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंको कोई भी काम अकार्य नहीं है अर्थात् वे बुरे से बुरा काम कर सकती हैं और इसलिये स्त्रियोंको वार वार धिकार है । चित्रसेनाने भी क्रोधमें आकर निदान किया कि इसने मुझे मिथ्या दोष लगाया है इसलिये मैं मर कर परलोकमें इसका निग्रह करूंगी । तदनंतर किसी एक दिन सोमिलाने श्री शिवगुप्त मुनिराजका पडगाहन कर आहार दिया जिससे शिवभूतिको बहुत ही क्रोध हुआ । परंतु पीछेसे उन मुनिराजका माहात्म्य कहकर सोमिलाने पतिको प्रसन्न कर लिया और फिर शिवभूतिने भी उस आहारदानको बहुत अच्छा माना । समय पाकर वह शिवभूति मरा और बंगदेशके मनोहर कांतपुर नगरके राजा सुवर्णवर्माके उसकी रानी विद्युल्लेखासे महावल नाम का पुत्र हुआ ॥ ७४–८१ ॥ इसी अंगदेशके चंपानगरमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था उसके राजा सुवर्णवर्माकी बहिन धनश्री रानी थी ॥ ८२ ॥ उन दोनोंके सोमिलाका जीव कनकलता नामकी पुत्री हुई थी । राजा श्रीषेण और रानी धनश्रीने जन्मसे ही हर्षित होकर संकल्प कर लिया था कि यह पुत्री महावलको ही दी जायगी । उसके माता पिताने भी यह बात स्वीकार कर ली थी दैवयोगसे वृद्धिको प्राप्त हुआ महावल मामाके ही यहां जा रहा और उस वालिकाके साथ रहने लगा ॥ ८२–८४ ॥ मामाने आज्ञा दी कि तुम दोनोंकी युवावस्था समीप समीप आ रही है इसलिये जब तक तुम दोनोंका विवाह न होजाय तब तक तुम दोनोंको अलग अलग रहना चाहिये इस प्रकारकी मामाकी आज्ञानुसार वह कुमार बाहर रहने लगा परंतु उसका चित्त कन्यामें आसक्त ही रहा । ये दोनों ही कामकी अवस्थाको सह न सके इसलिये उन दोनोंका समागम हो गया ॥ ८५–८६ ॥ इस कृत्यसे ये दोनोंही लज्जित हुए और

प्राक्तनं वृत्त श्रुत्वाशोकाकुला भृश । निजगेहं समानीय सुस्थिता भयविह्वलै ॥ ६५ ॥ स्वपादशरणौ भद्रा श्रेष्ठिनं च मृगावती । चन्दनापादपंकेजयुगल
तावनीनमत् ॥ ६६ ॥ क्षमामूर्नेवती चेत्र कृत्वाल्हाद तयोस्ततः । तद्वार्तां कर्णनोत्तीर्णरागादागतबंधुभिः ॥ ६७ ॥ प्रापितैतत्पुरं वीरं वंदितुं निजबाध-
वान् । विमर्ज्य जातनिर्वेदा गृहीत्वात्रैव संयमं ॥ ६८ ॥ तत्तोवगममाहात्म्यादध्यस्थाद्गणिनीपदं । इतीह जन्मसंबंध श्रुत्वा तत्रानुचेटक ॥ ६९ ॥
प्राक्कि कृत्वागता चंदनात्रैत्येतत्स पृष्टवान् । सोप्यवादीदिहैवास्ति मगधे नगरी पृथु ॥ ७० ॥ वत्सोति पालयत्येनां महीपाल प्रसेनिकः । विप्रस्तत्राग्नि-
भूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया ॥ ७१ ॥ परा वैश्यसुता सूनुत्राह्मण्या शिवभूतिवाक् । दुहिता चित्रसेनाख्या विट्सुतायामजायत ॥ ७२ ॥ शिवभूतेरभूद्भा-
र्या सामिला सोमशर्मणः । सुतस्तु देवशर्माख्यश्चित्रसेनास्य च प्रिया ॥ ७३ ॥ अग्निभूतौ गतप्राणे तनूजस्तत्पदेभवत् । विधवा चित्रसेनापि पोष्यात्व

दोनों ही डरसे घवड़ाए और मृगावतीके चरणोंके शरणमें आये मृगावतीने उन दोनोंसे चंदनाके चरण कमलोंमें नमस्कार कराया ॥ ६५–६६ ॥ चंदनाके क्षमा कर देने पर वे दोनों उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह क्षमाकी मूर्ति है । चंदनाने भी उन दोनोंको प्रसन्न किया तदनंतर चंदनाके भाई बंधुओं ने भी यह वात सुनी और स्नेहके कारण वे उसी नगरमें आये उसी नगरमें सब लोग महावीर स्वामीकी वदना करने गये । वहां पर जाकर चंदनाको वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने सब भाई बंधुओंको छोडकर दीक्षा धारण करली ॥ ६७–६७ ॥ तपश्चरण और ज्ञानके माहात्म्यसे उसने गणिनी (अर्जिकाओंकी नायिका) का पद धारण किया । इस प्रकार चंदनाका इस भांतिका हाल सुन कर राजा चेटक पूछने लगा कि चंदना पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा कार्य करके यहां उत्पन्न हुई है । इसके उत्तरमें गणधर देव कहने लगे कि इसी मगध देशके वत्सा नगरमें राजा प्रसेनिक राज्य करता । उसी नगरमें एक अग्निभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसके एक तो ब्राह्मणी स्त्री थी और दूसरी वैश्यकी पुत्री थी । ब्राह्मणीके शिवभूति नामका पुत्र हुआ और वैश्यकी पुत्रीके चित्रसेना नामकी पुत्री हुई ॥ ६९–७२ ॥ शिवभूतिकी स्त्रीका नाम सोमिला था जोकि सोमशर्मा की पुत्री थी । उसी नगरमें देवशर्मा नामका ब्राह्मणपुत्र और था उसे चित्रसेना ब्याही [illegible] ॥ ७३ ॥ कितने ही दिन बाद अग्निभूति के मरजानेपर उसका पुत्र शिवभूति घरका मालिक हुआ । इधर [illegible] होगई इसलिये पुत्रों सहित वह अपने भाई शिवभूतिके घर आकर रही सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोंका [illegible] है । शिवभूति जो अपनी वहिन चित्रसेना और उसके पुत्रोंका भरण पोषण करता था वह पा[illegible] हीं हुआ । इसलिये शिवभूति ने उसको ताडना दी तव क्रोधित होकर सोमिला ने चित्रसेनाको मि[illegible] । यह मेरे

सार्द्धं नीला कन्या न्यवेदयत् । कदाचिच्छ्रेष्ठिन पातु जलमुदूधृत्य यत्नत ॥ ५४ ॥ आवर्जयत्याः केशाना कलाप मुक्तबंधन ।
लम्बमान करेणादात्सजलार्द्रे धरातले ॥ ५५ ॥ चंदनायास्तदालोक्य तद्रूपादतिकोपिनी । श्रेष्ठिनी तस्य भद्राख्या स्वभर्तुरनया समं ॥ ५६ ॥
संपर्क मनसा मत्वा कोपात्प्रस्फुरिताधरा । निक्षिप्तशृंखला कन्या दुराहारेण दुर्जना ॥ ५६ ॥ प्रतर्जनादिमिश्रैना निरंतरमबाधत । सापि मत्पूर्वपापस्य
विपाकोयं वराकिका ॥ ५८ ॥ श्रेष्ठिनी किं करोतीति कुर्वत्यात्मविगर्हणं । स्वाग्रजाया मृगावत्या अप्येतन्न न्यवेदयत् ॥ ५९ ॥ अन्यदा नगरे तस्मिन्नेव
वीरस्तनुस्थिते । प्रविष्टवान्निरीक्ष्यासौ त भक्त्या मुक्तशृंखला ॥ ६० ॥ सर्वाभरणहृद्यांगा तद्भारेणेव भूतलं । शिरसा स्पृशनत्वोसैः प्रतिगृह्य यथाविधि
॥ ६१ ॥ भोजयित्वापतद्दानाद् मानिनी मानितामरै । वसुधारा मरुत्पुष्पवृष्टिं सुरभिमारुतं ॥ ६२ ॥ सुरदुंदुभिनिर्घोषं दानस्तवनघोषण । तदैवोत्कृष्ट-
पुण्यानि फलंति विपुलं फलं ॥ ६३ ॥ अग्रजास्यास्तदागत्य पुत्रेणामा मृगावती । तद्वृत्तोदयनाख्येन स्नेहेनालिंग्य चदना ॥ ६४ ॥ पृष्ट्वा तां

मय उस शेठकी शेठानी भद्राने चंदनाको देखा चंदनाका रूप देख कर वह क्रोधित हुई और अपने मनमें उसके साथ
अपने पतिका संबंध समझकर क्रोधसे अपने ओठ हिलाने लगी। उस दुष्टिनीने चंदनाको सांकलोंसे बांध दिया वह
उसे बुरा आहार देने लगी और ताडना मारना आदिसे सदा उसे दुःख देने लगी। परंतु वह चंदना यही विचार क-
रती थी कि यह सब मेरे पूर्व कर्मोंके उदयका फल है यह क्षुद्र शेठानी भला क्या कर सकती है इस प्रकार वह सदा
अपनी निंदा करती रही और उसने उसी शहरमें रहनेवाली वहांकी महारानी अपनी बडी बहिन मृगावतीसे भी ये स-
माचार कहला कर नहीं भेजे ॥ ५६–५९ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें भगवान वीरनाथ आहारके लिये आए।
उन्हें देखकर चंदना बडी भक्तिसे उठी, उठते ही सांकलके बंधन सब छूट गये उसका शरीर सब आभूषणोंसे सुशोभित
हो गया तथा उसीके भारसे मानों उसने पृथ्वीको छूकर मस्तक नवाकर नमस्कार किया और फिर विधिपूर्वक उनका
पडगाहन किया ॥ ६०–६१ ॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें आहार दिया। दानके प्रभावसे देवोंने आकर उसका आदर स-
त्कार किया उसके घर रत्नोंकी वर्षा हुई, देवपुष्पोंकी वर्षा हुई, सुगंधित वायु बहने लगा, देवोंके दुंदुभी बाजे बजने लगे
और दानकी स्तुतिकी घोषणा होने लगी सो ठीक ही है क्योंकि उत्कृष्ट पुण्य अपने बडे भारी फलोंसे फलते ही हैं
॥ ६२–६३ ॥ तदनंतर उसकी बडी बहिन मृगावती यह सब समाचार जानकर अपने उदयन नामके पुत्रके साथ उसके
समीप आई और स्नेहसे चंदनाका आलिंगन किया ॥ ६४ ॥ उसने चंदनाका सब पहिला हाल पूछा और उसका कहा
हुआ सुन कर शोकसे बहुत ही व्याकुल हुई और उसे घर ले जाकर आरामसे ठहराया। यह देख कर शेठ शेठानी

स्वजीवितं ॥ ४२ ॥ यदि वाञ्छेरिति क्रोधात्त निर्भर्त्स्यतिस्म सा। सभूतरमणारण्ये तां स्वदाराविभीलकः ॥ ४३ ॥ ऐरावतीसरिद्दक्षिणांते साधितविद्या। पर्णलघ्व्या तदैवात्त कृतशोको विसृष्टवान् ॥ ४४ ॥ सापि पंचनमस्कारपरिवर्तनतत्परा। निनाय शर्वरीं कृच्छ्रात्प्रातुमत्युदिते स्वयं ॥ ४५ ॥ तत्र सन्निहितो दैवात्कालकाख्यो वनेचर-। तस्मै निजपरार्घ्यैःस्फुरिताभरणान्यदात् ॥ ४६ ॥ धर्मं च कथयामास तेन तुष्टो वनेचर । भीमकूटाचलोपांत निवासी सिंहसंज्ञकः ॥ ४७ ॥ भयंकराख्यपल्लीशस्तस्य तां स समर्पयत्। सोपि पापी विलोक्यैनां कामव्यामोहिताशयः ॥ ४८ ॥ निग्रहेण ग्रः क्रूरो वा-त्मसात्कर्तुमुद्यतः। तद्वीक्ष्य पुत्र मैवं त्वं कृथाः प्रत्यक्षदेवता ॥ ४९ ॥ यदि कुप्येदियं तापशापदुःखप्रदायिनी। इति मातुर्गिरा भीत्या तां दुर्जनोपि व्यसर्जयत् ॥५०॥तत्रैव चंदना तस्य मात्रा सम्यग्विधानत। पोष्यमाणा विनिश्चिंता किंचित्कालमजीगमत्॥५१॥अथ वत्साह्वये देशे कौशांब्यां प्रवरे पुरे। श्रेष्ठीवृषभसेनाख्यस्तस्य कर्मकरोऽभवत् ॥ ५२ मित्रवीरो वनेशस्य मित्रं तस्य वनाधिपः। चंदनामर्पयामास सोपि भक्त्या वाणिक्पतेः ॥ ५३ ॥ धनेन महता

ने भी पंच नमस्कार मंत्रका जप करते हुए बडी कठिनतासे रात्रि पूर्णकी और सूर्य उदय होते ही उसने स्वयं दैवयोगसे समीप ही रहनेवाले कालक नामके भीलको अपने बहुमूल्य दैदीप्यमान आभूषण दिये और उसे धर्मका उपदेश दिया, जिससे वह भील बहुत संतुष्ट हुआ। परंतु उसने भीमकूट नामके पर्वतके समीप रहनेवाले भयंकर नामक पल्लीके स्वामी सिंह नामके अपने राजाको वह चंदना समर्पण कर दी। वह भीलोंका राजा सिंह पापी था इसलिये चंदनाको देखकर उसका हृदय कामसे मोहित होगया ॥ ४५–४८ ॥ वह दुष्ट क्रूरग्रहके समान निग्रहकर उसे अपने वश करनेके लिये तैयार हुआ। उसे इसतरह करते देखकर भीलकी माताने अपने पुत्रको समझाया कि 'हे पुत्र तू ऐसी मतकर, यह प्रत्यक्ष देवता है यदि यह क्रोधित हो जायगी तो फिर कितनेही संताप शाप और दुःख देगी' इस प्रकार माताके वचन सुनकर वह डरा और दुष्ट होनेपर भी उसने वह चंदना छोड दी ॥ ४९–५० ॥ तदनंतर वह चंदना उस भीलकी माताके साथ निश्चिंत होकर थोडे दिनतक वहीं रही भीलकी माता उसका पालन पोषण अच्छी तरह करती थी ॥ ५१ ॥ अथानंतर—वत्सदेशके कौशांबी नामके श्रेष्ठ नगरमें एक वृषभसेन नामका शेठ रहता था उसके मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था जो कि उस भीलका मित्र था उस भीलने वह चंदना उस मित्रवीरको दी। उस मित्रवीरने बडी भक्तिसे बहुत धनके साथ वह कन्या शेठको समर्पण की। किसी एक समय वह चंदना उस शेठको जल पिला रही थी उससमय उसके केशोंका कलाप छूट गया था और जलसे भीगा हुआ पृथ्वी पर लटक रहा था उसे वह बडे यत्नसे एकहाथसे संभाल रही थी ॥ ५२–५५ ॥ उस स-

ता—म्यानयाभरणानीति स्वत्र तेन सहागमत् ॥ ३१ ॥ साप्यात्ताभरणागत्य तानदत्त्वातिवञ्चिता । तयाहमिति शोकार्ता निजमामां यशस्वतीं ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा क्षांतिं समीगेत्या श्रुत्वा धर्मं जिनोदितं। निर्विद्य संसृतेर्दीक्षा प्राप पापविनाशिनीं ॥३३ ॥ भवतापि महाप्रीत्या चेलिनीयं यथाविधि । गृहीतानु महादेवीपट्टबधातुतोष सा ॥ ३४ ॥ चंदना च यशस्वत्या गणिन्यः सन्निधौ स्वयं । सम्यक्त्वं श्रावकाणां च व्रतान्यादत्त सुव्रता ॥ ३५ ॥ तत खगाग्र्यगाच्छ्रेणीसुवर्णाभपुरेश्वर. । मनोवेग खगाधीशः समनोवेगया समं ॥ ३६ ॥ स्वच्छंद विरमाक्रीडा प्रत्यायांश्चंदना वने । अशोकाह्वये समाक्रीडमानां परिजनै. सह ॥ ३७ ॥ विलोक्यानगनिर्मुक्तशरजर्जरितांगक. । प्रापय्य स्वप्रियां गेहं रूपिणीविद्यया स्वयं ॥ ३८ ॥ विकृत्य रूपं स्वं तत्र निधाय हरिविष्टरे । अशोकवनमभ्येत्य गृहीत्वा चंदना हृत ॥ ३९ ॥ प्रत्यागतो मनोवेगाप्येतम्निहितवचनां । ज्ञात्वा कोपारुणीभूतविभीषणविलोचना ॥ ४० ॥ ता विद्यादेवता वामपादेनाक्रम्य सावधीत् । कृताट्टहासा सा विद्याप्यगात्सिंहासनात्तदा ॥ ४१ ॥ चेष्टामाभोगिनीविद्यातो ज्ञात्वा स्वपतेरनु । गच्छत्यर्धपथे दृष्ट्वा दिव्यजेभा

रनेवाली दीक्षा धारण कर ली ॥ ३२–३३ ॥ तूने भी बडे प्रेमसे चेलिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और महादेवी का पट्ट बांधकर उसे संतुष्ट किया ॥ ३४ ॥ इधर अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाली चंदनाने भी यशस्वती अर्जिकाके समीप जाकर स्वयं सम्यग्दर्शन धारण किया और श्रावकोंके व्रत धारण किये ॥ ३५ ॥ किसी एक समय वह चंदना अपने परिवारके लोगोंके साथ अशोक वनमें क्रीडा कर रही थी दैवयोगसे उसी समय विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणीके सुवर्णाभ नगरका राजा मनोवेग विद्याधर अपनी रानी मनोवेगाके साथ स्वच्छंद रीतिसे क्रीडा करता हुआ वहां आ निकला और चंदनाको देखकर कामके छोडे हुए बाणोंसे उसका शरीर जर्जरित होगया। वह तुरंत ही अपनी स्त्री को घर पहुंचानेके लिये वापिस लौटा और रूपिणी विद्यासे अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासनपर बिठला दिया। फिर वहांसे चलकर अशोक वनमें आया और चंदनाको लेकर शीघ्रही घरकी ओर लौटा। इधर मनोवेगा रानीने इस ठगीको पहिचान लिया और क्रोधसे उसके नेत्र लाल तथा भयंकर होगये ॥ ३६–४० ॥ उसने उस विद्यादेवताको वांये पैरसे आक्रमण कर मारा जिससे वह विद्या देवता जोरसे हंसकर उसी समय सिंहासनसे उतरकर भाग गई ॥ ४१ ॥ तदनंतर वह मनोवेगा रानी आभोगिनी विद्यासे अपने पतिकी चेष्टा जानकर उसके पीछे दौडी और आधी दूर जाकर चंदना सहित लौटते हुए पतिको देखा उसने बडे क्रोधसे पतिको तिरस्कारकर डांटा और कहा कि यदि तू अपने जीनेकी इच्छा रखता है तो इसको छोड। स्त्रीकी यह बात सुनकर वह मनोवेग बहुत डरा और उसने शोकसे व्याकुल होकर सिद्धकी हुई पर्णलघू नामकी विद्यासे भूतरमण नामके बनमें ऐरावती नदीके दक्षिण किनारे वह चंदना छोड दी ॥ ४२–४४ ॥ उस चंदना

मागधं पुरं । राजद्वारगृहं बाह्योद्याने आनपुरस्सरं ॥ २० ॥ जिनप्रतिनिधिं पूर्वमभ्यर्च्याभ्यर्णपट्टकं । आनर्च तद्विलोक्य त्वमप्राक्षीः पार्श्ववर्तिनः ॥ २१ ॥ किमेतदिति तेऽवोचन् राज्ञः सप्तापि पुत्रिकाः । लिखितास्तासु कल्याणं चतस्रः समवापिताः ॥ २२ ॥ तिस्रो नाद्यापि दीयंते तत्र द्वे प्राप्तयौवने । कनिष्ठा बालिका राजन्निति तद्वचनश्रुते ॥ २३ ॥ भवद् रक्त तयोश्चित्तं मंत्रिणः समजिज्ञपत् । तेपि तत्कार्यमभ्येत्य कुमारमवदन्निति ॥ २४ ॥ चेटकाख्यमहीशस्य सुतयोरनुरक्तवान् । पिता ते याच्यमानोऽसौ न दत्ते वयसस्च्युते ॥ २५ ॥ इदं चावश्यकर्तव्यं कोऽभ्युपायोऽत्र कथ्यतां । सोपि मंत्रिवचः श्रुत्वा तत्कार्योपायपंडितः ॥ २६ ॥ यूयमाध्वमहं कुर्वे तत्समर्थनमित्यमून् । सतोष्य मंत्रिणः सोपि तत्स्वरूपं विलासवत् ॥ २७ ॥ पट्टके सम्यगालिख्य वणिग्वेषेणाप्ताथ यत्नतः । तत्पार्श्ववर्तिनः सर्वान् स्वीकृत्योत्कोटदानत ॥ २८ ॥ स्वयं च वोद्रको नाम वणिग्भूत्वा तदालयं । प्रविश्य तत्पट्टके रूपं कन्ये ते तत्करस्थिते ॥ २९ ॥ विलोक्य भवति प्रीत्या सौरंगादतिसाहसात् । कुमारविहितान्मार्गाद्गत्वा किंचित्ततोंतरे ॥३०॥ चेलिनी कुटिला ज्येष्ठा मुक्त्वा त्व गच्छ विस्मृ-

और एक बालिका है । उन लोगोंकी यह बात सुनकर तू उनमें आसक्त हुआ और अपने चित्तका अभिप्राय मंत्रियोंसे कहा । मंत्री भी उस कार्यको लेकर अभयकुमारके पास आये और कहने लगे कि तेरे पिता राजा श्रेणिक महाराज चेटककी दोनों कन्याओंमें आसक्त हुए हैं उन्होंने चेटकसे वे दोनों कन्याएं मांगी भी थी परंतु श्रेणिककी अवस्था ढल जानेसे चेटकने दी नहीं ॥ २०—२५ ॥ यह काम करना अवश्य है इस लिये इसके करनेका क्या उपाय है सो कहो । उस कार्यके करनेमें अत्यंत निपुण ऐसे उस अभयकुमारने कहा कि तुम सब चुप रहो मैं स्वयं इस कामको कर सकूंगा । इस तरह उसने मंत्रियोंको संतुष्ट किया और फिर राजा श्रेणिकका एक अच्छा विलास युक्त चित्र बनाया । उसे वस्त्रसे ढककर बडे यत्नसे लेगया । राजाके समीपवर्ती लोगोंको बहुतसा धन देकर अपने वश किया और फिर स्वयं वोद्रक नामके वैश्यका (व्यापारीका) रूप बनाकर राजाके घर गया । वह चित्र उन दोनों कन्याओंको दिखाया उसे देखकर वे दोनों प्रसन्न हुईं और चलनेको तैयार होगईं । इधर कुमारने पहिलेसे ही सुरंग तैयार करा रक्खी थी इसीलिये वह उसी मार्गसे साहस पूर्वक उनको ले आया । थोडी दूर जाकर कुटिल चेलिनीने ज्येष्ठासे कहा कि 'मैं अपने आभूषण भूल आई हूं तू जाकर लेआ' इसतरह कहकर उसको तो लौटा दिया और वह चेलना स्वयं अभयकुमारके साथ चली गई॥२६—३१॥ इसके बाद वह ज्येष्ठा आभूषण लेकर वहां आई परंतु उनको वहां न देखकर बहुतही शोक करने लगी और मनमें कहने लगी कि चेलनाने मुझे इसतरह ठगा है । तदनंतर वह शोकसे व्याकुल होकर अपनी मामी यशस्वती नामकी अर्जिकाके समीप गई और उससे श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्मका स्वरूप सुनकर और संसारसे विरक्त होकर उसने पापोंका नाश क-

सूर्यसमो दशरथोभवत् ॥ १० ॥ तस्याभूत्सुप्रभा देवी भास्वतो वा प्रभामला । कच्छाख्यविषये रोरुकाख्यायां पुरि भूपति ॥ ११ ॥ महातुदयनस्तस्य प्रमदाभूत्प्रभावती । प्राप शीलवती ख्यातिं सा सम्यक् शीलधारणात् ॥ १२ ॥ गाधारविषये ख्यातो महीपालो महीपुरे । याचित्वा सात्यको ज्येष्ठामलब्ध्वा क्रुद्धवान् विधीः ॥ १३ ॥ युध्वा रणांगणे प्राप्तमानभंग स सत्रप । सद्यो दमवरं प्राप्य पुनः संयममग्रहीत् ॥ १४॥ स चेटकमहाराजः स्नेहाद्रूपमलीलिखत् । पट्टके सप्त पुत्रीणां बिंब शश्वत्समीक्षितुं ॥ १५ ॥ निरीक्ष्य तत्र चेलिन्या रूपस्य पतितं मनाक् । विंदुमूरौ विधात्रेस्य नृपे कुपितवत्यसौ ॥१६॥ पूज्य द्विस्त्रिर्मया विंदु प्रमृष्टः सप्त चापि सः । तथैव पतितस्तस्मिन् भाव्यमंकेन तादृशा ॥ १७ ॥ इति मत्वानुमानेन पुनर्न तममार्जिष । इत्यब्रवीत्तदुक्तेन भूपति प्रीतिमाप्तवान् ॥ १८ ॥ स देवार्चनवेलायां जिनबिंबोपकंठके । तत्पट्टं प्रसार्येर्च्या निवर्त्तयति सर्वदा ॥ १९ ॥ कदाचिच्चेटको गत्वा ससैन्यो

पालन किया था इसलिये शीलवती उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था ॥ १०–१२ ॥ गंधार देशके महीनगरके राजा सात्यकने राजा चेटकसे ज्येष्ठा नामकी कन्या मांगी थी परंतु चेटकने दी नहीं इससे वह मूर्ख क्रोधित हुआ रणांगणमें आकर लडा परंतु उसे हारना पडा और मानभंग होनेके कारण वह लज्जित हुआ तथा दमवर मुनिराजके समीप जाकर उसने शीघ्रही संयम धारण कर लिया ॥ ॥ १३–१४ ॥ तदनंतर महाराज चेटकने पुत्रियोंमें अत्यंत स्नेह होनेके कारण उनका प्रतिबिंब सदा देखनेके लिये सातों पुत्रियोंका चित्र लिखाया ॥ १५ ॥ जब चित्र तैयार होकर आया तब चेलिनीके चित्र पर उसकी जंघाके ऊपर एक छोटा सा विंदु दिखाई दिया जिसे देख कर उसके बनानेवाले पर राजा बहुत क्रोधित हुआ ॥ १६ ॥ तब पूछने पर चित्रकारने कहा कि हे पूज्य यहां विंदु पड गया था और मैंने साफ कर लिया था परंतु दुवारा फिर पड गया फिर साफ करने पर फिर पड गया इस तरह सातवार साफ किया परंतु फिर भी पड गया तब फिर मैंने अनुमानसे यह समझा कि इस जगह ऐसा विंदु होना ही चाहिये साफ नहीं किया । उसकी यह बात सुन कर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १७–१८ ॥ तदनंतर वह राजा भगवानकी पूजा करनेके समय भगवानके प्रतिबिंबके समीप ही उस चित्रको टांग कर सदा भगवानकी पूजा किया करता था ॥ १९ ॥ किसी एक समय राजा चेटक अपनी सब सेना सहित मगधपुरी गया था और राजगृह नगरके बाहर उद्यानमें डेरा दिये थे सवेरेके समय स्नानकर उसने पहिले श्रीजिनदेवकी पूजा की और फिर पासमें रक्खे हुये उन पुत्रियोंके चित्रकी पूजा की । यह देख तूने समीप वर्ती लोगोंसे पूछा कि यह क्या है तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि राजा ने यह अपनी सात पुत्रियोंका चित्र लिखाया है इनमेंसे चार तो विवाही जा चुकी हैं और शेष तीनको राजा अभी देता नहीं है इन शेष तीन में दो की युवावस्था है

अथ पंचसप्तति तमं पर्व ।

अथान्येद्यु: सभासीनं गणेंद्रं विपुलाचले । श्रेणिक प्रीणिताशेषभव्यं सुव्यक्ततेजसं ॥ १ ॥ गणिन्यार्यचंदनार्यीया संबधमिह जन्मनः । अन्वयुक्त गणी चैवमाहाहितमहर्द्धिकः ॥ २ ॥ सिंध्वाख्ये विषये भूभृद्वैशालीनगरेभवत् । चेटकाख्योतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः ॥ ३ ॥ तस्य देवी च भद्राख्या तयोः पुत्रा दशाभवन् । धनाख्यो दत्तभद्रातावुपेंद्रोऽन्य सुदत्तवाक् ॥ ४ ॥ सिंहभद्र सुकुंभोजोकंपनः सपतंगक । प्रभंजनः प्रभासश्च धर्मा इव सुनिर्मला ॥ ५ ॥ सप्तर्द्धयो वा पुत्र्यश्च ज्यायसी प्रियकारिणी । ततो मृगावती पश्चात्सुप्रभाऽतः प्रभावती ॥ ६ ॥ चेलिनी पंचमी ज्येष्ठा षष्ठी संधा च चंदना । विदेहविषये कुंडसंज्ञायां पुरि भूपतिः ॥ ७ ॥ नाथो नाथकुलस्यैकः सिद्धार्थाख्य स्वसिद्धिभाक् । तस्य पुण्यानुभावेन प्रियाभूत्प्रियकारिणी ॥ ८ ॥ विषये वत्सकासाख्ये कौशांबीनगराधिप । सोमवंशे शतानीको देव्यस्यासीन्मृगावती ॥ ९ ॥ दशार्णविषये राजा हेरकच्छपुराधिपः । सूर्यवंशाबरे

अथ पिचत्तहरिवां पर्व ।

अथानंतर—किसी दूसरे दिन विपुलाचल पर्वत पर सब भव्योंको प्रसन्न करनेवाले और सुप्रकट तेजस्वी भगवान गणधरदेव सभामें विराजमान थे उनके समीप जाकर महाराज श्रेणिकने सब अर्जिकाओंकी नायिका ऐसी चंदना अर्जिकाकी इस जन्म संबंधी कथा पूछी तब अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले गणधर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ १–२ ॥ सिन्धु देशके वैशाली नगरमें चेटक नामका प्रसिद्ध राजा था जोकि विनयी और अरहंतदेवका अनुयायी था उसकी महारानीका नाम भद्रा था उससे उस राजाके दश पुत्र थे जो कि धन, दत्तभद्र, उपेंद्र, सुदत्त सिंहभद्र, सुकुंभोज, अकंपन, सुपतंग प्रभंजन और प्रभास के नामसे प्रसिद्ध थे और दश धर्मोंके समान निर्मल थे ॥ ३–५ ॥ उसी भद्रासे ऋद्धियोंके समान सात पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं जो कि प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और पूज्य चंदनाके नामसे प्रसिद्ध थीं। विदेहदेशके कुंड नगरमें नाथ वंशका स्वामी राजा सिद्धार्थ राज्य करता था, उसने अपनी सब सिद्धियां पूर्ण कर ली थीं। उसके पुण्यकर्मके उदयसे वह प्रियकारिणी उसकी स्त्री हुई थी ॥ ६–८ ॥ वत्सदेशके कौशांबी नगरके स्वामी चंद्रवंशी राजा शतानीकके मृगावती दूसरी पुत्री पट्टरानी हुई थी ॥ ९ ॥ दशार्ण देशके हेरकच्छ नगरके स्वामी सूर्यवंश रूपी आकाशके सूर्य राजा दशरथ थे सूर्यकी निर्मल प्रभाके समान सुप्रभा नामकी देवी उनकी पट्टरानी हुई थी। कच्छदेशके रोरुक नगरके स्वामी राजा उदयनके प्रभावती रानी हुई थी। उस प्रभावतीने —

सर्वे समासीना तन्माहात्म्यं समस्तुवन् । समास्यर्या च चेत्के वा न स्तुवति गुणात्मता ॥ ४६ ॥ धियोस्य सह ... ॥ १० ॥ महाप्रदयनस्तस्य कृतसंस्कृते निशिततानुचान्यैव सा । ततः स निखिला सभामभयपवितो वाग्गुणैरुपायनिपुणेषु लब्धविजयध्वजो रंजयन् ॥ ४७ ॥ क्व स सुविदिततत्त्व श्रावकः क्वोयमज्ञः स्फुरितदुरितदूरारूढमौढ्यैर्दढीयान् । अमरपरिवृढत्वं प्राप्यतेस्मोपदेशादभयविभुरभूत्सत्सगमः किं न कुर्यात् ॥ ४८ ॥ स्याद्वीरतत्त्वविमार्शिनी कृतधियः श्रद्धानुविद्धा तथा हित्वा हेयमुपेयमाप्य विचरन् विच्छिद्य बर्धास्तत । सत्कर्माणि च संतत बहुगुणं संश्रावयन् सद्धते प्रांत प्राप्य भवेद्विवाभयविभुर्निर्वाणसौख्यालय ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अंत्यतीर्थकरश्रेणिकाभयन्यावर्णनं नाम चतुःसप्ततितम पर्व ।

उस मात्सर्य रखनेवाले मनुष्य न हों तो फिर गुणोंकी प्रशंसा कौन नहीं करता भावार्थ—सभी करते हैं ॥ ५४५–५४६ ॥ उस बुद्धिमानकी बुद्धि जन्म से ही कुशाग्र थी और फिर शास्त्रोंके संस्कारसे वह और भी तेज होकर एक विलक्षण बन गई थी । इसीलिये उस अभयकुमार पंडितने अपने वचनरूपी गुणोंसे सब सभा प्रसन्न कर ली थी और अनेक उपायोंमें निपुण पुरुषोंमें भी अपनी विजय पताका प्राप्त की थी ॥ ५४७ ॥ देखो कहां तो अच्छे तत्त्वोंका जानकार वह श्रावक और कहां वह मूर्ख ब्राह्मण जोकि दैदीप्यमान पापोंको दूर फेंककर केवल उस श्रावकके समागमसे व्रतोंमें दृढ होगया और उसीके उपदेशसे देव होकर ऐसा ऐश्वर्य शाली अभयकुमार हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समागमसे क्या क्या नहीं होता हैं ॥ ५४८ ॥ जिनकी बुद्धि तत्त्वोंका विचार करने वाली है तथा उस बुद्धिके साथ साथ अटल श्रद्धा है उस श्रद्धासे जो हेय पदार्थोंका त्यागकर और उपादेय पदार्थोंका ग्रहणकर विहार करते हैं । तदनंतर कर्म बंधोंका नाशकर सदासे इकठ्ठे किये हुए शुभकर्मोंकोभी आत्माके अनेक गुणोंसे नाशकर संसारके पार पहुंचते हैं वे ऐश्वर्यशाली अभयकुमार के समान मोक्ष रूपी अनंत सुखके स्थान बन जाते हैं भावार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५४९ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान श्रेणिक और अभयकुमारके चरित्रको कहनेवाला यह चौहत्तरवां पर्व समाप्त हुआ ॥७४॥

...भवन्। आतमन्यतरं ब्रूयादन्यस्याप्राततां कुत ॥ ५३६ ॥ एकधर्मात्मकं सर्वं वाच्छतोंचितवादिनः। सामान्येतरसभूतौ कुत सशयनिर्णयौ ॥ ५३७ ॥ प्रनीयमानज्ञानामिधानासत्याभिधायिनः। तयोरसत्यज्ञानामिधानयो केन सत्यता ॥ ५३८ ॥ गुणगुण्यमिसवधे सत्यान्तरव न। निराधानवस्थाभ्युपेतहान्यनिवारणं ॥ ५३९ ॥ तत्त्यक्त्वैकांत दुर्वादगर्वं सर्वज्ञभारिते। नित्यानित्यात्मक तत्त्व प्रत्येतव्य मनीषिणा ॥ ४० ॥ सर्वविन्मतश्रद्धा सम्यग्दर्शनमिष्यते। ज्ञातिस्तत्प्रोक्तवस्तूना सम्यग्ज्ञानमुदाहृत ॥ ४१ ॥ तदागमोपदेशेन योगत्रयनिरोधन। चारित्र तत्त्रयं युक्तं मुक्तेभव्यस्य साधन ॥ ४२ ॥ समेतमेव सम्यक्त्वज्ञानाभ्यां चरितं मतं। स्यातां विनापि तेनेन गुणस्थाने चतुर्थके ॥ ४३ ॥ कार्त्स्न्येन कार्मणा कृत्वा सवरं निजरा परां। प्राप्नोतु परमं स्थानं विनेयो विश्वदृक् तत ॥ ४४ । इति सर्वं मनोहारि श्रुत्वा तस्य निरूपण। वस्तुतत्त्वोपदेशेय कुशलोमयपडितः ॥ ४५ ॥ इति

को अभ्रांत कैसे कहता है भावार्थ वह स्वयं भ्रांत है ॥ ५३६ ॥ सबको एक धर्मात्मक माननेवाले जो वादी हैं उनके मत में सामान्य और विशेष की उत्पत्तिमें संशय वा निर्णय कैसे हो सकेगा ॥ ५३७ ॥ जो पदार्थ विश्वसनीय ज्ञानके द्वारा कहा हुआ है और जो असत्य रीतिसे कहा हुआ है इन दोनोंमें अर्थात् असत्य और यथार्थ ज्ञानके द्वारा कहे हुए पदार्थों में सत्यका निर्णय कैसे होगा ॥ ५३८ ॥ गुण गुणीका संवंध रहते हुए भी जो अन्य संबंधकी कल्पना करते हैं उनके मतमें संबंधरहित पदार्थोंमें अनवस्था दोषसे प्राप्त हुई जो हानि है उसका निवारण कैसे हो सकता है। भावार्थ—गुणगुणी संबंध को न मानकर समवाय संबंध माननेमें जो अनवस्था आदि अनेक दोष आते हैं उनका निवारण कभी नहीं हो सकता ॥ ५३९ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको एकांत मिथ्यावादका अभिमान छोडकर सर्वज्ञ देवके कहे हुए नित्यानित्यात्मक पदार्थोंका श्रद्धान करना चाहिये ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञ और सर्वज्ञदेवके कहे हुए मतपर श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन कह-लाता है। सर्वज्ञदेवके कहे हुए पदार्थों को जानना सम्यग्ज्ञान कहा जाता है और उसके कहे हुए आगमके उपदेशके अनु-सार मन वचन काय तीनों योगोंका रोकना चारित्र कहलाता है। ये तीनों ही भव्य जीवको मोक्षके साधन गिने जाते हैं ॥ ५४१–५४२ ॥ सम्यक् चारित्र, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथही होता है परंतु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये दोनो विना सम्यकचारित्रके भी चौथे गुणस्थानमें हो जाते हैं ॥ ५४३ ॥ इसलिये सम्यग्दृष्टी भव्य जीवको समस्त कर्मों का उत्कृष्ट संवर और उत्कृष्ट निर्जरा करके मोक्षरूप परमस्थान प्राप्त करना चाहिये ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार सब मनोहर रीतिसे निरूपण किया हुआ पदार्थोंका स्वरूप सुनकर सब वैठे हुए सभासद लोग उसकी महिमाकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह अभयकुमार तत्त्वोपदेश देनेमें बडाही कुशल और पंडित है सो ठीक ही है क्योंकि यदि ईर्षा और

त्वा जिनेंद्राद्दक्षघोदितं ॥ ५२६ ॥ अवाप्स्यसि पद मुक्तेरित्यसावववुध्य तत् । अभिवन्द्य जिन राज्ञा सह तुष्टोविशत्पुर ॥ ५२७ ॥ अथान्येद्युर्महाराजश्रेणिक सदसि स्थित । अभयं सर्वशास्त्रज्ञ कुमारं वरवाग्मिनां ॥ ५२८॥ तन्माहात्म्यप्रकाशार्थ तत्त्व पप्रच्छ वस्तुन । सोप्यासन्नविनेयत्वाद्वस्तुयाथात्म्यदर्शिधीः ॥ ५२९ स्वद्विजोत्सर्पिभाभारविभासितसभांतर । एवं निरूपयामास स्पष्टमृष्टेष्टगीर्गुणः ॥ ५३० ॥ यस्य जीवादिभावानां याथात्म्येन प्रकाशनं । तं पण्डितं बुधाः प्राहु परे नाम्नैव पण्डिताः ॥ ५३१ ॥ जीवाद्याः कालपर्यंता पदार्था जिनभाषिताः । द्रव्यपर्यायभेदाभ्यां नित्यानित्यस्वभावकाः ॥ ५३२ ॥ सर्वथात्मादितत्त्वानां मोहान्नित्यत्वकल्पने । सर्वद्रव्येषु सभूति परिणामस्य नो भवेत् ॥ ५३३ ॥ क्षणिकत्वे पदार्थाना न क्रिया कारक च न । न फल च तथा लोकव्यवहारविलोपन ॥ ५३४ ॥ नित्यत्वस्योपचारेण सत्वात्तस्य विलोपनं । नोचेन्मिथ्योपचारेण कथं तथ्यस्य साधन ॥ ५३५ ॥ धर्मद्वयोपलभाभ्यां

समझकर उस अभयकुमारने संतुष्ट होकर तथा श्रीजिनराज को नमस्कार राजा श्रेणिकके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ५२३–५२७ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक अपनी राजसभामें विराजमान हुए । वहांपर उन्होंने बडे बडे वक्ताओंके सामने अपने पुत्रका माहात्म्य दिखलानेके लिये समस्त शास्त्रोंके जानकार अभयकुमार को पदार्थोंका स्वरूप पूछा आसन्नभव्य होनेसे वह अभयकुमार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको दिखलानेमें समर्थ था इसलिये अपने दांतोंकी फैलती हुई कांतिके भारसे सब सभाको प्रकाशित करता हुआ तथा स्पष्ट निर्मल और इष्ट कहनेरूप अपूर्व गुण को धारण करने वाला वह अभयकुमार नीचे लिखे अनुसार तत्त्वोंका स्वरूप कहने लगा ॥ ५२८–५३० ॥ जो जीवादि पदार्थोंका स्वरूप यथार्थ रीतिसे प्रगट कर सकते हैं विद्वान लोग उन्हींको पंडित कहते हैं जो पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप नहीं कह सकते वे केवल नामके पंडित है ॥ ५३१ ॥ श्री जिनेंद्रदेवने जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये छह पदार्थ कहे हैं ये सब पदार्थ द्रव्य और पर्यायके भेदसे नित्यस्वभाव और अनित्यस्वभाव कहे जाते हैं ॥ ५३२ ॥ यदि मोहनीय कर्मके उदयसे जीवादि सब पदार्थोंको सर्वथा नित्य कल्पना किया जाय तो फिर सभी पदार्थोंमें परिणमन होनेकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी ॥ ३३ ॥ यदि सब पदार्थोंको क्षणिक मान लिया जाय तो न क्रिया बन सकेगी न कारक बन सकेगा और न क्रियाका फल बन सकेगा । तथा लेने देने रूप लोक व्यवहार का बिल्कुल नाश हो जायगा ॥ ५३४ ॥ यदि नित्यको उपचारसे मानोगे तो जो नित्यत्व वास्तवमें है उसका अभाव ही मानना पडेगा क्योंकि अभावमें ही उपचार माना जाता है यदि वह वास्तवमें है ही नहीं तो फिर मिथ्या उपचारसे उसका सत्यस्वरूप कैसे सिद्ध हो सकता है ॥ ५३५ ॥ इसलिये नित्यानित्यात्मक दोनों धर्मोंके रहनेसे ही अर्थ क्रिया होती है इस बातको भी दूसरेको भ्रांत कहता हुआ पुरुष स्वतः

वीदस्य नार्हत ॥ ५१८ ॥ इत्यार्हतोक्त तत्तथ्यं श्रुत्वा सर्वं द्विजात्मज । त्वद्गृहीतो मया पैप्यस्तु धर्मोय प्रशवीति स. ॥५१९॥ तदाश्रयाभवीद्धर्मं निर्मल जि-
नभाषित । सतां वचो हित हि स्यादातुरायैव भेषजं ॥५२०॥ अथ तौ सह गच्छंतावाय. ॥ वनांतरे । पापोदयात्परिभ्रष्टमार्गौ दिग्मूढतां गतौ ॥ ५२१ ॥
देशकोस्ति न मार्गस्य वनमेतदमानुष । नास्ति कश्चिदुपायोत्र विहाय जिनभाषित ॥ ५२२ रागाद ॥ परिच्छेदोहि पांडित्यं शूरस्याहारदेहयो. । इति संन्यस्य
सद्ध्यानेनासीनं श्रावक द्विज ॥ ५२३ ॥ विलोक्य स्वयमप्येतदुपदेशेन शुद्धधीः । तु स्थित्वा तथैव सप्राप्तसमाधिर्जीवितावधौ ॥ ५२४ ॥ सौधर्म-
कल्पे देवोभूद् भुक्त्वा तत्रामरं सुखं । स्वायुरंते स्वपुण्येन श्रेणिकस्य महीपते ॥ ५२५ ॥ अ न मयाख्य सुतो धीमानजनिष्टास्त्वमीदृशः । अत परं तपः कृ-

दो ॥ ५१६ ॥ कदाचित यह कहो कि जो विसंवादरहित है वही पूत्यक्ष है और वही पूमाण है तो भी पूछा जा सकता है कि वही पूमाण क्यों है ? कदाचित् कहो कि अनुमानसे ऐसा ही सिद्ध होता है तो फिर उत्तरमें कहा जा सकता है कि अनुमान तुम्हें इष्ट नहीं है इसके सिवाय फिर भला राजाओंको भी अनिष्ट क्या होगा ? ॥ ५१७ ॥ अथवा सांख्य आदि अन्य मतोंके बचन भलेही अपूमाण हों क्योंकि उनमें परस्पर विरोध आता है परंतु अरहंत के वचन कभी अपूमाण नहीं हो सकते क्योंकि सर्वज्ञ होनेसे पूत्यक्ष पूमाणके द्वारा उनमें विसंवादका अभाव सिद्ध होता है ॥ ५१८ ॥ इसपूकार अरहंतदेवके कहे हुए सब यथार्थ तत्त्वों को सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि हे राजसे तेरे धर्म को मैं भी स्वीकार करता हूं ॥ ५१९ ॥ इसप्रकार उसने उस श्रावकके कहे अनुसार जिनेंद्र देवका कहा हुआ निर्मल धर्म स्वीकार किया सो ठीक ही है क्योंकि जिसप्रकार औषधिका सबको अनुराग होता है उसीप्रकार सज्जनोंके हितरूप वचनोंका भी सबको अनुराग होता है ॥ ५२० ॥ अथानंतर वे दोनों ही साथ चलने लगे दैवयोगसे पाप कर्मके उदयसे वे दोनोंही किसी गहन बनमें जाकर मार्ग भूल गये और दिशाभूल हो गये ॥ ५२१ ॥ तब श्रावकने विचार किया कि यहां मार्ग बतलाने वाला कोई नहीं है क्योंकि इस बनमें मनुष्य का कहीं पता ही नहीं है यहां पर सिवाय श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए उपायके और कोई उपाय ही नहीं है ॥ ५२२ ॥ ऐसे समयमें शूरवीरका पांडित्य इसीमें है कि वह आहार और शरीरका त्याग करदे । इस तरह विचार कर वह सन्यास धारणकर ध्यानस्थ विराजमान होगया । ब्राह्मण ने भी उसे इसप्रकार देखकर अपना चित्त शुद्ध किया और उसके उपदेशके अनुसार उसीतरह सन्यास धारण कर शरीर छूटजानेपर वह सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ । वहांके देवोंके सुख भोगकर आयुके अंतमें पुण्यकर्मके उदयसे राजा श्रेणिकके तू अभयकुमार नामका ऐसा बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न हुआ है । आगे तू श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ बारह तरहका तपश्चरण धारणकर मोक्षस्थानको प्राप्त होगा यह सब

मन ॥ ५१० ॥ हेतुवादोऽप्रमाणं चेद्यथाश्रुतिरकृत्रिमा । इतीद सत्यमेव किं कृत्रिमाश्रुतिरित्यपि ॥ ५११ ॥ वाग् न तथ्य: स्याद्धेत्वाभावविशेषत. । मृत्वा शीर्त्वापि तद्धेतुरेषितव्यस्त्वयापि सः ॥ ५१२ ॥ इष्टे तस्मिन्मयाभीष्टो विश्वविदिकथ सिद्ध्यति । ततः तसूक्तेन विरुद्ध नेष्यते बुधै ॥ ५१३ ॥ विप्रस्त्व षट्प्रमावादी न चार्वाको न मां प्रति । प्रयोगोऽनभ्युपेतत्वादित्युक्तिर्घटते न ते ॥ ५१४ ॥ साध्यसाध्यो हेतुरध्यक्षगोचरः । तद्‌द्‌दृष्ट्वा सि कथ न स्यात्प्रयोगस्त्वा प्रतिप्रमा ॥ ५१५ ॥ क्वचिच्च व्यभिचाराच्चेत्प्रत्यक्षेपि न सोस्ति किं । नानुमानप्रमुच्यतामयमाग्रह ॥ ५१६ ॥ प्रत्यक्षम-विसंवादि प्रमाणमिति चेत्कुत । अनुमानेपि तन्नेष्टमनिष्ट किं क्षितीशिमि: ॥ ५१७ ॥ अस्तु साख्यादिवाद प्रमाण विरोधतः । दृष्टेन ते न सवादसिद्धे-

पुरुषका भी पड जाना (धोखा खाना) दुर्लभ नहीं है । हे विप्र यदि तुम इसकार कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इससे कुछ वडे आदमियोंका–विद्वानोंका मन आकर्षित नहीं होता ॥ ५०७--५१० ॥ इसका भी कारण यह है कि हेतुवादको अप्रमाण मान लेनेपर जिसप्रकार वेद अकृत्रिम वा अपौरुषेय हैं यह वात सत्य है उसी प्रकार वेद कृत्रिम वा पौरुषेय है यह बात भी क्या सत्य नहीं है ? कदाचि इसके उत्तरमें यह कहा जाय कि केवल वचनमात्रसे कह देना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंके सिद्ध करनेमें कोई शेष हेतु नहीं है तो फिर मर सडकर तुम्हें वेदको अकृत्रिम सिद्ध करनेका हेतु स्वीकार करना ही पडेगा ॥ ५११--५१२ ॥ यदि वेदको अकृत्रिम सिद्ध करनेके लिये किसी हेतुको मानना इष्ट है तो फिर उसी हेतुवादसे वा अनुमसे हमारे अभीष्ट ऐसे सर्वज्ञकी सिद्धि भी क्यों नहीं हो जायगी अर्थात् अवश्य होजायगी इसलिये बिद्वान् लोग सर्वज्ञदे कहे हुए बचनोंके विरुद्ध कभी स्वीकार नहीं करते हैं ॥ ५१३ ॥ हे विप्र ! तुम प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन छह प्रमाणोंको माननेवाले मीमांसक हो, केवल प्रत्यक्षप्रमाणको माननेवाले चार्वाक नहीं हो इसलिये "यह अनुमानका प्रयोग मेरे लिये नहीं है क्योंकि मैं हेतुवाद मानता नहीं" यह तुम्हारी युक्ति अथवा तुम्हारे वचन ठीक नहीं जम सकेंगे ॥ ५१४ ॥ साध्य साधनके अविनाभावी संबंधको हेतु कहते हैं और वह हेतु प्रत्यक्ष होता है इसलिये उस हेतुको प्रत्यक्ष देखकर उसके संबंधको जाननेरूप तर्कप्रमाण के द्वारा उसकी व्याप्तिका ज्ञान कैसे नहीं होगा अर्थात् उस साधनसे साध्यका ज्ञान क्यों नहीं होगा और फिर ऐसा अनुमानका प्रयोग तुम्हें प्रमाण क्यों नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य मानना पडेगा ॥ ५१५ ॥ कदाचित् यह कहो कि अनुमानमें कहीं व्यभिचार हो जाता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कहीं व्यभिचार आ जाना क्या प्रत्यक्ष प्रमाण में अर्थात् नहीं है ? वहां भी है इसलिये हे आर्य ! अनुमान प्रमाण नहीं है इस आग्रह को वा हठको छोड

सोऽब्रवीत् । आप्तोऽपागमवैमुख्यादिति हेतुन मां प्रति ॥ ४९९ ॥ साख्याद्याप्तप्रवादानां पौरुषेयत्वदोषतः । दापताः पुरुषाः सर्वे वाल रागाद्यविद्यया ॥ ५०० ॥ इत्यनालोचितार्थस्य वचांते नेति सारतो । यतो रागाद्यविद्यानां क्वचिन्निर्मूलसंक्षयः ॥ ५०१ ॥ सर्वज्ञस्य विरागस्य प्रयोगः साधनं प्रति । क्रियते सुक्तिवादानुसारिणो विदुषस्तव ॥ ५०२ ॥ क्वचिदात्यंतिकीं पुंसि याति सान्द्रमविद्यता । रागादयस्तिरोभूतिं तारतम्यावलोकनात् ॥५०३ ॥ सामग्रीसन्निधानेन कनकाश्मकलंकवत् । तत्तथा चेन्न जायेत तारतम्यं च नोभवेत् ॥ ५०४ ॥ दृष्टेस्तदस्तु चेन्मूलहानिः केन निवार्यते । सर्वशास्त्रकलाभिज्ञे सर्वज्ञोक्तिर्जनोदिता॥४०५॥ मुख्यसर्वज्ञसिद्धिं गौणत्वात्साधयेदियं । चैत्रे सिंहाभिधानेन मुख्यसिंहस्य सिद्धिवत्॥५०६॥न मां प्रति प्रयोगोऽयं मुक्तिहेतोर्निराकृतेः अवस्था देशकालादिभेदाद् भिन्नासु शक्तिषु॥५०७॥भावानामनुमानेन प्रतीतिरतिदुर्लभा । यत्नेन साधितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः॥५०८॥ अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथा क्रियते यत । हस्तस्पर्शादिवांधस्य विषमे पथि धावतः ॥५०९॥ अनुमानप्रधानस्य विनिपातो न दुर्लभः । इति चेद्विप्र! नैतेन गृह्यते महता

ओंका कहीं भी अत्यंत नाश हो सकता है और रागादि अविद्याओंके नाश होनेसे सर्वज्ञ और वीतरागकी सिद्धि हो सकती है तुम युक्तिवादको माननेवाले विद्वान हो इस लिये तुम्हारे लिये सर्वज्ञ वीतरागकी सिद्धिका प्रयोग किया जाता है। अविद्या और रागादि भावोंमें तारतम्य (हीनाधिकता) देखा जाता है इस लिये किसी पुरुषमें अविद्याके साथ साथ रागादि भवोंका सर्वथा नाश भी हो सकता है ॥ ४९७--५०३ ॥ जिस प्रकार सामग्रीके मिलने पर कनक पाषाणकी कीट कालिमा आदि दूर की जा सकती है उसी प्रकार अविद्या और रागादि विकार भी नाश किये जा सकते हैं यदि वे नाश न किये जा सकें तो फिर उनमें हीनाधिकता भी नहीं होनी चाहिये परंतु हीनाधिकता तो देखी जाती है इस लिये उनकी मूल हानिको भी कौन निवारण कर सकता है? जो सब शास्त्र और कलाओंमें निपुण हैं उन्हींको लोग सर्वज्ञ कह देते हैं और उनकी सर्वज्ञकी यह गौण युक्ति ही मुख्य सर्वज्ञको सिद्ध कर देती है जिस प्रकार कि किसी वालकको सिंह कहनेसे मुख्य सिंहकी सिद्धी हो जाती है ॥ ५०४--५०६ ॥ कदाचित् यह कहा जाय कि यह सर्वज्ञ सिद्ध करनेका प्रयोग मेरे लिये (मीमांसकके लिये) नहीं हो सकता क्योंकि रागादि दोषोंके सर्वथा नाश होनेकी प्रतीतिरूप जो मोक्षका कारण है उसका निराकरण किया जा चुका है कि अवस्था देश काल आदिके भेदसे शक्तियां अनेक तरह की हो जाती हैं इस लिये रागादि दोषोंकी हीनाधिकता तो हो सकती है परंतु उनका सर्वथा नाश नहीं हो सकता। पदार्थोंका अनुमानसे निश्चय होना अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि अनुमान करनेमें अत्यंत कुशल पुरुष भी वडे यत्नसें किसी पदार्थको सिद्ध करे तो भी अन्य प्रवादीकी ओरसे वह पदार्थ दूसरी तरह सिद्ध किया जा सकता है। जिस प्रकार केवल हाथके स्पर्शसे विषम मार्गमें दौडने वाले अंधे पुरुषका पड जाना दुर्लभ नहीं है उसी प्रकार अनुमानको प्रधान माननेवाले

पंचाग्निमध्येन्यैर्दुस्सहं तप ॥ ४८८ ॥ कुर्वतस्तापसस्योच्चैः प्रज्वलद्वह्निसंहतौ । व्यंजयत्प्राणिनो घात षड्भेदानामनारत ॥ ४८९ ॥ तस्य पाखंडिमौढ्यं च युक्तिभिः स निराकृतः । गोमांसभक्षणागम्यगमाद्यैः पतिते क्षणात् ॥ ४९० ॥ वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेस्मिंश्च दर्शनात् । ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥ ४९१ ॥ नास्ति जातिकृतो भेदो मनुष्याणा गवाश्ववत् । आकृतिग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्पते ॥ ४९२ ॥ जातिगोत्रादिकर्म्माणि शुक्लध्यानस्य हेतव । येषु ते स्युस्त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिता ॥ ४९३ ॥ अच्छेदो मुक्तियोग्याया विदेहे जातिसंततेः । तद्धेतुनामगोत्राढ्यजीवाविच्छिन्नसंभवात् ॥ ४९४ ॥ शेषयोस्तु चतुर्थे स्यात्काले तज्जातिसंतति । एवं वर्णविभागः स्यान्मनुष्येषु जिनागमे ॥ ४९५ ॥ इत्यादिहेतुभिर्जातिमौढ्यमस्य निराकरोत् । वटेस्मिन् खलु वित्तेशो वसतीत्येवमादिक ॥ ४९६ ॥ वाक्य श्रद्धाय तद्योग्यमाचरंतो महीभुज । किंम्न जानंति लोकस्य मार्गोय प्रथितो महान् ॥ ४९७ ॥ न त्यक्तु शक्य इत्यादि न ग्राह्य लौकिक वचः । आप्तोक्तागमबाह्यत्वान्मदोन्मत्तकवाक्यवत् ॥ ४९८ ॥ इति तल्लोकमौढ्य च निरस्तुदथ

शरीरमें वर्ण वा आकारसे कुछ भेद भी दिखाई नहीं पडता और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें शूद्रोंसे भी गर्भाधानकी प्रवृत्ति देख पडती है, इसलिये मनुष्योंमें गाय और घोडेके समान जातिका किया हुआ कुछ भेद नहीं है। यदि आकृति में कुछ भेद हो तो जातिमें भी कुछ भेद कल्पना किया जा सकता है ॥४८८--४९२॥ जिनकी जाति गोत्र कर्म आदि शुक्लध्यानके कारण हैं वे उत्तम तीन वर्ण कहलाते है और बाकी सब शूद्र कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ विदेहक्षेत्रमें मोक्षजाने योग्य जातिकी संतानका कभी नाश नहीं होता है क्यों कि मोक्षके कारणभूत नाम गोत्रसहित जीव व्यवधानरहित सदा बने रहते हैं। शेष भरत ऐरावत क्षेत्रमें चौथे कालमें ही जातिकी संतान होती है सदा नहीं। जैन शास्त्रोंमें मनुष्योंका वर्ण विभाग इस प्रकार निरूपण किया गया है ॥ ४९४–४९५ ॥ इस प्रकारके वचनोंके द्वारा उस श्रावकने उसकी जातिमूढता भी दूर की। इसके बाद वह श्रावक फिर कहने लगा 'कि इस वट वृक्ष पर कुवेर रहता है ऐसी बातों पर श्रद्धान रख कर राजा लोग भी उसके योग्य आचरण करने लग जाते हैं अर्थात् पूजने लग जाते हैं। क्या वे जानते नहीं हैं कि लोकका यह वडा भारी प्रसिद्ध हुआ मार्ग छोडा नही जा सकता' इत्यादि ऐसे लोकप्रसिद्ध बचनोको कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसे वचन सर्वज्ञप्रणीत शास्त्रके बाहर हैं और मदोन्मत्त पुरुषके वाक्यके समान है इस प्रकार समझा कर उसने उसकी लोकमूढता भी दूरकी। तदनंतर वह श्रावक फिर समझाने लगा कि कदाचित् यह कहा जाय कि आप्तके कहे हुए शास्त्रसे विमुख है इस लिये अप्रमाण है यह हेतु हमारे लिये नहीं हो सकता क्योंकि सांख्य आदिके मतमें आप्त माननेमें भी पौरुषेयका दोष आता है पुरुष जितने हैं वे सब रागादि अविद्यासे दूषित हैं सो भी ठीक नही है क्योंकि इस प्रकारके बचन सब विचाररहित हैं, इनमें कुछ भी सार नहीं है क्योंकि रागादि अविद्या-

तीर्थमूढं समागमत् ॥ ४८० ॥ अथास्मै भोक्तुकामाय भुक्त्वा स श्रावकः स्वयं । स्वोच्छिष्टं सुरसिंध्वंबुमिश्रितं पावनं त्वया ॥ ४८१ ॥ भोक्तव्यमिति विप्राय ददौ ज्ञापयितुं हितं । स दृष्ट्वाह कथं भुंजे तवोच्छिष्टं विशिष्टता ॥ ४८२ ॥ किं न वेत्सि ममैव त्वं वक्तेति स तमब्रवीत् । कथं तीर्थजलं पापमलापनयने क्षमं ॥ ४८३ ॥ यद्ययोच्छिष्टदोषं चेन्नापनेतुं समीहते । ततो निर्हेतुकामेतां प्रथ्येयां मुग्धचेतसा ॥ ४८४ ॥ त्यज दुर्वासनापापं प्रक्षाल्यमिति वारिणा । तथैव चेत्तपोदानाद्यनुष्ठानेन किं वृथा ॥ ४८५ ॥ तेनैव पापं प्रक्षाल्यं सर्वत्र सुलभं जलं । मिथ्यात्वादिचतुष्केण बध्यते पापमूर्जितं ॥ ४८६ ॥ सम्यक्त्वादिचतुष्केण पुण्यं प्राते च निर्वृतिः । एतज्जैनेश्वरं तत्त्वं गृहाणेत्यवदत्पुनः ॥ ४८७ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विप्रस्तीर्थमौढ्यं निराकरोत् । अथ तत्रैव

गंगा नदीके किनारे गया ॥ ४७९ ॥ भूख लगने पर उस ब्राह्मणने उस नदीके जलको मणिगंगा नामका उत्तम तीर्थ समझ कर स्नान किया और इस तरह तीर्थमूढताका काम किया ॥ ४८० ॥ तदनंतर जब वह ब्राह्मण खानेकी इच्छा करने लगा तब श्रावकने पहिले स्वयं खाकर उस बचे हुए उच्छिष्ट भोजनमें गंगा नदी का वही पानी मिलाकर उस ब्राह्मणको दिया और हित बतलानेके लिये कहा कि गंगाका जल मिल जानेसे यह भोजन पवित्र है इसे खाओ। उसे देखकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि तेरा उच्छिष्ट भोजन मैं कैसे खाऊं तब उस श्रावकने कहा कि तू जो इस तरह कह रहा है सो क्या तुझे मालूम नहीं है कि इसमें गंगाका जल मिला हुआ है। यदि यह गंगाजल इस भोजनके उच्छिष्ट दोषको भी दूर नहीं कर सकता तो फिर इन तीर्थोंके जलसे पापरूपी मल किस तरह दूर हो सकता है। इसलिये तू अपने मूढ चित्तसे इन निर्मूल विचारोंको निकाल दे यदि जलसे ही बुरी वासनाओंके पाप दूर हो जांय तो फिर तप दान आदि अनुष्ठानोंका करना व्यर्थ ही हो जायगा॥४८१--४८५॥सब लोग जलसे ही पाप दूर कर लिया करें क्योंकि जल सब जगह सुलभ रीतिसे मिलता है। मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय इनसे पापकर्मोंका बंध होता है और सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र तपसे पुण्य कर्मोंका बंध होता है तथा अंतमें इन्हीं चारोंसे मोक्ष होती है। इसलिये अब तू श्रीजिनेंद्रदेवका मत स्वीकार कर इस प्रकार उस श्रावकने कहा ॥ ४८६--४८७ ॥ उस श्रावकका यह उपदेश सुन कर उस ब्राह्मणने तीर्थ मूढता भी छोड दी इसके बाद वहीं पर एक तपस्वी पांच अग्नियोंके मध्यमें बैठकर दुःस्सह तप कर रहा था जलती हुई अग्निमें छहों प्रकारके जीवोंका निरंतर घात हो रहा था और वह प्रत्यक्ष जान पडता था उस श्रावकने उस तपस्वीके माननेकी पाखंडिमूढता भी बडी युक्तियोंसे दूर की। तदनंतर वह उसकी जातिमूढता दूर करनेकेलिये कहने लगा कि गोमांसभक्षण तथा वेश्यादि सेवन, न करने योग्योंका सेवन करनेसे क्षण भरमें पतित हो जाता है। इसके सिवाय इस

श्रावकः स्मिती ॥ ४६९ ॥ तस्यावमितिविध्यर्थं तद्द्रुमादात्तपल्लवैः । परिमृज्य स्वपादाक्तधूलिं ते बद्ध्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हतानां विघाताय समर्थेस बदद् द्विज । विप्रेणानु तथैवास्तु वो दोषस्तव देवता ॥४७१॥ परिभूतिपदं नेष्याम्युपाध्यायस्त्वमत्र मे । इत्युक्तस्तेन तस्मात्स प्रदेशान्तरमासवान् ॥४७२॥ श्रावकः कपिरोमाख्यवल्लीजालं समीक्ष्य मे । देवमेतदिति व्यक्तमुक्त्वा भक्त्या परीत्य तत् ॥ ४७३ ॥ प्रणम्य स्थितवान् विप्रोप्याविष्कृतरुपोत्सुकः । कराभ्यां तत्समुच्छिदन् विमृद्य सम ततः ॥ ४७४ ॥ तत्कृतासह्यकण्डूकाविशेषेणातिबाधित । एतदभिहितं देव त्वदीयमिति भीतवान् ॥ ४७५ ॥ सहासो विद्यते नान्यद्विधातृ सुखदुःखयोः । प्राणिनां प्राक्तनं कर्म मुक्त्वास्मिन्मूलकारणं ॥ ४७६ ॥ श्रेयो वाप्तु ततो यत्नं तपोदानादिकर्मभिः । कुरु त्वमिति तन्मौढ्यं हित्वा दैवं निबन्धनं ॥ ४७७ ॥ देवाः खलु सहायत्वं यांति पुण्यवतां नृणां । तके किं चिकराः पुण्यवलये मूलसन्निभाः ॥ ४७८ ॥ इत्युक्त्वा-स्तद्द्विजोद्भूतदैवं व्यरतत क्रमात् । श्रावकस्तेन विप्रेण गङ्गातीरं समागमत् ॥ ४७९ ॥ मुमुक्षुस्तत्र विप्रोगां मणिगङ्गाख्यमुत्तमं । तीर्थमेतदिति श्रुत्वा

चेष्टा को देखकर वह श्रावक हंसने लगा ॥ ४६६–४६९ ॥ तथा उसकी अवज्ञा करनेके लिये उस वृक्षके कुछ पत्ते तोड कर मींडकर अपने पैर की धूलिसे लगा लिये और उस ब्राह्मणसे कहा कि देख तेरा देव जैनियों का अनिष्ट करनेमें बिल्कुल समर्थ नहीं है। इसके उत्तरमें उस ब्राह्मणने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही इसमें हानि ही क्या है मैं भी तेरे देवका तिरस्कार कर सकता हूं इस विषयमें तू मेरा गुरु ही सही। इसतरह कहकर वे दोनो फिर साथ चलने लगे और किसी एक देशमें जा पहुंचे ॥ ४७०–४७२ ॥ वहां पर कपिरोमा नामकी बेलके बहुतसे वृक्ष थे उन्हें देखकर वह श्रावक कहने लगा कि देखो यह हमारा देव है कह कर उसने बडी भक्तिसे प्रदक्षिणा दी और नमस्कार कर अलग खडा हो गया। वह ब्राह्मण पहिलेसे क्रोध कर ही रहा था इस लिये उसने भी हाथसे उसके पत्ते तोडे और मसल कर सब जगह लगा लिये परंतु वे खुजली करनेवाले पत्ते थे इस लिये लगाते ही उसे असह्य खुजलीकी बाधा होने लगी तथा वह डर गया और श्रावकसे कहने लगा कि इसमें अवश्य ही तेरा देव है ॥ ४७३–४७५ ॥ तब हंसता हुआ वह श्रावक कहने लगा कि इस संसारमें जीवोंको सुख दुखका देनेवाला पहिले किये हुए कर्मोंके सिवाय और कुछ नहीं है कर्म ही इसके मूल कारण हैं ॥ ४७६ ॥ इस लिये तप दान आदि सत्कार्योंके द्वारा तू अपना कल्याण करनेके लिये प्रयत्न कर और इस प्रकारकी देवमूढता को कि देवता ही सब करते हैं निकाल फेंक बादको वह फिर कहने लगा कि जो मनुष्य पुण्यवान हैं उनके देवलोग स्वय आकर सहायक हो जाते हैं पुण्यरूपी कंकणके रहते हुए देव कुछ हानि नहीं कर सकते ॥ ४७७–४७८ ॥ इस प्रकार समझाकर अनुक्रमसे उसकी देवमूढता दूर की। तदनंतर वह श्रावक उस ब्राह्मणके साथ

नास्ति संबंधो यदि देहिनां । मया कथमवालंभि मनुष्यभवसंभव ॥ ४५८ ॥ ततः पुण्यं न पाप वा यथेष्ट वर्तनं सुख । इति कृत्वा मुनिश्चक पापी हिंसादिपंचकं ॥ ४५९ ॥ मांसाद्याहारसंसक्तो वह्वारंभपरिग्रहः । अनुबद्धोस्ति वध्वायुर्नारकं परमावधि ॥ ४६० ॥ तेन यास्यत्यसौ पृथ्वीं सप्तमां घोरदुःखदां । शुभा चोग्रानुभागात्तस्त्रीवेदोदयभाविता ॥ ४६१ ॥ प्रवृद्धरागप्रद्वेषपैशुन्यादिप्रदूषिता । गुणशीलसदाचारान् श्रुत्वालोक्य च कोपिनी ॥ ४६२ ॥ संक्लेशेन सदा वद्धनारकायुस्तनुच्युतौ । तम प्रभामहादु खभागिनीयं भविष्यति ॥ ४६३ ॥ इति तद्वचनप्रांते प्रणिपत्य मुनीश्वरं । कुमारोप्यभयोपृच्छत्स्वभवांतरसंतति ॥ ४६४ ॥ तदनुग्रहबुध्यैवमाहासौ भव्यवत्सल । इतो भवात्तृतीयेत्र भवे भव्योपि स कुधी ॥ ४६५ ॥ कश्चिद्विप्रसुतो वेदाभ्यासहेतो परिभ्रमन् । देशांतराणि पाखंडिदेवतातीर्थजातिभिः ॥ ४६६ ॥ लौकेन च विमुह्याकुलीभूतस्तत्प्रशंसनं । तदाचरितमप्युच्चैर्नुतिष्ठन्नयेच्छया ॥ ४६७ ॥ केनचित्पथि केनामा जैनेन पथि स व्रजन् । पाषाणराशिसंलक्ष्यभूताधिष्ठितभूरुह ॥ ४६८ ॥ समीपं प्राप्य भक्त्यातो देवमेतदिति द्रुतं । परीत्य प्रणमद् दृष्ट्वा तच्चेष्टा

पुण्य है न कुछ पाप है अपनी इच्छानुसार वर्ताव रखना ही सुख है। इसप्रकार वह पापी दृढ निशंक होकर हिंसादिक पांचो पाप करनेलगा है ॥ ४५९ ॥ वह मांसादिकके आहारमें आसक्त होगया है उसने आरंभी और बहुपरिग्रही होनेसे सबसे अधिक (सातवें नरकका) नरकायुका बंध किया है ॥ ४६० ॥ इसलिये वह घोर दुख देनेवाले सातवें नरकमें जायगा। इसी तरह शुभा भी तीव्र अनुभाग जन्य स्त्री वेदके उदय से खूब बढे हुए राग द्वेष पैशून्य आदि दोषोंसे खूब भरी हुई है गुणशील और सदाचार आदिकोंको सुन कर तथा देखकर वह बहुत ही क्रोध करती है इसलिये संक्लेश परिमाणोंसे उसने नरकायुका बंध किया है और शरीर छोडकर वह छठे नरकमें जायगी तथा वहांके अनेक दुख भोगेगी ॥ ४६१–४६३ ॥ इस प्रकार गणधरके कह चुकने पर अभयकुमारने भी उठ कर मुनिराजको नमस्कार किया और अपने पहिले भव पूछे ॥ ४६४ ॥ अभयकुमारका अनुग्रह करने के लिये ही भव्यों पर वात्सल्य रखने वाले गणधर कहने लगे कि इससे तीसरे भवमें तू भव्य होकर भी बुद्धिहीन था ॥ ४६५ ॥ तू किसी ब्राह्मणका पुत्र था और वेद पढनेके लिये अनेक देशोंमें इधर उधर घूमता फिरता था। पाखंडमूढता, देवमूढता, तीर्थमूढता और जातिमूढतासे सबको विमोहित कर बहुत ही आकुलित होता था तथा उन्हींकी प्रशंसा के लिये उन्हीं कामोंको अच्छीतरह करता था। किसी एक समय वह दूसरी जगह जा रहा था उसके साथ मार्गमें कोई जैनी पथिक भी जा रहा था। मार्गमें पत्थरोंके ढेरके पास एक भूतोंका निवासस्थान पेड था। उसके समीप जाकर और उसे अपना देव समझकर बडी भक्ति से उस ब्राह्मणपुत्रने उस किया। —

४४६ ॥ वागिवस्तरपरित्यागादुपदेष्टुर्महामते । अर्थमात्र समादाय समुत्था रुचिरर्थजा ,काचूर्लि तें' यस्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हतान्युद्दिशाताय समर्थस्य या श्रद्धा सावगाढेति कथ्यते ॥ ४४८ ॥ केवलावगमालोकिताखिलार्थगता रुचिः । परमावगाढासौ श्रद्धेति परमर्षिभिः ॥ ४४९ ॥ एतासपि महाभाग तव संत्यय काश्चन । दर्शनाद्यागमप्रोक्तशुद्धषोडशकारणैः ॥ ४५० ॥ भव्यो व्यस्तै समस्तैश्च नामात्मीकुरुतेंतिम । तेषु श्रद्धादिभि कैश्चिद्बध्वा तन्नामकारणे. ॥ ४५१ ॥ रत्नप्रभां प्रविष्टः संस्तत्फल मध्यमायुषा । भुक्त्वा निर्गत्य भव्यास्मिन् महापद्माख्यतीर्थकृत् ॥ ४५२ ॥ आगाम्युत्सर्पिणीकालस्यादिमः क्षेमकृत्सता । तस्मादासन्नभव्योसि माभैषी. ससृतेरिति ॥ ४५३ ॥ स्वस्य रत्नप्रभावाप्ते विषण्णः श्रेणिक पुन । अप्राक्षीद्धीधनान्योपि पुरेस्मिन्पुण्यधामनि ॥ ४५४ ॥ किमस्त्यधोगतिं यास्यन्नित्यतो मुनिरादिशत् । कालशौकरिकस्यात्र शुभायाश्च प्रवेशन ॥ ४५५ ॥ अस्ति द्विजतनूजायास्तत्कृतश्चैवनिशम्यता । कालसौकरिकोत्रैव पुरे नीचकुले भृश ॥ ४५६ ॥ भवस्थितिवशाद्बद्धनरायु पापकर्मणा । ससक्त्वोधुना जातिस्मरोभूत्वेवमस्मरत् ॥ ४५७ ॥ पुण्यपापफले-

अर्थज सम्यग्दर्शन है। मोहनीयकर्मके क्षय हो जानेपर जो अंग अंगबाह्यके ज्ञानकी भावनासे श्रद्धा उत्पन्न होती है वह अवगाढ सम्यग्दर्शन है। तथा केवलज्ञानसे सब पदार्थोंके देखलेनेपर जो श्रद्धान होता है वह परमावगाढ सम्यग्दर्शन कहलाता है ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥ ४४१–४४९ ॥ हे महाभाग इन श्रद्धाओंमेंसे आज तेरे कितनी ही श्रद्धाएं मौजूद हैं। इनके सिवाय दर्शन विशुद्धि आदि शास्त्रोंमें कहे हुए जो शुद्ध सोलह कारण हैं उनमेंसे सब या कुछ कारणोंसे यह भव्य जीव तीर्थंकर नामकर्मका बंध करता है। इनमेंसे दर्शनविशुद्धि आदि कितनेही कारणोंसे तू तीर्थंकर नामकर्मका बंध करेगा, मरकर रत्नप्रभा (पहिले) नरकमें जायगा मध्यम आयुसे वहाका फल भोगकर निकलेगा और हे भव्य फिर इसी भरतक्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीकालमें सज्जनोंको कल्याण करनेवाला महापद्म नामका सबसे पहिला तीर्थंकर होगा। तू आसन्नभव्य है इसलिये अब संसारसे भय मतकर ॥ ४५०–४५३ ॥ तदनंतर अपने नरकमें जानेकी बात सुनकर श्रेणिक कुछ खेद खिन्न हुआ और फिर पूछने लगा कि हे धीधन ! पुण्यके घर ऐसे इस नगरमें नरकमें जानेवाला और भी कोई है या नहीं ? तब गणधरदेव कहने लगे कि इस नगरमें कालसौकरी और ब्राह्मणकी पुत्री शुभा ये दो जीव ऐसे हैं जो नरक जायंगे ये जीव क्यों नरकमें जायंगे इसका कारण मैं कहता हूं सुनो ! कालसौकरिक इसी नगरमें नीच कुल में उत्पन्न हुआ है ॥ ४५४–४५६ ॥ यद्यपि पहिले वह पापी था तथापि भवस्थितिके वशसे उसे सातवार मनुष्य आयुका बंध हुआ था। अब उसे जाति स्मरण हो चुका है और वह सदा यही विचार करता रहता है कि जीवोंका यदि पुण्य पापके फलसे कुछ संबंध रहता है तो फिर मुझ ऐसे पापीको मनुष्य भव कैसे मिल गया ॥ ४५७–४५८ ॥ इसलिये न

बधानायुस्त्व प्रागेवात्र जन्मनि ॥ ४३५ ॥ बद्धदेवायुषोन्यायुर्नांगी स्वीकुरुते व्रत । श्रद्धानं तु समादत्ते तस्मात्त्व नाग्रहीर्व्रत ॥ ४३६ ॥ पुराणस्मृतिसंभूत-विशुद्ध्या करणत्रयात् । सम्यक्त्वमादिम प्राप्य शांतसप्तमहारजाः ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तकालेन सम्यक्त्वोदयभाविते । क्षायोपशमिके स्थित्वा श्रद्धाने सं-चलात्मके ॥ ४३८ ॥ सप्तप्रकृतिनिर्मूलक्षयारक्षायिकसागमः । आज्ञामार्गोपदेशोत्थं सूत्रबीजसमुद्भवं ॥ ४३९॥ संक्षेपाद्विस्तृतेरर्थाज्जावासमवगाढकं । परमावगाढ च सम्यक्त्व दशधोदितं ॥ ४४० ॥ सर्वज्ञाज्ञानिमित्तेन षद्द्रव्यादिषु या रुचिः । साज्ञा निःसगनिश्चेलपाणिपात्रत्वलक्षणः ॥ ४४१ ॥ मोक्षमा-र्ग इति श्रुत्वा या रुचिमार्गजात्वसा । त्रिषष्टिपुरुषादीना या पुराणप्ररूपणात् ॥ ४४२ ॥ श्रद्धा सद्य समुत्पन्ना सोपदेशसमुद्भवा । आचाराख्यादिमांगो-क्ततपोभेदश्रुतेर्द्धन ॥ ४४३ ॥ प्रादुर्भूता रुचिस्तज्ज्ञैः सूत्रजेति निरूप्यते । या तु वीजपदादानपूर्वसूक्ष्मार्थजा रुचि ॥ ४४४ ॥ वीजजासौ पदार्थाना सक्षेपो-क्त्या समुद्गता । या सा सक्षेपजा यान्या तस्या विस्तारजा तु सा ॥ ४४५ ॥ प्रमाणनयनिक्षेपाद्युपायैरतिविस्तृतैः । अवगाह्य परिज्ञानात्तत्त्वस्यागादिभाषित ॥

और स्मरण करनेसे उस श्रेणिकके परिणाम विशुद्ध हुए तथा तीनों करण होनेसे और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति तथा अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति ऐसे सात कर्मप्रकृतिरूप महारजके शांत होने पर उसे पहिला उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तके बाद ही सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्वका उदय हुआ और संचलात्मक क्षायोपशमिक सम्यग्द-र्शनमें ठहर कर ऊपर लिखी हुई सातों प्रकृतियोंके अत्यंत क्षय होजानेके कारण तेने क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया सम्यग्दर्शन दश प्रकार गिना जाता है आज्ञा, मार्ग, उपदेशोत्थ, सूत्रसमुद्भव, वीजसमुद्भव, संक्षेपज, विस्तारज, अर्थज, अवगाढ और परमावगाढ ॥ ४३८--४४० ॥ सर्वज्ञकी आज्ञाके निमित्तसे जो छहों द्रव्योंमें रुचि उत्पन्न हो जाती है उसे आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं मोक्षमार्ग परिग्रह रहित है, वस्त्ररहित है और पाणिपात्रता रूप ही है इस प्रकार मोक्षमार्गका स्व-रूप सुन कर जो श्रद्धान होता है वह मार्गज सम्यग्दर्शन कहलाता है। तिरेसठ महापुरुषोंके पुराणोंका प्ररूपण करनेसे जो शीघ्र श्रद्धा हो जाती है वह उपदेश समुद्भव वा उपदेशसे उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन है आचारांग नामके पहिले अंगमें कहे हुए तपश्चरणके भेदोंको सुन कर जो तत्वज्ञ लोगोंको शीघ्र श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है वह सूत्रज वा सूत्रसे प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन कहलाता है। जो वीजपदोंको ग्रहण पूर्वक सूक्ष्म पदार्थोंसे श्रद्धान प्रगट हो जाता है वह वीजज सम्यग्दर्शन है। पदार्थोंको संक्षेप रीतिसे कथन करनेसे जो श्रद्धान होता है वह संक्षेपज सम्यग्दर्शन है। जो विस्तारसे कहे हुए प्रमाण नय निक्षेपादिके द्वारा ज्ञानसागरमें अवगाहन कर अंगादिकमें कही हुई तत्त्वोंकी श्रद्धा होती है वह विस्तारज सम्यग्द-र्शन है। वचनोंके विस्तारको छोडकर महा बुद्धिमान उपदेशकसे जो

-निरयंजा कथूर्लि तें वश्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हतान्यद्रिराताय समर्थेस्य मापिवान् । त्वद्वारिपत्वयुवत्वा विगुणरक्तमतिद्विजः ॥४२५॥ वितीर्णवान् सुता तुभ्यं नि । परमार्थवग... नेति परमर्षिाक ... -षि महाभा कदाचित्केनचिद्धेतो स्वय राज्यं परित्यजन् । भवत ब्राह्मणग्रामादानीय कुणिकः क्षिती ॥ ४२६ ॥ स्वराज्य दत्तवांस्तुभ्य त्व च तत्प्रतिपालयन् । अन. मिथ्यक्तकोपः सन् पूर्वावज्ञानसस्मृतेः ॥ ४२७ ॥ विधित्सु निग्रह सूम्र नदिग्रामनिवासिना । आदिष्टवान् करं तेषा निर्वोढुमतिदुष्करं ॥ ४२८ ॥ भवतो विप्रकन्याया सुतोभूदभयाह्वय । स कदाचिन्निजस्थानादागच्छत्त्वां समीक्षितु ॥ ४२९ ॥ सम जनन्या तन्नदिग्रामे त्वत्त; समाकुला । प्रजा समीक्ष्य ते कोपमुपायैः समशीशमत् ॥ ४३० ॥ नानोपायप्रवीणोयमभयाख्योस्तु पंडितः । नाम्नेति विद्भिराहूत स तदा तेन धीमता ॥४३१॥ पुत्रेणानेन सार्द्ध त्व मिहायैवमुपस्थितः । शृण्वन् पुराणसद्भावमित्याहाकर्ण्य तद्वच; ॥४३२॥ सर्व निधाय तच्चित्ते श्रद्धाभून्महती मते । जैने कुतस्तथापि स्यान्न मे व्रतपरिग्रह ॥ ४३३ ॥ इत्यनुश्रेणिकप्रश्नादवदीद्गणनायक । भोगसजननाद्गाढमिथ्यात्वानुभवोदयात् ॥ ४३४ ॥ दुश्चरित्रान्महारंभात्संचित्यैनोनिकाचित । नारक ब-

समय राजा कुणिकने किसी कारणसे राज्यका स्वयं परित्याग कर दिया और उस ब्राह्मणके गांवसे बुला कर अपना सब राज्य तुझे दे दिया। तू भी उस राज्यका पालन करने लगा। नंदिग्रामके रहनेवालोंकी पहिली बात स्मरण कर तू अंतरंगमें क्रोधित हुआ और उनका अच्छी तरह निग्रह करनेके लिये उन पर वहुत कठोर और असह्य कर विठलाने की आज्ञा दी ॥ ४२६--४२८ ॥ तेरे उस ब्राह्मणकी पुत्रीसे एक अभयकुमार नामका पुत्र हुआ था, वह किसी एक समय अपने उस ब्राह्मणके गांवसे तेरे दर्शनके लिये आ रहा था। वह अपनी माताको साथ लिये था मार्गमें नंदिगांव पडा वहांकी प्रजा तुझसे पीडित हो ही रही थी इसलिये उसने अनेक उपायोंसे तेरा क्रोध शांत किया ॥४२९--४३०॥ वह अभयकुमार पुत्र अनेक उपाय करनेमें चतुर है तथा पंडित है भगवान महावीर स्वामीका बुलाया हुआ तू आज उसी बुद्धिमान पुत्रके साथ आकर इस समवसरण सभामें उपस्थित है इस प्रकार पुराणका भाव सुनकर और गणधर देवके कहे सब वचन सुन कर वह श्रेणिक फिर पूछने लगा कि आपके कहे हुए वचनोंको सुनकर तथा सबको चित्तमें धारण कर जैनमतमें मेरी वडी भारी श्रद्धा प्रगट हुई है तथापि मैं व्रतोंको क्यों ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ४३१--४३३ ॥ श्रेणिकके इस प्रकार प्रश्न करने पर वे गणधर देव कहने लगे कि तेने इसी जन्ममें पहिले भोगोंकी इच्छा, गाढ मिथ्यात्वका उदय, दुश्चारित्र और महारंभसे अनेक वडे पापोंका संग्रह किया है तथा नरकायुका बंध किया है और यह नियम है कि देवायुके वंधको छोडकर अन्य आयुका वंध करनेवाला फिर व्रतोंको स्वीकार नहीं कर सकता हां वह सम्यग्दर्शन धारण कर सकता है इसीलिये तू व्रत धारण नहीं कर सकता ४३४--४३६ ॥ इस प्रकार पुराणोंके सुनने

तरत्वपरान्मुख । अभूत्सौधर्मकल्पेसौ पतिर्मम कथं भवेत् ॥ ४१३॥ प्रकृष्टदिव्यभोगाना भोक्तेति वननायकः । तत्त्वार्थं तद्वचो ध्यायन्नहो माहात्म्यमीदृशं ॥ ४१४ ॥ व्रतस्यामीप्सित सौख्य प्रापयेदिति भावयन् । समाधिगुप्तमभ्येत्य श्रावकव्रतमग्रहीत् ॥ ४१५ ॥ भव्योयमिति तं मत्वा यक्षी तत्पक्षपातत । तया येनानयज्जैनधर्मं सा हि हितैषिता ॥ ४१६ ॥ स्वर्गात्खदिरसारोपि द्विसागरमितायुषा । दिव्यभोगोपभोगांते निदानात्प्रच्युतस्ततः ॥ ४१७ ॥ सूनु कुणिक-भूपस्य श्रीमत्यामभ्वभूःसा । अथान्यदा पिता ते स मत्पुत्रेषु भवेत् पति ॥ ४१८ ॥ राज्यस्य कतमोत्रेति निमित्तैः सकलैरपि । सम्यक् परीक्ष्य संतुष्टो निसर्गात्स्नेहतस्त्वयि ॥ ४१९ ॥ राज्यस्यार्होयमेवेति निश्चित्यापायशंकया । दायादेभ्यः परित्रातु त्वा सुधी कृत्रिमक्रुधा ॥ ४२० ॥ निराकरो-त्पुरात्तस्माद्देशांतरमभीयुषः । सुप्रकाशनृपादेशभयान्न सकलाः प्रजाः ॥ ४२१ ॥ नंदिग्रामनिवासिन्यः प्रत्युत्थानपुरस्सरं । स्नानभोजनशय्यादिक्रियावमुख्य-मागमन् ॥ ४२२ ॥ ततस्समपि केनापि ब्राह्मणेन समं व्रजन् । देवताजातिपाखंडमोहप्रतिविधायिनी ॥ ४२३ ॥ कथा: प्ररूपयन् प्रीत्या तदीयस्थान-

भोगोंका भोक्ता हुआ है, उस यक्षीकी ये यथार्थ बातें सुनकर वह विचार करने लगा कि देखो व्रतका कैसा माहात्म्य है इससे इच्छानुसार सुखोंकी प्राप्ति होती है इस प्रकार विचार करते हुए उसने समाधिगुप्त मुनिके समीप जाकर श्रावक के व्रत धारण कर लिये ॥ ४१४--४१५ ॥ इस प्रकार उस यक्षीने उसे भव्य समझकर उसके पक्षपातसे इस उपायके द्वारा उसे जैन धर्म धारण कराया सो ठीक ही है क्योंकि परहितकी इच्छा रखना इसीका नाम है ॥ ४१६ ॥ इधर खदिर-सारके जीवने स्वर्गमें दो सागरकी आयु तक दिव्य भोग भोगे और फिर वहांसे च्युत होकर तू राजा कुणिककी रानी श्रीमतीसे पुत्र उत्पन्न हुआ। किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तज्ञानियोंसे पूछा था कि मेरे पुत्रोंमेंसे राज्यका स्वामी कौनसा पुत्र होगा तब सब निमित्त ज्ञानियोंने अच्छी तरह परीक्षा कर राजाको संतुष्ट किया था और राज्यका स्वामी तुझे ही बतलाया था। राजाका तुझ पर स्वाभाविक स्नेह अधिक था इस लिये तुझे राज्यका अधिकारी समझकर और दायादोंसे तेरी रक्षा करनेके लिये उस बुद्धिमानने बनावटी क्रोधकर तुझे नगरके बाहर निकाल दिया। बाहर जानेकी आज्ञा पाकर तू नंदी ग्राममें पहुंचा परंतु राजाकी प्रगट आज्ञाके भयसे वहां रहनेवाली सब प्रजा न उठी, न सामने आई, तथा स्नान भोजन शय्या आदि क्रियाओंके प्रबंधसे वह विमुख ही रहा ॥ ४१७--४२२ ॥ तदनंतर तू भी किसी ब्राह्मणके साथ आगे चला और बडे प्रेमसे देवमूढता, जाति मूढता पाखंडि मूढता आदिको निरूपित करनेवाली कथाएं कहता हुआ उस ब्राह्मणके स्थानमें जा पहुंचा, तेरे वचन कौशल और युवावस्था आदि गुणोंसे अनुरंजित होकर उस ब्राह्मण ने तुझे अपनी यौवनवती कन्या दी उसके साथ विवाह कर तू वहीं पर सुखसे रहने लगा ॥ ४२३--४२५ ॥ किसी एक

४०१ ॥ अधस्तायोषित काञ्चिद्रुदतीममिवीक्ष्य सः । रोदिषि त्वं कुतो भूहीत्यप्रवीत्साप्युवाच ता ॥ ४०२ ॥ शृणु चित्त समाधाय वनयक्षी वसाम्यहं । वने खदिरसारस्ते मैथुनो व्याधिपीडित ॥ ४०३ ॥ काकमासनिवृत्यासौ पतिर्मम भविष्यति । गच्छस्त्व तत्परित्यक्तं मास भोजयितुं पुनः ॥ ४०४ ॥ नरके घोरदुःखाना भाजन कर्तुमिच्छसि । ततो मे रोदनं तस्मात्त्यज भद्र तवाग्रहं ॥ ४०५ ॥ इति तद्देवताप्रोक्तमवकर्ण्याटवीं प्रति । सप्राप्यातुरमालोक्य भिष-क्कथितमौषध ॥ ४०६ ॥ त्वया मयापनोदार्थमुपयोक्तव्यमित्यसौ । अगाद सोपि तद्वाक्यमनिच्छन्नेवमब्रवीत् ॥४०७॥ त्वं मे प्राणसमो बधुर्मा जिजीवयिषु र्मिद्दा । ब्रवीष्येव हितं नैव जीवित व्रतभंजनात् ॥ ४०८ ॥ दुर्गतिप्राप्तिहेतुत्वादिति तद्व्रतनिश्चित । ज्ञात्वा यक्षीप्रपच त शूरवीरो व्यबोधयत् ॥ ४०९ ॥ तद्वृत्तात विचार्यासौ श्रावकव्रतपचक । समादायाखिलं जीवितांते सौधर्मकल्पज ॥ ४१० ॥ देवोऽभवदनिर्देश्य: शूरवीरोपि दु.खितः । परलोकक्रिया कृत्वा स्वावास समुपाव्रजत् ॥ ४११ ॥ वटद्रुमसमीपस्थो यक्षि किं मे स मैथुन । पतिस्तवाभवन्नेति यक्षीमाहावदच्च सा ॥ ४१२ ॥ समस्तव्रतसपन्नो व्य-

इस वनमें रहती हूं। तेरा बहनोई खदिरसार व्याधिसे बहुत पीडित है और कौआका मांस त्याग करनेसे वह मेरा पति होगा। परंतु तू अब उसे त्याग किये हुये मांसको ही खिलानेके लिये जा रहा है और उसे इस तरह घोर नरकमें डाल कर दुःखोंका पात्र बनाना चाहता है इसीलिये मैं रो रही हूं हे भद्र अब तू अपना आग्रह छोड दे ॥ ३९७--४०५ ॥ इस प्रकार उस देवीकी वातें सुनकर वह शूरवीर उस वनमें पहुंचा खदिरसार रोगीको देखा और कहा कि वैद्यने जो औषधि बतलाई है वह मेरी प्रसन्नताके लिये ही खाओ इसके उत्तरमें मांसकी अनिच्छा करता हुआ वह खदिरसार इस प्रकार कहने लगा कि तू मेरे प्राणोंके समान प्रेम करनेवाला भाई है स्नेहके कारण मेरे जीवित रहनेकी इच्छासे तू ऐसा कहता है परंतु व्रतोंका भंगकर जीवित रहनेसे जीवका हित नहीं हो सकता ॥४०६--४०८॥ इसके सिवा व्रत भंगकर जीवित रहना दुर्गतिका भी कारण है। इसप्रकार कह कर वह अपने व्रतमें निश्चित ही रहा। उसका इस प्रकार निश्चय देख कर शूरवीरने उस यक्षीका वृत्तांत भी उसे समझा दिया ॥ ४०९ ॥ उस वृत्तातका विचार कर उस खदिरसारने श्राव-कोंके पूर्ण पांचों व्रत धारण किये और आयुके अंतमें मर कर सौधर्मस्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ। उसके वियोगसे शूरवीरको बहुत दुख हुआ और वह उसकी उत्तर क्रिया कर अपने घर जाने लगा ॥ ४१०-४११ ॥ जब वह उस वट वृक्षके नीचे गया और उस यक्षीसे पूछा कि क्यों हमारा बहनोई मर कर तुम्हारा पति हुआ या नहीं इसके उत्तरमें उस यक्षी ने कहा कि संपूर्ण व्रत-धारण करनेसे वह व्यंतर योनिसे परान्मुख हो गया अर्थात् इस योनिमें नहीं आ सका और सौ-धर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ फिर भला वह मेरा पति कैसे हो सकता है ॥ ४१२--४१३ ॥ वह तो अब उत्कृष्ट दिव्य

वा ॥ ३९० ॥ धर्मलाभोऽस्तु तेयेति व्याहृताश्वासन मुनि । किरातः कीदृशो धर्मस्तेन किं कृत्यमंगिनां ॥ ३९१ ॥ किरातेनेति संपृष्ठ सोपीति प्रत्यभाषत । निवृत्तिर्मधुमांसादिसेवाया पापहेतुत: ॥ ३९२ ॥ स धर्मस्तस्य लाभो यो धर्मलाभः स उच्यते । तेन कृत्यं परं पुण्य पुण्यात्स्वर्गे सुखं परं ॥ ३९३ ॥ श्रुत्वा त नाहमस्य स्वामीत्युवाच वनेचर । तदा कुल वितर्क्याह मुनि किं काकमांसक ॥ ३९४ ॥ भव्य भक्षितपूर्वं ते नवेति सुधियांवरः । तच्छ्रुत्वा स विचिंत्यास्य तत्कद चित्र भक्षितं ॥ ३९५ ॥ मयेत्येवं यदि त्याज्यं तत्त्वयेत्यब्रवीन्मुनिः । सोपि तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रतुष्टो दीयतां व्रतं ॥ ३९६ ॥ तवेत्यादाय वदित्वा गतस्तस्य कदाचन । व्याध संसाध्ये संभूते काकमांसस्य भक्षणात् ॥ ३९७॥ शांतिरस्येति निर्दिष्टे भिषग्भि स वनेचरः । प्रयांत्वमी मम प्राणाः किं कृत्यमिमकैश्चलैः ॥ ३९८ ॥ व्रत तपोधनाभ्यासे गृहीत धर्ममिच्छता । कृतसंकल्पभंगस्य कुनस्तत्पुरुषव्रतं ॥ ३९९ ॥ पापेनानेन मासेन नाथ प्राणि- निधाम्यह । इति नैच्छत्तदुक्तं तच्छ्रुत्वा तन्मैथुनः पुरात् ॥ ४०० ॥ सारसाख्यात्समागच्छन् शूरवीराभिधानक । महागहनमध्यस्थन्यग्रोधपृथिवीरुह ॥

मांसादिकका सेवन करना पापका कारण है इस लिये उसका त्याग करना धर्म है और उसकी प्राप्ति होना धर्मलाभ कह- लाता है। धर्मसेवन करनेसे जीवोंको पुण्यकी प्राप्ति होती है और पुण्यसे स्वर्गके उत्तम सुख मिलते हैं ॥ ३९१–३९३ ॥ इसे सुनकर वह भील कहने लगा कि ऐसे धर्मका स्वामी मैं नहीं हो सकता। तब मुनिराजने उसके कुलका विचार कर कहा कि हे भव्य ! क्या तेने पहिले कभी कौआका मांस खाया है तब वह बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भील विचारकर कहने लगा कि मैंने कौआका मांस तो कभी नहीं खाया है। तब मुनिराजने कहा कि तब उसे जरूर छोड देना चाहिये। मुनिराज के ये वचन सुनकर वह भील संतुष्ट होकर कहने लगा कि यह व्रत मुझे दे दीजिये ॥ ३९४–३९६ ॥ इस प्रकार वह भील उस समय व्रत ले कर तथा मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया। किसी एक समय उसके एक असा- ध्य रोग हुआ, वैद्योंने वतलाया कि कौआका मांस खानेसे यह रोग शांत हो सकता है। यह सुन कर वह भील विचार करने लगा कि भले ही मेरे प्राण चले जाओ इन चंचल प्राणोंसे मुझे क्या काम है मैंने धर्मकी इच्छासे उन मुनिराज से जो व्रत स्वीकार किया है उसका भंग मैं नहीं कर सकता क्योंकि संकल्प किये हुए व्रतका भंग करनेसे पुरुषव्रत कहां रह सकता है मैं इस पाप रूप मांसको खाकर आज जीवित रहना नहीं चाहता इस प्रकार सोच विचार कर उसने कौआ का मांस खाना स्वीकार नहीं किया। यह वात सुन कर शूरवीर नामका उसका साला सारस नगरसे आया। आते हुए मार्गमें उसने गहन वनके भीतर एक वटवृक्षके नीचे रोती हुई किसी स्त्रीको देखा। शूरवीरने उसे रोते हुए देखकर पूछा कि तू क्यों रो रही है ? इसके उत्तरमें वह कहने लगी कि तुम चित्त लगाकर सुनो मैं एक वनयक्षी हूं और यहां

सुम्मिता । श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणा श्राविकास्तत ॥ ३७९ ॥ देवादेव्यस्त्वसंख्यातास्तिर्यंचः कृतसंख्यकाः । गणेंद्रैर्दशभिः प्रोक्तैः परीतेन जिनेशिना ॥ ३८० ॥ सिंहविष्टरमध्यस्थेनार्द्धमागधभाषया । षट् द्रव्याणि पदार्थाश्च सप्त संसृतिमोक्षयोः ॥३८१॥ प्रत्येयस्तत्फल चैतत्सर्वमेव प्रपंचतः । प्रमाणनयनिक्षेपाद्युपायै सुनिरूपित ॥ ३८२ ॥ उत्पत्तिकादिधीयुक्ताः श्रुतवत सभासद । केचित्संयममापन्नाः संयमासंयम परे ॥ ३८३ ॥ सम्यक्त्वमपरे सद्यः स्वभव्यत्वविशेषतः । एव श्रीवर्द्धमानेशो विदधद्धर्मदेशना ॥ ३८४ ॥ क्रमाद्राजगृह प्राप्य तस्थिवान् विपुलाचले । श्रुत्वैतदागमं सद्यो मगधेश त्वमागमः ॥ ३८५ ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य प्रतुष्टः प्रणतो मुहुः । जातसंवेगनिर्वेग स्वपूर्वभवसंततिं ॥ ३८६ ॥ अन्वयुंक्त गणाधीश सोपीति प्रत्यबूबुधत् । त्रिषष्टिलक्षण पूर्वं पुराण पृष्टमादित ॥ ३८७ ॥ निर्दिष्ट च मया स्पष्ट श्रुत च भवता स्फुट । शृणु चित्त समाधाय श्रेणिक श्रावकोत्तम ॥ ३८८ ॥ वृत्तक तव वक्ष्यामो भवत्रयनिबंधनं । इह जंबूमति द्वीपे विंध्याद्रौ कुटचाह्वये ॥ ३८९ ॥ वने खदिरसाराख्यः किरातः सोन्यदा मुनिं । समाधिगुप्तनामानं समीक्ष्य व्यनमन्मु-

कहे हुए जीवोंसे भरी हुई बारह सभाओंसे वेष्टित होकर सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान् जिनेंद्र देवने अर्द्धमागधीभाषाके द्वारा छह द्रव्य, सात पदार्थ, संसार मोक्षका कारण और उसका फल आदि सब विस्तारपूर्वक बतलाया। भगवानने यह सब पदार्थोंका स्वरूप प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके कारणपूर्वक बतलाया जिसे सुनकर बहुतसे स्वाभाविक बुद्धिवाले शास्त्रज्ञ सभासदोंने संयम धारण किया और अपने भव्यत्वकी विशेषतासे किसीने उस समय सम्यग्दर्शन ही धारण किया। इसप्रकार श्रीवर्द्धमान स्वामीने सब जगह धर्मोपदेश दिया ॥ ३७९–३८४ ॥ किसी एक समय विहार करते हुए वे भगवान् राजगृह नगर आ पहुंचे और विपुलाचल पर विराजमान हुए। हे मगधेश ! इनका आगम सुनकर तू भी शीघ्र ही आया ॥ ३८५ ॥ इन सब कथाओंको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही संतुष्ट हुआ, उसने बार बार नमस्कार किया, और उसे संवेग तथा निर्वेग उत्पन्न हुआ। तदनंतर उसने गणधर स्वामीसे अपने पहिले भव पूछे उसके उत्तरमें गणधर स्वामीभी समझाने लगे कि तेने जो तिरेसठ शलाकाओंका पुराण पहिले पूछा था वह मैंने आदिसे अंत तक स्पष्ट रीतिसे कहा और तैंने भी अच्छी तरह सुना। हे श्रावकोत्तम श्रेणिक अब मैं तेरा तीन भव पहिलेका चारित्र कहता हूं तू चित्त लगाकर सुन। इसी जंबूद्वीपके विंध्याचल पर्वतके कुटच नामके वनमें एक खदिरसार नाम का भील था किसी एक दिन उसने समाधिगुप्त नामके मुनिराजको देख कर बडे हर्षसे उन्हें नमस्कार किया ॥ ३८६–३९० ॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने "आज तुझे धर्म लाभ हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। तब उस भीलने पूछा कि हे प्रभो! धर्म क्या है और उससे जीवोंको क्या लाभ होता है ? भीलके इस प्रकार पूछने पर वे मुनिराज कहने लगे कि मधु

ब्राह्मणमृत्तुभि ॥ ३६७ ॥ श्रीवर्द्धमानमानम्य सयमं प्रतिपन्नवान् । तदैव मे समुत्पन्ना परिणामविशेषत ॥ ३६८ ॥ ऋद्धय सप्त सर्वांगानामप्यर्थपदा न्यतः । भट्टारकोपदेशेन श्रावणे वहुले तिथौ ॥ ३६९ ॥ पक्षादावर्थरूपेण सथ पर्याणमन् स्फुट । पूर्वाह्णे पश्चिमे भागे पूर्वाणामप्यनुक्रमात् ॥ ३७० ॥ इत्यनुशातसर्वांगपूर्वार्था धीचतुष्कवान् । अगाना प्रथमदर्भे पूर्वरात्रे व्यधामह ॥ ३७१ ॥ पूर्वाणा पश्चिमे भागे प्रथकर्ता तनोभव । इति श्रुतर्द्धिभ. पूर्णो भूतं गणभृदादिम. ॥ ३७२ ॥ तत परं जिनेंद्रस्य वायुभूत्यग्निभूतिकौ । सुधर्ममार्यौ मौद्रयाख्य पुत्रमैत्रेयसंज्ञकौ ॥ ३७३ ॥ अकंपनोंधवेलाख्यः प्रभासश्च मया सह । एकादशेंद्रसपूज्या. सन्मतेर्गणनायकाः ॥३७४॥ शतानि त्रीणि पूर्वाणा धारका शिक्षकाः परे । शून्यद्वितयरंध्रादिरंध्रोक्ताः सत्यसयमा ॥३७५॥ सहस्रमेक त्रिज्ञानलोचना'स्त्रिशताधिक । पञ्चमावगमा सप्तशतानि परमेष्ठिन ॥ ३७६ ॥ शतानि नव विज्ञेया विक्रियर्द्धिविवर्द्धिताः । शतानि पंचसपूज्या तुर्यज्ञानलोचनाः ॥ ३७७॥ चतुःशतानि सप्रोक्तास्त्वनुत्तरवादिन । चतुर्दशसहस्राणि पिंडिता स्युर्मुनीश्वराः ॥ ३७८ ॥ चदनाद्यार्यिका शून्यत्रयषट्कवन्हि

सौधर्म इंद्रने मेरी पूजाकी और मैंने पांचसौ ब्राह्मणोंके साथ श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कारकर संयम धारण कर लिया। परिणामोंकी विशेष विशुद्धि होनेसे उसी समय मुझे सात ऋद्धियां प्राप्त हुईं। तदनंतर भट्टारक श्रीवर्द्धमानके उपदेशसे श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके दिन सवेरे के समय सब अंगोंके अर्थ और पद शीघ्रही अर्थरूपसे स्पष्ट जान पड़े और इसीतरह उसी दिनके शामके समय अनुक्रमसे सब पूर्वोंके अर्थ और पदोंका ज्ञान होगया ॥ ३६६--३७० ॥ इसप्रकार मुझे सब अंग और पूर्वोंके अर्थोंका ज्ञान होगया तथा चौथा मनः पर्यय ज्ञान भी होगया। तदनंतर मैंने रात्रिके पहिले भागमें अंगों की ग्रंथ रूपसे रचना की और रात्रिके पिछिले भागमें पूर्वोंकी ग्रंथ रचना की इसतरह अंग और पूर्वोंसे ग्रंथोंकी रचनाकर मैं ग्रंथकर्ता प्रसिद्ध हुआ हूं। इस प्रकार श्रुतज्ञानरूपी ऋद्धिसे पूर्ण होकर मैं श्रीवर्द्धमान स्वामीका पहिला गणधर हुआ हूं ॥ ३७१--३७२ ॥ इसके बाद वायुभूति अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौंद्रय, पुत्र, मैत्रेय, अकंपन, अंधवेल और प्रभास ये जिनेंद्रदेवके और गणधर हुए इसतरह मुझ सहित श्रीवर्द्धमानके इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे ग्यारह गणधर हुए॥३७३--३७४॥ इनके सिवाय तीनसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार थे, नौ हजार नौसो वास्तविक संयमको धारण करने वाले शिक्षक मुनि थे, तेरहसौ अवधिज्ञानी थे, सातसौ केवलज्ञानी अरहंत परमेष्ठी थे ॥३७५--३७६॥ नौसौ विक्रिया ऋद्धि को धारण करनेवाले मुनिराज थे और पांच सौ पूज्य मनः पर्यय ज्ञानी थे ॥ ३७७ ॥ तथा चारसौ अनुत्तरवादी थे इस प्रकार सब मुनिश्वरोंकी संख्या चौदह हजार थी ॥ ३७८ ॥ इसीप्रकार छत्तीस हजार चंदना आदिक अर्जिकाएं थीं एक लाख श्रावक थे तीनलाख श्राविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे इसप्रकार ऊपर

ज्ञात्वा मा परितुष्टवान् ॥ ३५६ ॥ तदैवागत्य त ग्राम गैतमाख्यं शचीपति । तत्र गैतमगोत्रोत्थमिंद्रभूर्ति द्विजोत्तम ॥३५७॥ महाभिमानमादित्यविमानादित्यभासुरं । शेषः पुण्यै समुत्पन्न वेदवेदांगवेदिन ॥ ३५८ ॥ दृष्ट्वा केनाप्युपायेन समानीयातिकं विभो । स्वपिप्रच्छिषित जीवभाव पृच्छेत्यचोदयत् ३५९ अस्ति किं नास्ति वा जीवस्तत्स्वरूप निरूप्यतां । इत्यप्राक्षमतो मह्यं भगवान् भव्यवत्सलः ॥३६०॥ अस्ति जीवं स चोपात्तदेहमात्र. सदादिभि । किमादिभिश्च निर्देश्यो नोत्पन्नो न विनक्ष्यति ॥ ३६१ ॥ द्रव्यरूपेण पर्यायैः परिणामी प्रतिक्षणं । चैतन्यलक्षण कर्ता भोक्ता सर्वैकदेशवित् ॥ ३६२ ॥ संसारी निर्वृतश्चेति द्वैविध्येन निरूपित । अनादिरस्य ससारः सादिनिर्वाणमिष्यते ॥ ३६३ ॥ न निर्वृतस्य संसारो नित्या कस्यापि ससृतिः । अनता ससृतौ मुक्तास्तदनता सुलक्षिताः ॥ ३६४ ॥ सति व्ययेपि वद्धाना हानिरेव नहि क्षयः । आनत्यमेव तद्धेतु शक्तीनामिव वस्तुनः ॥ ३६५ ॥ इति जीवस्य याथात्म्यं युक्त्या व्यक्त न्यवेदयत् । द्रव्यहेतुं विधायास्य वच कालादिसाधनः ॥ ३६६ ॥ विनेयोह कृतश्रद्धो जीततत्त्वविनिश्चये । सैाधर्मपूजित पंचशत-

वह इंद्र किसी भी उपायसे मुझे भगवानके समीप लाया और मुझसे प्रेरणा की कि तुम जो जीवका स्वरूप पूछना चाहते थे उसे पूछो ॥ ३५६–५९ ॥ तव मैंने पूछा कि जीव कोई पदार्थ है अथवा नहीं है उसका स्वरूप कहिये तव भव्योंपर दया करने वाले भगवान मुझसे कहने लगे कि जीव एक भिन्न पदार्थ है, वह प्राप्त हुई देहके समान है, सत् संख्या आदि सदादिक तथा निर्देश स्वामित्व आदि किमादिकसे उसका स्वरूप कहा जाता है वह द्रव्यरूपसे न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी नष्ट होगा किंतु पर्यायरूपसे वह प्रतिक्षण परिणामी है अर्थात् उत्पन्न और नष्ट होता रहता है । चेतना उस का लक्षण है, वह कर्ता है, भोक्ता है पदार्थोंके एकदेश तथा सर्वदेशका जानकार है ॥ ३६०–३६२ ॥ संसारी और मुक्त ऐसे दो भेदसे वह निरूपण किया जाता है, संसारमें यह जीव अनादि कालसे चला आ रहा है और मुक्त जीव सादि होता है अर्थात् कर्मोंके नष्ट कर लेने पर वह मुक्त कहलाता है ॥ ३६३ ॥ जो मुक्त नहीं है वह संसारमें ही रहता है अथवा संसारी कहलाता है, किसी (अभव्य) जीवका संसार सदा वना रहता है अर्थात् वह सदा संसारमें ही रहता है संसारमेंसे अनंत जीव तो मुक्त हो गये हैं और उनसे भी अनंत विद्यमान हैं । कर्म बंधनमें बधे हुए जीवोंमें से मुक्त हो जानेपर हानि अवश्य होती है परंतु उनका क्षय नहीं होता । जिसप्रकार पदार्थोंकी शक्तियां अनंत है इसलिये उनका कभी क्षय नहीं होता इसीतरह जीव भी अनंत हैं इसीलिये उनका क्षय कभी नहीं होता ॥ ३६५ ॥ इसप्रकार भगवानने युक्ति से स्पष्ट सिद्ध ऐसा जीवका यथार्थ स्वरूप कहा । तव भगवानके वचनको द्रव्य हेतु मानकर और काल लब्धि आदि की कारण सामग्री मिल जानेपर जीवतत्त्वके निश्चय करलेनेपर मुझे श्रद्धा हुई और मैं भगवानका शिष्य वनगया । तदनंतर

गलन्मालतीमालादिव्यांवरविभूषणा । नवप्रकारपुण्येशा भक्तिभारभरानता ॥ ३४५ ॥ शीलमाहात्म्यसंभूतप्रवृद्धहेमशराविका । शाल्यन्नभाववत्कोद्रवौदना विधिवत्सुधीः ॥ ३४६ ॥ अन्नमप्राणयत्तस्मै तेनाप्याश्चर्यपंचक । वसुभिश्च समायोगः कृतवंदनया तदा ॥३४७॥ भगवान् वर्द्धमानोपि नीत्वा द्वादशवत्सरान् । छाद्मस्थ्येन जगद्वंधुः जृंभिकाग्रामसन्निधौ ॥ ३४८ ॥ ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनांतरे । महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसत् ॥ ३४९ ॥ स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोधस्थात्सलभूरुह । वैशाखमाससज्ज्योत्स्नादशम्यामपराह्णके ॥ ३५० ॥ हस्तोत्तरांतरं याते शशिन्यारूढशुद्धिक । क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥ ३५१ ॥ घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानंतचतुष्टयं । चतुस्त्रिंशदतीशेषव्याभासिमहिमालयः ॥ ३५२ ॥ सयोगभावपर्यंते स्वपरार्थप्रसाधक । परमौदारिकं देहं विभदङ्गणे बभौ ॥ ३५३ ॥ चतुर्विधामरैः सार्द्धं सौधर्मेंद्रस्तदागत । तुर्यकल्याणसत्पूजाविधिं सर्वं समानयत् ॥ ३५४ ॥ अपायप्रासितन्विज्याक्षायकातिशयोर्जित । परमात्मपदं प्राप परमेष्ठी स सन्मति ॥ ३५५ ॥ अथ दिव्यध्वनेर्हेतुः कोसावीत्युपयोगवान् । तृतीयज्ञाननेत्रेण

गया ॥ ३४३–३४७ ॥ इधर जगतबंधु भगवान वर्द्धमानने भी बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें रहकर तपश्चरण किया । तदनंतर वे जृंभिका गांवके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें महारत्न शिलापर शालवृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर प्रतिमायोग धारणाकर विराजमान हुए । वैशाख शुक्ला दशमीके दिन शामके समय हस्त और उत्तर नक्षत्रके मध्यभागमें चंद्रमाके आजानेपर परिणामोंकी अत्यंत शुद्धतासे क्षपक श्रेणी चढकर शुक्लध्यानमें विराजमान हुए ॥ ३४८-३५१ ॥ उसीसमय चारों घातियां कर्मोंको नष्टकर उन्होंने अनंत चतुष्टय प्राप्त किये और चौंतीस अतिशयोंसे दैदीप्यमान होकर वे महिमाके घर बन गये ॥ ३५२ ॥ सयोग भाव रहने तक वे अपने और दूसरोंके प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले थे, और परमौदारिक शरीरको धारणकर आकाशरूपी आंगनमें सुशोभित हो रहे थे ॥ ३५३ ॥ उसीसमय सौधर्म इंद्र चारोंमकारके देवोंके साथ आया और उसने विधिपूर्वक ज्ञानकल्याणकी सब पूजा समाप्त की ॥ ३५४ ॥ अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति, शरीरकी पूजा और क्षायिक सम्यक्त्व आदि अतिशयोंसे वे उत्तम पूज्य होगये थे तथा वे परमेष्ठी वर्द्धमान स्वामी परमात्मपदको प्राप्त हो गये थे ॥ ३५५ ॥ तदनंतर इंद्रने भगवानकी दिव्यध्वनिका कारण क्या होना चाहिये इसपर विचार किया अवधिज्ञानसे इसका कारण मुझे जानकर वह शीघ्र ही गौतम गांवमें आया संतुष्ट हुआ तथा वहांपर मैं गौतम गोत्रीय इंद्रभूति नामका उत्तम ब्राह्मण था महा अभिमानी था आदित्य विमानसे चयकर शेष बचे हुए पुण्यकर्म के उदयसे दैदीप्यमान शरीर को पाकर उत्पन्न हुआ था और वेद वेदांग सबका जानकार था । मुझे देखकर

ट्टहासैर्दुरीक्षणै ॥ ३३३ ॥ स्थूलवेतालरूपाणि निशि कृत्वा समतत । पराण्यपि फणीन्द्रेभसिंहवन्ह्यनिलैः समं ॥ ३३४ ॥ किरातसैन्यरूपाणि पापैकार्जनपंडितः । विद्याप्रभावसंभावितोपसर्गैर्भयावहैः ॥ ३३५ ॥ स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थकः । स महातिमहावीराख्यां कृत्वा विविधाः स्तुतीः ॥३३६॥ उमया स समाख्याय नर्तित्वागादमत्सरः । पापिनोपि प्रतुष्यंति प्रस्पष्टं दृष्टसाहसाः ॥ ३३७ ॥ कदाचिच्चेटकाख्यस्य नृपतेश्चंदनाभिधां । सुतां वीक्ष्य वनक्रीडासक्तां कामशरातुरः ॥ ३३८ ॥ कृतोपायो गृहीत्वैनां कश्चिद्गच्छन्नभश्चरः । पश्चाद्भीत्वास्वभार्याया महाटव्यां व्यसर्जयत् ॥ ३३९ ॥ वनेचरपतिः कश्चित्तत्रालोक्य धनेच्छया । एनां वृषभदत्तस्य वाणिजस्य समार्पयत् ॥ ३४० ॥ तस्य भार्या सुभद्राख्या तया संपर्कमात्मनः । वणिजः शंकमानोभैा पुराणकोद्रवादनं ॥ ३४१ ॥ आरनालेन संमिश्रं शरावे निहितं सदा । दिशती शृंखलाबंधभागिनीं तां व्यधात्क्रुधा ॥ ३४२ ॥ परेद्युर्वत्सदेशस्थकौशांबीनगरांतरं । कायस्थित्यै विशंतं तं महावीरं विलोक्य सा ॥ ३४३ ॥ प्रत्युद्व्रजंतीविच्छिन्नशृंखलाकृतबंधना । लोलालिकुलनीलोरुकेशभाराचलाचलात् ॥ ३४४ ॥ वि

वीर रक्खा पार्वतीके साथ अनेक तरहकी स्तुतिकी नृत्य किया और फिर अभिमान छोडकर अपने स्थानको चला गया सो ठीक ही है क्योंकि साहसको स्पष्ट रीतिसे देखकर बडे २ पापी भी संतुष्ट होजाते हैं ॥ ३३२-३३७ ॥ किसी एक दिन चेटक नामके राजाकी चंदना नामकी पुत्री वन क्रीडा करनेमें लगी हुई थी उसे देखकर कोई विद्याधर कामवाणसे पीडित हुआ और किसी उपायसे उसे लेकर चलता बना। पीछे आई हुई अपनी स्त्रीसे डरकर उसने उस कन्याको महाटवीमें छोड दिया ॥ ३३८-३३९ ॥ वहांपर किसी भीलने देखकर धनकी इच्छासे वह वृषभदत्त नामके शेठको दे दी ॥ ३४० ॥ उस शेठकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था उसे शंका होगई कि कहीं अपने शेठका इसके साथ संबंध न हो जाय इसलिये वह सुभद्रा उस चंदनाको खानेके लिये एक मिट्टीके सकोरामें कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोंका भात सदा दिया करती थी और क्रोधमें आकर सदा उसे संकलसे बांधकर रखती थी ॥ ३४१-३४२ ॥ किसी दूसरे दिन वत्सदेशकी उसी कौशांबी नगरीमें श्रीमहावीरस्वामी आहारके लिये गये उन्हें देखकर वह चंदना उनके सामने जाने लगी उसीसमय उसकी संकलके बंधन सब टूट गये, चंचल भ्रमर समूहके समान चलाचल काले केशोंका समूह सुशोभित होने लगा, उसकी मालती माला टूट गई और दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे सुशोभित होकर और भक्तिके भारसे अत्यंत नम्रीभूत होकर पुण्यकी स्वामिनी उस चंदनाने नवधा भक्तिसे उनका पडगाहना किया। उसके शीलके माहात्म्यसे वह मिट्टीका सकोरा बडे भारी सुवर्णका होगया और कोदोंका भात शाली चावलोंका भात होगया उस बुद्धिमतीने विधिपूर्वक भगवानको आहार दिया इसलिये उसके येहां पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई और भाई बंधुओंसे भी उसका समागम हो-

केषु विषयं तमिनत्तप: ॥ ३२३ ॥ विषयद्रुमसंकीर्णं करुणाटविभोत्कटं । परीषहमहाघोरं विश्वश्वापदसंकुलं ॥ ३२४ ॥ कषायमत्तमातगसंघातशतसंतत । विवृतास्यांतकानंततुं मीनसविसीषण ॥ ३२५ ॥ चतुर्विधोपसर्गोग्रकठीरवकठोरित । विघ्नौघतस्कराउद्धं त्यक्त्वा भववनं शनै ॥ ३२६ ॥ तपोवनं सतां सेव्यमव्याहतसुखावहं । महाजनसमाकीर्णं विस्तीर्णमनुपप्लुत ॥३२७॥ महाव्रतमहासामंतान्वित मुनयानुग । दर्शनज्ञानचारित्रव्यक्तिशक्तित्रयोर्जित ॥३२८॥ शीलायुधो गुणमय तद्वचः शुद्धिमार्गग । सद्भावनामहाय: सन् प्रविश्य परमं पुमान् ॥ ३२९ ॥ आवसंस्तत्र निःशक नानायोगान् प्रवर्तयन् । धर्म्यध्यान विविक्तस्था ध्यायन् दशविध मुहुः ॥३३०॥ उज्जयिन्यामथान्येद्युस्तच्छ्मशानेतिमुक्तके । वर्द्धमानं महासत्त्व प्रतिमायोगधारिणं ॥ ३३१ ॥ निरीक्ष्य स्थाणुरेतस्य दैत्यद्वैर्यं परीक्षितुं । उत्कृत्य कृतिकारतीक्ष्णा प्रविष्टजठराण्यलं ॥३३२॥ व्यात्ताननानि भीष्माणि नृत्यंति विविधैर्लयै: । तर्जयंति स्फुरद्ध्वानै सा-

दुष्ट पशुओंसे भरा हुआ है, कषयारूपी मदोन्मत्त हाथियोके सैकडों समूहोंसे व्याकुल है, मुंह फाडे हुए कालके समान अनंत सर्पोंसे भयंकर है, चारों तरहके उग्र उपसर्गरूपी सिंहोंसे कठोर है, और अनेक विघ्नरूपी चोरोंसे रुका हुआ है ऐसे संसाररूपी वनको धीरे २ छोडकर उन परम पुरुष भगवानने जो सज्जनोंके द्वारा सेवन करने योग्य है जिसमें वाधा रहित सुख भरा हुआ है, जो उत्तम मनुष्योंसे भरा है, विस्तीर्ण है, और सब तरहके उपद्रवोंसे रहित है ऐसे तपोवनमें महाव्रतरूपी महायोधाओं सहित, मुनियोंकी अनुकूलताको धारणकर, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी प्रगट हुई तीनों शक्तियोंसे सुशोभित, शीलरूपी आयुध लेकर, गुणोंके समूहका कवच पहिनकर शुद्धतारूपी मार्गसे चलकर और उत्तम भावनाओंकी सहायता लेकर प्रवेश किया ॥ ३२४-३२९ ॥ वहांपर निःशंक रीतिसे रहकर उन्होंने अनेक योगोंकी प्रवृत्ति की और एकांत स्थानमें विराजमान होकर वारवार दश तरहके धर्म ध्यानका चिंतवन किया ॥ ३३० ॥ अथानंतर किसी एक दिन विहार करते हुये महा पराक्रमी भगवान् वर्द्धमानने अतिमुक्तक नामके श्मशानमें प्रतिमा योग धारण किया ॥ ३३१ ॥ उन्हें देखकर महादेवने अपनी दुष्टतासे उनके धैर्यकी परीक्षा करनेका विचार किया। पापोके उपार्जन करनेमें एक अद्वितीय पंडित ऐसे उस महादेवने अपनी विद्यासे अंधेरा करदिया फिर अनेक वेताल आकर तीक्ष्ण चमडेको निकालकर मुँहमें दवाये हुए तथा मुँह फाडकर अत्यंत भयानकरूप धारणकर अनेक तरहके लयोंसे नाचने लगे और कठोर शब्द, अट्टहास (जोरकी हँसी) तथा विकरालदृष्टिसे देखकर डराने लगे। तदनंतर सर्प हाथी सिंह अग्नि और वायु आदिके साथ भीलोंकी सेना वनकर आई इसतरह उस महादेवने अपनी विद्याके प्रभावसे अनेक भयानक उपसर्ग किये परंतु वह भगवानके चित्तको समाधिसे च्युत करनेमें समर्थ नहीं हुआ उससमय उसने भगवानका नाम महातिमहा-

म स्यात्प्रमादिन ॥ ३१३ ॥ चतुःसंज्ञाननेत्रस्य निसर्गबलशालिनः । तस्याद्यमेव चारित्रं द्वितीयं तु प्रमादिनां ॥ ३१४॥ सिंहेनैव मया प्राप्तं वने मु-
व्रत । मत्वेवेत्येकता तत्र सैंहीं वृत्तिं समाप स ॥ ३१५॥ अतीक्ष्णनखदंष्ट्रोयमक्रूरो रक्तकेसरः । शौर्यैकत्वबनस्थानैरन्वयान्मृगविद्विषं ॥३१६॥ सुरा-
नत्वैनमेतत्साहससंस्तवे । सक्ता समागमन् स्वस्वमोकः संतुष्टचेतस ॥ ३१७ ॥ अथ भट्टारकोप्यस्मादगात्कायस्थितिं प्रति । कुलग्रामपुरीं श्रीमत्-
पिपुरोपम ॥ ३१८ ॥ कूलनामा महीपालो दृष्ट्वा तं भक्तिभावित । प्रियंगुकुसुमाभासः त्रि:परीत्यप्रदक्षिण ॥ ३१९ ॥ प्रणम्य पादयोर्मूर्ध्ना निधिं-
गत । प्रतीक्ष्यार्घादिभि पूज्यस्थाने सुस्थाप्य सुव्रत ॥ ३२० ॥ गंधादिभिर्विभूष्यैतत्पादोपातमहीतल । परमान्नं विशुद्ध्यास्मै सोदितेष्टार्थसाधन ॥ ३२१ ॥
आनुषंगिकमेतत्ते फलं भावि महत्तरं । इति वक्तुमिवाश्चर्यपंचकं तद्गृहेभवत् ॥ ३२२ ॥ पुण्यहेतोर्विनेयानां वीरो निर्गत्य तद्गृहात् । विहिते-

उन भगवानके पहिला सामायिक ही चारित्र था क्योंकि दूसरा छेदोपस्थापना तो प्रमादी जीवोंके ही होता है ॥ ३१४ ॥ पहिले सिंह पर्यायमें मैंने वनमें मुनिराजकी आज्ञानुसार व्रत धारण किये थे यही समझकर उन्होंने अपनी वैसीही सिंहवृत्ति धारण की थी ॥ ३१५ ॥ जिसप्रकार सिंहपर्यायमें नख और दाढ तीक्ष्ण नहीं थे क्रूरता नहीं थी केसर रक्त थी और शूरवीरता धारणकर अकेला ही वनमें रहता था उसीप्रकार सिंहका अनुकरणकर वे भगवान भी अकेले ही रहते थे ॥ ३१६ ॥ देव सब उन भगवानको नमस्कारकर तथा उनके साहसकी स्तुति करते हुए संतुष्टचित्त होकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३१७ ॥ अथानंतर पारणाके दिन वे भट्टारक महावीर स्वामी आहारके लिये निकले तथा स्वर्गकी नगरीके समान कुलग्राम नामकी नगरीमें पहुंचे प्रियंगुके फूलके समान (कुछ लालवर्ण) कांतिको धारण करनेवाले वहांके कूल नामके राजाने बडी भक्तिसे उनके दर्शनकर उन्हें पडगाहन किया, तीन प्रदक्षिणाएं दीं उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर नमस्कार किया और घरमें आई हुई निधिके समान उन्हें माना । उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले उन भगवानको उस राजाने पूज्यस्थानपर विराजमानकर अर्घादिकसे उनकी पूजा की । उनके चरणकमलके समीपवर्ती पृथिवीका भाग गंधादिकसे विभूषित किया और बडी विशुद्धिके साथ उन्हें इष्ट अर्थको सिद्ध करनेवाला परमान्न समर्पण किया ॥ ३१८-३२१ ॥ यह तो आनुषंगिक फल है परंतु इसका होनहार फल बहुत बडा है यही कहनेकेलिये मानो उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ३२२ ॥ तदनंतर शिष्योंका पुण्य बढानेके लिये वे भगवान एकांत स्थानमें विधिपूर्वक तपश्चरण करनेकी इच्छासे उसके घरसे निकले ॥ ३२३ ॥ जो विषयरूपी वृक्षोंसे भरा हुआ है, पांचों इंद्रियोंरूपी व्याधोंसे उत्कट है, परीषहोंसे महाघोर है सब तरहके

उत्तरा नक्षत्रके मध्यमें था उस संध्याके समय श्रेष्ठ भगवान् वीरनाथने दीक्षा धारण की ॥ २९९-३०४ ॥ भगवानने जो वस्त्र आभरण माला आदि उतार फेंके थे वे इंद्रने महा पवित्र समझकर उठा लिये सो ठीक ही है क्योंकि भगवानका माहात्म्य ही ऐसा है ॥ ३०५ ॥ उससमय भगवानके शरीरमें लगा हुआ सुगंधित अंगराग समझ रहा था कि मैं यहांसे कैसे अलग हो सकता हूं यही समझकर मानों वह वहीं रहकर भगवानकी शोभा बढा रहा था ॥ ३०६ ॥ मलिन कुटिल, अज्ञानियोंके द्वारा त्याज्य ऐसे क्लेशोंके समान केश उन तरुण भगवानने जडसे ही उखाड फेंके थे ॥ ३०७ ॥ इंद्रने वे सब केश अपने हाथसे चुनकर उठा लिये थे और मणियोंके दैदीप्यमान पिटारेमें रखकर उनकी पूजाकी आदर सत्कार किया अनेक तरहके वस्त्रोंमें उन्हें लपेटकर रक्खा और फिर स्वयं सब देवोंके साथ जाकर उन्हें क्षीरसागरमें पधराया ॥३०८-३०९॥ मोक्ष लक्ष्मीकी इष्ट और चतुर दूतीके समान तपोलक्ष्मीने स्वयं आकर अतिशय शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवान् वीरनाथ अपनी इच्छानुसार स्वीकार किये थे ॥ ३१० ॥ अंतरंग परिग्रहोंका त्याग करदेनेसे उनका निर्ग्रंथपना बहुत ही अच्छा सुशोभित हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि सांपकी कांचलीके समान केवल वाह्य परिग्रहोंका त्याग करना कुछ सुशोभित नहीं होता ॥ ३११ ॥ उसी समय संयमने उन भगवानको केवलज्ञानके वयानेके समान चौथा मनःपर्ययज्ञान भी आकर समर्पण किया था ॥ ३१२ ॥ तपश्चरण करनेवाले उन भगवानने अप्रमत्त गुणस्थानमें जाकर मोक्षरूपी साम्राज्यकी कंठी भी पहिन ली थी सो ठीक ही है क्योंकि प्रमादी जीवोंको अर्थात् प्रमत्तगुणस्थानमें रहनेवालोंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है ॥ ३१३ ॥ चार ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले और स्वाभाविक बलशाली

रुग्म सः । श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन तत्प्रभापटलावृते ॥ ३०२ ॥ निविश्योत्तरमुखो धीरो स्फुरन्मणिशिलातले । दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥३०३॥ हस्तोत्तरक्षयोर्मध्य भागं वापास्तलक्ष्मणि । दिवसावसितौ वीर सयमामिमुखोऽभवत् ॥ ३०४ ॥ वस्त्राभरणमाल्यानि स्वयं शक्र समाददे । मुक्तान्येतेन पूतानि मत्वा माहात्म्यमीदृश ॥ ३०५ ॥ अगरागोंगलग्नोस्य सगधोह कथ मया । मोच्योयमिति मत्वेव स्थित शोभा समुद्वहन् ॥ ३०६ ॥ मलिना कुटिला मुग्धः पूज्यास्त्याज्या मुमुक्षुभि । केशा. क्लेशसमास्तेन यूनामूलात्समुद्धृता ३०७ ॥ सुराधीशः स्वहस्तेन तान् प्रतीक्ष्य महामणि—ज्वलत्पटलिकामध्ये विन्यस्याभ्यर्च्य मानितान् ॥ विचित्रतरवस्त्रेण पिधाय विधृतान् सुरै । स्वय गत्वा सम क्षीरवारिराशौ न्यवेशयत् ॥३०९॥ तपोलक्ष्म्या निगूढाभूद्राढ वाढमूढधी । अभ्येत्य मोक्षलक्ष्मीष्टशंफल्येव विदग्धया ॥ ३१० ॥ अतग्रंथपरित्यागात्तस्य नैर्ग्रन्थ्यमाबभौ । भोगिनो न्यस्तनिर्मोकस्त्यागवत्रावभासते ॥ ३ १ ॥ चतुर्थोप्यवबोधोस्य सयमेन समर्पित । तदैवांत्याववोधस्य सत्यकार इवेशितु ॥ ३१२॥ अप्रमत्तगुणस्थाने मुक्तिसाम्राज्यकठिका । तपस्विना सता लेभि तत्क-

मिर्वीत्यचोदितं ॥ २९० ॥ कुमारं भास्वराकारं द्रुमक्रीडापरायण । स विभीषयितु वांछन् महानागाकृतिं दधत् ॥ २९१ ॥ मूलात्प्रभृतिभुजस्कंधमविष्ठित । विटपेभ्यो निपत्याशु धरणीं भयविह्वला ॥ २९२ ॥ प्रपलायत तं दृष्ट्वा बालाः सर्वे यथायथ । महाभये समुत्पन्ने महतोन्यो न ॥ २९३ ॥ ललज्जिह्वाशतान्युग्रमारुह्य तमहिं विभी । कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यंकवत्तदा ॥ २९४ ॥ विजृंभमाणहर्षांभोनिधिः संगमकामर । वान् महावीर इति नाम चकार स ॥ २९५ ॥ त्रिंशद्वर्षद्रिस्तस्यैव कौमारमगमद्वयः । ततोन्येद्युर्मतिज्ञानक्षयोपशमभेदत ॥ २९६ ॥ समुत्पन्न स्मृतपूर्वभवांतरः । लौकांतिकामरैः प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिभि स्तुत. ॥ २९७ ॥ सकलामरसंदोहकृतनि कमणक्रिय । स्ववाक्प्रीणितसद्बंधुसभावि नः ॥ २९८ ॥ चंद्रप्रभाख्यशिविकामधिरूढो दृढव्रत । ऊढां परिवृढैर्नृणां ततो विद्याधराधिपैः ॥२९९॥ ततश्चानिमिषाधीशैश्चलच्चामरसहतिः । भ्रमभ्रमरमालाभिराह्वयद्वा प्रसूनौघैः प्रहसद्वा प्रमोदत । पल्लवैरनुराग वा स्वकीयं संप्रकाशयत् ॥ ३०१ ॥ नाथ. षंडवन प्राप्य कोकिलालापनैरपि ॥ ३०० ॥

घबड़ाकर अपने अपने सुभीते के अनुसार वृक्षसे पृथ्वी पर कूदकर भागगए। सो ठीकही है क्योंकि महाभय उपस्थित होनेपर महापुरुषों के सिवाय अन्य कोई नहीं ठहर सकता है। २९०—२९३ ॥ उससमय जिसकी सौ जिह्वाएं लपलपा रही है ऐसे उस सर्पके मस्तक पर बैठकर उन वीरनाथने माताकी चारपाईके समान क्रीड़ा की ॥ २९४ ॥ भगवान के समागमसे उस संगमदेवका हर्षरूपी महासागर उमड आया और उसने भगवानकी स्तुतिकर महावीर नाम रक्खा ॥ २९५ ॥ इस प्रकार भगवानके कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत हुए। उसके दूसरेही दिन मतिज्ञानके विशेष क्षयोपशमसे उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ और पहिले भवका जातिस्मरण हुआ। उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर समयानुसार उनकी स्तुतिकी और इंद्रादि सब देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया। भगवानने मीठी वाणी से सब भाई बन्धुओं को प्रसन्न किया और सबसे विदा ली ॥ २९६—२९८ ॥ व्रतोंको दृढतासे पालन करने वाले वे भगवान चंद्रप्रभा नामकी पालकी पर सवार हुए। पहिले वह पालकी चारों ओर घिरे हुए मनुष्योंने उठाई फिर विद्याधर ले चले और फिर अंतमें देव लोग उसे ले चले। उस समय चमरोंके समूह ढुलाये जा रहे थे। जिस वनकी ओर वे जा रहे थे वह वन मानों उडते हुए भ्रमरोंके समूहसे उन्हें बुलारहा था, कोयलोंके मधुर शब्दोंसे मानों हँस रहा था फूलोंके समूहसे मानों प्रसन्न हो रहा था और नवीन पत्तोंसे मानों अपना अनुराग ही प्रगट कर रहा था। वे भगवान् ऐसे षंड नामके वनमें पहुंचे पालकीसे उतरे तथा अपनी कांतिसे सब प्रदेशोंको ढकनेवाली एक बडी रत्नशिलाके ऊपर उत्तरकी ओर मुहकर तेलेका नियम लेकर विराजमान हुए। इस तरह अगहनवदि दशमीके दिन जब चंद्रमा हस्त और

दिनिर्दिष्टः दशात्मजगुणोदयः । सदसत्सकनिर्मुक्तः सर्वचेष्टाविराजित ॥ २८१ ॥ संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च । जन्मानन्तरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः ॥ २८२ ॥ तत्सदेहगते ताभ्या चारणाभ्या स्वभक्तितः । अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥ २८३ ॥ अर्थिनः किं पुनर्वाच्या शब्दाश्च गुणगोचरा । अप्राप्तार्थाः परेष्वस्मिन्नर्थवतोऽभवन् यदि ॥२८४॥ त्यागोऽयमेव दोषोऽस्य शब्दा दोषाभिधायिन । पुष्कलार्था परप्रासाद्गता दूरमनर्थकाः ॥ २८५ ॥ न गोमिन्यां न कीर्त्यां वा प्रीतिरस्याभवद्विभो । गुणेष्विव शुभलेश्याना प्रायेण हि गुणाः प्रिया ॥ २८६ ॥ तस्य कालवयोवांछावशेनैलविलस्य । भोगोपभोगवस्तूनि स्वर्गसाराण्यहर्निशं ॥ २८७ ॥ शक्राज्ञया समानीय व्ययं प्रावर्तयत्सदा । अन्येद्यु स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा ॥ २८८ ॥ देवानामधुना शूरो वीरस्वामीति तच्छ्रुते । देव सगमको नाम संप्राप्तस्त परीक्षितुं ॥ २८९ ॥ दृष्टोद्यानवने राजकुमारैर्बहुभि. सह । काकपक्षधरत्वैकवयो-

॥ २८० ॥ एक वार संजय और विजय नामके दो चारण मुनियोंको किसी पदार्थमें संदेह उत्पन्न हुआ था परंतु भगवानके जन्मके बाद ही वे उनके समीप आए थे और भगवानके दर्शन करने मात्रसे उनका संदेह दूर हो गया था इसलिये उन्होंने बडी भक्तिसे उनका होनहार सन्मति नाम रक्खा था ॥ २८१—२८३ ॥ गुणोंको कहनेवाले अर्थवाले शब्दोंकी तो बात ही क्या है वीरनाथको छोडकर अन्य लोगोंमें जिनका गुणवाचक अर्थ नहीं होता है ऐसे शब्द भी वीरनाथमें आकर अर्थवाले हो जाते थे ॥ २८४ ॥ उन भगवानके त्यागमें यही सबसे बडा दोष था कि रागद्वेष आदि दोषोंको कहनेवाले ऐसे शब्द कि दूसरी जगह जिनके अनेक अर्थ हो जाते हैं वे भी भगवान वीरनाथके समीपसे अनर्थक होकर दूर भाग जाते थे ॥ २८५ ॥ उन भगवानका प्रेम न तो लक्ष्मीमें था और न कीर्तिमें ही था किंतु शुभ लेश्याओंको धारण करने वालोंके समान गुणोंमें ही उनका प्रेम था सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः गुण सबको प्रिय होते ही हैं ॥२८६॥ इंद्रकी आज्ञासे कुबेर रात दिन उन भगवानके समय आयु और इच्छाके अनुसार स्वर्गकी सारभूत भोगोपभोग की सब चीजें लाता था और सदा उन चीजोंको काममें लाया करता था अथवा खर्च किया करता था। किसी एक दिन इंद्रकी सभामें देवोंमें परस्पर यह कथा चल रही थी कि इस समय सबसे शूरवीर श्रीवर्द्धमान स्वामी हैं उसे सुनकर संगम नामका एक देव उनकी परीक्षा करनेके लिये आया ॥ २८७—२८९ ॥ उस समय बालकोंके द्वारा प्रेरणा किये गये और सूर्यके समान दैदीप्यमान भगवान वीरनाथ, केश रखाए हुए, समान आयुवाले, ऐसे अनेक राजकुमारोंके साथ देखने योग्य उद्यान वनमें वृक्षपर चढने उतरनेका खेल खेल रहे थे। वहां पर आए हुए उस देवने उन्हें डरानेकी इच्छासे महानागका रूप धारण किया और वह वृक्षकी जडसे लेकर स्कंध तक बराबर लिपट गया। उसे देखकर सब बालक डरसे

बा दिवा ॥ २६९ ॥ ननादानकसंपातो ननर्त प्रमदागण: । जगौ च गायकानीक: पपाठाघोपि बंदिनां ॥ २७० ॥ अवातरत् सुराः सर्वेप्युद्गास्यावासमा-
त्मन । मायाशिशुं पुरोधाय मातुः सौधर्मनायक ॥ २७१ ॥ नागेंद्रस्कंधमारोप्य बालं भास्करभास्वरं । तत्तेजसा दिशो विभाकाशयममराधून ॥ २७२ ॥
संप्राप्य मेरुमारोप्य शिलाया सिंहविष्टरे । अभिषिच्य ज्वलत्कुंभै क्षीरसागरवारिभि ॥ २७३ ॥ विशुद्धपुद्गलारब्धदेहस्य विमलात्मनः । शुद्धिरेतस्य कांभोभि
दूष्यैरशुचिभिः स्वय ॥ २७४ ॥ चोदितास्तीर्थकृन्नाम्ना स्वाम्नायोयं समागत । इति वैकर्यमस्यैत्य कृताभिषवणा वयं ॥ २७५ ॥ अल तदिति तं भक्त्या-
विभूष्योद्यद्विभूषणैः । वीर: श्रीवर्द्धमानस्तेष्वित्याख्याद्वितय व्यधात् । ततस्त सममानीय सर्वामरसमन्वित । मातुरंके निवेश्योर्वैविहितानदनटकः ॥
२७७ ॥ विभूष्य पितरौ चास्य तयोर्विहितसम्मदः । श्रीवर्द्धमानमानम्य स्वधाम समगात्सुरैः ॥ २७८ ॥ पार्श्वेशतीर्थसंताने पंचाशद्द्विशताब्दके । तद
भ्यतरवर्त्यायुर्महावीरोत्र जातवान् ॥ २७९ ॥ द्वासप्ततिसमाः किंचिदूनास्तस्यायुष स्थिति । ससारत्निमितोत्सेध सर्वलक्षणभूषित ॥ २८० ॥ नि स्वेदत्वा-

द्वारा) माताके समीप मायामयी बालक रखकर वह बालक गोदीमें लिया और उदय होते हुए सूर्यके समान दैदीप्य-मान उस बालकको ऐरावत हाथीके कंधे पर विराजमान किया । उस बालकके तेजसे सब दिशाओंको प्रकाशित करता और देवोंसे घिरा हुआ वह इंद्र मेरुपर्वत पर पहुंचा और पांडुवनकी पाडुक शिला पर रक्खे हुए सिंहासन पर उन भगवान को विराजमान कर दैदीप्यमान सुवर्णके कलशों द्वारा क्षीर सागरका जल लाकर उनका अभिषेक किया ॥२७३॥ उन भगवानका शरीर विशुद्ध पुद्गलोंसे बना था फिर भला स्वयं अशुद्ध और दूषित जलसे उनकी शुद्धि कैसे हो सकती है ॥ २७४ ॥ पहिलेसे ही बंधे हुए तीर्थंकर नाम कर्मके उदयके द्वारा प्रेरणा करनेसे अथवा हमलोगोंकी यह आम्नाय ही है इसीलिये आकर हमलोग इनके सेवक हुए हैं और यह अभिषेकका कार्य समाप्त किया है ॥ २७५ ॥ बहुत कहनेसे क्या? बडी भक्तिसे दैदीप्यमान आभूषणोंसे विभूषित कर उनके वीर और वर्द्धमान ऐसे दो नाम प्रसिद्ध किये ॥ २७६ ॥ तदनंतर सब देवोंके साथ साथ उन्हें घर लाये और उन्हें माताकी गोदमें विराजमान कर आनंद नाटक किया ॥ २७७ ॥ उन इंद्रादि देवोंने माता पिताको भी विभूषित कर प्रसन्न किया और फिर सब देव उन श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७८ ॥ श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरके बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्रीमहावीर स्वामी हुए उनकी आयु भी इसीमें शामिल है ॥ २७९ ॥ उनकी आयु कुछ कम बहत्तरि वर्षकी थी, सात अरत्नि (अरत्नि कुछ कम एक हाथ) ऊंचा शरीर था और वे सब लक्षणोंसे सुशोभित थे ॥ २८० ॥ उनके पसीना नहीं आना आदि दशगुण जन्मसे ही थे तथा सात मदोंसे वे रहित थे और सब तरहकी चेष्टासे वे सुशोभित थे

तानसि ॥ २५८ ॥ सप्रासार्द्धासना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत् । सोपि तेषा फलं भावि यथाक्रममनूबुधत् ॥२५९॥ श्रुतस्वप्नफला देवी तुष्टा प्रासेव तत्फ-
ल । अयामराधिपा सर्वे तयोरभ्येत्य सपदा ॥ २६० ॥ कल्याणाभिषवं कृत्वा नियोगेषु यथोचित । देवान् देवींश्च संयोज्य स्वं स्व धाम ययुः पृथक् ॥
२६१ ॥ नवमे मासि संपूर्णे चैत्र मासे त्रयोदसी—दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यर्यमणिनामनि ॥ २६२ ॥ अलं कालः कुलस्यार्हत्सपदामालयोजनि । आकरो
गुणरत्नानामाश्रयो विश्रुतश्रिया ॥२६३॥ भानुमान् वधुपद्मानां भुवनत्रयनायक । दायको मुक्तिसाख्यस्य त्रायक सर्वदेहिनां ॥२६४॥ भर्मद्युतिर्भवध्वसी
मर्मवित् कर्मविद्विषां । धर्मतीर्थस्य धैरेयो निर्मल शमवारिधिः ॥ २६५ ॥ प्राचीव दिशि बालार्का यामिन्यामिव चंद्रमा । पद्मासामिव गंगौघो धात्र्यामिव
धनोत्करः ॥ २६६ ॥ वाग्वध्वामिव वाग्राशिर्लक्ष्म्यामिव सुखोदय । तस्या सुतोच्युताधीशो लोकालोकैकभास्कर ॥ २६७ ॥ मानुषाणा सुराणा च
तिरश्चां च चकार सा । तत्प्रसूत्या पृथुप्रीतिं तत्सत्यं प्रियकारिणी ॥ २६८ ॥ मुखाम्भोजानि सर्वेषां तदाकस्माद्दधु श्रियं । प्रमुक्तानि प्रसूनानि प्रमोदाश्राणि

पालिया हो । तदनंतर सब इंद्रादि देव अपनी अपनी विभूतिके साथ आए और सबने कल्याणाभिषेकका उत्सव मनाया फिर अनेक देव देवियोंको यथायोग्य कामोंपर अलग २ नियुक्त किया और सब देव अपने अपने स्थानको चले गये ॥ नौ महीने पूर्ण हो जानेपर चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नामके शुभ नक्षत्रमें जिसप्रकार पूर्व दिशासे उदय होता हुआ बालक सूर्य निकलता है रात्रिमें चंद्र निकलता है अथवा पद्मद्रहसे गंगाका समूह पडता है वा पृथ्वीसे धनसमूह निकलता है अथवा सरस्वतीसे वचनराशि निकलती है और लक्ष्मीसे सुखका उदय प्रगट होता है उसीप्रकार वह अच्युत देवका जीव प्रियकारिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ वह पुत्र कुलका अलंकार था, अरहंतकी संपदाओंका घर था, गुणरूपी रत्नों-का खजाना था, प्रसिद्ध लक्ष्मियोंका आश्रय था, भाई बंधु रूपी कमलोंके लिये सूर्य था, तीनोंलोकोंका नायक था, मो-क्षरूपी सुखका देनेवाला था, सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाला था, सुवर्णके समान उसकी कांति थी, संसारको नाश करनेवाला था, धर्मरूपी तीर्थकी प्रवृत्तिमें मुख्य था, शांतताका निर्मल समुद्र था और सूर्यके समान लोकालोकको प्रका-शित करनेवाला था ॥ २६०—२६७ ॥ उस प्रियकारिणीने उन भगवानको उत्पन्न कर देव मनुष्य और तिर्यंच सबके हृ-दयमें गाढ प्रेम प्रगट कर दिया था इसीलिये उसका प्रियकारिणी यह यथार्थ नाम पडगया था ॥ २६८ ॥ उससमय सब-के मुखकमलोंने अकस्मात् शोभा धारण करली थी और स्वर्गसे आनंदके आसुओंके समान फूलोंकी वर्षा हो रही थी॥६९॥ उस समय नगाडोंके समूह बज रहे थे, स्त्रियोंके समूह नाच रहे थे, गानेवालोंके समूह गा रहे थे और वंदीगणोंका समूह पाठ कर रहा था ॥ २७० ॥ देवलोग अपने अपने स्थानको छोडकर नीचे उतर रहे थे, तदनंतर सौधर्म इंद्रने (इंद्रानी

हकः । शुक्लेश्याद्वयोपेतो द्वाविंशत्या स निश्वसन् ॥ २४७ ॥ पक्षैस्तावत्सहस्राब्दैराहरन्मनसामृत । सदा मनःप्रवीचारो भोगसारेण तृप्तवान् ॥ २४८ ॥
आषष्ठपृथिवीप्राप्ति [illegible] विलोचनः । स्वावधिक्षेत्रसम्मेयबलाभाविक्रियावधि ॥ २४९ ॥ सामानिकादिभिर्देवैर्देवीभिश्च परिष्कृतः । पुण्योदयविशेषेण
मज्जतिस्म सुखाम्बुधौ ॥ २५० ॥ तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति । भरतेस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनाङ्गणे ॥ २५१ ॥ राज्ञः कुण्डपुरेशस्य
वसुधाराप तत्पृथु । सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः सिद्धार्थस्य दिन प्रति ॥ २५२ ॥ आसाढस्य सिते पक्षे षष्ठ्यां शशिनि चोत्तरा पाढे सप्ततलप्रासादस्याभ्यतरव
र्तिनि ॥ २५३ ॥ नद्यावर्तगृहे रत्नदीपिकाभिः प्रकाशिते । रत्नपर्यंकके हंसतूलिकादिविभूषिते ॥ २५४ ॥ रौद्रराक्षसगान्धर्वयामत्रितयनिर्गमे । मनोहराख्य-
तुर्यस्य यामस्याते प्रसन्नधीः ॥ २५५ ॥ दरनिद्रा न्यलोकिष्ट विशिष्टफलदायिनः । स्वप्नान् षोडश विच्छिन्नान् प्रियास्य प्रियकारिणी ॥ २५६ ॥ तदन्तेऽ
परं दन्त्य च गज वक्त्रप्रवेशिन । प्रभातपटहध्वानैः पठितैर्वन्दिमागधैः ॥ २५७ ॥ मङ्गलैश्च प्रबुध्याशु स्नाता पुण्यप्रसाधना । सा सिद्धार्थमहाराजमुपगम्य कृ

छठवें नरक तक उसे अवधिज्ञान था और छठवें नरकतक ही बल कांति
से वह सदा तृप्त रहता था ॥ २४७–२४८ ॥ सामानिक आदि अनेक देव और अनेक देवियोंके साथ वह इंद्र अपने पुण्यकर्मके
और विक्रिया आदि थी ॥ २४९ ॥ जब उसकी आयु छह महीनेकी रहगई और वह स्वर्गसे अवतार ले-
विशेष उदयसे सुखसागरमें स्नान करता था ॥२५०॥ इसी भरतक्षेत्रके विदेह नामके देशमें कुंडलपुर नगरके राजा सिद्धार्थके घर प्रतिदिन साढे
नेके सन्मुख हुआ उससमय आसाढ शुक्ला षष्ठीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें वह राजा
तीन करोड मणियोंकी भारी वर्षा होने लगी ॥ २५१–२५२ ॥ सतखने राजभवनके भीतर रत्नोंके दीपकोंसे प्रकाशित होनेवाले
सिद्धार्थकी प्रिय रानी प्रियकारिणी प्रसन्न चित्त होकर रत्नोंके बने हुए पलंगपर सो रही थी जब उस
नंद्यावर्त नामके राजभवनमें हंसके समान सफेद चादरसे सुशोभित ऐसे मनोहर नामका चौथा पहर आया तब उसने कुछ सु-
रातके रौद्र राक्षस और गांधर्व नामके तीन पहर निकल गये और सोलह स्वप्नोंके बाद उसने अप-
लीसी नींदमें विशेष फल देनेवाले अलग अलग सोलह स्वप्न देखे ॥ २५३–२५६ ॥ नगाडोंकी आवाजसे तथा मागधोंके द्वारा पढे
ने मुखमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा । तदनंतर सवेरेके बजनेवाले पवित्र वस्त्राभूषण पहिने । फिर वह महारानी महाराज सि-
हुए मंगल पाठोंको सुनकर वह जगी और स्नानादि कर उसने आधे आसनपर विराजमान होकर
द्धार्थके समीप पहुंची और उन्हें नमस्कार कर तथा उनके द्वारा दिये हुए सिद्धार्थने भी यथाक्रमसे उनका होनहार
उसने यथाक्रमसे सब स्वप्न सुना दिये । स्वप्न सुनकर महाराज मानों उसने उसीसमय फल
फल समझा दिया ॥ २५७–२५९ ॥ उन स्वप्नोंका फल सुनकर वह देवी ऐसी संतुष्ट हुई

२३५ ॥ विषये पुष्कलावत्यां धरेशः पुंडरीकिणी । पति सुमित्रविख्यातिः सुमताख्या मनोरमा ॥ २३६ ॥ प्रियमित्रस्तयोरासीत्तनयो नयभूषण । नाम्नैव
नमिताशेषविद्विषश्चक्रिवर्तिता ॥ २३७ ॥ संप्राप्य भुक्तभोगागो भगुरान् सर्वसंगमान् । क्षेमंकरजिनाधीशवक्त्रांभोजविनिर्गमात् ॥ २३८ ॥ तत्त्वगभंग-
मीरार्थव्याख्यानमला विरक्तवान् । सर्वमित्राख्यसूनौ स्व राज्यमारं निधाय सः ॥ २३९ ॥ भव्यभूपसहस्रेण सह संयममाददे । प्रतिष्ठानं यमास्तस्मिन्नवापं-
स्तेष्टमातृभिः ॥ २४० ॥ प्रांते प्राप्तसहस्रारमभूत्सूर्यप्रभामरः । सुखाष्टदशवार्ध्यायुर्वृद्धर्द्धिसुखभोगक ॥ २४१ ॥ मेघाद्विद्युद्विशेषो वा ततः स्वर्गाद्विनि
र्गतः । छत्राकारपुरेऽत्रैव नंदिवर्द्धनभूभुज ॥ २४२ ॥ वीरवत्याश्च नंदाख्यस्तनूजः सुजनोजनि । निष्ठाप्येष्टमनुष्ठान स श्रेष्ठं प्रोष्ठिलं गुरुं ॥ २४३ ॥ सम्प्रा
प्य धर्ममाकर्ण्य निर्णीतार्थागमार्थकः । सयम संप्रपद्याशु स्वीकृतैकादशांगक ॥ २४४ ॥ भावयित्वा भवध्वंसितीर्थकृन्नामकारणं । बद्ध्वा तीर्थकरं नाम
सहोच्चैर्गोत्रकर्मणा ॥ २४५ ॥ जीवितांते समासाद्य सर्वमाराधनाविधिं । पुष्पोत्तरविमानेभूदच्युतेंद्रः सुरोत्तमः ॥ २४६ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमेयायुररत्नित्रयदे-

हुए, तत्त्वोंके स्वरूपसे भरे हुए और गंभीर अर्थवाले वाक्योंको सुनकर सब परिग्रहोंको क्षणभंगुर समझा और विरक्त होकर सर्वमित्र नामके अपने पुत्रको राज्यका भार दिया और स्वयं एक हजार भव्य राजाओंके साथ संयम धारण किया उन प्रियमित्र मुनिराजमें पांच समिति और तीन गुप्ति इन आठ मातृकाओंके साथ अहिंसादि पांचों महाव्रतोंने अपना स्थान बना लिया था ॥ २३५–२४० ॥ अंतमें समाधि धारणकर वह सहस्रार स्वर्गमें सूर्यप्रभ नामका देव हुआ और वहां-पर उसने अठारह सागरकी आयुतक वढी हुई ऋद्धियां और अनेक तरहके भोगोंका अनुभव किया ॥ २४१ ॥ जिस प्रकार मेघसे एक विशेष विजली निकल पडती है उसी प्रकार वह उस स्वर्गसे च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके छत्रपुर नगरके राजा नंदिवर्द्धनकी रानी वीरवतीसे नंदनामका सज्जन पुत्र उत्पन्न हुआ। इष्ट राज्यका अनुभवकर वह श्रेष्ठ प्रो-ष्ठिल नामके मुनिराजके समीप पहुंचा और धर्मका स्वरूप सुनकर उसने पदार्थ और शास्त्रोंके अर्थका निर्णय किया। त-दनंतर उसने संयम धारण किया और वह ग्यारह अंगोंका पारगामी हुआ ॥ २४२–२४४ ॥ तदनंतर उसने संसारको नाश करनेवाली और तीर्थंकर नामकी कारण ऐसी सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन किया और ऊंचगोत्र कर्मके साथ तीर्थंकर नामकर्मका वंध किया ॥ २४५ ॥ आयुके अंतमें सव तरहकी आराधनाओंको विधिपूर्वक धारण किया और प्रा-ण छोडकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें उत्तम इंद्र हुआ ॥ २४६ ॥ वहांपर उसकी वाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था, द्रव्य और भाव दोनों ही शुक्ल लेश्याएं थीं, वाईस पक्षके वाद अर्थात् ग्यारह महीने वाद वह श्वांस लेता था वाईस हजार वर्ष वाद मानसिक अमृत आहार लेता था। वहांपर सदा मानसिक प्रवीचार था और उत्तम भोगों

प्रपातनात् । धीमन् विरम दुर्मार्गादारमात्महिते मते ॥ २०५ ॥ क्षेम चेदाप्तुमिच्छास्ति काम लोकाग्रधामनि । आप्तागमपदार्थेषु श्रद्धां मत्स्वेति तद्वच. ॥ २०६ ॥ विधाय हृदि योगींद्रयुग्मभक्तिभराहितः । मुहुः प्रदक्षिणीकृत्य प्रप्रणम्य मृगाधिप ॥ २०७ ॥ तत्त्वश्रद्धानमासाद्य सद्यः कालादिलब्धित । प्रणिधाम मन श्रावकव्रतानि समाददे ॥ २०८ ॥ दया मुनिगिरास्यती क्रूरतां तन्मनोविशत् । कालस्य बलमप्राप्य को विपक्ष निरस्यति ॥ २०९ ॥ स्थिररौद्ररस सद्य स शम समधारयत् । सच्चैलूषसमो मोहक्षयोपशमभावत ॥ २१० ॥ व्रत नैतस्य सामान्य निराहारं यतो विना । क्रव्यादन्योस्य नाहारः साहसं किमतः परं ॥ २११ ॥ व्रतं प्राणव्यपातेन यन्निर्व्यूढमखडितं । ततोभूत्फलितं शौर्यं प्राच्य तस्यैव घातकं ॥ २१२ ॥ तमस्तमःप्रभायां च खलु सम्यक्त्वमादिमं । निसर्गादेव गृह्णंति तस्मादस्मिन्न विस्मय ॥ २१३ ॥ निरुद्धसर्वदुर्वृत्त सर्वसद्व्रतसन्मुख. । प्रावर्तत चिरं धीरः समीप्सुः परम पदं ॥ २१४ ॥ संयमासंयमादूर्ध्वं तिरश्चां नेति सूक्ते । रुद्धस्तेनान्यथा मोक्षमेयुक्तरावीत्स गोचर ॥ २१५ ॥ तच्छौर्यं क्रौर्यसंवीप्य किल सप्रति सक्षयं । कल-

छोड और अपने आत्माके हितमें लग ॥ २०५ ॥ यदि आत्माके कल्याण करनेकी तेरी इच्छा है और तू लोकके ऊपर विराजमान होना चाहता है तो तू आप्त आगम और पदार्थोंमें श्रद्धा रख । इसप्रकार उस सिंहने मुनिराजके वचन हृदयमें धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजकी भक्तिके भारसे नम्र होकर उसने प्रदक्षिणा दी, प्रणाम किया, काल आदि लब्धियोंके मिल जाने से शीघ्र ही तत्त्वश्रद्धान धारण किया और श्रावकोंके व्रत पालन करनेमें प्रेमपूर्वक अपना मन लगाया ॥ २०६–२०८ ॥ मुनिराजके वचनोंसे दयाने सिंहके मनसे क्रूरता सब निकाल फेंकी और वह स्वयं उसके मनमें जा बैठी सो ठीक ही है क्योंकि कालका बल प्राप्त किये बिना विपक्षीको कौन दूर कर सकता है ॥ २०९ ॥ मोहनीय के क्षयोपशम होनेसे उस सिंहका रौद्ररस स्थिर हो गया और एक नटके समान उसने शीघ्रही शांतरस धारण कर लिया ॥ २१० ॥ उस सिंहने निराहारके सिवा और कोई सामान्य व्रत धारण नहीं किया क्योंकि मांसादिकके बिना और उसका कोई आहार था ही नहीं । इससे अधिक भला और साहस क्या हो सकता है ? ॥२१०॥ उस सिंहने अपने प्राण नष्ट कर भी अपना व्रत अखंडित रीतिसे पालन किया इसीलिये उसकी पहिली शूरवीरता फलीभूत हुई और वही कर्मोंकी घातक हुई ॥ २१२ ॥ सातवें नरकके नारकी उपशम सम्यक्त्वको स्वभावसे ही ग्रहण कर लेते है इसलिये सिंहके सम्यक्त्व ग्रहण करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २१३ ॥ मोक्षपद की प्राप्त करने की इच्छा करने वाले उस धीर वीर ने सब दुराचरण छोडदिये और बहुत दिन तक वह सब तरहके सम्यक व्रतोंके संमुख होकर रहने लगा ॥ २१४ ॥ तिर्यचोंको संयमासंयमसे मोक्ष प्राप्त नहीं होती है ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है इसीलिये वह सिंह रुक गया था अन्यथा वह अवश्य

...। सानावभून्मृगाधीशः । पापिंत्तत्त्वं न जानासीत्याकर्ण्य तदुदीरितं ॥ १९४ ॥ सद्यो जातिस्मृतिं गत्वा घोरसंसारदुःखजात् । भयाच्चलितम-
...गुणेनामा गत् ॥ लोचनाभ्यां हरेर्बाष्पसलिलं न्यगलच्चिरं । सम्यक्त्वाय हृदि स्थानं मिथ्यात्वमिव दित्सु तत् ॥ १९६ ॥ प्रत्यासन्नवि-
नेयानां स्मृतप्राग्जन्म मृगारि । पश्चात्तापेन य शोकः संसृतौ स न कस्यचित् ॥१९७॥ हरिं शांतांतरंगत्वात्स्वस्मिन् बद्धनिरीक्षणं । विलोक्यैष हितग्रही-
त्याहैव स मुनिः पुनः ॥ १९८ ॥ पुरा पुरूरवाभूत्वा धर्मात्सौधर्मकल्पजः । जातस्ततोवतीर्यात्र मरीचिरतिदुर्मतिः ॥ १९९ ॥ सन्मार्गदूषणं कृत्वा कुमा-
र्गमभिवर्द्धयन् । वृषभस्वामिनो वाक्यमनादृत्याजवंजवे ॥ २०० ॥ भ्रांतो जातिजरामृत्युसंचये पापसंचयात् । विप्रयोगं प्रियैर्योगमप्रियैराप्नुवंश्चिरं ॥२०१॥
अपरंच महद्दुःखं बृहत्पापोदयोदितं । त्रसस्थावरसंभूतासंख्यातसमा भ्रमन् ॥ २०२ ॥ केनापि हेतुनावाप्य विश्वनंदित्वमात्तवान् । संयमं तन्निदानेन त्रिपृ-
ष्ठत्वमुपेयिवान् ॥ २०३ ॥ इतोस्मिन् दशमे प्राप्ते भवेत्यस्तीर्थकृद्भवान् । सर्वमाश्रावि तीर्थेशान्मयेदं श्रीधराह्वयात् ॥ २०४ ॥ अथ प्रभृतिससारघोरारण्य

वचन सुनकर उस सिंहको उसीसमय जातिस्मरण होगया तथा संसारके घोर दुःखोंके भयसे उसका सब शरीर कंपायमान होने लगा और उसके नेत्रोंसे आंसू पडने लगे ॥ १९४–१९५ ॥ उस सिंहके दोनों नेत्रोंसे बहुत देर तक आंसुओंकी धारा वहने लगी और वह ऐसी मालूम होने लगी मानों हृदयमें सम्यक्त्वको जगह देनेके लिये मिथ्यात्व ही निकलरहा हो ॥ ९६ ॥ आसन्न भव्योंको पहिले जन्मोंका जाति स्मरण हो जानेपर पश्चात्तापके द्वारा जो शोक होता है वह संसारमें अन्य किसीको नहीं हो सकता ॥ १९७ ॥ तदनंतर मुनिराजने देखा कि अंतरंग शांत होजानेसे वह सिंह अपनी ओर (मुनिराजकी ओर) ही दृष्टि लगाये है उसे इसतरह देखकर उन्होंने समझा कि अब यह अपना हित ग्रहण कर सकता है इसलिये वे फिर कहने लगे ॥ १९८ ॥ पहिले तू पुरूरवा भील हुआ था फिर धर्मसेवनकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ और वहांसे आकर तू इसी भरतक्षेत्रमें अत्यंत दुर्मति मारीचि हुआ था ॥ १९९ ॥ उस पर्यायमें तेने सन्मार्गको दोष लगाया था और कुमार्ग की वृद्धि की थी । श्रीवृषभदेव तीर्थंकर के वाक्योंका अनादर कर तेने संसारमें परिभ्रमण किया । पापोंका संचय करने से जन्म मरण बुढापा आदि अनेक दुःखोंका संचय किया तथा इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के दुख बहुत दिन तक अनुभव किये ॥ २००–१ ॥ इसके बाद भी महापापोंके उदयसे अनेक बडे बडे दुःख भोगे और असंख्यात वर्ष तक त्रस स्थावर योनियोंमें परिभ्रमण किया ॥२०२॥ किसी कारणके मिलजानेसे विश्वनंदी हुआ, संयम धारण किया और निदानकर त्रिपृष्ठ हुआ ॥२०३॥ अब इस भवसे दशवें भवमें तू अंतिम तीर्थंकर होगा यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकरसे सुना है ॥ २०४ ॥ अबतक तू संसाररूपी घोर वनमें पडा रहा है बुद्धिमान् अब तू इस दुर्मार्गको

छोसि तमस्तम ॥ १८२ ॥ भीमां वैतरिणीं तत्र प्रज्वलद्वारिपूरितां । प्रवेशितोसि पापिष्ठैः प्राक् शक्त्या कृतमज्जन ॥ १८३ ॥ ज्वलज्ज्वालकरालोरधासं- दगंडोपलाचले । प्रधावितोसि तदंकछिन्नछिन्नाखिलांगक ॥ १८४ ॥ कदववालुकातापप्लुष्टांघ्रवयवोप्यभूः । प्रज्वलच्चितिकाक्षितो भस्मसाद्भावमागतः ॥ १८५ ॥ तप्तायःपिंडनिर्घाततैश्चंडैं सचूर्णितोप्यभूः । निस्त्रिंशच्छदसच्छन्नवनेषु भ्रांतवान् मुहु ॥ १८६ ॥ नानापक्षिमृगैः कालकौलेयककुलैरल । परस्पराभि- घातेन ताडनेन च पीडितः ॥ १८७ ॥ बद्ध्वा बहुविधैर्वधैर्निष्ठुरं निष्ठुराशयैः । कर्णोष्ठनासिकादीनां छेदनैर्व्यथितो भृश ॥१८८॥ पापैः समानशूलाना- मारोपणमवापि च । एव बहुविध दु खमवशोनुभवश्चिरं ॥ १८९ ॥ प्रलापाक्रंदरोदादिवाग्भिरुद्धहरिद्द्वृथा । शरण प्रार्थयन् दन्यादप्राप्यातीव दु खितः ॥ १९० ॥ स्वायु ते विनिर्याय ततो भूत्वा मृगाधिपः । क्षुत्पिपास दिमिवैतातपवर्षादिभिश्च विक् ॥ १९१ ॥ व्याध्यमानः पुन प्राणी हिंसया मासमाहर- न् । क्रूरः पाप समुच्चित्य पृथिवीं प्रथमामगा ॥ १९२ ॥ ततोपीह समुद्भूय क्रौर्यमेव समुद्वहन् । महदह समावर्ज्य दुःखायोत्सहसे पुन ॥ १९३ ॥

छिन्न भिन्न हो जाया करता था ॥ १८४ ॥ कदंववृक्षोंके तलवारके समान पत्तोंसे और गर्म वालूसे तेरे शरीरके सब अ- वयवोंको क्लेश होता था तथा वे नारकी तुझे जलती हुई चितामें पटक देते थे इसलिये तेरा शरीर बिल्कुल भस्म हो जाता था ॥ १८५ ॥ बडे प्रचंड और गर्म किये हुए लोहेके घनोंकी चोटसे तेरा चूर्ण किया जाता था और तलवारके समान तीक्ष्ण पत्तोंसे भरे हुए वनमें तू बार बार घुमाया जाता था ॥ १८६ ॥ अनेक तरहके पक्षी वनपशु और कालके समान कुत्तोंके द्वारा तू बहुत दुखी किया जाता था और परस्परकी ताडना तथा चोटसे तुझे बहुत ही पीडा पहुंचाई जाती थी ॥ १८७ ॥ निष्ठुर हृदयके नारकी बडी कठोरतासे तुझे अनेक तरहसे बांधते थे और कान नाक ओठ आदि काटकर तुझे वार वार दुःख पहुंचाया करते थे ॥ १८८ ॥ पापोंके समान अनेक तरहके शूलोंपर तुझे बिठाते थे और इसतरह परवश होकर तेने बहुतदिनतक अनेक नरकके दुःखोंका अनुभव किया था ॥ १८९ ॥ प्रलाप आक्रंदन रोना आदि वच- नोंके द्वारा तेने व्यर्थ ही सब दिशाएं रोकली थीं और दीनतासे शरणकी प्रार्थना करते तेने बहुत ही दुख पाया था १९० वहांकी आयु समाप्तकर तू वहासे निकला और सिंह हुआ वहांपर भी तेने भूख प्यास वायु गर्मी वर्षा आदिके अनेक दुःख सहे तथा अनेक प्राणियोंकी हिंसाकर मांस खाया और इसतरह उस क्रूर पर्यायमें अनेक तरहके पाप कर तू मरकर पहिले नरकमें [illegible] ॥ १९१-१९२ ॥ वहांसे निकलकर तू फिर यहां आकर सिंह हुआ है यहां भी तू इसतरहकी क्रूर- ताके काम [illegible] तू बडे भारी पापोंका उपार्जनकर दुखोंकेलिये फिर उत्साह करता है ॥ १९३ ॥ अरे पापी तेरा अज्ञान [illegible] हुआ है उसीके प्रभावसे तू तत्त्वोंको नहीं जानता है। इसप्रकार मुनिराजके कहे हुए

हिमवद्गिरेः। सानावभून्मृगाधीशो ज्वलत्केसरभासुरः ॥ १७१ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्राकरालाननः कदाचिद्विभीषण। कंचिन्मृगमनष्टस्य भक्षयन् स समीक्षित ॥ १७२ ॥ अमेयगुणेनामा गच्छतातिरूप छ्ना। अजितंजयन म प्रचारणेन मुनीशिना ॥ १७३ ॥ स मुनिस्तीर्थनायोक्तमनुस्मृत्यानुकम्पया। अवतीर्य नभोभागं सनासाद्य मृगाधिपं ॥ १७४ ॥ शिलातले निवेश्योर्ध्वधर्म्या वाचमुदाहरत्। भो भव्य मृगाधीश त्वं त्रिपृष्टभवे पुरा ॥ १७५ ॥ पराध्यं पंचधा प्रोक्त मृदुशय्यातले चिरं। स्वैरं कांतामिरिष्टाभिरमीष्ट सुखमन्वभूः ॥ १७६ ॥ दिव्यं सर्वरसं भोज्य रसनेंद्रियतर्पणं। स्पर्द्धमानममुक्ताः प्राक् सुत्रामृतरसा-यनैः ॥ १७७ ॥ धूपानुलेपनैर्माल्यैश्चूर्णैर्वासा सुगंधिमि। तोषितं सुचिरं तत्र त्वया घ्राणपुटद्वयं ॥ १७८ ॥ रसभावसमाविष्ट विचित्र करणोचित। वृत्तं निरीक्षितं चित्रमंगनाभिः प्रयोजित ॥ १७९ ॥ शुद्धदेशजभेद तत् षड्गादिस्वरसप्तकं। चेतनेतरमिश्रत्थं पूरितं कर्णयोर्द्वयो ॥ १८० ॥ त्रिखंडम-डितक्षेत्रे जातं सर्वं ममैव तत्। इत्याभिमानिकं सौख्यं मनसा चिरमन्वभूः ॥ १८१ ॥ एव वैषयिकं सौख्यमनुभूयाप्यतृप्तवान्। श्रद्धापञ्चव्रतापेत प्रवि-

राज अमित गुणके साथ आकाशमार्गसे जा रहे थे ॥ १७२–१७३ ॥ वे मुनिराज तीर्थंकरके वचनोंका स्मरणकर दयाकर आकाशसे उतरे और उस सिंहके पास आकर शिलापर विराजमान हुए वे जोर जोरसें धर्मोपदेश देने लगे और कहने लगे कि हे भव्य सिंह पहिले त्रिपृष्टके भवमें तेने बहुमूल्य पांचों इंद्रियोंके विषयोंका अनुभव किया है बहुत दिनतक कोमल शय्यापर अभीष्ट स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार स्वतंत्रता पूर्वक सुखों का अनुभव किया है रसनेंद्रिय को तृप्त करनेवाले सब तरहके दिव्य रसोंका भोग किया है और अमृत रसायनके साथ साथ स्पर्द्धा करनेवाले व्यंजनोंका स्वाद लिया है ॥१७४–७७॥ सुगंधित धूपका लेपकर तथा सुगंधित चूर्ण वास मालाएं आदिके द्वारा बहुत दिन तक नाकके दोनों घोणा संतुष्ट किये ॥ १७८ ॥ इसीतरह सब रसोंसे भरा हुआ निर्वर्तन, आवर्तन भ्रमण, वलगन प्लवन, आदि कारणों से उत्पन्न हुआ और ललनाओं के द्वारा किया हुआ अनेक तरहका नृत्य देखा ॥ १७९ ॥ शुद्ध देशज आदि जिसके भेद हैं जो षड्ग आदि सात स्वरोंसे उत्पन्न हुए हैं और चेतन अचेतन वा दोनोंसे प्रगट हैं ऐसे गीतोंसे दोनों कान पूर्ण किये ॥ १८० ॥ तीन खंडमें जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब मेरा है ऐसा अभिमान जन्य सुख भी मनमें बहुत दिनतक अनुभव किया ॥ १८१ ॥ इसतरहके विषयोंका सुख अनुभव कर भी तू तृप्त नहीं हुआ और सम्यग्दर्शन तथा पांचों व्रतोंके विना तुझे सातवें नरकमें जाना पडा ॥ १८२ ॥ वहांपर जो जलते हुए जलसे भरी हुई वैतरणी नदी है उसमें पापी नारकियोंके द्वारा तू घुसाया गया और जबर्दस्ती तुझे स्नान करना पडा ॥१८३॥ उस दुखसे बचनेकेलिये तू जलती हुई अग्निसे जिसके पत्थरके टुकडे उछल उछलकर पड रहे हैं ऐसे पर्वतपर दौडता था परंतु वहांपर भी तेरा सब शरीर टांकीसे

आश्वैरथैर्गजैश्च पदातिपरिवारितैः। यथोक्तविहितव्यूहैरयुध्येतां महाबलैः ॥ १६० ॥ गज कंठीरवेणेव वज्रेण च महाचल। भास्करेणांधकारो वा त्रिपृष्ठेन पराजित ॥१६१॥ स विलक्षो हयग्रीवो मायायुद्धेपि निर्जित। चक्रं संप्रेषयामास त्रिपृष्ठमभिनिष्ठुरं ॥ १६२ ॥ तत्तु प्रदक्षिणीकृत्य मक्षु तद्दक्षिणे भुजे। तस्थौ सोपि तदादाय रथ प्रत्यक्षिपत्क्रुधा ॥ १६३ ॥ खंडद्वयं हयग्रीवग्रीवा सद्यो व्यधादद। त्रिखंडाधिपतित्वेन त्रिपृष्ठं चार्द्धचक्रिण ॥ १६४ ॥ विजयेनावलब्धेन विजयेनैव चक्रभृत्। विजयार्द्धं समं गत्वा रथनूपुरभूपतिं ॥ १६५ ॥ श्रेणिद्वयाधिपत्येन प्रापयचक्रवर्तितां। प्रभोरभूत्फलस्यात्र व्यक्तिः कोपप्रसादयोः ॥ १६६ ॥ राज्यलक्ष्मीं चिरं भुक्त्वाप्यतृप्त्वा भोगकांक्षया। मृत्वागात्सप्तमीं पृथ्वीं बह्वारंभपरिग्रहः ॥ १६७ ॥ परस्परकृत दुःखमनुभूय चिरायुषा। स्वधात्रीकृतदुःख च तस्मान्निर्गत्य दुस्तरात् ॥ १६८ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते गंगानदीतटसमीपगे। वने सिंहगिरौ सिंहो भूत्वासौ वृहितांहसा ॥ १६९ ॥ रत्नप्रभां प्रविश्यैव प्रज्वलद्वह्निभासवान्। दुःखमेकाब्धिमेयायुस्ततश्च्युत्वा पुनश्च सः ॥ १७० ॥ द्वीपेस्मिन् सिंहकूटस्य प्राग्भागे

कर डालता है और सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार त्रिपृष्ठने अश्वग्रीवको हरा दिया ॥ १६१ ॥ जब आश्चर्य से चकित हुआ अश्वग्रीव मायायुद्धमें भी हार गया तब उसने त्रिपृष्ठ पर अत्यन्त कठोर चक्र चलाया ॥१६२॥ वह चक्र त्रिपृष्ठकी प्रदक्षिणा देकर शीघ्र ही उसकी दाहिनी भुजापर आ ठहरा वही चक्र त्रिपृष्ठने क्रोधित होकर अश्वग्रीवपर चलाया उसने जातेही अश्वग्रीवकी ग्रीवाके दो टुकडे कर दिये। त्रिखंडका अधिपति होनेसे त्रिपृष्ठको अर्द्ध चक्रीका पद मिला ॥ १६३–१६४ ॥ विजय करनेवाली सेना तथा भाई विजयके साथ वह चक्रवर्ती विजयार्द्ध पर्वतपर गया और रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीको दोनों श्रेणी के चक्रवर्तीका पद दिया सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके क्रोध और प्रसन्न होनेका फल यहांही प्रगट मिल जाता है ॥ १६५–१६६ ॥ उस त्रिपृष्ठने बहुत दिन तक राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया परंतु भोगोंकी आकांक्षा से वह तृप्त नहीं हुआ इसलिये बहुआरंभ परिग्रही होनेसे वह मरकर सातवें नरक गया ॥ १६७ ॥ वहां बहुत दिनतक परस्पर किये हुए अनेक दुःखोंका अनुभव किया और वहां की पृथ्वी सम्बंधी अनेक दुःखोंका अनुभव किया। तदनंतर उस कठिन भूमिसे निकल कर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें गंगा नदीके किनारे सिंहगिरि पर्वतपर बढे हुए पापोंके कारण वह सिंह हुआ वहांसे मरकर फिर जलती हुई अग्निके समान पहिले नरकमें गया वहांपर एक सागरकी आयु तक अनेक दुःख भोगे और फिर वहांसे निकलकर इसी जंबूद्वीपमें सिंहकूटके पूर्वकी ओर हिमवान पर्वत की शिखरपर दैदीप्यमान केसरसे सुशोभित सिंह हुआ ॥ १६८–१७१ ॥ उसकी दाढें तीक्ष्ण थीं मुख कराल था और वह बडाही भयंकर था। किसी एक समय वह एक हिरणको मार कर खा रहा था उसीसमय अत्यंत कृपालु चारण मुनि अजितंजय मुनि-

विधेयो बाधुना मया ॥ १४८ ॥ लब्धा चास्त्यावयोरत्र पारंपर्यसमागतः । न कार्यं वंशयोरथ गुणदोषपरीक्षणं ॥ १४९ ॥ विश्रुतयोः प्रसिद्धत्वात्प्राक् चं-द्रादित्ययोरिव । पूज्य मद्भागिनेयस्य त्रिपृष्टस्य स्वयप्रभा ॥ १५० ॥ मस्तुता भामिनीवास्य लक्ष्मी· खंडत्रयोद्गता । आतनोतु रतिं स्वस्यां स्वमताद् भूयसी-मिति ॥ १५१ ॥ प्रजापतिमहाराजः श्रुत्वा तद्वंधुभाषितं । मया तेनेष्टमेवेष्टमित्यमात्यमतोषयत् ॥ १५२ ॥ सोपि संप्राप्तसंमानदानस्तेन विसर्जितः । सद्यः संप्राप्य तत्सर्वं स्वमहीशं न्यवेदयत् ॥ १५३ ॥ ज्वलनादिजटी चाशु सार्ककीर्ति- स्वयप्रभां । आनीय सर्वसंपत्या त्रिपृष्टाय समार्पयत् ॥ १५४ ॥ यथोक्तविधिना सिंहवाहिनीं गरुडादिकां । वाहिनीं च ददौ सिद्धविद्ये विदितशक्तिके ॥ १५५ ॥ चारोपनीततद्वार्ताज्वलनज्वलिताशय । विद्यात्रितयसंपन्नै-र्विद्याधरधराधिपैः ॥ १५६ ॥ अध्वन्यरम्यमित्रीणैरायुधीयैर्भटैर्वृतैः । रथावर्ताचल प्रापदश्वग्रीवो युयुत्सया ॥ १५७ ॥ तदागमनमाकर्ण्य चतुरंगवलान्वि-तः । प्रागेवागत्य तत्र स्थात्त्रिपृष्टो रिपुनिष्ठुरः ॥ १५८ ॥ क्रुद्ध्वा तौ युद्धसन्नद्धावुद्धतौ रुद्धभास्करौ । स्वय स्वधन्विभिः सार्द्धं शरसंघातवर्षणे ॥१५९॥

अपनी पुत्री स्वयंप्रभा देना चाहता हूं वह इसकी स्त्री होकर तीनखंडमें उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान अपने आप अपनेमें व-हुतसा प्रेम उत्पन्न करेगी ॥१५१॥ महाराज प्रजापति अपने भाईके ऐसे वचन सुनकर उस मंत्रीको संतुष्ट करनेके लिये कहने लगे कि जो ज्वलनजटीको इष्ट है वह मुझे इष्ट ही है ॥ १५२ ॥ इसतरह संतुष्टकर तथा वहुतसा आदरसत्कार कर उसे विदा किया। उस मंत्रीने भी शीघ्रही जाकर अपने राजासे सब समाचार निवेदन किये ॥ १५३ ॥ ज्वलनजटी अर्क-कीर्तिके साथ शीघ्रही आया और स्वयंप्रभाको लाकर बडी विभूतिके साथ त्रिपृष्टको व्याह दी ॥ १५४ ॥ ज्वलन जटीने त्रिपृष्टको शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जिनकी शक्ति प्रसिद्ध है और जो सिद्ध हैं ऐसी सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी दो विद्याएं दीं ॥ १५५ ॥ इधर अश्वग्रीवने यह सब अपने दूतोंसे सुनी जिससे उसका हृदय क्रोधरूपी अग्निसे जल उठा तथा वह युद्ध करनेकी इच्छासे तीनों तरहकी विद्याओंसे सुशोभित ऐसे अनेक विद्याधर राजाओंके मार्गमें चलनेवाली सेना, शत्रुके सामने जाकर पराक्रम दिखानेवाले योद्धा और शस्त्र आदिसे युक्त अनेक योद्धाओंके साथ रथावर्त पर्वतपर आ पहुंचा ॥ १५६–१५७ ॥ अश्वग्रीवकी चढाई सुनकर शत्रुओंके लिये अत्यंत कठोर ऐसा त्रिपृष्ट कुमार भी अपनी चारों तरहकी सेना साथ लेकर तथा उससे पहिले आकर वहां आ डटा ॥ १५८ ॥ ये दोनों ही उद्धत होकर घिरे हुए सूर्यके समान क्रोधित होकर युद्धके लिये तैयार हुए तथा अनेक बाणोंकी वर्षा करने वाले धनुर्धारी अश्वारोही रथसवार, हाथीसवार और पैदल चलने वाले आदि लोगोंको चारों ओर कर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार व्यूहकी रचना कर बडी भारी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ १५९–१६० ॥ जिसप्रकार सिंह हाथीको भगा देता है वज्र वडे पर्वतको भी चूर्ण

भूषणं। योषित्सर्गे कृतार्थत्वं त्वया सावनयद्विधिं ॥ १३७ ॥ तां वीक्ष्यापूर्णसौंदर्यां समीपीकृतचित्तजा। पिता वितरितुं कस्य योग्येयमिति चिंतयन् ॥ १३८ ॥ तदैवाहूय संभिन्नश्रोतारं तत्प्रयोजन। अपृच्छत्स निमित्तेषु कुशलः समभाषत ॥१३९॥ केशवस्यादिमस्येय महादेवी भविष्यति। त्वमप्याप्स्यसि तद्दत्तां खगानां चक्रवर्तितां ॥ १४० ॥ इति तद्वचन चित्ते प्रत्येयमवधार्य स। अमात्यमिंद्रनामानं भक्तिकं सुश्रुतं शुचिं ॥ १४१ ॥ सलेखं प्राभृत दत्वा प्राहिणोत्पोदन प्रति। गत्वाविलवितं सोपि वने पुण्यकरंडके ॥ १४२ ॥ पोदनाधिपतिं स प्रणाममालोक्य पत्रक। सप्राभृत प्रदायास्मै यथास्थानमुपाविशत् ॥ १४३ ॥ विलोक्य मुद्रामुद्भिद्य तदतस्थितपत्रक। प्रसार्य वाचयामास नियुक्तः सधिविग्रहे ॥ १४४ ॥ श्रीमानित खगाधीशो निजलोकशिखामणिः। स्वानुरक्तप्रजो राजा नगर द्रथनूपुरात् ॥ १४५ ॥ ज्वलनादिजटी ख्यातो नमिवंशावरांशुमान्। पोदनाख्यपुराधीश प्रजापतिमहानृपं ॥ १४६ ॥ आदिभट्टारकोत्पन्नवाहुवल्यन्वयोद्भव। प्रणम्य शिरसा स्नेहात्कुशलप्रश्नपूर्वक ॥ १४७ ॥ सप्रश्रयं प्रजानाथमित्थ विज्ञापयत्यसौ। वैवाहिक स सबंधो

करने लगा कि यह किसको देनी चाहिये किसके योग्य है ॥ १३८ ॥ उसी समय उसने संभिन्नश्रोता नामके पुरोहितको बुलाया और उससे प्रयोजन पूछा वह पुरोहित निमित्तशास्त्रमें बहुत ही कुशल था इसलिये कहने लगा कि यह स्वयंप्रभा पहिले नारायणकी पट्टरानी होगी और आप भी उस नारायणके द्वारा दिये हुए विद्याधरोंके चक्रवर्ती पदको अर्थात् सब विद्याधरोंके अधिपतिका पद प्राप्त करेंगे ॥ १३९–१४० ॥ उसकी इसप्रकार विश्वास करनेयोग्य बात चित्तमें धारणकर उसने पवित्र हृदयवाले, शास्त्रोंके जानकार और राजभक्त ऐसे इंद्र नामा मंत्रीको बुलाया तथा लेख और भेट देकर उसे पोदनपुर भेजा। वह शीघ्रतासे जाकर पोदनपुर जा पहुंचा उससमय पोदनपुरका अधिपति पुण्यकरंड वन में था। मंत्रीने राजाको प्रणाम किया, पत्र दिया, भेट दी और फिर अपने योग्य स्थानपर जा बैठा ॥ १४१–१४३ ॥ राजा प्रजापतिने मुहर देखकर वह पत्र खोला और भीतरका पत्र निकालकर बांचा। उसमें लिखा था कि संधि विग्रहमें नियुक्त, विद्याधरोंका स्वामी, अपने लोकका शिखामणि, अपनी प्रजाको प्रसन्न करनेवाला महाराज नमिके वंशरूपी आकाशका सूर्य श्रीमान् प्रसिद्ध राजा ज्वलनजटी रथनूपुर नगरसे पोदनपुर नगरके स्वामी, भगवान वृषभदेवके पुत्र बाहुबली के वंशमें उत्पन्न हुए महाराज प्रजापतिको शिरसे नमस्कार कर बडे प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछता है तथा महाराज प्रजापति को बडी विनयके साथ यह निवेदन करता है कि इससमय आपको हमारे साथ वैवाहिक संबंध कर लेना चाहिये हमारा आपका यह संबंध परंपरासे चला आया है इसलिये इसमें आज वंशके गुण तथा दोषोंकी परीक्षा करनी भी आवश्यक नहीं है क्योंकि सूर्य चंद्रमाके समान हम दोनों वंशोंकी विशुद्धि जगत्प्रसिद्ध है। हे पूज्य ! मैं अपने भानजे त्रिपृष्टके लिये

रमिच्छतः । किं सिंह इव निर्भाङ्के नमितामरमस्तकः ॥ १२६ ॥ जिला ज्योत्स्ना मितलेत्री हृदिहानिमती चिरं । कीर्तिरस्याखिलं व्याप्य शातिनी त्रैव-
सः स्थिता ॥ १२७ ॥ उदक्श्रेण्यां खगाधीशो मयूरग्रीवनामभाक् । नीलांजना प्रिया तस्यामृतयोरलकापुरे ॥ १२८ ॥ विशाखनंद संसारे चिरं भ्रां-
त्वातिदु खितः । अश्वग्रीवाभिधः सूनुरजनिष्टापचारवान् ॥ १२९ ॥ ते सर्वेपि पुरोपात्तपुण्यपापविशेषिनः । अभीष्टकामभोगोपभोगैस्तृप्ताः स्थिताः
सुखं ॥ १३० ॥ इतः खेचरभूमर्तुर्दक्षिणश्रेण्यलङ्कृति. । रथनूपुरशब्दादिचक्रवालपुरी परा ॥ १३१ ॥ ज्वलनादिजटी पाति तां स वा पाकशासनः । कुल-
साधितसंप्राप्तविद्य त्रयविभूषित ॥ १३२ ॥ प्रतापोपनताशेषापाच्छ्रेणिखचरेशिनां । विनम्रमौलिमालाभिरलंकृतपदाम्बुजः ॥ १३३ ॥ वायुवेगा प्रिया तस्य
चन्द्राभखचरेशिनः । सुभद्रायाश्च तनया पुरे द्युतिलकाह्वये ॥ १३४ ॥ अर्ककीर्तिस्तयो सूनुः प्रतापेनार्कजित् सुधी । सुता स्वयंप्रभाख्याभात् प्रभयेव महा-
मणि ॥ १३५ ॥ श्रीलक्षणानि सर्वाणि शस्तान्यापादमस्तक । उदाहरणतामापन् व्याप्य व्यक्तानि तत्तनु ॥ १३६ ॥ संप्राप्य यौवनं तन्वी भूषणानां च

वह सब संसारमें व्याप्त होकर फैल गई थी ॥ १२७ ॥ इधर विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके अलकापुर नगरमें मयूर-
ग्रीव नामका विद्याधरोंका राजा रहता था उसकी रानीका नाम नीलांजना था उसके विशाखनंदका जीव बहुत दिन तक
संसारमें परिभ्रमण कर तथा बहुत दुःखी होकर अनेक दुराचार करनेवाला अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ था॥१२८–१२९॥
वे सब अपने अपने पुण्य पाप कर्मोंके अनुसार इच्छानुसार कामभोग उपभोग आदिसे तृप्त होकर सुखसे रहते थे॥१३०॥
इन्हींदिनों विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीको अलंकृत करनेवाली रथनूपुरचक्रवाल नामकी उत्तम नगरी थी उसमें इंद्रके
समान ज्वलनजटी नामका विद्याधर राज्य करता था तथा कुलपरंपरासे चली आई सिद्धकी हुई तथा प्राप्त ऐसी तीनों
विद्याओंसे वह विभूषित था ॥ १३१–१३२ ॥ उसने अपने प्रतापसे दक्षिण श्रेणीके सब विद्याधर नवा लिये थे और
उनके नवे हुए मुकुटमालासे उसके चरण कमल सदा सुशोभित रहते थे ॥ १३३ ॥ उसकी रानीका नाम वायुवेगा था
जो कि द्युतिलक नगरके विद्याधर राजा चंद्रमाकी रानी सुभद्राकी पुत्री थी ॥ १३४ ॥ उस वायुवेगाके अर्ककीर्ति नामका
पुत्र था जो कि प्रतापसे सूर्यको भी जीतता था और बुद्धिमान था तथा उसी वायुवेगाके कांतिके द्वारा महामणिके समान
सुशोभित होनेवाली स्वयंप्रभा नामकी पुत्री थी ॥ १३५ ॥ उस स्वयंप्रभाके शरीरमें सिरसे पैर तक सब स्त्रियोंके प्रशं-
सनीय सुलक्षण थे जो कि उसके शरीरमें व्याप्त होकर अत्यन्त उदाहरण बने थे ॥ १३६ ॥ आभूषणोंको भी सुशो-
भित करनेवाले यौवनको पाकर उस स्वयंप्रभाने स्त्रियोंको बनानेमें विधाताको भी स्वयं कृतार्थ किया था ॥ १३७ ॥
पूर्ण सुंदरी और कामावस्थाके समीप पहुंचनेवाली उस कन्याको देखकर उसका पिता ज्वलनजटी विचार

११४ ॥ नयप्रसूतसद्गोधेनुप्रतिपातनात् । प्रस्खलत समीक्ष्यैनं मुनिं कोपपरायण ॥ ११५ ॥ तवाद्य तच्छिलास्तंभभंगदृष्टः पराक्रम । क्व यात इति दुश्चित्तः परिहासं व्यधादसौ ॥ ११६ ॥ मुनिश्च तद्वचश्चेतस्यवधार्य प्रकोपवान् । परिहासफल प्राप्नुहीति स्वांतर्गत वदन् ॥ ११७ ॥ सनिदानो भवप्रांते कृतसंन्यसनक्रिय· । स्वय विशाखभूतिश्च महाशुक्रमुपाश्रितौ ॥ ११८ ॥ तत्र षोडश वाराशिमानमेयायुषौ चिरं । भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युत्वा द्वीपेस्मिन्नेव भारते ॥ ११९ ॥ सुरम्यविषये रम्ये पोदनाख्यपुरे नृप । प्रजापतिर्महाराजोऽजनि देवी जयावती ॥ १२० ॥ तस्यासीदनयोः सूनुः पितृव्यो विश्वनंदिन । विजयाख्यस्ततोस्यैव विश्वनन्द्यप्यनतरं ॥ १२१ ॥ मृगावत्यामभूत्पुत्रः त्रिपृष्ठो भाविचक्रभृत् । त्रिखंडाधिपतित्वस्य स पूर्वगणना गतः ॥ १२२ ॥ उद्गमेनैव निर्धूतरिपुचक्रोऽयमक्रमात् । अर्कस्येव प्रतापोस्य व्याप्य विश्वमनुस्थितः ॥ १२३ ॥ अनन्यगोचरा लक्ष्मीरसंख्येयसमाः स्वय । इममेव प्रतीक्ष्यास्त गाढोत्सुक्यार्द्धचक्रिणां ॥ १२४ ॥ लक्ष्मीलाछनमेवास्य चक्र विक्रमसाधिन । मागधाद्यामरारक्ष्य ससमुद्र महीतल ॥ १२५ ॥ सिंहशौर्योयमित्येव शेमुषीके-

था वह आज कहां चला गया इस तरह उसने खोटे परिणामोंसे मुनिकी हंसीकी । मुनि भी उसके वचनोंको चित्तमें धारण कर कुछ क्रोधित हुए और मनमें ही कहने लगे कि इस हंसी करनेका फल तुझे अवश्य मिलेगा ॥ ११५–११७ ॥ अंतमें उसने निदान किया संन्यास धारण कर शरीर छोडा और महाशुक्र नामके स्वर्गके विमानमें देव हुआ तथा विशाखभूति भी वहीं देव हुआ ॥ ११८ ॥ वहां पर उन्होंने सोलह सागर तक देवोंके सुख भोगे फिर वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनपुर नगरमें महाराजाधिराज राजा प्रजापतिकी रानी जयावती से विश्वभूतिका जीव विजय नामका पुत्र हुआ उसके बाद इसी राजाकी दूसरी मृगावती रानीसे विश्वनंदीका जीव त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ वह त्रिपृष्ठ होनहार चक्रवर्ती (अर्द्धचक्री) था और तीन खंडके अधिराजाओंमें अर्थात् अर्द्धचक्रवर्तियों में सबसे पहिला था ॥ ११९–१२२ ॥ उसके उत्पन्न होते ही सब शत्रुओंको एक साथ नष्ट करनेवाला सूर्यके समान उसका प्रताप सब संसारमें व्याप्त होकर भर गया था ॥ १२३ ॥ अर्धचक्रवर्तियोंमें गाढ उत्सुकता रखनेवाली और जो दूसरी जगह न रह सके ऐसी लक्ष्मी असंख्यात वर्षसे स्वयं इस त्रिपृष्ठकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥१२४॥ पराक्रमसे सिद्ध हुआ तथा लक्ष्मीके चिन्ह वाला उसका चक्र था मगध आदि देव उसकी रक्षा करते थे और समुद्र सहित सब पृथ्वी उसकी ही थी ॥ १२५ ॥ देवोंके मस्तकको भी नम्री भूत करनेवाला वह त्रिपृष्ठ यद्यपि सिंहके समान पराक्रमी था बुद्धिमान लोग इसी तरह उसकी स्तुति करते थे तथापि वह सिंहके समान निर्भय था ॥ १२६ ॥ उसकी कीर्तिने परिमित क्षेत्रमें रहने वाली और हीन वृद्धि सहित ऐसी चंद्रमाकी चांदनी भी जीत ली थी और ब्रह्माकी जातिके समान

भजन । इति मत्वा निग्रहयांसा हन्तुं खननहारिणं ॥ १०५ ॥ प्राग्धावन् भयाद्गत्वा स कपित्थमहीरुहं । कृत्वा श्रुतिं स्थितं स्फीतं, कुमारोपि, महीरुहं ॥ १०६ ॥ समुन्मूल्य निहंतु त तेनाधावततोप्यहो । अपसृत्य शिलास्तम्भस्योत्तुंगान् यष्ट्या पुनः ॥ १०७ ॥ वली तत्प्रहारेण स्तम्भं चापाल स द्रुत । पलायमानमालोक्य तस्माद्रुग्यकारिणं ॥ १०८ ॥ भाभैभीरिति सौहार्दकारुण्याभ्यां प्रचोदितः । समाहूय वन तस्मै दत्वा संसारदुःस्थितिं ॥ १०९ ॥ भावयित्वा गत्वा वीर्षां संभूतगुरुसन्निधौ । अपकारोपि नीचानामुपकार सता भवेत् ॥ ११० ॥ तदा विशाखभूतिश्च सजातानुशयो मया । कृतं पापमिति प्रायश्चित्तं वा प्राप संयम ॥ १११ ॥ कुर्वन् घोरं तपो विश्वनंदी देशान् परिभ्रमन् । कृशीभूतः क्रमात्प्राप्य मथुरां स्वतनुस्थिते ॥ ११२ ॥ प्रविष्टवान् विनष्टात्मबलस्थलपदस्थितिः । तदा व्यसनसंसर्गी भ्रष्टराज्यो महीपतेः ॥ ११३ ॥ कस्यचिद् दूतभावेन मथुरां पुरमागतः । विशाखनंदी वेश्यायाः प्रासादतलमाश्रितः ॥

का उद्योग करने लगा । यह देख कर विशाखनंद भयसे भागा और एक कैथके वृक्षपर चढ गया । परंतु कुमार विश्वनंदी ने उसे मारनेके लिये वह वृक्ष ही उखाड डाला । तदनंतर वह विशाघानंद वहांसे भी भागा और दौडकर एक पत्थरके खंभेके नीचे जाकर छिप गया । कुमार विश्वनंदीने वह खंभा भी हथेलियोंकी चोटसे बहुत शीघ्र तोड डाला जिससे वह विशाखनंद वहांसे भी निकल कर भागा उस अपकार करनेवाले विशाखनंदको भागता हुआ देखकर सौहार्द और करुणासे प्रेरित होकर विश्वनंदीने उसे धीरज दिया और कहा कि अब तू डरे मत यहां आ । उसने इसतरह बुलाकर वह वन उसे दे दिया और स्वयं संसारकी ऐसी ही दुःखमय अवस्थाका विचार कर संभूत नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है नीच लोगोंका किया हुआ अपकार भी सज्जनोंके लिये उपकार हो जाता है ॥ ५-१० ॥ उस समय विशाखभूतिकोभी पश्चात्ताप हुआ वह सोचने लगा कि यह मैंने एक पाप किया इसलिये इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये यही सोच कर उसने संयम धारण कर लिया ॥ १११ ॥ इधर विश्वनंदी घोर तपश्चरण करता हुआ सब देशोंमें परिभ्रमण करने लगा । उसका शरीर अत्यंत कृश हो गया था अनुक्रमसे वह मथुरा नगरमें पहुंचा और आहारके लिये शहरमें गया उन दिनों अपने आत्मबलको खोकर तथा अपने राज्य पदसे भ्रष्ट होकर विशाखनंद व्यसनोंके संसर्गसे राज्य भ्रष्ट हो गया था और किसी राजाका दूत बनकर मथुरा नगरमें आयाथा तथा एक वेश्याके मकानके ऊपर बैठा था ॥ ११२-११४ ॥ दैवयोगसे वहीं रास्ते पर एक हालकी प्रसूता (जनी हुई) गाय खडी थी वह मुनिराजको देख कर क्रोधित हुई और उसने उन विश्वनंदी मुनिको धक्का देकर गिरा दिया । उन्हें गिरते हुए देख कर क्रोध करता हुआ वह विशाखानंद कहने लगा कि क्यों जो पत्थरके खंभेको तोड देनेवाला पराक्रम पहिले दिखाया

धे ॥ ९३ ॥ मह्यं मनोहरोद्यानं दीयतां भवतान्यथा । कुर्यां देशपरित्यागमहमित्यभ्यधादसौ ॥ ९४ ॥ स तु सत्स्वपि भोगेषु विरक्तविषयप्रिय । भवे-
त्रावि भवे भूयो भविष्यद्दुःखभारभाक् ॥ ९५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं चित्ते निधाय स्नेहनिर्भरं । क्रियते प्रददामीति संतोष्य तनुजं निजं ॥ ९६ ॥ विश्वनंदिन-
माहूय राज्यभारस्त्वयाधुना । गृह्यतामहमाक्रम्य प्रत्यंतप्रतिभूभृत ॥ ९७ ॥ कृत्वा तज्जनितक्षोभप्रशांतिं कतिपैर्दिनैः । प्रत्येष्यामीति सोवाच श्रुत्वा तत्प्र-
स्युवाच त ॥ ९८ ॥ पूज्यपादस्त्वयात्रैव निश्चिंतमुपविश्य तां । गत्वाहमेव त प्रेष्य करोमीति सुतोत्तमः ॥ ९९ ॥ राज्यमस्यैव मे स्नेहात्क्रमाद दत्तमीत्यतर्कयन् ।
वनार्थमतिसंधित्सुरभूत् विगुराशयं ॥ १०० ॥ ततश्चानुमते तस्मिन् स्वबलेन समं रिपून् । निर्जेतुं विहितोद्योगे गते विक्रमशालिनि ॥ १०१ ॥ वनं वि-
शाखनंदाय स्नेहादन्यायकांक्षिणे । विशाखभूतिरुल्लंघ्य क्रमं गतमतिर्ददौ ॥ १०२ ॥ विश्वनंदी तदाकर्ण्य सद्यः क्रोधाग्निदीपितः । पश्य मामिति संधाय प्र-
त्यंतनृपतीन् प्रति ॥ १०३ ॥ प्रहृत्य मद्वनं दत्तं पितृव्येणात्मसूनवे । देहीति वचनात्साह किं ददामि कियद्वनं ॥ १०४ ॥ निदधात्यस्य दुश्चेष्टा मम सौज-

तरमें भी होनहार दुःखोंका भार ही धारण करनेवाला होता है ॥ ९३–९५ ॥ पुत्रकी बात सुन कर तथा हृदयमें धा-
रण कर वडे स्नेहसे कहने लगा कि यह कितनी वडी बात है मैं तुझे वह उद्यान अवश्य दूंगा इस तरह पुत्रको संतुष्ट कर
उसने विश्वनंदीको बुलाया और उससे कहा कि इस समय यह राज्यका भार तुम स्वीकार करो मैं पर्वतोंके समीप रहने
वाले राजाओं पर चढाई करूंगा और उन लोगोंने जो क्षोभ कर रक्खा है उसे शांत कर थोडे ही दिनमें लौट आऊंगा
अपने काकाके इस प्रकारके वचन सुन कर वह विश्वनंदी कहने लगा कि हे पूज्यपाद ! आप निश्चिंत हो कर यहां ही
रहें मैं स्वयं जाकर उन लोगोंको आपके पास भेज देता हूं। उस श्रेष्ठ पुत्रकी बात सुन कर उसने यह न विचारा कि
वास्तवमें राज्य तो इसीका है परंतु भाईने स्नेहसे मुझे दिया था। केवल एक वनके लिये ही उसे ठगकर वाहर भेजा
इस लिये ऐसे दुष्ट आशयको भी धिक्कार हो ॥ ९६–१०० ॥ तदनंतर वह पराक्रमी विश्वनंदी काकाकी आज्ञा-
नुसार अपनी सब सेना लेकर शत्रुओंको जीतनेकी तैयारी करने लगा और नगरसे वाहर निकला ॥ १०१ ॥ उसके
वाहर निकल जाने पर निर्बुद्धि विशाखभूतिने क्रमका उल्लंघन कर अन्यायकी इच्छा करनेवाले विशाखनंदको वह वन केवल
स्नेहसे दे डाला ॥ १०२ ॥ विश्वनंदी इस वातको सुनकर शीघ्रही क्रोधरूपी अग्निसे उद्दीपित हुआ और विचार करने
लगा कि देखो काकाने मुझे पर्वतीय राजाओंके समीप भेजकर तथा मेरा उद्यान मुझसे छुडाकर अपने पुत्रको दे दिया
क्या मांगने पर मैं नहीं देता ? उद्यान है कितनी बडी चीज ? ॥ १०३–१०४ ॥ वास्तवमें इसकी यह दुश्चेष्टा मेरी
सज्जनता नष्ट कर रही है यही सोचकर वह अपने वन लेने वालेको मारनेके लिये लौट पडा और विशाखनंदको पकडने

सुतोस्मिन् वेदवेदिनः ॥ ८२ ॥ शांडिल्याख्यस्य मुख्यस्य पाराशर्यां स्वसञ्ज्ञया । स्थावरो वेदवेदांगपारग पापभाजन ॥ ८३ ॥ मति श्रुत तप शांतिः समाधितत्त्ववीक्षणं । सर्वं सम्यक्त्वशून्यस्य मरीचेरिव निष्फल ॥ ८४ ॥ परिव्राजकदीक्षायामासक्ति पुनरादधत् । सप्ताब्ध्युपमितायुष्को माहेंद्रे समभून्मरुत् ॥ ८५ ॥ ततोवतीर्य देशेस्मिन् मगधाख्ये पुरोत्तमे । जातो राजगृहे विश्वभूतिनाम्नो महीपते' ॥ ८६ ॥ जैन्याश्च तनयो विश्वनंदी विख्यातपौरुषः । विश्वभूतिमहीभर्तुरनुजातो महोदय ॥ ८७ ॥ विशाखभूतिरेतस्य लक्ष्मणायामभूद्विधीः । पुत्रो विशाखनंदाख्यस्ते सर्वे सुखमास्थिता ॥ ८८ ॥ अन्येद्यु शरदभ्रस्य विभ्रंशं वीक्ष्य शुद्धधी । निर्विण्णो विश्वभूत्याख्यः स्वराज्यमनुजन्मनि ॥ ८९ ॥ निधाय यौवराज्य च स्वसूनौ महदग्रणी' । सात्त्विकैस्त्रिशतैः सार्द्धं राजभिर्जातरूपतां ॥ ९० ॥ श्रीधराख्यगुरो पार्श्वे समादाय समत्वभाक् । बाह्यमाभ्यंतरं चोग्रमकरोत्स तपश्चिरं ॥ ९१ ॥ अथान्यदा कुमारोसौ विश्वनंदी मनोहरे । निजोद्याने समस्ताभिर्देवीभिः क्रीडया स्थितः ॥ ९२ ॥ विशाखनंदस्त दृष्ट्वा तदुद्यान मनोहरं । स्वीकर्तुं मतिमाधाय गत्वा स पितृसन्नि

परगामी था तथा अनेक पापोंका पात्र था ॥ ८०—८३ ॥ उसका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, तप, शांति, समाधि और तत्त्वान्वेषण आदि सब सम्यक् रहित अर्थात् मिथ्या था और मरीचिके समान सब निष्फल था ॥ ८४ ॥ फिर भी वह परिव्राजक की दीक्षामें ही आसक्त हुआ और मरकर माहेंद्र स्वर्गमें सातसागर की आयु पाकर देव उत्पन्न हुआ ॥ ८५ ॥ वहां से आकर इसी मगध देशके राजगृह नगरमें राजा विश्वभूतिकी जैनी नामकी रानीसे विश्वनंदी नामका प्रसिद्धपराक्रमी पुत्र हुआ । इसी राजा विश्वभूति के छोटे भाई का नाम विशाखभूति था जोकि बहुत ऐश्वर्यशाली था उसकी लक्ष्मणा नाम की स्त्रीसे विशाखनंद नामका बुद्धिहीन पुत्र उत्पन्न हुआ था ये सब लोग सुखसे निवास करते थे ॥ ८६—८८ ॥ किसी दूसरे दिन शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विश्वभूति शरदऋतुके बादलों को नष्ट होते देखकर विरक्त हुआ उस सबके नायक राजाने अपना राज्य तो अपने छोटे भाईको दिया और युवराज पद अपने पुत्रको दिया तथा सात्विक वृत्ति को धारण करने वाले तीनसौ राजाओंके साथ उसने श्रीधर नामके मुनिराजके समीप दिगम्बरी दीक्षा धारण की समता रूप परिणाम किये और बहुत दिनतक बाह्य आभ्यंतर दोनों तरह का उग्र तपश्चरण किया ॥८९—९१॥ अथानंतर किसी एक दिन वह विश्वनंदीकुमार अपने मनोहर नामके उद्यानमें अपनी सब स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा था ॥ ९२ ॥ विशाखनंद उसे इस तरह क्रीडा करते देख कर उस मनोहर बनको अपने आधीन करनेकी इच्छासे पिताके समीप गया और पितासे कहने लगा कि आप या तो मनोहर नामका उद्यान मुझे दीजिये नहीं तो मैं आपका देश छोड कर चला जाऊंगा । सो ठीक है समीचीन भोगोपभोग सामग्रीके रहते हुए भी जिसे विरुद्ध विषय ही अच्छे लगते हैं वह भवां-

वासं विरेजे श्रीरिवागता ॥ ५० ॥ प्रज्ञाविक्रमयोर्लक्ष्मीविशेषो वा पुरूरवा । मरुद्भूतस्तयोरासीन्मरीचिः सुनुरग्रणी· ॥ ५१ ॥ स्वपितामहसत्यागे स्वय च गुरुभक्तित । राजभिः सह कच्छाद्यैः परित्यक्तपरिग्रह ॥ ५२ ॥ चिरं सोढ्वा तप क्लेश क्षुच्छीतादिपरीषहान् । दीर्घसंसारवासित्वात्पश्चात्सोढुमशक्नुवत् ॥ ५३ ॥ स्वय गृहीतुमारब्धफलप्रावरणादिक । दृष्ट्वा तं देवता नायं क्रमो नैर्ग्रन्थ्यधारिणां ॥ ५४ ॥ गृहाण वेषमन्यत्वं यथेष्टमिति चाब्रुवन् । श्रुत्वा तद्वचन सोपि गाढमिथ्यात्वचोदित ॥ ५५ ॥ परिव्राजकदीक्षायां प्राथम्य प्रत्यपद्यत । दीर्घाजवंजवानां तत्कर्म दुर्मार्ग देशन ॥ ५६ ॥ तच्छास्त्रचतुनाप्यस्य स्वयमेव किलाजनि । सतामिवासता च स्याद्बोध स्वविषये स्वय ॥ ५७ ॥ श्रुत्वापि तीर्थकृद्वाच सद्धर्मं नाग्रहीदसौ । पुरुर्यथात्मनैवात्र सर्वसगविमोचनात् ॥ ५८ ॥ भुवनत्रयसक्षोभकरिसामर्थ्यम सवान् । मदुपज्ञ तथा लोके व्यवस्था-

समान थी अथवा कमलके निवास स्थानको छोडकर आई हुई लक्ष्मीके समान सुशोभित होती थी ॥ ५० ॥ जिसप्रकार बुद्धि और पराक्रमसे विशेष लक्ष्मी उत्पन्न होती है उसीप्रकार उन दोनोंके वह पुरूरवा भीलका जीव देव मरीचि नामका मुख्य पुत्र हुआ ॥ ५१ ॥ जिससमय मरीचिके बाबा वृषभदेवने दीक्षा धारण की थी उससमय स्वयं गुरु श्रीवृषभदेवकी भक्तिसे कच्छादिक राजाओंके साथ उस मरीचिने भी सब परिग्रहोंका त्यागकर दीक्षा धारण की थी ॥ ५२ ॥ उसने बहुत दिनतक तो तपश्चरणका क्लेश सहन किया था क्षुधा शीत आदि परीषहोंको भी सहन किया था परंतु दीर्घ संसारी होनेके कारण पीछेसे वह उन्हें सहन नहीं कर सका था ॥ ५३ ॥ इसलिये उसने खानेकेलिये फल और ओढनेकेलिये वस्त्र आदि स्वयं ग्रहण करलिये थे यह देखकर वन देवताने आकर उससे कहा कि निर्ग्रंथ दीक्षा धारण करनेवालोंकेलिये यह क्रम नहीं है। यदि तुम्हें ऐसा ही करना है तो तुम अपनी इच्छानुसार कोई दूसरा वेष धारण करो। वन देवताकी यह वात सुनकर मिथ्यात्वकर्मके प्रवल उदयसे उसने सबसे पहिले परिव्राजक दीक्षा धारण की सो ठीक ही है क्योंकि जिनका दीर्घ संसार परिभ्रमण वाकी है उनकेलिये मिथ्यात्वकर्म कुमार्गका ही उपदेश देता है ॥ ५४–५६ ॥ उसमय परिव्राजकमतके शास्त्रोंका थोडा बहुत कथन भी उसे अपने आप प्रगट हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समान दुष्टोंको भी अपने विषयमें स्वयं ज्ञान हो जाता है ॥ ५७ ॥ उसने तीर्थंकरकी वाणी सुनकर भी सद्धर्मको स्वीकार नहीं किया था वह अपने मनमें सोचता था कि जिसप्रकार श्रीवृषभदेवने अपने आप ही सब परिग्रहोंको छोडकर तीनों लोकोंके क्षोभित करनेवाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसीप्रकार मैं भी संसारमें अपने चलाये हुए अन्य मतकी व्यवस्था करूंगा और उसके निमित्तसे होनेवाले बडे भारी प्रभावके कारण इंद्रकी प्रतीक्षा प्राप्त करूंगा ऐसी मेरी इच्छा है मुझे आशा है

४० ॥ सुरा केऽत्र नराः के वा सर्वे रूपादिभि समा । इत्यायाता खगाधीशा मोमुह्यंते विवेचने ॥ ४१ ॥ तत्र पण्यस्त्रियो वीक्ष्य वाढं सुरकुमारकाः। वि-स्मयंते न रज्यंते तामिर्जातिविशेषत ॥ ४२ ॥ करणानाममीष्टाय विषयास्तत्र ते तत । न नाकेपि यतस्तत्र नाकिपूजासमुद्भव ॥ ४३ ॥ अकृत्रिमाणि निर्जेतु विमानानि स्वकौशलात् । सुरैः कृतगृहाण्यत्र चेत्कान्या तेषु वर्णना ॥ ४४ ॥ बभूवास्याः पतिः पक्ते· स्वर्गस्येवामरेश्वर । भरताख्यः पुरो सूनुरि-क्ष्वाकुकुलनंदन ॥ ४५ ॥ अकपनाद्या भूपाला नमिमुख्याश्च खेचरा । मागधाद्याश्च देवेशास्त्यक्तमाना समुत्सुका ॥ ४६ ॥ यस्याज्ञा मालतीमालामिव स्वानम्रमौलय । भूषाधिकेवमस्माकमिति सधारयंति ते ॥ ४७ ॥ सत्कर्मभावितैर्भावैः क्षायोपशमिकैश्च स । भव्यभावविशेषाच्च श्रेष्ठकाग्रामधिष्ठित ॥४८॥ आदितीर्थकृतो ज्येष्ठपुत्रो राजसु षोडश । ज्यायांश्चकी मुहूर्तेन मुक्तोय कैस्तुलां व्रजेत् ॥ ४९ ॥ तस्यानतमतिर्देवी प्रख्यातिरिव देहिनी । विमुच्य कमला-

थी, वस्त्राभूषण आदि उपकरणोंसे नहीं ॥ ३९ ॥ वहांके उत्तम मनुष्य प्रायः स्वर्गसे आकर ही उत्पन्न होते थे इसलिये स्वर्गमें उत्पन्न हुई मित्रताके कारण बहुतसे देव स्वर्गसे आकर वडी प्रसन्नताके साथ उन लोगोंके साथ क्रीडा करते थे ॥ ४० ॥ इनमें देव कौन हैं और मनुष्य कौन हैं क्योंकि रूपादिकसे सभी समान हैं इस प्रकार वाहरसे आये हुए विद्या-धरोंके राजा उनको अलग पहचाननेमें मोहित हो जाते थे ॥ ४१ ॥ देवकुमार वहांकी वेश्याओंको देख कर बहुत ही आश्चर्य करते थे परंतु पृथक जाति होनेके कारण उनके साथ क्रीडा नहीं करते थे ॥ ४२ ॥ इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले जैसे विषय वहां थे वैसे स्वर्गमें भी नहीं थे इस लिये देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर भी वहीं उत्पन्न होते थे ॥ ४३ ॥ देवोंने जो अपने कौशलसे वहांके घर बनाये थे वे ऐसे जान पडते थे मानों अकृत्रिम विमानोंको जीतनेके लिये ही बनाये हों फिर भला वहांका वर्णन करना व्यर्थ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार स्वर्गकी पंक्तिका स्वामी इंद्र होता है उसी प्रकार उस नगरी का स्वामी राजा भरत था जो कि इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुआ था और वृषभदेवका पुत्र था ॥ ४५ ॥ अकंपन आदि राजा, नमि विनमि आदि विद्याधर और मागध आदि देव अपना अभिमान छोडकर और उत्कंठित होकर मालती पुष्पोंकी मालाके समान अपना मस्तक झुकाकर जिसकी आज्ञाको धारण करते थे और उसे अपने लिये सबसे अधिक आभूषण मानते थे ॥ ४६–४७ ॥ अपने सत्कर्मों की भावनासे तथा कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे उत्पन्न हुए भावोंसे और भव्यत्वके विशेष भावसे वह सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता था ॥ ४८ ॥ वह भरत श्रीआदिनाथ तीर्थंकरका सबसे वडा पुत्र था सोलहवां मनु और राजाओंमें चक्रवर्ती था तथा दीक्षा लेनेके अंतर्मुहूर्त बाद ही केवली होगया था इसलियें उसकी व-रावरी अन्य कौन कर सकता था ॥ ४९ ॥ उसकी स्त्रीका नाम अनंतमति था जोकि शरीरको धारण करनेवाली कीर्तिके

न वामनाश्चोत्काथडालाश्च न दुश्चरा: ॥ ३० ॥ नानिक्षुशालिकाभूमिर्न क्षमाभृदनन्दन ॥ ३१ ॥ मध्ये तस्य विनीताख्या हृदयग्राहिणी पुरी । जनाना सा
विनीतेव रमणी सत्सुखप्रदा ॥ ३२ ॥ प्रकाशयितुमात्मीयं पुरनिर्माणकौशल । भक्ति तीर्थकृतस्यादौ सा शक्रेणैव निर्मिता ॥ ३३ ॥ मुनेर्धीर्विनयेनेव स्वा-
मिने वपताकिनी । कांचीव मणिनामध्ये सा शालेन व्यभापत ॥३४॥ भूषणायैव शालोस्या खातिकापरिवेष्टितः। शक्र. कर्ता पतिश्चक्री यदि कातस्कुत भय ॥
३५ ॥ वतते जिनपूजास्यां दिन प्रति गृहे गृहे । सर्वमंगलकार्याणां तत्पूर्वत्वाद् गृहेधिना ॥ ३६ ॥ विद्याभ्यासाद्विना बाल्य विना भोगेन यावन । वार्द्धक्य
न विना धर्माद्विर्नातोपि समाधिना ॥३७॥ नावबोध. क्रियाशून्यो न क्रिया फलवर्जिता । अभुक्त न फलं भोगो नार्थधर्मद्वयन्युत: ॥३८॥ प्रधानप्रकृति. प्र.य.
स्त्र मित्वैनैव साधिका । जनेभ्यस्त्रिव सिभ्यो न भूपादिपरिच्छेदः ॥ ३९ ॥ सुरास्तत्र समागत्य स्वर्गायातैर्नरोत्तमः । स्वर्गसंभूतसौहार्द्रा रमते सतत मुदा ॥

वा किवाड खोलनेकी सलाईमें ही थी २९ ॥ वहाके गोपाल (गवालिये) भी मूर्ख नहीं थे तथा स्त्री बालक भी डरपोक
नहीं थे वहांके वामन (छोटे कदके मनुष्य) दुष्ट नहीं थे और चांडाल दुश्चरित्र नहीं थे ॥ ३० ॥ वहांकी भूमि ईख
और चावलोंसे रहित नहीं थी पर्वत विना चंदनवाले नहीं थे, सरोवर विना कमलोंके नहीं थे, और वृक्ष विना स्वादिष्ट-
फलोंके नहीं थे ॥ ३१ ॥ उस देशके मध्य भागमें हृदयको मनोहर लगनेवाली विनीता (अयोध्या) नामकी नगरी थी
जो कि विनीत स्त्रीके समान सुख देनेवाली थी ॥ ३२ ॥ वह नगरी ऐसी जान पडती थी मानों अपनी नगर रचनाकी
कुशलता दिखानेके लिये अथवा तीर्थंकरकी भक्ति दिखलानेके लिये सबसे पहिले इंद्रने ही बनाई हो ॥ ३३ ॥ जिस
प्रकार विनयसे मुनिकी बुद्धि सुशोभित होती है, स्वामीसे सेना शोभायमान होती है, मणिसे करधनी अच्छी लगती है
उसी प्रकार मध्यभागमें बने हुए कोटसे वह नगरी शोभायमान थी ॥ ३४ ॥ खाईसे घिरा हुआ वह उस नगरीका कोट
केवल शोभाके लिये था क्योंकि उसका बनानेवाला इंद्र था और उसका स्वामी चक्रवर्ती था फिर भला उस में भय
किसका हो सकता था ॥ ३५ ॥ वहां पर प्रतिदिन प्रत्येक घरमें जिनपूजा होती थी क्योंकि गृहस्थियोंके सब मांग-
लिक कार्य जिनपूजापूर्वक ही होते थे ॥ ३६ ॥ वहा पर विना विद्याभ्यासके बालक अवस्था व्यतीत नहीं होती थी
विना भोगोंके यौवन व्यतीत नहीं होता था, विना धर्मके बुढापा व्यतीत नहीं होता था और विना समाधिके मरण नहीं
होता था ॥ ३७ ॥ वहां पर किसीका भी ज्ञान क्रियारहित नहीं था, क्रिया विना फलके नहीं थी, फल विना भोगो-
पभोगके नहीं थे और भोग अर्थ तथा धर्म दोनोंसे रहित नहीं थे ॥ ३८ ॥ शिरमें हिताहित ज्ञानकी शून्यता नहीं है ऐसा
ज्ञान मुख्य प्रकृति कहलाती है वह ... दोनोंके स्वामी, मंत्री, मित्र कोश राष्ट्र दुर्ग सेना आदिसे ही सिद्ध होती

शास्त्राभ्यसनशीलो वा स्यात गुरुकुलं महत् । मद्यादित्रितयत्यागलक्षणं व्रतमासदत् ॥ २१ ॥ जीवितावसितौ सम्यक् पालयित्वादराद्व्रतं । सागरोपमदिव्यायु सौधर्मेऽनिमिषो भवत् ॥ २२ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते देशः कौशलाख्योस्ति विश्रुत । आर्यक्षेत्रस्य मध्यस्थ सोस्थितं सर्वदाभजन् ॥ २३ ॥ बाधाभावादरक्षात्र रक्षकेभ्यो विना न सा । अदातारो न कैनास्यात्ते तृप्त्या ग्राहकैर्विना ॥ २४ ॥ काठिन्य कुचयोरेव नैव चेतसि कस्यचित् । देहि याहीति सप्रैषो नाधिस्वेन भयेन वा ॥ २५ ॥ कलंकक्षीणते राज्ञि चन्द्रएव परत्र न । स्थितिस्तपोवनेष्वेव विनाहारात्परेषु न ॥ २६ ॥ पीडा तिलातसीक्षूणां नान्यप्राणिषु केषुचित् । नान्यत्र शिरसश्छेद प्रवृद्धेष्वेव शालिषु ॥ २७ ॥ वधोमोक्षश्च राद्धाते श्रूयते नापराधिषु । विना विमुक्तरागेभ्यो नान्येन्द्रियविग्रहः ॥ २८ ॥ जाड्य जलेषु नान्येषु सुठादिष्वेव तीक्ष्णता । नान्यत्र कुचिकास्वेव कृत्ये नान्यत्र वक्रता ॥ २९ ॥ नाविदग्धाश्च गोपाला न स्त्रीबालाश्च भीरुकाः । शठा

के दुःखोंके कारण रूप कर्मोंसे दुखी हुआ मनुष्य इस हमारे जैनधर्ममें आकर तृप्त होता है ॥ २० ॥ जिस प्रकार शास्त्रों का अभ्यास करनेवाला शिष्य प्रसिद्ध गुरुकुलमें जाकर विद्याग्रहण करता है उसी प्रकार उस भीलने भी उन मुनिराज से मद्य मांस और मधुके त्याग करने रूप व्रतको स्वीकार किया ॥ २१ ॥ उसने जीवन पर्यंत बड़े आदरसे उस व्रतको अच्छी तरह पालन किया और आयु पूर्ण होने पर सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥ २२ ॥ इसी जंबू द्वीपके भरतक्षेत्रमें आर्य क्षेत्रके मध्यभागमें सदा अच्छी स्थितिमें रहनेवाला अथवा सदा स्थित रहने वाला कौशल नामका एक प्रसिद्ध देश है ॥ २३ ॥ वहां पर किसीको किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी इसलिये वहां पर अरक्षा (रक्षाका अभाव) थी परंतु वह अरक्षा रक्षकोंके अभावसे नहीं थी । इसी तरह वहां पर कोई दातार नहीं थे दातारोंका अभाव कृपणतासे नहीं था किंतु संतुष्ट होनेसे ग्राहकोंके (मांगनेवालोंके) अभावसे दाताओंका अभाव था ॥२४॥ वहांपर कठिनता कुचोंमें ही थी किसीके हृदयमें नहीं थी इसीतरह हमें कछ दो ये शब्द मांगनेकेलिये नहीं निकलते थे तथा जाओ ये शब्द भयसे नहीं निकलते थे ॥ २५ ॥ कलंक और क्षीणता ये दो शब्द चंद्रमामें ही थे किसी अन्य राजामें नहीं थे, निराहार रहना तपोवनके तपस्वियोंमें था किसी दूसरेमें नहीं ॥ २६ ॥ तथा पीडा (कोल्हूमें पेलना) तिल अलसी और ईखमें ही थी किसी अन्य प्राणीमें नहीं थी । सिरका काटना बढ़े हुए चावलोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २७ ॥ बंध और मोक्ष ये दो शब्द सिद्धांत ग्रंथोंमें ही सुने जाते थे किसी अपराधीकेलिये नहीं, इंद्रियोंका निग्रह विरागी लोगोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २८ ॥ जडता जलमें ही थी कोई मनुष्य मूर्ख नहीं था तीक्ष्णता सोंठ मिरच आदि पदार्थोंमें ही थी कोई मनुष्य तीक्ष्णस्वभावका नहीं था इसीतरह वक्रता किसी काममें नहीं थी यदि थी तो ताली

दं । नावेवाभोनिधेरस्य प्रासाहं पारमेतया ॥ ९ ॥ कथाकथकयोस्तावद्वर्णनं प्राग्विधीयते । दोषं ताभ्यामदोषाभ्यां पुराणं नोपढौकते ॥ १० ॥ सा कथा या समाकर्ण्य हेयोपादेयनिर्णयः । कर्णकट्वीभिरन्याभिः किं कथाभिर्हितार्थिनां ॥११ ॥ रागादिदोषनिर्मुक्तो निरपेक्षोपकारकृत् । भव्यानां दिव्यया वाचा कथकः स हि कथ्यते ॥१२॥ एतद् द्वितयमत्रैव पुराणे जिनभाषिते। नान्येषु तु पुराणेषु तस्माद्ग्राह्यमिदं बुधैः ॥१३॥ अथ जंबूद्रुमालक्ष्ये द्वीपानां मध्यवर्तिनि। द्वीपे विदेहे पूर्वस्मिन् सीतासरिदुदक्तटे ॥१४॥ विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुंडरीकिणी । मधुकाख्यवने तस्य नाम्ना व्याधाधिपः भवत् ॥१५॥ पुरूरवाः प्रियास्यासीत्कालिकाख्यानुरागिणी । अनुरूपं विधत्ते हि वेधाः संगममंगिनां ॥ १६ ॥ कदाचित्कानने तस्मिन् दिग्विभागविमोहनात् । मुनिं स सागरसेनाख्यं पर्यटंतमितस्ततः ॥ १७ ॥ विलोक्य तं मृगं मत्वा हंतुकामः स्वकांतया । वनदेवाश्चरंतीमे मावधीरिति वारितः ॥ १८ ॥ तदैव सुप्रसन्नात्मा समुपेत्य पुरूरवाः । प्रणम्य तद्वचः श्रुत्वा स शांतः श्रद्धयाहितः ॥ १९ ॥ शीतलांभस्तडागं वा निदाघे तृषितो जनः । संसारदुःखहेतोर्वा भीरुर्जैनेश्वरं मतं ॥२० ॥

से पहिले कथा और कथाके कहनेवाले वक्ताका वर्णन किया जाता है क्योंकि यदि ये दोनोही निर्दोष हो तो फिर पुराणमें कोई दोष प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥ कथा वही कहलाती है जिसको सुनकर हेय और उपदेयका निर्णय किया जाय आत्माका कल्याण चाहने वाले लोगोंके कानोंको कडवी लगनेवाली अन्य कथाओंसे क्या प्रयोजन है ॥ ११ ॥ जो रागादि दोषोंसे रहित है और दिव्य वाणीके द्वारा भव्यजीवोंको विना किसी अपेक्षाके उपकार करनेवाला है वह कथक कहलाता है ॥ १२ ॥ ये दोनों ही वातें अर्थात् कथा और कथक श्रीजिनेंद्र देवके कहे हुए इसी पुराणमें मिलते हैं इसको छोडकर अन्य खोटे पुराणोंमें नहीं मिल सकते इसलिये बुद्धिमानोंको इसी पुराणको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥ अथानंतर सब द्वीपोंके मध्यमें रहनेवाले इस जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारे पुष्कलावती देशमें एक पुंडरीकिणी नगरी है उसके मधुनामके वनमें पुरूरवा नामका भीलोंका स्वामी रहता था तथा उससे अनुराग रखनेवाली कालिका नामकी उसकी स्त्री थी सो ठीकही है—प्रायः कर्मरूपी विधाता जीवोंका समागम एकसा ही निर्माण करता है ॥१४—१६॥ किसी एक दिन दिग्भ्रम हो जानेके कारण सागरसेन नामके मुनि उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे उन्हें देखकर पुरूरवा भील हिरण समझकर उन्हें मारनेके लिये तैयार हुआ परंतु उसकी स्त्री कालिकाने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि ये वनके देवता फिर रहे हैं इन्हें मत मारो ॥ १७—१८ ॥ इस प्रकार उसी समय प्रसन्नचित्त होकर वह भील उन मुनिराजके पास पहुंचा तथा नमस्कार कर उनके कहे हुए वचन सुनने लगा सुनकर उसे श्रद्धा हुई और वह शांत हुआ ॥१९॥ जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें प्यासा मनुष्य शीतल जलसे भरे हुए सरोवरके पास जाकर तृप्त होता है उसी प्रकार संसार

अथ चतुःसप्ततितमं पर्व ।

वर्द्धमानो जिनः श्रीमाकामान्वर्थं समुद्वहन् । देयान्मे वृद्धिमुद्भूतघातिकर्मविनिर्मितां ॥ १ ॥ तत्त्वार्थनिर्णयात्प्राप्य सन्मतित्वं सुबोधवाक् । पूज्यो देवागमात् भूलात्राकलंको बभूविथ ॥ २ ॥ वीरसेनो महावीरो वीरसेनेंद्रतां गतः । वीरसेनेंद्रवर्याद्भिर्वीरसेनेन भावितः ॥ ३ ॥ देवालोकरतवैवैको लोकालोकः वलोकने । किमस्ति व्यस्तमप्यस्मिन्ननेनानवलोकितं ॥ ४ ॥ रूपमेव तव ब्रूते नाथ कोपाद्यपोहन । मणेर्मलस्य वैकल्यं महत केन कथ्यते ॥ ५ ॥ अतिक्रम्य कुतीर्थानि तव तीर्थं प्रवर्तते । संप्रत्यपीति नुत्वानु पुराण तत्प्रचक्ष्यते ॥ ६ ॥ महापुराणवाराशिपारावारप्रतिष्ठया । जिनसेनानुगामिस्वमस्माभिर्निधिवक्षुभि ॥ ७ ॥ अगाधोयं पुराणाब्धिरपारश्च मतिर्मम । पश्योत्ताना सपारा च त तितीर्षुः किलैतया ॥ ८ ॥ मतिरस्तु ममैषाल्पा पुराण महदस्त्विव-

अथ चौहत्तरिवां पर्व ॥ ७४ ॥

अथानंतर—अन्वर्थ नामको धारण करनेवाले श्रीमान वर्द्धमान जिनेंद्रदेव घातिया कर्मोंके नाश होनेसे प्राप्त हुई वृद्धि मुझे दें ॥ १ ॥ तत्त्वार्थके निर्णय करनेसे आपका सन्मति नाम पडा है और देवोंके आगमनसे पूज्य होकर आप अकलंक हुए हैं ॥ २ ॥ आपका नाम वीरसेन है रुद्रके द्वारा आप महावीर कहलाये हैं. ऋद्धिधारी मुनियोंकी सेनाके नायक हैं. गणधर देव आपके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं तथा अनेक मुनिराज आपका ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥ हे देव! लोक और अलोकके देखनेमें आपका ही केवल ज्ञानरूपी प्रकाश मुख्य गिना जाता है। जिसे आपका दर्शन देख नहीं सकता ऐसा क्या कोई फुटकर पदार्थ संसारमें है ? ॥ ४ ॥ हे नाथ आपका रूप ही क्रोधादिकके अभावको सूचित करता है सो ठीक ही है क्योंकि वहुमूल्य वडी मणियोंके मल कालिमा आदिके अभावको कौन कहने आता है भावार्थ—उनका स्वरूप उन्हींसे मालूम हो जाता है ॥ ५ ॥ हे देव अन्य अनेक कुतीर्थोंका उल्लंघन कर वर्तमानमें भी आपका ही तीर्थ चल रहा है इसलिये आपको ही नमस्कार कर आपका ही पुराण कहा जाता है ॥ ६ ॥ यह महापुराण एक महासागरके समान है इसके पार जानेके लिये कुछ कहनेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंको महर्षि जिनसेनका अनुयायी होना चाहिये ॥ ७ ॥ यह पुराणरूपी महासागर अगाध और अपार है और मेरी बुद्धि थोडी और समर्याद है इसी बुद्धिके अनुसार मैं इस महा सागरके पार होना चाहता हूं ॥ ८ ॥ यद्यपि मेरी बुद्धि छोटी है और यह पुराण वहुत बडा है तथापि जिस प्रकार नावसे ही समुद्रके पार हो जाते हैं उसी प्रकार मैं भी इस छोटीसी बुद्धिसे ही इसके पार हो जाऊंगा ॥ ९ ॥ सब

चासन्सम भर्तुर्यस्य स सततातकभयं हतूभवशाग्रणी: ॥ १६६ ॥ किं ध्यानात्फणिन फणींद्रयुवते·, क्षांतेर्महेंद्रात्स्वतस्तत्रान्मत्रविजृंभणाद्गत रिपोर्भांते रयस्योदयात् । कालाद्वातिहतेरिदं शममभूवित्यर्थ्रहस्ते सुरै राशक्योमरविघ्नविच्युतिरघ इन्यातस वीराग्रणी ॥ १६७ ॥ श्रुत्वा यस्य वचोमृत श्रुतिसुखं हृद्य हित हेतुमन्मिथ्यात्व दिविजोवमीद्विषमिव व्याविद्धवैरोद्धुरं । य नैतिस्म च तादृग्प्युपनतश्रेय म पार्श्वो विभुर्विघ्नौघ हरिमंभूतामनत्रिमामध्यास्य सिद्धो-हतात् ॥ १६८ ॥ जात: प्रागमरुभूतिरन्विभपतिर्देवः सहस्रारजो विद्येशोऽच्युतकल्पज क्षितिभृता श्रीवज्रनाभिः पति । देवो मध्यममध्यमे नृपगुणैरानंदनामाऽनते देवेंद्रो हतघातिसंहतिरवत्वस्मान्स पार्श्वेश्वर ॥१६९॥ कमठ, कुक्कुटसर्पः पंचमभूनोहिरभवदथ नरके। व्य धोधाग: सिंहो नरकी नरपानु शबरो दिविज ॥१७०॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यविरचिते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पार्श्वतीर्थंकरपुराण परिसमाप्त त्रिसप्ततितम पर्व ॥ ७३ ॥

नाश हुआ, सर्पिणीके छत्र धारण करनेसे घातिया कर्मोंका नाश हुआ घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और केवलज्ञानके प्राप्त होनेसे शरीरकी महिमा बढी इसतरह संवर देवका उपद्रव आपके संसारका नाश करनेवाला हुआ और आपके तीर्थंकरका उदय समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला हुआ। हे प्रभो ऐसे उग्रवंशके अग्रगण्य आप सदा होनेवाला यमराजका भय दूर करो अर्थात् मोक्ष दो ॥ १६६ ॥ क्या यह शत्रुका किया हुआ उपद्रव भगवानके ध्यानसे शांत हुआ वा धरणेंद्रसे शांत हुआ अथवा धरणेंद्राणीसे शांत हुआ, अथवा भगवानकी क्षमासे शांत हुआ, किंवा इंद्रसे शांत हुआ वा स्वयं शांत हो गया, अथवा किसी तंत्रसे शांत हुआ वा मंत्र पढनेसे शांत हुआ, अथवा पुण्यकर्मके उदयसे शांत हुआ वा समय पाकर शांत हुआ इसप्रकार अर्घ लिये हुए देव लोक संवरदेवके द्वारा किये हुए जिनके विघ्नोंकी शांतिकी आशंका कर रहे हैं ऐसे शूरवीरोंमें अग्रगण्य भगवान पार्श्वनाथ हमलोगोंके सब पाप नष्ट करें ॥ १६७ ॥ का-नोंको सुख देनेवाले, हृदयको मनोहर, हित करनेवाले और हेतुपूर्वक जिनके वचनरूपी अमृतको सुनकर संवरदेवने भी विषके समान मिथ्यात्वको छोड दिया और उत्कट वैरको नाश करनेवाले जिन पार्श्वनाथको आकर नमस्कार किया, इसप्रकार नमस्कार करनेवालोंका भी कल्याण करनेवाले स्वामी पार्श्वनाथ सिद्धभगवान् सिंहासनपर विराजमान होकर हम लोगोंके सब विघ्नोंको नष्ट करें ॥ १६८ ॥ पार्श्वनाथका जीव पहिले मरुभूति मंत्री हुआ, फिर हाथी हुआ, फिर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर विद्याधर हुआ, फिर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ व-हांसे मध्यम ग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुआ, वहांसे आकर राजाओंके गुणोंसे सुशोभित आनंद नामका राजा हुआ फिर आनत स्वर्गमें इंद्र हुआ तदनंतर पार्श्वनाथ होकर घातिया कर्मोंका नाश किया ऐसे वे श्री पार्श्वनाथ भगवान् हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६९ ॥ कमठका जीव पहिले कमठ था फिर कुक्कुट सर्प हुआ, पांचवें नरकमें गया, फिर अजगर हुआ, नरक गया, फिर भील होकर नरकमें गया, फिर सिंह हुआ और नरक गया फिर महीपाल होकर शंबर देव हुआ ॥ १७० ॥

इसप्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान पार्श्वनाथका पुराण कहनेवाला यह तिहत्तरवां पर्व समाप्त हुआ।

तिकम्पोदय पाठीनो अलघेरिवेत्समिमुत पार्श्वो जिन पातु नः ॥ १६१ ॥ निष्कंपं तव शुक्लतामुपगतं बोध पयोधिर्महावातोद्भूततनुर्विनीलसलिल प्राप्नोति दूरात्मत । ध्यानं ते बत वाचलस्य मरुतां श्वासानिलाद्वामरात् क्षोभ कः कथमित्यभिष्टुतिपतिः पार्श्वप्रभु पातु न ॥ १६२ ॥ तीर्थेशाः सदृशो गुणैरनुमि सर्वेपि धैर्यादिभिः, सन्त्यप्येवमधीशविश्वविदिता ये ते गुणा प्रीणनाः । तत्सर्वं कमठात्तथाहि महतां शत्रो कृतापक्रियात् ख्यातिर्या महती न जातुचिदसौ मित्रात्कृतोपक्रियात् ॥ १६३ ॥ दूरस्थामरविक्रियस्य भवतो बाधा न शांतात्मनो न क्रोधो न भयं च तेन न बुधैः सोढेति संस्तूयसे । माहात्म्यप्रशमौ तु विस्मयकरौ तौ तेन तीर्थेशिन, स्तोतव्यं किमिति स्तुतो भवतु न पार्श्वो भवोच्छित्तये ॥ १६४ ॥ पद्मैतौ कृतवेदिनौ हि धरणौ धर्म्यौ विशिष्टौ गतौ तावेवोपकृतिर्न ते त्रिभुवनक्षेमैकभूमेस्तत । भूभृत्पातनिषेधन ननु कृतं चेत्प्रागुपोपद्रवाः केनास्मितिसारसंस्तुतिकृतः पार्श्वो जिनः पातु वः ॥१६५॥ भेदोहे फणिमण्डप फणिवधूछत्र क्षतिर्घातिना कैवल्याप्तिरधातु देहमहिमा हानिर्भवस्यामरी । भीतिस्तीर्थकृदुद्गमोपगमन विघ्नस्य-

ही नम्री भूत जान पडता है परंतु आपका ध्यान सुमेरु पर्वतके समान अचल है फिर भला श्वासोच्छ्वास की वायुके समान संवरदेवसे आपको क्या क्षोभ हो सकता है इस प्रकारकी अनेक स्तुतियोंके स्वामी श्रीपार्श्वनाथ भगवान हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६२ ॥ हे स्वामी ! यद्यपि धैर्य आदि बडे २ गुणोसे सब तीर्थंकर समान हैं तथापि आपके तृप्त करनेवाले गुण सब संसारमें प्रसिद्ध हुए हैं और वे सब एक कमठके ही कारण प्रसिद्ध हुए हैं सो ठीक ही है क्योकि अपकार करने वाले शत्रुसे बडे पुरुषोंकी जो सबसे बडी प्रसिद्ध होती है वह उपकार करनेवाले मित्रसे कभी नहीं हो सकती ॥१६३॥

हे देव ! संवर देवने दूर रहकर आपपर विक्रिया की तथापि आपका आत्मा अत्यंत शांत बना रहा आपको किसी तरहकी बाधा नहीं हुई न क्रोध आया और न भय हुआ परंतु विद्वान लोग इन गुणोंसे भी "आप सहनशील हैं" ऐसी आपकी स्तुति नहीं करते किंतु आपका माहात्म्य और शांतता दोनों ही अत्यंत आश्चर्यजनक हैं इसलिये आपकी स्तुति भी किस तरह की जाय इसप्रकार जिनकी स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथस्वामी हम लोगोंके जन्ममरणरूप संसारका नाश करें ॥ १६४ ॥ देखो ये धरणेंद्र पद्मावती दोनों ही बडे कृतज्ञ हैं और बडे धर्मात्मा हैं इसप्रकार इन दोनोंकी संसारमें पूज्यता हुई है परंतु तीनों लोकोंके कल्याण उत्पन्न करनेकी एक भूमि ऐसे आपका ही यह उपकार समझना चाहिये यदि ऐसा न माना जाय और उन दोनोंने ही पर्वतोंका पडना पत्थर वरसाना आदि वंद किया है ऐसा माना जाय तो फिर यह भी ढूंढना पडेगा कि पहिले उपद्रव किसके द्वारा नष्ट हुए थे ? इसप्रकार जिनकी सारभूत स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६५ ॥ हे प्रभो सर्पके फणाओंके मंडलसे आपके उपद्रवोंका

ज्ञानास्त्रावनो विक्रियर्द्धिकाः । शतानि सप्त पंचाशच्चतुर्थावगमाः स्मृताः ॥ १५१ ॥ वादिनः षट्शतान्येव ते सर्वेपि समुच्चिताः । अभ्यर्णीकृतनिर्वाणा स्यु. सहस्राणि षोडश ॥१५२॥ सुलोचनाद्या. षट्त्रिंशत्सहस्राण्यार्यिका विभो; । श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणा श्राविकास्तत ॥१५३॥ देवी देव्योप्यसंख्याता संख्यातास्तिर्यगगिन । एव द्वादशभिर्युक्तो गणैर्धर्मोपदेशनं ॥१५४॥ कुर्वाण पचभिर्मासैर्विरहीकृतसप्तर्ति । संवत्सराणा मास स सहत्य विहृतिक्रियां ॥१५५॥ षट्त्रिंशन्मुनिभिः सार्द्धं पतिमायोगमास्थित । श्रावणे मासि सप्तम्यां सितपक्षे दिनादिमे ॥१५६॥ भागे विशाखनक्षत्रे ध्यानद्वयसमाश्रयात् । गुणस्थानद्वये स्थित्वा सम्मेदाचलमस्तके ॥ १५७ ॥ तत्कालोचितकार्याणि वर्तयित्वा यथाक्रम । नि शेषकर्मनिनाशान्निर्वाण निश्चलं स्थित; ॥ १५८ ॥ कृतनिर्वाणकल्याणा सुरैर्प्रास्त ववंदिरे । वदामहे वय चैन नदितु सुदरैर्गुणै ॥ १५९ ॥ आदिमध्यांतगंभीरा सर्तोभोनिधिसन्निभा । उदाहरणमेतेषां पार्श्वो गण्य. क्षमावता ॥ १६० ॥ त्वज्जन्माभिषवोत्सवेऽमरगिरौ स्वोच्छ्वासनि श्वासजै: स्वर्गेशां भृशमानयस्त्वमनिलैरांदोललीला मुहु: । किं कुर्यात्तव तादृशोयममरस्तत्क्षां-

वाय असंख्यात देव देवियां थी और तिर्यंच थे। इस प्रकार बारह सभाओंसे सुशोभित होकर धर्मोपदेश देते हुए उन भगवानने पांच महीने कम सत्तरि वर्ष तक विहार किया। अंतमें एक महीने तक सब योगोंका निरोध कर छत्तीस मुनियोंके साथ सम्मेद शिखर पर्वत पर प्रतिमा योग धारण किया तथा श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन विशाषा नक्षत्रमें दिनके पहिले भागमें अर्थात् सवेरेके समय तीसरे और चौथे दो शुक्ल ध्यानोंका आश्रय लिया ॥ १५४–१५७ ॥ उन्होंने अनुक्रम से उस समय करने योग्य सब काम किये और फिर समस्त कर्मोंके नाश हो जानेसे वे भगवान अचल मोक्ष स्थानमें जा विराजमान हुए ॥ १५८ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणकी पूजा की और उनकी वंदना की इसीलिये सुंदर गुणोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होनेके लिये हमलोग भी उनकी वंदना करते हैं ॥ १५९ ॥ जो सज्जन समुद्रके समान आदि मध्य और अंतमें भी गंभीर हैं ऐसे क्षमावानोंमें यदि अच्छा उदाहरण ढूंढा जाय तो श्रीपार्श्वनाथ स्वामी ही गिनने योग्य हैं ॥ १६० ॥ हे प्रभो ! जन्माभिषेकके समय मेरु पर्वत पर आपने उच्छ्वास निन्छ्वासकी वायुसे आपने स्वर्गके इंद्रादि देवोंको भी अच्छी तरह वारवार झुला दिया था फिर भला यह संवर सरीखा क्षुद्र देव आपका क्या कर सकता उसे तो केवल आपकी क्षमासे ही अच्छा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ, और जिसप्रकार मछली समुद्रमें लोडती हैं उसी प्रकार उसने आपके चरणोंमें आकर नमस्कार किया। हे देव पार्श्वनाथ जिनेंद्र ! ऐसे आप हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ १६१ ॥ हे नाथ ! अत्यंत निर्मल हुआ आपका ज्ञान अकंप है उसको समुद्रकी उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि समुद्र महावायुके चलने पर चंचल हो जाता है और उसमें भरा हुआ पानी नीला है परंतु आपका ज्ञान निर्मल है समुद्र दूरसे

१३९ ॥ भर्तारमस्वादावृत्य तत्पत्नी च फणाततेः । उपर्युच्चैः समुदूत्य स्थिता वज्रातपच्छदं ॥१४०॥ अमू क्रूरौ प्रकृत्यैव नागौ सस्मारतु कृतं । नोपकारं परे कस्माद्विस्मरेत्याद्रचेतसः ॥ १४१ ॥ ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंक्षये । विनाशमगमद्विश्वो विकार कमठद्विष ॥ १४२ ॥ द्वितीयशुक्लध्यानेन मुनिर्निर्जित्य कर्मणां । त्रितयं चैत्रमासस्य कालपक्षे दिनादिमे ॥ १४३ ॥ भागे विशाखनक्षत्रे चतुर्दश्यां महोदय । संप्रापत्केवलज्ञान लोकालोकावभासनं ॥ १४४ ॥ तदा केवलपूजां च सुरेंद्रा निरवर्तयन् । संवरोप्याप्तकालादिलब्धि शममुपागमत् ॥ १४५ ॥ प्रापत्सम्यक्त्वसंशुद्धिं दृष्ट्वा तद्वनवासिनः । तापसास्त्यक्तमिथ्यात्वाः शतानां सप्त संयमं ॥ १४६ ॥ गृहीत्वा शुद्धसम्यक्त्वाः पार्श्वनाथ कृतादरा । सर्वे प्रदक्षिणीकृत्य प्रणेमु पादयोर्द्वयोः ॥१४७॥ क्व तद्वैरं वृथा क्षातिरीदृशी क्वास्य पापिनः । सख्यमास्ता विरोधश्च वृद्धये हि महात्मभि ॥ १४८ ॥ गणीशा दश तस्यासन् विधायादिं स्वयंभुव । सार्द्धानि त्रिशतान्युक्ता मुनींद्राः पूर्वधारिणः ॥ १४९ ॥ यतयोऽयुतपूर्वाणि शतानि नव शिक्षका । चतु शतोत्तरं प्रोक्ता सहस्रमवधित्विषः ॥ १५० ॥ सहस्रमतिम-

कमठ शत्रुका सब विकार नष्ट हो गया ॥ १४२ ॥ दूसरे शुक्ल ध्यानके बलसे उन्होंने ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों कर्मोंको नष्ट किया और चैत्र कृष्णा चतुर्दशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें सबेरेके समय उन महा विभूतिको धारण करनेवाले भगवानने लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १४३–१४४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर केवल ज्ञानकी पूजा की और वह संवर नामका ज्योतिषी देव भी कालादि लब्धिके प्राप्त होनेसे अत्यंत शांत हो गया ॥ १४५ ॥ उसने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया तथा उसे देखकर उस बनमें रहनेवाले सातसै तपस्वियोंने मिथ्यात्व छोडकर संयम धारण किया शुद्ध सम्यग्दर्शन स्वीकार किया और उन सबने बडे आदरसे श्रीपार्श्वनाथकी प्रदक्षिणा देकर उनके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम किया ॥ १४६–१४७ ॥ देखो कहां तो उस पापीका ऐसा व्यर्थका वैर और कहां ऐसी शांति, परंतु यह भी ठीक ही है क्योंकि महात्माओंके साथ मित्रता करना अथवा विरोध करना दोनों ही वृद्धि करने वाले होते है ॥ १४८ ॥ भगवान पार्श्वनाथके समवसरणमें स्वयंभुवको आदि लेकर दश गणधर थे, ग्यारह अंग और चौदह पूर्वको धारण करनेवालोंकी संख्या तीन सौ पचास थी। दशहजार नौ सौ शिक्षक मुनि थे और एक हजार चारसौ अवधिज्ञानी थे ॥ १४९–१५० ॥ इसी प्रकार एक हजार केवल ज्ञानी थे, एक ही हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, सातसौ पचास मनःपर्ययज्ञानी थे और छह सौ वादी थे। इसप्रकार शीघ्र ही मुक्त होने वाले सब मुनियोंकी संख्या सोलह हजार थी ॥ १५१–१५२ ॥ इसी प्रकार उन भगवानके समवसरणमें सुलोचनाको आदि लेकर छत्तीस हजार अर्जिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाएं थीं ॥ १५३ ॥ इनके सि-

स्थितः ॥ १२८ ॥ उत्तराभिमुखे चैत्रपक्षे मासि सितेतरे । एकादश्यां स पूर्वाह्णे समं त्रिशतभूभुजैः ॥ १२९ ॥ कृतसिद्धनमस्कारो दीक्षालक्ष्मीं समाददे । दूतीं वा मुक्तिकन्याया मान्यां कुलप्रसाधिकां ॥ १३० ॥ केशान् विमोचितांस्तस्य मुष्टिभिः पञ्चभिः सुरेट् । समभ्यर्च्यादरान्नीत्वा न्यक्षिपत्क्षीरवारिधौ ॥ १३१ ॥ जातसामायिकः शुद्ध्या चतुर्थज्ञानभास्करः । गुल्मखेटपुरं कायस्थित्यर्थं समुपेयिवान् ॥ १३२ ॥ तत्र धन्याख्यभूपाल श्यामवर्णोऽष्टमङ्गलं । प्रतिग्राह्याशन शुद्धं दत्वा यतिक्रमयोचितं ॥ १३३ ॥ नयन् स चतुरो मासान् छाद्मस्थ्येन विशुद्धिभाक् । दीक्षाग्रहवने देवदारुभूरिमहीरुहः ॥ १३४ ॥ अधःस्तादष्टमाहारत्यागादात्तविशुद्धिकः । प्रत्यासन्नभवप्रांतो योग्यं सप्तदिनावधि ॥ १३५ ॥ गृहीत्वा सत्त्वसारेऽस्थाद्धर्मध्यानं प्रवर्तयन् । संवरो वाम्बरे गच्छन्नगच्छत् स्व विमानकं ॥ १३६ ॥ लोकमानो विभंगेन स्पष्टप्राग्वैरबंधन । रोषात्कृतमहाघोषो महावृष्टिमपातयत् ॥ १३७ ॥ व्यधात्तथैव सप्ताहान्यन्यांश्च विविधान् विधीः । महोपसर्गान् शैलोपनिपातांतानिवांतक ॥ १३८ ॥ तद्ज्ञात्वावधिबोधेन धरणीशो विनिर्गतः । धरण्याः प्रस्फुरद्रत्नफणामण्डपमण्डितः ॥

इसके बाद अत्यंत विशुद्धिको धारण करनेवाले पार्श्वनाथने छद्मस्थ अवस्थाके चार महीने व्यतीत किये और फिर जहां दीक्षा ली थी उसी वनमें आकर एक देवदारु नामके सबसे बडे वृक्षके नीचे विराजमान हुए। आठ दिनका उपवास धारण करनेसे उनकी विशुद्धि और भी बढ गई थी, उनके संसारका अंत अत्यंत समीप आ चुका था और उनका पराक्रम बहुत ही बढ गया था। सात दिन तक योग धारण करनेका नियम लेकर वे श्रेष्ठ धर्मध्यानमें लग रहे थे। इसी समय संवर नामका कमठका जीव ज्योतिषी देव आकाश मार्गसे जा रहा था परंतु भगवानके ऊपरसे जानके कारण उसका विमान रुक गया ॥ १३४—१३६ ॥ तब उसने विभंगावधिसे देखा। पार्श्वनाथको देखते ही पहिले बैरका संस्कार होनेसे वह क्रोधित हुआ। उस निर्बुद्धिने बडा भारी शब्द किया और बडी भारी वर्षा वरसाई इसी तरह वह सात दिन तक महा गर्जना और महा वर्षा करता रहा। इसके सिवाय यमराजके समान उसने पत्थरोंकी वर्षाको आदि लेकर और भी अनेक तरहके महोपसर्ग किये ॥ १३७—१३८ ॥ अवधि ज्ञानसे उस उपसर्गको जानकर उसी समय पद्मावतीके साथ धरणेंद्र आया और देदीप्यमान रत्नोंके फणामंडपसे सुशोभित होकर उसने चारो ओरसे ढककर भगवानको ऊपर उठा लिया तथा उसकी देवी पद्मावती अपने फणाओंके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत ऊंचा ऊपर उठा कर खडी रही॥१३९-१४० ॥ इस प्रकार स्वभावसे ही क्रुर ऐसे सर्प सर्पिणीने केवल किये हुए उपकारका स्मरण कर वह उपसर्ग दूर किया सो ठीक ही है क्योंकि दयालु पुरुष किये हुए उपकारको किस प्रकार भूल सकते हैं अर्थात् वे कभी नहीं भूलते ॥१४१॥ तदनंतर भगवान ध्यानमें तल्लीन हुए ध्यानके माहात्म्यसे उनका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया और मोहनीयके नाश होनेसे

न्। नरान्यो मूर्तिमासाद्य सवरो ज्योतिपामरः ॥ ११७ ॥ नाम्नाभवत्सकोपाना तपसामीदृशी गति । नागो नागी च संप्राप्तसमभ वा कुमारतः ॥११८॥ वभूवतुर्महद्ध्य तत्पत्नी च पृथुश्रिया । तत दिंशत्समामानकुमारे समये गते ॥ ११९ ॥ साकेतनगराधीशो जयसेनमहीपति । भगलीदेशरुज तद्वयादि प्राभृतान्वित ॥ १२० ॥ अन्यदासौ निसृष्टार्थ प्राहिणोत्पार्श्वसंनिधि । गृहीत्वोपायनं पूजयित्वा दूतोत्तमं मुदा ॥ १२१ ॥ साकेतस्य विभूतिं त कुमार प-रिपृष्टवान्। सोपि भट्टारक पूर्वं वर्णयित्वा पुरुं पर ॥ १२२ ॥ पश्चाद्व्यावर्णयामास प्राज्ञा हि क्रमवेदिनः। श्रुत्वा तत्तत्र किं जातः तीर्थकृन्नाम बद्धवान् ॥ १२३ ॥ एष एव पुनर्मुक्तिमापदित्युपयोगवान् । साक्षात्कृतविजानीनसर्वप्रभवसंततिः ॥ १२४ ॥ विजृंभितमतिज्ञानक्षयोपशमवैभवात् । लब्धबोधि पुनर्लौकांतिकदेवप्रबोधितः ॥ १२५ ॥ तत्क्षणागतदेवेंद्रप्रमुखामरनिर्मित । प्रसिद्धमध्यकल्याणसवनादिमहोत्सव ॥ १२६ ॥ प्रत्येयभुक्तिमद्वाग्भिः कृतबन्धुविसर्जन । आरुह्य शिविका रूढा विमलाभिधया विभुः ॥ १२७ ॥ विधायाष्टमैमाहारत्यागमश्वबने महा । शिलातले मह सत्व पल्यकासनमा-

ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग अनुक्रमको भी अच्छी तरह जानते हैं। उसे सुनकर वे विचार करने लगे कि मैंने तीर्थकर नाम कर्मका बंध किया इससे क्या लाभ हुआ। यह तीर्थकर नाम कर्मका बंध करना तवही उपयोगी हो सकता है जब कि यह जीव मुक्त हो जाय। इस तरह विचार करते हुए उन्होंने अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम होनेसे अपने पहिलेके भव प्रत्यक्षके समान जान लिये तथा उन्हें स्वात्मज्ञान प्रगट हुआ और उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुतिकर समझाया ॥ १२०–१२५ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर प्रसिद्ध दीक्षा कल्याणका अभिषेक कर महोत्सव मनाया ॥ १२६ ॥ तदनंतर पार्श्वनाथने विश्वास करने योग्य और युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे समझाकर सब भाई बंधुओंसे विदा मांगी और फिर वे भगवान विमला नामकी पालकी पर सवार होकर अश्ववनमें पहुंचे अनंत शक्तिको धारण करनेवाले वे भगवान एक शिला पर उत्तरकी ओर मुखकर पर्यंकासन विराजमान हुए। पौष कृष्ण एकादशीके दिन सवेरेके समय तेलाका नियम लेकर तीनसै राजाओंके साथ सिद्ध भगवानको नमस्कार किया और वस्त्राभूषण पहिने हुए तथा अत्यंत मान्य ऐसी मुक्ति रूपी कन्याकी दूतीके समान दीक्षा लक्ष्मी स्वीकार की ॥ १२७–१३० ॥ भगवानने जो पांच मुष्टिओंके द्वारा केशोंका लोंच किया था इंद्रने उन वालोंकी पूजा की और आदर पूर्वक ले जाकर क्षीर सागरमें उन्हें डाला ॥ १३१ ॥ भगवानने सामायिक धारण किया आत्माकी शुद्धि होनेसे उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ और फिर वे आहारके लिये गुल्मसेटपुर नगरमें पहुंचे ॥ १३२ ॥ वहां पर श्यामवर्णको धारण करनेवाले धन्य नामके राजाने अष्टमंगल द्रव्योंके द्वारा उनका पडगाहन किया और उस समयकी उचित क्रिया कर शुद्ध आहार दिया ॥३३॥

१०५ ॥ अह प्रभुर्ममायं किं वा करोतीत्यवज्ञया । तपसो मम माहात्म्यमबुध्वैव ब्रवीषि किं ॥ १०६ ॥ पंचाग्निमध्यवर्तित्वं पवनाहारजीवनं । ऊर्ध्वबाहु तया पादेनैकेनैव चिरस्थितिः ॥ १०७ ॥ स्वयं पतितपर्णादेरुपवासेन पारणं । इत्यादिकायसंतापि तापसानां सुदुर्द्धरं ॥ १०८ ॥ तपोनाधिकमस्त्यस्मा- दिति तद्वचनश्रुते । सुभौम सस्मितोवादीन्न भवंतमहं गुरुं ॥ १०९ ॥ अवमन्ये पुनः किंतु संत्यज्याप्तागमादिकं । मिथ्यात्वादिचतुष्केण पृथिव्यादिषु षट्- स्वपि ॥ ११० ॥ वाचा कायेन मनसा कृतकादित्रिकेण च । वने प्रवर्तमानानामनाप्तमतसश्रयात् ॥ १११ ॥ निर्वाणप्रार्थना तेषां तदुलावाप्तिवाच्छया । तुषखडनखेदो वा घृतेच्छा जलमथनात् ॥ ११२ ॥ हेमोपलब्धिबुद्धिर्वा दाहादधाश्मसहतेः । अधस्येवाग्निसपातो दावभीत्या प्रधावत ॥ ११३ ॥ ज्ञानहीने परिक्लेशो भावि दुःखस्य कारणं । इति प्ररूप्यते युष्मत्स्नेहेन महतामुना ॥ ११४ ॥ इत्येतदुक्तमज्ञोपि पूर्ववैरानुबंधनात् । निजपक्षानुरागित्वाद् दु ससारादि- हागते ॥ १५ ॥ प्रकृत्यैवातिदुष्टत्वादनादाय विरुद्धधीः । सुभामको भवानत्र सस्मयोय कुमारक ॥ ११६ ॥ पराभवति मामेवमिति तस्मिन् मकोपवा-

अथवा जल मंथनसे घीकी इच्छा करते हैं ॥ १०७–११२ ॥ अथवा अंधपाषाणको जलाकर सुवर्ण प्राप्त करना चाहते हैं अथवा अंधेके समान दावानल अग्निसे डरकर दौडते हुए अग्निमें ही पडते हैं ॥ १३ ॥ बिना सम्यग्ज्ञानके जो कुछ भी कायक्लेश किया जाता है वह आनेवाले दुःखोंका कारण ही होता है और आपके स्नेहसे यही बात इन कुमार महापुरुषने आपसे कही है ॥ ११४ ॥ इस प्रकार उस सुभौमकुमारने कहा तथापि उस विरुद्ध बुद्धिवाले मूर्ख तपस्वीने पहिले जन्मके वैरका संस्कार होनेसे वा अपने पक्षका अनुरागी होनेसे अथवा स्वभाव ही से अत्यंत दुष्ट होनेसे उसके कहने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। तदनंतर वह तपस्वी क्रोधित होकर कहने लगा कि इस संसारमें तू ही सुभौम है और यह कुमार बडा ही अभिमानी है इसलिये इसने मेरा तिरस्कार किया है। इसप्रकार उस तपस्वीके हृदयमें शल्य बनी ही रही और आयुके अंतमें मरकर वह संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधसहित तपश्चरण करनेवालोंकी ऐसी ही गति होती है। इधर सर्प सर्पिणीने कुमारके समझाने पर समता भाव धारण किया और मरकर दोनोंही बडी विभूतिको धारण करनेवाले धरणींद्र पद्मावती हुए। इसके बाद जब कुमारके जन्मसे तीस वर्ष गये अर्थात् जब उनकी तीस वर्षकी अवस्था हो गई ॥ २१५–११९ ॥ तब साकेत नगरके स्वामी राजा जयसेनने किसी एक दिन भगली देशमें उत्पन्न हुए घोडे आदि अनेक तरहकी भेंट देनेके लिये पार्श्वनाथके समीप किसी दूतको भेजा। कुमार पार्श्वनाथने बडी प्रसन्नतासे वह भेंट ली, उस उत्तम दूतका आदर सत्कार किया और फिर उस दूतसे साकेत नगरकी विभूति पूछी। इसके उत्तरमें दूतने पहिले ही श्रीऋषभदेव आदि तीर्थकरोंका वर्णन किया और फिर अपने नगरका हाल कहा सो ठीक

रायुष । बालशालितनुच्छाय: सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ९४ ॥ नवारत्निप्रमोत्सेधो लक्ष्मीवानुभवराज । षोडशाब्दावसानेऽय कदाचिन्मवयौवनः ॥ ९५ ॥ क्रीडार्थं स्ववलेनामा निर्ययायाद्बहिः पुरं । आश्रमादिवने मातुर्महीपालपुराधिपं ॥ ९६ ॥ पितरं तं महीपालनामानममगर्वितः । महादेवीवियोगेन दु:-खात्तापसवीक्षितं ॥ ९७ ॥ तपः कुर्वंतमालोक्य पचपावकमध्यगं । तत्समीपे कुमारोस्थादनत्वैनमनादरः ॥ ९८ ॥ अवधार्यं तदाविष्टकोपेन कुमुनिर्गुरुः । कुलीनोहं तपोवृद्ध पिता मातुर्नमस्क्रियां ॥ ९९ ॥ अकृत्वा मे कुमारोज्ञः स्थितवान् मदविह्वल· । इति प्रक्षोभमागत्य प्रशांते पावके पुनः ॥ १०० ॥ निक्षेप्तुं स्वयमेवोत्क्षिप्य परशु घनं । मिदाग्निंधनमत्रोसौ माभैत्सीरत्र विद्यते ॥ १०१ ॥ प्राणीति वार्यमाणोपि कुमारेणावधित्विषा । अन्वतिष्ठदधः कर्म त स्याभ्यतरवर्तिनौ ।' १०२ ॥ नागी नागश्च तच्छेदाद् द्विधाखड तदागतौ । तन्निरीक्ष्य सुभौमाह्वयः कुमार समभाषत ॥ १०३ ॥ अहं गुरुस्तपस्वीति गर्व दुर्वहमावहन् । पापास्रवो भवत्यस्मान्नवेत्त्येतच्च वेत्सि किं ॥ १०४ ॥ अज्ञानतपसानेन दु:खं तेत्र परत्र च । इति तद्वचनात्कोपी मुनिरित्थं तमब्रवीत् ॥

उसे काटनेकेलिये बडी भारी कुल्हाडी उठाई। तब अवधिज्ञानसे जानकर कुमारने कहा कि इस लकडीको मत काटो इसमें प्राणी बैठे हैं। इसतरह कुमारके निवारण करनेपर भी उस तपस्वीने वह पाप कर्म करडाला और उसकी चोटसे उस लकडीमें बैठे हुए सर्प सर्पिणीके उसीसमय दो टुकडे हो गये उसे देखकर सुभौमकुमार कहने लगा ॥ ९३–१०३ ॥ कि तू मैं गुरु हूं तपस्वी हूं इसप्रकारका मिथ्या और भारी अभिमान करता है परंतु तुझे इससे पापास्रव होता है या नहीं क्या तू इस बातको जानता है इस अज्ञान तपश्चरणसे तुझे इस लोकमें भी दुःख होगा और परलोकमें भी दुःख मिलेगा सुभौमकुमारके ये वचन सुनकर उस तपस्वीको और भी क्रोध आया तथा इसप्रकार कहने लगा ॥ १०४–१०५ ॥ कि मैं प्रभु हूं यह कुमार मेरा तिरस्कार क्या कर सकता है तू मेरे तपश्चरणकी महिमा नहीं जानता इसीलिये ऐसा कहता जान पडता है ॥ १०६ ॥ पंचाग्निके मध्यमें बैठना, वायु भक्षणकर ही जीवित रहना, ऊपरकी ओर भुजाकर एक ही पैरसे बहुत देरतक लटकते रहना, और उपवास कर अपने आप गिरे हुए पत्तोंसे पारण करना इसप्रकार शरीरको संतापित करनेवाले तपस्वियोंका तप बहुत ही कठिन है इस प्रकारके तपश्चरणसे और अधिक तपश्चरण हो ही नहीं सकता। उस तपस्वीके ऐसे वचन सुन कर वह सुभौमकुमार हंसकर कहने लगा कि हमने न तो आपको गुरु माना है और न तिरस्कार ही किया है किंतु जो आप्त आगमको छोडकर वनमें निवास करते हैं मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे पृथ्वी आदि छहो कायोंके जीवोंका घात करते हैं और इस तरह अनाप्तके कहे हुए मतका आश्रय लेकर निर्वाण प्राप्त होनेकी प्रार्थना करते हैं वे चांवल मिलने की इच्छासे भूसीके कूटनेका खेद उठाते हैं

नेक्षण त्। स्वर्गलोकैव प्रमान्य स्वर्गादथावतीर्णवान् ॥ ८४ ॥ अवतारा द्विमानस्य भवनातपनाशिनः । त्रिवोधदीधिती रत्नराशिनालिंगतो गुणैः ॥ ८५ ॥ विधूधूमकेतूलक्षणाद्दहकोंहसा । वक्त्राभोजे गजेन्द्रस्य प्रवेशात्ते कृशोदरि ॥ ८६ ॥ अवस्थिति स सप्राप्ददुदरेऽमरपूजितः । इति श्रुत्वानुपद्व र्णीं पत्युरेणी-विलोचना ॥ ८७ ॥ तदाखिलामराधीशाः समागत्य व्यधुर्मुदा । स्वर्गावतरणे पित्रोः कल्याण मिषवोत्सव ॥ ८८ ॥ स्वर्गलोक च तद्गेहमतिशेतेस्म संपदा । किं करोति न कल्याण कृतपुण्यसमागमम ॥ ८९ ॥ नवमे मासि सपूर्णे पौषे मास्यसिते सुत । पक्षे योगेनिले प्रादुरासीदेकादशीतिथौ ॥ ९० ॥ तदा निजासनाकंपाद् ज्ञात्वा तीर्थकरोदयं । सौधर्मप्रमुखाः सर्वे मदराचलमस्तके ॥ ९१ ॥ जन्माभिषेककल्याणपूजानिर्वृत्यनंतरं । पार्श्वाभिधान कृत्वास्य पितृभ्या त समार्पयन् ॥ ९२ ॥ नेम्यंतरे खपचखराग्न्यष्टमितवत्सरे । प्राते हता कृतातस्य तदभ्यंतरजीवितः ॥ ९३ ॥ पार्श्वनाथ समुत्पन्नः शतसवत्स

मनाया उस समय उनका राजभवन संपदाओंसे स्वर्गलोकको भी उल्लंघन कर रहा था सो ठीक ही है क्योंकि किये हुए पुण्य कर्मोका उदय होनेसे कौनसा कल्याण प्राप्त नहीं होता है ॥ ८९ ॥ नौ महीने वीत जाने पर पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनिलयोगमें वह पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९० ॥ उसी समय अपने आसनोंके कंपायमान होनेसे सौधर्मेंद्र आदि देवोंने तीर्थकरका जन्म जाना और सबने आकर सुमेरु पर्वत पर उनका जन्माभिषेक कर पूजा की तथा पार्श्वनाथ नाम रख कर फिर माता पिताको सोंप दिया ॥ ९१-९२ ॥ श्रीनेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद तिरासी हजार सातसौ पचास वर्ष वीत जाने पर सब कर्मोको नाश करने वाले पार्श्वनाथ हुए थे। उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है। उनकी आयु सौ वर्षकी थी, शरीरकी कांति छोटे चावलोंके पेडोंके समान थी, उनके शरीरमें सब लक्षण सुशोभित थे, शरीरकी ऊंचाई नौ हाथ थी और वे लक्ष्मीवान् उग्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। सोलह वर्ष वीत जाने पर उन्हें नवयौवन अवस्था प्राप्त हुई थी। किसी एक दिन वे अपनी सब सेनाके साथ क्रीडा करनेके लिये नगरके बाहर गये। नगरके बाहर जाकर वे आश्रय वनमें पहुंचे वहां पर महीपाल नगरका राजा था तथा अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुखी होकर तपसी हो गया था और पंचाग्निके मध्यमें बैठा हुआ तपश्चरण कर रहा था उसे देखकर देवोंके द्वारा पूजित हुए कुमार पार्श्वनाथ उसके समीप गये और उसे विना ही नमस्कार किये जाकर खडे रहे। अपना इसतरहका अनादर होते देखकर महीपालको क्रोध आया और वह विचार करने लगा कि मैं गुरु हूं, कुलीन हूं, तपोवृद्ध हूं अर्थात् तपस्वी होनेसे बडा हूं और इसकी माताका पिता हूं तो भी इस मूर्ख कुमारने मुझे नमस्कार नहीं किया है और मदोन्मत्त होकर मेरे सामने खडा है। इसप्रकार क्षुब्ध होकर उस मूर्ख तपस्वीने शांत हुई अग्निमें डालनेकेलिये वहांपर पडी हुई लकडी काटनी चाही और

कर: ॥ ७२ ॥ विश्वान् वैषयिकान् भोगान् शश्वत्संप्राप्य निविशन् । तल्लोको लीलया कालमालामैत्कलयन् कलौ ॥ ७३ ॥ षण्मासैरंतिमैस्तस्मिन्नागमिष्य-त्यमू मही । द्वीपेस्मिन् भारते काशिविषये नगराधिप ॥ ७४ ॥ वाराणस्यामभूद्विश्वसेन: काश्यपगोत्रज । ब्रह्मास्य देवी संप्राप्तवसुधारादिपूजना ॥ ७५ ॥ वैशाखकृष्णपक्षस्य द्वितीयायां निशात्यये । विशखर्चे शुभस्वप्नान्निरीक्ष्य तदनंतरं ॥ ७६ ॥ स्ववक्त्राब्जप्रविष्टोरुगजरूपविलोकनी । प्रभातपटहध्वानसमु-न्मीलितलोचना ॥ ७७ ॥ मंगलाभिषवाविष्टतुष्टि पुण्यप्रसाधना । विभावरीव सज्ज्योत्स्ना राजान समुपेत्य सा ॥ ७८ ॥ कृतोपचारा सविश्य विष्टरार्द्धं महीपते । स्वदृष्टसकलस्वप्नान् यथाक्रममभाषत ॥ ७९ ॥ श्रुत्वा तान् सावधि: सोपि फलान्येवं न्यवेदयत् । गजेंद्रवीक्षणात्पुत्रो वृषभालोकनात्पति ॥८०॥ त्रिविष्टपस्य सिंहेन दृष्टेनानतवीर्यक । मंदराभिषवप्रापी पद्माभिषवदर्शनात् ॥ ८१ ॥ दामद्वयावलोकेन धर्मद्वितयतीर्थकृत् । शशाकमंडलालोकात् त्रैलो-क्यकुमुदप्रिय ॥ ८२ ॥ तेजस्वी भास्वतो मत्स्ययुगलेन सुखाखिलः । निधीनामधिपः कुंभवीक्षणात्सर्वलक्षण ॥ ८३ ॥ सरसः सागरात्सर्वज्ञाता सिंहास-

वजनेवाले नगाडे आदि वाजोंकी आवाज सुनकर वह उठी और मंगलाभिषेक कर तथा वस्त्राभरण पहिन कर राजाके समीप इस प्रकार पहुंची मानो चांदनी रात चंद्रमाके समीप पहुंची हो ॥ ७७–७८ ॥ आदरपूर्वक वह महाराजके आधे सिंहासन पर विराजमान हुई और उसने महाराजसे अपने देखे हुए सव स्वप्न अनुक्रमसे कह सुनाए ॥ ७९ । उन स्वप्नों को सुन कर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले महाराज विश्वसेनभी उनका फल इसप्रकार कहने लगे कि हाथीके देखनेसे पुत्र होगा, बैलके देखनेसे वह तीनोंलोकोंका स्वामी होगा, सिंहके देखनेसे उसके अनंत वीर्य वा पराक्रमी होगा, और लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे सुमेरु पर्वत पर उसका अभिषेक होगा ॥ ८०–८१ ॥ दो मालाओंके देखनेसे दोनों धर्मरूप तीर्थोंकी प्रवृत्ति करने वाला होगा, चंद्रमाके देखनेसे तीनोंलोक रूपी कमोदिनीका प्रिय होगा ॥ ८२ ॥ सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होगा, दो मछलियोंके देखनेसे सव तरहसे सुखी होगा, सरोवरके देखनेसे सव लक्षणोंसे सुशोभित होगा, समुद्र देखनेसे सर्वज्ञ होगा, सिंहासन देखनेसे स्वर्गलोकके इंद्रादि देवोंके द्वारा सवसे अधिक पूज्य होगा, नीचे आते हुए विमान के देखनेसे वह स्वर्गसे आकर अवतीर्ण होगा, धरणेंद्रका भवन देखनेसे तीनों ज्ञानोंकी कांतिको धारण करने वाला होगा, रत्नोंकी राशि देखनेसे वह सर्व गुण संपन्न होगा और निरधूम अग्निके देखनेसे वह सव पापोंका वा कर्मोंका नाश करनेवाला होगा हे कृशोदरि ! तेरे मुख कमलमें हाथीके प्रवेश करनेसे देवोंके द्वारा पूजित हुए उस पुत्रने तेरे उदरमें आकर अवस्थान किया है । इस प्रकार पतिके वचन सुनकर वह मृगनयनी वहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ८३–८७ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर वडी प्रसन्नतासे भगवानके स्वर्गावतरणके समय माता पिताका कल्याणाभिषेक कर उत्सव

यते समुद्ररतस्य समीपे बहुमिः समं । राजसी राजस भाव परित्यज्य सुलेश्यया ॥ ६३ ॥ साराधनाचतुष्क सन् विशुद्ध्यैकादशांगधृत् । प्रत्ययांस्ती- र्थकृन्नाम्नो भावयामास षोडश ॥ ६४ ॥ यथोक्त भावयित्वैताभाम वध्वांतिमं शुभ । चिरं घोरतप कृत्वा प्रांते शातांतरात्मक ॥६५॥ प्रायोगपमन प्राप्य प्रतिमायोगमास्थित । धीर क्षीरवने धर्मध्यानाधीनो निराकुलं ॥ ६६ ॥ कमठ' प्राक्तन पापी प्रच्युतो नरकक्षितेः । कंठीरवत्वमासाद्य तन्मुनेः कठम- ग्रहीत् ॥ ६७ ॥ सोढसिंहोपसर्गोसौ चतुराराधनाधन । व्यसुरानतकल्पेशो विमाने प्राणतेऽभवत् ॥ ६८ ॥ तत्र विंशतिवाराब्धिविहितोपमजीवित- । सार्द्धारत्नित्रयोन्मेयशरीरः शुक्लेश्यया ॥ ६९ ॥ दशमासातनि श्वासी मनसामृतमाहरन् । खचतुष्कद्विवर्षांते मनसा स्त्रीप्रचारवान् ॥ ७० ॥ आपचमक्षि- तिव्याप्तवृतीयावगमेक्षण । स्वावधिक्षेत्रमानाभाविक्रियाबलसंगत ॥ ७१ ॥ सामानिकादिसर्वर्द्धिसुधाशनसमर्चितः । कानकामप्रदानैकदेवीकृतसुखा-

वंध किया और फिर बहुत दिन तक घोर तपश्चरणकर तथा जिनका अंतरात्मा अत्यंत शांत है और जो धर्मध्यानके आ- धीन हो रहा है ऐसा धीर वीर वह मुनिराज प्रायोपगम संन्यास लेकर प्रतिमायोग धारणकर निराकुल रीतिसे क्षीर वनमें विराजमान हुआ ॥ ६५–६६ ॥ पहिले जन्मके पापी कमठका जीव नरकसे निकलकर वहीं सिंह हुआ था इसलिये उसने आकर उस मुनिका कंठ पकड लिया ॥ ६७ ॥ इसतरह सिंहका उपसर्ग सहनकर और चारों आराधनारूपी धनको धारकर उसने प्राण छोडे और आनत स्वर्गके प्राणत विमानमें इंद्र हुआ ॥ ६८ ॥ वहांपर उसकी वीससागरकी आयु थी, साडे तीन हाथका शरीर था शुक्लेश्या थी, वह दश महीने बाद श्वांस लेता था, बीस हजार वर्ष बाद मानसिक अ- मृताहार करता था और उसके मानसिक प्रवीचार था ॥ ६९–७० ॥ उसे पांचवें नरकतक अवधिज्ञान था और उतनी ही दूर तक शरीरकी कांति विक्रिया तथा बल था ॥ ७१ ॥ सब तरहकी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले सामानिक आदि देवोंके द्वारा वह पूजा जाता था और इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली अनेक सुंदर देवियोंके द्वारा वह सब तरहके सुखोंका अनुभव करता था ॥ ७२ ॥ इसप्रकार सब इंद्रियोंके विषयभोगोंको सदा सेवन करता हुआ तथा उनमें लवलीन हुआ वह इंद्र क्षणभरके समान लीला पूर्वक लंबे समयको व्यतीत करने लगा ॥ ७३ ॥ जिस समय उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके सन्मुख हुआ उससमय इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुए राजा विश्वसेनकी रानी ब्रह्मादेवी रत्नों की वर्षा आदिसे पूजित हुई थी। उसने वैशाख कृष्णा द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें रात्रिके अंत समयमें सोलह शुभ स्वप्न देखे और उन स्वप्नोंके देखनेके बाद उसने अपने मुखमें घुसता हुआ एक बडा हाथी देखा । तदनंतर सवेरेके

समुद्रव । तस्मात्तत्साधुविज्ञेयं पुण्यकारणकारणं ॥ ५३ ॥ तत्कथावसरे लोकत्रयचैत्यालयाकृतीः । सम्यग्वर्णयितुं वांच्छन् प्रागादित्यविमानजे ॥ ५४ ॥ जिनेंद्रभवने भूतां विभूतिं सोन्ववर्णयत् । तामसाधारणीं श्रुत्वानंदः श्रद्धां परं वहन् ॥ ५५ ॥ दिनादौ च दिनांते च कराभ्यां कृतकुड्मलः । स्तुवन्नाम्रमुकुटो जिनेशान् मंडले रवेः ॥ ५६ ॥ शिल्पिभिः कारयित्वार्कविमानं मणिकांचनैः । क्रोडीकृतजिनाधीशभवनं विततद्युति ॥ ५७ ॥ शास्त्रोक्तविधिना भक्त्या पूजामाष्टान्हिकीं व्यधात् । चतुर्मुखं रथावर्तं सर्वतोभद्रमूर्जितं ॥ ५८ ॥ कल्पवृक्षं च दीनेभ्यो ददद्दानमवारितं । तद्विलोक्य जनाः सर्वे तत्प्रमाण्यात्स्वयं च तं ॥ ५९ ॥ स्तोतुमारेभिरे भक्त्या मंडलं चंडरोचिषः । तदाप्रभृति लोकेस्मिन् बभूवार्कोपसेवनं ॥ ६० ॥ अथान्यदा किलानंदमहीचित्शिरसि बुद्धवान् । पलितं दलयद्यौवनार्थिनां हृदयं द्विधा ॥ ६१ ॥ तन्निमित्तसमुद्भूतनिर्वेगो ज्येष्ठसूनवे । साभिषेकं निज राज्यं दत्वादत्त स्पृह तप ॥ ६२ ॥

होते हैं और शुभ परिणामोंसे पुण्य कर्मोंका बंध होता है ॥ ५०–५३ ॥ इसी उपदेशके समय उन मुनिराजने तीनों लोकोंके चैत्यालयोंका आकार अच्छी तरह निरूपण करना चाहा और सबसे पहिले सूर्यके विमानमें जिन चैत्यालयकी विभूति वहुत अच्छीतरहसे वर्णन की उस असाधारण विभूतिको सुनकर महाराज आनंदको वडी ही श्रद्धा उत्पन्न हुई ॥ ५४–५५ ॥ वह राजा आनंद सुवह शाम दोनों समय हाथ जोडकर और मुकुटसहित अपना मस्तक नवाकर सूर्यके विमानमें विराजमान जिनेंद्रप्रतिमाओंकी स्तुति करने लगा ॥ ५६ ॥ उसने कारीगरोंके द्वारा सुवर्ण और मणियोंका सूर्यका विमान बनवाया और उसके भीतर फैलती हुई कांतिको धारण करनेवाला जिनभवन बनवाया ॥ ५७ ॥ तदनंतर उसने शास्त्रोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक अष्टान्हिकाओंकी पूजा की और चतुर्मुख पूजा रथावर्तपूजा सबसे वडी सर्वतोभद्र पूजा तथा दीनोंको अनिवार्य दान देते हुए कल्पवृक्ष पूजा की । इसप्रकार उस राजाको सूर्यमंडलकी पूजा करते हुए देखकर अन्य साधारण लोगोंने भी भक्तिपूर्वक सूर्यमंडलकी स्तुति करना प्रारंभ कर दिया और उसी समयसे लेकर इस संसारमें सूर्यकी उपासना करना प्रारंभ हुआ है ॥ ५८–६० ॥ अथानंतर–किसी एक दिन राजा आनंदने यौवन चाहनेवालोंके हृदयके दो टूक करनेवाला सफेदवाल शिरमें देखा । उसे देखते ही राजा आनंदको वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने वडे पुत्रको अभिषेक पूर्वक अपना सब राज्य दे दिया और स्वयं समुद्रदत्त मुनिराजके समीप जाकर अनेक राजाओंके साथ राजसीभाव छोडकर निरीह (इच्छारहित) तपश्चरण धारण किया । तदनंतर शुभ लेश्याओंके द्वारा चारों आराधनाओंका आराधन किया, विशुद्ध होकर ग्यारह अंगोंका ज्ञान संपादन किया और तीर्थंकर प्रकृतिकी कारण ऐसी सोलह भावनाओंका चिंतवन किया ॥ ६१–६४ ॥ शास्त्रानुसार उन सोलह भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नामकर्मका

प्राप्तमहामण्डलीकस्थानो महोदय ॥ ४३ ॥ स्वस्य स्वामिहिताख्यस्य महतो मन्त्रिणोन्यदा । वाचा वसंतमासस्य नंदीश्वरदिनाष्टके ॥ ४४ ॥ पूजां निर्वर्तयन् द्रष्टुकाम तत्र समागत । विपुलादिमति दृष्ट्वा गणेशं प्रश्रयाश्रयः ॥ ४५ ॥ अभिवंद्य समाकर्ण्य सद्धर्मं सर्वशर्मदं । भगवन् किंचिदिच्छामि श्रोतुं मे संशयास्पद ॥ ४६ ॥ अचेतने कथं पूजा निग्रहानुग्रहच्युते । जिनबिंबे कृता भक्तिः सतां पुण्य फलत्यसौ ॥ ४७ ॥ इत्यपृच्छदसौ चाह सत्यमिति वचस्तदा । शृणु राजन् जिनेंद्रस्य चैत्य चैत्यालयादि वा ॥ ४८ ॥ भवत्यचेतनं किंतु भव्यानां पुण्यबंधने । परिणामसमुत्पत्तिहेतुत्वात्कारणं भवेत् ॥ ४९ ॥ रागादिदोषहीनत्वादायुधाभरणादिकात् । विमुख्यस्य प्रसन्नेंदुकांतिहासिमुखश्रियः ॥ ५० ॥ अपर्तिताक्षसूत्रस्य लोकालोकावलोकिनः । कृतार्थत्वात्परित्यक्तजटादे परमात्मनः ॥ ५१ ॥ जिनेंद्रस्यालयांस्तस्य प्रतिमाश्च प्रपश्यतां । भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥ कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वकार्य-

राजा वज्रबाहुकी सती प्रभाकरीके आनंद नामका प्रिय पुत्र उत्पन्न हुआ । बडा होनेपर वह महामंडलेश्वर राजा हुआ था और उसे बडी भारी विभूति प्राप्त हुई थी ॥ ४०–४३ ॥ किसी एक दिन स्वामिहित नामके अपने सबसे बडे मंत्रीके कथनानुसार वसंतऋतुके नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें उस राजा आनंदने पूजा कराई । उसे देखनेकेलिये वहांपर विपुलमति नामके मुनिराज पधारे । उन्हें देखकर राजा आनंदने बडी विनयके साथ उनकी वंदना की तथा सबतरहके कल्याण करनेवाले सद्धर्मका स्वरूप सुना । तदनंतर उसने पूछा कि हे भगवान् मुझे कुछ संशय है वह मैं आपसे पूछना चाहता हूं ॥ ४४–५५ ॥ हे प्रभो ! भगवानकी प्रतिमा अचेतन है उसमें निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति नहीं है फिर उसमें भक्ति करने वा पूजा करनेसे सज्जनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति कैसे होती है ? इसप्रकारके पूछनेपर वे मुनिराज कहने लगे कि हे राजन् ! सुन यद्यपि श्रीजिनराजकी प्रतिमा जिनालयके समान अचेतन है तथापि वह भव्य जीवों पुण्यबंधका कारण ही होती है । क्योंकि वह शुभ परिणामोको उत्पन्न करानेका कारण है ॥ ४७–४९ ॥ इसका भी कारण यह है कि भगवान् जिनेंद्रदेव राग द्वेष आदि दोषोंसे रहित हैं और इसीलिये वे आयुध आभरण आदिसे सर्वथा रहित हैं । इसके सिवाय उनके मुखकी शोभा निर्मल चंद्रमाकी कांतिके समान सदा सुशोभित रहती है वे लोक अलोकके जानकार हैं इंद्रियज्ञानसे रहित हैं अर्थात् उनका ज्ञान अतींद्रिय है कृत्य कृत्य होनेसे जटा आदि सब उपद्रवोंसे रहित है और परमात्मा हैं । इसलिये उन जिनेंद्रदेवके मंदिर और उनकी प्रतिमाके दर्शन करनेसे जैसी शुभ भावोंकी उत्कृष्टता होती है वैसी और किसीसे नहीं हो सकती क्योंकि अंतरंग बहिरंग दोनों कारणोंके मिलनेसे सब कार्य उत्पन्न होते हैं इसलिये यह बात अच्छीतरह समझ लेना चाहिये कि श्रीजिनेंद्र देवके मंदिर अथवा उनकी प्रतिमा पुण्यबंधके कारणके कारण है अर्थात् उनसे शुभ परिणाम

पुराधीशो वज्रवीर्योऽस्य भूपते. । विजयायाश्च तद्देव्या वज्रनाभि सुतोभवत् ॥ ३२ ॥ स चक्रलक्षिता लक्ष्मीमक्षीणा पुण्यरक्षित । भुक्त्वाप्यतृप्तवान् भोक्तुं मोक्षलक्ष्मीं समुद्यत ॥ ३३ ॥ क्षेमकराख्यभट्टारकसुवक्त्राब्जनिर्गत । धर्मामृतरसं पीत्वा त्यक्त्वाशेषरसस्पृहा ॥ ३४ ॥ सुत स्वराज्ये संस्थाप्य राजभिर्बहुभि सम । सयम समगात्सम्यक् सर्वसत्त्वानुकंपक ॥ ३५ ॥ प्राक्तनोजगर' षष्ठनरके तनुमाश्रित । द्वाविंशत्यब्धिसंख्यानजीवितेन.तिदुःखित ॥ ३६ ॥ चिरात्तस्माद्विनिर्गत्य कुरगाख्यो वनेचरः । कपयन् वनसभूतान् सभूत सर्वदेहिन ॥ ३७ ॥ विवर्जितार्तध्यानस्य विधृतातपनस्थिते: । तस्य त्यक्तशरीरस्य शरीरवलशालिन. ॥ ३८ ॥ तपोधनस्य चक्रेसा घोरं कातरदु स्सह । उपसर्गं स्फुरद्वैर स पापी बहुधा व्यधात् ॥ ३९ ॥ धर्म ध्यान प्रविश्यासौ समाराध्य सुरोत्तम । समुत्पन्न सुभद्राख्ये सद्गमध्यममध्यमे ॥ ४० ॥ सप्तविंशतिवाराशिमेय.युर्दिव्यभोगभाक् । ततश्च्युतेस्मिन द्वीपेसा वनुभूरुद्भूविते ॥ ४१ ॥ कोशले विषयेऽयोध्यानगरे काश्यपान्वये । इक्ष्वाकुवशजातस्य वज्रबाहुमहीभृत ॥ ४२ ॥ सुतो देव्या प्रभाकर्यामानद स्योजनि प्रिय । स सं-

पुण्योंका साथ लेकर वह वहांसे च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें पद्मनामके देशमें अश्वपुरनगरका राजा वज्रवीर्य रानी विजयाके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ ॥ ३१–३२ ॥ पुण्यके द्वारा रक्षा किये उस वज्रनाभिने पूर्ण चक्रवर्तीकी लक्ष्मी प्राप्तकी और उनका उपभोग करने पर भी तृप्त न होने पर वह मोक्ष लक्ष्मीके प्राप्त करनेके लिये तैयार हुआ ३३ ॥ वह भट्टारक क्षेमंकर मुनिराजके समीप गया और उनके मुखरूपी कमलसे निकले हुए धर्मामृत रूपी रस को पीकर उसने और सब रसोंकी इच्छा छोडदी ॥ ३४ ॥ उसने अपने राज्यपर अपने पुत्रको विठाकर अनेक राजाओं के साथ समस्त जीवोंपर अच्छी तरह दया करनेवाला संयम धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ इधर पहिले कमठका जीव जो अजगर हुआ था वह मर कर छठे नरकमें जाकर नारकी हुआ, वहाकी बाईस सागरकी आयुतक अनेक तरहके दुःख भोगकर वहांसे निकला और वनमें उत्पन्न होनेवाले सब प्राणियोंको कंपाने वाला कुरंग नामका भील हुआ ॥३६-३७ ॥ किसी एक दिन शारीरिक बलको धारण करनेवाले शरीरसे ममत्व छोडे हुए वज्रनाभि मुनि आर्तध्यानका परित्याग कर आतापन योग धारण कर विराजमान थे कि इतनेमें ही वह भील आ पहुंचा, उस पापीको पहिला वैर स्मरण हो आया और उसने उन मुनिराज पर जिसे कातर लोग सहन नहीं कर सकते ऐसा अनेक तरहका घोर उपसर्ग किया ॥ ३८–३९ ॥ उन मुनिराजका जीव धर्मध्यानमें लीन होकर सम्यग्दर्शन सहित सुभद्र नामके मध्यमग्रैवेयकके विमानमें सत्ताईस सागरकी आयु पाकर उत्तम अहमिंद्र देव हुआ । वहां पर उसने अनेक दिव्य भोगोंका अनुभव किया तथा आयुके अंतमें वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके अयोध्या नगरमें काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशी

णानि शुष्कानि पत्राणि च भयाद्‌घात् ॥ २० ॥ उपलास्फालनाक्षेप द्विपसंघातघट्टितं । पिबत्तोयं निराहार पारणाया महाबलः ॥ २१ ॥ चिरमेवं तप कुर्वन् क्षीणदेहपराक्रमः । कदाचित्पातुमायातो वेगवत्या ह्रदेऽपतत् ॥२२ ॥पङ्के पुनः समुत्थातु विहितेहोप्यशक्नुवन् । कमठेन कुद्देन कुक्कुटाहिलमे- युषा ॥ २३ ॥ पूर्ववैरानुब धेन दृष्टो निर्नष्टजिवित । अभूत्कल्पे सहस्रारे षोडशाब्ध्युपमायुषा ॥ २४ ॥ तत्र भोगान्यथायोग्यं भुक्त्वा प्रान्ते ततश्च्युत । द्वीपेस्मिन् प्र ग्विदेहेस्ति विषय· पुष्कलावती ॥२५॥ तत्खेचराचले राजा त्रिलोकोत्तमनामनि । पुरे विद्युद्गतिर्विद्याधरेशस्तस्य वल्लभा ॥ २६ ॥ विद्युन्माला तयो सूनुरग्निवेगाख्योजनि । संपूर्णयौवनो धीमान् प्रत्यासन्नभवावधि ॥ २७ ॥ समाधिगुप्तमासाद्य मुनिं सप्राप्य सयम । गृहीत्वा सर्वतोभद्रप्रभृत्युपो- पवासक· ॥ २८ ॥ परेद्युर्हरिगिर्वेद्रिगुहाया योगमादधत् । प्राग्धूमप्रभाद्‌ कुक्कुटोरगपापिना ॥ २९ ॥ ततश्च्युतेन भूलाजगरेणालोक्य कोपिना । निगीर्णोच्युतकल्पस्थविमाने पुष्करेभवत् ॥ ३० ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानायुस्तदते पुण्यसारथिः । द्वीपे परविदेहेस्मिन् विषये पद्मसंज्ञके ॥ ३१ ॥ महीशोस्य

त्थरोंकी रगडसे अथवा हाथियोंके समूहके घट्टनसे प्रासुक हुआ जल पीता था । वह उपवास कर पारणा करता था इस तरह उसने बहुत दिन तक तपश्चरण किया । यद्यपि वह महा बलवान था तथापि कठिन तपश्चरण करनेसे उसका शरीर और पराक्रम सब क्षीण हो गया था । किसी एक दिन वह पानी पीनेके लिये वेगवती नदीमें आया और उसके पासके गढेमें कीचडमें फस गया । यद्यपि उसने उठनेकी इच्छा की तथापि वह अशक्त होनेसे उठ न सका । इधर दुराचारी कमठ मर कर कुक्कुट सर्प हुआ था इसलिये उसने पहिलेके वैरके संस्कारोंसे उस हाथीको वहीं पर काट खाया जिससे वह मर गया और सहस्रार स्वर्गमें सोलह सागरकी आयु पाकर देव हुआ ॥ २०–२४ ॥ यथायोग्य रीतिसे वहांके भोगों का अनुभव कर वह आयुके अंतमें च्युत हुआ तथा इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयार्द्ध पर्वत पर त्रिलोकोत्तम नामके नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा विद्युद्गति रानी विद्युन्मालाके अग्निवेग नामका पुत्र हुआ । जिसका संसारमें परिभ्रमण करनेका समय बहुत थोडा है ऐसे उस बुद्धिमान अग्निवेगने अपनी पूर्णयौवन अवस्था प्राप्त होने पर समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर संयम धारण कर लिया और सर्वतोभद्र आदि अनेक उपवास धारण कर किये ॥ २५–२८ ॥ किसी एक दिन वह हरिनामके पर्वतकी गुफामें योग धारण कर विराजमान हुआ । इतनेमें ही जिस कुक्कुट सर्पने वज्रघोष हाथीको काटा था वही पापी धूमप्रभा नरकके दुःख भोगकर निकला और इसी वनमें अजगर हुआ था । उन मुनिराजको देखते ही अजगर क्रोधित हुआ और उन्हें निगल गया, जिससे उनका जीव शरीर छोडकर सो- लहवें अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव हुआ ॥ २९–३० ॥ बाईस सागरकी उसे आयु मिली, आयु पूरी होने पर

अभूतामेतयो पुत्रौ विषामृतकृतोपमौ । कमठो मरुभूतिश्च पापधर्मीविबापरौ ॥ ९ ॥ वरुणा ज्यायसो भार्या द्वितीयस्य वसुंधरी । मंत्रिणौ तौ महीपस्य क-
नीयान् नीतिवित्तयोः ॥ १० ॥ वसुंधरीनिमित्तेन सदाचारं सतां मत । मरुभूतिं दुराचारो जघान कमठोधमः ॥ ११ ॥ मलये कुब्जकाख्याने विपुले
सल्लकीवने । मरुभूतिरभून्मृत्वा वज्रघोषो द्विपाधिप ॥ १२ ॥ वरुणा च मृता तस्य करेणुरभवत्प्रिया । तयोस्तस्मिन्वने प्रीत्या काले गच्छत्यनुच्छके ॥१३॥
अरविंदमहाराजस्त्यक्त्वा राज्य विरज्य सः । संप्राप्य सयमं सार्थेनामा सम्मेदमीक्षितुं ॥ १४ ॥ व्रजन् वने स्ववेलायां प्रतिमायोगमागमत् । नोल्लघते निरो-
ग स्वं मनागपि मनस्विन ॥ १५ ॥ विलोक्य त महानाग. त्रिप्रस्रुतमहोद्धत । हतुमभ्युद्यतस्तस्य प्रतिमायोगधारिण: ॥ १६ ॥ वीक्ष्य वक्षःस्थले साक्षा-
न्मंक्षु श्रीवत्सलाञ्छन । स्वपूर्वभवसबंध प्रत्यक्षीकृत्यचेत सा ॥१७॥ तस्मिन्प्राक्तनसौहर्दात्प्रतोषी जोषमास्त सः । तिर्यंचोपि सुहृद्भाव पालयन्त्येव बन्धुषु ॥
१८ ॥ धर्मतत्त्व मुने सम्यग्ज्ञात्वा तस्मात्सहेतुक । सप्रोषधोपवासादिश्रावकव्रतमग्रहीत् ॥ १९ ॥ तदा प्रभृति नागेंद्रो भग्ना शाखा परैर्द्विपै । स्वादस्तु

वसुंधरी था। ये दोनों ही भाई राजाके मंत्री थे परंतु उन दोनोंमें छोटा मरुभूति नीतिका अच्छा जानकार था ॥ १० ॥ नीच और दुराचारी कमठने वसुंधरीके निमित्तसे सज्जनोंका माना हुआ सदाचार नष्ट किया और मरुभूतिको भी मारा ॥ ११ मरुभूति मरकर मलय पर्वतपर कुब्जक नामके सालकीके वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ ॥ १२ ॥ वरुणा मरकर उसी वनमें हथिनी हुई और वह वज्रघोषके साथ क्रीडा करने लगी। इसप्रकार उन दोनोंका समय बडे प्रेमसे व्यतीत हो रहा था ॥ १३ ॥ किसी एक समय राजा अरविंदने विरक्त होकर राज्य छोड दिया और संयम धारणकर सब संघके साथ सम्मेद शिखरकी यात्रा करनेको निकले। चलते चलते वे उसी सल्लकी बनमें पहुंचे और वहां उन्होंने अपने सामायिकके समयपर प्रतिमायोग धारण किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य अपने कर्तव्योंके एक अंशको भी उल्लंघन नहीं करते हैं ॥ १४–१५ ॥ उन्हें देखकर जिसके दोनों कपोल और ललाट ऐसे तीनों जगहसे मद वह रहा है ऐसा वह महा उद्धत हुआ हाथी प्रतिमा योग धारण करवाले उन मुनिराजको मारनेकेलिये तैयार हुआ, परंतु उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिन्ह देखकर उसके चित्तमें शीघ्र ही पहिले भवका संबंध साक्षात् दिखाई पडनेके समान स्मरण हो आया ॥ १६–१७ ॥ पहिली मित्रता होनेके कारण वह हाथी उन्हें देखते ही शांत हो गया सो ठीक ही है क्योंकि तिर्यंच भी अपने भाई बंधुओंमें मित्रताका पालन करते ही हैं ॥ १८ ॥ उस हाथीने उन मुनिराजसे हेतुपूर्वक धर्मका स्वरूप अच्छीतरह समझा और उसने प्रोषधोपवास पूर्वक श्रावकके व्रत धारण किये ॥ १९ ॥ उससमयसे लेकर वह दूसरे हाथियोंके द्वारा तोडी हुई वृक्षोंकी डालियोंको खाता था अथवा पापके डरसे सूखे वृक्ष वा पत्ते खाता था, इसीप्रकार वह प-

अथ त्रिसप्ततितमं पर्व ।

स पातु पार्श्वनाथोस्मान् यन्महिम्नैव भूधर । न्यषेधि केवलं भक्तिभोगिनी छत्रधारण ॥ १ ॥ धर्मश्वेतातपत्रं ते सूते विश्वविसर्पिणी । छायां पापातपक्लिष्टास्तथापि किल केचन ॥ २ ॥ सर्वभाषा भवद्भाषां सत्यां सर्वोपकारिणी । सत श्रृण्वति संतुष्टाः सन्तास्ता चन जातुचित् ॥३॥ अनभिव्यक्तमहात्म्या देवतीर्थंकरा परे । त्वमेव व्यक्तमाहात्म्यो वाच्यते साधुतत्कथा ॥ ४ ॥ कुमार्गवारिणी यस्माद्यस्मात्सन्मार्गमारिणी । तत्त धर्मा कथा वक्ष्ये भव्यानां मोक्षगामिना ॥ ५ ॥ जम्बूद्विभूषणे द्वीपे भरत दक्षिणे महान् । सुरम्यो विषयस्तत्र विस्तीर्ण पोदन पुरं ॥ ६ ॥ रक्षितास्यारविंदाख्यो विख्यातो विक्रमादिभिः । पिप्रियुस्त समाश्रित्य प्रजापतिमिव प्रजा ॥ ७ ॥ तत्रैव विश्वभूताख्यो ब्राह्मणो श्रुतिशास्त्रवित् । ब्राह्मण्यनुधरी तस्य प्रीत्यै श्रुतिरिवापरा ॥ ८ ॥

अथ तिहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर---जिनकी केवल महिमासे ही धरणेंद्र और इंद्रानीने भक्तिपूर्वक छत्र धारणकर जिनका उपसर्ग दूर किया ऐसे श्री पार्श्वनाथ स्वामी हमलोगोंकी भी रक्षा करें ॥ १ ॥

हे भगवान यद्यपि आपका धर्मरूपी श्वेत छत्र समस्त संसारमें फैलनेवाली छायाको प्रगट कर देता है तथापि कितने ही जीव पापरूपी धूपसे दुःखी रहते हैं ॥ २ ॥ हे प्रभो ! आपकी भाषा सर्व भाषारूप है अर्थात् उसे सब अपनी अपनी भाषामें समझ सकते हैं, वह सत्यरूप है और सबका उपकार करनेवाली है उसे संतुष्ट हुए सज्जन लोग ही सुनते हैं दुष्ट लोग उसे कभी नहीं सुनते ॥ ३ ॥ हे देव ! अन्य तीर्थकरोंकी महिमा इतनी प्रगट नहीं है परंतु आपकी महिमा सबसे अधिक प्रगट है इसलिये सुंदर कथा लिखी जाती है ॥ ४ ॥ जिससे कुमार्गका नाश होता है और सन्मार्गकी प्रवृत्ति होती है ऐसी आपकी धर्मरूप कथा मोक्ष जानेवाले भव्योंकेलिये कही जाती है ॥ ५ ॥ इसी जंबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें एक सुरम्य देश है और उसमें बहुत बडा पोदनपुर नगर है ॥ ६ ॥ उस नगरमें पराक्रम आदिसे प्रसिद्ध अरविंद नामका राजा राज्य करता था जिसप्रकार चंद्रमासे सब प्रसन्न रहते हैं उसीप्रकार सब प्रजा प्रसन्न रहती थी ॥ ७ ॥ उसी नगरमें वेदशास्त्रको जाननेवाला विश्वभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसको प्रसन्न करनेवाली दूसरी श्रुतिके समान अनुंधरी नामकी ब्राह्मणी थी ॥ ८ ॥ उन दोनोंके कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे जो कि विष और अमृतके बनाये हुएके समान थे अथवा दूसरे पाप और धर्मके समान थे ॥ ९ ॥ कमठकी स्त्रीका नाम वरुणा था और मरुभूतिकी स्त्रीका नाम

, वाञ्च न स्यात् अमिति हि विधिचक्रं चक्रनेमिक्रमेण ॥ २८५ ॥ बध्वायुगप दशमित्थमथात्मनामा चासादधोगमदसौ धृतराज्यभार । तद्भीमनाः कुरुत यत्नमखण्डमायुर्बंध प्रति प्रतिपदं सुखलिप्सवश्चेत् ॥ २८६ ॥ अस्यैव तीर्थसताने ब्रह्मणो धरणीपितु । चूलादेव्याश्च संजज्ञे ब्रह्मदत्तो नि-भीक्षिना ॥ २८७ ॥ द्वादशो नामत सप्तचाप सप्तशताब्दकं । परिच्छिन्नप्रमाणायुस्त्वदताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥

इत्यार्षे त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते अरिष्टनेमितीर्थंकरपद्मनामबलदेवकृष्णनामार्द्धचक्रिजरासंघप्रतिवासुदेव सकलचक्रवर्तिपुराणं परिसमाप्त द्वासप्ततितम पर्व ॥ ७२ ॥

कर बडे प्रतापशाली हाथीके समान ही
क्यों न गिना जाय ॥ २८३ ॥ शूरवीरताके महासागर कृष्णाने सिंहके समान हो कर बडे प्रतापशाली हाथीके समान ही सब शत्रुओंको जीतकर गर्जना की वे सब संसारके विजेता कहलाए और हाथमें एकही दंड लेकर इन अखंड तीनों खंडोंको जीता तथा वे बालक अवस्थामें गायोंका पालन करनेसे आज तक भी वे गोप कहलाते हैं ॥ २८४ ॥ देखो कहां तक बडे २ सब शत्रुओंको नाश करनेसे कृष्णाको ऐसी अद्भुत राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई थी और कहां सब गहन वनमें जाकर उनका समूल नाश हुआ। सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे किसको क्या नहीं होता है अर्थात् कर्मके उदयसे सब को सबकुछ होता है। यह कर्मोंका चक्र पहियेकी धुरीके समान अनुक्रमसे सदा घूमा ही करता है ॥ २८५ ॥ देखो कृष्णाने पहिले नरकआयुका बंध किया था और फिर तीर्थकर नामकर्मकी प्रकृतिका बंध किया पहिले नरक आयुका बंध करलेनेसे ही उन्हें सब राज्य सुखका अनुभव कर भी नरक जाना पडा इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि सुखकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान लोगोंको प्रत्येक पद पर अर्थात् पेंड पेंड पर (समय समय पर) आयुबंध बांधनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८६ ॥ इन्ही नेमिनाथ तीर्थकरके समयमें ब्रह्मदत्त बारहवां चक्रवर्ती हुआ है वह ब्रह्मा नामके राजाका पुत्र था और उसकी माताका नाम चूलादेवी था। उसका शरीर सात धनुष ऊंचा था और सातसैवर्षकी उसकी आयु थी। वह चक्रवर्तियोंमें सबसे पिछला था (और मरकर सातवें नरक गया) था॥२८७-२८८॥

इस प्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अरिष्टनेमितीर्थंकर, पद्मनाम बलदेव कृष्णनाम अर्धचक्री, जरासंघ प्रतिवासुदेव, और ब्रह्मदत्त सकल चक्रवर्तीके पुराणको कहनेवाला यह बहत्तरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

केन न धर्मचक्रममितो नेमीश्वरो नेमितां ॥ २७८ ॥ सुभानुरभवत्तत प्रथमकल्पओस्माच्च्युतः खगाधिपतिरन्वतोजनि चतुर्थकल्पेमरः । वणीङ्जनि शङ्खवागनु सुरो महाशुक्रजस्ततोपि नवमो बलोनुदिविजस्ततस्तीर्थकृत् ॥ २७९ ॥ प्रागासीदमृतरसायनस्तृतीये श्वभ्रेभूदनुभवबारिधौ भ्रमिला । भूयोभूयुः दृपतिरत्र यक्षनामा निर्नामा नृपतिसुतस्ततोमृताशी. ॥ २८० ॥ तस्मादभून्मुररिपु कृतदुर्निदानाञ्चक्रेश्वरो हतविरुद्धजरादिसंघ । धर्मोद्भवादनुभवन् बहुदुः-समस्मान्निर्गत्य तीर्थकृदनघविघातकृत्तः ॥२८१॥ द्रोहान्मुने पलपच स कुधीरभोगात्सद्वीजएवतपसाप्य च चक्रलक्ष्मीं । ध्वंस समाप तदपास्तपरिग्रहाणां माकृध्वमल्पमपि पापधियापकारं ॥ २८२ ॥ चाणूरमेणमिव यो हतवान् हरिर्वा कंस च कंसमिव वाशनिरन्वभैत्सीत् । मृत्युर्यथाहतशिशुं शिशुपालमाजौ तेजस्विना कथमिहास्तु न सोग्रगण्यः॥२८३॥जरासंध हत्वोर्जितमिव गज शौर्यजलधिर्गजारिर्वा गर्जन् प्रतिरिपुजयाद्विश्वविजयी । त्रिखण्डां निखण्डां करविधृत-दण्डोऽप्रतिहतां यथापाद्गाल्ये गा किल खलु स गोपोन्वपि ततः। २८४। क सकलपृथुघशुध्वंसनात्साद्भुतश्रीः क च सभुवनवाञ्छोही हरेर्मूलनाशः । सकृतवि-

समान मानकर संयम धारण किया ऐसे श्रीनेमिनाथको धर्मचक्रकी धुरी बनानेके लिये भला कौन धारण नहीं करता अर्थात् सब ही धारण करते हैं ॥ २७८ ॥ बलदेवका जीव पहिले सुभानु हुआ था फिर पहिले स्वर्गमें देव हुआ, वहां से आकर विद्याधर हुआ, फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर शंख नामका वैश्य हुआ तदनंतर महाशुक्र विमानमें देव हुआ और वहांसे आकर नौवां बलदेव हुआ। तथा अभी स्वर्गमें देवोंके सुख भोग रहा है और वहांसे आकर तीर्थ-कर होगा ॥ २७९ ॥ कृष्णका जीव पहिले अमृतरसायन हुआ, फिर तीसरे नरकमें गया, फिर उसके बाद बहुत दिन तक संसार रूपी सागरमें परिभ्रमण कर यक्ष नामका गृहस्थ हुआ, फिर निर्नामा नामका राजपुत्र हुआ, वहांसे स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे आकर अपने शत्रु जरासंध आदिको मारने वाला चक्रवर्ती कृष्ण हुआ । बुरा निदान करनेके कारण चक्रवर्तीकी पर्याय छोडकर और नरकमें पड कर अनेक दुखोंका अनुभव कर रहा है और आयु पूर्ण होने पर वहां से निकल कर सब तरहके अनर्थोंको नाश करनेवाला तीर्थंकर होगा ॥ २८०—२८१ ॥ कृष्णके जीवने चांडाल अवस्था में मुनिसे द्रोह किया था उसी पापसे वह बुद्धिहीन नरक गया तथा उसी कारणसे तपश्चरणसे प्राप्त हुई चक्रवर्तीकी राज्य-लक्ष्मी भी नष्ट हुई है। इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि परिग्रहोंका त्याग करने वाले मुनिराजोंका पाप रूप बुद्धिसे थोडा सा भी अपकार मत करो ॥ २८२ ॥ जिस प्रकार सिंह हिरणको मार डालता है उसी प्रकार जिसने चाणूरमल्लको मारा, वज्र जिस प्रकार कांसको फोड डालता है उसी प्रकार जिसने कंसका चूर्ण कर डाला और मृत्यु जिस प्रकार बच्चेको उठा ले जाती है उसी प्रकार युद्धमें जिसने शिशुपालको जीता। ऐसा कृष्ण भला प्रताप शालियोंमें सबसे मुख्य

सिद्धिमाप्नुवन् ॥ २७० ॥ नकुलः सहदेवश्च पंचमानुत्तरं ययु । भट्टारकोपि संप्रापदूर्जयंतं धराधरं ॥ २७१ ॥ नवरंध्रर्तुवर्षेषु चतुर्दिवससंयुते । युतेषु नवमिर्मासैर्विहारविनिविच्युतौ ॥ २७२ ॥ पश्चात्पंचशते सार्द्धं संयतैस्त्रिंशता त्रिभिः । मास योगं निरुध्यासौ हताघातिचतुष्ककः ॥ २७३ ॥ आसाढमासे ज्योत्स्नायाः पक्षे चित्रासमागमे । शीतांशोः सप्तमीपूर्वरात्रे निर्वाणमासवान् ॥ २७४ ॥ तदा सुराधिपाः प्राप्य कल्याणं पंचमं परं । विधाय विधिवद्भक्त्या स्व स्वमोकः पुनर्ययु ॥ २७५ ॥ शक्राद्या व्योम्नि दूरादमरपरिवृढा वाहनेभ्योऽवतीर्णास्तूर्णं मूर्ध्नावनम्राः स्तुतिमुखरमुखा कुड्मलीभूतहस्ता । ध्वस्तातर्ध्वांतधाम्नः प्रणिहितमनसो यस्य पादौ प्रणेमुः क्षेमं श्रीमान्स नेमिर्झटिति घटयतु प्रांत्यवोधप्रसिद्ध्यै । २७६ ॥ प्राक्चिंतागतिराविभावनुतत कल्पे चतुर्थे मरो जज्ञेस्मादपराजित क्षितिपतिर्जातोऽच्युतेंद्रस्ततः । तस्मात्सोजनि सुप्रतिष्ठनृपतिर्देवो जयंतेऽभवदासीदत्र महोदयो हरिकुलव्योमामलेंदुर्जिनः ॥ २७७ ॥ सा लक्ष्मी सकलामरार्चितपदांभोजो यथार्यं विभुस्तत्कौमारममेयरूपविभवं कन्या च सातिस्तुतिः । श्रीमान् सर्वमिदं जरत्तृणसम मत्वाग्रहीत्संयम धत्तां

हुए ॥ २६८–२७१ ॥ उन्होंने छहसौ निन्यानवे वर्ष नौ महीना और चार दिन विहार किया । फिर विहार छोड कर पांचसौ तेतीस मुनिराजोंके साथ साथ एक महीने तक योगोंका निरोध कर आषाढ शुक्ला सप्तमीके दिन चित्रा नक्षत्रमें रात्रिके प्रारंभमें ही चारों अघातिया कर्मोंका नाश कर वे मुक्त हुए ॥ २७२–२७४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बडी भक्तिसे विधिपूर्वक उनका पांचवां निर्वाणकल्याणकका उत्सव मनाया और फिर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७५ ॥ जो अनेक देवोंसे घिरे हुए हैं, आकाशमें दूरसे ही अपनी अपनी सवारियोंसे उतर पडे हैं, जिन्होंने बडी शीघ्रतासे अपने मस्तक नवा लिये हैं जिनके मुख स्तुतियोंके उच्चारण करनेसे मुखर हो रहे हैं दोनों हाथ संकुचित कमलके समान जुडे हुए हैं जिनके हृदयका अंधकार नष्ट हो गया है और जो मनमें वार वार नमस्कार कर रहे हैं ऐसे इंद्रादि देव भी जिनके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे वे श्रीनेमिनाथ भगवान अंतिम केवल ज्ञानको प्रगट करने के लिये शीघ्रही कल्याण करो ॥ २७६ ॥ श्रीनेमिनाथका जीव चिंतागति विद्याधर हुआ उसके वाद चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर अपराजित राजा हुआ, फिर सोलवें स्वर्गमें इंद्र हुआ, वहांसे चयकर सुप्रतिष्ठ राजा हुआ फिर जयंत विमानमें अहमिंद्र हुआ और फिर अंतमें इसी जंवू द्वीपमें बडी विभूतिको धारण करनेवाले और हरिवंश रूपी आकाशमें निर्मल चंद्रमाके समान श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर हुआ ॥ २७७ ॥ श्रीनेमिनाथकी राज्यलक्ष्मी भी सबमें प्रसिद्ध थी उनके चरण कमलोंकी सेवा इंद्रादि सब देव आकर करते थे, उनकी कुमार अवस्था अत्यंत रूप रूपी ऐश्वर्यसे भरपूर थी और उनके लिये मांगी हुई राजमति कन्या अत्यंत प्रशंसनीय थी तथापि उन बुद्धिमानने इन सबको पुराने तिनकेके

प्रातकल्पनिवासिनः ॥ २५९ ॥ उत्कृष्टजीवितं तत्र गमयित्वा त्रयोपि ते । सोदर्याः प्रच्युता यूयं जाता रत्नत्रयोपमाः ॥ २६० ॥ धर्मजो भीमसेनश्च पार्थश्च ख्यातपूरुषः । धनमित्रश्रियौ चास्मिन्नभूतां सुतविक्रमौ ॥ २६१ ॥ नकुलः सहदेवश्च चंद्रादित्यसमप्रभौ । सुकुमारी च कपिल्यापुरे द्रुपदभूपतेः ॥ २६२ ॥ सुता दृढरथायाश्च द्रौपद्याख्याजनिष्ट सा । इति नेमीश्वरप्रोक्तमाकर्ण्य बहुभिः समं ॥ २६३ ॥ पांडवाः संयमं प्रापन्सतामेषा हि बंधुता । कुंतीसुभद्राद्रौपद्यः दीक्षां तां परां ययुः ॥ २६४ ॥ निकटे राजिमत्याख्यगणिन्या गुणभूषणाः । तास्तिस्रः षोडशे कल्पे भूत्वा तस्मात्परिच्युताः ॥ २६५ ॥ विश्वकर्ममलैर्मुक्ता मुक्तिमेष्यत्यसंशयं । पंचापि पांडवा नेमिस्वामिना सार्द्धमर्द्धयः ॥ २६६ ॥ विहृत्य भाक्तिकाः कांश्चित्समाः संप्राप्य भूधरं । शत्रुंजयं समादाय योगमातपमाश्रिताः ॥ २६७ ॥ तत्र कौरवनाथस्य भागिनेयो निरीक्ष्य तान् । क्रूरः कुर्ववरः स्मृत्वा स्वमातुलवधं क्रुधा ॥ २६८ ॥ आयसान्यग्नितप्तानि मुकुटादीनि पापभाक् । तेषां विभूषणानीति शरीरेषु निधाय सः ॥ २६९ ॥ उपसर्गं व्यधात्तेषु कौंतेयाः श्रेणिमाश्रिताः । शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मेधाः

की उत्कृष्ट बाईस सागरकी आयुका उपभोग कर उन तीनों भाइयोंके जीव वहांसे च्युत होकर रत्नत्रयके समान अत्यंत प्रसिद्ध धर्मराज (युधिष्ठिर) भीम और अर्जुन ऐसे तुम तीनों भाई हुए हो। तथा धनश्री और मित्रश्रीका जीव सूर्य चंद्रमाके समान प्रभावशाली और पराक्रमी नकुल और सहदेव ये दो भाई हुए हैं और सुकुमारीका जीव कंपिला नगरके राजा द्रुपदकी रानी दृढरथासे यह द्रौपदी हुई है। इस प्रकार श्रीनेमिनाथके कहे हुए वचनोंको सुन कर पांडवोंने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण करली सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंका भाई बंधुपना भी ऐसा ही होता है। गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाली कुंती सुभद्रा और द्रौपदीने भी राजिमती गणिनीके समीप जाकर उत्तम दीक्षा धारण कर ली। कुंती सुभद्रा और द्रौपदीके जीव सोलहवें स्वर्गमें देव हुए और वहांसे च्युत होकर मनुष्य जन्म पाकर निःसंदेह समस्त कर्मरूपी मलसे रहित होकर मोक्षमें जा विराजमान होंगे। अत्यंत भक्तिको धारण करनेवाले पाचो पांडवोंको अनेक ऋद्धियां प्राप्त हुई थीं उन्होंने कितने ही वर्ष तक श्रीनेमिनाथ स्वामीके साथ विहार किया था और अंतमें शत्रुंजय पर्वतपर आकर आतप योग धारणकर विराजमान हुए थे ॥ २५६–२६७ ॥ दैवयोगसे वहां पर दुर्योधनका भानजा आ निकला उन्हें देखते ही उनके द्वारा मामाके मारनेका स्मरण कर उस क्रूर पापी दुष्टने क्रोधमें आकर उनके शरीरमें अग्निमें तपाये हुए मुकुट आदि सब आभूषण पहिनाए और इस तरह उनको घोर उपसर्ग किया। उन पाचो भाइयोंमें युधिष्ठिर भीम अर्जुनने क्षपकश्रेणी चढकर शुक्लध्यान रूपी अग्निसे सब कर्मोंके समूहोंको नष्ट कर सिद्ध अवस्था प्राप्तकी और नकुल सहदेव अनुत्तरके पांचवें सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए इधर भट्टारक श्रीनेमिनाथ स्वामीभी गिरनार पर्वत पर जा विराजमान

विरक्तत्वान्निंदती स्वां विपुण्यता ॥ २४८ ॥ गृहीतानशनान्येद्युरार्येकामि सहागतां । स्वगेहे सुव्रतां क्षांतिममित्रय वदार्यिके ॥ २४९ ॥ इमे द्वे दीक्षिते केन हेतुनेत्यन्वयुक्त तां । अथ साब्रवीदेव क्षांति कल्याणनामिके ॥ २५० ॥ श्रृ.वेते जन्मनि प्राग्वि सौधर्माधिपतेः प्रिये । विमला सुप्रभा चेति देव्यौ सौधर्मसयुत. ॥ २५१ ॥ गत्वा नदीश्वरद्वीपे जिनगेहार्चन विधेः । तत्र संविग्न चेतस्त्वात्संप्र प्यास्मान्मनुष्यतां ॥ २५२ ॥ आवां तप करिष्याव इत्य-न्योन्यव्यवस्थिते । अकुर्वतां ततश्च्युत्वा साकेतनगरेशिनः ॥ २५३ ॥ श्रीषेणाख्यमहाशस्य श्रीकातायाश्च ते सुते । हरिश्रीपूर्वसेनाख्यसभूय प्राप्त-यौवने ॥ २५४ ॥ स्वयंवरविवाहोरुनृपाम्यंतरस्थिते । निजपूर्वभव स्मृत्वा सस्यां च प्राक्तनीं कृतां ॥ २५५ ॥ विसर्ज्य बधुवर्गेण सम नृपकुमारकान् । इति दीक्षामिति क्षांतिवचनाकर्णनेन सा ॥ २५६ ॥ सुकुमारी च निर्विण्णा सम्मता निजवाधवैः । तत्समीपेगमद्दीक्षामन्येद्युर्वनमागतां ॥ २५७ ॥ वे श्यां वसंतसेनाख्यामावृत्य बहुभिर्विटैः । संप्रार्थ्यमानामालोक्य ममाप्येव भवेदिति ॥ २५८ ॥ निदानमकरोज्जीविताते प्राक्तनजन्मनः । सोमभूतेरभूद्देवी

२४८ ॥ किसी दूसरे दिन अनेक अर्जिकाओंके साथ सुव्रता और क्षांति नामकी दो अर्जिकाएं आहार लेनेके लिये सुकुमारी के घर आईं। सुकुमारीने वंदना कर उन्हें आहार दिया और फिर पूछा कि हे स्वामिनी कृपा कर कहिये कि इन दो अर्जिकाओंने किस कारणसे दीक्षा ली है। तब क्षांति कहने लगी कि हे कल्याणी सुन। ये पहिले जन्ममें सौधर्म स्वर्गके इंद्रकी विमला और सुप्रभा नामकी देवियां थीं। किसी एक दिन ये दोनों ही सौधर्म इंद्रके साथ नंदीश्वर द्वीपमें भगवान अरहंतदेवके जिनालयोंकी पूजा करने गई थीं। पूजा करनेके वाद इनका चित्त कुछ उदास (विरक्त) हुआ था और इन दोनोंने परस्पर निश्चय किया था कि यदि इस देवपर्यायसे मनुष्य पर्याय मिलेगी तो हम दोनों ही तपश्चरण करेंगी। आयुके अंतमें वहांसे च्युत हो कर दोनों ही साकेत नगरके राजा श्रीषेणकी रानी श्रीकांताके ये हरिश्री और पूर्वसेना नामकी दोनों पुत्रियें हुई हैं। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर ये दोनों ही विवाहके लिये स्वयंवर मंडपमें खडी थीं कि इतनेमें ही इन दोनोंको अपनी पहिली प्रतिज्ञा और अपने पहिले भवोंका स्मरण हो आया ॥ २४९–२५५ ॥ उसी समय इन्होंने सब भाई बंधुओंका तथा सब राजपुत्रोंका त्याग कर दिया और दीक्षा धारण कर ली। इस प्रकार क्षांतिके वचन सुनकर सुकुमारी विरक्त हुई और सब कुटुंबियोंकी सम्मति लेकर उसी अर्जिकाके समीप जाकर उसने दीक्षा लेली। किसी दूसरे दिन वनमें वसंतसेना नामकी वेश्या आई थी और बहुतसे व्यभिचारी आकर उससे प्रार्थना कर रहे थे यह देखकर उसने निदान किया कि मुझे भी ऐसा ही रूप मिले। आयुके अंतमें उसने प्राण छोडे और पहिले जन्ममें जो सोमभूति ब्राह्मण हुआ था और तपश्चरण कर आरण अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था उसीकी देवी हुई। वहां

मारणाच्युतकल्पयो । सामानिकामरौ द्वाविंशतिसागरजीविन ॥ २३७ ॥ अन्वभूतांश्चिरं भोगास्तत्र मप्रविचारका । नागश्रीरपि पापेन पचमा पृथिवी मगात् ॥ २३८ ॥ दुःख तत्रानुभूयाते स्वायुषोन्ते ततश्च्युता । अभूत्स्वयप्रभद्वीपे सर्पो दृष्टिविषो मृत ॥ २३९ ॥ द्वितीयनरक गत्वा त्रिसमुद्रोपमायुषा । भुक्त्वा दुःख विनिर्गत्य त्रसस्थावरयोनिषु ॥ २४० ॥ द्विसागरोपम काल परिभ्रम्य भवार्णवे । चपापुरे ममुत्सा मातगी मदपापतः ॥ २४१ ॥ समाधिगुप्तनामान मुनिमासाद्य सान्यदा । वदित्वा धर्ममाकर्ण्य मधुमांसनिवृत्तित. ॥ २४२ ॥ तस्मिन्नेव पुरे मृत्वा सुतेभ्यस्यामवत्सनी । सुबन्धोधनदेव्याश्च सुदुर्गंधशरीरिका ॥ २४३ ॥ सुकुमारीति सज्ञाऽस्या विहितार्थानुयायिनी । पुरेस्मिन्नेव वैश्यस्य धनदेवस्य पुत्रतां ॥ २४४ ॥ प्राप्तावशोकदत्ताया देवदत्ता जिनादिकौ । मंप्रधार्थे स्वबधूर्नामादानं स्वस्य वेदिता ॥ २४५ ॥ सुकुमार्या सुदौर्गंध्य जिनदेवो जुगुप्सयन् । सुव्रताह्यमुनेरंतेवासित्व समवाप सः ॥ २४६ ॥ कनीयान् जिनदत्तोथ प्रेरितो बंधुभिर्मुहु । आसवधुसुता नावमानयोग्येति तद्वयात् ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा तामसौ क्रुद्धफणिनीमिव नागमत् । स्वप्रेष्यस्य

अनेक भोगोंका बहुत दिन तक अनुभव किया'। इधर नागश्रीका जीव पापोंके कारण पांचवें नरकमें जाकर नारकी हुआ ॥ २३८ ॥ वहांके आयु पर्यंत अनेक दुःखोंका अनुभव कर वहांसे निकला और स्वयंप्रभा द्वीपमें दृष्टिविष नामका सर्प हुआ। वहांसे मरकर दूसरे नरकमें पहुंचा वहां पर उसने तीन सागरकी आयु तक अनेक दुःख भोगे और फिर वहांसे भी निकल कर संसाररूपी सागरमें दो सागर तक स्थावर योनियोंमें परिभ्रमण किया। तदनंतर वह पापकर्मोंके मंदोदयसे चंपापुर नगरमें चांडालिनी हुई ॥ २४१ ॥ किसी दूसरे दिन वह समाधिगुप्त नामके मुनिराजके समीप पहुंची। उनकी वंदना कर उसने धर्मका स्वरूप सुना और शहद तथा मांसका त्याग किया ॥ २४२ ॥ इतना त्याग करनेमे ही वह आयु के अंतमें मरकर उसी नगरके धनी शेठ सुबंधुकी स्त्री धनदेवीसे सुकुमारी नामकी कन्या हुई। उसका शरीर अत्यंत ही दुर्गंध था परंतु तौ भी धन होनेके कारण माता पिताने उसका नाम सुकुमारी रक्खा था उसी नगरमें एक धनदेव वैश्य रहता था उसकी अशोकदत्ता स्त्रीसे जिनदेव और जिनदत्त नामके दो पुत्र हुएथे। जिनदेवके कुटंवी लोग उसका विवाह सुकुमारीके साथ करना चाहते थे परंतु यह समाचार सुन कर और उसकी दुर्गंधता जानकर वह विरक्त हुआ तथा सुव्रत नामके मुनिके समीप जाकर उनका शिष्य हो गया अर्थात् उसने दीक्षा धारण करली ॥ २४३–२४६ ॥ तदनंतर छोटे भाई जिनदत्तको कुटुंबियोंने बहुत प्रेरणा की और समझाया कि अपने बडे लोगोंकी कन्याका अपमान करना ठीक नहीं है इस डरसे जिनदत्तने उसके साथ विवाह तो कर लिया परंतु क्रोधित हुई सर्पिणीके समान उसके पास कभी स्वप्नमें भी नहीं जाता था। इस प्रकार पतिके विरक्त होनेसे वह सुकुमारी अपनी पुण्यहीनताकी बडी निंदा करती थी ॥२४७–

स्वपूर्वभवसंबंधमपृच्छन्सस्ततेऽभयात् । अत्रोचद्भगवानित्थमप्रतर्क्यमहोदय ॥ २२६ ॥ जंबूसंभाविते द्वीपे भरतेंगे पुरी परा । चपाख्या कौरवस्तत्र महीशो मेघवाहनः ॥ २२७ ॥ सोमदेवो द्विजोत्रैव ब्राह्मणी तस्य सोमिला । तयो सुतास्त्रयः सोमदत्तः सोमिलनामकः ॥ २२८ ॥ सोमभूतिश्च वेदांगपारगा प रमद्विजाः । अमीषां मातुलस्याग्निभूतेस्तिस्त्रोऽभवन्सुता ॥ २२९ ॥ अग्निलाया धनश्रीमित्रश्रीनागश्रियः प्रिया । तेभ्यो यथाक्रमाद्दत्तास्ताः पितृभ्या सुलक्षणाः ॥ २३० ॥ सोमदेवः मुनिर्विद्य सुधी केनापि हेतुना । प्राव्राजीदन्यदा धर्मरुचिनाम तपोधन ॥ २३१ ॥ प्रविशत गृह भिक्षाकाले वीक्ष्यानुक्र-पया । सोमदत्त प्रतीक्ष्यैनमाह पत्नीं कनीयसः ॥ २३२ ॥ नागश्रीर्वितरास्मै त्व भिक्षामिति कृतादरं । मामेव सर्वदा सर्वमेष प्रेषयतीति सा ॥ २३३ ॥ कुपिता विषसम्मिश्र ददावन्नं तपोभृते । स सन्यस्य समाराध्य प्रापदल्पमनुत्तरं ॥ २३४ ॥ नागश्रीविहिताकार्यं ज्ञात्वा ते भ्रातरस्त्रयः । समीपे वरुणार्य स्य दीक्षा मैक्षीं समाययुः ॥ २३५ ॥ गुणवत्यार्यकाभ्यासे ब्राह्मण्याविति रे तदा । ईयतु संयम वृत्तमादृक् सदमतामिद ॥ २३६ ॥ पंचाप्याराध्य तेऽभूव

लगे ॥ २२४–२२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रके चंपापुर नगरमें कौरव वंशी राजा मेघवाहन राज्य करता था । उसी नगरमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम सोमिला था, उनदोनोंके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति ये वेदके अंगोंके जानकार परम ब्राह्मण तीन पुत्र हुए थे । उन तीनों भाइयोंके मामाका नाम अग्निभूति था उस अग्निभूतके अग्निला स्त्रीसे धनश्री मित्रश्री नागश्री नामकी तीन प्रिय पुत्रियां हुई थीं । अग्निभूति और अग्निलाने वे शुभ लक्षणवा-ली तीनों कन्याएं यथाक्रमसे अपने भानजों को दे दी ॥२२७–२३०॥ तदनंतर बुद्धिमान सोमदेवने किसी कारणसे विरक्त होकर दीक्षा ले ली थी । किसी दूसरे दिन आहारके समय धर्मरुचि नामके तपस्वी सोमदेवके घर आए सोमदत्तने करुणा कर उनका पडगाहन किया और छोटे भाईकी स्त्री नागश्रीसे आहार देनेके लिये आदर पूर्वक कहा । नागश्री यह सुन कर क्रोधित हो गई और मनमें कहने लगी कि यह सोमदत्त सदा सबकामके लिये मुझसे ही कहता है । इस तरह क्रो-धित होकर उसने मुनिके लिये विष मिला अन्न दे दिया जिससे संन्यास धारण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर वे मुनिराज सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए ॥ २३१–२३४ ॥ नागश्रीके द्वारा किये हुए अकार्यको जानकर उन तीनोंही भाइयोंने वरुण नामके मुनिराजके समीप जाकर मोक्ष देनेवाली दीक्षा धारण करली ॥ २३५ ॥ उसी स-मय ब्राह्मणीने भी गुणवती नामकी अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली । सी ठीक ही है क्योंकि सज्जन और असज्जनोंका चारित्र ऐसा ही होता है इस प्रकार ये पांचो ही जीव तपश्चरण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर आरण तथा अच्युत स्वर्गमें बाईस सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुए और वहां पर उन्होंने प्रवीचारसहित

भवन्क्रमात् ॥ २१४ ॥ द्यूत युधिष्ठिरस्यात्र दुर्योधनमहीभुजा । भुजगशैलपुर्यां यत्कीचकाना विनाशन ॥ २१५ ॥ विराटभूरतेर्भूरिगोमंडलनिवर्तनं । अनुयातेन भूपस्य विराटस्य सुशर्मणः ॥ २१६ ॥ अल्पगोमडलस्याऽर्जुनोत्तराभ्या निवर्तन । पुराणवेदिभिर्वाच्यं विस्तरेण यथाश्रुतं ॥ २१७ ॥ अथ युद्ध कुरुक्षेत्रे प्रवृत्ते कौरवं सम । पाडवाना विनिर्जित्य दुर्योधननराधिपं ॥ २१८ ॥ युधिष्ठिर समस्तस्य विषयस्याभवद्विभु । विभज्य स्वानुजैर्लक्ष्मीं भुंजानोऽरंजयज्जन ॥ २१९ ॥ एव स्वकृतपुण्यस्य ते सर्वे परिपाकज । सुख निखिलमव्यग्रमनन्वभूवन्न रतं ॥ २२० ॥ तदा द्वारवतीदाहः कौशांबीगहन तरे । मृतिर्जरत्कुमारेण विष्णोजष्टस्य सयन ॥ २२१ ॥ भविष्यतीति यत्प्रोक्त द्वारवत्या जिनेशिना । निवृत्त तत्र तत्सर्वं न मिथ्यावादिनो जिना ॥ २२२ ॥ तादृश तादृशामासीद् धिग्धिग् दुष्कर्मणा गतिं । निर्मूलयति कर्माणि तत एव हि धीधनाः ॥ २२३ ॥ तत्सर्वं पाडवाः श्रुत्वा तदायान्मथुराधिपाः । स्वामिबधुवियोगेन निर्विंश त्यक्तराज्यका, ॥ २२४ ॥ महाप्रस्थानकर्माण प्राप्य नेमिजिनेश्वरं । तत्कालोचितसत्कर्म सर्वं निर्माप्य भाक्तिकाः ॥ २२५ ॥

कीचकको मारा और राजा विराटका गोमंडल शत्रुओंसे छुडाया । इस प्रकार उन्होंने राजा विराटको सुखी किया । तथा थोडासा गोमंडल (गाय भैंस आदि पशु) कोई और शत्रु ले गया था वह अर्जुनके छोटे भाइयोंने छुडाया । इनप्रकार उनका यह संक्षिप्त चरित्र है विस्तारसे आगमानुसार पुराणके जानकारोंको जान लेना चाहिये ॥ २१५–२१६ ॥ तदनंतर कुरुक्षेत्रमें कौरव और पांडवोंका युद्ध हुआ उसमें पांडवोंने दुर्योधनको जीता । युधिष्ठिर सब देशका राजा हुआ और छोटे भाइयोंमें राजलक्ष्मीका विभाग कर तथा उसका उपभोग करता हुआ सबलोगोंको प्रसन्न करने लगा ॥ २१८–२१९ ॥ इस प्रकार ये सब पाडव अपने पुण्यकर्मके फल सुखको विना किसी व्याकुलताके रात दिन पूर्ण रीतिसे अनुभव करने लगे ॥ २२० ॥ तदनंतर द्वारावती नगरी जली, कौशाम्बी वनमें जरत्कुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु हुई और बलदेवने संयम धारण कर लिया । इस प्रकार द्वारावती नगरीमें भगवान नेमिनाथने जो कहा था कि ऐसा होगा वह सब ज्यों का त्यों हुआ सो ठीक ही है क्यों कि जिनेंद्र देव कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहते हैं ॥ २२१–२२२ ॥ जिनके लिये जैसा कहा था उनको वैसाही हुआ अतएव इन अशुभ कर्मोंकी गतिको भी वार वार धिक्कार हो और इसलिये बुद्धिमान लोग इन सब कर्मोंको नष्ट करते हैं ॥ २२३ ॥ दक्षिण मथुराके स्वामी पांडव यह सब समाचार सुनकर स्वामी और बंधुओंके वियोगसे विरक्त हुए, और मोक्षके लिये महाप्रस्थानकी तैयारी करने लगे । उन भक्त लोगोंने श्रीनेमिनाथ स्वामीके समीप जाकर उस समय करने योग्य प्रदक्षिणा नमस्कार आदि सब कर्म किए और संसारसे डरकर अपने पहिले भवोंका संबंध पूछा । इनके उत्तरमें जिनके ऐश्वर्यकी कल्पना भी नहीं होसकती ऐसे भगवान नेमिनाथ इस प्रकार कहने

ता: । स्वसंवधादितु'स्तुत्य खेदं नायथ पांडवा' ॥ २०३ ॥ पौदनाख्यपुरे चंद्रदत्तनाममहीपतेः । देविलायाश्च पुत्राय कलागुणविशारद ॥ २०४ ॥ विधाय निहितस्थूणगड राज्य व्यतारिषु । अथेंद्रवर्मणे प्रीत्या तेषा वार्ताश्रुताचरात् ॥ २०५ ॥ इहाप्यवश्यमेष्यंति विधेयस्तत्स्वयवर । न केनचिद्विरोधो यमिति तद्वचनश्रुते: ॥ २०६ ॥ वसतेऽचीकरद्राजा स स्वयंवरमंडप । तत्र सर्वेमहीपाला: सप्रापन् पाण्डवेषु च ॥ २०७ ॥ भीमस्य भोजनाद्गंधगजस्य करतर्जनात् । पार्थस्य मत्स्यनिर्भेदाच्चापरोपणसाहसात् ॥ २०८ ॥ नारदागमनाच्चापि लक्ष्यमाणेषु निश्चित । समागतेषु सत्स्वर्हन्महापूजापुरस्सरं ॥ २०९ ॥ प्रविश्य भूषिता रत्नै सा स्वयंवरमडप । भूमिपान् जलरूपादिगुणे सिद्धार्थनामनि ॥ २१० ॥ पुरोधसि क्रमात्सर्वान् कथयत्यविलध्यतान् । कन्या सभावयामास मालयोज्वलयार्जुन ॥ २११ ॥ द्रुपदाद्युग्रवंशोत्था महीशा: कुरुवशजाः । अन्येपि चानुरूपोयमिति तुष्टि समागमन् ॥ २१२ ॥ एव सप्राप्तकल्याणा' प्रविश्य पु मात्मन । गमयंति स्म सौख्येन काल दीर्घमिव क्षण ॥ २१३ ॥ तत. पार्थात्सुभद्रायामभिमन्युरभूत्सुतः'। द्रौपद्यां पच पचालनामानोन्व-

में निपुण बना कर कंटकरहित राज्य समर्पण किया है इसलिये प्रेमपूर्वक उसे देना चाहिये। यह सुन कर अन्य मंत्रीने कहा कि इस बातको सुनकर भी लोग विरोध करेंगे इसलिये स्वयंवर करना ही ठीक है; क्योंकि स्वयंवर करनेमें किसीका विरोध नहीं होगा। मंत्रियोंकी ये सब बातें सुनकर राजाने वसंत ऋतुमें स्वयंवर मंडप बनवाया और उसमें सब राजा लोग आए। इधर पांडव लोग जो परदेश चले गये थे उनमेंसे भीम तो भोजनके बनाने और गंधगजको हाथसे ही ताडन करनेसे प्रसिद्ध हुआ, अर्जुन मत्स्यभेद करने और धनुप चढानेके साहससे प्रसिद्ध हुआ तथा नारदके आनेसे सभी प्रसिद्ध हुए और सभी स्वयंवरमंडप में जा विराजमान हुए। तदनंतर भगवान अरहंतदेवकी पूजा कर तथा रत्नादिकोंके आभूषण और वस्त्र आदिसे विभूषित होकर वह द्रौपदी स्वयंवरमंडपमें आई। सिद्धार्थ नामका पुरोहित अनुक्रमसे सब राजाओंके कुल रूप आदि गुणवर्णन करने लगा परंतु उस कन्याने सबको छोडकर उज्वल मालाके द्वारा अर्जुनको अपना पति बनाया ॥ २०१–२११ ॥ यह देख कर द्रुपद आदि उग्रवंशमें उत्पन्न हुए राजा कुरुवंशी तथा और भी अनेक राजा कहने लगे कि कन्याके योग्य ही वर मिला है इस तरह संतुष्ट होकर सब अपने अपने घरको चले गये ॥ ११२ ॥ इस प्रकार अनेक कल्याणोंको प्राप्त होकर वे पांडव अपने नगरमें गये और सुखपूर्वक बडे लंबे समयको भी क्षणभरके समान व्यतीत करने लगे ॥ २१३ ॥ तदनंतर अर्जुनके सुभद्रासे अभिमन्यु नामका पुत्र हुआ और द्रौपदीसे अनुक्रमसे पंचाल आदि पांच पुत्र हुए ॥ २१४ ॥ किसी एक दिन राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके साथ जूआ खेला जूआमें वे सब हार गये और नगर छोडकर छिप कर विराटके राजाके यहां सेवक बन कर रह गये वहां पर भीमने भुजंगशैल नगरमें

क्षुनचक्रपुरस्सरः । पादन्यासे पुरः पश्चात्सरोजै सप्तमि पृथक् ॥ १९२ ॥ कृतशोभो जगन्नाथश्छत्रादिप्रातिहार्यकैः । मरुन्मार्गगताशेषसुरखेचरसेवित ॥ १९३ ॥ पृथ्वीपथप्रवृत्तान्यविनेयजनतानुगः । पवनामरनिर्धूतधूलीकण्टकभूतलः ॥ १९४ ॥ मेघामरकुमारोपसिक्तगन्धांबुसरक्षिति । इत्याश्चर्यसंपन्नः सर्वप्राणिमनोहरः ॥ १९५ ॥ धर्मामृतमयीं वृष्टिमभिषिंचन् जिनेश्वर । विश्वन् देश न् विहृत्यायातमदेश पल्लवाह्वयं ॥ १९६ ॥ अत्र पाण्डुतनूजानां प्रपंचोल्पः प्रभाष्यते । ग्रंथविस्तरभीरूणामायुर्मेधानुरोधत ॥ १९७ ॥ कंपिल्यायां धराधीशो नगरे द्रुपदाह्वय । देवी दृढरथा तस्य द्रौपदी तनया तयोः ॥ १९८ ॥ स्त्रीगुणै सकलैः शस्या बभूव भुवनप्रिया । तत्पूर्णयौवना वीक्ष्य पित्रा कस्मै समर्प्यता ॥ १९९ ॥ इय कन्येति सपृष्टा मन्त्रिणो मंत्रिचर्चया । प्रभाषत प्रचंडेभ्य पाण्डवेभ्य प्रदीयता ॥ २०० ॥ एतन् सहजशत्रुत्वाद् दुर्योधनमहीपति । पाण्डुपुत्रानुपायेन लाक्षालयमवीविशत् ॥ २०१ ॥ हेतुं त तेपि विज्ञाय स्वपुण्यपरिचोदिता । प्रद्रुता पयसि क्ष्माजस्याधस्तात्किल्विष स्वयं ॥ २०२ ॥ अपहृत्य सुरंगोपातेन देशांतरं ग-

पीछे अलग अलग सात सात कमलोंसे उन त्रिलोकीनाथकी निराली ही शोभा हो रही थी चमर छत्र आदि प्रातिहार्य अलग शोभा दे रहे थे, सब देव विद्याधर उनकी सेवा करते हुए आकाश मार्गसे जा रहे थे। उनके साथ साथ ही पृथ्वी-परके मार्गसे अन्य शिष्य लोग जा रहे थे, उस समय वायु कुमारके देवोंने भी धूली कंटक साफ कर पृथ्वी साफ कर दी थी और मेघकुमारके देवोंने पृथ्वी पर गंधोदक सींच दिया था। इस प्रकार अनेक आश्चर्योंसे भरपूर, सब प्राणियों को मनोहर और धर्मरूपी अमृतकी वर्षा बरसाते हुए वे भगवान नेमिनाथ सब देशोंमें विहार कर पल्लवनामके देशमें जा विराजमान हुए ॥ १९१–१९६ ॥ यहा पर समय पाकर ग्रंथके विस्तारसे डरनेवाले मनुष्योंकी आयु और बुद्धिके अनुसार पांडुओंकी भी थोडी सी कथा लिख देते हैं ॥ १९७ ॥ कंपिला नगरीमें राजा द्रुपद राज्य करता था उसकी दृढ-रथा देवीसे द्रोपदी नामकी पुत्री हुई थी ॥ १९८ ॥ वह द्रौपदी स्त्रीमें होने वाले सब गुणोंसे प्रशंसनीय थी और सबको प्यारी थी। उसे पूर्ण यौवनांगी देखकर राजाने मंत्रचर्चाके द्वारा मंत्रियोंसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये। तब एक मंत्री कहने लगा कि पांडव बडे बलवान हैं उन्हें देनी चाहिये ॥ १९९–२०० ॥ यह सुन कर दूसरा मंत्री कह-ने लगा कि दुर्योधन पांडवोंका स्वाभाविक शत्रु है, उसने अपने उपायसे सब पांडवोंको लाक्षामहलमें घुसा दिया था परंतु पुण्यवान् पांडव इसका हेतु जान गये थे और जलमें खडे हुए एक वृक्षके नीचे रहने वाले किल्विष नामके राक्षस को स्वयं मार कर सुरंगके रास्तेसे भागकर देशांतरको चले गये थे-इस प्रकार पांडवोंके कुटुंब परिवार आदिकोंका दुःख भी नष्ट नहीं हुआ है। इधर पोदनपुर नगरके राजा चंद्रदत्तके रानी देविलासे इन्द्रवर्मा नामका पुत्र है, उसे राजाने सकलगुणों

१८० ॥ विष्णोर्जरत्कुमारेण गत्वंतरगतिर्भवेत् । स एव प्रथमां पृथ्वीं प्रविश्यात्त्युत्तमायुषः ॥ १८१ ॥ प्राते तस्माद्विनिर्गत्य तीर्थगोत्र भविष्यति । त्वमप्येतद्वियोगेन षण्मासकृतशोचन ॥ १८२ ॥ सिद्धार्थसुरसंबोधनात्यक्ताखिलदुःखकः । दीक्षामादाय माहेंद्रकल्पे देवो जनिष्यसे ॥ १८३ ॥ उत्कृष्टायुस्थितिस्तत्र भुक्तभोगोत्र तीर्थकृत् । भूत्वा निर्दग्धकर्मारिरिह मुक्तो भविष्यसि ॥ १८४ ॥ इति तीर्थेशिना प्रोक्तं श्रुत्वा द्वीपायनाह्वयः । सद्यः संयममादाय प्रायाज्जनपदांतरं ॥ १८५ ॥ तथा जरत्कुमारश्च कौशांब्यरण्यमाश्रयत् । प्रागबद्धनरकायुष्यो हरिरन्यसदर्शनः ॥ १८६ ॥ भाव्यमानात्मनामासौ नाहं शक्नोमि दीक्षितुं । शक्तान्न प्रतिबध्नामीत्यास्त्रीबालमघोषयत् ॥ १८७ ॥ प्रद्युम्नादिसुता देव्यो रुक्मिण्याद्याश्च चक्रिणः । बंधूनापृच्छ्य तैर्मुक्ताः प्रत्यपद्यंत संयमं ॥ १८८ ॥ द्वीपायननिदानानमाने जांबवतीसुत । अनिरुद्धश्च कामस्य सुतः सप्राप्य संयमं ॥ १८९ ॥ प्रद्युम्नमुनिना सार्द्धमूर्जयंताचलाग्रिमे । कूटत्रयं समारुह्य प्रतिमायोगधारिणः ॥ १९० ॥ शुक्लध्यानं समापूर्य त्रयस्ते घातिघातिनः । कैवल्यनवकं प्राप्य प्रापन्मुक्तिमथान्यदा ॥ १९१ ॥ पुण्यघोषणकृत-

आयु पाकर पहिले नरकमें नारकी होगा और आयु पूरी होने पर वहांसे निकल कर इसी भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर होगा। तू भी कृष्णके वियोगसे छह महीने तक शोक करेगा और फिर सिद्धार्थ देवके द्वारा समझाए जाने पर सब दुःखोंको दूर कर दीक्षा लेकर चौथे माहेंद्र स्वर्गमें देव होगा ॥ १८०–१८३ ॥ वहां पर सात सागरकी आयु पाकर भोगोंका अनुभव कर इसी भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर होगा और कर्मरूप शत्रुओंको नष्टकर यहींसे मुक्त होगा ॥ १८४ ॥ श्रीतीर्थंकरका यह उपदेश सुनकर द्वीपायन तो उसी समय दीक्षा लेकर दूसरे देशमें चला गया, तथा जरत्कुमार कौशांबी वनमें चला गया। जिन्होने पहिलेही नरककी आयु बांध ली है और फिर सम्यग्दर्शन धारण किया है ऐसे कृष्णने अंतिम तीर्थंकर नाम कर्मकी कारण सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन कर स्त्री बालक आदि सबके लिये यह घोषणा कर दी कि मैं तो दीक्षा ले नहीं सकता परंतु जो दीक्षा ले सकते हैं उन्हें मैं रोकता भी नहीं जो चाहे सो दीक्षा ले ले ॥१८५-१८८॥ यह सुनकर प्रद्युम्न आदि राजपुत्रोंने तथा रुक्मिणी आदि देवियोंने दीक्षाके लिये कृष्ण और भाई बंधुओंसे पूछा, सबने उन्हें आज्ञा देदी और इसप्रकार उन्होंने दीक्षा धारण कर ली ॥ ८८ ॥ द्वीपायनके निदान करते समय जांबवतीके पुत्र शंभवने तथा कामदेवके पुत्र अनिरुद्धने भी दीक्षा धारण करली और प्रद्युम्न मुनिके साथ गिरनार पर्वतके ऊंचे तीनों कूटों पर विराजमान होकर प्रतिमा योग धारण किया ॥ १८९–१९० ॥ उन तीनोंने शुक्लध्यान धारण कर घातिया कर्म नष्ट किये और फिर नौ केवल लब्धियोंको पाकर वे मुक्त हुए। अथानंतर किसी दूसरे दिन भगवान नेमिनाथने वहांसे विहार किया, उनके पुण्योदयसे यक्ष धर्मचक्रको लेकर आगे चलता था, उनके पैर रखनेकी जगह तथा आगे

त्मम॰ पतिं । यथास्मात्तसमुत्पत्तिः स्वास्वास्वादगयाचत ॥ १७१ ॥ तच्छ्रुत्वा रुक्मिणी चाह कामं जांबवती यथा । लप्स्यते तेऽनुजं प्राच्यं तथा कुर्विति
सादरं ॥ १७२ ॥ सोप्यदान्मुद्रिकां कामरूपिणीं तामवाप्य सा । सत्यभामाकृतिं गत्वा पतिसंयोगतः सुत ॥ १७३ ॥ कीडावं जांववत्याप लांतवास्यदि-
वश्च्युतं । सुभानु सत्यभामा च जातमत्सरयोस्तयोः ॥ १७४ ॥ गांधर्वादिविवादेषु सुभानुं शंभवोजयत् । सर्वत्र पूर्वपुण्यानां विजयो नैव दुर्लभ ॥१७५॥
रुक्मिणी सत्यभामा च गतमात्सर्यबंधने । परस्परगतां प्रीतिमन्वभूतामत परं ॥ १७६ ॥ इत्यशेष गणेशोक्तमाकर्ण्य सकल सदः । ननाम मुकुलीभूतका-
राब्जं तत्क्रमाब्जयो ॥ १७७ ॥ अथान्यदा जिन नेमिं सीरपाणि कृतांजलि । अवनम्यान्वयुक्तैवं हरिस्नेहात्तमानसः ॥ १७८ ॥ भगवन् वासुदेवस्य
राज्यं प्र ज्यमहोदयं । प्रवर्तेते प्रतीतं मे गृहीतीद कियच्चिरं ॥ १७९ ॥ भद्र द्वादशवर्षांते नश्येन्मद्यनिमित्तकं । द्वीपायनेन निर्मूलमिय द्वारावती पुरी ॥

सबने सुना कि प्रद्युम्नका पहिले जन्मका छोटा भाई स्वर्गसे आकर कृष्णका पुत्र होगा । यह सुनते ही सत्यभामाने
अपने पतिसे याचना की कि जिस तरह यह पुत्र मेरे ही उत्पन्न हो वही उपाय करना चाहिये ॥ १७०–१७१ ॥ सत्य-
भामाकी यह बात सुनकर रुक्मिणी प्रद्युम्नसे सदा कहने लगी कि जिस तरह हो तेरे पहिले भवके छोटे भाईका जीव
जांववतीके पुत्र हो ऐसा उपाय कर ॥ १७२ ॥ माताकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने जांववतीको अपनी कामरूपिणी अं-
गूठी दी जिससे वह सत्यभामाका रूप बना कर पतिके पास गई और पतिके संयोगसे उसने लातंव स्वर्गसे च्युत हुए
क्रीडावके जीवको धारण किया, तथा शंभव वा जांवव नामका पुत्र हुआ । इधर सत्यभामाके सुभानु नामका पुत्र हुआ
सुभानु और शंभव ये दोनों भी परस्पर ईर्षा करने लगे और गांधर्व आदि विवादोंमें शंभवने सुभानुको जीता, सो ठीक
ही है क्योंकि जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्य कर्मोंका उपार्जन किया है उनकी सब जगह जीत होना कुछ भी कठिन नहीं है ॥
१७३–१७५ ॥ तदनंतर रुक्मिणी और सत्यभामाने परस्परकी ईर्षा छोड दी और फिर उसके वाद वे दोनों परस्परके
प्रेमको अनुभव करने लगीं ॥ १७६ ॥ इस प्रकार गणधरदेवके कहे हुए सब चारित्रको सुनकर सब सभा हाथ जोडकर
उनके चरणकमलोंको नमस्कार करने लगी ॥ १७७ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन कृष्णके स्नेहसे जिनका चित्त भीग
रहा है ऐसे बलदेवने श्रीनेमिनाथको नमस्कार कर इस तरह पूछा कि हे भगवन् कृष्णका जो यह वडी भारी विभूति
और ऐश्वर्यसे भरा हुआ राज्य है वह इसी प्रकार कितने दिन तक चलता रहेगा, हे प्रभो ! यह मुझे वतला दीजिये
॥ १७८–१७९ ॥ तब भगवान कहने लगे कि हे भद्र वारहवर्ष बाद मद्यके निमित्तसे यह राज्य नष्ट हो जायगा, द्वीपा-
यनके द्वारा यह द्वारावती नगरी भस्म हो जायगी, जरत्कुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु होगी । तथा मरकर वह एक सागरकी

पितं विकाराणामकरोदाकरं पुनः। आगनाथ व्यधाद् भृत्यान् गोपुरेध स्थितानननान् ॥ १६० ॥ वासुदेवस्य रूपेणातर्जयश्च विद्रुतं । वीर्यं कृतखगादेन जराहर्षं च महत्तरं ॥ १६१ ॥ मेषरूपेण सपाल्या पातयत्तत्पितागह। हलिन च हरिर्भूत्वा निगीर्यत्वमदृश्यता ॥ १६२ ॥ गत्वात्र सुप्यमास्य वेत्याभिधाय स्वविद्यया। रुक्मिणीरूपमापाद्य निर्विशेषं मनोहरं ॥ १६३ ॥ विमाने स्थापयित्वाशु गच्छन् स सवलं हरिं। प्रामवंत ममाहर्तुम कालिकयमोपम ॥ १६४ ॥ जित्वा नरेंद्रजाल विद्यावितिहितमायया। तस्यौ निःप्रतिपक्ष सन् वीक्षणामीलविग्रहः ॥ १६५ ॥ नारदः स तदागत्य तनूजस्याधवीक्षण। युरयोरीदृश लब्धविद्यस्यैत्यभ्यधद्रुमन् ॥ १६६ ॥ सोपि प्रकटितात्मीयरूप पचशरावल। हरिं च खशिरोन्यस्तत क्रमाब्जोत्समानयत् ॥ १६७ ॥ ततश्चक्रभगेनग प्रेमालिंगितविग्रह। आरोप्य खगजस्कधं प्रहृष्टः प्राविशत्पुरं ॥ १६८ ॥ सत्यभामासुत द्विककन्यकाभि सह स्मरः। कल्याणाभिषवं दिश्या मंप्रपत्सर्वसंमतः ॥ १६९ ॥ एत्र प्रयाति कालेस्य स्वर्गादागत्य कश्चन। तनूजः कामसोदर्यो हरे प्राच्चो भविष्यति ॥ १७० ॥ इत्यादेश ममाकर्ण्य सत्यभा

जो सेवक आये थे उन्हें नगरके बडे दरवाजेपर नीचेकी ओर मुख कर लटका दिया ॥ १६० ॥ फिर वासुदेवका रूप धारणकर उन सेवकों की अनेक तरहसे ताडना की। तदनंतर अत्यंत बूढेका रूप बनाकर गलीमें सो रहा और वलभद्रके जगानेपर विद्यासे अपने पैर लंबे कर उनको ठगा। फिर भेषका (भेडाका) रूप बना कर बावा वसुदेवका घोंटू तोडा और सिंह बनकर वलभद्रको निगलकर अदृश्य कर दिया ॥ १६१–१६२ ॥ इसके बाद वह फिर माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि तू यहां ही सुखसे ठहरना। इसतरह कहकर उसने अपनी विद्यासे रुक्मिणीका वैसाही मनोहर रूप बनाया और उसे विमानमें बिठाकर शीघ्र ही कृष्णके समीप पहुचा और कहने लगा कि मैं तेरी स्त्रीको हरले जाता हूं यदि सामर्थ्य हो तो छुडा। उसकी यह बात सुनकर समयानुसार यमके समान कृष्ण अपनी सब सेना लेकर आए परंतु भीलका रूप धारण करने वाला प्रद्युम्न मायामयी नरेंद्रजाल विद्यासे सबको जीत कर शत्रु रहित होकर अर्थात् सब शत्रुओं को नष्ट कर खडा रहा ॥ १६३–१६५ ॥ इतनेमेंही नारद कृष्णके समीप आकर बैठ गये और कहने लगे कि जिसने अनेक विद्याएं प्राप्त की हैं ऐसे पुत्रको तुम दोनों इसतरह देख रहे हो ॥ ६६ ॥ उसी समय प्रद्युम्नने भी अपना रूप प्रगट कर और पिताके चरण कमलोंको अपने मस्तक पर धारण कर उनका बहुत ही आदर सत्कार किया ॥१६७॥ तदनंतर जिसका शरीर प्रेमसे आलिंगन हो रहा है ऐसे प्रद्युम्नको कृष्णने हाथी पर बिठाया और बडी प्रसन्नताके साथ नगरमें प्रवेश कराया ॥ १६८ ॥ फिर प्रद्युम्नने अपने पुण्योदयसे भानुकुमारके लिये जो कन्याएं आई थी उनके साथ सबकी सम्मतिसे विवाह किया ॥ १६९ ॥ इस प्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक दिन

न्यमिसमीक्ष्य सा । कलालिकोकिलालापवाचालितवनातरे ॥ १४९ ॥ तदा विस्मयमापन्ना मुदा पप्रच्छ किं भवान् । भवोसौ मत्सुनो नारदोक्तकाले स
मागतः ॥ १५० ॥ इति तस्या परिप्रश्ने स्वरूप सुप्रकाशयन् । कृत्वा शिरसि तत्पादनखदीधितमञ्जरी. ॥ १५१ ॥ अभिधाय स्ववृत्तातमशेष परिबोधय-
न् । जननीं सह संतुष्टतया तदभिवांछितैः ॥ १५२ ॥ बालक्रीडाविशेषैस्तां परां प्रीतिमवापयन् । प्राग्जन्मोपार्जितापूर्वपुण्योदय इव स्थितः ॥ १५३ ॥
तदा नापितकः कोपि रुक्मिणीं समुपागतः । हरिप्रश्नात्सुतोत्पत्तिं विज्ञाय विनयधरात् ॥ १५४ ॥ मुनीन्द्रादावयोर्यस्याः प्राग्ज. स्योपयमेऽलकान् । स्ना-
तन्यस्याः स इत्वेति युवाभ्यां विहितास्थिति ॥ १५५ ॥ तस्मादेव्यलककालीति धीयतां तन्निबन्धन । स्नृत्वा भानुकुमारस्य जनन्य सत्यभ मया ॥ १५६ ॥
प्रहितोह विवाहेच्य नूतमित्यब्रवीदिद । किमेतदिति सपृष्टा कामेन तत्र जन्मना ॥ १५७ ॥ सम भानुश्च संज तस्तदावाभ्यां युवां हरे । नीता दर्शयितुं
सुप्ते तस्मिंस्त्व पादसन्निधौ ॥ १५८ ॥ स्थापितः स शिरोभागे प्रबुध्य त्वा पुरो हरि । विलोक्य ज्येष्ठता तेऽदादिति माताभ्यभाषत ॥ १५९ ॥ स ना-

रहे हैं ॥ १४९ ॥ उन्हें देखकर रुक्मिणीको बहुत आश्चर्य हुआ और वह प्रसन्न चित्त होकर पूछने लगी क्या आप मेरे पुत्र हैं और नारदके कहे अनुसार ठीक समय पर आए हैं। माता की यह बात सुन कर प्रद्युम्नने अपना रूप प्रगट किया और माताके चरणोंमें मस्तक नवाकर उसके चरणोंके नखोंकी कांति रूपी मंजरीको अपने मस्तक पर चढाया ॥ १५०–१५१ ॥ तदनंतर प्रद्युम्नने अपना सब हाल कहकर माताको समझाया और माताके साथ बहुत संतुष्ट हुआ। फिर माताकी इच्छानुसार अनेक तरहकी बालक्रीडाएं कर माताको बहुत ही संतुष्ट किया और पहिले जन्ममें कमाए हुए अपूर्व पुण्यकर्मके उदयके समान वह वहीं ठहरा रहा ॥१५२–१५३॥ इतनेमें ही रुक्मिणीके समीप एक नाई आया और इसप्रकार कहनेलगा कि श्रीकृष्णके प्रश्न करने पर श्री विनयंधर मुनिराजसे सत्यभामा और तुम दोनों ने अपने पुत्रकी उत्पत्ति जान परस्पर शर्त बदी थी कि जिसके पहिले पुत्रहोगा वह पुत्र विवाहके समय दूसरीके शिरके बालोंपर बैठकर स्नान करेगा इसलिये हे देवी उस बातको स्मरणकर भानुकुमारके स्नानके लिये आप अपने मस्तकके केश दें यही कहकर आज विवाहके दिन सत्यभामाने मुझे आपके समीप भेजा है। उस नाईकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने मातासे पूछा कि यह क्या बात है। तब माता कहने लगी कि तेरे जन्मके साथही भानुकुमारका जन्म हुआ था तब हम दोनोंनें (मैंने और सत्यभामाने) कृष्ण को दिखानेके लिये तुम दोनोंको उनके समीप भेजा था। कृष्ण उस समय सो रहे थे इसलिये तू तो उनके पैरोंकी ओर सुला दिया था और भानुकुमारको शिरकी ओर सुलाया था। कृष्णने उठतेही पहिले तू देखा इसलिये तुझेही बड़ा माना था ॥ १५४–१५६ ॥ इसतरह माताकी बात सुनकर प्रद्युम्नने उस नाईके अनेक विकार किये तथा उसके साथमें

कौदंडहस्तो बाधाकृतिं दधत् । तेषां कदर्थनं कृत्वा नाना द्वारवतीमितः ॥ १३८ ॥ विधाय विद्यया प्राग्वद्वारं स्यंदनस्थितं । एकाकी स्वयमागत्य वि- घायाशाखामृगाकृतिः ॥ १३९ ॥ बभंज सत्यभामाया नंदनं वावनं वनं । तत्पानवापीनिःशेषजलपूर्णकमंडलुः ॥ १४० ॥ ततो गत्वांतरं किंचित्स्यंदनोरपि रा- सभान् । विपर्यासं समायोज्य मायारूपधरः स्मरः ॥ १४१ ॥ पुरगोपुरनिर्यांणप्रवेशनगतान् जनान् । सप्रहासान् समापाद्य प्रविश्य नगरं पुनः ॥ १४२ ॥ आलोक्य वैद्यवेषेण संप्रत्येय स्वविद्यया । विच्छिन्नकर्णसंधानवेदित्वादि प्रघोषयन् ॥ १४३ ॥ प्राप्य भानुकुमाराय दातुमानीतकन्यका । तत्राविर्भाविता- नेकधाहास्योत्पादिजाकृतिः ॥ १४४ ॥ सत्यभामागृहं गत्वा भोजनावसरे द्विजान् । विप्रकृत्य स्वधाष्टर्येन भुक्त्वा स्वीकृतदक्षिणः ॥ १४५ ॥ ततः क्षुल्लकवे- षेण समुपेत्य स्वमातरं । बुभुक्षितोऽहं सद्दृष्टे सम्यग्भोजय मामिति ॥ १४६ ॥ सप्रार्थ्य विविधाहारान् भुक्त्वा तृप्तमनास्तवान् । कुरु मे देवि सतृप्तिमि- ति व्याकुलतां नयन् ॥ १४७ ॥ तद्वितीर्णमहामोदकोपयोगात्सुतृप्तवान् । ईषच्छांतमनस्तत्र सुखं समुपविष्टवान् ॥ १४८ ॥ अकाले चंपकाशोकपुष्पा-

विद्यासे नारदको तो रथमें ही रोक दिया और बंदरकारूप धारणकर अकेला ही नीचे आया ॥ १३९ ॥ आते ही सत्यभामांका वावन नामका बहुत सुंदर वाग उजाड डाला और उसमेंकी वावडीका सब जल एक कमंडलुमें भरलिया ॥१४०॥ तदनंतर थोडी दूर जाकर उसने अपने रथमें उलटे गधे जोते इसतरह मायामयी रूप धारणकर वह प्रद्युम्न नगरके दरवाजेपर पहुंचा वहांपर आने जाने लोगोंको खूब हंसाया और फिर नगरके भीतर गया ॥ १४१–१४२ ॥ अपनी विद्यासे उसने वैद्यका रूप बनाया और घोषणा करने लगा कि मैं छिदे हुए कानोंको जोड देता हूं तथा और भी ऐसे ही अनेक काम करना जानता हूं ॥ १४३ ॥ उसके बाद भानुकुमारके लिये जो कन्या लेकर आए थे उनके यहां पहुंचा और उनकी अनेक तरहसे हंसी की। फिर ब्राह्मणका रूप बनाकर सत्यभामाके घर पहुंचा वहां पर ब्राह्मणलोग भोजन करने के लिये तैयार थे इस लिये उसने उन्हें तो अपनी धृष्टतासे वाहर कर दिया और आप भोजन कर दक्षिणा लेकर चलबना ॥ १४४–१४५ ॥ तदनंतर क्षुल्लकका रूप धारण कर अपनी माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि हे सम्यग्दर्शनको पालन करनेवाली मैं भूखा हूं मुझे अच्छी तरह भोजन करा ॥ १४६ ॥ इस तरह प्रार्थना कर उसके दिए हुए अनेक तरहके भोजन खाये परंतु वह तृप्त नहीं हुआ । तव फिर कहने लगा कि हे देवी मेरा पेट भर कर मुझे संतुष्ट करो इस तरह कह कर कुछ देरके लिये उसे व्याकुल कर दिया और फिर उसका दिया हुआ एक महामोदक खाकर संतुष्ट हुआ । इस तरह कुछ शांतचित होकर सुखपूर्वक वहां बैठ गया ॥१४७–१४८॥ उसी समय रुक्मिणीने देखा कि असमयमें ही चंपा अशोक आदिके सब फूल फूल गये हैं और भ्रमर कोकिल आदि जानवर वागमें मीठे मीठे शब्द बोल

पराभव ॥ १२६ ॥ अथात्र नारद कामचारिण नमसस्तलात् । आगच्छत निजस्थानं हरिसूनुरलोकत ॥ १२७ ॥ यथाविधि प्रतीक्षैनमभ्युत्थानपुरस्सरं । कृतसंभाषणस्तेन प्रणीतस्वप्रपंचकः ॥ १२८ ॥ सम्यक् श्रद्धाय तस्मै प्रद्योरेखिलागम । दृष्ट्वा स्वारिमिनस्तावद्बलं तं समरेशितु ॥ १२९ ॥ सहसावेष्टतेवार्कं प्रावृड्मोदजालकं । कालसंभवमुख्यं तत्स युध्वा भगमापयत् ॥ १३० ॥ तत्सूनुरुन्नयनात बोधयित्वा खगाधिप । अपनीय शिला नागपाशाश्रिता न् व्यपासयत् ॥ १३१ ॥ नारदागमहेतुं च ज्ञापयित्वा स विस्तरं । आपृच्छ्याथानुमतस्तेन रथं वृषभनामकं ॥ १३२ ॥ नारदेन समारुह्य प्रायद् द्वारवतीं प्रति । स्वपूर्वभवसंबन्धं श्रुत्वस्तेन निरूपित ॥ १३३ ॥ हास्तिनपुरं प्राप्य दुर्योधनमहीपतेः । जलधेश्च सुतां कन्या मान्यामुदधिमन्हया ॥ १३४ ॥ दातुं भानुकुमाराय तां महाभिषणोत्सवा । विधीयमान वीक्ष्यशिला रथे परनयविया ॥ १३५ ॥ नारद शिलयाच्छाद्य नरमादुत्तीर्य भूतल । बहुप्रकारान् हासाना तत्र कृत्वा ततो गतः ॥१३६॥ मथुराया बहिर्भागे पाण्डवान् स्वप्रिया सुता । प्रदित्सून् गच्छतो भानुकुमारायामितीक्ष्य मः ॥ १३७ ॥ समारोपित

विधिपूर्वक उनका आदर सत्कार किया। उनके साथ बात चीत की और नारदने अपना तथा प्रद्युम्नका सब हाल बतलाया ॥ १२८ ॥ उसे सुनकर और उसपर विश्वास कर प्रद्युम्न बहुत संतुष्ट हुआ और शत्रुकी सेनाके आनेकी प्रतीक्षा करता हुआ नारदके समीप बैठ गया। इतनेहीमें कालसंभव विद्याधर की सेनाने अकस्मात् आकर इसप्रकार घेर लिया मानों वर्षाऋतुके बादलने सूर्यको ही ढक लिया हो। कालसंभव आदि मुख्य २ योद्धा लडने लगे परंतु प्रद्युम्नसे सब हार गये ॥ १२९–१३० ॥ तदनंतर प्रद्युम्नने कालसंभव विद्याधरसे विद्युद्दंष्ट्र आदि सब भाइयोंके दुश्चरित्र सुनाए, शिलाको हटाकर सबको नागपाससे छुडाया और नारदके आनेका सब हाल सविस्तर समझाया। तदनंतर पिता कालसंभवकी आज्ञानुसार वह द्वारिकाको चलनेको तैयार हुआ और नारदके साथ वृषभ नामके रथपर सवार होकर द्वारिकाको निकला। नारद उसके पहिले भव कह रहे थे उन्हें सुनता हुआ वह राजा दुर्योधनके हस्तिनापुर नगरमें जा पहुंचा। वहांपर दुर्योधनकी जलधि नामकी रानीसे उत्पन्न हुई उदधि नामकी सुंदर कन्याको भानुकुमारको देनेकेलिये महाभिषेक और उत्सव हो रहा था। उसे देखकर उसने पूस्तर विद्यासे नारदको तो एक शिलासे रथपर ही ढक दिया और आप वहासे पृथ्वीपर उतरा। वहापर उन लोगोंकी अनेक तरहसे हंसी की और फिर वहांसे भी आगे चला ॥ १३१–१३६ ॥ चलते चलते वह मथुरा नगरके बाहर पहुंचा, वहांपर पांडव लोग प्रिय कन्याको भानुकुमारको देनेकेलिये जा रहे थे उन्हें देखकर वह उनके समीप आया उसने हाथमें धनुष लेकर भीलका रूप धारण किया और फिर अच्छी तरह कई प्रकार से उनका तिरस्कार किया वहांसे चलकर वह द्वारिका पहुंचा ॥ १३७–१३८ ॥ वहांपर पहिलेके अनुसार उसीप्रकार

तौ सम तस्मै वितेरतु: । कपनेन कपित्थाह्रिपस्यास पादुकाद्वय ॥ ११७ ॥ तेनानर्घ्यं नभोगामि देवतायास्तदाश्रित: । सुवर्णककुभे पंचफणाहिपतिनर्पिता॥ ११८ ॥ तपनस्तापनो मोहनाभिधानो विलापन । मारणश्चेति पचैतान् शरान् सप्राप्य पुण्यभाक् ॥ ११९ ॥ मौलिमौषधिमाला च छत्र चामरयुग्मक । दत्त क्षीरवने मर्कटेनास्मै परितोषिणा ॥ १२० ॥ कदवकमुखीवाप्या नागपाशमवाप्नुवान् । अस्य वृद्देरसोढार सर्वे-ते खगसूनव ॥ १२१॥ यः पाताल-मुखीवाप्या पतेत्स सकलेश्वरः । भवेदित्यवदन्कामोप्यवगम्य तदिंगित ॥ १२२ ॥ प्रज्ञप्तिं निजरूपेण तस्या वाप्यामपीपतत् । स्वय पार्श्वे तिरोधाय स्वरूप नयवित् स्थित ॥ १२३ ॥ महाशिलाभिस्तै सर्वैर्विधेय बधवात्मन । निदिला कोपसतप्तो विद्युद्दंष्ट्रादिविद्विष ॥ १२४ ॥ गाढ पाशेन बध्वाधोमुख न् प्रक्षिप्य तत्र स । कृत्वा शिलापिधान च प्रहित्य नगर प्रति ॥ १२५ ॥ ज्योति.प्रभ कनीयांस तेष्वाक्रम्य शिला स्थित । पापिनो हि स्वपापेन प्राप्नुवति

नीचे पहुंचा और उसे खूब हिलाया। उसपर एक देव रहता था उसने तुरंत ही आकर आकाशमें लेजाने वाली बहुमूल्य दो चरणपादुकाएं (खडाऊं) दी। वहांसे चलकर एक अर्जुनवृक्षके नीचे आया और वहांपर रहनेवाले पांच फणावाले नागपति देवसे तपन तापन मोहन विलापन और मारण ये कामके पांच बाण उस पुण्यवानको प्राप्त हुए ॥ ११२-११९ ॥ वहांसे चलकर वह प्रद्युम्न क्षीरवनमें गया वहांके मर्कट देवने संतुष्ट होकर मौलि, औषधिमाला, छत्र और दो चमर दिये ॥ १२० ॥ तदनंतर वह कदंबकमुखी बावडीमें गया और वहांके देवसे एक नागपाश प्राप्त किया। इसतरह प्रद्युम्नकी वृद्धि देखकर विद्युद्दंष्ट्र आदि सब विद्याधर दुःखी हुए और कहने लगे कि जो कोई इस पातालमुखी नामकी बावडीमें कूद पडेगा वह सब संसारका स्वामी हो जायगा। प्रद्युम्नने उनकी यह बात सुनकर उनके सब अभिप्राय जान लिये और प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको अपना रूप बनाकर उस बावडीमें कुदा दिया तथा उनका सब अभिप्राय जाननेके लिये नयोंको जानने वाला वह प्रद्युम्न समीप ही जाकर छिप रहा ॥ १२१–१२३ ॥ प्रज्ञप्तिविद्याके कूद पडने पर प्रद्युम्नको मारनेके लिये उन विद्युद्दंष्ट्र आदि विद्याधरोंने बडे बडे पत्थर मारना प्रारंभ किया, उनके इस कामको देख कर प्रद्युम्नको क्रोध आया और उन सबको नागपाशसे जकडकर बांध लिया, उन सबका नीचे को मुखकर उलटा टांग दिया और ऊपरसे एक बडी शिला ढाकदी। उन विद्याधरोंमेंसे ज्योतिप्रभ नामका सबसे छोटा पुत्र था उसे उसने समाचार देनेके लिये नगरमें भेज दिया और आप उस शिला पर बैठ गया सो ठीक ही है क्योंकि पापी लोग अपने पाप कर्मसे तिरस्कार पातेही हैं ॥ १२४–१२६ ॥ अथानंतर थोडीही देर बाद प्रद्युम्नने देखा कि अपनी इच्छानुसार विहार करते हुए नारद आकाशसे उतर कर अपनी ओर आ रहे हैं ॥ १२७ ॥ उनको देखतेही वह खडा हो गया और

ततो निर्गतवान् भूयस्तन्निर्देशाद्विशन् बिल ॥ १०७ ॥ वराहाग्रेरसाउग्रमापतंतं वराहक । करेणैकेन दंष्ट्रायां प्रकान्येनास्य मस्तकं ॥ १०८ ॥ प्रहस्य हे-
म्ना तस्थौ तस्य साध चेष्टित । समीक्ष्य देवत तस्मा रुक्मिणीप्रियसूनवे ॥ १०९ ॥ शंखं विजयघोषाख्यं महाजालमपि द्वयं । ददातिस्म सपुण्यानां क्वा-
लभो न जायते ॥ ११० ॥ तथा कालगुहायां च महाकालाख्यराक्षसात् । वृषभाख्यरथं रत्नकवचं प्राप निर्जितात् ॥ १११ ॥ विद्याधरेण केनापि वच-
र कोपि कीलितः । तरुद्वये स कामस्य दृष्टिगोचरमापतत् ॥ ११२ ॥ असह्यवेदनार्तस्य मोचकस्य च वीक्षणात् । इंगितज्ञो हरे: पुत्रोऽङ्गुलिकां बन्धमोचनी ॥
११३ ॥ खेटकस्या समादाय समभ्यर्च्य विलोचने । कृतोपकारसंप्राप्तस्माद्विद्यात्रय महत् ॥ ११४ ॥ सुरेंद्रजालजालातनरेंद्रप्रस्तरं च स: । पुन सहस्र
वक्त्रा दिभवने शङ्खपूरणात् ॥ ११५ ॥ बिलाभिर्मत्य नागश्च नागी च मकरध्वज । चित्रवर्णं धनुर्नंदकाख्यासिं कामरूपिणीं ॥ ११६ ॥ मुद्रिकां च प्रददौ

आए परंतु प्रद्युम्न दोनोंको रोककर खडा हो गया, यह देख कर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे मग-
रके आकारके दो दिव्य कुंडल दिये। तदनंतर वह वहांसे निकला और भाइयोंकी आज्ञानुसार वराह नामके बिलमें गया।
वहां पर एक देव वराहका (सूअरका) उग्र रूप धारण कर सामने आया परंतु प्रद्युम्नने एक हाथसे तो उसका दांत
पकड लिया और दूसरे हाथसे उसका मस्तक ठोंकता हुआ वह लीलापूर्वक खडा रहा। प्रद्युम्नकी इस असाधारण
चेष्टाको देखकर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और विजयघोष नामका शंख तथा महाजाल ये दो वस्तुएं उसे दीं सो
ठीक ही है क्योंकि पुण्यवान मनुष्योंको कहां लाभ नहीं होता अर्थात् उन्हें सब जगह लाभ होता ही है ॥ १०९–११० ॥
इसी तरह वह काल नामकी गुफामें गया वहां पर महाकाल नामके राक्षस देवको जीता और उससे वृषभ नामका रथ
और रत्नकवच ये वस्तुएं प्राप्त की ॥ १११ ॥ आगे चल कर दो वृक्षोंके बीचमें किसी विद्याधरको किसी
विद्याधरने किलित कर दिया था वह प्रद्युम्नको दिखाई दिया वह कीलित हुआ विद्याधर असह्य वेदनासे
दुःखी हो रहा था। यद्यपि उसके हाथमें बंधमोचनी अंगूठी थी परंतु वह कीलित था इसलिये कुछ कर न सका।
प्रद्युम्न उसको देखते ही उसके समीप गया, उसके इशारों को समझकर वह अंगूठी उसके हाथसे उतारी और उसके
नेत्रोंमें फेरकर उसे छुडा दिया। इसतरह अपना उपकार करने वाले प्रद्युम्नको उस विद्याधरने सुरेंद्रजाल, नरेंद्रजाल और
प्रस्तर ये तीन महा विद्याएं दी। तदनंतर वह प्रद्युम्न सहस्रवक्त्र नामके नागकुमारके भवनमें गया, वहांपर उसने शंख
बजाया उसे सुनकर नाग नागिनी दोनोंही बिलके बाहर आए, प्रद्युम्नको देखकर वे दोनोंही बहुत प्रसन्न हुए और उन्हों
ने उसे चित्रवर्ण नामका धनुष, नंदक नामकी तलवार और कामरूपिणी अंगूठी दी। वहांसे चलकर एक कैथके इसके

॥ ९७ ॥ किं प्रत्येयमिदं नेति तक्वेनार्थेन च श्रुतं । तच्च वक्तुं परीक्ष्यं तत् समीक्ष्यापूर्वकारिभिः ॥ ९८ ॥ भिया स्नेहेन लोभेन मात्सर्येण क्षुधा ह्रिया । किमबोधेन बोधेन परेषां प्रेरणेन वा ॥ ९९ ॥ वक्तीत्येवं निमित्तानि परीक्ष्याणि सुमेधसा । एवं प्रवर्तमानोऽयं विद्वान् विद्वत्सु वेद्यते ॥ १०० ॥ का स्त्रीत्वभावदुष्टेत दुष्टा कष्टमयं च तत् । दुष्टविद्वद्दुर्विद्याभिः संमोमुहीति मत् ॥१०१॥ तदैव तं पञ्चशताः विहर्तुं ते वनं गताः । अग्निकुण्डं प्रदर्श्यास्य पंतंस्मिन्नभीरवः ॥ १०२ ॥ इत्याहुः सोपि तच्छ्रुत्वा न्यपतत्तत्र निर्भयः । विचारयन्ति धीमान्तं न कार्यं दैवचोदितः ॥ १०३ ॥ देवतैर्नोत्र निवासिन्या प्रतिगृह्यापि पूजितः । कनकाम्बरभूषादिदानेनास्माद्विनिर्ययौ ॥ १०४ ॥ तस्माद्विस्मयमापन्ना गत्वा तेऽन्यत्र तं पुनः । प्रोत्साह्यमेष भूभर्तेर्मिध्य प्रावेशयन् बलात् ॥ १०५ ॥ पर्वतौ मेषरूपेण पतंतौ भुजशालिन । तन्निरुध्य स्थितं दृष्ट्वा तुष्टा तद्भूतदेवता ॥ १०६ ॥ तस्मै दिव्ये ददौ रत्नकुण्डले मकराङ्किते ।

ज्ञानसे वक्ताकी परीक्षा करनी चाहिये । क्योंकि जाननेवाले चतुर पुरुषको देखना चाहिये कि यह बात इसमें संभव हो सकती है या नहीं, उसके आचरणोंसे उसकी परीक्षा करनी चाहिये तथा जिस उद्देश्यसे तथा जिसको उद्देश मानकर जो वचन कहे गये हैं वे विश्वास करने योग्य हैं अथवा नहीं है इसकी शब्द और अर्थ दोनोंसे परीक्षा करनी चाहिये । तथा जो कुछ कहा जाय उसकी भी विचारवालोंको परीक्षा करनी चाहिये बुद्धिमानको यह भी देखना चाहिये कि यह स्त्री भयसे कह रही है वा स्नेहसे, लोभसे कह रही है अथवा ईर्ष्यासे, भूखसे कह रही है अथवा लज्जासे, जानबूझ कर कह रही है वा बिना जाने अथवा किसी दूसरेकी प्रेरणासे कह रही है इन सब कारणोंकी परीक्षा करनी चाहिये जो बुद्धिमान इस प्रकार चलता है वह विद्वानोंमें भी विद्वान् गिना जाता है ॥ ९९–१०० ॥ दुःख है कि स्त्री स्वभाव होनेके कारण दुष्ट स्त्रियां यह नहीं समझतीं कि दुष्ट और शिष्टके संबंध होने पर दुष्ट पुरुष ही मोहित होते हैं शिष्ट नहीं ॥१०१॥ तदनंतर वे विद्युद्दंष्ट्र आदि पांचसौ पुत्र प्रद्युम्नको उत्साहित कर विहार करनेके लिये वनमें ले गये और एक अग्निकुंडको दिखाकर कहने लगे कि जो कोई इसमें कूद पडेगा वह सबसे निर्भय गिना जायगा । भाइयोंकी यह बात सुनकर वह प्रद्युम्न भी निर्भय होकर उसमें कूद पडा सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यसे प्रेरित हुए बुद्धिमान लोग किसी कामको सोचते नहीं हैं ॥ १०२–१०३ ॥ उस कुंडमें कूदते ही वहांकी रहनेवाली देवीने उसका आदर सत्कार किया और सुवर्णके आभूषण वस्त्र आदि देकर उसकी पूजा की इस तरह वह वहांसे निकला ॥ १०४ ॥ उसे देखकर विद्युद्दंष्ट्र आदिको बहुत आश्चर्य हुआ तथा वे दुष्ट फिर उसे उत्साहित कर दूसरी जगह ले गये और उसे विजयार्द्ध पर्वतके किसी बिलेमें घुसा दिया ॥ १०५ ॥ वहां पर भुजाओंमें बल रखनेवाले प्रद्युम्नके ऊपर मेंढेका रूप धारण कर दो पर्वत

तस्यो वाममार्गस्वाद् दुःफलत्वाद् ध्रुवं क्षति ॥ ८८ ॥ चालयंति स्थिरामृज्वीं नयति विपरीततां । छादयति मतिं दीप्तां स्त्रियो वा दोषविक्रिया ॥ ८९ ॥ तदैव तोषो रोषश्च पापिनीनां प्रियान् प्रति । न हेतुस्तत्र कोप्यन्यो लाभालाभद्वयाद्विना ॥ ९० ॥ अकार्यमवशिष्टं यत्तस्तीह कुयोषितां । मुक्त्वा पुत्राभिलाषित्वमेतदप्येतयाकृत ॥ ९१ ॥ योषित्सुव्रतशीलादिसत्क्रियाश्चाप्नुवति चेत् । न शुद्धिं ताः स्वपर्यंत कथं नायांत्वसत्क्रियाः ॥ ९२ ॥ आपो वांभोजपत्रेषु चित्त तासां न केषु चित् । स्थायु तिष्ठदपि स्पृष्ट्वाप्यस्पृष्टवदद पृथक् ॥ ९३ ॥ सर्वदोषमयो भावो दुर्लक्ष्य. सर्वयोषितां । दु साध्यश्च महामोहाद्वहोसौ संन्निपातवत् ॥ ९४ ॥ कक किं वक्ति केनेति विचार्यं कार्यकारिणा । ऐहिकामुत्रिकार्येषु ततोय नैति वचनां ॥ ९५ ॥ प्रम णवचन. किं वा नेति वक्ता परीक्ष्यता । विदुषा तस्य वृत्त परिज्ञानेन च स्फुटं ॥ ९६ ॥ एतस्मिन् सभवेदेतत्रवेति नयवेदिना । तदाचारैः परीक्ष्य प्राक् यमुद्दिश्य वच स च

उसे मारनेके लिये वहांसे निकले ॥ ८५–८७ ॥ देखो—जिसप्रकार हिंसाको प्रधान माननेवाले शास्त्र व आप्तसे हानि पहुंचती है अथवा नीतिरहित राज्यसे हानि पहुंचती है और कुमार्गमें लगे हुए तपश्चरणसे हानि पहुंचती है उसी प्रकार बुरी स्त्रियोंसे अवश्य हानि पहुंचती है ॥ ८८ ॥ दोषोंके विकारोंसे भरी हुई स्त्रियां स्थिरको चला सकती हैं सीधीको उलटी कर देती हैं और देदीप्यमान बुद्धिको भी ढक देती है ॥ ८९ ॥ ये पापिनीएं अपने अपने पतियों पर उसी समय तो संतुष्ट हो जाती हैं और फिर उसी समय क्रोध करने लग जाती हैं। उनके ऐसा करनेमें लाभ वा हानि इन दो के सिवाय अन्य कुछ भी कारण नहीं है ॥ ९० ॥ संसारमें जो कुछ अकार्य वाकी है वह भी दुष्ट स्त्रियोंके लिये वाकी नहीं है हा पुत्रके साथ कामसेवनकी इच्छा करना उनके लिये भी वाकी है अर्थात् दुष्टसे दुष्ट स्त्री भी पुत्रके साथ कामसेवनकी इच्छा नहीं करती परंतु कंचनमालाने यह इच्छा भी कर डाली ॥ ९१ ॥ यदि स्त्रियां व्रतशील आदि सत्क्रियाओंको भी करने लगें तो भी ये शुद्ध नहीं होतीं इस लिये वे अधिकसे अधिक असत् क्रियाओंको किस तरह प्राप्त न हों ॥९२॥ जिस प्रकार जल कमलपत्रको स्पर्श करता हुआ भी उसपर निश्चल ठहरता नहीं उसी प्रकार स्त्रियोंका मन भी कहीं पर निश्चल नहीं ठहरता, वह स्पर्श न किये हुएके समान सदा अलग ही रहता है ॥ ९३ ॥ सब स्त्रियोंके सब तरहके दोषोंसे भरे हुए भाव सदा दुर्लक्ष्य (छिपे हुए) होते हैं अर्थात् ये किसीके देखनेमें नहीं आते और सन्निपातके समान ये कष्टसाध्य होते हैं तथा महामोहसे सदा भरे रहते हैं ॥ ९४ ॥ यह किससे क्या कहती हैं और क्यों कहती हैं इसका विचार कार्य करनेवालेको अवश्य करना चाहिये। जो ऐसा विचार करता है वह इसलोक और परलोकके किसी भी काममें ठगा नहीं जाता ॥ ९५ ॥ यह वचन प्रमाण है अथवा नहीं है इसकेलिये विद्वान् पुरुषको उसके आचरण और

प्रकाशयंत्या स्वांतस्थं भाव पापपरीतया । कुमार तुभ्यं मद्देया गृहाण विधिपूर्वक ॥ ७७ ॥ प्रज्ञप्तिविद्य मित्युक्तस्तया मायामयेहया । सोपि मातस्तथैवाहं करिष्यामीति पंमद त् ॥ ७८ ॥ आदाय धीमास्ता विद्यां सिद्धकूटमुपागमत् । कृत्वा तत्र नमस्कारं चारणौ मुनिपुंगवौ ॥ ७९ ॥ श्रित्वा श्रुत्वा ततो धर्मं ज्ञात्वा विद्याप्रसाधने । हेतु तदुपदेशेन संजयंत समाश्रय ॥ ८० ॥ आकर्ण्य तत्पुराण च तदर्चापादसंश्रयात् । विद्यां संसाध्य संज तस्मद पुरम गमत् ८१ दृष्ट्वा द्विगुणिताकारशोभत कामकातरा । प्रार्थयंती बहूपायैरनिच्छन्त महामति ॥ ८२ ॥ पुरुषव्रतसंपन्नमिति द्वेषादवूबुधत् । कुमार सहव सस्य योग्यो नाय कुचेष्टित ॥ ८३ ॥ जानाम्यनभिजात वमस्येति खचराधिपं । विचारविकल सोपि तदुक्त मत्प्रतीतवान् ॥ ८४ ॥ विद्युद्दंष्ट्रादिक न् पंच शतानि तनुजान् मिथ । आहूय देवदत्तोय दोष्युपाशु वधोचित ॥ ८५ ॥ तत. केनाप्युपायेन भवद्भि कियता व्यसु । इत्याह खचराधिशलब्धाज्ञास्तेपि कोपिनः ॥ ८६ ॥ स्वयं प्रागपि त हंतुं कृतमंत्राः परस्परं । तथेति प्रतिपद्यातो निर्गयुस्तच्चिकीर्षव ॥ ८७ ॥ हिंसाप्रधानशास्त्रात्त द्राज्य द्वा नयवर्जितात् ।

माला किसी एक दिन कामसे विकल होगई । जन्मांतरके स्नेहसे वह अनेक विकार करने लगी, पापोंसे घिरकर अपने हृदयके भाव प्रकाशित करने लगी और हृदयमें मायामयी इच्छा रखकर कहने लगी कि हे कुमार ! मैं तुझे विधिपूर्वक प्रज्ञप्ति नामकी विद्यादेती हूं उसे तू स्वीकार कर । माताकी यह बात सुनकर कुमारने कह दिया कि हे माता जैसा आप कहेंगी वैसाही करूंगा । इस तरह आनंदित होकर उस बुद्धिमानने वह विद्याली और विद्या लेकर सिद्धकूट चैत्यालयपर गया । वहांपर भगवानको नमस्कारकर दो चारण मुनियोंकी वंदनाकी, उनसे धर्मका स्वरूप सुना, उनके उपदेशसे संजयंतके आश्रयसे विद्या सिद्ध होगी यह बात भी जानी और उनका (संजयंतका) पुराण भी सुना तदनंतर श्रीसंजयंत मुनिकी प्रतिमाके चरणकमलोंका आश्रय लेकर विद्या सिद्धकी और फिर बडी प्रसन्नताके साथ वह नगरमें आया ॥७५—८१ ॥ विद्या सिद्ध होनेसे कुमारकी शोभा दूनी होगई उसे देखकर कामसे कातर हुई कांचनमाला अनेक उपायोंसे प्रार्थना करने लगी परंतु उस महा बुद्धिमान प्रद्युम्नने उसकी कभी इच्छा न की । तब उसे मालूम हुआ कि इसके पुरुषव्रत अर्थात् स्वदार संतोष व्रत है तब वह द्वेषसे राजासे कहने लगी कि यह कुमार कुचेष्टी है इसलिये हमलोगोंके साथ रहने योग्य नहीं है मैं इसे किसी नीचकुलका समझती हूं । रानीकी यह बात सुनकर विचारशून्य राजाने भी उसकी बातपर विश्वास कर लिया ॥ ८२—८४ ॥ तथा विद्युद्दंष्ट्र आदि अपने पांचसौ पुत्रोंको बुलाकर आज्ञा दी कि यह देवदत्त दुष्ट है इसलिये किसी एकांत जगहमें मारने योग्य है अतएव तुमलोग किसी भी उपायसे इसे मार डालो इसतरह राजाकी आज्ञा पाकर वे कुमार बहुतही क्रोधित हुए वे परस्पर उसके मारनेकी सलाह कर चुके थे इसलिये राजाकी आज्ञा पाकर

द्वियोगाद्वगाच्छुच । पृथक् तद्वल्लतायोगेन वज्रपरिताडन ॥ ६५ ॥ जलाशयस्तृषार्तस्य केकिनो जलदागमः । यथा तथास्य संतृप्त्यै संनिधिर्नारदोऽभवत् ६६
स स्वबालवृत्तांतं हरिरुक्त्वाभ्यधाविद । त्वया केनाप्युपायेन क्वापि सोन्विष्यतामिति ॥ ६७ ॥ नारदस्तत्समाकर्ण्य शृणु पूर्वविदेहजे । नगरे पुंडरीकि-
ण्यां मया तीर्थकृतो गिरा ॥६८॥ स्वयंप्रभस्य ज्ञातानि वार्ता बालस्य पृच्छता । भवांतराणि तद्वृद्धिस्थानलाभो महानपि ॥६९॥ सह योगो युवाभ्यां च
तस्य षोडशवत्सरैः । इत्यसौ वासुदेवं च रुक्मिणीं च यथाश्रुतं ॥ ७० ॥ प्रबोधयत्तयोस्तस्मात्सुरसेनानृलोकयो । प्रादुर्भावाद्दिनस्येव प्रमोदः परमोऽभवत्
॥ ७१ ॥ क्रमेण कृतपुण्योऽसौ तत्र संपूर्णयौवन । कदाचिदाज्ञया राज्ञः प्रद्युम्नः सबलो बली ॥ ७२ ॥ गत्वा द्विपोग्निराजस्य विक्रमादुपरि स्वयं । नि.प्र-
ताप विधायैनं युद्धे जित्वार्पयत्पितु ॥ ७३ ॥ तदा दृष्टावदानस्य प्रद्युम्नस्य खगाधिपः । परार्ध्यवस्तुदानेन महतीं माननां व्यधात् ॥ ७४ ॥ अवतीर्णमिव
स्वर्गाद्यौवनैकविभूषणं । भुवं कदाचित्तद्रूपमाहार्यैर्भ्राजितमास्वरं ॥ ७५ ॥ अवलोक्य स्मराक्रांतबुध्या कांचनमालया । जन्मांतरगतस्नेहकृतादेहविकारया ७६

लतापर वज्र पडनेसे भस्म हो जाता है उसी प्रकार रुक्मिणीके साथ साथ कृष्णको भी पुत्रके वियोगसे बहुत शोक हुआ ॥
६५ ॥ जिसप्रकार प्याससे दुखी मनुष्यको तालाब मिल जाता है अथवा चातकको बादल मिल जाते हैं उसीप्रकार कृष्ण
को संतुष्ट करनेके लिये उनके समीप नारद आ पहुंचे ॥ ६६ ॥ आते ही कृष्णने उनसे अपने पुत्रहरणका सब वृतांत
कहा और कहा कि आप किसी भी उपायसे कहीं भी उसे ढूंढे ॥ ६७ ॥ कृष्णकी यह बात सुनकर नारद कहने लगे
कि सुनो—पूर्व विदेहक्षेत्रकी पुंडरीकिणी नगरीमें स्वयंप्रभ तीर्थकरसे मैंने उस बालककी सब बात पूछी थी और अपने
प्रश्नके उत्तरमें उनकी वाणीसे मैंने उसके पहिले भवभी जान लिये हैं वह अच्छी तरह बढेगा उसे बहुतसे लाभ होंगे
और सोलह वर्ष बाद तुम दोनोंसे आ मिलेगा । इस प्रकार नारदने जैसा सुना था वैसा ही कृष्ण और रुक्मिणीको क-
हकर समझाया । जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे देवोंकी सेना और मनुष्य लोक दोनोंमें परम आनंद होता है उसी प्र-
कार नारदकी बात सुननेसे कृष्ण और रुक्मिणीको बहुत ही आनंद हुआ ॥ ६८–७१ ॥ इधर प्रद्युम्न (देवदत्त) अप-
ने पुण्योदयसे बढता हुआ पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त होगया। किसी एक दिन अग्निराज नामका कालसंभवका शत्रु स्वयं
कालसंभवपर चढ आया था इसलिये राजा कालसंभवकी आज्ञासे बलवान् देवदत्तने अपनी सेना लेकर उसे प्रतापरहित
किया और युद्धमें उसे जीतकर पिताको समर्पण किया ॥ ७२–७३ ॥ उससमय विद्याधर कालसंभवने बहुतसी बहुमूल्य
वस्तु देकर शूरवीरता दिखलानेवाले प्रद्युम्नका बहुतही आदर सत्कार किया ॥ ७४ ॥ यौवनरूपी एक आभूषणको धारण
करनेवाले, योग्यतासे अत्यंत देदीप्यमान और स्वर्गसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुएके समान प्रद्युम्नके रूपको देखकर कांचन-

स्तादमु गत: ॥ ५३ ॥ तदैव विजयार्द्धाद्रिदक्षिणश्रेणिभूषणे । विषये मृगवत्याख्ये मेघकूटपुराधिपः ॥ ५४ ॥ कालसंभवविद्याधरेश: कांचनमालया । सह जैनेश्वरीरर्चा प्रियया प्रार्चितं प्रयान् ॥ ५५ ॥ महाशिलाखिलांगातिचलनं वीक्ष्य विस्मयात् । समतात् वीक्षमाणोमी दृष्ट्वा बालं ज्वलत्प्रभं ॥५६॥ प्राक्तोयं न केनापि कोपात्प्राग्जन्मवैरिणा । निक्षिप्तः पापिनामुष्मिन् पश्य बालाकमप्रकर ॥ ५७ ॥ तस्मात्तवास्तु पुत्रोयं गृहाणामुं मनोरमे । इत्याहोवाच स प्यस्मै यौवराज्य ददासि चेत् ॥ ५८ ॥ गृहीष्यामीति तेनापि प्रतिपद्य तथास्त्विति । तत्कर्णागतसौवर्णपत्रेणारचि पट्टकः ॥ ५९ ॥ तौ त बाल समादाम पुरमाविष्कृतोत्सव । प्रविश्य देवदत्ताख्यं व्यधातां विधिपूर्वक ।६०॥ तद्बाललालनालीलाविलासैर्हृष्टचेतसोः । तयोर्गच्छति निर्व्याज काले सुसुखभोगिनोः ॥ ६१ ॥ इत: सुतवियोगेन रुक्मिणी शोकवन्हिना । दह्यमाना स्थलाभोजवल्लीव नववन्हिना ॥ ६२ ॥ संपत्तिर्वा चरित्रस्य दयाभावविवर्जिता । कार्याकार्यविचारेषु मदमदेव शेमुषी ॥ ६३ ॥ मेघमालेव कालेन निर्गलज्जलसंचया । नाबभासे गतप्राणे सा भवेत् वा प्रभा तनो ॥ ६४ ॥ तथैव वासुदेवोपि त-

लगा । देखते देखते उसने शिलाके नीचे दैदीप्यमान क्रांतिवाले पुत्रको देखा ॥ ५४--५६ ॥ तब वह राजा उस पुत्रको उठा कर अपनी रानीसे कहने लगा कि हे प्रिये! यह बालक स्वाभाविक रीतिसे शिलाके नीचे नहीं आया है किंतु पहिले जन्मके किसी पापी शत्रुने यहां लाकर रख दिया है। हे प्रिये! देख यह बालक उगते हुए सूर्यके समान दैदीप्यमान है। इस लिये हे सुंदरी! यह तेरा ही पुत्र हो तू ही इसे स्वीकार कर। इसके उत्तरमें रानीने कहा कि हे नाथ! यदि आप इसे युवराज पद दें तो मैं स्वीकार कर सकती हूं। यह सुनकर राजा कालसंभवने भी यह बात स्वीकार करली और ऐसा ही हो इसतरह कहकर रानीके कानमें पहने हुए सुवर्ण पत्र पर ही शिलालेख लिख दिया ॥ ५७--५९ ॥ तदनंतर वे दोनों राजा रानी उस बालकको लेकर बडे उत्सवके साथ नगरमें पहुंचे और विधिपूर्वक उस बालकका नाम देवदत्त रक्खा ॥ ६० ॥ उस बालकके लालन पालनकी लीलाके विलासोंसे जिनका चित्त प्रसन्न हो रहा है और जो सदा सुखका अनुभव कर रहे हैं ऐसे उन दोनों राजा रानियोका समय विना किसी उपद्रवके बडी शांततासे व्यतीत होने लगा॥ ६१ ॥ इधर जिसप्रकार दावानल अग्निसे स्थलकमलकी बेल जल जाती है उसीप्रकार रुक्मिणी पुत्रके वियोगके कारण शोकरूपी अग्निसे जलने लगी ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार चरित्रहीनकी संपत्ति दयाभावोंसे रहित होती है और अत्यंत मंद बुद्धि कार्य अकार्यके विचारमें कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार वह चेष्टा और विचाररहित होगई। समयानुसार जिससे सब जलका समूह निकलजाता है ऐसी मेघमालाके समान शोभाहीन होगई और प्राणोंके निकलजानेपर शरीरकी प्रभा जैसी सुशोभित नहीं होती उसी प्रकार वह भी प्रभाहीन होगई ॥६३--६४॥ जिसप्रकार लतासे भिन्न होनेपर भी वृक्ष

इयातकनकाह्वय । पार्श्वे द्विजटिसंज्ञस्य तापसान्नमाप्तदे ॥ ४२ ॥ मधुक्रीडवयोरेवं काले गच्छत्यथान्यदा । सम्यगाकर्ण्य सद्धर्मं मधुर्विमलवाहनात् ॥४३॥
गर्हणं खदुराचारे कृत्वा क्रीडावसंयुत । संयम समवाप्यांते संश्रित्याराधनाविधिं ॥ ४४ ॥ अन्वभूत्स महाशुक्रस्याधिपत्यं सहानुजः । स्वायुरंते ततश्च्यु
त्वा स्वावशेषशुभोदयात् ॥ ४५ ॥ सुखस्वप्नपूर्वक ज्येष्ठा रुक्मिण्यामभवत्सुतः । दुराचारार्जितं पापं सच्चरित्रेण नश्यति ॥ ४६ ॥ द्वितीयेऽहनि तद्बालसंचितोप्रा
यसन्निभ' । देवो ज्योतिर्गणे जातो धूमकेतुममाह्वय ॥ ४७ ॥ गच्छन् यदृच्छया व्योम्नि विहर्तुं वातरंहसा । विमाने स्वे धृते वान्यैः प्रद्युम्नस्योपरि स्थिते
॥ ४८ ॥ चरमांगस्य केनेद कृतमित्युपयुक्तवान् । विभंगाद तमनः शत्रुं ज्ञात्वा प्राक्तनजन्मनि ॥ ४९ ॥ रथांतकनकस्याय दर्पाद्दारान् समाहरत् । तत्फल
प्रापयाम्येनमिति वैराग्निनाज्वलन् ॥ ५० ॥ विधाय स महानिद्रामत.पुरनिवासिनां । तमुद्धृत्याब्दमार्गेण दूरं नीत्वा यथा चिरं ॥ ५१ ॥ अनुभूय मह
द्दुःख कुर्यात्प्राणविमोचन । करिष्यामि तथेत्यस्य पुण्येनैव प्रचोदितः ॥ ५२ ॥ अवरुह्य नभोभागाद्वने खदिरनामनि । शिलायास्तक्षकाख्याया क्षित्वा

मधुका जीव शुभ स्वप्नपूर्वक रुक्मिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि दुराचारसे उत्पन्न हुए पाप भी उत्तम चा
रित्रसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३--४६ ॥ इधर कनकरथका जीव मिथ्या तपश्चरण कर धूमकेतु नामका ज्योतिषी देव हुआ
था और इच्छानुसार आकाश मार्गसे विहार करनेके लिये निकला था उसके विमानको दूसरे देव चला रहे थे अक-
स्मात् चलते चलते वह विमान चरम शरीर प्रद्युम्नके ऊपर पहुंच कर रुक गया उसे रुका जानकर उस बालकके इकट्ठे
हुए पापोंके समान वह देव विचार करने लगा कि यह मेरा विमान किसने रोका है ? सोचते ही विभंगावधिसे उसने
जान लिया कि यह मेरे पहिले जन्मका शत्रु है । मैं पहिले जब कनकरथ था तब इसने अपने अभिमानसे मेरी स्त्री हर
ली थी इसलिये अब मैं इसे उसका फल चखाऊंगा इस तरह शत्रुतारूपी अग्निसे वह जलने लगा ॥ ४७--५० ॥ उस
ने अपनी शक्तिसे अंतःपुरके रहनेवाले सबलोगोंको महानिद्रासे निद्रित कर दिया और फिर उस बालकको उठा कर
आकाश मार्गसे ले गया । फिर वह देव सोचने लगा कि कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे यह बालक बहुत देर
तक दुख भोगता हुआ प्राण छोडे यही सोचता हुआ मानो उस बालकके पुण्यसे प्रेरित होकर ही वह देव खदिर नामके
वनमें आकाशसे नीचे उतरा और तक्षक नामकी शिलाके नीचे उस बालकको रख कर अपने स्थानको चला गया ॥५१-
५३ ॥ दैवयोगसे उसी समय विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके मृगावती नामके सुंदर देशके मेघकूट नगरके विद्या-
धरोंका राजा कालसंभव अपनी रानी कांचनमालाके साथ भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करनेके लिये वहीं होकर जा रहा
था वहां पर वह उस सब शिलाको हिलती हुई देखकर आश्चर्य करनेलगा और इधर उधर शिलाके चारो ओर देखने

मृत: ॥ ३० ॥ रत्नप्रभाविले सर्पावर्तेनाम्नि ततोजनि । मातंग काकजघाख्य सोमदेवोभवत्पिता ॥ ३१ ॥ मातामिला च तत्रैव आयतेस्म शुनी गृहे । इहेत्याकर्ण्य तत्प्रोक्त तेन तौ परिबोधितौ ॥ ३२ ॥ संप्राप्तोपशम भावं संन्यस्य विधिना मृत । काकजघोऽभवन्नंदीश्वरद्वीपे निधीश्वर ॥ ३३ ॥ तत्पुरा-धीश्वगरिंदमाख्यभूभृत्पते सुता । श्रीमत्याश्च शुनी सुप्रबुद्ध्याख्याजायत प्रिया ॥ ३४ ॥ संपूर्णयौवना याती सा स्वयंवरमडप । यक्षेण बोधिता दीक्षामि-ताप्य प्रियदर्शनां ॥ ३५ ॥ जीवितातेऽभवद्देवी मणिचूलेति रूपिणी । सौधर्म विपते पूर्णभद्रस्तदनुजोपि च ॥ ३६ ॥ सप्तस्थानगता ख्यातश्रावकौ तौ दृढव्रतौ । प्रांते सामानिकौ देवौ जातौ सौधर्मनामनि ॥ ३७ ॥ द्विसागरो म तीतौ द्वीपेत्र कुरुजांगले । हस्तिनाख्यपुराधीशस्याईद्दासमहीपतेः ॥ ३८ ॥ काश्यपायाश्च पुत्रौ तौ मधुक्रीडावनामकौ । समभूतां त ो राजा राजत युवराजते ॥ ३९ ॥ विधाय विमलां प्रापद्विमलप्रभशिष्यतां । कठोतामलका-ख्यस्य पुरस्येश: कदाचन ॥ ४० ॥ रथांतकनकाख्यस्य समायातस्य सेवितु । कांता कनकमालाख्या समीक्ष्य मदनातुर ॥ ४१ ॥ स्वीचकार मधु शोका-

देव हुआ ॥ ३३ ॥ इसीतरह उस कुत्तीका जीव उसी साकेत नगरके राजा अरिंदमकी रानी श्रीमतीसे सुप्रबुद्धया नाम-नामकी प्यारी पुत्री हुई ॥ ३४ ॥ पूर्ण यौवन अवस्था प्राप्त होने पर वह पति ढूंढनेके लिये स्वयंवर मंडपमें गई। परंतु वहां पर उसे उसके पहिले जन्मके पतिके जीव व्यंतर देवने आकर समझाया जिससे उसने प्रियदर्शना अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३५ ॥ आयुके अंतमें वह सौधर्म इंद्रकी मणिचूला नामकी वडी रूपवती देवी हुई। इधर पूर्णभद्र और मणिभद्र दोनों भाइयोंने वडी दृढतासे श्रावकके व्रत पालन किये सातों धर्मक्षेत्रोंमें धन खर्च किया और अंतमें आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर सामानिक जातिके देव हुए। वहांकी आयु पूरीकर इसी जंबू द्वीपके कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगरके राजा अर्हद्दास रानी काश्यपाके मधु और क्रीडाव नामके दोनों पुत्र हुए किसी एक दिन राजा अर्हद्दास मधुको राज्य और क्रीडावको युवराज पद देकर विमलप्रभ मुनिका निर्मल (शुद्ध वा उत्तम) शिष्य हो गया। किसी एक दिन अमलकंठ नगरका राजा कनकरथ अपनी कनकमाला नामकी रानीको सेवन करनेके लिये वनमें आया था। उस समय उस कनकमालाको देखकर राजा मधु कामसे विकल होगया और उसे अपने घर ले आया। इससे राजा कनकरथको वहुत शोक हुआ और उसने द्विजटी नामके तापसीके समीप जाकर तपसियोंके व्रत धारण कर लिये ॥ ३६-४२ ॥ इधर मधु और कीडाव इन दोनों भाइयोंका समय वडे सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक दिन राजा मधुने विमलवाहन मुनिके समीप धर्मका स्वरूप सुना, अपने दुराचारकी निंदा की और अपने छोटे भाईके साथ महाशुक्र नागके स्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ। वहांकी आयु पूरी कर बाकी बचे हुए पुण्यकर्मके उदयसे वह

वंत- स्वीकरिष्यंति भवेन्मोक्षोनयोरिति ॥ १९ ॥ तेपि भीतास्तथा वाढ करिष्याम इति द्रुत । मुनीन् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य विधिपूर्वक ॥ २० ॥ मिथ्या प्रत्ययपर्यंत धर्म श्रावकपालित । ततस्तस्तभनापाये सति तैस्त दुरीरिता ॥ २१ ॥ विरंतम्यमितो धर्मादस्मादेतोह्यसिताद् । इति नात्मात्तसन्मार्ग बेलद्रुः काललब्धित ॥ २२ ॥ तेन संक्रुध्य ते ताभ्यां मृत्वा पापवि गावतः । अभ्राम्यत्कुगतीर्दीर्घं तौ च ब्राह्मणपुत्रकौ ॥ २३ ॥ समतौ जीवितस्यांते कल्पे सौधर्मनामनि । पंचपल्योपमायुष्कौ जातौ पारिषदाविमौ ॥ २४ ॥ तत्रानुभूय सद्भोगान् द्वीपेस्मिन्कौशले पुरे । साकेतेरिंजयो राजा सशौर्योभूदरिंजयन् ॥ २५ ॥ तत्राहद्दासवाक् श्रेष्ठी वप्रश्रीस्तन्मन प्रिया । अग्निभूतिस्तयोः पूर्णभद्रोन्यो मणिभद्रकः ॥ २६ ॥ सुतौ समुदभूता तावन्येद्यु स महीपतिः । सिद्धार्थवनमध्यस्थमहद्गुरुसन्निधिं ॥ २७ ॥ बहुभिः सह सप्राप्य श्रुत्वा धर्म विशुद्धधीः । अरिंदमे समारोप्य राज्यभारं भरक्षमे ॥ २८ ॥ अर्हद्दास सादिभिः सार्द्धं संयमं प्रत्यपद्यत । तत्रैव पूर्णभद्रेण प्राक्तन मद्गुरुद्वय ॥ २९ ॥ क्वाथ वर्तत इत्येतत्परिपृष्टो मुनिर्जगौ । जिनधर्मविरुद्धत्वात् कृतपापो भवन्-

इधर उन दोनों ब्राह्मण पुत्रोंने व्रत धारणकर आयु पूरी की और मरकर सौधर्म स्वर्गमें पांच पल्यकी आयु पाकर परिषद जातिके उत्तम देव हुए ॥ २०—२४ ॥ वहांपर उन्होंने अनेक उत्तम भोगोंका अनुभव किया तथा वहांकी आयु पूरीकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके साकेत नगरमें शेठ अर्हद्दासकी स्त्री वप्रश्रीसे दोनों पुत्र उत्पन्न हुए । अग्निभूतिका जीव पूर्णभद्र हुआ और वायुभूतिका जीव मणिभद्र नामका छोटा पुत्र हुआ । उससमय उस साकेत नगरमें शत्रुओंको जीतनेवाला शूरवीर अरिंजय नामका राजा राज्य करता था किसी एक दिन उसी साकेत नगरके सिद्धार्थ वनमें महेंद्र नामके मुनिराज पधारे थे । यह समाचार सुनकर राजा अरिंजय अनेक लोगोंके साथ उनके दर्शन करनेकेलिये गया । शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले उस राजाने वहांपर धर्मका स्वरूप सुना और राज्यके भारको धारण करनेमें समर्थ ऐसे अरिंदम नामके अपने पुत्रको राज्यका भार सोंपकर अर्हद्दास आदि अनेक भव्य जीवोंके साथ संयम धारण कर लिया । उसीसमय अर्हद्दासके पुत्र पूर्णभद्रने उन मुनिराजसे पूछा कि मेरे पहिले जन्मके माता पिता आज कहां है ? तब मुनिराज कहने लगे कि तेरे पिता सोमदेवने जिनधर्मसे विरुद्ध होकर बहुतसा पाप किया इसलिये रत्नप्रभा नामकी पहिली भूमिके (पहिले नरकके) सर्पावर्त नामके बिलेमे नारकी हुआ और फिर वहांसे निकल कर काकजंघ नामका इसी नगरमें चांडाल हुआ है ॥ २५—३१ ॥ इसी तरह तेरी माता अग्निलाका जीव उसी चांडालके घर कुत्ती हुई है इस प्रकार मुनिराज की बात सुन कर पूर्णभद्रने उन दोनों माता पिताके जीवोंको जाकर समझाया ॥ ३२ ॥ पूर्णभद्रके समझानेसे उन दोनोंके परिणाम शांत हो गये उन्होंने अंतमें संन्यासपूर्वक मरण किया और काकजंघका जीव नंदीश्वर द्वीपमें कुबेर नामका व्यंतर

रिथतिं । कृतोपहासौ स्वं ग्रामं गच्छंतावथितुं मत ॥ ९ ॥ ग्रामांतरात्समायातं मुनिमालोक्य सत्यकं । तत्समीपमहंकारप्रेरितावुपगम्य तं ॥ १० ॥ नाम्नयासो नामभो नैव पदार्थो नाम केवल । किं क्लिश्नासि वृथोन्मार्गमूढो दृष्टविनाशिनि॥ ११॥इत्यभ्यक्षिपतां सोपि जिनवक्त्रविनिर्गतं । विवक्षितेतरानेकस्वरूपात्समाश्रय ॥ १२ ॥ अथातत्त्वं यथादृष्ट कथयंतं सुहेतुक । स्याद्वादमविरुद्ध गौतमरप्रणेतु प्रमाणतां ॥ १३ ॥ प्रसाध्याद्दष्टमागेपि तदुक्तागमसुस्थितिं । निरूप्य वादकंडूतिमपनीय दुरात्मनोः ॥ १४ ॥ तयोर्जयध्वज प्रापद्विद्वज्जनसमर्पित । तौ मानभगसंभूतक्रोधौ निशि सितायुधौ ॥ १५ ॥ परेद्यु. पापकर्माणो विजने शुद्धचेतसं । प्रतिमायोगमापन्न सत्यकं मुनिपुगव ॥ १६ ॥ शस्त्रेणाहतुमुद्युक्तावन्यायोयमिति क्रुधा । द्विजौ सुवर्णयक्षेण स्तंभितौ कीलिताविव ॥ १७ ॥ तदा शरणमायातास्तन्मातृपितृबांधवाः । मुनीनामाकुलीभूय यक्षस्त नवदत्सुधी ॥ १८ ॥ हिंसाधर्मं परित्यज्य यदि जैनेश्वरं मत । भ-

कथन करनेवाले स्याद्वादका आश्रय लेकर उन तत्त्वोंको कहनेवाले अथवा स्याद्वादको कहनेवाले आप्तको प्रमाण सिद्ध किया तथा परोक्षप्रमाणमें भी उन्हींके कहे हुए आगमको अच्छी तरह प्रमाण ठहराया और इसतरह उन दुष्टोंकी वाद करनेकी खुजली दूरकी ॥ ९–१४ ॥ इसके सिवाय उन्होंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे अनेक विद्वानोंके द्वारा समर्पणकी हुई जयध्वजा प्राप्तकी । वे दोनों ही ब्राह्मण मानभंग होनेसे बहुतही क्रोधित हुए और पापकर्म करनेवाले वे दोनोंही दूसरे ही दिन रातमें तलवार लेकर निकले । मार्गमें किसी निर्जनवनमें शुद्धचित्तवाले और प्रतिमा योगधारण किये हुए वे ही मुनिराज सत्यक विराजमान थे उन्हें शस्त्रसे मारनेके लिये वे दोनों ही ब्राह्मण तैयार होगये यह देखकर और यह अन्याय होता है ऐसा समझकर सुवर्ण यक्षने क्रोधमें आकर उन दोनों ब्राह्मणोंको कीलित हुएके समान स्तंभित कर दिया ॥ १५–१७ ॥ यह देखकर उनके माता पिता भाई आदि लोग व्याकुल होकर मुनियोंके शरण गये तब बुद्धिमान यक्ष उनसे कहने लगा कि यदि तुमलोग अपने हिंसा धर्मको छोडकर श्रीजिनराजके धर्मको स्वीकार करोगे तो ये दोनों भाई छूट सकते हैं ॥ १८–१९ ॥ यक्षकी ये बातें सुनकर वे सब कुटुंबी लोग डरकर कहने लगे कि अच्छा हमें स्वीकार है यह कहकर उन्होंने विधिपूर्वक मुनियोंकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया झूठ मूठही श्रावकोंके पालन करने योग्य धर्मको धारण कर लिया । जब वे दोनों भाई छूट आए तब उनके माता पिता और कुटंबियो ने उनसे कहा कि अब तुम इस जैन धर्मको छोड दो क्योंकि यह तो केवल तुम्हारे छुडानेकेलिये पालन किया गया था । इतना सब कुछ कहने सुननेपर भी काललब्धिके प्राप्त होनेसे उन दोनों भाइयोंने वह स्वीकार किया हुआ सन्मार्ग नहीं छोडा जिससे उनके माता पिता आदि बहुत ही क्रोधित हुए तथा मरकर पाप कर्मके उदयसे उन्होंने बहुतसी कुगतियोंमें परिभ्रमण किया ।

अथ द्वासप्ततितमं पर्व ।

अथ तज्ज्ञातपूर्वं च जगत्त्रयसमाबनौ । प्रकाशयितुकामेन बलदेवेन धीमता ॥ १ ॥ प्रद्युम्नसंभवोत्पत्तिसंबंधं पृच्छयते स सः । वरदत्तगणेन्द्रोनुस्मृत्युर्य्येत्थमब्रवीत ॥ २ ॥ द्वीपेस्मिन् मगधे देशे शालिग्रामनिवासिनः । द्विजस्य सोमदेवस्य भार्याभूदग्निलाख्यया ॥ ३ ॥ अग्निभूतिरभूत्सूनुर्वायुभूतिस्तयोरनु । तावन्येद्यु पुरे नदिवर्द्धनाख्ये मनोहरे ॥ ४ ॥ नंदाननंदिघोषाख्ये वने मुनिमपश्यतां । नदिवर्द्धननामानं मुनिं संघविभूषणं ॥ ५ ॥ दुष्टावुपगतौ दृष्ट्वा तौ मुनींद्रोब्रवीन्मुनीन् । विसंवदितुमायातावेतौ मिथ्यादृष्टिनौ ॥ ६ ॥ भवद्भिः कश्चिदप्याभ्यां न कार्या सह सकथा । एतन्निबधतो भूयानुपसर्गो भविष्यति ॥ ७ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुशासनकारिण । मौनव्रतेन सर्वेपि स्थिता सयमिनस्तदा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तावेत्य सर्वेषां मूकीभूय अव-

अथ बहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर—तीनों लोकोंके सभाभवनमें अर्थात् समवसरणमें अपने पहिले भव जानकर बुद्धिमान बलभद्रने सबको प्रगट करनेके लिये प्रद्युम्नके उत्पन्न होनेका संबंध पूछा तव वरदत्त गणधर कृपाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ १-२ ॥ इसी जंबूद्वीपके मगधदेशमें शालि नामके गांवमें रहनेवाले सोमदेव ब्राह्मणकी स्त्रीका नाम अग्निला था उसके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र थे। किसी एक दिन ये दोनों ही भाई नंदिवर्द्धन नामके सुंदर नगरमें गये तथा वहांके नंदा नंदिघोषाख्य नामके वनमें उन्होंने सब मुनिराजोंके संघसे सुशोभित नंदिवर्द्धन नामके मुनिराजको देखा ॥ ३-५ ॥ मुनिराज नंदिवर्द्धनने उन दोनों दुष्टोंको आते हुये देखकर सब मुनिराजोंको आज्ञा दी कि ये दोनों मिथ्यादृष्टी तुम लोगोंसे विवाद करनेकेलिये आए हैं परंतु तुममेंसे कोई भी इनके साथ किसी तरहकी बात चीत नहीं करना, अन्यथा इनके संबंधसे भारी उपसर्ग होगा ॥ ६-७ ॥ शासन करनेवाले आचार्यके ये वचन सुनकर उसीसमय सब मुनि मौनव्रत लेकर बैठ गये ॥ ८ ॥ वे दोनों ही ब्राह्मण सब मुनियोंको मौनी देखकर उनकी हंसी करने लगे और लौटकर अपने गांवको जाने लगे। उन मुनियोंमेंसे एक सत्यक नामके मुनि आहार करनेके लिये दूसरे गांव गये थे और वे आहारकर लौट रहे थे, उन्हें देखकर वे दोनोंही ब्राह्मण अहंकारमें आकर उनके समीप पहुंचे और आक्षेप करने लगे कि इस संसारमें न तो कोई आप्त है न आगम है और न कोई पदार्थ ही है, हे मूर्ख तू पुण्यपापको नाश करनेवाले इस मिथ्यामार्गमें व्यर्थ ही, क्यों क्लेश पा रहा है। ब्राह्मणोंकी ये बातें सुनकर उन मुनिराजने भगवान् अरहंतदेवके मुखसे निकले हुए, विवक्षित ऐसे अनेक स्वरूपरूप धर्मोंका आश्रय करनेवाले तथा द्रव्य और तत्त्वोंको सर्वज्ञके देखे अनुसार अच्छे अच्छे हेतुओंसे

उ०पु० ८८ ८२

भक्षण कृत्वेति दृढव्रता । वनेचर कदाचित्स प्र मोवस्कंदघातिमि ॥ ४४८ ॥ विलोपितस्तदा पद्मदेवी सिंहग्यान्द्भयात् । नीला मह ट ीं सर्वे जन
क्षुत्परिपीडिता ॥ ४ ९ ॥ क्रियवलीफलन्य शु भक्षयित्वा मृतिं ययु । ग्रनभागमय तानि सा विहाय हनोविना ॥ ४५० ॥ मृत्व हैमवते भूत्वा जीविनाते
ततश्च्युता । द्वीपे स्वयंप्रभे जाता देवी सद्य स्वयंप्रभा ॥ ४५१ ॥ स्वयंप्रभाख्यदेवस्य ततो निर्गत्य सा पुन । द्वीपेस्मिन्भरते क्षेत्रे जयतपरभूते:
श्रीधरस्य सुता भूत्वा श्रीमत्यां सुदराकृति । विमलश्रीरभूत्पत्नी भद्रिलाख्यपुरेशिन ॥ ४५२ ॥ नृपस्य मेघन दस्य समीप्सितसुखप्रदा । राज्ञिधर्ममुने-
स्त्यक्त्वा राज्य प्रव्रज्य शुद्धधी: ॥ ४५३ ॥ ज नो व्रतधरस्तस्मिन् महस्रारपतौ सति । अष्टादश समुद्र युर्माजि भासुरदीधितिः ॥ ४५५ ॥ सापि
पद्मावती क्षांति संप्राप्यादाय संयमं । आचाम्लवर्द्धमान च समुपोष्यायुषोवधौ ॥ ४५६ ॥ तत्रैव कल्पे देवीत्व प्रतिपद्य निजायुष । प्रांतेरिष्टपुराधीश-
श्रीमत्या तनयाजनि ॥ ४५७ ॥ हिरण्यवर्मण पद्म वनीत्येषा स्वयंवरे । संभाव्य संसृतस्नेहा भर्तारं रत्नमालया ॥ ४५८ ॥ शीलावहा महादेवीपद
प्रापदिति स्फुट । तास्तिस्रोपि स्वजन्मानि श्रुत्वा मुदमयुर्हरे ॥ ४५९ ॥ इत्युर्वैगणनायको गुणनिधि प्रस्पष्टमिष्टाक्षरैः साक्षात्कृत्य भवावलीविलसितं
व्याववर्णयभिर्णयं । सा त्वाकर्ण्य चिरं सुख सुखमयी स्वेष्टाष्टदेवीकथां संतुष्टिं स मुरारिरार सुतरां प्रांते प्रवृत्तिप्रदा ॥ ४६० ॥ देव्योपि दिव्यवचन
मुनिपुंगवस्य, भगावहं बहुभवार्जितमाहसां तत् । कृत्वा हृदि प्रमुदिता: पृथुशर्मसारे धर्मेर्हतो हिततमे स्वमतिं प्रतेनुः ॥ ४६१ ॥ नहि हितमिह
किंचिद्धर्ममेक विहाय, व्यवसितमसुमद्भ्यो धिग्विमुग्धातमवृत्त । इति विहितवितर्का सर्वसभ्याश्च धर्मं, समुपययुरपापा: स्वामिना नेमिनोक्त ॥ ४६२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे नेमिचरिते भवांतरव्यावर्णन नाम एकसप्ततितम पर्व ॥ ७१ ॥

आचाम्लवर्द्धमान व्रतके उपवास करने लगी आयुके अंतमें वह उसी सहस्रार स्वर्गमें देवी हुई। वहांकी आयु पूरी कर अरिष्टपुर नगरके राजा हिरण्यवर्माकी रानी श्रीमतीसे यह पद्मावती पुत्री हुई है। इसने संसारके स्नेहसे स्वयंवरमें वरमाला डाल कर तुझे ही स्वीकार किया और फिर महाशीलको धारण करनेवाली इसने महादेवीका पद प्राप्त किया इस प्रकार तीनों ही रानियां अपने पूर्वभव सुन कर प्रसन्न हुई और उन्होंने कृष्णको भी प्रसन्न किया ॥ ५६–५९ ॥ इस प्रकार गुणोंके खजाने श्रीगणधरदेवने अत्यंत स्पष्ट और मीठे अक्षरोंसे पूर्व भवोंका संबंध सब स्पष्ट कर दिखाया तथा सबका निर्णय कह सुनाया। श्रीकृष्ण भी अपनी प्यारी आठों देवियोंकी सुख दुखमयी कथा सुनकर आने आप अंतमें प्रवृत्ति करने वाला संतोष धारण करने लगे ॥ ४६० ॥ वे देवियां भी अनेक जन्मके कमाए हुए अपने पापोंके नाश करनेवाले उन गणधर देवके दिव्य वचनोंको हृदयमें धारण कर बहुत ही प्रसन्न हुई तथा उन्होंने महाकल्याण और अत्यंत हित करने वाले भगवान अरहंत देवके धर्ममें अपनी बुद्धि लगाई ॥ ४६१ ॥ इस संसारमें एकधर्मको छोडकर जीवोंका और कुछ कल्याण करनेवाला नहीं है। धर्म रहित जो मूर्ख जीवोंका चरित्र है उसे बार बार धिक्कार हो। इस प्रकार तर्क वितर्क करते हुए सब धर्मात्मा सभासदोंने श्रीनेमिनाथ स्वामीका कहा हुआ धर्म स्वीकार किया।

इस प्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यविरचित श्रीमहापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नेमिनाथके चरित्रकथनमें भवांतरोंका कहनेवाला यह इकहत्तरिवां पर्व पूर्ण हुआ ॥ ७१ ॥

निर्मीप्य महाशुक्रेऽभवत्सुरी ॥ ४३८ ॥ चिरात्ततो विनिर्गत्य वीतशोकपुरेशिनः । महीशो मेरुचंद्रस्य चन्द्रवत्यामजायत ॥ ४३९ ॥ गौरीति रूपलावण्य-कालाधीनामसौ स्व ने । विजयाख्यपुराधीशो विभुविजयनंदनः ॥ ४४० ॥ त्वत्सत्वस्तुभ्यमानीय तामदत्त त्वयापि सा । पट्टेन योजितेत्याख्यत्ततो हरि-रगान्मुद ॥ ३४१ ॥ तत पद्मावतीजन्मसम्बन्ध गणनायक । गुणानामाकरोऽवादीदित्थ जनमनोहरं ॥ ४४२ ॥ अस्मिन्नेवोज्जयन्याख्यनगरीनाथको नृपः । विजयस्तस्य विक्रांतिरिव देव्यपराजिता ॥ ४४३ ॥ विजयश्री सुता तस्या हस्तशीर्षपुरेशिन । हरिषेणस्य देव्यासीद्दत्वादानमसौ मुदा ॥ ४४४ ॥ समा-धिगुप्तयोगीशे भूत्वा हैमवते चिरं । भुक्त्वा भोगान् भवप्रांते जाता चंद्रस्य रोहिणी ॥ ४४० ॥ पल्योपमायुष साते विषये मगध मिधे । वसत शाल्मलिग्रामे पद्मदेवी सुताजनि ॥ ४४६ ॥ सती विजयदेवस्य देविलायां कदाचन । वरधर्मयते संनिधाने सा व्रतमग्रहीत् ॥ ४४७ ॥ अविज्ञातफला-

देव लोगोंके लिये मनोहर ऐसा पद्मावतीके पहिले भवका संबंध इस प्रकार कहने लगे ॥ ४४२ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें उज्जयनी नगरीके राजा विजयके विक्रांतिके समान अपराजिता नामकी देवी थी उसके विजयश्री नामकी पुत्री थी वह विजयश्री हस्तशीर्षपुर नगरके राजा हरिषेणको व्याही गई थी। उसने वडी प्रसन्नतासे समाधिगुप्त नामके मुनिराजको आहार दान दिया था इसलिये आयु पूरी कर हैमवत क्षेत्रकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। बहुत दिन तक वहाके सुखोंका अनुभव कर चंद्रमाके रोहिणी नामकी देवी हुई। वहां पर एक पल्यकी आयु पूरी कर मगधदेशके शाल्मलि ग्राममें विजय देवकी देविला स्त्रीसे पद्मदेवी नामकी सती पुत्री हुई। किसी एक समय उसने वरधर्म मुनिके समीप जाकर अजानफलोंके खानेका त्याग रूप व्रत धारण किया। अपने व्रत पालन करनेमें वह दृढ वनी रही। किसी एक समय भीलोंने वह गांव आकर लूट लिया और नष्ट कर दिया इस लिये सिंहरथके डरसे सब लोग पद्मदेवीको लेकर वनमें चले गये। सबलोगों को भूख लगी इस लिये सबलोग विषफल खा खा कर मर गये। परंतु पद्मदेवी उन्हें जानती नहीं थी इसलिये अजान-फल समझ कर उसने छुए तक नहीं और विना ही भोजनके प्राण छोड कर हैमवतक्षेत्रकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। वहां से चयकर स्वयंप्रभ द्वीपमें स्वयंप्रभ देवकी स्वयंप्रभा देवी हुई। वहांसे चयकर वह इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें जयंतपुर नग-रके राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके सुंदर आकारवाली विमलश्री नामकी पुत्री हुई। वह भद्रिल नगरके राजा मेघनादको व्याही गई थी और उन्हें इच्छानुसार सुख देती थी। किसी एक समय शुद्ध बुद्धिवाले राजा मेघनादने अपना सब राज्य छोड कर धर्ममुनिके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली तथा तपश्चरण कर अंतमें सहस्रार स्वर्गमें अठारह सागरकी आ-यु पाकर दैदीप्यमान इंद्र हुआ तथा उसके वाद ही वह विमलश्री रानी भी पद्मावती अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर

तदुक्तानतरं प्रेमवशः संनद्धमन्यक ॥ ४२७ ॥ युद्धे भंगं व्यधायेंद्रगिरिश्चान्यमहीभुजां । आदाय तां महादेवीपदश्चैवं त्वया कृतः ॥ ४२८ ॥ अथ गौरी-भव चैव वदामि शृणु माधव । अस्ति द्वीपेऽत्र विख्यात पुरं नागपुरं ॥ ४२९ ॥ पालकस्तस्य हेमाभो देवी तस्य यशस्वती । सान्येद्युश्चारण दृष्ट्वा यशोधरमुनीश्वरं ॥ ४३० ॥ स्मृतपूर्वभवा राज्ञा पृष्टं प्रत्यभाषत । स्वभवं दशनोद्दीप्त्या स्नापयंती मनोरम ॥ ४३१ ॥ धातकीखंडप्राग्मंदरापरस्थविदेहग । नाम्ना शोकपुरं तत्र वास्तव्यो वणिजांवरः ॥ ४३२ ॥ आनंदस्तस्य भार्याया जाता नंदयशा श्रुति । दत्वा त्वमितसागराय तनुस्थितिं ॥ ४३३ ॥ आश्चर्यपंचक प्राप्य तत्पुण्याज्जीवित व्ययौ । उदक्कुरुषु संभूय भुक्त्वा तत्र सुखं ततः ॥ ४३४ ॥ भूत्वा भवनवासींद्रभार्यें स्मीति समदात् । ततः कदाचित्सिद्धार्थवने सागरसंज्ञकं ॥ ४३५ ॥ गुरुमाश्रित्य संभावितोपवासा भवव्ययौ । देवी जातादिमे कल्पे तत्र निर्वर्तितस्थिति ॥ ४३६ ॥ द्वीपेस्मिन्नेव कौशांब्यां सुमतिश्रेष्ठिनोभवत् । सुभद्राया सुता धार्मिकी ते सशब्दिता जने ॥ ४३७ ॥ पुनर्जिनमतिक्षांतिदत्ता जिनगुणादिका । संपत्ति म धु

नामका राजा राज्य करता था उसकी रानीका नाम यशस्वती था। किसी एक दिन यशोधर नामके चारण मुनिराजको देखकर उसे पहिले भवोंका स्मरण हो आया। राजाके पूछने पर वह अपने दातोंकी कांतिसे अपने पतिको स्नान कराती हुई इस प्रकार अपने पूर्व भव कहने लगी ॥ ४२९–४३१ ॥ धातकी खंडमें पूर्व मंदराचल संबंधी पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अशोकपुर नामका एक नगर था उसमें आनंद नामका एक वैश्यपति (उत्तम वैश्य) रहता था उसकी स्त्रीसे उसके एक आनंदयशा नामकी पुत्री थी। किसी एक दिन उसके घर अमितसागर नामके मुनिराज पधारे उन्हें आनंदयशाने आहार दिया इसलिये पुण्यकर्मके उदयसे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। आयु पूरी होने पर वह उदक् कुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। वहांके सुख भोग कर भवनवासी इंद्रकी इंद्राणी हुई और वहांसे चयकर यहां आ उत्पन्न हुई हूं। यह सब हाल सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। तदनंतर किसी एक दिन उसने सागर नामके मुनिराजके समीप जाकर उपवास धारण किये। आयुके अंतमें वह पहिले स्वर्गमें देवी हुई। वहां की आयु पूरी कर इसी जंबूद्वीपकी कोशांबी नगरीमें सुमति नामके शेठकी स्त्री सुभद्रासे धार्मिकी नामकी पुत्री हुई ॥ ४३३–४३७ ॥ वहां पर उसने जिनमति नामकी अर्जिकाके दिये हुए जिनगुण संपत्ति नामके व्रतका अच्छी तरह पालन किया और आयुके अंतमें महाशुक्र स्वर्गमें देवी हुई ॥ ४३८ ॥ बहुत दिन बाद वहांसे निकल कर बीतशोक नगरके राजा मेरुचंद्रकी रानी चंद्रावतीके रूप लावण्य और कांति आदि गुणोंकी खानि यह गौरी हुई है। तुझ पर प्रेम रखनेवाले विजयपुर नगरके राजा विजयनंदने लाकर तुझे दी और तेने भी इसे पट्टरानी बनाया। यह सुनकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४४०–४४१ ॥ तदनंतर–गुणोंकी खानि ऐसे गणधर

इह जम्बूमति द्वीपे विषयोस्ति सुकोशलः । तत्रायोध्यापुराधीशो रुद्रनाम्नो मनोरमा ॥ ४१६ ॥ विनयश्रीरिति ख्याता सिद्धार्थं स्ववनेन्यदा । बुद्धार्थमुनये दत्त्वदाना स्वायु परिक्षये ॥ ४१७ ॥ उदक्कुरुषु निर्विष्टभोगा तस्मात्परिच्युता । हरोश्चंद्रवती देवी भूत्वाऽनोप्यायुरोवधौ ॥ ४१८ ॥ द्वीपेत्र खगभूभर्तुरपाक्श्रेण्या खगेशिन । विद्युद्वेगस्य सद्दीते पुरे गगनवल्लभे ॥ ४१९ ॥ सुरूपाख्या सुता विद्युद्वेगायामजनिष्ट सा । नित्यालोकपुराधीशो ऽस्य विक्रमशालिने ॥ ४२० ॥ महेंद्रविक्रमायैषा दत्त्वन्येद्युर्मेरुदुगिरे । तौ गतौ चैत्यगेहेषु जिनपूजार्थमुत्सुकौ ॥ ४२१ ॥ विनीतचारणस्येंदुच्युतं धर्ममिव मृत । पीत्वा श्रवणयुग्मेन परां तृप्तिमथापतु ॥ ४२२ ॥ तयोर्नरपतिर्दीक्षामादात्तचारणातिके । सुभद्रापादनाश्रय सापि संयममाददे ॥ ४२३ ॥ सौधर्मकल्पे देवीत्वमुपागम्योपभवित । स्वायु पल्योपमप्राते कत्वानिष्क्रम्य तद्गते. । गांधारविषये पुष्कलावतीनगरेशितु । तुरस्येंद्रगिरेर्मेरुमत्याश्च तनयाभवत् ॥ ४२५ ॥ गांधारील्याख्यया ख्याता प्रदातुर्मिशुपाय तां । पितु पापमति श्रुत्वा प्राप्तं नारदस्तदा ॥ ४२६ ॥ सद्यस्त्वमेत्य तत्कर्मन्यादत्त्वा हृदयप्रिय ।

आहार दान दिया । अंतमें आयु पूरी होने पर उदक् कुरुकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई । वहां से चय कर चंद्रमाकी चंद्रवती देवी हुई । वहां की आयु पूरी कर इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके गगनवल्लभ नगरके विद्याधरोंके प्रतापी राजा विद्युद्वेगकी रानी विद्युद्वेगासे सुरूपा नामकी पुत्री हुई । वह अत्यंत विद्यावान् और पराक्रमी ऐसे नित्यालोक नगरके राजा महेंद्रविक्रमको व्याही गई । किसी एक दिन वे दोनोंही दंपती बडे उत्कंठित होकर चैत्यालयोंमें जिनपूजा करनेकेलिये सुमेरु पर्वतपर गये ॥ ४१६–४२१ ॥ वहां पर विराजमान किसी चरणमुनिरूपी चंद्रमासे निकला हुआ धर्मरूपी अमृतका पान किया और उसे सुनकर वे दोनोंही वहुत संतुष्ट हुये ॥ ४२२ ॥ उन दोनोंमेंसे राजा महेन्द्र विक्रमने तो उन्हीं चारणमुनिसे दीक्षा धारण कर ली और रानी सुरूपाने सुभद्रा नामकी अर्जिकाके समीप जाकर संयम धारण कर लिया ॥ ४२३ ॥ आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें एक पल्यकी आयु पाकर देवी हुई आयुके अंतमें वहांसे भी च्युत हो कर गंधार देशमें पुष्कलावती नगरके इंद्रगिरि की रानी मेरुमतीसे यह गांधारी नामकी पुत्री हुई है । राजा इंद्रगिरि इसे अपने वूआके लडकेको देना चाहता था परंतु यह वात संसारको अप्रिय और पाप बुद्धिवाले नारदने सुनी । सुन कर शीघ्रही वह तेरे समीप आया और तुझसे सब वात कह सुनाई । सुनते ही तू भी प्रेमके वश होगया और सेना सजा कर इंद्रगिरिसे युद्ध किया । युद्धमें राजा चंद्रगिरि तथा अन्य अनेक राजाओंको जीतकर गांधारीको ले आया और फिर इसे पट्टरानीका पद दिया ॥ ४२४–४२८ ॥ यह कह कर गणधर देव फिर कहने लगे कि हे कृष्ण अब मैं गौरीके भव कहता हूं तू सुन ! इसी जंबूद्वीपमें नागपुर नामका एक प्रसिद्ध नगर है । उसमें पुरुवंशियोंकी रक्षा करनेवाला हेमप्रभ

पुलिंदी संजाता सान्येद्युर्नदिवर्द्धने। मुनिं चारणमाश्रित्य गृहीतोपासकव्रता ॥ ४०३ ॥ मृत्वा जाताष्टमे कल्पे नर्तकींद्रस्य हृत्प्रिया। अवतीर्य ततो द्वीपे भरतेस्मिन् खगाचले ॥ ४०४ ॥ खगेशो दक्षिणश्रेण्या जाता चंद्रपुरेशिन। महेंद्रस्य सुतानुंधर्याश्च नेत्रमनोहरा ॥ ४०५ ॥ मालांतकनका सिद्धविद्याख्याते स्वयंवरे। मालया स्वीचकारासौ कुमारं हरिवाहनं ॥ ४०६ ॥ अन्येद्यु सिद्धकूटस्थगुरु यमधराह्वय। समुपेत्य समाकर्ण्य स्वभवांतरसतंतिं ॥ ४०७॥ मुक्तावलीमुपोष्यासीत् तृतीयेंद्रमनःप्रिया। नवपल्योपमायुष्का कालांतसा ततश्च्युता ॥ ४०८ ॥ सुप्रकारपुराधीशशवराख्यमहीपते। श्रीमत्याश्च सुतासीस्त्व श्रीपद्मध्रुवसेनयो ॥ ४०९ ॥ कनीयसी गुणज्येष्ठा लक्ष्मणा सर्वलक्षणा। ता त्वा पवनवेगाख्यखेचरः कमलोदरं ॥ ४१० ॥ समुपेत्य रथांगेशवायुमार्गस्य निर्मला। लसती चंद्रलेखेव तव योग्या खगेशिनः ॥ ४११ ॥ तनूजा लक्ष्मणा कामोद्दीपिनीति जगाद स.। तद्वचःश्रवणानंतरं त्वमेवानयेति तं ॥ ४१२ प्रेषयामास कंसारि सोपि गत्वाविलंबित। तत्पित्रोरनुमित्या त्वमर्पयामास चक्रिणे ॥ ४१३ ॥ तेनापि पट्टबंधेन त्वमेवमसि मानिता। इति श्रुत्वा स्वजन्मांतरावली सागमन्मुद ॥ ४१४ ॥ गांधारीगौरीपद्मावतीनां जन्मांतरावलिं। गणेंद्रो वासुदेवेन पृष्टोऽस्माविलभाषत ॥ ४१५ ॥

माहेंद्रकी रानी अनुंधरीके नेत्रोंको प्यारी कनकमाला नामकी पुत्री हुई और सिद्धविद्य नामके स्वयंवरमें उसने [redacted] डालकर कुमार हरिवाहनको अपना पति बनाया ॥ ४०४–४०६ ॥ किसी एक दिन वह सिद्धकूटपर विराजमान यमधर नामके गुरुके समीप गई और अपने पहिले भव सुनकर मुक्तावली व्रतका उपवास करने लगी आयु पूरी होनेपर तीसरे स्वर्गमें इंद्रकी इंद्रानी हुई नौ पल्यकी आयु पूरीकर वहांसे च्युत हुई और सुप्रकार नगरके राजाके राजा शंबर रानी श्रीमतीके तू पुत्री हुई है। तू श्रीपद्म और ध्रुवसेनकी छोटी बहिन है परंतु गुणोंमें सबसे बडी है। तू सब लक्षणोंसे पूरी है इसीलिये लक्ष्मणा तेरा नाम है। किसी एक दिन पवनवेग नामका विद्याधर कृष्णके समीप जाकर कहने लगा कि हे चक्रवर्ती! शंवरके एक लक्ष्मणा नामकी पुत्री है जोकि आकाशमें चंद्रमाकी रेखाके समान सुशोभित है। वह कामको उद्दीपित करनेवाली है और आपके ही योग्य है पवनवेगकी यह बात सुनकर कृष्णने उसे ही भेजा और कहा कि तू ही उसे ले आ। कृष्णकी यह आज्ञा पाकर पवनवेग शीघ्र ही गया और माता पिताके साथ उसे लेआया तथा चक्रवर्तीको समर्पण कर दी ॥ ४०७-४१३ ॥ कृष्णने भी तुझे पट्टरानी बना कर तेरा सन्मान किया। इस तरह अपने भव सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ ४१४ ॥ तदनंतर कृष्णने गांधारी गौरी और पद्मावतीके पहिले भव पूछे तब गणधरदेव भी इस प्रकार कहने लगे ॥ ४१५ ॥ इसी जंबूद्वीपके सुकोशल देशके अयोध्या नगरमें रुद्रनामका राजा राज्य करता था। उसकी विनयश्री नामकी मनोहर रानी थी। किसी एक दिन वह सिद्धार्थ बनमें गई। वहां पर उसने एक बुद्धार्थ नामके मुनिराजको

आना सुता सुधीः ॥ ३९० ॥ कदाचिद्धर्मसेनाख्य मुनिं संश्रित्य सद्व्रता । मासोपवासिने तस्मै दत्त्वा कायस्य संस्थितिं ॥ ३९१ ॥ सा कदाचिद्वने रंतु गता वर्षभयाद् गुहां । प्रविष्टाजगरागीर्णा हरिवर्षतनु श्रिता ॥ ३९२ ॥ निर्विश्य तद्गतान् भोगान् नागी जाता ततश्च्युता । च्युता ततो विदेहेस्मिन् पुष्कलावत्युदीरिते ॥ ३९३ ॥ विषये पुंडरीकिण्यामशोकाख्यमहीपतेः । सोमश्रियश्च श्रीकांता सुता भूत्वा कदाचन ॥ ३९४ ॥ जिनदत्तार्यिकोपाते दीक्षामादाय सुव्रता । तपस्यती चिरं घोरमुपोष्य कनकावलीं ॥ ३९५ ॥ माहेंद्रे दिविजी भूत्वा भोगान् दिव्यान् दिवौकसां । स्वायुरंते ततश्च्युत्वा सुज्येष्ठाया सुताऽभव ॥ ३९६ ॥ सुराष्ट्रवर्द्धनाख्यस्य नृपस्य त्व सुलक्षणा । हरेर्देवी प्रमोदेन वर्द्धसे वल्लभा सती ॥ ३९७ ॥ स्वभवांतरसंबधमाकर्ण्यैषाप समदं । को न गच्छति सतोषमुत्तरोत्तरवृद्धित ॥ ३९८ ॥ लक्ष्मणापि मुनिं नत्वा शुश्रूषु स्वभवानभूत् । अभाषतैवमेतस्याश्चिकीर्षु सोप्यनुग्रह ॥ ३९९ ॥ इह पूर्वविदेहेस्ति विषयः पुष्कलावती । तत्रारिष्टपुराधीशो वासवस्य महीपते. ॥ ४०० ॥ वसुमत्यामभूत्सूनुः सुषेणाख्यो गुणाकरः । केनचिज्जातनिर्वेगो वासवो निकटेग्रहीत् ॥ ४०१ ॥ दीक्षां सागरसेनस्य तत्प्रिया सुतमोहिता । गेहवास परित्यक्तुमसमर्था कुचेष्टया ॥ ४०२ ॥ मृत्वा

देहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरीके राजा अशोक रानी सोमश्रीके श्रीकांता नामकी पुत्री हुई। किसी एक दिन जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप उसने दीक्षा धारण की, अच्छे अच्छे व्रतोंका पालन किया, और कनकावली नामके व्रतके वहुत दिनतक घोर उपवास किये ॥ ३९२–३९५ ॥ आयुके अंतमें चौथे महेंद्र स्वर्गमें देवी हुई, वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर आयु पूरी होनेपर च्युत हुई और सुराष्ट्रवर्द्धन राजाकी रानी ज्येष्ठाके अच्छे लक्षणोंवाली तू पुत्री हुई है। तथा कृष्णकी सती और प्यारी पट्टरानी होकर आनंदसे दिन विता रही है ॥ ३९६–३९७ ॥ इसतरह सुसीमा अपने भवोंका संबंध सुनकर वहुत प्रसन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होनेसे भला कोन संतुष्ट नहीं होता है ॥ ३९८ ॥ तदनंतर लक्ष्मणा भी मुनिको नमस्कारकर अपने भव सुननेकी इच्छा करने लगी। तव वे मुनिराज भी उपकार करनेकी इच्छासे इसप्रकार कहने लगे ॥ ३९९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके अरिष्ट नगरके राजा वासवकी रानी वसुमतीके सुषेण नामका एक गुणवान पुत्र हुआ था। किसी कारणसे राजा वासवसेनने तो मुनिराज सागरसेनके निकट दीक्षा धारण करली परंतु उसकी रानी वसुमती पुत्रके प्रेमसे घरका निवास छोड न सकी इसलिये कुचेष्टासे मरकर म्लेच्छिनी हुई। किसी एकदिन नंदिवर्द्धन नामके चारण मुनिराजके समीप जाकर उसने श्रावकके व्रत धारण किये ॥ ४००–४०३ ॥ आयु पूरी होनेपर वह आठवें स्वर्गमें इंद्रकी प्यारी नृत्यकारिणी हुई। वहांसे चयकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें चंद्रपुर नगरके विद्याधरोंके राजा

द्रे साधयेति ते ॥ ३७९ ॥ दत्वा तत्साधनोपायमभिधाय गतो दिवं । स क्षीरसागरं गत्वा तत्र द्विशयने स्थितः ॥ ३८० ॥ साधयामास मासांस्ते च-
तुरो विधिपूर्वकं । सिंहाहिविरिवाहिन्यौ विद्ये इलिहरी गतौ ॥ ३८१ ॥ आरभ्य जावकं युद्धे विजित्यादाय तत्सुतां । महादेवीपदे प्रीत्या स्वामकार्षीत्त्रि-
तीडिति ॥ ३८२ ॥ श्रुतं वक्तृविशेषेण यद्यप्यस्पष्टतर्कणं । तद्दृष्टमिव विस्पष्टं सर्वं तस्यास्तदाभवत् ॥ ३८३ ॥ अथानंतरमेवैनं मुनींद्रं गणनायकं ।
सुसीमा भवसंबंधमात्मनः पृच्छतिस्म सा ॥ ३८४ ॥ स्ववाक्किरणजालेन बोधयंस्तन्मनोंबुजं । इत्युवाच विनेयानां निर्निमित्तकबांधवः ॥ ३८५ ॥ धात-
कीखंडपूर्वाशाप्राग्विदेहेतिविश्रुतः । भोगागमभिनामैनो विषयो मंगलावती ॥ ३८६ ॥ रत्नसंचयनामात्र पुरं तत्परिपालकः । विश्वदेवः प्रियास्यासी
देवी धीमत्यनुंधरी ॥ ३८७ ॥ तमयोध्यापतौ युद्धे हतवत्यतिशोकतः । सा मंत्रिभिर्निषिद्धापि प्रविश्य हुतभोजनं ॥ ३८८ ॥ विजयार्द्धे मृत्वा भूत्वा
व्यंतरेष्वयुतायुषा । जीवित्वा तस्य तत्रांते भवे भ्रांत्वा यथोचितं ॥ ३८९ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते शालिग्रामे यक्षस्य गेहिनी । देवसेना तयोर्यक्षदेवी

वर्तीने बडे प्रेमसे महादेवी पदपर विराजमान किया ॥ ३८२ ॥ यद्यपि पहिले जन्मका वृत्तांत सब छिपा हुआ था तथापि विशेष वक्ता गणधर देवके कहनेसे वह उससमय उसे देखे हुएके समान स्पष्ट हो गया ॥ ३८३ ॥ अथानंतर—इन्हीं मुनिराज गणधर देवको सुसीमा नामकी पट्टरानी अपने पहिले भवोंका संबंध पूछने लगी ॥ ३८४ ॥ तब शिष्योंकेलिये विनाही कारणके एक बंधु भगवान गणधरदेव अपने वचनरूपी किरण समूहसे उसके मनरूपी कमलको प्रफुल्लित करते हुए इसप्रकार कहने लगे ॥ ३८५ ॥ धातकीखंडके पूर्वकी ओर पूर्व विदेहक्षेत्रमें मंगलावती नामका एक प्रसिद्ध देश है जो कि जीवोंके भोगोपभोगकेलिये एक ही साधन है ॥ ३८६ ॥ उसमें एक रत्नसंचय नामका नगर है उसमें राजा विश्वदेव राज्य करता था और उसके बुद्धिमती अनुंधरी नामकी रानी थी ॥ ३८७ ॥ किसी एक दिन अयोध्याके राजाने युद्धमें राजा विश्वदेवको मार दिया इसलिये अत्यंत शोकके कारण मंत्रियोंके निषेध करनेपर भी वह अग्निमें जलमरी ॥ ३८८ ॥ मरकर वह विजयार्द्ध पर्वतपर दशहजार वर्षकी आयु पाकर व्यंतरी देवी हुई। वहांकी आयु पूरीकर उसने अपने कर्मोंके अनुसार संसारमें परिभ्रमण किया ॥ ३८९ ॥ फिर इसी जंबूद्वीपमें भरतक्षेत्रके शालिग्राममें यक्षकी स्त्री देवसेनाके यक्षदेवी नामकी बुद्धिमती पुत्री हुई ॥ ३९० ॥ किसी एक दिन धर्मसेन नामके मुनिराजके समीप जाकर उसने व्रत धारण किये और एक महीनेका उपवास करनेवाले उन्हीं मुनिराजको उसने आहार दिया ॥ ३९१ ॥ किसी एकदिन वह क्रीडा करनेकेलिये बनमें गई, वहांपर वर्षा बहुत आनेसे वह किसी गुफामें घुस गई परंतु वहांपर उसे एक अजगरने खा लिया, इसलिये मरकर वह हरिवर्षक्षेत्रकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई, वहांके भोग भोगकर नागकुमारी देवी हुई। वहांसे चयकर वि-

वेः ॥ ३६८ ॥ अभूत्त्वं जंबुषेणायां सती जांबवती सुता । सूनुः पवनवेगस्य श्यामलायाश्च कामुक ॥ ३६९ ॥ भवत्या. स नमिनाम्ना मैथुनाधिपिलिच्छया । ज्योतिर्वनेन्यदा स्थित्वा देया जांबवती न चेत् ॥ ३७० ॥ आच्छिद्याहं ग्रहीष्यामीत्यवोचज्जांबव क्रुधा । खादितुं प्रेषयामास विद्यामाक्षिकलक्षिता ॥ ३७१ ॥ तदा नमिकुमारस्य किन्नराख्यपुराधिपः । मातुलो यक्षमाली तामच्छैत्सीत्खचरेश्वर ॥ ३७२ ॥ सर्वविद्याच्छिदा श्रुत्वा तत् जांबवतन्भुवे । बलेनाक्रम्य संप्राप्ते कुमारे जवुनामानि ॥ ३७३ ॥ पलायत निजस्थानाममिभात्वा समातुलः । अनालोचितकार्याणां किं मुक्त्वान्यत्पराभव ॥ ३७४ ॥ नारदस्तद्विदित्वाशु संप्राप्य कमलोदरं । वर्णयामास जांबवतीरूपमतिसुंदरं ॥ ३७५ ॥ हठात्कृष्णस्तदाकर्ण्य हरिष्यामीति तां सतीं । संभद्बलसंपत्या गत्वा खगवनांतिके ॥ ३७६ ॥ निविष्टो मनसालोच्य ज्ञात्वा तत्कर्म दुष्करं । उपोष्याचिंतयद्रात्रौ केनेद सेत्स्यतीत्यसौ ॥ ३७७ ॥ प्रसाधितत्रिखंडोपि तत्राभूत्स्खलतायति । तद्विपक्षखगेंद्रस्य पुण्यं किमपि तादृश ॥ ३७८ ॥ यक्षिलाख्योनुजस्तस्य प्राक्तनस्तपसावसन् । महाशुक्रेतदेत्यैते विद्ये

परंतु वहांपर किन्नरपुर नगरका विद्याधरोंका राजा यक्षमाली नमिकुमारका मामा था उसने वह विद्या छेद डाली ॥३७२॥ अपनी सब विद्याओंके छेदी जानेकी बात सुनकर राजा जांबवने सब सेनाके साथ अपना जंबूकुमार नामका पुत्र भेजा। उसके आते ही वह नमिकुमार मामाको साथ लेकर अपने नगरको आगया सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य विना विचारे किया जाता है उसका फल अपमानके सिवाय और क्या हो सकता है ॥ ३७३–३७४ ॥ नारद ये सब बातें जानकर शीघ्र ही कृष्णपर गया और उसने उनसे जांबवतीके अत्यंत सुंदर रूपका वर्णन किया ॥ ३७५ ॥यह सुनकर कृष्णने हठ पूर्वक उस सतीको हरनेका विचार किया और इसीलिये वे अपनी सब सेनारूपी संपत्ति लेकर विद्याधरोंके वनमें जाकर ठहर गये। मनमें सोचने लगे कि यह काम तो बहुत कठिन है यही समझ कर उन्होंने उपवास किया और रात्रिमें विचार करने लगे कि यह काम किसतरह सिद्ध होगा ॥ ३७६–३७७ ॥ देखो! जिसने तीनों खंड अपने वश कर लिये हैं ऐसे कृष्णका भी प्रभाव खंडित हो गया परंतु विद्याधरके शत्रु कृष्णका पुण्य ही कुछ ऐसा था जिससे पहिले जन्मका यक्षित नामका छोटा भाई जो तपश्चरणकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ था वह आया और कहने लगा कि जो मैं देता हूं वे दो विद्याएं सिद्ध करो इसतरह कहकर उसने दो विद्याएं दी और उनके सिद्ध करनेका उपाय वतलाकर वह स्वर्गको चला गया। इधर कृष्ण एक क्षीरसागर वनाकर उसमें नागशय्यापर विराजमान हुए और विधिपूर्वक चार महीने तक विद्याएं सिद्ध कीं तदनंतर उन्हें सिंहवाहिनी और गरुडवहिनी विद्याएं सिद्ध हुई। बलभद्रने सिंहवाहनी ली और कृष्णने गरुडवाहिनी ली ॥ ३७८–३८१ ॥ फिर राजा जांबवके साथ . किया, उसे जीता और उसकी पुत्री तुझे लेकर उस चक्र-

देवमुवाच भगवानिति ॥ ३५९ ॥ द्वीपेस्मिन् प्राग्विदेहेस्ति विषये पुष्कलावती । वीतशोकं पुरं तत्र दमको वैश्यवंशज ॥ ३६० ॥ पत्नी देवमतिस्तस्य सुतासीद्देविला तयो । दत्तासौ वसुमित्राय विधवाभूदनतरं ॥ ३६१ ॥ निर्विण्णा जिनदेवाख्ययतिमेत्याहितव्रता । आगाद् व्यतरदेवीत्व मंदारे नदने वने ॥ ३६२ ॥ ततश्चतुरशीत्युक्तसहस्राब्दायुषश्च्युतौ । विषये पुष्कलावत्या पुरे विजयनामनि ॥ ३६३ ॥ मधुषेणाख्यवैश्यस्य बंधुमत्याश्च बंधुरा । सुता बंधुयशा नाम भूताभ्युदयोन्मुखी ॥ ३६४ ॥ जिनदेवसुवा सख्या सहासौ जिनदत्तया । समुपोष्यादिमे कल्पे कुवेरस्याभवत् प्रिया ॥ ३६५ ॥ ततश्च्युत्वा ऽभवत्पुंडरीकिण्या वज्रनामभृत्–वैश्यस्य सुप्रभायाश्च सुमति सुतसत्तमा ॥ ३६६ ॥ सा तत्र सुव्रताख्यार्यिकाहारार्पणपूर्वकं । रत्नावलीमुपोष्याभूद् ब्रह्मलोकेप्सरोवरा ॥ ३६७ ॥ चिरात्ततोपि निष्क्रम्य द्वीपेस्मिन् खेचराचले । उदक्श्रेण्या पुरे जाववाख्ये जाववभूप-

धर देव इस प्रकार कहने लगे ॥ ३५९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतशोका नगरीमें दमक नामका एक वैश्य रहता था ॥ ३६० ॥ उसकी स्त्रीका नाम देवमति था और उन दोनोंके देविला नामकी पुत्री थी। वह देविला वसुमित्रको व्याही गई थी परंतु वह विधवा हो गई थी ॥ ३६१ ॥ इसलिये विरक्त होकर तूने जिनदेव नामके मुनिराजके समीप जाकर व्रत धारण किये थे और प्राण छोडकर तू मन्दराचल पर्वतके नंदन वनमें व्यंतरी देवी हुई थी ॥ ३६२ ॥ वहांकी चौरासी हजार वर्षकी आयु भोग कर च्युत हुई और पुष्कलावती देशके विजयपुर नगरमें मधुषेण नामके वैश्यकी स्त्री बंधुमतीसे बंधुयशा नामकी बहुत सुंदर पुत्री हुई दिनों दिन उसका पुण्य बढता ही जाता था वहींपर जिनदेवकी पुत्री जिनदत्ताके साथ उसकी मित्रता थी इसलिये उसीके साथ उपवास आदिकर वह मरकर पहिले स्वर्गमें कुवेरकी देवांगना हुई ॥३६३–३६५॥ वहांसे चयकर पुंडरीकिणी नगरीमें वज्र नामके वैश्यके घर उसकी सुप्रभा स्त्रीसे सुमति नामकी उत्तम पुत्री हुई ॥ ३६६ ॥ वहांपर उसने सुव्रता नामकी अर्जिकाको आहार दिया और रत्नावली व्रतका उपवास किया जिससे आयु पूरी होनेपर वह ब्रह्म नामके पांचवें स्वर्गमें उत्तम अप्सरा हुई ॥ ३६७ ॥ बहुत दिन-तक वहांके सुखभोगकर च्युत हुई और इसी जंबूद्वीपके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके जांवव नगरमें राजा जांवव रानी जंबुषेणाके तू सती जांववती पुत्री हुई है। उसी विजयार्ध पर्वतपर राजा पवनवेग रानी श्यामलाके एक नमि नामका पुत्र था वह कामी था नातेमें तेरा पति होने योग्य था और तुझे चाहता था किसी एक दिन वह ज्योतिर्वनमें गया और वहां पर जाकर उसने साफ कह सुनाया कि यदि राजा जांवव मुझे अपनी पुत्री जांववती न देगा तो मैं हरकर उसे ले आऊंगा। तव राजा जांववको क्रोध आया और उसने उसे खानेकेलिये आन्विकलक्षिता नामकी विद्या भेजी ३६८–३७१

भूभृन्मूर्द्धस्थपादक । शैशवे शिशुपालोऽपि भासतेस्मैव भास्कर ॥ ३५० ॥ हरि हरिमिवाक्रम्य विक्रमेणाक्रमैषिणा । राजकं वीरवृत्तेन सोवाच्छ-
दर्तितु स्वय ॥ ३५१ ॥ दर्पिणा यशसा विश्वमर्पिणा स्वायुरर्पिणा । रात सेनापराभानां न्यधायि मधुविद्विषः ॥ ३५२ ॥ स्वमूर्द्धाङ्कुरं मूर्द्धन्य- कृत्वाशो-
पलक्षित- । अधोक्षजमधिक्षिप्य लक्ष्मीनाक्षेप्तुमुद्ययौ ॥ ३५३ ॥ संघ शांतोपि शत्रूणां हर्तेवैपापमनचयः । विजिगीषुस्ततुक्षेप्तुं तेपकुम मुमुक्षुवत् ॥
३५४ ॥ एव प्रयाति काले त्वा शिशुपालाय ते पिता । दावु मनुषत प्रीत्या तच्छ्रुत्वा युद्धकांक्षिणा ॥ ३५५ ॥ नारदेन हरिः गर्व नाक्रादेमपनोदित- ।
प्रउगवलसपत्नो गत्वा हत्वा तमूर्जित ॥ ३५६ ॥ आदान त्वा महादेवीपट्टबंधेन योजयन् । श्रुत्वा द्विननं तस्याः परितोष परोजनि ॥ ३५७ ॥
इत्य वृत्तकमाकर्ण्य कः करोति जुगुप्सनं । मत्वामनोमयाश्नो चेयदि दुर्मोमुनीमरान् ॥ ३५८ ॥ अथ जांबवती नत्वा मुनिं सानवर्त्ततिं । पृच्छतिस्मात्मा-

है उसी प्रकार वह भी क्रूर और प्रतापी था तथा सूर्य जिस प्रकार दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूभृत अर्थात् पर्वतके मस्तक पर अपनी किरणें फैलाता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूभृत अर्थात् राजाओंके मस्तकपर अपने पैर रखता था ॥ ३४९–३५० ॥ इधर कृष्ण अपने एक साथ होने वाले पराक्रमसे सुशोभित हो रहे थे उनको भी वह अपनी वीरतासे सिंहके समान आक्रमण कर अपनी आज्ञानुसार चलाना चाहता था ॥ ३५१ ॥ इस तरह अपने यशसे सब संसारमें प्रसिद्ध और अपनी आयुको समर्पण करदेवाले अभिमानी शिशुपालने कृष्णके सौ अपराध कर डालें ॥ ३५२ ॥ जो अपनेको बहुत बडा समझता है सिरके बल चलना है अर्थात् जो उन्मत्त वा महाअभिमानी है और जो कृष्णकी पक्षको काटनेके लिये तैयार हुआ है ऐसा वह शिशुपाल कृष्णको तिरस्कार कर लक्ष्मी पर अधिकार जमानेके लिये तैयार हुआ ॥ ३५३ ॥ शांत हुआ भी शत्रुओंका समूह पापोंके समूहके समान कभी न कभी मारता है इस लिये पापोंकी जीतनेकी इच्छा करनेवाले मोक्षार्थीके समान उसे उखाड कर फेंकनेमें कभी देर नहीं करनी चाहिये ॥ ३५४ ॥ इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर तेरा पिता बडे प्रेमसे तुझे शिशुपालको देनेके लिये तैयार हुआ। यह बात सुन कर युद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले नारदने कृष्णको वह सब काम समझा दिया। तब कृष्ण अपनी छह तरहकी सब सेना लेकर वहां गये, उस प्रतापी शिशुपालको मार कर तुझे लाए और तेरे मस्तक पर महादेवीका पट्टबंध बांधा। गणधरकी ये सब बातें सुनकर रुक्मिणीको बहुत ही संतोष हुआ ॥ ३५५–३५६ ॥ इस कथानकको सुनकर दुर्बुद्धिको छोडकर अन्य कौन ऐसा बुद्धिमान है जो मुनियोंको मलिन देखकर भी ग्लानि करे॥३५७॥

अथानंतर—रानी जांबवती भी भगवान गणधर देवको नमस्कार कर बडे आदरसे अपने भव पूछने लगी तब गण-

सान्मामैषीस्त्वमतः परं । इति प्रोत्साहिता सख्या सा संन्यस्य समाधिना ॥ ३३९ ॥ च्युतप्राणाच्युतेंद्रस्य वल्लभाभूदतिप्रिया । पल्यानां पचपंचाशत्त त- श्राच्चिष्टमसौख्यभाक् ॥ ३४० ॥ च्युत्वा ततो विदर्भाख्यविषये कुंडलाह्वये । पुरे वासवभूभर्तुः श्रीमत्याश्च सुताभवः ॥ ३४१ ॥ रुक्मिण्यथ पुरः कोशला- ख्याया भूपते सुत । भेषजस्याभवन्मद्र्या शिशुपालस्त्रिलोचनः ॥ ३४२ ॥ अभूतपूर्वमेतत्तु मनुष्येष्वस्य किं फलं । इति भूपतिना पृष्टः स्पष्टं नैमित्तिको बदत् ॥ ३४३ ॥ तृतीयं नयनं यस्य दर्शनादस्य नश्यति । अयं हनिष्यते तेन संशयो नेत्यदृष्टवित् ॥ ३४४ ॥ कदाचिद् भेषजो मद्री शिशुपाल परेपि च । गता द्वारावतीं दृष्टुं वासुदेवं समुत्सुकाः ॥ ३४५ ॥ अदृश्यतामगान्नेत्रं जरासंधारिवीक्षणात् । तृतीयं शिशुपालस्य विचित्रा द्रव्यशक्तयः ॥ ३४६ ॥ विज्ञातादेशया मद्र्या तद्विलोक्य हरिं भिया । ददस्व पूज्य मे पुत्रभिक्षामित्यभ्ययाचत ॥ ३४७ ॥ शतापराधपर्यंतमंतरेणाव मद्भयं । नास्यास्तीति हरे- र्लब्धवरासौ स्वां पुरीमगात् ॥ ३४८ ॥ विशुद्धमंडलो नित्यमुद्यद्ध्वस्तद्विपत्तमा । पद्माल्हादपरस्तीक्ष्णाकरः क्रूरः प्रतापवान् ॥ ३४९ ॥ प्रच्छाय परतेजांसि-

राजा भेषज राज्य करता था उसकी मद्री रानीसे शिशुपाल नामका एक पुत्र था और उसके तीन नेत्र थे ॥ ३४१–३४२ ॥ तव राजाने किसी निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मनुष्योंमें तीन नेत्र होना कभी न देखा न सुना इसलिये शिशुपालके तीन नेत्र होनेका क्या फल है? इसके उत्तरमें अदृष्टको जानने वाले निमित्तज्ञानीने स्पष्ट कह सुनाया कि जिसके देखनेसे इसका तीसरा नेत्र न हो जायगा वही पुरुष इसे मारेगा इसमे विलकुल संदेह नहीं है ॥ ३४३–३४४ ॥ किसी एकदिन राजा भेषज रानी मद्री, कुमार शिशुपाल तथा और भी कितने ही लोग वडे उत्साहसे कृष्णाको देखनेकेलिये द्वारावती नगरीमें गये ॥ ३४५ ॥ वहां पर कृष्णाको देखते ही शिशुपालका तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया सो ठीक ही है क्योंकि द्रव्योंकी शक्तियां वडी ही विचित्र हैं ॥ ३३६ ॥ मद्रीने यह सव हाल जानकर कृष्णाकी आज्ञानुसार उनके दर्शन किये और वडे डरसे याचना की कि हे पूज्य मुझे पुत्रकी भिक्षा दीजिये ॥ ३४७ ॥ तव कृष्णाने कहा कि जव तक इसके सौ अपराध न हो जायगे तव तक इसे मेरा कुछ किसी तरहका भय नहीं होगा । इस तरह कृष्णासे वर पाकर वह मद्री अपने घरको चली गई ॥ ३४६ ॥ इधर शिशुपाल वालक अवस्थामें ही सूर्यके समान दैदीप्यमान होने लगा क्योंकि जिस प्रकार सूर्य मंडल विशुद्ध है उसी प्रकार उसका मंडल अर्थात् मंत्री आदि सव विशुद्ध (शुद्धतारहित) थे, सूर्य जिस प्रकार सदा उदय होते ही शत्रु अंधकारको नष्ट करता है उसी प्रकार वह सदा उदय रूप होकर वडे २ शत्रुओंको नष्ट करता था, सूर्य जिस प्रकार कमलोंको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी पद्मा अर्थात् लक्ष्मीको प्रसन्न करता था, जिस- प्रकार सूर्यकी किरणें तीक्ष्ण हैं उसी प्रकार उसका कर (महसूल) भी तीक्ष्ण था, सूर्य जिस प्रकार क्रूर और प्रतापी

रवर्तिनी स कदाचन । समाधिगुप्तमालोक्य नदीतीरे पुरातन ॥ ३२८ ॥ काललब्ध्या समासाद्य प्रतिमायोगधारिणं । गृहीतोपशमां योगिदेहस्थमशकादि-क ॥ ३२९ ॥ अपास्यंती प्रयत्नेन निशांते योगनिष्ठितै । उपविष्टस्य पादाब्जसुपस्थ्योदितं मुनेः ॥ ३३० ॥ श्रुत्वा धर्मंधियादत्तपर्वोपवसतिं सुधी । प-रेद्युर्जिनपूजार्थं गच्छती वीक्ष्य सार्यिकां ॥ ३३१ ॥ प्रामातरं सम गत्वा तदानीतांधसा सदा । प्राणसधारण कृत्वा कस्मिंश्चिद् भूभृतोवले ॥ ३३२ ॥ उपविष्टा निजाचारं पालयंती भयादघात् । सम्यग्ज्ञात्वार्यिकाख्यानात्स्ववृत्तातं सकौतुका ॥ ३३३ ॥ चित्र नीचकुलोत्पन्नाप्येवंवृत्तेति सादरं । पूजानिर्वर्ति-का दृष्टु स्वा वात्सल्यादुपागतां ॥ ३३४ ॥ अभिधायाव पापिष्ठा मा त्वं पुण्यवती कुतः । पश्यसीति निजातीतभवान् ज्ञातान् यतीश्वरात् ॥ ३३५ ॥ तस्या व्यावर्णयत्सापि वयस्यास्याः पुरातनी । तत्रैतदवबुध्याग्रान्मार्गं जैनमघक्षयात् ॥ ३३६ ॥ प्राग्जन्मार्जितपापस्य परिपाकाद्विरूपता । रोगवत्त्व दुर्गं-धत्व निर्धनत्वादिकं च कैः ॥ ३३७ ॥ न प्राप्यतेत्र ससारे तत्त्व भूमी हिता शुचा । त्वयात्त व्रतशीलोपवासादिपरजन्मने ॥ ३३८ ॥ पाथेय दुर्लभ त-

मेका स्वरूप सुना और धर्मबुद्धिसे पर्वमें उपवास करना स्वीकार किया । दूसरे दिन एक अर्जिका जिनपूजा करनेकेलिये दूसरे गांव जाती थी उसे देखकर वह उसीके साथ हो ली उसीके साथ वह भोजन कर आती थी इसतरह वह अपना जीवन निर्वाह करतीथी और पापोंसे डरकर अपने आचारका पालन करती हुई किसी पर्वतपर रहती थी । किसी एकदिन पूजा करनेवाली अर्जिकाके दर्शन करनेकेलिये एक श्राविका आई थी उसके पूछनेपर अर्जिकाने कौतुक रूपसे सब समा-चार कहा और कहा कि नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी यह ऐसे व्रत उपवास करती है इसप्रकार आदरपूर्वक उसकी प्रशं-साकी । तब वह पूतका कहने लगी कि हे माता! मुझ पापिनीको आप पुण्यवती कैसे समझती हो । इसतरह कहकर उसने मुनिराजसे जो अपने पहिले भव सुने थे वे सब उस श्राविकासे कह सुनाये । वह श्राविका पहिले किसी भवकी इसकी सखी थी उसने यह सब सुनकर कहा अब पापकर्मोंके नष्ट होनेसे तुझे जैन धर्मकी प्राप्ति हुई है ॥ ३२९–३३६ ॥ पहिले जन्ममें कमाये हुए पापकर्मोंके उदयसे इस संसारमें बुरा रूप, रोगी शरीर, दुर्गंधपना और निर्धनता किसको प्राप्त नहीं होती इसलिये तू शोक मतकर । तूने जो व्रत शील उपवास आदि धारण किये हैं वे परजन्मके लिये अत्यंत दुर्लभ पाथेय (रस्तेका खर्च) हैं इसलिये अब तू आगेकेलिये कुछ डरमत कर । इसतरह उस सखीने उसे उत्साह दिलाया । आयुके अंतमें उसने समाधिपूर्वक संन्यास धारण किया ॥ ३३७–३३९ ॥ प्राण छोडकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके इंद्रकी अ-त्यंत प्रिय वल्लभा हुई । वहांपर उसने पचपन पल्यतक निरंतर सुखोंका अनुभव किया ॥ ३४० ॥ वहांसे च्युत होकर वि-दर्भ देशके कुंडलपुर नगरमें राजा वासवकी रानी श्रीमतीसे तू रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई है । अथानंतर—कोशल नगरमें

मारते क्षेत्रे मगधांतरवर्तिनि । लक्ष्मीग्रामे द्विजः सोमोस्याभूल्लक्ष्मीमतिः प्रिया ॥ ३१७ ॥ प्रसाधितांगी सान्येद्युर्दर्पणालोकनोद्यता । समाधिगुप्तमालोक्य मुनिं भिक्षार्थमागत ॥ ३१८ ॥ प्रस्वेदमलदिग्धांगो दुर्गंधोयमिति क्रुधा । विचिकित्सापरा साधिक्षेपोक्तोद्गारिणी तदा ॥ ३१९ ॥ सहसोदुंबराख्येन कुष्टेन व्याप्तदेहिका । शुनीव सर्वतस्तर्ज्यमाना परुषभाषितैः ॥ ३२० ॥ शून्यगेहेऽतिदु खेन मृत्वा स्नेहाहिताशया । गेहस्यैव द्विजस्याभूद् दुर्गंधधितकराख्रक ॥ ३२१ ॥ तस्योपरि मुहुर्धावस्तेन कोपवता वहिः । गृहीत्वा निष्ठुरं क्षिप्तो मृत्वा त्वहिरजायत ॥ ३२२ ॥ तत्रैवासौ पुनर्मृत्वा गर्दभोभूत्स्वपापतः । मुहुर्मुहुर्गृह गच्छस्तदैव कुपितैर्द्विजै ॥ ३२३ ॥ हतो लकुटपाषाणैर्भग्नपाद कृमिव्रणैः । आकुल पतित कूपे दुःखितो मृतिमागतः ॥ ३२४ ॥ ततो वहि समुत्पन्नो मृत्वांधश्चाथ शूकरः । ग्रामे यो भक्षितो मृत्वा सोपि श्वमिरितस्ततः ॥ ३२५ ॥ मत्स्यस्य मदिरग्रामे नद्युत्तरणकारिणः । मंडूक्यश्च सुता जाता पूतकानाम पापिनी ॥ ३२६ ॥ सोत्पत्त्यनतरं लोकातरं यातः पिता ततः । माता च पोषिता मातामह्या सर्वाशुभाखिले ॥ ३२७ ॥ विचिकित्स्या नदीती

कुष्ट (कोट) रोगसे उसका शरीर भर गया और सब लोग कठोर वचन कहकर कुत्तीके समान उसका ताडन करने लगे ॥ ३१८–३२० ॥ वह सूने मकानमें अकेली पडी रहती थी निदान हृदयमें पतिका प्रेम रखकर वडे दुखसे वहीं सूने मकानमें मरी और उसी ब्राह्मणके घर छछूंदर हुई ॥ ३२१ ॥ प्रेमके कारण वह वार वार उस ब्राह्मणके ऊपर दौडती थी इस लिये क्रोधकर ब्राह्मणने उसे पकडा और वाहर जाकर वडे जोरसे उसे दे पटका जिससे मरकर सांप हुई॥३२२॥ फिर मरकर अपने पाप कर्मके उदयसे वहीं (ब्राह्मणके समीप ही) गधा हुई । वह गधा वार वार उस ब्राह्मणके यहां जाता था इसलिये ब्राह्मणने क्रोधित होकर सकडी पत्थरसे उसे मारा जिससे उसका एक पैर टूट गया, उसके घावमें कीडे पडगये व्याकुल होकर वह कूएमें पड गया और दुःखी होकर मरगया ॥ ३२३–३२४ ॥ मरकर उसी गांवके वाहर अंधा सूअर हुआ, गांवके कुत्तोंने इधर उधर फिरते हुए उसे काट खाया जिससे मरकर वह मंदिर नामके गांवमें नाव चलानेवाले मत्स्य नामके धीवरकी स्त्री मंडूकीसे पापिनी पूतका नामकी पुत्री हुई ॥ ३२५–३२६ ॥ इसके उत्पन्न होते ही इसका पिता मरगया था और माता भी मर गई थी, दादीने उसे पाला था वह सवतरहसे अशुभ थी और सव लोग उसकी निंदा करते थे । किसी एक दिन वह नदीके किनारे बैठी थी वहींपर नदीके किनारे उसने उन्हीं पहिले समाधिगुप्त मुनिके दर्शन किये ॥ ३२७–३२८ ॥ वे मुनि प्रतिमायोग धारण किये हुए शांतचित्त थे पूतकाकी काललब्धि समीप आगई थी इसलिये उसने मुनिराजके शरीरपर लगे हुए मच्छर आदि वडे प्रयत्नसे दूर किये । सवेरेके समय जव उनका योग समाप्त हुआ तव मुनि विराजमान हुए वह पूतका भी उनके चरणकमलोंके समीप पहुंची, उस बुद्धिमतीने उनसे ध-

३०५ ॥ निर्धनैः परलोकार्थं स्वयं साहसशालिभिः । भूसुवर्णादिदानेन सुखमिष्टमवाप्यते ॥ ३०६ ॥ इतीत्यादिकुदृष्टांतकुहेतुनिपुणैर्नृपं । कायक्लेशासह वाक्यैरयथार्थमबूबुधत् ॥ ३०७ ॥ तथापराश्च निर्बुद्धीन् बोधयन् जीवितावधौ । भूत्वा सप्तस्वधोभूमिष्वतस्तिर्यक्षु च क्रमात् ॥ ३०८ ॥ गंधमादनकूटोत्थमहागंधावती नदी । समीपगतभल्लुकिनामपल्ल्यां स्वपापतः ॥ ३०९ ॥ जातो बनेचरः कालसंज्ञः स तु कदाचन । वरधर्मयतिं प्राप्य मध्वादिविनिवृत्तित ॥ ३१० ॥ विजयार्द्धेलकापुर्याः पत्यु पुरुवलस्य च । ज्योतिर्मालाभिधायाश्च सुतो हरिवलोभवत् ॥३११॥ अनंतवीर्ययत्यंते गृहीत्वा द्रव्यसंयम । सौधर्मकल्पे संभूय कालांते प्रच्युतस्ततः ॥ ३१२ ॥ सुकेतो विजयार्द्धाद्रौ रथनूपुरभूपते । सुता स्वयं प्रभायाश्च सत्यभामा त्वमित्यभूः ॥ ३१३ ॥ पित्रा ते मेन्यदा कस्य सुता पत्नी भविष्यति । इत्युक्तोसौ निमित्तादिकुशलाख्योर्द्धचक्रिण ॥ ३१४ ॥ भविष्यति महादेवीत्याख्यन्नैमित्तिकोत्तमः । इत्युदीरितमाकर्ण्य सत्यभामातुषत्तरा ॥ ३१५ ॥ रुक्मिण्याथ महादेव्या प्रणम्य स्वभवांतर । परिपृष्ट परार्घ्यहो व्याजहारेति तद्भवान् ॥ ३१६ ॥ द्वीपेस्मिन्

तिर्यंचपर्यायोंमें तथा सातो नरकोंमें परिभ्रमण करता रहा ॥ ३०८ ॥ तदनंतर वह अपने पाप कर्मके उदयसे गंधमादन नामके पर्वतसे निकली हुई महागंधवती नदीके किनारे भल्लुंकी नामकी पल्लीमें काल नामका वनेचर वा भील हुआ। किसी एक दिन वह वरधर्म मुनिके समीप गया उनके उपदेशसे उसने मधुमांसादिका त्याग किया जिससे मरनेके बाद वह विजयार्द्ध पर्वतकी अलका पुरी नगरके राजा पुरुवल रानी ज्योतिर्मालाके हरिवल नामका पुत्र हुआ ॥३०९--३११॥ उस पर्यायमें उसने श्रीअनंतवीर्य मुनिराजके समीप द्रव्य संयम धारण किया जिससे आयुके अंतमें वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहांकी आयु पूरी कर वहांसे च्युत हुआ और विजयार्द्ध पर्वतके रथनूपुर नगरके राजा सुकेतुके उसकी रानी स्वयंप्रभासे तू सत्यभामा पुत्री हुई है ॥ ३१२--३१३ ॥ किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तकुशल नामके उत्तम निमित्तज्ञानीसे पूछा था कि मेरी यह पुत्री किसकी स्त्री होगी, तव उस निमित्तज्ञानीने कहा था कि यह अर्ध चक्रवर्तीकी पटरानी होगी। ये सव वातें सुनकर सत्यभामा वहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ३१४--३१५ ॥ तदनंतर महादेवी रुक्मिणी नमस्कार कर अपने भव पूछने लगी तव पूज्य बुद्धिको धारण करने वाले गणधर देव कहने लगे ॥ ३१६ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध देशके लक्ष्मी गांवमें एक सोम नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमति था ॥ ३१७ ॥ किसी एक दिन वह लक्ष्मीमती नहा धोकर आभूषण पहिन कर दर्पण देख रही थी कि इतनेमें ही समाधि गुप्ति मुनि आहारके लिये उसके घर पधारे। उन्हें देखकर "इसका शरीर पसीनेके मलसे भर रहा है और दुर्गंधित हो रहा है" इस तरह क्रोध करती हुई वह ग्लानि करेन लगी और कुछ निंदाके वचन कहने लगी। उसी समय अकस्मात् उदंवर नामके

निदेशात्कंशतो भयात् ॥ २९४ ॥ ते नैगमर्षिणा नीताः श्रेष्ठिन्या स्वलकाख्यया । वर्द्धिता देवदत्ताश्च देवपालोनुजस्ततः ॥ २९५ ॥ अनीकदत्तश्चानीक-
पाल शत्रुघ्नसञ्ज्ञकः । जितशत्रुश्च अन्मन्येवात्र निर्वृत्तिगामिनः ॥ २९६ ॥ नवे वयसि दीक्षिता भिक्षार्थंपुरमागता । त्वया दृष्टास्ततस्तेषु स्नेहो जन्मांत-
रागतः ॥ २९७ ॥ स्वयभूकेशवैश्वर्यं तपकाले निरीक्ष्य सः । निर्नामकसुतस्तेऽथ कमशत्रुरजायत ॥ २९८ ॥ त्व कुतस्ते कुत. कोयं सबंधो निर्निबंधनः ।
विधेर्विलसित चित्रमगम्य योगिनामपि ॥ २९९ ॥ इति नैसर्गिकाशेषभव्यानुग्रहभावकः । न्यगदद्भगवानेवं भक्त्यावंदत देवकी ॥ ३०० ॥ अथानतरमे-
वैन सत्यभामापि भाक्तिका । स्वपूर्वभवसबधमप्राक्षीदक्षरावधिं ॥ ३०१ ॥ सोपि व्याख्ययामास तदभीष्टनिवेदने । न हेतुः कृतकृत्यानामस्त्यन्योनुग्र-
हाह्निना ॥ ३०२ ॥ शीतलाख्यजिनाधीशतीर्थे धर्मे विनश्यति । भद्रिलाख्यपुराधीशो नाम्ना मेघरथो नृपः ॥ ३०३ ॥ प्रेयसी तस्य नदाख्या भूतिशर्मा
द्विज.मणीः । तस्यासीत्कमला पत्नी मुडशालायनस्तयो ॥ ३०४ ॥ तनूजो वेदवेदागपारगो भोगसक्तधीः । वृथा तपःपरिक्लेशो मूर्खैरेष प्रकल्पितः ॥

है ॥ २९८ ॥ हे देवकी ! तूं कहांसे आई वे तेरे पुत्र कहांसे आए और विना ही कारणके यह संवंध कैसा आ मिला । इस लिए कहना पडता है कि कर्मोंका उदय वडा ही विचित्र है योगी लोग भी इसका पार नहीं पा सकते ॥ २९९ ॥ इस प्रकार स्वाभाविक रीतिसे समस्त भव्य जीवोंका अनुग्रह करने वाले भगवान गणधर देवने यह सव कथा कही तव देवकीने वडी भक्तिसे उनकी वंदना की ॥

अथानंतर----अक्षरावधिको धारण करने वाले गणधरदेवसे भक्तिको धारण करनेवाली सत्यभामाने भी अपने पहिले भवोंका संवंध पूछा ॥ ३०१ ॥ तव गणधर देवभी सत्यभामाका अभीष्ट कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि कृत-कृत्य लोगोंको अनुग्रहके विना और किसी कारणकी आवश्यकता नहीं पडती ॥ ३०२ ॥ शीतलनाथ तीर्थंकरके वाद जव धर्मका विच्छेद हुआ था तव भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ राज्य करता था ॥ ३०३ ॥ उसकी रानीका नाम नंदा था उसी राजाके भूतिशर्मा नामका एक मुख्य ब्राह्मण था उसकी कमला स्त्रीसे मुंडशालायन नामका एक पुत्र हुआ था। वह वेद वेदांगका पारगामी था और उसकी बुद्धि भोगोंमें तल्लीन थी इसलिये उसने अनेक कुदृष्टांत और कुहेतुओंको वतलाने वाले अत्यंत निपुण वाक्योंके द्वारा काय क्लेशको न सहन करनेवाले राजाको झूठ मूठ समझाया कि स्वयं साहस करनेवाले निर्धन मूर्ख लोगोंने परलोक सुधारनेकेलिये व्यर्थही तपश्चरणके द्वारा शरीरको क्लेश देनेकी कल्पना की है वास्तवमें पृथ्वी सुवर्ण आदिका दान देनेसे ही परलोकमें इष्ट सुखकी प्राप्ति हो जाती है। इसी तरह वह अपने जीवित रहने तक अनेक अन्य निर्बुद्धियोंको भी समझाता रहा। अंतमें वह मरकर नरक गया। वहांसे निकल कर सव तरहकी

कृतागत. ॥२८४॥ स्वायुरंते स-
महीपते । वसुधाया सुता नंदयशा समुदपादसौ ॥ पुनर्निरनुकंपस्य आज्ञा दुःखनिमित्तक । त्वयेदृशं न कर्तव्यमित्युक्त. शमगागत.
मुत्पन्नः सोय निर्नामसंज्ञया । ततः पूर्वभवोपात्तपापस्य परिपाकत ॥ २८५ ॥ जायते नंदयशस कोपो निर्नामक प्रति । इति तस्य वच. श्रुत्वा ते नि-
वेगपरायणा ॥ २८६ ॥ नरेंद्र षट्सुता दीक्षा शंखो निर्नामकोप्ययु । तथा नंदयशा रेवती नामादित साम ॥ २८७ ॥ सुव्रताग्रार्यिकाभ्यासे पुत्रस्नेहा-
हितेच्छया । अन्यजन्मनि चामीषामेव लाभो न वर्द्धने ॥ २८८ ॥ ते निदान विमूढत्वादुभे चाकुरुता सम । तत सर्वे तपः कृत्वा समाराध्य यथोचित ॥
२८९ ॥ महाशुक्रे समुत्पन्ना प्रांते सामानिकाः सुरा । षोडशाब्ध्युपमायुष्का दिव्यभोगवशीकृता ॥ २९० ॥ ततः प्रच्युत्य शंखोभूद्बलदेवो हलायुध ।
मृगावलाख्यविषये दशार्णपुरभूपतेः ॥ २९१ ॥ देवसेनस्य नोत्पन्ना धनदेव्याश्च देवकी । त्व सा नंदयशा लीलमुपगम्य निदानतः ॥ २९२ ॥ भद्रिला
ख्यपुरे देशे मलयेऽजनि रेवती । सुदृष्टिश्रेष्ठिन श्रेष्ठा श्रेष्ठिनी साऽलकाख्यया ॥ २९३ ॥ प्राक्तना. षट्कुमाराश्च यमीभूतास्त्रय त्रयः । तदानीमेव शक्रस्य

और निर्नामक सब विरक्त हुए और सबने दीक्षा धारण करली । तथा इनके साथ साथ पुत्रोंके स्नेह और अपनी इच्छासे
नंदयशा और रेवती धायने भी सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली । एक दिन उन दोनों अर्जिकाओं
ने अपनी मूर्खतासे निदान किया नंदयशाने तो यह निदान किया कि दूसरे जन्ममें भी ये मेरे पुत्र हों और रेवतीने यह
निदान किया कि मैं इनका पालन करूं । तदनंतर सब तपश्चरण कर और अपनी योग्यताके अनुसार आराधनाओंका
आराधन कर आयुके अंतमें महाशुक्र विमानमें सामानिक जातिके देव हुए, सोलह सागरकी उनकी आयु थी और वे सदा
दिव्य भोगोंका अनुभव करते थे ॥ २८४--२९० ॥ वहांसे च्युत होकर शंखका जीव तो बलभद्र बलदेव हुआ है, नंदयशा
का जीव मृगावती देशमें दशार्णपुर नगरके राजा देवसेन रानी धनदेवीके तू देवकी हुई है, निदानके कारण तूने देव
पर्यायसे स्त्री पर्याय पाई है । रेवतीका जीव मलयदेशके भद्रिलपुर नगरके शेठ सुदृष्टिके अलिका नामकी श्रेष्ठ शेठानी हुई
है । छहों राज पुत्रोंके जीव तेरे दो दो कर तीन बारमें छह यमल पुत्र हुए । उसी समय कंसके डरसे और इंद्रकी आज्ञासे
नैगमर्षी नामके देवने उन पुत्रोंको उठा कर अलका नामकी शेठानीके घर रख दिया इसलिये अलकाने ही उन पुत्रोंका
पालन किया । देवदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु ये उनके नाम हैं ये छहों भाई इसी जन्म
से मुक्त हो जायगे ॥ २९१--२९६ ॥ ये छहों भाई नई अवस्थामें ही दीक्षा धारण कर आहारके लिये नगरमें आए
थे इस लिये उन्हें देख कर उनमें तेरा पूर्व जन्मका चला आया स्नेह उत्पन्न हो आया है ॥ २९७ ॥ निर्नामकने तपश्चरण
करते समय स्वयंभू नामके नारायणके ऐश्वर्यको देखकर निदान किया था इसलिये उसका जीव कंसका शत्रु कृष्ण हुआ

अस्ति द्वादश ग्रामान् महीशो मांसलेहुप । स कदाचित्सुधर्माख्ययत्यभ्यासे श्रुतागमः ॥ २७२ ॥ श्रद्धाय बोधिमाधाय राज्यं मेघरथे सुते । नियोज्य सयतो जातः सुतोपि श्रावकोऽजनि ॥ २७३ ॥ तत सूपकरग्रामानेकशेषं समाहरत् । सोन्येद्युर्वेदवैरः सन् सर्वसंभारसस्कृतं ॥ २७४ ॥ घोषातकी- फलं पक्वं मुनीन्द्र तमभोजयत् । ऊर्जयंतगिरौ सोपि तन्निमित्त गतासुकः ॥ २७५ ॥ सम्यगाराध्य संभूतः कल्पातीते ऽपराजिते । अघन्यतद्गतायुः सम हमिंद्रो महर्द्धिकः ॥ २७६ ॥ सूपकारोपि कालांते तृतीयनरकं गत । ततो निर्गत्य संसारे सुदु ससुचिरं भ्रमन् ॥ २७७ ॥ द्वीपेस्मिन्भारते क्षेत्रे विषये मलयाह्वये । पलाशकूटग्रामस्य यक्षदत्तगृहेशिनः ॥ २७८ ॥ सुतो यक्षादिदत्ताया यक्षनामा बभूव सः । तयोर्यक्षिलसञ्श्च सूनुरन्योन्वजायत ॥ २७९ ॥ तयोः स्वकर्मणा ज्येष्ठो नाम्ना निरनुकंपक । सानुकंपो परोज्ञायि जनैरर्थानुसारिभि ॥ २८० ॥ कदाचिरसानुकंपेन वार्यमाणोपि सोपर । मार्गस्थिताधस- र्पस्य दयाद्रूरो वृथोपरि ॥ २८१ ॥ शकटं भाडसपूर्ण वलीवर्दैरयोजयत् । सर्पस्तन्मर्दितोऽकामनिर्जरो विगतासुक ॥ २८२ ॥ पुरश्वेतविकानाम्नि वासवस्य

पहुंचे और उस आहारके कारण वे वहींपर प्राणांत हो गये उन्होंने अंतमें आराधनाओंका अच्छीतरह आराधन किया था इसलिये वे पंचोनुत्तरके अपराजित विमानमें जघन्य आयुको पाकर वडी ऋद्धिको धारण करनेवाले अहमिंद्र हुए॥२७२-२७६॥ वह रसोइया भी आयुके अंतमें मरकर तीसरे नरक गया वहांसे निकलकर अनेक दुख भोगते हुए उसने वहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमण किया ॥ २७७ ॥ फिर इसी भरतक्षेत्रके मलय देशमें पलाशकूट गांवके एक यक्षदत्त नामके गृहस्थीके उसकी यक्षदत्ता नामकी स्त्रीसे यक्ष नामका पुत्र हुआ। उन्हीं यक्षदत्त और यक्षदत्ताके यक्षिल नामका दूसरा छोटा पुत्र हुआ ॥ २७८–२७९ ॥ उन दोनों भाइयोंमें अपने २ कर्मोंके उदयसे वडा भाई तो निर्दय था इसलिये लोग उसकी क्रियाओंके अनुसार उसे निरनुकंप (दयारहित) कहते थे और छोटा भाई दयावान था इसलिये लोग उसे सानुकंप क- हते थे ॥ २८० ॥ किसी एक दिन वह निरनुकंप वर्तनोंसे भरी हुई गाडी बैलोंसे जोतकर ले जा रहा था और मार्गमें एक धा सर्प बैठा था, निरनुकंपके हृदयमें दया तो थी ही नहीं इसलिये सानुकंपके वार वार मना करनेपर भी उसने वह गाडी उस सर्पके ऊपर होकर निकालदी । वह सर्प उसके वोझसे दवकर अकाम निर्जरा करता हुआ मर गया और मरकर श्वेतविका नाम नगरमें राजा वासवकी वसुंधरी रानीसे यह नंदयशा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई ॥२८१—८३॥ तदनं- तर उस निरनुकंपको सानुकंपने वहुत समझाया कि तुझे दुःख देनेवाले कार्य कभी नहीं करने चाहिये। ये सब बातें सुनकर निरनुकंप कुछ शांत हुआ और आयुके अंतमें मरकर यह निर्नामक उत्पन्न हुआ है। इसलिये पूर्वभवमें कमाये हुए पापकर्मके उदयसे निर्नामकपर यह नंदयशा क्रोध करती है। मुनिराज द्रुमसेनकी ये बातें सुन कर राजाके छहों पुत्र तथा शंख

सुभानुर्भनद स्वयं । तत्पुराधिपतेर्गगदेवनामधरेशिन ॥ २६१ ॥ तद्देव्या नदयशस· शेपास्ते यमलाह्वयः । गंगाख्यो नंददेवश्च खड्गमित्रश्च नंदवाक् ॥
२६२ ॥ सुनदो नदिषेणश्च जाता अिग्धा परस्पर.। गर्भेन्यस्मिन् महीनाथस्तस्यामासीन्निरुत्सुकः ॥ २६३ ॥ तदौदासीन्यमुत्पन्न पुत्रहेतुकमित्यसौ ।
न्यविशद्रेवतीं धात्रीं तदपत्यनिराकृतौ ॥ २६४ ॥ त सा नदयशो ज्येष्ठवधुमत्यै समार्पयत् । निर्नामकाख्य तत्राप्यपरेद्युर्नंदने वने ॥ २६५ ॥ प्रपश्यन् सह
भुजानान् षण्महीशसुतान् सम । त्वमप्यमीभिर्भुङ्क्ष्वेति शखेन समुदाहृतः ॥ २६६ ॥ स्थितो भोक्तुमसौ नंदयशास्त वीक्ष्य कोपिनी । क-
स्त्वागमिति पादेनाक्षस्तावन्वीयतु शुच ॥ २६७ ॥ शखनिर्नामकौ राज्ञा कदाचित्सह वदितु । द्रुमसेनमुनिं यातावधिज्ञानलोचन ॥ २६८ ॥ अभिनंद्य ततो
धर्मश्रवणानतर पुन । निर्नामकाय किं नदयशा कुप्यत्यकारणं ॥ २६९ ॥ इति शखेन पृष्टोसौ मुनिरेवमभाषत । सुराष्ट्रविषये राजा
गिर्यादिनगराधिपः ॥ २७० ॥ अभूच्चित्ररथो नाम तस्यामृतरसायन । सूपकार· पल पक्तुं कुशलोस्मै प्रतुष्टवान् ॥ २७१ ॥

नाम रक्खा । किसी दूसरे दिन ये सब लोग नंदन वनमें गये, वहा पर राजाके छहो पुत्र एक साथ वैठकर खा रहे थे ।
यह देख कर शंखने निर्नामकसे कहा कि तू भी इनके साथ वैठकर खा ॥ ५९--६६ ॥ शंखकी आज्ञानुसार
वह उनके साथ खानेको वैठ गया, यह देखकर नंदयशाको वहुत क्रोध आया और "यह किसका लडका यहां आ
गया" इसतरह कहकर उसके एक लात मारी जिससे शंख और निर्नामक दोनोंको शोक हुआ ॥ २६७ ॥ किसी एकदिन
शंख और निर्नामक दोनों ही राजाके साथ साथ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले द्रुमसेन मुनिकी वंदना करनेकेलिये
गये ॥ २६८ ॥ दोनोंने मुनिराजकी वंदना की, धर्मका स्वरूप सुना, और फिर शंखने पूछा कि नंदयशा निर्नामक पर
विना ही कारणके क्यों क्रोध करती है । तव मुनिराज कहने लगे कि सोरठ देशके गिरपुर नगरमें चित्ररथ नामका राजा
राज्य करता था उसके यहां अमृतरसायन वा सुधारसायन नामका एक रसोइया था जो कि मांस पकानेमें वडा ही निपुण
था उसने मांस खिलाकर राजाको संतुष्ट किया ॥ २६९--२७१ ॥ राजा मांसका लोलुपी था इसलिये उसने उस रसोई-
याको वारह गांव दे डाले । किसी एक दिन राजा चित्ररथ सुधर्म नामके मुनिके समीप गया, वहांपर उसने शास्त्रोंका र-
हस्य सुना, रत्नत्रय प्राप्त किया, और अपने मेघरथ पुत्रको राज्य देकर वह स्वयं मुनि हो गया । उस तत्कालीन राजा मे-
घरथने भी श्रावकके व्रत धारण कर लिये, इसलिये उसने एक गांवको छोडकर वाकी उस रसोइयासे सव गांव छीन लिये
किसी दूसरे दिन वेही मुनिराज आहारकेलिये राजाके यहां पधारे, रसोइयाने (उनके उपदेशसे गांव छिननेके कारण)
उनसे वैरकर सब मसालोंसे सुशोभितकर पकी कडवी तुंवीका आहार दिया । वे मुनिराज आहार लेकर गिरनार पर्वतपर

कक ॥ २५१ ॥ पुष्पचूलाह्वयो नदनन्वरौ गगनादिकौ । तत्रैव दक्षिणश्रेण्या नृपो मेघपुराधिप ॥ ५५२ ॥ धनंजयोस्य सर्वश्रीर्जाया तस्याः सुताभवत् । धनश्री श्रीरिवान्यैषा नत्रैवान्यो महीपति ॥ २५३ ॥ ख्यातो नंदपुराधीशो हरिषेणो हरिर्द्विषां । श्रीकातास्य प्रिया तस्यां सुतोभूद्धरिवाहन ॥ २५४ ॥ धनश्रियोयं बधेन मैथुनः प्रथितो गुणै । तत्रैव भरतेऽयोध्याया स्वयंवरकर्मणि ॥ २५५ ॥ माला सम्प्रापयत्प्रीत्या धनश्रीर्हरिवाहन । चक्रवास्तदयोध्यायां पुष्पदंतमहीपतिः ॥ २५६ ॥ तस्य प्रीतिंकरा देवी तत्सूनु पापपण्डित । धनश्रिय सुदत्तोऽलान्निहत्य हरिवाहन ॥ २५७ ॥ तन्निर्वेगेण चित्रागदाद्याः सप्तापि संयम । भूतानदाख्यतीर्थेशपादमूले समाश्रयन् ॥ २५८ ॥ ते कालाते ऽभवन् कल्पे तुर्ये सामानिका सुरा । सप्ताब्ध्यायुःस्थितिप्राते तत. प्रच्युत्य भारते ॥ २५९ ॥ कुरुजांगलदेशेस्मिन् हस्तिनाख्यपुरेभवत् । वंधुमत्या सुतः श्वेतवाहनाख्यवणिक्पतेः ॥ २६० ॥ शंखो नाम धनद्ध्र्यासौ

धनश्री नामकी पुत्री थी । उसी विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नंदपुर नगरमें शत्रुओंको सिंहके समान हरिषेण नामका राजा राज्य करता था, उसकी रानीका नाम श्रीकांताथा और उन दोनोंके हरिवाहन नामका पुत्र था ॥ २४८-२५४ ॥ वह गुणोंसे प्रसिद्ध हरिवाहन नातेमें भी धनश्रीका पति होने योग्य था । इसलिये उसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें धनश्री का स्वयंवर किया गया उसमें धनश्रीने वडे प्रेमसे हरिवाहनके गलेमें वरमाला डाली । उसी अयोध्या नगरमें पुष्पदंत नामका चक्रवर्ती राजा था उसकी प्रीतिंकरा रानीसे पापोंमें निपुण ऐसा सुदत्त नामका पुत्र था उसने उसी समय हरिवाहनको मार कर धनश्री छीन ली ॥ २५५--५७ ॥ यह सव देखकर चित्रांगद आदि सातो भाई विरक्त हुए और उन्होंने भूतानंद नामके तीर्थंकरके चरण कमलोंके समीप जाकर दीक्षा धारण करली ॥ २५८ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वे सातोंही भाई सात सागरकी आयु पाकर चौथे स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए, वहांसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रके कुरु जंगल देशके हस्तनागपुर नगरमें शेठ श्वेतवाहनके उसकी स्त्री वंधुमतीसे सुभानुका जीव शंख नामका पुत्र हुआ वह शंख धन संपदा, आदिसे स्वयं कुवेर के समान था। उसी नगरमें राजा गंगदेव राज्य करता था उसकी नंदयशा देवीसे वाकी छह भाइयोंके जीव दो दो कर तीन वारमें छह पुत्र हुए । गंग, नंददेव, खड्गमित्र, नंदकुमार, सुनंद और नंदिषेण ये उनके नाम थे, इन छहो भाइयोंमें परस्पर वहुतही प्रेम था । जव नंदयशाके सातवां गर्भ रहा तवसे ही राजा रानीसे वहुत उदास रहने लगा । रानीने समझा कि गर्भमें कोई ऐसा कुपुत्र है जिसके आतेही राजा मुझसे उदास हो गया है इसलिये उसने पुत्र होतेही उसे अलग रखनेके लिये रेवती नामकी धायको सोंप दिया और कहा कि इसे मेरी वडी वहिन वंधुमतीको सोंप आ । तदनुसार उसने वह पुत्र वंधुमतीको सोंप दिया, वंधुमतीने निर्नामिक उसका

तकाः । नार्योऽनार्याः कथं न स्युरत्यद्भुतविचेष्टिता ॥ २४२ ॥ ततो निर्विद्य संसारात्सानुजः स निजार्जितं । धनं दत्वा स्वकांताभ्यो वरधर्मात्तपोभवत् ॥ २४३ ॥ जिनदत्तार्यिकाभ्यासे तद्भार्याश्च तपो ययुः । हेतुरासन्नभव्यानां को वा न स्यात्तपोमहे ॥ २४४ ॥ सप्तापि काननेन्येद्युरुज्जयिन्याः प्रतिष्ठितान् । वज्रमुष्टिः समासाद्य प्रणम्य विधिपूर्वकं ॥ २४५ ॥ हेतुना केन दीक्षेयं भवतामित्यसौ जगौ । तेपि निवेदयामासुर्दीक्षाहेतुं यथावत ॥ २४६ ॥ आर्यिकाणां च दीक्षायाः पृष्ट्वा मंगयपि कारणं । उपाददे तदभ्यर्णे प्रव्रज्यामासबोधिका ॥ २४७ ॥ वरधर्मयतेर्वज्रमुष्टिशिष्यसमेयिवान् । प्रांते संन्यस्य सप्तापि त्रायस्त्रिंशाः स्वराद्दिमे ॥ २४८ ॥ द्विसागरोपमायुष्कास्ततश्च्युत्वा स्वपुण्यतः । भारते धातकीखंडे प्राच्येपाक् श्रेणिविश्रुते ॥ २४९ ॥ नित्यालोकपुरे श्रीमच्चित्रचूलमहीपतेः । ज्यायान् देव्या मनोहर्यां सूनुश्चित्रांगदोभवत् ॥ २५० ॥ इतरेपि तयोरेव त्रयस्ते जज्ञिरे यमाः । ध्वजवाहनशब्दांतगरुडौ मणिचू-

रूप हैं इस लिये अत्यंत अद्भुत चेष्टाओंको धारण करनेवाली इन स्त्रियोंको म्लेच्छ क्यों नहीं कहना चाहिये ॥ २४२ ॥ इस प्रकार सुभानु अपने सब भाइयों सहित संसारसे विरक्त हुआ उसने सब कमाया हुआ धन स्त्रियोंको दे दिया और फिर सबने वरधर्म मुनिके समीप दीक्षा धारण करली ॥ २४३ ॥ यह देखकर उनकी स्त्रियोंने भी जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है क्योंकि निकट भव्योंको तपश्चरण ग्रहण करनेके लिये क्या कारण नहीं हो जाता है अर्थात् उनके लिये सब कुछ कारण हो जाता है ॥ २४४ ॥ किसी एक दिन वे सातों ही मुनि उज्जयिनी नगरीके वनमें विराजमान थे इतनेमें ही वज्रमुष्टि आया और विधिपूर्वक नमस्कार कर पूछने लगा कि हे स्वामी आपने किस कारणसे दीक्षा ली है । इसके उत्तरमें उन मुनिराजने भी दीक्षाका यथार्थ कारण बतला दिया ॥ २४५–४६ ॥ इधर मंगीने भी उन अर्जिकाओंसे दीक्षा लेनेका कारण पूछा और कारण जानने पर उसे बोध हुआ तथा उसने उन्हीं अर्जिकाओंके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २४७ ॥ वज्रमुष्टिने भी वरधर्म मुनिका शिष्य बनकर दीक्षा धारण करली। वे सातो भाई आयुके अंतमें संन्यास धारण कर पहिले स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर त्रायस्त्रिंश जातिके देव हुए। वहां से चयकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे धातकी खंडके पूर्व भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नित्यलोक नगरके राजा श्रीमान् चित्रचूल रानी मनोहरीके बड़ा सुभानुका जीव चित्रांगद नामका पुत्र हुआ। बाकी छह भाइयोंके जीवभी इन्हीं चित्रचूल और रानी मनोहरीके दो दो करके तीनवारमें छह पुत्र हुए। गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगननंदन (नभोनंदन) और गगनचर ये उनके नाम थे। उसी धातकी द्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके मेघपुर नगरमें राजा धनंजय राज्य करता था, उसकी रानीका नाम सर्वश्री था, उसके दूसरी लक्ष्मीके समान

दर्शयित्वावदत्सर्वमात्ममंगीविचेष्टित । तस्सुभानुः समाकर्ण्य श्रीनिंदामकरोदिति ॥ २३३ ॥ स्थान ता एव निंदायाः परत्रासक्तिमागताः । वर्णमात्रेण राजत्यो रंजयंत्यो परान् भृश ॥ २३४ ॥ आदाय कृत्रिम रागं रागिणां नयनप्रियाः । बिभ्रतीह भृश भूषारम्याश्चित्राकृती- स्त्रियः ॥ २३५ ॥ सुख विषयज प्राप्तुं प्राप्तमाधुर्यमाश्रिता । किंपाकफलमाला वा काम हन्युर्मनोरमाः ॥ २३६ ॥ मातरः केवलं नैताः प्रजानामेव योषित । दोषाणामपि दुःशिक्षा-दुर्विद्या इव दु खदा ॥ २३७ ॥ मृदवः शीतलाः श्लक्ष्णाः प्रायः स्पर्शसुखप्रदाः । भुजंग्यो वागना प्राणहारिण्यः पापरूपिका ॥ २३८ ॥ हन्याद्वाक्रांत-सक्रात विषं विषभृता न वा । सर्वांगं सहसा हार्यं कांताना इवि सततं ॥ २३९ ॥ परेषा प्राणपर्यंता पापिनामप्यपक्रिया । हिंसानामिव कांतानामतातीता दयाद्विषां ॥ २४० ॥ जातिमात्रेण सर्वाश्च योषितो विषमूर्तय । न ज्ञातमेतन्नीतिज्ञैः कुर्वद्भिर्विषकन्यकाः ॥ २४१ ॥ कौटिल्यकोटय क्रौर्यपर्यंताः पचपा-

निंदा करने लगा ॥ २३१-२३३ ॥ कि वास्तवमें निंदाका स्थान स्त्रियां ही हैं निंदाके सिवाय स्त्रियां और किसी योग्य नहीं हैं ये केवल रूपसे ही अच्छी दिखती हैं और रूपसे ही दूसरे लोगोंको बहुत जल्दी मोहित कर लेती हैं ॥ २३४ ॥ बनावटी राग प्रगट करनेसे ही ये स्त्रियां रागी लोगोंके नेत्रोंको अच्छी लगती हैं और मनोहर आभूषण धारण कर चित्र विचित्रका वेश धारण करती हैं ॥ २३५ ॥ मधुरता मिले हुए विषयजन्य सुखको प्राप्त करनेके लिये आश्रयभूत ऐसी किंपाकफलकी मालाके समान मनोहर ये स्त्रियां भला किनको न मार सकेगी अर्थात् सबको मार सकेंगी ॥ २३६ ॥ ये स्त्रियां केवल अपनी संतानोंकी ही माता नहीं हैं किंतु सब दोषोंकी माता हैं और जिस प्रकार बुरी शिक्षासे प्राप्त हुई बुरी विद्या दुःख देती है उसी प्रकार ये दुःख देनेवाली हैं ॥ २३७ ॥ जिस प्रकार सर्पिणी कोमल शीतल चिकनी तथा स्पर्श करते समय सुख देनेवाली होकर प्राण हरण करनेवाली और पापरूप होती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी कोमल शीतल चिकनी और स्पर्श करते समय सुख देनेवाली होकर प्राण हरण करने वाली और पापरूप हैं ॥ २३८ ॥ सर्पोंका विष केवल मुखमें रहता है और वह किसीको मारता है किसीको नहीं भी मारता परंतु स्त्रियोंका विष सब शरीरमें भरा है वह अकस्मात् हट नहीं सकता और निरंतर मारता ही है ॥ २३९ ॥ जिस प्रकार दयारहित पापी हिंसकों की निंद्य क्रियायें अंतरहित अर्थात् सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं उसी प्रकार दयारहित पापिनी स्त्रियों की निंद्य क्रियाएं सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं ॥ २४० ॥ स्त्रियां सब उत्पन्न होनेके समयसे ही विष की मूर्तियां हैं परंतु विषकन्या बनानेवाले नीतिकारोंको यह बात मालूम नहीं है (क्योंकि यदि मालूम होती तो वे विषकन्या बनाते ही क्यों) ॥ २४१ ॥ इन स्त्रियोंमें करोडों कुटिलताएं भरी हैं अंतिम सीमा तक क्रूरता है और पांचों पाप-

मौतर्हितो द्रुमे ॥ २२१ ॥ वीक्ष्य मग्याः परीक्षार्थं तदभ्यर्णमुपागत । स्वागसदर्शन कृत्वा मधुरालापचेष्टितैः ॥ २२२ ॥ लीलाविलोकनैर्हासैर्व्यंग्यादिभिर्भ्रमणं भृशं । साप्याह भवता सार्द्धमागमिष्यामि मां भवान् ॥ २२३ ॥ गृहीत्वा यात्विति व्यक्तं श्रुत्वा तत्त्वत्पतेरहं । बिभेमि तन्न वक्तव्यमिति तेनाभिभाषिता ॥ २२४ ॥ माभैषीस्त्वं वराकोसौ किं करिष्यति भीलुक । ततो येन तवापायो नस्यात्तत्क्रियते मया ॥ २२५ ॥ इत्यन्योन्यकथाकाले हस्ताहितसरोरुहः । वज्रमुष्टिः समागत्य करवालं प्रियाकरे ॥ २२६ ॥ निधाय मुनिपादाब्जद्वयमभ्यर्च्य भक्तितः । आनमंतं प्रिया तस्य प्रहर्तुमसिमुद्यये ॥ २२७ ॥ करेण सूरसेनोद्धस्तत्करासिं तदैव स । आच्छिद्य न्यपतद् भूमौ सूरसेनकरांगुलि ॥२२८॥ वज्रमुष्टिस्तदालोक्य माभैषीरित्यभाषत । भीताहमिति सा शापादसिता- स्मै मृषोत्तरं ॥ २२९ ॥ तदैव सूरसेनोपि भ्रातृभिर्लब्धवित्तकैः । चौर्येणाग भवद्भाग गृहाणेत्युदित पृथक् ॥ २३० ॥ स सद्योति विरक्तः सन धनेन प्र- योजन । ससारादतिभीतोहं तद् गृहीष्यामि संयम ॥ २३१ ॥ इत्यब्रवीदय हेतुः कस्तपोग्रहणे तव । वदेत्युक्तः स तैश्छिन्नं निजहस्तांगुलीव्रण ॥ २३२ ॥

लीला पूर्वक उसे देखा और हंसी मजाक किया, इन सब वातोंसे उसे शीघ्र ही अपने वश कर लिया । तव वह मंगी कहने लगी कि मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूं आप मुझे लेकर निकल चलो, मंगीकी ऐसी अत्यंत स्पष्ट वात सुनकर सूरसेन कहने लगा कि मैं तेरे पतिसे वहुत डरता हूं इसलिये तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये । इसके उत्तरमें मंत्रीने कहा कि उससे तुम विल्कुल मत डरो वह नीच डरपोक तुम्हारा क्या कर सकता है, अच्छा जिससे तुम्हारी कुछ हानि न हो ऐसा उपाय मैं कर देती हूं ॥ २२१–२५ ॥ इन दोनों की इसतरह वात चीत हो पाई थी कि इतनेमें ही हाथमें कमल लेकर वज्रमुष्टि आगया, आते ही उसने तलवार तो अपनी स्त्री मंगीके हाथमें देदी और आप वडी भक्तिसे मुनिराजके दोनों चरण कमलोंकी पूजाकर नमस्कार करने लगा, उसी समय मंगीने उसे मारनेके लिये तलवार उठाई ॥२२६–२७॥ परंतु सूरसेनने उसी समय अपने हाथसे वह तलवार रोक ली जिससे उसकी सव उंगली कटकर जमीन पर गिर गई ॥२२८॥ उसे देखकर वज्रमुष्टिने कहा कि प्रिया डरो मत, इसके उत्तरमें मंगीने डर कर झूठ ही कह दिया कि मैं डर गई थी ॥ २९ ॥ उसी समय चोरीका धन लेकर सूरसेनके सव भाई आगये और सूरसेनसे कहने लगे कि हे भाई ! तू अपना भाग ले ले ॥ २३० ॥ परंतु सूरसेन उस समय अत्यंत विरक्त हो चुका था इस लिये वह कहने लगा कि मुझे अव धनसे कुछ प्रयोजन नहीं है मैं तो संसारसे वहुत डर चुका हूं इसलिये संयम धारण करूंगा । तव सव भाइयोंने पूछा कि भाई तेरे संयम धारण करनेका कारण क्या है सो तो सव कह सुना, तव सूरसेनने अपनी कटी हुई हाथकी उंगलियोंका घाव दिखलाया और अपनी तथा मंगीकी सव चेष्टाएं कह सुनाईं । उसे सुन कर सुभानु नीचे लिखे अनुसार स्त्रियोंकी

तत्कालसुखलिप्सया । वप्रश्री सह मालाभिः कालाहिं कलशेऽक्षिपत् ॥ २१२ ॥ स्नुषाभ्यसूयया कार्यं नाम नास्तीति योषिता । मंगी चोयानयानार्थं माला-दानसमुद्यता ॥ २१३ ॥ दष्टा वसंतकालोग्रविषेण विपिभर्तृणा । विषव्याप्तशरीरत्वादस्पदाभूदसौ तदा ॥ २१४ ॥ पलालवर्त्या व्यावेष्ट्य स्नुषां प्रेतवनेऽत्य-जत् । वज्रमुष्टिर्वनक्रीडाविरामेऽभ्येत्य पृष्ठवान् ॥ २१५ ॥ मंगी क्वेत्याकुलो माताप्यसद्वार्ता न्यवेदयत् । सशोक ससमुत्खातनिशातकरवालभृत् ॥ २१६ ॥ तामन्वेष्टु व्रजन् रात्रौ श्मशाने योगमास्थित । वरधर्ममुनिं दृष्ट्वा नमन् भक्त्या कृताञ्जलिः ॥ २१७ ॥ यदि पूज्य प्रिया प्रेक्षे सहस्रदलवारिजैः । त्वा सम-भ्यर्चयिष्यामीत्याशास्य गतवांस्तदा ॥ २१८ ॥ वीक्ष्यतेस्म प्रियामीषच्चेतना विषदूषिता । पलालवर्तिं मुक्त्वाशु समानीयातिक मुनेः ॥ २१९ ॥ तेन त-त्पादसंस्पर्शभेषजेनाविषीकृता । सापि सद्यः समुत्थाय प्रियस्य प्रियमातनोत् ॥ २२० ॥ गुरुप्रीतमनस्यस्मिन्नंभोजार्थं गते सति । सूरसेनस्तदा सर्वं तत्क-

और उसने माला लेनेके लिये घडेमें हाथ डाला परंतु उसकी सासु वप्रश्रीने उससे ईर्षाकर पहिलेसे ही उस घडेमें माला के साथ एक काला सर्प रख दिया था सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्रियोंसे न हो सके। हाथ डालते ही वह उस वसंतऋतुके उग्र विषको धारण करनेवाले नागराजने काट खाई। उसीसमय उसके सब शरीरमें विप फैल गया और वह चेष्टारहित हो गई ॥ २११–२१४ ॥ तदनंतर वह वप्रश्री सासु अपनी पतोहू मंगीके शरीरको पलाल (एक-तरहकी लंवी घास) से ढककर स्मशानमें छोड आई। इधर वनक्रीडाकर वज्रमुष्टि घर आया और मातासे पूछा कि मंगी कहां है। इसके उत्तरमें माताने इधर उधरकी झूठमूठकी वातें वना दीं। मंगीके न मिलनेसे वज्रमुष्टिको वहुत शोक हुआ, वह नंगी तलवार लेकर रातमें ही उसे ढूंढनेकेलिये निकला। श्मशानमें पहुंचनेपर उसे योग धारण किये हुए वरधर्म मुनिके दर्शन हुए, वज्रमुष्टिने वडी भक्तिसे हाथ जोडकर उन्हें नमस्कार किया और आशापूर्वक प्रतिज्ञा की कि हे पूज्य यदि मैं अपनी स्त्रीको देख पाऊं तो हजार दलवाले कमलसे आपकी पूजा करूं। इसतरह कहकर वह निकला देखते देखते आगे चलकर उसने देखा कि विषसे दूषित किंतु कुछ जीवित स्त्री पडी है उसने उसीसमय उसके चारों ओरका पलाल हटाया और वह शीघ्र ही उसे उन मुनिराजके समीप ले आया ॥ २१५–२१९ ॥ वज्रमुष्टिने मुनिराजके चरणकमलोंकी स्पर्शरूपी औषधिसे वह स्त्री विषरहित करली इसलिये वह शीघ्र ही उठी और उसने अपने पतिको प्रसन्न किया ॥ २२० ॥ तदनंतर जिसके मनमे मुनिराजके चरण कमलोंका वहुत वडा प्रेम है ऐसा वह वज्रमुष्टि तो कमल लेनेके लिये चला गया और सूरसेन वृक्षकी आडमें छिपा हुआ ये सव कर्म देख रहा था इसलिये वह उस मंगीकी परीक्षा करनेके लिये उसके समीप गया। वहां जाकर उसने अपना शरीर दिखाया, मीठी मीठी वातें वनाईं, अच्छी २ चेष्टा दिखलाईं

मिति ज्ञातवान् । इति सोपि कथामित्थ वक्तुं प्रारब्धवान् गुणी । जंबूपलक्षिते द्वीपे क्षेत्रेस्मिन्मथुरापुरे ॥२०१॥ शौर्यदेशाधिपः सूरसेनो नाम महीपतिः । तत्रैव भानुदत्ताख्यश्रेष्ठिनः सप्त सूनवः ॥ २०२ ॥ मातेवा यमुनादत्ता सुभानुः सकलाग्रिमः । भानुकीर्तिस्ततो भानुषेणोभूद्भानुसूरवाक् ॥ २०३ ॥ पञ्चमः सूरदेवाख्य सूरदत्तस्ततोप्यभूत् । सप्तमः सूरसेनाख्यः पुत्रै स्वैस्तावलङ्कृतौ ॥ २०४ ॥ सपुण्यफलसारेण जग्मतुर्गृहमेधिता । धर्ममन्येद्युरभ्यर्णादाचार्याभयनंदिन ॥ २०५ ॥ श्रुत्वा नृपो वणिक्मुख्योप्यग्रहीष्टाशु संयम । जिनदत्तार्यकाभ्यर्णे श्रेष्ठिभार्या च दीक्षिता ॥ २०६ ॥ ससव्यसनसंपन्ना जाता सापि तत्सुता । पापान्मूलहरा भूत्वा राज्ञा निर्वासिता पुरात् ॥२०७॥ अवंतिविषयं गत्वा विशालाया श्मशानके । सूरसेनमवस्थाप्य शेषाश्चोरयितुं पुरं ॥ २०८ ॥ प्राविशन्प्रकृत तस्मिन्निदमन्यदुपस्थित । तत्पुराधिपतिर्भूपो बभूव वृषभध्वज. ॥२०९॥ भृत्यो दृढप्रहार्योऽस्य स सहस्रभट पटु । वप्रश्रीरस्य जायाभूद्वज्रमुष्टिस्तयोः सुत ॥ २१० ॥ विमलाया: सुता मंगी विमलेंदुविशःश्वसा । तत्प्रिया भूभुजा सार्द्धं वसते वनमन्यदा ॥ २११ ॥ विहर्तुमुद्यताः सर्वे

इसतरह पूछनेपर गणधर भी उस कथाको इसतरह कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके मथुरा नगरमें शौर्य देशका स्वामी सूरसेन नामका राजा रहता था। उसी नगरमें भानुदत्त नामके शेठके उसकी यमुनादत्ता स्त्रीसे सात पुत्र हुए थे उनमेंसे सुभानु सबसे बडा था, दूसरा भानुकीर्त्ति, तीसरा भानुषेण, चौथा भानुसूर, पांचवां सूरदेव, छट्ठा सूरदत्त, और सातवां सूरसेन था। इन सातौ पुत्रोंसे वे दोनों ही मा बाप बडे ही सुशोभित थे और अपने पुण्य कर्मके उदयसे गृहस्थ धर्मका पालन करते थे। किसी दूसरे दिन श्रीअभयनंदी आचार्यके समीप राजाने दीक्षा लेली उसे सुनकर सेठ भानुदत्तने भी संयम धारण कर लिया और सेठकी स्त्री यमुनादत्ताने भी जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २०१–२०६ ॥ मा बापके दीक्षा ले जानेपर वे सातो ही शेठके पुत्र सातों व्यसनोंमें तल्लीन हो गये और पाप कर्मके उदयसे उन्होंने अपने पिताका सब धन नष्ट कर दिया यह देखकर राजाने भी उन्हें अपने नगरसे निकाल दिया ॥२०७॥ वहांसे चलकर वे सब उज्जयनी नगरीमें पहुंचे वहां जाकर सूरसेनको तो वहांके श्मशानमें छोडा और बाकी छह भाई चोरी करनेकेलिये नगरमें गये। उन भाइयोंके चले जानेपर श्मशानमें एक घटना और हो गई और वह इसतरहसे है–उससमय उज्जयनी नगरीमें राजा वृषभध्वज राज्य करता था उसके एक दृढप्रहार्य नामका एक सहस्रभट योद्धा था जो कि बहुत ही चतुर था उसकी वप्रश्री नामकी स्त्रीसे वज्रमुष्टि नामका पुत्र था ॥ २०८–२१० ॥ उसी नगरमें सेठ विमलचंद्रकी स्त्री विमलासे उत्पन्न हुई मंगी नामकी पुत्री थी वह वज्रमुष्टिको व्याही गई थी। किसी दिन वसन्त ऋतुमें उस समयका सुख लूटनेकेलिये सब लोग राजाके साथ वनमें विहार करनेके लिये तैयार हुए। मंगी भी वनमें जानेकेलिये तैयार हुई

तमिशम्यात्यकेशवः ॥ १८९ ॥ बलदेवश्च संप्राप्य स्वसर्वर्द्धिसमन्वितौ । वंदित्वा श्रुतवर्याणौ प्रीतिवंतौ ततो हरिः ॥ १९० ॥ प्राहुर्नास्तीति यं केचित् केचिन्नित्यं क्षणस्थिति । केचित्केचिदणु चाणोः केचित्स्यामाकसम्मितं ॥ १९१ ॥ केचिदंगुष्ठमातव्यं योजनानां समुच्छ्रितं । केचिच्छतानि पंचैव केचिं दूगनवद्विभु ॥ १९२ ॥ केचिदेकं परे नाना परे ज्ञमपरेऽन्यथा । तं जीवाख्यं प्रति प्राय संदेहोस्तीत्यधीश्वरं ॥ १९३ ॥ पप्रच्छ सोपि नैतेषु कोपि विद्यस्य लक्षण । ध्रौव्योत्पादव्ययात्मासौ मुणी सूक्ष्मस्वकृत्यभुक् ॥ १९४ ॥ ज्ञातात्तदेहसम्मेयः स्वयंवेद्य सुखादिभिः । अनादिकर्मसंबंधः सरन् गतिचतुष्टये १९५ कालादिलब्धिमासाद्य भव्यो नष्टाष्टदुर्मद । सम्यक्त्वाद्यष्टकं प्राप्य प्राग्देहपरिमाणभृत् ॥ १९६ ॥ ऊर्ध्वव्रज्यास्वभावत्वाज्जगन्मूर्द्धनि तिष्ठति । इति जीवस्य सद्भाव जमाद जगता गुरुः ॥ १९७ ॥ तन्निशम्यास्तिका सर्वे तथेति प्रतिपेदिरे । अभव्या दूरभव्याश्च मिथ्यात्वोदयदूषिता ॥ १९८ ॥ नामुचत्केचना- नाविवासना भववर्द्धिनीं । देवकी च तथापृच्छद्वरदत्तगणेशिन ॥ १९९ ॥ भगवन् मद्गृहं द्वौ द्वौ भूत्वा भिक्षार्थमागता । बाधवेष्विव पट् स्वेषु स्नेहः कि-

हैं, कोई कोई योजन लंबा चौडा मानते हैं कोई पांचसौ योजन मानते हैं और कोई आकाशके समान व्यापक मानते हैं ॥ १८९–१९२ ॥ इसीतरह कोई एक मानते हैं कोई अनेक मानते हैं, कोई ज्ञानस्वरूप मानते हैं कोई अज्ञानस्वरूप ही मानते हैं इसतरह प्रायः जीवका स्वरूप अनेक तरहसे मानते हैं हे स्वामी इसलिये मुझे संदेह है आप कृपाकर इसका स्वरूप कहिये इसतरह कृष्णने पूछा तव तीनों लोकोंके गुरु भगवान कहने लगे कि जीवका स्वरूप जो ऊपर कहा गया है उनमेंसे एक भी ठीक नहीं है। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप है जो गुणवाला है सूक्ष्म है अपने किये हुए कर्मोंका भोगनेवाला है, ज्ञाता है, अपने शरीरके परिमाणके वरावर है, और सुख दुःख आदिके द्वारा स्वयं वेद्य है अर्थात् मैं सुखी मैं दुखी आदि अनुभवके द्वारा अपने आप जाना जाता है वही जीव है। इस जीवके साथ अनादि कालसे कर्मोंका संबंध लग रहा है उसीसे यह चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है परंतु काल आदि लब्धियोंको पाकर भव्य जीवोंके आठों कर्म नष्ट हो जाते हैं सम्यक्त्व आदि आठों गुण प्रगट हो जाते हैं। उनका आकार अंतिम शरीरके समान (कुछ कम) रह जाता है, और ऊर्ध्वगमन स्वभाव (ऊपरको जानेका स्वभाव) होनेसे वे लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं। इसप्रकार भगवानने जीवकी सत्ताका निरूपण किया ॥ १९३–१९७ ॥ उसे सुनकर आस्तिक जीवोंने तो उसे उसी तरह मानलिया परंतु जो कोई अभव्य थे अथवा दूरभव्य थे उन्होंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दूषित होकर अनादिकालसे लगी हुई संसारको वढानेवाली वासना नहीं छोडी। तदनंतर देवकीने वरदत्त गणधरसे पूछा कि हे भगवान् मेरे घर दो दो करके छह मुनिराज आहारकेलिये पधारे उनमें अपने कुटंबियोंके समान मुझे प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ था ॥ १९८–२००॥

ताडितदुंदुभि । ध्वान मनोहरं साधुदानघोषणपूर्वक ॥ १७८ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य षट्पंचाशद्दिनप्रमे । छद्मस्थसमये याते गिरौ रैवतकामिधे ॥ १७९ ॥
षष्ठोपवासयुक्तस्य महावेणोरधः स्थित । पूर्वेन्हे श्वयुजे मासि शुक्लपक्षादिमे दिने ॥ १८० ॥ चित्रायां केवलज्ञानमुदपद्यत सर्वग । पूजयंति स्म त देवाः
केवलावगमोत्सवे ॥ १८१ ॥ वरदत्तादयोऽभूवन्नेकादश गणेशिनः । चतुःशतानि पूर्वज्ञा श्रुतज्ञानाब्धिपारगाः ॥ १८२ ॥ शून्यद्वितयवस्वेकैकमितास्तस्य
शिक्षकाः । शून्यद्वितयपचैकमितास्त्रिज्ञानलोचनाः ॥ १८३ ॥ तावत पचमज्ञाना विक्रियर्द्धिसमन्विता । शताधिकसहस्र तु मन पर्ययबोधनाः ॥१८४॥
शतानि नव विज्ञेया वादिनोष्टशतानि च । अष्टादश सहस्राणि ते सर्वेपि समुच्चिता ॥ १८५ ॥ यक्षी राजमती कात्यायन्याद्याद्याखिलार्यिका । चत्वारिंश-
त्सहस्राणि श्रावका लक्षयेक्षिता ॥ १८६ ॥ त्रिलक्षश्राविका देवा देव्यश्चासख्ययोदिता । तिर्यंचः सख्यया प्रोक्ता गणैर्द्विःषड्मितैरपि ॥ १८७ ॥ परीतो
भव्यपद्माना विकाश जनयन्मुद । धर्मोपदशनार्कांशुप्रसारेणाघनाशिना ॥ १८८ ॥ विश्वान् देशान् विहृत्याते प्राप्य द्वारावतीं कृती । स्थितो रैवतकोद्याने

वस्थाके छप्पन दिन निकलगये तब वे रैवतक (गिरनार) पर्वतपर महावेणुके (वांसके) वृक्षके नीचे तेलाका नियम लेकर विराजमान
हुए और वहींपर उन्हें आसोज (कार) पडिवाके दिन सवेरेके समय चित्रा नक्षत्रमें सब लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवल-
ज्ञान प्रगट हुआ। उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञानकल्याणका उत्सव मनाया और उनकी पूजा की ॥ १७९–१८१ ॥
उनकी सभामें वरदत्तको आदि लेकर ग्यारह गणधर थे, तथा चारसौ श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारगामी ग्यारह अंग चौदह पूर्वके
जानकार थे ॥ १८२ ॥ इसीतरह ग्यारह हजार आठसौ शिक्षक थे, और पंद्रहसौ मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण
करनेवाले थे, ॥ १८३ ॥ इसीप्रकार पंद्रहसौ केवलज्ञानी थे, ग्यारहसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, नौ सौ
मनःपर्यय ज्ञानी थे, और आठसौ वादी थे। इस तरह सबमिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे ॥ १८४–१८५ ॥ यक्षी
राजमती कात्यायनी आदि चालीस हजार अर्जिकाएं थीं, एकलाख श्रावक थे तीनलाख श्राविकायें थीं असंख्यात देव
देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे, इसप्रकारकी वारह सभाओंसे सुशोभित वे भगवान् भव्यरूपी कमलोंको वार वार प्र-
फुल्लित करने लगे और धर्मोपदेश देनेकेलिये उन्होंने पापोंको नाश करनेवाला विहार किया ॥ १८६–१८८ ॥ वह वि-
हार सब देशोंमें किया। अंतमें वे कृतकृत्य भगवान द्वारावती नगरीमें आए और रैवतक नामके उद्यानमें आ विराजमान
हुए यह वात सुनकर कृष्ण और वलभद्र अपनी सब विभूतिसहित दर्शन करनेके लिये गये वहांपर जाकर भगवानकी
वंदनाकी धर्मका स्वरूप सुना और दोनों भाई वडे ही प्रसन्न हुए। तदनंतर कृष्ण कहने लगे कि हे भगवान्! जीवको
कोई तो मानते ही नहीं, कोई नित्य मानते हैं कोई क्षणिक मानते हैं कोई सरसोंके समानमानते हैं कोई अंगूठेके समान मानते

निर्बिंध निवृत्य निजमदिरं । प्रविश्याविर्भवद्बोधिस्तत्कालोपगतामरैः ॥ १६७ ॥ बोधित समतीताममवानुस्मृतिवेपितः । तदैवागत्य देवेंद्रा कृतनिष्क्रमणोत्सव ॥ १६८ ॥ शिविकां देवकुर्वाख्यामारुह्यामरवेष्टितां । सहस्राम्रवणे षष्ठानशन श्रावणे सिते ॥ १६९ ॥ पक्षे चित्राख्यनक्षत्रे षष्ठया सायाह्नमाश्रित । शतत्रयकुमाराब्दव्यतीतौ सह भूभुजा ॥ १७० ॥ सहस्रेण समाधाय संयम प्रत्यपद्यत । चतुर्थज्ञानधारी च बभूवासन्नकेवल ॥ १७१ ॥ संध्येव भानुमस्ताद्रावनु राजमतिश्च त । यथा वाचापि दत्तानां न्यायोय कुलयोषितां ॥ १७२ ॥ स्वदु खेनापि निर्विण्णः श्रूयते न जनः पर । परदुःखेन संतोमी त्यजत्येवमहो श्रियं ॥ १७३ ॥ बलकेशवमुख्यावनीशाः संपूज्य संस्तवै । सम्रुरेशास्तमीशान स्वं धाम समुपाश्रयन् ॥ १७४ ॥ पारणाह्नि वसे तस्मै वरदत्तो महीपतिः । कनकाभः प्रविष्टाय पुरीं द्वारावतीं सते ॥ १७५ ॥ श्रद्धादिगुणसपन्नः प्रतीच्छादिनवक्रिय । आदिताम मुनिप्राह्यं पंचाश्चर्याणि चाप सः ॥ १७६ ॥ कोटिर्द्वादश रत्नाना सार्द्धाः सुरकरच्युता । वृष्टिं सौमनसीं वायु मायादित्रिगुणान्वितं ॥१७७॥ घनातरितकायानाममि-

भगवान देवोंके द्वारा उठाई हुई देवकुरु नामकी पालकीपर सवार होकर सहस्राम्र वनमें गये और उन्होंने श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय तेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की। अपने कुमार कालके तीनसौ वर्ष बीत जानेपर उन्होंने दीक्षा धारण की थी और उनके साथ एक हजार राजा दीक्षित हुए थे। उसीसमय उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हुआ था और केवलज्ञान भी थोडे ही दिनमें होनेवाला था ॥ १६४–१७१ ॥ जिसप्रकार संध्या सूर्यके पीछे पीछे अस्ताचल पर्वतपर जाती है उसीप्रकार राजमति भी भगवान नेमिनाथके पीछे ही तपश्चरण धारण करनेकेलिये गई सो ठीक ही है क्योंकि वचनसे दी हुई कुलस्त्रियोंका भी यही न्याय है ॥ १७२ ॥ दूसरे लोग अपने दुःखसे भी विरक्त होते नहीं सुने परंतु आश्चर्य है नेमिनाथ सरीखे सज्जन लोग दूसरेके दुःखसे भी ऐसी ऐसी महा विभूतियोंका त्याग कर देते हैं ॥ १७३ ॥ कृष्ण वलभद्र आदि अनेक राजा तथा इंद्रादि सब देव उन भगवानकी पूजा और स्तुतिकर सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ १७४ ॥ पारणाके दिन सज्जनोत्तम श्रीनेमिनाथने द्वारावती नगरीमें प्रवेश किया, वहांपर सुवर्णकी कांतिको धारण करनेवाले तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित राजा वरदत्तने नवधा भक्तिसे उनका पडगाहन किया और उन्हें मुनियोंके ग्रहण करने योग्य प्रासुक आहारदान दिया जिससे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ १७५-१७६ उसके घर देवोंके हाथसे छूटे हुए साडे बारह करोड रत्न वरसे, फूलोंकी वर्षा हुई, शीतल मंद सुगंध इन तीनों गुणोंसे भरी हुई हवा चलने लगी, आकाशमें देवोंके द्वारा वजाये हुए दुंदुभियोंके मनोहर शब्द होने लगे और आपने यह वहुत अच्छा दान दिया ऐसी घोषणा होने लगी ॥ १७७–१७८ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए जब उनके छद्मस्थ अ-

यक्त महापापोपलिपक ॥ १५७ ॥ अथ नेमिकुमारोपि नानाभरणभारभाक् । सहस्रकुंतलो रक्तोत्पलमालाभ्यलंकृतः ॥ १५८ ॥ तुरंगमखुरोद्भूत-धूलीक्लिप्तदिगाननः । सवयोभिरिति प्रीतैर्महासामंतसूनुभिः ॥ १५९ ॥ परीत शिविकां चित्रामारुह्य नयनप्रियः । दिशो विलोकयितुं गच्छस्तत्रालोक्य यदृच्छया ॥ १६० ॥ मृगानितस्ततो घोरं रुदिला करुणास्वन । भ्रमतस्तृषितान् दीनदृशीनतिभयाकुलान् ॥ १६१ ॥ किमर्थमिदमेकत्र निरुद्धं तृणभुक्कुल । इत्यन्वयुक्त तद्रक्षानियुक्तानानुकंपया ॥ १६२ ॥ देवैतद्वासुदेवेन त्वद्विवाहमहोत्सवे । व्ययीकर्तुमिहानीतमित्यभाषत तेपि त ॥ १६३ ॥ वनेऽरण्ये खादति तृणान्यनपराधकाः । किलैताश्च स्वभोगार्थं पीड्यंति धिगीदृश ॥ १६४ ॥ किं न कुर्वंत्यमी मूढाः प्रौढमिथ्यात्वचेतसः । प्राणिनः प्राणितु प्राणैर्निघृणः स्वैर्विनश्वरैः ॥ १६५ ॥ स्वराज्यग्रहणाशंक विधाय मयि दुर्मतिः । व्यधात्कपटमीदृक्ष कष्ट दुष्टविचेष्टित ॥ १६६ ॥ इति निध्याय

के लिये कृष्णने ये सब पशु इकट्ठे किये हैं ॥ १५६–१५७ ॥ इसके वाद जो अनेक आभूपणोंके वोझसे सुशोभित हो रहे हैं रक्त कमलोंकी मालासे अलंकृत हो रहे हैं, जो साथमें चलते हुए अनेक घोडोंके खुरोंसे उठी धूलिसे सब दिशाओंके मुह भर रहे हैं जिनके चारों ओर उनकी उमरके तथा प्रसन्न चित्तवाले वडे वडे सामन्तोंके पुत्र चल रहे हैं एक हजार भालासवार जिनके साथ हैं और जो सवके नत्रोंको प्रिय हैं ऐसे श्रीनेमिकुमार भी चित्रा नामकी नालकीपर सवार होकर दिशाएं देखनेके लिये निकले वहींपर इच्छानुसार देखते हुए उन्होंने घोर करुणास्वरसे चिल्ला चिल्लाकर इधर उधर फिरते हुए, प्यासे, भयसे अत्यंत व्याकुल और दीन दृष्टिको धारण करनेवाले पशु देखे ॥ १५८–१६१ ॥ उन्हें देखकर नेमिकुमारने वडी दया बुद्धिसे उनके रक्षकोंसे पूछा कि यह पशुओंका समूह एक जगह किस लिये इकठ्ठा किया गया है ॥ १६२ ॥ इसके उत्तरमें उन लोगोंने भी कहा कि हे देव ! आपके विवाहमहोत्सवमें मारनेके लिये कृष्णने ये सब यहां इकट्ठे किये हैं ॥ १६३ ॥ यह सुनते ही वे विचार करने लगे कि ये पशु वनमें तो रहते हैं तृण खाते हैं और किसीका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इसतरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर धिकार है। अथवा जिनके चित्तमें प्रौढ मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे घृणारहित ये मूर्ख प्राणी अपने विनश्वर प्राणोंसे जीवित रहनेकेलिये क्या नहीं कर डालते हैं। इस दुर्वुद्धिको मेरे विषयमें अपना राज्य लेलेनेकी शंका उठी है इसीलिये इसने ऐसा कपट किया है इसीसे कहना पडता है कि दुष्टोंकी चेष्टाएं भी वडी ही भयानक होती हैं। इस तरह सोचकर वे विरक्त हुए और लौटकर अपने मंदिरमें आए। रत्नत्रय प्रगट होनेसे उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उन्हें समझाया। वे पहिलेके भवोंका स्मरणकर वे दुखी हुए और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव किया। वे

त्रिलोकस्वामिनो नेमेः प्रियास्त्वैवेति सादरं ॥ १४६ ॥ अखिलभ्रातरमानां त्व पतिर्नौ विशेषतः । देव त्वमेव नाथोसि प्रस्तुतार्थस्य के वयं ॥ १४७ ॥ इत्युग्रसेनवाचोद्यत्सम्मदो यादवाधिपः । शुभेह्नि समारभ्य विभातु स तदुत्सवं ॥ १४८ ॥ पञ्चरत्नमयं रम्य समानयदनुत्तरं । विवाहमंडप तस्य मध्यस्थे जगतीतले ॥ १४९ ॥ नवमुक्ताफलालोलरंगवल्लीविराजिनि । मंगलामोदपुष्पोपहारसारविलासिनि ॥ १५० ॥ विस्तृतामिनवानर्घ्यवस्त्रे सौभर्मपट्टके । वध्वा सह समापर्द्दतंदुलारोपण वरः ॥ १५१ ॥ परेद्यु समये पाणिजलसेकस्य माधव, । यियासुर्दुर्गतिं लोभप्रुतीव्रानुभवोदयात् ॥ १५२ ॥ दुराशय सुराधीशपूज्यस्यापि महात्मनः । स्वराज्यादानमाशंक्य नेमेर्मायाविना वरः ॥ १५३ ॥ निर्वेदकारण किंचित् निरीक्ष्यैष विरंस्यति । भोगेभ्य इति सांचिंत्य तदुपायविधित्सया ॥ १५४ ॥ व्याधाधिपैर्वृतानीतं नानामृगकदंबकं । विधायैकत्र संकीर्णां वृतिं तत्परितो व्यधात् ॥ १५५ ॥ अशिक्षयत तद्रक्षाध्यक्षान् यदि समीक्षितुं । धीशो नेमीश्वरोभ्येति भवद्भिः सोभिधीयता ॥ १५६ ॥ त्वद्विवाहे व्ययीकर्तुं चक्रिणैष मृगोत्करः । समानीत इति

वडे आदरसे मांगी ॥ १४५–१४६ ॥ कृष्णाके इसतरह मांगनेपर राजा उग्रसेनने कहा कि हे देव तीन खंडमें उत्पन्न हुए रत्नोंके स्वामी हैं इसमें कुछ विशेषता नहीं है। आपने अभी जो मांगा है उसके भी स्वामी आप ही हैं आपके सामने हम कौन हैं इस प्रकारके उग्रसेनके वचनोंसे कृष्णाको वडी ही प्रसन्नता हुई और उन्होंने किसी शुभ दिनमें वह विवाहका उत्सव करना प्रारंभ कर दिया ॥ १४७–१४८ ॥ उन्होंने सबसे उत्तम और मनोहर पांचों रत्नोंका विवाह मंडप वनवाया, उसके मध्यभागमें एक वेदी वनवाई वह वेदी नये मोतियोंकी सुंदर रंगावलीसे सुशोभित हो रही थी, मांगलिक सुगंधित पुष्पोंकी भेंटसे वह वहुत सुंदर दिखती थी, और उसपर वहुत वा वडे नये और वहुमूल्य रेशमी वस्त्र विछे थे। उससमय वर श्री नेमिकुमारने वधू राजमतिके साथ भीगे तंदुलोंका आरोपण किया था ॥ १४९–१५१ ॥ दूसरे दिन पाणिग्रहण वा कन्यादानका दिन था उस दिन मायाचारियोंमें श्रेष्ठ और दुर्गतिको जानेकी इच्छा करनेवाले दुष्ट कृष्णाको तीव्र लोभ कर्मके उदयसे इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे महात्मा नेमिकुमारके विषयमें यह शंका उत्पन्न हुई कि ये मेरा राज्य ले लेंगे तथा उन्होंने यह भी विचार किया कि ये वैराग्यका थोडासा ही कारण देखकर भोगोंसे विरक्त हो जायंगे। यही सोचकर उन्होंने नेमिकुमारको विरक्त करनेके लिये एक उपाय किया। उन्होंने अनेक अच्छे अच्छे व्याधोंके द्वारा बहुतसे पशु पकडवाकर मगवाकर और उन सवको एक जगह इकट्ठाकर उनके चारों ओर एक छोटीसी वाड (घेरा) लगवा दी ॥ १५२–१५५ ॥ तदनंतर महापापमें डूवनेवाले कृष्णने उन पशुओंकी रक्षा करनेवालोंको समझा दिया कि यदि महाबुद्धिमान श्रीनेमीश्वर कुमार उन्हें देखनेके लिये यहां आवें तो तुम सब उनसे इसतरह स्पष्ट कहना कि आपके विवाहमें मारने-

श्यामास्थाय दिव्य शार्ङ्गं शरासन ॥ १३५ ॥ हेलयारोपयच्च प्रपूरितदिगतरं । शंखमापूरयदिक व्रत् साहसं नो भवेत्त्वया ॥ १३६ ॥ कार्यं साधु करि-
ष्यामीत्युक्त्वा गर्वप्रचोदित । तत पुरं समभ्येत्य विभाद्‌ कर्म सोद्भुतं ॥ १३७ ॥ सप्रविश्यायुधागारं नागशय्यामधिष्ठित । स्वा शय्यामिव नागेंद्र-
महामणिविभास्वरां ॥ १३८ ॥ भूयोविस्फालनोश्नादज्यानत च शरासन । आरोपयत्पयोज च दध्मौ रुद्धदिगतरं ॥ १३९ ॥ तदा समावयामास स्वं
समाविष्कृतोन्नतिं । रागाहङ्कारयोर्लेशोप्यवश्य विकृतिं नयेत् ॥ १४० ॥ सहसैतदद्भुत कर्म श्रुत्वाध्यास्य सभावनिं । हरिः कुसुमचित्राख्यामाकुलाकुल-
मानस ॥ १४१ ॥उद्भूतविस्मयोऽपृच्छत्किमेतदिति किंकरान् । तेपि तत्सम्यगन्विष्य चक्रनाथ व्यजिज्ञपत् ॥ १४२ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं चक्री सावधानं
वितर्कयन् । रागिचेतः कुमारस्य चिराच्चित्रमजायत ॥ १४३ ॥ अभूत्कल्याणयोग्योयमारूढनवयौवनः । बाधा सतेन कामेन कस्य न स्यात्सकर्मणः ॥
१४४ ॥ इत्युग्रवंशवार्द्धीदोरुग्रसेनमहीभुजः । जयवत्याश्च सर्वांगशस्या राजमति सुता ॥ १४५ ॥ ता तद्गृह स्वयं गत्वा कन्यो मान्यामयाचत ।

कहा कि इसका मैं क्या करूं? तब नेमिकुमार ने कहा कि इसे धो डालो इसके उत्तरमें सत्यभामाने फिर कहा कि क्या आप
कृष्ण हैं जिन्होंने नागशय्या पर चढकर लीलामात्रमें शार्ङ्ग नामका दिव्य धनुष चढाया और सब दिशाओंको गुंजा देने
वाला शंख बजाया ऐसे साहसका काम आपसे कभी नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें नेमिकुमारने अभिमानमें आकर कह
दिया कि अच्छा मैं भी इस कामको कर डालूंगा। तदनंतर नगरमें आकर उस अद्‌भुत कामको करनेकेलिये वे आयुधशा-
लामें गये। पहिले तो वे अपनी शय्याके समान नागराजकी महामणियोंसे देदीप्यमान ऐसी नागशय्यापर चढे फिर प्रत्यंच
फैलाकर धनुष चढाया और फिर अपनी आवाजसे सब दिशाओंको रोक देनेवाला शंख बजाया ॥ १३५–१३६ ॥ तद-
नंतर उन्होने अपने ही समान उन्नतिके प्रगट होनेकी संभावनाकी। सो ठीक ही है क्योंकि राग और अहंकारका एक
छोटासा हिस्सा भी अवश्य ही विकार उत्पन्न कर देता है ॥ १४० ॥ उससमय कृष्ण कुसुमचित्रा नामकी सभामें बैठे थे
अकस्मात् इस अद्‌भुत कामको सुनकर उनका चित्त व्याकुल होगया और वे बडे आश्चर्यके साथ सेवकोंसे पूछने लगे
कि यह क्या है तब सेवकोंने भी पता लगाकर कृष्णसे सब समाचार निवेदन कर दिये ॥ १४१–१४२ ॥ सेवककी
ये बातें सुनकर कृष्ण सावधान होकर सोचने लगे कि आश्चर्य है कि कुमारके चित्तमें बहुत देरसे राग उत्पन्न हुआ॥१४३॥
कुमारकी अब नव योवन अवस्था है और वे विवाह कर देने योग्य हैं क्योंकि कर्मसहित मनुष्योंमें ऐसा कौन है जिसे
दुष्ट कामकी बाधा न होती हो ॥ १४४ ॥ यही समझकर उन्होंने उग्रवंश रूपी समुद्रके चंद्रमाके समान राजा उग्रसेन
रानी जयावतीके जो सर्वांग सुंदर राजमती कन्या थी वह तीन लोकके स्वामी नेमिकुमारके लिये स्वयं उनके घर जाकर

१२४ ॥ रत्नमाला गदा सीरो मुशलं च हलेशिनः । महारत्नानि चत्वारि स्फुरन्त्वींप्यभवन् प्रभो ॥ १२५ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च सती जाववतीति च । सुसीमा लक्ष्मणा गौरी गांधारी सप्तमी प्रिया ॥ १२६ ॥ पद्मावती च देव्योऽमूरष्टौ पट्टप्रसाधनाः । सर्वा देव्यः सहस्राणि चाणूरांतस्य षोडश ॥ १२७ ॥ बलस्याष्टसहस्राणि देव्योभीष्टसुखप्रदा । तामिस्त्वावामरं सौख्यमासीा वा प्रीतिमीयतुः ॥ १२८ ॥ स्वपूर्वकृतपुण्यस्य परिपाकेन पुष्कलान् । भोगान्प्राप्नुवतस्तस्य काले गच्छति शार्ङ्गिण ॥ १२९ ॥ अन्येद्युर्वारिदार्तेतःपुरेणामा सरोवरे । मनोहराभिधानेऽभूज्जलकेली मनोहरा ॥ १३० ॥ तत्र नेमीशितुः सत्यभामायाश्चांवुसेचनात् । संलापोऽभवदित्युच्चैश्चतुरोक्तया मनोहरः ॥ १३१ ॥ त्वं प्रियावत्कुतो रंता मयि त्व किं ममाप्रिया । प्रिया चे त्तव भ्राता यातु का कामदायिनीं ॥ १३२ ॥ कासौ किं ता न वेत्सि त्व सम्यक् सा वेदयिष्यति । वदति त्वामृजु सर्वे कुटिलस्त्व त्वदप्यह ॥ १२३ ॥ पुनः स्नानविनोदावसाने तामेवमब्रवीत् । स्नानवस्त्र त्वया मार्ष्य नीलोत्पलविलोचने ॥ १३४ ॥ कस्य मे किं करोम्येतत्प्रक्षालय हरिर्भवान् । यो नागश-

ये सात रत्न कृष्णके थे ॥ १२४ ॥ रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये देदीप्यमान चार महारत्न वलदेव प्रभुके थे॥१२५॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, सती जांववती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गौरी, सातवीं गांधारी और पद्मावती ये आठ देवियां कृष्णकी पट्टरानी थीं इनको लेकर कृष्णके सब सोलह हजार रानियां थी ॥ १२६–१२७ ॥ इसी तरह वलदेवके इच्छानुसार सुख देनेवाली आठ हजार रानियां थीं इन सब अपनी अपनी रानियोंसे देवोंके समान सुख भोगते हुए सदा प्रसन्न रहते थे ॥ १२८ ॥ इस तरह पूर्व जन्मके पुण्यकर्मके उदयसे जिन्हें अनेक भोग प्राप्त हुए है ऐसे कृष्णका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था ॥ १२९ ॥ किसी एक समय शरद ऋतुमें सब अंतःपुरके साथ मनोहर नामके सरोवर पर गये वहां पर सबने मनोहर जलक्रीडा की ॥ १३० ॥ वहीं पर परस्पर जल उछालते समय नेमिनाथ और सत्यभामाकी चतुराईसे भरी हुई कुछ मनोहर वात चीत हुई । सत्यभामाने कहा कि आप मेरे साथ अपनी प्यारीके समान जलक्रीडा क्यों करते हैं ? इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि तू क्या मेरी प्यारी नहीं है । इसके उत्तरमें सत्यभामाने फिर कहा कि यदि मैं आपकी प्यारी हूं तो आपके भाई फिर किस कामिनीके पास जाते हैं । यह सुन कर नेमिकुमारने कहा कि वह कौनसी कामिनी है क्या तू उसे नहीं जानती अच्छा वह अब अच्छी तरह जान लेगी । यह सुन कर सत्यभामाने फिर कहा कि आपको सबलोग सीधा वतलाते हैं परंतु आप तो वडे ही कुटिल निकले । इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि क्या मैं तुझसे भी अधिक कुटिल हूं ॥ १३१–१३३ ॥ इस प्रकारके विनोद और स्नान करनेके वाद नेमिकुमारने सत्यभामासे फिर कहा कि हे नील कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तू यह गीली धोती पकड ॥ १३४ ॥ इसके उत्तरमें सत्यभामाने

॥ ११३ ॥ द्योतिताखिलदिक्चक्र चक्रमादाय विक्रमात् । त्रिविक्रम समुद्दिश्य न्यक्षिपद्रूक्षवीक्षण ॥ ११४ ॥ तत्त प्रदक्षिणीकृत्य स्थितवद्दक्षिणे भुजे । तदेवादाय कंसारिर्मगधेशोऽछिनच्छिरः ॥ ११५ ॥ प्रयो भयानकानीक ददतिस्मागलन् दिवः । सुरद्रुमप्रसूनानि सह गन्धाम्बुविंदुभिः ॥ ११६ ॥ चक्री चक्र पुरस्कृत्य विजिगीषुर्दिशो दश । प्रस्थानमकरोत्सार्द्धं बलेन स्वबलेन वा । ११७ ॥ मगधादीन्सुरान् जित्वा विधेयीकृत्य विश्रुताम् । गृहीत्वा सार-रत्नानि तद्दत्तान्यूर्जितोदयै ॥ ११८ ॥ सिंधुसिंधुखगायूंतरालव्याघधराधिपान् । स्वपादनखभाभारमानमय्योदवाहयन् ॥ ११९ ॥ खेचराचलवाराशि गंगामध्यगतान् पुनः । वशीकृत्य वशी तूर्णं म्लेच्छराजान् सखेचरान् ॥ १२० ॥ भरतार्धमहीनाथो दूरोच्छ्रितपताकिका । उद्बद्धतोरणा द्वारवतीं दृष्ट्वा विवेश सः ॥ १२१ ॥ प्रविष्टवत त देवविद्याधरधराधिपाः । त्रिखंडाधिपतिश्चक्रीत्यभिषिंचन्नयान्वितं ॥ १२२ ॥ स सहस्रसमायुष्को दशचापसमुच्छ्रित । नीलाब्जवर्णो भाल्लोललक्ष्म्यालिंगितविग्रहः ॥१२३॥ चक्र शक्तिर्गदा शंखो धनुर्दण्डः सनन्दकः । बभूवुः सप्त रत्नानि रक्षाण्यस्याक्षवाटकैः ॥

के उदय होनेसे अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार कृष्णके आते ही जरासंध की सेना नष्ट होने लगी। अपनी सेना को नष्ट होते देखकर क्रोधका भरा जरासंध भी आया तथा रूखी दृष्टिको धारण करनेवाले उसने अपने पराक्रमसे सब दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला चक्र लेकर कृष्णकी ओर चलाया ॥ ११३-११४ ॥ परंतु वह चक्र कृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजा पर आकर ठहर गया इस लिये कृष्णने वही चक्र लेकर जरासंधका शिर काट डाला ॥११५॥ उसी समय कृष्णकी सेनामें जीतके नगाडे वजने लगे और आकाशसे सुगंधित जलकी बूंदोंके साथ साथ कल्पवृक्षोंके फूल वरसने लगे ॥ ११६ ॥ तदनंतर कृष्णने सब दिशाओंके जीतनेकी इच्छासे बलदेव और सब सेनाके साथ चक्रको आगे कर प्रस्थान किया ॥ ११७ ॥ जिनका पुण्योदय चमक रहा है ऐसे उन दोनों भाइयोंने मगध आदि प्रसिद्ध देवोंको जाकर जीता और उनके दिये हुए उत्तमोत्तम रत्न स्वीकार किये ॥ ११८ ॥ लवणोद समुद्र सिंधु नदी, और विजयार्द्ध पर्वतके मध्यके म्लेच्छोंसे नमस्कार कराकर उनसे अपने पैरोंके नखोंकी कांतिका भार उठवाया ॥ ११९ ॥ तदनंतर विजयार्द्ध पर्वत, समुद्र, और गंगा नदीके बीच वालोंको वश किया और फिर उन जितेंद्रियने शीघ्र ही विद्याधरों सहित म्लेच्छोंको वश किया ॥१२०॥ इसी तरह आधे भरतके स्वामी होकर उन्होंने जिसमें पताकाएं बहुत ऊंची फहरा रही हैं और जगह जगह तोरण वंधे हुए हैं ऐसी द्वारावतीमें प्रवेश किया। जाते ही देव विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओंने उन्हें तीन खंडके स्वामी चक्रवर्ती मानकर बिना कहे सुने कृष्णका अभिषेक किया ॥ १२२ ॥ कृष्णकी एक हजार वर्षकी आयु थी, दश धनुष ऊंचा शरीर था, नील कमलके समान वर्ण था और चंचल लक्ष्मीसे आलिंगन किया हुआ उनका शरीर बहुत ही अच्छा जान पडता था ॥ १२३ ॥ देवोंके द्वारा सुरक्षित ऐसे चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और तलवार

विपुलाचलतीक्ष्या ॥ १०२ ॥ पतितानां परैः स्तूयमानसाहसकर्मणां । प्रसादवंति वक्त्राणि स्थलपद्मश्रियं दधुः ॥ १०३ ॥ भटैः परस्य शस्त्राणि खंडितानि स्वकौशलात् । तत्खंडैस्तत्र पार्श्वस्था बहवो व्यसवोभवन् ॥ १०४ ॥ न मत्सरेण न क्रोधान्न रूपातेर्न फलेच्छया । भटाः केचिदयुध्यंत न्यायोयमिति केवल ॥ १०५ ॥ सर्वशस्त्रसमुद्भिन्नशरीरावीरयोधना । परिच्युता गजस्कधाच्चूलिकालिंगितांह्रय ॥ १०६ ॥ चिरं परिचितं स्थान परित्यक्तुमिवाक्षमाः । प्रलवते स्म कर्णाग्रमवलम्ब्यानताननाः ॥ १०७ ॥ केचिद्वामकरोपात्तचित्रदंडस्वरक्षणाः । दक्षिणाभुजेनाघ्नन् भटाश्चटुलचारिणः ॥ १०८ ॥ तत्र वात्यो मनुष्याणा मृत्योरुत्कृष्टसचय । कदलीघातजातस्येत्युक्तिमत्तद्रणागण ॥ १०९ ॥ एवं तुमुलयुद्धेन प्रवृत्ते सगरे चिरं । सेनयोरंतकस्यापि संतृप्तिः समजायत ॥ ११० ॥ विलंघितं बल विष्णो वलेन द्विषता तदा । यथा क्षुद्रसरिद्वारिवाहाः सिंधुसवांवुना ॥ १११ ॥ तदालोक्य हरिः क्रुध्वा हरिर्वा करिणां कुलं । समस्तबलसंदोहसहितो हतुमुद्यत ॥ ११२ ॥ भास्करस्योदयाद्वाधकारं शत्रुबलं तदा । विलीन तं निरीक्ष्यैत्य जरासधोन्वित क्रुधा ॥

शत्रु भी जिनके साहसके कामोंकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसे पडे हुए योद्धाओंके प्रसन्न हुए मुख ठीक स्थलकमलोंकी शोभाको धारण करते थे ॥१०३॥ कितनेही योद्धाओंने अपनी कुशलतासे दूसरोके शस्त्र तोड डाले थे परंतु उनके तोडनेसे समीपके वहुतसे लोग मर गये थे ॥ १०४ ॥ कितने ही योद्धा न किसी ईर्ष्यासे लडते थे, न क्रोधसे, न कीर्तिके लिये और न फलकी इच्छासे लडते थे किंतु लडना न्याय है यही समझकर लडते थे ॥ १०५ ॥ जिनका शरीर सब तरहके शस्त्रोंसे छिद गया भिद गया है ऐसे कितनेही योद्धा हाथीके कंधेसे गिर गये थे परंतु उनके पैर हाथीके कानोंसे लटक ही रहे थे इसलिये वे ऐसे जान पडते थे मानों वे अपने वहुत दिनके परिचित स्थान छोड नहीं सकते इसलिये हाथीके कानोंका सहारा लेकर और नीचे मुंह लटका कर लटक रहे हों ॥ १०६–१०७ ॥ चंचल पैरोंको रखनेवाले कितने ही योद्धा अपनी रक्षाके लिये वायें हाथमें चित्र दंड लेकर शस्त्रोंवाली दाहिनी भुजासे शत्रुओंको मारकर डाल रहे थे ॥ १०८ ॥ जिस प्रकार केलाओंकाघात क्षणभरमें हो जाता है उसी प्रकार उस युद्धके मैंदानमें मृत्युके लिये मनुष्योंका उत्कृष्ट जमाव हो रहा था। भावार्थ—बडी शीघ्रतासे ढेरके ढेर लोग मर रहे थे ॥ १०९ ॥ इस प्रकार उस युद्धस्थलमें वहुत देर तक दोनों सेनाओंका घोर युद्ध हो रहा था जिससे यमराज भी खूब तृप्त हो गया था ॥ ११० ॥ तदनंतर जिसप्रकार समुद्रके ज्वारके जलसे छोटी नदियोंका पानी वहने लगता है उसी प्रकार शत्रुओंकी सेनासे कृष्णकी सेना कुछ पीछेकी ओर हटने लगी ॥ १११ ॥ अपनी सेनाको पीछेकी ओर हटती देखकर जिसप्रकार सिंह हाथियोंके झुंड पर टूटता है उसी प्रकार कृष्ण क्रोध कर अपनी सब सेनाको साथ लेकर शत्रुकी सेना को मारनेके लिये तैयार हुए ॥ ११२ ॥ जिस प्रकार सूर्य

लक्षितः ॥ ९० ॥ सज्बनावर्जेनिर्णिक्तसौवर्णोरुगलतिका—जलैराचम्य युद्धेच्छु क्षिप्तपूर्णजलांजलि ॥ ९१ ॥ गंधपुष्पादिभिर्विघ्नविनायकमनायक । भक्त्या जिनेंद्रमभ्यर्च्य भव्यकल्पमहीरुह ॥ ९२ ॥ अभिवयासामंतै समंतात्परिवारित । प्रतिपक्षमपक्षेप्तु पक्षेणाभिमुख ययौ ॥ ९३ ॥ तत कृष्णेन निर्दिष्टाः प्रशास्तृपरिचारिणः । सैन्य यथोक्तविन्यास रचयंति स्म रागिण ॥ ९४ ॥ जरासधोपि सग्रामरंगमध्यमधिष्ठित । स्वसैन्य निष्ठुरारातेरध्यक्षैरन्वयोजयत् ॥ ९५ ॥ इति विन्यासितसैन्ये दध्वने समरानकै. । शूरधानुष्कनिर्मुक्तशरनाराचसकुल ॥ ९६ ॥ नभोन्यरुणदुष्णाशुप्रसरत्करसततिं । वियोगमगमन्मोहात्तदास्तमयशंकया ॥ ९७ ॥ कोकयुग्म विहगश्च रुवतो नीडमाश्रयन् । नेक्षते स्म भटा योद्धुमन्योन्यं समरागणे ॥ ९८ ॥ संक्रुद्धमत्तमातंगदतसघट्टजन्मना । सप्तार्चिषा विधूतेंधकारे दिगवलोकनात् ॥ ९९ ॥ पुनः प्रवृत्तसग्रामाः सर्वशस्त्रविचक्षणाः । नदीं रक्तमयीं चक्रुर्विक्रमैकरसा क्षण ॥१००॥ करालकरवालाग्रनिकृत्तचरणद्वयाः । तुरंगमा गतिं प्रापुर्वने नष्टतपोधनाः ॥ १०१ ॥ विच्छिन्नचरणा पेतुर्द्विपाः प्रातमहामरुत् । निर्मूलपातितानील-

घ्नोंके नाश करनेवाले तथा भव्योंके लिये कल्पवृक्षोंके समान श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजाकी और फिर उन्हें नमस्कार किया । तदनंतर गुरुजन और सामंत लोगोंको अपने चारो ओर रखकर अपनी पक्षसे ही शत्रुओंको जीतनेके लिये उनके सामने हुए ॥९१–९३॥ तदनंतर कृष्णकी आज्ञासे अनुराग रखनेवाले प्रशंसनीय परिचारक लोगोंने यथा योग्य रीतिसे सेनाकी रचनाकी ॥ ९४ ॥ जरासंध भी संग्रामरूपी रंगभूमिके मध्यमें आ विराजमान हुआ और निर्दयी शत्रुओंके साथ अपनी सेनाकी योजना करने लगा ॥ ९५ ॥ इसप्रकार रचनाकी हुई दोनो सेनाएं युद्धके वाजोंसे शब्दायमान होने लगीं । शूरवीर धनुष धारियोंके छोडे हुए वाणोंसे आकाश भरगया और सूर्यके फैले हुए किरणोंके समूह सब ढक गये । उस समय सूर्यको अस्त हुआ समझ कर चक्रवाक् पक्षियोंका जोडा विछुड गया, और पक्षी भी चहचहाट करते हुए अपने घोंसलेमें घुस गये, तथा उस युद्धके मैदानमें योद्धा लोग युद्ध करनेके लिये परस्पर दिखाई भी नहीं पडते थे ॥ ९६–९८ ॥ उस समय क्रोधित हुए मदोन्मत्त हाथियोंके दातोंके संघटनसे जो अग्नि निकलती थी उससे कुछ अंधकार दूर होता था और सब तरहके शस्त्र चलानेमें निपुण योद्धा उसी अग्निके उजालेसे दिशाओंको देखकर फिर युद्ध करने लग जाते थे, पराक्रम रूपी एक रससे भरे हुए वे योद्धा क्षणभरके लिये नदीको भी रक्तमयी (लोहूसे भरी हुई) बनारहे थे ॥ ९९–१०० ॥ कठिन तलवारकी धारसे जिनके दो पैर कट गये हैं ऐसे घोडे उसी गतिको प्राप्त हो रहे थे जिसे कि वनमें रहनेवाले तपस्वी अपने तपश्चरणरूपी धनको नष्टकर प्राप्त होते हैं ॥ १११ ॥ जिनके पैर कट गये हैं ऐसे हाथी इस तरह पड गये थे मानों प्रलय कालकी महावायुसे जडसे उखडकर पडे हुए नीले विपुलाचलकी शोभाको ही धारण कर रहे हों ॥ १०२ ॥

दुर्योधनभरेक्षिना । दुःशासनेन दुर्मर्षणेन दुर्धर्षणेन च ॥ ७९ ॥ दुर्जयेन कलिंगेशा भगदत्तेन भूभुजा । परैश्च भूरिभूपालैराजगाम स केशवं ॥ ८० ॥ तदा हरिबले युद्धदुंदुभिध्वनिरुच्चरन् । शूरचेतोरसैा वास कौसुंभो वान्वरंजयत् ॥ ८१ ॥ तदाकर्ण्य नृपाः केचित्पूजयंतिस्म देवताः । अहिंसादिव्रताप्यन्ये जगृहु गुरुसन्निधा ॥ ८२ ॥ परे निस्तारकेष्वर्थान् वितरंति स्म सात्विका । मुंचताशु तनुत्राण गृह्णीतासिलतां सितां ॥ ८३ ॥ आरोपयत चापौधान् सनह्यता गजाश्रिता । हरयो बद्धपर्याणा क्रियतामधिकारिषु ॥ ८४ ॥ समर्प्यंता कलत्रादि युज्यता वाजिभी रथाः । भोगोपभोगवस्तूनि भुज्यतामनिवारित ॥ ८५ ॥ बंदिमागधवृंदेन वंच्यतां निजविक्रमाः । इति केचिज्जगुर्भृत्यान्नृपाः संग्रामसन्मुखाः ॥ ८६ ॥ पतिभक्त्या निसर्गात्मपौरुषेण विरोधिना । मात्सर्येण यशोहेतो शूरलोकसमीप्सया ॥ ८७ ॥ निजान्वयाभिमानेन परैश्च रणकारणैः । समजायंत राजान प्राणव्ययविधायिन ॥ ८८ ॥ वसुदेवसुतोप्यात्तगर्व सर्वविभूषण । कुंकुमांकितगात्रत्वादिव सिंदूरितद्विप. ॥ ८९ ॥ जय जीवेति वंदारुवृंदेन कृतमंगल । नवोवांभोधरश्चारुचातकध्वनि-

चित्तमें शूरवीरता का रस भरगया ॥ ८१ ॥ उन वाजोंको सुनकर कितने ही राजा लोग देवियोंकी पूजा करने लगे और अन्य कितने ही गुरुके समीप जाकर अहिंसा आदि व्रतोंको धारण करने लगे ॥ ८२ ॥ अन्य कितने ही सात्विक राजा दीनोंको दान देने लगे। युद्धके लिये तैयार हुए कितने ही राजा लोग अपने २ सेवकोंसे कहने लगे कि "तुमलोग अपना वख्तर शीघ्र पहिनो, सफेद तलवार रूपी लताको धारण करो, सब धनुषोंको चढाओ और हाथियोंके सवार सब तैयार हो, अधिकारियोंके लिये घोडे सब जीन कस कर तैयार करो, स्त्री आदिको योग्य जगह पर पहुंचाओ घोडे जोतकर रथ तैयार करो विना किसी रोक टोकके भोगोंपभोगोंकी सब वस्तुओंका उपभोग करो और वंदीजन तथा स्तुति पढनेवाले लोग अपने पराक्रमका उच्चारण करें" ॥ ८३–८६ ॥ राजालोगोंमेंसे कितने ही अपने स्वामीकी भक्तिसे, कितने ही अपने स्वाभाविक पौरुषसे, कितने ही विरोधियोंकी ईर्ष्यासे, कितने ही यशके लिये कितने ही शूरलोक जानेकी इच्छासे कितने ही अपने वंशके अभिमानसे और कितने ही युद्ध होनेके कारण प्राण देनेके लिये तैयार हो गये ॥ ८७–८८ ॥ उससमय कृष्ण वडा अभिमान कर रहे थे, वे सब आभूषण पहिने थे और शरीर पर कुंकुम लगा लेनेसे ऐसे जान पडते थे मानों सिंदूर लगा हुआ हाथी ही हो ॥ ८९ ॥ आपकी जय हो आप चिरंजीव रहे इस प्रकार वंदीजन लोग उनका मांगलिक पाठ पढ रहे थे, वे नये श्याम वादलके समान जान पडते थे और सुंदर चातकोंकी आवाजसे वे वहुत ही अच्छे मालूम होते थे ॥ ९० ॥ उससमय युद्धकी इच्छा करनेवाले उन्होंने सज्जनोंके द्वारा लाये हुए टोंटनीदार सुवर्णकी वनी हुई भारीसे निकलते हुए जलसे आचमन किया, पूर्ण जलांजलि दी, फिर वडी भक्तिके साथ गंध पुष्प आदि द्रव्योंसे सब वि-

मभ्येत्य तद्विकारं न्यवेदयत् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा शार्ङ्गधरः शत्रुसमुत्थानसमाकुलः। कुमारं नेमिमभ्येत्य प्रशाधि त्वमिदं पुरं ॥ ६८ ॥ विजिगीषु किलायाभूत्प्रत्यस्मान्मगधाधिपः। भनज्मि तमहं जीर्णद्रुम वा घुणभक्षित ॥ ६९ ॥ तूर्णं भवत्प्रभावेन गत्वेत्यवददूर्जितं । प्रसन्नचेतास्तच्छ्रुत्वा सस्मितो मधुरेक्षणः ॥ ७० ॥ सावधिर्विजय तेन विनिश्चित्य विरोधिनां । स्फुरद्दंतरुचिर्विष्णुं नेमिरोमित्यभाषत ॥ ७१ ॥ स्मितैतैर्घैः स्वजय सोपि निश्चिकाय जगत्प्रभोः। जैनो वादीव पक्षाद्यैरेकलक्षणभूषणै ॥ ७२ ॥ अथ शत्रु समं जेतु जयेन विजयेन च । सारणेनागदाख्येन धवाह्वेनोद्धवेन च ॥ ७३ ॥ सुमुखाक्षरपद्मैश्च जराख्येन सुदृष्टिना। पाण्डवै पंचभिः सत्यकेनाथ द्रुपदेन च ॥ ७४ ॥ यादवै सविराटाख्यैरप्रमेयैर्महाबले । धृष्टार्जुनोग्रसेनाभ्यां चमरेण रणेप्सुना ॥ ७५ ॥ विदुरेण नृपैरन्यैश्चान्वितौ बलकेशवौ। सन्नद्धावुद्धतौ योद्धुं कुरुक्षेत्रमुपागतौ ॥ ७६ ॥ जरासंधोपि युद्धेच्छुर्भीष्मेणाविष्कृतोष्मणा । सद्रोणेन सकर्णेन साश्वत्थाम्न। च रुक्मिणा ॥ ७७ ॥ शल्येन वृषसेनेन कृपेण कृपवर्मणा । रुधिरेणेंद्रसेनेन जयद्रथमहीभृता ॥ ७८ ॥ हेमप्रभेण भूभर्त्रा

तथा नेमिकुमारके समीप जाकर कहने लगे कि आप इस नगरकी रक्षा कीजिये आज मगधदेशका राजा जरासंध हम लोगोंको जीतनेके लिये आ रहा है इसलिये आपके प्रभावसे शीघ्र ही जाकर घुनके खाये हुए पुराने वृक्षके समान उसे उखाड फेंकूगा इसतरह कृष्णने प्रभावशाली वचन कहे। इन सब बातोंको सुनकर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले और प्रसन्न चित्त नेमिकुमार मधुर नेत्रोंसे कुछ हंसे परंतु उनकी उस थोडीसी हंसीसे अपने विरोधियोंके जीतनेका निश्चय कर लिया। जिनके दांतोंकी कांति दैदीप्यमान हो रही है ऐसे नेमिकुमारने कृष्णसे ओं अक्षर कहकर स्वीकारता दी। जिसप्रकार जिनका अन्यथा अनुपपत्ति यह लक्षण ही आभूषण है ऐसे पक्ष आदिकोंके द्वारा जैनवादी अपनी विजयका निश्चय कर लेता है उसीप्रकार तीनोंलोकोंके स्वामी नेमिकुमारके हंसनेसे ही कृष्णने अपनी विजयका निश्चय कर लिया ॥ ६८–७२ ॥ अथानंतर कृष्ण और बलदेव दोनों भाई शत्रुको जीतनेकेलिये जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, पद्म, जरा, सुदृष्टि, पांचों पांडव, सत्यक, द्रुपद, सब यादव, विराट, अपार सेनासे वेष्टित धृष्ट अर्जुन, उग्रसेन, युद्धका अभिलाषी चमर, विदुर तथा अन्य अनेक राजाओंके साथ उद्धत होकर युद्धकेलिये तैयार हुए और वहांसे चलकर कुरुक्षेत्रमें जा पहुंचे ॥ ७३–७६ ॥ उधर युद्धकी इच्छा करनेवाला जरासंध भी अपनी ज्वालाको फेंकते हुए भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, रुक्म, शल्य, वृषसेन कृप, कृपवर्मा, रुधिर इंद्रसेन, जयद्रथ, हेमप्रभ, पृथ्वीका नाथ दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्धर्षण, दुर्जेय, राजा कलिंग, भगदत्त, तथा और अनेक राजाओंके साथ कृष्णके समने आ पहुंचा ॥ ७७–८० ॥ उसीसमय कृष्णकी सेनामें युद्धके बाजे बजने लगे तथा जिसप्रकार कुसुंभ वस्त्रको रंग देता है उसी प्रकार उस बाजेकी आवाजसे शूरवीरोंके

रत्नान्यादाय सारभूतानि तत्पुरात् । गत्वा राजगृहं प्राप्तवन्तस्तमहीपतिं ॥ ५४ ॥ रत्नान्युपायनीकृत्य पुरस्कृत्य वणिक्पतिं । ददृशुः कृतसन्मानस्तान-
पृच्छत्प्रजेश्वरः ॥ ५५ ॥ भो भवद्भिः कुतो लब्धमिदं रत्नकदंबकं । उदंशुभिरिवोन्मीलतेक्षणं कौतुकादिति ॥ ५६ ॥ शृणु देव महच्चित्रमेतदसद्विलो-
कित । पातालादेत्य वाद्दष्टपूर्वमुर्व्यामुपस्थितं ॥ ५७ ॥ सकठीकृतसौधोरुभवनत्वादिवांबुधेः । फेनराशिस्तदाकारपरिणाममुपागतः ॥ ५८ ॥ अलंघ्य-
त्वात्परै पुण्य वापरं भरतेशितु । नेमिस्वामिसमुत्पत्तिहेतुत्वान्नगरोत्तम ॥ ५९ ॥ अमहत्तदनासेव्यमर्थिभिर्वीतगौरवं । शरदभ्रकुल तिष्ठत्युपर्येत-
न्ममेति वा ॥ ६० ॥ सौधाग्रांदोलितालोलपताकाबहुबाहुभिः । निराचिकीर्षतसघर्षाद्दूरमभ्रपयोच्छ्रित ॥ ६१ ॥ परार्घ्यभूमिरत्नलात्कृष्णतेजोविराजनात् ।
सदागंभीरशब्दत्वादंभोधिजलसन्निभ ॥ ६२ ॥ नवयोजनविस्तारं दैर्घ्ये द्वादशयोजन । पुरं द्वारवती नाम यादवाना पयोनिधे ॥ ६३ ॥ मध्ये प्रवर्तते
तस्मादेतद्रत्नकदंबक । लब्धमस्माभिरित्येवमब्रुवस्तेपि भूपतिं ॥ ६४ ॥ श्रुत्वा तद्वचन क्रोधादंधीभूतोगूवीक्षण । जरासंधो धियाप्यंधो दर्पादेवातिवर्धितः ॥
६५ ॥ चचालाकालकालांतचलितात्मबलांबुधि । कर्तुं यादवलोकस्य विलयं वाविलंबित ॥ ६६ ॥ नारदस्तत्तदा ज्ञात्वा निर्हेतुसमरप्रियः । हरिं सत्वर-

किया गया हो अथवा समुद्रके फेनका समूह ही नगररूप वन गया हो। अन्य शत्रु लोग उसे कभी उल्लंघन नहीं कर सकते वह भरतक्षेत्रके स्वामी चक्रवर्तीके दूसरे पुण्यके समान जान पडता है। अथवा स्वामी नेमिनाथके उत्पन्न होनेके कारण ही वह नगर सबसे उत्तम है॥ ५७--५९ ॥ वह नगर विशद था याचक लोगोंके लिये सेवा करने योग्य था और गुरुता अर्थात् भारीपन वा जडतासे रहित था। अथवा यह शरद् ऋतुका वादल मेरे भी ऊपर रहता है यही समझकर वह वडे वडे राजभवनोंके ऊपर फहराती हुई अनेक चंचल पताकारूपी भुजाओंके संघट्टनसे आकाशमें दूर जाकर पडे हुए उन वादलोंको निराकरण करता है ॥ ६०--६१ ॥ अथवा वह वहुमूल्य रत्नों की भूमि होनेसे वा कृष्णके तेजसे सुशोभित होनेसे और सदा गंभीर शब्द करनेसे वह नगर सदा समुद्रके जलके समान जान पडता है। वह द्वारावती नामका यादवोंका नगर नौ योजन चौडा है और वारह योजन लंबा है तथा समुद्रके मध्यमें सुशोभित है। उसी नगरसे ये रत्न हम लोगोंको मिले हैं इसतरह उन वैश्यपुत्रोंने राजा जरासंधसे कहा ॥ ६२--६४ ॥ ये बातें सुनकर जरासंधने क्रोधसे अंधे होनेके समान ऊंची दृष्टि कर ली, उससमय वह बुद्धिसे भी अंधा वन गया और अभिमानसे सब नियमोंका उल्लंघन करने लगा ॥ ६५ ॥ शीघ्र ही यादवोंका नाश करनेकेलिये वह असमयमें ही प्रलयकालके समुद्रके समान अपनी सव सेना लेकर चला ॥ ६६ बिना कारण युद्धको पसंद करनेवाला नारद ये सब समाचार जानकर वडी शीघ्रतासे उसीसमय कृष्णके समीप पहुंचा और उसने जरासंधके आनेकी सब खबर कह सुनाई ॥ ६७ ॥ सुनते ही कृष्ण शत्रुको मारनेकेलिये व्याकुल हुए

धनेशनिर्मितत्रेधामणिसोपानमार्गेण ॥ ४२ ॥ नीत्वा पयोदमार्गेण गिरीशेशानदिग्तटे । पाडुकाख्यशिलाप्रस्थमणिसिंहधृतासने ॥ ४३ ॥ अनादिनिधने बालमारोप्यात्यर्कतेजस । क्षीरांभोधिपय पूर्णसुवर्णकलशोत्तमै ॥ ४४ अष्टाधिकसहस्रेण प्रमितैरमितप्रभैः । हस्ताद्धस्त क्रमेणामराधिनाथसमर्पितै ॥ ४५ ॥ अभिषिच्य यथाकाममलकृत्य यथोचितं । नेमिं सद्धर्मचक्रस्य नेमिनामानमभ्यधात् ॥ ४६ ॥ तस्मादानीय मौलींद्रमाननीयं महोदय । मातापित्रो पुनर्दत्वा विधायानदनाटक ॥ ४७ ॥ विकृत्य विविधान्बाहून् रसभावनिरंतरं । स्वावासमगमत्सर्वैरहमिंद्र सहामरैः ॥ ४८ ॥ नमेर्भगवतस्तीर्थसतानसमये स्थित: । पचलक्षाः समाः प्रांते तदंतर्गतजीवितः ॥ ४९ ॥ जिनो नेमि समुत्पन्न. सहस्राब्दायुरन्वितः । दशचापसमुत्सेधः शस्तसस्थानसहतिः ॥ ५० ॥ त्रिलोकनायकाभ्यर्च्यः स्वाभ्यर्णीकृतनिर्वृति । तस्थौ सुखानि दिव्यानि तस्मिन्ननुभवंश्चिरं ॥ ५१ ॥ गच्छत्येव क्षणेवास्य काले बहुतरेन्यदा । आत्तवारिपयोयोगा नष्टदिक्का वणिक्सुताः ॥ ५२ ॥ प्राप्य द्वारावतीं केचित्पुण्यान्मगधवासिन. । राज्यलीला विलोक्यावविभूतिं च सविस्मयाः ॥ ५३ ॥ बहूनि-

पूज्य और महापुण्यात्मा नेमिनाथको वहांसे लाकर मातापिताको सौंपा, विक्रिया ऋद्धिके द्वारा अनेक भुजाओंको बनाकर निरंतर रसभावसे भरा हुआ आनंद नाटक किया और फिर सब देवोंके साथ वह इंद्र अपने निवास स्थानको चलागया ॥ ४७–४८ ॥ श्रीनमिनाथ स्वामीके बाद पांच लाख वर्ष वीत जाने पर नेमिनाथ हुए थे उनकी आयु भी इसी समय में अंतर्गत समझनी चाहिये। उनकी आयु एक हजार वर्षकी थी शरीरकी ऊंचाई दश धनुष थी उनके संस्थान आदि सब प्रशंसनीय थे तीनों लोकोंके इंद्र उनकी पूजा करते थे, मोक्ष उनके समीप थी, और उसी द्वारावतीमें बहुत दिन तक दिव्य सुखोंका अनुभव करते हुए निवास करने लगे ॥ ४९–५१ ॥ इस तरह उनका वहुत बडा समय भी क्षणभरके समान व्यतीत हो गया था। किसी एक दिन मगधदेशके रहने वाले कितने ही वैश्यपुत्र अपने पुण्यकर्मके उदयसे समुद्रमार्गसे मार्ग भूलकर द्वारावतीमें आ पहुंचे वहांकी राजलीला और विभूति देखकर उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वहांसे वहुतसे अच्छे अच्छे रत्न साथ लिये और फिर वे वहांसे चल कर राजगृह नगरमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने वे रत्न भेट कर चक्ररत्नके स्वामी महाराज जरासंधके दर्शन किये राजाने उन सबका आदर सत्कार किया और फिर बडे कौतुकसे पूछा कि उठतीं हुई किरणोंसे खुले हुए नेत्रोंके समान यह रत्नोंका समूह तुम्हें कहांसे मिला है ॥ ५२–५६ ॥ तव वे वैश्य पुत्र कहने लगे कि हे देव ! सुनिये हमने ये सब बडी आश्चर्य रखनेवाली चीजें देखी हैं। समुद्रके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर नगर है ऐसा नगर हम लोगोंके देखनेमें कभी नहीं आया मानों वह पातालसे निकल कर ही पृथ्वीपर आया हो अथवा उज्वलताका समुदाय ही एक जगह इकट्ठा

स्वप्नमालिकां । आलोकतानुवक्त्राब्जं प्रविष्टं च गजाधिप ॥ ३२ ॥ तदा वंदिवचोयाममेरीध्वनिविबोधिता । कृतमंगलसुस्नाता धृतपुण्यप्रसाधना ॥ ३३ ॥
उपचारवदभ्येत्य नृपमर्द्धासने स्थिता । स्वदृष्टस्वप्ननामालीमन्वयुंक्त शुभाय्मं ॥ ३४ ॥ संकल्प्य नरेंद्रोपि फलं तेषाममाषत । त्वद्गर्भे विश्वलोकेशोवतीर्ण
इति सूक्ष्मधीः ॥ ३५ ॥ श्रुत्वातदैव संलब्धवती वानुषदप्यसौ । ज्ञात्वा स्वचिन्हैर्देवेंद्राः सभूयागत्य सम्मदाः ॥ ३६ ॥ स्वर्गावतारकल्याणमहोत्सवंवि-
धायिनः । स्वेषां च पुण्यं निर्वर्त्य स्वधाम समुपागमन् ॥३७॥ स पुनः श्रावणे शुक्लपक्षे षष्ठीदिने जिनः । ज्ञानत्रितयधृत्त्वष्ट्रयोगे तुष्टयामजायत ॥ ३८ ॥
अथ स्वविष्टराकंपसमुत्पन्नावधीक्षणा । बुद्ध्वा भगवदुत्पत्तिं सौधर्मेंद्रपुरस्सरा ॥ ३९ ॥ संजातसमदाः प्राप्य परिवेष्य पुरं स्थिता । ऐरावतगजस्कंधमा-
रोप्य भुवनप्रभुं ॥ ४० ॥ सौधर्मपतिर्भक्त्या नीलाभोजदलद्युतिं । ईशमीशानकल्पेशधृतातपनिवारणं ॥ ४१ ॥ नमश्चमरवैरोचनोद्धूतचामरीरुह ।

देखे हुए सब स्वप्न कह सुनाए सुन कर सूक्ष्म बुद्धि वाले महाराज समुद्रविजयने भी शुभके आगमनको सूचित करनेवाला उनका इकट्ठा एक फल कहा कि तेरे गर्भमें तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकर परमदेवने अवतार लिया है ॥ ३३—३५ ॥ पतिके वचन सुनकर तीर्थंकर पुत्र हुएके समान ही वह संतुष्ट हुई। उसी समय अपने अपने चिन्होंसे इंद्रोंको भी मालूम हुआ वे सब बडी प्रसन्नतासे मिलकर आए, उन्होंने स्वर्गावतरण कल्याणका महोत्सव किया तथा अपने पुण्यकर्मोंका बंध किया और फिर वे सब लोग अपने स्थानको चले गये ॥ ३६—३७ ॥ तदनंतर श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें मति श्रुत अवधि इन तीनो ज्ञानोंको धारण करनेवाले भगवान उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उसी समय सौधर्म आदि सब इंद्रोंके सिंहासन कंपायमान हुए उन्होंने अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे भगवानका जन्म जान लिया। तदनंतर वे सब मिलकर बडी प्रसन्नतासे आए, द्वारावती नगरीके चारोओर आ उपस्थित हुए सौधर्म स्वर्गके इंद्रने बडी भक्तिसे तीनोंलोकोंके स्वामी और नील कमलके दलकी कांतिके समान भगवान पुत्रको ऐरावत हाथीके मस्तक पर विराजमान किया, ईशान स्वर्गके इंद्रने उनपर छत्र लगाया तथा चमर ढुलाने लगे। कुवेरने तीन तरह मणियोंकी सीढियां बना कर मार्ग बनाया था उसी परसे आकाशमार्गमें होकर मेरु पर्वतपर पहुंचे। मेरु पर्वतकी ईशान दिशाकी ओर जो पांडुशिला है और उसपर जो अनादि अनिधन मणियोंका सिंहासन रक्खा है उस पर सूर्यके समान तेजको धारण करनेवाले पुत्रको विराजमान किया। फिर सब इंद्र अपार कांतिको धारण करनेवाले सुवर्णके बने हुए एकहजार आठ उत्तम कलशोंसे हाथों हाथ क्षीरसागरका जल लाए। उनसे इच्छानुसार भगवानका अभिषेक किया यथायोग्य रीतिसे वस्त्राभरण पहिनाकर अलंकृत किया और फिर उन्हें सद्धर्मरूपी चक्रकी धुरी समझकर उनका नेमि अथवा नेमिनाथ नाम रक्खा ॥ ३९—४६ ॥ फिर सबके मुकुटमणि,

अथैकसप्ततितमं पर्व ।

निश्वस्कर्

अथ कंसवधूनुकलोचनांभःप्रसारिणः । भूप्ररूढः समुत्पन्ना समन्तादुत्सवाङ्कुराः ॥ १ ॥ वसुदेवात्मजस्तिष्ठ कृष्णो. भयात् । व्रजे कंसनरेन्द्रवृद्धि शूरः प्रच्छन्नमासवान् ॥ २ ॥ वृद्धिरस्य स्वपक्षस्य वृद्धये नैव केवलं । जगतश्च कुमारोऽसौ हरि विधुर्यथा ॥ ३ ॥ इत्यनीद्रु रमानन्द ... वासिभिः । विपाशिनोऽसेनायमसीशस्य महात्मनः ॥ ४ ॥ विसर्जयन्नन्दगोपान् पूज्य सत्कृतं । प्रविश्य पुरीं संगतः शौर्यपुरं हरे ॥ ५ ॥ ... सुखेन यत्नेन देवी नीतदुःशमागता । दु पिता मरणात्पत्युर्जरासंधमुपेत्य सा ॥ ६ ॥ तत्र प्रवृत्तमाख्याय समस्तं । श्रुत्वा सा स्वा पुत्रान् प्रेषत् यादवान् प्रति ॥ ७ ॥ तेऽपि सनाथ सैन्य सह गत्वा युध्वा रणापणे । भग्नाश्च के यादवैः ... ॥ ८ ॥ ... पुत्रः ... । ... ॥ ९ ॥ शतायत च षट्चत्वारिंश सोऽपि महाबलः । ... कुमारो ... ॥ १० ॥ पुनः पितृ ... न्यधनामान तं द्विपानतकोपनं ॥ ९ ।

अथ इकहत्तरियां पर्व ।

अथानंतर–कंसकी स्त्रीके लोचनोंसे निकले हुए पानीको पीकर पृथ्वीके अंकुरोंके समान चारों ओरसे उत्सवोंके अंकुरे प्रगट होने लगे ॥ १ ॥ "ये कृष्ण पुण्यवान वसुदेवके शूरवीर पुत्र हैं कंसके डरसे व्रजमें छिपाकर इन्हें बडा किया है । अनुक्रमसे होनेवाली इनकी वृद्धि केवल अपने पक्षवालोंको ही बढानेवाली नहीं है किंतु चंद्रमाके समान संसारभरको आनंद देनेवाली है।" इसप्रकार उस देशके रहनेवाले तथा नगर निवासी लोग कृष्णकी प्रशंसा करते थे. उन महात्माने राजा उग्रसेनके बंधन तोड दिये थे, बहुतसे धनसे नंदगोपोंकी पूजाकर उन्हें विदा किया और फिर सब भाइयोंके साथ सूरीपुरमें प्रवेश किया । इसतरह कृष्णका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन जीवद्यशा देवी पतिके मरनेसे दुखी होकर जरासंधके समीप पहुंची ॥२-६॥ घरपर जो समाचार हुए थे वे सब पिताको मुझाये सुनकर जरासंधको बहुत क्रोध आया और यादवोंपर अपने पुत्रोंको भेजा ॥ ७ ॥ यादव भी अपनी सेना सजाकर युद्धके लिये निकले और उन्होंने जरासंधके उन पुत्रोंको हरा दिया सो ठीक ही है क्योंकि दैव विमुख होनेपर कौन नहीं हारता है ॥ ८ ॥ तदनंतर जरासंधने क्रोधकर शत्रुओंको यमराजके समान सार्थक नामको धारण करनेवाले अपराजित नामके पुत्रको भेजा ॥ ८ ॥ वह अपराजित, पुत्र बलवान योधाओंको लेकर निकला तीनसौ छयालीस बार उसने युद्ध किया परंतु पुण्य रहित होनेसे उसे भी पराङ्मुख होना पडा ॥ १० ॥ इसके बाद पिताकी आज्ञासे "मैं यादवोंको अवश्य जीतूंगा" ऐसा कहकर कालयवन नामका पुत्र चलनेके लिये

संप्राप्यापतदुग्रसेनतनयो बम्पातग्रेवत । तं व्योम्नि भ्रमयन् करेण चरणे संगृह्य वाल्याङ्ज भूमो नेतुमुपांतमंतकविभो कृष्ण समाहकालगत् ॥ ४९४ ॥ आपेतुर्नभसस्तदा सुमनसो देवानकैर्दध्वने, स्वारावो वसुदेवसैन्यजलधेः प्रक्षोभणादुद्गन । सीरी वीरवरो विरुद्धनृपतीनाक्रम्य रंगस्थितेः स्वीकृत्या-प्रतिमल्लमाप्तविजयं शौर्योर्जितं स्वानुजं ॥ ४९५ ॥ अतुलबलमलंघ्यारातिमत्तेभघातं क्रुधितहरिसमानं माननीयापदानं । सपदि समुपयाता वंदिभि र्य-मानं जनितसकलरागं तं हरिं वीरलक्ष्मीः ॥ ४९६ ॥ दूतीव मे श्रितवती वरवीरलक्ष्मीरेतस्य दक्षिणभुजं विजयैकरोह । प्राप्तवर्ति चिरतरादितेव तं क-टाक्षेरेक्षिष्ट रागतरलैर्भरतार्द्धलक्ष्मी ॥ ४९५ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे नेमिचरिते कृष्णविजयो नाम सप्ततितमं पर्व ॥ ७० ॥

उसीसमय आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा हुई, देवोंके नगाडे बजने लगे और वसुदेवकी सेनारूप समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न होने-से बडा भारी कोलाहल होने लगा। उसी समय जिसके साथ लडने योग्य कोई मल्ल नहीं है जो शूरवीरतामें सबसे बडे हैं और जिन्होंने विजय प्राप्त की है ऐसे अपने छोटे भाई कृष्णको साथ लेकर शूरवीर बलभद्र विरुद्ध राजाओंपर आक्रमणकर रंगभूमिमें आखडे हुए ॥ ४९३ ॥ जिनमें अतुल बल है जो किसीसे उलंघन न किये जा सकें ऐसे शत्रुरूप मत्त हाथियोंके घात करनेके लिये क्रोधित हुए सिंहके समान हैं, जिनका पदस्थ माननीय है और वंदीजन सदा जि-न्हें नमस्कार करते हैं ऐसे कृष्णके समीप वीर लक्ष्मी अपना सब अनुराग प्रगटकर बहुत शीघ्र आ उपस्थित हुई थी ॥ ४९४ ॥ श्रीकृष्णके समीप श्रेष्ठवीर लक्ष्मी तो दूतीके समान आ ही गई थी परंतु आधे भरतक्षेत्रकी लक्ष्मी चिर-कालसे प्राप्त हुए पतिके समान विजयकी एक स्थान ऐसी कृष्णकी दाहिनी भुजाको प्रेमसे भरे तरल कटाक्षोंसे देखती थी ॥ ४९५ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीनेमिनाथके चारित्रमें श्रीकृष्णके विजयका वर्णन करनेवाला यह सत्तरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

—.०:—

गात्रश्रितवृत्तिप्रवीणः । सततकृतनियोगात्प्रोपमल्लैरमल्लैरविकलजयलभ मर्वसंभाविनौजाः ॥ ४८८ ॥ स्थिरचरणनिवेशो वज्रसारास्थिबंधो भुजपरिघवि-
बाधी मुष्टिसमायिमध्य । कठिनपृथुलवक्षाः स्थूलनीलाद्रितुगस्त्रिगुणितनिजमूर्तिर्दर्पसर्पाद्दुरीक्ष्यः ॥ ४८९ ॥ उवलितवलितनेत्रो निष्ठुराबद्धमुष्टि परि
णतकरणौघो मल्लसचारदक्षः । भृशमशनिरिवोग्रो नदसूनुः स्थित. सन् भयमवददसह्य प्रेतनाथस्य वीरैः ॥ ४९० ॥ रूपीव शौर्यमखिल मिलिन वलं वा
रंद'समस्तमपि सहतिमेयि वद्धा । सिंहाकृतिः स महसाकृतसिंहनादो रंगादलघत नभोंगणमगण वा ॥ ४९१ ॥ आपत्य स्वादशनिवद्भुवमात्मपादरा-
तामिघातवलितान्वलसंधिवंधः । वल्गन् मुहु' परिगर्जन् प्रतिजृम्भमाणनिष्ठुरंजितभुजौ वलयन्नुदग्रः ॥ ४९२ ॥ क्रुद्ध कटीद्वितयपार्श्वविलम्बिपीतवस्त्रो
नियुद्धकुशल प्रतिमल्लमुग्र । चाणूरमद्रिशिखरोन्नतमापततमाहत्य सिंहवदिभ सहसा बभासे ॥ ४९३ ॥ दृष्ट्वैव रुधिरोद्गमोग्रनयनो योद्धु स्वय मल्लतां

पतली थी, तथा वक्षःस्थल बहुत ही कठिन और वडा था। वे स्थूल नील पर्वतके समान ऊंचे थे, राजाओंके तीनों गुणोंरूप ही उनकी मूर्ति थी और वे अभिमानी मर्पसे भी दुरीक्ष्य (जो देखे न जा सकें) थे ॥ ५८७ ॥ उनके जलते हुए नेत्र चारों ओर फिर रहे थे, कठोर मुठी बंधी हुई थी, उन्होंने अपनी इंद्रियोंको खूब पुष्ट किया था वे शीघ्रतासे पैंतडा बदलनेमें चतुर थे, वज्रके समान अत्यंत उग्र थे और यमराजको भी असह्य भय देनेवाले थे ऐसे वे नंदकुमार श्रीकृष्ण अखाडेमें खडे थे ॥ ४८८ ॥ उससमय वे ऐसे जान पडते थे मानो शूरवीरताकी मूर्ति ही हो अथवा संसारका सब बल एक ही जगह इकट्ठा होकर आगया हो अथवा वेगका सब समूह एक जगह आकर बंध गया हो। सिंहके आकारको धारण करनेवाले उन कृष्णने अकस्मात् सिंहनाद किया और फिर रंगभूमिसे उछलकर आंगनके समान आकाशको उल्लंघन किया ॥ ८९ ॥ फिर आकाशमें वज्रके समान जमीनपर आये, उनके पैर पडनेकी चोटसे निश्चल संधियोंके बंध भी हिल गये, वे बार २ गर्जने लगे, दौडने लगे और लंबी तथा फैली हुई सिंदूरसे रंगी हुई भुजाओंको इधर उधर चलाने लगे ॥ ९० ॥ उस समय वे क्रोधित होरहे थे, कमरके दोनों ओर पीला वस्त्र पीली लंगोटी पहिने थे, और लडनेमें अत्यत निपुण, उग्र और पर्वतकी शिखरके समान ऊंचे ऐसे आये हुये हाथीके समान चाणूर नामके प्रतिमल्लको वडी शीघ्रतासे मारकर वे सिंहके समान सुशोभित होरहे थे ॥ ४९१ ॥ इसप्रकार विजयी कृष्णको देखकर क्रोधके कारण रुधिर भरजानेसे (लाल होजानेसे) जिसके नेत्र विशाल हो रहे हैं ऐसा उग्रसेनका पुत्र कंस पूर्व जन्मके वैरके कारण मल्लबन कर आया परंतु कृष्णने उसके दोनों पैर पकडकर छोटे अंडेके समान आकाशमें फिराया और यमराज महाराजके समीप ले जानेके लिये उसे जमीनपर दे पटका ॥ ४९२ ॥

रविरितदा ॥ ४७९ ॥ स्वसैन्य समुदायेन सैनाद्येकत्र तस्थिवान् । सीरपाणि समुत्थाय कृतदो स्फालनध्वनिः ॥ ४८० ॥ कृष्णेन सह रंग वा समंतात् स परिभ्रमन् । कस नाशयितु कालस्तवेत्याख्याय निर्गतः ॥ ४८१ ॥ तदा कसाज्ञया विष्णुविधेया गोपमूनव । दर्पिणो भुजमास्फाल्य धृतमल्लपरिच्छदा ॥ ४८२ ॥ श्रवणाह्लादिवादित्रचटुलध्वनिसगताः । क्रमोत्क्षेपविनिक्षेपा प्रोन्नतासद्धयोद्धुराः ॥ ४८३ ॥ पर्यायनर्तितप्रेक्ष्यभ्रूभगा भीषणारवा । निवर्तनैः शतावर्तैनैः सभ्रमणवल्गनैः ॥४८४॥स्तनैः समवस्थानैरन्यैश्च करणैः स्फुटैः । रंगाभ्यर्णमलकुल तस्थुर्नेत्रमनोहराः॥४८५॥प्रावृत्ता कसमल्लाश्च चाणूरप्रमुखास्तथा । रंगाभ्यासं समाक्रम्य विक्रमैकरसाः स्थिताः ॥ ४८६ ॥ मध्येरंगमुदात्तचित्तविसरो वीरोरुमल्लाग्रणी प्रागेव प्रतिमल्लयुद्धविजय प्राप्येव दीप्रद्युति । भास्वत च दिवोवतीर्णमधुना योद्धु गत मल्लता जेष्यामीति विवृद्धविक्रमरस संभावयन्स स्वय ॥४८७ ॥ घनधृतपरिधानो वद्धकेशोविकूर्च सहजमसृण

मारनेका समय है " ऐसा कृष्णसे कह कर बाहर निकल गये ॥ ४७५-८१ ॥ इसके बाद कंसकी आज्ञा से अभिमानी कृष्ण आदि गोपोंके पुत्र मल्लोंका भेप बनाए भुजाएं ठोंकते हुए आए ॥ ४८२ ॥ उस समय कानोंको प्रसन्न करनेवाले बाजे बज रहे थे और उनकी चंचल ध्वनिके साथ साथ वे मल्ल लोग अपने पैर उठाते रखते जाते थे अपने उठे हुए कधों से वे कुछ गर्विष्ठ हो रहे थे ॥ ४८३ ॥ वे लोग लौट कर देखते हुए भौंहें नचाना, भीषण शब्द करना, सैकडोंबार इधरसे उधर और उधरसे इधर आना जाना संभ्रमके साथ गर्जना, दौड़ना कूदना चुप चाप बैठना तथा और भी अनेक तरहके कामकर रंगभूमिको सुशोभित करते हुए लोगोंके नेत्रोंको मनोहर जान पडते थे ॥ ४८२–४८३ ॥ इतनेमें ही पराक्रम ही जिनका एक रस है ऐसे २ चाणूर आदि कंसके मल्ल भी उठे और रंगभूमिके चारों ओर आकर बैठ गये ॥ ४८४ ॥ उससमय रंगभूमिमें खडे हुए कृष्ण बडे ही अच्छे जान पडते थे। उनके चित्तका विस्तार बहुत बडा था, वे शूरवीर और बडे बडे मल्लोंमें मुख्य थे, प्रतिमल्लसे युद्धकी विजय पानेके समान उनकी कांति पहिले ही से देदीप्यमान हो रही थी उनका पराक्रमरूपी रस बहुत बढ रहा था और वे अपने लिये ऐसी संभावना कर रहे थे मानो युद्ध करनेके लिये मल्ल बनकर आकाश से उतरकर आए हुए सूर्यको भी मैं उससमय अवश्य जीतूंगा ॥ ४८५ ॥ उससमय उनके वस्त्र बहुत कडे बंधे थे, केश बधे हुए थे, दाढी मूंछ थी नहीं स्वभावसे ही चिकना शरीर था, वे चित्तकी वृत्तिमें बडे प्रवीण थे, अमल्लोंके समान गोप मल्लोंसे वे सदा लडते रहते थे और वे सदा जीतते थे, इसतरह उनका पराक्रम सबपर प्रगट था ॥ ४८६ ॥ उनके पैरका टिकाव स्थिर था, हड्डियोंका बंधन वज्रके समान था, भुजारूपी लोहेके डंडे अबाध थे, मध्यभाग अर्थात् कमर मुठीमें समाने लायक

स्त्वति ॥ ४६९ ॥ पीतांबरं समुद्धृत्य जलार्द्रं मधुसूदनः । स्फटमास्फलयामास पक्षिकेणेव पक्षिराट् ॥ ४७० ॥ वज्रपातयितात्तस्माद्वज्रपाताद्विमीतवान् । पूर्वपुण्योदयाच्चास्य फणींद्रोऽदृश्यतामगात् ॥ ४७१ ॥ हरिर्यथेष्टमब्जानि समादाय निजद्विष । समीपं प्रापयत्तानि दृष्ट्वारिं दृष्टवानिव ॥ ४७२ ॥ नदगोपसमीपेस्थान्मच्छत्रुरिति निश्चयात् । कदाचिन्नदगोपाल मल्लयुद्ध निरीक्षितु ॥ ४७३ ॥ निजमल्लैः सहागच्छेदिति संदिशति स सः । सोपि कृष्णादिभिर्मल्लै सह प्राविक्षदक्षय ॥ ४७४ ॥ क्वचिन्मत्तगज वीतबधन यमसन्निभ । मदगधसमाकृष्टरुवद्भ्रमरसेवित ॥ ४७५ ॥ नियमच्युतभूपालकुमारं वा निरंकुश । रदनाघातनिर्भिन्नसुधाभवनभित्तिक ॥ ४७६ ॥ आधावत विलोक्यासौ प्रतीत्योत्प्य भीषणः । रदमेक कुमारस्त तेनैव समताडयत् ॥४७७ ॥ सोपि भीतो गतो दूरं सतरतुष्ट्वा हरिर्भृश । जयोनेन निमित्तेन कुटुबप्रकटीकृतः ॥ ४७८ ॥ इति गोपान् समुत्साह्य प्राविशत्कससंसद । वसुदेवमहीशोपि कसाभिप्रा-

की शिला वनाता हूं ऐसा विचार कर वे जलसे भीगा हुआ अपना पीतांवर उठा कर उस फणा पर घोने लगे तब वह नागराज वजूपातके समान उस पीतांवरके गिरनेसे छोटे पक्षीके समान डर गया और कृष्णके पूर्व पुण्यकर्मके उदसे वह नागराज अदृश्य हो गया ॥ ४६५-४७१ ॥ तदनंतर कृष्णने इच्छानुसार कमल तोडे और अपने शत्रुके पास पहुंचा दिए उन कमलोंको देखकर कंसने शत्रुको देखनेके समान ही मान लिया और निश्चय कर लिया कि मेरा शत्रु नंदगोपके समीप ही है। किसी एक दिन कंसने नदगोपालको समाचार कहला भेजा कि तुम अपने मल्लोंके साथ मल्ल युद्ध देखनेके लिये आओ। इन समाचारोंको सुन कर नंदगोप भी कृष्ण आदि सब मल्लोंको लेकर निर्भय हो मथुराको चले ॥ ४७२ ४७४ ॥ नगरमें घुसते ही कृष्णकी ओर एक हाथी दौड़ा, वह हाथी मदोन्मत्त था, यमके समान था, बंधन तोड़ कर आया था, उसके मदकी गंधसे गुजार करते हुए अनेक भ्रमर आकर उसकी सेवा करते थे अपने नियमोंसे च्युत हुए राजकुमारके समान निरंकुश था और अपने दांतोंकी चोटोंसे चूनासे सफेद हुई दीवालोंको तोडता आ रहा था उसे अपनी ओर दौड़ता हुआ देखकर भयंकर कुमार कृष्णने खडे होकर उसका एक दांत तोड दिया और फिर उसी दांतसे उसे मारने लगे जिससे वह हाथी डरकर दूर भाग गया। यह देखकर नंदगोप बहुत ही संतुष्ट हुए और कहने लगे कि हम लोगोंकी जीत यदि होगी तो इसीसे होगी इस तरह सब कुटुबमें प्रगट कर और दूसरे गोपोंको उत्साहित कर वे कंसकी सभामें पहुचे। उस समय राजा वसुदेवने भी कंसके अभिप्राय जान लिये और अपनी सब सेना सजा कर एक जगह आ खडे हुए। वलभद्र उठ कर अपनी भुजाओंके ठोंकनेकी आवाज करते हुए कृष्णके साथ रंगभूमिमें पहुचे और चारों ओर इधर उधर घूमने लगे। तदनंतर वे "यह तुम्हारा कंसके

त ॥ ४६१ ॥ नदगोपस्य पुत्रोमी यस्तत्त्रितयकर्मकृत । इत्यन्वेष्टु गते सम्यक् ज्ञापितेनाप्यनिश्चितेः ॥ ४६२ ॥ सहस्रपत्रमंभोजमन्यंदाहींद्ररक्षित । प्रदीयतामिति प्रोक्तो राजा जिज्ञासया रिपो ॥ ४६३॥ श्रुत्वा तद्गोपतिः शोकादाकुलः किल भूभुजः । प्रजानां रक्षितारस्ते कष्टमद्य हि मारकाः ॥ ४६४ ॥ इति निर्विद्य याहिंगराज विष्टिर्ममेदशी । त्वयैवांबुरुहाण्युग्रसर्परक्षाणि भूभुज ॥ ४६५ ॥ नेयानीत्यब्रवीत्कृष्ण; सोपि किं वात्र दुष्करं । नेष्यामीति महानागसरः क्षिप्रतरं ययौ ॥४६६॥ अविशच्च विनि:शंक तद्दृष्ट्वा कोपवेपित: । स्वनि श्वाससमुद्भूतज्वलद्ज्वालाकणान् किरन् ॥४६७॥ चूडामणिप्रभाभासिस्फटाटोपभयंकरः । जलज्जिह्वाद्वयः स्फूर्जद्दीक्षणात्युग्रवीक्षण ॥ ४६८॥ प्रत्युत्थाय यमाकारो निगरीतुं तमुद्यतः । सोपि मद्वसनस्यैषा स्फटा शुद्धशिला-

तथा आश्चर्य करने लगे तथा अकस्मात् आकर उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण आदि देकर कृष्णका यथायोग्य आदर सत्कार किया ॥ ४६० ॥ तब कृष्णके पिता नंदगोपने समझ लिया कि इस कृष्णके प्रभावसे अब हमें किसी बातका डर नहीं है इसलिये वे अपने व्रजके पहिले स्थानमें आ पहुंचे ॥ ४६१ ॥ इधर तीनों रत्नोंको सिद्ध करनेवालेको ढूंढनेके लिये जो लोग निकले थे उन्होंने तलाश कर कंससे जा निवेदन किया कि नंदगोपके पुत्रने ही ये तीनों काम एक साथ किये हैं । ऐसा निश्चय हो जाने पर कंसने शत्रुको जाननेकी इच्छासे नंदगोपको कहला भेजा कि नागराज जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा एक हजार दलवाला कमलका फूल लाकर दो ॥ ४६२–४६३ ॥ यह सुन कर नंदगोप शोकसे बहुत ही व्याकुल हुआ और कहने लगा कि राजा लोग प्रजाकी रक्षा करनेवाले होते हैं परंतु दुःखके साथ कहना पडता है कि वे ही राजा लोग आज प्रजाको मारनेवाले बनगये हैं ॥ ४६४ ॥ इस तरह उदास होकर कृष्णसे कहने लगे कि मेरी तो यह दशा है अब सर्प जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा कमल तूही लाकर राजा कंसको दे । इसके उत्तरमें कृष्णने कहा कि यह क्या कठिन काम है मैं अभी ले आऊंगा यह कह कर वे महानागोंसे सुरक्षित सरोवर पर शीघ्र ही गये और निशंक होकर उसमें कूद पडे । उन्हें आता हुआ देखकर यमराजके आकारका एक नागराज खडा होकर उन्हें निगलनेके लिये तैयार हुआ । उस समय वह नाग क्रोधसे कंप रहा था, अपने निश्वाससे उत्पन्न हुई दैदीप्यमान अग्निके कणाओंको फेंक रहा था मस्तक पर लगी हुई चूडामणि रत्नकी कांतिसे प्रकाशमान अपना फणा उठाये था और उससे वह बहुत ही भयंकर जान पडता था, उसकी दोनों जिह्वाएं चंचल हो रही थीं और प्रकाशमान नेत्रोंसे उसकी दृष्टि बडी ही उग्र हो रही थी । कृष्णने सोचा कि मैं इस फणाको अभी अपने कपडे धोनें

नागनिवाससरसस्तटे । विना कृष्णेन चामुसादानेतुं सरस' परैः ॥ ४४९ ॥ अशक्यमिति गोपालकुमारोक्त्या महीपति । तमाहूय बल तत्र यथास्थान न्यवीविशत् ॥ ४५० ॥ क्व गम्यते त्वया राजन्निति कृष्णेन भाषितः । स्वर्भानुर्मथुरायानप्रयोजनमबूबुधत् ॥ ४५१ ॥ श्रुत्वैतत्कर्म किं कर्तुं स्यात्तदस्मद्विधैरपि । इति कृष्णपरिप्रश्ने वीक्ष्य पुण्याधिक शिशु ॥ ४५२ ॥ न केवलोयमित्येहि शक्तश्चेत्तस्य कर्मण । इत्यादाय स्वपुत्र वा स्वर्भानुस्त पुरीमगात् ॥ ४५३ ॥ कस यथाहेमालोक्य तत्कर्मकरकान् बहून् । भग्नमानाश्च सवीक्ष्य कृत्वा भानु भमीपग ॥ ४५४ ॥ युगपत्त्रितय कर्म समाप्तिमनयद्धरि. । तत. स्वर्भानुनादिष्टो दिष्ट्या कृष्णोगमद्व्रज ॥ ४५५ ॥ तत्कृत भानुनैवेति कैश्चिरकसो निवेदित: । कैश्चिन्न भानुनैवान्यकुमारेणेति रक्षकै ॥ ४५६ ॥ तच्छ्रुत्वा-न्विष्यतां सोन्यस्तस्मै कन्या प्रदीयते । स कस्य किं कुल कस्मिन्निति राजाऽब्रवीदिद ॥ ४५७ ॥ अवधार्य स्वपुत्रेण सम्यक्कर्मसमर्थित । गोमडलेन गीला-मा नदगोप पलायित. ॥ ४५८ ॥ शैलस्तभ समुद्धर्तुं तत्र सर्वेऽन्यदा गता । नाशक्नुवन् समेत्यैते कृष्णेनैव समुद्धृत ॥ ४५९ ॥ प्रहृष्य सहसा तस्मा-

ष्णाको बुलवाया और फिर कृष्णकी सहायतासे अच्छीतरह निवास किया ॥ ४४८–४४९ ॥ तदनंतर कृष्णने पूछा कि हे राजन् आप कहां जा रहे हैं। इसके उत्तरमें राजा स्वर्भानुने मथुरा जानेका सब प्रयोजन समझाया ॥ ४६० ॥ यह सुनकर कृष्णने फिर पूछा कि क्या इस कामको हम सरीखे भी कर सकते हैं ? कृष्णके इसप्रकार पूछनेपर तथा उसे पुण्याधिकारी बालक समझकर कहा कि यदि इस कामको करसकते हो तो चलो इसप्रकार कहकर पुत्रके समान उस बालकको साथ ले कर राजा स्वर्भानु मथुरा नगरीमें पहुचे ॥ ४६१–४६३ ॥ स्वर्भानुने यथा योग्य रीतिसे कंसके दर्शन किये फिर वे तीनों रत्न सिद्ध करनेके लिये निकले। वहां पर अनेक सिद्ध करनेवालोंका भग्न होते देखकर कृष्णने स्वर्भानुके पुत्र भानुको पास ही खडा रख कर तीनों काम एक साथ कर डाले। तदनतर राजा सुभानुने आंखके ईशारेसे आज्ञा दी आज्ञा पाते ही कृष्ण वहांसे चलकर व्रजमें आगये ॥ ५४–५५ ॥ इसके बाद कितने ही लोगोने कंसको जाकर यह समझा दिया कि ये तीनों रत्न भानुने सिद्ध किये हैं परंतु कितने ही रक्षक लोगोंने यही कहा कि भानुने नहीं किंतु किसी दूसरे कुमारने सिद्ध किये हैं ॥ ४५६ ॥ यह सुन कर राजा कसने कहा कि उस कुमारको ढूंढो उसे मै अपनी कन्या दूंगा वह किसका पुत्र है किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और कहांका रहनेवाला है ॥ ४५७ ॥ पुत्रने यह काम तो अच्छा किया यही सोच कर नदगोप अपनी सब गायोंके साथ कृष्णको लेकर डर कर भाग गये ॥ ४५८ ॥ किसी दूसरे दिन बहुतसे लोग एक खंभ उखाडनेको गये थे परंतु वे उखाड न सके इसलिये यह देख कर कृष्णने आकर वह खभ उखाड दिया ॥ ४५९ ॥ उसे देखकर वे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए

खिल अगत् । आरातिवदनांभोजराजिसंकोचकारिणी ॥ ४३७ ॥ तत्पुरस्थापनाहेतुभूतजेनालयांतिके । शक्रदिग्देवतागारे हरे पुण्यातिरेकतः ॥ ४३८ ॥ सर्पशय्या धनु शंखो रत्नत्रितममुप्ययो । देवतारक्षिता लक्ष्मीं भाविनीमस्यसूचयत् ॥ ४३९ ॥ समयस्तानि दृष्ट्वाह्यद्वरुण मथुरापति । प्रादुर्भवेनमेतेषां किं फलं कथयेति त ॥ ४४०॥ राजन्नेतानि शास्त्रोक्तविधिना साधयेत्स यः । राज्यं चक्रेण संरक्ष्यमाप्स्यतीत्यभ्यधात्सा ॥ ४४१ ॥ कंसस्तद्वचन श्रुत्वा ससिसाधयिषुः स्वय । तान्यशक्तो मनाक् खिन्नो विरतः साधनोद्यमात् ॥ ४४२ ॥ अधिरुह्य नागशय्या शखमेककरेण यः । पूरयित्यपि यश्चाप चारोपयति हेलया ॥ ४४३ ॥ परेण तस्मै भूभर्ता स्वसुता दास्यतीतित । परिज्ञातु साशको घोषणा पुर्यकारयत् ॥ ४४४ ॥ तद्वार्ताश्रवणाद्विश्वमहीशाः सहसागमन् । तथा राजगृहात्कसमैथुनो भानुसन्निभं ॥ ४४५ ॥ स्वर्भानुर्भानुनामान स्वसूनुं सर्वसंपदा । समादाय समागच्छन्निवेष्टुमभिलाषवान् ॥४४६॥ गोदावनमहा-

समय जो जिनालय सबसे पहिले बनाया गया था उसके समीप जो पूर्वदिशाके अधिष्ठाताके देवमंदिरमें कृष्णके पुण्य कर्मके उदयसे सर्पशय्या (नागशय्या) धनुष और शंख ये तीन रत्न उत्पन्न हुए । उन तीनो रत्नोंकी देवलोग रक्षा करते थे और वे तीनों ही रत्न कृष्णकी होनहार लक्ष्मीको सूचित करते थे ॥ ४३८-४३९ ॥ उन्हें देख कर मथुराका राजा कंस कुछ डरने लगा और वरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछने लगा कि इनके प्रगट होनेका क्या फल है सो कहो । इसके उत्तरमें वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जो कोई इन्हें सिद्ध करेगा उसे चक्रके द्वारा सुरक्षित राज्य प्राप्त होगा ॥ ४४०-४४१ ॥ यह सुन कर कस स्वयं उन्हें सिद्ध करनेकी इच्छा करने लगा परंतु उन्हें सिद्ध कर न सका इसलिये कुछ खेद खिन्न होकर उस कामसे विरक्त हुआ उसने सिद्ध करना छोड दिया ॥ ४४२ ॥ तब उसने सशंकित होकर सिद्ध करनेवालेको जाननेके लिये नगरमें यह घोषणा करादी कि जो कोई अन्य मनुष्य इस नागशय्या पर चढ कर एक हाथसे इस शंखको पूरेगा (बजावेगा) और फिर लीलामात्रमें ही इस धनुषको चढा लेगा उसे राजा कंस अपनी पुत्री देगा ॥ ४४३-४४४ ॥ यह समाचार सुन कर संसारके सब राजा लोग बडी शीघ्रतासे आए तथा राजगृह नगरसे कंसका साला स्वभानु सूर्यके समान अपने भानु नामके पुत्र सहित बडी विभूति लेकर मथुरा जाने के लिये आया उसने गोदावनमें महानागोंके निवास स्थानवाले सरोवरके किनारे डेरा दिये लोग जब सरोवरमेंसे जल लेने लगे और वहांके सर्प काटनेको दौडे तब उन्होंने गोपाल कुमारोंसे पूछा कि इसमेंसे जल किस तरह लेना चाहिये । इसके उत्तरमें गोपाल कुमारोंने कहा कि कृष्णके विना इसमेंसे और कोई जल नहीं ले सकता । यह सुनकर राजा स्वभानुने कृ-

४८

...तरसंपावकादिति ॥ ४२६ ॥ भूयो निवारयामास तथाप्येतन्मशोद्धुरः । सोऽवतिव्रतिवार्यैते नावदाने महौजसः ॥
माफलचेष्टितात् । पुत्रैवमादित क्लेशांतरसंपावकादिति ॥ ४२६ ॥ भूयो निवारयामास तवाप्येतन्मशोद्धुर । सोन्वतिव्रतिवार्यते नावदाने महौजसः ॥
४२७ ॥ श्रुत्वा तत्पौरुषं ख्यात जनजल्पै समुत्सकौ । गोमुखीनामधेयोपवासव्याजमुपागतौ ॥ ४२८ ॥ देवकी वसुदेवश्च विभूत्या सह सीरिणा । व्रज
गोदावन यातौ परिवारपरिष्कृतौ ॥ ४२९ ॥ तत. कृष्णं समालक्ष्य स्थितवत महाबलं । दर्पिणी वृषभेंद्रस्य ग्रीवा भक्त्वा तदैव तौ ॥ ४३० ॥ विलोक्य
गन्धमाल्यादिमाननानतरं पुन । प्रीत्या भूषयतः स्मातः कुर्वत्या प्राक् प्रदक्षिण ॥ ४३१ ॥ देवक्याः स्तनयो शातकुंभकुंभमयोः पयः । निर्गलन्य
पतन्मूर्ध्न कृष्णस्यैवाभिषेचन ॥ ४३२ ॥ सीरपाणिस्तदन्वीक्ष्य मन्त्रभेदभयान्वित । उपवासपरिश्रांता मूर्छितेत्यवदन्सुधीः ॥ ४३३ ॥ कुंभपूर्णपयोभिः
स्तामभ्यसिंचत् समतत । ततो व्रजांह्रिपादानामपि तद्योग्यपूजन ॥ ४३४ ॥ कृत्वा कृष्णं च गोपालकुमारैर्जातसंमदौ । भोजयित्वा स्वयं चात्र भुक्त्वा
पुरमविक्षतां ॥ ४३५ ॥ स कदाचिन्महावर्षापाते गोवर्द्धनाह्वय । हरिः पर्वतमुद्धृत्य चकार वरण गवा ॥ ४३६ ॥ तेन ज्योत्स्नेव तत्कीर्तिर्व्याप्नोति स्म

उस कामको वे अवश्य करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महा प्रतापी लोग किये हुये कामोंसे कभी नहीं रोके जा
सकते ॥ ४२५–४२७ ॥ इस प्रकार लोगोंके मुखसे देवकी और वसुदेवने भी कृष्णका पौरुष सुना तब उन्हें कृष्णके
देखनेकी इच्छा हुई और वे दोनों बलभद्र तथा सब परिवारके साथ साथ गोमुखी नामके उपवासके बहानेसे बडी
विभूति लेकर गोदावनमें आए ॥ ४२८–४२९ ॥ आते ही उन्होंने कृष्णको देखा उस समय कृष्ण एक बडे भारी
बलवान और उन्मत्त बैलकी गर्दन पकड कर लटक रहे थे और उन्होंने उस बैलकी गर्दन तोड दी थी । ऐसे कृष्णको
देख कर देवकीने पहिले तो गंध माला आदिसे उनकी मानता की, बडे प्रेमसे आभूषण पहिनाए और फिर प्रदक्षिणा
दी । उसी समय देवकीके सुवर्णके कलशोंके समान दोनों स्तनोंसे दूध निकलने लगा और अभिषेक करनेके समान
कृष्णके मस्तक पर पडने लगा ॥ ४३०–३३२ ॥ बलभद्र उसे देख कर सोचने लगे कि इस तरह भेद खुलनेका डर
है यही सोच कर वे बुद्धिमान् कहने लगे कि उपवास करनेके खेदसे यह मूर्छित हो गई है ॥ ४३३ ॥ तदनंतर जल
से भरे हुए कलशोंसे सब ओरसे कृष्णका अभिषेक किया फिर व्रजके सब लोगोंका यथायोग्य आदर सत्कार किया,
बडी प्रसन्नतासे गोपालकुमारोंके साथ कृष्णको भोजन कराया, आप भोजन किया और फिर वे सब अपने मथुरा नग-
रको चले गये ॥ ४३४–४३५ ॥ किसी एक दिन व्रजमें पानी बहुत वरसा तब कृष्णने गोवर्द्धन नामका पर्वत उठा
कर उसके नीचे गायोंकी रक्षा की ॥ ४३६ ॥ इस कामसे चांदनीके समान कृष्णकी कीर्ति सब संसारमें फैल गई
और वह शत्रुओंके मुखरूपी कमलोंके समूहको संकुचित करने लगी ॥ ४३७ ॥ किसी एक दिन मथुरा नगर बसनेके

गोपायेन बलाप्रभीः । तद्बालपालनोद्युक्ता काप्यम्याण्ख देवता ॥ ४१५ ॥ एतनयोर्वैलनरीर्डां तत्पानसमये भयात् । प्रापलायत सामुरय तस्याेर्श गो-
दुमक्षमा ॥ ४१६ ॥ शकटाकारमादाय पुनरन्यापि देवता । बालस्योपरिधावंती पादाभ्यां तेन सा हता ॥ ४१७ ॥ अन्येद्युर्नंदगोपस्य वध्वा कट्या मुद-
खलं । अगाच्छज्जलमानेतुमन्वगच्छत्तयाप्यसा ॥ ४१८ ॥ परिपीडयितुं बाल तदा ककुभपादपौ । भूत्वा स्थितौ सुरीमेरे समूलादुदपाटयत् ॥ ४१९ ॥
तच्चंक्रमणवेलायां तालस्य कृतिमास्थिता । एका फलानि तन्मूर्द्धि प्रपातयितुमुद्यता ॥ ४२० ॥ रासभीरूपमापद्य तं दष्टुमपरागता । चरणे रासभीं विष्णुर्-
भ्रींत्वाहन् स त द्रुम ॥ ४२१ ॥ अन्येद्युर्देवकन्यापि विकृत्य तुरगाकृतिं । तं हंतु प्रस्थिता तस्याघावहन् वदन रुषा ॥ ४२२ ॥ आहंतुं न समर्थाः स्म
इत्युक्त्वा सप्त देवताः । कंसाभ्यासं समागत्य विलीना इव विद्युतः ॥ ४२३ ॥ शक्तयो देवतानां च निस्सारा॰ पुण्यवज्जने । आयुधनाम्निवेंद्रास्य पर-
स्मिन् दृष्टकर्मणां ॥ ४२४ ॥ अरिष्टाख्य सुरोन्येद्युर्वीक्षितु तत्पराक्रम । आयात्कृष्ण वृषाकारस्तद्ग्रीवाभञ्जनोद्यत ॥ ४२५ ॥ तस्य मातामितर्जेन विर-

इसीतरह दूसरी देवी गाडीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर आई परंतु कृष्णने वह लात मारकर तोड दी ॥ ४१७ ॥ किसी दूसरे दिन नंदगोपकी स्त्री कृष्णकी कमर एक ऊखलसे बांधकर स्वयं जल लेनेके लिये गई परंतु कृष्ण फिर भी उसे तोडकर उसके पीछे २ गये ॥ ४१८ ॥ उसी समय बालकको पीडा देनेके लिये दो देवियोंने आकाशमें उडने वाले दो वृक्षोंका रूप बनाया परंतु कृष्णने उन दोनों वृक्षोंको जड़से ही उखाडकर फेंक दिया ॥४१९ ॥ उन वृक्षोंके फेंकते समय एक देवीने तो तालका रूप बना लिया और दूसरी फल बनकर कृष्णके मस्तकपर पडनेके लिये तैयार हुई ॥ ४२० ॥ तीसरी देवीने गधीका रूप बनाया और कृष्णको काटनेके लिये आई परंतु कृष्णने उस गधीके दोनों पैरोंपर उन दोनों वृक्षोंको दे पटका ॥ ४२१ ॥ किसी दूसरे दिन एक देवी घोडेकारूप बनाकर कृष्णको मारनेके लिये आई परंतु कृष्णने क्रोधमें आकर उसका मुह खूब ही ठोंका ॥ ४२२ ॥ अंतमें वे सातों देवियां कंसके पास गईं और हम उसे मार नहीं सकतीं ऐसा कहकर विजलीके समान अदृश्य होगईं ॥ ४२३ ॥ जिसप्रकार दूसरी जगह अपना काम दिखानेवाले शस्त्र वज्र नामके इंद्रके शस्त्रपर निष्फल हो जाते हैं उसीप्रकार पुण्यवान लोगोंपर देवोंकी शक्तियां भी निस्सार हो जाती हैं ॥ ४२४ ॥ किसी दूसरे दिन अरिष्ट नामका एक देव कृष्णका पराक्रम देखनेके लिये बैलकारूप धारणकर आया परंतु कृष्ण उसकी गर्दन तोडनेके लिये ही तैयार होगये यह देखकर माताने ललकार कर उस बैलको छुडाया तब कहीं वे उस चेष्टा रहित बैलसे अलग हुए। इस तरह वह यशोदा ऐसे २ अनेक क्लेश उत्पन्न करनेवाले कार्योंसे कृष्णको निवारण करने लगी परंतु कृष्ण मदोन्मत्त थे जिस कामको वह रोकती थी

स्वप्रियायै प्रिय पतिं । कंसोपि देवकी सीत्यवदपत्यमसूयत ॥ ४०४ ॥ इति श्रुत्वा समागत्य तां व्यधाद्भूमनासिकां । भूमिगेहे प्रयत्नेन मात्रा सा वर्धितेन्दिता ॥ ४०५ ॥ सा सुव्रतार्यिकाभ्यर्णे शोकात्स्वविकृताकृते: । गृहीतदीक्षा विंध्याद्रौ स्थानयोगमुपाश्रिता ॥ ४०६ ॥ देवतेति समभ्यर्च्य गतेषु वनदासिषु । व्याघ्रेण भक्षिता मक्षु स्वर्गलोकमुपागमत् ॥ ४०७ ॥ अपरस्मिन्दिने व्याघ्रदृष्ट्वा हस्तांगुलित्रय । तस्या क्षीरागरागादिरंजित देशवासिन ॥ ४०८ ॥ मूढात्मान: स्वय चैतदार्यासौ विंध्यवासिनी । देवतेति समभ्यर्च्य तदारभ्या प्रमाणयन् ॥ ४०९ ॥ अथाकस्मात्पुरे तस्मिन्महोत्पाता विजृंभिता: । वरुणाख्य निमित्तज्ञ द्राकंस परिपृष्टवान् ॥ ४१० ॥ किमेतेषा फल ब्रूहि यथार्थमिति सोब्रवीत् । तव शत्रु समुत्पन्नो महानिति निमित्तवित् ॥ ४११ ॥ तदाकर्ण्य महीनाथ चिंतयत चिरंतना: । देवतास्तमवोचस्ता किं कर्तव्यमिति श्रिता: ॥ ४१२ ॥ शत्रु मम समुत्पन्नमन्विष्याहत पापिन । इत्यसौ प्रेषयामास ता: सप्तापि तथास्त्विति ॥ ४१३ ॥ आगमत्पूतना तासु वासुदेव विभंग: । विज्ञायादाय तन्मातृरूप हतुमुपागता ॥ ४१४ ॥ विषस्तनपय पाय-

नीचे जलघरमें बडे प्रयत्नसे धायके द्वारा उसे बडा किया ॥ ४०५ ॥ बडी होनेपर अपना विकृत शरीर देखकर शोकसे उसने सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली और फिर वह विंध्याचल पर्वतपर एक जगह रहने लगी ॥ ४०६ बनमें रहनेवाली दासियां उसे देवता समझकर पूजने लगीं । किसी एक दिन वह किसी बाघने खाली इसलिये वह तो मरकर स्वर्ग चली गई परंतु दूसरे ही दिन वहांके भीलोंने उसकी केवल तीन उंगलियां देखीं इसलिये वहांके रहनेवाले मूर्ख लोगोंने दूध शरीरका उबटन आदिसे उसकी पूजा की । उसी समयसे लेकर वे लोग विंध्यवासिनी देवीके नामसे उसे पूजने और मानने लगे ॥ ४०७-४०९॥ अथानंतर—इधर मथुरा नगरमें अकस्मात् बहुतसे उत्पात होने लगे तब कंसने वरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछा कि इनका फल क्या है सो यथार्थ कहो तब वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि तेरा बडा भारी शत्रु उत्पन्न होचुका है ॥ ४१०-४११ ॥ इस बातको सुनकर कंसकी बडी चिंता हुई तब पहिले जन्मके देवताओंने आकर कहा कि हे स्वामी कहिये हमारे लिये क्या काम है ॥ ४१२ ॥ तब कंसने कहा कि मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है उस पापीको ढूंढकर तुम मार आओ । इस तरह उसने उन सातों देवताओं को भेजा । अच्छा कहकर वे देवता भी गये । उनमेंसे पूतना नामकी देवीने विभंगावधिसे वासुदेवको जान लिया । उस दुष्टिनीने माताका रूप धारणकर और स्तनोंमें विष मिलाकर उन विष भरे स्तनोंको पिलाकर कृष्णको मारनेका विचार किया इसतरह वह बालकको पालन पोषण करने लगी परंतु बालक कृष्णके दूध पीते समय किसी दूसरी देवीने आकर उन कुचोंको ऐसी पीडा पहुंचाई जिसे वह सह न सकी और भागकर अपने घर गई ॥ ४१३-४१६ ॥

हाकर्ण्यैव बधात्स्वामचिराग्मोचयिष्यति । तूष्णीमुपविशेत्युक्तो बलेन मधुराधिपः ॥ ३९५ ॥ तथास्त्विति तमाशीभिः प्रतोषादभ्यनंदयत् । तौ च तस्माद्वि-निर्गत्य यमुनां प्रापतुर्निशि ॥ ३९६ ॥ भाविचक्रिप्रभावेन दत्तमार्गाद्विधाभवत् । सा सवर्णाश्रित कोवा नार्द्रात्मा वधुतां भजेत् ॥ ३९७ ॥ सविस्मयो वि-रुपैतां गच्छंतौ नंदगोपतिं । उद्धृत्य बालिकां यत्नेनागच्छंतमदर्शतां ॥ ३९८ ॥ दृष्ट्वा ताभ्यां कुतोभद्र रात्रावागमनं तव । नि मखस्येति संपृष्ट सप्रण-म्याभ्यभाषत ॥ ३९९ ॥ मत्प्रिया पुत्रलाभार्थ भवतोः परिचारिका । गंधादिभिः समभ्यर्च्य श्रद्धानाद्भूतदेवताः ॥ ४०० ॥ आश्वास्य स्त्रीत्वयद्रात्रावया-पत्यमवाप्य सा । सशोका दीयतामेतत्ताभ्य एवेति साब्रवीत् ॥४०१॥ तदर्पयितुमायासो ममायं स्वामिनाविति । तद्वच सम्यगाकर्ण्य सिद्धमस्मत्प्रयोजन ॥ ४०२ ॥ इति संतुष्य तत्सर्वमववोध्य प्रवृत्तक । तदपत्य समादाय दत्वा तस्मै स्वगर्भकं ॥ ४०३ ॥ भाविचक्रधरं विद्धि बालमित्यभिधाय च । अनन्यविदि-तौ गूढं तौ तदाविशतां पुरं ॥ ४०४ ॥ नंदगोपोपि तं बालमादाय गृहमागतः । तुभ्यं सुत महापुण्य प्रसन्ना देवता ददु' ॥ ४०५ ॥ इत्युदीर्यार्पयामास

हुये ॥ ३९६ ॥ होनहार चक्रवर्तीके प्रभावसे यमुनाने भी मार्ग दे दिया सो ठीक ही है क्योंकि समान वर्णवालेको देखकर (यमुना भी काली हैं और कृष्ण भी काले थे) किसके हृदयमें करुणा नहीं आती और कौन भाईचारा नहीं करता ॥ ३९७ ॥ उन दोनोंने आश्चर्यके साथ यमुना नदी पार की और फिर आगे चलकर बडे यत्नसे एक बालिकाको गोदीमें लेकर आते हुये नंदगोपालको देखा ॥ ३९८ ॥ नंदगोपालको देखते ही उन दोनोंने पूछा कि हे भद्र आप रात्रिमें ही अकेले क्यों आरहे हैं । इसके उत्तरमें नमस्कारकर नंदगोपाल कहनेलगा कि आपकी सेवा करनेवाले मेरी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये एक भूत देवताकी बडी श्रद्धासे गंध आदि द्रव्योंके द्वारा पूजा की थी ॥ ३९९--४०० ॥ उस देवीने आश्वासन देकर आज रातमें ही एक कन्या लाकर दी और कहा कि इस कन्याको शोकके साथ उन्हें (आपको) दे आना ॥ ४०१ ॥ हे स्वामी उसी कन्याको रातमें ही आपके यहां पहुंचानेके लिये मैं जा रहा हूं । नंदगोपकी ये बातें सुनकर वे दोनों पिता पुत्र संतुष्ट हुए और सोचने लगे कि हमारा काम बन गया । तदनंतर उन दोनोंने नंदगोपालसे सब समाचार कहे उसकी पुत्रीको लेकर अपना पुत्र दे दिया और समझा दिया कि यह बालक होनहार चक्रवर्ती है । इसके बाद वे दोनों पिता पुत्र छिपकर विना किसीको मालूम हुए मथुरा नगरमें आये ॥ ४०३--४०४ ॥ नंदगोप भी उस बालकको लेकर अपने घर गया और स्त्रीसे कहने लगा कि उस देवताने प्रसन्न होकर तुझे बडा ही पुण्यवान् पुत्र दिया है । इसतरह कहकर अपनी स्त्रीको कृष्ण सौंप दिये । इधर कंसने सुना कि देवकीके पुत्री हुई है । सुनते ही वह तुरंत दौडा आया आकर पहिले तो उसकी नाक काट डाली और फिर पृथ्वीके

त ॥ ३८३ ॥ देवकी च मुदा पश्चात्रि ह्त्वासवती यमान् । चरमांगानिमान् ज्ञानवता शक्रेण चोदित ॥ ३८४ ॥ दिविजो नैगमर्षाख्यो भद्रिलाख्यपुरेल-
का । वणिक्सुताया निक्षिप्य पुरस्तात्सुतान् मृतान् ॥ ३८५ ॥ तदा तदैव संभूय गृहीत्वा त्रिमितानिमान् । तान् पुरस्तान्निचिक्षेप देवक्या गूढकृत्यवि-
त् ॥ ३८६ ॥ यमान् सोपि गतप्राणान् कंसः समीक्ष्य तान् । किमेभिर्मे गतप्राणैरभून्मुनिरसत्यवाक् ॥३८७॥ इति मत्वापि साशंक शिलापट्टे न्यपात-
यत् । पश्चात्सा सप्तमे मासे एव स्वस्य निकेतने ॥ ३८८ ॥ निनामकमलब्धोक्ष महाशुक्राच्च्युत सुत । कंसानवगमेनेव नंदगोपगृहे सुख ॥३८९॥ बालक
वर्द्धयिष्याव इति नदविशारदौ । पिता भ्राता च तद्देवकीं विज्ञाप्य ततोबल. ॥ ३९० ॥ तमुद्द्रे पिता चास्य दधारातपवारण । ज्वलन्निशातशृंगाग्रविलस
न्मणिदीपिका—॥ ३९१ ॥ निरस्ततिमिराटोपो वृषभोऽभूत्तदग्रत । तथाविकृतिमापन्नो तत्पुण्यात्पुरदेवता ॥ ३९२ ॥ सद्यस्तदास्य बालस्य चरणस्पर्शसंगमा-
त् । उद्घाटितकपाट तद्बभूव पुरगोपुरं ॥ ३९३ ॥ उग्रसेनस्तदालोक्य-बंधनस्थ समब्रवीत् । कवाटोद्घटनं कोत्र करोतीत्यतिसभ्रमात् ॥ ३९४ ॥ त-

उसके उत्पन्न हुए मरे पुत्रोंको लाकर देवकीके आगे डाल दिया ॥ ३८४–३८६ ॥ कंसने उन सब मरे पुत्रोंको देखकर सोचा कि इन मरे हुए पुत्रोंसे मेरी क्या हानि हो सकती है अथवा मुनिके वचन मिथ्या भी हो सकते हैं। ऐसा समझकर भी उसे शंका बनी रही और उसने उन मरे हुए बच्चोंको भी शिलापर पटकवाया । इसके बाद निनामक नामके मुनिका जीव महाशुक्रसे च्युत होकर देवकीके गर्भमें आया और उस देवकीने अपने ही घर सातवें महीनेमें उस पुत्रको उत्पन्न किया । पुत्र होते ही वसुदेव और बलभद्रने विचार किया कि कंसको विना जताये इस पुत्रको नंदगोपके घर पहुंचादेना चाहिये और वहींपर इसका सुखपूर्वक पालन पोषण कराना चाहिये । चतुर पिता और भाईने (वसुदेव बलभद्रने) यही बात देवकीको समझाई । तदनंतर बलभद्रने उस पुत्रको उठा लिया और पिता वसुदेवने उसपर छत्र लगाया । रात अंधेरी थी इसलिये कृष्णके पुण्य कर्मके उदयसे नगरके देवताने बैलका रूप धारण किया। उसने अपने दोनों सींगोंपर दो देदीप्यमान मणियां लगाईं और इसतरह सब अंधेरेको दूर करता हुआ वह उन दोनोंके आगे २ चला ॥ ३८७–३९२ ॥ उसीसमय उस बालकके चरणोंका स्पर्श होते ही नगरके बडे दरवाजेके किवाड खुलगये ॥ ३९३ ॥ रात्रिमें किवाड खुलते हुये देखकर बंधनमें पडे हुए राजा उग्रसेनने बडे आश्चर्यसे कहा कि इससमय किवाड किसने खोले ॥ ३९४ ॥ यह बात सुनकर बलभद्रने उग्रसेनसे कहा कि आप चुप चाप बैठे रहिये । यह किवाड खोलनेवाला इस बंधनसे आपको शीघ्र ही छुडावेगा ॥ ३९५ ॥ यह सुनते ही उग्रसेनको बडा संतोष हुआ और आशीर्वाद देकर उसे बढाया । फिर वहांसे चलकर वे दोनों पिता पुत्र रातमें ही यमुना नदीपर प-

पुत्तिमित् ॥ ३७२ ॥ सुतोऽयात्मव भर्तारं भाव्यवश्यं हनिष्यति । इत्यवोचत्ततः क्रुद्धा सा तद्वस्त्रं द्विधा व्यधात् ॥ ३७३ ॥ वनिमेव न तेऽनेन पितरं च हनिष्यति । इत्युक्ता सा पुनः क्रुद्धा पादाभ्यां तद् व्यनेदयत् ॥ ३७३ ॥ तद्विलोक्य मुनिर्देवकीसुतः सागरावधिं । पालयिष्यति भूनारी नारी वेत्यब्रवीच्च तां ॥ ३७५ ॥ जीवद्यशाथ तत्सर्वमवधार्य यथा श्रुतं । गत्वा बुद्धिमती कंसं मिथस्तं तदबोधयत् ॥ ३७६ ॥ हासेनापि मुनिप्रोक्तमवध्यमिति भीतिमान् । वसुदेवमहीश स महाबंदमयाचत ॥ ३७७ ॥ प्रसूतिसमयेवाप्य देवकी मद्‌गृहांतरे । प्रसूतिविधिपर्यास विदध्यास्त्वन्मतादिति ॥ ३७८ ॥ सोपि तेनोपरुद्धः संस्तथास्त्वेतदमस्तस । अवश्य भाविकार्येषु मुह्यत्यपि मुनीश्वर- ॥ ३७९ ॥ भिक्षार्थं देवकीगेहं स पुनश्च प्रविष्टवान् । प्रत्युत्थाय यथोक्तेन विधिना प्रतिगृह्य तं ॥ ३८० ॥ देवकी वसुदेवश्च दीक्षात्र स्यात्रवावयोः । किमिति छद्मता ब्रूतां ज्ञात्वा सोपि तदिंगितं ॥ ३८१ ॥ सप्त पुत्रा समाप्स्यंते भवद्भ्यां तेषु षट् सुताः । परस्थानेषु वर्द्धित्वा यास्यंति परमां गतिं ॥ ३८२ ॥ सप्तमः सकलां पृथ्वीं स्वछत्रच्छायया चिरं । पालयिष्यति निर्वाप्य चक्रवर्तीत्यभाष-

प्रकार करते हुए देखकर मुनिने फिर कहा कि वह देवकीका पुत्र सती स्त्रीके समान समुद्रपर्यंत सब पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३७५ ॥ जीवद्यशा इन सब बातोंका विचार कर दुखी हुई और उस बुद्धिमतीने शीघ्रही जाकर सब बातें कंसको समझा दीं ॥ ३७६ ॥ कंस ये सब बातें सुनकर डरा क्योंकि उसने समझ लिया कि मुनियोंके हसीमें कहे हुए बचन भी कभी मिथ्या नहीं होते हैं तब उसने राजा वसुदेवसे बडे प्रेमसे यह याचना की कि आपकी आज्ञानुसार देवकी प्रसूतिके समय मेरे ही घरमें प्रसूतिकी सब विधि पूर्णकरे ॥ ३७७-३७८ ॥ वसुदेवने भी मुलाहिजेमें आकर कंसकी सब बात मान ली सो ठीक ही है क्योंकि अवश्य ही होनहार कार्योंमें मुनीश्वर लोग भी मोहित हो जाते हैं ॥ ३७९ ॥ किसी दूसरे दिन वे ही अतिमुक्त मुनि आहारके लिये देवकीके घर गये। देवकीने उठकर विधिपूर्वक उनका पडगाहन किया आहार देनेके बाद देवकी और वसुदेव दोनोंने पूछा कि हम दोनों दीक्षा धारण करेंगे या नहीं। मुनिराजने उन दोनोंके इशारे समझ लिये और कहा कि तुम दोनों इस तरहके बहाने अथवा कपटसे क्यों पूछते हो। तुम्हारे सब सात पुत्र होंगे उनमेंसे छह पुत्र तो दूसरी जगह पाले पोपे जाकर अंतमें मुक्त होंगे और सातवां पुत्र चक्रवर्ती होकर अपनी छत्रछायासे बहुत दिन तक इस सब पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३८०-३८३ ॥ यह सुन देवकी बहुत प्रसन्न हुई। पीछे देवकीने तीनवारमें दो दो चरमशरीरी पुत्र उत्पन्न किये। जब जब इसके ये पुत्र हुए उसी समय ज्ञानी इंद्रकी प्रेरणासे देवकीके गूढ कार्योंको जाननेवाले नेगमर्षनामके देवने वे सब पुत्र उठाकर भद्रिलनगरमें अलका नामकी वैश्यपुत्रीके आगे डाल दिये और उसीसमय

आगतः कंसमंजूषामधिष्ठायायमर्भकः । जले कालिंदकन्याया मयादायाभिवर्द्धितः ॥ ३६३ ॥ कंसनाम्ना समाहूतस्ततएव परोद्भवैः । निसर्गशौर्यदर्पिष्ठः शैशवेपि निरर्गलः ॥ ३६४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मंजूषातस्थपत्रकं । गृहीत्वा वाचयित्वोग्रसेनमहीपतेः ॥ ३६५ ॥ पद्मावत्याश्च पुत्रोयमिति ज्ञात्वा महीपतिः । वितताार सुतां तस्मै राज्यार्द्धं च प्रतुष्टवान् ॥ ३६६ ॥ कंसोप्युत्पत्तिमात्रेण स्वस्य नद्यां विसर्जनात् । प्रवृद्धपूर्ववैरः सन् कुपितो मथुरापुरीं ॥ ३६७ ॥ स्वयमादाय बध्वैंधां गोपुरे पितरौ व्यधात् । विचारविकलाः पापाः कोपिताः किं न कुर्वते ॥ ३६८ ॥ अथ स्वपुरमानीय वसुदेवमहीपतिं । देवसेनसुतामस्मै देवकीमनुजां निजां ॥ ३६९ ॥ विभूतिमद्वितीयैवं काले कंसस्य गच्छति । अन्येद्युरतिमुक्ताख्यमुनिर्भिक्षार्थमागमत् ॥ ३७० ॥ राजगेहं समीक्ष्यैनं हासार्ज्जीवद्यशा मुदा । देवकी पुष्पजानंदवस्त्रमेतत्तवानुजा ॥ ३७१ ॥ स्वस्याश्चेष्टितमेतेन प्रकाशयति ते मुने । इत्यवोचत्तदाकर्ण्य सकोपः सोपि

मैंने लेकर इसे बड़ा किया है ॥ ३६२-३६३ ॥ यह कांसोकी संदूकमें आया था इसीलिये इसका नाम कंस रक्खा है। बालकपनमें ही यह शूरवीरताका अभिमानी था इसीलिये मैंने घरसे निकाल दिया था ॥ ३६४ ॥ मंदोदरीकी यह बात सुनकर राजा जरासंधने उस संदूकमेंसे पत्र लेकर बांचा और निश्चय किया कि यह कंस राजा उग्रसेन रानी पद्मावतीका पुत्र है। इसलिये संतुष्ट होकर उसने उस कंसको आधा राज्य और अपनी कन्या देदी ॥ ३६५-३६६ ॥ उसी समय कंसके पूर्वभवका वैर प्रगट हुआ उसने सोचा कि मेरे माता पिताने मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ दिया था इसलिये वह उसी समय मथुरापुरीको गया और माता पिताको पकड़ कर बांधकर नगरके बड़े दरवाजे पर रख दिया सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधित हुए विचाररहित पापी लोग क्या क्या नहीं करते हैं ॥ ३६७-३६८ ॥ तदनंतर कंस राजा वसुदेवको भी अपने नगरमें ले आया और बड़ी विभूतिके साथ राजा देवसेनकी पुत्री अपनी छोटी बहिन देवकी उन्हें व्याह दी। इस प्रकार कंसका समय व्यतीत होने लगा। किसी दूसरे दिन अतिमुक्त नामके मुनि आहारके लिये राजभवनमें ही आए उन्हें देखकर जीवद्यशा प्रसन्न होकर हंसीसे कहने लगी कि हे मुनि! देखो ये देवकीके कामदेवके आनंदवस्त्र हैं यह आपकी बहिन आपको ही अपनी चेष्टा दिखला रही है। जीवद्यशाकी ये बाते सुन कर मुनिराजको क्रोध आया और उन्होंने अपनी वचनगुप्तिका भंग कर कहा कि आगे इसका (देवकीका) पुत्र अवश्य ही तेरे पतिको मारेगा यह सुनकर जीवद्यशाको भी क्रोध आया और उसने उस वस्त्रके दो टुकड़े कर दिये। यह देखकर मुनिराजने फिर कहा कि वह अकेले तेरे पतिको ही नहीं किंतु तेरे पिताको भी मारेगा यह सुनते ही जीवद्यशाको फिर क्रोध आया और वह उस वस्त्रको अपने पैरसे मर्दन करने लगी ॥ ३६९-३७४ ॥ जीवद्यशाको इस

रोभवत् ॥ ३५१ ॥ इतोन्यत्प्रकृत भूमो जरासंधमहीपतिः । निर्जिताशेषभूपाल. कदाचित्कार्यशेषवान् ॥ ३५२ ॥ सुरम्यविषयांतस्थपोदनाख्यपुराधिप । रिपु सिंहरथ जित्वा बलाद्युद्धे ममांतिक ॥ ३५३ ॥ बध्वा नीतवते देशस्यार्द्ध मत्पुत्रिकामपि । कलिंदसेनासंभूतां सतीं जीवद्यशोभिधां ॥ ३५४ ॥ दास्यामीत्यपि भूपालान्प्राहिणोत्पत्रमालिकां । वसुदेवकुमारस्तत्परिगृह्य प्रतापवान् ॥ ३५५ ॥ वाजिनः सिंहमूत्रेण भाविमिला रथ स तैः । बालमारुह्य समामे जित्वा सिंहरथ पृथु ॥ ३५६ ॥ कसेन निजभृत्येन बधयित्वा महीपते । स्वयं समर्पयामास सोपि तुष्टा सुतां निजां ॥ ३५७ ॥ देशार्द्धेन समं तस्मै प्रतिपन्नां प्रदत्तवान् । वसुदेवोपि तां दुष्टलक्षणा वीक्ष्य नो मया ॥ ३५८ ॥ बद्धः सिंहरथः कर्म कंसेनानेन तत्कृत । कन्या प्रदीयतामस्मै भवत्प्रेषणकारिणे ॥ ३५९ ॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा जरासंधनरेश्वर. । कुलं कसस्य विज्ञातुं दूतं मंदोदरीं प्रति ॥ ३६० ॥ प्रेषयामास तं दृष्ट्वा किं तत्राप्यपराधवान् । मत्पुत्र इति भीतासौ समजूषागमत् स्वयं ॥ ३६१ ॥ आगत्य नृपतेरग्रे मातास्येयमिति क्षितौ । निक्षिप्य कंसमजूषां प्रणिपत्यैवमब्रवीत् ॥ ३६२ ॥

तथा रात दिन उनकी सेवा करने लगा ॥ ३५१ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और है और वह इस तरह है कि राजा जरासंध ने सब राजा जीत लिये थे परंतु किसी एक समय उसका भी एक काम वाकी रह गया था उसे पूरा करनेके लिये उसने सब राजाओंके पास पत्र लिखकर भेजे कि सुरम्य देशके अंतर्गत पोदनपुर नगरके राजा सिंहरथ शत्रुको युद्धमें जबर्दस्ती जीतकर और वांधकर जो कोई मेरे पास लावेगा उसे आधा देश और कलिंदसेनासे उत्पन्न हुई जीवद्यशा नामकी पुत्री दूंगा। यह समाचार पाकर प्रतापी वसुदेवकुमार नेसिंहका मूत्र मंगाकर घोडोंके शरीरपर लगवाया और उन्हें रथमें जोतकर तथा उस रथपर सवार होकर युद्धके लिये निकला युद्धमें उस भारी राजा सिंहरथको जीतकर और अपने सेवक कंसके द्वारा उसे वंधवाकर अपने हाथसे राजा जरासंधको सौंप दिया। राजा जरासंध भी संतुष्ट होकर आधे देशके साथ साथ सामने खडी हुई अपनी पुत्री देने लगा। वसुदेवने देखा कि उस पुत्रीके लक्षण अच्छे नहीं है तव उन्होंने कहा कि राजा सिंहरथको मैंने नहीं वांधा है किंतु यह काम कंसने किया है इसलिये इस भेजनेवाले कंसको ही अपनी कन्या दीजिये। वसुदेवकी यह वात सुनकर राजा जरासंधने कंसका कुल जाननेके लिये मंदोदरीके पास एक दूत भेजा मंदोदरीने दूतको देखकर सोचा कि मेरे पुत्रने वहां भी कुछ अपराध किया जान पडता है यही सोचकर और डरकर वह स्वयं संदूकको ले आई ॥ ३५२–३६१ ॥ मंदोदरीने आकर राजा जरासंधके सामने वह कांसेकी संदूक जमीनपर रखदी और कहा कि इस कसकी यही माता है। तदनंतर राजा को नमस्कार कर कहने लगी कि इस कांसेकी संदूकमें रक्खा हुआ यह बालक यमुना नदीके प्रवाहमें आरहा था।

सिद्धं राज्यं गृह्यासमिति दुर्मतिः ॥४०॥ एतद्दुष्परिणामेन मुनिः प्राप्य परां मृतिं । जातः पद्मावतीगर्भे भूपैरेतानुबंधतः ॥ ४१ ॥ सापि गर्भेऽभैकार्यो-
न्महीश्यदृदयामिष । अभूदभिलषत्यासौ तद्भात्वा मंत्रिणस्तदा ॥ ३४२ ॥ प्रयोगविहित मधुद्रन्मांसमिति दौहृदं । स्वबुद्ध्या पूरयन्तस्या किल क्रूरैति
धीधनाः ॥ ३४३ ॥ निर्दोहृदा क्रमेणास बलब्ध सुतपातक । दृष्ट्वाह्य निठुरालोकं कृतभ्रूभंगमग्रम ॥ ३४४ ॥ दृष्ट्वा तं पितरौ तस्य नात्र विश्रम्य पोषणे ।
योग्योयमिति संस्थाप्य विधिं तस्य विसर्जने ॥ ३४५ ॥ मंजूषाया विनिक्षिप्य कंसमय्यां सपुत्रक । कंसं कालिंदकन्याया प्रवाहे मुंचतः स्म तौ ॥ ३४६ ॥
अस्ति मदोदरी नाम कौशांब्या शाद्रसुंदरी । तया प्रवाहे मंजूषा मध्यस्थासौ व्यलोकत ॥ ३४७ ॥ अवीवृधत् गृहे त्वेनमिव सा स्वसुत हित । किं न कु-
र्वंति पुण्यानि हीनान्यपि तपस्विनां ॥ ३४८ ॥ अहोमि कैश्चिदासाद्य लमनादिसं वय । आक्रीडमानो निर्हेतुः समं सकलबालकान् ॥ ३४९ ॥ चपेटा-
मुष्टिखावदिप्रहारैर्बाधते सदा । तद्दुराचारनिर्विण्णाऽथजन्मदोदरी सुत ॥ ३५० ॥ सोपि शौर्यपुरं गत्वा वसुदेवमहीपते । प्रतिपद्य पदातित्व तस्थैवातत-

पामोंसे वह मुनि मरा और पहिलेके वैरके संबधसे उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आया ॥ ३४१ ॥ उस रानी पद्मावतीको भी उस गर्भके बालककी क्रूरतासे राजा उग्रसेनके हृदयका मांस खानेकी इच्छा हुई और उसीसे वह दुःखी होने लगी। यह जानकर मंत्रियोंने अपनी बुद्धिसे कोई बनावटी चीज देकर और यह तुम्हारे पतिके हृदयका मांस है ऐसा कहकर उसका दोहद वा इच्छा पूरी की। सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग क्या नहीं करते हैं ॥ ३४२-३४३ ॥ दोहद रहित उस रानी ने अनुक्रमसे उस पापी पुत्रको जन्म दिया। उस समय वह अपने ओठ दबाये था टेढ़ी निगाहसे देख रहा था और भौंहें चढ़ाये था। माता पिता उसे देखकर विचार करने लगे कि इसका पालन पोषण करना योग्य नहीं है यही समझकर उन्होंने उसे छोड़ देना उचित समझा कांसेकी एक अच्छी संदूक बनाकर और सब समाचार लिखकर उसमें उस बालक कंसको रखकर वह संदूक यमुना नदीके प्रवाह में बहा दी॥३४४-३४६॥ कौशांबी नगरकी शूद्र स्त्री मंदोदरीने पानीके प्रवाहमें बहती हुई वह संदूक देखी ॥ ३४७ ॥ उस पुत्रको घर लाकर अपने पुत्रके समान उसका पालन पोषण करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि तपस्वियोंके हीन पुण्य भी क्या क्या काम नहीं करते हैं अर्थात सभी करते हैं ॥ ३४८ ॥ कितने ही दिनोंमें वह आयु और सहारा पाकर अनेक बालकोंके साथ क्रीडा करने लगा परंतु वह विना ही कारणके थप्पड़ घूंसा डंडा आदिसे उन सब बालकोंको मारकर सदा दुःख दिया करता था। उसके इस दुराचरणोंसे दुःखी होकर मंदोदरीने उस बालकको अपने घरसे निकाल दिया॥ ३४९-३५०॥ वहांसे चलकर वह कंस सूरीपुर पहुंचा और राजा वसुदेवके समीप जाकर उनका पियादा बन गया

मिष्टमित्यब्रत स्थिताः ॥ ३२९ ॥ दृष्ट्वा ताः स मुनिः प्राह भवतीभिः प्रयोजनं । नास्त्यत्र गच्छताम्वस्मिन् यूयं जन्मनि मामिति ॥ ३३० ॥ क्रमेणैवं तपः कुर्वन्नागमन्मथुरापुरीं । तत्र मासोपवासी सन्नातापयोगमाचरन् ॥ ३३१ ॥ अथान्येद्युर्विलोकयंनमुग्रसेनमहीपतिः । भक्त्या मद्गेहएवायं भिक्षां गृह्णातु नान्यत ॥ ३३२ ॥ चकार घोषणां पुर्यामिति सर्वनिषेधिनीं । स्वपारणादिने सोपि भिक्षार्थं प्राविशत्पुरीं ॥ ३३३ ॥ उदतिष्ठत्तदेवाग्नी राजगेहे निरीक्ष्य त । मुनीश्वरो निवर्त्यायान्निराहारस्तपोवनं ॥ ३३४ ॥ ततः पुनर्गते मासे बुभुक्षुः क्षीणदेहकः । प्रविश्य नगरीं वीक्ष्य क्षोभेण यागहस्तित ॥ ३३५ ॥ सद्यो निवर्ततेस्मास्मान्मासमात्राशनव्रत । मासांते पुनरन्येद्युः शरीरस्थितियोगतः ॥ ३३६ ॥ राजगेहं जरासंघमहीदूप्रहितपत्रक । समाकर्ण्य महीपाले व्याकुलीकृतचेतसि ॥ ३३७ ॥ ततो निवर्तमानोसौ क्षीणांगो जनजल्पित । न ददाति स्वयंभिक्षां निषिध्यति परानिति ॥ ३३८ ॥ कोमिप्रायो महीशस्य न विद्मो वयमित्यदः । श्रुत्वा पापोदयात्क्रुद्ध्वा निदानमकरोन्मुनिः ॥ ३३९ ॥ पुत्रोभूत्वास्य भूपस्य मदुग्रतपसः फलात् । निगृह्येन-

तपश्चरण करता हुआ वह अनुक्रमसे मथुरापुरीमें आया और वहां पर एक महीनेके उपवासकी प्रतिज्ञा कर आतापन योग धारण कर विराजमान हुआ ॥ ३३१ ॥ किसी दूसरे दिन वहांका राजा उग्रसेन उसे देखकर भक्तिपूर्वक मनमें सोचने लगा कि यह मुनि मेरे ही घरमें आहार ले दूसरी जगह न ले तो अच्छा ॥ ३३२ ॥ यही सोचकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि इन मुनिका पडगाहन कोई मत करना । इसके बाद पारणाके दिन मुनिने नगरमे प्रवेश किया ॥ ३३३ ॥ दैवयोगसे उसी समय राजभवनमें आग लगी उसे देखकर वे मुनि लौटकर निराहार ही तपोवनमें चले गये ॥ ३३४ ॥ एक महीनेका फिर उपवास कर अत्यंत क्षीण शरीरवाले उन मुनिराजने पारणाके लिये फिर नगरमें प्रवेश किया परंतु उस दिन पट्ट हाथी बिगड गया था इसलिये उसका क्षोभ देखकर वे फिर लौट गये । उन्होंने फिर एक महीनेका उपवास किया और महीना बीत जानेपर पारणाके लिये वे फिर नगरमें गये । दैवयोगसे उसदिन राजा जरासंध ने राजा उग्रसेनके लिये पत्र देकर कुछ समाचार भेजे थे उन्हें सुनकर राजा उग्रसेनका चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा था ॥ ३३५-३३७ ॥ इसी कारण अत्यंत क्षीण शरीर सहित मुनिराजको उस दिन भी लौटना पड़ा । उन्हें लौटते हुए देखकर लोग परस्पर कहने लगे कि राजा इन मुनिराजको न तो स्वयं आहार देता है और न दूसरोंको देने देता है । इसमे राजाका क्या अभिप्राय है सो कुछ भी हमारी समझमें नहीं आता । लोगोंकी ये बाते सुनकर और पापकर्मके उदयसे क्रोधित होकर उस दुर्बुद्धि मुनिने निदान किया कि मैं अपने उग्र तपश्चरणके फलसे इसी राजाका पुत्र होकर इसे मारकर इसका राज्य लूंगा ॥ ३३८-३४० ॥ ऐसे ही बुरे परि-

भास्वरी वीरस्य निमेला । शरदाप्राप्य संस्कारं शुद्धा पद्मोद्भवावहा ॥ ३२० ॥ दुर्वारो दुर्विर्षधी रिविघ्नप्रतिपालकः । तत्प्रतापः कथं गोरवमपि सारं न लभते ॥ ३२१ ॥ इत प्राक्तनमन्यत्तु इनकं तनिगयते । गगानगंधवतीनयो संगमे सफलद्रुमे ॥ ३२२ ॥ तापसानामभूत्पल्ली नाम्ना जठरकौशिकः । विशिष्टो नायकस्तत्र पंचाग्निमतमाचरन् ॥ ३२३ ॥ भद्रातगुणवीराभ्यां चारणाभ्यामिदं तपः । अज्ञानकृतमित्युक्तः कोपाद्गुरुप्रदूषता ॥ ३२४ ॥ कुतो ममेति सक्रोध कुधी स्थित्वा तयो पुरः । अ गोत्र यत्वदुक्त नमो हि हितभाषिणः ॥ ३२५ ॥ जटाकलापसंभूतविमायूकाभिरहतं । ततनत्र न-सलमजर्दात तमीनकान् ॥ ३२६ ॥ दह्यमानं स्नातमध्यस्कुरद्विविधकीटकान् । संदर्श्य तथाज्ञानमीति तं समबोधयत् ॥ ३२७ ॥ कालल्ब्धिं समाश्रित्य विशिष्टोपि विशिष्टधीः । दीक्षितस्तपयोगस्थ गोमार्ग तो व्यधात् ॥ ३२८ ॥ तपोमाहात्म्यतस्तस्य ससव्यंतरदेवताः । मुनीश बुद्धि गवेष-

उसका प्रताप सूर्यके मारूप प्रतापको भी किस तरह उल्लंघन न करता ॥ ३२८ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और है आगे वही कही जाती है । गंगा और गंधवती नदीके संगम पर बहुतसे फले फूले वृक्ष थे । वहांपर तपसियोंका एक निवासस्थान था उसमें जठरकौशिक नामका तपसी सबका नायक था और पंचाग्नि तपता हुआ वहां रहता था ॥ ३२०-३२२ ॥ किसी एक दिन गुणभद्र और वीरभद्र नामके दो चारण मुनि वहां आए, उन्होंने उन तपसियोंको देख कर कहा कि ये सब अज्ञानपूर्वक तपश्चरण कर रहे हैं । मुनिराजके ऐसे वचन सुनकर वह नायक तपसी मूर्ख उन दोनों मुनिराजोंके सामने खडे होकर क्रोधसे कहने लगा कि आपने मेरी मूर्खता किस तरह समझी । तब गुणभद्र मुनि कहनेके लिये तैयार हुए सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग सदा हित रूप ही वचन कहते हैं ॥ २४-२५ ॥ वे कहने लगे कि जटाओंमें बहुतसे लीख और जूआं रहते हैं वे सब मरते ही हैं, दूसरे स्नान करते समय जटाकी चोटसे तथा शरीरकी रगडसे मछली आदि अनेक छोटे छोटे जीव मर जाते हैं और तीसरे पंचाग्निके तपनेमें लकडीमें रहने वाले अनेक छोटे छोटे कीडे मर जाते हैं । इन सब बातोंको देख कर कहना पडता है कि तुम्हारा यह सब अज्ञानतप है । इस तरह उन मुनिराजने उसे समझाया ॥ ३२६-३२७ ॥ काल लब्धिके प्राप्त होनेसे विशिष्ट बुद्धिवाला वह सबका नायक तापसी दीक्षा लेकर और आतापन योग धारण कर उपवास सहित तपश्चरण करने लगा ॥ ३२६ ॥ उसके तपश्चरणके माहात्म्यसे सात व्यंतर देवता आए और सामने खडे होकर कहने लगे कि हे मुनि-राज आपका जो इष्ट संदेशा हो वह कहिये हम करनेको तैयार हैं ॥ ३२९ ॥ उन्हें देख कर वह मुनि कहने लगा कि तुम्हारा यहां कुछ काम नहीं है तुम जाओ और दूसरे जन्ममें हमारी कुछ सहायता करना ॥ ३३० ॥ इस तरह

संहारे प्रक्षोभमुपगम्य तां ॥ ३१० ॥ आहर्तुमुद्यता सर्वे दृष्टोतान् दुष्टचेतसः । योद्धुं हिरण्यवर्मापि स स्वबंधुः समुद्ययौ ॥ ३११ ॥ वसुदेवकुमारोपि निजनामाक्षरांकितं । प्रजिघाय शरं सद्य समुद्रविजयं प्रति ॥ ३१२ ॥ नामाक्षराणि तस्यासौ वाचयित्वा सविस्मय. । वसुदेवकुमारोत्र पुण्यारसंभावितो मया ॥ ३१३ ॥ इति दुष्टाविवार्यैश्रान् संग्राम समुपागतान् । महानुजः कनीयासमनुज जितमन्मथ ॥ ३१४ ॥ समुद्रविजयाधीश वसुदेवः कृतांजलिः । प्रणम्य प्रीणयामास शेषानपि निजानुजान् ॥ ३१५ ॥ भूखेचरा कुमारेण तदा सर्वे निज स्वजाः । परिणीता पुरानीय समुद्रः समजीगमत् ॥ ३१६ ॥ कुमारेण सम गत्वा स्वपुरं विहितोत्सव । दशार्हाः स्वेप्सितं सौख्यमन्वभूवन्ननारत ॥ ३१७ ॥ एवं काले प्रय त्येषा स्व.भैर्भोगैरभंगुरैः । महाशुक्रात्स मुत्तीर्य शखाख्य प्राक्तनो मुनि ॥ ३१८ ॥ रोहिण्या पुण्यभाक् पद्मनामासौ समजायत । प्रतोष बधुवर्गेषु वर्द्धयन्नवमो बल ॥ ३१९ ॥ सप्रतापा प्रभेवा-

ता है उसीप्रकार समुद्रविजय आदि अनेक राजा लोग अपनी मर्यादा छोडकर क्षुब्ध होगये ॥ ३१० ॥ वे सब लोग कन्याको हर ले जानेके लिये तैयार होगये उनके दुष्ट चित्त देखकर हिरण्यवर्मा भी अपने सब भाइयोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ३११ ॥ उसीसमय कुमार वसुदेवने समुद्रविजयके समीप अपना नाम खुदा हुआ एक बाण भेजा ॥ ३१२ ॥ उस नामको बांचकर समुद्रविजयको बडाही आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि पुण्यकर्मके उदयसे मुझे वसुदेव मिल गये ॥ ३१३ ॥ इसतरह उस युद्धमें आए हुए सब दुष्ट राजाओंको रोका और अपने सब छोटे भाइयोंके साथ कामदेवको भी जीतनेवाले कुमार वसुदेवसे मिलनेको चले ॥ ३१४ ॥ वसुदेवने समुद्रविजयको हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और फिर और भी बडे भाइयोंको नमस्कारादि कर प्रसन्न किया ॥ ३१५ ॥ भूमिगोचरी और विद्याधरोंकी जो कन्याएं कुमार वसुदेवने व्याहीं थी उनके माता पितासे उन्हें ले आए और इस तरह कुमारके साथ समुद्रविजय बडे उत्सवके साथ अपने नगरमें पहुचे सबलोग निरंतर इच्छानुसार दश तरहके भोगोंका अनुभव करने लगे ॥ ३१६–३१७ ॥ इस प्रकार उन सब लोगोंका समय बडे सुखसे व्यतीत हो रहा था । उधर शंख नामके मुनिराज तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुए थे वहां पर कभी न नाश होनेवाले भोगोंका अनुभव कर तथा वहांसे च्युत होकर रोहिणी रानीके पद्म नामका पुण्यवान पुत्र हुआ। वह नौवां बलभद्र सब कुटुबको संतुष्ट करता हुआ अनुक्रमसे बढने लगा ॥ ३१८–३१९ ॥ उस शूरवीरकी प्रताप सहित निर्मलकांति सूर्यकी प्रभाके समान थी और शास्त्रोंका संस्कार पाकर शरद ऋतुके समान कमल अथवा लक्ष्मीको उत्पन्न करनेवाली थी । वह पद्म अत्यंत दुर्वार (जिसे कोई न रोक सके) था, दुष्टोंका नाश करनेवाला और सज्जनोंका पालन करनेवाला था इसीलिये

प्रतिषिध्य प्रसन्नात्मा सद्धर्मं तमजिगूहत् ॥ २९९ ॥ एवं महामुनिस्तत्र कृतधर्मप्रभावन । पूज्यः पद्मरथेनास्मात्स्वस्थानमगमत्सुधी ॥ ३०० ॥ तासु घोषवती नाम वीणावंशेत्र सन्निधि । समागता भवद्भिस्तन्मामानीयतां शुभा ॥ ३०१ ॥ एवमुक्तवते तस्मै तामेवानीय ते ददुः । तयासौ गीतवाद्याभ्यां श्रोत्रचेतोभिरंजन ॥ ३०२ ॥ समापादयदाकर्ण्य तद्वीणाकौशलं महत् । प्रीता गंधर्वदत्तापि स्वां वा मालां समार्पयत् ॥ ३०३ ॥ तस्य कंठे कुमारस्य कुंठिताखिलभूभुजः । ननु प्राकृतपुण्यानां स्वयं संति महर्द्धयः ॥ ३०४ ॥ ततः सर्वे प्रहृष्यास्य कल्याणाभिषवं व्यधुः । एवं विद्याधरे श्रेण्यां लभान्यत शतान्यमी ॥ ३०५ ॥ सम्प्राप्य खेचरेशेभ्यस्तत्कन्यादानमानितः । ततो निवृत्य भूभागमागत्य परमोदयः ॥ ३०६ ॥ हिरण्यवर्मणोरिष्टपुराधीशो महीपते । पद्मावत्यामभूत्पुत्री रोहिणी रोहिणीव सा ॥ ३०७ ॥ तस्याः स्वयंवरायैत्य शिक्षकाग्रान् कलागुणान् । वसुदेवमुपाध्यायनया बोधयितु स्थितं ॥ ३०८ ॥ स्वां बाहुलतयाबद्ध रोहिणी रत्नमालया । आश्लिष्ट कंठमकरोदुत्कंठा कुंठचेतसा ॥ ३०९ ॥ तदा विभिन्नमर्यादाः समुद्रनिजमादय । समुद्रा इव

महा मुनिराज विष्णुकुमारने वहां पर धर्मकी प्रभावना की। तदनंतर पद्मरथके द्वारा पूज्य हो कर वे बुद्धिमान मुनिराज अपने स्थानको चले गये। उन वीणाओंमें घोषवती नामकी वीणा इस वंशमें आई है इसलिये आप इसके साथ उस अच्छी वीणाको लाइये। वसुदेवके इस प्रकार कहचुकने पर उन लोगोंने वही वीणा लाकर वसुदेवको दी। वसुदेवने उस वीणासे गा बजा कर सबके कान और चित्त अनुरंजित किये गंधर्वदत्ता कुमारके वीणा बजानेकी कुशलता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई और उसने अच्छे कंठवाले तथा सब राजाओंको कुंठित कर देनेवाले कुमार वसुदेवके कंठमें अपना शरीर और वरमाला समर्पण की, सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभाविक पुण्यात्मा लोगोंके समीप बडी बडी ऋद्धियां अपने आप आ जाती हैं ॥ ३००-३०४ ॥ इसके बाद सबने प्रसन्न होकर वसुदेवका कल्याणाभिषेक किया इसी तरह विजयार्ध पर्वतपर जाकर वहांके विद्याधर राजाओंके द्वारा कन्यादान आदिसे सम्मानित होकर वसुदेवने सातसौ कन्याएं प्राप्तकीं। तदनंतर वे महापुण्यवान् कुमार भूमंडल पर आए ॥ ३०५-३०६ ॥ वहांपर अरिष्ट नगरके राजा हिरण्यवर्मा रानी पद्मावतीके रोहिणीके समान रोहिणी नामकी पुत्री थी उसके स्वयंवरके लिये अनेक कला गुणोंके धारण करनेवाले मुख्य अध्यापकोंके समान बहुत से राजा लोग आए थे परंतु वासुदेव "हम सबके उपाध्याय हैं" लोगोंको यही समझानेके लिये सबसे अलग खडे थे उस समय कन्या रोहिणी ने उत्कंठासे कुंठित चित्त होकर अपनी भुजा लताओंके द्वारा रत्नमाला डालकर वसुदेवके कंठका स्पर्श किया॥३०७-३०९॥यह देखकर जिसप्रकार प्रलयकालके समय समुद्र अपनी मर्यादा छोडकर क्षुब्ध हो जा-

कारसागत । संप्राप्य बलिनोभ्यर्णस्वरितवाक्पुरस्सरं ॥ २८८ ॥ महाभागाहमथ त्वां दातृमुख्यमुपागमं । देयं त्वयेत्यवादीत्सोप्यमीष्टं प्रतिपन्नवान् ॥ २८९ ॥ अभाषत द्विजो राजन् देयं मे विक्रमैस्त्रिभिः । प्रमित क्षेत्रमित्यल्पं किमेतदभिभाषितं ॥ २९० ॥ गृहाणेति बली पाणिजलसेकसमन्वितं । अदितास्मै मुनिश्च प्रविक्रियर्द्धिनिजक्रमं ॥ २९१ ॥ व्यधादेकं प्रसार्योर्वीमानुषोत्तरमूर्द्धनि । द्वितीयमपि देवाद्रि चूलिकायां स्फुरत्द्युतिं ॥ २९२ ॥ तदा विद्याधरा भूमिगोचराश्चार्य संहर । चरणौ संसृतेर्हेतुं क्रोध मास्मकृथा वृथा ॥ २९३ ॥ इति संगीतवीणादिमुखरा मुनिसत्तम । सद्यः प्रसादयामासु सोप्यह्नी त्वौ समाहरत् ॥ २९४ ॥ श्रुत्वा लक्षणवत्तेषां तदा गीत सुधाशिनः । तुष्टा घोषासुघोषाख्ये महाघोषां च सुस्वरा ॥ २९५ ॥ वीणां घोषवतीं चास्या ददतिस्म सुसंगताः । विद्याधरेभ्यो द्वे द्वे च भूचरेभ्यो यथाक्रमं ॥ २९६ ॥ वृथा त्वं याचितो विप्रवरेणापि मयाधुना । नावकाशस्तृतीयस्य चरणस्येति सत्वरं ॥ २९७ ॥ बध्वा बलिनमुद्वृत्त बली विष्णुमुनीश्वर । दुःसह त निराकार्षीदुपसर्ग मुनीशिनां ॥ २९८ ॥ बद्ध बलिनमाहंतु समुद्युक्तं महीपतिं ।

कहा कि यह इतना थोडा क्यों मांगा अच्छा ले इस तरह कह कर बलिने हाथसे जल छोड कर तीन पेंड पृथ्वी उस ब्राह्मणको दे दी। मुनिराजने विक्रियाऋद्धिके द्वारा अपना एक पैर तो फैलाकर मानुषोत्तर पर्वतके मस्तक पर रक्खा और दूसरा जिसकी कांति दैदीप्यमान हो रही है ऐसी मेरु पर्वतकी चूलिका पर रक्खा ॥ २८८-२९२ ॥ उस समय विद्याधर और भूमिगोचरी सभी उन मुनिराजसे प्रार्थना करने लगे कि हे आर्य ! अपने दोनों पैरोंको संकोच लीजिये और व्यर्थ ही संसारके कारण क्रोधको मत कीजिये ॥ २९३ ॥ इस तरह प्रार्थना कर संगीत और वीणा आदि बाजे बजाकर उनलोगोंने मुनिराजको शीघ्र ही प्रसन्न किया तथा उन मुनिराजने भी अपने दोनों पैर समेट लिये ॥ २९४ ॥ उस समय उन भूमिगोचरी विद्याधरोंके यथायोग्य लक्षण सहित गीत सुनकर देव लोग बडे संतुष्ट हुए और उन्होंने अच्छे स्वरवाली और बहुत अच्छी घोषा सुघोषा और महासुघोषा घोषवती ये चार वीणाएं उनको लाकर दी। उन वीणाओंमें से देवोंने अनुक्रमसे दो तो विद्याधरोंको दी और दो भूमिगोचरियोंको दीं ॥२९५-२९६॥ तदनंतर अत्यंत बलवान मुनिराज विष्णुकुमारने बलिसे कहा कि इस समय मुझ ब्राह्मणने व्यर्थ ही तुझसे याचना की क्योंकि जब तीसरा पैर रखनेके लिये कहीं जगह ही नहीं है इसतरह कहकर उन मुनिराजने शीघ्रही उस दुराचारी बलिको बांधलिया और अकंपन आदि मुनिराजोंके उस असह्य उपसर्गको दूर किया ॥ २९७-२९८ ॥ बलिको बांधा हुआ देखकर राजा पद्मरथ भी उसे मारनेके लिये तैयार हुआ परंतु विष्णुकुमारने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। तदनंतर बलिने प्रसन्नचित्त होकर अर्थात् सम्यग्दर्शन धारण कर श्रेष्ठ जिनधर्म स्वीकार किया ॥ २९९ ॥ इस प्रकार

२७६॥ राज्ञा तुष्टवतावादि त्वयेष्टं याच्यतामिति। राज्यं सप्तदिनं कर्तुमिच्छामीत्यब्रवीद्बली ॥ २७७ ॥ दत्तं जरत्तृणं मत्वाभणदस्मै तदूर्जितं। कृतोपकारिणे देयं किं न तत्कृतवेदिभिः ॥ २७८ ॥ तत्राकंपनगुर्वाद्यमागत्य मुनिमंडलं। अग्रहीदातपे योगं सर्वे सौम्यमहीभृति ॥ २७९ ॥ निर्जितः प्राग्निदुषि प्यामकंपनमुनीशिना। वादे सभायां तत्कोपात्तं जिघांसुर्घात्मकः ॥ २८० ॥ यागव्याजं समारभ्य स मंत्री परितो गिरिं। अर्थिताहारदानार्थं देवसंतर्पणाय च ॥ २८१ ॥ पाकं प्रकल्पयामास धूमज्वालालिप्ततं। ज्ञात्वा विष्णुकुमारस्तमुपसर्गं मुनीश्वरं ॥ २८२ ॥ गत्वा पद्मरथाभ्यर्णं वीतरागासने स्थितं। राज्ञाभिवंद्य संपूज्य किं कृत्यमिति भाषितः ॥ २८३ ॥ उपसर्गं व्यधान्मंत्री तवात्रातपयोगिनां। निवार्यतामसावाशु त्वयेत्याह महीपतिः ॥ २८४ ॥ प्रतिपन्नं मया तस्मै राज्यं सप्तदिनावधि। न निवारयितुं शक्यः सत्यभेदभयादसौ ॥ २८५ ॥ ततो भवद्भिरेवार्य निवार्यो दुर्जनोधुना। न विंदति खलाः स्वैरायुक्तायुक्तविचेष्टितं ॥ २८६ ॥ इत्यवोचदसौ चैतदवगम्य मुनीश्वरं। प्रतिषिध्यामि पापिष्ठमहमेवाशु नश्वरं ॥ २८७ ॥ इति वामनरूपेण ब्राह्मणा

मुनिराज अकंपनने उस बलिको जीता था उसीके क्रोधमें उसने अकंपन आदि सब मुनियोंके मारनेकी इच्छा की ॥ २७९–२८० ॥ उस पापीने यज्ञका बहाना कर जहां पर वे मुनिराज विराजमान थे उस पर्वतके चारों ओर याचक लोगोंको आहार दान देनेके लिये और देवोंको संतुष्ट करनेके लिये पाक अर्थात् रसोई बनाना प्रारंभ की। वह पाक इस तरह बनवाया जिससे धूआंकी लपट घुमड घुमड कर उसी पर्वत पर पहुंचे। मुनिराज विष्णुकुमार उन मुनियोंके उस उपसर्गको जानकर राजा पद्मरथके समीप आए और वीतराग आसन पर आ विराजमान हुए। राजा पद्मरथने आकर मुनिराजकी वंदना की, पूजा की और प्रार्थना की कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥ २८१-२८३ ॥ तब मुनिराजने कहा कि तेरा मंत्री जो आतपयोगको धारण करनेवाले मुनियोंको उपसर्ग कर रहा है उसे तुम बहुत शीघ्र रोको। इसके उत्तरमें पद्मरथने कहा कि हे स्वामी मैंने उसे सात दिन तकके लिये राज्य दे दिया है इसलिये मैं अपने सत्य वचनोंके भंग न होनेके डरसे रोक नहीं सकता। अतएव हे आर्य! अब उस दुष्टको आप ही रोकिये क्योंकि दुष्ट लोग योग्य अयोग्य क्रियाओंको स्वयं नहीं जान सकते हैं। पद्मरथकी ये बातें सुन कर और समझ कर मुनिराजने सोचा कि उस नाश होनेवाले पापीको मैं ही बहुत शीघ्र रोकता हूं ॥ २८४-२८७ ॥ इसके बाद वे मुनिराज वामन ब्राह्मणका रूप धारण कर बलिके समीप पहुंचे और आशीर्वाद देकर कहने लगे कि हे महाभाग्यशाली आज तू दाताओंमें मुख्य है इसलिये आज मैं तेरे समीप आया हूं तू मुझे भी कुछ दे। इसके उत्तरमें बलिने कहा कि जो तुम्हें पसन्द हो सो मांग लो। ब्राह्मणने कहा कि हे महाराज! मेरे पैरोंसे तीन पैंड पृथ्वी मुझे दीजिये। राजाने

२६५ ॥ भर्ता गंधर्वदत्तायास्त्वमेवेव विचक्षण । गीतवाद्यविशेषेषु सर्वानस्मान् जयेरिति ॥ २६६ ॥ पठत्यत्र थने तस्मिन् धरागगनगोचराः । प्रापुर्गंधर्वदत्तायाः स्वयंवरमुत्सुकाः ॥ २६७ ॥ सा स्वयंवरशालायां बहून् जितवती स्वयं । तदानीं गीतवाद्याभ्यां तत्कलारूपधारिणी ॥ २६८ ॥ चारुदत्तादिभिः श्रोतृपदमध्यासिते स्तुता । कलाकौशलमेतस्या-विलक्षणमिति स्फुट ॥ २६९ ॥ स्वोपाध्यायं तदापृच्छ्य कन्याभ्यर्णमुपागतः । वसुदेवोऽभणीद्वीणा विदोषामानयेरिति ॥ २७० ॥ तेपि तिस्रश्चतस्रश्च हस्ते वीणाः समार्पयत् । तासां तन्त्रीषु लोमश्यं शल्यं चालोक्य सस्मित ॥ २७१ ॥ तुंबीफलेषु दंडेषु सल्कं पाषाणमप्यसो । स्फुटीचकार तद्दृष्ट्वा त्वदिष्टा कीदृशी भवेत् ॥ २७२ ॥ वीणेति कन्यया प्रोक्तो मदिष्टायाः समागमा । ईदृग्विध इति प्राह तत्रार्थाख्यानमीदृश ॥ २७३ ॥ हस्तिनाख्यपुराधीशो राज्ञो मेघरथश्रुते । पद्मावत्याश्च सजातौ विष्णुपद्मरथौ सुतौ ॥ २७४ ॥ सहविष्णुकुमारेण भूपतौ तपसि स्थिते । पश्चात्पद्मरथेराज्यमकुर्वत्यथान्यदा ॥ २७५ ॥ प्रत्यंतवासिसंक्षोभे संजाते सचिवाग्रणी । सामादिभिरुपायैस्तं प्रशांतिं समजीगमत् ॥

प्रकार जिसकी प्रशंसा हो रही है ऐसी गंधर्वदत्ता कन्याके समीप अपने उपाध्यायको पूछकर कुमार वसुदेव भी जा पहुंचे। वसुदेवने जाते ही कहा कि जिसमें कोई दोष न हो ऐसी वीणा लाओ ॥ २६९-२७० ॥ यह सुनकर वसुदेवके हाथमें तीन चार वीणा रख दी परंतु वसुदेवने आश्चर्यके साथ देख कर कहा कि इसकी तांतमें लोमश (बाल सरीखे) हैं तथा शल्य [गांठ सरीखी] है। इसी तरह तूंबामें सल्क और दंडमें पाषाण है। इस तरह उस वीणाके दोष प्रगट करने पर उस कन्याने कहा कि आप कैसी वीणा चाहते हैं हमारे यहां तो ऐसी ही है। इसके उत्तरमें कुमार वसुदेव एक कथा कहने लगे कि ॥ २७१-२७३ ॥ हस्तिनापुर नगरके राजा मेघरथ रानी पद्मावतीके विष्णुकुमार और पद्मरथ ये दो पुत्र हुए थे ॥ २७४ ॥ महाराज मेघरथ बडे पुत्र विष्णुकुमारके साथ दीक्षा ले गये थे और उनके बाद राजा पद्मरथ राज्य करने लगे थे। किसी एक दिन म्लेच्छदेशके लोगोंने आकर नगरमें बहुत सा उपद्रव मचाया तब मुख्य मंत्री बलिने साम दाम आदि उपायोंसे उस उपद्रवको शांत किया ॥ २७५-२७६ ॥ राजा पद्मरथने संतुष्ट होकर बलिसे कहा कि जो तुम्हें अच्छा लगे सो मांग लो। इसके उत्तरमें बलिने कहा कि मैं सात दिन तक राज्य करना चाहता हूं ॥ २७७ ॥ राजाने जीर्ण तृण समझ कर राज्य दे दिया और कहा कि उपकार जानने वाले कृतज्ञ लोग उपकार करनेवालेके लिये अपना कमाया हुआ क्या नहीं दे डालते हैं अर्थात् सब कुछ दे डालते हैं॥ २७८ ॥ दैवयोगसे वहां अकंपन आदि अनेक मुनिराज आ विराजमान हुए थे और उन सबने आतापन योग धारण किया था। पहिले किसी समय सौम्य राजाके यहां यही बलि मंत्री था उस समय सभामें वाद करते समय

क्षिपूर्विका ॥२५४॥ आतां पवनवेगायामादिष्टां परिणीतवान् । तया सह स्मरस्यापि सुखं स्वतुर्मगोचरं ॥ २५५ ॥ अनुभूय दिनान्यत्र विश्रांतः कानिचित्पुन । तथोपसर्तुकाम तं समीक्ष्यागारवेगकः ॥ २५६ ॥ उद्धत्याशनिवेगस्य दायादोयं नभस्तले । ज्ञात्वा दत्तांतः सास्मस्या संमुद्गीर्णासिहस्तया ॥ २५७ ॥ मोन्वीतस्तद्भयान्मुक्त्वा त तस्नाद्प्रपलायित । विद्यया पर्णलघ्व्यासौ प्रियं प्रियतयातया ॥ २५८ ॥ चंपापुरसमीपस्थसरोमध्ये शनैः शनैः । द्वीपे निपातितो ऽपृच्छद्देहिनस्तीरवर्तिन ॥ २५९ ॥ द्वीपादमुष्मान्निर्गंतुं किं तीर्थं वदतेति तान् । भवदस्तेपि किं भद्र पतितः खात्त्वमित्यमुं ॥ २६० ॥ सम्यग्भवति विज्ञातमिति तेन सुभाषिताः । प्रहस्यानेन मार्गेण जलान्निर्गम्यतामिति ॥ २६१ ॥ न्यदिशन्प्रतस्तस्माद्प्रविश्य नगरं गुरु । गांधर्वकुशलं प्राप मनोहरसमाह्वय ॥ २६२ ॥ उपविश्य तदभ्यासे वीणावादनशिक्षकान् । तत्र गांधर्वदत्तायाः स्वयंवरविधिं प्रति ॥ २६३ ॥ दृष्ट्वा निगूढनर्ज्ञानो वसुदेवो विमूढवत् । अहं चैभिः सहाभ्यासं करोमीत्यात्तवल्लकी ॥ २६४ ॥ आदावेवाछिन्नतंत्रीं तुंबाज चामितत्फलं । विद्यार्थ्यं पश्यतांस्याल दृष्ट्वा त तेऽहसन् भृशं ।

कर वे किनारेके लोगोंसे पूछने लगे कि इस द्वीपसे बाहर निकलनेका मार्ग कौन सा है कृपा कर बतला दीजिये । तब वे लोग कुमारसे पूछने लगे कि हे भद्र क्या आप आकाशसे पडे हैं ? इसके उत्तरमें कुमारने कहा कि आपने बहुत अच्छा जाना अर्थात् मैं वास्तवमें आकाशसे ही गिरा हूं यह सुन कर वे सब लोग हंस पडे और हंस कर उन्होंने बतला दिया कि इस मार्गसे आप इस सरोवरके बाहर निकल आइये। वसुदेव वहांसे निकल कर नगरमें गये और गंधर्व विद्यामें (गाने बजानेमें) अत्यंत निपुण ऐसे मनोहर नामके गुरुके समीप जा पहुचे ॥ २५३-२६२ ॥ गंधर्वदत्ताको स्वयंवरमें जीतनेके लिये उन गुरुके समीप अनेक शिष्य वीणा बजानेकी शिक्षा पा रहे थे उन्हें देखकर और अपने बजानेकी कलाको छिपा कर वसुदेव एक मूर्खके समान उन गुरुके समीप बैठ गये, तथा उनसे कहने लगे कि इन विद्यार्थियोंके साथ मैं भी बजानेका अभ्यास करूंगा। यह कह कर उन्होंने एक वीणा ले ली पहिले तो उसकी तांत तोड डाली और फिर उसका तुंबा तोड डाला । इस उलटे तमाशेको देख कर वे सब लोग हंसने लगे और कहने लगे कि तू गाने बजानेमें बहुत चतुर है इस विद्यामें हम सबको जीत कर तू ही गंधर्वदत्ताका पति होगा ॥ २६३-२६६ ॥ इस तरह यहां लोगोंका अभ्यास चल रहा था उधर गंधर्वदत्ताके स्वयंवरके लिये उत्कंठित हुए भूमिगोचरी विद्याधर आदि सबलोग आ इकट्ठे हुए ॥ २६७ ॥ गाने बजानेकी सब कलाओंको जाननेवाली उस गंधर्वदत्ताने गाने बजानेके द्वारा उस स्वयंवरशालामें अनेक लोगोंको जीत लिया ॥ २६८ ॥ चारुदत्त आदि अनेक लोग उस गाने बजानेको सुननेकेलिये बैठे थे और सब कह रहे थे कि इस गंधर्वदत्ताका कला कौशल अत्यंत ही विलक्षण है। इस

काई समन्वेष्टुमवेक्षत । मरणीभूत तब तत्र प्राप्यमंन च तुरंगम ॥ २४६ ॥ तत्कंठपत्रमादाय नीत्वा राज्ञे समार्पयत्। तत्पत्रार्थ समाकर्ण्य समुद्रविजया-दयः ॥ २४६ ॥ महीभुजः परे चातिशोकसंतप्तचेतसः । नैमित्तिकोक्ततद्योगकामदा समभावताः ॥ २४७ ॥ भूपश्चान्वेषयितु स्नेहात्स तदैव समन्ततः । तमावेषयितु दक्षान् प्राहिणोत्संहितान् बहून् ॥ २४८ ॥ विजयाख्य पुरं गत्वा सोऽप्यशोकमहीरुहः । मूले विश्रान्तये तस्थौ तच्छायामवस्थिता ॥ २४९ ॥ समीक्ष्यादेशिकप्रोक्तमभूदविनाश वचः । इत्युद्यानपतिर्गत्वा मगधेशमबूबुधत् ॥ ५० ॥ राजापि श्यामलाह्वयां तां सुतां तस्मै समार्पयत् । दिनानि कानि-चित्तत्र विश्रम्य गतवांस्ततः ॥२५१॥ देवदारुवने पुष्परम्याह्वये वनजाकरे । अ॰ ॥वा॰ मैनासौ क्रीडित्वाद्य त मुदा ॥ २५२ ॥ श्लाघ्यमान स्वयं केनचि-त्खगेन गजाधिपात् । अपास्य सहसानीतः खेचराद्रिं कृती पुरं ॥ २५३ ॥ पत्यु किन्नरगीतस्य द्वितीयां वा रतिं सतीं । सुतामशनिवेगस्य दत्ता शाल्म-

ज्ञानीके द्वारा उसके फिर मिलनेकी बात सुनकर सबलोग शांत हो गये ॥ २४६–२४७ ॥ राजा समुद्रविजयने प्रेमवश कुमारको ढूंढनेके लिये बहुतसे चतुर लोगोंको चारों ओर भेजा ॥ २४८ ॥ इधर कुमार वसुदेव विजयपुर नगरमें पहुंचे और विश्राम करनेके लिये अशोकवृक्षके नीचे घनी छाया देखकर बैठ गये ॥ २४९ ॥ बागवानने उस वृक्षकी छायाको स्थिर देखकर सोचा कि उस निमित्तज्ञानीके वचन सत्य निकले यही सोच कर उसने मगध देशके राजाको उसकी खबर दी ॥ २५० ॥ मगधेशने अपनी श्यामला नामकी कन्या वसुदेवको समर्पण की। कुमार कुछदिन तो वहां रहे फिर वहांसे निकल कर देवदारु नामके वनमें पुष्परम्य नामके कमलसमूहोंमें जा पहुंचे । वहां पर किसी जंगली हाथीसे क्रीडा कर बडी प्रसन्नतासे उस पर जा चढे ॥ २५१-५२ ॥ उसी समय किसी विद्याधरने उनकी प्रशंसा की और हाथीसे उठाकर अकस्मात् उन पुण्यवानको विजयार्द्ध पर्वत पर जा पहुंचाया । वहां पर किन्नरगीत नगरमें राजा अशनिवेग राज्य करते थे उनकी रानी पवनवेगासे दूसरी रतिके समान सती शाल्मलिदत्ता नामकी पुत्री हुई थी वह पुत्री राजा अशनिवेगने निमित्तज्ञानीकी आज्ञानुसार कुमार वसुदेवको समर्पण की कुमार वसुदेव कुछ दिन तक वहीं रहे और उन्होंने उस शाल्मलिदत्ताके साथ कामदेवके स्मरण करनेके भी अगोचर ऐसे सुखोंका अनुभव किया । कुछ दिन बाद कुमारकी जानेकी इच्छा हुई तब अशनिवेगका दायाद (वारिस वा उत्तराधिकारी) अंगारवेग उन्हें उठाकर आकाशमें ले चला । शाल्मलिदत्ता यह देख कर हाथमें तलवार उठा कर उसके पीछे दौडी । यह देख कर अंगारवेग कुमारको वहीं छोडकर भाग गया । जब कुमार वसुदेव उससे छूटकर नीचे गिरने लगे तब प्यारी शाल्मलिदत्ताने पर्णलघी विद्यासे चंपापुर नगरके समीपवाले सरोवरके बीचके टीले पर धीरे धीरे उतार दिया । वहां पर आ-

श्रिकाश्विभिर्मर्त्स्य रक्षकान् । भर्तृनविगणय्यान्या पुत्रांश्चान्यांश्च पुत्रकान् ॥२३३॥ मत्वा मर्कटकान् काश्चित्समुरिक्षप्य समाकुलान् । केवलं परिधायान्या विचिंत्योत्कृष्टवाससी ॥ २३५ ॥ अंगरागं समालोच्य काश्चिदालिप्य कर्दमं । लोचने स्वे समालोच्य ललाटे न्यस्तकज्जलाः ॥ २३६ ॥ स्त्रास्तास्तथाविधा सर्वाः सर्वैरुद्विग्नमानसैः । निरीक्ष्य पौरैर्वाक्येन ज्ञापितोय नरेश्वरः ॥ २३७ ॥ तवेदृशीमुपायेन व्यवस्था पर्यकल्पयत् । इति संश्रुत्य तेनोक्त कुमारस्तत्परीक्षितुं ॥ २३८ ॥ राजगेहाद्विनिर्गंतुकामो दौवारिकस्तथा । तव प्रजस्य देवस्य नादेशोस्माकमीदृश ॥ २३९ ॥ बहिस्त्वया न गतव्यमिति रुद्ध स्थितोन्यदा । समुद्रविजयादीनामनुक्त्वाऽयशसोयात् ॥ २४० ॥ वसुदेवो युतो गत्वा विद्यासंसाधनछलात् ॥ श्मशानभूमावेकाकी महाज्वाले हुताशने ॥२४१ ॥निपत्याकीर्तिभीमीतुरिति पत्र व्यलिख्यत । कंठे निबध्य वाहस्य मुक्त्वा तत्रैव तं स्वयं ॥ २४२ ॥ वन्हिं प्रदक्षिणीकृत्य दह्यमानशवान्वितं । अगाद्दलक्ष्यमार्गः स रात्रावेव द्रुतं ततः ॥ २४३ ॥ ततः सूर्योदये गेहे तद्रक्षणकराग्रणी । अनिरीक्ष्यानुजं राज्ञो राजादेशाद्दिनस्ततः ॥ २४४ ॥ पर्यटन्बहुभि

लिये उन सब स्त्रियोंकी ऐसी दशा देख कर नगरके लोगोंके चित्त बडे ही खेदखिन्न हुए थे, और उन्होंने महाराजसे आकर प्रार्थना की थी तब महाराज समुद्रविजयने ऐसा उपाय कर आपकी ऐसी व्यवस्था कर दी है। उस सेवककी ये सब बातें सुनकर कुमार वसुदेवने इस बातकी परीक्षा करनेके लिये घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा प्रगट की। तब द्वारपालने यह प्रार्थना कर उसे रोक दिया कि "आपके बडे भाई ने हमलोगोंको आपके बाहर जाने देनेकी आज्ञा नहीं दी है इसलिये आप बाहर न जाइये" यह सुनकर कुमार वसुदेव वहीं रह गये। परंतु दूसरे ही दिन समुद्रविजय आदि सब भाइयोंसे विना कहे सुने ही अपयशके डरसे विद्या सिद्ध करनेके बहानेसे अकेले ही स्मशानमें गये और वहां पर जाकर माताके नाम पर एक पत्र लिखा कि "मैं अपकीर्तिके भयसे बडी भारी चितामें जल कर मर जाता हूं"। इस तरहका पत्र लिखकर घोडेके गलेमें बांध दिया, उसे वहीं छोड दिया और आप जिसमें कोई मुरदा जल रहा था ऐसी उस अग्निकी प्रदक्षिणा देकर रात्रिमें ही बडीशीघ्रतासे किसी छिपे मार्गसे बाहर जा निकला ॥ २३७-२४३ ॥ सूर्य उदय होते ही वसुदेवके मुख्य रक्षक लोगोंने घरमें कुमारको न देखकर राजासे निवेदन किया तथा राजाकी आज्ञासे वे लोग अनेक सामंतोंके साथ कुमारको देखनेके लिये इधर उधर घूमने लगे। स्मशानमें जाकर उन्होंने एक जले हुए मुरदेको देखा और उसके चारों ओर फिरते हुए घोडेको देखा ॥ २४४-२४५ ॥ उस घोडेके कंठमें बंधे हुए पत्रको खोल कर महाराज समुद्रविजयको समर्पण किया। उस पत्रके लिखे हुए समाचारोंको सुनकर समुद्रविजय आदि सब राजा तथा और भी कुटुंबी आदि सब लोगोंका हृदय शोकसे संतप्त हो गया परंतु निमित्त

प्रकाशप्रतिषेधेन कदाचिद्विमुखो भवेत् ॥ २२४ ॥ कुमार इति संचिंत्य तमाहूय मिथोब्रवीत् । कुमार वपुरेतत्ते पश्यामि किमिवान्यथा ॥ २२५ ॥ वृथ टन परित्याज्य शीतवातादिषु त्वया । विहर्तुं परिवांछा चेत्परितो राजमंदिरं ॥२२६॥ धारागृहे वने रम्ये हर्म्ये विहिनपर्वते । मन्त्रिसामंतयोधाग्र्यमहामात्रात्मजः समं ॥२२७॥ यथेष्टं विचरेत्येतत् श्रुत्वा सोपि तथाचरत् । आददत्यमृत वाप्तवचन शुद्धबुद्धय. ॥२२८॥ एव विहरमाण त वाचाटश्चेटको परं । न मा निपुणमत्याख्यो यथेष्टाचरणोत्सुकः ॥ २२९ ॥ राज्ञा त्व प्रतिषिद्धोसि सोपाय निर्गम प्रति । इत्यवादीदसौ च'ह किमर्थमिति चेटक २२३० ॥ सोम-वीत्तवनिर्याणकाले रूपविलोकनात् । परे शिथिलचारित्रा मन्मथेनाकुलीकृताः ॥ २३१ ॥ वीतलज्जा विमर्यादा विपरीतविचेष्टना. । पीतासवसमा' कन्याः सधवा विधवाश्च ता ॥ २३२ ॥ काश्चित्प्रस्वन्नसर्वांगा; काश्चिदर्द्धाक्षलोचना । काश्चित्सत्यक्तसंयाताः काश्चित्त्यक्तार्द्धभोजना ॥२३३॥ अवमत्य गुरून् का-

मुख्य अमात्योंके पुत्रोंके साथ इच्छानुसार विहार किया करो। समुद्रविजय की यह बात सुन कर वसुदेव भी उसी तरह विहार करने लगे सो ठीक है क्योंकि शुद्धबुद्धिवाले पुरुष बडे लोगोंके वचन अमृतके समान ग्रहण करते हैं ॥ २४-२८ ॥ वसुदेव इसी तरह प्रति दिन विहार करने लगे किसी एकदिन इच्छानुसार आचरणोंकी इच्छा करनेवाले एक निपुणमती नामके बहुत बोलनेवाले सेवकने वसुदेवसे कहा कि महाराज समुद्रविजयने इस उपायसे आपको बाहरजाने से रोक रक्खा है। इसके उत्तरमें वसुदेवने उस सेवकसे पूछा कि महाराजने बाहर जानेसे मुझे क्यों रोका है ॥ २९-३० ॥ तब वह सेवक कहने लगा कि आपके बाहर निकलते समय आपका सुंदर रूप देखकर नगरकी स्त्रियोंके चारित्रमें कुछ शिथिलता आ जाती है वे कामदेवसे व्याकुल हो जाती हैं लज्जा और मर्यादा सब छोड देती हैं और उनकी सब चेष्टाएं विपरीत हो जाती हैं। कन्या सधवा विधवा आदि सब मद्यपी हुईके समान हो जाती हैं। कितनी ही स्त्रियोंके शरीर सब पसीनेसे डूब जाते हैं कितनी ही स्त्रियां अपने आधे नेत्र खुले रखती हैं कितनी हीं अपने पहिननेके कपडे ही भूल जाती हैं और कितनी ही अपना आधा भोजन छोड देती हैं ॥ २३१-२३३ ॥ कितनी ही सास ससुर आदि गुरुजनोंका अपमान कर बैठती हैं कितनी ही रक्षा करनेवालोंका तिरस्कार कर डालती हैं, अन्य कितनी ही स्त्रियां अपने पतियोंको कुछ नहीं गिनती, कितनी ही दूसरे पुत्रोंको अपना ही मानकर ले चलती हैं और अपने व्याकुल बच्चोंको बंदर समझ कर दूरसे ही ललकार देती हैं। कितनी ही स्त्रियां कंबल को ही उत्तम वस्त्र समझ कर पहिन लेती हैं कितनी ही कीचडको ही शरीर पर लगानेका उत्तम उबटन समझ कर शरीर पर लपेट लेती हैं और कितनी ही स्त्रियां ललाटको नेत्र ही समझ कर वहीं काजल लगा लेती हैं ॥ २३४-२३६ ॥ आपके देखनेके

२१४ समुद्रविजये पाति क्षितिं वर्णाश्रमाः सुखं । सुधर्मकर्मसु स्वैरं प्रावर्तंत यथोचितं ॥ २१५ ॥ राज्यं विभज्य दिक्पालैरिव भ्रातृभिरष्टभिः । सहा-
न्वभूत्स भूपालः सकल सर्वसौख्यद ॥ २१६ ॥ एव सुखेन सर्वेषां काले गच्छत्यथोदयात् । चतुरंगबलोपेतो वसुदेवो युवाग्रणी ॥ २१७ ॥ गधवारण
मारुह्य संचलच्चामराबलि- । वाद्यमानाखिलातोद्यध्वनिनिर्भिन्नदिकूतटः ॥ २१८ ॥ बंदिमागधसूतादिस्तूयमानाक्रमालकः । नानाभरणभाभारभासमानस्व-
विग्रह ॥ २१९ ॥ निगृहीतुमिवोग्रांशुमुद्यतो निजतेजसा । अधोविधातु वाप्येकभूषणांगसुरद्रुम ॥ २२०॥ अमराणां कुमारो वा कुमार प्रत्यह बहिः ।
निर्गच्छति पुरात्स्वैरं स्वलीलादर्शनोत्सुक ॥ २२१ ॥ विसस्मरुर्विलोक्यैनं स्वव्यापारान् पुरस्त्रियः । निरादरा बभूवुश्च मातुलान्यादिवारणैः ॥ २२२ ॥
निर्गमेण कुमारस्य विषण्णा नागरास्तदा । गत्वा विज्ञापयामासुस्तद्वृत्तांत महीपते ॥ २२३ ॥ श्रुत्वावधार्य तद्राजा सहजस्नेहनिर्भरः ।

से उन सबका समय बडे सुखसे व्यतीत हो रहा था। इन सबमें कुमार वसुदेव सबसे अधिक युवा थे इसलिये वे अपनी लीला देखनेकी इच्छासे चारो तरहकी सेना लेकर और गंधवारण नामके हाथी पर चढ कर प्रतिदिन अपनी इच्छानुसार नगरके बाहर जाते थे। उस समय अनेक चमर उनपर ढुराये जाते थे, साथमें जो सब तरहके बाजे ब-जाये जाते थे उनकी आवाजसे सब दिशाओंके किनारे फटेसे जान पडते थे, मागध सूत आदि वंदीजन उनका यश पढते जाते थे अनेक आभरणोंकी कांतिके बोझसे उनका शरीर बडाही दैदीप्यमान दिखता था उस सयय वे ऐसे जान पडते थे मानों अपने तेजसे सूर्यके विंबको भी लज्जित करनेके लिये उद्यत हुए हों अथवा एक भूषणांग जातिके कल्प-वृक्षको नीचा दिखानेके लिये ही तैयार हुए हों उस समय वे ठीक देवोंके कुमार सरीखे जान पडते थे इस लिये इनके बाहर जाते समय इन्हें देखकर नगरकी स्त्रियां अपना सब व्यापार भूल जाती थीं और अपने मामी (सासु आदि) आदिके निवारण करने पर भी वे किसी की नहीं सुनती थीं ॥ २१७–२२२ ॥ इस तरह कुमार वसुदेवके बाहर निक-लनेसे नगर निवासी लोग बडेही दुखी होते थे, इसलिये सबने मिल कर ये सब समाचार महाराज समुद्रविजयसे निवेदन किये ॥ २२२ ॥ राजा समुद्रविजयने ये सब बातें सुनकर विचार किया और भाईके स्नेह से अनुरक्त होकर सोचा कि यदि वसुदेवसे प्रगटमें निषेध किया जायगा तो वह कदाचित् प्रतिकूल हो जाय। यही सोच कर उन्होंने वसुदेवको अकेलेमें बुलाया और समझा कर कहा कि तुम्हारा यह शरीर कैसा बदल सा गया जान पडता है इसलिये ठंडी हवामें व्यर्थ ही इधर उधर घूमने फिरनेको आजसे तुम छोड दो। यदि तुम्हारी विहार करनेकी ही इच्छा हो तो राजमंदिरके चारों ओर, धारागृह मनोहर बन, राजभवन और कृत्रिम पर्वत आदि जगहोंमें मंत्री सामंत योद्धा,

पातोन्मुखो भयात्कुर्वन् प्रवर्तननिवर्तने ॥ २०५ ॥ हंसनिनामिकाख्याभ्यां संयताभ्यां बरातके । दुःखिताभ्यामियं छाया गुरुः कस्येति सादरं ॥ २०६ ॥ सुपुरद्रुमषेणाख्य- सत्त्रिबोधोऽब्रवीदिदं । भवे भावी तृतीयेस्माच्छायेयं युवयो पिता ॥ २०७ ॥ श्रुत्वा ततौ च मर्त्यंन नंदिनं भाविनंदनौ । कुतस्त्वे मृतिनिर्बंधो बधो विरम निष्फलात् ॥ २०८ ॥ अमुष्मान्मरणाद्भाग्यसौभाग्यादि त्वयेप्सितं । भविष्यति तपः सिद्धेरित्यग्राहयतां तपः ॥ २०९ ॥ चिरं सोपि तपः कृत्वा महाशुक्रेमरोजनि । तत्र षोडशवार्ध्यायुरनुभूयामिवाञ्छितं ॥ २१० ॥ प्रादुरासीत्ततश्च्युत्वा वसुदेवो वसुधरां । वशीकर्तुमयं यस्माद्भाविनौ बलकेशवौ ॥ २११ ॥ इति सर्वमिदं श्रुत्वा ससंवेगपरायणः । सप्रेक्षोंधकवृष्ट्याख्य- स्त्वीचिकीर्षु परंपदं ॥ २१२ ॥ समुद्रविजयाख्याय दत्वाभिषवपूर्वकं । राज्यमुज्झितसंगः सन् शमसगस्तपोग्रहीत् ॥ २१३ ॥ सुप्रतिष्ठजिनाभ्यर्णे राजभिर्बहुभिः समं । स संयमाते संन्यस्य विन्यास निर्वृतेरमात् ॥

छाया किसकी है ? वे गुरु अवधिज्ञानी थे इसलिये कहने लगे कि यह छाया अर्थात् जिसकी यह छाया है वह जीव इस जन्मसे तीसरे भवमें तुम दोनोंका पिता होगा ॥ २०६-२०७ ॥ गुरुराजजी यह बात सुन कर उसके होनहार वे दोनो पुत्र अर्थात् वे दोनों शिष्य मुनि उस नंदीके पास गये और कहने लगे कि हे भाई आपने यह मरनेका विचार क्योंकर लिया अब आप इस निष्फल अपघात कर मरनेका विचार छोड दीजिये । आप इस तरह मरकर भाग्य सौभाग्य आदि चाहते हैं सो वह तपश्चरण धारण करनेसे अपने आप सिद्ध हो जायगा । इस तरह समझा कर उसे तपश्चरण धारण करा दिया ॥ २०८-२०९ ॥ वह नंदी भी बहुत दिन तक तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुआ । वहां पर सोलह सागर तक इच्छानुसार दिव्य सुखोंका अनुभव कर वहांसे च्युत होकर सब पृथ्वीको अपने वश करनेके लिये यह वसुदेव हुआ है और इसीसे होनहार नारायण और बलभद्र होंगे ॥ २१०-२११ ॥ महाराज मुनिराजकी ये बातें सुनकर अंधकवृष्टि बडी उत्कंठासे विरक्त हुए और उन्होंने मोक्षपद प्राप्त करना स्वीकार किया ॥ २१२ ॥ उन्होंने समुद्रविजयको अभिषेक पूर्वक राज्य दिया तथा सब तरहके परिग्रहोंको छोडकर और शांतताको धारण कर अनेक राजाओंके साथ सुप्रतिष्ठ नामके मुनिराजके समीप दीक्षा धारण की । उन्होंने संयम धारणकर अंत में संन्यास धारण किया और कर्मोंको नष्टकर मोक्षपद प्राप्त किया ॥ २१३-२१४ ॥ इधर समुद्रविजय पृथ्वीका पालन करने लगे उनके राज्यमें सब वर्णाश्रमके लोग धर्मकार्यमें अपनी इच्छानुसार यथायोग्य रीतिसे सुखपूर्वक प्रवृत्ति करते थे ॥ २१५ ॥ महाराज समुद्रविजयने दिक्पालोंके समान आठों भाइयोंमें अपना राज्य बांट दिया था और वे स्वयं सबके साथ सब तरहके सुख देने वाले सब राज्यका अनुभव करते थे ॥ २१६ ॥ इस तरह पुण्य कर्मके उदय

सुतासुता । निदानमकरोमुदयथा मे बन्मनीह वा ॥ १९४ ॥ परमाप्येवमेवैमिर्बंधुत्वं भवतादिति । स्वयं च कृतसंन्यासा तैः सहानतकल्पजे ॥ १९५ ॥
सा तत्र समुत्पद्य विमाने भोगमन्वभूत् । विंशत्यम्भोधिमानायुस्ततः प्रच्युत्य सा तव ॥ १९६ ॥ प्रियाजनि सुभद्रेयं धनदेवादयः सुताः । प्रच्युतात
संतकरे समुत्पद्य विमाने भोगमन्वभूत् । विंशत्यम्भोधिमानायुस्ततः प्रच्युत्य सा तव ॥ १९६ ॥ प्रियाजनि सुभद्रेयं धनदेवादयः सुताः । प्रच्युतात
पौरस्या जाता समुद्रविजयादयः ॥ १९७ ॥ प्रियदर्शना ज्येष्ठा च कुन्ती मद्रीति विश्रुते । अथ पृच्छन्महीपालो वसुदेवभवावली ॥ १९८ ॥ जिनेंद्रोप्यभ-
वीदित्थं शुभं गंभीरभाषया । प्रकृतिस्तादृशी तेषां यथा भव्येष्वनुग्रहः ॥ १९९ ॥ ग्रामे पलाशकूटाख्ये विषये कुरुनामनि । सुगेन सोमशर्माख्यो द्विजस्त-
स्य सुतोभवत् ॥ २०० ॥ नाम्ना नंदीत्यसौ देवशर्मणः सततानुगः । मातुलस्याभिलाषेण तत्सुतासु विपुण्यकः ॥ २०१ । पुत्रिकास्तस्य सप्तागन् मोदा-
दन्येभ्य एव ताः । तल्लाभात्स नंदी च महादुःखवशीकृत ॥ २०२ ॥ अथान्येद्युर्नटप्रेक्षां वीक्षितुं कौतुकाद्गतः । बलवद्भटसंघस्य दगलोकाक्षमः ॥
२०३ ॥ समीक्ष्य स जनोन्योन्यकराप्रास्फलनान्वित । हसत्यापमरत्र- सन् नृपपाते कृतोद्यम ॥ २०४ ॥ अद्रिमस्तकमारुह्य टंकछन्ने स ताडितवान् ।

फिर वसुदेवकी भवावलि
ही कुंती और मद्री हुई हैं । इस तरह राजा अंधकदृष्टि अपने नौ पुत्रोंकी भवावली सुनकर फिर वसुदेवकी शुभ भवावलि इस प्रकार
पूछने लगे ॥ १९२-१९८ ॥ भगवान जिनराज भी अपनी गंभीर भाषाके द्वारा वसुदेवकी शुभ भवावलि इस प्रकार
कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है जिससे भव्योंका सदा अनुग्रह होता रहे ॥ १९९ ॥
श्रीजिनराज कहने लगे कि कुरु देशके पलाशकूट गांवमें एक सोमशर्मा नामका दरिद्र ब्राह्मण रहता था उसके एक
नंदी नामका पुत्र था । उस नंदीके मामाका नाम देवशर्मा था और उसके सात पुत्रियां थीं । नंदी मामाकी पुत्री लेने
की इच्छासे सदा उसके साथ रहता था परंतु वह पुण्यहीन था इसलिये देवशर्माने उसे अपनी पुत्री न देकर वे सब
पुत्रियां दूसरोंको देदीं । मामाकी पुत्री न मिलनेसे नंदी बहुत ही दुःखी हुआ ॥ २०२ ॥ किसी दूसरे दिन वह नंदी
कौतुक वश किसी नटका तमाशा देखनेके लिये गया, वहां पर बड़े बलवान योद्धाओंका समूह था वह उन्हें पार न
कर सका इसलिये वह वहीं गिर गया । उसे देखकर अन्य सब लोग परस्पर ताली बजा कर हंसने लगे । उन्हें इस
तरह हंसते देखकर नंदीको बडी लज्जा आई और उसने पर्वत परसे गिर कर मरनेका उद्यम किया ॥ २०४ ॥ पर्वतकी
शिखर पर चढकर वह एक शिलापर जा खडा हुआ और गिरनेका विचार करने लगा । परंतु नीचेकी ओर देखकर
वह डर गया और पीछेकी ओर लौटगया। इस तरह वह कई बार आया और डरकर पीछेकी ओर लौटगया ॥२०५॥
उसी पर्वतके नीचे द्रुमषेण नामके मुनिराज विराजमान थे और उनके समीप शंख और निर्नामक नामके दो शिष्य
मुनिराज विराजमान थे । उन दोनों शिष्योंने नंदीकी नीचे पडती हुई छाया देखकर गुरूसे पूछा कि हे प्रभो यह

वणिक्पते ॥ १८४ ॥ धनादिदेवपालाद्यौ देवपालौ जिनादिकौ । अर्हंतो दत्तदासांतौ जिनदत्तश्च सप्तमः ॥ १८५ ॥ प्रियमित्रोष्टमो धर्मरुचिर्भ्राताथोऽ भवत्सुत । प्रियदर्शना च ज्येष्ठा च जाते दुहितरौ ततः ॥ १८६ ॥ नृपः सुदर्शनोद्याने मंदिरस्थविरांतिके । कदाचिद्वणिगीशश्च पुत्रादिपरिवारितौ ॥ १८७ ॥ सक्रियं धर्ममाकर्ण्य निर्विण्य स महीपतिः । दत्वा दृढरथायाभिषेकपूर्वं स्वकं पदं ॥ १८८ ॥ आददे संयमं पश्चाच्छ्रेष्ठी च नवभिः सुतैः । ततो नंदयशा पुत्रिकाद्वयेनागमत्तपः ॥ १८९ ॥ सुदर्शनार्यिकाभ्यर्णे तूर्णनिर्णीतसंसृति । क्रमाद्वाराणसीबाह्ये केवलज्ञानिनोऽभवन् ॥ १९० ॥ वने प्रियंगुखंडाख्ये मनोहरतमद्रुमे । गुरुर्मेघरथो ध्यात्वा धनदत्तश्च ते त्रयः ॥ १९१ ॥ धर्मामृतमयीं वृष्टिमुद्गिरंतो निरंतरं । जीवितांते तके सिद्धशिलाया सिद्धिमव्रजन् ॥ १९२ ॥ पुरे राजगृहे पूज्यास्त्रिजगज्जननायकैः । धनदेवादिकास्तस्मिन्नेवान्येद्युः शिलातले ॥ १९३ ॥ नवापि विधिना सन्यस्यंतो वीक्ष्य

और नौवां धर्मरुचि ये नौ पुत्र हुए थे । इसीतरह प्रियदर्शना और ज्येष्ठा नामकी दो पुत्रियां हुई थी ॥१८४–१८६॥ किसी एक समय सुदर्शन नामके उद्यानमें मंदिरस्थविर नामके मुनिराज पधारे । राजा मेघरथ और धनदत्त वैश्य भी अपने पुत्रादि सब परिवारके साथ उनकी वंदना करनेके लिये गये ॥ १८ ॥ राजा मेघरथ क्रियापूर्वक धर्मका स्वरूप सुनकर विरक्त हुआ और अभिषेकपूर्वक दृढरथको राज्य देकर उस. स्वयं संयम धारण कर लिया । तदनंतर शेठ धनदत्तने भी अपने नौ पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण की तथा नंदयशाने भी संसारका यथार्थ स्वरूप समझकर सुदर्शना आर्जिकाके समीप दोनों पुत्रियोंके साथ साथ तपश्चरण धारण किया ॥ १८८–१८९ ॥ अनुक्रमसे विहार करते हुए वे सब बनारस नगरके बाहर प्रियंगुखंड नामके वनमें मनोहर वृक्षोंके नीचे जा विराजमान हुए वहांपर गुरु मंदिरस्थविर मेघरथ और धनदत्तने शुक्लध्यान धारणकर केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १९०–१९१ ॥ तदनतर वे निरंतर धर्मामृतकी वर्षा करने लगे और आयु पूर्ण होनेपर तीनों लोकोंके इन्द्रोंके द्वारा पूज्य होकर राजगृह नगरके समीप सिद्धशिलासे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए । किसी दूसरे दिन धनदेव आदि नौ भाई दोनों वहिनें और नंदयशाने उसी शिलापर विधिपूर्वक संन्यास धारण किया । उन सबको देखकर नंदयशाने निदान किया कि जिसप्रकार ये सब इसभवमें मेरे पुत्र हुए हैं उसीप्रकार परभवमें भी मेरे ये ही पुत्र हों'। इसतरह निदानकर उसने संन्यास धारण किया । तदनंतर प्राण छोडकर वे सब तेरहवे आनत स्वर्गके शांतकर विमानमें देव उत्पन्न हुए । वहांपर वीस सागरतक उन्होंने दिव्य सुखोंका अनुभव किया । फिर वहांसे च्युत होकर नंदयशाका जीव तो तेरी सुभद्रा रानी हुई है तथा धन देव आदि नौ भाई प्रसिद्ध पौरुषको धारण करनेवाले समुद्रविजय आदि नौ पुत्र हुए हैं और प्रियदर्शना तथा ज्येष्ठा दोनों

अग्राहयन्मुनिस्तेन संयमं शमसाधनं ॥
त्वामिव मामपि । इत्यवादीदसौ वास्तु भव्योयमिति निश्चयात् ॥ १७५ ॥ दिवसैः सहवासेन कैश्चित्क्षिततन्मनाः । अग्राहयन्मुनिस्तेन संयमं शमसाधनं ॥
१७६ ॥ बुध्यादिकर्द्धयस्तस्य जाता संवत्सरादतः । श्रीगौतमनामा गुरुस्थानमवाप सः ॥ १७७ ॥ जीवितांते गुरुस्तस्य मध्यग्रैवेयकोर्द्धगे । विमाने
सुविशालाख्ये समुत्पन्नः सुरोत्तमः ॥ १७८ ॥ स श्रीगौतमनामापि विहिताराधनाविधिः । सम्यक् संन्यस्य तत्रैव संप्रापदहमिंद्रतां ॥ १७९ ॥
तत्र दिव्य सुखं भुक्त्वा तस्माद्विप्रचरो मुनिः । अष्टाविंशतिवार्ध्यायुरतिक्रांतौ च्युतो भवान् ॥ १८० ॥ अजन्यधकदृष्टाख्य इति तद्भावयन् सुधी ।
स्वपुत्रभवसंबंध सोन्वयुक्त पुनर्जिन ॥ १८१ ॥ सर्वभाषास्वभावेन ध्वनिना निजगाद स । जंबूपलक्षिते द्वीपे विषये मंगलाह्वये ॥ १८२ ॥ नृपो मेघरथो
नाम्ना पुरे भद्रिलनामनि । सुभद्रायां सुतस्तस्य दृढांतदृढरथक: ॥ १८३ ॥ पट्टबंधं स्वपुण्येन यौवराज्यस्य सोविभ । तत्र नंदयशोनाम्न्यां धनदत्त

भद्रसेन नामके महा मुनिराजके पीछे पीछे गया । वैश्रवण नामके शेठने उनका पडगाहन किया । शेठने उस ब्राह्मणको भी कंठतक मोजन कराया ॥ १७३–१७४ ॥ भोजनकर वह ब्राह्मण मुनिराजके पीछे पीछे उनके आश्रममें गया और उन मुनिराजसे कहने लगा कि हे स्वामी आप अपने समान मुझे मी बना लीजिये मुनिराजने पहिले तो यह निश्चय किया कि यह वास्तवमें भव्य है, फिर कुछ दिन तक साथ रखकर उसका मन देखा और फिर उसे शांत परिणामों-का कारण ऐसा संयम धारण कराया ॥ ७५–७६ ॥ एक वर्षके वाद ही बुद्धि आदि अनेक ऋद्धियां उसे प्राप्त होगई और श्री गौतम नामके साथ साथ ही वह अपने गुरुके स्थानपर जा पहुचा अर्थात् उनके समान होगया ॥ ७७ ॥ आयुके अंतमें उसके गुरु मध्यम ग्रैवेयकके सुविशाल नामके ऊपरके विमानमें अहमिंद्र उत्पन्न हुए और श्री गौतम मुनिराज मी विधि पूर्वक चारों आराधनाओंका आराधन कर और अच्छी तरह संन्यास धारण कर उसी मध्यम ग्रैवे-यकके सुविशाल नामके विमानमें अहमिंद्र हुए ॥ ७८-७९ ॥ अट्ठाइस सागर तक वहांके दिव्य सुखोंका अनुभव कर वह ब्राह्मण मुनिका जीव वहांसे च्युत हुआ और अंधकदृष्टि नामका तू राजा हुआ है । इस तरह अपने भवोंका अनु-भव करता हुआ वह बुद्धिमान् अंधकदृष्टि फिर भगवानसे अपने पुत्रोंके भवोंका संबंध पूछने लगा ॥ ८०-८१ ॥ वे भगवान मी सब भाषाओं में परिणत होनेवाली अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके मंगला देशके भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ राज्य करता था उसकी सुभद्रारानीसे दृढरथ नामका पुत्र हुआ था ॥ ८२-८३ ॥ अपने पुण्य कर्मके उदयसे दृढरथके यौवराज्यका पट्ट बांधा गया था । उसी नगरमें एक धनदत्त वैश्य रहता था उस की नंदयशा स्त्रीसे धनपाल, देवपाल, जिनदेव, जिनपाल, अर्हद्दत्त, अर्हद्दास, सातवां जिनदत्त, आठवां प्रियमित्र

लब्ध्वा लब्धात प्राप्तु भिक्षामात्रेण दुर्विधः ॥ १६५ ॥ काकवत्पक्व जातः पश्यन् बलिविभंजनं । अनाथानिव शीतोष्णवाताः बाधाः सहन् क्षुद्रः ॥१६६॥
मलधारी परिभ्रष्टोऽशेषेंद्रियविजृंभणः । जिह्वाविषयमेवेच्छन् दंडधारीव भूपतिः ॥ १६७ ॥ तमस्तमःप्रजातानां रूपमीदृगभवेदिति । वेधसेव स्फुटीकर्तुं
मिदस्थानां विनिर्मित ॥ १६८ ॥ दग्धमाषमषीवर्णमर्कभीरया तमश्चयः । नररूपधरो भाति जुगुप्स्यः पापभाक्वचित् ॥ १६९ ॥ आकंठपूर्णहारोपि
नयनाभ्यामतृप्तवान् । परिवीतकटीजीर्णछिद्रिताशुभकर्पटैः ॥ १७० ॥ व्रणवैगंध्यसंसक्तमक्षिकाभिरितस्ततः । क्रुध्यञ्छववदावेष्ट्यो मुक्तैरनपायिभिः ॥
१७१ ॥ पौरबालकसंघातैरनुयातैरनुक्षणं । उपलादिप्रहारेण ताड्यमानः प्रकोपवान् ॥ १७२ ॥ अनुभावमतन्नेवं दुःखैः कालमजीगमत् । कदाचि-
लब्धकालादिरनुयातो महामुनि ॥ १७३ ॥ समुद्रसेननामानं पर्यटंतं तनुस्थितेः । वणिग्वैश्रवणागारे तेनाकठमभोज्यत ॥ ७४ ॥ पुनर्मुन्याश्रमं गत्वा कृ
वांच्छित रसके समान 'दो दो' ऐसे बचनोंसे वह सदा लोलुपी रहता था और वह पापी भिक्षासे कभी तृप्त नहीं हो-
ता था जिसप्रकार पर्वके दिनोंमें बलि (श्राद्धके दिनोंमें कौओंके लिये डाला हुआ अन्न) ढूंढता हुआ कौआ इधर
उधर फिरता है उसी तरह वह सब ओर भीख मांगता हुआ फिरता था। मुनियोंके समान वह ठंडी गर्मीके दुख सहता
था, उसका शरीर सदा मैला रहता था और उसकी सब इंद्रियां सदा शिथिल रहती थीं। जिसप्रकार खानेकी इच्छा
करनेवाला राजा अधिक दंड देता है उसीप्रकार वह खानेकी इच्छा करता हुआ वह सदा दंड लिये फिरता था॥१६५-
१६७॥ सातवें नरकमें उत्पन्न हुए नारकियोंका ऐसा ही रूप होता है इसी बातको यहांके लोगोंपर प्रगट करनेके लिये
मानों नाम कर्म रूपी ब्रह्माने उसका शरीर बनाया जान पडता था॥ १६८॥ उसका वर्ण (रंग) काले उडदके स-
मान था और ऐसा जान पडता था मानों सूर्यके डरसे पापी और अतिशय निंदा करने योग्य अंधकारके समूहने ही
अपना मनुष्यका रूप धारण कर लिया है कंठतक पूर्ण भोजन कर लेनेपर भी वह नेत्रोंसे कभी तृप्त नहीं दिखता था
और उसकी कमरपर केवल फटी पुरानी तथा बहुत बुरी एक लंगोटी रहती थी ॥ १६९-१७० ॥ उसके शरीर पर
बहुतसे घाव हो गये थे उनकी बडी दुर्गंध आती थी तथा भिनभिनाती हुई अनेक मक्खियां मुर्देके समान उसे सदा
घेरे रहती थीं और वे कभी वहांसे हटती नहीं थीं इससे उसे बडा ही क्रोध आया करता था ॥ १७१ ॥ नगरके ल-
डकोंका समूह सदा उसके पीछे लगा रहता था और कंकर पत्थरोंकी वर्षाकर सदा उसकी ताडना किया करता था
इससे भी उसे सदा क्रोध आया करता था ॥ १७२ ॥ इसतरह दौडता फिरता वह अनेक दुःखोंसे अपना समय व्य-
तीत करता था। किसी एक समयकाल लब्धि प्राप्त हो जानेसे वह गौतम ब्राह्मण चर्याके लिये विहार करते हुए स-

तलवरो द्विज । श्येनकाख्यो भ्रमन् दृष्ट्वा रात्रौ त्वां हन्म्यहं नहि॥५४॥ द्विजाख्याधारिण याहि नगराद्द्रक्ष्यसे यदि पुनः । कृतान्तवक्त्रं त्वं नेष्यसे दुष्क्रियो
मया ॥ १५५ ॥ इत्यतर्जयत्सोपि कालकाख्येन पापिना । समगुल्कामुखीव्याधनिवासपतिनागमत् ॥ १५६ ॥ स कदाचिदयोध्यायां गोकुलापहृतौ
द्विजः । श्येनकेन हतोऽयासीन्महापापादधोगतिं ॥ १५७ ॥ ततश्च्युत्वा महामत्स्यो हरिर्दृष्टिविषोरगः । शार्दूलो पक्षिणामीशो व्यालव्याधश्च सभवन् ।
प्रविश्याधो गती सर्वाः कृच्छ्रात्ताभ्यो विनिर्गत । त्रसस्थावरभावेन चिरं कालं परिभ्रमन् ॥ १५९ ॥ जबूपलक्षिते द्वीपे भरते कुरुजागले । हस्तिनाख्यं
पुरं पाति धराधीशे धनजये ॥ १६० ॥ सुतो गोतमगोत्रस्य सबभूव द्विजात्मज । कापिष्ठस्य नि-श्रीकः सोनुधर्याश्च गोतमः ॥ १६१ ॥ तत्समुत्पत्ति-
मात्रेण तच्छेषमभवत्कुल. । अलब्धान्न कृशीभूतजठर प्रगटास्थिकः ॥ १६२ ॥ त्रसावनद्धदुष्कायो यूकाचितशिरोरुह । शयानश्चैव सर्वैश्चातार्जितो यत्र
तत्र वा ॥ १६३ ॥ कराम्रकर्परेणोपलक्ष्यमाणोऽनपायिना । सुमित्रेणेव सर्वत्र शरीरस्थितिहेतुना ॥ १६४ ॥ वाञ्छितेन रसेनेव देहीति वचसा तदा ।

देगा तो फिर मैं तुझे मार ही दूगा ॥ १५४–१५५ ॥ इसतरह तर्जना करनेपर वह पापी उस शहरसे निकल गया और उल्कामुखी पर रहने वाले भीलोंके स्वामी कालिकसे जा मिला ॥ १५६ ॥ किसी एक समय उसी ब्राह्मणने अयोध्यामें आकर बहुतसी गायें चुराई थीं इसलिये वह श्येनक नामके कोतवालके द्वारा मारा गया और महा पाप करनेके कारण नरकमें नारकी हुआ ॥ १५७ ॥ वहांसे निकलकर महामत्स्य हुआ फिर नरकमें गया, वहांसे आकर सिंह हुआ, मरकर नरक गया, वहांसे आकर दृष्टिविष (जिसकी आखोंमें ही विष हो) नामका सर्प हुआ । फिर नरकके दुख भोग कर सिंह हुआ और फिर नरकमें पहुंचा । वहांसे आकर गरुडपक्षी हुआ फिर नरक गया, वहांसे निकलकर सर्प हुआ फिर नरकमें जाकर भील हुआ इसतरह परिभ्रमण कर उस रुद्रदत्तके जीवने त्रस और स्थावर योनियोमें बहुत दिनतक परिभ्रमण किया ॥ १५७–१५९ ॥ अंतमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा धनजय राज्य करता था उसी नगरमें गोतम गोत्रका कपिष्ठ नामका ब्राह्मण रहता था उसी ब्राह्मणके उसकी अनुंधरी ब्राह्मणीसे वह रुद्रदत्तका जीव गौतम नामका महा दरिद्र पुत्र हुआ ॥ १६०–१६१ ॥ उत्पन्न होते ही उसका सब कुल नष्ट होगया था, उसे कभी खानेको नहीं मिलता था, पेट उसका सूख गया था, हड्डियां निकल रहीं थीं, केवल नसोंसे घिरा हुआ शरीर बहुत ही बुरा दिखता था, उसके शिरके बाल जूओंसे भरे थे और जहां कहीं वह जाता था वहींपर सब लोग उसे ललकार और फटकार बतलाते थे ॥ १६२–१६३ ॥ वह अपना शरीर स्थिर रखनेके लिये अर्थात् पेट भरनेके लिये कभी अलग न होनेवाले श्रेष्ठ मित्रके समान हाथमें सदा खप्पर लिये फिरता था ॥ १६४ ॥

मिमध्येऽसो विधाय ज्योतिषा गणे। देवः सुदर्शनो नाम्ना भूत्वा प्राग्जन्मवैरत ॥ १४३ ॥ ममायमकरोदीदृगिति तद्वाक्यमादरात्। श्रुत्वा सुदर्शनो मुक्तवैरः सद्धर्ममग्रहीत् ॥ १४४ ॥ अथातोंधकदृष्टिश्च श्रुत्वा मुकुलयन्करौ। स्वपूर्वभवमवधमप्रृच्छज्जिनपुगव ॥ १४५ ॥ वीतरागोपि सोप्याह तत्पृष्ट-शिष्टगीर्गुण। निनिमित्तहिताख्यान नाम तेषु निसर्गज ॥ १४६ ॥ द्वीपेत्रैव विनीतायां नरेंद्रोऽनतवीर्यवाक्। सुरेंद्रदत्तस्तत्रैव वैश्यो वेश्रवणोपमः ॥ १४७ ॥ दशभिर्नित्यपूजायामष्टम्या द्विगुणैस्तत। चतुर्गुणैरमावास्याया पर्वण्यष्टभिर्गुणे ॥ १४८ ॥ दीनारैरर्हतां पूजां करोति विहितव्ययः। सहितः पात्रदानेन सशील- सोपवासकः ॥ १४९ ॥ धर्मशील इति ख्याति स समापापपापक.। गत्तु वारिपथ वाञ्छन्नन्येद्युर्वणिजावरः ॥ १५० ॥ द्वादशाब्दे समावर्ज्य धनमागतुक. परं। जिनपूजाव्ययायार्थं द्वादशाब्दनिवधन ॥ १५१ ॥ मित्रस्य रुद्रदत्तस्य ब्राह्मणस्य करे न्यधात्। अनेन जिनपूजादि कुर्वेह वा त्वमित्यसौ ॥ १५२ ॥ तस्मिन् गते स विप्रोपि स्त्रीद्यूतव्यसनादिभि। धन कतिपयैरेव दिनैर्व्ययमनीनयत् ॥ १५३ ॥ ततश्चौर्यादिदुष्कर्मसक्त

पहिले भवोंका संबंध पूछा ॥ १४५ ॥ शिष्ट वचन ही जिनका मुख्य गुण है ऐसे वे वीतराग भगवान भी उनके प्रश्नके अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि विना किसी कारणके हितोपदेश देना उनका स्वाभाविक गुण है ॥१४६॥ वे कहनेलगे कि इसी जबूद्वीपके अयोध्या नगरमें राजा अनंतवीर्य राज्य करता था। उसी नगरमें कुबेरके समान धनवान् एक सुरेंद्रदत्त नामका शेठ रहता था ॥ १४७ ॥ वह शेठ प्रतिदिन दश दीनारसे भगवान अरहत देवकी पूजा करता था तथा अष्टमीके दिन वीस दीनारसे, अमावसके दिन चालीस दीनारसे, और चतुर्दशीके दिन अस्सी दीनारसे भगवानकी पूजा करता था। वह इस तरह खर्च करता था, सदा पात्रदान देता था, शील पालन करता था और अनेक उपवासादि करता था ॥ १४८—१४९ ॥ इन्हीं सब कारणोंसे उस पाप रहित शेठने धर्मशीलकी उपाधि पाई थी। किसी एक दिन उस वैश्यवरने समुद्रमार्गमे जाकर धन कमानेकी इच्छा प्रगट की उसने वारह वर्षतक लौट आनेका विचार किया इसलिये उसने बारह वर्ष तक भगवानकी पूजा करनेके लिये अपने मित्र रुद्रदत्त ब्राह्मणके हाथ धन सौंप दिया और समझा दिया कि इस धनसे बराबर इस तरह भगवानकी पूजा करते रहना। क्योंकि मुझमें तुझमें कुछ अंतर नहीं है ॥ १५०—१५२ ॥ परंतु वैश्यके चले जानेपर उस ब्राह्मणने थोड़े ही दिनोंमें जूआ खेलना स्त्री सेवन करना आदि व्यसनोंके द्वारा सब धन खर्च कर दिया ॥ १५३ ॥ तब फिर वह चोरी आदि बुरे कर्म करनेमें लग गया। किसी एक दिन श्येमक नामके कोतवालने घूमते हुए रात्रिमें उसे देख लिया और कहा कि तू ब्राह्मण है इसलिये मैं तुझे मारना नहीं चाहता, तू मेरे शहरसे निकल जा यदि ऐसे नीच कर्म करनेवाला तू फिर दिखाई

तदात्मस्य वणिक्पुत्रौ तत्प्रदेशे निजं धन । अनिरीक्ष्य मृतौ हत्वा श्रद्दधानौ परस्परं ॥ १३२ ॥ बद्ध्वायु: क्रोधलोभाभ्यामाद्यं नरकमीयतु । तत्र दुःख चिरं भुक्त्वा ततो विंध्याद्रिकंदरे ॥ १३३ ॥ जातौ मेषौ पुनस्तत्राप्यन्यो यवधकारिणौ । गोकुले वृषभौ जातौ गंगातटनिवासिनि ॥ १३४ ॥ तत्र जन्मांतरद्वेषात्कृतयुद्धौ गतासुकौ । सम्मेदपर्वते जातौ वानरौ वा नरौ धिया ॥ १३५ ॥ शिलासलिलहेतोस्तौ कलह खलु चक्रतु: । मृतस्तयोः सपर्येक: पर कंठगतासुक: ॥ १३६ ॥ सुरदेवादिगुर्वंतचारणाभ्यां समुत्सुक । श्रुत्वा पचनमस्कारं धर्मश्रुतिपुर:सरं ॥ १३७ ॥ सौधर्मकल्पे चित्रागदाख्यो देवोजनिष्ट स । ततो निर्गत्य जम्बूद्वीपे भरतमध्यगे ॥ ३८ ॥ सुरम्यविषये पोदनेश:' सुस्थितभूपते: । सुलक्षणायां पुत्रोभूत्सुप्रतिष्ठो वरिष्ठधीः ॥ १३९ ॥ कदाचित्प्रावृडारंभे गिरावसितनामनि । युद्धं मर्कटयोर्वीक्ष्य स्मृतप्राग्जन्मचेष्टित ॥ १४० ॥ सुधर्माचार्यमासाद्य दीक्षित्वाऽभवदीदृश । सूरदत्त चर: सोह सुदत्तोप्यनुजो भवे ॥ १४१ ॥ भ्रात्वाते सिंधुतीरस्थमृगायणतपस्विन: । विशालायाश्च तोकोभूद्गौतमाख्य कुदर्शनात् ॥ १४२ ॥ तप: पचा-

तक वहांसे दुःख भोग कर निकले और विंध्याचल पर्वतकी गुफामें दोनों ही मेंढा हुए । वहां पर भी वे दोनों आपसमें लड कर मरे और गंगानदीके किनारे गायोंके समूहमें दोनों ही सांड हुए ॥ १३२-१३४ ॥ जन्मांतरके द्वेषसे वहां भी वे परस्पर युद्धकर मरे और सम्मेद पर्वत पर बुद्धिसे मनुष्योंके समान बंदर हुए ॥ १३५ ॥ वहां पर पत्थरसे निकलते हुए पानीके लिये दोनों ही लडने लगे । उनमेंसे एक तो मर गया और दूसरा कंठगत प्राण होगया ॥१३६॥ उसी समय सुरगुरु और देवगुरु दो चारण मुनि वहां आ पहुचे उनसे उसने बडी उत्कंठासे पंचनमस्कार मंत्र सुना और इसतरह धर्मश्रवणपूर्वक मरकर सौधर्म स्वर्गमें चित्रांगद नामका देव हुआ । वहांसे निकलकर जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनापुर नगरके राजा सुस्थित रानी सुलक्षणाके उत्तम बुद्धिवाला सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ ॥ १३७-१३९ ॥ किसी एक समय वर्षा ऋतुके प्रारंभमें अवसित नामके पर्वतपर उसने दो बंदरोंका युद्ध देखा उसे देखकर उसे पूर्व जन्मका स्मरण हो आया और सुधर्माचार्यके निकट जाकर उसने दीक्षा धारण कर ली। वही सूरदत्तका जीव मैं हूं । मेरा छोटा भाई सुदत्त संसारमें परिभ्रमण कर सिंधु नदीके किनारे मृगायण नामके तपस्वीके उसकी विशाला स्त्री से गौतम नामका पुत्र हुआ । मिथ्यादर्शनके प्रभावसे पंचाग्नि तपश्चरण कर सुदर्शन नामका ज्योतिषी देव हुआ है । पूर्व जन्मके वैरसे ही इसने मुझपर ऐसा उपसर्ग किया है । सुदर्शन नामके उस ज्योतिषी देवने उन सुप्रतिष्ठ सर्वज्ञदेवके वचन बडे आदरसे सुने और अपना सब तरहका वैर विरोध छोडकर उसने उत्तम जैन धर्म स्वीकार किया ॥ १४०-१४४ ॥ अथानंतर-अंधकवृष्टिने ये सब बातें सुनकर और अपने दोनों हाथ जोडकर उन भगवानसे अपने

स्वममादाय तपांस्युच्चै समाचरन् । गतेषु द्वादशाब्देषु पर्वते गंधमादने ॥ १२२ ॥ प्रतिमायोगमालंब्य सुप्रतिष्ठस्य तिष्ठतः । देवः सुदर्शनो नाम व्यकारोपद्रवं क्रुधा॥१२३॥ उपसर्गं विजित्यास्य सोढ्वाशेषपरीषहान् । ध्यानेनाहत्य घातीनि प्रादुरासीत्स केवली ॥१२४॥ देवैरंधकवृष्टिश्च सह पूजार्थमागतः । अपृच्छ-देव देवार्य देवस्ते केन हेतुना । महोपसर्गं पूज्यस्य कृतवानिति विस्मयात् । तदुक्त्यवसितौ व्यक्तं जिनेंद्रोप्येवमब्रवीत् ॥ १२६ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते क्षेत्रे कलिंगविषये पुरे । कांच्यां वणिक्सुतः सूरदत्तोन्यश्च सुदत्तवाक् ॥ १२७ ॥ लकाद्वीपादिषु स्वैरं समावर्ज्य निजं धनं । पुरो न्यक्षिपतां शुल्कभीरुकौ ॥ १२८ ॥ मूलेक्षुपविशेषस्य सामिज्ञानमथोन्यदा । कश्चिन्मद्यप्रयोगार्थं वने तद्योग्यभूरुहां ॥ १२९ ॥ मूलान्युत्खन्य संगृह्णन् विलोक्य बहु तद्धनं । किमनेन मुधा मूलखननेनाल्पहेतुना ॥ १३० ॥ सुप्रभूतमिदं लब्धं धनं दारिद्र्यविद्रुतिं । विदधात्यामृतेर्भोगैरित्यादाय मतस्ततः ॥ १३१ ॥

धारण कर विराजमान हुए । उस समय सुदर्शन नामके किसी देवने क्रोधमें आकर कुछ उपद्रव किया ॥१२२-१२३॥ परंतु वे मुनिराज उस उपसर्गको जीत कर तथा सब परीषहोंको सहनकर और शुक्लध्यानके द्वारा घातिया कर्मोंको नाश कर केवलज्ञानी हुए ॥ १२४ ॥ उस समय सब देवोंके साथ साथ अंधकवृष्टि भी उनकी पूजा करनेके लिये आए और उन्होंने उन्हीं भगवानसे बडे आश्चर्यके साथ पूछा कि हे देव इस देवने किस कारणसे आप ऐसे पूज्य पुरुषोंको उपद्रव किया । उनके इस प्रकार कह चुकने पर श्रीजिनेंद्र देव कहने लगे ॥ १२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कालिंग देशके कांचीपुर नगरमें दो वैश्यपुत्र रहते थे एकका नाम सूरदत्त था और दूसरेका नाम सुदत्त था ॥ २७ ॥ उन दोनोंने लंका आदि अनेक द्वीपोंमें जाकर धन कमाया था । जब लौट कर वे अपने नगरमें आए तो उस धन पर कर लग जानेके डरसे उन्होंने वह धन शहरके बाहर ही किसी वृक्षके नीचे गाढ दिया था और उसी वृक्षके नीचे पहिचाननेकेलिये कुछ चिन्ह कर दिया था । किसी दूसरे दिन कोई अन्य पुरुष मद्य बनानेके लिये वृक्षोंकी जडोंको ढूंढता हुआ उसी वृक्षकी जड खोदने लगा और वहां पर बहुतसा धन देखकर विचार करने लगा कि थोडेसे पैसे देनेवाली इन जडोंके उखाडनेसे क्या लाभ है मुझे तो अब यह बहुतसा धन मिल गया है इससे मेरा सब दारिद्र्य दूर हो जायगा और मैं अपनी उमर तक इस धनसे भोगोपभोगोंका सेवन करूंगा यही समझकर वह उस धनको लेकर चला गया ॥ १२८-१३१ ॥ उसके बाद वे दोनों वैश्यपुत्र आए और उस जगह अपना धन न देखकर परस्पर लडने लगे । उन दोनोंको एक दूसरे पर धन ले जानेका विश्वास हो गया था इसलिये परस्पर एक दूसरेको मारते हुए दोनों ही मर गये और क्रोध लोभसे नरकायुका बंध कर पहिले नरकमें जा पहुंचे । बहुत दिन

पत्रकेण सहार्भक। कुत्या परिजन: कालिंद्याः प्रवाहे मुमोच त ॥ १११ ॥ चपापु ... भातामानाभ्यादित्यनामक । बालं तमिवांतःस्थ बालक स सविस्मय ॥ ११२ ॥ पश्यन् स्वसैन्यै राधायै तुक स्यादिति भाववित् । दत्वा सकृद्विलोक्यैन राधा कर्णपरिस्पृश ॥ ११३ ॥ अस्तु कर्णाभिधानोयै मिति सादरमब्रवीत् । पांडो कुत्या च मद्र्या च पाणिग्रहणपूर्वक ॥ ११४ ॥ प्राजापत्येन सबधो विवाहेनाभवत्पुनः। कुत्यामजनि धर्मिष्ठो धर्मपुत्रो धराधिप ॥ ११५ ॥ भीमसेनोऽनु पार्थश्च त्रयो वर्गत्रयोपमा: । मद्र्या च नकुलो ज्येष्ठ: सहदेवस्ततोन्वभूत् ॥ ११६ ॥ धृतराष्ट्राय गाधारी दत्ता दुर्योधनोऽजनि । तयोर्दु शासन पश्चादथ दुर्धर्षणस्तत: ॥ ११७ ॥ दुर्मर्षणाद्या: सर्वेपि शतमेकं महौजस । एव सुखेन सर्वेषा कालो गच्छति लीलया ॥ ११८ ॥ अन्येद्यु: सुप्रतिष्ठाख्यो मुनींद्रो गधमादने । गिरौ सन्निहित: शूरवीराख्यो वदितु निज ॥ ११९ ॥ पुत्रपौत्रादिभि सार्द्ध गत्वाभ्यर्च्याभिनुत्य त । श्रुत्वा धर्मं तदुद्दिष्ट स सवेगपरायण ॥ १२० ॥ कृत्वाभिषेचन दत्वा राज्यमधकदृष्टये । योग्योयमिति सयोज्य यौवराज्य कनीयसे ॥ १२१ ॥ सयम

उदय होते हुये सूर्यके समान बालक था उस बालकको देखकर उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ। अपनी सब सेनाके साथ उसे देखकर विचार किया कि रानी राधाके लिये यह पुत्र हुआ। यही सोचकर उसने वह पुत्र अपनी रानी राधाको दिया। राधाने देखा कि वह पुत्र अपना कान पकड़े हुए है इसीलिये उसने बड़े आदर और प्रेमके साथ कर्ण उसका नाम रक्खा। यह सब काम हो जानेके बाद कुंती और मद्रीके साथ पांडुका विवाह हुआ ॥ ११२-११४ ॥ तभीसे प्राजापत्य विवाहका संबंध प्रचलित हुआ है कुंतीके धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) नामका धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ था तथा उसके बाद भीमसेन और अर्जुन हुए। इस तरह उस कुंतीके तीनों वर्गके समान तीन पुत्र हुए। इसी तरह मद्रीके बड़ा पुत्र नकुल हुआ और फिर उसके बाद सहदेव हुआ ॥ ११५-११६ ॥ धृतराष्ट्रको गांधारी दी गई थी इसलिये उन दोनोंके दुर्योधन, दुःशासन, दुर्द्धर्षण और दुर्मर्षण आदि प्रतापशाली सौ पुत्र हुए। इस प्रकार उन सबका बड़े सुखसे लीला पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था ॥ ११७-११८ ॥ किसी दूसरे दिन गंधमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ नामके मुनिराज आ विराजमान हुए थे इसलिये महाराज शूरवीर अपने पुत्र पौत्रादिके साथ उनकी वंदना करनेके लिये निकला। वहां जाकर उनकी पूजा की नमस्कार किया उनका कहा हुआ धर्म श्रवण किया तथा संसारके दुःखोंसे डरकर और विरक्त होकर अंधकवृष्णिका राज्याभिषेक कर उसे राज्य समर्पण किया। इसी तरह छोटे नरवृष्णिको योग्य समझकर उसे यौवराज्यपद दिया ॥ ११९-१२१ ॥ यह सब काम कर उन्होंने स्वयं संयम धारण किया और वे घोर तपश्चरण करने लगे। इसके बाद बारह वर्ष पीछे वे ही सुप्रतिष्ठित मुनिराज फिर उसी गंधमादन पर्वत पर प्रतिमा योग

तनयात्रय: । उग्रदेवमहाद्युतिसेनांतश्च गुणान्विता: ॥ १०० ॥ गांधारी न सुता प्रादुरभवन् शुभदायिन । अथ कौरवमुख्यस्य हास्तिनापुरे
शिन: ॥ १०१ ॥ शक्तिनाममहीशस्य शतनन्दीश्च परासर । तस्य मत्स्यकुलोत्पन्नराज्यपुत्र्या सुतोभवत् ॥ १०२ ॥ सत्यवत्या सुधीव्यास पुनर्व्याम-
सुभद्रयो । धृतराष्ट्रो महान् पांडुर्विदुरश्च सुतास्त्रय ॥ १०३ ॥ अथान्येद्यु विहारार्थं कदाचिद्वज्रमालिनि । नभोयायिनि विस्मृत्य गते हस्तांगुलीयक ॥
१०४ ॥ विलोक्य पाडुभूपालो गहने तत्तमग्रहीत् । स्मृत्वा खग विवृत्यैत्य मुद्रिका तामितस्तत ॥ १०५ ॥ अन्विच्छन्त विलोक्याह पांडुः किं मृग्यते
त्वया । इति तद्वचन श्रुत्वा विद्याधृन्मम मुद्रिका ॥ १०६ ॥ विनष्टेत्यनदत्तस्य पाडुश्चेतामदर्शयन् । पुन किमनया कृत्यमिति तस्यानुयोजनात् ॥ १०७ ॥
भद्रेषा कामरूपस्य साधनीत्यब्रवीत्खग । यद्येव कानिचिद् भ्रातर्दिनान्येपास्तु मत्करे ॥ १०८ ॥ प्रभावमस्या पश्यामीत्यर्थितस्तेन सोप्यदात् । पाडुश्च
तत्कृताहश्यनिजरूपेण सगम ॥ १०९ ॥ कुत्या सहाकृतोत्पन्नस्तत्र कर्णाह्वय: सुत: । तत- परैरविदितं मजूषास्य सकुडल ॥ ११० ॥ सरत्नकवच लेख्य-

व्यासकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था इसलिये व्यासके उस सुभद्रासे धृतराष्ट्र पांडु और विदुर ये तीन पुत्र हुए थे ॥
१००-१०३॥ अथानंतर किसी एक समय वज्रमाली नामका विद्याधर हस्तनापुरके वनमें क्रीडा करने आया था और
वह अपनी अंगूठी भूलकर चला गया था ॥ १०४ ॥ राजा पांडु भी उससमय क्रीडा करनेके लिये बनमें गये थे और
वह अंगूठी देखकर उन्होंने उठाली थी । जब उस विद्याधरको उस अंगूठीका स्मरण आया तो वह लौटकर उसी वन-
में इधर उधर अंगूठी देखने लगा उसे ढूंढता हुआ देखकर पांडुने कहा कि आप क्या ढूंढ रहे हैं? पांडुकी यह बात
सुनकर वह विद्याधर कहने लगा कि मेरी अंगूठी गिर गई है उसे ही ढूंढता फिरता हूं इसके उत्तरमें पांडुने वह अं-
गूठी उसे दिखला दी । इसके बाद पांडुने उस विद्याधरसे पूछा कि इससे क्या काम निकलता है ॥ १०५-१०७ ॥
इसके उत्तरमें उस विद्याधरने कहा कि हे भद्र! यह इच्छानुसार रूप बना देनेवाली है । यह सुनकर पांडुने प्रार्थनाकी
कि हे भाई यदि ऐसा ही है तो थोडे दिन तक इसे मेरे हाथमें रहने दो मैं इसका प्रभाव देखना चाहता हूं । ऐसी
प्रार्थना करनेपर विद्याधरने भी वह अंगूठी उसे दे दी । पांडुने उसे पहिनकर अपना अदृश्य रूप बनाया और फिर
कुंतीके साथ समागम किया । इसतरह कुंतीके कर्ण नामका पुत्र हुआ । कुंतीके परिजनोंने दूसरोंको मालूम न होने-
पावे इसतरह छिपाकर उस बालकको एक सदूकमें रक्खा उसे कुंडल पहिना दिये रत्नोंका कवच पहिना दिया तथा
उसका परिचायक एक लेख लिखकर रख दिया । इस तरह रखकर वह संदूक यमुना नदीके प्रवाहमें छोड दी ॥
१०८-१११ ॥ वह सदूक बहती बहती चंपापुरके राजा आदित्यके यहां पहुंची उसने उसे खोलकर देखा तो उसमें

मार्कंडेयस्तु नाम्नैव इति ते तमुदाहरन् ॥ ९० ॥ एष देवोपनीत तद्राज्य सुचिरमन्वभूत् । सताने तस्य निर्यतो हरिर्हिमगिरि पर ॥ ९१ ॥ तृतीयो वसुगिर्याख्य परेपि बहवो गता । तदा कुशार्थविषये तद्वंशावरभास्वतः ॥ ९२ ॥ अवार्यनिजशौर्येण निर्जिताशेषविद्विष । ख्यातशौर्यपुराधीशसूरसेन-महीपते ॥ ९३ ॥ सुतस्य शूरवीरस्य धारिण्याश्च तनूद्भवौ । विख्यातोंधकवृष्टिश्च पतिवृष्टिर्नरादिवाक् ॥ ९४ ॥ धर्मी बाधकवृष्टेश्च सुभद्रायाश्च तुग्वराः । समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्ततस्तिमितसागर ॥ ९५ ॥ हिमवान् विजयो विद्वानचलो धारणाह्वय । पूरण पूरितार्थीच्छो नवमोप्यभिनंदनः ॥ ९६ ॥ वसुदेवों-तिमश्चैव दशाभूवन् शशिप्रभाः । कुन्ती मद्री च सोमेवा सुते प्रादुर्बभूवतु ॥ ९७ ॥ समुद्रविजयादीना नवानां सुरतप्रदाः । शिवदेव्यनु तस्य धृतीश्वरा स्वयंप्रभा ॥ ९८ ॥ सुनीताख्या च शीता च प्रियवाक् च प्रभावती । कालिंगी सुप्रभा चेति बभूवुर्भुवनोत्तमाः ॥ ९९ ॥ पद्मावत्या द्वितीयस्य वृष्टेश्च

किसी देवने स्त्रीसहित लाकर मुझे यहां आ पटका है और अबतक मैं वनमें ही ठहरा हुआ था ॥ ८८-८९ ॥ राजाकी यह बात सुनकर उन लोगोंने उसे मृकंडूका पुत्र समझकर उसका मार्कंडेय नाम रक्खा और फिर इसी नामसे वे लोग पुकारने लगे ॥ ९० ॥ इस तरह वह मार्कंडेय नाम धारी सिंहकेतु दैवयोगसे प्राप्त हुये राज्यका बहुत दिन तक उपभोग करने लगा । उसीकी संतानमें हरिगिरि हेमगिरि और वसुगिरि आदि अनेक राजा हुए उन्हींमें कुशार्थ देशके शौर्यपुर नगरमें राजा सूरसेन हुआ था जो कि हरिवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान था और जिसने अपनी अनिवार्य शूरवीरतासे सब शत्रु जीत लिये थे उस सूरसेनके शूरवीर नामका एक पुत्र था और उसकी स्त्रीका नाम धारिणी था उसके अंधकवृष्टि और नरवृष्टि नामके दो पुत्र हुए थे ॥ ९१-९४ ॥ अंधक वृष्टिकी रानीका नाम सुभद्रा था उसके धर्मके समान क्षोभरहित समुद्रविजयी १ स्तिमितसागर २ हिमवान् ३ विजय ४ विद्वान् अचल ५ धारण ६ पूरण ७पूरितार्थीच्छ ८ अभिनंदन ९ और वसुदेव १० ये चंद्रमाकी किरणोंके समान दश पुत्र हुए थे तथा इसीतरह चंद्रमाकी चांदनीके समान कुती और मद्री नामकी दो पुत्रियां हुई थीं ॥ ९५—९७ ॥ समुद्रविजय आदि पहिलेके नौ पुत्रोंके अनुक्रमसे शिवदेवी, धृतीश्वरा (पृथ्वी) स्वयंप्रभा, सुनीता, सीता, प्रियवाक्, प्रभावती, कालिंगी और सुप्रभा ये संसारमें सबसे उत्तम स्त्रियां थीं ॥ ९८-९९ ॥ नरवृष्टिकी रानीका नाम पद्मावती था और उससे उनके उग्रसेन देवसेन और महासेन ये तीन गुणी पुत्र हुए थे तथा एक गांधारी नामकी पुत्री हुई थी, ये सब पुत्र पुत्री सुख देने-वाले थे ॥ इधर हस्तिनापुर नगरमें कौरव वंशी राजा शक्ति राज्य करता था उसकी शतकी रानीसे पारासर नामका पुत्र हुआ था उस पारासरके मत्स्य कुलमें उत्पन्न राजपुत्री रानी सत्यवतीसे बुद्धिमान् व्यास नामका पुत्र हुआ था ।

सखा प्रियः। अणुव्रतफलेनाभूत्कल्पे सौधर्मनामनि ॥ ७९ ॥ वर्यं सूर्यप्रभो नाम वीक्ष्य चित्रांगदं तदा। शृणु मद्वचनं भद्र फलं किं तेऽनयोः मृतौ ॥ ८० ॥ पापानुबंधि कर्मेदमयुक्त युक्तिकारिणा। संसारद्रुमदु खाभिधान दुःखफलप्रद ॥ ८१ ॥ ततो मिथुनमेतत्त्व विसृजेत्यभ्यधान्मुहुः। श्रुत्वा तज्जन-कारुण्यस्तदमुचदसौ सुरः ॥ ८२ ॥ तौ सबोध्य समाश्वास्य तयोश्चंपापुरे वने। सुखाप्तिं भाविनीं बुध्वा सूर्यतेजो व्यसर्जयत् ॥ ८३ ॥ तत्पुराधीश्वरे चंद्रकीर्तिनाममहीभुजि। विपुत्रे मरण प्राप्ते राज्यसंततिसंस्थितेः ॥ ८४ ॥ सपुण्यं योग्यमन्वेष्टु वारण शुभलक्षण। गंधादिभिः समभ्यर्च्यासुंचत्म-न्मन्त्रिमडलं ॥ ८५ ॥ सोपि दिव्यो गजो गत्वा वन पुण्यविपाकतः। तावुदुत्त्य निजस्कंधमारोप्य पुरमागमत् ॥ ८६ ॥ सिंहकेतोर्विधायाभिषेक मंत्र्या-दयस्तदा। राज्यासन समारोप्य बद्ध्वा पट्ट स सम्मदा ॥ ८७ ॥ त्व कस्यात्रागतः कस्मादित्याहु सोऽब्रवीदिदं। प्रभजनः पिता माता मृकडू मंडिता गुणैः ॥ ८८ ॥ हरिवंशामलव्योमसोमोहमिह केनचित्। सुरेणानीय मुक्तः सन् सह पत्न्या वने स्थितः ॥ ८९ ॥ इति तद्वचन श्रुत्वा मृकंडुवास्तनयो यत।

उसे उठाकर ले चला ॥ ७८ ॥ पहिले जन्ममें शेठ सुमुखका प्रिय मित्र राजा रघु अणुव्रतोंके फलसे सौधर्मस्वर्गमें सूर्य-प्रभ नामका उत्तम देव हुआ था वह उसी समय चित्रांगदको देखकर कहने लगा कि हे भद्र! मेरी बात सुन इनके मरने पर तुझे क्या फल मिलेगा ॥ ७९-८० ॥ यह काम पापका बंध करनेवाला है युक्तिपूर्वक चलनेवालोंके लिये अयोग्य है और संसाररूप वृक्षके दुःखरूप दुष्ट फलोंका देनेवाला है ॥ ८१ ॥ इसलिये तुझे यह जोडा छोड देना चाहिये इस प्रकार उसने बार बार कहा उसे सुन कर चित्रांगदको भी दया आगई और उसने वे दोनों छोड़ दिये॥८२॥ तदनंतर सूर्यप्रभ ने उन दोनोंको समझाया आश्वासन दिया और उनके होनहार सुखको जानकर उन्हें चंपापुरके वन में छोड़ दिया ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे चंपापुर नगरका राजा चंद्रकीर्ति उन्हीं दिनों विना संतानके मर गया था इस-लिये मंत्रियोंने राज्यकी परंपरा बराबर ज्यों की त्यों चलानेके लिये किसी योग्य और पुण्यवान् पुरुषको ढूढनेके लिये किसी शुभ लक्षणवाले हाथीको चंदन गंध आदि से पूजा कर छोडा था ॥ ८४-८५ ॥ वह दिव्य हाथी भी वन-में गया और पुण्य कर्मके उदयसे उन दोनों स्त्री पुरुषोंको (सिंहकेतु और विद्युन्मालाको) उठाकर मस्तक पर विराजमान कर नगरमें आगया ॥ ८६ ॥ मंत्री आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सिंहकेतुका राज्याभिषेक किया और राज्य सिंहासनपर विराजमानकर उसपर पट्ट बांधा ॥ ८७ ॥ तदनंतर उन लो-गोंने पूछा कि आप किसके पुत्र हैं और यहां कहांसे आये हैं? उत्तरमें राजाने कहा कि हमारे पिताका नाम प्रभजन है और गुणोंसे सुशोभित माताका नाम मृकंडू है हरिवंशरूपी निर्मल आकाशका एक चंद्रमा हूं। किसी कारणसे

नाम्ना व्याधभयादेत्य भार्यया वनमालया ॥ ६६ ॥ कौशांबी नगरं तत्र सुमुखाख्यं समाश्रयत् । वनमालां समालोक्य स श्रेष्ठी विहरन् वने ॥ ६७ ॥ विकायसायकैस्तीक्ष्णै कदाचिच्छरधीकृत । मायावी वीरदत्त न पापी वाणिज्यहेतुना ॥ ६८ ॥ प्राहिणोद् द्वादशाब्दाना दत्त्वा पुष्कलजीविकां । स्वीक-कार सहाकीर्त्या वनमालां विलोमिता ॥ ६९ ॥ अतिवाह्यागतो वीरदत्तो द्वादश वत्सरान् । तद्विक्रिया समाकर्ण्य स्मरन् संसारदुस्थितिं ॥ ७० ॥ शोका-कुल सुनिर्विण्ण. क्षीणपुण्यो निराश्रयः । वणिक् समग्रहीद्दीक्षा प्रोष्ठिलाख्यमुनिं श्रित ॥ ७१ ॥ जीवितांते स संन्यस्य कल्पे सौधर्मनामनि । जातश्चित्रा-गदो देव प्रवीचारसुखाकर ॥ ७२ ॥ स श्रेष्ठी वनमाला च धर्मसिंहतपोभृते । दत्त्वा प्रासुकमाहारं निंदित्वा निजदुष्कृत ॥ ७३ ॥ अन्येद्युरशनेः पाता-त्सप्राप्य मरणं सम । भारते हरिवर्षाख्ये देशे भोगपुरेशिन ॥७४॥प्रभजनाख्यनृपतेर्मृकंड्वाख्या मनोरमा । हरिवंशेऽजनि श्रेष्ठी सिंहकेतुस्तयोः सुत: ॥७५॥ अथ शीलपुराधीशो वज्रघोषमहीपते । तत्रैवासौ सुभायाश्च वनमालानुरूपिणी ॥ ७६ ॥ विद्युन्मालेति भूत्वा रुक् विद्युद्द्योतहासिनी। अपूर्णयौवनस्यासी-त्सिंहकेतोः रतिप्रदा ॥ ७७ ॥ जातु तौ दंपती दृष्ट्वा देवे विहरणे वने । चित्रांगदे समुद्धृत्य हनिष्यामीति गच्छति ॥ ७८ ॥ रघुः पुरातनो भूप: सुमुखस्य

था और आकर सुमुख शेठके यहां रहता था किसी एकदिन वनमें घूमती हुई वनमालाको देखकर शेठ सुमुख काम-देवके तीक्ष्ण बाणोंसे बेधा गया था इसलिये उस पापी मायाचारीने वीरदत्तको तो बहुतमा धन देकर बारह वर्ष तक व्यापारके लिये भेज दिया और अपकीर्तिके साथ साथ लोभमें आई हुई वनमालाको स्वीकार किया ॥६६-६९॥ बारह वर्ष वीत जानेपर वीरदत्त आया और वनमालाके विकारको सुनकर संसारकी ऐसी नीच स्थितिका स्मरण करने लगा ॥ ७० ॥ पुण्यहीन और आश्रयरहित वह वैश्य शोकसे व्याकुल होकर विरक्त हुआ और प्रोष्ठिल मुनिके समीप जाकर उसने दीक्षा धारण करली ॥ ७१ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वह सौधर्म स्वर्गमें प्रवीचार सुखकी खानि ऐसा चित्रांगद नामका देव हुआ ॥ ७२ ॥ किसी समय उस शेठ सुमुख और वनमालाने धर्मसिंह नामके मुनिराजको प्रासुक आहार दिया और अपने पापकी बहुत निंदा की ॥ ७३ ॥ किसी दूसरे दिन वज्रपातसे वे दोनों साथ साथ मरे और शेठका जीव भरतक्षेत्रके हरिवर्ष नामके देशमें हरिवंशमें उत्पन्न हुए भोगपुर नगरके स्वामी राजा प्रभजन रानी मृकंडूके सिंहकेतु नामका पुत्र हुआ ॥ ७४-७५ ॥ इसी तरह उसी देशमें वनमालाका जीव शील-पुर नगरके स्वामी राजा वज्रघोष रानी सुभाके बिजलीकी कांतिको लज्जित करनेवाली विद्युन्माला नामकी पुत्री हुई जो कि सिंहकेतुकी पूर्णयौवन अवस्था होने पर उसकी स्त्री हुई थी ॥ ७६-७७ ॥ किसी एक समय चित्रांगद देव वनमें विहार कर रहा था इतनेमें ही वहीं पर उस दंपतिको (सिंहकेतु और विद्युन्मालाको) देख कर मारनेकी इच्छासे

अतःपुरान्वितोऽन्येद्यु: शशांककरनिर्मले । रम्ये हर्म्यतले स्थित्वा कुर्वन् दिगवलोकनं ॥ ५५ ॥ उल्कापतनमालोक्य भंगुरं भावयन् जगत् । सुदृष्टेर्ज्येष्ठपुत्रस्य कृत्वाराज्याभिषेचनं ॥ ५६ ॥ सुमंदरजिनाभ्यासे लब्धबोधिरदीक्षत । क्रमेणैकादशांगानां पारगो भावनापर. ॥ ५७ ॥ सम्यक्त्वादिषु बध्वासौ तीर्थकृत्कर्मनिर्मलं । स्वायुरंते समाधाय मासं संन्यासमास्थितः ॥ ५८ ॥ अनुत्तरे जयताख्ये संप्रापदहमिंद्रतां । त्रयास्त्रिंशत्समुद्रोपमायुर्हस्ततनूच्छ्रितिः ॥ ५९ ॥ सार्द्धषोडशमासांतनि श्वासोऽमूर्मिराकुल । त्रयास्त्रिंशत्सहस्राब्दव्यतीतौ भोगसपदं ॥ ६० ॥ भुंजानो नि प्रवीचारं लोकनालीगतावधिः । बलदीप्तिविक्रियादिगुणैस्तत्क्षेत्रमात्रक. ॥ ६१ ॥ एवं देवगतौ दिव्यसुखं सुखमहांबुधे । संप्राप आतसंतृप्ति स्थितश्चिरसुखायुषा ॥ ६२ ॥ अतः परं तदुद्भूतेः क्रियते वंशवर्णनं । द्वीपे जंबूमति क्षेत्रे भरते वत्सदेशजे ॥ ६३ ॥ कौशाब्याख्ये सुविख्यातो नगरे मघवा नृप । तद्देवी वीतशोकाभूत्सुतः ख्यातो रघुस्तयोः ॥ ६४ ॥ सुमुखो नाम तत्रैव जातः श्रेष्ठी महार्द्धिकः । इत कालिंगविषये पुरादंतपुराह्वयात् ॥ ६५ ॥ सार्थेन सममागच्छद्वीरदत्तो वणिक्सुत ।

रहा था कि अकस्मात् उसने एक उल्कापात देखा उसे देखते ही वह संसारकी क्षणभंगुर अवस्थाका विचार करने लगा अपने सुदृष्टि नामके बडे पुत्रका उसने राज्याभिषेक किया और रत्नत्रयको प्राप्त कर सुमंदर नामके तीर्थंकरके समीप जाकर दीक्षा धारण करली अनुक्रमसे उसने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और फिर दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन कर निर्मल तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया आयुके अंतमें समाधि धारण कर एक महीनेका संन्यास धारण किया और शरीर छोड़ कर जयंत नामके अनुत्तर विमानमें अहमिंद्र हुआ और वहां पर उसकी तेतीस सागरकी आयु थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ५५-५९ ॥ साढे सोलह महीने बाद वह निराकुल रीतिसे श्वास लेता था तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था इस तरह वह प्रविचार रहित भोग संपदाओंका उपभोग करता था । लोक नाडी तक उसे अवधि ज्ञान था और उतने ही क्षेत्रतक उसका बल कांति और विक्रिया ऋद्धि आदि गुण थे ॥ ६०-६१ ॥ इस प्रकार वह देव गतिमें दिव्य सुखोंका अनुभव करता था सुखरूपी महासागरसे अत्यंत तृप्त हो रहा था और सुखरूपी आयुका अनुभव करता हुआ बहुत दिन तक वहां विराजमान रहा था ॥६२॥ इसके आगे अब जिस वंशमें वह उत्पन्न होगा उसीका वर्णन करते हैं । इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्सदेशके प्रसिद्ध कौशांवी नगरमें राजा मघवा राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम वीतशोका था और उन दोनोंके रघु नामका पुत्र हुआ ॥ ६३-६४ ॥ उसी नगरमें एक सुमुख नामका बहुत धनी शेठ रहता था किसी एक समय कलिंग देशके दंतपुर नामके नगरसे वीरदत्त नामका वैश्यपुत्र व्याधोंके डरसे अपनी स्त्री वनमालाके साथ कौशांवी नगरमें आया

हंतोदितं ॥ ४३ ॥ तत्समीपे समादाय सयम त्वां विलोकितुं । त्वयि जन्मांतरस्नेहादिहागमनमावयो ॥ ४४ ॥ पुण्योदयोदितान् भोगान्सर्वान् भूयोत्र भुक्तवान् । मासप्रमाणजीवी त्व हितमद्य स्मराश्विति ॥ ४५ ॥ श्रुत्वा तद्वचन राजा वंदित्वा तौ मुनीश्वरौ । युवां जन्मांतरस्नेहात्मि सगरव गतावपि ॥ ४६ ॥ उपकारं महांत मे कृतवंतौ हितैषिणौ । इत्यास्यन्स ततः प्रीतौ तौ निजस्थानमीयतुः ॥ ४७ ॥ तदैव स महीशोपि दत्त्वा राज्य यथाविधि । प्रीतिंकरकुमाराय कृत्वाष्टाह्नकपूजन ॥ ४८ ॥ बधून् विसर्ज्य प्रायोपगमसन्यासमुत्तम । विधाय षोडशे कल्पे द्वाविंशत्यब्धिजीवितः ॥ ४९ ॥ पुष्पोत्तरे विमानेऽभूदच्युतेंद्रो महर्द्धिकः । दिव्यभोगांश्चिरं भुक्त्वा ततः प्रच्युत्य पुण्यभाक् ॥ ५० ॥ द्वीपेस्मिन् भारते क्षेत्रे विषये कुरुजांगले । हस्तिनाख्यपुराधीशः श्रीचंद्रस्य महीपतेः ॥ ५१ ॥ श्रीमत्यां सुप्रतिष्ठाख्यः सुप्रतिष्ठः सुतोभवत् । आपूर्णयौवनस्यास्य सुनदासीत्सुखप्रदा ॥ ५२ ॥ सुत योग्यतम मत्वा श्रीचंद्रधरणीश्वरः । दत्तराज्योऽग्रहीद्दीक्षा सुमदरयतिं श्रित ॥ ५३ ॥ सुप्रतिष्ठोपि तद्राज्ये नि कोपे सुप्रतिष्ठित । यशोधरमुनेर्दानादवापाश्चर्यपंचक ॥ ५४ ॥

३८–४४ ॥ अब तक तूने पुण्यकर्मके उदयसे सब तरहके भोग भोगे हैं परंतु अब तेरी आयु केवल एक महीनेकी रह गई है इसलिये शीघ्र ही तू अब अपने हितका स्मरण कर ॥ ४५ ॥ राजाने यह बात सुनकर उन दोनो मुनिराजोंकी वंदनाकी और निवेदन किया कि यद्यपि आप परिग्रहरहित हैं तथापि आप सबका हित चाहनेवाले हैं इसीलिये जन्मांतरके स्नेहसे आपने यह मेरा बड़ा भारी उपकार किया है। इसके बाद वे दोनों मुनिराज अपने स्थानको चले गये ॥ ४६-४७ ॥ उसीसमय राजा अपराजितने विधि पूर्वक प्रीतिंकर कुमारको राज्य दिया अष्टान्हिक पूजनकी, सब भाई बंधुओंका त्याग किया और उत्तम प्रायोपगमन सन्यास धारणकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें बाईस सागरकी आयु पाकर बड़ी ऋद्धिका धारण करनेवाला अच्युतेंद्र हुआ वह पुण्यवान् बहुत दिनतक वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरु जांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा श्रीचंद्र रानी श्रीमतीके सुप्रतिष्ठित नामका बहुत प्रतिष्ठित पुत्र हुआ और पूर्ण यौवन अवस्था होनेपर उसे सुखदेनेवाली सुनंदा नामकी स्त्री मिली ॥ ४८–५२ ॥ किसी एक दिन राजा श्रीचंद्रने अपने पुत्रको अत्यंत योग्य समझकर उसे राज्य दिया और आप सुमंदर नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ५३ ॥ इधर सुप्रतिष्ठ भी क्रोधादि सब तरहके दोषोंसे रहित ऐसे राज्यपर विराजमान हुआ और किसी एक समय उसने यशोधर नामके मुनिराजको आहार दान दिया था जिससे उसे पंचाश्चर्योंकी प्राप्ति हुई थी ॥ ५४ ॥ किसी दूसरे दिन वह राजा अपने सब रणवासके साथ चंद्रमाकी किरणोंके समान निर्मल ऐसे सुंदर राजभवनके ऊपर बैठा हुआ दिशाओंको देख

वीत् । संभावयं कनीयासं मम त्वं रक्षम त्या ॥ ३२ ॥ श्रुतनद्वचना साद्ध गाढ जितवतो परे । मालामिमां क्षिपामीति स तामित्यब्रवीत्पुन ॥ ३३ ॥ गतियुद्ध त्वया पूर्वमनुजाभ्यां कृतं मम । अभिलाषस्ततस्त्याज्या त्व मया तद्वचःश्रुते: ॥ ३४ ॥ निर्विण्णा सा निवृतार्जिकाभ्यासेऽगात्तपः परं । तद्वीक्ष्य बहवस्तत्र निर्विद्य तपसि स्थिता: ॥ ३५ ॥ अनुजाभ्यां समं चिंतागतिश्चालोक्य साहस । कन्याया जातसंवेगो गुरु दमवराभिध ॥ ३६ ॥ संप्राप्य संयम प्राप्य शुद्ध्यष्टकमधिष्ठित: । प्राते सामानिकस्तुर्ये कल्पेऽजायत सानुज: ॥ ३७ ॥ तत्र भोगान्बहून भुक्त्वा सप्ताब्धिपरमायुषा । ततस्तावनुजौ जम्बूद्वीपपूर्व विदेहगे ॥ ३८ ॥ विषये पुष्कलावत्या विजयार्द्धे स्तरे तटे । राजा गगनचद्राख्यः पुरे गगनवल्लभे ॥ ३९ ॥ सुतो गगनसुंदर्या तस्यामितमतिस्ततः । आवाममिततेजाश्च जातौ विद्यात्रयान्विता ॥ ४० ॥ अन्येद्यु पुंडरीकिण्यामावाभ्या जन्मपूर्वज । आवयो परिपृष्टेन जन्मत्रितयवृत्तकं ॥ ४१ ॥ सर्वं स्वयप्र-भास्येन तीर्थनाथेन भाषित । ततोस्मदग्रजः क्वास्तेत्यावयोरनुयोजने ॥ ४२ ॥ भूभाँ सिंहपुरे जातो राजते सोऽपराजित: । नाम्ना राज्य समासाद्य स्वयमित्य-

मतीकहने लगी कि मैं दूसरेसे नहीं जीती हूं जो दूसरेके गलेमें माला डालूं। इसके उत्तरमें चिंतागतिने कहा कि तूने पहिले वरनेकी अभिलाषासे ही मेरे छोटे भाइयोंके साथ गतियुद्ध किया था इसीलिये तू मेरे लिये त्याज्य है। चिंतागतिकी यह बात सुनकर वह विरक्त हुई और निवृत्ता नामकी आर्जिकाके समीप जाकर उसने उत्कृष्ट तपश्चरण धारण कर लिया। उसे दीक्षित होते देखकर वहांपर बहुतसे लोगोंने विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३३-३५॥ उस कन्याका साहस देखकर छोटे भाइयोंके साथ साथ चिंतागतिको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और दमवर नामके गुरु-के समीप जाकर संयम धारण कर लिया आठों शुद्धियोंको पाकर अंतमें तीनों भाई चौथे स्वर्गमें जाकर सामानिक देव हुए ॥ ३६-३७ ॥ वहां सात सागर तक अनेक भोगोंका अनुभवकर च्युत हुए और दोनों छोटे भाइयोंके जीव जंबू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचंद्र रानी गगन सुंदरीके हम अमितमति और अमिततेजा नामके पुत्र हुए उससमय हम दोनों ही पुत्र तीनों विद्याओंके जान-कार थे। किसी दूसरे दिन हमारे पिता पुंडरीकिणी नगरीको गये वहांपर उन्होंने हम दोनोंके अगिले पिछिले जन्म-की बात पूछी और स्वयप्रभ तीर्थंकर भगवानने वे सब बातें कहीं उसीसमय हम दोनोंके प्रकरणमें यह भी बात निक-ली थी कि हमारे पहिले जन्मका बडा भाई कहां है इसके उत्तरमें तीर्थंकरने कहा था कि उसका जीव सिंहपुर नगर-में राजा अपराजित हुआ है और वह स्वय राज्यकर रहा है। इसप्रकार उन भगवानके वचन सुनकर हम दोनोंने उन्हीं के समीप संयम धारण कर लिया और फिर पहिले जन्मके स्नेहसे तुझे देखनेके लिये हम दोनों यहां आए हैं ॥

महाद्युतः ॥ २० ॥ जने हे सम्यग्दर्शे त सोपि कृतवंदनः । भुक्तेस्म स्नेहशोकार्तचेतसां का विचारणा ॥ २१ ॥ वसंतसमयेन्येद्युर्नंदीश्वरदिनेष्वसौ । जिन-चैत्यानि संपूज्य तत्संस्तवनपूर्वकं ॥ २२ ॥ तत्र स्थितः स्वयं धर्मदेशनां व्यधदत्सुधी । स्वान्वियचारणौ साधू प्रापतुस्तस्थतु पद ॥ २३ ॥ प्रणिपत्य तयोर्देवतास्तवावसिता नृप । सोप्यन्यत् समभ्येत्य श्रुत्वा धर्ममभाषत ॥ २४ ॥ भगवतावहं पूज्यौ क्वचित्प्राग्दृष्टवानिति । ज्येष्ठो मुनिरुवाचैवं सत्यमावां त्वयेक्षितौ ॥ २५ ॥ त्वद्दर्शनप्रदेशं च वक्ष्यामि शृणु भूपते । पुष्करार्द्धापरार्द्धापरभागे महासरित् ॥ २६ ॥ तस्याश्चास्त्युत्तरे भागे गंधिलो विषयो महा-न् । तत्खगाद्रुत्तरश्रेण्यां सूर्यप्रभपुराधिप ॥ २७ ॥ राजा सूर्यप्रभस्तस्य धारिणी प्राणवल्लभा । तयोश्चिंतागतिर्ज्येष्ठस्तनुजोनुमनोगति ॥ २८ ॥ ततश्चपल-गत्याख्यस्त्रिभिस्तैरतौ मुद गता । [illegible]शार्थकामैर्वा के न तुष्यंति सत्सुतै ॥ २९ ॥ तस्यामेवोत्तरश्रेण्यामरिंदमपुरेश्वरात् । अरिंजयाख्यादजितसेनायामभवत्सु-ता ॥ ३० ॥ सती प्रीतिमती मेरुगिरेः सकलखेचरात् । त्रिस्त्रांत्यासाऽजयच्चिंतागतिं मुक्त्वा स्वविद्यया ॥ ३१ ॥ जित्वा चिंतागतिर्वेगात्तां पश्चादिति चाभ-

शक्ति भी कैसे रह सकती है ॥ २१ ॥ किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुकी अष्टाह्निकाओंके दिनोंमें वह राजा अपरा-जित जिनमंदिरोंकी पूजाकर उनकी स्तुति करता हुआ वहां बैठा था और वह बुद्धिमान स्वयं धर्मोपदेश दे रहा था इतनेमें ही वहां चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दो चारण मुनिराज पधारे और वहीं आकर विराजमान होगये । राजाने बडी विनयके साथ उठकर उन्हें नमस्कार किया स्तुतिकी पास बैठकर धर्म श्रवण किया और फिर वह क-हने लगा कि हे पूज्य हे भगवन्! मैंने पहिले कभी आपको देखा है । इसके उत्तरमें बडे मुनिराज कहने लगे कि ठीक है तुमने हमको देखा तो है ॥ २२–२५ ॥ परंतु कहां देखा है उस जगहको मैं कहता हूं । हे राजन् तू सुन ! पुष्क-रार्द्ध द्वीपके पश्चिम मेरुकी ओर पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो महा नदी है उसके उत्तरकी ओर एक गंधिल नामका बडा देश है उसके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सूर्यप्रभ नगरका स्वामी राजा सूर्यप्रभ राज्य करता था उसकी महादेवी-का नाम धारणी था । उन दोनोंके बडा पुत्र चिंतागति मझिला मनोगति और छोटा चपलगति हुआ था धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंके समान इन तीनों पुत्रोंसे भी बाप सदा प्रसन्न रहते थे सो ठीक ही है क्योंकि सुपुत्रोंसे कौन संतुष्ट नहीं होता है ॥ २६–२९ ॥ उसी गंधिल देशकी उत्तर श्रेणीमें अरिंदम नगरके राजा अरिंजय रानी अजि-तसेनासे प्रीतिमती नामकी सती पुत्री हुई थी उसने अपनी विद्यासे चिंतागतिको छोडकर सब विद्याधरोंको मेरु पर्व-तकी प्रदक्षिणा देनेमें जीत लिया था ॥ ३०-३१ ॥ चिंतागति अपने वेगसे उसे जीतकर फिर कहने लगा कि तू इस रत्नमालाके (वरमालाके) द्वारा मेरे छोटे भाईको स्वीकारकर ॥ ३२ ॥ चिंतागतिकी यह बात सुनकर वह प्रीति-

प्रादुरभूत्कृती । नवमासावसानेसावसूत सुतमूर्जितं ॥ ९ ॥ तज्जन्मनः प्रभृत्यन्यैरजय्यस्तत्पिताऽभवत् । ततोऽपराजिताख्यानमकुर्वंस्तस्य बांधवा ॥ ७ ॥ रूपादिगुणसपत्या सार्द्धं वृद्धिमसावगात् । आयौवन मनोहारी सुरेंद्रो वा दिवौकसा ॥ ११ ॥ तदा मनोहारोद्यानगत विमलवाहन । तीर्थकर्तारमाकर्ण्य वनपालमुखान्नृपः ॥ १२ ॥ स्वांत पुरपरीवारपरीतो भक्तिचोदित । गत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मुहुर्मुकुलिताजलिः ॥ १३ ॥ प्रप्रणम्य समभ्यर्च्य गधपुष्पाक्षतादिभिः । पीतधर्मामृतस्तस्मादकस्माद् भोगनिस्पृहः ॥ १४ ॥ तुजे पराजिताख्याय दत्वा ससागसपद । तपोऽग्र्य समुपादत्त पंचभिर्भूभुजां शतैः ॥१५॥ कुमारोपि गृहीताणुव्रतादिः शुद्धदर्शन । प्राविशल्लक्षितो लक्ष्म्या साक्षादिव पुरं हरि ॥ १६ ॥ तत्रयोगगतां चितां निजाय निजमन्त्रिषु । शक्त शास्त्रोक्तमार्गेण तदासौ धर्मकामयोः ॥ १७ ॥ कदाचिन्निजपित्रामा जिनं विमलवाहन । मुक्त्या वशीकृत श्रुत्वा गधमादनपर्वते ॥ १८ ॥ अनिरीक्ष्य न भोक्ष्येऽह जिन विमलवाहन । इति प्रतिज्ञयाष्टोपवास्यासीदपराजित ॥ १९ ॥ तदा शक्राज्ञया यक्षपतिर्विमलवाहन । तस्य सदर्शयामास साक्षात्कृत्वा

इसलिये उसके भाइयोंने उसका नाम अपराजित रक्खा था ॥ १० ॥ रूप आदि संपदाओंके साथ साथ वह यौवन अवस्थातक वरावर वढने लगा और देवोंके इंद्रके समान मनोहर दिखने लगा ॥ ११ ॥ किसी एक दिन महाराजने वनपालके मुखसे यह सुना कि मनोहर नामके उद्यानमें विमलवाहन नामके तीर्थंकर आए हैं। यह सुनकर वह भक्तिसे प्रेरित होकर अंतःपुर और परिवारके साथ साथ वहां गया, जाकर प्रदक्षिणा दी बार बार हाथ जोडे नमस्कार किया, गंध पुष्प अक्षत आदिसे उनकी पूजाकी और उनसे धर्मामृतका पान किया और वह अकस्मात् भोगोंसे निःस्पृह होकर विरक्त होगया ॥ १२--१४ ॥ उसने अपराजित नामके पुत्रको राज्य दिया और पांच सौ राजाओंके साथ सप्तांग संपदाओंसे सुशोभित उग्र तपश्चरण धारण किया ॥ १५ ॥ कुमार अपराजितने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारणकर अणुव्रत धारण किये और फिर जिसप्रकार इंद्र अमरावतीमें प्रवेश करता है उसीप्रकार उसने लक्ष्मीसे सुशोभित होकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ उसने राज्यकी सब चिंताका भार तो अपने मंत्रियोंपर सौंप दिया और शास्त्रोक्त रीतिसे धर्म और काम इन दो पदार्थोंके सेवन करनेमें वह लीन हो गया ॥ १७ ॥ किसी एक दिन उसने सुना कि पूज्य पिताके साथ साथ श्रीविमलवाहन तीर्थंकर गंधमादन पर्वतसे मुक्त होगये हैं यह सुनकर उसने प्रतिज्ञाकी कि मैं श्रीविमलवाहन तीर्थंकरके विना दर्शन किये भोजन नहीं करूंगा इसतरह उस अपराजितके आठ उपवास होगये ॥ १९ ॥ तदनंतर इंद्रकी आज्ञासे यक्षपतिने उस महापवित्र राजाको विमल वाहनका साक्षात् रूप बनाकर दिखलाया ॥ २० ॥ अपराजितने समवसरणमें वंदनाकर उनकी पूजा की और फिर भोजन किया सो ठीक ही है क्योंकि

अथ सप्ततितमं पर्व ।

क्षात्यादिदशाराधर्मालंवन यमुदाहरन् । सत; सद्धर्मचक्रस्य स नेमि शकरोस्तु नः ॥ १ ॥ सवेगजनन पुण्यं पुराण जिनचक्रिणां । बलाना च श्रुतज्ञानमेतद् वंदे त्रिशुद्धये ॥ २ ॥ पूर्वानुपूर्व्या वक्ष्येहं कृतमगलसत्क्रिय; । पुराण हरिवशास्य यथाकृत्त यथाश्रुत ॥ ३ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विदेहेपर-नामनि । सीतोदोदकूतटे देशे सुगंधिलसमाह्वये ॥ ४ ॥ पुरे सिंहपुरे ख्यातो भूपोर्हद्दाससज्ञक । देव्यस्य जिनदत्तास्या तयोः पूर्वभवार्जितात् ॥ ५ ॥ पुण्योदयात्समुद्भूतकामभोगे सतृप्तयो । काले गच्छत्यथान्येद्युरर्हता परमेष्ठिनां ॥ ६ ॥ आष्टाह्विकमहापूजां विधाय नृपतिप्रिया । कुलस्य तिलक पुत्र लप्सीयाहमिति स्वयं ॥ ७ ॥ आशास्यासा सुख सुप्ता निशायां सुप्रसन्नधीः । सिंहेभार्केंदुपद्मामिषेकानैक्षिष्ट सुव्रता ॥ ८ ॥ स्वप्नानंतरमेवास्या गर्भे

अथ सत्तरवां पर्व ।

अथानंतर–सज्जन लोग जिन्हें उत्तम क्षमा आदि दश धर्मरूपी आरोंका आलंवन वतलाते हैं और जो सद्धर्मचक्र-के धुरा हैं ऐसे श्री नेमिनाथ स्वामी हम लोगोंका कल्याण करें ॥ १ ॥ जिनेंद्रदेव और चक्रवर्तियोंका पुराण वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है और पुण्य वढानेवाला है तथा वलभद्रका पुराण श्रुतज्ञानको वढानेवाला है इसलिये मन वचन काय तीनोंको शुद्ध करनेके लिये इस पुराणको नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ पहिले मगलरूप अच्छी क्रिया करके मैं हरिवंश पुराण कहूगा और वह पुराण पूर्वाचार्योंके अनुसार जैसा सुना है वैसा ही ऊपरके छंदोंमें ही कहूगा ॥ ३ ॥ इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर सुगंधिला नामके देशमें सिंहपुर नगरमें अर्हद्दास नामका राजा राज्य करता था उसकी देवीका नाम जिनदत्ता था । पूर्व भवमें इकट्ठे किये हुए पुण्य कर्मोंके उदयसे उन दोनोंको काम भोगकी सब सामग्री मिली थी इससे वे खूब तृप्त थे । इसतरह उन दोनोंका समय व्यतीत हो रहा था । किसी एक दिन महारानीने अष्टह्निकाके दिनोंमें अरहंत परमेष्ठीकी पूजाकी और उससे आशाकी कि मेरे कुल तिलक पुत्र उत्पन्न हो ऐसी आशा कर वह प्रसन्नचित्त होकर रातको सुख पूर्वक सो गई । उस सुव्रताने (अच्छे व्रत धारण करने वालीने) उसीरातको सिंह, हाथी, सूर्य चद्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ऐसे पांच स्वप्न देखे स्वप्न देखनेके वाद ही किसी पुण्यवानने उसके गर्भमें आकर अवतार लिया और नौ महीने वीत जानेपर उस रानीने पुण्यवान पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४-९ ॥ उसके जन्म लेनेके समयसे ही उसके पिताको अन्य कोई जीत नहीं सका था,

व्यतितीषु । प्रयाति गतिमेतस्य परोप्यत्र प्रमादवान् ॥ ८८ ॥ इत्याकल्प्य कालादिलब्ध्या चक्रेऽक्रमी । त्यक्तुं चक्रादिसाम्राज्यं परिच्छिद्योच्छिद्वे-
च्छया । ज्येष्ठ राज्यमनिच्छत्सु महीयःसु कनीयसे । दत्वा पुत्राय साम्राज्य वरदत्तसमीपयिन ॥ ८८ ॥ केवलावगमात्प्राप्य संयमं बहुभिः समं । श्रुत-
बुद्धितपोविक्रियौषद्धिभूषितः ॥ ८९ ॥ चारणत्वमपि प्राप्य प्रायोपगमन स्थित । सम्मेदे चारणोत्तुंगकूटे स्वाराधनाविधिः ॥ ९० ॥ जयतेऽनुत्तरे
जातो विमाने लवसत्तम । पुण्योत्तमायुर्भागोत्थमन्वभूत्सुचिरं सुख ॥ ९१ ॥ वसुंधरमहीपति प्रथमजन्मनि प्राप्तसत्तपाः समजनिष्ट षोडश समुद्रमि-
त्यायुष्पाऽ महाशुक्रे जनेश्वरोऽनुजयसेननामा ततो बभूव लवसत्तमः सुखनिधिर्जयतेऽ विभु ॥ ९२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे नमितीर्थंकरजयसेनचक्रवर्तिपुराणं परिसमाप्तं एकोनसप्ततितम पर्व ॥६९॥

——:०:——

करता हुआ और अपने परलोक सिद्ध करनेमें मूर्ख ऐसा यह प्राणी अपने हितका आचरण नहीं करता ॥ ८५ ॥ जो विषय अनित्य हैं और जो कभी संतुष्ट करनेवाले नहीं हैं उनमें जो लीन रहता है वह प्रमादी पुरुष इसी उत्कापातकी गतिको प्राप्त होता है, अर्थात् अधोगतिको जाता है॥८६॥ यही समझकर सरल बुद्धिवाला वह चक्रवर्ती काल आदि लब्धियोंको पाकर चक्र आदि सब साम्राज्यको छोडनेके लिये तैयार हुआ। वह अपने बडे पुत्रको राज्य देने लगा परंतु उसने उच्छिष्ट समझकर लेनेकी इच्छा नहीं की तब उसने छोटे पुत्रको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ वरदत्तनामके केवली भगवानसे संयम धारण किया। उसे श्रुतबुद्धि तप, विक्रिया औषधि आदि अनेक ऋद्धियां प्रगट हुईं चारण ऋद्धि भी प्रगट हुई और अंतमें उसने प्रायोगमन संन्यास धारण किया। सम्मेद शिखरपर चारण नामके ऊंचे शिखरपर संन्यास धारण कर वह जयंत नामके अनुत्तरके विमानमें उत्तम अहमिंद्र हुआ और वहांपर उत्तम पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए सुखोंको बहुत दिनतक अनुभव करता रहा ॥ ८७–९१ ॥ जयसेनका जीव पहिले जन्ममें राजा वसुंधर हुआ था फिर उत्तम तपश्चरण कर सोलह सागरकी आयु पाकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ वहांसे चयकर बहुत उत्तम जयसेन चक्रवर्ती हुआ और फिर जयंत विमानमें अनेक सुखोंका खजाना-स्वामी अहमिंद्र हुआ ॥ ९२ ॥

इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नमिनाथ तीर्थंकर और जयसेन चक्रवर्तीके पुराणको कहनेवाला यह उनहत्तरवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

——(:०:)——

वसुंधरमहीपति ॥ ७४ ॥ पद्मावतीवियोगेन भृश निर्विण्णमानस. । वने मनोहरे रम्ये वरचर्माखिलेक्षिणः ॥ ७५ ॥ निर्णीय धर्मसद्भाव तनये विनयधरे । निर्विशितात्मभारः स बहुभिर्भूभुजैः सम ॥ ७६ ॥ संयम सन्यगादाय चारित्र दुश्चरं चरन् । स्वाराधनाविधानेन महाशुक्रे सुरोभवत् ॥ ७७ ॥ षोडशाब्ध्युपमस्वायुर्दिव्यान् भोगान् सुभुज्य स । तत प्रच्युत्य तनीर्थे वत्साख्यविजयेऽजनि ॥७८॥ नृपस्येक्ष्वाकुवशस्य कौशाबीनगरेशिन । तनूजो विजयाख्यस्य प्रभाकर्यां प्रभाधिकः ॥ ७९ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णो जयसेनसमाह्वयः । त्रिशद्धसरजीवी षष्टिहस्तसमुच्छ्रितिः ॥ ८० ॥ तप्तचामीकरच्छाय स चतुर्दशरत्नभाक् । निधिभिर्नवभिः सेव्यो भोगैर्दशविधै. मुदा ॥ ८१ ॥ चिरमेकादशश्चक्रधरः कालमजीगमत् । अन्येद्युस्तुगसौधाग्रे सुसुप्तोत पुराकृत ॥ ८२ ॥ कुर्वन्पर्वशशाकाभो दिगतरविलोकन । उल्कामिपतन वीक्ष्य सुनिर्वेगपरायणः ॥ ८३ ॥ उच्चैरस्थितमिद पश्य भास्वरं पर्ययद्वयं । परित्यज्य सुसंप्रापदधोगतिमपप्रभ ॥ ८४ ॥ उन्नत्यमूर्जित तेजो ममेति मदमावहन् । अनाचरन् हित मूढः पारलौकिकमात्मने ॥ ८५ ॥ विषयेषु विषक्त सन्नधुवे-

अथानंतर—इसी जंबूद्वीपके उत्तरकी ओर महा ऐरावतक्षत्रमें श्रीपुर नगरमें लक्ष्मीवान् राजा वसुंधर राज्य करता था ॥ ७४ ॥ किसी एक दिन पद्मावतीके वियोगसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ वह मनोहर मनोहर नामके बनमें गया और वरचर्म नामके सर्वज्ञदेवसे धर्मके सद्भावका निर्णयकर विनयधर नामके पुत्रको राज्यका भार सौंपा और अनेक राजाओंके साथ संमय धारणकर घोर तपश्चरण करने लगा । अंतमें समाधिमरण धारणकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ ॥ ७५–७७ ॥ वहांपर उसकी सोलह सागरकी आयु थी वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इन्हीं नमीनाथ तीर्थंकरके समयमें वत्सविजय नामके देशमें कौशांवी नगरीके स्वामी इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय रानी प्रभाकरीके जयसेन नामका पुत्र हुआ । उसकी कांति सबसे अधिक थी और वह सब लक्षणोंसे संपूर्ण था, उसकी तीन हजार वर्षकी आयु थी और साठ हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ७८–८० ॥ उसके शरीरकी कांति तपाये हुए सुवर्णके समान थी वह चौदह रत्नोंका स्वामी था नौ निधियां उसकी सेवा करती थी और दशों प्रकारके भोगोंका अनुभव कर वह सुखी होरहा था ॥ ८१ ॥ इसप्रकार ग्यारहवां चक्रवर्ती वह सुख भोगता हुआ समय बिता रहा था । किसी एक दिन ऊंचे राजभवनपर अंतःपुरके साथ लेट रहा था ॥ ८२ ॥ पौर्णमासीके चंद्रमाके समान वह सब दिशाओंको देख रहा था कि इतनेमें ही उसे एक उल्कापात दिखाई दिया और उसे देखकर वह विरक्त हुआ ॥ ८३ ॥ वह विचार करने लगा कि देखो यह प्रकाशमान वस्तु अभी तो ऊपर थी और फिर तुरंत ही अपनी दो पर्यायें छोडकर तथा कांतिरहित होकर नीचे चली गई ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार मेरा तेज भी बहुत ऊंचा है और प्रकाशमान है इसतरहके मदको धारण

शाविका मताः ॥ ६४ ॥ श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणाः श्राविकास्ततः । देवा देवोप्यसंख्याताास्तिर्यंचः संख्यया मिताः ॥ ६५ ॥ एवं द्वादशसंख्यान-गणैर्नेमीश्वर । सद्धर्मदेशनं कुर्वन्नार्यक्षेत्राणि सर्वतः ॥६६॥ विहृत्य विहृतिं त्यक्त्वा मासं सम्मेदपर्वते । सहस्रमुनिभिः सार्द्धं प्रतिमायोगमास्थित ॥६७॥ वैशाखे मासि कृष्णाया चतुर्दश्यां निशात्यये । मुक्तिमश्वन्याह्नक्षत्रे नमितीर्थकरो ऽगमत् ॥ ६८ ॥ अकुर्वन्पंचमं देवाः कल्याणं चाग्निलेभिनः । स्व स्व-मोकश्च सप्राप्तपुण्यपण्या प्रपेदिरे ॥ ६९ ॥ कनत्कनकविग्रहे विहितविग्रहो घातिभिः सहाहितजयो जयेति च नुतो नतैर्नाकिभिः । भियं भवभवां बहु नयतु नः क्षयं नायको विनेयविदुषां स्वयं विहतविग्रहोऽस्ते नमिः ॥ ७० ॥ कौशांब्यां प्रथितस्तृतीयजनने सिद्धार्थनामा नृपः कृत्वा तत्र तपोतिघोर-मभवत्तुर्येऽ मरोऽनुत्तरे । तस्मादेत्य पुरे बभूव मिथिला नाम्नींद्रवंशो नमिस्तीर्थेशस्त्रिजगद्धितार्थवचन व्यक्त्यैकविंशो जिन । नमिनमितसामरामरपति पतच्चामरो भ्रमद्भ्रमरविभ्रमभ्रमितपुष्पवृष्ट्युत्करः । करोतु चरणारविंदमकरंदसपायिना विनेयमधुपायिनामविरतोरु तृप्तिं जिनः ॥ ७२ ॥ जगत्त्रयज-योत्सिक्तमोहमाहात्म्यमर्दनात् । एकविंशो जिनो लब्धलक्ष्मीर्लक्ष्मीं ददातु नः ॥ ७३ ॥ द्वीपेस्मिन्नुत्तरे भागे महत्यैरावताह्वये । लक्ष्मीवान् श्रीपुराधीशो

हजार मुनियोंके साथ साथ उन्होंने प्रतिमा योग धारण किया था ॥ ६६-६७ ॥ वैसाखकृष्ण चतुर्दशीके दिन सवेरे के समय अश्विनी नक्षत्रमें वे नमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे थे ॥ ६८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उन सर्वज्ञ देवके मोक्ष कल्याणका उत्सव मनाया था और फिर अत्यंत पुण्यशाली वे देव अपने अपने स्थानको चले गये थे ॥६९॥ दैदीप्यमान सुवर्णके समान जिनका शरीर था, जिन्होंने घातिया कर्मोंके साथ युद्ध किया था तथा सब तरहके अहित को जीत लिया था जिन्हें नम्रभूत हुए देवलोग जय जय करते हुए नमस्कार करते थे तथा जो विद्वान शिष्योंके स्वामी हैं और जिन्होंने सब तरहके शरीर नष्ट कर दिये हैं ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी हम तुम लोगोंका संसार समुद्रका भय दूर करें ॥ ७० ॥ जो तीसरे भवमें कौशांबी नगरीमें प्रसिद्ध राजा सिद्धार्थ थे वहां पर घोर तपश्चरण कर जो अनुत्तरके चौथे अपराजित विमानमें अहमिंद्र हुए और वहांसे आकर जो मिथिला नगरीमें इंद्रोंके द्वारा वंदनीय केवल तीनों जगतके हितरूप वचनोंको प्रगट करनेके लिये नमिनाथ नामके इकईसवें तीर्थंकर हुए ॥७१॥ जिन्होंने देवों सहित सब इंद्रोंसे नमस्कार कराया था जिन पर चमर ढुरते थे, और उडते हुए भ्रमरोंके समान फिरते हुए पुष्पोंके समूह जिनपर वरसते थे ऐसे वे श्रीनमिनाथ भगवान चरणकमलके रसको पान करनेवाले शिष्य रूपी भ्रमरोंको निरंतर ही संतुष्ट वा तृप्त करें ॥ ७२ ॥ तीनों जगतको जीतनेसे अत्यंत उन्मत्त हुए मोहके माहात्म्यको मर्दन करनेसे-उसे नाश करनेसे जिन्हें मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हुई है ऐसे वे इकईसवें तीर्थंकर नमिनाथ भगवान् हम लोगोंको मोक्षलक्ष्मी दें ॥७३॥

यानमुत्तरकुर्वाख्यं समारुह्य मनोहरं ॥ ५३ ॥ गत्वा चित्रवनोद्यानं च षष्ठोपवसन श्रित- । आषाढकालपक्षेश्विनक्षत्रे दशमीदिने ॥ ५४ ॥ अपराह्णे सहस्रेण क्षत्रियाणां सहाग्रहीत् । संयमं संयमापायं सज्ञानं च चतुर्थकं ॥ ५५ ॥ भोक्तु वीरपुरं तस्मै दत्तो गतवरो नृप । सुवर्णवर्णो दत्त्वाममवापाश्चर्यपंचकं ॥ ५६ ॥ छाद्मस्थ्येन ततः काले प्रयाते नववत्सरे । निजदीक्षावने रम्ये मूले बकुलभूरुहः ॥ ५७ ॥ तस्य षष्ठोपवासस्य नक्षत्रेश्वभिधानके । मार्गशीर्षशुचौ पक्षे दिनांते केवलं विभोः ॥ ५८ ॥ दिने तृतीयनदायामभूदखिलगोचरं । नायनायकसचार्यतुर्यकल्याणभागिनः ॥ ५९ ॥ सुप्रभार्यादय सप्तदशासन् गणनायकाः । चतुःशतानि पंचाशत्सर्वपूर्वधरा मता ॥ ६० ॥ शिक्षकाः षट्शतद्वादशसहस्राणि सद्व्रताः । त्रिज्ञानधारिणां सख्या सहस्रं षट् शताधिकं ॥ ६१ ॥ तावंत पंचमज्ञाना मुनयो विक्रियार्द्धिका- । सर्वे सार्द्धसहस्रं स्युर्मनःपर्ययबोधनाः ॥ ६२ ॥ शून्यपंचद्विकैकोक्तास्त्यक्तसंगाः प्रकीर्तिता । सहस्रं वादिना सख्या ते सर्वेपि समुच्चिता ॥ ६३ ॥ विंशति स्युःसहस्राणि मंगिनीप्रमुखार्यिका । चत्वारिंशत्सहस्राणि तदष्टा-

पालकीपर सवार होकर चित्रवन नामके उद्यानमें गये और वेलाका नियम लेकर आसाढ कृष्णा दशमीके दिन अश्वनी नक्षत्रमें शामके समय एकहजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने संयम धारण किया तथा उसी समय संयमसे प्राप्त होनेवाला चौथा मनःपर्ययज्ञान उन्हें प्रगट हुआ ॥५३-५५॥ पारणाके दिन वे वीरपुर नगरमें गये वहांपर सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा दत्तने उन्हें आहार दान दिया और पंचाश्चर्य प्राप्त किये ॥५६॥ तदनंतर नौ वर्ष उनके छद्मस्थ अवस्थाके वीतजानेपर वे अपने दीक्षावनमें मनोहर बकुल वृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुए वहीं पर उनके मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासीके दिन तीसरे पहर अश्वनी नक्षत्रमें समस्त संसारको दिखलानेवाला केवल ज्ञान हुआ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर केवल ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया ॥ ५७ ५९ ॥ सुप्रभार्यको आदि लेकर उनके सत्रह गणधर थे, और चारसौ पचास ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार थे ॥ ६० ॥ बारह हजार छहसौ अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाले शिक्षक थे और सोलहसौ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले मुनिराज थे ॥ ६१ ॥ सोलहसौ ही केवलज्ञानी थे, पंद्रहसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, बारहसौ पचास परिग्रहरहित मनःपर्ययज्ञानी गिने गये थे और एक हजार वादी थे, इस तरह सब मुनिराजोंकी संख्या बीसहजार थी। मंगिनीको आदि लेकर पैंतालीस हजार आर्जिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे तीन लाख श्राविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे ॥ ६२-६५ ॥ इस प्रकार नम्र हुई बारह सभाओंसे सुशोभित उन नेमिनाथ भगवानने सद्धर्मका उपदेश देते हुए आर्यक्षेत्रमें सब ओर विहार किया था। जब उनकी एक महीनेकी आयु रह गई थी तब वे विहार छोडकर सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए थे और एक

कौतुकौ ॥ ४३ ॥ इति सोपि समासन्नकेवलावगमोदयः । चित्ते विधाय तत्सर्वं महीशः प्राविशत्पुरं ॥ ४४ ॥ तत्र स्वभवसंबंधं स्मृत्वा तीर्थकरं च तं । आजवंजवसजातसद्भावं भावयन्मुहुः ॥ ४५ ॥ अनादिवधनैर्गाढं वध्वात्मात्मानमात्मना । कायकारागृहे स्थित्वा पापी पक्षीव पंजरे ॥ ४६ ॥ कुञ्जरोऽर्पितालानो कल्पमत्वलमात्मनः । नानादु खानि भुजानो भूयस्तरेव रंजितः ॥ ४७ ॥ इंद्रियार्थेषु संसक्तो रतितीव्रतरोदयात् । अशुचिष्वेवसंवृद्धतृष्णो वस्करकीटवत् ॥ ४८ ॥ बिभ्यन्मृत्योस्तमाधावन् वर्ज्यदुःखस्तदर्जयत् । विपर्यस्तमतिः कष्टमार्तरौद्राहिताशया ॥ ४९ ॥ भवे भ्राम्यत्यविश्राम्यन् प्रताम्यन् पापपाकत । दृढा निकृष्टा धिग्मूढमभीष्टार्थविघातिनीं ॥ ५० ॥ इति निर्वेदसंवेगाद्भोगरागातिदूरगः । सारस्वतादिसर्वापरागामरसमार्चितः ॥ ५१ ॥ क्षयोपशमसप्राप्तप्रशस्तसंज्वलनोदयः । लब्धबोधि सुतं राज्ये निजे सयोज्य सुप्रभ ॥ ५२ ॥ सामिषेकं सुरै प्राप्य परिनि क्रातिपूजनं ।

और होनहार तीर्थंकरपनेको स्मरणकर संसारमें होनेवाले भावोंका बार बार विचार करने लगे ॥ ४५ ॥ वे विचार करने लगे कि इस आत्माने अपने आपही इस आत्माको अनादिकालसे चले आए बंधसे अच्छी तरह जकडकर बांध रक्खा है, जिसप्रकार पक्षी पिंजरेमें बंद हो जाता है उसीप्रकार यह आत्मा शरीररूपी जेलखानेमें बंद हो रहा है ॥ ४६ ॥ अथवा अपने बलको दिखलानेवाला हाथी अपने आप बडा खंभा लाकर देता है और उससे स्वयं बंध जाता है उसी प्रकार यह आत्मा बंध रहा है यह अनेक दुःखोंको भोगता है और फिर उन्हींमें राग करने लग जाता है ॥ ४७ ॥ रति नामके मोहकर्मके अत्यंत तीव्र उदयसे यह आत्मा इंद्रियोंके विषयोंमें तल्लीन रहता है और विष्ठाके कीडेके समान शरीर आदि अपवित्र पदार्थोंमें ही अपनी तृष्णा बढाता रहता है ॥ ४८ ॥ जो छोडने योग्य दुःखोंमें ही मग्न है ऐसा यह प्राणी मृत्युसे डरता है परंतु उसीकी ओर दौडता है और उसीका संचय करता है दुःख है कि आर्त और रौद्रध्यानसे हृदय भीगनेके कारण इसकी बुद्धि ही विपरीत हो रही है ॥ ४९ ॥ संसारमें परिभ्रमण करता हुआ यह कभी विश्राम नहीं लेता और पापकर्मके उदयसे सदा दुःखी रहता है । अभीष्ट अर्थका घात करनेवाली, दृढ और अत्यंत प्रचलित ऐसी इस मूर्खताको भी धिक्कार हो ॥ ५० ॥ इसतरहके निर्वेद और संवेग उत्पन्न होनेसे वे भोगोंके प्रेमसे बहुत दूर जा खडे हुए और उसी समय सारस्वत आदि वीतरागी लौकांतिक देवोंने आकर उनकी पूजा की ॥ ५१ ॥ कर्मोंके क्षयोपशमसे उनके प्रशस्त संज्वलनका उदय हुआ अर्थात् प्रत्याख्यानावरण अप्रत्याख्यानावरणका उपशम होगया और रत्नत्रयको पाकर उन्होंने सुप्रभ नामके अपने पुत्रको राज्यका भार सौंपा ॥ ५२ ॥ इंद्रादि देवोंने आकर उनका अभिषेक किया और दीक्षा कल्याणकी पूजन की तदनंतर वे भगवान मनोहर उत्तरकुरु नामकी

ताने वर्षमानत । गतेषु पल्यिलक्षेषु नमिनाथसमुद्भवः ॥ ३२ ॥ आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां परमं मतं । उत्सेधो धनुषां पंच दश चास्यामितीर्यते ॥३३॥ आतरूपद्युति सार्द्धद्विसहस्राब्दसमिते । गते कुमारकाले ऽभिषेकमापत्सराज्यकं ॥ ३४ ॥ राज्ये पंचसहस्राणि वत्सराणामगुर्विभो- । तदा प्रावृड्घनाटोप-संकटे गगनांगणे ॥ ३५ ॥ एवं वनविहाराय गतवत महोदय । गजस्कंधसमारूढं भानुमतमिवापरं ॥ ३६ ॥ नभस्तलगतौ देवकुमारौ विहितानती । एवं विज्ञापयामासतुर्वेद्धकरपंकजा ॥ ३७ ॥ द्वीपेऽस्मिन्प्राग्विदेहेऽस्ति विषयो वत्सकावती । सुसीमा नगरी तत्र विमानादपराजितात् ॥ ३८ ॥ अवतीर्य समुत्पन्नतीर्थनाथोपराजित । तस्य केवलपूजार्थं देवेंद्राः समुपागता ॥ ३९ ॥ तत्सभायामभूत्प्रश्न किमस्ति भरतेऽधुना । कश्चित्तीर्थकृदित्याह सोप्येव सकलार्थदृक् ॥ ४० ॥ वंगाख्यदेशे मिथिलानगरे नमिनामक । भावितीर्थकर पुण्यादवतीर्णो ऽपराजितात् ॥ ४१ ॥ देवोपनीतभोगानां भोक्ता संप्रति साध्विति । तपः प्राग्धातकीखंडे कृत्वा सौधर्मनामनि ॥ ४२ ॥ सभूयेता द्वितीयेऽन्हि मत्वा तद्वचन श्रुते । भवतमीक्षितु पूज्यमावामेवं स-

की थी और शरीर पंद्रह धनुष ऊंचा था और शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी। कुमारकालके पच्चीससौ वर्ष वीत जानेपर उन्हें अभिषेकपूर्वक राज्य प्राप्त हुआ था ॥ ३३–३४ ॥ उन भगवानने पांच हजार वर्षतक राज्य किया था किसी एक समय वर्षा ऋतुके घने वादलोंसे घिरे हुए आकाशमार्गसे वे महा उदयशाली भगवान किसी वनमें विहार करने गये थे और दूसरे सूर्यके समान वे हाथीके मस्तक पर विराजमान थे, उसीसमय आकाशमार्गसे दो देव कुमार आए उन्होंने आकर भगवानको नमस्कार किया और करकमल जोडकर इसप्रकार निवेदन करने लगे ॥३५–३७॥ कि हे नाथ! इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक वत्सकावती देश है उसमें सुसीमा नामकी नगरी है उसमें अपराजित विमानसे आकर अपराजित नामके तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। उनके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिये सब इंद्रादि देव आए थे ॥ ३८–३९ ॥ उनकी सभामें यह प्रश्न हुआ था कि इस समय भरतक्षेत्रमें क्या कोई तीर्थंकर है? इसके उत्तरमें उन सर्वज्ञदेवने कहा था कि वंगदेशके मिथिला नगरमें नमिनाथ नामके होनहार तीर्थंकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे अपराजित स्वर्गसेही आकर उत्पन्न हुए हैं ॥ ४०–४१ ॥ तथा इस समय वे देवोंके द्वारा प्राप्त हुए भोगोपभोगोंका अच्छी तरह सेवन कर रहे हैं। हे प्रभो! हम दोनों पहिले धातकीखंडमें थे तपश्चरण कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुए दूसरे ही दिन अपराजित केवलीके दर्शन करनेके लिये गये और वहांके वचन सुनकर कौतुकके साथ पूज्य आपके दर्शनके लिये आए हैं ॥ ४२–४३ ॥ जिन्हें केवलज्ञानका उदय समीप ही होनेवाला है ऐसे वे भगवान उन देवोंकी वातें सुनकर और चित्तमें सब धारणकर अपने नगरको लौट गये ॥ ४४ ॥ वहांपर पहिले भवके सब संबंधको

जयार्थिषु ॥२३॥ शरव्यापिः सरत्स्वेव ज्योति ष्वेवानवस्थिति । क्रौर्यं क्रूरग्रहेष्वेव देवेष्वेव पिशाचता ॥२४॥ वप्पिला तन्महादेवी वसुधारादिपूजिता । श्रीह्री धृत्यादिभिः सेव्या सुखसुप्तानिशावधौ ॥ २५ ॥ शरदादिद्वितीयाया नक्षत्रेष्वादिमे सति । स्वर्गावतरणे भर्तुर्दृष्ट्वा स्वमान्पुरोदितान् ॥ २६ ॥ स्ववक्त्राब्जप्रविष्टेभमप्यालोक्य विनिद्रिका । प्रभातपटहध्वानश्रवणाविष्कृतोत्सवा ॥ २७ ॥ अपृच्छत्फलमेनेषा नृपं देशावधीक्षणं । सोप्यवादीद्भवद्गर्भे भावितीर्थकृदित्यद' ॥ २८ ॥ तदैवागत्य देवेंद्राः स्वर्गावतरणोत्सव । विधाय स्वनियोगेन निजधामागमत्सम ॥ २९ ॥ आषाढे स्वातियोगे तं कृष्णपक्षे महौजसं । दशम्या विश्वलोकेशमसूत तनुजोत्तमं ॥ ३० ॥ देवा द्वितीयकल्याणमप्यभ्येत्य तदा व्यधुः । नमिनामानमप्येन व्याहरन्मोहभेदिनं ॥ ३१ ॥ मुनिसुव्रततीर्थेशसं-

का धन चुराया यह शब्द ही नहीं था अर्थात् उसके राज्यमें विना दी हुई कोई चीज किसीकी नहीं लेता था, इसीप्रकार बंधन केवल काव्यमें था दूसरी जगह नहीं, और विवाद केवल विजय चाहनेवाले विद्वानोंमें ही था, शर नामकी एक तरहकी रुखडीकी फैलावट केवल नदियोंमें थी दूसरी जगह शर अर्थात् वाणोंकी फैलावट नहीं थी, इसीतरह अस्थिरता केवल ज्योतिषी जातिके देवोंके विमानोंमें ही थी दूसरी जगह नहीं, क्रूरता केवल क्रूर ग्रहोंमें ही थी और पिचापन केवल व्यंतर जातिके एक तरहके देवोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २३–२४ ॥ उस राजाकी महादेवीका नाम वप्पिला था रत्नोंकी वर्षा आदिसे वह पूजित हुई थी और श्री ह्री धी आदि अनेक देवियां उसकी सेवा करने लगी थीं, आश्विन (क्वार) कृष्णा द्वितियाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें वह सुखसे सो रही थी उसी दिन रात्रिके पिछिले पहर भगवानके गर्भावतरणके समय (जिससमय उस अहमिंद्रने महादेवीके गर्भमें अवतार लिया था) उसने पहिले कहे हुए सोलह स्वप्न देखे ॥ २५–२६ ॥ अंतमें उसने अपने मुखकमलमें घुसता हुआ एक हाथी भी देखा और उसे देखकर सवेरेके वजते हुये नगाड़ोंको सुनती हुई अनक उत्सवोंके साथ वह जगी ॥ २७ ॥ देशावधिको धारण करनेवाले महाराजसे उन स्वप्नोंके फल पूछे और महाराजने भी "आपके गर्भमें होनहार तीर्थंकर आए हैं" यह उन स्वप्नोंका फल कहा ॥ २८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देव आये और अपने अपने नियोगके अनुसार स्वर्गावतरणका उत्सव मनाकर सब एक साथ अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २९ ॥ आसाढ कृष्णा दशमीके दिन स्वाति नक्षत्रमें उस महादेवीने तीनों लोकोंके स्वामी और तेजस्वी ऐसे उत्तम पुत्ररत्नको उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर जन्म कल्याणका उत्सव मनाया और मोहनीयकर्मको नाश करनेवाले उन भगवानका नमिनाथ नाम रक्खा ॥ ३१ ॥ मुनिसुव्रत तीर्थंकरके वाद साठ लाख वर्ष वीत जानेपर नमिनाथ हुये थे ॥ ३२ ॥ उनकी आयु दशहजार वर्ष-

स्वगुरोर्मुनेः । श्रुत्वा शरीरसंन्यासं विच्छिन्नविषयस्पृहः ॥ १२ ॥ सद्यो मनोहरोद्याने [illegible] ॥ १३ ॥ राज्यभारं समारोप्य श्रीदत्ते स्वसुते सति । लब्धक्षायिकसम्यक्त्वः शमी संयममाददे ॥ १४ ॥ स षोडशाङ्गान्यधीत्य षोडशकारणः । अंत्यनामादिकर्माणि पुण्यानि पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥ स्वायुरंते समाराध्य विमाने लब्धसत्तमे । देवोऽपराजिते पुण्यादनुत्तरेऽभवत् ॥ १६ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुरेकारत्निसमुच्छ्रितिः । निश्वासाहारलेश्यादिभावैस्तत्रोदितैर्युतः ॥ १७ ॥ जीवितान्ते तदा तस्मिन् षण्मासागमिष्यति । जम्बूपलक्षिते द्वीपे विषये वङ्गनामनि ॥ १८ ॥ मिथिलायां महीपालः श्रीमान् गोत्रेण काश्यपः । विजयादिमहाराजो विख्यातो वृषभान्वये ॥ १९ ॥ अनुरक्तं व्यधात्कृत्स्नमुद्यन्निव रविर्जगत् । स्वविरागाद्विरक्तं तत्सोऽतपत्तस्य तादृशः ॥२०॥ अगृणीत गुणानेव मरीन् पुण्योदयात् । पुष्कलास्त्रिवर्गं तस्मिन् पुरुषार्थत्रयं ततः ॥ २१ ॥ तस्य राज्ये रवावेव तापः कोपोऽपि कामिषु । विग्रहस्तनुष्वेव मुनिष्वेव विरागता ॥२२॥ परार्थग्रहणं नाम कविष्वेव कथनं । काव्येष्वेव त्रियादस्य विद्वत्स्वेव

ने श्रीदत्त नामके अपने उत्तम पुत्रको राज्यका भार सौंपा तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन धारणकर और शांत होकर संयम धारणकर लीया ॥ १४ ॥ उस पुरुषोत्तमने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और सोलहकारण भावनाओंका चिंतवनकर पुण्यस्वरूप तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया ॥ १५ ॥ आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर वह विलासोत्तम मुनिराज अपने पुण्योदयसे अपराजित नामके उत्तम अनुत्तर विमानमें देव हुआ ॥ १६ ॥ वहांपर उसकी तेतीस सागरकी आयु थी, एक अरत्नि (हाथ) ऊंचा शरीर था और निश्वास आहार लेश्या आदि भाव सब पहिले कहे अनुसार थे॥१७॥अब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतार लेनेके सन्मुख हुआ उस समय इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वंग देशकी मिथिला नगरीमें श्री वृषभदेवके वंशमें उत्पन्न हुआ, काश्यप गोत्री महाराधिराज श्रीविजय नामका प्रसिद्ध राजा राज्य करता था ॥ १८–१९ ॥ उदय होते हुये सूर्यके समान उसने समस्त संसारको अपने आधीन कर लिया था तथा अपने वैराग्यसे वह उसे विरक्तकर देता था । इसतरह वह संसारको खूब ही संतप्त कर रहा था ॥ २० ॥ उसने अपने पुण्योदयसे सब गुण स्वीकार कर लिये थे और इसीलिये उसमें धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थ खूब अच्छी तरह प्रगट हो रहे थे ॥ २१ ॥ उसके राज्यमें ताप केवल सूर्यमें था दूसरी जगह नहीं क्रोध केवल कामियोंमें ही था, विग्रह केवल शरीरका ही नाम था दूसरी जगह विग्रह अर्थात् लडाई झगडा नहीं था और विरागता अर्थात् वैराग्य परिणाम केवल मुनियोंमें ही थे दूसरी जगह विरागता अर्थात् द्वेष बुद्धि नहीं थी ॥२२॥ इसीतरह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरेके अर्थको ग्रहण करना केवल कवियोंमें था दूसरी जगह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरे-

नगरे राजा पार्थिवाख्यो विभुविशां ॥ २ ॥ चक्षुरिक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीं वक्षस्थलेऽदधन् । साक्षाच्चक्रीव दिक्चक्रमाक्रम्याभात्स विक्रमी ॥ ३ ॥ तनूजस्तस्य सुदर्या देव्यां सिद्धार्थनामभाक् । मुनिं मनोहरोद्याने परमावधिवीक्षण ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा मुनिवराख्यान कदाचिद्विनयानत । संपृच्छ्य धर्मसद्भाव यथावत्तदुदीरितं ॥ ५ ॥ समाकर्ण्य समुत्पन्नसंवेगः स महीपति । मृतिमूलधनेनाधमर्णो मृत्योरिहासुभृत् ॥ ६ ॥ वहन् दुःखानि तद्वृद्धिं सर्वो जन्मनि दुर्गतः । रत्नत्रयं समावर्ज्य तस्मै यावन्न दास्यति ॥ ७ ॥ ऋणं सवृद्धिकं तावत्कुत स्वास्थ्य कुत सुखं । इति निश्चित्य कर्मारीन्निहंतु विहितोद्यमः ॥ ८ ॥ सुताय श्रुतशास्त्राय प्रजापालनशीलने । सिद्धार्थाय समर्थाय दत्वा राज्यश्रियं सुधीः ॥ ९ ॥ प्राव्राजीत्पूज्यपादस्य मुनेर्मुनिवरश्रुते । पादमूलं समासाद्य सतां सा वृत्तिरीदृशी ॥ १० ॥ सिद्धार्थोऽप्यासम्यक्त्वो गृहीताणुव्रतादिकः । भोगान् सुखेन भुंजान प्रचडोऽपालयत्प्रजाः ॥ ११ ॥ काले गच्छति तस्यैवं कदाचि-

राज्य करता था, वह इक्ष्वाकुवंशका नेत्र था अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको धारण करता था और वह पराक्रमी साक्षात् चक्रवर्तीके समान सब दिशाओंपर आक्रमणकर सुशोभित होता था ॥ २–३ ॥ उस राजाके सुंदरी नामकी महादेवीसे सिद्धार्थ नामका पुत्र था। किसी एक दिन वह राजा मनोहर नामके उद्यानमें गया था वहांपर उसने मुनिवर नामके अवधिज्ञानी मुनिराजके दर्शन किये, बडी विनयसे नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा मुनिराजने धर्मका स्वरूप कहा उसे सुनकर राजा विरक्त हुआ और विचार करने लगा कि यह प्राणी मरणरूप मूलधन लेकर मृत्युका कर्जदार हो रहा है ॥ ४–६ ॥ प्रत्येक जन्ममें अनेक दुखोंको भोगता हुआ और उस ऋणकी वृद्धि करता हुआ सब तरहकी दुर्गतियां भोग रहा है। रत्नत्रयको छोडकर जबतक व्याजसहित यह उससे न चुका दिया जायगा तबतक किसतरह स्वस्थ और सुखी हो सकता है? यही निश्चयकर वह कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये उद्यम करने लगा ॥७–८॥ उस बुद्धिमानने अनेक शास्त्रोंको सुननेवाले, प्रजाको अच्छीतरह पालन करनेवाले और सब तरह समर्थ ऐसे अपने पुत्र सिद्धार्थके लिये तो राज्यलक्ष्मी समर्पणकी और पूज्यपाद श्रीमुनिवर नामके मुनिराजके चरण कमलोंके समीप ही दीक्षा धारणकी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी प्रवृत्ति एसी ही होती है ॥ ९–१० ॥ प्रतापी सिद्धार्थ भी सम्यग्दर्शनमें तमन्य हो तथा अणुव्रतादि व्रतोंको धारण कर सुखपूर्वक भोगोंका अनुभव करता हुआ प्रजाका पालन करने लगा ॥ ११ ॥ इसप्रकार उसका समय व्यतीत होने लगा। किसी एक समय अपने पिता मुनिराजके शरीरका समाधिमरण सुनकर वह विषयोंकी इच्छासे विरक्त हुआ, वह शीघ्र ही मनोहर नामके वनमें गया और महाबल नामके केवली भगवानके दर्शन कर उनसे सब तत्त्वोंका विस्तार समझा ॥ १२–१३ ॥ उस-

श्चरितः समाप्य । पश्चात्तपोजनि सुरः स सनत्कुमारे तस्माद्दिहैत्य समभूद्विभुरर्द्धचक्री ॥ मणिमतिः खचरी गुणभूषणा कृतनिदानमृतेरपि कोपिनी । ततयशा समभूदिह सुव्रता परिरता जनकेशसुता सती ॥७३०॥ इह सचिवतनूजश्चंद्रचूलस्य मित्रं विजयविदितनामाऽजायत स्वस्तृतीये । कथितकनकचूलो लालितो दिव्यभोगैरभवदमितवीर्यः सूर्यवंशे स रामः ॥ ७३१ ॥ जनयतु बलदेवो देवदेवो दुरंताद् दुरितदुरुदयोत्थाद्दुःखदूरं गरीयान् । अवनतभुवनेशो विश्वदृश्वा विरागी निखिलसुखनिवासः सोऽष्टमोभीष्टमस्मान् ॥ ७३२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे मुनिसुव्रततीर्थकरहरिषेणचक्रवर्तिरामबलदेवलक्ष्मीधरकेशवसीतारावणपुराण परिसमाप्तमष्टषष्ठं पर्व ॥ ६८ ॥

अथ एकोनसप्ततितमं पर्व ।

यस्य नामापि धर्तॄणां मुक्त्यै हृदयपंकजे । नमिर्नमयतान्नम्रान् मोक्षलक्ष्मीं समक्षु नः ॥ १ ॥ द्वीपेऽस्मिन् भारते वर्षे विषये वत्सनामनि । कौशाम्ब्या

सरे भवमें मंत्रीका पुत्र और चंद्रचूलका मित्र विजय नामसे प्रसिद्ध हुआ था फिर दिव्य भोगोंसे लालित पालित ऐसा कनकचूल नामका देव हुआ और फिर सूर्यवंशमें अपार शक्तिको धारण करनेवाला रामचंद्र हुआ ॥ ७३१ ॥ जो बुरे से बुरे पापोंके अशुभोदयसे उत्पन्न हुए बुरे दुःखोंसे कोसों दूर थे, जिन्होंने संसारके सब इंद्रोंसे नमस्कार करा लिया था जो वीतराग सर्वज्ञ और समस्त सुखोंके निवासस्थान थे ऐसे देवाधिदेव आठवें बलदेव रामचंद्र हमलोगोंकी इष्टसिद्धि करें ॥ ७३२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मुनिसुव्रततीर्थंकर हरिषेण चक्रवर्ती रामबलदेव लक्ष्मीधर (लक्ष्मण) नारायण सीता और रावणका पुराण समाप्त करनेवाला यह अडसठवा पर्व पूर्ण हुआ ॥६८॥

अथ उनहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर—हृदयकमलमें धारण किया हुआ जिनका नाम भी मोक्ष दे सकता है ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी नम्र हुए हम लोगोंको मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ १ ॥ इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्सदेशके कौशांबी नगरमें पार्थिव नामका राजा

सैन्ये रुध्वा रिपोः पुरमगारमिवैकमल्यं । निर्मूल्य वैरिकुलमाश्रित्य सस्यमीपल्लक्ष्म्या सह क्षितिसुतामपहृत्य शत्रोः ॥ ७२४ ॥ आनम्रामरभूनभश्वरशिरः पीठोद्धृताङ्घ्रिद्वया निष्कंटीकृतदक्षिणार्द्धभरताम्बडत्रिमंडाधिपौ । साकेत समधिष्ठितौ हृतशुचिपोद्रासिभास्वत्प्रभौ दिक्प्रांतद्विपसर्पद्दर्पशमनव्यग्रोग्रवीरश्रियां ॥ ७२५ ॥ सीरादिप्रभृतिप्रसिद्धविलसद्रत्नावलीरंजितश्रीसंपादितभोगयोगमुदिनौ संर्वार्थिसंतर्पकौ । चद्रार्काविव तेजसा स्वयशसा विश्वं प्रकाश्य स्फुटं श्रीमतौ बलकेशवौ क्षितिमिमां संपाल्य सार्द्धं चिरं ॥ ७२६ ॥ एकस्त्रिलोकशिखिरं सुखमध्यतिष्ठदन्यश्चतुर्थनरकावनिनायकोभूत् । भोग्ये समेपि परिणामकृताद्विशेषान्मा तद्व्यधादवुधवत्सुबुधो निदान ॥७२७॥ देशे सारसमुच्चये नरपतिर्देवोनरादिस्वतः सौधर्मेऽनिमिषोभवत्सुरनिधिस्तस्माच्च्युतोस्मिन्नभूत् । भोग्ये समेपि परिणामकृताखिलखेचरोज्वलशिरोमालो विनम्यन्वये स्त्रीलोलो निजवंशकेतुरहिताचाराग्रणी रावण. ॥ ७२८ ॥ आसीदिहैव मलये विषये महीशस्तु चन्द्रचूल इति दु-

हाथियोंके (दिग्गजोंके) बहते हुए मदको शांत करनेके लिये जिनकी उग्र वीर लक्ष्मी सदा व्यग्र रहती थी हलको आदि लेकर दैदीप्यमान रत्नों की पंक्तियोंसे सुशोभित ऐसी लक्ष्मीके द्वारा इकट्ठे किये हुए भोगोंके संयोगोंसे जो बडे ही सुखी थे, जो समस्त याचकोंको संतुष्ट करनेवाले थे, प्रतापसे जो सूर्य चंद्रमाके मंडलके समान थे, यशसे जिन्होंने समस्त संसारको खूब अच्छी तरह प्रकाशित कर दिया था ऐसे श्रीमान् बलभद्र नारायण वा रामचद्र लक्ष्मणने साथ साथ बहुत दिनतक इस पृथ्वीका पालन किया था ॥ ७२४–७२६ ॥ उनमेंसे एक तो तीनों लोकोंके शिखरपर विराजमान होकर अनत सुखोंका अनुभव करने लगा और दूसरा चौथे नरकका स्वामी हुआ अर्थात् चौथे नरकमें गया । यद्यपि उन दोनोंकी उपभोग करनेकी वस्तुएं सब समान थीं तथापि परिणामोंमें विशेषता होनेसे ऐसा हुआ इसलिये बुद्धिमानोंको मूर्खोंके समान कभी निदान नहीं करना चाहिये ॥ ७२७ ॥ रावणका जीव पहिले सारसमुच्चय नामके देशमें नरदेव नामका राजा हुआ था और वहांसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रमें राजा विनमिके वशमें समस्त विद्याधरोंको वश करनेवाला, स्त्रीलंपट, अपना वंशका केतु (नाशक) अहित करनेवालोंमें मुख्य और जिसके मस्तकोंकी माला दैदीप्यमान हो रही है ऐसा रावण हुआ था ॥ ७२८ ॥ लक्ष्मणका जीव पहिले इसी क्षेत्रके मलय देशमें चद्रचूल नामका राजपुत्र हुआ था जो कि अत्यंत दुराचारी था, फिर तपश्चरण धारणकर सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे आकर इसी भरतक्षेत्रमें अर्द्धचक्री लक्ष्मण हुआ ॥ ७२९ ॥ सीताका जीव पहिले गुणोंसे सुशोभित मणिमति नामकी विद्याधरी थी वहां पर क्रोधित होकर मरते समय निदान किया था वहांसे आकर यशको [illegible] वाली अच्छे व्रतोंको पालन करनेवाली महासती जानकी पुत्री सीता हुई थी ॥ ७३० ॥ रामचंद्रका जीव पहिले ती-

छाय यथाशक्ति यथाविधि । रामाणुमतौ सजातौ श्रुतकेवलिनौ मुनी ॥ ७१४ ॥ जाता शेषाश्च वुध्यादिसप्तर्ध्या विष्कृतोदयाः । एवं छद्मस्थकालेऽस्य पञ्चाब्दोनचतुःशते ॥ ७१५ ॥ व्यतीतवति सद्ध्यानविशेषाद्धतघातिनः । रामस्य केवलज्ञानमुदपाद्यर्कबिंबवत् ॥ ७१६ ॥ समुद्गतैकछत्रादिप्रातिहार्यविभूषित । असिंचद्भव्यसस्यानां वृष्टिं धर्ममयीमसौ ॥ ६१७ ॥ एवं केवलबोधेन नीत्वा षट्शतवत्सरान् । फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे शुक्लपक्षे चतुर्दशी—॥७१८॥ दिने सम्मेदगिर्यग्रे तृतीयं शुक्लमाश्रितः । योगत्रितयमारुध्य समुच्छिन्नक्रियाश्रय ॥७१९॥ नि शेषा प्राकृताघातिकर्मा सोऽणुमदादिभिः । शरीरत्रितयापायादवापत्पदमुन्नत ॥ ७२० ॥ विभीषणादयः केचित्प्रापन्ननुदिशं पुनः । रामचक्रस्थमहादेव्याद्याः काश्चिदीयुरितोऽच्युत ॥ ७२१ ॥ शेषाः कल्पेभवन्नादौ लक्ष्मणश्चागत क्रमात् । नरकात्संयमं प्राप्य मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति ॥ ७२२ ॥ विनेयात्तस्य जतूना भवेद्धि चिन्त्यमीदृग् ॥ ७२३ ॥ प्रोल्लंघ्य गोपदमिवांबुनिधिं स्व-

सूर्यके बिंबके समान उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ७१५–७१६ ॥ उसीसमय एक छत्र आदि प्रातिहार्य प्रगट हुए और उनसे सुशोभित होकर वे भव्यरूपी अनाजके पौधोंको धर्मकी वर्षाकर सींचने लगे ॥७१७॥ इसतरह केवलज्ञानसे विभूषित होकर उन्होंने छहसौ वर्ष व्यतीत किये तब फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीके दिन सवेरेके समय सम्मेद पर्वतके शिखरपर विराजमान होकर तीसरे शुक्लध्यानके आश्रयसे तीनों योगोंका निरोध किया और समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानके आश्रयसे समस्त बचे हुए अघातिया कर्मोंका नाशकर तीनों शरीरोंके नाश हो जानेसे हनुमान आदिके साथ साथ सबसे उत्तम पद प्राप्त किया अर्थात् उस दिन वे मुक्त हुए ॥ ७१९–७२० ॥ विभीषण आदि कितने ही मुनिराज अनुदिश विमानमें अहमिंद्र हुए रामचंद्र लक्ष्मणकी पट्टरानी सीता और पृथिवीसुंदरी आदि कितनीही अर्जिकाएं अच्युत स्वर्गमें देव हुई ॥ ७२१ ॥ बाकी सब सोलह स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए। लक्ष्मण नरकसे निकलकर अनुक्रमसे संयम धारण करेगा और अंतमें मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होगा ॥ ७२२ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंको संयम धारण करनेसे ऐसा ही फल मिला करता है ॥ ७२३ ॥ जिन दोनों भाइयोंने समुद्रको गोपदके (कीचडमें बनेहुए गौके खुरके) समान उल्लंघन किया जिन्होंने अपनी सेनासे एक छोटे घरके समान शत्रुके नगरको घेर लिया खेतके समान शत्रुका सब घर बहुत शीघ्र चौपट कर दिया और लक्ष्मीके साथ साथ सीता भी शत्रुसे छुडा ली, नमस्कार करते हुए देव विद्याधर और भूमिगोचरियोंके राजाओंके मस्तकोंसे लगे हुए सिंहासन पर जिनके चरण कमल रहते थे जिन्होंने दक्षिण की ओरका आधा भरतक्षेत्र निष्कंटक कर दिया था जो तीनों खंडोंके स्वामी थे, अयोध्यामें निवास करते थे, जेठ महीनेके देदीप्यमान सूर्यकी कांतिको भी जिन्होंने तिरस्कृत कर दिया था, दिशाओंके अंतमें रहनेवाले

राज्यं निधायोच्चैः सपट्टं वैशवात्मजे ॥ ७०४ ॥ अष्टौ विजयरामाद्या सीतायाः सात्विकाः सुताः । लक्ष्मीमनभिवांछत्सु तेषां ज्येष्ठेषु सप्तसु ॥ ७०५ ॥ दत्वाजितजयाख्याय यौवराज्य कनीयसे । मिथिलामर्पयित्वास्मै त्रिनिर्वेदपरायणैः ॥ ७०६ ॥ साकेतपुरमभ्येत्य वने सिद्धार्थनामनि । वृषभस्वामिनिष्क्रांति तीर्थभूमौ महौजसः ॥ ७०७ ॥ शिवगुप्ताभिधानस्य समीपे केवलेशिन । संसारमोक्षयोर्हेतुफले सम्यक् प्रबुद्धवान् ॥ ७०८ ॥ निदानशल्यदोषेण चतुर्थी नारकीं भुवं । केशव प्राप्त इत्येतद् बुध्वा देवो विशुद्धधी ॥ ७०९ ॥ निरस्ततद्गतस्नेहविधिरा मिनिबोधिकात् । वेदात्प्रादुर्भवद्बोधिः सुग्रीवाणुमदादिभिः ॥ ७१० ॥ विभिषणादिभिश्चामा भूमिपैः पंचभि शतै । अशीतिशतपुत्रैश्च सह संयममाप्तवान् ॥ ७११ ॥ तथा सीता महादेवी पृथिवीसुंदरीयुता । देव्य श्रुतवती क्षांतिनिकटे तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥ तौ राजयुवराजौ च गृहीतश्रावकव्रतौ । जिनांघ्रियुग्ममानम्य सम्यक्प्राविशता पुरीं ॥ ७१३ ॥ मोक्षमार्गमनु-

दिया और अपने ही हाथसे उसका पट्ट बांधा ॥ ७०४ ॥ सात्विक वृत्तिको धारण करनेवाले विजयराम आदिक सीताके आठ पुत्र थे उनमेंसे बडे २ सातोंने तो राज्यलक्ष्मीकी अनिच्छा प्रगटकी इसलिये रामचंद्रने अजितजय नामके सबसे छोटे पुत्रको युवराज पद दिया और मिथिला देश उसके समर्पण किया तथा आप संसार शरीर और भोगोंसे अत्यंत विरक्त हुये ॥ ७०५–७०६ ॥ वे अयोध्या नगरके समीप सिद्धार्थ नामके बनमें गये जो कि श्रीवृषभ देवके तपकल्याणक धारण करनेसे तीर्थस्थान होगया था वहांपर महा पराक्रमी श्रीशिवगुप्त नामके केवली भगवान विराजमान थे उनसे उन्होंने संसार तथा मोक्षका हेतु तथा फल अच्छी तरह समझा ॥ ७०७–७०८ ॥ लक्ष्मण निदान नामकी शल्यके अपराधसे चौथे नरकमें गया है यह जानकर उनकी बुद्धि और विशुद्ध होगई उन्होंने लक्ष्मणका मोह छोड दिया और आभिनिबोधक नामके ज्ञानसे अनुमानसे उन्हें रत्नत्रय प्राप्त हुआ । तदनंतर सुग्रीव हनुमान और विभीषण आदि पांचसौ राजाओंके साथ तथा एक सौ अस्सी पुत्रोंके साथ उन्होंने संयम धारण किया ॥ ७०९–७११ ॥ इसी प्रकार पृथिवी सुंदरी आठ रानियोंके साथ साथ सीता महादेवी ने भी श्रुतवती नामकी आर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली ॥ ७१२ ॥ पृथिवीसुंदर और अजितंजय दोनों राजा और युवराजाओंने श्रावकोंके व्रत धारण किये और श्री जिनराजके चरणकमलोंको नमस्कारकर अच्छीतरह नगरीमें प्रवेश किया ॥ ७१३ ॥ रामचंद्र और हनुमान दोनों ही मुनिराजोंने अपनी शक्तिके अनुसार और विधिपूर्वक मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकी और दोनों ही श्रुतकेवली हुए ॥ ७१४ ॥ शेष बचे हुए मुनिराज भी बुद्धि आदि सातों ऋद्धियोंसे विभूषित और प्रसिद्ध हुए । इसप्रकार छद्मस्थ अवस्थाके तीनसौ पिचानवे वर्ष व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यान नामके उत्तम ध्यानसे रामचंद्रने घातिया कर्मोंका नाश किया और

प्रवलितोत्तुंगप्रासादैकांशविच्युतिं ॥ ६९३ ॥ स्वप्ने दृष्ट्वा समुत्थाय समासाद्य निजाग्रज । स्वप्नान् सप्रश्रयं सर्वान् यथादृष्टान् न्यवेदयत् ॥ ६९४ ॥ पुरोहितस्तदाकर्ण्य फल तत्रेत्थमब्रवीत् । न्यग्रोधोन्मूलनाद् व्याधिमसाध्य केशवो व्रजेत् ॥ ६९५ ॥ राहुग्रस्तार्कसपातादुर्वेभ्यभोगायुषां क्षय । तुंगप्रासादभंगेन त्व प्रयाता तपोवनं ॥ ६९६ ॥ इत्येकांते वचस्तस्य श्रुत्वा रामो यथार्थवित् । धीरोदात्ततया नायान्मनागपि मनःक्षतिं ॥ ६९७ ॥ लोकद्वयहितं मत्वा कारयामास घोषण । प्राणिनो नहि हतव्या कैश्चिचेति दयोद्यत ॥ ६९८ ॥ चकार शांतिपूजा च सर्वज्ञसवनावधि । ददौ दान च दीनेभ्यो येन यद्यदमीप्सितं ॥ ६९९ ॥ बभूव क्षीणपुण्यस्य ततः कतिपयैर्दिनैः । केशवस्य महाव्याधिरसातोदयचोदित ॥ ७०० ॥ दुःसाध्येनामयेनासौ माघे मास्यसितेतिमे । दिने तेनागमच्चक्री पृथ्वीं पकप्रभाभिधां ॥ ७०१ ॥ तद्वियोगेन शोकाग्निसतप्तहृदयो बलः । कथ कथमपि ज्ञानात्सधार्यात्मानमात्मना ॥ ७०२ ॥ कृत्वा शरीरसस्कारमनुजस्य यथाविधि । सर्वातःपुरदुःखु च प्रशमय्य प्रसन्नवाक् ॥ ७०३ ॥ सर्वप्रकृतिसान्निध्ये पृथिवीसुंदरे सुते । ज्येष्ठे

६९२--६९४ ॥ पुरोहित सुनते ही उनका फल इसतरह कहने लगा कि स्वप्नमें जो बडका वृक्ष टूटता हुआ देखा है उसका फल यही है कि लक्ष्मणको कोई असाध्य रोग होगा, राहुसे ढका हुआ सूर्य जो रसातलमें चलागया देखा है उसका फल भोगोपभोग करने योग्य वस्तुओंकी आयुका नाश हो जाना है और ऊंचे राजमहलके गिर जानेका फल आपका (रामचंद्रका) तपोवन चले जाना है ॥ ६९५—६९६ ॥ इसप्रकार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले रामचंद्रने वे पुरोहितके वचन एकांत स्थानमें सुने और धीरवीर तथा गंभीर होनेसे उनके चित्तमें कुछ भी रंज नहीं हुआ ॥ ६९७ ॥ तदनंतर दयाशाली रामचंद्रने दोनों लोकोंका हित समझकर यह घोषणा कर दी कि हमारे राज्यमें कोई मनुष्य किसी जीवको न मारने पावे ॥ ६९८ ॥ इसके सिवाय उन्होंने सर्वज्ञदेवके चरण कमलोंके समीप शांति पूजाकी और दीन लोगोंको उनकी इच्छानुसार अर्थात् जो जो उन्हें चाहिये वही दान दिया ॥ ६९९ ॥ तदनंतर-पुण्य कर्मोंके नाश होजानके कारण थोडे ही दिनोंमें असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेसे लक्ष्मणको बडा भारी रोग हुआ ॥ ७०० ॥ वह चक्रवर्ती लक्ष्मण माघ कृष्णा अमावास्याके दिन उसी असाध्य रोगसे मरकर पंकप्रभा नामकी चौथी पृथ्वीमें (चौथे नरकमें) जा उत्पन्न हुआ ॥ ७०१ ॥ लक्ष्मणके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकरूपी अग्निसे जिनका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसे रामचंद्रने ज्ञान होनेसे किसी तरह अपने आप आत्माको संभाला ॥ ७०२ ॥ तदनंतर उन्होंने विधिपूर्वक अपने छोटे भाईका शरीर संस्कार किया और प्रसन्नतापूर्वक वचन कहकर रणवासकी सब रानियोंका दुःख शांत किया ॥ ७०३ ॥ फिर उन्होंने सब प्रजाके सामने पृथ्वीसुंदर नामके लक्ष्मणके बडे पुत्रको राज्य

पनुयोगैर्ज्ञानहेतुभि । गुणमुख्यनयादानविशेषन्ललाभतः ॥ ६८२ ॥ स्यान्छब्दलान्छितास्तित्वनास्तित्वाद्यंतमततं । जीवादीना पदार्थानां तत्त्वान्प्रा लक्षणं ॥ ६८३ ॥ मार्गणा गुणजीवाना समासं संसृतिस्थिति । अन्यच्च धर्मसबद्ध न्यर्चा युक्तिसमाश्रित ॥ ६८४ ॥ कर्मभेदान् फल तेषां सुखदुःखादि-भेदकं । बंधमोचनयोर्हेतु स्वरूप मुक्तिमुक्तयोः ॥ ६८५ ॥ इति धर्मविशेष तत् ततः श्रुत्वा मनीषिणः । सर्वे रामादयोभूवन् गृहीतोपासकव्रता ॥६८६॥ निदानशल्यदोषेण भोगासक्त स केशव ।वध्वायुर्नारक घोरं नाग्रहीद्दर्शनादिकं ॥ ६८७ ॥ एव सवत्सरान्नीत्वा साकेते कतिचित्सुख । तदाधिपत्य भरतश-त्रुघ्नाभ्यां प्रदाय तौ ॥ ६८८ ॥ स्वय स्वपरिवारेण गत्वा वाराणसीं पुरीं । प्राविक्षतामधिक्षिप्य शक्रलीलां स्वसपदा ॥ ६८९ ॥ सुतो विजयरामाख्यो रामस्यामरसन्निभः । पृथिवीचद्रनामाभूच्चद्राभः केशवस्य च ॥ ६९० ॥ अन्यैश्च पुत्रपौत्राद्यै परीतौ तौ धृतोदया । नयतःस्म सुख काल त्रिवर्गफलशा-लिनौ ॥ ६९१ ॥ कदाचिल्लक्ष्मणो नागवाहिनीशयने सुख । सुप्तोन्यग्रोधवृक्षस्य भजन मत्तदंतिना ॥ ६९२ ॥ सैंहिकेयनिगीर्णार्करसातलनिवेशनं । सुधा-

कह सुनाई तथा और भी युक्तियोंसे सुसंगत धर्मका स्पष्ट स्वरूप कहा। कर्मके भेद कहे सुख दुःख आदि उनका फल कहा बंध और मोक्षके कारण वतलाये तथा मुक्ति और मुक्त होनेवाले जीवोंका स्वरूप बतलाया ॥६८२---८५॥ इसप्रकार मुनिराजने धर्मका विशेष स्वरूप वतलाया जिसे सुनकर रामचंद्र आदि सब बुद्धिमान लोगोंने श्रावकके व्रत धारण किये ॥ ८६ ॥ निदान नामकी शल्यके दोपसे लक्ष्मण भोगोंमें आसक्त था तथा उसने घोर नरकायुका बंध भी कर लिया था इसलिये सम्यग्दर्शन आदि कुछ भी धारण नहीं किया ॥ ८७ ॥ इसतरह उन दोनों भाइयोंके कुछ वर्ष तो सुख पूर्वक अयोध्यामें ही निकल गये तदनतर उन दोनोंने वहांका राज्य तो भरत और शत्रुघ्नको दिया और आप अपने सब परिवारके साथ वनारसी नगरीमें आए तथा अपनी संपदाओंसे इंद्रकी लीलाको भी तिरस्कार करते हुए रहने लगे ॥ ८८---८९ ॥रामचंद्रके देवके समान विजयराम नामका पुत्र हुआ था और लक्ष्मणके चंद्रमा के समान पृथ्वीचंद्र नामका पुत्र हुआ था ॥ ९० ॥ जिनका उदय प्रसिद्ध है और जो तीनों पुरुषार्थोंके फलोंसे सुशोभित हैं ऐसे वे दोनों भाई और भी अनेक पुत्र पौत्रों सहित सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे ॥७१॥ किसी एक दिन लक्ष्मण नागवाहिनी शय्यापर सुखसे सोया हुआ था वहांपर उसने तीन स्वप्न देखे--पहिला मस्त हाथीके द्वारा वडका वृक्ष उखाडा जाना, दूसरा राहुके द्वारा निगले हुए (ढके हुए) सूर्यका रसातलमें चले जाना और तीसरा चूनेसे पोते हुए बडे भारी राजभवनका एक अंश गिर जाना। इन स्वप्नोंको देखकर वह उठा, अपने बडे भाई रामचंद्रके समीप पहुचा और उनसे बडी विनयके साथ सब देखे हुए स्वप्न यथार्थ रीतिसे निवेदन कर दिये ॥

६७० ॥ शून्यपचकपक्षाब्धिमितास्तुंगमतगजा । रथवर्यास्तु तावंतो नवकोट्यस्तुरंगमा ॥ ६७१ ॥ खसप्तकद्विवार्ध्युक्ता युद्धशौंडाः पदातय । देवाश्चा-ष्टसहस्राणि गणवद्धाभिधानकाः ॥ ६७२ ॥ हलायुधं महाग्त्नमपराजितनामकं । अमोघाख्याः खगास्तीक्ष्णाः सक्षया कौमुदी गदा ॥ ६७३ ॥ रत्नाव-तसिका माला रत्नान्येतानि सीरिणः । तानि यक्षमहस्रेण रक्षितानि पृथक् पृथक् ॥ ६७४ ॥ चक्र सुदर्शनाख्यानं कौमुदीत्युदिता गदा । असिः सौनदकोऽ-मोघमुखी शक्तिः शरासन॥६७५॥शार्ङ्गं पचमुख पाञ्चजन्यः शखो महाध्वनिः । कौस्तुभ स्वप्रभाभारभासमान महामणिः॥६७६॥ रत्नान्येतानि सदैव के-शवस्य पृथक् पृथक् । सदा यक्षसहस्रेण रक्षितान्यमितद्युतेः ॥ ६७७ ॥ एव तयोर्महाभागधेययोर्भोगसपदा । निमग्नयोः सुखाम्भोधौ काले गच्छत्यथान्यदा ॥ ६७८ ॥ जिन मनोहरोद्याने शिवगुप्तसमाह्वयं । विनयेन समागत्य पूजयित्वाभिवद्यता ॥ ६७९ ॥ श्रद्धालुर्धर्ममप्राक्षीद्धीमान् राम सकेशव । प्रत्यासन्ना-त्मनिष्ठत्वान्निष्ठितार्थो निरंजनः ॥ ६८० ॥ भव्यानुग्रहमुख्यात्मप्रवृत्ति सोप्यभाषत । स्ववाक्प्रसरज्योत्स्नासमाह्लादिततत्सभः ॥ ६८१ ॥ प्रमाणनयनिक्षे-

६७३–७४ ॥ इसीतरह सुदर्शन नामका चक्र कौमुदी नामकी गदा, सौनंदक नामकी तलवार, अमोघमुखी शक्ति, शार्ग नामका धनुष, बडी भारी आवाज करनेवाला और पांच मुखका पांचजन्य नामका शंख, और, अपनी कांतिके बोझसे देदीप्यमान ऐसा कौस्तुभ नामका महामणि ये सात रत्न अनंत कांतिको धारण करनेवाले नारायण लक्ष्मणके थे और एक एक हजार यक्ष देव सबकी अलग अलग रक्षा करते थे ॥ ७५-७७ ॥ इसतरह सुखसागरमें तल्लीन रहनेवाले और महा भाग्यशाली उन दोनों भाइयोंका समय भोग और संपदाओंके द्वारा व्यतीत होने लगा किसी एक दिन मनोहर नामके वनमें दोनों भाइयोंने शिवगुप्त नामके जिनराजके दर्शन किये तथा बडी विनयसे पूजा और वंदनाकी ॥ ७८–७९ ॥ तदनंतर श्रद्धालु और बुद्धिमान रामचंद्रने लक्ष्मणके साथ २ धर्मका स्वरूप पूछा आत्म-निष्ठा समीप होनेसे जिनके चारों पुरुषार्थ पूर्ण होचुके हैं जो मोहनीय आदि कर्मोंसे रहित हैं भव्योंका अनुग्रह करना ही जिनके आत्माकी मुख्य प्रवृत्ति है ऐसे वे जिनराज अपने वचनरूपी फैलती हुई चांदनीसे उस सभाको प्रसन्न करते हुए कहने लगे ॥ ८०–८१ ॥ कि इस संसारमें जीवादिक नौ पदार्थ हैं प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके कारण ऐसे अनुयोगोंसे उनका ज्ञान होता है तथा गौण और मुख्य नयोंके स्वीकार करनेरूप विशेष बलके मिलजाने-से अर्थात् गौण और मुख्य नयोंकी अपेक्षासे उनमें स्यात् अस्तित्व (वे पदार्थ कथंचित हैं) स्यात्नास्तित्व (वे प-दार्थ कथंचित् नहीं भी हैं) आदि सात धर्म सदा विद्यमान रहते हैं श्रीशिवगुप्ति मुनिराजने इनके विशद स्वरूपके सिवाय आप्तका (सच्चे देवका) लक्षण कहा, मार्गणा गुणस्थान और जीवोंका संक्षेप वर्णन किया, संसारकी स्थिति

नः । द्वाचत्वारिंशदब्दाते परिनिष्ठितदिग्जय ॥ ६५९ ॥ कृतांजलिभिरासेव्यो देवखेचरभूचरैः । अग्रजाग्रेसरश्चक्री सचक्र सर्वपूजित ॥ ६६० ॥ कृतमंगलनेपथ्यां प्रार्थ्यमानसमागमा । कातामिव विनीता तां शक्रवत्प्राविशन्पुरीं ॥ ६६१ ॥ लग्नगोचरसंशुद्धशुभवेलादिसंनिधौ । नरविद्याधरा व्यंतराधिपप्रमुखाः समं ॥ ६६२ ॥ सिंहासन समारोप्य श्रीमतो रामलक्ष्मणौ । तीर्थाबुपूर्णसौवर्णसहस्राष्टमहाघटैः ॥ ५६३ ॥ अभिषिच्य त्रिखंडाधिराज्ये सपूजितौ युवा । प्रवर्द्धमानलक्ष्मीकावाशारुद्धयशो जुषौ ॥ ६६४ ॥ इत्यारोपितरत्नोरुमुकुटौ मणिभूषणौ । अलंकृत्य महाशीर्भिः पूजयामासुरुत्सुका ॥ ६६५ ॥ पृथिवीसुदरीमुख्याः केशवस्य मनोरमा । द्विगुणाष्टसहस्राणि देव्य सत्योभवन्प्रियः ॥ ६६६ ॥ सीताद्यष्टसहस्राणि रामस्य प्राणवल्लभाः । द्विगुणाष्टसहस्राणि देशास्तावन्महीभुज ॥ ६६७ ॥ शून्यं पचाष्टरध्रोक्तशता द्रोणमुखाः स्मृता । पत्तनानि सहस्राणि पंचविंशतिसंख्यया ॥ ६६८ ॥ कर्वटा खत्रयद्व्येकप्रमिताः प्रार्थितार्थदाः। मटवास्तत्प्रमाणाः स्युः सहस्राण्यष्टखेटकाः ॥ ६६९ ॥ शून्यसप्तकवखव्धिमिता ग्रामा महाफलाः । अष्टद्विसम्मिता द्वीपाः समुद्रातर्वर्तिन.॥

गमकी प्रार्थना करनेवाली कांताके समान उस अयोध्या नगरीमें इद्रके ममान लक्ष्मणने प्रवेश किया ॥६५८–६१॥ तदनंतर किसी शुद्ध लग्न और शुभ मुहूर्तमें मनुष्य विद्याधर और व्यंतरदेवोंके मुखिया लोगोंने इकट्ठे होकर श्रीमान् राम लक्ष्मणको सिंहासनपर विराजमान किया तथा तीर्थोंके जलसे भरे हुए सुवर्णके एकहजार आठ बडे २ कलशोंसे उन दोनों भाइयोंका अभिषेक किया । इसतरह उन्हें तीनों खंडोंके साम्राज्यपर विराजमानकर प्रार्थनाकी आपकी लक्ष्मी सदा वढती रहे और आपका यश सब दिशाओंमें फैलकर व्याप्त हो जाय । इसतरह प्रार्थना कर रत्नोंके बडे भारी मुकुट और मणियोंके आभूषण पहिनाकर उनका अलंकार किया और बडी उत्कंठासे अनेक आशीर्वाद देकर उनकी पूजाकी ॥ ६२–५५ ॥ लक्ष्मणके पृथ्वी सुंदरी आदि लक्ष्मीके समान सोलह हजार सुंदर रानियां थीं और रामचंद्रके सीता आदि आठ हजार प्राणप्यारी रानियां थीं इसीतरह सोलह हजार देश सोलह हजार आधीन राजा थे नौ हजार आठ सौ पचास द्रोणमुख थे और पचीस हजार पत्तन थे, ॥ ६६–६८ ॥ इच्छानुसार फल देनेवाले बारह हजार कर्वट थे, बारह हजार मटंब थे और आठ हजार खेटक थे ॥ ६९ ॥ महाफल देनेवाले अडतालीस करोड गांव थे और समुद्रके भीतरके अट्ठाईस द्वीप थे ॥ ७० ॥ इसीतरह व्यालीस लाख बडे २ हाथी थे, और नौ करोड घोडे थे ॥ ७१ ॥ तथा व्यालीस करोड बडी शूर वीर पैदल सेना थी और आठ हजार गणबद्ध नामके देव थे ॥ ७२ ॥ बलभद्र रामचंद्रके अपराजित नामका हलायुध अमोघ नामके तीक्ष्ण बाण कौमुदी नामका गदा और रत्नावर्तसिका नामकी माला ये चार महारत्न थे और उनकी सबकी अलग अलग एक एक हजार यक्षदेव रक्षा करते थे ॥

ण ॥ ६४९ ॥ रत्नहारं तिरीटं च कुंडलं शरमप्यमुं । तीर्थ्यपूर्णकुंभातर्गतमस्मै ददौ सुर ॥ ६५० ॥ ततोनुजलधिं गत्वा वैजयंताख्यगोपुरे । वशीकृत्य यथाप्राच्य तथा वरतनुं च त ॥ ६५१ ॥ कटकं सागद चूडामणिं मौलिविभूषण । ग्रैवेयक ततश्चक्री कटीसूत्रं च लब्धवान् ॥ ६५२ ॥ तत प्रतीचीमागत्य सबलः सिंधुगोपुरे । प्रविश्याब्धि प्रभासं च विनतीकृत्य पूर्ववत् ॥ ६५३ ॥ मालां सतानकाख्याना मुक्ताजालप्रलंबक । श्वेतच्छत्र ततो भूषण न्यन्यान्यपि चाददौ ॥ ६५४ ॥ तत सिंधोस्तटेगच्छन् प्रतीचीखंडवासिन । स्वकीया श्रावयित्वाज्ञां सारवस्तूनि चाददत् ॥ ६५५ ॥ ऐंद्रस्य शाभिमुखो भूत्वा विजयार्द्धनिवासिनः । विनिमय्य गजाश्वास्त्रविद्याधकुमारिकाः ॥ ६५६ ॥ रत्नानि चात्मसात्कृत्य पूर्वखंडनिवासिना । विधाय करदान् म्लेच्छ न् विजयी निर्गतस्ततः ॥६५७॥ द्विगुणाष्टसहस्राणि पट्टबध न् महीभुजः । दशोत्तरशतख्यातपुराधीशान् खगेशिनः ॥ ६५८ ॥ त्रिखंडवासिदेवांश्च विधायाज्ञाविधायि-

कलशमें रत्नोंका हार मुकुट कुडल और वह वाण रखकर लक्ष्मणकी भेंट किया ॥ ६५० ॥ तदनंतर समुद्रके किनारे किनारे जाकर बैजयंत नामके बडे दरवाजेपर पहुचे और पहिले कहे अनुसार वहांपर वरतनु नामके देवको वश किया ॥ ५१ ॥ तथा उसदेवसे कटक, अंगद, चूडामणि सुंदर मौलिसे सुशोभित हार और एक करधनी लक्ष्मणको प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ तदनंतर वे दोनों ही भाई सेनासहित पश्चिमकी ओर वढे और सिंधु नदीके बडे दरवाजेसे समुद्रमें घुसकर पहिलेके समान प्रभास नामके देवको अपने वश किया ॥ ५३ ॥ उस प्रभास देवने संतानके फूलोंकी एक माला मोतियोंकी जाली लटकता हुआ एक सफेद छत्र तथा और भी अनेक आभूषण लक्ष्मणको दिये ॥ ५४ ॥ इसके बाद सिंधु नदीके किनारे किनारे जाकर पश्चिमकी ओरके म्लेच्छ खंडके निवासियोंको अपनी आज्ञा सुनाई और वहांकी सब अच्छी अच्छी चीजें अपने आधीन कीं ॥ ५५ ॥ फिर दोनों भाई पूर्वकी ओर मुडकर निकले विजयार्द्ध पर्वतपर रहनेवाले विद्याधरोंको वश किया तथा हाथी घोडे शस्त्र विद्याधरोंकी कन्याएं और अनेक रत्न अपने आधीन कर उन दोनों विजयी कुमारोंने पूर्व खंडके म्लेच्छ देशके राजाओंको करदेनेवाला बना दिया और इस तरह वहांसे निकलकर चले ॥ ५६–५७ ॥ इसतरह चक्रवर्ती लक्ष्मणने सोलह हजार पट्टबंध राजाओंको एक सौ दश प्रसिद्ध नगरियोंके स्वामी विद्याधरोंको तथा तीनों खंडमें रहनेवाले देवोंको अपना आज्ञाकारी बनाया और इसतरह व्यालीस वर्षमें अपना सब दिग्विजय समाप्त किया । उससमय देव विद्याधर और भूमिगोचरी सब लोग हाथ जोडकर उसकी सेवा कर रहे थे वडे भाई रामचंद्र उसके आगे थे, चक्र उसके साथ था, सब लोग उसकी पूजा (आदर सत्कार) कर रहे थे इसतरह सबतरहके मांगलिक वस्त्राभरण पहिने हुए समा-

तसिद्धय: ॥ ६३८ ॥ वहती जानकी दुःखमप्राणप्रियदर्शनात् । रामोपि तद्वियोगोत्थशोकव्याकुलिताशय ॥ ६३९ ॥ तौ परस्परसंदर्शात्परां प्रीतिमवापतु । तृतीयप्रकृतिं प्राप्य नृपो वा सापि वा नृपं ॥ ६४० ॥ आरभ्य विरहाद्वृत्तं यथास्तदपृच्छतां । अन्योन्यसुखदुःखानि निवेद्य सुखिनः प्रिया ॥ ६४१ ॥ कृतदोषो हतः सीता निर्दोषेति निरूप्य तां । स्वीकरोद्राघवः सतो विचारानुचराः सदा ॥ ६४२ ॥ ततोरिखेपुरोगच्छत्स्फुरत्पीठगिरौ स्थितः । तत्रैवाभिषवं प्राप्य सर्वतीर्थाम्बुसभृतैः ॥ ६४३ ॥ अष्टोत्तरसहस्रोरुसुवर्णकलशैर्मुदा । देवविद्याधराधीशैः स्वहस्तेन समुद्धृतैः ॥ ६४४ ॥ कोटिकाख्यशिलां तस्मिन्नुज्जह्रे राघवानुजः । तन्माहात्म्यप्रतुष्टः सन् सिंहनादं व्यधाद्बलः ॥ ६४५ ॥ तन्निवासी सुनन्दाख्यो यक्षः संपूज्य तौ मुदा । असिं सौनन्दकं नाम्ना समानं चक्रिणेदित ॥ ६४६ ॥ अनुगगं ततो गत्वा गंगाद्वारसमीपगे । वने निवेश्य शिबिरं रथमारुह्य चक्रभृत् ॥ ६४७ ॥ गोपुरेण प्रविश्याब्धिं निजनामांकितं शरं । मागधावासमुद्दिश्य व्यमुचत्कुंचितक्रमः ॥ ६४८ ॥ मागधोपि शरं वीक्ष्य मत्वा स्वं स्वल्पपुण्यकं । अभिष्टुवन्महापुण्यश्चक्रवर्तीति लक्ष्म-

था तथा रामचंद्रका भी हृदय सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकसे व्याकुल हो रहा था ॥ ६३९ ॥ इसलिये वे दोनों ही परस्पर एक दूसरेको देखकर बडे ही प्रसन्न हुए । रामचंद्र तीसरी भिन्न प्रकृति सीताको पाकर और सीता रामचंद्रको पाकर विरहसे लेकर सब वृत्तांत एक दूसरेसे पूछने लगे तथा दोनोंने अपने अपने सुख दुःख कह सुनाये ॥ ६४०-६४१ ॥ रावण अपराधी था वह तो मारा ही गया और यह सीता निर्दोष है यही समझकर रामचंद्रने सीताको स्वीकारकर लिया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग सदा विचारके अनुसार ही चलते हैं ॥ ६४२ ॥ तदनंतर वे दोनों ही भाई लंकासे निकलकर पीठ नामके सुंदर पर्वतपर ठहरे, वहांपर देव और विद्याधरोंके राजाओंने अपने हाथसे उठा उठाकर सब तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक हजार आठ सुवर्णके कलशोंसे दोनों भाइयोंका अभिषेक किया ॥ ६४३- ६४४ वहींपर लक्ष्मणने कोटिशिला उठाई और उसके महात्म्यसे संतुष्ट होकर रामचंद्रने सिंहनाद किया ॥६४५॥ वहांके रहनेवाले सुनंद नामके यक्षने बडी प्रसन्नतासे उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और चक्रके ही समान सानंद नामकी तलवार लक्ष्मणको दी ॥ ६४६ ॥ तदनंतर वे दोनों भाई गंगाके किनारे किनारे गये और गंगाद्वारके (जहां गंगा समुद्रमें मिलती है) समीप ही वनमें डेरे डाल दिये । लक्ष्मण रथपर सवार होकर गोपुरके (बडे दरवाजेके) रास्ते समुद्रमें गया और अपने दोनों पैर कुछ सकोडकर मागधदेवके निवासस्थानको निशाना बनाकर अपना नाम लिखा हुआ बाण छोडा ॥ ६४७-६४८ ॥ बाणको देखकर मागधने भी अपनेको थोडा पुण्यवान माना और यह महापुण्यवान् है चक्रवर्ती है यही समझकर लक्ष्मणकी स्तुतिकी ॥ ६४९ ॥ उस देवने तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक

६२८ ॥ चक्रेण विक्रमेणेव मूर्तीभूतेन चक्रिणा । तेन तेन शिरोग्राहि त्रिखंड वा खगेशितु ॥ ६२९ ॥ सोपि प्रागेव बद्धायुर्दुराचरादधोगतिं । प्रापदापत्करीं घोरां पापिनां कापरागतिः ॥ ६३० ॥ विजयाब्जं समापूर्य केशवो विश्वविद्विषा । अभयं घोषयामास स धर्मो जितभूभुजां ॥ ६३१ ॥ सदानशिष्ट पौलस्त्यमहामात्रादयोलिवत् । मलिना बलचक्रशपादपकजमाश्रयन् ॥६३२॥ मदोदर्यादितद्देवी दु खनोदनपूर्वकं । विभीषणाय लंकैश्यपट्टबंध विधाय तौ ॥ ६३३ ॥ दशकंठान्वयायातविश्वभुर्कि वितेरतुः । आभूता च त्रिखंडेशौ प्रचंडौ बलकेशवौ ॥ ६३४ ॥ अथ शीलवती सीतामशोकवनमध्यगा । सग्राम-विजयाकर्णनोदीर्णप्रमदान्विता ॥ ६३५ ॥ रावणानुजसुग्रीवपवमानात्मजादय । गत्वा यथोचितं दृष्ट्वा ज्ञापयित्वा जयोत्सव ॥ ६३६ ॥ समयुजत रामेण सम लक्ष्मीमिवापरा । महामणि वा हारेण कुशला कवयोथवा ॥ ६३७ ॥ वाच मनोहरार्थेन संतो धर्मेण वा धियं । मद्भृत्यमित्रसबधाद्भवतीप्सि-

लक्ष्मणने उसी चक्रसे तीन खंडके समान रावणका सिर काटकर अपने आधीन कर लिया ॥ ६२८—२९ ॥ उस रावणने अपने दुराचरणोंसे पहिले नरकायुका बंधकर रक्खा था इसलिये मरकर वह अनेक दुःख देनेवाली घोर नरक गतिको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंको और कौनसी गति मिल सकती है ॥ ३० ॥ तदनंतर लक्ष्मण ने विजयका शंख पूरा और सब शत्रुओंको अभय देनेकी घोषणाकी सो ठीक ही है क्योंकि जीतनेवाले राजाओंका यही धर्म है ॥ ३१ ॥ उसीसमय रावणके बचे हुए महामंत्री आदि लोगोंने भ्रमरोंके समान मलिन होकर रामचंद्र और लक्ष्मणके चरण कमलोंका आश्रय लिया ॥ ३२ ॥ मंदोदरी आदि रानियां जो दुःखसे रो रही थी उन्हें समझा बुझाकर उनका दुःख दूर किया और फिर दोनों भाइयोंने विभीषण को लंकाका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ तथा रावणकी सब विभूति उसे समर्पण कर दी । इसतरह रामचंद्र और लक्ष्मण दोनों भाई बलभद्र और नारायण होकर तीन खंडके स्वामी हुए ॥ ३४ ॥

अथानंतर—शीलवती सीता अशोक वनमें बैठी थी और युद्धमें रामचद्रकी विजय सुनकर बडी ही प्रसन्न हो रही थी ॥ ३५ ॥ विभीषण हनुमान और सुग्रीव आदि मुख्य लोग उसके पास गये, यथायोग्य रीतिसे उसके दर्शन किये और सबने विजयोत्सवकी खबर सुनाई ॥ ३६ ॥ जिसप्रकार महामणिको हारमें लगा देते हैं अथवा कुशल कवि अपनी वाणीको मनोहर अर्थके साथ संबद्धकर देते हैं अथवा सज्जन लोग अपनी बुद्धिको धर्मके साथ सबध कर देते हैं उसीप्रकार दूसरी लक्ष्मीके समान सीता रामचंद्रसे मिलाई, सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे सेवक और मित्रोंके संबंधसे इष्ट सिद्धियां हो ही जाती हैं ॥ ३७—३८ ॥ प्राणप्रियके दर्शन न होनेसे जानकीको अपार दुःख हो रहा

सर्वान् गृह्णान् अर्पयितु तदा । निःशक्तिर्वीतवानेतानिति श्रकाविभायिनः ॥ ६०६ ॥ इतस्ततो भटा व्यग्रा समरे अजगंगकाः । अमर्यस्तंतकस्यापि वीक्ष्यमाणस्य भीरसं ॥ ६०७ ॥ वाजिनोत्र समुच्छिन्नचरणाः मस्वशालिन. । अगेनैव समुत्थातुमुद्यतिस्मोजितौजसः ॥ ६०८ ॥ अभानिभा भटोन्मुक्तशरनाराचकीलिता । प्रक्षरद्धातुनिष्पदगिरयो वातपवेणय: ॥६०९॥ चक्राद्यवयर्वैर्भग्नैर्विक्षिप्ता सर्वतो रथा । भांतिस्म भिन्नपोता वा तत्संग्रामाब्धिमध्यगा ॥ ६१० ॥ छिन्यान्येव बहून्यासीत्संग्रामो वलयोर्द्वयो । प्रायेण विमुखे दैवे स्व वल वीक्ष्य भगुरं ॥६११॥ सततो मायया सीताशिरश्छेद दशाननः । विधाय तव देवीय गृहाणेति रुषाक्षिपत ॥ ६१२ ॥ शिरस्तत्पश्यतोभर्तुहृदि मोहे कृतास्पदे । खेचरेश्वरमैन्यस्य रामोक्ष्य समरोत्सवं ॥ ६१३ ॥ सीता शीलवती क्वचिदपि स्पृष्टु त्वया विना । शक्तो नास्ति दशास्यस्य मायेय मात्रगाः शुच ॥६१४॥ नाथेति राघव तच्छमब्रवीद्रावणानुज । विभीषणस्य तद्वाक्य श्रद्धाय रघुनदनः ॥ ६१५ ॥ गजारिर्गजयूथ वा भास्करो वा तमस्तति । बल विभेदयामास सद्यो विद्याधरेशिन. ॥ ६१६ ॥ प्रकाशयुद्धमुज्झित्वा मायायुद्ध-

थे ॥ ६०७ ॥ जिनके पैर कट गये हैं ऐसे कितने ही प्रतापी और बलवान घोडे अपने शरीरसे ही उछाल मारनेकी कोशिश कर रहे थे ॥ ६०८ ॥ योद्धाओंके द्वारा छोडे हुए वाण और नाराचों (लोहेके वाण) से कीलित हुए हाथी ऐसे अच्छे जान पडते थे मानों जिसमें गेरूके झरने झर रहे हैं और जिनके ऊपर थोडेसे वैत खडे हैं ऐसे निश्चल पर्वत ही हों ॥ ६०९ ॥ टूटे हुए चक्र आदि शस्त्रोंके टुकडोंसे रथ चारों ओर भाग गये थे और वे ऐसे जान पडते थे मानों इस संग्रामरूपी महासागरके मध्यमें अलग अलग हुए जहाज ही हों ॥ ६१० ॥ इसतरह उन दोनों सेनाओंका युद्ध होते हुए बहुत दिन हो गये तब अपना भाग्य प्रतिकूल होनेसे रावणने अपनी सेना नष्ट होती हुई देखी तब वह बहुत ही संतप्त हुआ और उसने मायासे सीताका सिर काटकर (वह बनावटी कटा हुआ सिर था) क्रोधित होकर रामचंद्रके सामने फेंक दिया और कहने लगा कि लो यह रही तुम्हारी देवी सीता ॥ ६११–६१२ ॥ उस कटे हुए सिरको देखकर रामचंद्रके हृदयमें मोहका वेग प्रगट हो आया। इधर विभीषणने रावणकी सेनामें युद्धका उत्सव होता हुआ देखा तब वह रामचंद्रसे यथार्थ बात कहने लगा कि हे नाथ ! सीता शीलवती है उसे आपके विना कोई दूसरा छू नहीं सकता यह केवल रावणकी माया है इससे आप कुछ शोक मत कीजिये। विभीषणकी इस बातपर विश्वास रखकर रामचंद्र बहुत ही शीघ्र रावणकी सेनाको इसप्रकार नष्ट करने लगे जैसे सिंह हाथियोंके समूहको नष्ट करता है अथवा सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट कर डालता है ॥ ६१३–६१६ ॥ तब रावणने प्रकाश युद्धको छोडकर माया युद्ध करनेकी इच्छाकी और वह अपने पुत्रोंके साथ उडकर आकाशरूपी आंगनमें आगया ॥ ६१७ ॥ उस युद्धमें उस रावणको दुरीक्ष्य (जो देखा न जा सके) देखकर बहुत चतुर रामचंद्र और लक्ष्मण सिंह

निर्दित्सया। स पुत्रैः सह पौलस्त्यो लंघते स्तनभोगिण ॥ ६१७ ॥ त वीक्ष्य तद्रणे दक्षौ दुरीक्ष्य रामलक्ष्मणौ। गजारिविनतासूनुविनीताभ्यां समुद्यतौ ॥ ६१८ ॥ सुग्रीवाणुमदाद्यात्मविद्याधरबलान्वितौ। रावणेन समं रामो लक्ष्मणोप्यग्रसूनुना ॥ ६१९ ॥ सुग्रीवः कुंभकर्णेन मरुत्प्रविकीर्तिना। खरेण केतु रत्नादिरंगदश्चेंद्रकेतुना ॥ ६२० ॥ इंद्रवर्माभिधानेन कुमुदो युद्धविश्रुतः। खरदूषणनाम्नापि नीलो मायाविशारदः ॥ ६२१ ॥ एवमन्येपि तैरन्यै रामभृत्याः रणोद्धताः। दशास्यनायकैः सार्द्धं मायायुद्धं व्यकुर्वत ॥६२२॥ तदा रामेण संग्रामे परिभूतं दशाननं। अवलोक्येंद्रजिन्मध्यं प्राविशद्वास्य जीवितं ॥६२३॥ तं शक्त्याघ्नत्तद्रामस्तं निरीक्ष्य खगाधिपः। कुपित्वाऽधावदुद्दिश्य सशस्त्रं लक्ष्मणाग्रजं ॥ ६२४ ॥ तन्मध्ये लक्ष्मणस्तूर्णमभूत दशकंधरः। मायागजं समारुह्य व्यधान्नाराचपंजरे ॥ ६२५ ॥ प्रहारावरणेनापि प्रतापी गरुडध्वजः। सिंहपोत इवोद्दप्तो दुर्निवारोरिवारणैः ॥ ६२६ ॥ तत्पंजरं विभिद्यासौ निर्ययौ निजविद्यया। दृष्ट्वा तद्रावणः क्रुद्ध्वा प्रतीतं चक्रमादिशत् ॥ ६२७ ॥ सिंहनादं तदाकुर्वन् गगने नारदादयः। वाहौ प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणे स्वस्य तिष्ठता ॥

वाहिनी और गरुडवाहिनी विद्या लेकर अर्थात् उन विद्याओंके रथपर सवार होकर लडनेको तैयार हुए ॥ ६१८ ॥ उनके साथ साथ सुग्रीव हनुमान आदि सब साथी विद्याधर तैयार हुए रावणके साथ, रामचद्र, इंद्रजीतके साथ लक्ष्मण, कुंभकर्णके साथ सुग्रीव, रविकीर्तिके साथ हनुमान्, खरके साथ कमलकेतु, इंद्रकेतुके साथ अंगद, इंद्रवर्माके साथ युद्धमें प्रसिद्ध कुमुद, खरदूषणके साथ माया करनेमें चतुर नील तथा और भी रावणके अनेक योद्धाओंके साथ उद्धत ऐसे रामचंद्रके अनेक योद्धा रावणके मुखिया लोगोंके साथ माया युद्ध करने लगे ॥ १९–२२ ॥ उसीसमय इंद्रजीतने देखा कि रामचंद्र रावणको दवाये जा रहे हैं उसका तिरस्कार कर रहे हैं यह देखकर रावणके जीवनके समान वह वीचमें ही घुस पड़ा ॥ २३ ॥ परंतु रामचंद्रने उसे शक्तिकी भारी चोट दी यह देखकर रावण क्रोधित हुआ और शस्त्रोंसहित दौडकर रामचंद्रके ऊपर आया ॥ २४ ॥ इसी वीचमें लक्ष्मण वडी शीघ्रतासे उन दोनोंके वीचमें आगया तव रावणने मायामयी हाथीपर सवार होकर लक्ष्मणको नाराच पंजरमें घेर लिया अर्थात् उसे वाणोंसे ढक लिया परंतु गरुडकी ध्वजा फहरानेवाला लक्ष्मण प्रहारावरण नामकी विद्यासे वडा ही प्रतापी था सिंहके बच्चेके समान उद्धत था और शत्रुरूप हाथियोंसे रोका नहीं जा सकता था, इसलिये वह अपनी विद्यासे ही, उस पंजरको तोडकर वाहर निकल आया। यह देखकर रावण वहुत ही क्रोधित हुआ, और उसने क्रोधित होकर विश्वासपात्र चक्रको आज्ञा दी ॥ १६––१८ ॥ उससमय नारद आदि आकाशमें सिंहनाद करने लगे। वह चक्र प्रदक्षिणा देकर साक्षात् मूर्तिको धारण करनेवाले पराक्रमके समान लक्ष्मणके दाहिने हाथपर आकर ठहर गया, तव

मर्मज्ञान् विजिगीषवः । प्रघातमूर्च्छित कश्चित्प्रवहल्लोहितो भटः ॥ ५९६ ॥ आपत् गृद्ध्रपक्षानिलो दैवनोऽन्वहून पुनः । नीयमानमिवात्मानं वीक्ष्यान्यो देवकन्यया ॥ ५९७ ॥ सोत्सवः सहसोदस्थात्सहासो दरमूर्च्छितः । वाणाङ्किते रणतूर्यैरणरंगे निरंतरं ॥ ५९८ ॥ नृत्यत्कबंधके सद्य शरच्छादितमंडपे । बद्धान्त्रजालमालोन्नो बहलासृग्भवाचितः ॥ ५९९ ॥ राक्षसेन विवाहेन वीरलक्ष्मीं समाक्षिपत् । डाकिन्यश्चद्रुतं नेदुरारुवन् भैरवं शिवा ॥ ६०० ॥ ऊर्ध्ववक्त्रमवमद्वन्हिविस्फुलिंगविभीषणं । उत्क्षिप्तकर्तिकाजालमलल्लोलकपालभृत् ॥ ६०१ ॥ अतिपातनिपीतास्रमगमीद्राक्षसीगण । निशातशरनाराचचक्राद्युपनिपातनात् । नि प्रभं निःप्रतापं च तदाभूदर्कमंडलं । स्याद्वादिभिः समाक्रातकुवादिकुलवत्तदा ॥ ६०३ ॥ दशाननबलान्यापन् भग राघवसैनिकैः । इति प्रवृत्ते समामे सुचिरं तद्रणांगणे ॥ ६०४ ॥ मृताः केचित्पुनः केचित्प्रहताः प्राणमोक्षणे । अक्षमाः पापकर्माण स्थिताः कंठगतासवः ॥ ६०५ ॥ समवर्ती नरान्

को ऐसा मालूम हो रहा था कि देवकन्या मुझे उत्सवके साथ ले जा रहीं हैं इसीलिये वह हंसता हुआ एक साथ उठ खडा हुआ था और फिर वीचमें भी मूर्छित हो गया था अर्थात् मर गया था । वह युद्धस्थल वाणोंसे भर रहा था युद्धके वाजोंसे गूंज रहा था उसमें कटे हुए धड सदा नृत्य करते रहते थे और उसपर वाणोंका मंडप छाया हुआ था ऐसे युद्धस्थलमें जिसकी सब अंतडियोंका समूह वध रहा है और जो वहुतसे वहते हुए खूनसे पूजित हो रहा है ऐसा कोई योधा राक्षस नामका विवाहकर (जवर्दस्ती) वीर लक्ष्मीको अपनी ओर खींच रहा था । वहांपर डाकनियां खूब नाच रही थीं और ऊपरको मुहकर उगलते हुए अग्निके फुलिंगोंसे भयानक ऐसे सियार (गीदड) खूब रो रहे थे । जिनकी कैंचियां ऊपरको उठी हुई हैं और जो लटकते हुए चंचल कपाल पहिने हुए हैं ऐसे राक्षसियोंके समूह वहुत पी जानेसे पिये हुए सब खूनको उगल रहे थे । वडे तेज वाण और नाराचोंके समूह आदि अनेक शस्त्रोंके चलनेसे उससमय सूर्य मंडल भी कांति और प्रताप रहित हो गया था । जिसप्रकार स्याद्वादको माननेवाले लोग कुवादियोंके समूहोंपर आक्रमण करते हैं उसीप्रकार रामचंद्रकी सेनाने रावणकी सेनाको छितर वितर कर दिया था । इसतरह उस युद्धस्थलमें संग्राम होते होते वहुत दिन हो गये ॥ ५५६–६०४ ॥ कितने ही लोग मर गये कितने ही घायल होगये और कितने ही पापी प्राण छोड न सके इसलिये कंठगत प्राण होकर पडे थे ॥ ६०५ ॥ यमराज सब मनुष्योंको निगल तो गया था परंतु पचा नहीं सका था इसीलिये शंका करनेवाले लोग ऐसे जानने लगे थे मानों यमराजने पचानेमें असमर्थ होकर ही उन सबको उगल दिया हो ॥ ६०६ ॥ जिनके अंग छिन्न भिन्न होगये हैं ऐसे कितने ही योधा उस युधस्थलमें इधर उधर भाग रहे थे और देखनेवाले यमराजको भी भयानक रस उत्पन्न कर रहे

पुरुषार्थत्रयं चैतदेवेत्यन्योन्ययुध्यते। नासद्वले मृतिं वीक्षे कस्यापि स पराभव ॥५८८॥ ममेति मन्यमानोन्य प्राग्युध्वाम्रियत स्वयं। अयुंध्यतैवमुत्क्रोधा सर्वशस्त्रैरनारत॥५८९॥ सव्यापसव्यमुक्तार्धमुक्तामुक्तैरनाकुल। आनीतमार्गणेनैव मार्गणामार्गमात्मन ॥५९०॥ मध्ये विधाय गत्वा द्राक् परं प्रपतिताः परे। दूरं त्यक्त्वा गुणान्वाणैस्तीक्ष्णैः श्रोणितपायिभिः॥५९१॥ ऋजुत्वाज्जहिरे प्राणान् गुणोपि न गुणः खले। न वैरं न फलं किंचित्तथाप्यघ्नन् शरा परान् ॥५९२॥ परप्रेरितवृत्तीना तीक्ष्णानामीदृशी गति.। नाना खगाः खगान् जघ्नुर्वद्धवैराः खगा इव ॥ ५९३ ॥ तृणाय मन्यमानाः स्वान् प्राणान् पापा परस्परं। लक्ष्यवद्धात्मदृष्टयन्वितासुपातिसितैः शरैः ॥ ५९४ ॥ धन्विनः पातयतिस्म गिरीन्वा करिणो बहून्। एकैनैकः शरेणेभमवधीन्मर्मभेदिना ॥ ५९५ ॥ स्वीकुर्वन्त्यतएवा-

और हम लोगोंके ये ही तीन पुरुषार्थ हैं यही समझकर कोई योधा किसी दूसरे योधासे लड रहा था । मैं अपनी सेनामें न तो किसीकी मृत्यु देखूंगा और न किसीका तिरस्कार देखूंगा ॥ ५८८ ॥ यही मानकर कोई योधा स्वयं सबसे पहिले लडकर मरगया था, तीव्र क्रोध करते हुए सब योधा दायें बायें दोनों हाथोंसे वाण आदि छोडने योग्य वरछी आदि आधे छोडने योग्य और तलवार आदि न छोडने योग्य ऐसे सब तरहके शस्त्रोंसे विना किसी व्याकुलता और अवकाशके खूब लड रहे थे। दोनों ओरसे वाण छोडे जा रहे थे वे वाण बीचमें ही परस्पर एक दूसरेको तोडकर और इसतरह अपना रास्ता बनाकर शत्रुओंकी सेनामें पड रहे थे । गुण अर्थात् धनुषकी डोरीको बहुत दूर छोडकर तीक्ष्ण और खून पीनेवाले वाण सीधे होकर भी प्राणोंका नाश कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंके गुण गुण नहीं गिने जाते हैं । वाणोंकी न तो किसीके साथ शत्रुता थी और न उन्हें कुछ फल ही मिलता था तथापि वे शत्रुओंका घात कर रहे थे ॥ ५८९-५९१ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि दूसरोंकी प्रेरणासे काम करनेवाले तीक्ष्ण पुरुषोंकी ऐसी ही गति होती है। जिनकी परस्पर एक दूसरेसे शत्रुता है ऐसे अनेक पापी विद्याधर पक्षियोंके समान अपने प्राणोंको तृणके समान मानकर परस्पर एक दूसरे विद्याधरोंको मार रहे थे। बहुतसे धनुष धारण करनेवाले लोग निशानेपर लगाये हुए तथा जिनपर अपनी दृष्टि लगी हुई है ऐसे प्राणोंको नाश करनेवाले तीक्ष्ण वाणोंसे पर्वतोंके समान बहुतसे हाथियोंको गिरा रहे थे । कितने ही लोगोंने अपने एकही, मर्म भेदी वाणसे हाथीको मार गिराया था सो ठीक ही है क्योंकि इसीलिये जीतनेकी इच्छा करनेवाले लोग दूसरे मर्मके जानकारोंको स्वीकार करते हैं । कोई योधा चोटसे मूर्छित होकर खूनसे तरवतर हो गया था ॥ ५८९-५९५ ॥ तथा आए हुए गीध पक्षियोंकी सासोंकी वायुसे सचेत होकर फिर बहुतोंको मारने लगा था । अन्य किसी योधा

शेषवोधविध्वंसकारणे ॥ ५७९ ॥ महाभये वा संप्राप्ते रणविघ्नविधायिनि । पुरानार्जितपुण्ये वा समस्तनयनाप्रिये ॥ ५८० ॥ रजस्येवं नमोभागलंघिन्याहि: तरंहसि । मूर्छितं गर्भगं कुड्यलिखित चातिशय्य तत् ॥ ५८१ ॥ बलं कलकलं किंचिद्विचेष्टमभवत्तदा । विध्वस्तवैरिभूपालचित्तक्षोभोपमे शनैः ॥ ५८२ ॥ पृथौ तस्मिन् रज क्षोभे प्रशांते सति सक्रुधः । प्रस्पष्टदृष्टिसंचारा सेनानायकचोदिताः ॥ ५८३ ॥ गतिप्रपातसंशुद्धा नवाब्दा वा धनुर्धराः । शरवृष्टिं विमुंचतो हृदयानि विरोधिनां ॥ ५८४ ॥ कुर्वंति स्मापरागाणि सद्भटानां रणागणे । युध्यंतेस्माहवोत्साहात्तेपि तैरेव चोदिताः ॥ ५८५ ॥ द्विषतो वा न सत्वामित्र्यक्तिः स्यात्सुहृद सतां । मया मज्जीवितं दातुं नृपाज्जीवितमाददे ॥ ५८६ ॥ तस्य कालोयमित्येको व्यतरत्तदृण रणे । भृत्यकृत्यं यशः शूरगतिश्चात्र त्रयं फलं ॥ ५८७ ॥

मुक्त होनेसे अर्थात् समयपर फहराई जानेसे मुनियोंके मार्गमें चल रहीं सी जान पडती थीं ॥ ५७८ ॥ उससमय धूलि उडकर चारों ओर फैल गई थी और वह ऐसी जान पडती थी मानों सेनाके बोझसे खिन्न होकर पृथ्वी सांस ही ले रही हो अथवा पूर्णज्ञानको नाश करनेका कारण ऐसा मिथ्याज्ञान ही फैल गया हो अथवा उस युद्धमें विघ्न करनेवाला कोई बडा भारी भय ही आ गया हो अथवा जिसने पहिले जन्ममें पुण्य संपादन नहीं किया है वह जिसप्रकार सबके नेत्रोंको बुरा लगता है उसीप्रकार सबके नेत्रोंको बुरी लग रही हो इसप्रकार वेगरहित अर्थात् स्थिर रहनेवाली धूलि आकाशमें चारों ओर फैल गई तब सब सेना मूर्छित हुईके समान अथवा गर्भमें रहनेवालेके समान वा दीवालपर लिखे हुए चित्रके समान थोडी देर तक चेष्टा रहित हो गई और उसका सब कलकल शब्द शांत हो गया । जिसप्रकार शत्रुराजाको नष्टकर चित्तका क्षोभ धीरे धीरे शांत हो जाता है उसीप्रकार जब वह बडी भारी धूलि धीरे धीरे शांत हो गई और दृष्टिका कुछ संचार होने लगा अर्थात् कुछ दिखाई देने लगा तब सेनापति लोग युद्ध करनेकेलिये प्रेरणा करने लगे । आज्ञा पाते ही गमन करनेसे शुद्ध हुए नये बादलोंके समान धनुष धारण करनेवाले लोग बाणोंकी वर्षा करने लगे तथा उसी युद्धके मैदानमें शत्रुओंके अच्छे अच्छे योधाओंके हृदयोंको क्रोध रहित करने लगे अथवा उनके हृदयोंको खूनसे तरवतर करने लगे । उन सेनापतियोंके द्वारा प्रेरणा किये हुए वे योधा युद्धके उत्साहसे खूब ही युद्ध कर रहे थे, सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंसे मित्रोंका बल प्रगट होता है परंतु सज्जनोंका बल प्रगट नहीं होता । मैंने अपना जीवन देनेके लिये महाराजसे बहुत कुछ जीविका पाई है ॥ ५७९–५८६ ॥ अब यह उसके लौटानेका वा जीवन देनेका समय है यही समझकर कोई योधा उस युद्धमें अपना ऋण चुका रहा था युद्ध करनेमें एक तो सेवकका कर्तव्य पूरा होता है दूसरे यशकी प्राप्ति होती है और तीसरे शूरवीरोंकी गति मिलती है ये तीन फल मिलते हैं ॥ ५८७ ॥

रिण ॥ ५६९ ॥ पश्चात्प्रसारितागूगुर्ली विलंघ्य स्वपेचका । अभोरुहाकरावोयद्रक्तपुष्करशोभिनः ॥ ५७० ॥ परप्रणेयवृत्तित्वद्दर्भकानुविधायिन । क्रुपे-
वोत्थापयतोलीन् कर्णताले कटस्थितान् ॥ ५७१ ॥ सवलाका इवाभोदाः समुद्यद्ध्वलध्वजे । केचित्परमदामोदमाघ्रायाभो इवत्मनि ॥ ५७२ ॥ करै
प्रविकसत्पुष्करस्तैर्योद्धुं समुद्यताः । निशितोर्द्धाकुशाघातदलन्नियाणवारिता ॥ ५७३ ॥ मुहुर्विधूनमूर्द्धानः करेणुगणसन्निधा । प्रशातीभूतसरभा महामात्रा-
धिष्ठिता ॥ ५७४ ॥ मातगास्तुगदेहत्वादाक्रामत इवाखिल । सर्वतो निर्ययुर्वाचैर्जंगमा धरणीधराः ॥ ५७५ ॥ केतवश्चानुकूलालेरिता विद्विष प्रति ।
चेलुर्दंडान् परित्यज्य पुरो योद्धुमिवोद्यताः ॥ ५७६ ॥ नभमः शुद्धरूपस्य मलं जलधराकृतिं । अथवापनयंतो वा सच्छादितरवित्विषः ॥ ५७७ ॥
धृतदडप्रवृत्तित्वाद् वयोतीतानुकारिणः । काले विमुक्तिमत्वाच्च मुनिमार्गानुसारिण ॥ ५७८ ॥ बलावष्टभखिन्नावनिमेनि श्वसितसन्निभ । मिथ्याज्ञान इवा-

किया जायगा क्योंकि उनके दो दो चक्र होते हैं इसीतरह पर्वतके समान अगिले शरीरसे जो बहुत स्थूल हो रहे हैं ॥ ५६१-६९ पीछेकी ओर फैली हुई पूछसे जिनकी पूंछका नीचला भाग कुछ खुल रहा है, कमलके (कमलनालके) समान जिनकी सूंड है खिलते हुए लाल कमलके समान जिनका मुह है, दूसरोंपर प्रेम करनेका अभ्याम होनेसे जो बच्चोंके समान जान पडते हैं जो क्रोधमे ही मानों गंडस्थलपर बैठे हुए भ्रमरोंको अपने कानरूपी पखोंसे उडा रहे हैं, उडती हुई मफेद ध्वजाओंसे जो वगलाओंकी पंक्तियों सहित काले बादलोंके समान जान पडते हैं ऐसे कितने ही हाथी दूसरे हाथियोंके मदकी सुगंध सूघकर आकाशमें खिले हुए कमलके समान अपनी सूंडसे युद्ध करनेके लिये तैयार हुए थे । जिनकी नोक बहुत पैनी है ऐसे अंकुशोंकी चोटसे घायल होकर वे हाथी चलनेसे रोके जा रहे थे ॥ ५७०-५७३ ॥ और हथिनियोंके समुदायमें वे बार बार अपना मस्तक हिला रहे थे उनके सब आरंभ शांत हो गये थे, मुख्य मुख्य महायक राजा लोग उनपर बैठे हुए थे और स्थूल शरीर होनेसे वे ऐसे जान पडते थे मानों सब संसारपर ही आक्रमण करना चाहते हों इसप्रकारके वे ऊंचे हाथी चलते हुए पर्वतोंके समान चारों ओरसे निकलकर चल रहे थे ॥ ५७४-५७५ ॥ उससमय अनुकूल (पीछेकी) वायु होनेसे ध्वजाएं सब उस वायुसे उडकर शत्रुओंकी ओर (आगेकी ओर) जा रही थीं और ऐसी जान पडती थीं मानों अपने दंडोंको छोडकर युद्ध करनेके लिये सामने जानेको तैयार ही हुई हों ॥ ५७६ ॥ अथवा निर्मल आकाशमें जो बादलोंका मैल छाया हुआ है उसे दूर करने केलिये ही उड रही हों अथवा आच्छादित हुई फैली हुई सूर्यकी कांतिको ही दूर करनेकेलिये उड रही हों ॥ ५७७ ॥ अथवा वे ध्वजाएं दंड धारण कर रही थीं इसलिये वृद्धोंका अनुकरण कर रहीं सी जान पडती थीं अथवा समयपर

इव सप्रासा मधुरैः किंकिणीरवैः । विजय वा स्वसैन्यस्य घोषयंतो निरंतरं ॥ ५६० ॥ सपक्षा इव सपत्रकंकटा गगनांतरं । लिलंघयिषवो लोला जलफेनप्रसूनकैः ॥ ५६१ ॥ स्वपादनटनृत्तर्थमर्चयंतो धरामिव । हया यवनकश्मीरवाल्हीकादिसंद्भवाः ॥ ५६२ ॥ स्फुरदुत्खातखड्गांशुविलसत्सादिधिष्ठिता । महसैन्याब्धिसंभूततरंगाभाविनिर्गता ॥ ५६३ ॥ द्विषो भीषयितुं वोच्चर्हेषाघोषैर्विभूषणैः । स्वानुकूलानिला शस्त्रभांडा प्रोद्दंडकेतवः ॥ ५६४ ॥ संग्रामाम्भोनिधेः पोताः प्रचेलुः पृथवो रथाः । चक्रेणैकेन चेचक्री विक्रमी नस्त्वयोर्द्वयं ॥५६५॥ मत्वेति वा द्रुतं पेतुर्दिक्चक्राक्रमिणो रथाः । नायकाधिष्ठिता शस्त्रैः संपूर्णास्तूर्णवाजिन ॥ ५६६ ॥ समद्धाः सतु नो युद्धे बद्धकक्षा कथं रथाः । धावंतु पत्तयो वाहा गजाश्चेभि किमातुरैः ॥ ५६७ ॥ जयोस्मास्विति वा मंदं सभराः स्यंदना ययु । सन्मार्गगामिभि शस्त्रधारिभिश्चक्रवर्तिभि ॥ ५६८ ॥ रथैर्दिक्चक्रमाक्रम्य तैर्द्विचक्रं किमुच्यते । महीधरनिभैः पूर्वकायैरीदृग्गधा-

हुएके समान जान पडते थे ॥ ५९--६० ॥ पंखोंके समान जो वे घोडे कवच पहिने हुए थे उनसे ऐसे चंचल जान पडते थे मानों आकाशको उल्लघन करना ही चाहते हों, अपने फेन रूपी फूलोंसे अपने पैररूपी नटके नृत्य करने के लिये पृथ्वीका पूजन करते हुए के ही समान मालूम हो रहे थे। वे घोडे अरब कश्मीर और वाल्हीक देशोंमें उत्पन्न हुए थे, उनके सवारोंके हाथमें दैदीप्यमान और ऊंचेको उठी हुई तलवारोंकी किरणें सुशोभित हो रहीं थीं, महासेना रूपी महासागरमें उत्पन्न हुई लहरोंके समान वे घोडे चल रहे थे और जोर जोरसे हीमनेके शब्दरूपी आभूषणोंसे शत्रुओंको भय उत्पन्न कर रहे थे। इनके सिवाय वायु जिनके अनुकूल चल रही है जिनमें शस्त्ररूपी वर्तन भरे हुए है ऊचे ऊंचे दंडोंमें ध्वजाए फहरा रही हैं और जो संग्राम रूपी महासागरके जहाजसे जान पडते हैं ऐसे बडे बडे रथ भी वहांपर चल रहे थे चक्रवर्ती रावण यदि एक ही चकसे पराक्रमी गिना जाता है तो हम लोगोंके पास ऐसे दो चक्र (पहिये) हैं यही समझकर मानों सब दिशाओंमें आक्रमण करनेवाले रथ बहुत शीघ्र आकर संग्राममें पड रहे थे अर्थात् चारों ओरसे आ रहे थे। जिनके स्वामी भीतर बैठे हुए हैं जो शस्त्रोंसे भर रहे हैं तेज चलनेवाले घोडे जिनमें लग रहे हैं और युद्धके लिये जो कमर कसकर तैयार हैं ऐसे हमारे रथ किसतरह तैयार हो रहे हैं। वे सोच रहे थे कि पैदल चलनेवाली सेना चाहे आगे निकल जाओ और घोडा हाथी भी चाहे आगे भाग जाओ परंतु इन जल्दवाजोंसे क्या काम निगलता है जीत तो हमसे ही होगी यही सोचते हुए मानों वोझसे भरे हुए वे धीरे धीरे जा रहे थे। सन्मार्गपर चलने वाले, शस्त्रोंको धारण करने वाले, चक्रवर्तीसे यह समस्त दिक्चक्र वा दिशाओंका समूह आक्रमण किया जाता है, फिर भला रथोंसे तो कहना ही क्या है अर्थात् रथोंसे तो अवश्य ही सब दिशाओंका आक्रमण

भंवेत्प्रकृतिविभ्रम· ॥ ४३० ॥ इति गर्जन्समाक्रांततुगमातगसिंहवत् । रविकीर्तिं स्वसेनान्यं हरिणध्वजमादिशत् ॥ ४३१ ॥ युद्धायास्फाल्यता मेरी शत्रुपक्षक्षयावहा । इत्यादिष्टस्तदैवासौ तथा कृत्वाखिलं वल ॥ ४३२ ॥ कालांते कालदूतो वा संहसैकीचकार तत् । अथ निर्गत्य लंकाया विभक्तनिजसाधन ॥ ४३३ ॥ सुकुमेन निकुमेन कुंभकर्णेन चापरै । सहजैरिंद्रजिन्मुख्येनेंद्राख्येनेंद्रकीर्तिना ॥ ४३४ ॥ इंद्रवर्माभिधानेन तनुजैरपरैरपि । महामुखातिकायाख्यदुर्मुखाख्यैर्महाबलै ॥ ४३५ ॥ खरदूषणधूमाख्यप्रमुखैश्च खगेश्वरै । इव क्रूरग्रहैर्भास्वान्निदाघ: परिवारित: ॥ ४३६ ॥ त्रिजगद्ग्रसनालोलकाललीलां विडंबयन् । न तौ मम पुर: स्थातु समर्थौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४३७ ॥ तिष्ठतः शशगोमायू किं पुन संहतौ हरेः । अरावणं भवेदद्य जगदेतत्तयोः ॥ ४३८ ॥ सहावश्यमह ताभ्या पालयामि महीं न हि । इत्याय तर्कितायातनिजामंगलमालपन् ॥ ४३९ ॥ कालमेघमहागंधगजस्कंधमधि-

तब वह विचार करने लगा कि समयका विपरीतपना देखो हरिणोंने आकर सिंहको घेर लिया है । अथवा जिनकी मृत्यु समीप है उनको स्वभावमें भी भ्रम हो जाता है ॥५३०॥ जिसप्रकार बडे भारी हाथीके आक्रमण करने पर सिंह गर्जना करता है उसीप्रकार उसने गर्जनाकी और हरिणोंकी ध्वजाको धारण करनेवाले रविकीर्ति नामके अपने सेनापतिको आज्ञा दी ॥ ५३१ ॥ कि युद्धके लिये शत्रुओंके पक्षके नाशको सूचित करनेवाली मेरी (नगाडा) जल्दी बजाओ । रावणकी आज्ञानुसार सेनापतिने उसीसमय युद्धके नगाडे बजाये और प्रलयकालके अंतमें कालके दूतोंके समान अपनी सब सेना उसने एक जगह इकट्ठी की । तदनंतर अपनी सेनाका अलग अलग विभागकर वह रावण लंकासे निकला ॥ ५३२–५३३ ॥ उसके साथ साथ सुकुंभ निकुंभ कुंभकर्ण तथा और भी सब भाई थे सबसे मुख्य इंद्रजीत, इंद्रकीर्ति, इंद्रवर्मा, आदि सब पुत्र थे महामुख, अतिकाय, दुर्मुख, महाबल, खरदूषण और धूम आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्याधर थे । इसतरह क्रूर ग्रहोंसे घिरे हुए जेठ महीनेके सूर्यके समान वह रावण निकला ॥५३४-५३६॥ उससमय वह तीनों जगतको ग्रासकरनेके लोलुपी ऐसे कालकी लीलाको भी तिरस्कार कर रहा था तथा तर्क वितर्क कर रहा था कि राम लक्ष्मण मेरे सामने कभी नहीं ठहर सकते । क्या सिंहके सामने खरगोश और गीदड ठहर सकते हैं। आज उनके जीते जी यह संसार विना रावणके भले ही हो जाय परंतु उनके साथ साथ मैं पृथ्वीका पालन कभी नहीं कर सकता इसतरह अपने ही अमंगलका तर्क वितर्क करता हुआ रावण आया ॥५३७-५३९॥ उससमय रावण कालके मेघके समान महागंध नामके हाथीके स्कंधपर बैठा था, प्रतिकूल चलती हुई वायुसे पीछेकी ओर उडती हुई राक्षसके चिन्ह वाली ध्वजाओंसे सुशोभित हो रहा था, उसके आगे आगे सूर्यकी कांतिको भी तिरस्कार करनेवाला चक्र और छत्र

संसाधयन् स्थित । राक्षसादिमहाविद्या सिद्धावुपस्थितोभवत् ॥ ५१९ ॥ तद्विघ्नपूर्वकं लंकामवष्टभ्य निवेशनं । प्रयोजनमिति श्रद्दधत सीतापति प्रति ॥ ५२० ॥ नायकाभ्या ततः सुग्रीवानुमतो स्वसाधिता । दत्वा गरुडसिंहादिवाहन्यो बन्धमोचनी ॥ ५२१ ॥ हननावरणीं विद्याश्चतस्रोस्य पृथक् पृथक् । प्रज्ञप्तिविद्याविकृतविमानेन महाबल ॥ ५२२ ॥ लंकापुरबहिर्भागे तावेवेशयत स्म तौ । नभश्चरकुमारेषु तदाराभाज्ञया गिरिं ॥ ५२३ ॥ संप्राप्य युध्यमानेषु रावणस्याग्रसूनुना । संभूयेंद्रजिता यूयं युध्यध्वमिति सक्रुधा ॥ ५२४ ॥ प्रेषिताः खचराधीशाः प्राच्याः सर्वाश्च देवता । इयंतं कालमस्माभिर्भवत्पुण्यबलोदयात् ॥ ५२५ ॥ त्वयाभिलषितं कार्यं साधितं पुण्यसंक्षये । समर्था नेत्यसावुक्तो व्यक्तं तामिर्दशाननः ॥ ५२६ ॥ भवतीभिर्वराकीभिर्यात किं मम साध्यते । हन्म्यहं पौरुषेणैव नृमृगान् सहखेचरान् ॥५२७॥ सहायैः साधितं कार्यं लज्जायै ननु मानिनां । इति क्रुद्धः पुरीमागात्तदासौ सहेंद्रजित् ॥५२८॥ दुश्चेष्टस्याप्तपुण्यस्य भूत भावि च नश्यति । परिवारमुखाद् ज्ञात्वा परैर्लंकोपरोधन ॥ ५२९ ॥ हरिर्णेहेरिराहन्द्वः पश्य कालविपर्ययं । अथवासन्नमृत्यूनां

५१९ ॥ इसलिये इससमय हम लोगोंका काम है कि उसमें विघ्न करें लंकाको घेर लें और उसमें घुस जांय । इसतरह विभीषणके कहे हुएको रामचंद्रने भी मान लिया ॥ ५२० ॥ तदनंतर सुग्रीव और हनुमानने अपनी सिद्धकी हुई गरुडवाहिनी सिंह वाहिनी, बंधमोचनी, और हननावरणी ये चार विद्याएं अलग अलग रामचंद्र तथा लक्ष्मणको दीं । इसके बाद दोनों भाइयोंने प्रज्ञप्ति विद्यासे अनेक विमान बनाकर अपनी सब सेना लंका नगरके बाहर मैदानमें जा ठहराई । जब इधरके सब विद्याधर कुमार रामचंद्रकी आज्ञा पाकर पहाडपर जाकर युद्ध करने लगे तब रावणके बड़े पुत्र इंद्रजीतने क्रोधित होकर सब विद्याधर और पहिलेके सब देवताओंको भेजा और कहा कि तुम सब लोग मिलकर उनके साथ युद्ध करो । तब पहिलेके सिद्ध किये हुए अथवा वशमें हुए देवता कहने लगे कि आपके बलवान पुण्यकर्मके उदयसे हमने इतने दिनतक तो आपकी इच्छानुसार सब कार्य सिद्ध किये परंतु अब आपका पुण्य कर्म क्षय हो गया है इसलिये हम कुछ नहीं कर सकते इसतरह उन देवताओंने रावणसे स्पष्ट कह सुनाया ॥ ५२१–५२६ ॥ यह सुनकर रावण कहने लगा कि तुम नीच देवता भले ही चले जाओ तुमसे मेरा क्या काम निकलता है मैं अपने पुरुषार्थसे ही विद्याधरोंके साथ साथ सब मनुष्यरूपी हरिणोंको मार डालूंगा ॥ ५२७ ॥ अभिमानी लोगोंके लिये दूसरेकी सहायतासे कार्य सिद्ध करना लज्जाकी बात है । इसतरह क्रोधित होकर वह रावण उसीसमय इंद्रजीतके साथ नगरमें आया । देखो दुश्चरित्र करनेवाले यदि पुण्यवान भी हों तो भी उनका पहिलेका और होनहार सब नष्ट हो जाता है । परिवारके लोगोंके मुखसे उसने शत्रुके द्वारा लंकाके घिर जानेकी बात सुनी ॥ ५२८–५२९ ॥

न्नृप ॥ ५०७ ॥ सहायाश्चादिशत्तस्य विद्येशान् शौर्यशालिनः । लब्धाज्ञः सोपि संतुष्य सद्यो वानरविद्यया ॥ ५०८ ॥ प्रादुर्भावितदुःप्रेक्ष्यनानावानर-सेनया । द्रुत वाराशिमुल्लंघ्य विक्रमाद्वनपालकान् ॥ ५०९ ॥ आक्रम्य निग्रह कृत्वा वनभगं व्यधात्क्रुधा । क्रुद्धीकृतकराघोरं क्रोशंतो वनपालका ॥५१०॥ प्राविशन्नगरीं घोरां श्रावयंतोऽश्रुतश्रुतिं । तदा राक्षसविद्योद्यद्ध्वजमालोपलक्षिताः ॥ ५११ ॥ अभियाता पुरारक्षा योद्धुं पवननदन । अथानिलसुतादिष्टा वानरानीकनायका ॥ ५१२ ॥ तानभजन समुद्धृत्य प्रहृत्य वनपादपैः । तत स्फुरन्महाज्वालविद्ययासौ वहिःपुरं ॥५१३॥ निरधाक्षीदधिक्षिप्य रूक्षरक्षो वल बली । एव रावणदुर्वारप्रतापप्रोद्यतद्रुम ॥ ५१४ ॥ प्रोन्मूल्यवानरानीकनायको राममाययौ । सन्नाह्य तत्र तु स्थित्वा वल सग्रामसम्मुखं ॥ ५१५ ॥ नागतो रावण केन हेतुनेति विभीषण । अप्राक्षीदथ सोप्याख्यल्लकायां नास्ति रावणः ॥ ५१६ ॥ वालिलोकातरापत्तिं सुग्रीवाणुमतोरपि । विद्यावलावले-पित्वमवगम्य स्वय च सः ॥ ५१७ ॥ निवेश्य निजरक्षाया सुनमिंद्रजिदाह्वयं । अष्टोपवासमासाद्य सम्यग्नियमितेंद्रिय ॥ ५१८ ॥ आदित्यपादशैलेंद्रेविद्याः

मकी विद्यासे जो देखी न जा सके ऐसी बंदरोंकी सेनाके रूपमें बनगया। उसने शीघ्रही समुद्रको उल्लंघन किया और अपने पराक्रमसे वनकी रक्षा करनेवालोंपर आक्रमणकर उनका निग्रह किया तथा क्रोधसे रावणके सब वनका नाशकर डाला। तब बनके रक्षक लोग अपनी भुजाओंको ऊंचीकर तथा जोर जोरसे चिल्लाते हुए घोर (लोगोंसे भरी हुई) नगरीमें गये और जो बात कभी नहीं सुनी थी उसे सुनाने लगे। तब राक्षस विद्यासे जिनकी ध्वजाओंके समूह फह-रा रहे हैं ऐसे नगरके रक्षक लोग हनुमानसे लड़नेके लिये उसके सामने आये। यह देखकर हनुमानने भी बंदरोंकी सेनाके सेनापतियोंको आज्ञा दी और तदनुसार वे सेनापति लोग वनके वृक्षोंको उखाडकर उन्हींसे उनलोगोंको ताड-ना करते हुए मारने लगे। तदनंतर दैदीप्यमान महाज्वाल नामकी विद्यासे बलवान हनुमानने नगरके बाहर राक्षसों की रूखी सेनाको चारों ओरसे घेरकर जला दिया, इसतरह रावणके अनिवार्य प्रतापरूपी उगे हुए वृक्षको समूल नाश-कर बंदरोंकी सेनाका नायक वह हनुमान रामचंद्रके समीप आगया। तदनंतर सब सेनाको सजाकर युद्ध करनेके लिये सबलोग वहीं ठहर गये ॥ ५०६–५१५ ॥ इसके बाद रामचंद्रने विभीषणसे पूछा कि रावण युद्ध करनेके लिये अभी नहीं आया इसका क्या कारण है? इसके उत्तरमें विभीषणने कहा कि रावण लंकामें नहीं है ॥ ५१६ ॥ वालिका परलोक गमन तथा सुग्रीव और हनुमानके विद्या बलका अभिमान सुनकर उसने अपनी रक्षाके लिये इंद्रजीत नामके पुत्रको नियुक्त किया है तथा आठ दिनका उपवास धारणकर सब इंद्रियोंको वश कर आदित्यपाद नामके पर्वतपर विद्याओंको सिद्ध करता हुआ बैठा है राक्षसादि महाविद्याएं जब सिद्ध हो जायंगी तब वह वहांसे उठेगा ॥ ५१७–

शोवश्य भविष्यति । सज्ञानेन विनाशो मा वृषयत्ययशस्कर ॥ ४९८ ॥ निर्वासितोहं निर्भर्त्स्य देशाद्धितमुदाहरन् । इष्ट एव किलारण्ये वृष्टो देव इति श्रुतिः ॥ ४९९ ॥ पुण्यान्ममाथ संपन्ना यामि रामक्रमाबुजं । इत्यतर्गतमालोच्य विनिश्चित्य विभीषणः ॥ ५०० ॥ जलधेर्जलमुल्लंघ्य सौजन्यमिव सत्वरं । महानदीप्रवाहो वा वारिधिं राममासदत् ॥ ५०१ ॥ लक्ष्मणप्रमुखान्मुख्यान्वेलालीलावहान् बहून् । प्रत्युद्गमय्य विश्रभ्य तमानीय परीक्षया ॥ ५०२ ॥ सोपि ज्ञातानुभावत्वादेकीभावमुपागमत् । तत कतिपयैरेव प्रयाणैर्गतवद्बलं ॥ ५०३ ॥ जलधेस्तटमाश्रित्य सन्निविष्ट समततः । तदा तत्राणुमानित्थं राम विज्ञापयन्निमं ॥ ५०४ ॥ देवादेशोस्ति चेद्गत्वा लंका शौर्योजिहीर्षया । वनभंगेन ते शत्रोर्मानभग करोम्यहं ॥ ५०५ ॥ लंकादाहेन दाहं च देहस्याहि तकारिण । तथा सति स मानित्वादसौ चेदागमिष्यति ॥ ५०६ ॥ स्थानभ्रंशात्सुखोच्छेद्यो नागच्छेत्तेजसः क्षतिः । इति श्रुत्वास्य विज्ञप्तिं तदस्त्वित्यवद-

नाश होगा और अपयश करनेवाला यह नाश मुझे दूषित करेगा ॥ ४९८ ॥ इसके सिवाय इसने मेरा तिरस्कारकर मुझे देशसे निकाल दिया है सो तो मेरे लिये हित ही किया है क्योंकि यह मुझे इष्ट ही है " बादल जंगलमें ही जाकर बरसे " यह कहावत आज मुझे पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई है इसलिये आज मैं रामचंद्रके चरणकमलोंके समीप जाता हूं इसप्रकार विभीषणने चित्तमें विचार किया और ऐसा ही निश्चय करलिया ॥ ४९९–५०० ॥ उसने सुजनताके समान बहुत शीघ्र समुद्रका जल उल्लंघन किया और महानदीके प्रवाहके समान वह रामचंद्ररूपी समुद्रके समीप जा पहुंचा ॥ ५०१ ॥ तरंगोंकी लीलाको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदि अनेक बडे बडे योद्धा उसके आते ही खडे होगये सब उससे मिले, आदरसे ले आए और परीक्षाकर उसे अपनेमें मिला लिया वह विभीषण भी सब बातोंका जानकार था इसलिये वह परीक्षामें पास होकर शीघ्र ही उनमें मिल गया । तदनंतर वह चलती हुई सेना कितने ही मुकामकर समुद्रके किनारे जा पहुंची और वहां उसने चारों ओर अपने डेरे डाल दिये । उससमय वहांपर हनुमानने आकर रामचंद्रसे निवेदन किया कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो हमलोग अपनी शूरवीरताको प्रगट करनेकी इच्छासे लंकामें जायं और आपके शत्रु रावणके बनका नाश कर उसका मानभंग करें ॥ ५०२–५०५ ॥ इसके सिवाय लंकाको जलाकर अहित करनेवाले रावणका शरीर जलावें । ऐसा करनेसे अभिमानी होनेसे वह रावण यहांही आवेगा तथा यहां आनेपर स्थान भ्रष्ट होनेसे वह सुखपूर्वक नाश किया जा सकेगा । यदि वह यहां न आ सकेगा तो उसके प्रतापमें हानि पहुंचेगी । हनुमानका यह निवेदन सुनकर रामचंद्रने उसे जानेकी आज्ञा दी और बडे बडे शूरवीर विद्याधरोंको साथ देकर उसकी सहायता की । रामचंद्रकी आज्ञा पाकर और संतुष्ट होकर वह हनुमान् शीघ्रही वानर ना-

पोतभूत भवाब्धि किं तत्तरीतुं विनाशये: । प्राणैरपि यशः श्रेयं मता पाणैश्च तेन च ॥ ४८७ ॥ पाप कृत्वातरस्याचि क्षीणास्यदोऽयशश्चिक् । कस्येय दुःहिना सीता किं तत्र ज्ञायते त्वया ॥ ४८८ ॥ सुज्ञानमप्यविज्ञेय कामव्यामुग्धमानसः । अलौत्सुक्यमनाप्तेषु प्राप्तेषु परितोषण ॥ ४८९ ॥ भुजमानेषु वैरस्य विषयेषु न वेत्सि किं । अयोग्यायामनाथाया नाशहती वृथा रतिं ॥ ४९० ॥ माकृथाः पापदुःखापलेरभाकुपरयोषिति । आदेशः कीदृशः सोपि स्मार्यो वा भाविवेदिना ॥ ४९१ ॥ चक्रस्य परिपाक च प्रादुर्भूत च भावय । बलानामष्टम राम लक्ष्मण चार्द्धचक्रिणां ॥ ४९२ ॥ आमनति पुराणज्ञाः प्राज्ञ तत्र विचितय । यादृमार्पयतो दोषस्तादृगपंयतस्तथा ॥ ४९३ ॥ सीता नेति विनिश्चित्य ता रामाय समर्पय । इति लक्ष्मीलतावृद्धिसाधनं धर्मशर्मद ॥४९४॥ वचोऽवोचद्विचार्योच्चैर्यश कर्तुं शशिप्रभ । भाषा विभीषणार्थेत्र भाषमाणान् भीषणः ॥ ४९५ ॥ रुषितो रावणो दूतेनैकत्वमुपगम्य मे । पराभव सभामध्ये प्रागुस्मद्भमजीजन ॥ ४९६ ॥ संप्रत्यपि दुरुक्तोह त्वया सहजतावलात् । अवध्यो याहि मद्देशादित्यभाषत निष्ठुरं ॥ ४९७ ॥ सोपि दुश्चरितस्यास्य ना-

॥ ४८५–४८८ ॥ अथवा जिनका चित्त कामसे मोहित हो जाता है वे अपनी धारणा और मत्यमिज्ञानको अथवा अच्छे ज्ञानको भी भूल जाते हैं। क्या आप इनविषयोंकी दशाको नहीं जानते हैं जबतक ये प्राप्त नहीं होते तबतक तो इनमें बडी भारी उत्सुकता बनी रहती है, प्राप्त होनेपर इनमें संतोष रहता है और इनका उपभोग करनेपर इनमें नीरसता आ जाती है इसलिये अयोग्य, अनाथ, विनाशकी कारण तथा पाप और दुखोंका संचय करनेवाली परस्त्रीमें व्यर्थका प्रेम मतकर। आगामी कालमें होनेवाली बातोंके जानकार लोगोंकी क्या आज्ञा है उसे भी कुछ स्मरण करना चाहिये ॥ ४८९–४९१ ॥ तथा चक्रसे उत्पन्न होनेवाले फलका भी विचार कीजिये। पुराणोंके जानकार रामचंद्रको आठवां बलभद्र और लक्ष्मणको आठवां नारायण मानते हैं। हे विद्वान् आप इस बातका भी तो विचार कीजिये। सीताको समर्पण न करनेमें जितना दोष है उतना दोष उसको समर्पण करनेमें नहीं है इसलिये इन सब बातोंका निश्चयकर सीता रामचंद्रको समर्पण कर दीजिये। इसप्रकार विभीषणने बहुत अच्छी तरह विचारकर यशको चद्रमाके समान निर्मल करनेवाले, लक्ष्मीरूपी लताको बढानेवाले तथा धर्म और कल्याणको देनेवाले वचन कहे। इसतरहके वचन कहनेवाले विभीषणके लिये वह कठोर रावण क्रोधित होकर कठोर वचन कहने लगा कि पहिले तो तूने दूतके साथ मिलकर सभामें ही मेरा असह्य तिरस्कार किया था और अब भी तू मुझसे बुरे वचन कहता है तू मेरा भाई होनेसे मारने योग्य नहीं है इसलिये तू मेरे देशसे निकल जा ॥ ४९२–४९७ ॥ रावणकी यह बात सुनकर विभीषण चित्तमें विचार करने लगा कि यह दुश्चरित्री है इसलिये इसका नाश अवश्य होनेवाला है इसके साथ मेरा भी

४७८ ॥ परस्त्रीग्रहणं शौर्यं त्वदुपज्ञं भवेद् भुवि । मिथ्योत्तरेण किं मार्गविध्वंसोन्मार्गवर्तिन ॥ ४७९ ॥ दुर्द्धरं तव दुर्बुद्धेर्लोकद्वयभयावह । विषयानिषिद्धांश्च परित्यक्तु वयस्तव ॥ ४८० ॥ परामृशात्र किं युक्त निषिद्धविषयैषणं । विद्धि वैद्याधरीं लक्ष्मीमिमां तव गुणप्रियां ॥ ४८१ ॥ अनर्पयत सीतां त्वां त्यजत्यैव निर्गुण । अकार्यकारिणामत्र गणनीय किमप्रिम ॥ ४८२ ॥ स्व करोष्यभिलाषात्मकार्येण परयोषिति । प्रतिकूलोसि पुण्यस्य दुर्वृत्या पापसंचयात् ॥ ४८३ ॥ ततो ननु गुण देव विना दैवात्कुत श्रिय । परस्त्रीहरणं नाम पापं पापेषु दुस्तरं ॥ ४८४ ॥ विस्तरेण किमुक्तेन नेष्यते तत्तमस्तम । आस्तां तावददो भावि शाप' शीलालयश्रियः ॥ ४८५ ॥ अलमामूलतो दग्धुं कुल क्रोधविधायिनां । नानिच्छंतीं प्रतीच्छामीत्येकमेव तव व्रत ॥ ४८६ ॥

मुख्य हैं इसीलिये परस्त्रीके समर्पण करनेको दोष वतलाते हैं ॥ ४७७-४७८ ॥ अब संसारमें आपके कहे अनुसार परस्त्रीको ग्रहण करना ही शूरवीरता गिनी जायगी । आप अपनी दुर्बुद्धिसे जो यह मिथ्या उत्तर दे रहे हैं उससे दोनों लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाला और दुर्द्धर उन्मार्गकी प्रवृत्ति होगी और सुमार्गका नाश हो जायगा । जो विषय निषिद्ध नहीं हैं उनके भी त्याग करनेकी यह आपकी अवस्था है फिर भला आप विचार तो कीजिये अब इस अवस्थामें निषिद्ध विषयोंकी इच्छा करना क्या आपको योग्य है आप यही समझिये कि यह विद्याधरोंकी लक्ष्मी आपके गुणोंकी प्रिया है यदि आप रामचद्रको सीता समर्पण न कर देंगे तो यह आपको गुणहीन समझकर आज ही छोड जायगी । परस्त्रीकी अभिलाषा करनेरूप जो बहुत बुरा कार्य है उससे आप अपनेको अकार्य करनेवालोंमें मुख्य गिनने योग्य क्यों बना रहे हैं । इससमय आप दुराचरण करने और पापोंका संचय करनेसे पुण्यके प्रतिकूल हो रहे हैं ॥ ४७९–४८३ ॥ विना गुणोंके पुण्य नहीं होता और विना पुण्यके लक्ष्मी नहीं मिल सकती तथा परस्त्रीका हरण करना पापोंमें भी सबसे बडा पाप है ॥ ४८४ ॥ अधिक कहनेसे क्या लाभ है पाप तुझे सातवें नरकमें ले जायगा । इसलिये क्रोध करनेवालोंके कुलको समूल नाश करनेके लिये जबतक शीलकी भंडार स्वरूप सती सीता लक्ष्मीका होनहार शाप नहीं निकलता है तबतक अर्थात् उसके पहिले ही आप सीता रामचंद्रको समर्पणकर दीजिये । आपने जो "जो स्त्री मुझे न चाहेगी उसे मैं भी कभी नहीं चाहूंगा" यह जो आपने एक व्रत लिया था जो कि संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाजके समान है उसे क्यों आप नष्ट करते हैं । सज्जनोंको प्राण देकर भी यश खरीदना चाहिये परंतु आप मूर्ख हैं क्योंकि आप प्राण और यश दोनों देकर पाप तथा दूसरे कल्पकाल तक टिकनेवाला अपयश खरीद रहे हैं इसलिये आपको धिक्कार है क्या आप नहीं जानते हैं कि यह सीता किसकी पुत्री है ?

वषोषाख्यमोक्षस्थाने कृतार्चन ॥ ४६८ ॥ प्रज्ञिप्तिं साधयामास भटाष्टशतरक्षित. । सुग्रीवोपि महाविद्या पूजयामास सुव्रतः ॥ ४६९ ॥ सोपवासो गिरौ सम्मेदाख्ये शिद्धसिलातले । तथान्येपि स्वविद्यना खगा. पूजामकुर्वत ॥ ४७० ॥ एवं भूखेचराधीश वल चलितकेतन । रामलक्ष्मणसुग्रीवमरुत्नदननायक ॥ ४७१ ॥ करींद्रमकराकीर्णं तुरगमतरंगक । प्रलयाभोधिसकाशं लका प्रति चचाल तत् ॥ ४७२ ॥ लकापुरेप्यणुमतो विनिवृत्ता दशानन. । कुभकर्णादिभिर्नासदुग्रवशस्य भास्वतः ॥४७३॥ कर्मेदमुचित ख्यातपौरुषस्य तव प्रभो। स्त्रीरत्नमेतदुच्छिष्ट तदस्मादनुरोधत ॥४७४॥ विसृज्य तामिति प्रोक्तोप्यासक्तस्त्यक्तुमक्षमः । भूगस्तृणमनुष्यस्य रामनाम्नो वल किल॥४७५॥सीता नेतुमतोस्माकमुपर्यागच्छतीति वाक् । श्रूयतेय कथ सीतामोक्ष कुलकलककृत्॥४७६॥ इत्याख्यत्तद्वच सोढुमक्षमो रावणानुज ।सूर्यवंशस्य शौर्यं किं रामस्तृणमनुष्यकः ॥४७७॥ न शृणोसि वच पथ्य वधूना मदनाधक । परदारार्पण दोष वदन् दोषविदावर ॥

नामकी विद्या सिद्धकी उससमय एक सौ आठ योद्धाओंने उसकी रक्षाकी थी । इसीतरह सुग्रीवने भी अनेक व्रत और उपवास धारणकर सम्मेद पर्वतपर सिद्धशिलाके ऊपर अनेक महा विद्याओंकी पूजाकी थी। इसीतरह और भी सब विद्याधरोंने अपनी अपनी विद्याओंकी पूजाकी थी ॥ ४६८-४७० ॥ इसप्रकार जिसमें ध्वजाएं फहरा रही हैं, रामचद्र लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान आदि मुख्य योद्धा हैं बडे बडे हाथी ही जिसमें मगर मच्छ हैं और घोडे ही बडी बडी तरंगे वा लहरें हैं ऐसी प्रलयकालके समुद्रके समान वह भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंकी सेना लंकाके लिये रवाना हुई ॥ ४७१-४७२ ॥

अथानतर-जव हनुमान लका नगरसे वापिस लौट आया था तव कुंभकर्ण आदि भाइयोंने रावणसे प्रार्थनाकी थी कि हे देव ! आप हमारे बडे भारी उच्च वंशमें सूर्यके समान हैं और आपका पौरुष भी संसारमें प्रसिद्ध है इसलिये आपको यह काम करना उचित नहीं है यह स्त्री रत्न उच्छिष्ट है इसलिये आप हम लोगोंके अनुरोध करनेसे इसे छोड दीजिये " इसतरह सवने प्रार्थनाकी परंतु रावण सीतामें आसक्त था इसलिये उसे छोड नहीं सकता था अतएव वह कहने लगा कि रामचंद्र तृण मनुष्य हैं अर्थात् अत्यंत तुच्छ हैं अथवा न कुछके समान हैं उनकी सेना सीताको लेनेकेलिये यहां हमारे उपर आ रही है ऐसा सुन रहे हैं फिर भला आज सीताको कैसे छोड दें यह बात तो कुलको कलंक लगाने वाली है ॥ ४७३-४७६ ॥ रावणका छोटा भाई रावणकी कही हुई इन वातोंको सह नहीं सका और कहने लगा कि आप रामचंद्रको तृण मनुष्यके समान मानते हैं क्या आपने सूर्यवंशकी शूरवीरता नहीं सुनी है आप इससमय कामांध हो रहे हैं इसीलिये भाइयोंके हितरूप वचन नहीं सुनते आप दोषोंके जानकारोंमें भी

परुषं वचः । वारणाशा त्यजत्वस्ति चेदाशा नास्ति वा रणं ॥ ४५७ ॥ यातु मत्पादसेवा स मयामा यातु वारण । तदा तस्याशुभां वाणीं तद्विनाशविधा-
यिनीं ॥ ४५८ ॥ श्रुत्वा दूतोभ्युपेत्यैष्यद्वलिनंबलिनोंतकं । प्रातिकूल्येन वाली वः कृत्रिमः शत्रुरुत्थित ॥४५९॥ पारिपथिकवन्मार्गो दुर्गस्तस्मिन्विरोधिनि ।
इत्यब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवप्रमुखं वलं ॥ ४६० ॥ लक्ष्मणं नायकं कृत्वा प्राहिणोत्खदिरं वनं । गत्वा वैद्याधरं सैन्यं वालिनोभ्यागत वल ॥ ४६१ ॥ जघानेव
वनं वज्रं प्रज्वलच्छस्त्रसतति । स्वयं सर्ववलेनामा योद्धुं वाली तदागमत् ॥४६२॥ पुनस्तयोरभूद्युद्धं बलयोः काललीलयोः । प्रलयैर्वातकस्तत्र प्रायस्तृप्ति-
मुपेयिवान् ॥ ४६३ ॥ आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तनिशातसितपत्रिणा । लक्ष्मणेन शिरोग्राहि ताल वा वालिनः फलं ॥ ४६४ ॥ तदा स्वस्थानमापन्नौ सुग्रीवानिलनं-
दनौ । सद्य फलति संसेवा प्रायेण प्रभुमाश्रिता ॥ ४६५ ॥ तत सर्वेगमन् रामस्वामिनं सोप्यनीयत । स्वस्थानं सवलो भक्त्या सुग्रीवेण सहानुज ॥
४६६ ॥ विभोर्मनोहरोद्याने किष्किंधे शरदागमे । वल चतुर्दशाक्षौहिणीप्रमं भूभृतामभूत् ॥ ४६७ ॥ लक्ष्मणश्च जगत्पादगिरौ निरशनस्तदा । सप्ताह वि-

वालिके विनाशको सूचित करनेवाली उसकी अशुभ वाणीको सुनकर वह दूत उसीसमय वालिको मारनेवाले रामचंद्र
के पास आया और कहने लगा कि आपके प्रतिकूल होकर वालि आपका कृत्रिम शत्रु प्रगट हुआ है ॥४५७-४५९॥
मार्ग अत्यंत कठिन है उसमें अच्छा किला है उसमें शत्रु रहता है इसतरह दूतने कहा । यह सुनकर रामचंद्रने लक्ष्मण
को नायक बनाकर सुग्रीव आदिकी सब सेना खदिरके वनमें भेज दी । वज्रके समान जिसके सब शस्त्रोंके समूह दे-
दीप्यमान हो रहे हैं ऐसी उस विद्याधरोंकी सेनाने वनके समान वालिकी आई हुई सब सेना काट डाली तब वालि
स्वयं सब सेनाको लेकर युद्ध करनेके लिये आया ॥४६०-४६२॥ तदनंतर कालके समान लीला करनेवाले उन दोनो
वलवानोंका (वालि और लक्ष्मणका) युद्ध होने लगा और काल उस युद्धमें प्रायः प्रलयके समान तृप्त हो गया ॥
४६३ ॥ अंतमें जिसप्रकार ताल वृक्षका फल तोड लेते हैं उसीप्रकार लक्ष्मणने कानतक खेंचकर धनुषसे वाण छोडा
और उससे वालिका शिर काट डाला ॥ ४६४ ॥ उसीसमय सुग्रीव और हनुमानको अपना अपना स्थान मिल गया
सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके आश्रय रहकर उनकी सेवा करनेसे उसका फल बहुत शीघ्र मिल जाता है ॥ ४६५ ॥
तदनंतर सब लोग रामचंद्रके समीप आए सुग्रीव रामचंद्रको लक्ष्मण और सब सेनाके साथ बडी भक्तिसे अपने नग-
रमें लाया और किष्किंधा नगरके मनोहर नामके उद्यानमें सबको ठहरा दिया उससमय शरद ऋतु आगई थी और
रामचंद्रके साथ राजाओंकी चौदह अक्षौहिणी सेना होगई थी ॥ ४६६-४६७ ॥ " जहांसे शिवघोष नामके मुनिराज
मोक्ष पधारे थे ऐसे जगत्पाद नामके पर्वत पर जाकर लक्ष्मणने सात दिनका उपवास धारणकर पूजाकी और प्रज्ञप्ति

तत्त्वयि दुष्कर ॥ ४४७ ॥ ततो हठात्तवायात किष्किंधेशविनाशिन । प्राक् पश्चाच्छक्तिसपत्या सुखोच्छेद्यो दशाननः ॥ ४४८ ॥ इत्यत्रवीत्तदादाय दूतमाहूय भूपति । महामेघाभिधानं मे प्रदायानेकपाभिम॥४४९॥सहाय्येतु मया लका चर्च्यं पश्चात्तवीप्सित । इत्युक्त्वामामुनात्मीयमपि दूत व्यसर्जयत्॥४५० गत्वा तौ रामसदेशात्सुग्रीवस्याग्रजन्मन । कोपमानयतः स्मासाविल्यवोचन्मदोद्धत ॥ ४५१ ॥ एव प्रार्थयमानो मा रामो रामापहारिण । निर्मूल्यानीय सीता किं यशो दिक्षु विकीर्णवान् ॥ ४५२ ॥ दशास्ये साममामोक्त्या समीप्सौ सामवायिके । परुषोक्तिर्मयीत्यस्य धीशौर्ये पश्य कीदृशे ॥ ४५३ ॥ इमा तद्गर्वदुर्भाषा श्रुत्वा राघवसेविना । चौर्येण परदाराणां नेतुरुन्मार्गगामिनः ॥ ४५४ ॥ दोषद्वयानुरूप त्व दड द्रक्ष्यसि चाचिरात् । किं तेन तव चेतय्य्यमिच्छेरुच्छिद्य दुर्मद ॥ ४५५ ॥ दत्वा गज कुरूपास स्वामिनो वृद्धिमेष्यसि । अवश्यमचिरेणेति दूतेनोद्दीपित क्रुधा ॥ ४५६ ॥ वाली कालानुकारी तं प्रत्याह

४४८ ॥ इसतरह अंगदके वचन सुनकर रामचंद्रने वालिके दूतको बुलाया और कहा कि आपके यहां जो महामेघ नामका उत्तम हाथी है उसे मुझे समर्पण करो और मेरे साथ लंकामें चलनेकेलिये तैयार हो पीछे आपके कामकी चर्चाकी जायगी इसतरह कहकर और उस दूतके साथ एक अपना दूत देकर उसे विदा किया ॥ ४४९–४५० ॥ वे दोनों ही दूत जाकर वालिके पास पहुचे और उन्होंने रामचंद्रका संदेशा कहकर सुग्रीवके बड़े भाई वालिको बहुत ही क्रोधित किया तब वह मदसे उद्धत हुआ वालि कहने लगा कि ॥ ४५१ ॥ रामचंद्रने मुझसे इसतरह प्रार्थना की है अच्छा देखता हू क्या इसतरह सीताको हरण करनेवाले रावणको नाशकर तथा सीताको लाकर रामचंद्र सब दिशाओंमें अपना यश फैला देंगे ? ॥ ४५२ ॥ अपनी इष्टसिद्धिके लिये रावणसे तो ऐसे शांतताके वचन कहला भेजे हैं और उसके निकट संबंधी मुझसे ऐसे कठोर वचन कहला भेजे हैं इनकी बुद्धि और शूरवीरता कैसी है सो तो देखो॥ ४५३ ॥ नीच अभिमानसे भरी हुई ऐसी कठोर भाषाको सुनकर रामचंद्रका दूत कहने लगा कि उन्मार्गपर चलनेवाले रावणने जो चोरी करके परस्त्री हरणकी है सो इन दोनों अपराधोंके अनुसार उसे दंड मिलेगा और तू शीघ्र ही देखेगा अथवा इससे आपसे क्या संबंध है यदि आप अपना हित चाहते हैं तो इस मिथ्या अभिमानको छोड़कर हाथी दे दीजिये और स्वामीकी सेवा कीजिये इसतरह करनेसे आप बहुत शीघ्र और अवश्य वृद्धिको प्राप्त होंगे " इसतरह कहकर दूतने उसे क्रोधसे और उद्दीपित किया ॥ ४५४–४५६ ॥ तब कालका अनुचर (शीघ्र मरने वाला) वालि उस दूतसे कठोर वचन कहने लगा कि यदि जीनेकी आशा है तो हाथीकी आशा छोड़ दो यदि जीनेकी आशा नहीं है तो सामने युद्धमें आओ अथवा मेरे चरणोंकी सेवा करते हुए वनारसको लौट जाओ । इसतरह

शसति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञा
र्णमुपागत ॥ ४३६ ॥ नत्वा किं बहुनोक्तेन सीता तेन न भाक्ष्यते । अतस्त्वदनुरूप वा कार्यं माभूतशीतकाः ॥ ४३७ ॥ शसति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञा
क्षिप्रकारिता । इत्याहादाय तत्प्रोक्तमिक्ष्वाकुकुलकेसरी ॥ ४३८ ॥ चतुरंगवलेनामा चित्रकूटवनातरे । कालमेव बल मत्वानैषीद्वर्षर्तुमित्वरः ॥ ४३९ ॥
तत्रत्यं वालिनो दूत समीक्ष्य रघुनंदन । प्रणम्योपायन दत्वेत्यब्रवींदविमोहित ॥ ४४० ॥ विज्ञापयति मत्स्वामी वालीति बलवानलं । पूज्यपादो यदि
प्रेष्यं मामिच्छति महीपतिः ॥ ४४१ ॥ मा प्रतीच्छतु भृत्यत्व सुग्रीवानिलपुत्रयोः । तावत्किंचित्करावार्यो वेत्ति वैतत्पराक्रमं ॥ ४४२ ॥ तिष्ठत्वत्रैव
देवोहं गत्वा लंकां दशाननं । मानभंगे नियोज्यार्यमानयेऽद्यैव जानकीं ॥ ४४३ ॥ इत्याकर्णिततद्वाक्यः सोप्राक्षील्लक्ष्मणाग्रजः । सामभेदविदो वाच्य
किष्किंधेश किमुत्तरं ॥ ४४४ ॥ इति मंत्रिगण सर्वसम्मतः संस्तुतोंगद । शत्रुर्मित्रमुदासीन इति भूपास्त्रयो मता ॥ ४४५ ॥ रावणस्तेषु नः शत्रु-
र्वाली मित्रस्य विद्विषः । कुर्मो यदि तत्कार्यं संवध्नीयात्स शत्रुणा ॥ ४४६ ॥ तथा चोपचयः शत्रोर्दुरुच्छेदो हि तेन सः । अथ वालिवच कुर्मः कर्म-

रामचन्द्र अपनी चारों तरहकी सेना लेकर चित्रकूट वनमें जा पहुंचे । तथा समयको ही बलवान मानकर उन्होंने वर्षा
ऋतु वहीं बिताई ॥ ४३७–४३९ ॥ जब रामचंद्र चित्रकूट वनमें निवास कर रहे थे उसीसमय राजा वालिका दूत राम-
चंद्रके समीप आया तथा दर्शनकर प्रणामकर भेट समर्पणकर सावधान होकर इसप्रकार कहने लगा कि हे देव मेरे
स्वामी बहुत बलवान राजा वालि आपसे इसप्रकार निवेदन करते हैं कि पूज्यपाद राजा रामचंद्र यदि मुझे दूत बनाना
चाहते हैं तो हनुमान और सुग्रीवको सेवक न रक्खें क्योंकि ये दोनों ही बहुत थोडा काम करनेवाले हैं यदि आर्य
आप मेरा पराक्रम देखना चाहें तो हे देव आप यहां ही ठहरिये मैं लंकामें जाकर रावणका मानभंगकर सती
जानकीको आज ही ले आऊंगा ॥ ४४०–४४३ ॥ दूतके उन वचनोंको सुनकर रामचंद्र साम नामके उपायके
भेदोंको जाननेवाले मंत्रियोंसे पूछने लगे कि किष्किंधा नगरके स्वामी राजा वालिको क्या उत्तर देना चाहिये ॥
४४४ ॥ तब सब मंत्रियोंकी सम्मतिसे प्रशंसनीय अंगद कहने लगा कि राजा लोग तीन तरहके होते हैं एक शत्रु
दूसरे मित्र, और तीसरे उदासीन ॥ ४४५ ॥ इसमेंसे रावण तो हमारा शत्रु है और वालि मित्रका शत्रु है यदि हम
लोग उसका काम न करेंगे तो वह शत्रुसे मिल जायगा ॥ ४४६ ॥ तथा उसके शत्रुसे मिलजानेपर शत्रु बलवान हो
जायगा और फिर बडी कठिनतासे नाश किया जा सकेगा यदि वालिके कहे हुए कामको करें तो यह काम आपके
लिये बहुत कठिन है ॥ ४४७ ॥ इसलिये सबसे पहिले किष्किंधा नगरके स्वामीके नाश करनेका काम आपके गलेमें
जबर्दस्ती आ पडा है । इसके बाद शक्ति और संपत्ति बढजानेसे सुखपूर्वक ही रावणका नाश किया जा सकेगा ॥

विभो त्वद्वरणक्षणे ॥ ४२६ ॥ किमेतेन भवच्छौर्यं वदात्र प्रगटीभवेत् । किं वृथोक्त्या प्रियेणैव राज्ञी मंक्षु त्वयार्पिता ॥ ४२७ ॥ इति तद्वृढहासोक्तिव-न्हिसतपिताशयः । पुष्पकाधिपतिर्दृष्टिविषाहीन्द्रफणामणिं॥४२८॥आदातुमिच्छतो गंतु गतिं रामोमिवाच्छति । दूतस्त्व यत्र वध्योसि याहि याहीत्यतर्जयत् ॥ ४२९॥निर्जित्य सिंधुराराति गर्जितेनोर्जितक्रुधा । ततः कुम्भनिकुम्भोग्रकुंभकर्णादिमिर्भटैः॥४३०॥इंद्रजित् सेंद्रचर्मातिकन्यार्कखरदूषणैः । खरेण दुर्मुखाख्येन महा-मुखखगेशिना॥४३१॥क्रुद्धै कुमारैरन्यैश्च तर्ज्यमानोनिलात्मजः । गर्जितेन वृथानेन वनिताजनसन्मुखं ॥४३२॥किं कृत्यमत्र समामे मदीयं श्रूयते त्वरं । इत्य-वादीत्तदानेदमुचितं दुरुक्तीरितं ॥४३३॥ इति तान् वारयन् क्रुद्धान् नयवेदी विभीषणः । याहि भद्रानिवार्योयमकार्यादार्यवर्जितः॥४३४॥शुभाशुभविपाकाना भाविनां को निवारक । इत्युवाचाणुमाश्रित्य जानकीं वर्जिताशना ॥ ४३५ ॥ मदोदर्युपरुध्यास्या शाग्रह्य पारणाविधिं । ततो वाराशिमुल्लंघ्य रामाभ्य-

अग्निसे जिसका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसा पुष्पक विमानका स्वामी रावण हनुमानको ललकारता हुआ कहने लगा कि जिसकी दृष्टिमें ही विष भरा हुआ है ऐसे बडे भारी सर्पके फणाके मणिको ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवालेकी जो गति होती है उसी गतिको रामचंद्र पहुंचना चाहता है अर्थात् मरना चाहता है हे दूत तू मारने योग्य नहीं है इसलिये तू यहांसे निकल और जल्दी जा ॥ ४२८-४२९ ॥ इसतरह कहकर रावणने बडे क्रोधमें आकर सिंहको भी जीतनेवाली गर्जना की, तदनंतर हाथीके मस्तकके समान उग्र ऐसे कुंभकर्ण आदि योद्धाओंने, इंद्रजीत इंद्रचर्म, अति कायार्क, खरदूषण, खर, दुर्मुख, महामुख आदि विद्याधरोंने तथा और भी क्रोधित हुए कुमारोंने हनुमानको ललकारा तब हनुमानने कहा कि स्त्रियोंके सामने इसतरह व्यर्थ गरजनेसे कुछ लाभ नहीं है अब तुम मेरा उत्तर युद्धमें सुनना यह सुनकर नयोंके जानकार विभीषणने सबको रोका और कहा ऐसे बुरे वचन कहना ठीक नहीं है, वह हनुमानसे भी कहने लगा कि हे भद्र तुम अपने घर जाओ, अकार्य होनेसे आर्य लोगोंके त्याग करने योग्य यह कार्य अनिवार्य है सो ठीक ही है क्योंकि होनहार शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भला कोन रोक सकता है । इसतरह विभीषणने कहा तब हनुमान आहार पानी छोडे हुए सीताके पास आया ॥ ४३०-४३५ ॥ मंदोदरीके उपरोधसे सीताने कुछ थोडा-सा खाया था उसे देखकर और समुद्रको उल्लंघनकर वह हनुमान शीघ्र ही रामचन्द्रके पास आगया ॥ ४३६ ॥ नम-स्कार कर कहने लगा कि बहुत कहनेसे क्या लाभ है सबका सार यही है कि रावण सीताको छोडना नहीं चाहता, इसलिये सीताके अनुकूल कार्य करनेमें देर करना नहीं चाहिये क्योंकि बुद्धिमान लोग निश्चय किये हुए कार्यमें जल्दी करना ही प्रशंसनीय समझते हैं । हनुमानके कहे हुये इसतरहके वचनोंको सुनकर इक्ष्वाकु वंशमें सिंहके समान

४१६ ॥ जित्वा मा विग्रहेणाशु गृह्णीयात्केन वार्यते । इति तन्नाशसमूचिवचन दैवचोदितं ॥ ४१७ ॥ श्रुत्वा रामोदयापादिनिमित्त शुभसूचक । इदमेवात्र नोमीष्टमिति चित्तेनिलात्मज: ॥ ४१८ ॥ व्याजहार दुरात्मान दुश्चरित्रदशानन । अन्यायस्य निषेद्धा त्व निषेध्यश्चेन्निषेद्धरि ॥ ४१९ ॥ वाडवाग्निरिवाम्भोधौ केन वा स निषिध्यते । अमेयोगमहं ख्यातो राघव सिंहविक्रम ॥ ४२० ॥ अकीर्तिर्निष्फला चन्द्रमिति स्मर्तुं तवोचित । मया बधुत्वसम्बन्धात्तव पथ्यमुदाहृत ॥ ४२१ ॥ प्रभो गृहाण चेत्तुभ्य रोचते चेन्न माग्रही. । इति दूतवच: श्रुत्वा पौलस्त्य पुनरब्रवीत् ॥ ४२२ ॥ रत्न ममानिवेद्येद जनकेन समर्पित । दर्पाद्दाशरथौ तस्म दाहृतेय मया रुषा ॥ ४२३ ॥ मद्योग्यवस्तुस्वीकारादकीर्तिश्चेद्भवेन्मम । चक्ररत्न च मद्धस्तादादातु स राघव ॥ ४२४ ॥ इत्यन्वर्तोजनासूनुरवोचद्दशकधर । वच प्रपन्नगमीर तदुक्त्यनुसारि यत् ॥ ४२५ ॥ सीता मया हृतेत्येतत्किं वक्षि विदित जनै: । करे कस्य स्थिता सेति

इसतरह भाग्यकी प्रेरणासे रावणके नाश करनेको सूचित करनेवाले वचन सुनकर हनुमान चित्तमें विचार करने लगा कि रामचंद्रके उदयको प्रगट करनेवाले और शुभकी सूचना करनेवाले निमित्त होरहे हैं और इस विषयमें हमें भी यही इष्ट है ॥४१५–४१८॥तदनंतर वह हनुमान रामचंद्रकी ओरसे दुष्ट और दुश्चरित्री रावणसे फिर कहने लगा कि आप अन्यायको रोकनेवाले हैं यदि रोकनेवालेको ही रोकनेका काम पडे तो उसे कौन रोक सकता है जो बडवानल अग्नि समुद्रमें प्रगट हुई है उसे भला कौन रोक सकता है। यह सीता अभेद्य है इसे कोई चलायमान नहीं कर सकता और मैं सिंहके समान पराक्रमी प्रसिद्ध रामचंद्र हूं इसमें सूर्य चंद्रमाके टिकने पर्यंत विना किसी प्रयोजनके अपकीर्ति होगी इसका स्मरण करलेना भी आपको उचित है मैंने भाईपनेके नातेसे आपके हित करनेवाले वचन कहे हैं यदि आपको अच्छा लगे तो ग्रहण कीजिये नहीं तो मत कीजिये। इस तरह दूत हनुमानके वचन सुनकर रावण फिर कहने लगा ॥ ४१९–४२२ कि यह सीता रत्न मुझे विना खबर दिये ही जनकने अपने अभिमानसे रामचंद्रको दी थी इसीलिये क्रोधसे मैं इसे ले आया हू ॥ ४२३ ॥ मेरे योग्य वस्तुको स्वीकार करनेमें यदि अपकीर्ति होती हो तो हो। वह रामचंद्र तो मेरे हाथसे चक्र रत्न भी लेना चाहता है। यह सुनकर हनुमान प्रसन्न गभीर और रावणके कहे अनुसार ही रावणसे कहने लगा ॥ ४२४–४२५ ॥ कि सीता मैंने हरी है ऐसे वचन आप क्या कहते हैं। यह तो संसार जानता है हे विभो जब आपने सीता हरी थी तब यह किसके हाथमें थी, इसके सिवाय आप यह तो कहिये कि क्या इस कार्यसे आपकी शूर वीरता प्रगट होती है इसलिये व्यर्थके वचनोंसे क्या लाभ है आपको इन मीठे वचनोंसे ही वह रानी सीता समर्पण करदेनी चाहिये २६ २७ इस तरह जिसमें हँसी मिल रही है ऐसे गूढ वचनरूपी

त नीत्वा दशाननमजिज्ञपन् । वचोहरोय रामेण प्रहितो देवसन्निधिं ॥ ४०७ ॥ इत्यसावपि योग्येन क्रमेणालोक्य रावण । तदादिष्टासने स्थित्वा प्राभृतार्पणपूर्वक ॥ ४०८ ॥ अभ्यर्हितमितालापैः श्रृणु देवेति बोधयन् । प्राज्ञो विज्ञापयामास प्रस्पष्टमधुरध्वनि ॥४०९ ॥ अयोध्यामधुनाध्यास्य वर्द्धमानो निजौजसा । आत्माभिगामिकप्रज्ञामाहसगुणभूषण ॥ ४१० ॥ राघवे कुशली देव त्रिखंडाखंडनायक । कुशलोदतसप्रश्नपूर्वमित्यमभाषत ॥ ४११ ॥ सीतान्यस्येति नीता सावस्वदीयेत्यजानता । किं जात नास्ति दोषो द्राक् प्रेषणीया मनीषिणा ॥ ४१२ ॥ न चेद्विनमिवंशैकभूषणस्य महात्मन । नानारूपमिदं कर्म धर्मशर्मविघातकृत् ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्रमिवाम्भोधेर्न युक्त मलधारण । सीताविमोचनोत्तुङ्गतरंगैः क्षिप्यता बहि ॥ ४१४ ॥ इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य प्रत्युवाच खगेश्वरः । सीतां नानवबुध्याहमानैष किंतु भूभुजः ॥ ४१५ ॥ ममैव सर्वरत्नानि स्त्रीरत्नं तु विशेषत । प्रेषयत्विति किं वक्तुं युक्त मा ते महीपते ॥

जाननेवाला विभीषण उसीसमय हनुमानको रावणके समीप ले गया और रावणसे निवेदन करने लगा कि "हे देव यह रामचंद्रका दूत है रामचंद्रने आपके समीप भेजा है॥४०६–४०७॥इसप्रकार हनुमानने यथायोग्य रीति और अनुक्रमसे रावणके दर्शन किये और लाई हुई भेट समर्पण कर रावणके बतलाये हुए आसनपर बैठ गया॥४०८॥पहिले तो सुनने योग्य हितरूप और फिर मधुर औरथोडेसे वचनोंसे रावणकी प्रशंसाकी और स्पष्ट वचन कहनेवाला विद्वान् हनुमान निवेदन करने लगा कि हे देव सुनिये॥४०९॥अपने प्रतापसे ही रात दिन बढनेवाले, आत्माभिमान बुद्धिमानी और साहस आदि गुणोंसे सुशोभित तथा क्षेम कुशलमें रहनेवाले राजा रामचंद्रने अयोध्या नगरमें ही विराजमान होकर तीनों खंडके एक स्वामी ऐसे आपका पहिले तो कुशलप्रश्न पूछा है और फिर यह कहला भेजा है ॥ ४१०–४११ ॥ कि आप सीताको किसी दूसरेकी समझकर ले आए हैं परंतु वह मेरी स्त्री है आप विना जाने लाये हैं इसलिये कुछ विगड़ा नहीं है आप बुद्धिमान् हैं इसलिये उसे शीघ्र भेज दीजिये इसमें कुछ दोष भी नहीं है ॥ ४१२ ॥ यदि आप सीताको नहीं भेजेंगे तो विनमि वंशके एक रत्न और महात्मा ऐसे आपका विचित्ररूप यह कार्य धर्म कर्म और कल्याणको नाश करनेवाला होगा ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्ररूपी महासागरको मल धारण करना योग्य नहीं है इसलिये सीताको छोड़ने रूप बडी बडी तरंगोंके द्वारा इसे बाहर ही फेंक देना चाहिये ॥ ४१४ ॥ हनुमानके कहे हुए इन वचनोंको सुनकर रावण कहने लगा कि मैं सीताको विना जाने नहीं लाया हूं किंतु मैं राजा हूं इसलिये संसारके सब रत्न मेरे हैं तथा स्त्रीरत्न तो विशेष कर मेरा है । तुम्हारे स्वामी रामचंद्रने मेरे लिये जो यह कहला भेजा है कि सीताको भेज दो सो क्या उन्होंने योग्य किया है युद्धमें मुझे जीतकर वे सीताको शीघ्र ही ले जायं उन्हें कौन रोकता है ।

स्वीकृता द्विप ॥ गोमिन्या सह सीतापि वेत्ति वृत्तोत्तमापरं । त्वमेव कृत्यं निर्णीय द्विड्वृत्तं शीघ्र मे हितं॥३९६॥इत्युमुंचत्साहाय्यैस्तै स कुमारः प्रणम्य त । गत्वाप्य सहसा लंकां ज्ञातो वीक्ष्य विभीषण ॥ ३९७ ॥ रामभट्टारकेणाहं प्रेषितो भवदंतिकं । इति सप्रश्रय सर्वं तदुक्तं तमजीगमत् ॥ ३९८ ॥ इदं च स्वयमाहासौ स्वामिसंदेशहारिणं । प्रापयस्त्वं खगाधीश मा तस्मै हितकारिण ॥ ३९९ ॥ रामाभिप्रेतकार्यस्य त्वया सिद्धिस्तथासति । कार्यमेतत्तु मद्द्वारा-विधातु भवतो भवेत् ॥ ४०० ॥ त्वयोक्तोऽपि न चेत्सीता विमुचति स मंदधीः । नापराधस्तवापुण्य स्वयमेव विनक्ष्यति ॥ ४०१ ॥ वर्द्धमानश्रिय दृष्ट्वा रामं तत्पुण्यचोदित । इतो द्वितयलोकैकहित यायामधीश्वरं ॥ ४०२ ॥ इति रक्त स्वयं भूयो धरणीगोचरं बल । पचाशत्कोटिसंयुक्त लक्षा चतुरशीतिकं ॥ ४०३ ॥ सार्द्धत्रितयसंख्यात खेचरानीकमप्यदः । बलेनैतेन सप्राप्य सनृसिंह सलक्ष्मणः ॥ ४०४ ॥ हर्तुं मद्यैव सीतां वा सीता च खचेरशिन । समर्थः किंतु दाक्षिण्यं विभोर्नैसर्गिकं त्वयि ॥ ४०५ ॥ ततोऽह प्रेषितस्तेन त्वं च किं वेत्सि नेदृशं । इति तद्वचनं श्रुत्वा कार्यविद्रावणानुजः ॥ ४०६ ॥ तदानीमेव

इसतरह कहकर और ऊपर कहे राजाओंको साथ देकर रामचंद्रने हनुमानको विदा किया ; हनुमान भी रामचंद्रको प्रणामकर चला और शीघ्र ही लंकामें जा पहुचा । वह वहांका जानकार था इसलिये वह सीधा विभीषणके यहां जा पहुंचा और कहने लगा कि स्वामी रामचंद्रने मुझे आपके पास भेजा है इसतरह कहकर हनुमानने बडी विनयके साथ रामचंद्रके कहे हुए सब समाचार विभीषणको कह सुनाये ॥ ३९७–३९८ ॥ तथा इतने समाचार उसने अपनी ओरसे कहे कि आप रावणका हित करनेवाले और स्वामी रामचद्रका समाचार ले जानेवाले मुझे रावणके पास पहुंचा दीजिये ॥ ३९९ ॥ आपसे रामचद्रके इष्ट कार्यकी सिद्धि अवश्य हो जायगी और ऐसा हो जानेपर यहकार्य मेरे द्वारा आपसे ही हुआ समझिये ॥ ४०० ॥ यदि वह मंदबुद्धि वाला रावण आपके कहनेसे भी सीताको न छोडे तो फिर इसमें आपका कोई अपराध नहीं है वह पुण्यहीन अपने आप नष्ट हो जायगा ॥ ४०१ ॥ इससमय रामचंद्रकी लक्ष्मी बढ रही है यही देखकर उनके पुण्यकी प्रेरणासे ही मानों दोनों लोकोंके हित करनेवाले स्वामी रामचंद्रकी शरण जाना चाहिये यही समझकर पचास करोड चौरासी लाख भूमिगोचरियोंकी सेना और साडे तीन करोड विद्याधरों-की सेना स्वयं अनुरक्त होकर उनमें आ मिली है । वे रामचद्र इतनी सब सेना और भाई लक्ष्मणके साथ स्वयं यहां आ पहुचेंगे ॥ ४०२–४०४ ॥ यद्यपि वे सीताके साथ साथ विद्याधरोंके स्वामी रावणकी लक्ष्मीको भी आज ही हरण करनेको समर्थ हैं तथापि उनका आपमें स्वाभाविक प्रेम है ॥ ४०५ ॥ इसलिये उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है क्या आप इसतरहके सब समाचार नहीं जानते हैं ? हनुमानके इसतरहके कहे हुए बचनोंको सुनकर कार्यको

ज्यौ तत्तस्मिन्नीतिवेदिमि । क्रमस्तथापि नोल्लंघ्यः साम तावत्प्रयुज्यता ॥ ३८६॥ कः सामवित्प्रयोक्तव्य इत्यस्मिन् सप्रधारणे । दक्षतादिगुणोपेता बहव सति भूचराः ॥ ३८७ ॥ किंतु नाकाशगामित्वसामर्थ्यं तेपु विद्यते । तस्मात्सेनापति प्रेष्यस्त्वयाय नूतन कृत ॥ ३८८ ॥ दृष्टमार्ग पराधृष्य सिद्धकार्य श्रुतागम । जात्यादिविद्यासपन्नः स्यादस्मात्कार्यनिर्णय ॥ ३८९ ॥ इत्येतदुपदेशेन मनोवेगाभिधानक । विजग कुमुदाख्यान ख्यात रविगतिं हितं ॥ ३९० ॥ सहायीकृत्य सपूज्य कुमार भवतोऽपर । कार्यवित्कार्यकृच्चास्ति नात्रेति श्लाघयन्नृपः ॥ पवमानात्मज वाच्यस्त्वयैव सविभीषण । अत्र त्वमेव धर्मज्ञः प्राज्ञ. कार्यविपाकवित् ॥ ३९२ ॥ हितो लकेश्वरायास्मै सूर्यवशाग्निमाय च । सीताहरणमन्याय्यमाकल्पमयशस्करं ॥ ३९३ ॥ अपथ्यमिति संश्राव्य रावण रतिमोहित । मोचनीया त्वया सीता तथा सति भवत्कुल ॥ ३९४ ॥ त्वयैव रक्षित पापादपायादपवादनः । इति सामोक्तिभिस्तस्मिन्स्वीकृते-

मेजा जाय तो इसका उत्तर यह है कि यद्यपि अनेक भूमिगोचरी चतुरता आदि गुणोंसे सुशोभित हैं परंतु उनमें आकाशमें चलनेकी सामर्थ्य नहीं है इसलिये आपने जो नया सेनापति बनाया है उसे ही भेजना चाहिये ॥ ३८७–२८८ इस नये सेनापति हनुमानने मार्ग भी देखा है इसे कोई हरा भी नहीं सकता, यह कार्योंको सिद्ध करनेवाला और सब शास्त्रोंका जानकार है। जाति आदि अनेक विद्याओंसे भी यह सुशोभित है इसलिये अवश्य ही इससे कार्य का निर्णय हो जायगा ॥ ३८९ ॥ इसतरहके उपदेशानुसार रामचंद्रने मनोवेग विजय कुमुद, और रविगति आदि राजाओंको साथ किया और हनुमानका खूब आदर सत्कार कर प्रशंसा करने लगे कि आपके सिवाय ऐसा कार्योंका जाननेवाला और कार्योंको करनेवाला कोई दूसरा नहीं है ॥ ३९०--३९१ ॥ रामचंद्र फिर हनुमानसे कहने लगे कि आप विभीषणके पास जाकर इसतरह कहना कि " आप ही इससमय धर्मके जानकार हैं विद्वान हैं प्रत्येक कार्यके फलको जानते हैं और सूर्यवशको नाश करनेकेलिये अग्निके समान इस रावणके हितैषी हैं । रावणने जो सीताका हरण किया है वह अन्याय हैं कल्पकाल तक अपयश करनेवाला है और अपथ्य वा अयोग्य है । आप रतिसे मोहित हुए रावणको समझाइये और उनसे सीताको छुड़ना दीजिये । इसतरह करनेसे पाप, अपाय (नाश) और अपवाद वा निंदासे अपने कुलकी रक्षा करनेका श्रेय आपको ही मिलेगा । इसतरह शांति भरे बचनोंसे कहना यदि विभीषणने यह बात स्वीकार करली तो फिर सब शत्रु अपने वश ही समझिये । हे दूतोत्तम ! इतना ही नहीं किंतु पृथ्वी के साथ साथ सीता भी अपने यहां आई हुई ही समझिये । इसके सिवाय शत्रुओंके करनेलिये जो कुछ काम हो या जो कुछ समाचार हों उन सबका निर्णय आप ही कर लेना और शीघ्र ही मेरा हित संपादन करना ॥ ३९२--३९६ ॥

सुता ॥ ३७४ ॥ कार्यस्थितिसमादानं चाभ्युपेत्य कृततवरं । तत्कालोचितकार्योफिकुशला तं व्यसर्जयत् ॥ ३७५ ॥ प्रणम्य सोपि तत्पादपंकजं भास्करो-
दये । गत्वा ततो व्रटित्याप रामं स्वागमनोन्मुख ॥३७६॥ वदनाब्जप्रसादेन कार्यसिद्धिं न्यवेदयत् ।प्रणम्य स्वामिना सम्यक्परिरभ्योचितासनः ॥ ३७७ ॥
उपविष्टो मुदा तेन पृष्टो दृष्टेति मत्प्रिया ।' सप्रपंचमुवौचैर्बवैचस्तत्प्रीतिहेतुकं ॥ ३७८ ॥ निसर्गाद्रावणो दसश्चक्रं चान्यत्समुथयौ । लंकायां दुर्निमित्तानि
वास न् दृत्याश्च खेचराः ॥ ३७९ ॥ संति तत्सेवकाः सर्वमेतदालोच्य मंत्रिभि । जानक्यानयनोपायो निश्चेतव्यो यथा तथा ॥ ३८० ॥ इतीदमुचित का-
र्यमवदत्पवनात्मजः । सदुक्त चेतसा सम्यगवधार्योर्जिताशय ॥ ३८१ ॥ सेनापतिं पट्टबंधेनाकृतानिलनंदनं । कृत्वाभिराज्यपट्टं च सुग्रीवस्य महीपतिः ॥
३८२ ॥ सह ताभ्यां समप्राक्षीन्मंत्रिणः कर्मनिर्णयं । तत्रैवमंगदोवोचद्देव त्रेधा महीभुज ॥३८३ ॥ लोभधर्मासुराह्लादि विजयातामिधानका- । प्रथमे दान-
मन्यस्मिन् सामात्ये भेददंडन ॥३८४॥ नयज्ञै कार्यसिध्यर्थमित्युपाय प्रयुज्यते । अंतिमो रावणस्तेषु नीचत्वात्क्रूरकर्मकृत् ॥ ३८५ ॥ भेददंडौ प्रयोक्त-

बैठ गया। तब रामचंद्रने बडी प्रसन्नतासे पूछा कि क्या तुमने मेरी प्यारी देखी थी तब हनुमानने रामचंद्रको प्रेम उत्पन्न करनेवाली सब बातें बडे जोरसे और बडे विस्तारसे कहीं ॥ ३७६–३७८ ॥ और कहा कि रावण स्वभावसे ही मदोन्मत्त हो रहा है तथा उसके आयुधशालमें चक्र रत्न भी उत्पन्न हुआ है इसके सिवाय लंकामें बहुतसे अपशकुन हो रहे हैं और उसके विद्याधर सेवक सब बहुत निपुण हैं। यह सब समाचार कहकर हनुमान मंत्रियोंसे फिर यह एक उचित कार्य कहने लगा कि जिसतिस तरहसे सीताको यहां लानेका उपाय निश्चय करना चाहिये। ऊंचे विचार करनेवाले रामचंद्रने हनुमानकी कही हुई बातोंका मनमें अच्छीतरह विचार किया, उसीसमय हनुमानको सेनापतिका पट्ट बांधा और सुग्रीवको युवराजका पट्ट बांधा ॥ ३७९–३८२ ॥ तदनतर वे उन दोनोंके साथ साथ मंत्रियोंसे कार्य करनेका निर्णय करने लगे तब अंगद कहने लगा कि हे देव ! राजा लोग तीन तरहके होते हैं लोभविजयी धर्मविजयी और असुरविजयी नयोंके जाननेवाले नीतिकारोंने कार्य सिद्ध होनेकेलिये लोभ विजयीको दान देना धर्मविजयीको सांत्वना देना और असुरविजयीको भेद और दंड देना यही सबसे अच्छा उपाय बतलाया है ॥ ३८४ ॥ इन तीनों तरहके राजाओंमेंसे रावण असुरविजयी है क्योंकि वह नीच है और क्रूरकर्म करनेवाला है ॥ ३८३–३८५ ॥ इसलिये नीतिके जानकारोंको उसके लिये भेद और दंडका ही प्रयोग करना चाहिये यद्यपि वह भेद और दंडकापात्र है तथापि क्रमका उल्लंघन करना ठीक नही है इसलिये पहिले सामका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ३८६ ॥ कदाचित् आप यह निश्चय करना चाहें कि हम लोगोंमें अच्छी तरह सामको जाननेवाला कौन है जिसे

संश्राव्य वानर । रामस्वामिनिदेशेन लेखगर्भकरंडक ॥ ३६५ ॥ मयानीतमिदं देवीत्यप्रेस्याः स तदक्षिपत् । तद्दृष्ट्वा किमय मायाविग्रहो रावणोधम ॥ ३६६ ॥ शंकमानेति सा वीक्ष्य तत्र श्रीवत्सलाञ्छन । रत्नागुलीयक चात्मपतिनामाक्षरांकित ॥ ३६७ ॥ ममेदमपि भात्येव मायेवास्य दुरात्मन । को जानाति तथाप्येतत्पत्र तस्यैव वाभवत् ॥ ३६८ ॥ मद्भाग्यादिति निर्भिद्य मुद्रा पत्रं त्ववाचयत् । वचनानतर वीतशोकया स्निग्धवीक्षया ॥ ३६९ ॥ जीविताद्द त्वया स्थानमधितिष्ठसि मे पितु । इत्युक्तः सीतया कर्णौ पिधाय पवनात्मजः ॥३७०॥ मत्स्वामिनो महादेवी मातर्नहान्यकल्पना । त्वा नेतु मम सामर्थ्यमर्यवास्ति पतिव्रते ॥३७१॥ नास्ति भट्टारकस्याज्ञा स्वयमेव महीपतिः । हत्वैत्य रावणं तस्य त्वा नेष्यति सह श्रिया ॥ ३७२ ॥ तत्साहसेन तत्कीर्तिर्व्याप्यतां भुवनत्रय । तत शरीरसंधारणार्थमाहारमाहर ॥ ३७३ ॥ भगवत्यत्र को दोषो राज्ञा ते संगमोचिरात् । इत्याह्यत्मा ततस्त्यक्त्वा वैमनस्य मही

खुदे हुए हैं और श्रीवत्स चिन्ह बन रहा है ऐसी रत्नोंकी अंगूठी देखी ॥ ३६५–३६७ ॥ उसे देखकर भी वह सोचने लगी कि मुझे तो यह भी उसी नीचकी मायाके समान जान पडती है किंतु इस बातको कौन जानता है, तथापि मेरे भाग्योदयसे यह पत्र उन्हीका लिखा है, इसतरह सोचकर उसपरकी मुहर तोडकर वह उस पत्रको बांचने लगी । पत्र बांचकर वह सब शोक भूल गई और स्नेहकी दृष्टिसे देखती हुई कहने लगी कि तैने मुझे जीवदान दिया है इसलिये तू मेरे पिताके समान है । सीताकी इस बातको सुनकर हनूमान कानोंपर हाथ रखकर कहने लगा कि तू मेरे स्वामीकी महादेवी है इसलिये मेरी माताके समान है मैं तुझमें कोई और कल्पना नहीं कर सकता । हे पतिव्रते तुझे आजही ले चलनेकी मुझमें सामर्थ्य है परंतु मेरे स्वामीकी ऐसी आज्ञा नहीं है । मेरे स्वामी महाराज रामचंद्र स्वयं आकर और रावणको मारकर उसकी राजलक्ष्मीके साथ साथ तुझे ले जायगे ॥ ३६८--३७२ ॥ इसलिये इस साहससे उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैलेगी अतएव शरीरकी रक्षा करनेकेलिये तू भोजन ग्रहण कर ॥ ३७३ ॥ हे भगवती अब इसमें दोष ही क्या है क्योंकि शीघ्रही महाराजा रामचंद्रके साथ तेरा समागम अवश्य होगा । इसतरह हनुमानने सीतासे कहा उसे सुनकर सीताने अपनी उदासीनता छोड दी, शरीर स्थिर रखनेके लिये बहुत शीघ्र भोजन करना स्वीकार कर लिया और उसीसमय उचित कार्योंके कहनेमें चतुर उस सीताने हनुमानको विदा किया ॥ ३७४--३७५ ॥ हनुमान भी उसके चरणकमलोंको नमस्कारकर सूर्योदय होते ही चला और बहुत शीघ्र रामके समीप जा पहुंचा । रामचँद्र उससमय उसके आनेकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे उन्हें पहिले तो हनुमानने अपने मुख कमलकी प्रसन्नतासे कार्यकी सिद्धि निवेदनकी, स्वामीको प्रणाम किया, अच्छी तरहसे मिला और उनके बताये हुए आसनपर

३५५ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय दशाननवधूसमा । यदि स्वकार्यससिद्धिमभिकामयसे भृश ॥ ३५६ ॥ कृतांजलिरहं यान्चे गृहाणाहारमविके । सर्वस्य साधनो देहस्तथाहार सुसाधन ॥ ३५७ ॥ वदंति निपुणाः क्ष्माजे प्रसवादि कुतोऽमति । स्थिते वपुषि रामस्य स्वामिनस्तेव वीक्षणं ॥ ३५८ ॥ न चेत्सद्दर्शन साध्यं वपुषेव महत्तपः । न चेन्मद्वचन प्राह्य त्वयाहमपि भोजन ॥ ३५९ ॥ त्यजामीत्यवदत्सीताप्येतच्छ्रुत्वावधार्य च । ममामातापि मातेव मद्दुःखे दुःखिताजनि ॥ ३६० ॥ इति चित्ते विनम्यैतच्चरणौ स्निग्धमैक्षत । मजूषास्थापनाकाले मत्सुताया उपेक्षित ॥ ३६१ ॥ एतन्मा मधुरं सत्याः सतापयति सर्वत । इति प्रलयमापन्ना तदा रावणवल्लभा ॥ ३६२ ॥ आसेदु मेन तद्दुःखाद् विनीता प्राविशत्पुरं । शिंशिपास्थस्ततोऽभ्येत्य दूत प्लवंगविद्यया ॥ ३६३ ॥ पराहृत्य कपेर्मूर्त्या स्वयं निद्रात्यमिद्धतान् । निधाय रक्षकान् देव्याः पुरस्तात्समवस्थितः ॥ ३६४ ॥ प्रणम्य तां स्ववृत्तांतं सर्व

मंदोदरी कहने लगी कि तू अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है तो मैं हाथजोडकर यह मांगती हूं कि हे मा तू आहार ग्रहणकर। क्योंकि सब का कारण शरीर है और शरीरका साधन आहार है॥३५६-३५७॥विद्वान लोग सब यही कहते हैं कि यदि वृक्ष न होगा तो फूल कहांसे आवेंगे इसी तरह यदि शरीर रहेगा तो तू अपने स्वामी रामको देख सकेगी ॥ ३५८ ॥ यदि उनके दर्शन होनेकी संभावना न हो तो इस शरीरसे घोर तपश्चरण ही करना चाहिये। यदि तू मेरी बात नहीं मानेगी मैं भी भोजनका त्याग कर दूंगी। इसतरह मंदोदरीने कहा उसे सुनकर और विचारकर सीता सोचने लगी कि यद्यपि यह मेरी माता नहीं है तथापि माताके समान ही मेरे दुःखमें दुखी हुई इसतरह सोचकर और चित्तमें नमस्कार कर बडे प्रेमसे उसके दोनों चरणोंको देखने लगी। उसे इसतरह देखकर मंदोदरी सोचने लगी कि जिस समय मैंने पुत्रीको संदूकमें रक्खा था उसीके समान यह मुझे सब ओरसे दुःख दे रही है। इसप्रकार शोक करती हुई उस मंदोदरीने बडोंके दुःखसे दुःखी होनेके समान सीताके दुखसे दुखी होकर बडी नम्रतासे नगरमें प्रवेश किया।

अथानंतर—वह हनूमान उसी सीसोंके वृक्षपर बैठा था उसने समय देखकर प्लवंग नामकी विद्यासे अपना रूप वदलकर वदरकासा बना लिया और अपनी विद्यासे उस बागके रक्षकोंको निद्राके आधीनकर अर्थात् मोहितकर वा सुलाकर सीता देवीके सामने जा खडा हुआ ॥ ३५९-३६४ ॥ पहिले तो उस बंदरने उसे प्रणाम किया और फिर अपने आनेका सब समाचार सुनाया और कहा कि "रामचंद्र मेरे स्वामी हैं उनकी आज्ञासे मैं यह पत्र रक्खा हुआ पिटारा लाया हूं" यह कहकर उसने वह पिटारा सीताके सामने रख दिया। उसे देखकर वह संदेह करने लगी कि क्या यह मायामयी शरीर बनाकर नीच रावण ही आया है परंतु पिटारेमें उसने जिसपर अपने पतिके नामके अक्षर

३४४ ॥ पराभव परिप्राप्तो माभूस्त्वमपि तादृशः । मा मस्था मा सपत्नीति मद्वचस्त्वं प्रमाणयन् ॥ ३४५ ॥ त्यज सीतागतं मोहमित्यसौ निजगाद त । तदुक्तेत्तरं वाक्यमभिधातुमशक्नुवन ॥ ३४६ ॥ सम प्राणैरियं त्याज्येत्यगात्स कुपितः पुरं । मंदोदरीपरित्यक्तनिजपुत्रीशुगाहिता ॥३४७॥ सीतां मिथिः- श्रिता आविविदा देवभयात् क्षितौ । या निक्षेपयति स्मेति मया कलहकारणात् ॥ ३४८ ॥ आगतामेव मत्पुत्रीं ता त्वा मे मन्यते मन । पापेन विधिना नीता भद्रे त्व दु खकारिणा ॥ ३४९ ॥ अलंध्य केनचिंत्वात्र प्रायेण विधिचेष्टितं । इह जन्मनि किं बंधुः किं वा त्व मेन्यजन्मनि ॥ ३५० ॥ न जाने त्वा बिलोक्याद्य मम स्नेहः प्रवर्द्धते । यदि मज्जननीत्वं त्व पद्मनेत्रेवबुध्यसे ॥ ३५१ ॥ त्वा मे भावयितुं वष्टि सपत्नीं खचराधिप । तेन वाले मृतिं वापि याहि मागास्तदीप्सित ॥ ३५२ ॥ स्तनप्रसूतिमित्येव वदती प्रापदुत्सुका । तस्या. पयोधरद्वंद्वमभिषेक्तुमिवापतत् ॥ ३५३ ॥ जल गद्गदकंठायाश्चक्षुर्भ्यां स्नेहसूचन । शोकानलपरिम्लान वक्त्राब्ज चाभवत्तदा ॥ ३५४॥ तद्वीक्ष्य जानकी सर्वं प्राप्ता स्वामिव मातरं । जायतेस्मार्द्रहृदया वाष्पाविलविलोचना ॥

छोड़ दीजिये" इसतरह मंदोदरीने रावणसे कहा । रावण इसका कुछ उत्तर न देसका इसलिये "प्राणों के साथ ही इसे छोडूंगा" इसतरह कहता हुआ वह क्रोधित होकर नगरको चला गया । उसीसमय मंदोदरीने जो अपनी पुत्री संदूकमें रखकर छोड़ दी थी उसका वह शोक करने लगी और कहने लगी कि जिस सीताको निमित्त ज्ञानियोंकी आज्ञाके डरसे मिथिला देशमें पृथ्वीके नीचे गढवा दिया था वही कलह करनेवाली मेरी पुत्री सीता आ-गई है ऐसा मेरा मन स्वीकार करता है । हे भद्रे दुःख देनेवाला पापी विधाता ही तुझे यहां ले आया है ॥ ३४२–३४९ ॥ इस संसारमें कर्मोंके उदयको भला कौन उलंघन कर सकता है । न जाने तू मेरी इसी जन्मकी कोई सबंधिनी है अथवा किसी अन्य जन्मकी संबंधिनी है न जाने क्यों आज तुझे देखकर मेरा स्नेह बढ रहा है । हे कमलनेत्रे! तू मुझे मेरी पुत्री ही ऐसी जान पडती है ॥ ३५०–३५१ ॥ यह विद्याधरोंका स्वामी रावण तुझे मेरी सौत बनाना चाहता है इसलिये हे पुत्री चाहे तू मर जाना परंतु उसकी इच्छानुसार काम मत करना ॥ ३५२ ॥ इसतरह कहती हुई वह बडी ही उत्सुक हुई उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा और उसके स्तन ऐसे जान पडने लगे मानों उसका अभिषेक करनेके लिये ही कुछ नीचेकी ओर झुक गये हों ॥ ३५३ ॥ उसका कंठ गदगद हो गया दोनों नेत्रोंसे स्नेहको सूचित करनेवाला जल गिरने लगा और उससमय उसका मुखकमल शोक रूपी अग्निसे मलिन हो गया मुरझा गया ॥ ३५४ ॥ उन सब कारणोंको देखकर सीताको ऐसा मालूम होने लगा मानों उसे अपनी माता ही मिल गई हो उसका हृदय दुःखसे भीग गया और उसके नेत्रोंमें आंसू भर आए ॥३५५॥ उसके अभिप्रायको जानकर

ग्यत्वादद्यैव घटदासिका । अतिथिर्वाभवत् प्रेतनाथावासनिवासिनां ॥ ३३५ ॥ इति ता मामिवापुण्य स्वीकर्तुं व्यर्थमब्रवीत् । तदाकर्ण्यापि भूभृता समाहितमनास्तदा ॥ ३३६॥ ध्यातिधर्म्येव नैर्मल्यमादधानाभवत्स्थिरा । खगेशवक्त्रनिर्यातवाग्जालज्वलनावली॥३३७॥सीताधैर्याम्बुधिं प्राप्य सद्य शातिमगात्तदा । विक्रमेण यथा पुसः सर्वसाभाग्यसपदा ॥ ३३८ ॥ स्त्रीसृष्टिमपि जेतारं मामेषा परिभवुका । किलेति कुध्यत' पत्युर्दीप्तकोपदवानल ॥ ३३९ ॥ सद्यः सीतालना दग्धु जृम्भमाण मनोरणे । मदोदरीहितश्रव्यवचनामृतवारिभि ॥ ३४० ॥ प्रशमय्य किमस्थाने जनवत्कोपवान् भवे. । विचितय किमेषा ते दण्डयोग्यावभासते ॥ ३४१ ॥ मदारप्रसवारब्धमालाग्निक्षेपमर्हति । मतीनां परिभूत्याशु रागामित्वादिका ध्रुव ॥ ३४२ ॥ विद्या विनाशमायांति तस्याः विद्याविपक्षकः । पुरा स्वयप्रभ हेतोरश्वग्रीवखगाधिप ॥ ३४३ ॥ पद्मावतीनिमित्तेन प्रसिद्धो मधुसूदनः । समासक्त सुताराया विधीरशनिघोषकः ॥

तो तुझे अभी पानी भरनेवाली दासी बनना पडेगा अथवा प्रेतनाथके घर निवास करनेवालोंका (मृत्युका) अभ्यागत बनना पडेगा ॥ ३३५ ॥ जिसप्रकार पुण्यहीन पुरुष लक्ष्मीको वश करनेकेलिये व्यर्थ ही वकवाद करता है उसीप्रकार रावणने सीताको वश करनेके लिये ऊपर लिखे अनुसार व्यर्थ ही वकवाद किया उसे सुनकर सीता चित्तमें समता धारणकर तथा धर्म्य ध्यानके समान निर्मलता धारणकर निश्चल हो गई, और उसीसमय रावणके मुखसे निकले हुए वचनसमूहरूपी अग्निकी पंक्ति सीताके धैर्यरूपी समुद्रको पाकर शीघ्र ही शांत हो गई । तब रावणको क्रोध आया वह सोचने लगा कि जैसे मै अपने पराक्रमसे पुरुषोंको जीतता हू उसीप्रकार सब तरहकी सौभाग्यरूपी संपत्तियोंके द्वारा स्त्रियोंके समूहको भी जीतनेवाला हूं फिर भी यह सीता मेरा तिरस्कार कर रही है " इसतरह सोचते हुए उसके मनरूपी युद्धस्थलमें वहुत शीघ्र सीतारूपी लताको जलानेके लिये क्रोधरूपी दावानल अग्नि भडक उठी तब मंदोदरीने हितरूप और सुनने योग्य वचनामृत रूपी जलसे उसे शांत किया और कहने लगी कि आप विना ही कारणके क्रोध क्यों कर रहे हैं, आप विचार तो कीजिये क्या यह सीता आपको दंड देने योग्य प्रतीत होती है ॥ ३३६–३४१ ॥ मंदार वृक्षोंके फूलोंकी बनाई हुई माला क्या अग्निमें डालनी चाहिये । सतियोंका तिरस्कार करनेसे आकाशगामिनी आदि विद्याएं अवश्य और वहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं इसलिये आप भी पक्षरहित पक्षीके समान विद्याहीन हो जायंगे । पहिले स्वयंप्रभाके लिये अश्वग्रीव विद्याधर, पद्मावतीके कारण प्रसिद्ध मधुसूदन, और सुतारामें आसक्त हुआ बुद्धिहीन अशनिघोष तिरस्कार पा चुका है इसलिये आप भी उन्हीं ऐसे मत हो । आप यह भी मत समझिये कि मैं सपत्नी (सौत) होनेके डरसे ऐसा कह रही हू नहीं आप मेरे बचनोंको प्रमाण मानकर सीताको

स्वामिनी भूत्वा महादेवी पदे स्थिता । त्रिखण्डाधिपतेर्भूया सश्रीर्वक्षस्थले चिरं ॥ ३२४ ॥ विफल माकृथा विद्युच्चपल तव यौवन । हस्तात्पुलस्तिपुत्रस्य रामस्त्वा नेष्यतीत्यद ॥ ३२५॥ वितर्केण कदर्वोरुवन वा विद्धि निष्फल । क्षुधार्तानेकपारातिवक्त्रातर्वर्तिनं मृग ॥३२६॥ परित्याजयितु ब्रूहि क समर्थतमः पुमान्। इत्यभ्यधात्तदाकर्ण्य निश्चला वसुधासुता ॥ ३२७ ॥ वसुधेव स्थिता भेत्तुं के वा शक्ता॰ पतिव्रता । तद्दृष्ट्वा खेचराधीश स्वयमागत्य कातर॰ ॥ ३२८ ॥ कुल चेद्रक्षितु तिष्ठेर्न विचारक्षम हि तत् । लज्जा चेद्धीनसबधात्सा तस्या॰ प्रसवोत्र न ॥ ३२९ ॥ रामे चेत्प्रेम तद्विद्धि जन्मातरितमन्निभ । चिरं परिचित कस्माद्विसराम्यमुनेव त ॥ ३३० ॥ इति चेत्ससृना जतौ केन कस्य न सस्तवः । परिखा वारिधिर्दुर्गस्त्रिकूटाद्रि॰ खगेश्वराः ॥ ३३१ ॥ दुर्गपाला पुरं लका मेघनादादयो भटा । नायकोह कथ तस्य तव भर्तु प्रवेशन ॥ ३३२ ॥ तस्मात्तदाशामुज्झित्वा मदाशा पूरय प्रिये । अवश्यभाविकार्येस्मिन् किं कालहरणेन ते ॥ ३३३॥ हसत्याश्च रुदत्याश्च तत्र प्राघूर्णकोस्म्यहं । मत्कातकातासताने काते चूलामणिर्भव ॥३३४ ॥ न चेदसि विभा-

निष्फल होता है । भला कह तो सही भूखसे व्याकुल हुए सिंहके मुंहमें पडे हुए हरिणको छुडानेके लिये इस संसारमें भला कौन पुरुष समर्थ होता है ? इसतरह उस दूतीने कहा उसे सुनकर वह सीता पृथ्वीके समान ही निश्चल बैठी रही सो ठीक ही है क्योंकि पतिव्रताओंको भेदन करनेकेलिये भला कौन समर्थ है सीताको चुपचाप देखकर रावण कातर होकर स्वयं आया ॥ ३२५-३२८ ॥ तथा कहने लगा कि यदि तू कुलकी रक्षा करनेकेलिये बैठी है तो यह बात कुछ विचार करने योग्य नहीं है कदाचित् तुझे लज्जा आती हो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि लज्जा तो नीच लोगोंके (हीनके) संबंधसे होती है यहां तो हीनताकी गंध भी नहीं है ॥ ३२९ ॥ कदाचित् राममें तेरा प्रेम हो सो उसे अब तू एक जन्मका अंतर पडनेके समान समझ कदाचित् यह विचार हो कि रामचंद्रके साथ बहुत दिनका परिचय था उसे मैं अभी कैसे भूल जाऊं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इससंसारमें जीवोंको किसके साथ संबध नहीं है । कदाचित् यह सोचती हो कि रामचद्र मुझे आकर ले जायंगे सो यह भी व्यर्थ है क्योंकि यहां की खाई तो समुद्र है त्रिकूटाचल पर्वत किला है, विद्याधर इसके रक्षक हैं यह नगर लंका है मेघनाद आदि यहांके योद्धा हैं और इसका स्वामी मैं हूं इसमें भला तेरे पतिका प्रवेश कैसे हो सकता है ॥ ३३०-३३२ ॥ इसलिये हे प्रिये तू अब उसकी तो आशा छोड दे और मेरी आशाको पूर्णकर । यह कार्य होनेवाला तो अवश्य है फिर इसमें तू व्यर्थ समय क्यों खो रही है ॥ ३३३ ॥ तू चाहे हंस और चाहे रो मैं तेरा अभ्यागत हो चुका हूं हे सुंदरि ! मेरे सुदर स्त्रियोंके समूहमें तू चूडामणि रत्नके समान हो ॥ ३३४ ॥ यदि तू अपने अभाग्यसे मेरा कहना नहीं मानेगी

पि नीतिमार्गविशारद ॥ ३१४॥ प्रारब्धकार्यससिद्धावुद्यतस्य विवेकिन । प्राहुर्नितिविद कोपं व्यसन कार्यविघ्नकृत् ॥ ३१५ ॥ तस्मादस्थानकोपेन कृत-मित्याहितक्षमः । निजागमनवृत्तातमवबोधयितु सती ॥ ३१६ ॥ मनागवसरावेक्षी स्थितस्तावन्निशाकरः । उदयक्ष्माभृदुद्भासि चूडामणिनिभो बभौ ॥ ३१७ ॥ दशाननोप्यतिक्राते तत्रास्या दिनसप्तके । सीता कीदृगवस्थेति चिंतयन् दीपिकावृतः ॥ ३१८ ॥ दीव्यत्कल्पद्रुमोपेतनीलाद्रिरिव जगाम । निरीक्षितु तदवायात्सोत्कठोतःपुरान्वितः ॥ ३१९ ॥ मद्भर्तुः कुशलोदत सश्रोष्यामि कदान्विति । मत्वा तां स्तिमिताकारां चिरं वीक्ष्य सविस्मयः ॥ ३२० ॥ न कश्चिदीदृशी स्त्रीषु पतिं भक्तेति चिंतयन् । अपसृत्य स्थितः किंचिद् दूतीं मजरिकामिधा ॥ ३२१ ॥ प्राहिणोत्तदभिप्राय परिज्ञातु विवेकिनीं । जानकीं विनयेनासौ प्रपद्य श्रृणु मद्वच ॥ ३२२ ॥ भट्टारिके खगेंद्रस्य खेचरेंद्रप्रियात्मजाः । देव्य पच सहस्राणि त्वत्समाना मनोरमाः ॥ ३२३ ॥ तासा त्व

क्रोध उस कार्यमें अवश्य ही विघ्नकारक होता है ॥ ३१५ ॥ इसलिये असमयमें क्रोध करना ठीक नहीं है इसतरह क्षमा धारणकर सती सीताको अपने आनेका समाचार बतलानेके लिये थोडी देरतक समयकी प्रतिक्षा करता हुआ वहीं ठहर गया इतनेमें ही उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए चूडामणि रत्नके समान चंद्रमा उदय हुआ ॥ ३१६-३१७ ॥ उसी समय रावणने सोचा कि सीताको लाये आज सात दिन होगये उसकी अब क्या दशा है सो भी चलकर देखना चाहिये यही सोचकर और अनेक दीपकोंके साथ साथ कल्पवृक्षों सहित चलते हुए नीलपर्वतके समान देदीप्यमान होता हुआ अपने सब अंत पुरके (रणवासके) साथ साथ उत्कंठित होकर सीताके देखनेके लिये आया ॥ ३१८-३१९ ॥ उससमय सीता "मैं अपने पतिके राजीखुशीके समाचार कब सुनूंगी" यही सोचती हुई निश्चल बैठी थी उसे देखकर वह बहुत ही आश्चर्य करने लगा और सोचने लगा कि "संसारकी स्त्रियोंमें पतिकी भक्ति करनेवाली मैने तो अन्य कोई ऐसी स्त्री नहीं देखी है" इसीलिये वह कुछ हटकर ठहर गया। उसने सीताका अभिप्राय जाननेके लिये बडी बुद्धिमती मंजरिका नामकी दूती भेजी। वह दूती सीताके पास जाकर बडी विनयसे कहने लगी कि हे देवी तू मेरे वचन सुन ॥ ३२०-३२२ ॥ हे बुद्धिमती इस विद्याधरोंके राजा रावणके तेरे ही समान सुंदरी विद्याधर राजाओंकी पुत्रियें पांच हजार रानी हैं ॥ ३२३ ॥ तू उन सबकी स्वामिनी होकर महादेवी पदपर विराजमान हो और तीन खडके स्वामीके श्रीलक्षण सहित वक्षःस्थलपर बहुत दिनतक क्रीडाकर ॥ ३२४ ॥ यह तेरा यौवन विजलीके समान चंचल है इसे तू व्यर्थ मत खो। "अब रामचद्र रावणके हाथसे तुझे ले जायंगे" इस वितर्कको तू ऐसा ही निष्फल समझ जैसा कि कदंबोंका बडा भारी बन

पद प्रायो मन्वानः सपदावहा ॥ ३०४ ॥ उदयास्तमयौ नित्य देहिनामिति रावण । रविर्दर्शा निरूपेव मस्तादिति नितान् ॥ ३०५ ॥ दूतो रामस्य ग-
त्वांत पुरपश्चिमगोपुरं । आरुह्य लोकमानोयं भ्रमरारावराजितं ॥३०६॥ वन नर्तुक नाम नन्दन नन्दनोपम । फलप्रसूनभारानम्रकल्पतरूनिर्वृतं ॥३०७॥ नंदन
यवहोद्धूतनानाप्रसवपांशुभि । कृतकाद्रिसरोवापीस्तालाजितमण्डपै ॥३०८॥मदनो द्दीपनैर्देशैरन्यैश्चातिमनोहरं । दृष्ट्वा तत्र मनाक् स्थित्वा सप्रमोदः सकौतु
कः ॥ ३०९ ॥ तत्रैकस्मिन् समासन्नदेशे विद्याधरीजनैः । सामादिभिरुपायैस्तां वशीकर्तुमिति ताभिरावेष्टितां सीतां ॥ ३१० ॥ परीता शिंशपावृक्षमूले शोकाकुलीकृता ।
ध्यायती निभृतां न्यस्ता शीलेऽपि कुलरक्षणे ॥ ३११ ॥ सेयं सीता शीलमाला वा समालोक्य मारुतनो । इत्यवागमत्सीता दृष्टा कल्पलतेव दवाग्निना ॥
३१२ अभिज्ञानैर्नृपेन्द्रेण, मम पुण्योदयादिति । तद्दर्शनसमुत्पन्नरागो रावणपापिना ॥ ३१३ ॥ कल्पवल्लीव दग्धेन नाशितेयं मनीषिणः । शोकाविष्टमनितो-

सब ओरसे चिंतवन करता हुआ वह रामचंद्रका दूत हनूमान अंतःपुरके पश्चिमकी ओरके बडे दरवाजेपर जा चढा और जिसपर अनेक भ्रमर गुंजार कर रहे हैं वहांसे देखने लगा जोफल और फूलोंके बोझसे नम्र तथा सुंदर वृक्षोंसे सब ऋतुओंकी शोभा बढानेवाला है तथा नंदन वनके समान सुंदर है ऐसा नंदन नामका वन देखा । वह वन मंद और सुगंधित बहते हुए वायुसे उडती हुई अनेक फूलोंकी धूलिसे, कृत्रिम बने हुए पर्वत सरोवर बावडी और लताओंके सुंदर मंडपोंसे, कामदेवको उद्दीपन करनेवाले देशोंसे तथा और भी बहुतसी वस्तुओंसे बडाही मनोहर था, उसे देखकर वह प्रसन्न होकर तथा कुछ कौतुक वा आश्चर्य करता हुआ थोडी देर तक ठहरगया ॥३०४–९॥ उसी वनमें किसी समीपके ही स्थानपर सीसोंके वृक्षके नीचे सीता बैठी थी, साम दाम दंड भेद आदि सब उपायोंसे उसे वश करने के लिये इसारोंको जाननेवाली अनेक विद्याधरियें उसके चारों ओर बैठीं थीं, वह शोकसे व्याकुल हो रही थी तथा "कुलकी रक्षा करनेके लिये जीर्ण शीर्ण होकर तथा मरकर भी प्रयत्नके साथ शीलरूप मालाकी खूब रक्षा करूंगी" इसी बातका वह ध्यान कर रही थी उस सीताको देखकर रामचंद्रके बताये हुए चिन्होंसे उसे पहिचाना और विचार करने लगा कि यह वही सीता है जिसे रावण ले आया है मेरे पुण्यकर्मके उदयसे इसके दर्शन हुए हैं और इसे देख कर एक तरहका प्रेम प्रगट हुआ है जिसप्रकार कल्पलताको दावानल अग्नि जला देती है उसीप्रकार पापी रावणने इसे दुःख दिया है इसप्रकार विचार करते हुए उसका चित्त शोकसे भरगया और क्रोधसे लाल हो गया तथापि वह नीतिमार्गको जाननेमें पंडित था ॥ ३१०–३१४ ॥ इसलिये फिर सोचने लगा कि प्रारंभ किये हुए कामको सिद्ध करनेके लिये जो विवेकी पुरुष तैयार होते हैं उन्हें क्रोध करना नीतिकारोंने एक तरहका व्यसन बतलाया है और वह

संशयं ॥ २९२ ॥ इति मत्वा स्वनामांकमुद्रिका मरिप्रयेद्दशी । वर्णदिमिरिति व्यक्तमुक्त्वा तस्मै ददौ नम ॥ २९३ ॥ स रामचरणांभोजं विनम्य नगनांतरं । समुत्पत्य समुल्लंघ्य समुद्रं सत्रिकूटकं ॥ २९४ ॥ द्विषट्कयोजनायामं नवयोजनविस्तृतं । द्वात्रिंशद्गोपुरोपेत रत्नप्राकारवेष्टितं ॥ २९५ ॥ नानामवनसंकीर्णं मणितोरणभास्वरं । महामेरुसमुत्तुग रावणावासमाजितं ॥ २९६ ॥ अलिमुंरकोकिलालापैर्लसत्कुसुमपल्लवैः । सरागहासं गायद्भिरिवोद्यानैर्मनोहरं ॥ २९७ ॥ लंकानगरमासाद्य सीतान्वेषणतत्पर । गृहीतभ्रमराकारो दशाननसभागृहे ॥ २९८ ॥ इंद्रजित्प्रमुखान् भूपकुमारान् वीक्ष्य सादरं । मंदोदरीप्रभृत्येतद्वनिताश्च निरूपयन् ॥ २९९ ॥ नताखिलखगाधीशमौलिमालार्चितक्रम । मध्येसिंहासन सिंहविक्रम शक्रसन्निभं ॥ ३०० ॥ नीलाद्रिमिव गंगोरुतरंगैश्चमरीरुहैः । दधूयमानमालोक्य रावण रावितद्विष ॥ ३०१ ॥ अहो पापस्य कोप्येष विपाकोयमपीदृश । किल धिग्धर्ममुल्लंघ्य परदाराभिलाषुकः ॥ ३०२ ॥ ध्रुव तन्नारदेनोक्तमकालमरणं ध्रुवं । भावीति भावयन् सीता तत्सभायामलक्षयन् ॥ ३०३ ॥ मंदमंदप्रभे भानौ दिने सति दिनात्यये । सद्दायस-

मकानोंसे संकीर्ण थी, मणियोंके तोरणोंसे सुशोभित थी, महामेरुके समान ऊंचे ऊंचे रावणके मकानोंसे सुंदर थी, भ्रमर तथा नर कोइलोंकी मधुर आवाजसे गाते हुएके समान अनेक उद्यानोंसे वह मनोहर थी और दैदीप्यमान फूल तथा पत्तोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानों रागपूर्वक हंस रही ही हो। ऐसी लंकामें पहुचकर वह सीताके ढूंढनेमें लगगया, उसने भ्रमरका रूप धारण कर लिया और फिर रावणके सभाभवनमें गया ॥ २९४--२९८ ॥ वहांपर उसने वडे आदरसे इंद्रजीत आदि अनेक राजकुमारोंको देखा और फिर मंदोदरी आदि रावणकी रानियोंको भी देखा ॥ २९९ ॥ तदनंतर नमस्कार करते हुए समस्त विद्याधरोंके राजाओंके मुकुटोंके समूहसे जिसके चरणकमल पूजे जा रहे हैं, जो सिंहके समान पराक्रमी है, इंद्रके समान सुशोभित है, सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान है तथा नील पर्वतके समान जिसके शरीरपर गंगा नदीकी वडी वडी तरंगोंके समान अनेक चमर दुलारा जा रहे हैं और जो शत्रुओंका रुलानेवाला है ऐसे रावणको देखा ॥ ३००--३०१ ॥ रावणको देखकर वह सोचने लगा कि हाय ! यह इसतरहका किसी पाप कर्मका फल है, अवश्य ही इसे बार बार धिकार है क्योंकि इसने धर्मका उल्लंघनकर परस्त्रीकी इच्छा की है ॥ ३०२ ॥ नारदने जो कहा था कि इसका अकालमरण अवश्य होनेवाला है सो बात सर्वथा सत्य है इसतरह विचार करते हुए उस सभामें सीता नहीं देख पडी ॥ ३०३ ॥ जिससमय सूर्यका ताप मंद पडगया वह दीन होगया दिन अस्त होनेका समय होगया उस समय जीवोंकी कारणरूप संपदाओं और वास्तविक संपदाओंको सदा उदय और अस्तरूप मानता हुआ सूर्य मानों रावणको यही उपदेश देता हुआ चला जा रहा है इसी विषयको

कदाचिदेतेन सह सम्मेदपर्वतं । सिद्धकूटाभिधे तीर्थे प्रतिमा यतः ॥ २८१ ॥ अभ्यर्च्य भक्त्या वन्दित्वा पिधेशीमन् शुभध्यानः । जटाकुटम्बोधारी शुभयज्ञोपवीतक. ॥२८२॥ कषायवस्त्रः कक्षावलंबितकमण्डलुः । करोद्धृतातपत्राणो नैष्ठिकब्रह्मचारिणः ॥२८३॥ नारदोऽपि गिरावेत्ते ईर्यापथपरायणः । अवतीर्य नभोभागात्परीत्य जिनमन्दिरं ॥ २८४ ॥ समुपाविशदेकत्र जिनस्तवनपूर्वकं । गमुरेव तमप्राक्षं कि मुने मदनमायनः ॥ २८५ ॥ स्वपदं न वेलेनद्वनदवीदस्यै । रामलक्ष्मणयोर्हर्षभरतस्वामितानिरात् ॥ २८६ ॥ गमिष्यति प्रयोजनम्य तामसौ तेऽपि न । भवन्मतं च मयोर्यं ईप्सितमनोरथा ॥ २८७ ॥ विहरन्तीं वने वीक्ष्य रावणो मायया मतीत् । तदानन्दमानसस्वामिमनोभितं ॥ २८८ ॥ धर्मानिवासं पुरुषं विभुः मार्गयितो । इति तद्वचनात्तोषादेवागतौ त्वां प्रतीगिर ॥ २८९ ॥ तौ च तद्वचनात्पूजामुचितां चक्रतुस्तयोः । अथ विज्ञापयामास प्रभञ्जनतनूद्भवः ॥ २९० ॥ गत्वा देवोऽस्ति चेद्देव्याः स्थानमन्वेषयाम्यहं । तत्प्रत्ययार्थमाख्येयमभिज्ञानं महीपते । इति तेनोक्तमाकर्ण्य निरन्दप्रर्गोद्वा । समारेगोत्तेन प्रवेशनलस्त

मुनि मुझे अपनी जगह (युवराजपद) मिलेगी या नहीं । मेरे इन वचनोंको सुनकर उन्होंने कहा था कि रामचंद्र और लक्ष्मणको बहुत शीघ्र ही आधे भरतका स्वामीपना (बलभद्र नारायणपद) मिलनेवाला है यदि तू उनका बाहर जानेका कुछ काम करेगा तो तेरे मनोरथ पूर्ण हो जायगे । तेरे भेजनेका क्या काम है सो भी मैं बतलाये देता हूं । रामकी रानी सीता वनमें विहार कर रही थी उसे देखकर रावण मायाचारीसे हरण कर लेगया है इसलिये राम लक्ष्मण दोनों ही भाई आज अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकेलिये लंकामें भेजने योग्य किसी पुरुषको ढूंढ रहे हैं उनके वचन सुनकर हम दोनोंको संतोष हुआ और हम दोनों ही यहां आपके समीप आए हैं ॥ २८१–२८९ ॥ रामलक्ष्मण दोनोंने उनकी बातें सुनकर यथायोग्य रीतिसे उनका आदर सत्कार किया । तदनंतर प्रभंजनका पुत्र अमितवेग (अणुमान् अथवा हनुमान) निवेदन करने लगा कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सीता देवीका स्थान ढूंढूं । हे महाराज आप उनके पहिचाननेकेलिये कुछ चिन्ह बतला दीजिये ॥ २९०–२९१ ॥ इसतरह हनुमानके वचन सुनकर राजा रामचंद्रने यह मानलिया कि विनमिके वंशरूपी आकाशमें चंद्रमाके समान इस हनुमानसे निसंदेह मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा फिर रूप आदिसे मेरी प्यारी सीता ऐसी है ऐसी है इसतरहके कुछ चिन्ह बतलाकर अपने नामकी अंगूठी उसे दी ॥ २९२–२९३ ॥ वह हनुमान रामचंद्रके चरण कमलोंको नमस्कारकर आकाश मार्गसे चलने लगा और समुद्र तथा त्रिकूटाचलको उल्लंघनकर लंका नगरमें जा पहुंचा । वह लंका बारह योजन लंबी थी, नौ योजन चौड़ी थी, उसमें बत्तीस बड़े बड़े दरवाजे थे, रत्नोंके कोटा परकोटा थे, वह अनेक तरहके

स्तत्रेद सम्यगब्रवीत् । खगाद्रिदक्षिणश्रेण्या पुर किलकिलाह्वय ॥ २७१ ॥ तदधीशो वलींद्राख्यो विख्यातः खेचरेष्वमौ । प्रियागुसुदरी तस्य प्रिया तस्यां तनूद्भवौ ॥ २७२ ॥ वालिसुग्रीवनामानावजायावहि भूभुज । पितर्युपरितेऽजायताग्रजस्याधिराजता ॥ २७३ ॥ ममापि युवराजत्वमजनिष्ट क्रमागतं । एव गच्छति मत्स्थानमपहृत्य मदग्रजः ॥ २७४ ॥ लोभक्रांताशयो देशात्स निर्वासयतिस्म मां । एषोपि दक्षिणश्रेण्या विद्युत्कांतापुरेशिनः ॥ २७५ ॥ प्रभञ्जनखगाधीशस्तनूजोमितवेगवाक् । त्रिधाविद्योजनादेव्यामव्याहतपराक्रमः ॥ २७६ ॥ नभश्चरकुमाराणा समुदाये परस्परं । कदाचिदात्मविद्यानामनुभावपरीक्षणे ॥ २७७ ॥ विजयार्द्धगिरेर्मूर्ध्नि क्रमं विन्यस्य दक्षिण । वामपादेन भास्वतमपहृत्य पुनस्तदा ॥ २७८ ॥ त्रसरेणुप्रमाणं स्वं शरीरमकृताद्भुतं । ततः प्रभृति विद्येशैर्विस्मयाहितमानसैः ॥ २७९ ॥ अणुमानिति हर्षेण निखिलैरभ्यधाय्ययं । पीतव्याकरणाभोधिः सखा प्राणाधिको मम ॥ २८० ॥ गत्वा

राज्यका त्याग करदिया तब बडे होनेसे वालिको राज्य मिला था और मुझे अनुक्रमसे प्राप्त होनेवाला युवराजपद मिला था । इसतरह कितना ही काल वीत जानेपर मेरे बडे भाईने मेरा युवराज पद छीन लिया और लोभके वशीभूत होकर मुझे घरसे निकाल दिया । यह मेरे समीप बैठा हुआ भी दक्षिण श्रेणीके विद्युत्कांता नगरके राजा प्रभंजन विद्याधरका पुत्र है, अमितवेग इसका नाम है यह अंजनादेवीसे उत्पन्न हुआ है तीनों तरहकी विद्याएं जानता है और इसका पराक्रम अखंडनीय है ॥ २७०--२७६ ॥ किसी एक समय विद्याधर कुमारोंका समुदाय परस्पर अपनी अपनी विद्याओंके शक्तियोंकी परीक्षा करनेकेलिये विजयार्द्ध पर्वतके मस्तकपर गया था, वहांपर इसने अपना दहिना पैर तो पर्वतपर ही रक्खा और वायें पैरको वढाकर उससे सूर्यमंडलमें जाकर ठोकर लगाई फिर इसने अपना शरीर अद्भुत त्रसरेणुके समान बना लिया । उससमयसे लेकर चित्तमें अत्यंत आश्चर्य करते हुए सब विद्याधरोंने बडी प्रसन्नतासे इसका नाम अणुमान् रक्खा है । इसने व्याकरणरूपी समुद्र पी डाला है और मेरा प्राणोंसे भी अधिक प्यारा मित्र है ॥ २७७–२८० ॥ किसी एक दिन मैं इसके साथ सम्मेद शिखर पर्वतपर गया था वहांपर सिद्धकूट नामके तीर्थ क्षेत्रपर बहुतसी प्रतिमाओंकी पूजा की थी. भक्तिपूर्वक बंदना की थी और वहींपर बडे शुभभावों सहित बैठ गया था । दैव योगसे उसीसमय वहां नारद आये वे जटाओंका मुकुट पहिने थे गलेमें यज्ञोपवीत था, उनके कषायले वस्त्र थे, बगलमें रत्नोंका कमंडलु था, हाथमें छतरी थी और वे नैष्ठिक ब्रह्मचारीके व्रत पालन करनेवाले थे । इसीतरह उनकी चोटी लटक रही थी और रौद्रध्यानमें वे तल्लीन हो रहे थे । आकाशसे उतरकर उन्होंने जिनमंदिरकी प्रदक्षिणा दी और एक जगह भगवानका स्तोत्र करते हुए बैठ गये । उनके पास जाकर मैंने पूछा था कि हे

प्राहिणोत्तु कुमारोप्य दूतं स्वं धीरयन्निति ॥ २६१ ॥ पितृलेखार्थमाध्याय रुद्धशोक क्रुधोद्धतः । अतकस्याकमारोढुं स लकेशः किमिच्छति ॥२६२॥ शशस्य सिंहपोतेन किं विरोधेस्ति जीविका । सत्यमासन्नमृत्यूना सद्यो विध्वसन मतेः ॥ २६३ ॥इत्युद्धतोदितै कोपमाविष्क्रेय लक्ष्मणः । जनको भरतः शत्रुघ्नश्च तद्वृत्तकश्रुत ॥ २६४ ॥ सप्राप्य राघव सोपचारमालोक्य युक्तिमत् । वाक्यै शोकं समनेतुं तदैवं ते समब्रुवन् ॥ २६५ ॥ चौर्येण रावणस्यैव परदारापहारिण । पराभवः परिद्रोग्धा दुगतमाधर्मवर्तिन- ॥ २६६ ॥ सीताशापेन दाह्योसौ निर्विचारमकार्यकृत् । महापापकृतां पापमस्मिन्नेव फलिष्यति ॥ २६७ ॥ उपायश्चिन्त्यता कोपि सीताप्रत्यायनं प्रति । इति तैर्वर्धितो राम सुप्तोत्थित इवाभवत् ॥ २६८ ॥ तत्काले खेचरद्वंद्व दौवारिकनिवेदित । नृपासुगतमागत्य यथामितमलोकत ॥ २६९ ॥ भविष्यद्बलदेवोपि कृततद्योगसम्मद । एतदागमनं कस्मात्कौ भवतौ कुमारकौ ॥ २७० ॥ इत्यन्वयुक्त सुग्रीव

पिताके पत्रका अर्थ समझकर रामचंद्रका शोक तो रुक गया और वे क्रोधसे उद्धत होकर कहने लगे कि रावण मृत्युकी गोदमें सोनेके लिये क्या चाहता है ॥२६२ ॥ सिंहके बच्चेके साथ विरोध करनेसे क्या खरगोशकी जीविका चल सकती है ? अथवा ठीक है, क्योंकि जिनकी मृत्यु समीप है उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है ॥ २६३ ॥ इसतरह उद्धत वचन कहकर उन्होंने अपना क्रोध प्रगट किया । तदनंतर लक्ष्मण, जनक, भरत और शत्रुघ्न इस समाचारको सुनकर रामचंद्रके समीप आए, बडी विनयसे उनसे मिले और युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे उनका शोक दूर करनेके लिये वे सब उससमय इसप्रकार कहने लगे ॥ २६४—२६५ ॥ कि रावण ने जो इसतरह चोरीकर परस्त्रीका हरण किया है इससे उसका ही तिरस्कार हुआ है । वह सबका शत्रु है, दुष्ट है और अधर्मकी प्रवृत्ति करनेवाला है ॥२६६॥ वह सीताके शापसे जलने योग्य है और विना विचारे ही अकार्योंका करनेवाला है । महापाप करनेवालोंका पाप इसी लोकमें अपना फल दे लेता है ॥ २६७ ॥ अब सीताको वापिस लानेका कोई उपाय सोचना चाहिये " इसतरह कहकर उन लोगोंने रामचंद्रको बढाया तब रामचंद्र सोतेसे उठे हुएके समान सावधान हुए ॥ २६८ ॥ इसीसमय रामसे मिलनेके लिये दो विद्याधर आए, द्वारपालने आकर रामको खबर दी, रामकी आज्ञासे वे भीतर बुलाये गये और उन्होंने यथायोग्य रीतिसे रामके दर्शन किये ॥ २६९ ॥ होनहार बलभद्र राम उनसे मिलकर प्रसन्न हुए और पूछने लगे कि आप दोनों ही कुमार कौन हैं और कहांसे आए हैं । इसके उत्तरमें सुग्रीव अच्छी रीतिसे कहने लगा कि विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक किलकिल नामका नगर है उसमें सब विद्याधरोंमें प्रसिद्ध बलींद्र नामका विद्याधर राज्य करता था । उसकी प्रियंगुसुंदरी नामकी रानीसे वालि और सुग्रीव नामके दो पुत्र हुए थे । [illegible] ...ीताने

२५० ॥ मंक्षु दूतमुखादेतत्प्रापणीयमिति स्फुटं । तत्राजाज्ञागतोस्मीति लेखगर्भकरंडकं ॥ २५१ ॥ न्यधात्त्वाग्रे तदादाय शिरसा रघुनंदन । विमोच्य पत्रमत्रस्थं स्वयमित्थमवाचयत् ॥ २५२ ॥ इतो विनीतानगरात् श्रीमतः श्रीमतां पतिः । प्रेमप्रसारितात्मीयभुजाभ्यां स्वप्रियात्मजौ ॥ २५३ ॥ परिष्वज्यानुयुज्यागक्षेमवार्त्तां ततः परं । इदमाज्ञापयत्यत्र दक्षिणाब्ध्यंतरस्थिताः ॥ २५४ ॥ षट्पंचाशन्महाद्वीपाश्चक्रवर्त्यनुवर्तिनः । केशवाश्च समाहात्म्यात्तदर्द्धपरिरक्षिण ॥ २५५ ॥ द्वीपोस्ति तेषु लंकाख्यस्त्रिकूटाद्रिविभूषित । तस्मिन् विनमिसंतानविद्याधरवरेशिनां ॥ २५६ ॥ चतुष्टये व्यतिक्रांते प्रजापालनलोलुप । रावणाख्य खलो लोककंटक स्त्रीषु लंपट ॥ २५७ ॥ ततोभूदन्यदा तस्य नारदेन रणेच्छुना । रूपलावण्यकांत्यादिकथित क्षितिजाश्रितं ॥ २५८ ॥ तदैव मदनामोघवाणनिर्भिन्नमानस । पौलस्त्यो ध्वस्तधीधैर्यो मायावी न्यायदूरग ॥ २५९ ॥ अनन्यवेषमागत्य सोपायं स्वां पुरीं सतीं । अनेषीद्यावदस्य कमुद्योगममयो भवेत् ॥ २६० ॥ तावत्स्वकायसंरक्षा कर्तव्येति प्रियां प्रति ।

२४८--२५० ॥ यह सुनते ही महाराजने आज्ञा दी कि दूतके द्वारा यह समाचार शीघ्र ही रामचंद्रके पास भेज दो । हे देव ! उन्हींकी आज्ञासे मैं यहां आया हूं यह कहकर उसने पत्रसहित पिटारा उनके सामने रख दिया । रामचंद्रने वह पिटारा लेकर शिरसे लगा लिया और उसमेंका पत्र निकालकर वे स्वयं बांचने लगे ॥ २५१--२५२ ॥ उसमें लिखा था कि इस श्रीमान् अयोध्या नगरसे सब श्रीमानोंके स्वामी राजा दशरथ प्रेमसे फैलाई हुई अपनी दोनों भुजाओंसे अपने दोनों प्यारे पुत्रोंका आलिंगनकर तथा उन दोनोंके शरीरकी क्षेम कुशल पूछकर यह आज्ञा देते हैं कि यहांसे दक्षिणकी ओर समुद्रके मध्यमें छप्पन महाद्वीप हैं वे सब चक्रवर्त्तीकी आज्ञामें रहते हैं तथा नारायण अपने प्रतापसे उनमेंसे आधेकी रक्षा करते हैं ॥ २५३--२५५ ॥ उन द्वीपोंमें एक लंका नामका द्वीप है जो कि त्रिकूटाचल पर्वतसे सुशोभित है । उसी लंका द्वीपमें राजा विनमिके वशमें जो सहस्रग्रीव आदि चार राजा हुए थे उनके बाद अब रावण नामका राजा राज्य करता है । वह रावण प्रजाके पालन करनेमें लोलुपी है, दुष्ट है, लोगोंके लिये कांटा है और स्त्रियोंमें बड़ा ही लंपटी है किसी एक दिन युद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले नारदने उससे सीताके रूप लावण्य कांति आदिकी प्रशंसाकी ॥ २५६--२५८ ॥ उसीसमय कामदेवके अमोघ बाणसे रावणका चित्त भिद गया, उसकी बुद्धि और धैर्य सब नष्ट हो गया, वह मायाचारी और न्यायसे कोसों दूर रहनेवाला तो है ही इसलिये वह रामका ही रूप धारण कर बड़े उपायसे सती सीताको ले गया और उसने अपने नगरमें लेजाकर उसे रक्खा है इसलिये जबतक उसके लानेके लिये उद्योग करनेका समय आवे तबतक वह अपने शरीरकी रक्षा करती रहे यह समाचार पहुचानेके लिये और उसे धीरज देनेके लिये अपना कोई कुमार वा दूत उसके पास भेजना चाहिये ॥ २५९--२६१ ॥

देवी छायेव ते तस्मात्त्वमवैपीति सोभ्यघात् ॥ २४१ ॥ इति तद्वचनाल्लब्धरन्ध्रा राम समग्रहीत् । मूर्च्छा सीता सपत्नीव मोहयंती मनः क्षणं ॥ २४२ ॥ तदा शीतक्रिया सीतासखीव सहसा नृप । व्यश्लेषयत्तत सोपि क्व सीतेति प्रबुद्धवान् ॥२४३॥ देवीं परिजनः सर्वे समंतात्प्रतिभूरुह । अन्वेषयन् विलोक्योत्तरीयं वंशविदारित ॥ २४४ ॥ तस्यास्तदा तदानीय राघवाय समर्पयत् । उत्तरीयांशुकं देव्या भवत्वेतदिति क्रुत ॥ २४५ ॥ इति निश्चितयत्तत्वं शोकव्याकुलमानसः । सहानुजस्ततश्चिंता कुर्वन्नुर्वीश्वरः स्थित ॥ २४६ ॥ तत्क्षणे सभ्रमाक्रांतो दूतो दशरथांतिकात् । त प्राप्य विनतो मूर्ध्ना कार्यमित्यमभाषत ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा रोहिणीं राहौ प्रयाते गगनांतरं । एकाकिन तुषारांशु भ्राम्यंतं समलोकिपि ॥ २४८ ॥ स्वप्न किं फलमेतस्येत्यन्वयुंक्त महीपति । पुरोहितममौ चाह सीतामद्य दशाननः ॥ २४९ ॥ गृहीत्वायात्स मायावी राम स्वामी च कानने । ता समन्वेषितु शोकादाकुलो भ्राम्यति स्वयं ॥

रामचंद्र स्वयं परिजनोंके साथ आमिले, और व्याकुल होकर उनसे पूछने लगे कि मेरी प्यारी जानकी कहां हैं ॥ २३८-२४०॥इसके उत्तरमें उनलोगोंने कहा कि हे देव ! हमलोगोंने न तो आपको देखा और न देवी सीताको देखा, सीता छायाके समान आपके ही पास थी इसलिये उनके विषयमें आपही जानते होंगे ॥२४१॥ इतनी बात सुनते ही अवकाश पाकर क्षण भरके लिये मनको मोहित करती हुई सीताकी सपत्नीके (सौतके) समान मूर्छाने आकर रामचंद्र को पकड़ लिया भावार्थ-रामचंद्रको मूर्छा आगई ॥ २४२ ॥ उसीसमय सीताकी सखीकेसमान शीतोपचार क्रियाने अकस्मात् आकर उस मूर्छासे रामचंद्रको अलग कर दिया रामचंद्र सावधान हुए और फिर पूछने लगे कि सीता कहां है ॥ २४३ ॥ परिजनके सब लोग चारों ओर प्रत्येक वृक्षके नीचे सीताको ढूंढने लगे, सीता तो नहीं मिली परंतु वांससे फटा हुआ उसका एक ओढनेका कपड़ा मिला, उसे वे लोग ले आए और रामचंद्रको लाकर सौंप दिया। रामचद्र सोचने लगे कि यह देवीके ओढनेका कपड़ा यहां कैसे आगया, तब वे उसके वास्तविक समाचारको समझगये और व्याकुल चित्त होकर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ चिंता करते हुए वहीं बैठ गये ॥ २४४--२४६ ॥ उसीसमय राजा दशरथके समीपसे आश्चर्य करता हुआ एक दूत आया, मस्तक नवाकर रामचंद्रके पास गया और नीचे लिखे अनुसार अपना कार्य कहने लगा ॥ २४७ ॥ कि महाराज दशरथने आज स्वप्नमें देखा था कि राहु चंद्रमाकी रानी रोहिणीको लेकर आकाशमें चला गया है और अकेला चंद्रमा इधर उधर घूम रहा है, उसीसमय महाराजने पुरोहितको बुलाकर पूछा कि इन स्वप्नोंका फल क्या है तब पुरोहितने उत्तर दिया था कि आज मायाचारी रावण सीताको हर ले गया है, और स्वामी रामचंद्र वनमें उसे ढूंढते हुए शोकसे व्याकुल होकर इधर उधर भटक रहे हैं ॥

अभिभूति सशीलानामत्रैव फलदायिनी ॥ २३० ॥ उत्पाताश्च पुरेभूवन् बहवोऽशुभसूचका । लोकद्वयाहितं वाङमयशश्च युगावधि ॥ २३१ ॥ मुच्यता मक्षिवयं यावन्न चेदं रूढिमृच्छति । इति युक्तिमतीं वाणीमुक्तो मत्र्यादिभिस्तदा ॥ २३२ ॥ प्रत्यभाषत लकेशो यूय युक्तिविरोधि किं । अस्मृत्वा वदतैव च प्रत्यक्षे का विचारणा ॥ २३३ ॥ चक्रारत्न ममुत्पन्न सीतापहरणेन मे । षट्खंडस्याधिपत्य च तेन चित्य करस्थित ॥ २३४ ॥ स्वय गृहागता लक्ष्मीं हन्यात्पादेन को विधी । इति तद्भाषित श्रुत्वा व्यरमन् हितवादिनः ॥ २३५ ॥ इत परिजनो राम मायामणिमृगानुग । विपिने नष्टदिग्भागं सूर्येस्ताच- लमेयुषि ॥ २३६ ॥ अदृष्ट्वान्विष्य सीतां च वैमनस्यमगात्तरां । सह्य सूनोर्वियोगोपि स्वामिनः केन सह्यते ॥ २३७ ॥ भानावुदयमायाति मर्त्यलोकैक- चक्षुषि । ध्वाते भियेव निर्याते दलतीष्वब्जराशिषु ॥ २३८ ॥ घटामटति कोकाना युग्मे युग्मद्विषा मुदा । अर्थ शब्देन वा योगं साधुना जानकीप्रियः॥ २३९ ॥ स्वय परिजनेनापि भास्करो दिवसेन वा । दृष्ट्वा त मत्रिया क्वेति नृप पपृच्छ साकुल ॥ २४० ॥ देव देवी च देवो वा नास्माभिरवलोकितः ।

में अशुभको सूचित करनेवाले बहुतसे उत्पाद हो रहे हैं। यह काम दोनों लोकोंमें अहित उत्पन्न करनेवाला है और युगपर्यंत बहुत भारी अपयश फैलानेवाला है इसलिये आप इसे शीघ्र छोड दीजिये नहीं तो संसारमें यह एक रूढि हो जायगी। इसतरह मंत्रियोंने बडी युक्तियोंसे भरे हुए वचन कहे रावण उनके प्रत्युत्तरमें कहने लगा कि आप लोग विना कुछ सोचे विचारे ऐसे युक्तियोंके विरोधी वचन क्यों कहते हैं, प्रत्यक्ष फलमें विचार करनेकी क्या आवश्यकता है सीताके हरण करनेसे मेरे घरमें चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई है और मुझे छहों खंडका स्वामीपना मिला है हाथ में रक्खे हुएके समान इस प्रत्यक्ष बात पर भी तो विचार करना चाहिये ॥ २२९–२३४ ॥ ऐसा कौन मूर्ख है जो घरमें आई हुई लक्ष्मीको पैरसे ठोकर दे इसतरह रावणके वचन सुनकर वे हितरूप वचन कहनेवाले मंत्री सब चुप होगये ॥ २३५ ॥

अथानतर—इधर रामचंद्र मायामयी मणियोंके बने हुए हिरणके पीछे चलेगये, जंगलमें दिशाओंका ज्ञान सब नष्ट होगया, सूर्य अस्ताचल पर्वतपर अस्त होगया, तब परिजन लोग सीता और रामचंद्रको न देखकर बडेही खेदखिन्न हुए सो ठीक ही है पुत्रका वियोग तो सहन किया भी जा सकता है परंतु स्वामीका वियोग भला कौन सह सकता है॥२३६–२३७॥सवेरेके समय जब मर्त्यलोकके एक चक्षुके समान सूर्य उदय हुआ, डरकरही मानों अंधकार सब नष्ट होगया, कमल सब खिलगये, और जिसप्रकार साधु लोगोंके द्वारा अर्थ शब्दोंसे मिल जाता है उसी प्रकार परस्पर द्वेष रखनेवाले चकवा चकवियोंके जोडे परस्पर मिलगये तब जिस प्रकार सूर्य दिनके साथ मिल जाता है उसीप्रकार

शीलस्य खडन मडनस्य मे । प्राणाः सता नहि प्राणा गुणाः प्राणाः प्रियास्ततः ॥ २२१ ॥ तद्व्ययात्पालयाम्येतान् गुणप्राणान्न जीविका । मूर्त्तिर्विनश्वरी यातु विनाशमविनश्वरं ॥ २२२ ॥ विनश्यति न मे शील कुलशैलानुकारि तत् । इति प्रत्युत्तरं दत्वा गृहीत्वा सा व्रत तदा ॥ २२३ ॥ वदिष्यामि न मोक्ष्ये च यावन्न श्रूयते मया । रामस्य क्षेमवार्त्तेति मनसालोच्य सुव्रता ॥ २२४ ॥ अवबोधितवैधव्यविरुद्धस्वल्पभूषणा । यथार्थं चिंतयंत्यास्त संतत सस्तते स्थितिं ॥ २२५ ॥ प्रादुरासस्तदोत्पाता लकाया किंकरा इव । तद्ध्वंसिकालराजस्य समताद्भयदायिनः ॥ २२६ ॥ उत्पन्नमायुधागारे चक्रं वा कालचक्रवत् । यज्ञशालाप्रवद्धस्य वस्तकस्येव शाड्वल ॥ २२७ ॥ तदुत्पत्तिफलस्यास्यानववोधुः खगेशिन । ज्वलदारं महाचक्र महातोषमजीजनत् ॥ २२८ ॥ रामो नाम बलो भावी लक्ष्मणोप्यनुजातवान् । तस्य रूढप्रतापौ तौ द्व वप्यमिमुखोदयौ ॥ २२९ ॥ सीता शीलवती नेय जीवती ते भविष्यति ।

क्या लाभ है सज्जनोंके प्राण प्राण नहीं हैं किंतु गुण ही प्राण हैं और इसलिये ही वे गुण अधिक प्रिय हैं । अतएव मैं उन प्राणोंका नाशकर इन गुण रूप प्राणोंकी रक्षा करूंगी गुणोंका नाशकर मैं अपनी जीविका (जीवन) की रक्षा नहीं कर सकती । यह मूर्त्ति वा शरीर तो विनश्वर है किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट होगा इसलिये इसका नाश भले ही हो जाओ परंतु कभी न नाश होनेवाला मेरा शील कभी नष्ट नहीं होसकता क्योंकि वह कुलपर्वतोंके समान अचल और अविनश्वर है । इसतरह उत्तर देकर उस सीताने उसी समय व्रत धारण कर लिया और अच्छी तरह व्रत पालन करनेवाली उसने मनमें यह भी प्रतिज्ञा करली कि जबतक रामचंद्रकी क्षेमकुशलकी बात न सुन लूंगी तबतक न तो मैं कुछ बोलूंगी और न कुछ खाऊंगी ॥ २१९–२२४ ॥ वह अपनको विधवा समझने लगी आभूषण आदि सब उतार दिये और निरंतर संसारकी दशाका यथार्थ स्वरूप चिंतवन करती हुई रहने लगी ॥२२५॥ उसी समयसे लंका में उसे ही नाश करनेवाले मृत्युराजके भय देनेवाले किंकरोंके समान चारों ओरसे उत्पात होने लगे ॥ २२६ ॥ जिस प्रकार यज्ञशालामें बंधे हुए बकरेलिये घासके छोटे छोटे अंकूरे उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार रावणकी आयुधशालामें कालचक्रके समान चक्र उत्पन्न हुआ ॥ २२७ ॥ उस चक्रके उत्पन्न होनका फल विद्याधर रावणको मालूम नहीं था इसलिये जिसके अरे दैदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे चक्रको देखकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ २२८ ॥ तदनंतर मंत्रियोंने उसे समझाया और कहा कि रामचंद्र होनहार बलभद्र हैं और लक्ष्मण उनका छोटा भाई नारायण है वे दोनों भाई बडे ही प्रतापी हैं उनकी उन्नति और अभ्युदय मामने ही दिख रहा है सीता बडी शीलवती है और जीते जी आपकी कभी नहीं होसकती, शीलवती, स्त्रियोंका तिरस्कार करना इसी लोकमें बुरा फल दे देता है । इसके सिवाय नगर

सुचिरात्समदर्शयत् ॥ २११ ॥ भयेन लज्जया रामविरहोत्थशुचा च सा । अगाद्राजसुता मूर्च्छामतिकृच्छ्रप्रतिक्रियां॥२१२॥सद्यः शीलवतीस्पर्शाद्विद्या गगनगामिनी । विनश्यतीति भीत्वासौ जानकीं स्वयमस्पृशन् ॥ २१३ ॥ विद्याधरी समाहूय शीतांबुपवनादिभि । मूर्छामस्या निराकुर्युरिति दक्षा न्ययोजयत् ॥ उपायैस्तामिरुद्धूतमूर्च्छावोचद्धरासुता । यूयं का कः प्रदेशोयमिति शंकाकुलाशया ॥ २१५ ॥ विद्याधर्यो वयं लंकापुरमेतन्मनोहरं । वनं रावणराजस्य त्रिखंडाधिपतेरिदं ॥ २१६ ॥ त्वादृशी वनिता लोके न काचित्पुण्यभागिनी । महेंद्रमिव पौलोमी सुभद्रेवादिभूपतिं ॥ २१७ ॥ श्रीमती वज्रजंघं वा त्वमेनं कुरु ते पतिं । स्वामिनी भव सौभाग्याद्रावणस्य महाश्रियः ॥ २१८ ॥ जानकी ताभिरित्युक्ता सुदूना दीनमानसा । किं पौलोम्यादयः शीलभंगेन ताः पतीन् स्वय ॥ २१९ ॥ प्राणेभ्योप्यधिकान् का वा विक्रीणंति गुणान् स्त्रिय । त्रिखंडस्याधिपोस्त्वस्तु षट्खंडस्याखिलस्य वा ॥ २२० ॥ किं तेन यदि

बहुत देरसे उस सीताको अपना इंद्रनील कांतिका शरीर दिखलाया ॥ २११ ॥ उसे देखतेही वह राजकन्या सीता भयसे लज्जासे और रामके विरहसे उत्पन्न हुए शोकसे ऐसी मूर्छित होगई कि जिसका उपाय करना भी बहुत कठिन होगया ॥ २१२ ॥ शीलवतीको स्पर्श करनेसे आकाशगामिनी विद्या शीघ्र ही नष्ट होजायगी इसी डरसे रावणने स्वयं सीताका स्पर्श नहीं किया ॥ २१३ ॥ उसने अनेक चतुर विद्याधरियें बुलाईं और आज्ञा दी कि शीतल वायु आदिसे शीघ्रही इसकी मूर्छाको दूर करो । इसतरह कहकर अनेक विद्याधरियोंको उसने नियुक्त किया ॥२१४॥ अनेक उपायों के करनेसे उसकी मूर्छा दूर हुई तब अनेक शंकाओंसे व्याकुल हुई वह सीता उन विद्याधरियोंसे पूछने लगी कि तुम कौन हो और यह जगह कौनसी है ॥ २१५ ॥ इसके उत्तरमें वे विद्याधरियें कहने लगीं कि हम विद्याधरियां हैं यह लंका नगर है और यह तीनखंडके स्वामी राजा रावणका मनोहर वन है ॥ २१६ ॥ इस संसारमें तेरे समान पुण्यशालिनी अन्य कोई स्त्री नहीं है, क्योंकि जिसप्रकार इंद्राणी इंद्रको पति बनाती है अथवा सुभद्राने प्रथम राजा भरत चक्रवर्तीको पति बनाया था अथवा श्रीमतीने वज्रजंघको पति बनाया था उसी प्रकार तू इस रावणको अपना पति बना तथा अपने सौभाग्यसे रावणकी महालक्ष्मीकी स्वामिनी हो ॥२१७-२१८॥ उन विद्याधरियोंके ये वचन सुनकर सीता बहुत ही खेदखिन्न हुई उसका चित्त दीन होगया और वह कहने लगी कि क्या इंद्रानी सुभद्रा आदिने स्वयं अपना शील भंगकर उनको पति बनाया था ? संसारमें ऐसी कौनसी स्त्रियां हैं जो अपने प्राणोंसे भी प्यारे गुणोंको बेच डालती हों । वह रावण चाहे तीन खंडका स्वामी हो, चाहे छह खंडका स्वामी हो और चाहे समस्त पृथ्वीका स्वामी है यदि मेरे शोभास्वरूप वा मुझे विभूषित करनेवाले शीलव्रतका खंडन होता है तो उससे (रावणसे)

वंचोतिदुर्मदः ॥ २०१ ॥ वदन्नित्यन्वगात्सोपि मृगोगाद्गगनांगण। कुतः कृत्यपरामर्शः स्त्रीवशीकृतचेतसा ॥२०२॥ लोकमानो नभो रामस्तनुतामतिरूपय-न। तस्थौ तत्रैव विभ्रांतो घटांतरगताहिवत् ॥ २०३ ॥ अथातो रामरूपेण परिवृत्तो दशानन । सीतामित्वा पुरोधृत्वा प्रहितो हरिणो मया ॥२०४॥ वा-रुणीदिक् प्रिये पश्य विबमेपाशुमालिन । सिंदूरतिलकं न्यस्तं विभ्रतीव विराजते ॥२०५॥ आरोह शिविका तस्माद्दाशु सुंदरि बंधुरां । पुरोगमनकालोय वर्तते सुखरात्रये ॥ २०६ ॥ इत्यवादीत्तदाकर्ण्य सा मायाशिविकाकृति–विमान पुष्पक मोहादारुरोह धरासुता ॥ २०७ ॥ राम वा तुरगारूढमात्मान संप्रदर्शयन्। महीगतमिव भ्रांतिं जनयन् दुहितुर्महे ॥ २०८ ॥ ता भुजंगीमिवानैषीदुर्णयेन स्वमृत्यवे। पतिव्रताग्रगा पापी मायाचचुर्दशानन ॥२०९॥ क्रमात्लंकामवाप्यैनामवतार्य वनांतरे। सद्यो माया निराकृत्य ज्ञापितानयनक्रम ॥ २१० ॥ इन्द्रनीलच्छविं देह गूढार्थ शिष्यसततेः । आचार्यो वा स तस्या स्व

मायमृग (कपटसे बना हुआ हरिण) है बडी बडी कठिनतासे भले ही पकड़ा जा सके यह व्यर्थ ही खींचकर मुझे दूर ले जा रहा है" इसतरह कहते हुए रामचंद्र उसके पीछे पीछे जाने लगे; थोडी देरके बादही वह उडकर आकाशमें चला गया। देखो जिनका चित्त स्त्रियोंके वश होजाता है वे किसी कामका विचार नहीं कर सकते॥ २०१–२०२ ॥ जिस प्रकार घडेमें रक्खा हुआ सर्प बडा दुखी होता है उसीप्रकार आकाशकी ओर देखते हुए और अपनी हीनता दिखलाते हुए रामचंद्र घबडाये हुएसे होकर वहींपर ठहर गये ॥ २०३ ॥ इधर रावण रामका रूप धारणकर सीताके समीप आया तथा कहने लगा कि मैंने हिरण पकडकर आगे भेज दिया है, हे प्रिये इस पश्चिम दिशाको देखो यह इस समय ऐसी सुशोभित हो रही है मानों इसने सूर्य मंडलको ही सिंदूरका तिलक बनाकर लगाया हो ॥२०४–२०५॥ इसलिये हे सुंदरि अब तू इस सुंदर पालकीमें बैठ अब सुखकी रात वितानेकेलिये यह नगरमें जानेका समय आगया है ॥२०६॥ रामका रूप धारण किये हुए रावणकी यह बात सुनकर सीता मोहनीय कर्मके उदयसे जो पुष्पक विमान मायासे पालकीके आकार बन गया था उसीपर सवार हो गई ॥ २०७ ॥ रामचंद्रके भेषमें घोडेपर चढे हुए रावणने अपनी मायासे सीताको यह भी दिखला दिया कि घोडेपर चढे हुए राम पृथ्वीपर चल रहे हैं ॥ २०८ ॥ इसतरहके उपायसे वह पापी और मायाचारी रावण अपनी मृत्यु बुलानेके लिये सर्पिणीके समान पतिव्रताओंमें शिरोमणि उस सीताको ले आया ॥ २०९ ॥ इसतरह अनुक्रमसे वह रावण लंकामें जा पहुचा और उसने सीताको किसी वनमें उतार दिया। रावणने शीघ्र ही अपनी माया भी दूर कर दी और उसके लानेका सब हाल भी उसे बतला दिया ॥ २१० ॥ जिसप्रकार आचार्य अपने शिष्योंको गूढ अर्थ दिखलाता है उसी प्रकार उस रावण ने

तीश्चित्त न शक्य मन्मथेन च ॥ १९० ॥ इत्याह्यात्माप्यद' पापादवकर्ण्य स रावणः । निर्मलैः केतनैर्दूरात्पश्यता जनयद्मृगं ॥ १९१ ॥ हंसावलीति संदेह नवनिर्मोकहासिभिः । दिशो मुखरयद्धेमघटाचटुलनिःस्वनैः ॥ १९२ ॥ कुर्वद्घनैर्घनाश्लेष विश्लिष्टैरिव बंधुभि । ययौ पुष्पकमारुह्य गगने सह मंत्रिणा ॥ १९३ ॥ ध्वजपटाग्रनिर्भिन्नवारिदच्युतवालैवैः । मंदगंधवहानीतैर्विनीताध्वपरिश्रमः ॥ १९४ ॥ सीतोत्सुकस्तया गच्छन् ददृशे पुष्पकस्थितः । शरद्वलाकातस्थो वासो नीलवलाहक ॥ १९५ ॥ सप्राप्य चित्रकूटाख्यं नंदन नंदनस्वन । प्रविष्ट इव सीतायाश्चित्त तुष्टिमगादलं ॥ १९६ ॥ तदाज्ञयाथ मारीचपरार्घ्यमणिनिर्मित । भूत्वा हरिणपोतोसो सीताया स्वमदर्शयत ॥ १९७ ॥ त मनोहारिण दृष्ट्वा पश्य नाथातिकौतुक । हरिणश्चित्रवर्णोयं रंजयत्यजसा मन ॥ १९८ ॥ इति सीतावचः श्रुत्वा विनेतु तत्कुतूहलं । तदा निनीषया गत्वा रामो वामे विधे विधीः ॥ १९९ ॥ ग्रीवाभगेन वा पश्यन् कुर्वन् दूरं पुनः प्लुतिं । वल्गन् धावन् क्षण खादन् विभयो वा तृणाकुरं ॥ २०० ॥ हस्तप्राप्यमिवात्मानं कृत्वोड्डीयति दूरगः । वृथा कर्षति मा मायामृगो

शब्दोंसे सब दिशाओंको शब्दायमान कर रहा था और अलग अलग हुए भाइयोंके समान अलग अलग बादलोंसे खूब मिल रहा था ॥ १९२--१९३ उस समय ध्वजा और घंटोंकी नोकोंसे जो बादल छिन्न भिन्न होगये थे और उनसे जो पानीकी बूंदे गिर रहीं थीं उनसे शीतल हुए तथा सुगंधित और मंदवायुसे रावणका सब परिश्रम दूर हो रहा था और सीताकेलिये वह उत्सुक हो रहा था सफेद पुष्पक विमानमें बैठकर जाता हुआ वह नीलवर्णका रावण ऐसा जान पडता था मानो शरद ऋतुके सफेद बादलोंके समीप कोई काला बादल ही हो ॥ १९४-१९५ ॥ धीरे२ वह नंदन बनके समान चित्रकूट बनमें जा पहुंचा और सीताके हृदयमें धुसे हुएके समान वह वहां बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ १९६ ॥ रावणकी आज्ञासे मारीचने वहां जाकर बहुमूल्य मणियोंसे बने हुये हरिणके बच्चेका रूप बना लिया और सीताके सामने जाकर उसके दृष्टि गोचर हुआ ॥ १९७ ॥ उस मनोहर हरिणको देखकर सीता रामचंद्रसे कहने लगी कि हे नाथ देखिये यह कैसे आश्चर्यकी वस्तु है अनेक वर्णका यह हरिण चित्तको बहुत शीघ्र मोहित वा प्रमन्न कर रहा है ॥ १९८ ॥ सीताकी यह बात सुनकर उस आश्चर्य करनेवाली वस्तुको पकडने और उसे लेनेकी इच्छासे रामचंद्र निकले सो ठीक ही है दैवके प्रतिकूल होनेपर बुद्धि मी नहीं रहती है ॥१९९॥ वह हरिण कभी गर्दन झुकाकर पीछेकी ओर देखता था, कभी दूर हो जाता था, कभी जोरसे चिल्लाता था, कभी दौडता था, और कभी क्षणभर तक निर्भय होकर घासके अंकूरोंको चरता था ॥ २०० ॥ कभी हाथसे पकडने योग्य अत्यंत समीप आकर छलांग मारकर बहुत दूर चला जाता था। "यह

दृष्ट्वा त स्वोचित देव सीता शीलवती न सा । वज्रयष्टिरिवान्येन भेत्तु केनापि शक्यते ॥ १८१ ॥ इति स्वगतवृत्तातमुक्त्वा तेमिमतं मया । नोक्तं शीलवतीकोपवन्हिभीत्येति साब्रवीत ॥ १८२ ॥ श्रुत्वा तद्वचन सर्वमसत्यमवधारयन् । प्रकटीकृतकोपाग्निरिंगिताकारवृत्तिभि ॥ १८३ ॥ मुग्धे फणींद्रनिश्वासभोगाटोपविलोकनात् । भीत्वा तद्ग्रहणं को वा विषवादी विमुचति ॥ १८४ ॥ वाह्यस्थैर्यवचः श्रुत्वा भीला तस्यास्त्वमागता । गजकर्णचला स्त्रीणा चित्तवृत्तिर्न वेत्सि किं ॥ १८५ ॥ नास्याश्चित्तं त्वयाभेदि न जाने केन हेतुना । उपायकुशलाभासीत्यसौ तामभ्यतर्जयत् ॥ १८६ ॥ भोगोपभोगद्वारेण रंजयेय मनो यदि । तत्र यद्वस्तु नान्यत्र तत्स्वप्नेप्युपलभ्यते ॥ १८७ ॥ अथ शौर्यादिभीरामसदृशो न क्वचित्पुमान् । वीणादिभिश्चेत्सा सर्वकलागुणविशारदा ॥ १८८ ॥ सुग्रहं तलहस्तेन भूमिष्ठैर्भानुमडल । पातालादपि शेषाहिः सुहरो डिंभकेन च ॥ १८९ ॥ ससुत्तानयितु शक्ता ससमुद्रा वसुधरा । भेत्तु शीलव-

सार नहीं कहा है ॥ १८२ ॥ उसकी ये बातें सुनकर रावणने सब झूठ समझी और अपने मुखकी आकृति बनाकर उसने अपनी क्रोधरूपी अग्नि प्रगटकी ॥ १८३ ॥ क्रोधमेंही वह कहने लगा कि हे मुग्धे! ऐसा कौन विषवादी है जो सर्पके निश्वाससे उठे हुए भयकर फणको देखकर और उससे डरकर उसका पकडना छोड दे, ॥ १८४ ॥ उसके वाहरके स्थिररूप वचन सुनकर और उससे डरकर तू वापिस लौट आई है ? क्या तू नहीं जानती कि स्त्रियोंके चित्तकी वृत्ति हाथीके कानोंके समान चंचल होती है ॥ १८५ ॥ समझमें नहीं आता कि किस कारणसे तू उसके चित्तको न भेद सकी जान पडता है तू उपायोंमें इतनी चतुर नहीं है जितनी कि बाहरसे दिखती है इसतरह कहकर रावणने उसे खूब डाट लगाई ॥ १८६ ॥ तब वह सूर्पणखा फिर कहने लगी कि यदि भोगोपभोगकी वस्तुओंसे उसका मन वश किया जाय तो भोगोपभोगकी जो वस्तुएं वहां उपस्थित हैं वे दूसरी जगह स्वप्नमें भी नहीं मिल सकतीं ॥ १८७ ॥ यदि शूरवीरता आदि गुणोंसे वश किया जाय सो भी नहीं बन सकता क्योंकि शूर वीरतामें भी रामके समान कोई दूसरा पुरुष नहीं है । यदि वीणा आदि गाने बजानेसे वश किया जाय तो वह सब कला और सब गुणोंमें चतुर है। पृथ्वीपर खडा होकर हाथकी हथेलीसे ही सूर्यमंडलका पकडलेना सहज है, किसी बालकके द्वारा शेषनागको पातालसे भी बाहर निकाल लेना सहज है और समुद्रसहित इस समस्त पृथ्वीको उठा लेना सहज है परंतु कामदेवके द्वारा भी शीलवतीके चित्तका भेदन करना नितांत असंभव है । सूर्पणखा की ये बातें सुनकर रावण पाप कर्मके उदयसे मारीच मंत्रीके साथ पुष्पक विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे चला। उस पुष्पक विमानमें सर्पकी नई कांचलीको भी लज्जित करनेवालीं जो निर्मल ध्वजाएं फहरा रहीं थीं वे देखनेवाले लोगोंको बार २ हंसोंकी पंक्तियोंका संदेह उत्पन्न करती थीं तथा वह विमान सुवर्णकी लटकती हुई सुंदर घंटियोंके

त्वे महादुःखपात्रत्वं दुश्चेष्टया ॥ १७१ ॥ दानशीलोपवासादिपरलोकहितक्रिया–विधानेष्वप्रधानत्व संतानार्थीनवापनं ॥ १७२ ॥ कुलनाशोऽगतिर्मुक्ते-
रित्यायन्यच्च दूषित । साधारणमिद सर्वस्त्रीणां कस्मात्तवाभवत ॥ १७३ ॥ तस्मिन्सुखामिलाषित्वं वयस्यस्मिन् गतत्रपे । न चिंतयसि ते भाविहित म-
तिविपर्ययात् ॥ १७४ ॥ स्त्रीत्वे सतीत्वमेवैक श्लाघ्य तत्पतिमात्मनः । विरूप व्याधितं निःस्व दु स्वभावमवर्तकं ॥ १७५ ॥ त्यक्त्वान्यं चेदश वासां च-
क्रिणं वामिलाषिणं । पश्यत्यः कुष्टिचांडालसदृश नामिलाषुका ॥१७६॥ तमप्याक्रम्य भोगोत्थ सद्यो दृष्टिविषोपमा । नयति भस्मसाद्भावं यद्बलात्कुलयोषि
त ॥ १७७ ॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा मदरोद्रिश्च चाल्यते । शक्यं चालयितुं नास्याश्चित्तमित्याकुलाकुला ॥ १७८ ॥ गृहकार्यं भवद्वाक्यश्रुतेर्विस्मृत्य दुस्थि-
ता । यामि देव्यहमित्येतच्चरणाववनम्य सा ॥ १७९ ॥ गत्वानिष्ठितकार्यत्वाद्विषण्णा रावण प्रति । अशक्यारंभवृत्तीनां क्लेशादन्यत्कुतः फलं ॥ १८० ॥

है और स्त्री मोक्षकी पात्र कभी होती ही नहीं। इनके सिवाय और भी बहुतसे दोष हैं जो कि सब स्त्रियोंमें साधारण रीतिसे पाये जाते हैं इसलिये ऐसी निंद्य स्त्रीपर्यायमें तुझे सुखकी अमिलाषा क्यों हुई जान पडती है तेरी बुद्धि प्रतिकूल वा उलटी होगई है इसलिये ही तू निर्लज्ज अवस्थामें भी अपने होनहार हितका चिंतवन नहीं करती है ॥ १७१–१७४ ॥ स्त्रीपर्यायमें तो एक सतीत्व ही प्रशंसनीय है और वह सतीत्व यही है कि अपना पति चाहे कुरूप हो चाहे रोगी हो चाहे निर्धन हो, चाहे बुरे स्वभावका हो और चाहे बुरे बर्तावका हो उसे छोडकर किसी ऐसे ही अथवा इच्छा करनेवाले किसी चक्रवर्तीको भी कोढी और चंडालके समान देखती हुई कभी उनकी इच्छा नहीं करती है ॥ १७५–१७६ ॥ कदाचित् कोई पुरुष ऐसी सतियोंपर आक्रमण करे तो सर्पिणीके समान वे कुलीन स्त्रियें अपने सतीत्व-सामर्थ्यसे शीघ्रही उसे भस्म कर देती हैं सीताके ये वचन सुनकर वह सूर्पणखा सोचने लगी कि कदाचित् मेरुपर्वत चलाया जा सकता है परंतु इसका चित्त कभी नहीं चलाया जा सकता तदनंतर वह व्याकुल होकर कहने लगी कि हे देवी मैं आपके वचन सुनकर घरके सब काम भूल गई और बहुत देरतक यहां ठहरी रही अब मैं जाती हूं इसतरह कहकर और चरणोंको नमस्कारकर वह चली गई। कार्य न बननेसे उसका मुख कुछ खेदखिन्न था वह रावणके पास लौटगई सो ठीक ही है क्योंकि जो काम हो नहीं सकते उनके आरंभ करनेसे क्लेशके सिवाय और कुछ फल नहीं मिलता है ॥ १७८–१८० ॥ सूर्पणखाने वहां जाकर अपनी योग्यतानुसार पहिले तो रावणके दर्शन किये और कहने लगी कि हे देव सीता बडीही शीलवती है। वज्रकी लकडीके समान उसे अन्य कोई पुरुष भी भेद नहीं सकता ॥ १८१ ॥ इसतरह अपना वृत्तांत कहकर फिर कहने लगी कि शीलवतीके क्रोधरूपी अग्निके डरसे मैंने तेरी इच्छानु-

मा वीक्ष्य कारुण्याज्जनकात्मजा। किमित्याकांक्षसि स्त्रीत्वं त्वं हितानवबोधिनी॥१६३॥स्त्रीतामनुभवतीभिरत्रामूभिरनीप्सित। प्राप्त प्राप्य च दुर्बुद्धे महापापफल श्रृणु ॥ १६४ ॥ अनिष्टलक्षणादन्यैरग्राह्यत्वाच्छुचा गृहे। स्वे वासो मृत्युपर्यंतं कुलरक्षणकारणात् ॥ १६५ ॥ अपत्यजननाभावे प्रविष्टोत्पन्नगेहयोः। शोकोत्पादनवंध्यात्वं निर्भाग्यत्वादगौरव ॥ १६६ ॥ दुर्भगत्वेन कांताना परित्यागात्पराभवः। अस्पृश्यत्व रजोदोषात्खंडनात्कलहादिभिः ॥ १६७ ॥ दुःखदावाग्निसंतापो वन्यानामिव भूरुहा। चक्रवर्तिसुताना च परपादोपसेवना ॥ १६८ ॥ मानभंग सपत्नीषु दृष्टोत्कर्षेण केनचित्। स्वभाववक्रवाक्कायमनोभिः कुटिलात्मता ॥ १६९ ॥ गर्भसूतिसमुत्पन्नरोगादिपरपीडन। शोचन स्त्रीसमुत्पत्तावपत्यमरणेऽसुखं ॥ १७० ॥ रहस्यकार्यबाह्यत्वं सर्वकार्येष्वतंत्रता। विधवा-

रुणासे सीता कहने लगी कि अरे क्या तू स्त्रीपना चाहती है जान पडता है तू अपने हितको भी नहीं जानती ॥ १६०–१६३ ॥ स्त्रीपनेका अनुभव करती हुई ये सब यहां ही अनिष्टताको प्राप्त हुई हैं। हे दुर्बुद्धे! यह स्त्रीपना बडे बडे पापोंका फल है सुन! यदि कन्यामें लक्षण अच्छे नहीं हुए तो उसे कोई ग्रहण नहीं करता इससे घरमें शोक ही शोक छाया रहता है। स्त्रियोंको मरने तक कुलकी रक्षा करनी पडती है इसलिये उन्हें सदा सेवामें ही लगा रहना पडता है ॥ १६४–१६५ ॥ यदि किसीके पुत्र उत्पन्न न हो तो दोनों घरोंमें शोक उत्पन्न करती रहती है यदि भाग्यहीनतासे कोई बंध्या हुई तो वह कभी गौरवताको (बडप्पनको) प्राप्त नहीं होती है ॥ १६६ ॥ यदि कोई स्त्री कुरूपा हुई तो पति उसे छोड देता है और इसतरह उसे अपना तिरस्कार सहना पडता है रजो दोषसे उसे कोई छूता नहीं कदाचित् कलह करनेसे वह छोड दी जाय (पति उसे छोड दे) तो जिस प्रकार वनके वृक्ष दावानल अग्निसे जला करते हैं उसीप्रकार वह दुखरूपी दावानल अग्निसे जला करती है। चक्रवर्तीकी पुत्रियोंको भी दूसरेके चरणोंकी सेवा करनी पडती है ॥१६७–१६८॥ और सपत्नियोंमें किसी कारणसे उत्कृष्टता हुई तो फिर मानभंग सहना पडता है। स्त्रियोंके मन वचन काय स्वभावसे ही सदा कुटिल रहनेसे वे सदा कुटिलरूप रहती हैं ॥ १६९ ॥ गर्भकी प्रसूति होते समय उत्पन्न हुए अनेक रोगादिकोंकी पीडा सहनी पडती है, स्त्रियोंके उत्पन्न होतेही शोक करना पडता है और संतानके मरने पर दुख सहना पडता है ॥१७०॥ विचार करने योग्य बातोंपर उनसे कोई सलाह लेता नहीं सब कार्योंमें पराधीनता रहती है और यदि विधवा हुई तो महादुखोंकी पात्र बनती है अर्थात् उसे अनेक दुख भोगने पडते हैं। दुष्ट चेष्टा होनेसे दान शील उपवास आदि परलोकके हित करनेवाली क्रियाओंके करनेमें प्रधानता नहीं रहती। यदि स्त्रीके संतान न हो तो कुलका नाश हो जाता

सलाऽेततकृतं रूप न वेधसा ॥ १५३ ॥ याहच्छिकं न चेदन्यत्किमकारीति नेदृशं । शेषदेव्यो जराजीर्णां तां दृष्ट्वा यौवनोद्धता ॥ १५४ ॥ का त्वं वद कुतस्त्या वेत्यवोचन्हासपूर्वकं । उद्यानपालकस्याहं माताऽत्रैवेति सा पुन ॥१५५॥ तासां चित्तपरीक्षार्थमिमां वाचमुदाहरत् । युष्मद्पुण्यभागिन्यो मान्या सत्यन्ययोषित ॥ १५६ । रस्यादाभ्यां कुमाराभ्या सह भोगपरायणा । युष्माभिः प्राकृत किं वा पुण्यं तन्मम कथ्यतां ॥ १५७ ॥ तत्करिष्यमि येनास राज्ञीभूत्वा महीपतेः । इमं विरक्तमन्यासु विधास्यामीति तद्वचः ॥ १५८ ॥ श्रुत्वा ताश्चित्तमेतस्यास्तरुण स्मरविह्वल । वपुरेव जराग्रस्तमित्यल सहसाहसन् ॥ १५९ ॥ माह्यासः कुलसौरूप्यकलागुणयुजामिह । समप्रेमहलिप्राप्तेः किमन्यज्जन्मन फल ॥ १६० ॥ वदतेति वदतीं ता पुनर्भो जन्मन फल । तवेदमेव चेदस्मद्विभुना विधिना वय ॥ १६१ ॥ त्वमद्य योजयिष्याम परिमुक्तविचारण । महादेवी भवेत्यासा हासबाणशरव्यतां ॥ १६२ ॥ उपयांतीमि-

गई मानो सीताके विलासोंके देखनेसेउत्पन्न हुई लज्जासे ही नव गई हो॥१५२॥ब्रह्माने (नामकर्मरूपी ब्रह्माने) इसका यह रूप अपनी बुद्धिकी चतुरता से नहीं बनाया है किंतु अनायास ही ऐसा बन गया है यदि यह रूप अनायास न बन जाता वह स्वयं बुद्धिकी चतुरतासे बनाता तो फिर ऐसा रूप किसी दूसरी जगह क्यों नहीं बनाता इस तरह उसके रूपका वर्णन करती हुई वह बहुत ही आश्चर्य करने लगी। सीताको छोडकर बाकीकी यौवनसे युद्धत हुई रानियोंने बुढापेसे जीर्ण हुई उस बुढियाको देखकर हंसीपूर्वक पूछा कि बुढिया बता तो तू कौन है? कहांसे आई है? इसके उत्तरमें वह बुढिया कहने लगी कि मैं इस उद्यानकी रक्षा करनेवालेकी माता हूं और यहां ही रहती हूं। उन रानियोंके चित्तकी परीक्षा करनेके लिये वह फिर कहने लगी कि आपलोग बडी पुण्यशालिनी हैं और अन्य सब स्त्रियोंसे मान्य हैं तभी तो इन ऐसे कुमारोंके साथ भोगोपभोग करनेमें लीन हो रहीं हो। आपने पहिले जन्ममें कौनसा पुण्य किया है उसे मुझसे भी कह दीजिये मैं भी उस पुण्यको करूंगी और इन्हीं महाराजकी रानी होकर इन्हें अन्य सब स्त्रियोंसे विरक्त कर दूंगी। उस बुढियाकी यह बात सुनकर वे सब स्त्रियां एकसाथ हंस पडी और कहने लगीं कि केवल इसका शरीर ही बूढा होगया है चित्त तो इसका तरुण है और अब भी कामदेवसे विह्वल है ॥ १५३–१५९ ॥ इस प्रकार उनको हंसते हुए देखकर वह बुढिया फिर कहने लगी कि उत्तम कुल, सुंदरता कला और गुणोंको पाकर तुमलोग हंसी मत करो भला कहो तो यही बलभद्रका समान प्रेम प्राप्त होनेपर फिर इस जन्मका और फल है ही क्या? बुढियाकी ये बातें सुनकर वे फिर कहने लगीं कि ए बुढिया! यदि तेरे जन्म लेनेका यही फल है तो आज हम विधिपूर्वक अपने पतिसे तुझे मिला देंगे फिर तू विना किसी सोच विचारके पट्टरानी होजायगी। इस तरह उन स्त्रियोंकी हंसीरूपी बाणोंका निशाना बनती हुई उस बुढियाको देखकर क-

किंचित्खिन्नामिवालक्ष्य ता जलाशयमासदत् । तत्र सिंचन् प्रिया शीतैर्यंत्रमुक्तपयःकणैः ॥ १४४ ॥ ईषन्निमीलितालोलनयनेंदीवरोज्वलं । तद्वक्त्रकमलं किंचित्खिन्नामिवालक्ष्य ता जलाशयमासदत् । पश्यन्न सोऽल्प तदातुषत् ॥ १४५ ॥ वक्षोदघ्नमसौ वारि प्राविशत्सस्मिता प्रिया । परिरंभोत्सुका विद्वानिंगितज्ञा हि नागराः ॥ १४६ ॥ भ्रमराः कजकं सुवत्वा कांतास्याब्जेऽपतन्सम । तैराकुलीकृतां दृष्ट्वा खेदी ल्हादी च सोऽभवत् ॥ १४७ ॥ एव जल चिरं रंत्वा तत्रापूर्य मनोरथ । सात पुरो वने रम्यप्र- देशे स्थितिमाव्रजत् ॥ १४८ ॥ तदा सूर्पणखागत्य तयोर्नृपतनूजयोः । वीक्षमाणातुलां लक्ष्मीमनुरक्ता सविस्मय ॥ १४९ ॥ प्रभूतप्रसवानम्रकम्राशोक- महीरुह । अधस्था सुस्थिता सीतां हरिन्मणिशिलातले ॥ १५० ॥ वनलक्ष्मीमिवालोक्य भूष्यमाणा सखीजनैः । युक्तमेव खगेशस्य प्रेमास्यामिति वादि नी ॥ १५१ ॥ बभूव स्थविरा रूप्यपरावर्तनविद्यया । सीताविलासदर्शसभूतव्रीडयेव सा ॥ १५२ ॥ तद्रूप वर्णयतीत्थ सकौतुकममन्वत । स्वबुद्धिकौ-

रहे हैं ॥ १४२ ॥ जिसप्रकार इंद्र शची देवीके साथ वनमें क्रीडा करता है उसीप्रकार मनोहर वचनोंसे सीताको प्रसन्न करते हुये रामचंद्र उसके साथ वन क्रीडा करने लगे ॥ १४३ ॥ रामचंद्र सीताको कुछ खेद खिन्न देखकर किसी जलाशयके (सरोवरके) पास पहुंचे और वहांपर सीताको यंत्रके द्वारा (पिचकरेसे) छोडी हुई छोटी छोटी ठंडी बूंदोंसे सींचने लगे ॥ १४४ ॥ जिनके पलक कुछ कुछ मुंद रहे हैं ऐसे चंचल नेत्ररूपी कमलोंसे उज्वल उस सीताके मुखरूपी कमलको देखते हुए रामचंद्र उस समय कुछ कम संतुष्ट नहीं हुए थे ॥ १४५ ॥ वे बुद्धिमान रामचंद्र आलिंगन करनेको उत्सुक हुई और कुछ कुछ हंसती हुई सीताके समीप छातीतक पानीमें पहुच गये थे सो ठीक ही है क्योंकि नागरपुरुष (चतुर पुरुष) इशारोंको खूब अच्छी तरह समझ लेते हैं ॥ १४६ ॥ उस समय भ्रमर सब कमलोंको छोडकर एक साथ सीताके मुखरूपी कमलपर पड रहे थे उनसे व्याकुल हुई सीताको देखकर रामचंद्र कुछ खेद खिन्न भी हुए थे और प्रसन्न भी हुए थे ॥ १४७ ॥ इसतरह बहुत देरतक जलक्रीडाकर तथा अपने मनोरथ पूर्णकर रामचंद्र अपने रणवासके साथ बनकी किसी सुंदर जगहपर जा बैठे ॥ १४८ ॥ उसीसमय वहां सूर्पणखा आई और दोनों राजपुत्रोंकी अनुपम शोभा देखकर वडे आश्चर्यके साथ उनमें अनुरक्त होगई ॥ १४९ ॥ उससमय सीता बहुतसे फूलोंसे नवे हुए और सुशोभित अशोकवृक्षके नीचे हरिन्मणियोंकी शिलापर आरामसे बैठी थी, अनेक सखियां उसकी शोभा बढा रहीं थीं और वह ठीक वनलक्ष्मीके समान जान पडती थी उसे देखकर सूर्पणखाने कहा कि इस ऐसी सुंदरीमें विद्याधर रावणका प्रेम होना ठीक ही है ॥ १५०—१५१ ॥ परावर्तिनी (जिससे रूप बदला जाय) विद्यासे उसने अपना बुढियाका रूप बना लिया और वह ऐसी नव

भूतामालोक्य कामिनी । पुनश्चैवमभाषिष्ट मृष्टेष्टवचनो नृप ॥ १३३ ॥ त्वद्वक्त्रं दर्पणे वीक्ष्य चक्षुषी ते कृतार्थके । त्वदास्य सौरभेणैव तृप्ता ते नासि-
का भृशं ॥ १३४ ॥ त्वच्छ्रव्यगेयसल्लापैः कर्णौ पूर्णरसौ तव । तव बिंबाधरस्वादास्वज्जिह्वान्यरसास्पृहा ॥ १३५ ॥ परिरभ्य करौ तृप्तौ तव त्वत्कठि-
नस्तनौ । मनोपींद्रियसतृप्त्या सतृप्तं नितरा प्रिये ॥ १३६ ॥ स्वस्यामेवं स्वयं तृप्ता सिद्धाकृतिरिवाधुना । कोपस्ते युक्त एवेति सीतां स चतुरोक्तिभि ॥
१३७ ॥ तत प्रसन्नया सार्द्धं सुख सर्वेंद्रियोद्भवं । सम्प्राप्य नूतनं भूपः कोपोपि सुखदः क्वचित् ॥ १३८ ॥ तत्रैव लक्ष्मणोप्येवं स्वप्रियाभि सहारमत् ।
ददौ तदा मुदा कामस्तेभ्योभ्यर्थ्यमदः सुखं ॥ १३९ ॥ एवं रामश्चिरं रंत्वा कांते पश्य रविः करै । सर्वान् दहति मूर्द्धस्थस्तीव्रः कस्यात्र शांतये ॥
४० ॥ लक्ष्मणाक्रमविक्रांतिविजिताराातिसन्निभा । छायामात्मनि संलीना प्रकुर्वंति महीरुहः ॥ १४१ ॥ वैराज्यपरिवारो वा मृगरूपः सशावकः । क्वा-
प्यलब्धाश्रयस्तस्मो भ्राम्यतीतस्ततोपि च ॥ १४२ ॥ इतिचेतोहरैः सीता मोदयन् स तया सह । शचीदेव्येव देवेशः कृत्वा वनविनोदनं ॥ १४३ ॥

पित हुई सीता चुप ही रही उसे चुप देखकर रामचद्र मीठे और इष्ट वचन कहने लगे ॥ १३३ ॥ कि हे प्रिये !
तेरे नेत्र दर्पणमें तेरा मुख देखकर कृतार्थ होचुके हैं, तेरी नाक तेरे मुखकी सुगंधिसे ही खूब तृप्त हो चुकी है, तेरे
कान सुननें योग्य तेरे गीत और वचनालापोंसे खूब रससे भरगये हैं तेरी जीभ भी बिंबाफलके समान तेरे अधरोंका
(ओठोंका) स्वाद लेकर और किसी रसकी इच्छा नहीं करती तथा तेरे दोनों हाथ भी तेरे दोनों कठिन स्तनोंका
स्पर्शकर तृप्त होगये हैं, इसीतरह हे प्रिये तेरी सब इद्रियोंके तृप्त हो जानेसे तेरा मन भी खूब तृप्त होगया है इसतरह
तू स्वय अपनेमें ही तृप्त हो रही है इसलिये ईससमय तेरी आकृति ठीक सिद्धोंके समान है । हे प्यारी फिर भी क्या तुझे
कोप करना योग्य है इसप्रकार चतुरताकी युक्तियोंसे रामने सीताको समझाया ॥ १३४–१३७ ॥ तदनंतर रामचद्र
प्रसन्न हुई सीताके साथ सब इंद्रियोंसे उत्पन्न हुए नये सुखको प्राप्त हुये सो ठीक ही है क्योंकि कहीं कहीं कोप भी
सुख देनेवाला हो जाता है ॥ १३८ ॥ वहींपर लक्ष्मण भी ईसीतरह अपनी रानियोंके साथ क्रीडा करते थे । उस-
समय कामदेव उन सबको इच्छानुसार सुख दे रहा था ॥ १३९ ॥ इसतरह रामचंद्र बहुत देर तक क्रीडा कर फिर
सीतासे कहने लगे कि हे प्रिये देख यह सूर्य अपनी किरणोंसे सबको जला रहा है सो ठीक ही है क्योंकि मस्तकपर
रहनेवाला कोई भी तीव्र पुरुष भला किसको शांति दे सकता है ॥ १४० ॥ लक्ष्मणके आक्रमणके पराक्रमसे
हारे हुए शत्रुओंके समान ये वृक्ष अपनी छायाको भी अपनेमें मिला रहे हैं ॥ १४१ ॥ शत्रु राजाओंके परिवारके
समान इन बच्चे सहित हिरणोंको कहीं भी आश्रय-नहीं मिला है इसलिये ही ये इधरसे उधर और उधरसे इधर फिर

सफल्यास्तस्यास्त्वय्यनुरक्ततां । आनेया सा सुखेनैव स्निग्धोपायेन केनचित् ॥ १२२ ॥ विरक्ता चेत्त्वगा देव हठादाक्षिप्यतामिति । पत्याह तत्समाकर्ण्य
प्रशासन्साधु साध्विति ॥ १२३ ॥ तदैव कातरः सूर्पणखामाहूय केनचित् । प्रकारेण त्वया सीता मयि रक्ता विधीयता ॥ १२४ ॥ इत्याह सादरं सा...
तत्सगीर्य विहायसि । तदैव रंहसा गत्वा प्रापद्वाराणसीं पुरीं ॥ १२५ ॥ चित्रकूटाभिधोद्याने नंदनाद्वातिसुंदरे । रामो रंतु तदा गत्वा वसते सीतया
सह ॥ १२६ ॥ मध्ये वन परिक्रम्य वीक्ष्य नानावनस्पति । मप्रसूना महासा वा सरागा वा सपल्लवा ॥ १२७ ॥ लता समुत्सुकस्तन्वीं तन्वीमन्या-
मिव प्रिया । आलोकमानो जानक्यालोकित ससकोपया ॥ १२८ ॥ कुपितेय विना हेतो प्रसाद्येत्येवमब्रवीत् । पश्य चंद्रानने भृंग लतायाः कुसुमे भृश ॥
१२९॥ तवास्ये मामिवासक्त तत्र तर्पयितुं स्वय । राग पिंडीद्रुमा पुष्पैरुद्भिरंतीव नूतनैः ॥१३०॥मम नेत्रालिनां प्रीत्यै वध्वैमिश्चित्रशेखरं । स्वहस्तेन
प्रिये मेमूनलंकुरु शिरोरुहान् ॥ १३१ ॥ एतत्पुष्पे प्रवालैश्च भूषणानि प्रकल्पये । तवापि त्व विभास्यैतैर्जंगमेव लतापरा ॥१३२॥ इत्युक्तिभिरिमा मूकी

तुमने यह बहुत अच्छा कहा ॥ १२१-१२३ ॥ उसी समय सूर्पणखा नामकी कोई दूती बुलाई और उससे कहा कि तू कोई भी उपायकर जिससे सीता मुझमें अनुराग करने लगे । रावणकी यह बात सुनकर उसने भी आदरसे प्रतिज्ञा की और वह उसीसमय आकाशमार्गसे बडी शीघ्रतासे निकल गई और बनारस नगरमें जा पहुची ॥ १२४-१२५ ॥ उस समय बसंतऋतु थी इसलिये रामचंद्र सीताके साथ नंदन बनसे भी अत्यंत सुंदर ऐसे चित्रकूट नामके वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे ॥ १२६ ॥ उन्होंने बनके मध्यमें इधर उधर घूम फिरकर अनुराग करनेवालियोंके समान नये पत्तों सहित, तथा हंसती हुईके समान फुलों सहित अनेक वनस्पतियां देखी थीं ॥ १२७ ॥ उत्कंठित हुये राम- चंद्र सुंदर अन्य प्रियाओंके समान उन सुदर लताओंको देखरहे थे इतनेमें ही कुपित हुई सीताने रामचंद्रको देखा ॥ १२८ ॥ यह विना ही कारणके कुपित होगई है इसलिये इसे प्रसन्न करना चाहिये" यही समझ रामचंद्र सीतासे कह- ने लगे कि हे चंद्रानने (चंद्रमा सरीखे मुख वाली) देख ! जिसप्रकार मैं तुझे प्रसन्न करनेके लिये स्वयं तेरे मुखमें आसक्त रहता हूं उसीप्रकार यह भ्रमर लताके फूलमें कैसा आसक्त होरहा है । ये पिंडी जातिके वृक्ष (महुआके पेड) अपने अनुरागको प्रगट करते हुयेके समान ही जान पडते हैं । हे प्यारी ! तू अपने हाथसे इन और मेरे बालोंको सं- मेरे नेत्ररूपी भ्रमरोंको प्रसन्न करनेके लिये इन आए हुये नये फूलोंसे तरह तरहका शेखर (फूलोंका मुकुट) बांधकर माल दे ॥ २९-३१ ॥ मैं इन फूलों और पत्तोंसे तेरे लिये आभूषण बनाऊंगा उन आभूषणोंसे तू चलती फिरती दूसरी लताके समान सुशोभित होगी ॥ १३२ ॥ रामने इस तरहके कितने ही युक्तियोंके वचन कहे तथापि वह कु-

मन्त्रशाला प्रविश्यात्मगतलेन्थममन्त्रत । उत्तयसत्र्यमेनाद्वे कार्यं नहि बलात्कृते ॥ १११ ॥ महीयसोप्युपायेन श्रीरत्याह्रियते वुधे । स्वतनो- मात्समाहूय दृतो दशरथात्मजौ ॥ ११२ ॥ जिगीषू मत्पदं दुष्टावुच्छेदार्हौ छतस्वरं । पत्नी सीताभिधानास्ति रामाह्वयस्य दुरात्मनः ॥ ११३ ॥ तत्- माहरिष्ये तौ हतु तदुपाय विचिंतय । इत्यनोचत्स मारीचो विनयाकुञ्चिताजलि ॥ ११४ ॥ शृणु भट्टारक स्वामिन् हितकार्यानुवर्तनं । अहितप्रतिषेधश्च मत्रिकृत्यमिदं द्वय ॥ ११५ ॥ भवन्निरूपितं कार्यमपथ्यमयशस्करं । पापानुबंधि दुःसाध्यमयोग्यं सद्भिगर्हितं ॥ ११६ ॥ अन्यदाराहृतिर्नाम पातकेष्वति- पातकं । कोहि नाम कुले जातो जातुचिच्चिंतयेदिति ॥ ११७॥ अस्त्यन्योपि तदुच्छित्त्यामुपाय किमनेन ते । भवद्वंशविनाशैकहेतुना धूमकेतुना ॥ ११८ ॥ श्लाघ्यत्यमार्धकोपाख्यं तन्मारीच वचो विधी । नादादासन्नमृत्युत्वाद्दुष्टरिष्ट इवौषधं ॥ ११९ ॥ गृहीतमेव नेत्येतत्रावादीच्चेति मन्त्रिणं । किमनेन वृथा मन्त्रिन् वचनेनेष्टघातिना ॥ १२० ॥ वेत्सि चेद् ब्रूहि सीतापहरणोपायमार्य मे । एवं तेनोच्यमानोसौ तव चेदेष निश्चयः ॥ १२१ ॥ परीक्ष्य स्वस्या

सोचो । यह सुनकर मारीच नामका मंत्री बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे भट्टारक हे स्वामी ! सुनिये हितरूप कार्मोंका उपदेश देना और अहितका निषेध करना ये दोही काम मंत्रियोंके मुख्य काम हैं ॥ ११०–१५ ॥ आपने जिस कामके लिये कहा है वह काम अपथ्य है अपयश करने वाला है पाप उत्पन्न करनेवाला दुसाध्य और अयोग्य है तथा सज्जनोंके द्वारा सदा निंदनीय है ॥ १६ ॥ दूसरेकी स्त्रीको हर लेना पापोंमें भी बड़ा पाप है सत्कु- लमें उत्पन्न हुआ ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसे कार्योंका विचार करे ॥११७॥ उनके नाश करनेके लिये और भी बहु- तसे उपाय हैं इस उपायसे आपका क्या काम है यह यह उपाय अग्निके समान आपके वंशके नाश करनेका एक ही कारण है ॥११८॥ इसप्रकार मारीच मंत्रीने कहा परंतु जिसप्रकार थोडी ही देरमें मरनेवाला मनुष्य अपनी मृत्यु जानकर औषधि नहीं लेता है उसीप्रकार उस बुद्धिहीन रावणने मारीचके कहे हुए सार्थक वचनोंको ग्रहण नहीं किया ॥११९॥ वह मारीचसे कहने लगा कि हे मारीच " यह तुम्हारी बात नहीं मानते " यही तुमने क्यों नहीं कहा अपने इष्टको घात करनेवाले इन व्यर्थके वचनोंसे भला क्या लाभ है ॥ १२० ॥ हे आर्य ! यदि तू सीताके हरण करनेका कोई उपाय जानता हो तो कह । रावणकी यह बात सुनकर मारीच फिर कहने लगा कि यदि आपने ऐसा करना निश्चय ही कर लिया है तो अपनी एक दूती भेजकर परीक्षा कर लीजिये कि वह आपमें अनुराग रखती है या नहीं । यदि अनुराग रखती हो तब तो किसी सुखकर सहज उपायसे ही ले आनी चाहिये ! यदि वह आपसे विरक्त हो तो फिर जबर्दस्ती ले आना । मारीच की यह बात सुनकर रावणने उसकी प्रशंसाकी और कहा कि

पश्यति नो चक्षु कामिनामित्युदीरितं ॥ १०१ ॥ सत्यं प्रकुर्वता सद्यः शीतासंबंधवाक्श्रुते । अनगशरसपाताज्जर्जरीकृतचेतसा ॥ १०२ ॥ धन्यान्यत्र न सा स्यातु योग्या भाग्यविहीनके । मंदाकिन्याः स्थिति क्व स्यात्प्रविहाय महांबुधिं ॥ १०३ ॥ बलात्कारेण तस्मादपहृत्यातिदुर्बलात् । रत्नमालामिवालोला करिष्यामि ममोरसि ॥ १०४ ॥ इति कामाग्नितप्तेन तेन पापेन ससदि । स्वस्यामगार्यनार्येण दुर्जनानामियं गतिः ॥ १०५ ॥ स नारदः पुनस्तत्र प्रदीप्त कोपपावक । प्रज्वालयितुमस्येदमाचचक्षेति पापधीः ॥ १०६ ॥ परिप्राप्तोदयो रामो महाराज्यपदे स्थित- । यौवराज्यपदे तस्य लक्ष्मणोस्यात्सहोद्भवः ॥१०७॥वाराणसीं प्रविष्टाभ्या ताभ्या विश्वनृपेश्वरा । स्वसुतादानसमानिताभ्यां सबधमादधुः॥१०८॥ततस्ते तेन रामेण लक्ष्मणाविष्कृतौजसा । न युद्ध युज्यते ऽस्मामिस्त्यज्यता विग्रहाग्रहः ॥ १०९ ॥ इत्येतदुक्तमाकर्ण्य कुपितस्मितमुद्वहन् । मत्प्रभावं मुने मंक्षु श्रोष्यसीति विसृज्य तं ॥ ११० ॥

गह भाग्यहीनके घर ठहरने योग्य नहीं है भला महासागरको छोडकर गंगाकी स्थिति कहां हो सकती है ॥ १०३ ॥ वह राम अत्यंत दुर्बल है उससे मैं जबर्दस्ती सीताको लेआऊंगा और चंचल रत्नमालाके समान उसे अपने वक्षःस्थल पर धारण करूंगा ॥१०४॥ इसतरह कामरूप अग्निसे जले हुए पापी और अनार्य उस रावणने अपनी सभामें ऐसे वचन कहे सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंकी ऐसीही गति हुआ करती है१०५तदनंतर पापी नारद बढती हुई रावणकी क्रोधरूपी अग्निको और बढानेके लिये फिर कहने लगा कि हे राजन्! राम इससमय खूब उन्नत हो रहा है वह महाराजके पदपर विराजमान है, और युवराजके पदपर उसका छोटा भाई लक्ष्मण है ॥१०६–१०७॥ जबसे ये दोनों भाई पहुंचे हैं तबसे प्रायः सब राजा महाराजाओंने अपनी अपनी कन्या देकर उनका सन्मान किया है और इसतरह सबने उनसे अपना संबंध जोड लिया है ॥ १०८ ॥ इसलिये लक्ष्मणसे जिसका प्रताप बहुत बढगया है ऐसे रामसे युद्ध करना तो ठीक नहीं हैं हम लोगोंको युद्धका आग्रह छोड देना चाहिये ॥ १०९ ॥ रावण नारदकी बात सुनकर कुछ क्रोधित होता हुआ हंसा और कहने लगा कि हे मुनि! आप मेरा प्रभाव शीघ्र ही सुनेंगे । यह कहकर उनको तो विदा किया और खुद मंत्रशालामें गया वहां जाकर वह सोचने लगा कि यह काम किसी उपायसे करना चाहिये जबर्दस्ती करना ठीक नहीं क्योंकि बुद्धिमान लोग बडे भारी लोगोंकी लक्ष्मी भी किसी उपायसे हरण कर लेते हैं । यही सोचकर उसने मंत्रियोंको बुलाया और कहने लगा कि दशरथके दोनों पुत्र बडे अभिमानी और मदोन्मत्त हो रहे हैं वे अब मेरे इस पदको जीतना चाहते हैं और दुष्ट हैं इसलिये शीघ्र ही दोनोंका नाश करना चाहिये । उनमेंसे रामचंद्र नामका जो दुष्ट पुत्र है उसकी सीता नामकी स्त्री है, रामको मारनेकेलिये मैं उस सीताको हरना चाहता हूं तुम लोग उसका उपाय

ह ष्टोसीति त्वयास्वता ॥ ९१ ॥ कौतस्कुत. किमर्थं वा तवागमनमित्यसौ। रावणेनानुयुक्तः सन् कुधीरिदमभाषत ॥ ९२ ॥ दसतुजयभूपोत्रकरिकंठीरवाधित। एतन्मनः समाधाय दशास्य श्रोतुमर्हसि ॥ ९३ ॥ वाराणसीपुरादद्य ममात्रागमनं विभो। तत्पुरीपतिरिक्ष्वाकुवंशांवरदिवाकरः ॥ ९४ ॥ सुतो दशरथाख्यस्य रामनामातिविश्रुतं। कुलरूपवयोज्ञानशौर्यसत्यादिभिर्गुणैः ॥ ९५ ॥ अनर्घ्यैः स्वपुण्येन स संप्रत्यत्युदयोन्मुख। तस्मै यज्ञापदेशेन स्वयमाहूय कन्यकां ॥ ९६ ॥ स्वनामश्रवणादेवगर्विकामुकचेतस। पर्यासस्त्रीगुणैकध्यवृत्तिसंपत्कृताकृतिं ॥ ९७ ॥ नेत्रगोचरमात्राखिलानंगसुखदायिनीं। जेतुं संभोगरत्यते शक्तां मुक्तिवधूमपि ॥ ९८ ॥ त्वामनादृत्य योग्यं ते त्रिखंडाखंडसंपदं। स्त्रीरत्नं स्वात्मजां लक्ष्मीमिवादान्मिथिलाधिपः ॥ ९९ ॥ तस्य भोगोपभोगैकनिष्ठस्य विपुलश्रियः। पार्श्वे स्थितस्त्वसहिष्णुत्वादृद्धवंतमवलोकितुं ॥ १०० ॥ इह प्रेम्णागतोस्मीति नारदोक्त्या खगेशिना। इच्छा

इसतरह पूछनेपर वह निर्बुद्धि नारद कहने लगा ॥ ८९–९२ ॥ कि खूब अभिमान करनेवाले और बडी कठिनतासे जीतने योग्य ऐसे राजा रूपी बडे भारी हाथियोंके लिये सिंहके समान रावण! तू अपने मनको एकाग्र कर सुन॥९३॥ हे प्रभो आज मैं यहां बनारस नगरसे आया हूं उस नगरका स्वामी इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान राजा दशरथका प्रसिद्ध पुत्र राम वहांका राज्य करता है। अपने कुल, रूप, वय, ज्ञान, शूरवीरता और सत्य आदि गुणोंसे वह सबसे चढ बढकर है और अपने पुण्यकर्मके उदयसे इस समय वह खूब ही उन्नत होनेके सन्मुख होरहा है इधर मिथिला देश के राजा जनकने यज्ञके बहानेसे स्वयं उस रामको बुलाया, तथा तीनों खंडकी अखंड संपत्ति जिसके हाथमें है और जो सबतरह योग्य है ऐसे तेरा तो अनादर किया (तुझे बुलाया नहीं) और अपने घर उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान सीता नामकी अपनी पुत्री उस रामको समर्पण करदी। वह सीता एक स्त्री रत्न है, उसका नाम सुनते ही कामी लोगोंके चित्त एक प्रकारके ग्रहण करने योग्य अभिमानको धारण करते हैं संसारकी सब स्त्रियोंके गुणोंको इकट्ठाकर उन सब की शोभासे ही मानों उसकी आकृति बनाई गई है, दर्शन होते ही वह संपूर्ण कामदेवको सुख देनेवाली है और संभोग रतिके अंतमें मुक्तिवधूको भी जीत सकती है ॥ ९४–९९ ॥ भोगोपभोगोंमें ही सदा लीन रहनेवाले उसी राम के समीप मैं गया था, उसकी बडी भारी लक्ष्मी और शोभाको मैं सह नहीं सका इसीलिये आपके प्रेमसे यहां आपके दर्शन करनेकेलिये आया हूं। नारदकी यह बात सुनकर रावणकी इच्छा बढी, 'कामी लोगोंके नेत्र कुछ नहीं देख सकते' यह जो कहावत है उसे सत्य करनेके लिये वह तैयार हुआ सीताके संबंधकी बात सुनते ही कामदेवके बाण पडनेसे उसका चित्त छिन्न भिन्न होगया ॥ १००–१०२ ॥ तथा वह सोचने लगा कि धन्यरूप यह सीता दूसरी अ-

पद्मनपि । दानमानादिभिः सम्यक् सदा तोषयतोस्तयोः ॥ ८१ ॥ दुष्टनिग्रहशिष्टानुपालनप्रविणात्मिनो । अविलंघयतो पूर्वमर्यादां नीतिवेदिनो; ॥ ८२॥

प्रजापालनकार्यैकनिष्ठयोर्निष्ठितार्थयोः । काले गच्छति कल्याणैः कल्पैः नि शल्यसौख्यदैः ॥ ८३ ॥ इतो लंकामधिष्ठाय त्रिखंडभरतावनेः । अधीश्वरोह-

मेवेति गर्वपर्वतभास्करं ॥ ८४ ॥ समावयंतमात्मानं रावणं शत्रुरावणं । निजतेजः प्रतापापहस्तितोष्णांशुमंडलं ॥ ८५ ॥ दंडोपनतसामंतविनम्रमुकुटा-

प्रभ स्फुरन्मणिमयूखाबुविकसच्चरणाबुज ॥ ८६ ॥ निजासने समासीन कीर्यमाणप्रकीर्णक ॥ अवतीर्णं धरामागमिव नीलनवांबुदं ॥ ८७ ॥ आभाषमाण-

माभाष्य सभ्रूभंगं भयकर । अनुजैरात्मजैर्मौलैर्भटैश्च परिवारित ॥ ८८ ॥ पिंगोत्तुंगजटाजूटप्रभ पिंजरितांबरः । इन्द्रनीलाक्षसूत्रोरुवलयालंकृतांगुलिः ॥

८९ ॥ तीर्थांबुसंभृतोद्भासिपद्मरागकमंडलुः । सुवर्णसूत्रयज्ञोपवीतपूजानिजाकृति ॥ ९० ॥ खादेत्य नारदोन्येद्यु सोपद्वारं समैक्षत । तदालोक्य विराङ्‌-

थे शिष्ट वा भले आदमियोंका पालन करते थे, पहिलेकी मर्यादाको कभी उल्लंघन नहीं करते थे, नीतिको अच्छी त-

रह जानते थे, उनका प्रजा पालन करना ही एक मुख्य कार्य था और धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंको वे अच्छी

तरह सेवन करते थे, इसतरह शल्यरहित सुख देनेवाले कल्याणरूप कार्योंसे उनका समय व्यतीत होने लगा ॥८२–

८३ ॥ इधर रावण लंकामें रहकर भारतवर्षकी तीन खंड पृथ्वीका पालन करने लगा, मैं तीन खंडका स्वामी हूं ऐसे

अभिमानरूपी पर्वतपर सूर्यके समान अपनेको मानने लगा, वह सब शत्रुओंको रुलाता था इसीलिये उसका नाम रा-

वण पड गया था अपने तेजरूपी प्रतापसे सूर्यमंडलको भी नीचा दिखलाता था, दंड लिये हुए और नम्रीभूत हुए

अनेक सामंतोंके नये हुए मुकुटोंमें जो देदीप्यमान मणियां लग रही थीं उनकी किरणें रूपी जलमें उसके चरण-

कमल सदा प्रफुल्लित रहते थे, किसी एक दिन वह अपने सिंहासनपर बैठा था; उस पर चमर ढुलाये जा रहे थे, उस

समय ऐसा जान पडता था मानों नीले रंगका नया बादल पृथ्वीपर ही उतर आया हो, भौंहें चढाकर भयकर रीतिसे

वह सबसे बात चीत कर रहा था, उसके आस पास उसके छोटे भाई पुत्र मुकुटबद्ध राजा और योद्धा लोग बैठे थे ॥

८४–८८ ॥ उसी समय पीले रंगकी बडी बडी जटाओं की कांतिसे जिसके शरीरका रंग कुछ पीला होगया है, जो

इंद्रनील तथा अक्षसूत्रके कडे और अंगूठियोंसे सुशोभित है, पद्मराग मणियोंका बना हुआ जिसका कमंडलु, तीर्थोंके

जलसे भरा हुआ शोभायमान है, जो सुवर्णका बना हुआ यज्ञोपवीत पहिने है और उसीसे जिसकी आकृति पूज्य हो

रही है ऐसे नारदने आकाशसे उतरकर समीपके दरवाजेसे रावणको देखा। नारदको देखते ही रावण उठा और कहने

लगा कि हे भद्र आपने बहुत दिनमें दर्शन दिये हैं आइये बैठिये, इस समय आप कहांसे आए हैं और क्यों आए हैं?

भावो द्विधा प्रति ॥ ७१ ॥ स्वाम्यमात्यो जनस्थानं कोशो दंडः सगुप्तिकः । मित्रं भूमिपालस्य सप्त प्रकृतयः स्मृताः ॥ ७२ ॥ इमे राज्यस्थितेः प्राज्ञैः पदार्था हेतवो मता । तेषूपायवती शक्तिः प्रधानव्यवसायिनी ॥ ७३ ॥ पानीयं खननाद्वन्हिर्मथनादुपलभ्यते । अदृश्यमपि संप्राप्यं सत्फलं व्यवसायनः ॥ ७४ ॥ फलप्रसवहीनं वा सहकारं विहंगमा । विवेकवंतो नामोपदिष्टं वा कुत्सितागमं ॥ ७५ ॥ राजपुत्रमनुत्साहं त्यजंति विपुला श्रियः । स्वकीय-योधसामंतमहामात्यादयोपि च ॥ ७६ ॥ पुत्रं पिताप्यनुद्योगं मत्वा योग्यं विषीदति । इति विज्ञापनं श्रुत्वा तयोर्नरपतिस्तदा ॥ ७७ ॥ युवाभ्यामुक्तमेवेदं प्रत्यपादि कुलोचित । इत्याविष्कृतहर्षासिभाविसीरभृतः स्वयं ॥ ७८ ॥ विनस्य राज्ययोग्योरुमुकुट लक्ष्मणस्य च । प्रबध्य यौवराज्याधिपत्यपट्टं महौजस ॥ ७९ ॥ महाभ्युदयसंपादिसत्याशीर्भिः प्रवर्धयन् । पुत्रौ प्रस्थापयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ॥ ८० ॥ गत्वा प्रविश्य तामुच्चैः पौरान् जन-

संधि विग्रह करा देना द्वैधीभाव है ॥ ७१ ॥ इसीतरह स्वामी, मंत्री, देश, कोश, दंड, गढ और मित्र ये सात राजाओंकी प्रकृतियां कहलाती हैं ॥ ७२ ॥ विद्वान लोगोंने ये ऊपर कहे हुए सब पदार्थ राज्यके स्थिर रखनेके कारण बतलाए हैं। परंतु इन सबमें उपायशाली शक्ति ही मुख्य रीतिसे काम करनेवाली है ॥ ७३ ॥ क्योंकि पानी खोदनेसे ही निकलता है और अग्नि परस्पर रगड़नेसे ही निकलती है और तो क्या व्यवसाय (उपाय वा परिश्रम) करने से जो श्रेष्ठ फल अदृश्य है दिखाई नहीं पड़ता वह भी प्राप्त हो जाता है ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार पक्षीगण फूल और फलसे रहित आमके वृक्षको छोड देते हैं, विवेकी पुरुष नाममात्रके कहे हुए खोटे शास्त्रोंको छोड़ देते हैं उसी तरह अनेक तरहकी लक्ष्मियां उत्साहरहित राजपुत्रको छोड देती हैं, इतना ही नहीं किंतु अपने योद्धा, सामंत तथा बडे मंत्री आदि भी उस राजपुत्रको छोड देते हैं ॥७५–७६॥ इसी तरह पिता उद्यमरहित पुत्रको अयोग्य समझकर दुखी होता है। इसतरह उन दोनों कुमारोंके कहे हुए निवेदनको सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगोंने जो कुछ कहा है वह कुल परंपराके योग्य और ठीक कहा है। इसप्रकार हर्ष प्रकटकर होनेवाले बलभद्रको अर्थात् रामचद्रको तो राज्यके योग्य भारी मुकुट बांधा और प्रतापी लक्ष्मणको युवराजके आधिपत्यका पट्ट बांधा ॥ ७७–७९ ॥ बडी विभूतियोंको प्रकट करनेवाले सच्चे सच्चे आशीर्वादोंसे बढाते हुए राजा दशरथने बनारस नगरके लिये दोनों भाइयोंको भेज दिया ॥ ८० ॥ दोनों भाइयोंने जाकर नगरमें प्रवेश किया और वहांके रहनेवाले नगरनिवासियोंको तथा उस देशके रहनेवालोंको दान सन्मान आदि देकर दोनों भाई सदा अच्छी तरह संतुष्ट करने लगे ॥ ८१ ॥ वे दोनों भाई सदा दुष्टोंको निग्रह करते

पप्रदा भेदं दंडं च नयकोविदाः । वदंत्युपायांश्चतुरो यैरर्थः साध्यते नृपैः ॥ ६२ ॥ प्रियं हितं वचः कायपरिष्वंगादि साम तत् । हस्त्यश्वदेशरत्नादि दत्तं सोपप्रदा मता ॥ ६३ ॥ कृत्यानामुपजापेन स्वीकृतिं भेदमादिशेत् । शष्पमुष्टिवध दाहलोपविध्वसनादिक ॥ ६४ ॥ शत्रुक्षयकरं कर्म दंडितैर्दंडमिष्यते । इंद्रियाणां निजार्थेषु प्रवृत्तिरविरोधिनी ॥ ६५ ॥ कामादिशत्रुविप्रासो वा जयो जयशालिनः । संधिः स विग्रहो नेतुरासनं यानसंश्रयौ ॥ ६६ ॥ द्वैधीभावश्च षट् प्रोक्ता गुणाः प्रणयिनः श्रियः । कृतविग्रहयोः पश्चात्केनचिद्धेतुना तयोः ॥ ६७ ॥ मैत्रीभावः स संधिः स्यात्सावधिर्विगतावधिः । परस्परापकारोऽरिविजिगीष्वोः स विग्रहः ॥ ६८ ॥ मामिहान्योहमप्यन्यमशक्तो हन्तुमित्यसौ । तूष्णीं भावो भवेन्नेतुरासनं वृद्धिकारणं ॥ ६९ ॥ स्ववृद्धौ शत्रुहानौ वा द्वयोर्वाभ्युद्यमं स्मृतं । अरिं प्रति विभोर्यानं तावन्मात्रफलप्रदं ॥ ७० ॥ अनन्यशरणस्याहुः संश्रयं सत्यसंश्रय । संधिविग्रहयोर्वृत्तिर्द्वैधी-

(खजाना) तथा दंड (सेना) वा अधिक दंड देनेकी शक्तिको प्रभुशक्ति कहते हैं ॥ ६१ ॥ राजा लोग जिनसे अपना अभिप्राय सिद्ध करते हैं ऐसे साम उपप्रद (दाम) दंड और भेद ये चार उपाय नयोंके अच्छे जानकार लोग बतलाते हैं ॥ ६२ ॥ वचन और शरीरका आलिंगन आदि प्रिय और हितरूप करना साम है तथा हाथी घोडा देश रत्न आदि देना उपप्रद वा दाम अथवा दान कहलाता है ॥ ६३ ॥ कृत्य पुरुषोंको फूट डालकर (परस्पर विरोधकर) मिला लेना भेद कहलाता है और रस्सी मुष्टियोंसे मारना, जलाना, छिपादेना नाश कर देना आदि शत्रुओंको क्षय करनेवाले जितने काम हैं उन सबको पंडित लोग दंड कहते हैं । इंद्रियोंके विषयभूत पदार्थोंमें जो परस्पर विरोध रहित प्रवृत्ति है जोकि काम आदि शत्रुओंको त्रास देनेवाली है उसे जयशाली लोग जय बतलाते हैं । इसीतरह लक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले लोगोंके संधि, विग्रह, लानेवालेकेलिये आसन देना, यान संश्रय और द्वैधीभाव ये छह गुण कहे हैं । पहिले जिन दो (या अनेक) राजाओंमें युद्ध हुआ हो और फिर किसी कारणसे उनमें मित्रता हो जाय उसको संधि कहते हैं यह संधि किसी नियत समय तक भी होती है और समयकी सीमाके विना सदाके लिये भी होती है । परस्पर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंका परस्पर अपकार वा हानि करना विग्रह कहलाता है ॥ ६५–८८ ॥ यह शत्रु मुझे मार सकता है परंतु मैं इस शत्रुको नहीं मार सकता यही समझकर चुप रहना यह वृद्धि वा उन्नति करनेवाला नेताका आसन कहलाता है ॥ ६९ ॥ अपनी उन्नति और शत्रुकी हानि करनेके लिये जो उद्यम करना शत्रुपर चढकर जाना है वह यान कहलाता है उसका फलभी शत्रुकी हानि और अपनी उन्नति है ॥ ७० ॥ जिसका कोई शरण नहीं है उसे अपनी शरणमें रखकर आश्रय देना संश्रय है । तथा शत्रुओंमें

तुर्नृपं ॥ ५० ॥ काशिदेशे क्रमायातमस्मत्पुरवरं पुरा । वाराणसी तदद्याभूदनधिष्ठितनामकं ॥ ५१ ॥ आज्ञा यद्यस्ति देवस्य तदा वामुदितोदितं । विधास्याव इति श्रुत्वा नरेंद्रस्तदुदीरितं ॥ ५२ ॥ वियोगमक्षमः सोढुमेतयोर्भरतादय । अस्मद्वंश्या महीनाथा- स्थित्वात्रैव पुरे पुरा ॥ ५३ ॥ षट्खंडमंडितां पृथ्वीं बहवो पालयंश्चिरं । एकदेशस्थयोरेव सूर्याचंद्रमसोरिव ॥ ५४ ॥ विभाति भवतोस्तेजो व्याप्नोति महिमंडलं । ततः किं तत्प्रयाणेन मायातमिति सोब्रवीत् ॥ ५५ ॥ निषिद्धावपि तौ तेन पुनश्चैवमवोचतां । आवयोरेव देवस्य स्नेहो याननिषेधनं ॥ ५६ ॥ शौर्यस्य संभवो यावद्यावत्पुण्यस्य च स्थिति । तावदुत्साहसंनाहं न मुंचत्युदयार्थिनः ॥ ५७ ॥ बुद्धिशक्तिमुपायं च जयं गुणविकल्पन । सम्यक्प्रकृतिभेदाश्च विदित्वा राजसूनुना ॥ ५८ ॥ महोद्योगो विधातव्यो विरुद्धान्विजिगीषुणा । स्वभावविनयोद्भूता द्विधा बुद्धिर्निगद्यते ॥ ५९ ॥ मंत्रोत्साहप्रभूक्ता च त्रिधा शक्तिरुदाहृता । पंचांगमत्रनिर्णीतिर्मंत्रशक्तिर्मतागमे ॥ ६० ॥ शौर्योर्जितत्वादुत्साहशक्ति शक्तिज्ञसंमता । प्रभुशक्तिर्महीभर्तुराधिक्यं कोशदण्डयो ॥ ६१ ॥ साम्र मो-

परंतु अब वह कुछ दिनसे विना स्वामीके पड़ा है । हे देव ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम दोनों भाई वहां रहकर उसे फिरसे धनजनसंपन्न और सुशोभित बना दें । दोनों भाइयोंकी यह बात सुनकर महाराज कहने लगे कि मैं तुम दोनों का वियोग सह नहीं सकूंगा । दूसरे भरत आदि हमारे ही वंशमें उत्पन्न हुये अनेक राजा महाराजाओंने पहिले इसी नगरमें रहकर छह खंडोंसे सुशोभित इस पृथ्वीका बहुत दिनतक पालन किया है । जिस प्रकार सूर्य और चंद्रमा एक ही जगह रहते हैं और उनका प्रकाश सब संसारमें फैल जाता है उसीप्रकार एक जगह रहते हुए भी तुम दोनोंका प्रताप समस्त पृथ्वीमंडलमें फैल जायगा इसलिये वहां जानेसे कुछ लाभ नहीं है तुमलोग मत जाओ ॥ ५१—५५ ॥ इस तरह यद्यपि महाराजने दोनोंको जानेका निषेध किया था तथापि वे दोनों भाई फिर कहने लगे कि हे देव आप जो हमको रोकते हैं सो इसमें आपका स्नेह ही कारण है ॥ ५६ ॥ इस संसारमें जबतक शूरवीरताकी संभावना रहती है जबतक पुण्यकी स्थिति रहती है तबतक अपनी उन्नति चाहनेवाले लोग कभी अपने उत्साहकी तैयारीको नहीं छोडते हैं ॥ ५७ ॥ अपने विरोधी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजपुत्रोंको बुद्धि, शक्ति, उपाय, जय, गुणोंके भेद, और प्रकृतियोंके भेदोंको अच्छीतरह जानकर बडा भारी उद्योग करना चाहिये । उनमेंसे बुद्धि दो प्रकारकी है एक स्वभावसे उत्पन्न हुई और दूसरी विनयसे उत्पन्न हुई ॥ ५८—५९ ॥ शक्ति तीन तरहकी है मंत्र उत्साह और प्रभु उनमेंसे पांच तरहके मंत्रोंसे जो निर्णय हो वह शास्त्रोंमें मंत्रशक्ति कहलाती है ॥ ६० ॥ शक्तिके जाननेवाले शूरवीरतासे उत्पन्न हुए उत्साहको उत्साह शक्ति कहते हैं और राजाके कोश

वैणस्य कामस्य सामवायिकता वहन् ॥ ४१ ॥ कायितां न्वउत्सन्मान वियुक्तान दंडयन् भृशं । संयुक्तान् पिंडितान् कुर्वन् प्रचंडः प्राविशद्वसं ॥ ४२ ॥
तदागमनमात्रेण सद्वनस्पतिजातय । काश्चिदंकुरिताः काश्चित्सानुरागा सपल्लवे ॥ ४३ ॥ काश्चित्कोरकिताः काश्चिन्मदासाः कुसुमोत्करे । स्वावग्रायान-
विलोका कांता इव निरंतरं ॥ ४४ ॥ हिमानीपटलोन्मुक्त सुव्यक्त नंदमंडलं । ज्योत्स्नां प्रसारयामास दिक्षु सद्गीतिशायिनीं ॥ ४५ ॥ मारमामोदमा-
दाय विकासुपजं रज । सरोवारिकणैः सार्द्रमपाक्षपवनो ववौ ॥ ४६ ॥ तदान्यानिश्च रामस्य रामानि, महात्तिर्नृपः । प्रेद्यामिलक्ष्मण
स्यापि पृथिवीदेविकादिभि ॥ ४७ ॥ प्रीत्या षोडशमानानिर्जिनपूजापुरस्सरं । तानूजाभिर्नरेंद्राणां विवाहमकरोत्कृती ॥ ४८ ॥ ततः सर्वर्तुषु प्रेम्णा ता-
भिस्तौ सुखमीयतुः । ताश्च ताभ्यामयो यस्माद्वाद्यहेतोः सुखप्रदः ॥ ४९ ॥ एवं स्वपुण्यपाकानुसुखानुभवतत्परौ । तौ कदाचन कदाचिन्नोच-

के साथ अपना संबंध दृढ करते हुये, तथा कामियोंके अभिमानको चूर २ करते हुए, वियोगियोंको खूब दंड देते हुये
और संयोगियोंको एकत्रित करते हुए प्रचंड वसंत ऋतुने इस संसारमें प्रवेश किया ॥ ४१-४२ ॥ उस वसंतऋतुके
आते ही जो वनकी अच्छी वनस्पतियां थीं उनमेंसे कितनी ही वनस्पतियोंपर तो अंकुरे आगये और कितनी ही अपने
आये हुए नये पत्तोंसे प्रेम प्रगट करने लगीं ॥ ४३ कितनी ही वनस्पतियोंपर कलियां आगईं कितनी ही अपने आए
हुये फूलोंके समूहोंसे हँसने लगीं और कोई घनवाली स्त्रियोंके समान केवल अपना ही ध्यान करने लगीं ॥४४॥ उस-
समय पाला अथवा बादलोंके पटलसे छूटे हुए और इसलिये ही अच्छीतरह दिखनेवाले चंद्रमंडलने सब दिशाओंमें
शोभा फैला देनेवाली अपनी चांदनी फैला दी थी ॥ ४५ ॥ दक्षिण दिशाका वायु सब जगह फैले हुये पुष्पोंकी रज-
की सारभूत सुगंधिको लेकर तालावोंके जलकी छोटी २ बूंदोंके साथ २ बह रहा था। भावार्थ-उस समय दक्षिण-
दिशासे शीतल और सुगंधित वायु चल रहा था ॥ ४६ ॥ उसी समय चतुर राजा दशरथ ने श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा
आदि सब विधिपूर्वक अन्य राजाओंकी सुंदर सात और कन्याओंसे रामका विवाह किया था और पृथिवी देवी
आदि सोलह राजकन्याओंसे बडे प्रेमसे लक्ष्मणका विवाह किया था ॥ ४७-४८ ॥ इसतरह सब ऋतुओंमें वे दोनों
ही भाई बडे प्रेमके साथ उन स्त्रियोंसे सुख पाने लगे तथा वे स्त्रियां भी उन दोनों भाइयोंसे सुख पाने लगीं सो
ठीक ही है क्योंकि पुण्य बाह्य कारणोंसे ही सुख दे सकता है ॥ ४९ ॥ इसतरह अपने पुण्यकर्मके उदयसे सुखोंके
अनुभव करनेमें तत्पर वे दोनों ही भाई किसी एक दिन समय देखकर महाराज दशरथसे कहने लगे ॥ ५० ॥ कि
काशी देशमें बनारस नामका उत्तम नगर हमारे पूर्वजोंकी परंपरासे ही हम लोगोंकी आधीनतामें चला आ रहा है

प्रहेतव्याविति नैमित्तिकोक्तित । राज्ञारिलवलेनामा प्रहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३१ ॥ प्रत्युद्गता महीशेन जनकेनानुरागिणा । प्राप्य जनपदं गीत... अपरिपाकतः ॥ -१ ॥ रूपादिगुणसंपत्त्या मत्यमेतौ गतोपमौ । इति पौरैः प्रशंसद्भिः प्रेक्ष्यमाणौ समं तत ॥ ३२ ॥ पुरं प्रविश्य भूपोक्ते स्थाने न्यवसतां सुखं । दिनैः कतिपयैरेव नृपमण्डलसन्निधौ ॥ ३३ ॥ निर्वर्त्याभिमतं यज्ञविधानं तदनंतरं । महाविभूतिभिः सीतां ददौ रामाय भूपतिः ॥ ३४ ॥ दिनानि कानिचित्तत्र सीतयैव श्रिया समं । नवप्रेमसमुद्भूतं सुखं रामोन्वभूद्भृशं ॥३५॥ तदा दशरथामात्यादागतानुमतिर्महीः । जनकानुमतः शुद्धतिथौ परिजनान्वितः ॥३६॥ अभ्ययोध्यां पुरीं सीतासमेतो जातसम्मदः । लक्ष्मणेन च गत्वाशु स्वानुजाभ्यां स्वबंधुभिः ॥ ३७ ॥ परिवारैश्च ... निजां पुरीं । विभूत्या दिविजेन्द्रो वा विनीतां प्राविशज्जयी ॥३८॥ दृष्ट्वा यथोचितं प्रीत्या पितरौ प्रीतचेतसौ । ... ॥ ३९ ॥ तदा तदुत्सवं भूयो वर्द्धयन्नात्मना मधुः । कोकिलालिकुलालापडिंडिमो मंडयन् दिशः ॥ ४० ॥ संधिं तपोधनैः सार्द्धं विग्रहं शिथिलव्रतैः । प्रक-

इनकी उपमा संसारमें कहीं नहीं है" इसतरह कहते हुए नगरनिवासी लोग जिन्हें देख रहे हैं ऐसे दोनों भाइयोंने नगरमें प्रवेश किया और वे महाराज जनकके बतलाए हुए स्थानमें सुखपूर्वक रहने लगे। थोडे ही दिनोंमें अनेक राजाओंके सामने राजा जनककी इच्छानुसार वह यज्ञकी विधि पूरी हुई और फिर राजा जनकने बडी विभूतिके साथ रामके लिये सीता व्याह दी ॥ ३१–३४ ॥ रामचंद्रने थोडे दिन तक लक्ष्मीके समान सीताके साथ २ बहुत अच्छी तरह वहीं जनकपुरमें नये प्रेमसे उत्पन्न हुए सुखका अनुभव किया ॥ ३५ ॥ उसीसमय राजा दशरथके यहांसे रामको लेनेके लिये एक मंत्री आया, तदनुसार राजा जनककी आज्ञा लेकर किसी शुद्ध तिथिके दिन रामने बडी प्रसन्नतासे सीता लक्ष्मण और परिजनोंके साथ अयोध्या नगरीको गमन किया। वहां पहुंचकर बडी शीघ्रतासे सामने आये हुए अपने दोनों छोटे भाई, बंधु और परिवारके लोगोंसे मिले और जिसप्रकार इंद्र अपनी नगरीमें प्रवेश करता है उसीप्रकार उन विजयी दोनों भाइयोंने बडी विभूतिके साथ अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया ॥ ३६–३८ ॥ माता पिताने संतुष्टचित्त होकर बडे प्रेमसे और यथा योग्य रीतिसे उन्हें देखा तथा इस तरह जिनकी लक्ष्मी वा शोभा रात दिन बढ रही है ऐसे राम और सीता छोटे भाइयोंके साथ २ सुखसे निवास करने लगे ॥ ३९ ॥ उसीसमय उस उत्सवको अपने साथ बढाता हुआ बसंत ऋतु आया, कोइल और भ्रमरोंकी मीठी आवाजें ही उसके नगाडे थे और वह सब दिशाओंको सुशोभित कर रहा था ॥ ४० ॥ कामदेव जो तपस्वियोंके साथ संधि करना चाहता था और जिनके व्रत शिथिल हैं उनके साथ युद्ध करना चाहता था उस काम-

जेमामिति मारीचमाज्ञापयदसावभीः । सोपि मंदोदरीगेहं गत्वा देवस्य देवि मे ॥ १९ ॥ कर्मैवं निर्घृणस्यासीदिति तस्यै न्यवेदयत् । सापि देवनिदेशस्य नाहमस्मि निवारिका ॥ २० ॥ इति प्रभूतद्रव्येण मंजूषाया विधाय तां । तत्सन्निधानपत्रेण सहोक्त्वेद च त मुहुः ॥ २१ ॥ मारीचमान्यसे स्निग्धप्रकृत्या बालिकामिमां । बाधाविरहिते देशे निक्षिपेति गलज्जले ॥ २२ ॥ विमृज्य लोचने तस्मै स्वतनूजा समार्पयत् । स नीत्वा मिथिलोद्याननिकटप्रकटे क्वचित् ॥ २३ ॥ धरांत कृतमजूषो विषण्णो न्यवृतच्छुचा । तस्मिन्नेव दिने दृष्ट्वा गेह निर्मापण प्रति ॥ २४ ॥ भूमिसंशोधने लागलाग्रलमान्नियोगिन । मजूषामेतदाश्चर्यमिति भूपमबोधयत् ॥ २५ ॥ सुरूपां बालिकां वीक्ष्य तदभ्यन्तरवर्तिनीं । नृपस्तदवतारार्थं पिलेखादवबुध्य स ॥ २६ ॥ तत्पूर्वापरसम्बधमेषा सीताभिधानिका । सुता भवेत्तवेत्येता वसुधायै ददौ मुदा ॥ २७ ॥ वसुधा च सुधागेहे गुणवती कलागुणान् । अवर्द्धयदिमा गूढ लंकेशोपि न वेत्त्यमू ॥ २८ ॥ वार्ता जनकयागस्य तस्मान्नात्रागमिष्यति । दास्यत्यवश्य रामाय ता कन्या मिथिलेश्वरः ॥ २९ ॥ तत्कुमारौ

गी हे मारीच तू स्वभावसे ही कोमल प्रकृतिवाला है तूँ इस कन्याको किसी उपद्रवरहित जगहमें रखना। उससमय उसके नेत्रसे आंसू बह रहे थे उन्हें पोंछकर उसने वह कन्या मारीचको सुपुर्द की। वह मारीच उस कन्याको लेकर मिथिला देशके निकट किसी बनमें गया और संदूकको पृथ्वीमें गाडकर शोक करता हुआ तथा खेदखिन्न होता हुआ वहांसे लौट आया। दैवयोगसे उसी दिन बहुतसे लोग घर बनानेके लिये भूमि देख रहे थे उनके हलकी नोकसे वह संदूक दिखपडी उन्होंने तुरंतही राजाको खबर दी और कहा कि यह आश्चर्य करनेवाली संदूक हमलोगोंको मिली है ॥ २१–२५ ॥ महाराजने उस संदूकके भीतर सुंदर कन्याको देखा और उसीमें रक्खे हुए लेखसे उसके उत्पन्न होनेका हाल तथा उसका अगिला पीछिला सब संबंध जान लिया उन्होंने उसका सीता नाम रक्खा बडी प्रसन्नतासे वसुधा रानीको उसे सौंपा और कहा कि इसे तुम कन्याके समान पालो॥२६–२७॥तदनंतर रानी वसुधा अपने सुधाघरमें छिपे छिपे वढाने के साथ उसके कला गुणोंको भी बढाने लगी। यह बात रावणको भी मालूम नहीं है तथा जनक कोई यज्ञ करता है यह वात भी उसे मालूम नहीं है इसलिये इस यज्ञमें रावण तो आवेगा नहीं और जनक अवश्य ही रामके लिये वह कन्या समर्पण कर देंगे ॥ २८–२९ ॥ इसलिये दोनों कुमारोंको वहां अवश्य ही भेजना चाहिये। इसतरह नैमित्तिकके कहे अनुसार सब सेनाके साथ राम लक्ष्मणको वहां भेज दिया ॥ ३० ॥ राजा जनकने बडे प्रेम से सामने आकर उनका आदर सत्कार किया, वहांके नगरनिवासियों ने इनकी बडी प्रशंसा की और कहा "पहिले जन्मके संचित किये हुए अपने अनंत पुण्य कर्मोंके उदयसे ही इन्हें ऐसी रूप आदि गुणोंकी संपत्ति मिली है सच है

लंञ्जतामिति ॥ ६११ ॥ हस्तावलम्बनेनैन निराकर्तुं समुद्यताः । 'युष्माभिः सम्यगेवोक्तं लज्जा स्त्रीविषयैव सा ॥ ६१२ ॥ न पुंसु यदि तत्रास्ति लज्जा साधारणी भवेत् । ततः स्त्रीभिः कथं पुंसा संगमोऽनगसंस्कृतः' ॥ ६१३ ॥ इति वृद्धोक्तिमाकर्ण्य ब्राह्मणोऽयं न केवल । कोऽपि रूपपरावृत्तिविषया मामुपागत ॥ ६१४ ॥ इत्योकलय्य को दोषो विप्र प्राघूर्णको मम । तिष्ठत्वत्रेति तच्चेटिका निवारयति स्म सा ॥ ६१५ ॥ तन्निशावसितौ शुद्धदेशजस्वरभेदवित् । गीतवान्मधुरं वृद्धश्चिरं श्रोत्रमनोहरं ॥ ६१६ ॥ गन्धर्वदत्ताकल्याणकाले सालंक्रिय कल । जीवंधरकुमारस्य गीतं वैतच्छ्रुते सुख ॥६१७॥ इति प्रात समुत्थाय विनयेनोपसृत्य तं । साप्राक्षीत्केषु शास्त्रेषु प्रबोधो भवतामिति ॥ ६१८ ॥ 'धर्मार्थकामशास्त्राणि भूयोऽभ्यस्तानि यत्नतः । तेषु धर्मार्थयो कामशास्त्रात्फलविनिश्चय ॥ ६१९ ॥ कथं तदिति चेत्किंचिन्मया तत्र निरूप्यते । पंचेन्द्रियाणि तेषां च विषया पंचधा स्मृताः ॥ ६२० ॥ स्पर्शादयोऽष्टधा स्पर्शो कर्कशाद्या श्रुतोदिताः । रसोऽपि पञ्चविधः प्रोक्तो मधुरादिर्मनीषिभि ॥ ६२१ ॥ कृतक सहजश्चेति गन्धोऽपि द्विविधो मतः । सर्व. सुगंधदुर्गंधचे-

उस बूढेके वचन सुनकर वह गुणमाला मनमें कहने लगी कि यह कोरा ब्राह्मण नहीं है किंतु रूप बदलनेवाली विद्यासे कोई अन्य ब्राह्मणका रूप बना कर मेरे पास आया है ऐसा विचार कर वह प्रत्यक्षमें कहने लगी कि इसमें कोई दोष नहीं है यह ब्राह्मण मेरा अतिथि है इस लिये इसे यहा बैठने दो' इसप्रकार कह कर उसने दासीको रोक दिया ॥६१४-६१५॥ इसप्रकार रात्रिके बीत जानेपर शुद्धज और देशज आदि स्वरोंके भेदोंको जाननेवाले उसने मधुर गीत गाये गंधर्वदत्ताके स्वयंवरके समय जो जीवंधरने अलंकार सहित मधुर गीत गाये थे वैसे ही गीत उस ब्राह्मणने गाये जिसे सुनकर गुणमालाको बहुत ही सुख हुआ ॥६१६-६१७॥ सवेरे ही उठकर वह गुणमाला बडी विनयके साथ उस ब्राह्मणके पास पहुंची और उससे पूछने लगी किन किन शास्त्रोंमें आपका ज्ञान अच्छा है ॥ ६१८ ॥ इसके उत्तरमें जीवंधरने कहा कि मैंने धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र और कामशास्त्र बडे यत्नसे अच्छी तरह अभ्यास किये हैं। इन शास्त्रोंमें कामशास्त्रसे ही धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्रके फलका निश्चय होता है भावार्थ—धर्मसे अर्थ और अर्थसे कामकी प्राप्ति होती है इसलिये कामकी प्राप्तिसे धर्म और अर्थका निश्चय हो जाता है ॥ ६१९ ॥ यह कैसे होता है सो भी मैं कुछ थोडासा कहता हूं। इंद्रियां पांच हैं और स्पर्शादिक उनके विषय भी पांच ही प्रकारके कहे गये हैं उनमेंसे शास्त्रोंमें कहे हुए कर्कश आदिके भेदसे स्पर्शके आठ भेद होते हैं और विद्वानोंने मधुर आदिके भेदसे रस भी छह प्रकारका बतलाया है ॥ ६२०-६२१ ॥ सुगंध और दुर्गंधरूप चेतन अचेतन वस्तुओंमें उत्पन्न होनेवाला सब तरहका गंध भी कृतक और सहजके भेदसे दो तरहका माना गया है ॥ ६२२ ॥ इसीतरह सफेद काले आदिके भेदसे रूप पांच तरहका है और जीव तथा अजीवसे उत्पन्न हुए स्वर षड्ग आदिके भेदसे सात

तनेतरवरतुग: ॥६२२॥ रूपं पंचविधं श्वेतकृष्णादिप्रविभागभाक्। षड्जादयः स्वरा सप्त जीवाजीवसमुद्भवाः॥६२३॥इत्यष्टाविंशतिर्भूला द्वैगुण्य पुनरागता । इष्टानिष्टविकल्पाभ्यां षट्पंचाशद्विकल्पना ॥६२४॥ तेष्विष्टाः कृतपुण्याना तानि पुण्यानि धर्मत । निषिद्धविषयत्यागो धर्मः सद्भिरुदीरित ॥६२५॥ निषिद्धविषय तस्मात्परिहृत्य विचक्षणाः । शेषाननुभवंतोऽत्र कामशास्त्रविदो मता ॥ ६२६ ॥ त्वयानुभूयमानेषु दोषाः संतीह केषु चित् । इति तेनोदित श्रुत्वा तद्दोषविनिवृत्तये ॥ ६२७ ॥ त्वयोपदेश. कर्तव्यो यास्यामि तव शिष्यतां । इत्युदीर्णवतीं विप्रस्ता व्यनैषीत्कलादिषु ॥ ६२८ ॥ सर्वे तत्पुनरन्येद्युर्विहर्तुं वनमागमन् । स्थितस्तत्रायमेकांतप्रदेशे गुणमालया ॥ ६२९ ॥ सह स्वाभाविक रूपमात्मनः समदर्शयत् । कन्या दृष्ट्वाथ तं जातसशया सत्रपा सती ॥६३०॥ मौनेनावस्थितां वीक्ष्य तामेष प्राक्तनोक्तिमि । चूर्णवासादिजाताभिः प्रत्यापयदतिद्रुतं ॥ ६३१ ॥ पुन प्राक्तनरूपस्थः पुष्पशय्यामधिष्ठितः । कुरु मत्पादसंवाहमिति प्रेषयति स्म ता ॥ ६३२ ॥ तां च स्नेहेन तत्कर्म कुर्वतीं वीक्ष्य विस्मयात् । ते राजसूनव सर्वे तन्मन्त्रादिकमस्तुवन् ॥ ६३३ ॥ अथ तस्मा-

प्रकारके हैं ॥ ६२३ ॥ इसप्रकार पांचों इंद्रियोंके सव विषय अट्ठाईस होते हैं और फिर उनमें भी इष्ट और अनिष्टके भेदसे प्रत्येकके दो दो भेद हो जाते हैं इसप्रकार सव छप्पन भेद हो जाते हैं ॥ ६२४ ॥ इनमेंसे जो इष्ट विषय हैं वे पुण्यवानोंको प्राप्त होते हैं तथा ये पुण्य धर्मसे प्राप्त होते हैं और निषिद्ध विषयोंका त्याग करना ही सज्जनोंके द्वारा धर्म कहा जाता है ॥ ६२५ ॥ इसलिये जो चतुर पुरुष निषिद्ध विषयोंका त्यागकर शेष विषयोंका अनुभव करते हैं वे ही इस संसारमें कामशास्त्रके जानकार कहलाते हैं ॥ ६२६ ॥ हे गुणमाले ! तू जो विषयोंका अनुभव करती है उसमें कितने ही दोष हैं । ब्राह्मणकी यह बात सुनकर वह गुणमाला कहने लगी कि उन दोषोंको दूर करनेकेलिये तुम मुझे कुछ उपदेश दो । मैं आपकी शिष्या बन जाऊंगी । यह सुनकर उस ब्राह्मणने उसे बहुतसी कलाएं सिखलाईं ॥ ६२७—६२८ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन सब लोग बनमें घूमने फिरनेकेलिये गये वहां जाकर जीवंधरने गुणमालाके साथ एकांतमें बैठकर उसे अपना स्वाभाविकरूप दिखलाया । उसे देखकर सती गुणमालाको कुछ संदेह हो गया और वह लज्जित होकर मौन धारणकर बैठ गई । उसे मौनसे बैठी देखकर जीवंधरने सुगंधित चूर्णकी कथासे लेकर पहिलेकी सब बातें कहकर बहुत ही शीघ्र उसे विश्वास दिला दिया ॥ ६२९—६३१ ॥ तदनंतर फिर वह अपना पहिला ब्राह्मणकासा रूप बनाकर पुष्पशय्यापर बैठ गया और गुणमालासे कहने लगा तू मेरे पैर दाब ॥ ६३२ ॥ वह गुणमाला भी उसके स्नेहसे पैर दाबने लगी उसे पैर दाबते देखकर उन राजपुत्रोंको बडा आश्चर्य हुआ और फिर वे सब उस ब्राह्मणके मंत्र आदिकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६३३ ॥ तदनंतर वह कुमार बनसे अपने घर आगया गुणमालाने भी घर आकर अपने माता पितासे जीवंधरके

द्दनाद्गेहमागतो गुणमालया । मातुः पितुश्च जीवंधरागतिः कथिता मिथः ॥ ६३४ ॥ विवाहविधिना तौ च तां तस्याकुरुतां प्रिया । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा जीवंधरस्तया ॥ ६३५ ॥ सुखानि सह भुंजानः सर्वबन्धुसमन्वितः । जनप्रस्तूयमानोरुभाग्यो गंधगजं गिरिं ॥ ६३६ ॥ विजयादिं समारुह्य चतुरंगबलावृतः । गृहं गंधोत्कटाख्यस्य प्राविशत्परमोदयः ॥ ६३७ ॥ तदुत्सवं समाकर्ण्य स काष्ठांगारिकः क्रुधा । पश्य वैश्यात्मजो मत्तो मनाक् च न बिभेति मत् ॥ ६३८ ॥ इति प्रकाशकोपोऽभूत्तद्वीक्ष्य सचिवोत्तमाः । "जीवंधरकुमारोऽयं दैवादाविष्कृतोदयः ॥ ६३९ ॥ गन्धर्वदत्तया साक्षाल्लक्ष्म्येव समुपाश्रितः । यक्षेण कृतसंवृद्धिर्मित्रेणाव्यभिचारिणा ॥ ६४० ॥ मधुरादिसहायैश्च सहितो यत्नतो महान् । अमेयविक्रमोऽनेन विग्रहो नैव युज्यते ॥ ६४१ ॥ बलिना सह युद्धस्य हेतुः कोऽपि न विद्यते" । इत्यादियुक्तिमद्वाग्भिस्तमाशु समशीशमन् ॥ ६४२ ॥ इदमन्यदितः किंचित्प्रस्तुतं प्रतिपाद्यते । विदेहविषये ख्यातं विदेहाख्यं पुरं परं ॥ ६४३ ॥ गोपेन्द्रो भूपतिस्तस्य पाता पातितविद्विषः । तुक् पृथिव्यादिसुंदर्यो राज्यां रत्नवती सती ॥ ६४४ ॥ चन्द्रकव्यधने दक्षं

आनेके समाचार कह सुनाये और माता पिताने भी विधिपूर्वक विवाहकर वह गुणमाला जीवंधरको व्याह दी। इसके बाद वह जीवंधर कुछ दिन तक तो वहींपर उसी गुणमालाके साथ रहा और सब भाई बंधुओंके साथ अनेक तरहके सुखोंका अनुभव करने लगा। संसारके लोग भी उसके बडेभारी भाग्यकी प्रशंसा करने लगे थे किसी एक दिन परम विभूतिको धारण करनेवाले उस कुमारने चारोंप्रकारकी सेना लेकर और विजयगिरि नामके गंधगजपर सवार होकर गंधोत्कटके घर प्रवेश किया ॥ ६३४–६३७ ॥ उस उत्सवको सुनकर काष्ठांगार बहुत क्रोधित हुआ और कहने लगा कि देखो यह महा अभिमानी उन्मत्त हुआ वैश्यपुत्र मुझसे विल्कुल नहीं डरता है इसप्रकार कहकर वह प्रगटरीतिसे क्रोध करने लगा उसे क्रोधित देखकर अच्छे अच्छे मंत्री कहने लगे कि " यह जीवंधर कुमार है भाग्यके उदयसे इसे बडी भारी विभूति प्राप्त हुई है गंधर्वदत्ता भी साक्षात् लक्ष्मीके समान इसकी सेवा करती है, अभिन्न मित्र ऐसे यक्षके द्वारा इसकी वृद्धि हुई है और मधुर आदि साथियोंके साथ यह बडे यत्नसे रहता है यह महान् पुरुष है इसके पराक्रमका कोई भेदन नहीं कर सकता इसलिये इसके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है क्योंकि बलवानके साथ युद्ध करनेसे कोई लाभ नहीं होता इसप्रकारके युक्तियोंके वचनोंसे मंत्रियोंने उसे शीघ्र ही शांत कर दिया ॥ ६३८–६४२ ॥ अब कथांतरके बाद प्रकृत विषयकी कथा कहते हैं विदेह देशमें एक विदेह नामका उत्तम नगर है उसमें शत्रुओंको नष्ट करनेवाला राजा गोपेंद्र राज्य करता था उसकी पृथिवी सुंदरी नामकी रानीसे सती रत्नवती नामकी पुत्री हुई थी ॥ ६४३–६४४ ॥ उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो चंद्रक यंत्रपर निशाना मारकर चतुरता दिखलावेगा उसीको मैं वरमाला पहिनाकर अलंकृत करूंगी उसके सिवाय अन्य

मालयालङ्करोम्यहं । नेच्छाम्यन्यं पतिं कञ्चिदकरोदिति संगरं ॥ ६४५ ॥ तद् ज्ञात्वास्या पिता चापवेदवेदितोदितं । जीवंधरोऽत्र तत्कन्यामिमां तत्संनिधिं नये ॥ ६४६ ॥ इति राजपुरं गत्वा सकन्यः सहसाधनः । घोषणां कारयामास स्वयंवरविधिं प्रति ॥ ६४७ ॥ तद्घोषणां समाकर्ण्य सर्वे भूखचरेश्वराः । कन्यापरिग्रहायायान्मङ्क्षु राजपुरं प्रति ॥ ६४८ ॥ स्वयंवरविधौ तस्मिंश्चन्द्रकव्यधने नृपान् । स्खलितांस्तान्बहून्वीक्ष्य जीवंधरकुमारकः ॥ ६४९ ॥ कृतसिद्धनमस्कारः स्वगुरोश्चार्यवर्मणः । विधाय विनयं बालभानुर्वोदयशैलगः ॥ ६५० ॥ स्थित्वा विभास्वरस्तस्मिंश्चक्रे स्खलनवर्जितं । कृतवेधो व्यधात्सिंहनादं दिक्तटनादितदिक्तटं ॥६५१॥ साधु विद्धमनेनेति प्राशसन् प्राश्निकास्तदा । कण्ठे मालां कुमारस्य सा समासजयन्मुदा ॥ ६५२ ॥ साधवस्तत्र योग्योऽयमनयोर्नन्तु संगमः । शरत्समयहंसाल्योरिवेति प्रीतिमागताः ॥ ६५३ ॥ सर्वत्र विजयः पुण्यवतां को वात्र विस्मयः । इत्यौदासीन्यमापन्ना मध्यमाः हतबुद्धयः ॥६५४॥ काष्ठाङ्गारिकमुख्यास्ते नीचाः प्राप्तपराभवाः । प्राक्स्मातदनुस्मृत्य दुष्प्रकोपप्रचोदिताः ॥ ६५५ ॥ पापास्तुमुलयुद्धेन कन्यामाहर्तुमुद्यताः । बुद्ध्वा जीव-

किसीको अपना पति नहीं बनाऊंगी ॥ ६४५ ॥ उस कन्याकी ऐसी प्रतिज्ञा जानकर उसके पिताने सोचा कि इस संसारमें धनुषविद्याको जाननेवाला और अत्यंत ऐश्वर्यशाली जीवंधर ही है इसलिये उसीके समीप यह कन्या ले चलनी चहिये । इसप्रकार विचारकर वह राजा उस कन्याको लेकर अपनी सब सेनाके साथ राजपुर नगरमें पहुंचा और वहां जाकर उसने स्वयंवरकी घोषणा कराई ॥ ६४६–६४७ ॥ इस घोषणाको सुनकर उस कन्याके साथ विवाह करनेकेलिये भूमिगोचरी और विद्याधरोंके राजा लोग शीघ्र ही राजपुर नगरमें आ पहुंचे ॥ ६४८ ॥ उस स्वयंवरमें उस चंद्रक यंत्रपर निशाना मारनेमें बहुतसे राजा लोग चूक गये तब उन सबको स्खलित हुआ देखकर जीवंधर कुमार उठा उसने पहिले ही सिद्धोंको नमस्कार किया फिर अपने गुरु आर्यवर्माकी विनय की और उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए बालसूर्यके समान दैदीप्यमान होकर खडा हुआ । तदनंतर उसने विना किसी भूलके उस यंत्रमें निशाना मार दिया और फिर सब दिशाओंके किनारोंको शब्दायमान करता हुआ सिंहनाद किया ॥ ६४९–६५१ ॥ उसीसमय धनुर्विद्याके अच्छे जानकार लोग उसकी प्रशंसा करने लगे कि इसने अच्छा निशाना मारा तथा उस रत्नवती कन्याने भी प्रसन्न होकर कुमारके कंठमें वरमाला पहिनाई ॥ ६५२ ॥ सज्जन लोग कहने लगे कि जिसप्रकार शरद समय और हंसोंकी पंक्तिका समागम होता है उसीप्रकार इन दोनोंका समागम बहुत ही ठीक हुआ है इसप्रकार उन दोनोंके समागमसे सज्जन लोगोंको बहुत ही प्रेम हुआ था ॥ ६५३ ॥ इसीतरह बुद्धिमान् मध्यस्थ लोग उदासीनता धारण करने लगे थे और कहने लगे थे कि पुण्यवानोंका सब जगह विजय होता है इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ६५४ ॥ तिरस्कारको प्राप्त हुए जो काष्ठांगारादिक

धरस्तेषां वैषम्यं नयकोविद ॥६५६॥ सत्यंधरमहाराजसामंतान्प्रति तदा । प्राहिणोदिति संदिष्टान् दूतान् सोपायनान्बहून् ॥६५७॥ "अहं सत्यंधराधीशाद्विजयाया सुतोऽभवं । मत्पूर्वकृतदैवेन ताभ्यामुत्पत्त्यनंतरं ॥६५८॥ वियुक्तोऽस्मिन्वणिग्वर्यशरणे समवर्धिषि । काष्ठाङ्गारिकपापोऽयं काष्ठांगारादिविक्रियात् ॥ ६५९ प्राणसधारणं कुर्वन्युष्मदुर्वीभृता कृत । द्वितीयप्रकृतिर्नीचो लब्धरंध्रो दुराशय ॥ ६६० ॥ तमेवाहिरिवाहत्य स्वयं राज्ये व्यवस्थित । उच्छेद्यो न ममैवाशु शत्रुत्वाद्भवतामपि ॥ ६६१ ॥ रसातल गतोऽप्ययं मयावश्यं हनिष्यते । सत्यंधरमहीशस्य सामंतास्तस्य भाक्तिका ॥ ६६२ ॥ योधा पुष्टा महामात्रास्तेनान्ये चानुजीविन । कृतघ्नममुमुच्छेत्तुमर्हति कृतवेदिन " ॥ ६६३ ॥ ते तत्संदेशमाकर्ण्य कुमारोऽयं नृपात्मज । सत्यमेवेति समाख्य बहवस्तेन संगता. ॥ ६६४ ॥ ततः सन्नद्धसैन्य संस्तस्य गत्वोपरि स्वयं । युद्ध्वा नानाप्रकारेण चिरं निर्जित्य तद्बल ॥ ६६५ ॥ गिर्यतविजय गंधगज

नीच पुरुष थे वे जीवंधरके पहिलेके पराभवका (गंधर्वदत्ताके विवाहके समय होनेवाले पराभवका) स्मरण करने लगे और नीच क्रोधसे प्रेरित होकर उन पापियोंने भारी युद्धकर कन्याको हरणकरनेका उद्यम किया। नयोंको जाननेवाले जीवंधरने उनकी यह विषमता जान ली और उसीसमय उसने सत्यंधर महाराजके जो सामंत थे उनके समीप भेट लेलेकर बहुतसे दूत भेजे उसने उन दूतोंके साथ यह समाचार कहला भेजा कि "मैं विजया महारानीसे उत्पन्न हुआ महाराज सत्यंधरका पुत्र हूं मैं अपने पहिले किये हुए कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होते ही माता पितासे अलग हो गया था और यहांके उत्तम वैश्य गंधोत्कटकी शरणामें जाकर इतना बढा हुआ हूं यह पापी काष्ठांगार काष्ठांगारकी विक्रियासे अर्थात् लकडी लाकर बेचना आदि व्यापारसे प्राण धारण करता था परंतु आपके स्वामी महाराज सत्यंधरने इसे मंत्री बनाया यह राजसी प्रकृतिका नीच मनुष्य है इस दुष्टने छिद्र पाकर सर्पके समान उन्हीं सत्यंधर महाराजको मारा और आप स्वयं राजसिंहासनपर बैठ गया। इसलिये आज मुझे ही इसका नाश नहीं करना चाहिये किंतु यह आपका भी शत्रु है इसलिये आपको भी शीघ्र ही इसका नाश करना चाहिये। यदि आज यह रसातलमें भी पहुंच जाय तो भी मैं आज इसे अवश्य मारूंगा। आप लोग सत्यंधरके सामंत हैं उनके भक्त हैं उनके योद्धा हैं उनके द्वारा पुष्ट हुए हैं उनके महामंत्री हैं और कृतज्ञ अर्थात् अपने स्वामी महाराज सत्यंधरके उपकारोंको जानते हैं इसलिये आपको तथा और भी जो उनके अनुचर वा अनुयायी हैं उन सबको आज इस कृतघ्नका अवश्य ही नाश करना चाहिये" ॥ ६५५–६६३ ॥ इस समाचारको पाकर बहुत सामंत विचार करने लगे कि यह कुमार अवश्य ही राजपुत्र है इसमें कोई संदेह नहीं है यही विचारकर बहुतसे सामंत उसकीओर आ मिले ॥ ६६० ॥ तदनंतर अपनी सब सेना तयारकर वह कुमार स्वयं उसके ऊपर गया और बहुत

समदमूर्जित । समारूढा' प्ररूढाङ्ग काष्ठाङ्गारिकमुद्धत ॥६६६॥ उपर्यशनिवेगाख्यविख्यातकरिण स्थित । हत्वा चकार चक्रेण तनुशेष रुषा द्विष ॥ ६६७ ॥ त्रिलोक्य तद्बले भग्नं भयादुपगते सति । तदाकार्यीत्समाश्वास विधायाभयघोषणः ।६६८। बंधून्सर्वान् समाहूय विनेयानवलोक्य तान् । तत्कालोचितसभापणादिभिर्हार्दमानयत् ॥ ६६९ ॥ जिनपूजां विनिर्वर्त्य कृतमगलसत्क्रियः । यक्षेण भूभुजे सर्वैश्वासराज्याभिषेचनः ॥ ६७० ॥ रत्नवत्या च सप्राप्य स विवाहमहोत्सव । कृत्वा गंधर्वदत्ताया महत्याः पट्टवधन । नदाढ्यादिसमानीतमातृजायादिभिर्युतः । सप्राप्य परमैश्वर्यमूर्जितो निर्जितद्विष ॥६७२॥ यथान्याय प्रजा सर्वाः पालयन् हेलयेप्सितान् । लीलयानुभवन् भोगान् स्वपुण्यफलितान् स्थित ।६७३। सुरादिमलयोद्याने कदाचिद्विहरन् विभुः । वरधर्मयतिं दृष्ट्वा संप्राप्य विहितानतिः ॥ ६७४ ॥ ततस्तत्त्व विदित्वा तव्रतोऽभूद्दर्शनिर्मल । नदाढ्याद्याश्च सम्यक्त्वव्रतशीलान्युपागमत् ॥ ६७५ ॥ एतैः सुखमसौ स्वाप्तैः साक कालमजीगमत् ।

देरतक अनेक तरहसे युद्धकर उसने काष्ठांगारकी सेना हराई ॥ ६६५ ॥ तब मरूढ आज्ञाको चलानेवाला उद्धत काष्ठांगार अशनिवेग नामके मसिद्ध हाथीके ऊपर सवार होकर आया और उसके सामनें मदोन्मत्त और बडे भारी ऐसे विजयगिरि नामके गंधगजपर सवार होकर जीवंधर भी आया। जीवंधरन क्रोधमें आकर चक्रसे उस शत्रु काष्ठांगारको मार गिराया ६६७-६६८ राजा काष्ठांगारके मरनेसे भंगके भयसे उसकी सेनाको भागती हुई देखकर जीवंधरने अभय घोषणा दिलवाई और सब को आश्वासन दिया ॥ ६६८ ॥ तदनंतर कुमारने अपने सब भाई बंधुओंको बुलाया और सबको नम्र देखकर उस समय के योग्य बात चीतके द्वारा सबको मसन्न किया ॥ ६६९ ॥ इसके बाद सबसे पहिले श्रीजिनेंद्र देवकी पूजा की गई फिर अनेक मांगलिक क्रियाएं हुई और फिर उस यक्ष और सब राजाओंके द्वारा जीवंधरका राज्याभिषेक किया गया ॥६७०॥ तदनंतर रत्नवतीके साथ उसका विवाह महोत्सव हुआ और फिर गंधर्वदत्ताको महापट्ट बांधा गया अर्थात् वह महा पट्टरानी वनाई गई ॥ ६७१ ॥ नंदाढ्य जीवंधरकी माता विजयाको ले आया था और हेमाभा आदि सब जीवंधरकी रानियोंको ले आया था उन सबके साथ जीवंधरकुमार परम ऐश्वर्यको माप्त हुआ बहुत ही देदीप्यमान हुआ और उसने सब शत्रुओंको जीता ॥६७२॥ तदनंतर वह न्यायपूर्वक कौतुकसे ही सब मजाका पालन करने लगा और अपने पुण्य कर्मके फलसे माप्त हुए इष्ट भोगोंका लीलापूर्वक अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥ ६७३ ॥ किसी एक समय महाराज जीवंधर सुरमलय नामके उद्यानमें विहार करने गये थे वहां पर उन्होंने वरधर्म नामके मुनिराजके दर्शन किये उनके समीप जाकर नमस्कार किया उनसे तत्त्वोंका स्वरूप जाना और व्रत धारण कर सम्यग्दर्शनको निर्मल किया । नंदाढ्य आदि भाइयोंने भी सम्यग्दर्शन व्रत और शील धारण किये ॥ ७७४–७७५ ॥ इसप्रकार वे जीवंधर महाराज इन आप्त लोगोंके

अथाशोकवनेऽन्यैर्युयुध्यमानं परस्परं ॥ ६७६ ॥ कपीना यूथमालोक्य ज्वलत्क्रोधहुताशनं । जातससारनिर्वेगस्तस्मिन्नेव वनातरे ॥ ६७७ ॥ प्रशास्तवंक-नामान चारणं वीक्ष्य सादरं । पूर्वश्रुतानुसारेण धृतात्मभवसंततिं ॥ ६७८ ॥ जिनपूजा विधायानु वर्धमानविशुद्धिक । सुरादिमलयोद्यानायान वीरजिनेशितु ॥ ६७९ ॥ श्रुत्वा विभूतिमद्गत्वा सपूज्य परमेश्वरं । महादेवीतनूजाय दत्त्वा राज्यं यथाविधि ॥ ६८० ॥ वसुधरकुमाराय वीतमोहो महामना । मातुलादि-महीपालैर्नंदाढ्यमधुरादिभि. ॥ ६८१ ॥ सर्वसगपरित्यागात्सयम प्रत्यपद्यत । भुक्तभोगा हि निष्काङ्क्षा भवति भुवनेश्वरा: ॥ ६८२ ॥ सत्यधरमहादेव्या सहाष्टौ सुदृश. स्नुषा. । सद्यो गधर्वदत्ताद्यास्तासामपि च मातर ॥ ६८३ ॥ समीपे चदनार्याया जगृहु: सयमं परं । महानेको भवेद्धेतुर्बहूनामर्थसिद्धये ॥ ६८४ ॥ "भवता परिपृष्टोऽय जीवधरमुनीश्वर: । महीयान् सुतपा राजन् सप्रति श्रुतकेवली ॥६८५॥ घातिकर्माणि विध्वस्य जनितागृहकेवली सार्धं वि

साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे। अथानंतर किसी एक दिन वे महाराज अशोक वनमें गये थे वहांपर जिनकी क्रोधरूपी अग्नि जल रही है ऐसे दो वंदरोंके झुंड परस्पर लड रहे थे उन्हें लडते हुए देखकर जीवंधरको संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी वनमें प्रशस्तवंश नामके चारण मुनिराज विराजमान थे इसलिये जीवंधरने वडे आदरसे उनके दर्शन किये और पहिले सुने अनुसार अपने पहिले भवोंकी परंपरा सुनी ॥ ६७६–६७८ ॥ तदनंतर उन्होंने भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजाकर आत्माकी विशुद्धि वढाई। फिर उन्होंने सुरमलय उद्यानमें भगवान वीरनाथके समवसरणके आनेकी बात सुनी उसे सुनते ही वे वडी विभूतिके साथ वहां पहुंचे परमेश्वर भगवान वीरनाथ की पूजा की और गंधर्वदत्ता महादेवीके पुत्र वसुंधर कुमारको विधिपूर्वक अपना राज्य दिया। जिनका मोहनीय कर्म शांत हो गया है और जिनका मन आत्माके विशुद्ध भावोंमें लगा हुआ है ऐसे उन महाराज जीवंधरने मामा आदि अनेक राजाओं और नंदाढ्य मधुर आदि भाइयोंके साथ सव तरहके परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारणकर लिया। सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग भोगोंका अनुभव कर फिर अंतमें आकांक्षारहित–विरक्त हो ही जाते हैं ॥ ६७९–६८२ ॥ गंधर्वदत्ता आदि सुंदर नेत्रोंको धारण करनेवाली जीवधरकी आठों रानियोंने तथा उन रानियोंकी माताओंने महाराज सत्यंधरकी महादेवी विजयाके साथ चंदना आर्याके समीप जाकर शीघ्र ही उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि एक भी वडा आदमी अनेक लोगोंकी अर्थसिद्धिका कारण हो जाता है ॥ ६८३–६८४ ॥ हे श्रेणिक ? तूने जिन मुनिराजकेलिये पूछा था वे ही जीवंधर हैं ये वडे तपस्वी हैं और इससमय श्रुतकेवली हैं ॥ ६८५ ॥ घातिया कर्मोंको नाशकर ये अगृहकेवली होंगे महावीर तीर्थंकरके साथ विहारकर महावीर स्वामीके ही मोक्ष जानेके समय ही विपुलाचल पर्वतपर समस्त कर्मोंको नाशकर मोक्षरूप उत्कृष्ट

इस तीर्थेशा तस्मिन्मुक्तिमधिष्ठिते ॥ ६८६ ॥ विपुलाद्रौ हताशेषकर्मा शर्मात्रयमेष्यति । इष्टाष्टगुणसंपूर्णो निष्ठितात्मा निरंजनः" ॥ ६८७ ॥ इत्याकर्ण्य सुधर्माख्यगणभृद्वचनामृतं । प्रियिये श्रेणिकः कस्य न धर्मे प्रीतये भवेत् ॥ ६८८ ॥ अन्यैर्यः समवाप पूर्वकृतात्कन्याष्टकं दुर्लभं यः शत्रुं पितृघातिनं रणमुखे लोकांतरं प्रापयत् । यः प्रव्रज्य विभिन्नकर्मतिमिरोऽभासिष्ट मुक्तिश्रिया त वंदे मुकुलीकृतांजलिरहं जीवंधरस्वामिनं ॥ ६८९ ॥ निर्वेष्य षोडश दिनानि स मद्सानबाप्य विहाय करुणां विमतिः पितृभ्यां । सप्राप षोडश समाः स्वसनामिमेदं जीवंधर, कुरुत तद्दुरितं न भव्याः ॥ ६९० ॥ क्व स पितृप्रमृत्युः क्व श्मशाने प्रसूतिर्विणिग्गृहगमनं क्व क्व स्वयंद्योपकारः । क्व तदुदयविधानं शत्रुघातः क्व चित्रं विधिविलसितमेतत्पश्य जीवंधरेऽस्मिन् ॥ ६९१ ॥

इत्यार्षे त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते चदनार्यिकाजीवंधरचरितं परिसमाप्तं पंचसप्ततितमं पर्व ॥ ७५ ॥

कल्याणको प्राप्त होंगे तथा उनका कृतकृत्य आत्मा, इष्ट आठ गुणोंसे संपूर्ण होकर कर्मरूपी अंजनसे सर्वथा अलग हो जायगा ॥ ६८६—६८७ ॥ इसप्रकार सुधर्माचार्य गणधरके वचनरूपी अमृतको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही प्रसन्न हुआ सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे किसको प्रसन्नता नहीं होती है? ॥ ६८८ ॥ जिसने पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे अन्य लोगोंको दुर्लभ ऐसी आठ कन्याएं प्राप्त की, पिताका घात करनेवाले काष्ठांगार शत्रुको युद्धमें परलोक पठाया, जिसने दीक्षा लेकर कर्मरूपी अंधकारको नष्ट किया और जो मोक्षरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हुआ ऐसे जीवंधर स्वामीको मैं हाथ जोडकर नमस्कार करता हूं ॥ ६८९ ॥ जिसने (जगद्य अवस्थामें) मूर्खतासे दयारहित होकर हंसके बच्चोंको सोलह दिनतक माता पितासे अलग रक्खा और इसीलिये जीवंधरको सोलहवर्षतक अपने कुटंबियोंसे अलग रहना पडा इसलिये भव्य जीवोंको पाप कार्य कभी नहीं करने चाहिये ॥ ६९० ॥ देखो कहां तो महाराज पिताकी मृत्यु, कहां श्मशानमें जन्म लेना, कहां वैश्यके घर जाकर पलना, कहां यक्षका उपकार, कहां सुंदर कन्याएं और राज्य आदि विभूतियोंकी प्राप्ति और कहां काष्ठांगार ऐसे शत्रुका घात करना । इस जीवंधरमें ही ऐसे विचित्र कर्मोंका उदय विद्यमान है ॥ ६९१ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित महापुराणके नवीन हिंदीभाषानुवादमें जीवंधरके चरित्रको कहनेवाला यह पिचहत्तरिवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

अथ षट्सप्ततितमं पर्व ॥ ७६ ॥

अथान्येद्युर्महावीर सुरासुरपरिष्कृत । विहृत्य विविधान् देशान् पुनस्तत्पुरमागत ॥ १ ॥ गणेंद्रैर्दशभि पूज्य: स्थित. स विपुलाचले । गच्छस्तं श्रेणिक: स्तोतु वृक्षमूले शिलातले ॥ २ ॥ मुनिं धर्मरुचिं नाम्ना निस्तरंगमिवोदधिं । प्रदीपमिव निष्कंप सांबु वाम्भोदमुन्नतं ॥ ३ ॥ जितेंद्रियसमाहारं पर्यंकविहितासनं । ईषन्निरुद्धनि:श्वासं मनाग्मीलितलोचन ॥ ४ ॥ ध्यायत वीक्ष्य वंदित्वा साशको विकृताननात् । ततो गत्वा जिन प्राप्य स्तुत्वा मुकुलिताञ्जलि: ॥ ५ ॥ गौतम च मया दृष्ट. कश्चिदेकस्तपोधन: । ध्यायन् साक्षादिव ध्यातिस्तद्रूपेण व्यवस्थिता ॥ ६ ॥ स को मे कौतुक तस्मिन् ब्रूहि नाथेत्यभाषत । अनुयुक्तो गणी तेन प्रोवाच वचसापति: ॥ ७ ॥ अस्त्यत्र विषयोंगाख्य: संगत: सर्ववस्तुभि: । नगरी तत्र चंपाख्या तत्पति: श्वेतवाहन: ॥ ८ ॥ श्रुत्वा

अथ छिहत्तरिवां पर्व ।

अथानतर–जिनके चारोंओर सदा सुर असुर रहते हैं ऐसे श्रीमहावीर स्वामी अनेक देशोंमें विहार कर किसी दिन फिर उसी नगरमें आपहुंचे ॥ १ ॥ बारह सभाओंसे पूज्य वे भगवान विपुलाचल पर्वतपर विराजमान हुए राजा श्रेणिक उनकी स्तुति करनेके लिये जाने लगा । मार्गमें एक वृक्षके नीचे शिलाके ऊपर धर्मरुचि नामके मुनिराज विराजमान थे वे मुनिराज तरंगरहित समुद्रके समान निश्चल थे, दीपकके समान निष्कंप थे और जलसे भरे हुए बादलके समान उन्नत थे ॥ २–३ ॥ वे जितेंद्रियकी चरम सीमातक पहुंचे हुए थे पर्यंक आसनसे विराजमान थे थोडा थोडा श्वास रोके हुए थे और उनके नेत्र कुछ कुछ बंद थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार ध्यान करते हुए उन मुनिराजको देखकर श्रेणिकने उनकी वंदना की परंतु उन मुनिराजका कुछ विकृत मुह देखकर श्रेणिकको कुछ शंका उत्पन्न हो गई । तदनंतर वह भगवानके समवसरणमें पहुंचा और हाथ जोडकर भगवानकी स्तुति की ॥ ५ ॥ फिर उसने गौतम गणधरसे पूछा कि हे प्रभो मैंने मार्गमें एक मुनि देखे हैं वे ऐसा ध्यान कर रहे है मानों उनका रूप धारणकर साक्षात् ध्यान ही विराजमान हो । नाथ वे कौन हैं उनके जाननेकी मेरी बडी इच्छा है आप कृपाकर कहिये ? इसके उत्तरमें वे वचनोंके स्वामी गणधर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ ६–७ ॥ इसी भरतक्षेत्रके अंग देशमें सब वस्तुओंसे सुशोभित ऐसी एक चंपा नगरी है उसमें राजा श्वेतवाहन राज्य करता था ॥ ८ ॥ इन्हीं भगवान वीरनाथसे धर्मका स्वरूप सुनकर उसका चित्त तीनोंतरहके वैराग्यसे पूर्ण भरगया और अपने पुत्र विमलवाहनको राज्य देकर अनेक लोगोंके साथ उसने दीक्षा धारण करली । अनेक मुनियोंके साथ

धर्मे जिनादस्यामिनिर्वेगाहिताशयः। राज्यभारं समारोप्य सुते विमलवाहने ॥ ९ ॥ संयमं बहुभिः सार्धमत्रैव प्रतिपन्नवान्। चिरं मुनिगणैः साकं विहृत्या-खंडसंयमः ॥ १० ॥ धर्मेषु रुचिमातन्वन् दशस्वप्यनिशं जनैः। प्राप्तधर्मरुचिं ख्यातिं सख्यं यत्सर्वजंतुषु ॥ ११ ॥ अथ मासोपवासांते भिक्षार्थं प्राविशत् पुरं। पुरुषाः संहतास्तत्र तत्समीपमिताञ्त्रयः ॥ १२ ॥ नरलक्षणशास्त्रज्ञस्तेष्वेको वीक्ष्य तन्मुनिं। लक्षणान्यस्य साम्राज्यपदवीप्राप्तिहेतव ॥ १३ ॥ अट-त्येष च भिक्षायै शास्त्रोक्तं तन्मृषेत्यसौ। वदन्नभिहितोऽन्येन न मृषा शास्त्रभाषितं ॥ १४ ॥ त्यक्तसाम्राज्यतंत्रोऽयमृषिः केनापि हेतुना। निर्विण्णस्तनये वाले निधाय व्याप्तृतिं निजां ॥ १५ ॥ एवं तपः करोतीति श्रुत्वा तद्वचनं परः। अवोचत्किमनेनास्य तपसा पापहेतुना ॥ १६ ॥ दुरात्मनः कृपां हित्वा वालं तमसमर्थकं। लोकसव्यवहाराज्ञं स्थापयित्वा धरातले ॥१७॥ स्वयं स्वार्थं समुद्दिश्य तपः कर्तुमिहागतः। मन्त्रिप्रभृतिभिः सर्वैः कृत्वा तं शृंखलावृतं ॥ १८ ॥

बहुत दिनतक विहारकर अखंड संयमको धारण करते हुए वे मुनिराज यहां आ विराजमान हुए हैं ॥ ९–१० ॥ वे दश धर्मोंमें सदा प्रेम रखते थे इसीलिये लोगोंके द्वारा धर्मरुचिके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। सो ठीक ही है क्योंकि सब जीवोंमें मैत्रीभाव रखना ही धर्म प्रेम कहलाता है ॥ ११ ॥ आज एक महीनेके उपवासके वाद भिक्षाकेलिये नगरमें गये थे वहांपर उनके समीप तीन मनुष्य मिलकर आये थे ॥ १२ ॥ उनमेंसे एक मनुष्य मनुष्योंके लक्षणशास्त्र जानता था उसने उन मुनिराजको देखकर कहा कि इनके लक्षण साम्राज्यपदवीके प्राप्त होनेके कारण हैं परंतु ये तो भिक्षा मांगते फिरते हैं इस-लिये शास्त्रोंमें कहा हुआ सब झूठ जान पडता है। उसकी कही हुई यह बात सुनकर दूसरा कहने लगा कि शास्त्रोंमें कहा हुआ झूठ नहीं है ॥ १३–१४ ॥ अपने साम्राज्य तंत्रका त्यागकर किसी कारणसे ये ऋषि हो गये हैं और अ-पना सब राज्यका भार अपने वालक पुत्रपर रखकर इसप्रकारका तपश्चरण कर रहे हैं। दूसरे पुरुषकी यह बात सुनकर तीसरा पुरुष कहने लगा कि इसके इस पापके कारण तपश्चरणसे क्या लाभ है? इस दुरात्माने दया तो विल्कुल छोड दी है जो वालक विल्कुल असमर्थ है और जो लोक व्यवहारको सर्वथा नहीं जानता उसे पृथ्वीतलपर (राज्य पर) स्थापन कर यह स्वयं अपने स्वार्थ साधनकी इच्छासे तपश्चरण करनेके लिये यहां आये हैं। परन्तु उसके मंत्री आदि सब पापी लोगोंने उस वालक को तो सांकलसे वांध दिया है और राज्यको वांट कर सब उसका अनुभव कर रहे है। उस तीसरे पुरुषकी यह वात सुनकर उन मुनिराजके हृदयमें स्नेह हो आया ॥ १५–१९ ॥ वे विना आहारलिये ही नगरसे वाहर लौट आये और वनमें वृक्षके नीचे आकर विराजमान हुए। वाह्य कारणकेमिलनेसे उनके अंतरंगमें क्रोध कषायके तीव्र स्प-र्द्धकोंका उदय हो आया है और संक्लेश परिणामोंके होनेसे कृष्ण नील कापोत इन तीनों लेश्याओंकी वृद्धि हो गई है

राज्य विभज्य तत्स्वैरं पापैस्तैरनुभूयते । इति तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहमानप्रचोदित- ॥ १९ ॥ अभुंजान पुराद्याशु निर्गत्यैव वनांतरे । वृक्षमूलं समाश्रित्य वाह्यकारणसन्निधौ ॥ २० ॥ अत क्रोधकषायोनुभागोप्रस्पर्द्धकोदयात् । सक्लेशाध्यवसायेन वर्द्धमानत्रिलेश्यकः ॥ २१ ॥ मन्त्र्यादिप्रतिकूलेषु हिंसायखिलनिग्रहात् । ध्यायन् सरक्षणानदरौद्रध्यान प्रविष्टवान् ॥ २२ ॥ अत: पर मुहूर्तं चेदेवमेव स्थितिं भजेत् । आयुषो नारकस्यापि प्रायोग्योथ भविष्यति ॥२३॥ ततस्त्वया स सबोध्यो ध्यानमेतत्त्यजाशुभ । समयक्रोधदुर्वह्निं मोहजाल निराकुरु ॥ २४ ॥ गृहाण सयम त्यक्त पुन: स्त्र मुक्तिसाधनं । दारदारकवन्ध्वादिसबधनमबधुरं ॥ २५ ॥ संसारवर्द्धन साधो जहीहीत्येवमादिभि । युक्तिमद्भिर्वचोभि स प्रत्यवस्थानमाप्तवान् ॥ २६ ॥ शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धघातिकर्मघनाटवि: । नवकेवललब्धीद्धशुद्धभावो भविष्यति ॥ २७ ॥ इत्यसौ च गणाधीशवचनान्मगधाधिप. । गत्वा तदुक्तमार्गेण सद्य प्रासादयन्मुनिं ॥२८॥ सोपि सप्राप्य सामग्रीं कषायक्षयशातिजा । द्वितीशुक्लध्यानेन कैवल्यमुदपादयत् ॥ २९ ॥ तदा पूजा समायातै श्रेणिको वृत्रहादिभि । सह धर्मरुचेः कृत्वा पुनर्वीरं

॥ २०—२१ ॥ मंत्री आदिक जो लोग प्रतिकूल हो गये हैं उन सबमें हिंसा आदि सब पापोंके द्वारा निग्रह करनेका चिंतवन कर रहे हैं और इससमय संरक्षणानंद अर्थात् सबको मारकर पुत्रकी रक्षा करनेरूप रौद्रध्यानमें प्रविष्ट हो रहे हैं ॥२२॥ यदि एक मुहूर्ततक उनकी यही स्थिति रही तो अवश्य ही उनके नरक आयुका बंध हो जायगा ॥ २३ ॥ इसलिये तू जाकर उन्हें समझा कि हे साधो ! आप इस अशुभ ध्यानको छोड दीजिये और समयके अनुसार उत्पन्न हुई क्रोधरूपी अग्निको तथा मोह रूपी जालको दूर कर दीजिये ॥ २४ ॥ आपने जो अपना संयम छोड दिया है जो कि मोंक्षका साक्षात् साधन है उसे स्वीकार कीजिये क्योंकि स्त्री पुत्र भाई बंधु आदि लोगोंका जो दु:खदायी संबंध है वह केवल संसार बढानेवाला है इसलिये उसे आप छोड दीजिये । इसप्रकारके युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे वे अपने स्थानपर आजांयगे अर्थात् क्रोधादि कषायके द्वारा उत्पन्न हुए रौद्रध्यानको छोडकर शांत हो जांयगे ॥ २५—२६ ॥ शुक्लध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मरूपी घने जंगलको जलाकर तथा नौ केवल लब्धियोंको पाकर अत्यंत शुद्ध परिणामोंको धारण करेंगे ॥ २७ ॥ गणधरदेवकी यह बात सुनकर वह राजा श्रेणिक वहां गया और गणधर देवके कहे अनुसार शीघ्रही उन मुनिराजको प्रसन्न करलिया तदनंतर उन मुनिराजने सब सामग्रीके मिलजानेसे कषायोंको नष्ट किया और द्वितीय शुक्लध्यानसे केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ २८—२९ ॥ उसीसमय उनकी पूजा करनेकेलिये इंद्रादिक देव आये राजा श्रेणिकने भी उन सबके साथ केवली धर्मरुचिकी पूजा की और फिर वह भगवान वीरनाथके समीप आया ॥ ३० ॥ आते ही उसने गणधरदेवसे पूछा कि हे प्रभो इस भरतक्षेत्रमें सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन केवलज्ञानी होगा । इसके उत्तरमें गणधर-

समाश्रित ॥ ३० ॥ भरतेऽत्र पाश्चात्य स्तुत्यः केवललोचनः । इत्यप्राक्षीद्गुणी चैव विवक्षुरभवत्तदा ॥ ३१ ॥ ब्रह्मकल्पाधिपो ब्रह्महृदयाख्यविमानजः । विद्युन्माली ज्वलन्मौलिः प्रियदर्शनासुदर्शने ॥ ३२ ॥ विद्युत् द्विप्रभावेगे देव्योऽस्याथ तद्युत । जिनमागत्य वंदित्वा यथास्थानमुपाविशत् ॥ ३३ ॥ त नि-रूप्य परिच्छेदोनेन स्यात्केवलद्युते । तत्कथं चेद्वदिष्यामि दिनेऽस्मात्सप्तमे दिनात् ॥ ३४॥ ब्रह्मेन्द्रोय दिवोऽभ्येत्य पुरेऽस्मिन्नेव वारण । सरः शालिवन निर्धूमा-नलं प्रज्वलच्छिख ॥ ३५ ॥ सुकुमारसमानीयमानजंबूफलानि च । स्वप्न नेतान्पुर' कुर्वन्नर्हद्दासाभिधानकात् ॥ ३६ ॥ इभ्यात्कृती सुतो भावी जिनदास्या महाद्युतिः । जंब्वाह्वयोनावृतादेवादाप्तपूजोऽतिविश्रुतः ॥३७॥ विनीतो यौवनारंभेऽप्यनाविष्कृतविक्रियः । वीरे पावापुरे तस्मिन्काले प्राप्स्यति निर्वृतिं ॥ ३८ ॥ तदैवाहमपि प्राप्य बोधं केवलसंज्ञकं । सुधर्माह्वयगणेशेन सार्द्धं ससारवन्हिना ॥ ३९ ॥ करिष्यन्प्रतितप्तानां ह्लाद धर्मामृताम्बुना । इदमेव पुरं भूयः सम्प्रा-प्यात्रैव भूधरे ॥ ४० ॥ स्थास्याम्येतत्समाकर्ण्य कुणिकश्चेलिनीसुतः । तत्पुराधिपतिः सर्वपरिवारपरिष्कृतः ॥ ४१ ॥ आगत्याभ्यर्च्य वंदित्वा श्रुत्वा धर्मं गृ

देव कहने लगे कि ब्रह्म स्वर्गके ब्रह्महृदय विमानमें दैदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला विद्युन्माली नामका इंद्र है । प्रि-यदर्शना, सुदर्शना, विद्युत्प्रभा और विद्युद्वेगा ये चार उसकी देवियां है उन सबको लेकर वह देव भगवान वीरनाथकी वंदना करनेकेलिये आया है और अपने योग्य स्थानपर बैठा है ॥ ३१–३३ ॥ उसकी ओर इशारा करके गणधरदेव क-हने लगे इसके केवलज्ञानरूपी प्रकाशके वाद फिर केवलियोंका विच्छेद हो जायगा । इस देवको केवलज्ञान कैसे होगा सो भी मैं कहता हूं । आजसे सातवें दिन यह इंद्र स्वर्गसे च्युत होगा और इसी नगरके धनी शेठ अर्हद्दासकी स्त्री महा कां-तिको धारण करनेवाली जिनदासीके गर्भमें आवेगा गर्भमें आनेके पहिले जिनदासी पांच स्वप्न देखेगी हाथी, सरोवर, चांवलोंका खेत, जिसकी शिखा ऊपरको जा रही है ऐसी धूमरहित अग्नि और दिक्कुमारोंके द्वारा किये हुए जामुनके फल । जन्म होनेके वाद जंबूकुमार इसका नाम रक्खा जायगा, अनावृत देव भी आकर इसकी पूजा करेगा और यह अ-त्यत प्रसिद्ध तथा विनयवान् होगा । यौवन अवस्था आजानेपर भी इसे कोई विकार नहीं होगा । जिससमय श्रीवीरनाथ भगवान पावापुरसे मोक्ष प्राप्त करेंगे उसीसमय मुझे भी केवलज्ञान प्राप्त होगा । तदनंतर सुधर्माचार्य गणधरके साथ संसा-ररूपी अग्निसे तप्त हुए लोगोंको धर्मामृतरूपी जलसे आनंदित करता हुआ मैं फिर भी इसी नगरमें आकर इसी विपुला-चलपर्वतपर विराजमान हूंगा । मेरे आनेके समाचार सुनकर इस नगरका राजा चेलिनीका पुत्र कुणिक सब परिवारके साथ आवेगा और पूजा वंदनाकर तथा धर्मका स्वरूप सुनकर स्वर्ग मोक्षके साधन ऐसे दान शील उपवास आदि व्रत धारण करेगा ॥ ३४–४२ ॥ उससमय जंबूकुमारको भी वैराग्य उत्पन्न होगा और वह दीक्षा धारण करनेकेलिये तत्पर होगा

हीष्यति । दानशीलोपवासादिसाधनं स्वर्गमोक्षयोः ॥ ४२ ॥ जंबूनामापि निर्वेदात्प्रव्रज्याग्रहणोत्सुकः । सहैवाल्पेषु वर्षेषु व्यतीतेषु वयं त्वया ॥ ४३ ॥ सर्वे दीक्षां ग्रहीष्याम इति बंधुजनोदितं । मोक्षकन्नुवमिराकर्तुमायास्यति पुरं तदा ॥ ४४ ॥ मोह विधित्सुभिस्तस्य बंधुभिः सुखवर्धनं । अरस्यते विवाहस्तैः श्रेयो विघ्नं हि बांधवाः ॥४५॥ सुता सागरदत्तस्य पद्मावत्या सुलक्षणा । पद्मश्रीरपराश्रीर्वा कनकश्री शुभेक्षणा ॥ ४६॥ सुता कुवेरदत्तस्य जाता कनकमालया । वीक्ष्या विनयवत्याख्यया वैश्रवणदत्तजा ॥ ४७ ॥ विनयश्रीःश्रीरदत्तस्य रूपश्रीश्च धनश्रियः । आभिः सागरदत्तादिपुत्रिकाभिर्यथाविधि ॥४८॥ सौधागारे निरस्तांधकारे सन्मणिदीप्तिभिः । विचित्ररत्नचूर्णरंगवल्लीविभूषिते ॥ ४९ ॥ नानासुरभिपुष्पोपहाराढये जगतीतके । स्वास्यत्यास्तविवाहोयं पाणिग्रहणपूर्वकं ॥ ५० ॥ सुतो ममायं रागेण प्रेरितो विकृतिं भजन् । स्मितहासकटाक्षेक्षणादिना किं भवेन्नवा ॥५१॥ इत्यात्मानं तिरोधाय पश्यता स्थास्यति स्थिरा । माता तस्य तदैवैकः पापिष्ठः प्रथमाशकः ॥ ५२ ॥ सुरम्यविषये ख्यातपोदनाख्यपुरेशिनः । विद्युद्राजस्य तुग्विद्युत्प्रभो नाम तदग्रणी ॥ ५३ ॥ तीक्ष्णो विमल-

परंतु उसीसमय भाई बंधु लोग उसे समझावेंगे और कहेंगे कि थोडे ही वर्षोंके बाद हम सब तेरे साथ दीक्षा धारण करेंगे । उन भाई बंधुओंके वचनोंको वह टाल नहीं सकेगा और वहांसे फिर अपने नगरमें आवेगा ॥ ४३–४४ ॥ तदनंतर वे सब भाई बंधु लोग उसे मोहमें फंसानेकेलिये उसका विवाह कर देंगे सो ठीक ही है क्योंकि भाई बंधु लोग कल्याण कार्योंमें विघ्न ही करते हैं ॥ ४५ ॥ उस जंबूकुमारको एक तो शेठ सागरदत्तकी स्त्री पद्मावतीसे उत्पन्न हुई शुभ लक्षणोंवाली पद्मश्री नामकी कन्या व्याही जायगी दूसरी शेठ कुवेरदत्तकी स्त्री कनकमालासे उत्पन्न हुई शुभ नेत्रोंवाली दूसरी लक्ष्मीके समान कनकश्री व्याही जायगी । तीसरी वैश्रवणदत्तकी स्त्री विनयवतीसे उत्पन्न हुई देखनेयोग्य सुंदर विनयश्री व्याही जायगी और चौथी शेठ श्रीदत्तकी स्त्री धनश्रीसे उत्पन्न हुई रूपश्री व्याही जायगी । इसप्रकार इन सागरदत्त आदि शेठोंकी पुत्रियोंके साथ विधिपूर्वक उसका विवाह होगा ॥ ४६–४८ ॥ पाणिग्रहण पूर्वक विवाहकर वह कुमार ऐसे वडे भवनमें ठहरेगा जिसमें श्रेष्ठ मणियोंकी कांतिसे अंधकार कहीं न रहने पावेगा जो अनेक तरहके रत्नोंके चूर्णकी रंगावलीसे सुशोभित होगा जिसमें अनेक तरहके सुगंधित फूलोंके उपहार रक्खे रहेंगे और जो मध्यभागमें होगा ॥४९-५०॥तदनंतर उसकी माता स्नेहसे छिपकर देखेगी कि थोडा हंसना, कटाक्ष करना आदि काम विकारोंके द्वारा रागसे प्रेरित होकर यह मेरा पुत्र काम विकारको प्राप्त होगा या नहीं । जिससमय यह जंबूकुमारकी माता जिनदासी छिपकर खडी खडी देखेगी उसीसमय सुरम्य देशके प्रसिद्ध पोदनपुर नगरके विद्युद्राजकी रानी विमलमतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चोर आवेगा वह विद्युत्प्रभ महापापी मुख्य चोर होगा परंतु तीक्ष्ण भी होगा वह किसी कारणसे अपने वडे भाईसे

वत्संश्च कुध्वा केनापि हेतुना । निजाम्रजाय निर्गत्य तस्मात्पचशतैर्भटै ॥५४॥ विद्युच्चोराह्वय कृत्वा स्वस्य प्राप्य पुरीमिमां । जानन्नदृश्यदेहत्व कवाटोद्घाटनादिक ॥ ५५ ॥ चौरशास्त्रोपदेशेन मत्रतत्रविधानतः । अर्हद्दासगृहाभ्यंतरस्थं चोरयितु धनं ॥ ५६ ॥ प्रविश्य नष्टनिद्रा तां जिनदासीं विलोक्य सः । निवेद्यात्मानमेव किं विनिद्रासीति वक्ष्यति ॥ ५७ ॥ सूनुर्ममैक एवायं, प्रातरेव तपोवन । अहंगमीति संकल्पस्थितस्तेनास्मि शोकिनी ॥ ५८ ॥ धीमानसि यदीम त्वं धारयस्याग्रहात्ततः । उपायैरद्य ते सर्वं धन दास्याम्यभीप्सित ॥५९॥ इति वक्रीभवेत्सापि सोऽपि सप्रतिपद्य तत् । एव संपन्नभोगोपि किलैष विरिंसति ॥ ६० ॥ धिग्मां धनमिहाहर्तुं प्रविष्टमिति निंदन । स्वस्य कुर्वन्नितांतकः संगप्यातु तदंतिक ॥ ६१ ॥ कन्यकानां कुमारं त तासां साध्यमधिष्ठितं । विजृंभमाणसद्बुद्धिं पजरस्थमिवांडज ॥ ६२ ॥ जाललग्नणपोत वा मग्न वा कुजराधिप । अपारकर्दमे मग्न सिंह वा लोहपजरे ॥ ६३ ॥ निरुद्धं लब्धनिर्वेग प्रत्यासन्नमवक्षय । विद्युच्चोर समीक्ष्यैन वक्ष्योष्ट्रास्यानक सुधी ॥ ६४ ॥ कुमार ? श्रूयता कश्चिदेकदा स्वेच्छया चरन् । गिरे क्रमेलकः स्वादु तृणं ग्रं

क्रोधित होगा इसलिये यह पांचसौ योधाओंको साथ लेकर विद्युच्चोर नाम रखकर इसी नगरमें आवेगा और उसी अर्हद्दासके घर आवेगा वह अदृश्य होकर किवाड खोलना आदि चौरशास्त्रके उपदेशके अनुसार सब क्रियाओंका जानकार होगा और मंत्र तंत्रका भी अच्छा जानकार होगा। वह अर्हद्दासके घर धन चुरानेकेलिये आवेगा और जिनदासीको जगती हुई देखकर अपना सब पता बतलावेगा तथा जिनदासीसे जगनेका कारण पूछेगा ॥ ५१–५७ ॥ इसके उत्तरमें जिनदासी उत्तर देगी कि "मेरे एक ही पुत्र है वह भी संकल्पकर बैठा है कि मैं सवेरे ही दीक्षा लेनेकेलिये तपोवनमें जाऊंगा इसीलिये मुझे शोक हो रहा है ॥ ५८ ॥ यदि तू बुद्धिमान है और किसी भी उपायसे इसे घर रक्खेगा दीक्षा न लेने देगा तो मैं तेरी इच्छानुसार सब धन देदूंगी ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहकर वह जिनदासी फिर छिप जायगी। तदनंतर वह विद्युच्चोर विचार करेगा कि देखो इसके भोगोपभोगकी सब सामग्री उपस्थित है तो भी यह उसे छोडना चाहता है मुझे धिक्कार है जो मैं दूसरेका धन चुरानेकेलिये यहां आया हूं इसप्रकार वह अपनी निंदा करता हुआ निःशंक होकर जंबूकुमारके समीप जावेगा उससमय उस कुमारको वे सब कन्याएं प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगी परंतु उन सबके बीचमें बैठा हुआ वह सद्बुद्धि कुमार ऐसा जान पडेगा मानों किसी पिंजरेमें बंद हुआ पक्षी ही हो अथवा जालमें फंसा हुआ हिरणका बच्चा ही हो अथवा अपार कीचडमें फंसा हुआ श्रेष्ठ हाथी ही हो अथवा लोहेके पिंजडेमें बंद हुआ सिंह ही हो। संसारका नाश करना जिसके अत्यंत निकट है ऐसा वह उससमय वैराग्यसे भरपूर होगा। उसको देखकर वह बुद्धिमान् विद्युच्चोर उससे एक ऊंटकी कथा कहेगा ॥ ६०–६४ ॥ कि हे कुमार सुनो एकसमय किसी पर्वतपर एक ऊंट

गात्प्रदेशतः ॥ ६५ ॥ पतन्मधुरसोन्मिश्रमास्वाद्य सकृदुत्सुक. । तादृगेवाहरिष्यामीत्येतत्पातामिवाञ्छया ॥६६॥ तृणांतरोपयोगातिपरान्मुखतया स्थितः । मृतस्तथैव त्वं चैतान भोगान् भोक्तुमुपस्थितान् ॥ ६७ ॥ अनिच्छन् स्वर्गभोगार्थी भविता रहितो धिया । इत्यैकागारिकप्रोक्त तदाकार्ण्य वणिग्वरः ।६८। प्रतिवक्ता स तं चोरं स्पष्टदृष्टांतपूर्वकं । नरः कश्चिन्महादाहज्वरेण परिपीडित ॥ ६९ ॥ नदीसरस्तडागादिपयः पीत्वा मुहुर्मुहु । तथाप्यगततृष्ण किं तृणाग्रस्थांबुबिंदुना ॥ ७० ॥ तृप्तिं प्राप्नोत्यसौ वायं जीवो दिव्यसुखं चिरं । भुक्त्वाप्यतृप्तः स्वप्नेपि गजकर्णास्थिरात्मना ॥ ७१ ॥ सुखेनास्वादुनानेन कथ तृप्तिमवाप्नुयात् । इति तद्वाचमाकर्ण्य चोरोनुव्य हरिष्यति ॥ ७२ ॥ वने वनचरश्चंड कृत्वाधारं महाद्रुमं । गंडांताकृष्टकोदंडकांडेनाखंड्य वारण ॥ ७३ ॥ महीरुट्कोटरस्थेन संदष्टः फणिना स्वयं । स चाहिं च गजं चाज्ञो गत्यंतरमजीगमत् ॥ ७४ ॥ अथ सर्वान् मृतान् दृष्ट्वा तान् क्रोष्टिकोतिलुब्धक । तावदेतानाद् नाद्मि स्वायु मौर्वीद्वयाग्रज ॥ ७५ ॥ स्वादामीति कृतोद्योगस्तच्छेदमकरोद्विषी । सद्यश्चापाग्रनिर्भिन्नगल सोपि वृथा मृतः ॥ ७६ ॥ ततोतिगृ-

अपनी इच्छानुसार चर रहा था जिस घासको वह चर रहा था उसपर ऊंची जगहसे मक्खियोंके छत्तेसे शहत आकर गिर गया था और उसी मीठी घासको वह खा रहा था। उसे खाकर फिर एकवार उसकी यह इच्छा हुई कि जब शहत गिरेगा तब मैं वैसी ही मीठी घास खाऊंगा यही सोचकर शहत गिरनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उस मीठी घासकी लालसामें उसने और घास भी नहीं खाई। परन्तु शहत गिरा नहीं इसलिये वह वहीं बैठा बैठा भूखों मर गया। इसी प्रकार तू भी इन उपस्थित भोगोंको छोडकर स्वर्गके भोगोंकी इच्छा करना चाहता है सो तू भी ऊंटके समान बुद्धि रहित है। उस चोरकी यह बात सुनकर वह श्रेष्ठ वैश्य जंबूकुमार भी उस चोरको दृष्टान्त देकर इस प्रकार उसका उत्तर देगा कि एक मनुष्य महादाह करनेवाले ज्वरसे पीडित था उसने नदी, सरोवर तालाव आदिका जल बार बार पिया था तथापि उसकी प्यास मिटी नहीं थी तो क्या उस मनुष्यकी प्यास तृणाके ऊपर लगी हुई एक पानीकी बूंदसे मिट जायगी ? वह उस एक बूंदसे तृप्त हो जायगा ? उसी प्रकार इस जीवने भी बहुत दिन तक दिव्य सुखोंका अनुभव किया है तथापि तृप्त नहीं हुआ फिर क्या जिसमें कुछ स्वाद नहीं है जो हाथीके कानोंके समान चंचल है ऐसे इस सुखसे स्वप्नमें यह जीव कैसे तृप्त हो जायगा। जंबूकुमारकी यह बात सुनकर वह फिर कहने लगा ॥ ६५–७२ ॥ किसी वनमें एक चंड भील था उसने किसी वृक्षपर बैठकर और कानतक धनुष खींचकर एक हाथीको मार गिराया इतनेमेंही उस वृक्षके कोटरमेंसे निकल कर एक सांपने उसे काटखाया काटतेही उस मूर्ख भीलने उस सांपको मार दिया ॥ ७३–७४ ॥ उन सबको मरा हुआ देखकर एक लोभी गीदड आया उसने सोचा कि मैं पहिले इनको न खाकर इस धनुष चापको

श्रुतात्याज्येत्यस्योक्तिविरतौ सुधीः । कुमारः स्मृतिमाधार्य सूक्तं प्रत्यभ्यधास्यति ॥ ७७ ॥ चतुर्मार्गसमायोगदेशमध्ये महाद्युतिं । रत्नराशिं समभ्येत्य सुग्रहं पथिको विधीः ॥ ७८ ॥ तदानादाय केनापि हेतुना गतवान् पुन । समादित्सुः समागत्य तद्देशं किं लभेत सः ॥ ७९ ॥ तथा दुष्प्रापमालोक्य गुणमाणिक्यसंचय । अस्वीकुर्वन् कथं पश्चात्प्राप्नुयाद्भववारिधौ ॥ ८० ॥ तदुदीरितमेतस्य कृत्वा चित्ते परस्वहृत् । वदिष्यति तदाख्यानमन्यदन्यायसूचन ॥ ८१॥ शृगाल कश्चिदास्यस्थं मांसपिंड विसृष्टवान् । प्रक्रीडमानमीनादनेच्छुर्निपतितोंभसि ॥ ८२ ॥ तद्वेगवत्प्रवाहेण प्रेर्यमाणोगमन्मृतिं । ततोमीनोपि दीर्घायुर्जलमध्ये स्थित सुख ॥ ८३ ॥ एवं शृगालवल्लुब्धो मुग्धोन्योपि विनश्यति । इति तस्करमुख्योक्तिमाकर्ण्यानाकुलात्मक ॥ ८४ ॥ प्रत्यासन्नविनेयलाद्वच प्रतिभणिष्यति । निद्रालुको वणिकश्चिन्निद्रासुखविमोहितः ॥ ८५ ॥ सुप्तः परार्घ्यमाणिक्यगर्भकस्थपुटे निजे । चौरैरपहृते तेन दु खेनामृत दुर्मति ॥ ८६ ॥

खाऊं और फिर इनको खाऊंगा इस प्रकार सोचकर वह मूर्ख उस चापको खानेका उद्योग करने लगा और उस चापको तोडने लगा उस चापके टूटते ही उसका गला भिद गया और वह व्यर्थही मर गया इसलिये अतिशय लोभ करना सर्वथा छोडदेना चाहिये इसप्रकार उस चोरके कह चुकनेपर वह बुद्धिमान कुमार विचारकर फिर अच्छी बात कहेगा॥७५–७७॥ कि एक कोई मूर्ख पथिक अपनी महादेदीप्यमान ग्रहण करने योग्य उत्तम रत्न राशिको चौरस्ते पर छोडकर अपने घर चलागया था और फिर लेनेके लिये आया था तो क्या फिर उसे वह रत्नराशि मिल सकती है? कभी नहीं॥७८–७९॥ इसी प्रकार इस संसाररूपी महासागरमें अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य ऐसा यह गुणरूपी मणियोंका समूह है इसे स्वीकार नहीं करता उसे क्या फिर कभी मिल सकता है? कभी नहीं' ॥८०॥ उस कुमारकी यह बात समझकर वह चोर अन्यायको सूचित करनेवाली एक कथा और कहेगा ॥ ८१ ॥ कि एक गीदड मांसका टुकडा लिये हुए पानीमें जा रहा था उसने उस पानीमें क्रीडा करती हुई मछलीको खानेकी इच्छासे वह मांस छोड दिया और मछलीके पकडने की इच्छासे बहते पानीकी ओर दौडा परन्तु पानीका वहाव तेज होनेसे वह पानीमें वह गया और मरगया। उस मछलीकी आयु अधिक थी इसलिये वह भी उस पानीमें सुखसे रहने लगी ॥ ८२–८३ ॥ इसी प्रकार जो मूर्ख गीदडके समान अधिक लोभी होता है वह अवश्यही नष्ट होता है इस प्रकार उस चोरकी कही हुई बातको सुनकर आसन्न भव्य होनेसे वह कुमार भी निराकुल होकर कहेगा कि किसी वैश्यको नींद लगी थी इसलिये नींदसे मोहित होकर वह सुखसे उसके सो जानेपर जो उसके घरमें बहुमूल्य रत्न थे उन्हें चोर आकर ले गये परन्तु जगनेपर सोगया। और चोरीकी बात जानने पर वह मूर्ख वैश्य उस दुःखसे मर गया ॥ ८४–८६ ॥ इसीप्रकार थोडेसे विषयोंके

विषयाल्पसुखेनैव संसक्तो रोगचौरकै । ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नेष्वपहृतेष्वय ॥ ८७ ॥ जन्मी नश्यति निर्मूलमित्यत स गदिष्यति । स्वमातुलानीदुर्वाक्यकोपात्काचिन्मुमूर्षुका ॥ ८८ ॥ वृक्षमूले स्थितां वीक्ष्य सर्वाभरणभूषितां । अज्ञातबंधनोपायामाकुलाकुलचेतसं ॥ ८९ ॥ सुवर्णदारको नाम पापी मार्दंगिकस्तदा । तदाभरणमादित्सुर्मृदंग स्व तरोरध ॥ ९० ॥ स्थापयित्वा समारुह्य स्वगलोद्बद्धरज्जुक । उद्बंधनक्रम तस्यां दर्शयन्मृत्युचोदित ॥ ९१ ॥ मृदंगे पतिते भूमौ सद्य: केनापि हेतुना । रज्जुपाशाविलीभूतकंठ प्रोद्गतलोचन ॥ ९२॥ प्रापत्प्रेताधिपावास तद्वीक्ष्यासौ मृतेर्भयात् । आयाद्गृहमतस्तद्वल्लोभो हेयो महात्स्वया ॥ ९३ ॥ इत्यस्य सोपि वाग्जालममोढो व्याहरिष्यति । किल धूर्तविट वीक्ष्य ललितागाभिधानक ॥ ९४ ॥ कस्यचित्सा महादेवी जाता मदनविह्वला । तद्विटानयनोपायनिरंतरनियुक्तया ॥ ९५ ॥ तद्धात्र्या गुप्तया नीतः पथिकातप्रदेशिना । सा चैतेन महादेवी रममाणा यथेप्सित ॥ ९६ ॥ अहोभिर्बहुभिर्जाता शुद्धे शुद्धातरक्षिभिः । तन्मुखात्तद्दुराचारे राज्ञापि विदिते सति ॥ ९७ ॥ जारापनयनोपायमाज्ञाप्ताः परिचायका । अवस्करगृहं नी-। सा तं

सुखोंमें आसक्त होकर यह जीव मोहित हो जाता है और रोगरूपी चोर इसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी रत्नोंको चुरा ले जाते हैं तब यह संसारी जीव बिल्कुल नष्ट हो जाता है। इसके उत्तरमें वह चोर फिर कहेगा कि कोई स्त्री सासुके दुर्वचन सुनकर क्रोधित हुई और मरनेकी इच्छासे वृक्षके नीचे जा बैठी वह सब साभूषणोंसे सुशोभित थी परंतु फांसी लगाना जानती नहीं थी इसलिये उसका चित्त बड़ा ही व्याकुल होरहा था। दैव योगसे उसी मार्गसे सुवर्णदारक नामका मृदंग बजानेवाला पापी आनिकला उसने उसकी मरनेकी इच्छा जानली और उसके आभरणोंके लेनेकी इच्छासे उसे फांसीकी क्रिया बताने लगा। उसने मृदंगको तो वृक्षके नीचे रखदिया और उसपर चढकर गलेमें रस्सी लटका ली। इसप्रकार वह फांसीकी क्रिया वतला रहा था कि उसकी मृत्यु समीप आ लगी। किसी कारणसे वह मृदंग बडी शीघ्रतासे पृथ्वीपर लुढकगया और उस रस्सीसे कंठ दबजानेके कारण वह मरगया। मरते समय उसकी दोनों आंखें निकल पडी थीं इसलिये उस भयानक दृश्यको देखकर वह स्त्री मरनेसे डर गई और अपने घर आगई। आप महा पुरुष हैं इसलिये आपको ऐसा लोभ अवश्य छोड देना चाहिये ॥ ८७–९३ ॥ इसप्रकार उस चोरका कहा हुआ वचनोंका जाल कुमारको सहन नहीं होगा और वह उत्तरमें दूसरी कथा कहेगा कि किसी ललितांग नामके धूर्त व्यभिचारीको देखकर किसी राजाकी महारानी कामसे पीडित होगई थी उसने किसी भी उपायसे उसे लानेके लिये गुप्त रीतिसे एक धाय नियुक्त की थी। वह धाय उसपथिकको किसी तरह ले आई और वह महादेवी इच्छानुसार उसके साथ क्रीडा करने लगी ॥ ९४–९६ ॥ कई दिनोंके बाद रणवासकी रक्षा करनेवाले खोजा लोगोंको यह बात मालूम होगई और

तत्राक्षिपत्खलः ॥ ९८ ॥ सुदुर्गंधेन तज्जंतुमिश्र दु:खमवाप्नुवन् । अत्रैव नरकावासमाप्तवान् पापपाकत ॥ ९९ ॥ तद्वदल्पसुखस्याभिलाषिणो नरकादिषु । भवंति दुस्तरापारघोरदुःखानि तेष्वपि ॥ १०० ॥ पुनः कुमार एवंक प्रपञ्च गदिता सत । येन संसार निर्वेगो जायते सहसा स त ॥ १०१ ॥ भ्रम्यन्संसार-कांतारे मृत्युमत्तद्विपेशिना । रुषा जिघांसुना जंतुरनुयातोतिमीलुक ॥ १०२ ॥ पलायमानो मानुष्यभूरुहातर्हितात्मकः । तन्मूले कुलगोत्रादिनानावल्लीस माकुले ॥१०३॥ जन्मकूपे पतितआयुर्वल्लीलग्नशरीरक । सितासितदिनानेकमूषकोच्छिद्यतल्लतः ॥ १०४ ॥ नरकव्यालवक्त्रोरुसर्पसप्तकसन्निधिं । तद्भूये-ष्टार्थसूनोत्थसौख्यक्षौद्ररसोत्सुक ॥ १०५ ॥ तद्ग्रहोत्थपितात्युग्रव्यापद्माक्षिकभक्ष्यक । तत्ससेवां सुखं मत्वा कष्ठ संवापि जीवति ॥ १०६ ॥ विधीर्विष-यसंसक्तो धीमानपि कथं तथा । वर्तेते त्यक्तसगः सन्नकुर्वन्दुर्वह तपः ॥ १०७ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य माता कन्याश्च तस्कर । तनुससारभोगेषु यातारोति

उन्होंने राजासे कह दी । राजाने इस दुराचारकी वात जानकर किसी भी उपायसे उसजारको पकडनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दी । जव सेवक लोग पकडनेके लिये गये तो उस रानीने उस दुष्टको टट्टीमें छिपादिया । वहांकी दुर्गंध और कीडोंसे उसे वहुत दुःख हुआ और पाप कर्मके उदयसे उसी जन्ममें उसे नरकमें रहनेका स्वाद मिल गया ॥ ९७-९९ ॥ इसीप्रकार थोडे सुखकी इच्छा करनेवाले लोग नरकमें पडते हैं और वहांपर अत्यंत असह्य, अपार और घोर दुःखोंको सहते हैं ॥ १०० ॥ इसके वाद भी वह कुमार संसारसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली एक कथा उस चोरसे और कहेगा ॥ १०१ कि एक जीव संसाररूपी बनमें घूम रहा था, एक मदोन्मत्त मृत्युरूपी हाथी क्रोधसे मारनेके लिये उसके पीछे पडा जिसे देखकर डरसे वह भागा और उसके पीछे पीछे वह हाथी दौडा । वह जीव भागता भागता मनुष्यरूपी वृक्षके आ-डमें छिपगया । उसी वृक्षकी जडके नीचे कुल गोत्र आदि अनेक बेलोंसे व्याप्त ऐसा जन्म कूप था उसीमें वह जीव पडगया परंतु आयुरूपी वेल उसके हाथ आगई और वह उसे ही पकडकर लटकता रहा । कृष्णपक्ष और शुक्ल-पक्षरूपी अनेक चूहे उस वेलकी जड काट रहे थे ॥ १०२-१०४ ॥ सातों नरकरूपी सर्प ऊपरकी ओर मुंह फाडे उसके गिरनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । उसी वृक्षपर पुत्रादिक इष्ट पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ सुखरूपी शहदका रस टपक रहा था उसके खानेकी उसे वहुत ही लालसा लग रही थी ॥ १०५ ॥ उस रसके चाटनेसे वे शहदकी मक्खियां उडकर शरीर-से लग गई थी वह जीव उस रसकी बूंदके लिये सेवा करनेको ही सुख मान रहा था । इसीप्रकार संसारके सब ही जीव बडे कष्टसे जीवित रहते हैं ॥ १०६ ॥ जो मूर्ख हैं वे भले ही इसप्रकार विषयोंमें आसक्त हो जाय परंतु जो बुद्धिमान हैं वे इसप्रकार विषयोंमें आसक्त कैसे हो सकते हैं वे तो सब परिग्रहोंका त्याग कर दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए समय व्यतीत

विरागता ॥ १०८ ॥ तदा तप' समाधूय भासमानो दिवाकर । योजयन् प्रियया कोक कुमारमिव दीक्षया ॥ १०९ ॥ करैर्निजै कुमारस्य मनोवास्पृश्य रंजयन् । उद्यमस्तपसी वोद्वा शिखरेद्रेरुदेष्यति ॥११०॥ सर्वसंतापकृत्तीक्ष्णकरः क्रूरोनवस्थित । रविःकुवलयध्वंसी प्रजिता कुनृपोपमां ॥ १११ ॥ नित्योदयो बुधाधीशो विशुद्धाखंडमंडल । पद्माल्हादी प्रवृद्धोष्मा सुराजानं स जेष्यति ॥ ११२ ॥ ज्ञात्वा संसारवमुख्य कुमारस्यास्य बांधवा । तदा कुणिभहाराज: सेनयाष्टादशाभिच ॥ ११३ ॥ सहानावृतदेवेन परिनिष्क्रमण प्रति । अभिषेक करिष्यंति संगता मंगलैर्जनैः ॥ ११४ ॥ तत्कालोचितवेषोसौ शिविका देवनिर्मिता । आरुह्य भूरिभूत्योर्वाविपुलाचलमस्तके ॥ ११५ ॥ मा निविष्ट समभ्येत्य महामुनिनिषेवित । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य यथाविधि ॥११६॥ वर्णत्रयसमुद्भूतैर्विनयैर्बहुभि सम । विद्युच्चोरेण तत्पचशतभृत्यैश्च संयमं ॥ ११७ ॥ सुधर्मगणभृत्पार्श्वे समवित्तो ग्रहीष्यति । कैवल्याद्द्वादशाब्दांते मय्यस्या

करते हैं ॥ १०७ ॥ जंबूकुमारकी यह बात सुनकर उसकी माता वे कन्याएं और वह चोर सब शरीर संसार और भोगोंसे विरक्त होंगे ॥ १०८ ॥ तदनंतर चकवाको चकवीके समान कुमारको दीक्षासे संयोग कराता हुआ अपनी किरणोंसे कुमारके मनको स्पर्शकर प्रसन्न करता हुआ तपश्चरणके लिये श्रेष्ठ उद्यमके समान सब अंधकारको नष्टकर उदयाचल पर्वतकी शिखरपर सूर्य उदय होगा ॥ १०९-११० ॥ उससमय सबको संताप उत्पन्न करनेवाला तीक्ष्ण किरणोंको धारण करता हुआ (राजा पक्षमें तीक्ष्णकर लगाता हुआ) क्रूर, एक जगह न टिकनेवाला और कुवलय अर्थात् कमोदिनियों (राजा पक्षमें पृथ्वीमंडलको) नाश करता हुआ सूर्य अन्यायी राजाकी उपमाको धारण करेगा ॥ १११ ॥ अथवा नित्य उदय होनेवाला बुध नक्षत्रका स्वामी (राजापक्षमें विद्वानोंका स्वामी) विशुद्ध अखंड मंडलको धारण करनेवाला, कमलोंको प्रसन्न करनेवाला और उष्णताको बढानेवाला वह सूर्य किसी अच्छे राजाको भी जितेगा ॥ ११२ ॥ जंबूकुमारको संसारसे विरक्त देखकर उसके सब भाई बंधु लोग तथा अठारह तरहकी सेनाके साथ महाराज कुणिक आवेगा सबके साथ यह अनावृत यक्ष भी आवेगा और ये सब लोग मांगलिक लोगोंके साथ २ दीक्षा लेनेकेलिये जंबूकुमारका अभिषेक करेंगे ॥११३-११४॥ उससमयके योग्य वस्त्राभूषण पहिनकर वह कुमार देवोंके द्वारा बनाई हुई पालकीपर सवार होकर बडी विभूतिके साथ विपुलाचल पर्वतपर आवेगा ॥११५॥ मुझे विराजमान देखकर वह मेरेही समीप आवेगा उस समय अनेक मुनि मेरी सेवा वंदना कर रहे होंगे वह आकर बडी भक्तिसे प्रदक्षिणा देगा और विधि पूर्वक नमस्कार करेगा ॥१६॥ तदन्तर समता परिणामोंको धारण करनेवाला वह जंबूकुमार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके साथ तथा विद्युच्चोर और उसके पांचसौ योद्धाओंके साथ सुधर्माचार्यके समीप दीक्षा धारण करेगा। मुझे केवल ज्ञानके बारह वर्ष बाद नि-

गोतमा गते ॥ ११८ ॥ सुधर्मकेवली जंबूनामा च श्रुतकेवली । भूत्वा पुनस्ततो द्वादशाब्दाते निर्वृतिं गते ॥११९॥ सुधर्मण्यतिम ज्ञान जंबूनाम्नो भविष्यति । तस्य शिष्यो भवो नाम चत्वारिंशत्समा महान् ॥ १२० ॥ इह धर्मोपदेशेन धरित्र्या विहरिष्यति । इत्यवादीत्तदाकर्ण्यस्थितस्तस्मिमनावृतः ॥ १२१ ॥ देवो मदीयवंशस्य माहात्म्यमिदमद्भुत । अन्यत्रादृष्टमित्युच्चैरकृतानदनाटक ॥ १२२ ॥ कस्मादनेन बंधुत्वमस्येतिश्रेणिकोऽभ्यधात् । गौतमं विनयात्सोपि न्यगदत्तदिति स्फुट ॥ १२३ ॥ जंबूनाम्नोऽन्वये पूर्व धर्मप्रियवणिक्पते । गुणदेव्याश्चनामार्हद्दासस्तुगजनिष्ट स ॥ १२४ ॥ धनयौवनदर्पेण शिक्षामगणयत्पितु । निरंकुशो भवत्सप्तव्यसनेषु विधेर्वशात् ॥ १२५ ॥ स दुश्चेष्टितदौर्गत्यात्सजातानुशयो मया । न श्रुता मत्पितु शिक्षेत्यवाप्तशमभावन. ॥ १२६ ॥ किंचित्पुण्यं समावर्ज्य व्यंतरत्वमुपागत । आददे नावृतात्र्योऽत्र तत्र सम्यक्त्वसंपद ॥ १२७ ॥ इति तद्वचश्रुताप्रीतिः गौतमं मगधाधिपः । अन्वयुक्त गतः कस्मातिक पुण्य कृतवानयं ॥ १२८ ॥ विद्युन्मालीभवेतीते प्रभास्यातेप्यनाहना । इत्यनुग्रहबुध्यैव भगवानेवमब्रवीत् ॥ १२९ ॥ अस्मिन् विदेहे पूर्वस्मिन्

र्वाण प्राप्त होगा उस समय सुधर्माचार्यको केवल होगा और जंबूकुमार श्रुतकेवली होंगे । उसके बारह वर्ष बाद सुधर्माचार्यको मोक्ष प्राप्त होगा और जंबूस्वामीको केवलज्ञान होगा । भव नामका एक जंबूस्वामीका शिष्य होगा और उसके साथ चालीस वर्ष तक धर्मोपदेश देते हुए जंबूस्वामी इस पृथ्वीपर विहार करेंगे गौतमस्वामीकी कही हुई इस कथाको सुनकर वहांपर बैठा हुआ अनावृत नामका यक्ष बडा ही प्रसन्न हुआ और मेरे वंशका ऐसा अद्भुत माहात्म्य है जो कि दूसरी जगह कहीं देखनेमें नहीं आता इसप्रकार कहते हुए उसने आनंद नाटक किया ॥ ११७–१२२ ॥ यह देखकर राजा श्रेणिकने बडी विनयसे गौतम गणधरसे पूछा कि हे देव जंबूकुमारके साथ इसका भाईपना (एक वंशपना) कैसा ! इसके उत्तरमें गौतम गणधर कहने लगे ॥ १२३ ॥ जंबूकुमारके वंशमें पहिले एक धर्मप्रिय नामका वैश्य था । उसकी गुणदेवी नामकी स्त्रीसे अर्हद्दास नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १२४ ॥ धन और यौवनके अभिमानसे वह पिताकी शिक्षाको कुछ नहीं गिनता था और कर्मोंके उदयसे निरंकुश होकर सातों व्यसनोंमें आसक्त हो गया था ॥ १२५ ॥ अनेक दुष्ट चेष्टाओंके कारण जब उसकी दुर्गति होने लगी तब उसे पश्चात्ताप हुआ और "मैंने पिताकी शिक्षा नहीं सुनी" यही विचार करते हुए उसका चित्त कुछ शांत हुआ ॥ १२६ ॥ तदनंतर उसने कुछ पुण्यका उपार्जन किया जिससे यह अनावृत नामका व्यंतर देव हुआ है । इसी पर्यायमें इसने सम्यग्दर्शन धारण किया है ॥ २७ ॥ इसप्रकार इन दोनोंमें परस्पर भाईपनेका प्रेम है । इसके बाद श्रेणिकने गौतमगणधरसे फिर पूछा कि हे देव विद्युन्माली भवके पहिले भी इसने कौनसा पुण्य किया था कहांसे यह आया है क्योंकि इसके अंतिम दिन है तब भी इसकी प्रभा कम नहीं हुई है । इसके उत्तरमें भगवान गौतमगण-

वीतशोकाह्वयं पुरं विषये पुष्कलावत्यां महापद्मोस्य पालक ॥ १३० ॥ वनमालास्य देव्यस्या सुतः शिवकुमारक । नवयौवनसंपन्न सवयोभिः स तद्वन ॥ १३१ ॥ विहृत्य पुनरागच्छन्संभ्रमेण समंतत । गंधपुष्पादिमांगल्यद्रव्यसद्वरिवस्यया ॥ १३२ ॥ जनानाव्रजतो दृष्ट्वा किमेतदितिविस्मयात् । तनूज, पृच्छतिस्मासौ बुद्धिसागरमंत्रिणः ॥ १३३ ॥ कुमार शृणु वक्ष्यामि मुनींद्रः श्रुतकेवली । ख्यात सागरदत्ताख्यस्तपसा दीप्तसंज्ञया ॥१३४॥ असौ मासोपवासाते पारणार्थं प्रविष्टवान् । पुरं कामसमुद्राख्यः श्रेष्ठी तस्मै यथाविधि ॥ १३५ ॥ दत्वा विश्राणन भक्त्या प्रापदाश्चर्यपंचक । मुनिं मनोहरोद्यानवासिन त सकौतुकात् ॥ १३६ ॥ सपूज्य वंदितुं यांति पौरा:परमभक्तित । इत्याख्यत्सोपि तच्छ्रुत्वा पुनरप्यनुयुक्त स ॥ १३७ ॥ कथ सागरदत्ताख्या विविधर्द्धीश्चगे श्रुती । प्रापदित्यत्रवीन्मंत्रिसुतोप्यनुयथाश्रुत ॥ १३८ ॥ विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुंडरीकिणी । वज्रदंत पतिस्तस्याश्चक्रेणाक्रांतभूतल ॥ १३९ ॥ देवी यशोधरा तस्य गर्भिणी जातदोहदा । महा विभूत्या गत्वासौ सीतासागरसंगमे ॥ १४० ॥ महाद्वारेण संप्राप्य जलधिं जलजानना । जलकेलीविधौ पु

धर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ १२८–१२९ ॥ इसी जीवूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतशोक नामके नगरमें महापद्म नामका राजा राज्य करता था ॥ १३० ॥ इसकी वनमाला देवीसे शिवकुमार नामका पुत्र हुआ था। यौवन अवस्था आनेपर किसी दिन वहां अपने साथियोंके साथ क्रीडा करनेके लिये वनमें गया था। क्रीडा कर वनसे लौट रहा था कि मार्गमें उसे गंध पुष्प आदि मांगलिक चीजें लेकर चारों ओरसे संभ्रमके साथ आते हुए लोग मिले। उन्हें देखकर उसने वडे आश्चर्यसे बुद्धिसागरके मंत्रीसे पूछा कि यह क्या है ॥ १३१–१३३ ॥ इसके उत्तरमें वह मंत्रीका पुत्र कहने लगा कि हे कुमार मैं कहता हूं सुन दीप्त नामके तपश्चरणसे प्रसिद्ध ऐसे सागरदत्त नामके श्रुतकेवली मुनि हैं १३४ वे एक महीनेका उपवासकर आहारकेलिये नगरमें आये थे। कामसमुद्र नामके शेठने उन्हे विधि पूर्वक वडी भक्तिसे आहार दिया था इसलिये उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई थी। वे ही मुनिराज आहार लेकर मनोहर नामके उद्यानमें विराजमान हुए हैं उनकी पूजा और वंदना करनेकेलिये ये सव नगरनिवासी लोग वडी भक्तिसे और वडे कौतुकसे जारहे है। मंत्रीके पुत्रकी वह वात सुनकर वह राजकुमार फिर कहने लगा ॥ १३५–१३७ ॥ कि इन मुनिराजका नाम सागरदत्त क्यों पडा और इन्हें श्रुतज्ञान और ऋद्धियां क्यों हुई हैं इसके उत्तरमें वह मंत्रीका पुत्र जैसा सुना था वैसा ही कहने लगा ॥ १३८ ॥ कि इसी पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीमें वजदंत चक्रवर्ती चक्ररत्नसे सव पृथ्वीको जीतकर राज्य करता था। जव उसकी यशोधरा देवी गर्भिणी हुई थी तव उसे दोहद हुआ था और उसके अनुसार वडी विभूतिके साथ वह कमलनयनी जहां सीता नदी जाकर मिलती है उसी महाद्वारसे जाकर समुद्रमें क्रीडा करनेकेलिये गई थी।

श्रमलभ्याम्यर्णनिर्वृतिं ॥ १४१ ॥ तस्मात्सागरदत्ताख्यमस्यां कुर्वन्सनामयः । अथयौवनसंप्राप्तौ स कदाचन नाटकं ॥१४२ ॥ सार्द्धं सपरिवारेण पश्यन् हर्म्यतले स्थित । चेटकेनानुकूलाख्यनामधेयेन भाषित ॥ १४३ ॥ कुमार मदाराकाररतिष्ठत्येष पयोधरः । पश्याश्चर्यमतिग्रीत्या प्रोन्मुखोलोचनप्रियं १४४ त निरीक्षितुमंहिष्ट नष्टस्तत्काल एव स । जलदस्तद्विचिंत्यैवं यौवन विभवो वपु ॥ १४५ ॥ अन्यैरन्यच्च विध्वंसि यथार्थं स्तनयित्नुक । इति संसारनिर्वेदयोगभाक् समजायत ॥ १४६ ॥ स्वपित्रा सममन्येद्युः संप्राप्यामृतसागरं । स्थित मनोहरोद्याने धर्मतीर्थस्य नायकं ॥ १४७ ॥ श्रुत्वा धर्मं तदभ्यर्णे निर्णीतसकलस्थिति । संयमं बहुभि सार्द्धं कृतबंधुविसर्जनः ॥ १४८ ॥ प्रतिगृह्य मनःपर्ययादि प्राप्यर्द्धिसपद । देशान् विहृत्य सद्धर्मदेशोनेह समागतः १४९ इतितच्छ्रवणात्सद्यः प्रीतचेता स्वयं च स । गत्वा मुनीश्वर स्तुत्वा पीत्वा धर्मामृत तत. ॥ १५० ॥ भवंतं भगवन् 'दृष्ट्वा स्नेहो मे समभून्महान्। हेतुना केन वक्तव्यमित्यपृच्छन् मचाब्रवीत् ॥ १५१ ॥ द्वीपेस्मिन् भरतेक्षेत्रे विषये मगधाह्वये । वृद्धग्रामे सुतौ जातौ रेवत्या वरजन्मन ॥ १५२ ॥ ज्येष्ठोत्र राष्ट्-

वहींपर जलक्रीडा करते समय ही उसके शीघ्र ही मोक्ष जानेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ था उसके कुटुंबी लोगोंने उसका सागरदत्त नाम रक्खा था अनंतर—यौवन अवस्था प्राप्त होनेपर किसी एक दिन वह सागरदत्त अपने परिवारके साथ राजभवनकी ऊपरकी गच्चीपर बैठा हुआ नाटक देख रहा था, उससमय अनुकूल नामके सेवकने कहा कि हे कुमार देखो यह वादल कैसा मंदराचल पर्वतके आकारका वना हुआ है। इस आश्चर्यको सुनकर वह कुमार भी बडे प्रेमसे ऊपरकी ओर देखने लगा परंतु नेत्रोंको सुंदर लगनेवाला वह वादल उसी समय नष्ट हो गया। उसके नष्ट होते ही वह विचार करने लगा कि जिसप्रकार यह वादल वायुसे नष्ट हो गया उसीप्रकार यह यौवन शरीर और विभूति सब नष्ट होनेवाली है। परिवर्तनशील संसारमें एकसे दूसरेका नाश होना अवश्यंभावी है इसप्रकार विचारकर वह संसारसे विरक्त हुआ ॥ १४२—१४६ ॥ दूसरे दिन ही वह पिताके साथ मनोहर नामके उद्यानमें विराजमान ऐसे अमृतसागर नामके धर्मतीर्थके नायक अर्थात् तीर्थंकरके समीप पहुंचा। वहांपर जाकर उनसे धर्मका स्वरूप सुना सब पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय किया और अनेक लोगोंके साथ भाई बंधुओंका त्यागकर दीक्षा धारण करली १४७—१४८ तदनंतर मनःपर्यय आदि अनेक ऋद्धियोंकी संपदाको पाकर धर्मोपदेश देते हुए सब देशोंमें विहारकर वे ही सागरदत्त मुनिराज यहां पधारे हैं ॥ १४९ ॥ मंत्रीके पुत्रकी यह वात सुनकर उस राजकुमारके चित्तमें मुनिराजके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ वह स्वयं उनके समीप पहुंचा उनकी स्तुतिकी, धर्मामृतका पान किया और फिर पूछा कि हे भगवान आपको देखकर मुझे भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है इसका क्या कारण है आप कृपाकर कहिये इसके उत्तर में मुनिराज कहने लगे कि

कूटस्य भगदत्तस्तत परः । भवदेवस्तयोर्ज्यायान् संयम प्रत्यपद्यत ॥ १५३ ॥ सुस्थिताख्यगुरुं प्राप्य तेनामा विनयान्वित । नानादेशान्विहृत्यायात्स्वजन्मग्राममेव सः ॥ १५४ ॥ तदा तद्बांधवा सर्वे समागत्य सर्संमदा । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य सपूज्यानंतुमुद्यता ॥ १५५ ॥ ग्रामे दुर्मषणो नाम तस्मिन्नेव गृहाधिप । तस्य नागवसुर्भार्या नागश्रीरनयो सुता ॥ १५६ ॥ ताभ्या सा भवदेवाय प्रादायि विधिपूर्वक । अग्रजागमन श्रुत्वा सद्यः सजातसमदः १५७ भवदेवोप्युपागत्य भगदत्तमुनीश्वरं । विनयात्स प्रणम्यास्त तत्कृताशासनार्द्रितः ॥१५८॥ आख्याय धर्मयाथात्म्यं वैरूप्यमपि ससृतेः । गृहीतपाणिरेकाते सं यमो गृह्यता त्वया ॥ १५९ ॥ इत्याह त मुनि सोपि प्रत्यवादीदिद वच । नागश्री ोक्षण कृत्वा कर्तास्मि भवतोदित ॥ १६० ॥ इति तन्मुनिराकर्ण्य जगाद जनने जनः । भार्यादिपाशसल्म करोत्यात्महित कथ ॥ १६१ ॥ त्यज तन्मोहमित्येवं भवदेवोऽप्यनुत्तर. । मतिं ज्येष्ठानुरोधेन व्यधाद्दीक्षाविधौ तदा

इसी जंबूद्वीपके भारतक्षेत्रमें मगधदेशके वर्द्धमान गांवमें एक राष्ट्रकूट नामका वैश्य रहता था उसकी रेवती नामकी स्त्रीसे दो पुत्र हुए थे एक भगदत्त और दूसरा भवदेव। उनमेंसे वडे पुत्र भगदत्तने सुस्थित नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण करली थी। तदनंतर उन गुरुके साथ वडी विनयसे अनेक देशोमें विहारकर वह अपनी जन्मभूमिमें आया था ॥ १४९–१५४ ॥ उससमय उसके सब भाई बंधु लोग वडे हर्षसे उसके समीप आये थे और मुनिराजकी प्रदक्षिणा देकर पूजाकर नमस्कार करनेको तैयार हुए थे ॥ १५५ ॥ उसीगांवमें एक दुर्मषण नामका सद्गृहस्थ था उसके नागवसु नामकी स्त्री थी और उससे उत्पन्न हुई नागश्री नामकी कन्या थी ॥ १५६ ॥ उन दोनों माता पिताने वह नागश्री कन्या विधि पूर्वक भवदेवको व्याह दी थी। अपने वडे भाई मुनिराज भगदत्तका आना सुनकर भवदेव भी वडी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही उनके समीप पहुंचा। वडी विनयसे उन्हें नमस्कार किया और मुनिराजके उपदेशसे उसका चित्त वहुत ही आर्द्र हुआ ॥ १५७–१५८ ॥ तदनंतर भगदत्त मुनिराजने अपने छोटे भाई भवदेवका हाथ पकडकर और एकांतमें ले जाकर संसारसे विरक्तता उत्पन्न करनेवाला धर्मके यथार्थ स्वरूपका उपदेश दिया और कहा कि अब तू संयम धारण करले। उसके उत्तरमें भमदेवने कहा कि मैं घर जाकर नागश्रीसे पूंछ आऊं तव फिर आपका कहना कर लूंगा ॥ १५९–१६० ॥ भवदेवकी यह वात सुनकर मुनिराज कहने लगे कि इस संसारमे स्त्री आदिके जालमें फंसा हुआ यह जीव अपना कल्याण कैसे कर सकता है ? ॥ १६१॥ इसलिये तू अपना मोह छोड दे। इसप्रकार समझानेपर भवदेवने कुछ उत्तर नहीं दिया और वडे भाईके अनुरोधसे दीक्षा लेनेमें अपना चित्त लगाया ॥ १६२॥ तदन्तर वे भगदत्तमुनि भवदेवको अपने गुरुके समीप लेगये और संसारको

॥ १६२ ॥ नीला स्वगुरुसामीप्यं भगदत्तो भवच्छिदे । दीक्षामग्राहयन्मौक्षीं सतां सोदर्यमीदृश ॥१६३॥ स द्रव्यसंयमी भूत्वा विभीर्द्वादशवत्सरान् । विहृत्य गुरुभिः सार्द्धमन्येद्युरसहायकः ॥ १६४ ॥ वृद्धग्राम निजं गत्वा सुव्रतागणिनीमभि । समीक्ष्यास्मिन् किमस्त्यम्ब नागश्रीर्नाम काचन ॥ १६५ ॥ इति संप्रश्नयामास सा तस्येंगितवेदिनी । नाहं वेद्मि मुने सम्यगुदंत तन्निबंधनं ॥ १६६ ॥ इत्यौदासीन्यमापन्ना गुणवत्यार्यिकां प्रति । संयमे त स्थिरीकर्तुमर्थाख्यानकमब्रवीत् ॥ १६७ ॥ वैश्य सर्वसमृद्धाख्यस्तद्दासीतनयः शुचि । दारुकाख्य समात्रासच्छ्रेष्ठ उच्छिष्टाशित त्वया ॥ १६८ ॥ भोक्तव्यमिति निर्बंधाद्भोजित स जुगुप्सया । वांतवान् कसपात्रेण तत्तन्मात्राहित पुनः ॥ १६९ ॥ बुभुक्षुर्मातरं भोक्तुं प्रार्थयामास दारुकः । तथापि कसपात्रस्य पुरस्तादुपढौकितं ॥ १७० ॥ बुभुक्षापीडितोप्येष नाग्रहीद्वातमात्मनः । सोपि चेत्तादृशः साधु कथ सत्कमसीप्सति ॥ १७१ ॥ अर्थाख्यानमिदं चैकं शृणु दुःखाशय

नाश करनेके लिये मोक्ष देनेवाली दीक्षा ग्रहण करा दी सो ठीक है क्योंकि सज्जनोंका भाईपना ऐसा ही होता है ॥१६३॥ उस मूर्खने द्रव्यसंयम धारणकर बारह वर्षतक गुरुके साथ विहार किया और फिर किसी एक दिन वह अकेला ही अपने वर्द्धमान गांवमें आया उसने एक सुव्रता नामकी गणिनीके समीप जाकर पूछा कि हे माता इस गांवमें कोई नागश्री नामकी स्त्री रहती है ? । सुव्रता गणिनीने उस मुनिके हृदयकी बात सुनकर कहा कि हे मुने ! उसकी बात मैं अच्छी तरह नहीं जानती । इस तरह कहकर और उदासीनता धारणकर उस गणिनीने उस मुनिको संयममें स्थिर करनेके लिये एक गुणवती नामकी अर्जिकासे कथा कहना प्रारम्भ किया ॥१६४–१६६॥ वह कहने लगी एक सर्वसमृद्ध नामका वैश्य था उसके शुद्ध हृदयवाला दारुक नामका दासीपुत्र था । किसी एकदिन उसकी माताने उससे कहा कि हमारे शेठका झूठा भोजन तू खायाकर इस तरह कहकर उसने जबर्दस्ती झूठा भोजन उसे खिला दिया परन्तु ग्लानि आनेसे उस पुत्रने वह सब वमन कर दिया । उसकी माताने वह सब वमन एक कांसेकी थालीमें ले लिया और जब फिर उस दारुकको भूख लगी तथा मातासे भोजन मांगा तब उस माताने वही कांसेकी थालीमें रक्खा हुआ उसका वमन उसके सामने रख दिया ॥१६८–१७०॥ यद्यपि उस दारुकको बहुत भूख लगी थी तथापि उसने वह अपना वमन किया हुआ नहीं खाया । जब उस दासी पुत्रने ही अपना वमन किया हुआ भोजन बहुत भूख लगने पर भी नहीं खाया तब साधु होकर भी अपनी छोड़ी हुई चीजको किस तरह चाहते हैं ? ॥१७१॥ इसके सिवाय भी मैं एक कथा और कहती हूं तू चित्तको स्थिर रखकर सुन । एक नरपाल नामका राजा था उसने बड़े कौतुकसे एक कुत्ता पाला था । मीठे भोजन देकर उसे पाला था उसे सब तरहके सोनेके आभूषण पहिनाये थे, वह मूर्ख राजा उसे पालकीमें बिठाकर सदा बनोंमें

स्विरं । नरेशो नरपालाख्य यानमेक सकौतुक ॥ १७२ ॥ शिष्टशनेन सपोष्य स्वर्णाभरणभूषित । सदा वनविहृत्याद्रिगतौ कनककल्पितां ॥१७३॥ आरोप्य शिबिकामेवं मदबुद्धिरपालयत् । कदाचिच्छिविकारूढो गच्छन्नं लेयकाधम ॥ १७४ ॥ विष्ठामालोक्य बालस्य लिप्सुरापततिस्म स । तद्दृष्ट्वापाकरोद्भूपो लकुटीताडनेन स ॥ १७५ ॥ तद्वन्मुनिश्च सर्वेषां पूजनीयः पुरा पुन । त्यक्तामिषाभ्यच्छया भूयः संप्राप्नोति पराभव ॥ १७६ ॥ इदमन्यत्कथितकश्चित्पथिक-स्त्वद्वनांतरे । सुगंधिफलपुष्पादिसेवयायात् सुखं सत ॥ १७७ ॥ गत्वा विहाय सन्मार्गं महागहनसंकटे । दृष्ट्वा क्षुधितमत्युग्रं सचमूरं जिघांसुकं ॥ १७८ ॥ भीत्वा धावंस्तदैकस्मिन् भीमे कूपेपतत्तमीः । तत्र श्लीतादिभिः पापाद् पत्रितयसभवे ॥ १७९ ॥ वाग्दृष्टिश्रुतिगत्यादिहीनं सर्पादिबाधन । तं तन्निर्गमनोपायमजानत यदृच्छया ॥ १८० ॥ कश्चिद्भिषग्वरो वीक्ष्य दययार्द्रीकृताशय । निर्गमय्य तत' केनाप्युपायेन महादरात् ॥ १८१ ॥ मन्त्रौषधिप्रयोगेण कृतपादप्रसारण । सूक्ष्मरूपसमालोकनोन्मीलितविलोचन ॥ १८२ ॥ स्पष्टाकर्णनविज्ञातखशक्तिश्रवणद्वयं । व्यक्तवाक्प्रसरोपेतरसन च व्यधादमु ॥ १८३ ॥ स स-

क्रीडा करनेके लिये ले जाता था। किसी एक दिन वह नीच कुत्ता पालकीमें बैठा हुआ जा रहा था कि एक बालककी विष्ठा उसे दिख ई पडी और उसे चाटनेके लिये वह तुरन्त ही कूद पडा। यह देखकर उस राजाने भी लकडियोंकी मार उसे दूर भगा दिया ॥१७२–१७५॥ इसी प्रकार जिन मुनियोंकी पहिले सब लोग पूजा करते हैं यदि वेही फिर त्याग किये हुए पदार्थोंकी इच्छा करने लगें तो उनका भी संसारमें तिरस्कार ही होता है ॥१७६॥ इस कथाके वाद एक कथा और कहती हूं–किसी बनमें कोई पथिक सुगन्धित फल पुष्प लेनेके लिये सुखसे जा रहा था परन्तु वह अच्छा मार्ग छोडकर बडे संकीर्ण और गहन बनमें जा पडा। वहापर उसने एक भूखा, बहुत बडा और मारनेके लिये अपनी ओर आता हुआ सिंह देखा ॥१७७–१७८॥ उसके डरसे डरकर दौडता हुआ वह भयभीत पथिक एक भयानक कूपमें पडगया। पाप कर्मके उदयसे वात पित्त कफ आदि तीनों दोष उत्पन्न हुए और वह वचन, दृष्टि, कान, गति इन सबसें हीन होगया। इसके सिवाय भी सांप आदिकी वाधा उसे अलग थी। सब इंद्रियां बन्द हो जानेसे वह वहांसे निकलनेका उपाय भी नहीं जानता था। दैवयोगसे इच्छानुसार चलकर एक वैद्य भी वहां जा पहुंचा उस पथिकको देखकर उसका हृदय दयासे भींग गया और किसी भी उपायसे उसने उसे बडे आदरसे बाहर निकाला ॥१७९-१८१॥ उस वैद्यने मंत्र और औषधियोंके प्रयोगसे उसके पैर भी सीधे कर दिये और सूक्ष्मरूपको देखनेयोग्य नेत्र भी खोल दिये ॥१८२॥ उसके कानोंमें भी स्पष्ट सुननेयोग्य शक्ति उत्पन्न करदी और उसकी जीभमें भी व्यक्त वाक्योंके कहनेकी शक्ति उत्पन्न कर दी ॥१८३॥ इसके बाद उसे मार्ग दिखलाकर सर्वरमणीय नामके नगरमें पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि उदार हृदयवाले मनुष्य

वैरमणीयाख्यं पुरं तं मार्गदर्शनात् । प्रख्यापयन्त कस्योपकुर्वंति विमलाशमा ॥ १८४ ॥ पुन स विषयासक्तमतिः पथिककुमीतिः । प्रकटीकृतदिग्भागमोहः प्राक्तनकूपकं ॥ १८५ ॥ संप्राप्य पतितस्तस्मिंस्तथा कांचन सद्गतौ । मिथ्यात्वादिकपंचोग्रवाधिर्यादीन्युपागतान् ॥ १८६ ॥ जन्मकूपे क्षुधादाद्यार्तान्सं- वीक्ष्य सन्मतिः । गुरुवैद्यो दयालुत्वाद्धर्मोद्ध्योपायपंडितः ॥ १८७ ॥ निर्गमय्य ततो जैनभाषौषधिनिषेवनात् । सम्यक्त्वनेत्रमुन्मील्य सम्यग्ज्ञानश्रुतिद्वयं ॥ १८८ ॥ समुद्घट्य सद्वृत्तपादौ कृत्वा प्रसारितौ । व्यक्तां दयामयीं जिह्वा विधाय विधिपूर्वक ॥ १८९ ॥ पंचप्रकारस्वाध्यायवचनान्यभिधाप्य तान् । सुधीरागमयन्मार्गं साधुः स्वर्गापवर्गयोः ॥ १९० ॥ निजप्रपोदयादीर्घसंस रास्तत्र केचन । सुगंधितंधुरोद्भिन्नचंपकाभ्यासवर्तिन ॥१९१॥ तत्सौरभाव- बोधावमुक्ताः षट्चरणा यथा । पार्श्वस्थाख्या सुदर्शनचारित्रोपांतवर्तनात् ॥ १९२ ॥ कषायविषयारंभलौकिकाज्ञानवेदकैः । जिह्वाषड्रसंवद्धाः कुशी- लाख्या दुराशयाः ॥ १९३ ॥ संसक्ताख्या निषिद्धेषु द्रव्यभावेषु लोलुपाः । अवसानाख्या हीयमानज्ञानादिकत्वतः ॥ १९४ ॥ समाचारबहिर्भूता मृगचार्थ-

किसका उपकार नहीं करते हैं अर्थात् सबका उपकार करते ही हैं ॥ १८४ ॥ इसके बाद उस मूर्ख पथिककी बुद्धि फिर विषयोंमें आसक्त होगई और दिग्भ्रम प्रगट होजानेके कारण वह फिर उसी कूएके समीप जाकर उसीमें जापडा। इसी प्रकार ये जीव भी इस संसारमें मिथ्यात्व आदि आस्रवके कारण रूप पांचो वधिर आदि महारोगोंको प्राप्त होरहे हैं और जन्मरूपी कूएमें पडकर भूख प्यास आदिके दुःखोंसे महादुखी होरहे हैं उन्हें देखकर धर्मोपदेश देनेके उपायोंमें अत्यन्त चतुर और श्रेष्ठ बुद्धिको धारण करनेवाले गुरुरूपी वैद्य दयालु होनेके कारण उन्हें निकालते हैं और फिर जैनवचनरूपी औषधियोंका सेवन कराकर सम्यग्दर्शनरूपी नेत्रोंको खोल देते हैं, सम्यग्ज्ञानरूपी कानोंको साफ प्रगट कर देते हैं, सम्यक् चारित्ररूपी दोनों पैर फैलाकर सीधा कर देते हैं और जीभको विधिपूर्वक व्यक्त दयामयी बना देते हैं ॥१८५–१८९॥ वे बुद्धिमान साधु पांच प्रकारके स्वध्यायरूपी वचन कहकर उन्हें स्वर्ग और मोक्षके मार्गपर लगा देते हैं ॥ १९० ॥ उनमें भी बहुतसे लोग पापकर्मके उदयसे दीर्घसंसारी होते हैं । जिस प्रकार भ्रमरको सुगंधित और मिष्ट गन्धवाले चम्पकके सपीप रहते हुए भी उसकी सुगन्धताका ज्ञान नहीं होता इसी प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके समीप रहते हुए भी जिन्हें रत्नत्रयका ज्ञान नहीं होता वे पार्श्वस्थ कहलाते हैं ॥ १९१–१९२ ॥ जो कषाय, विषय, आरंभ लौकिक अज्ञान आदिके वश होकर जिह्वा इंद्रियके छहों रसोंमें आसक्त हो रहते हैं वे दुष्ट कुशील कहलाते हैं ॥ १९८ ॥ जो निषिद्ध वा त्याग करने योग्य द्रव्य भावोंमें लोलुपी रहते हैं वे संसक्त कहलाते हैं । जिनके ज्ञान चारित्र आदि घटते जाते हैं वे अवसान कहे जाते हैं और जो सदाचार रहित स्वेच्छाचारी हैं वे मृगचारी कहलाते हैं । ये सब लोग महामोहका त्याग नहीं करते

मिधानका । महामोहानिवृत्याजवंजवागाधकूपके ॥ १९५ ॥ पततिस्म पुनश्चेति भववेवोपि तच्छ्रुते । संप्राप्तशांतभावोभूद् ज्ञात्वा तस्यार्यिकाग्रणीः १९६ नागश्रियं च दौर्गत्यभावोत्पादितदु स्थितिं । अनाय्यादर्शयत्सोपि तां दृष्ट्वा संसृतिस्थितिं ॥ १९७ ॥ स्मृत्वा धिगति निंदित्वा गृहीत्वा संयमं पुन । आत्राग्रजायुषः प्रांते क्रमात्स्वाराधना श्रित. ॥ १९८ ॥ मृत्वा म हेंद्रकल्पेभूद्वलभद्रविमानके । सामानिकसुर सप्तसागरोपमजीवित: ॥ १९९ ॥ ज्यायानहम जातस्त्वं कनिष्ठोमूस्ततश्च्युत: । इति सोपि मुनिप्रोक्तश्रवणेन विरक्तवान् ॥ २०० ॥ दीक्षा गृहीतुमुद्युक्तो मात्रा पित्रा च वारित । प्रविश्य नगरं जातसविद्प्रासुकाशन ॥ २०१ ॥ नाहमाहारयामीति कुमारोऽकृत निश्चय । तद्वार्ताश्रवणाद्भूपो य. कश्चिद्भोजयत्यमु ॥ २०२ ॥ तस्मै सप्र र्थं दास्यामीति समघोषयत् । तज्ज्ञात्वा दृढधर्माख्यः सप्तस्थानसमाश्रय: ॥ २०३ ॥ श्रावक: समुपेत्यैन कुमारं ज्ञातिशत्रव: । त्वंते स्वपरध्वंसकोविदा: पापहेतव: २०४ भावसंयमविध्वस्तिमकृत्वा प्रासुकाशनै । करिष्ये भद्र पर्युष्टिमवियुक्तस्य बंधुभि ॥ २०५ ॥ दुर्लभा संयमे वृत्तिरित्यवोचद्धितं वच । सोपि मत्वा तदाचा

इसलिये दीर्घ संसारीरूपी अगाध कूपमें फिर भी जाकर पडते ही है। अर्जिकाकी ये सब बाते सुनकर भवदेवका चित्त अत्यंत शान्त होगया उसका शान्त चित्त देखकर उस मुख्य आर्यिकाने भी दुर्गति वा दरिद्रतासे जिसकी स्थिति अत्यन्त शान्त होरही है ऐसी नागश्रीको लाकर उसे दिखला दिया। उसे देखकर भवदेवने और भी संसारकी साक्षात् स्थितिका स्मरण किया धिकार देते हुए अपनी निन्दाकी फिरसे संयम धारण किया और बडे भाईके साथ आयुके अन्तमें अनुक्रमसे चारों आराधनाओंका आश्रय लिया। मरकर अपने भाईकेही चौथे माहेन्द्र स्वर्गके वलभद्र विमानमें सात सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुआ ॥९४–९९॥ वहांसे च्युत होकर बडे भाई भगदत्तका जीव मैं हुआ हूं और छोटे भाई भवदेवका जीव तू हुआ है। इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर वह शिवकुमार विरक्त हुआ ॥२००॥ वह दीक्षा लेनेके लिये तैयार हुआ परन्तु माता पिताने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया। जिसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ है ऐसा वह कुमार यद्यपि नगरमें गया तथापि उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अप्रासुक आहार कभी नहीं करूंगा। कुमारकी यह प्रतिज्ञा सुनकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि जो कोई इस कुमारको भोजन करावेगा उसे मैं इच्छानुसार धन दूंगा। राजाकी यह घोषणा सुनकर धार्मिक सातों स्थानोंमें दान देनेवाला दृढधर्मा नामका श्रावक उस कुमारके समीप पहुंचा और कुमारको समझाने लगा कि हे कुमार अपने और दूसरेके आत्माको नष्ट करनेमें पण्डित तथा पापके कारण ऐसे ये कुटंबी लोग सब तेरे शत्रु हैं इसलिये हे भद्र! भाए संयमका नाश न करते हुए प्रासुक भोजन लेकर पारणा कर। तू भाई बंधुओंसे रहित है इसलिये मैं तेरी वैयावृत्य करूंगा। क्योंकि संयममें प्रवृत्ति रखना अत्यंत दुर्लभ है। इसप्रकार उस श्रावकने कुमारसे हितरूप वचन कहे। कुमारने

म्लनिर्विकृत्यरसाशनः ॥ २०१ ॥ दिव्यस्त्रीसन्निधौ स्थित्वा प्रदाविकृतचेतसा । तृणाद न्यमानस्ता तपो द्वादशवत्सरान् ॥ २०७ ॥ चरितवनिशातासिधा-
रायां संप्रवर्तयन् । संन्यस्य जीवितप्रांते कल्पे ब्रह्मेंद्रनामनि ॥ २०८ ॥ विद्युन्माल्येव देवोभूद्देदीप्यमानदिक्तटः । इत्यथ श्रेणिकप्रश्नादिदं गौतम
॥ २०९ ॥ विद्युन्मालिन एवामूर्देव्यो ऽश्रेष्ठेभ्यपुत्रिकाः । जंबून प्रमततोपि भार्यास्तेन च संयमं ॥ २१० ॥ सहांत्यकल्पे भू वेह यास्यंति परमं पदं ।
गत्वा सागरदत्ताहयो दिवमत्रैव निर्वृति ॥ २११ ॥ जम्बूनाम्नो गृहस्थाश्रमसमये यास्यतीत्यपि । सर्वमेतद्गणाधीशनायकव्याहृतं मुदा ॥ २१२ ॥ संश्रुत्य भग-
वांश्रीशो जिन तं चान्ववंदत । मान्यति न के संत श्रेयोमार्गोपदेशिनं ॥ २१४ ॥ अथान्येद्युः पुन प्राप्य भगवंत महांतक । प्रपूज्य प्रणतस्तस्मै सदस्यु
दितेजस ॥ २१४ दृष्ट्वा तारागणे तारापतिं वा प्रीतिकेतनं । प्रीतिंकरं पुरानेन किं कृत्वा रूपमीदृशं ॥२१५॥ संप्राप्तमिति सोप्राक्षीद्गणभृच्चेवमब्रवीत् । एत-

भी उसकी सब बातें मानलीं और निर्विकार आचाम्ल रसका आहार किया॥२०१–२०६॥यद्यपि वह दिव्य स्त्रियोंके स-मीप भी जाता था तथापि उसके चित्तमें कभी विकार नहीं होता था वह सबको तृणके समान मानता था इसप्रकार उस-ने बारह वर्षतक असिधारा पर (तलवारकी धारपर) चलनेके समान अत्यंत कठिन तपश्चरण किया। आयुके अंतमें उस-ने सन्यास धारण किया और शरीर छोडकर ब्रह्म स्वर्गमें यह विद्युन्माली देव हुआ हैं पहिले भारी तपश्चरण करनेके कारण ही शरीरकी कांतिसे इसने सब दिशाएं व्याप्त कर रक्खी हैं। इस कथाके कहनेके बाद श्रेणिकके पूछनेपर गौतम-गणधर फिर कहने लगे कि विद्युन्मालीकी जो चार देवियां है वे अलग २ वैश्योंकी पुत्रियां होकर जंबूकुमारकी स्त्रियां होंगी और जंबूकुमारके साथ दीक्षा धारणकर सोलहवें स्वर्गमें देव होंगी तथा वहांसे आकर मुक्त होगी। सागरदत्तका जीव भी स्वर्गसे आकर जंबूकुमारकी दीक्षाके समय मुक्त होगा। गणधरोंके नायक गौतमस्वामीकी कही हुई ये सब कथाएं सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने श्री जिनेंद्रदेव महावीर स्वामीकी वंदना की। सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे कौन सज्जन पुरुष हैं जो कल्याण कारी मोक्षमार्गका उपदेश देनेवालेको न मानें तथा उनका आदर सत्कार न करें ॥ २०७–२१३ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन राजा श्रेणिक फिर संसारका नाश करनेवाले भगवान वीरनाथके समवसरणमें गया उनकी पूजाकी और उन्हें नमस्कार किया। जिसप्रकार ताराओंमें चंद्रमा प्रकाश मान दिखाता है उसी-प्रकार सब सभामें जिनका तेज प्रकाशमान होरहा है और जो प्रेमकी ध्वजाके समान है ऐसे प्रीतिंकर मुनिको देखकर श्रेणिकने पूछा कि पहिले जन्ममें इन्होंने कौनसा पुण्य किया था जिससे इन्हें ऐसा रूप प्राप्त हुआ है। इसके उत्तरमें गणधरदेव भी इसप्रकार कहने लगे कि इसी मगधदेशमें एक सुप्रतिष्ठ नामका नगर है ॥ २१४–२१६ ॥ उसमें जयसेन

स्मिन् मगधे देशे सुप्रतिष्ठाह्वयं पुरं ॥ २१६ ॥ जयसेनमहीपालः पालकस्तस्य लीलया । तत्र सागरदत्ताख्यः श्रेष्ठी तस्य प्रभाकरी ॥ २१७ ॥ भार्या त योरभून्नागदत्तो ज्येष्ठ सुतोनुजः । कुबेरदत्तो वित्तेशसमस्तगृहवासिन ॥ २१८ ॥ नागदत्त विवर्ज्यान्ये सर्वेभूवन्नुपासकाः । रत्नाकरेपि सद्रत्न नाप्नोत्यकृतपुण्यकः ॥ २१९ ॥ तेषां काले प्रयात्येवं गिरौ धरणिभूषणे । वने प्रियकरोद्याने कदाचित्समवस्थित ॥ २२० ॥ मुनिं सागरसेनाख्यं जयसेननृपादय । गत्वा सपूज्य वंदित्वा धर्मं साध्वन्वयुंजत ॥ २२१ ॥ सोप्येवमब्रवीत्प्राप्तसम्यग्दर्शनलोचन । दानपूजाव्रतापोषितादिभिः प्राप्तपुण्यका ॥ २२२ ॥ प्राप्नुवंति सुखं स्वर्गे चापवर्गे च संयमात् । मिथ्यादृशश्च दानादिपुण्येन स्वर्गजं सुखं ॥ २२३ ॥ सप्राप्नुवंति तत्रैके शममाहात्म्यतः पुनः । कालादिलब्धिमाश्रित्य स्वतो वा परतोपि वा ॥ २२४ ॥ सद्धर्मलाभयोग्याश्च भवत्यभ्यर्णमोचनाः । अन्ये तु भोगसंसक्ता गाढमिथ्यात्वशल्यकाः ॥ २२५ ॥ हिंसानृतान्यरैरामारत्यारंभपरिग्रहैः । पापं संचित्य संसारदुष्कूपे निपतंति ते ॥ २२६ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा बहवो धर्ममाददुः । अथ सागरदत्ताख्यश्रेष्ठिना स्वायुषोवधौ

नामका राजा लीलापूर्वक राज्य करता था। उसी नगरमें एक सागरदत्त नामका शेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम प्रभाकरी था। उन दोनोंके दो पुत्र थे बडेका नाम नागदत्त था और छोटेका नाम कुबेरदत्त था। उस शेठके घर जितने लोग रहते थे उनमेंसे नागदत्तको छोडकर बाकी सब श्रावक थे सो ठीक ही है क्योंकि जो पुण्यहीन है उसे रत्नाकरमें रत्नोंकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २१७—२१९ ॥ इसप्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होरहा था किसी एक समय धरणि भूषण नामके पर्वतके प्रियंकरोद्यान नामके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज आ विराजमान हुये। राजा जयसेन आदि बहुतसे लोगोंने जाकर उनकी पूजा वंदनाकी और सबने उनसे धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २२०-२२१ ॥ वे मुनिराज भी धर्मका स्वरूप इसप्रकार कहने लगे कि जिन्हें सम्यग्दर्शनरूपी नेत्र प्राप्त हो चुके हैं ऐसे पुरुष दान पूजा व्रत उपवास आदिके द्वारा पुण्य सम्पादन करते हैं तथा संयम धारणकर स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं। मिथ्या दृष्टि लोग दानादिक पुण्योंके द्वारा स्वर्गके सुख प्राप्त करते हैं। मिथ्यादृष्टियोंमें भी शान्त परिणामोंके माहात्म्यसे कितने ही जीव तो काल आदि लब्धियोंको पाकर अपने आप अथवा दूसरोंके द्वारा श्रेष्ठ धर्मको प्राप्त होनेके योग्य हो जाते हैं तथा शीघ्रही मुक्त होने योग्य हो जाते हैं और कितने ही जीव ऐसे हैं जिनके गाढ मिथ्यात्वरूपी शल्य बनी रहती है जो भोगोंमें आसक्त रहते हैं और हिंसा झूठ चोरी कुशील अत्यन्त आरम्भ तथा अत्यन्त परिग्रहसे पापोंका उपार्जनकर संसाररूपी बुरे कूएमें पड जाते हैं ॥२२२—२२६॥ इस प्रकार उन मुनिराजके वचन सुनकर बहुतसे लोगोंने धर्मको धारण करलिया। तदंतर शेठ सागरदत्तने अपनी आयुके दिन पूछे मुनिराजने तीस दिनकी आयु बतलाई। यह सुनकर वह शेठ अपने नगरमें

॥ २२७ ॥ परिपृष्टे मुनिश्चाह दिवसांस्त्रिंशदित्यसौ । तच्छ्रुत्वा नगरं श्रेष्ठी प्रविश्याष्टाह्निकीं मुदा ॥ २२८ ॥ पूजा विधाय दत्त्वात्मपदं ज्येष्ठाय सूनवे । आपृच्छ्य बान्धवान् सर्वान् द्वाविंशतिदिनानि सः । संन्यस्य विधिवल्लोकमवापदमृताशिना ॥ २२९ ॥ अन्येद्युर्नागदत्तोऽसौ लोभेनाथेन चोदितः ॥ २३० ॥ कुबेरदत्तमाहूय तव सारधनं पिता । किमदर्शयदित्येव पृष्टवान् दुष्टचेतसा ॥ २३१ ॥ तीव्रलोभविषक्रोऽयमित्यसाववगम्य न । लमवाच्यमविज्ञात धनमस्ति गुरोः पृथक् ॥ २३२ संन्यस्य विधिना स्वर्गं गतस्योपरि दूषणं । महत्पापमिदं वक्तु भ्रातस्तव न युज्यते ॥ २३३ ॥ श्रोतुं ममापि चेत्याह सोप्युपास्यास्य दुर्मतिं । विभज्य सकलं वस्तु चैत्यचैत्यालयादिकं ॥ २३४ ॥ निर्माप्य जिनपूजार्थं विधाय विविधा सदा । दानं चतुर्विधं पात्रत्रये भक्त्या प्रवर्त्य तौ ॥ २३५ ॥ काल गमयतः स्मोद्यत्प्रीती प्रति परस्परं । दत्वा सागरसेनाय कदाचिद्भक्तिपूर्वकं ॥ २३६ ॥ भिक्षां कुबेरदत्ताख्यः सहितो धनमित्रया । आमि-वंध किमावाभ्यां तनूजो लप्स्यते नवा ॥ २३७ ॥ नैव चेत्प्रव्रजिष्याव इत्यप्राक्षीत्सचाब्रवीत् । युवां सुतं महापुण्यभागिनं चरमांगकं ॥ २३८ ॥ लमेया-

गया उसने बडे आनन्दसे अष्टाह्निकाकी पूजा की और फिर अपना पद अपने बडे पुत्रको दिया। इसके बाद उसने सब भाई बन्धुओंसे पूछकर बाईस दिन तक विधि पूर्वक संन्यास धारण किया और शरीर छोडकर स्वर्गलोक प्राप्त किया। किसी दूसरे दिन नागदत्तको अनन्तानुबन्धी लोभने सताया इसलिये उसने दुष्टचित्तसे कुबेरदत्तको बुलाकर पूछा कि क्या पिताजी अपना सब कीमती धन तुमको बतला गये हैं? ॥ २२७–२३१ ॥ कुबेरदत्तने समझलिया कि यह तीव्र लोभरूपी विषके नशेमें है इसलिये वह बडे भाईको समझाने लगा कि आप न कहने योग्य ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं क्या पिताजीका कोई ऐसा धन अलग था जिसे हम और आप न जानते हों। जिन्होंने विधि पूर्वक संन्यास धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया है उनके लिये ऐसा कहना उनपर दोष लगाना है और एक तरहका महापाप है। हे भाई आपको ऐसा कहना योग्य नहीं है और मुझे सुनना भी योग्य नहीं है। इस प्रकार कुबेरदत्तने सपने बडे भाई की कुबुद्धि दूरकी, सब धनका बांट किया, अनेक चैत्य चैत्यालय बनवाये, अनेक तरहसे जिन पूजा की और बडी भक्तिसे उत्तम मध्यम जघन्य तीनों तरहके पात्रोंको सदा चारों प्रकारका दान दिया। इस प्रकार दोनों भाईयोंमें परस्परका प्रेम बहुत ही बढ गया और दोनोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक दिन कुबेरदत्तने अपनी स्त्री धनमित्राके साथ सागरसेन नामके मुनिराजको बडी भक्तिसे आहार दिया। आहार देनेके बाद उन दोनोंने वन्दनाकर पूछा कि हम दोनोंके कोई पुत्र होगा या नहीं यदि न हो तो हम दोनों ही दीक्षा धारण करलें इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि तुम दोनोंके महापुण्यवान् और चरमशरीरी पुत्र होगा। मुनिराजकी यह बात सुनकर दोनोंका हृदय बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और उन

मिति तद्वाक्यश्रवणात्तोषिताशयौ । यद्येवं पूज्यपादस्य भवतः क्षुल्लकोस्त्वमौ ॥ २३९ ॥ तस्मिन्नुत्पन्नवत्येव दास्याव इति तौ सुखं । भुंजानौ कतिचिन्मासान् गमयित्वा सुतोत्तम ॥ २४० ॥ लब्ध्वा प्रीतिंकराह्वानमेतस्याकुरुता मुदा । करोतु स्वगुणैस्तोष सर्वेषां जगतामिति ॥ २४१ ॥ पचसवत्सरातीतौ तस्मिन्धान्यपुरान्मुनौ । आगते सति गत्वैनमभिवद्य मुनींद्र ते ॥२४२॥ क्षुल्लकोयं गृहाणेति तस्मै दत्तः स तं तदा । प्रतिगृह्य गुरुर्धान्यपुरमेवागत पुन ॥२४३॥ तत्र त सर्वशास्त्राणि दशवर्षाण्यशिक्षयत् । सोप्यासन्नविनेयत्वात्संयमग्रहणोत्सुक ॥ २४४ ॥ गुरुभिर्नार्थते दीक्षाकालोयमिति वारितः । तथैवास्त्विति तं भक्त्या वदित्वा पितरौ प्रति ॥ २४५ ॥ प्रत्येत्य भ्यस्तशास्त्राणि शिष्याणा समुपादिशत् । छात्रवेषधरो गत्वा सर्वत्रधुकदवक ॥ २४६ ॥ विलोकयानतरं राज्ञा सम्यग्विहितसत्कृतिः । असाधारणमात्मान मन्यमान कुलादिभि २४७ ॥ धनं बहुतरं सारं यावन्नावर्जयाम्यह । तावन्न संग्रहीष्यामि पत्नीमिति विचिंतयन् ॥ २५८ ॥ अन्येद्युर्नागरैः कैश्चिज्जलयात्रोन्मुखैः सह । यियासुर्बांधवान्सर्वानापृच्छयतत्प्रयोजन ॥२४९॥ सम्मतस्तैर्नमस्कर्तुं गत्वा गुरुमुदात्तधी । पत्रमेकं

दोनोंने कहा कि हे पूज्यपाद यदि ऐसाही है तो वह पुत्र आपका ही क्षुल्लक हो उत्पन्न होते ही हम उसे आपको दे देंगे। इसके बाद वे फिर सुखसे रहने लगे कितने ही महीने बीत जानेपर उनके उत्तम पुत्र हुआ और 'यह पुत्र अपने गुणोंसे सब संसारको सन्तुष्ट करो' यही समझकर बडी प्रसन्नतासे उसका नाम प्रीतिंकर रक्खा ॥ २३१–२४१ ॥ पुत्र जन्मके पांच वर्ष बाद वे ही मुनिराज फिर धान्यपुर नगरमें आये कुबेरदत्त और धनमित्राने जाकर उनकी वन्दना की और कहा कि हे मुनिराज यह आपका क्षुल्लक है इसे लीजिये इसप्रकार कहकर वह बालक उन्हें दे दिया। मुनिराज भी उस बालकको लेकर फिर धान्यपुर नगरमें आगये ॥ २४२–२४३ ॥ वहांपर उन मुनिराजने दश वर्ष तक उस बालकको समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा दी। आसन्न भव्य होनेके कारण शिक्षाके बादही वह संयम धारण करनेके लिये तैयार होगया ॥२४४॥ परन्तु गुरुराजने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया और समझा दिया कि तेरा अभी दीक्षा लेनेका समय नहीं है। प्रीतिंकरने भी गुरुकी यह बात स्वीकार कर ली, भक्ति पूर्वक उनकी वन्दनाकर वह अपने माता पिताके पास चला गया और पढे हुए सब शास्त्र अनेक शिष्योंको पढाने लगा। वह पहिले तो विद्यार्थियोंका ही वेष धारण कर गया था और फिर सब भाई बन्धुओंको देखकर प्रसन्न हुआ। राजाने भी उसे विद्वान देखकर उसका खूब आदर सत्कार किया। तदनंतर उसने विचार किया कि मेरा कुल गोत्र आदि बहुत बडा है मैं साधारण आदमी नहीं हू इसलिये जबतक बहुतसा धन न कमा लूंगा तबतक मैं अपना विवाह नहीं करूंगा ॥ २४५–२४७ ॥ किसी एक दिन कितने ही नगर निवासी जलयात्रा अर्थात् व्यापारके लिये समुद्रयात्रा करनेको तैयार हुए उनके साथ प्रीतिंकर भी जानेको तैयार हुआ उसने जानेके लिये

निजामिप्रेतार्थाक्षरसमर्पित ॥ २५० ॥ गुरुणार्पितमादाय कर्णे सुस्थाप्य सादरं । शकुनाद्यानुकूल्येन ससखः पोतसाधन ॥ २५१ ॥ अवगाह्य पयोराशिं पुरं भूतिलकाह्वय । परीत वलयाकारगिरिणा प्राप्य पुण्यवान् ॥ २५२ ॥ शखतूर्यादिमिस्तस्मिन् ध्वनद्भि समुखान् बनान् । निर्गच्छतः प्रपश्यद्भिराशक्य वणिक्भि वरैः ॥२५३॥ गत्वैततपुरमन्विष्य प्रत्येतुमिह कः सहः । इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रीतिंकरकुमारक ॥ २५४ ॥ कर्मणोस्य समर्थोहमिति संगीर्णवास्तदा । चोचवल्कजनिष्पन्नरज्ज्वा तैरवतारित ॥ २५५ ॥ विस्मयात्परित पश्यन् प्रविश्य परित पुरा । निरीक्ष्य भवन जैन परीत्य विहितस्तुतिः ॥ २५६ ॥ ततो गत्वा युधापातविगतास्तन्निरूपयन् । समतात् कन्यको कांचित् गच्छतीं मरसो गृह ॥ २५७ ॥ केयमित्यनुयातोसा त सालोक्य गृहागणे । भद्रागतः कुतो-त्रेति पीठमस्मै समार्पयत् ॥ २५८ ॥ सोपि तस्योपरि स्थित्वा नगरं केन हेतुना । संजातमीदृश ब्रूहि इत्याह तामथ साब्रवीत् ॥ २५९ ॥ एतद्वक्तु नास्ति

सब भाई बन्धुओंसे पूछा सबके द्वारा सम्मति मिलजानेपर उदार बुद्धिवाला वह कुमार नमस्कार करनेके लिये गुरुके पास गया । गुरुने अपने अभिप्रायका एक पत्र लिख दिया जिसे लेकर कुमारने बडे आदरसे कानमें रखलिया । तदन्तर अच्छे शकुन आदि देखकर अपने मित्रोंके साथ जहाजपर बैठकर समुद्रमें चलने लगा और थोडे ही दिनमें वह पुण्यवान् कंकणके आकारके पर्वतसे घिरे हुए एक भूतिलक नामके नगरमें पहुंचा ॥ २४९—२५२ ॥ उस समय शंख तुरई आदि बाजे बजाते हुए लोग सामने ही नगरके बाहर निकल रहे थे उन्हें देखकर जहाजके सब वैश्य नगरमें जानेसे डर गये ॥५३॥ सबने कहा कि इस नगरमें जाकर और सब बातें तलाशकर फिर लौट आनेकी कौन सामर्थ्य रखता है इस बातको सुन कर प्रीतिंकर कुमारने प्रतिज्ञाकर कहा कि इस कामको मैं कर सकता हू । इस बातको सुनकर दालचीनीकी छालसे बनाये हुए रस्सेसे उसको नीचे किनारेपर उतार दिया ॥२५४—२५५॥ आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए उस कुमारने नगरमें प्रवेश किया और पहिलेही जिन भवन देखकर उसकी प्रदक्षिणा देकर स्तुति की ॥२५६॥ वहांसे आगे चलकर उसने देखा कि बहुतसे लोग चारों ओर शस्त्रोंसे मरे पडे है आगे चलकर एक कन्याको तालावसे घरको जाते हुए देखा। उस कन्याको जाननेकेलिये वह उसके पीछे पीछे चला घरके आंगनमें जाकर कन्याने कुमारको देखा और बैठनेकेलिये एक सिंहासन डालकर पूछा कि हे भद्र कहांसे आये हो ॥२५७—२५८॥ कुमारने उस सिंहासनपर बैठकर पूछा कि कहो यह नगर किस कारणसे ऐसा उजाड होगया है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि यह सब बतलानेका यह समय नहीं है भद्र तू यहांसे जल्दी भाग जा नहीं तो तेरे लिये यहां बड़ा भारी भय उपस्थित होगा । कन्याकी यह बात सुनकर वह कुमार निर्भय होकर कहने लगा कि जो मुझे भय देगा उसके क्या हजार हाथ हैं । कुमारका ऐसा निर्भय और गंभीर उत्तर सुनकर कन्याका भय कुछ दूर हुआ

गंभीरविजृम्भणात् ॥ २६१ ॥ शिथिलीभूतमी कन्याप्यवोचद्विस्तरेण तत् । एतत्खगाद्रुदीच्यालकेश्वराः सहजास्त्रयः ॥ २६२ ॥ ज्यायान् हरिवलस्तस्य महासेनोनुजोनुजः । तस्य भूतिलकस्तेषु धारिण्यां ज्यायसोऽभवत् ॥ २६३ ॥ तनूजो भीमकस्तस्मादेव विद्याधरेशिनः । हिरण्यवर्मा श्रीमत्यामजायत सुतोपरः ॥ २६४ ॥ महासेनस्य सुदर्यामुग्रसेन सुतोजनि । वरसेनश्च तस्यानुजा जाताहं वसुंधरा ॥ २६५ ॥ कदाचिन्मे पिता भीमविहारे विपुलं पुरं । निरीक्ष्येदं चिरं चित्तहारीति स्वीचिकीर्षुकः ॥ २६६ ॥ एतन्निवासिनीं हत्वा रणे व्यंतरदेवता- । अत्र भूतिलकाख्येन सोदर्येण समन्वितः ॥ २६७ ॥ इह संनिवासिभिर्भूपै सेव्यमानः सुखेन सः । कालं गमयति स्मैवं किंचित्संचितपुण्यकः ॥ २६८ ॥ इतः कनीयसे विद्या भीमकायालकश्रियं । दत्वा संसारभीरुत्वान्निर्विद्य विजितेंद्रियः ॥ २६९ ॥ कर्मनिर्मूलनं कर्तुं दीक्षां हरिवलाह्वयः । विद्वान् विपुलमत्याख्यचारणस्याथ सन्निधौ ॥ २७० ॥ शुक्लध्यानानलालीढदु-

और वह कन्या फिर विस्तारके साथ सब कथा कहने लगी। कि इस विद्याधर पर्वतके उत्तरकी ओर एक अलका नगर है उसमें राज्य करनेवाले तीन भाई थे ॥ २५९-२६२ ॥ सबसे बडा हरिवल, उससे छोटा महासेन और उससे छोटा भूतिलक । हरिवलकी रानी धारिणीसे भीमक नामका बडा पुत्र हुआ था और उसी विद्याधरकी श्रीमती नामकी दूसरी रानीसे हिरण्यवर्मा नामका छोटा पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ २६३—२६४ ॥ महासेनकी सुंदरी स्त्रीसे उग्रसेन और वरसेन दो पुत्र हुए और वसुंधरा नामकी मैं कन्या हुई ॥ २६५ ॥ ॥ किसी एक समय मेरे पिता क्रीडा करनेके लिये आये उन्होंने इस मनोहर और बडे नगरको देखकर लेनेकी इच्छा की। पहिले यहां एक व्यंतरी देवी रहती थी युद्धमें उसे जीतकर अपने छोटे भाई भूतिलकके साथ यहां ही रहने लगे । यहांके रहनेवाले राजा लोग उनकी सेवा करने लगे इसप्रकार उन पुण्यवानका समय बडे सुखसे व्यतीत होने लगा ॥ २६६—२६८ ॥ इधर जितेंद्रिय और विद्वान् राजा हरिवलको वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने अपने छोटे पुत्र हिरण्यवर्माको तो विद्याएं दीं और बडे पुत्र भीमकको अलकापुरीका राज्य दिया । संसारसे डरकर और विरक्त होकर समस्त कर्मोंको सर्वथा नाश करनेके लिये विपुलमति नामके चारण मुनिके समीप जाकर दीक्षा धारणकी और शुक्लध्यानरूपी अग्निसे समस्त पापरूपी आठों दुष्ट कर्मोंको जलाकर तथा आठों गुणोंसे सुशोभित होकर वह इष्ट आठवीं मोक्षरूपी पृथ्वीमें जा विराजमान हुआ ॥ २६९-२७१ ॥ इधर भीमक राज्य करने लगा उसने किसी कपटसे हिरण्यवर्माकी विद्या हर ली और फिर वह उसे मारनेका उद्यम करने लगा हिरण्यवर्माको भी यह बात मालूम होगई इसलिये वह भागकर सम्मेदशिखरपर जा पहुंचा । भीमक भी क्रोधसे उसके पीछे

रिताहकुद्दकं। अहमीमगमत्पृथ्वीमिथ्यमष्टगुणान्वित ॥ २७१ ॥ प्रकुर्वन् भीमको राज्यं विधां शाठ्येन केनचित् । हिरण्यवर्मणो हत्वा तं च हंतुं समुद्यतः ॥ २७२ ॥ ज्ञात्वा हिरण्यवर्मैतत्सम्मेदाद्रिमशिश्रियत् । भीमकस्तं कुधान्विष्य गिरिं गंतुमशक्तकः ॥ २७३ ॥ तीर्थवासमिधानेन तीर्थस्थादागमत्पुरं । ततो हिरण्यवर्मापि पितृव्यं समुपागतः ॥ २७४ ॥ तच्छ्रुत्वा त निराकर्तुं पूज्यपादो हंतीत्यसौ । महासेनमहाराजं प्राहिणोत्प्रतिपत्रक ॥ २७५ ॥ तस्मात्मामकशत्रु तस्माद् ज्ञात्वा या तं सुधुरतया । क्रूरएव दुरात्मेति मत्पिता भीमकं रणे ॥ २७६ ॥ निर्जित्य शृंखलाक्रांतमकरोत्क्रमयोर्द्वयो । पुनः क्रमेण शांतात्मा नैतद्युक्त ममेति तं ॥ २७७ ॥ मुक्त्वा विधाय संधानं प्रशमय्य द्विनोकिमि । हिरण्यवर्मणा सार्द्धं दत्वा राज्यं च पूर्ववत् ॥ २७८ ॥ विससर्ज तथाप्यसौ न दुर्वैर स भीमकः । हिरण्यवर्मापि प्रायो विधा ससाध्य राक्षसीं ॥ २७९ ॥ तया हिरण्यवर्माण पापी मत्पितरं पुरं । मद्बंधूनपि विध्वस्य मामुद्दिश्यागमिष्यति ॥ २८० ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य कुमारो विस्मयावह । शय्यातलस्थमालोक्य खड्गमेव सुलक्षणः ॥ २८१ ॥ यस्य हस्तगतो जंतुं तं शक्रोपि न शक्नु-

पीछे दौडा परंतु तीर्थंकरके समीप रहनेसे तथा तीर्थ होनेसे वह वहांतक पहुंच नहीं सका और लौटकर अपने नगरमें आ-गया। तदनंतर हिरण्यवर्मा भी अपने काका महासेनके समीप आगया ॥ २७२–२७४ ॥ भीमकने यह बात सुनकर अपने काका महाराज महासेनको एक पत्र लिखकर भेजा कि आप हमारे पूज्य हैं इसलिये हमारे शत्रु हिरण्यवर्माको वहांसे निकाल दीजिये ॥ २७५ ॥ महासेन हिरण्यवर्माके मुखसे भीमकका अन्याय जानकर युद्ध करनेके लिये चला और यह भीमक क्रूर है दुष्ट है यही समझकर मेरे पिताने युद्धमें उसे जीता और उसके दोनों पैर लोहेकी सांकलसे बांध दिये। जब मेरे पिता शांत हुये तब उन्होने सोचा कि मेरे लिये यह काम करना योग्य नहीं है यही समझकर भीमकको छोड दिया उसके साथ संधि की हितरूप वचनोंसे उसे समझाया और पहिलेके समान हिरण्यवर्माके साथ उसे राज्य दे दिया ॥ २७६–२७८ ॥ इसके बाद दोनोंको विदाकर दिया यद्यपि भीमकको सब तरह समझा दिया था तथापि उस मूर्खने वैर नहीं छोडा तथा हिरण्यवर्माका वैर भी शांत नहीं हुआ। पापी भीमकने राक्षसी विद्या सिद्ध की उससे उसने हिरण्यवर्माको मारा मेरे पिताको मारा मेरे भाइयोंको मारा और इस नगरको इसप्रकार उजाड कर दिया। अब वह केवल मेरे लिये आवेगा ॥ २७९–२८० ॥ यह आश्चर्य करनेवाली सब घटना सुनकर कुमारने शय्यापर रक्खी हुई तलवार उठाकर देखी और यह तलवार बडी अच्छी है जिसके हाथमें यह तलवार होगी उसे इंद्र भी नहीं जीत सकता यही समझकर उस कन्यासे पूछा कि क्या तेरे पिताने इस तलवारसे भी किसीके साथ युद्ध किये हैं? इसके उत्तरमें कन्याने भी कहा कि नहीं मेरे पिताने स्वप्नमें भी इस तलवारसे कभी युद्ध नहीं किया। तदनंतर प्रीतिंकरने वह तलवार कन्याको दे...

मात् । इति मत्वा पितानेन ते किं केनापि युद्धवान् ॥ २८२ ॥ इत्यप्राक्षीत्स तां सापि न स्वप्नेपीत्यभाषत । तदा प्रीतिंकरो हस्तगतमस्त्रं विधाय तत् ॥ २८३ ॥ त हतु निर्भयो भीमं गोपुराभ्यतरस्थित । निगूहतनुराविष्कृतोत्रतिर्वसुनं दधत् ॥ २८४ ॥ तस्मिन् क्षणे समागत्य ममताद्वीक्ष्य भीमक । स्वविद्या प्रेषयामास दृष्ट्वा दुष्ट जहीहि त ॥ २८५ ॥ सम्यग्दष्टिरय सप्तविधभीतिविदूरगः । चरमाङ्गो महान् शूरो नाहं हतुमिमं क्षमा ॥ २८६ ॥ इति भीत्या तदभ्यर्णे सचरंतीमितस्तत । विलोक्य भीमको विद्या शक्तिहीनां व्यसर्जयत् ॥ २८७ ॥ निःसाराऽभूर्व्रजेत्युक्त्वा साप्यगच्छददृश्यता । स्वयमेवासिमुत्खाय भीमकस्त जिघांसुकः ॥ २८८ ॥ संप्राप्तवान् कुमारोपि तर्जयन्नतिभीषण । तद्घात वचयित्वाऽस्त प्राणैः मोप्यमुच्यत ॥ २८९ ॥ ततो विध्वस्य दुष्टारिमायातमभिवीक्ष्य सा । कुमारं कन्यकाभ्येत्य व्यधास्त्व भद्र साहस ॥ २९० ॥ इत्यारोप्यासन स्वर्णमय राजगृहाङ्गणे । अभिषिच्य जलापूर्णे कलशै कालधौतकै ॥ २९१ ॥ विन्यस्य मणिभाभासि मुकुट चारुमस्तके । यथास्थानमशेषाणि विशिष्टाभरणान्यपि ॥ २९२ ॥ विलासिनीकरोद्धूयमानचामरशो-

निर्भय होकर भीमको मारनेके लिये हाथमें तलवार लेकर उन्मत होकर तथा शरीरको छिपाकर निर्भय रीतिसे नगरके बडे दरवाजेके वीचमें जा खडा हुआ ॥ २८१-२८४ ॥ उसीसमय भीमक आया उसने अपनी विद्या भेजी और कहा कि तू चारों ओर देखना जो कोई मेरा दुष्ट शत्रु मिले उसे मार डालना ॥ २८५ ॥ वह विद्या प्रीतिंकरके समीप उसे देखकर "यह सम्यग्दृष्टी है" सातों प्रकारके भयसे दूर है चरम शरीरी है और बहुत ही शूरवीर है मैं इसे मार नहीं सकती यही समझकर और डरकर वह उसके पास इधर उधर फिरने लगी । भीमकने उसे शक्ति हीन देखकर विदा करदी और कह दिया कि तू अब निःस्सार होगई है इसलिये जा। भीमककी यह बात सुनकर वह विद्या भी अदृश्य होगई । तदनंतर वह कुमार स्वयं तलवार लेकर कुमारको मारनेकेलिये उसके पास पहुंचा । कुमारने भी वडी भीषणताके साथ उसकी तर्जना की और उसका घात वचाकर उसको मारदिया तलवारकी चोटसे उसके भी प्राण छूट गये ॥ २८६-२८८ ॥ तदनंतर वह कुमार कन्याके पास गया, कुमार दुष्ट शत्रुको मारकर आया है यह देखकर वह कन्या उसके सामने आई और कहने लगी कि हे भद्र ! आपने वडा ही साहस किया है ॥ २९० ॥ यह कहकर राजघरके चौकमें उसे सोनेके सिंहासनपर विठाया सोनेके जलसे भरे हुए पूर्ण कलशोंसे उसका अभिषेक किया, सुंदर मस्तक पर मणियोंकी कांतिसे देदीप्यमान मुकुट पहनाया, यथायोग्य स्थान पर सब अच्छे अच्छे आभूषण पहनाये वेश्याओंके द्वारा अनेक चमर ढुराकर उसकी शोभा वढाई । यह सब देखकर प्रीतिंकर कुमारने पूछा कि यह सब क्या है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि मैं इस नगरकी स्वामिनी हूं पहले पूर्वक मैं अपना सब राज्य आपको देती हूं और गलेमें

मिनं । अकरोत्तमिरीक्ष्याह प्रीतिंकरकुमारक ॥ २९३ ॥ किमेतदिति सावोचदस्म्यस्या स्वामिमी पुरः । दत्त्वा राज्यं मदीयं ते पट्टबंधपुरस्सरं ॥ २१४ ॥ रत्नमालां गले कृत्वा त्वां प्रेम्णा समवीभव । इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य कुमारः प्रत्यभाषत ॥ २९५ ॥ विना पित्रोरनुज्ञानान्नैव स्वीक्रियते मया । कोपि प्रागेव संकल्पो विहितोयमिति स्फुट ॥ २९६ ॥ यद्यैव तत्समायोगकालेमीष्ट भविष्यति । इति तद्वचनं कन्या प्रतिपद्य धनं महत् ॥ २९७ ॥ मदुष्वावतरणायाम-रज्वा तेन सह स्वय । यियासुरासीरज्जु ता प्रमोदात्सोप्यचालयत् ॥ २१८ ॥ सधनबालनं दृष्ट्वा नागदत्तो वहिर्गतः । समाकृष्याग्रहीत्तं च तां च द्रव्य च तुष्टवान् ॥ २९९ ॥ पोतप्रस्थानकालेस्याः सारामरणसंहर्तिं । विस्मृतां स कुमारस्तामानेतुं गतवान् पुनः ॥ ३०० ॥ नागदत्तस्तदा रज्जुमाकृष्य द्रव्यमे-तया । सार्रं संप्राप्तमेतन्मे भोक्तुमामरणाद्भवेत् ॥ ३०१ ॥ कृतार्थोह कुमारेण यद्वा तद्वानुभूयतां । इति प्रस्थितः सार्द्धं तैर्दल्वरंध्रो वणिग्जनैः ॥ ३०२ ॥ नागदत्तोपि कन्यैषा मूकीति प्रतिपादयन् । तां द्रव्यरक्षणे नागदत्तेंगितं ज्ञात्वा कन्यका मौनमग्रहीत् । प्रीतिंकराद्विनात्रान्यैर्न वदाम्यहमित्यसा ॥ ३०३ ॥

रत्नमाला डालकर आपकी प्रेमभांगिनी वनकर रहूंगी। कन्याकी यह वात सुनकर कुमार कहने लगा कि मैं विना माता पिताकी आज्ञाके इस वातको स्वीकार नहीं करूंगा मैंने पहिले ऐसी ही प्रतिज्ञा कर ली है ॥ २९१–२९६ ॥ यदि तू ऐसा ही करना चाहती है तो मातापिताके मिलनेपर तेरा अभीष्ट सिद्ध हो सकेगा। कन्याने प्रीतिंकरकी यह वात मान ली और वहुतसा धन वांधकर उस लम्वी रस्सीके द्वारा जहाजपर चढनेके लिये कुमारके साथ किनारे पर आई। कुमारने भी आकर बडे आनन्दसे वह रस्सी हिलाई ॥ २९७–२९८ ॥ रस्सीके हिलानेको देखकर नागदत्त भी वाहिर आया और उस कन्याको और उसको सब धनको जहाजमें खींचकर वहुत सन्तुष्ट हुआ ॥ २९९ ॥ जव जहाज चलनेका समय हुआ तव वह कुमार उस कन्याके भूले हुए कितने ही आभरणोंको लेनेके लिये फिर उस नगरमें गया ॥ ३०० ॥ उसके चले जानेपर नागदत्तने वह रस्सी खींच ली और "इस कन्याके साथ मुझे वहुतसा अच्छा धन मिल गया है यह मेरे मरनेतक भोग करनेके काममें आवेगा मैं तो कृतार्थ हो चुका अव कुमार चाहे जहां इधर उधर भटकता फिरो" यही समझकर और छिद्र (समय वा दाव) पाकर वह नागदत्त उन अन्य वैश्योंके साथ चल दिया ॥ ३०१–३०२ ॥ इधर कन्याने नागदत्तका अभिप्राय जानकर मौन धारण कर लिया और प्रतिज्ञा करली कि मैं प्रीतिंकरके सिवाय और किसीके साथ वातचीत नहीं करूंगी ॥ ३०३ ॥ नागदत्तने भी "यह कन्या गूंगी है" ऐसा सब लोगोंपर प्रगटकर दिया और उसे उंगलीके इसारेसे वडे प्रेमसे द्रव्यकी रक्षा करनेपर नियुक्त किया ॥ ३०४ ॥ वह नागदत्त अनुक्रमसे अपने नगरमें पहुंचा। शेठने नागदत्तसे पूछा कि प्रीतिंकर भी तुम लोगोंके साथ भूतिलक नगरको — था वह क्यों नहीं

यैाक्षीत्प्रीत्या स्वागुलिसञ्ज्ञया ॥ ३०४ ॥ क्रमात्स्वनगरं प्राप श्रेष्ठी प्रीतिंकरस्तदा । गतो भूतिलक नायात्कुत इत्यवदत्स त ॥ ३०५ ॥ नागदत्तमसौ नाह जानामीत्युत्तरं ददौ । भूषणानि समादाय समुद्रतटमागतः ॥ ३०६ ॥ नागदत्तेन पापेन स कुमारोतिसंचितः । अदृष्ट्वा पोतमुद्विग्नः पुरं प्रति निवृत्तवान् ॥ ३०७ ॥ सचितस्तत्र जैनेंद्रगेहमेकं विलोक्य त । पुष्पादिभि समभ्यर्च्य विधाय विधिवदना ॥ ३०८ ॥ जिन त्वद्दृष्टिमात्रेण मत्पापं क्वाप्यलीयत । दीपेन निधि वा ध्वात समुन्मीलितचक्षुषः ॥ ३०९ ॥ चेतन कर्मभिर्ग्रस्त सर्वाप्यन्यदचेतन । सर्ववित्कर्मनिर्मुक्तो जने केनोपमीयते ॥ ३१० ॥ साख्यादीनूलोकविख्यातान् सर्वथा सावधारणान् । एको भवान् जिनाजैषीश्चित्रं निरवधारणः ॥ ३११ ॥ अबोधतमसाक्रातमनाद्यंतं जगत्त्रयं । सुप्त त्वमेव जागर्षि शश्वद्विश्व च पश्यसि ॥ ३१२ ॥ वस्तुवोधे विनेयस्य जिनेंद्र भवदागमः । निर्मलः शर्मदो हेतुरालोकावासचक्षुषः ॥ ३१३ ॥ इतिस्वकृतसस्तोत्रः शुद्धः श्रद्धावबोधन । सम्यक्संसारसद्भाव भावयन् कर्मनिर्मितं ॥ ३१४ ॥ अभिषिंचनशालाया सुप्तवान् किंचिदाकुल । तदा नदमहानदावागता गुह्यकामरौ ३१५

आया इसके उत्तरमें नागदत्तने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता। इधर आभूषण लेकर कुमार समुद्रके किनारे आया परन्तु पापी नागदत्त पहिलेसे ही धोखा देकर चला गया था। जहाजको न देखकर वह खेदखिन्न हुआ और फिर नगरको लौट आया ॥ ३०५–३०७ ॥ वह बडी चिन्ता करने लगा और वहींपर एक जिनालय देखकर उसमें गया पुष्पादिकसे भगवानकी पूजा की विधि पूर्वक वन्दना की और फिर वह स्तुति करने लगा ॥३०८॥ कि हे देव ! जिस प्रकार रात्रिमें दीपकसे खुले नेत्रवालेका अन्धकार दूर हो जाता है उसी प्रकार आपके दर्शन करनेमात्रसे ही मेरे पाप न जाने कहां छिप जाते हैं ॥ ३८९ ॥ आप शुद्धजीव, कर्मोंसे मिला हुआ जीव और जीवोंसे भिन्न अचेतन इन सबको आप जानते हैं तथा आप सब कर्मोंसे रहित है फिर संसारमें आपकी उपमा किसके साथ दी जासके ॥ ३१० ॥ हे देव यद्यपि आप ऐंद्रियक ज्ञान रहित हैं (अतींद्रिय ज्ञानी हैं) तथापि ऐंद्रियक ज्ञानको धारण करनेवाले जगत प्रसिद्ध सांख्य आदिको केवल आपने ही जीता है यह आश्चर्यकी वात है ॥३११॥ हे देव यह आदि अन्त रहित यह तीनोंलोक अज्ञानरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर सोरहा है उसमें केवल आपही जग रहे हैं और आपही इस संसारको देख रहे हैं ॥ ३१२ ॥ हे जिनेन्द्र सम्यग्दर्शनरूपी प्रकाशमें रहनेवाले और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले शिष्योंके पदार्थज्ञानमें आपका कहा हुआ आगमही निर्मल और कल्याण करनेवाला कारण है ॥३१३॥ इसप्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले उस कुमारने अपनी बनाई हुई स्तुति पढी और फिर कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए संसारके स्वरूपको अच्छी तरह चिंतवन करता हुआ कुछ व्याकुल होकर अभिषेचनशालामें जाकर सोगया। उस समय नन्द और महानन्द नामके दो यक्ष उस जिन मंदिरकी वन्दना करनेकेलिये आए

वंदितुं मंदिर जैन वीक्ष्य तत्कर्णपत्रक । तौ तदीय समादाय सधर्मोवा कुमारकः ॥ ३१६ ॥ इति प्रापयत देवौ द्रव्येण महता सह । सुप्रतिष्ठपुरं प्रीतिंकरमेनं प्रमोदिन ॥ ३१७ ॥ प्रेषण युवयोरेतदस्माकमिति तद्गत । गुरोः सदेशमालोक्य ज्ञात्वा प्राग्भवव्रत्तकं ॥ ३१८ ॥ वाराणस्या पुरे पूर्वं धनदेववणिक्पतेः । भूत्वा जिनदत्तया शातवो रमण सुतौ ॥ ३१९ ॥ तत्र शास्त्राणि सर्वाणि विदित्वा प्रथतोर्थतः । चोरशास्त्रबलात्पापौ परार्थहरणे रतौ ॥ ३२० ॥ अभूता मद्गुरुस्तस्मान्निवारयितुमक्षम- । सर्वसंगपरित्यागमकरोदतिदुस्तरं ॥ ३२१ ॥ इतो धान्यपुराभ्यर्णे शिखिभूधरनामनि । भूधरे मुनिमाहात्म्याद्दुष्टाः शार्दूलकादय ॥ ३२२ ॥ मृगाः कांश्चिन्न बाधत इति श्रुत्वा जनोदितात् । कृततद्भूधरावासौ तत्र भूरि तपोधन ॥ ३२३ ॥ दृष्ट्वा सागरसेनाख्यं तत्समीपे जिनोदित । श्रुत्वा धर्मं परित्यज्य मधुमासादिभक्षणं ॥ ३२४ ॥ तस्मिन् गुरौ तत॰ सुप्रतिष्ठाख्यनगरं गते । शार्दूलोपद्रवान्मृत्वा देवभूयं गताविद ॥ ३२५ ॥ सर्वमेतद्गुरोरेते व्रतादित्यसिमन्यत । गत्वा संप्राप्य सपूज्य किमावाभ्या निदेशनं ॥ ३२६ ॥ कर्तव्यमिति सपृष्टो मुनिना-

उन्होंने प्रीतिंकर कुमारके कानमें लगे हुए पत्रको लेकर बांचा उसमें लिखा हुआ था कि कुमार धर्मात्मा है इसलिये तुम दोनों प्रसन्न रहनेवाले इस प्रीतिंकर कुमारको खूब धनके साथ स्वप्रतिष्ठ नगरमें पहुंचाना मेरा ही काम समझना। इसप्रकार उन दोनों देवोंने उस पत्रसे अपने गुरुकी आज्ञा समझी और उन्होने नीचे लिखे अनुसार अपने पहिले भवके समाचार भी जान लिये ॥ २१४–२१८ ॥ पहिले बनारस नगरमें धनदेव नामका वैश्य रहता था उसकी जिनदत्ता स्त्रीसे शांतव और रमण नामके हम दोनों पुत्र थे ॥ २१९ ॥ वहांपर हमने (शांतव-रमणने) ग्रंथ और अर्थसे सव शास्त्रोंका अभ्यास किया परंतु चोर शास्त्रकी अधिकता होनेसे हम दोनों पापी दूसरेका धन चुरानेमें तत्पर होगये ॥ २२० ॥ हमारे माता पिता वा गुरु लोग भी हमारे चोरीके कामको छुडा न सके इसलिये उन्होंने अत्यंत कठिन ऐसा सव तरहके परिग्रहोंका परित्याग कर दिया अर्थात् दीक्षा धारण कर ली ॥ २२१ ॥ इधर धान्यपुर नगरके समीप शिखिभूधर नामके पर्वतपर रहनेवाले मुनियोंके माहात्म्यसे वहांपर रहनेवाले सिंह आदि दुष्ट जीव भी किसीको बाधा नहीं पहुंचाते थे लोगोंके मुखसे हमने भी यह वात सुनी और सुनते ही उस पर्वतपर अपना निवास स्थान बनाया। वहींपर घोर तपश्चरण करनेवाले सागरसेन नामके मुनिराज विराजमान थे उन्हें देखकर हम दोनो उनके समीप गये, उनसे भगवान जिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्मका स्वरूप सुना और मद्य मांस आदिके भक्षण करनेका त्याग किया ॥ २२२–२२४ ॥ थोडे दिनोंके बाद वे मुनिराज सुप्रतिष्ठ नगरमें चले गये उनके चले जानेपर सिंहने हम दोनोंको मार डाला था और मरकर हम दोनों देव हुए हैं ॥ २२५ ॥ अवधिज्ञानसे हम दोनोंने जान लिया कि हमने गुरुके समीप जो व्रत लिये थे उन्हींके प्रसादसे हम

थोऽब्रवीदसौ । अत परं दिनै कैश्चित्कर्तव्यं मद्भविष्यति ॥ ३२७ ॥ भवद्भ्यामेव तज्ज्ञात्वा विधेयमिति सादरं । स एष तस्य संदेश इति पत्र प्रदर्श्य त ॥ ३२८ ॥ द्रव्येण बहुना सार्द्धं विमानमधिरोप्य त । सुप्रतिष्ठपुराभ्यर्णे गिरिं धरणिभूषण ॥ ३२९ ॥ सद्य प्रापयत स्मैतौ किं न कुर्यादयोदय । तदागमनमाकर्ण्य भूपतिस्तस्य बांधवाः ॥ ३३० ॥ नागराश्च विभूत्यैन सम्मदात्समुपागताः । तेभ्य प्रीतिंकरं दत्वा स्वावास जग्मतु सुरौ ॥ ३३१ ॥ पुरं प्रविश्य सद्रत्ने स महीशमपूजयत् । सोपि संभाव्य त स्थानमानादिभिरतोषयत् ॥ ३३२ ॥ अथान्येद्यु कुमारस्य ज्यायसीं प्रियमित्रिकां । मातरं स्वतनूजस्य प्राप्ये परिणयोत्सवे ॥ ३३३ ॥ आत्मस्नुषामलङ्कर्तुं रत्नाभरणसहतिं । गृहीत्वा रथमारुह्य महादर्शनकर्मणि ॥ ३३४ ॥ यांतीं द्रष्टुं समायाता रथ्याया मूकिका स्वय । वीक्ष्य स्वभूषासदोह स्वष्टमंगुलिसज्ञया ॥ ३३५ ॥ मदीयमेतदित्युक्त्वा जनान् सा ता रथस्थितां । रुध्वा स्थितवती सापि प्राहैपा ग्रहिलेति

देव हुए हैं यही समझकर हम दोनों गुरुके समीप पहुंचे उनकी पूजा वंदना की और पूछा कि हमारे लिये क्या आज्ञा है कुछ काम वतलाइये । इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि थोडें दिन वाद मेरा एक काम होगा उसे जानकर तुम आदरके साथ करना सो मुनिराजकी वह आज्ञा यही है यही कहकर वह पत्र खोलकर दिखाया ॥३२६–३२८॥ तदन्तर उन दोनों देवोंने साथमें बहुतसा धन लेकर उसे विमानमें विठाया और सुप्रतिष्ठ नगरके समीपवाले धरणिभूषण नामके पर्वतपर शीघ्र ही उसे पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्योदय क्या नहीं करता है । प्रीतिंकरका आना सुनकर राजा उसके भाई बन्धु कुटुम्बी लोग और नगर निवासी लोग वडे हर्षसे अपनी अपनी विभूति लेकर उसके समीप आये । उन दोनों देवोंने भी उन सबको वह कुमार सौंपा और फिर वे अपने स्थानको चले गये ॥३२९–३३१॥ नगरमें जाकर प्रीतिंकरने अच्छे अच्छे रत्न भेट देकर राजाके दर्शन किये । राजाने भी उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया और स्थान तथा मान देकर उसे सन्तुष्ट किया ॥ ३३२ ॥ अथानन्तर किसी दूसरे दिन प्रीतिंकर कुमारकी वडी मा प्रियमित्रा अपने पुत्रके विवाहोत्सवमें अपनी पतोहूको पहनानेके लिये सव रत्नोंके आभूपण लेकर और रथमें वैठकर सवको दिखलाती हुई चली । उसे देखनेके लिये वह गूंगी कन्या स्वयं मार्गमें आई और अपने आभूपण देखकर उसने उंगलीके इशारेसे सव लोगोंको समझा दिया कि ये सव आभूपण मेरे हैं तदन्तर वह कन्या रथमें वैठी हुई । प्रियमित्राको रोककर खडी होगई । इसके उत्तरमें प्रियमित्राने भी सवको समझाकर कहा कि यह कन्या पागल है ॥ ३३३–३३४ ॥ तव मंत्र तंत्रोंके जानकारोंने विधि पूर्वक मंत्र तंत्रोंका प्रयोग किया और परीक्षाकर स्पष्ट कह दिया कि न यह पागल है न इसे भूत लगा है ॥ ३३७ ॥ यह वात सुनकर कुमार प्रितिंकरने उस वसुन्धरा कन्याके पास छिपकर एक पत्र भेजा उसमें

तौ ॥ ३३६ ॥ तज्ज्ञाश्च मंत्रतंत्रादिविधिभिः सुप्रयोजितैः । परीक्ष्यैन न भूतोपसृष्टेति व्यक्तमब्रुवन् ॥ ३३७ ॥ कुमारोपि तदाकर्ण्य न बिभेतु कुमारिका । राजाभ्यास समभ्येतु तत्राहं चास्म्युपस्थित ॥ ३३८ ॥ इत्यस्याः प्राहिणोत्पत्रं गूढं तद्वीक्ष्य तत्तथा । श्रद्धायाप्यानिता राज्ञः समीपमगमन्मुदा ॥ ३३९ ॥ तदाभरणवृत्तांतपरिच्छेदाय भूपतिः । धर्माध्यक्षान् समाहूय विचाराय न्ययोजयत् ॥ ३४० ॥ वसुंधरा च तत्रैव ज्ञात्वा सन्निहितो तदा । राजा कुमारमप्राक्षीद्वेत्तीदं किं भवानिति ॥ ३४१ ॥ अभिधाय स्वविज्ञात शेषं वेत्तीयमेव त । देवता नाहमित्येव सोपि भूपमवोधयत् ॥ ३४२ ॥ गधादिभिः समभ्यर्च्य तां पटांतरिता नृप । देवते ब्रूहि यद्दृष्टं तत्तथेत्यनुयुक्तवान् ॥ ३४३ ॥ सा नागदत्तदुश्चेष्टां महीनाथमबूबुधत् । श्रुत्वा तत्सुविचार्यास्मै कुपित्वाऽनेन पापिना ॥ ३४४ ॥ कृतं पुत्रवधः स्वामिद्रोहश्चेति महीपतिः । सर्वस्वहरणं कृत्वा निग्रहीतुं तमुद्यतः ॥ ३४५ ॥ प्रतिषिद्धः कुमारेण नैतद्युक्तं तवेति सः । सोजन्यतस्तदा तुष्ट्वा कुमाराय निजात्मजां ॥ ३४६ ॥ पृथिवीसुंदरी नाम्ना कन्यकां च वसुंधरा । द्वात्रिंशद्वैश्यपुत्रीश्च कल्याणविधिना ददौ ॥ ३४७ ॥ सह

लिख भेजा कि तू किसी तरह डरे मत तू यह सब समाचार लेकर राजाके पास जा मैं भी वहां उपस्थित रहूंगा। वसुधराने पत्र देखकर विश्वास किया और वह प्रसन्नताके साथ राजाके समीप पहुंची ॥ ३१८–३३९ ॥ तब राजाने उसके आभूषणोंके समाचार जाननेके लिये धर्माधिकारियोंको बुलाया और विचार करनेके लिये उन्हें नियुक्त किया ॥ ३४० ॥ राजाने वसुन्धरा कन्याको समीप ही आडमें विठलाकर कुमार प्रीतिंकरसे पूछा कि क्या तुम इसका कुछ हाल जानते हो। इसके उत्तरमें कुमारने अपना जाना हुआ हाल तो कह दिया और फिर उस राजासे समझाकर कह दिया कि वाकीका हाल मैं नहीं जानता यह देवता जानती है ॥३४१–३४२॥ राजाने गन्धादिकसे कपडेकी आडमें वैठी हुई वसुन्धराकी पूजा की और फिर कहा कि हे देवते जो तूने देखा है वह सब ज्योंका त्यों कह दे ॥३४३॥ वसुन्धराने इसके उत्तरमें नागदत्तके सब दुराचार कह सुनाये। राजाने सुनकर उनपर विचार किया और फिर नागदत्तपर क्रोध किया कि इस पापीने पुत्रवध किया है और स्वामिद्रोह किया है। इसीलिये राजाने उसका सब धन लुटवा लिया और वह उसे दंड देनेको तैयार हुआ ॥३४४–३४५॥ परन्तु कुमारने राजाको रोक दिया और समझा दिया कि आपको ऐसा करना योग्य नहीं है। राजा कुमारकी सज्जनता देख बहुत संतुष्ट हुआ और उसने पृथिवीसुंदरी नामकी अपनी कन्या, वसुंधरा और वत्तीस अन्य वैश्योंकी कन्यायें उत्सवके साथ विधिपूर्वक कुमारको व्याह दीं ॥३४६–३४७॥ इसके सिवाय उस श्रीमान् कुमारको पहिलेका स्थान और सब धन दिया तथा अपना आधा राज्य दिया सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने पहिले पुण्य किया है उनके लिये संपदाएं स्वयं आ जाती हैं ॥३४८॥ इसप्रकार प्रसन्न हुए उस प्रीतिंकर कुमारने अपनी बढती हुई इच्छाओंके अनुसार बहुत दिनतक

पूर्वजन्मन्यामरैराज्य च भावते । इरा विहितपुण्यानां स्वयमायाति संपद ॥ ३४८ ॥ प्रीत प्रीतिंकरस्तत्र कामभोगान् समीप्सितान् । स्वेच्छया वर्धमाने च्छविरायानुभूय स ॥ ३४९ ॥ मुनौ सागरसेनाख्ये संन्यस्यान्येद्युरायुषि । लोकांतरं तदागत्य चारणौ समुपस्थितौ ॥ ३५० ॥ ऋजुश्च विपुलाख्यश्च मंस्यते मुनिभूषणौ । रम्ये मनोहरोद्याने गत्वा स्तुत्वा वणिग्वरः ३५१ धर्मं समन्वयुक्तेताविल्याहर्जुमतिस्त्वया । धर्मोहि द्विविधो ज्ञेय सदगृहागृहभेदत ३५२ एकादशविधस्तत्र धर्मोगृहनिवेशिनां । श्रद्धानव्रतभेदादिशेषो दशविधः स्मृतः ॥ ३५३ ॥ क्षांत्यादिः कर्मविध्वंसी तच्छ्रुत्वा तदनंतरं । स्वपूर्वभवसंबध पप्रच्छैवं च सोऽब्रवीत् ॥ ३५४ ॥ शृणु सागरसेनाख्यं मुनिमातपयोगिन । पुरेऽस्मिन्नेव भूपालप्रमुखा वंदितु गताः ॥ ३५५ ॥ नानाविधार्चनद्रव्यैः संपूज्य पुरमागता । शङ्खतूर्यादिनिर्घातं श्रुत्वैकमिह जंबुक ॥ ३५६ ॥ कश्चिल्लोकांतरं यातः पुरेऽयम जनो बहि । क्षिप्त्वायातु ततोभक्षयिष्यामीत्यागत मुनिः ॥३५७॥ भव्योय व्रतमादाय मुक्तिमाशु गमिष्यति । इति मत्वा तमासन्नमसावेवमभाषत ॥ ३५८ ॥ प्राग्जन्मकृतपापस्य फलेनाभूच्छृगालक । इदानीं च कुधी सा-

अच्छे लगनेवाले काम भोगोंका अनुभव किया ॥ ३४९ ॥ किसी एक दिन मुनिराज सागरसेनने आयुके अंतमें संन्यास धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया उसीदिन वहां दो चारण मुनि आ उपस्थित हुए ॥ ३५० ॥ मुनियोंके आभूषण ऐसे उन दोनों मुनियोंके ऋजुमति और विपुलमति नाम थे और वे दोनों ही सुंदर मनोहर नामके उद्यानमें आ विराजमान हुए, प्रीतिंकर शेठ भी उनके दर्शन करनेके लिये गया और स्तुतिकर उनसे धर्मका स्वरूप पूछा । इसके उत्तरमें ऋजुमति नामके मुनिराज कहने लगे कि हे भद्र ! गृहस्थ और अनगारके भेदसे धर्म दो प्रकारका है ॥ ३५१–३५२ ॥ उनमें गृहस्थोंका धर्म श्रद्धान व्रत आदिके भेदसे ग्यारह प्रकारका है और कर्मोंको नाश करनेवाला मुनियोंका धर्म उत्तम क्षमा आदिके भेदसे दश प्रकारका है । इसप्रकार धर्मका स्वरूप सुनकर प्रीतिंकरने अपने पहिले भव पूछे तब वे मुनिराज इसप्रकार कहने लगे ॥ ३५३–३५४ ॥ हे भव्य सुन किसी एक समय इसी नगरके बाहर सागरसेन मुनिराजने आतप योग धारण किया था इसीलिये उनकी बंदना करनेके लिये राजा आदि बहुतसे लोग आये थे ॥३५५॥ अनेक तरहकी पूजाकी सामग्रीसे उनकी पूजाकर शंख तुरई आदि बाजोंके साथ नगरमें आये थे उन बाजोंकी आवाज सुनकर एक गीदडने सोचा कि आज कोई नगरमें मर गया है उसे ही लोग नगरके बाहर रखकर आये हैं इसलिये उसके समीप जाकर उसे खाना चाहिये । यही सोच विचारकर वह मुनिराजके समीप पहुंचा । मुनिराजने उसे देखकर विचार किया कि यह भव्य है और व्रत लेकर शीघ्र ही मुक्त होगा यही समझकर वे उसके समीपमें ही इसप्रकार कहने लगे कि पहिले जन्मके किये हुए पाप कर्मके उदयसे तू गीदड हुआ है परंतु हे मूर्ख ! अब साधुओंका समागम मिलने-

भुसमायोगेऽपि मन्यसे ॥ ३५९ ॥ दुष्कर्मै विरमैतस्माद् दुरंतदुरितावहात् । गृहाण व्रतमभ्यैहि परिणाम शुभावह ॥ ३६० ॥ इति तद्वचनादेष मुनिर्मन्म-
नसि स्थितं । ज्ञातवानिति सजातसंमद स श्रृगालक ॥ ३५६१ ॥ मुनिस्तदिंगिताभिज्ञः पुनरेव समब्रवीत् । त्वमन्यस्य न शक्नोषि व्रतस्यामिषलालस
॥ ३६२ ॥ गृहाणेदं व्रतं श्रेष्ठ रात्रिभोजनवर्जनं । परलोकस्य पाथेयमिति धर्म्यं मुनेर्वच ॥ ३६३ ॥ श्रुत्वा भक्तया परीत्यैन प्रणम्य कृतसम्मदः । गृ
हीत्वा तद्व्रत मद्यमांसादीनि च सोत्यजत् ॥ ३६४ ॥ तदाप्रभृति शाल्यादि विशुद्धाशनमाहरन् अति कृच्छ्र तप कुर्वन् कंचित्कालमजीगमत् ॥ ३६५ ॥ शु-
ष्काहारमथान्येद्युर्भुक्त्वा तृष्णादिबाधित । अर्कास्तमनवेलायां पयःपानाभिलाषया ॥३६६॥ कूप सोपानमार्गेण प्रविश्यात किमप्यसौ । तत्रालोकमनालोक्य
दिनेशोस्तमुपागत ॥ ३३७ ॥ इति निर्गत्य दृष्ट्वाभां पुनः पातुं प्रविष्टवान् । गोमायुरेव द्वि त्रिर्वा कुर्वंस्तत्र गमागमौ ॥ ३६८ ॥ दिनेशमस्तमानीय सोढ-
तृष्णापरीषहः । विशुद्धपरिणामेन मृतिमित्वा ह्वमत ॥ ३६९ ॥ एव कुबेरदत्तस्य भूत्वा प्रीतिंकर सुतः । व्रतेन धनमित्रायामीदृशैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ३७० ॥

पर भी तू दुष्कर्म करना चाहता है अब तू अत्यंत घोर पाप करनेवाले इन दुष्कर्मोंका त्यागकर व्रतोंको स्वीकार कर और शुद्ध परिणामोंको धारणकर ॥ ३५६—३६० ॥ मुनिराजके ये बचन सुनकर वह गीदड मनमें सोचने लगा कि इन्होंने मेरे मनकी बात जानली यह समझकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ । मुनिराजने उसकी चेष्टासे उसका अभिप्राय जानलिया और वे फिर उससे इसप्रकार कहने लगे कि तू मांस भक्षणका लोलुपी है इसलिये तुझसे और व्रत तो वन नहीं सकेगा इसलिये रात्रि भोजन त्याग करनेका व्रत ले यह व्रत सबमें श्रेष्ठ है, और परलोकके लिये पाथेय (रास्तेमें काम आने योग्य खाने पीने आदिकी चीजें) हैं । इसप्रकार मुनिराजके कहे हुए धर्मके बचन सुनकर उस गीदडने बडी भक्तिसे उनकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया और बहुत ही आनंद मनाया । उसने रात्रि भक्षण त्यागका भी व्रत लिया और मद्य मांसादिकका भी त्याग किया ॥ ३६१—३६४ ॥ उससमयसे लेकर वह चावल आदि शुद्ध भोजन करने लगा इस-तरह कठिन तपश्चरण करते हुए उसके कितने ही दिन व्यतीत हुए ॥ ३६५ ॥ किसी एक दिन उसने सूका भोजन किया और प्याससे दुखी होकर सूर्यके अस्त होनेके समय पानी पीनेकी इच्छासे सीढियोंके रास्तेसे किसी कूएंमें उतरा वहांपर प्रकाश न देखकर सूर्यको डूबा हुआ समझकर बाहर निकला और बाहर सूर्यका प्रकाश देखकर पानी पीनेके लिये वह गीदड फिर कूएंमें भीतर गया । इसप्रकार उसने दो तीनवार किया, इतनेमें सूर्य अस्त होगया उस गीदडने व्रतोंमें दृढ रहकर प्यासकी परीषह सहन करते हुए शुद्ध परिणामोंसे शरीर छोडा ॥ ३६५—३६९ ॥ वहांसे आकर कुबेरदत्तकी स्त्री धनमित्राके यह प्रीतिंकर नामका कुमार हुआ है और इसने ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त किया है ॥३७०॥

इति तद्वचनाज्जातसंवेगस्तं यतीश्वरं । शसन् व्रतस्य माहात्म्यमभिवंद्यायथौ गृह ॥ ३७१ ॥ निर्व्रतः सस्तौ वीर्घमश्नन् दुःखान्यनारत । अपारखेदमायाति दुर्भिक्षे दुर्विधो यथा ॥ ३७२ ॥ व्रतात्प्रत्ययमायाति निर्व्रत शंक्यते जनैं । व्रती सफलवृक्षो वा निर्व्रतो बध्यवृक्षवत् ॥ ३७३ ॥ अभीष्ट फलमाप्नोति व्रतवान् परजन्मति । न व्रतादपरो बधुर्नव्रतादपरो रिपु. ॥ ३७४ ॥ सर्वै वीग्व्रतिनो म.ह्या निर्व्रतस्य न केनचित् । उग्रामिर्देवतामिश्च व्रतवान्नाभिभूयते ॥ ३७५ ॥ जरंतोपि नमत्येव व्रतवत नवयौवन । वयोवृद्धो व्रत हीनस्तृणवल्लभ्यने जनैं ॥ ३७६ ॥ प्रवृत्त्या चीयते पाप निवृत्त्या तस्य संक्षय । व्रतं निवृत्तिमित्याहुस्तद्ग्रह्णात्युत्तमो व्रते ॥ ३७७ ॥ व्रतेन जायते संपन्नाव्रत सं.देऽभवत् । तस्मात्संपदमाकांक्षन्निःकाक्षः सव्रतो भवेत् ॥ ३७८ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्वीज जतो. स्वल्पमपि व्रत । तत्र प्रीतिंकरो व च्यो व्यक्त दृष्टांतकांक्षिणां ॥ ३७९ ॥ पूर्वोपात्तव्रतस्येष्टं फलमत्रानुभूयते । क्वचित्कदाचित्किंचित्कि

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने मुनिराजको नमस्कार किया और फिर व्रतोके माहात्म्यकी प्रशंसा करता हुआ वह अपने घर आया ॥३७१॥ देखो जिस प्रकार दुष्काल पडनेपर निर्धन अनेक प्रकारके दुःख पाता है उसी प्रकार व्रतरहित जीव भी इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ तथा सदा अनेक दुःखोंको भोगता हुआ अपार खेदको प्राप्त होता है ॥ ३७२ ॥ व्रत धारण करनेसे यह जीव सब लोगोंका विश्वासपात्र होता है और व्रत रहित होनेसे सदा लोगोंकी दृष्टि में सदा शंकित बना रहता है । व्रती फल सहित वृक्षके समान है और अव्रती फलरहित बांझ वृक्षके समान है ॥ ३७३ ॥ व्रती जीव परजन्ममें इच्छानुसार फल पाता है इस संसारमें व्रतके समान कोई बन्धु नहीं है और अव्रतके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ ३७४ ॥ व्रती पुरुषके वचन सब कोई ग्रहण करता है और अव्रतीके वचन कोई नहीं मानता बडे बडे देव लोग भी व्रती जीवका तिरस्कार नहीं कर सकते ॥ ३७५ ॥ व्रती पुरुष नवयोवन हो तो भी वृद्ध पुरुष भी आकर उसे नमस्कार करते हैं व्रतोंसे ही यह जीव वृद्ध गिना जाता है । व्रतोंसे रहित पुरुषको लोग तृणके समान भी नहीं गिनते हैं ॥ ३७६ ॥ इस संसारमें प्रवृत्तिसे पापोंका संचय होता है और निवृत्तिसे त्यागसे पापोंका क्षय होता है तथा निवृत्तिको ही व्रत कहते हैं इसलिये उत्तम पुरुष व्रतोंको ही ग्रहण करते हैं ॥ ३७७ ॥ व्रत धारण करनेसे सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है और अव्रतीपनासे कभी सम्पदा नहीं आती इसलिये जो सम्पदा चाहता है उसे आकांक्षा रहित व्रत धारण करना चाहिये ॥ ३८८ ॥ इस जीवके लिये थोडासा व्रत भी स्वर्ग और मोक्षका कारण है इसके लिये जो दृष्टान्त देखना चाहते है उन्हें प्रीतिंकरका स्पष्ट दृष्टान्त देख लेना चाहिये ॥ ३७९ ॥ जिन्होंने पहिले अच्छी तरह व्रतोंका पालन किया है वे इस लोकमें इच्छानुसार फलोंका अनुभव करते हैं सो ठीक है क्योंकि बिना

जायते कारणाद्विना ॥ ३८० ॥ कारणाद्दिच्छता कार्यं कार्ययोः सुखदुःखयो. । धर्मपापे विपर्यस्ते तदा नान्यतधीस्त्वतां ॥ ३८१ ॥ धर्मपापे तिमुच्यन्‌ ये द्वितयं कारण वदन । को विधीर्व्यसनी नोचेन्निर्घृणो नास्तिकोऽय वा ॥ ३८२ ॥ धीमानुदीक्षते यस्य जन्मनोस्य हिताहिते । भाविनस्ते प्रपश्यंतः सुर्न धीमत्तमाः कथ ॥ ३८३ ॥ इति मत्वा जिनप्रोक्त व्रतमादाय शुद्धधीः । स्वर्गापवर्गसौख्याय यतेतातिप्रकृतोद्यमः ॥ ३८४ ॥ अथ प्रियंकराख्याय स्वामिः षेक ससंपद । वसुंधरासुत्रे प्रीतिंकरो दत्वा विरक्तधीः ॥ ३८५ ॥ एत्य राजगृहं मार्द्ध बन्धुनिर्भृत्यचांधवैः । भगवत्पार्श्वमासाद्य संयमं प्राप्तवानय ३८६ निश्चयव्यवहारात्मसारत्रियीणसाधन । त्रिरूपमोक्षसन्मार्गभावन तद्बलोदयात्‌ ॥ ३८७ ॥ निहत्य घातिकर्माणि प्राप्यानंतचतुष्टयं । अघातीनि च विघ्नस्य परमात्म्यं प्रयास्यति ॥ ३८८ ॥ इति श्रीमद्गुणाधीशनिर्देशान्मगधेश्वरः । मतिमानमिसंधायान्मन्यानः सकृतार्थतां ॥ ३८९ ॥ अथान्यदा महाराज श्रे-

कारणके क्या कभी किसी जगह कुछ होता है ? अर्थात्‌ सुखादिक सब किसी कारणसे ही प्राप्त होता है ॥ ३८० ॥ जो कारणसे कार्यकी उत्पत्ति मानते हैं उन्हें सुखका कारण धर्म और दुःखका कारण पाप मानना चाहिये जो इससे विपरीत मानते हैं उन्हें दूसरी जगह यह बात स्पष्ट देख लेनी चाहिये ॥ ३८१ ॥ जो धर्म और पापको छोडकर सुख दुःखका कारण और कुछ बतलाते हैं वे या तो मूर्ख हैं या व्यसनी हैं या घृणारहित हैं अथवा नास्तिक हैं ॥ ३८२ ॥ जो बुद्धिमान्‌ इसी जन्मके हित अहितको देखता है उसे भी लोग उत्कृष्ट दृष्टिसे देखते हैं फिर भला जो लोग होनहार जन्मके हित तथा अहितको देखते हैं वे किस तरह सबसे उत्तम बुद्धिमान नहीं हो सकते ? अर्थात्‌ अवश्य होते हैं ॥३८३॥ यही समझकर जिनकी शुद्ध बुद्धि है और जो उद्यमी हैं वे श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए व्रतोंको धारणकर स्वर्ग और मोक्षके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ ३८४ ॥ अथानन्तर विरक्त बुद्धिको धारण करनेवाले कुमार प्रीतिंकरने अपनी स्त्री वसुन्धराके पुत्र प्रियंकरको अभिषेक पूर्वक सब सम्पदाएं समर्पण कीं और स्वयं अनेक सेवक भाई बन्धुओंके साथ राजगृह नगरमें आकर भगवान्‌ वीरनाथके समीप संयम धारण किया है ॥ ३८५–३८६ ॥ मोक्षका साधन निश्चय और व्यवहाररूप जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्गकी भावना है वह इन्होंने चिंतवन की है इसलिये उसके बलसे अब ये मुनिराज घातियां कर्मोंको नष्टकर अनंत चतुष्टय प्राप्तकर और फिर अघातियां कर्मोंका नाश कर परमात्म पदको प्राप्त होंगे ॥ ३८७–३८८ इसप्रकार गणधर देवकी कही हुई धर्मकथाको सुनकर राजा श्रेणिकने उन्हें नमस्कार किया और अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वह अपने घर आया ॥ ३८९ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन क्षायिकसम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले राजा श्रेणिकने हाथ जोडकर गणधरदेवको नमस्कार किया और उनसे बाकी बची हुई अवसर्पिणी

मिकः क्षायिकीं द्दश । दत्तभक्ता गणाधीश कुड्मली कृतहस्तकः ॥ ३९० ॥ शेषावसर्पिणीकालस्थितिं निरवशेषतः । आगाम्युत्सर्पिणीकालस्थितिमप्यनुयुक्तवान् ॥ ३९१ ॥ गणी निजद्विजाभीषुप्रसरैः प्रीणयन् सभां । गिरा गंभीरया व्यक्तमुक्तवानिति सक्रमात् ॥ ३९२ ॥ चतुर्थकालपर्यन्ते स्थिते संवत्सरत्रये । साष्टमासे सपक्षे स्यातसिद्धः सिद्धार्थनंदनः ॥ ३९३ ॥ दुष्षमायाः स्थितिर्वर्षसहस्राण्येकविंशति । शतवर्षायुषस्तस्मिन्नुत्कृष्टेन मता नराः ॥ ३९४ ॥ सप्तारत्निप्रमाणांगा रूक्षच्छाया विरूपकाः । त्रिकालाहारनिरताः सुरतासक्तमानसाः ॥ ३९५ ॥ परेपि दोषाः प्रायेण तेषां स्युः कालदोषतः । यतोस्याः पापकर्माणो जनिष्यंते सहस्रशः ॥ ३९६ ॥ यथोक्तभूभुजामावाज्जाते वर्णादिसंकरे । दुःषमायां सहस्राब्दव्यतीतौ धर्महानितः ॥ ३९७ ॥ पुरे पाटलिपुत्राख्ये शिशुपालमहीपतेः । पापी तनूजः पृथिवीसुंदर्या दुर्जनादिमः ॥ ३९८ ॥ चतुर्मुखाह्वयः कल्किराजो वेजितभूतलः । उत्पत्स्यते मघासंवत्सरयोगसमागमे ।

कालकी पूर्ण स्थिति तथा आगामी होनेवाली उत्सर्पिणी कालकी स्थिति पूछी ॥ ३८९–३९० ॥ इसके उत्तरमें अपने दांतोंकी किरणोंके फैलावसे सब सभाको प्रसन्न करते हुए गणधर देव गंभीर वाणीके द्वारा अनुक्रमसे तथा व्यक्तरीतिसे नीचे लिखे अनुसार कहने लगे ॥ ३९२ ॥ जब चतुर्थकालकी स्थितिमें तीन वर्ष साडे आठ महीने बाकी रहेंगे तब भगवान वीर नाथ मुक्त होंगे ॥ ३९३ ॥ पांचवें दुष्षमा कालकी स्थिति इकईस हजार वर्ष होगी । उसमें अधिकतर मनुष्योंकी आयु सौ वर्षकी होगी ॥ ३९४ ॥ इसी तरह उनके शरीरकी उंचाई सात अरत्नि होगी, उससमयके लोगोंकी कांति रूखी होगी उनका रूप अच्छा नहीं होगा वे तीनों समय भोजनमें लीन रहेंगे और उनके मन कामसेवनमें आसक्त रहेंगे ॥ ३९५ ॥ काल दोषके अनुसार उनमें प्रायः और भी दोष होंगे क्योंकि उस समय प्राय हजारों पापी लोग ही आकर उत्पन्न होंगे ॥ ४९६ शास्त्रोंमें कहे हुए लक्षणवाले राजाओंका अभाव होगा इसलिये राजा लोग वर्णसंकर होंगे । दुःषमाकालके एक हजार वर्ष व्यतीत होजानेपर धर्मकी हानि होनेसे पाटलीपुत्र नगरमें राजा शिशुपालकी रानी पृथिवी सुंदरीके चतुर्मुख नामका एक पापी पुत्र होगा जो कि सबसे अधिक दुष्ट होगा पृथ्वीको कंपायमान करेगा और कल्किराज नामसे प्रसिद्ध होगा । यह कल्की मघा नामके संवत्सरमें होगा ॥ ४९७–४९९ ॥ उस आक्रमण कालवालेकी आयु बहत्तरि वर्षकी होगी और चालीस वर्ष तक वह राज्य करेगा ॥ ४०० ॥ जो छयानवे पाखंड गिने जाते हैं उनकी आज्ञाको जो मानेगा उसे ही वह अपने यहां सेवक रक्खेगा इसप्रकार वह सब पृथ्वीका उपभोग करेगा ॥ ४०१ ॥ तदनंतर किसी एक दिन जिसका हृदय मिथ्यात्व कर्मके उदयसे भर रहा है ऐसा वह पापी अपने मंत्रियोंसे पूछेगा कि कहो पाखण्डियोंमें अब भी क्या कोई हमारी आज्ञाके परान्मुख है । इसके उत्तरमें मंत्री कहेंगे कि हे देव निर्ग्रंथमुनि अब भी

॥ ३९९ ॥ समाना ससतिस्तस्य परमायुः प्रकीर्तितं । चलारिंशत्समाराज्यस्थितिश्चाक्रमकारिण ॥ ४०० ॥ यृण्वत्सुपापडिवर्गस्याज्ञाविधायिन । निजमूलत्वमायाय मही कृत्स्ना स भोक्ष्यति ॥ ४०१ ॥ अथ न्येद्यु स्वमिथ्यात्वपाकाविष्कृतचेतसा । पापडिषु किमस्माक सत्यत्राज्ञापराङ्मुखा. ॥४०२॥ कथ्यतामिति पापेन प्रष्टव्यास्तेन मन्त्रिण । निर्ग्रंथाः सति देवेति ते वदिष्यति सोपि नान् ॥ ४०३ ॥ आचारः कीदृशस्तेषामिति पृच्छति भूपतिः । निज-पाणिपुटामत्रा धनहीना गतस्पृहा ॥ ४०४ ॥ अहिंसाव्रतरक्षार्थं त्यक्तचेला दिगंबराः । साधन तपसो मत्वा देहस्थित्यर्थमाहुतिं ॥ ४०५ ॥ एकद्व्युपोषि-तप्राते भिक्षाकालेंगदर्शनात् । निर्याचना स्वशास्त्रोक्ता गृहीतुमभिलाषिण ॥४०६॥ आत्मनो घातके त्रायके च ते समदर्शिनः । क्षुत्पिपासादिबाधाया सहा सत्यपि कारणे ॥ ४०७ ॥ परपापडिवन्नान्यैरदत्तमभिलाषुकाः । सर्पा वा विहिताव.सा ज्ञानध्यानपरायणा ॥ ४०८ ॥ अनुसचारदेशेषु सवसंति मृगै सह । इति वक्ष्यति दृष्ट स्वैर्विशिष्टास्तेऽस्य मन्त्रिण. ॥ ४०९ ॥ श्रुत्वा तत्सहितु नाह शक्नोम्यक्रमवर्तनं । तेषां पाणिपुटे प्राच्यः पिंड शुल्को विधीयता ॥४१०॥

आपकी आज्ञासे परान्मुख हैं । यह सुनकर वह राजा फिर मंत्रियोंसे पूछेगा कि उनका आचरण कैसा है ? इसके उत्तरमें मंत्री लोग कहेंगे कि वे अपने हाथमें ही भोजन करते हैं, धनहीन होते हैं, इच्छारहित होते हैं, अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिये सब वस्त्रोंका त्यागकर दिगम्बर रहते हैं, तपश्चरणका साधन मानकर केवल शरीरकी स्थितिकेलिये एक दो उपवासके बाद भिक्षाके समयपर केवल शरीर दिखलाकर विना याचनाके अपने शास्त्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार आहार लेनेकी इच्छा करते हैं, वे लोग अपना घात करनेवाले तथा रक्षा करनेवालोंको एक दृष्टिसे देखते हैं, भूख प्यास आदिकी बाधाओंको सहन करते हैं, कारण मिलनेपर भी दूसरे पाखण्डियोंके समान दूसरेके द्वारा विना दी हुई वस्तुकी कभी अभिलाषा नहीं करते, सर्पके समान उनके कहीं रहनेका स्थान नहीं, ज्ञान ध्यानमें सदा तल्लीन रहते हैं और जहां मनुष्योंका संचार तक नहीं ऐसे निर्जन स्थानोंमें केवल हिरणादि पशुओंके साथ रहते हैं इसप्रकार उसके विशेष मंत्री लोग उससे कहेंगे ॥४०८–४०९॥ मंत्रियोंकी यह बात सुनकर वह आज्ञा देगा कि मैं ऐसे अक्रमसे चलनेवालोंको सहन नहीं कर सकता इसलिये उनसे उनके हाथ पर रक्खा हुआ पहिला ग्रास करके रूपमें वसूल करो ॥४१०॥ इस प्रकार राजाकी आज्ञानुसार उस कामपर नियुक्त हुए पुरुष उनसे पहिला ग्रास मांगने लगेंगे इसलिये वे मुनिराज भी पहिला ग्रास खाये विना अर्थात् निराहार ही रहेंगे ॥ ४११ ॥ यह देखकर वे नियुक्त हुए पुरुष राजाको जाकर खबर देंगे कि मालूम नहीं क्या होगया है अभिमानी दिगम्बर लोग आपकी आज्ञा माननेको तैयार नहीं है ॥ ४१२ ॥ यह सुनकर उस पापीके नेत्र क्रोधसे लाल होजायंगे और क्रोधसे जिसका ओठ कंप रहा है ऐसा वह राजा उस ग्रासको लेनेके लिये स्वयं उद्यमी होगा. ॥ ४१३ ॥ उससमय शुद्ध ,सम्यग्दृष्टी

इति राज्ञोपदेशेन याचिष्यंते नियोगिनः । अग्रपिंडमभुंजानाः स्थास्यति मुनयोपि ते ॥ ४११ ॥ तद् दृष्ट्वा दर्पिणो नमा नाम्ना राज्ञः प्रतीप्सव- । किं जातमिति ते गत्वा ज्ञापयिष्यति तन्नृपं ॥ ४१२ ॥ सोपि पापः स्वय क्रोधादरुणभूतवीक्षण । उद्यमी पिंडमाहर्तुं प्रस्फुरद्दशनच्छदः ॥ ४१३ ॥ सोढुं तदक्षमः कश्चिदसुरः शुद्धदृक् तदा । हनिष्यति तमन्याय शक्तः सन् सहते नहि ॥ ४१४ ॥ सोपि रत्नप्रभा गत्वा सागरोपमजीवितः । चिरं चतुर्मुखो दुःखं लोभादनुभविष्यति ॥ ४१५ ॥ धर्मनिर्मूलविध्वंसं सहते न प्रभावका । नास्ति सावद्यलेशेन विना धर्मप्रभावना ॥ ४१६ ॥ धर्मो माता पिता धर्मो धर्मस्त्राताभिवर्द्धकः । धर्ता भवभृता धर्मो निर्मले निश्चले पदे ॥ ४१७ ॥ धर्मध्वंसे सता ध्वसस्तस्माद्धर्मद्रुहोधमान् । निवारयति ये सतो रक्षित तैः सता जगत् ॥४१८॥ निर्मिरिष्ठा प्रोक्तैस्तपोभिर्जनरंजकै । धर्मोपदेशनैरन्यवादिदर्पातिशातनैः ॥ ४१९ ॥ नृपचेतोहरैः श्रव्यैः काव्यैः शब्दार्थसुंदरैः । सद्भिः शौर्येण वा कार्यं शासनस्य प्रकाशन ॥ ४२० ॥ चिंतामणिसमा केचित्प्रार्थितार्थप्रदायिन । दुर्लभा धीमता पूज्या धन्या धर्मप्रकाशका ॥ ४२१ ॥ रुचि प्रवर्तते यस्य जै-

कोई असुर (व्यंतर) उस अन्यायको सह नहीं सकेगा इसलिये वह उस अन्यायी राजाको मार देगा । सो ठीक ही है क्योंकि समर्थ पुरुष अन्यायको कभी सहन नहीं करते हैं ॥ ४१४ ॥ वह चतुर्मुख मरकर पहिले नरकमें जायगा और एक सागरकी आयु पाकर लोभसे बहुत दिनतक दुःखोंका अनुभव करेगा ॥ ११५ ॥ प्रभावशाली पुरुष धर्मका निर्मूल नाश कभी नहीं सह सकते और थोडासा सावधानकर्म (पापरूपी क्रिया) किये विना धर्मकी प्रभावना हो नहीं सकती ॥ ४१६ ॥ इस संसारमें धर्म ही माता है, धर्म ही पिता है, धर्म ही रक्षक है धर्म ही बढानेवाला है, और धर्म ही जीवोंका निर्मल और निश्चल मोक्षपदमें धारण करानेवाला है ॥ ४१७ ॥ धर्मका नाश होनेसे सज्जनोंका नाश होता है इसलिये जो सज्जन पुरुष हैं वे नीच धर्मद्रोहियोंका निवारण करते ही हैं और ऐसे ही पुरुषोंसे सज्जन संसारकी (सज्जनोंके समूहकी) रक्षा होती है ॥ ४१८ ॥ शास्त्रोंमें जैनशासनकी प्रभावनाके आठ अंग वतलाये हैं तपश्चरण करना, लोगोंको प्रसन्न करना, धर्मोपदेश देना, अन्य वादियोंके अभिमानको चूर करना, राजाके मनको वश करना, शब्द तथा अर्थसे सुंदर ऐसे सुनने योग्य काव्य वनाना, और शूरवीरता दिखाना इन सव कारणोंसे सज्जन लोगोंको जैन शासनकी प्रभावना करनी चाहिये ॥ ४१९–४२० ॥ चिंतामणिरत्नके समान मागनेवालोंकी इच्छानुसार धन देकर जो कोई धर्मकी प्रभावना करते हैं ऐसे धन्य और सज्जनोंके द्वारा पूज्य पुरुष इससंसारमें बहुत ही दुर्लभ है ॥ ४२१ ॥ सूत्रोंमें लिखा है कि जैनशासनकी प्रभावना करनेमें जिसके रुचि है मोक्ष उसके हाथमें ही रक्खी है ॥ ४२२ ॥ जो जैनशासनका प्रकाश करता है संसारमें वही वैयाकरण है वही नैयायिक है, वही सिद्धांती है और वही श्रेष्ठ तपस्वी है । यदि वह जैनशासनकी

नशासनभासने । हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते ॥ ४२२ ॥ स शाब्दः सहि तर्कज्ञः स सैद्धांत- स सत्तपाः । यः शासनसमुद्भासी न चेत्किं तैर-नर्थकैः ॥ ४२३ ॥ भासते च जगद्येन भासते जिनशासन । तस्य पादांबुजद्वद्वं ध्रियतां मूर्ध्नि धार्मिकाः ॥ ४२४ ॥ उदन्वानिव रत्नस्य मलयश्चंदनस्य वा । धर्मस्य प्रभवः श्रीमान्पुमान् शासनभासन ॥ ४२५ ॥ कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान् । सदोद्धरति सोद्योगो यस्य लक्ष्मीधरो भवेत् ॥ ४२६ ॥ प्रमदप्रसवाकीर्णे मनोरंगे महानटः । नटताज्जैनसद्धर्मभासनाभिनयोपमः ॥ ४२७ ॥ तनूज कल्किराजस्य बुद्धिमानजितंजय । पत्न्या वालनया सार्द्धं या-तेन शरण सुरं ॥ ४२८ ॥ सम्यग्दर्शनरत्नं च महार्घ्यं स्वीकरिष्यति । जिनेंद्रधर्ममाहात्म्यं दृष्ट्वा सुरविनिर्मितं ॥ ४२९ ॥ तदा प्रभृति दुर्दर्पस्त्याज्य पाख-डिपापिभिः । किंचित्काल जिनेंद्रोक्तधर्मो वर्तिष्यतेतरा ॥ ४३० ॥ एव प्रतिसहस्राब्द तत्र विंशतिकल्किषु । गतेषु तेषु पापिष्ट पश्चिमो जलमंथन ॥ ४३१ ॥ राज्ञा स भविता नाम्ना तदा मुनिषु पश्चिम । चन्द्राचार्यस्य शिष्यः स्यान्मुनिर्वीरागजाह्वय ॥ ४३२ ॥ सर्वश्रीरार्यिकावर्गे पश्चिम श्रावको-

प्रभावना नहीं करता तो फिर व्यर्थ ही व्याकरण न्याय सिद्धांत पढ़ने तथा तपश्चरण करनेसे क्या लाभ है ॥ ४२३ ॥ जो जिनशासनकी प्रभावना करता है उसीसे यह जगत सुशोभित होता है धर्मात्मा लोगोंको उसके दोनों चरणकमल अपने मस्तकपर रखना चाहिये ॥४२४॥ जिसप्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है, मलयागिरि पर्वत चंदनकी उत्पत्तिका कारण है उसीप्रकार जो श्रीमान् पुरुष जिनशासनकी प्रभावना करता है वह धर्मकी उत्पत्तिका कारण है ॥ ४२५ ॥ जो पुरुष राज्य कण्टकोंके समान धर्मके कण्टकोंको निकाल फेंकता है अथवा जो इसके उद्योगमें लगा रहता है वह अवश्य ही लक्ष्मीका स्वामी होता है ॥ ४२६ ॥ इसलिये श्रीजिनेन्द्रके कहे हुए सद्धर्मकी प्रभावनारूपी अभिनयको करनेवाला यह जीवरूपी महानट आनन्दरूपी फूलोंसे भरे हुए मनरूपी रंगभूमिमें सदा नृत्य करता रहो ॥ ४२७ ॥ अथान्तर उस कल्कीका अजितंजय नामका बुद्धिमान् पुत्र होगा वह अपनी वालना स्त्रीके साथ उस व्यन्तरदेवकी शरण लेगा ॥ ४२८ ॥ तथा बहुमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको स्वीकार करेगा उस देवके द्वारा किये हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मके माहात्म्यको देखकर उसी समयसे बहुतसे पापी पाखण्डी अपना अभिमान छोड देंगे और फिर थोडे दिन तक श्रीजिनेन्द्रदेवका धर्म प्रचलित होगा ॥ ४२९-४३० ॥ इस प्रकार एक एक हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की होगा सब वीस कल्की हो चुकने पर सबसे पिछला कल्की पापी जलमन्थन होगा ॥ ४३१ ॥ वह सब राजाओंमें मुख्य होगा उस समय चन्द्राचार्यके शिष्य वीरंगज नामके मुनि सबसे पिछिले मुनि होंगे, सर्वश्री सबसे पिछिली अर्जिका होगी अग्निल नामका सबसे उत्तम पिछिला श्रावक होगा और अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाली फल्गुसेना नामकी सबसे पिछिली श्राविका होगी ॥४३२-४३३॥

समः । अग्निलः फाल्गुसेनाख्या श्राविकापि च सद्व्रता ॥४३३॥ एते सर्वेपि साकेतवास्तव्या दुःषमात्यजाः । सत्सु पंचमकालस्य त्रिषु वर्षेष्वथाष्टसु ४३४ मासेष्वहःसु मासार्द्धमितेषु च सुभावना. । कार्तिकस्यादिपक्षांते पूर्वाह्ने स्वातिसंगमे ॥ ४३५ ॥ वीरांगजोग्निल· सर्वश्रीस्त्यक्त्वा श्राविकापि सा । देहमायुश्च सद्धर्माद्गमिष्यत्यादिम दिव ॥ ४३६ ॥ मध्यान्हे भूभुजो ध्वस· साय हे पाकभोजनं । षट्कर्मकुलदेशार्थहेतुधर्मोश्च मूलत ॥ ४३७ ॥ सार्द्ध स्वहेतुसंप्राप्तौ प्राप्स्यंति विलय ध्रुव । ततोतिदुष्षमादौ स्युर्विशत्यब्दपरायुषः ॥ ४३८ ॥ नरोर्द्धाभ्यधिकारत्नित्रयमानशरीरकाः । सतताहारिण. पापा गतिद्वयसमागताः ४३९ ॥ पुनस्तदेव यास्यति तिर्यङ्नरकनामक । कर्पासवसनाभावाद् गतेष्वब्देषु केषुचित् ॥ ४३९ ॥ पर्णादिवसनाः कालस्याते नग्ना यथेप्सित । चरिष्यति फल दीनि दीना· शाखामृगोपमा ॥ ४४० ॥ एकविंशतिरब्दाना सहस्राण्यब्दवृष्टय । जलदा कालदोषेण कालोहि दुरतिक्रम ॥ ४४१ ॥ क्रमाद्धि वलकायायुरादिह्रासो भविष्यति । प्रांते षोडशवर्षायुर्जीविनो हस्तमात्रका ॥ ४४२ ॥ अस्थिराद्यशुभान्येव प्रफलिष्यति नामसु । कृष्णरूक्षतनुच्छाया दु-

ये सब अयोध्या नगरके रहनेवाले होंगे। पांचवें दुष्पमकालके अन्तिम धर्मात्मा होंगे। जब दुष्पमकालमें तीन वर्ष साढे आठ महीना बाकी रह जांयगे तब कार्त्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन सवेरेके समय स्वाति नक्षत्रमें अच्छी भावनाओंको धारण करनेवाले, वीरांगज अग्निल सर्वश्री और फल्गुसेना श्राविका आयु और शरीर छोडकर सद्धर्मके प्रभावसे पहिले स्वर्गमें जा उत्पन्न होंगे ॥ ४३५–४३५ ॥ दोपहरके समय राजाका नाश होगा और शामको अग्निका नाश होगा तथा षट्कर्म कुल देश और अर्थका कारण ऐसे धर्मका मूलसे नाश हो जायगा। ये सब अपने अपने कारण सहित अवश्य ही नष्ट हो जांयगे तदन्तर अति दुःषमाकालके प्रारम्भमें वीस वर्षकी आयु होगी मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई साढे तीन अरत्निकी होगी वे सदा भोजन करते रहेंगे पापी होंगे नरक तिर्यंच दोनों ही गतियोंसे आकर उत्पन्न होंगे और फिर मरकर इन्हीं दोनों गतियोंमें जांयगे। कपास और वस्त्रोंके अभावसे कुछ दिन तक तो वृक्षोंके छाल पत्ते आदि पहिनेंगे और फिर अन्तमें इच्छानुसार नग्न रहेंगे तथा वन्दरोंके समान फलादिकोंका भोजन करेंगे ॥४३६–४३७॥ कालदोषके कारण उस कालके इक्कीस हजार वर्षतक वादलोंसे वहुत थोडा पानी वरसेगा सो ठीकही है क्योंकि कालका उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४४२ ॥ तदन्तर अनुक्रमसे बुद्धि वल काय आयुकी कमी होती जायगी। अन्तमें सोलह वर्षकी आयु रह जायगी, एक हाथका शरीर होगा, तथा नाम कर्मोंमें जो अस्थिर आदि अशुभ नाम कर्म हैं उन्हींका उदय होगा। उनका शरीर काला शरीरकी कांति रूखी, वे देखनेमें बुरे कर्कश स्वरवाले और दुष्ट होंगे ॥ ४४३–४४४ ॥ वे देखनेमें बुरे होंगे उनका आकार विकट होगा वे दुर्वल होंगे उनके दांत अलग अलग होंगे छाती गाल और आंखकी जगह नीचेकी ओर

भेगा दुःखरा खलाः ॥ ४४४ ॥ दुरीक्ष्या विकटाकारा दुर्वेला विरलद्विजाः । निमग्नवक्षोगंडाक्षिप्रदेशाश्चिपुटनासिका ॥ ४४५ ॥ त्यक्तसर्वसदाचारा क्षुत्पपासादिबाधिता । सरोगा दुःप्रतीकारा दु खखादैकवेदिनः ॥ ४४६ ॥ एवं गच्छति कालेस्मिन्नेतस्य परमावधौ । निःशेष शोषमेतातु शरीरमिव संक्षयं ॥४४७॥ अतिरूक्षा धरा तत्र माविनी स्फुटिता स्फुट । विनाशचिंतयेवाग्निपाश्च प्रम्लानयष्टय ॥ ४४८ ॥ प्रलयः प्राणिनामेव प्रायेणोपजनिष्यते । सुरसिंध्वोश्च सिंधेश्च खेचराद्रेश्च वेदिकाः ॥४४९॥ श्रिता नदीसमुद्भूतमीनमण्डूककच्छपान् । कृत्वा कर्कटक दीश्च निजाहारान् मनुष्यकाः ॥४५०॥ विष्ट्वा क्षुद्रबिलादीनि द्वासप्तति कुलोद्भवा । हीना दीना दुराचारास्तदा स्थास्यति केचन ॥ ४५१ ॥ सरस विरस तीक्ष्ण रूक्षमुष्ण विषं विष । क्षारमेघा क्षरिष्यति सप्तसप्त दिनान्यल ॥ ४५२ ॥ ततो धरण्या वैषम्यविगमे सति सर्वत । भवेच्चित्रा समाभूमिः समाप्तात्रावसर्पिणी ॥ ४५३ ॥ इतोतिदुःषमोत्सर्पिण्याः पूर्वोक्तप्रमाणभाक् । वर्तिष्यति प्रजावृद्धयै ततः क्षीरपयोधरा ॥ ४५४ ॥ तावद्दिननिवबेन निर्विरामममहर्दिव । पयः पयांसि दास्यति धात्री त्यक्ष्यति रूक्षता॥४५५॥

बैठी हुई होगी तथा नाक चिपटी होगी ॥ ४४५ ॥ वे सब तरहके सदाचारोंसे रहित होंगे भूख प्यास आदि बाधाओंसे पीडित होंगे रोगी होंगे ऐसे रोगी होंगे जिनका कुछ भी इलाज न हो सकेगा और महा दुःखोंकाही अनुभव करते रहेंगे ॥४४६॥ इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर सबसे अन्त समयमें पानी सब सूख जायगा और शरीरके समान नष्ट हो जायगा ॥४७॥ उस समय पृथिवी सब अत्यन्त सूखी हो जायगी और अपने नाश होनेकी चिन्तासे ही क्या मानों वृक्ष सब मलिन होकर सूखकर लकडीके समान हो जांयगे ॥ ४४८ ॥ इस प्रकार प्रायः सब प्राणियोंका प्रलय होगा गंगा सिंधु और विजयार्द्ध पर्वतकी वेदिकापर थोडेसे जीव विश्राम लेंगे वे मनुष्य नदियोंमें पैदा हुए मछली, मेंढक, कछुआ, केकडा आदिको खा जांयगे उनमेंसे बहत्तरि कुलोंमें उत्पन्न हुए हीन दीन और दुराचारी जीव छोटे छोटे बिलोंमें घुस जांयगे ॥४४९–४५०॥ तदनन्तर सात दिन तक अग्निकी वर्षा सात दिन तक शीत जलकी वर्षा होगी, सात दिन तक खारा पानी बरसेगा, सात दिन तक विषकी वर्षा होगी, सात दिन तक दुस्सह अग्नि वर्षा होगी, सात दिन तक धूलि बरसेगी और फिर सात दिन धूमकी वर्षा होगी इस प्रकार उनंचास दिन तक वर्षा होगी (?) ॥४५२॥ इसके बाद पृथिवीका विषमपना सब नष्ट हो जायगा और चित्रा पृथ्वी निकल आवेगी तथा यहां ही पर अवसर्पिणीकाल समाप्त हो जायगा ॥ ५३ ॥ इससे आगे उत्सर्पिणीकालका अति दुःषमाकाल चलेगा वह भी इक्कईस हजार वर्षका होगा और इसमें प्रजाकी फिर वृद्धि होगी। पहिले ही क्षीर जातिके मेघ सात सात दिन तक रात दिन विना विश्राम लिये जल और दूधकी वर्षा करेंगे जिससे पृथ्वीका रूखापन नष्ट होजायगा और उसीसे यह पृथिवी अनुक्रमसे वर्णादि गुणोंको प्राप्त होगी इसके बाद अमृत जातिके मेघ सात

तन्निबंधनवर्णाद्विगुणं चावास्य निष्कमात् । तथैवामृतमेघाश्च तावद्दिवसगोचराः ॥ ४५६ ॥ वृष्टिमापातयिष्यति निष्पत्स्यंतेत्र पूर्ववत् । औषध्यस्तरवोगुल्मतृणादीन्यप्यनारत ॥ ४५७ ॥ ततो रसाधिकांभोदवर्षणात्सद्रसोद्भवः । यस्मात्मादा बिलादिभ्यो निर्गत्य मनुजास्तदा ॥ ४५८ ॥ तेषां रसोपयोगेन जीविष्यत्याससमदा. । वृद्धिर्गलति कालेस्मिन् क्रमात्प्राग् ह्रासमात्मनां ॥४५९॥ तन्वादीनां पुनर्दुःषमासमायाः प्रवेशने । आयुर्विंशतिवर्षाणि नराणां परमं मतं ॥४६०॥ सार्द्धारत्नित्रयोत्सेधदेहानां वृद्धिमीयुषां । प्राक्प्रणीतप्रमाणेस्मिन् काले विमलबुद्धय ॥ ४६१ ॥ षोडशाविर्भविष्यति क्रमेण कुलधारिण । प्रथमस्य मनागूना तनुश्चतुररत्निषु ॥ ४२२ ॥ अंत्यस्यापि तनुः सप्तारत्निमि मम्मिता भवेत् । आदिम कनकस्तेषु द्वितीयः कनकप्रभः ॥ ४६३ ॥ तत कनकराजाख्यश्चतुर्थ कनकध्वज । कनकपुंगवातोस्मान्नलिनो नलिनप्रभः ॥ ४६४ ॥ ततो नलिनराजाख्यो नवमो नलिनध्वज । पुंगवांतश्च नलिन पद्म पद्मप्रभाह्वयः ॥ ४६५ ॥ पद्मराजस्तत पद्मध्वजः पद्मादिपुंगवः । महापद्मश्च विज्ञेयाः प्रजा पौरषेयशालिन ॥४६६॥ एतेषां क्रमशः काले शुभभावेन वर्द्धन । महीसलि-

दिन तक अमृतकी वर्षा करेंगे जिससे औषधियां वृक्ष पौधे और घास आदि पहिलेके समान निरन्तर होंगे ॥४५४—४५६॥ तदनंतर रसाधिक जातिके बादल रसकी वर्षा करेंगे जिससे सब चीजोंमें रस उत्पन्न होगा। उत्सर्पिणी कालमें सबसे पहिले जो मनुष्य बिलोंमें घुस गये थे वे निकलेंगे और उस रसके संयोगसे प्रसन्न होकर जीवित रहेंगे। ज्यों ज्यों काल व्यतीत होता जायगा त्यों त्यों शरीरकी उंचाई आयु आदि जिन जिन चीजोंकी पहिले कमी होती जाती थी उन सबकी वृद्धि होती जायगी। इसीतरह अनुक्रमसे दुःषमा काल आवेगा उसमें मनुष्योंकी आयु वीस वर्षकी होगी और शरीरकी उंचाई साडे तीन अरत्नि होगी। फिर वृद्धि होते होते पहिले कहे हुए इकईस हजार वर्ष निकल जानेपर अनुक्रमसे निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले सोलह कुलकर होंगे उनमेंसे पहिले कुलकरके शरीरकी उंचाई कुछ कम चार अरत्नि होगी ॥ ४५७—४६१ ॥ अंतिम कुलकरका शरीर सात अरत्नि ऊंचा होगा। कुलकरोंमें सबसे पहिला कनक नामका कुलकर होगा, दूसरा कनकप्रभ, तीसरा कनकराज, चौथा कनकध्वज, पांचवां कनकपुंगव, छठा नलिन, सातवां नलिनप्रभ, आठवां नलिनराज, नौवां नलिनध्वज, दशवां नलिनपुंगव, ग्यारहवां पद्म, बारहवां पद्मप्रभ, तेरहवां पद्मराज, चौदहवां पद्मध्वज, पंद्रहवां पद्मपुंगव और सोलहवां महापद्म नामका कुलकर होगा वे सब बडे पराक्रमी और पुरुषार्थी होंगे उनके समयमें पानी धान्य आदिकी सदा अच्छी तरह वृद्धि होती रहेगी ॥ ४६५—४६७ ॥ मनुष्य अनाचारका त्याग करेंगे परिमित समयपर योग्य अन्नका भोजन करेंगे, मैत्री, लज्जा, सत्य, दया, इंद्रियदमन, संतोष, विनय, क्षमा, रागद्वेषका त्याग आदि सज्जनोंके चारित्र प्रगट होंगे और लोग अग्निमें पकाकर भोजन करेंगे ॥ ४६८—४६९ ॥ इसप्रकार दूसरा

लकालानां धान्यादीनां च संततं ॥ ४६७ ॥ मनुष्याणामनाचारत्यागो योग्यान्नभोजन । काले परिमिते मैत्री लज्जासत्य दया दम ॥ ४६८ ॥ सन्तुष्टिर्विनय क्षांतीरागद्वेषाद्यतीमता । इत्यादिसाधुवृत्त च वह्निपाकेन भोजन ॥ ४६९ ॥ द्वितीयकाले वर्तेत तृतीयस्य प्रवेशने । सप्तारत्निप्रमाणांगाः खव्येकाब्दायुषो नराः ॥ ४७० ॥ ततस्तीर्थकरोत्पत्तिस्तेषा नामाभिधीयते । आदिम श्रेणिकस्तस्मात्सुपार्श्वोदकसञ्ज्ञक ॥ ४७१ ॥ प्रोष्ठिलाख्य कटपूश्च क्षत्रिय श्रेष्ठिसञ्ज्ञक । सप्तम शङ्खनामा च नदनोऽथ सुनदवाक् ॥ ४७२ ॥ शशाक सेवक प्रेमकश्चातोरणसञ्ज्ञकः । रैवतो वासुदेवाख्यो बलदेवस्ततः परः ॥ ४७३ ॥ भगलिर्वागलिर्द्वैपायनः कनकसञ्ज्ञकः । पादांतो नारदश्चारुपादः सत्यकिपुत्रकः ॥ ४७४ ॥ त्रयोविंशतिरित्येते सप्तारत्निप्रमादिकाः । तत्रैवान्येपि तीर्थेशाश्च तुर्विंशतिसम्मिता ॥ ४७५ ॥ तत्राद्यः षोडशप्रातशताब्दायु प्रमाणकः । सप्तरत्नितनूत्सेधश्चरमस्तीर्थनायकः ॥ ४७६ ॥ पूर्वकोटीमितायुष्कश्चापपञ्चशतो-

काल व्यतीत हो जानेपर तीसरा काल लगेगा उससमय लोगोंका शरीर सात अरत्नि ऊंचा होगा और आयु एकसौ वीस वर्षकी होगी ॥ ४७० ॥ इस समय जो जीव तीर्थंकर होंगे उनके नाम इस प्रकार पहिला श्रेणिक, दूसरा सुपार्श्वोदक प्रोष्ठिल, कटपू, क्षत्रिय, श्रेष्ठी, शंख, नंदन, सुनन्द, शशांक, सेवक, प्रेमक, अतोरण, रैवत, वासुदेव, भगलि, वागलि, द्वैपायन, कनकपाद, नारद चारुपाद, सत्यकिपुत्र ये तेईस जीव आगे तीर्थंकर होंगे (ये इसी क्षेत्रके जीव हैं एक अन्यत्रसे आकर तीर्थंकर होगा) सात अरत्नि आदि इनके शरीरकी ऊंचाई होगी । आगे जो चौवीस तीर्थंकर होंगे, उनमेंसे पहिले तीर्थंकर सोलहवें कुलकर होंगे सौवर्षकी उनकी आयु होगी और शरीर सात अरत्नि ऊंचा होगा । अंतिम तीर्थंकरकी एक करोड पूर्वकी होगी और शरीर पांचसौ धनुष ऊंचा होगा । उनके नाम इस प्रकार होंगे । पहिले महापद्म, दूसरे सुरदेव तीसरे सुपार्श्व, चौथे स्वयंप्रभ पांचवें सर्वात्मभूत, छट्ठे देवपुत्र, सातवें कुलपुत्र, आठवें उदंक, नौवें प्रोष्ठिल, दशवें जयकीर्ति ग्यारहवें मुनिसुव्रत, वारहवें अरनाथ, तेरहवें अपाप (निष्पाप) चौदहवें निष्कषाय, पंन्द्रहवें विपुल, सोलहवें निर्मल, सत्रहवें चित्रगुप्त, अठारहवें समाधिगुप्त, उन्नीसवें स्वयम्भू, वीसवें अनिवर्ती, इकईसवें विमल, तेईसवें देवपाल, और चौवीसवें अनन्तवीर्य, चौवीस तीर्थंकर होंगे सब इंद्र इनके चरणकमलोंकी वंदना करेंगे । उसकालमें उत्कृष्ट लक्ष्मीको धारणकरने वाले वारह चक्रवर्ती होंगे ॥ ४७१-४८० ॥ उनके नाम इसप्रकार होंगे पहला भरत, दूसरा दीर्घदत्त, तीसरा मुक्तदत, चौथा गूढदंत, पांचवां श्रीषेण, छठा श्रीभूत, सातवां श्रीकांत, आठवां पद्म, नौवां महापद्म, दशवां विचित्रवाहन, ग्यारहवां विमलवाहन और वारहवां सबसे पिछला सब संपदाओंको धारण करनेवाला अरिष्टसेन ॥ ४८२-४८४ ॥ इस कालमें वलभद्र भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला चंद्र, दूसरा महाचंद्र तीसरा

च्छ्रितिः । तेषामाद्यो महापद्म सुरदेव- सुपार्श्ववाक् ॥ ४७७ ॥ स्वयप्रभश्च सर्वात्मभूताह्यो देवपुत्रवाक् । कुलपुत्रस्तथोदक प्रोष्ठिलो जयकीर्तिवाक् ४७८ मुनिसुव्रतनामाऽरसज्ञोपायाभिधानक । निष्कषायः सविपुलश्चित्रगुप्तसमाह्वयः । (निष्कषाय· सविपुलो निर्मलश्चित्रगुप्तक) ॥४७९॥ समाधिगुप्तसज्ञश्च स्वयंवरसमाह्वयकः । अनिवर्ती च विजयो विमलो देवपालवाक् ॥ ४८० ॥ अनंतवीर्यो विश्वेंद्रवदितांघ्रिसरोरुह । कालेऽस्मिन्नेव चक्रेशा भाविनो द्वादशोच्छ्रय ॥ ४८१ ॥ भरतो दीर्घदतश्च मुक्तदतस्तृतीयक. । गूढदतश्चतुर्थस्तु श्रीषेणः पंचमो मतः ॥ ४८२ ॥ षष्ठ श्रीभूतिसञ्ज्ञश्च श्रीक तः सप्तम स्मृत । पद्मोऽष्टमो महापद्मो विचित्रादिश्च वाहनः ॥ ४८३ ॥ दशमोऽस्मात्पर ख्यातश्चक्री विमलवाहन । अरिष्टसेन सर्वान्त्यसंपन्न सर्वसंपद ॥ ४८४ ॥ सीरिणोपि नवैवात्र तत्राद्यश्चन्द्रनामकः । महाचद्रो द्वितीयो भूत्ततश्चक्रधरोभवेत् ॥४८५॥ हरिश्चंद्राभिधः सिंहचंद्रश्चद्रो वरादिक. । पूर्णचद्रः सुचद्रश्च श्रीचद्र केशवार्चित ॥ ४८६ ॥ केशवाश्च नवैवात्र तेष्वाद्यो नदिनामकः । नदिमित्रो द्वितीय· स्यान्नदिषेणस्ततः पर: ॥ ४८७ ॥ नदिभूतिश्चतुर्थस्तु प्रतीतः पंचमो

चक्रधर, चौथा हरिचंद्र, पांचवां सिंहचंद्र, छट्ठा वरचंद्र, सातवां पूर्णचंद्र, आठवां सुचंद्र और नौवां नारायणके द्वारा पूज्य श्रीचंद्र ॥ ३८५–३८६ ॥ इसीप्रकार नारायण भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला नंदि, दूसरा नंदिमित्र तीसरा नंदिषेण, चौथा नंदिभूति, पांचवां सुप्रसिद्धवल, छट्ठा महावल, सातवां अतिवल, आठवां त्रिपृष्ट और नौवां विभू इन नारायणोंके शत्रु प्रति नारायण भी नौ ही होगे ॥ ४८७–४८९ ॥ इस दुष्पमसुपम कालके वाद सुपमदुःपम काल आवेगा उसके प्रारंभमें मनुष्यकी उंचाई पांचसौ धनुप होगी और कुछ अधिक एक करोड पूर्वकी आयु होगी । उसके थोडे ही वर्ष वाद वहां जघन्य भोग भूमिकी पूर्ण स्थिति हो जायगी ॥ ४९०-४९२ ॥ इसी तरह पांचवें सुपमकालमें मध्यम भोगभूमिकी स्थिति रहेगी और छट्टे सुपमसुषम कालमें उत्तम भोग भूमिकी स्थिति रहेगी ॥ ४९२ ॥ भरतक्षेत्रके सिवाय और जो वाकी की नौ कर्म भूमियां हैं उनकी प्रवृत्ति भी इसीप्रकार होती है इसप्रकार भूतकालकी अवसर्पिणी और होनहार उत्सर्पिणी ये दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ जो इस कल्पकालकी विधि है वही सव कल्प कालोंमें समझ लेनी चाहिये । ढाई द्वीपमें जितने विदेह क्षेत्र हैं उन सवमें मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई पांच सौ धनुष होती है और आयु एक करोड पूर्वकी होती है । वहांपर तीर्थंकर चक्रवर्ती वलभद्र नारायण आदि सवकी अलग २ संख्या अधिकसे अधिक एकसौ साठ होती है तथा कमसे कम संख्या भी वीस रहती है ॥ ४९४-४९५ ॥ इसतरह सव एकसौ सत्तर कर्मभूमियां हैं उनमें एकसौ सत्तर ही चक्रवर्ती राजा हो सकते हैं उनमें चारो गतियोंसे जीव आकर उत्पन्न होते हैं और अपने आचरणके वशीभूत होकर मोक्ष सहित पांचों गतियोंमें जाते हैं । भोगभूमियोंमें सव जीव कर्मभूमिमेंसे

वल । पष्ठो महाबलस्तेपु सप्तमोतिबलाह्वयः ॥ ४८७ ॥ अष्टमोभूत्त्रिपृष्ठाख्यो द्विपृष्ठो नवमो विभु । तद्वैरिणोपि तावत एव विज्ञेयसञ्ज्ञका: ॥ ४८९ ॥ ततस्तत्कालपर्यंते भवेत्सुपमदु पमा । आदौ तस्या मनुष्याणा पचचापशतोच्छ्रितिः ॥ ४९० ॥ साधिका पूर्वकोट्यायु॰स्थितिर्यातेपु केपुचित् । वर्षेपु निर्विशेपोत्र जघन्यार्यजनस्थिति॰ ॥ ४९१ ॥ ततः पचमकालेपि मध्यभोगभुवः स्थिति । पष्ठकालेपि विज्ञेया वरीयोभोगभूस्थिति ॥ ४९२ ॥ एव शेपनवस्थानकर्मभूमिपु वर्तन । एव कल्पस्थिति प्रोक्ता भूतेष्वपि च भाविपु ॥ ४९३ ॥ एप एव विधिर्ज्ञेय कल्पेपु जिनभापित॰ । विदेहेपु च सर्वेपु पचचापशतोच्छ्रिति ॥ ४९४ ॥ मनुष्याणा परं चायु: पूर्वकोटिमित मत । तत्र तीर्थंकराश्चक्रवर्तिनो रामकेशवा ॥ ४९५ ॥ पृथक्पृथग्बहुत्वेन शत पञ्चाधिक स्मृता: । अल्पत्वेनापि विंशतिर्भवति च पृथक् पृथक् ॥ ४९६ ॥ उत्कृष्टेन शत सप्ततिश्च स्यु सर्वभूमिजा । उत्पद्यते नरास्तत्र चतुर्गतिसमागता ॥४९७॥ गतीर्गच्छति पचापि निजाचारवशीकृता: । भोगभूमिपु सर्वासु कर्मभूमिसमुद्भवा ॥ ४९८ ॥ मनुष्या संज्ञिन तिर्यंचश्च यांत्युपपादन । आदिकल्पद्वये

ही आकर उत्पन्न होते है और मनुष्य तथा संज्ञी तिर्यच ही उत्पन्न होते हैं। भोग भूमिमें उत्पन्न हुए जीव मरकर पहिले और दूसरे स्वर्गमें अथवा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्कोंमें उत्पन्न होते हैं यह नियम है कि वे सब मरकर देव ही होते हैं। मनुष्योंमें भोगभूमिके मनुष्य उत्तम ही होते हैं कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए अपने अपने आचरणोंकी विशेषतासे तीन प्रकारके कहे जाते हैं एक शलाका पुरुप दूसरे साधारण और तीसरे विद्याधर ॥ ४९७–५०१ ॥ उत्सर्पिणी अपसर्पिणीका चौथा पांचवा छट्ठा ये छह काल कनिष्टकाल (जघन्य) गिने जाते हैं। एक पैरवाले, भापारहित, शंकु सरीखे कानवाले, फैले हुए कानवाले, लम्बे कानवाले, खरगोसकेसे कानवाले, अश्वमुख, सिंहमुख, देखनेके अयोग्य, महिपमुख, कोलमुख, व्याघ्रमुख, उलूकमुख, वानरमुख, मत्स्यमुख, कालमुख, गोमुख, मेपमुप, मेघमुख, विद्युन्मुख, आदर्शमुख, हस्तिमुख, पूंछवाले, सींगवाले, ये नीच कुभोगभूमिके मनुष्य होते हैं और अन्तरद्वीपोंमें रहते हैं। सब म्लेच्छखण्डोंकी स्थिति और विजयार्द्ध पर्वतकी स्थिति तीर्थंकरोंके समयके समान रहती है और वृद्धि ह्रास सदा कर्मभूमिमें ही होता है। इस प्रकार श्रेणिकके प्रश्नके अनुसार इन्द्रभूतिगणधरने वचनरूपी किरणोंसे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट करते हुए यह सब हाल कहा। वे कहने लगे कि इसके बाद भगवान् महावीर भी बहुतसे देशोंमें विहार करेंगे ॥ ५०२–५०८ ॥ विहार करते करते अन्तमें वे पावापुर नगरमें पहुंचेंगे वहांके मनोहर नामके वनके भीतर अनेक सरोवरोंके मध्यमें महामणियोंकी शिलापर विराजमान होंगे। विहार छोडकर (योगनिरोधकर) निर्जराको बढाते हुए वे दो दिन तक वहा विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम समयमें स्वाति नक्षत्रमें तीसरे शुक्लध्यानमें तत्पर होंगे।

भावनादिदेवेषु च त्रिषु ॥४९९॥ जीवितांते नियोगेन सर्वे ते देवभाविन । मनुष्येषूत्तमा भोगभूमिजाः कर्मभूभुव ॥५००॥ निजवृत्तिविशेषेण त्रिविधास्ते प्रकीर्तिताः । शलाकापुरुषाः कामा खगाश्चान्ये सुरार्चिताः ॥५०१॥ वतो दिव्यमनुष्यास्तु षष्ठकाला' कनिष्ठका (2) एकोरुकास्तथा भाषाविहीनाः शंकुकर्णका'॥ ५०२ कर्णप्रावरणा लंवशशकादवादिकर्णकाः । अश्वसिंहमुखाश्चान्ये तु प्रेक्ष्या महिषानना ॥५०३॥ कोलव्याघ्रमुखाश्चैवमुलूकमुखनामका ,। शाखामृगमुखा मत्स्यमुखाः कालमुखास्तथा ॥५०४॥ गोमेषमेघवक्त्राश्च विद्युदादर्शवक्त्रकाः। हरितवक्त्रा कुमानुष्यजा लांगूलिविषाणिन:५०५ऐते च नीचका यस्मादतर-द्वीपवासिन । म्लेच्छखंडेषु सर्वेषु विजयार्द्धेषु च स्थितिः ॥५०६॥ तीर्थकृत्कालवद्वृद्धिह्रासवत्कर्मभूमिषु । इद च श्रेणिकप्रश्नादिद्रभूतिर्गणाधिप' ॥५०७॥ इत्याह वचनाभीषुनिरस्ताततमस्तति; । इत्यत्ततीर्थेनाथोपि विहृत्य विषयान् बहून् ॥ ५०८ ॥ क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनांतरे । बहूना सरसा मध्ये महामणिशिलातले ॥ ५०९ ॥ स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जर । कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥ ५१० ॥ स्वातियोगे तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायण । कृतत्रियोगसरोधसमुच्छिन्नक्रिय श्रित ॥ ५११ ॥ हताघातिचतुष्क सन्नशरीरो गुणात्मकः । गता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववांछित ॥ ५१२ ॥

तदन्तर तीनों योगोंका निरोधकर समुच्छिन्न क्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानका आश्रय लेंगे तथा चारों उपाधियां कर्मोंको नाशकर शरीररहित केवल गुणरूप होकर एकहजार मुनियोंके साथ सवके द्वारा वांच्छनीय ऐसा मोक्ष पद प्राप्त करेंगे ५०९-५१२ उसी समय पुरुषार्थका अंतिम जो अनन्त सुख है वह उन्हें प्राप्त होगा। तदन्तर इन्द्रादि सव देव आवेंगे मोहके नाश करनेवाले भगवानके शरीरकी विधि पूर्वक दिव्य गन्धमाला आदि द्रव्योंसे पूजा करेंगे और फिर अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे प्रगट हुई अग्निकी शिखामें उस शरीरको स्थापन करेंगे। फिर अर्थोसे भरी हुई प्रशंसा वाचक स्तुतिसे संसारको नाश करनेवाले भगवानकी स्तुति करेंगे। जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष पधारेंगे उसी दिन मुझे भी घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानरूपी नेत्र प्रगट होगा। भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशोंमें विहार करूंगा और फिर विपुलाचल पर्वतपर जाकर मुक्त हूंगा। जिस दिन मैं मुक्त हूंगा उसी दिन सकल श्रुतज्ञानके पारगामी सुधर्माचार्यके लोक अलोक सबको एकसाथ देखनेवाला अंतिम केवलज्ञान प्रगट होगा सुधर्माचार्यके निर्वाण होनेकें समय ही जंवूकुमारको केवल ज्ञान प्रगट होगा ॥ ५१२–५७८ ॥ यह जम्बूकुमार अंतिम केवल ज्ञानी होंगे। जम्बूकुमारके वाद जो इस भरतक्षेत्रमें धर्मोपदेश देंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे। नंदिमुनि, श्रेष्ठ नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और महातपस्वी भद्रवाहु ये सव अनेक नयोंके विचित्र अर्थोंसे भरे हुए पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी होंगे ॥ ५१९–५२० ॥ विशुद्धिको धारण करनेवाले ये पांचों ही अनुक्रमसे होंगे। इनके बाद विशाखार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल,

तदेव पुरुषार्थस्य पर्यंतोनतसौख्यकृत् । अथ सर्वेपि देवेंद्रा वह्नींद्रमुकुटस्फुरत् ॥५१३॥ हुताशनशिखान्यस्ततद्देहा मोहविद्विष । अभ्यर्च्य गंधमाल्यादिद्रव्यै- र्दिव्यैर्यथाविधि ॥ ५१४ ॥ वंदिष्यते भवातीतमर्थ्यनंदारवस्तवै । वीरनिर्वृतिसंपासदिन एवास्तघातिकः ॥ ५१५ ॥ भविष्याम्यहमप्यथ केवलज्ञानलोचनः । भव्याना धर्मदेशेन विहृत्य विषयास्ततः ॥ ५१६ ॥ गत्वा विपुलशब्दादिगिरौ प्राप्स्यामि निर्वृतिं । मन्निर्वृतिदिने लब्ध्वा सुधर्मा श्रुतपारगः ॥ ५१७ ॥ लो- कालोकावलोकैकलोकमत्यावलोकन । तन्निर्वाणक्षणे भावी जवूनामात्तकेवल ॥ ५१८ ॥ अत्र केवलिनामस्मिन्भरते य प्ररूप्यते । नदी मुनिस्तत श्रेष्ठो नदिमित्रोपराजितः ॥ ५१९ ॥ गोवर्द्धनश्चतुर्थोनु भद्रवाहुर्महातपाः । नानानयविचित्रार्थसमस्तश्रुतपूर्णता ॥ ५२० ॥ ऐते क्रमेण पचापि प्राप्स्यन्त्याभविशु- द्वय । ततो भावी विशाखार्यः प्रोष्ठिल क्षत्रियाकक ॥ ५२१ ॥ जयनामानुनागाह्वः सिद्धार्थो धृतिषेणकः । विजयो वुद्धिलो गंगदेवश्च क्रमतो मता ॥ ५२२ ॥ एकादश सहश्रीमद्धर्मसेनेन धीमता । द्वादशागार्थकुशला दशपूर्वधराश्च ते ॥ ५२३ ॥ भव्याना कल्पवृक्षाः स्युर्जैनधर्मप्रकाशका । ततो न क्षत्रनामा च जयपालश्च पांडुना ॥ ५२४ ॥ ध्रुवसेनोनु कसार्यो विधिनैकादशागका । सुभद्रश्च यशोभद्रो यशोवाहु प्रकृष्टधी ॥ ५२५ ॥ लोहनामा चतुथ

गंगदेव, और बुद्धिमान धर्मसेन ये सव श्रीमान् अनुक्रमसे होंगे तथा ग्यारह अंग दश पूर्वके पाठी और द्वादशांगके अर्थ कहनेमें अत्यन्त कुशल होंगे ॥ ५२१–५२२ ॥ ये ग्यारह मुनि भव्योंको कल्पवृक्षके समान होंगे और जैन धर्मको प्रकाश करनेवाले होंगे। इनके वाद नक्षत्र, जयपाल, पाडु, ध्रुवसेन, और कंसार्य ये विधि पूर्वक ग्यारह अंगोंके जानकार होंगे। इनके वाद सुभद्र, यशोभद्र प्रकृष्ट वुद्धिवाले यशोवाहु और चौथे लोहाचार्य ये चार आचारांग नामके पहिले अंगके जान-कार होंगे। इन सव तपस्वियोंकी परम्परा अर्थात् सव मुनि जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे प्रगट हुए पवित्र और पापोंका नाशकर नेवाले शास्त्रोंका प्ररूपण करेंगे। इनके वाद अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले वीरसेन जिनसेन आदि महातपस्वी शेष मुनि भी श्रुतज्ञानके एकादशको प्रगट करेंगे। तथा इसी तरह प्रायः दुःषमकालके समाप्त होने तक जिनधर्मका प्रकाश होता रहेगा ॥ ५२६–५२८ ॥ भरत, सगर, जिनके द्वारा प्रशंननीय सत्यवीर्य, राजा मित्र मित्रवीर्य भाव, अच्छी कांतिको धारण करनेवाला धर्मवीर्य दानवीर्य, मघवा शुद्धवीर्य, सीमन्धर त्रिपृष्ट स्वयम्भू पुरुषोत्तम पुरुषपुण्डरीक, प्रशंसनीय सत्यदत्त, राजा कुनाल, सब पृथिवीका और मनुष्योंका स्वामी नारायण, सुभौम, सार्वभौम, अजितंजय, विजय, उग्रसेन, महासेन, और शुद्ध सम्यक्त्वी तू श्रेणिक। ये सव वुद्धिमान थे धर्मसम्बन्धी प्रश्न करनेमें चतुर थे, और सदा चौबीसो तीर्थंकरोंके चरण कमलोंकी सेवा करनेवाले थे ॥ ५२९–५३३ ॥ भगवान वर्द्धमानका जीव पहिले पुरूरवा भील था, फिर पहिले स्वर्गमें देव हुआ, फिर भरतका पुत्र मरीचि हुआ, पांचवें स्वर्गमें देव हुआ फिर जटिल ब्राह्मण हुआ वहांसे सौधर्म स्वर्गमें देव

स्यादाचारांगविदस्त्वमी । जिनेंद्रवचनोद्गीर्णं पावन पापलोपनं ॥ ५२६ ॥ श्रुत तपोभृतामेषा प्रणेष्यति परंपरा । शेषैरपि श्रुतज्ञानस्यैकोदेशस्तपोधनैः ॥ ५२७ ॥ जिनसेनानुगैर्वीरसेनै प्राप्तमहर्द्धिभि. । समाप्ते दुष्षमाया प्राक् प्रायशो वर्तयिष्वति ॥ ५२८ ॥ भरत सगराख्योनु सत्यवीर्यो जिनस्तुत । महीशो मित्रभावाह्वो मित्रवीर्योर्यमद्युति ॥ ५२९ ॥ धर्मदानादिवीर्यौ च मघवा शुद्धवीर्यक: । सीमधरस्त्रिपृष्ठाह्वयः स्वयंभू पुरुषोत्तम ॥ ५३० ॥ पुडरीकांतपुरुषो दत्त सत्यादिभि स्तुत । कुनालपालक पृथ्व्या पतिर्नारायणो नृणा ॥ ५३१ ॥ सुभौम: सार्वभामोऽजितजयोविजयाभिध । उग्रसेनो महासेनोजिनस्त्वं श्रेणिकेत्यमी ॥ ५३२ ॥ सर्वे क्रमेण धीमता धर्मप्रश्नविदावरा । चतुर्विंशतितीर्थेशा संतत पादसेविन ॥ ५३३ ॥ पुरूरवा सुर प्राच्यकल्पेभूद्भरतात्मज: । मरीचिब्रह्मकल्पोत्थस्ततोभूज्जटिलद्विजः ॥ ५३४ ॥ सुर: सौधर्मकल्पे तु पुष्यमित्रद्विजस्तत: । सौधर्मजोमरस्तस्माद्द्विजन्माग्निसमाह्वय: ५३५ सनत्कुमारदेवोस्मादग्निमित्राभिवो द्विज: । मरुन्माहेंद्रकल्पेभूद्भारद्वाजो द्विजान्वये ॥ ५३६ ॥ जातो म हेंद्रकल्पेनु मनुष्योनु ततश्च्युत: । नरकेषु त्रसस्थावरेष्वसख्यातवत्सरान् ॥ ५३७ ॥ भ्रांत्वा ततो विनिर्गत्य स्थावराख्यो द्विजोऽभवत् । ततश्चतुर्थकल्पेभूद्विश्वनंदी ततश्च्युत: ॥ ५३८ ॥ महाशुक्रे ततो दे-

हुआ, फिर अग्निविम नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे तीसरे सानत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ। फिर अग्निमित्र नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे आकर भारद्वाज नामका ब्राह्मण हुआ और फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे च्युत होकर फिर मनुष्य हुआ। और फिर असंख्यात वर्षोंतक नरकोंमें तथा त्रस और स्थावर पर्यायोंमें उसने परिभ्रमण किया ॥ ५३४–५३७ ॥ वहांसे निकलकर फिर स्थावर नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ फिर राजा विश्वनन्दी हुआ, इसके बाद महाशुक्र नामके दशवें स्वर्गमें देव हुआ फिर तीन खण्डका स्वामी त्रिपृष्ट नारायण हुआ, वहासे सातवें नरक गया और फिर सिंह हुआ ॥ ५३८–५३९ ॥ वहांसे फिर पहिले नरकमें गया वहांसे आकर सिंह हुआ इसी सिंहकी पर्यायमें उसने निर्मल सद्धर्म धारण किया और उस पर्यायको छोडकर सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेतु नामका उत्तम देव हुआ ॥५४०॥ तदनन्तर कनकोज्वल नामका विद्याधरोंका राजा हुआ, फिर सातवें स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर राजा हरिषेण हुआ, फिर महाशुक्र नामके दशवे स्वर्गमें देव हुआ, उसके बाद प्रियमित्र राजा हुआ फिर सहस्रार नामके बारहवे स्वर्गमें सूर्यप्रभनामका देव हुआ ॥ ५४१–५४२ ॥ वहांसे आकर नन्द नामका राजा हुआ, वहांसे सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें इन्द्र हुआ और वहासे च्युत होकर भगवान वर्द्धमान हुआ ॥ ५४३ ॥ जिन्हें पंचों कल्याणोंकी ऋद्धियां प्राप्त हुई हैं और जिन्हें मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त हुई ऐसे वे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी गुणभद्रके लिये अथवा गुणवानोंके लिये सब तरहके मंगल प्रदान करें ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार अच्छी कथाके रससे अत्यंत

वज्रिखडेशविपृष्ठवाक् । सप्तमे नरके तस्मात्तस्माच्च गजविद्विष: ॥ ५३९ ॥ आदिमे नरके तस्मात्सिंह: सद्धर्मनिर्मल: । तत: सौधर्मकल्पेभूत्सिंहकेतुसुरोत्तम: ॥ ५४० ॥ कनकोज्वलनाम्नाभूत्ततो विद्य धराधिप: । देव: सप्तमकल्पे तु हरिषेणस्ततो नृप: ॥ ५४१ ॥ महाशुक्रे ततो देव: प्रियमित्रस्ततो महीट् । स सहस्रारकल्पेभूद्देव: सूर्यप्रभाह्वय: ॥५४२॥ राजनंदाभिधस्तस्मात्पुष्पोत्तरविमानज: । अच्युतेंद्रस्ततश्च्युत्वा वर्द्धमानो जिनेश्वर: ॥ ५४३ ॥ प्राप्तपंचमहाकल्याणर्द्धि: प्रास्तुत सिद्धिभाक् । प्रदिश्याद्गुणभद्रेभ्य: स विभु: सर्वमंगलं: ॥ ५४४ ॥ इत्थ गौतमवक्त्रवारिजलसद्वाग्वल्लभावाङ्मयै: पीयूषै: सुकथारसातिमधुरै: भक्त्योपयुक्तैश्चिरं । सा संसन्मगधाधिपश्च महतीं तुष्टिं सम जग्मतु: पुष्टिं दृग्विबोधयोर्विदधतीं सर्वार्थसंपत्करीं ॥ ५४५ ॥ श्रीवर्द्धमानमनिशं जिनवर्द्धमानं त्वं त नये स्तुतिपथं पथि संप्रधाते । योंत्योपि तीर्थंकरमग्रिममप्यजैषीत् काले कलौ च पृथुलीकृतधर्मतीर्थ: ॥ ५४६ ॥ स्तुत्या प्रसादयितुमर्थिजनो विनौति न त्वय्यदस्तव स मोहजयस्तवोय । तत्रार्थिनस्तुतिरिहेश ममास्ति वाढ स्तुत्यस्तुतिप्रणयिनोऽर्थपराङ्मुखस्य ॥ ५४७ ॥ येषा प्रमेयविमुख सुमुखप्रमाण तेन स्तुतेर्हितजुषा विषयीभवेयु । त्व विश्वभावविहितावगमात्मकोर्हन् वक्ता हि तस्य ततएव हितैषिवंद्य ॥ ५४८ ॥ दातासि न स्तुतिफलं

मधुर, भक्तिके द्वारा आस्वादित और अमृतमय ऐसे गौतम गणधरके मुखरूपी कमलसे सुशोभित हुई सरस्वतीके वचनोंसे वह सब सभा तथा मगधेश्वर राजा श्रेणिक दोनों ही अर्थ और संपदाओंके देनेवाले तथा ज्ञान और दर्शनको पुष्ट करनेवाले ऐसे बडेभारी संतोषको प्राप्त हुए थे ॥ ५४५ ॥ जो श्रीवर्द्धमान सदा वर्द्धमान वा जयशील रहते हैं जो तुम्हें निर्मल मोक्षमार्गमें ले जाते हैं जिनका धर्म तीर्थ कलिकालमें भी बडे विस्तारसे प्रचलित हुआ है और इसलिये ही तीर्थंकरोंमें अंतिम होकर भी जिन्होंने प्रथम तीर्थंकर वृषभदेवको भी जीतलिया था ऐसे श्री वर्द्धमानकी मैं स्तुति करता हूं ॥ ५४६॥ हे देव ! अर्थी-कुछ इच्छा रखनेवाले, जन आपको प्रसन्न करनेके लिये नमस्कार वा स्तुति करते हैं परंतु आपका यह जय स्तोत्र ऐसे स्तोत्रोंके समान नहीं है। हे ईश ! हे स्तुति करने योग्य ! मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता हूं न मुझे कुछ स्तुति करनेके फलकी अभिलाषा है मुझे तो केवल स्तुति करने योग्य पुरुषमें प्रेम है इसलिये मेरी यह स्तुति इससंसारमें खूब ही प्रसिद्ध हो ॥ ५४७ ॥ हे सुमुख जिनका प्रमाण प्रमेयसे रहित है ये पुरुष हित चाहनेवाले हम लोगोंके स्तुतिके गोचर नहीं हो सकते अर्थात् हम लोग उनकी स्तुति नहीं कर सकते हे अर्हन् ! आप तो समस्त पदार्थोंके कहे हुए ज्ञानरूप ही है और इसलिये ही आप उन पदार्थोंके स्वरूपके वक्ता वा कहनेवाले हैं अतएव आपही हितचाहनेवाले हम लोगोंके द्वारा बंदनीय हैं ॥ ५४८ ॥ हे जिनेंद्र यद्यपि आप स्तुतिका फल नहीं देते हैं तथापि स्तुति करनेवाला पुरुष याचना न करता हुआ भी सबसे अच्छे और सबसे अधिक फलको बहुत शीघ्र और अवश्य प्राप्त होता है फिर

समुपैत्यवश्यं स्तोता महज्झटिति शुभ्रमयान्वितोऽय । कुर्यात् कृतस्तव न सत्स्तवन जिनेश दैन्यातिभीरहमम्यफलाभिलाषी ॥ ५४९ ॥ निष्कारणं तृणलवं च ददद्विधी.को लोके जिन त्वयि ददासि निरर्थकृत्त्व । मुक्तिप्रदायिनि तथापि भवंतमेव प्रेक्षावता प्रथमगण्यमुशंति चित्र ॥ ५५० ॥ सर्वस्वमर्थिजनता स्वमिह स्वकीय चक्रु परे निरु०धिरिथरसत्त्वसाराः । प्रोलंघ्य तान् जिन वदति वदान्यवर्यं त्वां वाग्मिरेव वितरंतमहो विदग्धाः ॥ ५५१ ॥ धी पौरुषं च विषयार्जनमेव येषां सौख्यं च विश्वविषयाविरतोपयोग । तेषां कथं तदुभयप्रतिपक्षरूप त्वच्छासन श्रवणमिज्जिनमात्रनिष्ट ॥ ५५२ ॥ पुण्यं त्वया जिनविनेयविधेयमिष्ट गत्यादिमिःपरमनिर्वृतिसाधनत्वात् । नैवासन्नरिलसुख प्रति तच्च यस्माद् बंधप्रद विषयनिष्टमभीष्टघाति ॥ ५५३ ॥ कायादिक सदसि ते विफल किलाहुर्नैतद्वचस्तव निशम्य निशाम्य साक्षात् । त्वा याति निर्वृतिमिहैव विनेयमुख्या मुख्यं फलं ननु फलेषु परोपकार ॥ ५५६ ॥ यत्क्षणक्षतिकृदात्मनि

भला मैं तो दीनतासे अत्यंत डरता हुआ भी सबसे अधिक फलकी इच्छा रखता हूं इसलिये आपका स्तोत्र क्यों न करूं ॥५४९॥ संसारमें जो कोई विना कारणके एक तृणका टुकडा भी देता है वह बुद्धिहीन मूर्ख गिना जाता है। हे जिनेंद्र! आप मोक्ष देनेवाले हैं तथापि लोग आपको देते हैं इसलिये आप अनर्थकारी अर्थात् अपना प्रयोजन सिद्धकर दूसरेका उपकार करनेवाले हैं तथापि आश्चर्य है कि लोग आपको ही बुद्धिमानोंमें सबसे उत्तम मानते हैं ॥५४०॥ हे देव सत्त्वशाली लोग अपना सब धन याचकोंको देकर स्वयं विल्कुल परिग्रह रहित हो जाते हैं तथापि हे जिन उनको उलंघनकर कितने ही चतुर लोग केवल वचनोंसे ही देनेवाले आपको ही दान देनेवालोंमें सबसे उत्तम कहते हैं यह एक आश्चर्यकी वात है ॥५५१॥ हे देव! जिनकी बुद्धि और जिनका पुरुषार्थ केवल विषय सेवन करनेकेलिये है और जिनका सुख विषयोंसे विरक्तचित्त न होना है उन लोगोंको विषयसेवन और विषय जन्य सुखसे प्रतिकूल ऐसा आपका शासन कानोंको फोडदेनेवाला कैसे नहीं होसकता अर्थात् होता ही है ॥ ५५२ ॥ हे जिन आपने जो पुण्यका स्वरूप कहा है वह ज्ञानादिकके द्वारा भव्य जीवोंको सिद्ध करने योग्य है और सबको इष्ट है क्योंकि ज्ञानादिकके द्वारा उपार्जन किया हुआ पुण्य ही परम मोक्षका साधन है। जो देवादिकोंके पूर्ण सुखके लिये किया जाता है वह कुछ पुण्य नहीं है क्योंकि वह बंधका कारण है विषयोंमें लुभानेवाला है और मोक्ष रूप इष्टका विघात करनेवाला है ॥ ५५३ ॥ हे देव! यद्यपि आपका शरीर आदि विद्यमान है तथापि लोग उसे निष्फल नहीं कहते हैं क्योंकि आपके वचन सुनकर तथा आपका साक्षात् रूप देखकर मुख्य २ शिष्य इसी भवमें मुक्त हो जाते हैं सो ठीक ही है क्योंकि फलोंमें परोपकार ही सबसे मुख्य फल है ॥ ५५४ ॥ जो आत्माके ज्ञान आदि लक्षणरूप गुणों को नष्ट करदेनेवाला है ऐसा नामादिक कर्म क्या आपके ज्ञान दर्शन रूप उपयोगको नष्ट कर सकता है? कभी नहीं।

तद्धि कर्म नामादिक किमु निहंति तवोपयोग । ततस्तया जिन भवंतमसिद्धमिच्छन्निच्छेदनूर्ध्वगमनादतनोरसिद्धिं ॥ ५५५ ॥ साद्यंतहीनमनवद्यमनादिसांत सावद्यमादिरहितानवसानमाहु । त्वं दुःखित सुखिनमप्युभयव्यपेतं तेनैव दुर्गमतमोसि नयानभिज्ञैः ॥ ५५६ ॥ संयोगज स्वज इति द्विविधो हि भावो जीवस्य योगविगमाद्विगमी तदुत्थ । स्वोत्थे स्थिति परमनिर्वृतिरेषमार्गो दुर्गं परस्य तव वाक्यबहिष्कृतस्य ॥ ५५७ ॥ आस्तामनादिनिगलच्छिदया ददासि यन्मुक्तिमंतरहितां तदिहालमेया । स्नेहादिहेतुविनिवृत्तसमस्तसत्त्वसंपालनप्रवणतैव तवाप्ततायै ॥ ५५८ ॥ बोधस्तवाखिलविलोकनविभ्रमी, किं किं वाग्मिता मितपदार्थनिरूपणाया । किं स्वार्थसंपदि परार्थपराङ्मुखस्त्वं किं नासि सत्सु जिन पूज्यतमस्त्वमेव ॥ ५५९ ॥ विश्वावलोकनवितन्वदनंतवीर्यव्यापारपारशरण न कदापि ते स्यात् । चित्रं तथापि सुखिना सुखित भवंत संतो वदति किमु भक्तिरुतावबोध ॥ ५६० ॥ भव्यात्मना परमनिर्वृतिसाधनार्थं त-

हे जिन ! उन कर्मोंकी सत्तासे ही आपको असिद्ध होनेकी इच्छा करता हुआ ऊर्ध्वगमनके अभावसे शरीररहित न होनेकी इच्छा करता है। हे देव ! आपको आदि अंत रहित, पाप रहित, अनादि, पर अंतरहित, सावद्य, आदि रहित, अंतरहित सुखी दुखी और सुख दुःख दोनोंसे रहित, कहते हैं इसलिये हे देव ! जो नयोंको नहीं जानते वे आपको जान भी नहीं सकते ॥ ५५६ ॥ हे नाथ ! जीवोंके भाव दो प्रकारके हैं एक-संयोगसे उत्पन्न होनेवाले और दूसरे स्वभाविक। जो संयोगसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं वे संयोगके नाश होनेसे नष्ट होजाते हैं। उनके नष्ट होनेसे आत्माके ज्ञानादि स्वाभाविक भावोंमें जो आत्माकी स्थिति है वही परम निवृत्ति वा परम मोक्ष कहलाती है परंतु आपके वाक्योंको न माननेवाले जो अन्य दर्शनकार हैं उनको यह मार्ग अत्यंत कठिन है ॥ ५५७ हे देव अनादि कालसे लगे हुए कर्मोंके नष्ट होनेपर आप अंतरहित मोक्ष देते हैं यह बात तो दूर ही रही आप स्नेह आदि कारणोंसे रहित होकर भी समस्त प्राणियोंके पालन करनेमें अत्यंत चतुर हैं यही हेतु आपकी आप्तता सिद्ध करनेके लिये बहुत है ॥ ५५८ ॥ हे स्वमिन् ! क्या आपका ज्ञान समस्त पदार्थोंके देखनेमें समर्थ नहीं है ? क्या आपकी वाणी प्रमाणभूत पदार्थोंके निरूपण करनेमें समर्थ नहीं है ? क्या आपकी परपदार्थोंसे परांमुखता अपने आत्माके अनंतगुणरूप संपदाओंके लिये समर्थ नहीं है और इसीलिये हे जिन ! क्या आप सज्जनोंमें सबसे अधिक पूज्य नहीं है ? ॥ ५५९ ॥ हे प्रभो ! समस्त संसारको देखनेके लिये फैले हुए आपके अनंतवीर्यके व्यापारका पार कभी प्राप्त किया जा सकता तथापि आश्चर्य है कि सज्जन लोग आपको ही सुखियोंमें सबसे अधिक सुखी बतलाते हैं परन्तु यह उनकी भक्ति है अथवा यथार्थ ज्ञान है सो जान नहीं पडता ॥५६०॥ हे देव ! आपकी जितनी चेष्टा हैं वे सब भव्य जीवोंको मोक्ष सिद्ध करनेके लिये हैं परन्तु आपको उसके किसी तरहके फलकी

वेष्टित तव न तत्र फलोपलिप्सा। तस्मात्त्वमेव जिन वागमृतावुवृष्टया संतर्पयन् जगदकारणवधुरेक ॥ ५६१ ॥ जीवोयमुद्यदुपयोगगुणोपलक्ष्यस्तस्योपहृत्
ननु घातिचतुष्कमेव। घातेन तस्य जिन पुष्कललक्षणस्त्वं त्वां तादृश वद वदतु कथं न सिद्ध ॥ ५६२ ॥ सावारणास्तव न सतु गुणास्तदिष्ट दृश्यो न तेषु
जिन सत्सु गुणेषु साक्षात्। दृष्टे भवेद्भवति भक्तिरसौ यया यश्चेचीयते स्रवति पापमपि प्रभूतं ॥ ५६३ ॥ देवागाढमभवत्तव मोहघाताच्छ्रद्धानमावृतिहते-
परमावगाढ। आद्ये चरित्रपरिपूर्तिरथोत्तरत्र विश्वाववोधविभुतासि ततोसिवंद्य ॥ ५६४ ॥ ध्वस्त त्वया प्रवलपापवलं परं च प्रोद्भिन्नपालिजलवत्प्रवहत्य-
जस्रम्। श्रद्धादिभिस्त्रिभिरभूत्त्रितयी च सिद्धिः सद्धर्मचक्रसुभवद्भुवनैकनाथ ॥ ५६५ ॥ देहो विकाररहितस्तव वाग्यथार्थदृक्श्रोत्रनेत्रविषयत्वमुपेत्य
सद्यः। त्वामस्तरागमखिलावगम च कस्य न स्थापयेन्मनसि मन्मथमानमर्दिन् ॥ ५६६ ॥ किं वस्त्विहाक्षणिकमन्वयरूपमस्ति व्यस्तान्वयं वद हि किं क्ष-

इच्छा नहीं है इसलिये हे जिनराज। वचनामृतरूपी जलकी वर्षासे संसारभरको तृप्त करते हुए केवल आप एकही विना कारणके बन्धु हो ॥ ५६१ ॥ यह जीव प्रगट हुए ज्ञानगुणरूपी उपयोगसे जाना जाता है और उस ज्ञान गुणको नष्ट करनेवाले चार घातियां कर्म हैं उन घातिया कर्मोंको नष्ट करनेसे आपका ज्ञानगुण पूर्ण प्रगट हो गया है इसलिये हे जिन! आपही कहिये कि ऐसे आत्मस्वरूपवाले आपको सिद्ध कैसे न कहें ॥ ५६२ ॥ हे जिनराज! आपमें साधारण गुण नहीं तो न सही परन्तु उन विशेष गुणोंके रहते हुए भी हम लोगोंको इष्ट ऐसे आप साक्षात् दिखाई नहीं देते। यदि कदाचित् आप दिखलाई पड जांय तो फिर आपमें वह भक्ति उत्पन्न होती है जिससे वडे प्रभुओंको भी पुण्यका संचय होता है और पापका नाश होता है ॥ ५६३ ॥ हे देव! मोहनीय कर्मके नाश होनेसे आपके अवगाढ श्रद्धान वा सम्यक्त्व हुआ है और ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मोंके नाश होनेसे परमावगाढ सम्यक्त्व हुआ है पहिले अवगाढ सम्क्त्वमें चारित्रकी परिपूर्णता होती है और परमावगाढमें पूर्णज्ञान समस्त आकाशमें फैल जाता है इसलिये हे नाथ आपही वंदना करने योग्य हैं ॥५६४॥ हे देव! आपने प्रवल घातिया कर्मोंको तो पहिले ही नष्ट कर दिया था और अव अघातिया कर्म किसी वांधके टूट जाने पर जलके समान सदा बहते रहते हैं। हे नाथ! व्यवहार रत्नत्रयके द्वारा आपको निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई है और सद्धर्म चक्रकी प्राप्ति होनेसे आप तीनों भुवनोंके एक स्वामी हुए हैं ॥ ५६५ ॥ कामदेवके अभिमानको चूर्ण करनेवाले हे प्रभो! आपका शरीर विकाररहित है और आपकी वाणी पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको देखनेवाली वा कहनेवाली है यदि आपका विकाररहित वह शरीर नेत्रोंके विषयभूत हो जाय अर्थात् देखलिया जाय तथा आपकी वाणी कानोंके विषयभूत हो जाय अर्थात् सुनली जाय तो वे दोनोंही रागरहित और समस्त ज्ञानको धारण करनेवाले आपको फिर किसके हृदयमें स्थापन

णिक च किंचित् । बुद्धादयो बुधपगर्भगतार्भकाभा मेदोयमर्थविमुखोवगमो ह्यमीषा ॥ ५६७ ॥ तिष्ठत्वगोचरमनतचतुष्टय ते स्वाभाविकेष्वतिशयेष्वपरोपि कश्चित् । कस्यापि समवति किं कपिलादिकाना केनाप्तपक्तिमुपयाति तमस्विनोमी ॥ ५६८ ॥ त्वामामनति मुनयः परम पुमास ध्वस्तत्रिवेदमपि किं परमागसगात् । किं मोहवल्लिदहनात्किमनतवीर्यात् किं सिद्धतापरिणतेर्गुणगौरवाद्वा ॥५६९॥ देहत्रयापनयनेन विनादितिद्धस्त्व शुद्धिशक्त्यतुलधृत्युदितोदितत्वात् । आधिक्यमस्त्यधिपते त्वदुदीरितोरुसन्मार्गगाज्ञयसि यत्परमात्मभावं ॥ ५७० ॥ अस्त्येव देव तव चौदयिकोपि भावः किं त्वेष मोहरहितस्य न बधहेतु । योगानुरोधसमवाप्तशुभाणुवेद्यवध निबधनमुशन्त्यविरोधकत्वात् ॥ ५७१ ॥ त्वत्पादपंकजषडध्रितयाप्तपुण्याद् गण्योभवत्सुरगणोगणनातिगर्धी । आनम्रमौलिरत एव नखोन्मुखांशुभास्वन्मुख शतमख सुमुखस्तवाध्र्योः ॥ ५७२ ॥ प्रशमपरमकाष्ठानिष्ठितोदात्तमूर्ते क्रमकरणविहीनज्ञानधामैकधाम्न । द्वितयनय-

करदें अर्थात् आपका शरीर देखनेमात्रसे अथवा आपकी वाणी सुनने मात्रसे आप सबके हृदयमें स्थापित होजाते हैं ।।५६६।। हे विद्वानोंके परिपालक ! क्या वस्तुका स्वरूप अन्वय रूपसे सदा नित्य है अथवा पृथक पृथक अन्वय रूपसे कुछ क्षणिक है कैसा है सो कहिये इसका स्वरूप कहनेमें बुद्धादिक सब गर्भमें बैठे हुए बच्चेके समान हैं क्योंकि इनमें भेद है।।५६७।। हे प्रभो ! आपका अनंतचतुष्टय तो कपिलादिक अन्य लोगोंके विषयभूत नहीं है यह बात तो दूर रही परंतु जो आपके निःस्वेदता आदि स्वाभाविक अतिशय हैं उनमेंसे क्या कोई एक भी अतिशय कपिलादिकोंमेंसे किसीके भी संभव हो सकते हैं ? फिर भला मिथ्यांधकारमें डूबे हुए ये कपिलादिक लोग किस कारणसे आपकी पंक्तिमें बैठ सकते हैं ! भावार्थ–कभी नहीं ॥ ५६८ ॥ हे देव ! यद्यपि आपके स्त्रीपुन्नपुंसक ये तीनों वेद नष्ट होगये हैं तो भी मुनि लोग आपको परम पुरुष मानते हैं अथवा वेदोंके नष्ट होनेपर ही आपको परम पुरुष मानते हैं फिर आपको परम औदारिक शरीरके समागमसे क्या लाभ है अथवा मोहरूपी वेलको जला देनेसे क्या लाभ है तथा अनंतवीर्य प्राप्त होनेसे क्या लाभ है वा सिद्ध अवस्था प्राप्त होनेसे क्या लाभ है और अनेक गुणोंकी गौरवता होनेसे भी क्या लाभ है ॥ ५६९ ॥ हे स्वामिन् ! तीनो शरीरोंके नष्ट होनेके विना ही निर्मलता, शक्ति, और अनुपम संतोषके अत्यधिक उदय होनेसे ही आप सिद्ध होगये हैं फिर भला आपके कहे हुए श्रेष्ठ सन्मार्गमें (मोक्षमार्गमें) चलनेवाले लोगोंको आप परमात्मस्वरूप करदेते हैं यह आपमें और भी सबसे वडी अधिकता है ॥ ५७० ॥ हे देव आपके औदयिक भाव है सो वह भले ही बना रहे आप मोह रहित हैं इसलिये वह आपके कर्मबंधका कारण नहीं हो सकता परंतु मन वचन कायकी क्रियाओंका निरोध करनेसे आपके थोडेसे शुभ वेदनीय कर्मोंका बंध होता है इसलिये विद्वान् लोग आपको ही शुभ बंधका कारण बतलाते हैं क्योंकि

मयोपदीर दिव्यध्वनेस्ते ननु जिन परमात्मप्राभवं भाति भर्तु ॥ ५७३ ॥ ज्ञानं सर्वगत स्वरूपनियतं ते स्याद्धेतुः कृतेर्नीतिश्चायतनाः स्वकृत्यपटवो वाचो गिरावामपि । प्रस्थानस्थितयोप्यनात्मविहिता नात्मान्यबाधाप्रदा स त्व निर्मलबोधदर्पणतले ज्ञेयाकृतिं धत्स्व मे ॥ ५७४ ॥ विश्वस्यास्खलित प्रशासित तव वाग्याथात्म्यमात्मेशिनो यस्मादृदृष्टिविरोधरोधविहितारागाद्यविद्याच्छिद । तस्माद्वीर विकायसायकशिखामौखर्यवीर्यद्रुहोमोहद्रोहजयस्तवैव न परेष्वन्यायमिन्यासिषु ॥५७५॥ देवो वीरजिनोयमस्तु जगतो वन्द्यः सदा मूर्ध्नि मे देवस्त्व हृदये गणेश वचसा स्पष्टेन येनाखिल । कारुण्यात्प्रथमानुयोगमवद श्रद्धामिवृद्ध्यावहं

इसमें कोई विरोध नही आता। भावार्थ—आपके औदयिक भाव तो बन्धके कारण नहीं है परन्तु आप शुभबन्धके कारण हैं क्योंकि आपके शुभवेदनीयका बन्ध होता है शुभबन्धको करनेवाला शुभबन्धका कारण होताही है इसमें कोई विरोध नहीं ॥ ५७१ ॥ आपके चरण कमलोंके भ्रमर बननेसे अर्थात् आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ था उसीसे यह देवताओंका समूह मान्य गिना गया है और उसीकारणसे उसकी लक्ष्मी संख्याके बाहर होगई अर्थात् वह देवताओंका समूह असंख्यात लक्ष्मीका स्वामी होगया है इसीलिये जो आपके चरणकमलोंमें अपना मुकुट झुका रहा है और आपके चरणनखोंके सामनेकी किरणोंसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है ऐसा इन्द्र सुमुख कहलाता है ॥ ५७२ ॥ हे जिनराज! आपकी उत्कट मूर्ति उपशमभावकी चरमसीमासे परिपूर्ण है, आप इंद्रिय और अनुक्रमसे रहित ऐसे केवल ज्ञानरूपी तेजके एक मुख्य स्थान हैं आपकी गम्भीर दिव्यध्वनि व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंसे परिपूर्ण होकर उत्पन्न हुई है और आप सबके स्वामी हैं इसलिये हे नाथ! आपके परमात्मपनेका प्रभाव बहुत ही सुशोभित हो रहा है ॥ ५७३ ॥ हे नाथ! आपका ज्ञान सब जगह् व्याप्त है तो भी अपने ही स्वरूपमें निश्चल है और किसी भी व्यापारका कारण नहीं है। इच्छा और आयतनरहित आपकी वाणी भी गूंगे लोगोंके कार्य करनेमें भी अत्यन्त चतुर है इसी तरह आपका आकाशगमन भी आपका किया नहीं है किन्तु देवोंके द्वारा किया हुआ है और आत्मापर किसीको भी बाधा देनेवाला नही है ऐसे हे देव! आप मेरे निर्मलज्ञानरूपी दर्पणतलमें ज्ञेयका आकार धारण करो अर्थात् मेरे ज्ञानगोचर हो ॥ ५७५ ॥ हे देव! आप आत्माके स्वामी हैं सम्यग्दर्शनको रोकनेवाले मिथ्यात्वकर्मको नाश करनेसे आपकी रागादि अविद्याओंका नाश हो चुका है और आप कामदेवके बाणोंकी शिखाकी मुखरता अथवा वाचालपनेके बलको नाश कर चुके हैं ऐसे आपकी वाणी विना किसी रुकावट वा थकावटके इस समस्त संसारके यथार्थ स्वरूपको प्रगट करती है इसलिये हे वीर! मोहनीय कर्मको नाश करनेका जय आपको ही प्राप्त है अन्याय करनेवाले अन्य किसीको वह जय प्राप्त नहीं है ॥५७५॥ इसलिये

मद्भाग्योदयतः सतां स सहजो भावो ह्यय तादृशां ॥५७६॥ इति कतिपयवाग्भिर्वर्द्धमानं जिनेंद्र मगधपतिरुदीर्णश्रद्धया सिद्धकृत्य। गणभृतमपि नुत्वा गौतम धर्मधुर्य स्वपुरमविशदुद्यत्तुष्टिरागामिसिद्धि ॥ ५७७ ॥ अनुष्टप्छदसा ज्ञेया प्रथसख्या तु विंशतिः। सहस्राणा पुराणस्य व्याख्यातृश्रोतृलेखकै ॥५७८॥

इत्यार्षे त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते श्रीवर्धमानस्वामिपुराण परिसमाप्त।

अथ प्रशस्तिः।

यस्यानता पदनखेंदवबिंबचुंबिचूडामणिप्रकटसमुकुटाः सुरेंद्राः। न्यक्कुर्वते स्म हरमर्द्धशशाकमौलिलीलोद्धत स जयताज्जिनवर्द्धमानः ॥ १ ॥ श्री-

जिन्हें समस्त संसार नमस्कार करता है ऐसे वर्द्धमान स्वामी सदा मेरे मस्तकपर विराजमान रहें और हे गणधर देव! आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहें क्योंकि मेरे भाग्यके उदयसे करुणाकर आपने ही स्पष्टवाणीसे श्रद्धाकी अभिवृद्धिको धारण करनेवाले—श्रद्धाको बढानेवाले प्रथमानुयोगका निरूपण किया है सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे सज्जनोंका ऐसा भाव होना स्वाभाविक ही है ॥ ५७६ ॥ जिसे बहुत भारी सन्तोष हुआ है जो आगामीकालमें सिद्ध होनेवाला है जिसने अपना कृत्यकर्म सब सिद्ध करलिया है और जो धर्मधारण करनेमें सबसे मुख्य है ऐसे मगधेश्वर राजा श्रेणिकने उत्पन्न हुई श्रद्धासे ऊपर लिखे हुए कुछ वचनोंके द्वारा भगवान श्रीवर्द्धमानकी स्तुति की तदनन्तर उसने श्रीगौतमगणधरदेवको नमस्कार किया और फिर सन्तुष्ट होकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ॥ ५७७ ॥ व्याख्या करनेवाले, सुननेवाले, और लिखनेवालोंको अनुष्टुप् श्लोकोंसे इस पुराणकी संख्या बीस हजार समझनी चाहिये ॥ ५७८ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणकी नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान स्वामीका पुराण समाप्त करनेवाला यह छिहत्तरिवां पर्व समाप्त हुआ ७६

अथ प्रशस्ति।

जो श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कार कर रहे हैं और इसलिये श्रीवर्द्धमानस्वामीके चरणनखरूपी चन्द्रमाके बिम्बको स्पर्श करनेवाले चूडामणि रत्नोंसे जिनके उत्तम मुकुट प्रगट होरहे हैं ऐसे इन्द्र लोग भी मस्तकपर आधे चन्द्रमाको धारण करनेकी लीलासे उद्धत हुए महादेवको तिरस्कार करते थे ऐसे श्रीवर्द्धमानस्वामी सदा जयशील हों ॥१॥ जिस प्रकार

(१) चतुर्विंशतितीर्थेशांश्चतुर्गतिनिवृत्तये। वृषभादिमहावीरपर्यंतान् प्रणमाम्यहं ॥ १ ॥ अर्थ—चारों गतियोंसे छूटनेकेलिये वृषभदेवसे लेकर महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थकरोंको मैं नमस्कार करता हू। एक पुस्तकके हासियेपर यह श्लोक दूसरे नबरपर अधिक लिखा है।

मूलसङ्घवाराशौ मणीनामिव सार्चिषा । महापुरुषरत्नाना स्थानं सेनान्वयोऽजनि ॥ २ ॥ तत्र वित्रासिताशेषप्रवादिमदवारण । वीरसेनाग्रणीर्वीरसेनभट्टारको बभौ ॥ ३ ॥ ज्ञानचारित्रसामग्रीमग्रहीदिव विग्रहं । विराजते विधातु यो विनेयानामनुग्रह ॥ ४ ॥ यत्क्रमानम्रराजन्यमुखाब्जान्यदधु श्रियं । चित्रं विकासमासाद्य नखचन्द्रमरीचिभिः ॥ ५ ॥ सिद्धिभूपद्धतिर्यस्य टीका संवीक्ष्य भिक्षुभि । टीक्यते हेलयान्येषा विषमापि पदेपदे ॥ ६ ॥ यस्यास्याब्जजवाकृश्रिया धवलया कीर्त्येव सश्राव्यया सप्रीतिं सतत समस्तसुधिया संपादयन्त्या सता । विश्वव्याप्तिपरिश्रमादिव चिर लोके स्थितिं संश्रिता श्रोत्रालीनमलान्यनाद्युपचितान्यस्तानि नि.शेषत ॥ ७ ॥ अभवदिव हिमाद्रेर्देवसिन्धुप्रवाहो ध्वनिरिव सकलज्ञात्सर्वशास्त्रैकमूर्ति । उदयगिरितटाद्वा भास्करो भासमानो मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥८॥ यस्य प्राशुनखांशुजालविसरद्धारांतराविर्भवत्पादाम्भोजरजःपिशगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युति । संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपति पूतोऽहम-

समुद्रमें बहुमूल्य मणियोंके स्थान होते हैं उसी प्रकार मूलसंघरूपी महासागरमें महापुरुषरूपी रत्नोंका स्थान ऐसा सेनवंश अथवा सेनसंघ हुआ था ॥ २ ॥ उसमें समस्तवादीरूपी मदोन्मत्त हाथियोंको त्रास देनेवाले वीरसेनसंघमें मुख्य ऐसे वीरसेन भट्टारक सुशोभित हुए थे ॥ ३ ॥ उन्होंने शरीरके समान ही ज्ञान और चारित्रकी सामग्रीको धारण किया था और वे शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये ही मानों सुशोभित हुए थे ॥४॥ यह एक आश्चर्यकी बात है कि उन वीरसेनके चरणोंमें नम्र हुए राजा लोगोंके मुखरूपी कमल उनके नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रफुल्लित होकर अच्छी शोभाको धारण करते थे ॥ ५ ॥ यद्यपि मोक्षरूप पृथिवीकी पद्धति अर्थात् सीढी अथवा सिद्धिभूपद्धति नामकी तत्वार्थकी टीका पद पदपर विषम है तथापि श्रीवीरसेनकी बनाई हुई जिसकी टीकाको देखकर भिक्षु अर्थात् मुनि लोग भी लीला पूर्वक दूसरोंके लिये उपदेश दिया करते हैं ॥ ६ ॥ जिस श्रीवीरसेनके मुखरूपी कमलसे प्रगट हुई वचनरूपी लक्ष्मी कीर्तिके समान धवल अच्छी तरह सुनने योग्य है समस्त बुद्धिमान सज्जनोंको सदा प्रेम उत्पन्न करती है और संसारभरमें फैलनेके परिश्रमसे ही क्या मानों इस लोकमें बहुत दिनसे ठहरी हुई है उसी वचनरूपी लक्ष्मीके द्वारा अनादिकालसे इकट्ठे हुए कानोंमें भरे हुए मैल पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार हिमवन पर्वतसे गंगा नदीका प्रवाह निकलता है अथवा सर्वज्ञदेवसे दिव्यध्वनि निकलती है अथवा उदयाचल पर्वतसे प्रकासमान सूर्य निकलता है उसीप्रकार इन्हीं वीरसेन भट्टारकके पीछे समस्त शास्त्रोंकी साक्षात् मूर्तिके समान जिनसेनाचार्य हुए ॥८॥ जिन श्रीजिनसेनके देदीप्यमान नखोंके किरणसमूहसे जो फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके चरण कमलकी शोभाको धारण करते थे उनकी रजसे जब राजा अमोघवर्षके मुकुटके ऊपर लगे हुए रत्नोंकी कांति पीली पड जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपको

बेत्यल स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलं ॥ ९ ॥ प्रावीण्यं पदवाक्ययोः परिणतिः पक्षांतराक्षेपणे सद्भावावगतिः कृतांतविषया श्रेयः कथाकौशलं । ग्रंथग्रंथिभिदिः सदध्वकलितेत्यग्र्यो गुणानां गणो यं संप्राप्य चिरं कलंकविकलः काले कलौ सुस्थितः ॥ १० ॥ ज्योत्स्नेव तारकाधीशे सहस्रांशाविव प्रभा । स्फटिके स्वच्छतेवासीत्सहजास्मिन्सरस्वती ॥ ११ ॥ दशरथगुरुरासीत्तस्य धीमान्सधर्मा शशिन इव दिनेशो विश्वलोकैकचक्षुः । निखिलमिदमदीपि व्यापि तद्वाङ्मयूखैः प्रकटितनिजभावं निर्मलैर्धर्मसारैः ॥ १२ ॥ सद्भावः सर्वशास्त्राणां तद्भास्वद्वाक्यविस्तरे । दर्पणार्पितबिंबाभो बालैरप्याशु बुध्यते ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षीकृतलक्ष्यलक्षणविधिर्विद्योपविद्यातिगः सिद्धांताब्ध्यवसानयानजनितप्रागल्भ्यवृद्धेद्धधीः । नानानूननयप्रमाणनिपुणोऽगण्यैर्गुणैर्भूषितः शिष्यः श्रीगुणभद्रसूरिरनयोरासीज्जगद्विश्रुतः ॥ १४ ॥ पुण्यश्रियोऽयमजयत्सुभगत्वदर्पमित्याकलय्य परिशुद्धमतिस्तपःश्रीः । मुक्तिश्रिया पटुतमा प्रहितेव दूती प्रीत्या महागुण-

पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्थाका सदा स्मरण किया करता था ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान श्रीजिनसेनाचार्य सदा संसारका मंगल करते रहें ॥ ९ ॥ वे पद और वाक्योंकी रचना करनेमें बडे प्रवीण थे, जिनकी परिणति सदा परमतके खण्डनमें ही लगी रहती थी, जिन्हें श्रेष्ठ पदार्थोंका सिद्धान्त विषयक अच्छा ज्ञान था वे कथाकी कुशलतामें कल्याणकारी थे, ग्रंथोंके गूढ विषयको अच्छीतरह स्पष्ट करते थे, सन्मार्गको निरूपण करनेवाली उनकी कविता थी, वे गुणवानोंमें सबसे अग्रसर थे, और कलिकालमें भी उनका आश्रय लेकर यह मुनियोंका समुदाय कलंकरहित होकर बहुत दिनतक टिका रहा था ॥१०॥ जिसप्रकार चंद्रमामें चांदनी रहती है, सूर्यमें प्रभा रहती है और स्फटिकमें स्वच्छता रहती है उसीप्रकार जिन श्रीजिनसेनाचार्यमें सरस्वती निवास करती थी ॥ ११ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाका साधर्मी सूर्य होता है उसीप्रकार उन जिनसेनाचार्यके साधर्मी (एक गुरुके शिष्य) दशरथगुरु नामके आचार्य थे, वे दशरथ गुरु बडे ही बुद्धिमान थे, संसारको दिखलानेवाले अद्वितीय नेत्र थे और उनकी निर्मल धर्मको कहनेवाली वचनरूपी किरणोंसे अंधकारसे व्याप्त हुआ यह समस्त संसार आज भी अपने यथार्थ भावको प्रगट करता है । भावार्थ-जिनकी वाणीसे संसारके जीव अपना स्वरूप जान लेते हैं ॥ १२ ॥ उनके प्रकाशमान विस्तृत वाक्योंमें समस्त शास्त्रोंका श्रेष्ठ भाव दर्पणमें पडे हुए प्रतिबिंबके समान मूर्ख पुरुषोंको भी शीघ्र ही मालूम होजाता है ॥ १३ ॥ जिसे समस्त व्याकरण शास्त्र प्रत्यक्ष हो रहा है जो विद्या और उपविद्याओंके पार पहुंच गया है सिद्धांतसागरके पारगामी होनेसे जिसकी प्रतिभा और पूज्य बुद्धि खूब बढ रही है, जो अनेक तरहके समस्त नय और प्रमाणोंके जाननेमें चतुर है और जो मुख्य २ समस्त गुणोंसे विभूषित है ऐसा जगतप्रसिद्ध श्रीगुणभद्राचार्य इन्हीं दोनोंका अर्थात् श्रीजिनसेन और दशरथगुरुका शिष्य था ॥ १४ ॥ यह गुणभद्र पुण्यरूपी

धिया समधिश्रियत ॥१५॥ तस्य वचनांशुविसर सततहतदुस्तरांतरंगतमाः । कुवलयपद्माल्हादी जितशिशिरांशुशिशिररश्मिप्रसर ॥ १६ ॥ कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामात्रक पुरोश्चरित । सकलच्छंदोलंकृतिलक्ष्य सूक्ष्मार्थगूढपदरचनं ॥ १७ ॥ व्यावर्णनानुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावं । अपहसिततान्यकाव्यं श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेयं ॥ १८ ॥ जिनसेनभगवतोक्तं मिथ्याकविदर्पदलनमतिललितं । सिद्धांतोपनिबंधनकर्त्रा भर्त्रा चिराद्विनायासात् ॥ १९ ॥ अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्टं संगृहीतममलधिया । गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीणकालानुरोधेन ॥ २० ॥ व्यावर्णनादिरहितं सुबोधमखिलं सुलेखमखिलहितं । महितं महापुराणं पठंतु शृण्वंतु भक्तिमद्भव्याः ॥२१॥ इद भावयता पुंसां तपो भवविभित्सया । भव्याना भाविसिद्धीना शुद्धदृग्वृत्तविद्वतां ॥ २२ ॥ शांतिर्वृद्धिर्जयः श्रेयः प्रायः प्रेयःसमागमः । विगमो विघ्नव्यासेराप्तिरत्यर्थसंपदां ॥ २३ ॥ यथाहेतुफलज्ञान स्याच्छुभाशुभकर्मणां । विज्ञेयो मुक्तिसद्भावो मुक्तिहेतुश्च निश्चितः ॥ २४ ॥

लक्ष्मीकी सुंदरताके अभिमानको भी जीतता है यही समझकर मानो महा गुणवती और बुद्धिमती ऐसी मुक्तिरूपी लक्ष्मीके द्वारा भेजी हुई अ॰ शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाली और अत्यंत चतुर ऐसी दूतीके समान तपश्चरणरूपी लक्ष्मीने बड़े प्रेमसे स्वयं आकर जिस गुणभद्राचार्यका आश्रय लिया था ॥ १५ ॥ जिस गुणभद्राचार्यके वचनरूपी किरणोंका फैलाव सूर्य और चंद्रमा दोनोंकी किरणोंके फैलावको जीतता है क्योंकि वह अत्यंत निविड ऐसे अंतरंगके अंधकारको भी सदा नष्ट करता रहता है और कुवलय पद्माल्हादी अर्थात् कमोदनी और कमल दोनोंको प्रफुल्लित करनेवाला अथवा कुवलय अर्थात् पृथ्वीमंडलरूपी कमलको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १६ ॥ यह पुरुदेव अर्थात् श्रीऋषभदेवका चरित्र कविपरमेश्वरकी कही हुई गद्यकथाके आधारसे बनाया गया है इसमें सब छंद और अलंकारोंके उदाहरण है तथा इसकी रचना सूक्ष्म अर्थ और गूढपदोंसे भरी हुई है ॥ १७ ॥ इसका वर्णन बहुत ही अच्छा है इसके पढनेसे सब शास्त्रोंके उत्तम २ पदार्थ साक्षात् हो जाते है, यह अन्य काव्योंका तिरस्कार करता है अर्थात् सब काव्योंसे उत्तम है सुनने योग्य है और विद्वानोंके ग्रहण करने योग्य है ॥ १८ ॥ यह पुरुदेवका चरित्र मिथ्या कवियोंके अभिमानको नष्ट करदेता है और बहुत ही मनोहर है। इसे सिद्धांत ग्रंथकी टीका करनेवाले और बहुत दिन तक शिष्योंका शासन करनेवाले भगवज्जिनसेनाचार्यने बनाया था ॥ १९ ॥ इसका अवशिष्ट भाग बहुत विस्तारके भयसे और हीनकालके अनुरोधसे निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले गुणभद्राचार्यने थोडेमें संग्रह किया है ॥ २० ॥ यद्यपि यह महापुराण विशेष रचना आदिसे रहित है तथापि पूज्य है, सबका हित करनेवाला है, पूर्ण है, सम्यग्ज्ञान बढानेवाला है, और सुंदर लेखोंसे भरपूर है इसलिये भक्तिवाले भव्य पुरुषोंको सदा पढना और सुनना चाहिये ॥ २१ ॥ जो पुरुष इस महापुराणकी भावना करते हैं

ईर्षात्त्वप्रेषणमबूबुधत् ॥ ३०९ ॥ नारदोपि यन यातोऽद्दश्यदेशेस्य कर्णयोः । कर्तव्यस्त्वच्छेद इत्युक्त गुरुणा चंद्रभास्करौ ॥ ३१० ॥ नक्षत्राणि ग्रहास्तार-काश्च पश्यंति देवताः । सदा सन्निहिता सति पक्षिणो मृगजातय ॥ ३११ ॥ नैते शक्या निराकर्तुमित्येत्य गुरुसन्निधौ । भव्यात्मादृष्टदेशास्य वने के-नाप्यसमवात् ॥ ३१२ ॥ नामादिचतुर्थेयु पापापख्यातिकारण-क्रियाणामविधेयत्वाद्धमानीतवानिम ॥ ३१३ ॥ इत्याह तद्वचः श्रुत्वा स्वसुतस्य जडात्मता । विचिंतयेकांतवाद्युक्त सर्वथा कारणानुगं ॥ ३१४ ॥ कार्यमित्येतदेकांतमत कुमतमेव तत् । कारणानुमतं कार्यं क्वचित्क्वचिदन्यथा ॥ ३१५ ॥ इति स्याद्वादसद्दष्ट सत्यमित्यमितुष्टवान् । शिष्यस्य योग्यता चित्ते निधाय युधमत्तम ॥ ३१६ ॥ हे नारद त्वमेवात्र सूक्ष्मप्रज्ञो यथार्थवित् । इत प्रभृत्युपाध्यायपदे त्व स्थापितो मया ॥ ३१७ ॥ व्याख्येयानि त्वया सर्वशास्त्राणीति प्रपूज्य तं । प्रावर्धयद् गुणैरेव प्रीतिः सर्वत्र धीमता ॥३१८॥

की आज्ञा है परंतु यहां बनमें भी सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र तारे आदि देवता देखते हैं पक्षी हरिण आदि सब समीप रहते हैं और ये सब किसी तरह दूर नहीं किये जा सकते, यही सोचकर वह भव्य पुरुष गुरुके समीप आया और कहने लगा कि बनमें जिस जगह कोई न देख सके ऐसी जगह मिलना असंभव है दूसरी यह बात है कि नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चारों पदार्थोंमें पाप और निंदा उत्पन्न करनेवालीं क्रियाए करनेका विधान नहीं है इसी लिये मैं इस बकरेको ऐसा ही ले आया हूं ॥ ३१०–३१३ ॥ नारदकी कही हुई इस बातको सुनकर उस पंडितने अपने पुत्रकी जडबुद्धिका विचार किया और सोचा कि एकांतवादी जो कारणके समान कार्य मानते हैं वह निरा एकांतमत ही है और इसीलिये वह मिथ्यामत है । कहीं कहींपर कारणके समान कार्य होता है और कहीं कहीं उससे विपरीत होता है यह जो स्याद्वाद मत है वही सत्य है यही समझकर वह संतुष्ट हुआ और चित्तमें शिष्यकी योग्यता देखकर वह उत्तम ब्राह्मण कहने लगा कि ॥ ३१४–३१७ ॥ हे नारद तू ही सूक्ष्म बुद्धिवाला और पदार्थको यथार्थ जाननेवाला है इसलिये आजसे मैं इस उपाध्यायके पदपर तुझे स्थापन करता हूं आजसे तू ही सब शास्त्रोंका व्याख्यान करना इस प्रकार उसका आदर सत्कारकर उसे बढाया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानोंका प्रेम सब जगह गुणोंसे ही हुआ करता है ॥३१८–३१९॥ तदनंतर वह क्षीरकदंब अपने पुत्रसे कहने लगा कि हे पुत्र विवेकके विना ही तूने यह प्रतिकूल और बुरा कार्य किया है, कार्य और अकार्यका विचार करना तुझे शास्त्र पढकर भी नहीं आया तू इसतरह निर्बुद्धि होकर मेरी आंखके पीछे कैसे जीवेगा। इस तरह शोक करते हुए पिताने उसे शिक्षा दी परंतु उस शिक्षाका असर मूर्ख पर्वतपर उलटा हुआ और वह उसी दिनसे नारदसे वैर करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि मूर्ख खोटी बुद्धिवालोंकी ऐसी ही मति

व्यावृत्य विमुख कृतपश्चात्पदस्थितः ॥ २९८ ॥ कलापी गतवानेकः शेषाश्च तज्जलार्दिताः । पत्रभागं विधूयागुस्त दृष्ट्वा समभाषिषि ॥ ९९ ॥ पुमानेक-
स्त्रियपश्चान्या इति मत्वानुमानतः । ततो वनांतरात्किंचिदागत्य पुरसन्निधौ ॥ ३०० ॥ तथा करिण्याः पादाभ्यां पश्चिमाभ्यां प्रयाणके । स्वमूत्रघटनाद्भा-
गे दक्षिणे तरुवीरुधा ॥ ३०१ ॥ भंगेन मार्गात्प्रच्युत्य श्रमादारूढयोषित । शीतच्छायाभिलाषेण सुप्ताया पुलिनस्थले ॥ ३०२ ॥ उदरस्पर्शमार्गेण द-
शसा गुल्मसकया । करिणीश्रितगेहाग्रसितोयत्केतनेन च ॥ ३०३ ॥ मया तदुक्तमित्येतद्वचनाद् द्विजसत्तम । निजापराधाभावस्य भावमाविरभावयत्
॥ ३०४ ॥ तदापर्वतमातापि प्रसन्नाभूत्पुनश्च सः । तस्य तन्मुनिवाक्यार्थसंप्रत्ययविधित्सुकः ॥ ३०५ ॥ स्वपुत्रछात्रयोर्भावपरीक्षार्थं द्विजाग्रणीः ।
स्थित्वा सजानिरेकाते कृत्वा पिष्टेन वस्तकौ ॥ ३०६ ॥ देशेऽर्चित्वा परादृश्ये गंधमाल्यादिमंगलैः । कर्णच्छेदं विधायैनावद्यैवानयत युवा ॥ ३०७ ॥ इत्य-
वादीतत पापी पर्वतोऽस्ति न कश्चन । वनेऽस्मिन्निति विच्छिद्य कर्णौ पितरमागत ॥ ३०८ ॥ त्वया पूज्य यथादिष्टं तत्तथैव मया कृत । इति वीतघृणो

स्कुल किनारे सोई थी वहांपर जो कुछ उदरका चिन्ह था उससे वह गर्भिणी जान पडती थी, उसकी साडीका ठोक
एक छोटेसे कटीले झाडसे लगकर फट गया था तथा फटा हुआ टुकडा उसी झाडपर लटकता था उसपरसे उसकी
सफेद साडीका अनुमान किया था जहां हथिनी ठहरी थी उस मकान पर सफेद ध्वजा फहरा रही थी उसपरसे मैंने
पुत्र होनेका अनुमान किया था। इसतरह अनुमानसे मैंने ऊपरकी सब बातें कहीं थीं। नारदकी ये बातें सुनकर उ-
स ब्राह्मणने ब्राह्मणीको प्रगटकर दिखला दिया कि मैं सर्वथा निरपराधी हूं अर्थात् मैंने दोनोंको एकसा उपदेश दि-
या है ॥ ३०४ ॥ ये सब बातें सुनकर पर्वतकी माता भी बहुत प्रसन्न हुई। तदनंतर उस ब्राह्मणने पर्वतकी माताको
उन मुनियोंके कहे हुए बचनोंका निश्चय करानेकी इच्छाकी तथा पर्वत और नारद दोनोंकी परीक्षा करनेकेलिये अप-
नी स्त्रीके साथ वह एकांतमें बैठा, वहांपर उसने आटेके दो बकरे बनाये और वे दोनों शिष्योंको देकर कहा कि जि-
स जगह कोई देखनेवाला न हो उस जगह लेजाकर गंधमाला आदि मांगलिक चीजोंसे इनकी पूजा करना और
फिर कान छेदकर आज ही ले आना ॥ ३०५–३०७ ॥ इस तरह कहकर उन दोनों शिष्योंको विदा किया तदनंतर
पापी पर्वतने सोचा कि इस बनमें देखनेवाला कौन है ? कोई नहीं है यही विचारकर और उस आटेके बकरेके कान
छेदकर वह पिताके पास आया और कहने लगा कि हे पूज्य आपने जैसी आज्ञा दी थी मैंने वैसा ही किया है। इस
तरह उसने विना किसी घृणाके बडे हर्षसे अपने पिताको आकर समझाया ॥ ३०८–३०९ ॥ नारद भी उस बकरे-
को लेकर बनमें गया और सोचने लगा कि "जिस जगह कोई देखनेवाला न हो वहां इसके कान छेदना" ऐसी गुरु

वान् ॥ २८८ ॥ तमसत्यं पुन: कर्तुं करिणीगमनानुगः । पुरोतनैारदादिष्टमुपलभ्य तथैव तत् ॥ ८९ ॥ सशोको गृहमागत्य नारदोक्त सविस्मय- । मातरं बोधयित्वाह नारदस्येव मे पिता ॥ ९० ॥ नावोनच्छात्रयाथात्म्यमस्ति मय्यस्य नादरः । इति पुत्रवचस्तस्या हृदय निशिताश्रवत् ॥ ९१ ॥ विदार्य प्राविशत्पापाद्विपरीतावमर्शनात् । ब्राह्मणी तद्वचश्चित्तेनावधार्य शुचं गता ॥ ९२ ॥ कृत्वा स्नानाग्निहोत्रादिभुक्त्वा स्वब्राह्मणे स्थिते । अब्रवीत्पर्वतप्रोक्तं तन्निशम्य विदांवरः ॥ ९३ ॥ निर्विशेषोपदेशोहं सर्वेषां पुरुष प्रति । विभिन्ना बुद्धयस्तस्मान्नारदः कुशलोभवत् ॥ ९४ ॥ प्रकृत्या त्वत्सुतो मंदो नासूयास्मिन् विधीयते । इति तत्प्रत्यय कर्तुं नारदं सुतसन्निधौ ॥ ९५ ॥ वद केन वने भ्राम्यम्पर्वतस्योदपादयः । विस्मय बहिति प्राह सोपि सप्रश्रयोभ्यधात् ॥ ९६ ॥ वनेहं पर्वतेनामा गच्छन्नर्मकथांतरः । शिखिनां पीतवारीणां सद्यो नद्या निवर्तने ॥ ९७ ॥ स्वचद्रककलापाभोमध्यमज्जनगौरवात् । भीत्वा

वह ब्राह्मणी अपने चित्तमें पुत्रके वचनोंका कुछ निश्चयकर शोक करने लगी और जब ब्राह्मण स्नान अग्निहोत्र आदि कर्मकर तथा भोजन कर बैठा था तब पर्वतकी कही हुई सब बात कह सुनाई। उसे सुनकर वह बुद्धिमान विद्वान् कहने लगा कि मैं सब लोगोंको एकसा उपदेश देता हूं परंतु प्रत्येक पुरुषकी बुद्धि भिन्न भिन्न होती है इसलिये ही नारद चतुर होगया है ॥ ९०–९४ ॥ तेरा पुत्र स्वभावसे ही मंद है इसलिये इसविषयमें कुछ ईर्षा नहीं करनी चाहिये । इसी बातका निश्चय करानेकेलिये क्षीरकदंबने अपने पुत्रके सामने नारदसे पूछा कि कहो आज किस वनमें घूमे थे और वहां पर्वतके साथ क्या उपद्रव किया था । गुरुजीकी यह बात सुनकर नारदको कुछ आश्चर्य हुआ और वह वडी विनयके साथ कहने लगा ॥ ९५–९६ ॥ किं मैं आज पर्वतके साथ वनमें गया था मार्गमें कुछ कथाएं कहता जाता था। मार्गमें कुछ मयूर नदीमें पानी पीकर उसीसमय लौटे थे उनमेंसे जो मयूर था वह अपनी पूंछके चद्रमाओंको पानीमें भीगकर भारी हो जानेसे डरसे अपने पैर उलटे पीछेकी ओर रखकर फिर मुंह फिराकर लौटा था और बाकी जो मयूरिणी थीं वे अपने पंखोंको पानीमें भिगोकर तथा फटकारकर लौटी थीं यही देखकर मैंने अनुमानसे जान लिया था और पर्वतसे कहा था कि इनमें एक पुरुष (मयूर) है और बाकी सब स्त्रियां (मयूरिणी) हैं इसके बाद वनमें थोडी दूर जाकर किसी नगरके समीप देखा चलते समय किसी हथिनीके पिछले पैर (पैरके चिन्ह) उसीके मूत्रसे भीगे हुए हैं इसीपरसे मैंने जाना कि यह हथिनी है तथा उसके दाईं ओरके वृक्ष और पौधे टूटे हुए थे इससे अनुमानसे जान लिया कि वह हथिनी बांई आंखसे कानी थी । उसपर सवार होनेवाली स्त्री मार्गकी थकावटसे उतरकर शीतल छायाकी इच्छा करती हुई नदीके पानीके वि-

गर्ताकुशोफिक । यववीजं त्रिवर्षस्थमजमित्यभिधीयते ॥ ३० ॥ तद्विकारेण सप्तर्चिमुखे देवार्चनं विद । वदंति यज्ञमित्यास्यदनुपद्धति नारदः ॥ ३१ ॥ पर्वतोप्यजपदेन पशुभेदः प्रकीर्त्यते । यज्ञोग्नौ तद्विकारेण होत्रमित्यवदद्विधीः ॥ ३२ ॥ तयोर्वचनमाकर्ण्य द्विजप्रमुखसाधवः । मात्सर्यान्नारदेनैष धर्मः प्राणवधादिति ॥३३ ॥ प्रतिष्ठापयितु धात्र्यां दुरात्मा पर्वतोब्रवीत् । पतितोयमयोग्योतः नह संभाषणादिषु ॥ ३४ ॥ इति हस्ततलास्फालनेन निर्भर्त्स्य त कुधात् । घोषयामासुरत्रैव दुर्बुद्धेरीदृशं फलं ॥ ३५ ॥ एवं वहिःकृतः सर्वैर्मानभगादगाद्वनं । तत्र ब्राह्मणवेषेण वयसापरिणामिना ॥ ३६ ॥ कृतांतरोहणास-मरोपानपदवीमिव । वलीरुद्धदृताभूयस्खलतेवाधचक्षुषा ॥ ३७ ॥ विरलेन शिरोजेन सितेन दधता ततं । राजतं वा शिरस्त्राणमंतिकांतकजाद्भयात् ॥३८॥ जरांगनासमासन्नसुखाद्वामीलचक्षुषा । चलच्छिन्नकरेणेन करिणा कुपिताहिना ॥ ३९ ॥ इतोर्ध्वश्वासिनाराजवल्लभेनेव नाग्रतः । प्रस्फुटं पश्यता भग्नपृष्ठे-

विशेष (बकरा) कहा जाता है उसके विकारसे अग्निमें होम करना यज्ञ कहलाता है ॥ ३३२ ॥ उन दोनोंके वचन सुनकर बडे बडे सज्जन ब्राह्मणोंने घोषणा की कि यह दुष्ट पर्वत नारदके साथ ईर्षा रखता है इसलिये ही संसारमें प्राणियोंके वधसे धर्मकी स्थापना करनेके लिये ऐसा कहता है परंतु प्राणियोंकी हिंसासे कभी धर्म नहीं हो सकता, यह पर्वत पतित है और इसलिये ही अपने साथ बात चीत करनेके भी अयोग्य है इस तरह क्रोधसे सबने हाथकी हथेली हिलाकर उसका तिरस्कार किया और लोगोंपर प्रगट किया कि दुर्बुद्धिका ऐसा फल इस लोकमें ही मिल जाता है ॥ ३३३-३३५ ॥ इस तरह सब लोगोंने उसे बाहर निकाल दिया इसलिये मान भंग होनेसे वह वनमें चला गया। वहांपर महाकाल नामका देव ब्राह्मणका वेश धारण कर फिर रहा था उस समय वह वृद्ध अवस्थाके रूपमें था, ऐसा जान पडता था मानों यमराजकी चढने योग्य सीढियों पर बहुत शीघ्र चढना चाहता हो, आंखसे अंधेके समान चलते चलते रुक जाता था, उसके सिरपर दूर दूर सफेद बाल थे, शिरपर पगडी ऐसी जान पडती थी मानों यमराजसे उत्पन्न हुए डरसे कोई चांदीका टोप ही रक्खा हो उसके नेत्र कुछ कुछ बंद थे और ऐसे जान पडते थे मानों जरारूपी (बुढापा) स्त्रीके समागमसे उत्पन्न हुए सुखसे ही वे नेत्र बंद होगये हो उसकी गति कटी सूंडवाले हाथीके समान थी, क्रोधित हुए सर्पके समान वह लंबी सांसें ले रहा था, जिसप्रकार राजप्रिय मनुष्य मदसे आगे नहीं देखता है उसीप्रकार वह भी आगे नहीं देखता था। उसकी पीठ टूटी हुई थी, मुखसे शब्द साफ नहीं निकलते थे, सगरकी स्त्रीसे जो उसने वैर बांध रक्खा था उसे प्रगट करनेकेलिये ही मानो उसने तिहरा यज्ञोपवीत धारण कर रक्खा था और वह अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेकेलिये कोई खास

नापट्टभाषिणा ॥ ५० ॥ राजेव सोमयदर्शन ममेनेव शत्रुरुता । विन्ध्यभूपकांतासु यत्कोपमिव स्मन ॥ ४१ ॥ मध्ये धारयता यज्ञोपवीतं त्रिगुणीकृतं । तेन स्वामिमतारंभसिद्धिहेतुगवेषिणा ॥ ४२ ॥ महाकालेन दृष्ट मनु पर्वतः पर्वते भ्रमन् । प्रतिगम्य तमानम्य सोऽप्यधःकृमिवादनं ॥ ४३ ॥ महाकालः समाश्वास्य स्वस्ति तेस्त्विति सादरं । नमश्चिातपूर्वस्त्वाकुत्रस्त्यस्त्व वनांतरे ॥४४॥ परिभ्रमणमेतत्ते ब्रूहि ने केन हेतुना । इत्यमुच्चदसौ चाह निजवृत्तांतमादितः ॥ ४५ ॥ त निशाम्य महाकालः सगरं मम वैरिणं । निर्वंशीकर्तुमेष स्यात्समर्थो मे प्रतिच्छदः ॥ ४६ ॥ इति निश्चित्य पापात्मा प्रतिभमनसीडितः । त्वत्पिता स्थंडिलो विष्णुरुपमन्युरहं च भो ॥ ४७ ॥ भीमोपाध्यायसांनिध्ये शास्त्राभ्यासमकुर्वहि । त्वत्पिता मे ततो विद्धि धर्मभ्राता तनोक्षितुं ॥ ४८ ॥

कारण ढूंढता फिरता था, ऐसे महाकालने किसी पर्वतपर फिरते हुये पर्वतको देखा ब्राह्मण उस पर्वतके सामने गया और जाकर उसे नमस्कार किया। बदलेमें पर्वतने भी नमस्कार किया ॥ ३३६–३४३ ॥ महाकालने उसे आश्वासन दिया और बडे आदरसे उसे कहा कि तेरा कल्याण हो। महाकालने अजान सरीखा बनकर पर्वतसे पूछा कि तू कहांसे आया है और इस वनमें किस कारणसे फिर रहा है तू ये सब बातें मुझसे कह। इसके उत्तरमें पर्वतने भी आदिसे अंततक अपना सब हाल कह दिया ॥ ३४४–३४५ ॥ यह सुनकर महाकालने सोचा कि मेरे वैरी सगरको निर्वंश करनेकेलिये यह समर्थ है यह मेरा साधर्मी है ॥३४६॥ यही निश्चयकर वह ठगनेमें चतुर और पापी महाकाल कहने लगा कि तेरा पिता स्थंडिल विष्णु उपमन्यु और मैंने एक साथ भीम उपाध्यायसे अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया है। इस हिसाबसे तेरा पिता मेरा धर्मका भाई है उसीके देखनेके लिये मैं यहां आया था परंतु दुख है कि यह मेरा आना निष्फल हुआ। तू किसी बातका डर मतकर शत्रुको नाश करनेके लिये मैं तेरा सहायक बनूंगा ॥ ३४७–३४९ ॥ इसप्रकार क्षीरकदंबके पुत्र पर्वतके लिये अपने अभिप्रायको सिद्ध करनेवाली अथर्वण वेदकी साठ हजार ऋचाएं बनाई तथा पर्वतको वह सब वेदका रहस्य पढाया और कहा कि ऊपर लिखे मंत्रोंसे वायुके द्वारा बढी हुई अग्निकी ज्वालामें शांति पुष्टि और अभिचारात्मक क्रियाएं की जांय तो पशुओंकी हिंसासे भी अपने इष्ट फलकी प्राप्ति होजाती है। तदनंतर दोनोंने विचार किया कि अयोध्यामें जाकर शांति आदिको देनेवाला हिंसा यज्ञ करेंगे और इसतरह इन वेदोंका प्रभाव दिखलावेंगे। यह कहकर अपने शत्रुको नाश करनेकेलिये उसने अपने क्रूर असुरोंको बुलाया और उन्हें आज्ञा दी कि राजा सगरके राज्यमें ज्वरादिकी तीव्र बाधा उत्पन्न करो, यह कहकर उन देवोंको भेजा। इधर पर्वत अयोध्या नगर में जाकर राजसभामें गया और मंत्रोंसे मिले हुए आशीर्वाद देकर

ममागमनमेतत्र वैकल्यं समपद्यत । मा भैषीः शत्रुविध्वंसे सहायस्ते भवाम्यहं ॥ ३४९ ॥ इति क्षीरकदम्बात्मजेष्टार्थीनुगताः स्वयं । आथर्वणगता षष्टि-सहस्रप्रमिताः पृथक् ॥ ३५० ॥ ऋचो वेदरहस्यानीत्युत्पाद्याध्याप्य पर्वत । शांतिपुष्ट्यभिचारात्मक्रियाः पूर्वोक्तमंत्रगैः ॥ ३५१ ॥ निश्चिताः पवनोपेतव-न्हिज्वालासमा फलं । दृष्टंतत्पादयिष्यंति प्रयुक्ताः पशुहिंसनात् ॥ ३५२ ॥ ततः साकेतमध्यास्य शांतिकादिफलप्रदं । हिंसायागं समारभ्य प्रभावं विदधा-महे ॥ ३५३ ॥ इत्युक्त्वा वैरिनाशार्थमात्मीयान् दितिपुत्रकान् । तीव्रान् सगरराष्ट्रस्य बाधा तीव्रज्वरादिभिः ॥ ३५४ ॥ कुरुध्वमिति सप्रेष्य स द्विजस्त-त्पुरं गतः । सगरं मंत्रगर्भाशीर्वादेनालोक्य पर्वतं ॥ ३५५ ॥ स्वप्रभावं प्रकाश्यास्य त्वद्देशविषमाशिवं । शेपयिष्यामि यज्ञेन सुमित्रेणाविलंबितं ॥ ३५६ ॥ यज्ञाय वेधसा सृष्टा पशवस्तद्विहिंसनात् । न पापं पुण्यमेव स्यात्स्वर्गोरुसुखसाधनं ॥ ३५७ ॥ इति प्रत्याय्य तं पापः पुनरप्येवमब्रवीत् । त्वं पशूनां सहस्रा-णि षष्टिं यागस्य सिद्धये ॥ ३५८ ॥ कुरु समग्रमन्यच्च द्रव्यं तद्योग्यमित्यसौ । राज्ञापि सर्ववस्तूनि तथैवास्मै समर्पयत् ॥ ३५९ ॥ प्रारभ्य पर्वतो याग प्रा-

सगरके दर्शन किये ॥ ३५०-३५५ ॥ राजाको कुछ अपना प्रभाव दिखलाया और फिर कहा कि तेरे देशमें जो वि-षम अकल्याण हो रहा है उसे मैं सुमित्र नामके यज्ञसे बहुत शीघ्र दूर कर दूंगा ॥ ३५६ ॥ ब्रह्माने ये पशु यज्ञके लिये ही बनाये हैं इनकी हिंसा करनेसे पाप नहीं होता किंतु पुण्य ही होता है तथा बडे भारी सुखका साधन ऐसा स्वर्ग मिलता है ॥ ३५७ ॥ इसतरह विश्वास दिलाकर वह पापी पर्वत फिर कहने लगा कि यज्ञपूरा होनेके लिये तू साठ हजार पशु इकट्ठे कर तथा उसके लिये इतनी इतनी और सामग्री इकट्ठी कर । राजाने भी चुपचाप पर्वतके अनुसार सब सामग्री लाकर उसे समर्पणकी ॥ ३५८-३५९ ॥ पर्वतने यज्ञ करना प्रारंभ किया वह मत्रपूर्वक प्राणियोंका होम करने लगा । उससमय महाकालने भी उन प्राणियोंको विमान में विठाकर शरीरसहित आकाशमें ले जाते हुए दिखलाया और लोगोंको विश्वास दिला दिया कि ये सब स्वर्गको गये हैं । उसीसमय देशमें जो अक-ल्याण और उपसर्ग हो रहा था वह भी उसने दूर कर दिया ॥ ३६०-३६१ ॥ उसे देखकर उसके छल कपटसे मोहित हुए लोग मुग्ध हो गये और स्वर्ग में जानेकी इच्छा करते हुए सब लोग खुशी खुशी उस यज्ञमें मरनेकी आकांक्षा करनें लगे ॥ ३६२ ॥ यज्ञके समाप्त होनेपर उस दुष्ट पर्वतने विधि पूर्वक एक जाति नामके घोडेका होम किया और फिर राजाकी आज्ञासे सुलसा देवीको भी होम दिया ॥ ३६३ ॥ तदनंतर प्यारी देवीके वियोगसे उत्पन्न हुई शोकरूपी दावानल अग्निसे जिसका शरीर सब जल गया है ऐसा वह राजा सगर अपनी राजधानीको लौट आया ॥३६४॥वह शय्यापर जाकर पडगया और विचार करने लगा कि यह प्राणियोंकी हिंसा करना बड़ा भारी काम

मिनोऽमंत्रयत्तदा । महाकालः शरीरेण सह स्वर्गमुपागतः ॥ ३६० ॥ इत्याकाशे विमानैस्तान्नीयमानानदर्शयत् । देशाशिवोपसर्गं च तदैवासौ निरस्तवान्॥ ३६१ ॥ तद्दृष्ट्वा देहिनो मुग्धास्तत्प्रलम्भेन मोहिता । तां गतिं प्रेप्सवो यागमृतिमाकांक्षयन्नलं ॥३६२॥ तयज्ञावसितौ जात्य हयमेकं विधानतः । इयाज सुलसां देवीमपि राजाज्ञया खलु ॥ ३६३ ॥ प्रियकांतावियोगोत्थशोकदावानलार्चिषा । परिप्लुष्टतनू राजा राजधानीं प्रविष्टवान् ॥ ३६४ ॥ यज्ञ्यातले विनिक्षिप्य शरीरं प्राणिहिंसनं । वृत्तं महदिदं धर्मः किमधर्मोयमित्यसौ ॥ ३६५ ॥ संशयानस्तथान्येद्युर्मुनिं यतिवराभिधं । अभिवंद्य मयारब्धं भट्टारक च-चास्थित ॥ ३६६ ॥ ब्रूहि किं कर्म पुण्यं मे पापं चेद् विचार्य तत् । इत्यवोचदसौ चाह धर्मशास्त्रबहिःकृत ॥ ३६७ ॥ एतदेव विधातारं सप्तमीं प्रापयेत्क्षि-तिं । तस्याभिज्ञानमप्यस्ति दिनेस्मिन् सप्तमेशनिः ॥ ३६८ ॥ पतिष्यति ततो विद्धि सप्तमी धरणीति ते । तदुक्तं भूपतिर्मत्वा ब्राह्मणं तं न्यवेदयत् ॥३६९॥ तन्मृषा किमसौ वेत्ति नग्नः क्षपणकस्ततः । शंका चेत्तवैतस्याः शांतिरत्र विधीयते ॥ ३७० ॥ इत्युक्तिभिर्मनस्तस्य सधार्य शिथिलीकृतं । यज्ञ पुनस्तमा-

है यह धर्म है अथवा अधर्म है । इसतरह संशय करता हुआ वह सवेरे ही यतिवर नामके मुनिके समीप गया और वंदनाकर प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो ! मैंने यज्ञ करना प्रारंभ किया है, आप विचारकर कहिये कि यह पुण्यका काम है अथवा पापका ? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि यह काम धर्मशास्त्रके विरुद्ध है इसके करनेवालेको सातवां नरक मिलता है । इसके सिवाय आजसे सातवें दिन तुझपर वज्र पडेगा और तू मरकर सातवें नरक जायगा यह तू निश्चय समझ । मुनिराजकी ये सब बात सुनकर राजाने ज्यों की त्यों ब्राह्मणसे जाकर कही ॥ ३६५–३६९ ॥ राजाकी यह बात सुनकर वह पर्वत ब्राह्मण कहने लगा कि यह सब बात झूठ है, वह नंगा क्या जानता है । यदि तेरे चित्तमें फिर भी कुछ शंका हो तो इसकी भी शांति कर डालते हैं ॥ ३७० ॥ इसतरहके वचनोंसे राजाके चित्तको धीरज बधाया और जो यज्ञ शांत कर दिया था उसे फिरसे करना प्रारंभ किया । सातवें दिन उस पापी असुरने अपनी मायासे दिखलाया कि सुलसा विमानमें बैठकर देवका शरीर धारणकर आई है आकाशमें ठहरी है और राजा सगरसे कह रही है कि यज्ञमें मरनेके फलसे ही मैंने यह देवगति पाई है मेरे पहिले जो पशु होमे गये थे वे भी सब देव हुए हैं आपको यही आनंदकी बात कहनेके लिये मैं विमानमें बैठकर यहां आई हूं । यज्ञसे सब देव प्रसन्न हुए हैं और सब पितर तृप्त हुए हैं उसकी यह बात सुनकर राजाने विचार किया कि यज्ञ में मरे हुओंका यह प्रत्यक्ष फल दिखाई दे रहा है इसलिये समझना चाहिये कि मुनियोंके कहे हुए वचन झूठे हैं तीव्र हिंसामें अनुराग रखनेसे, सद्धर्मसे द्वेष करानेवाले कर्मकी मूल प्रकृति तथा उत्तरप्रकृतियोंके भेदसे उत्पन्न हुए परिणामोंसे, नरक आयुके योग्य उत्कृष्ट

रन्ध्रः स ततः सप्तमे द्विने ॥ ३७१ ॥ मायया सुरपापस्य सुलसा नभसि स्थिता । देवभावं गता प्राप्य पशुमेदपुरस्कृता ॥ ३७२ ॥ यागमृत्युफलेनैव लब्धा देवगतिर्मया । सं प्रमोद तवाख्यातुं विमानेहमिहागता ॥ ३७३ ॥ बहेन प्रीणिता देवा पितरश्चेत्यभाषत । तद्वचः श्रवणाद् दृष्ट्वा प्रत्यक्ष यागमृत्युज ॥ ३७४ ॥ फलं जैनमुनेर्वाक्यमसत्यमिति भूपतिः । तीव्रहिंसानुरागेण सद्धर्मद्वेषिणोदयात् ॥ ३७५ ॥ सभूतपरिणामेन मूलोत्तरविकल्पितात् । तत्प्रायोग्यसमुत्कृष्टदुष्टसंक्लेशसाधनात् ॥३७६॥ नरकायु प्रभृत्यष्टकर्मणा स्वोचितस्थितेः । अनुभागस्य बंधस्य निकाचितनिबंधने॥३७७॥विभीषणाशनित्वेन तत्काले पतितौ रिपौ । तत्कर्मप्रसक्ताखिलांगिभिः सगर सह ॥ ३७८ ॥ रौरवेजनि दुष्टात्मा महाकालोपि तत्क्षणे । स्ववैरपवनापूरणेन गत्वा रसातलं ॥ ३७९ ॥ तं दग्धितुमुत्कोधस्तृतीयनरकावधौ । अविष्यानवलोक्यैनं विश्वभूप्रभृतिद्विषं ॥ ३८० ॥ मृतिप्रयोगसपापी ततो निर्गत्य निर्घृण । पर्वतस्य प्रसादेन सुलसास-

दुष्ट और संक्लेश परिणामोंसे आठों कर्मोंकी उचित स्थिति और अनुभाग बंधके योग्य नरकायुका बंध किया उसीसमय भयानक वज्रपात हुआ वह उन सब शत्रुओंपर पड़ा और उस काममें लगे हुए सब जीवोंके साथ साथ वह राजा सगर मरकर सातवें नरकमें जा उत्पन्न हुआ। महाकाल उसीसमय उसे दंड देनेके लिये तीव्र क्रोध करता हुआ अपने बैररूपी वायुके झकोरेसे नरकमें गया तीसरे नरकतक उसे विभंगज्ञान था इसलिये वहांतक तो उसने ढूंढा परंतु जब उसे वहां न देखा तब वह विना किसी तरहकी ग्लानिके वहांसे निकला और सगरके मंत्री विश्वभू आदिके मारने का उपाय सोचने लगा तदनंतर उस महाकालने "पर्वतकी कृपासे मैं सुलसासहित सुखोंको प्राप्त हुआ हूं यह कहकर विमान में सुलसा और सगर दोनोंको दिखलाया।" यह देखकर राजा सगरके न रहनेपर जो विश्वभू मंत्री स्वयं उस देशका राजा बन बैठा था वह फिर महामेध करनेका प्रयत्न करने लगा। उसने महाकालकी मायासे आकाशरूपी आंगनमें विमानमें बैठे हुए देव और पितर सब लोगोंको प्रगट दिखलाये। उससमय वे सब मिलकर विश्वभू मंत्रीकी स्तुति करने लगे और कहने लगे कि हे पुण्यवान् मंत्री! आपने यह महामेध यज्ञ बहुत अच्छा किया है। नारद और कुछ तपस्वियोंने यह बात सुनकर विचार किया कि धिक्कार है इस दुष्टने संसारमें मिथ्यामार्गका एक अधिकार फैला दिया है पाप करनेमें पंडित ऐसे इस दुष्टको किसी भी उपायसे रोकना चाहिये ॥ ३७१–३८६ ॥ यही विचारकर वे सब अयोध्या आये। वहांपर उन्होंने यज्ञ करते हुए विश्वभू मंत्रीको देखा तथा देखा कि अनेक पापी लोग अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये अत्यत प्राणियोंकी हिंसा कर रहे हैं। तब सब प्राणियोंके हितकी इच्छा करनेवाले तपस्वी लोग कहने लगे कि किसी भी जगह कोई भी मनुष्य धर्मके लिये प्राणियोंके हिंसक नहीं बनते

हितः सुखं ॥ ३८१ ॥ प्राप्तोहमिति शंसंतं विमानैरिमदर्शयत् । तं दृष्ट्वा तत्परोक्षेऽत्र विश्वभू सचिवः स्वयं ॥ ३८२ ॥ विषयामिषतर्भूत्वा महामेधे कृतो- द्यमः । विमानांतर्गता देवा पितरश्च नभोंगणे॥३८३॥सर्वेषां दर्शिता व्यक्तं महाकालस्य मायया । महामेधस्त्वया यागो मंत्रिन् पुण्यवता कृत ॥३८४॥इति विश्वभुव नृप संभूयास्ताविप्रस्तदा। नारदस्तापसार्थस्तदाकर्ण्यवदुगतमना॥३८५॥दुर्मार्गाधिकृतोनेन धिक् लोकस्य प्रकाशित । निवार्योयमुपायेन केनचित्पापप- वित-॥३८६॥ इति सर्वेपि संगत्य साकेतपुरमागता । यथाविधिसमालोक्य सचिव पापिनो नरा ॥३८७॥नितांतमर्थकामार्थं कुर्वंति प्राणिना वध । न कोपि क्वापि धर्मार्थं प्राणिना संति घातकाः ॥ ३८८ ॥ वेदविद्भिरहिंसोक्ता वेदो ब्रह्मनिरूपितः । कल्पवल्लीव मातेव सखीव जगते हिता ॥ ३८९ ॥ इति पूर्वार्षवाक्यस्य त्वया प्रामाण्यमिच्छता । त्याज्यमेतदघप्रायं कर्म कर्मनिबंधन ॥ ३९० ॥ तापसैरभ्यधायीति सर्वप्राणिहितैषिभिः । विश्वभूरिदमाकर्ण्य तापसा भोः कथं मया॥ ३९१ ॥ दृष्ट शक्यमपह्नोतुं साक्षात्स्वर्गस्य साधन । इति ब्रुवन् पुनर्नारदेनोक्त पापभीरुणा ॥ ३९२ ॥ अमात्योत्तम

है यह वेदब्रह्माका कहा हुआ है वेदके जाननेवाले सदा अहिंसाका ही व्याख्यान करते हैं और यह अहिंसा ही कल्पवेलके समान, अथवा माताके समान अथवा सखीके समान संसारका हित करनेवाली है । इसप्रकार पहिलेके ऋषियोंके कहे हुए वाक्योंको यदि तू प्रमाण माननेकी इच्छा करता है तो अनंत कर्मोंका कारण ऐसा यह घोर हिंसासे भरा हुआ कर्म तुझे छोड देना चाहिये। तपसियोंकी इस बातको सुनकर विश्वभू मंत्री कहने लगा कि भो तपस्वियो ! यह यज्ञ स्वर्गका साक्षात् साधन है यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है फिर क्या मैं इसे छिपा सकता हूं। यह सुनकर पापसे डरनेवाले नारदने कहा॥३८७–३९२॥कि हे उत्तम मंत्री तू तो विद्वान् है क्या यह सब (हिंसा) स्वर्गका साधन है? यह प्रत्यक्ष फल दिखाकर किसी शत्रुने परिवार सहित सगरको विल्कुल नाश करनेकी इच्छासे एक उपाय किया है । यह उपाय किसी मायावीका कहा हुआ है इसलिये यह केवल मूर्ख लोगोंको ही मोहित करनेवाला है ॥ ३९३–३९४ ॥ इसलिये यदि तू स्वर्ग चाहता है तो शील उपवास आदि ऋषि प्रणीत शास्त्रमें कही हुई विधिका आचरण कर। यह सुनकर विश्वभूने नारदके कहे हुए वचन पर्वतसे कहे और कहा कि क्या नारदका कहा सुना ! उत्तरमें असुरके कहे हुए शास्त्रोंसे मोहित हुआ वह दुर्मति कहने लगा कि क्या यह सब शास्त्र नारदने पहिले सुने हैं? मेरे और उसके गुरु तो एक ही हैं वह अपनी बुद्धिका बहुत अभिमान करता है और इसलिये ही कुछ ईर्षा भाव भी रखता है तथापि आज वह मुझसे क्या कहना चाहता है ॥३९५–३९७॥ आप जानते हैं स्थाविर शास्त्रोंके अच्छे जानकर मेरे गुरुके धर्म भाई और संसारमें प्रसिद्ध थे उन्होंने मुझे वेदका रहस्य बतलाया है और यज्ञमें मृत्युका फल निरूपण किया है वही मैंने

विद्वांस्त्वं किमिति स्वर्गसाधनं । सगरं सपरीवारं निर्मूलमितुमिच्छता ॥ ३९३ ॥ उपायोय विधाय्येव प्रत्यक्षफलदर्शनात् । केनचित्कुहुकहेन मुग्धानां मोहकारण ॥ ३९४ ॥ तत शीलोपवासादिविधिमार्यागमोदित । आचरेति स तं प्राह पर्वतं नारदोदित ॥ ३९५ ॥ श्रुतं त्वयेत्यसौ शास्त्रेणासुरोकेन दुर्मति । मोहितो नारदेनापि प्रागिदं किं नवा श्रुत ॥ ३९६ ॥ ममास्य च गुरुर्नान्यो मतित्यैवातिगर्वितः । समत्सरस्तदाप्येष मय्यव किमिवोच्यते ॥ ३९७ ॥ सश्रुतो मद्गुरोर्वर्मभ्राता जगति विश्रुत । स्थविरस्तेन च श्रौतरहस्य प्रतिपादितं ॥ ३९८ ॥ यागमृत्युफलं साक्षान्मयापि प्रकटीकृतं । न चेत्ते प्रत्ययो विश्ववेदांभोनिधिपारग ॥ ३९९ ॥ वसु प्रसिद्ध सत्येन पृच्छेरित्यन्वभाषत । तच्छ्रुत्वा नारदोवादीत्को दोष पृच्छयतामसौ ॥ ४०० ॥ इद तावद्विचारार्हं वधश्चेद्धर्मसाधनं । अहिंसादानशीलादि भवेत्पापप्रसाधन ॥ ४०१ ॥ अस्तु चेन्मत्स्यवंधादिपापिना परमा गतिः । सत्यधर्मतपोब्रह्म

आज साक्षात् प्रगटकर दिखला दिया है। यदि आपको विश्वास न हो तो समस्त वेदरूपी महासागरके पारगामी और सच बोलनेमें प्रसिद्ध ऐसे राजा वसुको पूछ लीजिये। पर्वतकी यह बात सुनकर नारदने कहा कि अच्छा इसमें हानि ही क्या है राजा वसुसे पूछ लीजिये ॥ ९८–४०० ॥ परंतु यह बात भी तो विचार करनेकी है कि यदि हिंसा ही धर्म साधन मानी जायगी तो फिर अहिंसा दान शील आदि पापके कारण मानने पड़ेंगे ॥ ४०१ ॥ तथा ऐसा माननेसे मछली मारनेवाले धीवर आदि पापियोंको सबसे अच्छी गति मिलनी चाहिये और सत्य, धर्म, तपश्चरण आदिको पालन करनेवाले तथा ब्रह्मचारियोंको नरक आदि अधोगति मिलनी चाहिये ॥ ४०२ ॥ कदाचित् यह कहो कि यज्ञमें पशुओंका मारना धर्म है दूसरी जगह नहीं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि हिंसा सदा दुःख देनेवाली है और वह दोनों जगह एकसी है इसलिये दोनों जगह (यज्ञमें और दूसरी जगह) की हुई हिंसाका फल भी एक सा ही होना चाहिये उसका निषेध करनेवाला भला कौन होगा। कदाचित तुम ऐसा मानते हो कि ब्रह्माकी यह पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये है इसलिये उनकी हिंसा करनेमें पाप नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है परंतु यह कहना मूर्खोंकी इच्छाके समान और साधु विनिंदित है ॥ ४०३–४०५ ॥ क्योंकि यदि तुम ब्रह्माकी सृष्टिको अच्छी मानते हो तो इसमें और बहुतसे दोष आते हैं जो वस्तु जिसलिये बनाई जाती है यदि उसका उपयोग किसी दूसरे काममें किया जाय तो वह वस्तु दूसरे काममें उपकारी नहीं हो सकती। जैसे श्लेष्मा (कफ) आदिको दूर करनेवाली औषधि यदि किसी दूसरे रोगमें दी जाय तो वह उसकाममें नहीं आ सकती। इसी तरह यदि पशुओंकी सृष्टि यज्ञके ही लिये की गई है तो उन पशुओंका खरीदना वेचना उनपर बोझा लादना आदि उनको दूसरे काममें लाना

चारिणो यान्त्वधोगतिं ॥ ४०२ ॥ यज्ञे पशुवधाद्धर्मो नेतरत्रेति चेन्न तत् । वधस्य दुःखहेतुत्वे सादृश्यादुभयत्र वा ॥ ४०३ ॥ फलेनापि समानेन भाव्यं कस्तन्निषेधक । अथ त्वमेव मन्येथाः पशुसृष्टिं स्वयंभुवः ॥ ४०४ ॥ यज्ञार्थत्वान्न तस्यातिविनियोक्तुरघागमः । इत्ययं चातिमुग्धाभिलाष साधुविगर्हितः ॥ ४०५ ॥ तत्सर्गस्यैव साधुत्वादस्यन्यथात्र दुर्घटा ॥ यदर्थं यदि तस्यान्यथोपयोगेऽर्थकृन्न तत् ॥ ४०६ ॥ यथान्यथोपयुक्त च श्लेष्मादिशमनौषध । यज्ञार्थपशुसर्गेण क्रयविक्रयणादिकं ॥ ४०७ ॥ तथान्यथा प्रयुक्त तु महादोषाय कल्पते । दुर्बलं वादिनं दृष्ट्वा ब्रूम त्वामभ्युपेत्य च ॥ ४०८ ॥ यथा शस्त्रादिभिः प्राणिव्यापादी बध्यतेंहसा । मंत्रैरपि पशून् हता बध्यते निर्विशेषतः ॥ ४०९ ॥ पश्वादिलक्षण सर्गो व्यज्यते क्रियतेथवा । क्रियते चेत्खपुष्पादि चासन्न क्रियते कुतः ॥ ४१० ॥ अथाभिव्यज्यते तस्य वाच्य प्राक् प्रतिबंधकं । प्रदीपज्वलनात्पूर्वं घटादेरंधकारवत् ॥ ४११ ॥

महा दोष समझना चाहिये । वाद करनेवाला तू बहुत दुर्बल है इसलिये हम तेरे समीप आकर कहते हैं । कि जिसतरह शस्त्रादिकोंसे प्राणियोंका घातकरनेवाला कर्मोंसे बहुत शीघ्र बंधता है उसीतरह मंत्रोंके द्वारा पशुओंको मारनेवाला यह जीव विना किसी विशेषताके कर्मोंसे बंध जाता है ॥ ४०६-४०९ ॥ दूसरी बात यह है कि ब्रह्मा जो पशु आदिकोंकी सृष्टि उत्पन्न करता है सो वह प्रगट करता है, अथवा उत्पन्न करता है । यदि वह उत्पन्न करता है तो आकाशका फूल आदि जो वस्तुएं नहीं हैं उन्हें वह क्यों नहीं उत्पन्न कर सकता ? ॥ ११० ॥ यदि वह प्रगट करता है तो प्रगट करनेके पहिले उसे प्रगट करनेसे रोकनेवाला कौन है उसे बतलाना चाहिये जैसे दीपक जलानेसे पहिले घड़ेको प्रगट करनेसे अंधकार रोकता है॥४११॥इसतरह आपका यह सृष्टिवादका कथन आदर करने योग्य नहींहै । इसप्रकार नारदके वचन सुनकर सबलोग उसकी स्तुति करने लगे॥४१२॥तथा सब कहने लगे कि यदि तुम दोनोंका विवाद राजा वसु दूर करदे तो हमलोग वहीं चलें । इसतरह निश्चयकर उन दोनोंके साथ वह सब सभा स्वस्तिकावती नगरमें आई ॥४१३॥ वहां आते ही पर्वतकी माताने पर्वतकी कही हुई सब बातें सुनी और तुरंत ही वह पर्वतको साथ लेकर राजा वसुके पास पहुंची । वहां जाकर वह वसुसे कहने लगी कि तपोवनको जाते समय अर्थात् दीक्षा लेते समय तेरे गुरु क्षीरकदंबने यह कुटुंबरहित पर्वत तुझे समर्पण किया था । अब यहां तेरे ही सभापतित्वमें नारदके साथ इसका विवाद होगा, यदि इसमें यह पर्वत हार गया तो फिर इसके लिये आनेवाला यमराजका मुंह ही शरण समझना, अर्थात् यह अवश्य मर जायगा दूसरा कोई उपाय नहीं है । अपनी गुराणी की यह बात सुनकर गुरुकी सेवा शुश्रूषा करनेकी इच्छा रखनेवाला वह राजा वसु बड़े आदरसे कहने लगा कि "मा ! आप इसमें किसी बातकी शंका मत कीजिये मैं अवश्य ही पर्वत-

अस्तु वा नाहतत्व्यकिस्त्विवादो विधीयते । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे ते तं समस्तुवन् ॥ ४१२ ॥ वसुना चेद् द्वयोर्वादे विच्छेदः सोमिगम्यते ।
इति ताभ्यां समं संसदगच्छत्स्वस्तिकावती ॥ ४१३ ॥ तत्सर्वं पर्वतेनोक्तं ज्ञात्वा तज्जनो तदा । सह तेन वसुं दृष्टा पर्वतस्त्वपरिमहः ॥ ४१४ ॥ तपो-
वनोन्मुखेनायं गुरुणापि तवार्पितः । नारदेन सहास्येह तवाध्यक्षे भविष्यति ॥ ४१५ ॥ विवादो यदि भंगोऽत्र भावीभावियमानन । विद्धि यस्य शरणं नान्य-
दित्याख्यतसोपि सादरं ॥ ४१६ ॥ विधित्सुर्गुरुशुश्रूषामेव मास्मात्र शंकथाः । जयमस्य विधास्यामीत्यस्याभयमपाकरोत् ॥ ४१७ ॥ अन्येद्युर्वसुमाकाशस्फटि-
काहृयुद्धृतासनं । सिंहाकितं समारुह्य स्थित समुपगम्यते ॥ ४१८ ॥ सपृच्छतिस्म सर्वेपि विश्वभूसविवादयः । त्वत्प्रागप्यहिंसादिधर्मरक्षणतत्पराः ॥
४१९ ॥ चत्वारोऽत्र महीपाला भूताः हिममहासम--वस्वादिगिरिपर्यतनामानो हरिवंशजाः ॥ ४२० ॥ पुरा तेषु व्यतीतेषु विश्ववसुमहामहीट् । अभूत्ततो
भवांश्चासीदहिंसाधर्मरक्षक ॥ ४२१ ॥ त्वमेव सत्यवादीति प्रघोषो भुवनत्रये । विषवन्हितुलादेश्यो वस्तुसंदेहसन्निधौ ॥ ४२२ ॥ त्वमेव प्रत्ययोत्पादी

को जिता दूंगा ' इसतरह कहकर उसने पर्वतकी माका भय दूर किया ॥ ४१४--४१७ ॥ दूसरे दिन राजा वसु आ-काश स्फटिकके बने हुए राजसिंहासनपर बैठा, विश्वभू मंत्री आदि सब उस सभामें गये और पूछने लगे कि हे महा-राज आपसे पहिले इस हरिवंशमें हिमगिरि महागिरि समगिरि और वसुगिरि ये चार राजा हुए थे उन्होंने बहुत ही अच्छी तरह अहिंसा धर्मकी रक्षा की थी ॥ ४१८--४२० ॥ इनके बाद महाराजाधिराज विश्वावसु हुये फिर अहिंसा धर्मकी रक्षाकरनेवाले आप हुए हैं ॥ ४२१ ॥ आप बडे ही सत्यवादी हैं यह बात तीनों लोकमें प्र-सिद्ध है किसी वस्तुके संदेह होनेपर आप विष अग्नि अथवा तुला (तराजू) के समान हैं संसारमें विश्वास उत्पन्न कर-नेवाले आपही हैं । हे विभो ! आप ही हम लोगोंका संदेह दूर कीजिये । यह नारद धर्मका स्वरूप अहिंसा रूप बत-लाता है और यह पर्वत उपाध्यायके उपदेशानुसार उससे विपरीत हिंसारूप बतलाता है अब वास्तवमें धर्मका स्वरूप क्या है सो आप कहिये । यद्यपि राजा वसु गुरुके कहे हुए वा अरहंत देवके कहे हुए अहिंसाधर्मको जानता था तथापि गुराणी उससे पहिले पर्वतके जितानेकी प्रार्थना कर चुकी थी, इसके सिवाय महाकालके मोहसे वह मोहित मी हो चुका था, दुखकी चरम सीमा उसके समीप आ चुकी थी वह परिग्रहरूपी रौद्रध्यानमें लवलीन था इसलिये कहने लगा कि जो पर्वत कह रहा है वह ठीक है देखी हुई वस्तुमें संदेह करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ४२२--२६ ॥ इसी यज्ञसे राजा सगर अपनी स्त्री सहित स्वर्ग गया है । जो दीपक जल रहा है उसे दूसरे दीपकसे प्रकाशित करने-की आवश्यकता नहीं है ॥ ४२७ ॥ इसलिये सब तरहका डर छोडकर तुम लोग पर्वतका कहा हुआ स्वर्गका साधन करो । इसतरह हिंसानंद और अनृतानंद नामके रौद्रध्यानसे उसने नरकायुका बंध किया और मिथ्यापाप तथा अ-

छिंदि नः संशयं विभो । अहिंसालक्षणं धर्मं नारद प्रत्यपद्यत ॥ ४२३ ॥ पर्वतस्तद्विपर्यासमुपाध्यायोपदेशनं । यादृक् तादृक् त्वया ग्राह्यमित्यगौ चार्थि-
त पुरा ॥ ४२४ ॥ गुरुपत्न्याप्तनिर्दिष्ट बुध्यमानोपि भूपति । महाकालमहामोहेनाहितो दु खमावधे ॥ ४२५ ॥ सामीप्याद्रक्षणानंदरौद्रध्यानपरायण । प-
र्वतामिहित तत्त्वं दृष्टेकानुपपन्नता ॥ ४२६ ॥ स्वर्गमस्यैव योगेन सजानि सगरोप्यगात् । ज्वलत्प्रदीपमन्येन को दीपेन प्रकाशयेत् ॥ ४२७॥ पर्वतोक्त भ-
य हित्वा कुरुध्व स्वर्गसाधन । इति हिंसानृतानन्दाद् बध्वायुर्नरकं प्रति ॥ ४२८ ॥ मिथ्यापापापवादाभ्याममीरुरभणीदिद । अहोमहीपतेर्वक्त्रादपूर्वं घोरमी-
दृश ॥ ॥ ४२१ निर्यातमिति] वैपम्यादुक्ते नारदतापसाः । आक्रोशदवरं नद्यः प्रतिकूलजलस्रवा ॥ ४३० ॥ सद्यः सरासि शुष्काणि रक्तवृष्टिरनारता ।
तीव्रांशोरंशवो मदा विश्वाशाश्च मलीमसाः॥ ४३१ ॥ बभूवुः प्राणिनः कपमादधुर्भयविह्वलाः । तदा महाध्वनिर्धात्री द्विधा भकिमु पागता ॥ ४३२ ॥
वसोस्तस्मिन्महारन्ध्रेन्यमज्जत्सिंहविष्टरं । तद्दृष्ट्वादेवविद्याधरेशा घनपथे स्थिता ॥ ४३३ ॥ अतिक्रम्यादिमं मार्गं वसुराजमहापते । धर्मविध्वंसन
मार्गं मामिधा इत्यघोषयन् ॥ ४३४ ॥ पर्वतं वसुराजं च सिंहासननिमज्जनात् । परिम्लानमुखौ दृष्ट्वा महाकालस्य किंकराः ॥ ४३५ ॥ तापसाकार-

प्रवादसे न डरनेवाले वसुने उस सभामें ऊपर लिखे अनुसार वचन कहे । राजा वसुकी यह बात सुनकर नारद और तापसी कहने लगे कि यह बडा ही आश्चर्य है किसी विषम कारणसे महाराजके मुहसे ऐसे अपूर्व और घोर वचन निकले हैं उसीसमय आकाश गरजने लगा, नदियोंका जल प्रतिकूल बहने लगा, सरोवर बहुत शीघ्र सूख गये, बिना किसी रुकावटके रक्तकी वर्षा होने लगी, सूर्यकी किरणे मंद पड गईं, दिशायें सब मलिन होगईं और भयसे घबडाकर सब प्राणी कंपने लगे । उसीसमय बडी भारी आवाज करती हुई पृथ्वी फट गई और उसके बडे भारी गढेमें राजा वसुका सिंहासन घुसने लगा । उस सिंहासनको पृथ्वीमें घुसते हुए देखकर आकाशमें ठहरे हुए देव और विद्याधरोंके स्वामी घोषणा करने लगे कि हे महा बुद्धिमान् राजा वसु ! इस अहिंसारूप अनादि मार्गको उल्लंघनकर तू धर्मका विध्वंस वा नाश करनेवाले इस हिंसारूप मार्गकी प्रवृत्ति मतकर ॥ ४२८–४३४ ॥ पृथ्वीमें सिंहासन घुसनेसे पर्वत और राजा वसुका मुह फीका पड गया, उनका मुह फीका देखकर महाकालके सेवक तपस्वियोंका रूप धारणकर कहने लगे कि आप लोग किसी तरहका भय मत कीजिये इस तरह कहकर उन्होंने उस सिंहासनको खुद पकडकर तथा अपने ऊपर रक्खा हुआ लोगोंको दिखाला दिया ॥ ४३५–४३६ ॥ तदनंतर वह राजा वसु फिर कहने लगा कि मैं राजा हूं और तत्त्वोंका अच्छा जानकार हूं फिर मुझे डरनेका कुछ काम नहीं हैं मैं फिर कहता हूं कि पर्वतके ही वचन सत्य हैं इस तरह निश्चय करता हुआ वह उस फटी हुई पृथ्वीमें कंठ तक धंस गया ॥ ४३७ ॥

पुनः मा... रम... च्छत ... हत्या... पितृवा... वदन्तु ... ॥ ३६ ॥ नृपोप्यहं कथं तत्त्ववित्... मन्मृष... चमः । पर्वतस्यैव
गतवान् ॥ ३७ ॥ अनेनैवमवस्थामसि... वृपते । त्यजेममिति संप्रार्थितोपि यत्नेन साधुभिः ॥ ३८ ॥ तथापि ...
... मुवा कुपितयेवासौ निर्गीर्णस्त्वमगात्क्षितिः ॥ ३९ ॥ ... जगत्प्रत्ययायाथ नरकयोः । दिव्यरूपमवाप्यावां यागश्रद्धया ... ॥ ४० ॥
... र्ग मित्युक्त्वा पुनरस्यतो । शोकाश्चर्यवता... स्ववसुर्न महीमिति ॥ ४१ ॥ ... वदमानेन जनेन महता सह । प्रयागे विश्वभूर्यज्वा राजसूय-
घातं ॥ ४२ ॥ महापुराधिपाद्यास्तु निंदंतो जनमूढता । परमब्रह्मनिर्दिष्टमार्गे ... स्थिताः ॥ ४३ ॥ नारदेनैव धर्मस्य मर्यादेत्यास्य त... ।
... पुरं गिरितटाभिधं ॥ ४४ ॥ तापसाश्च दयाधर्मविध्वंसविधुराशयाः । कलयंतः कलिं कालं विचेलुः स्वं स्वमाश्रमं ॥ ४५ ॥ ततोन्येद्युः

इसके बाद साधुओंने बडे प्रयत्नसे फिर प्रार्थना की कि हे राजन् इस झूठ बोलनेसे ही तेरी यह अवस्था हुई है। इसलिये अब तू इस झूठको छोड दे ॥ ४३८ ॥ इसतरह प्रार्थना करनेपर भी उस मूर्खने यज्ञको ही सन्मार्ग बतलाया उसीसमय पृथ्वीने मानों क्रोधित होकर ही उसको निगल लिया और इस तरह मरकर वह सातवीं पृथ्वीमें (सातवें नरकमें) जा उत्पन्न हुआ ॥ ४३९ ॥ तदनंतर उस महाकाल नामके असुरने संसारको विश्वास उत्पन्न करानेकेलिये राजा वसु और सगरका दिव्य रूप धारण किया और "नारदके वचनोंको न मानकर केवल यज्ञकी श्रद्धासे ही हम दोनोंको स्वर्ग प्राप्त हुआ है" यह कहकर अदृश्य होगया। इसके बाद लोगोंको बहुत शोक और आश्चर्य हुआ तथा वे परस्पर विवाद करने लगे कोई कहता था कि नहीं वसु स्वर्ग गया है और कोई कहता था नरक गया है। इसतरह विवाद करते हुए अनेक लोगोंके साथ विश्वभू अपने नगरको लौट गया तथा प्रयागमें जाकर उसने राजसूय यज्ञ करना प्रारंभ किया ॥ ४०–४२ ॥ इसपर महापुर आदि नगरके राजाओंने लोगोंकी मूर्खताकी निंदाकी और वे परमब्रह्म भगवान् ऋषभदेवके कहे हुए मार्गमें तल्लीन होते हुए थोडे दिन तक योंही ठहरे रहे ॥ ४३ ॥ नारदने इस समय धर्मकी मर्यादा रक्खी है यही समझकर उन लोगोंने नारदकी प्रशंसाकी और गिरितट नामका नगर उसे रहनेके लिये दिया ॥ ४४ ॥ नारदके साथ जो तापसी थे वे दयाधर्मके विध्वंससे अत्यंत दूर रहनेकी इच्छासे कलिकालकी महिमा गाते हुए अपने अपने आश्रमको चले गये ॥ ४५ ॥ किसी दूसरे दिन नारदकी दिनकर देव नामके विद्याधरसे भेंट हुई उससमय नारदने बडे प्रेमसे उस विद्याधरसे कहाकि पर्वत समस्त प्राणियोंके विरुद्ध अपना आचरण कर रहा है आपको इसे रोकना चाहिये। उत्तरमें उसने स्वीकारता दी और उसीसमय अपनी विद्या-

सखे,नाम्ना देवो दिनकरादिम' । पर्वतस्याखिलप्राणिविरुद्धाचरितं त्वया ॥ ४६ ॥ निरुध्यतामिति प्रीत्या निर्दिष्टो नारदेन सः । करिष्यामि तथेत्युक्त्वा नागा तं यार पन्नगान् ॥ ४७ ॥ मविद्यया समाहूतास्तत्प्रपंचं यथास्थितं । अवोचस्तेपि सप्रामे भक्त्वा दैत्यमकुर्वत ॥ ४८ ॥ यज्ञविघ्नं तमालोक्य किं भूपर्वताख्यौ । शरणान्वेषणोद्युक्तौ महाकालं यदृच्छया ॥ ४९ ॥ पुर सन्निहितं दृष्ट्वा यागविघ्नं तमूचतुः । नागेंद्रैरिमिरस्माकं विहितोयमुपद्रवः ॥५०॥ नागविद्याश्च विद्यानुप्रवादे परिभाषिता. । निषिद्ध जिनबिम्बानामुपर्यासां विजृम्भणं ॥ ५१ ॥ ततो युवां जिनाकारान् सुरूपान् दिक्चतुष्टये । निवेश्याभ्यर्च्य यज्ञस्य प्रक्रमेथामिमं विधिं ॥ ५२ ॥ इत्युपायमसावाह तौ च तथाकतुस्तथा । पुनः खगाधिपोऽभ्येत्य यज्ञविघ्नविधित्सया ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा जैनेंद्रबिंबानि विद्याः क्रामति नात्र मे । नारदाय निवेद्येति स्वस्वधाम समाश्रयत् ॥ ५४ ॥ निर्विघ्नं यज्ञनिर्वृत्तौ विश्वभू पर्वतश्च तौ । जीवितान्ते चिरं दुःखं नरकेऽनुबभूवतु ॥ ५५ ॥ महाकालोप्यभिप्रेतं साधयित्वा स्वरूपधृत् । प्राग्भवे पोदनाधीशो नृपोहं मधुपिंगलः ॥ ५६ ॥ मयैवं सुलसाहेतोर्महत्पापमनुष्ठितं ।

से पन्नग जातिके (नाग कुमार) देवोंको बुलाकर उस यज्ञमें विघ्न डालनेकी सब वातें समझा दीं । उन देवोंने जाकर दैत्योंसे संग्राम किया उन्हें भगाया और सब तरह यज्ञमें विघ्न मचा दिया । यज्ञमें होनेवाले विघ्नको देखकर विश्वभू और पर्वत दोनोंही शरण ढूंढने लगे उसीसमय सामने ही इच्छानुसार आता हुआ महाकाल दिख गया ॥ ४६--४९ ॥ उसे देखते ही उन्होंने, उससे यज्ञमें विघ्न होनेके समाचार सुनाये, उसे सुनकर महाकालने कहा कि हमसे द्वेष करनेवाले नागकुमार देवोंने ही हमारे काममें यह उपद्रव किया है । यह नागविद्या विद्यानुप्रवादमें निरूपणकी है जिनबिंबोंके ऊपर इनकी शक्तिका निषेध वतलाया जाता है अर्थात् जिन बिम्बोंके ऊपर इनका कुछ वश नहीं चलता । इसलिये इसका यही उपाय है कि सुंदर जिनप्रतिमायें चारों दिशाओंमें स्थापनकर उनकी पूजा करो और फिर इस यज्ञकी विधि करना प्रारंभ करो । महाकालकी यह वात सुनकर विश्वभू और पर्वतने भी वैसा ही किया, अर्थात् जिनप्रतिमा विराजमानकर यज्ञ करना प्रारंभ किया । वह विद्याधर उस यज्ञमें विघ्न करनेकी इच्छासे फिर आया परंतु जिनप्रतिमाओंको देखकर नारदसे निवेदन करने लगा कि इस जगह (जिनप्रतिमाओंके सामने) मेरी विद्याएं कुछ काम नहीं कर सकतीं । इस तरह कहकर वह अपने घर चला गया ॥ ४५०--४५४ ॥ इसतरह वह यज्ञ समाप्त हुआ विश्वभू और पर्वत दोनों ही आयुके अंतमें मरकर नरकमें गये और वहांपर वहुत दिन तक दुःखोंका अनुभव करने लगे ॥ ५५ ॥ इधर महाकालने अपना अभिप्राय सिद्धकर अपना स्वरूप धारण किया और लोगोंको समझाने लगा कि पहिले भवमें मैं पोदनपुरका राजा मधुपिंगल था ॥ ५६ ॥ मैंने ही सुलसाकेलिये यह महा पाप किया है

अहिंसालक्षणो धर्मो जिनेंद्ररभिभाषित ॥ ५७ ॥ अनुष्ठेय स धर्मिष्ठैरित्युक्त्वासौ तिरोदधात् । स्वयं चादात्स्वदुश्चेष्टाप्रायश्चित्त दयार्द्रधीः ॥ ५८ ॥ निवृत्तिरेव सम्मोहाद्विहितात्पापकर्मण: । विश्वभूप्रमुखाः सर्वे हिंसाधर्मप्रवृत्तकाः ॥ ५९ ॥ प्रययुस्ते गतिं पापात्नारकीमिति केचन । दिव्यबोधैः समाकर्ण्य मुनिभि. समुदाहृत ॥ ६० ॥ पर्वतोद्दिष्टदुर्मार्गं नोपेयु: पापभीरव । केचित्तु दीर्घसंसारास्तस्मिन्नेव व्यवस्थिताः ॥ ६१ ॥ इत्यनेन स मन्त्री च राजा चागममार्हत । समासीनाश्च सर्वेपि मन्त्रिणं तुष्टुवुस्तरा ॥ ६२ ॥ तदा सेनापतिर्नाम्ना महीशस्य महाबल । पुण्यं भवतु पाप वा यागे नस्तेन किं फलं ॥ ६३ ॥ प्रभावदर्शन श्रेयो भूभृन्मध्ये कुमारयोः । इत्युक्तवास्ततो राजा पुनश्चैतद्विचारवत् ॥ ६४ ॥ इति मत्वा विसृज्यैतान् मन्त्रिसेनापतीन् पुन । हितोपदेशिनं प्रश्न तमपृच्छत्पुरोहित ॥ ६५ ॥ गतयोर्जनकागारं स्याम वेष्ट कुमारयो· । इति सोपि पुराणेषु निमित्तेषु च लक्षित ॥ ६६ ॥ अस्मात्कुमारयोस्तत्र यागे

वास्तवमें श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ अहिंसारूप ही धर्म है धर्मात्मा लोगोंको इसीका अनुष्ठान वा सेवन करना चाहिये । यह कहकर वह अदृश्य होगया और जिसकी बुद्धि दयासे भीग रही है ऐसे उसी महाकालने अपने आप ही उस दुश्चेष्टाका प्रायश्चित्त धारण किया ॥ ४५७–४५८ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे जो पाप कर्म किये थे उनका उसने त्याग किया । उनमेंसे विश्वभू आदिक हिंसाधर्मकी प्रवृत्ति करनेवाले सब लोग पापकर्मके उदयसे नरक गतिमें पहुंचे और पापोंसे डरनेवाले कितने ही लोगोंने दिव्य ज्ञानको धारण करनेवाले मुनियोंसे पर्वतके कहे हुये मिथ्यामार्गका स्वरूप सुनकर उसे स्वीकार नहीं किया, तथा संसारमें बहुत दिन तक परिभ्रमण करनेवाले कितने ही लोग उसी मिथ्यामार्गमें लवलीन होगये ॥ ४९९–४६१ ॥ इसप्रकार उस मंत्रीने राजासे भगवानके कहे हुए मतका उपदेश दिया उसे सुनकर सब सभासद लोग उस मंत्रीकी प्रशंसाकरने लगे ॥ ४६२ ॥ उसीसमय महाराज दशरथका महाबल नामका सेनपति कहने लगा कि यज्ञमें चाहे पुण्य हो अथवा पाप हो इससे हमें कुछ प्रयोजन नहीं है हमें राजाओंके बीचमें दोनों कुमारोंका प्रभाव दिखलाना चाहिये सेनापतिकी यह बातसुनकर राजाने फिर कहा कि यह बात भी अभी विचार करने योग्य है॥४६३–४६४॥यही समझकर उसने मंत्री और सेनापतिको तो विदा किया और फिर हितरूप उपदेश करनेवाले पुरोहितको बुलाकर उससे पूछा कि राजा जनकके घर दोनों कुमारोंको भेजना ठीक है या नहीं उत्तरमें पुराण और निमित्तशास्त्रोंमें कहे अनुसार वह पुरोहित भी कहने लगा कि उस यज्ञमें हमारे दोनों कुमारोंका महोदय प्रगट होगा, इस विषयमें बिल्कुल संदेह नहीं करना चाहिये । इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इसी भरतक्षेत्रमें बडे प्रतापी मनु, तीर्थंकर तीनों तरहके (चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण) चक्रवर्ती और बलभद्र होंगे ॥ ४६५–४६८ ॥ पुराणके

भावी महोदयः । संशयोत्र न कर्तव्यस्त्वयान्यच्चेदमुच्यते ॥ ६७ ॥ अथास्मिन्भारते क्षेत्रे मनवस्तीर्थनायका । चक्रेशाश्चिविधा रामा भविष्यंति महौजसः ॥ ६८ ॥ इत्याह्याताः पुराणैर्मुनीशैः प्रागमया श्रुताः । श्रुतेष्वष्टमाविमौ रामकेशवौ न कुमारकौ ॥ ६९ ॥ भाविनौ रावणं हत्वेत्यवादीद्धाविविदुगिर । तत्तदुक्त तदाकर्ण्य परितोषमगान्नृपः ॥ ७० ॥ कृत्वा पापमदः क्रुधा पशुवधस्योत्सूत्रमाभूतल हिंसायज्ञमवर्तयत्कपटधी क्रूरो महाकालकः । तेनागात्स वसु सपर्वतखलो घोरां धरां नारकीं दुर्मार्गान् दुरितावहान्विदधतां नैतन्महत्पापिनां ॥ ७१ ॥ व्यामोहात्सुलसाप्रियस्ससुलसा सार्द्धं स्वयं मन्त्रिणा शत्रुच्छद्मविवेकशून्यहृदयः सपाथ-हिंसाक्रिया । नष्टो गतुमधःक्षितिं दुरितिनामक्रूरनाशं मुधा दु कर्माभिरतस्य किं हि न भवेदन्यस्य चेदृग्विध ॥ ७२ ॥ स्वाचार्यवर्यमनुसृत्य हितानुशासी वादे समेत्य बुधसंसदि साधुवादं । श्रीनारदो विहितभूरितपाः कृतार्थः सर्वार्थसिद्धिमगमत्सुधियामधीशः ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे दुर्मार्गप्रवर्तनप्रपंचव्यावर्णनं नाम सप्तषष्ठ पर्व ॥ ६७ ॥

जाननेवाले मुनियोंने यह भी कहा है और मैंने पहिले सुना है कि उन नारायण बलभद्रोंमें हमारे कुमार बलभद्र और नारायण होनेवाले हैं और आगे प्रतिनारायण रावणको मारेंगे। इसतरह भविष्यको जाननेवाले पुरोहितने ये वचन कहे। उन्हें सुनकर महाराजा दशरथको बहुत ही संतोष हुआ॥४६९–४७०॥ जिसकी कपटरूप बुद्धि है और जो क्रूर है ऐसे महाकालने क्रोधमें आकर समस्त संसारमें शास्त्रोंके विरुद्ध और अत्यंत पापरूप ऐसे इस पशुओंकी हिंसा करनेरूप हिंसा यज्ञकी प्रवृत्तिकी उसी कारणसे वह राजा वसु और दुष्ट पर्वतके साथ घोर नरक गतिमें गया इसलिये पापोंका बोझा ढोनेवाले इन मिथ्यामार्गोंकी प्रवृत्ति कभी नहीं करनी चाहिये क्योंकि पापी लोगोंकेलिये इनके नरकादि फल बहुत ही बडे वा अपार हैं ॥ ४७१ ॥ मोहनीय कर्मके उदयसे शत्रुके कपटके ज्ञानसे जिसका हृदय शून्य है अर्थात् जो शत्रुके छल कपटको समझ भी नहीं सका ऐसे राजा सागरने सुलसा और मंत्रीके साथ स्वयं हिंसा रूप क्रियाएं की थीं इसीलिये नरकमें जानेके लिये वह नष्ट हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापरूप क्रूर कर्मोंको नाश करनेके लिये जो ऐसे अन्य पुरुष भी व्यर्थ ही दुष्कर्म करनेमें लीन हो जायगे वे क्या ऐसी ही दशाको प्राप्त नहीं होंगे? अर्थात् अवश्य होंगे ॥ ४७२ ॥ जिसने अपने उत्तम आचार्योंका अनुसरणकर हितरूप उपदेश दिया था, जिसने वाद विवादके समय विद्वानोंकी सभामें आकर भी सत्य वचन ही कहे थे, और जो अच्छेसे अच्छे बुद्धिमानोंका भी स्वामी था ऐसा नारद बहुतसा तपश्चरणकर और कृतार्थ होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र उत्पन्न हुआ था ॥ ४७३ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मिथ्यामार्गकी प्रवृत्तिके विस्तारको निरूपण करनेवाला यह सडसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथाष्टषष्ठं पर्व।

पुरोहितः पुनश्चासौ तत्कथां श्रोतुमर्हसि । इति संबोध्य भूपालं ततो वक्तुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥ क्रमेण श्रव्यशब्दार्थसारवाणिमवावलिं । दशास्यरे दशाशास्य प्रकाशिस्वयशः श्रियः ॥ २ ॥ अथास्ति नाकलोकाभो धातकीखंडपूर्वभाक् । भारते भूगुणैर्युक्तो देशः सारसमुच्चयः ॥ ३ ॥ तस्मिन्नाकपुरे ख्यातो नरदेवो महीपतिः । सकदाचिदनंताख्यगणेशात्कृतवंदनः ॥ ४ ॥ श्रुतधर्मकथो जातनिर्वेदो ज्येष्ठसूनवे । प्रदाय भोगदेवाय राज्यमापन्नसंयमः ॥ ५ ॥ चरंस्तपः समुत्कृष्टं दृष्ट्वा विद्याधराधिपं । सचपलवेगाख्यं निदानमकरोदधीः ॥ ६ ॥ प्रांते सन्यस्य सौधर्मकल्पेऽभूदमृताशन । अथास्मि-न्भारते क्षेत्रे विजयार्द्धमहाचले ॥ ७ ॥ खगेशो दक्षिणश्रेण्यां मेघकूटपुराधिप. । विनम्यन्वयसंभूत. सहस्रग्रीवखेचर. ॥ ८ ॥ क्रुधात्मभ्रातृपुत्रोरुबलेनो-

अथ अरसठवां पर्व ।

अथानंतर—पुरोहित फिर कहने लगा कि हे महाराज! यदि आप इस कथाको सुनना चाहते हैं तो सुनिये मैं कहता हूं जिसके शब्द और अर्थ सुनने योग्य हैं और जिसकी वाणी साररूप है ऐसा वह पुरोहित दशों दिशाओंके जीतनेवाले और अपने यशकी शोभाको प्रकाशित करनेवाले रावणके पूर्वभव कहने लगा ॥ १–२ ॥ कि धातकी खंडद्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें स्वर्गलोकके समान और पृथ्वीके सब गुणोंसहित सारसमुच्चय नामका देश है, उसी देशके नाकपुर नगरमें प्रसिद्ध राजा नरदेव राज्य करता था। वह किसी एक दिन अनंत नामके गणधरके समीप गया, उनकी वंदना की, उनसे धर्मकथा सुनी और विरक्त होकर तथा अपने बडे पुत्र भोगदेवको राज्य देकर उसने संयम धारण कर लिया ॥ ३–५ ॥ उसने तपश्चरण तो उत्कृष्ट किया परंतु चपलवेग नामके विद्याधरोंके राजाको देखकर उस मूर्खने निदान कर लिया ॥ ६ ॥ तथा आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

अथानंतर—इसी (जंबूद्वीपके) भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिणश्रेणीमें मेघकूट नामका नगर है उसमें राजा विनमिके वंशमें उत्पन्न हुआ सहस्रग्रीव नामका विद्याधर राज्य करता था ॥ ७–८ ॥ उसके भाईका पुत्र बहुत बलवान था इसलिये उसने क्रोधित होकर सहस्रग्रीवको निकाल दिया, वह सहस्रग्रीव वहांसे निकलकर लंकापुरीमें गया और वहांपर उसने तीस हजार वर्षतक राज्य किया ॥ ९ ॥ उसके पुत्रका नाम शतग्रीव था सहस्रग्रीवके बाद उसने वहां पच्चीस हजार वर्षतक राज्य किया, उसके बाद उसके पुत्र पचासग्रीवने वीस हजार वर्षतक राज्य किया।

स्सारितस्ततः। गत्वा लंकापुरं त्रिंशत्सहस्राब्दान्यपालयत् ॥ ९ ॥ तस्य पुत्र शतग्रीवस्तत्पञ्चशोनवत्सरान्। पातिस्म तत्सुतः पंचाशद्ग्रीवोप्यन्वपालयत् ॥ १० ॥ वत्सराणां सहस्राणि विंशतिं तस्य चात्मजः। पुलस्त्यस्त्रिसर्वकवर्षायुस्तस्य वल्लभा ॥ ११ ॥ मेघश्रीरनयो सूनुः स देवोभूद्दशाननः। चतुर्दश-सहस्राब्दपरमायुर्महीतल ॥ १२ ॥ पालयन्नन्यदा कांतासहायः क्रीडितुं वनं। गत्वा लंकेश्वर खेचराचलकेशितु ॥ १३ ॥ सुतामभितवेगस्य विद्यासा-धनतत्परां। लोलो मणिमतिं वीक्ष्य काममोहवशीकृतः ॥ १४ ॥ तां दुरात्मात्मसात्कर्तुं तद्विद्यासिद्धिमभ्यहरन्। सापि द्वादशवर्षोपवासक्लेशकृशी-कृता ॥ १५ ॥ तत्सिद्धिविघ्नहेतुत्वात्कुपित्वा खेचरेशिने। पुत्रिकास्यैव भूत्वेमं वध्यासमिति दुर्मतिं ॥ १६ ॥ कृत्वा भवाते मंदोदरीगर्भं समधिष्ठिता। भूकंपादिमहोत्पातैस्तज्जन्मसमयोद्भवै ॥ १७ ॥ विनाशो रावणस्येति नैमित्तिकवचःश्रुते। दशाननोतिभीत सन्यत्र क्वचन पापिनीं ॥ १८ ॥ त्य-

तदनंतर पचासग्रीवके पुलस्त्य राजा हुआ और उसने पंद्रह हजार वर्षतक राज्य किया पुलस्त्यके मेघश्री नामकी रानी थी उसके वह राजा नरदेवका जीव सौधर्म स्वर्गका देव दशानन नामका पुत्र हुआ उसकी उत्कृष्ट आयु चौदह हजार वर्षकी थी पिताके बाद वह पृथ्वीका पालन करने लगा। किसी एक दिन वह लंकाका राजा दशानन अपनी रानीके साथ वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया था, वहां पर विजयार्द्ध पर्वतके अचलक नगरके स्वामी राजा अमितवेग की पुत्री मणिमती विद्या सिद्ध कर रही थी, उसे देखकर वह काम और मोहके वश होकर आसक्त होगया ॥ १०–१४ ॥ उस कन्याको अपने वश करनेके लिये उस दुष्टने उसकी सिद्धकी हुई विद्या हरण करली। वह कन्या उस विद्याको सिद्ध करनेके लिये बारह वर्षतक उपवासकर बहुत कृश होगई थी, अब वह अपनी विद्याकी सिद्धिमें विघ्न होता हुआ देखकर रावण पर बहुत क्रोधित हुई और उसने निदान किया कि मैं इसकी पुत्री होकर इसे मारूंगी ॥ १५–१६ ॥ आयुके अंतमें प्राण छोडकर वह रावणकी रानी मंदोदरीके गर्भमें आई उसके जन्म होते ही भूकंप आदि अनेक उपद्रव होने लगे जिन्हें देखकर नैमित्तिकोंने कह दिया कि यही रावणके नाशका कारण होगी। नैमित्तिककी यह बात सुनकर निर्भय रावणको भी बहुत भारी भय हुआ और उसने मारीचको आज्ञा दी कि इस पापिनीको कहीं भी दूसरी जगह छोड आओ। रावणकी आज्ञानुसार मारीच मंदोदरीके घर गया और कहने लगा कि हे देवि! मैं बहुत ही घृणारहित हूं इसलिये रावणने मुझे ऐसे काम करनेकी आज्ञा दी है इसतरह उसने सब हाल सुना दिया यह सुनकर वह कहने लगी कि मैं महाराज रावणकी आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकती ॥ १७–२० ॥ यह कहकर उसने एक संदूकमें बहुतसा द्रव्य रक्खा एक लिखा हुआ पत्र रक्खा और उस कन्याको रखकर वह मारीचसे क–

मिनीं निजा । ज्ञापयेति स्थितः कश्चिद्विप्रो द्वारीत्यब्रूबुवत् ॥ ६०२ ॥ सापि स्वस्वामिनीमेतद्विप्रप्रोक्तमबोधयत् । ततः स्वानुमतायातं वृद्धावप्र यथोचित ॥ ६०३ ॥ प्रतिगृह्य कुतस्त्यस्त्वं गमिष्यसि कुतोऽथवा । इति तस्या परिप्रश्ने पश्चादिह समागतः ॥ ६०४ ॥ पुनः पुरो गमिष्यामीत्याहासौ तच्छ्रुतेर्जनः । पार्श्ववर्ती व्यधाद्धासं दारिकाया द्विजोऽपि त ॥ ६०५ ॥ न हास्यं कुरुतैवं भो वार्धक्यं विपरीततां । उत्पादयति युष्माकं किं न भावीति सोऽवदत् ॥ ६०६ ॥ पुनः पुरः क गन्तव्यमिति तत्प्रत्युदीरणे । कन्यातीर्थपरिप्राप्तिर्यावत्तावद्गतिर्मम ॥ ६०७ ॥ इति द्विजोदितं श्रुत्वा कायेन वयसाप्ययं । वृद्धो न चेतसे-त्येवं नर्मप्रायोक्तिपूर्वकं ॥ ६०८ ॥ अग्रासने विधायैनं स्वयमभ्यवहृत्य सा । 'इदानीं भवतो यत्र वाञ्छा तत्राशु गम्यतां' ॥ ६०९ ॥ इत्याह सोऽपि सु-ष्ठूक्तं त्वया भद्रे ममेति ताः । प्रशसन् प्रस्खलन् कृच्छ्रादुत्थायालम्ब्य यष्टिका ॥ ६१० ॥ तदीयशयनारोहं व्यधादुक्त इवैतया । चेटिकास्तद्विलोक्यास्य पश्य नि-

कही हुई बात अपनी स्वामिनीको समझा दी । उस गुणमालाने अपनी इच्छानुसार आये हुए वृद्ध ब्राह्मणका यथायोग्य आदर सत्कार कर बिठाया और पूछा कि आप कहांसे आये हैं और कहां जांयगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि मैं पीछेसे आया हूं और आगे जाऊंगा । ब्राह्मणकी यह बात सुन कर गुणमालाके पास बैठा हुआ मनुष्य उसकी हंसी करने लगा उस हंसीको सुनकर वह ब्राह्मण उस मनुष्यसे कहने लगा कि मैं कुछ हंसी नहीं करता किंतु यह बुढापा कुछ ऐसी ही विपरीतता उत्पन्न कर देता है । क्या यह बुढापा आपलोगोंको नहीं आवेगा ? ॥ ६०३–६०६ ॥ तदनंतर उन लोगोंने फिर पूछा कि तुम आगे कहां जाओगे इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि जब तक मुझे कन्यारूपी तीर्थ की प्राप्ति नहीं होती है तब तक मुझे गमन करना ही पडेगा ॥ ६०७ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी कही हुई बात सुन कर सब लोग कहने लगे कि यह शरीरसे बूढा है और आयुसे बूढा है परंतु इसका मन अभी बूढा नहीं है । इसके बाद नम्रता से प्रार्थना कर उसे आगे आसन पर बिठाया और फिर स्वयं गुणमालाने उससे कहा कि "अब आपकी जहां जानेकी इच्छा हो वहां शीघ्र ही चले जाइये" इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि हे भद्रे तूने बहुत अच्छा कहा' इस प्रकार उसकी प्रशंसा करता हुआ वह ब्राह्मण डगमगाता हुआ बडी कठिनतासे उठा और लकडीके सहारे चलकर उसकी शय्या पर इस प्रकार चढ गया मानों उसने शय्या पर जानेके लिये ही आज्ञा दी हो । यह देखकर गुणमालाकी दासीने कहा कि 'देखो इसकी निर्लज्जता' इस प्रकार कह कर हाथके सहारेसे वह उसे हटानेको तैयार हुई । इतनेमें ही उस ब्राह्मणने कहा कि 'हां तुम लोगोंने बहुत ठीक कहा क्योंकि ऐसी लज्जा स्त्रियोंमें ही होती है पुरुषोंमें नहीं, यदि पुरुषोंमें भी साधारण रीतिसे ऐसी लज्जा हो तो कामदेवके संस्कारसे स्त्रियोंके साथ पुरुषोंका समागम कैसे हो ? ॥ ६०८–६१३ ॥ इस प्रकार

तच्छ्रुत्वा पश्य नैर्लज्ज्यमस्य वार्धक्यमीदृशं । वशीकरणचूर्णाजनादिबंधनमप्यदः ॥ ५९३ ॥ इति तद्वचनात्सर्वे कृत्वा हास द्विजोत्तम । कन्यका गुणमालाख्या पुरेऽस्मिन्नस्ति विश्रुता ॥ ५९४ ॥ 'जीवधरेण मच्चूर्णवासस्य न कृता स्तुति' । इति नृद्वेषिणी जाता ता त्वच्चूर्णाजनादिभि. ॥ ५९५ ॥ वशीकुरुष्व तद्वीक्ष्य तव मन्त्रौषधादिकं । मौल्येन वहुना सर्वमाददिष्यामहे वय ॥ ५९६ ॥ इत्युक्तस्तैः सकोपो वा युष्मज्जीवधरो विधी' । चूर्णवासादिभेद किं स जानाति परीक्षितु ॥ ५९७ ॥ इत्युक्तवास्तत सर्वे सकोपा विप्रमब्रुवन् । 'यथेष्टं किं ब्रवीष्येव नृसारमविवेचयन् ॥ ५९८ ॥ आत्मस्तवोऽन्यनिन्दा च मरणान्न विशिष्यते । इति लोकप्रसिद्धं किं न श्रुत दु श्रुतोद्धत' ॥ ५९९ ॥ इत्यसौ तैरधिक्षिप्त किं न संति प्रशसका । युष्मद्विधा ममापीति सभाव्यात्मानमुद्धत. ॥ ६०० ॥ घटदासीं विधास्यामि गुणमालां मुहूर्तत । ममेति संगरं कृत्वा प्रस्थितस्तद्गृह प्रतिं ॥ ६०१ ॥ तत्र तच्चेटिकामेकामाहूय सा

हाथमें प्रत्यक्ष फल देनेवाली वशीकरण चूर्ण रूप औपधि है जिसकी इच्छा हो वही इसे ले सकता है ॥ ५९२ ॥ उस की इस घोषणाको सुनकर सब लोग उसकी हंसी करने लगे और कहने लगे कि देखो इसकी निर्लज्जता ! इसका यह ऐसा तो बुढापा है और यह वशीकरण चूर्ण तथा अंजन आदि ऐसी चीजें रखता है। इस प्रकार कहते हुए उन सब लोगोंने हंसी करते हुए कहा कि हे ब्राह्मण इस नगरमें एक गुणमाला नामकी प्रसिद्ध कन्या है 'जीवंधरने उसके चूर्णकी सुगंधिकी प्रशंसा नहीं की थी इसलिये वह मनुष्योंसे द्वेष करने लगी है अतएव पहिले तू अपने चूर्ण अंजन आदिसे उसे अपने वशमें करले यदि वह तेरे वश हो जायगी तो फिर इसको देख कर हमलोग बहुतसा मूल्य देकर तेरी मंत्र औषधि आदि सब खरीद लेंगे ॥ ५९३–९६ ॥ इस प्रकार लोगोंने कहा। तब वह ब्राह्मण क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम्हारा मूर्ख जीवंधर क्या चूर्णकी सुगंधियोंके भेदकी परीक्षा करना जानता है ? इसके उत्तरमें सब लोग क्रोधित होकर उस ब्राह्मणसे कहने लगे कि 'इस प्रकार मनुष्यत्वकी सारताका कुछ भी विचार न कर इच्छानुसार क्यों बकता है हे खोटे शास्त्रोंकी जानकारीसे, उद्धत हुए ब्राह्मण ! क्या तू ने यह लोकमें प्रसिद्ध कहावत नहीं सुनी है कि अपनी प्रशंसा और दूसरेकी निंदा करना मरनेके बराबर है इसप्रकार उन लोगोंने उस ब्राह्मण पर आक्षेप किये तब वह ब्राह्मण कहने लगा कि क्या आपके समान मेरी प्रशंसा करनेवाले लोग नहीं हैं। अपने आत्माकी संभावना कर उद्धत हुआ मैं एक क्षणमात्रमें गुणमालाको अपनी घटदासी (पानी भरनेवाली दासी) बना सकता हूं। ऐसी प्रतिज्ञा कर वह उसके घरकी ओर चला ॥ ५९७–६०१ ॥ वहां पर पहुंच कर उसने एक दासी बुलाई और उसे समझाकर कहला भेजा कि एक ब्राह्मण द्वार पर खडा है ऐसा तुम अपनी स्वामिनीसे कहो ॥ ६०२ ॥ उस दासीने भी जाकर उस ब्राह्मणकी

पर्याप्तं बलं नंदाढ्यनायकं ॥ ५८१ ॥ त्वामानेतुं प्रहेष्यामि तावदत्र त्वयास्यता । दिनानि कानिचिद्वीतशोकयेति महामतिः ॥ ५८२ ॥ तद्योग्यसर्ववस्तूनि परिवारं च कंचन । तत्सनिधाववस्थाप्य गत्वा राजपुरं स्वयं ॥ ५८३ ॥ प्राप्य तन्निजभृत्यादीन् पुरः प्रस्थाप्य कस्य चित् । ममागतिर्न वाच्येति प्रतिपाद्य पृथक्पृथक् ॥ ५८४ ॥ वैश्यवेष समादाय विद्यामुद्राप्रभावतः । पुरं प्रविश्य कस्मिंश्चिदापणे समवस्थितः ॥ ५८५ ॥ तत्र तत्सनिधानेन नानारत्नादिभाण्डकं । अपूर्वलाभसवृत्त दृष्ट्वा सागरदत्तक ॥ ५८६ ॥ वणिगादेशनिर्दिष्टो देवज्ञैरयमित्यसौ । दत्तवान्विमला तस्मै सुता स्वा कमलोद्भवा ॥ ५८७ ॥ दिनानि कानिचित्तत्र सवसन् सुखमन्यदा । परिव्राजकवेषेण काष्ठांगारकसंसद ॥ ५८८॥ प्रविश्य तं समालोक्य कृताशीर्वादसत्क्रिय । शृणु राजन्नहं भोक्तुं याचे त्वा-मतिथिर्गुणी ॥ ५८९ ॥ मा भोजयेत्युवाचैतच्छ्रुत्वा स प्रतिपन्नवाक् । 'मदुद्योगफलस्यैतन्निमित्त कुसुम परं' ॥ ५९० ॥ इत्युच्चासनमास्थाय भुक्त्वा तस्मात्स निर्गतः । 'वशीकरणचूर्णादिप्रत्यक्षफलमौषध ॥ ५९१ ॥ मत्करे विद्यते यस्मै रुचिर्गृह्णात्वसाविद' इति राजकमभ्येत्य पृथक्पृथगघोषयत् ॥ ५९२ ॥

बुद्धिमानने वह हृदयमें ही छिपा लिया और फिर मातासे कहा कि हे मा! इस कामको पूरा कर लेने पर मैं आपको बुलानेके लिये नंदाढ्यको नायक वना कर अपनी सेना भेजूंगा तव तक थोडे दिन तक आप शोक छोडकर आनंदसे यहां ही रहें ॥ ५७७–५८२ ॥ इस प्रकार कह कर उसने माताके योग्य सव पदार्थ तथा थोडेसे परिवारके लोग उसके समीप रख दिये और फिर वह स्वयं राजपुर नगरको चला गया ॥ ५८३ ॥ राजपुर नगरके समीप जाकर उसने साथके सव लोगोंसे अलग अलग कह दिया कि 'मेरे आनेकी खवर किसीको मत देना' इस तरह कह कर सेवक आदि सव लोगोंको नगरमें पहिले भेज दिया ॥ ५८४ ॥ तदनंतर उसने उस विद्यामयी अंगूठीके प्रभावसे वैश्यका भेप वनाया और नगरमें जाकर किसी एक दुकान पर जाकर वैठ गया ॥ ५८५ ॥ वहां पर सागरदत्त नामके एक शेठको उस जीवंधरके दुकान पर वैठ जानेसे अनेक रत्न आदिके पिटारे तथा और भी अपूर्व वस्तुओंका लाभ हुआ जिसे देखकर शेठने सोचा कि निमित्तज्ञानीने जिसके लिये कहा था वह यही पुरुष है इस लिये उसने अपनी स्त्री कमलासे उत्पन्न हुई विमला नामकी कन्या उसे व्याह दी ॥ ५८६–५८७ ॥ अथानंतर कुछ दिन तक तो वह जीवंधर कुमार वहीं सुखसे रहा फिर किसी एक दिन परिव्राजका रूप धारण कर काष्ठांगारकी सभामें गया वहां पर जाकर राजाको देखकर उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि हे राजन् सुनो मैं अतिथि और गुणी हूं तुझसे थोडा सा भोजन मांगता हूं मुझे खिला दे। राजाने यह वात सुन कर स्वीकारकी और यह फूल ही मेरे उद्योगके फलका उत्कृष्ट कारण है यही सोचकर वह ऊंचे आसन पर वैठकर भोजन कर वहांसे वाहर निकल आया। तदनंतर उसने राजाओंके समूहोंमें जाकर अलग अलग घोषणा दी कि "मेरे

द्रुवदृष्टिसभूतसुखसगमात् । कुमार भीतमीन वा मद्दुरा सद्सा गतं' ॥ ५७२ ॥ एवं देव्या तुषा धाक निगदता नवतरे । संप्रा" मतवं यक्षो वृस-
स्नेहात्कुमारजात् ॥ ५७३ ॥ स्नानस्रग्लेपनाशेषभूषावस्त्राशनादिभिः । नपूज्य जैनसद्धर्मवात्सल्यात्सकलो पृथक् ॥ ५७४ ॥ अपास्य मधुरालापैस्तत्त्वगर्भै. स-
युक्तिभिः । मदनादिकथाभिश्च शोक मातुः सुतस्य च ॥ ५७५ ॥ जगाम समुन्नं यक्षः स्वस्यैवापाय सन्क्रिया । तन्मैत्रं यदापत्सु सुहृद्भिरनुभूयते ॥
५७६ ॥ राज्ञी चैव महापुण्यभागीत्यालोच्य न पृथक् । 'कुमारमभ्यधावेत प्रज्ञाविक्रमशालिन ॥ '५७७ ॥ सत्यंधरमहाराजं तव राजपुरे गुरुं । हत्वा राज्ये
स्थित शत्रुस्तत्काष्ठागारकस्तत ॥ ५७८ ॥ पितृस्थानपरित्यागो न शोभ्यते मनस्विनः' । इत्यंबा न तदाकर्ण्य प्रतिपद्यादित ॥ ५७९ ॥ अकालप्रा-
प्तं शौर्यं न फलाय प्रकल्पते । धान्य वा सप्रतीक्ष्यो य. काल· कार्यस्य साधक ॥ ५८० ॥ इति मत्वा सजातक्रोधोऽप्याच्छाद्य त हृदि । ... कार्य-

चरणकमलोंको नमस्कार किया ॥ ५७० ॥ तदनंतर महादेवीने 'हे कुमार उठ तुझे सैंकडों कल्याण प्राप्त हों' इसप्रकार सैंकडों आशीर्वाद देकर बडे स्नेहसे उसे बढाया और फिर इसप्रकार कहने लगी कि "हे कुमार तेरे देखनेसे जो सुख उत्पन्न हुआ है उसीके समागमरूपी शत्रुसे अत्यंत डरकर ही क्या मानों मेरा दुःख अकस्मात् भाग गया है।" ५७१-५७२ इसप्रकार वह महादेवी पुत्रके साथ बात चीत कर रही थी कि इसी बीचमें कुमारके स्नेहसे वह चतुर यक्ष भी बडी शीघ्रतासे वहा आपहुंचा ॥ ५७३ ॥ उसने आकर उत्तम जैनधर्मके वात्सल्यसे स्नान, माला, लेपन, सबतरहके आभूषण वस्त्र और भोजन आदि देकर अलग अलग सबका आदर सत्कार किया ॥ ५७४ ॥ तदनंतर उसने युक्तियोंसे पूर्ण और तत्त्वोंके स्वरूपसे भरे हुए मधुर वचनोंसे तथा प्रद्युम्न आदिकी कथाओंसे माता और पुत्र दोनोंका शोक दूर किया ॥ ५७५ ॥ इसप्रकार आदर सत्कारकर वह यक्ष अपने स्थानकी ओर चला गया। देखो मित्रता वही है जिसका अनुभव आपत्तिमें भी मित्रोंके द्वारा किया जाता है ॥ ५७६ ॥ उसके बाद विजया महारानीने कुमार जीवंधरको बुद्धिमान् और अत्यत पराक्रमी देखकर तथा 'यह महापुण्यवान् है' यही समझकर एकांतमें लेजाकर उससे इसप्रकार कहा कि "तेरे पिता राजपुर नगरके महाराज थे और सत्यंधरके नामसे प्रसिद्ध थे। तेरा शत्रु यह काष्ठांगार उन्हें मारकर राज्यकर रहा है। तू विचार शील है इस लिये तुझे अपने पिताका स्थान छोड देना ठीक नहीं है" इस प्रकार माताके द्वारा कहे हुए वचनोंको सुनकर और अच्छी तरह समझ कर वह विचार करने लगा कि असमयमें की हुई शूरवीरतासे भी कुछ फल नहीं निकलता है जिस प्रकार धान्योंको फलनेके लिये समयकी प्रतीक्षा करनी पडती है उसी प्रकार कार्यको सिद्ध करनेवाले समयकी भी प्रतीक्षा करनी पडती है। इस प्रकार कहते हुए उसके हृदयमें यद्यपि क्रोध उत्पन्न हो आया था पर उस महा-

मीर्गेऽस्यैर्योगमागमन् ॥ ५६० ॥ हेमाभपुरसार्थीपहरणारंभसभ्रमे । तत्कर्म नागरैरूर्ध्वन्यस्तहस्तैर्निवेदितं ॥ ५६१ ॥ आक्रोशभूमिः सकारुण्यो जीवंधरस- माहयः । गत्वा व्याधबलं युद्धे निरुध्यातर्क्यविक्रमः॥ ५६२ ॥ तद्गृहीत धन सर्वं वणिग्भ्यो प्रार्पयत्पुन । युद्ध्वा चिरं विमुक्तात्मनामांकशरदर्शनात् ॥ ५६३ ॥ जीवंधरकुमारेण विदिता मधुरादयः । संगतास्ते कुमारस्य वार्तां राजपुरोद्भवां ॥ ५६४ ॥ सर्वां निर्णीय विश्रम्य कंचित्कालं स्थिता सुख । ततः कुमारमादाय गच्छंत स्वपुरं प्रति ॥ ५६५ ॥ अरण्यमप्रयाणार्थं दण्डकारण्यमुपागमन् । तत्र स्नेहात्महादेवी क्षीरापूर्णोन्नतस्तनी ॥ ५६६ ॥ वाष्पाविल- लोलाक्षी क्षामक्षामांगयष्टिका । चिंतासहस्रसतप्ता जटीभूतशिरोरुहा ॥ ५६७ ॥ निरंतरोष्णनिश्वासवैवर्ण्यगमिताधरा । ताम्बूलादिव्यपायोरुमलदिग्धद्विजाव- लि ॥ ५६८ ॥ अशोचत्पुत्रमालोक्य रुक्मणीव मनोभवं । इष्टकालांतरालोकस्तत्क्षणे दु खकारण ॥ ५६९ ॥ तनूजस्पर्शसंभूतमस्पृशंतीं सुखामृत । आपय- न्नापतत्पादपद्मयो स कृताजलिः ॥ ५७० ॥ कुमारोत्तिष्ठ कल्याणशतभागी भवेत्यसा । तमाशिषां शतै स्नेहादमिनद्यान्नवीदिति ॥ ५७१ ॥ 'प्रतिपक्षा-

वे भील लोग हेमाभ नगरके अनेक वैश्योंके समूहका धन लूट चुके थे इसलिये उनलोगोंने नगरमें जाकर चिल्ला चिल्लाकर तथा ऊपरको हाथ उठाकर सब हाल कहा था। यह सब हाल सुनकर अतर्क्य पराक्रमको धारण करनेवाले दयालु जीवंधरने उसी वनमें आकर युद्धमें भीलोंकी सेना हराई और फिर उनसे सब धन वापिस लेकर उन वैश्योंको दे दिया जिससमय जीवंधर उन भीलोंसे युद्ध कर रहा था उस समय मधुर आदिकोंने उसके पास अपना नाम खुदा हुआ वाण छोडा था उसे देखकर जीवंधरने मधुर आदिकोंका सब हाल जान लिया था। कुमार उसी समय उनके समीप आया मिलनेके वाद उसने राजपुरकी सब वात सुनी कुछ देरतक वहां विश्राम किया और फिर (हेमाभनगरमें जाकर) सुखसे रहने लगे। तदनंतर कुमार जीवंधरको लेकर वे सबलोग अपने नगरको चलने लगे। मार्गमें ठहरनेके लिये उसी दंडकवनमें पहुंचे। वहांपर विजया महादेवी मिली स्नेहसे उसके कुचोंमें दूध आगया उससे वे उन्नत होरहे थे, उसके चंचलनेत्रोंमें आंसू भर रहे थे, और शरीररूपी लकडी अत्यंत कृश हो रही थी। हजारों चिंताओंसे वह संतप्त हो रही थी, उसके केश जटाके समान हो रहे थे, सदा उष्ण निश्वास लेनेसे ओठोंका रंग ही वदल गया था तांवूल आदि द्रव्योंके न खानेसे उसके दांतोंपर भी वहुतसा मैल जमगया था और जिसप्रकार प्रद्युम्नको देखकर रुक्मिणीको दुख हुआ था उसीप्रकार पुत्रको देखकर वह शोककर रही थी। सो ठीक ही है क्योंकि इष्टजनों को वहुत दिन वाद देखना भी उसीसमय दुःखका कारण हो जाता है भावार्थ—वहुत दिन वाद इष्ट जनोंको देखनेसे दुख उमड आता है ॥ ५६०—५६९ ॥ जो पुत्रके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखरूपी अमृतका स्पर्श नहीं कर रही है ऐसी उस माताको जानकर जीवंधरने भी हाथ जोडकर उसके

पृष्टा स्नेहितैर्मधुरादिभिः । बद्रासकं विवेत्सि त्वं कुमारौ क्व गताविति ॥ ५५१ ॥ साप्याह सुजने देशे हेमाभनगरे सुखं । वसतस्तत्र का चिंता युष्माकमिति सादरं ॥५५२॥ ज्ञात्वा ताभ्यां स्थितं स्थानं ते सर्वे तद्दिदृक्षया । आपृच्छ्य स्वजनान् सर्वान् संतोषात्तैर्विमोचिताः ॥५५३॥ गच्छंतो दण्डकारण्ये व्यश्राम्यस्तापसाश्रमे । तापसीषु समागत्य तान् पश्यतीषु कौतुकात् ॥५५४॥ महादेवी च तान् दृष्ट्वा यूयं कस्मात्समागताः । गमिष्यथ क्व वेत्येतदपृच्छत्स्नेहनिर्भरं ॥ ५५५ ॥ यथाश्रुतातमेवैषु कथयत्सु प्रतोषिणी । मत्पुत्रपरिवारोऽयं सद्यो यूनामिति स्फुटं ॥ ५५६ ॥ विश्रायायात्र विश्रम्य भवद्भिर्गम्यतां पुनः । समागमनकालेऽसाविहैवानीयतामिति ॥ ५५७ ॥ सम्यक्प्रार्थयतैतांस्तेऽप्येषा जीवंधरश्रुते । रूपेण निर्विशेषा किं तन्मातेत्यात्तसंशयाः ॥ ५५८ ॥ कुर्मस्तथेति सतोष्य तां प्रियानुगतोक्तिभिः । गत्वा तत्रोत्तरं किंचित्तत्र व्याधैः कदर्थिताः ॥ ५५९ ॥ युद्धे पुरुषकारेण क्रव्यादानभिभूय तान् । यांतो यदृच्छया व्याधैः

अब इस कथनको यहांही छोडकर इसीसे संबंध रखनेवाली दूसरी कथा कही जाती है। जिसदिन राजपुर नगरसे नंदाढ्य निकल गया उसके दूसरे ही दिन उससे स्नेह रखनेवाले मधुर आदिकोंने गंधर्वदत्तासे पूछा कि दोनों कुमार कहां गये तू सब जानती है, बतला ॥ ५५०–५५१ ॥ इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने भी बडे आदरसे कहा कि आपलोग उनकी चिंता क्यों करते हैं वे दोनों भाई सुजन देशके हेमाभ नगरमें सुखसे निवास करते हैं ॥ ५५२ ॥ इसप्रकार उन दोनों कुमारोंके रहनेका स्थान जानकर मधुर आदि सब कुमारोंको उन्हें देखनेकी इच्छा हुई उन्होंने अपने सब भाई बंधुओंसे पूछा और संतोषके साथ सबसे विदा होकर वे लोग चले। चलते चलते सबलोग दंडकवनके तापसाश्रममें पहुंचे। वहांपर वे लोग तपस्विनियोंके समीप पहुंचे सब तपस्विनियें उन्हें कौतुकसे देखने लगीं उनमेंसे विजया महादेवीने बडे प्रेमसे उनलोगोंसे पूछा कि तुमलोग कहांसे आये हो और कहां जाओगे ॥ ५५३–५५५ ॥ जब मधुर आदिकोंने अपना सब हाल कहा तब बहुतही संतुष्ट हुई और उनसे कहने लगी तुम युवकोंका समूह सब मेरे ही पुत्रका परिवार है। तदनंतर उसने कहा कि तुमलोग आज यहां ही विश्राम करो, विश्रामकर फिर चले जाना और जीवंधरसे मिलनेपर उसे, यहां अवश्य लाना ॥ ५५६–५५७॥ इसप्रकार विजयाने उन लोगोंसे अच्छीतरह प्रार्थनाकी उस महादेवीके रूपको जीवंधरके रूपके ही समान देखकर उनलोगोंको भी संदेह होगया कि शायद यह जीवंधरकी माता ही हो ॥ ५५८ ॥ तदनंतर उनलोगोंने प्रिय और यथायोग्य बचनोंसे उस देवीको संतुष्ट किया तथा कहा कि हमलोग ऐसा ही करेंगे। इसके बाद ये लोग आगे चले थोडी ही दूर जानेपर भीलोंने आकर उन्हें खेदखिन्न किया ॥ ५५९ ॥ परंतु पुरुषार्थ दिखलाकर उनलोगोंने युद्धमें भीलोंको हरा दिया और फिर वे इच्छानुसार आगे चले। आगे पहुंचते ही अन्य भीलोंने आकर उन्हें घेर लिया। उसके पहिले

क्षिमं ॥ ५३९ ॥ मात्रा सयोजयेत्याह त्व चाज्ञानादिदं मया । कृतं कर्मेति निंदित्वा गर्हित्वात्मानमार्थ्रधी ॥ ५४० ॥ तदादानदिनाद्धसशावकं षोडशे
दिने । चातकं घनकालो वा सजलांभोदमालया ॥ ५४१ ॥ प्रसव मधुमासो वा लतया चूतसंश्रया । पद्मिन्यार्कोदयो वालिं त मात्रा समजीगम ॥५४२॥
एव विनोदैरन्यैश्च काले याते निरंतर । सुखेन केनचिद् भोगनिर्वेगे सति हेतुना ॥५४३॥ राज्यभारं परित्यज्य तपोभारं समुद्वहन् । जीविताते तनु त्यक्त्वा
सहस्रारे सुरोभवः ॥ ५४४ ॥ तत्राष्टादशवार्ध्यायुर्दिव्यभोगामितर्पितः । ततश्च्युत्वेह सभूत शुभाशुभविपाकतः ॥ ५४५ ॥ चेटकेन हतो हस स का-
ष्ठांगारकोऽभवत् । तेनैव त्वत्पिता युद्धे हत प्राक्तनजन्मनः ॥ ५४६ ॥ मंदसानशिशोः पित्रोर्विप्रयोगकृतैनसः । फलात् षोडशवर्षाणि वियोगस्तव ब-
धुमि ॥ ५४७ ॥ सह सजात इत्येतद्विद्याधरनिरूपित । श्रुत्वा कल्याणबधुस्त्व ममेत्येनमपूजयत् ॥ ५४८ ॥ तस्मादागत्य हेमाभनगरं प्राप्य संमदात् ।
कामभोगसुख स्वैरमिष्टैरनुभवस्थित ॥ ५४९ ॥ इदं प्रकृतमत्राम्यत्स्वविधानमुदीर्यंते । नद व्यस्य पुगात्स्वसान्निर्यां णानतरे दिने ॥ ५१० ॥ गधर्वदत्ता स-

कहा कि मुझसे यह काम अज्ञानतासे वन पडा है इस तरह कहकर उसने अपनी वडी निंदाकी अपने आपको धिकार दिया और फिर चित्तमें दया आजानेसे जिसदिन उस वच्चेको लिया था उससे सोलहवे दिन उसकी मातासे मिलाया। जिस प्रकार वर्षाका समय जलसे भरी हुई मेघपंक्तिसे चातकको मिला देता है वसंतऋतु आमकी वेलके साथ फूलोंको मिला देता है और सूर्योदय कमलिनीके साथ भ्रमरोंको मिला देता है उसी प्रकार जयद्रथने वह वचा उसकी मातासे मिला दिया ॥ ५३८–५४२ ॥ इस प्रकारके अन्य कितने ही विनोदोंके साथ जयद्रथका समय निरंतर सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक समय किसी कारणसे उसका चित्त भोगोंसे उदास हुआ। उसने राज्यभार छोडकर तपश्चरण का भार धारण किया और आयुके अंतमें शरीर छोड कर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ ॥ ५४३–५४४ ॥ वहां पर अठा-रह सागर तक दिव्य भोगोंका अनुभव कर तृप्त हुआ और वहांसे च्युत होकर अपने शुभाशुभ कर्मोंके उदयसे आप उ-त्पन्न हुए हैं ॥ ५४५ ॥ जो हंस सेवकके द्वारा मारा गया था वह मर कर कितने ही भवोंके वाद यह काष्ठांगार हुआ है इसी लिये ही पहिले जन्मके संवधसे काष्ठांगारने युद्धमें आपके पिताका घात किया था ॥ ५४६ ॥ जयद्रथने पहिले हंसके वच्चेको माता पितासे अलग किया था उसीके पापसे सोलह वर्षतक भाई वंधुओंसे आपका वियोग हुआ है इसप्रकार विद्याधरकी कही हुई सव कथा सुनकर जीवंधर कहने लगा कि तू मेरा कल्याण करनेवाला भाई है इस प्रकार कहकर उस विद्याधरका खूव आदर सत्कार किया ॥ ५४७–५४८ ॥ तदनंतर वह जीवंधर सवके साथ वडी प्रसन्नतासे हेमाभ नगरमें आया और इष्ट वस्तुओंके साथ इच्छानुसार काम भोगोंका सुख अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥५४९॥

तस्य नंदिम्या तनयोऽभवत् ॥५२८॥ महाभो मे सखा तस्य कदाचिद्धर्ममभ्यधात् । भवान ्च धर्मेण तेन रक्षाशयस्तदा ॥ ५२९ ॥ विधाय मद्यमासादि- निवृत्तिं तत्फलान्मृत । इह विद्याधरो भूत्वा सिद्धकूटजिनालये ॥ ५३० ॥ विलोक्य चारणद्वन्द्वं विनयेनोपसृत्य तत् । आवयोर्भवसंबधमाकर्ण्य त्वां निरीक्षितु ॥ ५३१ ॥ रक्षित्वैतत्सरोऽन्येषा प्रवेशाद्विद्यया स्थित । वक्ष्ये त्वद्भवसंबधं दिव्यावधिनिरूपित ॥ ५३२ ॥ धातकीखडप्राग्भागमेरुपूर्वविदेहगे । विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुण्डरीकणी ॥ ५३३ ॥ पतिर्जयधरस्तस्य तनूजोऽभूज्जयद्रथ । जयवत्या समन्येद्युर्वनं नाम्ना मनोहरं ॥ ५३४ ॥ विहर्तुं प्रस्थितस्तत्र सरस्या हंसशावक । विलोक्य चेटकैर्दक्षैस्तमानाय्य सकौतुक ॥ ५३५ ॥ स्थितस्तत्पोषणोद्योगे तन्मातापितरौ तदा । सशोकौ करुणाक्रन्द नभस्यकुरुता मुहु ॥ ५३६ ॥ चेटकस्ते तदाकर्ण्य कर्णाताकृष्टचापक । शरेणापातयत्त त तस्याकार्यं न पापिना ॥ ५३७ ॥ तन्निरीक्ष्य भवन्माता कारुण्यार्द्रीकृताशया । किमेतदिति सपृच्छ्य प्रबुद्धा परिचारकात् ॥ ५३८ ॥ कुपिता चेटकागेन वृथा विद्भवते सती । निर्भर्त्स्य त्वां च ते पुत्र न युक्तमिदमा-

मद्य मांसादिका त्याग किया था उसके फलसे मरकर मैं यह विद्याधर हुआ। किसी एक समय मैंने सिद्धकूट जिनालय में दो चारण मुनिराजोंके दर्शन किये थे मैं वडी विनयसे उनके समीप पहुंचा था और उनसे मैंने अपने और आपके दोनों भवोंका संबंध सुना था। अब मैं आपके दर्शन करनेके लिये ही इस सरोवरकी रक्षा करता था और अपनी विद्यासे अन्य किसीको इस सरोवरमें प्रवेश नहीं करने देता। अब मैं दिव्य अवधिज्ञानके द्वारा निरूपण किये हुए आपके भवोंका संबंध कहता हूं ॥ ५२६—५३२ ॥ धातकी खंडके पूर्व मेरुसंबंधी पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देश के पुंडरीकिणी नगरीमें राजा जयंधर राज्य करता था उसकी रानीका नाम जयावती था उसके आपका जीव जयद्रथ नामका पुत्र हुआ था। किसी एक समय वह जयद्रथ मनोहर नामके वनमें क्रीडा करनेके लिये गया था वहां पर सरोवर में एक हंसके बच्चेको देख कर चतुर सेवकोंके द्वारा केवल चित्त प्रसन्न करनेके लिये वह बच्चा मंगा कर रख लिया था। उस बच्चेके माता पिता उसका भरण पोषण करनेके लिये बहुत ही शोक करने लगे और वार वार आकाशमें करुणाजनक आक्रंदन करने लगे ॥ ५३३—५३६ ॥ उस आक्रंदनको सुनकर जयद्रथके एक सेवकने कानतक धनुष चढाकर बाणसे उस बच्चेके बापको मार दिया सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंके लिये संसारमें कोई अकार्य है ही नहीं ॥ ५३७ ॥ इस कामको देख कर जयद्रथकी माताका हृदय करुणासे भीग गया और उसने पूछा कि यह क्या है सेवकोंसे सव हाल जानकर वह सती उस हंसको व्यर्थ ही मारनेवाले सेवक पर बहुत ही क्रोधित हुई तथा उसने जयद्रथको भी ताडना कर कहा कि हे पुत्र यह ऐसा करना ठीक नहीं है तू इस बच्चेको शीघ्र ही इसकी मातासे मिला दे। जयद्रथने इसके उत्तरमें

५१८ ॥ पितरं वनराजस्य त च तमुन्मुमन्मनं । कृत्वा विसर्जेयांचक्रुर्धार्मिकत्वं हि तत्सतां ॥ ५१९ ॥ ततो राज्ञः पुरं गत्वा स्थित्वा द्वित्रिदिनानि ते । गत्वा नगरशोभाख्ये श्रीचंद्रां भद्रभागिनीं ॥ ५२० ॥ नंदाढ्याय ददुर्भूरिभूत्यायूने धनेशिने । एव विवाहनिर्वृत्तौ हेमाभ बन्धुभिः सम ॥ ५२१ ॥ पुरं प्रत्यागमे सत्यधरसूनुं निरीक्ष्य तं । कस्यचित्सरसस्तीरे तत्रानेतुं जलं गता ॥ ५२२ ॥ परिवारजना दष्टा दुष्टैर्भधिलमाक्षिकैः । तद्भयाद् बोधयतिस्म जीवंधरकुमारकं ॥ ५२३ ॥ तदाकर्ण्य विचिन्त्यैतत्कुमारोऽपि सविस्मयः । हेतुरस्त्यत्र कोऽपीति तद् ज्ञातुं यक्षमस्मरत् ॥ ५२४ ॥ सोऽपि संनिहितस्तत्र विद्यां विध्वस्य खेचरीं । तं खेचरं कुमारस्य पुरस्तादकरोद् द्रुत ॥ ५२५ ॥ इद सरस्त्वया केन रक्ष्यते हेतुनेति सः । परिपृष्टं कुमारेण खेचर सम्यगब्रवीत् ॥ ५२६ ॥ शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि मत्कथा कृतचेतनः । अभवत्पुष्पदताख्यमालाकारधनेशिनः ॥५२७॥ सुतो राजपुरे जातिभटाह्वः कुसुमश्रियः । तत्रैव धनद-

का हरण नहीं किया है किंतु पहिले जन्मके स्नेहसे किया है इसप्रकार सोच विचार कर वे सब लोग शांत होगये ॥५१८॥ तदनंतर उन सब लोगोंने वनराज और उसके पिता हरिविक्रमके बंधन छोड दिये और उन दोनोंको विदा कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा करना ही सज्जनोंका धर्मात्मापन कहलाता है ॥ ५१९ ॥ इसके बाद वे सबलोग राजाके नगरमें (हेमाभ नगरमें) गये दो दिन वहां रहे फिर नगरशोभा नामके नगरमें आये और कल्याण रूप भाग्यको धारण करनेवाली श्रीचंद्रा वडी विभूतिके साथ धनके स्वामी युवक नंदाढ्यको व्याह दी । इस प्रकार विवाहकी सब विधि पूर्ण हो जाने पर सब भाई बंधुओंके साथ फिर हेमाभ नगरको लौटे मार्गमें किसी तालावके किनारे ठहरे । वहां पर परिवारके लोग जीवंधर कुमारको एक जगह विठला कर उस सरोवरमेंसे जल लेने गये परंतु दुष्ट मधुमक्खियोंने वे सब लोग काट खाये तब सब लोगोंने डर कर जीवंधर कुमारसे कहा। कुमारने भी सुनकर बडा आश्चर्य किया और सोचा कि इसमें अवश्य ही कोई कारण होना चाहिये इसलिये उस कारणको जाननेके लिये उसने यक्षका स्मरण किया ॥ ५२०–५२४ ॥ स्मरण करते ही वह यक्ष भी आ उपस्थित हुआ उसने आते ही वह विद्याधरकी विद्याका नाश किया और फिर शीघ्रही उस विद्याधरको कुमारके सामने ला खडा किया ॥ ५२५ ॥ कुमारने उस विद्याधरसे पूछा कि तुम किस कारणसे इस सरोवरकी रक्षा करते हो । इसके उत्तरमें विद्याधर कहने लगा कि हे भद्र ! मेरी कथा चित्त लगा कर सुनो । पहिले जन्ममें मैं राजपुर नगरमें अत्यंत धनी ऐसे पुष्पदंत मालाकारकी स्त्री कुसुमश्रीसे जातिभट नामका पुत्र था । उसी नगरमें धनदत्तकी स्त्री नंदिनीसे उत्पन्न हुआ चंद्राभ नामका पुत्र था वह मेरा मित्र था, किसी एक समय आपने उस चंद्राभको धर्मका स्वरूप सुनाया था उस समय उसको सुन कर मेरे हृदयमें भी धर्मप्रेम उत्पन्न हुआ था और मैंने उसी समय

सोपाय पापमीरव: ॥ ५०७ ॥ ते सर्वे सिद्धसाध्यत्वाद्युद्ध सहार्यं समुख । नगरस्यागमन्नेतान्वसौ वनराजक: ॥ ५०८ ॥ युयुत्सया ययौ वीक्ष्य त यक्षो
दुष्टचेतसं । परिगृह्य हठात्सद्यः कुमाराय समार्पयत् ॥ ५०९ ॥ बंदीकृत्य कुमारोऽपि वनराजं निविष्टवान् । ससेन: ,सरसि श्रीमान्सेनारम्याभिधानके ॥
५१० ॥ तत्रैक चारणं वीक्ष्य सहसा महसा निधिं । भिक्षाहेतोर्येतिं प्रासमभ्युत्थाय यथोचित ॥ ५११ ॥ कृताभिवन्दनो योग्य भाक्तिकोऽदात्सुभोजनं ।
तद्दानाबार्जितायोऽयमयादाश्चर्यपचकं ॥ ५१२ ॥ तद्दानफलमालोक्य वनराज स्वजन्मन: । सबन्ध यथाथावृत्त स तत्सर्वमवागमत् ॥ ५१३ ॥ बलेन म-
हता योद्धु हरिविक्रममागत । यक्षस्तं च समादाय कुमारस्य करेऽकरोत् ॥ ५१४ ॥ वनराजस्तदाशेप सर्वेषामित्यथाब्रवीत् । "जन्मनीतस्तृतीयेऽहं
बभूव वणिजा सुत: ॥ ५१५ ॥ सुवर्णतेजास्तस्माच्च मृत्वा मार्जारता गत: । कपोती प्राग्भवे कन्यामिमा हन्तु समुद्यत: ॥ ५१६ ॥ केनचिन्मुनिनाधीत-
चतुर्गतिगतश्रुते । मुक्तवैरोऽत्र भूत्वैतत्स्नेहादेनामनीनय ॥ ५१७ ॥ तदुक्त ते समाकर्ण्य नाय कन्यामनीनयत् । दर्पेण किंतु संप्रीत्येत्यवधार्य शम गता: ॥

यक्षकी सहायतासे युद्धमें करने योग्य कामको सिद्ध कर तथा युद्धको समाप्तकर वे दृढमित्र आदि सब लोग अपने नगर
को लौट गये परंतु वनराज युद्ध करनेकी इच्छासे उन सबके पीछे हो गया । वनराजका ऐसा दुष्ट अभिप्राय देखकर
यक्षने उसे जवर्दस्ती पकडलिया और शीघ्रही कुमार जीवंधर को समर्पण कर दिया ॥ ५०८–५०९ ॥ कुमार जीवंधर
ने भी उसे वंधनमें डालकर रक्खा । तदनंतर उस श्रीमान् कुमार जीवंधरने सेना सहित सेनारम्य नामके सरोवरपर
डेरा दिये । दैवयोगसे वहींपर उसने तेजके निधि ऐसे एक चारणमुनिके अकस्मात् दर्शन किये वे मुनिराज भिक्षाके लिये
आ रहे थे इसलिये दर्शन करते ही जीवंधर उठा, विधि पूर्वक उनकी वंदना की पडगाहन किया और वडी भक्तिसे उन्हें
योग्य आहार दिया । उन मुनिराजको दान देनेसे जीवंधरको वडेभारी पुण्यकी प्राप्ति हुई और उसीसे उसके यहां पंचा-
श्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ५१०–१२ ॥ उस पंचाश्चर्यरूप दानके फलको देखकर वनराजको जाति स्मरण होगया और उसने
अपने पहिले जन्मके सव समाचार जान लिये ॥ ५१३ ॥ इधर हरिविक्रम भी वडी भारी सेना लेकर युद्ध करनेके लिये
आया परंतु यक्षने उसे भी पकडकर कुमार जीवंधरको सोंप दिया ॥ ५१४ ॥ तदनंतर वनराज सव लोगोंके सामने अप-
नी पहिले जन्मकी सव कथा इसप्रकार कहने लगा कि मैं इससे तीसरे जन्ममें एक सुवर्णतेज नामका वैश्यपुत्र था वहांसे
मरकर मैं विलाव हुआ । उससमय इस श्रीचंद्राका जीव कवूतरी था इस लिये उसे भी मारनेके लिये मैंने उद्यम किया
था ॥ ५१५–५१६ ॥ किसी एकसमय कोई मुनिराज चारोंगतियोंके परिभ्रमण का पाठ कर रहे थे उसे सुनकर मैंने
सव वैर छोड दिया था और फिर मर कर यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं इसलिये पहिले जन्मके स्नेहसे ही मैंने इस कन्या
का हरण किया था ॥ ५१७ ॥ वनराजकी ये सव वातें सुनकर सव लोग कहने लगे कि इसने अभिमानसे कन्याका

न्दु हृदय शनैः। "किमेव तिष्ठसि स्नाहि परिधत्स्व विभूषणं ॥ ४९६ ॥ अलंकुरु स्रज धेहि सुस्वाहारं मनोहरं। ब्रूहि विस्रब्धमस्माभिः श्रीचंद्रे सुखसंकथा ॥ ४९७ ॥ मनुष्यजन्म संप्राप्त दुःखेनानेकयोनिषु। दुर्लभ भोगंनमुख्यादेतन्मा नीनशो वृथा ॥ ४९८ ॥ वनराजात्परो नास्ति वरो रूपादिसिर्गुणैः। लोकेऽस्मिल्लोचने सम्यक्त्वोन्मील्य न पश्यसि ॥ ४९९ ॥ लक्ष्मीरिवादिचक्रेश भूषेवाभरणद्रुमं। सपूर्णेन्दुमिव ज्योत्स्ना वनराजमुपाश्रय ॥ ५०० ॥ प्राप्य चूडामणिं मूढ को नामात्रावन्यते"। इत्य भ्रथ भयप्रायैर्वचनैरकदर्थयन् ॥ ५०१ ॥ तदुपद्रवमाकर्ण्य प्रच्छन्नैर्हरिविक्रम। क्विपत्तिर्निग्रहेणासा कन्यायाः प्रतिपत्स्यते ॥ ५०२ ॥ कदाचिदिति सचिन्त्य निर्भर्त्स्य वनराजक। तस्या निजतनूजामि सह वास चकार सः ॥ ५०३ ॥ दृढमित्रादय सर्वे तदा सम्राप्य बांधवा। सन्नद्धबलसपन्नास्तस्थुरावेष्ट्य तत्पुरं ॥ ५०४ ॥ युयुत्सवो विपक्षाश्च जीवंधरकुमारकः। तद्दृष्ट्वा स्पष्टकारुण्यो युद्ध बहुजनातकृत् ॥ ५०५ ॥ किमनेनेति यक्षेश स सुदर्शनमस्मरत्। अनुस्मरणमात्रेण यक्षोऽप्यानीय कन्यका ॥ ५०६ ॥ कुमारायार्पयामास कस्याप्यकृतपीडन। ससाधयति कार्याणि

कर और हमारे साथ विश्वास पूर्वक सुखकी कथाएं कह ॥ ४९६—४९७ ॥ अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करते करते बडी कठिनतासे यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया है इसलिये इसे भोगोपभोगोंके विना व्यर्थ ही मत खो ॥ ४९८ ॥ इस संसारमें रूप आदि गुणोंको धारण करनेवाला वनराजके सिवाय और कोई अच्छा वर नहीं है तेरे वे दोनों नेत्र भी अच्छे हैं इसलिये इन्हें खोलकर तू क्यों नहीं देखती ॥ ४९९ ॥ जिसप्रकार भरतचक्रवर्तीके समीप लक्ष्मी रहती थी आभरण जातिके वृक्षोंके समीप शोभा रहती है और संपूर्ण चंद्रमाकेसमीप चांदनी रहती है उसीप्रकार तू वनराजके समीप रह॥५००॥ अरे चूडामणि रत्नको पाकर ऐसा कौन मूर्ख है जो उसका तिरस्कार करे" इसप्रकारके वचन तथा और भी भयदेनेवाले वचनोसे उन दूतियोंने उस श्रीचंद्राको खेदखिन्न किया ॥ ५०१ ॥ हरिविक्रमने गुप्त रीतिसे कन्याका यह सव उपद्रव सुनकर विचार किया कि इस कन्याको खेदखिन्न करनेसे कदाचित् इन दूतियोंको कोई विपत्ति आ सकती है यही सोचसमझकर उसने वनराजको तो फटकार लगाई और उस श्रीचंद्राको अपनी पुत्रियोंमें रख दिया ॥ ५०२—५०३ ॥ इधर दृढमित्र आदि सव भाई वंधुओंने अपनी सव सेना तैयार की और उस सेनाके द्वारा उस नगरको घेरकर आ डटे ॥ ५०४ ॥ उधरसे भील लोग भी युद्धकी इच्छासे वाहर निकले यह सव देखकर जीवंधरके हृदयमें करुणा आगई और वह विचार करने लगा अनेक लोगोंका नाश करनेवाले इस युद्धसे क्या लाभ है यही सोचकर उसने सुदर्शन यक्षको स्मरण किया। स्मरण करते ही वह यक्ष आया और उसने विना किसीको पीडा दिये वह कन्या लाकर जीवंधरके सुपुर्द की सो ठीक ही है क्योंकि पापोंसे डरनेवाले लोग किसी न किसी उपायसे कार्योंको सिद्धकर ही लेते हैं॥५०५—५०७॥

वनराजस्य तत्कातारूपकात्यादिसंपद । सम्यग्वर्णयत: स्मैतच्छ्रुत्वा तदभिलाषिणा ॥ ४८५ ॥ सुवर्णतेजसा प्रीतिमतास्या पूर्वजन्मनि । सा केनापि प्रकारेण त्वया यक्षो
मा प्रत्यानीयतामिति ॥ ४८६ ॥ प्रेषितावनु तेनेत्वा महाभटपरिष्कृतौ । तत्कन्याशयनागारं ज्ञात्वा कृतसुरंगकौ ॥ ४८७ ॥ निष्क्रम्य कन्या श्रीषेणलोहज-
घौ सपौरुषौ । गतौ कन्या गृहीत्वेति तस्मिल्लिखितपत्रक ॥ ४८८ ॥ सुरंगे समवस्थाप्य वनराजस्य संनिधिं । रजन्या सेंदुरेखा वा प्रस्थितौ मदभूमिजौ ॥
४८९ ॥ आदित्योद्गमवेलाया विदित्वा लेखवाचनात् । कन्यापहरणं तस्या भ्रातरौ नृपचोदितौ ॥ ४९० ॥ अनुसृत्य द्रुत ताभ्यां युध्यमानौ निरीक्ष्य सा ।
मित्रांतकिंनरं यक्षमित्र चाकुलिताशया ॥ ४९१ ॥ श्रीचंद्राह न भोक्ष्येऽस्मन्नगराऽस्मज्जिनालय । अदृष्ट्वा किंचिदप्यस्मिन्निति मौन समाददे ॥ ४९२ ॥ सद्या-
यौ वनराजस्य विनिर्जित्य नृपात्मजौ । नीत्वा ता राजपुत्राय ददतु: प्राप्तसंमदौ ॥ ४९३ ॥ सुविरक्तां वनेशोऽसौ प्रत्यात्मान विबुध्य ता । प्रौढास्तथोजनो-
पायै: स्वा: समाहूय दूतिका. ॥ ४९४ ॥ कुर्वंतेमा मयि प्रीतामुपायैरित्यभाषत । ताश्च तत्प्रेषण लब्ध्वा श्रीचंद्राभ्यासमागता । साममेदविधानज्ञा प्रवे-

किसी भी उपायसे तुम उसे मुझे लाकर दो इसप्रकार कहकर उसने वे दोनों मित्र अनेक बडे योद्धाओंके साथ भेजे ।
उन दोनोंने जाकर पहिले तो उस कन्याके सोनेकी जगहका पता लगाया और फिर श्रीषेण तथा लोहजंघ दोनों पुरु-
षार्थी सुरंग लगाकर कन्याके यहां पहुंचे वहां जाकर कन्याको उठाया और एक पत्र लिखकर वहां डाल दिया । उस प-
त्रमें लिखा था कि जिसप्रकार चंद्रमाकी रेखाके साथ शनि और मंगल जाते हैं उसीप्रकार हम दोनों इस कन्याको लेकर
वनराजके समीप जाते हैं ॥ ४७८—४८९ ॥ सूर्योदय होते ही उस पत्रके वाचनेसे कन्याके हरण होनेके समाचार मालूम
हुए राजाने अपने दोनों पुत्रोंसे कन्या लानेकेलिये कहा इसलिये बडी शीघ्रतासे वे दोनों ही चले और लोहजंघ तथा
श्रीषेणसे युद्ध करने लगे । किंनरमित्र और यक्षमित्र ऐसे अपने दोनों भाइयोंको युद्ध करते देख कर श्रीचंद्राका भी चित्त
व्याकुल हुआ और उसने यह प्रतिज्ञाकर मौन धारण करलिया कि मेरे नगरमें जो जिनालय है उसके दर्शन किये
विना मैं यहां कुछ भी नहीं खाऊंगी ॥ ४९०—४९२ ॥ इधर श्रीषेण और लोहजंघने युद्धकर राजाके दोनों पुत्रोंको हरा
दिया और वहुत ही प्रसन्न होकर वह कन्या राजपुत्र (वनराज) को समर्पण कर दी ॥ ४९३ ॥ जब वनराजने देखा कि
श्रीचंद्रा मुझसे विरक्त है तव उसने अनेक उपाय करनेमें चतुर ऐसी अपनी दूती बुलाई और उनसे कहा कि किसीभी
उपायसे 'यह मुझपर प्रेम करे' ऐसा काम करो । वनराजकी भेजी हुई वे सव दूती श्रीचंद्राके समीप आई ॥ ४९४—
९५ ॥ साम भेद आदि अनेक विधानोंको जाननेवाली वे दूतियां धीरे धीरे उसके हृदयमें प्रवेश करनेके लिये कहने लगीं
कि 'हे श्रीचंद्रे ! तू इस तरह क्यों बैठी है स्नान कर कपडे पहिन, आभूषणोंसे अलंकारकर, माला पहिन मनोहर भोजन

४७३॥ गत्वा तत्र मनोहारि नृत्तं चित्रमयोजयत्। नागरैः सह नदाढ्यो नृत्तमालोकितुं गतः ॥ ४७४ ॥ जन्मांतरस्मृतेर्मूर्च्छां सहसासावपप्तत। शीतक्रियाविशेषापनीतमूर्च्छस्तदग्रजः ॥ ४७५ ॥ जीवंधरोऽवदन्मूर्च्छाकारणं कथयेति तं। पट्टकालिखितं सर्वमभिधायाभ्यधादिदं ॥ ४७६ ॥ सोऽहमद्य तव सोदर्योऽजनिषीत्यग्रजं प्रति। तुष्ट्वासौ च विवाहार्थं प्रागारब्धमहामहं ॥ ४७७ ॥ इदं प्रकृतमत्रान्यच्छ्रूयतां समुपस्थितं। किराताधीश्वरो नाम्ना विश्रुतो हरिविक्रमः ॥ ४७८ ॥ स दायादभयाद्गत्वा कपित्थाख्यवनेऽकरोत्। दिशागिरौ पुरं तस्य वनादिगिरि सुंदरी ॥ ४७९ ॥ प्रिया तुग्वनराजोऽस्याप्य जगत वनेशिन। वटवृक्षाह्वयो मित्रश्चित्रसेन ससैन्धव ॥ ४८० ॥ अरिंजयादयः शत्रुमर्दनोऽतिबलोऽप्यमी। भृत्यास्तस्यात्मजस्यापि लोहजंघः सखा पर ॥ ४८१ ॥ श्रीषेणश्चान्यदा गत्वा पुरं तौ तद्वनांतरे। रममाणां समालोक्य श्रीचंद्रां चन्द्रिकोपमां ॥ ४८२ ॥ प्रशस्य यातौ वीक्ष्यांबु पाय्यं यान्त तुरंगमं। रक्षकाभिभवाद्भीत्वा दत्वास्मै तोषमापतुः ॥ ४८३ ॥ हरिविक्रमत पश्चात्तावभ्येत्य हितैषिणौ। मिथो वनचरेणात्मजस्यान्यायानुसारिणः ॥ ४८४ ॥

पचारकर उसकी मूर्छा दूर की। फिर जीवंधरने उससे पूछा कि मूर्छा आनेका कारण बतला। तब नंदाढ्यने चित्रका सब हाल कहकर जीवंधरसे कहा कि वही गुणमित्रका जीव आज मैं तेरा छोटा भाई हुआ हूं। जीवंधर इस बातसे बहुत संतुष्ट हुआ और पहिलेसे ही विवाहकेलिये भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करने लगा ॥ ४७५–४७७ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और कहता हूं उसे भी सुनो। हरिविक्रम नामका एक प्रसिद्ध भीलोंका राजा था उसने भाई.बंधुओंसे डरकर कपित्थ नामके वनमें दिशागिरि नामके पर्वतपर वनगिरि नामका एक नगर बसाया था उस वनके स्वामी भीलके सुंदरी नामकी स्त्री थी और वनराज नामका पुत्र था। वटवृक्ष, चित्रसेन, सैंधव, अरिंजय, शत्रुमर्दन, और अतिबल ये उस भीलके सेवक थे। लोहजंघ उसके पुत्र वनराजका मित्र था तथा श्रीषेण भी उसका मित्र था। किसी एक दिन लोहजंघ और श्रीषेण ये दोनों ही हेमाभ नगरमें गये वहांके वनमें चांदनीके समान श्रीचंद्रा खेल रही थी उसे देखकर दोनोंने उसकी प्रशंसा की वहींपर एक मनुष्य घोडाको पानी पिलानेकेलिये लाया था उसे देखकर उन्होंने उस घोडेके रक्षकका तिरस्कार किया और उससे घोडा छीनकर हरिविक्रम भीलको दिया और इसतरह हरिविक्रमको बहुत संतुष्ट किया। हरिविक्रमने भी वह घोडा उन्हीं दोनोंको दे दिया। इसप्रकार भीलके हितैषी उन दोनोंने अन्याय मार्गपर चलनेवाले भीलके पुत्र वनराजसे उस श्रीचंद्राकी रूप कांति आदि शोभाका वर्णन किया। उसे सुनकर इसी श्रीचंद्राके जीवमें पहिले जन्ममें सुवर्णतेजने प्रेम रखकर अभिलाषाकी थी और अब इस जन्ममें वनराजने उन दोनोंसे कहा कि

१ पहिले वनराजका जीव ही सुवर्णतेज था जिसे श्रीचंद्राका जीव अनुपमा देनी कही थी और फिर नहीं दी थी।

कदाचित्तत्पुरप्रत्यासन्नभूध्रविलातरे । पाशे विरचिते पापं कपोते पतिते सति ॥ ४६२ ॥ स्वयं गृह समागत्य रतिवेगात्मनो मृतिं । ... गरुत्तुण्डेन संलिख्य
तत्सर्वानप्यबोधयत् ॥ ४६३ ॥ तद्वियोगमहादुःखपीडिता विगतासुका । श्रीचंद्राख्याजनिष्टेयमभीष्टा भवतो सुता ॥ ४६४ ॥ अथ पारावतद्वन्द्व वीक्ष्य
जन्मांतरस्मृते । व्यमुह्यन्नियमेनैतद्यक्तं सर्वं ममाब्रवीत् " ॥ ४६५ ॥ इत्यथालकसुदर्या वचः श्रुत्वाकुलाकुलौ । सुतापतिसमन्वेषणेच्छया पितरौ तदा
४६५ ॥ तद्भवातरवृत्तान्त पट्टके लिखित स्फुट । रंगतेजोऽभिधानस्य नटवर्गे पटीयस ॥४६७॥ मदनादिलतायाश्च दानसमानपूर्वक । तत्कर्तव्य समाख्या-
य यत्नेन कुरुता करे॥४६८॥पुष्पकाख्ये वने तौ च कृतपट्टप्रसारणा । स्वयं नटितुमारब्धौ नानाजनसमाकुले॥४६९॥पितास्यास्तद्वने रंतु गतस्तत्र मुनीश्वर।
समाधिगुप्तमालोक्य परीत्य कृतवन्दन ॥४७०॥ धर्मसद्भावमाकर्ण्य पप्रच्छ तदनतरं । पूज्य मत्पुत्रिकापूर्वभवभर्ता क्व वर्तते ॥ ४७१ ॥ कथ्यतामिति दिव्या-
वधीक्षणः सोऽप्यथ वदत् । स हेमाभपुरे वैश्यतनयोऽव्याप्तयौवनः॥४७२॥इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्य तदैव स महीपति । सनटः ससुहृत्सर्वपरीवारपरिष्कृत ॥

और मरकर यह श्रीचंद्रा नामकी आपकी अभीष्ट पुत्री हुई है ॥ ४६४ ॥ आज कबूतर कबूतरीके जोडेको देखकर इसे जातिस्मरण हुआ है और नियमसे इसीलिये मूर्छित हो गई है। ये सब समाचार उसने मुझसे स्पष्ट कहे हैं ॥ ४६५ ॥ इसप्रकार अलकसुंदरीके वचन सुनकर अपनी पुत्रीके पतिको ढूंढनेकी इच्छासे वे माता पिता बहुत ही व्याकुल हुए ॥४६६॥ उन्होंने उस पुत्रीके पहिले भवका वृत्तांत सब एक चित्रमें अच्छीतरह लिखाया तथा नटोंमें जो रंगतेज नामका चतुर नट था और मदनलता उसकी स्त्री थी उन्हें बुलाया, दान देकर उनका आदर सत्कार किया और फिर हाथमें वह चित्र देकर कहा कि यह काम बडे यत्नसे करना चाहिये ॥ ४६७–६८ ॥ वे नट और नटी उस चित्रको लेकर पुष्पक वनमें गये वहांपर उन्होने वह चित्र तो लटका दिया और स्वयं अनेक लोगोंके बीचमें नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ४६९ ॥ इधर श्रीचंद्राका पिता वनमें क्रीडा करनेकेलिये गया वहांपर उसने मुनिराज समाधिगुप्तके दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणाएं दीं, वंदना की, धर्मका स्वरूप सुना और फिर पूछा कि हे पूज्य ! कहिये आज मेरी पुत्रीके पहिले जन्मका पति कहां है इसके उत्तरमें दिव्य अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे मुनिराज कहने लगे कि वह एक वैश्यका पुत्र हुआ है और यौवन अवस्था धारणकर आज हेमाभ नगरमें उपस्थित है ॥ ४७०–४७२ ॥ मुनिराजकी यह बात सुनकर वह राजा नट मित्र, और सब परिवारके साथ वहां पहुंचा। वहांपर जाकर उस नटने वह चित्र लटका दिया और मनोहर नृत्य करने लगा उस नृत्यको देखनेकेलिये नगरके सब लोग आये और सबके साथमें नंदाढ्य भी आया ॥ ४७३–४७४ ॥ उस चित्र पटके देखनेसे नंदाढ्यको अकस्मात जातिस्मरण हो आया और मूर्छा आगई तब जीवंधरने अनेक विशेष विशेष शीतो-

जन्मनि। देशे हेमागदे राजपुरे वैश्यकुलाग्रणीः ॥४५०॥ रत्नतेजा प्रिया तस्य रत्नमाला तयो सुता। सुरूपानुपमा नाम्ना नाम्नैव न गुणैरपि ॥ ४५१ ॥ तस्मिन्नेव पुरे वंशे विशा कनकतेजस । तनूजश्चन्द्रमालायामभवद् दुर्विधो विधीः ॥ ४५२ ॥ सुवर्णतेजा नामाभूत्तस्मै प्राक्परिभाषिता। पुनस्तदवमानेन त-न्मातापितरौ किल ॥ ४५३ ॥ समाश्रणयतां वैश्यपुत्राय मणिकारिणे। गुणमित्राय तत्रैय स्तोक कालमगात्सुख ॥ ४५४ ॥ कदाचिज्जलयात्रायामंभोनिधि-नदीमुखात्। निर्गमे विषमावर्ते गुणमित्रे मृति गते ॥ ४५५ ॥ स्वय चेत्वा प्रदेशं त मृत्युमेपा समाश्रयत्। ततो राजपुरे गंधोत्कटवैश्यसुधालये ॥४५६॥ पति पवनवेगाख्यो रतिवेगेयमप्यभूत्। पारावतकुलद्वंद्व तद्बालाक्षरशिक्षणे ॥ ४५७ ॥ स्वय चैत्याक्षराभ्यास-गृहिणो श्रावकव्रत। तयोर्दष्ट्वासशांतोपयोगं जन्मांतरागतात् ॥ ४५८ ॥ स्नेहादन्योऽन्यससक्तसुख तत्रावसच्चिर। सुवर्णतेजास्तद्द्वद्ववैरेण पुरुदंशतां ॥ ४५९ ॥ मृ वा सप्राप्य तद् द्वन्द्व दृष्ट्वा कापि यदृच्छया। अग्रहीद्रतिवेगा ता राहुर्मूर्निमिवैंदवीं ॥ ४६० ॥ जातकोप: कपोतोऽसु नखपक्षप्रताडनैः। तुडघातैश्च हत्व शु निजपत्नीममूमुचत् ॥ ४६१ ॥

किसी अन्य वैश्यपुत्रको देदी। वहांपर उन दोनोका थोडा समय सुखसे व्यतीत हुआ ॥ ४५२–४५४ ॥ किसी एकसमय वह गुणमित्र जहाजमें बैठकर समुद्रमें गया था परंतु समुद्रमें किसी नदीके मिलनेकी जगह बडे विषम भंवर पड रहे थे उसी मार्गसे निकलते समय वह वहीं डूबकर मर गया ॥ ४५५ ॥ वह अनुपमा उसकी स्त्री भी यह खबर सुनकर वहीं जाकर डूब मरी। इसप्रकार वे दोनों मरकर गुणमित्रका जीव उसी राजपुर नगरके गंधोत्कट वैश्यके घर पवनवेग नामका कबूतर हुआ और वह अनुपमाका जीव उसीके घर रतिवेगा नामकी कबूतरी हुई। गंधोत्कटके घर उसके लडके अक्षराभ्यास करते थे उन्हें देखकर उन दोनों कबूतर कबूतरीने भी अक्षरोंका अभ्यास करलिया कौर चित्तको अत्यंत शातकर श्रावकके व्रत धारण किये। जन्मांतरसे चले आए स्नेहके कारण परस्पर सुख भोगते हुए वे दोनों बहुत दिनतक वहीं रहे। सुवर्णतेजको अनुपमा नहीं मिलती थी इसलिये वह उन दोनोंसे वैर करने लगा था और आयुके अंतमें मरकर विलाव हुआ था। किसी एक दिन उसने उन दोनों कबूतर कबूतरीको देखा और जिसप्रकार चंद्रमाकी मूर्तिको राहु ग्रस लेता है उसीप्रकार उसने अपनी इच्छानुसार रतिवेगाको पकडलिया ॥ ४५६–४६० ॥ यह देखकर कबूतरको क्रोध आया तथा उसने पंख और पंजोंकी ताडनासे तथा चोचोंकी घातसे विलावको चोटे पहुंचाकर शीघ्र ही अपनी कबूतरी छुडा ली ॥ ४६१ ॥ किसी एक समय उसी नगरके समीपवर्ती पर्वतकी गुफाके समीप किसी पापी भीलने जाल डाला और उसमें पवनवेग कबूतरको फंसा लिया। यह देखकर रतिवेगा कबूतरी घर आई और उसने अपने पतिके मरनेके समाचार चोंचसे लिखकर सबको समझा दिये ॥ ४६२–४६३ ॥ तदनंतर उसके वियोगसे वह कबूतरी बहुत दुखी हुई

कृष्णांगने । वीक्ष्य पारावतद्वद्वं स्वैरं क्रीडयदृच्छया ॥४४०॥ जातजातिस्मृतिर्मूर्च्छां सहसा समुपागमत् । तद्दृशालोकनव्याकुलीकृतास्तत्समीपगाः ॥४४१॥ कुशलाश्चदनोशीरशीतलाम्भोनिषेचितां । व्यजनापादिताह्लादिपवनाश्वासिताशया ॥ ४४२ ॥ तां संबोध्य सुखालापैर्विभावितविबोधना । विदधुः किं न कुर्वंति कृच्छ्रेषु सुहृदो हितं ॥४४३॥ श्रुत्वैतत्पितरौ कन्याप्रियामलकसुंदरीं । पुत्रीं तिलकशब्दादिचंद्रिकाया विमूर्च्छता॥४४४॥ कन्या गवेषयेत्येवेति तदा जगदतुः शुचा । सापि संप्राप्य संलापनिपुणा कन्यका मिथः ॥ ४४५ ॥ भट्टारिके वदेतत्ते किं मूर्च्छाकारणं मम । इति पृष्टवती मूर्च्छाहेतुं चेच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४४६॥ न ह्यस्त्यकथनीयं मे तव प्राणाधिकप्रिये । शृणु चेत समाधायेत्यसौ सम्यगनुस्मृति ॥ ४४७ ॥ स्वपूर्वभवसंबंधमशेषं प्रत्यपीपदत् । तत्सर्वमवधार्याशु सुधीरलकसुंदरी ॥ ४४८ ॥ तदैवागत्य तन्मूर्च्छाकारणं प्राग्यथाश्रुतं । प्रस्पष्टमधुरालापैस्तयोरेवमभाषत ॥ ४४९ ॥ "इतस्तृतीये कन्यैषा बभूव किल

मिला हुआ शीतल जल छिडका और पंखेसे अच्छी हवा की जिससे वह सावधान हुई तब मीठे वचनोंसे वह समझाई। सो ठीक ही है क्योंकि आपत्ति पडनेपर मित्रलोग क्या क्या हित नहीं करते हैं ॥ ४४०–४४३ ॥ यह समाचार सुनकर उसके माता पिताने तिलकचंद्राकी पुत्री और श्रीचंद्राकी सखी अलकसुंदरीसे कहा कि तू जाकर कन्याके शोकका कारण तलाशकर। राजारानीकी यह वात सुनकर वातचीत करनेमें अत्यंत निपुण ऐसी वह अलकसुंदरी भी श्रीचंद्राके समीप पहुंची और परस्पर वातचीत करनेपर पूछने लगी कि हे भट्टारिके (पूज्ये) मुझे वतला–तेरी मूर्छा आनेका कारण क्या है ? इसके उत्तरमें श्रीचंद्राने कहा कि हे प्राणोंसे अधिक प्यारी सखी! यदि तू मेरी मूर्छाका कारण सुनना चाहती है तो सुन, क्योंकि तेरे लिये न कहने योग्य मेरी कुछ वात नहीं है। तू चित्त लगाकर सुन इसप्रकार उसने जो जो स्मरण हुआ था वह पहिले भवका सब संबंध ज्योंका त्यों अच्छीतरह कह सुनाया। उस सबको सुनकर वह बुद्धिमती अलकसुंदरी उसीसमय उसके माता पिताके समीप आई और उसने उसकी मूर्छाका कारण जो कुछ पहिले सुना था वह सब स्पष्ट रीतिसे मधुर शब्दोंमें नीचे लिखे अनुसार उन दोनोंको कह सुनाया ॥ ४४४–४४९ ॥ वह कहने लगी कि यह कन्या इस भवसे पहिले तीसरे जन्ममें हेमांगददेशके राजपुर नगरमें वैश्यकुलमें श्रेष्ठ ऐसे रत्नतेजकी स्त्री रत्नमालासे अनुपमा नामकी सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या केवल नामसे ही अनुपमा नहीं थी किंतु गुणोंसे भी अनुपमा थी ॥४५०-४५१॥ उसी नगरमें वैश्यवंशमें उत्पन्न हुए कनकतेजकी स्त्री चंद्रमालासे सुवर्णतेज नामका पुत्र हुआ था जो कि वहुत ही बुद्धिहीन और भाग्यहीन था। रत्नतेजने पहिले वह अनुपमा कन्या सुवर्णतेजको देनी कही थी परंतु उसे मूर्ख और भाग्यहीन देखकर उसका अपमानकर अर्थात् उसे न दे कर उन्होंने वह कन्या जवाहरातका काम जाननेवाले गुणमित्र नामके

॥४३०॥ तत्र पूर्वकृतं पुण्य कुमारोऽनुभवन् स्थित । इतो जीवधराभ्यर्णमप्रकाशं मुहुर्मुहुः ॥ ४३१ ॥ गत्वागमनमालोक्य नंदाढ्येन कदाचन । भ्राता केनचियासि कं यियासुरहं च तत् ॥ ४३२ ॥ वदेति पृष्टा गंधर्वदत्ता स्मित्वाब्रवीदिद । मया प्राप्यं प्रदेशं चेत्त्वं च गंतुं यदीच्छसि ॥ ४३३ ॥ देवताधिष्ठिता नाम्ना शय्या स्मरतरंगिणी । तत्राभ्रज तव स्मृत्वा स्वप्यास्त्वं विधिपूर्वक ॥ ४३४ ॥ तथा प्राप्नोपि संतोषात्तत्समीपमिति स्फुटं । तदुक्तमवधार्यासौ रात्रौ तच्छयनेऽस्वपत् ॥ ४३५ ॥ त तदा भोगिनीविद्या शय्ययानयदग्रजं । तदाकुमारनंदाढ्यौ मुदा वीक्ष्य परस्परं ॥ ४३६ ॥ समाश्लिष्य सुखप्रश्नपूर्वकं तत्र तस्थतु । नाधिक प्रीतयेत्रान्यत्प्रीतसोदर्यसंगमात् ॥ ४३७ ॥ राष्ट्रे ऽस्मिन्नेव विख्याते सुजनेऽस्ति परं पुरं । नाम्ना नगरशोभाख्यं दृढमित्रस्य भूपतेः ॥ ४३८ ॥ भ्राता तस्य सुमित्राख्यो राज्ञी तस्य वसुंधरा । रूपविज्ञानसंपन्ना श्रीचंद्रा तनया तयो ॥ ४३९ ॥ आपन्नयौवनारंभा सा कदाचि-

कहते हैं गुणमित्र बहुमित्र, सुमित्र, और धनमित्र तथा और भी कितने ही जीवंधरके साले थे उन सबको जीवंधरने सब तरहके विज्ञानोंमें निपुण बना दिया था इसप्रकार वह जीवंधर कुमार बहुत दिनतक पहिले किये हुए पुण्यकर्मोंका अनुभव करता हुआ वहीं रहता था। इधर गंधर्वदत्ता बार बार छिपकर जीवंधरके समीप आती जाती थी उसे देखकर किसी एक दिन नंदाढ्यने पूछा कि बतला तू छिपकर कहां जाती है और किस तरह जाती है क्योंकि जहां तू जाती है वहां मैं भी जाना चाहता हूं इसके उत्तरमें गंधर्वदत्ताने हँसकर कहा कि जहां मैं जाती हूं यदि तू वहां जाना चाहता है तो स्मरतरंगिणी नामकी एक देवाधिष्ठित शय्या है उसपर तू अपने बडे भाईको स्मरण कर विधिपूर्वक सो जाना॥४२५॥ इसतरह तू संतोष पूर्वक अपने बडे भाईके पास पहुंच जायगा। गंधर्वदत्ताकी यह बात सुनकर वह नंदाढ्यकुमार रात्रिमें शय्या पर सोगया और भोगिनी विद्याने शय्या समेत उठाकर उसे उसके बडे भाई जीवंधरके समीप पहुंचा दिया। तदनंतर जीवंधर कुमार और नंदाढ्य दोनों एक दूसरेको देखकर बडी प्रसन्नतासे मिले और परस्पर कुशलक्षेम पूछकर वहीं पर रहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें प्रेम करनेवाले दो भाइयोंके समागमसे और अधिक प्रेम करनेवाली कोई चीज नहीं है ॥४३५-४३७॥ अथानंतर-इसी प्रसिद्ध सुजन देशमें एक शोभा नामका नगर है उसमें राजा दृढमित्र राज्य करता था उसके भाईका नाम सुमित्र था और उसकी वसुंधरा नामकी रानीसे रूप और विज्ञानसे सुशोभित ऐसी श्रीचंद्रा नामकी कन्या थी॥ ४३८-४३९॥ उसकी यौवन अवस्था प्रारंभ हो रही थी। किसी एक दिन उसके घरके आंगनमें कबूतर कबूतरी अपनी इच्छानुसार स्वतंत्रतापूर्वक क्रीडा कर रहे थे उन्हें देखकर श्रीचंद्राको अकस्मात् जातिस्मरण हुआ और वह मूर्छित हो गई। उसे मूर्छित देखकर उसके समीप रहनेवाली सखियां व्याकुल हो गईं और उनमें जो चतुर थीं उन्होंने चंदन और उशीरसे

दिनै प्रागिव तत्पुरात् ॥ ४१९ ॥ चापवाणधरो गत्वा विषये सुजनाह्वये । हेमाभनगरं प्राप्त कुमार पुण्यसाधनः ॥ ४२० ॥ तत्पतिर्दृढमित्राख्यो नलिना तस्य वल्लभा । हेमाभाख्या तयो पुत्री तज्जन्मन्येव केनचित् ॥ ४२१ ॥ कृत किलैवमादेशो मनोहरवनांतरे । खलूरिकाया धानुष्कव्यायामे येन चोदितः ॥ ४२२॥ लक्ष्याभ्यर्णान्निवृत्त सन् शरः पश्चात्समेष्यति । वल्लभा तस्य वालेय भवितेति सुलक्षणा ॥ ४२३ ॥ धनुर्विद्याविद सर्वे तदादेशश्रुतेस्तदा । तथा गुणयितु युक्ता समभूवस्तदाशयाः ॥ ४२४ ॥ जीवंधरकुमारोऽपि तत्प्रदेशमुपागमत् । धानुष्कास्तं विलोक्याहुरादेशोक्तधनुःश्रमः ॥ ४२५ ॥ किमगास्तीति सोऽप्याह किंचिदस्तीति तैरिद । विध्यता लक्ष्मित्युक्तः सज्जीकृतधनुःशर ॥ ४२६ ॥ आदाय विद्धवांल्लक्षमप्राप्यैष न्यवर्तत । त तदालोक्य तत्रस्था महीपतिमबोधयन् ॥ ४२७ ॥ मृग्यमाणो हि मे वल्लीविशेषश्चरणेऽसजत् । इति क्षितीश्वर प्रीतो विवाहविधिना सुता ॥ ४२८ ॥ अश्राणयद्विभूत्याऽभे तदिद पुण्यमुच्यते । आदिमो गुणमित्रोऽन्यो बहुमित्रस्तत. पर ॥४२९॥सुमित्रो धनमित्रोऽन्यस्तयान्ये चास्य मैथुनाः । तांस्तान्सर्वान्सविज्ञानकुशलान्विदध

गंधर्वदत्ता अपनी विद्यासे जीवंधरके समीप आई और जीवंधरको सुखी देखकर छिपकर ही फिर अपने राजपुर नगरमें आगई सो ठीक ही है क्योंकि प्यारोंको देखकर उत्सव मानना ही प्रेम करनेवालोंका प्रेम कहलाता है । तदनंतर कितने ही दिनोंके वाद पहिलेके समान उसनगरसे भी वह पुण्यवान् कुमार छिपकर निकला और धनुषवाण लेकर सुजन नामके देशके हेमाभ नामके नगरमें जा पहुंचा ॥ ४१७—४२० ॥ वहांके राजाका नाम दृढमित्र था और उसकी रानी नलिनासे हेमाभा नामकी पुत्री हुई थी । उसके जन्म होते ही किसी निमित्तज्ञानीने कहा था कि मनोहर नामके वनमें जो आयुधशाला है उसमें धनुषविद्याके व्यायाममें जो कोई पुरुष ठीक निशानेपर वाण मारेगा और वह वाण निशानेको मारकर पीछे वापिस आजायगा वह पुरुष इस सुलक्षणा कन्याका पति होगा ॥ ४२१-४२३ ॥ उस आदेशको सुनकर उससमय धनुषविद्याको जाननेवाले सव लोग उस कन्याके लोभसे उसीप्रकारका अभ्यास करनेमें तत्पर होरहे थे॥४२४॥ चलता चलता जीवंधर कुमार भी वहीं पर जा पहुंचा उसे देखकर धानुष्क लोग कहने लगे कि हे भाई राजाकी ऐसी आज्ञा है क्या तुमने कभी धनुष चलानेका परिश्रम किया है? उत्तरमें जीवंधरने कहा कि हां! कुछ किया है तव उन लोगोंने कहा कि अच्छा तो इस निशानको मारो । तव जीवंधरने धनुष वाण तैयार कर वह निशाना मारा और वह छोडा हुआ वाण उस निशानेके समीप पहुंचकर लौट आया इस वातको देखकर वहां खडे हुये लोगोंने राजाको खवर दी । यह खवर सुनते ही राजा कहने लगा कि जिस खास वेलको ढूंढ रहे थे वही पैरसे आ लगी। राजा वहुत प्रसन्न हुआ और उसने वडी विभूतिके साथ विवाहकी विधिपूर्वक वह कन्या जीवंधर कुमारको दे दी सो ठीक ही है क्योंकि पुण्य इसीको

मरारवं । तद्गोपुरकवाटानामुद्घाटनमभूत्स्वयं ॥ ४०८ ॥ तद्विलोक्य समुत्पन्नभक्ति र्ज्ञानविशुद्धिमाक् । तत्सरोवरसंभूतप्रसवैर्बहुभिर्जिनं ॥ ४०९ ॥ अभ्य-
र्च्याभ्यैर्मुदा व्यग्रमस्तोष्टेष्टैरभिष्टुवै । सुता तत्र सुभद्राख्यश्रेष्ठिनो निर्वृतेश्च सा ॥ ४१० ॥ साक्षाल्लक्ष्मीरिवाक्षूणाभूत्राम्ना क्षेमसुंदरी । तद्भाविभर्तृसांनिध्ये
चंपकप्रसवादिक ॥ ४११ ॥ समादिशत्पुरा सर्वं मुनीन्द्रो विनयधरः । तत्रस्थास्तत्परीक्षार्थं नियुक्तपुरुषास्तदा ॥ ४१२ ॥ जीवंधरकुमारावलोकनाज्जातसम-
दा । सफलोऽस्मन्नियोगोऽभूदिति तत्क्षणमेव ते ॥ ४१३ ॥ न्यबोधयत्समस्तं तत्संप्राप्य स्वामिनः निज । सोऽपि सन्तुष्य नासत्यं मुनीनां जातुचिद्वचः ॥
४१४ ॥ इति तस्मै सुता योग्यां विधिना श्रीमतेऽदित । तथा प्राग्मे मुदा राजपुरे निवसते नृप ॥ ४१५ ॥ सत्यंधरोऽदादेतद्धनुरेताश्छराश्च वे । योग्या-
स्तत्त्वं गृहाणेति भूयस्तेनाभिभावितः ॥ ४१६ ॥ गृहीत्वा सुष्ठु सन्तुष्टस्तत्पुरं सुखमावसत् । एवं गच्छति कालेऽस्य कदाचिन्निजविश्रया ॥ ४१७ ॥ गन्ध-
र्वदत्ता संप्राप्य जीवंधरकुमारकं । तं सुखासीनमालोक्य केनाप्यविदितं पुनः ॥ ४१८ ॥ आयाद्राजपुरं प्रीति प्रीतानां हि प्रियोत्सवः । ततः कतिपयैरेव

जल पुष्प थे सब स्पष्ट रीतिसे खिल गये थे और उन पर संभ्रमके साथ आये हुए भ्रमर शब्द करने लगे थे तथा जि-
नालयके बडे दरवाजेके किवाड अपने आप खुल गये थे ॥ ४०७–४०८ ॥ इन सब बातोंको देखकर उसकी गाढ भक्ति
और प्रगट हुई उसने उसी सरोवरमें उत्पन्न हुए अनेक फूलोंसे भगवानकी पूजा की तथा अर्थोंसे भरे हुए अनेक इष्ट
स्तोत्रोंसे निश्चल होकर भगवानकी स्तुति की उस नगरमें शेठ सुभद्रकी निर्वृति नामकी स्त्रीसे एक क्षेमसुंदरी नामकी क-
न्या थी जो कि साक्षात् लक्ष्मीके समान सुशोभित थी। किसी एक समय मुनिराज विनयंधरने कहा था कि इस क्षेम
सुंदरीके पतिके आने पर चंपक वृक्ष फूल जायगा किवाड खुल जांयगे आदि ऊपर लिखे हुए सब चिन्ह वतलाए थे इस
लिए उस शेठकी ओरसे उसकी परीक्षाके लिए वहुतसे पुरुष नियुक्त थे वे जीवंधर कुमारको देखकर वडे ही प्रसन्न हुए
थे और कहने लगे थे कि आज हम लोगोंका यहां नियुक्त होना सफल हो गया। वे लोग उसी समय दौडे और अपने
स्वामीके पास जाकर उन्होंने वहांका सव समाचार निवेदन किया वह शेठ भी इस समाचारसे वहुत संतुष्ट हुआ और
मनमें कहने लगा कि मुनियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते हैं। इस प्रकार प्रसन्न होकर उसने उस श्रीमान् जीवंधर
कुमारको विधिपूर्वक अपनी योग्य कन्या समर्पण की। तदनंतर वह शेठ जीवंधरसे निवेदन करने लगा कि पहिले जव मैं
राजपुर नगरमें रहता था तव राजा सत्यंधरने मुझे यह धनुष दिया था और ये वाण दिये थे ये आपके ही योग्य हैं इसलिये
इन्हें आप ही स्वीकार कीजिये इस प्रकार कह वह धनुष और वाण भी समर्पण करदिये ॥ ४०९–४१६ ॥ जीवंधर
सवको लेकर संतुष्ट हुआ और उसी नगरमें सुखसे रहने लगा। इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर किसी एक समय

ऽपि तद् ज्ञायते किंचिन्मयेति प्रत्यभाषत । तद्वचःश्रुतिसंतुष्टास्ते नयति स्म तं मुदा ॥ ३९७ ॥ सोऽपि यक्षमनुस्मृत्य मणिमन्त्रविशारदः । अभिमन्त्र्याक-
रोद्वीतविषवेगां नृपात्मजां ॥ ३९८ ॥ जाततोषी नृपस्तस्य सत्त्वच्छायादिलक्षणैः । अवश्य राजवश्योऽयमिति निश्चित्य पुत्रिकां ॥ ३९९ ॥ अर्धराज्यं च
पूर्वोक्तं तस्मै वितरति स्म सः । ततः स लोकपालादिकन्यकाभ्रातृभिः समं ॥ ४०० ॥ द्वात्रिंशता चिरं रेमे तद्गुणैरनुरंजितः । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा
दैवप्रचोदितः ॥ ४०१ ॥ कदाचिन्निशि केनापि जनेनानुपलक्षितः । गत्वा गव्यूतिकाः काश्चित्क्षेमाख्यविषये पुरं ॥ ४०२ ॥ क्षेमाह्वयमवाप्यास्य वने बाह्ये
मनोरमे । सहस्रकूटं राजंतं जिनालयमलोकत ॥ ४०३ ॥ लोकनानंतरं नत्वा कृतांजलिपुटः पुनः । त्रिः परीत्य स्तुतिं कर्तुं विधिनारब्धवांस्तदा ॥ ४०४ ॥
सहसैवात्मनो रागं व्यक्तं बहिरिवार्पयन् । चंपकानोकहः प्रादुरासीदेको निजोद्गमैः ॥ ४०५ ॥ कोकिलाश्च पुरा मूकीभूतास्तद्यानभेषजैः । चिकित्सिता इव
श्रव्यमकूजन्मधुरस्वनं ॥ ४०६ ॥ तज्जिनभवनाभ्यर्णवर्तिन्यच्छांबुसंभृते । स्फाटिकाश्मप्रपूर्णे वा व्यकसन् सरसि स्फुटं ॥४०७॥ सर्वाणि जलपुष्पाणि सभ्रमद्भ्र-

भी कहा कि हां थोडा वहुत जानता हूं । जीवंधरकी यह वात सुनकर वे लोग बडे संतुष्ट हुए और प्रसन्न होकर जीवंधर
को राजा धनपतिके पास ले गये ॥ ३९७ ॥ मणि और मंत्रोंके जाननेमें चतुर ऐसे उस जीवंधरने भी यक्षका स्मरण
किया और फिर उस राजपुत्रीको मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर विषरहित कर दिया ॥ ३९८ ॥ इससे राजा धनपतिको वहुत
संतोष हुआ और उसने तेज तथा छाया आदि लक्षणोंसे निश्चय कर लिया कि यह अवश्य ही राजवंशमें उत्पन्न हुआ
है इसलिये उसने अपनी पुत्री और पहिले कहा हुआ आधा राज्य उसे समर्पण कर दिया । तदनंतर लोकपाल आदि
पद्मोत्तमाके वत्तीस भाइयोंके विनय आदि गुणोंसे प्रसन्न होकर कुमार जीवंधर वहुत दिन तक उन्हींके साथ क्रीडा करने
लगा । वह कुमार थोडे दिन तक वहां रह कर भाग्यके द्वारा प्रेरणा किया हुआ किसी एक दिन रात्रिमें सव लोगोंसे
छिप कर वहांसे चल दिया । थोडे ही कोस चल कर वह क्षेम नामके देशमें क्षेम नामके नगरमें पहुंचा और वहांके मनो-
हर नामके वाहरके वनमें उसने एकहजार शिखरोंसे सुशोभित एक जिनालय देखा ॥ ३९९–४०३ ॥ जिनालयको दे-
खतेही उसने नमस्कार किया हाथ जोडे तीन प्रदक्षिणाएं दीं और उसी समय उसने विधि पूर्वक स्तुति करना प्रारंभ
किया ॥ ४०४ ॥ उसी समय अकस्मात् एक चंपक वृक्ष मानों अपना प्रगट अनुराग वाहर समर्पण करता हुआ फूलोंसे
सुशोभित हो गया ॥ ४०५ ॥ जो कोयलें पहिले गूंगी सरीखी हो रही थीं वे उस कुमारके आने रूप औषधिसे इलाज
की हुईके समान अच्छी होकर सुनने योग्य मधुर शब्द बोलने लगीं ॥ ४०६ ॥ उस जिनालयके भीतर जो स्वच्छ जल
से भरा हुआ सरोवर था जो कि ऐसा जान पडता था मानों स्फटिक पत्थरसे चू चू कर ही भर गया हो उसमें जितने

कुमारस्य न भीरस्ति तस्माद् भीता स्म मात्र भोः। स मक्ष्वेतीति तान् सर्वान् प्रशान्तिं प्रापयत्सुधीः॥३८६॥जीवंधरोऽपि यक्षस्य वसतौ सुचिरं सुखं। स्थि
त्वा जिगमिषा स्वस्याज्ञापयद्यक्षमिङ्गितैः ॥ ३८७ ॥ तदभिप्रायमालक्ष्य यक्षो दत्त्वा स्फुरत्प्रभां। साधनीमीप्सितार्थाना मुद्रिका कामरूपिणीं ॥ ३८८ ॥
तदद्रेरवतीर्यैन न भीरस्य कुतश्चन। इति किंचिदनुव्रज्य तममुंचत्कृतार्चन ॥ ३८९ ॥ कुमारोऽपि ततः किंचिद्दूरात्तरमुपेयिवान्। पुरं चन्द्राभनामान
सज्योत्स्न वा सुधागृहैः ॥ ३९० ॥ नृपो धनपतिस्तस्य पालको लोकपालवत्। देवी तिलोत्तमा तस्य तयोः पद्मोत्तमा सुता ॥३९१॥ सा विहर्तुं वनं या-
ता दष्टा दुष्टाहिना तदा। य इमा निर्विषीकुर्यान्मणिमंत्रौषधादिभि ॥ ३९२ ॥ मयेय कन्यका तस्मै सार्धराज्या प्रदास्यते। घोषणामिति भूपाल पुरे त-
स्मिन्नचीकरत् ॥ ३९३ ॥ फणिवैद्यस्तदाकर्ण्य आगत्यादिष्टमीदृश। मुनिनादित्यनाम्नेति कन्यालोभाच्चिकित्सितुं ॥ ३९४ ॥ सम्प्राप्य बहवो नोपसहर्तुं तदश-
क्नुवन्। राजाज्ञया पुनर्वैद्यमन्वेष्टु परिचारका ॥३९५॥ धावतो दैवसंयोगात्कुमारमवलोक्य ते। किमस्ति विषविज्ञानमित्यपृच्छंस्तमाकुला ॥ ३९६ ॥ सो-

३८६॥ कुमारजीवंधरभी यक्षके निवासस्थानमें बहुत दिनतक सुखसे रहा और फिर इशारोंसेही उसने यक्षसे अपने जानेकी इच्छा प्रगट की ॥ ३८७ ॥ यक्षने जीवंधरका अभिप्राय जानकर उसे जिसकी कांति दैदीप्यमान है जो इष्ट पदार्थोंको सिद्ध करनेवाली है और इच्छानुसार रूप बना देनेवाली है ऐसी एक काम मुद्रा (अंगूठी) दी ॥ ३८८ ॥ उसको लेकर वह जीवंधर उस पर्वतसे उतरा, उसको किसी तरहका डर नहीं था वह यक्ष कुछ दूर तक तो उसके साथ गया और फिर उसकी पूजा कर उसे विदा किया ॥ ३८९ ॥ कुमार जीवंधर वहांसे कुछ दूर चल कर चूनासे पुते हुए घरों से मानों चांदनीके समान शोभायमान ऐसे चंद्राभ नामके नगरमें पहुंचा ॥ ३९० ॥ वहांके राजाका नाम धनपति था जो कि लोकपालके समान प्रजाका पालन करता था उसके तिलोत्तमा नामकी रानी थी और पद्मोत्तमा नामकी पुत्री थी ॥ ३९१ ॥ किसी एक दिन वह वनमें क्रीडा करनेके लिये गई थी परंतु वहां पर वह किसी दुष्ट सांपने काट खाई थी इसलिये उसके पिता राजा धनपतिने अपने नगरमें घोषणा करदी थी कि जो कोई मणि मंत्र औषधि आदिकसे इस कन्याका विष दूर करेगा उसे मैं यह कन्या और आधा राज्य दूंगा ॥३९२-३९३॥ आदित्य नामके मुनिराजने पहिले ही यह बात कह रक्खी थी इसलिये राजाकी यह घोषणाको सुनकर सांपके काटेका इलाज करनेवाले बहुतसे वैद्य लोग कन्याके लोभसे चिकित्सा (इलाज) करनेको आये परंतु उस विषको कोई भी दूर न कर सका। तदनंतर राजाकी आज्ञासे बहुतसे सेवक लोग वैद्यको ढूंढनेके लिये दौडे। दैवयोगसे कितने ही सेवकोंने कुमार जीवंधरको देखकर उससे भी व्याकुलताके साथ पूछा कि क्या आपको विष उतारनेका कुछ ज्ञान है ॥ ३९४-३९६ ॥ इसके उत्तरमें जीवंधरने

पादसक्तुबनसोढु मद्भंभगजबाधन ॥३७४॥ कृत्वा जीवधरस्तस्य परिभूतिं व्यधादधीः । पथ्यामठकशुल्यादिदानग्रहणकर्मण ॥३७५॥ निजजात्यानुरूपाद्यो विमुख सुष्ठु गर्वितः । राजपुत्रोपिते वृत्ते विपक्षोय वरोटजः ॥ ३७६ ॥ कृतांतवदन सद्यः प्रापयेमं कुचेष्टितं । इत्याहयचंडदंडाख्य मुख्य तत्पुररक्षिणा ॥ ३७७ ॥ स सनद्धबलोऽधावदमिजीवधरं क्रुधा । स कुमारोऽपि तद्ज्ञात्वा ससहायो युयुत्सया ॥ ३७८ ॥ तमभ्येत्य तदैवास्मै ददौ भगमभगुरः । पुनः कुपितवान्काष्ठागारिक स्वबल बहु ॥ ३७९ ॥ प्राहिणोत्त निरीक्ष्याऽचित्तो जीवधरो कृपा । क्षुद्रप्राणिविघातेन किमनेन दुरात्मकं ॥ ३८० ॥ काष्ठांगारिकमेवैनमुपायै प्रशम नये । इति यक्ष निज मित्रमस्मरत्सोऽप्युपागत ॥ ३८१ ॥ ज्ञातजीवधराकूतस्तत्सर्वं शांतिमानयत् । ततो विजयगिर्याख्य समारोप्य गज धिप ॥ ३८२ ॥ कुमारं तदनुज्ञानात्स्वावासमनयत्सुहृत् । स्वगेहदर्शन नाम सद्भाव सुहृदा स हि ॥ ३८३ ॥ सहाया बांधवाश्चास्य प्रवृत्तेरनभिज्ञकाः । पवनान्दोलितालोलबालपल्लवलीलया ॥ ३८४ ॥ अकम्पिषत सर्वेऽपि स्वान्संधर्तुमशक्नुका । गन्धर्वदत्ता तयाननिमित्तज्ञा निराकुला ॥ ३८५ ॥

खोटी चेष्टा करनेवाले इसको मैं अभी यमराजके मुहमें पहुचाऊंगा इसप्रकार उसने नगरकी रक्षा करनेवालोंमें प्रधान ऐसे चंडदंड नामके कोतवालको उसके मारनेकी आज्ञा दी ३७३–३७७ ॥ वह कोतवाल भी क्रोधित होकर अपनी सब सेना लेकर जीवंधरके सामने गया परंतु नाश न होने वाला (चरमशरीरी) कुमार जीवंधर भी यह सब समाचार जानकर युद्ध करनेकी इच्छासे अपने सब साथियोंको लेकर उस कोतवालके सामने गया और उसीसमय उस कोतवालको जीवंधरने भारी हार दी । इससे काष्ठांगार और भी क्रोधित हुआ और उसने अपनी बहुतसी सेना उसपर भेजी उस सेनाको देखकर जीवंधरके चित्तमें दया उत्पन्न हुई और वह विचार करने लगा कि व्यर्थ ही इन क्षुद्र प्राणियोंके मारनेसे क्या लाभ है इस दुष्ट काष्ठांगारको ही अनेक उपायोंसे शांत करना चाहिये । इसप्रकार सोचविचारकर उसने अपने मित्र यक्षको स्मरण किया और स्मरण करते ही वह भी तुरंत ही आ पहुंचा ॥ ३७८–३८१ ॥ उस यक्षने जीवंधरका अभिप्राय जानकर सब उपद्रव शांत कर दिया । तदनंतर वह यक्ष कुमारकी सम्मतिके अनुसार कुमारको विजयगिरि नामके गजराजपर सवार कराकर अपने घर लेगया सो ठीक ही है क्योंकि अपना घर दिखाना मित्रोंका सद्भाव सदा ही रहता है ॥ ३८२–३८३ ॥ जीवंधरकी प्रवृत्तिको न जाननेवाले उसके साथी और भाई बंधु लोग वायुसे हिलाये हुए चंचल छोटे पत्तोंके समान कंपने लगे और वे सब अपने आपको संभाल न सके परंतु गंधर्वदत्ता जीवंधरके जानेका कारण जानती थी इसलिये वह घबडाई नहीं और निराकुल होकर उस बुद्धिमतीने सबको समझाया कि 'कुमार को किसी बातका डर नहीं है तुम लोग भय मत करो कुमार शीघ्रही आवेंगे' इसप्रकार समझाकर उसने सबको शांत किया ॥३८४–

स्वया ॥ ३६४ ॥ कुमारेति तमभ्यर्च्य स्वं धामैव जगाम सः । अकारणोपकाराणामवश्यभावि तत्फलं ॥ ३६५ ॥ चिरं वने विहृत्यैवं निवृत्तौ गंधवारण । तन्महीशस्य नाम्नाशनिवेगोऽजनि घोषतः ॥ ३६६ ॥ समुद्भ्रांतोऽनिवार्योऽन्यैरधावत्स्यंदन प्रति । सुहृत सुरमंजर्याः स कुमारो विलोक्य त ॥ ३६७ ॥ विनयोन्नयनिर्णीतक्रियः सुप्राप्य हेलया । कृत्वा परिश्रमं तस्य द्वात्रिंशत्केलिभिः स्वय ॥ ३६८ ॥ वीतश्रमस्तमसन्दं हेलयालानमापयत् । हृष्टास्य गजवि ज्ञान पुरं शंसन् जनोऽविशत् ॥ ३६९ ॥ तदा प्रभृत्यागात्कामव्यामोह सुरमजरी । जीवंधरकुमारावलोकनाकुलिताशया ॥३७० ॥ इंगितैश्चेष्टितैस्तस्याः सक-यामिश्च युक्तित । माता पिता च जीवधरामिलापपरायण ॥ ३७१ ॥ विज्ञाय ता निवेद्यैनत्तत्पित्रे तदनुज्ञया । विभूतिमत्कुमाराय शुभयोगे वितेरतु ॥ ३७२ ॥ ततः समुचितप्रेमा स काम सुखमन्वभुत् । तत्र तच्छौर्यसद्भाग्यसकथा सतत जनैः ॥ ३७३ ॥ क्रियमाणा दुरात्मासौ काष्ठांगारिकभूपतिः । को-

बिजलीके समान शब्द करता हुआ अशनिवेग नामका गंधवारण हाथी दिखलाई दिया । वह हाथी मदोन्मत्त हो रहा था, अन्य साधारण मनुष्य उसे वश नहीं कर सकते थे और पागलकी तरह वह सुरमंजरीके रथकी ओर दौड रहा था। कुमार जीवंधरने उस रथमें सुरमंजरीको देखकर हाथीकी विनय और उन्नय क्रियाको झट पहिचान लिया वह लीलापूर्वक उसके पास पहुंचा, बत्तीस तरहकी क्रीडाओंके द्वारा उससे परिश्रम नहीं किया और थोडी ही देरमें चेष्टा रहित कर उसे खूंटेसे वाध दिया । वहां खडे हुए लोग जीवंधरकी ऐसी हाथीकी शिक्षा देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए नगरमें प्रवेश करने लगे ॥ ३६६—३६९ ॥ उस दिनसे लेकर जीवंधर कुमारको देखनेसे सुरमंज-रीका हृदय भी व्याकुल होगया और वह कामसे मोहित होगई ॥ ३७० ॥ सुरमंजरीके माता पिताने उसकी चेष्टा आदिके अनेक इशारोंसे तथा उसकी कही कथा आदिकोंसे वडी युक्तिसे यह वात जानली कि उसकी अभि-लाषा जीवंधर कुमारकी ओर है। तदनंतर उन्होंने जीवंधरके माता पितासे निवेदन किया और उनकी आज्ञानुसार किसी शुभ योगमें अत्यंत ऐश्वर्यको धारण करनेवाले जीवंधर कुमारको वह कन्या समर्पण की ॥ ३७१—३७२ ॥ इसके वाद योग्यतानुसार प्रेम करनेवाला वह कुमार अपनी इच्छानुसार सुखोंका अनुभव करने लगा । अथानंतर—नगरके लोग सदा जीवंधरकी शूरवीरता और भाग्यशीलता की कथा करने लगे परंतु उसे दुष्ट राजा काष्ठांगार सह नहीं सका इसलिये उसने क्रोधमें आकर लोगोंसे कहा कि इस मूर्ख जीवंधरने मेरे गंधवारण हाथीको बाधा पहुंचाकर उसका तिरस्कार किया है । यह वैश्य है इस लिये हरड आमले सोंठ आदि चीजोंकी खरीद विक्री करना इसका काम है परंतु यह अपनी जातिमें होनेवाले कामोंको तो नहीं करता और क्षुद्र होकर भी राजपुत्रोंके योग्य कामोंमें आसक्त होता है । इसलिये

रयुवेश्वर । परीक्ष्य तत्त्वय सम्यक्श्रेष्ठश्चंद्रोदयोऽनयोः ॥ ३५५ ॥ प्रत्ययः कोऽस्य चेद्यक्त दर्शयामीति तद्द्वय । अवष्टभ्य स्वहस्ताभ्या विचिक्षेप ततो द्रुत ॥ ३५६ ॥ चन्द्रोदयमलिव्रातो गधोत्कर्षात्परीतवान् । दृष्ट्वा सर्वेऽपि तत्रस्थास्तत्तमेवास्तुवन्विद ॥ ३५७ ॥ तदा प्रभृति ते, कन्ये परस्परनिबधन । विधा विहितसघर्ष त्यजत- स्मात्समत्सरे ॥ ३५८ ॥ अथात्र नागरेष्वात्मवांछया क्रीडन वने । कुर्वत्स्वेक समालोक्य कुक्कुर खलवालकाः ॥ ३५९ ॥ भर्त्सयतिस्म चापल्यात्सोऽपि धावन् भयाकुल । ह्रदे निपत्य तत्रैव प्राणमोक्षोन्मुखोऽभवत ॥३६०॥ मृत्यैस्ततस्तमानाय्य जीवधरकुमारक । कर्णौ तस्य नमस्कारपदे स पर्यपूरयत् ॥ ३६१ ॥ प्रतिगृह्य नमस्कार चन्द्रोदयगिरावभूत् । यक्ष सुदर्शनो नाम स्मृतपूर्वभवस्तदा ॥ ३६२ ॥ प्रत्यागत्य कुमार त संस्तुत्या सपाथ विस्मय ॥ ३६३ ॥ सर्वेषा दिव्यभूषामिः कृतवित्तमपूजयत् । इत प्रभृत्यह सर्या व्यसनोत्सवयोत्प्रसादान्मयेदृशी । लब्धा विभूतिरित्युच्चै स्तुत्या सपाथ विस्मय ॥ ३६३ ॥

कर उसने दोनों हाथोंमेंसे दोनों चूर्ण लिये और शीघ्रताके साथ दोनों ही फेंक दिये। उन दोनों चूर्णोंके फेंकते ही सुगंधिकी उत्कटतासे बहुतसे भ्रमर चंद्रोदय चूर्ण पर आ जमे यह देखकर वहा पर बैठे हुए उस विद्याके जानकार सब लोग जीवंधरकी स्तुति करने लगे ॥ ३५६–३५७ ॥ उस दिनसे लेकर उन दोनों कन्याओंने विद्यासे उत्पन्न होनेवाली परस्परकी ईर्षा छोड दी और दोनोंने आगे ईर्षा न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली ॥ ३५८ ॥

अथानंतर–किसी एक समय नगर निवासी लोग अपनी इच्छानुसार वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे। वहांपर किसी एक कुत्तेको देखकर दुष्ट वालकगण मारने लगे वह कुत्ताभी चपल था इसलिये भयसे व्याकुल होकर दौडता हुआ किसी कुंडमें जाकर गिर पडा और वहीं पर मरनेके सन्मुख हो गया ॥३५९–३६०॥ जीवंधर कुमारने अपने सेवकों द्वारा वह कुत्ता वहां से उठवाकर मंगवाया और उसके कानमें पंचनमस्कार मंत्र सुनाया ॥ ३६१ ॥ ध्यानपूर्वक पंच नमस्कार मंत्रको ग्रहणकर वह कुत्ता मरा और चंद्रोदय पर्वतके ऊपर सुदर्शन नामका यक्ष हुआ। उसीसमय (अवधि ज्ञानके द्वारा) उसे पूर्व भवकी बात याद आई, वह उसीसमय कुमार जीवंधरके समीप आया और स्तुति करने लगा कि 'हे प्रभो! आपके प्रसादसे ही मुझे यह ऐसी विभूति प्राप्त हुई है' इसप्रकार स्तुतिकर उसने सब लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया। तदनंतर किये हुए उपकारको माननेवाले उस यक्षने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे जीवंधरकी पूजा की और कहा कि 'हे कुमार आजसे लेकर किसी उत्सव अथवा आपत्तिमें मुझे स्मरण करना' इस प्रकार जीवंधरकी पूजाकर वह यक्ष अपने स्थानको चला गया सो ठीकही है क्योंकि जो विना कारणके ही परोपकार करते हैं उन्हें उसका फल अवश्य ही मिलता है ॥ ३६२–३६५ ॥ अथानंतर वनमें बहुत देर तक क्रीडा कर वह जीवंधर कुमार लौट रहा था कि उसे राजा काष्ठांगारका

गात् । निर्वृतिः परमा काष्ठा समसयोगसंभवा ॥ ३४५ ॥ अथान्यदा मधौ मासे मदनोदयसाधने । सुरादिमलयोद्याने वनक्रीडानिमित्तक ॥ ३४६ ॥ नृपेण सह सर्वेषु पौरेषु सुखलिप्सया । आविष्कृतस्वसंपत्सु यातेषु परमोत्सवात् ॥३४७॥ पुरे तस्मिन्वणिग्मुख्योऽभूद्वैश्रवणदत्तवाक् । तनूजा चूतमंजर्यां तस्यासी-त्सुरमंजरी ॥ ३४८ ॥ तस्या श्यामलता चेटक्यसौ चंद्रोदयाह्वयः । चूर्णवासोऽयमस्त्यन्यो नास्माद्गन्धेन बन्धुरः ॥ ३४९ ॥ इत्यात्मस्वामिनीदाक्ष्यप्रकाशन-परायणा । इतस्ततस्तमुद्घुष्य विचचार जनांतरे ॥ ३५० ॥ कुमारदत्तवैश्यस्य विमलायां सुताभवत् । गुणमालामला तस्याश्चेटकी पटुभाषिणी ॥ ३५१ ॥ विद्युल्लताभिधा चूर्णवासोऽय षट्पदाकृत । वर्यः सूर्योदयो नाम नेदृक् स्वर्गेऽपि विद्यते ॥ ३५२ ॥ इति विद्वत्सभामध्ये भूयः स्वस्वामिनीगुण । विद्योतयंती बभ्राम सुभ्रूर्गर्वग्रहाहिता ॥ ३५३ ॥ एवं तयो समुद्भूतमात्सर्याहितचेतसो । विवादे सति तद्विद्यावेदिनस्तत्परीक्षितुं ॥ ३५४ ॥ अभूवन्नक्षमास्तत्र जीवध-

पिताको कन्या समर्पण करनेके सिवाय और कुछ कार्य ही नहीं है । ॥ ३४४ ॥ जिनका परस्पर प्रेम और सुख वढ रहा है ऐसे उन दोनोंका (जीवंधर और गंधर्वदत्ताका) सम संयोगसे उत्पन्न होनेवाला सुख सवसे उत्तम सीमाको पहुंच गया था ॥ ३४५ ॥ अथानंतर—कामदेवको उत्तेजित करनेवाला वसंत ऋतु आया उसमें सव नगर निवासी लोग सुखकी इच्छासे अपने अपने सव ऐश्वर्यके साथ वडे उत्सवसे राजाके साथ सुमलयोद्यानमें वनक्रीडा करनेके लिये गये । उसी न-गरमें एक वैश्रवणदत्त नामका अच्छा वैश्य रहता था उसकी आम्रमंजरी स्त्रीसे सुरमंजरी नामकी कन्या हुई थी ॥३४६-३४८ ॥ उस सुरमंजरीकी श्यामलता नामकी दासी थी वह भी सुरमंजरीके साथ उसी उद्यानमें आई थी उसके पास चंद्रोदय नामका एक सुगंधित चूर्ण था उसको लेकर 'इस चूर्णके सिवाय संसारमें और कोई सुगंधित चूर्ण है ही नहीं' इस प्रकार घोषणा करती हुई वह इधर उधर घूम रही थी और अपनी स्वामिनीकी चतुरता प्रगट कर रही थी ॥ ३४९-उसी नगरमें कुमारदत्त वैश्यकी विमला स्त्रीसे निर्मल गुणमाला नामकी पुत्री थी और उस गुणमालाकी चतुरताके साथ भाषण करनेवाली विद्युल्लता नामकी दासी थी । अच्छी भोहोंको धारण करनेवाली अभिमानरूपी पिशाचके फंदेमें फंसी हुई वह विद्युल्लता भी विद्वानोंकी सभामें वार वार अपनी स्वामिनीके गुणोंको प्रकाशित करती हुई यह कहती हुई घूम रही थी कि 'यह सूर्योदय नामका चूर्ण है यह इतना सुगंधित है कि भ्रमर आकर इस पर पड रहे हैं ऐसा सुगंधित चूर्ण स्वर्गमें भी नहीं मिल सकता ॥ ५१–५३ ॥ इस प्रकार उन दोनोंका हृदय ईर्षा और डाहसे भर गया और परस्पर वि-वाद करनेकी ठहरी । परंतु विद्याको जाननेवाले लोगोंने उसकी परीक्षा की और वतला दिया कि इन दोनोंमें चंद्रोदयचूर्ण वहुत अच्छा है ॥ ३५४–३५५ ॥ इसका विश्वास कैसे हो इसको भी मैं स्पष्ट रीतिसे दिखला देता हूं इस तरह कह

वीणां स्वकरस्था कृतादरं ॥ ३३३ ॥ तमादाय कुमारेण शास्त्रमार्गानुसारिणा । गीतमिश्रितवाद्येन मंद्रतारेण हारिणा ॥ ३३४ ॥ मधुरेण मृगाणां च मनो-
विभ्रमकारिणा । तद्विद्यासाधुवादोद्धप्रसूनार्चनभासिना ॥ ३३५ ॥ हृदि गन्धर्वदत्तैन पंचबाणप्रचोदिता । मालयालंचकाराये संमुखे किं न जायते ॥ ३३६ ॥
हीनाभासोऽभवन् केचिद्दिनदीपोपमाः परे । निशाप्रदीपसंकाशा भासमानाननास्तदा ॥ ३३७ ॥ सुघोषाहेतुनाप्राप्तकुमारा परितोषिणी । गंधर्वदत्ता तां वीणा-
मात्मन्येवमभाषत ॥ ३३८ ॥ "कुलोचिता सुघोषा त्वं मधुरा चित्तहारिणी । कुमारसंगमे हेतुर्दूतीव कुशला मम" ॥ ३३९ ॥ काष्ठागारिकपुत्रेण चोदितेन
सुदुर्जनैः । गंधर्वदत्तामादातुमुद्यमो विहितस्तदा ॥ ३४० ॥ कुमारोऽपि विदित्वैतद्बलाधिकपुरःसरैः । विद्याधरैः समं गधगज जयगिरिश्रुतिं ॥ ३४१ ॥ आ-
रुह्य शत्रुसैन्यस्य प्रतीपमगमत्क्रुधा । तदा गरुडवेगाख्यो विद्याधरधराधिपः ॥ ३४२ ॥ पिता गंधर्वदत्ताया गत्वा मध्यस्थतां तयोः । उपायकुशलः शत्रुबलं
प्रशममानयत् ॥ ३४३ ॥ ततस्तयोर्विवाहेन विधायासौ समागमं । कृतार्थोऽभूत्पितुर्नान्यत्कार्यं कन्यासमर्पणात् ॥ ३४४ ॥ तयोः परस्परप्रेमप्रवृद्धसुखयोर-

शास्त्र मार्गके अनुसार था, गीत और वाजेकी आवाज दोनोंसे मिला हुआ था, गंभीर ध्वनिसे भरा हुआ था, मनोहर था, मधुर था, हिरणोंके मनको भी विभ्रम उत्पन्न करनेवाला था और उस विद्या संबंधी धन्यवाद रूपी फूलोंकी पूजासे सुशोभित था। जीवंधरका ऐसा गाना देखकर कामके बाणोंके द्वारा प्रेरणाकी हुई गंधर्वदत्ताने उसका हृदय मालासे अलंकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यके सन्मुख रहने पर क्या नहीं हो सकता है ॥ ३३४–३३६ ॥ जिनके मुख पहिले रात्रिमें दीपकके समान दैदीप्यमान थे उन लोगोंमेंसे जीवंधरके गलेमें माला पड़ते ही कितने तो कांतिहीन हो गये और अन्य कितने ही दिनमें जलाए हुए दीपकके समान निस्तेज हो गये ॥ ३३७ ॥ उस सुघोषा वीणाके द्वारा जिसे जीवंधर कुमार प्राप्त हुआ है ऐसी संतुष्ट हुई वह गंधर्वदत्ता मनमें ही उस वीणासे इस प्रकार कहने लगी कि 'हे सुघोषणा तू मधुर है, चित्तको हरण करनेवाली है और श्रेष्ठ कुलके योग्य है तू इस कुमारके समागम होनेमें मेरी अत्यंत कुशल दूतीके समान कारण हुई है' ॥ ३३८–३३९ ॥ उस समय दुष्टोंके द्वारा प्रेरणा किए हुए काष्ठांगारके पुत्र कालांगारिकने गंधर्वदत्ताको हरण करनेका उद्यम किया ॥ ३४० ॥ कुमार जीवंधर भी यह सब समाचार जानकर अधिक बलशाली विद्याधरोंको साथ लेकर तथा जयगिरि नामके गंधगज पर (गंधजातिके हाथी पर) सवार हो कर क्रोधपूर्वक शत्रुकी सेनाके सामने युद्ध करनेको चला। इतनेमें ही गंधर्वदत्ताका पिता विद्याधरोंका राजा गरुडवेग उन दोनोंका मध्यस्थ बन गया और अनेक उपायोंके जाननेमें निपुण, ऐसे उस गरुडवेगने शत्रुकी सेना शांत कर दी ॥ ३४१–३४३ ॥ तदनंतर उसने उन दोनोंका विवाह कर पति पत्नी संबंध करा दिया और इस तरह वह कृतार्थ हुआ सो ठीक ही है क्योंकि

ताया मत्सुताया' स्वयंवर ॥ ३२३ ॥ त्वत्पुरे कारयेत्येनमभ्यधादधिकादर । जिनदत्तोऽपि तां नीत्वा सह राजपुरं खगैः ॥ ३२४ ॥ स्वयंवरं समुद्घुष्य मनोहरवनांतरे । मनोहरं समुत्पाद्य स्वयंवरमहागृहं॥३२५॥कलाविद्याविदग्धेषु भूगोचरमहीशिषु । सकुमारेषु यातेषु जिनपूजा न्यवर्तयत्॥३२६॥ तदा गंधर्व-दत्तापि स्वयंवरसभागृह । प्रविश्य वीणामादाय सुघोषाख्यां सुलक्षणां॥३२७॥स्वरग्रामादिसद्भाव शुद्धदेशजलक्षण । गीतमिश्रं विधायैतानधरीकृत्य भूभुजः ॥ ३२८ ॥ स्थितो जीवधरस्तस्या वीणाविद्याकृत मद । निराचिकीर्षुरागत्य स्वयंवरसभागृह ॥ ३२९ ॥ अपक्षपतितान् प्राज्ञान्वीणाविद्याविशारदान् । गुणदोष परीक्षायां नियोज्योभयसमतान् ॥ ३३० ॥ निर्दोषा दीयता वीणेत्यभ्यधात्तन्नियोगिनः । वीणास्त्रिचतुरास्तस्मै तदानीय समार्पयन् ॥ ३३१ ॥ केशरोमल वादीनां दोषाणा तासु दर्शनात् । स ताः सर्वा निराकृत्य कन्यका प्रत्यपादयत् ॥ ३३२ ॥ यदि निर्मत्सरासि त्व त्वद्वीणा दीयतामिति । अदितास्मै च ता

जिनदत्त गरुडवेगके समीप आया । उसके आनेसे गरुडवेग बहुत संतुष्ट हुआ उसने खूबही उसका आदरसत्कार किया और फिर बडे आदरके साथ कहा कि हे मित्र मेरे एक गंधर्वदत्ता नामकी पुत्री है उसे तू अपने राजपुर नगरमें लेजाकर उसका स्वयंवर कर । उसकी आज्ञानुसार जिनदत्त भी अनेक विद्याधरोंके साथ उस कन्याको राजपुर नगरमें लेगया ॥ ३२२–३२४ ॥ वहां जाकर उसने मनोहर नामके वनमें स्वयंवर होनेकी घोपणा की और एक वडाही मनोहर स्वयंवर भवन वनाया ॥ ३२५ ॥ उस स्वयंवर भवनमें कितने ही विद्या और कलाओंमें निपुण ऐसे भूमिगोचरी राजा और राजकुमार आये । तदनंतर गंधर्वदत्ताने श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की और फिर अच्छे लक्षणोंवाली सुघोषा नामकी वीणा लेकर स्वयंवर सभाभवन में पहुंची ॥ ३२६–३२७ ॥ वहांपर जाकर उसने गीतोंसे मिले हुए शुद्ध और देशसे उत्पन्न हुए स्वरके समूहोंसे वीणा वजाई और वहां पर वैठे हुए सव राजाओंको नीचा दिखलाया ॥ ३२८ ॥ उस स्व-यंवर सभा भवनमें जीवंधर भी विराजमान था उसने आकर उस गंधर्वदत्ताका वीणा विद्यासे होनेवाला अभिमान सव दूर कर दिया ॥३२९॥ उसने पहिले तो जो किसी ओरके पक्षपाती न थे, विद्वान् थे, वीणा विद्यामें निपुण थे, और दोनों पक्षवालोंने जिन्हें स्वीकार किया था ऐसे लोगोंको गुण और दोपोंकी परीक्षा करनेमें नियुक्त किया और फिर उस काम में नियुक्त किये हुये लोगोंसे निर्दोष वीणा मांगी । उन लोगोंने उसे तीन चार वीणा लाकर दीं परंतु जीवंधरने उनमें केश रोम लव आदि अनेक दोष दिखलाकर वे सव वापिस करदीं तदनंतर उसने गंधर्वदत्तासे कहा कि यदि तेरे हृदयमें किसी तरहकी ईर्षा नहीं है तो तू अपनी वीणा दे । जीवंधरके इस प्रकार मांगने पर उस कन्याने भी आदर के साथ अपने हाथकी वह वीणा जीवंधरको दे दी ॥ ३३०–३३३ ॥ जीवंधरने वह वीणा लेकर गाया उसका वह गाना

विष्यति'। इति मन्त्रिवच श्रुत्वा खगेश' किंचिद कुलः ॥ ३१२ ॥ "भविता कथमस्माक सवधो भूमिगोचरैः इत्यप्राक्षीत्पुनश्चैन मन्त्रिणं मतिसागरं ॥ ३१३ ॥ सोऽप्यन्यच्च मुनेर्ज्ञातं सष्टमेवमभाषत । "श्रेष्ठी वृषभदत्ताख्यस्तस्मिन् राजपुरे प्रिया ॥ ३१४ ॥ तस्य पद्मावती सूनुर्जिनदत्तस्तयोरभूत् । स कदाचित्पुरे तस्मिन्नुद्याने प्रीतिवर्धने ॥ ३१५ ॥ जिन सागरसेनाख्य केवलज्ञानपूजने । भक्त्या वंदितुमागातस्त्व न तद्गुणा सम ॥ ३१६ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र सेनामा प्रीतिस्ते समजायत । देहभेदाद्विनान्येन भेदो न युवयोरभूत् ॥ ३१७ ॥ एव दिनेषु गच्छत्सु केषुचिद्वणिजा वरः । जिनदत्तमवस्थाप्य स्वस्थाने निकटे मुनेः ॥ ३१८ ॥ गुणपालाभिधानस्य लब्धबोधिरदीक्षत । सुव्रता क्षांतिसांनिध्य संप्राप्यादाय सयम ॥ ३१९ ॥ पद्मावती च कौलीन्यं सुव्रता सान्यपालयत् । जिनदत्तोऽपि वित्तेश पितु पदमधिष्ठितः ॥ ३२० ॥ मनोरमादिरामाभि काम कामान् समन्वभूत् । स रत्नद्वीपमथार्थं स्वयमेवागमिष्यति ॥ ३२१ ॥ तेनैवास्मदभिप्रेतकार्यसिद्धिर्भविष्यति" इत्यसौ चागमत् केषुचिद्दिनेषु तदतिक ॥ ३२२ ॥ ततस्तुष्ट खगाधीशः कृतप्राघुणकक्रिय' । मित्र गंधर्वद-

एक श्रीमान् बुद्धिमान् पुत्र है यह गंधर्वदत्ता वीणा स्वयंवरमें उसकी स्त्री होगी । उस मंत्रीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर राजा कुछ व्याकुल हुआ और 'भूमिगोचरियोंके साथ हमारा संवंध कैसे होगा' इसप्रकार उस मतिसागर मंत्रीसे पूछने लगा ॥ ३०९–३१३ ॥ इसके उत्तरमें वह मतिसागर मंत्री मुनिराजसे जाने हुए अन्य सव समाचारों को भी स्पष्ट रीतिसे इसप्रकार कहने लगा कि उसी राजपुर नगरमें एक वृषभदत्त नामका शेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था और उन दोनोंके जिनदत्त नामका पुत्र हुआ था । किसी एक समय उसी राजपुर नगरके प्रीतिवर्द्धन नामके उद्यानमें सागरसेन नामके जिनराज विराजमान थे उनके केवल ज्ञानकी पूजा वंदना करनेके लिये वह जिनदत्त अपने पिता वृषभदत्तके साथ आया था और भक्ति पूर्वक आप भी वहां गये थे जिनदत्तको देखकर उसके साथ आपका विशेष प्रेम होगया था और शरीर अलग अलग होनेके सिवाय और किसी प्रकारका जुदापन आप दोनोंमें नहीं रहा था ॥ ३१४–३१७ ॥ इसके वाद कितनेही दिन वीत जानेपर शेठ वृषभदत्तने अपनेपद पर तो जिनदत्तको स्थापन किया और गुणपाल नामके मुनिराजके समीप जाकर आत्मज्ञान प्राप्त कर दीक्षा धारण करली ॥ ३१८–३१९ ॥ इसीप्रकार उसकी स्त्री पद्मावतीने सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप जाकर संयम धारण करलिया और इसतरह अच्छे व्रत धारणकर अपनी कुलीनता का पालन करने लगी । जिनदत्त पिताके पदपर विराजमान होकर सव धनका स्वामी हुआ और मनोरमा आदि अनेक स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार भोगोंका अनुभव करने लगा । वही जिनदत्त धन कमानेके लिये इस रत्नद्वीपमें स्वयं आवेगा ॥ ३२०–३२१ ॥ उसीके साथ हमारे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जायगी इस वातचीतके कितने ही दिन वाद वह

...भारते खचराद्रेर्दक्षिणभागग । गगनाच्छ्रीरिवाभासीत्पुरं गगनवल्लभं ॥३०१॥ तत्पुराधिपतिः खेचरेन्द्रो गरुडवेगकः । दायादात्ताभिमानः सन् रत्नद्वीपे पर्व-
पुरे ॥ ३०२ ॥ रमणीयाभिधं कृत्वा नाम्नाद्रौ मनुजोदये । निविष्टवान् पुरेऽस्यासीद्धारिणी प्राणवल्लभा ॥ ३०३ ॥ तत्सुतासुपवासेन परिम्लानशरीरका । गं-
धर्वदत्तामन्येद्युः पूजयित्वा जिनेश्वरान् ॥ ३०४ ॥ शेषां मालां समादाय दातुं तस्मै समागतां । आपूर्णयौवनां वीक्ष्य कस्मै देयेयमित्यसौ ॥ ३०५ ॥
आपृच्छत्खेचराधीशो मन्त्रिणं मतिसागरं । सोऽपि प्राक्छ्रुतमित्याह सिद्धादेशसमपार्श्वी ॥ ३०६ ॥ " जिनेन्द्रानहमन्येद्युर्वंदितुं मंदरं गतः । नंदने पूर्वदि-
ग्भागे वने जिननिकेतन ॥ ३०७ ॥ भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वा विधिपुरःसरं । तत्रस्थचारणं नत्वा मत्यन्तविपुलादिकं ॥ ३०८ ॥ श्रुत्वा धर्मं जगत्पूज्य
सती मत्स्वामिनः सुता । कस्य गंधर्वदत्ताख्या भोगभोग्या भविष्यति ॥ ३०९ ॥ इत्यप्राक्षं तदावोचत्सोऽप्येवमवधीक्षणः । 'द्वीपेऽस्मिन्भारते हेमांगददेशे
मनोहरे ॥ ३१० ॥ राजा राजपुरे सत्यंधरः सत्यविभूषणः । विजयास्य महादेवी तयो श्रीमान्सुधीः सुतः ॥ ३११ ॥ वीणास्वयंवरे तस्य दत्ता भार्या भ-

नंदाढ्यको समर्पण की । सो ठीक ही है क्योंकि कार्योंकी प्रवृत्ति अनेक तरहकी होती है ॥ २९९–३०० ॥ अथानंतर— इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दक्षिण श्रेणीमें आकाशकी शोभाके समान एक गगनवल्लभ नामका नगर शोभायमान है उसमें विद्याधरोंका स्वामी गरुडवेग राज्य करता था । दैवयोगसे उसके भाई बंधुओंने उसका अभिमान चूर्ण कर दिया इसलिये वह भागकर रत्नद्वीपमें गया और मनुजोदय नामके पर्वतपर रमणीय नामका एक उत्तम नगर बसाकर उसी में वह रहने लगा । उसकी रानीका नाम धारणी था ॥ ३०१–३०३ ॥ किसी दूसरे दिन उसकी गंधर्वदत्ता कन्याने उपवास किया था इसलिये उसका शरीर कुछ मुरझा गया था वह श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा करके पूजासे बची हुई शेष पुष्पमाला पिताको देनेके लिये आई थी उसे पूर्ण यौवनवती देखकर उस विद्याधरोंके राजाने मतिसागर नामके मंत्रीसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये । इसके उत्तरमें वह अपार बुद्धिको धारण करनेवाला मंत्री पहिली सुनी हुई बातको इसप्रकार कहने लगा ॥ ३०४–३०६ ॥ कि मैं किसी एक दिन श्रीजिनेंद्रदेवकी वंदना करनेके लिये मंदराचल पर्वतपर गया था पूर्वदिशाके नंदन वनमें जो जिनमंदिर है उसमें जाकर मैंने भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दी और विधिपूर्वक स्तुति की । वहींपर एक विपुलमति नामके चारण मुनि विराजमान थे उनको भी मैंने नमस्कार किया ॥ ३०७–३०८ ॥ उन से धर्मका स्वरूप सुनकर मैंने पूछा कि हे जगत्पूज्य मेरे स्वामीके एक गंधर्वदत्ता नामकी सती कन्या है वह किसकी पत्नी होगी ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको धारण करनेवाले वे मुनिराज कहने लगे कि जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मनोहर हेमांगद देश के राजपुर नगरमें सत्यवचनोंसे सुशोभित राजा सत्यंधर राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम विजया था उसके

मादाय विषावोद्धतौनमीवर्ष ॥ २८९ ॥ तमालाराममनिर्भासितो गोचरमुपागत । गोघ्नो विघ्नः स साधूना गोमण्डलजिघृक्षया ॥ २९० ॥ ता किंवदतीमाकर्ण्य कन्यां गोदावरीं सतीं । पुत्रीं गोपेंद्रगोपश्रीसंभूतां गोविमोक्षण ॥ २९१ ॥ विधास्यते ददामीति काष्ठांगारिकभूभुजा । घोषणा कारितां श्रुत्वा कालागारिकसंगत ॥ २९२ ॥ जीवंधर सहायैः स्वैं परीतो व्याधसनिधिं । संप्राप्याकृष्टकोदंडनिशातशरसंततिं ॥ २९३ ॥ संदधत्सततिं मुचल्लघु शिक्षाविशेषतः । धनुर्वेदसमादिष्ट स्थानकं सर्वमाव्रजन् ॥ २९४ ॥ बाणपात परेषां च वंचयन्मक्षु सचरन् । निकृन्तन् शत्रुबाणौघ रुंधन्नस्त्राणि भीरुषु ॥२९५॥ इति युद्ध्वा चिरं व्याधान् जित्वा वा दुर्नयान्नयः । जयश्रिया समालीढ सर्वाशायशसा भृश ॥ २९६ ॥ पूरयंछशिहसासकुंदप्रसवहासिना । समागमत्पुर चंचद्ध्वजयतीविराजित ॥ २९७ ॥ देहभृते कुमारस्य शौर्यादिप्रसवाचिते । जननेत्रालय, पेतु कीर्तिगंधावकर्षिना ॥ २९८ ॥ तदा कुमारसंदेशादेकवाक्येन विट्सुता । गोविमोक्षणमेतेन कृतं युद्ध्वेति भूपतिं ॥ २९९॥ विज्ञाप्यादापयन् कन्यां नंदाख्याय पुरोदिता । गोदावरीं विवाहेन विचित्रा कार्यवृत्तय ॥ ००॥ अथात्र

जिसे कोई सहन न कर सके औषधिके समान कटुक, निर्दय, और सीगोंके शब्दोंसे भयानक ऐसी सेना लेकर सब पशुओंको हरण करनेकी इच्छासे साधुओंको विघ्नके समान चढकर आया ॥ २८७–२९० ॥ इस बातको सुनकर राजा काष्ठांगारके द्वारा यह घोषणा दिलाई गई कि जो कोई इस भीलसे इन पशुओंको छुडावेगा उसे मैं गोपेंद्र की स्त्री गोपश्रीसे उत्पन्न हुई पुत्री सती गोदावरी नामकी कन्या दूंगा। इस घोषणाको सुनकर कालागांरिकके साथ कुमार जीवंधर अपने सब साथियोंको लेकर उन भीलोंके समीप पहुंचा। वहां जाकर उसने अपना धनुष चढाया और उसपर तेज बाण रक्खे. अच्छी शिक्षा मिलनेके कारण वह बहुत जल्दी बाणोंके समूहों को छोडता था और जहां जहां धनुष धारी दिखते थे वहीं पर वह झट पहुंच जाता था। शीघ्रताके साथ पैंतरा बदलता हुआ वह दूसरेके पडते हुए बाणोंसे भी बचता था शत्रुओंके बाण समूहोंको काटता था और भयभीत लोगोंमें शस्त्रोंको रोकता भी था, जिसप्रकार नय दुर्नयोंको जीत लेता है उसीप्रकार जीवंधरने बहुत देरतक युद्ध कर भीलोंको जीत लिया विजयलक्ष्मी स्वयं उसके समीप आपहुंची और चंद्रमा, हंसोंके पंख तथा कुंदके फूलोंको भी लज्जित करने वाले अपने यशसे अच्छीतरह सबदिशाओंको व्याप्त करते हुए उसने चंचल पताकाओंसे सुशोभित नगरमें प्रवेश किया ॥ २९१–२९७ ॥ उससमय शौर्य आदि अनेक गुणरूपी फूलोंसे सुशोभित ऐसे कुमारके शरीररूपी आमके वृक्षपर कीर्तिरूपी सुगंधके द्वारा खींचे हुए लोगोंके नेत्ररूपी भ्रमर पड रहे थे ॥ २९८ ॥ तदनंतर 'युद्धकर इस कुमार जीवंधर ने ही पशु छुडाये हैं' इस एक वाक्यके द्वारा वैश्य पुत्रोंने राजाको खबर दी और फिर कुमारके संदेशके अनुसार वह पहिले वचन द्वारा दी हुई गोदावरी कन्या विवाहकी विधिके साथ

होऽभूदवेक्ष्यास्य योग्यतां । महाशास्त्राब्धिसंघातमतिरेष करिष्यते ॥ २७८ ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा वरिष्ठः श्रावकेष्वहं । नान्यलिंगिनमस्कारं कुर्वे केनापि हेतुना ॥ २७९ ॥ स्याद्वैमनस्य तेऽवश्य तदभावेऽतिमानिन । इति श्रेष्ठ्याह तच्छ्रुत्वा स्वसद्भावमथाब्रवीत् ॥ २८० ॥ राजा सिंहपुरस्याहमार्यवर्माभिधानक । वीरनंदिमुनेः श्रुत्वा धर्मं संशुद्धदर्शन ॥ २८१ ॥ धृतिषेणाय मद्राज्यं प्रदायादाय संयमं । तीव्रोदराग्निसंभूतमहादाहासहिष्णुकः ॥ २८२ ॥ सम्यग्दृष्टिर्गृहीतेदग्वेषस्ते धर्मबाधव । इति तद्वचनं सम्यक्परीक्ष्य वणिजां वरः ॥ २८३ ॥ सुतं समर्पयामास तस्मै त सखिभि सम । क्षेत्रे बीजमिव स्थाने योग्ये किं नार्पयेत्सुधी ॥ २८४ ॥ सवृद्दृष्टिस्तमादाय निसर्गमतिविस्तृतिं । अचिरेणैव कालेन विश्वविद्यातमानयत् ॥ २८५ ॥ कुमारोपि रविर्वाम्भोदान्ते विद्याभिरद्युतत् । प्राप्तैश्वर्यो द्विपो वानु संप्राप्तनवयौवन ॥ २८६ ॥ उपाध्यायोऽपि कालान्तरेणायात्संयत. शिव । तत्काले कालकूटाख्यो मुख्यो वनविनां ॥ २८७ ॥ मर्त्याकारं प्रपन्नो वा सूर्यरश्मिभयात्स्वय । अन्धकार. सकोदण्डशरहस्तं दुरीक्षकं । केनाप्यसह्यमायाते कद्रुक वा महौषध । निर्घृण बल

लिये मैं किसी भी कारणसे अन्य मतवालेको नमस्कार नहीं करता तथा इसके अभावमें अर्थात् नमस्कार न करनेसे अत्यंत अभिमान रखनेवाले आपको अवश्य ही बुरा लगेगा । शेठकी यह बात सुन कर वह तपसी अपना परिचय इस प्रकार देने लगा ॥ २७९–२८० ॥ मैं सिंहपुर नगरका राजा हूं और आर्यवर्मा मेरा नाम है मैंने श्रीवीरनंदि नामके मुनिराजसे धर्मका स्वरूप सुनकर शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया है तथा धृतिषेणको अपना राज्य देकर संयम धारण किया था, परंतु तीव्र जठर अग्निके (भस्मव्याधिके) उत्पन्न हो जानेसे उसकी महाजलनको मैं सह नहीं सका इसलिये हे धर्मबंधु ! सम्यग्दृष्टि रह कर ही मैने यह वेष धारण किया है । उस तपसीकी यह बात सुन कर उस श्रेष्ठ वैश्यने उसकी अच्छीतरह परीक्षा की और फिर सब साथियोंके साथ वह पुत्र उसे समर्पण करदिया सो ठीक ही है योंकि योग्य खेतमें बीजके समान बुद्धिमान् पुरुष योग्य स्थानमें क्या उत्पन्न नहीं कर सक्ता अर्थात् सब कुछ उत्पन्न कर सकता है ॥२८१–२८४ ॥ सम्यग्दृष्टि पुरुषने स्वभावसे ही अत्यंत महान् ऐसे उस जीवंधर को लेकर थोडेही दिनमें उसे सब विद्याओंके पारंगत कर दिया ॥ २८५ ॥ जिसप्रकार वर्षाके वाद सूर्य दैदीप्यमान होता है अथवा ऐश्वर्य को पाकर हाथी सुशोभित होता है उसी प्रकार नव यौवन अवस्थाको पाकर वह कुमार जीवंधर सब विद्याओंके द्वारा अत्यंत सुशोभित होने लगा ॥ २८६ ॥ वह उपाध्याय भी समयानुसार संयम धारणकर मुक्त हुआ । अथानंतर उससमय एक कालकूट नामका भीलोंका राजा था जो कि ऐसा काला था मानों सूर्यकी किरणोंके डरसे स्वयं अंधकार ही मनुष्यके आकार वनगया हो, तमाखूके घनके समान उसकी कांति थी और वह पशुहिंसक था, वह भील जिसके हाथमें धनुष वाण है, जो [illegible] जा सके पडनेपर

स परीक्षितु । वाछन्नथाचतैन मे भोजन दीयतामिति ॥ २६७ ॥ कुमारोऽपि प्रतिज्ञाय नीत्वा सार्धं तमात्मना । पितु सनिधिमाहारो मयास्मै स प्रदीयते ॥२६८॥ भवान् प्रमाणमित्यास्यत्तच्छ्रुत्वा तत्पिता मुदा । विनीतोऽय सुत श्लाघ्यो ममेत्याश्लिष्य त मुहुः ॥ २६९ ॥ पुत्र स्नानावसानेऽय मयामा साधु भोक्ष्यते । त्वया व्यपगताशकं भोक्तव्यमिति सोऽभ्यधात् ॥ २७० ॥ सहायै सह संविश्य भोक्तुं प्रारब्धवानसौ । अथार्भकस्वभावेन सर्वमुष्णमिद कथ ॥ २७१ ॥ भुंजेऽहमिति रोदित्वा जननीमकदर्थयत् । रुदन्त त समालोक्य भद्रैतत्ते न युज्यते ॥२७२॥ अपि त्व वयसाल्पीयान् धीस्थो वीर्यादिभिर्गुणैः । अधरीकृतविश्वोऽसि हेतुना केन रोदिषि ॥ २७३ ॥ इति तापसवेषेण भाषितः स कुमारकः । शृणु पूज्य न वेत्सि त्व रोदनेऽस्मिन्गुणानिमान् ॥२७४ ॥ निर्यातिं महतश्लेष्मा वैमल्यमपि नेत्रयो । शीतीभवति चाहारः कथमेतन्निवार्यते ॥ २७५ ॥ इत्याख्यत्तत्समाकर्ण्य मातास्य मुदिता सती । यथाविधि सहायैस्त सह सम्यगभोजयत् ॥ २७६ ॥ ततो गधोत्कटो भुक्त्वा सनिविष्टो यथासुख । तेन तापसवेषोऽपि भुक्त्वामैवमभाषत ॥ २७७ ॥ कुमारेऽस्मिन्मम स्ने-

यह वात सुनकर पिता गंधोत्कट वहुत ही प्रसन्न हुआ और यह मेरा पुत्र वडा ही विनयवान् और प्रशंसनीय है इसप्रकार सोच कर वार वार उसे आलिंगन करने लगा ॥ २६८—२६९ ॥ फिर उसने जीवंधरसे कहा कि हे पुत्र! स्नान करनेके वाद यह मेरे साथ अच्छी तरह भोजन कर लेगा तू निःशंक होकर पहिले भोजन कर ले ॥२७०॥ इसके वाद वह जीवंधर अपने सब साथियोंके साथ भोजन करनेको बैठा भोजन परोसनेके वाद ही वह वालक स्वभाव होनेसे कहने लगा कि 'यह भोजन सब गर्म है मैं इसे कैसे खाऊं' इस प्रकार कह कर वह रोने लगा और रो रो कर माताको खेद खिन्न करने लगा। उसे रोता हुआ देखकर तपसीके भेषको धारण करनेवाले आगंतुक मनुष्यने कहा कि हे कुमार हे भद्र इस प्रकार रोना तुझे शोभा नहीं देता यद्यपि तू आयुसे छोटा है वालक है तथापि बुद्धिमान है और शक्ति आदि गुणोंसे सव संसारको नीचा दिखानेवाला है फिर भला क्यों रोता है? इसके उत्तरमें जीवंधर कहने लगा हे पूज्य सुनिये! इस रोनेमें जो गुण हैं उन्हें आप नहीं जानते हैं रोनेसे इकट्ठा किया हुआ कफ निकल जाता है नेत्रोंमें निर्मलापन आता है और इधर भोजन ठंढा हो जाता है फिर भला आप मुझे रोनेसे क्यों रोकते हैं? पुत्रकी यह वात सुन कर माता भी वहुत प्रसन्न हुई और उसने विधि पूर्वक साथियोंके साथ उसे अच्छी तरह भोजन कराया ॥ २७१—२७६ ॥ तदनंतर गंधोत्कट शेठ भोजन कर सुख पूर्वक बैठा और उसके साथ वह तपस्वी भी भोजन कर इस प्रकार कहने लगा कि इस कुमारमें मेरा वहुत स्नेह है इसकी योग्यता देखकर मैं चाहता हूं कि इसकी बुद्धि महाशास्त्र रूपी सागरके जलसे धोकर निर्मल कर डालूं ॥ २७७—२७८ ॥ उस तपसीकी यह वात सुन कर वह शेठ गंधोत्कट कहने लगा कि मैं श्रावकोंमें श्रेष्ठ हूं इस

स्फटेनैव पोषितौ वृद्धिमापतुः । तत्रैव श्रावको जातो मत्यंतविजयाह्वयः ॥ २५६ ॥ सागरो धनपालाख्यश्चतुर्थो मतिसागरः । सेनापतिः पुरोधाश्च श्रेष्ठी मंत्री च भूभुजः ॥ २५७ ॥ भार्या जयावती श्रीमती श्रीदत्ता यथाक्रमं । चतुर्थ्यनुपमा तेषां देवसेन सुतोऽपर ॥ २५८ ॥ बुद्धिषेणो वरादिश्च दत्तो मधुमुखः क्रमात् । षट् ते जीवधराख्येन मधुराद्याः सुताः समं ॥ २५९ ॥ अवर्द्धन्त कुमारेण बालकेलीपरायणाः । जीवादयः पदार्था वा लोकात्तस्मान्महाशयात् ॥ २६० ॥ नक्तदिवं निजप्राणसमाः क्वाप्यनपायिन । अथ नदापि नंदाढ्यं क्रमेणासवती सुतं ॥ २६१ ॥ अन्येद्युर्नगरोद्याने कोऽपि तापसरूपभृत् । कुमारं गोलकाद्युक्तबालक्रीडानुषंगिण ॥ २६२ ॥ विलोक्यास्मात्कियद्दूरं पुरं ब्रूहीति पृष्टवान् । वृद्धस्यापि तवाज्ञत्वं बालो ह्यत्र न मुह्यति ॥ २६३ ॥ बाह्ये पुरवरोद्याने बालक्रीडावलोकनात् । पुरस्यासन्नवर्तित्वं केन वा नानुमीयते ॥ २६४ ॥ धूमोपलम्भनादग्निद्रव्यस्येति कृतस्मित. । जीवंधरोऽवदत्तस्य चेष्टाच्छायास्वरादिक ॥ २६५ ॥ दृष्ट्वा श्रुत्वा विविच्यैष सामान्यो नैव बालकः । राजवंशसमुद्भूतिश्चिह्नैरस्यानुमीयते ॥ २६६ ॥ इति केनाप्युपायेन तद्वंश

स्त्रियां थीं और इन्हीं चारोंके अनुक्रमसे देवसेन बुद्धिषेण वरदत्त और मधुमुख नामके पुत्र थे जिस प्रकार लोकाकाशके साथ जीवादिक छहों पदार्थ रहते हैं उसी प्रकार बालक्रीडा करनेमें तत्पर ऐसे मधुर आदि छहों पुत्र कुमार जीवंधरके ही साथ बढते थे ॥ २५६–२६० ॥ ये सब बालक रात दिन जीवंधरके प्राणोंके समान रहते थे और कभी अलग नहीं होते थे । तदनंतर गंधोत्कटकी स्त्री नंदाके भी नंदाढ्य नामका पुत्र हुआ था ॥ २६१ ॥ किसी दूसरे दिन नगरके बाहर बगीचेमें गेंद आदिसे खेल कर वे बालक्रीडा कर रहे थे वहीं पर तपसीका रूप धारण किये एक मनुष्य आया और कुमार जीवंधरको देखकर उससे पूछने लगा कि बतलाओ तो यहांसे नगर कितनी दूर है तब जीवंधर कुछ हंसकर कहने लगा कि तू वृद्ध है तो भी यह बात नहीं जानता है ऐसी जगह तो एक बालक भी नहीं भूल सकता। अरे नगरके बाहर किसी बगीचेमें बालकोंको क्रीडा करते हुए देख कर भला कौन अनुमान नहीं कर सकता कि नगर अत्यंत समीप है जिसप्रकार कि धूआं देखकर अग्निका अनुमान कर लिया जाता है उसी प्रकार यह अनुमान भी सहजमें हो सकता है। जीवंधरकी यह बात सुनकर तथा उसकी चेष्टा छाया और स्वर आदि देखकर वह तपसी विचार करने लगा कि यह कोई साधारण बालक नहीं है इसके चिन्हसे अनुमान होता है कि अवश्य ही इसका जन्म किसी राजवंशमें होना चाहिये ॥ २६२–२६६ ॥ इस प्रकार किसी उपायसे उसके वंशकी परीक्षा करनेकी इच्छासे उसने जीवंधरसे याचना की कि मुझे थोडा सा भोजन तो दो ॥ २६७ ॥ कुमार जीवंधरने भी उसे भोजन देनेकी स्वीकारता दी और वह उसे अपने साथ पिताके पास ले गया । वह पितासे कहने लगा कि मैंने इसे भोजन देनेके लिये कहा है इसमें आप ही प्रमाण हैं। जीवंधरकी

गंधोत्कटाह्वय ॥ २४४ ॥ अवबोध्य तमात्मानं भद्र त्वं नयनं मम । वर्द्धयान्यैरविज्ञातमिति तस्मै समार्पयत् ॥ २४५ ॥ सोऽपि न प्रतिगृह्यैव करोमीति कृतस्वर. । गत्वा गृहं स्वकान्तायै नन्दायै तत्प्रभूतकं ॥ २४६ ॥ किमप्यप्रतिपाद्यास्यै क्रुध्यन्निव गतस्मृते । सप्राणमपरीक्ष्यैव भवत्यैतदपत्यकं ॥ २४७ ॥ विसर्जनाय मद्धस्ते निर्विचारं समर्पितं । आयुष्मान् पुण्यवानेप गृहाणेति वितीर्णवान् ॥ २४८ ॥ प्रत्यैच्छत्सापि संतुष्टा कराभ्यां बालभास्करं । विराजिन प राजिस्य बाल लोलविलोचना ॥ २४९ ॥ तस्यान्यदा वणिग्वर्यं कृतमंगलसत्क्रियः । अन्नप्राशनपर्यंते व्यधाज्जीवंधराभिधां ॥ २५० ॥ अथेला तेन यन्त्रेण तस्मात्सा विजयाह्वया । दण्डकारण्यमध्यस्थं महान्तं तापसाश्रमं ॥ २५१ ॥ तत्राप्रकाशमेवैपा वसति स्म समाकुला । तां यक्षी समुपागत्य तच्छोकापनुदेच्छया ॥ २५२ ॥ तदवस्थोचितश्रव्यकथाभिः सस्रुतेः स्थितिं । प्ररूप्य धर्ममार्गं च प्रत्यहं समरीरमत् ॥ २५३ ॥ इत. सत्यंधराम्यस्य नृपेंद्रस्य कनीयसी । भामारतिः परानंगपताका च मनोरमे ॥ २५४ ॥ मधुरं वकुलं चान्यमलमेतां सुतावुभौ । ज्ञात्वा सद्धर्मसद्भावं गृहीतश्रावकव्रतौ ॥ २५५ ॥ तौ च गंधो

कर कहा कि तेरी स्मरण शक्ति भी सब नष्ट हो गई है तूने विना परीक्षा किये ही और विना कुछ विचार किये ही प्राणसहित इस वालकको स्मशानमें रखनेके लिये मेरे हाथमें सौंप दिया यह वालक चिरजीवी है और पुण्यवान है ले इसका पालन कर इसप्रकार कह कर शेठने वह वालक अपनी स्त्री नंदाको सोंप दिया ॥ २४६–२४८ ॥ चंचल नेत्रोंवाली उस नंदाने भी संतुष्ट होकर उदय होते हुए सूर्यको भी जीत कर सुशोभित होनेवाले उस वालकको गोदीमें ले लिया ॥ २४९ ॥ दूसरे ही दिन उस शेठने अनेक मांगलिक क्रियाएं कर अन्नप्राशन क्रियाके वाद उस वालकका जीवंधर नाम रक्खा ।

अथानंतर–वह विजया महारानी उसी यंत्र पर वैठ कर वहांसे चली और दंडक वनके भीतर जो वडा भारी तापसाश्रम है उसमें छिपकर रहने लगी । जब वह विजया शोकसे व्याकुल होती थी तब वह यक्षी आकर उसका शोक दूर करनेके लिये उसकी अवस्थाके योग्य सुनने योग्य कथाओंके द्वारा संसारका स्वरूप और स्थिति निरूपण कर उसे प्रतिदिन धर्म मार्ग पर लगाती थी ॥ २५०–२५३ ॥ इधर महाराज सत्यंधरकी भामा रति और अनंगपताका नामकी दो छोटी रानियां और थीं । इन दोनोंके मधुर और वकुल नामके दो पुत्र हुए थे । इन दोनोंने ही सद्धर्मका स्वरूप जानकर श्रावकके व्रत धारण कर लिये थे ॥ २५४–२५५ ॥ ये दोनों ही भाई शेठ गंधोत्कटके यहां ही पालन पोषण होकर वढे थे । उसी नगरमें विजयमति, सागर, धनपाल और मतिसागर नामके चार श्रावक और थे जो कि अनुक्रमसे राजाके सेनापति पुरोहित शेठ और मंत्री थे इन्हीं चारों श्रावकोंके अनुक्रमसे जयावती श्रीमती श्रीदत्ता और अनुपमा नामकी

ज्ञप्तिरीक्षते । नेक्षित स्वास्तु तेनापि क्वापि किंचित्कदाचन ॥ २३५ ॥ सत्सु भाविषु च प्रीतिरस्ति चेदस्तु वस्तुषु । त्वया प्रयाति प्रीतिं विनष्टेषु सुधी. स क' ॥ २३६ ॥ इति संसारसद्भावं विचिंत्य विजये प्रिये । शुच मा गा व्यतीतेषु कृथा प्रीतिं च मा वृथा ॥ २३७ ॥ श्रीमानामुक्तिपर्यन्त सुतोऽयमुदितोदितः । निहत्याराति दुर्वृत्तं मोद ते जनयिष्यति ॥ २३८ ॥ स्न हि चित्तं समाधेहि योग्यमाहारमादर । किं वृथानेन शोकेन धिग्देहक्षयकारिणा ॥ २३९ ॥ गत्यन्तरेपि ते भर्ता न हि शोकेन लभ्यते । गतयो भिन्नवर्त्मीन: कर्मभेदेन देहिना ॥ २४० ॥ इत्यादियुक्तिमद्वाग्भि सविषाय विशोकिका । पार्श्वे तस्याः स्वयं सास्थात्सता सौहार्दमीदृश ॥ २४१ ॥ तत्र गंधोत्कट स्वस्य स्वय शिशुशव तदा । गच्छन्निक्षिप्य गंभीरमाकर्ण्यर्भकसुस्वरं ॥ २४२ ॥ जीव जीवेति जीवंधराख्या वा भाविनी वदन् । सत्यं मुनिसमादिष्टमिति तुष्टोऽवगम्य तं ॥ २४३ ॥ करौ प्रसार्य सस्नेहं बालं समुदतिष्ठपत् । देवी तत्स्वरमाकर्ण्य बुद्ध्वा

जा मकता है ॥ २३६ ॥ इस प्रकार संसारका स्वभाव चिंतवन कर हे प्रिये विजये अव तू शोक मत कर और नष्ट हुए राजामें व्यर्थ ही प्रेम मत कर ॥ २३७ ॥ यह श्रीमान् तेरा पुत्र मोक्षगामी है मोक्ष जाने पर्यंत इसका अभ्युदय वरावर प्रगट होता रहेगा और शत्रुके दुराचरणको नष्ट कर यह अवश्य ही तुझे प्रसन्न करेगा ॥ २३८ ॥ इस लिये अव तू स्नान कर चित्तको शांत रख और योग्य भोजन कर अब शरीरको नष्ट करनेवाले और धिकारनेयोग्य शोकसे क्या लाभ है ॥ २३९ ॥ अब शोक करनेसे कुछ परलोकमें भी तेरा वह पति नहीं मिल सकता, क्योंकि जीवोंको कर्मोंकी भिन्नतासे अलग अलग गतियां प्राप्त होती हैं ॥ २४१ ॥ इस प्रकार युक्तियों भरे वचनोंसे उस यत्तीने विजयाका शोक दूर किया और वह उसके समीप ही रही सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी सज्जनता ऐसी ही होती है ॥ २४१ ॥ इतने में ही वहां गंधोत्कट शेठ अपने मरे हुए पुत्रको वहां रखनेकेलिये स्वयं गया उसने पुत्रको यथास्थान रख दिया और फिर एक वालकका गंभीर शब्द सुना ॥ २४२ ॥ उसी समय उसने 'जीव जीव' ऐसा आशीर्वाद दिया मानों होनहार जीवंधर नामको ही पुकारा मुनिराजके वचनको सत्य मानकर वह वहुत ही संतुष्ट हुआ और उस वालकके पास पहुंच कर तथा दोनों हाथ फैलाकर वडे प्रेमसे उस वालकको उठा लिया। विजया देवीने उस गंधोत्कटका शब्द सुनकर ही उसे पहिचान लिया और फिर उसे समझाया कि हे भद्र तू इस मेरे पुत्र को अपना ही समझ कर पालन पोषण करना और इस प्रकार रखना जिससे किसीको मालूम न हो इस प्रकार कह कर उसने वह पुत्र उस शेठको समर्पण कर दिया ॥ २४३–२४५ ॥ शेठ गंधोत्कटने भी 'मैं ऐसा ही करूंगा' ये शब्द कह कर वह वालक ले लिया और वडी जल्दी अपने घर पहुंचा। उसने अपनी स्त्री नंदासे ये सब समाचार तो नहीं वतलाये परंतु कुछ क्रोध सरीखा दिखला

लितायुकैः ॥ २२५ ॥ लम्बमानैरधोवक्त्रैः स्तेनैर्नानाविधै रवैः । सामिदग्ध शव वहेराकृष्याच्छिद्य खण्डश ॥ २२६ ॥ कुनिकाभिर्निशातामिर्डाकिनीभि समन्ततः । खादन्तीमिव सकीर्णं पितृणामगमद्वनं ॥२२७॥ तत्र राज्ञ्या कृतरक्षा यक्ष्या विगतबाधिका । अलब्ध तनय कान्त वैरिवामृतदीधितिं ॥२२८॥ नाभूदस्यास्ततोऽल्पोऽपि पुत्रोत्पत्तिसमुत्सव । शोक प्रत्युत सभूतो विलोमविधिवर्धित ॥२२९॥ सद्यो यक्षी च सुस्थाप्य समतान्मणिदीपिका । शोकाकुला विलोक्यैना दवालीढलतोपमा॥२३०॥सर्वस्थानानि तु स्थानि गत्वर्यो यौवनश्रियः । विध्वसी बधुसबधो जीवित दीपचचल॥२३१॥काय. सर्वाशुचिप्रायो हेयोऽयमिह धीमतां राज्य सर्वजगत्पूज्य विद्युद्योतसनिभं ॥२३२॥ पर्यायेष्वेव सर्वेषा प्रीति. सर्वेषु वस्तुषु । तेऽवश्य नश्वरास्तस्मात्प्रीतिः पर्यततापिनी ॥ २३३ ॥ सत्यप्यर्थे रतिर्न स्यात्स्वय वा सति चेप्सिते । सति स्वस्मिन् रतौ चासौ त्रयाणां वा स्थिते क्षति ॥ २३४ ॥ यस्य निष्क्रममासाद्य विश्वं वि-

वह महारानी पहुंची ॥ २२४–२२७ ॥ रात्रिमें उस यक्षीने उसकी खूब रक्षा की और कोई बाधा नहीं होने दी। जिस प्रकार आकाशमें चंद्रमाका उदय होता है उसीप्रकार उसीरात्रिमें उसके सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२८ ॥ उससमय विजया महारानीके पुत्र उत्पन्न होनेका उत्सव बिल्कुल नहीं हुआ था किंतु कर्मोंकी विपरीतता बढजानेसे अर्थात् पाप कर्मोंके उदय हो आनेसे शोक उत्पन्न हुआ था ॥ २२९ ॥ जिसप्रकार दावानल अग्निसे लता मुरझा जाती है उसीप्रकार यक्षीने उस रानीको शोकसे व्याकुल देखकर शीघ्रही चारों ओर मणियोंके दीपक लगा दिये ॥ २३० ॥ तदनंतर वह यक्षी उस रानीको समझाने लगी कि देखो इस संसारमें सब जगह दुःखही दुःख भरे है, यह यौवन लक्ष्मी भी अवश्य ढल जाने वाली है, भाई बंधुओंका समागम भी नाश होनेवाला है और यह जीवन भी दीपकके समान चंचल है ॥ २३१ ॥ यह शरीर सब ओरसे अशुद्ध है इस लिये बुद्धिमानोको प्रायः छोडने ही योग्य है और समस्त संसार जिसकी पूजा करता है ऐसा यह राज्य बिजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी है ॥ २३२ ॥ सब जीव जो सब वस्तुओंमें प्रेम करते हैं वे उनकी पर्यायोंमें ही करते हैं और पर्यायें सब अवश्य नष्ट होनेवाली हैं इस लिये प्रेम करनेसे अंतमें अवश्य ही संताप होता है ॥ २३३ ॥ अनिष्ट पदार्थोंके रहते हुए भी उनमें प्रेम नहीं होता तथा इष्ट पदार्थोंके रहते हुए उन पर अपना अधिकार नहीं होता और अपने पदार्थोंमें प्रेम होने पर पदार्थ, इष्टपना और अधिकार इन तीनोंकी ही स्थितिका नाश हो जाता है ॥ २३४ ॥ यह ज्ञान बिना किसी क्रमके (एक साथ) संसारके समस्त पदार्थोंको जानता है परंतु उसने भी किसी समय किसी जगह किसी पदार्थको किसी स्थिर रहनेवाला नहीं देखा है भावार्थ—संसारमें सब कुछ नश्वर है ॥ २३५ ॥ यदि होनहार पदार्थमें प्रेम हो तो हो परंतु जो नष्ट हुए पदार्थोंमें भी प्रेम करता है वह बुद्धिमान कैसे कहा

२१५ ॥ रुद्रदत्तोऽगमच्छ्वभ्रगातिं सुचिरवु खदा । काष्ठांगारिकमंत्री च रुद्रदत्तनिरूपितात् ॥ २१६ ॥ नृपं स्वमृत्युमाशंक्य प्रजिघांसुर्दुराशय. । द्विसहस्रमहीपालैर्दानमित्रैर्भटोत्कटैः ॥ २१७ ॥ राजगेह समुद्दिश्य संनद्धगजवाजिभि । सम समियाति स्म तद्विदित्वा महीपति ॥ २१८॥ देवीं गरुडयंत्रस्थामपसार्ये प्रयत्नतः । प्राग्मंत्रिस्वीकृतात्मीयमहीपालैः स्वदर्शनात् ॥ २१९ ॥ विमुक्तमंत्रिभिः सार्धं क्रुध्वा संप्राप्य मन्त्रिण । युद्धे सद्य स निर्जित्य भयोन्मार्गमनीनयत् ॥ २२० ॥ पुत्रः कालागारिकस्तस्य समरे भगव... । सक्रोधो बहुसंनद्धबलेन सहसागतः ॥ २२१ ॥ काष्ठागारिकपापोऽपि पुनस्तेनैव संगत । हत्वा युद्धे महीपालं तस्मिन्राज्येऽप्यवस्थित ॥ २२२ ॥ सविषं वाशनं मित्र कृतघ्न वा सहिंसक । धर्मं वाशर्मद राज्यमाददे सचिवाधमः ॥ २२३ ॥ अतो विजयदेवी च यन्त्रमारुह्य गारुड । शोकाग्निदह्यमानांगी रुदती यक्षिरक्षिता ॥२२४॥ व्रणवक्त्रगलद्धारालोहिताक्रान्तशूलकैः । शूलनिर्भिन्नसंभूतवेदनाकु-

दोहजार बडे योद्धा राजाओंको धन देकर अपने वश कर लिया उन सबको साथ लेकर तथा अनेक तै २०... वा हाथी घोडोंको लेकर राजभवनकी ओर चला और वहां पहुंच गया । राजाने सब समाचार जानकर विजया कर पृथ्वी गरुडयंत्र पर विठाया और बडे प्रयत्नसे उसे अपने यहांसे दूर किया । जो राजा पहिले काष्ठांगार मंत्रीके वश थे उन्होंने राजाको देखतेही काष्ठांगार मंत्रीको छोड दिया और वे राजाके वश होगये । राजा उन सब देख कर क्रोधपूर्वक मंत्रीके पास पहुंचा और शीघ्रही उसे युद्धमें जीतकर भयके मार्गपर पहुंचा दिया ॥ २१४–२२० ॥ राजाङ्गर एक के पुत्र कालांगारिकने युद्धमें अपने पिताके हारनेकी वात सुनी जिससे उसे वहुतही क्रोध आया और वह शी... सी तैयार सेना लेकर आगया ॥ २२१ ॥ पापी काष्ठांगार भी अपने पुत्रके साथ आ मिला और राजाको मा... ऋतुके उसके राज्यसिंहासनपर बैठा ॥ २२२ ॥ उस नीच काष्ठांगार मंत्रीने विप मिले हुए भोजनके समान अथवा वैश्योंमें समान, अथवा हिंसक धर्मके समान अकल्याण करनेवाला वह राज्य स्वीकार किया ॥ २२३ ॥ इधर विजया नामके गरुडयंत्र पर बैठकर चली । शोकरूपी अग्निसे उसका शरीर जल रहा था और वह रो रही थी तथापि यत्ती देवता ...हृदयसे रत्ता कर रही थी । इसप्रकार वह विजया रानी श्मशान भूमिमें जा पहुंची । उस श्मशानमें कितने ही लोगोंको शूली दी महादेवी जा रही थी जिससे उनके गलोंमें घाव होगये थे और उन घावोंसे निकलते हुए रक्तसे वह शूली भीग गई थी कहीं पर उसकी उस शूलसे जो मस्तक कट गया था उससे उसको जो दुःख हुआ था उससे माणही लटक रहे थे कहींपर चोर नीचेकी और मुंहकर लटकाये जा रहे थे जिससे वे अनेक तरहसे रो रहे थे, और कहींपर डाकिनियां अधजले मुरदोंको अग्निमेंसे निकालकर तथा तेज छुरीसे उसे काटकर चारोंओरसे खा रही थीं इसप्रकारके भयानक दृश्योंसे भरे हुए उस स्मशानमें

राजकुल वैनतेययन्त्रगमाभवत् । प्रायः प्रकृतपुण्येन सनिधित्सति देवताः ॥ २०६ ॥ अथागते मधौ मासे सर्वसत्वसुखावहे । पुरोहितोऽहितोऽन्येद्यु' प्रातरेव समागत' ॥ २०७ ॥ महीपतिगृहं देवीं वीक्ष्य वीतविभूषणा । उपविष्टा क्व राजेति समपृच्छत्स सादरं ॥ २०८ ॥ साप्याह सुप्तवान्राजा शक्यो नैव निरीक्षितु । इति तद्वचन सोऽपि दुर्निमित्त विभावयन् ॥ २०९ ॥ ततो निवृत्त सप्राप्य काष्ठागारिकमंत्रिण । भास्करोदयवेलाया गेह तत्रावलोक्य त ॥ २१० ॥ पापबुद्धिर्मिथोऽवादीद्राज्य तव भविष्यति ॥ महीपतिर्निहतव्यस्त्वयेति तदुदीरित ॥ २११ ॥ श्रुत्वा कर्मकर मन्त्रिपदे मामित्ययोजयत् । राजायम कृतज्ञो वा कथ वापकरोम्यह ॥ २१२ ॥ रुद्रदत्त! त्वया प्रज्ञावताप्येतत्सुदुर्नयं । निरूपितमिति श्रोत्रपिधान सभयो व्यधात् ॥ २१३ ॥ पुरोहितस्तदाकर्ण्य भविष्यत्सुनुरस्य ते । प्राणहारी भवेत्तत्र प्रतीकार ततः कुरु ॥ २१४ ॥ इत्येतदभिधायाशु गत्वा तत्पापपाकत । तृतीयदिवसे व्याधिपीडितो विगतासुकः ॥

उसके चित्तमें माताके उपकार करनेकी इच्छा प्रगट हुई । वह उसीसमय राजकुलमें गई और एक गरुडयंत्रका रूप बना कर वहां पहुंची । सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः पहिले किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे देवता भी समीप आतेप कर्माके ॥ २०२–२०६ ॥ अथानंतर सब जीवोंको सुख देनेवाला वसंतऋतु आया । किसी एक दिन वह अहित क्रूर यत्तीने रुद्रदत्त नामका पुरोहित सवेरेके समय राजाके घर आया । रानीको आभूषणरहित देखकर वह बैठ गया और उसी उस रानीसे पूछा कि राजा कहां है ॥ २०७–२०८ ॥ रानीने उत्तर दिया कि राजा सोये हुए हैं उनके दर्शन अभी नहीं हो सकते । रानीके इन वचनोंको ही उस पुरोहित ने अशकुन समझा और फिर वहांसे लौटकर वह काष्ठांगार मंत्री आया । उस समय सूर्य उदय हो रहा था वहांपर काष्ठांगारको देखकर उस पापी पुरोहितने काष्ठांगारसे कहा कि राज्य सब तेरा हो जायगा तू शीघ्रही राजाको मार डाल । इसप्रकार पुरोहितके वचन सुनकर भयभीत होकर प्रेम करते से कानोंको ढककर कहने लगा कि मैं राजाका एक कर्मचारी हूं मुझे राजाने मंत्री पद दिया है यद्यपि यह वश्य ही संतज्ञ है अर्थात् मेरे किये हुए कामोंको बिल्कुल नहीं जानता तथापि मैं ऐसा अपकार कैसे करूं ? हे रुद्रदत्त ! तू तो बुद्धिमान है तथापि तूने ऐसी दुर्नीतिके (अन्यायके) वचन कैसे कहे ॥ २०९–२१३ ॥ काष्ठागारके ऐसे वचन सुनकर वह पुरोहित फिर कहने लगा कि अच्छा इस राजाका होनहार पुत्र तेरा प्राणघातक होगा इसलिये तू इसका कुछ भी उपाय कर इसप्रकार कह कर वह पुरोहित शीघ्रही अपने घर चला गया परंतु उस पाप कर्मके उदयसे तीसरेही दिन वह रोगसे पीडित हुआ और मर गया । मरकर वह रुद्रदत्त बहुत दिन तक दुःख देनेवाली नरक गतिमें गया । इधर दुष्ट आशयवाले काष्ठांगार मंत्रीने रुद्रदत्तके कहे हुए वाक्योंके अनुसार अपनी मृत्युकी आशंका कर राजाको मारनेकी इच्छा की । उसने

श्रु त्वमित्याह महीपाल प्रियाप्रियं । श्रुत्वा शोकप्रमोदाभ्यां तामाविभूतचेतसा ॥ १९५ ॥ राज्ञी राजा समालोक्य सद्वृत्ता समतर्पयत् । सुखेनैवं तयोः काले याति कश्चित्समागतः ॥ १९६ ॥ देवलोकास्थितिं हेमे देवीगर्भगृहे सुखं । सपुण्यो राजहंसो वा शारदाब्जसरोवरे ॥ १९७ ॥ अथान्येद्युर्वणिग्वर्यो वात्सल्यस्तत्पुरान्तरे । धनी गन्धोत्कटो नाम शीलगुप्तमहामुनिं ॥ १९८ ॥ मनोहरवनोद्याने ज्ञानत्रयविलोचनं । विलोक्य विनयाद्भत्वा प्राप्राक्षीद्भगवन्मम ॥ १९९ ॥ बहवोऽल्पायुषोऽभूवंस्तनयाः पापपाकतः । दीर्घायुषो भविष्यंति सुता मे किमतः परं ॥ २०० ॥ इति सोऽपि दयालुत्वान्मुनीशः प्रत्यभाषत । भाव समुपलप्स्यन्ते त्वया सुचिरजीविनः ॥ २०१ ॥ अभिज्ञानमिदं तस्य सम्यक् शृणु वणिग्वर । लप्स्यमानसुत सद्यो मृत त्यक्तु वनं गत ॥ २०२ ॥ तत्र कंचित्सनूजं त्व लप्स्यसे पुण्यभाजनं । स समस्तां महीं भुक्त्वा तृप्तो वैषयिकैः सुखैः ॥ २०३ ॥ प्रान्ते निष्ठस्य कर्माणि मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति । इति तद्वचनं श्रुत्वा कान्तितरुसंनिभा स्थिता ॥ २०४ ॥ यक्षी मनिष्यतो राजसूनोः पुण्यप्रचोदिता । तस्योत्पत्तौ स्वयं मातुरुपकारविधित्सया ॥ २०५ ॥ गत्वा

रानीको बिठाया और पूछने पर कहा कि मेरे नष्ट होनेके बाद तेरे पुत्र होगा जो कि आठ लाभोंको पाकर पृथ्वी का भोक्ता होगा । रानीका चित्त ऐसे अप्रिय वाक्यको सुनकर शोक और आनंदसे भर गया । ऐसी रानीको देख कर राजाने अच्छे २ वचनोंसे समझा कर संतुष्ट किया इसके बाद उन दोनोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । तदनंतर एक देवका जीव स्वर्गसे च्युत होकर विजया रानीके गर्भमें आया और सुखपूर्वक इस प्रकार रहने लगा मानों शरद ऋतुके कमलोंसे सुशोभित सरोवरमें पुण्यवान् राजहंस ही हो ॥ १९४–१९७ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें रहनेवाले वैश्योंमें श्रेष्ठ और धनी शेठ गंधोत्कटने मनोहर नामके वनमें मति श्रुत अवधि तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले शीलगुप्त नामके महा मुनिराजको देखा उसने बडी विनयके साथ नमस्कार किया और पूछा कि हे भगवन्! मेरे पापकर्मोंके उदयसे कितने ही पुत्र थोडी आयुवाले हुए हैं। हे प्रभो! क्या आगे कोई बडी आयुवाला भी पुत्र होगा या नहीं ॥१९८–२००॥ इस प्रकार पूछने पर दयालु मुनिराज कहने लगे कि हां तेरे चिरंजीवी पुत्र भी होंगे ॥ २०१ ॥ हे वैश्यवर! चिरंजीवी पुत्र होने की बात पर विश्वास रखनेका चिन्ह यह है तू अच्छी तरह सुन । थोडे ही दिनमें तेरे मृतपुत्र होगा उसे रखनेके लिये तू वनमें जायगा वहांपर तुझे एक पुत्र मिलेगा जो कि बडाही पुण्यात्मा होगा तथा वह समस्त पृथ्वी का उपभोग (राज्य) कर इंद्रियोंके विषयसंबंधी सुखोंसे तृप्त होकर बडी प्रसन्नताके साथ सब कर्मोंको नष्ट करेगा और मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगा । इस प्रकार उन मुनिराज ने कहा दैवयोगसे वहांपर एक यक्षी बैठी थी उसने भी ये सब बातें सुनी इधर होनहार राजपुत्र के पुण्यकर्मोंने भी मानों उसे प्रेरणा की और इसीलिये उस राजपुत्रके उत्पन्न होनेके समय

द्ये ॥ १८३ ॥ स्थित पिण्डिद्रुमस्याधो जीवंधरमुनीश्वरं । ध्यानारूढं विलोक्यैतद्रूपादिषु विषक्तधी ॥ १८४ ॥ सकौतुकं समभ्येत्य सुधर्मगणनायक । भाक्तिकोऽभ्यर्च्य वन्दित्वा यथास्थानं निवेश्य तम् ॥ १८५ ॥ प्राञ्जलिर्भगवानेष यतीन्द्र सर्वकर्मभि । मुक्तो बाद्यैव को वेति पप्रच्छ प्रश्रयाश्रय ॥१८६॥ अवबोधचतुष्कात्मा सोऽप्येवं समभाषत । खेदो न हि सतां वृत्तेर्वक्तुः श्रोतुश्च चेतस ॥ १८७ ॥ शृणु श्रेणिक जम्बूभूजविभूषितभूतले । अत्र हेमाङ्गदे देशे राजन् राजपुराधिप ॥ १८८ ॥ राजेव रंजिताशेषः सत्यधरमहीपति । विजयास्य महादेवी विजयश्रीरिवापरा ॥ १८९ ॥ सर्वकर्मक्षणोऽमात्यः काष्ठागारिकनामभृत् । भक्ता देवोपघातानां रुद्रदत्त पुरोहित ॥ १९० ॥ कदाचिद्विजया देवी सुप्ता गर्भगृहे सुख । मुकुट भूभुजा हेमघटाष्टकविराजित ॥ १९१ ॥ दत्त स्वस्यै श्रिताशोकतरोर्मूल च केनचित् । छिन्न परशुना जात पुनर्बालमहीरुह ॥ १९२ ॥ निशाया पश्चिमे यामे स्वप्नावेता प्रमन्नधीः । विलोक्य सा तयोर्ज्ञातु फलमभ्येत्य भूपतिं ॥ १९३ ॥ सप्रश्रया समीक्ष्यैनमन्वयुक्त मदत्यये । अष्टौ लब्ध्यानवाप्यान्ते क्षितेर्भोक्तारमात्मज ॥१९४॥ आप्स्यस्या-

रहे थे ॥ १८३ ॥ वहीं पर एक जगह पिंडीवृक्षके नीचे ध्यानारूढ महाराज जीवंधर मुनिराज विराजमान थे। महाराज श्रेणिक उनके रूपादिकमें आसक्त चित्त होकर कौतुकके साथ भीतर गये तथा बडी भक्तिसे सुधर्म गणधरदेव की पूजा बंदना कर अपनी जगह पर बैठ गये। तदनंतर वे हाथ जोडकर बडी विनयसे गणधरदेवसे पूछने लगे कि हे भगवन्! मानों सब कर्मोंसे आज ही मुक्त हो जांयगे ऐसे ये मुनिराज कौन हैं? ॥ १८४–१८६ ॥ इसके उत्तरमें चार ज्ञानको धारण करनेवाले भगवान गणधर देव नीचे लिखे अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योकि सज्जनोंके चारित्रसे वक्ता और श्रोता दोनोंके चित्तको खेद नहीं होता ॥ १८७ ॥ वे कहने लगे कि हे श्रेणिक सुन! इसी जंबू वृक्षसे सुशोभित होनेवाली पृथ्वीपर हेमांगद नामका एकदेश है और उसमें राजपुर नामका नगर है ॥ १८८ ॥ उस नगरमें चंद्रमाके समान सबको प्रसन्न करनेवाला सत्यंधर नामका राजा था और दूसरी विजयलक्ष्मीके समान विजया नामकी पट्टरानी थी ॥ १८९ ॥ उसी राजाके सब कामोंमें निपुण ऐसा काष्ठांगार नामका मंत्री था और दैवजन्य उपघातोंको दूर करनेवाला रुद्रदत्त नामका पुरोहित था ॥ १९० ॥ किसी एक समय वह विजया महादेवी भीतरके राजभवनमें सुखसे सो रही थी वहां पर उसने दो स्वप्न देखे पहिला यह कि सुवर्णके आठ घंटोंसे सुशोभित अपना मुकुट राजाने रानीको दे दिया है दूसरा रानी एक अशोकवृक्षके नीचे बैठी है परंतु किसीने वह अशोक वृक्ष कुल्हाडीसे काट डाला है और उस जगहसे दूसरा छोटा अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ है ॥ २९१–२९२ ॥ रानीने प्रसन्न चित्त होकर ये स्वप्न रात्रिके पिछले पहर देखे थे। सबेरे ही उठ कर वह उनका फल पूछनेके लिये राजा सत्यंधरके पास विनयके साथ गई ॥१९३॥ राजाने

वसमतुगभूत्वा मित्रवीराख्य. सुधीः ॥ १७२ ॥ मृतो वृषभसेनस्य चंदनां स समार्पयत् । पिता श्रीनागदत्तस्य धनदेवो वणिग्वर ॥ १७३ ॥ स्वर्लोकं शांत-चितेन गतोऽस्य श्रेष्ठितां गतः । श्रीमान् वृषभसेनाख्यः कौशांव्यां कलितो गुणैः ॥ १७४ ॥ सोमिलायां कृतद्वेषा चित्रसेना चतुर्गतिं । परिभ्रम्य चिरं शांता मनाक् तत्रैव विट्सुता ॥ १७५ ॥ भूत्वा वृषभसेनस्य पत्नी भद्राभिधाभवत् । निदानकृतवैरेण न्यग्रहाच्चंदनामसौ ॥ १७६ ॥ चंदनैषाच्युतात्कल्पात्प्रत्यागत्य शुभोदयात् । द्वितीयवेद संप्राप्य पारमात्म्यमवाप्स्यति ॥ १७७ ॥ एवंबंधविधानोक्तमिथ्याभावादिपंचकात् । संचितैः कर्मभिः प्राप्य द्रव्यादिपरिवर्तनं ॥ १७८॥ संसारे पंचधाप्रोक्तदु खान्यभ्राम्यनारत । प्राप्नुवंतः कृतांतास्ये हत सीदंति जंतवः ॥१७९॥ त एव लब्धकालादिसाधन मुक्तिसाधनं । सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपोरूपमनुत्तरं ॥ १८० ॥ अभ्येत्य पुण्यकर्माणः परमस्थानसप्तके । संप्राप्य परमैश्वर्यं भवंति सुखभागिन ॥ १८१ ॥ इति तद्गौतमाधीशश्रीमद्ध्वनिरसायनात् । सभा सर्वा बभूवासौ तदैवाजरामरा ॥ १८२ ॥ अन्यदासौ महाराजः श्रेणिकाख्यः परिभ्रमन् । प्रीत्या गन्धकुटीबाह्यभासद्वनचतु-

वृषभसेनका सेवक है और उसीने चंदना वृषभसेनको समर्पण की थी। नागदत्तका पिता शेठ धनदेव शांतचित्तसे मर कर स्वर्ग गया था और वहांसे आकर गुणोंसे भरपूर कौशांवी नगरीमें श्रीमान वृषभसेन नामका शेठ हुआ है ॥ १७२–१७४ ॥ चित्रसेनाने पहिले सोमिलासे द्वेष किया था इसलिये वह वहुत दिन तक चतुर्गतिमें परिभ्रमण कर तथा शांत परिणामोंको धारण कर उसी कौशांवी नगरीमें वैश्य पुत्री हुई थी और भद्रा नामसे प्रसिद्ध होकर वृषभसेनकी स्त्री हुई है निदानसे जो उसने पहिले बैरका विचार किया था उसीके संस्कारसे उसने चंदनाको दुःख दिया था ॥१७५–१७६॥ यह चंदना अच्युत स्वर्गसे आकर तथा शुभोदयसे पुंवेद पाकर अवश्य ही परम मोक्ष पदको प्राप्त होगी ॥१७७॥ इसप्रकार बंधके साधनोंमें जो मिथ्यात्वादिक पांच भाव कहे हैं उनसे संचित किये हुए कर्मोंके द्वारा यह जीव द्रव्य क्षेत्र आदि पंच-परावर्तनोंको प्राप्त होता है। संसारमें निरंतर होनेवाले ये ही पांच प्रकारके सबसे वडे दुख हैं इन्हींको भोगता हुआ यह जीव कालके मुखमें पडता है और फिर अनेक तरहके दुःख भोगता है ॥ १७८–१७९ ॥ इस लिये काल लब्धि प्राप्त होना आदि जो मोक्षके साधन हैं तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप जो सबसे उत्तम मोक्षके साधन हैं उनको पाकर तथा पुण्य कर्म करते हुए सातों परम स्थानोंमें परम ऐश्वर्य पाकर ये जीव अनंत सुखी होते हैं ॥ १८०–१८१ ॥ इस प्रकार वह सब सभा गौतम गणधरकी पुण्य लक्ष्मीसे भरी हुई ध्वनिरूपी रसायनसे उसी समय अजर अमरके समान हो गई थी ॥ १८२ ॥

अथानंतर—किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक गंधकुटीके बाहर दैदीप्यमान चारों वनोंमें वडे प्रेमसे घूम

एवं श्रावकसद्धर्ममवगम्य परस्परं । जातसौहार्दचित्तानां दानपूजादिकर्मभिः ॥ १६१ ॥ काले गच्छति जीवाते सन्यासविधिमाश्रित । श्रीनागदत्त. सौधर्मकल्पेऽनल्पामरोभवत् ॥ १६२ ॥ तत्र निर्विष्टदिव्योरुभोगश्च्युत्वा ततोजनि । द्वीपेस्मिन्भारते खेचराचले नगरे वरे ॥ १६३ ॥ शिवकरे तधीशस्य विद्याधरधरेशिन । सुत पवनवेगस्य सुवेगाया सुखावहः ॥ १६४ ॥ मनोवेगोन्यजन्मोत्थस्नेहेन विवशीकृत । अनैषीश्चन्दनामेनामतिस्नेहोऽपथ नयेत् ॥ १६५ ॥ स एषोभ्यर्णभव्यत्वादमुष्मिन्नेव जन्मनि । जिनाकृतिं समादाय संप्राप्स्यत्यग्रिम पद ॥ १६६ ॥ ततः श्रीनागदत्तस्य नाकलोकात्कनीयसी । इहागत्याभवत्कान्त्या मनोवेगा महाद्युति ॥ १६७ ॥ पलाशनगरे नागदत्तहस्तमृत खगः । सुरलोकादभूत्सोमवंशे त्वं चेटको नृपः ॥ १६८ ॥ माता श्रीनागदत्तस्य धनमित्रा दिव गता । ततश्च्युत्वा तवैवासीत्सुभद्रेय मन प्रिया ॥ १६९ ॥ यासौ पद्मलता सापि कृतोपवसना दिव । गत्वागत्याजनिष्टेय चंदना नदना तव ॥ १७० ॥ नकुल ससृतिं भ्रात्वा सिंहाख्योभूद्वनेचर । प्राग्जन्मस्नेहवैराभ्यामवधीष्ट स चदना ॥१७१॥ सहदेवोऽपि सभ्रम्य ससारे सुचिरं पुन । कौशाम्व्या

बुद्धिमानने यात्राके पहिले कही हुई श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा की ॥ १५९–१६० ॥ इस प्रकार सबने श्रावकोंका सद्धर्म स्वीकार किया, परस्पर सबके चित्त मित्ररूप हो गये और दान जिनपूजा आदि उत्तम कर्मोंके द्वारा सबका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । आयुके अंतमें नागदत्तने समाधि मरण धारण कर शरीर छोडा जिससे वह सौधर्मस्वर्गमें बडी ऋद्धिका धारक देव हुआ ॥ १६१–१६२ ॥ वहा पर उसने बडे बडे दिव्य भोगोंका उपभोग किया और फिर वहांसे च्युत हो कर इसी द्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतके शिवंकर नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा पवनवेगकी रानी सुवेगासे यह अत्यंत सुखी मनोवेगा हुआ है । दूसरे जन्मके उठे हुए स्नेहसे विवश होकर इसने चंदनाका हरण किया था सो ठीक ही है क्योंकि अत्यंत स्नेह कुमार्गमें ले ही जाता है ॥ १६३–१६५ ॥ यह आसन्न भव्य है और इसी जन्ममें दिगंबर मुनि होकर परम मोक्ष स्थान प्राप्त करेगा ॥ १६६ ॥ नागदत्तकी छोटी बहिन अर्थस्वामिनी स्वर्गसे यहां आकर यह महाकांतिको धारण करनेवाली मनोवेगा हुई है ॥ १६७ ॥ जो विद्याधर पलाश नगरमें नागदत्तके हाथसे मारा गया था वह स्वर्गसे आकर सोमवंशमें तू राजा चेटक हुआ है ॥ १६८ ॥ धनमित्रा नामकी जो नागदत्तकी माता थी वह स्वर्ग गई थी और वहांसे आकर यह तेरी मनको प्यारी सुभद्रा रानी हुई है ॥ १६९ ॥ जो नागदत्तकी स्त्री पद्मलता थी वह अनेक उपवास कर स्वर्ग गई थी और वहांसे आकर यह चंदना नामकी तेरी पुत्री हुई है ॥ १७० ॥ नकुल संसारमें परिभ्रमण कर सिंह नामका भील हुआ है और पहिले जन्मके स्नेह तथा वैरसे उसने चंदनाको तंग किया था ॥१७१॥ सहदेव भी संसारमें बहुत दिन तक परिभ्रमण कर कौशांबी नगरीमें मित्रवीर नामका बुद्धिमान वैश्यपुत्र हुआ है जो कि

त्सम्प्रगत । क वा गत त्वयेत्येष पृष्टः प्रश्रो महीभुजा ॥ १५१ ॥ भागयाचनयात्रादि सर्वमामूलतोऽब्रवीत् । तदाकर्ण्य नृपः क्रुध्वा प्रवृत्त श्रेष्ठिनिग्रहे ॥१५२॥ न युक्तमिति निर्बंधो नागदत्तेन वारितः । दत्वा श्रेष्ठिपदं तस्मै सारवित्तसमन्वितं ॥ १५३ ॥ विवाहविधिना पद्मलतामपि समार्पयत् । अथात्मससदि व्यक्तमवनींद्रोऽभ्यधादिदं ॥ १५४ ॥ पश्य पुण्यस्य माहात्म्य राक्षसाद्यनरायतः । उपेत्यायं महारत्नान्यात्मीकृत्यागत सुख ॥ १५५ ॥ पुण्याज्जलायते वन्हिर्विषमप्यमृतायते । मित्रायंते द्विषः पुण्यात्पुण्याच्छाम्यंति दूरुजः॥१५६॥दुर्विधः सधन पुण्यात् पुण्यात्स्वर्गश्च पण्यते । तस्मात्पुण्यं विचिन्वतु हतापत्सपदैषिण ॥ १५७ ॥ जिनोक्तधर्मशास्त्रानुयानेन विहितक्रियाः । इति सभ्याश्च तद्वाक्य वहवश्चेतसि व्यधुः ॥ १५८ ॥ अतः श्रीनागदत्तोपि सजातानुशय तदा । क्षमस्व मे कुमारेति प्रणमत स्वपुत्रक ॥ १५९ ॥ समाया श्रेष्ठिन मैवमित्युत्थाप्य प्रियोक्तिभिः । सतोष्य जिनपूजां च प्राक् प्राक्रामकरोत्कृती ॥ १६० ॥

महाराजने उसे देखकर पूछा कि नागदत्त तुम कहांसे आये और कहां चले गये थे इस प्रकार महाराजके पूछने पर संतुष्ट होकर उस नागदत्तने अपना भाग मांगने और उसके लिये यात्रा करने आदिके सब समाचार आदिसे अंततक कह सुनाए। उसे सुनकर राजाको भी क्रोध हुआ और वह शेठको दंड देनेके लिये तैयार हो गया ॥ १५०–१५२ ॥ परंतु ऐसा करना ठीक नहीं है इस तरह समझा कर नागदत्तने उसे रोक दिया। राजाने वहुतसा अच्छा धन देकर नागदत्तका शेठको पद दिया और विधिपूर्वक विवाह कर वह पद्मलता भी उसे समर्पण कर दी। तदनंतर राजाने सभामें वैठकर सब लोगोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि देखो पुण्यका माहात्म्य कैसा है यह नागदत्त राक्षस आदि अनेक विघ्नोंको दूर कर तथा अनेक महारत्नोंको लेकर सुख पूर्वक यहां आया है ॥ १५३–१५५ ॥ इसलिये कहना पड़ता है कि पुण्यकर्मके उदयसे अग्नि भी जल हो जाती है, विष भी अमृतके समान हो जाता है पुण्यसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं और वडे वडे रोग तथा आपत्तियां भी पुण्यसे शांत हो जाती हैं ॥१५६॥ पुण्यसे दरिद्री भी सधन हो जाता है और स्वर्गकी प्राप्ति भी पुण्यसे ही होती है इसलिये आपत्तियोंको दूर करने और संपदाओंकी इच्छा करनेवालोंको श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्म शास्त्रोंके अनुसार सव क्रियाओंका अनुष्ठानकर सदा पुण्यका संपादन करना चाहिये। राजाका यह उपदेश सभाके सब सभासद लोगोंने अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण किया ॥ १५७–१५८ ॥ इसके वाद शेठको भी वहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने सभामें ही पुत्रको नमस्कारकर क्षमा मांगी और कहा कि हे कुमार! मुझे क्षमाकर। परंतु नागदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और स्वयं खडे होकर वडे मीठे वचनोंसे पिताको संतुष्ट किया और फिर उस

व्यधात्सज्ञानलोचन ॥ इतः श्रीनागदत्तोपि विलोक्य जिनमंदिरं ॥ १४० ॥ किंचित्प्रदक्षिणीकृत्य निर्षादान्याहमित्यदः । प्रविश्य निहितस्तोत्रः सचिन्तस्तत्र संस्थितः ॥ १४१ ॥ तदा विद्याधरः कश्चित् दृष्ट्वा ज्ञातवृत्तकः । जैनः सवित्तं नीलासाद् द्वीपमध्यान्मनोहरे ॥ १४२ ॥ वनेवतार्य सुस्थाप्य समापृच्छ्यादरान्वितं । यथेष्टमगमत्सा हि धर्मवत्सलता सता ॥ १४३ ॥ तत्समीपेनुजाग्रामे वसंत्यस्यैत्य सादरं । प्रत्यग्रहीद्धनं तत्र सोपि निक्षिप्य सुस्थितः ॥ १४४ ॥ अथोपगम्य तं स्नेहात्स्वानुजादिसनाभयः । कुमारामिनवां कन्या नकुलस्य जिघृक्षुणा ॥ १४५ ॥ श्रेष्ठिना वयमाहूता नि स्वत्वाद्रिक्तपाणयः । कथं तत्र व्रजिष्याम इत्यत्याकुलचेतसः ॥ १४६ ॥ अथ सर्वेपि जाताः स्म इति ते न्यगदन्नसौ । तच्छ्रुत्वा साररत्नानि निजरत्नकदवकात् ॥ १४७ ॥ तेभ्योधिक मुदा दत्वा मन्मागमनं मम । ददध्वं संनिवेद्यैता कन्यायै रत्नमुद्रिका ॥ १४८ ॥ इत्युक्त्वा स्वयमित्वानुशीलदत्तगुरु मिथ । वंदित्वा रक्षसूनु च दृष्ट्वा सन्मित्रमात्मन ॥ १४९ ॥ आमूलात्कार्यमास्थाय सह तेन ततो गतः । साररत्नमहीपालं सानुरागं विलोक्य तां ॥१५०॥ दृष्ट्वा भवानहो नागदत्त! कस्मा-

इस प्रकार ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मुनिराजने उसे आश्वासन दिया। उधर श्रीनागदत्तने एक जिनमंदिर देखा, उसकी थोडीसी प्रदक्षिणा दी और उसमें भीतर जाकर बैठनेका विचार किया। भीतर जाकर उसने भगवानकी स्तुति की और फिर चिंतातुर होकर वह वहीं बैठ गया ॥ १४०—१४१ ॥ दैवयोगसे वहीं पर एक जैनी विद्याधर आ निकला उसने नागदत्तके सब समाचार जानकर उसे उस द्वीपसे धनसहित उठाकर मनोहर वनमें जा उतारा। वह नागदत्तको वहां उतार कर और बडे आदरसे आज्ञा लेकर अपनी इच्छानुसार चला गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी धर्मवत्सलता यही कहलाती है ॥ ४२—४२ ॥ उस मनोहर वनके समीप ही नंदीग्राम था जहां उसकी बहिन व्याही थी वहीं पर वह नागदत्त पहुंचा, बहिनने उसका आदर सत्कार किया और नागदत्त अपना सब धन एक जगह रख कर सुखसे रहने लगा ॥ १४४ ॥ तदनंतर किसी एक दिन नागदत्तको बहिनके ससुर आदि संबंधियोंने आकर कहा कि हे कुमार शेठ नई आई हुई कन्याका विवाह अपने पुत्र नकुलके साथ करना चाहता है उसने हमको भी बुलाया है परंतु हमारे पास धन नहीं है रीते हाथ हमलोग कैसे जाय इस प्रकार व्याकुल चित्त होकर सब संबंधियोंने आकर कहा। उनकी यह बात सुन कर नागदत्तने अपने रत्नोंके भंडारमेंसे अच्छे २ रत्न निकाल कर बडी प्रसन्नतासे उन्हें दिये और उन्हें समझा दिया कि तुम उस कन्याके पास जाकर उसे यह रत्नोंकी अंगूठी देना और उससे मेरे आनेके सब समाचार कहना ॥ १४५—१४८ ॥ इस प्रकार संबंधियोंको समझा कर वह स्वयं भी चला सबसे पहिले शीलदत्त गुरुके समीप जाकर उनकी वंदना की और फिर अपने मित्र कोतवालके पुत्र दृढरथके समीप पहुंचा ॥ १४९ ॥ नागदत्तने दृढरथसे आ-

१२८ ॥ प्राघूर्णकोहं पृष्ट्वेमां कन्यका शोकविह्वलां । तद्भयाद्भव्य दास्यानीस्थाविष्कृतपराक्रमः ॥ १२९ ॥ अवुद्ध्वा धर्मभक्तं तत्कृतवान्कार्यमीदृशं । त्यक्त
सद्धर्मवात्सल्य सारं जैनेंद्रशासने ॥ १३० ॥ जैनशासनमर्यादा पतिलंघयतो मम । अपराधं क्षमस्वेति तदुक्तमवगम्य सः ॥ १३१ ॥ किं कृत भवतापूर्वं म-
दुपार्जितकर्मणः । परिपाकविशेषोयमिति पंचनमस्क्रिया ॥ १३२ ॥ श्रीनागदत्तसप्रोक्ता भावयन्नाकमापिवान् । ततः पद्मलतां कन्या धन च पितृसंचित ॥
१३३ ॥ समाकर्षणरज्वावतार्य भ्रातुर्निजस्य तौ । नकुल, सहदेवश्च रज्जुमाकर्षणोचिता ॥ १३४ ॥ अदत्वा पापबुद्ध्यास्मानमङ्क्षु स्वपुरमीयतुः । छिद्रमासा-
द्य तन्नास्ति दायादा यन्न कुर्वते ॥ १३५ ॥ तौ दृष्ट्वा नागदत्तोपि युवाभ्यां सह-यातवान् । किं नायादिति भूपेन साशंकेन जनेन च ॥ १३६ ॥ पृष्टौ
सहैव गत्वासौ पृथक्क्वापि गतस्ततः । न विद्मोतिव्यघत्ता तावनुजान्प्यपह्नव ॥ १३७ ॥ श्रीनागदत्तमातापि व्याकुलीभूतचेतसा । शीलदत्तगुरु प्राप्य स-
मपृच्छत् तुजः कथां ॥ १३८ ॥ सोपि तत्संभ्रम दृष्ट्वा कारुण्याहितमानसः । निर्विघ्नं ते तनूजो द्रागमामेपीरागमिष्यति ॥ १३९ ॥ इत्याश्वासं मुनिस्तस्था

वातको जाने विना ही मुझसे यह ऐसा कार्य वन गया है और मैंने श्रीजिनेंद्रदेवके शासनमें कहे हुए सारभूत धर्मवात्स-
ल्यको छोड दिया है ॥ १३० ॥ हे भव्य जैनशासनकी मर्यादाका उल्लंघन होकर मुझसे यह अपराध वन गया है इसलि-
ये आप क्षमा कर दीजिये । नागदत्तकी कही हुई इन सव वातोंको जानकर वह विद्याधर कहने लगा कि इसमें आपने
क्या किया यह सव मेरे पहिले किये हुए कर्मोंके विशेष उदयका फल है । इसप्रकार कहकर तथा नागदत्तके द्वारा सुनाये
हुए पंचनमस्कार मंत्रकी भावना करता हुआ वह विद्याधर शरीर छोडकर स्वर्ग पहुंचा । तदनंतर पद्मलता कन्या और पि-
ताके कमाये हुए धनको उस रस्सीसे पारकर जहाजपर पहुंचाया तथा नकुल सहदेव दोनों भाइयोंको भी पहुंचाया । नकु-
ल सहदेव ने जहाजपर पहुंचकर पापबुद्धिसे वह खींचनेकी रस्सी नागदत्तको नहीं दी और वे दोनों भाई जहाजको लेकर
शीघ्रही अपने नगरमें जा पहुंचे । सो ठीक ही है क्योंकि छिद्र पाकर ऐसा कोई काम नहीं है जिसे दायाद न
कर सकें ॥ १३१–१३५ ॥ उन दोनों भाइयोंको देखकर वहांके राजा को और सव साधारण लोगोंको कुछ शंका हुई
और इसीलिये उन सवने पूछा कि नागदत्त तुमलोगोंके साथ गया था फिर वह साथ आया क्यों नहीं? इसके उत्तरमें उन
दोनोंने कहा कि वह गया तो साथ था परंतु वहां जाकर कहीं अलग चला गया इसलिये हमें उसकी मालूम नहीं है इस-
प्रकार उन्होंने वह वात छिपा ली ॥ १३६–१३७ ॥ अपने पुत्रके न आनेकी खवर सुनकर नागदत्तकी माता चित्तमें
वहुत ही व्याकुल हुई और शीलदत्तगुरुके समीप जाकर उसने अपने पुत्रकी कथा पूछी ॥ १३८ ॥ वे मुनिराज भी इस सव
संभ्रमको देखकर करुणासे भरपूर मनसे कहने लगे कि तू डरे मत तेरा पुत्र निर्विघ्न रीतिसे शीघ्र ही आवेगा ॥ १३८–१३९ ॥

त्मनः । प्रमादाच्च करोति स्म करे तदग्रवीक्षणात् ॥ ११९ ॥ राक्षसेन हतस्तस्मात्पुरं शून्यमभूदिद । मत्सुतानिर्विशेषेते मा मत्वाऽमारयन् गत ॥१२० ॥ आगंतासौ पुनर्नेतुमिति तद्वचनश्रुतेः । वैश्यः खड्ग तमादाय गोपुरांतहित खग ॥ १२१ ॥ आयांतमवधीत्सोपि पठन् पंचनमस्कृतिं । न्यपतन्मेदिनीभागे समाहितमतिस्तदा ॥ १२२ ॥ श्रुत्वा श्रीनागदत्तोपि नमस्कारपदावली । मिथ्या मे दुष्कृत सर्वमित्यपास्यायुध निज ॥ १२३ ॥ कुतो धर्मस्तवेत्येवमप्राक्षीत्सव्रण खग । सोपि श्रावकपुत्रोह क्रोधादेतत्कृत मया ॥ १२४ ॥ क्रोधान्मित्र भवेच्छत्रुः क्रोधाद्धर्मो विनश्यति । क्रोधाद्राज्यपरिभ्रंश. क्रोधान्मोमुच्यतेसुभि. ॥ १२५ ॥ क्रोधान्मातापि सक्रोधाभवेत् क्रोधादधोगतिः । तत श्रेयोर्थिना त्याज्य स सदेति जिनोदित ॥ १२६ ॥ तज्जानन्नपि पापेन कोपेनाह वशीकृत । प्राप्तस्तत्फलमत्रैव परलोके किमुच्यते ॥ १२७ ॥ इत्यात्मान विनिंद्यैन कुतस्त्यस्त्व व्रजेः क वा । इत्यवोचदभोगस्त्व वैश्योप्येवमुदाहरत् ॥

मंत्रसे सिद्ध किये हुए खड्गको कभी अलग नहीं रखता था परंतु प्रमादसे एकवार वह अलग रख दिया और छिद्र देखकर राक्षसने उसे मारडाला इसलिये यह नगर फिरसे सूना होगया है। उसने मुझे पुत्रीके समान माना और मुझे बिना मारे ही चला गया ॥ ११९–१२० ॥ अब वह मुझे लेनेके लिये फिर आवेगा। उस कन्याकी यह बात सुनकर वह वैश्य उस खड्गको लेकर नगरके बडे दरवाजेके भीतर जा छिपा। ज्योंही वह राक्षस विद्याधर वहांसे निकला त्योंही उसने उस तलवारसे उसे मार दिया। वह विद्याधर उसी समय पंच नमस्कारमंत्रका पाठ करता हुआ चित्तमें समाधि धारणकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १२१–१२२ ॥ पंच नमस्कार मंत्रको सुनकर नागदत्त विचार करने लगा कि हा! मैंने यह सब पाप मिथ्या ही किया उसने झट अपनी तलवार रखकर उस घाव लगे हुए विद्याधरसे पूछा कि तेरा धर्म क्या है इसके उत्तरमें वह विद्याधर कहने लगा कि मैं भी श्रावकपुत्र हूं मैंने यह सब (नगरका नाश) क्रोधसे किया है ॥ १२३–१२४ ॥ क्रोधसे मित्र शत्रु हो जाता है क्रोधसे धर्म नष्ट हो जाता है क्रोधसे राज्य भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधसे प्राणतक छूट जाते हैं ॥ १२५ ॥ क्रोधसे माता भी क्रोध करने लगती है, क्रोधसे अधोगति प्राप्त होती है इसलिये आत्मकल्याण चाहनेवालोंको वह क्रोध सदाके लिये छोड देना चाहिये ऐसा श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है ॥ १२६ ॥ यद्यपि मैं ये सब बातें जानता था तथापि पापी क्रोधने मुझे अपने वश कर लिया और उसका फल मुझे यहां ही मिल गया फिर भला परलोककी तो बात ही क्या है ॥ १२७ ॥ इसप्रकार अपनी निंदा करता हुआ वह विद्याधर नागदत्तसे पूछने लगा कि तू कहांसे आया और कहां जायगा। तब वह वैश्य कहने लगा कि मैं एक पाहुना हूं शोकसे व्याकुल हुई इस कन्याको देखकर राक्षसके भयसे इसकी रक्षा करनेके लिये यह पराक्रम कर बैठा हूं ॥ १२९ ॥ 'तू धर्मभक्त है' इस

जीव पुत्रावतिष्ठेति प्रियैः प्रीणयतिस्म सः । सोपि रत्नादितद्वस्तुभागं देहीत्ययाचत ॥ १०८ ॥ पिता तु पुत्र मद्वस्तु पलाशद्वीपमध्यगे । सि‍द्धे पुरे पलाशा-
ख्ये तत्त्वयानीय गृह्यता ॥ १०९ ॥ इत्याख्यन्नकुलेनामा भ्रात्रा दायादकेन सः । सहदेवेन चात्मेष्टसिद्धिर्यदि भवेदह ॥ ११० ॥ प्रत्यागत्य ... गानि पूजा-
जैनेश्वरीमिति । आशास्यानुजिनान्नुत्वा कृतात्मगुरुवंदनः ॥ १११ ॥ आरुह्य नावमंभोधिमवगाह्य व्रजन् द्रुतं । पलाशपुरमासाद्य तत्र स्थापितपोतकः ॥
११२ ॥ पुरं विगतसंचारं किमेतदिति विस्मयात् । ततः प्रसारितायामिरज्जुभिस्तटमासवान् ॥११३॥ प्रविश्य तत्पुरं तत्र कन्यामेकाकिनीं स्थितां । एकत्रा-
लोक्य तामाह ववैवमगरं कुतः ॥ ११४ ॥ जातमीदृक् त्वय का चेत्यगदत्साब्रवीदल । प्रागेतन्नगरेशस्य दायादः कोपि कोपनः ॥ ११५ ॥ सिद्धराक्षस-
विद्यत्वात्संप्राप्तो राक्षसाभिधा । पुरं पुराधिनाथं च सनिर्मूलं व्यनीनशत् ॥ ११६ ॥ तद्वंशजेन केनापि समंत्रसाधितासिना । कृतरक्षं तथैवैतत्स्थापितं न-
गरं पुन ॥ ११७ ॥ पतिर्महाबलोत्रास्य कांचनलतिका प्रिया । तस्यैतयोरहं पद्मलताभूव सुताख्यया ॥ ११८ ॥ कदाचिन्मत्पिता मंत्रसाधितं खड्गमा-

रण कमलोंको प्रणाम किया धनदेवने उसे देखकर 'हे पुत्र चिरंजीव हो यहां बैठ' इस तरहके मीठे वचनोंसे उसे प्रसन्न किया। तदनंतर नागदत्तने अपने भागकी रत्नादिक वस्तुएं मांगी ॥ १०७–१०८ ॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र ! मेरी सब चीजें पलाशद्वीपके मध्यमें बसनेवाले पलाश गांवमें रक्खी है वहांसे जाकर तुम ले लो ॥ १०९ ॥ पिता के इस प्रकार कहने पर वह नागदत्त अपने भागीदार (दायाद) नकुल और सहदेव दो भाइयोंके साथ नावमें बैठकर समुद्रके भीतर चला। चलते समय उसने आशा प्रगटकी कि यदि मेरी इष्ट सिद्धि हो गई तो लौट कर मैं श्रीजिनदेव की पूजा करूंगा ऐसी आशा कर उसने श्रीजिनेंद्रदेवको नमस्कार किया और फिर गुरुवंदना कर वह वहांसे चला। शीघ्रही वह पलाशपुरमें जा पहुंचा और वहां पर अपना जहाज खडा किया जहाज परसे ही उसने देखा कि नगरमें किसी भी मनुष्यके आने जानेका संचार नहीं है यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ और वह अपनी लंबी रस्सी फेंककर किनारे पर पहुंचा ॥ ११०–११३ ॥ उसने नगरके भीतर जाकर एक जगह अकेली बैठी हुई एक कन्याको देखा और पूछा कि यह नगर ऐसा कैसे हो गया है और तू कौन है तब वह कन्या कहने लगी कि किसी एक समय इस नगरका अधिकारी बड़ा ही क्रोधी था ॥ ११४–११५ ॥ वह राक्षस नामकी विद्याको सिद्ध कर राक्षस नामसे ही प्रसिद्ध हो गया था और उसने इस नगरको तथा नगरके राजाको समूल नष्ट कर दिया था ॥ ११६ ॥ उसके वंशमें होनेवाले किसी पुरुषने मंत्रपूर्वक एक तलवार सिद्धकी थी उसने उसी तलवारसे सुरक्षित रह कर फिरसे यह नगर बसाया था ॥ १७ ॥ इसी नगरके राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे मैं पद्मलता नामकी पुत्री हुई थी ॥ १८ ॥ मेरा पिता उस

द्रोहिनी सती । धनमित्रा तयो सूनुर्नागदत्तो महाबलः ॥ ९६ ॥ तनूजा चानुजास्यासीदर्यस्वामिन्यभिख्यया । पलाशद्वीपमध्यस्यपलाशनगरेशिन- ॥ ९७ ॥ महाबलमहीशस्य कनकादिलताभवत् । काचनादिलतायाश्च ख्याता पद्मलता सुता ॥ ९८ ॥ उपयम्यापरा श्रेष्ठी श्रेष्ठिनीं विससर्ज तां । सापि देशांतरं गत्वा समुता जातसंविदा ॥ ९९ ॥ शीलदत्तगुरो पार्श्वे गृहीतश्रावकव्रता । सूनुमप्यर्पयामास शास्त्राभ्यासनिमित्ततः ॥ १०० ॥ सोपि कालांतरे बुद्धिनौनिस्तीर्ण-श्रुतांबुधेः । सत्कविश्च स्वयभूत्वा शास्त्रव्याख्यातसद्यशा ॥ १०१ ॥ नानालंकाररम्योक्तिसुप्रसन्नसुभाषितैः । विशिष्टजनचेतः सुप्रल्हादमुदपादयत् ॥ १०२॥ तत्रैवारक्षिपुत्रेण दृढरक्षेण संगतिं । कृत्वा तत्पुरशिष्टानां शास्त्रव्याख्यानकर्मणा ॥ १०३ ॥ उपाध्यायत्वमध्यास्य तत्रात्तवसुना निजा । जननीं च स्वसारं च स्वयं च परितोषयत् ॥ १०४ ॥ स्वमातुलानीपुत्राय नंदिग्रामनिवासिने । कुलवाणिजनाम्ने स्वामनुजामदितादरात् ॥ १०५ ॥ स कदाचिदुपश्लोकपूर्वकं क्षितिनायकं । विलोक्य तत्प्रसादात्तसम्मानधनसम्मदः ॥ १०६॥ कृतमातृपरिप्रश्नः पितुरागत्य सन्निधिं । प्रणमत्तत्पदाम्भोजं धनदेवं समीक्ष्य तं ॥ १०७॥

वाले पलाश नगरमें राजा महाबल राज्य करता था वह कनकलता मरकर उस राजा महाबलकी रानी कांचनलतासे पद्मलता नामकी पुत्री हुई ॥ ९७–९८ ॥ किसी एक समय उज्जयनी नगरीके शेठ धनदेवने अपना दूसरा विवाह कर लिया और पहिली स्त्री धनमित्राका परित्याग कर दिया इस लिये वह धनमित्रा अपने पुत्र सहित देशांतर चली गई। किसी एक समय ज्ञान होने पर उसने श्रीशीलगुप्त नामके मुनिराजके समीप श्रावकके व्रत धारण किये और शास्त्रोंका अभ्यास करनेके लिये अपना पुत्र उन मुनिराजको सोंप दिया ॥ ९९–१०० ॥ समयानुसार वह पुत्र भी बुद्धिरूपी नावसे शास्त्ररूपी महासागरके पार हो गया वह स्वयं अच्छा कवि बन गया और शास्त्रोंकी व्याख्या कर उसने अच्छा यश उत्पन्न किया ॥ १०१ ॥ वह अनेक तरहके अलंकारोंसे मिले हुए सुंदर वचन कह कर तथा प्रसन्नताके साथ सुभापित कहकर विशेप लोगोंका (बडे आदमियोंका) चित्त सहजमें ही प्रसन्न कर देता था ॥ १०२ ॥ वहांके कोटपालके पुत्र दृढरथके साथ उसकी मित्रता हो गई और उसीके द्वारा उसने उस नगरके शिष्ट मनुष्योंको शास्त्रोंकी व्याख्या सुनाकर उपाध्याय पद प्राप्त किया। वहां पर उसने धन भी खूब कमाया और अपनी माता तथा बहिनको खूब संतुष्ट किया और वह स्वयं भी संतुष्ट हुआ ॥ १०३–१०४ ॥ नंदी नामके गावमें रहनेवाले कुलवाणिज नामके अपनी मामीके पुत्रके साथ बडे आदरसे उसने अपनी बहिनका विवाह कर दिया ॥ १०५ ॥ किसी एक समय उसने बहुतसे नये श्लोक बनाकर राजाको सुनाये जिससे वहांका राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस नागदत्त कविको आदर सत्कार कर तथा धन देकर बहुत प्रसन्न किया ॥ १०६ ॥ किसी एक समय माताकी सलाहसे वह अपने पिताके समीप गया और [illegible] कि च-

८४ ॥ अभ्यर्णे यौवने यावद्विवाहसमयो भवेत् । तस्मात्पृथग्वसेदस्मादिति मातुलवाक्यतः ॥ ८५ ॥ वहिस्थिते कुमारोसौ कन्यायाम[illegible]मान् । तयोर्यौतो भवत्कामावस्थामसहमानयो ॥ ८६ ॥ ततः कांतपुरं लज्जाप्रेरितौ तौ गतौ तदा । दृष्ट्वा तत्र कुमारं च मात्रा पित्रा च शोकतः ॥ ८७ ॥ तयोर्विरुद्धचारित्रादप्रियावावयोरपि । यातं देशांतरं नात्र स्थातव्यमिति जल्पितौ ॥ ८८ ॥ तदेवाकुरुतां तौ च प्रत्यंतनगरे स्थितिं । विहरंतावथान्येद्युरुद्याने मुनिपुगवं ॥ ८९ ॥ मुनिगुप्तामिधं वीक्ष्य भक्त्या भिक्षागवेषिणं । प्रत्युत्थाय परीत्यामिवंद्याभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ९० ॥ स्वोपयोगनिमित्तानि तानि खाद्यानि मोदत । खाद्यानि लड्डुकादीनि दत्वा तस्मै तपोभृते ॥ ९१ ॥ नवभेद जिनोद्दिष्टमदृष्ट स्वेष्टमापतु । वनेन्यदा कुमारोसौ मधुमासे विषाहिना ॥ ९२ ॥ दष्टो नष्टासुको जातो दृष्ट्वा तं देहमात्रकं । नस्यासिधेनुना सापि विधाय स्वां गतासुका ॥ ९३ ॥ अगात्तदानुमार्गेण तमन्वेष्टुमिव प्रिया । परां काष्ठामवासस्य स्नेहस्य गतिरीदृशी ॥ ९४ ॥ अस्मिन्नेवोज्जयिन्याख्यमवतिविषये पुरं । प्रजापतिमहाराजः पालकस्तस्य हेलया ॥ ९५ ॥ तत्रैव धनदेवाख्यश्रेष्ठी त-

उसी समय अपने कांतपुर नगरमें चले गये । कुमारके माता पिताने उन दोनोंको देखकर कुछ शोक किया और उनसे कहा कि तुम दोनोंका चारित्र ठीक नहीं है इसलिये हमको भी तुम दोनों प्रिय नहीं लगते अब तुम किसी दूसरे देशमें चले जाओ यहां मत रहो ॥ ८७–८८ ॥ उन दोनोने उनकी आज्ञाका पालन किया और वे दोनों जाकर प्रत्यंत नगरमें जाकर ठहर गये । वहां पर वे इच्छानुसार विहार करने लगे किसी एक दिन उन्होंने एक उद्यानमें मुनिगुप्त नामके मुनिराजके दर्शन किये वे मुनिराज आहारके लिये आ रहे थे कुमार महावल और कनकलताने उठ कर वडी भक्तिसे उनका पडगाहन किया प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया, पूजा की और वडे आनंदसे उन तपस्वी मुनिराजको अपने लिये वनाया हुआ लड्डू आदि निर्दोष आहार दिया ॥ ८९–९१ ॥ उस आहार दानसे उन दोनोंने भगवान जिनेंद्रदेवका कहा हुआ नौतरहका इष्टपुण्य सम्पादन किया । किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुमें वह कुमार वनमें घूम रहा था वहां पर उसे एक विषैले सर्पने काट खाया और वह तुरंत मर गया । उसको मरा हुआ शरीर मात्र देखकर उसकी स्त्री कनकलताने उसीकी तलवारसे अपने प्राण घात कर लिये मानों वह उसे ढूंढनेके लिये उसके गये हुए मार्गसे ही चली गई हो । सो ठीक ही है क्योंकि जो स्नेह परम सीमाको पहुंच जाता है उसका ऐसा ही हाल होता है ॥ ९२–९४ ॥ इसी अंवती देशमें उज्जयनी नगरीमें महाराज प्रजापति लीलापूर्वक राज्य करते थे । उसी नगरमें एक धनदेव नामका शेठ रहता था और उसकी सती स्त्रीका नाम धनमित्रा था उन दोनोंके वह महावलका जीव नागदत्त नामका पुत्र हुआ ॥९५–९६ ॥ इन्हीं दोनोंके अर्थस्वामिनी नामकी एक पुत्री थी जोकि नागदत्तकी छोटी वहिन थी । पलाशद्वीपके मध्यमें वसने

मह सदृशि ॥७४॥ शिवभूतेः समापन्ना दैवस्य कुटिला गतिः । सोमिला चित्रसेनायास्तत्सुतानां च पोषण॥७५॥पापिष्ठासहमानासा तर्जिता शिवभूतिना । क्रुध्वा जीवत्यमा चित्रसेनयायं स चेत्यसत्॥७६॥अकरोद् दूषण विगिधमकार्यं नाम योषिता । चित्रसेनापि मामेषा रुषैवादूषयन्मृषा ॥७७ ॥ निगृहीष्यामि मृत्वैना निदानमकरोदिति । अन्यदामत्रणे पूर्वं शिवगुप्तमुनीश्वरं॥७८॥सोमिलाभोजयत्तस्मै शिवभूतिःस्म कुप्यति। तत्तपोधनमाहात्म्यकथनेन तया पति ॥७९॥ प्रसादितस्तत साधु तद्दान सोन्वमन्यत । स कालांतरमाश्रित्य लोकांतरगत सुत; ॥ ८० ॥ आतोत्र विषये वेगे कांते कातपुरेशिनः । सुवर्णवर्मणो वि-द्युल्लेखायाश्च महाबलः ॥ ८१ ॥ देशेगेत्रैव चंपाया श्रीषेणाख्यमहीपतेः । सुवर्णवर्मसोदर्या धनश्री प्रेमदायिनी ॥ ८२ ॥ सोमिलाभूत्तयो पुत्री कनकादि-लताभिधा । महाबलकुमाराय दातव्येयमिति स्वय ॥ ८३ ॥ जन्मन्येवाभ्युपेतैषा मात्रा पित्रा च समदात् । वर्द्धमान पुरे तस्मिन्नेव बालिकया समं ॥

पतिसे अनुरक्त रहती है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंको कोई भी काम अकार्य नहीं है अर्थात् वे बुरे से बुरा काम कर सकती हैं और इसलिये स्त्रियोंको वार वार धिकार है। चित्रसेनाने भी क्रोधमें आकर निदान किया कि इसने मुझे मिथ्या दोप लगाया है इसलिये मैं मर कर परलोकमें इसका निग्रह करूंगी। तदनंतर किसी एक दिन सोमिलाने श्री शिव गुप्त मुनिराजका पडगाहन कर आहार दिया जिससे शिवभूतिको बहुत ही क्रोध हुआ। परंतु पीछेसे उन मुनिराजका माहात्म्य कहकर सोमिलाने पतिको प्रसन्न कर लिया और फिर शिवभूतिने भी उस आहारदानको बहुत अच्छा माना। समय पाकर वह शिवभूति मरा और बंगदेशके मनोहर कांतपुर नगरके राजा सुवर्णवर्माके उसकी रानी विद्युल्लेखासे महावल नाम का पुत्र हुआ ॥ ७४—८१ ॥ इसी अंगदेशके चंपानगरमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था उसके राजा सुवर्णवर्माकी बहिन धनश्री रानी थी ॥ ८२ ॥ उन दोनोंके सोमिलाका जीव कनकलता नामकी पुत्री हुई थी । राजा श्रीषेण और रानी धनश्रीने जन्मसे ही हर्षित होकर संकल्प कर लिया था कि यह पुत्री महावलको ही दी जायगी। उसके माता पिताने भी यह बात स्वीकार कर ली थी दैवयोगसे वृद्धिको प्राप्त हुआ महावल मामाके ही यहां जा रहा और उस वालिकाके साथ रहने लगा ॥ ८२—८४ ॥ मामाने आज्ञा दी कि तुम दोनोंकी युवावस्था समीप समीप आ रही है इसलिये जब तक तुम दोनोंका विवाह न होजाय तब तक तुम दोनोंको अलग अलग रहना चाहिये इस प्रकारकी मामाकी आज्ञानुसार वह कुमार वाहर रहने लगा परंतु उसका चित्त कन्यामें आसक्त ही रहा। वे दोनों ही कामकी अवस्थाको सह न सके इसलिये उन दोनोंका समागम हो गया ॥ ८५—८६ ॥ इस कृत्यसे वे दोनोंही लज्जित हुए और

प्राक्तनं वृत्त श्रुत्वाशोकाकुला भृश । निजगेहं समानीय सुस्थिता भयविह्वलौ ॥ ६५ ॥ स्वपादशरणौ भद्रा श्रेष्ठिनं च मृगावती । चन्दनापादपंकेजयुगल तावनीनमत् ॥ ६६ ॥ क्षमामूर्नेवती चैव कृत्वाल्हाद तयोस्ततः । तद्वार्ता कर्णनोदीर्णरागादागतबन्धुभिः ॥ ६७ ॥ प्रापितैतत्पुरं वीरं वंदितुं निजबांधवान् । विमर्ज्य जातनिर्वेदा गृहीत्वात्रैव संयमं ॥ ६८ ॥ तत्त्तोवगममाहात्म्यादध्यस्थाद्गणिनीपदं । इतीह जन्मसंबंधं श्रुत्वा तत्रानुचेटक ॥ ६९ ॥ प्राक्किं कृत्वागता चंदनात्रैत्येतत्सं पृष्टवान् । सोप्यवादीदिहैवास्ति मगधे नगरी पृथु ॥ ७० ॥ वत्सेति पालयत्येनां महीपाल प्रसेनिकः । विप्रस्तत्राग्निभूताख्यस्तस्यैका माह्मणी प्रिया ॥ ७१ ॥ परा वैश्यसुता सूनुस्त्राह्मण्या शिवभूतिवाक् । दुहिता चित्रसेनाख्या विट्सुतायामजायत ॥ ७२ ॥ शिवभूतेरभूद्भार्या सामिला सोमशर्मणः । सुतस्तु देवशर्माख्यश्चित्रसेनास्य च प्रिया ॥ ७३ ॥ अग्निभूतौ गतप्राणे तनूजस्तत्पदेभवत् । विधवा चित्रसेनापि पोष्यात्व

दोनों ही डरसे घबडाए और मृगावतीके चरणोंके शरणमें आये मृगावतीने उन दोनोंसे चंदनाके चरण कमलोंमें नमस्कार कराया ॥ ६५–६६ ॥ चंदनाके क्षमा कर देने पर वे दोनों उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह क्षमाकी मूर्ति है। चंदनाने भी उन दोनोंको प्रसन्न किया तदनंतर चंदनाके भाई बंधुओं ने भी यह बात सुनी और स्नेहके कारण वे उसी नगरमें आये उसी नगरमें सब लोग महावीर स्वामीकी वदना करने गये। वहां पर जाकर चंदनाको वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने सब भाई बंधुओंको छोडकर दीक्षा धारण करली ॥ ६७–६७ ॥ तपश्चरण और ज्ञानके माहात्म्यसे उसने गणिनी (अर्जिकाओंकी नायिका) का पद धारण किया। इस प्रकार चंदनाका इस भांतिका हाल सुनकर राजा चेटक पूछने लगा कि चंदना पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा कार्य करके यहां उत्पन्न हुई है। इसके उत्तरमें गणधर देव कहने लगे कि इसी मगध देशके वत्सा नगरमें राजा प्रसेनिक राज्य करता। उसी नगरमें एक अग्निभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसके एक तो ब्राह्मणी स्त्री थी और दूसरी वैश्यकी पुत्री थी। ब्राह्मणीके शिवभूति नामका पुत्र हुआ और वैश्यकी पुत्रीके चित्रसेना नामकी पुत्री हुई ॥ ६९–७२ ॥ शिवभूतिकी स्त्रीका नाम सोमिला था जोकि सोमशर्मा की पुत्री थी। उसी नगरमें देवशर्मा नामका ब्राह्मणपुत्र और था उसे चित्रसेना व्याही [illegible] ॥ ७३ ॥ कितने ही दिन बाद अग्निभूति के मरजानेपर उसका पुत्र शिवभूति घरका मालिक हुआ। इधर [illegible] होगई इसलिये पुत्रों सहित वह अपने भाई शिवभूतिके घर आकर रही सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोका [illegible] है। शिवभूति जो अपनी बहिन चित्रसेना और उसके पुत्रोंका भरण पोषण करता था वह पा[illegible] हीं हुआ। इसलिये शिवभूति ने उसको ताडना दी तब क्रोधित होकर सोमिला ने चित्रसेनाको मि[illegible] यह मेरे

सार्द्धं नीला कन्या न्यवेदयत् । कदाचिच्छ्रेष्ठिन पातु जलमुदृधृत्य यत्नत ॥ ५४ ॥ आवर्जयत्याः केशाना कलाप मुक्तबन्धन । लम्बमान करेणादात्सजलार्द्रे धरातले ॥ ५५ ॥ चन्दनायास्तदालोक्य तद्रूपादतिकोपिनी । श्रेष्ठिनी तस्य भद्राख्या स्वभर्तुरनया समं ॥ ५६ ॥ संपर्कं मनसा मत्वा कोपात्प्रस्फुरिताधरा । निक्षिप्तशृंखला कन्या दुराहारेण दुर्जना ॥ ५६ ॥ प्रतर्जनादिमिश्चैना निरंतरमबाधत । सापि मत्पूर्वपापस्य विपाकोयं वराकिका ॥ ५८ ॥ श्रेष्ठिनी किं करोतीति कुर्वत्यात्मविगर्हणं । स्वाग्रजाया मृगावत्या अप्येतन्न न्यवेदयत् ॥ ५१ ॥ अन्यदा नगरे तस्मिन्नेव वीरस्तनुस्थितेः । प्रविष्टवान्निरीक्ष्यासौ त भक्त्या मुक्तशृंखला ॥ ६० ॥ सर्वाभरणहृद्यांगा तद्भारेणेव भूतलं । शिरसा स्पृशनत्वोच्चैः प्रतिगृह्य यथाविधि ॥ ६१ ॥ भोजयित्वापतद्दानाद् मानिनी मानितामरै । वसुधारा मरुत्पुष्पवृष्टिं सुरभिमारुतं ॥ ६२ ॥ सुरदुंदुभिनिर्घोषं दानस्तवनघोषण । तद्दैवोत्कृष्टपुण्यानि फलंति विपुलं फलं ॥ ६३ ॥ अग्रजास्यास्तदागत्य पुत्रेणामा मृगावती । तद्वात्तोदयनाख्येन स्नेहेनालिंग्य चन्दना ॥ ६४ ॥ पृष्ट्वा तां

मय उस शेठकी शेठानी भद्राने चंदनाको देखा चंदनाका रूप देख कर वह क्रोधित हुई और अपने मनमें उसके साथ अपने पतिका संबंध समझकर क्रोधसे अपने ओठ हिलाने लगी। उस दुष्टिनीने चंदनाको सांकलोंसे बांध दिया वह उसे बुरा आहार देने लगी और ताडना मारना आदिसे सदा उसे दुःख देने लगी। परंतु वह चंदना यही विचार करती थी कि यह सब मेरे पूर्व कर्मोंके उदयका फल है यह क्षुद्र शेठानी भला क्या कर सकती है इस प्रकार वह सदा अपनी निंदा करती रही और उसने उसी शहरमें रहनेवाली वहांकी महारानी अपनी बडी बहिन मृगावतीसे भी ये समाचार कहला कर नहीं भेजे ॥ ५६–५९ ॥ किसी दूसरे दिन उसी नगरमें भगवान वीरनाथ आहारके लिये आए। उन्हें देखकर चंदना बडी भक्तिसे उठी, उठते ही सांकलके बंधन सब छूट गये उसका शरीर सब आभूषणोंसे सुशोभित हो गया तथा उसीके भारसे मानों उसने पृथ्वीको छूकर मस्तक नवाकर नमस्कार किया और फिर विधिपूर्वक उनका पडगाहन किया ॥ ६०–६१ ॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें आहार दिया। दानके प्रभावसे देवोंने आकर उसका आदर सत्कार किया उसके घर रत्नोंकी वर्षा हुई, देवपुष्पोंकी वर्षा हुई, सुगंधित वायु बहने लगा, देवोंके दुंदुभी बाजे बजने लगे और दानकी स्तुतिकी घोषणा होने लगी सो ठीक ही है क्योंकि उत्कृष्ट पुण्य अपने बडे भारी फलोंसे फलते ही हैं ॥ ६२–६३ ॥ तदनंतर उसकी बडी बहिन मृगावती यह सब समाचार जानकर अपने उदयन नामके पुत्रके साथ उसके समीप आई और स्नेहसे चंदनाका आलिंगन किया ॥ ६४ ॥ उसने चंदनाका सब पहिला हाल पूछा और उसका कहा हुआ सुन कर शोकसे बहुत ही व्याकुल हुई और उसे घर ले जाकर आरामसे ठहराया। यह देख कर शेठ शेठानी

स्वजीवितं ॥ ४२ ॥ यदि वाञ्छेरिति क्रोधात्त निर्भर्त्स्यतिस्म सा । सभूतरमणारण्ये तां खदारातिभीलकः ॥ ४३ ॥ ऐरावतीसरिद्दक्षिणभागे साधितविद्या । पर्णलघ्व्या तदैवात्त कृतशोको विसृष्टवान् ॥ ४४ ॥ सापि पंचनमस्कारपरिवर्तनतत्परा । निनाय शर्वरीं कृच्छ्राद्भानुमत्युदिते स्वयं ॥ ४५ ॥ तत्र सन्निहितो दैवात्कालकाख्यो वनेचरः । तस्मै निजपरार्घ्यैःस्फुरिताभरणान्यदात् ॥ ४६ ॥ धर्मं च कथयामास तेन तुष्टो वनेचरः । भीमकूटनगोपान्त निवासी सिंहसंज्ञकः ॥ ४७ ॥ भयंकराख्यपल्लीशस्तस्य तां स समर्पयत् । सोपि पापी विलोक्यैनां कामव्यामोहिताशयः ॥ ४८ ॥ निग्रहेण ग्रहः क्रूरो वात्मसात्कर्तुमुद्यतः । तद्वीक्ष्य पुत्र मैवं त्वं कृथाः प्रत्यक्षदेवता ॥ ४९ ॥ यदि कुप्येदियं तापशापदुःखप्रदायिनी । इति मातुर्गिरा भीत्या तां दुर्जनोपि व्यसर्जयत् ॥५०॥तत्रैव चंदना तस्य मात्रा सम्यग्विधानतः । पोष्यमाणा विनिश्चिन्ता किंचित्कालमजीगमत्॥५१॥अथ वत्साह्वये देशे कौशांब्यां प्रवरे पुरे । श्रेष्ठीवृषभसेनाख्यस्तस्य कर्मकरोऽभवत् ॥ ५२ मित्रवीरो वनेशस्य मित्रं तस्य वनाधिपः । चंदनामर्पयामास सोपि भक्त्या वणिक्पतेः ॥ ५३ ॥ धनेन महता

ने भी पंच नमस्कार मंत्रका जप करते हुए बडी कठिनतासे रात्रि पूर्णकी और सूर्य उदय होते ही उसने स्वयं दैवयोगसे समीप ही रहनेवाले कालक नामके भीलको अपने बहुमूल्य दैदीप्यमान आभूषण दिये और उसे धर्मका उपदेश दिया, जिससे वह भील बहुत संतुष्ट हुआ। परंतु उसने भीमकूट नामके पर्वतके समीप रहनेवाले भयंकर नामक पल्लीके स्वामी सिंह नामके अपने राजाको वह चंदना समर्पण कर दी। वह भीलोंका राजा सिंह पापी था इसलिये चंदनाको देखकर उसका हृदय कामसे मोहित होगया ॥ ४५–४८ ॥ वह दुष्ट क्रूरग्रहके समान निग्रहकर उसे अपने वश करनेके लिये तैयार हुआ। उसे इसतरह करते देखकर भीलकी माताने अपने पुत्रको समझाया कि 'हे पुत्र तू ऐसी मतकर, यह प्रत्यक्ष देवता है यदि यह क्रोधित हो जायगी तो फिर कितनेही संताप शाप और दुःख देगी' इस प्रकार माताके वचन सुनकर वह डरा और दुष्ट होनेपर भी उसने वह चंदना छोड दी ॥ ४९–५० ॥ तदनंतर वह चंदना उस भीलकी माताके साथ निश्चिंत होकर थोडे दिनतक वहीं रही भीलकी माता उसका पालन पोषण अच्छी तरह करती थी ॥ ५१ ॥ अथानंतर—वत्सदेशके कौशांबी नामके श्रेष्ठ नगरमें एक वृषभसेन नामका शेठ रहता था उसके मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था जो कि उस भीलका मित्र था उस भीलने वह चंदना उस मित्रवीरको दी। उस मित्रवीरने बडी भक्तिसे बहुत धनके साथ वह कन्या शेठको समर्पण की। किसी एक समय वह चंदना उस शेठको जल पिला रही थी उससमय उसके केशोंका कलाप छूट गया था और जलसे भीगा हुआ पृथ्वी पर लटक रहा था उसे वह बडे यत्नसे एकहाथसे संभाल रही थी ॥ ५२–५५ ॥ उस स-

ता—न्यानयाभरणानीति खत्र तेन सहागमत् ॥ ३१ ॥ साप्यात्ताभरणागत्य तानदृष्ट्वातिचिन्तिता । तयाहमिति शोकार्ता निजमामां यशस्वतीं ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा क्षान्तिं समीगेत्या श्रुत्वा धर्मं जिनोदितं । निर्विद्य संसृतेर्दीक्षा प्राप पापविनाशिनीं ॥३३ ॥ भवतापि महाप्रीत्या चेलिनीयं यथाविधि । गृहीतानु महादेवीपट्टबंधातुतोष सा ॥ ३४ ॥ चदना च यशस्वत्या गणिन्यः सन्निधौ स्वयं । सम्यक्त्वं श्रावकाणां च व्रतान्यादत्त सुव्रता ॥ ३५ ॥ तत खगाग्र्यगाच्छ्रेणीसुवर्णाभपुरेश्वर. । मनोवेग खगाधीशः समनोवेगया सम ॥ ३६ ॥ स्वच्छंद विरमाक्रीडन् प्रत्यायांश्चदना वने । अशोकाह्वये समाक्रीडमानां परिजनै. सह ॥ ३७ ॥ विलोक्यानगनिर्मुक्तशरजर्जरितांगक. । प्रापय्य स्वप्रियां गेह रूपिणीविद्यया स्वयं ॥ ३८ ॥ विकृत्य रूप स्व तत्र निधाय हरिविष्टरे । अशोकवनमभ्येत्य गृहीत्वा चदना हृत ॥ ३९ ॥ प्रत्यागतो मनोवेगाप्येतमिङ्गितवचनां । ज्ञात्वा कोपारुणीभूतविभीषणविलोचना ॥ ४० ॥ ता विद्यादेवता वामपादेनाक्रम्य सावधीत् । कृताट्टहासा सा विद्याप्यगात्सिंहासनात्तदा ॥ ४१ ॥ चेष्टामाभोगिनीविद्यातो ज्ञात्वा स्वपतेरनु । गच्छन्त्यर्धपथे दृष्ट्वा दिव्यजेमां

रनेवाली दीक्षा धारण कर ली ॥ ३२–३३ ॥ तूने भी बडे प्रेमसे चेलिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और महादेवीका पट्ट बांधकर उसे संतुष्ट किया ॥ ३४ ॥ इधर अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाली चंदनाने भी यशस्वती अर्जिकाके समीप जाकर स्वयं सम्यग्दर्शन धारण किया और श्रावकोंके व्रत धारण किये ॥ ३५ ॥ किसी एक समय वह चंदना अपने परिवारके लोगोंके साथ अशोक वनमें क्रीडा कर रही थी दैवयोगसे उसी समय विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणीके सुवर्णाभ नगरका राजा मनोवेग विद्याधर अपनी रानी मनोवेगाके साथ स्वच्छंद रीतिसे क्रीडा करता हुआ वहां आ निकला और चंदनाको देखकर कामके छोडे हुए बाणोंसे उसका शरीर जर्जरित होगया। वह तुरंत ही अपनी स्त्री को घर पहुंचानेके लिये वापिस लौटा और रूपिणी विद्यासे अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासनपर बिठला दिया। फिर वहांसे चलकर अशोक वनमें आया और चंदनाको लेकर शीघ्रही घरकी ओर लौटा। इधर मनोवेगा रानीने इस ठगीको पहिचान लिया और क्रोधसे उसके नेत्र लाल तथा भयंकर होगये ॥ ३६–४० ॥ उसने उस विद्यादेवताको वांये पैरसे आक्रमण कर मारा जिससे वह विद्या देवता जोरसे हंसकर उसी समय सिंहासनसे उतरकर भाग गई ॥ ४१ ॥ तदनंतर वह मनोवेगा रानी आभोगिनी विद्यासे अपने पतिकी चेष्टा जानकर उसके पीछे दौडी और आधी दूर जाकर चंदना सहित लौटते हुए पतिको देखा उसने बडे क्रोधसे पतिको तिरस्कारकर डांटा और कहा कि यदि तू अपने जीनेकी इच्छा रखता है तो इसको छोड। स्त्रीकी यह बात सुनकर वह मनोवेग बहुत डरा और उसने शोकसे व्याकुल होकर सिद्धकी हुई पर्णलघू नामकी विद्यासे भूतरमण नामके बनमें ईरावती नदीके दक्षिण किनारे वह चंदना छोड दी ॥ ४२–४४ ॥ उस चंदना

मागधं पुरं । राजद्वारगृहं बालोद्याने आनपुरस्सरं ॥ २० ॥ जिनप्रतिनिधिं पूर्वमभ्यर्च्याभ्यर्णपट्टकं । आनर्च तद्विलोक्य त्वमप्राक्षीः पार्श्ववर्तिनः ॥ २१ ॥ किमेतदिति तेऽवोचन् राज्ञः सप्तापि पुत्रिकाः । लिखितास्तासु कल्याणं चतस्रः समवापिताः ॥ २२ ॥ तिस्रो नाद्यापि कीर्यंते तत्र द्वे प्राप्तयौवने । कनिष्ठा बालिका राजन्निति तद्वचनश्रुते ॥ २३ ॥ भवद् रक्तं तयोश्चित्तं मंत्रिणः समजिज्ञपत् । तेपि तत्कार्यमभ्येत्य कुमारमवदन्निति ॥ २४ ॥ चेटकाख्यमहीशस्य सुतयोरनुरक्तवान् । पिता ते याच्यमानोऽसौ न दत्ते वयसश्च्युते ॥ २५ ॥ इदं चावश्यकर्तव्यं कोऽभ्युपायोऽत्र कथ्यतां । सोपि मंत्रिवचः श्रुत्वा तत्कार्योपायपंडितः ॥ २६ ॥ तोषमाध्वमहं कुर्वे तत्समर्थनमित्यमून् । सतोष्य मंत्रिणः सोपि तत्स्वरूपं विलासवत् ॥ २७ ॥ पट्टके सम्यगालिख्य वंशेनाच्छाय यत्नतः । तत्पार्श्ववर्तिनः सर्वान् स्वीकृत्योत्कोटदानतः ॥ २८ ॥ स्वयं च वोद्रको नाम वणिग्भूत्वा तदालयं । प्राविक्षत्पट्टके रूपं कन्ये ते तस्करस्थिते ॥ २९ ॥ विलोक्य भवति प्रीत्या सौरंगादतिसाहसात् । कुमारविहितान्मार्गाद्गत्वा किंचित्ततोंतरे ॥ ३० ॥ चेलिनी कुटिला ज्येष्ठां मुक्त्वा त्वं गच्छ विस्मृ-

और एक बालिका है । उन लोगोंकी यह बात सुनकर तू उनमें आसक्त हुआ और अपने चित्तका अभिप्राय मंत्रियोंसे कहा । मंत्री भी उस कार्यको लेकर अभयकुमारके पास आये और कहने लगे कि तेरे पिता राजा श्रेणिक महाराज चेटककी दोनों कन्याओंमें आसक्त हुए हैं उन्होंने चेटकसे वे दोनों कन्याएं मांगी भी थी परंतु श्रेणिककी अवस्था ढल जानेसे चेटकने दी नहीं ॥ २०—२५ ॥ यह काम करना अवश्य है इस लिये इसके करनेका क्या उपाय है सो कहो । उस कार्यके करनेमें अत्यंत निपुण ऐसे उस अभयकुमारने कहा कि तुम सब चुप रहो मैं स्वयं इस कामको कर सकूंगा । इस तरह उसने मंत्रियोंको संतुष्ट किया और फिर राजा श्रेणिकका एक अच्छा विलास युक्त चित्र बनाया । उसे वस्त्रसे ढककर बडे यत्नसे लेगया । राजाके समीपवर्ती लोगोंको बहुतसा धन देकर अपने वश किया और फिर स्वयं वोद्रक नामके वैश्यका (व्यापारीका) रूप बनाकर राजाके घर गया । वह चित्र उन दोनों कन्याओंको दिखाया उसे देखकर वे दोनों प्रसन्न हुईं और चलनेको तैयार होगईं । इधर कुमारने पहिलेसे ही सुरंग तैयार करा रक्खी थी इसीलिये वह उसी मार्गसे साहस पूर्वक उनको ले आया । थोडी दूर जाकर कुटिल चेलिनीने ज्येष्ठासे कहा कि 'मैं अपने आभूषण भूल आई हूं तू जाकर लेआ' इसतरह कहकर उसको तो लौटा दिया और वह चेलना स्वयं अभयकुमारकेसाथ चली गई॥२६—३१॥ इसके बाद वह ज्येष्ठा आभूषण लेकर वहां आई परंतु उनको वहां न देखकर बहुतही शोक करने लगी और मनमें कहने लगी कि चेलनाने मुझे इसतरह ठगा है । तदनंतर वह शोकसे व्याकुल होकर अपनी मामी यशस्वती नामकी अर्जिकाके समीप गई और उससे श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्मका स्वरूप सुनकर और संसारसे विरक्त होकर उसने पापोंका नाश क-

सूर्यसमो दशरथोभवत् ॥ १० ॥ तस्याभूत्सुप्रभा देवी भास्वतो वा प्रभामला । कच्छाख्यविषये रोरुकाह्वयायां पुरि भूपति ॥ ११ ॥ महानुदयनस्तस्य प्रमदाभूत्प्रभावती । प्राप शीलवती ख्यातिं सा सम्यक् शीलधारणात् ॥ १२ ॥ गांधारविषये ख्यातो महीपालो महीपुरे । याचित्वा सात्यको ज्येष्ठामलब्ध्वा क्रुद्धवान् विधीः ॥ १३ ॥ युध्वा रणांगणे प्राप्तमानभंग स सत्रप । सद्यो दमवरं प्राप्य पुनः संयममग्रहीत् ॥ १४॥ स चेटकमहाराजः स्नेहाद्रूपमलीलिखत् । पट्टके सप्त पुत्रीणां विंब शश्वत्समीक्षितुं ॥ १५ ॥ निरीक्ष्य तत्र चेलिन्या रूपस्य पतितं मनाक् । विंदुमूरौ विधात्रैस्य नृपे कुपितवत्यसौ ॥१६॥ पूज्य द्विस्त्रिर्मया विंदु प्रमृष्टः सप्त चापि सः । तथैव पतितस्तस्मिन् भाव्यमंकेन तादृशा ॥ १७ ॥ इति मत्वानुमानेन पुनर्न तममार्जिषं । इत्यब्रवीत्तदुक्तेन भूपति प्रीतिमाप्तवान् ॥ १८ ॥ स देवार्चनवेलायां जिनविंबोपकण्ठके । तत्पट्टक प्रसार्यार्च्या निवर्त्तयति सर्वदा ॥ १९ ॥ कदाचिच्चेटको गत्वा ससैन्यो

पालन किया था इसलिये शीलवती उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था ॥ १०–१२ ॥ गंधार देशके महीनगरके राजा सात्यकने राजा चेटकसे ज्येष्ठा नामकी कन्या मांगी थी परंतु चेटकने दी नहीं इससे वह मूर्ख क्रोधित हुआ रणांगणमें आकर लडा परंतु उसे हारना पडा और मानभंग होनेके कारण वह लज्जित हुआ तथा दमवर मुनिराजके समीप जाकर उसने शीघ्रही संयम धारण कर लिया ॥ ॥ १३–१४ ॥ तदनंतर महाराज चेटकने पुत्रियोंमें अत्यंत स्नेह होनेके कारण उनका प्रतिविंब सदा देखनेके लिये सातों पुत्रियोंका चित्र लिखाया ॥ १५ ॥ जब चित्र तैयार होकर आया तब चेलिनीके चित्र पर उसकी जंघाके ऊपर एक छोटा सा विंदु दिखाई दिया जिसे देख कर उसके बनानेवाले पर राजा बहुत क्रोधित हुआ ॥ १६ ॥ तब पूछने पर चित्रकारने कहा कि हे पूज्य यहां विंदु पड गया था और मैने साफ कर लिया था परंतु दुवारा फिर पड गया फिर साफ करने पर फिर पड गया इस तरह सातवार साफ किया परंतु फिर भी पड गया तब फिर मैंने अनुमानसे यह समझा कि इस जगह ऐसा विंदु होना ही चाहिये साफ नहीं किया । उसकी यह बात सुन कर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १७–१८ ॥ तदनंतर वह राजा भगवानकी पूजा करनेके समय भगवानके प्रतिविंबके समीप ही उस चित्रको टांग कर सदा भगवानकी पूजा किया करता था ॥ १९ ॥ किसी एक समय राजा चेटक अपनी सब सेना सहित मगधपुरी गया था और राजगृह नगरके बाहर उद्यानमें डेरा दिये थे सवेरेके समय स्नानकर उसने पहिले श्रीजिनदेवकी पूजा की और फिर पासमें रक्खे हुये उन पुत्रियोंके चित्रकी पूजा की । यह देख तुने समीपवर्ती लोगोंसे पूछा कि यह क्या है तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि राजा ने यह अपनी सात पुत्रियोंका चित्र लिखाया है इनमेंसे चार तो विवाही जा चुकी हैं और शेष तीनको राजा अभी देता नहीं है इन शेष तीन में दो की युवावस्था है

अथ पंचसप्ततितमं पर्व।

अथान्येद्युः सभासीनं गणेंद्रं विपुलाचले। श्रेणिक प्रीणिताशेषभव्यं सुव्यक्ततेजसं ॥ १ ॥ गणिन्यार्यंदनार्यायाः संबंधमिह जन्मनः। अन्वयुक्त गणी चैवमाहाहितमहर्द्धिकः ॥ २ ॥ सिंध्वाख्ये विषये भूभृद्वैशालीनगरेऽभवत्। चेटकाख्योतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः ॥ ३ ॥ तस्य देवी च भद्राख्या तयोः पुत्रा दशाभवन्। धनाख्यो दत्तभद्रातावुपेंद्रोऽन्य सुदत्तवाक् ॥ ४ ॥ सिंहभद्र सुकुंभोजोकंपनः सपतंगक। प्रभंजनः प्रभासश्च धर्मा इव सुनिर्मला ॥ ५ ॥ सप्तर्द्धयो वा पुत्र्यश्च ज्यायसी प्रियकारिणी। ततो मृगावती पश्चात्सुप्रभाऽतः प्रभावती ॥ ६ ॥ चेलिनी पंचमी ज्येष्ठा षष्ठी च चंदना। विदेहविषये कुंडसंज्ञायां पुरि भूपतिः ॥ ७ ॥ नाथो नाथकुलस्यैकः सिद्धार्थाख्य स्वसिद्धिभाक्। तस्य पुण्यानुभावेन प्रियाभूत्प्रियकारिणी ॥ ८ ॥ विषये वत्सकासाख्ये कौशांबीनगराधिप। सोमवंशे शतानीको देव्यस्यासीन्मृगावती ॥ ९ ॥ दशार्णविषये राजा हेरकच्छपुराधिपः। सूर्यवंशाम्बरे

अथ पिचत्तहरिवां पर्व।

अथानंतर—किसी दूसरे दिन विपुलाचल पर्वत पर सब भव्योंको प्रसन्न करनेवाले और सुप्रकट तेजस्वी भगवान गणधरदेव सभामें विराजमान थे उनके समीप जाकर महाराज श्रेणिकने सब अर्जिकाओंकी नायिका ऐसी चंदना अर्जिकाकी इस जन्म संबंधी कथा पूछी तब अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले गणधर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ १-२ ॥ सिन्धु देशके वैशाली नगरमें चेटक नामका प्रसिद्ध राजा था जोकि विनयी और अरहंतदेवका अनुयायी था उसकी महारानीका नाम भद्रा था उससे उस राजाके दश पुत्र थे जो कि धन, दत्तभद्र, उपेंद्र, सुदत्त सिंहभद्र, सुकुंभोज, अकंपन, सुपतंग प्रभंजन और प्रभास के नामसे प्रसिद्ध थे और दश धर्मोंके समान निर्मल थे ॥ ३-५ ॥ उसी भद्रासे ऋद्धियोंके समान सात पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं जो कि प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और पूज्य चंदनाके नामसे प्रसिद्ध थीं। विदेहदेशके कुंड नगरमें नाथ वंशका स्वामी राजा सिद्धार्थ राज्य करता था, उसने अपनी सब सिद्धियां पूर्ण कर ली थीं। उसके पुण्यकर्मके उदयसे वह प्रियकारिणी उसकी स्त्री हुई थी ॥ ६-८ ॥ वत्सदेशके कौशांबी नगरके स्वामी चंद्रवंशी राजा शतानीकके मृगावती दूसरी पुत्री पट्टरानी हुई थी ॥ ९ ॥ दशार्ण देशके हेरकच्छ नगरके स्वामी सूर्यवंश रूपी आकाशके सूर्य राजा दशरथ थे सूर्यकी निर्मल प्रभाके समान सुप्रभा नामकी देवी उनकी पट्टरानी हुई थी। कच्छदेशके रोरुक नगरके स्वामी राजा उदयनके प्रभावती रानी हुई थी। उस प्रभावतीने ...

सर्वे समासीना तन्माहात्म्यं समस्तुवन् । समात्सर्या च चेत्के वा न स्तुवति गुणात्मता ॥ ४६ ॥ धियोस्य सह [illegible] ॥ १० ॥ महाप्रदयनस्तस्य कृतसंस्कृते निश्चितितानुचान्यैव सा । ततः स निखिला सभामभयपंडितो वाग्गुणैरुपायनिपुणेषु लब्धविजयध्वजो रंजयन् ॥ ४७ ॥ क्व स सुविदिततत्त्व श्रावकः क्वायमज्ञः स्फुरितदुरितदूरारूढमौढ्यैर्दढीयान् । अमरपरिवृढत्वं प्राप्यतेस्मोपदेशादभयविभुरभूत्सत्सगमः किं न कुर्यात् ॥ ४८ ॥ स्याद्वीस्तत्त्वविमर्शिनी कृतधियः श्रद्धानुविद्धा तथा हित्वा हेयमुपेयमाप्य विचरन् विच्छिद्य बधांस्तत । सत्कर्माणि च संतत बहुगुणं संश्रावयन् सद्वते प्रांत प्राप्य भवेदिवाभयविभुर्निर्वाणसौख्यालय ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे अंत्यतीर्थकरश्रेणिकाभयन्यावर्णनं नाम चतुःसप्ततितम पर्व ।

मात्सर्य रखनेवाले मनुष्य न हों तो फिर गुणोंकी प्रशंसा कौन नहीं करता भावार्थ—सभी करते हैं ॥ ५४५–५४६ ॥ उस बुद्धिमानकी बुद्धि जन्म से ही कुशाग्र थी और फिर शास्त्रोंके संस्कारसे वह और भी तेज होकर एक विलक्षण बन गई थी । इसीलिये उस अभयकुमार पंडितने अपने वचनरूपी गुणोंसे सब सभा प्रसन्न कर ली थी और अनेक उपायोंमें निपुण पुरुषोंमें भी अपनी विजय पताका प्राप्त की थी ॥ ५४७ ॥ देखो कहां तो अच्छे तत्त्वोंका जानकार वह श्रावक और कहां वह मूर्ख ब्राह्मण जोकि देदीप्यमान पापोंको दूर फेंककर केवल उस श्रावकके समागमसे व्रतोंमें दृढ होगया और उसीके उपदेशसे देव होकर ऐसा ऐश्वर्य शाली अभयकुमार हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समागमसे क्या क्या नहीं होता है ॥ ५४८ ॥ जिनकी बुद्धि तत्त्वोंका विचार करने वाली है तथा उस बुद्धिके साथ साथ अटल श्रद्धा है उस श्रद्धासे जो हेय पदार्थोंका त्यागकर और उपादेय पदार्थोंका ग्रहणकर विहार करते हैं । तदनंतर कर्म बंधोंका नाशकर सदासे इकट्ठे किये हुए शुभकर्मोंकोभी आत्माके अनेक गुणोंसे नाशकर संसारके पार पहुंचते हैं वे ऐश्वर्यशाली अभयकुमार के समान मोक्ष रूपी अनंत सुखके स्थान बन जाते हैं भावार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५४९ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान श्रेणिक और अभयकुमारके चरित्रको कहनेवाला यह चौहत्तरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥७४॥

इ ...भवन्। आतमन्यतरं ब्रूयादन्यस्याभ्राततां कुत ॥ ५३६ ॥ एकधर्मात्मकं सर्वं वाञ्छतोश्चितवादिनः। सामान्येतरसभूतौ कुत संशयनिर्ण-
यौ ॥ ५३७ ॥ प्रतीयमानज्ञानाभिधानासत्याभिधायिनः। तयोरसत्यज्ञानाभिधानयोः केन सत्यता ॥ ५३८ ॥ गुणगुण्यभिसंबंधे संबंधान्तरवादिनः। निरा-
धानवस्थाभ्युपेतहान्यनिवारणं ॥ ५३९ ॥ तत्यक्त्वैकांत दुर्वादगर्वं सर्वज्ञभाषितं। नित्यानित्यात्मक तत्त्व प्रत्येतव्यं मनीषिणा ॥ ४० ॥ सर्वज्ञतन्मतश्रद्धा
सम्यग्दर्शनमिष्यते। ज्ञातिस्तत्प्रोक्तवस्तूनां सम्यग्ज्ञानमुदाहृतं ॥ ४१ ॥ तदागमोपदेशेन योगत्रयनिरोधनं। चारित्रं तत्त्रयं युक्तं मुक्तेर्भव्यस्य साधनं ॥
४२ ॥ समेतमेव सम्यक्त्वज्ञानाभ्यां चरितं मतं। स्यातां विनापि तेनेन गुणस्थाने चतुर्थके ॥ ४३ ॥ कार्त्स्न्येन कर्मणा कृत्वा संवरं निर्जरां परां।
प्राप्नोतु परमं स्थानं विनेयो विश्वदृक् तत ॥ ४४ । इति सर्वं मनोहारि श्रुत्वा तस्य निरूपणं। वस्तुतत्त्वोपदेशेय कुशलोमयपंडितः ॥ ४५ ॥ इति

को अभ्रांत कैसे कहता है भावार्थ वह स्वयं भ्रांत है ॥ ५३६ ॥ सबको एक धर्मात्मक माननेवाले जो वादी हैं उनके मत में सामान्य और विशेष की उत्पत्तिमें संशय वा निर्णय कैसे हो सकेगा ॥ ५३७ ॥ जो पदार्थ विश्वसनीय ज्ञानके द्वारा कहा हुआ है और जो असत्य रीतिसे कहा हुआ है इन दोनोंमें अर्थात् असत्य और यथार्थ ज्ञानके द्वारा कहे हुए पदार्थों में सत्यका निर्णय कैसे होगा ॥ ५३८ ॥ गुण गुणीका संबंध रहते हुए भी जो अन्य संबंधकी कल्पना करते हैं उनके मतमें संबंधरहित पदार्थोंमें अनवस्था दोषसे प्राप्त हुई जो हानि है उसका निवारण कैसे हो सकता है। भावार्थ—गुणगुणी संबंध को न मानकर समवाय संबंध माननेमें जो अनवस्था आदि अनेक दोष आते हैं उनका निवारण कभी नहीं हो सकता ॥ ५३९ ॥ इसलिये बुद्धिमानोंको एकांत मिथ्यावादका अभिमान छोडकर सर्वज्ञ देवके कहे हुए नित्यानित्यात्मक पदार्थोंका श्रद्धान करना चाहिये ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञ और सर्वज्ञदेवके कहे हुए मतपर श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन कह-लाता है। सर्वज्ञदेवके कहे हुए पदार्थों को जानना सम्यग्ज्ञान कहा जाता है और उसके कहे हुए आगमके उपदेशके अनु-सार मन वचन काय तीनों योगोंका रोकना चारित्र कहलाता है। ये तीनों ही भव्य जीवको मोक्षके साधन गिने जाते हैं ॥ ५४१–५४२ ॥ सम्यक् चारित्र, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथही होता है परंतु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये दोनो विना सम्यकचारित्रके भी चौथे गुणस्थानमें हो जाते हैं ॥ ५४३ ॥ इसलिये सम्यग्दृष्टी भव्य जीवको समस्त कर्मों का उत्कृष्ट संवर और उत्कृष्ट निर्जरा करके मोक्षरूप परमस्थान प्राप्त करना चाहिये ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार सब मनोहर रीतिसे निरूपण किया हुआ पदार्थोंका स्वरूप सुनकर सब बैठे हुए सभासद लोग उसकी महिमाकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि यह अभयकुमार तत्त्वोपदेश देनेमें बडाही कुशल और पंडित है सो ठीक ही है क्योंकि यदि ईर्षा और

त्वा जिनेंद्रादक्षघोदितं ॥ ५२६ ॥ अवाप्स्यसि पद मुक्तेरित्यसावववुध्य तत् । अभिवन्द्य जिन राजा सह तुष्टोविशत्पुर ॥ ५२७ ॥ अथान्येद्युर्महाराजश्रेणिक सदसि स्थित । अभयं सर्वशास्त्रज्ञ कुमारं वरवाग्मिनां ॥ ५२८॥ तन्माहात्म्यप्रकाशार्थं तत्त्व पप्रच्छ वस्तुन । सोप्यासन्नविनेयत्वाद्वस्तुयाथात्म्यदर्शिवी: ॥ ५२९ स्वद्विजोत्सर्पिभाभारविभासितसभांतर । एवं निरूपयामास स्पष्टमृष्टेष्टगीर्गुण: ॥ ५३० ॥ यस्य जीवादिभावानां याथात्म्येन प्रकाशनं । तं पण्डितं बुधा: प्राहु परे नाम्नैव पण्डिता: ॥ ५३१ ॥ जीवाद्या॰ कालपर्यंता पदार्था जिनभाषिता: । द्रव्यपर्यायभेदाभ्यां नित्यानित्यस्वभावका: ॥ ५३२ ॥ सर्वथात्मादितत्त्वानां मोहान्नित्यत्वकल्पने । सर्वद्रव्येषु सभूति परिणामस्य नो भवेत् ॥ ५३३ ॥ क्षणिकत्वे पदार्थाना न क्रिया कारक च न । न फल च तथा लोकव्यवहारविलोपन ॥ ५३४ ॥ नित्यत्वस्योपचारेण सत्वात्तस्य विलोपनं । नोचेन्मिथ्योपचारेण कथं तथ्यस्य साधन ॥ ५३५ ॥ धर्मद्वयोपलभाभ्यां

समझकर उस अभयकुमारने संतुष्ट होकर तथा श्रीजिनराज को नमस्कार राजा श्रेणिकके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ५२३–५२७ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन महाराज श्रेणिक अपनी राजसभामें विराजमान हुए । वहांपर उन्होंने बडे बडे वक्ताओंके सामने अपने पुत्रका माहात्म्य दिखलानेके लिये समस्त शास्त्रोंके जानकार अभयकुमार को पदार्थोंका स्वरूप पूछा आसन्नभव्य होनेसे वह अभयकुमार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको दिखलानेमें समर्थ था इसलिये अपने दांतोंकी फैलती हुई कांतिके भारसे सव सभाको प्रकाशित करता हुआ तथा स्पष्ट निर्मल और इष्ट कहनेरूप अपूर्व गुण को धारण करने वाला वह अभयकुमार नीचे लिखे अनुसार तत्त्वोंका स्वरूप कहने लगा ॥ ५२८–५३० ॥ जो जीवादि पदार्थोंका स्वरूप यथार्थ रीतिसे प्रगट कर सकते हैं विद्वान लोग उन्हींको पंडित कहते हैं जो पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप नहीं कह सकते वे केवल नामके पंडित है ॥ ५३१ ॥ श्री जिनेंद्रदेवने जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये छह पदार्थ कहे हैं ये सब पदार्थ द्रव्य और पर्यायके भेदसे नित्यस्वभाव और अनित्यस्वभाव कहे जाते हैं ॥ ५३२ ॥ यदि मोहनीय कर्मके उदयसे जीवादि सव पदार्थोंको सर्वथा नित्य कल्पना किया जाय तो फिर सभी पदार्थोंमें परिणमन होनेकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी ॥ ३३ ॥ यदि सव पदार्थोंको क्षणिक मान लिया जाय तो न क्रिया बन सकेगी न कारक वन सकेगा और न क्रियाका फल वन सकेगा । तथा लेने देने रूप लोक व्यवहार का बिल्कुल नाश हो जायगा ॥ ५३४ ॥ यदि नित्यको उपचारसे मानोगे तो जो नित्यत्व वास्तवमें है उसका अभाव ही मानना पडेगा क्योंकि अभावमें ही उपचार माना जाता है यदि वह वास्तवमें है ही नहीं तो फिर मिथ्या उपचारसे उसका सत्यस्वरूप कैसे सिद्ध हो सकता है ॥ ५३५ ॥ इसलिये नित्यानित्यात्मक दोनों धर्मोंके रहनेसे ही अर्थ क्रिया होती है इस वातको भी दूसरेको भ्रांत कहता हुआ पुरुष स्वत:

नीदस्य नार्हत ॥ ५१८ ॥ इत्यार्हतोक्त तत्तथ्यं श्रुत्वा सर्वं द्विजात्मज । त्वद्गृहीतो मया पीप्यस्तु धर्मोय प्रब्रवीति स. ॥५१९॥ तदाश्रयाभवीद्धर्मं निर्मल जि-
नभाषित । सतां वचो हित हि स्यादातुरायैव भेषजं ॥५२०॥ अथ तौ सह गच्छंतावाय. ॥ वनांतरे । पापोदयात्परिभ्रष्टमार्गौ दिग्मूढतां गतौ ॥ ५२१ ॥
देशकोस्ति न मार्गस्य वनमेतदमानुष । नास्ति कश्चिदुपायोत्र विहाय जिनभाषित ॥ ५२ रागाद् ॥ परिच्छेदोहि पांडित्यं शूरस्याहारदेहयो. । इति संन्यस्य
सद्ध्यानेनासीनं श्रावक द्विज ॥ ५२३ ॥ विलोक्य स्वयमप्येतदुपदेशेन शुद्धधीः । तु स्थित्वा तथैव सम्प्राप्तसमाधिर्जीवितावधौ ॥ ५२४ ॥ सौधर्म-
कल्पे देवोभूद् भुक्त्वा तत्रामरं सुखं । स्वायुरंते स्वपुण्येन श्रेणिकस्य महीपते ॥ ५२५ ॥ अ न भयाख्य सुतो धीमानजनिष्टास्त्वमीदृश । अत परं तपः कृ-

दो ॥ ५१६ ॥ कदाचित यह कहो कि जो विसंवादरहित है वही प्रत्यक्ष है और वही प्रमाण है तो भी पूछा जा सकता है कि वही प्रमाण क्यों है ? कदाचित् कहो कि अनुमानसे ऐसा ही सिद्ध होता है तो फिर उत्तरमें कहा जा सकता है कि अनुमान तुम्हें इष्ट नहीं है इसके सिवाय फिर भला राजाओंको भी अनिष्ट क्या होगा ? ॥ ५१७ ॥ अथवा सांख्य आदि अन्य मतोंके वचन भलेही अप्रमाण हों क्योंकि उनमें परस्पर विरोध आता है परंतु अरहंत के वचन कभी अप्रमाण नहीं हो सकते क्योंकि सर्वज्ञ होनेसे प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उनमें विसंवादका अभाव सिद्ध होता है ॥ ५१८ ॥ इसप्रकार अरहंतदेवके कहे हुए सब यथार्थ तत्त्वों को सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि हे राजसे तेरे धर्म को मैं भी स्वीकार करता हूं ॥ ५१९ ॥ इसप्रकार उसने उस श्रावकके कहे अनुसार जिनेंद्र देवका कहा हुआ निर्मल धर्म स्वीकार किया सो ठीक ही है क्योंकि जिसप्रकार औषधिका सबको अनुराग होता है उसीप्रकार सज्जनोंके हितरूप वचनोंका भी सबको अनुराग होता है ॥ ५२० ॥ अथानंतर वे दोनों ही साथ चलने लगे दैवयोगसे पाप कर्मके उदयसे वे दोनोंही किसी गहन वनमें जाकर मार्ग भूल गये और दिशाभूल हो गये ॥ ५२१ ॥ तब श्रावकने विचार किया कि यहां मार्ग वतलाने वाला कोई नहीं है क्योंकि इस वनमें मनुष्य का कहीं पता ही नहीं है यहां पर सिवाय श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए उपायके और कोई उपाय ही नहीं है ॥ ५२२ ॥ ऐसे समयमें शूरवीरका पांडित्य इसीमें है कि वह आहार और शरीरका त्याग करदे । इस तरह विचार कर वह सन्यास धारणकर ध्यानस्थ विराजमान होगया । ब्राह्मण ने भी उसे इसप्रकार देखकर अपना चित्त शुद्ध किया और उसके उपदेशके अनुसार उसीतरह सन्यास धारण कर शरीर छूटजानेपर वह सौधर्मस्वर्गमें देव हुआ । वहांके देवोंके सुख भोगकर आयुके अंतमें पुण्यकर्मके उदयसे राजा श्रेणिकके तू अभयकुमार नामका ऐसा बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न हुआ है । आगे तू श्रीजिनेंद्रदेवका कहा हुआ बारह तरहका तपश्चरण धारणकर मोक्षस्थानको प्राप्त होगा यह सब

मन ॥ ५१० ॥ हेतुवादोऽप्रमाणं चेद्यथाश्रुतिरकृत्रिमा । इदीद सत्यमेव किं कृत्रिमाश्रुतिरित्यपि ॥ ५११ ॥ वाग न तथ्य: स्याद्धेत्वाभावविशेषत. ।
मृत्वा शीर्त्वापि तद्धेतुरेषितव्यस्त्वयापि सः ॥ ५१२ ॥ इष्टे तस्मिन्मयाभीष्टो विश्वविद्विभ्र सिद्ध्यति । ततः त सूक्तेन विरुद्ध नेष्यते बुधै ॥ ५१३ ॥
विप्रस्त्व षट्प्रमावाधी न चार्वाको न मां प्रति । प्रयोगोऽनभ्युपेतत्वादित्युक्तिर्घटते न ते ॥ ५१४ ॥ साध्यसा धो हेतुश्चाऽक्षगोचर: । ऊहाद्व्या
सि कथ न स्यात्प्रयोगस्त्वा प्रतिप्रमा ॥ ५१५ ॥ क्वचिच्च व्यभिचारश्चेत्प्रत्यक्षेपि न सोस्ति किं । नानुमानप्रे मुच्यतामयमाग्रह ॥ ५१६ ॥ प्रत्यक्षम-
विसंवादि प्रमाणमिति चेत्कुत । अनुमानेपि तन्नेष्टमनिष्ट किं क्षितीशिमि: ॥ ५१७ ॥ अस्तु सास्त्यादिवाद प्रमाण विरोधत: । दृष्टेन तेन सवादसिद्ध-

पुरुषका भी पड जाना (धोखा खाना) दुर्लभ नहीं है । हे विप्र यदि तुम इस कार कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इससे कुछ बडे आदमियोंका—विद्वानोंका मन आकर्षित नहीं होता ॥ ५०७--५१० ॥ इसका भी कारण यह है कि, हेतुवादको अप्रमाण मान लेनेपर जिसप्रकार वेद अकृत्रिम वा अपौरुषेय हैं यह बात सत्य है उसी प्रकार वेद कृत्रिम वा पौरुषेय है यह बात भी क्या सत्य नहीं है ? कदाचित् इसके उत्तरमें यह कहा जाय कि केवल वचनमात्रसे कह देना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंके सिद्ध करनेमें कोई विशेष हेतु नहीं है तो फिर मर सडकर तुम्हें वेदको अकृत्रिम सिद्ध करनेका हेतु स्वीकार करना ही पडेगा ॥ ५११--५१२ ॥ यदि वेदको अकृत्रिम सिद्ध करनेके लिये किसी हेतुको मानना इष्ट है तो फिर उसी हेतुवादसे वा अनुमानसे हमारे अभीष्ट ऐसे सर्वज्ञकी सिद्धि भी क्यों नहीं हो जायगी अर्थात् अवश्य होजायगी इसलिये विद्वान् लोग सर्वज्ञदेवके कहे हुए वचनोंके विरुद्ध कभी स्वीकार नहीं करते हैं ॥ ५१३ ॥ हे विप्र ! तुम प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन छह प्रमाणोंको माननेवाले मीमांसक हो, केवल प्रत्यक्षप्रमाणको माननेवाले चार्वाक नहीं हो इसलिये "यह अनुमानका प्रयोग मेरे लिये नहीं है क्योंकि मैं हेतुवाद मानता नहीं" यह तुम्हारी युक्ति अथवा तुम्हारे वचन ठीक नहीं जम सकेंगे ॥ ५१४ ॥ साध्य साधनके अविनाभावी संबंधको हेतु कहते हैं और वह हेतु प्रत्यक्ष होता है इसलिये उस हेतुको प्रत्यक्ष देखकर उसके संबंधको जाननेरूप तर्कप्रमाण के द्वारा उसकी व्याप्तिका ज्ञान कैसे नहीं होगा अर्थात् उस साधनसे साध्यका ज्ञान क्यों नहीं होगा और फिर ऐसा अनुमानका प्रयोग तुम्हें प्रमाण क्यों नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य मानना पडेगा ॥ ५१५ ॥ कदाचित् यह कहो कि अनुमानमें कहीं व्यभिचार हो जाता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कहीं व्यभिचार आ जाना क्या प्रत्यक्ष प्रमाण में अर्थात् नहीं है ? वहां भी है इसलिये हे आर्य ! अनुमान प्रमाण नहीं है इस आग्रह को वा हठको छोड

सोऽब्रवीद् । आप्तोक्तागमवैमुख्यादिति हेतुन मां प्रति ॥ ४९९ ॥ साख्याद्याप्तप्रवादानां पौरुषेयत्वदोषतः । दोषतः पुरुषाः सर्वे वाल रागाद्यविद्यया ॥ ५०० ॥ इत्यनालोचितार्थस्य वचते नैति सारता । यतो रागाद्यविद्यानां क्वचिन्निर्मूलसंक्षय ॥ ५०१ ॥ सर्वज्ञस्य विरागस्य प्रयोगः साधनं प्रति । क्रियते युक्तिवादानुसारिणो विदुषस्तव ॥ ५०२ ॥ क्वचिदात्यंतिकीं पुंसि याति साङ्गमविद्यया । रागादयस्तिरोभूतिं तारतम्यावलोकनात् ॥५०३ ॥ सामग्रीसन्निधानेन कनकाश्मकलंकवद् । तत्तथाचेन्न जायेत तारतम्यं च नोभवेत् ॥ ५०४ ॥ दृष्टेस्तदस्तु चेन्मूलहानिः केन निवार्यते । सर्वशास्त्रकलाभिज्ञे सर्वज्ञोक्तिर्जनोदिता॥४०५। मुख्यसर्वज्ञसिद्धि गौणत्वात्साधयेदियं । चैत्रे सिंहाभिधानेन मुख्यसिंहस्य सिद्धिवत्॥५०६॥ न मां प्रति प्रयोगोऽयं मुक्तिहेतौ निराकृतेः अवस्था देशकालादिभेदाद् भिन्नासु शक्तिषु॥५०७॥भावानामनुमानेन प्रतीतिरतिदुर्लभा । यत्नेन साधितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः॥५०८॥ अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथा क्रियते यत. । हस्तस्पर्शादिवांधस्य विषमे पथि धावतः ॥५०९॥ अनुमानप्रधानस्य विनिपातो न दुर्लभः । इति चेद्विप्र ! नेतेन गृह्यते महता

ओंका कहीं भी अत्यंत नाश हो सकता है और रागादि अविद्याओंके नाश होनेसे सर्वज्ञ और वीतरागकी सिद्धि हो सकती है तुम युक्तिवादको माननेवाले विद्वान हो इस लिये तुम्हारे लिये सर्वज्ञ वीतरागकी सिद्धिका प्रयोग किया जाता है। अविद्या और रागादि भावोमें तारतम्य (हीनाधिकता) देखा जाता है इस लिये किसी पुरुषमें अविद्याके साथ साथ रागादि भवोंका सर्वथा नाश भी हो सकता है ॥ ४९७--५०३ ॥ जिस प्रकार सामग्रीके मिलने पर कनक पाषाणकी कीट कालिमा आदि दूर की जा सकती है उसी प्रकार अविद्या और रागादि विकार भी नाश किये जा सकते हैं यदि वे नाश न किये जा सकें तो फिर उनमें हीनाधिकता भी नहीं होनी चाहिये परंतु हीनाधिकता तो देखी जाती है इस लिये उनकी मूल हानिको भी कौन निवारण कर सकता है? जो सब शास्त्र और कलाओंमें निपुण हैं उन्हींको लोग सर्वज्ञ कह देते हैं और उनकी सर्वज्ञकी यह गौण युक्ति ही मुख्य सर्वज्ञको सिद्ध कर देती है जिस प्रकार कि किसी वालकको सिंह कहनेसे मुख्य सिंहकी सिद्धी हो जाती है ॥ ५०४--५०६ ॥ कदाचित् यह कहा जाय कि यह सर्वज्ञ सिद्ध करनेका प्रयोग मेरे लिये (मीमांसकके लिये) नहीं हो सकता क्योंकि रागादि दोषोंके सर्वथा नाश होनेकी प्रतीतिरूप जो मोक्षका कारण है उसका निराकरण किया जा चुका है कि अवस्था देश काल आदिके भेदसे शक्तियां अनेक तरह की हो जाती हैं इस लिये रागादि दोषोंकी हीनाधिकता तो हो सकती है परंतु उनका सर्वथा नाश नहीं हो सकता। पदार्थोंका अनुमानसे निश्चय होना अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि अनुमान करनेमें अत्यंत कुशल पुरुष भी वडे यत्नसें किसी पदार्थको सिद्ध करे तो भी अन्य प्रवादीकी ओरसे वह पदार्थ दूसरी तरह सिद्ध किया जा सकता है। जिस प्रकार केवल हाथके स्पर्शसे विषम मार्गमें दौडने वाले अंधे पुरुषका पड जाना दुर्लभ नहीं है उसी प्रकार अनुमानको प्रधान माननेवाले

पंचाग्निमध्येऽन्यैर्दुस्सहं तप ॥ ४८८ ॥ कुर्वतस्तापसस्योच्चैः प्रज्वलद्वह्निसहतौ । व्यंजयत्प्राणिनो घात षड्भेदानामनारत ॥ ४८९ ॥ तस्य पाखण्डिमौढ्यं च युक्तिभिः स निराकृतः । गोमांसभक्षणागम्यगमाद्यैः पतिते क्षणात् ॥ ४९० ॥ वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिंश्च दर्शनात् । ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥ ४९१ ॥ नास्ति जातिकृतो भेदो मनुष्याणा गवाश्ववत् । आकृतिग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्पते ॥ ४९२ ॥ जातिगोत्रादिकर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतव । येषु ते स्युस्त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्रा प्रकीर्तिता ॥ ४९३ ॥ अच्छेदो मुक्तियोग्याया विदेहे जातिसंततेः । तद्धेतुनामगोत्राढ्यजीवाविच्छिन्नसंभवात् ॥ ४९४ ॥ शेषयोस्तु चतुर्थे स्यात्काले तज्जातिसतति । एवं वर्णविभागः स्यान्मनुष्येषु जिनागमे ॥ ४९५ ॥ इत्यादिहेतुभिर्जातिमौढ्यमस्य निराकरोत् । वटेऽस्मिन् खलु वित्तेशो वसतीत्येवमादिक ॥ ४९६ ॥ वाक्य श्रद्धाय तद्योग्यमाचरंतो महीभुज । किन्न जानति लोकस्य मार्गोऽय प्रथितो महान् ॥ ४९७ ॥ न त्यक्तु शक्य इत्यादि न ग्राह्य लौकिक वचः । आप्तोक्तागमबाह्यत्वान्मदोन्मत्तकवाक्यवत् ॥ ४९८ ॥ इति तल्लोकमौढ्य च निरस्तुदथ

शरीरमें वर्ण वा आकारसे कुछ भेद भी दिखाई नहीं पडता और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें शूद्रोंसे भी गर्भाधानकी प्रवृत्ति देख पडती है, इसलिये मनुष्योंमें गाय और घोडेके समान जातिका किया हुआ कुछ भेद नहीं है। यदि आकृतिमें कुछ भेद हो तो जातिमें भी कुछ भेद कल्पना किया जा सकता है ॥४८८--४९२॥ जिनकी जाति गोत्र कर्म आदि शुक्लध्यानके कारण हैं वे उत्तम तीन वर्ण कहलाते है और बाकी सब शूद्र कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ विदेहक्षेत्रमें मोक्षजाने योग्य जातिकी संतानका कभी नाश नहीं होता है क्यों कि मोक्षके कारणभूत नाम गोत्रसहित जीव व्यवधानरहित सदा बने रहते हैं। शेष भरत ऐरावत क्षेत्रमें चौथे कालमें ही जातिकी संतान होती है सदा नहीं। जैन शास्त्रोंमें मनुष्योंका वर्ण विभाग इस प्रकार निरूपण किया गया है ॥ ४९४–४९५ ॥ इस प्रकारके वचनोंके द्वारा उस श्रावकने उसकी जातिमूढता भी दूर की। इसके बाद वह श्रावक फिर कहने लगा 'कि इस वट वृक्ष पर कुवेर रहता है ऐसी बातों पर श्रद्धान रख कर राजा लोग भी उसके योग्य आचरण करने लग जाते हैं अर्थात् पूजने लग जाते हैं। क्या वे जानते नहीं हैं कि लोकका यह वडा भारी प्रसिद्ध हुआ मार्ग छोडा नही जा सकता' इत्यादि ऐसे लोकप्रसिद्ध बचनोको कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसे वचन सर्वज्ञप्रणीत शास्त्रके बाहर हैं और मदोन्मत्त पुरुषके वाक्यके समान है इस प्रकार समझा कर उसने उसकी लोकमूढता भी दूरकी। तदनंतर वह श्रावक फिर समझाने लगा कि कदाचित् यह कहा जाय कि आप्तके कहे हुए शास्त्रसे विमुख है इस लिये अप्रमाण है यह हेतु हमारे लिये नहीं हो सकता क्योंकि सांख्य आदिके मतमें आप्त माननेमें भी पौरुषेयका दोष आता है पुरुष जितने हैं वे सब रागादि अविद्यासे दूषित हैं सो भी ठीक नही है क्योंकि इस प्रकारके बचन सब विचाररहित हैं, इनमें कुछ भी सार नहीं है क्योंकि रागादि अविद्या-

तीर्थमूढं समागमत् ॥ ४८० ॥ अथास्मै भोक्तुकामाय भुक्त्वा स श्रावक स्वयं । स्वोच्छिष्ट सुरसिन्ध्वंबुमिश्रितं पावनं त्वया ॥ ४८१ ॥ भोक्तव्यमिति विप्राय ददौ ज्ञापयितुं हितं । स दृष्ट्वाह कथं भुंजे तवोच्छिष्ट विशिष्टता ॥ ४८२ ॥ किं न वेत्सि ममैव त्वं वक्तेति स तमब्रवीत् । कथं तीर्थजल पापमलापनयने क्षम ॥ ४८३ ॥ यद्यथोच्छिष्टदोष चेन्नापनेतुं समीहते । ततो निर्हेतुकामेतां प्रध्येयां मुग्धचेतसा ॥ ४८४ ॥ त्यज दुर्वासनापाप प्रक्षाल्यमिति वारिणा । तथैव चेत्तपोदानाद्यनुष्ठानेन किं वृथा ॥ ४८५ ॥ तेनैव पाप प्रक्षाल्य सर्वत्र सुलभ जल । मिथ्यात्वादिचतुष्केण बध्यते पापमूर्जितं ॥ ४८६ ॥ सम्यक्त्वादिचतुष्केण पुण्य प्राते च निर्वृतिः । एतज्जैनेश्वरं तत्त्वं गृहाणेत्यवदत्पुनः ॥ ४८७ ॥ श्रुत्वा तद्वचन विप्रस्तीर्थमौढ्य निराकरोत् । अथ तत्रैव

गंगा नदीके किनारे गया ॥ ४७९ ॥ भूख लगने पर उस ब्राह्मणने उस नदीके जलको मणिगंगा नामका उत्तम तीर्थ समझ कर स्नान किया और इस तरह तीर्थमूढताका काम किया ॥ ४८० ॥ तदनंतर जब वह ब्राह्मण खानेकी इच्छा करने लगा तब श्रावकने पहिले स्वयं खाकर उस बचे हुए उच्छिष्ट भोजनमें गंगा नदी का वही पानी मिलाकर उस ब्राह्मणको दिया और हित बतलानेके लिये कहा कि गंगाका जल मिल जानेसे यह भोजन पवित्र है इसे खाओ। उसे देखकर वह ब्राह्मण कहने लगा कि तेरा उच्छिष्ट भोजन मैं कैसे खाऊं तब उस श्रावकने कहा कि तू जो इस तरह कह रहा है सो क्या तुझे मालूम नहीं है कि इसमें गंगाका जल मिला हुआ है। यदि यह गंगाजल इस भोजनके उच्छिष्ट दोषको भी दूर नहीं कर सकता तो फिर इन तीर्थोंके जलसे पापरूपी मल किस तरह दूर हो सकता है। इसलिये तू अपने मूढ चित्तसे इन निर्मूल विचारोंको निकाल दे यदि जलसे ही बुरी वासनाओंके पाप दूर हो जांय तो फिर तप दान आदि अनुष्ठानोंका करना व्यर्थ ही हो जायगा॥४८१--४८५॥सब लोग जलसे ही पाप दूर कर लिया करें क्योंकि जल सब जगह सुलभ रीतिसे मिलता है। मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय इनसे पापकर्मोंका बंध होता है और सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र तपसे पुण्य कर्मोंका बंध होता है तथा अंतमें इन्हीं चारोंसे मोक्ष होती है। इसलिये अब तू श्रीजिनेंद्रदेवका मत स्वीकार कर इस प्रकार उस श्रावकने कहा ॥ ४८६--४८७ ॥ उस श्रावकका यह उपदेश सुन कर उस ब्राह्मणने तीर्थमूढता भी छोड दी इसके बाद वहीं पर एक तपस्वी पांच अग्नियोंके मध्यमें बैठकर दुःस्सह तप कर रहा था जलती हुई अग्निमें छहों प्रकारके जीवोंका निरंतर घात हो रहा था और वह प्रत्यक्ष जान पडता था उस श्रावकने उस तपस्वीके माननेकी पाखंडिमूढता भी बडी युक्तियोंसे दूर की। तदनंतर वह उसकी जातिमूढता दूर करनेकेलिये कहने लगा कि गोमांसभक्षण तथा वेश्यादि सेवन, न करने योग्योंका सेवन करनेसे क्षण भरमें पतित हो जाता है। इसके सिवाय इस

श्रावकः स्मिती ॥ ४६९ ॥ तस्यावमितिविप्यर्य तद्द्रुमादात्तपर्णकैः । परिमृज्य स्वपादाक्तधूलिं ते वश्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हताना विघाताय समर्थेस्य वदद् द्विज । विप्रेणानु तथैवास्तु वो दोषस्तव देवता ॥४७१॥ परिभूतिपद नेप्याम्युपाध्यायस्त्वमत्र मे । इत्युक्तस्तेन तस्मात्स प्रदेशान्तरमासवान् ॥४७२॥ श्रावक- कपिरोमाह्वयवल्लीजाल समीक्ष्य मे । देवमेतदिति व्यक्तमुक्त्वा भक्त्या परीत्य तत् ॥ ४७३ ॥ प्रणम्य स्थितवान् विप्रोप्याविष्कृतरुपोत्सुकः । कराभ्यां तत्समुच्छिदन् विमृद्य सम ततः ॥ ४७४ ॥ तत्कृतासह्यकण्डूकाविशेषेणातिबाधित । एतदभिहित देव त्वदीयमिति भीतवान् ॥ ४७५ ॥ सहासो विद्यते नान्यद्विधातृ सुखदु खयो । प्राणिना प्राक्तन कर्म मुक्त्वास्मिन्मूलकारण ॥ ४७६ ॥ श्रेयो वाप्तु ततो यत्नं तपोदानादिकर्मभि । कुरु त्वमिति तन्मौढ्य हित्वा दैव निवधन ॥ ४७७ ॥ देवा खलु सहायत्व यांति पुण्यवतां नृणा । तके किंचित्करा पुण्यवलये मूलसन्निभाः ॥ ४७८ ॥ इत्युक्त्वास्तद्विजोद्भूतदेवमौढ्यस्ततः क्रमात । श्रावकस्तेन विप्रेण गंगातीरं समागमत् ॥ ४७९ ॥ मुमुक्षुस्तत्र विप्रोऽपि मणिगंगाह्वयमुत्तम । तीर्थमेतदिति स्नात्वा

चेष्टा को देखकर वह श्रावक हंसने लगा ॥ ४६६–४६९ ॥ तथा उसकी अवज्ञा करनेके लिये उस वृक्षके कुछ पत्ते तोड कर मींडकर अपने पैर की धूलिसे लगा लिये और उस ब्राह्मणसे कहा कि देख तेरा देव जैनियों का अनिष्ट करनेमें बिल्कुल समर्थ नहीं है। इसके उत्तरमें उस ब्राह्मणने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही इसमें हानि ही क्या है मैं भी तेरे देवका तिरस्कार कर सकता हूं इस विषयमें तू मेरा गुरु ही सही। इसतरह कहकर वे दोनो फिर साथ चलने लगे और किसी एक देशमें जा पहुंचे ॥ ४७०–४७२ ॥ वहां पर कपिरोमा नामकी बेलके बहुतसे वृक्ष थे उन्हें देखकर वह श्रावक कहने लगा कि देखो यह हमारा देव है कह कर उसने बडी भक्तिसे प्रदक्षिणा दी और नमस्कार कर अलग खडा हो गया। वह ब्राह्मण पहिलेसे क्रोध कर ही रहा था इस लिये उसने भी हाथसे उसके पत्ते तोडे और मसल कर सब जगह लगा लिये परंतु वे खुजली करनेवाले पत्ते थे इस लिये लगाते ही उसे असह्य खुजलीकी बाधा होने लगी तथा वह डर गया और श्रावकसे कहने लगा कि इसमें अवश्य ही तेरा देव है ॥ ४७३–४७५ ॥ तब हंसता हुआ वह श्रावक कहने लगा कि इस संसारमें जीवोंको सुख दुखका देनेवाला पहिले किये हुए कर्मोंके सिवाय और कुछ नहीं है कर्म ही इसके मूल कारण हैं ॥ ४७६ ॥ इस लिये तप दान आदि सत्कार्योंके द्वारा तू अपना कल्याण करनेके लिये प्रयत्न कर और इस प्रकारकी देवमूढता को कि देवता ही सब करते हैं निकाल फेंक बादको वह फिर कहने लगा कि जो मनुष्य पुण्यवान हैं उनके देवलोग स्वय आकर सहायक हो जाते हैं पुण्यरूपी कंकणके रहते हुए देव कुछ हानि नहीं कर सकते ॥ ४७७–४७८ ॥ इस प्रकार समझाकर अनुक्रमसे उसकी देवमूढता दूर की। तदनंतर वह श्रावक उस ब्राह्मणके साथ

नास्ति सबंधो यदि देहिना। मया कथमवालंभि मनुष्यमवसंभव ॥ ४५८ ॥ ततः पुण्यं न पाप वा यथेष्ट वर्तनं सुख। इति कृत्वा मुनिश्चक पापी हिंसादिपंचक ॥ ४५९ ॥ मासाद्याहारसंसक्तो वह्वारंभपरिग्रहः। अनुवद्धोस्ति वध्वायुर्नारक परमावधि ॥ ४६० ॥ तेन यास्यत्यसौ पृथ्वीं ससमा घोरदुःखदां। शुभा चोग्रानुभागात्तस्त्रीवेदोदयंभाविता ॥ ४६१ ॥ प्रवृद्धरागप्रद्वेषपैशुन्यादिप्रदूषिता। गुणशीलसदाचारान् श्रुत्वालोक्य च कोपिनी ॥ ४६२ ॥ संक्लेशेन सदा वद्धनारकायुस्ततुच्युतौ। तम प्रभामहादु खभागिनीयं भविष्यति ॥ ४६३ ॥ इति तद्वचनप्रांते प्रणिपत्य मुनीश्वरं। कुमारोप्यभयोपृच्छत्स्वभवातरसंतति ॥ ४६४ ॥ तदनुग्रहबुध्यैवमाहासौ भव्यवत्सल। इतो भवात्तृतीयेत्र भवे भव्योपि स कुधी ॥ ४६५ ॥ कश्चिद्विप्रसुतो वेदाभ्यासहेतो परिभ्रमन्। देशातराणि पाखंडिदेवतातीर्थजातिभिः ॥ ४६६ ॥ लोकेन च विमुह्याकुलीभूतस्तत्प्रशंसनं। तदाचरितमप्युच्चैरनुतिष्ठभयेच्छया ॥ ४६७ ॥ केनचित्पथिकेनामा जैनेन पथि स व्रजन्। पाषाणराशिसंलक्ष्यभूताधिष्ठितभूरुह ॥ ४६८ ॥ समीप प्राप्य भक्त्यातो देवमेतदिति द्रुतं। परीत्य प्राणमद् दृष्ट्वा तच्चेष्टा

पुण्य है न कुछ पाप है अपनी इच्छानुसार वर्ताव रखना ही सुख है। इसप्रकार वह पापी दृढ निशंक होकर हिंसादिक पांचो पाप करनेलगा है ॥ ४५९ ॥ वह मांसादिकके आहारमें आसक्त होगया है उसने आरंभी और वहुपरिग्रही होनेसे सवसे अधिक (सातवें नरकका) नरकायुका वंध किया है ॥ ४६० ॥ इसलिये वह घोर दुख देनेवाले सातवें नरकमें जायगा। इसी तरह शुभा भी तीव्र अनुभाग जन्य स्त्री वेदके उदय से खूब वढे हुए राग द्वेष पैशून्य आदि दोषोंसे खूब भरी हुई है गुणशील और सदाचार आदिकोंको सुन कर तथा देखकर वह वहुत ही क्रोध करती है इसलिये संक्लेश परिमाणोंसे उसने नरकायुका वंध किया है और शरीर छोडकर वह छठे नरकमें जायगी तथा वहांके अनेक दुख भोगेगी ॥ ४६१–४६३ ॥ इस प्रकार गणधरके कह चुकने पर अभयकुमारने भी उठ कर मुनिराजको नमस्कार किया और अपने पहिले भव पूछे ॥ ४६४ ॥ अभयकुमारका अनुग्रह करने के लिये ही भव्यों पर वात्सल्य रखने वाले गणधर कहने लगे कि इससे तीसरे भवमें तू भव्य होकर भी बुद्धिहीन था ॥ ४६५ ॥ तू किसी ब्राह्मणका पुत्र था और वेद पढनेके लिये अनेक देशोंमें इधर उधर घूमता फिरता था। पाखंडमूढता, देवमूढता, तीर्थमूढता और जातिमूढतासे सवको विमोहित कर वहुत ही आकुलित होता था तथा उन्हींकी प्रशंसा के लिये उन्हीं कामोंको अच्छीतरह करता था। किसी एक समय वह दूसरी जगह जा रहा था उसके साथ मार्गमें कोई जैनी पथिक भी जा रहा था। मार्गमें पत्थरोंके ढेरके पास एक भूतोंका निवासस्थान पेड था। उसके समीप जाकर और उसे अपना देव समझकर वडी भक्ति से उस ब्राह्मणपुत्रने उस किया। —

४८६ ॥ वागिवस्त्रपरित्यागादुपदेष्टुर्महामते । अर्थमात्र समादाय समुत्था रुचिरर्थजा ,काचूर्लि तें' षस्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हंतान्यद्गीतताय समर्थस्य या श्रद्धा सावगाढेति कथ्यते ॥ ४४८ ॥ केवलावगमालोकिताखिलार्थगता रुचिः । परमाधभगाढासौ श्रद्धेति परमर्षिभिः ॥ ४४९ ॥ एतासपि महाभाग तव संत्यय काश्चन । दर्शनाद्यागमप्रोक्तशुद्धषोडशकारणैः ॥ ४५० ॥ भव्यो व्यस्तै समस्तैश्च नामात्मीकुरुतेंतिम । तेषु श्रद्धादिभि कैश्चिद्बध्वा तन्नामकारणे. ॥ ४५१ ॥ रत्नप्रभां प्रविष्टः संस्तत्फल मध्यमायुषा । भुक्त्वा निर्गत्य भव्यास्मिन् महापद्माख्यतीर्थकृत् ॥ ४५२ ॥ आगाम्युत्सर्पिणीकालस्यादिमः क्षेमकृत्सता । तस्मादासन्नभव्योसि माभैषी. ससृतेरिति ॥ ४५३ ॥ स्वस्य रत्नप्रभावाप्ते विषण्णः श्रेणिक पुन । अप्राक्षीद्धीधनान्योपि पुरेस्मिन्पुण्यधामनि ॥ ४५४ ॥ किमस्त्यधोगतिं यास्यन्नित्यतो मुनिरादिशत् । कालशौकरिकस्यात्र शुभायाश्च प्रवेशन ॥ ४५५ ॥ अस्ति द्विजतनूजायास्तत्कृतश्चेन्निशम्यता । कालसौकरिकोत्रैव पुरे नीचकुले भृश ॥ ४५६ ॥ भवस्थितिवशाद्बद्धनरायु पापकर्मणा । ससक्त्वोधुना जातिस्मरोभूत्वैवमस्मरत् ॥ ४५७ ॥ पुण्यपापफले-

अर्थज सम्यग्दर्शन है। मोहनीयकर्मके क्षय हो जानेपर जो अंग अंगवाह्यके ज्ञानकी भावनासे श्रद्धा उत्पन्न होती है वह अवगाढ सम्यग्दर्शन है। तथा केवलज्ञानसे सब पदार्थोंके देखलेनेपर जो श्रद्धान होता है वह परमावगाढ सम्यग्दर्शन कहलाता है ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥ ४४१–४४९ ॥ हे महाभाग इन श्रद्धाओंमेंसे आज तेरे कितनी ही श्रद्धाएं मौजूद हैं। इनके सिवाय दर्शन विशुद्धि आदि शास्त्रोंमें कहे हुए जो शुद्ध सोलह कारण हैं उनमेंसे सब या कुछ कारणोंसे यह भव्य जीव तीर्थंकर नामकर्मका वंध करता है। इनमेंसे दर्शनविशुद्धि आदि कितनेही कारणोंसे तू तीर्थंकर नामकर्मका वंध करेगा, मरकर रत्नप्रभा (पहिले) नरकमें जायगा मध्यम आयुसे वहाका फल भोगकर निकलेगा और हे भव्य फिर इसी भरतक्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीकालमें सज्जनोंको कल्याण करनेवाला महापद्म नामका सबसे पहिला तीर्थंकर होगा। तू आसन्नभव्य है इसलिये अब संसारसे भय मतकर ॥ ४५०–४५३ ॥ तदनंतर अपने नरकमें जानेकी वात सुनकर श्रेणिक कुछ खेद खिन्न हुआ और फिर पूछने लगा कि हे धीधन ! पुण्यके घर ऐसे इस नगरमें नरकमें जानेवाला और भी कोई है या नहीं ? तब गणधरदेव कहने लगे कि इस नगरमें कालसौकरी और ब्राह्मणकी पुत्री शुभा ये दो जीव ऐसे हैं जो नरक जायंगे ये जीव क्यों नरकमें जायंगे इसका कारण मैं कहता हूं सुनो ! कालसौकरिक इसी नगरमें नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है ॥ ४५४–४५६ ॥ यद्यपि पहिले वह पापी था तथापि भवस्थितिके वशसे उसे सातवार मनुष्य आयुका बंध हुआ था। अब उसे जाति स्मरण हो चुका है और वह सदा यही विचार करता रहता है कि जीवोंका यदि पुण्य पापके फलसे कुछ संबंध रहता है तो फिर मुझ ऐसे पापीको मनुष्य भव कैसे मिल गया ॥ ४५७–४५८ ॥ इसलिये न

बद्धायुस्त्व प्रागेवात्र जन्मनि ॥ ४३५ ॥ वद्धदेवायुषोन्यायुर्नांगी स्वीकुरुते व्रत । श्रद्धानं तु समादत्ते तस्मात्त्व नाम्रहीर्व्रत ॥ ४३६ ॥ पुराणस्मृतिसंभूत-विशुद्ध्या करणत्रयात् । सम्यक्त्वमादिम प्राप्य शांतसप्तमहारजाः ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तकालेन सम्यक्त्वोदयभाविते । क्षायोपशमिके स्थित्वा श्रद्धाने सं-चलात्मके ॥ ४३८ ॥ सप्तप्रकृतिनिर्मूलक्षयारक्षायिकमागमः । आज्ञामार्गोपदेशोत्थं सूत्रबीजसमुद्भवं ॥ ४३९॥ संक्षेपाद्विस्तृतेरर्थावगाढं परमावगाढ च सम्यक्त्व दशधोदितं ॥ ४४० ॥ सर्वज्ञाज्ञानिमित्तेन षट्द्रव्यादिषु या रुचिः । साज्ञा निःसगनिश्चेलपाणिपात्रत्वलक्षणः ॥ ४४१ ॥ मोक्षमार्ग इति श्रुत्वा या रुचिमार्गजात्वसा । त्रिषष्टिपुरुषादीना या पुराणप्ररूपणात् ॥ ४४२ ॥ श्रद्धा सद्य समुत्पन्ना सोपदेशसमुद्भवा । आचाराख्यादिमांगोक्तपोभेदश्रुतेर्द्रुत ॥ ४४३ ॥ प्रादुर्भूता रुचिस्तज्ज्ञैः सूत्रजेति निरूप्यते । या तु वीजपदादानपूर्वसूक्ष्मार्थजा रुचि ॥ ४४४ ॥ वीजजासौ पदार्थाना सक्षेपोक्त्या समुद्गता । या सा सक्षेपजा यान्या तस्या विस्तारजा तु सा ॥ ४४५ ॥ प्रमाणनयनिक्षेपाद्युपायैरतिविस्तृतैः । अवगाह्य परिज्ञानात्तत्त्वस्यागादिभाषित ॥

और स्मरण करनेसे उस श्रेणिकके परिणाम विशुद्ध हुए तथा तीनों करण होनेसे और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति तथा अनंतानुबंधीकी चार प्रकृति ऐसे सात कर्मप्रकृतिरूप महारजके शांत होने पर उसे पहिला उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ ॥ ४३७ ॥ अंतर्मुहूर्तके वाद ही सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्वका उदय हुआ और संचलात्मक क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनमें ठहर कर ऊपर लिखी हुई सातों प्रकृतियोंके अत्यंत क्षय होजानेके कारण तेने क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया सम्यग्दर्शन दश प्रकार गिना जाता है आज्ञा, मार्ग, उपदेशोत्थ, सूत्रसमुद्भव, बीजसमुद्भव, संक्षेपज, विस्तारज, अर्थज, अवगाढ और परमावगाढ ॥ ४३८--४४० ॥ सर्वज्ञकी आज्ञाके निमित्तसे जो छहों द्रव्योंमें रुचि उत्पन्न हो जाती है उसे आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं मोक्षमार्ग परिग्रह रहित है. वस्त्ररहित है और पाणिपात्रता रूप ही है इस प्रकार मोक्षमार्गका स्वरूप सुन कर जो श्रद्धान होता है वह मार्गज सम्यग्दर्शन कहलाता है। तिरेसठ महापुरुषोंके पुराणोंका प्ररूपण करनेसे जो शीघ्र श्रद्धा हो जाती है वह उपदेश समुद्भव वा उपदेशसे उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन है आचारांग नामके पहिले अंगमें कहे हुए तपश्चरणके भेदोंको सुन कर जो तत्वज्ञ लोगोंको शीघ्र श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है वह सूत्रज वा सूत्रसे प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन कहलाता है। जो वीजपदोंको ग्रहण पूर्वक सूक्ष्म पदार्थोंसे श्रद्धान प्रगट हो जाता है वह वीजज सम्यग्दर्शन है। पदार्थोंको संक्षेप रीतिसे कथन करनेसे जो श्रद्धान होता है वह संक्षेपज सम्यग्दर्शन है। जो विस्तारसे कहे हुए प्रमाण नय निक्षेपादिके द्वारा ज्ञानसागरमें अवगाहन कर अंगादिकमें कही हुई तत्त्वोंकी श्रद्धा होती है वह विस्तारज सम्यग्दर्शन है। वचनोंके विस्तारको छोडकर महा बुद्धिमान उपदेशकसे जो

-तिर्यंजा कथूलिं तें पश्य देवता ॥ ४७० ॥ नार्हतान्यद्विराताय समर्थेस्य
मापिवान् । त्वद्दारिपत्वयुवत्वाद्विगुणरक्तमतिद्विजः ॥४२५॥ वितीर्णवान् सुता तुभ्यं नि । परमार्थग... ...ति परमर्षिा ... —ति महाभा।
कदाचित्केनचिद्धेतो स्वय राज्यं परित्यजन् । भवत ब्राह्मणग्रामादानीय कुणिकः क्षिती ॥ ४२६ ॥ स्वराज्य दत्तवांस्तुभ्य त्व च तत्प्रतिपालयन् । अन
मिथ्यात्वकोपः सन् पूर्ववज्ञानसस्मृतेः ॥ ४२७ ॥ विधित्सु निग्रह सुभ्र नदिग्रामनिवासिना । आदिष्टवान् करं तेषा निर्वोढुमतिदुष्करं ॥ ४२८ ॥ भवतो
विप्रकन्याया सुतोभूदभयाह्वय । स कदाचिन्निजस्थानादागच्छस्त्वां समीक्षितु ॥ ४२९ ॥ सम जनन्या तन्नदिग्रामे त्वत्तः समाकुला । प्रजा समीक्ष्य ते
कोपमुपायैः समशीशमत् ॥ ४३० ॥ नानोपायप्रवीणोयमभयाख्योस्तु पंडितः । नाम्नेति विद्भिराहूत स तदा तेन धीमता ॥४३१॥ पुत्रेणानेन सार्द्धं त्व
मिहायैवमुपस्थितः । शृण्वन् पुराणसद्भावमित्याहाकर्ण्य तद्वचः ॥४३२॥ सर्वं निधाय तच्चित्ते श्रद्धाभून्महती मते। जैने कुतस्तथापि स्यान्न मे व्रतपरिग्रह ॥
४३३ ॥ इत्यनुश्रेणिकप्रश्नादवदीद्गणनायक । भोगसजननाद्गाढमिथ्यात्वानुभवोदयात् ॥ ४३४ ॥ दुश्चरित्रान्महारंभात्संचित्यैनोनिकाचित । नारक ब-

समय राजा कुशिकने किसी कारणसे राज्यका स्वयं परित्याग कर दिया और उस ब्राह्मणके गांवसे बुला कर अपना सब राज्य तुझे दे दिया। तू भी उस राज्यका पालन करने लगा। नंदिग्रामके रहनेवालोंकी पहिली बात स्मरण कर तू अंतरंगमें क्रोधित हुआ और उनका अच्छी तरह निग्रह करनेके लिये उन पर बहुत कठोर और असह्य कर विठलाने की आज्ञा दी ॥ ४२६--४२८ ॥ तेरे उस ब्राह्मणकी पुत्रीसे एक अभयकुमार नामका पुत्र हुआ था, वह किसी एक समय अपने उस ब्राह्मणके गांवसे तेरे दर्शनके लिये आ रहा था। वह अपनी माताको साथ लिये था मार्गमें नंदिगांव पड़ा वहांकी प्रजा तुझसे पीडित हो ही रही थी इसलिये उसने अनेक उपायोंसे तेरा क्रोध शांत किया ॥४२९--४३०॥ वह अभयकुमार पुत्र अनेक उपाय करनेमें चतुर है तथा पंडित है भगवान महावीर स्वामीका बुलाया हुआ तू आज उसी बुद्धिमान पुत्रके साथ आकर इस समवसरण सभामें उपस्थित है इस प्रकार पुराणका भाव सुनकर और गणधर देवके कहे सब वचन सुन कर वह श्रेणिक फिर पूछने लगा कि आपके कहे हुए वचनोंको सुनकर तथा सबको चित्तमें धारण कर जैनमतमें मेरी बडी भारी श्रद्धा प्रगट हुई है तथापि मैं व्रतोंको क्यों ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ४३१--४३३ ॥ श्रेणिकके इस प्रकार प्रश्न करने पर वे गणधर देव कहने लगे कि तेने इसी जन्ममें पहिले भोगोंकी इच्छा, गाढ मिथ्यात्वका उदय, दुश्चारित्र और महारंभसे अनेक बडे पापोंका संग्रह किया है तथा नरकायुका बंध किया है और यह नियम है कि देवायुके बंधको छोडकर अन्य आयुका बंध करनेवाला फिर व्रतोंको स्वीकार नहीं कर सकता हां वह सम्यग्दर्शन धारण कर सकता है इसीलिये तू व्रत धारण नहीं कर सकता ४३४--४३६ ॥ इस प्रकार पुराणोंके सुनने

तत्त्वपरान्मुख । अभूत्सौधर्मकल्पेसौ पतिर्मम कथं भवेत् ॥ ४१३॥ प्रकृष्टदिव्यभोगानां भोक्तेति वननायकः । तस्यार्थं तद्वचो ध्यायन्नहो माहात्म्यमीदृशं ॥ ४१४ ॥ व्रतस्याभीप्सितं सौख्यं प्रापयेदिति भावयन् । समाधिगुप्तमभ्येत्य श्रावकव्रतमग्रहीत् ॥ ४१५ ॥ भव्योयमिति तं मत्वा यक्षी तत्पक्षपातत । उपायेनानयज्जैनधर्मं सा हि हितैषिता ॥ ४१६ ॥ स्वर्गात्खदिरसारोपि द्विसागरमितायुषा । दिव्यभोगोपभोगांते निदानात्प्रच्युतस्ततः ॥ ४१७ ॥ सूनु कुणिकभूपस्य श्रीमत्यामभवभूः सा । अथान्यदा पिता ते स मत्पुत्रेषु भवेत् पति ॥ ४१८ ॥ राज्यस्य कतमोत्रेति निमित्तैः सकलैरपि । सम्यक् परीक्ष्य संतुष्टो निसर्गात्स्नेहतस्त्वयि ॥ ४१९ ॥ राज्यस्याहोयमेवेति निश्चित्यापायशंकया । दायादेभ्यः परित्रातुं त्वां सुधी कृत्रिमक्रुधा ॥ ४२० ॥ निराकरोत्पुरात्तस्माद्देशांतरममीयुष । सुप्रकाशनृपादेशभयान्न सकलाः प्रजाः ॥ ४२१ ॥ नंदिग्रामनिवासिन्यः प्रत्युत्थानपुरस्सरं । स्नानभोजनशय्यादिक्रियावमुख्यमागमन् ॥ ४२२ ॥ ततस्त्वमपि केनापि ब्राह्मणेन समं व्रजन् । देवताजातिपाखंडमोहप्रतिविधायिनी ॥ ४२३ ॥ कथाः प्ररूपयन् प्रीत्या तदीयस्थान-

भोगोंका भोक्ता हुआ है, उस यक्षीकी ये यथार्थ बातें सुनकर वह विचार करने लगा कि देखो व्रतका कैसा माहात्म्य है इससे इच्छानुसार सुखोंकी प्राप्ति होती है इस प्रकार विचार करते हुए उसने समाधिगुप्त मुनिके समीप जाकर श्रावक के व्रत धारण कर लिये ॥ ४१४--४१५ ॥ इस प्रकार उस यक्षीने उसे भव्य समझकर उसके पक्षपातसे इस उपायके द्वारा उसे जैन धर्म धारण कराया सो ठीक ही है क्योंकि परहितकी इच्छा रखना इसीका नाम है ॥ ४१६ ॥ इधर खदिर-सारके जीवने स्वर्गमें दो सागरकी आयु तक दिव्य भोग भोगे और फिर वहांसे च्युत होकर तू राजा कुणिककी रानी श्रीमतीसे पुत्र उत्पन्न हुआ। किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तज्ञानियोंसे पूछा था कि मेरे पुत्रोंमेंसे राज्यका स्वामी कौनसा पुत्र होगा तब सब निमित्त ज्ञानियोंने अच्छी तरह परीक्षा कर राजाको संतुष्ट किया था और राज्यका स्वामी तुझे ही बतलाया था। राजाका तुझ पर स्वाभाविक स्नेह अधिक था इस लिये तुझे राज्यका अधिकारी समझकर और दायादोंसे तेरी रक्षा करनेके लिये उस बुद्धिमानने बनावटी क्रोधकर तुझे नगरके बाहर निकाल दिया। बाहर जानेकी आज्ञा पाकर तू नंदी ग्राममें पहुंचा परंतु राजाकी प्रगट आज्ञाके भयसे वहां रहनेवाली सब प्रजा न उठी, न सामने आई, तथा स्नान भोजन शय्या आदि क्रियाओंके प्रबंधसे वह विमुख ही रहा ॥ ४१७–४२२ ॥ तदनंतर तू भी किसी ब्राह्मणके साथ आगे चला और बड़े प्रेमसे देवमूढता, जाति मूढता पाखंडि मूढता आदिको निरूपित करनेवाली कथाएं कहता हुआ उस ब्राह्मणके स्थानमें जा पहुंचा, तेरे वचन कौशल और युवावस्था आदि गुणोंसे अनुरंजित होकर उस ब्राह्मणने तुझे अपनी यौवनवती कन्या दी उसके साथ विवाह कर तू वहीं पर सुखसे रहने लगा ॥ ४२३--४२५ ॥ किसी एक

४०१ ॥ अधस्तायोषित काञ्चिद्रुदतीममिवीक्ष्य सः । रोदिषि त्वं कुतो भूहीत्यप्रवीत्साप्युवाच ता ॥ ४०२ ॥ शृणु चित्त समाधाय वनयक्षी वसाम्यहं । बने खदिरसारस्ते मैथुनो व्याधिपीडित ॥ ४०३ ॥ काकमासनिवृत्त्यासौ पतिर्मम भविष्यति । गच्छस्त्व तत्परित्यक्त मास भोजयितुं पुनः ॥ ४०४ ॥ नरके घोरदुःखाना भाजन कर्तुमिच्छसि । ततो मे रोदनं तस्मात्त्यज भद्र तवाग्रहं ॥ ४०५ ॥ इति तद्देवताप्रोक्तमवकर्ण्याटवीं प्रति । सप्राप्यातुरमालोक्य भिषक्कथितमौषध ॥ ४०६ ॥ त्वया मयापनोदार्थमुपयोक्तव्यमित्यसौ । जगाद सोपि तद्वाक्यमनिच्छन्नेवमब्रवीत् ॥४०७॥ त्वं मे प्राणसमो बधुर्मा जिजीवयिषुरिह्वा । ब्रवीष्येव हितं नैव जीवित व्रतभंजनात् ॥ ४०८ ॥ दुर्गतिप्राप्तिहेतुत्वादिति तद्व्रतनिश्चित । ज्ञात्वा यक्षीप्रपच त शूरवीरो व्यवोधयत् ॥ ४०९ ॥ तद्वृत्तात विचार्यासौ श्रावकव्रतपचक । समादायाखिलं जीवितांते सौधर्मकल्पज ॥ ४१० ॥ देवोऽभवदनिर्देश्यः शूरवीरोपि दु,खितः । परलोकक्रिया कृत्वा स्वावास समुपाव्रजत् ॥ ४११ ॥ वटद्रुमसमीपस्थो यक्षि किं मे स मैथुन । पतिस्तवाभवमेति यक्षीमाहावदच्च सा ॥ ४१२ ॥ समस्तव्रतसपन्नो व्य-

इस वनमें रहती हूं । तेरा बहनोई खदिरसार व्याधिसे बहुत पीडित है और कौआका मांस त्याग करनेसे वह मेरा पति होगा । परंतु तू अब उसे त्याग किये हुये मांसको ही खिलानेके लिये जा रहा है और उसे इस तरह घोर नरकमें डाल कर दुःखोंका पात्र बनाना चाहता है इसीलिये मैं रो रही हूं हे भद्र अब तू अपना आग्रह छोड दे ॥ ३९७--४०५ ॥ इस प्रकार उस देवीकी बातें सुनकर वह शूरवीर उस वनमें पहुंचा खदिरसार रोगीको देखा और कहा कि वैद्यने जो औषधि बतलाई है वह मेरी प्रसन्नताके लिये ही खाओ इसके उत्तरमें मांसकी अनिच्छा करता हुआ वह खदिरसार इस प्रकार कहने लगा कि तू मेरे प्राणोंके समान प्रेम करनेवाला भाई है स्नेहके कारण मेरे जीवित रहनेकी इच्छासे तू ऐसा कहता है परंतु व्रतोंका भंगकर जीवित रहनेसे जीवका हित नहीं हो सकता ॥४०६--४०८॥ इसके सिवा व्रत भंगकर जीवित रहना दुर्गतिका भी कारण है । इसप्रकार कह कर वह अपने व्रतमें निश्चित ही रहा । उसका इस प्रकार निश्चय देख कर शूरवीरने उस यक्षीका वृत्तांत भी उसे समझा दिया ॥ ४०९ ॥ उस वृत्तातका विचार कर उस खदिरसारने श्रावकोंके पूर्ण पांचों व्रत धारण किये और आयुके अंतमें मर कर सौधर्मस्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ । उसके वियोगसे शूरवीरको बहुत दुख हुआ और वह उसकी उत्तर क्रिया कर अपने घर जाने लगा ॥ ४१०-४११ ॥ जब वह उस वट वृक्षके नीचे गया और उस यक्षीसे पूछा कि क्यों हमारा बहनोई मर कर तुम्हारा पति हुआ या नहीं इसके उत्तरमें उस यक्षीने कहा कि संपूर्ण व्रत धारण करनेसे वह व्यंतर योनिसे परान्मुख हो गया अर्थात् इस योनिमें नहीं आ सका और सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ फिर भला वह मेरा पति कैसे हो सकता है ॥ ४१२--४१३ ॥ वह तो अब उत्कृष्ट दिव्य

वा ॥ ३९० ॥ धर्मलाभोऽस्तु तेऽथेति व्याहृताश्वासन मुनि । किरातः कीदृशो धर्मस्तेन किं कृत्यमंगिनां ॥ ३९१ ॥ किरातेनेति संपृष्ट सोपीति प्रत्यभाषत ।
निवृत्तिर्मधुमांसादिसेवाया पापहेतुतः ॥ ३९२ ॥ स धर्मस्तस्य लाभो यो धर्मलाभः स उच्यते । तेन कृत्यं परं पुण्य पुण्यात्स्वर्गे सुखं परं ॥ ३९३ ॥
श्रुत्वा त नाहमस्य स्वामीत्युवाच वनेचर । तदा कुल वितर्क्याह मुनि किं काकमांसक ॥ ३९४ ॥ भव्य भक्षितपूर्वं ते नवेति सुधियांवरः । तच्छ्रुत्वा स
विचिंत्याख्यत्कदचित्र भक्षितं ॥ ३९५ ॥ मयेत्येवं यदि त्याज्यं तत्त्वयेत्यब्रवीन्मुनिः । सोपि तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रतुष्टो दीयतां व्रतं ॥ ३९६ ॥ तदेत्यादाय
वदित्वा गतस्तस्य कदाचन । व्याधवसाध्ये संभूते काकमांसस्य भक्षणात् ॥ ३९७॥ शातिरस्येति निर्दिष्टे भिषग्भि स वनेचरः । प्रयांत्विमी मम प्राणाः
किं कृत्यमिमकैश्चलेः ॥ ३९८ ॥ व्रत तपोधनाभ्यासे गृहीत धर्ममिच्छता । कृतसंकल्पभंगस्य कुतस्तत्पुरुषव्रतं ॥ ३९९ ॥ पापेनानेन मासेन नाथ प्राणि-
निषाम्यहं । इति नैच्छत्तदुक्तं तच्छ्रुत्वा तन्मैथुनः पुरात ॥ ४०० ॥ सारसाख्यात्समागच्छन् शूरवीराभिधानक । महागहनमध्यस्थन्यग्रोधपृथिवीरुहः ॥

मांसादिकका सेवन करना पापका कारण है इस लिये उसका त्याग करना धर्म है और उसकी प्राप्ति होना धर्मलाभ कह-लाता है। धर्मसेवन करनेसे जीवोंको पुण्यकी प्राप्ति होती है और पुण्यसे स्वर्गके उत्तम सुख मिलते हैं॥ ३९१—३९३ ॥ इसे सुनकर वह भील कहने लगा कि ऐसे धर्मका स्वामी मैं नहीं हो सकता। तब मुनिराजने उसके कुलका विचार कर कहा कि हे भव्य ! क्या तेने पहिले कभी कौआका मांस खाया है तब वह बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भील विचारकर कहने लगा कि मैंने कौआका मांस तो कभी नहीं खाया है। तब मुनिराजने कहा कि तब उसे जरूर छोड देना चाहिये। मुनिराज के ये वचन सुनकर वह भील संतुष्ट होकर कहने लगा कि यह व्रत मुझे दे दीजिये ॥ ३९४—३९६ ॥ इस प्रकार वह भील उस समय व्रत ले कर तथा मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया। किसी एक समय उसके एक असा-ध्य रोग हुआ, वैद्योंने बतलाया कि कौआका मांस खानेसे यह रोग शांत हो सकता है। यह सुन कर वह भील विचार करने लगा कि भले ही मेरे प्राण चले जाओ इन चंचल प्राणोंसे मुझे क्या काम है मैंने धर्मकी इच्छासे उन मुनिराज से जो व्रत स्वीकार किया है उसका भंग मैं नहीं कर सकता क्योंकि संकल्प किये हुए व्रतका भंग करनेसे पुरुषव्रत कहां रह सकता है मैं इस पाप रूप मांसको खाकर आज जीवित रहना नहीं चाहता इस प्रकार सोच विचार कर उसने कौआ का मांस खाना स्वीकार नहीं किया। यह बात सुन कर शूरवीर नामका उसका साला सारस नगरसे आया। आते हुए मार्गमें उसने गहन वनके भीतर एक वटवृक्षके नीचे रोती हुई किसी स्त्रीको देखा। शूरवीरने उसे रोते हुए देखकर पूछा कि तू क्यों रो रही है ? इसके उत्तरमें वह कहने लगी कि तुम चित्त लगाकर सुनो मैं एक वनयक्षी हूं और यहां

सुम्मिता । श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणा श्राविकास्तत ॥ ३७९ ॥ देवादेव्यस्त्वसंख्यातास्तिर्यंचः कृतसंख्यकाः । गणेंद्रद्वादशभिः प्रोक्तैः परीतेन जिनेशिना ॥ ३८० ॥ सिंहविष्टरमध्यस्थेनार्द्धमागधभाषया । षट् द्रव्याणि पदार्थाश्च सप्त संसृतिमोक्षयोः ॥३८१॥ प्रत्येयस्तत्फल चैतत्सर्वमेव प्रपंचतः । प्रमाणनयनिक्षेपाद्युपायै सुनिरूपित ॥ ३८२ ॥ उत्पत्तिकादिधीयुक्ताः श्रुतवत सभासद । केचित्संयममापन्नाः संयमासंयम परे ॥ ३८३ ॥ सम्यक्त्वमपरे सद्यः स्वभव्यत्वविशेषतः । एव श्रीवर्द्धमानेशो विदधद्धर्मदेशना ॥ ३८४ ॥ क्रमाद्राजगृहं प्राप्य तस्थिवान् विपुलाचले । श्रुत्वेतदागमं सद्यो मगधेश त्वमागमः ॥ ३८५ ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य प्रतुष्टः प्रणतो मुहुः । जातसंवेगनिर्वेग स्वपूर्वभवसतर्ति ॥ ३८६ ॥ अन्वयुंक्त गणाधीश सोपीति प्रत्यबूबुधत् । त्रिपष्टिलक्षण पूर्वं पुराण पृष्टमादित ॥ ३८७ ॥ निर्दिष्ट च मया स्पष्ट श्रुत च भवता स्फुट । शृणु चित्त समाधाय श्रेणिक श्रावकोत्तम ॥ ३८८ ॥ वृत्तक तव वक्ष्यामो भवत्रयनिबधनं । इह जंबूमति द्वीपे विंध्याद्रौ कुटचाह्वये ॥ ३८९ ॥ वने खदिरसाराख्यः किरातः सोन्यदा मुनिं । समाधिगुप्तनामानं समीक्ष्य व्यनमन्मु-

कहे हुए जीवोंसे भरी हुई बारह सभाओंसे वेष्ठित होकर सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान् जिनेंद्र देवने अर्द्धमागधीभाषाके द्वारा छह द्रव्य, सात पदार्थ, संसार मोक्षका कारण और उसका फल आदि सब विस्तारपूर्वक बतलाया। भगवानने यह सब पदार्थोंका स्वरूप प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके कारणपूर्वक बतलाया जिसे सुनकर बहुतसे स्वाभाविक बुद्धिवाले शास्त्रज्ञ सभासदोंने संयम धारण किया और अपने भव्यत्वकी विशेषतासे किसीने उस समय सम्यग्दर्शन ही धारण किया। इसप्रकार श्रीवर्द्धमान स्वामीने सब जगह धर्मोपदेश दिया ॥ ३७९–३८४ ॥ किसी एक समय विहार करते हुए वे भगवान् राजगृह नगर आ पहुंचे और विपुलाचल पर विराजमान हुए। हे मगधेश ! इनका आगम सुनकर तू भी शीघ्र ही आया ॥ ३८५ ॥ इन सब कथाओंको सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही संतुष्ट हुआ, उसने बार बार नमस्कार किया, और उसे संवेग तथा निर्वेग उत्पन्न हुआ। तदनंतर उसने गणधर स्वामीसे अपने पहिले भव पूछे उसके उत्तरमें गणधर स्वामीभी समझाने लगे कि तेने जो तिरेसठ शलाकाओंका पुराण पहिले पूछा था वह मैंने आदिसे अंत तक स्पष्ट रीतिसे कहा और तैंने भी अच्छी तरह सुना। हे श्रावकोत्तम श्रेणिक अब मैं तेरा तीन भव पहिलेका चारित्र कहता हूं तू चित्त लगाकर सुन। इसी जंबूद्वीपके विंध्याचल पर्वतके कुटच नामके वनमें एक खदिरसार नाम का भील था किसी एक दिन उसने समाधिगुप्त नामके मुनिराजको देख कर बडे हर्षसे उन्हें नमस्कार किया ॥ ३८६–३९० ॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने "आज तुझे धर्म लाभ हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। तब उस भीलने पूछा कि हे प्रभो! धर्म क्या है और उससे जीवोंको क्या लाभ होता है ? भीलके इस प्रकार पूछने पर वे मुनिराज कहने लगे कि मधु

ब्राह्मणमृत्तुभि ॥ ३६७ ॥ श्रीवर्द्धमानमानम्य सयमं प्रतिपन्नवान् । तदैव मे समुत्पन्ना परिणामविशेषत' ॥ ३६८ ॥ ऋद्धय सप्त गर्वांगानामप्यर्थपदा न्यत: । भट्टारकोपदेशेन श्रावणे वहुले तिथौ ॥ ३६९ ॥ पक्षादावर्थरूपेण सद्य पर्वाणमन् स्फुट । पूर्वाह्ले पश्चिमे भागे पूर्वाणामप्यनुक्रमात् ॥ ३७० ॥ इत्यनुशातसर्वांगपूर्वार्थो धीचतुष्कवान् । अगाना प्रथमदर्भ पूर्वरात्रे ऽगधामह ॥ ३७१ ॥ पूर्वाणा पश्चिमे भागे प्रथकर्ता तनोभव । इति श्रुतर्द्धिभ. पूर्णो भूतं गणभृदादिम. ॥ ३७२ ॥ तत परं जिनेंद्रस्य वायुभूत्यग्निभूतिकौ । सुधर्ममार्यौ मौद्रयाख्य पुत्रमैत्रेयसत्रकौ ॥ ३७३ ॥ अकंपनोंधवेलाख्य: प्रभासश्च मया सह । एकादशेंद्रसपूज्या. सन्मतेर्गणनायका: ॥३७४॥ शतानि त्रीणि पूर्वाणा धारका शिक्षका: परे । शून्यद्वितयरंध्रादिरंध्रोक्ता: सत्यसयमा. ॥३७५॥ सहस्रमेक त्रिज्ञानलोचना'स्त्रिशताधिक । पचमावगमा सप्तशतानि परमेष्ठिन ॥ ३७६ ॥ शतानि नव विज्ञेया विक्रियर्द्धिविवर्द्धिता: । शतानि पंचसपूज्याश्च- तुर्थज्ञानलोचना: ॥ ३७७॥ चतु:शतानि सप्रोक्तास्त्वनुत्तरवादिन । चतुर्दशसहस्राणि पिंडिता स्युर्मुनीश्वरा: ॥ ३७८ ॥ चदनाद्यार्यिका शून्यत्रयषड्वन्हि

सौधर्म इंद्रने मेरी पूजाकी और मैंने पांचसौ ब्राह्मणोंके साथ श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कारकर संयम धारण कर लिया। परिणामोंकी विशेष विशुद्धि होनेसे उसी समय मुझे सात ऋद्धियां प्राप्त हुईं। तदनंतर भट्टारक श्रीवर्द्धमानके उपदेशसे श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके दिन सवेरे के समय सब अंगोंके अर्थ और पद शीघ्रही अर्थरूपसे स्पष्ट जान पड़े और इसीतरह उसी दिनके शामके समय अनुक्रमसे सब पूर्वोंके अर्थ और पदोंका ज्ञान होगया ॥ ३६६--३७० ॥ इसप्रकार मुझे सब अंग और पूर्वोंके अर्थोंका ज्ञान होगया तथा चौथा मनः पर्यय ज्ञान भी होगया। तदनंतर मैंने रात्रिके पहिले भागमें अंगों की ग्रंथ रूपसे रचना की और रात्रिके पिछिले भागमें पूर्वोंकी ग्रंथ रचना की इसतरह अंग और पूर्वोंसे ग्रंथोंकी रचनाकर मैं ग्रंथकर्ता प्रसिद्ध हुआ हूं। इस प्रकार श्रुतज्ञानरूपी ऋद्धिसे पूर्ण होकर मैं श्रीवर्द्धमान स्वामीका पहिला गणधर हुआ हूं ॥ ३७१--३७२ ॥ इसके बाद वायुभूति अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौंद्रय, पुत्र, मैत्रेय, अकंपन, अंधवेल और प्रभास ये जिनेंद्रदेवके और गणधर हुए इसतरह मुझ सहित श्रीवर्द्धमानके इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे ग्यारह गणधर हुए॥३७३--३७४॥ इनके सिवाय तीनसौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके जानकार थे, नौ हजार नौसो वास्तविक संयमको धारण करने वाले शिक्षक मुनि थे, तेरहसौ अवधिज्ञानी थे, सातसौ केवलज्ञानी अरहंत परमेष्ठी थे ॥३७५--३७६॥ नौसौ विक्रिया ऋद्धि को धारण करनेवाले मुनिराज थे और पांच सौ पूज्य मनः पर्यय ज्ञानी थे ॥ ३७७ ॥ तथा चारसौ अनुत्तरवादी थे इस प्रकार सब मुनिश्वरोंकी संख्या चौदह हजार थी ॥ ३७८ ॥ इसीप्रकार छत्तीस हजार चंदना आदिक अर्जिकाएं थीं एक लाख श्रावक थे तीनलाख श्राविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे इसप्रकार ऊपर

ज्ञात्वा मा परितुष्टवान् ॥ ३५६ ॥ तदैवागत्य त ग्राम गैतमाख्यं शचीपति । तत्र गैतमगोत्रोत्थमिंद्रभूतिं द्विजोत्तम ॥३५७॥ महाभिमानमादित्यविमानादित्यभासुरं । शेषः पुण्यै समुत्पन्न वेदवेदांगवेदिन ॥ ३५८ ॥ दृष्ट्वा केनाप्युपायेन समानीयातिकं विभो । स्वपिप्रच्छिषित जीवभाव पृच्छेत्यचोदयत् ३५९ अस्ति किं नास्ति वा जीवस्तत्स्वरूप निरूप्यतां । इत्यप्राक्षमतो मह्यं भगवान् भव्यवत्सलः ॥३६०॥ अस्ति जीवं स चोपात्तदेहमात्र. सदादिभि । किमादिभिश्च निर्देश्यो नोत्पन्नो न विनक्ष्यति ॥ ३६१ ॥ द्रव्यरूपेण पर्यायैः परिणामी प्रतिक्षणं। चैतन्यलक्षण कर्ता भोक्ता सर्वैकदेशवित् ॥ ३६२ ॥ संसारी निर्वृतश्चेति द्वैविध्येन निरूपित । अनादिरस्य ससार: सादिनिर्वाणमिष्यते ॥ ३६३ ॥ न निर्वृतस्य संसारो नित्या कस्यापि सस्तुतिः । अनता सस्तुतौ मुक्तास्तदनता सुलक्षिताः ॥ ३६४ ॥ सति व्ययेपि वद्धाना हानिरेव नहि क्षयः । आनत्यमेव तद्धेतु शक्तीनामिव वस्तुनः ॥ ३६५ ॥ इति जीवस्य याथात्म्यं युक्त्या व्यक्त न्यवेदयत् । द्रव्यहेतुं विधायास्य वच कालादिसाधनः ॥ ३६६ ॥ विनेयोह कृतश्रद्धो जीततत्त्वविनिश्चये । सैाधर्मपूजित पंचशत-

वह इंद्र किसी भी उपायसे मुझे भगवानके समीप लाया और मुझसे प्रेरणा की कि तुम जो जीवका स्वरूप पूछना चाहते थे उसे पूछो ॥ ३५६–५९ ॥ तव मैंने पूछा कि जीव कोई पदार्थ है अथवा नहीं है उसका स्वरूप कहिये तव भव्योंपर दया करने वाले भगवान मुझसे कहने लगे कि जीव एक भिन्न पदार्थ है, वह प्राप्त हुई देहके समान है, सत् संख्या आदि सदादिक तथा निर्देश स्वामित्व आदि किमादिकसे उसका स्वरूप कहा जाता है वह द्रव्यरूपसे न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी नष्ट होगा किंतु पर्यायरूपसे वह प्रतिक्षण परिणामी है अर्थात् उत्पन्न और नष्ट होता रहता है। चेतना उसका लक्षण है, वह कर्ता है, भोक्ता है पदार्थोंके एकदेश तथा सर्वदेशका जानकार है ॥ ३६०–३६२ ॥ संसारी और मुक्त ऐसे दो भेदसे वह निरूपण किया जाता है, संसारमें यह जीव अनादि कालसे चला आ रहा है और मुक्त जीव सादि होता है अर्थात् कर्मोंके नष्ट कर लेने पर वह मुक्त कहलाता है ॥ ३६३ ॥ जो मुक्त नहीं है वह संसारमें ही रहता है अथवा संसारी कहलाता है, किसी (अभव्य) जीवका संसार सदा वना रहता है अर्थात् वह सदा संसारमें ही रहता है संसारमेंसे अनंत जीव तो मुक्त हो गये हैं और उनसे भी अनंत विद्यमान हैं। कर्म बंधनमें बंधे हुए जीवोंमें से मुक्त हो जानेपर हानि अवश्य होती है परंतु उनका क्षय नहीं होता। जिसप्रकार पदार्थोंकी शक्तियां अनंत है इसलिये उनका कभी क्षय नहीं होता इसीतरह जीव भी अनंत हैं इसीलिये उनका क्षय कभी नहीं होता ॥ ३६५ ॥ इसप्रकार भगवानने युक्तिसे स्पष्ट सिद्ध ऐसा जीवका यथार्थ स्वरूप कहा। तव भगवानके वचनको द्रव्य हेतु मानकर और काल लब्धि आदि की कारण सामग्री मिल जानेपर जीवतत्त्वके निश्चय करलेनेपर मुझे श्रद्धा हुई और मैं भगवानका शिष्य वनगया । तदनंतर

गलन्मालतीमालादिव्यांवरविभूषणा। नवप्रकारपुण्येशा भक्तिभारभरानता॥ ३४५॥ शीलमाहात्म्यसभूतप्रवृद्धैमशराविका। शाल्यन्नभाववत्कोद्रवौदना विधिवत्सुधीः॥ ३४६॥ अन्नमप्राणयत्तस्मै तेनाप्याश्चर्यपंचक। वसुभिश्च समायोगः कृतवंदनया तदा॥३४७॥ भगवान् वर्द्धमानोपि नीत्वा द्वादशवत्सरान्। छाद्मस्थ्येन जगद्बंधुः जृंभिकाग्रामसन्निधौ॥ ३४८॥ ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनांतरे। महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसत्॥ ३४९॥ स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोघस्थात्सलभूरुह। वैशाखमाससज्ज्योत्स्नादशम्यामपराह्णके॥ ३५०॥ हस्तोत्तरांतरं याते शशिन्यारूढशुद्धिक। क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः॥ ३५१॥ घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानंतचतुष्टयं। चतुस्त्रिंशदतीशोपव्याभासिमहिमालयः॥ ३५२॥ सयोगभावपर्यंते स्वपरार्थप्रसाधक। परमौदारिकं देहं विभदङ्गागणे बभौ॥ ३५३॥ चतुर्विधामरैः सार्द्धं सौधर्मेंद्रस्तदागत। तुर्यकल्याणसत्पूजाविधिं सर्वं समानयत्॥ ३५४॥ अपायप्राप्तितन्विज्याक्षायकातिशयोर्जित। परमात्मपदं प्राप परमेष्ठी स सन्मति॥ ३५५॥ अथ दिव्यध्वनेर्हेतुः कोसावी युपयोगवान्। तृतीयज्ञाननेत्रेण

गया॥ ३४३–३४७॥ इधर जगतबंधु भगवान वर्द्धमानने भी वारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें रहकर तपश्चरण किया। तदनंतर वे जृंभिका गांवके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें महारत्न शिलापर शालवृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर प्रतिमायोग धारणकर विराजमान हुए। वैशाख शुक्ला दशमीके दिन शामके समय हस्त और उत्तर नक्षत्रके मध्यभागमें चंद्रमाके आजानेपर परिणामोंकी अत्यंत शुद्धतासे क्षपक श्रेणी चढकर शुक्लध्यानमें विराजमान हुए॥ ३४८-३५१॥ उसीसमय चारों घातियां कर्मोंको नष्टकर उन्होंने अनंत चतुष्टय प्राप्त किये और चौंतीस अतिशयोसे दैदीप्यमान होकर वे महिमाके घर वन गये॥ ३५२॥ सयोग भाव रहने तक वे अपने और दूसरोंके प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले थे, और परमौदारिक शरीरको धारणकर आकाशरूपी आंगनमें सुशोभित हो रहे थे॥ ३५३॥ उसीसमय सौधर्म इंद्र चारोंप्रकारके देवोंके साथ आया और उसने विधिपूर्वक ज्ञानकल्याणकी सब पूजा समाप्त की॥ ३५४॥ अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति, शरीरकी पूजा और क्षायिक सम्यक्त्व आदि अतिशयोंसे वे उत्तम पूज्य होगये थे तथा वे परमेष्ठी वर्द्धमान स्वामी परमात्मपदको प्राप्त हो गये थे॥ ३५५॥ तदनंतर इंद्रने भगवानकी दिव्यध्वनिका कारण क्या होना चाहिये इसपर विचार किया अवधिज्ञानसे इसका कारण मुझे जानकर वह शीघ्र ही गौतम गांवमें आया संतुष्ट हुआ तथा वहांपर मैं गौतम गोत्रीय इंद्रभूति नामका उत्तम ब्राह्मण था महा अभिमानी था आदित्य विमानसे चयकर शेष बचे हुए पुण्यकर्म के उदयसे दैदीप्यमान शरीर को पाकर उत्पन्न हुआ था और वेद वेदांग सबका जानकार था। मुझे देखकर

द्दासैर्दुरीक्षणै ॥ ३३३ ॥ स्थूलवेतालरूपाणि निशि कृत्वा समतत । पराण्यपि फणींद्रेभसिंहवन्ह्यनिलै समं ॥ ३३४ ॥ किरातसैन्यरूपाणि पापैकार्जनपंडितः । विद्याप्रभावसंभावितोपसर्गैर्भयावहै ॥ ३३५ ॥ स्वय स्खलयितु चेतः समाधेरसमर्थक । स महातिमहावीराख्यां कृत्वा विविधाः स्तुतीः ॥३३६॥ उमया स समाख्याय नतिन्वागादमत्सरः । पापिनोपि प्रतुष्यति प्रस्पष्ट दृष्टसाहसाः ॥ ३३७ ॥ कदाचिच्चेटकाख्यस्य नृपतेश्चंदनाभिधां । सुतां वीक्ष्य व नक्रीडासक्तां कामशरातुर ॥ ३३८ ॥ कृतोपायो गृहीत्वैना कश्चिद्गच्छन्नभश्चर । पश्चाद्भीत्वास्वभार्याया महाटव्यां व्यसर्जयत् ॥ ३३९ ॥ वनेचरपतिः कश्चित्तत्रालोक्य धनेच्छया । एनां वृषभदत्तस्य वाणिजस्य समार्पयत् ॥ ३४० ॥ तस्य भार्या सुभद्राख्या तया संपर्कमात्मन । वणिजः शकमानोस्मै पुराणकोद्रवादन ॥ ३४१ ॥ आरनालेन संमिश्र शरावे निहित सदा । दिशती शृंखलाबंधभागिनी तां व्यधात्क्रुधा ॥ ३४२ ॥ परेद्युर्वत्सदेशस्थकौशाबीनगरांतरं । कायस्थित्यै विशतं त महावीरं विलोक्य सा ॥ ३४३ ॥ प्रत्युद्व्रजंतीविच्छिन्नशृंखलाकृतबंधना । लोलालिकुलनीलोरुकेशभाराचलचलात् ॥ ३४४ ॥ वि

वीर रक्खा पार्वतीके साथ अनेक तरहकी स्तुतिकी नृत्य किया और फिर अभिमान छोडकर अपने स्थानको चला गया सो ठीक ही है क्योंकि साहसको स्पष्ट रीतिसे देखकर बडे २ पापी भी संतुष्ट होजाते हैं ॥ ३३२-३३७ ॥ किसी एक दिन चेटक नामके राजाकी चंदना नामकी पुत्री वन क्रीडा करनेमें लगी हुई थी उसे देखकर कोई विद्याधर कामबाणसे पीडित हुआ और किसी उपायसे उसे लेकर चलता बना। पीछे आई हुई अपनी स्त्रीसे डरकर उसने उस कन्याको महाटवीमें छोड दिया ॥ ३३८-३३९ ॥ वहांपर किसी भीलने देखकर धनकी इच्छासे वह वृषभदत्त नामके शेठको दे दी ॥ ३४० ॥ उस शेठकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था उसे शंका होगई कि कहीं अपने शेठका इसके साथ संबंध न हो जाय इसलिये वह सुभद्रा उस चंदनाको खानेके लिये एक मिट्टीके सकोरामें कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोंका भात सदा दिया करती थी और क्रोधमें आकर सदा उसे संकलसे बांधकर रखती थी ॥ ३४१-३४२ ॥ किसी दूसरे दिन वत्सदेशकी उसी कौशांवी नगरीमें श्रीमहावीरस्वामी आहारके लिये गये उन्हें देखकर वह चंदना उनके सामने जाने लगी उसीसमय उसकी संकलके बंधन सब टूट गये, चंचल भ्रमर समूहके समान चलाचल काले केशोंका समूह सुशोभित होने लगा, उसकी मालती माला टूट गई और दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे सुशोभित होकर और भक्तिके भारसे अत्यंत नम्रीभूत होकर पुण्यकी स्वामिनी उस चंदनाने नवधा भक्तिसे उनका पडगाहना किया। उसके शीलके माहात्म्यसे वह मिट्टीका सकोरा बडे भारी सुवर्णका होगया और कोदोंका भात शाली चावलोंका भात होगया उस बुद्धिमतीने विधिपूर्वक भगवानको आहार दिया इसलिये उसके येहां पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई और भाई बंधुओंसे भी उसका समागम हो-

केषु विघ्नं निमित्तपः ॥ ३२३ ॥ विषयद्रुमसंकीर्णं करुणाटविभोत्कटं । परीषहमहाघोरं विश्वश्वपदसंकुलं ॥ ३२४ ॥ कषायमत्तमातंगसंघातशतसंततं । विवृतास्यांतकानंतं मीनसविभीषणं ॥ ३२५ ॥ चतुर्विधोपसर्गोग्रकठोरकठोरितं । विघ्नौघतस्कराकुद्धं त्यक्त्वा भववनं शनैः ॥ ३२६ ॥ तपोवनं सतां सेव्यमव्याहतसुखावहं । महाजनसमाकीर्णं विस्तीर्णमनुपप्लुतं ॥ ३२७ ॥ महाव्रतमहासामंतान्वितं मुनयानुगं । दर्शनज्ञानचारित्रव्यक्तिशक्तित्रयोर्जितं ॥ ३२८ ॥ शीलायुधो गुणव्रातकवचः शुद्धिमार्गगः । सद्भावनामहायः सन् प्रविश्य परमं पुमान् ॥ ३२९ ॥ आवसंस्तत्र निःशंक नानायोगान् प्रवर्तयन् । धर्म्यध्यानं विविक्तस्था ध्यायन् दशविधं मुहुः ॥ ३३० ॥ उज्जयिन्यामथान्येद्युस्तच्छ्मशानेतिमुक्तके । वर्द्धमानं महासत्त्वं प्रतिमायोगधारिणं ॥ ३३१ ॥ निरीक्ष्य स्थाणुरेतस्य दैत्यः धैर्यं परीक्षितुं । उत्कृत्य कृत्तिकारतीक्ष्णा प्रविष्टजठराण्यलं ॥ ३३२ ॥ व्यात्ताननानि भीष्माणि नृत्यंति विविधैर्लयैः । तर्जयंति स्फुरद्ध्वानैः सा-

दुष्ट पशुओंसे भरा हुआ है, कषायरूपी मदोन्मत्त हाथियोंके सैकडों समूहोंसे व्याकुल है, मुंह फाडे हुए कालके समान अनंत सर्पोंसे भयंकर है, चारों तरहके उग्र उपसर्गरूपी सिंहोंसे कठोर है, और अनेक विघ्नरूपी चोरोंसे रुका हुआ है ऐसे संसाररूपी वनको धीरे २ छोडकर उन परम पुरुष भगवानने जो सज्जनोंके द्वारा सेवन करने योग्य है जिसमें बाधा रहित सुख भरा हुआ है, जो उत्तम मनुष्योंसे भरा है, विस्तीर्ण है, और सब तरहके उपद्रवोंसे रहित है ऐसे तपोवनमें महाव्रतरूपी महायोधाओं सहित, मुनियोंकी अनुकूलताको धारणकर, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी प्रगट हुई तीनों शक्तियोंसे सुशोभित, शीलरूपी आयुध लेकर, गुणोंके समूहका कवच पहिनकर शुद्धतारूपी मार्गसे चलकर और उत्तम भावनाओंकी सहायता लेकर प्रवेश किया ॥ ३२४-३२९ ॥ वहांपर निःशंक रीतिसे रहकर उन्होंने अनेक योगोंकी प्रवृत्ति की और एकांत स्थानमें विराजमान होकर वारवार दश तरहके धर्म ध्यानका चिंतवन किया ॥ ३३० ॥ अथानंतर किसी एक दिन विहार करते हुये महा पराक्रमी भगवान् वर्द्धमानने अतिमुक्तक नामके श्मशानमें प्रतिमा योग धारण किया ॥ ३३१ ॥ उन्हें देखकर महादेवने अपनी दुष्टतासे उनके धैर्यकी परीक्षा करनेका विचार किया। पापोंके उपार्जन करनेमें एक अद्वितीय पंडित ऐसे उस महादेवने अपनी विद्यासे अंधेरा करदिया फिर अनेक वेताल आकर तीक्ष्ण चमडेको निकालकर मुँहमें दबाये हुए तथा मुँह फाडकर अत्यंत भयानकरूप धारणकर अनेक तरहके लयोंसे नाचने लगे और कठोर शब्द, अट्टहास (जोरकी हँसी) तथा विकरालदृष्टिसे देखकर डराने लगे। तदनंतर सर्प हाथी सिंह अग्नि और वायु आदिके साथ भीलोंकी सेना बनकर आई इसतरह उस महादेवने अपनी विद्याके प्रभावसे अनेक भयानक उपसर्ग किये परंतु वह भगवानके चित्तको समाधिसे च्युत करनेमें समर्थ नहीं हुआ उससमय उसने भगवानका नाम महातिमहा-

थ स्यात्प्रमादिन ॥ ३१३ ॥ चतुःसंज्ञाननेत्रस्य निसर्गबलशालिनः । तस्याद्यमेव चारित्र द्वितीय तु प्रमादिनां ॥ ३१४॥ सिंहेनैव मया प्राप्त बने मु-
व्रत । मत्वेवेत्येकता तत्र सैंहीं वृत्ति समाप स ॥ ३१५॥ अतीक्ष्णनखदंष्ट्रोयमक्रूरो रक्तकेसरः । शौर्यैकत्वबनस्थानैरन्वयान्मृगविद्विषं ॥ ३१६॥ सुरा पि
नत्वैनमेतत्साहससंस्तवे । सक्ता समागमन् स्वस्वमोकः संतुष्टचेतस ॥ ३१७ ॥ अथ भट्टारकोप्यस्मादगात्कायस्थितिं प्रति । कुलग्रामपुरीं श्रीमत् ना-
मिपुरोपम ॥ ३१८ ॥ कूलनामा महीपालो दृष्ट्वा तं भक्तिभावित । प्रियंगुकुसुमाभासः त्रि,परीत्यप्रदक्षिण ॥ ३१९ ॥ प्रणम्य पादयोर्मूर्ध्ना निधिं व मा
गत । प्रतीक्ष्याघादिभि पूज्यस्थाने सुस्थाप्य सुव्रत ॥ ३२० ॥ गधादिभिर्विभूष्यैतत्पादोपातमहीतल । परमान्न विशुद्ध यास्मै सोदितेष्टार्थसाधन । २ ॥
आनुषगिकमेतत्ते फल भावि महत्तरं । इति वक्तुमिवाश्चर्यपचक तद्गृहेभवत् ॥ ३२२ ॥ पुण्यहेतोर्विनेयानां वीरो निर्गत्य तद्गृहात् । विहिते वि-

उन भगवानके पहिला सामायिक ही चारित्र था क्योंकि दूसरा छेदोपस्थापना तो प्रमादी जीवोंके ही होता है ॥ ॥
पहिले सिंह पर्यायमें मैंने वनमें मुनिराजकी आज्ञानुसार व्रत धारण किये थे यही समझकर उन्होंने अपनी वैसीही सिंहवृत्ति धारण की थी ॥ ३१५ ॥ जिसप्रकार सिंहपर्यायमें नख और दाढ तीक्ष्ण नहीं थे क्रूरता नहीं थी केसर रक्त थी और शूरवीरता धारणकर अकेला ही बनमें रहता था उसीप्रकार सिंहका अनुकरणकर वे भगवान भी अकेले ही रहते थे ॥ ३१६ ॥ देव सब उन भगवानको नमस्कारकर तथा उनके साहसकी स्तुति करते हुए संतुष्टचित्त होकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ ३१७ ॥ अथानंतर पारणाके दिन वे भट्टारक महावीर स्वामी आहारके लिये निकले तथा स्वर्गकी नगरीके समान कुलग्राम नामकी नगरीमें पहुंचे प्रियंगुके फूलके समान (कुछ लालवर्ण) कांतिको धारण करनेवाले वहांके कूल नामके राजाने बडी भक्तिसे उनके दर्शनकर उन्हें पडगाहन किया, तीन प्रदक्षिणाएं दीं उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर नमस्कार किया और घरमें आई हुई निधिके समान उन्हें माना। उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले उन भगवानको उस राजाने पूज्यस्थानपर विराजमानकर अर्घादिकसे उनकी पूजा की। उनके चरणकमलके समीपवर्ती पृथिवीका भाग गंधादिकसे विभूषित किया और बडी विशुद्धिके साथ उन्हें इष्ट अर्थको सिद्ध करनेवाला परमान्न समर्पण किया ॥ ३१८-३२१ ॥ यह तो आनुषंगिक फल है परंतु इसका होनहार फल बहुत बडा है यही कहनेकेलिये मानो उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ ३२२ ॥ तदनंतर शिष्योंका पुण्य वढानेके लिये वे भगवान एकांत स्थानमें विधिपूर्वक तपश्चरण करनेकी इच्छासे उसके घरसे निकले ॥ ३२३ ॥ जो विषयरूपी वृक्षोंसे भरा हुआ है, पांचों इंद्रियोंरूपी व्याधोंसे उत्कट है, परीषहोंसे महाघोर है सब तरहके

सम्म स: । श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन तत्प्रभापटलावृते ॥ ३०२ ॥ निविश्योत्तरमुखो धीरो रुद्ररत्नशिलातले । दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥३०३॥
हस्तोत्तरक्षयोर्मध्य भागं वापास्तलक्ष्मणि । दिवसावसितौ वीर सयमामिमुखोऽभवत् ॥ ३०४ ॥ वस्त्राभरणमाल्यानि स्वयं शक्र समाददे । मुक्तान्येतेन पू-
तानि मत्वा माहात्म्यमीदृश ॥ ३०५ ॥ अगरागोंगलग्नोस्य सगधोह कथ मया । मोच्योयमिति मत्वैव स्थित शोभा समुद्वहन् ॥ ३०६ ॥ मलिना कुटिला
मुग्धः पूज्यास्त्याज्या मुमुक्षुभि । केशा. क्लेशसमास्तेन यूनामूलात्समुद्धृता ३०७ ॥ सुराधीशः स्वहस्तेन तान् प्रतीक्ष्य महामणि–ज्वलत्पटलिकाम्भे-
विन्यस्याभ्यर्च्य मानितान् ॥ विचित्रतरवस्त्रेण पिधाय विधृतान् सुरै, । स्वय गत्वा सम क्षीरवारिराशौ न्यवेशयत् ॥३०९॥ तपोलक्ष्म्या निगूढाभूद्राड वाढम-
मूढधी । अभ्येत्य मोक्षलक्ष्मीष्टशंफल्येव विदग्धया ॥ ३१० ॥ अतग्रंथपरित्यागात्तस्य नैर्ग्रंथ्यमाबभौ । भोगिनो न्यस्तनिर्मोकस्यागवत्रावभासते ॥ ३११ ॥
चतुर्थोप्यववोधोऽस्य सयमेन समर्पित । तदैवांत्याववोधस्य सत्यकार इवेशितु ॥ ३१२॥ अप्रमत्तगुणस्थाने मुक्तिसाम्राज्यकठिका । तपस्विना सतालंसि तत्क-

उत्तरा नक्षत्रके मध्यमें था उस संध्याके समय श्रेष्ठ भगवान् वीरनाथने दीक्षा धारण की ॥ २९९-३०४ ॥ भगवानने जो वस्त्र आभरण माला आदि उतार फेंके थे वे इंद्रने महा पवित्र समझकर उठा लिये सो ठीक ही है क्योंकि भगवानका माहात्म्य ही ऐसा है ॥ ३०५ ॥ उससमय भगवानके शरीरमें लगा हुआ सुगंधित अंगराग समझ रहा था कि मैं यहांसे कैसे अलग हो सकता हूं यही समझकर मानों वह वहीं रहकर भगवानकी शोभा बढा रहा था ॥ ३०६ ॥ मलिन कुटिल, अज्ञानियोंके द्वारा त्याज्य ऐसे क्लेशोंके समान केश उन तरुण भगवानने जडसे ही उखाड फेंके थे ॥ ३०७ ॥ इंद्रने वे सब केश अपने हाथसे चुनकर उठा लिये थे और मणियोंके दैदीप्यमान पिटारेमें रखकर उनकी पूजाकी आदर सत्कार किया अनेक तरहके वस्त्रोंमें उन्हें लपेटकर रक्खा और फिर स्वयं सब देवोंके साथ जाकर उन्हें क्षीरसागरमें पधराया ॥३०८-३०९॥ मोक्ष लक्ष्मीकी इष्ट और चतुर दूतीके समान तपोलक्ष्मीने स्वयं आकर अतिशय शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले भगवान् वीरनाथ अपनी इच्छानुसार स्वीकार किये थे ॥ ३१० ॥ अंतरंग परिग्रहोंका त्याग करदेनेसे उनका निर्ग्रंथपना बहुत ही अच्छा सुशोभित हो रहा था सो ठीक ही है क्योंकि सांपकी काचलीके समान केवल बाह्य परिग्रहोंका त्याग करना कुछ सुशोभित नहीं होता ॥ ३११ ॥ उसी समय संयमने उन भगवानको केवलज्ञानके बयानेके समान चौथा मनःपर्ययज्ञान भी आकर समर्पण किया था ॥ ३१२ ॥ तपश्चरण करनेवाले उन भगवानने अप्रमत्त गुणस्थानमें जाकर मोक्षरूपी साम्राज्यकी कंठी भी पहिन ली थी सो ठीक ही है क्योंकि प्रमादी जीवोंको अर्थात् प्रमत्तगुणस्थानमें रहनेवालोंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है ॥ ३१३ ॥ चार ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले और स्वाभाविक बलशाली

मिवीत्यचोदितं ॥ २९० ॥ कुमारं भास्वराकारं द्रुमक्रीडापरायण । स विभीषयितु वांछन् महानागाकृतिं दधत् ॥ २९१ ॥ मूलात्प्रभृतिभुजस्कंधमविष्ठित । विटपेभ्यो निपत्याशु धरणीं भयविह्वला ॥ २९२ ॥ प्रपलायत तं दृष्ट्वा बालाः सर्वे यथायथ । महाभये समुत्पन्ने महतोन्यो न ... ॥ २९३ ॥ ललज्जिह्वाशतान्युग्रमारुह्य तमहिं विभी । कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यंकवत्तदा ॥ २९४ ॥ विजृम्भमाणहर्षांभोनिधिः संगमकामर । ...वान् महावीर इति नाम चकार स ॥ २९५ ॥ त्रिंशद्वर्षद्विस्तस्यैव कौमारमगमद्वय: । ततोन्येद्युर्मतिज्ञानक्षयोपशमभेदत ॥ २९६ ॥ समुत्पन्न... स्मृतपूर्वभवातर: । लौकांतिकामरैः प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिभि स्तुत. ॥ २९७ ॥ सकलामरसंदोहकृतनि:क्रमणक्रिय । स्ववाक्प्रीणितसद्बंधुसमाधि... न: ॥ २९८ ॥ चंद्रप्रभाख्यशिविकामधिरूढो दृढव्रत । ऊढां परिवृढैर्नृणां ततो विद्याधराधिपैः ॥२९९॥ ततश्चानिमिषाधीशैश्चलच्चामरसहतिः । भ्रमर... वि...किलालापनैरपि ॥ ३०० ॥ आह्वयद्वा प्रसूनौघै प्रहसद्वा प्रमोदत । पल्लवैरनुराग वा स्वकीयं सप्रकाशयत् ॥ ३०१ ॥ नाथ. षंडवन प्राप्य ... दव-

घबड़ाकर अपने अपने सुभीते के अनुसार वृक्षसे पृथ्वी पर कूदकर भागगए। सो ठीकही है क्योंकि महाभय उपस्थित होनेपर महापुरुषों के सिवाय अन्य कोई नहीं ठहर सकता है। २९०—२९३ ॥ उससमय जिसकी सौ जिह्वाएं लपलपा रही है ऐसे उस सर्पके मस्तक पर बैठकर उन वीरनाथने माताकी चारपाईके समान क्रीड़ा की ॥ २९४ ॥ भगवान के समागमसे उस संगमदेवका हर्षरूपी महासागर उमड आया और उसने भगवानकी स्तुतिकर महावीर नाम रक्खा ॥ २९५ ॥ इस प्रकार भगवानके कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत हुए। उसके दूसरेही दिन मतिज्ञानके विशेष क्षयोपशमसे उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ और पहिले भवका जातिस्मरण हुआ। उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर समयानुसार उनकी स्तुतिकी और इंद्रादि सब देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया। भगवानने मीठी वाणी से सब भाई बन्धुओं को प्रसन्न किया और सबसे विदा ली ॥ २९६—२९८ ॥ व्रतोंको दृढतासे पालन करने वाले वे भगवान चंद्रप्रभा नामकी पालकी पर सवार हुए। पहिले वह पालकी चारों ओर घिरे हुए मनुष्योंने उठाई फिर विद्याधर ले चले और फिर अंतमें देव लोग उसे ले चले। उस समय चमरोंके समूह डुलाये जा रहे थे। जिस वनकी ओर वे जा रहे थे वह वन मानों उडते हुए भ्रमरोंके समूहसे उन्हें बुलारहा था, कोयलोंके मधुर शब्दोंसे मानों हंस रहा था फूलोंके समूहसे मानों प्रसन्न हो रहा था और नवीन पत्तोंसे मानों अपना अनुराग ही प्रगट कर रहा था। वे भगवान् ऐसे षंड नामके वनमें पहुंचे पालकीसे उतरे तथा अपनी कांतिसे सब प्रदेशोंको ढकनेवाली एक बडी रत्नशिलाके ऊपर उत्तरकी ओर मुहकर तेलेका नियम लेकर विराजमान हुए। इस तरह अगहनवदि दशमीके दिन जब चंद्रमा हस्त और

दिनिर्दिष्टः दशात्मजगुणोदयः । मदसप्तकनिर्मुक्तः सर्वचेष्टाविराजित ॥ २८१ ॥ संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च । जन्मानतरमेवैनमभ्येत्यालोक-मात्रतः ॥ २८२ ॥ तत्सदेहगते ताभ्या चारणाभ्या स्वभक्तितः । अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥ २८३ ॥ अर्थिनः किं पुनर्वाच्या शब्दाश्च गुणगोचरा । अप्राप्तार्थाः परेष्वस्मिन्नर्थवतोऽभवन् यदि ॥२८४॥ त्यागोऽयमेव दोषोऽस्य शब्दा दोषाभिधायिन । पुष्कलार्था परप्राप्साद्गता दूरमनर्थकाः ॥ २८५ ॥ न गोमिन्यां न कीर्त्यां वा प्रीतिरस्यामवद्विभो । गुणेष्विव शुभलेश्याना प्रायेण हि गुणाः प्रिया ॥ २८६ ॥ तस्य कालवयोवांच्छावशेनैलविल-स्य । भोगोपभोगवस्तूनि स्वर्गसाराण्यहर्निश ॥ २८७ ॥ शक्राज्ञया समानीय व्ययं प्रावर्तयत्सदा । अन्येद्यु स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा ॥ २८८ ॥ देवानामधुना शूरो वीरस्वामीति तच्छ्रुते । देव संगमको नाम संप्राप्तस्त परीक्षतुं ॥ २८९ ॥ दृष्टोद्यानवने राजकुमारैर्बहुभि· सह । काकपक्षधरत्वैकवयो-

॥ २८० ॥ एक वार संजय और विजय नामके दो चारण मुनियोंको किसी पदार्थमें संदेह उत्पन्न हुआ था परंतु भगवानके जन्मके बाद ही वे उनके समीप आए थे और भगवानके दर्शन करने मात्रसे उनका संदेह दूर हो गया था इसलिये उन्होंने बडी भक्तिसे उनका होनहार सन्मति नाम रक्खा था ॥ २८१–२८३ ॥ गुणोंको कहनेवाले अर्थवाले शब्दोंकी तो बात ही क्या है वीरनाथको छोडकर अन्य लोगोंमें जिनका गुणवाचक अर्थ नहीं होता है ऐसे शब्द भी वीरनाथमें आकर अर्थवाले हो जाते थे ॥ २८४ ॥ उन भगवानके त्यागमें यही सबसे बडा दोष था कि रागद्वेष आदि दोषोंको कहनेवाले ऐसे शब्द कि दूसरी जगह जिनके अनेक अर्थ हो जाते हैं वे भी भगवान वीरनाथके समीपसे अनर्थक होकर दूर भाग जाते थे ॥ २८५ ॥ उन भगवानका प्रेम न तो लक्ष्मीमें था और न कीर्तिमें ही था किंतु शुभ लेश्याओंको धारण करने वालोंके समान गुणोंमें ही उनका प्रेम था सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः गुण सबको प्रिय होते ही हैं ॥२८६॥ इंद्रकी आज्ञासे कुबेर रात दिन उन भगवानके समय आयु और इच्छाके अनुसार स्वर्गकी सारभूत भोगोपभोग की सब चीजें लाता था और सदा उन चीजोंको काममें लाया करता था अथवा खर्च किया करता था। किसी एक दिन इंद्रकी सभामें देवोंमें परस्पर यह कथा चल रही थी कि इस समय सबसे शूरवीर श्रीवर्द्धमान स्वामी हैं उसे सुनकर संगम नामका एक देव उनकी परीक्षा करनेके लिये आया ॥ २८७–२८९ ॥ उस समय बालकोंके द्वारा प्रेरणा किये गये और सूर्यके समान दैदीप्यमान भगवान वीरनाथ, केश रखाए हुए, समान आयुवाले, ऐसे अनेक राजकुमारोंके साथ देखने योग्य उद्यान वनमें वृक्षपर चढने उतरनेका खेल खेल रहे थे। वहां पर आए हुए उस देवने उन्हें डरानेकी इच्छासे महानागका रूप धारण किया और वह वृक्षकी जडसे लेकर स्कंध तक बराबर लिपट गया। उसे देखकर सब बालक डरसे

बा दिवा ॥ २६९ ॥ ननादानकसंपातो ननर्त प्रमदागण: । जगौ च गायकानीक: पपाठाघोपि बंदिनां ॥ २७० ॥ अवातरत् सुराः सर्वेप्युद्गास्यावासमा-त्मन । मायाशिशुं पुरोधाय मातुः सौधर्मनायक ॥ २७१ ॥ नागेंद्रस्कंधमारोप्य बालं भास्वरभास्वरं । तत्तेजसा दिशो विभाकाशयममराद्वृत ॥ २७२ ॥ संप्राप्य मेरुमारोप्य शिलाया सिंहविष्टरं । अभिषिच्य ज्वलकुंभे क्षीरसागरवारिभि ॥ २७३ ॥ विशुद्धपुद्गलारब्धदेहस्य विमलात्मनः । शुद्धिरेतस्य कांभोभि दुष्टैरशुचिभिः स्वय ॥ २७४ ॥ चोदितास्तीर्थकृन्नाम्ना स्वाम्नायोयं समागत । इति कैंकर्यमस्यैत्य कृताभिषवणा वयं ॥ २७५ ॥ अल तदिति तं भक्त्या-विभूष्योद्यद्विभूषणैः । वीरः श्रीवर्द्धमानस्तेष्विव्याख्याद्वितय व्यधात् । ततस्त सममानीय सर्वामरसमन्वित । मातुरंके निवेश्योर्वीविहितानदनाटकः ॥ २७७ ॥ विभूष्य पितरौ चास्य तयोर्विहितसम्मदः । श्रीवर्द्धमानमानम्य स्वधाम समगात्सुरैः ॥ २७८ ॥ पार्श्वेशतीर्थसंताने पंचाशद्द्विशताब्दके । तद-भ्यतरवर्त्यायुर्महावीरोत्र जातवान् ॥ २७९ ॥ द्वासप्ततिसमाः किंचिदूनास्तस्यायुष स्थिति । ससारत्निमितोत्सेध सर्वलक्षणभूषित ॥ २८० ॥ नि स्वेदत्वा-

द्वारा) माताके समीप मायामयी बालक रखकर वह बालक गोदीमें लिया और उदय होते हुए सूर्यके समान दैदीप्यमान उस बालकको ऐरावत हाथीके कंधे पर विराजमान किया। उस बालकके तेजसे सब दिशाओंको प्रकाशित करता और देवोंसे घिरा हुआ वह इंद्र मेरुपर्वत पर पहुंचा और पांडुवनकी पांडुक शिला पर रक्खे हुए सिंहासन पर उन भगवान को विराजमान कर दैदीप्यमान सुवर्णके कलशों द्वारा क्षीर सागरका जल लाकर उनका अभिषेक किया ॥२७३॥ उन भगवानका शरीर विशुद्ध पुद्गलोंसे बना था फिर भला स्वयं अशुद्ध और दूषित जलसे उनकी शुद्धि कैसे हो सकती है ॥ २७४ ॥ पहिलेसे ही बंधे हुए तीर्थकर नाम कर्मके उदयके द्वारा प्रेरणा करनेसे अथवा हमलोगोंकी यह आम्नाय ही है इसीलिये आकर हमलोग इनके सेवक हुए हैं और यह अभिषेकका कार्य समाप्त किया है ॥ २७५ ॥ बहुत कहनेसे क्या? बडी भक्तिसे दैदीप्यमान आभूषणोंसे विभूषित कर उनके वीर और वर्द्धमान ऐसे दो नाम प्रसिद्ध किये ॥ २७६ ॥ तदनंतर सब देवोंके साथ साथ उन्हें घर लाये और उन्हें माताकी गोदमें विराजमान कर आनंद नाटक किया ॥ २७७ ॥ उन इंद्रादि देवोंने माता पिताको भी विभूषित कर प्रसन्न किया और फिर सब देव उन श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७८ ॥ श्रीपार्श्वनाथ तीर्थकरके बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्रीमहावीर स्वामी हुए उनकी आयु भी इसीमें शामिल है ॥ २७९ ॥ उनकी आयु कुछ कम बहत्तरि वर्षकी थी, सात अरत्नि (अरत्नि कुछ कम एक हाथ) ऊंचा शरीर था और वे सब लक्षणोंसे सुशोभित थे ॥ २८० ॥ उनके पसीना नहीं आना आदि दशगुण जन्मसे ही थे तथा सात मदोंसे वे रहित थे और सब तरहकी चेष्टासे वे सुशोभित थे

तामसि· ॥ २५८ ॥ सप्रासार्द्धासना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत् । सोपि तेषां फलं भावि यथाक्रममबूबुधत् ॥२५९॥ श्रुतस्वप्नफला देवी तुष्टा प्रासेव तत्फ-
ल । अथामराधिपा सर्वे तयोरभ्येत्य सपदा ॥ २६० ॥ कल्याणाभिषवं कृत्वा नियोगेषु यथोचित । देवान् देवींश्च संयोज्य स्वं स्व धाम ययुः पृथक् ॥
२६१ ॥ नवमे मासि संपूर्णे चैत्र मासे त्रयोदसी—दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यर्यमणिनामनि ॥ २६२ ॥ अलं कालः कुलस्यार्हत्सपदामाल्ययोजनि । आकरो
गुणरत्नानामाश्रयो विश्रुतश्रिया ॥२६३॥ भानुमान् वधुपद्मानां भुवनत्रयनायक । दायको मुक्तिसारूयस्य त्रायक सर्वदेहिनां ॥२६४॥ धर्मद्युतिर्भवध्वसी
मर्मवित् कर्मविद्विषां । धर्मतीर्थस्य धैरेयो निर्मल शमवारिधिः ॥ २६५ ॥ प्राचीव दिशि बालार्कं यामिन्यामिव चंद्रमा । पद्मात्सामिव गंगौघो धाव्यामिव
धनोत्करः ॥ २६६ ॥ वाग्वध्वामिव वाग्राशिर्लक्ष्म्यामिव सुखोदय । तस्या सुतोऽच्युताधीशो लोकालोकैकभास्कर ॥२६७॥ भानुगणा सुगणा च
तिरश्चां च चकार सा । तत्प्रसूत्या पृथुप्रीतिं तत्सत्यं प्रियक रिणी ॥ २६८ ॥ मुखाम्भोजानि सर्वेषां तदाकस्मादधुः श्रियं । प्रमुक्तानि प्रसूनानि प्रमोदाश्राणि

पालिया हो । तदनंतर सव इंद्रादि देव अपनी अपनी विभूतिके साथ आए और सवने कल्याणाभिषेकका उत्सव मनाया फिर अनेक देव देवियोंको यथायोग्य कामोंपर अलग २ नियुक्त किया और सव देव अपने अपने स्थानको चले गये॥ नौ महीने पूर्ण हो जानेपर चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नामके शुभ नक्षत्रमें जिसप्रकार पूर्व दिशासे उदय होता हुआ बालक सूर्य निकलता है रात्रिमें चंद्र निकलता है अथवा पद्मद्रहसे गंगाका समूह पडता है वा पृथ्वीसे धनसमूह निकलता है अथवा सरस्वतीसे वचनराशि निकलती है और लक्ष्मीसे सुखका उदय प्रगट होता है उसीप्रकार वह अच्युत देवका जीव प्रियकारिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ वह पुत्र कुलका अलंकार था, अरहंतकी संपदाओंका वर था, गुणरूपी रत्नों-का खजाना था, प्रसिद्ध लक्ष्मियोंका आश्रय था, भाई बंधु रूपी कमलोंके लिये सूर्य था, तीनोंलोकोंका नायक था, मोक्षरूपी सुखका देनेवाला था, सव प्राणियोंकी रक्षा करनेवाला था, सुवर्णके समान उसकी कांति थी, संसारको नाश करनेवाला था, धर्मरूपी तीर्थकी प्रवृत्तिमें मुख्य था, शांतताका निर्मल समुद्र था और सूर्यके समान लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला था ॥ २६०–२६७ ॥ उस प्रियकारिणीने उन भगवानको उत्पन्न कर देव मनुष्य और तिर्यंच सबके हृदयमें गाढ प्रेम प्रगट कर दिया था इसीलिये उसका प्रियकारिणी यह यथार्थ नाम पडगया था ॥ २६८ ॥ उससमय सबके मुखकमलोंने अकस्मात् शोभा धारण करली थी और स्वर्गसे आनंदके आसुओंके समान फूलोंकी वर्षा हो रही थी॥६९॥ उस समय नगाडोंके समूह वज रहे थे, स्त्रियोंके समूह नाच रहे थे, गानेवालोंके समूह गा रहे थे और वंदीगणोंका समूह पाठ कर रहा था ॥ २७० ॥ देवलोग अपने अपने स्थानको छोडकर नीचे उतर रहे थे, तदनंतर सौधर्म इंद्रने (इंद्रानी

हकः । शुक्लेश्याद्वयोपेतो द्वाविंशत्या स निश्वसन् ॥ २४७ ॥ पक्षैस्तावत्सहस्राब्दैराहरन्मनसामृत । सदा मनःप्रवीचारो भोगसारेण तृप्तवान् ॥ २४८ ॥
आषष्ठपृथिवीप्राप्तावधिविलोचनः । स्वावधिक्षेत्रसम्मेयबलाभाविक्रियावधि ॥ २४९ ॥ सामानिकादिभिर्देवैर्देवीभिश्च परिष्कृतः । पुण्योदयविशेषेण
मज्जतिस्म सुखाम्बुधौ ॥ २५० ॥ तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति । भरतेस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनांगणे ॥ २५१ ॥ राज्ञः कुण्डपुरेशस्य
वसुधाराप तत्पृथु । सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः सिद्धार्थस्य दिन प्रति ॥ २५२ ॥ आसाढस्य सिते पक्षे षष्ठ्यां शशिनि चोत्तरा षाढे सप्ततलप्रासादस्याभ्यतरव
र्तिनि ॥ २५३ ॥ नंद्यावर्तगृहे रत्नदीपिकाभिः प्रकाशिते । रत्नपर्यंकके हंसतूलिकादिविभूषिते ॥ २५४ ॥ रौद्रराक्षसगांधर्वयामत्रितयनिर्गमे । मनोहराह्वय-
तुर्यस्य यामस्याते प्रसन्नधीः ॥ २५५ ॥ दरनिद्रा व्यलोकिष्ट विशिष्टफलदायिनः । स्वप्नान् षोडश विच्छिन्नान् प्रियास्य प्रियकारिणी ॥ २५६ ॥ तदतेऽ
परं दन्त्य च गज वक्त्रप्रवेशिन । प्रभातपटहध्वानैः पठितैर्वंदिमागधैः ॥ २५७ ॥ मगलैश्च प्रवुध्याशु स्नाता पुण्यप्रसाधना । सा सिद्धार्थमहाराजमुपगम्य कृ

से वह सदा तृप्त रहता था ॥ २४७–२४८ ॥ छठवें नरक तक उसे अवधिज्ञान था और छठवें नरकतक ही वल कांति और विक्रिया आदि थी ॥ २४९ ॥ सामानिक आदि अनेक देव और अनेक देवियोंके साथ वह इंद्र अपने पुण्यकर्मके विशेष उदयसे सुखसागरमें स्नान करता था ॥२५०॥ जब उसकी आयु छह महीनेकी रहगई और वह स्वर्गसे अवतार लेनेके सन्मुख हुआ उससमय इसी भरतक्षेत्रके विदेह नामके देशमें कुंडलपुर नगरके राजा सिद्धार्थके घर प्रतिदिन साडे तीन करोड मणियोंकी भारी वर्षा होने लगी ॥ २५१–२५२ ॥ आसाढ शुक्ला षष्ठीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें वह राजा सिद्धार्थकी प्रिय रानी प्रियकारिणी प्रसन्न चित्त होकर सतखने राजभवनके भीतर रत्नोंके दीपकोंसे प्रकाशित होनेवाले नंद्यावर्त नामके राजभवनमें हंसके समान सफेद चादरसे सुशोभित ऐसे रत्नोंके बने हुए पलंगपर सो रही थी जब उस रातके रौद्र राक्षस और गांधर्व नामके तीन पहर निकल गये और मनोहर नामका चौथा पहर आया तब उसने कुछ सुलीसी नींदमें विशेष फल देनेवाले अलग अलग सोलह स्वप्न देखे ॥ २५३–२५६ ॥ सोलह स्वप्नोंके बाद उसने अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। तदनंतर सवेरेके वजनेवाले नगाडोंकी आवाजसे तथा मागधोंके द्वारा पढे हुए मंगल पाठोंको सुनकर वह जगी और स्नानादि कर उसने पवित्र वस्त्राभूषण पहिने। फिर वह महारानी महाराज सिद्धार्थके समीप पहुंची और उन्हें नमस्कार कर तथा उनके द्वारा दिये हुए आधे आसनपर विराजमान होकर उसने यथाक्रमसे सब स्वप्न सुना दिये। स्वप्न सुनकर महाराज सिद्धार्थने भी यथाक्रमसे उनका होनहार फल समझा दिया ॥ २५७–२५९ ॥ उन स्वप्नोंका फल सुनकर वह देवी ऐसी संतुष्ट हुई मानों उसने उसीसमय फल

२३५ ॥ विषये पुष्कलावत्यां घरेशः पुंडरीकिणी । पति सुमित्रविख्यातिः सुव्रताख्या मनोरमा ॥ २३६ ॥ प्रियमित्रस्तयोरासीत्तनयो नयभूषण । नाम्नैव नमिताशेषविद्विषश्चक्रिवर्तिता ॥ २३७ ॥ संप्राप्य भुक्तभोगांगो भगुरान् सर्वसंगमान् । क्षेमंकरजिनाधीशवक्त्रांभोजविनिर्गमात् ॥ २३८ ॥ तत्त्वगभंगमीरार्थव्याक्यान्मत्वा विरक्तवान् । सर्वमित्राख्यसूनौ स्व राज्यमारं निधाय सः ॥ २३९ ॥ भव्यभूपसहस्रेण सह संयममाददे । प्रतिष्ठानं यमात्तस्मिन्नवापंस्तेष्टमातृभिः ॥ २४० ॥ प्राते प्राप्तसहस्रारमभूत्सूर्यप्रभामरः । सुखाष्टदशवार्द्ध्यायुर्वृद्धर्द्धिसुखभोगकः ॥ २४१ ॥ मेघाद्विद्युद्विशेषो वा ततः स्वर्गाद्विनिर्गतः । छत्राकारपुरेऽत्रैव नंदिवर्द्धनभूभुज ॥ २४२ ॥ वीरवत्याश्च नंदाख्यस्तनूजः सुजनोजनि । निष्ठाप्येष्टमनुष्ठान स श्रेष्ठं प्रोष्ठिलं गुरुं ॥ २४३ ॥ संप्राप्य धर्ममाकर्ण्य निर्णीतार्थागमार्थकः । सयम संप्रपद्याशु स्वीकृतैकादशांगकः ॥ २४४ ॥ भावयित्वा भवध्वंसितीर्थकृन्नामकारणं । बद्ध्वा तीर्थकरं नाम सहोत्रगोत्रकर्मणा ॥ २४५ ॥ जीवितांते समासाद्य सर्वमाराधनाविधिं । पुष्पोत्तरविमानेभूदच्युतेंद्रः सुरोत्तमः ॥ २४६ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमेयायुररत्नित्रयदे-

हुए, तत्त्वोंके स्वरूपसे भरे हुए और गंभीर अर्थवाले वाक्योंको सुनकर सब परिग्रहोंको क्षणभंगुर समझा और विरक्त होकर सर्वमित्र नामके अपने पुत्रको राज्यका भार दिया और स्वयं एक हजार भव्य राजाओंके साथ संयम धारण किया उन प्रियमित्र मुनिराजमें पांच समिति और तीन गुप्ति इन आठ मातृकाओंके साथ अहिंसादि पांचों महाव्रतोंने अपना स्थान बना लिया था ॥ २३५–२४० ॥ अंतमें समाधि धारणकर वह सहस्रार स्वर्गमें सूर्यप्रभ नामका देव हुआ और वहांपर उसने अठारह सागरकी आयुतक वढी हुई ऋद्धियां और अनेक तरहके भोगोंका अनुभव किया ॥ २४१ ॥ जिस प्रकार मेघसे एक विशेष विजली निकल पडती है उसी प्रकार वह उस स्वर्गसे च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके छत्रपुर नगरके राजा नंदिवर्द्धनकी रानी वीरवतीसे नंदनामका सज्जन पुत्र उत्पन्न हुआ। इष्ट राज्यका अनुभवकर वह श्रेष्ठ प्रोष्ठिल नामके मुनिराजके समीप पहुंचा और धर्मका स्वरूप सुनकर उसने पदार्थ और शास्त्रोंके अर्थका निर्णय किया। तदनंतर उसने संयम धारण किया और वह ग्यारह अंगोंका पारगामी हुआ ॥ २४२–२४४ ॥ तदनंतर उसने संसारको नाश करनेवाली और तीर्थंकर नामकी कारण ऐसी सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन किया और ऊंचगोत्र कर्मके साथ तीर्थंकर नामकर्मका वंध किया ॥ २४५ ॥ आयुके अंतमें सव तरहकी आराधनाओंको विधिपूर्वक धारण किया और प्राण छोडकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें उत्तम इंद्र हुआ ॥ २४६ ॥ वहांपर उसकी वाईस सागरकी आयु थी, तीन हाथका शरीर था, द्रव्य और भाव दोनों ही शुक्ल लेश्याएं थीं, वाईस पक्षके वाद अर्थात् ग्यारह महीने वाद वह श्वांस लेता था वाईस हजार वर्ष वाद मानसिक अमृत आहार लेता था। वहांपर सदा मानसिक प्रवीचार था और उत्तम भोगों

प्रपातनात् । धीमन् विरम दुर्मार्गादारमात्महिते मते ॥ २०५ ॥ क्षेम चेदाप्तुमिच्छास्ति काम लोकाग्रधामनि । आप्तागमपदार्थेषु श्रद्धां धत्स्वेति तद्वच. ॥ २०६ ॥ विधाय हृदि योगींद्रयुग्मभक्तिभराहितः । मुहुः प्रदक्षिणीकृत्य प्रप्रणम्य मृगाधिप ॥ २०७ ॥ तत्त्वश्रद्धानमासाद्य सद्यः कालादिलब्धित । प्रणिधाय मन श्रावकव्रतानि समाददे ॥ २०८ ॥ दया मुनिगिरास्यती क्रूरतां तन्मनोविशत् । कालस्य बलमप्राप्य को विपक्ष निरस्यति ॥ २०९ ॥ स्थिररौद्ररस सद्य स शम समधारयत् । सच्चैलूषसमो मोहक्षयोपशमभावत ॥ २१० ॥ व्रत नैतस्य सामान्य निराहारं यतो विना । क्रव्यादन्योस्य नाहारः साहसं किमतः परं ॥ २११ ॥ व्रतं प्राणव्यपातेन यन्निर्व्यूढमखडित । ततोभूत्फलित शौर्यं प्राच्य तस्यैव घातकं ॥ २१२ ॥ तमस्तमःप्रभायां च खलु सम्यक्त्वमादिमं । निसर्गादेव गृह्णंति तस्मादस्मिन्न विस्मय ॥ २१३ ॥ निरुद्धसर्वदुर्वृत्त सर्वसद्व्रतसन्मुख. । प्रावर्तत चिरं धीरः समीप्सुः परम पदं ॥ २१४ ॥ संयमासयमादूर्ध्वं तिरश्चां नेति सूक्तं । रुद्धस्तेनान्यथा मोक्षेयुक्तेरावीत्स गोचर ॥ २१५ ॥ तच्छौर्यं क्रौर्यसंवीप्य किल सम्प्रति सक्षयं । कल-

छोड और अपने आत्माके हितमें लग ॥ २०५ ॥ यदि आत्माके कल्याण करनेकी तेरी इच्छा है और तू लोकके ऊपर विराजमान होना चाहता है तो तू आप्त आगम और पदार्थोंमें श्रद्धा रख । इसप्रकार उस सिंहने मुनिराजके वचन हृदयमें धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजकी भक्तिके भारसे नम्र होकर उसने प्रदक्षिणा दी, प्रणाम किया, काल आदि लब्धियोंके मिल जाने से शीघ्र ही तत्त्वश्रद्धान धारण किया और श्रावकोंके व्रत पालन करनेमें प्रेमपूर्वक अपना मन लगाया ॥ २०६–२०८ ॥ मुनिराजके वचनोंसे दयाने सिंहके मनसे क्रूरता सब निकाल फेंकी और वह स्वयं उसके मनमें जा बैठी सो ठीक ही है क्योंकि कालका बल प्राप्त किये विना विपक्षीको कौन दूर कर सकता है ॥ २०९ ॥ मोहनीय के क्षयोपशम होनेसे उस सिंहका रौद्ररस स्थिर हो गया और एक नटके समान उसने शीघ्रही शांतरस धारण कर लिया ॥ २१० ॥ उस सिंहने निराहारके सिवा और कोई सामान्य व्रत धारण नहीं किया क्योंकि मांसादिकके विना और उसका कोई आहार था ही नहीं । इससे अधिक भला और साहस क्या हो सकता है ? ॥२१०॥ उस सिंहने अपने प्राण नष्ट कर भी अपना व्रत अखंडित रीतिसे पालन किया इसीलिये उसकी पहिली शूरवीरता फलीभूत हुई और वही कर्मोंकी घातक हुई ॥ २१२ ॥ सातवें नरकके नारकी उपशम सम्यक्त्वको स्वभावसे ही ग्रहण कर लेते है इसलिये सिंहके सम्यक्त्व ग्रहण करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २१३ ॥ मोक्षपद की प्राप्त करने की इच्छा करने वाले उस धीर वीर ने सब दुराचरण छोडदिये और बहुत दिन तक वह सब तरहके सम्यक व्रतोंके संमुख होकर रहने लगा ॥ २१४ ॥ तिर्यचोंको संयमासंयमसे मोक्ष प्राप्त नहीं होती है ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है इसीलिये वह सिंह रुक गया था अन्यथा वह अवश्य

...। सानावभून्मृगाधीशः। पापिंस्तत्त्वं न जानासीत्याकर्ण्य तदुदीरितं ॥ १९४ ॥ सद्यो जातिस्मृतिं गत्वा घोरसंसारदुःखजात्। भयाच्चलितम-... गलन्नेत्रयुगेनामा... ॥ लोचनाभ्यां हरेर्वाष्पसलिलं न्यगलच्चिरं। सम्यक्त्वाय हृदि स्थानं मिथ्यात्वमिव दित्सु तत् ॥ १९६ ॥ प्रत्यासन्नवि-नेयानां स्मृतप्राग्जन्म ... । पश्चात्तापेन य शोकः संसृतौ स न कस्यचित् ॥१९७॥ हरिं शांततरंगत्वात्स्वस्मिन् बद्धनिरीक्षणं। विलोक्य हितग्रही-त्याहैव स मुनिः पुनः ॥ १९८ ॥ पुरा पुरूरवाभूत्वा धर्मात्सौधर्मकल्पजः। जातस्ततोवतीर्यात्र मरीचिरतिदुर्मतिं ॥ १९९ ॥ सन्मार्गदूषणं कृत्वा कुमा-र्गममिवर्द्धयन्। वृषभस्वामिनो वाक्यमनादृत्याजवंजवे ॥ २०० ॥ भ्रांतो जातिजरामृत्युसंचये पापसंचयात्। विप्रयोगं प्रियैर्योगमप्रियैराप्नुवंश्चिरं ॥२०१॥ अपरंच महद्दुःखं बृहत्पापोदयोदितं। त्रसस्थावरसंभूतावसंख्यातसमा भ्रमन् ॥ २०२ ॥ केनापि हेतुनावाप्य विश्वनंदित्वमाप्तवान्। संयमं तन्निदानेन त्रिपृ-ष्ठत्वमुपेयिवान् ॥ २०३ ॥ इतोस्मिन् दशमे प्राप्ते भवेंत्यस्तीर्थकृद्भवान्। सर्वमाश्रावि तीर्थेशान्मयेदं श्रीधराह्वयात् ॥ २०४ ॥ अथ प्रभृतिससारघोरारण्य

वचन सुनकर उस सिंहको उसीसमय जातिस्मरण होगया तथा संसारके घोर दुःखोंके भयसे उसका सब शरीर कंपायमान होने लगा और उसके नेत्रोंसे आंसू पडने लगे ॥ १९४–१९५ ॥ उस सिंहके दोनों नेत्रोंसे बहुत देर तक आंसुओंकी धारा वहने लगी और वह ऐसी मालूम होने लगी मानों हृदयमें सम्यक्त्वको जगह देनेके लिये मिथ्यात्व ही निकलरहा हो ॥ ९६ ॥ आसन्न भव्योंको पहिले जन्मोंका जाति स्मरण हो जानेपर पश्चात्तापके द्वारा जो शोक होता है वह संसारमें अन्य किसीको नहीं हो सकता ॥ १९७ ॥ तदनंतर मुनिराजने देखा कि अंतरंग शांत होजानेसे वह सिंह अपनी ओर (मुनिराजकी ओर) ही दृष्टि लगाये है उसे इसतरह देखकर उन्होंने समझा कि अब यह अपना हित ग्रहण कर सकता है इसलिये वे फिर कहने लगे ॥ १९८ ॥ पहिले तू पुरूरवा भील हुआ था फिर धर्मसेवनकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ और वहांसे आकर तू इसी भरतक्षेत्रमें अत्यंत दुर्मति मारीचि हुआ था ॥ १९९ ॥ उस पर्यायमें तैने मन्मार्गको दोष लगाया था और कुमार्ग की वृद्धि की थी। श्रीवृषभदेव तीर्थंकर के वाक्योंका अनादर कर तैने संसारमें परिभ्रमण किया। पापोंका संचय करने से जन्म मरण बुढापा आदि अनेक दुःखोंका संचय किया तथा इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के दुख बहुत दिन तक अनुभव किये ॥ २००–१ ॥ इसके वाद भी महापापोंके उदयसे अनेक वडे वडे दुःख भोगे और असंख्यात वर्ष तक त्रस स्थावर योनियोंमें परिभ्रमण किया ॥२०२॥ किसी कारणके मिलजानेसे विश्वनंदी हुआ, संयम धारण किया और निदानकर त्रिपृष्ठ हुआ ॥२०३॥ अब इस भवसे दशवें भवमें तू अंतिम तीर्थंकर होगा यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकरसे सुना है ॥ २०४ ॥ अवतक तू संसाररूपी घोर वनमें पडा रहा है बुद्धिमान् अब तू इस दुर्मार्गको

छोसि तमस्तम ॥ १८२ ॥ भीमां वैतरिणीं तत्र प्रज्वलद्वारिपूरितां । प्रवेशितोसि पापिष्ठैः प्राक् शक्त्या कृनमज्जन ॥ १८३ ॥ ज्वलज्ज्वालकरालोरुधासं- दर्गंोपलाचले । प्रधावितोसि तदंकछिन्नछिन्नाखिलांगकः ॥ १८४ ॥ कदववालुकातापप्लुष्टांङ्गवयवोप्यभूः । प्रज्वलच्चितिकाक्षिप्तो भस्मसाद्भावमागतः ॥ १८५ ॥ तप्तायःपिंडनिर्घातैस्तैश्च सचूर्णितोप्यभू. । निस्त्रिंशच्छदसच्छन्नवनेषु भ्रांतवान् मुहु ॥ १८६ ॥ नानापक्षिमृगैः कालकौलेयककुलैरल । परस्पराभि- घातेन ताडनेन च पीडितः ॥ १८७ ॥ वद्ध्वा वहुविधैर्वधैर्निष्ठुरं निष्ठुराशयैः । कर्णोष्ठनासिकादीना छेदनैर्वाधितो भृश ॥१८८॥ पापैः समानशूलाना- मारोपणमवापि च । एव वहुविध दु खमवशोनुभवश्चिरं ॥ १८९ ॥ प्रलापाक्रंदरोदादिवाग्भिरुद्धहरिद्वृथा । शरण प्रार्थयन् दन्यादप्राप्यातीव दु खितः ॥ १९० ॥ स्थायु ते विनिर्याय ततो भूत्वा मृगाधिपः । क्षुत्पिपास दिमिवैतातपवर्षादिमिश्च विक् ॥ १९१ ॥ व्याध्यमानः पुन प्राणी हिंसया मासमाहर- न् । क्रूरः पाप समुल्लिख्य पृथिवीं प्रथमामगा ॥ १९२ ॥ ततोपीह समुद्भूय क्रौर्यमेव समुद्वहन् । महदह समावर्ज्य दुःखायोत्सहसे पुन ॥ १९३ ॥

छिन्न भिन्न हो जाया करता था ॥ १८४ ॥ कदंबवृक्षोंके तलवारके समान पत्तोंसे और गर्म वालूसे तेरे शरीरके सव अ- वयवोंको क्लेश होता था तथा वे नारकी तुझे जलती हुई चितामें पटक देते थे इसलिये तेरा शरीर बिल्कुल भस्म हो जाता था ॥ १८५ ॥ बडे प्रचंड और गर्म किये हुए लोहेके घनोंकी चोटसे तेरा चूर्ण किया जाता था और तलवारके समान तीक्ष्ण पत्तोंसे भरे हुए वनमें तू बार बार घुमाया जाता था ॥ १८६ ॥ अनेक तरहके पक्षी बनपशु और कालके समान कुत्तोंके द्वारा तू बहुत दुखी किया जाता था और परस्परकी ताडना तथा चोटसे तुझे बहुत ही पीडा पहुंचाई जाती थी ॥ १८७ ॥ निष्ठुर हृदयके नारकी वडी कठोरतासे तुझे अनेक तरहसे बांधते थे और कान नाक ओठ आदि काटकर तुझे बार बार दुःख पहुंचाया करते थे ॥ १८८ ॥ पापोंके समान अनेक तरहके शूलोंपर तुझे बिठाते थे और इसतरह परवश होकर तेने बहुतदिनतक अनेक नरकके दुःखोंका अनुभव किया था ॥ १८९ ॥ प्रलाप आक्रंदन रोना आदि वच- नोंके द्वारा तेने व्यर्थ ही सब दिशाएं रोकली थीं और दीनतासे शरणकी प्रार्थना करते तेने बहुत ही दुख पाया था१९० वहांकी आयु समाप्तकर तू वहासे निकला और सिंह हुआ वहांपर भी तेने भूख प्यास वायु गर्मी वर्षा आदिके अनेक दुःख सहे तथा अनेक प्राणियोंकी हिंसाकर मांस खाया और इसतरह उस क्रूर पर्यायमें अनेक तरहके पाप कर तू मरकर पहिले नरकमें [illegible] ॥ १९१-१९२ ॥ वहांसे निकलकर तू फिर यहां आकर सिंह हुआ है यहां भी तू इसतरहकी क्रूर- ताके काम [illegible] तू बडे भारी पापोंका उपार्जनकर दुखोंकेलिये फिर उत्साह करता है ॥ १९३ ॥ अरे पापी तेरा अज्ञान [illegible] हुआ है उसीके प्रभावसे तू तत्त्वोंको नहीं जानता है। इसप्रकार मुनिराजके कहे हुए

हिमवद्गिरेः । सानावभून्मृगाधीशो ज्वलत्केसरभासुरः ॥ १७१ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्राकरालाननः कदाचिद्विभीषण । कंचिन्मृगमनष्टस्य भक्षयन् स समीक्षित ॥ १७२ ॥ अभेगितगुणेनामा गच्छतातिरूप छना । अजितंजयन म प्रचारणेन मुनीश्चिना ॥ १७३ ॥ स मुनिस्तीर्थनाथोक्तमनुस्मृत्यानुकम्पया । अवतीर्य नभोभागं समासाद्य मृगाधिपं ॥ १७४ ॥ शिलातले निवेश्योचैर्धर्म्यां वाचमुदाहरत् । भो भव्य मृगाधीश त्वं त्रिपृष्टभवे पुरा ॥ १७५ ॥ परार्ध्यं पंचधा प्रोक्त मृदुशय्यातले चिरं । स्वैरं कातामिरिष्टाभिरमीष्ट सुखमन्वभूः ॥ १७६ ॥ दिव्यं सर्वरसं भोज्य रसनेंद्रियतर्पणं । सर्द्धमानममुक्ताः प्राक् सुत्रामृतरमायनैः ॥ १७७ ॥ धूपानुलेपनैसल्यैश्चूर्णैर्वामा सुगंधिमि । तोषितं सुचिरं तत्र त्वया घ्राणपुटद्वयं ॥ १७८ ॥ रसभावसमाविष्ट त्रिचित्रकरणोचिन । वृत्तं निरीक्षितं चित्रमगनामिः प्रयोजित ॥ १७९ ॥ शुद्धदेशजभेद तत् षड्गादिस्वरसप्तकं । चेतनेतरमिश्रत्थं पूरितं कर्णयोर्द्वयो ॥ १८० ॥ त्रिखंडम-डितक्षेत्रे जातं सर्वं ममैव तत् । इत्याभिमानिकं सौख्यं मनसा चिरमन्वभूः ॥ १८१ ॥ एव वैषयिक सौख्यमनुभूयाप्यतृप्तवान् । श्रद्धापचव्रतापेत प्रवि-

राज अमित गुणके साथ आकाशमार्गसे जा रहे थे ॥ १७२-१७३ ॥ वे मुनिराज तीर्थंकरके वचनोंका स्मरणकर दयाकर आकाशसे उतरे और उस सिंहके पास आकर शिलापर विराजमान हुए वे जोर जोरसें धर्मोपदेश देने लगे और कहने लगे कि हे भव्य सिंह पहिले त्रिपृष्टके भवमें तेने वहुमूल्य पांचों इंद्रियोंके विषयोंका अनुभव किया है वहुत दिनतक कोमल शय्यापर अभीष्ट स्त्रियोंके साथ इच्छानुसार स्वतंत्रता पूर्वक सुखों का अनुभव किया है रसनेंद्रिय को तृप्त करनेवाले सव तरहके दिव्य रसोंका भोग किया है और अमृत रसायनके साथ साथ स्पर्द्धा करनेवाले व्यंजनोंका स्वाद लिया है ॥१७४-७७॥ सुगंधित धूपका लेपकर तथा सुगंधित चूर्ण वास मालाएं आदिके द्वारा वहुत दिन तक नाकके दोनों घोणा संतुष्ट किये ॥ १७८ ॥ इसीतरह सव रसोंसे भरा हुआ निवर्तन, आवर्तन भ्रमण, वलगन प्लुवन, आदि कारणों से उत्पन्न हुआ और ललनाओं के द्वारा किया हुआ अनेक तरहका नृत्य देखा ॥ १७९ ॥ शुद्ध देशज आदि जिसके भेद हैं जो षड्ग आदि सात स्वरोंसे उत्पन्न हुए हैं और चेतन अचेनन वा दोनोंसे प्रगट हैं ऐसे गीतोंसे दोनों कान पूर्ण किये ॥ १८० ॥ तीन खंडमें जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सव मेरा है ऐसा अभिमान जन्य सुख भी मनमें वहुत दिनतक अनुभव किया ॥ १८१ ॥ इसतरहके विषयोंका सुख अनुभव कर भी तू तृप्त नहीं हुआ और सम्यग्दर्शन तथा पांचों व्रतोंके विना तुझे सातवें नरकमें जाना पडा ॥ १८२ ॥ वहांपर जो जलते हुए जलसे भरी हुई वैतरणी नदी है उसमें पापी नारकियोंके द्वारा तू घुसाया गया और जबर्दस्ती तुझे स्नान करना पडा ॥१८३॥ उस दुखसे वचनेकेलिये तू जलती हुई अग्निसे जिसके पत्थरके टुकडे उछल उछलकर पड रहे हैं ऐसे पर्वतपर दौडता था परंतु वहांपर भी तेरा सव शरीर टांकीसे

आश्वैरथैर्गजैश्च पदातिपरिवारितैः । यथोक्तविहितव्यूहैर्युयुध्येतां महाबलैः ॥ १६० ॥ गज कंठीरवेणेव वज्रेण च महाचल । भास्करेणांधकारो वा त्रिपृष्ठेन पराजित ॥१६१॥ स विलक्षो हयग्रीवो मायायुद्धेपि निर्जित । चक्र संप्रेषयामास त्रिपृष्ठमभिनिष्ठुरं ॥ १६२ ॥ तत्तु प्रदक्षिणीकृत्य मक्षु तद्दक्षिणे भुजे । तस्थौ सोपि तदादाय रथ प्रत्यक्षिपत्क्रुधा ॥ १६३ ॥ खडद्वयं हयग्रीवग्रीवा सद्यो व्यधादद । त्रिखंडाधिपतित्वेन त्रिपृष्ठं चार्द्धचक्रिण ॥ १६४ ॥ विजयेनावलब्धेन विजयेनैव चक्रभृत् । विजयार्द्धं समं गत्वा रथनूपुरभूपतिं ॥ १६५ ॥ श्रेणिद्वयाधिपत्येन प्रापयच्चक्रवर्तिता । प्रभोरभू फलस्यात्र व्यक्तिः कोपप्रसादयोः ॥ १६६ ॥ राज्यलक्ष्मीं चिर भुक्त्वाप्यतृप्त्वा भोगकांक्षया । मृत्वागात्सप्तमीं पृथ्वीं बह्वारंभपरिग्रहः ॥ १६७ ॥ परस्परकृत दु ख मनुभूय चिरायुषा । स्वधात्रीकृतदुःख च तस्मान्निर्गत्य दुस्तरात् ॥ १६८ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते गगानदीतटसमीपगे । वने सिंहगिरौ सिंहो भूत्वासौ वृहितांहसा ॥ १६९ ॥ रत्नप्रभां प्रविश्यैव प्रज्वलद्वन्हिभासवान् । दुःखमेकाब्धिमेयायुस्ततश्च्युत्वा पुनश्च सः ॥ १७० ॥ द्वीपेस्मिन् सिंहकूटस्य प्राग्भागे

कर डालता है और सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार त्रिपृष्ठने अश्वग्रीवको हरा दिया ॥ १६१ ॥ जब आश्चर्य से चकित हुआ अश्वग्रीव मायायुद्धमें भी हार गया तब उसने त्रिपृष्ठ पर अत्यन्त कठोर चक्र चलाया ॥१६२॥ वह चक्र त्रिपृष्ठकी प्रदक्षिणा देकर शीघ्र ही उसकी दाहिनी भुजापर आ ठहरा वही चक्र त्रिपृष्ठने क्रोधित होकर अश्वग्रीवपर चलाया उसने जातेही अश्वग्रीवकी ग्रीवाके दो टुकडे कर दिये । त्रिखंडका अधिपति होनेसे त्रिपृष्ठको अर्द्ध चक्रीका पद मिला ॥ १६३—१६४ ॥ विजय करनेवाली सेना तथा भाई विजयके साथ वह चक्रवर्ती विजयार्द्ध पर्वतपर गया और रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीको दोनों श्रेणी के चक्रवर्तीका पद दिया सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके क्रोध और प्रसन्न होनेका फल यहांही प्रगट मिल जाता है ॥ १६५—१६६ ॥ उस त्रिपृष्ठने बहुत दिन तक राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया परंतु भोगोंकी आकांक्षा से वह तृप्त नहीं हुआ इसलिये बहुआरंभ परिग्रही होनेसे वह मरकर सातवें नरक गया ॥ १६७ ॥ वहां बहुत दिनतक परस्पर किये हुए अनेक दुःखोंका अनुभव किया और वहां की पृथ्वी सम्बंधी अनेक दुःखोंका अनुभव किया । तदनंतर उस कठिन भूमिसे निकल कर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें गंगा नदीके किनारे सिंहगिरि पर्वतपर बढे हुए पापोंके कारण वह सिंह हुआ वहांसे मरकर फिर जलती हुई अग्निके समान पहिले नरकमें गया वहांपर एक सागरकी आयु तक अनेक दुःख भोगे और फिर वहांसे निकलकर इसी जंबूद्वीपमें सिंहकूटके पूर्वकी ओर हिमवान पर्वत की शिखरपर देदीप्यमान केसरसे सुशोभित सिंह हुआ ॥ १६८—१७१ ॥ उसकी दाढें तीक्ष्ण थीं मुख कराल था और वह बडाही भयंकर था । किसी एक समय वह एक हिरणको मार कर खा रहा था उसीसमय अत्यंत कृपालु चारण मुनि अजितंजय मुनि-

विधेयो बाधुना मया ॥ १४८ ॥ लब्धा चास्त्यावयोरत्र पारंपर्यसमागतः । न कार्यं वंशयोरथ गुणदोषपरीक्षणं ॥ १४९ ॥ विश्रुतयोः प्रसिद्धत्वात्प्राक् चं-
द्रादित्ययोरिव । पूज्य मद्भागिनेयस्य त्रिपृष्ठस्य स्वयप्रभा ॥ १५० ॥ मत्सुता भामिनीवास्य लक्ष्मी' खत्रयोद्भता । आतनोतु रतिं स्वस्यां स्वमताद् भूयसी-
मिति ॥ १५१ ॥ प्रजापतिमहाराजः श्रुत्वा तद्बंधुभाषितं । मया तेनेष्टमेवेष्टमित्यमात्यमतोषयत् ॥ १५२ ॥ सोपि संप्राप्तसंमानदानस्तेन विसर्जितः ।
सद्यः संप्राप्य तत्सर्वं स्वमहीशं न्यवेदयत् ॥ १५३ ॥ ज्वलनादिजटी चाशु सार्ककीर्तिः स्वयप्रभां । आनीय सर्वसंपत्या त्रिपृष्ठाय समार्पयत् ॥ १५४ ॥
यथोक्तविधिना सिंहवाहिनीं गरुडादिकां । वाहिनीं च ददौ सिद्धविद्यै विदितशक्तिके ॥ १५५ ॥ चारोपनीततद्वार्ताज्वलनज्वलिताशय । विद्यात्रितयसंपन्नै-
र्विद्याधरधराधिपैः ॥ १५६ ॥ अवन्यरम्यमित्रीणैरायुधीयैर्भटैर्वृतैः । रथावर्ताचल प्रापदश्वग्रीवो युयुत्सया ॥ १५७ ॥ तदागमनमाकर्ण्य चतुरंगबलान्वि-
तः । प्रागेवागत्य तत्रास्थात्रिपृष्ठो रिपुनिष्ठुरः ॥ १५८ ॥ क्रुद्ध्वा तौ युद्धसन्नद्धावुद्धतौ रुद्धभास्करौ । स्वय खचन्निवसिः सार्द्धं शरसंघातवर्षणै ॥१५९॥

अपनी पुत्री स्वयंप्रभा देना चाहता हूं वह इसकी स्त्री होकर तीनखंडमे उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान अपने आप अपनेमें व-हुतसा प्रेम उत्पन्न करेगी ॥१५१॥ महाराज प्रजापति अपने भाईके ऐसे वचन सुनकर उस मंत्रीको संतुष्ट करनेके लिये कहने लगे कि जो ज्वलनजटीको इष्ट है वह मुझे इष्ट ही है ॥ १५२ ॥ इसतरह संतुष्टकर तथा वहुतसा आदरसत्कार कर उसे विदा किया । उस मंत्रीने भी शीघ्रही जाकर अपने राजासे सब समाचार निवेदन किये ॥ १५३ ॥ ज्वलनजटी अर्क-कीर्तिके साथ शीघ्रही आया और स्वयंप्रभाको लाकर बडी विभूतिके साथ त्रिपृष्ठको व्याह दी ॥ १५४ ॥ इसके साथ साथ ज्वलन जटीने त्रिपृष्ठको शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जिनकी शक्ति प्रसिद्ध है और जो सिद्ध हैं ऐसी सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी दो विद्याएं दीं ॥ १५५ ॥ इधर अश्वग्रीवने यह सब अपने दूतोंसे सुनी जिससे उसका हृदय क्रोधरूपी अग्निसे जल उठा तथा वह युद्ध करनेकी इच्छासे तीनों तरहकी विद्याओंसे सुशोभित ऐसे अनेक विद्याधर राजाओंके मार्गमें चलनेवाली सेना, शत्रुके सामने जाकर पराक्रम दिखानेवाले योद्धा और शस्त्र आदिसे युक्त अनेक योद्धाओंके साथ रथावर्त पर्वतपर आ पहुंचा ॥ १५६-१५७ ॥ अश्वग्रीवकी चढाई सुनकर शत्रुओंके लिये अत्यंत कठोर ऐसा त्रिपृष्ठ कुमार भी अपनी चारों तरहकी सेना साथ लेकर तथा उससे पहिले आकर वहां आ डटा ॥ १५८ ॥ ये दोनों ही उद्धत होकर घिरे हुए सूर्यके समान क्रोधित होकर युद्धके लिये तैयार हुए तथा अनेक बाणोंकी वर्षा करने वाले धनुर्धारी अश्वारोही रथसवार, हाथीसवार और पैदल चलने वाले आदि लोगोंको चारों ओर कर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार व्यूहकी रचना कर वडी भारी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ १५९-१६० ॥ जिसप्रकार सिंह हाथीको भगा देता है वज्र वडे पर्वतको भी चूर्ण

भूषणं । योषित्सर्गे कृतार्थत्वं स्वया सावनयद्विधिं ॥ १३७ ॥ तां वीक्ष्यापूर्णसौंदर्यां समीपीकृतचित्तजां । पिता वितरितुं कस्य योग्येयमिति चिंतयन् ॥ १३८ ॥ तदैवाहूय संभिन्नश्रोतारं तत्प्रयोजन । अपृच्छत्स निमित्तेषु कुशलः समभाषत ॥१३९॥ केशवस्यादिमस्येयं महादेवी भविष्यति । त्वमप्याप्स्यसि तद्दत्तां खगानां चक्रवर्तितां ॥ १४० ॥ इति तद्वचनं चित्ते प्रत्येयमवधार्य स । अमात्यमिंद्रनामानं भक्तिकं सुश्रुतं शुचिं ॥ १४१ ॥ सलेखं प्राभृतं दत्वा प्राहिणोत्पोदनं प्रति । गत्वाविलंबितं सोपि वने पुण्यकरंडके ॥ १४२ ॥ पोदनाधिपतिं स प्रणाममालोक्य पत्रकं । सप्राभृतं प्रदायास्मै यथास्थानमुपाविशत् ॥ १४३ ॥ विलोक्य मुद्रामुद्भिद्य तदंतस्थितपत्रकं । प्रसार्य वाचयामास नियुक्तः संधिविग्रहे ॥ १४४ ॥ श्रीमानितः खगाधीशो निजलोकशिखामणिः । स्वानुरक्तप्रजो राजा नगराद्रथनूपुरात् ॥ १४५ ॥ ज्वलनादिजटी ख्यातो नमिवंशावरांशुमान् । पोदनाख्यपुराधीशं प्रजापतिमहानृपं ॥ १४६ ॥ आदिभट्टारकोत्पन्नबाहुबल्यन्वयोद्भवं । प्रणम्य शिरसा स्नेहात्कुशलप्रश्नपूर्वकं ॥ १४७ ॥ सप्रश्रयं प्रजानाथमित्थं विज्ञापयत्यसौ । वैवाहिकः स संबंधो

करने लगा कि यह किसको देनी चाहिये किसके योग्य है ॥ १३८ ॥ उसी समय उसने संभिन्नश्रोता नामके पुरोहितको बुलाया और उससे प्रयोजन पूछा वह पुरोहित निमित्तशास्त्रमें बहुत ही कुशल था इसलिये कहने लगा कि यह स्वयंप्रभा पहिले नारायणकी पट्टरानी होगी और आप भी उस नारायणके द्वारा दिये हुए विद्याधरोंके चक्रवर्ती पदको अर्थात् सब विद्याधरोंके अधिपतिका पद प्राप्त करेंगे ॥ १३९–१४० ॥ उसकी इसप्रकार विश्वास करनेयोग्य वात चित्तमें धारणकर उसने पवित्र हृदयवाले, शास्त्रोंके जानकार और राजभक्त ऐसे इंद्र नामा मंत्रीको बुलाया तथा लेख और भेट देकर उसे पोदनपुर भेजा । वह शीघ्रतासे जाकर पोदनपुर जा पहुंचा उससमय पोदनपुरका अधिपति पुण्यकरंड वन में था । मंत्रीने राजाको प्रणाम किया, पत्र दिया, भेट दी और फिर अपने योग्य स्थानपर जा बैठा ॥ १४१–१४३ ॥ राजा प्रजापतिने मुहर देखकर वह पत्र खोला और भीतरका पत्र निकालकर बांचा । उसमें लिखा था कि संधि विग्रहमें नियुक्त, विद्याधरोंका स्वामी, अपने लोकका शिखामणि, अपनी प्रजाको प्रसन्न करनेवाला महाराज नमिके वंशरूपी आकाशका सूर्य श्रीमान् प्रसिद्ध राजा ज्वलनजटी रथनूपुर नगरसे पोदनपुर नगरके स्वामी, भगवान वृषभदेवके पुत्र बाहुबली के वंशमें उत्पन्न हुए महाराज प्रजापतिको शिरसे नमस्कार कर बडे प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछता है तथा महाराज प्रजापति को बडी विनयके साथ यह निवेदन करता है कि इससमय आपको हमारे साथ वैवाहिक संबंध कर लेना चाहिये हमारा आपका यह संबंध परंपरासे चला आया है इसलिये इसमें आज बंशके गुण तथा दोषों की परीक्षा करनी भी आवश्यक नहीं है क्योंकि सूर्य चंद्रमाके समान हम दोनों वंशोंकी विशुद्धि जगत्प्रसिद्ध है । हे पूज्य ! मैं अपने भानजे त्रिपृष्टके लिये

रतिमिच्छतः । किं सिंह इव निर्भीको नमितामरमस्तकः ॥ १२६ ॥ जित्वा ज्योत्स्नां सितश्रेणीं हृदिहानिमतीं चिरं । कीर्तिरस्याखिलं व्याप्य भातीवी वेष-
सः स्थिता ॥ १२७ ॥ उदक्श्रेण्यां खगाधीशो मयूरग्रीवनामभाक् । नीलांजना प्रिया तस्यामूत्तयोरलकापुरे ॥ १२८ ॥ विशाखनंद संसारे चिरं भ्रां-
त्वातितु स्थितः । अश्वग्रीवाभिधः सूनुरजनिष्टापचारवान् ॥ १२९ ॥ ते सर्वेपि पुरोपात्तपुण्यपापविशेषिनः । अभीष्टकामभोगोपभोगैस्तृप्ताः स्थिताः
सुखं ॥ १३० ॥ इतः खेचरभूभर्तुर्दक्षिणश्रेण्यलंकृतिः । रथनूपुरशब्दादिचक्रवालपुरी परा ॥ १३१ ॥ ज्वलनादिजटी पाति तां स वा पाकशासनः । कुल-
साधितसंप्राप्तविद्या त्रयविभूषित ॥ १३२ ॥ प्रतापोपनताशेषापाच्छ्रेणिखचरेशिनां । विनम्रमौलिमालाभिरलंकृतपदाम्बुजः ॥ १३३ ॥ वायुवेगा प्रिया तस्य
चन्द्राभखचरेशिनः । सुभद्रायाश्च तनया पुरे द्युतिलकाह्वये ॥ १३४ ॥ अर्ककीर्तिस्तयो सूनुः प्रतापेनार्कजित् सुधी । सुता स्वयंप्रभाख्याभात् प्रभयेव महा-
मणिः ॥ १३५ ॥ स्त्रीलक्षणानि सर्वाणि शस्तान्यापादमस्तक । उदाहरणतामापन् व्याप्य व्यक्तानि तत्तनु ॥ १३६ ॥ संप्राप्य यौवनं तन्वी भूषणानां च

वह सब संसारमें व्याप्त होकर फैल गई थी ॥ १२७ ॥ इधर विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके अलकापुर नगरमें मयूरग्रीव नामका विद्याधरोंका राजा रहता था उसकी रानीका नाम नीलांजना था उसके विशाख नंदका जीव बहुत दिन तक संसारमें परिभ्रमण कर तथा बहुत दुःखी होकर अनेक दुराचार करनेवाला अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ था॥१२८–१२९॥ वे सब अपने अपने पुण्य पाप कर्मोंके अनुसार इच्छानुसार कामभोग उपभोग आदिसे तृप्त होकर सुखसे रहते थे॥१३०॥ इन्हींदिनों विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीको अलंकृत करनेवाली रथनूपुरचक्रवाल नामकी उत्तम नगरी थी उसमें इंद्रके समान ज्वलनजटी नामका विद्याधर राज्य करता था तथा कुलपरंपरासे चली आई सिद्धकी हुई तथा प्राप्त ऐसी तीनों विद्याओंसे वह विभूषित था ॥ १३१–१३२ ॥ उसने अपने प्रतापसे दक्षिण श्रेणीके सब विद्याधर नवा लिये थे और उनके नवे हुए मुकुटमालासे उसके चरण कमल सदा सुशोभित रहते थे ॥ १३३ ॥ उसकी रानीका नाम वायुवेगा था जो कि द्युतिलक नगरके विद्याधर राजा चंद्रमाकी रानी सुभद्राकी पुत्री थी ॥ १३४ ॥ उस वायुवेगाके अर्ककीर्ति नामका पुत्र था जो कि प्रतापसे सूर्यको भी जीतता था और बुद्धिमान था तथा उसी वायुवेगाके कांतिके द्वारा महामणिके समान सुशोभित होनेवाली स्वयंप्रभा नामकी पुत्री थी ॥ १३५ ॥ उस स्वयंप्रभाके शरीरमें सिरसे पैर तक सब स्त्रियोंके प्रशंसनीय सुलक्षण थे जो कि उसके शरीरमें व्याप्त होकर अत्यन्त उदाहरण बने थे ॥ १३६ ॥ आभूषणोंको भी सुशोभित करनेवाले यौवनको पाकर उस स्वयंप्रभाने स्त्रियोंको बनानेमें विधाताको भी स्वयं कृतार्थ किया था ॥ १३७ ॥ पूर्ण सुंदरी और कामावस्थाके समीप पहुंचनेवाली उस कन्याको देखकर उसका पिता ज्वलनजटी विचार

११४ ॥ नयप्रसूतसद्दुगोचेनुप्रतिपातनात । प्रस्खलत समीक्ष्यैनं मुनिं कोपपरायण ॥ ११५ ॥ तवाद्य तच्छिलास्तंभभंगदृष्टः पराक्रम । क्व यात इति दुश्चितः परिहासं व्यधादसौ ॥ ११६ ॥ मुनिश्च तद्वचश्चेतस्यवधार्य प्रकोपवान् । परिहासफल प्राप्नुषीति स्वांतर्गत वदन् ॥ ११७ ॥ सनिदानो भवप्रांते कृतसंन्यसनक्रिय· । स्वय विशाखभूतिश्च महाशुक्रमुपाश्रितौ ॥ ११८ ॥ तत्र षोडश वाराशिमानमेयायुषौ चिरं । भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युत्वा द्वीपेस्मिन्नेव· भारते ॥ ११९ ॥ सुरम्यविषये रम्ये पोदनाख्यपुरे नृप । प्रजापतिर्महाराजोऽजनि देवी जयावती ॥ १२० ॥ तस्यासीदनयोः सूनुः पितृव्यो विश्वनदिन । विजयाख्यस्ततोस्यैव विश्वनय्प्यनतरं ॥ १२१ ॥ मृगावत्यामभूत्पुत्रः त्रिपृष्ठो भाविचक्रभृत् । त्रिखंडाधिपतित्वस्य स पूर्वगणना गतः ॥ १२२ ॥ उद्गमेनैव निर्धूतरिपुचक्रोऽयमक्रमात् । अर्कस्येव प्रतापोस्य व्याप्य विश्वमनुस्थितः ॥ १२३ ॥ अनन्यगोचरा लक्ष्मीरसख्येयसमाः स्वय । इममेव प्रतीक्ष्यास्त गाढोत्सुक्यार्द्धचक्रिणां ॥ १२४ ॥ लक्ष्मीलाछनमेवास्य चक्र विक्रमसाधित । मागधाद्यामरारक्ष्य ससमुद्र महीतल ॥ १२५ ॥ सिंहशौर्योयमित्येव शेमुषीके-

था वह आज कहां चला गया इस तरह उसने खोटे परिणामोंसे मुनिकी हंसीकी । मुनि भी उसके वचनोंको चित्तमें धारण कर कुछ क्रोधित हुए और मनमें ही कहने लगे कि इस हंसी करनेका फल तुझे अवश्य मिलेगा ॥ ११५–११७ ॥ अंतमें उसने निदान किया संन्यास धारण कर शरीर छोडा और महाशुक्र नामके स्वर्गके विमानमें देव हुआ तथा विशाखभूति भी वहीं देव हुआ ॥ ११८ ॥ वहां पर उन्होंने सोलह सागर तक देवोंके सुख भोगे फिर वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनपुर नगरमें महाराजाधिराज राजा प्रजापतिकी रानी जयावती से विश्वभूतिका जीव विजय नामका पुत्र हुआ उसके बाद इसी राजाकी दूसरी मृगावती रानीसे विश्वनंदीका जीव त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ वह त्रिपृष्ठ होनहार चक्रवर्ती (अर्द्धचक्री) था और तीन खंडके अधिराजाओंमें अर्थात् अर्द्धचक्रवर्तियों में सबसे पहिला था ॥ ११९–१२२ ॥ उसके उत्पन्न होते ही सब शत्रुओंको एक साथ नष्ट करनेवाला सूर्यके समान उसका प्रताप सब संसारमें व्याप्त होकर भर गया था ॥ १२३ ॥ अर्धचक्रवर्तियोंमें गाढ उत्सुकता रखनेवाली और जो दूसरी जगह न रह सके ऐसी लक्ष्मी असंख्यात वर्षसे स्वयं इस त्रिपृष्ठकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥१२४॥ पराक्रमसे सिद्ध हुआ तथा लक्ष्मीके चिन्ह वाला उसका चक्र था मगध आदि देव उसकी रक्षा करते थे और समुद्र सहित सब पृथ्वी उसकी ही थी ॥ १२५ ॥ देवोंके मस्तकको भी नम्री भूत करनेवाला वह त्रिपृष्ठ यद्यपि सिंहके समान पराक्रमी था बुद्धिमान लोग इसी तरह उसकी स्तुति करते थे तथापि वह सिंहके समान निर्भय था ॥ १२६ ॥ उसकी कीर्तिने परिमित क्षेत्रमें रहने वाली और हीन वृद्धि सहित ऐसी चंद्रमाकी चांदनी भी जीत ली थी और ब्रह्माकी जातिके समान

-स्थभजन । इति मत्वा निवृत्यासौ हर्तुं स्ववनहारिण ॥ १०५ ॥ प्रारब्धवान् भयाद्गत्वा स कपित्थमहीरुहं । कृत्वा श्रुति स्थित स्फीतं कुमारोपि महीरुहं ॥
१०६ ॥ समुन्मूल्य निहंतु त तेनाधावत्ततोप्यसौ । अपसृत्य शिलास्तंभस्यांतर्धान ययौ पुनः ॥ १०७ ॥ वली तलप्रहारेण स्तंभ चापाल्य स द्रुत । पलाय-
मानमालोक्य तस्मादप्यपकारिण ॥ १०८ ॥ माभैषीरिति सौहार्दकारुण्याभ्यां प्रचोदित । समाहूय वन तस्मै दत्वा संसारदुःस्थितिं ॥ १०९ ॥ भावयित्वा
ययौ दीक्षां संभूतगुरुसन्निधौ । अपकारोपि नीचानामुपकार सता भवेत् ॥ ११० ॥ तदा विशाखभूतिश्च सजातानुशयो मया । कृतं पापमिति प्रायश्चित्तं वा
प्राप संयम ॥ १११ ॥ कुर्वन् घोरं तपो विश्वनंदी देशान् परिभ्रमन् । कृशीभूतः क्रमात्प्राप्य मथुरां स्वतनुस्थिते ॥ ११२ ॥ प्रविष्टवान् विनष्टात्मवलस्खल-
पदस्थितिः । तदा व्यसनसंसर्गो भ्रष्टराज्यो महीपतेः ॥ ११३ ॥ कस्यचिद् दूतभावेन मथुरां पुरमागत । विशाखनंदो वेश्याया प्रासादतलमाश्रितः ॥

का उद्योग करने लगा । यह देख कर विशाखनंद भयसे भागा और एक कैथके वृक्षपर चढ गया । परंतु कुमार विश्वनंदी ने उसे मारनेके लिये वह वृक्ष ही उखाड डाला । तदनंतर वह विशाषानंद वहांसे भी भागा और दौडकर एक पत्थरके खंभेके नीचे जाकर छिप गया । कुमार विश्वनंदीने वह खंभा भी हथेलियोंकी चोटसे वहुत शीघ्र तोड डाला जिससे वह विशाखनंद वहांसे भी निकल कर भागा उस अपकार करनेवाले विशाषनंदको भागता हुआ देखकर सौहार्द और करुणासे प्रेरित होकर विश्वनंदीने उसे धीरज दिया और कहा कि अब तू डरे मत यहां आ । उसने इसतरह बुलाकर वह वन उसे दे दिया और स्वयं संसारकी ऐसी ही दुःखमय अवस्थाका विचार कर संभूत नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है नीच लोगोंका किया हुआ अपकार भी सज्जनोंके लिये उपकार हो जाता है ॥ ५—
१० ॥ उस समय विशाखभूतिकोभी पश्चात्ताप हुआ वह सोचने लगा कि यह मैंने एक पाप किया है इसलिये इसका प्रायश्चित करना चाहिये यही सोच कर उसने संयम धारण कर लिया ॥ १११ ॥ इधर विश्वनंदी घोर तपश्चरण करता हुआ सब देशोंमें परिभ्रमण करने लगा । उसका शरीर अत्यंत कृश हो गया था अनुक्रमसे वह मथुरा नगरमें पहुंचा और आहारके लिये शहरमें गया उन दिनों अपने आत्मवलको खोकर तथा अपने राज्य पदसे भ्रष्ट होकर विशाखनंद व्यसनोंके संसर्गसे राज्य भ्रष्ट हो गया था और किसी राजाका दूत वनकर मथुरा नगरमें आयाथा तथा एक वेश्याके मकानके ऊपर वैठा था ॥ ११२—११४ ॥ दैवयोगसे वहीं रास्ते पर एक हालकी प्रसूता (जनी हुई) गाय खडी थी वह मुनिराजको देख कर क्रोधित हुई और उसने उन विश्वनंदी मुनिको धक्का देकर गिरा दिया । उन्हें गिरते हुए देख कर क्रोध करता हुआ वह विशाषानंद कहने लगा कि क्यों जो पत्थरके खंभेको तोड देनेवाला पराक्रम पहिले दिखाया

धी ॥ ९३ ॥ मह्यं मनोहरोद्यान दीयतां भवतान्यथा । कुर्यां देशपरित्यागमहमित्यभ्यधादसौ ॥ ९४ ॥ व.तु सत्स्वपि भोगेषु विरक्तविषयप्रिय । भवे-त्रावि भवे भूयो भविष्यद्दुःखभारभाक् ॥ ९५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं चित्तं निधाय स्नेहनिर्भरं । क्रियते प्रददामीति संतोष्य तनुजं निजं ॥ ९६ ॥ विश्वनंदिन-माहूय राज्यभारस्त्वयाधुना । गृह्यतामहमाक्रम्य प्रत्यंतप्रतिभूभृत ॥ ९७ ॥ कृत्वा तज्जनितक्षोभप्रशांतिं मयितैर्दिनैः । प्रत्येष्यामीति सोप्याह श्रुत्वा तत्प्र-स्युवाच तं ॥ ९८ ॥ पूज्यपादस्त्वयात्रैव निश्चिंतमुपविश्य तां । गत्वाहमेव तं प्रेष करोमीति सुतोत्तमः ॥ ९९ ॥ राज्यमस्यैव मे स्नेहात्भ्रात्रादायीत्यतर्कयन् । वनार्थमतिसंधित्सुरभूत् चिरगुराशयं ॥ १०० ॥ ततश्चानुमते तस्मिन् स्वबलेन समं रिपून् । निर्जेतुं विहितोद्योगे गते विक्रमशालिनि ॥ १०१ ॥ वनं वि-शाखनंदाय स्नेहाद्दत्तं नाकांक्षिणे । विशाखभूतिरुल्लंघ्य क्रमं गतमतिर्ददौ ॥ १०२ ॥ विश्वनंदी तदाकर्ण्य सद्य क्रोधाग्निदीपितः । पश्य मामिति संधाय प्र-त्यंतनृपतीन् प्रति ॥ १०३ ॥ प्रहृत्य मद्वनं दत्तं पितृव्येणात्मसूनवे । देहीति वचनाभाहं किं ददामि कियद्वनं ॥ १०४ ॥ निदधात्यस्य दुश्चेष्टा मम सौज-

तरमें भी होनहार दुःखोंका भार ही धारण करनेवाला होता है ॥ ९३–९५ ॥ पुत्रकी बात सुन कर तथा हृदयमें धा-रण कर बडे स्नेहसे कहने लगा कि यह कितनी बडी बात है मैं तुझे वह उद्यान अवश्य दूंगा इस तरह पुत्रको संतुष्ट कर उसने विश्वनंदीको बुलाया और उससे कहा कि इस समय यह राज्यका भार तुम स्वीकार करो मैं पर्वतोंके समीप रहने वाले राजाओं पर चढाई करूंगा और उन लोगोंने जो क्षोभ कर रक्खा है उसे शांत कर थोडे ही दिनमें लौट आऊंगा अपने काकाके इस प्रकारके वचन सुन कर वह विश्वनंदी कहने लगा कि हे पूज्यपाद ! आप निश्चिंत हो कर यहां ही रहें मैं स्वयं जाकर उन लोगोंको आपके पास भेज देता हूं। उस श्रेष्ठ पुत्रकी बात सुन कर उसने यह न विचारा कि वास्तवमें राज्य तो इसीका है परंतु भाईने स्नेहसे मुझे दिया था। केवल एक वनके लिये ही उसे ठगकर बाहर भेजा इस लिये ऐसे दुष्ट आशयको भी धिक्कार हो ॥ ९६–१०० ॥ तदनंतर वह पराक्रमी विश्वनंदी काकाकी आज्ञा-नुसार अपनी सब सेना लेकर शत्रुओंको जीतनेकी तैयारी करने लगा और नगरसे बाहर निकला ॥ १०१ ॥ उसके बाहर निकल जाने पर निर्बुद्धि विशाखभूतिने क्रमका उल्लंघन कर अन्यायकी इच्छा करनेवाले विशाखनंदको वह वन केवल स्नेहसे दे डाला ॥ १०२ ॥ विश्वनंदी इस बातको सुनकर शीघ्रही क्रोधरूपी अग्निसे उद्दीपित हुआ और विचार करने लगा कि देखो काकाने मुझे पर्वतीय राजाओंके समीप भेजकर तथा मेरा उद्यान मुझसे छुडाकर अपने पुत्रको दे दिया क्या मांगने पर मैं नहीं देता ? उद्यान है कितनी बडी चीज ? ॥ १०३–१०४ ॥ वास्तवमें इसकी यह दुश्चेष्टा मेरी सज्जनता नष्ट कर रही है यही सोचकर वह अपने वन लेने वालेको मारनेके लिये लौट पडा और विशाखनंदको पकडने

सुतोस्मिन् वेदवेदिनः ॥ ८२ ॥ शांडिल्याख्यस्य मुख्यस्य पाराशर्यां स्वसज्ञया । स्थावरो वेदवेदांगपारग पापभाजन ॥ ८३ ॥ मति श्रुत तप शांतिः समाधितत्त्ववीक्षणं । सर्वं सम्यक्त्वशून्यस्य मरीचेरिव निष्फल ॥ ८४ ॥ परिव्राजकदीक्षायामासक्ति पुनरादधत् । सप्ताब्ध्युपमितायुष्को माहेंद्रे समभून्म रुत् ॥ ८५ ॥ ततोवतीर्य देशेस्मिन् मगधाख्ये पुरोत्तमे । जातो राजगृहे विश्वभूतिनाम्नो महीपते ॥ ८६ ॥ जैन्याश्च तनयो विश्वनंदी विख्यातपौरुषः । विश्वभूतिमहीभर्तुरनुजातो महोदय ॥ ८७ ॥ विशाखभूतिरेतस्य लक्ष्मणायामभूत्प्रियः । पुत्रो विशाखनंदाख्यस्ते सर्वे सुखमास्थिता ॥ ८८ ॥ अन्येद्यु शरदभ्रस्य विभ्रंशं वीक्ष्य शुद्धधी । निर्विण्णो विश्वभूत्याख्यः स्वराज्यमनुजन्मनि ॥ ८९ ॥ निधाय यौवराज्यं च स्वसूनौ महदग्रणी । सात्त्विकैस्त्रिशतैः सार्द्धं राजभिर्जातरूपतां ॥ ९० ॥ श्रीधराख्यगुरो पार्श्वे समादाय समत्वभाक् । बाह्यमाभ्यंतरं चोग्रमकरोत्स तपश्चिरं ॥ ९१ ॥ अथान्यदा कुमारोसौ विश्वनंदी मनोहरे । निजोद्याने समस्ताभिर्देवीभिः क्रीडया स्थितः ॥ ९२ ॥ विशाखनंदस्त दृष्ट्वा तदुद्यानं मनोहरं । स्वीकर्तुं मतिमाधाय गत्वा स पितृसन्नि

परगामी था तथा अनेक पापोंका पात्र था ॥ ८०–८३ ॥ उसका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, तप, शांति, समाधि और तत्त्वान्वेषण आदि सब सम्यक् रहित अर्थात् मिथ्या था और मरीचिके समान सब निष्फल था ॥ ८४ ॥ फिर भी वह परिव्राजक की दीक्षामें ही आसक्त हुआ और मरकर माहेंद्र स्वर्गमें सातसागर की आयु पाकर देव उत्पन्न हुआ ॥ ८५ ॥ वहां से आकर इसी मगध देशके राजगृह नगरमें राजा विश्वभूतिकी जैनी नामकी रानीसे विश्वनंदी नामका प्रसिद्धपराक्रमी पुत्र हुआ । इसी राजा विश्वभूति के छोटे भाई का नाम विशाखभूति था जोकि बहुत ऐश्वर्यशाली था उसकी लक्ष्मणा नाम की स्त्रीसे विशाखनंद नामका बुद्धिहीन पुत्र उत्पन्न हुआ था ये सब लोग सुखसे निवास करते थे ॥ ८६–८८ ॥ किसी दूसरे दिन शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विश्वभूति शरदऋतुके बादलों को नष्ट होते देखकर विरक्त हुआ उस सबके नायक राजाने अपना राज्य तो अपने छोटे भाईको दिया और युवराज पद अपने पुत्रको दिया तथा सात्विक वृत्ति को धारण करने वाले तीनसौ राजाओंके साथ उसने श्रीधर नामके मुनिराजके समीप दिगम्बरी दीक्षा धारण की समता रूप परिणाम किये और बहुत दिनतक बाह्य आभ्यंतर दोनों तरह का उग्र तपश्चरण किया ॥८९–९१॥ अथानंतर किसी एक दिन वह विश्वनंदीकुमार अपने मनोहर नामके उद्यानमें अपनी सब स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा था ॥ ९२ ॥ विशाखनंद उसे इस तरह क्रीडा करते देख कर उस मनोहर बनको अपने आधीन करनेकी इच्छासे पिताके समीप गया और पितासे कहने लगा कि आप या तो मनोहर नामका उद्यान मुझे दीजिये नहीं तो मैं आपका देश छोड कर चला जाऊंगा । सो ठीक है समीचीन भोगोपभोग सामग्रीके रहते हुए भी जिसे विरुद्ध विषय ही अच्छे लगते हैं वह भवां-

वासं विरेजे श्रीरिवागता ॥ ५० ॥ प्रज्ञाविक्रमयोर्लक्ष्मीविशेषो वा पुरूरवा । मरुद्भूतस्तयोरासीन्मरीचिः सुनुरग्रणी· ॥ ५१ ॥ स्वपितामहसत्यागे स्वय च गुरुभक्तित । राजभिः सह कच्छाद्यै परित्यक्तपरिग्रह ॥ ५२ ॥ चिरं सोढ्वा तप क्लेश क्षुच्छीतादिपरीषहान् । दीर्घसंसारवासित्वात्पश्चात्सोढुमशक्नुवत् ॥ ५३ ॥ स्वय गृहीतुमारब्धफलप्रावरणादिक । दृष्ट्वा तं देवता नायं क्रमो नैर्ग्रन्थ्यधारिणां ॥ ५४ ॥ गृहाण वेषमन्यत्वं यथेष्टमिति वाब्रुवन् । श्रुत्वा तद्वचन सोपि गाढमिथ्यात्वचोदित ॥ ५५ ॥ परिव्राजकदीक्षायां प्राथम्य प्रत्यपद्यत । दीर्घाजवंजवानां तत्कर्म दुर्मार्ग देशन ॥ ५६ ॥ तच्छास्त्रमचतुनाप्यस्य स्वयमेव किलाजनि । सतामिवासता च स्याद्बोध स्वविषये स्वय ॥ ५७ ॥ श्रुत्वापि तीर्थकृद्वाच सद्धर्मं नाग्रहीदसौ । पुरुर्यथात्मनैवात्र सर्वसगविमोचनात् ॥ ५८ ॥ भुवनत्रयसक्षोभकरिसामर्थ्यम सवान् । मदुपज्ञ तथा लोके व्यवस्था-

समान थी अथवा कमलके निवास स्थानको छोडकर आई हुई लक्ष्मीके समान सुशोभित होती थी ॥ ५० ॥ जिसप्रकार बुद्धि और पराक्रमसे विशेष लक्ष्मी उत्पन्न होती है उसीप्रकार उन दोनोंके वह पुरूरवा भीलका जीव देव मरीचि नामका मुख्य पुत्र हुआ ॥ ५१ ॥ जिससमय मरीचिके बाबा वृषभदेवने दीक्षा धारण की थी उससमय स्वयं गुरु श्रीवृषभदेवकी भक्तिसे कच्छादिक राजाओंके साथ उस मरीचिने भी सब परिग्रहोंका त्यागकर दीक्षा धारण की थी ॥ ५२ ॥ उसने बहुत दिनतक तो तपश्चरणका क्लेश सहन किया था क्षुधा शीत आदि परीषहोंको भी सहन किया था परंतु दीर्घ संसारी होनेके कारण पीछेसे वह उन्हें सहन नहीं कर सका था ॥ ५३ ॥ इसलिये उसने खानेकेलिये फल और ओढनेकेलिये वस्त्र आदि स्वयं ग्रहण करलिये थे यह देखकर वन देवताने आकर उससे कहा कि निर्ग्रंथ दीक्षा धारण करनेवालोंकेलिये यह क्रम नहीं है। यदि तुम्हें ऐसा ही करना है तो तुम अपनी इच्छानुसार कोई दूसरा वेष धारण करो। वन देवताकी यह बात सुनकर मिथ्यात्वकर्मके प्रबल उदयसे उसने सबसे पहिले परिव्राजक दीक्षा धारण की सो ठीक ही है क्योंकि जिनका दीर्घ संसार परिभ्रमण बाकी है उनकेलिये मिथ्यात्वकर्म कुमार्गका ही उपदेश देता है ॥ ५४–५६ ॥ उससमय परिव्राजकमतके शास्त्रोंका थोडा बहुत कथन भी उसे अपने आप प्रगट हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समान दुष्टोंको भी अपने विषयमें स्वयं ज्ञान हो जाता है ॥ ५७ ॥ उसने तीर्थंकरकी वाणी सुनकर भी सद्धर्मको स्वीकार नहीं किया था वह अपने मनमें सोचता था कि जिसप्रकार श्रीवृषभदेवने अपने आप ही सब परिग्रहोंको छोडकर तीनों लोकोंके क्षोभित करनेवाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसीप्रकार मैं भी संसारमें अपने चलाये हुए अन्य मतकी व्यवस्था करूंगा और उसके निमित्तसे होनेवाले बडे भारी प्रभावके कारण इंद्रकी प्रतीक्षा प्राप्त करूंगा ऐसी मेरी इच्छा है मुझे आशा है

४० ॥ सुरा केत्र नराः के वा सर्वे रूपादिभि समाः । इत्यायाता खगाधीशा मोमुह्यंते विवेचने ॥ ४१ ॥ तत्र पण्यस्त्रियो वीक्ष्य वाढं सुरकुमारकाः । वि-
स्मयंते न रज्यंते तासिर्जातिविशेषतः ॥ ४२ ॥ करणानाममीष्टाय विषयास्तत्र ते तत । न नाकेपि यतस्तत्र नाकिपूजासमुद्भव ॥ ४३ ॥ अकृत्रिमाणि
निर्जेतु विमानानि स्वकौशलात् । सुरैः कृतगृहाण्यत्र चेत्कान्या तेषु वर्णना ॥ ४४ ॥ बभूवास्याः पतिः पंक्तेः स्वर्गस्येवामरेश्वर । भरताख्यः पुरो सूनुरि-
क्ष्वाकुकुलनंदन ॥ ४५ ॥ अकपनाद्या भूपाला नमिमुख्याश्च खेचरा । मागधाद्याश्च देवेशास्त्यक्तमाना समुत्सुका ॥ ४६ ॥ यस्याज्ञा मालतीमालामिव
स्वानम्रमौलय । भूषाधिकेयमस्माकमिति सधारयंति ते ॥ ४७ ॥ सत्कर्मभावितैर्भावैः क्षायोपशमिकैश्च स । भव्यभावविशेषाच्च श्रेष्ठकाग्राममधिष्ठित ॥४८॥
आदितीर्थकृतो ज्येष्ठपुत्रो राजसु षोडश । ज्यायांश्चक्री मुहूर्तेन मुक्तोय कैस्तुलां व्रजेत् ॥ ४९ ॥ तस्यानतमतिर्देवी प्रख्यातिरिव देहिनी । विमुच्य कमला-

थी, वस्त्राभूषण आदि उपकरणोंसे नहीं ॥ ३९ ॥ वहांके उत्तम मनुष्य प्रायः स्वर्गसे आकर ही उत्पन्न होते थे इसलिये स्वर्गमें उत्पन्न हुई मित्रताके कारण बहुतसे देव स्वर्गसे आकर वडी प्रसन्नताके साथ उन लोगोंके साथ क्रीडा करते थे ॥ ४० ॥ इनमें देव कौन हैं और मनुष्य कौन हैं क्योंकि रूपादिकसे सभी समान हैं इस प्रकार बाहरसे आये हुए विद्याधरोंके राजा उनको अलग पहचाननेमें मोहित हो जाते थे ॥ ४१ ॥ देवकुमार वहांकी वेश्याओंको देख कर बहुत ही आश्चर्य करते थे परंतु पृथक जाति होनेके कारण उनके साथ क्रीडा नहीं करते थे ॥ ४२ ॥ इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले जैसे विषय वहां थे वैसे स्वर्गमें भी नहीं थे इस लिये देवोंके द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकर भी वहीं उत्पन्न होते थे ॥ ४३ ॥ देवोंने जो अपने कौशलसे वहांके घर बनाये थे वे ऐसे जान पडते थे मानों अकृत्रिम विमानोंको जीतनेके लिये ही बनाये हों फिर भला वहांका वर्णन करना व्यर्थ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार स्वर्गकी पंक्तिका स्वामी इंद्र होता है उसी प्रकार उस नगरी का स्वामी राजा भरत था जो कि इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुआ था और वृषभदेवका पुत्र था ॥ ४५ ॥ अकंपन आदि राजा, नमि विनमि आदि विद्याधर और मागध आदि देव अपना अभिमान छोडकर और उत्कंठित होकर मालती पुष्पोंकी मालाके समान अपना मस्तक झुकाकर जिसकी आज्ञाको धारण करते थे और उसे अपने लिये सबसे अधिक आभूषण मानते थे ॥ ४६–४७ ॥ अपने सत्कर्मों की भावनासे तथा कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे उत्पन्न हुए भावोंसे और भव्यत्वके विशेष भावसे वह सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता था ॥ ४८ ॥ वह भरत श्रीआदिनाथ तीर्थंकरका सबसे वडा पुत्र था सोलहवां मनु और राजाओंमें चक्रवर्ती था तथा दीक्षा लेनेके अंतर्मुहूर्त बाद ही केवली होगया था इसलियें उसकी बराबरी अन्य कौन कर सकता था ॥ ४९ ॥ उसकी स्त्रीका नाम अनंतमति था जोकि शरीरको धारण करनेवाली कीर्तिके

न वामनाश्चोत्ताथडालाश्च न दुश्चरा: ॥ ३० ॥ नानिक्षुशालिकाभूमिर्न क्षमाभृदनंदन ॥ ३१ ॥ मध्ये तस्य विनीताख्या हृदयग्राहिणी पुरी । जनाना सा विनीतेव रमणी सत्सुखप्रदा ॥ ३२ ॥ प्रकाशयितुमात्मीयं पुरनिर्माणकौशलं । भक्तिं तीर्थकृतस्यादौ सा शक्रेणैव निर्मिता ॥ ३३ ॥ मुनेर्धीर्विनयेनेव स्वामिनेव पताकिनी । कांचीव मणिनामध्ये सा शालेन व्यभासत ॥३४॥ भूषणायैव शालोस्या खातिकापरिवेष्टितः । शक्र. कर्ता पतिश्चक्री यदि कातस्कुत भय ॥ ३५ ॥ वर्तते जिनपूजास्यां दिन प्रति गृहे गृहे । सर्वमंगलकार्याणां तत्पूर्वत्वाद् गृहेषिना ॥ ३६ ॥ विद्याभ्यासाद्विना बाल्य विना भोगेन यावन । वार्द्धक्य न विना धर्माद्विर्नातोपि समाधिना ॥३७॥ नावबोध. क्रियाशून्यो न क्रिया फलवर्जिता । अभुक्त न फलं भोगो नार्थधर्मद्वयन्युत: ॥३८॥ प्रधानप्रकृति. प्र.य.स्त्र मित्वेनैव साधिका । जनेभ्यस्त्रिव सिभ्यो न भूपादिपरिच्छेदः ॥ ३९ ॥ सुरास्तत्र समागत्य स्वर्गायातैर्नरोत्तमै: । स्वर्गसंभूतसौहार्द्रादमते सतत मुदा ॥

वा किवाड खोलनेकी सलाईमें ही थी २९ ॥ वहाके गोपाल (गवालिये) भी मूर्ख नहीं थे तथा स्त्री बालक भी डरपोक नहीं थे वहांके वामन (छोटे कदके मनुष्य) दुष्ट नहीं थे और चांडाल दुश्चरित्र नहीं थे ॥ ३० ॥ वहांकी भूमि ईख और चावलोंसे रहित नहीं थी पर्वत विना चंदनवाले नहीं थे, सरोवर विना कमलोंके नहीं थे, और वन विना स्वादिष्ट-फलोंके नहीं थे ॥ ३१ ॥ उस देशके मध्य भागमें हृदयको मनोहर लगनेवाली विनीता (अयोध्या) नामकी नगरी थी जो कि विनीत स्त्रीके समान सुख देनेवाली थी ॥ ३२ ॥ वह नगरी ऐसी जान पडती थी मानों अपनी नगर रचनाकी कुशलता दिखानेके लिये अथवा तीर्थंकरकी भक्ति दिखलानेके लिये सबसे पहिले इंद्रने ही बनाई हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार विनयसे मुनिकी बुद्धि सुशोभित होती है, स्वामीसे सेना शोभायमान होती है, मणिसे करधनी अच्छी लगती है उसी प्रकार मध्यभागमें बने हुए कोटसे वह नगरी शोभायमान थी ॥ ३४ ॥ खाईसे घिरा हुआ वह उस नगरीका कोट केवल शोभाके लिये था क्योंकि उसका बनानेवाला इंद्र था और उसका स्वामी चक्रवर्ती था फिर भला उस में भय किसका हो सकता था ॥ ३५ ॥ वहां पर प्रतिदिन प्रत्येक घरमें जिनपूजा होती थी क्योंकि गृहस्थियोंके सब मांग-लिक कार्य जिनपूजापूर्वक ही होते थे ॥ ३६ ॥ वहा पर विना विद्याभ्यासके बालक अवस्था व्यतीत नहीं होती थी विना भोगोंके यौवन व्यतीत नहीं होता था, विना धर्मके बुढापा व्यतीत नहीं होता था और विना समाधिके मरण नहीं होता था ॥ ३७ ॥ वहां पर किसीका भी ज्ञान क्रियारहित नहीं था, क्रिया विना फलके नहीं थी, फल विना भोगो-पभोगके नहीं थे और भोग अर्थ तथा धर्म दोनोंसे रहित नहीं थे ॥ ३८ ॥ शिरमें हिताहित ज्ञानकी शून्यता नहीं है ऐसा ... स्वामी, मंत्री, मित्र कोश राष्ट्र दुर्ग सेना आदिसे ही सिद्ध होती ज्ञान मुख्य प्रकृति कहलाती है वह ;

शास्त्राभ्यसनशीलो वा स्यात गुरुकुलं महत् । मद्यादित्रितयत्यागलक्षणं व्रतमासदत् ॥ २१ ॥ जीवितावसितौ सम्यक् पालयित्वादराद्व्रतं । सागरोपमदिव्यायु सौधर्मेऽनिमिषो भवत् ॥ २२ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते देशः कौशलाख्योस्ति विश्रुत । आर्यक्षेत्रस्य मध्यस्थ सोस्थितं सर्वदाभजन् ॥ २३ ॥ बाधाभावादरक्षात्र रक्षकेभ्यो विना न सा । अदातारो न कैनास्याते तृप्त्या ग्राहकैर्विना ॥ २४ ॥ काठिन्य कुचयोरेव नैव चेतसि कस्यचित् । देहि याहीति सप्रैषो नाधित्वेन भयेन वा ॥ २५ ॥ कलंकक्षीणते राज्ञि चन्द्रएव परत्र न । स्थितिस्तपोवनेष्वेव विनाहारात्परेषु न ॥ २६ ॥ पीडा तिलातसीक्षूणां नान्यप्राणिषु केषुचित् । नान्यत्र शिरसश्छेद प्रवृद्धेष्वेव शालिषु ॥ २७ ॥ वधोमोक्षश्च राद्धाते श्रूयते नापराधिषु । विना विमुक्तरागेभ्यो नान्यत्रेंद्रियविग्रहः ॥ २८ ॥ जाड्य जलेषु नान्येषु सुठादिष्वेव तीक्ष्णता । नान्यत्र कुचिकास्वेव कृत्ये नान्यत्र वक्रता ॥ २९ ॥ नाविदग्धाश्च गोपाला न स्त्रीवालाश्च भीरुकाः । शठा

के दुःखोंके कारण रूप कर्मोंसे दुखी हुआ मनुष्य इस हमारे जैनधर्ममें आकर तृप्त होता है ॥ २० ॥ जिस प्रकार शास्त्रों का अभ्यास करनेवाला शिष्य प्रसिद्ध गुरुकुलमें जाकर विद्याग्रहण करता है उसी प्रकार उस भीलने भी उन मुनिराज से मद्य मांस और मधुके त्याग करने रूप व्रतको स्वीकार किया ॥ २१ ॥ उसने जीवन पर्यंत बड़े आदरसे उस व्रतको अच्छी तरह पालन किया और आयु पूर्ण होने पर सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥ २२ ॥ इसी जंबू द्वीपके भरतक्षेत्रमें आर्य क्षेत्रके मध्यभागमें सदा अच्छी स्थितिमें रहनेवाला अथवा सदा स्थित रहने वाला कौशल नामका एक प्रसिद्ध देश है ॥ २३ ॥ वहां पर किसीको किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी इसलिये वहां पर अरक्षा (रक्षाका अभाव) थी परंतु वह अरक्षा रक्षकोंके अभावसे नहीं थी । इसी तरह वहां पर कोई दातार नहीं थे दातारोंका अभाव कृपणतासे नहीं था किंतु संतुष्ट होनेसे ग्राहकोंके (मांगनेवालोंके) अभावसे दाताओंका अभाव था ॥२४॥ वहांपर कठिनता कुचोंमें ही थी किसीके हृदयमें नहीं थी इसीतरह हमें कछु दो ये शब्द मांगनेकेलिये नहीं निकलते थे तथा जाओ ये शब्द भयसे नहीं निकलते थे ॥ २५ ॥ कलंक और क्षीणता ये दो शब्द चंद्रमामें ही थे किसी अन्य राजामें नहीं थे, निराहार रहना तपोवनके तपस्वियोंमें था किसी दूसरेमें नहीं ॥ २६ ॥ तथा पीडा (कोल्हूमें पेलना) तिल अलसी और ईखमें ही थी किसी अन्य प्राणीमें नहीं थी । सिरका काटना बढ़े हुए चावलोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २७ ॥ बंध और मोक्ष ये दो शब्द सिद्धांत ग्रंथोंमें ही सुने जाते थे किसी अपराधीकेलिये नहीं, इंद्रियोंका निग्रह विरागी लोगोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २८ ॥ जडता जलमें ही थी कोई मनुष्य मूर्ख नहीं था तीक्ष्णता सोंठ मिरच आदि पदार्थोंमें ही थी कोई मनुष्य तीक्ष्णस्वभावका नहीं था इसीतरह वक्रता किसी काममें नहीं थी यदि थी तो ताली

दं। नावेवाभोनिधेरस्य प्रासाद्दं पारमेतया ॥ ९ ॥ कथाकथकयोस्तावद्वर्णनं प्राग्विधीयते। दोषं ताभ्यामदोषाभ्यां पुराणं नोपढौकते ॥ १० ॥ सा कथा या समाकर्ण्य हेयोपादेयनिर्णय। कर्णकट्वीभिरन्याभि किं कथाभिर्हितार्थिनां ॥११॥ रागादिदोषनिर्मुक्तो निरपेक्षोपकारकृत्। भव्यानां दिव्यया वाचा कथक स हि कथ्यते ॥१२॥ एतद् द्वितयमत्रैव पुराणे जिनभाषिते। नान्येषु दु पुराणेषु तस्म द्ग्राह्यमिदं बुधैः ॥१३॥ अथ जंबूद्रुमालक्ष्ये द्वीपानां मध्यवर्तिनि। द्वीपे विदेहे पूर्वस्मिन् सीतासरिदुदक्तटे ॥१४॥ विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुंडरीकिणी। मधुकाख्यवने तस्य नाम्ना व्याधाधिप भवत् ॥१५॥ पुरूरवाः प्रियास्यासीत्कालिकाख्यानुरागिणी। अनुरूपं विधत्ते हि वेधा सगममंगिना ॥ १६ ॥ कदाचित्कानने तस्मिन् दिग्विभागविमोहनात्। मुनिं स सागरसेनाख्य पर्यटंतमितस्ततः ॥ १७ ॥ विलोक्य तं मृगं मत्वा हंतुकाम स्वकांतया। वनदेवाश्चरंतीमे मावधीरिति वारित ॥ १८ ॥ तदैव सुप्रसन्नात्मा समुपेत्य पुरूरवाः। प्रणम्य तद्वचः श्रुत्वा स शांत श्रद्धयाहित ॥ १९ ॥ शीतलांभस्तडागं वा निदाघे तृषितो जनः। ससारदुःखहेतोर्वा मीरुर्जैनेश्वरं मतं ॥२० ॥

से पहिले कथा और कथाके कहनेवाले वक्ताका वर्णन किया जाता है क्योंकि यदि ये दोनोही निर्दोष हो तो फिर पुराणमें कोई दोष प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥ कथा वही कहलाती है जिसको सुनकर हेय और उपदेयका निर्णय किया जाय आत्माका कल्याण चाहने वाले लोगोंके कानोंको कडवी लगनेवाली अन्य कथाओंसे क्या प्रयोजन है ॥ ११ ॥ जो रागादि दोषोंसे रहित है और दिव्य वाणीके द्वारा भव्यजीवोंको विना किसी अपेक्षाके उपकार करनेवाला है वह कथक कहलाता है ॥ १२ ॥ ये दोनों ही बातें अर्थात् कथा और कथक श्रीजिनेंद्र देवके कहे हुए इसी पुराणमें मिलते हैं इसको छोडकर अन्य खोटे पुराणोंमें नहीं मिल सकते इसलिये बुद्धिमानोंको इसी पुराणको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥ अथानंतर सब द्वीपोंके मध्यमें रहनेवाले इस जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारे पुष्कलावती देशमें एक पुंडरीकिणी नगरी है उसके मधुनामके वनमें पुरूरवा नामका भीलोंका स्वामी रहता था तथा उससे अनुराग रखनेवाली कालिका नामकी उसकी स्त्री थी सो ठीकही है—प्रायः कर्मरूपी विधाता जीवोंका समागम एकसा ही निर्माण करता है ॥१४—१६॥ किसी एक दिन दिग्भ्रम हो जानेके कारण सागरसेन नामके मुनि उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे उन्हें देखकर पुरूरवा भील हिरण समझकर उन्हें मारनेके लिये तैयार हुआ परंतु उसकी स्त्री कालिकाने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि ये वनके देवता फिर रहे हैं इन्हें मत मारो ॥ १७—१८ ॥ इस प्रकार उसी समय प्रसन्नचित्त होकर वह भील उन मुनिराजके पास पहुंचा तथा नमस्कार कर उनके कहे हुए वचन सुनने लगा सुनकर उसे श्रद्धा हुई और वह शांत हुआ ॥१९॥ जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें प्यासा मनुष्य शीतल जलसे भरे हुए सरोवरके पास जाकर तृप्त होता है उसी प्रकार संसार

अथ चतुःसप्ततितमं पर्व ।

वर्द्धमानो जिन: श्रीमान्नामान्वर्थं समुद्वहन् । देयान्मे वृद्धिमुद्भूतघातिकर्मविनिर्मितां ॥ १ ॥ तत्त्वार्थनिर्णयात्प्राप्य सन्मतित्वं सुबोधवाक् । पूज्यो देवागमाद् भूलात्राकलंको बभूविथ ॥ २ ॥ वीरसेनो महावीरो वीरसेनेंद्रतां गतः । वीरसेनैंद्रवर्याद्भिर्वीरसेनेन भावितः ॥ ३ ॥ देवालोकरतवैवैको लोकालोकावलोकने । किमस्ति व्यस्तमप्यस्मिन्ननेनानवलोकितं ॥ ४ ॥ रूपमेव तव ब्रूते नाथ कोपाद्यपोहन । मणेर्मलस्य वैकल्यं महत केन कथ्यते ॥ ५ ॥ अतिक्रम्य कुतीर्थानि तव तीर्थं प्रवर्तते । संप्रत्यपीति नुत्वानु पुराण तत्प्रचक्ष्यते ॥ ६ ॥ महापुराणवाराशिपारावारप्रतिष्ठया । जिनसेनानुगामित्वमस्माभि-र्निश्चिबुभि ॥ ७ ॥ अगाधोयं पुराणाब्धिरपारश्च मतिर्मम । पश्योताना सपारा च त तितीर्षुः किलैतया ॥ ८ ॥ मतिरस्तु ममैषाल्पा पुराण महदस्त्विव-

अथ चौहत्तरिवां पर्व ॥ ७४ ॥

अथानंतर–अन्वर्थ नामको धारण करनेवाले श्रीमान वर्द्धमान जिनेंद्रदेव घातिया कर्मोंके नाश होनेसे प्राप्त हुई वृद्धि मुझे दें ॥ १ ॥ तत्त्वार्थके निर्णय करनेसे आपका सन्मति नाम पडा है और देवोंके आगमनसे पूज्य होकर आप अकलंक हुए हैं ॥ २ ॥ आपका नाम वीरसेन है रुद्रके द्वारा आप महावीर कहलाये हैं. ऋद्धिधारी मुनियोंकी सेनाके नायक हैं. गणधर देव आपके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं तथा अनेक मुनिराज आपका ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥ हे देव! लोक और अलोकके देखनेमें आपका ही केवल ज्ञानरूपी प्रकाश मुख्य गिना जाता है। जिसे आपका दर्शन देख नहीं सकता ऐसा क्या कोई फुटकर पदार्थ संसारमें है ? ॥ ४ ॥ हे नाथ आपका रूप ही क्रोधादिकके अभावको सूचित करता है सो ठीक ही है क्योंकि बहुमूल्य बडी मणियोंके मल कालिमा आदिके अभावको कौन कहने आता है भावार्थ–उनका स्वरूप उन्हींसे मालूम हो जाता है ॥ ५ ॥ हे देव अन्य अनेक कुतीर्थोंका उल्लंघन कर वर्तमानमें भी आपका ही तीर्थ चल रहा है इसलिये आपको ही नमस्कार कर आपका ही पुराण कहा जाता है ॥ ६ ॥ यह महापुराण एक महासागरके समान है इसके पार जानेके लिये कुछ कहनेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंको महर्षि जिनसेनका अनुयायी होना चाहिये ॥ ७ ॥ यह पुराणरूपी महासागर अगाध और अपार है और मेरी बुद्धि थोडी और समर्याद है इसी बुद्धिके अनुसार मैं इस महा सागरके पार होना चाहता हूं ॥ ८ ॥ यद्यपि मेरी बुद्धि छोटी है और यह पुराण बहुत बडा है तथापि जिस प्रकार नावसे ही समुद्रके पार हो जाते हैं उसी प्रकार मैं भी इस छोटीसी बुद्धिसे ही इसके पार हो जाऊंगा ॥ ९ ॥ सब

चासन्सम भर्तुर्यस्य स सततातकभयं हतूमवशाग्रणी: ॥ १६६ ॥ किं ध्यानात्फणिन फणींद्रयुवते-, क्षांतेर्महेंद्रात्स्वतस्तत्रान्मत्रविजृंभणाद्धत रिपोर्भातेरयस्योदयात्। कालाद्वातिहतेरिदं शममभूदित्यचेहस्ते सुरैराशक्योमरविघ्नविच्युतिरघ हन्यात्स वीराग्रणी ॥ १६७ ॥ श्रुत्वा यस्य वचोमृत श्रुतिसुखं हृद्यहित हेतुमन्मिथ्यात्व विजोवमीद्विषमिव व्याविद्धवैरोद्धुरं। य नैतिस्म च ताद्दृग्प्युपनतश्रेय म पार्श्वो विभुर्विघ्नौघ हरिर्मभूतामनभिस्मामघ्यास्य सिद्धोहतात् ॥ १६८ ॥ जात: प्रागमरुभूतिरन्विभपतिर्देवः सहस्रारजो वियेशोच्युतकल्पज क्षितिभृता श्रीवज्रनाभिः पति। देवो मध्यममध्यमे नृपगुणैरानंदनामाऽनतेदेवेंद्रो हतघातिसहतिरवतवस्मान्स पार्श्वेश्वर ॥१६९॥ कमठ: कुक्कुटसर्प: पचमभूनोहिरभवदथ नरके। व्य धोधाग: सिंहो नरकी नरपानु शबरो दिविज ॥१७०॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यविरचिते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पार्श्वतीर्थंकरपुराण परिसमाप्त त्रिसप्ततितम पर्व ॥ ७३ ॥

नाश हुआ, सर्पिणीके छत्र धारण करनेसे घातिया कर्मोंका नाश हुआ घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और केवलज्ञानके प्राप्त होनेसे शरीरकी महिमा बढी इसतरह संवर देवका उपद्रव आपके संसारका नाश करनेवाला हुआ और आपके तीर्थंकरका उदय समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला हुआ। हे प्रभो ऐसे उग्रवंशके अग्रगण्य आप सदा होनेवाला यमराजका भय दूर करो अर्थात् मोक्ष दो ॥ १६६ ॥ क्या यह शत्रुका किया हुआ उपद्रव भगवानके ध्यानसे शांत हुआ वा धरणेंद्रसे शांत हुआ अथवा धरणेंद्राणीसे शांत हुआ, अथवा भगवानकी क्षमासे शांत हुआ, किंवा इंद्रसे शांत हुआ वा स्वयं शांत हो गया, अथवा किसी तंत्रसे शांत हुआ वा मंत्र पढनेसे शांत हुआ, अथवा पुण्यकर्मके उदयसे शांत हुआ वा समय पाकर शांत हुआ इसप्रकार अर्थलिये हुए देव लोक संवरदेवके द्वारा किये हुए जिनके विघ्नोंकी शांतिकी आशंका कर रहे हैं ऐसे शूरवीरोंमें अग्रगण्य भगवान पार्श्वनाथ हमलोगोंके सब पाप नष्ट करें ॥ १६७ ॥ कानोंको सुख देनेवाले, हृदयको मनोहर, हित करनेवाले और हेतुपूर्वक जिनके वचनरूपी अमृतको सुनकर संवरदेवने भी विषके समान मिथ्यात्वको छोड दिया और उत्कट वैरको नाश करनेवाले जिन पार्श्वनाथको आकर नमस्कार किया, इसप्रकार नमस्कार करनेवालोंका भी कल्याण करनेवाले स्वामी पार्श्वनाथ सिद्धभगवान् सिंहासनपर विराजमान होकर हम लोगोंके सब विघ्नोंको नष्ट करें ॥ १६८ ॥ पार्श्वनाथका जीव पहिले मरुभूति मंत्री हुआ, फिर हाथी हुआ, फिर सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर विद्याधर हुआ, फिर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ वहांसे मध्यम ग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुआ, वहांसे आकर राजाओंके गुणोंसे सुशोभित आनंद नामका राजा हुआ फिर आनत स्वर्गमें इंद्र हुआ तदनंतर पार्श्वनाथ होकर घातिया कर्मोंका नाश किया ऐसे वे श्री पार्श्वनाथ भगवान् हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६९ ॥ कमठका जीव पहिले कमठ था फिर कुक्कुट सर्प हुआ, पांचवें नरकमें गया, फिर अजगर हुआ, नरक गया, फिर भील होकर नरकमें गया, फिर सिंह हुआ और नरक गया फिर महीपाल होकर शंबर देव हुआ ॥ १७० ॥

इसप्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें भगवान पार्श्वनाथका पुराण कहनेवाला यह तिहत्तरवां पर्व समाप्त हुआ।

तिकम्पोदय पाठीनो अलघेरिवेत्समिपुत पार्श्वो जिन पातु नः ॥ १६१ ॥ निष्कंपं तव शुक्लतामुपगतं बोध पयोधिर्महावातोद्भूततनुर्विनीकसलिल प्राप्नोति दूरागत । ध्यानं ते बत वाचलस्य मरुतां श्वासानिलाद्वामरात् क्षोभ कः कथमित्यभिष्टुतिपतिः पार्श्वप्रभु पातु न ॥ १६२ ॥ तीर्थेशाः सदृशो गुणैरनणुभि सर्वेपि धैर्यादिभिः, सत्यप्येवमधीशविश्वविदिता ये ते गुणाः प्रीणनाः । तत्सर्वं कमठात्तथाहि महतां शत्रो कृतापक्रियात् ख्यातिर्या महती न आतुविदसौ मित्रात्कृतोपक्रियात् ॥ १६३ ॥ दूरस्थामरविक्रियस्य भवतो बाधा न शांतात्मनो न क्रोधो न भयं च तेन न बुधैः सोढेति संस्तूयसे । माहात्म्यप्रशमौ तु विस्मयकरौ तौ तेन तीर्थेशिन, स्तोतव्यं किमिति स्तुतो भवतु न पार्श्वो भवोच्छित्तये ॥ १६४ ॥ पश्यैतौ कृतवेदिनौ हि धरणौ धर्म्यौ विलीडांगतौ तावेवोपकृतिर्न ते त्रिभुवनक्षेमैकभूमेस्तत । भूभृत्पातनिषेधन ननु कृतं चेत्प्राक्तनोपद्रवाः केनासन्निति सारसंस्तुतिकृतः पार्श्वो जिनः पातु वः ॥१६५॥ मेदोहे फणिमडप फणिवधूछत्र क्षतिर्घातिना कैवल्याप्तिरधातु देहमहिमा हानिर्भवस्यामरी । भीतिस्तीर्थकृदुद्गमोपगमन विघ्नस्य-

ही नम्री भूत जान पडता है परंतु आपका ध्यान सुमेरु पर्वतके समान अचल है फिर भला श्वासोच्छ्वास की वायुके समान संवरदेवसे आपको क्या क्षोभ हो सकता है इस प्रकारकी अनेक स्तुतियोंके स्वामी श्रीपार्श्वनाथ भगवान हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६२ ॥ हे स्वामी ! यद्यपि धैर्य आदि बडे २ गुणोंसे सब तीर्थंकर समान हैं तथापि आपके तृप्त करनेवाले गुण सब संसारमें प्रसिद्ध हुए हैं और वे सब एक कमठके ही कारण प्रसिद्ध हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि अपकार करने वाले शत्रुसे बडे पुरुषोंकी जो सबसे बडी प्रसिद्ध होती है वह उपकार करनेवाले मित्रसे कभी नहीं हो सकती ॥१६३॥

हे देव ! संवर देवने दूर रहकर आपपर विक्रिया की तथापि आपका आत्मा अत्यंत शांत बना रहा आपको किसी तरहकी बाधा नहीं हुई न क्रोध आया और न भय हुआ परंतु विद्वान लोग इन गुणोंसे भी "आप सहनशील हैं" ऐसी आपकी स्तुति नहीं करते किंतु आपका माहात्म्य और शांतता दोनों ही अत्यंत आश्चर्यजनक हैं इसलिये आपकी स्तुति भी किस तरह की जाय इसप्रकार जिनकी स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथस्वामी हम लोगोंके जन्ममरणरूप संसारका नाश करें ॥ १६४ ॥ देखो ये धरणेंद्र पद्मावती दोनों ही बडे कृतज्ञ हैं और बडे धर्मात्मा हैं इसप्रकार इन दोनोंकी संसारमें पूज्यता हुई है परंतु तीनों लोकोंके कल्याण उत्पन्न करनेकी एक भूमि ऐसे आपका ही यह उपकार समझना चाहिये यदि ऐसा न माना जाय और उन दोनोंने ही पर्वतोंका पडना पत्थर वरसाना आदि बंद किया है ऐसा माना जाय तो फिर यह भी ढूंढना पडेगा कि पहिले उपद्रव किसके द्वारा नष्ट हुए थे ? इसप्रकार जिनकी सारभूत स्तुति की जाती है ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥ १६५ ॥ हे प्रभो सर्पके फणाओंके मंडलसे आपके उपद्रवोंका

ज्ञानास्रावनो विक्रियर्द्धिकाः । शतानि सप्त पंचाशच्चतुर्थावगमाः स्मृताः ॥ १७१ ॥ त्रादिनः षट्शतान्येव ते सर्वेपि समुच्चिताः । अभ्यर्णीकृतनिर्वाणा स्यु. सहस्राणि षोडश ॥१५२॥ सुलोचनाया. षट्त्रिंशत्सहस्राण्यार्यिका विभोः । श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणा श्राविकास्तत' ॥१५३॥ देवी देव्योप्यसंख्याता संख्यातास्तिर्यगगिन । एव द्वादशभिर्युक्तो गणैर्धर्मोपदेशनं ॥१५४॥ कुर्वाण पचभिर्मासैर्विरहीकृतसप्तति। संवत्सराणा मास स सहस्र विहृतिक्रियां ॥१५५॥ षट्त्रिंशन्मुनिभिः सार्द्धं पतिमायोगमास्थित । श्रावणे मासि सप्तम्यां सितपक्षे दिनादिमे ॥१५६॥ भागे विशाखनक्षत्रे ध्यानद्वयसमाश्रयात् । गुणस्थानद्वये स्थित्वा सम्मेदाचलमस्तके ॥ १५७ ॥ तत्कालोचितकार्याणि वतयित्वा यथाक्रम । नि शेषकर्मनिनाशान्निर्वाण निश्चलं स्थितः ॥ १५८ ॥ कृतनिर्वाणकल्याणा सुरैस्तास्त ववंदिरे । वदामहे वय चैन नदितु सुदरैर्गुणै ॥ १५९ ॥ आदिमध्यांतगंभीरा सर्तोभोनिधिसन्निभा । उदाहरणमेतेषां पार्श्वो गण्य. क्षमावता ॥ १६० ॥ त्वज्जन्माभिषवोत्सवेऽमरगिरौ स्वोच्छ्वासनि श्वासजैः स्वर्गेशां भृशमानयस्त्वमनिलैरांदोललीला मुहुः । किं कुर्यास्तव तादृशोयममरस्तत्क्षां-

वाय असंख्यात देव देवियां थी और तिर्यंच थे। इस प्रकार बारह सभाओंसे सुशोभित होकर धर्मोपदेश देते हुए उन भगवानने पांच महीने कम सत्तरि वर्ष तक विहार किया। अंतमें एक महीने तक सब योगोंका निरोध कर छत्तीस मुनियोंके साथ सम्मेद शिखर पर्वत पर प्रतिमा योग धारण किया तथा श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन विशाषा नक्षत्रमें दिनके पहिले भागमें अर्थात् सवेरेके समय तीसरे और चौथे दो शुक्ल ध्यानोंका आश्रय लिया ॥ १५४–१५७ ॥ उन्होंने अनुक्रम से उस समय करने योग्य सब काम किये और फिर समस्त कर्मोंके नाश हो जानेसे वे भगवान अचल मोक्ष स्थानमें जा विराजमान हुए ॥ १५८ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणकी पूजा की और उनकी वंदना की इसीलिये सुंदर गुणोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होनेके लिये हमलोग भी उनकी वंदना करते हैं ॥ १५९ ॥ जो सज्जन समुद्रके समान आदि मध्य और अंतमें भी गंभीर हैं ऐसे क्षमावानोंमें यदि अच्छा उदाहरण ढूंढा जाय तो श्रीपार्श्वनाथ स्वामी ही गिनने योग्य हैं ॥ १६० ॥ हे प्रभो ! जन्माभिषेकके समय मेरु पर्वत पर आपने उच्छ्वास निन्छ्वासकी वायुसे आपने स्वर्गके इंद्रादि देवोंको भी अच्छी तरह वारवार झुला दिया था फिर भला यह संवर सरीखा क्षुद्र देव आपका क्या कर सकता उसे तो केवल आपकी क्षमासे ही अच्छा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ, और जिसप्रकार मछली समुद्रमें लोडती हैं उसी प्रकार उसने आपके चरणोंमें आकर नमस्कार किया। हे देव पार्श्वनाथ जिनेंद्र ! ऐसे आप हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ १६१ ॥ हे नाथ ! अत्यंत निर्मल हुआ आपका ज्ञान अकंप है उसको समुद्रकी उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि समुद्र महावायुके चलने पर चंचल हो जाता है और उसमें भरा हुआ पानी नीला है परंतु आपका ज्ञान निर्मल है समुद्र दूरसे

१३९ ॥ भर्तारमस्वादावृत्य तत्पत्नी च फणातते । उपर्युच्चैः समुद्धृत्य स्थिता वज्रातपच्छदं ॥१४०॥ अमू क्रूरौ प्रकृत्यैव नागौ सस्मारतु कृतं । नोपकारं परे कस्माद्विस्मरेत्साद्रचेतसः ॥ १४१ ॥ ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंक्षये । विनाशमगमद्विष्वो विकार कमठद्विष ॥ १४२ ॥ द्वितीयशुक्लध्यानेन मुनिर्निर्जित्य कर्मणां । त्रितयं चैत्रमासस्य कालपक्षे दिनादिमे ॥ १४३ ॥ भागे विशाखनक्षत्रे चतुर्दश्यां महोदय । संप्रापत्केवलज्ञान लोकालोकावभासनं ॥ १४४ ॥ तदा केवलपूजां च सुरेंद्रा निरवर्तयन् । संवरोप्याप्तकालादिलब्धि शममुपागमत् ॥ १४५ ॥ प्राप्तसम्यक्त्वसंशुद्धिं दृष्ट्वा तद्वनवासिनः । तापसास्त्यक्तमिथ्यात्वाः शतानां सप्त संयमं ॥ १४६ ॥ गृहीत्वा शुद्धसम्यक्त्वाः पार्श्वनाथ कृतादरा । सर्वे प्रदक्षिणीकृत्य प्रणेमुः पादयोर्द्वयोः ॥१४७॥ क तद्वैरं वृथा घातिरीदृशी कास्य पापिनः । सख्यमास्ता विरोधश्च वृद्धये हि महात्मभि ॥ १४८ ॥ गणीशा दश तस्यासन् विधायादिं स्वयंभुव । सार्द्धानि त्रिशतान्युक्ता मुनींद्राः पूर्वधारिणः ॥ १४९ ॥ यतयोयुतपूर्वाणि शतानि नव शिक्षका । चतु शतोत्तरं प्रोक्ता सहस्रमवधित्विषः ॥ १५० ॥ सहस्रमतिम-

कमठ शत्रुका सब विकार नष्ट हो गया ॥ १४२ ॥ दूसरे शुक्ल ध्यानके बलसे उन्होंने ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों कर्मोंको नष्ट किया और चैत्र कृष्णा चतुर्दशीके दिन विशाषा नक्षत्रमें सबेरेके समय उन महा विभूतिको धारण करनेवाले भगवानने लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १४३–१४४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर केवल ज्ञानकी पूजा की और वह संवर नामका ज्योतिषी देव भी कालादि लब्धिके प्राप्त होनेसें अत्यंत शांत हो गया ॥ १४५ ॥ उसने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया तथा उसे देखकर उस बनमें रहनेवाले सातसैं तपस्वियोंने मिथ्यात्व छोडकर संयम धारण किया शुद्ध सम्यग्दर्शन स्वीकार किया और उन सबने बडे आदरसे श्रीपार्श्वनाथकी प्रदक्षिणा देकर उनके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम किया ॥ १४६–१४७ ॥ देखो कहां तो उस पापीका ऐसा व्यर्थका वैर और कहां ऐसी शांति, परंतु यह भी ठीक ही है क्योंकि महात्माओंके साथ मित्रता करना अथवा विरोध करना दोनों ही वृद्धि करने वाले होते है ॥ १४८ ॥ भगवान पार्श्वनाथके समवसरणमें स्वयंभुवको आदि लेकर दश गणधर थे, ग्यारह अंग और चौदह पूर्वको धारण करनेवालोंकी संख्या तीन सौ पचास थी। दशहजार नौ सौ शिक्षक मुनि थे और एक हजार चारसौ अवधिज्ञानी थे ॥ १४९–१५० ॥ इसी प्रकार एक हजार केवल ज्ञानी थे, एक ही हजार विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, सातसौ पचास मनःपर्ययज्ञानी थे और छह सौ वादी थे। इसप्रकार शीघ्र ही मुक्त होने वाले सब मुनियोंकी संख्या सोलह हजार थी ॥ १५१–१५२ ॥ इसी प्रकार उन भगवानके समवसरणमें सुलोचनाको आदि लेकर छत्तीस हजार अर्जिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे और तीन-लाख श्राविकाएं थीं ॥ १५३ ॥ इनके सि-

स्थितः ॥ १२८ ॥ उत्तराभिमुखे पौषपक्षे मासि सितेतरे । एकादश्यां स पूर्वाह्णे समं त्रिशतभूभुजैः ॥ १२९ ॥ कृतसिद्धनमस्कारो दीक्षालक्ष्मीं समाददे । दूतीं वा मुक्तिकान्ताया मान्यां कल्पप्रसाधिकां ॥ १३० ॥ केशान् विमोचितांस्तस्य मुष्टिभिः पञ्चभिः सुरेट् । समभ्यर्च्यादरान्नीत्वा न्यक्षिपत्क्षीरवारिधौ ॥ १३१ ॥ आत्तसामायिकः शुद्ध्या चतुर्थज्ञानभास्करः । गुल्मखेटपुरं कायस्थित्यर्थं समुपेयिवान् ॥ १३२ ॥ तत्र धन्याख्यभूपाल श्यामवर्णोऽष्टमङ्गलैः । प्रतिगृह्याशनं शुद्धं दत्त्वा प्रापत्क्रियोचितं ॥ १३३ ॥ नयन् स चतुरो मासान् छाद्मस्थ्येन विशुद्धिभाक् । दीक्षाग्रहवने देवदारुभूरिमहीरुहः ॥ १३४ ॥ अधस्तादष्टमाहारत्यागादात्तविशुद्धिकः । प्रत्यासन्नभवप्रान्तो योग्यं सप्तदिनावधि ॥ १३५ ॥ गृहीत्वा सत्त्वसारेऽस्थाद्धर्मध्यानं प्रवर्तयन् । संवरो नाम्बरे गच्छन्नगच्छत् स्व विमानकं ॥ १३६ ॥ लोकमानो विभङ्गेन स्पष्टप्राग्वैरबन्धनः । रोषात्कृतमहाघोषो महावृष्टिमपातयत् ॥ १३७ ॥ व्यधात्तथैव सप्ताहान्यन्यांश्च विविधान् विधीः । महोपसर्गान् शैलोपनिपातान्तान्निवातकः ॥ १३८ ॥ तद्ज्ञात्वावधिबोधेन धरणीशो विनिर्गतः । धरण्याः प्रस्फुरद्रत्नफणामण्डपमण्डितः ॥

इसके बाद अत्यंत विशुद्धिको धारण करनेवाले पार्श्वनाथने छद्मस्थ अवस्थाके चार महीने व्यतीत किये और फिर जहां दीक्षा ली थी उसी वनमें आकर एक देवदारु नामके सबसे बडे वृक्षके नीचे विराजमान हुए। आठ दिनका उपवास धारण करनेसे उनकी विशुद्धि और भी बढ गई थी, उनके संसारका अंत अत्यंत समीप आ चुका था और उनका पराक्रम बहुत ही बढ गया था। सात दिन तक योग धारण करनेका नियम लेकर वे श्रेष्ठ धर्मध्यानमें लग रहे थे। इसी समय संवर नामका कमठका जीव ज्योतिषी देव आकाश मार्गसे जा रहा था परंतु भगवानके ऊपरसे जानेके कारण उसका विमान रुक गया ॥ १३४–१३६ ॥ तब उसने विभंगावधिसे देखा। पार्श्वनाथको देखते ही पहिले वैरका संस्कार होनेसे वह क्रोधित हुआ। उस निर्बुद्धिने बडा भारी शब्द किया और बडी भारी वर्षा बरसाई इसी तरह वह सात दिन तक महा गर्जना और महा वर्षा करता रहा। इसके सिवाय यमराजके समान उसने पत्थरोंकी वर्षाको आदि लेकर और भी अनेक तरहके महोपसर्ग किये ॥ १३७–१३८ ॥ अवधि ज्ञानसे उस उपसर्गको जानकर उसी समय पद्मावतीके साथ धरणेंद्र आया और देदीप्यमान रत्नोंके फणामंडपसे सुशोभित होकर उसने चारो ओरसे ढककर भगवानको ऊपर उठा लिया तथा उसकी देवी पद्मावती अपने फणाओंके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत ऊंचा ऊपर उठा कर खडी रही॥१३९-१४० ॥ इस प्रकार स्वभावसे ही क्रुर ऐसे सर्प सर्पिणीने केवल किये हुए उपकारका स्मरण कर वह उपसर्ग दूर किया सो ठीक ही है क्योंकि दयालु पुरुष किये हुए उपकारको किस प्रकार भूल सकते हैं अर्थात् वे कभी नहीं भूलते ॥१४१॥ तदनंतर भगवान ध्यानमें तल्लीन हुए ध्यानके माहात्म्यसे उनका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया और मोहनीयके नाश होनेसे

न्। नशल्यो मृतिमासाद्य सवरो ज्योतिषामरः ॥ ११७ ॥ नाम्नाभवत्सकोपाना तपसामीदृशी गति । नागो नागी च संप्राप्तसमभ वा कुमारतः ॥११८॥ वभूवतुर्महर्द्धिश्च तत्पत्नी च पृथुश्रिया । तत त्रिंशत्समामानकुमारे समये गते ॥ ११९ ॥ साकेतनगराधीशो जयसेनमहीपति । भगलीदेशरुज तहयादि प्राभृतान्वित ॥ १२० ॥ अन्यदासौ निसृष्टार्थं प्राहिणोत्पार्श्वसंनिधि । गृहीत्वोपायनं पूजयित्वा दूतोत्तमं मुदा ॥ १२१ ॥ साकेतस्य विभूतिं त कुमार प-रिपृष्टवान्। सोपि भट्टारक पूर्वं वर्णयित्वा पुरुं पर ॥ १२२ ॥ पश्चाद्व्यावर्णयामास प्राज्ञा हि क्रमवेदिनः। श्रुत्वा तत्तत्र किं जातः तीर्थकृन्नाम बद्धवान् ॥ १२३ ॥ एष एव पुनर्मुक्तिमापदित्युपयोगवान्। साक्षात्कृतविजानीतसर्वप्रभवसंततिः ॥ १२४ ॥ विजृंभितमतिज्ञानक्षयोपशमवैभवात्। लब्धबोधि पुनर्लौकांतिकदेवप्रबोधितः ॥ १२५ ॥ तत्क्षणागतदेवेंद्रप्रमुखामरनिर्मित । प्रसिद्धमध्यकल्याणसवनादिमहोत्सव ॥ १२६ ॥ प्रत्येयबुक्तिमद्वाग्भिः कृतबंधुविसर्जन । आरुह्य शिविका रूढा विमलाभिधया विभुः ॥ १२७ ॥ विधायाष्टमर्माहारत्यागमश्वबने महा। शिलातले महसत्व पल्यंकासनमा-

ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग अनुक्रमको भी अच्छी तरह जानते हैं। उसे सुनकर वे विचार करने लगे कि मैंने तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया इससे क्या लाभ हुआ। यह तीर्थंकर नाम कर्मका बंध करना तवही उपयोगी हो सकता है जब कि यह जीव मुक्त हो जाय। इस तरह विचार करते हुए उन्होंने अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम होनेसे अपने पहिलेके भव प्रत्यक्षके समान जान लिये तथा उन्हें स्वात्मज्ञान प्रगट हुआ और उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर स्तु-तिकर समझाया ॥ १२०-१२५ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर प्रसिद्ध दीक्षा कल्याणका अभिषेक कर महोत्सव मनाया ॥ १२६ ॥ तदनंतर पार्श्वनाथने विश्वास करने योग्य और युक्तियोंसे भरे हुए बचनोंसे समझाकर सब भाई बंधु ओंसे विदा मांगी और फिर वे भगवान विमला नामकी पालकी पर सवार होकर अश्ववनमें पहुंचे अनंत शक्तिको धारण करनेवाले वे भगवान एक शिला पर उत्तरकी ओर मुखकर पर्यंकासन विराजमान हुए। पौष कृष्ण एकादशीके दिन सवेरे के समय तेलाका नियम लेकर तीनसै राजाओंके साथ सिद्ध भगवानको नमस्कार किया और वस्त्राभूषण पहिने हुए तथा अत्यंत मान्य ऐसी मुक्ति रूपी कन्याकी दूतीके समान दीक्षा लक्ष्मी स्वीकार की ॥ १२७-१३० ॥ भगवानने जो पांच मुष्टिओंके द्वारा केशोंका लोंच किया था इंद्रने उन बालोंकी पूजा की और आदर पूर्वक ले जाकर क्षीर सागर में उन्हें डाला ॥ १३१ ॥ भगवानने सामायिक धारण किया आत्माकी शुद्धि होनेसे उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ और फिर वे आहारके लिये गुल्मसेटपुर नगरमें पहुंचे ॥ १३२ ॥ वहां पर श्यामवर्णको धारण करनेवाले धन्य नामके राजाने अष्टमंगल द्रव्योंके द्वारा उनका पडगाहन किया और उस समयकी उचित क्रिया कर शुद्ध आहार दिया ॥३३॥

१०५ ॥ अह प्रभुर्ममायं किं वा करोतीत्यवज्ञया । तपसो मम माहात्म्यमवुध्वैव ब्रवीषि किं ॥ १०६ ॥ पंचाग्निमध्यवर्तित्वं पवनाहारजीवन् । ऊर्ध्ववाहु तया पादेनैकेनैव चिरस्थितिः ॥ १०७ ॥ स्वयं पतितपर्णादेरुपवासेन पारण । इत्यादिकायसंतापि तापसाना सुदुर्धरं ॥ १०८ ॥ तपोनाधिकमस्त्यस्मादिति तद्वचनश्रुते । सुभौम सस्मितोवादीन्न भवंतमह गुरुं ॥ १०९ ॥ अवमन्ये पुनः किंतु संत्यज्यासागमादिकं । मिथ्यात्वादिचतुष्केण पृथिव्यादिषु षट्स्वपि ॥ ११० ॥ वाचा कायेन मनसा कृतकादित्रिकेण च । वने प्रवर्तमानानामनासमतसश्रयात् ॥ १११ ॥ निर्वाणप्रार्थना तेषा तदुलावाप्तिवाच्छया । तुषखडनखेदो वा घृतेच्छा जलमथनात् ॥ ११२ ॥ हेमोपलब्धिबुद्धिर्वा दाहादधाश्मसहतेः । अधस्येवाग्निसपातो दावभीत्या प्रधावत ॥ ११३ ॥ ज्ञानहीने परिक्लेशो भाविदुःखस्य कारण । इति प्ररूप्यते युष्मत्स्नेहेन महतामुना ॥ ११४ ॥ इत्येतदुक्तमज्ञोपि पूर्ववैरानुबधनात् । निजपक्षानुरागित्वाद् दुःसंसारादिहागते ॥ ११५ ॥ प्रकृत्यैवातिदुष्टत्वादनादाय विरुद्धधीः । सुभौमको भवानत्र सस्मयोय कुमारक ॥ ११६ ॥ पराभवति मामेवमिति तस्मिन् मकोपवा-

अथवा जल मंथनसे घीकी इच्छा करते हैं ॥ १०७–११२ ॥ अथवा अंधपापाणको जलाकर सुवर्ण प्राप्त करना चाहते हैं अथवा अंधेके समान दावानल अग्निसे डरकर दौडते हुए अग्निमें ही पडते हैं ॥ १३ ॥ बिना सम्यग्ज्ञानके जो कुछ भी कायक्लेश किया जाता है वह आनेवाले दुःखोंका कारणही होता है और आपके स्नेहसे यही बात इन कुमार महापुरुषने आपसे कही है ॥ ११४ ॥ इस प्रकार उस सुभौमकुमारने कहा तथापि उस विरुद्ध बुद्धिवाले मूर्ख तपस्वीने पहिले जन्मके बैरका संस्कार होनेसे वा अपने पक्षका अनुरागी होनेसे अथवा स्वभाव ही से अत्यंत दुष्ट होनेसे उसके कहने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । तदनंतर वह तपस्वी क्रोधित होकर कहने लगा कि इस संसारमें तू ही सुभौम है और यह कुमार बडा ही अभिमानी है इसलिये इसने मेरा तिरस्कार किया है । इसप्रकार उस तपस्वीके हृदयमें शल्य बनी ही रही और आयुके अंतमें मरकर वह संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधसहित तपश्चरण करनेवालोंकी ऐसी ही गति होती है । इधर सर्प सर्पिणीने कुमारके समझाने पर समता भाव धारण किया और मरकर दोनोंही बडी विभूतिको धारण करनेवाले धरणींद्र पद्मावती हुए । इसके बाद जब कुमारके जन्मसे तीस वर्ष गये अर्थात् जब उनकी तीस वर्षकी अवस्था हो गई ॥ ११५–११६ ॥ तब साकेत नगरके स्वामी राजा जयसेनने किसी एक दिन भगली देशमें उत्पन्न हुए घोडे आदि अनेक तरहकी भेंट देनेके लिये पार्श्वनाथके समीप किसी दूतको भेजा । कुमार पार्श्वनाथने बडी प्रसन्नतासे वह भेंट ली, उस उत्तम दूतका आदर सत्कार किया और फिर उस दूतसे साकेत नगरकी विभूति पूछी । इसके उत्तरमें दूतने पहिले ही श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरोंका वर्णन किया और फिर अपने नगरका हाल कहा सो ठीक

रायुष । बालशालितनुच्छाय: सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ९४ ॥ नवारत्निप्रमोत्सेधो लक्ष्मीवानुभवराज । षोडशाब्दावसानेऽय कदाचिन्मर्यावन: ॥ ९० ॥ क्रीडार्थं स्ववलेनामा निर्ययायाद्बहिः पुरं । आश्रमादिवने मातुर्महीपालपुराधिपं ॥ ९६ ॥ पितरं तं महीपालनामानममगर्वितः । महादेवीवियोगेन दु:- खात्तापसवीक्षितं ॥ ९७ ॥ तपः कुर्वंतमालोक्य पंचपावकमध्यगं । तत्समीपे कुमारोस्थादनत्वैनमनादरः ॥ ९८ ॥ अवधार्य तदाविष्टकोपेन कुमुनिर्गुरुः । कुलीनोहं तपोवृद्ध पिता मातुर्नमस्क्रियां ॥ ९९ ॥ अकृत्वा मे कुमारोज्ञः स्थितवान् मदविह्वल· । इति प्रक्षोभमागत्य प्रशांते पावके पुनः ॥ १०० ॥ नि-क्षेप्तुं स्वयमेवोत्क्षिप्य परशु घनं । भिदाग्निधनमह्नोसौ माभैत्सीरत्र विद्यते ॥ १०१ ॥ प्राणीति वार्यमाणोपि कुमारेणावधित्विषा । अन्वतिष्ठदधः कर्म त स्याभ्यतरवर्तिनौ ॥ १०२ ॥ नागी नागश्च तच्छेदाद् द्विधाखंड तदागतौ । तन्निरीक्ष्य सुभौमाख्यः कुमार समभाषत ॥ १०३ ॥ अहं गुरुस्तपस्वीति गर्व दुर्वहमावहन् । पापास्रवो भवत्यस्मान्नवेत्येतच्च वेत्सि किं ॥ १०४ ॥ अज्ञानतपसानेन दुःखं तेत्र परत्र च । इति तद्वचनात्कोपी मुनिरित्थं तमब्रवीत् ॥

उसे काटनेकेलिये बडी भारी कुल्हाडी उठाई। तब अवधिज्ञानसे जानकर कुमारने कहा कि इस लकडीको मत काटो इ-समें प्राणी बैठे हैं। इसतरह कुमारके निवारण करनेपर भी उस तपस्वीने वह पाप कर्म करडाला और उसकी चोटसे उस लकडीमें बैठे हुए सर्प सर्पिणीके उसीसमय दो टुकडे हो गये उसे देखकर सुभौमकुमार कहने लगा ॥ ९३–१०३ ॥ कि तू मैं गुरु हूं तपस्वी हूं इसप्रकारका मिथ्या और भारी अभिमान करता है परंतु तुझे इससे पापास्रव होता है या नहीं क्या तू इस बातको जानता है इस अज्ञान तपश्चरणसे तुझे इस लोकमें भी दुःख होगा और परलोकमें भी दुःख मिलेगा सुभौमकुमारके ये वचन सुनकर उस तपस्वीको और भी क्रोध आया तथा इसप्रकार कहने लगा ॥ १०४–१०५ ॥ कि मैं प्रभु हूं यह कुमार मेरा तिरस्कार क्या कर सकता है तू मेरे तपश्चरणकी महिमा नहीं जानता इसीलिये ऐसा कहता जान पडता है ॥ १०६ ॥ पंचाग्निके मध्यमें बैठना, वायु भक्षणकर ही जीवित रहना, ऊपरकी ओर भुजाकर एक ही पैरसे बहुत देरतक लटकते रहना, और उपवास कर अपने आप गिरे हुए पत्तोंसे पारणा करना इसप्रकार शरीरको संता-पित करनेवाले तपस्वियोंका तप बहुत ही कठिन है इस प्रकारके तपश्चरणसे और अधिक तपश्चरण हो ही नहीं सकता। उस तपस्वीके ऐसे वचन सुन कर वह सुभौमकुमार हंसकर कहने लगा कि हमने न तो आपको गुरु माना है और न ति-रस्कार ही किया है किंतु जो आप्त आगमको छोडकर वनमें निवास करते हैं मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे पृथ्वी आदि छहो कायोंके जीवोंका घात करते हैं और इस तरह अनाप्तके कहे हुए मतका आश्रय लेकर निर्वाण प्राप्त होनेकी प्रार्थना करते हैं वे चांवल मिलने की इच्छासे भूसीके कूटनेका खेद उठाते हैं

नेक्षणत् । स्वर्गलोकैव प्रमान्य स्वर्गादथावतीर्णवान् ॥ ८४ ॥ अवताराद्विमानस्य भवनात्पवनाशिनः । त्रिबोधदीधिती रत्नराशिनालिंगतो गुणैः ॥ ८५ ॥ विधूपधूमकेतूलक्षणाद्दाहकोंहसा । वक्त्राभोजे गजेन्द्रस्य प्रवेशात्ते कृशोदरि ॥ ८६ ॥ अवस्थिति स सप्रापदुदरेऽमरपूजितः । इति श्रुत्वा तुपद्म णीं पत्युरेणी-विलोचना ॥ ८७ ॥ तदाखिलामराधीशाः समागत्य व्यधुर्मुदा । स्वर्गावतरणे पित्रोः कल्याण मिषवोत्सव ॥ ८८ ॥ स्वर्गलोक च तद्गेहमतिशेतेस्म संपदा । किं करोति न कल्याण कृतपुण्यसमागम ॥ ८९ ॥ नवमे मासि सपूर्णे पौषे मास्यसिते सुत । पक्षे योगेनिले प्रादुरासीदेकादशीतिथौ ॥ ९० ॥ तदा निजासनाकंपाद् ज्ञात्वा तीर्थकरोदयं । सौधर्मप्रमुखाः सर्वे मंदराचलमस्तके ॥ ९१ ॥ जन्माभिषेककल्याणपूजानिर्वृत्यनंतरं । पार्श्वाभिधान कृत्वास्य पितृभ्या त समर्पयन् ॥ ९२ ॥ नेम्यंतरे खपचखराग्न्यष्टमितवत्सरे । प्राते हता कृतातस्य तदभ्यंतरजीवितः ॥ ९३ ॥ पार्श्वनाथ समुत्पन्नः शतसवत्स

मनाया उस समय उनका राजभवन संपदाओंसे स्वर्गलोकको भी उल्लंघन कर रहा था सो ठीक ही है क्योंकि किये हुए पुण्य कर्मोंका उदय होनेसे कौनसा कल्याण प्राप्त नहीं होता है ॥ ८९ ॥ नौ महीने वीत जाने पर पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनिलयोगमें वह पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९० ॥ उसी समय अपने आसनोंके कंपायमान होनेसे सौधर्मेंद्र आदि देवोंने तीर्थकरका जन्म जाना और सबने आकर सुमेरु पर्वत पर उनका जन्माभिषेक कर पूजा की तथा पार्श्वनाथ नाम रख कर फिर माता पिताको सोंप दिया ॥ ९१–९२ ॥ श्रीनेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद तिरासी हजार सातसौ पचास वर्ष वीत जाने पर सब कर्मोंको नाश करने वाले पार्श्वनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी समयमें शामिल है । उनकी आयु सौ वर्षकी थी, शरीरकी कांति छोटे चावलोंके पेडोंके समान थी, उनके शरीरमें सब लक्षण सुशोभित थे, शरीरकी ऊंचाई नौ हाथ थी और वे लक्ष्मीवान् उग्रवंशमें उत्पन्न हुए थे । सोलह वर्ष वीत जाने पर उन्हें नवयौवन अवस्था प्राप्त हुई थी । किसी एक दिन वे अपनी सब सेनाके साथ क्रीडा करनेके लिये नगरके बाहर गये । नगरके बाहर जाकर वे आश्रय वनमें पहुंचे वहां पर महीपाल नगरका राजा था तथा अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुखी होकर तपसी हो गया था और पंचाग्निके मध्यमें वैठा हुआ तपश्चरण कर रहा था उसे देखकर देवोंके द्वारा पूजित हुए कुमार पार्श्वनाथ उसके समीप गये और उसे विना ही नमस्कार किये जाकर खडे रहे । अपना इसतरहका अनादर होते देखकर महीपालको क्रोध आया और वह विचार करने लगा कि मैं गुरु हूं, कुलीन हूं, तपोवृद्ध हूं अर्थात् तपस्वी होनेसे बडा हूं और इसकी माताका पिता हूं तो भी इस मूर्ख कुमारने मुझे नमस्कार नहीं किया है और मदोन्मत्त होकर मेरे सामने खडा है । इसप्रकार क्षुब्ध होकर उस मूर्ख तपस्वीने शांत हुई अग्निमें डालनेकेलिये वहांपर पडी हुई लकडी काटनी चाही और

करः ॥ ७२ ॥ विश्वान् वैषयिकान् भोगान् शश्वत्संप्राप्य निर्विशन् । तल्लोको लीलया काललामैत्कलयन् कलां ॥ ७३ ॥ षण्मासैरंतिमैस्तस्मिन्नागमिष्यत्सम् मही । द्वीपेस्मिन् भारते काशिविषये नगराधिप ॥ ७४ ॥ वाराणस्यामभूद्विश्वसेनः काश्यपगोत्रज । ब्राह्मस्य देवी संप्राप्तवसुधारादिपूजना ॥ ७५ ॥ वैशाखकृष्णपक्षस्य द्वितीयायां निशात्यये । विशखर्चे शुभस्वप्नान्निरीक्ष्य तदनंतरं ॥ ७६ ॥ स्ववक्त्राब्जप्रविष्टोरुगजरूपविलोकनी । प्रभातपटहध्वानसमुन्मीलितलोचना ॥ ७७ ॥ मंगलाभिषवाविष्टतुष्टि पुण्यप्रसाधना । विभावरीव सज्ज्योत्स्ना राजान समुपेत्य सा ॥ ७८ ॥ कृतोपचारा सविश्य विष्टरार्द्ध महीपते । स्वदृष्टसकलस्वप्नान् यथाक्रममभाषत ॥ ७९ ॥ श्रुत्वा तान् सावधिः सोपि फलान्येवं न्यवेदयत् । गजेंद्रवीक्षणात्पुत्रो वृषभालोकनात्पति ॥८०॥ त्रिविष्टपस्य सिंहेन दृष्टेनानंतवीर्यक । मंदराभिषवप्रापी पद्माभिषवदर्शनात् ॥ ८१ ॥ दामद्वयावलोकेन धर्मद्वितयतीर्थकृत् । शशांकमंडलालोकात् त्रैलोक्यकुमुदप्रिय ॥ ८२ ॥ तेजस्वी भास्वतो मत्स्ययुगलेन सुखाखिलः । निधीनामधिपः कुंभवीक्षणात्सर्वलक्षण ॥ ८३ ॥ सरसः सागरात्सर्वज्ञाता सिंहास-

बजनेवाले नगाडे आदि बाजोंकी आवाज सुनकर वह उठी और मंगलाभिषेक कर तथा वस्त्राभरण पहिन कर राजाके समीप इस प्रकार पहुंची मानो चांदनी रात चंद्रमाके समीप पहुंची हो ॥ ७७–७८ ॥ आदरपूर्वक वह महाराजके आधे सिंहासन पर विराजमान हुई और उसने महाराजसे अपने देखे हुए सब स्वप्न अनुक्रमसे कह सुनाए ॥ ७९ । उन स्वप्नों को सुन कर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले महाराज विश्वसेनभी उनका फल इसप्रकार कहने लगे कि हाथीके देखनेसे पुत्र होगा, बैलके देखनेसे वह तीनोंलोकोंका स्वामी होगा, सिंहके देखनेसे उसके अनंत वीर्य वा पराक्रमी होगा, और लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे सुमेरु पर्वत पर उसका अभिषेक होगा ॥ ८०–८१ ॥ दो मालाओंके देखनेसे दोनों धर्मरूप तीर्थोंकी प्रवृत्ति करने वाला होगा, चंद्रमाके देखनेसे तीनोंलोक रूपी कमोदिनीका प्रिय होगा ॥ ८२ ॥ सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होगा, दो मछलियोंके देखनेसे सब तरहसे सुखी होगा, सरोवरके देखनेसे सब लक्षणोंसे सुशोभित होगा, समुद्र देखनेसे सर्वज्ञ होगा, सिंहासन देखनेसे स्वर्गलोकके इंद्रादि देवोंके द्वारा सबसे अधिक पूज्य होगा, नीचे आते हुए विमान के देखनेसे वह स्वर्गसे आकर अवतीर्ण होगा, धरणेंद्रका भवन देखनेसे तीनों ज्ञानोंकी कांतिको धारण करने वाला होगा, रत्नोंकी राशि देखनेसे वह सर्व गुण संपन्न होगा और निरधूम अग्निके देखनेसे वह सब पापोंका वा कर्मोंका नाश करनेवाला होगा हे कृशोदरि ! तेरे मुख कमलमें हाथीके प्रवेश करनेसे देवोंके द्वारा पूजित हुए उस पुत्रने तेरे उदरमें आकर अवस्थान किया है । इस प्रकार पतिके वचन सुनकर वह मृगनयनी बहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ८३–८७ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बडी प्रसन्नतासे भगवानके स्वर्गावतरणके समय माता पिताका कल्याणाभिषेक कर उत्सव

यते समुद्रदत्तस्य समीपे बहुभिः समं । राजसी राजस भाव परित्यज्य सुलेश्यया ॥ ६३ ॥ साराधनाचतुष्क सन् विशुद्ध्यैकादशांगधृत् । प्रत्ययांस्ती-
र्थकृन्नाम्नो भावयामास षोडश ॥ ६४ ॥ यथोक्त भावयित्वैताश्नाम वध्नांतिमं शुभ । चिरं घोरतप कृत्वा प्रांते शातांतरात्मक ॥६५॥ प्रायोगपमन प्राप्य
प्रतिमायोगमास्थित । धीर क्षीरवने धर्मध्यानाधीनो निराकुलं ॥ ६६ ॥ कमठ' प्राक्तन पापी प्रच्युतो नरकक्षितेः । कंठीरवत्वमासाद्य तन्मुनेः कंठम-
ग्रहीत् ॥ ६७ ॥ सोडसिंहोपसर्गोसौ चतुराराधनाधन । व्यसुरानतकल्पेशो विमाने प्राणतेऽभवत् ॥ ६८ ॥ तत्र विंशतिवाराब्धिविहितोपमजीवित- ।
सार्द्धारत्नित्रयोन्मेयशरीरः शुक्ललेश्यया ॥ ६९ ॥ दशमासातनि श्वासी मनसामृतमाहरन् । खचतुष्कद्विवर्षांते मनसा स्त्रीप्रचारवान् ॥ ७० ॥ आपचमक्षि-
तिव्याप्ततृतीयात्रगमेक्षण । सावधिक्षेत्रमानाभाविक्रियाबलसंगत ॥ ७१ ॥ सामानिकादिसर्वर्द्धिसुधाशनसमर्चितः । कानकामप्रदानैकदेवीकृतसुखा-

बंध किया और फिर बहुत दिन तक घोर तपश्चरणकर तथा जिनका अंतरात्मा अत्यंत शांत है और जो धर्मध्यानके आ-
धीन हो रहा है ऐसा धीर वीर वह मुनिराज प्रायोपगम संन्यास लेकर प्रतिमायोग धारणकर निराकुल रीतिसे क्षीर वनमें
विराजमान हुआ ॥ ६५–६६ ॥ पहिले जन्मके पापी कमठका जीव नरकसे निकलकर वहीं सिंह हुआ था इसलिये
उसने आकर उस मुनिका कंठ पकड लिया ॥ ६७ ॥ इसतरह सिंहका उपसर्ग सहनकर और चारों आराधनारूपी धनको
धारकर उसने प्राण छोडे और आनत स्वर्गके प्राणत विमानमें इंद्र हुआ ॥ ६८ ॥ वहांपर उसकी वीससागरकी आयु
थी, साडे तीन हाथका शरीर था शुक्ललेश्या थी, वह दश महीने वाद श्वांस लेता था, वीस हजार वर्ष वाद मानसिक अ-
मृताहार करता था और उसके मानसिक प्रवीचार था ॥ ६९–७० ॥ उसे पांचवें नरकतक अवधिज्ञान था और उतनी
ही दूर तक शरीरकी कांति विक्रिया तथा बल था ॥ ७१ ॥ सब तरहकी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले सामानिक आदि
देवोंके द्वारा वह पूजा जाता था और इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली अनेक सुंदर देवियोंके द्वारा वह सब
तरहके सुखोंका अनुभव करता था ॥ ७२ ॥ इसप्रकार सब इंद्रियोंके विषयभोगोंको सदा सेवन करता हुआ
तथा उनमें लवलीन हुआ वह इंद्र क्षणभरके समान लीला पूर्वक लंबे समयको व्यतीत करने लगा ॥ ७३ ॥ जिस
समय उसकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके सन्मुख हुआ उससमय इसी
जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काशी देशके बनारस नगरमें काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुए राजा विश्वसेनकी रानी ब्रह्मादेवी रत्नों
की वर्षा आदिसे पूजित हुई थी। उसने वैशाख कृष्णा द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें रात्रिके अंत समयमें सोलह शुभ
स्वप्न देखे और उन स्वप्नोंके देखनेके बाद उसने अपने मुखमें घुसता हुआ एक बडा हाथी देखा । तदनंतर सवेरेके

समुद्रत्र । तस्मात्तत्साधुविज्ञेयं पुण्यकारणकारणं ॥ ५३ ॥ तत्कथावसरे लोकत्रयचैत्यालयाकृतीः । सम्यग्वर्णयितुं वांछन् प्रागादित्यविमानजे ॥ ५४ ॥ जिनेंद्रभवने भूतां विभूतिं सोन्ववर्णयत् । तामसाधारणीं श्रुत्वानंदः श्रद्धां परं वहन् ॥ ५५ ॥ दिनादौ च दिनांते च कराभ्यां कृतकुड्मलः । स्तुवन्नानम्रमुकुटो जिनेशान् मंडले रवेः ॥ ५६ ॥ शिल्पिभिः कारयित्वार्कविमानं मणिकांचनैः । क्रोडीकृतजिनाधीशभवनं विततद्युति ॥ ५७ ॥ शास्त्रोक्तविधिना भक्त्या पूजामाष्टान्हिकीं व्यधात् । चतुर्मुखं रथावर्तं सर्वतोभद्रमूर्जितं ॥ ५८ ॥ कल्पवृक्षं च दीनेभ्यो ददद्दानमवारितं । तद्विलोक्य जनाः सर्वे तत्प्रमाण्यात्स्वयं च तं ॥ ५९ ॥ स्तोतुमारेभिरे भक्त्या मंडलं चंडरोचिषः । तदाप्रभृति लोकेस्मिन् बभूवार्कोपसेवनं ॥ ६० ॥ अथान्यदा किलानंदमहीपो नरसि शुद्धवान् । पलितं दलयद्यौवनार्थिनां हृदयं द्विधा ॥ ६१ ॥ तन्निमित्तसमुद्भूतनिर्वेगो ज्येष्ठसूनवे । साभिषेकं निजं राज्यं दत्त्वादत्त स्पृह तप ॥ ६२ ॥

होते हैं और शुभ परिणामोंसे पुण्य कर्मोंका बंध होता है ॥ ५०–५३ ॥ इसी उपदेशके समय उन मुनिराजने तीनों लोकोंके चैत्यालयोंका आकार अच्छी तरह निरूपण करना चाहा और सबसे पहिले सूर्यके विमानमें जिन चैत्यालयकी विभूति वहुत अच्छीतरहसे वर्णन की उस असाधारण विभूतिको सुनकर महाराज आनंदको वडी ही श्रद्धा उत्पन्न हुई ॥ ५४–५५ ॥ वह राजा आनंद सुवह शाम दोनों समय हाथ जोडकर और मुकुटसहित अपना मस्तक नवाकर सूर्यके विमानमें विराजमान जिनेंद्रप्रतिमाओंकी स्तुति करने लगा ॥ ५६ ॥ उसने कारीगरोंके द्वारा सुवर्ण और मणियोंका सूर्यका विमान वनवाया और उसके भीतर फैलती हुई कांतिको धारण करनेवाला जिनभवन वनवाया ॥ ५७ ॥ तदनंतर उसने शास्त्रोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक अष्टान्हिकाओंकी पूजा की और चतुर्मुख पूजा रथावर्तपूजा सबसे वडी सर्वतोभद्र पूजा तथा दीनोंको अनिवार्य दान देते हुए कल्पवृक्ष पूजा की। इसप्रकार उस राजाको सूर्यमंडलकी पूजा करते हुए देखकर अन्य साधारण लोगोंने भी भक्तिपूर्वक सूर्यमंडलकी स्तुति करना प्रारंभ कर दिया और उसी समयसे लेकर इस संसारमें सूर्यकी उपासना करना प्रारंभ हुआ है ॥ ५८–६० ॥ अथानंतर–किसी एक दिन राजा आनंदने यौवन चाहनेवालोंके हृदयके दो टूंक करनेवाला सफेदवाल शिरमें देखा। उसे देखते ही राजा आनंदको वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसने वडे पुत्रको अभिषेक पूर्वक अपना सब राज्य दे दिया और स्वयं समुद्रदत्त मुनिराजके समीप जाकर अनेक राजाओंके साथ राजसीभाव छोडकर निरीह (इच्छारहित) तपश्चरण धारण किया। तदनंतर शुभ लेश्याओंके द्वारा चारों आराधनाओंका आराधन किया, विशुद्ध होकर ग्यारह अंगोंका ज्ञान संपादन किया और तीर्थंकर प्रकृतिकी कारण ऐसी सोलह भावनाओंका चिंतवन किया ॥ ६१–६४ ॥ शास्त्रानुसार उन सोलह भावनाओंका चिंतवनकर तीर्थंकर नामकर्मका

प्राप्तमहामण्डलीकस्थानो महोदय ॥ ४३ ॥ स्वस्य स्वामिहिताख्यस्य महतो मन्त्रिणोन्यदा । वाचा वसंतमासस्य नंदीश्वरदिनाष्टके ॥ ४४ ॥ पूजां निर्वर्तयन् द्रष्टुकाम तत्र समागत । विपुलादिमति दृष्ट्वा गणेश प्रश्रयाश्रयः ॥ ४५ ॥ अभिवंद्य समाकर्ण्य सद्धर्मं सर्वशर्मद । भगवन् किंचिदिच्छामि श्रोतु मे संशयास्पद ॥ ४६ ॥ अचेतने कथ पूजा निग्रहानुग्रहच्युते । जिनबिंबे कृता भक्तिः सतां पुण्य फलत्यसौ ॥ ४७ ॥ इत्यपृच्छदसौ चाह सत्यमिति वचस्तदा । शृणु राजन् जिनेंद्रस्य चैत्य चैत्यालयादि वा ॥ ४८ ॥ भवत्यचेतन किंतु भव्यानां पुण्यबंधने । परिणामसमुत्पत्तिहेतुत्वात्कारण भवेत् ॥ ४९ ॥ रागादिदोषहीनत्वादायुधाभरणादिकात् । विमुख्यस्य प्रसन्नेंदुकांतिहासिमुखश्रिय. ॥ ५० ॥ अपर्तिताक्षसूत्रस्य लोकालोकावलोकिनः । कृतार्थत्वात्परित्यक्तजटादे परमात्मनः ॥ ५१ ॥ जिनेंद्रस्यालयांस्तस्य प्रतिमाश्च प्रपश्यतां । भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥ कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वकार्य-

राजा वज्रबाहुकी सती प्रभाकरीके आनंद नामका प्रिय पुत्र उत्पन्न हुआ । बडा होनेपर वह महामंडलेश्वर राजा हुआ था और उसे बडी भारी विभूति प्राप्त हुई थी ॥ ४०–४३ ॥ किसी एक दिन स्वामिहित नामके अपने सबसे बडे मंत्रीके कथनानुसार वसंतऋतुके नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें उस राजा आनंदने पूजा कराई । उसे देखनेकेलिये वहांपर विपुलमति नामके मुनिराज पधारे । उन्हें देखकर राजा आनंदने बडी विनयके साथ उनकी वंदना की तथा सबतरहके कल्याण करनेवाले सद्धर्मका स्वरूप सुना । तदनंतर उसने पूछा कि हे भगवान् मुझे कुछ संशय है वह मैं आपसे पूछना चाहता हूं ॥ ४४–५५ ॥ हे प्रभो! भगवानकी प्रतिमा अचेतन है उसमें निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति नहीं है फिर उसमें भक्ति करने वा पूजा करनेसे सज्जनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति कैसे होती है ? इसप्रकारके पूछनेपर वे मुनिराज कहने लगे कि हे राजन् ! सुन यद्यपि श्रीजिनराजकी प्रतिमा जिनालयके समान अचेतन है तथापि वह भव्य जीवों पुण्यबंधका कारण ही होती है । क्योंकि वह शुभ परिणामोंको उत्पन्न करानेका कारण है ॥ ४७–४९ ॥ इसका भी कारण यह है कि भगवान् जिनेंद्रदेव राग द्वेष आदि दोषोंसे रहित हैं और इसीलिये वे आयुध आभरण आदिसे सर्वथा रहित हैं । इसके सिवाय उनके मुखकी शोभा निर्मल चंद्रमाकी कांतिके समान सदा सुशोभित रहती है वे लोक अलोकके जानकार हैं इंद्रियज्ञानसे रहित हैं अर्थात् उनका ज्ञान अतींद्रिय है कृत्य कृत्य होनेसे जटा आदि सब उपद्रवोंसे रहित है और परमात्मा हैं । इसलिये उन जिनेंद्रदेवके मंदिर और उनकी प्रतिमाके दर्शन करनेसे जैसी शुभ भावोंकी उत्कृष्टता होती है वैसी और किसीसे नहीं हो सकती क्योंकि अंतरंग बहिरंग दोनों कारणोंके मिलनेसे सब कार्य उत्पन्न होते हैं इसलिये यह बात अच्छीतरह समझ लेना चाहिये कि श्रीजिनेंद्र देवके मंदिर अथवा उनकी प्रतिमा पुण्यबंधके कारणके कारण है अर्थात् उनसे शुभ परिणाम

पुराधीशो वज्रवीर्योऽस्य भूपते. । विजयायाश्च तद्देव्या वज्रनाभि सुतोभवत् ॥ ३२ ॥ स चक्रलक्षिता लक्ष्मीमक्षीणा पुण्यरक्षित । भुक्त्वाप्यतृप्तवान् मोक्षलक्ष्मीं समुद्यत ॥ ३३ ॥ क्षेमकराख्यभट्टारकसुवक्त्राब्जनिर्गत । धर्मामृतरसं पीत्वा त्यक्त्वाशेषरसस्पृहा ॥ ३४ ॥ सुत स्वराज्ये संस्थाप्य राजभिर्बहुभि सम । सयम समगात्सम्यक् सर्वसत्त्वानुकंपक ॥ ३५ ॥ प्राक्तनोजगर' षष्ठनरके तत्समाश्रित । द्वाविंशत्यब्धिसंख्यानजीवितेन तिदुःखित ॥ ३६ ॥ चिरात्तस्माद्विनिर्गत्य कुरंगाख्यो वनेचरः । कपयन् वनसभूतान् सभूत सर्वदेहिन ॥ ३७ ॥ विवर्जितार्तध्यानस्य विधृतातपनस्थिते: । तस्य त्यक्तशरीरस्य शरीरवलशालिन. ॥ ३८ ॥ तपोधनस्य चक्रेसा घोरं कातरदु स्सह । उपसर्गं स्फुरद्वैर स पापी बहुधा व्यधात् ॥ ३९ ॥ धर्म्यध्यान प्रविश्यासौ समाराध्य सुरोत्तम । समुत्पन्न सुभद्राख्ये सद्ग्मध्यममध्यमे ॥ ४० ॥ सप्तविंशतिवाराशिमेय.युर्दिव्यभोगभाक् । ततश्च्युतेस्मिन द्वीपेसा वनूभुरुह्भूविते ॥ ४१ ॥ कोशले विषयेऽयोध्यानगरे काश्यपान्वये । इक्ष्वाकुवशजातस्य वज्रवाहुमहीभृत ॥ ४२ ॥ सुतो देव्या प्रभाकर्यामानद स्योजनि प्रिय । स सं-

पुण्योंका साथ लेकर वह वहांसे च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें पद्मनामके देशमें अश्वपुरनगरका राजा वज्रवीर्य रानी विजयाके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ ॥ ३१–३२ ॥ पुण्यके द्वारा रक्षा किये उस वज्रनाभिने पूर्ण चक्रवर्तीकी लक्ष्मी प्राप्तकी और उनका उपभोग करने पर भी तृप्त न होने पर वह मोक्ष लक्ष्मीके प्राप्त करनेके लिये तैयार हुआ ३३ ॥ वह भट्टारक क्षेमंकर मुनिराजके समीप गया और उनके मुखरूपी कमलसे निकले हुए धर्मामृत रूपी रस को पीकर उसने और सब रसोकी इच्छा छोडदी ॥ ३४ ॥ उसने अपने राज्यपर अपने पुत्रको बिठाकर अनेक राजाओं के साथ समस्त जीवोंपर अच्छी तरह दया करनेवाला संयम धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ इधर पहिले कमठका जीव जो अजगर हुआ था वह मर कर छठे नरकमें जाकर नारकी हुआ, वहाकी बाईस सागरकी आयुतक अनेक तरहके दुःख भोगकर वहांसे निकला और वनमें उत्पन्न होनेवाले सब प्राणियोंको कंपाने वाला कुरंग नामका भील हुआ ॥३६-३७ ॥ किसी एक दिन शारीरिक वलको धारण करनेवाले शरीरसे ममत्व छोडे हुए वज्रनाभि मुनि आर्तध्यानका परित्याग कर आतापन योग धारण कर विराजमान थे कि इतनेमें ही वह भील आ पहुंचा, उस पापीको पहिला वैर स्मरण हो आया और उसने उन मुनिराज पर जिसे कातर लोग सहन नहीं कर सकते ऐसा अनेक तरहका घोर उपसर्ग किया ॥ ३८–३९ ॥ उन मुनिराजका जीव धर्मध्यानमें लीन होकर सम्यग्दर्शन सहित सुभद्र नामके मध्यमग्रैवेयकके विमानमें सत्ताईस सागरकी आयु पाकर उत्तम अहमिंद्र देव हुआ । वहां पर उसने अनेक दिव्य भोगोंका अनुभव किया तथा आयुके अंतमें वहांसे च्युत होकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके अयोध्या नगरमें काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशी

णानि शुष्कानि पत्राणि च भयाद्‌घात् ॥ २० ॥ उपलास्फालनाक्षेप द्विपसंघातघट्टितं । पिबस्तोयं निराहार पारणाया महाबलः ॥ २१ ॥ चिरमेवं तप कुर्वन् क्षीणदेहपराक्रमः । कदाचित्पातुमायातो वेगवत्या ह्रदेऽपतत् ॥२२ ॥पङ्के पुनः समुत्थातु विहितेहोप्यशक्नुवन् । कमठेन क्रुधेन कुक्कुटाहिसमे- युषा ॥ २३ ॥ पूर्ववैरानुब धेन दष्टो निर्नष्टजिवित । अभूत्कल्पे सहस्रारे षोडशाब्ध्युपमायुषा ॥ २४ ॥ तत्र भोगान्यथायोग्यं भुक्त्वा प्रान्ते ततश्च्युत । द्वीपेस्मिन् प्र ग्विदेहेस्ति विषय. पुष्कलावती ॥२५॥ तत्खेचराचले राजा त्रिलोकोत्तमनामनि । पुरे विद्युद्गतिर्विद्याधरेशस्तस्य वल्लभा ॥ २६ ॥ विद्युन्माला तयो सूनुरग्निवेगाख्योऽजनि । संपूर्णयौवनो धीमान् प्रत्यासन्नभवावधि ॥ २७ ॥ समाधिगुप्तमासाद्य मुनिं सप्राप्य सयम । गृहीत्वा सर्वतोभद्रप्रभृत्युपो- पवासक. ॥ २८ ॥ परेद्युर्हरिगिर्वद्रिगुहाया योगमादधत् । प्राप्तधूमप्रभाद्दु खकुक्कुटोरगपापिना ॥ २९ ॥ ततश्च्युतेन मूलाजगरेणालोक्य कोपिना । निगीर्णोच्युतकल्पस्थविमाने पुष्करेभवत् ॥ ३० ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानायुरत्तदते पुण्यसारथिः । द्वीपे परविदेहेस्मिन् विषये पद्मसंज्ञके ॥ ३१ ॥ महीशोस्य

त्थरोंकी रगडसे अथवा हाथियोंके समूहके घट्टनसे प्रासुक हुआ जल पीता था। वह उपवास कर पारणा करता था इस तरह उसने वहुत दिन तक तपश्चरण किया। यद्यपि वह महा वलवान था तथापि कठिन तपश्चरण करनेसे उसका शरीर और पराक्रम सव क्षीण हो गया था। किसी एक दिन वह पानी पीनेके लिये वेगवती नदीमें आया और उसके पासके गढेमें कीचडमें फस गया। यद्यपि उसने उठनेकी इच्छा की तथापि वह अशक्त होनेसे उठ न सका। इधर दुराचारी कमठ मर कर कुक्कुट सर्प हुआ था इसलिये उसने पहिलेके वैरके संस्कारोंसे उस हाथीको वहीं पर काट खाया जिससे वह मर गया और सहस्रार स्वर्गमें सोलह सागरकी आयु पाकर देव हुआ ॥ २०–२४ ॥ यथायोग्य रीतिसे वहांके भोगों का अनुभव कर वह आयुके अंतमें च्युत हुआ तथा इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयार्द्ध पर्वत पर त्रिलोकोत्तम नामके नगरमें विद्याधरोंके स्वामी राजा विद्युद्‌गति रानी विद्युन्मालाके अग्निवेग नामका पुत्र हुआ। जिसका संसारमें परिभ्रमण करनेका समय वहुत थोडा है ऐसे उस बुद्धिमान अग्निवेगने अपनी पूर्णयौवन अवस्था प्राप्त होने पर समाधिगुप्त मुनिराजके समीप जाकर संयम धारण कर लिया और सर्वतोभद्र आदि अनेक उपवास धारण कर किये ॥ २५–२८ ॥ किसी एक दिन वह हरिनामके पर्वतकी गुफामें योग धारण कर विराजमान हुआ। इतनेमें ही जिस कुक्कुट सर्पने वज्रघोष हाथीको काटा था वही पापी धूमप्रभा नरकके दुःख भोगकर निकला और इसी वनमें अजगर हुआ था। उन मुनिराजको देखते ही अजगर क्रोधित हुआ और उन्हें निगल गया, जिससे उनका जीव शरीर छोडकर सो- लहवें अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव हुआ ॥ २९–३० ॥ वाईस सागरकी उसे आयु मिली, आयु पूरी होने पर

अभूतामेतयो पुत्रौ विषामृतकृतोपमौ । कमठो मरुभूतिश्च पापधर्माविवापरौ ॥ ९ ॥ वरुणा ज्यायसो भार्या द्वितीयस्य वसुंधरी । मंत्रिणौ तौ महीपस्य क नीयान् नीतिवित्तयोः ॥ १० ॥ वसुंधरीनिमित्तेन सदाचारं सतां मत । मरुभूतिं दुराचारो जघान कमठोधमः ॥ ११ ॥ मलये कुब्जकाख्याने विपुले सल्लकीवने । मरुभूतिरभून्मृत्वा वज्रघोषो द्विपाधिप ॥ १२ ॥ वरुणा च मृता तस्य करेणुरभवत्प्रिया । तयोस्तस्मिन्वने प्रीत्या काले गच्छत्यनुच्छके ॥१३॥ अरविंदमहाराजस्त्यक्त्वा राज्यं विरज्य सः । संप्राप्य सयमं सार्थेनामा सम्मेदमीक्षितुं ॥ १४ ॥ व्रजन् वने स्ववेलायां प्रतिमायोगमागमत् । नोल्लघते नियो- ग स्वं मनागपि मनस्विन ॥ १५ ॥ विलोक्य त महानाग. त्रिप्रस्रुतमहोद्धत । हन्तुमभ्युद्यतस्तस्य प्रतिमायोगधारिणः ॥ १६ ॥ वीक्ष्य वक्षस्थले साक्षा- न्मुक्षु श्रीवत्सलाञ्छन । स्वपूर्वभवसबंध प्रत्यक्षीकृत्यचेत सा ॥१७॥ तस्मिन्प्राक्तनसौहार्दात्प्रतोषी जोषमास्त सः । तिर्यंचोपि सुहृद्भाव पालयन्त्येव बंधुषु ॥ १८ ॥ धर्मतत्त्व मुने सम्यग्ज्ञात्वा तस्मात्सहेतुक । सप्रोषधोपवासादिश्रावकव्रतमग्रहीत् ॥ १९ ॥ तदा प्रभृति नागेंद्रो भग्ना शाखा परैर्द्विपं । खादन्

वसुंधरी था । ये दोनों ही भाई राजाके मंत्री थे परंतु उन दोनोंमें छोटा मरुभूति नीतिका अच्छा जानकार था ॥ १० ॥ नीच और दुराचारी कमठने वसुंधरीके निमित्तसे सज्जनोंका माना हुआ सदाचार नष्ट किया और मरुभूतिको भी मारा ॥ ११ मरुभूति मरकर मलय पर्वतपर कुब्जक नामके सालकीके वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ ॥ १२ ॥ वरुणा मरकर उसी बनमें हथिनी हुई और वह वज्रघोषके साथ क्रीडा करने लगी । इसप्रकार उन दोनोंका समय बडे प्रेमसे व्यतीत हो रहा था ॥ १३ ॥ किसी एक समय राजा अरविंदने विरक्त होकर राज्य छोड दिया और संयम धारणकर सब संघके साथ सम्मेद शिखरकी यात्रा करनेको निकले । चलते चलते वे उसी सल्लकी बनमें पहुंचे और वहां उन्होंने अपने सामायिकके समयपर प्रतिमायोग धारण किया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य अपने कर्तव्योंके एक अंशको भी उल्लंघन नहीं करते हैं ॥ १४–१५ ॥ उन्हें देखकर जिसके दोनों कपोल और ललाट ऐसे तीनों जगहसे मद वह रहा है ऐसा वह महा उद्धत हुआ हाथी प्रतिमा योग धारण करवाले उन मुनिराजको मारनेकेलिये तैयार हुआ, परंतु उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिन्ह देखकर उसके चित्तमें शीघ्र ही पहिले भवका संबंध साक्षात् दिखाई पडनेके समान स्मरण हो आया ॥ १६–१७ ॥ पहिली मित्रता होनेके कारण वह हाथी उन्हें देखते ही शांत हो गया सो ठीक ही है क्योंकि तिर्यंच भी अपने भाई बंधुओंमें मित्रताका पालन करते ही हैं ॥ १८ ॥ उस हाथीने उन मुनिराजसे हेतुपूर्वक धर्मका स्वरूप अच्छीतरह समझा और उसने प्रोषधोपवास पूर्वक श्रावकके व्रत धारण किये ॥ १९ ॥ उससमयसे लेकर वह दूसरे हाथियोंके द्वारा तोडी हुई वृक्षोंकी डालियोंको खाता था अथवा पापके डरसे सूखे वृक्ष वा पत्ते खाता था, इसीप्रकार वह प-

अथ त्रिसप्ततितमं पर्व ।

स पातु पार्श्वनाथोस्मान् यन्महिम्नैव भूधर । न्यषेधि केवलं भक्तिर्भोगिनी छत्रधारण ॥ १ ॥ धर्मश्वेतातपत्र ते सूते विश्वविसर्पिणी । छायां पापा-
तपक्लिष्टस्तथापि किल केचन ॥ २ ॥ सर्वभाषा भवद्भाषां सत्यां सर्वोपकारिणी । सत शृण्वति सन्तुष्टाः सत्यास्ता चन जातुचित् ॥३॥ अनभिव्यक्तमहा-
त्म्या देवतीर्थंकरा परे । त्वमेव व्यक्तमाहात्म्यो वाच्यते साधुतत्कथा ॥ ४ ॥ कुमार्गवारिणी यस्मात्तस्मात्सन्मार्गसारिणी । तत्त धर्मा कथा वक्ष्ये भव्याना
मोक्षगामिना ॥ ५ ॥ जम्बूविभूषणे द्वीपे भरत दक्षिणे महान् । सुरम्यो विषयस्तत्र विस्तीर्ण पोदन पुरं ॥ ६ ॥ रक्षितास्यारविन्दाख्यो विख्यातो विक्रमादि
भिः । पिप्रियुस्त समाश्रित्य प्रजापतिमिव प्रजा ॥ ७ ॥ तत्रैव विश्वभूताख्यो ब्राह्मणो श्रुतिशास्त्रवित् । आकम्पानुधरा तस्य प्रीत्यै श्रुतिरिवापरा ॥ ८ ॥

अथ तिहत्तरिवां पर्व ।

अथानंतर—जिनकी केवल महिमासे ही धरणेंद्र और इंद्रानीने भक्तिपूर्वक छत्र धारणकर जिनका उपसर्ग दूर किया
ऐसे श्री पार्श्वनाथ स्वामी हमलोगोंकी भी रक्षा करें ॥ १ ॥

हे भगवान यद्यपि आपका धर्मरूपी श्वेत छत्र समस्त संसारमें फैलनेवाली छायाको प्रगट कर देता है तथापि कितने
ही जीव पापरूपी धूपसे दुःखी रहते हैं ॥ २ ॥ हे प्रभो ! आपकी भाषा सर्व भाषारूप है अर्थात् उसे सब अपनी अपनी
भाषामें समझ सकते हैं, वह सत्यरूप है और सबका उपकार करनेवाली है उसे संतुष्ट हुए सज्जन लोग ही सुनते हैं दुष्ट
लोग उसे कभी नहीं सुनते ॥ ३ ॥ हे देव ! अन्य तीर्थकरोंकी महिमा इतनी प्रगट नहीं है परंतु आपकी महिमा सबसे
अधिक प्रगट है इसलिये सुंदर कथा लिखी जाती है ॥ ४ ॥ जिससे कुमार्गका नाश होता है और सन्मार्गकी प्रवृत्ति
होती है ऐसी आपकी धर्मरूप कथा मोक्ष जानेवाले भव्योंकेलिये कही जाती है ॥ ५ ॥ इसी जंबूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें
एक सुरम्य देश है और उसमें बहुत बडा पोदनपुर नगर है ॥ ६ ॥ उस नगरमें पराक्रम आदिसे प्रसिद्ध अरविंद नामका
राजा राज्य करता था जिसप्रकार चंद्रमासे सब प्रसन्न रहते हैं उसीप्रकार सब प्रजा प्रसन्न रहती थी ॥ ७ ॥ उसी नगरमें
वेदशास्त्रको जाननेवाला विश्वभूत नामका ब्राह्मण रहता था उसको प्रसन्न करनेवाली दूसरी श्रुतिके समान अनुंधरी ना-
मकी ब्राह्मणी थी ॥ ८ ॥ उन दोनोंके कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे जो कि विष और अमृतके बनाये हुएके
समान थे अथवा दूसरे पाप और धर्मके समान थे ॥ ९ ॥ कमठकी स्त्रीका नाम वरुणा था और मरुभूतिकी स्त्रीका नाम

, वाग्र न स्यात् भ्रमिति हि विधिचक्रं चक्रनेमिक्रमेण ॥ २८५ ॥ बध्वायुरगप दशमित्थमथात्यनामा चासादधोगमदसौ धृतराज्यभार । तद्धीधनाः कुरुत धर्ममखण्डमायुर्बंधं प्रति प्रतिपदं सुखलिप्सवश्चेत् ॥ २८६ ॥ अस्यैव तीर्थसताने ब्रह्मणो धरणीपितु । चूलादेव्याश्च संजज्ञे ब्रह्मदत्तो निधीशिना ॥ २८७ ॥ द्वादशो नामत सप्तचाप सप्तशताब्दकै । परिच्छिन्नप्रमाणायुस्त्वदताश्चक्रवर्तिन ॥ २८८ ॥

इत्यार्षे त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते अरिष्टनेमितीर्थंकरपद्मनामवलदेवकृष्णनामार्द्धचक्रिजरासंधप्रतिवासुदेव सकलचक्रवर्तिपुराणं परिसमाप्तं द्वासप्ततितम पर्व ॥ ७२ ॥

क्यों न गिना जाय ॥ २८३ ॥ शूरवीरताके महासागर कृष्णने सिंहके समान हो कर बडे प्रतापशाली हाथीके समान ही सब शत्रुओंको जीतकर गर्जना की वे सब संसारके विजेता कहलाए और हाथमें एकही दंड लेकर इन अखंड तीनों खंडोंको जीता तथा वे बालक अवस्थामें गायोंका पालन करनेसे आज तक भी वे गोप कहलाते हैं ॥ २८४ ॥ देखो कहां तक बडे २ सब शत्रुओंको नाश करनेसे कृष्णको ऐसी अद्भुत राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई थी और कहां सब गहन वनमें जाकर उनका समूल नाश हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे किसको क्या नहीं होता है अर्थात् कर्मके उदयसे सब को सबकुछ होता है । यह कर्मोंका चक्र पहियेकी धुरीके समान अनुक्रमसे सदा घूमा ही करता है ॥ २८५ ॥ देखो कृष्णने पहिले नरकआयुका बंध किया था और फिर तीर्थकर नामकर्मकी प्रकृतिका बंध किया पहिले नरक आयुका बंध करलेनेसे ही उन्हें सब राज्य सुखका अनुभव कर भी नरक जाना पडा इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि सुखकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान लोगोंको प्रत्येक पद पर अर्थात् पेंड पेंड पर (समय समय पर) आयुबंध बांधनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८६ ॥ इन्ही नेमिनाथ तीर्थकरके समयमें ब्रह्मदत्त बारहवां चक्रवर्ती हुआ है वह ब्रह्मा नामके राजाका पुत्र था और उसकी माताका नाम चूलादेवी था । उसका शरीर सात धनुष ऊंचा था और सातसैवर्षकी उसकी आयु थी। वह चक्रवर्तियोंमें सबसे पिछला था (और मरकर सातवें नरक गया) था॥२८७-२८८॥

इस प्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें अरिष्टनेमितीर्थंकर, पद्मनाम बलदेव कृष्णनाम अर्धचक्री, जरासंध प्रतिवासुदेव, और ब्रह्मदत्त सकल चक्रवर्तीके पुराणको कहनेवाला यह

वहत्तरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

केन न धर्मचक्रमितो नेमीश्वरो नेमितां ॥ २७८ ॥ सुभानुरभवत्तत प्रथमकल्पओसाच्च्युतः नगाधिपतिरन्वतोजनि चतुर्थकल्पेमरः । वणीक्जनि शङ्खवागनु सुरो महाशुक्रजस्ततोपि नवमो बलोनुदिविजस्ततस्तीर्थकृत् ॥ २७९ ॥ प्रागासीदमृतरसायनस्तृतीये श्वभ्रेभूदनुभववारिधौ भ्रमिता । भूयोभूयू-हपतिरत्र यक्षनामा निर्नामा नृपतिसुतस्ततोमृताशी. ॥ २८० ॥ तस्मादभून्मुररिपु कृतदुर्निदानाच्चक्रेश्वरो हतविरुद्धजरादिसंघ । धर्मोद्भवादनुभवन् बहुदुः-समस्तान्निर्गत्य तीर्थकृदनघविघातकृत्तः ॥२८१॥ द्रोहान्मुने पलपच स कुधीरभोगात्सद्भीजएवतपसाप्य च चक्रलक्ष्मीं । ध्वंस समाप तदपास्तपरिग्रहाणां माकृध्वमल्पमपि पापधियापकारं ॥ २८२ ॥ चाणूरमेणमिव यो हतवान् हरिर्वा कंस च कंसमिव वाशनिरन्वभैत्सीत । मृत्युर्यथाहतशिशुं शिशुपालमाजौ तेजस्विना कथमिहास्तु न सोग्रगण्यः॥२८३॥जरासध हत्वोर्जितमिव गज शौर्यजलधिर्गजारिर्वा गर्जन् प्रतिरिपुजयाद्विश्वविजयी । त्रिखण्डां निस्खण्डां करविधृत-दण्डोऽप्रतिहतां यथापाद्गाल्ये गा किल खलु स गोपोन्वपि ततः। २८४। क सकल्पपृथुघ्नशुध्वंसनात्साद्भुतश्रीः क च सभुवनवाग्मोही हरेर्मूलनाशः। सकृतवि-

समान मानकर संयम धारण किया ऐसे श्रीनेमिनाथको धर्मचक्रकी धुरी बनानेके लिये भला कौन धारण नहीं करता अर्थात् सब ही धारण करते हैं ॥ २७८ ॥ बलदेवका जीव पहिले सुभानु हुआ था फिर पहिले स्वर्गमें देव हुआ, वहां से आकर विद्याधर हुआ, फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर शंख नामका वैश्य हुआ तदनंतर महाशुक्र विमानमें देव हुआ और वहांसे आकर नौवां बलदेव हुआ। तथा अभी स्वर्गमें देवोंके सुख भोग रहा है और वहांसे आकर तीर्थ-कर होगा ॥ २७९ ॥ कृष्णका जीव पहिले अमृतरसायन हुआ, फिर तीसरे नरकमें गया, फिर उसके बाद बहुत दिन तक संसार रूपी सागरमें परिभ्रमण कर यक्ष नामका गृहस्थ हुआ, फिर निर्नामा नामका राजपुत्र हुआ, वहांसे स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे आकर अपने शत्रु जरासंध आदिको मारने वाला चक्रवर्ती कृष्ण हुआ। बुरा निदान करनेके कारण चक्रवर्तीकी पर्याय छोडकर और नरकमें पड कर अनेक दुखोंका अनुभव कर रहा है और आयु पूर्ण होने पर वहां से निकल कर सब तरहके अनर्थोंको नाश करनेवाला तीर्थंकर होगा ॥ २८०-२८१ ॥ कृष्णके जीवने चांडाल अवस्था में मुनिसे द्रोह किया था उसी पापसे वह बुद्धिहीन नरक गया तथा उसी कारणसे तपश्चरणसे प्राप्त हुई चक्रवर्तीकी राज्य-लक्ष्मी भी नष्ट हुई है। इस लिये आचार्य उपदेश देते हैं कि परिग्रहोंका त्याग करने वाले मुनिराजोंका पाप रूप बुद्धिसे थोडा सा भी अपकार मत करो ॥ २८२ ॥ जिस प्रकार सिंह हिरणको मार डालता है उसी प्रकार जिसने चाणूरमल्लको मारा, वज्र जिस प्रकार कांसको फोड डालता है उसी प्रकार जिसने कंसका चूर्ण कर डाला और मृत्यु जिस प्रकार बच्चेको उठा ले जाती है उसी प्रकार युद्धमें जिसने शिशुपालको जीता ऐसा कृष्ण भला प्रताप शालियोंमें सबसे मुख्य

सिद्धिमाप्नुवन् ॥ २७० ॥ नकुलः सहदेवश्च पञ्चमानुत्तरं ययुः । भट्टारकोपि संप्राप्योर्जयंतं धराधरं ॥ २७१ ॥ नवरंध्रर्तुवर्षेषु चतुर्दिवससंयुते । युतेषु नवमिमैर्संविहारविनिविच्युतौ ॥ २७२ ॥ पश्चात्पंचशते सार्द्धे संयतैस्त्रिंशता त्रिभिः । मास योगं निरुध्यासौ हताघातिचतुष्ककः ॥ २७३ ॥ आसाढमासे ज्योत्स्नायाः पक्षे चित्रासमागमे । शीतांशोः सप्तमीपूर्वरात्रे निर्वाणमासवान् ॥ २७४ ॥ तदा सुराधिपाः प्राप्य कल्याणं पञ्चमं परं । विधाय विधिवद्भक्त्या स्व स्वमोकः पुनर्ययुः ॥ २७५ ॥ शक्राद्या व्योम्नि दूरादमरपरिवृढा वाहनेभ्योऽवतीर्णास्तूर्णं मूर्ध्नावनम्राः स्तुतिमुखरमुखा कुड्मलीभूतहस्ता । ध्वस्तातर्ध्वांतधाम्नः प्रणिहितमनसो यस्य पादौ प्रणेमुः क्षेमं श्रीमान्स नेमिर्झटिति घटयतु प्रांत्यबोधप्रसिद्ध्यै । २७६ ॥ प्राक्चिंतागतिराविभावनुतत कल्पे चतुर्थे मरो जज्ञेस्मादपराजित क्षितिपतिर्जातोऽच्युतेंद्रस्ततः । तस्मात्सोजनि सुप्रतिष्ठनृपतिर्देवो जयंतेऽप्यभूदासीदत्र महोदयो हरिकुलव्योमामलेंदुर्जिनः ॥ २७७ ॥ सा लक्ष्मी सकलामरार्चितपदांभोजो यथार्थं विभुस्तत्कौमारममेयरूपविभवं कन्या च सातिस्तुतिः । धीमान् सर्वमिदं जरत्तृणसम मत्वाग्रहीत्संयमं धत्तां

हुए ॥ २६८—२७१ ॥ उन्होंने छहसौ निन्यानवे वर्ष नौ महीना और चार दिन विहार किया । फिर विहार छोड कर पांचसौ तेतीस मुनिराजोंके साथ साथ एक महीने तक योगोंका निरोध कर आषाढ शुक्ला सप्तमीके दिन चित्रा नक्षत्रमें रात्रिके प्रारंभमें ही चारों अघातिया कर्मोंका नाश कर वे मुक्त हुए ॥ २७२—२७४ ॥ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर बडी भक्तिसे विधिपूर्वक उनका पांचवां निर्वाणकल्याणकका उत्सव मनाया और फिर वे सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २७५ ॥ जो अनेक देवोंसे घिरे हुए हैं, आकाशमें दूरसे ही अपनी अपनी सवारियोंसे उतर पडे हैं, जिन्होंने बडी शीघ्रतासे अपने मस्तक नवा लिये हैं जिनके मुख स्तुतियोंके उच्चारण करनेसे मुखर हो रहे हैं दोनों हाथ संकुचित कमलके समान जुडे हुए हैं जिनके हृदयका अंधकार नष्ट हो गया है और जो मनमें वार वार नमस्कार कर रहे हैं ऐसे इंद्रादि देव भी जिनके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे वे श्रीनेमिनाथ भगवान अंतिम केवल ज्ञानको प्रगट करने के लिये शीघ्रही कल्याण करो ॥ २७६ ॥ श्रीनेमिनाथका जीव चिंतागति विद्याधर हुआ उसके वाद चौथे स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर अपराजित राजा हुआ, फिर सोलवें स्वर्गमें इंद्र हुआ, वहांसे चयकर सुप्रतिष्ठ राजा हुआ फिर जयंत विमानमें अहमिंद्र हुआ और फिर अंतमें इसी जंवू द्वीपमें बडी विभूतिको धारण करनेवाले और हरिवंश रूपी आकाशमें निर्मल चंद्रमाके समान श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर हुआ ॥ २७७ ॥ श्रीनेमिनाथकी राज्यलक्ष्मी भी सबमें प्रसिद्ध थी उनके चरण कमलोंकी सेवा इंद्रादि सव देव आकर करते थे, उनकी कुमार अवस्था अत्यंत रूप रूपी ऐश्वर्यसे भरपूर थी और उनके लिये मांगी हुई राजमति कन्या अत्यंत प्रशंसनीय थी तथापि उन बुद्धिमानने इन सबको पुराने तिनकेके

प्रातकल्पनिवासिन. ॥ २५९ ॥ उत्कृष्टजीवितं तत्र गमयित्वा त्रयोपि ते। सोदर्याः प्रच्युता यूयं जाता रत्नत्रयोपमाः ॥ २६० ॥ धर्मजो भीमसेनश्च पार्थश्च ख्यातपूरुषः। धनमित्रश्रियौ चास्मिन्नभूतां सुतविक्रमौ ॥ २६१ ॥ नकुलः सहदेवश्च चन्द्रादित्यसमप्रभौ। सुकुमारी च कपिल्यापुरे द्रुपदभूपतेः ॥ २६२ ॥ सुता दृढरथायाश्च द्रौपद्याख्याजनिष्ट सा। इति नेमीश्वरप्रोक्तमाकर्ण्य बहुभिः सम ॥ २६३ ॥ पाण्डवाः संयमं प्रापन्सतामेषा हि बन्धुता। कुंतीसुभद्राद्रौपद्यः दीक्षां तां परां ययुः ॥ २६४ ॥ निकटे राजिमत्याख्यगणिन्या गुणभूषणाः। तास्तिस्रः षोडशे कल्पे भूत्वा तस्मात्परिच्युताः ॥ २६५ ॥ विश्वकर्ममलैर्मुक्ता मुक्तिमेष्यत्यसंशयं। पंचापि पांडवा नेमिस्वामिना साहितर्द्धयः। ॥ २६६ ॥ विहृत्य भाक्तिका काश्चित्समाः संप्राप्य भूधरं। शत्रुंजयं समादाय योगमातपमाश्रिताः ॥ २६७ ॥ तत्र कौरवनाथस्य भागिनेयो निरीक्ष्य तान्। क्रूरः कुर्यवर स्मृत्वा स्वमातुलवधं क्रुधा ॥ २६८ ॥ आयसान्यग्नितप्तानि मुकुटादीनि पापभाक्। तेषां विभूषणानीति शरीरेषु निधाय स ॥ २६९ ॥ उपसर्गं व्यधात्तेषु कौंतेयाः श्रेणिमाश्रिताः। शुक्लध्यानाग्निनिदग्धकर्मेधाः

की उत्कृष्ट बाईस सागरकी आयुका उपभोग कर उन तीनों भाइयोंके जीव वहांसे च्युत होकर रत्नत्रयके समान अत्यंत प्रसिद्ध धर्मराज (युधिष्ठिर) भीम और अर्जुन ऐसे तुम तीनों भाई हुए हो। तथा धनश्री और मित्रश्रीका जीव सूर्य चंद्रमाके समान प्रभावशाली और पराक्रमी नकुल और सहदेव ये दो भाई हुए हैं और सुकुमारीका जीव कंपिला नगरके राजा द्रुपदकी रानी दृढरथासे यह द्रौपदी हुई है। इस प्रकार श्रीनेमिनाथके कहे हुए वचनोंको सुन कर पांडवोंने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण करली सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंका भाई बंधुपना भी ऐसा ही होता है। गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाली कुंती सुभद्रा और द्रौपदीने भी राजिमती गणिनीके समीप जाकर उत्तम दीक्षा धारण कर ली। कुंती सुभद्रा और द्रौपदीके जीव सोलहवें स्वर्गमें देव हुए और वहांसे च्युत होकर मनुष्य जन्म पाकर निःसंदेह समस्त कर्मरूपी मलसे रहित होकर मोक्षमें जा विराजमान होंगे। अत्यंत भक्तिको धारण करनेवाले पाचो पांडवोंको अनेक ऋद्धियां प्राप्त हुई थीं उन्होंने कितने ही वर्ष तक श्रीनेमिनाथ स्वामीके साथ विहार किया था और अंतमें शत्रुंजय पर्वतपर आकर आतप योग धारणकर विराजमान हुए थे ॥ २५६–२६७ ॥ दैवयोगसे वहां पर दुर्योधनका भानजा आ निकला उन्हें देखते ही उनके द्वारा मामाके मारनेका स्मरण कर उस क्रूर पापी दुष्टने क्रोधमें आकर उनके शरीरमें अग्निमें तपाये हुए मुकुट आदि सब आभूषण पहिनाए और इस तरह उनको घोर उपसर्ग किया। उन पाचो भाइयोंमें युधिष्ठिर भीम अर्जुनने क्षपकश्रेणी चढकर शुक्लध्यान रूपी अग्निसे सब कर्मोंके समूहोंको नष्ट कर सिद्ध अवस्था प्राप्तकी और नकुल सहदेव अनुत्तरके पांचवें सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए इधर भट्टारक श्रीनेमिनाथ स्वामीभी गिरनार पर्वत पर जा विराजमान

विरक्तत्वान्निंदती स्वां विपुण्यता ॥ २४८ ॥ गृहीतानशनान्येद्युरार्यिकामि सहागतां । स्वगेहे सुव्रतां क्षांतिममित्रय वदार्यिके ॥ २४९ ॥ इमे द्वे दीक्षिते केन हेतुनेत्यन्वयुक्त तां । अथ साब्रवीदेव क्षांति कल्याणनामिके ॥ २५० ॥ पूर्वेते जन्मनि प्राप्य सौधर्माधिपतेः प्रिये । विमला सुप्रभा चेति देव्यौ सौधर्मसयुत. ॥ २५१ ॥ गत्वा नंदीश्वरद्वीपे जिनगेहार्चन विधेः । तत्र संविग्न चेतस्त्वात्संप्र प्यास्मान्मनुष्यतां ॥ २५२ ॥ आवां तपः करिष्याव इत्यन्योन्यव्यवस्थिते । अकुर्वतां ततश्च्युत्वा साकेतनगरेशिनः ॥ २५३ ॥ श्रीषेणाख्यमहीशस्य श्रीकांतायाश्च ते सुते । हरिश्रीपूर्वसेनाख्यसभूय प्राप्तयौवने ॥ २५४ ॥ स्वयंवरविवाहोरुनृपामंतरस्थिते । निजपूर्वभव स्मृत्वा सस्मां च प्राक्तनीं कृतां ॥ २५५ ॥ विसर्ज्य बधुवर्गेण सम नृपकुमारकान् । इति दीक्षामिति क्षांतिवचनाकर्णनेन सा ॥ २५६ ॥ सुकुमारी च निर्विण्णा सम्मता निजवांधवैः । तत्समीपेगमद्दीक्षामन्येद्युर्वनमागतां ॥ २५७ ॥ वेश्यां वसंतसेनाख्यामावृत्य बहुभिर्विटैः । संप्रार्थ्यमानामालोक्य ममाप्येव भवेदिति ॥ २५८ ॥ निदानमकरोज्जीविताते प्राक्तनजन्मनः । सोमभूतेरभूद्देवी

२४८ ॥ किसी दूसरे दिन अनेक अर्जिकाओंके साथ सुव्रता और क्षांति नामकी दो अर्जिकाएं आहार लेनेके लिये सुकुमारी के घर आई। सुकुमारीने वंदना कर उन्हें आहार दिया और फिर पूछा कि हे स्वामिनी कृपा कर कहिये कि इन दो अर्जिकाओंने किस कारणसे दीक्षा ली है। तब क्षांति कहने लगी कि हे कल्याणी सुन। ये पहिले जन्ममें सौधर्म स्वर्गके इंद्रकी विमला और सुप्रभा नामकी देवियां थीं। किसी एक दिन ये दोनों ही सौधर्म इंद्रके साथ नंदीश्वर द्वीपमें भगवान अरहंतदेवके जिनालयोंकी पूजा करने गई थीं। पूजा करनेके वाद इनका चित्त कुछ उदास (विरक्त) हुआ था और इन दोनोंने परस्पर निश्चय किया था कि यदि इस देवपर्यायसे मनुष्य पर्याय मिलेगी तो हम दोनों ही तपश्चरण करेंगी। आयुके अंतमें वहांसे च्युत हो कर दोनों ही साकेत नगरके राजा श्रीषेणकी रानी श्रीकांताके ये हरिश्री और पूर्वसेना नामकी दोनों पुत्रियें हुई है। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर ये दोनों ही विवाहके लिये स्वयंवर मंडपमें खडी थी कि इतनेमें ही इन दोनोंको अपनी पहिली प्रतिज्ञा और अपने पहिले भवोंका स्मरण हो आया ॥ २४९—२५५ ॥ उसी समय इन्होंने सब भाई बंधुओंका तथा सब राजपुत्रोंका त्याग कर दिया और दीक्षा धारण कर ली। इस प्रकार क्षांतिके वचन सुनकर सुकुमारी विरक्त हुई और सब कुटुंबियोंकी सम्मति लेकर उसी अर्जिकाके समीप जाकर उसने दीक्षा लेली। किसी दूसरे दिन वनमें वसंतसेना नामकी वेश्या आई थी और बहुतसे व्यभिचारी आकर उससे प्रार्थना कर रहे थे यह देखकर उसने निदान किया कि मुझे भी ऐसा ही रूप मिले। आयुके अंतमें उसने प्राण छोडे और पहिले जन्ममें जो सोमभूति ब्राह्मण हुआ था और तपश्चरण कर आरण अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था उसीकी देवी हुई। वहां

मारणाच्युतकल्पयोः । सामानिकामरौ द्वाविंशतिसागरजीविन ॥ २३७ ॥ अन्वभूयधिरं भोगास्तत्र मप्रविचारका । नागश्रीरपि पापेन पचमा पृथिवी मगात् ॥ २३८ ॥ दुःख तत्रानुभूयाते स्वायुषोन्ते ततश्च्युता । अभूत्स्वयप्रभद्वीपे सर्पो दृष्टिविषो मृत ॥ २३९ ॥ द्वितीयनरक गत्वा त्रिसमुद्रोपमायुषा । भुक्त्वा दुःख विनिर्गत्य त्रसस्थावरयोनिषु ॥ २४० ॥ द्विसागरोपम काल परिभ्रम्य भवार्णवे । चपापुरे ममुत् सा मातगी मदपापतः ॥ २४१ ॥ समाधिगुप्तनामान मुनिमासाद्य सान्यदा । वदित्वा धर्ममाकर्ण्य मधुमांसनिवृत्तित. ॥ २४२ ॥ तस्मिन्नेव पुरे मृत्वा सुतेभ्यस्त्वामवत्मनी । सुबन्धोधनदेव्याश्च सुदुर्गंधशरीरिका ॥ २४३ ॥ सुकुमारीति सज्ञाऽस्या विहितार्थानुयायिनी । पुरेस्मिन्नेव वैश्यस्य धनदेवस्य पुत्रतां ॥ २४४ ॥ प्राप्तावशोकदत्ताया देवदत्ता जिनादिकौ । मंप्रधार्थे स्वबधूनामादानं स्वस्य वेदिता ॥ २४५ ॥ सुकुमार्या सुदौर्गंध्य जिनदेवो जुगुप्सयन् । सुव्रताह्वयमुनेरंतेवासित्व समवाप सः ॥ २४६ ॥ कनीयान् जिनदत्तोथ प्रेरितो बंधुभिर्मुहु । आप्तवधुसुता नावमानयोग्येति तद्भयात् ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा तामसौ क्रुद्धफणिनीमिव नागमत् । स्वप्नेप्यस्य

अनेक भोगोंका बहुत दिन तक अनुभव किया। इधर नागश्रीका जीव पापोंके कारण पांचवें नरकमें जाकर नारकी हुआ ॥ २३८ ॥ वहांके आयु पर्यंत अनेक दुःखोंका अनुभव कर वहांसे निकला और स्वयंप्रभा द्वीपमें दृष्टिविष नामका सर्प हुआ। वहांसे मरकर दूसरे नरकमें पहुंचा वहां पर उसने तीन सागरकी आयु तक अनेक दुःख भोगे और फिर वहांसे भी निकल कर संसाररूपी सागरमें दो सागर तक स्थावर योनियोंमें परिभ्रमण किया। तदनंतर वह पापकर्मोंके मंदोदयसे चंपापुर नगरमें चांडालिनी हुई ॥ २४१ ॥ किसी दूसरे दिन वह समाधिगुप्त नामके मुनिराजके समीप पहुंची। उनकी वंदना कर उसने धर्मका स्वरूप सुना और शहद तथा मांसका त्याग किया ॥ २४२ ॥ इतना त्याग करनेसे ही वह आयुके अंतमें मरकर उसी नगरके धनी शेठ सुबंधुकी स्त्री धनदेवीसे सुकुमारी नामकी कन्या हुई। उसका शरीर अत्यंत ही दुर्गंध था परंतु तौ भी धन होनेके कारण माता पिताने उसका नाम सुकुमारी रक्खा था उसी नगरमें एक धनदेव वैश्य रहता था उसकी अशोकदत्ता स्त्रीसे जिनदेव और जिनदत्त नामके दो पुत्र हुएथे। जिनदेवके कुटंबी लोग उसका विवाह सुकुमारीके साथ करना चाहते थे परंतु यह समाचार सुन कर और उसकी दुर्गंधता जानकर वह विरक्त हुआ तथा सुव्रत नामके मुनिके समीप जाकर उनका शिष्य हो गया अर्थात् उसने दीक्षा धारण करली ॥ २४३–२४६ ॥ तदनंतर छोटे भाई जिन दत्तको कुटुंबियोंने बहुत प्रेरणा की और समझाया कि अपने बडे लोगोंकी कन्याका अपमान करना ठीक नहीं है इस डरसे जिनदत्तने उसके साथ विवाह तो कर लिया परंतु क्रोधित हुई सर्पिणीके समान उसके पास कभी स्वप्नमें भी नहीं जाता था। इस प्रकार पतिके विरक्त होनेसे वह सुकुमारी अपनी पुण्यहीनताकी बडी निंदा करती थी ॥२४७–

स्वपूर्वभवसबधमपृच्छन्सस्ततेभयात् । अत्रोचद्भगवानित्थमप्रतर्क्यमहोदय ॥ २२६ ॥ जंबूसंभाविते द्वीपे भरतेंगे पुरी परा । चपाख्या कौरवस्तत्र महीशो मेघवाहनः ॥ २२७ ॥ सोमदेवो द्विजोत्रैव ब्राह्मणी तस्य सोमिला । तयो सुतास्त्रयः सोमदत्तः सोमिलनामकः ॥ २२८ ॥ सोमभूतिश्च वेदांगपारगा प रमद्विजाः । अमीषा मातुलस्याग्निभूतेस्तिस्रोऽभवन्सुता ॥ २२९ ॥ अग्निलाया धनश्रीमित्रश्रीनागश्रियः प्रिया । तेभ्यो यथाक्रमादत्तास्ताः पितृभ्या सुलक्षणाः ॥ २३० ॥ सोमदेव मुनिर्विद्य सुधी केनापि हेतुना । प्राव्राजीदन्यदा धर्मरुचिनाम तपोधन ॥ २३१ ॥ प्रविशत गृह भिक्षाकाले वीक्ष्यानुकम्पया । सोमदत्त प्रतीक्ष्यैनमाह पत्नीं कनीयसः ॥ २३२ ॥ नागश्रीर्वितरास्मै त्व भिक्षामिति कृतादर । मामेव सर्वदा सर्वमेष प्रेषयतीति सा ॥ २३३ ॥ कुपिता विषसम्मिश्र ददावन्नं तपोभृते । स सन्यस्य समाराध्य प्रापदल्पमनुत्तरं ॥ २३४ ॥ नागश्रीविहिताकार्यं ज्ञात्वा ते भ्रातरस्त्रयः । समीपे वरुणार्यस्य दीक्षा मैक्षीं समाययुः ॥ २३५ ॥ गुणवत्यार्यकाभ्यासे ब्राह्मण्याविति रे तदा । ईयतु संयम वृत्तमीदृक् सदसतामिद ॥ २३६ ॥ पंचाप्याराध्य तेऽभूव

लगे ॥ २२४–२२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रके चंपापुर नगरमें कौरव वंशी राजा मेघवाहन राज्य करता था । उसी नगरमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम सोमिला था, उनदोनोंके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति ये वेदके अंगोंके जानकार परम ब्राह्मण तीन पुत्र हुए थे । उन तीनों भाइयोंके मामाका नाम अग्निभूति था उस अग्निभूतके अग्निला स्त्रीसे धनश्री मित्रश्री नागश्री नामकी तीन प्रिय पुत्रियां हुई थीं । अग्निभूति और अग्निलाने वे शुभ लक्षणवाली तीनों कन्याएं यथाक्रमसे अपने भानजों को दे दी ॥२२७–२३०॥ तदनंतर बुद्धिमान सोमदेवने किसी कारणसे विरक्त होकर दीक्षा ले ली थी । किसी दूसरे दिन आहारके समय धर्मरुचि नामके तपस्वी सोमदेवके घर आए सोमदत्तने करुणा कर उनका पडगाहन किया और छोटे भाईकी स्त्री नागश्रीसे आहार देनेके लिये आदर पूर्वक कहा । नागश्री यह सुन कर क्रोधित हो गई और मनमें कहने लगी कि यह सोमदत्त सदा सबकामके लिये मुझसे ही कहता है । इस तरह क्रोधित होकर उसने मुनिके लिये विष मिला अन्न दे दिया जिससे संन्यास धारण कर और चारों आराधनाओंका आराधन कर वे मुनिराज सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए ॥ २३१–२३४ ॥ नागश्रीके द्वारा किये हुए अकार्यको जानकर उन तीनोंही भाइयोंने वरुण नामके मुनिराजके समीप जाकर मोक्ष देनेवाली दीक्षा धारण करली ॥ २३५ ॥ उसी समय ब्राह्मणीने भी गुणवती नामकी अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली । सी ठीक ही है क्योंकि सज्जन और असज्जनोंका चारित्र ऐसा ही होता है इस प्रकार ये पांचो ही जीव तपश्चरण कर और चारों आराधनाओंको आराधन कर आरण तथा अच्युत स्वर्गमें बाईस सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुए और वहां पर उन्होंने प्रवीचारसहित

भवन्क्रमात् ॥ २१४ ॥ द्यूत युधिष्ठिरस्यात्र दुर्योधनमहीभुजा । भुनगशैलपुर्यां यत्कीचकाना विनाशन ॥ २१५ ॥ विराटभूरतेर्भूरिगोमंडलनिवर्तनं । अ-
नुयातेन भूपस्य विराटस्य सुशर्मणः ॥ २१६ ॥ अल्पगोमडलस्याऽर्जुनोत्तराभ्या निवर्तन । पुराणवेदिभिर्वाच्यं विस्तरेण यथाश्रुतं ॥ २१७ ॥ अथ युद्ध
कुरुक्षेत्रे प्रवृत्ते कौरवं सम । पाडवाना विनिर्जित्य दुर्योधननराधिपं ॥ २१८ ॥ युधिष्ठिर समस्तस्य विषयस्याभवद्विभु । विभज्य स्वानुजैर्लक्ष्मीं भुंजानोऽ
रंजयज्जन ॥ २१९ ॥ एव स्वकृतपुण्यस्य ते सर्वे परिपाकज । सुख निखिलमव्यग्रमन्वभूवन्न रतं ॥ २२० ॥ तदा द्वारवतीदाहः कौशाम्बीगहन तरे ।
मृतिर्जरत्कुमारेण विष्णोर्जष्टस्य सयन ॥ २२१ ॥ भविष्यतीति यत्प्रोक्त द्वारवत्या जिनेशिना । निवृत्त तत्र तत्सर्वं न मिथ्यावादिनो जिना ॥ २२२ ॥
ताहश ताहशामासीद् धिग्धिग् दुष्कर्मणा गतिं । निर्मूलयति कर्माणि ततं एव हि धीधनाः ॥ २२३ ॥ तत्सर्वं पाडवाः श्रुत्वा तदायान्मथुराधिपा । स्वा-
मिवधुवियोगेन निर्विंद्य त्यक्तराज्यका ॥ २२४ ॥ महाप्रस्थानकर्माण प्राप्य नेमिजिनेश्वरं । तत्कालोचितसत्कर्म सर्वं निर्माप्य भाक्तिकाः ॥ २२५ ॥

कीचककों मारा और राजा विराटका गोमंडल शत्रुओंसे छुडाया । इस प्रकार उन्होंने राजा विराटको सुखी किया । तथा थोडासा गोमंडल (गाय भैंस आदि पशु) कोई और शत्रु ले गया था वह अर्जुनके छोटे भाइयोंने छुडाया । इनका यह संक्षिप्त चरित्र है विस्तारसे आगमानुसार पुराणके जानकारोंको जान लेना चाहिये ॥ २१५–२१६ ॥ तद-नंतर कुरुक्षेत्रमें कौरव और पांडवोंका युद्ध हुआ उसमें पांडवोंने दुर्योधनको जीता । युधिष्ठिर सब देशका राजा हुआ और छोटे भाइयोंमें राजलक्ष्मीका विभाग कर तथा उसका उपभोग करता हुआ सबलोगोंको प्रसन्न करने लगा ॥ २१८–२१९ ॥ इस प्रकार ये सब पाडव अपने पुण्यकर्मके फल सुखको विना किसी व्याकुलताके रात दिन पूर्ण रीतिसे अनु-भव करने लगे ॥ २२० ॥ तदनंतर द्वारावती नगरी जली, कौशाबी वनमें जरत्कुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु हुई और बलदेवने संयम धारण कर लिया । इस प्रकार द्वारावती नगरीमें भगवान नेमिनाथने जो कहा था कि ऐसा होगा वह सब ज्यों का त्यों हुआ सो ठीक ही है क्यों कि जिनेंद्र देव कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहते हैं ॥ २२१–२२२ ॥ जिनके लिये जैसा कहा था उनको वैसाही हुआ अतएव इन अशुभ कर्मोंकी गतिको भी वार वार धिक्कार हो और इसलिये बुद्धिमान लोग इन सब कर्मोंको नष्ट करते है ॥ २२३ ॥ दक्षिण मथुराके स्वामी पांडव यह सब समाचार सुनकर स्वामी और बंधुओंके वियोगसे विरक्त हुए, और मोक्षके लिये महाप्रस्थानकी तैयारी करने लगे । उन भक्त लोगोंने श्रीनेमिनाथ स्वामीके समीप जाकर उस समय करने योग्य प्रदक्षिणा नमस्कार आदि सब कर्म किए और संसारसे डरकर अपने पहिले भवोंका संबंध पूछा । इनके उत्तरमें जिनके ऐश्वर्यकी कल्पना भी नहीं होसकती ऐसे भगवान नेमिनाथ इस प्रकार कहने

ताः । स्वसंवधादिषु 'कुरुत खेदं नायम पांडवाः' ॥ २०३ ॥ पौदनाख्यपुरे चंद्रदत्तनाममहीपतेः । देविलायाश्च पुत्राय कलागुणविशारद ॥ २०४ ॥ वि- धाय निहितस्थूणगड राज्य व्यतारिषु । अथेंद्रवर्मणे प्रीत्या तेषा वार्ताश्रुताचरात् ॥ २०५ ॥ इहाप्यवश्यमेष्यंति विधेयस्तत्स्वयवर । न केनचिद्विरोधो यमिति तद्वचनश्रुते: ॥ २०६ ॥ वसतेऽचीकरद्राजा स स्वयरमंडप । तेत्र सर्वमहीपाला: सप्रापन् पाडवेषु च ॥ २०७ ॥ भीमस्य भोजनाद्गंधगजस्य क- रतर्जनात् । पार्थस्य मत्स्यनिर्भेदाच्चापरोपणसाहसात् ॥ २०८ ॥ नारदागमनाच्चापि लक्ष्यमाणेषु निश्चित । समागतेषु सत्स्वर्हन्महापूजापुरस्सरं ॥ २०९ ॥ प्रविश्य भूषिता रत्नै सा स्वयंवरमडप । भूमिपान् जलरूपादिगुणै सिद्धार्थनामनि ॥ २१० ॥ पुरोधसि क्रमात्सर्वा न् कथयत्यविलध्यतान् । कन्या सभाव यामास मालयोज्वलयार्जुन ॥ २११ ॥ द्रुपदाद्युग्रवंशोत्था महीशा: कुरुवशजाः । अन्येपि चानुरूपोयमिति तुष्टि समागमन् ॥ २१२ ॥ एव सप्राप्तकल्या णा' प्रविश्य पु मात्मन । गमयंति स्म सौख्येन काल दीर्घमिव क्षण ॥ २१३ ॥ तत. पार्थात्सुभद्रायामभिमन्युरभूत्सुतः'। द्रौपद्यां पच पचालनामानोन्व-

में निपुण बना कर कंटकरहित राज्य समर्पण किया है इसलिये प्रेमपूर्वक उसे देना चाहिये । यह सुन कर अन्य मंत्रीने कहा कि इस बातको सुनकर भी लोग विरोध करेंगे इसलिये स्वयंवर करना ही ठीक है; क्योंकि स्वयंवर करनेमें किसीका विरोध नहीं होगा । मंत्रियोंकी ये सब बातें सुनकर राजाने वसंत ऋतुमें स्वयंवर मंडप बनवाया और उसमें सब राजा लोग आए । इधर पांडव लोग जो परदेश चले गये थे उनमेंसे भीम तो भोजनके बनाने और गंधगजको हाथसे ही ताडन करनेसे प्रसिद्ध हुआ, अर्जुन मत्स्यभेद करने और धनुप चढानेके साहससे प्रसिद्ध हुआ तथा नारदके आनेसे सभी प्रसिद्ध हुए और सभी स्वयंवरमंडप में जा विराजमान हुए । तदनंतर भगवान अरहंतदेवकी पूजा कर तथा रत्नादिकोंके आभूषण और वस्त्र आदिसे विभूषित होकर वह द्रौपदी स्वयंवरमंडपमें आई । सिद्धार्थ नामका पुरोहित अनुक्रमसे सब राजाओंके कुल रूप आदि गुणवर्णन करने लगा परंतु उस कन्याने सबको छोडकर उज्वल मालाके द्वारा अर्जुनको अपना पति बनाया ॥ २०१–२११ ॥ यह देख कर द्रुपद आदि उग्रवंशमें उत्पन्न हुए राजा कुरुवंशी तथा और भी अनेक राजा कहने लगे कि कन्याके योग्य ही वर मिला है इस तरह संतुष्ट होकर सब अपने अपने घरको चले गये ॥ ११२ ॥ इस प्रकार अनेक कल्याणोंको प्राप्त होकर वे पांडव अपने नगरमें गये और सुखपूर्वक बडे लंबे समयको भी क्षणभरके समान व्यतीत करने लगे ॥ २१३ ॥ तदनंतर अर्जुनके सुभद्रासे अभिमन्यु नामका पुत्र हुआ और द्रौपदीसे अनुक्रमसे पंचाल आदि पांच पुत्र हुए ॥ २१४ ॥ किसी एक दिन राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके साथ जूआ खेला जूआमें वे सब हार गये और नगर छोडकर छिप कर विराटके राजाके यहां सेवक बन कर रह गये वहां पर भीमने भुजंगशैल नगरमें

५५

क्षुनचक्रपुरस्सरः । पादन्यासे पुरः पश्चात्सरोजै सप्तमि पृथक् ॥ १९२ ॥ कृतशोभो जगन्नाथश्छत्रादिप्रातिहार्यकैः । मरुन्मार्गगताशेषसुरखेचरसेवित ॥ १९३ ॥ पृथ्वीपथप्रवृत्तान्यविनेयजनतानुगः । पवनामरनिर्धूतधूलीकटकभूतलः ॥ १९४ ॥ मेघामरकुमारोपसिक्तगंधांबुसरक्षिति । इत्याश्चर्यसंपन्नः सर्वप्राणिमनोहरः ॥ १९५ ॥ धर्मामृतमयीं वृष्टिमभिषिंचन् जिनेश्वर । विश्व न् देश न् विहृत्यायातमदेश पल्लवाह्वयं ॥ १९६ ॥ अत्र पाडुतनूजानां प्रपचोल्पः प्रभाष्यते । ग्रंथविस्तरभीरूणामायुर्मेधानुरोधत ॥ १९७ ॥ कम्पिल्यायां धराधीशो नगरे द्रुपदाह्वय । देवी दृढरथा तस्य द्रौपदी तनया तयोः ॥ १९८ ॥ स्त्रीगुणै सकलैः शस्या बभूव भुवनप्रिया । तत्पूर्णयौवना वीक्ष्य पित्रा कस्मै समर्प्यता ॥ १९९ ॥ इय कन्येति सपृष्टा मन्त्रिणो मन्त्रिचर्चया । प्रभाषत प्रचडेभ्यः पाडवेभ्य प्रदीयता ॥ २०० ॥ एतान् सहजशत्रुत्वाद् दुर्योधनमहीपति । पाडुपुत्रानुपायेन लाक्षालयमवीविशत् ॥ २०१ ॥ हेतुं त तेपि विज्ञाय स्वपुण्यपरिचोदिता । प्रवृत्ता पयसि क्ष्माजस्याधस्तात्किल्विष स्वय ॥ २०२ ॥ अपहृत्य सुरंगोपातेन देशातरं ग-

पीछे अलग अलग सात सात कमलोंसे उन त्रिलोकीनाथकी निराली ही शोभा हो रही थी चमर छत्र आदि प्रातिहार्य अलग शोभा दे रहे थे, सब देव विद्याधर उनकी सेवा करते हुए आकाश मार्गसे जा रहे थे। उनके साथ साथ ही पृथ्वी-परके मार्गसे अन्य शिष्य लोग जा रहे थे, उस समय वायु कुमारके देवोंने भी धूली कंटक साफ कर पृथ्वी साफ कर दी थी और मेघकुमारके देवोंने पृथ्वी पर गंधोदक सींच दिया था। इस प्रकार अनेक आश्चर्योंसे भरपूर, सब प्राणियों को मनोहर और धर्मरूपी अमृतकी वर्षा वरसाते हुए वे भगवान नेमिनाथ सब देशोंमें विहार कर पल्लवनामके देशमें जा विराजमान हुए ॥ १९१–१९६ ॥ यहा पर समय पाकर ग्रंथके विस्तारसे डरनेवाले मनुष्योंकी आयु और बुद्धिके अनुसार पांडुओंकी भी थोडी सी कथा लिख देते हैं ॥ १९७ ॥ कंपिला नगरीमें राजा द्रुपद राज्य करता था उसकी दृढ-रथा देवीसे द्रोपदी नामकी पुत्री हुई थी ॥ १९८ ॥ वह द्रौपदी स्त्रीमें होने वाले सबगुणोंसे प्रशंसनीय थी और सबको प्यारी थी। उसे पूर्ण यौवनांगी देखकर राजाने मंत्रचर्चाके द्वारा मंत्रियोंसे पूछा कि यह कन्या किसको देनी चाहिये। तब एक मंत्री कहने लगा कि पांडव बडे बलवान हैं उन्हें देनी चाहिये ॥ १९९–२०० ॥ यह सुन कर दूसरा मंत्री कहने लगा कि दुर्योधन पांडवोंका स्वाभाविक शत्रु है, उसने अपने उपायसे सब पांडवोंको लाक्षामहलमें घुसा दिया था परंतु पुण्यवान् पांडव इसका हेतु जान गये थे और जलमें खडे हुए एक वृक्षके नीचे रहने वाले किल्विष नामके राक्षस को स्वयं मार कर सुरंगके रास्तेसे भागकर देशांतरको चले गये थे-इस प्रकार पांडवोंके कुटुंब परिवार आदिकोंका दुःख भी नष्ट नहीं हुआ है। इधर पोदनपुर नगरके राजा चंद्रदत्तके रानी देविलासे इन्द्रवर्मा नामका पुत्र है, उसे राजाने सकलगुणों

१८० ॥ विष्णोर्जरत्कुमारेण गर्भनरगतिर्भवेत् । स एव प्रथमा पृथ्वी प्रविश्यान्ऽगुरमायुष ॥ १८१ ॥ प्राते तस्माद्विनिर्गत्य तीर्थेशोत्र भविष्यति । त्वम प्येतद्वियोगेन षण्मासकृतशोचन ॥ १८२ ॥ सिद्धार्थसुसम्बोधन पासनाखिलदुःखकः । दीक्षामादाय माहेंद्रकल्पे देवो जनिष्यसे ॥ १८३ ॥ उत्कृष्टायु स्थितिस्तत्र भुक्तभोगोत्र तीर्थकृत् । भूत्वा निर्दग्धकर्मारिरिह मुक्तो भविष्यसि ॥ १८४ ॥ इति तीर्थजिना प्रोक्त श्रुत्वा द्वीपायनाह्वयः । सद्यः संयममादाय प्रायाज्जनपदांतरं ॥ १८५ ॥ तथा जरत्कुमारश्च कौशाम्ब्यरण्यमाश्रयत् । प्रागबद्धनरकायुष्यो हरिरन्त्य सद्दर्शनः । १८६ ॥ भाव्यमानात्मनामासा नाहं शक्नो मि दीक्षितुं । शक्ताश्च प्रतिबध्नामीत्याक्रोबालमघोषयत् ॥ १८७ ॥ प्रद्युम्नादिसुता देव्यो रुक्मिण्याद्याश्च चक्रिण । बंधूनापृच्छ्य तैर्मुक्ताः प्रव्रज्यं संयम ॥ १८८ ॥ द्वीपायननिदानानमाने जाववतीसुत । अनिरुद्धश्च कामस्य सुनः संप्राप्य संयम ॥ १८९ ॥ प्रद्युम्नमुनिना सार्द्धमूर्जयताचलाग्रिमे । कूटत्रय समारुह्य प्रतिमायोगधारिण ॥ १९० ॥ शुक्लध्यानं समापूर्य त्रयस्ते घातिघातिनः । केवलनवकं प्राप्य प्रापन्मुक्तिमथान्यदा ॥ १९१ ॥ पुण्यघोषणकृत्व-

आयु पाकर पहिले नरकमें नारकी होगा और आयु पूरी होने पर वहांसे निकल कर इसी भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर होगा। तू भी कृष्णके वियोगसे छह महीने तक शोक करेगा और फिर सिद्धार्थ देवके द्वारा समझाए जाने पर सब दुःखोंको दूर कर दीक्षा लेकर चौथे माहेंद्र स्वर्गमें देव होगा ॥ १८०–१८३ ॥ वहां पर सात सागरकी आयु पाकर भोगोंका अनुभव कर इसी भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर होगा और कर्मरूप शत्रुओंको नष्टकर यहींसे मुक्त होगा ॥ १८४ ॥ श्रीतीर्थंकरका यह उपदेश सुनकर द्वीपायन तो उसी समय दीक्षा लेकर दूसरे देशमें चला गया, तथा जरत्कुमार कौशांबी वनमें चला गया। जिन्होंने पहिलेही नरककी आयु बांध ली है और फिर सम्यग्दर्शन धारण किया है ऐसे कृष्णने अंतिम तीर्थंकर नाम कर्मकी कारण सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन कर स्त्री बालक आदि सबके लिये यह घोषणा कर दी कि मैं तो दीक्षा ले नहीं सकता परंतु जो दीक्षा ले सकते हैं उन्हें मैं रोकता भी नहीं जो चाहे सो दीक्षा ले ले ॥१८५-१८८॥ यह सुनकर प्रद्युम्न आदि राजपुत्रोंने तथा रुक्मिणी आदि देवियोंने दीक्षाके लिये कृष्ण और भाई बंधुओंसे पूछा, सब ने उन्हें आज्ञा देदी और इसप्रकार उन्होंने दीक्षा धारण कर ली ॥ ८८ ॥ द्वीपायनके निदान करते समय जाववतीके पुत्र शंभवने तथा कामदेवके पुत्र अनिरुद्धने भी दीक्षा धारण करली और प्रद्युम्न मुनिके साथ गिरनार पर्वतके ऊंचे तीनों कूटों पर विराजमान होकर प्रतिमा योग धारण किया ॥ १८९–१९० ॥ उन तीनोंने शुक्लध्यान धारण कर घातिया कर्म नष्ट किये और फिर नौ केवल लब्धियोंको पाकर वे मुक्त हुए। अथानंतर किसी दूसरे दिन भगवान नेमिनाथने वहांसे विहार किया, उनके पुण्योदयसे यक्ष धर्मचक्रको लेकर आगे चलता था, उनके पैर रखनेकी जगह तथा आगे

स्मम॰ पतिं । यथास्यात्तसमुत्पत्तिः स्वास्यास्तागवावत ॥ १७१ ॥ तच्छ्रुत्वा रुक्मिणी चाह कामं जांबवती यथा । लप्स्यते तेजुनं प्राच्यं तथा कुर्विति
सादरं ॥ १७२ ॥ सोप्यदान्मुद्रिकां कामरूपिणीं तामवाप्य सा । सत्यभामाकृतिं गत्वा पतिसंयोगतः सुत ॥ १७३ ॥ क्रीडावं जांबवत्याप लांतवास्यदि-
वश्च्युतं । सुभानु सत्यभामा च आतमत्सरयोस्तयोः ॥ १७४ ॥ गांधर्वादिविवादेषु सुभानुं शंभवोजयत् । सर्वत्र पूर्वपुण्यानां विजयो नैव दुर्लभ ॥१७५॥
रुक्मिणी सत्यभामा च गतमात्सर्यबंधने । परस्परगतां प्रीतिमन्वभूतामत परं ॥ १७६ ॥ इत्यशेष गणेशोक्तमाकर्ण्य सकलं सदः । ननाम मुकुलीभूतका-
राब्जं तत्कमाब्जयो ॥ १७७ ॥ अथान्यदा जिन नेमिं सीरपाणि कृतांजलि । अवनम्यान्वयुक्तैवं हरिस्नेहाप्तमानसः ॥ १७८ ॥ भगवन् वासुदेवस्य
राज्यं प्रज्यमहोदयं । प्रवर्तते प्रतीतं मे गृहीतीद कियच्चिरं ॥ १७९ ॥ भद्र द्वादशवर्षांते नश्येन्मद्यनिमित्तकं । द्वीपायनेन निर्मूलमिय द्वारावती पुरी ॥

सत्यभामाने सबने सुना कि प्रद्युम्नका पहिले जन्मका छोटा भाई स्वर्गसे आकर कृष्णका पुत्र होगा । यह सुनते ही अपने पतिसे याचना की कि जिस तरह यह पुत्र मेरे ही उत्पन्न हो वही उपाय करना चाहिये ॥ १७०–१७१ ॥ सत्यभामाकी यह बात सुनकर रुक्मिणी प्रद्युम्नसे सदा कहने लगी कि जिस तरह हो तेरे पहिले भवके छोटे भाईका जीव जांबवतीके पुत्र हो ऐसा उपाय कर ॥ १७२ ॥ माताकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने जांबवतीको अपनी कामरूपिणी अंगूठी दी जिससे वह सत्यभामाका रूप बना कर पतिके पास गई और पतिके संयोगसे उसने लातंव स्वर्गसे च्युत हुए क्रीडावके जीवको धारण किया, तथा शंभव वा जांबव नामका पुत्र हुआ । इधर सत्यभामाके सुभानु नामका पुत्र हुआ सुभानु और शंभव ये दोनों भी परस्पर ईर्षा करने लगे और गांधर्व आदि विवादोंमें शंभवने सुभानुको जीता, सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुराय कर्मोंका उपार्जन किया है उनकी सब जगह जीत होना कुछ भी कठिन नहीं है ॥ १७३–१७५ ॥ तदनंतर रुक्मिणी और सत्यभामाने परस्परकी ईर्षा छोड दी और फिर उसके बाद वे दोनों परस्परके प्रेमको अनुभव करने लगीं ॥ १७६ ॥ इस प्रकार गणधरदेवके कहे हुए सब चारित्रको सुनकर सब सभा हाथ जोडकर उनके चरणकमलोंको नमस्कार करने लगी ॥ १७७ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन कृष्णके स्नेहसे जिनका चित्त भीग रहा है ऐसे बलदेवने श्रीनेमिनाथको नमस्कार कर इस तरह पूछा कि हे भगवन् कृष्णका जो यह बडी भारी विभूति और ऐश्वर्यसे भरा हुआ राज्य है वह इसी प्रकार कितने दिन तक चलता रहेगा, हे प्रभो ! यह मुझे बतला दीजिये ॥ १७८–१७९ ॥ तब भगवान कहने लगे कि हे भद्र बारहवर्ष बाद मद्यके निमित्तसे यह राज्य नष्ट हो जायगा, द्वीपायनके द्वारा यह द्वारावती नगरी भस्म हो जायगी, जरत्कुमारके द्वारा कृष्णकी मृत्यु होगी । तथा मरकर वह एक सागरकी

पितं विकाराणामकरोदाकरं पुनः। आगनाथ व्यधाद् भृत्यान् गोपुरेध स्थिताननान् ॥ १६० ॥ वासुदेवस्य रूपेणातर्जयच्च विद्रुतं । वीर्यं कृतखगादेन जराहर्यं च महत्तरं ॥ १६१ ॥ मेषरूपेण सगात्या पातयत्तत्पितागहं । हलिन च हरिर्भूला निगीर्यत्वमदृश्यताम् ॥ १६२ ॥ गत्वात्र सुपर्णास्य वेल्यभिधाय स्वविद्यया । रुक्मिणीरूपमापाद्य निर्विशेषं मनोहरं ॥ १६३ ॥ विमाने स्थापयित्वाशु गच्छन् स सवलं हरिं । प्राभवंत ममाहर्तुम कालिकयमोपम ॥ १६४ ॥ जित्वा नरेंद्रन ल स्वविद्याविहितमायया । तस्थौ निःप्रतिपक्ष सन् वीक्षणामीलविग्रहः ॥ १६५ ॥ नारदः स तदागत्य तनूजस्याप्यवीक्षण । युरयोरीदृश लब्धविद्यस्यैत्यभ्यधद्वन् ॥ १६६ ॥ सोपि प्रकटितात्मीयरूपः पचशरावल । हरिं च स्वशिरोन्यस्तत कमाब्जोत्समानयत् ॥ १६७ ॥ ततश्चक्रभगेनग प्रेमालिंगितविग्रहः । आरोप्य स्वगजस्कंधं प्रहृष्टः प्राविशत्पुरं ॥ १६८ ॥ सत्यभामासुत द्विटकन्यकाभि सह स्मरः । कल्याणाभिषवं दिश्या मंप्रापत्सर्वसंमतः ॥ १६९ ॥ एत्र प्रयाति कालेस्य स्वर्गादागत्य कश्चन । तनूजः कामसोदर्यो हरे प्राच्यो भविष्यति ॥ १७० ॥ इत्यादेश ममाकर्ण्य सत्यभा

जो सेवक आये थे उन्हें नगरके बडे दरवाजेपर नीचेकी ओर मुख कर लटका दिया ॥ १६० ॥ फिर वासुदेवका रूप धारणकर उन सेवकों की अनेक तरहसे ताडना की । तदनंतर अत्यंत बूढेका रूप बनाकर गलीमें सो रहा और वलभद्रके जगानेपर विद्यासे अपने पैर लंबे कर उनको ठगा । फिर भेषका (भेडाका) रूप बना कर बावा वसुदेवका घोंटू तोडा और सिंह बनकर वलभद्रको निगलकर अदृश्य कर दिया ॥ १६१–१६२ ॥ इसके बाद वह फिर माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि तू यहां ही सुखसे ठहरना । इसतरह कहकर उसने अपनी विद्यासे रुक्मिणीका वैसाही मनोहर रूप बनाया और उसे विमानमें बिठाकर शीघ्र ही कृष्णके समीप पहुचा और कहने लगा कि मैं तेरी स्त्रीको हरले जाता हूं यदि सामर्थ्य हो तो छुडा । उसकी यह बात सुनकर समयानुसार यमके समान कृष्ण अपनी सब सेना लेकर आए परंतु भीलका रूप धारण करने वाला प्रद्युम्न मायामयी नरेंद्रजाल विद्यासे सबको जीत कर शत्रु रहित होकर अर्थात् सब शत्रुओं को नष्ट कर खडा रहा ॥ १६३–१६५ ॥ इतनेमेंही नारद कृष्णके समीप आकर बैठ गये और कहने लगे कि जिसने अनेक विद्याएं प्राप्त की हैं ऐसे पुत्रको तुम दोनों इसतरह देख रहे हो ॥ ६६ ॥ उसी समय प्रद्युम्नने भी अपना रूप प्रगट कर और पिताके चरण कमलोंको अपने मस्तक पर धारण कर उनका बहुत ही आदर सत्कार किया ॥१६७॥ तदनंतर जिसका शरीर प्रेमसे आलिंगन हो रहा है ऐसे प्रद्युम्नको कृष्णने हाथी पर बिठाया और बडी प्रसन्नताके साथ नगरमें प्रवेश कराया ॥ १६८ ॥ फिर प्रद्युम्नने अपने पुण्योदयसे भानुकुमारके लिये जो कन्याएं आई थी उनके साथ सबकी सम्मतिसे विवाह किया ॥ १६९ ॥ इस प्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन

भ्यमिसमीक्ष्य सा । कलालिकोकिलालापबाचालितवनातरे ॥ १४९ ॥ तदा विस्मयमापन्ना मुदा पप्रच्छ किं भवान् । अत्रोसौ मत्सूनो नारदोक्तकाले स
मागतः ॥ १५० ॥ इति तस्या परिप्रश्ने स्वरूप सप्रकाशयन् । कृत्वा शिरसि तत्पादनखदीधितिमञ्जरी. ॥ १५१ ॥ अभिधाय स्ववृत्तातमशेषं परिबोधय-
न् । जननीं सह संतुष्टतया तदभिवांछितैः ॥ १५२ ॥ बालक्रीडाविशेषैस्तां परां प्रीतिमवापयन् । प्राग्जन्मोपार्जितापूर्वपुण्योदय इव स्थितः ॥ १५३ ॥
तदा नापितकः कोपि रुक्मिणीं समुपागतः । हरिप्रश्नात्सुतोत्पत्तिं विज्ञाय विनयधरात् ॥ १५४ ॥ मुनीन्द्राद्वयोर्युवयोः प्राग्ज. स्योपयमेऽलकान् । का-
तन्यस्याः स इत्वेति युवाभ्यां विहितास्थिति ॥ १५५ ॥ तस्माद्देव्यलकालीति दीयतां तन्निबन्धन । स्पृष्टा भानुकुमारस्य जननी सत्यभामया ॥ १५६ ॥
प्रहितोऽहं विवाहेऽय ब्रूतमित्यब्रवीदिद । किमेतदिति संपृष्टा कामेन तत्र जन्मना ॥ १५७ ॥ सम भानुश्च संजातस्तदावाभ्यां युवां हरे । नीता दर्शयितुं
सुप्ते तस्मिंस्त्व पादसन्निधौ ॥ १५८ ॥ स्थापितः स शिरोभागे प्रबुध्य त्वां पुरो हरि । विलोक्य ज्येष्ठता तेऽदादिति माताभ्यभाषत ॥ १५९ ॥ स ना-

रहे हैं ॥ १४९ ॥ उन्हें देखकर रुक्मिणीको बहुत आश्चर्य हुआ और वह प्रसन्न चित्त होकर पूछने लगी क्या आप मेरे पुत्र हैं और नारदके कहे अनुसार ठीक समय पर आए हैं। माता की यह बात सुन कर प्रद्युम्नने अपना रूप प्रगट किया और माताके चरणोंमें मस्तक नवाकर उसके चरणोंके नखोंकी कांति रूपी मंजरीको अपने मस्तक पर चढाया ॥ १५०–१५१ ॥ तदनंतर प्रद्युम्नने अपना सब हाल कहकर माताको समझाया और माताके साथ बहुत संतुष्ट हुआ। फिर माताकी इच्छानुसार अनेक तरहकी बालक्रीडाएं कर माताको बहुत ही संतुष्ट किया और पहिले जन्ममें कमाए हुए अपूर्व पुण्यकर्मके उदयके समान वह वहीं ठहरा रहा ॥१५२–१५३॥ इतनेमें ही रुक्मिणीके समीप एक नाई आया और इसप्रकार कहनेलगा कि श्रीकृष्णके प्रश्न करने पर श्री विनयंधर मुनिराजसे सत्यभामा और तुम दोनों ने अपने पुत्रकी उत्पत्ति जान परस्पर शर्त बदी थी कि जिसके पहिले पुत्रहोगा वह पुत्र विवाहके समय दूसरीके शिरके बालोंपर बैठकर स्नान करेगा इसलिये हे देवी उस बातको स्मरणकर भानुकुमारके स्नानके लिये आप अपने मस्तकके केश दें यही कहकर आज विवाहके दिन सत्यभामाने मुझे आपके समीप भेजा है। उस नाईकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने मातासे पूछा कि यह क्या बात है। तब माता कहने लगी कि तेरे जन्मके साथही भानुकुमारका जन्म हुआ था तब हम दोनोंनें (मैंने और सत्यभामाने) कृष्ण को दिखानेके लिये तुम दोनोंको उनके समीप भेजा था। कृष्ण उस समय सो रहे थे इसलिये तू तो उनके पैरोंकी ओर सुला दिया था और भानुकुमारको शिरकी ओर सुलाया था। कृष्णने उठतेही पहिले तुझे देखा इसलिये तुझेही बड़ा माना था ॥ १५४–१५९ ॥ इसतरह माताकी बात सुनकर प्रद्युम्नने उस नाईके अनेक विकार किये तथा उसके साथमें

कोदंडहस्तो व्याधाकृतिं दधत् । तेषां कदर्थनं कृत्वा नाना द्वारवतीमितः ॥ १३८ ॥ विधाय विद्यया प्राग्वनारदं स्यंदनस्थितं । एकाकी स्वयमागत्य वि-
ग्राशाखामृगाकृतिः ॥ १३९ ॥ बभंज सत्यभामाया नदन वावन वन । तत्पानवापीनिःशेषजलपूर्णकमंडलुः ॥ १४० ॥ ततो गत्वांतरं किंचित्स्यदनोरपि रा-
सभान् । विपर्यास समायोज्य मायारूपधरः स्मर. ॥ १४१ ॥ पुरगोपुरनिर्याणप्रवेशनगतान् जनान् । सप्रहासान् समापाद्य प्रविश्य नगरं पुन ॥ १४२ ॥
आलोक्य वैद्यवेषेण संप्रत्येय स्वविद्यया । विच्छिन्नकर्णसंधानवेदित्वादि प्रघोषयन् ॥ १४३ ॥ प्राप्य भानुकुमाराय दातुमानीतकन्यका । तत्राविर्भाविता-
नेकधाहास्योत्पत्तिजाकृति ॥ १४४ ॥ सत्यभामागृह गत्वा भोजनावसरे द्विजान् । विप्रकृत्य स्वधाष्टर्येन भुक्त्वा स्वीकृतदक्षिण ॥ १४५ ॥ तत क्षुल्लकवे-
षेण समुपेत्य स्वमातरं । बुभुक्षितोहं सद्दृष्टे सम्यग्भोजय मामिति ॥ १४६ ॥ सप्रार्थ्य विविधाहारान् भुक्त्वा तृप्तमन सव न् । कुरु मे देवि सतृप्तमि-
ति व्याकुलतां नयन् ॥ १४७ ॥ तद्वितीर्णमहामोदकोपयोगात्सुतृप्तवान् । ईषच्छातमनस्तत्र सुख समुपविष्टवान् ॥ १४८ ॥ अकाले चपकाशोकपुष्पा-

विद्यासे नारदको तो रथमें ही रोक दिया और बंदरकारूप धारणकर अकेला ही नीचे आया ॥ १३९ ॥ आते ही सत्य-
भामांका वावन नामका बहुत सुंदर बाग उजाड डाला और उसमेंकी वावडीका सब जल एक कमंडलुमें भरलिया ॥ १४० ॥
तदनंतर थोडी दूर जाकर उसने अपने रथमें उलटे गधे जोते इसतरह मायामयी रूप धारणकर वह प्रद्युम्न नगरके दरवा-
जेपर पहुंचा वहांपर आने जाने लोगोंको खूब हंसाया और फिर नगरके भीतर गया ॥ १४१–१४२ ॥ अपनी विद्यासे
उसने वैद्यका रूप बनाया और घोषणा करने लगा कि मैं छिदे हुए कानोंको जोड देता हूं तथा और भी ऐसे ही अनेक
काम करना जानता हूं ॥ १४३ ॥ उसके बाद भानुकुमारके लिये जो कन्या लेकर आए थे उनके यहां पहुंचा और उ-
नकी अनेक तरहसे हंसी की। फिर ब्राह्मणका रूप बनाकर सत्यभामाके घर पहुंचा वहां पर ब्राह्मणलोग भोजन करने
के लिये तैयार थे इस लिये उसने उन्हें तो अपनी धृष्टतासे बाहर कर दिया और आप भोजन कर दक्षिणा लेकर चल-
बना ॥ १४४–१४५ ॥ तदनंतर क्षुल्लकका रूप धारण कर अपनी माताके पास पहुंचा और कहने लगा कि हे सम्यग्द-
र्शनको पालन करनेवाली मैं भूखा हूं मुझे अच्छी तरह भोजन करा ॥ १४६ ॥ इस तरह प्रार्थना कर उसके दिए हुए
अनेक तरहके भोजन खाये परंतु वह तृप्त नहीं हुआ । तब फिर कहने लगा कि हे देवी मेरा पेट भर कर मुझे संतुष्ट करो
इस तरह कह कर कुछ देरके लिये उसे व्याकुल कर दिया और फिर उसका दिया हुआ एक महामोदक खाकर संतुष्ट
हुआ। इस तरह कुछ शांतचित होकर सुखपूर्वक वहां बैठ गया ॥ १४७–१४८ ॥ उसी समय रुक्मिणीने देखा कि अस-
मयमें ही चंपा अशोक आदिके सब फूल फूल गये हैं और भ्रमर कोकिल आदि जानवर बागमें मीठे मीठे शब्द बोल

पराभव ॥ १२६ ॥ अथात्र नारद कामचारिण नमसस्तलात् । आगच्छत निजस्थानं हरिमुनुग्लोकन ॥ १२७ ॥ यथाविधि प्रतीक्ष्यैनमभ्युत्थानपुरस्सरं । कृतसंभाषणस्तेन प्रणीतस्मग्रपंचकः ॥ १२८ ॥ सम्यक् श्रद्धाय तस्मै प्रद्युम्नोऽखिलागम । द्रष्टुं स्वारिविरिमनस्तावद्बलं तं ममरेरितु ॥ १२९ ॥ सहसावेष्टितेवार्के प्रावृड्भोदजालक । कालसभवमुख्यांस्तान्स युध्वा भगमापयत् ॥ १३० ॥ ततमूनुरुत्तनूनात बोधयित्वा खगाधिप । अपनीय शिला नागपाशाश्रिता न् व्यपासयत् ॥ १३१ ॥ नारदागमहेतुं च ज्ञापयित्वा स विस्तरं । आपृच्छ्यानुमतस्तेन रथ वृषभनामकं ॥ १३२ ॥ नारदेन समारुह्य प्रायद् द्वारवतीं प्रति । स्वपूर्वभवसंबंध श्रुत्वस्तेन निरूपित ॥ १३३ ॥ हास्तिन स्पपुरं प्राप्य दुर्योधनमहीभुजः । जलधेश्च सुतां कन्या मान्यामुदधिमहाया ॥ १३४ ॥ दातुं भानुकुमाराय तां महाभिषणोत्सवा । विधीयमान वीक्ष्यैतां रथे पस्तरविद्यया ॥ १३५ ॥ नारद शिलयाच्छाद्य नरमादुत्तीर्य भूतल । बहुप्रकारान् हासाना तत्र कृत्वा ततो गतः ॥१३६॥ मथुराया वहिर्भागे पाण्डवान् स्वप्रिया सुता । प्रदित्सून् गच्छतो भानुकुमाराग्रामिनीक्ष्य सः ॥ १३७॥ समारोपित

विधिपूर्वक उनका आदर सत्कार किया । उनके साथ बात चीत की और नारदने अपना तथा प्रद्युम्नका सब हाल बतलाया ॥ १२८ ॥ उसे सुनकर और उसपर विश्वास कर प्रद्युम्न बहुत संतुष्ट हुआ और शत्रुकी सेनाके आनेकी प्रतीक्षा करता हुआ नारदके समीप बैठ गया । इतनेहीमें कालसंभव विद्याधर की सेनाने अकस्मात् आकर इसप्रकार घेर लिया मानों वर्षाऋतुके बादलने सूर्यको ही ढक लिया हो । कालसंभव आदि मुख्य २ योद्धा लडने लगे परंतु प्रद्युम्नसे सब हार गये ॥ १२९–१३० ॥ तदनंतर प्रद्युम्नने कालसंभव विद्याधरसे विद्युद्दंष्ट्र आदि सब भाइयोंके दुश्चरित्र सुनाए, शिलाको हटाकर सबको नागपाससे छुडाया और नारदके आनेका सब हाल सविस्तर समझाया । तदनंतर पिता कालसंभवकी आज्ञानुसार वह द्वारिकाको चलनेको तैयार हुआ और नारदके साथ वृषभ नामके रथपर सवार होकर द्वारिकाको निकला । नारद उसके पहिले भव कह रहे थे उन्हें सुनता हुआ वह राजा दुर्योधनके हस्तिनापुर नगरमें जा पहुंचा । वहांपर दुर्योधनकी जलधि नामकी रानीसे उत्पन्न हुई उदधि नामकी सुंदर कन्याको भानुकुमारको देनेकेलिये महाभिषेक और उत्सव हो रहा था । उसे देखकर उसने पृस्तर विद्यासे नारदको तो एक शिलासे रथपर ही ढक दिया और आप वहासे पृथ्वीपर उतरा । वहापर उन लोगोंकी अनेक तरहसे हंसी की और फिर वहांसे भी आगे चला ॥ १३१–१३६ ॥ चलते चलते वह मथुरा नगरके बाहर पहुंचा, वहांपर पांडव लोग प्रिय कन्याको भानुकुमारको देनेकेलिये जा रहे थे उन्हें देखकर वह उनके समीप आया उसने हाथमें धनुष लेकर भीलका रूप धारण किया और फिर अच्छी तरह कई प्रकार से उनका तिरस्कार किया वहांसे चलकर वह द्वारिका पहुंचा ॥ १३७–१३८ ॥ वहांपर पहिलेके अनुसार उसीप्रकार

तौ सम तस्मै वितेरतुः । कपनेन कपित्थाद्रिपस्यास पादुकाद्वय ॥ ११७ ॥ तेनानर्घ्यं नभोगामि देवतायास्तदाश्रितः । सुवर्णककुमे पंचफणाहिपतिनर्पिता॥ ११८ ॥ तपनस्तापनो मोहनाभिधानो विलापन । मारणश्चेति पचैतान् शरान् सप्राप्य पुण्यभाक् ॥ ११९ ॥ मौलिमौषधिमाला च छत्र चामरयुग्मक । दत्त क्षीरवने मर्कटेनास्मै परितोषिणा ॥ १२० ॥ कदवकमुखीवाप्या नागपाशमवाप्नुवान् । अस्य वृद्धेरसोढार सर्वे ते खगसूनव ॥ १२१॥ यः पाताल-मुखीवाप्या पतेत्स सकलेश्वरः । भवेदित्यवदन्कामोप्यवगम्य तदिंगित ॥ १२२ ॥ प्रज्ञप्तिं निजरूपेण तस्या वाप्यामपीपतत् । स्वय पार्श्वे तिरोधाय स्वरूप नयवित् स्थित ॥ १२३ ॥ महाशिलाभिस्तै सर्वैर्विधेय बधवान्सन । निदिला कोपसतप्तो विद्युद्दंष्ट्रादिविद्विष ॥ १२४ ॥ गाढ पाशेन वध्वाधोमुख न् प्रक्षिप्य तत्र स । कृत्वा शिलापिधान च प्रहित्य नगर प्रति ॥ १२५ ॥ ज्योति.प्रभ कनीयांस तेष्वाक्रम्य शिला स्थित । पापिनो हि स्वपापेन प्राप्नुवति

नीचे पहुंचा और उसे खूब हिलाया। उसपर एक देव रहता था उसने तुरंत ही आकर आकाशमें लेजाने वाली वहु-मूल्य दो चरणपादुकाएं (खडाऊं) दी। वहांसे चलकर एक अर्जुनवृक्षके नीचे आया और वहापर रहनेवाले पांच फणा वाले नागपति देवसे तपन तापन मोहन विलापन और मारण ये कामके पांच वाण उस पुण्यवानको प्राप्त हुए ॥ ११२-११९ ॥ वहांसे चलकर वह प्रद्युम्न क्षीरवनमें गया वहांके मर्कट देवने संतुष्ट होकर मौलि, औषधिमाला, छत्र और दो चमर दिये ॥ १२० ॥ तदनंतर वह कदंबकमुखी वावडीमें गया और वहांके देवसे एक नागपाश प्राप्त किया। इसतरह प्रद्युम्नकी वृद्धि देखकर विद्युदंष्ट्र आदि सव विद्याधर दुःखी हुए और कहने लगे कि जो कोई इस पातालमुखी नामकी वावडीमें कूद पडेगा वह सव संसारका स्वामी हो जायगा। प्रद्युम्नने उनकी यह वात सुनकर उनके सव अभिप्राय जान लिये और प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको अपना रूप वनाकर उस वावडीमें कुदा दिया तथा उनका सव अभिप्राय जाननेके लिये नयोंको जानने वाला वह प्रद्युम्न समीप ही जाकर छिप रहा ॥ १२१–१२३ ॥ प्रज्ञप्तिविद्याके कूद पडने पर प्रद्युम्नको मारनेके लिये उन विद्युदंष्ट्र आदि विद्याधरोंने वडे वडे पत्थर मारना प्रारंभ किया, उनके इस कामको देख कर प्रद्युम्नको क्रोध आया और उन सवको नागपाशसे जकडकर वांध लिया, उन सवका नीचे को मुखकर उलटा टांग दिया और ऊपरसे एक वडी शिला ढाकदी। उन विद्याधरोंमेंसे ज्योतिप्रभ नामका सवसे छोटा पुत्र था उसे उसने समाचार देनेके लिये नगरमें भेज दिया और आप उस शिला पर वैठ गया सो ठीक ही है क्योंकि पापी लोग अपने पाप कर्मसे तिरस्कार पातेही हैं ॥ १२४–१२६ ॥ अथानंतर थोडीही देर वाद प्रद्युम्नने देखा कि अपनी इच्छानुसार विहार करते हुए नारद आकाशसे उतर कर अपनी ओर आ रहे हैं ॥ १२७ ॥ उनको देखतेही वह खडा हो गया और

ततो निर्गतवान् भूयस्तन्निर्देशाद्विशन् बिले ॥ १०७ ॥ वराहात्रेरथाशु प्रमापतंतं वराहकं । करेणैकेन दंष्ट्रायां धृत्वान्येनाहन मस्तकं ॥ १०८ ॥ प्रहृष्य हे-
रूयां तस्यै तस्मात्साध कोहित । समीक्ष्य देवत तस्मा रुक्मिणीप्रियसूनवे ॥ १०९ ॥ शंखं विजयघोषाख्यं महाजालमपि द्वयं । ददातिस्म सपुण्यानां क्वा-
कभो न जायते ॥ ११० ॥ तथा कालगुहायां च महाकालाख्यराक्षसात् । वृषभाख्यरथं रत्नकवचं प्राप निर्जितात् ॥ १११ ॥ विद्याधरेण केनापि खच-
र: कोपि कीलितः । तद्वद्ये स कामस्य दृष्टिगोचरमापतत् ॥ ११२ ॥ अमात्रेदनार्तस्य खेटकस्य च वीक्षणात् । इंगितज्ञो हरे: पुत्रोऽङ्गुलिकां बंधमोचनीं ॥
११३ ॥ खेटकस्था समादाय समभ्यज्य विलोचने । कृतोपकारसंप्राप्तस्माद्विद्यात्रयं महत् ॥ ११४ ॥ सुरेंद्रजालजालातनरेंद्रप्रस्तरं च स: । पुन सहस्र
वक्त्रभाद्भिवने शंखपू नात् ॥ ११५ ॥ बिलान्निर्गत्य नागश्च नागी च मकरध्वज । चित्रवर्णं धनुर्नंदकाख्यासिं कामरूपिणीं ॥ ११६ ॥ मुद्रिकां च प्रदधौ

आए परंतु प्रद्युम्न दोनोंको रोककर खडा हो गया, यह देख कर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे मग-
रके आकारके दो दिव्य कुंडल दिये। तदनंतर वह वहांसे निकला और भाइयोंकी आज्ञानुसार वराह नामके विलमें गया।
वहां पर एक देव वराहका (सूअरका) उग्र रूप धारण कर सामने आया परंतु प्रद्युम्नने एक हाथसे तो उसका दांत
पकड लिया और दूसरे हाथसे उसका मस्तक ठोंकता हुआ वह लीलापूर्वक खडा रहा। प्रद्युम्नकी इस असाधारण
चेष्टाको देखकर वहांका देवता बहुत प्रसन्न हुआ और विजयघोष नामका शंख तथा महाजाल ये दो वस्तुएं उसे दीं सो
ठीक ही है क्योंकि पुण्यवान मनुष्योंको कहां लाभ नहीं होता अर्थात् उन्हें सब जगह लाभ होता ही है ॥ १०६–११० ॥
इसी तरह वह काल नामकी गुफामें गया वहां पर महाकाल नामके राक्षस देवको जीता और उससे वृषभ नामका रथ
और रत्नकवच ये वस्तुएं प्राप्त की ॥ १११ ॥ आगे चल कर दो वृक्षोंके बीचमें किसी विद्याधरको किसी
विद्याधरने कीलित कर दिया था वह प्रद्युम्नको दिखाई दिया वह कीलित हुआ विद्याधर असह्य वेदनासे
दुःखी हो रहा था। यद्यपि उसके हाथमें बंधमोचनी अंगूठी थी परंतु वह कीलित था इसलिये कुछ कर न सका।
प्रद्युम्न उसको देखते ही उसके समीप गया, उसके इशारों को समझकर वह अंगूठी उसके हाथसे उतारी और उसके
नेत्रोंमें फेरकर उसे छुडा दिया। इसतरह अपना उपकार करने वाले प्रद्युम्नको उस विद्याधरने सुरेंद्रजाल, नरेंद्रजाल और
प्रस्तर ये तीन महा विद्याएं दीं। तदनंतर वह प्रद्युम्न सहस्रवक्त्र नामके नागकुमारके भवनमें गया, वहांपर उसने शंख
बजाया उसे सुनकर नाग नागिनी दोनोंही बिलके बाहर आए, प्रद्युम्नको देखकर वे दोनोंही बहुत प्रसन्न हुए और उन्हों
ने उसे चित्रवर्ण नामका धनुष, नंदक नामकी तलवार और कामरूपिणी अंगूठी दी। वहांसे चलकर एक कैथके वृक्षके

॥ ९७ ॥ किं प्रत्येयमिदं नेति शब्देनार्थेन च श्रुतं । उक्तं वक्तुं परीक्ष्यं तत् समीक्ष्यापूर्वकारिभिः ॥ ९८ ॥ भिया स्नेहेन लोभेन मात्सर्येण क्षुधा ह्रिया ।
अनवबोधेन बोधेन परेषां प्रेरणेन वा ॥ ९९॥ वक्तीत्येवं निमित्तानि परीक्ष्याणि सुमेधसा । एवं प्रवर्तमानोत्र विद्वान् विद्वत्सु मन्यते ॥ १०० ॥ का स्त्रीत्वा-
न्नावबुध्येत दुष्टा कश्मलं च तत् । दुष्टविशिष्टसंबन्धे संमोमुह्यीति मत् ॥१०१॥ तदैव तं समुत्साह्य विहर्तुं ते वनं गताः । अग्निकुंड प्रदर्श्यास्य प-
तंत्यस्मिन्ननभीरवः ॥ १०२ ॥ इत्याहुः सोपि तच्छ्रुत्वा न्यपतत्तत्र निर्भयः । विचारयन्ति धीमन्तो न कार्यं दैवचोदिताः ॥ १०३ ॥ देवतैवोत्रनिवासिन्या
प्रतिगृह्यापि पूजितः । कनकांबरभूषादिदानेनास्माद्विनिर्ययौ ॥ १०४ ॥ तस्माद्विस्मयमापन्ना गत्वा तेऽन्यत्र तं पुनः । प्रोत्साह्यमेष भूभर्त्रोर्मध्य प्रावेशय-
न् बलात् ॥ १०५ ॥ पर्वतौ मेषरूपेण पतंतौ भुजशालिना । तन्निरुध्य स्थितं दृष्ट्वा तुष्टा तद्भूतदेवता ॥ १०६ ॥ तस्मै दिव्ये ददौ रत्नकुंडले मकरांकिते ।

ज्ञानसे वक्ताकी परीक्षा करनी चाहिये । क्योंके जाननेवाले चतुर पुरुषको देखना चाहिये कि यह बात इसमें संभव हो सकती है या नहीं, उसके आचरणोंसे उसकी परीक्षा करनी चाहिये तथा जिस उद्देश्यसे तथा जिसको उद्देश मानकर जो वचन कहे गये हैं वे विश्वास करने योग्य हैं अथवा नहीं है इसकी शब्द और अर्थ दोनोंसे परीक्षा करनी चाहिये। तथा जो कुछ कहा जाय उसकी भी विचारवालोंको परीक्षा करनी चाहिये बुद्धिमानको यह भी देखना चाहिये कि यह स्त्री भयसे कह रही है वा स्नेहसे, लोभसे कह रही है अथवा ईर्ष्यासे, भूखसे कह रही है अथवा लज्जासे, जानबूझ कर कह रही है वा बिना जाने अथवा किसी दूसरेकी प्रेरणासे कह रही है इन सब कारणोंकी परीक्षा करनी चाहिये जो बुद्धिमान इस प्रकार चलता है वह विद्वानोंमें भी विद्वान् गिना जाता है ॥ ९९–१०० ॥ दुःख है कि स्त्री स्वभाव होनेके कारण दुष्ट स्त्रियां यह नहीं समझतीं कि दुष्ट और शिष्टके संबंध होने पर दुष्ट पुरुष ही मोहित होते हैं शिष्ट नहीं ॥१०१॥ तदनंतर वे विद्युद्दंष्ट्र आदि पांचसौ पुत्र प्रद्युम्नको उत्साहित कर विहार करनेके लिये वनमें ले गये और एक अग्नि-कुंडको दिखाकर कहने लगे कि जो कोई इसमें कूद पडेगा वह सबसे निर्भय गिना जायगा। भाइयोंकी यह बात सुनकर वह प्रद्युम्न भी निर्भय होकर उसमें कूद पडा सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यसे प्रेरित हुए बुद्धिमान लोग किसी कामको सोचते नहीं हैं ॥ १०२–१०३ ॥ उस कुंडमें कूदते ही वहांकी रहनेवाली देवीने उसका आदर सत्कार किया और सु-वर्णके आभूषण वस्त्र आदि देकर उसकी पूजा की इस तरह वह वहांसे निकला ॥ १०४ ॥ उसे देखकर विद्युद्दंष्ट्र आदिको बहुत आश्चर्य हुआ तथा वे दुष्ट फिर उसे उत्साहित कर दूसरी जगह ले गये और उसे विजयार्द्ध पर्वतके किसी बिलेमें घुसा दिया ॥ १०५ ॥ वहां पर भुजाओंमें बल रखनेवाले प्रद्युम्नके ऊपर मेंढेका रूप धारण कर दो पर्वत

तस्मात् वाममार्गस्थाद् दुःफलत्वाद् ध्रुवं क्षति ॥ ८८ ॥ चालयंति स्थिरामृज्वीं नयति विपरीततां । छादयति मतिं दीप्तां स्त्रियो वा दोषविक्रिया ॥ ८९ ॥ तदैव तोषो रोषश्च पापिनीनां प्रियान् प्रति । न हेतुस्तत्र कोप्यन्यो ऋ भालाभद्वयाद्विना ॥ ९० ॥ अकार्यमवशिष्ट यत्तस्मास्तीह कुयोषितां । मुक्त्वा पुत्राभिलाषित्वमेतदप्येतयाकृत ॥ ९१ ॥ योषित्सुव्रतशीलादिसत्क्रियाश्चाप्नुवति चेन् । न शुद्धिं ताः स्वपर्यंत कथ नायांत्वसत्क्रियाः ॥ ९२ ॥ आपो वांभोजपत्रेषु चित्त तासां न केषु चित् । स्थायु तिष्ठदपि स्पृष्टाप्यस्पृष्टवदद पृथक् ॥ ९३ ॥ सर्वदोषमयो भावो दुर्लक्ष्य. सर्वयोषितां । दु साध्यश्च महामोहाद्वहोसौ संनिपातवत् ॥ ९४ ॥ कक किं वक्ति केनेति विचार्य कार्यकारिणा । ऐहिकामुत्रिकार्येषु ततोय नैति वचनां ॥ ९५ ॥ प्रम णवचन. किं वा नेति वक्ता परीक्ष्यता । विदुषा तस्य वृत्त परिज्ञानेन च स्फुटं ॥ ९६ ॥ एतस्मिन् सभवेदेतन्नवेति नयवेदिना । तदाचारैः परीक्ष्य प्राक् यमुद्दिश्य वच स च

उसे मारनेके लिये वहांसे निकले ॥ ८५–८७ ॥ देखो—जिसप्रकार हिंसाको प्रधान माननेवाले शास्त्र व आप्तसे हानि पहुंचती है अथवा नीतिरहित राज्यसे हानि पहुंचती है और कुमार्गमें लगे हुए तपश्चरणसे हानि पहुंचती है उसी प्रकार बुरी स्त्रियोसे अवश्य हानि पहुंचती है ॥ ८८ ॥ दोषोंके विकारोंसे भरी हुई स्त्रिया स्थिरको चला सकती हैं सीधीको उलटी कर देती है और दैदीप्यमान बुद्धिको भी ढक देती है ॥ ८९ ॥ ये पापिनीएं अपने अपने पतियों पर उसी समय तो संतुष्ट हो जाती हैं और फिर उसी समय क्रोध करने लग जाती हैं। उनके ऐसा करनेमें लाभ वा हानि इन दो के सिवाय अन्य कुछ भी कारण नहीं है ॥ ९० ॥ संसारमें जो कुछ अकार्य बाकी है वह भी दुष्ट स्त्रियोंके लिये बाकी नहीं है हा पुत्रके साथ कामसेवनकी इच्छा करना उनके लिये भी बाकी है अर्थात् दुष्टसे दुष्ट स्त्री भी पुत्रके साथ कामसेवनकी इच्छा नहीं करती परंतु कंचनमालाने यह इच्छा भी कर डाली ॥ ९१ ॥ यदि स्त्रियां व्रतशील आदि सत्क्रियाओंको भी करने लगें तो भी ये शुद्ध नहीं होतीं इस लिये वे अधिकसे अधिक असत् क्रियाओंको किस तरह प्राप्त न हों ॥९२॥ जिस प्रकार जल कमलपत्रको स्पर्श करता हुआ भी उसपर निश्चल ठहरता नहीं उसी प्रकार स्त्रियोंका मन भी कहीं पर निश्चल नहीं ठहरता, वह स्पर्श न किये हुएके समान सदा अलग ही रहता है ॥ ९३ ॥ सब स्त्रियोंके सब तरहके दोषोंसे भरे हुए भाव सदा दुर्लक्ष्य (छिपे हुए) होते हैं अर्थात् ये किसीके देखनेमें नहीं आते और सन्निपातके समान वे कष्टसाध्य होते हैं तथा महामोहसे सदा भरे रहते हैं ॥ ९४ ॥ यह किससे क्या कहती हैं और क्यों कहती हैं इसका विचार कार्य करनेवालेको अवश्य करना चाहिये। जो ऐसा विचार करता है वह इसलोक और परलोकके किसी भी काममें ठगा नहीं जाता ॥ ९५ ॥ यह वचन प्रमाण है अथवा नहीं है इसकेलिये विद्वान् पुरुषको उसके आचरण और

प्रकाशयंत्या स्वांतस्थं भाव पापपरीतया । कुमार तुभ्य मद्देया गृहाण विधिपूर्वक ॥ ७७ ॥ प्रज्ञप्तिविद्य मित्युक्त्वा मायामयेद्र्या । सोपि मातस्तथैवाहं करिष्यामीति पंमद तू ॥ ७८ ॥ आदाय धीमांस्ता विद्यां सिद्धकूटमुपागमत् । कृत्वा तत्र नमस्कार चारणौ मुनिपुंगवौ ॥ ७९ ॥ श्रित्वा श्रुत्वा ततो धर्म ज्ञात्वा विद्याप्रसाधने । हेतु तदुपदेशेन संजयंत समाश्रय ॥ ८० ॥ आकर्ण्य तत्पुराण च तदर्चापादसंश्रयात् । विद्यां संसाध्य संज तस्मद पुरम गमत् ८१ दृष्ट्वा द्विगुणिताकारशोभत कामकातरा । प्रार्थयंती बहूपायैरनिच्छन महामति ॥ ८२ ॥ पुरुषव्रतसंपन्नमिति द्वेषादवूबुधत् । कुमार सह्व सस्य योग्यो नाय कुचेष्टित ॥ ८३ ॥ जानाम्यनभिजात वमस्येति खचराधिपं । विचारविकल' सोपि तदुक्त मत्प्रतीतवान् ॥ ८४ ॥ विद्युद्दंष्ट्रादिक न् पंच शतानि तनुजान् मिथ । आहूय देवदत्तोय दोष्युपाय्य वधोचित ॥ ८५ ॥ तत. केनाप्युपायेन भवद्भि कियता व्यसु । इत्याह खचरार्थ शलब्धाज्ञास्तेपि कोपिनः ॥ ८६ ॥ स्वयं प्रागपि त हंतुं कृतमंत्राः परस्परं । तथेति प्रतिपद्यातो निर्ययुस्तच्चिकीर्षव ॥ ८७ ॥ हिंसाप्रधानशास्त्रास द्राज्य द्वा नयवर्जितात् ।

माला किसी एक दिन कामसे विकल होगई । जन्मांतरके स्नेहसे वह अनेक विकार करने लगी, पापोंसे घिरकर अपने हृदयके भाव प्रकाशित करने लगी और हृदयमें मायामयी इच्छा रखकर कहने लगी कि हे कुमार ! मैं तुझे विधिपूर्वक प्रज्ञप्ति नामकी विद्यादेती हूं उसे तू स्वीकार कर । माताकी यह बात सुनकर कुमारने कह दिया कि हे माता जैसा आप कहेंगी वैसाही करूंगा । इस तरह आनंदित होकर उस बुद्धिमानने वह विद्याली और विद्या लेकर सिद्धकूट चैत्यालयपर गया । वहांपर भगवानको नमस्कारकर दो चारण मुनियोंकी वंदनाकी, उनसे धर्मका स्वरूप सुना, उनके उपदेशसे संजयंतके आश्रयसे विद्या सिद्ध होगी यह बात भी जानी और उनका (संजयंतका) पुराण भी सुना तदनंतर श्रीसंजयंत मुनिकी प्रतिमाके चरणकमलोंका आश्रय लेकर विद्या सिद्धकी और फिर बडी प्रसन्नताके साथ वह नगरमें आया ॥७५—८१ ॥ विद्या सिद्ध होनेसे कुमारकी शोभा दूनी होगई उसे देखकर कामसे कातर हुई कांचनमाला अनेक उपायोंसे प्रार्थना करने लगी परंतु उस महा बुद्धिमान प्रद्युम्नने उसकी कभी इच्छा न की । तब उसे मालूम हुआ कि इसके पुरुषव्रत अर्थात् स्वदार संतोष व्रत है तब वह द्वेषसे राजाने कहने लगी कि यह कुमार कुचेष्टी है इसलिये हमलोगोके साथ रहने योग्य नहीं है मैं इसे किसी नीचकुलका समझती हूं । रानीकी यह बात सुनकर विचारशून्य राजाने भी उसकी बातपर विश्वास कर लिया ॥ ८२—८४ ॥ तथा विद्युद्दंष्ट्र आदि अपने पांचसौ पुत्रोंको बुलाकर आज्ञा दी कि यह देवदत्त दुष्ट है इसलिये किसी एकांत जगहमें मारने योग्य है अतएव तुमलोग किसी भी उपायसे इसे मार डालो इसतरह राजाकी आज्ञा पाकर वे कुमार बहुतही क्रोधित हुए वे परस्पर उसके मारनेकी सलाह कर चुके थे इसलिये राजाकी आज्ञा पाकर

द्वियोगादगाच्छुच । पृथक् तद्लतायोगेन वज्रपरिताडन ॥ ६५ ॥ जलाशयस्तृषार्तस्य केकिनो जलदागमः । यथा तथास्य संतृप्त्यै संनिधिर्नारदोऽभवत् ६६ ॥ स स्वबालवृत्तांत हरिरुक्त्वाभ्यधादिद । त्वया केनाप्युपायेन क्वापि सोऽन्विष्यतामिति ॥ ६७ ॥ नारदस्तत्समाकर्ण्य शृणु पूर्वविदेहजे । नगरे पुंडरीकिण्यां मया तीर्थकृतो गिरा ॥६८॥ स्वयंप्रभस्य ज्ञातानि वार्ता बालस्य पृच्छता । भवांतराणि तद्वृद्धिस्थानलाभो महानपि ॥६९ ॥ सह योगो युवाभ्यां च तस्य षोडशवत्सरैः । इत्यसौ वासुदेव च रुक्मिणीं च यथाश्रुत ॥ ७० ॥ प्रबोधयत्तयोस्तस्मात्सुरसेनानृलोकयो । प्रादुर्भावादिनस्येव प्रमोद परमोऽभवत् ॥ ७१ ॥ क्रमेण कृतपुण्योऽसौ तत्र संपूर्णयौवन । कदाचिदाज्ञया राज्ञ प्रद्युम्नः सबलो बली ॥ ७२ ॥ गत्वा द्विषोऽग्निराजस्य विक्रमादुपरि स्वयं । नि.प्रताप विधायैन युद्धे जित्वार्पयत्पितु ॥ ७३ ॥ तदा दृष्टावदानस्य प्रद्युम्नस्य खगाधिपः । परार्ध्यवस्तुदानेन महती माननां व्यधत ॥ ७४ ॥ अवतीर्णमिव स्वर्गाद्यौवनैकविभूषण । भुवं कदाचित्तद्रूपमाहार्यैश्चातिभास्वरं ॥ ७५ ॥ अवलोक्य स्मराक्रांतबुध्या कांचनमालया । जन्मातरगतस्नेहकृतादेहविकारया ७६

लतापर वज्र पडनेसे भस्म हो जाता है उसी प्रकार रुक्मिणीके साथ साथ कृष्णाको भी पुत्रके वियोगसे बहुत शोक हुआ ॥ ६५ ॥ जिसप्रकार प्याससे दुखी मनुष्यको तालाव मिल जाता है अथवा चातकको बादल मिल जाते हैं उसीप्रकार कृष्ण को संतुष्ट करनेके लिये उनके समीप नारद आ पहुंचे ॥ ६६ ॥ आते ही कृष्णाने उनसे अपने पुत्रहरणका सब वृतांत कहा और कहा कि आप किसी भी उपायसे कहीं भी उसे ढूंढे ॥ ६७ ॥ कृष्णाकी यह बात सुनकर नारद कहने लगे कि सुनो—पूर्व विदेहक्षेत्रकी पुंडरीकिणी नगरीमें स्वयंप्रभ तीर्थकरसे मैंने उस बालककी सब बात पूछी थी और अपने प्रश्नके उत्तरमें उनकी वाणीसे मैंने उसके पहिले भवभी जान लिये हैं वह अच्छी तरह बढेगा उसे बहुतसे लाभ होंगे और सोलह वर्ष बाद तुम दोनोंसे आ मिलेगा । इस प्रकार नारदने जैसा सुना था वैसा ही कृष्ण और रुक्मिणीको क- हकर समझाया । जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे देवोंकी सेना और मनुष्य लोक दोनोंमें परम आनंद होता है उसी प्र- कार नारदकी बात सुननेसे कृष्ण और रुक्मिणीको बहुत ही आनंद हुआ ॥ ६८–७१ ॥ इधर प्रद्युम्न (देवदत्त) अप- ने पुण्योदयसे बढता हुआ पूर्ण यौवन अवस्थाको प्राप्त होगया। किसी एक दिन अग्निराज नामका कालसंभवका शत्रु स्वयं कालसंभवपर चढ आया था इसलिये राजा कालसंभवकी आज्ञासे बलवान् देवदत्तने अपनी सेना लेकर उसे प्रतापरहित किया और युद्धमें उसे जीतकर पिताको समर्पण किया ॥ ७२–७३ ॥ उससमय विद्याधर कालसंभवने बहुतसी बहुमूल्य वस्तु देकर शूरवीरता दिखलानेवाले प्रद्युम्नका बहुतही आदर सत्कार किया ॥ ७४ ॥ यौवनरूपी एक आभूषणको धारण करनेवाले, योग्यतासे अत्यंत देदीप्यमान और स्वर्गसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुएके समान प्रद्युम्नके रूपको देखकर कांचन-

धस्तादमु गत: ॥ ५३ ॥ तदैव विजयार्द्धाद्रिदक्षिणश्रेणिभूषणे । विषये मृगवत्याख्ये मेघकूटपुराधिपः ॥ ५४ ॥ कालसंभवविद्याधरेश: कांचनमालया । सह जैनेश्वरीरर्चा प्रियया प्रार्चितं प्रयान् ॥ ५५ ॥ महाशिलाखिलांगातिचलनं वीक्ष्य विस्मयात् । समतात् वीक्षमाणोमौ दृष्ट्वा बालं ज्वलत्प्रभं ॥५६॥ प्राक्तोयं न केनापि कोपात्प्राग्जन्मवैरिणा । निक्षिप्तः पापिनामुष्मिन् पश्य बालाकमरकर ॥ ५७ ॥ तस्मात्तवास्तु पुत्रोयं गृहाणामुं मनोरमे । इत्याहोवाच स प्यस्मै यौवराज्य ददासि चेत् ॥ ५८ ॥ गृहीष्यामीति तेनापि प्रतिपद्य तथास्त्विति । तत्कर्णागतसौवर्णपत्रेणारचि पट्टक: ॥ ५९ ॥ तौ त बाल समादाम पुरमाविष्कृतोत्सव । प्रविश्य देवदत्ताख्यं व्यधातां विधिपूर्वक ।६०॥ तद्बाललालनालीलाविलासैहृष्टचेतसोः । तयोर्गच्छति निर्व्याज काले सुसुखभोगिनोः ॥ ६१ ॥ इत: सुतवियोगेन रुक्मिणी शोकवन्हिना । दह्यमाना स्थलाभोजवल्लीव नववन्हिना ॥ ६२ ॥ संपत्तिर्वा चरित्रस्य दयाभावविवर्जिता । कार्येऽकार्यविचारेषु मदमदेव शेमुषी ॥ ६३ ॥ मेघमालेव कालेन निर्गलज्जलसचया । नाव भसे गतप्राणे सा भवेत् वा प्रभा तनो ॥ ६४ ॥ तथैव वासुदेवोपि त-

लगा । देखते देखते उसने शिलाके नीचे दैदीप्यमान क्रांतिवाले पुत्रको देखा ॥ ५४--५६ ॥ तब वह राजा उस पुत्रको उठा कर अपनी रानीसे कहने लगा कि हे प्रिये! यह बालक स्वाभाविक रीतिसे शिलाके नीचे नहीं आया है किंतु पहिले जन्मके किसी पापी शत्रुने यहां लाकर रख दिया है। हे प्रिये! देख यह बालक उगते हुए सूर्यके समान दैदीप्यमान है। इस लिये हे सुंदरी! यह तेरा ही पुत्र हो तू ही इसे स्वीकार कर। इसके उत्तरमें रानीने कहा कि हे नाथ! यदि आप इसे युवराज पद दें तो मैं स्वीकार कर सकती हूं। यह सुनकर राजा कालसंभवने भी यह बात स्वीकार करली और ऐसा ही हो इसतरह कहकर रानीके कानमें पहने हुए सुवर्ण पत्र पर ही शिलालेख लिख दिया ॥ ५७--५९ ॥ तदनंतर वे दोनों राजा रानी उस बालकको लेकर बडे उत्सवके साथ नगरमें पहुंचे और विधिपूर्वक उस बालकका नाम देवदत्त रक्खा ॥ ६० ॥ उस बालकके लालन पालनकी लीलाके विलासोंसे जिनका चित्त प्रसन्न हो रहा है और जो सदा सुखका अनुभव कर रहे हैं ऐसे उन दोनों राजा रानियोका समय विना किसी उपद्रवके बडी शांततासे व्यतीत होने लगा ॥ ६१ ॥ इधर जिसप्रकार दावानल अग्निसे स्थलकमलकी वेल जल जाती है उसीप्रकार रुक्मिणी पुत्रके वियोगके कारण शोकरूपी अग्निसे जलने लगी ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार चरित्रहीनकी संपत्ति दयाभावोंसे रहित होती है और अत्यंत मंद बुद्धि कार्य अकार्यके विचारमें कुछ काम नहीं करती उसी प्रकार वह चेष्टा और विचाररहित होगई। समयानुसार जिससे सब जलका समूह निकलजाता है ऐसी मेघमालाके समान शोभाहीन होगई और प्राणोंके निकलजानेपर शरीरकी प्रभा जैसी सुशोभित नहीं होती उसी प्रकार वह भी प्रभाहीन होगई ॥६३--६४॥ जिसप्रकार लतासे भिन्न होनेपर भी वृक्ष

ध्यातकनकाह्वय । पार्श्वे द्विजटिसंज्ञस्य तापसस्मनमाददे ॥ ४२ ॥ मधुक्रीडावयोरेवं काले गच्छत्यथान्यदा । सम्यगाकर्ण्य सद्धर्मं मधुर्विमलवाहनात् ॥४३॥
गर्हणं स्वदुराचारे कृत्वा क्रीडावसंयुत । संयमं समवाप्यान्ते संश्रित्याराधनाविधिं ॥ ४४ ॥ अन्वभूत्स महाशुक्रस्याधिपत्यं सहानुजः । स्वायुरन्ते ततश्च्यु
त्वा स्वावशेषशुभोदयात् ॥ ४५ ॥ सुखस्वप्नपूर्वकं ज्येष्ठा रुक्मिण्यामभवत्सुतः । दुराचारार्जितं पापं सच्चरित्रेण नश्यति ॥ ४६ ॥ द्वितीयेऽहनि तद्बालसंचितोप्रा
यसन्निभः । देवो ज्योतिर्गणे जातो धूमकेतुसमाह्वय ॥ ४७ ॥ गच्छन् यदृच्छया व्योम्नि विहर्तुं वातरंहसा । विमाने स्वे धृते वान्यैः प्रद्युम्नस्योपरि स्थिते
॥ ४८ ॥ चरमाङ्गस्य केनेदं कृतमित्युपयुक्तवान् । विभङ्गाद् तमनः शत्रुं ज्ञात्वा प्राक्तनजन्मनि ॥ ४९ ॥ रथांतकनकस्याय दर्पाद्दारान् समाहरत् । तत्फल
प्रापयाम्येनमिति वैराग्निनाज्वलन् ॥ ५० ॥ विधाय स महानिद्रामतःपुरनिवासिनां । तमुद्धृत्याब्दमार्गेण दूरं नीत्वा यथा चिरं ॥ ५१ ॥ अनुभूय महद्
दुःखं कुर्यात्प्राणविमोचन । करिष्यामि तथेत्यस्य पुण्येनैव प्रचोदितः ॥ ५२ ॥ अवरुह्य नभोभागाद्वने खदिरनामनि । शिलायास्तक्षकाख्याया क्षिप्त्वा

मधुका जीव शुभ स्वप्नपूर्वक रुक्मिणीके पुत्र उत्पन्न हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि दुराचारसे उत्पन्न हुए पाप भी उत्तम चा
रित्रसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३--४६ ॥ इधर कनकरथका जीव मिथ्या तपश्चरण कर धूमकेतु नामका ज्योतिषी देव हुआ
था और इच्छानुसार आकाश मार्गसे विहार करनेके लिये निकला था उसके विमानको दूसरे देव चला रहे थे अक-
स्मात् चलते चलते वह विमान चरम शरीर प्रद्युम्नके ऊपर पहुंच कर रुक गया उसे रुका जानकर उस बालकके इकट्ठे
हुए पापोंके समान वह देव विचार करने लगा कि यह मेरा विमान किसने रोका है ? सोचते ही विभंगावधिसे उसने
जान लिया कि यह मेरे पहिले जन्मका शत्रु है । मैं पहिले जब कनकरथ था तब इसने अपने अभिमानसे मेरी स्त्री हर
ली थी इसलिये अब मैं इसे उसका फल चखाऊंगा इस तरह शत्रुतारूपी अग्निसे वह जलने लगा ॥ ४७--५० ॥ उस
ने अपनी शक्तिसे अंतःपुरके रहनेवाले सबलोगोंको महानिद्रासे निद्रित कर दिया और फिर उस बालकको उठा कर
आकाश मार्गसे ले गया । फिर वह देव सोचने लगा कि कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे यह बालक बहुत देर
तक दुख भोगता हुआ प्राण छोडे यही सोचता हुआ मानो उस बालकके पुण्यसे प्रेरित होकर ही वह देव खदिर नामके
वनमें आकाशसे नीचे उतरा और तक्षक नामकी शिलाके नीचे उस बालकको रख कर अपने स्थानको चला गया ॥५१-
५३ ॥ दैवयोगसे उसी समय विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके मृगावती नामके सुंदर देशके मेघकूट नगरके विद्या-
धरोंका राजा कालसंभव अपनी रानी कांचनमालाके साथ भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करनेके लिये वहीं होकर जा रहा
था वहां पर वह उस सब शिलाको हिलती हुई देखकर आश्चर्य करनेलगा और इधर उधर शिलाके चारो ओर देखने

मृत: ॥ ३० ॥ रत्नप्रभाविले सर्पावर्तनाम्नि ततोजनि । मातंग काकजघाख्य सोमदेवोभवत्पिता ॥ ३१ ॥ मातारिनला च तत्रैव आयतेस्म शुनी गृहे । हृत्वाकर्ण्य तत्प्रोक्तं तेन तौ परिबोधितौ ॥ ३२ ॥ संप्राप्तोपशम भावं संन्यस्य विधिना मृत । काकजघोऽभवन्नंदीश्वरद्वीपे निधीश्वर ॥ ३३ ॥ तत्पुरा-धीश्वरारिंदमाख्यभूभृत्पते सुता । श्रीमत्याश्च शुनी सुप्रबुद्ध्याख्याजायत प्रिया ॥ ३४ ॥ संपूर्णयौवना याती सा स्वयंवरमडप । यक्षेण बोधिता दीक्षामि-ताप्य प्रियदर्शनां ॥ ३५ ॥ जीवितातेऽभवद्देवी मणिचूलेति रूपिणी । सौधर्मं विपते पूर्णभद्रस्तदनुजोपि च ॥ ३६ ॥ सप्तस्थानगता ख्यातश्रावकौ तौ दृढव्रतौ । प्रांते सामानिकौ देवौ जातौ सौधर्मनामनि ॥ ३७ ॥ द्विसागरो मतीतौ द्वीदेश्र कुरुजांगले । हस्तिनाख्यपुराधीशस्यार्हद्दासमहीपतेः ॥ ३८ ॥ काश्यपायाश्र पुत्रौ तौ मधुक्रीडावनामकौ । समभूतां तयो राजा राजत युवराजते ॥ ३९ ॥ विधाय विमलां प्रापद्विमलप्रभशिष्यतां । कठांतामलकाख्यस्य पुरस्येश: कदाचन ॥ ४० ॥ रथांतकनकाख्यस्य समायातस्य सेवितु । कांता कनकमालाख्या समीक्ष्य मदनातुर ॥ ४१ ॥ स्वीचकार मधु शोका-

देव हुआ ॥ ३३ ॥ इसीतरह उस कुत्तीका जीव उसी साकेत नगरके राजा अरिंदमकी रानी श्रीमतीसे सुप्रबुद्धया नाम-नामकी प्यारी पुत्री हुई ॥ ३४ ॥ पूर्ण यौवन अवस्था प्राप्त होने पर वह पति ढूंढनेके लिये स्वयंवर मंडपमें गई। परंतु वहां पर उसे उसके पहिले जन्मके पतिके जीव व्यंतर देवने आकर समझाया जिससे उसने प्रियदर्शना अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३५ ॥ आयुके अंतमें वह सौधर्म इंद्रकी मणिचूला नामकी बडी रूपवती देवी हुई। इधर पूर्णभद्र और मणिभद्र दोनों भाइयोंने बडी दृढतासे श्रावकके व्रत पालन किये सातों धर्मक्षेत्रोंमें धन खर्च किया और अंतमें आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर सामानिक जातिके देव हुए। वहांकी आयु पूरीकर इसी जंबू द्वीपके कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगरके राजा अर्हद्दास रानी काश्यपाके मधु और क्रीडाव नामके दोनों पुत्र हुए किसी एक दिन राजा अर्हद्दास मधुको राज्य और क्रीडावको युवराज पद देकर विमलप्रभ मुनिका निर्मल (शुद्ध वा उ-त्तम) शिष्य हो गया। किसी एक दिन अमलकंठ नगरका राजा कनकरथ अपनी कनकमाला नामकी रानीको सेवन करनेके लिये वनमें आया था। उस समय उस कनकमालाको देखकर राजा मधु कामसे विकल होगया और उसे अपने घर ले आया। इससे राजा कनकरथको वहुत शोक हुआ और उसने द्विजटी नामके तापसीके समीप जाकर तपसियोंके व्रत धारण कर लिये ॥ ३६–४२ ॥ इधर मधु और कीडाव इन दोनों भाइयोंका समय बडे सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक दिन राजा मधुने विमलवाहन मुनिके समीप धर्मका स्वरूप सुना, अपने दुराचारकी निंदा की और अपने छोटे भाईके साथ महाशुक्र नागके स्वर्गमें इंद्र उत्पन्न हुआ। वहांकी आयु पूरी कर बाकी बचे हुए पुण्यकर्मके उदयसे वह

बंत- स्वीकरिष्यंति भवेन्मोक्षोनयोरिति ॥ १९ ॥ तेपि भीतास्तथा वाढ करिष्याम इति द्रुत । मुनीन् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य विधिपूर्वकं ॥ २० ॥ मिथ्या प्रत्ययपर्यंत धर्म श्रावकपालित । ततस्तस्तभनापाये सति तैस्त दुरीरितां ॥ २१ ॥ विरतंन्थमितो धर्मादस्माद्देतोहशासिताद् । इति नात्मात्तसन्मार्ग बेलद्रुः कालकवित ॥ २२ ॥ तेन संक्रुध्य ते ताभ्यां मृत्वा पापविगावत: । अभ्राम्यत्कुगतीर्दीर्घं तौ च ब्राह्मणपुत्रकौ ॥ २३ ॥ समतौ जीवितस्यांते कल्पे सौधर्मनामनि । पंचपल्योपमायुष्कौ जातौ पारिषदाविमौ ॥ २४ ॥ तत्रानुभूय सद्भोगान् द्वीपेस्मिन्कौशले पुरे । साकेतेरिंजयो राजा सशौर्योभूदरिंजयन् ॥ २५ ॥ तत्राहेद् सवाक् श्रेष्ठी वप्रश्रीस्तन्मन प्रिया । अग्निभूतिस्तयो: पूर्णभद्रोन्यो मणिभद्रक: ॥ २६ ॥ सुतौ समुदभूता तावन्येद्यु स महीपतिः । सिद्धार्थवनमध्यस्थमहद्रगुरुसन्निधिं ॥ २७ ॥ बहुभिः सह संप्राप्य श्रुत्वा धर्म विशुद्धधीः । अरिंदमे समारोप्य राज्यभारं भरक्षमे ॥ २८ ॥ अर्हद्दास सादिभिः सार्द्ध संयमं प्रत्यपद्यत । तत्रैव पूर्णभद्रेण प्राक्तन मद्गुरुद्वय ॥ २९ ॥ क्वाद्य वर्तत इत्येतत्परिपृष्टो मुनिर्जगौ । जिनधर्मविरुद्धत्वात् कृतपापो भवन्-

इधर उन दोनों ब्राह्मण पुत्रोंने व्रत धारणकर आयु पूरी की और मरकर सौधर्म स्वर्गमें पांच पल्यकी आयु पाकर परिषद जातिके उत्तम देव हुए ॥ २०–२४ ॥ वहांपर उन्होंने अनेक उत्तम भोगोंका अनुभव किया तथा वहांकी आयु पूरीकर इसी जंबूद्वीपके कौशल देशके साकेत नगरमें शेठ अर्हद्दासकी स्त्री वप्रश्रीसे दोनों पुत्र उत्पन्न हुए। अग्निभूतिका जीव पूर्णभद्र हुआ और वायुभूतिका जीव मणिभद्र नामका छोटा पुत्र हुआ। उससमय उस साकेत नगरमें शत्रुओंको जीतनेवाला शूरवीर अरिंजय नामका राजा राज्य करता था किसी एक दिन उसी साकेत नगरके सिद्धार्थ वनमें महेंद्र नामके मुनिराज पधारे थे। यह समाचार सुनकर राजा अरिंजय अनेक लोगोंके साथ उनके दर्शन करनेकेलिये गया। शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले उस राजाने वहांपर धर्मका स्वरूप सुना और राज्यके भारको धारण करनेमें समर्थ ऐसे अरिंदम नामके अपने पुत्रको राज्यका भार सोंपकर अर्हद्दास आदि अनेक भव्य जीवोंके साथ संयम धारण कर लिया। उसीसमय अर्हद्दासके पुत्र पूर्णभद्रने उन मुनिराजसे पूछा कि मेरे पहिले जन्मके माता पिता आज कहां है? तब मुनिराज कहने लगे कि तेरे पिता सोमदेवने जिनधर्मसे विरुद्ध होकर बहुतसा पाप किया इसलिये रत्नप्रभा नामकी पहिली भूमिके (पहिले नरकके) सर्पावर्त नामके विलेमे नारकी हुआ और फिर वहांसे निकल कर काकजंघ नामका इसी नगरमें चांडाल हुआ है ॥ २५–३१ ॥ इसी तरह तेरी माता अग्निलाका जीव उसी चांडालके घर कुत्ती हुई है इस प्रकार मुनिराज की बात सुन कर पूर्णभद्रने उन दोनों माता पिताके जीवोंको जाकर समझाया ॥ ३२ ॥ पूर्णभद्रके समझानेसे उन दोनोंके परिणाम शांत हो गये उन्होंने अंतमें संन्यासपूर्वक मरण किया और काकजंघका जीव नंदीश्वर द्वीपमें कुबेर नामका व्यंतर

रिवर्ति । कृतोपहासौ स्वं ग्रामं गच्छंतावधितुं मत ॥ ९ ॥ ग्रामांतरात्समायातं मुनिमालोक्य सत्यकं । तत्समीपमहंकारप्रेरितावुपगम्य तं ॥ १० ॥ नास्त्यात्मा नाममो नैव पदार्थो नाम केवल । किं क्लिश्नासि वृथोन्मार्गमूढो दृष्टविनाशिनि॥ ११॥इत्यभ्यक्षिपतां सोपि जिनवक्त्रविनिर्गतं। विवक्षितेतरानेकस्वरूपातसमाश्रय ॥ १२ ॥ अभ्यतत्त्वं यथा दृष्ट कथयंतं सुहेतुक । स्याद्वादमविरुद्ध गौतमप्रणेतु प्रमाणतां ॥ १३ ॥ प्रसाध्याद्यमागेपि तदुक्तागमसुस्थिर्ति । निरूप्य वादकंडूतिमपनीय दुरात्मनो: ॥ १४ ॥ तयोर्जयध्वज प्रापद्विद्वज्जनसमर्पित । तौ मानभगसंभूतक्रोधौ निशि सितायुधा ॥ १५ ॥ परेद्यु· पापकर्माणो विजने शुद्धचेतसं । प्रतिमायोगमापन्न सत्यकं मुनिपुगव ॥ १६ ॥ शस्त्रेणाहंतुमुद्युक्तावन्यायोयमिति क्रुधा । द्विजौ सुवर्णयक्षेण स्तमितौ कीलिताविव ॥ १७ ॥ तदा शरणमायातास्तन्मातृपितृबांधवाः । मुनीनामाकुलीभूय यक्षस्त नवदत्सुधी ॥ १८ ॥ हिंसाधर्मं परित्यज्य यदि जैनेश्वरं मत । भ-

कथन करनेवाले स्याद्वादका आश्रय लेकर उन तत्त्वोंको कहनेवाले अथवा स्याद्वादको कहनेवाले आप्तको प्रमाण सिद्ध किया तथा परोक्षप्रमाणमें भी उन्हींके कहे हुए आगमको अच्छी तरह प्रमाण ठहराया और इसतरह उन दुष्टोंकी वाद करनेकी खुजली दूरकी ॥ ९–१४ ॥ इसके सिवाय उन्होंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे अनेक विद्वानोंके द्वारा समर्पणकी हुई जयध्वजा प्राप्तकी । वे दोनों ही ब्राह्मण मानभंग होनेसे बहुतही क्रोधित हुए और पापकर्म करनेवाले वे दोनोंही दूसरे ही दिन रातमें तलवार लेकर निकले । मार्गमें किसी निर्जनवनमें शुद्धचित्तवाले और प्रतिमा योगधारण किये हुए वे ही मुनिराज सत्यक विराजमान थे उन्हें शस्त्रसे मारनेके लिये वे दोनों ही ब्राह्मण तैयार होगये यह देखकर और यह अन्याय होता है ऐसा समझकर सुवर्ण यक्षने क्रोधमें आकर उन दोनों ब्राह्मणोंको कीलित हुएके समान स्तंभित कर दिया ॥ १५–१७ ॥ यह देखकर उनके माता पिता भाई आदि लोग व्याकुल होकर मुनियोंके शरण गये तब बुद्धिमान यक्ष उनसे कहने लगा कि यदि तुमलोग अपने हिंसा धर्मको छोडकर श्रीजिनराजके धर्मको स्वीकार करोगे तो ये दोनों भाई छूट सकते हैं ॥ १८–१९ ॥ यक्षकी ये बातें सुनकर वे सब कुटुंबी लोग डरकर कहने लगे कि अच्छा हमें स्वीकार है यह कहकर उन्होंने विधिपूर्वक मुनियोंकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया झूठ मूठही श्रावकोंके पालन करने योग्य धर्मको धारण कर लिया । जब वे दोनों भाई छूट आए तब उनके माता पिता और कुटंबियो ने उनसे कहा कि अब तुम इस जैन धर्मको छोड दो क्योंकि यह तो केवल तुम्हारे छुडानेकेलिये पालन किया गया था । इतना सब कुछ कहने सुननेपर भी काललब्धिके प्राप्त होनेसे उन दोनों भाइयोंने वह स्वीकार किया हुआ सन्मार्ग नहीं छोडा जिससे उनके माता पिता आदि बहुत ही क्रोधित हुए तथा मरकर पाप कर्मके उदयसे उन्होंने बहुतसी कुगतियोंमें परिभ्रमण किया ।

अथ द्वासप्ततितमं पर्व ।

अथ तज्ज्ञातपूर्वं च जगत्त्रयसमावनौ । प्रकाशयितुकामेन बलदेवेन धीमता ॥ १ ॥ प्रद्युम्नसंभवोत्पत्तिसंबंधं पृच्छ्यते स्म सः । वरदत्तगणींद्रोनुसंबुध्यैत्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ द्वीपेस्मिन् मगधे देशे शालिग्रामनिवासिनः । द्विजस्य सोमदेवस्य भार्याभूदग्निलाश्रया ॥ ३ ॥ अग्निभूतिरभूत्सूनुर्वायुभूतिस्तयोरनु । तावन्येद्यु पुरे नदिवर्द्धनाख्ये मनोहरे ॥ ४ ॥ नंदाननंदिघोषाख्ये वने मुनिमपश्यतां । नदिवर्द्धननामानं मुनिं संघविभूषणं ॥ ५ ॥ दुष्टावुपगतौ दृष्ट्वा तौ मुनींद्रोब्रवीन्मुनीन् । विसंवदितुमायातावेतौ मिथ्यावदृष्टितौ ॥ ६ ॥ भवद्भिः कश्चिदप्याभ्यां न कार्या सह सकथा । एतन्निबधतो भूयानुपसर्गो भविष्यति ॥ ७ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुशासनकारिण । मौनव्रतेन सर्वेपि स्थिता संयमिनस्तदा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तावेत्य सर्वेषां मूकीभूय अव-

अथ बहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर—तीनों लोकोंके सभाभवनमें अर्थात् समवसरणमें अपने पहिले भव जानकर बुद्धिमान बलभद्रने सबको प्रगट करनेके लिये प्रद्युम्नके उत्पन्न होनेका संबंध पूछा तब वरदत्त गणधर कृपाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ १-२ ॥ इसी जंबूद्वीपके मगधदेशमें शालि नामके गांवमें रहनेवाले सोमदेव ब्राह्मणकी स्त्रीका नाम अग्निला था उसके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र थे। किसी एक दिन ये दोनों ही भाई नंदिवर्द्धन नामके सुंदर नगरमें गये तथा वहांके नंदा नंदिघोषाख्य नामके वनमें उन्होंने सब मुनिराजोंके संघसे सुशोभित नंदिवर्द्धन नामके मुनिराजको देखा ॥ ३-५ ॥ मुनिराज नंदिवर्द्धनने उन दोनों दुष्टोंको आते हुये देखकर सब मुनिराजोंको आज्ञा दी कि ये दोनों मिथ्यादृष्टी तुम लोगोंसे विवाद करनेकेलिये आए हैं परंतु तुममेंसे कोई भी इनके साथ किसी तरहकी बात चीत नहीं करना, अन्यथा इनके संबंधसे भारी उपसर्ग होगा ॥ ६-७ ॥ शासन करनेवाले आचार्यके ये वचन सुनकर उसीसमय सब मुनि मौनव्रत लेकर बैठ गये ॥ ८ ॥ वे दोनों ही ब्राह्मण सब मुनियोंको मौनी देखकर उनकी हंसी करने लगे और लौटकर अपने गांवको जाने लगे। उन मुनियोंमेंसे एक सत्यक नामके मुनि आहार करनेके लिये दूसरे गांव गये थे और वे आहारकर लौट रहे थे, उन्हें देखकर वे दोनोंही ब्राह्मण अहंकारमें आकर उनके समीप पहुंचे और आक्षेप करने लगे कि इस संसारमें न तो कोई आप्त है न आगम है और न कोई पदार्थ ही है, हे मूर्ख तू पुण्यपापको नाश करनेवाले इस मिथ्यामार्गमें व्यर्थ ही, क्यों क्लेश पा रहा है। ब्राह्मणोंकी ये बातें सुनकर उन मुनिराजने भगवान् अरहंतदेवके मुखसे निकले हुए, विवक्षित ऐसे अनेक स्वरूपरूप धर्मोंका आश्रय करनेवाले तथा द्रव्य और तत्त्वोंको सर्वज्ञके देखे अनुसार अच्छे अच्छे हेतुओंसे

भक्षण कृतवेति दृढव्रता । वनेचर कदाचित्स प्र मोवस्कंदघातिमि' ॥ ४४८ ॥ विलोपितस्तद' पद्मदेवी सिंह'याद्भयात् । नीला मह ट ी सर्वे जन भक्षण क्रत्वेति क्षुत्परिपीडिता ॥ ४ ९ ॥ विषवल्लीफलान्यशु भक्षयित्वा मृतिं ययु । व्रतभागमयस्तानि सा विहाय हतोविना ॥ ४५० ॥ मृत्ल हैमवते भूत्वा जीविनाते ततश्च्युता । द्वीपे स्वयंप्रभे जाता देवी सद्य स्वयंप्रभा ॥ ४५१ ॥ स्वयंप्रभाख्यदेवस्य ततो निर्गय सा पुन । द्वीपेस्मिन्भ रते क्षेत्रे जयंतपुरभूपतेः श्रीधरस्य सुता भूत्वा श्रीमत्यां सुदराकृति । विमलश्रीरभूत्पत्नी भद्रिलाख्यपुरेशिन ॥ ४५२ ॥ नृपस्य मेघनदस्य समीप्सितसुखप्रदा । राज्ञिधर्ममुने- स्त्यक्त्वा राज्यं प्रव्रज्य शुद्धधीः ॥ ४५३ ॥ जनो व्रतधरस्तस्मिन् महस्रारपतौ सति । अष्टदश समुद्र युर्माजि भासुरदीधिति ॥ ४५५ ॥ सापि पद्मावती क्षांतिं संप्राप्यादाय संयमं । आचाम्लवर्द्धमानं च समुपोष्यायुषोवधौ ॥ ४५६ ॥ तत्रैव कल्पे देवीत्वं प्रतिपद्य निजायुष । प्रांतेरिष्टपुराधीश- श्रीमत्यां तनयाजनि ॥ ४५७ ॥ हिरण्यवर्मण पद्म वनीतैषा स्वयंवरे । संभाव्य संसृतस्नेहा भ र्तारं रत्नमालया ॥ ४५८ ॥ शीलावहा महादेवीपद प्रापदिति स्फुट । तास्तिस्रोपि स्वजन्मानि श्रुत्वा मुदमयुर्हरे ॥ ४५९ ॥ इत्युवैर्गणनायको गुणनिधि प्रसष्टमिष्टाक्षरैः साक्षात्कृत्य भवावलीविलसितं व्यावर्णयभिर्णयं । सा त्वाकर्ण्य चिरं सुख सुखमयी स्वेष्टाष्टदेवीकथां संतुष्टिं स मुरारिरार सुतरां प्रांते प्रवृत्तिप्रदा ॥ ४६० ॥ देव्योपि दिव्यवचन मुनिपुंगवस्य, भगावहं बहुभवार्जितनिग्रहस्तां तत् । कृत्वा हृदि प्रमुदिताः पृथुशर्मसारे धर्मेहतो हिततमे स्वमर्ति प्रतेनुः ॥ ४६१ ॥ नहि हितमिह किंचिद्धर्ममेक विहाय, व्यवसितमसुमद्भ्यो धिग्विमुग्धात्मवृत्त । इति विहितवितर्का सर्वसभ्याश्च धर्मं, समुपययुरपापाः स्वामिना नेमिनोक्त ॥ ४६२ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे नेमिचरिते भवांतरव्यावर्णनं नाम एकसप्ततितम पर्व ॥ ७१ ॥

आचाम्लवर्द्धमान व्रतके उपवास करने लगी आयुके अंतमें वह उसी सहस्रार स्वर्गमें देवी हुई। वहांकी आयु पूरी कर अरिष्टपुर नगरके राजा हिरण्यवर्माकी रानी श्रीमतीसे यह पद्मावती पुत्री हुई है। इसने संसारके स्नेहसे स्वयंवरमें वरमाला डाल कर तुझे ही स्वीकार किया और फिर महाशीलको धारण करनेवाली इसने महादेवीका पद प्राप्त किया इस प्रकार तीनों ही रानियां अपने पूर्वभव सुन कर प्रसन्न हुईं और उन्होंने कृष्णको भी प्रसन्न किया ॥ ५६–५९ ॥ इस प्रकार गुणोंके खजाने श्रीगणधरदेवने अत्यंत स्पष्ट और मीठे अक्षरोंसे पूर्व भवोंका संबंध सब स्पष्ट कर दिखाया तथा सबका निर्णय कह सुनाया। श्रीकृष्ण भी अपनी प्यारी आठों देवियोंकी सुख दुखमयी कथा सुनकर आने आप अंतमें प्रवृत्ति करने वाला संतोष धारण करने लगे ॥ ४६० ॥ वे देवियां भी अनेक जन्मके कमाए हुए अपने पापोंके नाश करनेवाले उन गणधर देवके दिव्य वचनोंको हृदयमें धारण कर बहुत ही प्रसन्न हुईं तथा उन्होंने महाकल्याण और अत्यंत हित करने वाले भगवान अरहंत देवके धर्ममें अपनी बुद्धि लगाई ॥ ४६१ ॥ इस संसारमें एकधर्मको छोडकर जीवोंका और कुछ कल्याण करनेवाला नहीं है। धर्म रहित जो मूर्ख जीवोंका चरित्र है उसे वार वार धिक्कार हो। इस प्रकार तर्क वि- तर्क करते हुए सब धर्मात्मा सभासदोंने श्रीनेमिनाथ स्वामीका कहा हुआ धर्म स्वीकार किया।

इस प्रकार श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यविरचित श्रीमहापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नेमिनाथके चरित्रकथनमें भवांतरोंका कहनेवाला यह इकहत्तरिवां पर्व पूर्ण हुआ ॥ ७१ ॥

निमीष्य महाशुक्रेऽभवत्सुरी ॥ ४३८ ॥ चिरात्ततो विनिर्गत्य वीतशोकपुरेशिनः । महीशो मेरुचंद्रस्य चंद्रवत्यामजायत ॥ ४३९ ॥ गौरीति रूपलावण्य-
कालाश्रीनामसौ स ने । विजयाख्यपुराधीशो त्रिभुविजयनंदनः ॥ ४४० ॥ त्वत्सत्स्तुभ्यमानीय तास्दत्त लयापि सा । पट्टेन योजितेत्याख्यसतो हरि-
रगान्मुद ॥ ३४१ ॥ तत पद्मावतीजन्मसबंध गणनायक । गुणानामाकरोऽवादीदित्थ जनमनोहरं ॥ ४४२ ॥ अस्मिन्नेवोज्जयन्याख्यनगरीनाथको नृपः ।
विजयस्तस्य विक्रांतिरिव देव्यपराजिता ॥ ४४३ ॥ विजयश्री सुता तस्या हस्तशीर्षपुरेशिन । हरिषेणस्य देव्यासीद्दत्वादानमसौ मुदा ॥ ४४४ ॥ समा-
धिगुप्तयोगीशे भूत्वा हैमवते चिरं । भुक्त्वा भोगान् भवप्रांते जाता चंद्रस्य रोहिणी ॥ ४४५ ॥ पल्योपमायुष साते विषये मगधमिधे । वसत
शाल्मलिग्रामे पद्मदेवी सुताजनि ॥ ४४६ ॥ सती विजयदेवस्य देविलायां कदाचन । वरधर्मयते संनिधाने सा व्रतम्ग्रहीत् ॥ ४४७ ॥ अविज्ञातफला-

देव लोगोंके लिये मनोहर ऐसा पद्मावतीके पहिले भवका संबंध इस प्रकार कहने लगे ॥ ४४२ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरत-
क्षेत्रमें उज्जयनी नगरीके राजा विजयके विक्रांतिके समान अपराजिता नामकी देवी थी उसके विजयश्री नामकी पुत्री थी
वह विजयश्री हस्तशीर्षपुर नगरके राजा हरिषेणको व्याही गई थी। उसने वडी प्रसन्नतासे समाधिगुप्त नामके मुनिराजको
आहार दान दिया था इसलिये आयु पूरी कर हैमवत क्षेत्रकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। बहुत दिन तक वहांके सुखोंका
अनुभव कर चंद्रमाके रोहिणी नामकी देवी हुई। वहां पर एक पल्यकी आयु पूरी कर मगधदेशके शाल्मलि ग्राममें विजय
देवकी देविला स्त्रीसे पद्मदेवी नामकी सती पुत्री हुई। किसी एक समय उसने वरधर्म मुनिके समीप जाकर अजानफलोंके
खानेका त्याग रूप व्रत धारण किया। अपने व्रत पालन करनेमें वह दृढ वनी रही। किसी एक समय भीलोंने वह गांव
आकर लूट लिया और नष्ट कर दिया इस लिये सिंहरथके डरसे सब लोग पद्मदेवीको लेकर वनमें चले गये। सबलोगों
को भूख लगी इस लिये सबलोग विषफल खा खा कर मर गये। परंतु पद्मदेवी उन्हें जानती नहीं थी इसलिये अजान-
फल समझ कर उसने छुए तक नहीं और विना ही भोजनके प्राण छोड कर हैमवतक्षेत्रकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। वहां
से चयकर स्वयंप्रभ द्वीपमें स्वयंप्रभ देवकी स्वयंप्रभा देवी हुई। वहांसे चयकर वह इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें जयंतपुर नग-
रके राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके सुंदर आकारवाली विमलश्री नामकी पुत्री हुई। वह भद्रिल नगरके राजा मेघनादको
व्याही गई थी और उन्हें इच्छानुसार सुख देती थी। किसी एक समय शुद्ध बुद्धिवाले राजा मेघनादने अपना सब राज्य
छोड कर धर्ममुनिके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली तथा तपश्चरण कर अंतमें सहस्रार स्वर्गमें अठारह सागरकी आ-
यु पाकर दैदीप्यमान इंद्र हुआ तथा उसके वाद ही वह विमलश्री रानी भी पद्मावती अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर

तत्क्षणांतरं प्रेमवशः संनद्धमन्यक ॥ ४२७ ॥ युद्धे भंगं व्यधायेंद्रगिरिश्चान्यमहीभुजां । आदाय तां महादेवीपदश्चैवं त्वया कृतः ॥ ४२८ ॥ अथ गौरी-भव चैव वदामि शृणु माधव । अस्ति द्वीपेत्र विख्यात पुरं नागपुरं ॥ ४२९ ॥ पालकस्तस्य हेमाभो देवी तस्य यशस्वती । सान्येद्युश्चारण दृष्ट्वा यशोधरमुनीश्वरं ॥ ४३० ॥ स्मृतपूर्वभवा राज्ञा पृष्टवं प्रत्यभाषत । स्वभवं दशनोद्दिप्त्या स्नापयंती मनोरम ॥ ४३१ ॥ धातकीखंडप्राग्मंदरापरस्थविदेहग । नाम्ना शोकपुरं तत्र वास्तव्यो वणिजांवरः ॥ ४३२ ॥ आनंदस्तस्य भार्याया जाता नंदयशा श्रुति । दत्वा चामितसागराय तनुस्थितिं ॥ ४३३ ॥ आश्चर्यपंचक प्राप्य तत्पुण्यजीवित वधौ । उदक्कुरुषु संभूय भुक्त्वा तत्र सुखं ततः ॥ ४३४ ॥ भूत्वा भवनवासीन्द्रभार्येतस्मीति समदात् । ततः कदाचित्सिद्धार्थवने सागरसञ्ज्ञकं ॥ ४३५ ॥ मुरुमाश्रित्य संभावितोपव सा भवं वधौ । देवी जातादिमे कल्पे तत्र निर्वर्तितस्थिति ॥ ४३६ ॥ द्वीपेस्मिन्नेव काशांव्या सुमतिश्रेष्ठिनोभवन् । सुभद्राया सुता धार्मिकी ते सशब्दिता जने ॥ ४३७ ॥ पुनर्जिनमतिक्षातिदत्ता जिनगुणादिका । सपत्ति म धु

नामका राजा राज्य करता था उसकी रानीका नाम यशस्वती था। किसी एक दिन यशोधर नामके चारण मुनिराजको देखकर उसे पहिले भवोंका स्मरण हो आया। राजाके पूछने पर वह अपने दातोंकी कांतिसे अपने पतिको स्नान करा-ती हुई इस प्रकार अपने पूर्व भव कहने लगी ॥ ४२९–४३१ ॥ धातकी खंडमें पूर्व मंदराचल संबंधी पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अशोकपुर नामका एक नगर था उसमें आनंद नामका एक वैश्यपति (उत्तम वैश्य) रहता था उसकी स्त्रीसे उसके एक आनंदयशा नामकी पुत्री थी। किसी एक दिन उसके घर अमितसागर नामके मुनिराज पधारे उन्हें आनंदयशाने आहार दिया इसलिये पुण्यकर्मके उदयसे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। आयु पूरी होने पर वह उदक् कुरु भोगभूमिमें उत्पन्न हुई। वहांके सुख भोग कर भवनवासी इंद्रकी इंद्राणी हुई और वहांसे चयकर यहां आ उत्पन्न हुई हूं। यह सब हाल सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। तदनंतर किसी एक दिन उसने सागर नामके मुनिराजके समीप जाकर उपवास धारण किये। आयुके अंतमें वह पहिले स्वर्गमें देवी हुई। वहां की आयु पूरी कर इसी जंबूद्वीपकी कोशांबी नगरीमें सुमति नामके शेठकी स्त्री सुभद्रासे धार्मिकी नामकी पुत्री हुई ॥ ४३३–४३७ ॥ वहां पर उसने जिनमति नामकी अर्जिकाके दिये हुए जिनगुण संपत्ति नामके व्रतका अच्छी तरह पालन किया और आयुके अंतमें महाशुक्र स्वर्गमें देवी हुई ॥ ४३८ ॥ बहुत दिन बाद वहांसे निकल कर बीतशोक नगरके राजा मेरुचंद्रकी रानी चंद्रावतीके रूप लावण्य और कांति आदि गुणोंकी खानि यह गौरी हुई है। तुझ पर प्रेम रखनेवाले विजयपुर नगरके राजा विजयनंदने लाकर तुझे दी और तेने भी इसे पट्टरानी बनाया। यह सुनकर कृष्ण बडे प्रसन्न हुए ॥ ४४०–४४१ ॥ तदनंतर–गुणोंकी खानि ऐसे गणधर

इह जम्बूमति द्वीपे विषयोस्ति सुकोशलः । तत्रायोध्यापुराधीशो रुद्रनाम्नो मनोरमा ॥ ४१६ ॥ विनयश्रीरिति ख्याता सिद्धार्थं वनेऽन्यदा । बुद्धार्थमुनये दत्त दाना स्वायु परिक्षये ॥ ४१७ ॥ उदक्कुरुषु निर्विष्टभोगा तस्मात्परिच्युता । इंद्रोश्चंद्रमनी देवी भूत्वाऽनोप्यायुषोऽवधौ ॥ ४१८ ॥ द्वीपेत्र खगभूभर्तु-रपाक्श्रेण्या खगेशिन । विद्युद्वेगस्य सदीप्ते पुरे गगनवल्लभे ॥ ४१९ ॥ सुरूपाख्या सुता विद्युद्वेगायामजनिष्ट सा । नित्यालोकपुराधीशे विक्रम-शालिने ॥ ४२० ॥ महेंद्रविक्रमायैषा दत्तान्येद्युर्मेरुद्गिरे । तौ गतौ चैत्यगेहेषु जिनपूजार्थमुत्सुकौ ॥ ४२१ ॥ विनीतचारणस्येंदुच्युतं धर्ममिव मृतं । पी-त्वा श्रवणयुग्मेन परां तृप्तिमथापतु ॥ ४२२ ॥ तयोर्नरपतिर्दीक्षामादात्तचारणातिके । सुभद्रापादनाशाय सापि संयममादद्रे ॥ ४२३ ॥ सौधर्मकल्पे देवीत्वमुपागम्योपभवित । स्वायु पल्योपमप्राते क्रमान्निष्क्रम्य तद्गते । गांधारविषये पुष्कलावतीनगरेशितु । नृपस्येंद्रगिरेर्मेरुमत्याश्च तनयाभवत् ॥ ४२५ ॥ गांधारील्याख्यया ख्याता प्रदातुमिथुनाय तां । पितु पापमति श्रुत्वा प्रारंभ नारदस्तदा ॥ ४२६ ॥ सद्यस्त्व मेत्य तत्कर्म न्यादज्ज्ञदप्रिय ।

आहार दान दिया । अंतमें आयु पूरी होने पर उदक् कुरुकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई । वहां से चय कर चंद्रमाकी चंद्रवती देवी हुई । वहां की आयु पूरी कर इसी भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके गगनवल्लभ नगरके विद्याधरोंके प्रतापी राजा विद्युद्वेगकी रानी विद्युद्वेगासे सुरूपा नामकी पुत्री हुई । वह अत्यंत विद्यावान् और पराक्रमी ऐसे नित्यालोक नगरके राजा महेंद्रविक्रमको ब्याही गई । किसी एक दिन वे दोनोंही दंपती बडे उत्कंठित होकर चैत्यालयोंमें जिन-पूजा करनेकेलिये सुमेरु पर्वतपर गये ॥ ४१६–४२१ ॥ वहां पर विराजमान किसी चरणमुनिरूपी चंद्रमासे निकला हुआ धर्मरूपी अमृतका पान किया और उसे सुनकर वे दोनोंही बहुत संतुष्ट हुये ॥ ४२२ ॥ उन दोनोंमेंसे राजा महेन्द्र विक्रमने तो उन्हीं चारणमुनिसे दीक्षा धारण कर ली और रानी सुरूपाने सुभद्रा नामकी अर्जिकाके समीप जाकर संयम धारण कर लिया ॥ ४२३ ॥ आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्गमें एक पल्यकी आयु पाकर देवी हुई आयुके अंतमें वहांसे भी च्युत हो कर गंधार देशमें पुष्कलावती नगरके इंद्रगिरि की रानी मेरुमतीसे यह गांधारी नामकी पुत्री हुई है । राजा इंद्र-गिरि इसे अपने बूआके लडकेको देना चाहता था परंतु यह बात संसारको अप्रिय और पाप बुद्धिवाले नारदने सुनी । सुन कर शीघ्रही वह तेरे समीप आया और तुझसे सब बात कह सुनाई । सुनते ही तू भी प्रेमके वश होगया और सेना सजा कर इंद्रगिरिसे युद्ध किया । युद्धमें राजा चंद्रगिरि तथा अन्य अनेक राजाओंको जीतकर गांधारीको ले आया और फिर इसे पट्टरानीका पद दिया ॥ ४२४–४२८ ॥ यह कह कर गणधर देव फिर कहने लगे कि हे कृष्ण अब मैं गौरीके भव कहता हूं तू सुन ! इसी जंबूद्वीपमें नागपुर नामका एक प्रसिद्ध नगर है । उसमें पुरुवंशियोंकी रक्षा करनेवाला हेमप्रभ

पुलिंदी संजाता सान्येद्युर्नदिवर्दनं । मुनिं चारणमाश्रित्य गृहीतोपासकव्रता ॥ ४०३ ॥ मृत्वा जाताष्टमे कल्पे नर्तकींद्रस्य हृत्प्रिया । अवतीर्य ततो द्वीपे भरतेस्मिन् खगाचले ॥ ४०४ ॥ खगेशो दक्षिणश्रेण्या जातो चंद्रपुरेशिन । महेंद्रस्य सुतानुंधर्याश्च नेत्रमनोहरा ॥ ४०५ ॥ मालांतकनका सिद्धवियाख्याते स्वयंवरे । मालया स्वीचकारोसौ कुमारं हरिवाहनं ॥ ४०६ ॥ अन्येद्यु सिद्धकूटस्थगुरु यमधराह्वय । समुपेत्य समाकर्ण्य स्वभवांतरसततिं ॥ ४०७ ॥ मुक्तावलीमुपोष्यासीत् तृतीयेंद्रमनःप्रिया । नवपल्योपमायुष्का कालांतसा ततश्च्युता ॥ ४०८ ॥ सुप्रकारपुराधीशशंवराख्यमहीपते । श्रीमत्याश्च सुतासीस्त्वं श्रीपद्मध्रुवसेनयो ॥ ४०९ ॥ कनीयसी गुणैर्ज्येष्ठा लक्ष्मणा सर्वलक्षणा । ता त्वा पवनवेगाख्यखेचरः कमलोदरं ॥ ४१० ॥ समुपेत्य रथांगेशवायुमार्गस्य निर्मला । लसती चंद्रलेखेव तव योग्या खगेशिनः ॥ ४११ ॥ तनूजा लक्ष्मणा कामोद्दीपिनीति जगाद स. । तद्वचःश्रवणानतरं त्वमेवानयेति तं ॥ ४१२ प्रेषयामास कंसारिं सोपि गत्वाविलंबितं । तत्पित्रोरनुमित्या त्वमर्पयामास चक्रिणे ॥ ४१३ ॥ तेनापि पट्टबंधेन त्वमेवमसि मानिता । इति श्रुत्वा स्वजन्मांतरावली सागमन्मुद ॥ ४१४ ॥ गांधारीगौरीपद्मावतीना जन्मांतरावलिं । गणेंद्रो वासुदेवेन पृष्टोऽस्याविलभाषत ॥ ४१५ ॥

माहेंद्रकी रानी अनुंधरीके नेत्रोंको प्यारी कनकमाला नामकी पुत्री हुई और सिद्धविद्य नामके स्वयंवरमें उसने माला डालकर कुमार हरिवाहनको अपना पति बनाया ॥ ४०४–४०६ ॥ किसी एक दिन वह सिद्धकूटपर विराजमान यमधर नामके गुरुके समीप गई और अपने पहिले भव सुनकर मुक्तावली व्रतका उपवास करने लगी आयु पूरी होनेपर तीसरे स्वर्गमें इंद्रकी इंद्रानी हुई नौ पल्यकी आयु पूरीकर वहांसे च्युत हुई और सुप्रकार नगरके राजाके राजा शंवर रानी श्रीमतीके तू पुत्री हुई है। तू श्रीपद्म और ध्रुवसेनकी छोटी वहिन है परंतु गुणोंमे सबसे वडी है। तू सब लक्षणोंसे पूरी है इसीलिये लक्ष्मणा तेरा नाम है। किसी एक दिन पवनवेग नामका विद्याधर कृष्णके समीप जाकर कहने लगा कि हे चक्रवर्ती! शंवरके एक लक्ष्मणा नामकी पुत्री है जोकि आकाशमें चंद्रमाकी रेखाके समान सुशोभित है। वह कामको उद्दीपित करनेवाली है और आपके ही योग्य है पवनवेगकी यह वात सुनकर कृष्णने उसे ही भेजा और कहा कि तू ही उसे ले आ। कृष्णकी यह आज्ञा पाकर पवनवेग शीघ्र ही गया और माता पिताके साथ उसे लेआया तथा चक्रवर्तीको समर्पण कर दी ॥ ४०७-४१३ ॥ कृष्णने भी तुझे पट्टरानी वना कर तेरा सन्मान किया। इस तरह अपने भव सुनकर वह वहुत ही प्रसन्न हुई ॥ ४१४ ॥ तदनंतर कृष्णने गांधारी गौरी और पद्मावतीके पहिले भव पूछे तव गणधरदेव भी इस प्रकार कहने लगे ॥ ४१५ ॥ इसी जंवूद्वीपके सुकोशल देशके अयोध्या नगरमें रुद्रनामका राजा राज्य करता था। उसकी विनयश्री नामकी मनोहर रानी थी। किसी एक दिन वह सिद्धार्थ बनमें गई। वहां पर उसने एक बुद्धार्थ नामके मुनिराजको

आना सुता सुधीः ॥ ३९० ॥ कदाचिद्धर्मसेनाख्य मुनिं संश्रित्य सद्व्रता । मासोपवासिने तस्मै दत्त्वा कायस्य संस्थितिं ॥ ३९१ ॥ सा कदाचिद्वने रंतु मता वर्षभयाद् गुहां । प्रविष्टाजगरागीर्णा हरिवर्षतनु श्रिता ॥ ३९२ ॥ निर्विश्य तद्गतान् भोगान् नागी जाता ततश्च्युता । च्युता ततो विदेहेस्मिन् पुष्कलावत्युदीरिते ॥ ३९३ ॥ विषये पुंडरीकिण्यामशोकाख्यमहीपतेः । सोमश्रियश्च श्रीकांता सुता भूत्वा कदाचन ॥ ३९४ ॥ जिनदत्तार्यिकोपांते दीक्षामादाय सुव्रता । तपस्यती चिरं घोरमुपोष्य कनकावलीं ॥ ३९५ ॥ माहेंद्रे दिविजी भूत्वा भोगान् दिव्यान् दिवौकसां । स्वायुरंते ततश्च्युत्वा सुज्येष्ठाया सुताऽभव ॥ ३९६ ॥ सुराष्ट्रवर्द्धनाख्यस्य नृपस्य त्व सुलक्षणा । हरेर्देवी प्रमोदेन वद्धसे वल्लभा सती ॥ ३९७ ॥ स्वभवांतरसंबधमाकर्ण्यैषाप समदं । को न गच्छति सतोषमुत्तरोत्तरवृद्धित ॥ ३९८ ॥ लक्ष्मणापि मुनिं नत्वा शुश्रूषु स्वभवानभूत् । अभाषतैवमेतस्याश्चिकीर्षु सोप्यनुग्रह ॥ ३९९ ॥ इह पूर्वविदेहेस्ति विषयः पुष्कलावती । तत्रारिष्टपुराधीशो वासवस्य महीपते. ॥ ४०० ॥ वसुमत्यामभूत्सूनुः सुषेणाख्यो गुणाकरः । केनचिज्जातनिर्वेगो वासवो निकटेग्रहीत् ॥ ४०१ ॥ दीक्षां सागरसेनस्य तत्प्रिया सुतमोहिता । गेहवास परित्यक्तुमसमर्था कुचेष्टया ॥ ४०२ ॥ मृत्वा

देहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरीके राजा अशोक रानी सोमश्रीके श्रीकांता नामकी पुत्री हुई। किसी एक दिन जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप उसने दीक्षा धारण की, अच्छे अच्छे व्रतोंका पालन किया, और कनकावली नामके व्रतके वहुत दिनतक घोर उपवास किये ॥ ३९२–३९५ ॥ आयुके अंतमें चौथे महेंद्र स्वर्गमें देवी हुई, वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर आयु पूरी होनेपर च्युत हुई और सुराष्ट्रवर्द्धन राजाकी रानी ज्येष्ठाके अच्छे लक्षणोंवाली तू पुत्री हुई है। तथा कृष्णकी सती और प्यारी पट्टरानी होकर आनंदसे दिन विता रही है ॥ ३९६–३९७ ॥ इसतरह सुसीमा अपने भवोंका संवंध सुनकर वहुत प्रसन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होनेसे भला कोन संतुष्ट नहीं होता है ॥ ३९८ ॥ तदनंतर लक्ष्मणा भी मुनिको नमस्कारकर अपने भव सुननेकी इच्छा करने लगी। तव वे मुनिराज भी उपकार करनेकी इच्छासे इसप्रकार कहने लगे ॥ ३९९ ॥ इसी जंवूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसके अरिष्ट नगरके राजा वासवकी रानी वसुमतीके सुषेण नामका एक गुणवान पुत्र हुआ था। किसी कारणसे राजा वासवसेनने तो मुनिराज सागरसेनके निकट दीक्षा धारण करली परंतु उसकी रानी वसुमती पुत्रके प्रेमसे घरका निवास छोड न सकी इसलिये कुचेष्टासे मरकर म्लेच्छिनी हुई। किसी एकदिन नंदिवर्द्धन नामके चारण मुनिराजके समीप जाकर उसने श्रावकके व्रत धारण किये ॥ ४००–४०३ ॥ आयु पूरी होनेपर वह आठवें स्वर्गमें इंद्रकी प्यारी नृत्यकारिणी हुई। वहांसे चयकर इसी जंवूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें चंद्रपुर नगरके विद्याधरोंके राजा

द्रे साधयेति ते ॥ ३७९ ॥ दत्वा तत्साधनोपायमभिधाय गतो दिवं । स क्षीरसागरं गत्वा तत्र द्विशयने स्थितः ॥ ३८० ॥ साधयामास मासांस्ते च-तुरो विधिपूर्वकं । सिंहाहिविरिवाहिन्यौ विद्ये हलिहरी गतौ ॥ ३८१ ॥ आरभ्य जावनं युद्धे विजित्यादाय तत्सुतां । महादेवीपदे प्रीत्या स्वामकांतिक-तीड्विति ॥ ३८२ ॥ श्रुत वक्तृविशेषेण यद्यप्यस्पष्टतर्कणं । तद्दृष्टमिव विस्पष्टं सर्वं तस्यास्तदाभवत् ॥ ३८३ ॥ अथानंतरमेवैन मुनींद्र गणनायकं । सुसीमा भवसंबंधमात्मन पृच्छतिस्म सा ॥ ३८४ ॥ स्ववाक्किरणजालेन बोधयन्तन्मनोंबुजं । इत्युवाच विनेयाना निर्निमित्तकबांधव ॥ ३८५ ॥ धात-कीखंडपूर्वाशप्राग्विदेहेतिविश्रुतः । भोगागभगिनामैको विषयो मंगलावती ॥ ३८६ ॥ रत्नसंचयनामात्र पुरं तत्परिपालकः । विश्वदेवः प्रियास्यासी द्देवी धीमत्यनुधरी ॥ ३८७ ॥ तमयोध्यापतौ युद्धे हतवत्यतिशोकतः । सा मंत्रिभिर्निषिद्धापि प्रविश्य हुतभोजनं ॥ ३८८ ॥ विजयार्द्धे सुरी भूत्वा व्यंतरेष्वयुतायुषा । जीवित्वा तस्य तत्रांते भवे भ्रात्वा यथोचितं ॥ ३८९ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते शालिग्रामे यक्षस्य गेहिनी । देवसेना तयोर्यक्षदेवी

वर्तीने बडे प्रेमसे महादेवी पदपर विराजमान किया ॥ ३८२ ॥ यद्यपि पहिले जन्मका वृत्तांत सब छिपा हुआ था तथापि विशेष वक्ता गणधर देवके कहनेसे वह उससमय उसे देखे हुएके समान स्पष्ट हो गया ॥ ३८३ ॥ अथानंतर—इन्हीं मुनि-राज गणधर देवको सुसीमा नामकी पट्टरानी अपने पहिले भवोंका संबंध पूछने लगी ॥ ३८४ ॥ तब शिष्योंकेलिये वि-नाही कारणके एक बंधु भगवान गणधरदेव अपने वचनरूपी किरण समूहसे उसके मनरूपी कमलको प्रफुल्लित करते हुए इसप्रकार कहने लगे ॥ ३८५ ॥ धातकीखंडके पूर्वकी ओर पूर्व विदेहक्षेत्रमें मंगलावती नामका एक प्रसिद्ध देश है जो कि जीवोंके भोगोपभोगकेलिये एक ही साधन है ॥ ३८६ ॥ उसमें एक रत्नसंचय नामका नगर है उसमें राजा विश्वदेव राज्य करता था और उसके बुद्धिमती अनुंधरी नामकी रानी थी ॥ ३८७ ॥ किसी एक दिन अयोध्याके राजाने युद्धमें राजा विश्वदेवको मार दिया इसलिये अत्यंत शोकके कारण मंत्रियोंके निषेध करनेपर भी वह अग्निमें जलमरी ॥३८८॥ मरकर वह विजयार्द्ध पर्वतपर दशहजार वर्षकी आयु पाकर व्यंतरी देवी हुई। वहांकी आयु पूरीकर उसने अपने कर्मोंके अनुसार संसारमें परिभ्रमण किया ॥ ३८९ ॥ फिर इसी जंबूद्वीपमें भरतक्षेत्रके शालिग्राममें यक्षकी स्त्री देवसेनाके यक्ष-देवी नामकी बुद्धिमती पुत्री हुई ॥ ३९० ॥ किसी एक दिन धर्मसेन नामके मुनिराजके समीप जाकर उसने व्रत धारण किये और एक महीनेका उपवास करनेवाले उन्हीं मुनिराजको उसने आहार दिया ॥ ३९१ ॥ किसी एकदिन वह क्रीडा करनेकेलिये बनमें गई, वहांपर वर्षा बहुत आनेसे वह किसी गुफामें घुस गई परंतु वहांपर उसे एक अजगरने खा लिया, इसलिये मरकर वह हरिवर्षक्षेत्रकी भोगभूमिमें उत्पन्न हुई, वहांके भोग भोगकर नागकुमारी देवी हुई। वहांसे चयकर वि-

वेः ॥ ३६८ ॥ अभूत्त्वं जंबुषेणायां सती जांबवती सुता । सूनुः पवनवेगस्य श्यामलायाश्च कामुक ॥ ३६९ ॥ भवत्या. स नमिनाम्ना मैथुनापियिले-च्छया । ज्योतिर्वनेन्यदा स्थित्वा देया जांबवती न चेत् ॥ ३७० ॥ आच्छियाह प्रहीष्यामीत्यवोचज्जांबव क्रुधा । स्वादितुं प्रेषयामास वियामाक्षिकल-क्षिता ॥ ३७१ ॥ तदा नमिकुमारस्य किंनराख्यपुराधिपः । मातुलो यक्षमाली तामच्छैत्सीत्खचरेश्वर ॥ ३७२ ॥ सर्वविद्याच्छिदां श्रुत्वा तत् जांबवतनूभवे । बलेनाक्रम्य संप्राप्ते कुमारे जवुनामानि ॥ ३७३ ॥ पलायत निजस्थानामभिभात्वा समातुलः । अनालोचितकार्याणां किं मुक्त्वान्यत्पराभव ॥ ३७४ ॥ नारदस्तद्विदित्वाशु संप्राप्य कमलोदरं । वर्णयामास जबावतीरूपमतिसुंदरं ॥ ३७५ ॥ हठात्कृष्णस्तदाकर्ण्य हरिष्यामीति तां सतीं । संभद्बल संपत्या गत्वा खगवनांतिके ॥ ३७६ ॥ निविष्ठा मनसालोच्य ज्ञात्वा तत्कर्म दुष्करं । उपोष्याचिंतयद्रात्रौ केनेदं सेत्स्यतीत्यसौ ॥ ३७७ ॥ प्रसाधितत्रि खंडोपि तत्राभूत्स्खलतायति । तद्विपक्षखगेंद्रस्य पुण्यं किमपि तादृश ॥ ३७८ ॥ यक्षिलाख्योनुजस्तस्य प्राक्तनस्तपसावसन् । महाशुक्रेतदैत्येते विद्ये

परंतु वहांपर किन्नरपुर नगरका विद्याधरोंका राजा यक्षमाली नमिकुमारका मामा था उसने वह विद्या छेद डाली ॥३७२॥ अपनी सब विद्याओंके छेदी जानेकी बात सुनकर राजा जांववने सब सेनाके साथ अपना जंबूकुमार नामका पुत्र भेजा। उसके आते ही वह नमिकुमार मामाको साथ लेकर अपने नगरको आगया सो ठीक ही है क्योंकि जो कार्य विना विचारे किया जाता है उसका फल अपमानके सिवाय और क्या हो सकता है ॥ ३७३–३७४ ॥ नारद ये सब बातें जानकर शीघ्र ही कृष्णपर गया और उसने उनसे जांववतीके अत्यंत सुंदर रूपका वर्णन किया ॥ ३७५ ॥यह सुनकर कृष्णने हठ पूर्वक उस सतीको हरनेका विचार किया और इसीलिये वे अपनी सब सेनारूपी संपत्ति लेकर विद्याधरोंके वनमें जाकर ठहर गये। मनमें सोचने लगे कि यह काम तो बहुत कठिन है यही समझ कर उन्होंने उपवास किया और रात्रिमें विचार करने लगे कि यह काम किसतरह सिद्ध होगा ॥ ३७६–३७७ ॥ देखो! जिसने तीनों खंड अपने वश कर लिये हैं ऐसे कृष्णका भी प्रभाव खंडित हो गया परंतु विद्याधरके शत्रु कृष्णका पुण्य ही कुछ ऐसा था जिससे पहिले जन्मका यक्षित नामका छोटा भाई जो तपश्चरणकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ था वह आया और कहने लगा कि जो मैं देता हूं वे दो विद्याएं सिद्ध करो इसतरह कहकर उसने दो विद्याएं दी और उनके सिद्ध करनेका उपाय बतलाकर वह स्वर्गको चला गया। इधर कृष्ण एक क्षीरसागर बनाकर उसमें नागशय्यापर विराजमान हुए और विधिपूर्वक चार महीने तक विद्याएं सिद्ध कीं तदनंतर उन्हें सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याएं सिद्ध हुई। बलभद्रने सिंहवाहनी ली और कृष्णने गरुडवाहिनी ली ॥ ३७८–३८१ ॥ फिर राजा जांववके साथ . किया, उसे जीता और उसकी पुत्री तुझे लेकर उस चक्र-

देवमुवाच भगवानिति ॥ ३५९ ॥ द्वीपेऽस्मिन् प्राग्विदेहेऽस्ति विषये पुष्कलावती । वीतशोकं पुरं तत्र दमको वैश्यवंशजः ॥ ३६० ॥ पत्नी देवमतिस्तस्य सुतासीद्देविला तयोः । दत्तासौ वसुमित्राय विधवाभूदनंतरं ॥ ३६१ ॥ निर्विण्णा जिनदेवाख्ययतिमेत्याहितव्रता । आगाद्व्यंतरदेवीत्वं मंदारे नंदने वने ॥ ३६२ ॥ ततश्चतुरशीत्युक्तसहस्राब्दायुषश्च्युतौ । विषये पुष्कलावत्या पुरे विजयनामनि ॥ ३६३ ॥ मधुषेणाख्यवैश्यस्य बंधुमत्याश्च बंधुरा । सुता बंधुयशा नाम भूताभ्युदयोन्मुखी ॥ ३६४ ॥ जिनदेवसुता सख्या सहासौ जिनदत्तया । समुपोष्यादिमे कल्पे कुवेरस्याभवत् प्रिया ॥ ३६५ ॥ ततश्च्युत्वाऽभवत्पुंडरीकिण्यां वज्रनामभृत्–वैश्यस्य सुप्रभायाश्च सुमति सुतसत्तमा ॥ ३६६ ॥ सा तत्र सुव्रताख्यार्यिकाहारार्पणपूर्वकं । रत्नावलीमुपोष्याभूद् ब्रह्मलोकेऽप्सरोवरा ॥ ३६७ ॥ चिरात्ततोपि निष्क्रम्य द्वीपेऽस्मिन् खेचराचले । उदक्श्रेण्यां पुरे जांववाख्ये जांववभूप-

धर देव इस प्रकार कहने लगे ॥ ३५९ ॥ इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतशोका नगरीमें दमक नामका एक वैश्य रहता था ॥ ३६० ॥ उसकी स्त्रीका नाम देवमति था और उन दोनोंके देविला नामकी पुत्री थी। वह देविला वसुमित्रको व्याही गई थी परंतु वह विधवा हो गई थी ॥ ३६१ ॥ इसलिये विरक्त होकर तूने जिनदेव नामके मुनिराजके समीप जाकर व्रत धारण किये थे और प्राण छोडकर तू मन्दराचल पर्वतके नंदन वनमें व्यंतरी देवी हुई थी ॥ ३६२ ॥ वहांकी चौरासी हजार वर्षकी आयु भोग कर च्युत हुई और पुष्कलावती देशके विजयपुर नगरमें मधुषेण नामके वैश्यकी स्त्री वंधुमतीसे वंधुयशा नामकी बहुत सुंदर पुत्री हुई दिनों दिन उसका पुण्य बढता ही जाता था वहींपर जिनदेवकी पुत्री जिनदत्ताके साथ उसकी मित्रता थी इसलिये उसीके साथ उपवास आदिकर वह मरकर पहिले स्वर्गमें कुवेरकी देवांगना हुई ॥३६३–३६५॥ वहांसे चयकर पुंडरीकिणी नगरीमें वज्र नामके वैश्यके घर उसकी सुप्रभा स्त्रीसे सुमति नामकी उत्तम पुत्री हुई ॥ ३६६ ॥ वहांपर उसने सुव्रता नामकी अर्जिकाको आहार दिया और रत्नावली व्रतका उपवास किया जिससे आयु पूरी होनेपर वह ब्रह्म नामके पांचवें स्वर्गमें उत्तम अप्सरा हुई ॥ ३६७ ॥ बहुत दिनतक वहांके सुखभोगकर च्युत हुई और इसी जंबूद्वीपके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके जांवव नगरमें राजा जांवव रानी जंबुषेणाके तू सती जांववती पुत्री हुई है। उसी विजयार्ध पर्वतपर राजा पवनवेग रानी श्यामलाके एक नमि नामका पुत्र था वह कामी था नातेमें तेरा पति होने योग्य था और तुझे चाहता था किसी एक दिन वह ज्योतिर्वनमें गया और वहां पर जाकर उसने साफ कह सुनाया कि यदि राजा जांवव मुझे अपनी पुत्री जांववती न देगा तो मैं हरकर उसे ले आऊंगा। तव राजा जांववको क्रोध आया और उसने उसे खानेकेलिये आत्तिकलक्षिता नामकी विद्या भेजी ३६८--३७१

भूभृन्मूर्द्धस्थपादक । शैशवे शिशुपालोऽपि भासतेस्नेव भास्करं ॥ ३५० ॥ हरिं हरिमिवाक्रम्य विक्रमेणाक्रमैषिणा । राजकं वीरवृत्तेन सोवाच्छ-
दर्तिनु स्वयं ॥ ३५१ ॥ दर्पिणा यशसा विश्वमर्पिणा स्वायुरर्पिणा । तत सेनापराधानां न्यधायि मधुविद्विषः ॥ ३५२ ॥ स्वमूर्द्धाङ्कुरं मूर्द्धन्य- कृतपक्षो-
पलक्षित- । अधोक्षजमधिक्षिप्य लक्ष्मीनाक्षेप्तुमुद्यतौ ॥ ३५३ ॥ संघ शांतोपि शत्रूणां हर्तोपापमनचयः । विजिगीषुस्तामुत्क्षेप्तुं तेनकुम मुमुक्षुवत् ॥
३५४ ॥ एव प्रयाति काले त्वा शिशुपालाय ते पिता । दातुं मनुयत प्रीत्या तच्छ्रुत्वा युद्धकांक्षिणा ॥ ३५५ ॥ नारदेन हरिः गत्वा नाकार्द्धमपनोदितः ।
पडङ्गबलसंपन्नो गत्वा हत्वा तमूर्जितं ॥ ३५६ ॥ आदाय त्वा महादेवीपट्टबंधेन योजयत् । श्रुत्वा वृत्तनं तस्याः परितोषं परोजनि ॥ ३५७ ॥
इत्थं वृत्तकमाकर्ण्य कः करोति जुगुप्सनं । मत्वाम गौमयाशो नेयदि दुर्गोर्मुनीश्वरान् ॥ ३५८ ॥ अथ जांबवती नत्वा मुनिं स्वभवसंतति । पृच्छतिस्मादरा-

है उसी प्रकार वह भी क्रूर और प्रतापी था तथा सूर्य जिस प्रकार दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूभृत अर्थात् पर्वतके मस्तक पर अपनी किरणें फैलाता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी दूसरोंके तेजको आच्छादन कर भूभृत अर्थात् राजाओंके मस्तकपर अपने पैर रखता था ॥ ३४९–३५० ॥ इधर कृष्ण अपने एक साथ होने वाले पराक्रमसे सुशोभित हो रहे थे उनको भी यह अपनी वीरतासे सिंहके समान आक्रमण कर अपनी आज्ञानुसार चलाना चाहता था ॥ ३५१ ॥ इस तरह अपने यशसे सब संसारमें प्रसिद्ध और अपनी आयुको समर्पण करदेनेवाले अभिमानी शिशुपालने कृष्णके सौ अपराध कर डालें ॥ ३५२ ॥ जो अपनेको बहुत बडा समझता है सिरके बल चलना है अर्थात् जो उन्मत्त वा महाअभिमानी है और जो कृष्णकी पक्षको काटनेके लिये तैयार हुआ है ऐसा वह शिशुपाल कृष्णको तिरस्कार कर लक्ष्मी पर अधिकार जमानेके लिये तैयार हुआ ॥ ३५३ ॥ शांत हुआ भी शत्रुओंका समूह पापोंके समूहके समान कभी न कभी मारता है इस लिये पापोंकी जीतनेकी इच्छा करनेवाले मोक्षार्थीके समान उसे उखाड कर फेकनेमें कभी देर नहीं करनी चाहिये ॥ ३५४ ॥ इस तरह कुछ समय व्यतीत होने पर तेरा पिता बडे प्रेमसे तुझे शिशुपालको देनेके लिये तैयार हुआ । यह बात सुन कर युद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले नारदने कृष्णको वह सब काम समझा दिया । तब कृष्ण अपनी छह तरहकी सब सेना लेकर वहां गये, उस प्रतापी शिशुपालको मार कर तुझे लाए और तेरे मस्तक पर महादेवीका पट्टबंध बांधा । गणधरकी ये सब बातें सुनकर रुक्मिणीको बहुत ही संतोष हुआ ॥ ३५५–३५६ ॥ इस कथानकको सुनकर दुर्बुद्धिको छोडकर अन्य कौन ऐसा बुद्धिमान है जो मुनियोंको मलिन देखकर भी ग्लानिकरे॥३५७॥ अथानंतर—रानी जांबवती भी भगवान गणधर देवको नमस्कार कर बडे आदरसे अपने भव पूछने लगी तब गण-

सान्मामैषीस्त्वमतः परं । इति प्रोत्साहिता सख्या सा संन्यस्य समाधिना ॥ ३३९ ॥ च्युतप्राणाच्युतेंद्रस्य वल्लभाभूदतिप्रिया । पल्यानां पचपंचाशत्त तस्माच्चिष्टमसौख्यभाक् ॥ ३४० ॥ च्युत्वा ततो विदर्भाख्यविषये कुंडलाह्वये । पुरे वासवभूभर्तुः श्रीमत्याश्च सुताभवः ॥ ३४१ ॥ रुक्मिण्यथ पुरः कोशलाख्याया भूपते सुत । भेषजस्याभवन्मद्र्या शिशुपालस्त्रिलोचनः ॥ ३४२ ॥ अभूतपूर्वमेतत्तु मनुष्येष्वस्य किं फलं । इति भूपतिना पृष्टः स्पष्टं नैमित्तिको वदत् ॥ ३४३ ॥ तृतीयं नयनं यस्य दर्शनादस्य नश्यति । अयं हनिष्यते तेन संशयो नेत्यदृष्टवित् ॥ ३४४ ॥ कदाचिद् भेषजो मद्री शिशुपाल परेपि च। गता द्वारावतीं द्रष्टुं वासुदेवं समुत्सुकाः ॥ ३४५ ॥ अदृश्यतामगान्नेत्रं जरासंधारिवीक्षणात् । तृतीयं शिशुपालस्य विचित्रा द्रव्यशक्तयः ॥ ३४६ ॥ विज्ञातादेशया मद्र्या तद्विलोक्य हरिं भिया । ददस्व पूज्य मे पुत्रभिक्षामित्यभ्ययाचत ॥ ३४७ ॥ शतापराधपर्यंतमंतरेणाव मद्भयं । नास्यास्तीति हरे लेब्धवरासौ स्वां पुरीमगात् ॥ ३४८ ॥ विशुद्धमंडलो नित्यमुद्यद्ध्वस्तद्विपत्तमा । पद्माल्हादपरस्तीक्ष्णाकरः क्रूरः प्रतापवान् ॥३४९॥ प्रच्छाद्य परतेजांसि-

राजा भेषज राज्य करता था उसकी मद्री रानीसे शिशुपाल नामका एक पुत्र था और उसके तीन नेत्र थे ॥३४१–३४२॥ तब राजाने किसी निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मनुष्योंमें तीन नेत्र होना कभी न देखा न सुना इसलिये शिशुपालके तीन नेत्र होनेका क्या फल है? इसके उत्तरमें अदृष्टको जानने वाले निमित्तज्ञानीने स्पष्ट कह सुनाया कि जिसके देखनेसे इसका तीसरा नेत्र न हो जायगा वही पुरुष इसे मारेगा इसमें विलकुल संदेह नहीं है ॥ ३४३–३४४ ॥ किसी एकदिन राजा भेषज रानी मद्री, कुमार शिशुपाल तथा और भी कितने ही लोग वडे उत्साहसे कृष्णाको देखनेकेलिये द्वारावती नगरीमें गये ॥ ३४५ ॥ वहां पर कृष्णाको देखते ही शिशुपालका तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया सो ठीक ही है क्योंकि द्रव्योंकी शक्तियां वडी ही विचित्र हैं ॥ २३६ ॥ मद्रीने यह सव हाल जानकर कृष्णाकी आज्ञानुसार उनके दर्शन किये और वडे डरसे याचना की कि हे पूज्य मुझे पुत्रकी भिक्षा दीजिये ॥ ३४७ ॥ तव कृष्णाने कहा कि जव तक इसके सौ अपराध न हो जायगे तव तक इसे मेरा कुछ किसी तरहका भय नहीं होगा । इस तरह कृष्णासे वर पाकर वह मद्री अपने घरको चली गई ॥ ३४८ ॥ इधर शिशुपाल वालक अवस्थामें ही सूर्यके समान दैदीप्यमान होने लगा क्योंकि जिस प्रकार सूर्य मंडल विशुद्ध है उसी प्रकार उसका मंडल अर्थात् मंत्री आदि सव विशुद्ध (शुद्धतारहित) थे, सूर्य जिस प्रकार सदा उदय होते ही शत्रु अंधकारको नष्ट करता है उसी प्रकार वह सदा उदय रूप होकर वडे २ शत्रुओंको नष्ट करता था, सूर्य जिस प्रकार कमलोंको प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार वह शिशुपाल भी पद्मा अर्थात् लक्ष्मीको प्रसन्न करता था, जिस-प्रकार सूर्यकी किरणें तीक्ष्ण हैं उसी प्रकार उसका कर (महसूल) भी तीक्ष्ण था, सूर्य जिस प्रकार क्रूर और प्रतापी

रवर्तिनी स कदाचन । समाधिगुप्तमालोक्य नदीतीरे पुरातन ॥ ३२८ ॥ काललब्ध्या समासाद्य प्रतिमायोगधारिणं । गृहीतोपशमां योगिदेहस्थमशकादि-क ॥ ३२९ ॥ अपास्यंती प्रयत्नेन निशांते योगनिष्ठितौ । उपविष्टस्य पादाब्जसुपस्पृत्योदितं मुनेः ॥ ३३० ॥ श्रुत्वा धर्मंधियादत्तपर्वोपवसतिं सुधी । प-रेद्युर्जिनपूजार्थं गच्छती वीक्ष्य सार्यिकां ॥ ३३१ ॥ ग्रामांतरं सम गत्वा तदानीतांधसा सदा । प्राणसधारण कृत्वा कस्मिंश्चिद् भूभृतोवले ॥ ३३२ ॥ उपविष्टा निजाचारं पालयंती भयादघात् । सम्यग्ज्ञात्वार्यिकाख्यानात्स्ववृत्तातं सकौतुका ॥ ३३३ ॥ चित्र नीचकुलोत्पन्नाप्येवंवृत्तेति सादरं । पूजानिर्वर्ति-का दृष्ट्वा स्वा वात्सल्यादुपागतां ॥ ३३४ ॥ अभिधायाव पापिष्ठा मा त्वं पुण्यवती कुतः । पश्यसीति निजातीतभवान् ज्ञातान् यतीश्वरात् ॥ ३३५ ॥ तस्या व्यावर्णयत्सापि वयस्यास्याः पुरातनी । तत्रैतदवबुध्याग्रान्मार्गं जैनमघक्षयात् ॥ ३३६ ॥ प्राग्जन्मार्जितपापस्य परिपाकाद्विरूपता । रोगवत्त्व दुर्गं-धत्व निर्धनत्वादिक च कैः ॥ ३३७ ॥ न प्राप्यतेत्र ससारे तत्त्व भूमी हिता शुचा । त्वयात्त व्रतशीलोपवासादिपरजन्मने ॥ ३३८ ॥ पाथेय दुर्लभ त-

मेका स्वरूप सुना और धर्मबुद्धिसे पर्वमें उपवास करना स्वीकार किया। दूसरे दिन एक अर्जिका जिनपूजा करनेकेलिये दूसरे गांव जाती थी उसे देखकर वह उसीके साथ हो ली उसीके साथ वह भोजन कर आती थी इसतरह वह अपना जीवन निर्वाह करतीथी और पापोंसे डरकर अपने आचारका पालन करती हुई किसी पर्वतपर रहती थी। किसी एकदिन पूजा करनेवाली अर्जिकाके दर्शन करनेकेलिये एक श्राविका आई थी उसके पूछनेपर अर्जिकाने कौतुक रूपसे सब समा-चार कहा और कहा कि नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी यह ऐसे व्रत उपवास करती है इसप्रकार आदरपूर्वक उसकी प्रशं-साकी। तब वह पूतका कहने लगी कि हे माता! मुझ पापिनीको आप पुण्यवती कैसे समझती हो। इसतरह कहकर उसने मुनिराजसे जो अपने पहिले भव सुने थे वे सब उस श्राविकासे कह सुनाये। वह श्राविका पहिले किसी भवकी इसकी सखी थी उसने यह सब सुनकर कहा अब पापकर्मोंके नष्ट होनेसे तुझे जैन धर्मकी प्राप्ति हुई है॥ ३२९–३३६ ॥ पहिले जन्ममें कमाये हुए पापकर्मोंके उदयसे इस संसारमें बुरा रूप, रोगी शरीर, दुर्गंधपना और निर्धनता किसको प्राप्त नहीं होती इसलिये तू शोक मतकर। तूने जो व्रत शील उपवास आदि धारण किये हैं वे परजन्मके लिये अत्यंत दुर्लभ पाथेय (रस्तेका खर्च) हैं इसलिये अब तू आगेकेलिये कुछ डरमत कर। इसतरह उस सखीने उसे उत्साह दिलाया। आयुके अंतमें उसने समाधिपूर्वक संन्यास धारण किया॥ ३३७–३३९ ॥ प्राण छोडकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके इंद्रकी अ-त्यंत प्रिय वल्लभा हुई। वहांपर उसने पचपन पल्यतक निरंतर सुखोंका अनुभव किया॥ ३४० ॥ वहांसे च्युत होकर वि-दर्भ देशके कुंडलपुर नगरमें राजा वासवकी रानी श्रीमतीसे तू रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई है। अथानंतर—कोशल नगरमें

मारते क्षेत्रे मगधांतरवर्तिनि । लक्ष्मीग्रामे द्विजः सोमोस्याभूल्लक्ष्मीमतिः प्रिया ॥ ३१७ ॥ प्रसाधितांगी सान्येद्युर्दर्पणालोकनोद्यता । समाधिगुप्तमालोक्य मुनिं भिक्षार्थमागत ॥ ३१८ ॥ प्रस्वेदमलदिग्धागो दुर्गंधोयमिति क्रुधा । विचिकित्सापरा साधिक्षेपोक्त्योद्गारिणी तदा ॥ ३१९ ॥ सहसोदुवराख्येन कुष्टेन व्याप्तदेहिका । शुनीव सर्वतस्तर्ज्यमाना परुषभाषितैः ॥ ३२० ॥ शून्यगेहेऽतिदु खेन मृत्वा स्नेहाहिताशया । गेहस्यैव द्विजस्याभूद् दुर्गंधधितकराखुक ॥ ३२१ ॥ तस्योपरि मुहुर्धावस्तेन कोपवता वहिः । गृहीत्वा निष्ठुरं क्षिप्तो मृत्वा त्वहिरजायत ॥ ३२२ ॥ तत्रैवासौ पुनर्मृत्वा गर्दभोभूत्स्वपापतः । मुहुर्मुहुर्गृह गच्छस्तदैव कुपितैर्द्विजै ॥ ३२३ ॥ हतो लकुटपाषाणैर्भग्नपाद कृमिव्रणैः । आकुल पतित कूपे दुःखितो मृतिमागतः ॥ ३२४ ॥ ततो वहिं समुत्पन्नो मृत्वांधश्चाथ शूकरः । ग्रामे यो भक्षितो मृत्वा सोपि श्वभिरितस्ततः ॥ ३२५ ॥ मत्स्यस्य मदिरग्रामे नद्युत्तरणकारिणः । मंडूक्यश्च सुता जाता पूतकानाम पापिनी ॥ ३२६ ॥ सोत्पत्त्यनतरं लोकातरं यातः पिता ततः । माता च पोषिता मातामह्या सर्वाशुभाखिले ॥ ३२७ ॥ विचिकित्स्या नदीती

कुष्ट (कोट) रोगसे उसका शरीर भर गया और सब लोग कठोर वचन कहकर कुत्तीके समान उसका ताडन करने लगे ॥ ३१८–३२० ॥ वह सूने मकानमें अकेली पडी रहती थी निदान हृदयमें पतिका प्रेम रखकर वडे दुखसे वहीं सूने मकानमें मरी और उसी ब्राह्मणके घर छछूंदर हुई ॥ ३२१ ॥ प्रेमके कारण वह वार वार उस ब्राह्मणके ऊपर दौडती थी इस लिये क्रोधकर ब्राह्मणने उसे पकडा और वाहर जाकर वडे जोरसे उसे दे पटका जिससे मरकर सांप हुई॥३२२॥ फिर मरकर अपने पाप कर्मके उदयसे वहीं (ब्राह्मणके समीप ही) गधा हुई । वह गधा वार वार उस ब्राह्मणके यहां जाता था इसलिये ब्राह्मणने क्रोधित होकर लकडी पत्थरसे उसे मारा जिससे उसका एक पैर टूट गया, उसके घावमें कीडे पडगये व्याकुल होकर वह कूएमें पड गया और दुःखी होकर मरगया ॥ ३२३–३२४ ॥ मरकर उसी गांवके वाहर अंधा सूअर हुआ, गांवके कुत्तोंने इधर उधर फिरते हुए उसे काट खाया जिससे मरकर वह मंदिर नामके गांवमें नाव चलानेवाले मत्स्य नामके धीवरकी स्त्री मंडूकीसे पापिनी पूतका नामकी पुत्री हुई ॥ ३२५–३२६ ॥ इसके उत्पन्न होते ही इसका पिता मरगया था और माता भी मर गई थी, दादीने उसे पाला था वह सवतरहसे अशुभ थी और सव लोग उसकी निंदा करते थे । किसी एक दिन वह नदीके किनारे वैठी थी वहींपर नदीके किनारे उसने उन्हीं पहिले समाधिगुप्त मुनिके दर्शन किये ॥ ३२७–३२८ ॥ वे मुनि प्रतिमायोग धारण किये हुए शांतचित्त थे पूतकाकी काललब्धि समीप आगई थी इसलिये उसने मुनिराजके शरीरपर लगे हुए मच्छर आदि वडे प्रयत्नसे दूर किये । सवेरेके समय जव उनका योग समाप्त हुआ तव मुनि विराजमान हुए वह पूतका भी उनके चरणकमलोंके समीप पहुंची, उस बुद्धिमतीने उनसे ध-

३०५ ॥ निर्धनैः परलोकार्थं स्वयं साहसशालिभि । भूसुवर्णादिदानेन सुखमिष्टमवाप्यते ॥ ३०६ ॥ इतीत्यादिकुदृष्टांतकुहेतुनिपुणैर्नृपं । कायक्लेशासह वाक्यैरयथार्थमबूबुधत् ॥ ३०७ ॥ तथापराश्च निर्बुद्धीन् बोधयन् जीवितावधौ । भूत्वा सप्तस्वधोभूमिष्वतस्तिर्यक्षु च क्रमात् ॥ ३०८ ॥ गंधमादनकूटोत्थमहागंधावती नदी । समीपगतभल्लुकिनामपल्यां स्वपापतः ॥ ३०९ ॥ जातो बनेचरः कालसंज्ञ स तु कदाचन । बरधर्मयतिं प्राप्य मध्वादिविनिवृत्तित ॥ ३१० ॥ विजयार्द्धेलकापुर्याः पत्यु पुरुवलस्य च । ज्योतिर्मालाभिधायाश्च सुतो हरिवलोभवत् ॥३११॥ अनंतवीर्ययत्यंते गृहीत्वा द्रव्यसयम । सैाधर्मकल्पे संभूय कालाते प्रच्युतस्ततः ॥ ३१२ ॥ सुकेतो विजायार्द्धाद्रौ रथनूपुरभूपते । सुता स्वयं प्रभायाश्च सत्यभामा त्वमित्यभूः ॥ ३१३ ॥ पित्रा ते मेन्यदा कस्य सुता पत्नी भविष्यति । इत्युक्तोसैा निमित्तादिकुशलाख्योर्द्धचक्रिण ॥ ३१४ ॥ भविष्यति महादेवीत्यास्यन्नैमित्तिकोत्तमः । इत्युदीरितमाकर्ण्य सत्यभामातुषत्तरा ॥ ३१५ ॥ रुक्मिण्याथ महादेव्या प्रणम्य स्वभवातर । परिपृष्ट परार्धेहो व्याजहारेति तद्भवान् ॥ ३१६ ॥ द्वीपेस्मिन्

तिर्यंचपर्यायोंमें तथा सातो नरकोंमें परिभ्रमण करता रहा ॥ ३०८ ॥ तदनंतर वह अपने पाप कर्मके उदयसे गंधमादन नामके पर्वतसे निकली हुई महागंधवती नदीके किनारे भल्लुंकी नामकी पल्लीमें काल नामका वनेचर वा भील हुआ। किसी एक दिन वह वरधर्म मुनिके समीप गया उनके उपदेशसे उसने मधुमांसादिका त्याग किया जिससे मरनेके बाद वह विजयार्द्ध पर्वतकी अलका पुरी नगरके राजा पुरुवल रानी ज्योतिर्मालाके हरिवल नामका पुत्र हुआ ॥३०९--३११॥ उस पर्यायमें उसने श्रीअनंतवीर्य मुनिराजके समीप द्रव्य संयम धारण किया जिससे आयुके अंतमें वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहांकी आयु पूरी कर वहांसे च्युत हुआ और विजयार्द्ध पर्वतके रथनूपुर नगरके राजा सुकेतुके उसकी रानी स्वयंप्रभासे तू सत्यभामा पुत्री हुई है ॥ ३१२--३१३ ॥ किसी एक दिन तेरे पिताने निमित्तकुशल नामके उत्तम निमित्तज्ञानीसे पूछा था कि मेरी यह पुत्री किसकी स्त्री होगी, तब उस निमित्तज्ञानीने कहा था कि यह अर्ध चक्रवर्तीकी पटरानी होगी। ये सब बातें सुनकर सत्यभामा बहुत ही संतुष्ट हुई ॥ ३१४--३१५ ॥ तदनंतर महादेवी रुक्मिणी नमस्कार कर अपने भव पूछने लगी तब पूज्य बुद्धिको धारण करने वाले गणधर देव कहने लगे ॥ ३१६ ॥ कि इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध देशके लक्ष्मी गांवमें एक सोम नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमति था ॥ ३१७ ॥ किसी एक दिन वह लक्ष्मीमती नहा धोकर आभूषण पहिन कर दर्पण देख रही थी कि इतनेमें ही समाधि गुप्ति मुनि आहारके लिये उसके घर पधारे। उन्हें देखकर "इसका शरीर पसीनेके मलसे भर रहा है और दुर्गंधित हो रहा है" इस तरह क्रोध करती हुई वह ग्लानि करेन लगी और कुछ निंदाके बचन कहने लगी। उसी समय अकस्मात् उदंबर नामके

निदेशात्कंशतो भयात् ॥ २९४ ॥ ते नैगमर्षिणा नीताः श्रेष्ठिन्या त्वलकाख्यया । वर्द्धिता देवदत्ताश्च देवपालोनुजस्ततः ॥ २९५ ॥ अनीकदत्तश्चानीकपाल शत्रुघ्नसञ्ज्ञकः । जितशत्रुश्च जन्मन्येवात्र निर्वृत्तिगामिनः ॥ २९६ ॥ नवे वयसि दीक्षिता भिक्षार्थपुरमागता । त्वया दृष्टास्ततस्तेषु स्नेहो जन्मांतरागतः ॥ २९७ ॥ स्वयमूकेशवैश्वर्यं तपकाले निरीक्ष्य सः । निर्नामकसुतस्तेऽथ कमशत्रुरजायत ॥ २९८ ॥ त्व कुतस्ते कुत. कोयं सबंधो निर्निबंधनः । विधेर्विलसितं चित्रमगम्य योगिनामपि ॥ २९९ ॥ इति नैसर्गिकाशेषभव्यानुग्रहभावकः । न्यगदद्भगवानेवं भक्त्यावंदत देवकी ॥ ३०० ॥ अथानतरमेवैन सत्यभामापि भाक्तिका । स्वपूर्वभवसबंधमप्राक्षीदक्षरावधिं ॥ ३०१ ॥ सोपि व्याख्ययामास तदभीष्टनिवेदने । न हेतुः कृतकृत्यानामस्त्यन्योनुग्रहाद्विना ॥ ३०२ ॥ शीतलाख्यजिनाधीशतीर्थे धर्मे विनक्ष्यति । भद्रिलाख्यपुराधीशो नाम्ना मेघरथो नृपः ॥ ३०३ ॥ प्रेयसी तस्य नदाख्या भूतिशर्मा द्विजाग्रणीः । तस्यासीत्कमला पत्नी मुडशालायनस्तयो ॥ ३०४ ॥ तनूजो वेदवेदागपारगो भोगसक्तधीः । वृथा तपःपरिक्लेशो मूर्खैरेष प्रकल्पितः ॥

हे देवकी ! तूं कहांसे आई वे तेरे पुत्र कहांसे आए और विना ही कारणके यह संबंध कैसा आ मिला है ॥ २९८ ॥ हे देवकी ! तूं कहांसे आई वे तेरे पुत्र कहांसे आए और विना ही कारणके यह संबंध कैसा आ मिला है ॥ २९८ ॥ इस लिए कहना पडता है कि कर्मोंका उदय वडा ही विचित्र है योगी लोग भी इसका पार नहीं पा सकते ॥ २९९ ॥ इस प्रकार स्वाभाविक रीतिसे समस्त भव्य जीवोंका अनुग्रह करने वाले भगवान गणधर देवने यह सब कथा कही तव देवकीने वडी भक्तिसे उनकी वंदना की ॥

अथानंतर----अक्षरावधिको धारण करने वाले गणधरदेवसे भक्तिको धारण करनेवाली सत्यभामाने भी अपने पहिले भवोंका संवंध पूछा ॥ ३०१ ॥ तव गणधर देवभी सत्यभामाका अभीष्ट कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि कृतकृत्य लोगोंको अनुग्रहके विना और किसी कारणकी आवश्यकता नहीं पडती ॥ ३०२ ॥ शीतलनाथ तीर्थंकरके वाद जव धर्मका विच्छेद हुआ था तव भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ राज्य करता था ॥ ३०३ ॥ उसकी रानीका नाम नंदा था उसी राजाके भूतिशर्मा नामका एक मुख्य ब्राह्मण था उसकी कमला स्त्रीसे मुंडशालायन नामका एक पुत्र हुआ था। वह वेद वेदांगका पारगामी था और उसकी बुद्धि भोगोंमें तल्लीन थी इसलिये उसने अनेक कुदृष्टांत और कुहेतुओंको वतलाने वाले अत्यंत निपुण वाक्योंके द्वारा काय क्लेशको न सहन करनेवाले राजाको झूठ मूठ समझाया कि स्वयं साहस करनेवाले निर्धन मूर्ख लोगोंने परलोक सुधारनेकेलिये व्यर्थही तपश्चरणके द्वारा शरीरको क्लेश देनेकी कल्पना की है वास्तवमें पृथ्वी सुवर्ण आदिका दान देनेसे ही परलोकमें इष्ट सुखकी प्राप्ति हो जाती है। इसी तरह वह अपने जीवित रहने तक अनेक अन्य निर्बुद्धियोंको भी समझाता रहा। अंतमें वह मरकर नरक गया। वहांसे निकल कर सब तरहकी

महीपते । वसुधाया सुता नदयशा समुदपायसौ ॥ पुनर्निरनुकम्पस्य आज्ञा दुःखनिमित्तक । त्वयेदृशं न कर्तव्यमित्युक्तः समागत. ॥२८४॥ स्वायुरंते स-
मुतन्नः सोय निर्नामसज्ञया । तत पूर्वभवोपात्तपापस्य परिपाकत ॥ २८५ ॥ जायते नदयशास कोपो निर्नामक प्रति । इति तस्य वच. श्रुत्वा ते नि-
र्वेगपरायणा ॥ २८६ ॥ नरेंद्र पद्सुता दीक्षा शंखो निर्नामकोप्यमु । तथा नदयशा रेवती नामादित साम ॥ २८७ ॥ सुव्रतार्यिकाभ्याशे पुत्रस्नेहा-
हितेच्छया । अन्यजन्मनि चागीपामेव लाभो न वर्द्धने ॥ २८८ ॥ ते निदान विमूढलादुभे चाकृतना सम । तत सर्वे तपः कृत्वा समाराध्य यथोचित ॥
२८९ ॥ महाशुक्रे समुत्पन्ना प्रांते सामानिकाः सुरा । षोडशाब्ध्युपमायुष्का दिव्यभोगवशीकृता ॥ २९० ॥ तत प्रच्युत्य शखोभूद्बलदेवो हलायुध ।
मृगावत्याख्यविषये दशार्णपुरभूपतेः ॥ २९१ ॥ देवसेनस्य नोत्पन्ना धनदेव्याश्च देवकी । त्व सा नदयशा लीलमुपगम्य निदानतः ॥ २९२ ॥ भद्रिला
ख्यपुरे देशे मलयेऽजनि रेवती । सुदृष्टिश्रेष्ठिन श्रेष्ठा श्रेष्ठिनी सालकाख्यया ॥ २९३ ॥ प्राक्तना. षट्कुमाराश्च यमीभूतास्त्रय त्रय । तदानीमेव शक्रस्य

और निर्नामक सब विरक्त हुए और सबने दीक्षा धारण करली । तथा इनके साथ साथ पुत्रोंके स्नेह और अपनी इच्छासे
नंदयशा और रेवती धायने भी सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली । एक दिन उन दोनों अर्जिकाओं
ने अपनी मूर्खतासे निदान किया नंदयशाने तो यह निदान किया कि दूसरे जन्ममें भी ये मेरे पुत्र हों और रेवतीने यह
निदान किया कि मैं इनका पालन करूं । तदनंतर सब तपश्चरण कर और अपनी योग्यताके अनुसार आराधनाओंका
आराधन कर आयुके अंतमें महाशुक्र विमानमें सामानिक जातिके देव हुए, सोलह सागरकी उनकी आयु थी और वे सदा
दिव्य भोगोका अनुभव करते थे ॥ २८४--२९० ॥ वहांसे च्युत होकर शंखका जीव तो बलभद्र बलदेव हुआ है, नंदयशा
का जीव मृगावती देशमें दशार्णपुर नगरके राजा देवसेन रानी धनदेवीके तू देवकी हुई है, निदानके कारण तूने देव
पर्यायसे स्त्री पर्याय पाई है । रेवतीका जीव मलयदेशके भद्रिलपुर नगरके शेठ सुदृष्टिके अलिका नामकी श्रेष्ठ शेठानी हुई
है । छहो राज पुत्रोंके जीव तेरे दो दो कर तीन वारमें छह यमल पुत्र हुए । उसी समय कंसके डरसे और इंद्रकी आज्ञासे
नैगमर्षी नामके देवने उन पुत्रोंको उठा कर अलका नामकी शेठानीके घर रख दिया इसलिये अलकाने ही उन पुत्रोंका
पालन किया । देवदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु ये उनके नाम हैं ये छहों भाई इसी जन्म
से मुक्त हो जायगे ॥ २९१--२९६ ॥ ये छहों भाई नई अवस्थामें ही दीक्षा धारण कर आहारके लिये नगरमें आए
थे इस लिये उन्हे देख कर उनमें तेरा पूर्व जन्मका चला आया स्नेह उत्पन्न हो आया है ॥ २९७ ॥ निर्नामकने तपश्चरण
करते समय स्वयंभू नामके नारायणके ऐश्वर्यको देखकर निदान किया था इसलिये उसका जीव कंसका शत्रु कृष्ण हुआ

अस्ति द्वादश ग्रामान् महीशो मांसलेक्षुप । स कदाचित्सुधर्मोख्ययत्यभ्यासे श्रुतागमः ॥ २७२ ॥ श्रद्धाय बोधिमाधाय राज्यं मेघरथे सुते । नियोज्य संयतो जातः सुतोपि श्रावकोऽजनि ॥ २७३ ॥ तत सूपकरग्रामानेकशेषं समाहरत् । सोन्येद्युर्वेदवैरः सन् सर्वसंभारसस्कृतं ॥ २७४ ॥ घोषातकीफलं पक्वं मुनीन्द्र तमभोजयत् । ऊर्जयंतगिरौ सोपि तन्निमित्त गतासुकः ॥ २७५ ॥ सम्यगाराध्य संभूतः कल्पातीते ऽपराजिते । अघन्यतद्गतायुः समहमिंद्रो महर्द्धिकः ॥ २७६ ॥ सूपकारोपि कालांते तृतीयनरकं गत । ततो निर्गत्य संसारे सुदु ससुचिरं भ्रमन् ॥ २७७ ॥ द्वीपेस्मिन्भारते क्षेत्रे विषये मलयाह्वये । पलाशकूटग्रामस्य यक्षदत्तगृहेशिनः ॥ २७८ ॥ सुतो यक्षादिदत्ताया यक्षनामा बभूव सः । तयोर्यक्षिलसंज्ञश्च सूनुरन्योन्वजायत ॥ २७९ ॥ तयोः स्वकर्मणा ज्येष्ठो नाम्ना निरनुकंपक । सानुकंपो परोज्ञायि जनैरर्थानुसारिभि ॥ २८० ॥ कदाचित्सानुकंपेन वार्यमाणोपि सोपर । मार्गस्थिताघसर्पस्य दयादूरो वृथोपरि ॥ २८१ ॥ शकटं भाण्डसपूर्ण वलीवर्दैरयोजयत् । सर्पस्तन्मर्दितोऽकामनिर्जरो विगतासुक ॥ २८२ ॥ पुरश्वेतविकानाम्नि वासवस्य

पहुंचे और उस आहारके कारण वे वहींपर प्राणांत हो गये उन्होंने अंतमें आराधनाओंका अच्छीतरह आराधन किया था इसलिये वे पंचोनुत्तरके अपराजित विमानमें जघन्य आयुको पाकर वडी ऋद्धिको धारण करनेवाले अहमिंद्र हुए॥२७२-२७६॥ वह रसोइया भी आयुके अंतमें मरकर तीसरे नरक गया वहांसे निकलकर अनेक दुख भोगते हुए उसने वहुत दिनतक संसारमें परिभ्रमण किया ॥ २७७ ॥ फिर इसी भरतक्षेत्रके मलय देशमें पलाशकूट गांवके एक यक्षदत्त नामके गृहस्थीके उसकी यक्षदत्ता नामकी स्त्रीसे यक्ष नामका पुत्र हुआ । उन्हीं यक्षदत्त और यक्षदत्ताके यक्षिल नामका दूसरा छोटा पुत्र हुआ ॥ २७८–२७९ ॥ उन दोनों भाइयोंमें अपने २ कर्मोंके उदयसे वडा भाई तो निर्दय था इसलिये लोग उसकी क्रियाओंके अनुसार उसे निरनुकंप (दयारहित) कहते थे और छोटा भाई दयावान था इसलिये लोग उसे सानुकंप कहते थे ॥ २८० ॥ किसी एक दिन वह निरनुकंप वर्तनोंसे भरी हुई गाडी बैलोंसे जोतकर ले जा रहा था और मार्गमें एक धा सर्प बैठा था, निरनुकंपके हृदयमें दया तो थी ही नहीं इसलिये सानुकंपके वार वार मना करनेपर भी उसने वह गाडी उस सर्पके ऊपर होकर निकालदी । वह सर्प उसके बोझसे दबकर अकाम निर्जरा करता हुआ मर गया और मरकर श्वेतविका नाम नगरमें राजा वासवकी वसुंधरी रानीसे यह नंदयशा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई ॥२८१–८३॥ तदनंतर उस निरनुकंपको सानुकंपने वहुत समझाया कि तुझे दुःख देनेवाले कार्य कभी नहीं करने चाहिये । ये सब बातें सुनकर निरनुकंप कुछ शांत हुआ और आयुके अंतमें मरकर यह निर्नामक उत्पन्न हुआ है । इसलिये पूर्वभवमें कमाये हुए पापकर्मके उदयसे निर्नामकपर यह नंदयशा क्रोध करती है। मुनिराज द्रुमसेनकी ये बातें सुन कर राजाके छहों पुत्र तथा शंख

सुभानुर्धनद स्वयं । तत्पुराधिपतेर्गंगदेवनामधरेशिन ॥ २६१ ॥ तद्देव्या नदयशस शेपास्ते यमलाह्वयः । गंगाख्यो नंददेवश्च खड्गमित्रश्च नंदवाक् ॥ २६२ ॥ सुनदो नदिषेणश्च जाता त्रिगवा परस्पर.। गर्भेन्यस्मिन् महीनाथस्तस्यामासीन्निरुत्सुकः ॥ २६३ ॥ तदौदासीन्यमुत्पन्न पुत्रहेतुकमित्यसौ । न्यविशद्रेवती धात्रीं तदपत्यनिराकृतौ ॥ २६४ ॥ त सा नदयशो ज्येष्ठवधुमत्यै समार्पयत् । निर्नामकाख्य तत्राप्यपरेद्युर्नंदने वने ॥ २६५ ॥ प्रपश्यन् सह भुजानान् पण्महीशसुतान् सम । त्वमप्यमीभिर्भुंक्ष्वेति शखेन समुदाहृतः ॥ २६६ ॥ स्थितो भोक्तुमसौ नंदयशास्त वीक्ष्य कोपिनी । कस्यायमिति पादेनाक्षस्ताचन्वीयतु शुच ॥ २६७ ॥ शखनिर्नामकौ राज्ञा कदाचित्सह वदितु । द्रुमसेनमुनिं यातावबधिज्ञानलोचन ॥ २६८ ॥ अभिनंद्य ततो धर्मश्रवणानतर पुन । निर्नामकाय किं नदयशा कुप्यत्यकारणं ॥ २६९ ॥ इति शखेन पृष्टोसौ मुनिरेवमभापत । सुराष्ट्रविषये राजा गिर्यादिनगराधिपः ॥ २७० ॥ अभूच्चित्ररथो नाम तस्यामृतरसायन । सूपकार पल पक्तुं कुशलोस्मै प्रतुष्टवान् ॥ २७१ ॥

नाम रक्खा । किसी दूसरे दिन ये सब लोग नंदन वनमें गये, वहा पर राजाके छहो पुत्र एक साथ बैठकर खा रहे थे। यह देख कर शंखने निर्नामकसे कहा कि तू भी इनके साथ बैठकर खा ॥ ५९--६६ ॥ शंखकी आज्ञानुसार वह उनके साथ खानेको बैठ गया, यह देखकर नंदयशाको वहुत क्रोध आया और "यह किसका लडका यहां आ गया" इसतरह कहकर उसके एक लात मारी जिससे शंख और निर्नामक दोनोंको शोक हुआ ॥ २६७ ॥ किसी एकदिन शंख और निर्नामक दोनों ही राजाके साथ साथ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले द्रुमसेन मुनिकी वंदना करनेकेलिये गये ॥ २६८ ॥ दोनोंने मुनिराजकी वंदना की, धर्मका स्वरूप सुना, और फिर शंखने पूछा कि नंदयशा निर्नामक पर विना ही कारणके क्यों क्रोध करती है। तब मुनिराज कहने लगे कि सोरठ देशके गिरपुर नगरमें चित्ररथ नामका राजा राज्य करता था उसके यहां अमृतरसायन वा सुधारसायन नामका एक रसोइया था जो कि मांस पकानेमें वडा ही निपुण था उसने मांस खिलाकर राजाको संतुष्ट किया ॥ २६९--२७१ ॥ राजा मांसका लोलुपी था इसलिये उसने उस रसोईयाको वारह गांव दे डाले । किसी एक दिन राजा चित्ररथ सुधर्म नामके मुनिके समीप गया, वहांपर उसने शास्त्रोंका रहस्य सुना, रत्नत्रय प्राप्त किया, और अपने मेघरथ पुत्रको राज्य देकर वह स्वयं मुनि हो गया। उस तत्कालीन राजा मेघरथने भी श्रावकके व्रत धारण कर लिये, इसलिये उसने एक गांवको छोडकर वाकी उस रसोइयासे सब गांव छीन लिये किसी दूसरे दिन वेही मुनिराज आहारकेलिये राजाके यहां पधारे, रसोइयाने (उनके उपदेशसे गांव छिननेके कारण) उनसे वैरकर सब मसालोंसे सुशोभितकर पकी कडवी तुंबीका आहार दिया। वे मुनिराज आहार लेकर गिरनार पर्वतपर

लक ॥ २५१ ॥ पुष्पचूलाह्वयो नदनन्वरौ गगनादिकौ । तत्रैव दक्षिणश्रेण्या नृपो मेघपुराधिप ॥ ५५२ ॥ धनंजयोस्य सर्वश्रीर्जाया तस्याः सुताभवत् । धनश्री श्रीरिवान्यैषा नत्रैवान्यो महीपति ॥ २५३ ॥ ख्यातो नंदपुराधीशो हरिषेणो हरिर्द्विषां । श्रीकातास्य प्रिया तस्यां सुतोभूद्धरिवाहन ॥ २५४ ॥ धनश्रियोयं वधेन मैथुनः प्रथितो गुणै । तत्रैव भरतेऽयोध्याया स्वयंवरकर्मणि ॥ २५५ ॥ माला सप्रापयत्प्रीत्या धनश्रीर्हरिवाहन । चक्रवास्तदयोध्यायां पुष्पदंतमहीपतिः ॥ २५६ ॥ तस्य प्रीतिंकरा देवी तत्सूनु पापपडित । धनश्रिय सुदत्तोऽलाग्निहत्य हरिवाहन ॥ २५७ ॥ तन्निर्वेगेण चित्रागदाद्याः सप्तापि संयम । भूतानदाख्यतीर्थेशपादमूले समाश्रयन् ॥ २५८ ॥ ते कालाते ऽभवन् कल्पे तुर्ये सामानिका सुरा । सप्ताब्ध्यायु स्थितिप्राते तत. प्रच्युत्य भारते ॥ २५९ ॥ कुरुजांगलदेशेस्मिन् हस्तिनाख्यपुरेभवत् । वंधुमत्या सुतः श्वेतवाहनाख्यवणिक्पतेः ॥ २६० ॥ शंखो नाम धनद्ध्यीसो

धनश्री नामकी पुत्री थी। उसी विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नंदपुर नगरमें शत्रुओंको सिंहके समान हरिषेण नामका राजा राज्य करता था, उसकी रानीका नाम श्रीकांताथा और उन दोनोंके हरिवाहन नामका पुत्र था ॥ २४८-२५४ ॥ वह गुणोंसे प्रसिद्ध हरिवाहन नातेमें भी धनश्रीका पति होने योग्य था। इसलिये उसी भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें धनश्री का स्वयंवर किया गया उसमें धनश्रीने वडे प्रेमसे हरिवाहनके गलेमें वरमाला डाली। उसी अयोध्या नगरमें पुष्पदंत नामका चक्रवर्ती राजा था उसकी प्रीतिंकरा रानीसे पापोंमें निपुण ऐसा सुदत्त नामका पुत्र था उसने उसी समय हरिवाहनको मार कर धनश्री छीन ली ॥ २५५--५७ ॥ यह सब देखकर चित्रांगद आदि सातो भाई विरक्त हुए और उन्होंने भूतानंद नामके तीर्थंकरके चरण कमलोंके समीप जाकर दीक्षा धारण करली ॥ २५८ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वे सातोंही भाई सात सागरकी आयु पाकर चौथे स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए, वहांसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रके कुरु जंगल देशके हस्तनागपुर नगरमें शेठ श्वेतवाहनके उसकी स्त्री वंधुमतीसे सुभानुका जीव शंख नामका पुत्र हुआ वह शंख धन संपदा, आदिसे स्वयं कुबेर के समान था। उसी नगरमें राजा गंगदेव राज्य करता था उसकी नंदयशा देवीसे बाकी छह भाइयोंके जीव दो दो कर तीन वारमें छह पुत्र हुए। गंग, नंददेव, खड्गमित्र, नंदकुमार, सुनंद और नंदिषेण ये उनके नाम थे, इन छहो भाइयोंमें परस्पर वहुतही प्रेम था। जव नंदयशाके सातवां गर्भ रहा तवसे ही राजा रानीसे वहुत उदास रहने लगा। रानीने समझा कि गर्भमें कोई ऐसा कुपुत्र है जिसके आतेही राजा मुझसे उदास हो गया है इसलिये उसने पुत्र होतेही उसे अलग रखनेके लिये रेवती नामकी धायको सोंप दिया और कहा कि इसे मेरी वडी वहिन वंधुमतीको सोंप आ। तदनुसार उसने वह पुत्र वंधुमतीको सोंप दिया, वंधुमतीने निर्नामिक उसका

तकाः । नार्योऽनार्याः कथं न स्युरत्यद्भुतविचेष्टिता ॥ २४२ ॥ ततो निर्विद्य संसारात्साऽनुजः स निजार्जितं । धनं दत्वा स्वकांताभ्यो वरधर्मात्तपोऽभवत् ॥ २४३ ॥ जिनदत्तार्यिकाभ्यासे तद्भार्याश्च तपो ययुः । हेतुरासन्नभव्यानां को वा न स्यात्तपोग्रहे ॥ २४४ ॥ सप्तापि काननेऽन्येद्युरुज्जयिन्याः प्रतिष्ठितान् । वज्रमुष्टिः समासाद्य प्रणम्य विधिपूर्वकं ॥ २४५ ॥ हेतुना केन दीक्षेयं भवतामित्यसौ जगौ । तेपि निवेदयामासुर्दीक्षाहेतुं यथागतं ॥ २४६ ॥ आर्यिकाणां च दीक्षायाः पृष्ट्वा मंग्यपि कारणं । उपाददे तदभ्यर्णे प्रव्रज्यामात्तबोधिका ॥ २४७ ॥ वरधर्मयतेर्वज्रमुष्टिश्शिष्यत्वमेयिवान् । प्रांते संन्यस्य सप्तापि त्रायस्त्रिंशाः स्वराड्भिमे ॥ २४८ ॥ त्रिसागरोपमायुष्कास्ततश्च्युत्वा स्वपुण्यतः । भारते धातकीखंडे प्राच्येपाक् श्रेणिविश्रुते ॥ २४९ ॥ नित्यालोकपुरे श्रीमच्चित्रचूलमहीपतेः । ज्यायान् देव्या मनोहर्यां सूनुश्चित्रांगदोऽभवत् ॥ २५० ॥ इतरेपि तयोरेव त्रयस्ते जज्ञिरे यमाः । ध्वजवाहनशब्दांतगरुडौ मणिचू-

रूप हैं इस लिये अत्यंत अद्भुत चेष्टाओंको धारण करनेवाली इन स्त्रियोंको म्लेच्छ क्यों नहीं कहना चाहिये ॥ २४२ ॥ इस प्रकार सुभानु अपने सब भाइयों सहित संसारसे विरक्त हुआ उसने सब कमाया हुआ धन स्त्रियोंको दे दिया और फिर सबने वरधर्म मुनिके समीप दीक्षा धारण करली ॥ २४३ ॥ यह देखकर उनकी स्त्रियोंने भी जिनदत्ता नामकी आर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है क्योंकि निकट भव्योंको तपश्चरण ग्रहण करनेके लिये क्या कारण नहीं हो जाता है अर्थात् उनके लिये सब कुछ कारण हो जाता है ॥ २४४ ॥ किसी एक दिन वे सातों ही मुनि उज्जयिनी नगरीके वनमें विराजमान थे इतनेमें ही वज्रमुष्टि आया और विधिपूर्वक नमस्कार कर पूछने लगा कि हे स्वामी आपने किस कारणसे दीक्षा ली है । इसके उत्तरमें उन मुनिराजने भी दीक्षाका यथार्थ कारण बतला दिया ॥ २४५–४६ ॥ इधर मंगीने भी उन आर्जिकाओंसे दीक्षा लेनेका कारण पूछा और कारण जानने पर उसे बोध हुआ तथा उसने उन्हीं आर्जिकाओंके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २४७ ॥ वज्रमुष्टिने भी वरधर्म मुनिका शिष्य बनकर दीक्षा धारण करली। वे सातो भाई आयुके अंतमें संन्यास धारण कर पहिले स्वर्गमें दो सागरकी आयु पाकर त्रायस्त्रिंश जातिके देव हुए। वहां से चयकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे धातकी खंडके पूर्व भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके नित्यलोक नगरके राजा श्रीमान् चित्रचूल रानी मनोहरीके बडा सुभानुका जीव चित्रांगद नामका पुत्र हुआ । बाकी छह भाइयोंके जीवभी इन्हीं चित्रचूल और रानी मनोहरीके दो दो करके तीनवारमें छह पुत्र हुए । गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगननंदन (नभोनंदन) और गगनचर ये उनके नाम थे । उसी धातकी द्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके मेघपुर नगरमें राजा धनंजय राज्य करता था, उसकी रानीका नाम सर्वश्री था, उसके दूसरी लक्ष्मीके समान

दर्शयितावदत्सर्वमात्ममंगीविचेष्टित । तस्सुभानुः समाकर्ण्य स्त्रीनिंदामकरोदिति ॥ २३३ ॥ स्थान ता एव निंदायाः परत्रासक्तिमागताः । वर्णमात्रेण राजत्यो रंजयंत्यो परान् भृश ॥ २३४ ॥ आदाय कृत्रिम रागं रागिणां नयनप्रियाः । बिभ्रतीह भृश भूषारम्याश्चित्राकृती- स्त्रियः ॥ २३५ ॥ सुख विषयज प्राप्तुं प्राप्तमाधुर्यमाश्रिता । किंपाकफलमाला वा काम्र हन्युर्मनोरमाः ॥ २३६ ॥ मातरः केवलं नेताः प्रजानामेव योषित । दोषाणामपि दुःशिक्षा-दुर्विया इव दु खदा ॥ २३७ ॥ मृदवः शीतलाः श्लक्ष्णाः प्रायः स्पर्शसुखप्रदाः । भुजंग्यो वागना प्राणहारिण्यः पापरूपिका ॥ २३८ ॥ हन्याद्दक्रांत-सक्रात विषं विषभृता न वा । सर्वांगं सहसा हार्यं कांताना इति सततं ॥ २३९ ॥ परेषा प्राणपर्यंता पापिनामप्यपक्रिया । हिंसानामिव कांतानामतातीता दयाद्विषां ॥ २४० ॥ जातिमात्रेण सर्वाश्च योषितो विषमूर्तय । न ज्ञातमेतन्नीतिज्ञैः कुर्वद्भिर्विषकन्यकाः ॥ २४१ ॥ कौटिल्यकोटय क्रौर्यपर्यंताः पचपा-

निंदा करने लगा ॥ २३१-२३३ ॥ कि वास्तवमें निंदाका स्थान स्त्रियां ही हैं निंदाके सिवाय स्त्रियां और किसी योग्य नहीं हैं ये केवल रूपसे ही अच्छी दिखती हैं और रूपसे ही दूसरे लोगोंको बहुत जल्दी मोहित कर लेती हैं ॥ २३४ ॥ बनावटी राग प्रगट करनेसे ही ये स्त्रियां रागी लोगोंके नेत्रोंको अच्छी लगती हैं और मनोहर आभूषण धारण कर चित्र विचित्रका वेश धारण करती हैं ॥ २३५ ॥ मधुरता मिले हुए विषयजन्य सुखको प्राप्त करनेके लिये आश्रयभूत ऐसी किंपाकफलकी मालाके समान मनोहर ये स्त्रियां भला किनको न मार सकेंगी अर्थात् सबको मार सकेंगी ॥ २३६ ॥ ये स्त्रियां केवल अपनी संतानोंकी ही माता नहीं हैं किंतु सब दोषोंकी माता हैं और जिस प्रकार बुरी शिक्षासे प्राप्त हुई बुरी विद्या दुःख देती है उसी प्रकार ये दुःख देनेवाली हैं ॥ २३७ ॥ जिस प्रकार सर्पिणी कोमल शीतल चिकनी तथा स्पर्श करते समय दुख देनेवाली होकर प्राण हरण करनेवाली और पापरूप होती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी कोमल शीतल चिकनी और स्पर्श करते समय सुख देनेवाली होकर प्राण हरण करने वाली और पापरूप हैं ॥ २३८ ॥ सर्पोंका विष केवल मुखमें रहता है और वह किसीको मारता है किसीको नहीं भी मारता परंतु स्त्रियोंका विष सब शरीरमें भरा है वह अकस्मात् हट नहीं सकता और निरंतर मारता ही है ॥ २३९ ॥ जिस प्रकार दयारहित पापी हिंसकोंकी निंद्य क्रियायें अंतरहित अर्थात् सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं उसी प्रकार दयारहित पापिनी स्त्रियोंकी निंद्य क्रियाएं सदा दूसरोंके प्राण लेने पर्यंत होती ही रहती हैं ॥ २४० ॥ स्त्रियां सब उत्पन्न होनेके समयसे ही विषकी मूर्तियां हैं परंतु विषकन्या बनानेवाले नीतिकारोंको यह बात मालूम नहीं है (क्योंकि यदि मालूम होती तो वे विषकन्या बनाते ही क्यों) ॥ २४१ ॥ इन स्त्रियोंमें करोडों कुटिलताएं भरी हैं अंतिम सीमा तक क्रूरता है और पांचों पाप-

मींतर्हितो द्रुमे ॥ २२१ ॥ वीक्ष्य मग्याः परीक्षार्थं तदभ्यर्णमुपागत । स्वागसदर्शन कृत्वा मधुरालापचेष्टितैः ॥ २२२ ॥ लीलाविलोकनैर्हासैर्व्यंग्याद्विभ्रमणं
भृशं । साप्याह भवता सार्द्धमागमिष्यामि मां भवान्॥ २२३ ॥ गृहीत्वा यात्विति व्यक्तं श्रुत्वा तत्त्वत्पतेरहं । विभेमि तन्न वक्तव्यमिति तेनाभिभाषिता ॥
२२४ ॥ माभैषीस्त्वं वराकोसौ किं करिष्यति भीलुक । ततो येन तवापायो नस्यात्तत्क्रियते मया ॥ २२५ ॥ इत्यन्योन्यकथाकाले हस्ताहितसरोरुह· ।
वज्रमुष्टि· समागत्य करवालं प्रियाकरे ॥ २२६ ॥ निधाय मुनिपादाब्जद्वयमभ्यर्च्य भक्तितः । आनमंतं प्रिया तस्य प्रहर्तुमसिमुद्दधे ॥ २२७ ॥ करेण
सूरसेनोर्हस्ततत्करासिं तदैव स । आच्छिद्य न्यपतद् भूमौ सूरसेनकरांगुलिं ॥२२८॥ वज्रमुष्टिस्तदालोक्य माभैषीरित्यभाषत । भीताहमिति सा शापादिता-
स्मै वृथोत्तरं ॥ २२९ ॥ तदैव सूरसेनोपि भ्रातृभिर्लब्धवित्तकैः । चौर्येणाग भवद्भाग गृहाणेत्युदित पृथक् ॥ २३० ॥ स सद्योति विरक्तः सन् धनेन प्र-
योजन । ससारादतिभीतोह तद् गृहीष्यामि संयम ॥ २३१ ॥ इत्यब्रवीदय हेतुः कस्तपोग्रहणे तव । वदेत्युक्त· स तैश्छिन्नं निजहस्तांगुलीव्रण ॥ २३२ ॥

लीला पूर्वक उसे देखा और हंसी मजाक किया, इन सब वातोंसे उसे शीघ्र ही अपने वश कर लिया । तब वह मंगी कहने लगी कि मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूं आप मुझे लेकर निकल चलो, मंगीकी ऐसी अत्यंत स्पष्ट वात सुनकर सूरसेन कहने लगा कि मैं तेरे पतिसे वहुत डरता हूं इसलिये तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये । इसके उत्तरमें मंत्रीने कहा कि उससे तुम विल्कुल मत डरो वह नीच डरपोक तुम्हारा क्या कर सकता है, अच्छा जिससे तुम्हारी कुछ हानि न हो ऐसा उपाय मैं कर देती हूं ॥ २२१–२५ ॥ इन दोनों की इसतरह वात चीत हो पाई थी कि इतनेमें ही हाथमें कमल लेकर वज्रमुष्टि आगया, आते ही उसने तलवार तो अपनी स्त्री मंगीके हाथमें देदी और आप वडी भक्तिसे मुनिराजके दोनों चरण कमलोंकी पूजाकर नमस्कार करने लगा, उसी समय मंगीने उसे मारनेके लिये तलवार उठाई ॥२२६–२७॥ परंतु सूरसेनने उसी समय अपने हाथसे वह तलवार रोक ली जिससे उसकी सब उंगली कटकर जमीन पर गिर गई ॥२२८॥ उसे देखकर वज्रमुष्टिने कहा कि प्रिया डरो मत, इसके उत्तरमें मंगीने डर कर झूठ ही कह दिया कि मैं डर गई थी ॥ २९ ॥ उसी समय चोरीका धन लेकर सूरसेनके सब भाई आगये और सूरसेनसे कहने लगे कि हे भाई ! तू अपना भाग ले ले ॥ २३० ॥ परंतु सूरसेन उस समय अत्यंत विरक्त हो चुका था इस लिये वह कहने लगा कि मुझे अब धनसे कुछ प्रयोजन नहीं है मैं तो संसारसे वहुत डर चुका हूं इसलिये संयम धारण करूंगा । तब सब भाइयोंने पूछा कि भाई तेरे संयम धारण करनेका कारण क्या है सो तो सब कह सुना, तब सूरसेनने अपनी कटी हुई हाथकी उंगलियोंका घाव दिखलाया और अपनी तथा मंगीकी सब चेष्टाएं कह सुनाईं । उसे सुन कर सुभानु नीचे लिखे अनुसार स्त्रियोंकी

तत्कालसुखलिप्सया । वप्रश्री सह मालाभिः कालाहिं कलशेक्षिपत् ॥ २१२ ॥ स्नुषाभ्यसूयया कार्यं नाम नास्तीति योषिता । मगी चोद्यानयानार्थं माल्यादानसमुद्यता ॥ २१३ ॥ दष्टा वसंतकालोग्रविषेण विषिभर्तृणा । विषव्याप्तशरीरत्वादस्पदाभूदसौ तदा ॥ २१४ ॥ पलालवर्त्यां आवेष्टय स्नुषां प्रेतवनेऽत्यजत् । वज्रमुष्टिर्वनक्रीडाविरामेभ्येत्य पृष्ठवान् ॥ २१५ ॥ मगी क्वेत्याकुलो माताप्यसद्वार्ता न्यवेदयत् । सशोक ससमुत्खातनिशातकरवालधृत् ॥ २१६ ॥ तामन्वेष्टु व्रजन् रात्रौ श्मशाने योगमास्थित । वरधर्ममुनिं दृष्ट्वा नमन् भक्त्या कृताजलिः ॥ २१७ ॥ यदि पूज्य प्रिया प्रेक्षे सहस्रदलवारिजैः । त्वा समभ्यर्चयिष्यामीत्याशास्य गतवास्तदा ॥ २१८ ॥ वीक्ष्यतेस्म प्रियामीषच्चेतना विषदूषिता । पलालवर्तिं मुक्त्वाशु समानीयातिक मुनेः ॥ २१९ ॥ तेन तत्पादसंस्पर्शभेषजेनाविषीकृता । सापि सद्यः समुत्थाय प्रियस्य प्रियमातनोत् ॥ २२० ॥ गुरुप्रीतमनस्यस्मिन्नंभोजार्थं गते सति । सूरसेनस्तदा सर्वं तत्क-

और उसने माला लेनेके लिये घडेमें हाथ डाला परंतु उसकी सासु वप्रश्रीने उससे ईर्षाकर पहिलेसे ही उस घडेमें माला के साथ एक काला सर्प रख दिया था सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्रियोंसे न हो सके। हाथ डालते ही वह उस वसंतऋतुके उग्र विषको धारण करनेवाले नागराजने काट खाई। उसीसमय उसके सब शरीरमें विष फैल गया और वह चेष्टारहित हो गई ॥ २११–२१४ ॥ तदनंतर वह वप्रश्री सासु अपनी पतोहू मंगीके शरीरको पलाल (एक-तरहकी लंबी घास) से ढककर स्मशानमें छोड आई। इधर वनक्रीडाकर वज्रमुष्टि घर आया और मातासे पूछा कि मंगी कहां है। इसके उत्तरमें माताने इधर उधरकी झूठमूठकी बातें बना दीं। मंगीके न मिलनेसे वज्रमुष्टिको बहुत शोक हुआ, वह नंगी तलवार लेकर रातमें ही उसे ढूंढनेकेलिये निकला। श्मशानमें पहुंचनेपर उसे योग धारण किये हुए वरधर्म मुनिके दर्शन हुए, वज्रमुष्टिने बडी भक्तिसे हाथ जोडकर उन्हें नमस्कार किया और आशापूर्वक प्रतिज्ञा की कि हे पूज्य यदि मैं अपनी स्त्रीको देख पाऊं तो हजार दलवाले कमलसे आपकी पूजा करूं। इसतरह कहकर वह निकला देखते देखते आगे चलकर उसने देखा कि विषसे दूषित किंतु कुछ जीवित स्त्री पडी है उसने उसीसमय उसके चारों ओरका पलाल हटाया और वह शीघ्र ही उसे उन मुनिराजके समीप ले आया ॥ २१५–२१९ ॥ वज्रमुष्टिने मुनिराजके चरणकमलोंकी स्पर्शरूपी औषधिसे वह स्त्री विषरहित करली इसलिये वह शीघ्र ही उठी और उसने अपने पतिको प्रसन्न किया ॥ २२० ॥ तदनंतर जिसके मनमे मुनिराजके चरण कमलोंका वहुत वडा प्रेम है ऐसा वह वज्रमुष्टि तो कमल लेनेके लिये चला गया और सूरसेन वृक्षकी आडमें छिपा हुआ ये सब कर्म देख रहा था इसलिये वह उस मंगीकी परीक्षा करनेके लिये उसके समीप गया। वहां जाकर उसने अपना शरीर दिखाया, मीठी मीठी बातें बनाईं, अच्छी २ चेष्टा दिखलाईं

मिति यातवान् । इति सोपि कथामित्थं वक्तुं प्रारब्धवान् गुणी । जंबूपलक्षिते द्वीपे क्षेत्रेस्मिन्मथुरापुरे ॥२०१॥ शौर्यदेशाधिपः सूरसेनो नाम महीपतिः । तत्रैव भानुदत्ताख्यश्रेष्ठिनः सप्त सूनवः ॥ २०२ ॥ मातेवां यमुनादत्ता सुभानुः सकलाग्रिमः । भानुकीर्तिस्ततो भानुषेणोभूद्भानुसूरवाक् ॥ २०३ ॥ पञ्चमः सूरदेवाख्यः सूरदत्तस्ततोप्यभूत् । सप्तमः सूरसेनाख्यः पुत्रैः स्वैस्तावलंकृतौ ॥ २०४ ॥ सपुण्यफलसारेण जग्मतुर्गृहमेधिता । धर्ममन्येद्युरभ्यर्णादाचार्योभयनंदिन ॥ २०५ ॥ श्रुत्वा नृपो वणिक्मुख्योप्यग्रहीष्टाशु संयमं । जिनदत्तार्यिकाभ्यर्णे श्रेष्ठिभार्या च दीक्षिता ॥ २०६ ॥ सप्तव्यसनसंपन्ना जाता सप्तापि तत्सुता । पापान्मूलहरा भूत्वा राज्ञा निर्वासिता पुरात् ॥२०७॥ अवंतिविषयं गत्वा विशालाया श्मशानके । सूरसेनमवस्थाप्य शेषाश्चोरयितुं पुरं ॥ २०८ ॥ प्राविशन्प्रकृत तस्मिन्निदमन्यदुपस्थित । तत्पुराधिपतिर्भूपो बभूव वृषभध्वज. ॥२०९॥ भृत्यो दृढप्रहार्योख्य स सहस्रभट पट्टु । वप्रश्रीरस्य जायासीद्वज्रमुष्टिरयोः सुत ॥ २१० ॥ विमलायाः सुता मंगी विमलेंदुविशःश्रसा । तत्प्रिया भूभुजा सार्द्धं वसते वनमन्यदा ॥ २११ ॥ विहर्तुमुद्यताः सर्वे

इसतरह पूछनेपर गणधर भी उस कथाको इसतरह कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके मथुरा नगरमें शौर्य देशका स्वामी सूरसेन नामका राजा रहता था। उसी नगरमें भानुदत्त नामके शेठके उसकी यमुनादत्ता स्त्रीसे सात पुत्र हुए थे उनमेंसे सुभानु सबसे वडा था, दूसरा भानुकीर्त्ति, तीसरा भानुषेण, चौथा भानुसूर, पांचवां सूरदेव, छट्ठा सूरदत्त, और सातवां सूरसेन था। इन सातौ पुत्रोंसे वे दोनों ही मा वाप वडे ही सुशोभित थे और अपने पुण्य कर्मके उदयसे गृहस्थ धर्मका पालन करते थे। किसी दूसरे दिन श्रीअभयनंदी आचार्यके समीप राजाने दीक्षा लेली उसे सुनकर सेठ भानुदत्तने भी संयम धारण कर लिया और सेठकी स्त्री यमुनादत्ताने भी जिनदत्ता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ २०१–२०६ ॥ मा वापके दीक्षा ले जानेपर वे साती ही शेठके पुत्र सातों व्यसनोंमें तल्लीन हो गये और पाप कर्मके उदयसे उन्होंने अपने पिताका सब धन नष्ट कर दिया यह देखकर राजाने भी उन्हें अपने नगरसे निकाल दिया ॥२०७॥ वहांसे चलकर वे सब उज्जयनी नगरीमें पहुंचे वहां जाकर सूरसेनको तो वहांके श्मशानमें छोडा और वाकी छह भाई चोरी करनेकेलिये नगरमें गये। उन भाइयोंके चले जानेपर श्मशानमें एक घटना और हो गई और वह इसतरहसे है—उससमय उज्जयनी नगरीमें राजा वृषभध्वज राज्य करता था उसके एक दृढप्रहार्य नामका एक सहस्रभट योद्धा था जो कि वहुत ही चतुर था उसकी वप्रश्री नामकी स्त्रीसे वज्रमुष्टि नामका पुत्र था ॥ २०८–२१० ॥ उसी नगरमें सेठ विमलचंद्रकी स्त्री विमलासे उत्पन्न हुई मंगी नामकी पुत्री थी वह वज्रमुष्टिको व्याही गई थी। किसी दिन वसन्त ऋतुमें उस समयका सुख लूटनेकेलिये सब लोग राजाके साथ वनमें विहार करनेके लिये तैयार हुए। मंगी भी वनमें जानेकेलिये तैयार हुई

तमितिम्यात्यकेशवः ॥ १८९ ॥ बलदेवश्च संप्राप्य स्वपर्वर्धिसमन्वितौ । वंदित्वा श्रुतधर्माणौ प्रीतिवंतौ ततो हरिः ॥ १९० ॥ प्राहुर्नास्तीति यं केचित्केचिन्नित्यं क्षणस्थितिं । केचित्केचिदणु चाणोः केचित्स्यामाकसम्मितं ॥ १९१ ॥ केचिदङ्गुष्ठमातव्यं योजनानां समुच्छ्रितं । केचिच्छतानि पंचैव केचिंद्गगनवद्विभु ॥ १९२ ॥ केचिदेकं परे नाना परे ज्ञमपरेऽन्यथा । तं जीवाख्यं प्रति प्राय संदेहोस्तीत्यधीश्वरं ॥ १९३ ॥ पप्रच्छ सोपि नैतेषु कोपि विद्यस्य लक्षणं । ध्रौव्योत्पादव्ययात्मासौ गुणी सूक्ष्मस्वकृत्यभुक् ॥ १९४ ॥ ज्ञातास्तदेहसम्मेय स्वयंवेद्य सुखादिभिः । अनादिकर्मसंबंधः सरन् गतिचतुष्टये १९५ कालादिलब्धिमासाद्य भव्यो नष्टाष्टदुर्मद । सम्यक्त्वाद्यष्टकं प्राप्य प्राग्देहपरिमाणभृत् ॥ १९६ ॥ ऊर्ध्वव्रज्यास्वभावत्वाज्जगन्मूर्द्धनि तिष्ठति । इति जीवस्य सद्भाव जमाद जगता गुरुः ॥ १९७ ॥ तन्निशम्यास्तिका सर्वे तथेति प्रतिपेदिरे । अभव्या दूरभव्याश्च मिथ्यात्वोदयदूषिता ॥ १९८ ॥ नामुचत्केचनानादिवासना भववर्द्धिनीं । देवकी च तथापृच्छद्वरदत्तगणेशिन ॥ १९९ ॥ भगवन् मद्गृहं द्वौ द्वौ भूत्वा भिक्षार्थमागता । बाधवेष्विव पट् स्वेषु स्नेहः कि-

हैं, कोई कोई योजन लंबा चौडा मानते हैं कोई पांचसौ योजन मानते हैं और कोई आकाशके समान व्यापक मानते हैं ॥ १८९–१९२ ॥ इसीतरह कोई एक मानते हैं कोई अनेक मानते हैं, कोई ज्ञानस्वरूप मानते हैं कोई अज्ञानस्वरूप ही मानते हैं इसतरह प्राय: जीवका स्वरूप अनेक तरहसे मानते हैं हे स्वामी इसलिये मुझे संदेह है आप कृपाकर इसका स्वरूप कहिये इसतरह कृष्णने पूछा तव तीनों लोकोंके गुरु भगवान कहने लगे कि जीवका स्वरूप जो ऊपर कहा गया है उनमेंसे एक भी ठीक नहीं है। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप है जो गुणवाला है सूक्ष्म है अपने किये हुए कर्मोंका भोगनेवाला है, ज्ञाता है, अपने शरीरके परिमाणके वरावर है, और सुख दुःख आदिके द्वारा स्वयं वेद्य है अर्थात् मैं सुखी मैं दुखी आदि अनुभवके द्वारा अपने आप जाना जाता है वही जीव है। इस जीवके साथ अनादि कालसे कर्मोंका संबंध लग रहा है उसीसे यह चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता है परंतु काल आदि लब्धियोंको पाकर भव्य जीवोंके आठों कर्म नष्ट हो जाते हैं सम्यक्त्व आदि आठों गुण प्रगट हो जाते हैं। उनका आकार अंतिम शरीरके समान (कुछ कम) रह जाता है, और ऊर्ध्वगमन स्वभाव (ऊपरको जानेका स्वभाव) होनेसे वे लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं। इसप्रकार भगवानने जीवकी सत्ताका निरूपण किया ॥ १९३–१९७ ॥ उसे सुनकर आस्तिक जीवोंने तो उसे उसी तरह मानलिया परंतु जो कोई अभव्य थे अथवा दूरभव्य थे उन्होंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दूषित होकर अनादिकालसे लगी हुई संसारको बढानेवाली वासना नहीं छोडी। तदनंतर देवकीने वरदत्त गणधरसे पूछा कि हे भगवान् मेरे घर दो दो करके छह मुनिराज आहारकेलिये पधारे उनमें अपने कुटंवियोंके समान मुझे प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ था ॥ १९८–२००॥

ताडितदुदुभि । ध्वान मनोहरं साधुदानघोषणपूर्वक ॥ १७८ ॥ एवं तपस्यस्तस्य षट्पंचाशद्दिनप्रमे । छद्मस्थसमये याते गिरौ रैवतकाभिधे ॥ १७९ ॥ पष्ठोपवासयुक्तस्य महावेणोरधः स्थित । पूर्वेन्हे श्वयुजे मासि शुक्लपक्षादिमे दिने ॥ १८० ॥ चित्रायां केवलज्ञानमुदपद्यत सर्वग । पूजयंति स्म त देवाः केवलावगमोत्सवे ॥ १८१ ॥ वरदत्तादयोऽभूवन्नेकादश गणेशिनः । चतुःशतानि पूर्वज्ञा श्रुतज्ञानाब्धिपारगाः ॥ १८२ ॥ शून्यद्वितयवस्वेकैकमितास्तस्य शिक्षकाः । शून्यद्वितयपचैकमितास्त्रिज्ञानलोचनाः ॥ १८३ ॥ तावत पचमज्ञाना विक्रियर्द्धिसमन्विता । शताधिकसहस्र तु मन पर्ययबोधनाः ॥१८४॥ शतानि नव विज्ञेया वादिनोष्टशतानि च । अष्टादश सहस्राणि ते सर्वेपि समुच्चिता ॥ १८५ ॥ यक्षी राजमती कात्यायन्याद्याद्याखिलार्यिका । चत्वारिंशत्सहस्राणि श्रावका लक्षयेक्षिता ॥ १८६ ॥ त्रिलक्षश्राविका देवा देव्यश्चासख्ययोदिता । तिर्यंचः सख्यया प्रोक्ता गणैर्द्विःषड्मितैरपि ॥ १८७ ॥ परीतो भव्यपद्माना विकाश जनयन्मुद । धर्मोपदशनार्कांशुप्रसारेणाघनाशिना ॥ १८८ ॥ विश्वान् देशान् विहृत्याते प्राप्य द्वारावतीं कृती । स्थितो रैवतकोद्याने

वस्थाके छप्पन दिन निकलगये तब वे रैवतक (गिरनार) पर्वतपर महावेणुके (वांसके) वृक्षके नीचे तेलाका नियम लेकर विराजमान हुए और वहींपर उन्हें आसोज (कार) पडिवाके दिन सवेरेके समय चित्रा नक्षत्रमें सब लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्रगट हुआ। उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञानकल्याणका उत्सव मनाया और उनकी पूजा की ॥ १७९–१८१ ॥ उनकी सभामें वरदत्तको आदि लेकर ग्यारह गणधर थे, तथा चारसौ श्रुतज्ञानरूपी महासागरके पारगामी ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे ॥ १८२ ॥ इसीतरह ग्यारह हजार आठसौ शिक्षक थे, और पंद्रहसौ मति श्रुत अवधि इन तीनों ज्ञानोंको धारण करनेवाले थे, ॥ १८३ ॥ इसीप्रकार पंद्रहसौ केवलज्ञानी थे, ग्यारहसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, नौ सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे, और आठसौ वादी थे। इस तरह सबमिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे ॥ १८४–१८५ ॥ यक्षी राजमती कात्यायनी आदि चालीस हजार अर्जिकाएं थीं, एकलाख श्रावक थे तीनलाख श्राविकायें थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे, इसप्रकारकी बारह सभाओंसे सुशोभित वे भगवान् भव्यरूपी कमलोंको बार बार प्रफुल्लित करने लगे और धर्मोपदेश देनेकेलिये उन्होंने पापोंको नाश करनेवाला विहार किया ॥ १८६–१८८ ॥ वह विहार सब देशोंमें किया। अंतमें वे कृतकृत्य भगवान द्वारावती नगरीमें आए और रैवतक नामके उद्यानमें आ विराजमान हुए यह बात सुनकर कृष्ण और बलभद्र अपनी सब विभूतिसहित दर्शन करनेके लिये गये वहांपर जाकर भगवानकी वंदनाकी धर्मका स्वरूप सुना और दोनों भाई बडे ही प्रसन्न हुए। तदनंतर कृष्ण कहने लगे कि हे भगवान् ! जीवको कोई तो मानते ही नहीं, कोई नित्य मानते हैं कोई क्षणिक मानते हैं कोई सरसोंके समानमानते हैं कोई अंगूठेके समान मानते

निर्बंध निवृत्य निजमदिरं । प्रविश्याविर्भवद्बोधिस्तत्कालोपगतामरैः ॥ १६७ ॥ बोधित समतीतामभवानुस्मृतिवेपितः । तदैवागत्य देवेंद्रा कृतनिष्क्रमणोत्सव ॥ १६८ ॥ शिविकां देवकुर्वाख्यामारुह्यामरवेष्टितां । सहस्राम्रवणे षष्ठानशन श्रावणे सिते ॥ १६९ ॥ पक्षे चित्राख्यनक्षत्रे षष्ठया सायाह्नमाश्रित । शतत्रयकुमाराब्दव्यतीतौ सह भूभुजा ॥ १७० ॥ सहस्रेण समाधाय संयम प्रत्यपद्यत । चतुर्थज्ञानधारी च बभूवासन्नकेवल ॥ १७१ ॥ संध्येव भानुमस्ताद्रावनु राजमतिश्च त । यथा वाचापि दत्तानां न्यायोय कुलयोषितां ॥ १७२ ॥ स्वदु खेनापि निर्विण्णः श्रयते न जनः पर । परदुःखेन संतोमी त्यजत्येवमहो श्रियं ॥ १७३ ॥ बलकेशवमुख्यावनीशाः संपूज्य संस्तवे । ससुरेशास्तमीशान स्वं धाम समुपाश्रयन् ॥ १७४ ॥ पारणादिवसे तस्मै वरदत्तो महीपतिः । कनकाभः प्रविष्टाय पुरीं द्वारावतीं सते ॥ १७५ ॥ श्रद्धादिगुणसपन्नः प्रतीच्छादिनवक्रिय । आदिताम मुनिप्राह्यं पंचाश्चर्याणि चाप सः ॥ १७६ ॥ कोटिर्द्वादश रत्नाना सार्द्धाः सुरकरच्युता । वृष्टिं सौमनसीं वायु मायादित्रिगुणान्वितं ॥१७७॥ घनांतरितकायानाममि-

भगवान देवोंके द्वारा उठाई हुई देवकुरु नामकी पालकीपर सवार होकर सहस्राम्र वनमें गये और उन्होंने श्रावण शुक्ला पष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय तेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की। अपने कुमार कालके तीनसौ वर्ष बीत जानेपर उन्होंने दीक्षा धारण की थी और उनके साथ एक हजार राजा दीक्षित हुए थे। उसीसमय उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हुआ था और केवलज्ञान भी थोडे ही दिनमें होनेवाला था ॥ १६४—१७१ ॥ जिसप्रकार संध्या सूर्यके पीछे पीछे अस्ताचल पर्वतपर जाती है उसीप्रकार राजमति भी भगवान नेमिनाथके पीछे ही तपश्चरण धारण करनेकेलिये गई सो ठीक ही है क्योंकि वचनसे दी हुई कुलस्त्रियोंका भी यही न्याय है ॥ १७२ ॥ दूसरे लोग अपने दुःखसे भी विरक्त होते नहीं सुने परंतु आश्चर्य है नेमिनाथ सरीखे सज्जन लोग दूसरेके दुःखसे भी ऐसी ऐसी महा विभूतियोंका त्याग कर देते हैं ॥ १७३ ॥ कृष्ण वलभद्र आदि अनेक राजा तथा इंद्रादि सब देव उन भगवानकी पूजा और स्तुतिकर सब अपने अपने स्थानको चले गये ॥ १७४ ॥ पारणाके दिन सज्जनोत्तम श्रीनेमिनाथने द्वारावती नगरीमें प्रवेश किया, वहांपर सुवर्णकी कांतिको धारण करनेवाले तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित राजा वरदत्तने नवधा भक्तिसे उनका पडगाहन किया और उन्हें मुनियोंके ग्रहण करने योग्य प्रासुक आहारदान दिया जिससे उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई ॥ १७५-१७६ उसके घर देवोंके हाथसे छूटे हुए साडे बारह करोड रत्न वरसे, फूलोंकी वर्षा हुई, शीतल मंद सुगंध इन तीनों गुणोंसे भरी हुई हवा चलने लगी, आकाशमें देवोंके द्वारा वजाये हुए दुंदुभियोंके मनोहर शब्द होने लगे और आपने यह वहुत अच्छा दान दिया ऐसी घोषणा होने लगी ॥ १७७—१७८ ॥ इसतरह तपश्चरण करते हुए जब उनके छद्मस्थ अ-

यक महापापोपलिपक ॥ १५७ ॥ अथ नेमिकुमारोपि नानाभरणभारभाक् । सहलकुंतलो रक्तोत्पलमालाभ्यलंकृतः ॥ १५८ ॥ तुरंगमखुरोद्भूत-
धूलीलिप्तदिगाननः । सवयोभिरिति प्रीतैर्महासामंतसूनुभि ॥ १५९ ॥ परीत शिविकां चित्रामारुह्य नयनप्रियः । दिशो विलोकयितुं गच्छंस्तत्रालोक्य
यदृच्छया ॥ १६० ॥ मृगानितस्ततो घोरं रुदिला करुणास्वन । भ्रमतस्तृषितान् दीनदृशोनतिभयाकुलान् ॥ १६१ ॥ किमर्थमिदमेकत्र निरुद्ध तृणभु-
क्कुल । इत्यन्वयुक्त तद्रक्षानियुक्तानानुकंपया ॥ १६२ ॥ देवैतद्वासुदेवेन त्वद्विवाहमहोत्सवे । व्ययीकर्तुमिहानीतमित्यभाषत तेपि त ॥ १६३ ॥ वनेस्थ-
रण्ये खादति तृणान्यनपराधकाः । किलैताश्च स्वभोगार्थं पीडयंति धिगीदृश ॥ १६४ ॥ किं न कुर्वन्त्यमी मूढाः प्रौढमिथ्यात्वचेतसः । प्राणिनः प्राणितु
प्राणैर्निर्घृणः स्वैर्विनश्वरैः ॥ १६५ ॥ स्वराज्यग्रहणाशंक विधाय मयि दुर्मतिः । व्यधात्कपटमीदृक्ष कष्ट दुष्टविचेष्टित ॥ १६६ ॥ इति निध्याय

के लिये कृष्णने ये सव पशु इकट्ठे किये हैं ॥ १५६–१५७ ॥ इसके वाद जो अनेक आभूषणोंके वोझसे सुशोभित हो रहे हैं रक्त कमलोंकी मालासे अलंकृत हो रहे हैं, जो साथमें चलते हुए अनेक घोडोंके खुरोंसे उठी धूलिसे सव दिशाओंके मुह भर रहे हैं जिनके चारों ओर उनकी उमरके तथा प्रसन्न चित्तवाले वडे वडे सामन्तोंके पुत्र चल रहे हैं एक हजार भालासवार जिनके साथ हैं और जो सवके नेत्रोंको प्रिय हैं ऐसे श्रीनेमिकुमार भी चित्रा नामकी नालकीपर सवार होकर दिशाएं देखनेके लिये निकले वहींपर इच्छानुसार देखते हुए उन्होंने घोर करुणास्वरसे चिल्ला चिल्लाकर इधर उधर फिरते हुए, प्यासे, भयसे अत्यंत व्याकुल और दीन दृष्टिको धारण करनेवाले पशु देखे ॥ १५८–१६१ ॥ उन्हें देखकर नेमिकुमारने वडी दया वुद्धिसे उनके रक्षकोंसे पूछा कि यह पशुओंका समूह एक जगह किस लिये इकट्ठा किया गया है ॥ १६२ ॥ इसके उत्तरमें उन लोगोंने भी कहा कि हे देव ! आपके विवाहमहोत्सवमें मारनेके लिये कृष्णने ये सव यहां इकट्ठे किये हैं ॥ १६३ ॥ यह सुनते ही वे विचार करने लगे कि ये पशु वनमें तो रहते हैं तृण खाते हैं और किसीका कुछ अपराध नहीं करते तो भी लोग केवल अपने भोगके लिये इन्हें इसतरह दुःखदेते हैं उनके इस कर्मपर धिकार है। अथवा जिनके चित्तमें प्रौढ मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे घृणारहित ये मूर्ख प्राणी अपने विनश्वर प्राणोंसे जीवित रहनेकेलिये क्या नहीं कर डालते हैं। इस दुर्वुद्धिको मेरे विपयमें अपना राज्य लेलेनेकी शंका उठी है इसीलिये इसने ऐसा कपट किया है इसीसे कहना पडता है कि दुष्टोंकी चेष्टाएं भी वडी ही भयानक होती हैं। इस तरह सोचकर वे विरक्त हुए और लौटकर अपने मंदिरमें आए। रत्नत्रय प्रगट होनेसे उसीसमय लौकांतिक देवोंने आकर उन्हें समझाया। वे पहिलेके भवोंका स्मरणकर वे दुखी हुए और उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उनके दीक्षा कल्याणका उत्सव किया। वे

त्रिलोकस्वामिनो नेमेः प्रियास्त्वैवेति सादरं ॥ १४६ ॥ त्रिखण्डजातरत्नानां त्व पतिर्नो विशेषतः । देव त्वमेव नाथोसि प्रस्तुतार्थस्य के वयं ॥ १४७ ॥
इत्युग्रसेनवाचोद्यत्सम्मदो यादवाधिपः । शुभेहनि समारभ्य विधातुं स तदुत्सवं ॥ १४८ ॥ पचरत्नमयं रम्य समानयदनुत्तरं । विवाहमंडप तस्य मध्य-
स्थे जगतीतले ॥ १४९ ॥ नवमुक्ताफलालोलरंगवल्लीविराजिनि । मंगलामोदपुष्पोपहारसारविलासिनि ॥ १५० ॥ विस्तृतामिनवानर्घ्यवस्त्रे सौभर्मपट्टके ।
वध्वा सह समापाद्र्रतंदुलारोपण वरः ॥ १५१ ॥ परेद्यु समये पाणिजलसेकस्य माधव, । यियासुर्दुर्गतिं लोभसुतीव्रानुभवोदयात् ॥ १५२ ॥ दुराशय
सुराधीशपूज्यस्यापि महात्मनः । स्वराज्यादानमाशंक्य नेमेर्मायाविना वरः ॥ १५३ ॥ निर्वेदकारण किंचित् निरीक्ष्यैष विरंस्यति । भोगेभ्य इति
सचिंत्य तदुपायविधित्सया ॥ १५४ ॥ व्याधाधिपैर्वृतानीतं नानामृगकदंबक । विधायैकत्र संकीर्णां वृतिं तत्परितो व्यधात् ॥ १५५ ॥ अशिक्षयत
तद्रक्षाध्यक्षान् यदि समीक्षितुं । धीशो नेमीश्वरोभ्येति भवद्भिः सोभिधीयता ॥ १५६ ॥ त्वद्विवाहे व्ययीकर्तुं चक्रिणैष मृगोत्करः । समानीत इति

वडे आदरसे मांगी ॥ १४५–१४६ ॥ कृष्णके इसतरह मांगनेपर राजा उग्रसेनने कहा कि हे देव तीन खंडमें उत्पन्न हुए रत्नोंके स्वामी हैं इसमें कुछ विशेषता नहीं है। आपने अभी जो मांगा है उसके भी स्वामी आप ही हैं आपके सामने हम कौन हैं इस प्रकारके उग्रसेनके वचनोंसे कृष्णको वडी ही प्रसन्नता हुई और उन्होंने किसी शुभ दिनमें वह विवाहका उत्सव करना प्रारंभ कर दिया ॥ १४७–१४८ ॥ उन्होंने सबसे उत्तम और मनोहर पांचों रत्नोंका विवाह मंडप वनवाया, उसके मध्यभागमें एक वेदी वनवाई वह वेदी नये मोतियोंकी सुंदर रंगावलीसे सुशोभित हो रही थी, मांगलिक सुगंधित पुष्पोंकी भेंटसे वह वहुत सुंदर दिखती थी, और उसपर वहुत वा वडे नये और वहुमूल्य रेशमी वस्त्र विछे थे। उससमय वर श्री नेमिकुमारने वधू राजमतिके साथ भीगे तंदुलोंका आरोपण किया था ॥ १४९–१५१ ॥ दूसरे दिन पाणिग्रहण वा कन्यादानका दिन था उस दिन मायाचारियोंमें श्रेष्ठ और दुर्गतिको जानेकी इच्छा करनेवाले दुष्ट कृष्णको तीव्र लोभ कर्मके उदयसे इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे महात्मा नेमिकुमारके विषयमें यह शंका उत्पन्न हुई कि ये मेरा राज्य ले लेंगे तथा उन्होंने यह भी विचार किया कि ये वैराग्यका थोडासा ही कारण देखकर भोगोंसे विरक्त हो जायंगे। यही सोचकर उन्होंने नेमिकुमारको विरक्त करनेके लिये एक उपाय किया। उन्होंने अनेक अच्छे अच्छे व्याधोंके द्वारा वहुतसे पशु पकडवाकर मगवाकर और उन सवको एक जगह इकट्ठाकर उनके चारों ओर एक छोटीसी वाड (घेरा) लगवा दी ॥ १५२–१५५ ॥ तदनंतर महापापमें डूबनेवाले कृष्णने उन पशुओंकी रक्षा करनेवालोंको समझा दिया कि यदि महाबुद्धिमान श्रीनेमीश्वर कुमार उन्हें देखनेके लिये यहां आवें तो तुम सव उनसे इसतरह स्पष्ट कहना कि आपके विवाहमें मारने-

ग्यामास्थाय दिव्य शार्ङ्गं शरासन ॥ १३५ ॥ हेलयारोपयच्च प्रपूरितदिगंतरं । शंखमापूरयदिक व्रत् साहसं नो भवेत्त्वया ॥ १३६ ॥ कार्य साधु करि-
ष्यामीत्युक्त्वा गर्वप्रचोदित । तत पुरं समभ्येत्य विभाद्ध कर्म सोद्भुतं ॥ १३७ ॥ सप्रविश्यायुधगारं नागशय्यामधिष्ठित । स्वा शय्यामिव नागेंद्र-
महामणिविभास्वरां ॥ १३८ ॥ भूयोविस्फालनोभ्राद्ज्यानत च शरासन । आरोपयत्पयोज च दध्मौ रुद्धदिगतरं ॥ १३९ ॥ तदा समावयामास स्वं
समाविष्कृतोन्नतिं । रागाहंकारयोर्लेशोप्यवश्य विकृतिं नयेत् ॥ १४० ॥ सहसैतदद्भुत कर्म श्रुत्वाध्यास्य सभावनि । हरिः कुसुमचित्राख्यामाकुलाकुल-
मानस ॥ १४१ ॥उद्भूतविस्मयोऽपृच्छत्किमेतदिति किंकरान् । तेपि तत्सम्यगन्विष्य चक्रनाथ व्यजिज्ञपत् ॥ १४२ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं चक्री सावधानं
वितर्कयन् । रागिचेतः कुमारस्य चिराच्चित्रमजायत ॥ १४३ ॥ अभूत्कल्याणयोग्योयमारूढनवयौवनः । बाधा सत्तेन कामेन कस्य न स्यात्सकर्मणः ॥
१४४ ॥ इत्युग्रवंशवार्धीदोरुग्रसेनमहीभुजः । जयवत्याश्च सर्वांगशस्या राजमति सुता ॥ १४५ ॥ ता तद्गृह स्वयं गत्वा कन्यो मान्यामयाचत ।

कहा कि इसका मैं क्या करूं? तब नेमिकुमार ने कहा कि इसे धो डालो इसके उत्तरमें सत्यभामाने फिर कहा कि क्या आप
कृष्ण हैं जिन्होंने नागशय्या पर चढकर लीलामात्रमें शार्ंग नामका दिव्य धनुष चढाया और सब दिशाओंको गुंजा देने
वाला शंख बजाया ऐसे साहसका काम आपसे कभी नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें नेमिकुमारने अभिमानमें आकर कह
दिया कि अच्छा मैं भी इस कामको कर डालूंगा। तदनंतर नगरमें आकर उस अद्भुत कामको करनेकेलिये वे आयुधशा-
लामें गये। पहिले तो वे अपनी शय्याके समान नागराजकी महामणियोंसे देदीप्यमान ऐसी नागशय्यापर चढे फिर प्रत्यंच
फैलाकर धनुप चढाया और फिर अपनी आवाजसे सब दिशाओंको रोक देनेवाला शंख बजाया ॥ १३५–१३९ ॥ तद-
नंतर उन्होने अपने ही समान उन्नतिके प्रगट होनेकी संभावनाकी। सो ठीक ही है क्योंकि राग और अहंकारका एक
छोटासा हिस्सा भी अवश्य ही विकार उत्पन्न कर देता है ॥ १४० ॥ उससमय कृष्ण कुसुमचित्रा नामकी सभामें बैठे थे
अकस्मात् इस अद्भुत कामको सुनकर उनका चित्त व्याकुल होगया और वे बडे आश्चर्यके साथ सेवकोंसे पूछने लगे
कि यह क्या है तब सेवकोंने भी पता लगाकर कृष्णसे सब समाचार निवेदन कर दिये ॥ १४१–१४२ ॥ सेवककी
ये बातें सुनकर कृष्ण सावधान होकर सोचने लगे कि आश्चर्य है कि कुमारके चित्तमें बहुत देरसे राग उत्पन्न हुआ॥१४३॥
कुमारकी अब नव योवन अवस्था है और वे विवाह कर देने योग्य हैं क्योंकि कर्मसहित मनुष्योंमें ऐसा कौन है जिसे
दुष्ट कामकी बाधा न होती हो ॥ १४४ ॥ यही समझकर उन्होंने उग्रवंश रूपी समुद्रके चंद्रमाके समान राजा उग्रसेन
रानी जयावतीके जो सर्वांग सुंदर राजमती कन्या थी वह तीन लोकके स्वामी नेमिकुमारके लिये स्वयं उनके घर जाकर

१२४ ॥ रत्नमाला गदा सीरो मुशलं च हलेषिनः । महारत्नानि चत्वारि स्फुरत्त्वींष्यभवन् प्रभो ॥ १२५ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च सती जाम्बवतीति च । सुसीमा लक्ष्मणा गौरी गांधारी सप्तमी प्रिया ॥ १२६ ॥ पद्मावती च देव्योऽमूरष्टौ पट्टप्रसाधनाः । सर्वा देव्यः सहस्राणि चाणूरांतस्य षोडश ॥ १२७ ॥ वलस्याष्टसहस्राणि देव्योमीष्टसुखप्रदा । तामिस्त्रावामरं सौख्यमासी वा प्रीतिमीयतुः ॥ १२८ ॥ स्वपूर्वकृतपुण्यस्य परिपाकेन पुष्कलान् । भोगान्प्राप्नुवतस्तस्य काले गच्छति शार्ङ्गिण ॥ १२९ ॥ अन्येद्युर्वारिदार्तेतःपुरेणामा सरोवरे । मनोहराभिधानेऽभूज्जलकेली मनोहरा ॥ १३० ॥ तत्र नेमीशितुः सत्यभामायाश्चांवुसेचनात् । संलापोऽभवदित्युच्चैश्चतुरोक्तया मनोहरः ॥ १३१ ॥ त्वं प्रियावत्कुतो रंता मयि त्व किं ममाप्रियां । प्रिया चेत्तव भ्राता यातु का कामदायिनीं ॥ १३२ ॥ कासौ किं ता न वेत्सि त्व सम्यक् सा वेदयिष्यति । वदति त्वामृजु सर्वे कुटिलस्त्व त्वदप्यह ॥ १२३ ॥ पुनः स्नानविनोदावसाने तामेवमब्रवीत् । स्नानवस्त्र त्वया माद्यं नीलोत्पलविलोचने ॥ १३४ ॥ कस्य मे किं करोम्येतत्प्रक्षालय हरिर्भवान् । यो नागश-

ये सात रत्न कृष्णके थे ॥ १२४ ॥ रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये देदीप्यमान चार महारत्न वलदेव प्रभुके थे॥१२५॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, सती जांववती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गौरी, सातवीं गांधारी और पद्मावती ये आठ देवियां कृष्णकी पट्टरानी थीं इनको लेकर कृष्णके सब सोलह हजार रानियां थी ॥ १२६–१२७ ॥ इसी तरह वलदेवके इच्छानुसार सुख देनेवाली आठ हजार रानियां थीं इन सब अपनी अपनी रानियोंसे देवोंके समान सुख भोगते हुए सदा प्रसन्न रहते थे ॥ १२८ ॥ इस तरह पूर्व जन्मके पुण्यकर्मके उदयसे जिन्हें अनेक भोग प्राप्त हुए है ऐसे कृष्णका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था ॥ १२९ ॥ किसी एक समय शरद ऋतुमें सब अंतःपुरके साथ मनोहर नामके सरोवर पर गये वहां पर सवने मनोहर जलक्रीडा की ॥ १३० ॥ वहीं पर परस्पर जल उछालते समय नेमिनाथ और सत्यभामाकी चतुराईसे भरी हुई कुछ मनोहर वात चीत हुई । सत्यभामाने कहा कि आप मेरे साथ अपनी प्यारीके समान जलक्रीडा क्यों करते हैं ? इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि तू क्या मेरी प्यारी नहीं है । इसके उत्तरमें सत्यभामाने फिर कहा कि यदि मैं आपकी प्यारी हूं तो आपके भाई फिर किस कामिनीके पास जाते हैं । यह सुन कर नेमिकुमारने कहा कि वह कौनसी कामिनी है क्या तू उसे नहीं जानती अच्छा वह अब अच्छी तरह जान लेगी । यह सुन कर सत्यभामाने फिर कहा कि आपको सवलोग सीधा वतलाते हैं परंतु आप तो वडे ही कुटिल निकले । इसके उत्तरमें नेमिनाथने कहा कि क्या मैं तुझसे भी अधिक कुटिल हूं ॥ १३१–१३३ ॥ इस प्रकारके विनोद और स्नान करनेके वाद नेमिकुमारने सत्यभामासे फिर कहा कि हे नील कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तू यह गीली धोती पकड ॥ १३४ ॥ इसके उत्तरमें सत्यभामाने

॥ ११३ ॥ द्योतिताखिलदिक्चक्र चक्रमादाय विक्रमात् । त्रिविक्रम समुद्दिश्य न्याक्षिपद्रूक्षवीक्षण ॥ ११४ ॥ तत्त प्रदक्षिणीकृत्य स्थितवद्दक्षिणे भुजे। तदेवादाय कंसारिर्मगधेशोच्छिनच्छिर ॥ ११५ ॥ प्रयो भयानकानीक ददतिस्मागलन् दिवः । सुरद्रुमप्रसूनानि सह गंधांबुविंदुभिः ॥ ११६ ॥ चक्री चक्र पुरस्कृत्य विजिगीषुर्दिशो मृश । प्रस्थानमकरोत्सार्द्ध बलेन स्वबलेन वा । ११७ ॥ मगधादीन्सुरान् जित्वा विधेयीकृत्य विश्रुताम् । गृहीत्वा साररत्नानि तद्दत्तान्यूर्जितोदयै ॥ ११८ ॥ सिंधुसिंधुखगायूंतरालव्याधधराधिपान् । स्वपादनखभाभारमानमय्योदवाहयन् ॥ ११९ ॥ खेचराचलवाराशिगंगामध्यगतान् पुनः । वशीकृत्य वशी तूर्णं म्लेच्छराजान् सखेचरान् ॥ १२० ॥ भरतार्धमहीनाथो दूरोच्छ्रितपताकिका । वद्धतोरणा द्वारवतीं दुष्ट्रा विवेश सः ॥ १२१ ॥ प्रविष्टवत त देवविद्याधरधराधिपाः । त्रिखण्डाधिपतिश्चक्रीत्यभिषिंचभ्रयाचितं ॥ १२२ ॥ स सहस्रसमायुष्को दशचापसमुच्छ्रित । नीलाब्जवर्णो भाल्लोललक्ष्म्यालिंगितविग्रहः ॥१२३॥ चक्र शक्तिर्गदा शंखो धनुर्दंड: सनदकः । वभूवुः सप्त रत्नानि रक्षाण्यस्याक्षवादकैः ॥

के उदय होनेसे अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार कृष्णके आते ही जरासंध की सेना नष्ट होने लगी। अपनी सेना को नष्ट होते देखकर क्रोधका भरा जरासंध भी आया तथा रूखी दृष्टिको धारण करनेवाले उसने अपने पराक्रमसे सब दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला चक्र लेकर कृष्णकी ओर चलाया ॥ ११३–११४ ॥ परंतु वह चक्र कृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजा पर आकर ठहर गया इस लिये कृष्णने वही चक्र लेकर जरासंधका शिर काट डाला ॥११५॥ उसी समय कृष्णकी सेनामें जीतके नगाडे वजने लगे और आकाशसे सुगंधित जलकी बूंदोंके साथ साथ कल्पवृक्षोंके फूल वरसने लगे ॥ ११६ ॥ तदनंतर कृष्णने सब दिशाओंके जीतनेकी इच्छासे वलदेव और सब सेनाके साथ चक्रको आगे कर प्रस्थान किया ॥ ११७ ॥ जिनका पुण्योदय चमक रहा है ऐसे उन दोनों भाइयोंने मगध आदि प्रसिद्ध देवोंको जाकर जीता और उनके दिये हुए उत्तमोत्तम रत्न स्वीकार किये ॥ ११८ ॥ लवणोद समुद्र सिंधु नदी, और विजयार्द्ध पर्वतके मध्यके म्लेच्छोंसे नमस्कार कराकर उनसे अपने पैरोंके नखोंकी कांतिका भार उठवाया ॥ ११९ ॥ तदनंतर विजयार्द्ध पर्वत, समुद्र, और गंगा नदीके बीच वालोंको वश किया और फिर उन जितेंद्रियने शीघ्र ही विद्याधरों सहित म्लेच्छों को वश किया ॥१२०॥ इसी तरह आधे भरतके स्वामी होकर उन्होंने जिसमें पताकाएं बहुत ऊंची फहरा रही हैं और जगह जगह तोरण बंधे हुए हैं ऐसी द्वारावतीमें प्रवेश किया। जाते ही देव विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओंने उन्हें तीन खंडके स्वामी चक्रवर्ती मानकर बिना कहे सुने कृष्णका अभिषेक किया ॥ १२२ ॥ कृष्णकी एक हजार वर्षकी आयु थी, दश धनुष ऊंचा शरीर था, नील कमलके समान वर्ण था और चंचल लक्ष्मीसे आलिंगन किया हुआ उनका शरीर बहुत ही अच्छा जान पडता था ॥ १२३ ॥ देवोंके द्वारा सुरक्षित ऐसे चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और तलवार

विपुलबलरीकृया ॥ १०२ ॥ पतितानां परैः स्तूयमानसाहसकर्मणां । प्रसादयंति वक्त्राणि स्थलपद्मश्रियं दधुः ॥ १०३ ॥ भटैः परस्य शस्त्राणि खंडितानि स्वकौशलात् । तत्खंडैस्तत्र पार्श्वस्था बहवो व्यसवोभवन् ॥ १०४ ॥ न मत्सरेण न क्रोधान्न ह्यपातेन फलेच्छया । भटाः केचिदयुध्यंत न्यायोयमिति केवल ॥ १०५ ॥ सर्वशस्त्रसमुद्भिन्नशरीरावीरयोधना । परिच्युता गजस्कधाच्चूलिकालिंगितांह्रय ॥ १०६ ॥ चिरं परिचितं स्थान परित्यक्तुमिवाक्षमाः । प्रलंबवे स्म कर्णाग्रमवलंब्यानताननाः ॥ १०७ ॥ केचिद्वामकरोपात्तचित्रदंडस्वरक्षणाः । दक्षिणाक्षभुजेनाघ्नन् भटाश्चटुलचारिणः ॥ १०८ ॥ तत्र वाव्यो मनुष्याणां मृत्योरुत्कृष्टसचय । कदलीघातजातस्येत्युक्तिमत्तद्रणागण ॥ १०९ ॥ एवं तुमुलयुद्धेन प्रवृत्ते समरे चिरं । सेनयोरंतकस्यापि संतृप्तिः समजायत ॥ ११० ॥ विलंघितं बल विष्णो वलेन द्विषता तदा । यथा क्षुद्रसरिद्वारिवाहाः सिंधुसर्वांबुना ॥ १११ ॥ तदालोक्य हरिः क्रुध्वा हरिर्वा करिणां कुलं । समस्तबलसंदोहसहितो हतुमुद्यतः ॥ ११२ ॥ भास्करस्योदयाद्वाधकारं शत्रुबलं तदा । विलीन तं निरीक्ष्यैत्य जरासंधोन्वित क्रुधा ॥

शत्रु भी जिनके साहसके कामोंकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसे पडे हुए योद्धाओंके प्रसन्न हुए मुख ठीक स्थलकमलोंकी शोभाको धारण करते थे ॥१०३॥ कितनेही योद्धाओंने अपनी कुशलतासे दूसरोके शस्त्र तोड डाले थे परंतु उनके तोडनेसे समीपके बहुतसे लोग मर गये थे ॥ १०४ ॥ कितने ही योद्धा न किसी ईर्ष्यासे लडते थे, न क्रोधसे, न कीर्तिके लिये और न फलकी इच्छासे लडते थे किंतु लडना न्याय है यही समझकर लडते थे ॥ १०५ ॥ जिनका शरीर सब तरहके शस्त्रोंसे छिद गया भिद गया है ऐसे कितनेही योद्धा हाथीके कंधेसे गिर गये थे परंतु उनके पैर हाथीके कानोंसे लटक ही रहे थे इसलिये वे ऐसे जान पडते थे मानों वे अपने बहुत दिनके परिचित स्थान छोड नहीं सकते इसलिये हाथीके कानोंका सहारा लेकर और नीचे मुंह लटका कर लटक रहे हों ॥ १०६–१०७ ॥ चंचल पैरोंको रखनेवाले कितने ही योद्धा अपनी रक्षाके लिये वायें हाथमें चित्र दंड लेकर शस्त्रोंवाली दाहिनी भुजासे शत्रुओंको मारकर डाल रहे थे ॥ १०८ ॥ जिस प्रकार केलाओंकाघात क्षणभरमें हो जाता है उसी प्रकार उस युद्धके मैंदानमें मृत्युके लिये मनुष्योंका उत्कृष्ट जमाव हो रहा था । भावार्थ—वडी शीघ्रतासे ढेरके ढेर लोग मर रहे थे ॥ १०९ ॥ इस प्रकार उस युद्धस्थलमें बहुत देर तक दोनों सेनाओंका घोर युद्ध हो रहा था जिससे यमराज भी खूब तृप्त हो गया था ॥ ११० ॥ तदनंतर जिसप्रकार समुद्रके ज्वारके जलसे छोटी नदियोंका पानी वहने लगता है उसी प्रकार शत्रुओंकी सेनासे कृष्णाकी सेना कुछ पीछेकी ओर हटने लगी ॥ १११ ॥ अपनी सेनाको पीछेकी ओर हटती देखकर जिसप्रकार सिंह हाथियोंके झुंड पर टूटता है उसी प्रकार कृष्ण क्रोध कर अपनी सब सेनाको साथ लेकर शत्रुकी सेना को मारनेके लिये तैयार हुए ॥ ११२ ॥ जिस प्रकार सूर्य

लक्षितः ॥ ९० ॥ सज्जनावर्जेनिर्णिक्तसौवर्णोरुगलतिका—जलैराचम्य युद्धेच्छु क्षिप्तपूर्णजलांजलि ॥ ९१ ॥ गंधपुष्पादिभिर्विघ्नविनायकमनायक । भक्त्या जिनेंद्रमभ्यर्च्य भव्यकल्पमहीरुह ॥ ९२ ॥ अभिवद्यासमंतैः समंतात्परिवारित । प्रतिपक्षमपक्षेप्तु पक्षेणाभिमुख ययौ ॥ ९३ ॥ तत कृष्णेन निर्दिष्टाः प्रशास्तृपरिचारिणः । सैन्य यथोक्तविन्यास रचयंति स्म रागिण ॥ ९४ ॥ जरासधोपि सग्राममरंगमध्यमधिष्ठित । स्वसैन्य निष्ठुराराते रध्यक्षैरन्वयोजयत् ॥ ९५ ॥ इति विन्यासितसैन्ये दध्वने समरानकै. । शूरधानुष्कनिर्मुक्तशरनाराचसकुल ॥ ९६ ॥ नभोन्यरुणदुष्णाशुप्रसरत्करसततिं । वियोगमगमन्मोहात्तदास्तमयशंकया ॥ ९७ ॥ कोकयुग्म विहगश्च रुवतो नीडमाश्रयन् । नेक्षते स्म भटा योद्धुमन्योन्यं समरांगणे ॥ ९८ ॥ संक्रुद्धमत्तमातंगदतसघट्टजन्मना । सप्तार्चिषा विधूतेंधकारे दिगवलोकनात् ॥ ९९ ॥ पुनः प्रवृत्तसंग्रामाः सर्वशस्त्रविचक्षणाः । नदीं रक्तमयीं चक्रुर्विक्रमैकरसा क्षण ॥१००॥ करालकरवालाग्रनिकृत्तचरणद्वयाः । तुरंगमा गतिं प्रापुर्वने नष्टतपोधनाः ॥ १०१ ॥ विच्छिन्नचरणा पेतुर्द्विपाः प्रातमहामरुत् । निर्मूलपातितानील-

घ्नोंके नाश करनेवाले तथा भव्योंके लिये कल्पवृक्षोंके समान श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजाकी और फिर उन्हे नमस्कार किया । त-
दनंतर गुरुजन और सामंत लोगोंको अपने चारो ओर रखकर अपनी पक्षसे ही शत्रुओंको जीतनेके लिये उनके सामने
हुए ॥९१–९३॥ तदनंतर कृष्णकी आज्ञासे अनुराग रखनेवाले प्रशंसनीय परिचारक लोगोंने यथा योग्य रीतिसे सेनाकी
रचनाकी ॥ ९४ ॥ जरासंध भी संग्रामरूपी रंगभूमिके मध्यमें आ विराजमान हुआ और निर्दयी शत्रुओंके साथ अपनी से-
नाकी योजना करने लगा ॥ ९५ ॥ इसप्रकार रचनाकी हुई दोनो सेनाएं युद्धके वाजोंसे शब्दायमान होने लगीं । शूरवीर
धनुष धारियोंके छोडे हुए बाणोंसे आकाश भरगया और सूर्यके फैले हुए किरणोंके समूह सब ढक गये । उस समय सूर्य-
को अस्त हुआ समझ कर चक्रवाक् पक्षियोंका जोडा बिछुड गया, और पक्षी भी चहचहाट करते हुए अपने घोंसलेमें घुस
गये, तथा उस युद्धके मैदानमें योद्धा लोग युद्ध करनेके लिये परस्पर दिखाई भी नहीं पडते थे ॥ ९६–९८ ॥ उस समय
क्रोधित हुए मदोन्मत्त हाथियोंके दातोंके संघटनसे जो अग्नि निकलती थी उससे कुछ अंधकार दूर होता था और सब
तरहके शस्त्र चलानेमें निपुण योद्धा उसी अग्निके उजालेसे दिशाओंको देखकर फिर युद्ध करने लग जाते थे, पराक्रम
रूपी एक रससे भरे हुए वे योद्धा क्षणभरके लिये नदीको भी रक्तमयी (लोहूसे भरी हुई) बनारहे थे ॥ ९९–१०० ॥
कठिन तलवारकी धारसे जिनके दो पैर कट गये हैं ऐसे घोडे उसी गतिको प्राप्त हो रहे थे जिसे कि वनमें रहनेवाले तप-
स्वी अपने तपश्चरणरूपी धनको नष्टकर प्राप्त होते हैं ॥ १११ ॥ जिनके पैर कट गये हैं ऐसे हाथी इस तरह पड गये थे
मानों प्रलय कालकी महावायुसे जडसे उखडकर पडे हुए नीले विपुलाचलकी शोभाको ही धारण कर रहे हों ॥ १०२ ॥

दुर्योधनभरेसिना । दुःशासनेन दुर्मर्षणेन दुर्धर्षणेन च ॥ ७९ ॥ दुर्जयेन कलिंगेशा भगदत्तेन भूभुजा । परैश्च भूरिभूपालैराजगाम स केशवं ॥ ८० ॥ तदा हरिबले युद्धदुंदुभिध्वनिरुत्थरन् । शूरचेतोरसै वास कौसुंभो वान्वरंजयत् ॥ ८१ ॥ तदाकर्ण्य नृपाः केचित्पूजयंतिस्म देवताः । अहिंसादिव्रतान्यन्ये जगृहु गुरुसन्निधौ ॥ ८२ ॥ परे निस्तारकेष्वर्थान् वितरंति स्म सात्विका । मुंचताशु तनुत्राण गृहीतासिलतां सितां ॥ ८३ ॥ आरोपयत चापौधान् सनह्यता गजाश्रिता । हरयो बद्धपर्याणा क्रियतामधिकारिषु ॥ ८४ ॥ समर्प्यता कलत्रादि युज्यता वाजिभी रथाः । भोगोपभोगवस्तूनि भुज्यतामनिवारित ॥ ८५ ॥ वंदिमागधवृंदेन वंर्यतां निजविक्रमाः । इति केचिज्जगुर्भृत्यान्नृपाः सग्रामसन्मुखाः ॥ ८६ ॥ पतिभक्त्या निसर्गात्मपौरुषेण विरोधिना । मात्सर्येण यशोहेतो शूरलोकसमीप्सया ॥ ८७ ॥ निजान्वयाभिमानेन परैश्च रणकारणैः । समजायंत राजान प्राणव्ययविधायिन ॥ ८८ ॥ वसुदेवसुतोप्यात्तगर्व सर्वविभूषण । कुंकुमांकितगात्रत्वादिव सिंदूरितद्विप. ॥ ८९ ॥ जय जीवेति वंदारुवृंदेन कृतमगल । नवोवांभोधरश्चारुचातकध्वनि-

चित्तमें शूरवीरता का रस भरगया ॥ ८१ ॥ उन वाजोंको सुनकर कितने ही राजा लोग देवियोंकी पूजा करने लगे और अन्य कितने ही गुरुके समीप जाकर अहिंसा आदि व्रतोंको धारण करने लगे ॥ ८२ ॥ अन्य कितने ही सात्विक राजा दीनोंको दान देने लगे। युद्धके लिये तैयार हुए कितने ही राजा लोग अपने २ सेवकोंसे कहने लगे कि "तुमलोग अपना वख्तर शीघ्र पहिनो, सफेद तलवार रूपी लताको धारण करो, सब धनुषोंको चढाओ और हाथियोंके सवार सब तैयार हो, अधिकारियोंके लिये घोडे सब जीन कस कर तैयार करो, स्त्री आदिको योग्य जगह पर पहुंचाओ घोडे जोतकर रथ तैयार करो विना किसी रोक टोकके भोगोंपभोगोंकी सब वस्तुओंका उपभोग करो और वंदीजन तथा स्तुति पढनेवाले लोग अपने पराक्रमका उच्चारण करें" ॥ ८३–८६ ॥ राजालोगोंमेंसे कितने ही अपने स्वामीकी भक्तिसे, कितने ही अपने स्वाभाविक पौरुषसे, कितने ही विरोधियोंकी ईर्ष्यासे, कितने ही यशके लिये कितने ही शूरलोक जानेकी इच्छासे कितने ही अपने वंशके अभिमानसे और कितने ही युद्ध होनेके कारण प्राण देनेके लिये तैयार हो गये ॥ ८७–८८ ॥ उससमय कृष्ण वडा अभिमान कर रहे थे, वे सब आभूषण पहिने थे और शरीर पर कुंकुम लगा लेनेसे ऐसे जान पडते थे मानों सिंदूर लगा हुआ हाथी ही हो ॥ ८९ ॥ आपकी जय हो आप चिरंजीव रहे इस प्रकार वंदीजन लोग उनका मांगलिक पाठ पढ रहे थे, वे नये श्याम वादलके समान जान पडते थे और सुंदर चातकोंकी आवाजसे वे बहुत ही अच्छे मालूम होते थे ॥ ९० ॥ उससमय युद्धकी इच्छा करनेवाले उन्होंने सज्जनोंके द्वारा लाये हुए टोंटनीदार सुवर्णकी वनी हुई भारीसे निकलते हुए जलसे आचमन किया, पूर्ण जलांजलि दी, फिर वडी भक्तिके साथ गंध पुष्प आदि द्रव्योंसे सब वि-

मभ्येत्य तद्विकारं न्यवेदयत् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा शार्ङ्गधरः शत्रुसमुत्थानसमाकुलः। कुमारं नेमिमभ्येत्य प्रशाधि त्वमिदं पुरं ॥ ६८ ॥ विजिगीषु किला-
याभूत्त्वत्यस्मान्मगधाधिपः। भनज्मि तमहं जीर्णद्रुम वा घुणभक्षित ॥ ६९ ॥ तूर्णं भवत्प्रभावेन गत्वेत्यवददूर्जितं । प्रसन्नचेतास्तच्छ्रुत्वा सस्मितो मधुरे-
क्षणः ॥ ७० ॥ सावधिर्विजय तेन विनिश्चित्य विरोधिनां । स्फुरद्दंतरुचिर्विष्णुं नेमिरोमित्यभाषत ॥ ७१ ॥ स्मितैस्तैः स्वजय सोपि निश्चिकाय जग-
त्प्रभोः। जैनो वादीव पक्षाद्यैरेकलक्षणभूषणै ॥ ७२ ॥ अथ शत्रु समं जेतु जयेन विजयेन च । सारणेनागदाख्येन धवाह्वेनोद्धवेन च ॥ ७३ ॥ सुमु-
खाक्षरपद्मैश्च जराख्येन सुदृष्टिना। पाण्डवै पंचभिः सत्यकेनाथ द्रुपदेन च ॥ ७४ ॥ यादवै सविराटाख्यैरप्रमेयैर्महाबले । धृष्टार्जुनोग्रसेनाभ्यां चमरेण
रणेप्सुना ॥ ७५ ॥ विदुरेण नृपैरन्यैश्चान्वितौ बलकेशवौ। सन्नद्धावुद्धतौ योद्धुं कुरुक्षेत्रमुपागतौ ॥ ७६ ॥ जरासंधोपि युद्धेच्छुर्भीष्मेणाविष्कृतोष्मणा ।
सद्रोणेन सकर्णेन साश्वत्थाम्न। च रुक्मिणा ॥ ७७ ॥ शल्येन वृषसेनेन कृपेण कृपवर्मणा । रुधिरेणेंद्रसेनेन जयद्रथमहीभृता ॥ ७८ ॥ हेमप्रभेण भूभर्त्रा

तथा नेमिकुमारके समीप जाकर कहने लगे कि आप इस नगरकी रक्षा कीजिये आज मगधदेशका राजा जरासंध हम लोगोंको जीतनेके लिये आ रहा है इसलिये आपके प्रभावसे शीघ्र ही जाकर घुनके खाये हुए पुराने वृक्षके समान उसे उखाड फेंकूगा इसतरह कृष्णाने प्रभावशाली वचन कहे। इन सब बातोंको सुनकर अवधिज्ञानको धारण करनेवाले और प्रसन्न चित्त नेमिकुमार मधुर नेत्रोंसे कुछ हंसे परंतु उनकी उस थोडीसी हंसीसे अपने विरोधियोंके जीतनेका निश्चय कर लिया। जिनके दांतोंकी कांति दैदीप्यमान हो रही है ऐसे नेमिकुमारने कृष्णासे ओं अक्षर कहकर स्वीकारता दी। जिसप्रकार जिनका अन्यथा अनुपपत्ति यह लक्षण ही आभूषण है ऐसे पक्ष आदिकोंके द्वारा जैनवादी अपनी विजयका निश्चय कर लेता है उसीप्रकार तीनोंलोकोंके स्वामी नेमिकुमारके हंसनेसे ही कृष्णाने अपनी विजयका निश्चय कर लिया ॥ ६८–७२ ॥ अथानंतर कृष्ण और बलदेव दोनों भाई शत्रुको जीतनेकेलिये जय, विजय, सारण, अंगद, धव, उद्धव, सुमुख, पद्म, जरा, सुदृष्टि, पांचों पांडव, सत्यक, द्रुपद, सब यादव, विराट, अपार सेनासे वेष्टित धृष्ट अर्जुन, उग्रसेन, युद्धका अभिलाषी चमर, विदुर तथा अन्य अनेक राजाओंके साथ उद्धत होकर युद्धकेलिये तैयार हुए और वहांसे चलकर कुरुक्षेत्रमें जा पहुंचे ॥ ७३–७६ ॥ उधर युद्धकी इच्छा करनेवाला जरासंध भी अपनी ज्वालाको फेंकते हुए भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, रुक्म, शल्य, वृषसेन कृप, कृपवर्मा, रुधिर इंद्रसेन, जयद्रथ, हेमप्रभ, पृथ्वीका नाथ दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्धर्षण, दुर्जेय, राजा कलिंग, भगदत्त, तथा और अनेक राजाओंके साथ कृष्णाके समने आ पहुंचा ॥ ७७–८० ॥ उसीसमय कृष्णाकी सेनामें युद्धके बाजे बजने लगे तथा जिसप्रकार कुसुंभ वस्त्रको रंग देता है उसी प्रकार उस बाजेकी आवाजसे शूरवीरोंके

रत्नान्यादाय सारभूतानि तत्पुरात् । गत्वा राजगृहं प्रापन्नर्करत्नमहीपतिं ॥ ५४ ॥ रत्नान्युपायनीकृत्य पुरस्कृत्य वणिक्पतिं । ददृशुः कृतसन्मानस्तान-प्रृच्छत्प्रजेश्वरः ॥ ५५ ॥ भो भवद्भिः कुतो लब्धमिदं रत्नकदंबकं । उदंशुभिरिवोन्मीलतेक्षणं कौतुकादिति ॥ ५६ ॥ शृणु देव महच्चित्रमेतदस्मद्विलोकित । पातालादेत्य वाहष्टपूर्वमुर्व्यामुपस्थितं ॥ ५७ ॥ सकटीकृतसौधोरुभवनत्वादिवांबुधेः । फेनराशिस्तदाकारपरिणाममुपागतः ॥ ५८ ॥ अलघ्यत्वात्परै पुण्य वापरं भरतेशितु । नेमिस्वामिसमुत्पत्तिहेतुत्वान्नगरोत्तम ॥ ५९ ॥ अमहत्तदनासेव्यमर्थिभिर्वीतगौरवं । शरदब्दकुल तिष्ठत्युपर्येतन्ममेति वा ॥ ६० ॥ सौधाग्रांदोलितालोलपताकाबहुबाहुभिः । निराचिकीर्षतसंघर्षादुद्दूरमभ्रपयोच्छ्रित ॥ ६१ ॥ परार्घ्यभूमिरत्नलात्कृष्णतेजोविराजनात् । सदागंभीरशब्दत्वादंभोधिजलसन्निभ ॥ ६२ ॥ नवयोजनविस्तारं दैर्घ्ये द्वादशयोजनं । पुरं द्वारवती नाम यादवाना पयोनिधे ॥ ६३ ॥ मध्ये प्रवर्तते तस्मादेतद्रत्नकदंबक । लब्धमस्माभिरित्येवमब्रुवस्तेपि भूपतिं ॥ ६४ ॥ श्रुत्वा तद्वचन क्रोधादंधीभूतोगूवीक्षण । जरासंधो धियाप्यंधो दर्पादेवातिवंधितः ॥ ६५ ॥ चचालाकालकालांतचलितात्मबलांबुधि । कर्तुं यादवलोकस्य विलयं वाविलंबित ॥ ६६ ॥ नारदस्तत्तदा ज्ञात्वा निर्हेतुसमरप्रियः । हरिं सत्वर-

किया गया हो अथवा समुद्रके फेनका समूह ही नगररूप वन गया हो। अन्य शत्रु लोग उसे कभी उल्लंघन नहीं कर सकते वह भरतक्षेत्रके स्वामी चक्रवर्तीके दूसरे पुण्यके समान जान पडता है। अथवा स्वामी नेमिनाथके उत्पन्न होनेके कारण ही वह नगर सबसे उत्तम है ॥ ५७--५९ ॥ वह नगर विशद था याचक लोगोंके लिये सेवा करने योग्य था और गुरुता अर्थात् भारीपन वा जडतासे रहित था। अथवा यह शरद् ऋतुका बादल मेरे भी ऊपर रहता है यही समझकर वह बडे बडे राजभवनोंके ऊपर फहराती हुई अनेक चंचल पताकारूपी भुजाओंके संघट्टनसे आकाशमें दूर जाकर पडे हुए उन बादलोंको निराकरण करता है ॥ ६०--६१ ॥ अथवा वह बहुमूल्य रत्नों की भूमि होनेसे वा कृष्णके तेजसे सुशोभित होनेसे और सदा गंभीर शब्द करनेसे वह नगर सदा समुद्रके जलके समान जान पडता है। वह द्वारावती नामका यादवोंका नगर नौ योजन चौडा है और बारह योजन लंबा है तथा समुद्रके मध्यमें सुशोभित है। उसी नगरसे ये रत्न हम लोगोंको मिले हैं इसतरह उन वैश्यपुत्रोंने राजा जरासंधसे कहा ॥ ६२--६४ ॥ ये बातें सुनकर जरासंधने क्रोधसे अंधे होनेके समान ऊंची दृष्टि कर ली, उससमय वह बुद्धिसे भी अंधा वन गया और अभिमानसे सब नियमोंका उल्लंघन करने लगा ॥ ६५ ॥ शीघ्र ही यादवोंका नाश करनेकेलिये वह असमयमें ही प्रलयकालके समुद्रके समान अपनी सब सेना लेकर चला ॥ ६६ बिना कारण युद्धको पसंद करनेवाला नारद ये सब समाचार जानकर बडी शीघ्रतासे उसीसमय कृष्णके समीप पहुंचा और उसने जरासंधके आनेकी सब खबर कह सुनाई ॥ ६७ ॥ सुनते ही कृष्ण शत्रुको मारनेकेलिये व्याकुल हुए

वनेशनिर्मितत्रेधामणिसोपानमार्गेण ॥ ४२ ॥ नीत्वा पयोदमार्गेण गिरीशेशानदिग्तटे । पाण्डुकाख्यशिलाप्रस्थमणिसिंहधृतासने ॥ ४३ ॥ अनादिनिधने बालमारोप्यात्यर्कतेजस । क्षीरांभोधिपय पूर्णसुवर्णकलशोत्तमै ॥ ४४ अष्टाधिकसहस्रेण प्रमितैरमितप्रभैः । हस्ताद्धस्त क्रमेणामराधिनाथसमर्पितै ॥ ४५ ॥ अभिषिच्य यथाकाममलकृत्य यथोचितं । नेमिं सद्धर्मचक्रस्य नेमिनामानमभ्यधात् ॥ ४६ ॥ तस्मादानीय मौलींद्रमाननीयं महोदय । मातापित्रो पुनर्दत्वा विधायानदनाटक ॥ ४७ ॥ विकृत्य विविधान्बाहून् रसभावनिरंतरं । स्वावासमगमत्सर्वैरहमिंद्र सहामरैः ॥ ४८ ॥ नमेर्भगवतस्तीर्थसंतानसमये स्थितः । पचलक्षाः समाः प्रांते तदंतर्गतजीवितः ॥ ४९ ॥ जिनो नेमि समुत्पन्न• सहस्राब्दायुरन्वितः । दशचापसमुत्सेधः शस्तसस्थानसहतिः ॥ ५० ॥ त्रिलोकनायकाभ्यर्च्यः स्वाभ्यर्णीकृतनिर्वृति । तस्थौ सुखानि दिव्यानि तस्मिन्ननुभवंश्चिरं ॥ ५१ ॥ गच्छत्येव क्षणेवास्य काले बहुतरेन्यदा । आत्तवारिपयोयोगा नष्टदिक्का वणिक्सुताः ॥ ५२ ॥ प्राप्य द्वारावतीं केचित्पुण्यान्मगधवासिन• । राज्यलीला विलोक्यावविभूतिं च सविस्मयाः ॥ ५३ ॥ बहूनि-

पूज्य और महापुण्यात्मा नेमिनाथको वहांसे लाकर मातापिताको सौंपा, विक्रिया ऋद्धिके द्वारा अनेक भुजाओंको बनाकर निरंतर रसभावसे भरा हुआ आनंद नाटक किया और फिर सब देवोंके साथ वह इंद्र अपने निवास स्थानको चलागया ॥ ४७–४८ ॥ श्रीनमिनाथ स्वामीके वाद पांच लाख वर्ष वीत जाने पर नेमिनाथ हुए थे उनकी आयु भी इसी समय में अंतर्गत समझनी चाहिये। उनकी आयु एक हजार वर्षकी थी शरीरकी ऊंचाई दश धनुष थी उनके संस्थान आदि सब प्रशंसनीय थे तीनों लोकोंके इंद्र उनकी पूजा करते थे, मोक्ष उनके समीप थी, और उसी द्वारावतीमें बहुत दिन तक दिव्य सुखोंका अनुभव करते हुए निवास करने लगे ॥ ४९–५१ ॥ इस तरह उनका वहुत वडा समय भी क्षणभरके समान व्यतीत हो गया था। किसी एक दिन मगधदेशके रहने वाले कितने ही वैश्यपुत्र अपने पुण्यकर्मके उदयसे समुद्रमार्गसे मार्ग भूलकर द्वारावतीमें आ पहुंचे वहांकी राजलीला और विभूति देखकर उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वहां से वहुतसे अच्छे अच्छे रत्न साथ लिये और फिर वे वहांसे चल कर राजगृह नगरमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने वे रत्न भेट कर चक्ररत्नके स्वामी महाराज जरासंधके दर्शन किये राजाने उन सबका आदर सत्कार किया और फिर बडे कौतुकसे पूछा कि उठतीं हुई किरणोंसे खुले हुए नेत्रोंके समान यह रत्नोंका समूह तुम्हें कहांसे मिला है ॥ ५२–५६ ॥ तव वे वैश्य पुत्र कहने लगे कि हे देव ! सुनिये हमने ये सब बडी आश्चर्य रखनेवाली चीजें देखी हैं। समुद्रके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर नगर है ऐसा नगर हम लोगोंके देखनेमें कभी नहीं आया मानों वह पातालसे निकल कर ही पृथ्वीपर आया हो अथवा उज्वलताका समुदाय ही एक जगह इकट्ठा

स्वप्नमालिकां । आलोकतानुवक्त्राब्जं प्रविष्टं च गजाधिप ॥ ३२ ॥ तदा वंदिवचोयाममेरीध्वनिविबोधिता । कृतमंगलसुस्नाता धृतपुण्यप्रसाधना ॥ ३३ ॥ उपचारवदभ्येत्य नृपमर्द्धासने स्थिता । स्वदृष्टस्वप्नमालामन्वयुंक्त शुभाननं ॥ ३४ ॥ संकलय्य नरेंद्रोपि फल तेषाममाषत । त्वद्गर्भे विश्वलोकेशोवतीर्ण इति सूक्ष्मधी: ॥ ३५ ॥ श्रुत्वातदैव संलब्धवती वानुषदप्यसौ । ज्ञात्वा स्वचिन्हैर्देवेंद्राः सभूयागत्य सम्मदाः ॥ ३६ ॥ स्वर्गावतारकल्याणमहोत्सवविधायिनः । स्वेषां च पुण्यं निर्वर्त्य स्वधाम समुपागमन् ॥३७॥ स पुनः श्रावणे शुक्लपक्षे षष्ठीदिने जिनः । ज्ञानत्रितयधृत्त्वष्टृयोगे तुष्टयामजायत ॥ ३८ ॥ अथ स्वविष्टराकपसमुत्पन्नावधीक्षणा । बुद्ध्वा भगवदुत्पत्तिं सौधर्मेंद्रपुरस्सरा ॥ ३९ ॥ संजातसमदाः प्राप्य परिवेष्य पुरं स्थिता । ऐरावतगजस्कंधमारोप्य भुवनप्रभु ॥ ४० ॥ सौधर्मपतिर्भक्त्या नीलाभोजदलद्युतिं । ईशमीशानकल्पेशधृतातपनिवारण ॥ ४१ ॥ नमश्चमरवैरोचनोद्धूतचामरीरुह ।

देखे हुए सब स्वप्न कह सुनाए सुन कर सूक्ष्म बुद्धि वाले महाराज समुद्रविजयने भी शुभके आगमनको सूचित करनेवाला उनका इकट्ठा एक फल कहा कि तेरे गर्भमें तीनों लोकोंके स्वामी तीर्थंकर परमदेवने अवतार लिया है ॥ ३२—३५ ॥ पतिके वचन सुनकर तीर्थंकर पुत्र हुएके समान ही वह संतुष्ट हुई। उसी समय अपने अपने चिन्होंसे इंद्रोंको भी मालूम हुआ वे सब वडी प्रसन्नतासे मिलकर आए, उन्होंने स्वर्गावतरण कल्याणका महोत्सव किया तथा अपने पुण्यकर्मोंका बंध किया और फिर वे सब लोग अपने स्थानको चले गये ॥ ३६–३७ ॥ तदनंतर श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें मति श्रुत अवधि इन तीनो ज्ञानोंको धारण करनेवाले भगवान उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उसी समय सौधर्म आदि सब इंद्रोंके सिंहासन कंपायमान हुए उन्होंने अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे भगवानका जन्म जान लिया। तदनंतर वे सब मिलकर वडी प्रसन्नतासे आए, द्वारावती नगरीके चारोओर आ उपस्थित हुए सौधर्म स्वर्गके इंद्रने वडी भक्तिसे तीनोंलोकोंके स्वामी और नील कमलके दलकी कांतिके समान भगवान पुत्रको ऐरावत हाथीके मस्तक पर विराजमान किया, ईशान स्वर्गके इंद्रने उनपर छत्र लगाया तथा चमर ढुलाने लगे। कुवेरने तीन तरह मणियोंकी सीढियां वना कर मार्ग वनाया था उसी परसे आकाशमार्गमें होकर मेरु पर्वतपर पहुंचे। मेरु पर्वतकी ईशान दिशाकी ओर जो पांडुशिला है और उसपर जो अनादि अनिधन मणियोंका सिंहासन रक्खा है उस पर सूर्यके समान तेजको धारण करनेवाले पुत्रको विराजमान किया। फिर सब इंद्र अपार कांतिको धारण करनेवाले सुवर्णके वने हुए एकहजार आठ उत्तम कलशोंसे हाथों हाथ क्षीरसागरका जल लाए। उनसे इच्छानुसार भगवानका अभिषेक किया यथायोग्य रीतिसे वस्त्राभरण पहिनाकर अलंकृत किया और फिर उन्हें सद्धर्मरूपी चक्रकी धुरी समझकर उनका नेमि अथवा नेमिनाथ नाम रक्खा ॥ ३९–४६ ॥ फिर सबके मुकुटमणि,

अथैकसप्ततितमं पर्व ।

निवृत्तकर्णान्ता

अथ कंसवधूमुक्तलोचनांभःप्रवाहिनः । भूभृतः समुत्पन्ना ममतादुत्सवांकुराः ॥ १ ॥ वसुदेवात्मजोनन्दः [illegible] कोन. पुत्रः । नजे कंसनयाद्- वृद्धि शूरः प्रच्छन्नमासवान् ॥ २ ॥ वृद्धिरस्य स्वपक्षस्य वृद्धे न च केवल । जगतः कुमारांभोरिव वृद्धि [illegible] ॥ ३ ॥ इत्यगीयन्त मानवा [illegible]- वासिभिः । विप्रसिनोप्रसेनाद्यमतीशस्य महात्मनः ॥ ४ ॥ विसर्जयत् गोनंदगोपान् पूज्य सद्धनैः । प्रविश्य सुनिः संगम्य शौरिपुरं हरे ॥ ५ ॥ [illegible] सुतेन यत्नेन देवी जीवद्यशामृतं । तु पिता मरणात्पत्युर्जरासंधमुपेत्य सा ॥ ६ ॥ तस्य प्रणम्य वृत्तांतं समभूत्तत् । [illegible] न यथा पुत्रा [illegible]- याद्वान् प्रति॥ जातेपि सनवा सैन्य स्व गत्वा युध्या स्थापणे । भगनापन्न के [illegible] ॥८॥ [illegible] पुत्रः [illegible] । [illegible]- न्वर्थनामानं तं द्विषानतकोपमं ॥ ९ । शतम्र च षट्चत्वारिंश सोपि महाबलः । [illegible] ॥ १० ॥ पुनः पितृ [illegible]

अथ इकहत्तरियां पर्व ।

अथानंतर—कंसकी स्त्रीके लोचनोंसे निकले हुए पानीको पीकर पृथ्वीके अंकुरोंके समान चारो ओरसे उत्सवोंके अंकूरे प्रगट होने लगे ॥ १ ॥ "ये कृष्ण पुण्यवान वसुदेवके शूरवीर पुत्र हैं कंसके डरसे व्रजमें छिपाकर इन्हें बडा किया है। अनुक्रमसे होनेवाली इनकी वृद्धि केवल अपने पक्षवालोंको ही बढानेवाली नहीं है किंतु चंद्रमाके समान संसारभरको आनंद देनेवाली है।" इसप्रकार उस देशके रहनेवाले तथा नगर निवासी लोग कृष्णकी प्रशंसा करते थे. उन महात्माने राजा उग्रसेनके बंधन तोड दिये थे, बहुतसे धनसे नंदगोपोंकी पूजाकर उन्हें विदा किया और फिर सब यादवोंके साथ सूरीपुरमें प्रवेश किया। इसतरह कृष्णका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। किसी एक दिन जीवद्यशा देवी पतिके मरनेसे दुखी होकर जरासंधके समीप पहुंची ॥२-६॥ घरपर जो समाचार हुए थे वे सब पिताको मझाये सुनकर जरासंधको बहुत क्रोध आया और यादवोंपर अपने पुत्रोंको भेजा ॥ ७ ॥ यादव भी अपनी सेना सजाकर युद्धके लिये निकले और उन्होंने जरासंधके उन पुत्रोंको हरा दिया सो ठीक ही है क्योंकि दैव विमुख होनेपर कौन नहीं हारता है ॥ ८ ॥ तदनंतर जरासंधने क्रोधकर शत्रुओंको यमराजके समान सार्थक नामको धारण करनेवाले अपराजित नामके पुत्रको भेजा ॥ ८ ॥ वह अपराजित, पुत्र बलवान योधाओंको लेकर निकला तीनसौ छयालीस वार उसने युद्ध किया परंतु पुण्य रहित होनेसे उसे भी परान्मुख होना पडा ॥ १० ॥ इसके बाद पिताकी आज्ञासे "मैं यादवोंको अवश्य जीतूंगा" ऐसा कहकर कालयवन नामका पुत्र चलनेके लिये

संप्राप्यापतदुग्रसेनतनयो बग्पातग्वेवत । तं व्योम्नि भ्रमयन् करेण चरणे संगृह्य वाल्याङज भूमो नेतुमुपांतमंतकविभो कृष्ण समाहकालगत् ॥ ४९४ ॥ आपेतुर्नभसस्तदा सुमनसो देवानकेर्दध्वने, स्वारावो वसुदेवसैन्यजलधेः प्रक्षोभणादुद्गन । शौरी वीरवरो विरुद्धनृपतीनाक्रम्य रंगस्थितेः स्वीकृत्या-प्रतिमल्लमाप्तविजयं शौर्योर्जितं स्वानुज ॥ ४३५ ॥ अतुलबलमलध्यारातिमत्तभघातत्कुपितहरिसमान माननीयापदानं । सपदि समुपयाता वंदिभि श्च-मान जनितसकलराग त हरिं वीरलक्ष्मीः ॥ ४९६ ॥ दूतीव मे श्रितवती वरवीरलक्ष्मीरेतस्य दक्षिणभुज विजयैकरोह । प्राप्तवर्ति चिरतरादिते त क-टाक्षेरेक्षिष्ट रागतरलैर्भरतार्द्धलक्ष्मी ॥ ४३५ ॥

इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे नेमिचरिते कृष्णविजयो नाम सप्ततितम पर्व ॥ ७० ॥

उसीसमय आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा हुई, देवोंके नगाडे बजने लगे और वसुदेवकी सेनारूप समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न होने-से बडा भारी कोलाहल होने लगा । उसी समय जिसके साथ लडने योग्य कोई मल्ल नहीं है जो शूरवीरतामें सबसे बडे हैं और जिन्होंने विजय प्राप्त की है ऐसे अपने छोटे भाई कृष्णको साथ लेकर शूरवीर बलभद्र विरुद्ध राजाओंपर आक्रमणकर रंगभूमिमें आखडे हुए ॥ ४९३ ॥ जिनमें अतुल बल है जो किसीसे उलंघन न किये जा सकें ऐसे शत्रुरूप मत्त हाथियोंके घात करनेके लिये क्रोधित हुए सिंहके समान हैं, जिनका पदस्थ माननीय है और वंदीजन सदा जि-न्हें नमस्कार करते हैं ऐसे कृष्णके समीप वीर लक्ष्मी अपना सब अनुराग प्रगटकर बहुत शीघ्र आ उपस्थित हुई थी ॥ ४९४ ॥ श्रीकृष्णके समीप श्रेष्ठवीर लक्ष्मी तो दूतीके समान आ ही गई थी परंतु आधे भरतक्षेत्रकी लक्ष्मी चिर-कालसे प्राप्त हुए पतिके समान विजयकी एक स्थान ऐसी कृष्णकी दाहिनी भुजाको प्रेमसे भरे तरल कटाक्षोंसे देखती थी ॥ ४९५ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीनेमिनाथके चारित्रमें श्रीकृष्णके विजयका वर्णन करनेवाला यह सत्तरिवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

—.o:—

गात्रश्रितवृत्तिप्रवीणः । सततकृतनियोगाद्रूपमल्लैरमल्लैरविकलजयलभ मर्त्यसंभाविनौजाः ॥ ४८८ ॥ स्थिरचरणनिवेशो वज्रसारास्थिबंधो भुजपरिघवि-
बाधी मुष्टिसमायिमध्य । कठिनपृथुलवक्षाः स्थूलनीलाद्रितुगस्त्रिगुणितनिजमूर्तिर्दर्पसर्पाद्दुरीक्ष्यः ॥ ४८९ ॥ उवनितवलितनेत्रो निष्ठुराबद्धमुष्टि परि
णतकरणौघो मक्षुसंचारदक्षः । भृशमशनिरिवोग्रो नदसुनुः स्थितः सन् भयमवददसत्य प्रेतनाथस्य वीर्यैः ॥ ४९० ॥ रूपीव शौर्यमखिल मिलित बलं वा
रेद'समस्तमपि सहतिमेयि वद्धा । सिंहाकृतिः स महसाकृतसिंहनादो रंगादलघत नभोंगणमगण वा ॥ ४९१ ॥ आपत्य स्वादशनिवद्भुवमात्मपादप्रा-
तामिघातवलिताचलसंधिबंधः । वल्गन् मुहु' परिगरन् प्रतिजृंभमाणनिद्गूररंजितभुजो वलयन्नुदग्रो ॥ ४९२ ॥ क्रुद्ध कटीद्वितयपार्श्वविलंबिपीतवस्त्रो
नियुद्धकुशल प्रतिमल्लमुग्र । चाणूरमद्रिशिखरोन्नतमापततमाहत्य सिंहवदिभ सहसा बभासे ॥ ४९३ ॥ दृष्ट्वैन रुधिरोद्गमोप्रनयनो योद्धु स्वय मल्लतां

पतली थी, तथा वक्षःस्थल बहुत ही कठिन और बडा था। वे स्थूल नील पर्वतके समान ऊंचे थे, गजाओंके तीनों गुणोंरूप ही उनकी मूर्ति थी और वे अभिमानी सर्पसे भी दुरीक्ष्य (जो देखे न जा सकें) थे ॥ ५८७ ॥ उनके ज-लते हुए नेत्र चारों ओर फिर रहे थे, कठोर मुठी बधी हुई थी, उन्होंने अपनी इंद्रियोंको खूब पुष्ट किया था वे शीघ्रतासे पैंतडा बदलनेमें चतुर थे, वज्रके समान अत्यंत उग्र थे और यमराजको भी असह्य भय देनेवाले थे ऐसे वे नंदकुमार श्रीकृष्ण अखाडेमें खडे थे ॥ ४८८ ॥ उससमय वे ऐसे जान पडते थे मानो शूरवीरताकी मूर्ति ही हों अथवा संसारका सब बल एक ही जगह इकट्ठा होकर आगया हो अथवा वेगका सब समूह एक जगह आकर बंध गया हो। सिंहके आकारको धारण करनेवाले उन कृष्णने अकस्मात् सिंहनाद किया और फिर रंगभूमिसे उछलकर आं-गनके समान आकाशको उल्लंघन किया ॥ ८९ ॥ फिर आकाशमें वज्रके समान जमीनपर आये, उनके पैर पडनेकी चोटसे निश्चल संधियोंके बंध भी हिल गये, वे बार २ गर्जने लगे, दौडने लगे और लंबी तथा फैली हुई सिंदूरसे रंगी हुई भुजाओंको इधर उधर चलाने लगे ॥ ९० ॥ उस समय वे क्रोधित होरहे थे, कमरके दोनों ओर पीला वस्त्र पीली लंगोटी पहिने थे, और लडनेमें अत्यत निपुण, उग्र और पर्वतकी शिखरके समान ऊंचे ऐसे आये हुये हाथीके समान चाणूर नामके प्रतिमल्लको बडी शीघ्रतासे मारकर वे सिंहके समान सुशोभित होरहे थे ॥ ४९१ ॥ इसप्रकार विजयी कृष्णको देखकर क्रोधके कारण रुधिर भरजानेसे (लाल होजानेसे) जिसके नेत्र विशाल हो रहे हैं ऐसा उग्रसेनका पुत्र कंस पूर्व जन्मके वैरके कारण मल्लबन कर आया परंतु कृष्णने उसके दोनों पैर पकडकर छोटे अंडेके समान आकाशमें फिराया और यमराज महाराजके समीप ले जानेके लिये उसे जमीनपर दे पटका ॥ ४९२ ॥

यदितदा ॥ ४७९ ॥ स्वसैन्य समुदायेन सैनाथैकत्र तस्थिवान् । सीरपाणि समुत्थाय कृतदो स्फालनध्वनिः ॥ ४८० ॥ कृष्णेन सह रंग वा समंतात् स परिभ्रमन् । कस नाशयितु कालस्तवेत्याख्याय निर्गतः ॥ ४८१ ॥ तदा कसाज्ञया विष्णुविधेया गोपमूनव । दर्पिणो भुजमास्फाल्य धृतमल्लपरिच्छदा ॥ ४८२ ॥ श्रवणाह्लादिवादित्रचटुलध्वनिसंगताः । क्रमोत्क्षेपविनिक्षेपा' प्रोन्नतासद्गयोद्धुराः ॥ ४८३ ॥ पर्यायनर्तितप्रेक्ष्यभ्रूभगा भीषणारवा । निवर्तनैः शतावर्तैनैः सम्भ्रमणवल्गनै ॥४८४॥ प्लवनैः समवस्थानरन्ध्रैश्च करणैः स्फुटैः । रंगाभ्यर्णमलकुल तस्थुर्नेत्रमनोहराः॥४८५॥प्रावृत्ता कसमल्लाश्च चाणूरप्रमुखास्तथा । रंगाभ्यासं समाक्रम्य विक्रमैकरसाः स्थिताः ॥ ४८६ ॥ मध्येरंगमुदात्तचित्तविसरो वीरोरुमल्लाग्रणी प्रागेव प्रतिमल्लयुद्धविजय प्राप्येव दीप्रद्युति । भास्वत च दिवोवतीर्णमधुना योद्धु गत मल्लता जेष्यामीति वितृद्धविक्रमरस संभावयन्स स्वय ॥४८७॥ घनधृतपरिधानो वद्धकेशोविकूर्चं सहजमसृण

मारनेका समय है " ऐसा कृष्णसे कह कर बाहर निकल गये ॥ ४७५-८१ ॥ इसके बाद कंसकी आज्ञा से अभिमानी कृष्ण आदि गोपोंके पुत्र मल्लोंका भेष वनाए भुजाएं ठोंकते हुए आए ॥ ४८२ ॥ उस समय कानोंको प्रसन्न करनेवाले वाजे वज रहे थे और उनकी चंचल ध्वनिके साथ साथ वे मल्ल लोग अपने पैर उठाते रखते जाते थे अपने उठे हुए कधों से वे कुछ गर्विष्ठ हो रहे थे ॥ ४८३ ॥ वे लोग लौट कर देखते हुए भौंहें नचाना, भीषण शब्द करना, सैकडोंबार इधरसे उधर और उधरसे इधर आना जाना संभ्रमके साथ गर्जना, दौड़ना कूदना चुप चाप वैठना तथा और भी अनेक तरहके कामकर रंगभूमिको सुशोभित करते हुए लोगोंके नेत्रोंको मनोहर जान पडते थे ॥ ४८२–४८३ ॥ इतनेमें ही पराक्रम ही जिनका एक रस है ऐसे २ चाणूर आदि कंसके मल्ल भी उठे और रंगभूमिके चारों ओर आकर बैठ गये ॥ ४८४ ॥ उससमय रंगभूमिमें खडे हुए कृष्ण बडे ही अच्छे जान पडते थे। उनके चित्तका विस्तार बहुत बडा था, वे शूरवीर और बडे बडे मल्लोंमें मुख्य थे, प्रतिमल्लसे युद्धकी विजय पानेके समान उनकी कांति पहिले ही से देदीप्यमान हो रही थी उनका पराक्रमरूपी रस बहुत बढ रहा था और वे अपने लिये ऐसी संभावना कर रहे थे मानो युद्ध करनेके लिये मल्ल बनकर आकाश से उतरकर आए हुए सूर्यको भी मैं उससमय अवश्य जीतूंगा ॥ ४८५ ॥ उससमय उनके वस्त्र बहुत कडे बंधे थे, केश बधे हुए थे, दाढी मूंछ थी नहीं स्वभावसे ही चिकना शरीर था, वे चित्तकी वृत्तिमें बडे प्रवीण थे, अमल्लोंके समान गोप मल्लोंसे वे सदा लडते रहते थे और वे सदा जीतते थे, इसतरह उनका पराक्रम सबपर प्रगट था ॥ ४८६ ॥ उनके पैरका टिकाव स्थिर था, हड्डियोंका बंधन वज्रके समान था, भुजारूपी लोहेके डंडे अबाध थे, मध्यभाग अर्थात् कमर मुठीमें समाने लायक

स्तिवति ॥ ४६९ ॥ पीतांबरं समुद्धूल्य जलार्द्रं मधुसूदनः । स्फटमास्फलयामास पक्षिकेणेव पक्षिराट् ॥ ४७० ॥ वज्रपातयितास्तस्माद्‌भ्रपाताद्भिमीतवान् । पूर्वपुण्योदयाच्चास्य फणींद्रोऽदृश्यतामगात् ॥ ४७१ ॥ हरिर्यथेष्टमब्जानि समादाय निजद्विष । समीपं प्रापयत्तानि दृष्ट्वारिं दृष्टवानिव ॥ ४७२ ॥ नदगोपसमीपेस्थान्मच्छत्रुरिति निश्चयात् । कदाचिन्नदगोपाल मल्लयुद्ध निरीक्षितु ॥ ४७३ ॥ निजमल्लैः सहागच्छेदिति संदिशति स सः । सोपि कृष्णादिभिर्मल्लै सह प्राविक्षदक्षय ॥ ४७४ ॥ क्वचिन्मत्तगज वीतबघन यमसन्निभ । मदगधसमाकृष्टरुवद्भ्रमरसेवित ॥ ४७५ ॥ नियमच्युतभूपालकुमारं वा निरंकुश । रदनाघातनिर्भिन्नसुधाभवनभित्तिक ॥ ४७६ ॥ आधावत विलोक्यासौ प्रतीत्योत्पाट्य भीषण; । रदमेक कुमारस्त तेनैव समताडयत् ॥४७७ ॥ सोपि भीतो गतो दूरं सतरतुष्ट्वा हरिर्भृश । जयोनेन निमित्तेन कुटुंबप्रकटीकृत: ॥ ४७८ ॥ इति गोपान् समुत्साह्य प्राविशत्कससंसद । वसुदेवमहीशोपि कसाभिप्रा-

की शिला वनाता हूं ऐसा विचार कर वे जलसे भीगा हुआ अपना पीतांवर उठा कर उस फणा पर धोने लगे तव वह नागराज वजूपातके समान उस पीतांवरके गिरनेसे छोटे पक्षीके समान डर गया और कृष्णके पूर्व पुण्यकर्मके उद से वह नागराज अदृश्य हो गया ॥ ४६५-४७१ ॥ तदनंतर कृष्णने इच्छानुसार कमल तोडे और अपने शत्रुके पास पहुंचा दिए उन कमलोंको देखकर कंसने शत्रुको देखनेके समान ही मान लिया और निश्चय कर लिया कि मेरा शत्रु नंदगोपके समीप ही है। किसी एक दिन कंसने नदगोपालको समाचार कहला भेजा कि तुम अपने मल्लोंके साथ मल्ल युद्ध देखनेके लिये आओ। इन समाचारोंको सुन कर नंदगोप भी कृष्ण आदि सव मल्लोंको लेकर निर्भय हो मथुराको चले ॥ ४७२ ४७४ ॥ नगरमें घुसते ही कृष्णकी ओर एक हाथी दौड़ा, वह हाथी मदोन्मत्त था, यमके समान था, वंधन तोड़ कर आया था, उसके मदकी गंधसे गुजार करते हुए अनेक भ्रमर आकर उसकी सेवा करते थे अपने नियमोंसे च्युत हुए राजकुमारके समान निरंकुश था और अपने दांतोंकी चोटोंसे चूनासे सफेद हुई दीवालों को तोडता आ रहा था उसे अपनी ओर दौड़ता हुआ देखकर भयंकर कुमार कृष्णने खडे होकर उसका एक दांत तोड दिया और फिर उसी दांतसे उसे मारने लगे जिससे वह हाथी डरकर दूर भाग गया। यह देखकर नंदगोप बहुत ही संतुष्ट हुए और कहने लगे कि हम लोगोंकी जीत यदि होगी तो इसीसे होगी इस तरह सव कुटुंबमें प्रगट कर और दूसरे गोपोंको उत्साहित कर वे कंसकी सभामें पहुचे। उस समय राजा वसुदेवने भी कंसके अभिप्राय जान लिये और अपनी सव सेना सजा कर एक जगह आ खडे हुए। वलभद्र उठ कर अपनी भुजाओंके ठोंकनेकी आवाज करते हुए कृष्णके साथ रंगभूमिमें पहुचे और चारों ओर इधर उधर घूमने लगे। तदनंतर वे "यह तुम्हारा कंसके

त ॥ ४६१ ॥ नदगोपस्य पुत्रोमा यत्तत्रितयकर्मकृत । इत्यन्वेष्टु गते सम्यक् ज्ञापितेनाप्यनिश्चितैः ॥ ४६२ ॥ सहस्रपत्रमंभोजमन्यंदाहींद्ररक्षित । प्रहीयतामिति प्रोक्तो राजा जिज्ञासया रिपो ॥ ४६३॥ श्रुत्वा तद्गोपतिः शोकादाकुलः किल भूभुजः । प्रजानां रक्षितारस्ते कष्टमद्य हि मारकाः ॥ ४६४ ॥ इति निर्विद्य याहंगराज विष्टिर्ममेदशी । त्वयैवांबुरुहाण्युप्रसर्परक्षाणि भूभुज ॥ ४६५ ॥ नेयानीत्यब्रवीत्कृष्ण: सोपि किं वात्र दुष्करं । नेष्यामीति महा-नागसरः क्षिप्रतरं ययौ ॥४६६॥ अविशच्च विनि:शक तद्ज्ञात्वा कोपवेपित: । स्वनि श्वाससमुद्भूतज्वलद्ज्वालाकणान् किरन् ॥४६७॥ चूडामणिप्रभाभा सिस्फटाटोपभयकरः । जलज्जिह्वाद्वयः स्फूर्जद्दीक्षणात्युग्रवीक्षण ॥ ४६८॥ प्रत्युत्थाय यमाकारो निगरीतुं तमुद्यतः । सोपि मद्वसनस्यैषा स्पटा शुद्धशिला-

तथा आश्चर्य करने लगे तथा अकस्मात् आकर उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण आदि देकर कृष्णका यथायोग्य आदर सत्कार किया ॥ ४६० ॥ तब कृष्णके पिता नंदगोपने समझ लिया कि इस कृष्णके प्रभावसे अब हमें किसी बातका डर नहीं है इसलिये वे अपने व्रजके पहिले स्थानमें आ पहुंचे ॥ ४६१ ॥ इधर तीनों रत्नोंको सिद्ध करनेवालेको ढूंढनेके लिये जो लोग निकले थे उन्होंने तलाश कर कंससे जा निवेदन किया कि नंदगोपके पुत्रने ही ये तीनों काम एक साथ किये हैं। ऐसा निश्चय हो जाने पर कंसने शत्रुको जाननेकी इच्छासे नंदगोपको कहला भेजा कि नागराज जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा एक हजार दलवाला कमलका फूल लाकर दो ॥ ४६२–४६३ ॥ यह सुन कर नंदगोप शोकसे बहुत ही व्याकुल हुआ और कहने लगा कि राजा लोग प्रजाकी रक्षा करनेवाले होते हैं परंतु दुःखके साथ कहना पडता है कि वे ही राजा लोग आज प्रजाको मारनेवाले बनगये हैं ॥ ४६४ ॥ इस तरह उदास होकर कृष्णसे कहने लगे कि मेरी तो यह दशा है अब सर्प जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा कमल तूही लाकर राजा कंसको दे। इसके उत्तरमें कृष्णने कहा कि यह क्या कठिन काम है मैं अभी ले आऊंगा यह कह कर वे महानागोंसे सुरक्षित सरोवर पर शीघ्र ही गये और निशंक होकर उसमें कूद पडे। उन्हें आता हुआ देखकर यमराजके आकारका एक नागराज खडा होकर उन्हें निगलनेके लिये तैयार हुआ। उस समय वह नाग क्रोधसे कंप रहा था, अपने निश्वाससे उत्पन्न हुई दैदीप्यमान अग्निके कणाओंको फेंक रहा था मस्तक पर लगी हुई चूडामणि रत्नकी कांतिसे प्रकाशमान अपना फणा उठाये था और उससे वह बहुत ही भयंकर जान पडता था, उसकी दोनों जिह्वाऐं चंचल हो रही थीं और प्रकाशमान नेत्रोंसे उसकी दृष्टि बडी ही उग्र हो रही थी। कृष्णने सोचा कि मैं इस फणाको अभी अपने कपडे धोनें

नागनिवाससरस्तटे । विना कृष्णेन चामुसादानेतुं सरस॰ परैः ॥ ४४९ ॥ अशक्यमिति गोपालकुमारोक्त्या महीपति । तमाहूय बल तत्र यथास्थान
म्यवीविशत् ॥ ४५० ॥ क गम्यते त्वया राजन्निति कृष्णेन भाषितः । स्वर्भानुर्मथुरायानप्रयोजनमबूबुधत् ॥ ४५१ ॥ श्रुत्वैतत्कर्म किं कर्तुं स्यात्तदस्मद्वि-
धैरपि । इति कृष्णपरिप्रश्ने वीक्ष्य पुण्याधिक शिशु ॥ ४५२ ॥ न केवलोयमित्येहि शक्तश्चेत्तस्य कर्मण । इत्यादाय स्वपुत्र वा स्वर्भानुस्त पुरीमगात् ॥
४५३ ॥ कस यथाहेमालोक्य तत्कर्मकरकान् बहून् । भग्नमानाश्च सवीक्ष्य कृत्वा भानु भमीपग ॥ ४५४ ॥ युगपत्त्रितय कर्म समाप्तिमनयद्धरि. । तत.
स्वर्भानुनादिष्टो दिष्ट्या कृष्णोगमद्व्रज ॥ ४५५ ॥ तत्कृत भानुनैवेति कैश्चित्कसो निवेदितः । कैश्चिन्न भानुनैवान्यकुमारेणेति रक्षकै ॥ ४५६ ॥ तच्छ्रुत्वा-
न्विष्यतां सोन्यस्तस्मै कन्या प्रदीयते । स कस्य किं कुल कस्मिन्निति राजाऽब्रवीदिद ॥ ४५७ ॥ अवधार्य स्वपुत्रेण सम्यक्कर्मसमर्थित । गोमडलेन भीत्वा-
मा नदगोप पलायित. ॥ ४५८ ॥ शैलस्तम समुद्धर्तुं तत्र सर्वेऽन्यदा गता । नाशक्नुवन् समेत्यैते कृष्णेनैव समुद्धृत ॥ ४५९ ॥ प्रहृष्य सहसा तस्मा-

तदनंतर कृष्णने पूछा कि
है राजन् आप कहां जा रहे हैं । इसके उत्तरमें राजा स्वर्भानुने मथुरा जानेका सव प्रयोजन समझाया ॥ ४६० ॥ कृष्णके इसप्रकार पूछनेपर तथा
उसे पुण्याधिकारी बालक समझकर कहा कि यदि इस कामको करसकते हो तो चलो इसप्रकार कहकर पुत्रके समान उस
बालकको साथ ले कर राजा स्वर्भानु मथुरा नगरीमें पहुचे ॥ ४६१–४६३ ॥ स्वर्भानुने यथा योग्य रीतिसे कंसके
दर्शन किये फिर वे तीनों रत्न सिद्ध करनेके लिये निकले । वहां पर अनेक सिद्ध करनेवालोंको भग्न होते देखकर
कृष्णने स्वर्भानुके पुत्र भानुको पास ही खडा रख कर तीनों काम एक साथ कर डाले । तदनतर राजा सुभानुने
आंखके ईशारेसे आज्ञा दी आज्ञा पाते ही कृष्ण वहांसे चलकर व्रजमें आगये ॥ ५४–५५ ॥ इसके बाद कितने ही
लोगोने कंसको जाकर यह समझा दिया कि ये तीनों रत्न भानुने सिद्ध किये हैं परंतु कितने ही रक्षक लोगोंने यही
कहा कि भानुने नहीं किंतु किसी दूसरे कुमारने सिद्ध किये हैं ॥ ४५६ ॥ यह सुन कर राजा कसने कहा कि उस
कुमारको ढूंढो उसे मैं अपनी कन्या दूंगा वह किसका पुत्र है किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और कहांका रहनेवाला
है ॥ ४५७ ॥ पुत्रने यह काम तो अच्छा किया यही सोच कर नदगोप अपनी सब गायोंके साथ कृष्णको लेकर
डर कर भाग गये ॥ ४५८ ॥ किसी दूसरे दिन बहुतसे लोग एक खंभ उखाडनेको गये थे परंतु वे उखाड न सके
इसलिये यह देख कर कृष्णने आकर वह खभ उखाड दिया ॥ ४५९ ॥ उसे देखकर वे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए

खिल जगत् । आरातिवदनांभोजराजिसंकोचकारिणी ॥ ४३७ ॥ तत्पुरस्थापनाहेतुभूतजेनालयांतिके । शक्रदिग्देवतागारे हरे पुण्यातिरेकतः ॥ ४३८ ॥ सर्पशय्या धनु शंखो रत्नत्रितममुष्यया । देवतारक्षिता लक्ष्मीं भाविनीमस्यसूचयत् ॥ ४३९ ॥ समयस्तानि दृष्ट्वाह्यद्वरुण मथुरापति । प्रादुर्भवेनमेतेषां किं फलं कथयेति त ॥ ४४० ॥ राजन्नेतानि शास्त्रोक्तविधिना साधयेत्स यः । राज्यं चक्रेण संरक्ष्यमाप्स्यतीत्यभ्यधात्दसो ॥ ४४१ ॥ कंसस्तद्वचन श्रुत्वा ससिसाधयिषुः स्वय । तान्यशक्तो मनाक् खिन्नो विरतः साधनोद्यमात् ॥ ४४२ ॥ अधिरुह्य नागशय्या शंखमेककरेण यः । पूरयित्यपि यश्चाप चारोपयति हेलया ॥ ४४३ ॥ परेण तस्मै भूभर्ता स्वसुता दास्यतीतित । परिज्ञातु साशको घोषणा पुर्यकारयत् ॥ ४४४ ॥ तद्वार्ताश्रवणाद्विश्वमहीशाः सहसागमन् । तथा राजगृहात्कसमैथुनो भानुसन्निभं ॥ ४४५ ॥ स्वर्भानुर्भानुनामान स्वसूनुं सर्वसंपदा । समादाय समागच्छन्निवेष्टुमभिलाषवान् ॥४४६॥ गोदावनमहा-

समय जो जिनालय सबसे पहिले बनाया गया था उसके समीप जो पूर्वदिशाके अधिष्ठाताके देवमंदिरमें कृष्णके पुण्य कर्मके उदयसे सर्पशय्या (नागशय्या) धनुष और शंख ये तीन रत्न उत्पन्न हुए। उन तीनो रत्नोंकी देवलोग रक्षा करते थे और वे तीनों ही रत्न कृष्णकी होनहार लक्ष्मीको सूचित करते थे ॥ ४३८-४३९ ॥ उन्हें देख कर मथुराका राजा कंस कुछ डरने लगा और वरुण नामके निमित्तज्ञानीसे पूछने लगा कि इनके प्रगट होनेका क्या फल है सो कहो। इसके उत्तरमें वह निमित्तज्ञानी कहने लगा कि शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जो कोई इन्हें सिद्ध करेगा उसे चक्रके द्वारा सुरक्षित राज्य प्राप्त होगा ॥ ४४०-४४१ ॥ यह सुन कर कंस स्वयं उन्हें सिद्ध करनेकी इच्छा करने लगा परंतु उन्हें सिद्ध कर न सका इसलिये कुछ खेद खिन्न होकर उस कामसे विरक्त हुआ। उसने सिद्ध करना छोड दिया ॥ ४४२ ॥ तब उसने सशंकित होकर सिद्ध करनेवालेको जाननेके लिये नगरमें यह घोषणा करादी कि जो कोई अन्य मनुष्य इस नागशय्या पर चढ कर एक हाथसे इस शंखको पूरेगा (बजावेगा) और फिर लीलामात्रमें ही इस धनुषको चढा लेगा उसे राजा कंस अपनी पुत्री देगा ॥ ४४३-४४४ ॥ यह समाचार सुन कर संसारके सब राजा लोग बडी शीघ्रतासे आए तथा राजगृह नगरसे कंसका साला स्वर्भानु सूर्यके समान अपने भानु नामके पुत्र सहित बडी विभूति लेकर मथुरा जाने के लिये आया उसने गोदावनमें महानागोंके निवास स्थानवाले सरोवरके किनारे डेरा दिये लोग जब सरोवरमेंसे जल लेने लगे और वहांके सर्प काटनेको दौडे तब उन्होंने गोपाल कुमारोंसे पूछा कि इसमेंसे जल किस तरह लेना चाहिये। इसके उत्तरमें गोपाल कुमारोंने कहा कि कृष्णके विना इसमेंसे और कोई जल नहीं ले सकता। यह सुनकर राजा स्वर्भानुने कु-

भूयो निवारयामास तथाप्येतन्मशेवुधः । सोन्वतिव्रतित्रार्यते नावदाने महौजसः ॥
माफलचेष्टितात् । पुत्रैवमादित क्लेशांतरसंपावकादिति ॥ ४२६ ॥ ४२८ ॥ देवकी वसुदेवश्च विभूत्या सह सीरिणा । व्रज
४२७ ॥ श्रुत्वा तत्पौरुषं ख्यात जनजल्पै समुत्सुकौ । गोमुखीनामधेयोपवासव्याजमुपागतौ ॥ दर्पिणीं वृषभेंद्रस्य ग्रीवा भक्त्वा तदैव तौ ॥ ४३० ॥ विलोक्य
गोदावन यातौ परिवारपरिष्कृतौ ॥ ४२९ ॥ ततः कृष्णं समालक्ष्य स्थितवत महाबलं । देवक्याः स्तनयो शातकुंभकुंभमयोः पयः । निर्गलन्त्य
गन्धमाल्यादिमानननानतरं पुन । प्रीत्या भूषयतः स्मातः कुर्वत्या द्राक् प्रदक्षिण ॥ ४३१ ॥ उपवासपरिश्रांता मूर्छितेत्यवदन्सुधीः ॥ ४३३ ॥ कुंभपूर्णपयोसि-
पतन्मूर्धन कृष्णस्येवाभिषेचन ॥ ४३२ ॥ सीरपाणिस्तदन्वीक्ष्य मन्त्रभेदभयान्वित । भोजयित्वा स्वयं चात्र भुक्त्वा
स्तामभ्यसिंचत् समतत । ततो व्रजांह्रिपादानामपि तयोर्योग्यपूजन ॥ ४३४ ॥ कृत्वा कृष्णं च गोपालकुमारैर्जातसंमदौ । तेन ज्योत्स्नेव तत्कीर्तिर्व्याप्नोति स्म
पुरमविक्षतां ॥ ४३५ ॥ स कदाचिन्महावर्षापाते गोवर्द्धनाह्वय । हरिः पर्वतमुद्धृत्य चकार वरण गवा ॥ ४३६ ॥ तेन ज्योत्स्नेव तत्कीर्तिर्व्याप्नोति स्म

उस कामको वे अवश्य करते थे सो ठीक ही है क्योंकि महा प्रतापी लोग किये हुये कामोंसे कभी नहीं रोके जा सकते ॥ ४२५–४२७ ॥ इस प्रकार लोगोंके मुखसे देवकी और वसुदेवने भी कृष्णका पौरुष सुना तब उन्हें कृष्णके देखनेकी इच्छा हुई और वे दोनों बलभद्र तथा सब परिवारके साथ साथ गोमुखी नामके उपवासके बहानेसे बडी विभूति लेकर गोदावनमें आए ॥ ४२८–४२९ ॥ आते ही उन्होंने कृष्णको देखा उस समय कृष्ण एक बडे भारी बलवान और उन्मत्त बैलकी गर्दन पकड कर लटक रहे थे और उन्होंने उस बैलकी गर्दन तोड दी थी। ऐसे कृष्णको देख कर देवकीने पहिले तो गन्ध माला आदिसे उनकी मानता की, बडे प्रेमसे आभूषण पहिनाए और फिर प्रदक्षिणा दी। उसी समय देवकीके सुवर्णके कलशोंके समान दोनों स्तनोंसे दूध निकलने लगा और अभिषेक करनेके समान कृष्णके मस्तक पर पडने लगा ॥ ४३०–३३२ ॥ बलभद्र उसे देख कर सोचने लगे कि इस तरह भेद खुलनेका डर है यही सोच कर वे बुद्धिमान् कहने लगे कि उपवास करनेके खेदसे यह मूर्छित हो गई है ॥ ४३३ ॥ तदनंतर जलसे भरे हुए कलशोंसे सब ओरसे कृष्णका अभिषेक किया फिर व्रजके सब लोगोंका यथायोग्य आदर सत्कार किया, बडी प्रसन्नतासे गोपालकुमारोंके साथ कृष्णको भोजन कराया, आप भोजन किया और फिर वे सब अपने मथुरा नगरको चले गये ॥ ४३४–४३५ ॥ किसी एक दिन व्रजमें पानी बहुत बरसा तब कृष्णने गोवर्द्धन नामका पर्वत उठा कर उसके नीचे गायोंकी रक्षा की ॥ ४३६ ॥ इस कामसे चांदनीके समान कृष्णकी कीर्ति सब संसारमें फैल गई और वह शत्रुओंके मुखरूपी कमलोंके समूहको संकुचित करने लगी ॥ ४३७ ॥ किसी एक दिन मथुरा नगर बसनेके

नोपायेन बालामर्गीः । तद्बालपालनोत्सुका काप्यन्याप्य देवता ॥ ४१५ ॥ स्तनयोर्विलसत्तीर्ज्ञ तत्पानसमये व्यधात् । आयतायत साकूतं तस्थौ गौ-हुमक्षमा ॥ ४१६ ॥ शकटाकारमादाय पुनरन्यापि देवता । बालस्योपरिधावंती पादाभ्यां तेन सा हता ॥ ४१७ ॥ अन्येद्युर्नंदगोपस्य वध्वा कक्ष मुद्-खलं । अगाच्छज्जलमानेतुमन्वगच्छत्तथाप्यसा ॥ ४१८ ॥ परिपीडयितुं बालं तदा ककुभपादपौ । भूत्वा स्थितौ सुरीमेरौ समूलावुदपाटयत् ॥ ४१९ ॥ तत्क्रमणवेलायां तालस्य कृतिमास्थिता । एका फलानि तन्मूर्द्धे प्रपातयितुमुद्यता ॥ ४२० ॥ रासभीरूपमापन्न तं दष्टुमपरागता । चरणे रासभीं विष्णु र्भ्रामयन् स त द्रुम ॥ ४२१ ॥ अन्येद्युर्देवकन्यापि विकृत्य तुरगाकृतिं । तं हंतु प्रस्थिता तदाघातमदन् वदन रुषा ॥ ४२२ ॥ आहतुं न समर्थाः स्म इत्युक्त्वा सम देवताः । कंसाभ्यासं समागत्य विलीना इव विद्युत ॥ ४२३ ॥ शक्रो देवतानां च निस्सारा पुण्यवज्जने । आयुधनामिवेंद्रास्त्र पर-स्मिन् दृष्टकर्मणां ॥ ४२४ ॥ अरिष्टाख्य सुरोन्येद्युर्वीक्षितु तत्पराक्रम । आयातकृष्ण वृषाकारस्तद्ग्रीवाभञ्जनोद्यत ॥ ४२५ ॥ तस्य मातामितरां तेन विर-

इसीतरह दूसरी देवी गाडीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर आई परंतु कृष्णने वह लात मारकर तोड दी ॥ ४१७ ॥ किसी दूसरे दिन नंदगोपकी स्त्री कृष्णकी कमर एक ऊखलसे बांधकर स्वयं जल लेनेके लिये गई परंतु कृष्ण फिर भी उसे तोडकर उसके पीछे २ गये ॥ ४१८ ॥ उसी समय बालकको पीडा देनेके लिये दो देवियोंने आकाशमें उडने वाले दो वृक्षोंका रूप बनाया परंतु कृष्णने उन दोनों वृक्षोंको जड़से ही उखाडकर फेंक दिया ॥४१९ ॥ उन वृक्षोंके फेंकते समय एक देवीने तो तालका रूप बना लिया और दूसरी फल बनकर कृष्णके मस्तकपर पडनेके लिये तैयार हुई ॥ ४२० ॥ तीसरी देवीने गधीका रूप बनाया और कृष्णको काटनेके लिये आई परंतु कृष्णने उस गधीके दोनों पैरोंपर उन दोनों वृक्षोंको दे पटका ॥ ४२१ ॥ किसी दूसरे दिन एक देवी घोडेकारूप बनाकर कृष्णको मारनेके लिये आई परंतु कृष्णने क्रोधमें आकर उसका मुह खूब ही ठोंका ॥ ४२२ ॥ अंतमें वे सातों देवियां कंसके पास गई और हम उसे मार नहीं सकतीं ऐसा कहकर बिजलीके समान अदृश्य होगई ॥ ४२३ ॥ जिसप्रकार दूसरी जगह अपना काम दिखानेवाले शस्त्र वज्र नामके इंद्रके शस्त्रपर निष्फल हो जाते हैं उसीप्रकार पुण्यवान लोगोंपर देवोंकी शक्तियां भी निस्सार हो जाती हैं ॥ ४२४ ॥ किसी दूसरे दिन अरिष्ट नामका एक देव कृष्णका पराक्रम देखनेके लिये बैलकारूप धारणकर आया परंतु कृष्ण उसकी गर्दन तोडनेके लिये ही तैयार होगये यह देखकर माताने ललकार कर उस बैलको छुडाया तब कहीं वे उस चेष्टा रहित बैलसे अलग हुए। इस तरह वह यशोदा ऐसे २ अनेक क्लेश उत्पन्न करनेवाले कार्योंसे कृष्णको निवारण करने लगी परंतु कृष्ण मदोन्मत्त थे जिस कामको वह रोकती थी

स्वप्रियायै प्रिय पतिं । कंसोपि देवकी शीलवदपत्यमसूयत ॥ ४०४ ॥ इति श्रुत्वा समागत्य तां व्यधाद्भग्ननासिकां । भूमिगेहे प्रयत्नेन मात्रा सा वर्धित- ता ॥ ४०५ ॥ सा सुव्रतार्यिकाभ्यर्णे शोकात्स्वविकृताकृतेः । गृहीतदीक्षा विंध्याद्रौ स्थानयोगमुपाश्रिता ॥ ४०६ ॥ देवतेति समभ्यर्च्य गतेषु वनदासि- षु । व्याघ्रेण भक्षिता मक्षु स्वर्गलोकमुपागमत् ॥ ४०७ ॥ अपरस्मिन्दिने व्याधैर्दृष्ट्वा हस्तांगुलित्रय । तस्याः क्षीरागरागादिपूजित देशवासिन ॥ ४०८ ॥ मूढात्मानः स्वय चैतदार्यासौ विंध्यवासिनी । देवतेति समभ्यर्च्य तदारभ्या प्रमाणयन् ॥ ४०९ ॥ अथाकस्मात्पुरे तस्मिन्महोत्पाता विजृंभिताः । वरु- णाख्य निमित्तिज्ञ द्राकस परिपृष्टवान् ॥ ४१० ॥ किमेतेषा फल ब्रूहि यथार्थमिति सोब्रवीत् । तव शत्रु समुत्पन्नो महानिति निमित्तवित् ॥ ४११ ॥ त दाकर्ण्य महीनाथ चिंतयत चिरंतनाः । देवतास्तमवोचस्ता किं कर्तव्यमिति श्रिताः ॥ ४१२ ॥ शत्रु मम समुत्पन्नमन्विष्याहत पापिन । इत्यसौ प्रेषया मास ताः सप्तापि तथास्त्विति ॥ ४१३ ॥ आगमत्पूतना तासु वासुदेव विभंगतः । विज्ञायादाय तन्मातृरूप हंतुमुपागता ॥ ४१४ ॥ विषस्तनपय पाय-

नीचे जलघरमें वडे प्रयत्नसे धायके द्वारा उसे बडा किया ॥ ४०५ ॥ बड़ी होनेपर अपना विकृत शरीर देखकर शोकसे उसने सुव्रता नामकी अर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली और फिर वह विंध्याचल पर्वतपर एक जगह रहने लगी ॥ ४०६ बनमें रहनेवाली दासियां उसे देवता समझकर पूजने लगीं । किसी एक दिन वह किसी बाघने खाली इसलिये वह तो मरकर स्वर्ग चली गई परंतु दूसरे ही दिन वहांके भीलोंने उसकी केवल तीन उंगलियां देखीं इसलिये वहांके रहनेवाले मूर्ख लोगोंने दूध शरीरका उबटन आदिसे उसकी पूजा की । उसी समयसे लेकर वे लोग विंध्यवा- सिनी देवीके नामसे उसे पूजने और मानने लगे ॥ ४०७-४०९॥ अथानंतर—इधर मथुरा नगरमें अकस्मात् बहुतसे उत्पात होने लगे तब कंसने वरुण नामके निमितज्ञानीसे पूछा कि इनका फल क्या है सो यथार्थ कहो तब वह निमि- त्तज्ञानी कहने लगा कि तेरा बड़ा भारी शत्रु उत्पन्न होचुका है ॥ ४१०-४११ ॥ इस बातको सुनकर कंसकी बडी चिंता हुई तब पहिले जन्मके देवताओंने आकर कहा कि हे स्वामी कहिये हमारे लिये क्या काम है ॥ ४१२ ॥ तब कंसने कहा कि मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है उस पापीको ढूंढकर तुम मार आओ । इस तरह उसने उन सातों देवताओं को भेजा । अच्छा कहकर वे देवता भी गये । उनमेंसे पूतना नामकी देवीने विभगावधिसे वासुदेवको जान लिया । उस दुष्टिनीने माताका रूप धारणकर और स्तनोंमें विष मिलाकर उन विष भरे स्तनोंको पिलाकर कृष्णको मारनेका विचार किया इसतरह वह बालकको पालन पोषण करने लगी परंतु बालक कृष्णके दूध पीते समय किसी दूसरी दे- वीने आकर उन कुचोंको ऐसी पीडा पहुचाई जिसे वह सह न सकी और भागकर अपने घर गई ॥ ४१३-४१६ ॥

शकर्ण्येव यथास्त्वामचिराग्मोचयिष्यति । तूष्णीमुपविशेत्युक्तो बलेन मधुराधिपः ॥ ३९५ ॥ तथास्त्विति तमाशीर्भिः प्रतोषादभ्यनंदयत् । तौ च तस्माद्वि-
निर्गत्य यमुनां प्रापतुर्निशि ॥ ३९६ ॥ भाविचक्रिप्रभावेन दत्तमार्गे द्विधाभवत् । सा सवर्णाश्रित कोवा नार्द्रात्मा वधुतां भजेत् ॥ ३९७ ॥ सविस्मयो वि-
कर्ष्यैनां गच्छंतौ नदगोपतिं । उद्धृत्य बालिकां यत्नेनागच्छंतमदर्शतां ॥ ३९८ ॥ दृष्ट्वा ताभ्यां कुतोभद्र रात्रावागमनं तव । नि मत्तस्येति संपृष्ट सप्रण-
म्याभ्यभाषत ॥ ३९९ ॥ मत्प्रिया पुत्रलाभार्थं भवतोः परिचारिका । गंधादिभिः समभ्यर्च्य श्रद्धानाद्भूतदेवताः ॥ ४०० ॥ आशास्य स्त्रीत्वदद्यात्रावया-
पत्यमवाप्य सा । सशोका दीयतामेतत्ताभ्य एवेति साब्रवीत् ॥४०१॥ तदर्पयितुमायासो ममायं स्वामिनाविति । तद्वच सम्यगाकर्ण्य सिद्धमस्मत्प्रयोजनं ॥
४०२ ॥ इति संतुष्य तत्सर्वमवबोध्य प्रवृत्तक । तदपत्यं समादाय दत्त्वा तस्मै स्वगर्भक ॥ ४०३ ॥ भाविचक्रधरं विद्धि बालमित्यभिधाय च । अनन्यविदि-
तौ गूढं तां तदाविशतां पुरं ॥ ४०४ ॥ नदगोपोपि तं बालमादाय गृहमागतः । तुभ्यं सुतं महापुण्यं प्रसन्ना देवता ददुः ॥ ४०५ ॥ इत्युदीर्यार्पयामास

हुये ॥ ३९६ ॥ होनहार चक्रवर्तीके प्रभावसे यमुनाने भी मार्ग दे दिया सो ठीक ही है क्योंकि समान वर्णवालेको देखकर (यमुना भी काली हैं और कृष्ण भी काले थे) किसके हृदयमें करुणा नहीं आती और कौन भाईचारा नहीं करता ॥ ३९७ ॥ उन दोनोंने आश्चर्यके साथ यमुना नदी पार की और फिर आगे चलकर बडे यत्नसे एक बालिकाको गोदीमें लेकर आते हुये नंदगोपालको देखा ॥ ३९८ ॥ नंदगोपालको देखते ही उन दोनोंने पूछा कि हे भद्र आप रात्रिमें ही अकेले क्यों आरहे हैं । इसके उत्तरमें नमस्कारकर नंदगोपाल कहनेलगा कि आपकी सेवा करनेवाले मेरी स्त्रीने पुत्र होनेके लिये एक भूत देवताकी बडी श्रद्धासे गंध आदि द्रव्योंके द्वारा पूजा की थी ॥ ३९९--४०० ॥ उस देवीने आश्वासन देकर आज रातमें ही एक कन्या लाकर दी और कहा कि इस कन्याको शोकके साथ उन्हें (आपको) दे आना ॥ ४०१ ॥ हे स्वामी उसी कन्याको रातमें ही आपके यहां पहुंचानेके लिये मैं जा रहा हूं। नंदगोपकी ये बातें सुनकर वे दोनों पिता पुत्र संतुष्ट हुए और सोचने लगे कि हमारा काम बन गया । तदनंतर उन दोनोंने नंदगोपालसे सब समाचार कहे उसकी पुत्रीको लेकर अपना पुत्र दे दिया और समझा दिया कि यह बालक होनहार चक्रवर्ती है । इसके बाद वे दोनों पिता पुत्र छिपकर विना किसीको मालूम हुए मथुरा नगरमें आये ॥ ४०३--४०४ ॥ नंदगोप भी उस बालकको लेकर अपने घर गया और स्त्रीसे कहने लगा कि उस देवताने प्रसन्न होकर तुझे बडा ही पुण्यवान् पुत्र दिया है । इसतरह कहकर अपनी स्त्रीको कृष्ण सौंप दिये । इधर कंसने सुना कि देवकीके पुत्री हुई है । सुनते ही वह तुरंत दौडा आया आकर पहिले तो उसकी नाक काट डाली और फिर पृथ्वीके

त ॥-३८३ ॥ देवकी च मुदा पश्चात्रि हत्वासवती यमान् । चरमांगानिमान् ज्ञानवता शक्रेण चोदित ॥ ३८४ ॥ दिविजो नैगमर्षाख्यो भद्रिलाख्यपुरेस-
का । वणिक्सुताया निक्षिप्य पुरस्तात्सुतान् मृतान् ॥ ३८५ ॥ तदा तदैव संभूय गृहीत्वा त्रिमितानिमान् । तान् पुरस्तान्निचिक्षेप देवक्या गूढकृत्यवि-
त् ॥ ३८६ ॥ यमान् सोपि गतप्राणान् कंसः समीक्ष्य तान् । किमेभिर्मे गतप्राणैरभून्मुनिरसत्यवाक् ॥३८७॥ इति मत्वापि साशंक शिलापट्टे न्यपात-
यत् । पश्चात्सा सप्तमे मासे एव स्वस्य निकेतने ॥ ३८८ ॥ निनामकमलब्धोक्ष महाशुक्राच्च्युत सुत । कंसानवगमेनेव नंदगोपगृहे सुख ॥३८९॥ बालक
वर्द्धयिष्याव इति नदविशारदौ । पिता भ्राता च तद्देवकीं विज्ञाप्य ततोबल. ॥ ३९० ॥ तमुद्द्धे पिता चास्य दधारातपवारण । ज्वलन्निशातशृंगाग्रविलस
न्मणिदीपिका—॥ ३९१ ॥ निरस्ततिमिराटोपो वृषभोऽभूत्तदग्रत । तथाविकृतिमापन्नो तत्पुण्यात्पुरदेवता ॥ ३९२ ॥ सद्यस्तदाम्य बालस्य चरणस्पर्शसंगमा-
त् । उद्घाटितकपाट तद्बभूव पुरगोपुरं ॥ ३९३ ॥ उग्रसेनस्तदालोक्य-बंधनस्थ समभ्रवीत् । कवाटोद्घटनं कोत्र करोतीत्यतिसभ्रमात् ॥ ३९४ ॥ त-

उसके उत्पन्न हुए मरे पुत्रोंको लाकर देवकीके आगे डाल दिया ॥ ३८४–३८६ ॥ कंसने उन सब मरे पुत्रोंको देखकर सोचा कि इन मरे हुए पुत्रोंसे मेरी क्या हानि हो सकती है अथवा मुनिके वचन मिथ्या भी हो सकते हैं। ऐसा समझकर भी उसे शंका बनी रही और उसने उन मरे हुए बच्चोंको भी शिलापर पटकवाया । इसके बाद निनामक नामके मुनिका जीव महाशुक्रसे च्युत होकर देवकीके गर्भमें आया और उस देवकीने अपने ही घर सातवें महीनेमें उस पुत्रको उत्पन्न किया । पुत्र होते ही वसुदेव और बलभद्रने विचार किया कि कंसको विना जताये इस पुत्रको नंदगोपके घर पहुंचादेना चाहिये और वहींपर इसका सुखपूर्वक पालन पोषण कराना चाहिये । चतुर पिता और भाईने (वसुदेव बलभद्रने) यही बात देवकीको समझाई । तदनंतर बलभद्रने उस पुत्रको उठा लिया और पिता वसुदेवने उसपर छत्र लगाया । रात अंधेरी थी इसलिये कृष्णके पुण्य कर्मके उदयसे नगरके देवताने बैलका रूप धारण किया। उसने अपने दोनों सींगोंपर दो देदीप्यमान मणियां लगाईं और इसतरह सब अंधेरेको दूर करता हुआ वह उन दोनोंके आगे २ चला ॥ ३८७–३९२ ॥ उसीसमय उस बालकके चरणोंका स्पर्श होते ही नगरके बड़े दरवाजेके किवाड़ खुलगये ॥ ३९३ ॥ रात्रिमें किवाड़ खुलते हुये देखकर बंधनमें पड़े हुए राजा उग्रसेनने बड़े आश्चर्यसे कहा कि इससमय किवाड़ किसने खोले ॥ ३९४ ॥ यह बात सुनकर बलभद्रने उग्रसेनसे कहा कि आप चुप चाप बैठे रहिये । यह किवाड़ खोलनेवाला इस बंधनसे आपको शीघ्र ही छुड़ावेगा ॥ ३९५ ॥ यह सुनते ही उग्रसेनको बड़ा संतोष हुआ और आशीर्वाद देकर उसे बढ़ाया । फिर वहांसे चलकर वे दोनों पिता पुत्र रातमें ही यमुना नदीपर प-

पुत्तिमित् ॥ ३७२ ॥ सुतोऽयास्त्व भर्तारं भाव्यवश्यं हनिष्यति । इत्यवोचत्ततः क्रुद्धा सा तद्वस्त्रं द्विधा व्यधात् ॥ ३७३ ॥ ननिमेव न तेऽनेन पितरं च हनिष्यति । इत्युक्ता सा पुन क्रुद्धा पादाभ्यां तद् व्यमेदयत् ॥ ३७३ ॥ तद्विलोक्य मुनिर्देवकीसुतः सागरावधिं । पालयिष्यति भूनारीं नारीं वेत्यब्रवीत्तरां ॥ ३७५ ॥ जीवद्यशाश्च तत्सर्वमवधार्य यथ श्रुत । गत्वा बुद्धिमती कंसं मिथस्तं तदवोधयत् ॥ ३७६ ॥ हासेनापि मुनिप्रोक्तमवध्यमिति भीतिमान् । वसुदेवमहीश स महानंदमयाचत ॥ ३७७ ॥ प्रसूतिसमयेवाप्य देवकी मद्गृहांतरं । प्रसूतिविधिपर्यास विदध्यास्त्वनमतादिति ॥ ३७८ ॥ सोपि तेनोपरुद्धः संस्तथास्त्वेतदमस्तस । अवश्य भाविकार्येषु मुह्यत्यपि मुनीश्वरः ॥ ३७९ ॥ भिक्षार्थं देवकीगेहं स पुनश्च प्रविष्टवान् । प्रत्युत्थाय यथोक्तेन विधिना प्रतिगृह्य त ॥ ३८० ॥ देवकी वसुदेवश्च दीक्षात्र स्यात्सवावयोः । किमिति छद्मता ब्रूतां ज्ञात्वा सोपि तदिंगित ॥ ३८१ ॥ सप्त पुत्रा समाप्स्यंते भवद्भ्यां तेषु षट् सुताः । परस्थानेषु वर्द्धित्वा यास्यंति परमा गतिं ॥ ३८२ ॥ सप्तमः सकला पृथ्वीं स्वछत्रच्छायया चिरं । पालयिष्यति निर्वाप्य चक्रवर्तीत्यभाष-

प्रकार करते हुए देखकर मुनिने फिर कहा कि वह देवकीका पुत्र सती स्त्रीके समान समुद्रपर्यंत सब पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३७५ ॥ जीवद्यशा इन सब बातोंका विचार कर दुखी हुई और उस बुद्धिमतीने शीघ्रही जाकर सब बातें कंसको समझा दीं ॥ ३७६ ॥ कंस ये सब बातें सुनकर डरा क्योंकि उसने समझ लिया कि मुनियोंके हसीमें कहे हुए बचन भी कभी मिथ्या नहीं होते हैं तब उसने राजा वसुदेवसे बडे प्रेमसे यह याचना की कि आपकी आज्ञानुसार देवकी प्रसूतिके समय मेरे ही घरमें प्रसूतिकी सब विधि पूर्णकरे ॥ ३७७-३७८ ॥ वसुदेवने भी मुलाहिजेमें आकर कंसकी सब बात मान ली सो ठीक ही है क्योंकि अवश्य ही होनहार कार्योंमें मुनीश्वर लोग भी मोहित हो जाते हैं ॥ ३७९ ॥ किसी दूसरे दिन वे ही अतिमुक्त मुनि आहारके लिये देवकीके घर गये । देवकीने उठकर विधिपूर्वक उनका पडगाहन किया आहार देनेके बाद देवकी और वसुदेव दोनोंने पूछा कि हम दोनों दीक्षा धारण करेंगे या नहीं । मुनिराजने उन दोनोंके इशारे समझ लिये और कहा कि तुम दोनों इस तरहके बहाने अथवा कपटसे क्यों पूछते हो । तुम्हारे सब सात पुत्र होंगे उनमेंसे छह पुत्र तो दूसरी जगह पाले पोषे जाकर अंतमें मुक्त होंगे और सातवां पुत्र चक्रवर्ती होकर अपनी छत्रछायासे बहुत दिन तक इस सब पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३८०-३८३ ॥ यह सुन देवकी बहुत प्रसन्न हुई । पीछे देवकीने तीनवारमें दो दो चरमशरीरी पुत्र उत्पन्न किये । जब जब इसके ये पुत्र हुए उसी समय ज्ञानी इंद्रकी प्रेरणासे देवकीके गूढ कार्योंको जाननेवाले नेगमर्षनामके देवने वे सब पुत्र उठाकर भद्रिलनगरमें अलका नामकी वैश्यपुत्रीके आगे डाल दिये और उसीसमय

आगतः कंसमंजूषामधिष्ठायायमर्भकः । जले कालिंदकन्याया मयादायाभिवर्द्धितः ॥ ३६३ ॥ कंसनाम्ना समाहूतस्ततएव परोद्भवैः । निसर्गशौर्यदर्पिष्ठः शौ-र्येपि निर्गलः ॥ ३६४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मंजूषातस्थपत्रकं । गृहीत्वा वाचयित्वोग्रैरुग्रसेनमहीपतेः ॥ ३६५ ॥ पद्मावत्याश्च पुत्रोयमिति ज्ञात्वा मही-पतिः । वितितार सुतां तस्मै राज्यार्द्धं च प्रतुष्टवान् ॥ ३६६ ॥ कंसोप्युत्पत्तिमात्रेण स्वस्य नद्यां विसर्जनात् । प्रवृद्धपूर्ववैरः सन् कुपितो मथुरापुरीं ॥ ३६७ ॥ स्वयमादाय बध्वाथ गोपुरे पितरौ व्यधात् । विचारविकलाः पापाः कोपिताः किं न कुर्वते ॥ ३६८ ॥ अथ स्वपुरमानीय वसुदेवमहीपतिं । दे-वसेनसुतामस्मै देवकीमनुजां निजां ॥ ३६९ ॥ विभूतिमद्वितीयैवं काले कंसस्य गच्छति । अन्येद्युरतिमुक्ताख्यमुनिर्भिक्षार्थमागमत् ॥ ३७० ॥ राजगेह समीक्ष्यैन हासाज्जीवद्यशा मुदा। देवकी पुष्पजानंदवस्त्रमेतत्तवानुजा ॥ ३७१ ॥ स्वस्याश्चेष्टितमेतेन प्रकाशयति ते मुने । इत्यवोचत्तदाकर्ण्य सकोपः सोपि

मैंने लेकर इसे बडा किया है ॥ ३६२-३६३ ॥ यह कांसोकी संदूकमें आया था इसीलिये इसका नाम कंस रक्खा है। बालकपनमें ही यह शूरवीरताका अभिमानी था इसीलिये मैंने घरसे निकाल दिया था ॥ ३६४ ॥ मंदोदरीकी यह बात सुनकर राजा जरासंधने उस संदूकमेंसे पत्र लेकर बांचा और निश्चय किया कि यह कंस राजा उग्रसेन रानी पद्मावतीका पुत्र है। इसलिये संतुष्ट होकर उसने उस कंसको आधा राज्य और अपनी कन्या देदी ॥ ३६५-३६६ ॥ उसी समय कंसके पूर्वभवका वैर प्रगट हुआ उसने सोचा कि मेरे माता पिताने मुझे उत्पन्न होते ही छोड दिया था इसलिये वह उसी समय मथुरापुरीको गया और माता पिताको पकड कर बांधकर नगरके बडे दरवाजे पर रख दिया सो ठीक ही है क्योंकि क्रोधित हुए विचाररहित पापी लोग क्या क्या नहीं करते हैं ॥ ३६७-३६८ ॥ तदनं-तर कंस राजा वसुदेवको भी अपने नगरमें ले आया और बडी विभूतिके साथ राजा देवसेनकी पुत्री अपनी छोटी बहिन देवकी उन्हें व्याह दी। इस प्रकार कंसका समय व्यतीत होने लगा। किसी दूसरे दिन अतिमुक्त नामके मुनि आहारके लिये राजभवनमें ही आए उन्हें देखकर जीवद्यशा प्रसन्न होकर हंसीसे कहने लगी कि हे मुनि! देखो ये देवकीके कामदेवके आनंदवस्त्र हैं यह आपकी बहिन आपको ही अपनी चेष्टा दिखला रही है। जीवद्यशाकी ये बाते सुन कर मुनिराजको क्रोध आया और उन्होंने अपनी वचनगुप्तिका भंग कर कहा कि आगे इसका (देवकीका) पुत्र अवश्य ही तेरे पतिको मारेगा यह सुनकर जीवद्यशाको भी क्रोध आया और उसने उस वस्त्रके दो टुकडे कर दिये। यह देखकर मुनिराजने फिर कहा कि वह अकेले तेरे पतिको ही नहीं किंतु तेरे पिताको भी मारेगा यह सुनते ही जीवद्यशाको फिर क्रोध आया और वह उस वस्त्रको अपने पैरसे मर्दन करने लगी ॥ ३६९-३७४ ॥ जीवद्यशाको इस

रोभवत् ॥ ३५१ ॥ इतोन्यत्प्रकृत भूमो जरासंधमहीपतिः । निर्जिताशेषभूपाल. कदाचित्कार्यशेषवान् ॥ ३५२ ॥ सुरम्यविषयांतस्थपौदनाख्यपुराधिप । रिपु सिंहरथ जित्वा बलाद्युद्धे ममांतिक ॥ ३५३ ॥ बध्वा नीतवते देशस्यार्द्ध मत्पुत्रिकामपि । कलिंदसेनासंभूतां सतीं जीवद्यशोमिधां ॥ ३५४ ॥ दास्यामीत्यपि भूपालान्प्राहिणोत्पत्रमालिकां । वसुदेवकुमारस्तत्परिगृह्य प्रतापवान् ॥ ३५५ ॥ वाजिनः सिंहमूत्रेण भाविषित्वा रथ स तैः । वाममारुह्य समामे जित्वा सिंहरथ पृथु ॥ ३५६ ॥ कसेन निजभृत्येन बधयित्वा महीपते । स्वयं समर्पयामास सोपि दृष्ट्वा सुतां निजां ॥ ३५७ ॥ देशार्द्धेन समं तस्मै प्रतिपन्नां प्रदत्तवान् । वसुदेवोपि तां दुष्टलक्षणा वीक्ष्य नो मया ॥३५८ ॥ बद्धः सिंहरथः कर्म कंसेनानेन तत्कृत । कन्या प्रदीयतामस्मै भवत्प्रेषणकारिणे ॥ ३५९ ॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा जरासंधनरेश्वर. । कुलं कसस्य विज्ञातुं दूतं मंदोदरीं प्रति ॥ ३६० ॥ प्रेषयामास तं दृष्ट्वा किं तत्राप्यपराधवान् । मत्पुत्र इति भीतासैा समजूषागमत् स्वयं ॥ ३६१ ॥ आगत्य नृपतेरग्रे मातास्येयमिति क्षितै । निक्षिप्य कंसमजूषां प्रणिपत्यैवमब्रवीत् ॥ ३६२ ॥

तथा रात दिन उनकी सेवा करने लगा ॥ ३५१ ॥ इसीसे संबंध रखनेवाली एक कथा और है और वह इस तरह है कि राजा जरासंध ने सब राजा जीत लिये थे परंतु किसी एक समय उसका भी एक काम वाकी रह गया था उसे पूरा करनेके लिये उसने सब राजाओंके पास पत्र लिखकर भेजे कि सुरम्य देशके अंतर्गत पोदनपुर नगरके राजा सिंहरथ शत्रुको युद्धमें जबर्दस्ती जीतकर और बांधकर जो कोई मेरे पास लावेगा उसे आधा देश और कलिंदसेनासे उत्पन्न हुई जीवद्यशा नामकी पुत्री दूंगा। यह समाचार पाकर प्रतापी वसुदेवकुमार नेसिंहका मूत्र मंगाकर घोडोंके शरीरपर लगवाया और उन्हें रथमें जोतकर तथा उस रथपर सवार होकर युद्धके लिये निकला युद्धमें उस भारी राजा सिंहरथको जीतकर और अपने सेवक कंसके द्वारा उसे बंधवाकर अपने हाथसे राजा जरासंधको सौंप दिया। राजा जरासंध भी संतुष्ट होकर आधे देशके साथ साथ सामने खडी हुई अपनी पुत्री देने लगा। वसुदेवने देखा कि उस पुत्रीके लक्षण अच्छे नहीं है तब उन्होंने कहा कि राजा सिंहरथको मैंने नहीं बांधा है किंतु यह काम कंसने किया है इसलिये इस भेजनेवाले कंसको ही अपनी कन्या दीजिये। वसुदेवकी यह बात सुनकर राजा जरासंधने कंसका कुल जाननेके लिये मंदोदरीके पास एक दूत भेजा मंदोदरीने दूतको देखकर सोचा कि मेरे पुत्रने वहां भी कुछ अपराध किया जान पडता है यही सोचकर और डरकर वह स्वयं संदूकको ले आई ॥ ३५२–३६१ ॥ मंदोदरीने आकर राजा जरासंधके सामने वह कांसेकी संदूक जमीनपर रखदी और कहा कि इस कसकी यही माता है। तदनंतर राजा को नमस्कार कर कहने लगी कि इस कांसेकी संदूकमें रक्खा हुआ यह बालक यमुना नदीके प्रवाहमें आरहा था।

मिदं राज्यं गृह्यासमिति दुर्मतिः ॥४०॥ एतद्दुष्परिणामेन मुनिः प्राप्य परां मृतिं । जातः पद्मावतीगर्भे भूरिवैरानुबंधतः ॥ ४१ ॥ सापि गर्भेर्भककौर्या-न्महीभृद्धृदयामिष । अभूदभिलषत्यासौ तद्ज्ञात्वा मन्त्रिणस्तदा ॥ ३४२ ॥ प्रयोगविहित भर्तुर्न्मांसमिति दौहृद । स्वबुद्ध्या पूरयस्तस्या किंन्न कुर्वंति धीधनाः ॥ ३४३ ॥ निर्दोहृदा क्रमेणास वलब्ध सुतपातक । दष्टौष्ठ निष्ठुरालोकं कृतभ्रूभंगमगम ॥ ३४४ ॥ दृष्ट्वा तं पितरौ नस्य नात्र विश्रभ्य पोषणे । योग्योयमिति सस्मृत्य विधिं तस्य विसर्जने ॥ ३४५ ॥ मजूषाया विनिक्षिप्य कंसमय्यां सपत्रक । कंसं कालिंदकन्याया प्रवाहे मुंचतः स तौ ॥ ३४६ ॥ अस्ति मदोदरी नाम कौशांव्या शाद्रसुदरी । तया प्रवाहे मजूशा मध्यस्थासौ व्यलोकत ॥ १४७ ॥ अवीवृधत् गृहे त्वेनमिव सा स्वसुत हित । किं न कुर्वंति पुण्यानि हीनान्यपि तपस्विनां ॥ ३४८ ॥ अहोभि कैश्चिदासाद्य लभनादिसद्रं वय । आक्रीडमानो निर्हेतुः समं सकलबालकान् ॥ ३४९ ॥ चपेटामुष्टिदबादिप्रहारैर्बाधते सदा । तद्दुराचारनिर्विण्णास्यजन्मदोदरी सुत ॥ ३५० ॥ सोपि शौर्यपुरं गत्वा वसुदेवमहीपते । प्रतिपद्य पदातित्व तत्रैवातरणामोंसे वह मुनि मरा और पहिलेके बैरके संबधसे उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आया ॥ ३४१ ॥ उस रानी पद्मावतीको भी उस गर्भके बालककी क्रूरतासे राजा उग्रसेनके हृदयका मांस खानेकी इच्छा हुई और उसीसे वह दुःखी होने लगी। यह जानकर मन्त्रियोंने अपनी बुद्धिसे कोई बनावटी चीज देकर और यह तुमारे पतिके हृदयका मांस है ऐसा कहकर उसका दोहद वा इच्छा पूरी की। सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान लोग क्या नहीं करते हैं ॥ ३४२–३४३ ॥ दोहद रहित उस रानी ने अनुक्रमसे उस पापी पुत्रको जन्म दिया। उस समय वह अपने ओठ दबाये था टेढी निगाहसे देख रहा था और भौंहें चढाये था। माता पिता उसे देखकर विचार करने लगे कि इसका पालन पोषण करना योग्य नहीं हैं यही समझकर उन्होंने उसे छोड देना उचित समझा कांसेकी एक अच्छी संदूक बनाकर और मन्त्र समाचार लिखकर उसमें उस बालक कंसको रखकर वह संदूक यमुना नदीके प्रवाह में बहा दी॥३४४–३४६॥ कौशांबी नगरकी शूद्र स्त्री मदोदरीने पानीके प्रवाहमें बहती हुई वह संदूक देखी ॥ ३४७ ॥ उस पुत्रको घर लाकर अपने पुत्रके समान उसका पालन पोषण करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि तपस्वियोंके हीन पुण्य भी क्या क्या काम नहीं करते हैं अर्थात् सभी करते हैं ॥ ३४८ ॥ कितने ही दिनोंमें वह आयु और सहारा पाकर अनेक बालकोंके साथ क्रीडा करने लगा परंतु वह विना ही कारणके थप्पड़ घूंसा डंडा आदिसे उन सब बालकोंको मारकर सदा दुख दिया करता था। उसके इस दुराचरणोंसे दुखी होकर मंदोदरीने उस बालकको अपने घरसे निकाल दिया॥ ३४९–३५० ॥ वहांसे चलकर वह कंस सूरीपुर पहुंचा और राजा वसुदेवके समीप जाकर उनका पियादा बन गया

मिष्टमित्यब्रत स्थिताः ॥ ३२९ ॥ दृष्ट्वा ताः स मुनिः प्राह भवतीभिः प्रयोजनं । नास्त्यत्र गच्छताम्बस्मिन् यूयं जन्मनि मामिति ॥ ३३० ॥ क्रमेणैवं तपः कुर्वन्नागमन्मथुरापुरीं । तत्र मासोपवासी सन्नातापयोगमाचरन् ॥ ३३१ ॥ अथान्येद्युर्विलोकयैनमुग्रसेनमहीपतिः । भक्त्या मद्गृहएवायं भिक्षां गृह्णातु नान्यत ॥ ३३२ ॥ चकार घोषणां पुर्यामिति सर्वनिषेधिनीं । स्वपारणादिने सोपि भिक्षार्थं प्राविशत्पुरीं ॥ ३३३ ॥ उदतिष्ठत्तदैवाग्नी राजगेहे निरीक्ष्य तं । मुनीश्वरो निवर्त्याथ निराहारस्तपोवनं ॥ ३३४ ॥ ततः पुनर्गते मासे बुभुक्षुः क्षीणदेहकः । प्रविश्य नगरीं वीक्ष्य क्षोभेण नागहस्तिनः ॥ ३३५ ॥ सद्यो निवर्ततेस्मास्माभ्यासमात्राशनव्रत । मासांते पुनरन्येद्युः शरीरस्थितियोगतः ॥ ३३६ ॥ राजगेहं जरासंधमहीट्प्रहितपत्रकं । समाकर्ण्य महीपाले व्याकुलीकृतचेतसि ॥ ३३७ ॥ ततो निवर्तमानोसौ क्षीणांगो जनजल्पितं । न ददाति स्वयंभिक्षां निषिध्यति परानिति ॥ ३३८ ॥ कोभिप्रायो महीशस्य न विद्मो वयमित्यदः । श्रुत्वा पापोदयात्क्रुद्ध्वा निदानमकरोन्मुनिः ॥ ३३९ ॥ पुत्रोभूत्वास्य भूपस्य मदुग्रतपसः फलात् । निगृह्येन-

तपश्चरण करता हुआ वह अनुक्रमसे मथुरापुरीमें आया और वहां पर एक महीनेके उपवासकी प्रतिज्ञा कर आतापन योग धारण कर विराजमान हुआ ॥ ३३१ ॥ किसी दूसरे दिन वहांका राजा उग्रसेन उसे देखकर भक्तिपूर्वक मनमें सोचने लगा कि यह मुनि मेरे ही घरमें आहार ले दूसरी जगह न ले तो अच्छा ॥ ३३२ ॥ यही सोचकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि इन मुनिका पडगाहन कोई मत करना । इसके बाद पारणाके दिन मुनिने नगरमे प्रवेश किया ॥ ३३३ ॥ दैवयोगसे उसी समय राजभवनमें आग लगी उसे देखकर वे मुनि लौटकर निराहार ही तपोवनमें चले गये ॥ ३३४ ॥ एक महीनेका फिर उपवास कर अत्यंत क्षीण शरीरवाले उन मुनिराजने पारणाके लिये फिर नगरमें प्रवेश किया परंतु उस दिन पट्ट हाथी विगड गया था इसलिये उसका क्षोभ देखकर वे फिर लौट गये । उन्होंने फिर एक महीनेका उपवास किया और महीना बीत जानेपर पारणाके लिये वे फिर नगरमें गये । दैवयोगसे उसदिन राजा जरासंध ने राजा उग्रसेनके लिये पत्र देकर कुछ समाचार भेजे थे उन्हें सुनकर राजा उग्रसेनका चित्त बहुत ही व्याकुल हो रहा था ॥ ३३५–३३७ ॥ इसी कारण अत्यंत क्षीण शरीर सहित मुनिराजको उस दिन भी लौटना पडा । उन्हें लौटते हुए देखकर लोग परस्पर कहने लगे कि राजा इन मुनिराजको न तो स्वयं आहार देता है और न दूसरोंको देने देता है । इसमे राजाका क्या अभिप्राय है सो कुछ भी हमारी समझमें नहीं आता । लोगोंकी ये बाते सुनकर और पापकर्मके उदयसे क्रोधित होकर उस दुर्बुद्धि मुनिने निदान किया कि मैं अपने उग्र तपश्चरणके फलसे इसी राजाका पुत्र होकर इसे मारकर इसका राज्य लूंगा ॥ ३३८–३४० ॥ ऐसे ही बुरे परि-

भास्वरी वीरस्य निर्मला । शब्दाप्राप्य सस्कारं शुत्वा पद्मोद्रकाशहा ॥ ३२० ॥ दुर्वारो दुष्प्रधर्षो रिविप्रतिपालकः । तस्प्रतापः कथं गोरूपि
सारं न लभते ॥ ३२१ ॥ इत प्राकृतमन्यत्तु श्नकं तगिगयते । गंगागंधवतीनद्यो संगमे सफलद्रुमे ॥ ३२२ ॥ तापसानामभूत्पतो नाम्ना जठरकौशिक ।
विशिष्टो नायकस्तत्र पंचाग्नितपमाचरन् ॥ ३२३ ॥ भद्रातगुणवीराभ्यां चारणाभ्यामिदं तपः । अज्ञानकृतमित्युक्तनाकर्णाइष्टद्रमता ॥ ३२४ ॥ कुपे
ममेति सकोध कुधी स्थित्वा तयो पुरः । अगोत्र पततुगुरुक मनो हि हितभषिण ॥ ३२५ ॥ जटाकलापसंभूतक्रिमायूकानिशहनं । उक्तवान्न-
सत्वमजटांत तमीनकान् ॥ ३२६ ॥ दग्धमानें स्नातध्यस्फुरत्रिविधकीटकान् । संदरोंद तथाज्ञानमीति तं समबोधयत् ॥ ३२७ ॥ काललब्धिं समाश्रित्य
विशिष्टोपि विशिष्टधी. । दीक्षितातपयोगस्य गोत्मार्ग तो व्यधात् ॥ ३२८ ॥ तपोमाहात्म्यतस्तस्य सप्तव्यंतरदेवताः । मुनीश ब्रूहि गहेश-

उसका प्रताप सूर्यके मारकूप प्रतापको भी किस तरह उल्लंघन न करता ॥ ३२८ ॥ इसीसे संघ रखनेवाली एक कथा और है आगे वही कही जाती है । गंगा और गंधवती नदीके संगम पर बहुतसे फले फूले वृक्ष थे । वहां पर तपसियोंका एक निवासस्थान था उसमें जठरकौशिक नामका तपसी सबका नायक था और पंचाग्नि तपता हुआ वहां रहता था ॥ ३२०-३२२ ॥ किसी एक दिन गुणभद्र और वीरभद्र नामके दो चारण मुनि वहां आए, उन्होंने उन तपसियोंको देख कर कहा कि ये सब अज्ञानपूर्वक तपश्चरण कर रहे हैं । मुनिराजके ऐसे वचन सुनकर वह नायक तपसी मूर्ख उन दोनों मुनिराजोंके सामने खडे होकर क्रोधसे कहने लगा कि आपने मेरी मूर्खता किस तरह समझी । तब गुणभद्र मुनि कहनेके लिये तैयार हुए सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग सदा हित रूप ही वचन कहते हैं ॥ २४-२५ ॥ वे कहने लगे कि जटाओंमें बहुतसे लीख और जूआं रहते हैं वे सब मरते ही हैं, दूसरे स्नान करते समय जटाकी चोटसे तथा शरीरकी रगडसे मछली आदि अनेक छोटे छोटे जीव मर जाते हैं और तीसरे पंचाग्निके तपनेमें लकडीमें रहने वाले अनेक छोटे छोटे कीडे मर जाते हैं । इन सब बातोंको देख कर कहना पडता है कि तुम्हारा यह सब अज्ञानतप है । इस तरह उन मुनिराजने उसे समझाया ॥ ३२६-३२७ ॥ काल लब्धिके प्राप्त होनेसे विशिष्ट बुद्धिवाला वह सबका नायक तापसी दीक्षा लेकर और आतापन योग धारण कर उपवास सहित तपश्चरण करने लगा ॥ ३२६ ॥ उसके तपश्चरणके माहात्म्यसे सात व्यंतर देवता आए और सामने खडे होकर कहने लगे कि हे मुनिराज आपका जो इष्ट संदेशा हो वह कहिये हम करनेको तैयार हैं ॥ ३२९ ॥ उन्हें देख कर वह मुनि कहने लगा कि तुम्हारा यहां कुछ काम नहीं है तुम जाओ और दूसरे जन्ममें हमारी कुछ सहायता करना ॥ ३३० ॥ इस तरह

संहारे प्रक्षोभमुपगम्य तां ॥ ३१० ॥ आहर्तुमुद्यता सर्वे दृष्ट्वा तान् दुष्टचेतसः । योद्धुं हिरण्यवर्मापि स स्वबंधुः समुद्ययौ ॥ ३११ ॥ वसुदेवकुमारोपि निजनामाक्षरांकितं । प्रजिघाय शरं सद्य समुद्रविजयं प्रति ॥ ३१२ ॥ नामाक्षराणि तस्यासौ वाचयित्वा सविस्मयः । वसुदेवकुमारोत्र पुण्यारसंभावितो मया ॥ ३१३ ॥ इति दुष्टानिवार्यैतान् संग्राम समुपागतान् । महानुजः कनीयासमनुज जितमन्मथ ॥ ३१४ ॥ समुद्रविजयाधीश वसुदेवः कृतांजलिः । प्रणम्य प्रीणयामास शेषानपि निजानुजान् ॥ ३१५ ॥ भूखेचरा कुमारेण तदा सर्वे निज स्वजाः । परिणीता पुरानीय समुद्रः समजीगमत् ॥ ३१६ ॥ कुमारेण सम गत्वा स्वपुरं विहितोत्सव । दशार्हाः स्वेप्सितं सौख्यमन्वभूवननारत ॥ ३१७ ॥ एवं काले प्रय स्येषा सदा भोगैरभंगुरैः । महाशुक्रात्म मुत्तीर्य शखाख्य प्राक्तनो मुनि ॥ ३१८ ॥ रोहिण्या पुण्यभाक् पद्मनामासौ समजायत । प्रतोष बधुवर्गेषु वर्द्धयन्नवमो बल ॥ ३१९ ॥ सप्रतापा प्रमेवा-

ता है उसीप्रकार समुद्रविजय आदि अनेक राजा लोग अपनी मर्यादा छोडकर क्षुब्ध होगये ॥ ३१० ॥ वे सब लोग कन्याको हर ले जानेके लिये तैयार होगये उनके दुष्ट चित्त देखकर हिरण्यवर्मा भी अपने सब भाइयोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ३११ ॥ उसीसमय कुमार वसुदेवने समुद्रविजयके समीप अपना नाम खुदा हुआ एक बाण भेजा ॥ ३१२ ॥ उस नामको बांचकर समुद्रविजयको बडाही आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि पुण्यकर्मके उदयसे मुझे वसुदेव मिल गये ॥ ३१३ ॥ इसतरह उस युद्धमें आए हुए सब दुष्ट राजाओंको रोका और अपने सब छोटे भाइयोके साथ कामदेवको भी जीतनेवाले कुमार वसुदेवसे मिलनेको चले ॥ ३१४ ॥ वसुदेवने समुद्रविजयको हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और फिर और भी बडे भाइयोंको नमस्कारादि कर प्रसन्न किया ॥ ३१५ ॥ भूमिगोचरी और विद्याधरोंकी जो कन्याएं कुमार वसुदेवने व्याहीं थी उनके माता पितासे उन्हें ले आए और इस तरह कुमारके साथ समुद्रविजय बडे उत्सवके साथ अपने नगरमें पहुचे सबलोग निरंतर इच्छानुसार दश तरहके भोगोंका अनुभव करने लगे ॥ ३१६–३१७ ॥ इस प्रकार उन सब लोगोंका समय बडे सुखसे व्यतीत हो रहा था । उधर शंख नामके मुनिराज तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुए थे वहां पर कभी न नाश होनेवाले भोगोंका अनुभव कर तथा वहांसे च्युत होकर रोहिणी रानीके पद्म नामका पुण्यवान पुत्र हुआ । वह नौवां बलभद्र सब कुटुबको संतुष्ट करता हुआ अनुक्रमसे बढने लगा ॥ ३१८–३१९ ॥ उस शूरवीरकी प्रताप सहित निर्मलकांति सूर्यकी प्रभाके समान थी और शास्त्रोंका संस्कार पाकर शरद ऋतुके समान कमल अथवा लक्ष्मीको उत्पन्न करनेवाली थी । वह पद्म अत्यंत दुर्वार (जिसे कोई न रोक सके) था, दुष्टोंका नाश करनेवाला और सज्जनोंका पालन करनेवाला था इसीलिये

प्रतिपिष्य प्रसन्नात्मा सद्धर्मं तमजिगूहत् ॥ २९९ ॥ एवं महामुनिस्तत्र कृतधर्मप्रभावन । पूज्यः पद्मरथेनास्मात्स्वस्थानमगमत्सुधी ॥ ३०० ॥ तासु घोषवती नाम वीणावंशेत्र सन्निधिं । समागता भवद्भिस्तन्मामानीयतां शुभा ॥ ३०१ ॥ एवमुक्तवते तस्मै तामेवानीय ते ददुः । तयासौ गीतवाद्याभ्यां श्रोत्रचेतोभिरंजन ॥ ३०२ ॥ समापादयदाकर्ण्यं तद्वीणाकौशलं महत् । प्रीता गंधर्वदत्तापि रत्नमालां समार्पयत् ॥ ३०३ ॥ तस्य कंठे सुकंठस्य कुंठितखिलभूभुजः । ननु प्राकृतपुण्यानां स्वयं संति महर्द्धयः ॥ ३०४ ॥ ततः सर्वे प्रहृष्यास्य कल्याणाभिषवं व्यधुः । एवं विद्याधरे श्रेण्यौ कन्यानां सप्त शतान्यसौ ॥ ३०५ ॥ संप्राप्य खेचरेशेभ्यस्तत्कन्यादानमानितः । ततो नित्रत्य भूभागमागत्य परमोदयः ॥ ३०६ ॥ हिरण्यवर्मणोरिष्टपुराधीशो महीपते. । पद्मावत्यामभूत्पुत्री रोहिणी रोहिणीव सा ॥ ३०७ ॥ तस्याः स्वयंवरायैत्य शिक्षकागूनू कलागुणान् । वसुदेवमुपाध्यायतया बोधयितु स्थितं ॥ ३०८ ॥ रवां बाहुलतयावेन रोहिणी रत्नमालया । आश्लिष्ट कंठमकरोदुत्कंठा कुंठचेतसा ॥ ३०९ ॥ तदा त्रिभिन्नमर्यादाः समुद्रा निजमादय. । समुद्रा इव

महा मुनिराज विष्णुकुमारने वहां पर धर्मकी प्रभावना की। तदनंतर पद्मरथके द्वारा पूज्य हो कर वे बुद्धिमान मुनिराज अपने स्थानको चले गये। उन वीणाओंमें घोषवती नामकी वीणा इस वंशमें आई है इसलिये आप इसके साथ उस अच्छी वीणाको लाइये। वसुदेवके इस प्रकार कह चुकने पर उन लोगोंने वही वीणा लाकर वसुदेवको दी। वसुदेवने उस वीणासे गा बजा कर सबके कान और चित्त अनुरंजित किये गंधर्वदत्ता कुमारके वीणा बजानेकी कुशलता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई और उसने अच्छे कंठवाले तथा सब राजाओंको कुंठित कर देनेवाले कुमार वसुदेवके कंठमें अपना शरीर और वरमाला समर्पण की, सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभाविक पुण्यात्मा लोगोंके समीप बडी बडी ऋद्धियां अपने आप आ जाती हैं ॥ ३००–३०४ ॥ इसके बाद सबने प्रसन्न होकर वसुदेवका कल्याणाभिषेक किया इसी तरह विजयार्ध पर्वतपर जाकर वहांके विद्याधर राजाओंके द्वारा कन्यादान आदिसे सम्मानित होकर वसुदेवने सातसौ कन्याएं प्राप्तकीं। तदनंतर वे महापुण्यवान् कुमार भूमंडल पर आए ॥ ३०५–३०६ ॥ वहांपर अरिष्ट नगरके राजा हिरण्यवर्मा रानी पद्मावतीके रोहिणीके समान रोहिणी नामकी पुत्री थी उसके स्वयंवरके लिये अनेक कला गुणोंके धारण करनेवाले मुख्य अध्यापकोंके समान बहुत से राजा लोग आए थे परंतु वासुदेव "हम सबके उपाध्याय हैं" लोगोंको यही समझानेके लिये सबसे अलग खडे थे उस समय कन्या रोहिणी ने उत्कंठासे कुंठित चित्त होकर अपनी भुजा लताओंके द्वारा रत्नमाला डालकर वसुदेवके कंठका स्पर्श किया॥३०७–३०९॥यह देखकर जिसप्रकार प्रलयकालके समय समुद्र अपनी मर्यादा छोडकर क्षुब्ध हो जा-

कारमागतः । संप्राप्य बलिनोभ्यर्णस्वरितवाक्पुरस्सरं ॥ २८८ ॥ महाभागाहमद्य त्वां दातृमुख्यमुपागमं । देयं त्वयेत्यवादीत्सोप्यमीष्टं प्रतिपन्नवान् ॥ २८९ ॥ अभाषत द्विजो राजन् देयं मे विक्रमैस्त्रिभिः । प्रमित क्षेत्रमित्यल्पं किमेतद्भिक्षापितं ॥ २९० ॥ गृहाणेति बली पाणिजलसेकसमन्वितं । अदितास्मै मुनिश्च प्रविक्रियार्द्धिनिजक्रमं ॥ २९१ ॥ व्यधादेकं प्रसार्योच्चैर्मानुषोत्तरमूर्द्धनि । द्वितीयमपि देवाद्रि चूलिकायां स्फुरद्युतिं ॥ २९२ ॥ तदा विद्याधरा भूमिगोचराश्चार्य संहर । चरणौ संस्तरैर्हेतुं क्रोध मास्मकृथा वृथा ॥ २९३ ॥ इति संगीतवीणादिमुखरा मुनिसत्तम । सद्यः प्रसादयामासु सोप्यद्री स्वौ समाहरत् ॥ २९४ ॥ श्रुत्वा लक्षणवत्तेषां तदा गीत सुधाशिनः । तुष्ट्वा घोषासुघोषाख्ये महाघोषां च सुस्वरा ॥ २९५ ॥ वीणा घोषवतीं चास्या ददतिस्म सुसंगताः । विद्याधरेभ्यो द्वे द्वे च भूचरेभ्यो यथाक्रमं ॥ २९६ ॥ वृथा त्व याचितो विप्रवरेणापि मयाधुना । नावकाशस्तृतीयस्य चरणस्येति सत्वरं ॥ २९७ ॥ वध्वा बलिनमुद्वृत्त बली विष्णुमुनीश्वर । दुःसह त निराकार्षीदुपसर्ग मुनीशिनां ॥ २९८ ॥ बद्ध बलिनमादातु समुद्युक्तं महीपतिं ।

कहा कि यह इतना थोडा क्यों मांगा अच्छा ले इस तरह कह कर बलिने हाथसे जल छोड कर तीन पेंड पृथ्वी उस ब्राह्मणको दे दी। मुनिराजने विक्रियाऋद्धिके द्वारा अपना एक पैर तो फैलाकर मानुषोत्तर पर्वतके मस्तक पर रक्खा और दूसरा जिसकी कांति दैदीप्यमान हो रही है ऐसी मेरु पर्वतकी चूलिका पर रक्खा ॥ २८८-२९२ ॥ उस समय विद्याधर और भूमिगोचरी सभी उन मुनिराजसे प्रार्थना करने लगे कि हे आर्य ! अपने दोनों पैरोंको संकोच लीजिये और व्यर्थ ही संसारके कारण क्रोधको मत कीजिये ॥ २९३ ॥ इस तरह प्रार्थना कर संगीत और वीणा आदि बाजे बजाकर उनलोगोंने मुनिराजको शीघ्र ही प्रसन्न किया तथा उन मुनिराजने भी अपने दोनों पैर समेट लिये ॥ २९४ ॥ उस समय उन भूमिगोचरी विद्याधरोंके यथायोग्य लक्षण सहित गीत सुनकर देव लोग बडे संतुष्ट हुए और उन्होंने अच्छे स्वरवाली और बहुत अच्छी घोषा सुघोषा और महासुघोषा घोषवती ये चार वीणाएं उनको लाकर दी। उन वीणाओंमें से देवोंने अनुक्रमसे दो तो विद्याधरोंको दी और दो भूमिगोचरियोंको दीं ॥२९५–२९६॥ तदनंतर अत्यंत बलवान मुनिराज विष्णुकुमारने बलिसे कहा कि इस समय मुझ ब्राह्मणने व्यर्थ ही तुझसे याचना की क्योंकि जब तीसरा पैर रखनेके लिये कहीं जगह ही नहीं है इसतरह कहकर उन मुनिराजने शीघ्रही उस दुराचारी बलिको बांधलिया और अकंपन आदि मुनिराजोंके उस असह्य उपसर्गको दूर किया ॥ २९७-२९८ ॥ बलिको बांधा हुआ देखकर राजा पद्मरथ भी उसे मारनेके लिये तैयार हुआ परंतु विष्णुकुमारने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। तदनंतर बलिने प्रसन्नचित्त होकर अर्थात् सम्यग्दर्शन धारण कर श्रेष्ठ जिनधर्म स्वीकार किया ॥ २९९ ॥ इस प्रकार

२७६॥ राज्ञा तुष्टवतावादि त्वयेष्टं याच्यतामिति । राज्यं सप्तदिनं कर्तुमिच्छामीत्यब्रवीद्बली ॥ २७७ ॥ दत्तं जरत्तृणं मत्वाभणदस्मै तदूर्जितं । कृतोपकारिणे देयं किं न तत्कृतवेदिभिः ॥ २७८ ॥ तत्राकंपनगुर्वाद्यमागत्य मुनिमंडलं । अग्रहीदातपे योगं सर्वे सौम्यमहीभृति ॥ २७९ ॥ निर्जित- प्राग्निदुषिप्यामकंपनमुनीशिना । वादे सभायां तत्कोपात्स जिघांसुर्घातकः ॥ २८० ॥ यागव्याजं समारभ्य स मंत्री परितो गिरिं । अर्थिताहारदानार्थं देवसंतर्पणाय च ॥ २८१ ॥ पाकं प्रकल्पयामास धूमज्वालालिप्ततं । ज्ञात्वा विष्णुकुमारस्तमुपसर्गं मुनीश्वरः ॥ २८२ ॥ गत्वा पद्मरथाभ्यर्णं वीतरागासने स्थितः । राज्ञाभिवंद्य संपूज्य किं कृत्यमिति भाषितः ॥ २८३ ॥ उपसर्गं व्यधान्मंत्री तवात्रातपयोगिनां । निवार्यतामसावाशु त्वयेत्याह महीपतिः ॥ २८४ ॥ प्रतिपन्नं मया तस्मै राज्यं सप्तदिनावधि । न निवारयितुं शक्यः सत्यभेदभयादसौ ॥ २८५ ॥ ततो भवद्भिरेवार्य निवार्यो दुर्जनोधुना । न विंदति खलाः स्वैरायुक्तायुक्तविचेष्टितं ॥ २८६ ॥ इत्यवोचदसौ चैतदवगम्य मुनीश्वरः । प्रतिषिध्यामि पापिष्ठमहमेवाशु नश्वरं ॥ २८७ ॥ इति वामनरूपेण ब्राह्मणा

मुनिराज अकंपनने उस बलिको जीता था उसीके क्रोधमे उसने अकंपन आदि सब मुनियोंके मारनेकी इच्छा की ॥ २७९–२८० ॥ उस पापीने यज्ञका बहाना कर जहां पर वे मुनिराज विराजमान थे उस पर्वतके चारों ओर याचक लोगोंको आहार दान देनेके लिये और देवोंको संतुष्ट करनेके लिये पाक अर्थात् रसोई बनाना प्रारंभ की। वह पाक इस तरह बनवाया जिससे धूआंकी लपट घुमड घुमड कर उसी पर्वत पर पहुंचे। मुनिराज विष्णुकुमार उन मुनियोंके उस उपसर्गको जानकर राजा पद्मरथके समीप आए और वीतराग आसन पर आ विराजमान हुए। राजा पद्मरथने आकर मुनिराजकी वंदना की, पूजा की और प्रार्थना की कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ॥ २८१-२८३ ॥ तब मुनिराजने कहा कि तेरा मंत्री जो आतपयोगको धारण करनेवाले मुनियोंको उपसर्ग कर रहा है उसे तुम बहुत शीघ्र रोको। इसके उत्तरमें पद्मरथने कहा कि हे स्वामी मैंने उसे सात दिन तकके लिये राज्य दे दिया है इसलिये मैं अपने सत्य वचनोंके भंग न होनेके डरसे रोक नहीं सकता। अतएव हे आर्य! अब उस दुष्टको आप ही रोकिये क्योंकि दुष्ट लोग योग्य अयोग्य क्रियायोंको स्वयं नहीं जान सकते हैं। पद्मरथकी ये बातें सुन कर और समझ कर मुनिराजने सोचा कि उस नाश होनेवाले पापीको मैं ही बहुत शीघ्र रोकता हूं ॥ २८४-२८७ ॥ इसके बाद वे मुनिराज वामन ब्राह्मणका रूप धारण कर बलिके समीप पहुंचे और आशीर्वाद देकर कहने लगे कि हे महाभाग्यशाली आज तू दाताओंमें मुख्य है इसलिये आज मैं तेरे समीप आया हूं तू मुझे भी कुछ दे। इसके उत्तरमें बलिने कहा कि जो तुम्हें पसन्द हो सो मांग लो। ब्राह्मणने कहा कि हे महाराज! मेरे पैरोंसे तीन पैंड पृथ्वी मुझे दीजिये। राजाने

२६५ ॥ भर्ता गन्धर्वदत्तायास्त्वमेवेव विचक्षण । गीतवाद्यविशेषेषु सर्वानस्मान् जयेरिति ॥ २६६ ॥ पठत्यत्रेथ ते तस्मिन् धरागगनगोचराः । प्रापुर्गन्धर्वदत्तायाः स्वयंवरमुत्सुकाः ॥ २६७ ॥ सा स्वयंवरशालायां बहून् जितवती स्वयं । तदानीं गीतवाद्याभ्यां तत्कलारूपधारिणी ॥ २६८ ॥ चारुदत्तादिभिः श्रोतृपदमध्यासिते सुता । कलाकौशलमेतस्या विलक्षणमिति स्फुटं ॥ २६९ ॥ स्वोपाध्यायं तदापृच्छ्य कन्याभ्यर्णमुपागतः । वसुदेवोऽभणीद्वीणा विदोषामानयरिवति ॥ २७० ॥ तेपि तिस्रश्चतस्रश्च हस्ते वीणाः समार्पयत् । तासां तन्त्रीषु लोमश्यं शल्यं चालोक्य सस्मित ॥ २७१ ॥ तुम्बीफलेषु दण्डेषु सल्कं पाषाणमप्यसौ । स्फुटीचकार तद्दृष्ट्वा त्वदिष्टा कीदृशी भवेत् ॥ २७२ ॥ वीणेति कन्यया प्रोक्तो मदिष्टायाः समागमः । ईदृग्विध इति प्राह तत्रार्थाख्यानमीदृश ॥ २७३ ॥ हस्तिनाख्यपुराधीशो राज्ञो मेघरथश्रुते । पद्मावत्याश्च सञ्जातौ विष्णुपद्मरथौ सुतौ ॥ २७४ ॥ सहविष्णुकुमारेण भूपतौ श्रमणि स्थिते । पश्चात्पद्मरथेराज्यमलङ्कुर्वत्यथान्यदा ॥ २७५ ॥ प्रत्यन्तवासिसंक्षोभे सञ्जाते सचिवाग्रणी । सामादिभिरुपायैस्त प्रशांतिं समजीगमत् ॥

प्रकार जिसकी प्रशंसा हो रही है ऐसी गंधर्वदत्ता कन्याके समीप अपने उपाध्यायको पूछकर कुमार वसुदेव भी जा पहुंचे। वसुदेवने जाते ही कहा कि जिसमें कोई दोष न हो ऐसी वीणा लाओ ॥ २६९-२७० ॥ यह सुनकर वसुदेवके हाथमें तीन चार वीणा रख दी परंतु वसुदेवने आश्चर्यके साथ देख कर कहा कि इसकी तांतमें लोमश (वाल सरीखे) हैं तथा शल्य [गांठ सरीखी] है। इसी तरह तूंबामें सल्क और दंडमें पाषाण है। इस तरह उस वीणाके दोष प्रगट करने पर उस कन्याने कहा कि आप कैसी वीणा चाहते हैं हमारे यहां तो ऐसी ही है। इसके उत्तरमें कुमार वसुदेव एक कथा कहने लगे कि ॥ २७१-२७३ ॥ हस्तिनापुर नगरके राजा मेघरथ रानी पद्मावतीके विष्णुकुमार और पद्मरथ ये दो पुत्र हुए थे ॥ २७४ ॥ महाराज मेघरथ बडे पुत्र विष्णुकुमारके साथ दीक्षा ले गये थे और उनके बाद राजा पद्मरथ राज्य करने लगे थे। किसी एक दिन म्लेच्छदेशके लोगोंने आकर नगरमें बहुत सा उपद्रव मचाया तब मुख्य मंत्री बलिने साम दाम आदि उपायोंसे उस उपद्रवको शांत किया ॥ २७५-२७६ ॥ राजा पद्मरथने संतुष्ट होकर बलिसे कहा कि जो तुम्हें अच्छा लगे सो मांग लो। इसके उत्तरमें बलिने कहा कि मैं सात दिन तक राज्य करना चाहता हूं ॥ २७७ ॥ राजाने जीर्ण तृण समझ कर राज्य दे दिया और कहा कि उपकार जानने वाले कृतज्ञ लोग उपकार करनेवालेके लिये अपना कमाया हुआ क्या नहीं दे डालते हैं अर्थात् सब कुछ दे डालते हैं॥ २७८ ॥ दैवयोगसे वहां अकंपन आदि अनेक मुनिराज आ विराजमान हुए थे और उन सबने आतापन योग धारण किया था। पहिले किसी समय सौम्य राजाके यहां यही बलि मंत्री था उस समय सभामें वाद करते समय

शिपूर्विका ॥२५४॥ आतां पवनवेगायामादिष्टां परिणीतवान् । तया सह स्मरस्यापि सुख स्सतुर्मगोचरं ॥ २५५ ॥ अनुभूय दिनान्यत्र विश्रांतः कातिचित्पुन । तथोपसर्तुकाम सं समीक्ष्यागारवेगकः ॥ २५६ ॥ उद्धत्याशनिवेगस्य दायादोयं नभस्तले । ज्ञात्वा दत्तांतज्ञात्मस्या संमुद्गीर्णासिहस्तया ॥ २५७ ॥ मोन्वीतस्तद्भयान्मुक्त्वा त तद्वनादप्रलायित । विद्यया पर्णलघ्व्यासौ प्रियं प्रियतृपातया ॥ २५८ ॥ चपापुरसमीपस्थसरोमध्ये शनै शनै । द्वीपे निपातितो ऽपृच्छद्देहिनस्तीरवर्तिन ॥ २५९ ॥ द्वीपादमुष्माभिर्गंतुं किं तीर्थं वदतेति तान् । भवदस्तेपि किं भद्र पतितः खात्वमित्यमुं ॥ २६० ॥ सम्यग्भवति विज्ञातमिति तेन सुभाषिताः । प्रहस्यानेन मार्गेण जलान्निर्गम्यतामिति ॥ २६१ ॥ न्यदिशन्नप्रतस्तस्मात्प्रविश्य नगरं गुरु । गाधर्वकुशल प्राप मनोहरसमाह्वय ॥ २६२ ॥ उपविश्य तदभ्यासे वीणावादनशिक्षकान् । तत्र गाधर्वदत्तायाः स्वयंवरविधिं प्रति ॥ २६३ ॥ दृष्ट्वा निगूढनर्ज्ञानो वसुदेवो विमूढवत् । अहं चैभिः सहाभ्यासं करोमीत्यात्तवल्लकी ॥ २६४ ॥ आदावेवाछिन्नतत्रीं तुबाज बामितत्फलं । विपार्स्य पश्यतांस्याल दृष्ट्वा त तेऽहसन् भृशं ।

कर वे किनारेके लोगोंसे पूछने लगे कि इस द्वीपसे बाहर निकलनेका मार्ग कौन सा है कृपा कर बतला दीजिये । तब वे लोग कुमारसे पूछने लगे कि हे भद्र क्या आप आकाशसे पडे हैं ? इसके उत्तरमें कुमारने कहा कि आपने बहुत अच्छा जाना अर्थात् मैं वास्तवमें आकाशसे ही गिरा हूं यह सुन कर वे सब लोग हंस पडे और हंस कर उन्होंने बतलादिया कि इस मार्गसे आप इस सरोवरके बाहर निकल आइये । वसुदेव वहांसे निकल कर नगरमें गये और गधर्व विद्यामें (गाने बजानेमें) अत्यंत निपुण ऐसे मनोहर नामके गुरुके समीप जा पहुचे ॥ २५३-२६२ ॥ गंधर्वदत्ताको स्वयंवरमें जीतनेके लिये उन गुरुके समीप अनेक शिष्य वीणा बजानेकी शिक्षा पा रहे थे उन्हें देखकर और अपने बजानेकी कलाको छिपा कर वसुदेव एक मूर्खके समान उन गुरुके समीप बैठ गये, तथा उनसे कहने लगे कि इन विद्यार्थियोंके साथ मैं भी बजानेका अभ्यास करूंगा । यह कह कर उन्होंने एक वीणा ले ली पहिले तो उसकी तांत तोड डाली और फिर उसका तुंबा तोड डाला । इस उलटे तमाशेको देख कर वे सब लोग हंसने लगे और कहने लगे कि तू गाने बजानेमें बहुत चतुर है इस विद्यामें हम सबको जीत कर तू ही गंधर्वदत्ताका पति होगा ॥ २६३ २६६ ॥ इस तरह यहां लोगोंका अभ्यास चल रहा था उधर गंधर्वदत्ताके स्वयंवरके लिये उत्कंठित हुए भूमिगोचरी विद्याधर आदि सबलोग आ इकट्ठे हुए ॥ २६७ ॥ गाने बजानेकी सब कलाओंको जाननेवाली उस गंधर्वदत्ताने गाने बजानेके द्वारा उस स्वयंवरशालामें अनेक लोगोंको जीत लिया ॥ २६८ ॥ चारुदत्त आदि अनेक लोग उस गाने बजानेको सुननेकेलिये बैठे थे और सब कह रहे थे कि इस गंधर्वदत्ताका कला कौशल अत्यंत ही विलक्षण है । इस

काहं समन्वेष्टुमपेक्षत । भगीभूत सब तत्र प्राक्यंनं च तुरंमम ॥ २४५ ॥ तस्कंठरत्नमादाय नीत्वा राज्ञे समार्पयन् । तत्पत्रार्थं समाकर्ण्य समुद्रविजया-
दयः ॥ २४६ ॥ महीभुजः परे चातिशोकसंततचेतसः । नैमित्तिकोक्तयोगकामशा समभागताः ॥ २४७ ॥ भूपः प्रहिणोति स्नेहात्स तदैव समततः ।
समावेषयितु दक्षान् प्राहिगोतर्संहितान् बहून् ॥ २४८ ॥ विजयाख्य पुरं गत्वा सोऽप्यशोकमहीरुहः । मूले विश्रांतये तस्थौ तरुच्छायामवस्थिता ॥ २४९ ॥
समीक्ष्यादैशिकप्रोक्तमभूदविनथ वचः । इत्युद्यानपतिर्गत्वा मगधेशमबूबुधत् ॥ ५० ॥ राजापि श्यामलाह्वयां तां सुता तस्यै समार्पयत् । दिनानि कानि-
चित्तत्र विश्रम्य गतवांस्ततः ॥२५१॥ देवदारुवने पुष्परम्याह्वये वनआकरे । अ॰ ॥ ॰नासौ क्रीडित्वारुह्य त मुदा ॥ २५२ ॥ श्लाघ्यमान स्वयं केनचि-
त्खगेन गजाधिपात् । अपास्य सहसानीतः खेचराद्रिं कृती पुरं ॥ २५३ ॥ पत्यु किंनरगीतस्य द्वितीयां वा रतिं सतीं । सुतामशनिवेगस्य दत्तां शाल्म-
ज्ञानीके द्वारा उसके फिर मिलनेकी बात सुनकर सबलोग शांत हो गये ॥ २४६–२४७ ॥ राजा समुद्रविजयने प्रेमवश कुमारको ढूंढनेके लिये बहुतसे चतुर लोगोंको चारो ओर भेजा ॥ २४८ ॥ इधर कुमार वसुदेव विजयपुर नगरमें पहुंचे और विश्राम करनेके लिये अशोकवृक्षके नीचे घनी छाया देखकर बैठ गये ॥ २४९ ॥ बागवानने उस वृक्षकी छायाको स्थिर देखकर सोचा कि उस निमित्तज्ञानीके वचन सत्य निकले यही सोच कर उसने मगध देशके राजाको उसकी खबर दी ॥ २५० ॥ मगधेशने अपनी श्यामला नामकी कन्या वसुदेवको समर्पण की । कुमार कुछदिन तो वहां रहे फिर वहांसे निकल कर देवदारु नामके वनमें पुष्परम्य नामके कमलसमूहोंमें जा पहुंचे । वहां पर किसी जंगली हाथीसे क्रीडा कर बडी प्रसन्नतासे उस पर जा चढे ॥ २५१-५२ ॥ उसी समय किसी विद्याधरने उनकी प्रशंसा की और हाथीसे उठाकर अकस्मात् उन पुण्यवानको विजयार्द्ध पर्वत पर जा पहुंचाया । वहां पर किंनरगीत नगरमें राजा अशनिवेग राज्य करते थे उनकी रानी पवनवेगासे दूसरी रतिके समान सती शाल्मलिदत्ता नामकी पुत्री हुई थी वह पुत्री राजा अशनिवेगने निमित्तज्ञानीकी आज्ञानुसार कुमार वसुदेवको समर्पण की कुमार वसुदेव कुछ दिन तक वहीं रहे और उन्होंने उस शाल्मलिदत्ताके साथ कामदेवके स्मरण करनेके भी अगोचर ऐसे सुखोंका अनुभव किया । कुछ दिन बाद कुमारकी जानेकी इच्छा हुई तब अशनिवेगका दायाद (वारिस वा उत्तराधिकारी) अंगारवेग उन्हें उठाकर आकाशमें ले चला । शाल्मलिदत्ता यह देख कर हाथमें तलवार उठा कर उसके पीछे दौडी । यह देख कर अंगारवेग कुमारको वहीं छोडकर भाग गया । जब कुमार वसुदेव उससे छूटकर नीचे गिरने लगे तब प्यारी शाल्मलिदत्ताने पर्णलघी विद्यासे चंपापुर नगरके समीपवाले सरोवरके बीचके टीले पर धीरे धीरे उतार दिया । वहां पर आ-

श्चिरकाश्चिभिर्मर्त्य रक्षकान्। भर्तृनविगणय्यान्याः पुत्रांश्चान्यांश्च पुत्रकान् ॥२३३॥ मत्वा मर्कटकान् काश्चित्समुरिक्षप्य समाकुलान्। केवलं परिधायान्या विचिंत्योत्कृष्टवाससी ॥ २३५॥ अंगरागं समालोच्य काश्चिदालिप्य कर्दमं। लोचने स्वे समालोच्य ललाटे न्यस्तकज्जलाः ॥ २३६ ॥ स्त्रास्तास्तथाविधा सर्वाः सर्वैरुद्विग्नमानसैः। निरीक्ष्य पौरैर्वाक्येन ज्ञापितोय नरेश्वरः ॥ २३७ ॥ तवेदृशीमुपायेन व्यवस्था पर्यकल्पयत्। इति संश्रुत्य तेनोक्त कुमारस्तत्परीक्षितु ॥ २३८ ॥ राजगेहाद्विनिर्गंतुकामो दौवारिकस्तथा। तव प्रजस्य देवस्य नादेशोस्माकमीदृश ॥ २३९ ॥ वहिस्त्वया न गतव्यमिति रुद्ध स्थितोन्यदा। समुद्रविजयादीनामनुक्त्वाऽयशसोयात् ॥ २४० ॥ वसुदेवो युतो गत्वा विद्यासाधनछलात् ॥ श्मशानभूमावेकाकी महाज्वाले हुताशने ॥२४१ ॥निपत्याकीर्तिभीमीतुरिति पत्र व्यलिख्यत। कंठे निबध्य वाहस्य मुक्त्वा तत्रैव तं स्वयं ॥ २४२ ॥ वन्हिं प्रदक्षिणीकृत्य दह्यमानशवान्वित। अगादलक्ष्यमार्गः स रात्रावेव द्रुतं ततः ॥ २४३ ॥ तत सूर्योदये गेहे तद्रक्षणकराग्रणी। अनिरीक्ष्यानुज राज्ञो राजादेशादिनस्ततः ॥ २४४ ॥ पर्यटन्बहुभि

लिये उन सब स्त्रियोंकी ऐसी दशा देख कर नगरके लोगोंके चित्त बडे ही खेदखिन्न हुए थे, और उन्होंने महाराजसे आकर प्रार्थना की थी तब महाराज समुद्रविजयने ऐसा उपाय कर आपकी ऐसी व्यवस्था कर दी है। उस सेवककी ये सब बातें सुनकर कुमार वसुदेवने इस बातकी परीक्षा करनेके लिये घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा प्रगट की। तब द्वारपालने यह प्रार्थना कर उसे रोक दिया कि "आपके बडे भाई ने हमलोगोंको आपके बाहर जाने देनेकी आज्ञा नहीं दी है इसलिये आप बाहर न जाइये" यह सुनकर कुमार वसुदेव वहीं रह गये। परंतु दूसरे ही दिन समुद्रविजय आदि सब भाइयोंसे विना कहे सुने ही अपयशके डरसे विद्या सिद्ध करनेके बहानेसे अकेले ही स्मशानमें गये और वहां पर जाकर माताके नाम पर एक पत्र लिखा कि "मैं अपकीर्तिके भयसे बडी भारी चितामें जल कर मर जाता हूं"। इस तरहका पत्र लिखकर घोडेके गलेमें बांध दिया, उसे वहीं छोड दिया और आप जिसमें कोई मुरदा जल रहा था ऐसी उस अग्निकी प्रदक्षिणा देकर रात्रिमें ही बडीशीघ्रतासे किसी छिपे मार्गसे बाहर जा निकला ॥ २३७-२४३ ॥ सूर्य उदय होते ही वसुदेवके मुख्य रक्षक लोगोंने घरमें कुमारको न देखकर राजासे निवेदन किया तथा राजाकी आज्ञासे वे लोग अनेक सामंतोंके साथ कुमारको देखनेके लिये इधर उधर घूमने लगे। स्मशानमें जाकर उन्होंने एक जले हुए मुरदेको देखा और उसके चारों ओर फिरते हुए घोडेको देखा ॥ २४४-२४५ ॥ उस घोडेके कंठमें बंधे हुए पत्रको खोल कर महाराज समुद्रविजयको समर्पण किया। उस पत्रके लिखे हुए समाचारोंको सुनकर समुद्रविजय आदि सब राजा तथा और भी कुटुंबी आदि सब लोगोंका हृदय शोकसे संतप्त हो गया परंतु निमित्त

प्रकाशप्रतिषेधेन कदाचिद्विमुखो भवेत् ॥ २२४ ॥ कुमार इति संचिंत्य तमाहूय मिथोब्रवीत् । कुमार वपुरेतत्ते पश्यामि किमिवान्यथा ॥ २२५ ॥ वृथाटनं परित्याज्य शीतवातादिषु त्वया । विहर्तुं परिवांछा चेत्परितो राजमंदिरं ॥२२६॥ धारागृहे वने रम्ये हर्म्ये विहिनपर्वते । मन्त्रिसामंतयोधाग्रमहामात्रात्मजः समं ॥२२७॥ यथेष्ट विचरेत्येतत् श्रुत्वा सोपि तथाचरत् । आददत्यमृतं वाप्तवचनं शुद्धबुद्धय- ॥२२८॥ एवं विहरमाणं तं वाचाटश्चेटको परं । न मा निपुणमत्याख्यो यथेष्टाचरणोत्सुकः ॥ २२९ ॥ राज्ञा त्वं प्रतिषिद्धोसि सोपायं निर्गमं प्रति । इत्यवादीदसौ चाह किमर्थमिति चेटक २२३० ॥ सोमवीसवनिर्याणकाले रूपविलोकनात् । परे शिथिलचारित्रा मन्मथेनाकुलीकृताः ॥ २३१ ॥ वीतलज्जा विमर्यादा विपरीतविचेष्टना, । पीतासवसमाः कन्याः सधवा विधवाश्च ता ॥ २३२ ॥ काश्चित्प्रस्वन्नसर्वांगाः काश्चिदर्द्धाक्षलोचना । काश्चित्सत्यक्तसंयाताः काश्चित्त्यक्तार्द्धभोजना ॥२३३॥ अवमत्य गुरून् का-

मुख्य अमात्योंके पुत्रोंके साथ इच्छानुसार विहार किया करो । समुद्रविजय की यह बात सुन कर वसुदेव भी उसी तरह विहार करने लगे सो ठीक है क्योंकि शुद्धबुद्धिवाले पुरुष बडे लोगोंके वचन अमृतके समान ग्रहण करते हैं ॥२४-२८ ॥ वसुदेव इसी तरह प्रति दिन विहार करने लगे किसी एकदिन इच्छानुसार आचरणोंकी इच्छा करनेवाले एक निपुणमती नामके बहुत बोलनेवाले सेवकने वसुदेवसे कहा कि महाराज समुद्रविजयने इस उपायसे आपको बाहरजाने से रोक रक्खा है । इसके उत्तरमें वसुदेवने उस सेवकसे पूछा कि महाराजने बाहर जानेसे मुझे क्यों रोका है ॥ २९-३० ॥ तब वह सेवक कहने लगा कि आपके बाहर निकलते समय आपका सुंदर रूप देखकर नगरकी स्त्रियोंके चारित्रमें कुछ शिथिलता आ जाती है वे कामदेवसे व्याकुल हो जाती हैं लज्जा और मर्यादा सब छोड देती हैं और उनकी सब चेष्टाएं विपरीत हो जाती हैं । कन्या सधवा विधवा आदि सब मद्यपी हुईके समान हो जाती हैं । कितनी ही स्त्रियोंके शरीर सब पसीनेसे डूब जाते हैं कितनी ही स्त्रियां अपने आधे नेत्र खुले रखती हैं कितनी हीं अपने पहिननेके कपडे ही भूल जाती हैं और कितनी ही अपना आधा भोजन छोड देती हैं ॥ २३१-२३३ ॥ कितनी ही सास ससुर आदि गुरूजनोंका अपमान कर बैठती हैं कितनी ही रक्षा करनेवालोंका तिरस्कार कर डालती हैं, अन्य कितनी ही स्त्रियां अपने पतियोंको कुछ नहीं गिनती, कितनी ही दूसरे पुत्रोंको अपना ही मानकर ले चलती हैं और अपने व्याकुल बच्चोंको बंदर समझ कर दूरसे ही ललकार देती हैं । कितनी ही स्त्रियां कंबल को ही उत्तम वस्त्र समझ कर पहिन लेती हैं कितनी ही कीचडको ही शरीर पर लगानेका उत्तम उबटन समझ कर शरीर पर लपेट लेती हैं और कितनी ही स्त्रियां ललाटको नेत्र ही समझ कर वहीं काजल लगा लेती हैं ॥ २३४-२३६ ॥ आपके देखनेके

२१४ समुद्रविजये पाति क्षितिं वर्णाश्रमाः सुखं । सुधर्मकर्मसु स्वैरं प्रावर्तत यथोचितं ॥ २१५ ॥ राज्यं विभज्य दिक्पालैरिव भ्रातृभिरष्टभिः । सहा-
न्वभूत्स भूपालः सकलं सर्वसौख्यद ॥ २१६ ॥ एवं सुखेन सर्वेषां काले गच्छत्यथोदयात् । चतुरंगबलोपेतो वसुदेवो युवाग्रणी ॥ २१७ ॥ गंधवारण
मारुह्य संचरच्चामरावलि- । वाद्यमानाखिलातोद्यध्वनिनिर्भिन्नदिक्तटः ॥ २१८ ॥ बंदिमागधसूतादिस्तूयमानाकमालकः । नानाभरणभाभारभासमानस्व-
विग्रह ॥ २१९ ॥ निगृहीतुमिवोग्रांशुमुद्यतो निजतेजसा । अधोविधातु वाप्येकभूषणांगामुरद्रुम ॥ २२० ॥ अमराणां कुमारो वा कुमार प्रत्यहं वहिः ।
निर्गच्छति पुरात्स्वैरं स्वलीलादर्शनोत्सुक ॥ २२१ ॥ विसस्मरुर्विलोक्यैन स्वव्यापारान् पुरस्त्रियः । निरादरा बभूवुश्च मातुलान्यादिवारणैः ॥ २२२ ॥
निर्गमेथ कुमारस्य विषण्णा नागरास्तदा । गत्वा विज्ञापयामासुस्तद्वृत्तांत महीपते ॥ २२३ ॥ श्रुत्वावधार्य तद्राजा सहजस्नेहनिर्भरः ।

से उन सबका समय बडे सुखसे व्यतीत हो रहा था। इन सबमें कुमार वसुदेव सबसे अधिक युवा थे इसलिये वे अपनी लीला देखनेकी इच्छासे चारो तरहकी सेना लेकर और गंधवारण नामके हाथी पर चढ कर प्रतिदिन अपनी इच्छानुसार नगरके बाहर जाते थे। उस समय अनेक चमर उनपर ढुराये जाते थे, साथमें जो सब तरहके बाजे बजाये जाते थे उनकी आवाजसे सब दिशाओंके किनारे फटेसे जान पडते थे, मागध सूत आदि वंदीजन उनका यश पढते जाते थे अनेक आभरणोंकी कांतिके बोझसे उनका शरीर बडाही दैदीप्यमान दिखता था उस समय वे ऐसे जान पडते थे मानों अपने तेजसे सूर्यके बिंबको भी लज्जित करनेके लिये उद्यत हुए हों अथवा एक भूषणांग जातिके कल्पवृक्षको नीचा दिखानेके लिये ही तैयार हुए हों उस समय वे ठीक देवोंके कुमार सरीखे जान पडते थे इस लिये इनके बाहर जाते समय इन्हें देखकर नगरकी स्त्रियां अपना सब व्यापार भूल जाती थीं और अपने मामी (सासु आदि) आदिके निवारण करने पर भी वे किसी की नहीं सुनती थीं ॥ २१७–२२२ ॥ इस तरह कुमार वसुदेवके बाहर निकलनेसे नगर निवासी लोग बडेही दुखी होते थे, इसलिये सबने मिल कर ये सब समाचार महाराज समुद्रविजयसे निवेदन किये ॥ २२२ ॥ राजा समुद्रविजयने ये सब बातें सुनकर विचार किया और भाईके स्नेह से अनुरक्त होकर सोचा कि यदि वसुदेवसे प्रगटमें निषेध किया जायगा तो वह कदाचित् प्रतिकूल हो जाय। यही सोच कर उन्होंने वसुदेवको अकेलेमें बुलाया और समझा कर कहा कि तुम्हारा यह शरीर कैसा बदल सा गया जान पडता है इसलिये ठंडी हवामें व्यर्थ ही इधर उधर घूमने फिरनेको आजसे तुम छोड दो। यदि तुम्हारी विहार करनेकी ही इच्छा हो तो राजमंदिरके चारों ओर, धारागृह मनोहर वन, राजभवन और कृत्रिम पर्वत आदि जगहोंमें मंत्री सामंत योद्धा,

पातोन्मुखो भयात्कुर्वन् प्रवर्तननिवर्तने ॥ २०५ ॥ हंसनिनामिकाख्याभ्यां संयताभ्यां बरातके । पृच्छिताभ्यामियं छाया गुरुः कस्येति सादरं ॥ २०६ ॥ गुरुरवधिनेत्राह्य सत्रिबोधोऽब्रवीदिदं । भवे भावी तृतीयेस्माच्छायेयं युवयो पिता ॥ २०७ ॥ श्रुत्वा ततौ च मत्वैन नंदिनं भाविनंदनौ । कुतस्त्वे मृतिनिर्बंधो वधो विरम निष्फलात् ॥ २०८ ॥ अमुष्मान्मरणाद्भाग्यसौभाग्यादि त्वयेप्सितं । भविष्यति तपः सिद्धेरित्यग्राहयतां तपः ॥ २०९ ॥ चिरं सोपि तपः कृत्वा महाशुक्रेमरोजनि । तत्र षोडशवार्ध्यायुरनुभूयाभिवाञ्छितं ॥ २१० ॥ प्रादुरासीत्ततश्च्युत्वा वसुदेवो वसुधरां । वशीकर्तुमयं यस्माद्भाविनौ बलकेशवौ ॥ २११ ॥ इति सर्वमिदं श्रुत्वा ससंवेगपरायणः । सप्रेक्षोंधकवृष्ट्याख्य. स्वीचिकीर्षु परंपदं ॥ २१२ ॥ समुद्रविजयाख्याय दत्वाभिषवपूर्वकं । राज्यमुज्झितसंगः सन् शमसमस्तपोग्रहीत् ॥ २१३ ॥ सुप्रतिष्ठजिनाभ्यर्णे राजभिर्बहुभि समं । स संयमाते संन्यस्य विन्यास निर्वृतेरमात् ॥

छाया किसकी है ? वे गुरू अवधिज्ञानी थे इसलिये कहने लगे कि यह छाया अर्थात् जिमकी यह छाया है वह जीव इस जन्मसे तीसरे भवमें तुम दोनोंका पिता होगा ॥ २०६-२०७ ॥ गुरुराजजी यह बात सुन कर उसके होनहार वे दोनो पुत्र अर्थात् वे दोनों शिष्य मुनि उस नंदीके पास गये और कहने लगे कि हे भाई आपने यह मरनेका विचार क्योंकर लिया अब आप इस निष्फल अपघात कर मरनेका विचार छोड दीजिये । आप इस तरह मरकर भाग्य सौभाग्य आदि चाहते हैं सो वह तपश्चरण धारण करनेसे अपने आप सिद्ध हो जायगा । इस तरह समझा कर उसे तपश्चरण धारण करा दिया ॥ २०८-२०९ ॥ वह नंदी भी बहुत दिन तक तपश्चरण कर महाशुक्र विमानमें देव हुआ । वहां पर सोलह सागर तक इच्छानुसार दिव्य सुखोंका अनुभव कर वहांसे च्युत होकर सब पृथ्वीको अपने वश करनेके लिये यह वसुदेव हुआ है और इसीसे होनहार नारायण और बलभद्र होंगे ॥ २१०-२११ ॥ महाराज मुनिराजकी ये बातें सुनकर अंधकवृष्टि बडी उत्कंठासे विरक्त हुए और उन्होंने मोक्षपद प्राप्त करना स्वीकार किया ॥ २१२ ॥ उन्होंने समुद्रविजयको अभिषेक पूर्वक राज्य दिया तथा सब तरहके परिग्रहोंको छोडकर और शांतताको धारण कर अनेक राजाओंके साथ सुप्रतिष्ठ नामके मुनिराजके समीप दीक्षा धारण की । उन्होंने संयम धारणकर अंत में संन्यास धारण किया और कर्मोंको नष्टकर मोक्षपद प्राप्त किया ॥ २१३-२१४ ॥ इधर समुद्रविजय पृथ्वीका पालन करने लगे उनके राज्यमें सब वर्णाश्रमके लोग धर्मकार्यमें अपनी इच्छानुसार यथायोग्य रीतिसे सुखपूर्वक प्रवृत्ति करते थे ॥ २१५ ॥ महाराज समुद्रविजयने दिक्पालोंके समान आठों भाइयोंमें अपना राज्य बांट दिया था और वे स्वयं सबके साथ सब तरहके सुख देने वाले सब राज्यका अनुभव करते थे ॥ २१६ ॥ इस तरह पुण्य कर्मके उदय

सुतायुता । निदानमकरोद्रदयथा मे जन्मनीह वा ॥ १९४ ॥ परमाप्येवमेवैमिर्बंधुत्वं भवतादिति । स्वयं च कृतसंन्यासा तैः सहानतकल्पजे ॥ १९५ ॥
मातकरे समुत्पद्य विमाने भोगमन्वभूत् । त्रिंशत्सभोधिमानायुस्ततः प्रच्युत्य सा तव ॥ १९६ ॥ प्रियाजनि सुभद्राख्या धनदेवादयः सुताः । प्रख्यात
पौरुषा जाता समुद्रविजयादयः ॥ १९७ ॥ प्रियदर्शना ज्येष्ठा च कुंती मद्रीति विश्रुते । अथापृच्छन्महीपालो वसुदेवभवावली ॥ १९८ ॥ जिनेंद्रोप्यन-
वीदित्थं शुभं गंभीरभाषया । प्रकृतिस्तादृशी तेषां यथाभव्येष्वनुग्रहः ॥ १९९ ॥ ग्रामे पलाशकूटाख्ये विषये कुरुनामनि । सुगेन सोमशर्माख्यो द्विजस्त-
स्य सुतोभवत् ॥ २०० ॥ नाम्ना नंदीत्यमा देवशर्मणः सततानुगः । मातुलस्याभिलाषेण तत्सुतासु विपुन्यकः ॥ २०१ । पुत्रिकास्तस्य सप्तासन् मोदा-
दन्येभ्य एव ता । तदलाभात्स नंदी च महादुःखवशीकृत ॥ २०२ ॥ अथान्येद्युर्नटप्रेक्षां वीक्षितुं कौतुकाद्गतः । बलवद्भटसंघस्य पदगतोऽक्षमः ॥
२०३ ॥ समीक्ष्य स जनोन्योन्यकराघ्रातकलान्वित । हसत्यापमरस्य सन् भृगुपाते कृतोद्यम ॥ २०४ ॥ अद्रिमस्तकमारुह्य दक्षते स ताद्विवर्तन् ।
ही कुंती और मद्री हुई हैं । इस तरह राजा अंधकदृष्टि अपने नौ पुत्रोंकी भवावली सुनकर फिर वसुदेवकी भवावलि
पूछने लगे ॥ १९ १८ ॥ भगवान जिनराज भी अपनी गंभीर भाषाके द्वारा वसुदेवकी शुभ भवावलि इस प्रकार
कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है जिससे भव्योंका सदा अनुग्रह होता रहे ॥ १९९ ॥
श्रीजिनराज कहने लगे कि कुरु देशके पलाशकूट गांवमें एक सोमशर्मा नामका दरिद्र ब्राह्मण रहता था उसके एक
नंदी नामका पुत्र था । उस नंदीके मामाका नाम देवशर्मा था और उसके सात पुत्रियां थीं । नंदी मामाकी पुत्री लेने
की इच्छासे सदा उसके साथ रहता था परंतु वह पुण्यहीन था इसलिये देवशर्माने उसे अपनी पुत्री न देकर वे सब
पुत्रियां दूसरोंको देदीं । मामाकी पुत्री न मिलनेसे नंदी बहुत ही दुःखी हुआ ॥ २०२ ॥ किसी दूसरे दिन वह नंदी
कौतुक वश किसी नटका तमाशा देखनेके लिये गया, वहां पर बड़े बलवान योद्धाओंका समूह था वह उन्हें पार न
कर सका इसलिये वह वहीं गिर गया । उसे देखकर अन्य सब लोग परस्पर ताली बजा कर हंसने लगे । उन्हें इस
तरह हंसते देखकर नंदीको बड़ी लज्जा आई और उसने पर्वत परसे गिर कर मरनेका उद्यम किया ॥ २०४ ॥ पर्वतकी
शिखर पर चढकर वह एक शिलापर जा खड़ा हुआ और गिरनेका विचार करने लगा । परंतु नीचेकी ओर देखकर
वह डर गया और पीछेकी ओर लौटगया । इस तरह वह कई बार आया और डरकर पीछेकी ओर लौटगया ॥२०५॥
उसी पर्वतके नीचे द्रुमषेण नामके मुनिराज विराजमान थे और उनके समीप शंख और निर्नामक नामके दो शिष्य
मुनिराज विराजमान थे । उन दोनों शिष्योंने नंदीकी नीचे पड़ती हुई छाया देखकर गुरुसे पूछा कि हे प्रभो यह

वणिक्पते ॥ १८४ ॥ धनादिदेवपालाद्यौ देवपालौ जिनादिकौ । अर्हंतौ दत्तदासांतौ जिनदत्तश्च सप्तमः ॥ १८५ ॥ प्रियमित्रोष्टमो धर्मरुचिर्नामाथवोऽ भवत्सुत । प्रियदर्शना च ज्येष्ठा च जाते दुहितरौ ततः ॥ १८६ ॥ नृपः सुदर्शनोद्याने मन्दिरस्थविरांतिके । कदाचिद्वणिगीशश्च पुत्रादिपरिवारितौ ॥ १८७ ॥ सक्रियं धर्ममाकर्ण्य निर्विण्य स महीपतिः । दत्वा दृढरथायाभिषेकपूर्वं स्वकं पदं ॥ १८८ ॥ आददे संयमं पश्चाच्छ्रेष्ठी च नवभिः सुतैः । ततो नंदयशा पुत्रिकाद्वयेनागमत्तपः ॥ १८९ ॥ सुदर्शनार्यिकाभ्यर्णे तूर्णनिर्णीतसंसृति । क्रमाद्वाराणसीबाह्य केवलज्ञानिनोभवन् ॥ १९० ॥ वने प्रियंगुखण्डाख्ये मनोहरतमद्रुमे । गुरुर्मेघरथो ध्यात्वा धनदत्तश्च ते त्रयः ॥ १९१ ॥ धर्मामृतमयीं वृष्टिमुद्गिरंतो निरंतरं । जीवितांते तके सिद्धशिलाया सिद्धिमव्रजन् ॥ १९२ ॥ पुरे राजगृहे पूज्यास्त्रिजगज्जननायकैः । धनदेवादिकास्तस्मिन्नेवान्येद्युः शिलातले ॥ १९३ ॥ नवापि विधिना सम्यस्यंतो वीक्ष्य

और नौवां धर्मरुचि ये नौ पुत्र हुए थे । इसीतरह प्रियदर्शना और ज्येष्ठा नामकी दो पुत्रियां हुई थी ॥१८४–१८६॥ किसी एक समय सुदर्शन नामके उद्यानमें मंदिरस्थविर नामके मुनिराज पधारे । राजा मेघरथ और धनदत्त वैश्य भी अपने पुत्रादि सब परिवारके साथ उनकी वंदना करनेके लिये गये ॥ १८ ॥ राजा मेघरथ क्रियापूर्वक धर्मका स्वरूप सुनकर विरक्त हुआ और अभिषेकपूर्वक दृढरथको राज्य देकर उसने स्वयं संयम धारण कर लिया । तदनंतर सेठ धनदत्तने भी अपने नौ पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण की तथा नंदयशाने भी संसारका यथार्थ स्वरूप समझकर सुदर्शना आर्जिकाके समीप दोनों पुत्रियोंके साथ साथ तपश्चरण धारण किया ॥ १८८–१८९ ॥ अनुक्रमसे विहार करते हुए वे सब बनारस नगरके बाहर प्रियंगुखंड नामके वनमें मनोहर वृक्षोंके नीचे जा विराजमान हुए वहांपर गुरु मंदिरस्थविर मेघरथ और धनदत्तने शुक्लध्यान धारणकर केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ १९०–१९१ ॥ तदनंतर वे निरंतर धर्मामृतकी वर्षा करने लगे और आयु पूर्ण होनेपर तीनों लोकोंके इंद्रोंके द्वारा पूज्य होकर राजगृह नगरके समीप सिद्धशिलासे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए । किसी दूसरे दिन धनदेव आदि नौ भाई दोनों वहिनें और नंदयशाने उसी शिलापर विधिपूर्वक संन्यास धारण किया । उन सबको देखकर नंदयशाने निदान किया कि जिसप्रकार ये सब इसभवमें मेरे पुत्र हुए हैं उसीप्रकार परभवमें भी मेरे ये ही पुत्र हों । इसतरह निदानकर उसने संन्यास धारण किया । तदनंतर प्राण छोडकर वे सब तेरहवे आनत स्वर्गके शांतकर विमानमें देव उत्पन्न हुए । वहांपर वीस सागरतक उन्होंने दिव्य सुखोंका अनुभव किया । फिर वहांसे च्युत होकर नंदयशाका जीव तो तेरी सुभद्रा रानी हुई है तथा धन देव आदि नौ भाई प्रसिद्ध पौरुषको धारण करनेवाले समुद्रविजय आदि नौ पुत्र हुए हैं और प्रियदर्शना तथा ज्येष्ठा दोनों

त्वामिव मामपि । इत्यवादीदसौ वास्तु भव्योयमिति निश्चयात् ॥ १७५ ॥ दिवसैः सहवासेन कैश्चिल्लक्षितितन्मनाः । अग्राहयन्मुनिस्तेन संयमं शमसाधनं ॥ १७६ ॥ बुध्यादिकर्द्धयस्तस्य जाता संवत्सरादतः । श्रीगौतमनामा गुरुस्थानमवाप सः ॥ १७७ ॥ जीवितांते गुरुस्तस्य मध्यग्रैवेयकोर्द्धगे । विमाने सुविशालाख्ये समुत्पन्नः सुरोत्तमः ॥ १७८ ॥ स श्रीगौतमनामापि विहिताराधनाविधिः । सम्यक् संन्यस्य तत्रैव संप्रापदहमिंद्रतां ॥ १७९ ॥ तत्र दिव्य सुखं भुक्त्वा तस्माद्द्विप्रचरो मुनिः । अष्टाविंशतिवार्ध्यायुरतिक्रांतौ च्युतो भवान् ॥ १८० ॥ अजन्यंधकदृष्ट्याख्य इति तद्भावयन् सुधी । स्वपुत्रभवसंबंधं सोन्वयुक्त पुनर्जिनं ॥ १८१ ॥ सर्वभाषास्वभावेन ध्वनिना निजगाद स । जंबूपलक्षिते द्वीपे विषये मंगलाह्वये ॥ १८२ ॥ नृपो मेघरथो नाम्ना पुरे भद्रिलनामनि । सुभद्रायां सुतस्तस्य दृढरथाह्वयः ॥ १८० ॥ पट्टबंधं स्वपुण्येन यौवराज्यस्य सोविभः । तत्र नंदयशोनाम्न्यां धनदत्त

भद्रसेन नामके महा मुनिराजके पीछे पीछे गया । वैश्रवण नामके शेठने उनका पडगाहन किया । शेठने उस ब्राह्मणको भी कंठतक भोजन कराया ॥ १७३–१७४ ॥ भोजनकर वह ब्राह्मण मुनिराजके पीछे पीछे उनके आश्रममें गया और उन मुनिराजसे कहने लगा कि हे स्वामी आप अपने समान मुझे भी बना लीजिये मुनिराजने पहिले तो यह निश्चय किया कि यह वास्तवमें भव्य है, फिर कुछ दिन तक साथ रखकर उसका मन देखा और फिर उसे शांत परिणामों-का कारण ऐसा संयम धारण कराया ॥ ७५–७६ ॥ एक वर्षके वाद ही बुद्धि आदि अनेक ऋद्धियां उसे प्राप्त होगई और श्री गौतम नामके साथ साथ ही वह अपने गुरुके स्थानपर जा पहुंचा अर्थात् उनके समान होगया ॥ ७७ ॥ आयुके अंतमें उसके गुरु मध्यम ग्रैवेयकके सुविशाल नामके ऊपरके विमानमें अहमिंद्र उत्पन्न हुए और श्री गौतम मुनिराज भी विधि पूर्वक चारों आराधनाओंका आराधन कर और अच्छी तरह संन्यास धारण कर उसी मध्यम ग्रैवे-यकके सुविशाल नामके विमानमें अहमिंद्र हुए ॥ ७८-७९ ॥ अट्ठाइस सागर तक वहांके दिव्य सुखोंका अनुभव कर वह ब्राह्मण मुनिका जीव वहांसे च्युत हुआ और अंधकदृष्टि नामका तू राजा हुआ है । इस तरह अपने भवोंका अनु-भव करता हुआ वह बुद्धिमान् अंधकदृष्टि फिर भगवानसे अपने पुत्रोंके भवोंका संबंध पूछने लगा ॥ ८०-८१ ॥ वे भगवान भी सब भाषाओं में परिणत होनेवाली अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा कहने लगे कि इसी जंबूद्वीपके मंगला देशके भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ राज्य करता था उसकी सुभद्रारानीसे दृढरथ नामका पुत्र हुआ था ॥ ८२-८३ ॥ अपने पुण्य कर्मके उदयसे दृढरथके यौवराज्यका पट्ट बांधा गया था । उसी नगरमें एक धनदत्त वैश्य रहता था उस की नंदयशा स्त्रीसे धनपाल, देवपाल, जिनदेव, जिनपाल, अर्हद्दत्त, अर्हद्दास, सातवां जिनदत्त, आठवां प्रियमित्र

...लहाते प्राप्तु भिक्षामात्रेण दुर्विध; ॥ १६५ ॥ ...वत्पक्ष जातः पश्यन् बलिविभंजनं । अनाथानिव शीतोष्णवाताबाधाः सहन् मुहुः ॥ १६६ ॥ मलधारी परिभ्रष्टशेषेंद्रियविजृम्भणः । जिह्वाविषयमेवेच्छन् दण्डधारीव भूपतिः ॥ १६७ ॥ तमस्तमःप्रजातानां रूपमीदृग्भवेदिति । वेधसेव स्फुटीकर्तुं मिदस्थानां विनिर्मित ॥ १६८ ॥ दग्धमाषमषीवर्णमर्कभीत्या तमश्चयः । नररूपधरो भाति जुगुप्स्यः पापभाकचित ॥ १६९ ॥ आकंठपूर्णाहारोपि नयनाभ्यामतृप्तवान् । परिवीतकटीजीर्णछिद्रिताशुभकर्पटैः ॥ १७० ॥ व्रणवैगंध्यसंसक्तमक्षिकाभिरितस्ततः । कुथ्यत्कुणपवदावेष्ट्यो मुकरैरनपायिभिः ॥ १७१ ॥ पौरबालकसंघातैरनुयातैरनुक्षणं । उपलादिप्रहारेण ताड्यमानः प्रकोपवान् ॥ १७२ ॥ अनुभावमतत्रैवं दुखैः कालमजीगमत् । कदाचित्... लब्धकालादिरनुयातो महामुनिं ॥ १७३ ॥ समुद्रसेननामानं पर्यटंतं तनुस्थितेः । वणिग्वैश्रवणागारे तेनाकंठमभोज्यत ॥ ७४ ॥ पुनर्मुन्याश्रमं गत्वा...

वांच्छित रसके समान 'दो दो' ऐसे बचनोंसे वह सदा लोलुपी रहता था और वह पापी भिक्षासे कभी तृप्त नहीं होता था जिसप्रकार पर्वके दिनोंमें बलि (श्राद्धके दिनोंमें कौओंके लिये डाला हुआ अन्न) ढूढता हुआ कौआ इधर उधर फिरता है उसी तरह वह सब ओर भीख मांगता हुआ फिरता था। मुनियोंके समान वह ठंडी गर्मीके दुख सहता था, उसका शरीर सदा मैला रहता था और उसकी सब इंद्रियां सदा शिथिल रहती थीं। जिसप्रकार खानेकी इच्छा करनेवाला राजा अधिक दंड देता है उसीप्रकार वह खानेकी इच्छा करता हुआ वह सदा दंड लिये फिरता था॥ १६५-१६७ ॥ सातवें नरकमें उत्पन्न हुए नारकियोंका ऐसा ही रूप होता है इसी बातको यहांके लोगोंपर प्रगट करनेके लिये मानों नाम कर्म रूपी ब्रह्माने उसका शरीर बनाया जान पडता था ॥ १६८ ॥ उसका वर्ण (रंग) काले उडदके समान था और ऐसा जान पडता था मानों सूर्यके डरसे पापी और अतिशय निंदा करने योग्य अंधकारके समूहने ही अपना मनुष्यका रूप धारण कर लिया है कंठतक पूर्ण भोजन कर लेनेपर भी वह नेत्रोंसे कभी तृप्त नहीं दिखता था और उसकी कमरपर केवल फटी पुरानी तथा बहुत बुरी एक लंगोटी रहती थी ॥ १६९-१७० ॥ उसके शरीर पर बहुतसे घाव हो गये थे उनकी बडी दुर्गंध आती थी तथा भिनभिनाती हुई अनेक मक्खियां मुर्देके समान उसे सदा घेरे रहती थीं और वे कभी वहांसे हटती नहीं थीं इससे उसे बडा ही क्रोध आया करता था ॥ १७१ ॥ नगरके लडकोंका समूह सदा उसके पीछे लगा रहता था और कंकर पत्थरोंकी वर्षाकर सदा उसकी ताडना किया करता था इससे भी उसे सदा क्रोध आया करता था ॥ १७२ ॥ इसतरह दौडता फिरता वह अनेक दुःखोंसे अपना समय व्यतीत करता था। किसी एक समयकाल लब्धि प्राप्त हो जानेसे वह गौतम ब्राह्मण चर्याके लिये विहार करते हुए स-

तलवरो द्विज । श्येनकाख्यो भ्रमन् दृष्ट्वा रात्रौ त्वां हन्म्यहं नहि॥५४॥ द्विजाख्याधारिण याहि नगराद्द्रक्ष्यसे यदि पुनः । कृतांतवक्त्रं त्वं नेष्यसे दुष्क्रियो
मया ॥ १५५ ॥ इत्यतर्जयत्सोपि कालकाख्येन पापिना । समभुल्कामुखीव्याधनिवासपतिनागमत् ॥ १५६ ॥ स कदाचिदयोध्यायां गोकुलापहृतौ
द्विजः । श्येनकेन हतोऽयासीन्महापापादधोगतिं ॥ १५७ ॥ ततश्च्युत्वा महामत्स्यो हरिर्दृष्टिविषोरगः । शार्दूलो पक्षिणामीशो व्यालव्याधश्च समभवन् ।
प्रविश्याधो गती सर्वाः कृच्छ्रात्ताभ्यो विनिर्गत । त्रसस्थावरभावेन चिरं कालं परिभ्रमन् ॥ १५९ ॥ जंबूपलक्षिते द्वीपे भरते कुरुजांगले । हस्तिनाख्यं
पुरं पाति धराधीशे धनजये ॥ १६० ॥ सुतो गोतमगोत्रस्य सबभूव द्विजात्मज । कापिष्ठस्य नि-श्रीकः सोनुधर्याश्च गोतमः ॥ १६१ ॥ तत्समुत्पत्ति-
मात्रेण तच्छेषमभवत्कुल, । अलब्धान्न कृशीभूतजठर प्रगटास्थिकः ॥ १६२ ॥ त्रसावनद्दुष्कायो यूकाचितशिरोरुह । शयानश्चैव सर्वैश्चातार्जितो यत्र
तत्र वा ॥ १६३ ॥ कराग्रकर्परेणोपलक्ष्यमाणोऽनपायिना । सुमित्रेणैव सर्वत्र शरीरस्थितिहेतुना ॥ १६४ ॥ वाञ्छितेन रसेनेव देहीति वचसा तदा ।

देगा तो फिर मैं तुझे मार ही दूगा ॥ १५४–१५५ ॥ इसतरह तर्जना करनेपर वह पापी उस शहरसे निकल गया और उल्कामुखी पर रहने वाले भीलोंके स्वामी कालिकसे जा मिला ॥ १५६ ॥ किसी एक समय उसी ब्राह्मणने अयोध्यामें आकर बहुतसी गायें चुराई थीं इसलिये वह श्येनक नामके कोतवालके द्वारा मारा गया और महा पाप करनेके कारण नरकमें नारकी हुआ ॥ १५७ ॥ वहांसे निकलकर महामत्स्य हुआ फिर नरकमें गया, वहांसे आकर सिंह हुआ, मरकर नरक गया, वहांसे आकर दृष्टिविष (जिसकी आंखोंमें ही विष हो) नामका सर्प हुआ । फिर नरकके दुख भोग कर सिंह हुआ और फिर नरकमें पहुंचा । वहांसे आकर गरुडपक्षी हुआ फिर नरक गया, वहांसे निकलकर सर्प हुआ फिर नरकमें जाकर भील हुआ इसतरह परिभ्रमण कर उस रुद्रदत्तके जीवने त्रस और स्थावर योनियोमें बहुत दिनतक परिभ्रमण किया ॥ १५७–१५९ ॥ अंतमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा धनजय राज्य करता था उसी नगरमें गोतम गोत्रका कपिष्ठ नामका ब्राह्मण रहता था उसी ब्राह्मणके उसकी अनुंधरी ब्राह्मणीसे वह रुद्रदत्तका जीव गौतम नामका महा दरिद्र पुत्र हुआ ॥ १६०–१६१ ॥ उत्पन्न होते ही उसका सब कुल नष्ट होगया था, उसे कभी खानेको नहीं मिलता था, पेट उसका सूख गया था, हड्डिया निकल रहीं थीं, केवल नसोंसे घिरा हुआ शरीर बहुत ही बुरा दिखता था, उसके शिरके बाल जूओंसे भरे थे और जहां कहीं वह जाता था वहींपर सब लोग उसे ललकार और फटकार बतलाते थे ॥ १६२–१६३ ॥ वह अपना शरीर स्थिर रखनेके लिये अर्थात् पेट भरनेके लिये कभी अलग न होनेवाले श्रेष्ठ मित्रके समान हाथमें सदा खप्पर लिये फिरता था ॥ १६४ ॥

मिमध्येऽसो विधाय ज्योतिषा गणे। देवः सुदर्शनो नाम्ना भूत्वा प्राग्जन्मवैरत ॥ १४३ ॥ ममायमकरोदीदृगिति तद्वाक्यमादरात्। श्रुत्वा सुदर्शनो मुक्तवैरः सद्धर्ममग्रहीत् ॥ १४४ ॥ अथातोंधकदृष्टिश्च श्रुत्वा मुकुलयन्करौ। स्वपूर्वभवसंबंधमप्राच्छज्जिनपुंगव ॥ १४५ ॥ वीतरागोपि सोप्याह तत्पृष्ट-शिष्टगीर्गुण। निर्निमित्तहिताख्यान नाम तेषु निसर्गज ॥ १४६ ॥ द्वीपेत्रैव विनीतायां नरेंद्रोऽनंतवीर्यवान्। सुरेंद्रदत्तस्तत्रैव वैश्यो वैश्रवणोपमः ॥ १४७ ॥ दशभिर्नित्यपूजायामष्टम्या द्विगुणैस्तत। चतुर्गुणैरमावास्याया पर्वण्यष्टभिर्गुणै ॥ १४८ ॥ दीनारैरर्हतां पूजां करोति विहितव्ययः। सहितः पात्रदानेन सशील- सोपवासकः ॥ १४९ ॥ धर्मशील इति ख्याति स समापापपापक.। गन्तु वारिपथ वाञ्छन्नन्येद्युर्वणिजावरः ॥ १५० ॥ द्वादशाब्दे समावर्ज्य धनमागतुक. परं। जिनपूजाव्ययायार्थं द्वादशाब्दनिबधन ॥ १५१ ॥ मित्रस्य रुद्रदत्तस्य ब्राह्मणस्य करे न्यधात्। अनेन जिनपूजादि कुर्वेह वा त्वमित्यसै ॥ १५२ ॥ तस्मिन् गते स विप्रोपि स्त्रीद्यूतव्यसनादिभि। धन कतिपयैरेव दिनैर्व्ययमनीनयत् ॥ १५३ ॥ ततश्चौर्यादिदुष्कर्मसक्त

पहिले भवोंका संबंध पूछा ॥ १४५ ॥ शिष्ट वचन ही जिनका मुख्य गुण है ऐसे वे वीतराग भगवान भी उनके प्रश्न के अनुसार कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि विना किसी कारणके हितोपदेश देना उनका स्वाभाविक गुण है ॥१४६॥ वे कहनेलगे कि इसी जंबूद्वीपके अयोध्या नगरमें राजा अनंतवीर्य राज्य करता था। उसी नगरमें कुवेरके समान धनवान् एक सुरेंद्रदत्त नामका शेठ रहता था ॥ १४७ ॥ वह शेठ प्रतिदिन दश दीनारसे भगवान अरहत देवकी पूजा करता था तथा अष्टमीके दिन वीस दीनारसे, अमावसके दिन चालीस दीनारसे, और चतुर्दशीके दिन अस्सी दीनारसे भगवानकी पूजा करता था। वह इस तरह खर्च करता था, सदा पात्रदान देता था, शील पालन करता था और अनेक उपवासादि करता था ॥ १४८–१४९ ॥ इन्हीं सब कारणोंसे उस पाप रहित शेठने धर्मशीलकी उपाधि पाई थी। किसी एक दिन उस वैश्यवरने समुद्रमार्गमे जाकर धन कमानेकी इच्छा प्रगट की उसने बारह वर्षतक लौट आनेका विचार किया इसलिये उसने बारह वर्ष तक भगवानकी पूजा करनेके लिये अपने मित्र रुद्रदत्त ब्राह्मणके हाथ धन सौंप दिया और समझा दिया कि इस धनसे बराबर इस तरह भगवानकी पूजा करते रहना। क्योंकि मुझमें तुझमें कुछ अंतर नहीं है ॥ १५०–१५२ ॥ परंतु वैश्यके चले जानेपर उस ब्राह्मणने थोड़े ही दिनोंमें जूआ खेलना स्त्री सेवन करना आदि व्यसनोंके द्वारा सब धन खर्च कर दिया ॥ १५३ ॥ तब फिर वह चोरी आदि बुरे कर्म करनेमें लग गया। किसी एक दिन श्येमक नामके कोतवालने घूमते हुए रात्रिमें उसे देख लिया और कहा कि तू ब्राह्मण है इसलिये मैं तुझे मारना नहीं चाहता, तू मेरे शहरसे निकल जा यदि ऐसे नीच कर्म करनेवाला तू फिर दिखाई

तत्रांतस्य वणिक्पुत्रौ तत्प्रदेशे निजं धन। अनिरीक्ष्य मृतौ हत्वा श्रद्दधानौ परस्परं ॥ १३२ ॥ बद्ध्वायुः क्रोधलोभाभ्यामाद्यं नरकमीयतुः । तत्र दुःख चिरं भुक्त्वा ततो विंध्याद्रिकंदरे ॥ १३३ ॥ जातौ मेषौ पुनस्तत्राप्यन्यो यवधकारिणौ । गोकुले वृषभौ जातौ गंगातटनिवासिनि ॥ १३४ ॥ तत्र जन्मांतरद्वेषात्कृतयुद्धौ गतासुकौ। सम्मेदपर्वते जातौ वानरौ वा नरौ धिया ॥ १३५ ॥ शिलासलिलहेतोस्तौ कलहं खलु चक्रतुः। मृतस्तयोः सपर्येकः पर कंठगतासुकः ॥ १३६ ॥ सुरदेवादिगुर्वंतचारणाभ्यां समुत्सुक । श्रुत्वा पचनमस्कारं धर्मश्रुतिपुरःसरं ॥ १३७ ॥ सौधर्मकल्पे चित्रांगदाख्यो देवोजनिष्ट स । ततो निर्गत्य जम्बादिद्वीपे भरतमध्यगे ॥ ३८ ॥ सुरम्यविषये पोदनेशः सुस्थितभूपतेः । सुलक्षणायां पुत्रोभूत्सुप्रतिष्ठो वरिष्ठधीः ॥ १३९ ॥ कदाचित्प्रावृडारंभे गिरावसितनामनि । युद्धं मर्कटयोर्वीक्ष्य स्मृतप्राग्जन्मचेष्टित ॥ १४० ॥ सुधर्माचार्यमासाद्य दीक्षित्वाऽभवदीदृश । सूरदत्त चरः सोहं सुदत्तोप्यनुजो भवे ॥ १४१ ॥ भ्रांत्वाते सिंधुतीरस्थमृगायणतपस्विनः। विशालायाश्च तोकोभूद्गौतमाख्य कुदर्शनात् ॥ १४२ ॥ तपः पचा-

तक वहांसे दुःख भोग कर निकले और विंध्याचल पर्वतकी गुफामें दोनों ही मेंढा हुए। वहां पर भी वे दोनों आपसमें लड कर मरे और गंगानदीके किनारे गायोंके समूहमें दोनों ही सांड हुए ॥ १३२-१३४ ॥ जन्मांतरके द्वेषसे वहां भी वे परस्पर युद्धकर मरे और सम्मेद पर्वत पर बुद्धिसे मनुष्योंके समान बंदर हुए ॥ १३५ ॥ वहां पर पत्थरसे निकलते हुए पानीके लिये दोनों ही लडने लगे। उनमेंसे एक तो मर गया और दूसरा कंठगत प्राण होगया ॥१३६॥ उसी समय सुरगुरु और देवगुरु दो चारण मुनि वहां आ पहुचे उनसे उसने बडी उत्कंठासे पंचनमस्कार मंत्र सुना और इसतरह धर्मश्रवणपूर्वक मरकर सौधर्म स्वर्गमें चित्रांगद नामका देव हुआ। वहांसे निकलकर जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनापुर नगरके राजा सुस्थित रानी सुलक्षणाके उत्तम बुद्धिवाला सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ ॥ १३७-१३९ ॥ किसी एक समय वर्षा ऋतुके प्रारंभमें अवसित नामके पर्वतपर उसने दो वंदरोंका युद्ध देखा उसे देखकर उसे पूर्व जन्मका स्मरण हो आया और सुधर्माचार्यके निकट जाकर उसने दीक्षा धारण कर ली। वही सूरदत्तका जीव मैं हूं। मेरा छोटा भाई सुदत्त संसारमें परिभ्रमण कर सिंधु नदीके किनारे मृगायण नामके तपस्वीके उसकी विशाला स्त्री से गौतम नामका पुत्र हुआ। मिथ्यादर्शनके प्रभावसे पंचाग्नि तपश्चरण कर सुदर्शन नामका ज्योतिषी देव हुआ है। पूर्व जन्मके वैरसे ही इसने मुझपर ऐसा उपसर्ग किया है। सुदर्शन नामके उस ज्योतिषी देवने उन सुप्रतिष्ठ सर्वज्ञदेवके वचन बडे आदरसे सुने और अपना सब तरहका वैर विरोध छोडकर उसने उत्तम जैन धर्म स्वीकार किया ॥ १४०-१४४ ॥ अथानंतर-अंधकवृष्टिने ये सब बातें सुनकर और अपने दोनों हाथ जोडकर उन भगवानसे अपने

स्वयमादाय तपांस्युग्रै समाचरन् । गतेषु द्वादशाब्देषु पर्वते गंधमादने ॥ १२२ ॥ प्रतिमायोगमालंब्य सुप्रतिष्ठस्य तिष्ठतः । देवः सुदर्शनो नाम व्यकारोपद्रवं क्रुधा॥१२३॥ उपसर्गं विजित्यास्य सोढ्वाशेषपरीषहान् । ध्यानेनाहत्य घातीनि प्रादुरासीत्स केवली ॥१२४॥ देवैरंधकवृष्टिश्च सह पूजार्थमागतः । अपृच्छ- देव देवायं देवस्ते केन हेतुना । महोपसर्गं पूज्यस्य कृतवानिति विस्मयात् । तदुक्त्यवसितौ व्यक्तं जिनेंद्रोप्येवमब्रवीत् ॥ १२६ ॥ द्वीपेस्मिन् भारते क्षेत्रे कलिंगविषये पुरे । कांच्यां वणिक्सुतः सूरदत्तोन्यश्च सुदत्तवाक् ॥ १२७ ॥ लंकाद्वीपादिषु स्वैरं समावर्ज्य निजं धनं । पुरो न्यक्षिपतां गूढं प्रवेशे शुल्कभीरुकौ ॥ १२८ ॥ मूलेक्षुपविशेषस्य साभिज्ञानमथोन्यदा । कश्चिन्मद्यप्रयोगार्थं खने तद्योग्यभूरुहां ॥ १२९ ॥ मूलान्युत्खन्य संगृह्णन् विलोक्य बहु तद्धनं । किमनेन मुधा मूलखननेनाल्पहेतुना ॥ १३० ॥ सुप्रभूतमिदं लब्धं धनं दारिद्र्यविद्रुतिं । विदधात्यामृतेर्भोगैरित्यादाय गतस्ततः ॥ १३१ ॥

धारण कर विराजमान हुए । उस समय सुदर्शन नामके किसी देवने क्रोधमें आकर कुछ उपद्रव किया ॥१२२-१२३॥ परंतु वे मुनिराज उस उपसर्गको जीत कर तथा सब परीषहोंको सहनकर और शुक्लध्यानके द्वारा घातिया कर्मोंको नाश कर केवलज्ञानी हुए ॥ १२४ ॥ उस समय सब देवोंके साथ साथ अंधकवृष्टि भी उनकी पूजा करनेके लिये आए और उन्होंने उन्हीं भगवानसे बडे आश्चर्यके साथ पूछा कि हे देव इस देवने किस कारणसे आप ऐसे पूज्य पुरुषोंको उपद्रव किया । उनके इस प्रकार कह चुकने पर श्रीजिनेंद्र देव कहने लगे ॥ १२६ ॥ इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कालिंग देशके कांचीपुर नगरमें दो वैश्यपुत्र रहते थे एकका नाम सूरदत्त था और दूसरेका नाम सुदत्त था ॥ २७ ॥ उन दोनोंने लंका आदि अनेक द्वीपोंमें जाकर धन कमाया था । जब लौट कर वे अपने नगरमें आए तो उस धन पर कर लग जानेके डरसे उन्होंने वह धन शहरके बाहर ही किसी वृक्षके नीचे गाढ दिया था और उसी वृक्षके नीचे पहिचाननेकेलिये कुछ चिन्ह कर दिया था । किसी दूसरे दिन कोई अन्य पुरुष मद्य बनानेके लिये वृक्षोंकी जडोंको ढूंढता हुआ उसी वृक्षकी जड खोदने लगा और वहां पर बहुतसा धन देखकर विचार करने लगा कि थोडेसे पैसे देनेवाली इन जडोंके उखाडनेसे क्या लाभ है मुझे तो अब यह बहुतसा धन मिल गया है इससे मेरा सब दारिद्र्य दूर हो जायगा और मैं अपनी उमर तक इस धनसे भोगोपभोगोंका सेवन करूंगा यही समझकर वह उस धनको लेकर चला गया ॥ १२८-१३१ ॥ उसके बाद वे दोनों वैश्यपुत्र आए और उस जगह अपना धन न देखकर परस्पर लडने लगे । उन दोनोंको एक दूसरे पर धन ले जानेका विश्वास हो गया था इसलिये परस्पर एक दूसरेको मारते हुए दोनों ही मर गये और क्रोध लोभसे नरकायु बंध कर पहिले नरकमें जा पहुंचे । बहुत दिन

पत्रकेण सहार्भक । कुत्या परिजन: कालिंद्याः प्रवाहे मुमोच त ॥ १११ ॥ चपापु... ...तामानाम्यादित्यनामक । बालमीक्षुमिवांतःस्थ बालक स सविस्मय ॥ ११२ ॥ पश्यन् स्वसैन्यै राधायै तुक स्यादिति भाववित् । दत्वा सक्षद्विलोक्यैन राधा कर्णपरिस्पृश ॥ ११३ ॥ अस्तु कर्णाभिधानोयमिति सादरमब्रवीत् । पांडो कुत्या च मद्र्या च पाणिग्रहणपूर्वक ॥ ११४ ॥ प्राजापत्येन संबधो विवाहेनाभवत्पुनः । कुत्यामजनि धर्मिष्ठो धर्मपुत्रो धराधिप ॥ ११५ ॥ भीमसेनोऽनु पार्थश्च त्रयो वर्गत्रयोपमा: । मद्र्या च नकुलो ज्येष्ठ: सहदेवस्ततोन्वभूत् ॥ ११६॥ धृतराष्ट्राय गांधारी दत्ता दुर्योधनोऽजनि । तयोर्दुःशासन पश्चादथ दुर्धर्षणस्तत: ॥ ११७ ॥ दुर्मर्षणाद्या: सर्वेपि शतमेकं महौजस । एव सुखेन सर्वेषा कालो गच्छति लीलया ॥ ११८ ॥ अन्येद्यु: सुप्रतिष्ठाख्यो मुनींद्रो गंधमादने । गिरौ सन्निहित: शूरवीराख्यो वंदितु निज ॥ ११९ ॥ पुत्रपौत्रादिभि सार्द्धं गत्वाभ्यर्च्याभिनुत्य त । श्रुत्वा धर्मं तदुद्दिष्ट स सवेगपरायण ॥ १२० ॥ कृत्वाभिषेचन दत्वा राज्यमंधकवृष्टये । योग्योयमिति सयोज्य यौवराज्य कनीयसे ॥ १२१ ॥ सयम

उदय होते हुये सूर्यके समान बालक था उस बालकको देखकर उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ । अपनी सब सेनाके साथ उसे देखकर विचार किया कि रानी राधाके लिये यह पुत्र हुआ । यही सोचकर उसने वह पुत्र अपनी रानी राधाको दिया । राधाने देखा कि वह पुत्र अपना कान पकड़ें हुए है इसीलिये उसने बड़े आदर और प्रेमके साथ कर्ण उसका नाम रक्खा । यह सब काम हो जानेके बाद कुंती और मद्रीके साथ पांडुका विवाह हुआ ॥ ११२-११४ ॥ तभीसे प्राजापत्य विवाहका संबंध प्रचलित हुआ है कुंतीके धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) नामका धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ था तथा उसके बाद भीमसेन और अर्जुन हुए । इस तरह उस कुंतीके तीनों वर्गके समान तीन पुत्र हुए । इसी तरह मद्रीके बड़ा पुत्र नकुल हुआ और फिर उसके बाद सहदेव हुआ ॥ ११५-११६ ॥ धृतराष्ट्रको गांधारी दी गई थी इसलिये उन दोनोंके दुर्योधन, दुःशासन, दुर्द्धर्षण और दुर्मर्षण आदि प्रतापशाली सौ पुत्र हुए । इस प्रकार उन सबका बड़े सुखसे लीला पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था ॥ ११७-११८ ॥ किसी दूसरे दिन गंधमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ नामके मुनिराज आ विराजमान हुए थे इसलिये महाराज शूरवीर अपने पुत्र पौत्रादिके साथ उनकी वंदना करनेके लिये निकला। वहां जाकर उनकी पूजा की नमस्कार किया उनका कहा हुआ धर्म श्रवण किया तथा संसारके दुःखोंसे डरकर और विरक्त होकर अंधकवृष्टिका राज्याभिषेक कर उसे राज्य समर्पण किया । इसी तरह छोटे नरवृष्टिको योग्य समझकर उसे यौवराज्यपद दिया ॥ ११९-१२१ ॥ यह सब काम कर उन्होंने स्वयं संयम धारण किया और वे घोर तपश्चरण करने लगे । इसके बाद बारह वर्ष पीछे वे ही सुप्रतिष्ठित मुनिराज फिर उसी गंधमादन पर्वत पर प्रतिमा योग

तनयात्रय: । उग्रदेवमहायुक्तिसेनांतश्च गुणान्विता: ॥ १०० ॥ गांधारी न सुता प्रादुरभवन् शुभदायिन । अथ कौरवमुख्यस्य हास्तिनपुरे शिन: ॥ १०१ ॥ शक्तिनाममहीशस्य शतकश्चैव परासर । तस्य मत्स्यकुलोत्पन्नराज्यपुत्र्या सुतोभवत् ॥ १०२ ॥ सत्यवत्या सुधीर्व्यास पुनर्व्याम-सुभद्रयो । धृतराष्ट्रो महान् पांडुर्विदुरश्च सुतास्त्रय ॥ १०३ ॥ अथान्येद्यु विहारार्थं कदाचिद्वज्रमालिनि । नभोयायिनि विस्मृत्य गते हस्तांगुलीयक ॥ १०४ ॥ विलोक्य पांडुभूपालो गहने तदगमग्रहीत् । स्मृत्वा खग विवृत्यैत्य मुद्रिका तामितस्तत ॥ १०५ ॥ अन्विच्छत विलोक्याह पांडु: किं मृग्यते त्वया । इति तद्वचन श्रुत्वा विद्याधृन्मम मुद्रिका ॥ १०६ ॥ विनष्टेत्यवदत्तस्य पाडुश्चेतामदर्शयन् । पुन किमनया कृत्यमिति तस्यानुयोजनात् ॥ १०७ ॥ भद्रेषा कामरूपस्य साधनीत्यब्रवीत्खग । यद्येव कानिचिद् भ्रातर्दिनान्येपास्तु मत्करे ॥ १०८ ॥ प्रभावमस्या पश्यामीत्यर्थितस्तेन सोप्यदात् । पाडुश्च तत्कृतादृश्यनिजरूपेण सगम ॥ १०९ ॥ कुत्या सहाकृतोत्पन्नस्तत्र कर्णाह्वय: सुत: । तत परैरविदितं मजूषास्य सकुडल ॥ ११० ॥ सरत्नकवच लेख्य-

व्यासकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था इसलिये व्यासके उस सुभद्रासे धृतराष्ट्र पांडु और विदुर ये तीन पुत्र हुए थे ॥ १००-१०३॥ अथानंतर किसी एक समय वज्रमाली नामका विद्याधर हस्तनापुरके वनमें क्रीडा करने आया था और वह अपनी अंगूठी भूलकर चला गया था ॥ १०४ ॥ राजा पांडु भी उससमय क्रीडा करनेके लिये वनमें गये थे और वह अंगूठी देखकर उन्होंने उठाली थी । जब उस विद्याधरको उस अंगूठीका स्मरण आया तो वह लौटकर उसी वन-में इधर उधर अंगूठी देखने लगा उसे ढूंढता हुआ देखकर पांडुने कहा कि आप क्या ढूंढ रहे हैं? पांडुकी यह बात सुनकर वह विद्याधर कहने लगा कि मेरी अंगूठी गिर गई है उसे ही ढूंढता फिरता हूं इसके उत्तरमें पांडुने वह अं-गूठी उसे दिखला दी । इसके बाद पांडुने उस विद्याधरसे पूछा कि इससे क्या काम निकलता है इसके उत्तरमें उस विद्याधरने कहा कि हे भद्र ! यह इच्छानुमार रूप बना देनेवाली है । यह सुनकर पांडुने प्रार्थनाकी कि हे भाई यदि ऐसा ही है तो थोडे दिन तक इसे मेरे हाथमें रहने दो मैं इसका प्रभाव देखना चाहता हूं । ऐसी प्रार्थना करनेपर विद्याधरने भी वह अंगूठी उसे दे दी । पांडुने उसे पहिनकर अपना अदृश्य रूप बनाया और फिर कुंतीके साथ समागम किया । इसतरह कुंतीके कर्ण नामका पुत्र हुआ । कुंतीके परिजनोंने दूसरोंको मालूम न होने-पावे इसतरह छिपाकर उस बालकको एक सदूकमें रक्खा उसे कुंडल पहिना दिये रत्नोंका कवच पहिना दिया तथा उसका परिचायक एक लेख लिखकर रख दिया । इस तरह रखकर वह संदूक यमुना नदीके प्रवाहमें छोड दी ॥ १०८-१११ ॥ वह सदूक बहती बहती चंपापुरके राजा आदित्यके यहां पहुंची उसने उसे खोलकर देखा तो उसमें

मार्कंडेयस्तु नाम्नैव इति ते तमुदाहरन् ॥ ९० ॥ एष देवोपनीत तद्राज्य सुचिरमन्वभूत् । सताने तस्य निर्यतो हरिर्हिमगिरि पर ॥ ९१ ॥ तृतीयो वसुगिर्याख्य परेपि बहवो गता । तदा कुशार्थविषये तद्वशावरभास्वतः ॥ ९२ ॥ अवार्यनिजशौर्येण निर्जिताशेषविद्विष । ख्यातशार्यपुराधीशसूरसेन-महीपते ॥ ९३ ॥ सुतस्य शूरवीरस्य धारिण्याश्च तनूद्भवौ । विख्यातोंधकवृष्टिश्च पतिर्वृष्टिर्नरादिवाक् ॥ ९४ ॥ धर्मी वाधकवृष्टेश्च सुभद्रायाश्च तुग्वराः । समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्ततस्तिमितसागर ॥ ९५ ॥ हिमवान् विजयो विद्वानचलो धारणाह्वय । पूरण पूरितार्थीच्छो नवमोप्यभिनदनः ॥ ९६ ॥ वसुदेवो-तिमश्चैव दशाभूवन् शशिप्रभाः । कुन्ती मद्री च सोमेवा सुते प्रादुर्बभूवतु ॥ ९७ ॥ समुद्रविजयादीना नवानां सुरतप्रदाः । शिवदेव्यनु तस्य धृतीश्वरा स्वयंप्रभा ॥ ९८ ॥ सुनीताख्या च शीता च प्रियवाक् च प्रभावती । कालिंगी सुप्रभा चेति बभूवुर्भुवनोत्तमाः ॥ ९९ ॥ पद्मावत्या द्वितीयस्य वृष्टेश्च

किसी देवने स्त्रीसहित लाकर मुझे यहां आ पटका है और अवतक मैं वनमें ही ठहरा हुआ था ॥ ८८-८९ ॥ राजाकी यह बात सुनकर उन लोगोंने उसे मृकंडूका पुत्र समझकर उसका मार्कंडेय नाम रक्खा और फिर इसी नामसे वे लोग पुकारने लगे ॥ ९० ॥ इस तरह वह मार्कंडेय नाम धारी सिंहकेतु देवयोगसे प्राप्त हुये राज्यका बहुत दिन तक उपभोग करने लगा । उसीकी संतानमें हरिगिरि हेमगिरि और वसुगिरि आदि अनेक राजा हुए उन्हींमें कुशार्थ देशके शौर्यपुर नगरमें राजा सूरसेन हुआ था जो कि हरिवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान था और जिसने अपनी अनिवार्य शूरवीरतासे सब शत्रु जीत लिये थे उस सूरसेनके शूरवीर नामका एक पुत्र था और उसकी स्त्रीका नाम धारिणी था उसके अंधकवृष्टि और नरवृष्टि नामके दो पुत्र हुए थे ॥ ९१-९४ ॥ अंधक वृष्टिकी रानीका नाम सुभद्रा था उसके धर्मके समान क्षोभरहित समुद्रविजयी १ स्तिमितसागर २ हिमवान् ३ विजय ४ विद्वान् अचल ५ धारण ६ पूरण ७पूरितार्थीच्छ ८ अभिनंदन ९ और वसुदेव १० ये चंद्रमाकी किरणोंके समान दश पुत्र हुए थे तथा इसीतरह चंद्रमाकी चांदनीके समान कुती और मद्री नामकी दो पुत्रियां हुई थीं ॥ ९५-९७ ॥ समुद्रविजय आदि पहिलेके नौ पुत्रोंके अनुक्रमसे शिवदेवी, धृतीश्वरा (पृथ्वी) स्वयंप्रभा, सुनीता, सीता, प्रियवाक्, प्रभावती, कालिंगी और सुप्रभा ये संसारमें सबसे उत्तम स्त्रियां थीं ॥ ९८-९९ ॥ नरवृष्टिकी रानीका नाम पद्मावती था और उससे उनके उग्रसेन देवसेन और महासेन ये तीन गुणी पुत्र हुए थे तथा एक गांधारी नामकी पुत्री हुई थी, ये सब पुत्र पुत्री सुख देने-वाले थे ॥ इधर हस्तिनापुर नगरमें कौरव वंशी राजा शक्ति राज्य करता था उसकी शतकी रानीसे पारासर नामका पुत्र हुआ था उस पारासरके मत्स्य कुलमें उत्पन्न राजपुत्री रानी सत्यवतीसे बुद्धिमान् व्यास नामका पुत्र हुआ था ।

सखा प्रियः। अणुव्रतफलेनाभूत्कल्पे सौधर्मनामनि ॥ ७९ ॥ वर्यं सूर्यप्रभो नाम वीक्ष्य चित्रांगदं तदा। शृणु मद्वचनं भद्र फलं किं तेऽनयोः मृतौ ॥ ८० ॥ पापानुबंधि कर्मेदमयुक्त युक्तिकारिणा। संसारद्रुमदु खाभिधान दुःखफलप्रद ॥ ८१ ॥ ततो मिथुनमेतत्त्व विसृजेत्यभ्यधान्मुहुः। श्रुत्वा तज्जान-कारुण्यस्तदमुचदसौ सुरः ॥ ८२ ॥ तौ सबोध्य समाश्वस्य तयोश्चंपापुरे वने। सुखासि भाविनीं बुध्वा सूर्यतेजो व्यसर्जयत् ॥ ८३ ॥ तत्पुराधीश्वरे चद्रकीर्तिनाममहीभुजि। विपुत्रे मरण प्राप्ते राज्यसंततिसंस्थितेः ॥ ८४ ॥ सपुण्यं योग्यमन्वेष्टु वारण शुभलक्षण। गंधादिभिः समभ्यर्च्यासुंचत्म-न्मत्रिमडलं ॥ ८५ ॥ सोपि दिव्यो गजो गत्वा वन पुण्यविपाकतः। तावुद्धृत्य निजस्कंधमारोप्य पुरमागमत् ॥ ८६ ॥ सिंहकेतोर्विधायाभिषेक मंत्या-दयस्तदा। राज्यासन समारोप्य बद्ध्वा पट्ट स सम्मदा ॥ ८७ ॥ त्व कस्यात्रागतः कस्मादित्याहु सोब्रवीदिदं। प्रभजनः पिता माता मृकडू मंडिता गुणैः ॥ ८८ ॥ हरिवशामलव्योमसोमोहमिह केनचित्। सुरेणानीय मुक्तः सन् सह पत्न्या वने स्थितः ॥ ८९ ॥ इति तद्वचन श्रुत्वा मृकंडुवास्तनयो यत।

उसे उठाकर ले चला ॥ ७८ ॥ पहिले जन्ममें शेठ सुमुखका प्रिय मित्र राजा रघु अणुव्रतोंके फलसे सौधर्मस्वर्गमें सूर्य-प्रभ नामका उत्तम देव हुआ था वह उसी समय चित्रांगदको देखकर कहने लगा कि हे भद्र! मेरी बात सुन इनके मरने पर तुझे क्या फल मिलेगा ॥ ७९-८० ॥ यह काम पापका बंध करनेवाला है युक्तिपूर्वक चलनेवालोंके लिये अयोग्य है और संसाररूप वृक्षके दुःखरूप दुष्ट फलोंका देनेवाला है ॥ ८१ ॥ इसलिये तुझे यह जोडा छोड देना चाहिये इस प्रकार उसने बार बार कहा उसे सुन कर चित्रांगदको भी दया आगई और उसने वे दोनों छोड़ दिये॥८२॥ तदनंतर सूर्यप्रभ ने उन दोनोंको समझाया आश्वासन दिया और उनके होनहार सुखको जानकर उन्हें चंपापुरके वन में छोड़ दिया ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे चंपापुर नगरका राजा चंद्रकीर्ति उन्हीं दिनों विना संतानके मर गया था इस-लिये मंत्रियोंने राज्यकी परंपरा बराबर ज्यों की त्यों चलानेके लिये किसी योग्य और पुण्यवान् पुरुषको ढूंढनेके लिये किसी शुभ लक्षणवाले हाथीको चंदन गंध आदि से पूजा कर छोडा था ॥ ८४-८५ ॥ वह दिव्य हाथी भी वन-में गया और पुण्य कर्मके उदयसे उन दोनों स्त्री पुरुषोंको (सिंहकेतु और विद्युन्मालाको) उठाकर मस्तक पर विराजमान कर नगरमें आगया ॥ ८६ ॥ मंत्री आदि सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सिंहकेतुका राज्याभिषेक किया और राज्य सिंहासनपर विराजमानकर उसपर पट्ट बांधा ॥ ८७ ॥ तदनंतर उन लो-गोंने पूछा कि आप किसके पुत्र हैं और यहां कहांसे आये हैं? उत्तरमें राजाने कहा कि हमारे पिताका नाम प्रभजन है और गुणोंसे सुशोभित माताका नाम मृकंडू है हरिवंशरूपी निर्मल आकाशका एक चंद्रमा हूं। किसी कारणसे

नाम्ना व्याधभयादेत्य भार्यया वनमालया ॥ ६६ ॥ कौशांबी नगरं तत्र सुमुखाख्यं समाश्रयत् । वनमालां समालोक्य स श्रेष्ठी विहरन् वने ॥ ६७ ॥ विकायसायकैस्तीक्ष्णै कदाचिच्छरधीकृत् । मायावी वीरदत्त न पापी वाणिज्यहेतुना ॥ ६८ ॥ प्राहिणोद् द्वादशाब्दाना दत्वा पुष्कलजीविकां । स्वीचकार सहाकीर्त्या वनमालां विलोमिता ॥ ६९ ॥ अतिबाह्यागतो वीरदत्तो द्वादश वत्सरान् । तद्विक्रिया समाकर्ण्य स्मरन् संसारदुस्थितिं ॥ ७० ॥ शोकाकुल सुनिर्विण्ण. क्षीणपुण्यो निराश्रयः । वणिक् समग्रहीद्दीक्षा प्रोष्ठिलाख्यमुनिं श्रित ॥ ७१ ॥ जीवितांते स संन्यस्य कल्पे साधर्मनामनि । जातश्चित्रांगदो देव प्रवीचारसुखाकर ॥ ७२ ॥ स श्रेष्ठी वनमाला चधर्मसिंहतपोभृते । दत्वा प्रासुकमाहारं निंदित्वा निजदुष्कृत ॥ ७३ ॥ अन्येद्युरशनेः पातात्सप्राप्य मरणं सम । भारते हरिवर्षाख्ये देशे भोगपुरेशिन ॥७४॥प्रभजनाख्यनृपतेर्मृकंड्वाख्या मनोरमा । हरिवंशेऽजनि श्रेष्ठी सिंहकेतुस्तयोः सुत: ॥७५॥ अथ शीलपुराधीशो वज्रघोषमहीपते । तत्रैवासौ सुभायाश्च वनमालानुरूपिणी ॥ ७६ ॥ विद्युन्मालेति भूत्वा तुक् विद्युद्द्योतहासिनी। अपूर्णयौवनस्यासीत्सिंहकेतोः रतिप्रदा ॥ ७७ ॥ जातु तौ दंपती दृष्ट्वा देवे विहरणे वने । चित्रांगदे समुद्धृत्य हनिष्यामीति गच्छति ॥ ७८ ॥ रघुः पुरातनो भूपः सुमुखस्य

था और आकर सुमुख शेठके यहां रहता था किसी एकदिन वनमें घूमती हुई वनमालाको देखकर शेठ सुमुख कामदेवके तीक्ष्ण बाणोंसे वेधा गया था इसलिये उस पापी मायाचारीने वीरदत्तको तो बहुतमा धन देकर बारह वर्ष तक व्यापारके लिये भेज दिया और अपकीर्तिके साथ साथ लोभमें आई हुई वनमालाको स्वीकार किया ॥६६-६९॥ बारह वर्ष वीत जानेपर वीरदत्त आया और वनमालाके विकारको सुनकर संसारकी ऐसी नीच स्थितिका स्मरण करने लगा ॥ ७० ॥ पुण्यहीन और आश्रयरहित वह वैश्य शोकसे व्याकुल होकर विरक्त हुआ और प्रोष्ठिल मुनिके समीप जाकर उसने दीक्षा धारण करली ॥ ७१ ॥ आयुके अंतमें संन्यास धारण कर वह सौधर्म स्वर्गमें प्रवीचार सुखकी खानि ऐसा चित्रांगद नामका देव हुआ ॥ ७२ ॥ किसी समय उस शेठ सुमुख और वनमालाने धर्मसिंह नामके मुनिराजको प्रासुक आहार दिया और अपने पापकी बहुत निंदा की ॥ ७३ ॥ किसी दूसरे दिन वज्रपातसे वे दोनों साथ साथ मरे और शेठका जीव भरतक्षेत्रके हरिवर्ष नामके देशमें हरिवंशमें उत्पन्न हुए भोगपुर नगरके स्वामी राजा प्रभजन रानी मृकंडूके सिंहकेतु नामका पुत्र हुआ ॥ ७४-७५ ॥ इसी तरह उसी देशमें वनमालाका जीव शीलपुर नगरके स्वामी राजा वज्रघोष रानी सुभाके बिजलीकी कांतिको लज्जित करनेवाली विद्युन्माला नामकी पुत्री हुई जो कि सिंहकेतुकी पूर्णयौवन अवस्था होने पर उसकी स्त्री हुई थी ॥ ७६-७७ ॥ किसी एक समय चित्रांगद देव वनमें विहार कर रहा था इतनेमें ही वहीं पर उस दंपतिको (सिंहकेतु और विद्युन्मालाको) देख कर मारनेकी इच्छासे

अतःपुरान्वितोन्येद्युः शशांककरनिर्मले । रम्ये हर्म्यतले स्थित्वा कुर्वन् दिगवलोकनं ॥ ५५ ॥ उल्कापतनमालोक्य भंगुरं भावयन् जगत् । सुदृष्टेर्ज्येष्ठपुत्रस्य कृत्वाराज्याभिषेचनं ॥ ५६ ॥ सुमंदरजिनाभ्यासे लब्धबोधिरदीक्षत । क्रमेणैकादशांगानां पारगो भावनापरः ॥ ५७ ॥ सम्यक्त्वादिषु बध्वासौ तीर्थकृत्कर्मनिर्मलं । स्वायुरंते समाधाय मासं संन्यासमास्थितः ॥ ५८ ॥ अनुत्तरे जयताख्ये संप्रापदहमिंद्रतां । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रोपमायुर्हस्ततनूच्छ्रितिः ॥ ५९ ॥ सार्द्धषोडशमासांतनि श्वासोऽभूमिराकुल । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दव्यतीतौ भोगसपदं ॥ ६० ॥ भुंजानो निःप्रवीचारं लोकनालीगतावधिः । बलदीप्तिविक्रियादिगुणैस्तत्क्षेत्रमात्रकः ॥ ६१ ॥ एवं देवगतौ दिव्यसुखं सुखमहांबुधे । संप्राप जातसंतृप्ति स्थितश्चिरसुखायुषा ॥ ६२ ॥ अतः परं तदुद्भूतेः क्रियते वंशवर्णनं । द्वीपे जंबूमति क्षेत्रे भरते वत्सदेशजे ॥ ६३ ॥ कौशाब्याख्ये सुविख्यातो नगरे मघवा नृप । तद्देवी वीतशोकाभूत्सुतः ख्यातो रघुस्तयोः ॥ ६४ ॥ सुमुखो नाम तत्रैव जातः श्रेष्ठी महर्द्धिकः । इत कालिंगविषये पुराद्दंतपुराह्वयात् ॥ ६५ ॥ सार्थेन सममागच्छद्वीरदत्तो वणिक्सुत ।

रहा था कि अकस्मात् उसने एक उल्कापात देखा उसे देखते ही वह संसारकी क्षणभंगुर अवस्थाका विचार करने लगा अपने सुदृष्टि नामके बड़े पुत्रका उसने राज्याभिषेक किया और रत्नत्रयको प्राप्त कर सुमंदर नामके तीर्थंकरके समीप जाकर दीक्षा धारण करली अनुक्रमसे उसने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और फिर दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन कर निर्मल तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया आयुके अंतमें समाधि धारण कर एक महीनेका संन्यास धारण किया और शरीर छोड़ कर जयंत नामके अनुत्तर विमानमें अहमिंद्र हुआ और वहां पर उसकी तेतीस सागरकी आयु थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ५५–५९ ॥ साढे सोलह महीने बाद वह निराकुल रीतिसे श्वास लेता था तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था इस तरह वह प्रविचार रहित भोग संपदाओंका उपभोग करता था । लोक नाड़ी तक उसे अवधि ज्ञान था और उतने ही क्षेत्रतक उसका बल कांति और विक्रिया ऋद्धि आदि गुण थे ॥ ६०-६१ ॥ इस प्रकार वह देव गतिमें दिव्य सुखोंका अनुभव करता था सुखरूपी महासागरसे अत्यंत तृप्त हो रहा था और सुखरूपी आयुका अनुभव करता हुआ बहुत दिन तक वहां विराजमान रहा था ॥६२॥ इसके आगे अब जिस वंशमें वह उत्पन्न होगा उसीका वर्णन करते हैं । इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्सदेशके प्रसिद्ध कौशांवी नगरमें राजा मघवा राज्य करता था उसकी महादेवीका नाम वीतशोका था और उन दोनोंके रघु नामका पुत्र हुआ ॥ ६३–६४ ॥ उसी नगरमें एक सुमुख नामका बहुत धनी शेठ रहता था किसी एक समय कलिंग देशके दंतपुर नामके नगरसे वीरदत्त नामका वैश्यपुत्र व्याधोंके डरसे अपनी स्त्री वनमालाके साथ कौशांवी नगरमें आया

हंतोद्वितं ॥ ४३ ॥ तत्समीपे समादाय सयम त्वां विलोकितुं। त्वयि जन्मांतरस्नेहाद्विहागमनमावयो ॥ ४४ ॥ पुण्योदयोदितान् भोगान्सर्वान् भूयोत्र भुक्तवान् । मासप्रमाणजीवी त्व हितमद्य स्मराश्विति ॥ ४५ ॥ श्रुत्वा तद्वचन राजा वदित्वा तौ मुनीश्वरौ । युवां जन्मांतरस्नेहात्मि सगरव गतावपि ॥ ४६ ॥ उपकारं महांत मे कृतवंतौ हितैषिणौ । इत्यारव्यन्स ततः प्रीतौ तौ निजस्थानमीयतुः ॥ ४७ ॥ तदैव स महीशोपि दत्त्वा राज्य यथाविधि । प्रीतिंकरकुमाराय कृत्वाष्टाहकपूजन ॥ ४८ ॥ बधून् विसर्ज्य प्रायोपगमसन्यासमुत्तम । विधाय षोडशे कल्पे द्वाविंशत्यब्धिजीवितः ॥ ४९ ॥ पुष्पोत्तरे विमानेऽभूदच्युतेंद्रो महर्द्धिकः । दिव्यभोगांश्चिरं भुक्त्वा ततः प्रच्युत्य पुण्यभाक् ॥ ५० ॥ द्वीपेस्मिन् भारते क्षेत्रे विषये कुरुजांगले । हस्तिनाख्यपुराधीशः श्रीचद्रस्य महीपतेः ॥ ५१ ॥ श्रीमत्या सुप्रतिष्ठाख्यः सुप्रतिष्ठः सुतोभवत् । आपूर्णयौवनस्यास्य सुनदासीत्सुखप्रदा ॥ ५२ ॥ सुत योग्यतम मत्वा श्रीचद्रधरणीश्वरः । दत्तराज्योऽग्रहीद्दीक्षा सुमदरयतिं श्रित ॥ ५३ ॥ सुप्रतिष्ठोपि तद्राज्ये नि कोपे सुप्रतिष्ठित । यशोधरमुनेर्दानादवापाश्चर्यपंचक ॥ ५४ ॥

३८–४४ ॥ अब तक तूने पुण्यकर्मके उदयसे सब तरहके भोग भोगे हैं परंतु अब तेरी आयु केवल एक महीनेकी रह गई है इसलिये शीघ्र ही तू अब अपने हितका स्मरण कर ॥ ४५ ॥ राजाने यह बात सुनकर उन दोनो मुनिराजोंकी वंदनाकी और निवेदन किया कि यद्यपि आप परिग्रहरहित हैं तथापि आप सबका हित चाहनेवाले हैं इसीलिये जन्मांतरके स्नेहसे आपने यह मेरा बडा भारी उपकार किया है। इसके बाद वे दोनों मुनिराज अपने स्थानको चले गये ॥ ४६-४७ ॥ उसीसमय राजा अपराजितने विधि पूर्वक प्रीतिंकर कुमारको राज्य दिया अष्टान्हिक पूजनकी, सब भाई बंधुओंका त्याग किया और उत्तम प्रायोपगमन सन्यास धारणकर सोलहवें स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें बाईस सागरकी आयु पाकर बडी ऋद्धिका धारण करनेवाला अच्युतेंद्र हुआ वह पुण्यवान् बहुत दिनतक वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कुरु जांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें राजा श्रीचंद्र रानी श्रीमतीके सुप्रतिष्ठित नामका बहुत प्रतिष्ठित पुत्र हुआ और पूर्ण यौवन अवस्था होनेपर उसे सुखदेनेवाली सुनंदा नामकी स्त्री मिली ॥ ४८–५२ ॥ किसी एक दिन राजा श्रीचंद्रने अपने पुत्रको अत्यंत योग्य समझकर उसे राज्य दिया और आप सुमंदर नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ५३ ॥ इधर सुप्रतिष्ठ भी क्रोधादि सब तरहके दोषोंसे रहित ऐसे राज्यपर विराजमान हुआ और किसी एक समय उसने यशोधर नामके मुनिराजको आहार दान दिया था जिससे उसे पंचाश्चर्योंकी प्राप्ति हुई थी ॥ ५४ ॥ किसी दूसरे दिन वह राजा अपने सब रणवासके साथ चंद्रमाकी किरणोंके समान निर्मल ऐसे सुंदर राजभवनके ऊपर बैठा हुआ दिशाओंको देख

वीत् । संभावयं कनीयार्स मम त्वं रक्षम लया ॥ ३२ ॥ श्रुतनद्वचा साद्र नाद जितवतो परे । मालामिमां क्षिपामीति स तामित्यत्रवीत्पुन ॥ ३३ ॥ गतियुद्ध त्वया पूर्वमनुजाभ्या कृतं मम । अभिलाषात्तनम्त्याज्या त्व मया तद्वचःश्रुतेः ॥ ३४ ॥ निर्विण्णा मा निवृताजिंकाभ्यासेऽगात्तपः परं । तद्वीक्ष्य वह्वस्तत्र निर्विद्य तपसि स्थिताः ॥ ३५ ॥ अनुजाभ्यां समं चिंतागतिश्चालोक्य साहस । कन्यायाः जातसन्वेगो गुरु दमवराभिध ॥ ३६ ॥ संप्राप्य संयम प्राप्य शुद्ध्यष्टकमधिष्ठितः । प्राते सामानिकस्तुर्ये कल्पेऽजायत सानुजः ॥ ३७ ॥ तत्र भोगान्बहून भुक्त्वा सप्ताब्धिपरमायुषा । ततस्तावनुजौ जम्बूद्वीपपूर्व विदेहगे ॥ ३८ ॥ विषये पुष्कलावत्या विजयार्द्धे त्तरे तटे । राजा गगनचन्द्राख्यः पुरे गगनवल्लभे ॥ ३९ ॥ सुतो गगनसुंदर्यां तस्यामितमतिस्ततः । आवाममिततेजाश्च जातौ विद्यात्रयान्वितौ ॥ ४० ॥ अन्येद्यु पुंडरीकिण्यामावाभ्या जन्मपूर्वज । आवयो परिपृष्टेन जन्मत्रितयवृत्तकं ॥ ४१ ॥ सर्वं स्वयप्रभास्येन तीर्थनाथेन भाषित । ततोऽस्मदग्रजः क्वाद्येत्यावयोरनुयोजने ॥ ४२ ॥ भूभौ सिंहपुरे जातो राजते सोपराजितः । नाम्ना राज्य समासाद्य स्वयमित्य-

मतीकहने लगी कि मैं दूसरेसे नहीं जीती हूं जो दूसरेके गलेमें माला डालूं। इसके उत्तरमें चिंतागतिने कहा कि तूने पहिले वरनेकी अभिलाषासे ही मेरे छोटे भाइयोंके साथ गतियुद्ध किया था इसीलिये तू मेरे लिये त्याज्य है। चिंतागतिकी यह बात सुनकर वह विरक्त हुई और निवृत्ता नामकी आर्जिकाके समीप जाकर उसने उत्कृष्ट तपश्चरण धारण कर लिया। उसे दीक्षित होते देखकर वहांपर बहुतसे लोगोंने विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली ॥ ३३-३५॥ उस कन्याका साहस देखकर छोटे भाइयोंके साथ साथ चिंतागतिको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और दमवर नामके गुरुके समीप जाकर संयम धारण कर लिया आठों शुद्धियोंको पाकर अंतमें तीनों भाई चौथे स्वर्गमें जाकर सामानिक देव हुए ॥ ३६-३७ ॥ वहां सात सागर तक अनेक भोगोंका अनुभवकर च्युत हुए और दोनों छोटे भाइयोंके जीव जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचंद्र रानी गगन सुंदरीके हम अमितमति और अमिततेजा नामके पुत्र हुए उससमय हम दोनों ही पुत्र तीनों विद्याओंके जानकार थे। किसी दूसरे दिन हमारे पिता पुडरीकिणी नगरीको गये वहांपर उन्होंने हम दोनोंके अगिले पिछिले जन्मकी बात पूछी और स्वयप्रभ तीर्थंकर भगवानने वे सब बातें कहीं उसीसमय हम दोनोंके प्रकरणमें यह भी बात निकली थी कि हमारे पहिले जन्मका बडा भाई कहां है इसके उत्तरमें तीर्थंकरने कहा था कि उसका जीव सिंहपुर नगरमें राजा अपराजित हुआ है और वह स्वय राज्यकर रहा है। इसप्रकार उन भगवानके वचन सुनकर हम दोनोंने उन्हीं के समीप संयम धारण कर लिया और फिर पहिले जन्मके स्नेहसे तुझे देखनेके लिये हम दोनों यहां आए हैं ॥

महाद्युतः ॥ २० ॥ जनो हे सम्बन्धे त सोपि कृतवंदनः । भुक्तस्मे स्नेहशोकार्तचेतसां का विचारणा ॥ २१ ॥ वसतसमयेन्येद्युर्नंदीश्वरदिनेष्वसौ । जिन-चैत्यानि संपूज्य तत्संस्तवनपूर्वकं ॥ २२ ॥ तत्र स्थितः स्वयं धर्मदेशनां व्यधदत्सुधी । स्वान्वियचारणौ साधू प्रापतुस्तस्थतु पदं ॥ २३ ॥ प्रणिपत्य तयोर्देवतास्तवावसिता नृप- । सोपचा समभ्येत्य श्रुत्वा धर्ममभाषत ॥ २४ ॥ भगवतावहं पूज्यौ क्वचित्प्राग्दृष्टवानिति । ज्येष्ठो मुनिरुवाचैवं सत्यमावां त्वयेक्षितौ ॥ २५ ॥ स्वद्दर्शनप्रदेशं च वक्ष्यामि श्रृणु भूपते । पुष्करार्द्धापरार्द्धद्वीपरभागे महासरित् ॥ २६ ॥ तस्याश्चास्त्युत्तरे भागे गंधिलो विषयो महा-न् । तत्खगाद्रुत्तरश्रेण्यां सूर्यप्रभपुराधिप ॥ २७ ॥ राजा सूर्यप्रभस्तस्य धारिणी प्राणवल्लभा । तयोश्चिंतागतिर्ज्येष्ठस्तत्नुजोनुमनोगति ॥ २८ ॥ ततश्चपल-गत्याख्यस्त्रिभिस्तैरतां मुद गता । त्रिवर्गैश्चकामैर्वा के न तुष्यंति सत्सुते ॥ २९ ॥तस्यामेवोत्तरश्रेण्यामरिंदमपुरेश्वरात् । अरिंजयाख्यादजितसेनायामभवत्सु-ता ॥ ३० ॥ सती प्रीतिमती मेरुगिरेः सकलखेचरात् । त्रिस्त्रांत्यासाऽजयश्चितागतिं मुक्त्वा स्वविद्यया ॥ ३१ ॥ जित्वा चिंतागतिर्वेगात्तां पश्चादिति चाभ-

शक्ति भी कैसे रह सकती है ॥ २१ ॥ किसी दूसरे दिन वसंत ऋतुकी अष्टाह्निकाओंके दिनोंमें वह राजा अपरा-जित जिनमंदिरोंकी पूजाकर उनकी स्तुति करता हुआ वहां बैठा था और वह बुद्धिमान स्वयं धर्मोपदेश दे रहा था इतनेमें ही वहां चारण ऋद्धिको धारण करनेवाले दो चारण मुनिराज पधारे और वहीं आकर विराजमान होगये। राजाने बडी विनयके साथ उठकर उन्हें नमस्कार किया स्तुतिकी पास बैठकर धर्म श्रवण किया और फिर वह क-हने लगा कि हे पूज्य हे भगवन्! मैंने पहिले कभी आपको देखा है। इसके उत्तरमें बडे मुनिराज कहने लगे कि ठीक है तुमने हमको देखा तो है ॥ २२–२५ ॥ परंतु कहां देखा है उस जगहको मैं कहता हूं। हे राजन् तू सुन ! पुष्क-रार्द्ध द्वीपके पश्चिम मेरुकी ओर पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो महा नदी है उसके उत्तरकी ओर एक गंधिल नामका बडा देश है उसके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सूर्यप्रभ नगरका स्वामी राजा सूर्यप्रभ राज्य करता था उसकी महादेवी-का नाम धारणी था। उन दोनोंके बडा पुत्र चिंतागति मझिला मनोगति और छोटा चपलगति हुआ था धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंके समान इन तीनों पुत्रोंसे भी बाप सदा प्रसन्न रहते थे सो ठीक ही है क्योंकि सुपुत्रोंसे कौन संतुष्ट नहीं होता है ॥ २६–२९ ॥ उसी गंधिल देशकी उत्तर श्रेणीमें अरिंदम नगरके राजा अरिंजय रानी अजि-तसेनासे प्रीतिमती नामकी सती पुत्री हुई थी उसने अपनी विद्यासे चिंतागतिको छोडकर सब विद्याधरोंको मेरु पर्व-तकी प्रदक्षिणा देनेमें जीत लिया था ॥ ३०-३१ ॥ चिंतागति अपने वेगसे उसे जीतकर फिर कहने लगा कि तू इस रत्नमालाके (वरमालाके) द्वारा मेरे छोटे भाईको स्वीकारकर ॥ ३२ ॥ चिंतागतिकी यह बात सुनकर वह प्रीति-

प्रादुरभूत्कृती । नवमासावसानेसावसूत सुतमूर्जितं ॥ ९ ॥ तज्जन्मनः प्रभृत्यन्यैरजय्यस्तत्पिताऽभवत् । ततोऽपराजिताख्यानमकुर्वंस्तस्य बांधवा ॥ ७ ॥ रूपादिगुणसंपत्या सार्द्धं वृद्धिमसावगात् । आयौवन मनोहारी सुरेंद्रो वा दिवौकसां ॥ ११ ॥ तदा मनोहारोद्यानगत विमलवाहन । तीर्थकर्तारमाकर्ण्य वनपालमुखान्नृपः ॥ १२ ॥ स्वांत पुरपरीवारपरीतो भक्तिचोदित । गत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मुहुर्मुकुलिताञ्जलिः ॥ १३ ॥ प्रप्रणम्य समभ्यर्च्य गंधपुष्पाक्षतादिभिः । पीतधर्मामृतस्तस्मादकस्माद् भोगनिस्पृहः ॥ १४ ॥ तुजे पराजिताख्याय दत्वा ससागसंपद । तपोऽग्र समुपादत्त पंचभिर्भूभुजां शतैः ॥१५॥ कुमारोपि गृहीताणुव्रतादिः शुद्धदर्शनं । प्राविशल्लक्षितो लक्ष्म्या साक्षादिव पुरं हरि ॥ १६ ॥ तत्रयोगगतां चिंतां निजाय निजमंत्रिषु । शक्त शास्त्रोक्तमार्गेण तदासौ धर्मकामयोः ॥ १७ ॥ कदाचिन्निजपित्रामा जिनं विमलवाहन । मुक्त्या वशीकृत श्रुत्वा गंधमादनपर्वते ॥ १८ ॥ अनिरीक्ष्य न भोक्ष्येऽहं जिन विमलवाहन । इति प्रतिज्ञयाष्टोपवास्यासीदपराजित ॥ १९ ॥ तदा शक्राज्ञया यक्षपतिर्विमलवाहन । तस्य संदर्शयामास साक्षात्कृत्वा

इसलिये उसके भाइयोंने उसका नाम अपराजित रक्खा था ॥ १० ॥ रूप आदि संपदाओंके साथ साथ वह यौवन अवस्थातक बराबर बढने लगा और देवोंके इंद्रके समान मनोहर दिखने लगा ॥ ११ ॥ किसी एक दिन महाराजने वनपालके मुखसे यह सुना कि मनोहर नामके उद्यानमें विमलवाहन नामके तीर्थंकर आए हैं। यह सुनकर वह भक्ति से प्रेरित होकर अंतःपुर और परिवारके साथ साथ वहां गया, जाकर प्रदक्षिणा दी बार बार हाथ जोडे नमस्कार किया, गंध पुष्प अक्षत आदिसे उनकी पूजाकी और उनसे धर्मामृतका पान किया और वह अकस्मात् भोगोंसे निःस्पृह होकर विरक्त होगया ॥ १२--१४ ॥ उसने अपराजित नामके पुत्रको राज्य दिया और पांच सौ राजाओंके साथ सप्तांग संपदाओंसे सुशोभित उग्र तपश्चरण धारण किया ॥ १५ ॥ कुमार अपराजितने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारणकर अणुव्रत धारण किये और फिर जिसप्रकार इंद्र अमरावतीमें प्रवेश करता है उसीप्रकार उसने लक्ष्मीसे सुशोभित होकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ उसने राज्यकी सब चिंताका भार तो अपने मंत्रियोंपर सोंप दिया और शास्त्रोक्त रीतिसे धर्म और काम इन दो पदार्थोंके सेवन करनेमें वह लीन हो गया ॥ १७ ॥ किसी एक दिन उसने सुना कि पूज्य पिताके साथ साथ श्रीविमलवाहन तीर्थंकर गंधमादन पर्वतसे मुक्त होगये हैं यह सुनकर उसने प्रतिज्ञाकी कि मैं श्रीविमलवाहन तीर्थंकरके विना दर्शन किये भोजन नहीं करूंगा इसतरह उस अपराजितके आठ उपवास होगये ॥ १९ ॥ तदनंतर इंद्रकी आज्ञासे यक्षपतिने उस महापवित्र राजाको विमल वाहनका साक्षात् रूप बनाकर दिखलाया ॥ २० ॥ अपराजितने समवसरणमें वंदनाकर उनकी पूजा की और फिर भोजन किया सो ठीक ही है क्योंकि

अथ सप्ततितमं पर्व ।

क्षात्यादिदशाराधर्मालंवन यमुदाहरन् । सत: सद्धर्मचक्रस्य स नेमि शकरोस्तु न: ॥ १ ॥ सवेगजनन पुण्यं पुराण जिनचक्रिणां । बलाना च श्रुतज्ञानमेतद् वंदे त्रिशुद्धये ॥ २ ॥ पूर्वानुपूर्व्या वक्ष्येहं कृतमगलसत्क्रिय: । पुराण हरिवंशाख्य यथाकृत्त यथाश्रुत ॥ ३ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विदेहेपर-नामनि । सीतोदोदक्तटे देशे सुगंधिलसमाह्वये ॥ ४ ॥ पुरे सिंहपुरे ख्यातो भूपोर्हद्दाससज्ञक । देव्यस्य जिनदत्ताख्या तयो: पूर्वभवार्जितात् ॥ ५ ॥ पुण्योदयात्समुद्भूतकामभोगे सतृप्तयो । काले गच्छत्यथान्येद्युरर्हता परमेष्ठिनां ॥ ६ ॥ आष्टाह्निकमहापूजां विधाय नृपतिप्रिया । कुलस्य तिलक पुत्र लप्सीयाहमिति स्वयं ॥ ७ ॥ आशास्यासा सुख सुप्ता निशायां सुप्रसन्नधी: । सिंहेभार्केंदुपद्माभिषेकानैक्षिष्ट सुव्रता ॥ ८ ॥ स्वप्नानंतरमेवास्या गर्भे

अथ सत्तरवां पर्व ।

अथानंतर–सज्जन लोग जिन्हें उत्तम क्षमा आदि दश धर्मरूपी आरोंका आलंवन वतलाते हैं और जो सद्धर्मचक्रके धुरा हैं ऐसे श्री नेमिनाथ स्वामी हम लोगोंका कल्याण करें ॥ १ ॥ जिनेंद्रदेव और चक्रवर्तियोंका पुराण वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है और पुण्य वढानेवाला है तथा वलभद्रका पुराण श्रुतज्ञानको वढानेवाला है इसलिये मन वचन काय तीनोंको शुद्ध करनेके लिये इस पुराणको नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ पहिले मगलरूप अच्छी क्रिया करके मैं हरिवंश पुराण कहूगा और वह पुराण पूर्वाचार्योंके अनुसार जैसा सुना है वैसा ही ऊपरके छंदोंमें ही कहूगा ॥ ३ ॥ इसी जंबूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर सुगंधिला नामके देशमें सिंहपुर नगरमें अर्हद्दास नामका राजा राज्य करता था उसकी देवीका नाम जिनदत्ता था । पूर्व भवमें इकट्ठे किये हुए पुण्य कर्मोंके उदयसे उन दोनोंको काम भोगकी सब सामग्री मिली थी इससे वे खूब तृप्त थे । इसतरह उन दोनोंका समय व्यतीत हो रहा था । किसी एक दिन महारानीने अष्टह्निकाके दिनोंमें अरहंत परमेष्ठीकी पूजाकी और उससे आशाकी कि मेरे कुल तिलक पुत्र उत्पन्न हो ऐसी आशा कर वह प्रसन्नचित्त होकर रातको सुख पूर्वक सो गई । उस सुव्रताने (अच्छे व्रत धारण करने वालीने) उसीरातको सिंह, हाथी, सूर्य चद्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ऐसे पांच स्वप्न देखे स्वप्न देखनेके वाद ही किसी पुण्यवानने उसके गर्भमें आकर अवतार लिया और नौ महीने वीत जानेपर उस रानीने पुण्यवान पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४-९ ॥ उसके जन्म लेनेके समयसे ही उसके पिताको अन्य कोई जीत नहीं सका था,

ष्वभितर्पिषु । प्रयाति गतिमेतस्य परोप्यत्र प्रमादवान् ॥ ८६ ॥ इत्याकलय्य कालादिलब्ध्या चक्रेड्वकर्षी: । त्यक्तुं चक्रादिसाम्राज्यं परिच्छिद्योच्छ्रिते-च्छया । ज्येष्ठ राज्यमनिच्छत्सु महीयःसु कनीयसे । दत्वा पुत्राय साम्राज्य वरदत्तामिधायिन ॥ ८८ ॥ केवलावगमात्प्राप्य संयमं बहुमिः समं । श्रुतबुद्धितपोविक्रियौषर्द्धिभूषितः ॥ ८९ ॥ चारणत्वमपि प्राप्य प्रायोपगमन थित । सम्मेदे चारणोत्तुंगकूटे स्वाराधनाविधिः ॥ ९० ॥ जयतेऽनुत्तरे जातो विमाने लवसत्तम । पुण्योत्तमानुभागोत्थमन्वभूत्सुचिरं सुख ॥ ९१ ॥ वसुंधरमहीपति प्रथमजन्मनि प्राप्तसत्तपाः समजनिष्ट षोडश समुद्रस्थित्यायुषाऽमरोजनि जनेश्वरोनुजयसेननामा ततो वभूव लवसत्तमः सुखनिधिर्जयते विभु ॥ ९२ ॥
इत्यार्षे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे नमितीर्थंकरजयसेनचक्रवर्तिपुराणं परिसमाप्तं एकोनसप्ततितम पर्व ॥६९॥

———:०:———

करता हुआ और अपने परलोक सिद्ध करनेमें मूर्ख ऐसा यह प्राणी अपने हितका आचरण नहीं करता ॥ ८५ ॥ जो विषय अनित्य हैं और जो कभी संतुष्ट करनेवाले नहीं हैं उनमें जो लीन रहता है वह प्रमादी पुरुष इसी उल्कापातकी गतिको प्राप्त होता है, अर्थात् अधोगतिको जाता है॥८६॥ यही समझकर सरल बुद्धिवाला वह चक्रवर्ती काल आदि लब्धियोंको पाकर चक्र आदि सब साम्राज्यको छोडनेके लिये तैयार हुआ। वह अपने बडे पुत्रको राज्य देने लगा परंतु उसने उच्छिष्ट समझकर लेनेकी इच्छा नहीं की तब उसने छोटे पुत्रको राज्य दिया और अनेक राजाओंके साथ वरदत्तनामके केवली भगवानसे संयम धारण किया। उसे श्रुतबुद्धि तप, विक्रिया औषधि आदि अनेक ऋद्धियां प्रगट हुईं चारण ऋद्धि भी प्रगट हुई और अंतमें उसने प्रायोगमन संन्यास धारण किया। सम्मेद शिखरपर चारण नामके ऊंचे शिखरपर संन्यास धारण कर वह जयंत नामके अनुत्तरके विमानमें उत्तम अहमिंद्र हुआ और वहांपर उत्तम पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए सुखोंको बहुत दिनतक अनुभव करता रहा ॥ ८७–९१ ॥ जयसेनका जीव पहिले जन्ममें राजा वसुंधर हुआ था फिर उत्तम तपश्चरण कर सोलह सागरकी आयु पाकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ वहांसे चयकर बहुत उत्तम जयसेन चक्रवर्ती हुआ और फिर जयंत विमानमें अनेक सुखोंका खजाना-स्वामी अहमिंद्र हुआ ॥ ९२ ॥

इस प्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें नमिनाथ तीर्थंकर और जयसेन चक्रवर्तीके पुराणको कहनेवाला यह उनहत्तरवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

———(:०:)———

वसुंधरमहीपति ॥ ७४ ॥ पद्मावतीवियोगेन भृश निर्विण्णमानम. । वने मनोहरे रम्ये वरचर्माखिलेक्षिणः ॥ ७५ ॥ निर्णीय धर्मसद्भाव तनये विनयधरे । निर्विशितात्मभारः स बहुभिर्भूभुजैः सम ॥ ७६ ॥ सयम सम्यगादाय चारित्र दुश्चरं चरन् । स्वाराधनाविधानेन महाशुक्रे सुरोभवत् ॥ ७७ ॥ षोडशाब्ध्युपमस्वायुर्दिव्यान् भोगान् सुभुज्य स । तत प्रच्युत्य तत्तीर्थे वत्साख्यविजयेऽजनि ॥७८॥ नृपस्येक्ष्वाकुवंशस्य कौशाबीनगरेशिन । तनूजो विजयाख्यस्य प्रभाकर्यां प्रभाधिकः ॥ ७९ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णो जयसेनसमाह्वयः । त्रिशद्सहस्रसरज्जीवी षष्टिहस्तसमुच्छ्रितिः ॥ ८० ॥ तप्तचामीकरच्छाय स चतुर्दशरत्नभाक् । निधिभिर्नवभिः सेव्यो भोगैर्दशविधैः मुदा ॥ ८१ ॥ चिरमेकादशश्चक्रधरः कालमजीगमत् । अन्येद्युस्तुगसौधाग्रे सुसुप्तोत पुरावृत ॥ ८२ ॥ कुर्वन्पर्वशशाकाभो दिगतरविलोकन । उल्कामिपतन वीक्ष्य सुनिर्वेगपरायणः ॥ ८३ ॥ उच्चैरस्थितमिद पश्य भास्वरं पर्ययद्वयं । परित्यज्य सुसंप्रापदधोगतिमपप्रभ ॥ ८४ ॥ उन्नत्यमूर्जित तेजो ममेति मदमावहन् । अनाचरन् हित मूढः पारलौकिकमात्मने ॥ ८५ ॥ विषयेषु विपक्त सन्नधुवे-

अथानंतर—इसी जंबूद्वीपके उत्तरकी ओर महा ऐरावतक्षेत्रमें श्रीपुर नगरमें लक्ष्मीवान् राजा वसुंधर राज्य करता था ॥ ७४ ॥ किसी एक दिन पद्मावतीके वियोगसे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ वह मनोहर मनोहर नामके बनमें गया और वरचर्म नामके सर्वज्ञदेवसे धर्मके सद्भावका निर्णयकर विनयधर नामके पुत्रको राज्यका भार सौंपा और अनेक राजाओंके साथ संमय धारणकर घोर तपश्चरण करने लगा। अंतमें समाधिमरण धारणकर महाशुक्र विमानमें देव हुआ ॥ ७५-७७ ॥ वहांपर उसकी सोलह सागरकी आयु थी वहांके दिव्य भोगोंका अनुभवकर च्युत हुआ और इन्हीं नमीनाथ तीर्थंकरके समयमें वत्सविजय नामके देशमें कौशांबी नगरीके स्वामी इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय रानी प्रभाकरीके जयसेन नामका पुत्र हुआ। उसकी कांति सबसे अधिक थी और वह सब लक्षणोंसे संपूर्ण था, उसकी तीन हजार वर्षकी आयु थी और साठ हाथ ऊंचा शरीर था ॥ ७८-८० ॥ उसके शरीरकी कांति तपाये हुए सुवर्णके समान थी वह चौदह रत्नोंका स्वामी था नौ निधियां उसकी सेवा करती थी और दशों प्रकारके भोगोंका अनुभव कर वह सुखी होरहा था ॥ ८१ ॥ इसप्रकार ग्यारहवां चक्रवर्ती वह सुख भोगता हुआ समय विता रहा था। किसी एक दिन ऊंचे राजभवनपर अंतःपुरके साथ लेट रहा था ॥ ८२ ॥ पौर्णमासीके चंद्रमाके समान वह सब दिशाओंको देख रहा था कि इतनेमें ही उसे एक उल्कापात दिखाई दिया और उसे देखकर वह विरक्त हुआ ॥ ८३ ॥ वह विचार करने लगा कि देखो यह प्रकाशमान वस्तु अभी तो ऊपर थी और फिर तुरंत ही अपनी दो पर्यायें छोडकर तथा कांतिरहित होकर नीचे चली गई ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार मेरा तेज भी बहुत ऊंचा है और प्रकाशमान है इसतरहके मदको धारण

शाधिका मताः ॥ ६४ ॥ श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणाः श्राविकास्ततः । देवा देवोप्यसंख्यातास्तिर्यंचः संख्यया मिताः ॥ ६५ ॥ एवं द्वादशसंस्थानगणैनैर्नमीश्वर । सद्धर्मदेशन कुर्वन्नार्यक्षेत्राणि सर्वतः ॥६६॥ विहृत्य विहृतिं त्यक्त्वा मासं सम्मेदपर्वते । सहस्रमुनिभि सार्द्धं प्रतिमायोगमास्थित ॥६७॥ वैशाखे मासि कृष्णाया चतुर्दश्यां निशात्यये । मुक्तिमश्व्याह्वनक्षत्रे नमितीर्थंकरो ऽगमत् ॥ ६८ ॥ अकुर्वन्पचम देवाः कल्याण चाम्विलेभिनः । स्व स्वमोकश्च सम्प्राप्तपुण्यपण्या प्रपेदिरे ॥ ६९ ॥ कनत्कनकविग्रहे विहितविग्रहो घातिभि सहाहितजयो जयेति च नुतो नतैर्नाकिभिः । भियं भवभवां बहु नयतु नः क्षय नायको विनेयविदुषा स्वय विहर्तविग्रहोऽते नमिः ॥ ७० ॥ कौशांब्यां प्रथितस्तृतीयजनने सिद्धार्थनामा नृपः कृत्वा तत्र तपोतिघोरमभवत्तुर्येऽ मरोऽनुत्तरे । तस्मादेत्य पुरे बभूव मिथिला नाम्नींद्रवंद्यो नमिस्तीर्थेशस्त्रिजगद्वित थैवचन व्यक्त्यैकविंशो जिन । नमिनमितसामरामरपति पतच्चामरो भ्रमद्भ्रमरविभ्रमभ्रमितपुष्पवृष्ट्युत्करः । करोतु चरणारविंदमकरंदसपायिना विनेयमधुपायिनामविरतोरु तृप्तिं जिनः ॥ ७२ ॥ जगत्रयजयोत्सिक्तमोहमाहात्म्यमर्दनात् । एकविंशो जिनो लब्धलक्ष्मीर्लक्ष्मीं ददातु न ॥ ७३ ॥ द्वीपेस्मिन्नुत्तरे भागे महत्यैरावताह्वये । लक्ष्मीवान् श्रीपुराधीशो

हजार मुनियोंके साथ साथ उन्होंने प्रतिमा योग धारण किया था ॥ ६६—६७ ॥ वैसाखकृष्ण चतुर्दशीके दिन सवेरे के समय अश्विनी नक्षत्रमें वे नमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे थे ॥ ६८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर उन सर्वज्ञ देवके मोक्ष कल्याणका उत्सव मनाया था और फिर अत्यत पुण्यशाली वे देव अपने अपने स्थानको चले गये थे ॥६९॥ दैदीप्यमान सुवर्णके समान जिनका शरीर था, जिन्होंने घातिया कर्मोंके साथ युद्ध किया था तथा सब तरहके अहित को जीत लिया था जिन्हें नम्रभूत हुए देवलोग जय जय करते हुए नमस्कार करते थे तथा जो विद्वान शिष्योंके स्वामी हैं और जिन्होंने सब तरहके शरीर नष्ट कर दिये हैं ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी हम तुम लोगोंका संसार समुद्रका भय दूर करें ॥ ७० ॥ जो तीसरे भवमें कौशांबी नगरीमें प्रसिद्ध राजा सिद्धार्थ थे वहां पर घोर तपश्चरण कर जो अनुत्तरके चौथे अपराजित विमानमें अहमिंद्र हुए और वहांसे आकर जो मिथिला नगरीमे इंद्रोंके द्वारा वंदनीय केवल तीनों जगतके हितरूप वचनोंको प्रगट करनेके लिये नमिनाथ नामके इकईसवें तीर्थंकर हुए ॥७१ ॥ जिन्होंने देवों सहित सब इंद्रोंसे नमस्कार कराया था जिन पर चमर ढुरते थे, और उडते हुए भ्रमरोंके समान फिरते हुए पुष्पोंके समूह जिनपर वरसते थे ऐसे वे श्रीनमिनाथ भगवान चरणकमलके रसको पान करनेवाले शिष्य रूपी भ्रमरोंको निरंतर ही संतुष्ट वा तृप्त करें ॥ ७२ ॥ तीनों जगतको जीतनेसे अत्यंत उन्मत्त हुए मोहके माहात्म्यको मर्दन करनेसे—उसे नाश करनेसे जिन्हें मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हुई है ऐसे वे इकईसवें तीर्थंकर नमिनाथ भगवान् हम लोगोंको मोक्षलक्ष्मी दें ॥७३॥

यानमुत्तरकुर्वाख्यं समारुह्य मनोहरं ॥ ५३ ॥ गत्वा चित्रवनोद्यानं च षष्ठोपवसनं श्रित- । आषाढकालपक्षेऽश्विनक्षत्रे दशमीदिने ॥ ५४ ॥ अपराह्णे सहस्रेण क्षत्रियाणां सहाग्रहीत् । संयमं संयमापायं सज्ञानं च चतुर्थकं ॥ ५५ ॥ भोक्तु वीरपुरं तस्मै दत्तो गतवते नृप । सुवर्णवर्णो दत्वाममवापाश्चर्यपंचकं ॥ ५६ ॥ छाद्मस्थ्येन ततः काले प्रयाते नववत्सरे । निजदीक्षावने रम्ये मूले बकुलभूरुहः ॥ ५७ ॥ तस्य षष्ठोपवासस्य नक्षत्रेऽश्वभिधानके । मार्गशीर्षशुचौ पक्षे दिनान्ते केवलं विभोः ॥ ५८ ॥ दिने तृतीयनदायामभूदखिलगोचरं । नायनायकसचार्यंतुर्यकल्याणभागिनः ॥ ५९ ॥ सुप्रभार्यादय- सप्तदशासन् गणनायका । चतुःशतानि पंचाशत्सर्वपूर्वधरा मता ॥ ६० ॥ शिक्षकाः षट्शतद्वादशसहस्राणि सद्व्रताः । त्रिज्ञानधारिणां सख्या सहस्रं षट् शताधिकं ॥ ६१ ॥ तावत पचमज्ञाना मुनयो विक्रियार्द्धिका- । सर्वे सार्द्धसहस्र स्युर्मन पर्ययबोधनाः ॥ ६२ ॥ शून्यपंचद्विकैकोक्तास्त्यक्तसंगाः प्रकीर्तिता । सहस्र वादिना सख्या ते सर्वेपि समुच्चिता ॥ ६३ ॥ विंशति स्युःसहस्राणि मंगिनीप्रमुखार्यिका । चत्वारिंशत्सहस्राणि तदष्टा-

पालकीपर सवार होकर चित्रवन नामके उद्यानमें गये और वेलाका नियम लेकर आसाढ कृष्णा दशमीके दिन अश्वनी नक्षत्रमें शामके समय एकहजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने संयम धारण किया तथा उसी समय संयमसे प्राप्त होनेवाला चौथा मनःपर्ययज्ञान उन्हें प्रगट हुआ ॥५३-५५॥ पारणाके दिन वे वीरपुर नगरमें गये वहांपर सुवर्णकीसी कांतिवाले राजा दत्तने उन्हें आहार दान दिया और पंचाश्चर्य प्राप्त किये ॥५६॥ तदनंतर नौ वर्ष उनके छद्मस्थ अवस्थाके वीतजानेपर वे अपने दीक्षावनमें मनोहर वकुल वृक्षके नीचे वेलाका नियम लेकर विराजमान हुए वहीं पर उनके मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासीके दिन तीसरे पहर अश्वनी नक्षत्रमें समस्त संसारको दिखलानेवाला केवल ज्ञान हुआ उसी समय इंद्रादि देवोंने आकर केवल ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया ॥ ५७ ५९ ॥ सुप्रभार्यको आदि लेकर उनके सत्रह गणधर थे, और चारसौ पचास ग्यारह अंग चौदह पूर्वोके जानकार थे ॥ ६० ॥ बारह हजार छहसौ अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाले शिक्षक थे और सोलहसौ अवधिज्ञानको धारण करनेवाले मुनिराज थे ॥ ६१ ॥ सोलहसौ ही केवलज्ञानी थे, पंद्रहसौ विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवाले थे, बारहसौ पचास परिग्रहरहित मनःपर्ययज्ञानी गिने गये थे और एक हजार वादी थे, इस तरह सब मुनिराजोंकी संख्या बीसहजार थी। मंगिनीको आदि लेकर पैंतालीस हजार आर्जिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे तीन लाख श्राविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे ॥ ६२-६५ ॥ इस प्रकार नम्र हुई बारह सभाओंसे सुशोभित उन नेमिनाथ भगवानने सद्धर्मका उपदेश देते हुए आर्यक्षेत्रमें सब ओर विहार किया था। जब उनकी एक महीनेकी आयु रह गई थी तब वे विहार छोड़कर सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए थे और एक

कौतुकी ॥ ४३ ॥ इति सोपि समासन्नकेवलावगमोदयः । चित्ते विधाय तत्सर्वं महीशः प्राविशत्पुरं ॥ ४४ ॥ तत्र स्वभवसंबंधं स्मृत्वा तीर्थकरं च तं ।
आजवंजवसजातसद्भावं भावयन्मुहु- ॥ ४५ ॥ अनादिबंधनैर्गाढ वध्वात्मात्मानमात्मना । कायकारागृहे स्थित्वा पापी पक्षीव पंजरे ॥ ४५ ॥ कुञ्ज-
रोऽर्पितालानो कल्मलबलमात्मन । नानादु खानि भुजानो भूयस्तैरेव रंजित; ॥ ४७ ॥ इंद्रियार्थेषु संसक्तो रतितीव्रतरोदयात् । अशुचिष्वेवसंवृद्धतृष्णो
वस्करकीटवत् ॥ ४८ ॥ बिभ्यन्मृत्योस्तमाधावन् वर्ज्यंदुःखस्तदर्जयत् । विपर्यस्तमतिः कष्टमार्तरौद्राहिताशया ॥ ४९ ॥ भवे भ्राम्यत्यविश्राम्यन् प्रता-
म्यन् पापपाकत । दृष्ट्वा धिक्कृता धिग्मूढमभीष्टार्थविघातिनीं ॥ ५० ॥ इति निर्वेदसंवेगाद्भोगरागातिदूरगः । सारस्वतादिसर्वापरागामरसमार्चितः ॥
५१ ॥ क्षयोपशमसप्राप्तप्रशस्तसंज्वलनोदयः । लब्धबोधि सुतं राज्ये निजे सयोज्य सुप्रभ ॥ ५२ ॥ सामिषेकं सुरै प्राप्य परिनि क्रांतिपूजनं ।

और होनहार तीर्थंकरपनेको स्मरणकर संसारमें होनेवाले भावोंका बार बार विचार करने लगे ॥ ४५ ॥ वे विचार करने लगे कि इस आत्माने अपने आपही इस आत्माको अनादिकालसे चले आए बंधसे अच्छी तरह जकडकर बांध रक्खा है, जिसप्रकार पक्षी पिंजरेमें बंद हो जाता है उसीप्रकार यह आत्मा शरीररूपी जेलखानेमें बंद हो रहा है ॥ ४६ ॥ अथवा अपने बलको दिखलानेवाला हाथी अपने आप बडा खंभा लाकर देता है और उससे स्वयं बंध जाता है उसी प्रकार यह आत्मा बंध रहा है यह अनेक दुःखोंको भोगता है और फिर उन्हींमें राग करने लग जाता है ॥ ४७ ॥ रति नामके मोहकर्मके अत्यंत तीव्र उदयसे यह आत्मा इंद्रियोंके विषयोंमें तल्लीन रहता है और विष्ठाके कीडेके समान शरीर आदि अपवित्र पदार्थोंमें ही अपनी तृष्णा बढाता रहता है ॥ ४८ ॥ जो छोडने योग्य दुःखोंमें ही मग्न है ऐसा यह प्राणी मृत्युसे डरता है परंतु उसीकी ओर दौडता है और उसीका संचय करता है दुःख है कि आर्त और रौद्रध्यानसे हृदय भीगनेके कारण इसकी बुद्धि ही विपरीत हो रही है ॥ ४९ ॥ संसारमें परिभ्रमण करता हुआ यह कभी विश्राम नहीं लेता और पापकर्मके उदयसे सदा दुःखी रहता है। अभीष्ट अर्थका घात करनेवाली, दृढ और अत्यंत प्रचलित ऐसी इस मूर्खताको भी धिक्कार हो ॥ ५० ॥ इसतरहके निर्वेद और संवेग उत्पन्न होनेसे वे भोगोंके प्रेमसे बहुत दूर जा खडे हुए और उसी समय सारस्वत आदि वीतरागी लौकांतिक देवोंने आकर उनकी पूजा की ॥ ५१ ॥ कर्मोंके क्षयोपशमसे उनके प्रशस्त संज्वलनका उदय हुआ अर्थात् प्रत्याख्यानावरण अप्रत्याख्यानावरणका उपशम होगया और रत्नत्रयको पाकर उन्होंने सुप्रभ नामके अपने पुत्रको राज्यका भार सौंपा ॥ ५२ ॥ इंद्रादि देवोंने आकर उनका अभिषेक किया और दीक्षा कल्याणकी पूजन की तदनंतर वे भगवान मनोहर उत्तरकुरु नामकी

ताने वर्षमानत । गतेषु पल्यिलक्षेषु नमिनाथसमुद्भवः ॥ ३२ ॥ आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां परमं मत । उत्सेधो धनुषां पंच दश चास्याभिरीयते ॥३३॥ आतरूपद्युति सार्द्धद्विसहस्राब्दसमिते । गते कुमारकाले ऽभिषेकमापत्सराज्यक ॥ ३४ ॥ राज्ये पञ्चसहस्राणि वत्सराणामगुर्विभो- । तदा प्रावृड्घनाटोपसंकटे गगनांगणे ॥ ३५ ॥ एवं वनविहाराय गतवत महोदय । गजस्कधमभारूढ भानुमतमिवापरं ॥ ३६ ॥ नभस्तलगतौ देवकुमारौ विहितानती । एवं विज्ञापयामासतुर्बद्धकरपङ्कजा ॥ ३७ ॥ द्वीपेऽस्मिन्प्राग्विदेहेऽस्ति विषयो वत्सकावती । सुसीमा नगरी तत्र विमानादपराजितात् ॥ ३८ ॥ अवतीर्य समुत्पन्नतीर्थनाथोऽपराजित । तस्य केवलपूजार्थं देवेंद्राः समुपागता ॥ ३९ ॥ तत्सभायामभूत्प्रश्न किमस्ति भरतेऽधुना । कश्चित्तीर्थकृदित्याह सोऽप्येव सकलार्थदृक् ॥ ४० ॥ वगाख्यदेशे मिथिलानगरे नमिनामक । भावितीर्थकर पुण्यादवतीर्णो ऽपराजितात् ॥ ४१ ॥ देवोपनीतभोगानां भोक्ता संप्रति साध्विति । तपः प्राग्धातकीखण्डे कृत्वा सौधर्मनामनि ॥ ४२ ॥ सभूयैता द्वितीयेऽह्नि मत्वा तद्वचन श्रुते । भवतमीक्षितु पूज्यमावामेवं स-

की थी और शरीर पंद्रह धनुष ऊंचा था और शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी। कुमारकालके पच्चीससौ वर्ष बीत जानेपर उन्हें अभिषेकपूर्वक राज्य प्राप्त हुआ था ॥ ३३–३४ ॥ उन भगवानने पांच हजार वर्षतक राज्य किया था किसी एक समय वर्षा ऋतुके घने बादलोंसे घिरे हुए आकाशमार्गसे वे महा उदयशाली भगवान किसी वनमें विहार करने गये थे और दूसरे सूर्यके समान वे हाथीके मस्तक पर विराजमान थे, उसीसमय आकाशमार्गसे दो देव कुमार आए उन्होंने आकर भगवानको नमस्कार किया और करकमल जोडकर इसप्रकार निवेदन करने लगे ॥३५–३७॥ कि हे नाथ! इसी जंबूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक वत्सकावती देश है उसमें सुसीमा नामकी नगरी है उसमें अपराजित विमानसे आकर अपराजित नामके तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। उनके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिये सब इंद्रादि देव आए थे ॥ ३८–३९ ॥ उनकी सभामें यह प्रश्न हुआ था कि इस समय भरतक्षेत्रमें क्या कोई तीर्थंकर है? इसके उत्तरमें उन सर्वज्ञदेवने कहा था कि वंगदेशके मिथिला नगरमें नमिनाथ नामके होनहार तीर्थंकर अपने पुण्यकर्मके उदयसे अपराजित स्वर्गसेही आकर उत्पन्न हुए हैं ॥ ४०–४१ ॥ तथा इस समय वे देवोंके द्वारा प्राप्त हुए भोगोपभोगोंका अच्छी तरह सेवन कर रहे हैं। हे प्रभो! हम दोनों पहिले धातकीखंडमें थे तपश्चरण कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुए दूसरे ही दिन अपराजित केवलीके दर्शन करनेके लिये गये और वहांके वचन सुनकर कौतुकके साथ पूज्य आपके दर्शनके लिये आए हैं ॥ ४२–४३ ॥ जिन्हें केवलज्ञानका उदय समीप ही होनेवाला है ऐसे वे भगवान उन देवोंकी बातें सुनकर और चित्तमें सब धारणकर अपने नगरको लौट गये ॥ ४४ ॥ वहांपर पहिले भवके सब संबंधको

जयार्थिषु ॥२३॥ शरव्यापिः सरत्स्वेव ज्योति ष्वेवानवस्थिति । क्रौर्यं क्रूरग्रहेष्वेव देवेष्वेव पिशाचता ॥२४॥ वप्पिला तन्महादेवी वसुधारादिपूजिता । श्रीह्री धृत्यादिभिः सेव्या सुखसुप्ता निशावधौ ॥ २५ ॥ शरदादिद्वितीयाया नक्षत्रेष्वादिमे सति । स्वर्गावतरणे भर्तुर्दृष्ट्वा स्वमान्पुरोदितान् ॥ २६ ॥ स्ववक्त्राब्जप्रविष्टेभमप्यालोक्य विनिद्रिका । प्रभातपटहध्वानश्रवणाविष्कृतोत्सवा ॥ २७ ॥ अपृच्छत्फलमेनेषा नृपं देशावधीक्षणं । सोप्यवादीद्भवद्गर्भे भावितीर्थकृदित्यद ॥ २८ ॥ तदैवागत्य देवेंद्राः स्वर्गावतरणोत्सव । विधाय स्वनियोगेन निजधामागमत्सम ॥ २९ ॥ आषाढे स्वातियोगे तं कृष्णपक्षे महौजसं । दशम्या विश्वलोकेशमसूत तनुजोत्तमं ॥ ३० ॥ देवा द्वितीयकल्याणमप्यभ्येत्य तदा व्यधुः । नमिनामानमप्येन व्याहरन्मोहमेदिनं ॥ ३१ ॥ मुनिसुव्रततीर्थेशसं-

का धन चुराया यह शब्द ही नहीं था अर्थात् उसके राज्यमें विना दी हुई कोई चीज किसीकी नहीं लेता था, इसीप्रकार बंधन केवल काव्यमें था दूसरी जगह नहीं, और विवाद केवल विजय चाहनेवाले विद्वानोंमें ही था, शर नामकी एक तरहकी रुखडीकी फैलावट केवल नदियोंमें थी दूसरी जगह शर अर्थात् वाणोंकी फैलावट नहीं थी, इसीतरह अस्थिरता केवल ज्योतिषी जातिके देवोंके विमानोंमें ही थी दूसरी जगह नहीं, क्रूरता केवल क्रूर ग्रहोंमें ही थी और पिचाचपन केवल व्यंतर जातिके एक तरहके देवोंमें ही था दूसरी जगह नहीं ॥ २३–२४ ॥ उस राजाकी महादेवीका नाम वप्पिला था रत्नोंकी वर्षा आदिसे वह पूजित हुई थी और श्री ह्री धी आदि अनेक देवियां उसकी सेवा करने लगी थीं, आश्विन (क्वार) कृष्णा द्वितियाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें वह सुखसे सो रही थी उसी दिन रात्रिके पिछिले पहर भगवानके गर्भावतरणके समय (जिससमय उस अहमिंद्रने महादेवीके गर्भमें अवतार लिया था) उसने पहिले कहे हुए सोलह स्वप्न देखे ॥ २५–२६ ॥ अंतमें उसने अपने मुखकमलमें घुसता हुआ एक हाथी भी देखा और उसे देखकर सवेरेके वजते हुये नगाड़ोंको सुनती हुई अनक उत्सवोंके साथ वह जगी ॥ २७ ॥ देशावधिको धारण करनेवाले महाराजसे उन स्वप्नोंके फल पूछे और महाराजने भी "आपके गर्भमें होनहार तीर्थंकर आए हैं" यह उन स्वप्नोंका फल कहा ॥ २८ ॥ उसीसमय इंद्रादि देव आये और अपने अपने नियोगके अनुसार स्वर्गावतरणका उत्सव मनाकर सब एक साथ अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २९ ॥ आसाढ कृष्णा दशमीके दिन स्वाति नक्षत्रमें उस महादेवीने तीनों लोकोंके स्वामी और तेजस्वी ऐसे उत्तम पुत्ररत्नको उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंने आकर जन्म कल्याणका उत्सव मनाया और मोहनीयकर्मको नाश करनेवाले उन भगवानका नमिनाथ नाम रक्खा ॥ ३१ ॥ मुनिसुव्रत तीर्थंकरके वाद साठ लाख वर्ष वीत जानेपर नमिनाथ हुये थे ॥ ३२ ॥ उनकी आयु दशहजार वर्ष-

स्वगुरोर्मुनेः । श्रुत्वा शरीरसंन्यासं विच्छिन्नविषयस्पृह ॥ १२ ॥ सद्यो मनोहरोद्याने सुदत्तस्वार्थविस्तृतिः । महाबलानिशानाद्दारकेवलात्मनेऽस्मात् ॥ १३ ॥ राज्यभारं समारोप्य श्रीदत्ते स्वसुते सति । लब्धक्षायिकसम्यक्त्व शमी संयममाददे ॥ १४ ॥ स भूत्वैकादशांगानि बध्वा षोडशकारणः । अंच-नामादिकर्माणि पुण्यानि पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥ स्वायुरंते समाराध्य विमाने लवसत्तम । देवोपराजिते पुण्यादुत्तरेनुत्तरेऽभवत् ॥ १६ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायु-युरेकारत्निसमुच्छ्रितिः । निश्वासाहारलेश्यादिभावैस्तत्रोदितैर्युतः ॥ १७ ॥ जीविताते तस्मिन्देवेऽस्मिन् षण्मासशेषागमिष्यति । जम्बूद्वीपस्थिते द्वीपे विषये वंगनाम-नि ॥ १८ ॥ मिथिलायां महीपाल. श्रीमान् गोत्रेण काश्यपः । विजयादिमहाराजो विख्यातो वृषभान्वये ॥ १९ ॥ अनुरक्तं व्यधात्कृत्स्नमुद्यन्निव रविर्जग-गत् । स्वविरागाद्विरक्तं तत्सोऽतपत्तस्य तादृश ॥२०॥ अग्रणीर्गुणानेव महीन् पुण्योदयात् । पुष्कलास्थितं तस्मिन् पुरुषार्थत्रयं ततः ॥ २१ ॥ तस्य राज्ये रवावेव तापः कोपोऽपि कामिषु । विग्रहस्तनुष्वेव मुनिष्वेव विरागता ॥२२॥ परार्थग्रहणं नाम कुकविष्वेव यत्नं । काव्येष्वेव त्रियादय विद्वत्स्वेव

ने श्रीदत्त नामके अपने उत्तम पुत्रको राज्यका भार सौंपा तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन धारणकर और शांत होकर संयम धारणकर लीया ॥ १४ ॥ उस पुरुषोत्तमने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया और सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन-कर पुण्यस्वरूप तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया ॥ १५ ॥ आयुके अंतमें समाधिमरण धारणकर वह विलासोत्तम मुनिराज अपने पुण्योदयसे अपराजित नामके उत्तम अनुत्तर विमानमें देव हुआ ॥ १६ ॥ वहांपर उसकी तेतीस सा-गरकी आयु थी, एक अरत्नि (हाथ) ऊंचा शरीर था और निश्वास आहार लेश्या आदि भाव सब पहिले कहे अनु-सार थे॥१७॥अब उस अहमिंद्रकी आयु छह महीनेकी रह गई और वह इस पृथ्वीपर अवतार लेनेके सन्मुख हुआ उस-समय इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वंग देशकी मिथिला नगरीमें श्री वृषभदेवके वंशमें उत्पन्न हुआ, काश्यप गोत्री महा-राधिराज श्रीविजय नामका प्रसिद्ध राजा राज्य करता था ॥ १८–१९ ॥ उदय होते हुये सूर्यके समान उसने समस्त संसारको अपने आधीन कर लिया था तथा अपने वैराग्यसे वह उसे विरक्तकर देता था । इसतरह वह संसारको खूब ही संतप्त कर रहा था ॥ २० ॥ उसने अपने पुण्योदयसे सब गुण स्वीकार कर लिये थे और इसीलिये उसमें धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थ खूब अच्छी तरह प्रगट हो रहे थे ॥ २१ ॥ उसके राज्यमें ताप केवल सूर्यमें था दूसरी जगह नहीं क्रोध केवल कामियोंमें ही था, विग्रह केवल शरीरका ही नाम था दूसरी जगह विग्रह अर्थात् लड़ाई झगड़ा नहीं था और विरागता अर्थात् वैराग्य परिणाम केवल मुनियोंमें ही थे दूसरी जगह विरागता अर्थात् द्वेष बुद्धि नहीं थी ॥२२॥ इसीतरह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरेके अर्थको ग्रहण करना केवल कुकवियोंमें था दूसरी जगह परार्थग्रहण अर्थात् दूसरे-

नगरे राजा पार्थिवाख्यो विभुविशां ॥ २ ॥ चक्षुरिक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीं वक्षस्थलेऽदधन् । साक्षाच्चक्रीव दिक्चक्रमाक्रम्याभात्स विक्रमी ॥ ३ ॥ तनूजस्तस्य सुदर्या देव्यां सिद्धार्थनामभाक् । मुनिं मनोहरोद्याने परमावधिवीक्षण ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा मुनिवराख्यान कदाचिद्विनयानत । संपृच्छ्य धर्मसद्भाव यथावत्तदुदीरितं ॥ ५ ॥ समाकर्ण्य समुत्पन्नसंवेगः स महीपति । मृतिमूलधनेनाधमर्णो मृत्योरिहासुभृत् ॥ ६ ॥ वहन् दुःखानि तद्वृद्धिं सर्वो जन्मनि दुर्गतः । रत्नत्रयं समावर्ज्य तस्मै यावन्न दास्यति ॥ ७ ॥ ऋणं सवृद्धिकं तावत्कुत स्वास्थ्य कुत सुखं । इति निश्चित्य कर्मारीन्निहंतु विहितोद्यमः ॥ ८ ॥ सुनाय श्रुतशास्त्राय प्रजापालनशीलने । सिद्धार्थाय समर्थाय दत्वा राज्यश्रियं सुधीः ॥ ९ ॥ प्राव्राजीत्पूज्यपादस्य मुनेर्मुनिवरश्रुते । पादमूलं समासाद्य सतां सा वृत्तिरीदृशी ॥ १० ॥ सिद्धार्थोऽप्यासम्यक्त्वो गृहीताणुव्रतादिकः । भोगान् सुखेन भुंजान प्रचडोऽपालयत्प्रजाः ॥ ११ ॥ काले गच्छति तस्यैवं कदाचि-

राज्य करता था, वह इक्ष्वाकुवंशका नेत्र था अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको धारण करता था और वह पराक्रमी साक्षात् चक्रवर्तीके समान सब दिशाओंपर आक्रमणकर सुशोभित होता था ॥ २–३ ॥ उस राजाके सुंदरी नामकी महादेवीसे सिद्धार्थ नामका पुत्र था। किसी एक दिन वह राजा मनोहर नामके उद्यानमें गया था वहांपर उसने मुनिवर नामके अवधिज्ञानी मुनिराजके दर्शन किये, बडी विनयसे नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप पूछा मुनिराजने धर्मका स्वरूप कहा उसे सुनकर राजा विरक्त हुआ और विचार करने लगा कि यह प्राणी मरणरूप मूलधन लेकर मृत्युका कर्जदार हो रहा है ॥ ४–६ ॥ प्रत्येक जन्ममें अनेक दुखोंको भोगता हुआ और उस ऋणकी वृद्धि करता हुआ सब तरहकी दुर्गतियां भोग रहा है। रत्नत्रयको छोडकर जबतक व्याजसहित यह उससे न चुका दिया जायगा तबतक किसतरह स्वस्थ और सुखी हो सकता है ? यही निश्चयकर वह कर्मरूप शत्रुओंको नाश करनेके लिये उद्यम करने लगा ॥७–८॥ उस बुद्धिमानने अनेक शास्त्रोंको सुननेवाले, प्रजाको अच्छीतरह पालन करनेवाले और सब तरह समर्थ ऐसे अपने पुत्र सिद्धार्थके लिये तो राज्यलक्ष्मी समर्पणकी और पूज्यपाद श्रीमुनिवर नामके मुनिराजके चरण कमलोंके समीप ही दीक्षा धारणकी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंकी प्रवृत्ति एसी ही होती है ॥ ९–१० ॥ प्रतापी सिद्धार्थ भी सम्यग्दर्शनमें तमन्य हो तथा अणुव्रतादि व्रतोंको धारण कर सुखपूर्वक भोगोंका अनुभव करता हुआ प्रजाका पालन करने लगा ॥ ११ ॥ इसप्रकार उसका समय व्यतीत होने लगा। किसी एक समय अपने पिता मुनिराजके शरीरका समाधिमरण सुनकर वह विषयोंकी इच्छासे विरक्त हुआ, वह शीघ्र ही मनोहर नामके वनमें गया और महाबल नामके केवली भगवानके दर्शन कर उनसे सब तत्त्वोंका विस्तार समझा ॥ १२–१३ ॥ उस-

श्चरितः समाप्य । पश्चात्तपोजनि सुरः स सनत्कुमारे तस्माद्दिहैत्य समभूद्विभुरर्द्धचक्री ॥ मणिमतिः खचरी गुणभूषणा कृतनिदानमृतेरपि कोपिनी । ततयशा समभूदिह सुव्रता परिरता जनकेशसुता सती ॥७३०॥ इह सचिवतनूजश्चन्द्रचूलस्य मित्रं विजयविदितनामाऽजायत स्वस्तृतीये । कथितकनकचूलो लालितो दिव्यभोगैरभवदमितवीर्यः सूर्यवंशे स रामः ॥ ७३१ ॥ जनयतु बलदेवो देवदेवो दुरंताद् दुरितदुरुदयोत्थाद्दूरगद्दु खाद्दवीयान् । अवनतभुवनेशो विश्वदृश्वा विरागी निखिलसुखनिवासः सोष्टमोभीष्टमस्मान् ॥ ७३२ ॥

इत्यार्षे भवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे मुनिसुव्रततीर्थकरहरिषेणचक्रवर्तिरामबलदेवलक्ष्मीधरकेशवसीतारावणपुराण परिसमाप्तमष्टषष्ठं पर्व ॥ ६८ ॥

अथ एकोनसप्ततितमं पर्व ।

यस्य नामापि धर्तृणा मुक्त्यै हृदयपंकजे । नमिर्गमयतान्नम्रान् मोक्षलक्ष्मीं समक्षु न ॥ १ ॥ द्वीपेऽस्मिन् भारते वर्षे विषये वत्सनामनि । कौशाम्ब्या

सरे भवमें मंत्रीका पुत्र और चंद्रचूलका मित्र विजय नामसे प्रसिद्ध हुआ था फिर दिव्य भोगोंसे लालित पालित ऐसा कनकचूल नामका देव हुआ और फिर सूर्यवंशमें अपार शक्तिको धारण करनेवाला रामचंद्र हुआ ॥ ७३१ ॥ जो बुरे से बुरे पापोंके अशुभोदयसे उत्पन्न हुए बुरे दुखोंसे कोसों दूर थे, जिन्होंने संसारके सब इंद्रोंसे नमस्कार करा लिया था जो वीतराग सर्वज्ञ और समस्त सुखोंके निवासस्थान थे ऐसे देवाधिदेव आठवें बलदेव रामचंद्र हमलोगोंकी इष्टसिद्धि करें ॥ ७३२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत महापुराणके नवीन हिंदी भाषानुवादमें मुनिसुव्रततीर्थंकर हरिषेण चक्रवर्ती रामबलदेव लक्ष्मीधर (लक्ष्मण) नारायण सीता और रावणका पुराण समाप्त करनेवाला यह अडसठवा पर्व पूर्ण हुआ ॥६८॥

अथ उनहत्तरवां पर्व ।

अथानंतर—हृदयकमलमें धारण किया हुआ जिनका नाम भी मोक्ष दे सकता हैं ऐसे श्रीनमिनाथ स्वामी नम्र हुए हम लोगोंको मोक्ष लक्ष्मी दें ॥ १ ॥ इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्सदेशके कौशांबी नगरमें पार्थिव नामका राजा

सैन्ये रुध्वा रिपोः पुरमगारमिवैकमल्यं । निर्मूल्य वैरिकुलमाश्रित्र सस्यमीपह्लक्ष्म्या सह क्षितिसुतामपहृत्य शत्रोः ॥ ७२४ ॥ आनम्रामरभूनभश्वरशिरः पीठोद्धृताङ्घ्रिद्वया निष्कंटीकृतदक्षिणार्द्धभरताम्बडत्रिमंडाधिपौ । साकेत समधिष्ठितौ हृतशुचिपोद्गासिभास्वत्प्रभौ दिक्प्रातद्विपसर्पद्गंशमनव्यग्रोप्रवीरश्रियौ ॥ ७२५ ॥ सीरादिप्रभृतिप्रसिद्धविलसद्रत्नावलीरंजितश्रीसपादितभोगयोगमुखिनौ सर्वार्थिसतर्पकौ । चद्रार्काविव तेजसा स्वयशसा विश्व प्रकाश्य स्फुटं श्रीमतौ वलकेशवौ क्षितिमिमा संपाल्य सार्द्धं चिरं ॥ ७२६ ॥ एकस्त्रिलोकशिखिरं सुखमध्यतिष्ठदन्यश्चतुर्थनरकावनिनायकोभूत् । भोग्ये समेपि परिणामकृताद्विशेषान्मा तद्व्यधादवुधवत्सुवुधो निदान ॥७२७॥ देशे सारसमुच्चये नरपतिर्देवोनरादिस्वतः सौधर्मेऽनिमिषोभवत्सुरनिधिस्तस्माच्च्युतोस्मिन्नभूत् । भोग्ये समेपि परिणामकृतातास्खिलखेचरोज्वलशिरोमालो विनम्यन्वये स्त्रीलोलो निजवशकेतुरहिताचाराग्रणी रावण. ॥ ७२८ ॥ आसीदिहैव मलये विषये महीशस्तु ऋचद्रचूल इति दु-

हाथियोंके (दिग्गजोंके) बहते हुए मदको शांत करनेके लिये जिनकी उग्र वीर लक्ष्मी सदा व्यग्र रहती थी हलको आदि लेकर दैदीप्यमान रत्नों की पंक्तियोंसे सुशोभित ऐसी लक्ष्मीके द्वारा इकट्ठे किये हुए भोगोंके संयोगोंसे जो बडे ही सुखी थे, जो समस्त याचकोंको संतुष्ट करनेवाले थे, प्रतापसे जो सूर्य चंद्रमाके मंडलके समान थे, यशसे जिन्होंने समस्त संसारको खूब अच्छी तरह प्रकाशित कर दिया था एसे श्रीमान् वलभद्र नारायण वा रामचद्र लक्ष्मणने साथ साथ बहुत दिनतक इस पृथ्वीका पालन किया था ॥ ७२४–७२६ ॥ उनमेंसे एक तो तीनों लोकोंके शिखरपर विराजमान होकर अनत सुखोंका अनुभव करने लगा और दूसरा चौथे नरकका स्वामी हुआ अर्थात् चौथे नरकमें गया । यद्यपि उन दोनोंकी उपभोग करनेकी वस्तुएं सब समान थीं तथापि परिणामोंमें विशेषता होनेसे ऐसा हुआ इसलिये बुद्धिमानोंको मूर्खोंके समान कभी निदान नहीं करना चाहिये ॥ ७२७ ॥ रावणका जीव पहिले सारसमुच्चय नामके देशमें नरदेव नामका राजा हुआ था और वहांसे च्युत होकर इसी भरतक्षेत्रमें राजा विनमिके वशमें समस्त विद्याधरोंको वश करनेवाला, स्त्रीलंपट, अपना वंशका केतु (नाशक) अहित करनेवालोंमें मुख्य और जिसके मस्तकोंकी माला दैदीप्यमान हो रही है ऐसा रावण हुआ था ॥ ७२८ ॥ लक्ष्मणका जीव पहिले इसी क्षेत्रके मलय देशमें चद्रचूल नामका राजपुत्र हुआ था जो कि अत्यंत दुराचारी था, फिर तपश्चरण धारणकर सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे आकर इसी भरतक्षेत्रमें अर्द्धचक्री लक्ष्मण हुआ ॥ ७२९ ॥ सीताका जीव पहिले गुणोंसे सुशोभित मणिमति नामकी विद्याधरी थी वहां पर क्रोधित होकर मरते समय निदान किया था वहांसे आकर यशको स्थान वाली अच्छे व्रतोंको पालन करनेवाली महासती जानकी पुत्री सीता हुई थी ॥ ७३० ॥ रामचंद्रका जीव पहिले ती-

छाय यथाशक्ति यथाविधि । रामाणुमतौ सजातौ श्रुतकेवलिनौ मुनी ॥ ७१४ ॥ जातौ शेषाश्च बुध्यादिसप्तर्ध्याविष्कृतोदयाः । एवं छद्मस्थकालेऽस्य प-
ञ्चाब्दोनचतुःशते ॥ ७१५ ॥ व्यतीतवति सद्ध्यानविशेषाद्धतघातिनः । रामस्य केवलज्ञानमुदपादर्कबिम्बवत् ॥ ७१६ ॥ समुद्गतैकछत्रादिप्रातिहार्यविभू-
षित । असिंचद्भव्यसस्यानां वृष्टिं धर्ममयीमसौ ॥ ७१७ ॥ एवं केवलबोधेन नीत्वा षट्शतवत्सरान् । फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे शुक्लपक्षे चतुर्दशी-॥७१८॥
दिने सम्मेदगिर्यग्रे तृतीयं शुक्लमाश्रितः । योगत्रितयमारुध्य समुच्छिन्नक्रियाश्रय ॥७१९॥ निःशेषा प्राकृताघातिकर्मा सोऽणुमदादिभिः। शरीरत्रितयापायाद
वापत्पदमुन्नत ॥ ७२० ॥ विभीषणादयः केचित्प्रापन्ननुदिशं पुनः। रामचक्रधरदेव्याद्याः काश्चिदीयुरितोऽच्युतं ॥ ७२१ ॥ शेषाः कल्पेभवन्नादौ लक्ष्मणश्चा-
गत क्रमात् । नरकात्संयमं प्राप्य मोक्षलक्ष्मीमवाप्स्यति ॥ ७२२ ॥ विनेयात्तस्य जतुना भवेद्वैचित्र्यमीदृग् ॥ ७२३ ॥ प्रोल्लंघ्य गोपदमिवांबुनिधिं स्व-

सूर्यके बिंबके समान उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ ॥ ७१५–७१६ ॥ उसीसमय एक छत्र आदि प्रातिहार्य प्रगट हुए और उनसे सुशोभित होकर वे भव्यरूपी अनाजके पौधोंको धर्मकी वर्षाकर सींचने लगे ॥७१७॥ इसतरह केवलज्ञानसे विभूषित होकर उन्होंने छहसौ वर्ष व्यतीत किये तब फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीके दिन सवेरेके समय सम्मेद पर्वतके शिख-रपर विराजमान होकर तीसरे शुक्लध्यानके आश्रयसे तीनों योगोंका निरोध किया और समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानके आश्रयसे समस्त बचे हुए अघातिया कर्मोंका नाशकर तीनों शरीरोंके नाश हो जानेसे हनुमान आदिके साथ साथ सबसे उत्तम पद प्राप्त किया अर्थात् उस दिन वे मुक्त हुए ॥ ७१९–७२० ॥ विभीषण आदि कितने ही मुनिराज अनुदिश विमानमें अहमिंद्र हुए रामचंद्र लक्ष्मणकी पट्टरानी सीता और पृथिवीसुंदरी आदि कितनीही अर्जि-काएं अच्युत स्वर्गमें देव हुई ॥ ७२१ ॥ बाकी सब सोलह स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए। लक्ष्मण नरकसे निकलकर अनुक्रमसे संयम धारण करेगा और अंतमें मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होगा ॥ ७२२ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियोंको संयम धारण करनेसे ऐसा ही फल मिला करता है ॥ ७२३ ॥ जिन दोनों भाइयोंने समुद्रको गोपदके (कीचडमें बनेहुए गौके खुरके) समान उल्लंघन किया जिन्होंने अपनी सेनासे एक छोटे घरके समान शत्रुके नगरको घेर लिया खेतके समान शत्रुका सब घर बहुत शीघ्र चौपट कर दिया और लक्ष्मीके साथ साथ सीता भी शत्रुसे छुडा ली, नमस्कार करते हुए देव विद्याधर और भूमिगोचरियोंके राजाओंके मस्तकोंसे लगे हुए सिंहासन पर जिनके चरण कमल रहते थे जि-न्होंने दक्षिण की ओरका आधा भरतक्षेत्र निष्कंटक कर दिया था जो तीनों खंडोंके स्वामी थे, अयोध्यामें निवास करते थे, जेठ महीनेके दैदीप्यमान सूर्यकी कांतिको भी जिन्होंने तिरस्कृत कर दिया था, दिशाओंके अंतमें रहनेवाले

तूंगी

राज्यं निधायोच्चैः सपट्टं वेशवात्मजे ॥ ७०४ ॥ अष्टौ विजयरामाद्या सीतायाः सात्विकाः सुताः । लक्ष्मीमनभिवांच्छन्तु तेषां ज्येष्ठेषु सप्तसु ॥ ७०५ ॥ दत्वाजितजयाख्याय यौवराज्य कनीयसे । मिथिलामर्पयित्वास्मै त्रिनिर्वेदपरायणैः ॥ ७०६ ॥ साकेतपुरमभ्येत्य वने सिद्धार्थनामनि । वृषभस्वामिनिष्क्राति तीर्थभूमौ महौजसः ॥ ७०७ ॥ शिवगुप्ताभिधानस्य समीपे केवलेशिन । संसारमोक्षयोर्हेतुफले सम्यक् प्रबुद्धवान् ॥ ७०८ ॥ निदानशल्यदोषेण चतुर्थी नारकीं भुवं । केशव प्राप्त इत्येतद् बुध्वा देवो विशुद्धधी ॥ ७०९ ॥ निरस्ततद्गतस्नेहविधिरा भिनिवोधिकात् । वेदान्प्रादुर्भवद्बोधिः सुग्रीवाणुमदादिभिः ॥ ७१० ॥ विभिषणादिभिश्चामा भूमिपैः पंचमि शतै । अशीतिशतपुत्रैश्च सह संयममासवान् ॥ ७११ ॥ तथा सीता महादेवी पृथिवीसुंदरीयुता । देव्य श्रुतवती क्षातिनिकटे तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥ तौ राजयुवराजौ च गृहीतश्रावकव्रतौ । जिनाङ्घ्रियुग्ममानम्य सम्यक्प्राविशता पुरीं ॥ ७१३ ॥ मोक्षमार्गमनु-

दिया और अपने ही हाथसे उसका पट्ट बांधा ॥ ७०४ ॥ सात्विक वृत्तिको धारण करनेवाले विजयराम आदिक सीताके आठ पुत्र थे उनमेंसे बडे २ सातोंने तो राज्यलक्ष्मीकी अनिच्छा प्रगटकी इसलिये रामचंद्रने अजितजय नामके सबसे छोटे पुत्रको युवराज पद दिया और मिथिला देश उसके समर्पण किया तथा आप संसार शरीर और भोगोंसे अत्यंत विरक्त हुये ॥ ७०५–७०६ ॥ वे अयोध्या नगरके समीप सिद्धार्थ नामके वनमें गये जो कि श्रीवृषभ देवके तपकल्याणक धारण करनेसे तीर्थस्थान होगया था वहांपर महा पराक्रमी श्रीशिवगुप्त नामके केवली भगवान विराजमान थे उनसे उन्होंने संसार तथा मोक्षका हेतु तथा फल अच्छी तरह समझा ॥ ७०७–७०८ ॥ लक्ष्मण निदान नामकी शल्यके अपराधसे चौथे नरकमें गया है यह जानकर उनकी बुद्धि और विशुद्ध होगई उन्होंने लक्ष्मणका मोह छोड दिया और आभिनिबोधक नामके ज्ञानसे अनुमानसे उन्हें रत्नत्रय प्राप्त हुआ। तदनंतर सुग्रीव हनुमान और विभीषण आदि पांचसौ राजाओंके साथ तथा एक सौ अस्सी पुत्रोंके साथ उन्होंने संयम धारण किया ॥ ७०९–७११ ॥ इसी प्रकार पृथिवी सुंदरी आठ रानियोंके साथ साथ सीता महादेवी ने भी श्रुतवती नामकी आर्जिकाके समीप दीक्षा धारण करली ॥ ७१२ ॥ पृथिवीसुंदर और अजितंजय दोनों राजा और युवराजाओंने श्रावकोंके व्रत धारण किये और श्री जिनराजके चरणकमलोंको नमस्कारकर अच्छीतरह नगरीमें प्रवेश किया ॥ ७१३ ॥ रामचंद्र और हनुमान दोनों ही मुनिराजोंने अपनी शक्तिके अनुसार और विधिपूर्वक मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकी और दोनों ही श्रुतकेवली हुए ॥ ७१४ ॥ शेष बचे हुए मुनिराज भी बुद्धि आदि सातों ऋद्धियोंसे विभूषित और प्रसिद्ध हुए। इसप्रकार छद्मस्थ अवस्थाके तीनसौ पिचानवे वर्ष व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यान नामके उत्तम ध्यानसे रामचंद्रने घातिया कर्मोंका नाश किया और

प्रवलितोत्तुंगप्रासादैकांशविच्युतिं ॥ ६९३ ॥ स्वप्ने दृष्ट्वा समुत्थाय समासाद्य निजाग्रज । स्वप्नान् सप्रश्रयं सर्वान् यथादृष्टान् न्यवेदयत् ॥ ६९४ ॥ पुरोहितस्तदाकर्ण्य फल तत्रेत्थमब्रवीत् । न्यग्रोधोन्मूलनाद् व्याधिमसाध्य केशवो व्रजेत् ॥ ६९५ ॥ राहुग्रस्तार्कसंपाताद्भ्योगभोगायुषां क्षय । तुंगप्रासादभंगेन त्व प्रयाता तपोवनं ॥ ६९६ ॥ इत्येकांते वचस्तस्य श्रुत्वा रामो यथार्थवित् । धीरोदात्ततया नायान्मनागपि मनःक्षतिं ॥ ६९७ ॥ लोकद्वयहितं मत्वा कारयामास घोषण । प्राणिनो नहि हतव्या कैश्चिचेति दयोद्यत ॥ ६९८ ॥ चकार शांतिपूजा च सर्वज्ञसवनावधि । ददौ दान च दीनेभ्यो येन यद्यदभीप्सितं ॥ ६९९ ॥ बभूव क्षीणपुण्यस्य ततः कतिपयैर्दिनैः । केशवस्य महाव्याधिरसातोदयचोदित ॥ ७०० ॥ दुःसाध्येनामयेनासौ माघे मास्यसितेतिमे । दिने तेनागमच्चक्री पृथ्वीं पंकप्रभाभिधां ॥ ७०१ ॥ तद्वियोगेन शोकाग्निसतप्तहृदयो बलः । कथ कथमपि ज्ञानात्सधार्यात्मानमात्मना ॥ ७०२ ॥ कृत्वा शरीरसस्कारमनुजस्य यथाविधि । सर्वांतःपुरदुःखं च प्रशमय्य प्रसन्नवाक् ॥ ७०३ ॥ सर्वप्रकृतिसान्निध्ये पृथिवीसुंदरे सुते । ज्येष्ठे

६९२--६९४ ॥ पुरोहित सुनते ही उनका फल इसतरह कहने लगा कि स्वप्नमें जो बडका वृक्ष टूटता हुआ देखा है उसका फल यही है कि लक्ष्मणको कोई असाध्य रोग होगा, राहुसे ढका हुआ सूर्य जो रसातलमें चलागया देखा है उसका फल भोगोपभोग करने योग्य वस्तुओंकी आयुका नाश हो जाना है और ऊंचे राजमहलके गिर जानेका फल आपका (रामचंद्रका) तपोवन चले जाना है ॥ ६९५--६९६ ॥ इसप्रकार पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले रामचंद्रने वे पुरोहितके वचन एकांत स्थानमें सुने और धीरवीर तथा गंभीर होनेसे उनके चित्तमें कुछ भी रंज नहीं हुआ ॥ ६९७ ॥ तदनंतर दयाशाली रामचंद्रने दोनों लोकोंका हित समझकर यह घोषणा कर दी कि हमारे राज्यमें कोई मनुष्य किसी जीवको न मारने पावे ॥ ६९८ ॥ इसके सिवाय उन्होंने सर्वज्ञदेवके चरण कमलोंके समीप शांति पूजाकी और दीन लोगोंको उनकी इच्छानुसार अर्थात् जो जो उन्हें चाहिये वही दान दिया ॥ ६९९ ॥ तदनंतर-पुण्य कर्मोंके नाश होजानके कारण थोडे ही दिनोंमें असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेसे लक्ष्मणको बडा भारी रोग हुआ ॥ ७०० ॥ वह चक्रवर्ती लक्ष्मण माघ कृष्णा अमावास्याके दिन उसी असाध्य रोगसे मरकर पंकप्रभा नामकी चौथी पृथ्वीमें (चौथे नरकमें) जा उत्पन्न हुआ ॥ ७०१ ॥ लक्ष्मणके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकरूपी अग्निसे जिनका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसे रामचंद्रने ज्ञान होनेसे किसी तरह अपने आप आत्माको संभाला ॥ ७०२ ॥ तदनंतर उन्होंने विधिपूर्वक अपने छोटे भाईका शरीर संस्कार किया और प्रसन्नतापूर्वक वचन कहकर रणवासकी सब रानियोंका दुःख शांत किया ॥ ७०३ ॥ फिर उन्होंने सब प्रजाके सामने पृथ्वीसुंदर नामके लक्ष्मणके बडे पुत्रको राज्य

फानुयोगैर्ज्ञानहेतुभिः । गुणमुख्यनयादानविशेषफललाभतः ॥ ६८२ ॥ स्यान्छब्दलाञ्छितास्तित्वनास्तित्वाद्यंतसततं । जीवादीना पदार्थानां तत्त्वमप्यन्य लक्षणं ॥ ६८३ ॥ मार्गणा गुणजीवानां समासं संसृतिस्थितिं । अन्यच्च धर्मसंबद्धं व्यर्थं युक्तिसमाश्रितं ॥ ६८४ ॥ कर्मभेदान् फलं तेषां सुखदुःखादिभेदकं । बंधमोचनयोर्हेतुं स्वरूपं मुक्तिमुक्तयोः ॥ ६८५ ॥ इति धर्मविशेषं तत् ततः श्रुत्वा मनीषिणः । सर्वे रामादयोऽभूवन् गृहीतोपासकव्रताः ॥६८६॥ निदानशल्यदोषेण भोगासक्तः स केशवः ।बध्वायुर्नारकं घोरं नागृहीद्दर्शनादिकं ॥ ६८७ ॥ एवं संवत्सरान्नीत्वा साकेते कतिचित्सुखं । तदाधिपत्यं भरतशत्रुघ्नाभ्यां प्रदाय तौ ॥ ६८८ ॥ स्वयं स्वपरिवारेण गत्वा वाराणसीं पुरीं । प्राविक्षतामधिक्षिप्य शक्रलीलां स्वसंपदा ॥ ६८९ ॥ सुतो विजयरामाख्यो रामस्यामरसन्निभः । पृथिवीचंद्रनामाभूच्चद्राभः केशवस्य च ॥ ६९० ॥ अन्यैश्च पुत्रपौत्राद्यैः परीतौ तौ धृतोदया । नयतःस्म सुखं कालं त्रिवर्गफलशालिनौ ॥ ६९१ ॥ कदाचिल्लक्ष्मणो नागवाहिनीशयने सुखं । सुप्तोन्यग्रोधवृक्षस्य भजनं मत्तदंतिना ॥ ६९२ ॥ सैंहिकेयनिगीर्णार्करसातलनिवेशनं । सुधा-

कह सुनाई तथा और भी युक्तियोंसे सुसंगत धर्मका स्पष्ट स्वरूप कहा। कर्मके भेद कहे सुख दुःख आदि उनका फल कहा बंध और मोक्षके कारण वतलाये तथा मुक्ति और मुक्त होनेवाले जीवोंका स्वरूप बतलाया ॥६८२---८५॥ इसप्रकार मुनिराजने धर्मका विशेष स्वरूप वतलाया जिसे सुनकर रामचंद्र आदि सब बुद्धिमान लोगोंने श्रावकके व्रत धारण किये ॥ ८६ ॥ निदान नामकी शल्यके दोषसे लक्ष्मण भोगोंमें आसक्त था तथा उसने घोर नरकायुका बंध भी कर लिया था इसलिये सम्यग्दर्शन आदि कुछ भी धारण नहीं किया ॥ ८७ ॥ इसतरह उन दोनों भाइयोंके कुछ वर्ष तो सुख पूर्वक अयोध्यामें ही निकल गये तदनतर उन दोनोंने वहांका राज्य तो भरत और शत्रुघ्नको दिया और आप अपने सब परिवारके साथ वनारसी नगरीमें आए तथा अपनी संपदाओंसे इंद्रकी लीलाको भी तिरस्कार करते हुए रहने लगे ॥ ८८---८९ ॥रामचंद्रके देवके समान विजयराम नामका पुत्र हुआ था और लक्ष्मणके चंद्रमाके समान पृथ्वीचंद्र नामका पुत्र हुआ था ॥ ९० ॥ जिनका उदय प्रसिद्ध है और जो तीनों पुरुषार्थोंके फलोंसे सुशोभित हैं ऐसे वे दोनों भाई और भी अनेक पुत्र पौत्रों सहित सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे ॥७१॥ किसी एक दिन लक्ष्मण नागवाहिनी शय्यापर सुखसे सोया हुआ था वहांपर उसने तीन स्वप्न देखे--पहिला मस्त हाथीके द्वारा वडका वृक्ष उखाडा जाना, दूसरा राहुके द्वारा निगले हुए (ढके हुए) सूर्यका रसातलमें चले जाना और तीसरा चूनेसे पोते हुए बडे भारी राजभवनका एक अंश गिर जाना। इन स्वप्नोंको देखकर वह उठा, अपने वडे भाई रामचंद्रके समीप पहुचा और उनसे बडी विनयके साथ सब देखे हुए स्वप्न यथार्थ रीतिसे निवेदन कर दिये ॥

६७० ॥ शून्यपचकपक्षाब्धिमितास्तुंगमतगजा । रथवर्यास्तु तावंतो नवकोट्यस्तुरंगमा ॥ ६७१ ॥ खसप्तकद्विवार्ग्युक्ता युद्धशौंडाः पदातय । देवाश्चा-ष्टसहस्राणि गणवद्धाभिधानकाः ॥ ६७२ ॥ हलायुधं महारत्नमपराजितनामकं । अमोघाख्याः खगास्तीक्ष्णाः सक्षया कौमुदी गदा ॥ ६७३ ॥ रत्नाव-तसिका माला रत्नान्येतानि सीरिणः । तानि यक्षमहस्रेण रक्षितानि पृथक् पृथक् ॥ ६७४ ॥ चक्र सुदर्शनाख्यानं कौमुदीत्युदिता गदा । असिः सौनदकोऽ-मोघमुखी शक्तिः शरासन॥६७५॥शार्ङ्गं पचमुख पाचजन्यः शखो महाध्वनिः । कौस्तुभ स्वप्रभाभारभासमान महामणिः॥६७६॥ रत्नान्येतानि सवैव के-शवस्य पृथक् पृथक् । सदा यक्षसहस्रेण रक्षितान्यमितद्युतेः ॥ ६७७ ॥ एव तयोर्महाभागधेययोर्भोगसपदा । निमग्नयोः सुखाभोधौ काले गच्छत्यथान्यदा ॥ ६७८ ॥ जिन मनोहरोद्याने शिवगुप्तसमाह्वयं । विनयेन समागत्य पूजयित्वाभिवद्य ता ॥ ६७९ ॥ श्रद्धालुर्धर्ममप्राक्षीद्धीमान् राम सकेशव । प्रत्यासन्ना-त्मनिष्ठत्वान्निष्ठितार्थो निरंजनः ॥ ६८० ॥ भव्यानुग्रहमुख्यात्मप्रवृत्ति सोप्यभाषत । स्ववाक्प्रसरज्योत्स्नासमाह्लादिततत्सभः ॥ ६८१ ॥ प्रमाणनयनिक्षे-

६७३–७४ ॥ इसीतरह सुदर्शन नामका चक्र कौमुदी नामकी गदा, सौनंदक नामकी तलवार, अमोघमुखी शक्ति, शार्ग नामका धनुष, बडी भारी आवाज करनेवाला और पांच मुखका पांचजन्य नामका शंख, और, अपनी कांतिके बोझसे दैदीप्यमान ऐसा कौस्तुभ नामका महामणि ये सात रत्न अनंत कांतिको धारण करनेवाले नारायण लक्ष्मणके थे और एक एक हजार यक्ष देव सबकी अलग अलग रक्षा करते थे ॥ ७५-७७ ॥ इसतरह सुखसागरमें तल्लीन रहनेवाले और महा भाग्यशाली उन दोनों भाइयोंका समय भोग और संपदाओंके द्वारा व्यतीत होने लगा किसी एक दिन मनोहर नामके वनमें दोनों भाइयोंने शिवगुप्त नामके जिनराजके दर्शन किये तथा बडी विनयसे पूजा और वंदनाकी ॥ ७८–७९ ॥ तदनंतर श्रद्धालु और बुद्धिमान रामचंद्रने लक्ष्मणके साथ २ धर्मका स्वरूप पूछा आत्म-निष्ठा समीप होनेसे जिनके चारों पुरुषार्थ पूर्ण होचुके हैं जो मोहनीय आदि कर्मोंसे रहित हैं भव्योंका अनुग्रह करना ही जिनके आत्माकी मुख्य प्रवृत्ति है ऐसे वे जिनराज अपने वचनरूपी फैलती हुई चांदनीसे उस सभाको प्रसन्न करते हुए कहने लगे ॥ ८०–८१ ॥ कि इस संसारमें जीवादिक नौ पदार्थ हैं प्रमाण नय निक्षेप आदि जाननेके कारण ऐसे अनुयोगोंसे उनका ज्ञान होता है तथा गौण और मुख्य नयोंके स्वीकार करनेरूप विशेष बलके मिलजाने-से अर्थात् गौण और मुख्य नयोंकी अपेक्षासे उनमें स्यात् अस्तित्व (वे पदार्थ कथंचित हैं) स्यात्नास्तित्व (वे प-दार्थ कथंचित् नहीं भी हैं) आदि सात धर्म सदा विद्यमान रहते हैं श्रीशिवगुप्ति मुनिराजने इनके विशद स्वरूपके सिवाय आप्तका (सच्चे देवका) लक्षण कहा, मार्गणा गुणस्थान और जीवोंका संक्षेप वर्णन किया, संसारकी स्थिति

नः । द्वाचत्वारिंशदब्दाते परिनिष्ठितदिग्जय ॥ ६५९ ॥ कृतांजलिभिरासेव्यो देवखेचरभूचरैः । अग्रगामेसरत्नकी सचक्र सर्वपूजित ॥ ६६० ॥ कृत-मंगलनेपथ्यां प्रार्थ्यमानसमागमा । कातामिव विनीता तां शक्रवत्प्राविशत्पुरीं ॥ ६६१ ॥ लमगोचरसंशुद्धशुभवेलादिसंनिधौ । नरविद्याधरा व्यंतराधि-पप्रमुखाः समं ॥ ६६२ ॥ सिंहासन समारोप्य श्रीमतो रामलक्ष्मणौ । तीर्थावुपूर्णसौवर्णसहस्राष्टमहाघटैः ॥ ५६३ ॥ अभिषिच्य त्रिखंडाधिराज्ये सपूजितौ युवा । प्रवर्द्धमानलक्ष्मीकावाशारुद्धयशोजुषौ ॥ ६६४ ॥ इत्यारोपितरत्नोरुमुकुटौ मणिभूषणौ । अलंकृत्य महाशीर्भिः पूजयामासुरुत्सुका ॥ ६६५ ॥ पृथिवी-सुंदरीमुख्याः केशवस्य मनोरमा । द्विगुणाष्टसहस्राणि देव्य सत्योभवन्प्रियः ॥ ६६६ ॥ सीताद्यष्टसहस्राणि रामस्य प्राणवल्लभाः । द्विगुणाष्टसहस्राणि दे-शास्तावन्महीभुज ॥ ६६७॥ शून्यं पचाष्टरध्रोक्तशाता द्रोणमुखाः स्मृता । पत्तनानि सहस्राणि पंचविंशतिसंख्यया ॥६६८॥ कर्वटा खत्रयद्व्येकप्रमिताः प्रार्थितार्थदाः। मटवास्तत्प्रमाणाः स्युः सहस्राण्यष्टखेटकाः ॥ ६६९ ॥ शून्यसप्तकवखव्धिमिता ग्रामा महाफलाः । अष्टद्विसम्मिता द्वीपाः समुद्रातर्वर्तिन.॥

गमकी प्रार्थना करनेवाली कांताके समान उस अयोध्या नगरीमें इद्रके ममान लक्ष्मणने प्रवेश किया ॥६५८–६१॥ तदनंतर किसी शुद्ध लग्न और शुभ मुहूर्तमें मनुष्य विद्याधर और व्यंतरदेवोंके मुखिया लोगोंने इकट्ठे होकर श्रीमान् राम लक्ष्मणको सिंहासनपर विराजमान किया तथा तीर्थोंके जलसे भरे हुए सुवर्णके एकहजार आठ बडे २ कलशोंसे उन दोनों भाइयोंका अभिषेक किया । इसतरह उन्हें तीनों खंडोंके साम्राज्यपर विराजमानकर प्रार्थनाकी आपकी लक्ष्मी सदा बढती रहे और आपका यश सब दिशाओंमें फैलकर व्याप्त हो जाय । इसतरह प्रार्थना कर रत्नोंके बडे भारी मुकुट और मणियोंके आभूषण पहिनाकर उनका अलंकार किया और बडी उत्कंठासे अनेक आशीर्वाद देकर उनकी पूजाकी ॥ ६२–५५ ॥ लक्ष्मणके पृथ्वी सुंदरी आदि लक्ष्मीके समान सोलह हजार सुंदर रानियां थीं और रामचंद्रके सीता आदि आठ हजार प्राणप्यारी रानियां थीं इसीतरह सोलह हजार देश सोलह हजार आधीन राजा थे नौ हजार आठ सौ पचास द्रोणमुख थे और पचीस हजार पत्तन थे, ॥ ६६–६८ ॥ इच्छानुसार फल देनेवाले बारह हजार कर्वट थे, बारह हजार मटंब थे और आठ हजार खेटक थे ॥ ६९ ॥ महाफल देनेवाले अडतालीस करोड गांव थे और समुद्रके भीतरके अट्ठाईस द्वीप थे ॥ ७० ॥ इसीतरह व्यालीस लाख बडे २ हाथी थे, और नौ करोड घोडे थे ॥ ७१ ॥ तथा व्यालीस करोड बडी शूर वीर पैदल सेना थी और आठ हजार गणबद्ध नामके देव थे ॥ ७२ ॥ बलभद्र रामचंद्रके अपराजित नामका हलायुध अमोघ नामके तीक्ष्ण बाण कौमुदी नामका गदा और रत्नावर्त-सिका नामकी माला ये चार महारत्न थे और उनकी सबकी अलग अलग एक एक हजार यक्षदेव रक्षा करते थे ॥

ण ॥ ६४९ ॥ रत्नहारं तिरीटं च कुंडले शरमप्यमुं । तीर्थवपूर्णकुंभातर्गतमस्मै ददौ सुर ॥ ६५० ॥ ततोनुजलधिं गत्वा वैजयंताख्यगोपुरे । वशीकृत्य यथाप्राच्य तथा वरतनुं च त ॥ ६५१ ॥ कटकं सागद चूडामणिं मौलिविभूषण । ग्रैवेयक ततश्चक्री कटीसूत्रं च लब्धवान् ॥ ६५२ ॥ तत प्रतीचीमागत्य सवलः सिंधुगोपुरे । प्रविश्याब्धिं प्रभासं च विनतीकृत्य पूर्ववत् ॥ ६५३ ॥ मालां सतानकाख्याना मुक्ताजालप्रलंबक । श्वेतच्छत्र ततो भूषण न्यन्यान्यपि चाददौ ॥ ६५४ ॥ तत सिंधोस्तटेगच्छन् प्रतीचीखडवासिन । स्वकीया श्रावयित्वाज्ञां सारवस्तूनि चाददत् ॥ ६५५ ॥ ऐंद्रस्य शाभिमु वो भूत्वा विजयार्द्धनिवासिनः । विनिमय्य गजाश्वास्त्रविद्याधकुमारिका ॥ ६५६ ॥ रत्नानि चात्मसात्कृत्य पूर्वखंडनिवासिना । विधाय करदान् म्लेच्छ न् विजयी निर्गतस्ततः ॥६५७॥ द्विगुणाष्टसहस्राणि पट्टबध न् महीभुजः । दशोत्तरशतख्यातपुराधीशान् खगेशिनः ॥ ६५८ ॥ त्रिखडवासिदेवाश्च विधायाज्ञाविधायि-

कलशमें रत्नोंका हार मुकुट कुडल और वह वाण रखकर लक्ष्मणकी भेंट किया ॥ ६५० ॥ तदनंतर समुद्रके किनारे किनारे जाकर बैजयंत नामके वडे दरवाजेपर पहुचे और पहिले कहे अनुसार वहांपर वरतनु नामके देवको वश किया ॥ ५१ ॥ तथा उसदेवसे कटक, अंगद, चूडामणि सुंदर मौलिसे सुशोभित हार और एक करधनी लक्ष्मणको प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ तदनंतर वे दोनों ही भाई सेनासहित पश्चिमकी ओर वढे और सिंधु नदीके वडे दरवाजेसे समुद्रमें घुसकर पहिलेके समान प्रभास नामके देवको अपने वश किया ॥ ५३ ॥ उस प्रभास देवने संतानके फूलोंकी एक माला मोतियोंकी जाली लटकता हुआ एक सफेद छत्र तथा और भी अनेक आभूषण लक्ष्मणको दिये ॥ ५४ ॥ इसके वाद सिंधु नदीके किनारे किनारे जाकर पश्चिमकी ओरके म्लेच्छ खंडके निवासियोंको अपनी आज्ञा सुनाई और वहांकी सब अच्छी अच्छी चीजें अपने आधीन कीं ॥ ५५ ॥ फिर दोनों भाई पूर्वकी ओर मुडकर निकले विजयार्द्ध पर्वतपर रहनेवाले विद्याधरोंको वश किया तथा हाथी घोडे शस्त्र विद्याधरोंकी कन्याएं और अनेक रत्न अपने आधीन कर उन दोनों विजयी कुमारोंने पूर्व खंडके म्लेच्छ देशके राजाओंको करदेनेवाला बना दिया और इस तरह वहांसे निकलकर चले ॥ ५६–५७ ॥ इसतरह चक्रवर्ती लक्ष्मणने सोलह हजार पट्टबंध राजाओंको एक सौ दश प्रसिद्ध नगरियोंके स्वामी विद्याधरोंको तथा तीनों खंडमें रहनेवाले देवोंको अपना आज्ञाकारी बनाया और इसतरह व्यालीस वर्षमें अपना सब दिग्विजय समाप्त किया । उससमय देव विद्याधर और भूमिगोचरी सब लोग हाथ जोडकर उसकी सेवा कर रहे थे वडे भाई रामचंद्र उसके आगे थे, चक्र उसके साथ था, सब लोग उसकी पूजा (आदर सत्कार) कर रहे थे इसतरह सबतरहके मांगलिक वस्त्राभरण पहिने हुए समा-

तसिद्धयः ॥ ६३८ ॥ वहती जानकी दुःखमप्राणप्रियदर्शनात् । रामोपि तद्वियोगोत्थशोकव्याकुलिताशय ॥ ६३९ ॥ तौ परस्परसदर्शात्परा प्रीतिमवापतु । तृतीयप्रकृतिं प्राप्य नृपो वा सापि वा नृपं ॥ ६४० ॥ आरभ्य विरहाद्वृत्त यथात्तदपृच्छतां । अन्योन्यसुखदुःखानि निवेद्य सुखिन प्रिया ॥ ६४१ ॥ कृतदोषो हत सीता निर्दोषेति निरूप्य तां । स्वीकरोद्राघव सतो विचारानुचराः सदा ॥ ६४२ ॥ ततोरिखेपुरोगच्छत्स्फुरत्पीठगिरौ स्थित । तत्रैवाभिषवं प्राप्य सर्वतीर्थाम्बुसभृतैः ॥ ६४३ ॥ अष्टोत्तरसहस्रोरुसुवर्णकलशैर्मुदा । देवविद्याधराधीशैः स्वहस्तेन समुद्धृतैः ॥ ६४४ ॥ कोटिकाख्यशिला तस्मिन्नुज्जहे राघवानुजः । तन्माहात्म्यप्रतुष्ट सन् सिंहनाद व्यधाद्बलः ॥ ६४५ ॥ तन्निवासी सुनदाख्यो यक्ष संपूज्य तौ मुदा । असिं सौनदक नाम्ना समान चक्रिणेदित ॥ ६४६ ॥ अनुगग ततो गत्वा गगाद्वारसमीपगे । वने निवेश्य शिविरं रथमारुह्य चक्रभृत् ॥ ६४७ ॥ गोपुरेण प्रविश्याब्धि निजनामाङ्कित शरं । मागधावासमुद्दिश्य व्यमुचत्कुचितक्रम ॥ ६४८ ॥ मागधोपि शरं वीक्ष्य मत्वा स्व स्वल्पपुण्यक । अभिष्टुवन्महापुण्यश्चक्रवर्तीति लक्ष्म-

था तथा रामचंद्रका भी हृदय सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए शोकसे व्याकुल हो रहा था ॥ ६३९ ॥ इसलिये वे दोनों ही परस्पर एक दूसरेको देखकर बडे ही प्रसन्न हुए । रामचंद्र तीसरी भिन्न प्रकृति सीताको पाकर और सीता रामचद्रको पाकर विरहसे लेकर सब वृत्तांत एक दूसरेसे पूछने लगे तथा दोनोंने अपने अपने सुख दुःख कह सुनाये ॥ ६४०-६४१ ॥ रावण अपराधी था वह तो मारा ही गया और यह सीता निर्दोष है यही समझकर रामचंद्रने सीताको स्वीकारकर लिया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन लोग सदा विचारके अनुसार ही चलते हैं ॥ ६४२ ॥ तदनंतर वे दोनों ही भाई लंकासे निकलकर पीठ नामके सुंदर पर्वतपर ठहरे, वहांपर देव और विद्याधरोंके राजाओंने अपने हाथसे उठा उठाकर सब तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक हजार आठ सुवर्णके कलशोंसे दोनों भाइयोंका अभिषेक किया ॥ ६४३- ६४४ वहींपर लक्ष्मणने कोटिशिला उठाई और उसके महात्म्यसे संतुष्ट होकर रामचंद्रने सिंहनाद किया ॥६४५॥ वहांके रहनेवाले सुनंद नामके यक्षने बडी प्रसन्नतासे उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और चक्रके ही समान सानंद नामकी तलवार लक्ष्मणको दी ॥ ६४६ ॥ तदनंतर वे दोनों भाई गंगाके किनारे किनारे गये और गंगाद्वारके (जहां गगा समुद्रमें मिलती है) समीप ही वनमें डेरे डाल दिये । लक्ष्मण रथपर सवार होकर गोपुरके (बडे दरवाजेके) रास्ते समुद्रमें गया और अपने दोनों पैर कुछ सकोडकर मागधदेवके निवासस्थानको निशाना बनाकर अपना नाम लिखा हुआ बाण छोडा ॥ ६४७-६४८ ॥ बाणको देखकर मागधने भी अपनेको थोडा पुण्यवान माना और यह महापुण्यवान् है चक्रवर्ती है यही समझकर लक्ष्मणकी स्तुतिकी ॥ ६४९ ॥ उस देवने तीर्थोंके जलसे भरे हुए एक

६२८ ॥ चक्रेण विक्रमेणेव मूर्तीभूतेन चक्रिणा । तेन तेन शिरोग्राहि त्रिखड वा खगेशितु ॥ ६२९ ॥ सोपि प्रागेव बद्धायुर्दुराचरादधोगतिं । प्रापदापत्करीं घोरा पापिना कापरागतिः ॥ ६३० ॥ विजयाब्ज समापूर्य केशवो विश्वविद्विषा । अभय घोषयामास स धर्मो जितभूभुजां ॥ ६३१ ॥ सदानशिष्ट पौलस्त्यमहामात्रादयोलिवत् । मलिना बलचक्रशपादपकजमाश्रयन् ॥ ६३२ ॥ मदोदर्यादितद्देवी दु खनोदनपूर्वक । विभीषणाय लंकैश्यपट्टबध विधाय तौ ॥ ६३३ ॥ दशकठान्वयायातविश्वभुक्ति वितेरतुः । आभूता च त्रिखंडेशौ प्रचडौ बलकेशवो ॥ ६३४ ॥ अथ शीलवती सीतामशोकवनमध्यगा । सग्राम विजयाकर्णनोदीर्णप्रमदान्विता ॥ ६३५ ॥ रावणानुजसुग्रीवपवमानात्मजादय । गत्वा यथोचितं दृष्ट्वा ज्ञापयित्वा जयोत्सव ॥ ६३६ ॥ समयुजत रामेण सम लक्ष्मीमिवापरा । महामणि वा हारेण कुशला कवयोथवा ॥ ६३७ ॥ वाच मनोहरार्थेन संतो धर्मेण वा धियं । मद्भृत्यमित्रसबधाद्भवतीष्टसि-

लक्ष्मणने उसी चक्रसे तीन खडके समान रावणका सिर काटकर अपने आधीन कर लिया ॥ ६२८—२९ ॥ उस रावणने अपने दुराचरणोंसे पहिले नरकायुका बधकर रक्खा था इसलिये मरकर वह अनेक दुःख देनेवाली घोर नरक गतिको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि पापियोंको और कौनसी गति मिल सकती है ॥ ३० ॥ तदनंतर लक्ष्मण ने विजयका शंख पूरा और सब शत्रुओंको अभय देनेकी घोषणाकी सो ठीक ही है क्योंकि जीतनेवाले राजाओंका यही धर्म है ॥ ३१ ॥ उसीसमय रावणके बचे हुए महामंत्री आदि लोगोंने भ्रमरोंके समान मलिन होकर रामचंद्र और लक्ष्मणके चरण कमलोंका आश्रय लिया ॥ ३२ ॥ मंदोदरी आदि रानियां जो दुःखसे रो रही थी उन्हें समझा बुझाकर उनका दुःख दूर किया और फिर दोनों भाइयोंने विभीषण को लंकाका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ तथा रावणकी सब विभूति उसे समर्पण कर दी । इसतरह रामचद्र और लक्ष्मण दोनों भाई बलभद्र और नारायण होकर तीन खंडके स्वामी हुए ॥ ३४ ॥

अथानंतर—शीलवती सीता अशोक वनमें बैठी थी और युद्धमें रामचद्रकी विजय सुनकर बडी ही प्रसन्न हो रही थी ॥ ३५ ॥ विभीषण हनुमान और सुग्रीव आदि मुख्य लोग उसके पास गये, यथायोग्य रीतिसे उसके दर्शन किये और सबने विजयोत्सवकी खबर सुनाई ॥ ३६ ॥ जिसप्रकार महामणिको हारमें लगा देते हैं अथवा कुशल कवि अपनी वाणीको मनोहर अर्थके साथ संबद्धकर देते हैं अथवा सज्जन लोग अपनी बुद्धिको धर्मके साथ सबध कर देते हैं उसीप्रकार दूसरी लक्ष्मीके समान सीता रामचंद्रसे मिलाई, सो ठीक ही है क्योंकि अच्छे सेवक और मित्रोंके संबंधसे इष्ट सिद्धियां हो ही जाती हैं ॥ ३७—३८ ॥ प्राणप्रियके दर्शन न होनेसे जानकीको अपार दुःख हो रहा

सर्वान् गृह्वान् अर्पयितु तदा । नि शक्तिर्वीतवानेतानिति शकाविभायिनः ॥ ६०६ ॥ इतस्ततो भटा व्यग्रा संगरे अजगंगकाः । अमयंत्यंतकस्यापि वीक्ष्माणस्य भीरसं ॥ ६०७ ॥ वाजिनोत्र समुच्छिन्नचरणाः सत्त्वशालिनः । अंगेनैव समुत्थातुमुद्यतिस्मोर्जितौजसः ॥ ६०८ ॥ अभानिभा भटोन्मुक्तशर-नाराचकीलिता । प्रक्षरद्धातुनिष्पदगिरयो वातपवेगयः ॥६०९॥ चक्राद्यवयवैर्भग्नैर्विक्षिप्ता सर्वतो रथा । भांतिस्म भिन्नपोता वा तत्संग्रामाब्धिमध्यगा ॥ ६१० ॥ दिन्यान्येव बहून्यासीत्संग्रामो बलयोर्द्वयो । प्रायेण विमुखे दैवे स्व बल वीक्ष्य भगुरं ॥६११॥ सतांतो मायया सीताशिरश्छित्त्वा दशाननः । विधा-य तव देवीय गृहाणेति दृषाक्षिपत ॥ ६१२ ॥ दिग्मतत्पश्यतोभर्तुर्हृदि मोहे कृतास्पदे । खेचरेश्वरमन्यस्य रामोक्ष्य समरोत्सवं ॥ ६१३ ॥ सीता शीलवती कश्चिदपि स्पृष्टु त्वया विना । शक्तो नास्ति दशास्यस्य मायेय मात्रगाः शुच ॥६१४॥ नाथेति राघव तच्छ्रममब्रवीद्रावणानुज । विभीषणस्य तद्वाक्य श्र-द्धाय रघुनंदनः ॥ ६१५ ॥ गजारिर्गजयूथ वा भास्करो वा तमस्तति । बल विभेदयामास सद्यो विद्याधरेशिनः ॥ ६१६ ॥ प्रकाशयुद्धमुज्झित्वा मायायुद्ध-

थे ॥ ६०७ ॥ जिनके पैर कट गये हैं ऐसे कितने ही प्रतापी और बलवान घोडे अपने शरीरसे ही उछाल मारनेकी कोशिश कर रहे थे ॥ ६०८ ॥ योद्धाओंके द्वारा छोडे हुए वाण और नाराचों (लोहेके वाण) से कीलित हुए हाथी ऐसे अच्छे जान पडते थे मानों जिसमें गेरूके झरने झर रहे हैं और जिनके ऊपर थोडेसे वेत खडे हैं ऐसे निश्चल पर्वत ही हों ॥ ६०९ ॥ टूटे हुए चक्र आदि शस्त्रोंके टुकडोंसे रथ चारों ओर भाग गये थे और वे ऐसे जान पडते थे मानों इस संग्रामरूपी महासागरके मध्यमें अलग अलग हुए जहाज ही हों ॥ ६१० ॥ इसतरह उन दोनों सेनाओंका युद्ध होते हुए बहुत दिन हो गये तब अपना भाग्य प्रतिकूल होनेसे रावणने अपनी सेना नष्ट होती हुई देखी तब वह बहुत ही संतप्त हुआ और उसने मायासे सीताका सिर काटकर (वह बनावटी कटा हुआ सिर था) क्रोधित होकर रामचंद्रके सामने फेंक दिया और कहने लगा कि लो यह रही तुम्हारी देवी सीता ॥ ६११–६१२ ॥ उस कटे हुए सिरको देखकर रामचंद्रके हृदयमें मोहका वेग प्रगट हो आया । इधर विभीषणने रावणकी सेनामें युद्ध-का उत्सव होता हुआ देखा तब वह रामचंद्रसे यथार्थ बात कहने लगा कि हे नाथ ! सीता शीलवती है उसे आपके विना कोई दूसरा छू नहीं सकता यह केवल रावणकी माया है इससे आप कुछ शोक मत कीजिये । विभीषणकी इस बातपर विश्वास रखकर रामचंद्र बहुत ही शीघ्र रावणकी सेनाको इसप्रकार नष्ट करने लगे जैसे सिंह हाथियोंके समूहको नष्ट करता है अथवा सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट कर डालता है ॥ ६१३–६१६ ॥ तब रावणने प्रकाश युद्धको छोडकर माया युद्ध करनेकी इच्छाकी और वह अपने पुत्रोंके साथ उडकर आकाशरूपी आंगनमें आगया ॥ ६१७ ॥ उस युद्धमें उस रावणको दुरीक्ष्य (जो देखा न जा सके) देखकर बहुत चतुर रामचंद्र और लक्ष्मण सिंह

निर्दित्सया। स पुत्रैः सह पौलस्त्यो लंघते स्मनभोंगण ॥ ६१७ ॥ त वीक्ष्य तद्रणे दक्षौ दुरीक्ष्य रामलक्ष्मणौ। गजारिविनतासूनुविनीताभ्या समुद्यतौ ॥ ६१८ ॥ सुग्रीवाणुमदाद्यात्मविद्याधरबलान्वितौ। रावणेन सम रामो लक्ष्मणोप्यग्रसूनुना ॥ ६१९ ॥ सुग्रीवः कुंभकर्णेन मरुतुप्रविकीर्तिना। खरेण केतु रत्नादिरंगदश्चेंद्रकेतुना ॥ ६२० ॥ इंद्रवर्माभिधानेन कुमुदो युद्धविश्रुत'। खरदूषणनाम्नापि नीलो मायाविशारद ॥ ६२१ ॥ एवमन्येपि तैरन्यै रामभृत्याः रणोद्धताः। दशास्यनायकैः सार्द्धं मायायुद्ध व्यकुर्वत ॥६२२॥ तदा रामेण सग्रामे परिभूत दशानन। अवलोक्येंद्रजिन्मध्य प्राविशद्वास्य जीवित ॥६२३॥ तं शक्त्याघ,तयद्रामस्त निरीक्ष्य खगाधिपः। कुपित्वाऽधावदुद्दिश्य सशस्त्र लक्ष्मणाग्रज ॥ ६२४ ॥ तन्मध्ये लक्ष्मणस्तूर्णमभूत दशकधरः। मायागज स-मारुह्य व्यधान्नाराचपजरे ॥ ६२५ ॥ प्रहारावरणेनापि प्रतापी गरुडध्वजः। सिंहपोत इवोद्दप्तो दुर्निवारोरिवारणै ॥ ६२६ ॥ तत्पजरं विभियासौ निर्ययौ निजविद्यया। दृष्ट्वा तद्रावणः क्रुद्ध्वा प्रतीत चक्रमादिशत् ॥ ६२७ ॥ सिंहनादं तदाकुर्वन् गगने नारदादयः। वाहै प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणे स्वस्य तिष्ठता ॥

वाहिनी और गरुडवाहिनी विद्या लेकर अर्थात् उन विद्याओंके रथपर सवार होकर लडनेको तैयार हुए ॥ ६१८ ॥ उनके साथ साथ सुग्रीव हनुमान आदि सब साथी विद्याधर तैयार हुए रावणके साथ, रामचद्र, इंद्रजीतके साथ ल-क्ष्मण, कुंभकर्णके साथ सुग्रीव, रविकीर्तिके साथ हनुमान्, खरके साथ कमलकेतु, इंद्रकेतुके साथ अंगद, इंद्रवर्माके साथ युद्धमें प्रसिद्ध कुमुद, खरदूषणके साथ माया करनेमें चतुर नील तथा और भी रावणके अनेक योद्धा ओंके साथ उद्धत ऐसे रामचंद्रके अनेक योद्धा रावणके मुखिया लोगोंके साथ माया युद्ध करने लगे ॥ १९–२२ ॥ उसीसमय इद्रजीतने देखा कि रामचंद्र रावणको दवाये जा रहे हैं उनका तिरस्कार कर रहे हैं यह देखकर रावणके जीवनके समान वह वीचमें ही घुस पड़ा ॥ २३ ॥ परंतु रामचंद्रने उसे शक्तिकी भारी चोट दी यह देखकर रावण क्रोधित हुआ और शस्त्रोंसहित दौडकर रामचंद्रके ऊपर आया ॥ २४ ॥ इसी वीचमें लक्ष्मण वडी शीघ्रतासे उन दोनोंके वीचमें आगया तब रावणने मायामयी हाथीपर सवार होकर लक्ष्मणको नाराच पंजरमें घेर लिया अर्थात् उसे वाणोंसे ढक लिया परंतु गरुडकी ध्वजा फहरानेवाला लक्ष्मण प्रहारावरण नामकी विद्यासे वडा ही प्रतापी था सिंहके बच्चेके समान उद्धत था और शत्रुरूप हाथियोंसे रोका नहीं जा सकता था, इसलिये वह अपनी विद्यासे ही, उस पंजरको तोड़कर वाहर निकल आया। यह देखकर रावण वहुत ही क्रोधित हुआ और उसने क्रोधित होकर विश्वा-सपात्र चक्रको आज्ञा दी ॥ १६-–१८ ॥ उससमय नारद आदि आकाशमें सिंहनाद करने लगे। वह चक्र प्रद-क्षिणा देकर साक्षात् मूर्तिको धारण करनेवाले पराक्रमके समान लक्ष्मणके दाहिने हाथपर आकर ठहर गया, तब

न्मर्मज्ञान् विजिगीषवः । प्रघातमूर्च्छित कश्चित्प्रवहल्लोहितो भटः ॥ ५९६ ॥ आगात् गृद्ध्रपक्षानिलो देवनोद्धन्वहून् पुनः । नीयमानमिवात्मानं वीक्ष्यान्यो देवकन्यया ॥ ५९७ ॥ सोत्सवः सहसोदस्थात्सहासो दरमूर्च्छितः । वाणाङ्किते रणतूर्यैरणरंगे निरंतरं ॥ ५९८ ॥ नृत्यत्कबंधके सद्य शरच्छादितमंडपे । वद्धान्त्रजालमालोन्नो वहलासृग्प्रवाचितः ॥ ५९९ ॥ राक्षसेन विवाहेन वीरलक्ष्मीं समाक्षिपत् । डाकिन्यश्चदुलं नेदुरारुवन् भैरवं शिवा ॥ ६०० ॥ ऊर्ध्वेवक्त्रमवमद्वन्हिविस्फुलिंगविभीषण । उरिक्षप्तकर्तिकाजालचलल्लोलकपालभृत् ॥६०१॥ अतिपातनिपीतासृग्मरमीद्राक्षसीगण । निशातशरनाराचचक्रादुग्रनिपातनात् । नि प्रभं निःप्रतापं च तदाभूदर्कमंडलं । स्याद्वादिभि समाक्रांतकुवादिकु ववत्तदा ॥६०३॥ दशाननवलान्यापन् भग राघवसैनिकैः । इति प्रवृत्ते संग्रामे सुचिरं तद्रणांगणे ॥ ६०४ ॥ मृताः केचित्पुनः केचित्प्रहताः प्राणमोक्षणे । अक्षमाः पापकर्माण स्थिताः कंठगतासवः ॥ ६०५ ॥ समवर्ती नरान्

को ऐसा मालूम हो रहा था कि देवकन्या मुझे उत्सवके साथ ले जा रहीं हैं इसीलिये वह हंसता हुआ एक साथ उठ खडा हुआ था और फिर वीचमें भी मूर्छित हो गया था अर्थात् मर गया था । वह युद्धस्थल वाणोंसे भर रहा था युद्धके वाजोंसे गूंज रहा था उसमें कटे हुए धड सदा नृत्य करते रहते थे और उसपर वाणोंका मंडप छाया हुआ था ऐसे युद्धस्थलमें जिसकी सब अंतडियोंका समूह वध रहा है और जो बहुतसे वहते हुए खूनसे पूजित हो रहा है ऐसा कोई योधा राक्षस नामका विवाहकर (जवर्दस्ती) वीर लक्ष्मीको अपनी ओर खींच रहा था । वहांपर डाकनियां खूब नाच रही थीं और ऊपरको मुहकर उगलते हुए अग्निके फुल्लिगोंसे भयानक ऐसे सियार (गीदड) खूब रो रहे थे । जिनकी कैंचियां ऊपरको उठी हुई हैं और जो लटकते हुए चंचल कपाल पहिने हुए हैं ऐसे राक्षसियोंके समूह वहुत पी जानेसे पिये हुए सब खूनको उगल रहे थे । बडे तेज वाण और नाराचोंके समूह आदि अनेक शस्त्रोंके चलनेसे उससमय सूर्य मंडल भी कांति और प्रताप रहित हो गया था । जिसप्रकार स्याद्वादको माननेवाले लोग कुवादियोंके समूहोंपर आक्रमण करते हैं उसीप्रकार रामचंद्रकी सेनाने रावणकी सेनाको छितर वितर कर दिया था । इसतरह उस युद्धस्थलमें संग्राम होते होते वहुत दिन हो गये ॥ ५५६–६०४ ॥ कितने ही लोग मर गये कितने ही घायल होगये और कितने ही पापी प्राण छोड न सके इसलिये कंठगत प्राण होकर पडे थे ॥ ६०५ ॥ यमराज सब मनुष्योंको निगल तो गया था परंतु पचा नहीं सका था इसीलिये शंका करनेवाले लोग ऐसे जानने लगे थे मानों यमराजने पचानेमें असमर्थ होकर ही उन सबको उगल दिया हो ॥ ६०६ ॥ जिनके अंग छिन्न भिन्न होगये हैं ऐसे कितने ही योधा उस युधस्थलमें इधर उधर भाग रहे थे और देखनेवाले यमराजको भी भयानक रस उत्पन्न कर रहे

पुरुषार्थत्रयं चैतदेवेत्यन्योन्ययुध्यते। नासद्भले मृतिं वीक्षे कस्यापि स पराभव ॥५८८॥ ममेति मन्यमानोन्य प्राग्युध्वाम्रियत स्वयं। अयुंध्यतैवमुत्क्रोधा सर्वशस्त्रै-रनारत॥५८९॥ सव्यापसव्यमुक्तार्धमुक्तामुक्तैरनाकुल। आनीतमार्गेणैव मार्गणामार्गमात्मन ॥५९०॥ मध्ये विधाय गत्वा द्राक् परं प्रपतिताः परे। दूरे त्यक्त्वा गुणान्वाणैस्तीक्ष्णैः शोणितपायिभिः॥५९१॥ ऋजुत्वाज्जहिरे प्राणान् गुणोपि न गुणः खले। न वैरं न फलं किंचित्तथाप्यघ्नन् शरा परान् ॥५९२॥ परप्रेरितवृत्तीना तीक्ष्णानामीदृशी गति.। नाना खगाः खगान् जघ्नुर्बद्धवैराः खगा इव ॥ ५९३ ॥ तृणाय मन्यमानाः स्वान् प्राणान् पापा परस्परं। लक्ष्यवद्धात्मदृष्टयन्वितासुपातिसितैः शरै ॥ ५९४ ॥ धन्विनः पातयतिस्म गिरीन्वा करिणो बहून्। एकैनैकः शरेणेभमवधीन्मर्मभेदिना ॥ ५९५ ॥ स्वीकुर्वन्त्यतएवा-

और हम लोगोंके ये ही तीन पुरुषार्थ हैं यही समझकर कोई योधा किसी दूसरे योधासे लड रहा था । मैं अपनी सेनामें न तो किसीकी मृत्यु देखूंगा और न किसीका तिरस्कार देखूंगा ॥ ५८८ ॥ यही मानकर कोई योधा स्वयं सबसे पहिले लडकर मरगया था, तीव्र क्रोध करते हुए सब योधा दायें वायें दोनों हाथोंसे वाण आदि छोडने योग्य वरछी आदि आधे छोडने योग्य और तलवार आदि न छोडने योग्य ऐसे सब तरहके शस्त्रोंसे विना किसी व्याकुलता और अवकाशके खूब लड रहे थे। दोनों ओरसे वाण छोडे जा रहे थे वे वाण बीचमें ही परस्पर एक दूसरेको तोडकर और इसतरह अपना रास्ता बनाकर शत्रुओंकी सेनामें पड रहे थे । गुण अर्थात् धनुषकी डोरीको बहुत दूर छोडकर तीक्ष्ण और खून पीनेवाले वाण सीधे होकर भी प्राणोंका नाश कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंके गुण गुण नहीं गिने जाते हैं । वाणोंकी न तो किसीके साथ शत्रुता थी और न उन्हे कुछ फल ही मिलता था तथापि वे शत्रुओंका घात कर रहे थे ॥ ५८९--५९१ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि दूसरोंकी प्रेरणासे काम करनेवाले तीक्ष्ण पुरुषोंकी ऐसी ही गति होती है। जिनकी परस्पर एक दूसरेसे शत्रुता है ऐसे अनेक पापी विद्याधर पक्षियोंके समान अपने प्राणोंको तृणके समान मानकर परस्पर एक दूसरे विद्याधरोंको मार रहे थे। बहुतसे धनुष धारण करनेवाले लोग निशानेपर लगाये हुए तथा जिनपर अपनी दृष्टि लगी हुई है ऐसे प्राणोंको नाश करनेवाले तीक्ष्ण वाणोंसे पर्वतोंके समान बहुतसे हाथियोंको गिरा रहे थे । कितने ही लोगोंने अपने एकही, मर्म भेदी वाणसे हाथीको मार गिराया था सो ठीक ही है क्योंकि इसीलिये जीतनेकी इच्छा करनेवाले लोग दूसरे मर्मके जानकारोंको स्वीकार करते हैं । कोई योधा चोटसे मूर्छित होकर खूनसे तरवतर हो गया था ॥ ५८९--५९५ ॥ तथा आए हुए गीध पक्षियोंकी सासोंकी वायुसे सचेत होकर फिर बहुतोंको मारने लगा था । अन्य किसी योधा

शेषवोधविध्वंसकारणे ॥ ५७१ ॥ महाभये वा संप्राप्ते रणविघ्नविधायिनि । पुरानार्जितपुण्ये वा समस्तनयनाप्रिये ॥ ५८० ॥ रजस्येवं नभोभागलंघिन्याहि: तरंहसि । मूर्छितं गर्भगं कुड्यलिखित चातिशय्य तत् ॥ ५८१ ॥ बलं कलकलं किंचिद्विचेष्टममवत्तदा । विध्वस्तवैरिभूपालचित्तक्षोभोपमे शनैः ॥ ५८२ ॥ पृथौ तस्मिन् रज क्षोभे प्रशांते सति सक्रुधः । प्रस्पष्टदृष्टिसंचारा सेनानायकचोदिताः ॥ ५८३ ॥ गतिप्रपातसंशुद्धा नवाब्दा वा धनुर्धराः । शरवृष्टिं विमुंचतो हृदयानि विरोधिनां ॥ ५८४ ॥ कुर्वंति स्वापरागाणि सद्भटानां रणांगणे । युध्यंतेस्माहवोत्साहात्तेपि तैरेव चोदिताः ॥ ५८५ ॥ द्विषतो वा न सत्वाभिव्यक्तिः स्यात्सुहृद सतां । मया मज्जीवितं दातुं नृपाज्जीवितमाददे ॥५८६॥ तस्य कालोयमित्येको व्यतरत्तद्दण रणे । भृत्यकृत्यं यशः शूरगतिश्चात्र त्रयं फलं ।५८७।

मुक्त होनेसे अर्थात् समयपर फहराई जानेसे मुनियोंके मार्गमें चल रहीं सी जान पडती थीं ॥ ५७८॥ उससमय धूलि उडकर चारों ओर फैल गई थी और वह ऐसी जान पडती थी मानों सेनाके वोझसे खिन्न होकर पृथ्वी सांस ही ले रही हो अथवा पूर्णज्ञानको नाश करनेका कारण ऐसा मिथ्याज्ञान ही फैल गया हो अथवा उस युद्धमें विघ्न करनेवाला कोई बडा भारी भय ही आ गया हो अथवा जिसने पहिले जन्ममें पुण्य संपादन नहीं किया है वह जिसप्रकार सबके नेत्रोंको बुरा लगता है उसीप्रकार सबके नेत्रोंको बुरी लग रही हो इसप्रकार वेगरहित अर्थात् स्थिर रहनेवाली धूलि आकाशमें चारों ओर फैल गई तब सब सेना मूर्छित हुईके समान अथवा गर्भमें रहनेवालेके समान वा दीवालपर लिखे हुए चित्रके समान थोडी देर तक चेष्टा रहित हो गई और उसका सब कलकल शब्द शांत हो गया । जिसप्रकार शत्रुराजाको नष्टकर चित्तका क्षोभ धीरे धीरे शांत हो जाता है उसीप्रकार जब वह बडी भारी धूलि धीरे धीरे शांत हो गई और दृष्टिका कुछ संचार होने लगा अर्थात् कुछ दिखाई देने लगा तब सेनापति लोग युद्ध करनेकेलिये प्रेरणा करने लगे । आज्ञा पाते ही गमन करनेसे शुद्ध हुए नये वादलोंके समान धनुष धारण करनेवाले लोग वाणोंकी वर्षा करने लगे तथा उसी युद्धके मैदानमें शत्रुओंके अच्छे अच्छे योधाओंके हृदयोंको क्रोध रहित करने लगे अथवा उनके हृदयोंको खूनसे तरवतर करने लगे । उन सेनापतियोंके द्वारा प्रेरणा किये हुए वे योधा युद्धके उत्साहसे खूब ही युद्ध कर रहे थे, सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंसे मित्रोंका वल प्रगट होता है परंतु सज्जनोंका बल प्रगट नहीं होता । मैंने अपना जीवन देनेके लिये महाराजसे बहुत कुछ जीविका पाई है ॥ ५७९–५८६ ॥ अब यह उसके लैटानेका वा जीवन देनेका समय है यही समझकर कोई योधा उस युद्धमें अपना ऋण चुका रहा था युद्ध करनेमें एक तो सेवकका कर्तव्य पूरा होता है दूसरे यशकी प्राप्ति होती है और तीसरे शूरवीरोंकी गति मिलती है ये तीन फल मिलते हैं ॥ ५८७ ॥

रिण ॥ ५६९ ॥ पश्चात्प्रसारितागूागुली विलङ्ध्य स्वपेचकाः । अभोरुहारुणावोयद्रकपुष्करशोभिनः ॥ ५७० ॥ परप्रणेयवृत्तित्वद्दर्शकानुविनायिन । रूपे-
वोत्थापयतोलीन् कर्णताले कटस्थितान् ॥ ५७१ ॥ सवलाका इवाभोदाः समुद्यद्धवलध्वजे । केचित्परमदामोदमाघ्रायाभोऽवर्त्मनि ॥ ५७२ ॥ करै
प्रविकसत्पुष्करैस्तैर्योद्धुं समुद्यताः ।, निशितोर्द्धाकुशाघातदलन्नियाणवारिता ॥ ५७३ ॥ मुहुर्विधूनमूर्द्धानः करेणुगणसन्निधौ । प्रशातीभूतसरभा महामात्रा-
धिष्ठिता ॥ ५७४ ॥ मातगास्तुगदेहत्वादाक्रामत इवाखिल । सर्वतो निर्ययुर्वेचैर्जगमा धरणीधराः ॥ ५७५ ॥ केतवश्चानुकूलालेरिता विद्विष प्रति ।
चेलुर्दंडान् परित्यज्य पुरो योद्धुमिवोद्यताः ॥ ५७६ ॥ नभमः शुद्धरूपस्य मलं जलधराकृतिं । अथवापनयंतो वा सच्छादितरवित्विषः ॥ ५७७ ॥
धृतदंडप्रवृत्तित्वाद् वयोतीतानुकारिणः । काले विमुक्तिमत्वाच्च मुनिमार्गानुसारिण ॥ ५७८ ॥ वलावष्टभखिन्नावनिमेनि श्वसितसन्निभ । मिथ्याज्ञान इवा-

किया जायगा क्योंकि उनके दो दो चक्र होते हैं इसीतरह पर्वतके समान अगिले शरीरसे जो बहुत स्थूल हो रहे हैं ॥
५६१–६९ पीछेकी ओर फैली हुई पूछसे जिनकी पूंछका नीचला भाग कुछ खुल रहा है, कमलके (कमलनालके)
समान जिनकी सूंड है खिलते हुए लाल कमलके समान जिनका मुह है, दूसरोंपर प्रेम करनेका अभ्यास होनेसे जो
बच्चोंके समान जान पडते हैं जो क्रोधमे ही मानों गंडस्थलपर वैठे हुए भ्रमरोंको अपने कानरूपी पखोंसे उडा रहे हैं,
उडती हुई सफेद ध्वजाओंसे जो वगलाओंकी पंक्तियों सहित काले वादलोंके समान जान पडते हैं ऐसे कितने ही
हाथी दूसरे हाथियोंके मदकी सुगंध सूघकर आकाशमें खिले हुए कमलके समान अपनी सूंडसे युद्ध करनेके लिये
तैयार हुए थे । जिनकी नोक बहुत पैनी है ऐसे अंकुशोंकी चोटसे घायल होकर वे हाथी चलनेसे रोके जा रहे थे ॥
५७०–५७३ ॥ और हथिनियोंके समुदायमें वे वार वार अपना मस्तक हिला रहे थे उनके सब आरंभ शांत हो गये
थे, मुख्य मुख्य सहायक राजा लोग उनपर वैठे हुए थे और स्थूल शरीर होनेसे वे ऐसे जान पडते थे मानों सब
संसारपर ही आक्रमण करना चाहते हों इसप्रकारके वे ऊंचे हाथी चलते हुए पर्वतोंके समान चारों ओरसे निकलकर
चल रहे थे ॥ ५७४–५७५ ॥ उससमय अनुकूल (पीछेकी) वायु होनेसे ध्वजाएं सब उस वायुसे उडकर शत्रुओंकी
ओर (आगेकी ओर) जा रही थीं और ऐसी जान पडती थीं मानों अपने दंडोंको छोडकर युद्ध करनेके लिये सा-
मने जानेको तैयार ही हुई हों ॥ ५७६ ॥ अथवा निर्मल आकाशमें जो वादलोंका मैल छाया हुआ है उसे दूर करने
केलिये ही उड रही हों अथवा आच्छादित हुई फैली हुई सूर्यकी कांतिको ही दूर करनेकेलिये उड रही हों ॥ ५७७ ॥
अथवा वे ध्वजाएं दंड धारण कर रही थीं इसलिये वृद्धोंका अनुकरण कर रहींसी जान पडती थीं अथवा समयपर

इव सप्रासा मधुरैः किंकिणीरवैः । विजय वा स्वसैन्यस्य घोषयंतो निरंतरं ॥ ५६० ॥ सपक्षा इव सपत्रकंकटा गगनांतरं । लिलंघयिषवो लोला जलफेन-प्रसूनकै ॥ ५६१ ॥ स्वपादनटनृत्तार्थमर्चयंतो धरामिव । हया यवनकश्मीरवाल्हीकादिसमुद्भवाः ॥ ५६२ ॥ स्फुरदुत्खातखड्गांशुविलसत्सादिधिष्ठिता । महा-सैन्याब्धिसंभूततरंगाभाविनिर्गता ॥ ५६३ ॥ द्विषो भीषयितुं वोद्भर्हेषाघोषैर्विभूषणैः । स्वानुकूलानिला शस्त्रभांडा प्रोद्दंडकेतवः ॥ ५६४ ॥ संग्रामाम्भोनिधेः पोताः प्रचेलुः पृथवो रथाः । चक्रेणैकेन चेचक्री विक्रमी नस्तयोर्द्वयं ॥५६५॥ मत्वेति वा द्रुतं पेतुर्दिक्चक्राक्रमिणो रथाः । नायकाधिष्ठिता शस्त्रैः संपूर्णा-स्तूर्णवाजिन ॥ ५६६ ॥ सन्नद्धाः सतु नो युद्धे बद्धकक्षा कथं रथाः । धावंतु पत्तयो वाहा गजाश्चेभि किमातुरैः ॥ ५६७ ॥ जयोस्माभ्विति वा मंदं सभराः स्यदना ययु । सन्मार्गगामिभि शस्त्रधारिभिश्चक्रवर्तिभि ॥ ५६८ ॥ रथैर्दिक्चक्रमाक्रम्य तैर्द्विचक्रं किमुच्यते । महीधरनिभैः पूर्वकायैरैदभ्रगधा-

हुएके समान जान पडते थे ॥ ५९--६० ॥ पंखोंके समान जो वे घोडे कवच पहिने हुए थे उनसे ऐसे चंचल जान पडते थे मानों आकाशको उल्लघन करना ही चाहते हों, अपने फेन रूपी फूलोंसे अपने पैररूपी नटके नृत्य करने के लिये पृथ्वीका पूजन करते हुए के ही समान मालूम हो रहे थे। वे घोडे अरब कश्मीर और वाल्हीक देशोंमें उत्पन्न हुए थे, उनके सवारोंके हाथमें देदीप्यमान और ऊंचेको उठी हुई तलवारोंकी किरणें सुशोभित हो रहीं थीं, महासेना रूपी महासागरमें उत्पन्न हुई लहरोंके समान वे घोडे चल रहे थे और जोर जोरसे हींसनेके शब्दरूपी आभूषणोंसे शत्रुओंको भय उत्पन्न कर रहे थे। इनके सिवाय वायु जिनके अनुकूल चल रही है जिनमें शस्त्ररूपी वर्तन भरे हुए है ऊचे ऊंचे दंडोंमें ध्वजाए फहरा रही हैं और जो संग्राम रूपी महासागरके जहाजसे जान पडते हैं ऐसे बडे बडे रथ भी वहांपर चल रहे थे चक्रवर्ती रावण यदि एक ही चक्रसे पराक्रमी गिना जाता है तो हम लोगोंके पास ऐसे दो चक्र (पहिये) हैं यही समझकर मानों सब दिशाओंमें आक्रमण करनेवाले रथ बहुत शीघ्र आकर संग्राममें पड रहे थे अर्थात् चारों ओरसे आ रहे थे। जिनके स्वामी भीतर बैठे हुए हैं जो शस्त्रोंसे भर रहे हैं तेज चलनेवाले घोडे जिनमें लग रहे हैं और युद्धके लिये जो कमर कसकर तैयार हैं ऐसे हमारे रथ किसतरह तैयार हो रहे हैं। वे सोच रहे थे कि पैदल चलनेवाली सेना चाहे आगे निकल जाओ और घोडा हाथी भी चाहे आगे भाग जाओ परंतु इन जल्दबाजोंसे क्या काम निगलता है जीत तो हमसे ही होगी यही सोचते हुए मानों बोझसे भरे हुए वे धीरे धीरे जा रहे थे। सन्मार्गपर चलने वाले, शस्त्रोंको धारण करने वाले, चक्रवर्तीसे यह समस्त दिक्चक्र वा दिशाओंका समूह आक्रमण किया जाता है, फिर भला रथोंसे तो कहना ही क्या है अर्थात् रथोंसे तो अवश्य ही सब दिशाओंका आक्रमण

मंवेत्प्रकृतिविभ्रम. ॥ ४३० ॥ इति गर्जन्समाक्रांततुंगमातंगसिंहवत् । रविकीर्तिं स्वसेनान्यं हरिणध्वजमादिशत् ॥ ४३१ ॥ युद्धायास्फाल्यतां मेरी शत्रुपक्षक्षयावहा । इत्यादिष्टस्तदैवासौ तथा कृत्वाखिलं बलं ॥ ४३२ ॥ कालांते कालदूतो वा संहसैकीचकार तत् । अथ निर्गत्य लंकाया विभक्तनिजसाधन ॥ ४३३ ॥ सुकुंभेन निकुंभेन कुंभकर्णेन चापरैः । सहजैरिंद्रजिन्मुख्यैरिंद्राख्येनेंद्रकीर्तिना ॥ ४३४ ॥ इंद्रवर्माभिधानेन तनुजैरपरैरपि । महामुखातिकायाख्यदुर्मुखाख्यैर्महाबलैः ॥ ४३५ ॥ खरदूषणधूमाख्यप्रमुखैश्च खगेश्वरैः । इव क्रूरग्रहैर्भास्वान्निदाघः परिवारितः ॥ ४३६ ॥ त्रिजगद्ग्रसनालोलकाललीलां विडंबयन् । न तौ मम पुरः स्थातुं समर्थौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४३७ ॥ तिष्ठतः शशगोमायू किं पुनः संहतौ हरेः । अरावणं भवेदद्य जगदेतत्तयोः ॥ ४३८ ॥ सहावश्यमहं ताभ्यां पालयामि महीं न हि । इत्यायं तर्कितायातनिजामंगलमालपन् ॥ ४३९ ॥ कालमेघमहागंधगजस्कंधमधि-

तब वह विचार करने लगा कि समयका विपरीतपना देखो हरिणोंने आकर सिंहको घेर लिया है । अथवा जिनकी मृत्यु समीप है उनको स्वभावमें भी भ्रम हो जाता है ॥५३०॥ जिसप्रकार बडे भारी हाथीके आक्रमण करने पर सिंह गर्जना करता है उसीप्रकार उसने गर्जनाकी और हरिणोंकी ध्वजाको धारण करनेवाले रविकीर्ति नामके अपने सेनापतिको आज्ञा दी ॥ ५३१ ॥ कि युद्धके लिये शत्रुओंके पक्षके नाशको सूचित करनेवाली मेरी (नगाडा) जल्दी बजाओ । रावणकी आज्ञानुसार सेनापतिने उसीसमय युद्धके नगाडे बजाये और प्रलयकालके अंतमें कालके दूतोंके समान अपनी सब सेना उसने एक जगह इकट्ठी की । तदनंतर अपनी सेनाका अलग अलग विभागकर वह रावण लंकासे निकला ॥ ५३२-५३३ ॥ उसके साथ साथ सुकुंभ निकुंभ कुंभकर्ण तथा और भी सब भाई थे सबसे मुख्य इंद्रजीत, इंद्रकीर्ति, इंद्रवर्मा, आदि सब पुत्र थे महामुख, अतिकाय, दुर्मुख, महाबल, खरदूषण और धूम आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्याधर थे । इसतरह क्रूर ग्रहोंसे घिरे हुए जेठ महीनेके सूर्यके समान वह रावण निकला ॥५३४-५३६॥ उससमय वह तीनों जगतको ग्रासकरनेके लोलुपी ऐसे कालकी लीलाको भी तिरस्कार कर रहा था तथा तर्क वितर्क कर रहा था कि राम लक्ष्मण मेरे सामने कभी नहीं ठहर सकते । क्या सिंहके सामने खरगोश और गीदड ठहर सकते हैं । आज उनके जीते जी यह संसार विना रावणके भले ही हो जाय परंतु उनके साथ साथ मैं पृथ्वीका पालन कभी नहीं कर सकता इसतरह अपने ही अमंगलका तर्क वितर्क करता हुआ रावण आया ॥५३७-५३९॥ उससमय रावण कालके मेघके समान महागंध नामके हाथीके स्कंधपर बैठा था, प्रतिकूल चलती हुई वायुसे पीछेकी ओर उडती हुई राक्षसके चिन्ह वाली ध्वजाओंसे सुशोभित हो रहा था, उसके आगे आगे सूर्यकी कांतिको भी तिरस्कार करनेवाला चक्र और छत्र

संसाधयन् स्थित । राक्षसादिमहाविद्या सिद्धावुपचितोभवत् ॥ ५१९ ॥ तद्विघ्नपूर्वकं लङ्कामवष्टभ्य निवेशनं । प्रयोजनमिति श्रद्दधत सीतापति प्रति ॥ ५२० ॥ नायकाभ्या तत सुग्रीवाणुमतो खसाधिता । दत्वा गरुडसिंहादिवाहन्यौ बधमोचनीं ॥ ५२१ ॥ हननावरणीं विद्याश्वतखोस्य पृथक् पृथक् । प्रज्ञप्तिविद्याविकृतविमानेन महाबल ॥ ५२२ ॥ लङ्कापुरवहिर्भागे तावेवेशयत स्म तौ । नभश्चरकुमारेषु तदारामाज्ञया गिरिं ॥ ५२३ ॥ संप्राप्य युध्यमानेषु रावणस्याग्रसूनुना । संभूयेंद्रजिता यूयं युध्यध्वमिति सक्रुधा ॥ ५२४ ॥ प्रेषिता खचराधीशाः प्राच्याः सर्वाश्च देवता । इयंतं कालमस्माभिर्भवत्पुण्यबलोदयात् ॥ ५२५ ॥ त्वयाभिलषितं कार्यं साधितं पुण्यसंक्षये । समर्था नेत्यसावुक्तो व्यक्तं तामिर्दशाननः ॥ ५२६ ॥ भवतीभिर्वराकीभिर्यात किं मम साध्यते । हन्म्यहं पौरुषेणैव नृमृगान् सहखेचरान् ॥५२७॥ सहायैः साधितं कार्यं लज्जायै ननु मानिनां । इति क्रुद्धः पुरीमागात्तदैवासौ सहेंद्रजित् ॥५२८॥ दुश्चेष्टस्यात्तपुण्यस्य भूत भावि च नश्यति । परिवारमुखाद् ज्ञात्वा परैर्लंकोपरोधन ॥ ५२९ ॥ हरिणेहरिराह्वः पश्य कालविपर्ययं । अथवासमभृत्यूनां

५१९ ॥ इसलिये इससमय हम लोगोंका काम है कि उसमें विघ्न करें लंकाको घेर लें और उसमें घुस जांय । इसतरह विभीषणके कहे हुएको रामचंद्रने भी मान लिया ॥ ५२० ॥ तदनंतर सुग्रीव और हनुमानने अपनी सिद्धकी हुई गरुडवाहिनी सिंह वाहिनी, बंधमोचनी, और हननावरणी ये चार विद्याएं अलग अलग रामचंद्र तथा लक्ष्मण को दीं । इसके बाद दोनों भाइयोंने प्रज्ञप्ति विद्यासे अनेक विमान बनाकर अपनी सब सेना लंका नगरके बाहर मैदानमें जा ठहराई । जब इधरके सब विद्याधर कुमार रामचंद्रकी आज्ञा पाकर पहाडपर जाकर युद्ध करने लगे तब रावणके बड़े पुत्र इंद्रजीतने क्रोधित होकर सब विद्याधर और पहिलेके सब देवताओंको भेजा और कहा कि तुम सब लोग मिलकर उनके साथ युद्ध करो । तब पहिलेके सिद्ध किये हुए अथवा वशमें हुए देवता कहने लगे कि आपके बलवान पुण्यकर्मके उदयसे हमने इतने दिनतक तो आपकी इच्छानुसार सब कार्य सिद्ध किये परंतु अब आपका पुण्य कर्म क्षय हो गया है इसलिये हम कुछ नहीं कर सकते इसतरह उन देवताओंने रावणसे स्पष्ट कह सुनाया ॥ ५२१–५२६ ॥ यह सुनकर रावण कहने लगा कि तुम नीच देवता भले ही चले जाओ तुमसे मेरा क्या काम निकलता है मैं अपने पुरुषार्थसे ही विद्याधरोंके साथ साथ सब मनुष्यरूपी हरिणोंको मार डालूंगा ॥ ५२७ ॥ अभिमानी लोगोंके लिये दूसरेकी सहायतासे कार्य सिद्ध करना लज्जाकी बात है । इसतरह क्रोधित होकर वह रावण उसीसमय इंद्रजीतके साथ नगरमें आया । देखो दुश्चरित्र करनेवाले यदि पुण्यवान भी हों तो भी उनका पहिलेका और होनहार सब नष्ट हो जाता है । परिवारके लोगोंके मुखसे उसने शत्रुके द्वारा लंकाके घिर जानेकी बात सुनी ॥ ५२८–५२९ ॥

न्रूप ॥ ५०७ ॥ सहायाश्वादिशत्तस्य विधेशान् शौर्यशालिनः । लब्धाज्ञः सोपि संतुष्य सद्यो वानरविद्यया ॥ ५०८ ॥ प्रादुर्भावितदुःप्रेक्ष्यनानावानर-सेनया । द्रुत वाराशिमुल्लंघ्य विक्रमाद्वनपालकान् ॥ ५०९ ॥ आक्रम्य निग्रह कृत्वा वनभगं व्यधात्क्रुधा । क्रुद्धीकृतकगघोरं क्रोशंतो वनपालका ॥५१०॥ प्राविशन्नगरीं घोरां श्रावयंतोऽश्रुतश्रुतिं । तदा राक्षसविद्योद्यद्ध्वजमालोपलक्षिताः ॥ ५११ ॥ अभियाता पुरारक्षा योद्धुं पवननंदन । अथानिलसुतादिष्टा वानरानीकनायका ॥ ५१२ ॥ तानभजन समुद्धृत्य प्रहृत्य वनपादपैः । तत स्फुरन्महाज्वालविद्ययासौ वहिःपुरं ॥५१३॥ निरधाक्षीदधिक्षिप्य रूक्षरक्षो वल बली । एव रावणदुर्वारप्रतापप्रोद्यतद्रुम ॥ ५१४ ॥ प्रोन्मूल्यवानरानीकनायको राममाययौ । सन्नाह्य तत्र तु स्थित्वा वल सग्रामसम्मुखं ॥ ५१५ ॥ नागतो रावण केन हेतुनेति विभीषण । अप्राक्षीदथ सोप्याख्यल्लकायां नास्ति रावणः ॥ ५१६ ॥ वालिलोकातरापत्तिं सुग्रीवाणुमतोरपि । विद्यावलावलेपित्वमवगम्य स्वय च सः ॥ ५१७ ॥ निवेश्य निजरक्षाया सुनमिंद्रजिदाह्वयं । अष्टोपवासमासाद्य सम्यग्नियमितेंद्रिय ॥ ५१८ ॥ आदित्यपादशैलेंद्रेविद्याः

मकी विद्यासे जो देखी न जा मके ऐसी वदरोंकी सेनाके रूपमें बनगया। उसने शीघ्रही समुद्रको उल्लंघन किया और अपने पराक्रमसे वनकी रक्षा करनेवालोंपर आक्रमणकर उनका निग्रह किया तथा क्रोधसे रावणके सब वनका नाशकर डाला। तब वनके रक्षक लोग अपनी भुजाओंको ऊंचीकर तथा जोर जोरसे चिल्लाते हुए घोर (लोगोंसे भरी हुई) नगरीमें गये और जो बात कमी नहीं सुनी थी उसे सुनाने लगे। तब राक्षस विद्यासे जिनकी ध्वजाओंके समूह फहरा रहे हैं ऐसे नगरके रक्षक लोग हनुमानसे लड़नेके लिये उसके सामने आये। यह देखकर हनुमानने भी बदरोंकी सेनाके सेनापतियोंको आज्ञा दी और तदनुमार वे सेनापति लोग वनके वृक्षोंको उखाडकर उन्हींसे उनलोगोंको ताडना करते हुए मारने लगे। तदनंतर दैदीप्यमान महाज्वाल नामकी विद्यासे वलवान हनुमानने नगरके बाहर राक्षसोंकी रूखी सेनाको चारों ओरसे घेरकर जला दिया, इसतरह रावणके अनिवार्य प्रतापरूपी उगे हुए वृक्षको समूल नाशकर वंदरोंकी सेनाका नायक वह हनुमान रामचद्रके समीप आगया। तदनंतर सब सेनाको सजाकर युद्ध करनेके लिये सबलोग वहीं ठहर गये ॥ ५०६–५१५ ॥ इसके वाद रामचंद्रने विभीषणसे पूछा कि रावण युद्ध करनेके लिये अभी नहीं आया इसका क्या कारण है? इसके उत्तरमें विभीषणने कहा कि रावण लंकामें नहीं है ॥ ५१६ ॥ वालिका परलोक गमन तथा सुग्रीव और हनुमानके विद्या वलका अभिमान सुनकर उसने अपनी रक्षाके लिये इंद्रजीत नामके पुत्रको नियुक्त किया है तथा आठ दिनका उपवास धारणकर सब इंद्रियोंको वश कर आदित्यपाद नामके पर्वतपर विद्याओंको सिद्ध करता हुआ वैठा है राक्षसादि महाविद्याएं जब सिद्ध हो जायंगी तब वह वहांसे उठेगा ॥ ५१७—

शोवश्य भविष्यति । सद्धानेन विनाशो मा वृथयत्ययशस्कर ॥ ४९८ ॥ निर्वासितोहं निर्भर्त्स्य देशाद्धितमुदाहरन् । इष्ट एव किलारण्ये वृष्टो देव इति श्रुतिः ॥ ४९९ ॥ पुण्यान्ममाद्य संपन्ना यामि रामक्रमाबुजं । इत्यतर्गतमालोच्य विनिश्चित्य विभीषणः ॥ ५०० ॥ जलधेर्जलमुल्लंघ्य सौजन्यमिव सत्वरं । महानदीप्रवाहो वा वारिधिं राममासदत् ॥ ५०१ ॥ लक्ष्मणप्रमुखान्मुख्यान्वेलालीलावहान् बहून् । प्रत्युद्गमय्य विश्रभ्य तमानीय परीक्षया ॥ ५०२ ॥ सोपि ज्ञातानुभावत्वादेकीभावमुपागमत् । तत कतिपयैरेव प्रयाणैर्गतवद्बलं ॥ ५०३ ॥ जलधेस्तटमाश्रित्य सनिविष्ट समततः । तदा तत्राणुमानित्य राम विज्ञापयन्निमं ॥ ५०४ ॥ देवादेशोस्ति चेद्गत्वा लंका शौर्याजिहीर्षया । वनभंगेन ते शत्रोर्मानभग करोम्यह ॥ ५०५ ॥ लंकादाहेन दाह च देहस्याहि तकारिण । तथा सति स मानित्वादसौ चेदागमिष्यति ॥ ५०६ ॥ स्थानभ्रंश त्सुखोच्छेद्यो नागच्छेत्तेजसः क्षतिः । इति श्रुत्वास्य विज्ञप्तिं तदस्तित्वत्वद-

नाश होगा और अपयश करनेवाला यह नाश मुझे दूषित करेगा ॥ ४९८ ॥ इसके सिवाय इसने मेरा तिरस्कारकर मुझे देशसे निकाल दिया है सो तो मेरे लिये हित ही किया है क्योंकि यह मुझे इष्ट ही है " बादल जंगलमें ही जाकर वरसे " यह कहावत आज मुझे पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुई है इसलिये आज मैं रामचंद्रके चरणकमलोंके समीप जाता हू इसप्रकार विभीषणने चित्तमें विचार किया और ऐसा ही निश्चय करलिया ॥ ४९९–५०० ॥ उसने सुजनताके समान वहुत शीघ्र समुद्रका जल उल्लंघन किया और महानदीके प्रवाहके समान वह रामचंद्ररूपी समुद्रके समीप जा पहुंचा ॥ ५०१ ॥ तरंगोंकी लीलाको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदि अनेक बडे बडे योद्धा उसके आते ही खडे होगये सब उससे मिले, आदरसे ले आए और परीक्षाकर उसे अपनेमें मिला लिया वह विभीषण भी सब बातोंका जानकार था इसलिये वह परीक्षामें पास होकर शीघ्र ही उनमें मिल गया । तदनंतर वह चलती हुई सेना कितने ही मुकामकर समुद्रके किनारे जा पहुंची और वहां उसने चारों ओर अपने डेरे डाल दिये । उससमय वहांपर हनुमानने आकर रामचंद्रसे निवेदन किया कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो हमलोग अपनी शूरवीरताको प्रगट करनेकी इच्छासे लंकामें जायं और आपके शत्रु रावणके बनका नाश कर उसका मानभंग करें ॥ ५०२–५०५ ॥ इसके सिवाय लंकाको जलाकर अहित करनेवाले रावणका शरीर जलावें । ऐसा करनेसे अभिमानी होनेसे वह रावण यहांही आवेगा तथा यहां आनेपर स्थान भ्रष्ट होनेसे वह सुखपूर्वक नाश किया जा सकेगा । यदि वह यहां न आ सकेगा तो उसके प्रतापमें हानि पहुचेगी । हनुमानका यह निवेदन सुनकर रामचंद्रने उसे जानेकी आज्ञा दी और बडे बडे शूरवीर विद्याधरोंको साथ देकर उसकी सहायता की । रामचंद्रकी आज्ञा पाकर और संतुष्ट होकर वह हनुमान् शीघ्रही वानर ना-

पोतभूत भवाब्धि किं तत्तरीतुं विनाशयेः । प्राणैरपि यशः श्रेयं मता प्राणैश्च तेन च ॥ ४८७ ॥ पाप कृत्वा तस्यापि क्षीणास्त्वद्यशोऽयशश्चधिक् । कस्येय दुहिना सीता किं तत्र ज्ञायते त्वया ॥ ४८८ ॥ सुज्ञानमप्यविज्ञो कामव्यामुग्धमानसैः । अलौल्सुक्यमनासेषु प्राप्तेषु परितोषण ॥ ४८९ ॥ भुज्यमानेषु वैरस्य विषयेषु न वेत्सि किं । अयोग्यायामनाथाया नाशहतौ वृथा रतिं ॥ ४९० ॥ माकृथाः पापदुःखापलेभ्माक्परयोषिति । आदेशः कीदृशः सोपि स्मार्यो वा भाविवेदिना ॥ ४९१ ॥ चक्रस्य परिपाक च प्रादुर्भूत च भावय । बलानामष्टम राम लक्ष्मण चार्द्धचक्रिणां ॥ ४९२ ॥ आमनति पुराणज्ञाः प्राज्ञ तत्र विचितय । यादृमार्पयतो दोषस्तादृगर्पयतस्तथा ॥ ४९३ ॥ सीता नेति विनिश्चित्य ता रामाय समर्पय । इति लक्ष्मीलतावृद्धिसाधनं धर्मशर्मदं ॥४९४॥ वचोऽवोचद्विचार्योच्चैर्यशः कर्तुं शशिप्रभ । भाषा विभीषणायैतं भाषमाणाय भीषणः ॥ ४९५ ॥ कुपितो रावणो दूतेनैकत्वमुपगम्य मे । पराभव सभामध्ये प्रागदुस्सहमजीजन ॥ ४९६ ॥ संप्रत्यपि दुरुक्तोह त्वया सहजतावलात् । अवध्यो याहि मद्देशादित्यभाषत निष्ठुरं ॥ ४९७ ॥ सोपि दुश्चरितस्यास्य ना-

॥ ४८५–४८८ ॥ अथवा जिनका चित्त कामसे मोहित हो जाता है वे अपनी धारणा और प्रत्यभिज्ञानको अथवा अच्छे ज्ञानको भी भूल जाते हैं । क्या आप इनविषयोंकी दशाको नहीं जानते हैं जवतक ये प्राप्त नहीं होते तबतक तो इनमें बड़ी भारी उत्सुकता बनी रहती है, प्राप्त होनेपर इनमें संतोष रहता है और इनका उपभोग करनेपर इनमें नीरसता आ जाती है इसलिये अयोग्य, अनाथ, विनाशकी कारण तथा पाप और दुखोंका संचय करनेवाली परस्त्रीमें व्यर्थका प्रेम मतकर । आगामी कालमें होनेवाली बातोंके जानकार लोगोंकी क्या आज्ञा है उसे भी कुछ स्मरण करना चाहिये ॥ ४८९–४९१ ॥ तथा चक्रसे उत्पन्न होनेवाले फलका भी विचार कीजिये । पुराणोंके जानकार रामचंद्रको आठवां बलभद्र और लक्ष्मणको आठवां नारायण मानते हैं। हे विद्वान् आप इस बातका भी तो विचार कीजिये । सीताको समर्पण न करनेमें जितना दोष है उतना दोष उसको समर्पण करनेमें नहीं है इसलिये इन सब बातोंका निश्चयकर सीता रामचंद्रको समर्पण कर दीजिये । इसप्रकार विभीषणने बहुत अच्छी तरह विचारकर यशको चद्रमाके समान निर्मल करनेवाले, लक्ष्मीरूपी लताको वढानेवाले तथा धर्म और कल्याणको देनेवाले वचन कहे । इसतरहके वचन कहनेवाले विभीषणके लिये वह कठोर रावण क्रोधित होकर कठोर वचन कहने लगा कि पहिले तो तूने दूतके साथ मिलकर सभामें ही मेरा असह्य तिरस्कार किया था और अब भी तू मुझसे बुरे वचन कहता है तू मेरा भाई होनेसे मारने योग्य नहीं है इसलिये तू मेरे देशसे निकल जा ॥ ४९२–४९७ ॥ रावणकी यह बात सुनकर विभीषण चित्तमें विचार करने लगा कि यह दुश्चरित्री है इसलिये इसका नाश अवश्य होनेवाला है इसके साथ मेरा भी

४७८ ॥ परस्त्रीग्रहण शौर्यं त्वदुपज्ञ भवेद् भुवि । मिथ्योत्तरेण किं मार्गविध्वंसोन्मार्गवर्तिन ॥ ४७९ ॥ दुर्द्धरं तव दुर्बुद्धेर्लोकद्वयभयावह । विषयानिषिद्धांश्च परित्यक्तु वयस्तव ॥ ४८० ॥ परामृशात्र किं युक्त निषिद्धविषयैषणं । विद्धि वैद्याधरीं लक्ष्मीमिमा तव गुणप्रियां ॥ ४८१ ॥ अनर्पयत सीतां त्वां त्यजत्यैव निर्गुण । अकार्यकारिणामत्र गणनीय किमप्रिम ॥ ४८२ ॥ स्व करोष्यभिलाषात्मकार्येण परयोषिति । प्रतिकूलोसि पुण्यस्य दुर्वृत्त्या पापसचयात् ॥ ४८३ ॥ ततो ननु गुण देव विना दैवात्कुत श्रिय । परस्त्रीहरण नाम पापं पापेषु दुस्तरं ॥ ४८४ ॥ विस्तरेण किमुक्तेन नेष्यते तत्तमस्तम । आस्तां तावददो भावि शाप' शीलालयश्रियः ॥ ४८५ ॥ अलमामूलतो दग्धुं कुल क्रोधविधायिनां । नानिच्छंनीं प्रतीच्छामीत्येकमेव तव व्रत ॥ ४८६ ॥

मुख्य हैं इसीलिये परस्त्रीके समर्पण करनेको दोष बतलाते हैं ॥ ४७७-४७८ ॥ अब संसारमें आपके कहे अनुसार परस्त्रीको ग्रहण करना ही शूरवीरता गिनी जायगी । आप अपनी दुर्बुद्धिसे जो यह मिथ्या उत्तर दे रहे हैं उससे दोनों लोकोंमें भय उत्पन्न करनेवाला और दुर्द्धर उन्मार्गकी प्रवृत्ति होगी और सुमार्गका नाश हो जायगा । जो विषय निषिद्ध नहीं है उनके भी त्याग करनेकी यह आपकी अवस्था है फिर भला आप विचार तो कीजिये अब इस अवस्थामें निषिद्ध विषयोंकी इच्छा करना क्या आपको योग्य है आप यही समझिये कि यह विद्याधरोंकी लक्ष्मी आपके गुणोंकी प्रिया है यदि आप रामचद्रको सीता समर्पण न कर देंगे तो यह आपको गुणहीन समझकर आज ही छोड जायगी । परस्त्रीकी अभिलाषा करनेरूप जो बहुत बुरा कार्य है उससे आप अपनेको अकार्य करनेवालोंमें मुख्य गिनने योग्य क्यों बना रहे हैं । इससमय आप दुराचरण करने और पापोंका संचय करनेसे पुण्यके प्रतिकूल हो रहे हैं ॥ ४७९–४८३ ॥ विना गुणोंके पुण्य नहीं होता और विना पुण्यके लक्ष्मी नहीं मिल सकती तथा परस्त्रीका हरण करना पापोंमें भी सबसे बडा पाप है ॥ ४८४ ॥ अधिक कहनेसे क्या लाभ है पाप तुझे सातवें नरकमें ले जायगा । इसलिये क्रोध करनेवालोंके कुलको समूल नाश करनेके लिये जबतक शीलकी भंडार स्वरूप सती सीता लक्ष्मीका होनहार शाप नहीं निकलता है तबतक अर्थात् उसके पहिले ही आप सीता रामचंद्रको समर्पणकर दीजिये । आपने जो " जो स्त्री मुझे न चाहेगी उसे मैं भी कभी नहीं चाहूंगा " यह जो आपने एक व्रत लिया था जो कि संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाजके समान है उसे क्यों आप नष्ट करते हैं । सज्जनोंको प्राण देकर भी यश खरीदना चाहिये परंतु आप मूर्ख हैं क्योंकि आप प्राण और यश दोनों देकर पाप तथा दूसरे कल्पकाल तक टिकनेवाला अपयश खरीद रहे हैं इसलिये आपको धिकार है क्या आप नहीं जानते हैं कि यह सीता किसकी पुत्री है ?

वघोषाख्यमोक्षस्थाने कृतार्चन ॥ ४६८ ॥ प्रज्ञिप्तिं साधयामास भटाष्टशतरक्षित. । सुग्रीवोपि महाविद्या पूजयामास सुव्रतः ॥ ४६९ ॥ सोपवासो गिरौ सम्मेदाख्ये शिद्धसिलातले । तथान्येपि स्वविद्यना खगा. पूजामकुर्वत ॥ ४७० ॥ एवं भूखेचराधीश वल चलितकेतन । रामलक्ष्मणसुग्रीवमरुत्तनदननायक ॥ ४७१ ॥ करींद्रमकराकीर्णं तुरगमतरंगक । प्रलयाभोधिसकाशं लका प्रति चचाल तत् ॥ ४७२ ॥ लकापुरेप्यणुमतो विनिवृत्ता दशानन. । कुभकर्णादिभिर्नासदुप्रवशस्य भास्वतः ॥४७३॥ कर्मेदमुचित ख्यातपौरुषस्य तव प्रभो। स्त्रीरत्नमेतदुच्छिष्ट तदस्मादनुरोधत ॥४७४॥ विसृज्य तामिति प्रोक्तोप्यासक्तस्त्यक्तुमक्षमः । भूमस्तृणमनुष्यस्य रामनाम्नो वल किल॥४७५॥सीता नेतुमतोस्माकमुपर्यागच्छतीति वाक् । श्रूयतेय कथ सीतामोक्ष कुलकलककृत्॥४७६॥ इत्याख्यत्तद्वच सोढुमक्षमो रावणानुज ।सूर्यवंशस्य शौर्यं किं रामस्तृणमनुष्यकः ॥४७७॥ न शृणोसि वच पथ्य वधूना मदनाधक । परदारार्पण दोष वदन् दोषविदावर ॥

नामकी विद्या सिद्धकी उससमय एक सौ आठ योद्धाओंने उसकी रक्षाकी थी । इसीतरह सुग्रीवने भी अनेक व्रत और उपवास धारणकर सम्मेद पर्वतपर सिद्धशिलाके ऊपर अनेक महा विद्याओंकी पूजाकी थी। इसीतरह और भी सव विद्याधरोंने अपनी अपनी विद्याओंकी पूजाकी थी ॥ ४६८-४७० ॥ इसप्रकार जिसमें ध्वजाएं फहरा रही हैं, रामचद्र लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान आदि मुख्य योद्धा हैं वडे वडे हाथी ही जिसमें मगर मच्छ हैं और घोडे ही वडी वडी तरंगे वा लहरें हैं ऐसी प्रलयकालके समुद्रके समान वह भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंकी सेना लंकाके लिये रवाना हुई ॥ ४७१-४७२ ॥

अथानतर-जव हनुमान लका नगरसे वापिस लौट आया था तव कुंभकर्ण आदि भाइयोंने रावणसे प्रार्थनाकी थी कि हे देव ! आप हमारे वडे भारी उच्च वंशमें सूर्यके समान हैं और आपका पौरुष भी संसारमें प्रसिद्ध है इसलिये आपको यह काम करना उचित नहीं है यह स्त्री रत्न उच्छिष्ट है इसलिये आप हम लोगोंके अनुरोध करनेसे इसे छोड दीजिये " इसतरह सवने प्रार्थनाकी परंतु रावण सीतामें आसक्त था इसलिये उसे छोड नहीं सकता था अतएव वह कहने लगा कि रामचंद्र तृण मनुष्य हैं अर्थात् अत्यंत तुच्छ हैं अथवा न कुछके समान हैं उनकी सेना सीताको लेनेकेलिये यहां हमारे उपर आ रही है ऐसा सुन रहे हैं फिर भला आज सीताको कैसे छोड दें यह वात तो कुलको कलंक लगाने वाली है ॥ ४७३-४७६ ॥ रावणका छोटा भाई रावणकी कही हुई इन वातोंको सह नहीं सका और कहने लगा कि आप रामचंद्रको तृण मनुष्यके समान मानते हैं क्या आपने सूर्यवंशकी शूरवीरता नहीं सुनी है आप इससमय कामांध हो रहे हैं इसीलिये भाइयोंके हितरूप वचन नहीं सुनते आप दोषोंके जानकारोंमें भी

परुषं वचः । वारणाशा त्यजत्वस्ति चेदाशा नास्ति वा रणं ॥ ४५७ ॥ यातु मत्पादसेवा स भयामा यातु वारण । तदा तस्याशुभां वाणीं तद्विनाशविधा-
यिनीं ॥ ४५८ ॥ श्रुत्वा दूतोभ्युपेत्यैष्यद्वलिनंवलिनोंतकं । प्रातिकूल्येन वाली वः कृत्रिमः शत्रुरुत्थित ॥४५९॥ पारिपथिकवन्मार्गो दुर्गस्तस्मिन्विरोधिनि ।
इत्यब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवप्रमुखं वलं ॥ ४६० ॥ लक्ष्मणं नायकं कृत्वा प्राहिणोत्खदिरं वनं । गत्वा वैद्याधरं सैन्यं वालिनोभ्यागत वलं ॥ ४६१ ॥ जघानेव
वनं वज्रं प्रज्वलच्छस्त्रसतति । स्वयं सर्ववलेनामा योद्धुं वाली तदागमत् ॥४६२॥ पुनस्तयोरभूद्युद्धं बलयोः काललीलयोः । प्रलयैर्वातकस्तत्र प्रायस्तृप्ति-
मुपेयिवान् ॥ ४६३ ॥ आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तनिशातसितपत्रिणा । लक्ष्मणेन शिरोग्राहि ताल वा वालिनः फलं ॥ ४६४ ॥ तदा स्वस्थानमापन्नौ सुग्रीवानिलनं-
दनौ । सद्य फलति संसेवा प्रायेण प्रभुमाश्रिता ॥ ४६५ ॥ तत सर्वेगमन् रामस्वामिनं सोप्यनीयत । स्वस्थानं सवलो भक्त्या सुग्रीवेण सहानुज ॥
४६६ ॥ विभोर्मनोहरोद्याने किष्किंधे शरदागमे । वल चतुर्दशाक्षौहिणीप्रमं भूभृतामभूत् ॥ ४६७ ॥ लक्ष्मणश्च जगत्पादगिरौ निरशनस्तदा । सप्ताह वि-

वालिके विनाशको सूचित करनेवाली उसकी अशुभ वाणीको सुनकर वह दूत उसीसमय वालिको मारनेवाले रामचंद्र के पास आया और कहने लगा कि आपके प्रतिकूल होकर वालि आपका कृत्रिम शत्रु प्रगट हुआ है ॥४५७-४५९॥ मार्ग अत्यंत कठिन है उसमें अच्छा किला है उसमें शत्रु रहता है इसतरह दूतने कहा । यह सुनकर रामचंद्रने लक्ष्मण को नायक बनाकर सुग्रीव आदिकी सब सेना खदिरके बनमें भेज दी । वज्रके समान जिसके सब शस्त्रोंके समूह दैदीप्यमान हो रहे हैं ऐसी उस विद्याधरोंकी सेनाने बनके समान वालिकी आई हुई सब सेना काट डाली तब वालि स्वयं सब सेनाको लेकर युद्ध करनेके लिये आया ॥४६०-४६२॥ तदनंतर कालके समान लीला करनेवाले उन दोनो वलवानोंका (वालि और लक्ष्मणका) युद्ध होने लगा और काल उस युद्धमें प्रायः प्रलयके समान तृप्त हो गया ॥ ४६३ ॥ अंतमें जिसप्रकार ताल वृक्षका फल तोड लेते हैं उसीप्रकार लक्ष्मणने कानतक खेंचकर धनुषसे वाण छोडा और उससे वालिका शिर काट डाला ॥ ४६४ ॥ उसीसमय सुग्रीव और हनुमानको अपना अपना स्थान मिल गया सो ठीक ही है क्योंकि स्वामीके आश्रय रहकर उनकी सेवा करनेसे उसका फल बहुत शीघ्र मिल जाता है ॥ ४६५ ॥ तदनंतर सब लोग रामचंद्रके समीप आए सुग्रीव रामचंद्रको लक्ष्मण और सब सेनाके साथ बडी भक्तिसे अपने नगरमें लाया और किष्किंधा नगरके मनोहर नामके उद्यानमें सबको ठहरा दिया उससमय शरद ऋतु आगई थी और रामचंद्रके साथ राजाओंकी चौदह अक्षौहिणी सेना होगई थी ॥ ४६६-४६७ ॥ " जहांसे शिवघोष नामके मुनिराज मोक्ष पधारे थे ऐसे जगत्पाद नामके पर्वत पर जाकर लक्ष्मणने सात दिनका उपवास धारणकर पूजाकी और प्रज्ञप्ति

तस्त्वयि दुष्कर ॥ ४४७ ॥ ततो हठात्तवायात किष्किधेशविनाशिन । प्राक् पश्चाच्छक्तिसपत्या सुखोच्छेद्यो दशाननः ॥ ४४८ ॥ इत्यत्रवीत्तदादाय दूत-माहूय भूपति । महामेघाभिधानं मे प्रदायानेकपाग्रिम॥४४९॥सहाऽभ्येतु मया लका चर्च्य पश्चात्तवीप्सित । इत्युक्त्वाऽमुनात्मीयमपि दूत व्यसर्जयत्॥४५० गत्वा तौ रामसदेशात्सुग्रीवस्याग्रजन्मन । कोपमानयतः स्मासाविल्यवोचन्मदोद्धत ॥ ४५१ ॥ एव प्रार्थयमानो मा रामो रामापहारिण । निर्मूल्यानीय सीता किं यशो दिक्षु विकीर्णवान् ॥ ४५२ ॥ दशास्ये साममामोक्त्या समीप्यौ सामवायिके । परुषोक्तिर्मयील्यस्य धीशौर्ये पश्य कीदृशे ॥ ४५३ ॥ इमा तद्दूर्वदुर्भाषा श्रुत्वा राघवसेविना । चौर्येण परदाराणां नेतुरुन्मार्गगामिनः ॥ ४५४ ॥ दोषद्वयानुरूप त्व दड द्रक्ष्यसि चाचिरात् । किं तेन तव चेतय्यमि-च्छेरुच्छिद्य दुर्मद ॥ ४५५ ॥ दत्वा गज कुरूपास स्वामिनो वृद्धिमेष्यसि । अवश्यमचिरेणेति दूतेनोद्दीपित क्रुधा ॥ ४५६ ॥ वाली कालानुकारी तं प्रत्याह

४४८ ॥ इसतरह अंगदके वचन सुनकर रामचंद्रने वालिके दूतको बुलाया और कहा कि आपके यहां जो महामेघ नामका उत्तम हाथी है उसे मुझे समर्पण करो और मेरे साथ लंकामें चलनेकेलिये तैयार हो पीछे आपके कामकी चर्चाकी जायगी इसतरह कहकर और उस दूतके साथ एक अपना दूत देकर उसे विदा किया ॥ ४४९–४५० ॥ वे दोनों ही दूत जाकर वालिके पास पहुचे और उन्होंने रामचंद्रका संदेशा कहकर सुग्रीवके बड़े भाई वालिको वहुत ही क्रोधित किया तव वह मदसे उद्धत हुआ वालि कहने लगा कि ॥ ४५१ ॥ रामचंद्रने मुझसे इसतरह प्रार्थना की है अच्छा देखता हू क्या इसतरह सीताको हरण करनेवाले रावणको नाशकर तथा सीताको लाकर रामचंद्र सव दिशा-ओंमें अपना यश फैला देंगे ? ॥ ४५२ ॥ अपनी इष्टसिद्धिके लिये रावणसे तो ऐसे शांतताके वचन कहला भेजे हैं और उसके निकट संबंधी मुझसे ऐसे कठोर वचन कहला भेजे हैं इनकी बुद्धि और शूरवीरता कैसी है सो तो देखो॥ ४५३ ॥ नीच अभिमानसे भरी हुई ऐसी कठोर भाषाको सुनकर रामचंद्रका दूत कहने लगा कि उन्मार्गपर चलनेवाले रावणने जो चोरी करके परस्त्री हरणकी है सो इन दोनों अपराधोंके अनुसार उसे दंड मिलेगा और तू शीघ्र ही देखेगा अथवा इससे आपसे क्या संबंध है यदि आप अपना हित चाहते हैं तो इस मिथ्या अभिमानको छोडकर हाथी दे दीजिये और स्वामीकी सेवा कीजिये इसतरह करनेसे आप बहुत शीघ्र और अवश्य वृद्धिको प्राप्त होंगे " इसतरह कहकर दूतने उसे क्रोधसे और उद्दीपित किया ॥ ४५४–४५६ ॥ तव कालका अनुचर (शीघ्र मरने वाला) वालि उस दूतसे कठोर वचन कहने लगा कि यदि जीनेकी आशा है तो हाथीकी आशा छोड दो यदि जी-नेकी आशा नहीं है तो सामने युद्धमें आओ अथवा मेरे चरणोंकी सेवा करते हुए वनारसको लौट जाओ । इसतरह

॥ ४३७ ॥ शसति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञा
र्णमुपागत ॥ ४३६ ॥ नत्वा किं बहुनोक्तेन सीता तेन न भाक्ष्यते । अतस्त्वदनुरूप वा कार्यं माभूत्शीतकाः ॥ ४३७ ॥ शसति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञा
क्षिप्रकारिता । इत्याहादाय तत्प्रोक्तमिक्ष्वाकुकुलकेसरी ॥ ४३८ ॥ चतुरंगबलेनामा चित्रकूटवनांतरे । कालमेव बल मत्वानैषीद्वर्षर्तुमित्वरः ॥ ४३९ ॥
तत्रत्यं वालिनो दूत समीक्ष्य रघुनंदन । प्रणम्योपायन दत्वेत्यब्रवींदविमोहित ॥ ४४० ॥ विज्ञापयति मत्स्वामी वालीति बलवानलं । पूज्यपादो यदि
प्रेष्यं मामिच्छति महीपतिः ॥ ४४१ ॥ मा प्रतीच्छतु भृत्यत्व सुग्रीवानिलपुत्रयोः । तावत्किंचित्करावार्यो वेत्ति मैतत्पराक्रमं ॥ ४४२ ॥ तिष्ठत्वत्रैव
देवोहं गत्वा लंकां दशाननं । मानभंगे नियोज्यार्यामानयेऽद्यैव जानकीं ॥ ४४३ ॥ इत्याकर्णिततद्वाक्यः सोप्राक्षील्लक्ष्मणाग्रजः । साममेदविदो वाच्य
किष्किंधेश किमुत्तरं ॥ ४४४ ॥ इति मंत्रिगण सर्वसम्मतः संस्तुतोंगद । शत्रुर्मित्रमुदासीन इति भूपास्त्रयो मता ॥ ४४५ ॥ रावणस्तेषु नः शत्रु-
र्वाली मित्रस्य विद्विषः । कुर्मो यदि तत्कार्यं संवध्नीयात्स शत्रुणा ॥ ४४६ ॥ तथा चोपचयः शत्रोर्दुरुच्छेदो हि तेन सः । अथ वालिवच कुर्मः कर्म-

रामचन्द्र अपनी चारों तरहकी सेना लेकर चित्रकूट वनमें जा पहुंचे । तथा समयको ही बलवान मानकर उन्होंने वर्षा
ऋतु वहीं विताई ॥ ४३७–४३९ ॥ जब रामचंद्र चित्रकूट वनमें निवास कर रहे थे उसीसमय राजा वालिका दूत राम-
चंद्रके समीप आया तथा दर्शनकर प्रणामकर भेट समर्पणकर सावधान होकर इसप्रकार कहने लगा कि हे देव मेरे
स्वामी बहुत बलवान राजा वालि आपसे इसप्रकार निवेदन करते हैं कि पूज्यपाद राजा रामचंद्र यदि मुझे दूत बनाना
चाहते हैं तो हनुमान और सुग्रीवको सेवक न रक्खें क्योंकि ये दोनों ही बहुत थोडा काम करनेवाले हैं यदि आर्य
आप मेरा पराक्रम देखना चाहें तो हे देव आप यहां ही ठहरिये मैं लंकामें जाकर रावणका मानभंगकर सती
जानकीको आज ही ले आऊंगा ॥ ४४०–४४३ ॥ दूतके उन वचनोंको सुनकर रामचंद्र साम नामके उपायके
मेदोंको जाननेवाले मंत्रियोंसे पूछने लगे कि किष्किंधा नगरके स्वामी राजा वालिको क्या उत्तर देना चाहिये ॥
४४४ ॥ तब सब मंत्रियोंकी सम्मतिसे प्रशंसनीय अंगद कहने लगा कि राजा लोग तीन तरहके होते हैं एक शत्रु
दूसरे मित्र, और तीसरे उदासीन ॥ ४४५ ॥ इसमेंसे रावण तो हमारा शत्रु है और वालि मित्रका शत्रु है यदि हम
लोग उसका काम न करेंगे तो वह शत्रुसे मिल जायगा ॥ ४४६ ॥ तथा उसके शत्रुसे मिलजानेपर शत्रु बलवान हो
जायगा और फिर बडी कठिनतासे नाश किया जा सकेगा यदि वालिके कहे हुए कामको करें तो यह काम आपके
लिये बहुत कठिन है ॥ ४४७ ॥ इसलिये सबसे पहिले किष्किंधा नगरके स्वामीके नाश करनेका काम आपके गलेमें
जबर्दस्ती आ पडा है । इसके बाद शक्ति और संपत्ति बढजानेसे सुखपूर्वक ही रावणका नाश किया जा सकेगा ॥

विभो त्वद्रणक्षणे ॥ ४२६ ॥ किमेतेन भवच्छौर्यं वदात्र प्रगटीमवेत् । किं वृथोक्त्या प्रियेणैव राज्ञी मंक्षु त्वयार्पिता ॥ ४२७ ॥ इति तद्वचहासोक्तिव-
न्हिसतपिताशयः । पुष्पकाधिपतिर्दृष्टिविषाहींद्रफणामणिं॥४२८॥आदातुमिच्छतो गंतु गतिं रामोभिवाच्छति । दूतस्त्व यम वध्योसि याहि याहीत्यतर्जयत् ॥
४२९॥निर्जित्य सिंधुराराति गर्जितेनोर्जितक्रुधा । ततः कुंभनिकुंभोग्रकुंभकर्णादिभिर्भटैः॥४३०॥इंद्रजित् सेंद्रचर्मातिकन्यार्कखरदूषणैः । खरेण दुर्मुखाख्येन महा-
मुखखगेशिन॥३३१॥क्रुद्धै कुमारैरन्यैश्च तर्ज्यमानोनिलात्मजः । गर्जितेन वृथानेन वनिताजनसन्मुख ॥४३२॥किं कृत्यमत्र समरे मदीयं श्रृणुते त्तरं । इत्य
वादीत्तदानेदमुचित दुरुत्कीरितं ॥४३३॥ इति तान् वारयन् क्रुद्धान् नयवेदी विभीषणः । याहि भद्रानिवार्योयमकार्यादार्यवर्जितः॥४३४॥शुभाशुभविपाकाना
भाविनां को निवारक । इत्युवाचाणुमाश्रत्य जानकी वर्जिताशना ॥ ४३५ ॥ मदोदर्युपरुध्यास्या ग्राह्यद्या पारणाविधिं । ततो वाराशिमुल्लंघ्य रामाभ्य-

अग्निसे जिसका हृदय संतप्त हो रहा है ऐसा पुष्पक विमानका स्वामी रावण हनुमानको ललकारता हुआ कहने लगा कि जिसकी दृष्टिमें ही विष भरा हुआ है ऐसे बडे भारी सर्पके फणाके मणिको ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवालेकी जो गति होती है उसी गतिको रामचंद्र पहुंचना चाहता है अर्थात् मरना चाहता है हे दूत तू मारने योग्य नहीं है इसलिये तू यहांसे निकल और जल्दी जा ॥ ४२८–४२९ ॥ इसतरह कहकर रावणने बडे क्रोधमें आकर सिंहको भी जीतनेवाली गर्जना की, तदनंतर हाथीके मस्तकके समान उग्र ऐसे कुंभकर्ण आदि योद्धाओंने, इंद्रजीत इंद्रचर्म, अति कायार्क, खरदूषण, खर, दुर्मुख, महामुख आदि विद्याधरोंने तथा और भी क्रोधित हुए कुमारोंने हनुमानको ललकारा तब हनुमानने कहा कि स्त्रियोंके सामने इसतरह व्यर्थ गरजनेसे कुछ लाभ नहीं है अब तुम मेरा उत्तर युद्धमें सुनना यह सुनकर नयोंके जानकार विभीषणने सबको रोका और कहा ऐसे बुरे बचन कहना ठीक नहीं है, वह हनुमानसे भी कहने लगा कि हे भद्र तुम अपने घर जाओ, अकार्य होनेसे आर्य लोगोंके त्याग करने योग्य यह कार्य अनिवार्य है सो ठीक ही है क्योंकि होनहार शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भला कोन रोक सकता है । इसतरह विभीषणने कहा तब हनुमान आहार पानी छोडे हुए सीताके पास आया ॥ ४३०–४३५ ॥ मंदोदरीके उपरोधसे सीताने कुछ थोडा-सा खाया था उसे देखकर और समुद्रको उल्लंघनकर वह हनुमान शीघ्र ही रामचन्द्रके पास आगया ॥ ४३६ ॥ नम-स्कार कर कहने लगा कि बहुत कहनेसे क्या लाभ है सबका सार यही है कि रावण सीताको छोडना नहीं चाहता, इसलिये सीताके अनुकूल कार्य करनेमें देर करना नहीं चाहिये क्योंकि बुद्धिमान लोग निश्चय किये हुए कार्यमें जल्दी करना ही प्रशंसनीय समझते हैं । हनुमानके कहे हुये इसतरहके बचनोंको सुनकर इक्ष्वाकु वंशमें सिंहके समान

४१६ ॥ जित्वा मा विग्रहेणाशु गृह्णीयात्केन वार्यते । इति तन्नाशसंसूचिवचनं दैवचोदितं ॥ ४१७ ॥ श्रुत्वा रामोदयापादिनिमित्तं शुभसूचकं । इदमेवात्र नोमीष्टमिति चित्तेनिलात्मजः ॥ ४१८ ॥ व्याजहार दुरात्मानं दुश्चरित्रदशाननं । अन्यायस्य निषेद्धा त्वं निषेध्यश्चेन्निषेद्धरि ॥ ४१९ ॥ वाडवाग्निरिवाम्भोधौ केन वा स निषिध्यते । अमेयोगमहं ख्यातो राघव सिंहविक्रम ॥ ४२० ॥ अकीर्तिर्निष्फला चंद्रमिति स्मर्तुं तवोचितं । मया बधुत्वसत्रयात्तव पथ्यमुदाहृतं ॥ ४२१ ॥ प्रभो गृहाण चेत्तभ्य रोचते चेन्न माग्रही. । इति दूतवचः श्रुत्वा पौलस्त्य पुनरब्रवीत् ॥ ४२२ ॥ रत्नं ममानिवेद्येदं जनकेन समर्पितं । दर्पाद्दाशरथौ तस्म दाहृतेयं मया रुषा ॥ ४२३ ॥ मद्योग्यवस्तुस्वीकारादकीर्तिश्चेद्भवेन्मम । चक्ररत्नं च मद्धस्तादादातु स राघव ॥ ४२४ ॥ इत्यन्वर्तोजनासूनुरवोचद्दशकंधरं । वच प्रपन्नगंभीरं तदुक्त्यनुसारि यत् ॥ ४२५ ॥ सीता मया हृतेत्येतत्किं वक्षि विदितं जनैः । करे कस्य स्थिता सेति

इसतरह भाग्यकी प्रेरणासे रावणके नाश करनेको सूचित करनेवाले वचन सुनकर हनुमान चित्तमें विचार करने लगा कि रामचंद्रके उदयको प्रगट करनेवाले और शुभकी सूचना करनेवाले निमित्त होरहे हैं और इस विषयमें हमें भी यही इष्ट है ॥४१५–४१८॥तदनंतर वह हनुमान रामचंद्रकी ओरसे दुष्ट और दुश्चरित्री रावणसे फिर कहने लगा कि आप अन्यायको रोकनेवाले हैं यदि रोकनेवालेको ही रोकनेका काम पडे तो उसे कौन रोक सकता है जो बडवानल अग्नि समुद्रमें प्रगट हुई है उसे भला कौन रोक सकता है। यह सीता अभेद्य है इसे कोई चलायमान नहीं कर सकता और मैं सिंहके समान पराक्रमी प्रसिद्ध रामचंद्र हूं इसमें सूर्य चंद्रमाके टिकने पर्यंत विना किसी प्रयोजनके अपकीर्ति होगी इसका स्मरण करलेना भी आपको उचित है मैंने भाईपनेके नातेसे आपके हित करनेवाले वचन कहे हैं यदि आपको अच्छा लगे तो ग्रहण कीजिये नहीं तो मत कीजिये। इस तरह दूत हनुमानके वचन सुनकर रावण फिर कहने लगा ॥ ४१९–४२२ कि यह सीता रत्न मुझे विना खबर दिये ही जनकने अपने अभिमानसे रामचंद्रको दी थी इसीलिये क्रोधसे मैं इसे ले आया हूं ॥ ४२३ ॥ मेरे योग्य वस्तुको स्वीकार करनेमें यदि अपकीर्ति होती हो तो हो। वह रामचंद्र तो मेरे हाथसे चक्र रत्न भी लेना चाहता है। यह सुनकर हनुमान प्रसन्न गंभीर और रावणके कहे अनुसार ही रावणसे कहने लगा ॥ ४२४–४२५ ॥ कि सीता मैंने हरी है ऐसे वचन आप क्या कहते हैं। यह तो संसार जानता है हे विभो जब आपने सीता हरी थी तब यह किसके हाथमें थी, इसके सिवाय आप यह तो कहिये कि क्या इस कार्यसे आपकी शूर वीरता प्रगट होती है इसलिये व्यर्थके वचनोंसे क्या लाभ है आपको इन मीठे वचनोंसे ही वह रानी सीता समर्पण करदेनी चाहिये २६ २७ इस तरह जिसमें हँसी मिल रही है ऐसे गूढ वचनरूपी

त नीत्वा दशाननमजिज्ञपन् । वचोहरोय रामेण प्रहितो देवसन्निधिं ॥ ४०७ ॥ इत्युभावपि योग्येन क्रमेणालोक्य रावण । तदादिष्टासने स्थित्वा प्राभृतार्पणपूर्वक ॥ ४०८ ॥ अभ्यर्हितमितालापैः शृणु देवेति बोधयन् । प्राज्ञो विज्ञापयामास प्रस्पष्टमधुरध्वनि ॥४०९ ॥ अयोध्यामधुनाध्यास्य वर्द्धमानो निजौजसा । आत्माभिगामिकप्रज्ञामाहसगुणभूषण ॥ ४१० ॥ राघवे कुशली देव त्रिखंडाखंडनायक । कुशलोदतसप्रश्नपूर्वमित्थमभाषत ॥ ४११ ॥ सीतान्यस्येति नीता सावसदीयेत्यजानता । किं जात नास्ति दोषो द्राक् प्रेषणीया मनीषिणा ॥ ४१२ ॥ न चेद्विनमिवंशैकभूषणस्य महात्मन । नानारूपमिदं कर्म धर्मशर्मविघातकृत् ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्रमिवाम्भोधेर्न युक्त मलधारण । सीताविमोचनोत्तुंगतरंगैः क्षिप्यता बहि ॥ ४१४ ॥ इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य प्रत्युवाच खगेश्वरः । सीतां नानवबुध्याहमानैष किंतु भूभुजः ॥ ४१५ ॥ ममैव सर्वरत्नानि स्त्रीरत्नं तु विशेषत । प्रेषयत्विति किं वक्तुं युक्त मा ते महीपते ॥

जाननेवाला विभीषण उसीसमय हनुमानको रावणके समीप ले गया और रावणसे निवेदन करने लगा कि "हे देव यह रामचंद्रका दूत है रामचंद्रने आपके समीप भेजा है॥४०६–४०७॥इसप्रकार हनुमानने यथायोग्य रीति और अनुक्रमसे रावणके दर्शन किये और लाई हुई भेट समर्पण कर रावणके बतलाये हुए आसनपर बैठ गया॥४०८॥पहिले तो सुनने योग्य हितरूप और फिर मधुर औरथोडेसे वचनोंसे रावणकी प्रशंसाकी और स्पष्ट वचन कहनेवाला विद्वान् हनुमान निवेदन करने लगा कि हे देव सुनिये॥४०९॥अपने प्रतापसे ही रात दिन बढनेवाले, आत्माभिमान बुद्धिमानी और साहस आदि गुणोंसे सुशोभित तथा क्षेम कुशलमें रहनेवाले राजा रामचंद्रने अयोध्या नगरमें ही विराजमान होकर तीनों खंडके एक स्वामी ऐसे आपका पहिले तो कुशलप्रश्न पूछा है और फिर यह कहला भेजा है ॥ ४१०–४११ ॥ कि आप सीताको किसी दूसरेकी समझकर ले आए हैं परंतु वह मेरी स्त्री है आप विना जाने लाये हैं इसलिये कुछ विगड़ा नहीं है आप बुद्धिमान् हैं इसलिये उसे शीघ्र भेज दीजिये इसमें कुछ दोष भी नहीं है ॥ ४१२ ॥ यदि आप सीताको नहीं भेजेंगे तो विनमि वंशके एक रत्न और महात्मा ऐसे आपका विचित्ररूप यह कार्य धर्म कर्म और कल्याणको नाश करनेवाला होगा ॥ ४१३ ॥ कुलपुत्ररूपी महासागरको मल धारण करना योग्य नहीं है इसलिये सीताको छोड़ने रूप बडी बडी तरंगोंके द्वारा इसे बाहर ही फेंक देना चाहिये ॥ ४१४ ॥ हनुमानके कहे हुए इन वचनोंको सुनकर रावण कहने लगा कि मैं सीताको विना जाने नहीं लाया हूं किंतु मैं राजा हूं इसलिये संसारके सब रत्न मेरे हैं तथा स्त्रीरत्न तो विशेष कर मेरा है । तुम्हारे स्वामी रामचंद्रने मेरे लिये जो यह कहला भेजा है कि सीताको भेज दो सो क्या उन्होंने योग्य किया है युद्धमें मुझे जीतकर वे सीताको शीघ्र ही ले जायं उन्हें कौन रोकता है ।

स्वीकृता द्विप ॥ गोमिन्या सह सीतापि वेत्ति वृत्तोत्तमापरं । त्वमेव कृत्यं निर्णीय द्विड्वृत्तं शीघ्र मे हितं॥३९६॥इत्यमुंचत्साहाय्यैस्तै स कुमार: प्रणम्य त । गत्वाप्य सहसा लंकां ज्ञातो वीक्ष्य विभीषण ॥ ३९७ ॥ रामभट्टारकेणाहं प्रेषितो भवदंतिक । इति सप्रश्रय सर्वं तदुक्तं तमजीगमत् ॥ ३९८ ॥ इदं च स्वयमाहासौ स्वामिसंदेशहारिणं । प्रापयस्त्वं खगाधीश मा तस्मै हितकारिण ॥ ३९९ ॥ रामाभिप्रेतकार्यस्य त्वया सिद्धिस्तथासति । कार्यमेतत्तु मद्द्वारा-विधातु भवतो भवेत् ॥ ४०० ॥ त्वयोक्तोऽपि न चेत्सीता विमुचति स मंदधीः । नापराधस्तवापुण्य स्वयमेव विनक्ष्यति ॥ ४०१ ॥ वर्द्धमानश्रिय दृष्ट्वा रामं तत्पुण्यचोदित । इतो द्वितयलोकैकहित यायामधीश्वरं ॥ ४०२ ॥ इति रक्त स्वयं भूयो धरणीगोचरं बल । पंचाशत्कोटिसंयुक्त लक्षा चतुरशीतिक ॥ ४०३ ॥ सार्द्धत्रितयसंख्यात खेचरानीकमप्यद: । बलेनैतेन सप्राप्य सनृसिंह सलक्ष्मण: ॥ ४०४ ॥ हर्तुमर्यैव सीतां वा सीता च खचेरशिन । समर्थः किंतु दाक्षिण्यं विभोर्नैसर्गिक त्वयि ॥ ४०५ ॥ ततोह प्रेषितस्तेन त्वं च किं वेत्सि नेदशं । इति तद्वचनं श्रुत्वा कार्यविद्रावणानुजः ॥ ४०६ ॥ तदानीमेव

इसतरह कहकर और ऊपर कहे राजाओंको साथ देकर रामचंद्रने हनुमानको विदा किया; हनुमान भी रामचंद्रको प्रणामकर चला और शीघ्र ही लंकामें जा पहुचा । वह वहांका जानकार था इसलिये वह सीधा विभीषणके यहां जा पहुंचा और कहने लगा कि स्वामी रामचंद्रने मुझे आपके पास भेजा है इसतरह कहकर हनुमानने बडी विनयके साथ रामचंद्रके कहे हुए सब समाचार विभीषणको कह सुनाये ॥ ३९७–३९८ ॥ तथा इतने समाचार उसने अपनी ओरसे कहे कि आप रावणका हित करनेवाले और स्वामी रामचद्रका समाचार ले जानेवाले मुझे रावणके पास पहुंचा दीजिये ॥ ३९९ ॥ आपसे रामचद्रके इष्ट कार्यकी सिद्धि अवश्य हो जायगी और ऐसा हो जानेपर यहकार्य मेरे द्वारा आपसे ही हुआ समझिये ॥ ४०० ॥ यदि वह मंदबुद्धि वाला रावण आपके कहनेसे भी सीताको न छोडे तो फिर इसमें आपका कोई अपराध नहीं है वह पुण्यहीन अपने आप नष्ट हो जायगा ॥ ४०१ ॥ इससमय रामचंद्रकी लक्ष्मी बढ रही है यही देखकर उनके पुण्यकी प्रेरणासे ही मानों दोनों लोकोंके हित करनेवाले स्वामी रामचंद्रकी शरण जाना चाहिये यही समझकर पचास करोड चौरासी लाख भूमिगोचरियोंकी सेना और साडे तीन करोड विद्याधरों-की सेना स्वयं अनुरक्त होकर उनमें आ मिली है । वे रामचद्र इतनी सब सेना और भाई लक्ष्मणके साथ स्वयं यहां आ पहुचेंगे ॥ ४०२--४०४ ॥ यद्यपि वे सीताके साथ साथ विद्याधरोंके स्वामी रावणकी लक्ष्मीको भी आज ही हरण करनेको समर्थ हैं तथापि उनका आपमें स्वाभाविक प्रेम है ॥ ४०५ ॥ इसलिये उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है क्या आप इसतरहके सब समाचार नहीं जानते हैं ? हनुमानके इसतरहके कहे हुए बचनोंको सुनकर कार्यको

व्यौ तत्तस्मिन्नीतिवेदिमि । क्रमस्तथापि नोल्लंघ्यः साम तावत्प्रयुज्यता ॥ ३८६॥ कः सामवित्प्रयोक्तव्य इत्यस्मिन् सप्रधारणे । दक्षतादिगुणोपेता बहव सति भूचराः ॥ ३८७ ॥ किंतु नाकाशगामित्वसामर्थ्यं तेषु विद्यते । तस्मात्सेनापति प्रेष्यस्त्वयाय नूतन कृत ॥ ३८८ ॥ दृष्टमार्ग पराधृष्य सिद्धकार्यं श्रुतागम । जात्यादिविद्यासपन्नः स्यादस्मात्कार्यनिर्णय ॥ ३८९ ॥ इत्येतदुपदेशेन मनोवेगाभिधानक । विजय कुमुदाख्यान ख्यात रविगतिं हितं ॥ ३९० ॥ सहायीकृत्य सपूज्य कुमार भवतोऽपर । कार्यवित्कार्यकृच्चास्ति नात्रेति श्लाघयन्नृपः ॥ पवमानात्मज वाच्यस्त्वयैव सविभीषण । अत्र त्वमेव धर्मज्ञः प्राज्ञ. कार्यविपाकवित् ॥ ३९२ ॥ हितो लकेश्वरायास्मै सूर्यवशाग्निमाय च । सीताहरणमन्याय्यमाकल्पमयशस्करं ॥ ३९३ ॥ अपथ्यमिति संश्राव्य रावण रतिमोहित । मोचनीया त्वया सीता तथा सति भवत्कुल ॥ ३९४ ॥ त्वयैव रक्षित पापादपायादपवादनः । इति सामोक्तिभिस्तस्मिन्स्वीकृते-

भेजा जाय तो इसका उत्तर यह है कि यद्यपि अनेक भूमिगोचरी चतुरता आदि गुणोंसे सुशोभित हैं परंतु उनमें आकाशमें चलनेकी सामर्थ्य नहीं है इसलिये आपने जो नया सेनापति बनाया है उसे ही भेजना चाहिये ॥ ३८७–३८८ इस नये सेनापति हनुमानने मार्ग भी देखा है इसे कोई हरा भी नहीं सकता, यह कार्योंको सिद्ध करनेवाला और सब शास्त्रोंका जानकार है। जाति आदि अनेक विद्याओंसे भी यह सुशोभित है इसलिये अवश्य ही इससे कार्यका निर्णय हो जायगा ॥ ३८९ ॥ इसतरहके उपदेशानुसार रामचंद्रने मनोवेग विजय कुमुद, और रविगति आदि राजाओंको साथ किया और हनुमानका खूब आदर सत्कार कर प्रशंसा करने लगे कि आपके सिवाय ऐसा कार्योंका जाननेवाला और कार्योंको करनेवाला कोई दूसरा नहीं है ॥ ३९०--३९१ ॥ रामचंद्र फिर हनुमानसे कहने लगे कि आप विभीषणके पास जाकर इसतरह कहना कि "आप ही इससमय धर्मके जानकार हैं विद्वान हैं प्रत्येक कार्यके फलको जानते हैं और सूर्यवशको नाश करनेकेलिये अग्निके समान इस रावणके हितैषी हैं । रावणने जो सीताका हरण किया है वह अन्याय है कल्पकाल तक अपयश करनेवाला है और अपथ्य वा अयोग्य है । आप रतिसे मोहित हुए रावणको समझाइये और उनसे सीताको छुड़ना दीजिये । इसतरह करनेसे पाप, अपाय (नाश) और अपवाद वा निंदासे अपने कुलकी रक्षा करनेका श्रेय आपको ही मिलेगा । इसतरह शांति भरे वचनोंसे कहना यदि विभीषणने यह बात स्वीकार करली तो फिर सब शत्रु अपने वश ही समझिये । हे दूतोत्तम ! इतना ही नहीं किंतु पृथ्वीके साथ साथ सीता भी अपने यहां आई हुई ही समझिये । इसके सिवाय शत्रुओंके करनेलिये जो कुछ काम हो या जो कुछ समाचार हों उन सबका निर्णय आप ही कर लेना और शीघ्र ही मेरा हित संपादन करना ॥ ३९२--३९६ ॥

सुता ॥ ३७४ ॥ कार्यस्थितिसमादानं चाभ्युपेत्य कृततवरं । तत्कालोचितकार्योपिकुशला तं व्यसर्जयत् ॥ ३७५ ॥ प्रणम्य सोपि तत्पादपंकजं भास्करोदये । गत्वा ततो द्रुतिव्याप रामं स्वागमनोन्मुख ॥३७६॥ वदनाब्जप्रसादेन कार्यसिद्धिं न्यवेदयत् । प्रणम्य स्वामिना सम्यक्परिरम्योचितासनः ॥ ३७७ ॥ उपविष्टो मुदा तेन पृष्टो दृष्टेति मत्प्रिया । सप्रपचमुदीर्यैवमेवंचसत्प्रीतिहेतुकं ॥ ३७८ ॥ निसर्गाद्रावणो दसश्चक्रं चान्यत्समुत्थयौ । लंकायां दुर्निमित्तानि वास न् कृत्याश्च खेचराः ॥ ३७९ ॥ संति तत्सेवकाः सर्वमेतदालोच्य मंत्रिमि । जानक्यानयनोपायो निश्चेतव्यो यथा तथा ॥ ३८० ॥ इतीदमुचित कार्यमवदत्पवनात्मजः । तदुक्त चेतसा सम्यगवधार्योर्जिताशय ॥ ३८१ ॥ सेनापतिं पट्टबंधेनाकृतानिलनंदनं । कृत्वाभिराज्यपट्टं च सुग्रीवस्य महीपतिः ॥ ३८२ ॥ सह ताभ्यां समप्राक्षीन्मंत्रिणः कर्मनिर्णयं । तत्रैवमंगदोवोचद्देव त्रेधा महीभुज ॥३८३ ॥ लोभधर्मासुराद्यादि विजयातामिधानका- । प्रथमे दानमन्यस्मिन् सामात्ये मेददंडन ॥३८४॥ नयज्ञै कार्यसिध्यर्थमित्युपाय प्रयुज्यते । अंतिमो रावणस्तेषु नीचत्वात्क्रूरकर्मकृत् ॥ ३८५ ॥ मेददंडौ प्रयोक्त-

बैठ गया । तब रामचंद्रने बडी प्रसन्नतासे पूछा कि क्या तुमने मेरी प्यारी देखी थी तब हनुमानने रामचंद्रको प्रेम उत्पन्न करनेवाली सब बातें बडे जोरसे और बडे विस्तारसे कहीं ॥ ३७६–३७८ ॥ और कहा कि रावण स्वभावसे ही मदोन्मत्त हो रहा है तथा उसके आयुधशालमें चक्र रत्न भी उत्पन्न हुआ है इसके सिवाय लंकामें बहुतसे अपशकुन हो रहे हैं और उसके विद्याधर सेवक सब बहुत निपुण हैं । यह सब समाचार कहकर हनुमान मंत्रियोंसे फिर यह एक उचित कार्य कहने लगा कि जिसतिस तरहसे सीताको यहां लानेका उपाय निश्चय करना चाहिये । ऊंचे विचार करनेवाले रामचंद्रने हनुमानकी कही हुई बातोंका मनमें अच्छीतरह विचार किया, उसीसमय हनुमानको सेनापतिका पट्ट बांधा और सुग्रीवको युवराजका पट्ट बांधा ॥ ३७९–३८३ ॥ तदनतर वे उन दोनोंके साथ साथ मंत्रियोंसे कार्य करनेका निर्णय करने लगे तब अंगद कहने लगा कि हे देव ! राजा लोग तीन तरहके होते हैं लोभविजयी धर्मविजयी और असुरविजयी नयोंके जाननेवाले नीतिकारोंने कार्य सिद्ध होनेकेलिये लोम विजयीको दान देना धर्मविजयीको सांत्वना देना और असुरविजयीको मेद और दंड देना यही सबसे अच्छा उपाय बतलाया है ॥ ३८४ ॥ इन तीनों तरहके राजाओंमेंसे रावण असुरविजयी है क्योंकि वह नीच है और क्रूरकर्म करनेवाला है ॥ ३८३–३८५ ॥ इसलिये नीतिके जानकारोंको उसके लिये भेद और दंडका ही प्रयोग करना चाहिये यद्यपि वह मेद और दंडकापात्र है तथापि क्रमका उल्लंघन करना ठीक नही है इसलिये पहिले सामका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ३८६ ॥ कदाचित् आप यह निश्चय करना चाहें कि हम लोगोंमें अच्छी तरह सामको जाननेवाला कौन है जिसे

संश्राव्य वानर । रामस्वामिनिदेशेन लेखगर्भकरंडक ॥ ३६५ ॥ मयानीतमिदं देवीत्यप्रेस्याः स तदक्षिपत् । तद्दृष्ट्वा किमय मायाविग्रहो रावणोधम ॥ ३६६ ॥ शंकमानेति सा वीक्ष्य तत्र श्रीवत्सलाञ्छन । रत्नागुलीयक चात्मपतिनामाक्षरांकित ॥ ३६७ ॥ ममेदमपि भात्येव मायेवास्य दुरात्मन । को जानाति तथाप्येतत्पत्र तस्यैव वाभवत् ॥ ३६८ ॥ मद्भाग्यादिति निर्भिद्य मुद्रा पत्रं त्ववाचयत् । वचनानतर वीतशोकया स्निग्धवीक्षया ॥ ३६९ ॥ जीविताद्द त्वया स्थानमधितिष्ठसि मे पितु । इत्युक्तः सीतया कर्णौ पिधाय पवनात्मजः ॥३७०॥ मत्स्वामिनो महादेवी मातर्नहान्यकल्पना । त्वा नेतु मम सामर्थ्यमस्त्येवास्ति पतिव्रते ॥३७१॥ नास्ति भट्टारकस्याज्ञा स्वयमेव महीपतिः । हत्वैत्य रावणं तस्य त्वा नेष्यति सह श्रिया ॥ ३७२ ॥ तत्साहसेन तत्कीर्तिर्व्याप्यतां भुवनत्रय । तत शरीरसंधारणार्थमाहारमाहर ॥ ३७३ ॥ भगवत्यत्र को दोषो राज्ञा ते संगमोऽचिरात् । इत्याश्वस्यात्मा ततस्त्यक्त्वा वैमनस्य मही

खुदे हुए हैं और श्रीवत्स चिन्ह बन रहा है ऐसी रत्नोंकी अंगूठी देखी ॥ ३६५–३६७ ॥ उसे देखकर भी वह सोचने लगी कि मुझे तो यह भी उसी नीचकी मायाके समान जान पडती है किंतु इस बातको कौन जानता है, तथापि मेरे भाग्योदयसे यह पत्र उन्हीका लिखा है, इसतरह सोचकर उसपरकी मुहर तोडकर वह उस पत्रको बांचने लगी । पत्र बांचकर वह सब शोक भूल गई और स्नेहकी दृष्टिसे देखती हुई कहने लगी कि तेने मुझे जीवदान दिया है इसलिये तू मेरे पिताके समान है । सीताकी इस बातको सुनकर हनूमान कानोंपर हाथ रखकर कहने लगा कि तू मेरे स्वामीकी महादेवी है इसलिये मेरी माताके समान है मैं तुझमें कोई और कल्पना नहीं कर सकता । हे पतिव्रते तुझे आजही ले चलनेकी मुझमें सामर्थ्य है परंतु मेरे स्वामीकी ऐसी आज्ञा नहीं है । मेरे स्वामी महाराज रामचंद्र स्वयं आकर और रावणको मारकर उसकी राजलक्ष्मीके साथ साथ तुझे ले जायगे ॥ ३६८–३७२ ॥ इसलिये इस साहससे उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैलेगी अतएव शरीरकी रक्षा करनेकेलिये तू भोजन ग्रहण कर ॥ ३७३ ॥ हे भगवती अब इसमें दोष ही क्या है क्योंकि शीघ्रही महाराजा रामचंद्रके साथ तेरा समागम अवश्य होगा । इसतरह हनुमानने सीतासे कहा उसे सुनकर सीताने अपनी उदासीनता छोड दी, शरीर स्थिर रखनेके लिये बहुत शीघ्र भोजन करना स्वीकार कर लिया और उसीसमय उचित कार्योंके कहनेमें चतुर उस सीताने हनुमानको विदा किया ॥ ३७४–३७५ ॥ हनुमान भी उसके चरणकमलोंको नमस्कारकर सूर्योदय होते ही चला और बहुत शीघ्र रामके समीप जा पहुंचा । रामचंद्र उससमय उसके आनेकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे उन्हें पहिले तो हनुमानने अपने मुख कमलकी प्रसन्नतासे कार्यकी सिद्धि निवेदनकी, स्वामीको प्रणाम किया, अच्छी तरहसे मिला और उनके बताये हुए आसनपर

३५५ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय दशाननवधूसमा । यदि स्वकार्यससिद्धिमभिकामयसे भृश ॥ ३५६ ॥ कृतांजलिरहं याचे गृहाणाहारमविके । शरीरस्य साधनो देहस्तथाहार सुसाधन ॥ ३५७ ॥ वदंति निपुणाः क्ष्माजे प्रसवादि कुतोऽसति । स्थिते वपुषि रामस्य स्वामिनस्त्व वीक्षणं ॥ ३५८ ॥ न चेत्सद्दर्शन साध्यं वपुषैव महत्तपः । न चेन्मद्वचन प्राह्य त्वयाहमपि भोजन ॥ ३५९ ॥ त्यजामीत्यवदत्सीताप्येतच्छ्रुत्वावधार्य च । ममामातापि मातैव मद्दुःखे दुःखिताजनि ॥ ३६० ॥ इति चित्ते विनम्यैतच्चरणौ स्निग्धमेक्षत । मजूषास्थापनाकाले मत्सुताया उपेक्षित ॥ ३६१ ॥ एतन्मा मधुरं सत्याः सतापयति सर्वत । इति प्रलयमापन्ना तदा रावणवल्लभा ॥ ३६२ ॥ आसेदु येन तद्दुःखाद् विनीता प्राविशत्पुरं । शिंशिपास्थस्ततोऽभ्येत्य दूत प्लवंगविद्यया ॥ ३६३ ॥ पराहृत्य कपेर्मूर्त्या स्वयं निद्रालयमिद्रुतान् । निधाय रक्षकान् देव्याः पुरस्तात्समवस्थितः ॥ ३६४ ॥ प्रणम्य तां स्ववृत्तांतं स...

मंदोदरी कहने लगी कि तू अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है तो मैं हाथजोडकर यह मांगती हूं कि हे मा तू आहार ग्रहणकर। क्योंकि सब का कारण शरीर है और शरीरका साधन आहार है॥३५६-३५७॥विद्वान लोग सब यही कहते हैं कि यदि वृक्ष न होगा तो फूल कहांसे आवेंगे इसी तरह यदि शरीर रहेगा तो तू अपने स्वामी रामको देख सकेगी ॥ ३५८ ॥ यदि उनके दर्शन होनेकी संभावना न हो तो इस शरीरसे घोर तपश्चरण ही करना चाहिये। यदि तू मेरी बात नहीं मानेगी मैं भी भोजनका त्याग कर दूंगी। इसतरह मंदोदरीने कहा उसे सुनकर और विचारकर सीता सोचने लगी कि यद्यपि यह मेरी माता नहीं है तथापि माताके समान ही मेरे दुःखमें दुखी हुई इसतरह सोचकर और चित्तमें नमस्कार कर बडे प्रेमसे उसके दोनों चरणोंको देखने लगी। उसे इसतरह देखकर मंदोदरी सोचने लगी कि जिस समय मैंने पुत्रीको संदूकमें रक्खा था उसीके समान यह मुझे सब ओरसे दुःख दे रही है। इसप्रकार शोक करती हुई उस मंदोदरीने बडोंके दुःखसे दुःखी होनेके समान सीताके दुखसे दुखी होकर बडी नम्रतासे नगरमें प्रवेश किया।

अथानंतर—वह हनूमान उसी सीसोंके वृक्षपर बैठा था उसने समय देखकर प्लवंग नामकी विद्यासे अपना रूप वदलकर वदरकासा बना लिया और अपनी विद्यासे उस वागके रक्षकोंको निद्राके आधीनकर अर्थात् मोहितकर वा सुलाकर सीता देवीके सामने जा खडा हुआ ॥ ३५९-३६४ ॥ पहिले तो उस बंदरने उसे प्रणाम किया और फिर अपने आनेका सब समाचार सुनाया और कहा कि "रामचंद्र मेरे स्वामी हैं उनकी आज्ञासे मैं यह पत्र रक्खा हुआ पिटारा लाया हूं" यह कहकर उसने वह पिटारा सीताके सामने रख दिया। उसे देखकर वह संदेह करने लगी कि क्या यह मायामयी शरीर बनाकर नीच रावण ही आया है परंतु पिटारेमें उसने जिसपर अपने पतिके नामके अक्षर

३४४ ॥ पराभव परिप्राप्तो माभूस्त्वमपि तादृशः । मा मस्था मा सपत्नीति मद्वचस्त्वं प्रमाणयन् ॥ ३४५ ॥ त्यज सीतागतं मोहमित्यसौ निजगाद त । तदुक्तेत्तरं वाक्यमभिधातुमशक्नुवन ॥ ३४६ ॥ सम प्राणैरिय त्याज्येत्यगात्स कुपितः पुरं । मदोदरीपरित्यक्तनिजपुत्रीशुगाहिता ॥३४७॥ सीतां मिथिः- श्रिता आविविदा देवभयात् क्षितौ । या निक्षेपयति स्मेति मया कलहकारणात् ॥ ३४८ ॥ आगतामेव मत्पुत्रीं ता त्वा मे मन्यते मन । पापेन विधिना नीता भद्रे त्व दु खकारिणा ॥ ३४९ ॥ अलंध्य केनचिंत्वात्र प्रायेण विधिचेष्टित । इह जन्मनि किं वधुः किं वा त्व मेन्यजन्मनि ॥ ३५० ॥ न जाने त्वा बिलोक्याद्य मम स्नेहः प्रवर्द्धते । यदि मज्जननीत्वं त्व पद्मनेत्रेवबुध्यसे ॥ ३५१ ॥ त्वा मे भावयितुं वष्टि सपत्नीं खचराधिप । तेन वाले मृतिं वापि याहि मागास्तदीप्सित ॥ ३५२ ॥ स्तनप्रसूतिमित्येव वदती प्रापदुत्सुका । तस्याः पयोधरद्वंद्वमभिषेक्तुमिवापतत् ॥ ३५३ ॥ जल गद्गदकंठायाश्चक्षुर्भ्यां स्नेहसूचन । शोकानलपरिम्लान वक्त्राब्ज चाभवत्तदा ॥ ३५४॥ तद्वीक्ष्य जानकी सर्व प्राप्ता स्वामिव मातरं । जायतेस्मार्द्रहृदया वाष्पाविलविलोचना ॥

छोड़ दीजिये " इसतरह मंदोदरीने रावणसे कहा । रावण इसका कुछ उत्तर न देसका इसलिये "प्राणों के साथ ही इसे छोड़ूंगा " इसतरह कहता हुआ वह क्रोधित होकर नगरको चला गया । उसीसमय मंदोदरीने जो अपनी पुत्री संदूकमें रखकर छोड़ दी थी उसका वह शोक करने लगी और कहने लगी कि जिस सीताको निमित्त ज्ञानियोंकी आज्ञाके डरसे मिथिला देशमें पृथ्वीके नीचे गढवा दिया था वही कलह करनेवाली मेरी पुत्री सीता आ- गई है ऐसा मेरा मन स्वीकार करता है । हे भद्रे दुःख देनेवाला पापी विधाता ही तुझे यहां ले आया है ॥ ३४२–३४९ ॥ इस संसारमें कर्मोंके उदयको भला कौन उलंघन कर सकता है । न जाने तू मेरी इसी जन्मकी कोई सबंधिनी है अथवा किसी अन्य जन्मकी संबंधिनी है न जाने क्यों आज तुझे देखकर मेरा स्नेह बढ रहा है । हे कमलनेत्रे! तू मुझे मेरी पुत्री ही ऐसी जान पडती है ॥ ३५०–३५१ ॥ यह विद्याधरोंका स्वामी रावण तुझे मेरी सौत बनाना चाहता है इसलिये हे पुत्री चाहे तू मर जाना परंतु उसकी इच्छानुसार काम मत करना ॥ ३५२ ॥ इसतरह कहती हुई वह बडी ही उत्सुक हुई उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा और उसके स्तन ऐसे जान पडने लगे मानों उसका अभिषेक करनेके लिये ही कुछ नीचेकी ओर झुक गये हों ॥ ३५३ ॥ उसका कंठ गदगद हो गया दोनों नेत्रोंसे स्नेहको सूचित करनेवाला जल गिरने लगा और उससमय उसका मुखकमल शोक रूपी अग्निसे मलिन हो गया मुरझा गया ॥ ३५४ ॥ उन सब कारणोंको देखकर सीताको ऐसा मालूम होने लगा मानों उसे अपनी माता ही मिल गई हो उसका हृदय दुःखसे भीग गया और उसके नेत्रोंमें आंसू भर आए ॥३५५॥ उसके अभिप्रायको जानकर

ग्यत्वाद्यैव घटदासिका । अतिथिर्वाभवत् प्रेतनाथावासनिवासिनां ॥ ३३५ ॥ इति ता मामिवापुण्य स्वीकर्तुं व्यर्थमब्रवीत् । तदाकर्ण्यापि भूभृता समाहितमनास्तदा ॥ ३३६॥ ध्यातिधर्म्यैव नैर्मल्यमादधानाभवत्स्थिरा । खगेशवक्त्रनिर्यातवाग्जालज्वलनावली॥३३७॥सीताधैर्याबुधिं प्राप्य सद्य शातिमगात्तदा । विक्रमेण यथा पुंसः सर्वसाभाग्यसंपदा ॥ ३३८ ॥ स्त्रीसृष्टिमपि जेतारं मामेषा परिभावुका । किलेति क्रुध्यत' पत्युर्दासकोधदवानल ॥ ३३९ ॥ सद्यः सीतालता दग्धु जृंभमाण मनोरणे । मदोदरीहितश्रव्यवचनामृतवारिभि ॥ ३४० ॥ प्रशमय्य किमस्थाने जनवत्कोपवान् भवे· । विचितय किमेषा ते दडयोग्यावभासते ॥ ३४१ ॥ मदारप्रसवारब्धमालाभिक्षेपमर्हति । सतीनां परिभूत्याशु रागामित्वादिका ध्रुव ॥ ३४२ ॥ विद्या विनाशमायांति तस्याः विद्याविपक्षकः । पुरा स्वयंप्रभ हेतोरश्वग्रीवखगाधिप ॥ ३४३ ॥ पद्मावतीनिमित्तेन प्रसिद्धो मधुसूदनः । समासक्त सुताराया विधीरशनिघोषकः ॥

तो तुझे अभी पानी भरनेवाली दासी बनना पडेगा अथवा प्रेतनाथके घर निवास करनेवालोंका (मृत्युका) अभ्यागत बनना पडेगा ॥ ३३५ ॥ जिसप्रकार पुण्यहीन पुरुष लक्ष्मीको वश करनेकेलिये व्यर्थ ही वकवाद करता है उसीप्रकार रावणने सीताको वश करनेके लिये ऊपर लिखे अनुसार व्यर्थ ही वकवाद किया उसे सुनकर सीता चित्तमें समता धारणकर तथा धर्म्य ध्यानके समान निर्मलता धारणकर निश्चल हो गई, और उसीसमय रावणके मुखसे निकले हुए वचनसमूहरूपी अग्निकी पंक्ति सीताके धैर्यरूपी समुद्रको पाकर शीघ्र ही शांत हो गई । तब रावणको क्रोध आया वह सोचने लगा कि जैसे मै अपने पराक्रमसे पुरुषोंको जीतता हूं उसीप्रकार सब तरहकी सैभाग्यरूपी संपत्तियोंके द्वारा स्त्रियोंके समूहको भी जीतनेवाला हूं फिर भी यह सीता मेरा तिरस्कार कर रही है " इसतरह सोचते हुए उसके मनरूपी युद्धस्थलमें बहुत शीघ्र सीतारूपी लताको जलानेके लिये क्रोधरूपी दावानल अग्नि भडक उठी तब मंदोदरीने हितरूप और सुनने योग्य वचनामृत रूपी जलसे उसे शांत किया और कहने लगी कि आप विना ही कारणके क्रोध क्यों कर रहे हैं, आप विचार तो कीजिये क्या यह सीता आपको दंड देने योग्य प्रतीत होती है॥ ३३६–३४१ ॥ मंदार वृक्षोंके फूलोंकी बनाई हुई माला क्या अग्निमें डालनी चाहिये । सतियोंका तिरस्कार करनेसे आकाशगामिनी आदि विद्याएं अवश्य और बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं इसलिये आप भी पक्षरहित पक्षीके समान विद्याहीन हो जायंगे । पहिले स्वयंप्रभाके लिये अश्वग्रीव विद्याधर, पद्मावतीके कारण प्रसिद्ध मधुसूदन, और सुतारामें आसक्त हुआ बुद्धिहीन अशनिघोष तिरस्कार पा चुका है इसलिये आप भी उन्हीं ऐसे मत हो । आप यह भी मत समझिये कि मैं सपत्नी (सौत) होनेके डरसे ऐसा कह रही हूं नहीं आप मेरे वचनोंको प्रमाण मानकर सीताको

स्वामिनी भूत्वा महादेवी पदे स्थिता । त्रिखण्डाधिपतेर्भूया सश्रीर्वक्षस्थले चिरं ॥ ३२४ ॥ विफल माकृथा विद्युच्चपल तव यौवन । हस्तात्पुलस्तिपुत्रस्य रामस्त्वा नेष्यतीत्यद ॥ ३२५॥ वितर्केण कदर्थोरुवन वा विद्धि निष्फल । क्षुधार्तानेकपारातिवक्त्रान्तर्वर्तिनं मृग ॥३२६॥ परित्याजयितु ब्रूहि क समर्थतमः पुमान् । इत्यभ्यधात्तदाकर्ण्य निश्चला वसुधासुता ॥ ३२७ ॥ वसुधेव स्थिता भेत्तुं के वा शक्ताः पतिव्रता । तद्दृष्ट्वा खेचराधीश स्वयमागत्य कातरः ॥ ३२८ ॥ कुल चेद्रक्षितु तिष्ठेर्न विचारक्षम हि तत् । लज्जा चेद्धीनसबधात्सा तस्याः प्रसवोऽत्र न ॥ ३२९ ॥ रामे चेत्प्रेम तद्विद्धि जन्मातरितमन्निभ । चिरं परिचित कस्माद्विस्मराम्यमुनेव त ॥ ३३० ॥ इति चेत्ससृता जतौ केन कस्य न सस्तवः । परिखा वारिधिर्दुर्गस्त्रिकूटाद्रिः खगेश्वराः ॥ ३३१ ॥ दुर्गपाला पुरं लका मेघनादादयो भटा । नायकोऽह कथ तस्य तव भर्तु प्रवेशन ॥ ३३२ ॥ तस्मात्तदाशामुज्झित्वा मदाशा पूरय प्रिये । अवश्यभाविकार्येऽस्मिन् किं कालहरणेन ते ॥ ३३३॥ हसत्याश्च रुदत्याश्च तव प्राघूर्णकोऽस्म्यहं । मत्कातकातासताने काते चूलामणिर्भव ॥३३४ ॥ न चेदसि विभा-

निष्फल होता है । भला कह तो सही भूखसे व्याकुल हुए सिंहके मुंहमें पडे हुए हरिणको छुडानेके लिये इस संसारमें भला कौन पुरुष समर्थ होता है ? इसतरह उस दूतीने कहा उसे सुनकर वह सीता पृथ्वीके समान ही निश्चल बैठी रही सो ठीक ही है क्योंकि पतिव्रताओंको भेदन करनेकेलिये भला कौन समर्थ है सीताको चुपचाप देखकर रावण कातर होकर स्वयं आया ॥ ३२५-३२८ ॥ तथा कहने लगा कि यदि तू कुलकी रक्षा करनेकेलिये बैठी है तो यह बात कुछ विचार करने योग्य नहीं है कदाचित् तुझे लज्जा आती हो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि लज्जा तो नीच लोगोंके (हीनके) संबंधसे होती है यहां तो हीनताकी गंध भी नहीं है ॥ ३२९ ॥ कदाचित् राममें तेरा प्रेम हो सो उसे अब तू एक जन्मका अंतर पडनेके समान समझ कदाचित् यह विचार हो कि रामचंद्रके साथ बहुत दिनका परिचय था उसे मैं अभी कैसे भूल जाऊं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इससंसारमें जीवोंको किसके साथ संबध नहीं है । कदाचित् यह सोचती हो कि रामचद्र मुझे आकर ले जायंगे सो यह भी व्यर्थ है क्योंकि यहां की खाई तो समुद्र है त्रिकूटाचल पर्वत किला है, विद्याधर इसके रक्षक हैं यह नगर लंका है मेघनाद आदि यहांके योद्धा हैं और इसका स्वामी मैं हूं इसमें भला तेरे पतिका प्रवेश कैसे हो सकता है ॥ ३३०-३३२ ॥ इसलिये हे प्रिये तू अब उसकी तो आशा छोड दे और मेरी आशाको पूर्णकर । यह कार्य होनेवाला तो अवश्य है फिर इसमें तू व्यर्थ समय क्यों खो रही है ॥ ३३३ ॥ तू चाहे हंस और चाहे रो मैं तेरा अभ्यागत हो चुका हूं हे सुंदरि ! मेरे सुदर स्त्रियोंके समूहमें तू चूडामणि रत्नके समान हो ॥ ३३४ ॥ यदि तू अपने अभाग्यसे मेरा कहना नहीं मानेगी

पि नीतिमार्गविशारद ॥ ३१४ ॥ प्रारब्धकार्यसंसिद्धावुद्यतस्य विवेकिन । प्राहुर्नीतिविद कोपं व्यसन कार्यविघ्नकृत् ॥ ३१५ ॥ तस्मादस्थानकोपेन कृत-मित्याहितक्षमः । निजागमनवृत्तातमवबोधयितु सती ॥ ३१६ ॥ मनागवसरावेक्षी स्थितस्तावन्निशाकरः । उदयक्ष्माभृदुद्भासि चूडामणिनिभो बभौ ॥ ३१७ ॥ दशाननोऽप्यतिक्राते तत्रास्या दिनसप्तके । सीता कीदृगवस्थेति चिंतयन् दीपिकावृतः ॥ ३१८ ॥ दीव्यत्कल्पद्रुमोपेतनीलाद्रिरिव जगाम । निरी-क्षितु तद्वायात्सोत्कठोंतःपुरान्वितः ॥ ३१९ ॥ मद्भर्तुः कुशलोदत सश्रोष्यामि कदान्विति । मत्वा तां स्तिमिताकारां चिरं वीक्ष्य सविस्मयः ॥ ३२० ॥ न कश्चिदीदृशी स्त्रीषु पतिं भक्तेति चिंतयन् । अपसृत्य स्थितः किंचिद् दूतीं मंजरिकामिधा ॥ ३२१ ॥ प्राहिणोत्तदभिप्राय परिज्ञातु विवेकिनीं । जानकीं विनयेनासौ प्रपद्य शृणु मद्वच ॥ ३२२ ॥ भट्टारिके खगेंद्रस्य खेचरेंद्रप्रियात्मजाः । देव्य पच सहस्राणि त्वत्समाना मनोरमाः ॥ ३२३ ॥ तासा त्व

क्रोध उस कार्यमें अवश्य ही विघ्नकारक होता है ॥ ३१५ ॥ इसलिये असमयमें क्रोध करना ठीक नहीं है इसतरह क्षमा धारणकर सती सीताको अपने आनेका समाचार बतलानेके लिये थोडी देरतक समयकी प्रतिक्षा करता हुआ वहीं ठहर गया इतनेमें ही उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए चूडामणि रत्नके समान चंद्रमा उदय हुआ ॥ ३१६-३१७ ॥ उसी समय रावणने सोचा कि सीताको लाये आज सात दिन होगये उसकी अब क्या दशा है सो भी चलकर देखना चाहिये यही सोचकर और अनेक दीपकोंके साथ साथ कल्पवृक्षों सहित चलते हुए नीलपर्वतके समान दैदीप्यमान होता हुआ अपने सब अंत पुरके (रणवासके) साथ साथ उत्कंठित होकर सीताके देखनेके लिये आया ॥ ३१८–३१९ ॥ उससमय सीता "मैं अपने पतिके राजीखुशीके समाचार कब सुनूंगी" यही सोचती हुई निश्चल बैठी थी उसे देखकर वह बहुत ही आश्चर्य करने लगा और सोचने लगा कि "संसारकी स्त्रियोंमें पतिकी भक्ति करनेवाली मैने तो अन्य कोई ऐसी स्त्री नहीं देखी है" इसीलिये वह कुछ हटकर ठहर गया। उसने सीताका अभिप्राय जाननेके लिये बडी बुद्धिमती मंजरिका नामकी दूती भेजी। वह दूती सीताके पास जाकर बडी विनयसे कहने लगी कि हे देवी तू मेरे वचन सुन ॥ ३२०–३२२ ॥ हे बुद्धिमती इस विद्याधरोंके राजा रावणके तेरे ही समान सुंदरी विद्याधर राजाओंकी पुत्रियें पांच हजार रानी हैं ॥ ३२३ ॥ तू उन सबकी स्वामिनी होकर महादेवी पदपर विराजमान हो और तीन खडके स्वामीके श्रीलक्षण सहित वक्षःस्थलपर बहुत दिनतक क्रीडाकर ॥ ३२४ ॥ यह तेरा यौवन विजलीके समान चंचल है इसे तू व्यर्थ मत खो। "अब रामचद्र रावणके हाथसे तुझे ले जायंगे" इस वितर्कको तू ऐसा ही निष्फल समझ जैसा कि कदंबोंका बडा भारी वन

पद प्रायो मन्वानः सपदावहा ॥ ३०४ ॥ उदयास्तमयौ नित्य देहिनामिति रावण । रविर्दर्शयतीवैष ममतामिति नितान् ॥ ३०५ ॥ ध्यायी रामस्य ग-
त्वांत पुरपश्चिमगोपुरं । आरुह्य लोकमानोगं भ्रमरारावराजितं ॥३०६॥ वन नर्मतुंक नाम नन्दन नन्दनोपम । फलप्रसूनभारानम्रतरुनीकाश्रितं ॥३०७॥नंदन
घवहोद्धूतनानाप्रसवपांशुभि । कृतकाद्रिसरोवापीस्तालान्वितमडपै ॥३०८॥मदनो द्दीपनैर्देशैरन्यैराप्तिमनोहरं । दृष्ट्वा तत्र मनाक् स्थित्वा सप्रमोदः सकौतु
कः ॥ ३०९ ॥ तत्रैकस्मिन् समासन्नदेशे विद्याधरीजनैः । सामादिनिर्दिगी कर्तुमितिताकारवेदिभिः ॥ ३१० ॥ परीता शिंशिपावृक्षमूले शोकाकुलीकृता ।
ध्यायती निभृतां गत्वा शीलौपि कुलरक्षणे ॥ ३११ ॥ मयास्तां शीलमालां वा समालोक्य मरुत्तनो । इय सा मया ज्ञाता सीता ससानिरूपितैः ॥
३१२ अभिज्ञानैर्नृपेन्द्रेण, मम पुण्योदयादिति । तद्दर्शनसमुत्पन्नरागो रावणपापिना ॥ ३१३ ॥ कल्पवल्लीव दग्धेन दावाग्निना मनीषिणा । शोकानितमनीतो-

सब ओरसे चिंतवन करता हुआ वह रामचंद्रका दूत हनूमान अंतःपुरके पश्चिमकी ओरके बडे दरवाजेपर जा चढा और जिसपर अनेक भ्रमर गुंजार कर रहे हैं वहांसे देखने लगा जोफल और फूलोंके बोझसे नम्र तथा सुंदर वृक्षोंसे सब ऋतुओंकी शोभा बढानेवाला है तथा नंदन वनके समान सुंदर है ऐसा नंदन नामका वन देखा। वह वन मंद और सुगंधित बहते हुए वायुसे उडती हुई अनेक फूलोंकी धूलिसे, कृत्रिम बने हुए पर्वत सरोवर बावडी और लताओंके सुंदर मंडपोंसे, कामदेवको उद्दीपन करनेवाले देशोंसे तथा और भी बहुतसी वस्तुओंसे बडाही मनोहर था, उसे देखकर वह प्रसन्न होकर तथा कुछ कौतुक वा आश्चर्य करता हुआ थोडी देर तक ठहरगया ॥३०४–९॥ उसी वनमें किसी समीपके ही स्थानपर सीसोंके वृक्षके नीचे सीता बैठी थी, साम दाम दंड भेद आदि सब उपायोंसे उसे वश करने के लिये इशारोंको जाननेवालीं अनेक विद्याधरियें उसके चारों ओर बैठीं थीं, वह शोकसे व्याकुल हो रही थी तथा "कुलकी रक्षा करनेके लिये जीर्ण शीर्ण होकर तथा मरकर भी प्रयत्नके साथ शीलरूप मालाकी सुर रक्षा करूंगी" इसी बातका वह ध्यान कर रही थी उस सीताको देखकर रामचंद्रके बताये हुए चिन्होंसे उसे पहिचाना और विचार करने लगा कि यह वही सीता है जिसे रावण ले आया है मेरे पुण्यकर्मके उदयसे इसके दर्शन हुए हैं और इसे देखकर एक तरहका प्रेम प्रगट हुआ है जिसप्रकार कल्पलताको दावानल अग्नि जला देती है उसीप्रकार पापी रावणने इसे दुःख दिया है इसप्रकार विचार करते हुए उसका चित्त शोकसे भरगया और क्रोधसे लाल हो गया तथापि वह नीतिमार्गको जाननेमें पंडित था ॥ ३१०–३१४ ॥ इसलिये फिर सोचने लगा कि प्रारंभ किये हुए कामको सिद्ध करनेके लिये जो विवेकी पुरुष तैयार होते हैं उन्हें क्रोध करना नीतिकारोंने एक तरहका व्यसन बतलाया है और वह

संशयं ॥ २९२ ॥ इति मत्वा स्वनामांकमुद्रिका मरिप्रयेदसी । वर्णादिमिरिति व्यक्तमुक्ता तस्मै ददौ नम ॥ २९३ ॥ स रामचरणांभोजं विनम्य नगनांतरं । समुत्पत्य समुल्लंघ्य समुद्रं सत्रिकूटकं ॥ २९४ ॥ त्रिषट्कयोजनायामं नवयोजनविस्तृतं । द्वात्रिंशद्गोपुरोपेत रत्नप्राकारवेष्टितं ॥ २९५ ॥ नानामवनसंकीर्णं मणितोरणभास्वरं । महामेरुसमुत्तुंग रावणावासमाजितं ॥ २९६ ॥ अलिमुंरकोकिलालापैर्लसत्कुसुमपल्लवैः । सरागहासं गायद्भिरिवोद्यानैर्मनोहरं ॥ २९७ ॥ लंकानगरमासाद्य सीतान्वेषणतत्पर । गृहीतभ्रमराकारो दशाननसभागृहे ॥ २९८ ॥ इंद्रजित्प्रमुखान् भूपकुमारान् वीक्ष्य सादरं । मंदोदरीप्रभृत्येतद्वनिताश्च निरूपयन् ॥ २९९ ॥ नताखिलखगाधीशमौलिमालार्चितक्रम । मध्येसिंहासन सिंहविक्रम शक्रसन्निभं ॥ ३०० ॥ नीलाद्रिमिव गंगोरुतरंगैश्चमरीरुहैः । दधूयमानमालोक्य रावण रावितद्विष ॥ ३०१ ॥ अहो पापस्य कोप्येष विपाकोयमपीदृश । किल धिग्धर्ममुल्लंघ्य परदाराभिलाषुकः ॥ ३०२ ॥ ध्रुव तन्नारदेनोक्तमकालमरणं ध्रुवं । भावीति भावयन् सीता तत्सभायामलक्षयन् ॥ ३०३ ॥ मंदमंदप्रभे भानौ दिने सति दिनात्यये । सद्वायस-

मकानोंसे संकीर्ण थी, मणियोंके तोरणोंसे सुशोभित थी, महामेरुके समान ऊंचे ऊंचे रावणके मकानोंसे सुंदर थी, भ्रमर तथा नर कोइलोंकी मधुर आवाजसे गाते हुएके समान अनेक उद्यानोंसे वह मनोहर थी और दैदीप्यमान फूल तथा पत्तोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानों रागपूर्वक हंस रही ही हो। ऐसी लंकामें पहुचकर वह सीताके ढूंढनेमें लगगया, उसने भ्रमरका रूप धारण कर लिया और फिर रावणके सभाभवनमें गया ॥ २९४--२९८ ॥ वहांपर उसने बडे आदरसे इंद्रजीत आदि अनेक राजकुमारोंको देखा और फिर मंदोदरी आदि रावणकी रानियोंको भी देखा ॥ २९९ ॥ तदनंतर नमस्कार करते हुए समस्त विद्याधरोंके राजाओंके मुकुटोंके समूहसे जिसके चरणकमल पूजे जा रहे हैं, जो सिंहके समान पराक्रमी है, इंद्रके समान सुशोभित है, सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान है तथा नील पर्वतके समान जिसके शरीरपर गंगा नदीकी बडी बडी तरंगोंके समान अनेक चमर दुलारा जा रहे हैं और जो शत्रुओंका रुलानेवाला है ऐसे रावणको देखा ॥ ३००--३०१ ॥ रावणको देखकर वह सोचने लगा कि हाय ! यह इसतरहका किसी पाप कर्मका फल है, अवश्य ही इसे बार बार धिकार है क्योंकि इसने धर्मका उल्लंघनकर परस्त्रीकी इच्छा की है ॥ ३०२ ॥ नारदने जो कहा था कि इसका अकालमरण अवश्य होनेवाला है सो बात सर्वथा सत्य है इसतरह विचार करते हुए उस सभामें सीता नहीं देख पडी ॥ ३०३ ॥ जिससमय सूर्यका ताप मंद पडगया वह दीन होगया दिन अस्त होनेका समय होगया उस समय जीवोंकी कारणरूप संपदाओं और वास्तविक संपदाओंको सदा उदय और अस्तरूप मानता हुआ सूर्य मानों रावणको यही उपदेश देता हुआ चला जा रहा है इसी विषयको

कदाचिदेतेन सह सम्मेदपर्वतं । सिद्धकूटाभिधे तीर्थेऽभ्यर्च्य प्रतिमा गतः ॥ २८२ ॥ सम्यगर्च्य मया भक्त्या वन्दित्वा पिहितोऽमित सुभगानः । जटाकुटीरधारी शुभयज्ञोपवीतकः ॥२८३॥ कषायवस्त्रः कक्षावलंबितकमण्डलुः । कौतूहला [illegible] नैष्ठिकब्रह्मचारिणः ॥२८३॥ नारदोऽपि [illegible] ॥ अवतीर्य नभोमार्गात्परीत्य जिनमन्दिरं ॥ २८४ ॥ [illegible] ॥ २८५ ॥ [illegible] वेलान्दृष्ट्वा तदवीदृषी । रामलक्ष्मणयोरर्धभरतस्वामितानिरात् ॥ २८६ ॥ [illegible] ॥ २८७ ॥ विहरन्तीं वने सीतां रावणो मायया हरत् । तदान्वेषणार्थमस्माभिर्मनोऽर्पितं ॥ २८८ ॥ [illegible] ॥ इति तद्वचनात्तोषादेवागताः स्वो प्रतीतिर ॥ २८९ ॥ तौ च तद्वचनात्पूतसुतौ [illegible] । अथ [illegible] प्रभञ्जनात्मजः ॥ २९० ॥ [illegible] देवोऽस्ति चेद्देव्या स्थानमन्वेषयाम्यहं । [illegible] इति तेनोक्त्वा [illegible] । [illegible]

मुनि मुझे अपनी जगह (युवराजपद) मिलेगी या नहीं । मेरे इन वचनोंको सुनकर उन्होंने कहा था कि रामचंद्र और लक्ष्मणको बहुत शीघ्र ही आधे भरतका स्वामीपना (बलभद्र नारायणपद) मिलनेवाला है यदि तू उनका बाहर जानेका कुछ काम करेगा तो तेरे मनोरथ पूर्ण हो जायगे । तेरे भेजनेका क्या काम है सो भी मैं बतलाये देता हूं । रामकी रानी सीता वनमें विहार कर रही थी उसे देखकर रावण मायाचारीसे हरण कर लेगया है इसलिये राम लक्ष्मण दोनों ही भाई आज अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकेलिये लंकामें भेजने योग्य किसी पुरुषको ढूंढ रहे हैं उनके वचन सुनकर हम दोनोंको संतोष हुआ और हम दोनों ही यहां आपके समीप आए हैं ॥ २८१–२८९ ॥ रामलक्ष्मण दोनोंने उनकी बातें सुनकर यथायोग्य रीतिसे उनका आदर सत्कार किया । तदनंतर प्रभंजनका पुत्र अमितवेग (अणुमान् अथवा हनुमान) निवेदन करने लगा कि हे देव यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सीता देवीका स्थान ढूंढूं । हे महाराज आप उनके पहिचाननेकेलिये कुछ चिन्ह बतला दीजिये ॥ २९०–२९१ ॥ इसतरह हनुमानके वचन सुनकर राजा रामचंद्रने यह मानलिया कि विनमिके वंशरूपी आकाशमें चंद्रमाके समान इस हनुमानसे निसंदेह मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा फिर रूप आदिसे मेरी प्यारी सीता ऐसी है ऐसी है इसतरहके कुछ चिन्ह बतलाकर अपने नामकी अंगूठी उसे दी ॥ २९२–२९३ ॥ वह हनुमान रामचंद्रके चरण कमलोंको नमस्कारकर आकाश मार्गसे चलने लगा और समुद्र तथा त्रिकूटाचलको उल्लंघनकर लंका नगरमें जा पहुंचा । वह लंका बारह योजन लंबी थी, नौ योजन चौड़ी थी, उसमें बत्तीस बड़े बड़े दरवाजे थे, रत्नोंके कोटा परकोटा थे, वह अनेक तरहके

स्तत्रेद सम्यगब्रवीत् । खगाद्रिदक्षिणश्रेण्या पुर किलकिलाह्वय ॥ २७१ ॥ तदधीशो वलींद्राख्यो विख्यातः खेचरेष्वमा । प्रियागुसुंदरी तस्य प्रिया तस्यां तनूद्भवौ ॥ २७२ ॥ वालिसुग्रीवनामानावजायावहि भूभुज । पितर्युपरितेऽजायताग्रजस्याधिराजता ॥ २७३ ॥ ममापि युवराजत्वमजनिष्ट क्रमागतं । एवं गच्छति मत्स्थानमपहृत्य मदग्रजः ॥ २७४ ॥ लोभक्रांताशयो देशात्स निर्वासयतिस्म मां । एषोपि दक्षिणश्रेण्या विद्युत्कांतापुरेशिनः ॥ २७५ ॥ प्रभञ्जनखगाधीशस्तनूजोमितवेगवाक् । त्रिधाविद्योजनादेव्यामव्याहतपराक्रमः ॥ २७६ ॥ नभश्चरकुमाराणा समुदाये परस्परं । कदाचिदात्मविद्यानामनुभावपरीक्षणे ॥ २७७ ॥ विजयार्द्धगिरेर्मूर्ध्नि क्रमं विन्यस्य दक्षिण । वामपादेन भास्वतमपहृत्य पुनस्तदा ॥ २७८ ॥ त्रसरेणुप्रमाणं स्वं शरीरमकृताद्भुतं । ततः प्रभृति विद्येशैर्विस्मयाहितमानसैः ॥ २७९ ॥ अणुमानिति हर्षेण निखिलैरभ्यधाय्ययं । पीतव्याकरणाभोधिः सखा प्राणाधिको मम ॥ २८० ॥ गत्वा

राज्यका त्याग करदिया तब बड़े होनेसे वालिको राज्य मिला था और मुझे अनुक्रमसे प्राप्त होनेवाला युवराजपद मिला था । इसतरह कितना ही काल वीत जानेपर मेरे बडे भाईने मेरा युवराज पद छीन लिया और लोभके वशीभूत होकर मुझे घरसे निकाल दिया । यह मेरे समीप वैठा हुआ भी दक्षिण श्रेणीके विद्युत्कांता नगरके राजा प्रभंजन विद्याधरका पुत्र है, अमितवेग इसका नाम है यह अंजनादेवीसे उत्पन्न हुआ है तीनों तरहकी विद्याएं जानता है और इसका पराक्रम अखंडनीय है ॥ २७०--२७६ ॥ किसी एक समय विद्याधर कुमारोंका समुदाय परस्पर अपनी अपनी विद्याओंके शक्तियोंकी परीक्षा करनेकेलिये विजयार्द्ध पर्वतके मस्तकपर गया था, वहांपर इसने अपना दहिना पैर तो पर्वतपर ही रक्खा और वायें पैरको वढाकर उससे सूर्यमंडलमें जाकर ठोकर लगाई फिर इसने अपना शरीर अद्भुत त्रसरेणुके समान वना लिया । उससमयसे लेकर चित्तमें अत्यंत आश्चर्य करते हुए सब विद्याधरोंने बडी प्रसन्नता से इसका नाम अणुमान् रक्खा है । इसने व्याकरणरूपी समुद्र पी डाला है और मेरा प्राणोंसे भी अधिक प्यारा मित्र है ॥ २७७–२८० ॥ किसी एक दिन मैं इसके साथ सम्मेद शिखर पर्वतपर गया था वहांपर सिद्धकूट नामके तीर्थ क्षेत्रपर वहुतसी प्रतिमाओंकी पूजा की थी. भक्तिपूर्वक वंदना की थी और वहींपर बडे शुभभावों सहित वैठ गया था । दैव योगसे उसीसमय वहां नारद आये वे जटाओंका मुकुट पहिने थे गलेमें यज्ञोपवीत था, उनके कषायले वस्त्र थे, बगलमें रत्नोंका कमंडलु था, हाथमें छतरी थी और वे नैष्ठिक ब्रह्मचारीके व्रत पालन करनेवाले थे । इसीतरह उनकी चोटी लटक रही थी और रौद्रध्यानमें वे तल्लीन हो रहे थे । आकाशसे उतरकर उन्होंने जिनमंदिरकी प्रदक्षिणा दी और एक जगह भगवानका स्तोत्र करते हुए वैठ गये । उनके पास जाकर मैंने पूछा था कि हे

प्राहिणोत्तु कुमारोभ्य दूतं स्वं धीरयन्निति ॥ २६१ ॥ पितृलेखार्थमाध्याय रुद्धशोक क्रुधोद्धतः । अतकस्याकमारोढुं स लंकेशः किमिच्छति ॥२६२॥ शशस्य सिंहपोतेन किं विरोधेस्ति जीविका । सत्यमासन्नमृत्यूना सद्यो विध्वसन मतेः ॥ २६३ ॥इत्युद्धतोदितै कोपमाविष्क्रैय लक्ष्मणः । जनको भरतः शत्रुघ्नश्च तद्वृत्तकश्रुत ॥ २६४ ॥ सप्राप्य राघव सोपचारमालोक्य युक्तिमत् । वाक्यै शोकं समंनेतुं तदैवं ते समब्रुवन् ॥ २६५ ॥ चौर्येण रावणस्यैव परदारापहारिण । पराभवः परिद्रोग्धा दुगतमाधर्मवर्तन- ॥ २६६ ॥ सीताशापेन दाह्योसौ निर्विचारमकार्यकृत् । महापापकृतां पापमस्मिन्नेव फलिष्यति ॥ २६७ ॥ उपायश्चिंत्यता कोपि सीताप्रत्यायनं प्रति । इति तैर्वोधितो राम सुप्तोत्थित इवाभवत् ॥ २६८ ॥ तत्काले खेचरद्वंद्व दौवारिकनिवेदित । नृपागतमागत्य यथामितमलोकत ॥ २६९ ॥ भविष्यद्वलदेवोपि कृततद्योगसंम्मद । एतदागमनं कस्मात्कौ भवतौ कुमारकौ ॥ २७० ॥ इत्यन्वयुक्त सुग्रीव

पिताके पत्रका अर्थ समझकर रामचंद्रका शोक तो रुक गया और वे क्रोधसे उद्धत होकर कहने लगे कि रावण मृत्युकी गोदमें सोनेके लिये क्या चाहता है ॥२६२ ॥ सिंहके बच्चेके साथ विरोध करनेसे क्या खरगोशकी जीविका चल सकती है ? अथवा ठीक है. क्योंकि जिनकी मृत्यु समीप है उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है ॥ २६३ ॥ इसतरह उद्धत वचन कहकर उन्होंने अपना क्रोध प्रगट किया । तदनंतर लक्ष्मण, जनक, भरत और शत्रुघ्न इस समाचारको सुनकर रामचंद्रके समीप आए, बडी विनयसे उनसे मिले और युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे उनका शोक दूर करनेके लिये वे सब उससमय इसप्रकार कहने लगे ॥ २६४–२६५ ॥ कि रावण ने जो इसतरह चोरीकर परस्त्रीका हरण किया है इससे उसका ही तिरस्कार हुआ है । वह सबका शत्रु है, दुष्ट है और अधर्मकी प्रवृत्ति करनेवाला है ॥२६६॥ वह सीताके शापसे जलने योग्य है और विना विचारे ही अकार्योंका करनेवाला है । महापाप करनेवालोंका पाप इसी लोकमें अपना फल दे लेता है ॥ २६७ ॥ अब सीताको वापिस लानेका कोई उपाय सोचना चाहिये " इसतरह कहकर उन लोगोंने रामचंद्रको वढाया तब रामचंद्र सोतेसे उठे हुएके समान सावधान हुए ॥ २६८ ॥ इसीसमय रामसे मिलनेके लिये दो विद्याधर आए, द्वारपालने आकर रामको खबर दी, रामकी आज्ञासे वे भीतर बुलाये गये और उन्होंने यथायोग्य रीतिसे रामके दर्शन किये ॥ २६९ ॥ होनहार बलभद्र राम उनसे मिलकर प्रसन्न हुए और पूछने लगे कि आप दोनों ही कुमार कौन हैं और कहांसे आए हैं । इसके उत्तरमें सुग्रीव अच्छी रीतिसे कहने लगा कि विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक किलकिल नामका नगर है उसमें सब विद्याधरोंमें प्रसिद्ध बलींद्र नामका विद्याधर राज्य करता था । उसकी प्रियंगुसुंदरी नामकी रानीसे वालि और सुग्रीव नामके दो पुत्र हुए थे । ... ...ीताने

२५० ॥ मंक्षु दूतमुखादेतत्प्रापणीयमिति स्फुटं । तत्राजाज्ञागतोस्मीति लेखगर्भकरंडकं ॥ २५१ ॥ न्यधाच्चाग्रे तदादाय शिरसा रघुनंदन । विमोच्य पत्रमत्रस्थं स्वयमित्थमवाचयत् ॥ २५२ ॥ इतो विनीतानगरात् श्रीमतः श्रीमतां पतिः । प्रेमप्रसारितात्मीयभुजाभ्यां स्वप्रियात्मजौ ॥ २५३ ॥ परिष्वज्यानुयुज्यागक्षेमवार्त्तां तत परं । इदमाज्ञापयत्यत्र दक्षिणाब्ध्यतरस्थिताः ॥ २५४ ॥ षट्पंचाशन्महाद्वीपाश्चक्रवर्त्यनुवर्तिनः । केशवाश्च समाहात्म्यात्तदर्द्धपरिरक्षिण ॥ २५५ ॥ द्वीपोस्ति तेषु लंकाख्यस्त्रिकूटाद्रिविभूषित । तस्मिन् विनमिसतानविद्याधरवरेशिनां ॥ २५६ ॥ चतुष्टये व्यतिक्रांते प्रजापालनलोलुप । रावणाख्य खलो लोककंटक स्त्रीषु लंपट ॥ २५७ ॥ तनोभूदन्यदा तस्य नारदेन रणेच्छुना । रूपलावण्यकांत्यादिकथित क्षितिजाश्रितं ॥ २५८ ॥ तदैव मदनामोघवाणनिर्भिन्नमानस । पौलस्त्यो ध्वस्तधीधैर्यो मायावी न्यायदूरग ॥ २५९ ॥ अनन्यवेषमागत्य सोपायं स्वा पुरीं सतीं । अनैषीद्यावदस्य कमुद्योगममयो भवेत् ॥ २६० ॥ तावत्स्वकायसरक्षा कर्तव्येति प्रियां प्रति ।

२४८--२५० ॥ यह सुनते ही महाराजने आज्ञा दी कि दूतके द्वारा यह समाचार शीघ्र ही रामचंद्रके पास भेज दो । हे देव ! उन्हींकी आज्ञासे मैं यहां आया हूं यह कहकर उसने पत्रसहित पिटारा उनके सामने रख दिया । रामचंद्रने वह पिटारा लेकर शिरसे लगा लिया और उसमेंका पत्र निकालकर वे स्वयं वांचने लगे ॥ २५१--२५२ ॥ उसमें लिखा था कि इस श्रीमान् अयोध्या नगरसे सब श्रीमानोंके स्वामी राजा दशरथ प्रेमसे फैलाई हुई अपनी दोनों भुजाओंसे अपने दोनों प्यारे पुत्रोंका आलिंगनकर तथा उन दोनोंके शरीरकी क्षेम कुशल पूछकर यह आज्ञा देते हैं कि यहांसे दक्षिणकी ओर समुद्रके मध्यमें छप्पन महाद्वीप हैं वे सब चक्रवर्त्तीकी आज्ञामें रहते हैं तथा नारायण अपने प्रतापसे उनमेंसे आधेकी रक्षा करते हैं ॥ २५३--२५५ ॥ उन द्वीपोंमें एक लंका नामका द्वीप है जो कि त्रिकूटाचल पर्वतसे सुशोभित है । उसी लंका द्वीपमें राजा विनमिके वशमें जो सहस्रग्रीव आदि चार राजा हुए थे उनके बाद अब रावण नामका राजा राज्य करता है । वह रावण प्रजाके पालन करनेमें लोलुपी है, दुष्ट है, लोगोंके लिये कांटा है और स्त्रियोंमें बड़ा ही लंपटी है किसी एक दिन युद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले नारदने उससे सीताके रूप लावण्य कांति आदिकी प्रशंसाकी ॥ २५६--२५८ ॥ उसीसमय कामदेवके अमोघ वाणसे रावणका चित्त भिद गया, उसकी बुद्धि और धैर्य सब नष्ट हो गया, वह मायाचारी और न्यायसे कोसों दूर रहनेवाला तो है ही इसलिये वह रामका ही रूप धारण कर बड़े उपायसे सती सीताको ले गया और उसने अपने नगरमें लेजाकर उसे रक्खा है इसलिये जबतक उसके लानेके लिये उद्योग करनेका समय आवे तबतक वह अपने शरीरकी रक्षा करती रहे यह समाचार पहुचानेके लिये और उसे धीरज देनेके लिये अपना कोई कुमार वा दूत उसके पास भेजना चाहिये ॥ २५९--२६१ ॥

देवी छायेव ते तस्मात्त्वमवैपीति सोभ्यघात् ॥ २४१ ॥ इति तद्वचनाल्लब्धरन्ध्रा राम समग्रहीत् । मूर्च्छा सीता सपत्नीव मोहयंती मनः क्षणं ॥ २४२ ॥ तदा शीतक्रिया सीतासखीव सहसा नृप । व्यश्लेषयत्तत सोपि क्व सीतेति गबुद्धवान् ॥२४३॥ देवीं परिजनः सर्वे समंतात्प्रतिभूरुह । अन्वेषयन् वि-लोक्योत्तरीयं वशविदारित ॥ २४४ ॥ तस्यास्तदा तदानीय राघवाय समर्पयत् । उत्तरीयांशुक देव्या भवलेतदित कुत ॥ २४५ ॥ इति निश्चातयत्तत्वं शोकव्याकुलमानसः । सहानुजस्ततश्चिंता कुर्वन्नुर्वीश्वरः स्थित ॥ २४६ ॥ तत्क्षणे सम्भ्रमाक्रांतो दूतो दशरथातिकात् । त प्राप्य विनतो मूर्ध्ना कार्यमि-त्यमभापत ॥ २४७ ॥ गृहीत्वा रोहिणीं राहौ प्रयाते गगनांतरं । एकाकिन तुपाराशु भ्राम्यंतं समलोकिपि ॥ २४८ ॥ स्वप्न किं फलमेतस्येत्यन्वयुंक्त मही-पति । पुरोहितममौ चाह सीतामद्य दशाननः ॥ २४९ ॥ गृहीत्वायात्स मायावी राम स्वामी च कानने । ता समन्वेषितु शोकादाकुलो भ्राम्यति स्वयं ॥

रामचंद्र स्वयं परिजनोंके साथ आमिले, और व्याकुल होकर उनसे पूछने लगे कि मेरी प्यारी जानकी कहां हैं ॥ २३८–२४०॥इसके उत्तरमें उनलोगोंने कहा कि हे देव ! हमलोगोंने न तो आपको देखा और न देवी सीताको देखा, सीता छायाके समान आपके ही पास थी इसलिये उनके विषयमें आपही जानते होंगे ॥२४१॥ इतनी बात सुनते ही अवकाश पाकर क्षण भरके लिये मनको मोहित करती हुई सीताकी सपत्नीके (सौतके) समान मूर्छाने आकर रामचंद्र को पकड़ लिया भावार्थ–रामचंद्रको मूर्छा आगई ॥ २४२ ॥ उसीसमय सीताकी सखीकेसमान शीतोपचार क्रियाने अकस्मात् आकर उस मूर्छासे रामचंद्रको अलग कर दिया रामचंद्र सावधान हुए और फिर पूछने लगे कि सीता कहां है ॥ २४३ ॥ परिजनके सब लोग चारों ओर प्रत्येक वृक्षके नीचे सीताको ढूंढने लगे, सीता तो नहीं मिली परंतु बांससे फटा हुआ उसका एक ओढनेका कपड़ा मिला, उसे वे लोग ले आए और रामचंद्रको लाकर सौंप दिया। रामचंद्र सोचने लगे कि यह देवीके ओढनेका कपड़ा यहां कैसे आगया, तब वे उसके वास्तविक समाचारको सम-झगये और व्याकुल चित्त होकर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ चिंता करते हुए वहीं बैठ गये ॥ २४४–२४६ ॥ उसी-समय राजा दशरथके समीपसे आश्चर्य करता हुआ एक दूत आया, मस्तक नवाकर रामचंद्रके पास गया और नीचे लिखे अनुसार अपना कार्य कहने लगा ॥ २४७ ॥ कि महाराज दशरथने आज स्वप्नमें देखा था कि राहु चंद्रमाकी रानी रोहिणीको लेकर आकाशमें चला गया है और अकेला चंद्रमा इधर उधर घूम रहा है, उसीसमय महाराजने पुरोहितको बुलाकर पूछा कि इन स्वप्नोंका फल क्या है तब पुरोहितने उत्तर दिया था कि आज मायाचारी रावण सीताको हर ले गया है, और स्वामी रामचंद्र वनमें उसे ढूंढते हुए शोकसे व्याकुल होकर इधर उधर भटक रहे हैं ॥

अभिभूति सशीलानामत्रैव फलदायिनी ॥ २३० ॥ उत्पाताश्च पुरेभूवन् बहवोऽशुभसूचका । लोकद्वयाहितं वाच्मयशश्च युगावधि ॥ २३१ ॥ मुच्यता मद्दिवयं यावन्न चेदं रूढिमृच्छति । इति युक्तिमतीं वाणीमुक्तो मन्त्र्यादिभिस्तदा ॥ २३२ ॥ प्रत्यभाषत लकेशो यूय युक्तिविरोधि किं । अस्पृत्वा वदतेव च प्रत्यक्षे का विचारणा ॥ २३३ ॥ चक्रान्न ममुपन्न सीतापहरणेन मे । षट्खंडस्याधिपत्य च तेन चित्य करस्थित ॥ २३४ ॥ स्वय गृहागता लक्ष्मीं हन्यात्पादेन को विधी । इति तद्भाषित श्रुत्वा व्यरमन् हितवादिनः ॥ २३५ ॥ इत परिजनो राम मायामणिमृगानुग । विपिने नष्टदिग्भागं सूर्येस्ताच-लमेयुषि ॥ २३६ ॥ अदृष्ट्वान्विष्य सीतां च वैमनस्यमगात्तरां । सह्य सूनोर्वियोगोपि स्वामिनः केन सह्यते ॥ २३७ ॥ भानावुदयमायाति मर्त्यलोकैक-चक्षुषि । ध्वाते मियेव निर्याते दलतीष्वब्जराशिषु ॥ २३८ ॥ घटामटति कोकाना युग्मे युग्मद्विषा मुदा । अर्थे शब्देन वा योगं साधुना जानकीप्रियः॥ २३९ ॥ स्वय परिजनेनापि भास्करो दिवसेन वा । दृष्ट्वा त मत्प्रिया क्वेति नृप पपृच्छ साकुल ॥ २४० ॥ देव देवी च देवो वा नास्माभिरवलोकितः ।

में अशुभको सूचित करनेवाले बहुतसे उत्पाद हो रहे हैं। यह काम दोनों लोकोंमें अहित उत्पन्न करनेवाला है और युगपर्यंत बहुत भारी अपयश फैलानेवाला है इसलिये आप इसे शीघ्र छोड दीजिये नहीं तो संसारमें यह एक रूढि हो जायगी। इसतरह मंत्रियोंने बडी युक्तियोंसे भरे हुए वचन कहे रावण उनके प्रत्युत्तरमें कहने लगा कि आप लोग विना कुछ सोचे विचारे ऐसे युक्तियोंके विरोधी वचन क्यों कहते हैं, प्रत्यक्ष फलमें विचार करनेकी क्या आवश्यकता है सीताके हरण करनेसे मेरे घरमें चक्ररत्नकी उत्पत्ति हुई है और मुझे छहों खंडका स्वामीपना मिला है हाथ में रक्खे हुएके समान इस प्रत्यक्ष बात पर भी तो विचार करना चाहिये ॥ २२९–२३४ ॥ ऐसा कौन मूर्ख है जो घरमें आई हुई लक्ष्मीको पैरसे ठोकर दे इसतरह रावणके वचन सुनकर वे हितरूप वचन कहनेवाले मंत्री सब चुप होगये ॥ २३५ ॥

अथानतर—इधर रामचंद्र मायामयी मणियोंके बने हुए हिरणके पीछे चलेगये, जंगलमें दिशाओंका ज्ञान सब नष्ट होगया, सूर्य अस्ताचल पर्वतपर अस्त होगया, तब परिजन लोग सीता और रामचंद्रको न देखकर बडेही खेदखिन्न हुए सो ठीक ही है पुत्रका वियोग तो सहन किया भी जा सकता है परंतु स्वामीका वियोग भला कौन सह सकता है॥२३६–२३७॥सवेरेके समय जब मर्त्यलोकके एक चक्षुके समान सूर्य उदय हुआ, डरकरही मानों अंधकार सब नष्ट होगया, कमल सब खिलगये, और जिसप्रकार साधु लोगोंके द्वारा अर्थ शब्दोंसे मिल जाता है उसी प्रकार परस्पर द्वेष रखनेवाले चकवा चकवियोंके जोडे परस्पर मिलगये तब जिस प्रकार सूर्य दिनके साथ मिल जाता है उसीप्रकार

शीलस्य खडन मडनस्य मे । प्राणाः सता नहि प्राणा गुणाः प्राणाः प्रियास्ततं ॥ २२१ ॥ तद्व्ययात्पालयाम्येतान् गुणप्राणान्न जीविका । मूर्त्तिर्विनश्वरी यातु विनाशमविनश्वरं ॥ २२२ ॥ विनश्यति न मे शील कुलशैलानुकारि तत् । इति प्रत्युत्तरं दत्वा गृहीत्वा सा व्रत तदा ॥ २२३ ॥ वदिष्यामि न मोक्ष्ये च यावन्न श्रूयते मया । रामस्य क्षेमवार्त्तेति मनसालोच्य सुव्रता ॥ २२४ ॥ अवबोधितवैधव्यविरुद्धस्वल्पभूपणा । यथार्थं चिंतयंत्यास्त संतत सस्थते स्थिति ॥ २२५ ॥ प्रादुरासस्तदोत्पाता लकाया किंकरा इव । तद्ध्वंसिकालराजस्य समताद्भयदायिनः ॥ २२६ ॥ उत्पन्नमायुधागारे चक्रं वा कालचक्रवत् । यज्ञशालाप्रवद्धस्य वस्तकस्यैव शाड्वल ॥ २२७ ॥ तदुत्पत्तिफलस्यास्यानववोधुः खगेशिन् । ज्वलदारं महाचक्र महातोपमजीजनत् ॥ २२८ ॥ रामो नाम बलो भावी लक्ष्मणोप्यनुजातवान् । तस्य रूढप्रतापौ तौ द्व वप्यमिमुखोदयौ ॥ २२९ ॥ सीता शीलवती नेय जीवती ते भविष्यति ।

क्या लाभ है सज्जनोंके प्राण प्राण नहीं हैं किंतु गुण ही प्राण हैं और इसलिये ही वे गुण अधिक प्रिय हैं । अतएव मैं उन प्राणोंका नाशकर इन गुण रूप प्राणोंकी रक्षा करूंगी गुणोंका नाशकर मैं अपनी जीविका (जीवन) की रक्षा नहीं कर सकती । यह मूर्त्ति वा शरीर तो विनश्वर है किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट होगा इसलिये इसका नाश भले ही हो जाओ परंतु कभी न नाश होनेवाला मेरा शील कभी नष्ट नहीं होसकता क्योंकि वह कुलपर्वतोंके समान अचल और अविनश्वर है । इसतरह उत्तर देकर उस सीताने उसी समय व्रत धारण कर लिया और अच्छी तरह व्रत पालन करनेवाली उसने मनमें यह भी प्रतिज्ञा करली कि जबतक रामचंद्रकी क्षेमकुशलकी बात न सुन लूंगी तबतक न तो मैं कुछ बोलूंगी और न कुछ खाऊंगी ॥ २१९–२२४ ॥ वह अपनको विधवा समझने लगी आभूषण आदि सब उतार दिये और निरंतर संसारकी दशाका यथार्थ स्वरूप चिंतवन करती हुई रहने लगी ॥२२५॥ उसी समयसे लंका में उसे ही नाश करनेवाले मृत्युराजके भय देनेवाले किंकरोंके समान चारों ओरसे उत्पात होने लगे ॥ २२६ ॥ जिस प्रकार यज्ञशालामें बंधे हुए बकरेलिये घासके छोटे छोटे अंकूरे उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार रावणकी आयुधशालामें कालचक्रके समान चक्र उत्पन्न हुआ ॥ २२७ ॥ उस चक्रके उत्पन्न होनका फल विद्याधर रावणको मालूम नहीं था इसलिये जिसके अरे दैदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे चक्रको देखकर वह बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ २२८ ॥ तदनंतर मंत्रियोंने उसे समझाया और कहा कि रामचंद्र होनहार बलभद्र हैं और लक्ष्मण उनका छोटा भाई नारायण है वे दोनों भाई बडे ही प्रतापी हैं उनकी उन्नति और अभ्युदय मामने ही दिख रहा है सीता बडी शीलवती है और जीते जी आपकी कभी नहीं होसकती, शीलवती, स्त्रियोंका तिरस्कार करना इसी लोकमें बुरा फल दे देता है । इसके सिवाय नगर

सुचिरात्समदर्शयत् ॥ २११ ॥ भयेन लज्जया रामविरहोत्थशुचा च सा । अगाद्राजसुता मूर्च्छामतिकृच्छ्रप्रतिक्रियां॥२१२॥स्वयः शीलवतीस्पर्शाद्विद्या गगनगामिनी । विनश्यतीति भीत्वासौ जानकीं स्वयमस्पृशन् ॥ २१३ ॥ विद्याधरी समाहूय शीतांबुपवनादिभिः । मूर्छामस्या निराकुर्युरिति दक्षा न्ययोजयत् ॥ उपायैस्तामिरुद्धूतमूर्च्छावोचद्राजसुता । यूयं का कः प्रदेशोयमिति शंकाकुलाशया ॥ २१५ ॥ विद्याधर्यो वयं लंकापुरमेतन्मनोहरं । वनं रावणराजस्य त्रिखंडाधिपतेरिदं ॥ २१६ ॥ त्वादृशी वनिता लोके न काचित्पुण्यभागिनी । महेंद्रमिव पौलोमी सुभद्रेवादिभूपतिं ॥ २१७ ॥ श्रीमती वज्रजंघं वा त्वमेनं कुरु ते पतिं । स्वामिनी भव सौभाग्याद्रावणस्य महाश्रियः ॥ २१८ ॥ जानकी तामिरित्युक्ता सुदूना दीनमानसा । किं पौलोम्यादयः शीलभंगेन ताः पतीन् स्वम ॥ २१९ ॥ प्राणेभ्योप्यधिकान् का वा विक्रीणंति गुणान् स्त्रिय । त्रिखंडस्याधिपोस्त्वस्तु षट्खंडस्याखिलस्य वा ॥ २२० ॥ किं तेन यदि

बहुत देरसे उस सीताको अपना इंद्रनील कांतिका शरीर दिखलाया ॥ २११ ॥ उसे देखतेही वह राजकन्या सीता भयसे लज्जासे और रामके विरहसे उत्पन्न हुए शोकसे ऐसी मूर्छित होगई कि जिसका उपाय करना भी बहुत कठिन होगया ॥ २१२ ॥ शीलवतीको स्पर्श करनेसे आकाशगामिनी विद्या शीघ्र ही नष्ट होजायगी इसी डरसे रावणने स्वयं सीताका स्पर्श नहीं किया ॥ २१३ ॥ उसने अनेक चतुर विद्याधरियें बुलाईं और आज्ञा दी कि शीतल वायु आदिसे शीघ्रही इसकी मूर्छाको दूर करो । इसतरह कहकर अनेक विद्याधरियोंको उसने नियुक्त किया ॥२१४॥ अनेक उपायों के करनेसे उसकी मूर्छा दूर हुई तब अनेक शंकाओंसे व्याकुल हुई वह सीता उन विद्याधरियोंसे पूछने लगी कि तुम कौन हो और यह जगह कौनसी है ॥ २१५ ॥ इसके उत्तरमें वे विद्याधरियें कहने लगीं कि हम विद्याधरियां हैं यह लंका नगर है और यह तीनखंडके स्वामी राजा रावणका मनोहर वन है ॥ २१६ ॥ इस संसारमें तेरे समान पुण्यशालिनी अन्य कोई स्त्री नहीं है, क्योंकि जिसप्रकार इंद्राणी इंद्रको पति बनाती है अथवा सुभद्राने प्रथम राजा भरत चक्रवर्तीको पति बनाया था अथवा श्रीमतीने वज्रजंघको पति बनाया था उसी प्रकार तू इस रावणको अपना पति बना तथा अपने सौभाग्यसे रावणकी महालक्ष्मीकी स्वामिनी हो ॥२१७-२१८॥ उन विद्याधरियोंके ये वचन सुनकर सीता बहुत ही खेदखिन्न हुई उसका चित्त दीन होगया और वह कहने लगी कि क्या इंद्रानी सुभद्रा आदिने स्वयं अपना शील भंगकर उनको पति बनाया था ? संसारमें ऐसी कौनसी स्त्रियां हैं जो अपने प्राणोंसे भी प्यारे गुणोंको बेच डालती हों । वह रावण चाहे तीन खंडका स्वामी हो, चाहे छह खंडका स्वामी हो और चाहे समस्त पृथ्वीका स्वामी है यदि मेरे शोभास्वरूप वा मुझे विभूषित करनेवाले शीलव्रतका खंडन होता है तो उससे (रावणसे)

वंषोतिदुर्मह: ॥ २०१ ॥ वदन्नित्यन्वगात्मोपि मृगोगाद्गगनांगण। कुतः कृत्यपरामर्शः स्त्रीवशीकृतचेतसा ॥२०२॥ लोकमानो नभो रामस्तनुतामतिरूपय- न। तस्थौ तत्रैव विभ्रांतो घटांतरगताहिवत् ॥ २०३ ॥ अथातो रामरूपेण परिवृत्तो दशानन । सीतामित्वा पुरोधृत्वा प्रहिनो हरिणो मया ॥२०.॥ वा- रुणीदिक् प्रिये पश्य विवमेपाशुमालिन । सिंदूरतिलक न्यस्तं बिभ्रतीव विराजते ॥२०५॥ आरोह शिविका तस्मादाशु सुंदरि बंधुरां । पुरोगमनकालोय व- र्तते सुखरात्रये ॥ २०६ ॥ इत्यवादीत्तदाकर्ण्य सा मायाशिविकाकृति–विमान पुष्पक मोहादारुरोह धरासुता ॥ २०७ ॥ राम वा तुरगारूढमात्मान सप्रद- र्शयन्। महीगतमिव भ्रांतिं जनयन दुहितुर्महे ॥ २०८ ॥ ता भुजगीमिवानैषीदुणयेन स्वमृत्यवे। पतिव्रताग्रगा पापी मायाचचुर्दशानन ॥२०९॥ क्रमा- ल्लंकामवाप्यैनामवतार्य वनांतरे। सद्यो माया निराकृत्य ज्ञापितानयनक्रम ॥ २१० ॥ इन्द्रनीलच्छविं देह गूढार्थ शिष्यसंततेः। आचार्यो या स तस्या स्व

मायमृग (कपटसे बना हुआ हरिण) है बडी बडी कठिनतासे भले ही पकड़ा जा सके यह व्यर्थ ही खींचकर मुझे दूर ले जा रहा है" इसतरह कहते हुए रामचंद्र उसके पीछे पीछे जाने लगे; थोडी देरके बादही वह उडकर आकाशमें चला गया। देखो जिनका चित्त स्त्रियोंके वश होजाता है वे किसी कामका विचार नहीं कर सकते॥ २०१–२०२ ॥ जिस प्रकार घडेमें रक्खा हुआ सर्प बडा दुखी होता है उसीप्रकार आकाशकी ओर देखतें हुए और अपनी हीनता दिखलाते हुए रामचंद्र घबडाये हुएसे होकर वहींपर ठहर गये ॥ २०३ ॥ इधर रावण रामका रूप धारणकर सीताके समीप आया तथा कहने लगा कि मैंने हिरण पकडकर आगे भेज दिया है, हे प्रिये इस पश्चिम दिशाको देखो यह इस समय ऐसी सुशोमित हो रही है मानों इसने सूर्य मंडलको ही सिंदूरका तिलक बना- कर लगाया हो ॥२०४–२०५॥ इसलिये हे सुंदरि अब तू इस सुंदर पालकीमें बैठ अब सुखकी रात वितानेकेलिये यह नगरमें जानेका समय आगया है ॥२०६॥ रामका रूप धारण किये हुए रावणकी यह बात सुनकर सीता मोहनीय क- र्मके उदयसे जो पुष्पक विमान मायासे पालकीके आकार बन गया था उसीपर सवार हो गई ॥ २०७ ॥ रामचंद्रके भेषमें घोडेपर चढे हुए रावणने अपनी मायासे सीताको यह भी दिखला दिया कि घोडेपर चढे हुए राम पृथ्वीपर चल रहे हैं ॥ २०८ ॥ इसतरहके उपायसे वह पापी और मायाचारी रावण अपनी मृत्यु बुलानेके किये सर्पिणीके समान पतिव्रताओंमें शिरोमणि उस सीताको ले आया ॥ २०९ ॥ इसतरह अनुक्रमसे वह रावण लंकामें जा पहुचा और उस- ने सीताको किसी वनमें उतार दिया। रावणने शीघ्र ही अपनी माया भी दूर कर दी और उसके लानेका सब हाल भी उसे बतला दिया ॥ २१० ॥ जिसप्रकार आचार्य अपने शिष्योंको गूढ अर्थ दिखलाता है उसी प्रकार उस रावण ने

तीव्वित्त न शक्य मन्मथेन च ॥ १९० ॥ इत्याख्यात्माप्यद पापादवकर्ण्य स रावणः । निर्मलै. केतनैर्दूरात्पश्यता जनयद्मृगं ॥ १९१ ॥ हंसावलीति संदेह नवतिर्मौकहासिभिः । दिशो मुखरयद्धेमघटाचटुलनिःस्वनैः ॥ १९२ ॥ कुर्वद्घनैर्घनाश्लेष विदिलष्टैरिव बंधुभि । ययौ पुष्पकमारुह्य गगने सह मंत्रिणा ॥ १९३ ॥ ध्वजपटाग्रनिर्भिन्नवारिदच्युतवालवैः । मंदगंधवहानीतैर्विनीताध्वपरिश्रमः ॥ १९४ ॥ सीतोत्सुकस्तया गच्छन् ददृशे पुष्पकस्थितः । शरद्वलाकातस्थो वासो नीलवलाहक ॥ १९५ ॥ सप्राप्य चित्रकूटाख्यनंदन नंदनस्वन । प्रविष्ट इव सीतायाश्चित्त तुष्टिमगादलं ॥ १९६ ॥ तदाज्ञयाथ मारीचपरार्ध्यमणिनिर्मित । भूत्वा हरिणपोतोसो सीताया. स्वमदर्शयत् ॥ १९७ ॥ त मनोहारिण दृष्ट्वा पश्य नाथातिकौतुक । हरिणश्चित्रवर्णोयं रंजयत्यंजसा मन ॥ १९८ ॥ इति सीतावचः श्रुत्वा विनेतु तत्कुतूहलं । तदा निनीषया गत्वा रामो वामे विधे विधीः ॥ १९९ ॥ ग्रीवाभगेन वा पश्यन् कुर्वन् दूरं पुनः प्लुतिं । वल्गन् धावन् क्षण खादन् विभयो वा तृणाकुरं ॥ २०० ॥ हस्तप्राप्यमिवात्मानं कृत्वोड्डीयति दूरगः । वृथा कर्षति मा मायामृगो

शब्दोंसे सब दिशाओंको शब्दायमान कर रहा था और अलग अलग हुए भाइयोंके समान अलग अलग बादलोंसे खूब मिल रहा था ॥ १९२–१९३ उस समय ध्वजा और घंटोंकी नोकोंसे जो बादल छिन्न भिन्न होगये थे और उनसे जो पानीकी बूंदे गिर रहीं थीं उनसे शीतल हुए तथा सुगंधित और मंदवायुसे रावणका सब परिश्रम दूर हो रहा था और सीताकेलिये वह उत्सुक हो रहा था सफेद पुष्पक विमानमें बैठकर जाता हुआ वह नीलवर्णका रावण ऐसा जान पडता था मानो शरद ऋतुके सफेद बादलोंके समीप कोई काला बादल ही हो ॥ १९४-१९५ ॥ धीरे२ वह नंदन बनके समान चित्रकूट बनमें जा पहुंचा और सीताके हृदयमें धुसे हुएके समान वह वहां बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ १९६ ॥ रावणकी आज्ञासे मारीचने वहां जाकर बहुमूल्य मणियोंसे बने हुये हरिणके बच्चेका रूप बना लिया और सीताके सामने जाकर उसके दृष्टि गोचर हुआ ॥ १९७ ॥ उस मनोहर हरिणको देखकर सीता रामचंद्रसे कहने लगी कि हे नाथ देखिये यह कैसे आश्चर्यकी वस्तु है अनेक वर्णका यह हरिण चित्तको बहुत शीघ्र मोहित वा प्रसन्न कर रहा है ॥ १९८ ॥ सीताकी यह बात सुनकर उस आश्चर्य करनेवाली वस्तुको पकडने और उसे लेनेकी इच्छासे रामचंद्र निकले सो ठीक ही है दैवके प्रतिकूल होनेपर बुद्धि भी नहीं रहती है ॥१९९॥ वह हरिण कभी गर्दन झुकाकर पीछेकी ओर देखता था, कभी दूर हो जाता था, कभी जोरसे चिल्लाता था, कभी दौडता था, और कभी क्षणभर तक निर्भय होकर घासके अंकूरोंको चरता था ॥ २०० ॥ कभी हाथसे पकडने योग्य अत्यंत समीप आकर छलांग मारकर बहुत दूर चला जाता था। "यह

दृष्ट्वा त स्वोचित देव सीता शीलवती न सा । वज्रयष्टिरिवान्येन भेत्तु केनापि शक्यते ॥ १८१ ॥ इति स्वगतवृत्तातमुक्त्वा तेमिमतं मया । नोक्तं शील-
वतीकोपवन्हिभीत्येति साब्रवीत ॥ १८२ ॥ श्रुत्वा तद्वचन सर्वमसत्यमवधारयन् । प्रकटीकृतकोपाग्निरिंगिताकारवृत्तिभि ॥ १८३ ॥ मुग्धे फणींद्रनिश्वा-
सभोगाटोपविलोकनात् । भीत्वा तद्ग्रहणं को वा विषवादी विमुचति ॥ १८४ ॥ वाह्यस्थैर्यवचः श्रुत्वा भीला तस्यास्त्वमागता । गजकर्णचला स्त्रीणा चि-
त्तवृत्तिर्न वेत्सि किं ॥ १८५ ॥ नास्याश्चित्तं त्वयाभेदि न जाने केन हेतुना । उपायकुशलाभासीत्यसौ तामभ्यतर्जयत् ॥ १८६ ॥ भोगोपभोगद्वारेण रंजयेय
मनो यदि । तत्र यद्वस्तु नान्यत्र तत्स्वप्नेप्युपलभ्यते ॥ १८७ ॥ अथ शौर्यादिभीरामसदृशो न क्वचित्पुमान् । वीणादिभिश्चेत्सा सर्वकलागुणविशारदा ॥
१८८ ॥ सुग्रहं तलहस्तेन भूमिष्ठैर्भानुमडल । पातालादपि शेषाहिः सुहरो डिंभकेन च ॥ १८९ ॥ ससुत्तानयितु शक्ता ससमुद्रा वसुधरा । भेत्तु शीलव-

सार नहीं कहा है ॥ १८२ ॥ उसकी ये बातें सुनकर रावणने सब झूठ समझी और अपने मुखकी आकृति
बनाकर उसने अपनी क्रोधरूपी अग्नि प्रगटकी ॥ १८३ ॥ क्रोधमेंही वह कहने लगा कि हे मुग्धे! ऐसा कौन
विषवादी है जो सर्पके निश्वाससे उठे हुए भयकर फणको देखकर और उससे डरकर उसका पकडना छोड दे, ॥
१८४ ॥ उसके बाहरके स्थिररूप वचन सुनकर और उससे डरकर तू वापिस लौट आई है? क्या तू नहीं जानती
कि स्त्रियोंके चित्तकी वृत्ति हाथीके कानोंके समान चंचल होती है ॥ १८५ ॥ समझमें नहीं आता कि किस कारणसे
तू उसके चित्तको न भेद सकी जान पडता है तू उपायोंमें इतनी चतुर नहीं है जितनी कि बाहरसे दिखती है
इसतरह कहकर रावणने उसे खूब डाट लगाई ॥ १८६ ॥ तब वह सूर्पणखा फिर कहने लगी कि यदि भोगोप-
भोगकी वस्तुओंसे उसका मन वश किया जाय तो भोगोपभोगकी जो वस्तुएं वहां उपस्थित हैं वे
दूसरी जगह स्वप्नमें भी नहीं मिल सकतीं ॥ १८७ ॥ यदि शूरवीरता आदि गुणोंसे वश किया जाय सो भी
नहीं बन सकता क्योंकि शूर वीरतामें भी रामके समान कोई दूसरा पुरुष नहीं है। यदि वीणा आदि गाने बजानेसे वश
किया जाय तो वह सब कला और सब गुणोंमें चतुर है। पृथ्वीपर खडा होकर हाथकी हथेलीसे ही सूर्यमंडलका पकडलेना
सहज है, किसी बालकके द्वारा शेषनागको पातालसे भी बाहर निकाल लेना सहज है और समुद्रसहित इस समस्त पृ-
थ्वीको उठा लेना सहज है परंतु कामदेवके द्वारा भी शीलवतीके चित्तका भेदन करना नितांत असंभव है। सूर्पणखा
की ये बातें सुनकर रावण पाप कर्मके उदयसे मारीच मंत्रीके साथ पुष्पक विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे चला। उस
पुष्पक विमानमें सर्पकी नई कांचलीको भी लज्जित करनेवालीं जो निर्मल ध्वजाएं फहरा रहीं थीं वे देखनेवाले लो
गोंको बार २ हंसोंकी पक्तियोंका संदेह उत्पन्न करती थीं तथा वह विमान सुवर्णकी लटकती हुई सुंदर घंटियोंके

त्वे महादुःखपात्रत्वं दुश्चेष्टया ॥ १७१ ॥ दानशीलोपवासादिपरलोकहितक्रिया—विधानेष्वप्रधानत्व संतानार्थानवापनं ॥ १७२ ॥ कुलनाशोऽगतिर्मुक्ते-रित्याद्यन्यच्च दूषित । साधारणमिद सर्वस्त्रीणां कस्मात्तवाभवत ॥ १७३ ॥ तस्मिन्सुखाभिलाषितं वयस्यस्मिन् गतत्रपे । न चिंतयसि ते भाविहित म-तिविपर्ययात् ॥ १७४ ॥ स्त्रीत्वे सतीत्वमेवैक श्लाघ्य तत्पतिमात्मनः । विरूप व्याधितं निःस्व दु स्वभावमवर्तकं ॥ १७५ ॥ त्यक्त्वान्यं चेदृश वाञ्छां च-क्रिणं वाभिलाषिणं । पश्यत्यः कुष्टिचांडालसदृश नाभिलाषुका ॥१७६॥ तमप्याक्रम्य भोगोत्थ सद्यो दृष्टिविषोपमा । नयति भस्मसाद्भावं यद्बलात्कुलयोषि त ॥ १७७ ॥ इत्याह तद्वच श्रुत्वा मदरोद्रिश्च चाल्यते । शक्यं चालयितुं नास्याश्चित्तमित्याकुलाकुला ॥ १७८ ॥ गृहकार्यं भवद्वाक्यश्रुतेर्विस्मृत्य दुखिता । यामि देव्यहमित्येतच्चरणाववनम्य सा ॥ १७९ ॥ गत्वानिष्ठितकार्यत्वाद्विषण्णा रावण प्रति । अशक्यारंभवृत्तीनां क्लेशादन्यत्कुतः फलं ॥ १८० ॥

है और स्त्री मोक्षकी पात्र कमी होती ही नहीं। इनके सिवाय और भी बहुतसे दोष हैं जो कि सब स्त्रियोंमें साधारण रीतिसे पाये जाते हैं इसलिये ऐसी निंद्य स्त्रीपर्यायमें तुझे सुखकी अभिलाषा क्यों हुई जान पडती है तेरी बुद्धि प्रतिकूल वा उलटी होगई है इसलिये ही तू निर्लज्ज अवस्थामें भी अपने होनहार हितका चिंतवन नहीं करती है ॥ १७१–१७४ ॥ स्त्रीपर्यायमें तो एक सतीत्व ही प्रशंसनीय है और वह सतीत्व यही है कि अपना पति चाहे कुरूप हो चाहे रोगी हो चाहे निर्धन हो, चाहे बुरे स्वभावका हो और चाहे बुरे बर्तावका हो उसे छोडकर किसी ऐसे ही अथवा इच्छा करनेवाले किसी चक्रवर्तीको भी कोढी और चंडालके समान दिखती हुई कभी उनकी इच्छा नहीं करती है ॥ १७५–१७६ ॥ कदाचित् कोई पुरुष ऐसी सतियोंपर आक्रमण करे तो सर्पिणीके समान वे कुलीन स्त्रियें अपने सतीत्व-सामर्थ्यसे शीघ्रही उसे भस्म कर देती हैं सीताके ये वचन सुनकर वह सूर्पणखा सोचने लगी कि कदाचित् मेरुपर्वत चलाया जा सकता है परंतु इसका चित्त कभी नहीं चलाया जा सकता तदनंतर वह व्याकुल होकर कहने लगी कि हे देवी मैं आपके वचन सुनकर घरके सब काम भूल गई और बहुत देरतक यहां ठहरी रही अब मैं जाती हूं इसतरह कहकर और चरणोंको नमस्कारकर वह चली गई। कार्य न बननेसे उसका मुख कुछ खेदखिन्न था वह रावणके पास लौटगई सो ठीक ही है क्योंकि जो काम हो नहीं सकते उनके आरंभ करनेसे क्लेशके सिवाय और कुछ फल नहीं मिलता है ॥ १७८–१८० ॥ सूर्पणखाने वहां जाकर अपनी योग्यतानुसार पहिले तो रावणके दर्शन किये और कहने लगी कि हे देव सीता बडीही शीलवती है। वज्रकी लकडीके समान उसे अन्य कोई पुरुष भी भेद नहीं सकता ॥ १८१ ॥ इसतरह अपना वृत्तांत कहकर फिर कहने लगी कि शीलवतीके क्रोधरूपी अग्निके डरसे मैंने तेरी इच्छानु-

मा वीक्ष्य कारुण्याज्जनकात्मजा । किमित्याकांक्षसि स्त्रीत्वं त्वं हितानवबोधिनी॥१६३॥स्त्रीतामनुभवतीभिरत्रामूभिरनीप्सित । प्राप्त प्राप्य च दुर्बुद्धे महापापफल श्रृणु ॥ १६४ ॥ अनिष्टलक्षणादन्यैरग्राह्यत्वाच्छुचा गृहे । स्वे वासो मृत्युपर्यंतं कुलरक्षणकारणात् ॥ १६५ ॥ अपत्यजननाभावे प्रविष्टोत्पन्नगेहयोः । शोकोत्पादनवंध्यात्वं निर्भाग्यत्वादगौरव ॥ १६६ ॥ दुर्भगत्वेन कांताना परित्यागात्पराभवः । अस्पृश्यत्व रजोदोषात्खंडनात्कलहादिभिः ॥ १६७ ॥ दुःखदावाग्निसतापो वन्यानामिव भूरुहा । चक्रवर्तिसुताना च परपादोपसेवना ॥ १६८ ॥ मानभंग सपत्नीषु दृष्टोत्कर्षेण केनचित् । स्वभाववक्रवाक्कायमनोभिः कुटिलात्मता ॥ १६९ ॥ गर्भसूतिसमुत्पन्नरोगादिपरपीडन । शोचन स्त्रीसमुत्पत्तावपत्यमरणेऽसुखं ॥ १७० ॥ रहस्यकार्यबाह्यत्वं सर्वकार्येष्वतंत्रता । विधवा-

रुणासे सीता कहने लगी कि अरे क्या तू स्त्रीपना चाहती है जान पडता है तू अपने हितको भी नहीं जानती ॥ १६०–१६३ ॥ स्त्रीपनेका अनुभव करती हुई ये सब यहां ही अनिष्टताको प्राप्त हुई हैं । हे दुर्बुद्धे ! यह स्त्रीपना बडे बडे पापोंका फल है सुन ! यदि कन्यामें लक्षण अच्छे नहीं हुए तो उसे कोई ग्रहण नहीं करता इससे घरमें शोक ही शोक छाया रहता है । स्त्रियोंको मरने तक कुलकी रक्षा करनी पडती है इसलिये उन्हें सदा सेवामें ही लगा रहना पडता है ॥ १६४–१६५ ॥ यदि किसीके पुत्र उत्पन्न न हो तो दोनों घरोंमें शोक उत्पन्न करती रहती है यदि भाग्यहीनतासे कोई बंध्या हुई तो वह कभी गौरवताको (बडप्पनको) प्राप्त नहीं होती है ॥ १६६ ॥ यदि कोई स्त्री कुरूपा हुई तो पति उसे छोड देता है और इसतरह उसे अपना तिरस्कार सहना पडता है रजो दोषसे उसे कोई छूता नहीं कदाचित् कलह करनेसे वह छोड दी जाय (पति उसे छोड दे) तो जिस प्रकार वनके वृक्ष दावानल अग्निसे जला करते हैं उसीप्रकार वह दुखरूपी दावानल अग्निसे जला करती है । चक्रवर्तीकी पुत्रियोंको भी दूसरेके चरणोंकी सेवा करनी पडती है ॥१६७–१६८॥ और सपत्नियोंमें किसी कारणसे उत्कृष्टता हुई तो फिर मानभंग सहना पडता है । स्त्रियोंके मन वचन काय स्वभावसे ही सदा कुटिल रहनेसे वे सदा कुटिलरूप रहती हैं ॥ १६९ ॥ गर्भकी प्रसूति होते समय उत्पन्न हुए अनेक रोगादिकोंकी पीडा सहनी पडती है, स्त्रियोंके उत्पन्न होतेही शोक करना पडता है और संतानके मरने पर दुख सहना पडता है ॥१७०॥ विचार करने योग्य बातोंपर उनसे कोई सलाह लेता नहीं सब कार्योंमें पराधीनता रहती है और यदि विधवा हुई तो महादुखोंकी पात्र बनती है अर्थात् उसे अनेक दुख भोगने पडते हैं । दुष्ट चेष्टा होनेसे दान शील उपवास आदि परलोकके हित करनेवाली क्रियाओंके करनेमें प्रधानता नहीं रहती । यदि स्त्रीके संतान न हो तो कुलका नाश हो जाता

सलावेतत्कृतं रूप न वेधसा ॥ १५३ ॥ यादृच्छिकं न चेदन्यत्किमकारीति नेदृशं । शेषदेव्यो जराजीर्णा तां दृष्ट्वा यौवनोद्धता· ॥ १५४ ॥ का त्वं वद कुतस्त्या वेत्यवोचन्हासपूर्वकं । उद्यानपालकस्याह माताऽत्रैवेति सा पुन ॥१५५॥ तासां चित्तपरीक्षार्थमिमां वाचमुदाहरत् । युष्मद्पुण्यभागिन्यो मान्या सत्यन्ययोषित ॥ १५६ । यस्मादाभ्यां कुमाराभ्या सह भोगपरायणा· । युष्माभिः प्राकृत किं वा पुण्यं तन्मम कथ्यता ॥ १५७ ॥ तत्करिष्यमि येनास्य राज्ञीभूत्वा महीपतेः । इमं विरक्तमन्यासु विधास्यामीति तद्वचः ॥ १५८ ॥ श्रुत्वा ताश्चित्तमेतस्यास्तरुण स्मरविह्वल । वपुरेव जराग्रस्तमित्यल सहसाहसन् ॥ १५९ ॥ माहासः कुलसौरूप्यकलागुणयुजामिह । समप्रेमहलिप्राप्तेः किमन्यज्जन्मन फल ॥ १६० ॥ वदतेति वदतीं ता पुनर्भो जन्मन फल । तवेदमेव चेदस्मद्विभुना विधिना वय ॥ १६१ ॥ त्वमद्य योजयिष्याम परिमुक्तविचारण । महादेवी भवेत्यासा हासवाणशरव्यतां ॥ १६२ ॥ उपयांतीमि-

गई मानो सीताके विलासों के देखनेसेउत्पन्न हुई लज्जासे ही नत्र गई हो॥१५२॥ब्रह्माने (नामकर्मरूपी ब्रह्माने) इसका यह रूप अपनी बुद्धिकी चतुरता से नहीं बनाया है किंतु अनायास ही ऐसा बन गया है यदि यह रूप अनायास न बन जाता वह स्वयं बुद्धिकी चतुरतासे बनाता तो फिर ऐसा रूप किसी दूसरी जगह क्यों नहीं बनाता इस तरह उसके रूपका वर्णन करती हुई वह बहुत ही आश्चर्य करने लगी। सीताको छोडकर वाकीकी यौवनसे युद्धत हुई रानियोंने बुढापेसे जीर्ण हुई उस बुढियाको देखकर हंसीपूर्वक पूछा कि बुढिया बता तो तू कौन है? कहांसे आई है? इसके उत्तरमें वह बुढिया कहने लगी कि मैं इस उद्यानकी रक्षा करनेवालेकी माता हू और यहां ही रहती हूं। उन रानियोंके चित्तकी परीक्षा करनेके लिये वह फिर कहने लगी कि आपलोग बडी पुण्यशालिनी हैं और अन्य सब स्त्रियोंसे मान्य हैं तभी तो इन ऐसे कुमारोंके साथ भोगोपभोग करनेमें लीन हो रहीं हो। आपने पहिले जन्ममें कौनसा पुण्य किया है उसे मुझसे भी कह दीजिये मैं भी उस पुण्यको करूंगी और इन्हीं महाराजकी रानी होकर इन्हें अन्य सब स्त्रियोंसे विरक्त कर दूगी। उस बुढियाकी यह वात सुनकर वे सब स्त्रियां एकसाथ हंस पडी और कहने लगीं कि केवल इसका शरीर ही बूढा होगया है चित्त तो इसका तरुण है और अब भी कामदेवसे विह्वल है ॥ १५३–१५९ ॥ इस प्रकार उनको हंसते हुए देखकर वह बुढिया फिर कहने लगी कि उत्तम कुल, सुंदरता कला और गुणोंको पाकर तुमलोग हंसी मत करो भला कहो तो यही बलभद्रका समान प्रेम प्राप्त होनेपर फिर इस जन्मका और फल है ही क्या? बुढियाकी ये बातें सुनकर वे फिर कहने लगीं कि ए बुढिया! यदि तेरे जन्म लेनेका यही फल है तो आज हम विधिपूर्वक अपने पतिसे तुझे मिला देंगे फिर तू विना किसी सोच विचारके पट्टरानी होजायगी। इस तरह उन स्त्रियोंकी हंसीरूपी वाणोंका निशाना बनती हुई उस बुढियाको देखकर क-

किंचिरिखन्नामिवालक्ष्य ता जलाशयमासदत् । तत्र सिंचन् प्रिया शीतैर्यंत्रमुक्तपयःकणैः ॥ १४४ ॥ ईषन्निमीलिताछोलनयनेंदीवरोज्वलं । तद्वक्त्रकमलं
पश्यन्न सावल्प तदातुषत् ॥ १४५ ॥ वक्षोदघ्नमसौ वारि प्राविशत्सस्मिता प्रिया । परिरंभोत्सुका विद्वानिंगितज्ञा हि नागराः ॥ १४६ ॥ भ्रमराः कजकं
मुक्त्वा कांतास्याब्जेऽपतन्सम । तैराकुलीकृतां दृष्ट्वा खेदी ल्हादी च सोभवत् ॥ १४७ ॥ एव जल चिरं रंत्वा तत्रापूर्य मनोरथ । सात पुरो वने रम्यप्र-
देशे स्थितिमाव्रजत् ॥ १४८ ॥ तदा सूर्पणखागत्य तयोर्नृपतनूजयोः । वीक्ष्यमाणातुलां लक्ष्मीमनुरक्ता सविस्मय ॥ १४९ ॥ प्रभूतप्रसवानम्रकम्राशोक-
महीरुह । अधस्था सुस्थिता सीतां हरिन्मणिशिलातले ॥ १५० ॥ वनलक्ष्मीमिवालोक्य भूष्यमाणा सखीजनै । युक्तमेव खगेशस्य प्रेमास्यामिति वादि
नी ॥ १५१ ॥ बभूव स्थविरा रूप्यपरावर्तनविद्यया । सीताविलासदर्शसभूतव्रीडयेव सा ॥ १५२ ॥ तद्रूप वर्णयतीत्थ सकौतुकममन्वत । स्वबुद्धिकौ-

रहे हैं ॥ १४२ ॥ जिसप्रकार इंद्र शची देवीके साथ वनमें क्रीडा करता है उसीप्रकार मनोहर वचनोंसे
सीताको प्रसन्न करते हुये रामचंद्र उसके साथ वन क्रीडा करने लगे ॥ १४३ ॥ रामचद्र सीताको कुछ खेद
खिन्न देखकर किसी जलाशयके (सरोवरके) पास पहुंचे और वहांपर सीताको यंत्रके द्वारा (पिचकरेसे)
छोडी हुई छोटी छोटी ठंडी बूदोंसे सींचने लगे ॥ १४४ ॥ जिनके पलक कुछ कुछ मुंद रहे हैं ऐसे चंचल
नेत्ररूपी कमलोंसे उज्वल उस सीताके मुखरूपी कमलको देखते हुए रामचंद्र उस समय कुछ कम संतुष्ट
नहीं हुए थे ॥ १४५ ॥ वे बुद्धिमान रामचंद्र आलिंगन करनेको उत्सुक हुई और कुछ कुछ हंसती हुई सीताके समी-
प छातीतक पानीमें पहुंच गये थे सो ठीक ही है क्योंकि नागरपुरुष (चतुर पुरुष) इशारोंको खूब अच्छी तरह
समझ लेते हैं ॥ १४६ ॥ उस समय भ्रमर सब कमलोंको छोडकर एक साथ सीताके मुखरूपी कमलपर पड रहे थे
उनसे व्याकुल हुई सीताको देखकर रामचंद्र कुछ खेद खिन्न भी हुए थे और प्रसन्न भी हुए थे ॥ १४७ ॥ इसतरह
बहुत देरतक जलक्रीडाकर तथा अपने मनोरथ पूर्णकर रामचंद्र अपने रणवासके साथ बनकी किसी सुंदर जगहपर जा
बैठे ॥ १४८ ॥ उसीसमय वहां सूर्पणखा आई और दोनों राजपुत्रोंकी अनुपम शोभा देखकर वडे आश्चर्यके साथ उ-
नमें अनुरक्त होगई ॥ १४९ ॥ उससमय सीता बहुतसे फूलोंसे नवे हुए और सुशोभित अशोकवृक्षके नीचे हरिन्मणि-
योंकी शिलापर आरामसे बैठी थी, अनेक सखियां उसकी शोभा बढा रहीं थीं और वह ठीक वनलक्ष्मीके समान जान
पडती थी उसे देखकर सूर्पणखाने कहा कि इस ऐसी सुंदरीमें विद्याधर रावणका प्रेम होना ठीक ही है ॥ १५०–
१५१ ॥ परावर्तिनी (जिससे रूप बदला जाय) विद्यासे उसने अपना बुढियाका रूप बना लिया और वह ऐसी नव

भूतामालोक्य कामिनी । पुनश्चैवमभाषिष्ट मृष्टेष्टवचनो नृप ॥ १३३ ॥ त्वद्वक्त्रं दर्पणे वीक्ष्य चक्षुषी ते कृतार्थके । वदनं सौरभेणैव तृप्ता ते नासि-
का भृशं ॥ १३४ ॥ त्वच्छ्रव्यगेयसल्लापैः कर्णौ पूर्णरसौ तव । तव बिंबाधरस्वादास्वज्जिह्वान्यरसास्पृहा ॥ १३५ ॥ परिरभ्य करौ तृप्तौ तव त्वत्कठि-
नस्तनौ । मनोपींद्रियसतृप्त्या सतृप्तं नितरां प्रिये ॥ १३६ ॥ स्वस्यामेवं स्वयं तृप्ता सिद्धाकृतिरिवाधुना । कोपस्ते युक्त एवेति सीतां स चतुरोक्तिभिः ॥
१३७ ॥ तत प्रसन्नया सार्द्धं सुखं सर्वेंद्रियोद्भवं । सम्प्राप्य नूतनं भूपः कोपोपि सुखदः क्वचित् ॥ १३८ ॥ तत्रैव लक्ष्मणोप्येवं स्वप्रियाभिः सहारमत् ।
ददौ तदा मुदा कामस्तेभ्योभ्यर्थ्यमदः सुखं ॥ १३९ ॥ एवं रामश्चिरं रंत्वा कांते पश्य रविः करैः । सर्वान् दहति मूर्द्धस्थस्तीव्रः कस्यात्र शांतये ॥
४० ॥ लक्ष्मणाक्रमविक्रातिविजितारातिसन्निभा । छायामात्मनि संलीना प्रकुर्वंति महीरुहः ॥ १४१ ॥ वैराज्यपरिवारो वा मृगरूपः सशावकः । क्वा-
प्यलब्धाश्रयस्तस्मो भ्राम्यतीतस्ततोपि च ॥ १४२ ॥ इतिचेतोहरैः सीतां मोदयन् स तया सह । शचीदेव्येव देवेशः कृत्वा वनविनोदनं ॥ १४३ ॥

पित हुई सीता चुप ही रही उसे चुप देखकर रामचद्र मीठे और इष्ट वचन कहने लगे ॥ १३३ ॥ कि हे प्रिये !
तेरे नेत्र दर्पणमें तेरा मुख देखकर कृतार्थ होचुके हैं, तेरी नाक तेरे मुखकी सुगंधिसे ही खूब तृप्त हो चुकी है, तेरे
कान सुननें योग्य तेरे गीत और वचनालापोंसे खूब रससे भरगये हैं तेरी जीभ भी विंबाफलके समान तेरे अधरोंका
(ओठोंका) स्वाद लेकर और किसी रसकी इच्छा नहीं करती तथा तेरे दोनों हाथ भी तेरे दोनों कठिन स्तनोंका
स्पर्शकर तृप्त होगये हैं, इसीतरह हे प्रिये तेरी सब इद्रियोंके तृप्त हो जानेसे तेरा मन भी खूब तृप्त होगया है इसतरह
तू स्वय अपनेमें ही तृप्त हो रही है इसलिये ईससमय तेरी आकृति ठीक सिद्धोंके समान है । हे प्यारी फिर भी क्या तुझे
कोप करना योग्य है इसप्रकार चतुरताकी युक्तियोंसे रामने सीताको समझाया ॥ १३४–१३७ ॥ तदनंतर रामचद्र
प्रसन्न हुई सीताके साथ सब इंद्रियोंसे उत्पन्न हुए नये सुखको प्राप्त हुये सो ठीक ही है क्योंकि कहीं कहीं कोप भी
सुख देनेवाला हो जाता है ॥ १३८ ॥ वहींपर लक्ष्मण भी ईसीतरह अपनी रानियोंके साथ क्रीडा करते थे । उस-
समय कामदेव उन सबको इच्छानुसार सुख दे रहा था ॥ १३९ ॥ इसतरह रामचंद्र बहुत देर तक क्रीडा कर फिर
सीतासे कहने लगे कि हे प्रिये देख यह सूर्य अपनी किरणोंसे सबको जला रहा है सो ठीक ही है क्योंकि मस्तकपर
रहनेवाला कोई भी तीव्र पुरुष भला किसको शांति दे सकता है ॥ १४० ॥ लक्ष्मणके आक्रमणके पराक्रमसे
हारे हुए शत्रुओंके समान ये वृक्ष अपनी छायाको भी अपनेमें मिला रहे हैं ॥ १४१ ॥ शत्रु राजाओंके परिवारके
समान इन बच्चे सहित हिरणोंको कहीं भी आश्रय नहीं मिला है इसलिये ही ये इधरसे उधर और उधरसे इधर फिर

सफल्यास्तस्यास्त्वय्यनुरक्ततां । आनेया सा सुखेनैव स्निग्धोपायेन केनचित् ॥ १२२ ॥ विरक्ता चेत्त्वया देव हठादाक्षिप्यतामिति । पत्याह तत्समाकर्ण्य सा दरं सा ॥ प्रशासन्साधु साध्विति ॥ १२३ ॥ तदैव कातरः सूर्पणखामाहूय केनचित् । प्रकारेण त्वया सीता मयि रक्ता विधीयता ॥ १२४ ॥ इत्याह सादरं सा तत्सगीर्यं विहायसि । तदैव रंहसा गत्वा प्रापद्वाराणसीं पुरीं ॥ १२५ ॥ चित्रकूटाभिधोद्याने नदनमातिसुदरे । रामो रंतु तदा गत्वा वसते सीतया सह ॥ १२६ ॥ मध्ये वन परिक्रम्य वीक्ष्य नानावनस्पति । मप्रसूना महासा वा सरागा वा सपल्लवा ॥ १२७ ॥ लता समुत्सुकस्तन्वीं तन्वीमन्यामिव प्रिया । आलोकमानो जानक्यालोकित ससकोपया ॥ १२८ ॥ कुपितेय विना हेतो प्रसाद्येत्येवमब्रवीत् । पश्य चंद्रानने भृग लतायाः कुसुमे भृश ॥ १२९॥ तवास्ये मामिवासक्त तत्र तर्पयितुं स्वय । राग पिंडीद्रुमा पुष्पैरुद्भिरतीव नूतनैः ॥१३०॥मम नेत्रालिनो प्रीत्यै वध्नैमिदिचत्रशेखरं । स्वहस्तेन प्रिये मेमूनलंकुरु शिरोरुहान् ॥ १३१ ॥ एतत्पुष्पै प्रवालैश्च भूषणानि प्रकल्पये । तवापि त्व विभास्येऽजैनमेव लतापरा ॥१३२॥ इत्युक्तिभिरिमा मूकी

तुमने यह बहुत अच्छा कहा ॥ १२१-१२३ ॥ उसी समय सूर्पणखा नामकी कोई दूती बुलाई और उससे कहा कि तू कोई भी उपायकर जिससे सीता मुझमें अनुराग करने लगे । रावणकी यह बात सुनकर उसने भी आदरसे प्रतिज्ञा की और वह उसीसमय आकाशमार्गसे बडी शीघ्रतासे निकल गई और बनारस नगरमें जा पहुची ॥ १२४-१२५ ॥ उस समय बसंतऋतु थी इसलिये रामचंद्र सीताके साथ नंदन बनसे भी अत्यंत सुंदर ऐसे चित्रकूट नामके वनमें क्रीडा करनेकेलिये गये थे ॥ १२६ ॥ उन्होंने बनके मध्यमें इधर उधर घूम फिरकर अनुराग करनेवालियोंके समान नये पत्तों सहित, तथा हंसती हुईके समान फुलों सहित अनेक वनस्पतियां देखी थीं ॥ १२७ ॥ उत्कंठित हुये रामचंद्र सुंदर अन्य प्रियाओंके समान उन सुदर लताओंको देखरहे थे इतनेमें ही कुपित हुई सीताने रामचंद्रको देखा ॥ १२८ ॥ यह विना ही कारणके कुपित होगई है इसलिये इसे प्रसन्न करना चाहिये" यही समझ रामचंद्र सीतासे कहने लगे कि हे चंद्रानने (चंद्रमा सरीखे मुख वाली) देख ! जिसप्रकार मैं तुझे प्रसन्न करनेके लिये स्वयं तेरे मुखमें आसक्त रहता हूं उसीप्रकार यह भ्रमर लताके फूलमें कैसा आसक्त होरहा है । ये पिंडी जातिके वृक्ष (महुआके पेड) मेरे नेत्ररूपी भ्रमरोंको प्रसन्न करनेके लिये इन आए हुये नये फूलोंसे तरह तरहका शेखर (फूलोंका मुकुट) बांधकर अपने अनुरागको प्रगट करते हुयेके समान ही जान पडते हैं । हे प्यारी! तू अपने हाथसे इन और मेरे बालोंको संभाल दे ॥ २९-३१ ॥ मैं इन फूलों और पत्तोंसे तेरे लिये आभूषण बनाऊंगा उन आभूषणोंसे तू चलती फिरती दूसरी लताके समान सुशोभित होगी ॥ १३२ ॥ रामने इस तरहके कितने ही युक्तियोंके वचन कहे तथापि वह कु-

मन्त्रशाला प्रविश्यासमगनसिन्थममन्त्रत । उत्तमस्य यमेनाद्वे कार्यं नहि बलात्कृते ॥ १११ ॥ महीयतोऽप्युपायेन श्रीरत्याह्रियते बुधे । इत्यतो- मात्यमाहूय दत्तौ दशरथात्मजौ ॥ ११२ ॥ जिगीषू मन्यदं दुष्टावुच्छेद्यार्द्धो कृतस्वरौ । पत्नी सीताभिधानास्ति रामाख्यस्य दुरात्मनः ॥ ११३ ॥ ता- माहरिष्ये तौ हन्तु तदुपाय विचिन्तय । इत्यवोचन्स मारीचो विनयाकुञ्चिताञ्जलि ॥ ११४ ॥ शृणु भट्टारक स्वामिन् हितकार्यानुवर्तनं । अहितप्रतिषेधश्च मन्त्रिकृत्यमिदं द्वय ॥ ११५ ॥ भवन्निरूपितं कार्यमपथ्यमयशस्करं । पापानुबन्धि दुःसाध्यमयोग्यं सद्भिर्गर्हितं ॥ ११६ ॥ अन्यदाराहृतिर्नाम पातकेष्वति- पातकं । कोहि नाम कुले जातो जातुचिच्चिन्तयेदिति ॥ ११७॥ अस्त्यन्योपि तदुच्छित्यासुपाय किमनेन ते । भवद्वंशविनाशैकहेतुना धूमकेतुना ॥ ११८ ॥ श्लाघ्यस्यार्थकोपाद्यं तन्मारीच वचो विधीं । नादादासन्नमृत्युत्वाद्दुष्टरिष्ट इवौषधं ॥ ११९ ॥ गृहीतमेव नेत्येतन्नावादीच्चेति मन्त्रिणं । किमनेन वृथा मन्त्रिन् वचनेनेष्टघातिना ॥ १२० ॥ वेत्सि चेद् ब्रूहि सीतापहरणोपायमार्य मे । एवं तेनोच्यमानोसौ तव चेद्वेष निश्चयः ॥ १२१ ॥ परीक्ष्य स्वास्या

सोचो । यह सुनकर मारीच नामका मंत्री बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे भट्टारक हे स्वामी ! सुनिये हितरूप कार्मोंका उपदेश देना और अहितका निषेध करना ये दोही काम मंत्रियोंके मुख्य काम हैं ॥ ११०–१५ ॥ आपने जिस कामके लिये कहा है वह काम अपथ्य है अपयश करने वाला है पाप उत्पन्न करनेवाला दुसाध्य और अयोग्य है तथा सज्जनोंके द्वारा सदा निंदनीय है ॥ १६ ॥ दूसरेकी स्त्रीको हर लेना पापोंमें भी बड़ा पाप है सत्कु- लमें उत्पन्न हुआ ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसे कार्योंका विचार करे ॥११७॥ उनके नाश करनेके लिये और भी बहु- तसे उपाय हैं इस उपायसे आपका क्या काम है यह यह उपाय अग्निके समान आपके वंशके नाश करनेका एक ही कारण है ॥११८॥ इसप्रकार मारीच मंत्रीने कहा परंतु जिसप्रकार थोडी ही देरमें मरनेवाला मनुष्य अपनी मृत्यु जानकर औषधि नहीं लेता है उसीप्रकार उस बुद्धिहीन रावणने मारीचके कहे हुए सार्थक वचनोंको ग्रहण नहीं किया ॥११९॥ वह मारीचसे कहने लगा कि हे मारीच " यह तुम्हारी बात नहीं मानते " यही तुमने क्यों नहीं कहा अपने इष्टको घात करनेवाले इन व्यर्थके वचनोंसे भला क्या लाभ है ॥ १२० ॥ हे आर्य ! यदि तू सीताके हरण करनेका कोई उपाय जानता हो तो कह । रावणकी यह बात सुनकर मारीच फिर कहने लगा कि यदि आपने ऐसा करना निश्चय ही कर लिया है तो अपनी एक दूती भेजकर परीक्षा कर लीजिये कि वह आपमें अनुराग रखती है या नहीं । यदि अनुराग रखती हो तब तो किसी सुखकर सहज उपायसे ही ले आनी चाहिये ! यदि वह आपसे विरक्त हो तो फिर जबर्दस्ती ले आना । मारीच की यह बात सुनकर रावणने उसकी प्रशंसाकी और कहा कि

पश्यति नो चक्षु कामिनामित्युदीरितं ॥ १०१ ॥ सत्यं प्रकुर्वता सद्यः शीतासवंधवाक्श्रुते । अनगशरसंपाताज्जर्जरीकृतचेतसा ॥ १०२ ॥ धन्यान्यत्र न सा स्यातु योग्या भाग्यविहीनके । मंदाकिन्याः स्थिति क्व स्यात्प्रविहाय महांबुधिं ॥ १०३ ॥ बलात्कारेण तस्मादपहृत्यातिदुर्बलात् । रत्नमालामिवालोला करिष्यामि ममोरसि ॥ १०४ ॥ इति कामाग्नितप्तेन तेन पापेन ससदि । स्वस्यामगार्यनार्येण दुर्जनानामियं गतिः ॥ १०५ ॥ स नारदः पुनस्तत्र प्रदीप्त कोपपावक । प्रज्वालयितुमस्येदमाचचक्षेति पापधीः ॥ १०६ ॥ परिप्राप्तोदयो रामो महाराज्यपदे स्थित. । यौवराज्यपदे तस्य लक्ष्मणोस्यात्सहोद्भवः ॥१०७॥वाराणसीं प्रविष्टाभ्या ताभ्या विश्वनृपेश्वरा । स्वसुतादानसमानिताभ्यां सवधमादधुः॥१०८॥ततस्ते तेन रामेण लक्ष्मणाविष्कृतौजसा । न युद्ध युज्यते ऽस्मामिस्त्यज्यता विग्रहाग्रहः ॥ १०९ ॥ इत्येतदुक्तमाकर्ण्य कुपितस्मितमुद्वहन् । मत्प्रभावं मुने मंक्षु श्रोष्यसीति विसृज्य तं ॥ ११० ॥

यह भाग्यहीनके घर ठहरने योग्य नहीं है भला महासागरको छोडकर गंगाकी स्थिति कहां हो सकती है ॥ १०३ ॥ वह राम अत्यंत दुर्बल है उससे मैं जबर्दस्ती सीताको लेआऊंगा और चंचल रत्नमालाके समान उसे अपने वक्षःस्थल पर धारण करूंगा ॥१०४॥ इसतरह कामरूप अग्निसे जले हुए पापी और अनार्य उस रावणने अपनी सभामें ऐसे वचन कहे सो ठीक ही है क्योंकि दुष्टोंकी ऐसीही गति हुआ करती है१०५तदनंतर पापी नारद बढती हुई रावणकी क्रोधरूपी अग्निको और बढानेके लिये फिर कहने लगा कि हे राजन् ! राम इससमय खूब उन्नत हो रहा है वह महाराजके पदपर विराजमान है, और युवराजके पदपर उसका छोटा भाई लक्ष्मण है ॥१०६–१०७॥ जबसे ये दोनों भाई पहुंचे हैं तबसे प्रायः सब राजा महाराजाओंने अपनी अपनी कन्या देकर उनका सन्मान किया है और इसतरह सबने उनसे अपना संबंध जोड लिया है ॥ १०८ ॥ इसलिये लक्ष्मणसे जिसका प्रताप बहुत बढगया है ऐसे रामसे युद्ध करना तो ठीक नहीं है हम लोगोंको युद्धका आग्रह छोड देना चाहिये ॥ १०९ ॥ रावण नारदकी बात सुनकर कुछ क्रोधित होता हुआ हंसा और कहने लगा कि हे मुनि ! आप मेरा प्रभाव शीघ्र ही सुनेंगे । यह कहकर उनको तो विदा किया और खुद मंत्रशालामें गया वहां जाकर वह सोचने लगा कि यह काम किसी उपायसे करना चाहिये जबर्दस्ती करना ठीक नहीं क्योंकि बुद्धिमान लोग बडे भारी लोगोंकी लक्ष्मी भी किसी उपायसे हरण कर लेते हैं । यही सोचकर उसने मंत्रियोंको बुलाया और कहने लगा कि दशरथके दोनों पुत्र बडे अभिमानी और मदोन्मत्त हो रहे हैं वे अब मेरे इस पदको जीतना चाहते हैं और दुष्ट हैं इसलिये शीघ्र ही दोनोंका नाश करना चाहिये । उनमेंसे रामचंद्र नामका जो दुष्ट पुत्र है उसकी सीता नामकी स्त्री है, रामको मारनेकेलिये मैं उस सीताको हरना चाहता हूं तुम लोग उसका उपाय

इत्युक्तेोसीति त्वयास्यता ॥ ९१ ॥ कौतस्कुत. किमर्थं वा तवागमनमित्यसौ। रावणेनानुयुक्तः सन् कुधीरिदमभाषत ॥ ९२ ॥ दसदुर्जयभूपोत्रकरिकंठीरिवाचित। एतन्मनः समाधाय दशास्य श्रोतुमर्हसि ॥ ९३ ॥ वाराणसीपुरादद्य ममात्रागमनं विभो। तत्पुरीपतिरिक्ष्वाकुवंशांबरदिवाकरः ॥ ९४ ॥ सुतो दशरथाख्यस्य रामनामातिविश्रुतं। कुलरूपवयोज्ञानशौर्यसत्यादिभिर्गुणै ॥ ९५ ॥ अनणीय स्वपुण्येन स संप्रत्युदयोन्मुखः। तस्मै यज्ञापदेशेन स्वयमाहूय कन्यकां ॥ ९६ ॥ स्वनामश्रवणादेवगर्विकामुकचेतस। पर्याप्तस्त्रीगुणैकध्यनृत्तिसंपत्कृताकृतिं ॥ ९७ ॥ नेत्रगोचरमात्राखिलानंगसुखदायिनीं। जेतुं संभोगरत्यंते शक्तां मुक्तिवधूमपि ॥ ९८ ॥ त्वामनादृत्य योग्य ते त्रिखंडाखंडसंपदं। स्त्रीरत्नं स्वात्मजां लक्ष्मीमिवादान्मिथिलाधिपः ॥ ९९ ॥ तस्य भोगोपभोगैकनिष्ठस्य विपुलश्रियः। पार्श्वे स्थितस्त्वसहिष्णुत्वाद्भवंतमवलोकितु ॥ १०० ॥ इह प्रेम्णागतोस्मीति नारदोक्त्या खगेशिना। इच्छा

इसतरह पूछनेपर वह निर्बुद्धि नारद कहने लगा ॥ ८९–९२ ॥ कि खूब अभिमान करनेवाले और बडी कठिनतासे जीतने योग्य ऐसे राजा रूपी बडे भारी हाथियोंके लिये सिंहके समान रावण! तू अपने मनको एकाग्र कर सुन॥९३॥ हे प्रभो आज मैं यहां बनारस नगरसे आया हूं उस नगरका स्वामी इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान राजा दशरथका प्रसिद्ध पुत्र राम वहांका राज्य करता है। अपने कुल, रूप, वय, ज्ञान, शूरवीरता और सत्य आदि गुणोंसे वह सबसे चढ बढकर है और अपने पुण्यकर्मके उदयसे इस समय वह खूब ही उन्नत होनेके सन्मुख होरहा है इधर मिथिला देश के राजा जनकने यज्ञके बहानेसे स्वयं उस रामको बुलाया, तथा तीनों खंडकी अखंड संपत्ति जिसके हाथमें है और जो सबतरह योग्य है ऐसे तेरा तो अनादर किया (तुझे बुलाया नहीं) और अपने घर उत्पन्न हुई लक्ष्मीके समान सीता नामकी अपनी पुत्री उस रामको समर्पण करदी। वह सीता एक स्त्री रत्न है, उसका नाम सुनते ही कामी लोगोंके चित्त एक प्रकारके ग्रहण करने योग्य अभिमानको धारण करते हैं संसारकी सब स्त्रियोंके गुणोंको इकट्ठाकर उन सब की शोभासे ही मानों उसकी आकृति बनाई गई है, दर्शन होते ही वह संपूर्ण कामदेवको सुख देनेवाली है और संभोग रतिके अंतमें मुक्तिवधूको भी जीत सकती है ॥ ९४–९९ ॥ भोगोपभोगोंमें ही सदा लीन रहनेवाले उसी राम के समीप मैं गया था, उसकी बडी भारी लक्ष्मी और शोभाको मैं सह नहीं सका इसीलिये आपके प्रेमसे यहां आपके दर्शन करनेकेलिये आया हू। नारदकी यह बात सुनकर रावणकी इच्छा बढी, 'कामी लोगोंके नेत्र कुछ नहीं देख सकते' यह जो कहावत है उसे सत्य करनेके लिये वह तैयार हुआ सीताके संबंधकी बात सुनते ही कामदेवके बाण पडनेसे उसका चित्त छिन्न भिन्न होगया ॥ १००–१०२ ॥ तथा वह सोचने लगा कि धन्यरूप यह सीता दूसरी ज-

पद्मनपि । दानमानादिभिः सम्यक् सदा तोषयतोस्तयोः ॥ ८१ ॥ दुष्टनिग्रहशिष्टानुपालनप्रविनतात्मिनो । अविलंघयतो पूर्वमर्यादां नीतिवेदिनोः ॥ ८२॥
प्रजापालनकार्यैकनिष्ठयोर्निष्ठितार्थयोः । काले गच्छति कल्याणैः कल्पैः निःशल्यसौख्यदैः ॥ ८३ ॥ इतो लंकामधिष्ठाय त्रिखंडभरतावनेः । अधीश्वरोह-
मेवेति गर्वपर्वतभास्करं ॥ ८४ ॥ समावयंतमात्मानं रावणं शत्रुरावणं । निजतेजः प्रतापापहस्तितोष्णांशुमंडलं ॥ ८५ ॥ दंडोपनतसामंतविनम्रमुकुटा-
प्रम स्फुरन्मणिमयूखाबुविकसच्चरणांबुज ॥ ८६ ॥ निजासने समासीनं कीर्यमाणप्रकीर्णकं ॥ अवतीर्णं धरामागमिव नीलनवाबुदं ॥ ८७ ॥ आभापमाण-
माभाष्य सभ्रूभंगं भयंकरं । अनुजैरात्मजैर्मौलैर्भटैश्च परिवारितं ॥ ८८ ॥ पिंगोत्तुंगजटाजूटप्रभापिंजरितांबरः । इन्द्रनीलाक्षसूत्रोरुवलयालंकृतांगुलिः ॥
८९ ॥ तीर्थांबुसंभृतोद्भासिपद्मरागकमंडलुः । सुवर्णसूत्रयज्ञोपवीतपूजानिजाकृति ॥ ९० ॥ खादेत्य नारदोन्येद्यु सोपद्वारं समैक्षत । तदालोक्य विराद्-

थे शिष्ट वा भले आदमियोंका पालन करते थे, पहिलेकी मर्यादाको कभी उल्लंघन नहीं करते थे, नीतिको अच्छी त-
रह जानते थे, उनका प्रजा पालन करना ही एक मुख्य कार्य था और धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंको वे अच्छी
तरह सेवन करते थे, इसतरह शल्यरहित सुख देनेवाले कल्याणरूप कार्योंसे उनका समय व्यतीत होने लगा ॥८२–
८३ ॥ इधर रावण लंकामें रहकर भारतवर्षकी तीन खंड पृथ्वीका पालन करने लगा, मैं तीन खंडका स्वामी हूं ऐसे
अभिमानरूपी पर्वतपर सूर्यके समान अपनेको मानने लगा, वह सब शत्रुओंको रुलाता था इसीलिये उसका नाम रा-
वण पड़ गया था अपने तेजरूपी प्रतापसे सूर्यमंडलको भी नीचा दिखलाता था, दंड लिये हुए और नम्रीभूत हुए
अनेक सामंतोंके नये हुए मुकुटोंमें जो देदीप्यमान मणियां लग रही थीं उनकी किरणें रूपी जलमें उसके चरण-
कमल सदा प्रफुल्लित रहते थे, किसी एक दिन वह अपने सिंहासनपर बैठा था; उस पर चमर ढुलाये जा रहे थे, उस
समय ऐसा जान पड़ता था मानों नीले रंगका नया बादल पृथ्वीपर ही उतर आया हो, भौंहें चढाकर भयंकर रीतिसे
वह सबसे बात चीत कर रहा था, उसके आस पास उसके छोटे भाई पुत्र मुकुटवद्ध राजा और योद्धा लोग बैठे थे ॥
८४–८८ ॥ उसी समय पीले रंगकी बडी बडी जटाओं की कांतिसे जिसके शरीरका रंग कुछ पीला होगया है, जो
इंद्रनील तथा अक्षसूत्रके कड़े और अंगूठियोंसे सुशोभित है, पद्मराग मणियोंका बना हुआ जिसका कमंडलु, तीर्थोंके
जलसे भरा हुआ शोभायमान है, जो सुवर्णका बना हुआ यज्ञोपवीत पहिने है और उसीसे जिसकी आकृति पूज्य हो
रही है ऐसे नारदने आकाशसे उतरकर समीपके दरवाजेसे रावणको देखा। नारदको देखते ही रावण उठा और कहने
लगा कि हे भद्र आपने बहुत दिनमें दर्शन दिये हैं आइये बैठिये, इस समय आप कहांसे आए हैं और क्यों आए हैं?

भावो द्विधा प्रति ॥ ७१ ॥ स्वाम्यमात्यो जनस्थानं कोशो दंडः सगुप्तिकः । मित्रं भूमिपालस्य सप्त प्रकृतयः स्मृताः ॥ ७२ ॥ इमे राज्यस्थितेः प्राज्ञैः पदार्था हेतवो मता । तेपूपायवती शक्तिः प्रधानव्यवसायिनी ॥ ७३ ॥ पानीयं खननाद्वन्हिर्मथनादुपलभ्यते । अदृश्यमपि संप्राप्यं सत्फलं व्यवसायनः ॥ ७४ ॥ फलप्रसवहीनं वा सहकारं विहंगमा । विवेकवंतो नामोपदिष्टं वा कुत्सितागमं ॥ ७५ ॥ राजपुत्रमनुत्साहं त्यजंति विपुला श्रियः । स्वकीय-योधसामंतमहामात्यादयोपि च ॥ ७६ ॥ पुत्रं पिताप्यनुद्योगं मत्वा योग्यं विषीदति । इति विज्ञापनं श्रुत्वा तयोर्नरपतिस्तदा ॥ ७७ ॥ युवाभ्यामुक्तमेवेदं प्रत्यपादि कुलोचित । इत्याविष्कृतहर्षासिर्भाविसीरभृतः स्वयं ॥ ७८ ॥ विनस्य राज्ययोग्योरुमुकुटं लक्ष्मणस्य च । प्रबध्य यौवराज्याधिपत्यपट्टं महौजस ॥ ७९ ॥ महाभ्युदयसंपादिसत्याशीभिः प्रवर्धयन् । पुत्रौ प्रस्थापयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ॥ ८० ॥ गत्वा प्रविश्य तामुच्चैः पौरान् जन-

संधि विग्रह करा देना द्वैधीभाव है ॥ ७१ ॥ इसीतरह स्वामी, मंत्री, देश, कोश, दंड, गढ और मित्र ये सात राजाओंकी प्रकृतियां कहलाती हैं ॥ ७२ ॥ विद्वान लोगोंने ये ऊपर कहे हुए सब पदार्थ राज्यके स्थिर रखनेके कारण बतलाए हैं । परंतु इन सबमें उपायशाली शक्ति ही मुख्य रीतिसे काम करनेवाली है ॥ ७३ ॥ क्योंकि पानी खोदनेसे ही निकलता है और अग्नि परस्पर रगड़नेसे ही निकलती है और तो क्या व्यवसाय (उपाय वा परिश्रम) करने से जो श्रेष्ठ फल अदृश्य है दिखाई नहीं पड़ता वह भी प्राप्त हो जाता है ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार पक्षीगण फूल और फलसे रहित आमके वृक्षको छोड देते हैं, विवेकी पुरुष नाममात्रके कहे हुए खोटे शास्त्रोंको छोड़ देते हैं उसी तरह अनेक तरहकी लक्ष्मियां उत्साहरहित राजपुत्रको छोड देती हैं, इतना ही नहीं किंतु अपने योद्धा, सामंत तथा बडे मंत्री आदि भी उस राजपुत्रको छोड देते हैं ॥७५–७६॥ इसी तरह पिता उद्यमरहित पुत्रको अयोग्य समझकर दुखी होता है । इसतरह उन दोनों कुमारोंके कहे हुए निवेदन को सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम लोगोंने जो कुछ कहा है वह कुल परंपराके योग्य और ठीक कहा है । इसप्रकार हर्ष प्रकटकर होनेवाले बलभद्रको अर्थात् रामचंद्रको तो राज्यके योग्य भारी मुकुट बांधा और प्रतापी लक्ष्मणको युवराजके आधिपत्यका पट्ट बांधा ॥ ७७–७९ ॥ बडी विभूतियोंको प्रकट करनेवाले सच्चे सच्चे आशीर्वादोंसे बढाते हुए राजा दशरथने बनारस नगरके लिये दोनों भाइयोंको भेज दिया ॥ ८० ॥ दोनों भाइयोंने जाकर नगरमें प्रवेश किया और वहांके रहनेवाले नगरनिवासियोंको तथा उस देशके रहनेवालोंको दान सन्मान आदि देकर दोनों भाई सदा अच्छी तरह संतुष्ट करने लगे ॥ ८१ ॥ वे दोनों भाई सदा दुष्टोंको निग्रह करते

पप्रदा मेदं दंडं च नयकोविदाः । वदंतुपायांश्चतुरो यैरर्थः साध्यते नृपैः ॥ ६२ ॥ प्रियं हितं वचः कायपरिष्वंगादि साम तत् । हस्त्यश्वदेशरत्नादि दत्ते सोपप्रदा मता ॥ ६३ ॥ कृत्यानामुपजापेन स्वीकृतिं मेदमादिशेत् । शप्पमुष्टिवध दाहलोपविध्वसनादिक ॥ ६४ ॥ शत्रुक्षयकरं कर्म दंडितैर्दंडमिष्यते । इंद्रियाणां निजार्थेषु प्रवृत्तिरविरोधिनी ॥ ६५ ॥ कामादिशत्रुविन्यासो वा जयो जयशालिनः । संधिः स विग्रहो नेतुरासनं यानसंश्रयौ ॥ ६६ ॥ द्वैधीभावश्च षट् प्रोक्ता गुणाः प्रणयिन श्रियः । कृतविग्रहयोः पश्चात्केनचिद्धेतुना तयोः ॥ ६७ ॥ मैत्रीभावः स संधिः स्यात्सावधिर्विगतावधिः । परस्परापकारोऽरिविजिगीष्वोः स विग्रहः ॥ ६८ ॥ मामिहान्योऽहमप्यन्यमशक्तो हंतुमित्यसौ । तूष्णीं भावो भवेन्नेतुरासनं वृद्धिकारणं ॥ ६९ ॥ स्ववृद्धौ शत्रुहानौ वा द्वयोर्वाभ्युद्यमं स्मृत । अरिं प्रति विभोर्यानं तावन्मात्रफलप्रद ॥ ७० ॥ अनन्यशरणस्याहुः सश्रय सत्यसश्रय । संधिविग्रहयोर्वृत्तिर्द्वैधी-

(खजाना) तथा दंड (सेना) वाअधिक दंड देनेकी शक्तिको प्रभुशक्ति कहते हैं ॥ ६१ ॥ राजा लोग जिनसे अपना अभिप्राय सिद्ध करते हैं ऐसे साम उपप्रद (दाम) दंड और मेद ये चार उपाय नयोंके अच्छे जानकार लोग वतलाते हैं ॥ ६२ ॥ वचन और शरीरका आलिंगन आदि प्रिय और हितरूप करना साम है तथा हाथी घोडा देश रत्न आदि देना उपप्रद वा दाम अथवा दान कहलाता है ॥ ६३ ॥ कृत्य पुरुषोंको फूट डालकर (परस्पर विरोधकर) मिला लेना मेद कहलाता है और रस्सी मुष्टियोंसे मारना, जलाना, छिपादेना नाश कर देना आदि शत्रुओंको क्षय करनेवाले जितने काम हैं उन सबको पंडित लोग दंड कहते हैं । इंद्रियोंके विषयभूत पदार्थोंमें जो परस्पर विरोध रहित प्रवृत्ति है जोकि काम आदि शत्रुओंको त्रास देनेवाली है उसे जयशाली लोग जय वतलाते हैं । इसीतरह लक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले लोगोंके संधि, विग्रह, लानेवालेकेलिये आसन देना, यान संश्रय और द्वैधीभाव ये छह गुण कहे हैं । पाहिले जिन दो (या अनेक) राजाओंमें युद्ध हुआ हो और फिर किसी कारणसे उनमें मित्रता हो जाय उसको संधि कहते हैं यह संधि किसी नियत समय तक भी होती है और समयकी सीमाके विना सदाके लिये भी होती है । परस्पर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंका परस्पर अपकार वा हानि करना विग्रह कहलाता है ॥ ६५–६८ ॥ यह शत्रु मुझे मार सकता है परंतु मैं इस शत्रुको नहीं मार सकता यही समझकर चुप रहना यह वृद्धि वा उन्नति करनेवाला नेताका आसन कहलाता है ॥ ६९ ॥ अपनी उन्नति और शत्रुकी हानि करनेके लिये जो उद्यम करना शत्रुपर चढकर जाना है वह यान कहलाता है उसका फलभी शत्रुकी हानि और अपनी उन्नति है ॥ ७० ॥ जिसका कोई शरण नहीं है उसे अपनी शरणमें रखकर आश्रय देना संश्रय है । तथा शत्रुओंमें

त्नृपं ॥ ५० ॥ काश्चिदेशे क्रमायातमस्त्पुरवरं पुरा । वाराणसी तदद्याभूदनधिष्ठितनायकं ॥ ५१ ॥ आज्ञा यद्यस्ति देवस्य तदा वामुदितोदितं । विधास्याव इति श्रुत्वा नरेंद्रस्तद्वचोरितं ॥ ५२ ॥ वियोगमक्षमः सोढुमेतयोर्भरतादय । अस्मद्वंस्या महीनाथा. स्थितात्रैव पुरे पुरा ॥ ५३ ॥ षट्खंडमंडितां पृथ्वीं बहवो पालयंश्चिरं । एकदेशस्थयोरेव सूर्याचंद्रमसोरिव ॥ ५४ ॥ विभाति भवतोस्तेजो व्याप्नोति महिमंडलं । तत. किं तत्प्रयाणेन मायातमिति सोब्रवीत् ॥ ५५ ॥ निषिद्धावपि तौ तेन पुनश्चैवमवोचतां । आवयोरेव देवस्य स्नेहो याननिषेधनं ॥ ५६ ॥ शौर्यस्य संभवो यावद्यावत्पुण्यस्य च स्थिति । तावत्तुत्साहसंनाहं न मुंचत्युदयार्थिनः ॥ ५७ ॥ बुद्धिशक्तिमुपायं च जयं गुणविकल्पन । सम्यक्प्रकृतिभेदांश्च विदित्वा राजसूनुना ॥ ५८ ॥ महोद्योगो विधातव्यो विरुद्धान्विजिगीषुणा । स्वभावविनयोद्भूता द्विधा बुद्धिर्निगद्यते ॥ ५९ ॥ मंत्रोत्साहप्रभूक्ता च त्रिधा शक्तिरुदाहृता । पंचांगमंत्रनिर्णीतिर्मंत्रशक्तिर्मतागमे ॥ ६० ॥ शौर्योर्जितत्वादुत्साहशक्तिः शक्तिज्ञसंमता । प्रभुशक्तिर्महीभर्तुराभिख्य कोशदण्डयो ॥ ६१ ॥ सान्त्र मो-

परंतु अब वह कुछ दिनसे विना स्वामीके पड़ा है । हे देव ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम दोनों भाई वहां रहकर उसे फिरसे धनजनसंपन्न और सुशोभित बना दें । दोनों भाइयोंकी यह बात सुनकर महाराज कहने लगे कि मैं तुम दोनों का वियोग सह नहीं सकूंगा । दूसरे भरत आदि हमारे ही वंशमें उत्पन्न हुये अनेक राजा महाराजाओंने पहिले इसी नगरमें रहकर छह खंडोंसे सुशोभित इस पृथ्वीका बहुत दिनतक पालन किया है । जिस प्रकार सूर्य और चंद्रमा एक ही जगह रहते हैं और उनका प्रकाश सब संसारमें फैल जाता है उसीप्रकार एक जगह रहते हुए भी तुम दोनोंका प्रताप समस्त पृथ्वीमंडलमें फैल जायगा इसलिये वहां जानेसे कुछ लाभ नहीं है तुमलोग मत जाओ ॥ ५१–५५ ॥ इस तरह यद्यपि महाराजने दोनोंको जानेका निषेध किया था तथापि वे दोनों भाई फिर कहने लगे कि हे देव आप जो हमको रोकते हैं सो इसमें आपका स्नेह ही कारण है ॥ ५६ ॥ इस संसारमें जबतक शूरवीरताकी संभावना रहती है जबतक पुण्यकी स्थिति रहती है तबतक अपनी उन्नति चाहनेवाले लोग कभी अपने उत्साहकी तैयारीको नहीं छोडते हैं ॥ ५७ ॥ अपने विरोधी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजपुत्रोंको बुद्धि, शक्ति. उपाय, जय, गुणोंके भेद, और प्रकृतियोंके भेदोंको अच्छीतरह जानकर बडा भारी उद्योग करना चाहिये । उनमेंसे बुद्धि दो प्रकारकी है एक स्वभावसे उत्पन्न हुई और दूसरी विनयसे उत्पन्न हुई ॥ ५८–५९ ॥ शक्ति तीन तरहकी है मंत्र उत्साह और प्रभु उनमेंसे पांच तरहके मंत्रोंसे जो निर्णय हो वह शास्त्रोंमें मंत्रशक्ति कहलाती है ॥ ६० ॥ शक्तिके जाननेवाले शूरवीरतासे उत्पन्न हुए उत्साहको उत्साह शक्ति कहते हैं और राजाके कोश

नोषस्य कामस्य सामवायिकता वहन् ॥ ४१ ॥ कामितां न्वउदन्मान वियुक्तान् दंडयन् नृपां । संयुक्तान् निचितान् कुर्वन् प्रचंड: प्राविशद्वसा[॥ ४२ ॥
तदागमनमात्रेण सद्वनस्पतिमालय । काश्चिदंकुरिताः काश्चित्सानुरागा सपल्लवे ॥ ४३ ॥ काश्चित्कोरकिताः काश्चिन्मदासाः कुसुमोत्करे । स्वावण्याद्यान-
विलेशा कांता इव निरंतरं ॥ ४४ ॥ हिमानीपटलोन्मुक्त सुव्यक्त चंद्रमंडलं । ज्योत्स्नां प्रसारयामास दिक्षु सन्गीतिप्रायिनी ॥ ४५ ॥ मारमामोदमा-
दाय विकान्मुपज रज । सरोमारिकणैः सार्दमपान्थपवनो वयौ ॥ ४६ ॥ तदान्यानिश्च रावस्य रामान्ति. चतुरनृपः । प्रेत्यामिर्लक्ष्मण
स्यापि पृथिवीदेविकादिभि ॥ ४७ ॥ प्रीत्या षोडशमानाभिर्जिनपूजापुरस्सरं । तनूजाभिर्नरेंद्राणां विवाहमकरोत्कृती ॥ ४८ ॥ ततः सर्वेतुषु प्रेम्णा ता-
मिस्तौ सुखमीयतुः । ताश्च ताभ्यामथो यस्माद्वाह्यहेतोः सुखप्रदः ॥ ४९ ॥ एव स्वपुण्यपाकान्मसुखानुभवतत्परौ । तौ कदाचिन्मथोचं कदाचित्प्रोच-

के साथ अपना संबंध दृढ करते हुये, तथा कामियोंके अभिमानको चूर २ करते हुए, वियोगियोंको खूब दंड देते हुये और संयोगियोंको एकत्रित करते हुए प्रचंड वसंत ऋतुने इस संसारमें प्रवेश किया ॥ ४१-४२ ॥ उस वसंतऋतुके आते ही जो वनकी अच्छी वनस्पतियां थीं उनमेंसे कितनी ही वनस्पतियोंपर तो अंकूरे आगये और कितनी ही अपने आये हुए नये पत्तोंसे प्रेम प्रगट करने लगीं ॥ ४३ कितनी ही वनस्पतियोंपर कलियां आगईं कितनी ही अपने आए हुये फूलोंके समूहोंसे हँसने लगीं और कोई घनवाली स्त्रियोंके समान केवल अपना ही ध्यान करने लगीं ॥४४॥ उस समय पाला अथवा बादलोंके पटलसे छूटे हुए और इसलिये ही अच्छीतरह दिखनेवाले चंद्रमंडलने सब दिशाओंमें शोभा फैला देनेवाली अपनी चांदनी फैला दी थी ॥ ४५ ॥ दक्षिण दिशाका वायु सब जगह फैले हुये पुष्पोंकी रज की सारभूत सुगंधिको लेकर तालावोंके जलकी छोटी २ बूंदोंके साथ २ बह रहा था। भावार्थ—उस समय दक्षिण-दिशासे शीतल और सुगंधित वायु चल रहा था ॥ ४६ ॥ उसी समय चतुर राजा दशरथ ने श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा आदि सब विधिपूर्वक अन्य राजाओंकी सुंदर सात और कन्याओंसे रामका विवाह किया था और पृथिवी देवी आदि सोलह राजकन्याओंसे बडे प्रेमसे लक्ष्मणका विवाह किया था ॥ ४७-४८ ॥ इसतरह सब ऋतुओंमें वे दोनों ही भाई बडे प्रेमके साथ उन स्त्रियोंसे सुख पाने लगे तथा वे स्त्रियां भी उन दोनों भाइयोंसे सुख पाने लगीं सो ठीक ही है क्योंकि पुण्य बाह्य कारणोंसे ही सुख दे सकता है ॥ ४९ ॥ इसतरह अपने पुण्यकर्मके उदयसे सुखोंके अनुभव करनेमें तत्पर वे दोनों ही भाई किसी एक दिन समय देखकर महाराज दशरथसे कहने लगे ॥ ५० ॥ कि काशी देशमें बनारस नामका उत्तम नगर हमारे पूर्वजोंकी परंपरासे ही हम लोगोंकी आधीनतामें चला आ रहा है

प्रहेतव्याविति नैमित्तिकोक्तित । राज्ञाशिलवलेनामा प्रहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥ प्रत्युद्गता महीशेन जनकेनानुरागिणा । प्राग्मन्त्रागतिसोद्योगदपु-
ण्यपरिपाकतः ॥ ३१ ॥ रूपादिगुणसंपत्त्या मत्यमेता गतोपमा । इति पौरैः प्रशंसद्भिः प्रेक्षमाणौ समं तत ॥ ३२ ॥ पुरं प्रविश्य भूपोक्ते स्थाने
न्यवसतां सुखं । दिनैः कतिपयैरेव नृपमण्डलसन्निधौ ॥ ३३ ॥ निर्वर्त्याभिमतं यज्ञविधानं तदनंतरं । महाविभूतिभिः सीतां ददौ रामाय भूपतिः ॥ ३४ ॥
दिनानि कानिचित्तत्र सीतयैव श्रिया समं । नवप्रेमसमुद्भूतं सुखं रामोऽन्वभूद्भृशं ॥३५॥तदा दशरथाभ्याशादागतामात्यवाक्यतः। जनकानुमतः शुद्धतिथौ
परिजनान्वितः॥३६॥ अभ्ययोध्यां पुरीं सीतासमेतो जातसम्मदः । लक्ष्मणेन च गत्वाशु स्वानुजाभ्यां स्वबंधुभिः ॥ ३७ ॥ परिवारैश्च सं प्रत्युद्गम्यमानो
निजां पुरीं । विभूत्या दिविजेन्द्रो वा विनीतां प्राविशज्जयी ॥३८॥ दृष्ट्वा यथोचितं प्रीत्या पितरौ प्रीतचेतसौ । वर्धमानश्रियौ भ्रातृसहितौ न्यवसत्सुखं ॥
३९ ॥ तदा तदुत्सवं भूयो वर्द्धयन्नात्मना मधुः । कोकिलालिकुलालापडिंडिमो मंडयन् दिशः ॥ ४० ॥ संधिं तपोधनैः सार्धं विग्रहं शिथिलव्रतैः । प्रक-

इनकी उपमा संसारमें कहीं नहीं है " इसतरह कहते हुए नगरनिवासी लोग जिन्हें देख रहे हैं ऐसे दोनों भाइयोंने नगरमें प्रवेश किया और वे महाराज जनकके वतलाए हुए स्थानमें सुखपूर्वक रहने लगे। थोडे ही दिनोंमें अनेक राजाओंके सामने राजा जनककी इच्छानुसार वह यज्ञकी विधि पूरी हुई और फिर राजा जनकने वडी विभूतिके साथ रामके लिये सीता व्याह दी ॥ ३१–३४ ॥ रामचंद्रने थोडे दिन तक लक्ष्मीके समान सीताके साथ २ बहुत अच्छी तरह वहीं जनकपुरमें नये प्रेमसे उत्पन्न हुए सुखका अनुभवकिया ॥ ३५ ॥ उसीसमय राजा दशरथके यहांसे रामको लेनेके लिये एक मंत्री आया, तदनुसार राजा जनककी आज्ञा लेकर किसी शुद्ध तिथिके दिन रामने वडी प्रसन्नतासे सीता लक्ष्मण और परिजनोंके साथ अयोध्या नगरीको गमन किया। वहां पहुंचकर वडी शीघ्रतासे सामने आये हुए अपने दोनों छोटे भाई, बंधु और परिवारके लोगोंसे मिले और जिसप्रकार इंद्र अपनी नगरीमें प्रवेश करता है उसीप्रकार उन विजयी दोनों भाइयोंने बडी विभूतिके साथ अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया ॥ ३६–३८ ॥ माता पिताने संतुष्टचित्त होकर बडे प्रेमसे और यथा योग्य रीतिसे उन्हें देखा तथा इस तरह जिनकी लक्ष्मी वा शोभा रात दिन बढ रही है ऐसे राम और सीता छोटे भाइयोंके साथ २ सुखसे निवास करने लगे ॥ ३९ ॥ उसीसमय उस उत्सवको अपने साथ बढाता हुआ वसंत ऋतु आया, कोइल और भ्रमरोंकी मीठी आवाजें ही उसके नगाडे थे और वह सब दिशाओंको सुशोभित कर रहा था ॥ ४० ॥ कामदेव जो तपस्वियोंके साथ संधि करना चाहता था और जिनके व्रत शिथिल हैं उनके साथ युद्ध करना चाहता था उस काम-

जेमामिति मारीचमाज्ञापयदसावभीः। सोपि मंदोदरीगेहं गत्वा देवस्य देवि मे ॥ १९ ॥ कर्मेवं निर्घृणस्यासीदिति तस्यै न्यवेदयत्। सापि देवनिदेशस्य नाहमस्मि निवारिका ॥ २० ॥ इति प्रभूतद्रव्येण मंजूषायां विधाय तां। तत्सन्निधानपत्रेण सहोक्त्वेद च त मुहुः ॥ २१ ॥ मारीचमान्यसे स्निग्धप्रकृत्या बालिकामिमां। बाधाविरहिते देशे निक्षिपेति गलज्जले ॥ २२ ॥ विमृज्य लोचने तस्मै स्वतनूजां समार्पयत्। स नीत्वा मिथिलोद्याननिकटप्रकटे क्वचित् ॥ २३ ॥ धरांत कृतमंजूषो विषण्णो न्यवृतच्छुचा। तस्मिन्नेव दिने दृष्ट्वा गेह निर्मापण प्रति ॥ २४ ॥ भूमिसंशोधने लाङ्गलाग्रलग्नान्नियोगिन। मंजूषामेतदाश्चर्यमिति भूपमबोधयन् ॥ २५ ॥ सुरूपां बालिकां वीक्ष्य तदभ्यन्तरवर्तिनीं। नृपस्तदवतारार्थं पिलेखादवबुध्य स ॥ २६ ॥ तत्पूर्वापरसम्बन्धमेषा सीताभिधानिका। सुता भवेत्तवेत्येतां वसुधायै ददौ मुदा ॥ २७ ॥ वसुधा च सुधागेहे गुणवती कलागुणान्। अवर्द्धयदिमा गूढ लंकेशोपि न वेत्त्यमूं ॥ २८ ॥ वार्ता जनकयागस्य तस्मान्नात्रागमिष्यति। दास्यत्यवश्य रामाय तां कन्यां मिथिलेश्वरः ॥ २९ ॥ तत्कुमारौ

गी है मारीच तू स्वभावसे ही कोमल प्रकृतिवाला है तू इस कन्याको किसी उपद्रवरहित जगहमें रखना। उससमय उसके नेत्रसे आंसू बह रहे थे उन्हें पोंछकर उसने वह कन्या मारीचको सुपुर्द की। वह मारीच उस कन्याको लेकर मिथिला देशके निकट किसी बनमें गया और संदूकको पृथ्वीमें गाडकर शोक करता हुआ तथा खेदखिन्न होता हुआ वहांसे लौट आया। दैवयोगसे उसी दिन बहुतसे लोग घर बनानेके लिये भूमि देख रहे थे उनके हलकी नोकसे वह संदूक दिखपडी उन्होंने तुरंतही राजाको खबर दी और कहा कि यह आश्चर्य करनेवाली संदूक हमलोगोंको मिली है ॥ २१–२५ ॥ महाराजने उस संदूकके भीतर सुंदर कन्याको देखा और उसीमें रक्खे हुए लेखसे उसके उत्पन्न होनेका हाल तथा उसका अगिला पीछिला सब संबंध जान लिया उन्होंने उसका सीता नाम रक्खा बडी प्रसन्नतासे वसुधा रानीको उसे सौंपा और कहा कि इसे तुम कन्याके समान पालो॥२६–२७॥तदनंतर रानी वसुधा अपने सुधाघरमें छिपे छिपे वढाने के साथ उसके कला गुणोंको भी बढाने लगी। यह बात रावणको भी मालूम नहीं है तथा जनक कोई यज्ञ करता है यह वात भी उसे मालूम नहीं है इसलिये इस यज्ञमें रावण तो आवेगा नहीं और जनक अवश्य ही रामके लिये वह कन्या समर्पण कर देंगे ॥ २८–२९ ॥ इसलिये दोनों कुमारोंको वहां अवश्य ही भेजना चाहिये। इसतरह नैमित्तिकके कहे अनुसार सब सेनाके साथ राम लक्ष्मणको वहां भेज दिया ॥ ३० ॥ राजा जनकने बडे प्रेम से सामने आकर उनका आदर सत्कार किया, वहांके नगरनिवासियों ने इनकी बडी प्रशंसा की और कहा "पहिले जन्मके संचित किये हुए अपने अनंत पुण्य कर्मोंके उदयसे ही इन्हें ऐसी रूप आदि गुणोंकी संपत्ति मिली है सच है

लंब्धतामिति ॥ ६११ ॥ हस्तावलम्बनेनैन निराकर्तुं समुद्यताः । 'युष्माभिः सम्यगेवोक्तं लब्धा स्त्रीविषयैव सा ॥ ६१२ ॥ न पुंसु यदि तत्रास्ति लब्धा साधारणी भवेत् । ततः स्त्रीभिः कथ पुंसा संगमोऽनगसंस्कृतः' ॥ ६१३ ॥ इति वृद्धोक्तिमाकर्ण्य ब्राह्मणोऽय न केवल । कोऽपि रूपपरावृत्तिविषया मामुपागत ॥ ६१४ ॥ इत्योकलय्य को दोषो विप्र प्राघूर्णको मम । तिष्ठत्वत्रेति तच्चेटिका निवारयति स्म सा ॥ ६१५ ॥ तन्निशावसितौ शुद्धदेशजस्वरभेदवित् । गीतवान्मधुरं वृद्धश्चिरं श्रोत्रमनोहरं ॥ ६१६ ॥ गन्धर्वदत्ताकल्याणकाले सालंक्रिय कल । जीवंधरकुमारस्य गीत वैतच्छ्रुते सुख ॥६ ७॥ इति प्रात समुत्थाय विनयेनोपसृत्य त । साप्राक्षीत्केषु शास्त्रेषु प्रबोधो भवतामिति ॥ ६१८ ॥ 'धर्मार्थकामशास्त्राणि भूयोऽभ्यस्तानि यत्नतः । तेषु धर्मार्थयो कामशास्त्रात्फलविनिश्चय ॥ ६१९ ॥ कथ तदिति चेत्किंचिन्मया तत्र निरूप्यते । पंचेन्द्रियाणि तेषा च विषया पचधा स्मृताः ॥ ६२० ॥ स्पर्शादयोऽष्टधा स्पर्शा कर्कशाद्या श्रुतोदिताः । रसोऽपि पचविधः प्रोक्तो मधुरादिर्मनीषिभि ॥ ६२१ ॥ कृतक सहजश्चेति गन्धोऽपि द्विविधो मतः । सर्वे. सुगधदुर्गंधचे-

उस बूढेके वचन सुनकर वह गुणमाला मनमें कहने लगी कि यह कोरा ब्राह्मण नहीं है किंतु रूप बदलनेवाली विद्यासे कोई अन्य ब्राह्मणका रूप बना कर मेरे पास आया है ऐसा विचार कर वह प्रत्यक्षमें कहने लगी कि इसमें कोई दोष नहीं है यह ब्राह्मण मेरा अतिथि है इस लिये इसे यहा बैठने दो' इसप्रकार कह कर उसने दासीको रोक दिया ॥६१४-६१५॥ इसप्रकार रात्रिके बीत जानेपर शुद्धज और देशज आदि स्वरोंके भेदोंको, जाननेवाले उसने मधुर गीत गाये गंधर्वदत्ताके स्वयंवरके समय जो जीवंधरने अलंकार सहित मधुर गीत गाये थे वैसे ही गीत उस ब्राह्मणने गाये जिसे सुनकर गुणमालाको बहुत ही सुख हुआ ॥६१६-६१७॥ सवेरे ही उठकर वह गुणमाला बडी विनयके साथ उस ब्राह्मणके पास पहुंची और उससे पूछने लगी किन किन शास्त्रोंमें आपका ज्ञान अच्छा है ॥ ६१८ ॥ इसके उत्तरमें जीवंधरने कहा कि मैंने धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र और कामशास्त्र बडे यत्नसे अच्छी तरह अभ्यास किये हैं। इन शास्त्रोंमें कामशास्त्रसे ही धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्रके फलका निश्चय होता है भावार्थ—धर्मसे अर्थ और अर्थसे कामकी प्राप्ति होती है इसलिये कामकी प्राप्तिसे धर्म और अर्थका निश्चय हो जाता है ॥ ६१९ ॥ यह कैसे होता है सो भी मैं कुछ थोडासा कहता हूं। इंद्रियां पांच हैं और स्पर्शादिक उनके विषय भी पांच ही प्रकारके कहे गये हैं उनमेंसे शास्त्रोंमें कहे हुए कर्कश आदिके भेदसे स्पर्शके आठ भेद होते हैं और विद्वानोंने मधुर आदिके भेदसे रस भी छह प्रकारका बतलाया है ॥ ६२०-६२१ ॥ सुगंध और दुर्गंधरूप चेतन अचेतन वस्तुओंमें उत्पन्न होनेवाला सब तरहका गंध भी कृतक और सहजके भेदसे दो तरहका माना गया है ॥ ६२२ ॥ इसीतरह सफेद काले आदिके भेदसे रूप पांच तरहका है और जीव तथा अजीवसे उत्पन्न हुए स्वर षड्ग आदिके भेदसे सात

तनेतरवरत्नुगः ॥६२२॥ रूपं पंचविधं श्वेतकृष्णादिप्रविभागभाक्। षड्गादयः स्वरा सप्त जीवाजीवसमुद्भवाः॥६२३॥इत्यष्टाविंशतिर्भूला द्वैगुण्य पुनरागता । इष्टानिष्टविकल्पाभ्यां षट्पंचाशद्विकल्पना ॥६२४॥ तेष्विष्टाः कृतपुण्याना तानि पुण्यानि धर्मत । निषिद्धविषयत्यागो धर्मः सद्भिरुदीरित ॥६२५॥ निषिद्धविषय तस्मात्परिहृत्य विचक्षणाः । शेषाननुभवंतोऽत्र कामशास्त्रविदो मता ॥ ६२६ ॥ त्वयानुभूयमानेषु दोषाः संतीह केषु चित्' । इति तेनोदित श्रुत्वा तद्दोषविनिवृत्तये ॥ ६२७ ॥ त्वयोपदेश. कर्तव्यो यास्यामि तव शिष्यतां । इत्युदीर्णवतीं विप्रस्ता व्यनैषीत्कलादिषु ॥ ६२८ ॥ सर्वे तत्पुनरन्येद्युर्विहर्तुं वनमागमन् । स्थितस्तत्रायमेकांतप्रदेशे गुणमालया ॥ ६२९ ॥ सह स्वाभाविक रूपमात्मनः समदर्शयत् । कन्या दृष्ट्वाथ तं जातसशया सत्रपा सती ॥६३०॥ मौनेनावस्थितां वीक्ष्य तामेष प्राक्तनोक्तिभि । चूर्णवासादिजाताभिः प्रत्याययदतिद्रुतं ॥ ६३१ ॥ पुन प्राक्तनरूपस्थः पुष्पशय्यामधिष्ठितः । कुरु मत्पादसंवाहमिति प्रेषयति स्म ता ॥ ६३२ ॥ तां च स्नेहेन तत्कर्म कुर्वतीं वीक्ष्य विस्मयात् । ते राजसूनव सर्वे तन्मत्रादिकमस्तुवन् ॥ ६३३ ॥ अथ तस्मा-

प्रकारके हैं ॥ ६२३ ॥ इसप्रकार पांचों इंद्रियोंके सव विषय अट्ठाईस होते हैं और फिर उनमें भी इष्ट और अनिष्टके भेदसे प्रत्येकके दो दो भेद हो जाते हैं इसप्रकार सब छप्पन भेद हो जाते हैं ॥ ६२४ ॥ इनमेंसे जो इष्ट विषय हैं वे पुरायवानोंको प्राप्त होते हैं तथा ये पुराय धर्मसे प्राप्त होते हैं और निषिद्ध विषयोंका त्याग करना ही सज्जनोंके द्वारा धर्म कहा जाता है ॥ ६२५ ॥ इसलिये जो चतुर पुरुष निषिद्ध विषयोंका त्यागकर शेष विषयोंका अनुभव करते हैं वे ही इस संसारमें कामशास्त्रके जानकार कहलाते हैं ॥ ६२६ ॥ हे गुणमाले ! तू जो विषयोंका अनुभव करती है उसमें कितने ही दोष है। ब्राह्मणकी यह बात सुनकर वह गुणमाला कहने लगी कि उन दोषोंको दूर करनेकेलिये तुम मुझे कुछ उपदेश दो। मैं आपकी शिष्या बन जाऊंगी। यह सुनकर उस ब्राह्मणने उसे बहुतसी कलाएं सिखलाईं ॥ ६२७–६२८ ॥ तदनंतर किसी दूसरे दिन सब लोग बनमें घूमने फिरनेकेलिये गये वहां जाकर जीवंधरने गुणमालाके साथ एकांतमें बैठकर उसे अपना स्वाभाविकरूप दिखलाया। उसे देखकर सती गुणमालाको कुछ संदेह हो गया और वह लज्जित होकर मौन धारणकर बैठ गई। उसे मौनसे बैठी देखकर जीवंधरने सुगंधित चूर्णकी कथासे लेकर पहिलेकी सब बातें कहकर बहुत ही शीघ्र उसे विश्वास दिला दिया ॥ ६२९–६३१ ॥ तदनंतर फिर वह अपना पहिला ब्राह्मणकासा रूप बनाकर पुष्पशय्यापर बैठ गया और गुणमालासे कहने लगा तू मेरे पैर दाब ॥ ६३२ ॥ वह गुणमाला भी उसके स्नेहसे पैर दाबने लगी उसे पैर दाबते देखकर उन राजपुत्रोंको बडा आश्चर्य हुआ और फिर वे सब उस ब्राह्मणके मंत्र आदिकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६३३ ॥ तदनंतर वह कुमार बनसे अपने घर आगया गुणमालाने भी घर आकर अपने माता पितासे जीवंधरके

द्धनाद्देहमागतो गुणमालया । मातुः पितुश्च जीवंधरागतिः कथिता मिथः ॥ ६३४ ॥ विवाहविधिना तौ च तां तस्याकुरुतां प्रिया । दिनानि कानिचित्तत्र स्थित्वा जीवंधरस्तया ॥ ६३५ ॥ सुखानि सह भुंजानः सर्वबन्धुसमन्वितः । जनप्रस्तूयमानोरुभाग्यो गंधगजं गिरिं ॥ ६३६ ॥ विजयादिं समारुह्य चतुरंगबलावृतः । गृहं गंधोत्कटाख्यस्य प्राविशत्परमोदयः ॥ ६३७ ॥ तदुत्सवं समाकर्ण्य स काष्ठांगारिकः क्रुधा । पश्य वैश्यात्मजो मत्तो मनाक् च न बिभेति मत् ॥ ६३८ ॥ इति प्रकाशकोपोऽभूत्तद्वीक्ष्य सचिवोत्तमाः । "जीवंधरकुमारोऽयं दैवादाविष्कृतोदयः ॥ ६३९ ॥ गन्धर्वदत्तया साक्षाल्लक्ष्म्येव समुपाश्रितः । यक्षेण कृतसंवृद्धिर्मित्रेणाव्यभिचारिणा ॥ ६४० ॥ मधुरादिसहायैश्च सहितो यत्नतो महान् । अमेयविक्रमोऽनेन विग्रहो नैव युज्यते ॥ ६४१ ॥ बलिना सह युद्धस्य हेतुः कोऽपि न विद्यते" । इत्यादियुक्तिमद्वाग्भिस्तमाशु समशीशमन् ॥ ६४२ ॥ इदमन्यदितं किंचित्प्रस्तुतं प्रतिपाद्यते । विदेहविषये ख्यातं विदेहाख्यं पुरं परं ॥ ६४३ ॥ गोपेन्द्रो भूपतिस्तस्य पाता पातितविद्विषः । तुक् पृथिव्यादिसुंदर्यां राज्ञ्यां रत्नवती सती ॥ ६४४ ॥ चन्द्रकव्यधने दक्षं

आनेके समाचार कह सुनाये और माता पिताने भी विधिपूर्वक विवाहकर वह गुणमाला जीवंधरको व्याह दी। इसके बाद वह जीवंधर कुछ दिन तक तो वहींपर उसी गुणमालाके साथ रहा और सब भाई बंधुओंके साथ अनेक तरहके सुखोंका अनुभव करने लगा। संसारके लोग भी उसके बडेभारी भाग्यकी प्रशंसा करने लगे थे किसी एक दिन परम विभूतिको धारण करनेवाले उस कुमारने चारोंप्रकारकी सेना लेकर और विजयगिरि नामके गंधगजपर सवार होकर गंधोत्कटके घर प्रवेश किया ॥ ६३४–६३७ ॥ उस उत्सवको सुनकर काष्ठांगार वहुत क्रोधित हुआ और कहने लगा कि देखो यह महा अभिमानी उन्मत्त हुआ वैश्यपुत्र मुझसे विल्कुल नहीं डरता है इसप्रकार कहकर वह प्रगटरीतिसे क्रोध करने लगा उसे क्रोधित देखकर अच्छे अच्छे मंत्री कहने लगे कि " यह जीवंधर कुमार है भाग्यके उदयसे इसे बडी भारी विभूति प्राप्त हुई है गंधर्वदत्ता भी साक्षात् लक्ष्मीके समान इसकी सेवा करती है, अभिन्न मित्र ऐसे यक्षके द्वारा इसकी वृद्धि हुई है और मधुर आदि साथियोंके साथ यह बडे यत्नसे रहता है यह महान् पुरुष है इसके पराक्रमका कोई भेदन नहीं कर सकता इसलिये इसके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है क्योंकि बलवानके साथ युद्ध करनेसे कोई लाभ नहीं होता इसप्रकारके युक्तियोंके वचनोंसे मंत्रियोंने उसे शीघ्र ही शांत कर दिया ॥ ६३८–६४२ ॥ अब कथांतरके बाद प्रकृत विषयकी कथा कहते हैं विदेह देशमें एक विदेह नामका उत्तम नगर है उसमें शत्रुओंको नष्ट करनेवाला राजा गोपेंद्र राज्य करता था उसकी पृथिवी सुंदरी नामकी रानीसे सती रत्नवती नामकी पुत्री हुई थी ॥ ६४३–६४४ ॥ उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो चंद्रक यंत्रपर निशाना मारकर चतुरता दिखलावेगा उसीको मैं वरमाला पहिनाकर अलंकृत करूंगी उसके सिवाय अन्य

मालयालंकरोम्यहं । नेच्छाम्यन्य पतिं कंचिदकरोदिति संगरं ॥ ६४५ ॥ तद् ज्ञात्वास्या पिता चापवेदवेदुदितोदित । जीवंधरोऽत्र तत्कन्यामिमां तत्संनिधिं नये ॥ ६४६ ॥ इति राजपुरं गत्वा सकन्यः सहसाधन । घोषणां कारयामास स्वयंवरविधिं प्रति ॥ ६४७ ॥ तद्घोषणां समाकर्ण्य सर्वे भूखचरेश्वराः । कन्यापरिग्रहायायान्मङ्क्षु राजपुरं प्रति ॥ ६४८ ॥ स्वयंवरविधौ तस्मिंश्चन्द्रकव्यधने नृपान् । स्खलितांस्तान्बहून्वीक्ष्य जीवंधरकुमारकः ॥ ६४९ ॥ कृतसिद्धनमस्कारः स्वगुरोश्चार्यवर्मणः । विधाय विनयं बालभानुर्वोदयशैलगः ॥ ६५० ॥ स्थित्वा विभास्वरस्तस्मिंश्चक्रे स्खलनवर्जितं । कृतवेधो व्यधात्सिंहनादं दिक्तटं ॥६५१॥ साधु विद्धमनेनेति प्राशंसन् प्राश्निकास्तदा । कण्ठे मालां कुमारस्य सा समासजयन्मुदा ॥ ६५२ ॥ साधवस्तत्र योग्योऽयमनयोर्न्नु संगमः । शरत्समयहंसाल्योरिवेति प्रीतिमागतः ॥ ६५३ ॥ सर्वत्र विजयः पुण्यवतां को वात्र विस्मयः । इत्यौदासीन्यमापन्ना मध्यमाः हतबुद्धयः ॥६५४॥ काष्ठाङ्गारिकमुख्यास्ते नीचाः प्राप्तपराभवाः । प्राकस्मातदनुस्मृत्य दुष्प्रकोपप्रचोदिताः ॥ ६५५ ॥ पापास्तुमुलयुद्धेन कन्यामाहर्तुमुद्यताः । बुद्ध्वा जीव-

किसीको अपना पति नहीं बनाऊंगी ॥ ६४५ ॥ उस कन्याकी ऐसी प्रतिज्ञा जानकर उसके पिताने सोचा कि इस संसारमें धनुषविद्याको जाननेवाला और अत्यंत ऐश्वर्यशाली जीवंधर ही है इसलिये उसीके समीप यह कन्या ले चलनी चहिये । इसप्रकार विचारकर वह राजा उस कन्याको लेकर अपनी सब सेनाके साथ राजपुर नगरमें पहुंचा और वहां जाकर उसने स्वयंवरकी घोषणा कराई ॥ ६४६–६४७ ॥ इस घोषणाको सुनकर उस कन्याके साथ विवाह करनेकेलिये भूमिगोचरी और विद्याधरोंके राजा लोग शीघ्र ही राजपुर नगरमें आ पहुंचे ॥ ६४८ ॥ उस स्वयंवरमें उस चंद्रक यंत्रपर निशाना मारनेमें बहुतसे राजा लोग चूक गये तब उन सबको स्खलित हुआ देखकर जीवंधर कुमार उठा उसने पहिले ही सिद्धोंको नमस्कार किया फिर अपने गुरु आर्यवर्माकी विनय की और उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए बालसूर्यके समान दैदीप्यमान होकर खडा हुआ । तदनंतर उसने विना किसी भूलके उस यंत्रमें निशाना मार दिया और फिर सब दिशाओंके किनारोंको शब्दायमान करता हुआ सिंहनाद किया ॥ ६४९–६५१ ॥ उसीसमय धनुर्विद्याके अच्छे जानकार लोग उसकी प्रशंसा करने लगे कि इसने अच्छा निशाना मारा तथा उस रत्नवती कन्याने भी प्रसन्न होकर कुमारके कंठमें वरमाला पहिनाई ॥ ६५२ ॥ सज्जन लोग कहने लगे कि जिसप्रकार शरद समय और हंसोंकी पंक्तिका समागम होता है उसीप्रकार इन दोनोंका समागम बहुत ही ठीक हुआ है इसप्रकार उन दोनोंके समागमसे सज्जन लोगोंको बहुत ही प्रेम हुआ था ॥ ६५३ ॥ इसीतरह बुद्धिमान् मध्यस्थ लोग उदासीनता धारण करने लगे थे और कहने लगे थे कि पुण्यवानोंका सब जगह विजय होता है इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ६५४ ॥ तिरस्कारको प्राप्त हुए जो काष्ठांगारादिक

घरस्तेषां वैषम्य नयकोविद ॥६५६॥ सत्यंधरमहाराजसामंताद्यार्तिक तदा । प्राहिणोदिति संदिष्टान् दूतान् सोपायपायनान्बहून् ॥६५७॥ "अहं सत्यंधराधीशाद्विजयाया सुतोऽभवं । मत्पूर्वकृतदैवेन ताभ्याभुत्पत्त्यनंतरं ॥६५८॥ वियुक्तोऽस्मिन्वणिग्वर्यशरणे समवर्धिषि । काष्ठाङ्गारिकपापोऽय काष्ठागारादिविक्रियात् ॥ ६५९ प्राणसधारणं कुर्वन्पुष्मदुर्वीभृता कृत । द्वितीयप्रकृतिर्नीचो लब्धरंध्रो दुराशय ॥ ६६० ॥ तमेवाहिरिवाहत्य स्वय राज्ये व्यवस्थित । उच्छेद्यो न ममैवाशु शत्रुत्वाद्भवतामपि ॥ ६६१ ॥ रसातल गतोऽप्यद्य मयावश्य हनिष्यते । सत्यंधरमहीशस्य सामंतास्तस्य भाक्तिका ॥ ६६२ ॥ योधा पुष्टा महामात्रास्तेनान्ये चानुजीविन । कृतघ्नममुमुच्छेत्तुमर्हति कृतवेदिन " ॥ ६६३ ॥ ते तत्सदेशमाकर्ण्य कुमारोऽय नृपात्मज । सत्यमेवेति समाख्य बहवस्तेन संगता. ॥ ६६४ ॥ तत: सनद्धसैन्य संस्तस्य गत्वोपरि स्वयं । युद्ध्वा नानाप्रकारेण चिरं निर्जित्य तद्बल ॥ ६६५ ॥ गिर्यंतविजय गन्धगज

नीच पुरुष थे वे जीवंधरके पहिलेके पराभवका (गंधर्वदत्ताके विवाहके समय होनेवाले पराभवका), स्मरण करने लगे और नीच क्रोधसे प्रेरित होकर उन पापियोंने भारी युद्धकर कन्याको हरणकरनेका उद्यम किया। नयोंको जाननेवाले जीवंधरने उनकी यह विषमता जान ली और उसीसमय उसने सत्यंधर महाराजके जो सामंत थे उनके समीप भेट लेलेकर बहुतसे दूत भेजे उसने उन दूतोंके साथ यह समाचार कहला भेजा कि "मैं विजया महारानीसे उत्पन्न हुआ महाराज सत्यंधरका पुत्र हूं मैं अपने पहिले किये हुए कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होते ही माता पितासे अलग हो गया था और यहांके उत्तम वैश्य गंधोत्कटकी शरणमें जाकर इतना बढा हुआ हूं यह पापी काष्ठांगार काष्ठांगारकी विक्रियासे अर्थात् लकडी लाकर बेचना आदि व्यापारसे प्राण धारण करता था परंतु आपके स्वामी महाराज सत्यंधरने इसे मंत्री बनाया यह राजसी प्रकृतिका नीच मनुष्य है इस दुष्टने छिद्र पाकर सर्पके समान उन्हीं सत्यंधर महाराजको मारा और आप स्वयं राजसिंहासनपर बैठ गया। इसलिये आज मुझे ही इसका नाश नहीं करना चाहिये किंतु यह आपका भी शत्रु है इसलिये आपको भी शीघ्र ही इसका नाश करना चाहिये। यदि आज यह रसातलमें भी पहुंच जाय तो भी मैं आज इसे अवश्य मारूंगा। आप लोग सत्यंधरके सांमत हैं उनके भक्त हैं उनके योद्धा हैं उनके द्वारा पुष्ट हुए हैं उनके महामंत्री है और कृतज्ञ अर्थात् अपने स्वामी महाराज सत्यंधरके उपकारोंको जानते हैं इसलिये आपको तथा और भी जो उनके अनुचर वा अनुयायी हैं उन सबको आज इस कृतघ्नका अवश्य ही नाश करना चाहिये" ॥ ६५५–६६३ ॥ इस समाचारको पाकर बहुत सामंत विचार करने लगे कि यह कुमार अवश्य ही राजपुत्र है इसमें कोई संदेह नहीं है यही विचारकर बहुतसे सामंत उसकीओर आ मिले ॥ ६६० ॥ तदनंतर अपनी सब सेना तयारकर वह कुमार स्वयं उसके ऊपर गया और बहुत

समदमूर्जित । समारूढा प्ररूढाङ्ग काष्ठाङ्गारिकमुद्धत ॥६६६॥ उपर्यशनिवेगाख्यविख्यातकरिण स्थित । हत्वा चकार चक्रेण तनुशेष रुषा द्विष ॥ ६६७ ॥ विलोक्य तद्बले भग्नं भयादुपगते सति । तदाकार्षीत्समाश्वास विधायाभयघोषणः ॥६६८॥ बंधून्सर्वान् समाहूय विनेयानवलोक्य तान् । तत्कालोचितसभाषणादिभि-र्हार्दमानयत् ॥ ६६९ ॥ जिनपूजां विनिर्वर्त्य कृतमगलसत्क्रियः । यक्षेण भूभुजे सर्वैश्चासराज्याभिषेचनः ॥ ६७० ॥ रत्नवत्या च सप्राप्य स विवाहम-होत्सव । कृत्वा गंधर्वदत्ताया महत्याः पट्टबधन । नदाढ्याविसमानीतमातृजायादिभिर्युतः । सप्राप्य परमैश्वर्यमूर्जितो निर्जितद्विष ॥६७२॥ यथान्याय प्रजा सर्वाः पालयन् हेलयेप्सितान् । लीलयानुभवन् भोगान् स्वपुण्यफलितान् स्थित ।६७३। सुरादिमलयोद्याने कदाचिद्विहरन् विभुः । वरधर्मयतिं दृष्ट्वा संप्राप्य विहितानति ॥ ६७४ ॥ ततस्तत्त्व विदित्वातद्व्रतोऽभूद्दर्शननिर्मल । नदाढ्याद्याश्च सम्यक्त्वमतशीलान्युपागमत् ॥ ६७५ ॥ एतैः सुखमसौ स्वाप्तैः साकं कालमजीगमत् ।

देरतक अनेक तरहसे युद्धकर उसने काष्ठांगारकी सेना हराई ॥ ६६५ ॥ तब मरूढ आज्ञाको चलानेवाला उद्धत काष्ठांगार अशनिवेग नामके मसिद्ध हाथीके ऊपर सवार होकर आया और उसके सामनें मदोन्मत्त और बडे भारी ऐसे विजयगिरि नामके गंधगजपर सवार होकर जीवंधर भी आया। जीवंधरन क्रोधमें आकर चक्रसे उस शत्रु काष्ठांगारको मार गिराया ६६७-६६८ राजा काष्ठांगारके मरनेसे भंगके भयसे उसकी सेनाको भागती हुई देखकर जीवंधरने अभय घोषणा दिलवाई और सब को आश्वासन दिया ॥ ६६८ ॥ तदनंतर कुमारने अपने सब भाई बंधुओंको बुलाया और सबको नम्र देखकर उस समय के योग्य बात चीतके द्वारा सबको मसन्न किया ॥ ६६९ ॥ इसके बाद सबसे पहिले श्रीजिनेंद्र देवकी पूजा की गई फिर अनेक मांगलिक क्रियाएं हुई और फिर उस यक्ष और सब राजाओंके द्वारा जीवंधरका राज्याभिषेक किया गया ॥६७०॥ तदनंतर रत्नवतीके साथ उसका विवाह महोत्सव हुआ और फिर गंधर्वदत्ताको महापट्ट बांधा गया अर्थात् वह महा पट्टरानी बनाई गई ॥ ६७१ ॥ नंदाढ्य जीवंधरकी माता विजयाको ले आया था और हेमाभा आदि सब जीवंधरकी रानियोंको ले आया था उन सबके साथ जीवंधरकुमार परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ बहुत ही देदीप्यमान हुआ और उसने सब शत्रुओंको जीता ॥६७२॥ तदनंतर वह न्यायपूर्वक कौतुकसे ही सब प्रजाका पालन करने लगा और अपने पुण्य कर्मके फलसे प्राप्त हुए इष्ट भोगोंका लीलापूर्वक अनुभव करता हुआ रहने लगा ॥ ६७३ ॥ किसी एक समय महाराज जीवंधर सुरमलय नामके उद्यानमें विहार करने गये थे वहां पर उन्होंने वरधर्म नामके मुनिराजके दर्शन किये उनके समीप जाकर नमस्कार किया उनसे तत्त्वोंका स्वरूप जाना और व्रत धारण कर सम्यग्दर्शनको निर्मल किया। नंदाढ्य आदि भाइयोंने भी सम्यग्दर्शन व्रत और शील धारण किये ॥ ७७४-७७५ ॥ इसप्रकार वे जीवंधर महाराज इन आप्त लोगोंके

अथाशोकवनेऽन्यैर्युयुध्यमानं परस्परं ॥ ६७६ ॥ कपीनां यूथमालोक्य ज्वलत्क्रोधहुताशनं । जातसंसारनिर्वेगस्तस्मिन्नेव वनांतरे ॥ ६७७ ॥ प्रशस्तवंकनामानं चारणं वीक्ष्य सादरं । पूर्वश्रुतानुसारेण धुतात्मभवसंततिं ॥ ६७८ ॥ जिनपूजां विधायानु वर्धमानविशुद्धिक । सुरादिमलयोद्यानायान वीरजिनेशितु ॥ ६७९ ॥ श्रुत्वा विभूतिमद्गत्वा संपूज्य परमेश्वरं । महादेवीतनूजाय दत्त्वा राज्यं यथाविधि ॥ ६८० ॥ वसुंधरकुमाराय वीतमोहो महामना । मातुलादिमहीपालैर्नंदाढ्यमधुरादिभि. ॥ ६८१ ॥ सर्वसंगपरित्यागात्संयमं प्रत्यपद्यत । भुक्तभोगा हि निष्काङ्क्षा भवंति भुवनेश्वराः ॥ ६८२ ॥ सत्यंधरमहादेव्या सहाष्टौ सुदृश. स्नुषा. । सद्यो गंधर्वदत्ताद्यास्तासामपि च मातर ॥ ६८३ ॥ समीपे चंदनार्यायां जगृहुः संयमं परं । महानेको भवेद्धेतुर्बहूनामर्थसिद्धये ॥ ६८४ ॥ "भवता परिपृष्टोऽयं जीवंधरमुनीश्वरः । महीयान् सुतपा राजन् सप्रति श्रुतकेवली ॥६८५॥ घातिकर्माणि विध्वस्य जनितागृहकेवली सार्धं वि

साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे । अथानंतर किसी एक दिन वे महाराज अशोक वनमें गये थे वहांपर जिनकी क्रोधरूपी अग्नि जल रही है ऐसे दो वंदरोंके झुंड परस्पर लड रहे थे उन्हें लडते हुए देखकर जीवंधरको संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ । उसी वनमें प्रशस्तवंश नामके चारण मुनिराज विराजमान थे इसलिये जीवंधरने वडे आदरसे उनके दर्शन किये और पहिले सुने अनुसार अपने पहिले भवोंकी परंपरा सुनी ॥ ६७६–६७८ ॥ तदनंतर उन्होंने भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजाकर आत्माकी विशुद्धि वढाई । फिर उन्होंने सुरमलय उद्यानमें भगवान वीरनाथके समवसरणके आनेकी वात सुनी उसे सुनते ही वे वडी विभूतिके साथ वहां पहुंचे परमेश्वर भगवान वीरनाथ की पूजा की और गंधर्वदत्ता महादेवीके पुत्र वसुंधर कुमारको विधिपूर्वक अपना राज्य दिया । जिनका मोहनीय कर्म शांत हो गया है और जिनका मन आत्माके विशुद्ध भावोंमें लगा हुआ है ऐसे उन महाराज जीवंधरने मामा आदि अनेक राजाओं और नंदाढ्य मधुर आदि भाइयोंके साथ सव तरहके परिग्रहोंका त्यागकर संयम धारणकर लिया । सो ठीक ही है क्योंकि राजा लोग भोगोंका अनुभव कर फिर अंतमें आकांक्षारहित–विरक्त हो ही जाते हैं ॥ ६७९–६८२ ॥ गंधर्वदत्ता आदि सुंदर नेत्रोंको धारण करनेवाली जीवंधरकी आठों रानियोंने तथा उन रानियोंकी माताओंने महाराज सत्यंधरकी महादेवी विजयाके साथ चंदना आर्याके समीप जाकर शीघ्र ही उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि एक भी वडा आदमी अनेक लोगोंकी अर्थसिद्धिका कारण हो जाता है ॥ ६८३–६८४ ॥ हे श्रेणिक ? तूने जिन मुनिराजकेलिये पूछा था वे ही जीवंधर हैं ये वडे तपस्वी हैं और इससमय श्रुतकेवली हैं ॥ ६८५ ॥ घातिया कर्मोंको नाशकर ये अगृहकेवली होंगे महावीर तीर्थंकरके साथ विहारकर महावीर स्वामीके ही मोक्ष जानेके समय ही विपुलाचल पर्वतपर समस्त कर्मोंको नाशकर मोक्षरूप उत्कृष्ट

इत्य तीर्थेशा तस्मिन्मुक्तिमधिष्ठिते ॥ ६८६ ॥ विपुलाद्रौ हताशेषकर्मा शर्माग्र्यमेष्यति । इष्टाष्टगुणसंपूर्णो निष्ठितात्मा निरंजन" ॥ ६८७ ॥ इत्याकर्ण्य सु-धर्माख्यगणभृद्वचनामृतं । पिप्रिये श्रेणिकः कस्य न धर्मः प्रीतये भवेत् ॥ ६८८ ॥ अन्यैर्यः समवाप पूर्वसुकृतात्कन्याष्टकं दुर्लभं यः शत्रुं पितृघातिनं रण-मुखे लोकांतरं प्रापयत् । यः प्रव्रज्य विभिन्नकर्मतिमिरोऽभासिष्ट मुक्तिश्रिया तं वंदे मुकुलीकृतांजलिरहं जीवंधरस्वामिनं ॥ ६८९ ॥ विश्लेष्य षोडश दिना-नि स मदसानशावं विहाय करुणां विमतिः पितृभ्या । सप्राप षोडश समाः स्वसनाभिभेदं जीवधर, कुरुत तद्दुरितं न भव्या ॥ ६९० ॥ क्व स पितृ-नृपमृत्युः क्व श्मशाने प्रसूतिर्वणिगुपगमनं क्व क्व स्वयक्षोपकारः । क्व तदुदयविधानं शत्रुघातः क्व चित्रं विधिविलसितमेतत्पश्य जीवंधरेऽस्मिन् ॥ ६९१ ॥

इत्यार्षे त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते चंदनार्यिकाजीवंधरचरितं परिसमाप्तं पंचसप्ततितमं पर्व ॥ ७५ ॥

कल्याणको प्राप्त होंगे तथा उनका कृतकृत्य आत्मा इष्ट आठ गुणोंसे संपूर्ण होकर कर्मरूपी अंजनसे सर्वथा अलग हो जा-यगा ॥ ६८६–६८७ ॥ इसप्रकार सुधर्माचार्य गणधरके वचनरूपी अमृतको सुनकर राजा श्रेणिक वहुत ही प्रसन्न हुआ सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे किसको प्रसन्नता नहीं होती है? ॥ ६८८ ॥ जिसने पूर्व पुण्यकर्मके उदयसे अन्य लोगोंको दुर्लभ ऐसी आठ कन्याएं प्राप्त की, पिताका घात करनेवाले काष्ठांगार शत्रुको युद्धमें परलोक पठाया, जिसने दीक्षा ले-कर कर्मरूपी अंधकारको नष्ट किया और जो मोक्षरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हुआ ऐसे जीवंधर स्वामीको मैं हाथ जोडकर नमस्कार करता हूं ॥ ६८९ ॥ जिसने (जयद्रथ अवस्थामें) मूर्खतासे दयारहित होकर हंसके बच्चोंको सोलह दिनतक माता पितासे अलग रक्खा और इसीलिये जीवंधरको सोलहवर्षतक अपने कुटंबियोंसे अलग रहना पडा इसलिये भव्य जीवोंको पाप कार्य कभी नहीं करने चाहिये ॥ ६९० ॥ देखो कहां तो महाराज पिताकी मृत्यु, कहां श्मशानमें जन्म लेना, कहां वैश्यके घर जाकर पलना, कहां यक्षका उपकार, कहां सुंदर कन्याएं और राज्य आदि विभूतियोंकी प्राप्ति और कहां काष्ठांगार ऐसे शत्रुका घात करना । इस जीवंधरमें ही ऐसे विचित्र कर्मोंका उदय विद्यमान है ॥ ६९१ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित महापुराणके नवीन हिंदीभाषानुवादमें जीवंधरके चरित्रको कहनेवाला यह पिचहत्तरवां पर्व समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

अथ षट्सप्ततितमं पर्व ॥ ७६ ॥

अथान्येद्युर्महावीरः सुरासुरपरिष्कृत । विहृत्य विविधान् देशान् पुनस्तत्पुरमागत ॥ १ ॥ गणेंद्रैर्दशभिः पूज्यः स्थित. स विपुलाचले । गच्छंस्तं श्रेणिकः स्तोतुं वृक्षमूले शिलातले ॥ २ ॥ मुनिं धर्मरुचिं नाम्ना निस्तरंगमिवोदधिं । प्रदीपमिव निष्कंप सांबु वाभोदमुन्नतं ॥ ३ ॥ जितेंद्रियसमाहारं पर्यंकविहितासनं । ईषन्निरुद्धनिःश्वासं मनग्मीलितलोचन ॥ ४ ॥ ध्यायत वीक्ष्य वंदित्वा साशको विकृताननात् । ततो गत्वा जिनं प्राप्य स्तुत्वा मुकुलिताञ्जलिः ॥ ५ ॥ गौतम च मया दृष्ट. कश्चिदेकस्तपोधनः । ध्यायन् साक्षादिव ध्यातिस्तद्रूपेण व्यवस्थिता ॥ ६ ॥ स को मे कौतुक तस्मिन् ब्रूहि नाथेत्यभाषत । अनुयुक्तो गणी तेन प्रोवाच वचसापतिः ॥ ७ ॥ अस्त्यत्र विषयोंगाख्य' संगतः सर्ववस्तुभिः । नगरी तत्र चंपाख्या तत्पतिः श्वेतवाहनः ॥ ८ ॥ श्रुत्वा

अथ छिहत्तरिवां पर्व ।

अथानतर–जिनके चारोंओर सदा सुर असुर रहते हैं ऐसे श्रीमहावीर स्वामी अनेक देशोंमें विहार कर किसी दिन फिर उसी नगरमें आपहुंचे ॥ १ ॥ बारह सभाओंसे पूज्य वे भगवान विपुलाचल पर्वतपर विराजमान हुए राजा श्रेणिक उनकी स्तुति करनेके लिये जाने लगा। मार्गमें एक वृक्षके नीचे शिलाके ऊपर धर्मरुचि नामके मुनिराज विराजमान थे वे मुनिराज तरंगरहित समुद्रके समान निश्चल थे, दीपकके समान निष्कंप थे और जलसे भरे हुए बादलके समान उन्नत थे ॥ २–३ ॥ वे जितेंद्रियकी चरम सीमातक पहुंचे हुए थे पर्यंक आसनसे विराजमान थे थोडा थोडा श्वास रोके हुए थे और उनके नेत्र कुछ कुछ बंद थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार ध्यान करते हुए उन मुनिराजको देखकर श्रेणिकने उनकी वंदना की परंतु उन मुनिराजका कुछ विकृत मुह देखकर श्रेणिकको कुछ शंका उत्पन्न हो गई। तदनंतर वह भगवानके समवसरणमें पहुंचा और हाथ जोडकर भगवानकी स्तुति की ॥ ५ ॥ फिर उसने गौतम गणधरसे पूछा कि हे प्रभो मैंने मार्गमें एक मुनि देखे हैं वे ऐसा ध्यान कर रहे है मानों उनका रूप धारणकर साक्षात् ध्यान ही विराजमान हो। नाथ वे कौन हैं उनके जाननेकी मेरी बडी इच्छा है आप कृपाकर कहिये ? इसके उत्तरमें वे वचनोंके स्वामी गणधर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ ६–७ ॥ इसी भरतक्षेत्रके अंग देशमें सब वस्तुओंसे सुशोभित ऐसी एक चंपा नगरी है उसमें राजा श्वेतवाहन राज्य करता था ॥ ८ ॥ इन्हीं भगवान वीरनाथसे धर्मका स्वरूप सुनकर उसका चित्त तीनोंतरहके वैराग्यसे पूर्ण भरगया और अपने पुत्र विमलवाहनको राज्य देकर अनेक लोगोंके साथ उसने दीक्षा धारण करली। अनेक मुनियोंके साथ

धर्मे जिनादस्मात्तिनिर्वेगाहितासय: । राज्यभारं समारोप्य सुते विमलवाहने ॥ ९ ॥ संयमं बहुभि. सार्द्धमत्रैव प्रतिपन्नवान् । चिरं मुनिगणै: साकं विहृत्या-खंडसंयम: ॥ १० ॥ धर्मेषु रुचिमातन्वन् दशस्वप्यनिशं जनः । प्राप्तधर्मरुचि स्याति सख्यं यत्सर्वजंतुषु ॥ ११ ॥ अथ मासोपवासांते भिक्षार्थं प्राविश त्पुरं । पुरुषा संहतास्तत्र तत्समीपमिताास्त्रय: ॥ १२ ॥ नरलक्षणशास्त्रज्ञस्तेष्वेको वीक्ष्य तन्मुनिं । लक्षणान्यस्य साम्राज्यपदवीप्राप्तिहेतव ॥ १३ ॥ अट-त्येष च भिक्षार्थं शास्त्रोक्त तन्मृषेत्यसौ । वदन्नभिहितोन्येन न मृषा शास्त्रभाषित ॥ १४ ॥ त्यक्तसाम्राज्यतंत्रोयमृपि केनापि हेतुना । निर्विण्णस्तनये वाले निधाय व्याप्तृतिं निजा ॥ १५ ॥ एव तप. करोतीति श्रुत्वा तद्वचन पर । अवोचत्किमनेनास्य तपसा पापहेतुना ॥ १६ ॥ दुरात्मन: कृपा हित्वा वालं तमसमर्थक । लोकसव्यवहाराज्ञ स्थापयित्वा धरातले ॥१७॥ स्वय स्वार्थं समुद्दिश्य तप कर्तुमिहागत: । मत्रिप्रभृतिभि सर्वे कृत्वा त शृंखलावृत ॥ १८ ॥

बहुत दिनतक विहारकर अखंड संयमको धारण करते हुए वे मुनिराज यहां आ विराजमान हुए हैं ॥ ९–१० ॥ वे दश धर्मोंमें सदा प्रेम रखते थे इसीलिये लोगोंके द्वारा धर्मरुचिके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। सो ठीक ही है क्योंकि सब जीवोंमें मैत्रीभाव रखना ही धर्म प्रेम कहलाता है ॥ ११ ॥ आज एक महीनेके उपवासके बाद भिक्षाकेलिये नगरमें गये थे वहांपर उनके समीप तीन मनुष्य मिलकर आये थे ॥ १२ ॥ उनमेंसे एक मनुष्य मनुष्योंके लक्षणशास्त्र जानता था उसने उन मुनिराजको देखकर कहा कि इनके लक्षण साम्राज्यपद्वीके प्राप्त होनेके कारण हैं परंतु ये तो भिक्षा मांगते फिरते हैं इस-लिये शास्त्रोंमें कहा हुआ सब झूठ जान पडता है। उसकी कही हुई यह बात सुनकर दूसरा कहने लगा कि शास्त्रोंमें कहा हुआ झूठ नहीं है ॥ १३–१४ ॥ अपने साम्राज्य तंत्रका त्यागकर किसी कारणसे ये ऋषि हो गये हैं और अ-पना सब राज्यका भार अपने वालक पुत्रपर रखकर इसप्रकारका तपश्चरण कर रहे हैं। दूसरे पुरुपकी यह बात सुनकर तीसरा पुरुप कहने लगा कि इसके इस पापके कारण तपश्चरणसे क्या लाभ है ? इस दुरात्माने दया तो विल्कुल छोड दी है जो वालक विल्कुल असमर्थ है और जो लोक व्यवहारको सर्वथा नहीं जानता उसे पृथ्वीतलपर (राज्य पर) स्थापन कर यह स्वयं अपने स्वार्थ साधनकी इच्छासे तपश्चरण करनेके लिये यहां आये हैं। परन्तु उसके मंत्री आदि सब पापी लोगोंने उस बालक को तो सांकलसे बांध दिया है और राज्यको वांट कर सब उसका अनुभव कर रहे हैं। उस तीसरे पुरुपकी यह बात सुनकर उन मुनिराजके हृदयमें स्नेह हो आया ॥ १५–१९ ॥ वे विना आहारलिये ही नगरसे वाहर लौट आये और वनमें वृक्षके नीचे आकर विराजमान हुए। वाह्य कारणकेमिलनेसे उनके अंतरगमें क्रोध कषायके तीव्र स्प-र्द्धकोंका उदय हो आया है और संक्लेश परिणामोंके होनेसे कृष्ण नील कापोत इन तीनों लेश्याओंकी वृद्धि हो गई है

राज्यं विभज्य तत्स्वैरं पापैस्तैरनुभूयते । इति तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहमानप्रचोदित- ॥ १९ ॥ अभुंजान पुराद्राशु निवृत्त्यैव बनांतरे । वृक्षमूलं समाश्रित्य वाह्यकारणसन्निधौ ॥ २० ॥ अत क्रोधकषायोनुभागोप्रस्पर्द्धकोदयात् । सक्लेशाध्यवसायेन वर्द्धमानत्रिलेश्यकः ॥ २१ ॥ मन्त्र्यादिप्रतिकूलेषु हिसाद्यखिलनिग्रहात् । ध्यायन् संरक्षणानंदरौद्रध्यानं प्रविष्टवान् ॥ २२ ॥ अतः परं मुहूर्तं चेदेवमेव स्थितिं भजेत् । आयुषो नारकस्यापि प्रायोग्योय भविष्यति ॥२३॥ ततस्त्वया स सबोध्यो ध्यानमेतत्त्यजाशुभं । समयक्रोधदुर्वह्निं मोहजालं निराकुरु ॥ २४ ॥ गृहाण संयमं त्यक्तं पुनः स्त्र मुक्तिसाधनं । दारदारकबन्ध्वादिसंबंधनमबन्धुरं ॥ २५ ॥ संसारवर्द्धनं साधो जहीहीत्येवमादिभि । युक्तिमद्भिर्वचोभि स प्रत्यवस्थानमाप्तवान् ॥ २६ ॥ शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धघातिकर्मघनाटविः । नवकेवललब्धीद्धशुद्धभावो भविष्यति ॥ २७ ॥ इत्यसौ च गणाधीशवचनान्मगधाधिप. । गत्वा तदुक्तमार्गेण सद्य प्रासादयन्मुनिं ॥२८॥ सोपि सप्राप्य सामग्रीं कषायक्षयशातिजां । द्वितीयशुक्लध्यानेन कैवल्यमुदपादयत् ॥ २९ ॥ तदा पूजां समायातैः श्रेणिको वृत्रहादिभिः । सह धर्मरुचेः कृत्वा पुनर्वीरं

॥ २०–२१ ॥ मंत्री आदिक जो लोग प्रतिकूल हो गये हैं उन सबमें हिंसा आदि सब पापोंके द्वारा निग्रह करनेका चिंतवन कर रहे हैं और इससमय संरक्षणानंद अर्थात् सबको मारकर पुत्रकी रक्षा करनेरूप रौद्रध्यानमें प्रविष्ट हो रहे हैं ॥२२॥ यदि एक मुहूर्ततक उनकी यही स्थिति रही तो अवश्य ही उनके नरक आयुका बंध हो जायगा ॥ २३ ॥ इसलिये तू जाकर उन्हें समझा कि हे साधो ! आप इस अशुभ ध्यानको छोड दीजिये और समयके अनुसार उत्पन्न हुई क्रोधरूपी अग्निको तथा मोह रूपी जालको दूर कर दीजिये ॥ २४ ॥ आपने जो अपना संयम छोड दिया है जो कि मोक्षका साक्षात् साधन है उसे स्वीकार कीजिये क्योंकि स्त्री पुत्र भाई बंधु आदि लोगोंका जो दुःखदायी संबंध है वह केवल संसार बढानेवाला है इसलिये उसे आप छोड दीजिये । इसप्रकारके युक्तियोंसे भरे हुए वचनोंसे वे अपने स्थानपर आ जांयगे अर्थात् क्रोधादि कषायके द्वारा उत्पन्न हुए रौद्रध्यानको छोडकर शांत हो जांयगे ॥ २५–२६ ॥ शुक्लध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मरूपी घने जंगलको जलाकर तथा नौ केवल लब्धियोंको पाकर अत्यंत शुद्ध परिणामोंको धारण करेंगे ॥ २७ ॥ गणधरदेवकी यह बात सुनकर वह राजा श्रेणिक वहां गया और गणधर देवके कहे अनुसार शीघ्रही उन मुनिराजको प्रसन्न करलिया तदनंतर उन मुनिराजने सब सामग्रीके मिलजानेसे कषायोंको नष्ट किया और द्वितीय शुक्लध्यानसे केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ २८–२९ ॥ उसीसमय उनकी पूजा करनेकेलिये इंद्रादिक देव आये राजा श्रेणिकने भी उन सबके साथ केवली धर्मरुचिकी पूजा की और फिर वह भगवान वीरनाथके समीप आया ॥ ३० ॥ आते ही उसने गणधरदेवसे पूछा कि हे प्रभो इस भरतक्षेत्रमें सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन केवलज्ञानी होगा । इसके उत्तरमें गणधर-

समाश्रित ॥ ३० ॥ भरते कोत्र पाश्चात्य स्तुत्यः केवलवीक्षणः । इत्यप्राक्षीद्गणी चैव विवक्षुरभवत्तदा ॥ ३१ ॥ ब्रह्मकल्पाधिपो ब्रह्महृदयाख्यविमानतः । विद्युन्माली ज्वलन्मौलिः प्रियदर्शनासुदर्शने ॥ ३२ ॥ विद्युत्प्रभाविद्युद्वेगे देव्योऽस्याथ तदुद्भुत । जिनमागत्य वंदित्वा यथास्थानमुपाविशत् ॥ ३३ ॥ त निरूप्य परिच्छेदोनेन स्यात्केवलच्युते. । तत्कथं चेद्वदिष्यामि दिनेस्मात्सप्तमे दिनात् ॥ ३४॥ ब्रह्मेंद्रोय दिवोऽभ्येत्य पुरेस्मिन्नेव वारण । सरः शालिवन निर्धूमानलं प्रज्वलच्छिख ॥ ३५ ॥ सुकुमारसमानीयमानजंबूफलानि च । स्वप्न नेतान्पुर' कुर्वन्नर्हद्दासाभिधानकात् ॥ ३६ ॥ इभ्यात्कृती सुतो भावी जिनदास्या महाद्युतिः । जंब्वाह्वयोनावृतादेवादाप्तपूजोतिविश्रुतः ॥३७॥ विनीतो यौवनारंभेप्यनाविष्कृतविक्रियः । वीर पावापुरे तस्मिन्काले प्राप्स्यति निर्वृतिं ॥ ३८ ॥ तदैवाहमपि प्राप्य बोध केवलसंज्ञक । सुधर्माह्वयगणेशेन सार्द्धं ससारवन्हिना ॥ ३९ ॥ करिष्यन्प्रतितप्तानां ह्लाद धर्मामृताम्बुना । इदमेव पुर भूयः सम्प्राप्यात्रैव भूधरे ॥ ४० ॥ स्वास्याभ्येतत्समाकर्ण्य कुणिकश्चेलिनीसुतः । तत्पुराधिपतिः सर्वपरिवारपरिष्कृतः ॥ ४१ ॥ आगत्याभ्यर्च्य वंदित्वा श्रुत्वा धर्मं गृ

देव कहने लगे कि ब्रह्म स्वर्गके ब्रह्महृदय विमानमें दैदीप्यमान मुकुटको धारण करनेवाला विद्युन्माली नामका इंद्र है। प्रियदर्शना, सुदर्शना, विद्युत्प्रभा और विद्युद्वेगा ये चार उसकी देवियां है उन सबको लेकर वह देव भगवान वीरनाथकी वंदना करनेकेलिये आया है और अपने योग्य स्थानपर बैठा है ॥ ३१–३३ ॥ उसकी ओर इशारा करके गणधरदेव कहने लगे इसके केवलज्ञानरूपी प्रकाशके वाद फिर केवलियोंका विच्छेद हो जायगा। इस देवको केवलज्ञान कैसे होगा सो भी मैं कहता हूं। आजसे सातवें दिन यह इंद्र स्वर्गसे च्युत होगा और इसी नगरके धनी शेठ अर्हद्दासकी स्त्री महा कांतिको धारण करनेवाली जिनदासीके गर्भमें आवेगा गर्भमें आनेके पहिले जिनदासी पांच स्वप्न देखेगी हाथी, सरोवर, चांवलोंका खेत, जिसकी शिखा ऊपरको जा रही है ऐसी धूमरहित अग्नि और दिक्कुमारोंके द्वारा किये हुए जामुनके फल। जन्म होनेके वाद जंबूकुमार इसका नाम रक्खा जायगा, अनावृत देव भी आकर इसकी पूजा करेगा और यह अत्यंत प्रसिद्ध तथा विनयवान् होगा। यौवन अवस्था आजानेपर भी इसे कोई विकार नहीं होगा। जिससमय श्रीवीरनाथ भगवान पावापुरसे मोक्ष प्राप्त करेंगे उसीसमय मुझे भी केवलज्ञान प्राप्त होगा। तदनंतर सुधर्माचार्य गणधरके साथ संसाररूपी अग्निसे तप्त हुए लोगोंको धर्मामृतरूपी जलसे आनंदित करता हुआ मैं फिर भी इसी नगरमें आकर इसी विपुलाचलपर्वतपर विराजमान हूंगा। मेरे आनेके समाचार सुनकर इस नगरका राजा चेलिनीका पुत्र कुणिक सब परिवारके साथ आवेगा और पूजा वंदनाकर तथा धर्मका स्वरूप सुनकर स्वर्ग मोक्षके साधन ऐसे दान शील उपवास आदि व्रत धारण करेगा ॥ ३४–४२ ॥ उससमय जंबूकुमारको भी वैराग्य उत्पन्न होगा और वह दीक्षा धारण करनेकेलिये तत्पर होगा

हीष्यति । दानशीलोपवासादिसाधनं स्वर्गमोक्षयोः ॥ ४२ ॥ जंबूनामापि निर्वेदात्प्रव्रज्याग्रहणोत्सुकः । सहैवाल्पेषु वर्षेषु व्यतीतेषु वयं त्वया ॥ ४३ ॥ सर्वे दीक्षां ग्रहीष्याम इति बंधुजनोदिन । मोक्षवन्नुवमिराकर्तुमायास्यति पुरे तदा ॥ ४४ ॥ मोह विधित्सुभिस्तस्य बंधुभिः सुखवधनं । अरस्यते विवाहस्तैः श्रेयो विघ्नं हि बांधवा ॥४५॥ सुता सागरदत्तस्य पद्मावत्या सुलक्षणा । पद्मश्रीरपराश्रीर्वा कनकश्री शुभेक्षणा ॥ ४६॥ सुता कुवेरदत्तस्य जाता कनकमालया । वीक्ष्या विनयवत्याश्चया वैश्रवणदत्तजा ॥ ४७ ॥ विनयश्रीःश्रीरदत्तस्य रूपश्रीश्च धनश्रियः । आभि सागरदत्तादिपुत्रिकाभिर्यथाविधि ॥४८॥ सौधागारे नि रस्तांधकारे सन्मणिदीप्तिभि । विचित्ररत्नसचूर्णरंगवल्लीविभूषिते ॥ ४९ ॥ नानासुरामिपुष्पोपहाराढये जगतीतके । स्थास्यत्यास्तविवाहोयं पाणिग्रहणपूर्वक ॥ ५० ॥ सुतो ममायं रागेण प्रेरितो विकृतिं भजन् । स्मितहासकटाक्षेक्षणादिना किं भवेन्नवा ॥५१॥ इत्यात्मानं तिरोधाय पश्यता स्थास्यति स्त्रिहा । माता तस्य तदैवैक पापिष्ठ प्रथमाशक ॥ ५२ ॥ सुरम्यविषये ख्यातपोदनाख्यपुरेशिन । विद्युद्राजस्य तुग्विद्युत्प्रभो नाम तदग्रणी ॥ ५३ ॥ तीक्ष्णो विमल-

परंतु उसीसमय भाई बंधु लोग उसे समझावेंगे और कहेंगे कि थोडे ही वर्षोंके बाद हम सब तेरे साथ दीक्षा धारण क-रेंगे । उन भाई बंधुओंके वचनोंको वह टाल नहीं सकेगा और वहांसे फिर अपने नगरमें आवेगा ॥ ४३–४४ ॥ तदनंतर वे सब भाई बंधु लोग उसे मोहमें फंसानेकेलिये उसका विवाह कर देंगे सो ठीक ही है क्योंकि भाई बंधु लोग कल्याण कार्योंमें विघ्न ही करते हैं ॥ ४५ ॥ उस जंबूकुमारको एक तो शेठ सागरदत्तकी स्त्री पद्मावतीसे उत्पन्न हुई शुभ लक्षणों-वाली पद्मश्री नामकी कन्या व्याही जायगी दूसरी शेठ कुवेरदत्तकी स्त्री कनकमालासे उत्पन्न हुई शुभ नेत्रोंवाली दूसरी लक्ष्मीके समान कनकश्री व्याही जायगी । तीसरी वैश्रवणदत्तकी स्त्री विनयवतीसे उत्पन्न हुई देखनेयोग्य सुंदर विनयश्री व्याही जायगी और चौथी शेठ श्रीदत्तकी स्त्री धनश्रीसे उत्पन्न हुई रूपश्री व्याही जायगी । इसप्रकार इन सागरदत्त आदि शेठोंकी पुत्रियोंके साथ विधिपूर्वक उसका विवाह होगा ॥ ४६–४८ ॥ पाणिग्रहण पूर्वक विवाहकर वह कुमार ऐसे बडे भवनमें ठहरेगा जिसमें श्रेष्ट मणियोंकी कांतिसे अंधकार कहीं न रहने पावेगा जो अनेक तरहके रत्नोंके चूर्णकी रंगाव-लीसे सुशोभित होगा जिसमें अनेक तरहके सुगंधित फूलोंके उपहार रक्खे रहेंगे और जो मध्यभागमें होगा ॥४९-५०॥तदनंतर उसकी माता स्नेहसे छिपकर देखेगी कि थोडा हंसना, कटाक्ष करना आदि काम विकारोंके द्वारा रागसे प्रेरित होकर यह मेरा पुत्र काम विकारको प्राप्त होगा या नहीं । जिससमय यह जंबूकुमारकी माता जिनदासी छिपकर खडी खडी देखेगी उसीसमय सुरम्य देशके प्रसिद्ध पोदनपुर नगरके विद्युद्राजकी रानी विमलमतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चोर आवेगा वह विद्युत्प्रभ महापापी मुख्य चोर होगा परंतु तीक्ष्ण भी होगा वह किसी कारणसे अपने बडे भाईसे

वत्सत्र कृत्वा केनापि हेतुना । निजाग्रजाय निर्गत्य तस्मात्पचशतैर्भटैः ॥५४॥ विद्युच्चोराह्वयं कृत्वा स्वस्य प्राप्य पुरीमिमां । जानन्नदृश्यदेहत्व कवाटोद्घाट नादिकं ॥ ५५ ॥ चौरशास्त्रोपदेशेन मन्त्रतन्त्रविधानतः । अर्हद्दासगृहाभ्यंतरस्थं चोरयितु धनं ॥ ५६ ॥ प्रविश्य नष्टनिद्रां तां जिनदासीं विलोक्य सः । निवेद्यात्मानमेव किं विनिद्रासीति वक्ष्यति ॥ ५७ ॥ सूनुर्ममैक एवायं प्रातरेव तपोवन । अहंगमीति संकल्पस्थितस्तेनास्मि शोकिनी ॥ ५८ ॥ धीमानसि यदीमं त्वं धारयस्याग्रहात्सतः । उपायैरथ ते सर्वं धनं दास्याम्यभीप्सितं ॥५९॥ इति वक्रीभवेत्सापि सोऽपि सप्रतिपद्य तत् । एव संपन्नभोगोपि किलैष विरिरं सति ॥ ६० ॥ धिग्मां धनमिहाहर्तुं प्रविष्टमिति निंदन । स्वस्य कुर्वन्नतातङ्कः संगम्यात्तु तदंतिकं ॥ ६१ ॥ कन्यकानां कुमारं त तासां साध्यमधिष्ठितं । विजृंभमाणसद्बुद्धिं पजरस्थमिवांडज ॥ ६२ ॥ जालल्लग्नणपोत वा मग्न वा कुंजराधिप । अपारकर्दमे मग्न सिंह वा लोहपजरे ॥ ६३ ॥ निरुद्धं लब्धनिर्वेगं प्रत्यासन्नमवक्षय । विद्युच्चोर समीक्ष्यैन वक्ष्योष्ट्रास्यानकं सुधी ॥ ६४ ॥ कुमार ? श्रूयतां कश्चिदेकदा स्वेच्छया चरन् । गिरे क्रमेलकः स्वादु तृणं भुं-

क्रोधित होगा इसलिये यह पांचसौ योधाओंको साथ लेकर विद्युच्चोर नाम रखकर इसी नगरमें आवेगा और उसी अर्हद्दासके घर आवेगा वह अदृश्य होकर किवाड खोलना आदि चौरशास्त्रके उपदेशके अनुसार सब क्रियाओंका जानकार होगा और मंत्र तंत्रका भी अच्छा जानकार होगा। वह अर्हद्दासके घर धन चुरानेकेलिये आवेगा और जिनदासीको जगती हुई देखकर अपना सब पता बतलावेगा तथा जिनदासीसे जगनेका कारण पूछेगा ॥ ५१—५७ ॥ इसके उत्तरमें जिनदासी उत्तर देगी कि "मेरे एक ही पुत्र है वह भी संकल्पकर बैठा है कि मैं सवेरे ही दीक्षा लेनेकेलिये तपोवनमें जाऊंगा इसीलिये मुझे शोक हो रहा है ॥ ५८ ॥ यदि तू बुद्धिमान है और किसी भी उपायसे इसे घर रक्खेगा दीक्षा न लेने देगा तो मैं तेरी इच्छानुसार सब धन देदूंगी ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहकर वह जिनदासी फिर छिप जायगी। तदनंतर वह विद्युच्चोर विचार करेगा कि देखो इसके भोगोपभोगकी सब सामग्री उपस्थित है तो भी यह उसे छोडना चाहता है मुझे धिक्कार है जो मैं दूसरेका धन चुरानेकेलिये यहां आया हूं इसप्रकार वह अपनी निंदा करता हुआ निःशंक होकर जंबूकुमारके समीप जावेगा उससमय उस कुमारको वे सब कन्याएं प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगी परंतु उन सबके बीचमें बैठा हुआ वह सद्बुद्धि कुमार ऐसा जान पडेगा मानों किसी पिंजरेमें बंद हुआ पक्षी ही हो अथवा जालमें फंसा हुआ हिरणका बच्चा ही हो अथवा अपार कीचडमें फंसा हुआ श्रेष्ठ हाथी ही हो अथवा लोहेके पिंजडेमें बंद हुआ सिंह ही हो। संसारका नाश करना जिसके अत्यंत निकट है ऐसा वह उससमय वैराग्यसे भरपूर होगा। उसको देखकर वह बुद्धिमान् विद्युच्चोर उससे एक ऊंटकी कथा कहेगा ॥ ६०—६४ ॥ कि हे कुमार सुनो एकसमय किसी पर्वतपर एक ऊंट

गास्प्रदेशतः ॥ ६५ ॥ पतन्मधुरसोन्मिश्रमास्वाद्य सकृदुत्सुकः । तादृगेवाहरिष्यामीत्येतत्पाताभिवाञ्छया ॥६६॥ तृणांतरोपयोगातिपराङ्मुखतया स्थितः । मृतस्तथैव त्वं चैतान भोगान् भोक्तुमुपस्थितान् ॥ ६७ ॥ अनिच्छन् स्वर्गभोगार्थी भविता रहितो धिया । इत्येकागारिकप्रोक्तं तदाकर्ण्य वणिग्वरः ।६८। प्रतिवक्ता स तं चोरं स्पष्टदृष्टांतपूर्वकं । नरः कश्चिन्महादाहज्वरेण परिपीडित ॥ ६९ ॥ नदीसरस्तडागादिपयः पीत्वा मुहुर्मुहु । तथाप्यगततृष्ण किं तृणाग्रस्थांबुबिंदुना ॥ ७० ॥ तृप्तिं प्राप्नोत्यसौ वायं जीवो दिव्यसुखं चिरं । भुक्त्वाप्यतृप्तः स्वप्नेपि गजकर्णास्थिरात्मना ॥ ७१ ॥ सुखेनास्वादुनानेन कथ तृप्तिमवाप्नुयात् । इति तद्वाचमाकर्ण्य चोरोनुव्य हरिष्यति ॥ ७२ ॥ वने वनचरश्चंड कृत्वाधारं महाद्रुमं । गंडांताकृष्टकोदडकांडेनाखंड्य वारण ॥ ७३ ॥ महीरुट्कोटरस्थेन संदष्टः फणिना स्वयं । स चाहिं च गजं चाज्ञो गत्यंतरमजीगमत् ॥ ७४ ॥ अथ सर्वान् मृतान् दृष्ट्वा तान् क्रोष्टिकोतिलुब्धकः । तावदेतानाहं नाद्मि खायु मौर्वीद्वयाग्रज ॥ ७५ ॥ खादामीति कृतोद्योगस्तच्छेदमकरोद्द्विधी । सद्यश्चापाग्रनिर्भिन्नगल सोपि वृथा मृतः ॥ ७६ ॥ ततोतिगृ-

अपनी इच्छानुसार चर रहा था जिस घासको वह चर रहा था उसपर ऊंची जगहसे मक्खियोंके छत्तेसे शहत आकर गिर गया था और उसी मीठी घासको वह खा रहा था। उसे खाकर फिर एकबार उसकी यह इच्छा हुई कि जब शहत गिरेगा तब मैं वैसी ही मीठी घास खाऊंगा यही सोचकर शहत गिरनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उस मीठी घासकी लालसामें उसने और घास भी नहीं खाई। परन्तु शहत गिरा नहीं इसलिये वह वहीं बैठा बैठा भूखों मर गया। इसी प्रकार तू भी इन उपस्थित भोगोंको छोडकर स्वर्गके भोगोंकी इच्छा करना चाहता है सो तू भी ऊंटके समान बुद्धि रहित है। उस चोरकी यह बात सुनकर वह श्रेष्ठ वैश्य जंबूकुमार भी उस चोरको दृष्टान्त देकर इस प्रकार उसका उत्तर देगा कि एक मनुष्य महादाह करनेवाले ज्वरसे पीडित था उसने नदी, सरोवर तालाव आदिका जल बार बार पिया था तथापि उसकी प्यास मिटी नहीं थी तो क्या उस मनुष्यकी प्यास तृणाके ऊपर लगी हुई एक पानीकी बूंदसे मिट जायगी? वह उस एक बूंदसे तृप्त हो जायगा? उसी प्रकार इस जीवने भी बहुत दिन तक दिव्य सुखोंका अनुभव किया है तथापि तृप्त नहीं हुआ फिर क्या जिसमें कुछ स्वाद नहीं है जो हाथीके कानोंके समान चंचल है ऐसे इस सुखसे स्वप्नमें यह जीव कैसे तृप्त हो जायगा। जंबूकुमारकी यह बात सुनकर वह फिर कहने लगा ॥ ६५–७२ ॥ किसी वनमें एक चंड भील था उसने किसी वृक्षपर बैठकर और कानतक धनुष खींचकर एक हाथीको मार गिराया इतनेमेंही उस वृक्षके कोटरमेंसे निकल कर एक सांपने उसे काटखाया काटतेही उस मूर्ख भीलने उस सांपको मार दिया ॥ ७३–७४ ॥ उन सबको मरा हुआ देखकर एक लोभी गीदड आया उसने सोचा कि मैं पहिले इनको न खाकर इस धनुष चापको

श्रुतात्वाज्येत्यस्योक्तिविरतौ सुधीः । कुमारः स्मृतिमाधार्य सूक्त प्रत्यभ्यधास्यति ॥ ७७ ॥ चतुर्मार्गसमायोगदेशमध्ये महाद्युति । रत्नराशिं समभ्येत्य सुमहं पथिको विधीः ॥ ७८ ॥ तदानादाय केनापि हेतुना गतवान् पुन । समादित्सुः समागत्य तद्देश किं लमेत सः ॥ ७९ ॥ तथा दुष्प्रापमालोक्य गुणमाणिक्यसंचय । अस्वीकुर्वन् कथं पश्चात्प्राप्नुयाद्भववारिधौ ॥ ८० ॥ तदुदीरितमेतस्य कृत्वा चित्ते परस्वहृन् । वदिष्यति तदाख्यानमन्यदन्यायसूचन ॥ ८१॥ शृगाल कश्चिदास्यस्थ मांसपिंड विसृष्टवान् । प्रक्रीडमानमीनादनेच्छुर्निपतितोंभसि ॥ ८२ ॥ तद्वेगवत्प्रवाहेण प्रेर्यमाणोगमन्मृतिं । ततोमीनोपि दीर्घायुर्जलमध्ये स्थित सुख ॥ ८३ ॥ एवं शृगालवल्लुब्धो मुग्धोन्योपि विनश्यति । इति तस्करमुख्योक्तिमाकर्ण्यानाकुलात्मक ॥ ८४ ॥ प्रत्यासन्नविनेयत्वाद्वच प्रतिभणिष्यति । निद्रालुको वणिकश्चिन्निद्रासुखविमोहितः ॥ ८५ ॥ सुप्तः पराघ्यमाणिक्यगर्भकस्थपुटे निजे । चौरैरपहृते तेन दु खेनामृत दुर्मति ॥ ८६ ॥

खाऊं और फिर इनको खाऊंगा इस प्रकार सोचकर वह मूर्ख उस चापको खानेका उद्योग करने लगा और उस चापको तोडने लगा उस चापके टूटते ही उसका गला भिद गया और वह व्यर्थही मर गया इसलिये अतिशय लोभ करना सर्वथा छोडदेना चाहिये इसप्रकार उस चोरके कह चुकनेपर वह बुद्धिमान कुमार विचारकर फिर अच्छी बात कहेगा॥७५–७७॥ कि एक कोई मूर्ख पथिक अपनी महादेदीप्यमान ग्रहण करने योग्य उत्तम रत्न राशिको चौरस्ते पर छोडकर अपने घर चलागया था और फिर लेनेके लिये आया था तो क्या फिर उसे वह रत्नराशि मिल सकती है? कभी नहीं॥७८–७९॥ इसी प्रकार इस संसाररूपी महासागरमें अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य ऐसा यह गुणरूपी मणियोंका समूह है इसे स्वीकार नहीं करता उसे क्या फिर कभी मिल सकता है? कभी नहीं' ॥८०॥ उस कुमारकी यह बात समझकर वह चोर अन्यायको सूचित करनेवाली एक कथा और कहेगा ॥ ८१ ॥ कि एक गीदड मांसका टुकडा लिये हुए पानीमें जा रहा था उसने उस पानीमें क्रीडा करती हुई मछलीको खानेकी इच्छासे वह मांस छोड दिया और मछलीके पकडने की इच्छासे वहते पानीकी ओर दौडा परन्तु पानीका वहाव तेज होनेसे वह पानीमें वह गया और मरगया। उस मछलीकी आयु अधिक थी इसलिये वह भी उस पानीमें सुखसे रहने लगी ॥ ८२–८३ ॥ इसी प्रकार जो मूर्ख गीदडके समान अधिक लोभी होता है वह अवश्यही नष्ट होता है इस प्रकार उस चोरकी कही हुई बातको सुनकर आसन्न भव्य होनेसे वह कुमार भी निराकुल होकर कहेगा कि किसी वैश्यको नींद लगी थी इसलिये नींदसे मोहित होकर वह सुखसे उसके सो जानेपर जो उसके घरमें बहुमूल्य रत्न थे उन्हें चोर आकर ले गये परन्तु जगनेपर सोगया। और चोरीकी बात जानने पर वह मूर्ख वैश्य उस दुःखसे मर गया ॥ ८४–८६ ॥ इसीप्रकार थोडेसे विषयोंके

विषयाल्पसुखेनैव संसक्तो रोगचौरकैः । ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नेष्वपहृतेष्वय ॥ ८७ ॥ जन्मी नश्यति निर्मूलमित्यत स गदिष्यति । श्वमातुलानीदुर्वाक्यकोपात्काचिन्मुमूर्षुका ॥ ८८ ॥ वृक्षमूले स्थितां वीक्ष्य सर्वाभरणभूषितां । अज्ञातवंधनोपायामाकुलाकुलचेतसं ॥ ८९ ॥ सुवर्णदारको नाम पापी मार्दंगिकस्तदा । तदाभरणमादित्सुर्मृदंग स्व तरोरध ॥ ९० ॥ स्थापयित्वा समारुह्य स्वगलोद्बद्धरज्जुकं । उद्बधनक्रम तस्या दर्शयन्मृत्युचोदित ॥ ९१ ॥ मृदंगे पतिते भूमौ सद्य: केनापि हेतुना । रज्जुपाशाविलीभूतकंठ प्रोद्गतलोचन ॥ ९२॥ प्रापत्प्रेताधिपावास तद्वीक्ष्यासौ मृतेर्भयात् । आयाद्गृहमतस्त्वल्लोभो हेयो महीस्त्वया ॥ ९३ ॥ इत्यस्य सोपि वाग्जालममोढो व्याहरिष्यति । किल धूर्तविट वीक्ष्य ललितागाभिधानक ॥ ९४ ॥ कस्यचित्सा महादेवी जाता मदनविह्वला । तद्विटानयनोपायनिरंतरनियुक्तया ॥ ९५ ॥ तद्धात्र्या गुप्तया नीतः पथिकातप्रदेशिना । सा चैतेन महादेवी रममाणा यथेप्सित ॥ ९६ ॥ अहोभिर्बहुभिर्ज्ञाता शुद्धे शुद्धातरक्षिभिः । तन्मुख तद्दुराचारे राज्ञापि विदिते सति ॥ ९७ ॥ जारापनयनोपायमाज्ञाप्ताः परिचायका । अवस्करगृहं नी -। सा तं

सुखोंमें आसक्त होकर यह जीव मोहित हो जाता है और रोगरूपी चोर इसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी रत्नोंको चुरा ले जाते हैं तब यह संसारी जीव बिल्कुल नष्ट हो जाता है। इसके उत्तरमें वह चोर फिर कहेगा कि कोई स्त्री सासुके दुर्वचन सुनकर क्रोधित हुई और मरनेकी इच्छासे वृक्षके नीचे जा बैठी वह सब साभूषणोंसे सुशोभित थी परंतु फांसी लगाना जानती नहीं थी इसलिये उसका चित्त बड़ा ही व्याकुल होरहा था। दैव योगसे उसी मार्गसे सुवर्णदारक नामका मृदंग बजानेवाला पापी आनिकला उसने उसकी मरनेकी इच्छा जानली और उसके आभरणोंके लेनेकी इच्छासे उसे फांसीकी क्रिया बताने लगा। उसने मृदंगको तो वृक्षके नीचे रखदिया और उसपर चढकर गलेमें रस्सी लटका ली। इसप्रकार वह फांसीकी क्रिया वतला रहा था कि उसकी मृत्यु समीप आ लगी। किसी कारणसे वह मृदंग बडी शीघ्रतासे पृथ्वीपर लुढकगया और उस रस्सीसे कंठ दवजानेके कारण वह मरगया। मरते समय उसकी दोनों आंखें निकल पडी थीं इसलिये उस भयानक दृश्यको देखकर वह स्त्री मरनेसे डर गई और अपने घर आगई। आप महा पुरुष हैं इसलिये आपको ऐसा लोभ अवश्य छोड देना चाहिये ॥ ८७–९३ ॥ इसप्रकार उस चोरका कहा हुआ वचनोंका जाल कुमारको सहन नहीं होगा और वह उत्तरमें दूसरी कथा कहेगा कि किसी ललितांग नामके धूर्त व्यभिचारीको देखकर किसी राजाकी महारानी कामसे पीडित होगई थी उसने किसी भी उपायसे उसे लानेके लिये गुप्त रीतिसे एक धाय नियुक्त की थी। वह धाय उसपथिकको किसी तरह ले आई और वह महादेवी इच्छानुसार उसके साथ क्रीडा करने लगी ॥ ९४–९६ ॥ कई दिनोंके वाद रणवासकी रक्षा करनेवाले खोजा लोगोंको यह बात मालूम होगई और

तत्राक्षिपत्खलु ॥ ९८ ॥ सुदुर्गंधेन तज्जंतुमिश्र दु:खमवाप्नुवन् । अत्रैव नरकावासमाप्तवान् पापपाकत ॥ ९९ ॥ तद्वदल्पसुखस्याभिलाषिणो नरकादिषु । भवंति दुस्तरापारघोरदुःखानि तेष्वपि ॥ १०० ॥ पुनः कुमार एवंक प्रपञ्च गदिता सत । येन ससार निर्वेगो जायते सहसा स त ॥ १०१ ॥ भ्रम्यन्संसार-कांतारे मृत्युमत्तद्विपेशिना । रुषा जिघांसुना जंतुरनुयातोतिभीलुक ॥ १०२ ॥ पलायमानो मानुष्यभूरुहातर्हितात्मकः । तन्मूले कुलगोत्रादिनानावल्लीस माकुले ॥१०३॥ जन्मकूपे पतित्वायुर्वल्लीलग्नशरीरक । सितासितदिनानेकमूषकोच्छिद्यतल्लतः ॥ १०४ ॥ नरकव्यात्तवक्त्रोरुसर्पसप्तकसन्निधिं । तद्भूये-ष्टार्थसूनोत्थसौख्यक्षौद्ररसोत्सुक ॥ १०५ ॥ तद्ग्रहोत्थपितात्युग्रव्यापद्माक्षिकभक्ष्यक । तत्ससेवां सुख मत्वा कष्ठ सवोपि जीवति ॥ १०६ ॥ विधीर्विष-यसंसक्तो धीमानपि कथ तथा । वर्तते त्यक्तसग; सन्नकुर्वन्दुर्वह तपः ॥ १०७ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य याता कन्याश्च तस्कर । तनुससारभोगेषु यातारोति

उन्होंने राजासे कह दी । राजाने इस दुराचारकी वात जानकर किसी भी उपायसे उसजारको पकडनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दी । जव सेवक लोग पकडनेके लिये गये तो उस रानीने उस दुष्टको टट्टीमें छिपादिया । वहांकी दुर्गंध और कीडोंसे उसे वहुत दुःख हुआ और पाप कर्मके उदयसे उसी जन्ममें उसे नरकमें रहनेका स्वाद मिल गया ॥ ९७-९९ ॥ इसीप्रकार थोडे सुखकी इच्छा करनेवाले लोग नरकमें पडते हैं और वहांपर अत्यंत असह्य, अपार और घोर दुःखोंको सहते हैं ॥ १०० ॥ इसके वाद भी वह कुमार संसारसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली एक कथा उस चोरसे और कहेगा ॥ १०१ कि एक जीव संसाररूपी वनमें घूम रहा था, एक मदोन्मत्त मृत्युरूपी हाथी क्रोधसे मारनेके लिये उसके पीछे पडा जिसे देखकर डरसे वह भागा और उसके पीछे पीछे वह हाथी दौडा । वह जीव भागता भागता मनुष्यरूपी वृक्षके आ-डमें छिपगया । उसी वृक्षकी जडके नीचे कुल गोत्र आदि अनेक वेलोंसे व्याप्त ऐसा जन्म कूप था उसीमें वह जीव पडगया परंतु आयुरूपी वेल उसके हाथ आगई और वह उसे ही पकडकर लटकता रहा । कृष्णपक्ष और शुक्ल-पक्षरूपी अनेक चूहे उस वेलकी जड काट रहे थे ॥ १०२-१०४ ॥ सातों नरकरूपी सर्प ऊपरकी ओर मुंह फाडे उसके गिरनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । उसी वृक्षपर पुत्रादिक इष्ट पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ सुखरूपी शहदका रस टपक रहा था उसके खानेकी उसे वहुत ही लालसा लग रही थी ॥ १०५ ॥ उस रसके चाटनेसे वे शहदकी मक्खियां उडकर शरीर-से लग गई थी वह जीव उस रसकी बूंदके लिये सेवा करनेको ही सुख मान रहा था । इसीप्रकार संसारके सव ही जीव बडे कष्टसे जीवित रहते हैं ॥ १०६ ॥ जो मूर्ख है वे भले ही इसप्रकार विषयोंमें आसक्त हो जाय परंतु जो बुद्धिमान हैं वे इसप्रकार विषयोंमें आसक्त कैसे हो सकते हैं वे तो सब परिग्रहोंका त्याग कर दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए समय व्यतीत

विरागता ॥ १०८ ॥ तदा तपः समाधूय भासमानो दिवाकर । योजयन् प्रियया कोक कुमारमिव दीक्षया ॥ १०९ ॥ करैर्निजैः कुमारस्य मनोवास्पृश्य रंजयन् । उद्यमस्तपसो वोद्य शिखरेद्रेरुदेष्यति ॥११०॥ सर्वसंतापकृत्तीक्ष्णकरः क्रूरोनवस्थित । रविःकुवलयध्वंसी प्रजिता कुनृपोपमां ॥ १११ ॥ नित्योदयो बुधाधीशो विशुद्धाखंडमंडल । पद्माल्हादी प्रवृद्धोष्मा सुराजानं स जेष्यति ॥ ११२ ॥ ज्ञात्वा संसारवमुख्य कुमारस्यास्य बांधवा । तदा कुणिमहाराजः सेनयाष्टादशाथिच ॥ ११३ ॥ सहानावृतदेवेन परिनिष्क्रमणं प्रति । अभिषेक करिष्यंति संगता मंगलैर्जनैः ॥ ११४ ॥ तत्कालोचितवेषोसौ शिविका देवनिर्मिता । आरुह्य भूरिभूत्योर्वाविपुलाचलमस्तके ॥ ११५ ॥ मा निविष्ट समभ्येत्य महामुनिनिषेवित । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य यथाविधि ॥११६॥ वर्णत्रयसमुद्भूतैर्विनयैर्बहुभि सम । विद्युच्चोरेण तत्पंचशतभृत्यैश्च सयमं ॥ ११७ ॥ सुधर्मगणभृत्पार्श्वे समवाप्तो ग्रहीष्यति । कैवल्याद्द्वादशाब्दांते मय्यस्या

करते हैं ॥ १०७ ॥ जंबूकुमारकी यह बात सुनकर उसकी माता वे कन्याएं और वह चोर सब शरीर संसार और भोगोंसे विरक्त होंगे ॥ १०८ ॥ तदनंतर चकवाको चकवीके समान कुमारको दीक्षासे संयोग कराता हुआ अपनी किरणोंसे कुमारके मनको स्पर्शकर प्रसन्न करता हुआ तपश्चरणके लिये श्रेष्ठ उद्यमके समान सब अंधकारको नष्टकर उदयाचल पर्वतकी शिखरपर सूर्य उदय होगा ॥ १०९-११० ॥ उससमय सबको संताप उत्पन्न करनेवाला तीक्ष्ण किरणोंको धारण करता हुआ (राजा पक्षमें तीक्ष्णकर लगाता हुआ) क्रूर, एक जगह न टिकनेवाला और कुवलय अर्थात् कमोदिनियों (राजा पक्षमें पृथ्वीमंडलको) नाश करता हुआ सूर्य अन्यायी राजाकी उपमाको धारण करेगा ॥ १११ ॥ अथवा नित्य उदय होनेवाला बुध नक्षत्रका स्वामी (राजापक्षमें विद्वानोंका स्वामी) विशुद्ध अखंड मंडलको धारण करनेवाला, कमलोंको प्रसन्न करनेवाला और उष्णताको बढानेवाला वह सूर्य किसी अच्छे राजाको भी जितेगा ॥ ११२ ॥ जंबूकुमारको संसारसे विरक्त देखकर उसके सब भाई बंधु लोग तथा अठारह तरहकी सेनाके साथ महाराज कुणिक आवेगा सबके साथ यह अनावृत यक्ष भी आवेगा और ये सब लोग मांगलिक लोगोंके साथ २ दीक्षा लेनेकेलिये जंबूकुमारका अभिषेक करेंगे ॥११३-११४॥ उससमयके योग्य वस्त्राभूषण पहिनकर वह कुमार देवोंके द्वारा बनाई हुई पालकीपर सवार होकर बडी विभूतिके साथ विपुलाचल पर्वतपर आवेगा ॥११५॥ मुझे विराजमान देखकर वह मेरेही समीप आवेगा उस समय अनेक मुनि मेरी सेवा बंदना कर रहे होंगे वह आकर बडी भक्तिसे प्रदक्षिणा देगा और विधि पूर्वक नमस्कार करेगा ॥११६॥ तदन्तर समता परिणामोंको धारण करनेवाला वह जंबूकुमार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके साथ तथा विद्युच्चोर और उसके पांचसौ योद्धाओंके साथ सुधर्माचार्यके समीप दीक्षा धारण करेगा। मुझे केवल ज्ञानके बारह वर्ष बाद नि-

गौतमा गते ॥ ११८ ॥ सुधर्मकेवली जंबूनामा च श्रुतकेवली । भूत्वा पुनस्ततो द्वादशाब्दाते निर्वृतिं गते ॥११९॥ सुधर्मण्यतिम ज्ञान जंबूनाम्नो भविष्यति । तस्य शिष्यो भवो नाम चत्वारिंशत्समा महान् ॥ १२० ॥ इह धर्मोपदेशेन धरित्र्या विहरिष्यति । इत्यवादीत्तदाकर्ण्यस्थितस्तस्मिन्ननावृतः ॥ १२१ ॥ देवो मदीयवंशस्य माहात्म्यमिदमद्भुत । अन्यत्रादृष्टमित्युच्चैरकृतानन्दनाटक ॥ १२२ ॥ कस्मादनेन बन्धुत्वमस्येतिश्रेणिकोऽभ्यधात् । गौतमं विनयात्सोपि न्यगदत्तदिति स्फुट ॥ १२३ ॥ जम्बूनाम्नोन्वये पूर्वं धर्मप्रियवणिक्पते । गुणदेव्याश्चनाम्नार्हद्दासस्तुगजनिष्ट स ॥ १२४ ॥ धनयौवनदर्पेण शिक्षामगणयत्पितु । निरंकुशो भवत्सप्तव्यसनेषु विधेर्वशात् ॥ १२५ ॥ स दुश्चेष्टितदौर्गत्यात्सजातानुशयो मया । न श्रुता मत्पितु शिक्षेत्यवाप्तशमभावन. ॥ १२६ ॥ किंचित्पुण्यं समावर्ज्य व्यंतरत्वमुपागत । आददे नावृतास्योत्र तत्र सम्यक्त्वसंपद ॥ १२७ ॥ इति तद्विश्रुताप्रीतिः गौतमं मगधाधिपः । अन्वयुक्त गतः कस्मातिक पुण्य कृतवानयं ॥ १२८ ॥ विद्युन्मालीभवेतीते प्रभास्यातेप्यनाहना । इत्यनुग्रहबुध्यैव भगवानेवमब्रवीत् ॥ १२९ ॥ अस्मिन् विदेहे पूर्वस्मिन्

र्वाण प्राप्त होगा उस समय सुधर्माचार्यको केवल होगा और जंबूकुमार श्रुतकेवली होंगे। उसके बारह वर्ष बाद सुधर्माचार्यको मोक्ष प्राप्त होगा और जंबूस्वामीको केवलज्ञान होगा। भव नामका एक जंबूस्वामीका शिष्य होगा और उसके साथ चालीस वर्ष तक धर्मोपदेश देते हुए जंबूस्वामी इस पृथ्वीपर विहार करेंगे गौतमस्वामीकी कही हुई इस कथाको सुनकर वहांपर बैठा हुआ अनावृत नामका यक्ष बडा ही प्रसन्न हुआ और मेरे वंशका ऐसा अद्भुत माहात्म्य है जो कि दूसरी जगह कहीं देखनेमें नहीं आता इसप्रकार कहते हुए उसने आनंद नाटक किया ॥ ११७–१२२ ॥ यह देखकर राजा श्रेणिकने बडी विनयसे गौतम गणधरसे पूछा कि हे देव जंबूकुमारके साथ इसका भाईपना (एक वंशपना) कैसा ! इसके उत्तरमें गौतम गणधर कहने लगे ॥ १२३ ॥ जंबूकुमारके वंशमें पहिले एक धर्मप्रिय नामका वैश्य था। उसकी गुणदेवी नामकी स्त्रीसे अर्हद्दास नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १२४ ॥ धन और यौवनके अभिमानसे वह पिताकी शिक्षाको कुछ नहीं गिनता था और कर्मोंके उदयसे निरंकुश होकर सातों व्यसनोंमें आसक्त हो गया था ॥ १२५ ॥ अनेक दुष्ट चेष्टाओंके कारण जब उसकी दुर्गति होने लगी तब उसे पश्चात्ताप हुआ और "मैंने पिताकी शिक्षा नहीं सुनी" यही विचार करते हुए उसका चित्त कुछ शांत हुआ ॥ १२६ ॥ तदनंतर उसने कुछ पुण्यका उपार्जन किया जिससे यह अनावृत नामका व्यंतर देव हुआ है। इसी पर्यायमें इसने सम्यग्दर्शन धारण किया है ॥ २७ ॥ इसप्रकार इन दोनोंमें परस्पर भाईपनेका प्रेम है। इसके बाद श्रेणिकने गौतमगणधरसे फिर पूछा कि हे देव विद्युन्माली भवके पहिले भी इसने कौनसा पुण्य किया था कहांसे यह आया है क्योंकि इसके अंतिम दिन है तब भी इसकी प्रभा कम नहीं हुई है। इसके उत्तरमें भगवान गौतमगण-

वीतशोकाह्वयं पुरं विषये पुष्कलावत्यां महापद्मोस्य पालक ॥ १३० ॥ वनमालास्य देव्यस्या सुत: शिवकुमारक । नवयौवनसंपन्न मवयोभिः म सह्वन ॥ १३१ ॥ विहृत्य पुनरागच्छन्सभ्रमेण समंतत । गंधपुष्पादिमांगल्यद्रव्यसद्रविस्यया ॥ १३२ ॥ जनानाव्रजतो दृष्ट्वा किमेतदितिविस्मयात्। तनूज पृच्छतिस्मासौ बुद्धिसागरमंत्रिणः ॥ १३३ ॥ कुमार शृणु वक्ष्यामि मुनींद्रः श्रुतकेवली । ख्यात सागरदत्ताह्वयस्तपसा दीप्तसंज्ञया ॥१३४॥ असौ मासोपवासाते पारणार्थं प्रविष्टवान् । पुरं काममसुद्राह्वयः श्रेष्ठी तस्मै यथाविधि ॥ १३५ ॥ दत्वा विश्राणन भक्त्या प्रापदाश्चर्यपंचक । मुनिं मनोहरोद्यानवासिन त सकौतुकात् ॥ १३६ ॥ सपूज्य वदितुं यांति पौरा:परमभक्तित । इत्याख्यत्सोपि तच्छ्रुत्वा पुनरप्यनुयुक्त स ॥ १३७ ॥ कथ सागरदत्तस्त्वा विविधर्द्धी श्रगे श्रुती । प्रापदित्यत्रीन्मत्रिसुतोप्यनुयथाश्रुत ॥ १३८ ॥ विषये पुष्कलावत्यां नगरी पुंडरीकिणी । वज्रदंत पतिस्तस्याश्चक्रेणाक्रांतभूतल ॥ १३९ ॥ देवी यशोधरा तस्य गर्भिणी जातदोहृदा । महा विभूत्या गत्वासौ सीतासागरसंगमे ॥ १४० ॥ महाद्वारेण संप्राप्य जलधिं जलजानना । जलकेलीविधौ पु

धर देव इसप्रकार कहने लगे ॥ १२८–१२९ ॥ इसी जीवूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके वीतशोक नामके नगरमें महापद्म नामका राजा राज्य करता था ॥ १३० ॥ इसकी वनमाला देवीसे शिवकुमार नामका पुत्र हुआ था। यौवन अवस्था आनेपर किसी दिन वहां अपने साथियोंके साथ क्रीडा करनेके लिये वनमें गया था । क्रीडा कर वनसे लौट रहा था कि मार्गमें उसे गंध पुष्प आदि मांगलिक चीजें लेकर चारों ओरसे संभ्रमके साथ आते हुए लोग मिले। उन्हें देखकर उसने वडे आश्चर्यसे बुद्धिसागरके मंत्रीसे पूछा कि यह क्या है॥ १३१–१३३ ॥ इसके उत्तरमें वह मंत्रीका पुत्र कहने लगा कि हे कुमार मैं कहता हूं सुन दीप्त नामके तपश्चरणसे प्रसिद्ध ऐसे सागरदत्त नामके श्रुतकेवली मुनि हैं १३४ वे एक महीनेका उपवासकर आहारकेलिये नगरमें आये थे। कामसमुद्र नामके शेठने उन्हें विधि पूर्वक वडी भक्तिसे आहार दिया था इसलिये उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई थी। वे ही मुनिराज आहार लेकर मनोहर नामके उद्यानमें विराजमान हुए हैं उनकी पूजा और वंदना करनेकेलिये ये सव नगरनिवासी लोग वडी भक्तिसे और वडे कौतुकसे जारहे है। मंत्रीके पुत्रकी वह वात सुनकर वह राजकुमार फिर कहने लगा ॥ १३५–१३७ ॥ कि इन मुनिराजका नाम सागरदत्त क्यों पडा और इन्हें श्रुतज्ञान और ऋद्धियां क्यों हुई हैं इसके उत्तरमें वह मंत्रीका पुत्र जैसा सुना था वैसा ही कहने लगा ॥ १३८ ॥ कि इसी पुष्कलावती देशकी पुंडरीकिणी नगरीमें वजदंत चक्रवर्ती चक्ररत्नसे सव पृथ्वीको जीतकर राज्य करता था। जव उसकी यशोधरा देवी गर्भिणी हुई थी तव उसे दोहद हुआ था और उसके अनुसार वडी विभूतिके साथ वह कमलनयनी जहां सीता नदी जाकर मिलती है उसी महाद्वारसे जाकर समुद्रमें क्रीडा करनेकेलिये गई थी।

अमलध्याम्यणीनिर्वृतिं ॥ १४१ ॥ तस्मात्सागरदत्ताख्यमस्यां कुर्वन्सनामयः । अथयौवनसंप्राप्तौ स कदाचन नाटकं ॥१४२ ॥ सार्द्धं सपरिवारेण पश्यन् हर्म्यतले स्थित । चेटकेनानुकूलाख्यनामधेयेन भाषित ॥ १४३ ॥ कुमार मंदाराकाररितष्ठत्येष पयोधरः । पश्याश्चर्यमतिप्रीत्या प्रोन्मुखोलोचनप्रियं १४४ त निरीक्षितुमंहिष्ट नष्टस्तत्काल एव स । जलदस्तद्विचिंत्यैवं यौवन विभवो वपु ॥ १४५ ॥ अन्यैरन्यच्च विध्वंसि यथार्थं स्तनयित्नुक । इति संसारनिर्वेद-योगभाक् समजायत ॥ १४६ ॥ स्वपित्रा सममन्येद्युः संप्राप्यामृतसागरं । स्थित मनोहरोद्याने धर्मतीर्थस्य नायकं ॥ १४७ ॥ श्रुत्वा धर्मं तदभ्यर्णे नि-र्णीतसकलस्थिति । संयमं बहुभि सार्द्धं कृतबंधुविसर्जनः ॥ १४८ ॥ प्रतिगृह्य मनःपर्ययादि प्राप्यर्द्धिसपद । देशान् विहृत्य सद्धर्मदेशेनेह समागतः १५९ इतितच्छ्रवणात्सद्यः प्रीतचेता स्वयं च स । गत्वा मुनीश्वर स्तुत्वा पीत्वा धर्मामृत तत. ॥ १५० ॥ भवंतं भगवन् ! दृष्ट्वा स्नेहो मे समभून्महान्। हेतुना केन वक्तव्यमित्यप्रच्छत् मचाब्रवीत् ॥ १५१ ॥ द्वीपेस्मिन् भरतेक्षेत्रे विषये मगधाह्वये । वृद्धग्रामे सुतौ जातौ रेवत्या वरजन्मन ॥ १५२ ॥ ज्येष्ठोत्र राष्ट्-

वहींपर जलक्रीडा करते समय ही उसके शीघ्र ही मोक्ष जानेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १३९–१४१ ॥ इसीलिये उ-सके कुटुंबी लोगोंने उसका सागरदत्त नाम रक्खा था अनंतर—यौवन अवस्था प्राप्त होनेपर किसी एक दिन वह साग-रदत्त अपने परिवारके साथ राजभवनकी ऊपरकी गच्चीपर बैठा हुआ नाटक देख रहा था, उससमय अनुकूल नामके सेव-कने कहा कि हे कुमार देखो यह वादल कैसा मंदराचल पर्वतके आकारका बना हुआ है। इस आश्चर्यको सुनकर वह कुमार भी बडे प्रेमसे ऊपरकी ओर देखने लगा परंतु नेत्रोंको सुंदर लगनेवाला वह वादल उसी समय नष्ट हो गया । उ-सके नष्ट होते ही वह विचार करने लगा कि जिसप्रकार यह वादल वायुसे नष्ट हो गया उसीप्रकार यह यौवन शरीर और विभूति सब नष्ट होनेवाली है। परिवर्तनशील संसारमें एकसे दूसरेका नाश होना अवश्यंभावी है इसप्रकार विचार-कर वह संसारसे विरक्त हुआ ॥ १४२–१४६ ॥ दूसरे दिन ही वह पिताके साथ मनोहर नामके उद्यानमें विराजमान ऐसे अमृतसागर नामके धर्मतीर्थके नायक अर्थात् तीर्थंकरके समीप पहुंचा। वहांपर जाकर उनसे धर्मका स्वरूप सुना सब पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय किया और अनेक लोगोंके साथ भाई बंधुओंका त्यागकर दीक्षा धारण करली १४७–१४८ तदनंतर मनःपर्यय आदि अनेक ऋद्धियोंकी संपदाको पाकर धर्मोपदेश देते हुए सब देशोंमें विहारकर वे ही सागरदत्त मुनिराज यहां पधारे हैं ॥ १४९ ॥ मंत्रीके पुत्रकी यह वात सुनकर उस राजकुमारके चित्तमें मुनिराजके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ वह स्वयं उनके समीप पहुंचा उनकी स्तुतिकी, धर्मामृतका पान किया और फिर पूछा कि हे भगवान आपको ! देख-कर मुझे भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है इसका क्या कारण है आप कृपाकर कहिये इसके उत्तर वे मुनिराज कहने लगे कि

कूटस्य भगदत्तस्तत परः । भवदेवस्तयोर्ज्यायान् संयम प्रत्यपद्यत ॥ १५३ ॥ सुस्थिताख्यगुरुं प्राप्य तेनामा विनयान्वित । नानादेशान्विहृत्यायास्वज-न्मग्राममेव सः ॥ १५४ ॥ तदा तद्बान्धवा सर्वे समागत्य ससंमदा । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य सपूज्यानंतुमुद्यता ॥ १५५ ॥ ग्रामे दुर्मर्षणो नाम तस्मिन्नेव गृहाधिप । तस्य नागवसुर्भार्या नागश्रीरनयो सुता ॥ १५६ ॥ ताभ्यां सा भवदेवाय प्रादायि विधिपूर्वक । अग्रजागमन श्रुत्वा सद्यः सजातसमदः १५७ भवदेवोऽप्युपागत्य भगदत्तमुनीश्वरं । विनयात्स प्रणम्यास्त तत्कृताशासनादिनः ॥१५८॥ आख्याय धर्मयाथात्म्यं वैरूप्यमपि ससृतेः । गृहीतपाणिरेकाते सं यमो गृह्यता त्वया ॥ १५९ ॥ इत्याह त मुनि सोपि प्रत्यवादीदिद वच । नागश्री प्रेक्षण कृत्वा कर्तास्मि भवतोदित ॥ १६० ॥ इति तन्मुनिराकर्ण्य ज-गाद जनने जनः । भार्यादिपाशसंलग्न करोत्यात्महित कथ ॥ १६१ ॥ त्यज तन्मोहमित्येवं भवदेवोऽप्यनुत्तर । मतिं ज्येष्ठानुरोधेन व्यधाद्दीक्षाविधौ तदा

इसी जंबूदीपके भारतक्षेत्रमें मगधदेशके वर्द्धमान गांवमें एक राष्ट्रकूट नामका वैश्य रहता था उसकी रेवती नामकी स्त्रीसे दो पुत्र हुए थे एक भगदत्त और दूसरा भवदेव। उनमेंसे वडे पुत्र भगदत्तने सुस्थित नामके मुनिराजके समीप जाकर दीक्षा धारण करली थी। तदनंतर उन गुरुके साथ बडी विनयसे अनेक देशोमें विहारकर वह अपनी जन्मभूमिमें आया था ॥ १४९–१५४ ॥ उससमय उसके सब भाई बंधु लोग बडे हर्षसे उसके समीप आये थे और मुनिराजकी प्रदक्षिणा देकर पूजाकर नमस्कार करनेको तैयार हुए थे ॥ १५५ ॥ उसीगांवमें एक दुर्मर्षण नामका सद्गृहस्थ था उसके नागवसु नामकी स्त्री थी और उससे उत्पन्न हुई नागश्री नामकी कन्या थी ॥ १५६ ॥ उन दोनों माता पिताने वह नागश्री कन्या विधि पूर्वक भवदेवको व्याह दी थी। अपने वडे भाई मुनिराज भगदत्तका आना सुनकर भवदेव भी बडी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही उनके समीप पहुंचा। बडी विनयसे उन्हें नमस्कार किया और मुनिराजके उपदेशसे उसका चित्त वहुत ही आर्द्र हुआ ॥ १५७–१५८ ॥ तदनंतर भग-दत्त मुनिराजने अपने छोटे भाई भवदेवका हाथ पकडकर और एकांतमें ले जाकर संसारसे विरक्तता उत्पन्न करनेवाला धर्मके यथार्थ स्वरूपका उपदेश दिया और कहा कि अब तू संयम धारण करले। इसके उत्तरमें भमदेवने कहा कि मैं घर जाकर नागश्रीसे पूंछ आऊं तव फिर आपका कहना कर लूंगा ॥ १५९–१६० ॥ भवदेवकी यह वात सुनकर मुनिराज कहने लगे कि इस संसारमे स्त्री आदिके जालमें फंसा हुआ यह जीव अपना कल्याण कैसे कर सकता है ? ॥ १६१॥ इसलिये तू अपना मोह छोड दे। इसप्रकार समझानेपर भवदेवने कुछ उत्तर नहीं दिया और वडे भाईके अनुरोधसे दीक्षा लेनेमें अपना चित्त लगाया ॥ १६२॥ तदन्तर वे भगदत्तमुनि भवदेवको अपने गुरुके समीप लेगये और संसारको

॥ १६२ ॥ नीला स्वगुरुसामीप्यं भगदत्तो भवच्छिदे । दीक्षामग्राहयन्मौक्षीं सतां सोदर्यमीदृश, ॥१६३॥ स द्रव्यसंयमी भूत्वा सिषीद्वादशवत्सरान् । विहृत्य गुरुभिः सार्द्धमन्येद्युरसहायकः ॥ १६४ ॥ वृद्धग्राम निजं गत्वा सुव्रतागणिनीममि । समीक्ष्यास्मिन् किमस्त्ययम नागश्रीर्नाम काचन ॥ १६५ ॥ इति संप्रश्न-यामास सा तस्येंगितवेदिनी । नाहं वेद्मि मुने सम्यगुदंत तन्निवधनं ॥ १६६ ॥ इत्यौदासीन्यमापन्ना गुणवत्यार्यिकां प्रति । संयमे त स्थिरीकर्तुमथाख्या-नकमब्रवीत् ॥ १६७ ॥ वैश्य सर्वसमृद्धाख्यस्तद्दासीतनयः शुचि । दारुकाख्य समात्रास्मच्छ्रेष्ठशुच्छिष्टाशित त्वया ॥ १६८ ॥ भोक्तव्यमिति निर्बन्धाद्भो-जित स जुगुप्सया । वांतवान् कसपात्रेण तत्तन्मात्राहित पुनः ॥ १६९ ॥ बुभुक्षुर्मातरं भोक्तुं प्रार्थयामास दारुकः । तथापि कसपात्रस्य पुरस्तादुपढौ-कितं ॥ १७० ॥ बुभुक्षापीडितोप्येष नाग्रहीद्वातमात्मनः । सोपि चेत्तादृशः साधु कथ स्वकमसीप्सति ॥ १७१ ॥ अर्थाख्यानमिदं चैकं शृणु रुग्वाशय

नाश करनेके लिये मोक्ष देनेवाली दीक्षा ग्रहण करा दी सो ठीक है क्योंकि सज्जनोंका भाईपना ऐसा ही होता है ॥१६३॥ उस मूर्खने द्रव्यसंयम धारणकर बारह वर्षतक गुरुके साथ विहार किया और फिर किसी एक दिन वह सकेला ही अपने वर्द्धमान गांवमें आया उसने एक सुव्रता नामकी गणिनीके समीप जाकर पूछा कि हे माता इस गांवमें कोई नागश्री नामकी स्त्री रहती है ? । सुव्रता गणिनीने उस मुनिके हृदयकी बात सुनकर कहा कि हे मुने ! उसकी बात मैं अच्छी तरह नहीं जानती । इस तरह कहकर और उदासीनता धारणकर उस गणिनीने उस मुनिको संयममें स्थिर करनेके लिये एक गुणवती नामकी अर्जिकासे कथा कहना प्रारम्भ किया ॥१६४–१६६॥ वह कहने लगी एक सर्वसमृद्ध नामका वैश्य था उसके शुद्ध हृदयवाला दारुक नामका दासीपुत्र था । किसी एकदिन उसकी माताने उससे कहा कि हमारे शेठका झूठा भोजन तू खायाकर इस तरह कहकर उसने जबर्दस्ती झूठा भोजन उसे खिला दिया परन्तु ग्लानि आनेसे उस पुत्रने वह सब वमन कर दिया । उसकी माताने वह सब वमन एक कांसेकी थालीमें ले लिया और जब फिर उस दारुककी भूख लगी तथा मातासे भोजन मांगा तब उस माताने वही कांसेकी थालीमें रक्खा हुआ उसका वमन उसके सामने रख दिया ॥१६८–१७०॥ यद्यपि उस दारुकको बहुत भूख लगी थी तथापि उसने वह अपना वमन किया हुआ नहीं खाया । जब उस दासी पुत्रने ही अपना वमन किया हुआ भोजन बहुत भूख लगने पर भी नहीं खाया तब साधु होकर भी अपनी छोडी हुई चीजको किस तरह चाहते हैं ? ॥१७१॥ इसके सिवाय भी मैं एक कथा और कहती हूं तू चित्तको स्थिर रखकर सुन । एक नरपाल नामका राजा था उसने बडे कौतुकसे एक कुत्ता पाला था । मीठे भोजन दे देकर उसे पाला था उसे सब तरहके सोनेके आभूषण पहिनाये थे, वह मूर्ख राजा उसे पालकीमें बिठाकर सदा बगीचे

स्विरं । नरेशो नरपत्काश्य' श्वानमेक सकौतुक ॥ १७२ ॥ मिष्टशनेन सपोष्य स्वर्णाभरणभूषित । सदा वनविहृत्यादिगतौ कनककल्पितां ॥१७३॥ आरोप्य शिबिकामेवं मदबुद्धिरपालयत् । कदाचिच्छिबिकारूढो गच्छन्नर्भ्रलेयकाधम ॥ १७४ ॥ विष्ठामालोक्य बालस्य लिप्सुरापततिस्म स । तदृष्ट्वापाकरोद्भूपो लकुटीताडनेन स ॥ १७५ ॥ तद्वन्मुनिश्च सर्वेषां पूजनीयः पुरा पुन । त्यक्तामिवाञ्छया भूयः संप्राप्नोति पराभव ॥ १७६ ॥ इदमन्यत्कचित्कश्चित्पथिक-स्त्वन्नांतरे । सुगंधिफलपुष्पादिसेवयायत् सुखं सत ॥ १७७ ॥ गत्वा विहाय सन्मार्ग महागहनसंकटे । दृष्ट्वा क्षुधितमत्युग्र सचमूरं जिघासुकं ॥ १७८ ॥ भीत्वा धावंस्तदैकस्मिन् भीमे कूपेपतत्समीः । तत्र वातादिभिः पापाद् पत्रितयसभवे ॥ १७९ ॥ वाग्दृष्टिश्रुतिगत्यादिहीनं सर्पादिवाधन । तं तन्निर्गमनोपायमजानत यदृच्छया ॥ १८० ॥ कश्चिद्भिषग्वरो वीक्ष्य दययार्द्रीकृताशय । निर्गमय्य तत' केनाप्युपायेन महादरात् ॥ १८१ ॥ मन्त्रौषधिप्रयोगेण कृतपादप्रसारण । सूक्ष्मरूपसमालोकनोन्मीलितविलोचन ॥ १८२ ॥ स्पष्टाकर्णनविज्ञातस्वशक्तिश्रवणद्वयं । व्यक्तवाक्प्रसरोपेतरसन च व्यधादमु ॥ १८३ ॥ स स-

क्रीडा करनेके लिये ले जाता था। किसी एक दिन वह नीच कुत्ता पालकीमें बैठा हुआ जा रहा था कि एक बालककी विष्ठा उसे दिखई पडी और उसे चाटनेके लिये वह तुरन्त ही कूद पडा। यह देखकर उस राजाने भी लकडियोंकी मार उसे दूर भगा दिया ॥१७२-१७५॥ इसी प्रकार जिन मुनियोंकी पहिले सब लोग पूजा करते हैं यदि वेही फिर त्याग किये हुए पदार्थोंकी इच्छा करने लगें तो उनका भी संसारमें तिरस्कार ही होता है ॥१७६॥ इस कथाके वाद एक कथा और कहती हूं—किसी बनमें कोई पथिक सुगन्धित फल पुष्प लेनेके लिये सुखसे जा रहा था परन्तु वह अच्छा मार्ग छोडकर बडे संकीर्ण और गहन बनमें जा पडा। वहापर उसने एक भूखा, बहुत बडा और मारनेके लिये अपनी ओर आता हुआ सिंह देखा ॥१७७-१७८॥ उसके डरसे डरकर दौडता हुआ वह भयभीत पथिक एक भयानक कूपमें पडगया। पाप कर्मके उदयसे वात पित्त कफ आदि तीनों दोष उत्पन्न हुए और वह वचन, दृष्टि, कान, गति इन सबसें हीन होगया। इसके सिवाय भी सांप आदिकी बाधा उसे अलग थी। सब इंद्रियां बन्द हो जानेसे वह वहांसे निकलनेका उपाय भी नहीं जानता था। दैवयोगसे इच्छानुसार चलकर एक वैद्य भी वहां जा पहुंचा उस पथिकको देखकर उसका हृदय दयासे भींग गया और किसी भी उपायसे उसने उसे बडे आदरसे बाहर निकाला ॥१७९-१८१॥ उस वैद्यने मंत्र और औषधियोंके प्रयोगसे उसके पैर भी सीधे कर दिये और सूक्ष्मरूपको देखनेयोग्य नेत्र भी खोल दिये ॥१८२॥ उसके कानोंमें भी स्पष्ट सुननेयोग्य शक्ति उत्पन्न करदी और उसकी जीभमें भी व्यक्त वाक्योंके कहनेकी शक्ति उत्पन्न कर दी ॥१८३॥ इसके बाद उसे मार्ग दिखलाकर सर्वरमणीय नामके नगरमें पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि उदार हृदयवाले मनुष्य

वैरमणीयाख्यं पुरं तं मार्गदर्शनात् । प्रस्थाप्यम कस्योपकुर्वंति विमदाशया ॥ १८४ ॥ पुन स विषयासक्तमतिः पथिककुधीः । प्रकटीकृतदिग्मागमोहः प्राक्तनकूपकं ॥ १८५ ॥ संप्राप्य पतितस्तस्मिंस्तथा कोपन सद्गतौ । मिथ्यात्वादिकपंचोग्रवाधिर्यादीन्युपागतान् ॥ १८६ ॥ जन्मकूपे क्षुधादाद्यार्तान्सं-वीक्ष्य सन्मतिः । गुरुवैद्यो दयालुत्वाद्धर्मास्योपायपण्डितः ॥ १८७ ॥ निर्गमय्य ततो जैनभाषौषधिनिषेवनात् । सम्यक्त्वनेत्रमुन्मील्य सम्यग्ज्ञानश्रुतिद्वयं ॥ १८८ ॥ समुत्कटय्य सद्वृत्तपादौ कृत्वा प्रसारितौ । व्यक्तां दयामयीं जिह्वां विधाय विधिपूर्वकं ॥ १८९ ॥ पंचप्रकारस्वाध्यायवचनान्यभिधाप्य तान् । सुधीरागमयन्मार्गं साधुः स्वर्गापवर्गयोः ॥ १९० ॥ निजप्रोदयाद्दीर्घसंसारास्तत्र केचन । सुगंधिमधुरोद्भिन्नचंपकाभ्यासवर्तिनः ॥१९१॥ तत्सौरभाव-बोधावमुक्ताः षट्चरणा यथा । पार्श्वस्थाख्या सुदर्शनचारित्रोपांतवर्तनात् ॥ १९२ ॥ कषायविषयारंभलौकिकाज्ञानवेदकैः । जिह्वाषड्रसेवसंवद्धाः कुशी-लाख्या दुराशयाः ॥ १९३ ॥ संसक्ताख्या निषिद्धेषु द्रव्यभावेषु लोलुपाः । अवसानाख्या हीयमानज्ञानादिकत्वतः ॥ १९४ ॥ समाचारवहिर्भूता मृगचार्य-

किसका उपकार नहीं करते हैं अर्थात् सबका उपकार करते ही हैं ॥ १८४ ॥ इसके बाद उस मूर्ख पथिककी बुद्धि फिर विषयोंमें आसक्त होगई और दिग्भ्रम प्रगट होजानेके कारण वह फिर उसी कूपके समीप जाकर उसीमें जापडा। इसी प्रकार ये जीव भी इस संसारमें मिथ्यात्व आदि आस्रवके कारण रूप पांचों बधिर आदि महारोगोंको प्राप्त होरहे हैं और जन्मरूपी कूएमें पडकर भूख प्यास आदिके दुःखोंसे महादुखी होरहे हैं उन्हें देखकर धर्मोपदेश देनेके उपायोंमें अत्यन्त चतुर और श्रेष्ठ बुद्धिको धारण करनेवाले गुरुरूपी वैद्य दयालु होनेके कारण उन्हें निकालते हैं और फिर जैनवचनरूपी औषधियोंका सेवन कराकर सम्यग्दर्शनरूपी नेत्रोंको खोल देते हैं, सम्यग्ज्ञानरूपी कानोंको साफ प्रगट कर देते हैं, सम्यक् चारित्ररूपी दोनों पैर फैलाकर सीधा कर देते हैं और जीभको विधिपूर्वक व्यक्त दयामयी बना देते हैं ॥१८५–१८९॥ वे बुद्धिमान साधु पांच प्रकारके स्वध्यायरूपी वचन कहकर उन्हें स्वर्ग और मोक्षके मार्गपर लगा देते हैं ॥ १९०॥ उनमें भी वहुतसे लोग पापकर्मके उदयसे दीर्घसंसारी होते हैं। जिस प्रकार भ्रमरको सुगंधित और मिष्ट गन्धवाले चम्पकके सपीप रहते हुए भी उसकी सुगन्धताका ज्ञान नहीं होता इसी प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके समीप रहते हुए भी जिन्हें रत्नत्रयका ज्ञान नहीं होता वे पार्श्वस्थ कहलाते हैं ॥ १९१–१९२ ॥ जो कषाय, विषय, आरंभ लौकिक अज्ञान आदिके वश होकर जिह्वा इंद्रियके छहों रसोंमें आसक्त हो रहते हैं वे दुष्ट कुशील कहलाते हैं ॥ १९८ ॥ जो निषिद्ध वा त्याग करने योग्य द्रव्य भावोंमें लोलुपी रहते हैं वे संसक्त कहलाते हैं। जिनके ज्ञान चारित्र आदि घटते जाते हैं वे अवसान कहे जाते हैं और जो सदाचार रहित स्वेच्छाचारी हैं वे मृगचारी कहलाते हैं। ये सब लोग महामोहका त्याग नहीं करते

मिधानका । महामोहानिवृत्याजवंजवागाधकूपके ॥ १९५ ॥ पततिस्म पुनश्चेति भवदेवोपि तच्छ्रुते । संप्राप्तशातभावोभूद् ज्ञात्वा तत्सार्यकाग्रणीः १९६ नागश्रियं च दौर्गत्यभावोत्पादितदु स्थितिं । आनाय्यादर्शयत्सोपि तां दृष्ट्वा संसृतिस्थितिं ॥ १९७ ॥ स्मृत्वा धिगति निंदित्वा गृहीत्वा संयमं पुन । भ्रात्रा सहायुषः प्रांते कुमारस्ताराधना श्रित. ॥ १९८ ॥ मृत्वा म हेंद्रकल्पेभूद्वलभद्रविमानके । सामानिकसुर सप्तसागरोपमजीवित: ॥ १९९ ॥ ज्यायानहम जाभि त्व कनिष्ठोमूस्ततश्च्युत: । इति सोपि मुनिप्रोक्तश्रवणेन विरक्तवान् ॥ २०० ॥ दीक्षा गृहीतुमुद्युक्तो मात्रा पित्रा च वारित । प्रविश्य नगरं जातस विदप्रासुकाशन ॥ २०१ ॥ नाहमाहारयामीति कुमारोऽकृत निश्चय । तद्वार्ताश्रवणाद्भूपो य. कश्चिद्भोजयत्यमु ॥ २०२ ॥ तस्मै सप्र थें दास्यामीति स-मघोषयत् । तज्ज्ञात्वा दृढधर्माख्यः सप्तस्थानसमाश्रय: ॥ २०३ ॥ श्रावक: समुपेत्यैन कुमारं ज्ञातिशत्रव: । त्वंते स्वपरध्वसकोविदा: पापहेतव: २०४ भावसंयमविध्वस्तिमकृत्वा प्रासुकाशनं । करिष्ये भद्र पर्युष्टिमवियुक्तस्य बंधुभि ॥ २०५ ॥ दुर्लभा संयमे वृत्तिरित्यवोचद्धितं वच । सोपि मत्वा तदाचा

इसलिये दीर्घ संसारीरूपी अगाध कूपमें फिर भी जाकर पडते ही हैं। अर्जिकाकी ये सब बाते सुनकर भवदेवका चित्त अत्यंत शान्त होगया उसका शान्त चित्त देखकर उस मुख्य आर्यिकाने भी दुर्गति वा दरिद्रतासे जिसकी स्थिति अत्यन्त शान्त होरही है ऐसी नागश्रीको लाकर उसे दिखला दिया। उसे देखकर भवदेवने और भी संसारकी साक्षात् स्थितिका स्मरण किया धिकार देते हुए अपनी निन्दाकी फिरसे संयम धारण किया और बडे भाईके साथ आयुके अन्तमें अनुक्रमसे चारों आराधनाओंका आश्रय लिया। मरकर अपने भाईकेही चौथे माहेन्द्र स्वर्गके वलभद्र विमानमें सात सागरकी आयु पाकर सामानिक देव हुआ ॥९४—९९॥ वहांसे च्युत होकर बडे भाई भगदत्तका जीव मैं हुआ हूं और छोटे भाई भवदेवका जीव तू हुआ है। इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर वह शिवकुमार विरक्त हुआ ॥२००॥ वह दीक्षा लेनेके लिये तैयार हुआ परन्तु माता पिताने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया। जिसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ है ऐसा वह कुमार यद्यपि नगरमें गया तथापि उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अप्रासुक आहार कभी नहीं करूंगा। कुमारकी यह प्रतिज्ञा सुनकर राजाने नगरमें घोषणा कर दी कि जो कोई इस कुमारको भोजन करावेगा उसे मैं इच्छानुसार धन दूंगा। राजाकी यह घोषणा सुनकर धार्मिक सातों स्थानोंमें दान देनेवाला दृढधर्मा नामका श्रावक उस कुमारके समीप पहुंचा और कुमारको समझाने लगा कि हे कुमार अपने और दूसरेके आत्माको नष्ट करनेमें पण्डित तथा पापके कारण ऐसे ये कुटंबी लोग सब तेरे शत्रु हैं इसलिये हे भद्र! भाव संयमका नाश न करते हुए प्रासुक भोजन लेकर पारणा कर। तू भाई बंधुओंसे रहित है इसलिये मैं तेरी वैयावृत्य करूंगा। क्योंकि संयममें प्रवृत्ति रखना अत्यंत दुर्लभ है। इसप्रकार उस श्रावकने कुमारसे हितरूप वचन कहे। कुमारने

म्लनिर्विकृत्यरसाशनः ॥ २०१ ॥ दिव्यस्त्रीसन्निधौ स्थित्वा प्रदाविकृतचेतसा । तृणाद् मन्यमानस्ता तपो द्वादशवत्सरान् ॥ २०७॥ चरित्वनिशातासिधा-
रायां संप्रवर्तयन् । संन्यस्य जीवितप्रान्ते कल्पे ब्रह्मेन्द्रनामनि ॥ २०८ ॥ विद्युन्माल्येव देवोभूद्दैश्यीप्त्याप्तदिङ्मुखः । इत्यथ श्रेणिकप्रश्नादिदं चोवाच गौतमः
॥ २०९ ॥ विद्युन्मालिन एवामूर्देव्योऽस्त्रैत्येभ्यपुत्रिकाः । जंबून्प्रमततोपि भार्यास्तेन प्र संयमं ॥ २१० ॥ सहांत्यकल्पे भू त्वेह यास्यंति परमं पदं ।
गत्वा सागरदत्ताख्यो दिवमत्रैत्य निर्वृतिं ॥ २११ ॥ जम्बूनाम्नो गृहत्यागसमये यास्यतीत्यपि । सर्वमेतद्गणाधीशनायकव्याहृतं मुदा ॥ २१२ ॥ सश्रुत्य भग-
वाधीशो जिन तं चान्ववंदत । मान्यति न के संत श्रेयोमार्गोपदेशिनं ॥ २१३ ॥ अथान्येद्युः पुन प्राप्य भगवंत मवांतक । प्रपूज्य प्रणतस्तस्मै सदस्यु-
दिततेजस ॥ २१४ दृष्ट्वा तारागणे तारापतिं वा प्रीतिकेतनं । प्रीतिंकरं पुरानेन किं कृत्वा रूपमीदृशं ॥२१५॥ संप्राप्तमिति सोप्राक्षीद्गणभृच्चैवमब्रवीत् । एत-

भी उसकी सब बातें मानलीं और निर्विकार आचाम्ल रसका आहार किया॥२०१–२०६॥यद्यपि वह दिव्य स्त्रियोंके स-
मीप भी जाता था तथापि उसके चित्तमें कभी विकार नहीं होता था वह सबको तृणके समान मानता था इसप्रकार उस-
ने बारह वर्षतक असिधारा पर (तलवारकी धारपर) चलनेके समान अत्यंत कठिन तपश्चरण किया। आयुके अंतमें उस-
ने सन्यास धारण किया और शरीर छोडकर ब्रह्म स्वर्गमें यह विद्युन्माली देव हुआ है पहिले भारी तपश्चरण करनेके
कारण ही शरीरकी कांतिसे इसने सब दिशाएं व्याप्त कर रक्खी हैं। इस कथाके कहनेके बाद श्रेणिकके पूछनेपर गौतम-
गणधर फिर कहने लगे कि विद्युन्मालीकी जो चार देवियां है वे अलग २ वैश्योंकी पुत्रियां होकर जंबूकुमारकी स्त्रियां होंगी
और जंबूकुमारके साथ दीक्षा धारणकर सोलहवें स्वर्गमें देव होंगी तथा वहांसे आकर मुक्त होगी। सागरदत्तका जीव
भी स्वर्गसे आकर जंबूकुमारकी दीक्षाके समय मुक्त होगा। गणधरोंके नायक गौतमस्वामीकी कही हुई ये सब कथाएं
सुनकर राजा श्रेणिक बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने श्री जिनेंद्रदेव महावीर स्वामीकी वंदना की। सो ठीक ही है
क्योंकि ऐसे कौन सज्जन पुरुष हैं जो कल्याण कारी मोक्षमार्गका उपदेश देनेवालेको न मानें तथा उनका आदर सत्कार
न करें॥२०७–२१३॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन राजा श्रेणिक फिर संसारका नाश करनेवाले भगवान वीरनाथके
समवसरणमें गया उनकी पूजाकी और उन्हें नमस्कार किया। जिसप्रकार ताराओंमें चंद्रमा प्रकाश मान दिखाता है उसी-
प्रकार सब सभामें जिनका तेज प्रकाशमान होरहा है और जो प्रेमकी ध्वजाके समान है ऐसे प्रीतिंकर मुनिको देखकर
श्रेणिकने पूछा कि पहिले जन्ममें इन्होंने कौनसा पुण्य किया था जिससे इन्हें ऐसा रूप प्राप्त हुआ है। इसके उत्तरमें
गणधरदेव भी इसप्रकार कहने लगे कि इसी मगधदेशमें एक सुप्रतिष्ठ नामका नगर है॥२१४–२१६॥ उसमें जयसेन

स्मिन् मगधे देशे सुप्रतिष्ठाह्वयं पुरं ॥ २१६ ॥ जयसेनमहीपाल; पालकस्तस्य लीलया । तत्र सागरदत्ताख्यः श्रेष्ठी तस्य प्रभाकरी ॥ २१७ ॥ भार्या त योरभून्नागदत्तो ज्येष्ट सुतोनुजः । कुबेरदत्तो विलेकसमस्तगृहवासिन ॥ २१८ ॥ नागदत्त विनान्ये सर्वेभूवन्नुपासका; । रत्नाकरेपि सद्रत्न नाप्नोत्यकृतपुण्यकः ॥ २१९ ॥ तेषां काले व्रजत्येवं गिरौ धरणिभूषणे । वने प्रियकरोद्याने कदाचित्समवस्थित ॥ २२० ॥ मुनिं सागरसेनाख्यं जयसेननृपादय । गत्वा सपूज्य वंदित्वा धर्मं साध्वन्वयुंजत ॥ २२१ ॥ सोप्येवमब्रवीत्प्राप्तसम्यग्दर्शनलोचन । दानपूजाव्रतापोषितादिभिः प्राप्तपुण्यका ॥ २२२ ॥ प्राप्नुवंति सुखं स्वर्गे चापवर्गे च संयमात् । मिथ्यादृशश्च दानादिपुण्येन स्वर्गजं सुखं ॥ २२३ ॥ सम्प्राप्नुवंति तत्रैके शममाहात्म्यतः पुनः । कालादिलब्धिमाश्रित्य स्वतो वा परतोपि वा ॥ २२४ ॥ सद्धर्मलाभयोग्याश्च भवत्यभ्यर्णमोचनाः । अन्ये तु भोगसंसक्ता गाढमिथ्यात्वशल्यकाः ॥ २२५ ॥ हिंसानृतान्यरैरामारत्यारंभपरिग्रहैः । पापं संचित्य संसारदुष्कूपे निपतंति ते ॥ २२६ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा बहवो धर्ममाददुः । अथ सागरदत्ताख्यश्रेष्ठिना स्वायुषोवधौ

नामका राजा लीलापूर्वक राज्य करता था। उसी नगरमें एक सागरदत्त नामका शेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम प्रभाकरी था। उन दोनोंके दो पुत्र थे बडेका नाम नागदत्त था और छोटेका नाम कुवेरदत्त था। उस शेठके घर जितने लोग रहते थे उनमेंसे नागदत्तको छोडकर वाकी सब श्रावक थे सो ठीक ही है क्योंकि जो पुरायहीन है उसे रत्नाकरमें रत्नोंकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २१७–२१९ ॥ इसप्रकार उन सबका समय सुखसे व्यतीत होरहा था किसी एक समय धरणि भूषण नामके पर्वतके प्रियंकरोद्यान नामके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज आ विराजमान हुये। राजा जयसेन आदि बहुतसे लोगोंने जाकर उनकी पूजा बंदनाकी और सबने उनसे धर्मका स्वरूप पूछा ॥ २२०-२२१ ॥ वे मुनिराज भी धर्मका स्वरूप इसप्रकार कहने लगे कि जिन्हें सम्यग्दर्शनरूपी नेत्र प्राप्त हो चुके हैं ऐसे पुरुष दान पूजा व्रत उपवास आदिके द्वारा पुराय सम्पादन करते हैं तथा संयम धारणकर स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं। मिथ्या दृष्टि लोग दानादिक पुरायोंके द्वारा स्वर्गके सुख प्राप्त करते हैं। मिथ्यादृष्टियोंमें भी शान्त परिणामोंके माहात्म्यसे कितने ही जीव तो काल आदि लब्धियोंको पाकर अपने आप अथवा दूसरोंके द्वारा श्रेष्ट धर्मको प्राप्त होनेके योग्य हो जाते हैं तथा शीघ्रही मुक्त होने योग्य हो जाते हैं और कितने ही जीव ऐसे हैं जिनके गाढ मिथ्यात्वरूपी शल्य बनी रहती है जो भोगोंमें आसक्त रहते हैं और हिंसा झूठ चोरी कुशील अत्यन्त आरम्भ तथा अत्यन्त परिग्रहसे पापोंका उपार्जनकर संसाररूपी बुरे कूएमें पड जाते हैं ॥२२२–२२६॥ इस प्रकार उन मुनिराजके वचन सुनकर बहुतसे लोगोंने धर्मको धारण करलिया। तदंतर श्रेठ सागरदत्तने अपनी आयुके दिन पूछे मुनिराजने तीस दिनकी आयु बतलाई। यह सुनकर वह शेठ अपने नगरमें

॥ २२७ ॥ परिपृष्ठे मुनिश्चाह दिवसांस्त्रिंशदित्यसैा । तच्छ्रुत्वा नगरं श्रेष्ठी प्रविश्याष्टान्हिकीं मुदा ॥ २२८ ॥ पूजा विधाय दत्त्वात्मपद ज्येष्ठाय सूनवे । आपृच्छ्य बाधवान् सर्वान् द्वाविंशतिदिनानि सः । संन्यस्य विधिवल्लोकमवापदमृताशिना ॥ २२१ ॥ अन्येद्युर्नागदत्तोसैा लोभेनाथेन चोदितः ॥ २३० ॥ कुवेरदत्तमाहूय तव सारधन पिता । किमदर्शयदित्येव पृष्टवान् दुष्टचेतसा ॥ २३१ ॥ तीव्रलोभविषक्रोयमित्यसाववगम्य न । त्वमवाच्यमविज्ञात धनमस्ति गुरोः पृथक् ॥ २३२ सन्यस्य विधिना स्वर्ग गतस्योपरि दूषण । महत्पापमिद वक्तु भ्रातस्तव न युज्यते ॥ २३२ ॥ श्रोतुं ममापि चेत्याह सोप्यपास्यास्य दुर्मतिं । विभज्य सकलं वस्तु चैत्यचैत्यालयादिकं ॥ २३४ ॥ निर्माप्य जिनपूजार्थं विधाय विविधा सदा । दानं चतुर्विधं पात्रत्रये भक्त्या प्रवर्त्य तैा ॥ २३५ ॥ काल गमयत स्मोद्यत्प्रीती प्रति परस्परं । दत्वा सागरसेनाय कदाचिद्भक्तिपूर्वकं ॥ २३३ ॥ भिक्षां कुवेरदत्ताख्यः सहितो धनमित्रया । आवंध किमावाभ्यां तनूजो लप्स्यते नवा ॥ २३७ ॥ नैव चेत्प्रव्रजिष्याव इत्यप्राक्षीत्सचाब्रवीत् । युवां सुतं महापुण्यभागिन चरमांगक ॥ २३८ ॥ लप्स्येया-

गया उसने बडे आनन्दसे अष्टान्हिकाकी पूजा की और फिर अपना पद अपने बडे पुत्रको दिया । इसके बाद उसने सब भाई बन्धुओंसे पूछकर बाईस दिन तक विधि पूर्वक संन्यास धारण किया और शरीर छोडकर स्वर्गलोक प्राप्त किया । किसी दूसरे दिन नागदत्तको अनन्तानुवन्धी लोभने सताया इसलिये उसने दुष्टचित्तसे कुवेरदत्तको बुलाकर पूछा कि क्या पिताजी अपना सब कीमती धन तुमको बतला गये हैं ? ॥ २२७–२३१ ॥ कुवेरदत्तने समझलिया कि यह तीव्र लोभरूपी विषके नशेमें है इसलिये वह बडे भाईको समझाने लगा कि आप न कहने योग्य ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं क्या पिताजीका कोई ऐसा धन अलग था जिसे हम और आप न जानते हों । जिन्होंने विधि पूर्वक संन्यास धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया है उनके लिये ऐसा कहना उनपर दोष लगाना है और एक तरहका महापाप है । हे भाई आपको ऐसा कहना योग्य नहीं हैं और मुझे सुनना भी योग्य नहीं है । इस प्रकार कुवेरदत्तने सपने बडे भाई की कुबुद्धि दूरकी, सब धनका बांट किया, अनेक चैत्य चैत्यालय बनवाये, अनेक तरहसे जिन पूजा की और बडी भक्तिसे उत्तम मध्यम जघन्य तीनों तरहके पात्रोंको सदा चारों प्रकारका दान दिया । इस प्रकार दोनों भाईयोंमें परस्परका प्रेम बहुत ही बढ गया और दोनोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा । किसी एक दिन कुवेरदत्तने अपनी स्त्री धनमित्राके साथ सागरसेन नामके मुनिराजको बडी भक्तिसे आहार दिया । आहार देनेके बाद उन दोनोंने वन्दनाकर पूछा कि हम दोनोंके कोई पुत्र होगा या नहीं यदि न हो तो हम दोनों ही दीक्षा धारण करलें इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि तुम दोनोंके महापुण्यवान् और चरमशरीरी पुत्र होगा । मुनिराजकी यह बात सुनकर दोनोंका हृदय बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और उन

मिति तद्वाक्यश्रवणात्तोषिताशयौ । यद्येवं पूज्यपादस्य भवतः क्षुल्लकोऽस्त्वसौ ॥ २३९ ॥ तस्मिन्नुत्पन्नमात्रेऽस्यैव दास्याव इति तौ सुखं । भुंजानौ कतिचिन्मासान् गमयित्वा सुतोत्तम ॥ २४० ॥ लब्ध्वा प्रीतिंकराह्वानमेतस्याकुरुतां मुदा । करोतु स्वगुणैस्तोषं सर्वेषां जगतामिति ॥ २४१ ॥ पंचसंवत्सरातीतौ तस्मिन्धान्यपुरान्मुनौ । आगते सति गत्वैनमभिवंद्य मुनींद्र ते ॥२४२॥ क्षुल्लकोयं गृहाणेति तस्मै दत्तः स तं तदा । प्रतिगृह्य गुरुर्धान्यपुरमेवागतः पुनः ॥२४३॥ तत्र स सर्वशास्त्राणि दशवर्षाण्यशिक्षयत् । सोप्यासन्नविनेयत्वात्संयमग्रहणोत्सुकः ॥ २४४ ॥ गुरुभिर्नायमेते दीक्षाकालोयमिति वारितः । तथैवास्त्विति तं भक्त्या वंदित्वा पितरौ प्रति ॥ २४५ ॥ प्रत्येत्याभ्यस्तशास्त्राणि शिष्याणां समुपादिशत् । छात्रवेषधरो गत्वा सर्वत्रबंधुकंदकः ॥ २४६ ॥ विलोक्यानतरं राज्ञा सम्यग्विहितसत्कृतिः । असाधारणमात्मानं मन्यमानः कुलादिभिः २४७ ॥ धनं बहुतरं सारं यावन्नावर्जयाम्यहं । तावन्न संग्रहीष्यामि पत्नीमिति विचिंतयन् ॥ २४८ ॥ अन्येद्युर्नागरैः कैश्चिज्जलयात्रोन्मुखैः सह । यियासुर्बांधवान्सर्वानापृच्छ्यैतत्प्रयोजन ॥२४९॥ सम्मतस्तैर्नमस्कर्तुं गत्वा गुरुमुदात्तधी । पत्रमेकं

दोनोंने कहा कि हे पूज्यपाद यदि ऐसाही है तो वह पुत्र आपका ही क्षुल्लक हो उत्पन्न होते ही हम उसे आपको दे देंगे। इसके बाद वे फिर सुखसे रहने लगे कितने ही महीने बीत जानेपर उनके उत्तम पुत्र हुआ और 'यह पुत्र अपने गुणोंसे सब संसारको सन्तुष्ट करो' यही समझकर बडी प्रसन्नतासे उसका नाम प्रीतिंकर रक्खा ॥ २३९–२४१ ॥ पुत्र जन्मके पांच वर्ष बाद वे ही मुनिराज फिर धान्यपुर नगरमें आये कुबेरदत्त और धनमित्राने जाकर उनकी वन्दना की और कहा कि हे मुनिराज यह आपका क्षुल्लक है इसे लीजिये इसप्रकार कहकर वह बालक उन्हें दे दिया। मुनिराज भी उस बालकको लेकर फिर धान्यपुर नगरमें आगये ॥ २४२–२४३ ॥ वहांपर उन मुनिराजने दश वर्ष तक उस बालकको समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा दी। आसन्न भव्य होनेके कारण शिक्षाके बादही वह संयम धारण करनेके लिये तैयार होगया ॥२४४॥ परन्तु गुरुराजने दीक्षा लेनेसे उसे रोक दिया और समझा दिया कि तेरा अभी दीक्षा लेनेका समय नहीं है। प्रीतिंकरने भी गुरुकी यह बात स्वीकार कर ली, भक्ति पूर्वक उनकी वन्दनाकर वह अपने माता पिताके पास चला गया और पढे हुए सब शास्त्र अनेक शिष्योंको पढाने लगा। वह पहिले तो विद्यार्थियोंका ही वेष धारण कर गया था और फिर सब भाई बन्धुओंको देखकर प्रसन्न हुआ। राजाने भी उसे विद्वान देखकर उसका खूब आदर सत्कार किया। तदनंतर उसने विचार किया कि मेरा कुल गोत्र आदि बहुत बडा है मैं साधारण आदमी नहीं हू इसलिये जबतक बहुतसा धन न कमा लूंगा तबतक मैं अपना विवाह नहीं करूंगा ॥ २४५–२४७ ॥ किसी एक दिन कितने ही नगर निवासी जलयात्रा अर्थात् व्यापारके लिये समुद्रयात्रा करनेको तैयार हुए उनके साथ प्रीतिंकर भी जानेको तैयार हुआ उसने जानेके लिये

निजाभिप्रेतार्थाक्षरसमर्पितं ॥ २५० ॥ गुरुणार्पितमादाय कर्णे सुस्थाप्य सादरं । शकुनाद्यानुकूल्येन ससखः पोतसाधनं ॥ २५१ ॥ अवगाह्य पयोराशिं पुरं भूतिलकाह्वयं । परीतं वलयाकारगिरिणा प्राप्य पुण्यवान् ॥ २५२ ॥ शङ्खतूर्यादिभिस्तस्मिन् ध्वनद्भिः समुत्थान् वनान् । निर्गच्छतः प्रपश्यद्भिराशक्य वणिग्वरैः ॥२५३॥ गत्वैतत्पुरमन्विष्य प्रत्येतुमिह कः सहः । इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रीतिंकरकुमारकः ॥ २५४ ॥ कर्मणोस्य समर्थोहमिति संगीर्णवांस्तदा । चोचवल्कजनिष्पन्नरज्ज्वा तैरवतारितः ॥ २५५ ॥ विस्मयात्परितः पश्यन् प्रविश्य परितः पुरा । निरीक्ष्य भवनं जैनं परीत्य विहितस्तुतिः ॥ २५६ ॥ ततो गत्वा युधापातविगतास्तन्निरूपयन् । समतात् कन्यकां कांचित् गच्छन्तीं सरसो गृहं ॥ २५७ ॥ केयमित्यनुयातोसौ तां सालोक्य गृहाङ्गणे । भद्रागतः कुतोऽत्रेति पीठमस्मै समार्पयत् ॥ २५८ ॥ सोपि तस्योपरि स्थित्वा नगरं केन हेतुना । संजातमीदृशं ब्रूहि इत्याह तामथ साब्रवीत् ॥ २५९ ॥ एतद्वक्तुं नास्ति

सब भाई बन्धुओंसे पूछा सबके द्वारा सम्मति मिलजानेपर उदार बुद्धिवाला वह कुमार नमस्कार करनेके लिये गुरुके पास गया। गुरुने अपने अभिप्रायका एक पत्र लिख दिया जिसे लेकर कुमारने बडे आदरसे कानमें रखलिया। तदन्तर अच्छे शकुन आदि देखकर अपने मित्रोंके साथ जहाजपर बैठकर समुद्रमें चलने लगा और थोडे ही दिनमें वह पुण्यवान् कंकणके आकारके पर्वतसे घिरे हुए एक भूतिलक नामके नगरमें पहुंचा ॥ २४९–२५२ ॥ उस समय शंख तुरई आदि बाजे बजाते हुए लोग सामने ही नगरके बाहर निकल रहे थे उन्हें देखकर जहाजके सब वैश्य नगरमें जानेसे डर गये ॥५३॥ सबने कहा कि इस नगरमें जाकर और सब बातें तलाशकर फिर लौट आनेकी कौन सामर्थ्य रखता है इस बातको सुन कर प्रीतिंकर कुमारने प्रतिज्ञाकर कहा कि इस कामको मैं कर सकता हू। इस बातको सुनकर दालचीनीकी छालसे बनाये हुए रस्सेसे उसको नीचे किनारेपर उतार दिया ॥२५४–२५५॥ आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए उस कुमारने नगरमें प्रवेश किया और पहिलेही जिन भवन देखकर उसकी प्रदक्षिणा देकर स्तुति की ॥२५६॥ वहांसे आगे चलकर उसने देखा कि बहुतसे लोग चारों ओर शस्त्रोंसे मरे पडे है आगे चलकर एक कन्याको तालावसे घरको जाते हुए देखा। उस कन्याको जाननेकेलिये वह उसके पीछे पीछे चला घरके आंगनमें जाकर कन्याने कुमारको देखा और बैठनेकेलिये एक सिंहासन डालकर पूछा कि हे भद्र कहांसे आये हो ॥२५७–२५८॥ कुमारने उस सिंहासनपर बैठकर पूछा कि कहो यह नगर किस कारणसे ऐसा उजाड होगया है। इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि यह सब बतलानेका यह समय नहीं है भद्र तू यहांसे जल्दी भाग जा नहीं तो तेरे लिये यहां बडा भारी भय उपस्थित होगा। कन्याकी यह बात सुनकर वह कुमार निर्भय होकर कहने लगा कि जो मुझे भय देगा उसके क्या हजार हाथ हैं। कुमारका ऐसा निर्भय और गंभीर उत्तर सुनकर कन्याका भय कुछ दूर हुआ

गंभीरविजृम्भणात् ॥ २६१ ॥ शिथिलीभूतमी कन्याप्यवोचद्विस्तरेण तत् । एतत्खगाद्युदीच्यालकेश्वराः सहजास्त्रयः ॥ २६२ ॥ ज्यायान् हरिवलस्तस्य महासेनोनुजोनुजः । तस्य भूतिलकस्तेषु धरिण्यां ज्यायसोऽभवत् ॥ २६३ ॥ तनूजो भीमकस्तस्मादेव विद्याधरेशिनः । हिरण्यवर्मा श्रीमत्यामजायत सुतोपरः ॥ २६४ ॥ महासेनस्य सुदर्यामुग्रसेन सुतोजनि । वरसेनश्च तस्यानुजा जाताह वसुंधरा ॥ २६५ ॥ कदाचिन्मे पिता भीमविहारे विपुलं पुरं । निरीक्ष्येद चिरं चित्तहारीति स्वीचिकीर्षुक ॥ २६६ ॥ एतन्निवासिनीहैला रणे व्यंतरदेवता । अत्र भूतिलकाख्येन सोदर्येण समन्वित ॥ २६७ ॥ इह संवासिभिर्भूपै सेव्यमान सुखेन सः । काल गमयति स्मैव किंचित्संचितपुण्यक ॥ २६८ ॥ इत. कनीयसे विद्या भीमकायालकश्रियं । दत्वा संसारभीरुत्वान्निर्विद्य विजितेंद्रियः ॥ २६९ ॥ कर्मनिर्मूलनं कर्तुं दीक्षा हरिवलाह्वयः । विद्वान् विपुलमत्याह्वयचारणस्याथ सन्निधौ ॥ २७० ॥ शुक्लध्यानानललीढदु-

और वह कन्या फिर विस्तारके साथ सब कथा कहने लगी। कि इस विद्याधर पर्वतके उत्तरकी ओर एक अलका नगर है उसमें राज्य करनेवाले तीन भाई थे ॥ २५९-२६२ ॥ सबसे बडा हरिवल, उससे छोटा महासेन और उससे छोटा भूतिलक। हरिवलकी रानी धारिणीसे भीमक नामका बडा पुत्र हुआ था और उसी विद्याधरकी श्रीमती नामकी दूसरी रानीसे हिरण्यवर्मा नामका छोटा पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ २६३—२६४ ॥ महासेनकी सुंदरी स्त्रीसे उग्रसेन और वरसेन दो पुत्र हुए और वसुंधरा नामकी मैं कन्या हुई ॥ २६५ ॥ ॥ किसी एक समय मेरे पिता क्रीडा करनेके लिये आये उन्होंने इस मनोहर और बडे नगरको देखकर लेनेकी इच्छा की। पहिले यहां एक व्यंतरी देवी रहती थी युद्धमें उसे जीतकर अपने छोटे भाई भूतिलकके साथ यहां ही रहने लगे। यहांके रहनेवाले राजा लोग उनकी सेवा करने लगे इसप्रकार उन पुण्यवानका समय बडे सुखसे व्यतीत होने लगा ॥ २६६—२६८ ॥ इधर जितेंद्रिय और विद्वान् राजा हरिवलको वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने अपने छोटे पुत्र हिरण्यवर्माको तो विद्याएं दीं और बडे पुत्र भीमकको अलकापुरीका राज्य दिया। संसारसे डरकर और विरक्त होकर समस्त कर्मोंको सर्वथा नाश करनेके लिये विपुलमति नामके चारण मुनिके समीप जाकर दीक्षा धारणकी और शुक्लध्यानरूपी अग्निसे समस्त पापरूपी आठों दुष्ट कर्मोंको जलाकर तथा आठों गुणोंसे सुशोभित होकर वह इष्ट आठवीं मोक्षरूपी पृथ्वीमें जा विराजमान हुआ ॥ २६९-२७१ ॥ इधर भीमक राज्य करने लगा उसने किसी कपटसे हिरण्यवर्माकी विद्या हर ली और फिर वह उसे मारनेका उद्यम करने लगा हिरण्यवर्माको भी यह बात मालूम होगई इसलिये वह भागकर सम्मेदशिखरपर जा पहुंचा। भीमक भी क्रोधसे उसके पीछे

रिताहकुष्टकं] भवभीमगमत्पृथ्वीमिथ्यमष्टगुणान्वित ॥ २७१ ॥ प्रकुर्वन् भीमको राज्यं विर्षा शाठयेन केनचित् । हिरण्यवर्मणो हत्वा तं च हंतुं समुद्यतः ॥ २७२ ॥ ज्ञात्वा हिरण्यवर्मैतत्सम्मेदाद्रिमशिश्रियत् । भीमकस्तं कुधान्विश्य गिरिं गंतुमशक्तकः ॥ २७३ ॥ तीर्थवासमिषानेन तीर्थसादागमत्पुरं । ततो हिरण्यवर्मापि पितृव्यं समुपागतः ॥ २७४ ॥ तच्छ्रुत्वा त निराकर्तुं पूज्यपादोहंतीत्यसौ । महासेनमहाराजं प्राहिणोत्प्रतिपत्रक ॥ २७५ ॥ तस्मात्स्वापकृतिं तस्माद् ज्ञात्वा या तं सुपुरतया । क्रूरएव दुरात्मेति मत्पिता भीमकं रणे ॥ २७६ ॥ निःजित्य शृंखलाक्रांतमकरोत्क्रमयोर्द्वयो । पुनः क्रमेण शांतात्मा नैतद्युक्त ममेति तं ॥ २७७ ॥ मुक्त्वा विधाय संधानं प्रशमय्य हितोक्तिभि । हिरण्यवर्मणा सार्द्धं दत्वा राज्यं च पूर्ववत् ॥ २७८ ॥ विससर्ज तथाप्यक्षो न दबैर स भीमक । हिरण्यवर्मापि प्रायो विद्या ससाध्य राक्षसीं ॥ २७९ ॥ तया हिरण्यवर्माण पापी मत्पितरं पुरं । मद्बंधूनपि विध्वस्य मामुद्दिश्यागमिष्यति ॥ २८० ॥ इति सर्वं समाकर्ण्य कुमारो विस्मयावह । शय्यातलस्थमालोक्य खड्गमेव सुलक्षणः ॥ २८१ ॥ यस्य हस्तगतो जंतुं तं शक्रोपि न शक्नु-

पीछे दौडा परंतु तीर्थंकरके समीप रहनेसे तथा तीर्थ होनेसे वह वहांतक पहुंच नहीं सका और लौटकर अपने नगरमें आ-गया । तदनंतर हिरण्यवर्मा भी अपने काका महासेनके समीप आगया ॥ २७२—२७४ ॥ भीमकने यह बात सुनकर अपने काका महाराज महासेनको एक पत्र लिखकर भेजा कि आप हमारे पूज्य हैं इसलिये हमारे शत्रु हिरण्यवर्माको वहांसे निकाल दीजिये ॥ २७५ ॥ महासेन हिरण्यवर्माके मुखसे भीमकका अन्याय जानकर युद्ध करनेके लिये चला और यह भीमक क्रूर है दुष्ट है यही समझकर मेरे पिताने युद्धमें उसे जीता और उसके दोनों पैर लोहेकी सांकलसे बांध दिये । जब मेरे पिता शांत हुये तब उन्होने सोचा कि मेरे लिये यह काम करना योग्य नहीं है यही समझकर भीमकको छोड दिया उसके साथ संधि की हितरूप वचनोंसे उसे समझाया और पहिलेके समान हिरण्यवर्माके साथ उसे राज्य दे दिया ॥ २७६—२७८ ॥ इसके बाद दोनोंको विदाकर दिया यद्यपि भीमकको सब तरह समझा दिया था तथापि उस मूर्खने वैर नहीं छोडा तथा हिरण्यवर्माका वैर भी शांत नहीं हुआ । पापी भीमकने राक्षसी विद्या सिद्ध की उससे उसने हिरण्यवर्माको मारा मेरे पिताको मारा मेरे भाइयोंको मारा और इस नगरको इसप्रकार उजाड कर दिया । अब वह केवल मेरे लिये आवेगा ॥ २७९—२८० ॥ यह आश्चर्य करनेवाली सब घटना सुनकर कुमारने शय्यापर रक्खी हुई तलवार उठाकर देखी और यह तलवार बडी अच्छी है जिसके हाथमें यह तलवार होगी उसे इंद्र भी नहीं जीत सकता यही समझकर उस कन्यासे पूछा कि क्या तेरे पिताने इस तलवारसे भी किसीके साथ युद्ध किये हैं ? इसके उत्तरमें कन्याने भी कहा कि नहीं मेरे पिताने स्वप्नमें भी इस तलवारसे कभी युद्ध नहीं किया । तदनंतर प्रीतिंकरने वह तलवार उठाई और

यात् । इति मत्वा पितानेन ते किं केनापि युद्धवान् ॥ २८२ ॥ इत्यप्राक्षीत्स तां सापि न स्वप्नेपीत्यभाषत । तदा प्रीतिंकरो हस्तगतमस्त्रं विधाय तत् ॥ २८३ ॥ त हतु निर्भयो भीमं गोपुराभ्यतरस्थित । निगूढतनुराविष्कृतोत्रतिर्वसुनं दधत् ॥ २८४ ॥ तस्मिन् क्षणे समागत्य ममताद्वीक्ष्य भीमक । स्वविद्या प्रेषयामास दृष्ट्वा दुष्ट जहीहि त ॥ २८५ ॥ सम्यग्दृष्टिरय सप्तविधभीतिविदूरगः । चरमाङ्गो महान् शूरो नाह हतुमिम क्षमा ॥ २८६ ॥ इति भीत्या तदभ्यर्णे सचरंतीमितस्तत । विलोक्य भीमको विद्या शक्तिहीनां व्यसर्जयत् ॥ २८७ ॥ निःसाराऽभूर्व्रजेत्युक्त्वा साप्यगच्छददृश्यता । स्वयमेवासिमुत्स्वाय भीमकस्त जिघांसुकः ॥ २८८ ॥ संप्राप्तवान् कुमारोपि तर्जयन्नतिभीषण । तद्घात वञ्चयित्वाहंस्त प्राणैः सोप्यमुच्यत ॥ २८९ ॥ ततो विध्वस्य दुष्टारिमायातमभिवीक्ष्य सा । कुमारं कन्यकाभ्येत्य व्यधास्त्व भद्र साहस ॥ २९० ॥ इत्यारोप्यासन स्वर्णमय राजगृहाङ्गणे । अभिषिच्य जलापूर्णैः कलशैः कालधौतकैः ॥ २९१ ॥ विन्यस्य मणिभाभास्वि मुकुट चारुमस्तके । यथास्थानमशेषाणि विशिष्टाभरणान्यपि ॥ २१२ ॥ विलासिनीकरोद्धूयमानचामरशो-

निर्भय होकर भीमको मारनेके लिये हाथमें तलवार लेकर उन्मत होकर तथा शरीरको छिपाकर निर्भय रीतिसे नगरके बडे दरवाजेके वीचमें जा खडा हुआ ॥ २८१-२८४ ॥ उसीसमय भीमक आया उसने अपनी विद्या भेजी और कहा कि तू चारों ओर देखना जो कोई मेरा दुष्ट शत्रु मिले उसे मार डालना ॥ २८५ ॥ वह विद्या प्रीतिंकरके समीप उसे देखकर "यह सम्यग्दृष्टी है" सातों प्रकारके भयसे दूर है चरम शरीरी है और बहुत ही शूरवीर है मैं इसे मार नहीं सकती यही समझकर और डरकर वह उसके पास इधर उधर फिरने लगी । भीमकने उसे शक्ति हीन देखकर विदा करदी और कह दिया कि तू अव निःस्सार होगई है इसलिये जा। भीमककी यह बात सुनकर वह विद्या भी अदृश्य होगई । तदनंतर वह कुमार स्वयं तलवार लेकर कुमारको मारनेकेलिये उसके पास पहुंचा । कुमारने भी वडी भीषणताके साथ उसकी तर्जना की और उसका घात वचाकर उसको मारदिया तलवारकी चोटसे उसके भी प्राण छूट गये ॥ २८६-२८८ ॥ तदनंतर वह कुमार कन्याके पास गया, कुमार दुष्ट शत्रुको मारकर आया है यह देखकर वह कन्या उसके सामने आई और कहने लगी कि हे भद्र ! आपने वडा ही साहस किया है ॥ २९० ॥ यह कहकर राजघरके चौकमें उसे सोनेके सिंहासनपर विठाया सोनेके जलसे भरे हुए पूर्ण कलशोंसे उसका अभिषेक किया, सुंदर मस्तक पर मणियोंकी कांतिसे देदीप्यमान मुकुट पहनाया, यथायोग्य स्थान पर सब अच्छे अच्छे आभूषण पहनाये वेश्याओंके द्वारा अनेक चमर ढुराकर उसकी शोभा वढाई । यह सब देखकर प्रीतिंकर कुमारने पूछा कि यह सब क्या है । इसके उत्तरमें वह कन्या कहने लगी कि मैं इस नगरकी स्वामिनी हूं पहकन्य पूर्वक मैं अपना सब राज्य आपको देती हूं और गलेमें

मिनं । अकरोत्तमिरीक्ष्याह प्रीतिंकरकुमारक ॥ २९३ ॥ किमेतदिति सावोचदस्म्यस्या स्वामिमी पुरः । दत्त्वा राज्यं मदीयं ते पट्टबंधपुरस्सरं ॥ २९४ ॥ रत्नमालां गले कृत्वा त्वां प्रेम्णा समवीभव । इति तत्प्रोक्तमाकर्ण्य कुमारः प्रत्यभाषत ॥ २९५ ॥ विना पित्रोरनुज्ञानान्नैव स्वीक्रियते मया । कोपि प्रागेव संकल्पो विहितोयमिति स्फुट ॥ २९६ ॥ यद्यद्यैव तत्समायोगकालेमीष्ट भविष्यति । इति तद्वचनं कन्या प्रतिपद्य धनं महत् ॥ २९७ ॥ वद्ध्वावतरणायाम-रज्वा तेन सह स्वय । यियासुरासीरज्जु ता प्रमोदात्सोप्यचालयत् ॥ २९८ ॥ सधस्त्वचालनं दृष्ट्वा नागदत्तो वहिर्गतः । समाकृष्याग्रहीत्तं च तां च द्रव्य च तुष्टवान् ॥ २९९ ॥ पोतप्रस्थानकालेस्याः सारामरणसंहर्ति । विस्मृतां स कुमारस्तामानेतुं गतवान् पुनः ॥ ३०० ॥ नागदत्तस्तदा रज्जुमाकृष्य द्रव्यमे-तया । सारं संप्राप्तमेतन्मे भोक्तुमामरणाद्भवेत् ॥ ३०१ ॥ कृतार्थोह कुमारेण यद्वा तद्वानुभूयतां । इति प्रस्थितः सार्द्धं तैर्लब्धरंध्रो वणिग्जनैः ॥ ३०२ ॥ नागदत्तेंगितं ज्ञात्वा कन्यका मौनमग्रहीत् । प्रीतिंकराद्विनान्यैर्नं वदाम्यहमित्यसा ॥ ३०३ ॥ नागदत्तोपि कन्यैषा मूकीति प्रतिपादयन् । तां द्रव्यरक्षणे

रत्नमाला डालकर आपकी प्रेमभांगिनी वनकर रहूंगी । कन्याकी यह वात सुनकर कुमार कहने लगा कि मैं विना माता पिताकी आज्ञाके इस वातको स्वीकार नहीं करूंगा मैंने पहिले ऐसी ही प्रतिज्ञा कर ली है ॥ २९१–२९६ ॥ यदि तू ऐसा ही करना चाहती है तो मातापिताके मिलनेपर तेरा अभीष्ट सिद्ध हो सकेगा । कन्याने प्रीतिंकरकी यह वात मान ली और वहुतसा धन वांधकर उस लम्वी रस्सीके द्वारा जहाजपर चढनेके लिये कुमारके साथ किनारे पर आई । कुमारने भी आकर वडे आनन्दसे वह रस्सी हिलाई ॥ २९७–२९८ ॥ रस्सीके हिलानेको देखकर नागदत्त भी वाहिर आया और उस कन्याको और उसको सव धनको जहाजमें खींचकर वहुत सन्तुष्ट हुआ ॥ २९९ ॥ जव जहाज चलनेका समय हुआ तव वह कुमार उस कन्याके भूले हुए कितने ही आभरणोंको लेनेके लिये फिर उस नगरमें गया ॥ ३०० ॥ उसके चले जानेपर नागदत्तने वह रस्सी खींच ली और "इस कन्याके साथ मुझे वहुतसा अच्छा धन मिल गया है यह मेरे मरनेतक भोग करनेके काममें आवेगा मैं तो कृतार्थ हो चुका अव कुमार चाहे जहां इधर उधर भटकता फिरो" यही समझकर और छिद्र (समय वा दाव) पाकर वह नागदत्त उन अन्य वैश्योंके साथ चल दिया ॥ ३०१–३०२ ॥ इधर कन्याने नागदत्तका अभिप्राय जानकर मौन धारण कर लिया और प्रतिज्ञा करली कि मैं प्रीतिंकरके सिवाय और किसीके साथ वातचीत नहीं करूंगी ॥ ३०३ ॥ नागदत्तने भी "यह कन्या गूंगी है" ऐसा सव लोगोंपर प्रगटकर दिया और उसे उंगलीके इसारेसे वडे प्रेमसे द्रव्यकी रक्षा करनेपर नियुक्त किया ॥ ३०४ ॥ वह नागदत्त अनुक्रमसे अपने नगरमें पहुंचा । शेठने नागदत्तसे पूछा कि प्रीतिंकर भी तुम लोगोंके साथ भूतिलक नगरको — था वह क्यों नहीं

यैाक्षीत्प्रीत्या स्वाङ्गुलिसञ्ज्ञया ॥ ३०४ ॥ क्रमात्स्वनगरं प्राप श्रेष्ठी प्रीतिंकरस्तदा । गतो भूतिलक नायात्कुत इत्यवदत्स त ॥ ३०५ ॥ नागदत्तमसौ नाह जानामीत्युत्तरं ददौ । भूषणानि समादाय समुद्रतटमागतः ॥ ३०६ ॥ नागदत्तेन पापेन स कुमारोतिसंचितः । अदृष्ट्वा पोतमुद्विग्नः पुरं प्रति निवृत्तवान् ॥ ३०७ ॥ सचितस्तत्र जैनेंद्रगेहमेकं विलोक्य त । पुष्पादिभि समभ्यर्च्य विधाय विधिवदना ॥ ३०८ ॥ जिन त्वदृष्टिमात्रेण मत्पापं क्वाप्यलीयत । दीपेन निधि वा ध्वात समुन्मीलितचक्षुषः ॥ ३०९ ॥ चेतन, कर्ममिश्रस्त सर्वोप्यन्यदचेतन । सर्ववित्कर्मनिर्मुक्तो जने केनोपमीयते ॥ ३१० ॥ साख्यादीनूलोकविख्यातान् सर्वथा सावधारणान् । एको भवान् जिनाजैषीश्चित्र निरवधारणः ॥ ३११ ॥ अवोधतमसाक्रातमनाद्यंतं जगत्त्रयं । सुप्त त्वमेव जागर्षि शश्वद्विश्व च पश्यसि ॥ ३१२ ॥ वस्तुवोधे विनेयस्य जिनेंद्र भवदागमः । निर्मलः शर्मदो हेतुरालोकावासचक्षुषः ॥ ३१३ ॥ इतिस्वकृतसस्तोत्रः शुद्धः श्रद्धावबोधन । सम्यक्ससारसद्भाव भावयन् कर्मनिर्मितं ॥ ३१४ ॥ अभिषिंचनशालायां सुप्तवान् किंचिदाकुल । तदा नदमहानदावागता गुह्यकामरौ ३१५

आया इसके उत्तरमें नागदत्तने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता। इधर आभूषण लेकर कुमार समुद्रके किनारे आया परन्तु पापी नागदत्त पहिलेसे ही धोखा देकर चला गया था। जहाजको न देखकर वह खेदखिन्न हुआ और फिर नगरको लौट आया ॥ ३०५–३०७ ॥ वह बडी चिन्ता करने लगा और वहींपर एक जिनालय देखकर उसमें गया पुष्पादिकसे भगवानकी पूजा की विधि पूर्वक वन्दना की और फिर वह स्तुति करने लगा ॥३०८॥ कि हे देव ! जिस प्रकार रात्रिमें दीपकसे खुले नेत्रवालेका अन्धकार दूर हो जाता है उसी प्रकार आपके दर्शन करनेमात्रसे ही मेरे पाप न जाने कहां छिप जाते हैं ॥ ३८९ ॥ आप शुद्धजीव, कर्मोंसे मिला हुआ जीव और जीवोंसे भिन्न अचेतन इन सबको आप जानते हैं तथा आप सब कर्मोंसे रहित है फिर संसारमें आपकी उपमा किसके साथ दी जासके ॥ ३१० ॥ हे देव यद्यपि आप ऐंद्रियक ज्ञान रहित हैं (अतींद्रिय ज्ञानी हैं) तथापि ऐंद्रियक ज्ञानको धारण करनेवाले जगत प्रसिद्ध सांख्य आदिको केवल आपने ही जीता है यह आश्चर्यकी बात है ॥३११॥ हे देव यह आदि अन्त रहित यह तीनोंलोक अज्ञानरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर सोरहा है उसमें केवल आपही जग रहे हैं और आपही इस संसारको देख रहे हैं ॥ ३१२ ॥ हे जिनेन्द्र सम्यग्दर्शनरूपी प्रकाशमें रहनेवाले और सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले शिष्योंके पदार्थज्ञानमें आपका कहा हुआ आगमही निर्मल और कल्याण करनेवाला कारण है ॥३१३॥ इसप्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले उस कुमारने अपनी बनाई हुई स्तुति पढी और फिर कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए संसारके स्वरूपको अच्छी तरह चिंतवन करता हुआ कुछ व्याकुल होकर अभिषेचनशालामें जाकर सोगया। उस समय नन्द और महानन्द नामके दो यक्ष उस जिन मंदिरकी वन्दना करनेकेलिये आए ७२

वंदितुं मंदिर जैन वीक्ष्य तत्कर्णपत्रक । तौ तदीय समादाय सधर्मावा कुमारकः ॥ ३१६ ॥ इति प्रापयत देवौ द्रव्येण महता सह । सुप्रतिष्ठपुरं प्रीतिं-करमेनं प्रमोदिन ॥ ३१७ ॥ प्रेषण युवयोरेतदस्माकमिति तद्गत । गुरोः सदेशमालोक्य ज्ञात्वा प्राग्भवव्रत्तकं ॥ ३१८ ॥ वाराणस्या पुरे पूर्वं धनदेव-वणिक्पतेः । भूत्वा जिनदत्तया शातवो रमण सुतौं ॥ ३१९ ॥ तत्र शास्त्राणि सर्वाणि विदित्वा प्रथतोर्थतः । चोरशास्त्रवलात्पापौ परार्थहरणे रतौ ॥ ३२० ॥ अभूता मद्गुरुस्तस्मान्निवारयितुमक्षम- । सर्वसंगपरित्यागमकरोदतिदुस्तरं ॥ ३२१ ॥ इतो धान्यपुराभ्यर्णे शिखिभूधरनामनि । भूधरे मुनि-माहात्म्याद्दुष्टाः शार्दूलकादय ॥ ३२२ ॥ मृगाः कांश्चिन्न वाधत इति श्रुत्वा जनोदितात् । कृततद्भूधरावासौ तत्र भूरि तपोधन ॥ ३२३ ॥ दृष्ट्वा सागरसेनाख्यं तत्समीपे जिनोदित । श्रुत्वा धर्मं परित्यज्य मधुमासादिभक्षणं ॥ ३२४ ॥ तस्मिन् गुरौ तत. सुप्रतिष्ठाख्यनगर गते । शार्दूलोपद्रवान्मृत्वा देवभूयं गताविद ॥ ३२५ ॥ सर्वमेतद्गुरोरंते व्रतादित्यसिमन्यत । गत्वा संप्राप्य सपूज्य किमावाभ्या निदेशनं ॥ ३२६ ॥ कर्तव्यमिति सपृष्टो मुनिना-

उन्होंने प्रीतिंकर कुमारके कानमें लगे हुए पत्रको लेकर वांचा उसमें लिखा हुआ था कि कुमार धर्मात्मा है इसलिये तुम दोनों प्रसन्न रहनेवाले इस प्रीतिंकर कुमारको खूब धनके साथ स्वप्रतिष्ठ नगरमें पहुंचाना मेरा ही काम समझना। इसप्रकार उन दोनों देवोंने उस पत्रसे अपने गुरुकी आज्ञा समझी और उन्होंने नीचे लिखे अनुसार अपने पहिले भवके समाचार भी जान लिये ॥ २१४–२१८ ॥ पहिले बनारस नगरमें धनदेव नामका वैश्य रहता था उसकी जिनदत्ता स्त्रीसे शांतव और रमण नामके हम दोनों पुत्र थे ॥ २१९ ॥ वहांपर हमने (शांतव-रमणने) ग्रंथ और अर्थसे सब शास्त्रोंका अभ्यास किया परंतु चोर शास्त्रकी अधिकता होनेसे हम दोनों पापी दूसरेका धन चूरानेमें तत्पर होगये ॥ २२० ॥ हमारे माता पिता वा गुरु लोग भी हमारे चोरीके कामको छुडा न सके इसलिये उन्होंने अत्यंत कठिन ऐसा सब तरहके परिग्रहोंका परित्याग कर दिया अर्थात् दीक्षा धारण कर ली ॥ २२१ ॥ इधर धान्यपुर नगरके समीप शिखिभूधर नामके पर्वतपर रहनेवाले मुनियोंके माहात्म्यसे वहांपर रहनेवाले सिंह आदि दुष्ट जीव भी किसीको वाधा नहीं पहुंचाते थे लोगोंके मुखसे हमने भी यह वात सुनी और सुनते ही उस पर्वतपर अपना निवास स्थान बनाया। वहींपर घोर तपश्चरण करनेवाले सागरसेन नामके मुनिराज विराजमान थे उन्हें देखकर हम दोनो उनके समीप गये, उनसे भगवान जिनेंद्रदेवके कहे हुए धर्मका स्वरूप सुना और मद्य मांस आदिके भक्षण करनेका त्याग किया ॥ २२२–२२४ ॥ थोडे दिनोंके वाद वे मुनिराज सुप्रतिष्ठ नगरमें चले गये उनके चले जानेपर सिंहने हम दोनोंको मार डाला था और मरकर हम दोनों देव हुए हैं ॥ २२५ ॥ अवधिज्ञानसे हम दोनोंने जान लिया कि हमने गुरुके समीप जो व्रत लिये थे उन्हींके प्रसादसे हम

थोऽब्रवीदसौ । अत परं दिनै कैश्चित्कर्तव्यं मद्भविष्यति ॥ ३२७ ॥ भवद्भ्यामेव तज्ज्ञात्वा विधेयमिति सादरं । स एष तस्य संदेश इति पत्र प्रदर्श्य त ॥ ३२८ ॥ द्रव्येण बहुना सार्द्धं विमानमधिरोप्य त । सुप्रतिष्ठपुराभ्यर्णे गिरिं धरणिभूषण ॥ ३२९ ॥ सद्य प्रापयत स्मैतौ किं न कुर्यादयोदय । तदागमनमाकर्ण्य भूपतिस्तस्य बांधवाः ॥ ३३० ॥ नागराश्च विभूत्यैन सम्मदात्समुपागताः । तेभ्य प्रीतिंकरं दत्वा स्वावास जग्मतु सुरौ ॥ ३३१ ॥ पुरं प्रविश्य सद्रत्ने स महीशमपूजयत् । सोपि संभाव्य त स्थानमानादिभिरतोषयत् ॥ ३३२ ॥ अथान्येद्यु कुमारस्य ज्यायसीं प्रियमित्रिकां । मातरं स्वतनूजस्य प्राप्ये परिणयोत्सवे ॥ ३३३ ॥ आत्मस्नुषामलंकर्तुं रत्नाभरणसहतिं । गृहीत्वा रथमारुह्य महादर्शनकर्मणि ॥ ३३४ ॥ यांतीं दृष्टुं समायाता रथ्याया मूकिका स्वय । वीक्ष्य स्वभूषासदोह स्वष्टमंगुलिसंज्ञया ॥ ३३५ ॥ मदीयमेतदित्युक्त्वा जनान् सा ता रथस्थितां । रुध्वा स्थितवती सापि प्राहैषा ग्रहिलेति

देव हुए हैं यही समझकर हम दोनों गुरुके समीप पहुंचे उनकी पूजा वंदना की और पूछा कि हमारे लिये क्या आज्ञा है कुछ काम बतलाइये । इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि थोड़े दिन बाद मेरा एक काम होगा उसे जानकर तुम आदरके साथ करना सो मुनिराजकी वह आज्ञा यही है यही कहकर वह पत्र खोलकर दिखाया ॥३२६–३२८॥ तदनन्तर उन दोनों देवोंने साथमें बहुतसा धन लेकर उसे विमानमें बिठाया और सुप्रतिष्ठ नगरके समीपवाले धरणिभूषण नामके पर्वतपर शीघ्र ही उसे पहुंचा दिया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्योदय क्या नहीं करता है । प्रीतिंकरका आना सुनकर राजा उसके भाई बन्धु कुटुम्बी लोग और नगर निवासी लोग बड़े हर्षसे अपनी अपनी विभूति लेकर उसके समीप आये । उन दोनों देवोंने भी उन सबको वह कुमार सौंपा और फिर वे अपने स्थानको चले गये ॥३२९–३३१॥ नगरमें जाकर प्रीतिंकरने अच्छे अच्छे रत्न भेट देकर राजाके दर्शन किये । राजाने भी उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया और स्थान तथा मान देकर उसे सन्तुष्ट किया ॥ ३३२ ॥ अथानन्तर किसी दूसरे दिन प्रीतिंकर कुमारकी बडी मा प्रियमित्रा अपने पुत्रके विवाहोत्सवमें अपनी पतोहूको पहनानेके लिये सब रत्नोंके आभूषण लेकर और रथमें बैठकर सबको दिखलाती हुई चली । उसे देखनेके लिये वह गूंगी कन्या स्वयं मार्गमें आई और अपने आभूषण देखकर उसने उंगलीके इशारेसे सब लोगोंको समझा दिया कि ये सब आभूषण मेरे हैं तदनन्तर वह कन्या रथमें बैठी हुई । प्रियमित्राको रोककर खडी होगई । इसके उत्तरमें प्रियमित्राने भी सबको समझाकर कहा कि यह कन्या पागल है ॥ ३३३–३३४ ॥ तब मंत्र तंत्रोंके जानकारोंने विधि पूर्वक मंत्र तंत्रोंका प्रयोग किया और परीक्षाकर स्पष्ट कह दिया कि न यह पागल है न इसे भूत लगा है ॥ ३३७ ॥ यह बात सुनकर कुमार प्रितिंकरने उस वसुन्धरा कन्याके पास छिपकर एक पत्र भेजा उसमें

तो ॥ ३३६ ॥ तज्ज्ञांश्च मंत्रतंत्रादिविधिभिः सुप्रयोजितैः । परीक्ष्यैन न भूतोपसृष्टेति व्यक्तमब्रुवन् ॥ ३३७ ॥ कुमारोपि तदाकर्ण्य न बिभेतु कुमारिका । राजाभ्यास समभ्येतु तत्राहं चास्म्युपस्थितः ॥ ३३८ ॥ इत्यस्या प्राहिणोत्पत्रं गूढं तद्वीक्ष्य तत्तथा । श्रद्धायाशानिता राज्ञः समीपमगमन्मुदा ॥ ३३९ ॥ तदाभरणवृत्तांतपरिच्छेदाय भूपतिः । धर्माध्यक्षान् समाहूय विचाराय न्ययोजयत् ॥ ३४० ॥ वसुंधरा च तत्रैव शाला सन्निहिता तदा । राजा कुमारमप्राक्षीद्वेत्तीदं किं भवानिति ॥ ३४१ ॥ अभिधाय स्वविज्ञात शेषं वेत्तीयमेव त । देवता नाहमित्येव सोपि भूपमबोधयत् ॥ ३४२ ॥ गन्धादिभिः समभ्यर्च्यं तां पटांतरिता नृप । देवते ब्रूहि यद्दृष्टं तत्तथेत्यनुयुक्तवान् ॥ ३४३ ॥ सा नागदत्तदुश्चेष्टां महीनाथमबूबुधत् । श्रुत्वा तत्सुविचार्यास्मै कुपित्वाऽनेन पापिना ॥ ३४४ ॥ कृतः पुत्रवधः स्वामिद्रोहश्चेति महीपतिः । सर्वस्वहरणं कृत्वा निगृहीतुं तमुद्यतः ॥ ३४५ ॥ प्रतिषिद्धः कुमारेण नैतद्युक्तं तवेति सः । सौजन्यतस्तदा तुष्टः कुमाराय निजात्मजां ॥ ३४६ ॥ पृथिवीसुंदरी नाम्ना कन्यकां च वसुंधरां । द्वात्रिंशद्वैश्यपुत्रीश्च कल्याणविधिना ददौ ॥ ३४७ ॥ सह

लिख भेजा कि तू किसी तरह डरे मत तू यह सब समाचार लेकर राजाके पास जा मैं भी वहां उपस्थित रहूंगा। वसुंधराने पत्र देखकर विश्वास किया और वह प्रसन्नताके साथ राजाके समीप पहुंची ॥ ३१८—३३९ ॥ तब राजाने उसके आभूषणोंके समाचार जाननेके लिये धर्माधिकारियोंको बुलाया और विचार करनेके लिये उन्हें नियुक्त किया ॥ ३४० ॥ राजाने वसुन्धरा कन्याको समीप ही आडमें बिठलाकर कुमार प्रीतिंकरसे पूछा कि क्या तुम इसका कुछ हाल जानते हो। इसके उत्तरमें कुमारने अपना जाना हुआ हाल तो कह दिया और फिर उस राजासे समझाकर कह दिया कि बाकीका हाल मैं नहीं जानता यह देवता जानती है ॥३४१—३४२॥ राजाने गन्धादिकसे कपडेकी आडमें बैठी हुई वसुन्धराकी पूजा की और फिर कहा कि हे देवते जो तूने देखा है वह सब ज्योंका त्यों कह दे ॥३४३॥ वसुन्धराने इसके उत्तरमें नागदत्तके सब दुराचार कह सुनाये। राजाने सुनकर उनपर विचार किया और फिर नागदत्तपर क्रोध किया कि इस पापीने पुत्रवध किया है और स्वामिद्रोह किया है। इसीलिये राजाने उसका सब धन लुटवा लिया और वह उसे दंड देनेको तैयार हुआ ॥३४४—३४५॥ परन्तु कुमारने राजाको रोक दिया और समझा दिया कि आपको ऐसा करना योग्य नहीं है। राजा कुमारकी सज्जनता देख बहुत संतुष्ट हुआ और उसने पृथिवीसुंदरी नामकी अपनी कन्या, वसुंधरा और बत्तीस अन्य वैश्योंकी कन्यायें उत्सवके साथ विधिपूर्वक कुमारको व्याह दीं ॥३४६—३४७॥ इसके सिवाय उस श्रीमान् कुमारको पहिलेका स्थान और सब धन दिया तथा अपना आधा राज्य दिया सो ठीक ही है क्योंकि जिन्होंने पहिले पुण्य किया है उनके लिये संपदाएं स्वयं आ जाती हैं ॥३४८॥ इसप्रकार प्रसन्न हुए उस प्रीतिंकर कुमारने अपनी बढती हुई इच्छाओंके अनुसार बहुत दिनतक

पूर्वजन्मत्वाममर्द्दराज्य च भावते । पुरा विहितपुण्यानां स्वयमायाति संपद ॥ ३४८ ॥ प्रीत प्रीतिंकरस्तत्र कामभोगान् समीप्सितान् । स्वेच्छया वर्द्धमाने च्छविरायानुभूय स ॥ ३४९ ॥ मुनौ सागरसेनाख्ये संन्यस्यान्येद्युरायुषि । लोकांतरं तदागत्य चारणौ समुपस्थितौ ॥ ३५० ॥ ऋजुश्च विपुलाख्यश्च मंस्यते मुनिभूषणा । रम्ये मनोहरोद्याने गत्वा स्तुत्वा वणिग्वरः ३५१ धर्मं समन्वयुक्तेताविल्याहर्जुमतिस्त्वया । धर्मोहि द्विविधो ज्ञेय सद्गृहागृहभेदत ३५२ एकादशविधस्तत्र धर्मोगृहनिवेशिनां । श्रद्धानव्रतभेदादिशेषो दशविधः स्मृतः ॥ ३५३ ॥ क्षांत्यादिः कर्मविध्वंसी तच्छ्रुत्वा तदनतरं । स्वपूर्वभवसंबध पप्रच्छैवं च सोब्रवीत् ॥ ३५४ ॥ शृणु सागरसेनाख्यं मुनिमातपयोगिन । पुरेस्मिन्नेव भूपालप्रमुखा वंदितुं गताः ॥ ३५५ ॥ नानाविधार्चनद्रव्यैः संपूज्य पुरमागता । शङ्खतूर्यादिनिर्घातं श्रुत्वैकमिह जम्बुक ॥ ३५६ ॥ कश्चिल्लोकांतरं यातः पुरेस्मिन् जनो बहिः । क्षिप्त्वायातस्ततोभक्षयिष्यामीत्यागत मुनिः ॥३५७॥ भव्योय व्रतमादाय मुक्तिमाशु गमिष्यति । इति मत्वा तमासन्नमसावेवमभाषत ॥ ३५८ ॥ प्राग्जन्मकृतपापस्य फलेनाभूच्छृगालक । इदानीं च कुधी सा-

अच्छे लगनेवाले काम भोगोंका अनुभव किया ॥ ३४९ ॥ किसी एक दिन मुनिराज सागरसेनने आयुके अंतमें संन्यास धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया उसीदिन वहां दो चारण मुनि आ उपस्थित हुए ॥ ३५० ॥ मुनियोंके आभूषण ऐसे उन दोनों मुनियोंके ऋजुमति और विपुलमति नाम थे और वे दोनों ही सुंदर मनोहर नामके उद्यानमें आ विराजमान हुए, प्रीतिंकर शेठ भी उनके दर्शन करनेके लिये गया और स्तुतिकर उनसे धर्मका स्वरूप पूछा । इसके उत्तरमें ऋजुमति नामके मुनिराज कहने लगे कि हे भद्र ! गृहस्थ और अनगारके भेदसे धर्म दो प्रकारका है ॥ ३५१–३५२ ॥ उनमें गृहस्थोंका धर्म श्रद्धान व्रत आदिके भेदसे ग्यारह प्रकारका है और कर्मोंको नाश करनेवाला मुनियोंका धर्म उत्तम क्षमा आदिके भेदसे दश प्रकारका है । इसप्रकार धर्मका स्वरूप सुनकर प्रीतिंकरने अपने पहिले भव पूछे तब वे मुनिराज इसप्रकार कहने लगे ॥ ३५३–३५४ ॥ हे भव्य सुन किसी एक समय इसी नगरके बाहर सागरसेन मुनिराजने आतप योग धारण किया था इसीलिये उनकी बंदना करनेके लिये राजा आदि बहुतसे लोग आये थे ॥३५५॥ अनेक तरहकी पूजाकी सामग्रीसे उनकी पूजाकर शंख तुरई आदि बाजोंके साथ नगरमें आये थे उन बाजोंकी आवाज सुनकर एक गीदडने सोचा कि आज कोई नगरमें मर गया है उसे ही लोग नगरके बाहर रखकर आये हैं इसलिये उसके समीप जाकर उसे खाना चाहिये । यही सोच विचारकर वह मुनिराजके समीप पहुंचा । मुनिराजने उसे देखकर विचार किया कि यह भव्य है और व्रत लेकर शीघ्र ही मुक्त होगा यही समझकर वे उसके समीपमें ही इसप्रकार कहने लगे कि पहिले जन्मके किये हुए पाप कर्मके उदयसे तू गीदड हुआ है परंतु हे मूर्ख ! अब साधुओंका समागम मिलने-

भुसमायोगेऽपि मन्यसे ॥ ३५९ ॥ दुष्कर्म विरमैतस्माद् दुरंतदुरितावहात् । गृहाण व्रतमभ्यैहि परिणाम शुभावह ॥ ३६० ॥ इति तद्वचनादेष मुनिर्मन्म-
नसि स्थितं । ज्ञातवानिति सजातसंमद स श्रृगालक ॥ ३५६१ ॥ मुनिस्तदिंगिताभिज्ञः पुनरेव समब्रवीत् । त्वमन्यस्य न शक्नोषि व्रतस्यामिषलालस
॥ ३६२ ॥ गृहाणेदं व्रतं श्रेष्ठ रात्रिभोजनवर्जन । परलोकस्य पाथेयमिति धर्म्यं मुनेर्वच ॥ ३६३ ॥ श्रुत्वा भक्त्या परीत्यैन प्रणम्य कृतसम्मदः । गृ-
हीत्वा तद्व्रत मद्यमांसादीनि च सोत्यजत् ॥ ३६४ ॥ तदाप्रभृति शाल्यादिं विशुद्धाशनमाहरन् अति कृच्छ्र तप कुर्वन् कंचित्कालमजीगमत् ॥ ३६५ ॥ शु-
ष्काहारमथान्येद्युर्भुक्त्वा तृष्णादिबाधित । अर्कास्तमनवेलायां पयःपानाभिलाषया ॥३६६॥ कूप सोपानमार्गेण प्रविश्यात किमप्यसौ । तत्रालोकमनालोक्य
दिनेशोस्तमुपागत ॥ ३२७ ॥ इति निर्गत्य दृष्ट्वाभां पुनः पातुं प्रविष्टवान् । गोमायुरेव द्वि त्रिर्वा कुर्वंस्तत्र गमागमौ ॥ ३६८ ॥ दिनेशमस्तमानीय सोढ-
तृष्णापरीषहः । विशुद्धपरिणामेन मृतिमित्वा दृढव्रत ॥ ३६९ ॥ एव कुबेरदत्तस्य भूत्वा प्रीतिंकर सुतः । व्रतेन धनमित्रायामीदृशैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ३७० ॥

पर भी तू दुष्कर्म करना चाहता है अब तू अत्यंत घोर पाप करनेवाले इन दुष्कर्मोंका त्यागकर व्रतोंको स्वीकार कर और शुद्ध परिणामोंको धारणकर ॥ ३५६–३६० ॥ मुनिराजके ये वचन सुनकर वह गीदड मनमें सोचने लगा कि इन्होंने मेरे मनकी बात जानली यह समझकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ । मुनिराजने उसकी चेष्टासे उसका अभिप्राय जानलिया और वे फिर उससे इसप्रकार कहने लगे कि तू मांस भक्षणका लोलुपी है इसलिये तुझसे और व्रत तो बन नहीं सकेगा इसलिये रात्रि भोजन त्याग करनेका व्रत ले यह व्रत सबमें श्रेष्ठ है, और परलोकके लिये पाथेय (रास्तेमें काम आने योग्य खाने पीने आदिकी चीजें) हैं । इसप्रकार मुनिराजके कहे हुए धर्मके बचन सुनकर उस गीदडने बडी भक्तिसे उनकी प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया और बहुत ही आनंद मनाया । उसने रात्रि भक्षण त्यागका भी व्रत लिया और मद्य मांसादिकका भी त्याग किया ॥ ३६१–३६४ ॥ उससमयसे लेकर वह चावल आदि शुद्ध भोजन करने लगा इस-तरह कठिन तपश्चरण करते हुए उसके कितने ही दिन व्यतीत हुए ॥ ३६५ ॥ किसी एक दिन उसने सूखा भोजन किया और प्याससे दुखी होकर सूर्यके अस्त होनेके समय पानी पीनेकी इच्छासे सीढियोंके रास्तेसे किसी कूएमें उतरा वहांपर प्रकाश न देखकर सूर्यको डूबा हुआ समझकर बाहर निकला और बाहर सूर्यका प्रकाश देखकर पानी पीनेके लिये वह गीदड फिर कूएमें भीतर गया । इसप्रकार उसने दो तीनवार किया, इतनेमें सूर्य अस्त होगया उस गीदडने व्रतोंमें दृढ रहकर प्यासकी परीषह सहन करते हुए शुद्ध परिणामोंसे शरीर छोडा ॥ ३६५–३६९ ॥ वहांसे आकर कुबेरदत्तकी स्त्री धनमित्राके यह प्रीतिंकर नामका कुमार हुआ है और इसने ऐसा एश्वर्य प्राप्त किया है ॥३७०॥

इति तद्वचनाज्जातसंवेगस्तं यतीश्वरं । शसन् व्रतस्य माहात्म्यमभिवंद्यायया गृह ॥ ३७१ ॥ निर्व्रतः सतां दीर्घमश्नन् दुःखान्यनारत । अपारंखेदमायाति दुर्भिक्षे दुर्विधो यथा ॥ ३७२ ॥ व्रतात्प्रत्ययमायाति निर्व्रत शक्यते जनं । व्रती सफलवृक्षो वा निर्व्रतो बध्यवृक्षवत् ॥ २७३ ॥ अभीष्ट फलमाप्नोति व्रतवान् परजन्मति । न व्रतादपरो बधुर्नव्रतादपरो रिपु. ॥ ३७४ ॥ सर्वं वाग्व्रतिनो ग्राह्या निर्व्रतस्य न केनचित् । उग्रामिर्देवतामिथ व्रतवाश्वामिभूयते ॥ ३७५ ॥ जरंतोपि नमस्येव व्रतवत नवयौवन । वयोवृद्धो व्रत हीनस्तृणवद्गण्यते जनैं ॥ ३७६ ॥ प्रवृत्त्या चीयते पाप निवृत्त्या तस्य संक्षय । व्रतं निवृत्तिमित्याहुस्तद्गृह्णात्युत्तमो व्रते ॥ ३७७ ॥ व्रतेन जायते संपदाव्रत संपदेऽभवत् । तस्मात्संपदमाकांक्षन्निःकाक्षः सव्रतो भवेत् ॥ ३७८ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्वीज जतो. स्वल्पमपि व्रत । तत्र प्रीतिंकरो व च्यो व्यक्त दृष्टातकांक्षिणां ॥ ३७९ ॥ पूर्वोपात्तव्रतस्येष्टं फलमत्रानुभूयते । क्वचित्कदाचित्किंचित्कि

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ उसने मुनिराजको नमस्कार किया और फिर व्रतोंके माहात्म्यकी प्रशंसा करता हुआ वह अपने घर आया ॥३७१॥ देखो जिस प्रकार दुष्काल पडनेपर निर्धन अनेक प्रकारके दुःख पाता है उसी प्रकार व्रतरहित जीव भी इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ तथा सदा अनेक दुःखोंको भोगता हुआ अपार खेदको प्राप्त होता है ॥ ३७२ ॥ व्रत धारण करनेसे यह जीव सब लोगोंका विश्वासपात्र होता है और व्रत रहित होनेसे सदा लोगोंकी दृष्टि में सदा शंकित बना रहता है । व्रती फल सहित वृक्षके समान है और अव्रती फलरहित बांझ वृक्षके समान है ॥ ३७३ ॥ व्रती जीव परजन्ममें इच्छानुसार फल पाता है इस संसारमें व्रतके समान कोई बन्धु नहीं है और अव्रतके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ ३७४ ॥ व्रती पुरुषके वचन सब कोई ग्रहण करता है और अव्रतीके वचन कोई नहीं मानता बडे बडे देव लोग भी व्रती जीवका तिरस्कार नहीं कर सकते ॥ ३७५ ॥ व्रती पुरुष नवयोवन हो तो भी वृद्ध पुरुष भी आकर उसे नमस्कार करते हैं व्रतोंसे ही यह जीव वृद्ध गिना जाता है । व्रतोंसे रहित पुरुषको लोग तृणके समान भी नहीं गिनते हैं ॥ ३७६ ॥ इस संसारमें प्रवृत्तिसे पापोंका संचय होता है और निवृत्तिसे त्यागसे पापोंका क्षय होता है तथा निवृत्तिको ही व्रत कहते हैं इसलिये उत्तम पुरुष व्रतोंको ही ग्रहण करते हैं ॥ ३७७ ॥ व्रत धारण करनेसे सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है और अव्रतीपनासे कभी सम्पदा नहीं आती इसलिये जो सम्पदा चाहता है उसे आकांक्षा रहित व्रत धारण करना चाहिये ॥ ३८८ ॥ इस जीवके लिये थोडासा व्रत भी स्वर्ग और मोक्षका कारण है इसके लिये जो दृष्टान्त देखना चाहते है उन्हें प्रीतिंकरका स्पष्ट दृष्टान्त देख लेना चाहिये ॥ ३७९ ॥ जिन्होंने पहिले अच्छी तरह व्रतोंका पालन किया है वे इस लोकमें इच्छानुसार फलोंका अनुभव करते हैं सो ठीक है क्योंकि बिना

जायते कारणाद्विना ॥ ३८० ॥ कारणादिच्छता कार्यं कार्ययोः सुखदुःखयो. । धर्मपापे विपर्यस्ते तदा नान्यतरीक्षतां ॥ ३८१ ॥ धर्मपापे विमुच्यन्
ये द्वितयं कारण मदन । को विधीर्व्यसनी नोचेन्निघृणो नास्तिकोऽथ वा ॥ ३८२ ॥ धीमाञ्जीक्षते यस्य जन्मनोस्य हिताहिते । भाविनस्ते प्रपश्यंत: सूनं
धीमतस्था: कथ ॥ ३८३ ॥ इति मत्वा जिनप्रोक्त व्रतमादाय शुद्धधीः । स्वर्गापवर्गसौख्याय यतेतायिष्णुतोद्यमः ॥ ३८४ ॥ अथ प्रियंकराख्याय धामिः
षेक ससपद । वसुंधरानुजे प्रीतिंकरो दत्वा विरक्तधीः ॥ ३८५ ॥ एत्य राजगृहं सार्द्ध बहुभिर्भृत्यबांधवैः । भगवद्वर्धमानाद्य संयमं प्राप्तवानय ३८६
निश्चयव्यवहारात्मसारत्रिर्वाणसाधन । त्रिरूपमोक्षसन्मार्गभावन तद्बलोदयात् ॥ ३८७ ॥ निहत्य घातिकर्माणि प्राप्यानंतचतुष्टयं । अघातीनि च विध्वस्य
परमात्म्यं प्रयास्यति ॥ ३८८ ॥ इति श्रीमद्गुणाधीशनिर्देशान्मगधेश्वरः । मतिमानभिधायान्मन्यानः सफलार्थतां ॥ ३८९ ॥ अथान्यदा महाराज श्रे-

कारणके क्या कभी किसी जगह कुछ होता है ? अर्थात् सुखादिक सब किसी कारणसे ही प्राप्त होता है ॥ ३८० ॥ जो कारणसे कार्यकी उत्पत्ति मानते हैं उन्हें सुखका कारण धर्म और दुःखका कारण पाप मानना चाहिये जो इससे विपरीत मानते हैं उन्हें दूसरी जगह यह बात स्पष्ट देख लेनी चाहिये ॥ ३८१ ॥ जो धर्म और पापको छोडकर सुख दुःखका कारण और कुछ बतलाते हैं वे या तो मूर्ख हैं या व्यसनी हैं या घृणारहित हैं अथवा नास्तिक हैं ॥ ३८२ ॥ जो बुद्धिमान् इसी जन्मके हित अहितको देखता है उसे भी लोग उत्कृष्ट दृष्टिसे देखते हैं फिर भला जो लोग होनहार जन्मके हित तथा अहितको देखते हैं वे किस तरह सबसे उत्तम बुद्धिमान नहीं हो सकते ? अर्थात् अवश्य होते हैं ॥३८३॥ यही समझकर जिनकी शुद्ध बुद्धि है और जो उद्यमी हैं वे श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए व्रतोंको धारणकर स्वर्ग और मोक्षके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ ३८४ ॥ अथानन्तर विरक्त बुद्धिको धारण करनेवाले कुमार प्रीतिंकरने अपनी स्त्री वसुन्धराके पुत्र प्रियंकरको अभिषेक पूर्वक सब सम्पदाएं समर्पण कीं और स्वयं अनेक सेवक भाई बन्धुओंके साथ राजगृह नगरमें आकर भगवान् वीरनाथके समीप संयम धारण किया है ॥ ३८५–३८६ ॥ मोक्षका साधन निश्चय और व्यहाररूप जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्गकी भावना है वह इन्होंने चिंतवन की है इसलिये उसके बलसे अब ये मुनिराज घातियां कर्मोंको नष्टकर अनंत चतुष्टय प्राप्तकर और फिर अघातियां कर्मोंका नाश कर परमात्म पदको प्राप्त होंगे ॥ ३८७–३८८ इसप्रकार गणधर देवकी कही हुई धर्मकथाको सुनकर राजा श्रेणिकने उन्हें नमस्कार किया और अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वह अपने घर आया ॥ ३८९ ॥ अथानंतर किसी दूसरे दिन क्षायिकसम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले राजा श्रेणिकने हाथ जोडकर गणधरदेवको नमस्कार किया और उनसे बाकी बची हुई अवसर्पिणी

निकः क्षायिकीं दृश । दत्तभक्ता गणाधीश कुड्मली कृतहस्तक: ॥ ३९० ॥ शेषावसर्पिणीकालस्थितिं निरवशेषत । आगाम्युत्सर्पिणीकालस्थितिमप्यनुयुक्तवान् ॥ ३९१ ॥ गणी निजद्विजाभीषुप्रसरैः प्रीणयन् सभां । गिरा गंभीरया व्यक्तमुक्तवानिति स क्रमात् ॥ ३९२ ॥ चतुर्थकालपर्यंते स्थिते संवत्सरत्रये । साष्टमासे सपक्षे स्यातिसिद्ध सिद्धार्थनंदन: ॥ ३९३ ॥ दुष्षमाया स्थितिर्वर्ष सहस्राण्येकविंशति । शतवर्षायुषस्तस्मिन्नुत्कृष्टेन मता नरा ॥ ३९४ ॥ सप्तरत्निप्रमाणांगा रूक्षच्छाया विरूपका । त्रिकालाहारनिरता सुरतासक्तमानसा ॥ ३९५ ॥ परेपि दोषा प्रायेण तेषां स्युः कालदोषत । यतोस्या पापकर्माणो जनिष्यते सहस्रश ॥ ३९६ ॥ यथोक्तभूभुजामावाज्जाते वर्णादिसंकरे । दुःषमायां सहस्राब्दव्यतीतौ धर्महानित ॥ ३९७ ॥ पुरे पाटलिपुत्राख्ये शिशुपालमहीपतेः । पापी तनूज पृथिवीसुंदर्या दुर्जनादिमः ॥ ३९८ ॥ चतुर्मुखाह्वयः कल्किराजो वेजितभूतल । उत्पत्स्यते मघासंवत्सरयोगसमागमे

कालकी पूर्ण स्थिति तथा आगामी होनेवाली उत्सर्पिणी कालकी स्थिति पूछी ॥ ३८९—३९० ॥ इसके उत्तरमें अपने दांतोंकी किरणोंके फैलावसे सब सभाको प्रसन्न करते हुए गणधर देव गंभीर वाणीके द्वारा अनुक्रमसे तथा व्यक्तरीतिसे नीचे लिखे अनुसार कहने लगे ॥ ३९२ ॥ जब चतुर्थकालकी स्थितिमें तीन वर्ष साडे आठ महीने बाकी रहेंगे तब भगवान वीर नाथ मुक्त होंगे ॥ ३९३ ॥ पांचवें दुष्पमा कालकी स्थिति इकईस हजार वर्ष होगी । उसमें अधिकतर मनुष्योंकी आयु सौ वर्षकी होगी ॥ ३९४ ॥ इसी तरह उनके शरीरकी उंचाई सात अरत्नि होगी, उससमयके लोगोंकी कांति रूखी होगी उनका रूप अच्छा नहीं होगा वे तीनों समय भोजनमें लीन रहेंगे और उनके मन कामसेवनमें आसक्त रहेंगे ॥ ३९५ ॥ काल दोषके अनुसार उनमें प्राय: और भी दोष होंगे क्योंकि उस समय प्राय हजारों पापी लोग ही आकर उत्पन्न होंगे ॥ ४९६ शास्त्रोंमें कहे हुए लक्षणवाले राजाओंका अभाव होगा इसलिये राजा लोग वर्णसंकर होंगे । दुःषमाकालके एक हजार वर्ष व्यतीत होजानेपर धर्मकी हानि होनेसे पाटलीपुत्र नगरमें राजा शिशुपालकी रानी पृथिवी सुंदरीके चतुर्मुख नामका एक पापी पुत्र होगा जो कि सबसे अधिक दुष्ट होगा पृथ्वीको कंपायमान करेगा और कल्किराज नामसे प्रसिद्ध होगा । यह कल्की मघा नामके संवत्सरमें होगा ॥ ४९७—४९९ ॥ उस आक्रमण कालवालेकी आयु वहत्तरि वर्षकी होगी और चालीस वर्ष तक वह राज्य करेगा ॥ ४०० ॥ जो छ्यानवे पाखंड गिने जाते हैं उनकी आज्ञाको जो मानेगा उसे ही वह अपने यहां सेवक रक्खेगा इसप्रकार वह सब पृथ्वीका उपभोग करेगा ॥ ४०१ ॥ तदनंतर किसी एक दिन जिसका हृदय मिथ्यात्व कर्मके उदयसे भर रहा है ऐसा वह पापी अपने मंत्रियोंसे पूछेगा कि कहो पाखंडियोंमें अब भी क्या कोई हमारी आज्ञाके परान्मुख है । इसके उत्तरमें मंत्री कहेंगे कि हे देव निर्ग्रंथमुनि अब भी

॥ ३९९ ॥ समाना सप्ततिस्तस्य परमायुः प्रकीर्तितं । चलारिंशत्समाराज्यस्थितिश्चाक्रमकारिण ॥ ४०० ॥ पृण्वत्सुकपापर्ध्वंर्गस्याज्ञाविधायिन । निजमृत्यत्वमादाय महीं कृत्स्ना स भोक्ष्यति ॥ ४०१ ॥ अथ न्येद्यु स्वमिथ्यात्वपाकाविकृतचेतसा । पाषंडिषु किमस्माक सन्त्यनाज्ञापराङ्मुखा. ॥४०२॥ कथ्यतामिति पापेन प्रष्टव्यास्तेन मन्त्रिण । निर्ग्रंथाः सति देवेति ते वदिष्यति सोपि नान् ॥ ४०३ ॥ आचारः कीदृशस्तेषामिति पृच्छति भूपतिः । निज-पाणिपुटामत्रा धनहीना गतस्पृहा ॥ ४०४ ॥ अहिंसाव्रतरक्षार्थं त्यक्तचेला दिगंबराः । साधन तपसो मत्वा देहस्थित्यर्थमाहुतिं ॥ ४०५ ॥ एकद्व्युपोषि-तप्राते भिक्षाकालेंगदर्शनात् । निर्याचना स्वशास्त्रोक्ता गृहीतुमभिलाषिण ॥४०६॥ आत्मनो घातके त्रायके च ते समदर्शिनः । क्षुत्पिपासादिबाधाया सहा सत्यपि कारणे ॥ ४०७ ॥ परपापण्डिवन्नान्यैरदत्तमभिलाषुकाः । सर्पा वा विहितावसा ज्ञानध्यानपरायणा ॥ ४०८ ॥ अनुसंचारदेशेषु सवसंति मृगै सह । इति वक्ष्यति तद् स्वैर्विशिष्टास्तेऽस्य मन्त्रिण. ॥ ४०९ ॥ श्रुत्वा तत्सहितु नाह शक्नोम्यक्रमवर्तनं । तेषां पाणिपुटे प्राच्यः पिंड शुल्को विधीयता ॥४१०॥

आपकी आज्ञासे परान्मुख हैं । यह सुनकर वह राजा फिर मंत्रियोंसे पूछेगा कि उनका आचरण कैसा है ? इसके उत्तरमें मंत्री लोग कहेंगे कि वे अपने हाथमें ही भोजन करते हैं, धनहीन होते हैं, इच्छारहित होते हैं, अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिये सब वस्त्रोंका त्यागकर दिगम्बर रहते हैं, तपश्चरणका साधन मानकर केवल शरीरकी स्थितिकेलिये एक दो उपवासके बाद भिक्षाके समयपर केवल शरीर दिखलाकर विना याचनाके अपने शास्त्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार आहार लेनेकी इच्छा करते हैं, वे लोग अपना घात करनेवाले तथा रक्षा करनेवालोंको एक दृष्टिसे देखते हैं, भूख प्यास आदिकी बाधाओंको सहन करते हैं, कारण मिलनेपर भी दूसरे पाखण्डियोंके समान दूसरेके द्वारा विना दी हुई वस्तुकी कभी अभिलाषा नहीं करते, सर्पके समान उनके कहीं रहनेका स्थान नहीं, ज्ञान ध्यानमें सदा तल्लीन रहते हैं और जहां मनुष्योंका संचार तक नहीं ऐसे निर्जन स्थानोंमें केवल हिरणादि पशुओंके साथ रहते हैं इसप्रकार उसके विशेष मंत्री लोग उससे कहेंगे ॥४०८–४०९॥ मंत्रियोंकी यह बात सुनकर वह आज्ञा देगा कि मैं ऐसे अक्रमसे चलनेवालोंको सहन नहीं कर सकता इसलिये उनसे उनके हाथ पर रक्खा हुआ पहिला ग्रास करके रूपमें वसूल करो ॥४१०॥ इस प्रकार राजाकी आज्ञानुसार उस कामपर नियुक्त हुए पुरुष उनसे पहिला ग्रास मांगने लगेंगे इसलिये वे मुनिराज भी पहिला ग्रास खाये विना अर्थात् निराहार ही रहेंगे ॥ ४११ ॥ यह देखकर वे नियुक्त हुए पुरुष राजाको जाकर खबर देंगे कि मालूम नहीं क्या होगया है अभिमानी दिगम्बर लोग आपकी आज्ञा माननेको तैयार नहीं है ॥ ४१२ ॥ यह सुनकर उस पापीके नेत्र क्रोधसे लाल होजायंगे और क्रोधसे जिसका ओठ कंप रहा है ऐसा वह राजा उस ग्रासको लेनेके लिये स्वयं उद्यमी होगा. ॥ ४१३ ॥ उससमय शुद्ध सम्यग्दृष्टी

इति राज्ञोपदेशेन याचिष्यंते नियोगिनः । अग्रपिंडमभुंजानाः स्थास्यति मुनयोपि ते ॥ ४११ ॥ तद् दृष्ट्वा दर्पिणो नमा नाम्ना राज्ञ. प्रतीप्सव. । किं जातमिति ते गत्वा ज्ञापयिष्यति तन्नृपं ॥ ४१२ ॥ सोपि पापः स्वय क्रोधादरुर्णभूतवीक्षण । उग्रमी पिंडमाहर्तुं प्रस्फुरद्रसनच्छदः ॥ ४१३ ॥ सोढुं तदक्षमः कश्चिदसुरः शुद्धदृक् तदा । हनिष्यति तमन्याय शक्तः सन् सहते नहि ॥ ४१४ ॥ सोपि रत्नप्रभा गत्वा सागरोपमजीवितः । चिरं चतुर्मुखो दुःखं लोभादनुभविष्यति ॥ ४१५ ॥ धर्मनिर्मूलविध्वंसं सहते न प्रभावका । नास्ति सावद्यलेशेन विना धर्मप्रभावना ॥ ४१६ ॥ धर्मो माता पिता धर्मो धर्मस्त्राताभिवर्द्धकः । धर्ता भवभृता धर्मो निर्मले निश्चले पदे ॥ ४१७ ॥ धर्मध्वसे सता ध्वसस्तस्माद्धर्मद्रुहोधमान् । निवारयति ये सतो रक्षित तैः सता जगत् ॥४१८॥ निःनिःस्तरष्टधा प्रोक्तैस्तपोभिर्जनरंजकै । धर्मोपदेशनैरन्यवादिदर्पातिशातनं ॥ ४१९ ॥ नृपचेतोहरैः श्रव्यैः काव्यैः शब्दार्थसुंदरैः । सद्भिः शौर्येण वा कार्यं शासनस्य प्रकाशन ॥ ४२० ॥ चिंतामणिसमा केचित्प्रार्थितार्थप्रदायिन । दुर्लभा धीमता पूज्या धन्या धर्मप्रकाशका ॥ ४२१ ॥ रुचिः प्रवर्तते यस्य जै-

कोई असुर (व्यंतर) उस अन्यायको सह नहीं सकेगा इसलिये वह उस अन्यायी राजाको मार देगा । सो ठीक ही है क्योंकि समर्थ पुरुष अन्यायको कभी सहन नहीं करते हैं ॥ ४१४ ॥ वह चतुर्मुख मरकर पहिले नरकमें जायगा और एक सागरकी आयु पाकर लोभसे वहुत दिनतक दुःखोंका अनुभव करेगा ॥ ११५ ॥ प्रभावशाली पुरुष धर्मका निर्मूल नाश कभी नहीं सह सकते और थोडासा सावधानकर्म (पापरूपी क्रिया) किये विना धर्मकी प्रभावना हो नहीं सकती ॥ ४१६ ॥ इस संसारमें धर्म ही माता है, धर्म ही पिता है, धर्म ही रक्षक है धर्म ही बढानेवाला है, और धर्म ही जीवोंका निर्मल और निश्चल मोक्षपदमें धारण करानेवाला है ॥ ४१७ ॥ धर्मका नाश होनेसे सज्जनोंका नाश होता है इसलिये जो सज्जन पुरुष हैं वे नीच धर्मद्रोहियोंका निवारण करते ही हैं और ऐसे ही पुरुषोंसे सज्जन संसारकी (सज्जनोंके समूहकी) रक्षा होती है ॥ ४१८ ॥ शास्त्रोंमें जैनशासनकी प्रभावनाके आठ अंग वतलाये हैं तपश्चरण करना, लोगोंको प्रसन्न करना, धर्मोपदेश देना, अन्य वादियोंके अभिमानको चूर करना, राजाके मनको वश करना, शब्द तथा अर्थसे सुंदर ऐसे सुनने योग्य काव्य वनाना, और शूरवीरता दिखाना इन सव कारणोंसे सज्जन लोगोंको जैन शासनकी प्रभावना-करनी चाहिये ॥ ४१९–४२० ॥ चिंतामणिरत्नके समान मागनेवालोंकी इच्छानुसार धन देकर जो कोई धर्मकी प्रभावना करते हैं ऐसे धन्य और सज्जनोंके द्वारा पूज्य पुरुष इससंसारमें वहुत ही दुर्लभ हैं ॥ ४२१ ॥ सूत्रोंमें लिखा है कि जैनशासनकी प्रभावना करनेमें जिसके रुचि है मोक्ष उसके हाथमें ही रक्खी है ॥ ४२२ ॥ जो जैनशासनका प्रकाश करता है संसारमें वही वैयाकरण है वही नैयायिक है, वही सिद्धांती है और वही श्रेष्ठ तपस्वी है । यदि वह जैनशासनकी

नशासनभासने । हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते ॥ ४२२ ॥ स शाब्दः सहि तर्कज्ञः स सैद्धांत- स सत्तपाः । यः शासनसमुद्भासी न चोर्त्कि तैरनर्थकैः ॥ ४२३ ॥ भासते च जगयेन भासते जिनशासन । तस्य पादांबुजद्वंद्व ध्रियता मूर्ध्नि धार्मिकाः॥ ४२४ ॥ उदन्वानिव रत्नस्य मलयश्चंदनस्य वा । धर्मस्य प्रभव श्रीमान्पुमान् शासनभासन ॥ ४२५ ॥ कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान् । सदोद्धरति सोद्योगो यस्य लक्ष्मीधरोभवेत् ॥ ४२६ ॥ प्रमदप्रसवाकीर्णे मनोरंगे महानटः । नटताज्जैनसद्धर्मभासनाभिनयोपमः ॥ ४२७ ॥ तनूज कल्किराजस्य बुद्धिमानजितजय । पत्न्या वालनया सार्द्धं यातैन शरण सुरं ॥ ४२८ ॥ सम्यग्दर्शनरत्नं च महार्घ्यं स्वीकरिष्यति । जिनेंद्रधर्ममाहात्म्य दृष्ट्वा सुरविनिर्मितं ॥ ४२९ ॥ तदा प्रभृति दुर्दर्पस्त्याज्य पाखडिपापिभिः । किंचित्काल जिनेंद्रोक्तधर्मो वर्तिष्यतेतरा ॥ ४३० ॥ एव प्रतिसहस्राब्द तत्र विंशतिकल्किषु । गतेषु तेषु पापिष्ट पश्चिमो जलमंथन ॥ ४३१ ॥ राज्ञा स भविता नाम्ना तदा मुनिषु पश्चिम । चन्द्राचार्यस्य शिष्य स्यान्मुनिर्वीरागजाह्वय ॥ ४३२ ॥ सर्वश्रीरार्यिकावर्गे पश्चिम श्रावको-

प्रभावना नहीं करता तो फिर व्यर्थ ही व्याकरण न्याय सिद्धांत पढ़ने तथा तपश्चरण करनेसे क्या लाभ है ॥ ४२३ ॥ जो जिनशासनकी प्रभावना करता है उसीसे यह जगत सुशोभित होता है धर्मात्मा लोगोंको उसके दोनों चरणकमल अपने मस्तकपर रखना चाहिये ॥४२४॥ जिसप्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है, मलयागिरि पर्वत चंदनकी उत्पत्तिका कारण है उसीप्रकार जो श्रीमान् पुरुष जिनशासनकी प्रभावना करता है वह धर्मकी उत्पत्तिका कारण है ॥ ४२५ ॥ जो पुरुष राज्य कण्टकोंके समान धर्मके कण्टकोंको निकाल फेंकता है अथवा जो इसके उद्योगमें लगा रहता है वह अवश्य ही लक्ष्मीका स्वामी होता है ॥ ४२६ ॥ इसलिये श्रीजिनेन्द्रके कहे हुए सद्धर्मकी प्रभावनारूपी अभिनयको करनेवाला यह जीवरूपी महानट आनन्दरूपी फूलोंसे भरे हुए मनरूपी रंगभूमिमें सदा नृत्य करता रहो ॥ ४२७ ॥ अथान्तर उस कल्कीका अजितंजय नामका बुद्धिमान् पुत्र होगा वह अपनी वालना स्त्रीके साथ उस व्यन्तरदेवकी शरण लेगा ॥ ४२८ ॥ तथा बहुमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको स्वीकार करेगा उस देवके द्वारा किये हुए श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मके माहात्म्यको देखकर उसी समयसे बहुतसे पापी पाखण्डी अपना अभिमान छोड देंगे और फिर थोडे दिन तक श्रीजिनेन्द्रदेवका धर्म प्रचलित होगा ॥ ४२९–४३० ॥ इस प्रकार एक एक हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की होगा सब वीस कल्की हो चुकने पर सबसे पिछला कल्की पापी जलमन्थन होगा ॥ ४३१ ॥ वह सब राजाओंमें मुख्य होगा उस समय चन्द्राचार्यके शिष्य वीरंगज नामके मुनि सबसे पिछिले मुनि होंगे, सर्वश्री सबसे पिछिली अर्जिका होगी अग्निल नामका सबसे उत्तम पिछिला श्रावक होगा और अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाली फल्गुसेना नामकी सबसे पिछिली श्राविका होगी ॥४३२–४३३॥

समः । अग्निलः फाल्गुसेनाख्या श्राविकापि च सद्व्रता ॥४३३॥ एते सर्वेपि साकेतवास्तव्या दुःषमात्यजाः । सत्सु पंचमकालस्य त्रिषु वर्षेष्वथाष्टसु ४३४ मासेष्वहःसु मासार्द्धमितेषु च सुभावना. । कार्तिकस्यादिपक्षांते पूर्वाह्ने स्वातिसंगमे ॥ ४३५ ॥ वीरांगजोग्निल· सर्वश्रीस्त्यक्त्वा श्राविकापि सा । देहमायुश्च सद्धर्माद्गमिष्यत्यादिम दिव ॥ ४३६ ॥ मध्यान्हे भूभुजो ध्वस· साय हे पाकभोजनं । षट्कर्मकुलदेशार्थहेतुधर्मोश्च मूलत ॥ ४३७ ॥ सार्द्ध स्वहेतुसंप्राप्तौ प्राप्स्यंति विलय ध्रुव । ततोतिदुष्षमादौ स्युर्विंशत्यब्दपरायुषः ॥ ४३८ ॥ नरोर्द्धाभ्यधिकारत्निश्रयमानशरीरकाः । सतताहारिण. पापा गतिद्वयसमागताः ४३९ ॥ पुनस्तदेव यास्यति तिर्यग्नरकनामक । कर्पासवसनाभावाद् गतेग्वन्देषु वेषुषित ॥ ४३९ ॥ पर्णादिवसनाः कालस्याते नग्ना यथेप्सित । चरिष्यति फल वीनि दीना· शाखामृगोपमा ॥ ४४० ॥ एकविंशतिरष्टाना सहस्राण्यष्टवृष्टय । जलदा कालदोषेण कालोहि दुरतिक्रम ॥ ४४१ ॥ क्रमाद्धि वलकायायुरादिह्रासो भविष्यति । प्रांते षोडशवर्षे युर्जीविनो हस्तमात्रका ॥ ४४२ ॥ अस्थिराद्यशुभान्येव प्रफलिष्यति नामसु । कृष्णरूक्षतनुच्छाया दु-

ये सब अयोध्या नगरके रहनेवाले होंगे। पांचवें दुष्पमकालके अन्तिम धर्मात्मा होंगे। जब दुष्पमकालमें तीन वर्ष साढे आठ महीना बाकी रह जांयगे तब कार्त्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन सवेरेके समय स्वाति नक्षत्रमें अच्छी भावनाओंको धारण करनेवाले, वीरांगज अग्निल सर्वश्री और फल्गुसेना श्राविका आयु और शरीर छोडकर सद्धर्मके प्रभावसे पहिले स्वर्गमें जा उत्पन्न होंगे ॥ ४३५–४३५ ॥ दोपहरके समय राजाका नाश होगा और शामको अग्निका नाश होगा तथा षट्कर्म कुल देश और अर्थका कारण ऐसे धर्मका मूलसे नाश हो जायगा। ये सब अपने अपने कारण सहित अवश्य ही नष्ट हो जांयगे तदन्तर अति दुःषमाकालके प्रारम्भमें वीस वर्षकी आयु होगी मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई साढे तीन अरत्निकी होगी वे सदा भोजन करते रहेंगे पापी होंगे नरक तिर्यंच दोनों ही गतियोंसे आकर उत्पन्न होंगे और फिर मरकर इन्हीं दोनों गतियोंमें जांयगे। कपास और वस्त्रोंके अभावसे कुछ दिन तक तो वृक्षोंके छाल पत्ते आदि पहिनेंगे और फिर अन्तमें इच्छानुसार नग्न रहेंगे तथा वन्दरोंके समान फलादिकोंका भोजन करेंगे ॥४३६–४३७॥ कालदोषके कारण उस कालके इक्कईस हजार वर्षतक वादलोंसे बहुत थोडा पानी वरसेगा सो ठीकही है क्योंकि कालका उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४४२ ॥ तदन्तर अनुक्रमसे बुद्धि बल काय आयुकी कमी होती जायगी। अन्तमें सोलह वर्षकी आयु रह जायगी, एक हाथका शरीर होगा, तथा नाम कर्मोंमें जो अस्थिर आदि अशुभ नाम कर्म हैं उन्हींका उदय होगा। उनका शरीर काला शरीरकी कांति रूखी, वे देखनेमें बुरे कर्कश स्वरवाले और दुष्ट होंगे ॥ ४४३–४४४ ॥ वे देखनेमें बुरे होंगे उनका आकार विकट होगा वे दुर्बल होंगे उनके दांत अलग अलग होंगे छाती गाल और आंखकी जगह नीचेकी ओर

भंगा दुःस्वरा खलाः ॥ ४४४ ॥ दुरीक्ष्या विकटाकारा दुर्बला विरलद्विजाः । निमग्नवक्षोगंडाक्षिप्रदेशाश्चिपुटनासिका ॥ ४४५ ॥ त्यक्तसर्वसदाचारा क्षुत्पिपासादिबाधिता । सरोगा दुःप्रतीकारा दु खस्वादैकवेदिनः ॥ ४४६ ॥ एवं गच्छति कालेस्मिन्नेतस्य परमावधौ । निःशेष शोषमेतासु शरीरमिव संक्षयं ॥४४७॥ अतिरूक्षा धरा तत्र भाविनी स्फुटिता स्फुट । विनाशचिंतयेनाग्रिपाश्च प्रम्लानयष्टय ॥ ४४८ ॥ प्रलयः प्राणिनामेव प्रायेणोपजनिष्यते । सुरासिंधोश्च सिंधेश्च खेचराद्रेश्च वेदिकाः ॥४४९॥ श्रिता नदीसमुद्भूतमीनमण्डूककच्छपान् । कृत्वा कर्कटकदींश्च निजाहारान् मनुष्यकाः ॥४५०॥ विष्ट्रा क्षुद्रबिलादीनि द्वासप्तति कुलोद्भवा । हीना दीना दुराचारास्तदा स्थास्यति केचन ॥ ४५१ ॥ सरस विरस तीक्ष्ण रूक्षमुष्ण विषं विष । क्षारमेघा क्षरिष्यति सप्तसप्त दिनान्यल ॥ ४५२ ॥ ततो धरण्या वैषम्यविगमे सति सर्वत । भवेच्चित्रा समाभूमिः समाप्तात्रावसर्पिणी ॥ ४५३ ॥ इतोतिदुःषमोत्सर्पिण्याः पूर्वोक्तप्रमाणभाक् । वर्तिष्यति प्रजावृद्धयै ततः क्षीरपयोधरा ॥ ४५४ ॥ तावद्दिननिवेन निर्विराममहर्दिवं । पयः पयांसि दास्यति धात्री त्यक्ष्यति रूक्षता॥४५५॥

बैठी हुई होगी तथा नाक चिपटी होगी ॥ ४४५ ॥ वे सब तरहके सदाचारोंसे रहित होंगे भूख प्यास आदि बाधाओंसे पीडित होंगे रोगी होंगे ऐसे रोगी होंगे जिनका कुछ भी इलाज न हो सकेगा और महा दुःखोंकाही अनुभव करते रहेंगे ॥४४६॥ इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर सबसे अन्त समयमें पानी सब सूख जायगा और शरीरके समान नष्ट हो जायगा ॥४७॥ उस समय पृथिवी सब अत्यन्त सूखी हो जायगी और अपने नाश होनेकी चिन्तासे ही क्या मानों वृक्ष सब मलिन होकर सूखकर लकडीके समान हो जांयगे ॥ ४४८ ॥ इस प्रकार प्रायः सब प्राणियोंका प्रलय होगा गंगा सिंधु और विजयार्द्ध पर्वतकी वेदिकापर थोडेसे जीव विश्राम लेंगे वे मनुष्य नदियोंमें पैदा हुए मछली, मेढक, कछुआ, केकडा आदिको खा जांयगे उनमेंसे बहत्तरि कुलोंमें उत्पन्न हुए हीन दीन और दुराचारी जीव छोटे छोटे बिलोंमें घुस जांयगे ॥४४९–४५०॥ तदन्तर सात दिन तक अग्निकी वर्षा सात दिन तक शीत जलकी वर्षा होगी, सात दिन तक खारा पानी बरसेगा, सात दिन तक विषकी वर्षा होगी, सात दिन तक दुस्सह अग्नि वर्षा होगी, सात दिन तक धूलि बरसेगी और फिर सात दिन धूमकी वर्षा होगी इस प्रकार उनंचास दिन तक वर्षा होगी (?) ॥४५२॥ इसके बाद पृथिवीका विषमपना सब नष्ट हो जायगा और चित्रा पृथ्वी निकल आवेगी तथा यहां ही पर अवसर्पिणीकाल समाप्त हो जायगा ॥ ५३ ॥ इससे आगे उत्सर्पिणीकालका अति दुःषमाकाल चलेगा वह भी इक्कीस हजार वर्षका होगा और इसमें प्रजाकी फिर वृद्धि होगी। पहिले ही क्षीर जातिके मेघ सात सात दिन तक रात दिन विना विश्राम लिये जल और दूधकी वर्षा करेंगे जिससे पृथ्वीका रूखापन नष्ट होजायगा और उसीसे यह पृथिवी अनुक्रमसे वर्णादि गुणोंको प्राप्त होगी इसके बाद अमृत जातिके मेघ सात

तन्निधनवर्णाद्विगुणं चाबास्य निष्कमात् । तथैवामृतमेघाश्च तावद्दिवसगोचराः ॥ ४५६ ॥ वृष्टिमापातयिष्यति निष्पत्स्यंतेत्र पूर्ववत् । औषध्यस्तरवोगुल्मतृ-णादीन्यप्यनारत ॥ ४५७ ॥ ततो रसाधिकांभोदवर्षणात्सद्रसोद्भव: । यस्मात्तदा बिलादिभ्यो निर्गत्य मनुजास्तदा ॥ ४५८ ॥ तेषां रसोपयोगेन जीविष्यत्या-ससमदा. । वृद्धिर्गलति कालेस्मिन् क्रमात्प्राग् ह्रासमात्मनां ॥४५९॥ तन्वादीनां पुनर्दु:षमासमायाः प्रवेशने । आयुर्विंशतिवर्षाणि नराणां परमं मतं ॥४६०॥ सार्द्धारत्नित्रयोत्सेधदेहानां वृद्धिमीयुषां । प्राक्प्रणीतप्रमाणेस्मिन् काले विमलबुद्धय ॥ ४६१ ॥ षोडशाविर्भविष्यति क्रमेण कुलधारिण । प्रथमस्य मनाग्-ना तनुश्चतुररत्निषु ॥ ४६२ ॥ अंत्यस्यापि तनुः सप्तारत्निमि मम्मिता भवेत् । आदिम कनकस्तेषु द्वितीयः कनकप्रभः ॥ ४६३ ॥ तत कनकराजाख्य-श्चतुर्थं कनकध्वज । कनकपुंगवात्तोस्मान्नलिनो नलिनप्रभः ॥ ४६४ ॥ ततो नलिनराजाख्यो नवमो नलिनध्वज । पुंगवांतश्च नलिन पद्म पद्मप्रभाह्वयः ॥ ४६५ ॥ पद्मराजस्तत पद्मध्वजः पद्मादिपुंगवः । महापद्मश्च विज्ञेयाः प्रजा पौरुषेयशालिन ॥४६६॥ एतेषां क्रमशः काले शुभभावेम वर्द्धन । महीसलि-

दिन तक अमृतकी वर्षा करेंगे जिससे औषधिया वृक्ष पौधे और घास आदि पहिलेके समान निरन्तर होंगे ॥४५४–४५६॥ तदनंतर रसाधिक जातिके बादल रसकी वर्षा करेंगे जिससे सब चीजोंमें रस उत्पन्न होगा। उत्सर्पिणी कालमें सबसे पहिले जो मनुष्य बिलोंमें घुस गये थे वे निकलेंगे और उस रसके संयोगसे प्रसन्न होकर जीवित रहेंगे। ज्यों ज्यों काल व्यतीत होता जायगा त्यों त्यों शरीरकी उंचाई आयु आदि जिन जिन चीजोंकी पहिले कमी होती जाती थी उन सबकी वृद्धि होती जायगी। इसीतरह अनुक्रमसे दुःषमा काल आवेगा उसमें मनुष्योंकी आयु वीस वर्षकी होगी और शरीरकी उंचाई साडे तीन अरत्नि होगी। फिर वृद्धि होते होते पहिले कहे हुए इक्कईस हजार वर्ष निकल जानेपर अनुक्रमसे निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले सोलह कुलकर होंगे उनमेंसे पहिले कुलकरके शरीरकी उंचाई कुछ कम चार अरत्नि होगी ॥ ४५७–४६१ ॥ अंतिम कुलकरका शरीर सात अरत्नि ऊंचा होगा। कुलकरोंमें सबसे पहिला कनक नामका कुलकर होगा, दूसरा कनकप्रभ, तीसरा कनकराज, चौथा कनकध्वज, पांचवां कनकपुंगव, छट्ठा नलिन, सातवां नलिन-प्रभ, आठवां नलिनराज, नौवां नलिनध्वज, दशवां नलिनपुंगव, ग्यारहवां पद्म, बारहवां पद्मप्रभ, तेरहवां पद्मराज, चौदहवां पद्मध्वज, पंद्रहवां पद्मपुंगव और सोलहवा महापद्म नामका कुलकर होगा वे सब वडे पराक्रमी और पुरुषार्थी होंगे उनके समयमें पानी धान्य आदिकी सदा अच्छी तरह वृद्धि होती रहेगी ॥ ४६५–४६७ ॥ मनुष्य अनाचारका त्याग करेंगे परिमित समयपर योग्य अन्नका भोजन करेंगे, मैत्री, लज्जा, सत्य, दया, इंद्रियदमन, संतोष, विनय, क्षमा, रागद्वेषका त्याग आदि सज्जनोंके चारित्र प्रगट होंगे और लोग अग्निमें पकाकर भोजन करेंगे ॥ ४६८–४६९ ॥ इसप्रकार दूसरा

लकालानां धान्यादीनां च संततं ॥ ४६७ ॥ मनुष्याणामनाचारत्यागो योग्यान्नभोजन । काले परीमिते मैत्री लज्जासत्य दया दम ॥ ४६८ ॥ सन्तुष्टिर्विनय-क्षांतीरागद्वेषाद्यतीमता । इत्यादिसाधुवृत्त च वह्निपाकेन भोजन ॥ ४६९ ॥ द्वितीयकाले वर्तेत तृतीयस्य प्रवेशने । सप्तारत्निप्रमाणांगाः सव्येकाव्दायुषो नराः ॥ ४७० ॥ ततस्तीर्थकरोत्पत्तिस्तेषा नामाभिधीयते । आदिम श्रेणिकस्तस्मात्सुपार्श्वोदकसज्ञक ॥ ४७१ ॥ प्रोष्ठिलाख्य कटपूश्च क्षत्रिय श्रेष्ठिस-ज्ञक । सप्तम शखनामा च नदनोऽथ सुनदवाक् ॥ ४७२ ॥ शशाक सेवक प्रेमकश्चातोरणसज्ञकः । रैवतो वासुदेवाख्यो वलदेवस्ततः परः ॥ ४७३ ॥ भगलिर्वागलिर्द्वैपायनः कनकसज्ञकः । पादांतो नारदश्चारुपादः सत्यकिपुत्रकः ॥ ४७४ ॥ त्रयोविंशतिरित्येते सप्तारत्निप्रमादिकाः । तत्रैवान्येपि तीर्थेशाश्च तुर्विंशतिसम्मिता ॥ ४७५ ॥ तत्राद्यः षोडशप्रातशताब्दायु प्रमाणकः । सप्तारत्नितनूत्सेधश्चरमस्तीर्थनायकः ॥ ४७६ ॥ पूर्वकोटीमितायुष्कश्चापपंचशतो-

काल व्यतीत हो जानेपर तीसरा काल लगेगा उससमय लोगोंका शरीर सात अरत्नि ऊंचा होगा और आयु एकसौ वीस वर्षकी होगी ॥ ४७० ॥ इस समय जो जीव तीर्थंकर होंगे उनके नाम इस प्रकार पहिला श्रेणिक, दूसरा सुपार्श्वोदक मोष्ठिल, कटपू, क्षत्रिय, श्रेष्ठी, शंख, नंदन, सुनन्द, शशांक, सेवक, प्रेमक, अतोरण, रैवत, वासुदेव, भगलि, वागलि, द्वैपायन, कनकपाद, नारद चारुपाद, सत्यकिपुत्र ये तेईस जीव आगे तीर्थंकर होंगे (ये इसी क्षेत्रके जीव हैं एक अन्यत्रसे आकर तीर्थंकर होगा) सात अरत्नि आदि इनके शरीरकी ऊंचाई होगी । आगे जो चौवीस तीर्थंकर होंगे, उनमेंसे पहिले तीर्थंकर सोलहवें कुलकर होंगे सौवर्षकी उनकी आयु होगी और शरीर सात अरत्नि ऊंचा होगा । अंतिम तीर्थंकरकी एक करोड पूर्वकी होगी और शरीर पांचसौ धनुष ऊंचा होगा । उनके नाम इस प्रकार होंगे । पहिले महापद्म, दूसरे सुरदेव तीसरे सुपार्श्व, चौथे स्वयंप्रभ पांचवें सर्वात्मभूत, छट्ठे देवपुत्र, सातवें कुलपुत्र, आठवें उदंक, नौवें मोष्ठिल, दशवें जयकीर्ति ग्यारहवें मुनिसुव्रत, वारहवें अरनाथ, तेरहवें अपाप (निष्पाप) चौदहवें निष्कषाय, पंद्रहवें विपुल, सोलहवें निर्मल, सत्रहवें चित्रगुप्त, अठारहवें समाधिगुप्त, उन्नीसवें स्वयम्भू, वीसवें अनिवर्ती, इकईसवें विमल, तेईसवें देवपाल, और चौवीसवें अनन्तवीर्य, चौवीस तीर्थंकर होगे सब इंद्र इनके चरणकमलोंकी वंदना करेंगे । उसकालमें उत्कृष्ट लक्ष्मीको धारणकरने वाले वारह चक्रवर्ती होंगे ॥ ४७१-४८० ॥ उनके नाम इसप्रकार होंगे पहला भरत, दूसरा दीर्घदत्त, तीसरा मुक्तदत, चौथा गूढदंत, पांचवां श्रीषेण, छठा श्रीभूत, सातवां श्रीकांत, आठवां पद्म, नौवां महापद्म, दशवां विचि-त्रवाहन, ग्यारहवां विमलवाहन और वारहवां सबसे पिछला सब संपदाओंको धारण करनेवाला अरिष्टसेन ॥ ४८२-४८४ ॥ इस कालमें वलभद्र भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला चंद्र, दूसरा महाचंद्र तीसरा

च्छ्रुतिः। तेषामाद्यो महापद्म सुरदेव- सुपार्श्ववाक् ॥ ४७७ ॥ स्वयंप्रभश्च सर्वात्मभूताख्यो देवपुत्रवाक् । कुलपुत्रश्चयोदक प्रोष्ठिलो जयकीर्तिवाक् ४७८ मुनिसुव्रतनामारसञ्ज्ञोपायामिधानक । निष्कषायः सविपुलविमलगुप्तसमाह्वयः । (निष्कषाय- सविपुलो निर्मलश्चित्रगुप्तक) ॥४७९॥ समाधिगुप्तसञ्ज्ञश्च स्वयंवरसमाह्वयकः। अनिवर्ती च विजयो विमलो देवपालवाक् ॥ ४८० ॥ अनंतवीर्यो विश्वेंद्रवदितांघ्रिसरोरुह । कालेऽस्मिन्नेव चक्रेशा भाविनो द्वादशोच्छ्रय ॥ ४८१ ॥ भरतो दीर्घदंतश्च मुक्तदंतस्तृतीयक. । गूढदंतश्चतुर्थस्तु श्रीषेणः पंचमो मतः ॥ ४८२ ॥ षष्ठ श्रीभूतिशब्दस्य श्रीक तः सप्तम स्मृत । पद्मोष्टमो महापद्मो विचित्रादिश्च वाहनः ॥ ४८३ ॥ दशमोस्मात्पर ख्यातश्चक्री विमलवाहन । अरिष्टसेन सर्वात्यसंपन्न , सर्वसंपद ॥ ४८४ ॥ सीरिणोपि नवैवात्र तत्राद्यश्चंद्रनामकः । महाचंद्रो द्वितीयो भूततश्चक्रधरोभवेत् ॥४८५॥ हरिश्चंद्राभिधः सिंहचंद्रश्चंद्रो वरादिक. । पूर्णचंद्रः सुचंद्रश्च श्रीचंद्र केशवार्चित ॥ ४८६ ॥ केशवाश्च नवैवात्र तेष्वाद्यो नंदिनामकः । नंदिमित्रो द्वितीय' स्यान्नंदिषेणस्ततः पर: ॥ ४८७ ॥ नंदिभूतिश्चतुर्थस्तु प्रतीतः पंचमो

चक्रधर, चौथा हरिचंद्र, पांचवां सिंहचंद्र, छट्टा वरचंद्र, सातवां पूर्णचंद्र, आठवां सुचंद्र और नौवां नारायणके द्वारा पूज्य श्रीचंद्र ॥ ३८५-३८६ ॥ इसीप्रकार नारायण भी नौ होंगे और उनके नाम इसप्रकार होंगे पहिला नंदि, दूसरा नंदिमित्र तीसरा नंदिषेण, चौथा नंदिभूति, पांचवां सुप्रसिद्धवल, छट्ठा महाबल, सातवां अतिवल, आठवां त्रिपृष्ट और नौवां विभू इन नारायणोंके शत्रु प्रति नारायण भी नौ ही होगे ॥ ४८७-४८९ ॥ इस दुष्पमसुपम कालके वाद सुपमदुःपम काल आवेगा उसके प्रारंभमें मनुष्यकी ऊंचाई पांचसौ धनुप होगी और कुछ अधिक एक करोड पूर्वकी आयु होगी। उसके थोडे ही वर्ष वाद वहां जघन्य भोग भूमिकी पूर्ण स्थिति हो जायगी ॥ ४९०-४९२ ॥ इसी तरह पांचवें सुपमकालमें मध्यम भोगभूमिकी स्थिति रहेगी और छट्टे सुपमसुषम कालमें उत्तम भोग भूमिकी स्थिति रहेगी ॥ ४९२ ॥ भरतक्षेत्रके सिवाय और जो वाकी की नौ कर्म भूमियां हैं उनकी प्रवृत्ति भी इसीप्रकार होती है इसप्रकार भूतकालकी अवसर्पिणी और होनहार उत्सर्पिणी ये दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं ॥ ४९३ ॥ जो इस कल्पकालकी विधि है वही सब कल्प कालोंमें समझ लेनी चाहिये। ढाई द्वीपमें जितने विदेह क्षेत्र हैं उन सबमें मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई पांच सौ धनुष होती है और आयु एक करोड पूर्वकी होती है। वहांपर तीर्थंकर चक्रवर्ती वलभद्र नारायण आदि सबकी अलग २ संख्या अधिकसे अधिक एकसौ साठ होती है तथा कमसे कम संख्या भी वीस रहती है ॥ ४९४-४९५ ॥ इसतरह सब एकसौ सत्तर कर्मभूमियां हैं उनमें एकसौ सत्तर ही चक्रवर्ती राजा हो सकते हैं उनमें चारो गतियोंसे जीव आकर उत्पन्न होते हैं और अपने आचरणके वशीभूत होकर मोक्ष सहित पांचों गतियोंमें जाते हैं। भोगभूमियोंमें सब जीव कर्मभूमिमेंसे

वल । पष्ठो महावलस्तेषु सप्तमोतिवलाह्वयः ॥ ४८७ ॥ अष्टमोभूत्त्रिपृष्ठाख्यो द्विपृष्ठो नवमो विभु । तद्वैरिणोपि तावत एव विज्ञेयसङ्ख्यकाः ॥ ४८९ ॥ ततस्तत्कालपर्यंते भवेत्सुपमदु पमा । आदौ तस्या मनुष्याणा पचचापशतोच्छ्रितिः ॥ ४९० ॥ साधिका पूर्वकोट्यायु.स्थितिर्यातेषु केपुचित् । वर्षेषु निर्विशेषोत्र जघन्यार्यजनस्थिति. ॥ ४९१ ॥ ततः पचमकालेपि मध्यभोगभुवः स्थिति । षष्ठकालेपि विज्ञेया वरीयोभोगभूस्थिति ॥ ४९२ ॥ एव शेपनवस्थानकर्मभूमिषु वर्तन । एव कल्पस्थिति प्रोक्ता भूतेष्वपि च भाविषु ॥ ४९३ ॥ एप एव विधिर्ज्ञेय कल्पेषु जिनभाषित. । विदेहेषु च सर्वेषु पचचापशतोच्छ्रिति ॥ ४९४ ॥ मनुष्याणा परं चायुः पूर्वकोटिमित मत । तत्र तीर्थकराश्चक्रवर्तिनो रामकेशवा ॥ ४९५ ॥ पृथक्पृथग्बहुत्वेन शत पञ्चाधिक स्मृताः । अल्पत्वेनापि विंशतिर्भवति च पृथक् पृथक् ॥ ४९६ ॥ उत्कृष्टेन शत सप्ततिश्च स्यु सर्वभूमिजा । उत्पद्यते नरास्तत्र चतुर्गतिसमागता ॥४९७॥ गतीर्गच्छति पचापि निजाचारवशीकृताः । भोगभूमिषु सर्वासु कर्मभूमिसमुद्भवा ॥ ४९८ ॥ मनुष्या संज्ञिन तिर्यंचश्च यांत्युपपादन । आदिकल्पद्वये

ही आकर उत्पन्न होते है और मनुष्य तथा संज्ञी तिर्यंच ही उत्पन्न होते हैं। भोग भूमिमें उत्पन्न हुए जीव मरकर पहिले और दूसरे स्वर्गमें अथवा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्कोंमें उत्पन्न होते हैं यह नियम है कि वे सब मरकर देव ही होते हैं। मनुष्योंमें भोगभूमिके मनुष्य उत्तम ही होते हैं कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए अपने अपने आचरणोंकी विशेषतासे तीन प्रकारके कहे जाते हैं एक शलाका पुरुष दूसरे साधारण और तीसरे विद्याधर ॥ ४९७–५०१ ॥ उत्सर्पिणी अपसर्पिणीका चौथा पांचवा छट्ठा ये छह काल कनिष्टकाल (जघन्य) गिने जाते हैं। एक पैरवाले, भाषारहित, शंकु सरीखे कानवाले, फैले हुए कानवाले, लम्बे कानवाले, खरगोसकेसे कानवाले, अश्वमुख, सिंहमुख, देखनेके अयोग्य, महिषमुख, कोलमुख, व्याघ्रमुख, उलूकमुख, वानरमुख, मत्स्यमुख, कालमुख, गोमुख, मेपमुप, मेघमुख, विद्युन्मुख, आदर्शमुख, हस्तिमुख, पूंछवाले, सींगवाले, ये नीच कुभोगभूमिके मनुष्य होते हैं और अन्तरद्वीपोंमें रहते हैं। सब म्लेच्छखण्डोंकी स्थिति और विजयार्द्ध पर्वतकी स्थिति तीर्थकरोंके समयके समान रहती है और वृद्धि ह्रास सदा कर्मभूमिमें ही होता है। इस प्रकार श्रेणिकके प्रश्नके अनुसार इन्द्रभूतिगणधरने वचनरूपी किरणोंसे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट करते हुए यह सब हाल कहा। वे कहने लगे कि इसके बाद भगवान् महावीर भी बहुतसे देशोंमें विहार करेंगे ॥ ५०२–५०८ ॥ विहार करते करते अन्तमें वे पावापुर नगरमें पहुंचेंगे वहांके मनोहर नामके वनके भीतर अनेक सरोवरोंके मध्यमें महामणियोंकी शिलापर विराजमान होंगे। विहार छोडकर (योगनिरोधकर) निर्जराको बढाते हुए वे दो दिन तक वहा विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम समयमें स्वाति नक्षत्रमें तीसरे शुक्लध्यानमें तत्पर होंगे।

भावनादिदेवेषु च त्रिषु ॥४९९॥ जीवितांते नियोगेन सर्वे ते देवभाविन । मनुष्येषूत्तमा भोगभूमिजाः कर्मभूभुव ॥५००॥ निजवृत्तिविशेषेण त्रिविधास्ते प्रकीर्तिताः । शलाकापुरुषाः कामा खगाश्चान्ये सुरार्चिताः ॥५०१॥ वतो दिव्यमनुष्यास्तु षष्ठकाला' कनिष्ठका (2) एकोरुकास्तथा भाषाविहीनाः शंकुकर्णका'॥ ५०२ कर्णप्रावरणा लंवशशकादवादिकर्णकाः । अश्वसिंहमुखास्त्वान्ये तु प्रेक्ष्या महिषानना ॥१०३॥ कोलव्याघ्रमुखाश्चैवमुलूकमुखनामका ,। शाखामृगमुखा मत्स्यमुखाः कालमुखास्तथा ॥५०४॥ गोमेषमेघवक्त्राश्च विद्युदादर्शवक्त्रकाः। हरितवक्त्रा कुमानुष्यजा लांगूलिविषाणिनः।५०५ऐते च नीचका यस्मादतर-द्वीपवासिन । म्लेच्छखंडेषु सर्वेषु विजयार्द्धेषु च स्थितिः ॥५०६॥ तीर्थकृत्कालसवद्वृद्धिह्रासवत्कर्मभूमिषु । इद च श्रेणिकप्रश्नादिद्रभूतिर्गणाधिप' ॥५०७॥ इत्याह वचनामीषुनिरस्ताततमस्ततिः । इत्यत्रतीर्थेनाथोपि विहृत्य विषयान् बहून् ॥ ५०८ ॥ क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनांतरे । बहूना सरसा मध्ये महामणिशिलातले ॥ ५०९ ॥ स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जर । कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥ ५१० ॥ स्वातियोगे तृतीयेद्धशुक्लध्या-नपरायण । कृतत्रियोगसरोधसमुच्छिन्नक्रिय श्रित ॥ ५११ ॥ हताघातिचतुष्क सन्नशरीरो गुणात्मकः । गता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववांछित ॥ ५१२ ॥

तदन्तर तीनों योगोंका निरोधकर समुच्छिन्न क्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानका आश्रय लेंगे तथा चारों उपाधियां कर्मोंको नाशकर शरीररहित केवल गुणरूप होकर एकहजार मुनियोंके साथ सबके द्वारा वांच्छनीय ऐसा मोक्ष पद प्राप्त करेंगे ५०९-५१२ उसी समय पुरुषार्थका अंतिम जो अनन्त सुख है वह उन्हें प्राप्त होगा । तदन्तर इन्द्रादि सब देव आवेंगे मोहके नाश करनेवाले भगवानके शरीरकी विधि पूर्वक दिव्य गन्धमाला आदि द्रव्योंसे पूजा करेंगे और फिर अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे प्रगट हुई अग्निकी शिखामें उस शरीरको स्थापन करेंगे । फिर अर्थोंसे भरी हुई प्रशंसा वाचक स्तुतिसे संसारको नाश करनेवाले भगवानकी स्तुति करेंगे । जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष पधारेंगे उसी दिन मुझे भी घातिया कर्मोंके नाश होनेसे केवल ज्ञानरूपी नेत्र प्रगट होगा । भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशोंमें विहार करूंगा और फिर विपुलाचल पर्वतपर जाकर मुक्त हूंगा । जिस दिन मैं मुक्त हूंगा उसी दिन सकल श्रुतज्ञानके पारगामी सुधर्माचार्यके लोक अलोक सबको एकसाथ देखनेवाला अंतिम केवलज्ञान प्रगट होगा सुधर्माचार्यके निर्वाण होनेकें समय ही जंवूकुमारको केवल ज्ञान प्रगट होगा ॥ ५१२–५७८ ॥ यह जम्बूकुमार अंतिम केवल ज्ञानी होंगे । जम्बूकुमारके वाद जो इस भरतक्षेत्रमें धर्मोपदेश देंगे । उनके नाम इस प्रकार होंगे । नंदिमुनि, श्रेष्ठ नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और महातपस्वी भद्रवाहु ये सव अनेक नयोंके विचित्र अर्थोंसे भरे हुए पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी होंगे ॥ ५१९–५२० ॥ विशुद्धिको धारण करनेवाले ये पांचो ही अनुक्रमसे होंगे । इनके वाद विशाखार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, वुद्धिल,

तदेव पुरुषार्थस्य पर्यंतोनतसौख्यकृत् । अथ सर्वेपि देवेंद्रा वह्नींद्रमुकुटस्फुरत् ॥५१३॥ हुताशनशिखान्यस्ततद्देहा मोहविद्विष । अभ्यर्च्य गंधमाल्यादिद्रव्यैदिंव्यैर्यथाविधि ॥ ५१४ ॥ वंदिष्यते भवातीतमर्थ्यैर्नंदारवस्तवै । वीरनिर्वृतिसंपातदिन एवास्तघातिकः ॥ ५१५ ॥ भविष्याम्यहमप्यथ केवलज्ञानलोचनः । भव्याना धर्मदेशेन विहृत्य विषयास्ततः ॥ ५१६ ॥ गत्वा विपुलशब्दादिगिरौ प्राप्स्यामि निर्वृतिं । मन्निर्वृतिदिने लब्ध्वा सुधर्मो श्रुतपारगः ॥ ५१७ ॥ लोकालोकावलोकैकलोकमत्यावलोकन । तन्निर्वाणक्षणे भावी जंबूनामात्तकेवल' ॥ ५१८ ॥ अत्र केवलिनामस्मिन्भरते य प्ररूप्यते । नंदी मुनिस्ततः श्रेष्ठो नंदिमित्रोपराजितः ॥ ५१९ ॥ गोवर्द्धनश्चतुर्थोनु भद्रबाहुर्महातपाः । नानानयविचित्रार्थसमस्तश्रुतपूर्णता ॥ ५२० ॥ ऐते क्रमेण पचापि प्राप्स्यत्याःमविशुद्धय । ततो भावी विशाखार्यः प्रोष्ठिल क्षत्रियाकक ॥ ५२१ ॥ जयनामानुनागाह्वः सिद्धार्थो धृतिषेणकः । विजयो बुद्धिलो गंगदेवश्च क्रमतो मता ॥ ५२२ ॥ एकादश सद्धश्रीमद्धर्मसेनेन धीमता । द्वादशांगार्थकुशला दशपूर्वधराश्च ते ॥ ५२३ ॥ भव्याना कल्पवृक्षाः स्युर्जैनधर्मप्रकाशका । ततो नक्षत्रनामा च जयपालश्च पांडुना ॥ ५२४ ॥ ध्रुवसेनोनु कंसार्यो विधिनैकादशांगका । सुभद्रश्च यशोभद्रो यशोबाहु प्रकृष्टधी ॥ ५२५ ॥ लोहनामा चतुर्थ

गंगदेव, और बुद्धिमान धर्मसेन ये सब श्रीमान् अनुक्रमसे होंगे तथा ग्यारह अंग दश पूर्वके पाठी और द्वादशांगके अर्थ कहनेमें अत्यन्त कुशल होंगे ॥ ५२१–५२२ ॥ ये ग्यारह मुनि भव्योंको कल्पवृक्षके समान होंगे और जैन धर्मको प्रकाश करनेवाले होंगे । इनके वाद नक्षत्र, जयपाल, पाडु, ध्रुवसेन, और कंसार्य ये विधि पूर्वक ग्यारह अंगोंके जानकार होंगे । इनके वाद सुभद्र, यशोभद्र प्रकृष्ट बुद्धिवाले यशोबाहु और चौथे लोहाचार्य ये चार आचारांग नामके पहिले अंगके जानकार होंगे । इन सब तपस्वियोंकी परम्परा अर्थात् सब मुनि जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे प्रगट हुए पवित्र और पापोंका नाशकरनेवाले शास्त्रोंका प्ररूपण करेंगे । इनके बाद अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले वीरसेन जिनसेन आदि महातपस्वी शेष मुनि भी श्रुतज्ञानके एकादशको प्रगट करेंगे । तथा इसी तरह प्रायः दुःपमकालके समाप्त होने तक जिनधर्मका प्रकाश होता रहेगा ॥ ५२६–५२८ ॥ भरत, सगर, जिनके द्वारा प्रशंननीय सत्यवीर्य, राजा मित्र मित्रवीर्य भाव, अच्छी कांतिको धारण करनेवाला धर्मवीर्य दानवीर्य, मघवा शुद्धवीर्य, सीमन्धर त्रिपृष्ट स्वयम्भू पुरुषोत्तम पुरुषपुण्डरीक, प्रशंसनीय सत्यदत्त, राजा कुनाल, सब पृथिवीका और मनुष्योंका स्वामी नारायण, सुभौम, सार्वभौम, अजितंजय, विजय, उग्रसेन, महासेन, और शुद्ध सम्यक्त्वी तू श्रेणिक । ये सब बुद्धिमान थे धर्मसम्बन्धी प्रश्न करनेमें चतुर थे, और सदा चौबीसो तीर्थंकरोंके चरण कमलोंकी सेवा करनेवाले थे ॥ ५२९–५३३ ॥ भगवान वर्द्धमानका जीव पहिले पुरूरवा भील था, फिर पहिले स्वर्गमें देव हुआ, फिर भरतका पुत्र मरीचि हुआ, पांचवें स्वर्गमें देव हुआ फिर जटिल ब्राह्मण हुआ वहांसे सौधर्म स्वर्गमें देव

स्यादाचारांगविदस्त्वसी । जिनेंद्रवचनोद्गीर्णं पावन पापलोपनं ॥ ५२६ ॥ श्रुत तपोभृतामेषा प्रणेष्यति परंपरा । शेषैरपि श्रुतज्ञानस्यैकोदेशस्तपोधनैः ॥ ५२७ ॥ जिनसेनानुगैर्वीरसेनै प्राप्तमहर्द्धिभि· । समाप्ते दुष्षमाया प्राक् प्रायशो वर्तयिष्वति ॥ ५२८ ॥ भरत सगराख्योनु सत्यवीर्यो जिनस्तुत । महीशो मित्रभावाह्वो मित्रवीर्योर्यमद्युति ॥ ५२९ ॥ धर्मदानादिवीर्यो च मघवा शुद्धवीर्यक: । सीमधरत्रिपृष्ठाह्वयः स्वयंभू पुरुषोत्तम ॥ ५३० ॥ पुंडरीकांतपुरुषो दत्त सत्यादिभि स्तुत । कुनालपालक पृथ्व्या पतिर्नारायणो नृणा ॥ ५३१ ॥ सुभौम: सार्वभामोऽजितजयोविजयाभिध । उग्रसेनो महासेनोजिनस्त्वं श्रेणिकेत्यसी ॥ ५३२ ॥ सर्वे क्रमेण धीमतो धर्मप्रश्नविदावरा । चतुर्विंशतितीर्थेशा संतत पादसेविन ॥ ५३३ ॥ पुरूखा सुर प्राच्यकल्पेभूद्भरतात्मज: । मरीचिर्ब्रह्मकल्पोत्थस्ततोभूज्जटिलद्विज: ॥ ५३४ ॥ सुर: सौधर्मकल्पे तु पुष्यमित्रद्विजस्तत: । सौधर्मजोमरस्तस्माद्द्विजन्माग्निसमाह्वय: ५३५ सनत्कुमारदेवोस्मादग्निमित्राभिवो द्विज: । मरुन्माहेंद्रकल्पेभूद्भारद्वाजो द्विज·न्वये ॥ ५३६ ॥ जातो म हेंद्रकल्पेनु मनुष्योनु ततश्च्युत: । नरकेषु त्रसस्थावरेष्वसख्यातवत्सरान् ॥ ५३७ ॥ भ्रांत्वा ततो विनिर्गत्य स्थावराख्यो द्विजोऽभवत् । ततश्चतुर्थकल्पेभूद्विश्वनंदी ततश्च्युत: ॥ ५३८ ॥ महाशुक्रे ततो दे·

हुआ, फिर अग्निविम नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे तीसरे सानत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ । फिर अग्निमित्र नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ । वहांसे आकर भारद्वाज नामका ब्राह्मण हुआ और फिर चौथे स्वर्गमें देव हुआ । वहांसे च्युत होकर फिर मनुष्य हुआ । और फिर असंख्यात वर्षोंतक नरकोंमें तथा त्रस और स्थावर पर्यायोंमें उसने परिभ्रमण किया ॥ ५३४–५३७ ॥ वहांसे निकलकर फिर स्थावर नामका ब्राह्मण हुआ वहांसे चौथे स्वर्गमें देव हुआ फिर राजा विश्वनन्दी हुआ, इसके वाद महाशुक्र नामके दशवें स्वर्गमें देव हुआ फिर तीन खण्डका स्वामी त्रिपृष्ट नारायण हुआ, वहासे सातवें नरक गया और फिर सिंह हुआ ॥ ५३८–५३९ ॥ वहांसे फिर पहिले नरकमें गया वहांसे आकर सिंह हुआ इसी सिंहकी पर्यायमें उसने निर्मल सद्धर्म धारण किया और उस पर्यायको छोडकर सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेतु नामका उत्तम देव हुआ ॥५४०॥ तदनन्तर कनकोज्वल नामका विद्याधरोंका राजा हुआ, फिर सातवें स्वर्गमें देव हुआ, वहांसे आकर राजा हरिषेण हुआ, फिर महाशुक्र नामके दशवे स्वर्गमें देव हुआ, उसके वाद प्रियमित्र राजा हुआ फिर सहस्रार नामके वारहवे स्वर्गमें सूर्यप्रभनामका देव हुआ ॥ ५४१–५४२ ॥ वहांसे आकर नन्द नामका राजा हुआ, वहांसे सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें इन्द्र हुआ और वहासे च्युत होकर भगवान वर्द्धमान हुआ ॥ ५४३ ॥ जिन्हें पंचों कल्याणोंकी ऋद्धियां प्राप्त हुई हैं और जिन्हें मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त हुई ऐसे वे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी गुणभद्रके लिये अथवा गुणवानोंके लिये सब तरहके मंगल प्रदान करें ॥ ५४४ ॥ इसप्रकार अच्छी कथाके रससे अत्यंत

वज्जिखंडेशञ्चिपृष्ठवाक् । सप्तमे नरके तस्मात्तस्माच्च गजविद्विष: ॥ ५३९ ॥ आदिमे नरके तस्मात्सिंह: सद्धर्मनिर्मल: । तत: सौधर्मकल्पेभूत्सिंहकेतुसुरोत्तम: ॥ ५४० ॥ कनकोज्वलनाम्नाभूत्ततो विद्य धराधिप: । देव: सप्तमकल्पे तु हरिषेणस्ततो नृप: ॥ ५४१ ॥ महाशुक्रे ततो देव: प्रियमित्रस्ततो महीट् । स सहस्रारकल्पेभूद्देव: सूर्यप्रभाह्वय: ॥५४२॥ राजनंदाभिधस्तस्मात्पुष्पोत्तरविमानज: । अच्युतेंद्रस्ततश्च्युत्वा वर्द्धमानो जिनेश्वर: ॥ ५४३ ॥ प्राप्तपंचमहाकल्याणर्द्धि: प्रास्तुत सिद्धिभाक् । प्रदिश्याद्गुणभद्रेभ्य: स विभु: सर्वमंगलं ॥ ५४४ ॥ इत्थं गौतमवक्त्रवारिजलसद्वाग्वल्लभावाङ्मयै: पीयूषै: सुकथारसातिमधुरै: भक्त्योपयुक्तैश्चिरं । सा संसन्मगधाधिपश्च महतीं तुष्टिं सम जग्मतु: पुष्टिं दृष्टिविबोधयोर्विदधतीं सर्वार्थसंपत्करीं ॥ ५४५ ॥ श्रीवर्द्धमानमनिशं जिनवर्द्धमानं त्वं त नये स्तुतिपथं पथि संप्रधाते । योंत्योपि तीर्थंकरमग्रिममप्यजैषीत् काले कलौ च पृथुलीकृतधर्मतीर्थः ॥ ५४६ ॥ स्तुत्या प्रसादयितुमर्थिजनो विनौति न लप्यदस्तव स मोहजयस्तवोय । तन्नार्थिनस्तुतिरिहेशं ममास्ति वाढ स्तुत्यस्तुतिप्रणयिनोऽर्थपराङ्मुखस्य ॥ ५४७ ॥ येषा प्रमेयविमुख सुमुखप्रमाण तेन स्तुतेर्हितजुषा विषयीभवेयु । त्वं विश्वभावविहितावगमात्मकोर्हन् वक्ता हि तस्य ततएव हितैषिवंद्य ॥ ५४८ ॥ दातासि न स्तुतिफलं

मधुर, भक्तिके द्वारा आस्वादित और अमृतमय ऐसे गौतम गणधरके मुखरूपी कमलसे सुशोभित हुई सरस्वतीके वचनोंसे वह सब सभा तथा मगधेश्वर राजा श्रेणिक दोनों ही अर्थ और संपदाओंके देनेवाले तथा ज्ञान और दर्शनको पुष्ट करनेवाले ऐसे वडेभारी संतोषको प्राप्त हुए थे ॥ ५४५ ॥ जो श्रीवर्द्धमान सदा वर्द्धमान वा जयशील रहते हैं जो तुम्हें निर्मल मोक्षमार्गमें ले जाते हैं जिनका धर्म तीर्थ कलिकालमें भी बडे विस्तारसे प्रचलित हुआ है और इसलिये ही तीर्थकरोंमें अंतिम होकर भी जिन्होंने प्रथम तीर्थंकर वृषभदेवको भी जीतलिया था ऐसे श्री वर्द्धमानकी मैं स्तुति करता हूं ॥ ५४६॥ हे देव ! अर्थी-कुछ इच्छा रखनेवाले, जन आपको प्रसन्न करनेके लिये नमस्कार वा स्तुति करते हैं परंतु आपका यह जय स्तोत्र ऐसे स्तोत्रोंके समान नहीं है। हे ईश ! हे स्तुति करने योग्य ! मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता हूं न मुझे कुछ स्तुति करनेके फलकी अभिलाषा है मुझे तो केवल स्तुति करने योग्य पुरुषमें प्रेम है इसलिये मेरी यह स्तुति इससंसारमें खूब ही प्रसिद्ध हो ॥ ५४७ ॥ हे सुमुख जिनका प्रमाण प्रमेयसे रहित है ये पुरुष हित चाहनेवाले हम लोगोंके स्तुतिके गोचर नहीं हो सकते अर्थात् हम लोग उनकी स्तुति नहीं कर सकते हे अर्हन् ! आप तो समस्त पदार्थोंके कहे हुए ज्ञानरूप ही है और इसलिये ही आप उन पदार्थोंके स्वरूपके वक्ता वा कहनेवाले हैं अतएव आपही हितचाहनेवाले हम लोगोंके द्वारा बंदनीय हैं ॥ ५४८ ॥ हे जिनेंद्र यद्यपि आप स्तुतिका फल नहीं देते हैं तथापि स्तुति करनेवाला पुरुष याचना न करता हुआ भी सबसे अच्छे और सबसे अधिक फलको बहुत शीघ्र और अवश्य प्राप्त होता है फिर

समुपैत्यवश्यं स्तोता महज्जटिति शुभ्रमयान्वितोऽयं । कुर्यात् कुतस्तव न सत्स्तवन जिनेश दैन्यातिभीरहमम्यफलाभिलाषी ॥ ५४९ ॥ निष्कारणं तृणलवं च ददद्विधी.को लोके जिन त्वयि ददासि निरर्थकस्त्व । मुक्तिप्रदायिनि तथापि भवंतमेव प्रेक्षावता प्रथमगण्यमुशंति चित्र ॥ ५५० ॥ सर्वस्वमर्थिजनता स्वमिह स्वकीय चक्रु परे निरु०धिरिथरसत्त्वसाराः । प्रोलंघ्य तान् जिन वदति वदान्यवर्यं त्वां वाग्मिरेव वितरंतमहो विदग्धाः ॥ ५५१ ॥ धी पौरुषं च विषयार्जनमेव येषां सौख्य च विश्वविषयाविरतोपयोग । तेषा कथ तदुभयप्रतिपक्षरूप त्वच्छासन श्रवणमिज्जिनमात्रनिष्ट ॥ ५५२ ॥ पुण्यं त्वया जिनविनेयविधेयमिष्ट गत्यादिभिःपरमनिर्वृतिसाधनत्वात् । नैवासगारिलसुख प्रति तच्च यस्माद् बंधप्रद विषयनिष्टमभीष्टघाति ॥ ५५३ ॥ कायादिक सदसि ते विफल किलाहुर्नैतद्वचस्तव निशम्य निशाम्य साक्षात् । त्वा याति निर्वृतिमिहैव विनेयमुख्या मुख्यं फलं ननु फलेषु परोपकार ॥ ५५६ ॥ यत्क्षणक्षतिकृदात्मनि

भला मैं तो दीनतासे अत्यंत डरता हुआ भी सबसे अधिक फलकी इच्छा रखता हूं इसलिये आपका स्तोत्र क्यों न करूं ॥५४९॥ संसारमें जो कोई विना कारणके एक तृणका टुकडा भी देता है वह बुद्धिहीन मूर्ख गिना जाता है। हे जिनेंद्र ! आप मोक्ष देनेवाले हैं तथापि लोग आपको देते हैं इसलिये आप अनर्थकारी अर्थात् अपना प्रयोजन सिद्धकर दूसरेका उपकार करनेवाले हैं तथापि आश्चर्य है कि लोग आपको ही बुद्धिमानोंमें सबसे उत्तम मानते हैं ॥५४०॥ हे देव सत्त्वशाली लोग अपना सब धन याचकोंको देकर स्वयं विल्कुल परिग्रह रहित हो जाते हैं तथापि हे जिन उनको उलंघनकर कितने ही चतुर लोग केवल बचनोंसे ही देनेवाले आपको ही दान देनेवालोंमें सबसे उत्तम कहते हैं यह एक आश्चर्यकी वात है ॥५५१॥ हे देव ! जिनकी बुद्धि और जिनका पुरुषार्थ केवल विषय सेवन करनेकेलिये है और जिनका सुख विषयोंसे विरक्तचित्त न होना है उन लोगोंको विषयसेवन और विषय जन्य सुखसे प्रतिकूल ऐसा आपका शासन कानोंको फोडदेनेवाला कैसे नहीं होसकता अर्थात् होता ही है ॥ ५५२ ॥ हे जिन आपने जो पुण्यका स्वरूप कहा है वह ज्ञानादिकके द्वारा भव्य जीवोंको सिद्ध करने योग्य है और सबको इष्ट है क्योंकि ज्ञानादिकके द्वारा उपार्जन किया हुआ पुण्य ही परम मोक्षका साधन है। जो देवादिकोंके पूर्ण सुखके लिये किया जाता है वह कुछ पुण्य नहीं है क्योंकि वह बंधका कारण है विषयोंमें लुभानेवाला है और मोक्ष रूप इष्टका विघात करनेवाला है ॥ ५५३ ॥ हे देव ! यद्यपि आपका शरीर आदि विद्यमान है तथापि लोग उसे निष्फल नहीं कहते हैं क्योंकि आपके वचन सुनकर तथा आपका साक्षात् रूप देखकर मुख्य २ शिष्य इसी भवमें मुक्त हो जाते हैं सो ठीक ही है क्योंकि फलोंमें परोपकार ही सबसे मुख्य फल है ॥ ५५४ ॥ जो आत्माके ज्ञान आदि लक्षणरूप गुणों को नष्ट करदेनेवाला है ऐसा नामादिक कर्म क्या आपके ज्ञान दर्शन रूप उपयोगको नष्ट कर सकता है ? कभी नहीं ।

तद्धि कर्म नामादिक किमु निहति तवोपयोग । ततसत्तया जिन भवंतमसिद्धमिच्छन्निच्छेदनूर्ध्वगमनादतनोरसिद्धिं ॥ ५५५ ॥ साद्यंतहीनमनवद्यमनादिसांत सावद्यमादिरहितानवसानमाहु । त्व दु खित सुखिनमप्युभयव्यपेतं तेनैव दुर्गमतमोसि नयानभिज्ञै· ॥ ५५६ ॥ संयोगज स्वज इति द्विविधो हि भावो जीवस्य योगविगमाद्विगमी तदुत्थ । स्वोत्थे स्थिति परमनिर्वृतिरेषमार्गो दुर्गं परस्य तव वाक्यवहि कृतस्य ॥ ५५७ ॥ आस्तामनादिनिगलच्छिदया ददासि यन्मुक्तिमंतरहितां तदिहालमेषा । स्नेहादिहेतुविनिवृत्तसमस्तसत्त्वसंपालनप्रवणतैव तवाप्ततायै ॥ ५५८ ॥ बोधस्तवाखिलविलोकनविभ्रमी, किं किं वाग्मिता मितपदार्थनिरूपणाया । किं स्वार्थसंपदि परार्थपराङ्मुखस्त्व किं नासि सत्सु जिन पूज्यतमस्त्वमेव ॥ ५५९ ॥ विश्वावलोकनवितन्वदनतवीर्यव्यापारपारशरण न कदापि ते स्यात् । चित्र तथापि सुखिना सुखित भवंत संतो वदति किमु भक्तिरुताववोध ॥ ५६० ॥ भव्यात्मना परमनिर्वृतिसाधनार्थं त-

हे जिन ! उन कर्मोंकी सत्तासे ही आपको असिद्ध होनेकी इच्छा करता हुआ ऊर्ध्वगमनके अभावसे शरीररहित न होनेकी इच्छा करता है । हे देव ! आपको आदि अंत रहित, पाप रहित, अनादि, पर अंतरहित, सावद्य, आदि रहित, अंतरहित सुखी दुखी और सुख दुःख दोनोंसे रहित, कहते हैं इसलिये हे देव ! जो नयोंको नहीं जानते वे आपको जान भी नहीं सकते ॥ ५५६ ॥ हे नाथ ! जीवोंके भाव दो प्रकारके हैं एक-संयोगसे उत्पन्न होनेवाले और दूसरे स्वभाविक । जो संयोगसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं वे संयोगके नाश होनेसे नष्ट होजाते हैं । उनके नष्ट होनेसे आत्माके ज्ञानादि स्वाभाविक भावोंमें जो आत्माकी स्थिति है वही परम निवृत्ति वा परम मोक्ष कहलाती है परंतु आपके वाक्योंको न माननेवाले जो अन्य दर्शनकार हैं उनको यह मार्ग अत्यंत कठिन है ॥ ५५७ हे देव अनादि कालसे लगे हुए कर्मोंके नष्ट होनेपर आप अंतरहित मोक्ष देते हैं यह वात तो दूर ही रही आप स्नेह आदि कारणोंसे रहित होकर भी समस्त प्राणियोंके पालन करनेमें अत्यंत चतुर हैं यही हेतु आपकी आप्तता सिद्ध करनेके लिये बहुत है ॥ ५५८ ॥ हे स्वमिन् ! क्या आपका ज्ञान समस्त पदार्थोंके देखनेमें समर्थ नहीं है ? क्या आपकी वाणी प्रमाणभूत पदार्थोंके निरूपण करनेमें समर्थ नहीं है ? क्या आपकी परपदार्थोंसे परांमुखता अपने आत्माके अनंतगुणरूप संपदाओंके लिये समर्थ नहीं है और इसीलिये हे जिन ! क्या आप सज्जनोंमें सबसे अधिक पूज्य नहीं है । ॥ ५५९ ॥ हे प्रभो ! समस्त संसारको देखनेके लिये फैले हुए आपके अनंतवीर्यके व्यापारका पार कभी प्राप्त किया जा सकता तथापि आश्चर्य है कि सज्जन लोग आपको ही सुखियोंमें सबसे अधिक सुखी वतलाते हैं परन्तु यह उनकी भक्ति है अथवा यथार्थ ज्ञान है सो जान नहीं पडता ॥५६०॥ हे देव ! आपकी जितनी चेष्टा हैं वे सब भव्य जीवोंको मोक्ष सिद्ध करनेके लिये हैं परन्तु आपको उसके किसी तरहके फलकी

वेष्टित तव न तत्र फलोपलिप्सा। तस्मात्त्वमेव जिन वागमृताम्बुवृष्ट्या संतर्पयन् जगदकारणबन्धुरेक ॥ ५६१ ॥ जीवोयमुद्यदुपयोगगुणोपलक्ष्यस्तस्योपहन्तृ ननु घातिचतुष्कमेव। घातेन तस्य जिन पुष्कललक्षणस्त्वं त्वां तादृशं वद वदन्तु कथं न सिद्ध ॥ ५६२ ॥ साधारणास्तव न सन्तु गुणास्तदिष्ट दृश्यो न तेषु जिन सत्सु गुणेषु साक्षात्। दृष्टे भवेद्भवति भक्तिरसौ यया यश्चेचीयते स्रवति पापमपि प्रभूतं ॥ ५६३ ॥ देवागाढमभवत्तव मोहघातात्क्षूक्ष्मानमावृतिहते-परमावगाढ। आद्ये चरित्रपरिपूर्तिरथोत्तरत्र विश्वाववोधविभुतासि ततोभिवंद्य ॥ ५६४ ॥ ध्वस्तं त्वया प्रबलपापबलं परं च प्रोज्झिमपालिजलवत्प्रवहत्य-जस्रम्। श्रद्धादिभिस्त्रिभिरभूत्त्रितयी च सिद्धिः सद्धर्मचक्रकुसुमवद्भुवनैकनाथ ॥ ५६५ ॥ देहो विकाररहितस्तव वाग्यथार्थदृक्श्रोत्रनेत्रविषयत्वमुपेत्य सद्यः। त्वामस्तरागमखिलावगम च कस्य न स्थापयेन्मनसि मन्मथमानमर्दिन् ॥ ५६६ ॥ किं वस्त्विहाक्षणिकमन्वयरूपमस्ति व्यस्तान्वयं वद हि किं क्ष-

इच्छा नहीं है इसलिये हे जिनराज। वचनामृतरूपी जलकी वर्षासे संसारभरको तृप्त करते हुए केवल आप एकही विना कारणके बन्धु हो ॥ ५६१ ॥ यह जीव प्रगट हुए ज्ञानगुणरूपी उपयोगसे जाना जाता है और उस ज्ञान गुणको नष्ट करनेवाले चार घातियां कर्म हैं उन घातिया कर्मोंको नष्ट करनेसे आपका ज्ञानगुण पूर्ण प्रगट हो गया है इसलिये हे जिन! आपही कहिये कि ऐसे आत्मस्वरूपवाले आपको सिद्ध कैसे न कहें ॥ ५६२ ॥ हे जिनराज! आपमें साधारण गुण नहीं तो न सही परन्तु उन विशेष गुणोंके रहते हुए भी हम लोगोंको इष्ट ऐसे आप साक्षात् दिखाई नहीं देते। यदि कदाचित् आप दिखलाई पड जांय तो फिर आपमें वह भक्ति उत्पन्न होती है जिससे वडे प्रभुओंको भी पुण्यका संचय होता है और पापका नाश होता है ॥ ५६४ ॥ हे देव! मोहनीय कर्मके नाश होनेसे आपके अवगाढ श्रद्धान वा सम्यक्त्व हुआ है और ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मोंके नाश होनेसे परमावगाढ सम्यक्त्व हुआ है पहिले अवगाढ सम्क्त्वमें चारित्रकी परिपूर्णता होती है और परमावगाढमें पूर्णज्ञान समस्त आकाशमें फैल जाता है इसलिये हे नाथ आपही वंदना करने योग्य हैं ॥५६४॥ हे देव! आपने प्रबल घातिया कर्मोंको तो पहिले ही नष्ट कर दिया था और अब अघातिया कर्म किसी बांधके टूट जाने पर जलके समान सदा बहते रहते हैं। हे नाथ! व्यवहार रत्नत्रयके द्वारा आपको निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई है और सद्धर्म चक्रकी प्राप्ति होनेसे आप तीनों भुवनोंके एक स्वामी हुए हैं ॥ ५६५ ॥ कामदेवके अभिमानको चूर्ण करनेवाले हे प्रभो! आपका शरीर विकाररहित है और आपकी वाणी पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको देखनेवाली वा कहनेवाली है यदि आपका विकाररहित वह शरीर नेत्रोंके विषयभूत हो जाय अर्थात् देखलिया जाय तथा आपकी वाणी कानोंके विषयभूत हो जाय अर्थात् सुनली जाय तो वे दोनोंही रागरहित और समस्त ज्ञानको धारण करनेवाले आपको फिर किसके हृदयमें स्थापन

णिक च किंचित् । बुद्धादयो बुधपगर्भगतार्भकाभा मेदोयमर्थविमुखोवगमो ह्यमीषा ॥ ५६७ ॥ तिष्ठत्वगोचरमनतचतुष्टय ते स्वाभाविकेष्वतिशयेष्वपरोपि कश्चित् । कस्यापि समवति किं कपिलादिकाना केनासपक्तिमुपयाति तमस्विनोमी ॥ ५६८ ॥ त्वामामनति मुनयः परम पुमास ध्वस्तत्रिवेदमपि कि परमागसगात् । किं मोहवल्लिदहनादिकमनतवीर्यात् किं सिद्धतापरिणतेर्गुणगौरवाद्वा ॥५६९॥ देहत्रयापनयनेन विनादितिद्धस्त्व शुद्धिशक्त्यतुलधृत्युदितोदितत्वात् । आधिक्यमस्त्यधिपते त्वदुदीरितोरुसन्मार्गगान्नयसि यत्परमात्मभावं ॥ ५७० ॥ अस्त्वेव देव तव चौदयिकोपि भावः किं त्वेष मोहरहितस्य न बंधहेतु । योगानुरोधसमवाप्तशुभाणुवेद्यबध निबंधनमुशत्यविरोधकत्वात् ॥ ५७१ ॥ त्वत्पादपंकजषडध्रितयाप्तपुण्याद् गण्योभवत्सुरगणोगणनातिगर्धी । आनम्रमौलिरत एव नखोन्मुखांशुभास्वन्मुख शतमख सुमुखस्तवाध्र्योः ॥ ५७२ ॥ प्रशमपरमकाष्ठानिष्ठितोदात्तमूर्ते क्रमकरणविहीनज्ञानधामैकधाम्न । द्वितयनय-

करदें अर्थात् आपका शरीर देखनेमात्रसे अथवा आपकी वाणी सुनने मात्रसे आप सबके हृदयमें स्थापित होजाते हैं ॥५६६॥ हे विद्वानोंके परिपालक ! क्या वस्तुका स्वरूप अन्वय रूपसे सदा नित्य है अथवा पृथक पृथक अन्वय रूपसे कुछ क्षणिक है कैसा है सो कहिये इसका स्वरूप कहनेमें बुद्धादिक सब गर्भमें बैठे हुए बच्चेके समान हैं क्योंकि इनमें भेद है॥५६७॥ हे प्रभो ! आपका अनंतचतुष्टय तो कपिलादिक अन्य लोगोंके विषयभूत नहीं है यह बात तो दूर रही परंतु जो आपके निःस्वेदता आदि स्वाभाविक अतिशय हैं उनमेंसे क्या कोई एक भी अतिशय कपिलादिकोंमेंसे किसीके भी संभव हो सकते हैं ? फिर भला मिथ्यांधकारमें डूबे हुए ये कपिलादिक लोग किस कारणसे आपकी पंक्तिमें बैठ सकते हैं ! भावार्थ–कभी नहीं ॥ ५६८ ॥ हे देव ! यद्यपि आपके स्त्रीपुन्नपुंसक ये तीनों वेद नष्ट होगये हैं तो भी मुनि लोग आपको परम पुरुष मानते हैं अथवा वेदोंके नष्ट होनेपर ही आपको परम पुरुष मानते हैं फिर आपको परम औदारिक शरीरके समागमसे क्या लाभ है अथवा मोहरूपी वेलको जला देनेसे क्या लाभ है तथा अनंतवीर्य प्राप्त होनेसे क्या लाभ है वा सिद्ध अवस्था प्राप्त होनेसे क्या लाभ है और अनेक गुणोंकी गौरवता होनेसे भी क्या लाभ है ॥ ५६९ ॥ हे स्वामिन् ! तीनो शरीरोंके नष्ट होनेके विना ही निर्मलता, शक्ति, और अनुपम संतोषके अत्यधिक उदय होनेसे ही आप सिद्ध होगये हैं फिर भला आपके कहे हुए श्रेष्ठ सन्मार्गमें (मोक्षमार्गमें) चलनेवाले लोगोंको आप परमात्मस्वरूप करदेते हैं यह आपमें और भी सबसे वडी अधिकता है ॥ ५७० ॥ हे देव आपके औदयिक भाव है सो वह भले ही बना रहे आप मोह रहित हैं इसलिये वह आपके कर्मबंधका कारण नहीं हो सकता परंतु मन वचन कायकी क्रियाओंका निरोध करनेसे आपके थोडेसे शुभ वेदनीय कर्मोंका बंध होता है इसलिये विद्वान् लोग आपको ही शुभ बंधका कारण बतलाते हैं क्योंकि

मयोधद्वीर विश्वध्वनेस्ते ननु जिन परमात्मप्रभवं भाति भर्तुः ॥ ५७३ ॥ ज्ञानं सर्वगत स्वरूपनियतं ते स्याद्धेतुः क्रुतेर्नीरेच्छायतनाः स्वकृत्यपटवो वाचो गिवाचामपि । प्रस्थानस्थितयोप्यनात्मविहिता नात्मान्यबाधाप्रदा स त्व निर्मलबोधदर्पणतले ज्ञेयाकृतिं धत्स्व मे ॥ ५७४ ॥ विश्वस्यास्खलित प्रशासित तव वाग्याथात्म्यमात्मेशिनो यस्माद्दृष्टिविरोधरोधविहितारागाद्यविद्याच्छिद ।तस्माद्वीर विकायसायकशिखामौखर्यवीर्यद्रुहोमोहद्रोहजयस्तवैव न परेष्वन्यायमिन्यासिषु ॥५७५॥ देवो वीरजिनोयमस्तु जगतो वंद्यः सदा मूर्द्धि मे देवस्त्व हृदये गणेश वचसा स्पष्टेन येनाखिल । कारुण्यात्प्रथमानुयोगमवद श्रद्धामिवृद्ध्यावहं

इसमें कोई विरोध नही आता। भावार्थ—आपके औदयिक भाव तो बन्धके कारण नहीं है परन्तु आप शुभवन्धके कारण हैं क्योंकि आपके शुभवेदनीयका वन्ध होता है शुभबन्धको करनेवाला शुभवन्धका कारण होताही है इसमें कोई विरोध नहीं ॥ ५७१ ॥ आपके चरण कमलोंके भ्रमर बननेसे अर्थात् आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ था उसीसे यह देवताओंका समूह मान्य गिना गया है और उसीकारणसे उसकी लक्ष्मी संख्याके बाहर होगई अर्थात् वह देवताओंका समूह असंख्यात लक्ष्मीका स्वामी होगया है इसीलिये जो आपके चरणकमलोंमें अपना मुकुट झुका रहा है और आपके चरणनखोंके सामनेकी किरणोंसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है ऐसा इन्द्रसुमुख कहलाता है ॥ ५७२ ॥ हे जिनराज ! आपकी उत्कट मूर्ति उपशमभावकी चरमसीमासे परिपूर्ण है, आप इंद्रिय और अनुक्रमसे रहित ऐसे केवल ज्ञानरूपी तेजके एक मुख्य स्थान हैं आपकी गम्भीर दिव्यध्वनि व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंसे परिपूर्ण होकर उत्पन्न हुई है और आप सबके स्वामी हैं इसलिये हे नाथ ! आपके परमात्मपनेका प्रभाव वहुत ही सुशोभित हो रहा है ॥ ५७३ ॥ हे नाथ ! आपका ज्ञान सब जगह् व्याप्त है तो भी अपने ही स्वरूपमें निश्चल है और किसी भी व्यापारका कारण नहीं है। इच्छा और आयतनरहित आपकी वाणी भी गूंगे लोगोंके कार्य करनेमें भी अत्यन्त चतुर है इसी तरह आपका आकाशगमन भी आपका किया नहीं है किन्तु देवोंके द्वारा किया हुआ है और आत्मापर किसीको भी बाधा देनेवाला नही है ऐसे हे देव ! आप मेरे निर्मलज्ञानरूपी दर्पणतलमें ज्ञेयका आकार धारण करो अर्थात् मेरे ज्ञानगोचर हो ॥ ५७५ ॥ हे देव ! आप आत्माके स्वामी हैं सम्यग्दर्शनको रोकनेवाले मिथ्यात्वकर्मको नाश करनेसे आपकी रागादि अविद्याओंका नाश हो चुका है और आप कामदेवके बाणोंकी शिखाकी मुखरता अथवा वाचालपनेके बलको नाश कर चुके हैं ऐसे आपकी वाणी विना किसी रुकावट वा थकावटके इस समस्त संसारके यथार्थ स्वरूपको प्रगट करती है इसलिये हे वीर ! मोहनीय कर्मको नाश करनेका जय आपको ही प्राप्त है अन्याय करनेवाले अन्य किसीको वह जय प्राप्त नहीं है ॥५७५॥ इसलिये

मद्भाग्योदयतः सतां स सहजो भावो ह्यय तादृशां ॥५७६॥ इति कतिपयवाग्भिर्वर्द्धमानं जिनेंद्र मगधपतिरुदीर्णश्रद्धया सिद्धकृत्य । गणभृतमपि नुत्वा गौतम धर्मधुर्यं स्वपुरमविशदुद्यत्तुष्टिरागामिसिद्धि ॥ ५७७ ॥ अनुष्टप्छंदसा ज्ञेया प्रथसख्या तु विंशतिः । सहस्राणा पुराणस्य व्याख्यातृश्रोतृलेखकै ॥५७८॥

इत्यार्षे त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते श्रीवर्धमानस्वामिपुराण परिसमाप्त ।

अथ प्रशस्तिः ।

यस्यानता पदनखेंदवविंवचुंविचूडामणिप्रकटसमुकुटाः सुरेंद्राः । न्यक्कुर्वते स्म हरमर्द्धशशांकमौलिलीलोद्धत स जयताज्जिनवर्द्धमानः ॥ १ ॥ श्री-

जिन्हें समस्त संसार नमस्कार करता है ऐसे वर्द्धमान स्वामी सदा मेरे मस्तकपर विराजमान रहें और हे गणधर देव ! आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहें क्योंकि मेरे भाग्यके उदयसे करुणाकर आपने ही स्पष्टवाणीसे श्रद्धाकी अभिवृद्धिको धारण करनेवाले—श्रद्धाको बढानेवाले प्रथमानुयोगका निरूपण किया है सो ठीक ही है क्योंकि ऐसे सज्जनोंका ऐसा भाव होना स्वाभाविक ही है ॥ ५७६ ॥ जिसे बहुत भारी सन्तोष हुआ है जो आगामीकालमें सिद्ध होनेवाला है जिसने अपना कृत्यकर्म सब सिद्ध करलिया है और जो धर्मधारण करनेमें सबसे मुख्य है ऐसे मगधेश्वर राजा श्रेणिकने उत्पन्न हुई श्रद्धासे ऊपर लिखे हुए कुछ वचनोंके द्वारा भगवान श्रीवर्द्धमानकी स्तुति की तदनन्तर उसने श्रीगौतमगणधरदेवको नमस्कार किया और फिर सन्तुष्ट होकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ॥ ५७७ ॥ व्याख्या करनेवाले, सुननेवाले, और लिखनेवालोंको अनुष्टप् श्लोकोंसे इस पुराणकी संख्या वीस हजार समझनी चाहिये ॥ ५७८ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत महापुराणकी नवीन हिंदी भाषानुवादमें श्रीवर्द्धमान स्वामीका पुराण समाप्त करनेवाला यह छिहत्तरिवां पर्व समाप्त हुआ ७६

अथ प्रशस्ति ।

जो श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कार कर रहे हैं और इसलिये श्रीवर्द्धमानस्वामीके चरणनखरूपी चन्द्रमाके विम्बको स्पर्श करनेवाले चूडामणि रत्नोंसे जिनके उत्तम मुकुट प्रगट होरहे हैं ऐसे इन्द्र लोग भी मस्तकपर आधे चन्द्रमाको धारण करनेकी लीलासे उद्धत हुए महादेवको तिरस्कार करते थे ऐसे श्रीवर्द्धमानस्वामी सदा जयशील हों ॥१॥ जिस प्रकार

(१) चतुर्विंशतितीर्थेशांश्चतुर्गतिनिवृत्तये । वृषभादिमहावीरपर्यंतान् प्रणमाम्यहं ॥ १ ॥ अर्थ—चारों गतियोंसे छूटनेकेलिये वृषभदेवसे लेकर महावीर पर्यंत चावीस तीर्थंकरोंको मैं नमस्कार करता हूं । एक पुस्तकके हासियेपर यह श्लोक दूसरे नवरपर अधिक लिखा है ।

मूलसङ्घवाराशौ मणीनामिव सार्चिषा । महापुरुषरत्नाना स्थानं सेनान्वयोऽजनि ॥ २ ॥ तत्र वित्रासिताशेषप्रवादिमदवारण । वीरसेनाग्रणीर्वीरसेनभट्टारको बभौ ॥ ३ ॥ ज्ञानचारित्रसामग्रीमग्रहीदिव विग्रहं । विराजते विधातु यो विनेयानामनुग्रह ॥ ४ ॥ यत्क्रमानम्रराजन्यमुखाब्जान्यदधु श्रियं । चित्रं विकासमासाद्य नखचन्द्रमरीचिभिः ॥ ५ ॥ सिद्धिभूपद्धतिर्यस्य टीका सवीक्ष्य भिक्षुभि । टीक्यते हेलयान्येषा विषमापि पदेपदे ॥ ६ ॥ यस्यास्याब्जजवाक्श्रिया धवलया कीर्त्येव सश्राव्यया सप्रीतिं सतत समस्तसुधिया सपादयन्त्या सता । विश्वव्याप्तिपरिश्रमादिव चिर लोके स्थितिं संश्रिता श्रोत्रालीनमलान्यनाद्युपचितान्यस्तानि निःशेषत ॥ ७ ॥ अभवदिव हिमाद्रेर्देवसिन्धुप्रवाहो ध्वनिरिव सकलज्ञात्सर्वशास्त्रैकमूर्ति । उदयगिरितटाद्वा भास्करो भासमानो मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥८॥ यस्य प्राशुनखांशुजालविसरद्धारांतराविर्भवत्पादाम्भोजरजःपिशगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युति । सस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपति पूतोऽहम-

समुद्रमें बहुमूल्य मणियोंके स्थान होते हैं उसी प्रकार मूलसंघरूपी महासागरमें महापुरुषरूपी रत्नोंका स्थान ऐसा सेनवंश अथवा सेनसंघ हुआ था ॥ २ ॥ उसमें समस्तवादीरूपी मदोन्मत्त हाथियोंको त्रास देनेवाले वीरसेनसंघमें मुख्य ऐसे वीरसेन भट्टारक सुशोभित हुए थे ॥ ३ ॥ उन्होंने शरीरके समान ही ज्ञान और चारित्रकी सामग्रीको धारण किया था और वे शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये ही मानों सुशोभित हुए थे ॥४॥ यह एक आश्चर्यकी बात है कि उन वीरसेनके चरणोंमें नम्र हुए राजा लोगोंके मुखरूपी कमल उनके नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रफुल्लित होकर अच्छी शोभाको धारण करते थे ॥ ५ ॥ यद्यपि मोक्षरूप पृथिवीकी पद्धति अर्थात् सीढी अथवा सिद्धिभूपद्धति नामकी तत्वार्थकी टीका पद पदपर विषम है तथापि श्रीवीरसेनकी बनाई हुई जिसकी टीकाको देखकर भिक्षु अर्थात् मुनि लोग भी लीला पूर्वक दूसरोंके लिये उपदेश दिया करते हैं ॥ ६ ॥ जिस श्रीवीरसेनके मुखरूपी कमलसे प्रगट हुई वचनरूपी लक्ष्मी कीर्तिके समान धवल अच्छी तरह सुनने योग्य है समस्त बुद्धिमान सज्जनोंको सदा प्रेम उत्पन्न करती है और संसारभरमें फैलनेके परिश्रमसे ही क्या मानों इस लोकमें बहुत दिनसे ठहरी हुई है उसी वचनरूपी लक्ष्मीके द्वारा अनादिकालसे इकट्ठे हुए कानोंमें भरे हुए मैल पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार हिमवन पर्वतसे गंगा नदीका प्रवाह निकलता है अथवा सर्वज्ञदेवसे दिव्यध्वनि निकलती है अथवा उदयाचल पर्वतसे प्रकासमान सूर्य निकलता है उसीप्रकार इन्हीं वीरसेन भट्टारकके पीछे समस्त शास्त्रोंकी साक्षात् मूर्तिके समान जिनसेनाचार्य हुए ॥८॥ जिन श्रीजिनसेनके देदीप्यमान नखोंके किरणसमूहसे जो फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके चरण कमलकी शोभाको धारण करते थे उनकी रजसे जब राजा अमोघवर्षके मुकुटके ऊपर लगे हुए रत्नोंकी कांति पीली पड जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपको

बेत्यल स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलं ॥ ९ ॥ प्राबीण्य पदवाक्ययोः परिणतिः पक्षांतराक्षेपणे सद्भावावगतिः कृतांतविषया श्रेयः कथाकौशलं । प्रथप्रथिमिदि सदष्कलितेत्सप्रभो गुणानां गणो य संप्राप्य चिरं कलंकविकलः काले कलौ सुस्थितः ॥ १० ॥ ज्योत्स्नेव तारकाधीशे सहस्रांशाविव प्रभा । स्फटिके स्वच्छतेवासीत्सहजास्मिन्सरस्वती ॥ ११ ॥ दशरथगुरुरासीत्तस्य धीमान्सधर्मा शशिन इव दिनेशो विश्वलोकैकचक्षुः । निखिलमिदमदीपि व्यापि तद्वाङ्मयूखैः प्रकटितनिजभावं निर्मलैर्धर्मसारैः ॥ १२ ॥ सद्भावः सर्वशास्त्राणां तद्भास्वद्वाक्यविस्तरे । दर्पणार्पितबिंबाभो बालैरप्याशु बुध्यते ॥१३॥ प्रत्यक्षीकृतलक्ष्यलक्षणविधिर्विश्वोपविद्यातिगः सिद्धांताब्ध्यवसानयानजनितप्रागल्भ्यवृद्धेद्धधीः । नानानूननयप्रमाणनिपुणोऽगण्यैर्गुणैर्भूषितः शिष्यः श्रीगुणभद्रसूरिरनयोरासीज्जगद्विश्रुतः ॥ १४ ॥ पुण्यश्रियोऽयमजयत्सुभगत्वदर्पमित्याकलय्य परिशुद्धमतिस्तपःश्रीः । मुक्तिश्रिया पटुतमा प्रहितेव दूती प्रीत्या महागुण-

पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्थाका सदा स्मरण किया करता था ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान श्रीजिनसेनाचार्य सदा संसारका मंगल करते रहें ॥ ९ ॥ वे पद और वाक्योंकी रचना करनेमें बडे प्रवीण थे, जिनकी परिणति सदा परमतके खण्डनमें ही लगी रहती थी, जिन्हें श्रेष्ठ पदार्थोंका सिद्धान्त विषयक अच्छा ज्ञान था वे कथाकी कुशलतामें कल्याणकारी थे, ग्रंथोंके गूढ विषयको अच्छीतरह स्पष्ट करते थे, सन्मार्गको निरूपण करनेवाली उनकी कविता थी, वे गुणवानोंमें सबसे अग्रसर थे, और कलिकालमें भी उनका आश्रय लेकर यह मुनियोंका समुदाय कलंकरहित होकर बहुत दिनतक टिका रहा था ॥१०॥ जिसप्रकार चंद्रमामें चांदनी रहती है, सूर्यमें प्रभा रहती है और स्फटिकमें स्वच्छता रहती है उसीप्रकार जिन श्रीजिनसेनाचार्यमें सरस्वती निवास करती थी ॥ ११ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाका साधर्मी सूर्य होता है उसीप्रकार उन जिनसेनाचार्यके साधर्मी (एक गुरुके शिष्य) दशरथगुरु नामके आचार्य थे, वे दशरथ गुरु बडे ही बुद्धिमान थे, संसारको दिखलानेवाले अद्वितीय नेत्र थे और उनकी निर्मल धर्मको कहनेवाली वचनरूपी किरणोंसे अंधकारसे व्याप्त हुआ यह समस्त संसार आज भी अपने यथार्थ भावको प्रगट करता है। भावार्थ-जिनकी वाणीसे संसारके जीव अपना स्वरूप जान लेते हैं ॥ १२ ॥ उनके प्रकाशमान विस्तृत वाक्योंमें समस्त शास्त्रोंका श्रेष्ठ भाव दर्पणमें पडे हुए प्रतिबिंबके समान मूर्ख पुरुषोंको भी शीघ्र ही मालूम होजाता है ॥ १३ ॥ जिसे समस्त व्याकरण शास्त्र प्रत्यक्ष हो रहा है जो विद्या और उपविद्याओंके पार पहुंच गया है सिद्धांतसागरके पारगामी होनेसे जिसकी प्रतिभा और पूज्य बुद्धि खूब बढ रही है, जो अनेक तरहके समस्त नय और प्रमाणोंके जाननेमें चतुर है और जो मुख्य २ समस्त गुणोंसे विभूषित है ऐसा जगतप्रसिद्ध श्रीगुणभद्राचार्य इन्हीं दोनोंका अर्थात् श्रीजिनसेन और दशरथगुरुका शिष्य था ॥ १४ ॥ यह गुणभद्र पुण्यरूपी

धिया समधिश्रियय ॥१५॥ तस्य वचनांशुविसर सततहतदुस्तरांतरंगतमाः । कुवलयपद्माह्लादी जितशिशिरांशुशिशिररश्मिप्रसर ॥ १६ ॥ कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामात्रक पुरोश्चरित । सकलच्छंदोलंकृतिलक्ष्य सूक्ष्मार्थगूढपदरचन ॥ १७ ॥ व्यावर्णनानुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावं । अपहसितताम्यकाव्य श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेय ॥ १८ ॥ जिनसेनभगवतोक्त मिथ्याकविदर्पदलनमतिललित । सिद्धांतोपनिबंधनकर्त्रा भर्त्रा चिराद्विनायासात् ॥ १९ ॥ अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्ट संगृहीतममलधिया । गुणभद्रसूरिणेद प्रहीणकालानुरोधेन ॥ २० ॥ व्यावर्णनादिरहित सुबोधमखिलं सुलेखमखिलहित । महित महापुराण पठंतु शृण्वंतु भक्तिमद्भव्या ॥२१॥ इद भावयता पुसां तपो भवविभित्सया । भव्याना भाविसिद्धीना शुद्धदृग्वृत्तविद्वतां ॥ २२ ॥ शांतिर्वृद्धिर्जय श्रेयः प्राय प्रेयःसमागमः । विगमो विप्लवव्यासेराप्तिरत्यर्थसंपदा ॥ २३ ॥ यथहेतुफलज्ञान स्याच्छुभाशुभकर्मणां । विज्ञेयो मुक्तिसद्भावो मुक्तिहेतुश्च निश्चितः ॥ २४ ॥

लक्ष्मीकी सुंदरताके अभिमानको भी जीतता है यही समझकर मानो महा गुणवती और बुद्धिमती ऐसी मुक्तिरूपी लक्ष्मीके द्वारा भेजी हुई अ॰ शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाली और अत्यंत चतुर ऐसी दूतीके समान तपश्चरणरूपी लक्ष्मीने वडे प्रेमसे स्वयं आकर जिस गुणभद्राचार्यका आश्रय लिया था ॥ १५ ॥ जिस गुणभद्राचार्यके वचनरूपी किरणोंका फैलाव सूर्य और चंद्रमा दोनोंकी किरणोंके फैलावको जीतता है क्योंकि वह अत्यंत निविड ऐसे अंतरंगके अंधकारको भी सदा नष्ट करता रहता है और कुवलय पद्माल्हादी अर्थात् कमोदनी और कमल दोनोंको प्रफुल्लित करनेवाला अथवा कुवलय अर्थात् पृथ्वीमंडलरूपी कमलको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १६ ॥ यह पुरुदेव अर्थात् श्रीऋषभदेवका चरित्र कविपरमेश्वरकी कही हुई गद्यकथाके आधारसे वनाया गया है इसमें सब छंद और अलंकारोंके उदाहरण है तथा इसकी रचना सूक्ष्म अर्थ और गूढपदोंसे भरी हुई है ॥ १७ ॥ इसका वर्णन बहुत ही अच्छा है इसके पढनेसे सब शास्त्रोंके उत्तम २ पदार्थ साक्षात् हो जाते है, यह अन्य काव्योंका तिरस्कार करता है अर्थात् सब काव्योंसे उत्तम है सुनने योग्य है और विद्वानोंके ग्रहण करने योग्य है ॥ १८ ॥ यह पुरुदेवका चरित्र मिथ्या कवियोंके अभिमानको नष्ट करदेता है और बहुत ही मनोहर है । इसे सिद्धांत ग्रंथकी टीका करनेवाले और बहुत दिन तक शिष्योंका शासन करनेवाले भगवज्जिनसेनाचार्यने बनाया था ॥ १९ ॥ इसका अवशिष्ट भाग बहुत विस्तारके भयसे और हीनकालके अनुरोधसे निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले गुणभद्राचार्यने थोडेमें संग्रह किया है ॥ २० ॥ यद्यपि यह महापुराण विशेष रचना आदिसे रहित है तथापि पूज्य है, सबका हित करनेवाला है, पूर्ण है, सम्यग्ज्ञान बढानेवाला है, और सुंदर लेखोंसे भरपूर है इसलिये भक्तिवाले भव्य पुरुषोंको सदा पढना और सुनना चाहिये ॥ २१ ॥ जो पुरुष इस महापुराणकी भावना करते हैं

निर्वेगत्रितयोद्भूतिर्धर्मश्रद्धाप्रवर्धनं । असंख्येयगुणश्रेण्या निर्जरा शुभकर्मणां ॥ २५ ॥ आस्रवस्य च संरोधः कृत्स्नकर्मविमोक्षणं । शुद्धिरात्यंतिकी प्रोक्ता सैव संसिद्धिरात्मनः ॥ २६ ॥ तदेतदेव व्याख्येयं श्रव्यं भव्यैर्निरंतरं । चिन्त्यं पूज्यं मुदा लेख्यं लेखनीयं च भाक्तिकैः ॥ २७ ॥ विदितसकलशास्त्रो लोकसेनो मुनीशः कविरविकलवृत्तस्तस्य शिष्येषु मुख्यः । सततमिह पुराणे प्राप्य साहाय्यमुच्चैर्गुरुविनयमनैषीन्मान्यतां स्वस्य सद्भिः ॥ २८ ॥ यस्योत्तुंगमतंगजा निजमदस्रोतस्विनीसंगमाद्गांगं वारि कलंकितं कटु मुहुः पीत्वा पगच्छत्तृषः । कौमारं घनचंदनं वनमपां पत्युस्तरंगानिलैर्मन्दान्दोलितमस्तभास्करकरच्छायं समाशिश्रियन् ॥ २९ ॥ दुग्धाब्धौ गिरिणा हरौ हतसुखा गोपीकुचोद्घट्टनैः पद्मे भानुकरैर्भिदेलिमदले वासावसंकोचने । यस्योरःशरणे प्रथीयसि भुजस्तम्भान्तरोत्तम्भितस्थेये हारकलापतोरणगुणे श्रीः सौख्यमागाच्चिरं ॥ ३० ॥ अकालवर्षभूपाले पालयत्यखिलामिलां । तस्मिन्विध्वस्तनिःशेषद्विषि वीध्रयशोजुषि ॥ ३१ ॥

उन शुद्धसम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको धारण करनेवाले तथा होनहार सिद्धियोंको प्राप्त होनेवाले भव्य जीवोंको संसारसे वैराग्य उत्पन्न होकर तपश्चरणकी प्राप्ति होती है शांति, वृद्धि, जय, और कल्याण होता है इष्ट वस्तुओंका समागम होता है, उपद्रवोंका समूह नष्ट होता है, धन संपदाओंकी प्राप्ति होती है, शुभ और अशुभ कर्मोंके बंधके कारण तथा फलोंका ज्ञान होता है। मोक्षकी प्राप्ति और निश्चयसे मोक्षके कारणोंका मिलाप होता है तीनों तरहके वैराग्यकी प्राप्ति होती है धर्मकी श्रद्धा बढ़ती है, अशुभ कर्मोंकी असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है, आस्रवका निरोध होता है समस्त कर्मोंका नाश होता है और आत्माकी अत्यंत शुद्धता प्राप्त होती है तथा यही आत्माकी सम्यक् सिद्धि बतलाई गई है इसलिये भक्त भव्य पुरुषोंको इसी महापुराणका व्याख्यान करना चाहिये इसीको सदा सुनना चाहिये इसीका चिंतवन करना चाहिये इसीकी पूजा करनी चाहिये और प्रसन्नताके साथ इसीको लिखना लिखाना चाहिये ॥२२—२७॥ उन्हीं गुणभद्रके शिष्योंमें मुख्य शिष्य मुनिराज लोकसेन थे जो कि समस्त शास्त्रोंके जानकार थे, कवि थे, पूर्ण चारित्रको पालन करते थे, और जो इस पुराणके बनानेमें गुरुकी विनयरूप अच्छी सहायता देकर सज्जनोंके द्वारा मान्य हुए थे ॥ २८ ॥ अपने मदके बहावसे बनी हुई नदीके समागमसे जिस गंगा नदीका जल कलंकित और कडवा होगया था उसे बार बार पीनेपर जिसकी प्यास दूर नहीं होती थी ऐसे जिस राजाके ऊंचे २ हाथी घने चंदनके उस ताजे वनमें आश्रय लेते थे कि जो महासागरकी तरंगेंरूप वायुके द्वारा धीरे २ हिलाया जाता था और जिसमें सूर्यकी किरणोंकी कांति भी अस्त हो जाती थी ॥ २९ ॥ जो लक्ष्मी क्षीरसागरमें मंदराचल पर्वतसे दुखी हुई थी श्रीकृष्णके वक्षः स्थलपर गोपियोंके कुचोंकी रगडसे दुःखी हुई थी और कमलमें सूर्यकी किरणोंके द्वारा स्वयं प्रफुल्लित होने तथा शामको संकुचित

पद्मालयमुकुलकुलप्रविकासकसत्प्रतापततमहसि । श्रीमति लोकादित्ये प्रध्वस्तप्रथितशत्रुसतमसे ॥३२॥ चेल्लपताके चेल्लध्वजानुजे चेल्लकेतनतनूजे । जैनेंद्रधर्मवृद्धिविधायिनि विधुवीध्रयशसि (?) ॥ ३३ ॥ वनवासदेशमखिलं भुंजति निष्कण्टक सुख सुचिरं । तत्पितृनिजनामकृते वकापुरे पुरेष्वधिके ॥ ३४ ॥ शकनृपकालाभ्यन्तरविंशत्यधिकाष्टशतमिताब्दाते । मगलमहार्थकारिणि पिङ्गलनामनि समस्तजनसुखदे ॥ ३५ ॥ श्रीपचम्यां बुधार्द्रायुजि दिवसकरे मंत्रिवारे बुधांशे पूर्वायां सिंहलग्ने धनुषि धरणिजे वृश्चिकार्कौ तुलायां । सूर्ये शुक्रे कुलीरे गवि च सुरगुरौ निष्ठितं भव्यवर्यैः प्राप्तेज्यं सर्वसारं जगति विजयते पुण्यमेतत्पुराण ॥ ३६ ॥ यावद्धरा जलनिधिर्गगन हिमांशुस्तिग्मद्युति. सुरगिरि ककुभा विभागा । तावत्सतां वचसि चेतसि पूतमेतद् धोतद्युतिस्थितिमुपैतु महापुराण ॥३७॥ धर्मोऽत्र मुक्तिपदमत्रकवित्वमत्र तीर्थेशिना चरितमत्र महापुराणे । यद्वा कवींद्रजिनसेनमुखारविंदनिर्यद्वचासि न मनांसि हरंति केषा ॥३८॥

होनेपर दुःखी होती थी वही लक्ष्मी जिसमें अनेक हारोंके समूहके तोरण गुण विराजमान है जो दोनों भुजारूप खंभोंके मध्यमें खडे रहनेसे स्थिर है और जो वहुत वडा है ऐसे जिस राजाके वक्षःस्थलकी शरण आकर वहुत दिन तक सुखी रही थी ॥ ३० ॥ इसके सिवाय जिसने समस्त शत्रु नष्ट कर दिये थे और जिसका यश वहुत ही निर्मल था ऐसा राजा अकालवर्ष जिस समय समस्त पृथिवीका पालन करता था उसीसमय जिसके श्रेष्ठ प्रतापके समूहका तेज मुकुलित कमलोंके समूहको प्रफुल्लित करता था जिसने प्रसिद्ध २ शत्रु रूप अन्धकार नष्टकर दिया था जो श्रीमान् था जिसकी पताकाएं कपडेकी थी छोटी ध्वजाएं भी कपडेकी थी और भालोंपरकी ध्वजाएं भी कपडेकी थी (?) जो जिनधर्मकी सदा वृद्धि करता रहता था जिसका यश चन्द्रमाके समान निर्मल था ऐसा सामन्त लोकादित्य अपने पिता बंकके द्वारा अपने नामके आधारपर वसाये हुए प्रसिद्ध और वडे बंकापुर नगरमें समस्त वनवास देशको निष्कण्टक तथा सुखसे वहुत दिनतक उपभोग करता था ॥३१–३४॥ उसी समय राजा शकके आठसौ वीसवर्ष वाद सवलोगोंको सुख देनेवाले तथा अनेक मंगल और अर्थ सिद्ध करनेवाले पिंगल नामके संवत्सरमें आश्विन शुक्ला पंचमी गुरुवारके दिन जिससमय कन्याका नौवां अंश था पूर्वाषाढ नक्षत्र था सिंहलग्न था, धनराशिपर मंगल था वृश्चिकपर सूर्य था तुलामें शुक्र और बुद्ध था कर्कराशिपर गुरु और शनि थे उससमय अनेक भव्योंके द्वारा जिसको पूज्यता प्राप्त हुई है और जो निष्ठा करने योग्य सब शास्त्रोंका सारभूत है ऐसा यह पुण्यरूप पुराण संसारमें जयशील हो ॥ ३६ ॥ जवतक पृथ्वी है, समुद्र है, आकाश है, चंद्रमा है, सूर्य है, मेरु पर्वत है और दिशाओंके विभाग हैं तवतक पवित्र और अपनी कांतिको प्रकाशित करनेवाला यह महापुराण सज्जनोंके वचनोंमें और चित्तमें सदा

६ गु. श.
प. ४
पुं. शु. ५ ३
७
८ २
सू.
चं. १
९ ११ के.
मं १० १२

महापुराणस्य पुराणपुस- पुरापुराणे तदकारि किंचित् । कवीशिनानेन यथा न काव्यचर्चासु चेतोविकलाः कवींद्रा ॥ ३९॥ कविवर जिनसेनाचार्य स्फूर्यभासा मधुरिमणि न वाच्य नाभिसूनोः पुराणे । तदनु च गुणभद्राचार्यवाचो विचित्राः सकलकविकरींद्रव्रातसिंह्यो जयति ॥ ४० ॥ यदि सकलकवींद्रप्रोक्तसूक्तप्रचारश्रवणसरसचेतास्तत्त्वमेव सखे स्याः । कविवरजिनसेनाचार्यवक्त्रारविंदप्रणिगदितपुराणाकर्णनाभ्यर्णकर्णः ॥४१॥ धर्मः कश्चिदिहास्ति नैतदुचितं वक्तुं पुराणं महत् श्रव्यः किंतु कथात्रिषष्टिपुरुषाख्यान चरित्रार्णवः । कोप्यस्मिन् कवितागुणोस्ति कथयोप्येतद्वचोज्वालय कोसावत्र कविः कवींद्रगुणभद्राचार्यवर्यः स्वयं ४२

इत्यार्षे त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते प्रशस्तिव्यावर्णनं नाम सप्तसप्ततितम पर्व ।

स्थान प्राप्त करो ॥३७॥ इस महापुराणमें धर्मका स्वरूप है, मोक्षका मार्ग है, कविता है, और तीर्थंकरोंका चरित्र है अथवा कविराज श्रीजिनसेनके मुखारविंदसे निकले हुए वचन भला किसके मनको हरण नहीं कर सकते ॥३८॥ इन जिनसेनाचार्य कविराजने इस महापुराणके पूर्वभागमें अर्थात् आदिपुराणमें पुराणपुरुष अर्थात् श्रीऋषभदेवका जीवनचरित्र संक्षेपसे इसप्रकार कहा है कि जिससे काव्य चर्चामें भी बडे बडे कविराजोंका चित्त विकल न हो जाय ॥ ३९ ॥ श्रीऋषभदेवके पुराणरूपी वसंतऋतुमें कविवर श्रीजिनसेनाचार्य सूर्यके समान थे इसलिये उनके विषयमें तो कुछ कहना ही नहीं चाहिये परंतु उनके बादकी समस्त कविगणरूपी हाथियोंके समूहकेलिये सिंहिनीके समान जो गुणभद्राचार्यकी विचित्र वाणी है वह जयशील हो ॥ ४० ॥ हे मित्र यदि तू समस्त उत्तम कवियोंके कहे हुए सुभाषितोंके प्रचारको सुनकर सरस चित्त होना चाहता है तो कविवर श्रीजिनसेनाचार्यके मुखारविंदसे कहे हुए पुराणके सुननेमें अपने कान लगा ॥ ४१ ॥ इसमें धर्मका स्वरूप है या नहीं यह कहना ही उचित नहीं है क्योंकि यह बडाभारी पुराण ही महा धर्म है । क्या इसमें कुछ सुनने योग्य कथा है ऐसा पूछना भी ठीक नहीं है क्योंकि त्रेसठ शलाका पुरुषोंके चरित्र ही इसमें सुनने योग्य हैं क्योंकि उनके चरित्रोंका यह महासागर है । इसीतरह क्या इसमें कोई कविताके गुण हैं यह भी पूछना उचित नहीं है क्योंकि बडे बडे कविराज भी इसके वचनरूपी कमलोंके भ्रमर बने हुए हैं तो फिर इसका बनानेवाला कवि कौन है ? इसका उत्तर यही है कि कविराज आचार्यवर्य गुणभद्र स्वयं ही इसके कवि हैं ॥ ४२ ॥

इसप्रकार भगवद्गुणभद्राचार्यविरचित महापुराणकी यह प्रशस्ति समाप्त हुई ॥

इसप्रकार यह ग्रंथ समाप्त हुआ ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी । मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलं ।